ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ओ३म्

प्रकाशकः-

दयानन्द - संस्थान

नई दिल्ली-५

४।

ओ३म्

# वेद

## यजुर्वेद सामवेद

### भाषा भाष्य
### संपूर्ण

प्रकाशक—
पण्डिता राकेश रानी
मन्त्री—दयानन्द संस्थान
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली ५

दूरभाष ५६६६३६

## परम पिता परमात्मा की अमृत वाणी के प्रकाशन यज्ञ की सफलता के लिए प्राप्त आहुतियां

| | | |
|---|---|---|
| १ | श्री डा नारायणदास जी गोहाटी | २ ०१ |
| २ | श्री मनोहर विद्यालंकार दिल्ली | १ १ |
| ३ | श्री राय रतन लाल जी गाजियाबाद | १० १ |
| ४ | श्री अनन्त राम जी गुप्त कानपुर | १० १ ० |
| ५ | आर्य महिला केन्द्रीय सभा अमृतसर | १ १ |
| ६ | आर्य समाज लक्कड़ बाजार शिमला | १ १ |
| ७ | श्री ओमप्रकाश गोयल दिल्ली | १ १ |
| ८ | श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्रीमती दुर्गादेवीजी गोहाटी | १ १ |
| ९ | श्री बाबा हरिदास वनखण्डी आश्रम जोनायचा | १ १ |
| १ | श्री वैद्य योगीराज आयुर्वेदालंकार दीनानगर | १० १ ० |
| ११ | श्रीमती चन्द्रकांता विद्यालंकृता नागपुर | ५ १ ० |
| १२ | श्री किशनलाल रामचन्द्र हैदराबाद | ५ १ ०० |
| १३ | श्री मन्त्री आर्य समाज जींद | ५ १ ० |
| १४ | श्री मा बद्रीप्रसाद गुप्त जींद | ५ १ |
| १५ | श्री प हरिश्चन्द्र जी जींद | ५ १ ० |
| १६ | श्री माता भगवती देवी जी जींद | ५ १ ०० |
| १७ | श्री प रामस्वरूप जी जींद | ५ १ ०० |
| १८ | श्री बलदेव वानप्रस्थी चांदपुर | ५०१ ०० |
| १९ | श्रीमती माता जानकी देवी तथा श्री किशनदास जी दिल्ली की स्मृति में | ५०१ ० |
| २ | डा जगन्नाथ जी व श्रीमती भगवती देवी की स्मृति में | ५०१ ० |
| २१ | श्रीमती कौशल्या देवी अमृतसर | ५ १-०० |
| २२ | श्री एच पी० आर्य बेलगाछी | ५०१-०० |
| २३ | श्री छोटाभाई लक्ष्मण भाई बक्कर | ५०१-०० |
| २४ | श्री बी शिवानन्द नैटाल | ५०१-०० |
| २५ | श्री डा बेलीराम जी करनाल | ५०१ ०० |
| २६ | श्रीमती राज सूरी दिल्ली | ५०१-०० |
| २७ | भारत टैक्सटाइल्स कलकत्ता | ५०१-०० |
| २८ | श्री मायादास भगवानदास तिनसुकिया | ५ १-०० |
| २९ | श्री बनारसीदास गुप्ता दिल्ली | ५०१-० |
| १ | श्री सूर्यकांत मिश्र रुड़की | ५०१-०० |
| ३१ | श्रीमती प्र मवती दरगन उदयपुर | ५०१-०० |
| ३२ | श्री वेदप्रकाश अग्रवाल आगरा छावनी | ५ १ ० |
| ३३ | स्वर्गीया सुशीला देवी धर्मपत्नी श्री आनन्दप्रिय जसपुर नैनीताल की स्मृति में— | ५०१ ० |

भेंट मूल्य ७१)

मुद्रक—
सैनी प्रिंटर्स
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली का प्रकाशन

दयानन्द संस्थान द्वारा
प्रकाशित प्रथम संस्करण

दीपमाला, संवत् २०३०

# अपनी बात

'ज्ञान' का पावन दशन वेद' की ऋचाओ के रूप मे धरती के पथ प्रदशन क लिए परम-पिता परमात्मा ने प्रदान किया। सृष्टि के आरम्भ मे इस ईश्वरीय ज्ञान को पाकर मनुष्य को ज्ञान-नेत्र मिले। वेद-माग पर चलकर भू-मडल स्वग बना और जब-जब इम ज्ञान को विस्मत किया गया तब-तब भूमि पर पाप-अज्ञान का आवरण छाया और सभी के दु खो का कारण बना।

मनुष्य कैसे मनुष्य बने, मनुग्य बनकर कैसे परस्पर व्यवहार करे, इस की उदात्त प्रेरणाए वेद की प्रत्येक-ऋचा मे ध्वनित हैं। इनके स्वाध्याय मनन आचरण से मानवता का विकास हुआ है और होता रहेगा।

ज्ञान, कम, उपासना और जीवन-धम की व्यावहारिकता से परिपूण वेद वाणी का ही यह प्रभाव था कि भारत लाखो वप पूव भी ज्ञान और विज्ञान की दष्टि से आज से भी कही उन्नत और विकसित था। वेद' की विस्मति सत्य और ज्ञान की उपेक्षा है, इस तथ्य को जान समझ कर ही हम 'वेद' की गौरव-गरिमा का मूल्याकन करने मे समथ हो सकेगे।

आज आवश्यकता है कि प्रभु पुत्र वेद का स्वाध्याय कर उस के दिखाए प्रकाश से अपनी राह ज्योतित कर सभी 'देव बनने का प्रयास करे। प्रभु की कल्याणी वाणी वद की किरणो क प्रकाश में दु ख दारिद्रय कष्ट-कलेश कही शेष नही रह सकता। जीवन क प्रत्येक पल मे आनन्द सुधा का पान करते हुए मनुग्य शाति-गगा मे स्नान कर जीवन-यात्रा के पथ पर अविराम गति से बढ सकता है।

यज्ञमय जीवन के द्वारा प्रभु का साक्षात्कार करते हुए हम गति-बल-प्रेरणा पाकर मोक्ष की ओर अग्रसर हो, हमारे जीवन वेद-माता के निर्देशन मे जगन्नियन्ता परमात्म देव की गोदी में स्थान पाकर उस प्रकाश पु ज का सामीप्य अनुभव कर सके, जिसे प्राप्त करने के लिये ही यह मानव देह हमें प्राप्त हुयी है।

श्रद्धा-आदर और सवस्वसमपण की पवित्र भावना से हम—यजुर्वेद और सामवेद का यह भाषा-भाष्य प्रभु-पुत्रो की सेवा में सादर अर्पित करते हुए कामना करते है कि इनके दशन मनन-स्मरण से प्रत्येक मानव मन का अन्धकार दूर हो। यजुर्वेद के भाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती और सामवेद के भाष्यकार महर्षि के व्याख्याकार श्रेष्ठ वैदिक विद्वान् आचाय वैद्यनाथ शास्त्री हैं। हमे विश्वास है कि इन दोनो वेदो के भाष्य आप के मानस को नयी शक्ति-भक्ति प्ररणा और उल्लास प्रदान करग।

सामवेद भाग्य के प्रकाशन की प्ररणा क लिए महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज क हम हृदय से आभारी हैं। काय सपादन मे जिन जिन का भी सहयाग जाने-अनजाने मिला, सभी का हार्दिक धन्यवाद!

परमात्मा की वाणी के प्रसार का यज्ञ आधा निर्विघ्न पूर्ण हुआ। प्रभु की कृपा से शेष काय भी शीघ्र पूण होगा। धम की शक्ति, ज्ञान का प्रसार और सत्य की विजय सवत्र हागी, इसी आशा और विश्वास के साथ यह पावन धम ग्रथ आपको सेवा मे सादर अर्पित है।

**ज्ञान-ज्योति की शुभ्र किरण का जग मे हो विस्तार**
**प्रभु की वाणी के स्वर गूज, फलें शुद्ध विचार।**
**जन मानस मे सत्य-सुधा की गूजे जय जयकार,**
**धम ध्वजा फहराए भू पर, स्वग बने ससार।**

**इसी भावना से अर्पित है, प्रभु वाणी कल्याणी,**
**सब को दे यह शक्ति प्रभु की मगलमय वरदानी।**
**वेदामृत का पान सभी को दिव्य बना सकता है।**
**वेद ज्ञान ही इस धरती को राह दिखा सकता है।।**

**प्रभु के आशीर्वाद और मगल-कामनाओं के साथ**

**अध्यक्ष दयानन्द सस्थान** —भारतेन्द्रनाथ

२५ । ८ । ३५

।। ओ३म ।।

# अथ यजुर्वेदभाषाभाष्यारम्भः क्रियते ।।

**यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञान गुणैरीश्वर । त नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्य सुबोधाय च ।**
**ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुवरम् । भाष्य काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्य मया ।१।**
**चतुस्त्र्यकैरकैरवनिसहितैर्विक्रमसरे । शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मितितिथौ ।**
**गुरोर्वारे प्रात प्रतिपदमतीष्ट सुविदुषा प्रमाणैर्निबद्ध शतपथनिरुक्तादिभिरपि ।२।**

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्र तन्न आसुव ।।१।।

**भावार्थ** —अब यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया है ।।

**जो निगुण गुणपुञ्ज से देत सुकृत विज्ञान । प्रणतपाल जगदीश्वरहि करि प्रणाम तहि ध्यान ।१।**
**ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय । पर उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय ।२।**
**शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निघण्टु निरुक्त निहारि । यजुर्वेद जो क्रियापर बनौं ताहि विचारि ।३।**
**एक सहस्र नवशत अधिक विक्रमसर चौंतीस । पौष शुक्ल तेरसि तिथि दिन अधीश वागीश ।।४।।**

विक्रम के सवत् १९३४ पौप सुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य बनाने का आरम्भ किया जाता है । (**विश्वानि०**) इस मन्त्र का अथ भूमिका मे कर दिया है ।

ईश्वर ने ऋग्वेद म गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश के द्वारा सब पदाथ प्रसिद्ध किये है उन मनुष्यो को पदार्थो से जिस-जिस प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो जो अङ्ग वा साधन है सा सो यजुर्वेद मे प्रकाशित किये हैं क्योकि जबतक क्रिया करने का दढ ज्ञान न हो तबतक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहो हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु है कि जो क्रियाप्रकाश अविद्या की निवृत्ति अधम्म मे अप्रवृत्ति तथा धम्म और पुरुषाथ का सयोग करना है । जो कम्मकाड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकाड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है । कोई जीव ऐसा नही है कि जो मन प्राण वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाये विना एक क्षण भर रह सके क्योकि जीव अल्पज्ञ एकदेशवर्ती चेतन है । इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मत्रो से सब पदार्थो के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रो से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योकि (**ऋक्**) और (**यजु**) इन शब्दो का अथ भी यही है जिस से मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पथिवीपयन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानो का सग सब शिल्पक्रिया सहित विद्याओ को सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सब प्रकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करे इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है । और भी इन शब्दो का अभिप्राय भूमिका मे प्रकट कर दिया है वहाँ दख लेना चाहिये क्योकि उक्त भूमिका चारो वेदो की एक ही है ।।

इस यजुर्वेद मे सब चालीस अध्याय है उन एक-एक अध्याय मे कितने-कितने मत्र हैं सो निम्नांकित कोष्ठ मे बनाके सब लिख दिया है और चालीसो अध्याय के मिल के १९७५ (उन्नीस्सौ पचहत्तर) मन्त्र हैं ।।

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अध्याय | १ | मन्त्रा | ३१ | अध्याय | ११ | मन्त्रा | ८३ | अध्याय | २१ | मन्त्रा | ६१ | अध्याय | ३१ | मन्त्रा | २२ |
| | २ | , | ३४ | | १२ | , | ११७ | ,, | २२ | , | ३४ | ,, | ३२ | ,, | १६ |
| , | ३ | , | ६३ | , | १३ | , | ५८ | , | २३ | , | ६५ | ,, | ३३ | | ९७ |
| , | ४ | | ३७ | | १४ | | ३१ | ,, | २४ | , | ४० | , | ३४ | , | ५८ |
| ,, | ५ | , | ४३ | | १५ | | ६५ | , | २५ | , | ४७ | ,, | ३५ | , | २२ |
| | ६ | , | ३७ | , | १६ | , | ६६ | , | २६ | , | २६ | ,, | ३६ | , | २४ |
| | ७ | , | ४८ | ,, | १७ | , | ९९ | , | २७ | , | ४५ | ,, | ३७ | ,, | २१ |
| ,, | ८ | ,, | ६३ | | १८ | | ७७ | | २८ | , | ४६ | , | ३८ | , | २८ |
| | ९ | , | ४० | | १९ | | ९५ | , | २९ | , | ६० | ,, | ३९ | ,, | १३ |
| | १० | | ३४ | | २० | , | ९० | , | ३० | , | २२ | , | ४० | , | १७ |

—(स्वामी) दयानन्द सरस्वती

# अथ यजुर्वेदभाषाभाष्य

**इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । इषे त्वेत्यारभ्य भागपर्य्यन्तस्य स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । अग्र सर्वस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम उत्तम कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये इस बात का प्रकाश किया है—*

**ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! जो ( **सविता** ) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाला सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त ( **देव** ) सब सुखों के देने और सब विद्या के प्रसिद्ध करनेवाला परमात्मा है । सो ( **वः** ) तुम हम और अपने मित्रों के जो ( **वायवः** ) सब क्रियाओं के सिद्ध करानेहारे स्पर्शगुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियां ( **स्थ** ) हैं उनको ( **श्रेष्ठतमाय** ) अत्युत्तम ( **कर्मणे** ) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिये ( **प्रार्पयतु** ) अच्छी प्रकार संयुक्त करे । हम लोग ( **इषे** ) अन्न आदि उत्तम उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और ( **ऊर्जे** ) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये ( **भागम्** ) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए ( **त्वा** ) उक्त गुणवाले और ( **त्वा** ) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देनेहारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं । हे मित्र लोगो ! तुम भी ऐसे होकर ( **आप्यायध्वम्** ) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों । हे भगवन् ! जगदीश्वर ! हम लोगों के ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( **प्रजावतीः** ) जिनके बहुत सन्तान हैं तथा जो ( **अनमीवाः** ) व्याधि और ( **अयक्ष्माः** ) जिनमें राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं वे ( **अघ्न्याः** ) जो जो गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य हैं जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रियां वा पृथिवी आदि लोक हैं उन को सदैव ( **प्रार्पयतु** ) नियत कीजिये । हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई ( **अघशंसः** ) पापी वा ( **स्तेनः** ) चोर डाकू ( **मा ईशत** ) मत उत्पन्न हो तथा आप इस ( **यजमानस्य** ) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करनेवाले मनुष्य के ( **पशून्** ) गौ घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की ( **पाहि** ) निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो ( **अस्मिन्** ) इस धार्मिक ( **गोपतौ** ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहनेवाले सज्जन मनुष्य के समीप ( **बह्वीः** ) बहुत से उक्त पदार्थ ( **ध्रुवाः** ) निश्चल सुख के हेतु ( **स्यात** ) हों ॥ १ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद को पढ़के गुण और गुणी को ठीक ठीक जानकर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अत्युत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिससे परमेश्वर की कृपापूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि हो । सब लोगों को चाहिये कि अच्छे अच्छे कामों से प्रजा की रक्षा तथा उत्तम उत्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिससे प्रबल रोग विघ्न और चोरों का अभाव होकर प्रजा और पुत्रादि सब सुखों को प्राप्त हों यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है । हे मनुष्य लोगो ! आओ अपने मिलके जिसने इस संसार में आश्चर्यरूप पदार्थ रचे हैं उस जगदीश्वर के लिये सदैव धन्यवाद देवें । वही परमदयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुए मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है ॥ १ ॥

**वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*वह यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि । परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥२॥**

**पदार्थ**—हे विद्यायुक्त मनुष्य ! तू जो ( **वसोः** ) यज्ञ ( **पवित्रम्** ) शुद्धि का हेतु ( **असि** ) है ( **द्यौः** ) जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होनेवाला ( **असि** ) है जो ( **पृथिवी** ) वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलनेवाला ( **असि** ) है जो ( **मातरिश्वनः** ) वायु को ( **घर्मः** ) शुद्ध करनेवाला ( **असि** ) है जो ( **विश्वधाः** ) संसार का धारण करनेवाला ( **असि** ) है । तथा जो ( **परमेण** ) उत्तम ( **धाम्ना** ) स्थान से ( **दृꣳहस्व** ) सुख का बढ़ानेवाला है इस यज्ञ का ( **मा** ) मत ( **ह्वाः** ) त्याग कर । तथा ( **ते** ) तेरा ( **यज्ञपतिः** ) यज्ञ की रक्षा करनेवाला यजमान भी उसका ( **मा** ) न ( **ह्वार्षीत्** ) त्यागे । वास्तव में अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है अर्थात् एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिये विद्या ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध अर्थात् बड़े बड़े विद्वान् हैं उनका सत्कार करना । दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभगुण विद्या, सुख धर्म और सत्य का नित्य दान करना है ॥ २ ॥

**भावार्थ**—मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं उससे पवित्रता का प्रकाश पृथिवी का राज्य वायुरूपी प्राण के तुल्य राजनीति प्रताप सब की रक्षा इस लोक और परलोक में सुख की वृद्धि परस्पर कोमलता से वर्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिये विद्या और पुरुषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ २ ॥

**वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर उक्त यज्ञ कैसा सुख करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥३॥**

**पदार्थ**—जो ( **वसोः** ) यज्ञ ( **शतधारम्** ) असंख्यात संसार का धारण करने और ( **पवित्रम्** ) शुद्धि करनेवाला कर्म ( **असि** ) है तथा जो ( **वसोः** ) यज्ञ ( **सहस्रधारम्** ) अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड का धारण करने और ( **पवित्रम्** ) शुद्धि का निमित्त सुख देनेवाला है ( **त्वा** ) उस यज्ञ को ( **देवः** ) स्वयं प्रकाशस्वरूप ( **सविता** ) वसु आदि तेंतीस देवों का उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर ( **पुनातु** ) पवित्र करे । हे जगदीश्वर ! आप हम लोगों से सेवित ( **वसोः** ) जो यज्ञ है उस ( **पवित्रेण** ) शुद्धि के निमित्त वेद के विज्ञान ( **शतधारेण** ) बहुत विद्याओं का धारण करनेवाले वेद और ( **सुप्वा** ) अच्छी प्रकार पवित्र करनेवाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिये । हे विद्वान् पुरुष वा जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य ! तू ( **काम्** ) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन वाणी के अभिप्राय को ( **अधुक्षः** ) अपने मन में पूर्ण करना अर्थात् जानना चाहता है ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का सेवन करके पवित्र होते हैं उन्हीं को जगदीश्वर बहुतसा ज्ञान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है परन्तु जो लोग ऐसी क्रियाओं के करनेवाले वा परोपकारी होते हैं वे ही सुख को प्राप्त होते हैं आलस्य करनेवाले कभी नहीं । इस मन्त्र में कामधुक्षः इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥ ३ ॥

**सा विश्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*जो पूर्वोक्त मन्त्र में तीन प्रश्न कहे हैं उनके उत्तर अगले मन्त्र में क्रम से प्रकाशित किये हैं—*

**सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष ॥४॥**

**पदार्थ**—हे ( **विष्णो** ) व्यापक ईश्वर ! आप जिस वाणी का धारण करते हैं ( **सा** ) वह ( **विश्वायुः** ) पूर्ण आयु की देनेवाली ( **सा** ) वह ( **विश्वकर्मा** ) जिससे कि सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड सिद्ध होता है और ( **सा** ) वह ( **विश्वधायाः** ) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करनेवाली है । पूर्व मन्त्र में जो प्रश्न है उसके उत्तर में यही तीन प्रकार की वाणी ग्रहण करने योग्य है इसी से मैं ( **इन्द्रस्य** ) परमेश्वर का ( **भागम्** ) सेवन करने योग्य यज्ञ को ( **सोमेन** ) विद्या से सिद्ध किये रस अथवा आनन्द से ( **आ तनच्मि** ) अपने हृदय में दृढ़ करता हूं तथा हे परमेश्वर ! ( **हव्यम्** ) पूर्वोक्त यज्ञ सम्बन्धी देने लेने योग्य द्रव्य वा विज्ञान की ( **रक्ष** ) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥४॥

**भावार्थ**—वाणी तीन प्रकार की होती है अर्थात् प्रथम वह जो कि ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़ने या पूर्ण आयु होने के लिये सेवन की जाती है । दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रिया वा उद्योगों से सुखों को देनेवाली विस्तार से प्रकट की जाती है और तीसरी वह जो इस संसार में सब मनुष्यों के शरीर और आत्मा के सुख की वृद्धि वा ईश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान को देनेवाली वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में विद्वानों से उपदेश की जाती है । इस तीन प्रकार की वाणी के बिना किसी को सब सुख नहीं हो सकते क्योंकि इसी से पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करना योग्य है । ईश्वर की यह आज्ञा है कि जो नियम से किया हुआ यज्ञ संसार में रक्षा का हेतु और प्रेम सत्यभाव से प्रार्थित ईश्वर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है वही सब का अध्यक्ष है परन्तु जो क्रिया में कुशल धार्मिक परोपकारी मनुष्य हैं वे ही ईश्वर और धर्म को जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासाधनों से इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

**अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब प्राणी का व्रत क्या है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।**
**इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥५॥**

**पदार्थ**—हे ( **व्रतपते** ) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और ( **अग्ने** ) सत्य उपदेश करनेवाले परमेश्वर ! मैं ( **अनृतात्** ) जो झूठ से अलग ( **सत्यम्** ) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करने हारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया ( **व्रतम्** ) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है उसका ( **उपैमि** ) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ ( **मे** ) मेरे ( **तत्** ) उस सत्यव्रत को आप ( **राध्यताम्** ) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि ( **अहम्** ) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को ( **शकेयम्** ) समर्थ होऊं और मैं ( **इदम्** ) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम ( **चरिष्यामि** ) करूंगा ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुख का हेतु है यही सब को आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है। इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हे परमेश्वर ! हम लोग वेद में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन् ! आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्यधर्म का पालन करके अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें। जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हम लोग भी आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुँचानेवाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में भी इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी, मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूठ का आचरण करनेवाले हैं वे असुर, राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥५॥

**कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*किसने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ।**
**कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥६॥**

**पदार्थ**—( **कः** ) कौन ( **त्वा** ) तुमको अच्छी अच्छी क्रियाओं के सेवन करने के लिये ( **युनक्ति** ) आज्ञा देता है ( **सः** ) सो जगदीश्वर ( **त्वा** ) तुम को विद्या आदि शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् वा विद्यार्थी होने को ( **युनक्ति** ) आज्ञा देता है ( **कस्मै** ) वह किस किस प्रयोजन के लिये ( **त्वा** ) मुझे और तुझको ( **युनक्ति** ) युक्त करता है ( **तस्मै** ) पूर्वोक्त सत्यव्रत के आचरण रूप यज्ञ के लिये ( **त्वा** ) धर्म के प्रचार करने में उद्योगी को ( **युनक्ति** ) आज्ञा देता है ( **सः** ) वही ईश्वर ( **कर्मणे** ) उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये ( **वाम्** ) कर्म करने और करानेवालों को नियुक्त करता है ( **वेषाय** ) शुभगुण और विद्याओं में व्याप्ति के लिये ( **वाम्** ) विद्या पढ़ने और पढ़ानेवाले तुम लोगों को उपदेश करता है ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर से ईश्वर जीवों के लिये उपदेश करता है। जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है तो इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ही पुरुषार्थ और अच्छी-अच्छी क्रिया के करने को तुम्हारे लिये वेद के द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है। इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्वव्यापक जगदीश्वर फिर वह पूछे कि वह हमको किस किस प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है उसका उत्तर देवे कि सत्य और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्य विद्या और धर्म के प्रचार के लिये। मैं और आप दोनों को कौन कौन काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है। इस का परस्पर उत्तर देवे कि यज्ञ करने के लिये। फिर वह कौन-कौन पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है। इस का उत्तर देवे कि सब विद्याओं की प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़कर उनका प्रचार करना चाहिये। किसी मनुष्य को पुरुषार्थ को छोड़कर आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ६ ॥

**प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । प्राजापत्या जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाववाले मनुष्यों का निषेध करें इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः ।**
**उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥७॥**

**पदार्थ**—मुझको चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ ( **रक्षः** ) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाववाले मनुष्य को ( **प्रत्युष्टम्** ) निश्चय करके निर्मूल करूँ तथा ( **अरातयः** ) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं उनको ( **प्रत्युष्टाः** ) प्रत्यक्ष निर्मूल ( **रक्षः** ) वा दुष्ट स्वभाव दुष्ट गुण विद्याविरोधी स्वार्थी मनुष्य और ( **निष्टप्तम् अरातयः** ) छलयुक्त होके विद्या के ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को ( **निष्टप्ताः** ) निरन्तर सन्तापयुक्त करूं। इस प्रकार करके ( **अन्तरिक्षम्** ) सुख के सिद्ध करनेवाले उत्तम स्थान और ( **उरु** ) अपार सुख को ( **अन्वेमि** ) प्राप्त होऊं ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़ कर विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उनको बहु प्रकार ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या, धर्म, पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

**धूरसीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*सबके धारण करनेवाले ईश्वर और पदार्थ विद्या की सिद्धि हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।**
**देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥८॥**

**पदार्थ**—हे परमेश्वर ! आप ( **धूः** ) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करनेवाले ( **असि** ) हैं इस कारण हम लोग इस बुद्धि से ( **देवानाम्** ) विद्वानों को विद्या, मोक्ष और सुख में ( **वह्नितमम्** ) यथायोग्य पहुँचाने ( **सस्नितमम्** ) अतिशय कर के शुद्ध करने ( **पप्रितमम्** ) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने ( **जुष्टतमम्** ) धार्मिक भक्तजनों को सेवा करने योग्य और ( **देवहूतमम्** ) विद्वानों को स्तुति करने योग्य आप की नित्य उपासना करते हैं। ( **यः** ) जो कोई द्वेषी, छली, कपटी, पापी, कामक्रोधादियुक्त मनुष्य ( **अस्मान्** ) धर्मात्मा और सब को सुख से युक्त करनेवाले हम लोगों को ( **धूर्वति** ) दुःख देता है और ( **यम्** ) जिस पापीजन को ( **वयम्** ) हम लोग ( **धूर्वामः** ) दुःख देते हैं ( **तम्** ) उसको आप ( **धूर्व** ) शिक्षा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वा सब को दुःख देता है उस को भी आप सदैव ( **धूर्व** ) ताड़ना कीजिये। हे शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य ! तू जो भौतिक अग्नि ( **धूः** ) सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करनेवाला ( **असि** ) है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विमानों को ( **वह्नितमम्** ) सुख पहुँचाने ( **सस्नितमम्** ) शुद्धि होने का हेतु ( **पप्रितमम्** ) शिल्पविद्या का मुख्य साधन ( **जुष्टतमम्** ) कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो ( **देवहूतमम्** ) विद्वानों की स्तुति करने योग्य अग्नि है उसको ( **वयम्** ) हम लोग ( **धूर्वामः** ) ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो ( **अस्मान्** ) हम लोगों को ( **धूर्वति** ) पीड़ा करता है ( **तम्** ) उस ( **धूर्वन्तम्** ) पीड़ा करनेवाले अग्नि को ( **धूर्व** ) यानादिकों में युक्त कर तथा हे वीरपुरुष ! तुम ( **यः** ) जो दुष्ट शत्रु ( **अस्मान्** ) हम लोगों को ( **धूर्वति** ) दुःख देता है ( **तम्** ) उसको ( **धूर्व** ) नष्ट कर तथा जो कोई चोर आदि है उसको भी ( **धूर्व** ) नाश कीजिये ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो ईश्वर सब जगत् का धारण कर रहा है वह पापी दुष्ट जीवों को उनके किये हुए पापों के अनुकूल दण्ड देकर दुःखयुक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्मों के अनुसार फल देकर उनकी रक्षा करता है। वही सब सुखों की प्राप्ति, आत्मा की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देनेवाला, विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं। तथा यह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की क्रियाओं को सिद्ध करने तथा उनका मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में अपने प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से श्रेष्ठ है। क्योंकि जिससे सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्त्रास्त्रविद्या से शत्रुओं का पराजय होता है इससे यह भी विद्या की युक्तियों से होम और विमान आदि के सिद्ध करने के लिये सेवा करने के योग्य है ॥ ८ ॥

**अह्रुतमसीत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।**
**विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९॥**

**पदार्थ**—हे ऋत्विग् मनुष्य ! तुम जो अग्नि से बढ़ा हुआ ( **अह्रुतम्** ) कुटिलता रहित ( **हविर्धानम्** ) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को ( **दृꣳहस्व** ) बढ़ाओ किन्तु किसी समय में ( **मा ह्वाः** ) उसका त्याग मत करो तथा यह ( **ते** ) तुम्हारा ( **यज्ञपतिः** ) यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को ( **मा ह्वार्षीत्** ) न छोड़े। इस प्रकार तुम लोग ( **पञ्च** ) एक तो ऊपर को चेष्टा होना दूसरा नीचे को तीसरा चेष्टा से अपने अङ्गों को सकोचना चौथा उनका फैलाना पाँचवाँ चलना फिरना आदि इन पाँच प्रकार के कर्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उसको अग्नि में ( **यच्छन्ताम्** ) हवन करो ( **त्वा** ) वह जो हवन किया हुआ द्रव्य है उसको ( **विष्णुः** ) जो व्यापनशील सूर्य है वह ( **अपहतम् रक्षः** ) दुर्गन्धादि दोषों का नाश करता हुआ ( **उरुवाताय** ) अत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये ( **क्रमताम्** ) चढ़ा देता है ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़कर शिक्षा देनेवाले के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जान कर उसका अनुष्ठान करते हैं तभी शिल्पविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्र्य

और दुःखो से छूटकर सब सुखो को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यो के लिये आज्ञा दी है जिसका पालन करना सबका उचित है ॥ ६ ॥

**देवस्य त्वेत्यस्य ऋषि स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*उस यज्ञ के फल का ग्रहण किससे होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्या जुष्टं गृह्णामि ॥१०॥

**पदार्थ**—मैं ( **सवितु** ) सब जगत् के उत्पन्नकर्त्ता सकल ऐश्वर्य के दाता तथा ( **देवस्य** ) ससार का प्रकाश करनेहार और सब सुखदायक परमेश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए इस ससार मे ( **अश्विनो** ) सूर्य्य और चन्द्रमा के ( **बाहुभ्याम्** ) बल और वीर्य्य से तथा ( **पूष्ण** ) पुष्टि करनेवाले प्राण के ( **हस्ताभ्याम्** ) ग्रहण और त्याग से ( **अग्नये** ) अग्निविद्या के सिद्ध करने के लिये ( **जुष्टम्** ) विद्या पढनेवाले जिस कर्म की सेवा करते है ( **त्वा** ) उस ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूं । इसी प्रकार ( **अग्नीषोमाभ्याम्** ) अग्नि और जल की विद्या से ( **जुष्टम्** ) विद्वानो ने जिस कर्म को चाहा है उसके फल को ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ ॥ १० ॥

**भावार्थ**—विद्वान् मनुष्यो को उचित है कि विद्वानो का समागम वा अच्छे प्रकार अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर की उत्पन्न की हुई प्रत्यक्ष सृष्टि अर्थात् संसार मे सकल विद्या की सिद्धि के लिये सूर्य्य चन्द्र अग्नि और जल आदि पदार्थो के प्रकाश से सब के बल वीर्य्य की वृद्धि के अर्थ अनेक विद्याओ को पढके उनका प्रचार करना चाहिये अर्थात् जैसे जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उनकी धारणा से सब का उपकार किया है वैसे ही हम लोगो को भी नित्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ १० ॥

**भूताय त्वेत्यस्य ऋषि स एव । अग्निर्देवता । स्वराड् जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*यज्ञशाला आदिक घर कैसे बनाने चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्ता दुर्या पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष ॥११॥

**पदार्थ**—मैं जिस यज्ञ को ( **भूताय** ) प्राणियो के सुख तथा ( **अरातये** ) दारिद्र्य आदि दोषो के नाश के लिये ( **अदित्या** ) वेदवाणी वा विज्ञान प्रकाश के ( **उपस्थ** ) गुणो मे ( **सादयामि** ) स्थापना करता हूँ और ( **त्वा** ) उसको कभी ( **न** ) नही छोडता हूँ । हे विद्वान् लोगो ! तुम को उचित है कि ( **पृथिव्याम्** ) विस्तृत भूमि मे ( **दुर्या** ) अपने घर ( **दृꣳहन्ताम्** ) बढाने चाहियें । मैं ( **पृथिव्या नाभौ** ) पृथिवी के बीच मे जिन गृहो मे ( **स्व** ) जल आदि सुख के पदार्थों को ( **अभिविख्येषम्** ) सब प्रकार से देखूं और ( **उर्वन्तरिक्षम्** ) उक्त पृथिवी मे बहुतसा अवकाश देकर सुख से निवास करने योग्य स्थान रचकर ( **त्वा** ) आपको ( **अन्वेमि** ) प्राप्त होता हूँ । हे ( **अग्ने** ) जगदीश्वर ! आप ( **हव्यम्** ) हमारे देने लेने योग्य पदार्थों की ( **रक्ष** ) सर्वदा रक्षा कीजिये ॥ यह प्रथम पक्ष हुआ ॥ अब दूसरा पक्ष—हे अग्ने परमेश्वर ! मैं ( **भूताय** ) ससारी जीवो के सुख तथा ( **अरातये** ) दरिद्रता का विनाश और दान आदि धर्म करने के लिये ( **पृथिव्या** ) पृथिवी के ( **नाभौ** ) बीच मे सबके स्वामी तथा उपासनीय जानकर ( **स्व** ) सुखस्वरूप ( **त्वा** ) आपका ( **अभिविख्येषम्** ) प्रकाश करता हूँ तथा आपकी कृपा से मेरे घर आदि पदार्थ और उनमे रहनेवाले मनुष्य आदि प्राणी ( **दृꣳहन्ताम्** ) वृद्धि को प्राप्त हो और मैं ( **पृथिव्याम्** ) विस्तृत भूमि मे ( **उरु** ) बहुत से ( **अन्तरिक्षम्** ) अवकाशयुक्त स्थान को निवास के लिये ( **अदित्या उपस्थे** ) सर्वत्र व्यापक आपके समीप सदा ( **अन्वेमि** ) प्राप्त होता हूँ । कदाचित् ( **त्वा** ) आपका ( **न सादयामि** ) त्याग नही करता हूँ । हे जगदीश्वर ! आप मेरे ( **हव्यम्** ) अर्थात् उत्तम पदार्थों की सर्वदा ( **रक्ष** ) रक्षा कीजिये । यह दूसरा पक्ष हुआ । तथा तीसरा और भी कहते हैं—मैं शिल्पविद्या का जाननेवाला यज्ञ को करता हुआ ( **भूताय** ) सासारिक प्राणियो के सुख और ( **अरातये** ) दरिद्रता आदि दोषो के विनाश वा सुख से दान आदि धर्म करने की इच्छा से ( **पृथिव्या नाभौ** ) इस पृथिवी पर शिल्पविद्या की सिद्धि करनेवाला जो ( **अग्ने** ) अग्नि है उसको हवन करने वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये ( **सादयामि** ) स्थापन करता हूँ क्योकि उक्त शिल्पविद्या इसी से सिद्ध होती है ( **अदित्या , उपस्थ** ) तथा जो अन्तरिक्ष मे स्थित मेघमण्डल मे ( **हव्यम्** ) होम द्वारा पहुँचे हुए उत्तम उत्तम पदार्थों की ( **रक्ष** ) रक्षा करनेवाला है इसीलिये इस अग्नि को ( **पृथिव्याम्** ) पृथिवी मे स्थापन करके ( **उर्वन्तरिक्षम्** ) बडे अवकाशयुक्त स्थान और विविध प्रकार के सुखो को ( **अन्वेमि** ) प्राप्त होता हूँ अथवा इसी प्रयोजन के लिये ( **त्वा** ) इस अग्नि को पृथिवी मे स्थापन करता हूँ । इस प्रकार श्रेष्ठ कर्मो को करता हुआ ( **स्व** ) अनेक सुखो को ( **अभिविख्येषम्** ) देखूं तथा मेरे ( **दुर्या** ) घर और उनमे रहनेवाले मनुष्य ( **दृꣳहन्ताम्** ) शुभ गुण और सुख से वृद्धि को प्राप्त हो इसलिये इस भौतिक अग्नि का भी त्याग मैं कभी ( **न** ) नही करता हूँ । यह तीसरा अर्थ हुआ ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है और ईश्वर ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्य लोगो ! मैं तुम्हारी रक्षा इसलिये करता हूँ कि तुम लोग पृथिवी पर सब प्राणियों को सुख पहुँचाओ तथा तुम को योग्य है कि वेदविद्या धर्म के अनुष्ठान और अपने पुरुषार्थ द्वारा विविध प्रकार के सुख सदा बढाने चाहियें । तुम सब ऋतुओं मे सुख देने के योग्य बहुत अवकाशयुक्त सुन्दर घर बनाकर सर्वदा सुख सेवन करो और मेरी सृष्टि मे जितने पदार्थ हैं उनसे अच्छे-अच्छे गुणो को खोजकर अथवा अनेक विद्याओं को प्रकट करते हुए फिर उक्त गुणो का ससार मे अच्छे प्रकार प्रचार करते रहो कि जिससे सब प्राणियो को उत्तम सुख बढता रहे तथा तुम को चाहिये कि मुझको सब जगह व्यापक, सब का साक्षी सब का मित्र सब सुखो का बढानेहारा, उपासना के योग्य और सर्वशक्तिमान् जानकर सब का उपकार विविध विद्या की वृद्धि धर्म मे प्रवृत्ति अधर्म से निवृत्ति क्रियाकुशलता की सिद्धि और यज्ञक्रिया के अनुष्ठान आदि करने मे सदा प्रवृत्त रहो ॥ ११ ॥

**पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषि स एव । अप्सवितारौ देवते । भुरिगत्यष्टि छन्द । गान्धार स्वरः ॥**

*अग्नि मे जिस द्रव्य का होम किया जाता है वह मेघमण्डल को प्राप्त होके किस प्रकार का होकर क्या गुण करता है इस बात का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र मे किया है—*

## पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभि । देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रऽइममद्य यज्ञ नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातु यज्ञपति देवयुवम् ॥१२॥

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! तुम जैसे ( **सवितु** ) परमेश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए इस ससार मे ( **अच्छिद्रेण** ) निर्दोष और ( **पवित्रेण** ) पवित्र करने का हेतु जो ( **सूर्य्यस्य** ) सूर्य्य की ( **रश्मिभि** ) किरण हैं उन से ( **वैष्णव्यौ** ) यज्ञ सम्बन्धी प्राण और अपान की गति ( **पवित्रे** ) पदार्थों के भी पवित्र करने मे हेतु ( **स्थ** ) हो और जैसे उक्त सूर्य्य की किरणो से ( **अग्रेगुव** ) आगे समुद्र वा अन्तरिक्ष मे चलें ( **अग्रेपुव** ) प्रथम पृथिवी मे रहनेवाली सोम आदि ओषधि के सेवन करने तथा ( **देवी** ) दिव्यगुणयुक्त ( **व** ) वह ( **आप** ) जल पवित्र हो । वैसे ( **नयत** ) पवित्र पदार्थों का होम अग्नि मे करो वैसे ही मैं भी ( **अद्य** ) आज के दिन ( **इमम्** ) इस ( **यज्ञम्** ) पूर्वोक्त क्रियासम्बन्धी यज्ञ को प्राप्त करके ( **अग्रे** ) जो प्रथम ( **सुधातुम्** ) श्रेष्ठ मन आदि इन्द्रिय और सुवर्ण आदि धनवाला ( **यज्ञपतिम्** ) यज्ञ का नियम से पालक तथा ( **देवयुवम्** ) विद्वान् और श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने वा उनको प्राप्त कराने ( **यज्ञपतिम्** ) यज्ञ की इच्छा करनेवाला मनुष्य है उसको ( **उत्पुनामि** ) पवित्र करता हूँ ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । जो पदार्थ सयोग से विकार को प्राप्त होते हैं वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती इसमे विद्वानो को चाहिये कि होमक्रिया और वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्या से अच्छी अच्छी सवारी बनाके अनेक प्रकार के लाभ उठावें अर्थात् अपनी मन कामना सिद्धि करके औरो की भी कामना सिद्धि करें । जो जल इस पृथिवी से अन्तरिक्ष को चढकर वहाँ से लौटकर फिर पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मेघ मे रहनेवाले हैं वे दूसरे कहाते है । ऐसी शतपथ ब्राह्मण मे मेघ का वृत्र तथा सूर्य्य का इन्द्र नाम से वर्णन करके युद्धरूप कथा के प्रकाश से मेघविद्या दिखलाई है ॥ १२ ॥

**युष्मा इन्द्रो वृणीतेत्यस्य ऋषि पूर्वोक्त । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर । अग्नये त्वेत्यस्य ऋषि स एव । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । दैव्याय कर्मण इत्यस्य ऋषि स एव । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्र का युद्ध कैसे होता है सो अगले मन्त्र मे कहा गया है—*

## युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्या त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धा पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥१३॥

**पदार्थ**—यह ( **इन्द्र** ) सूर्य्यलोक ( **वृत्रतूर्य्ये** ) मेघ के वध के लिये ( **युष्मा** ) पूर्वोक्त जलो को ( **अवृणीत** ) स्वीकार करता है जैसे जल ( **इन्द्रम्** ) वायु को ( **अवृणीध्वम्** ) स्वीकार करते हैं वैसे ही ( **यूयम्** ) हे मनुष्यो ! तुम लोग उन जल ओषधि रसो को शुद्ध करने के लिये ( **वृत्रतूर्य्ये** ) मेघ के शीघ्रवेग ( **प्रोक्षिता** ) ससारी पदार्थों के सींचनेवाले जलो को ( **अवृणीध्वम्** ) स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध ( **स्थ** ) होते हैं वैसे तुम भी शुद्ध होओ । इसलिये मैं यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाला ( **दैव्याय** ) सब को शुद्ध करनेवाले ( **कर्मणे** ) उत्क्षेपण—उछालना अवक्षेपण—नीचे फेंकना आकुञ्चन—सिमटना प्रसारण फैलाना, गमन=चलना आदि पाँच प्रकार के कर्म हैं उनके और ( **देवयज्यायै** ) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणो की दिव्य क्रिया के लिये तथा ( **अग्नये** ) भौतिक अग्नि से सुख के लिए ( **जुष्टम्** ) अच्छी क्रियाओ से सेवन करने योग्य ( **त्वा** ) उस यज्ञ को ( **प्रोक्षामि** ) करता हूँ तथा ( **अग्नीषोमाभ्याम्** ) अग्नि और सोम से वर्षा के निमित्त ( **जुष्टम्** ) प्रीति देनेवाला और प्रीति से सेवने योग्य ( **त्वा** ) उक्त यज्ञ को ( **प्रोक्षामि** ) मेघमण्डल मे पहुँचाता हूँ इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये हुए जल ( **शुन्धध्वम्** ) अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं । ( **यत्** ) जिस कारण यज्ञ की शुद्धि से ( **व** ) पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि आदि दोष

( **पराजध्नु** ) निवृत्त हो ( **तम** ) उन जनों की शुद्धि को मैं ( **शुन्धामि** ) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूँ। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है। हे यज्ञ करनेवाले मनुष्यो! ( **यत** ) जिस कारण ( **इन्द्र** ) सूर्यलोक ( **वृत्रतूर्य्ये** ) मेघ के वध के निमित्त ( **यष्मा** ) पूर्वोक्त जल और ( **इन्द्रम्** ) पवन को ( **अवृणीत** ) स्वीकार करता है तथा जिस कारण सूर्य ने ( **वृत्रतूर्य्ये** ) मेघ की शीघ्रता के निमित्त ( **यष्मा** ) पूर्वोक्त जलों को ( **प्रोक्षिता** ) पदार्थ सींचनेवाले ( **स्थ** ) किये हैं इससे ( **यूयम्** ) तुम ( **त्वा** ) उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके ( **नयत** ) सिद्धि को प्राप्त करो। इस प्रकार हम सब लोग ( **दैव्याय** ) श्रेष्ठ कर्म वा ( **देवयज्याय** ) विद्वान् और दिव्य गुणों की श्रेष्ठ क्रियाओं के तथा ( **अग्नये** ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ( **जुष्टम्** ) प्रीति करानेवाले यज्ञ को ( **प्रोक्षामि** ) सेवन करें तथा ( **अग्नीषोमाभ्याम्** ) अग्नि और सोम से प्रकाशित होनेवाले ( **त्वा** ) उक्त यज्ञ को ( **प्रोक्षामि** ) मेघमण्डल में पहुँचावें। हे मनुष्यो! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थ वा सब मनुष्यों को ( **शुन्धध्वम्** ) शुद्ध करो ( **यत** ) और जिससे ( **व** ) तुम लोगों के अशुद्धि आदि दोष हैं वे सदा ( **पराजघ्न** ) निवृत्त होते रहें। वैसे ही मैं वेद का प्रकाश करनेवाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धि प्रकार को ( **शुन्धामि** ) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ। यह इस मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य को इसलिए रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश करके उनके रस और जल को छिन्न भिन्न कर दें जिससे वे वायुमण्डल में जाकर फिर वहाँ से पृथिवी पर आके सबको सुख और शुद्धि करनेवाले हों। इससे मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा श्रेष्ठ सुख बढ़ाने के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये जिससे इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उस में शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें। इसी प्रयोजन के लिये मैं ईश्वर तुम सबों को उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूँ कि हे मनुष्यो! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्मों को नित्य किया करो तथा उक्त रीति से वायु अग्नि और जल के गुणों को शिल्पक्रिया में युक्त करके अनेक यान आदि यन्त्रकला बनाकर अपने पुरुषार्थ से सदैव सुखयुक्त हो ॥ १३ ॥

**शर्मासीत्यस्य पूर्वोक्त ऋषि । यज्ञो देवता । स्वराड् जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*उक्त यज्ञ किस प्रकार का है और किस प्रकार से करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**शर्मास्यवधूत॰ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्न प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो! तुम्हारा घर ( **शर्म** ) सुख देनेवाला ( **असि** ) हो। उस घर से ( **रक्ष** ) दुष्टस्वभाववाले प्राणी ( **अवधूतम्** ) अलग करो और ( **अरातय** ) दान आदि धर्मरहित शत्रु ( **अवधूता** ) दूर हों। उक्त गृह ( **अदित्या** ) पृथिवी की ( **त्वक** ) त्वचा के तुल्य ( **असि** ) हो ( **अदिति** ) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को ( **प्रतिवेत्तु** ) सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो ( **वानस्पत्य** ) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने ( **पृथुबुध्न** ) अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहता तथा ( **ग्रावा** ) जल का ग्रहण करनेवाला ( **अद्रि** ) मेघ ( **असि** ) है उस और इस विद्या को ( **अदिति** ) जगदीश्वर तुम्हारे लिये ( **वेत्तु** ) कृपा करके जनावें। विद्वान् पुरुष भी ( **अदित्या** ) पृथिवी की ( **त्वक** ) त्वचा के समान ( **त्वा** ) उक्त घर की रचना को ( **प्रतिवेत्तु** ) जानें ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बना के उस में सुखपूर्वक वास करो तथा उसमें रहनेवाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उसमें सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्ठान करके नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करना चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

**अग्नेस्तनूरित्यस्य ऋषि स एव । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर । हविष्कृदिति याजुषी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्य. सऽइदं देवेभ्यो हवि शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये ( **बृहद्ग्रावासि** ) बड़े-बड़े पत्थर ( **असि** ) हैं और ( **वानस्पत्य** ) काष्ठ के मूसल आदि पदार्थ ( **देवेभ्य** ) विद्वान् वा दिव्यगुणों के लिये उस यज्ञ को ( **देववीतये** ) श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राप्ति के लिये ( **प्रतिगृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ। हे विद्वान् मनुष्य! तुम ( **देवेभ्य** ) विद्वानों के लिये ( **सुशमि** ) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करानेवाले ( **हवि** ) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को ( **शमीष्व, शमीष्व** ) अत्यन्त शुद्ध करो। जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते वा पढ़ाते हैं उन्हीं को यह ( **हविष्कृत** ) हवि अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करनेवाली जो कि यज्ञ का विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है सो प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उस का फल जानके शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब वह सुगन्ध आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम करके दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हविष्कृत् अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करनेवाला उत्तम मनुष्य है ऐसा बार बार कहकर सत्कार करें ॥ १५ ॥

**कुक्कुटोऽसीत्यस्य ऋषि स एव । वायुर्देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । देवो व सवितेत्यस्य ऋषि स एव । सविता देवता । विराड् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर भी यह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वय॰ सङ्घात॰ सङ्घात जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूत॰ रक्ष परापूता अरातयोऽपहत॰ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो व सविता हिरण्यपाणि प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥१६॥**

**पदार्थ**—जिस कारण यह यज्ञ ( **मधुजिह्व** ) जिस में मधुर गुणयुक्त वाणी हो। तथा ( **कुक्कुट** ) चोर वा शत्रुओं का विनाश करनेवाला ( **असि** ) है। और ( **इषम्** ) अन्न आदि पदार्थ वा ( **ऊर्जम्** ) विद्या आदि बल और उत्तम से उत्तम रस को देता है। इसी से उसका अनुष्ठान सदा करना चाहिए। हे विद्वान् लोगो! तुम उक्त गुणों को देनेवाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है उसके अनुष्ठान और गुण के ज्ञाता ( **असि** ) हो अत हम लोगों को भी उसके गुणों का ( **आवद** ) उपदेश करो जिससे ( **वयम्** ) हम लोग ( **त्वया** ) तुम्हारे साथ ( **संघात संघातम्** ) जिन में उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को बारम्बार ( **आ जेष्म** ) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जाननेवाले ( **असि** ) हैं इससे सब मनुष्य ( **वर्षवृद्धम्** ) शस्त्र और अस्त्रविद्या की वर्षा को बढ़ानेवाले ( **त्वा** ) आप तथा ( **वर्षवृद्धम्** ) वृष्टि के बढ़ानेवाले उक्त यज्ञ को ( **प्रतिवेत्तु** ) जानें। इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को ( **परापूतम्** ) पवित्रता आदि गुणों को छोड़नेवाले ( **रक्ष** ) दुष्ट मनुष्य तथा ( **परापूता** ) शुद्धि को छोड़नेवाले और ( **अरातय** ) दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन तथा ( **रक्ष** ) डाकुओं का जैसे ( **अपहतम्** ) नाश हो सके वैसा प्रयत्न सदा करना चाहिये जैसे यह ( **हिरण्यपाणि** ) जिसका ज्योति हाथ है ऐसा जो ( **वायु** ) पवन है वह ( **अच्छिद्रेण** ) एकरस ( **पाणिना** ) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों का ( **प्रतिगृभ्णातु** ) ग्रहण करता है ( **हिरण्यपाणि** ) वा जैसे किरण हैं हाथ जिस के वह ( **हिरण्यपाणि** ) किरण व्यवहार से ( **सविता** ) वृष्टि वा प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु ( **देव** ) प्रकाशमय सूर्यलोक ( **व** ) उन पदार्थों को ( **विविनक्तु** ) अलग अलग अर्थात् परमाणुरूप करता है वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष ( **अच्छिद्रेण** ) निरन्तर ( **पाणिना** ) अपने उपदेशरूप व्यवहार से सब विद्याओं को ( **विविनक्तु** ) प्रकाश कर वैसे ही कृपा करके प्रीति के साथ ( **व** ) तुम को अत्यन्त आनन्द देने के लिये ( **प्रतिगृभ्णातु** ) ग्रहण करते हैं ॥१६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान संग्राम में शत्रुओं का पराजय अच्छे अच्छे गुणों का ज्ञान विद्वानों की सेवा दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों का अपने ताप से छिन्न भिन्न करनेवाला अग्नि वा सूर्य और उनका धारण करनेवाला वायु है ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों को उत्पन्न करनेवाली उन्नति सदा करनी चाहिये ॥१६॥

**धृष्टिरसीत्यस्य ऋषि स एव । अग्निर्देवता । ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब अग्निशब्द से किस किस का ग्रहण किया जाता और इससे क्या क्या कार्य्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**धृष्टिरस्यपाऽग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्याद॰ सेधा देवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृ॰ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) परमेश्वर! आप ( **धृष्टि** ) प्रगल्भ अर्थात् अत्यन्त निर्भय ( **असि** ) हैं इस कारण ( **निष्क्रव्यादम्** ) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के ( **आमादम्** ) कच्चे पदार्थ जलाने और ( **देवयजम्** ) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप करानेवाले ( **अग्निम्** ) भौतिक वा विद्युत् बिजुलीरूप अग्नि को आप ( **सेध** ) सिद्ध कीजिये। इस प्रकार हम लोगों के मङ्गल अर्थात् उत्तम उत्तम सुख होने के लिये शास्त्रों की शिक्षा करके दुःखों को ( **अपजहि** ) दूर कीजिये और आनन्द को ( **आवह** ) प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर! आप ( **ध्रुवम्** ) निश्चल सुख देनेवाले ( **असि** ) हैं इससे ( **पृथिवीम्** ) विस्तृतभूमि वा उसमें रहनेवाले मनुष्यों को ( **दृंह** ) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये। हे अग्ने जगदीश्वर! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं इससे मैं ( **भ्रातृव्यस्य** ) दुष्ट वा शत्रुओं के ( **वधाय** ) विनाश के लिये ( **ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि** ) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दुःख व्यवहार के देनेवाले ( **त्वा** ) आपको ( **उपदधामि** ) हृदय में स्थापन करता हूँ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ तथा हे विद्वान् यजमान! जिस कारण यह ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि ( **धृष्टि** ) प्रतितीक्ष्ण ( **असि** ) है तथा

निकृष्ट पदार्थों को छोड़कर उत्तम पदार्थों से ( **देवयजम्** ) विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले यज्ञ को ( **आवह** ) प्राप्त कराता है इससे तुम ( **निष्क्रव्यादम्** ) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़के ( **आमादम्** ) कच्चे पदार्थ जलाने और ( **देवयजम्** ) विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त करनेवाले ( **अग्निम्** ) प्रत्यक्ष वा बिजुलीरूप अग्नि को ( **आवह** ) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करनेवाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम उत्तम शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश ( **सेध** ) करो तथा उसके अनुष्ठान में जो दोष हों उनको ( **अपजहि** ) विनाश करो जिस कारण यह अग्नि सूर्यरूप से ( **ध्रुवम्** ) निश्चल ( **असि** ) है इसी कारण यह आकर्षणशक्ति से ( **पृथिवीम्** ) विस्तृत भूमि वा उसमें रहनेवाले प्राणियों को ( **दृंह** ) दृढ़ करता है इसीसे मैं ( **त्वा** ) उस ( **ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि** ) ब्राह्मण क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुखदुःख को अलग अलग करानेवाले भौतिक अग्नि को ( **भ्रातृव्यस्य** ) दुष्ट वा शत्रुओं के ( **वधाय** ) विनाश के लिये हवन करने की वेदी वा विमान आदि यानों में ( **उपदधामि** ) स्थापन करता हूँ ॥ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥१७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने यह भौतिक अग्नि आम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलानेवाला बनाया है इस कारण भस्मरूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है । जिससे कि मनुष्य कच्चे कच्चे पदार्थों को पका कर खाते हैं वह आमात् तथा जिस करके सब प्राणियों का खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है वह जाठर और जिससे मनुष्य लोग मरे हुए शरीर को जलाते हैं वह क्रव्यात् अग्नि कहाता है और जिससे दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाली विद्युत् बनी है तथा जिससे पृथिवी का धारण और आकर्षण करनेवाला सूर्य्य बना है और जिसे वेदविद्या के जाननेवाले ब्राह्मण वा धनुर्वेद के जाननेवाले क्षत्रिय वा सब प्राणिमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्त्तमान परमेश्वर है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो क्रियाओं की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि है यह भी यथायोग्य कार्य्यद्वारा सेवा करने के योग्य है ॥१७॥

**अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । धर्त्रमसीति मध्यस्यार्च्ची त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर भी अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में दोनों अर्थों का प्रकाश किया है—*

### अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥१८॥

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) परमेश्वर ! आप ( **धरुणम्** ) सबके धारण करनेवाले ( **असि** ) हैं हमसे की ( **ब्रह्म** ) वेद मन्त्रों से की हुई स्तुति को ( **गृभ्णीष्व** ) ग्रहण कीजिये तथा ( **अन्तरिक्षम्** ) आत्मा में स्थित जो अक्षय ज्ञान है उसको ( **दृंह** ) बढ़ाइये । मैं ( **भ्रातृव्यस्य** ) शत्रुओं के ( **वधाय** ) विनाश के लिये ( **ब्रह्मवनि** ) सब मनुष्यों के सुख के निमित्त वेद के शाखा शाखान्तर द्वारा विभाग करनेवाले ब्राह्मण तथा ( **क्षत्रवनि** ) राजधर्म के प्रकाश करनहारे ( **सजातवनि** ) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्तिमान् पदार्थ हैं इनका प्राणियों के लिये अलग अलग प्रकाश करनेवाले ( **त्वा** ) आपका ( **उपदधामि** ) हृदय के बीच में धारण करता हूँ । हे सब के धारण करनेवाले परमेश्वर ! जो आप ( **धर्त्रम्** ) लोकों के धारण करनेवाले ( **असि** ) हैं इससे कृपा करके हम लोगों में ( **दिवम्** ) अत्युत्तम ज्ञान को ( **दृंह** ) बढ़ाइये और मैं ( **भ्रातृव्यस्य** ) शत्रुओं के ( **वधाय** ) विनाश के लिये ( **ब्रह्मवनि क्षत्रवनि, सजातवनि** ) उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारों को यथायोग्य विभाग करनेवाले ( **त्वा** ) आपको ( **उपदधामि** ) बारम्बार अपने हृदय में धारण करता हूँ । तथा मैं ( **त्वा** ) आपको सर्वव्यापक जानकर ( **विश्वाभ्यः** ) सब ( **आशाभ्यः** ) दिशाओं से सुख होने के निमित्त बारम्बार ( **उपदधामि** ) अपने मन में धारण करता हूँ । हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर ( **चित** ) विज्ञानी ( **ऊर्ध्वचित** ) उक्त ज्ञानवाले पुरुषों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरके तथा ( **भृगूणाम्** ) जिनसे विद्या आदि गुणों को प्राप्त होते हैं ऐसे ( **अङ्गिरसाम्** ) प्राणों के ( **तपसा** ) प्रभाव से ( **तप्यध्वम्** ) तपो और तपाओ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा भी कहते हैं ॥ हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष ! जिस ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि से ( **धरुणम्** ) सबका धारण करनेवाला तेज ( **ब्रह्म** ) वेद और ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश में रहनेवाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त किये जाते हैं ( **त्वा** ) उसको तुम होम वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये ( **गृभ्णीष्व** ) ग्रहण करो ( **दृंह** ) वा विद्यायुक्त क्रियाओं से बढ़ाओ और मैं भी ( **भ्रातृव्यस्य** ) शत्रुओं के ( **वधाय** ) विनाश के लिये ( **त्वा** ) उस ( **ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि सजातवनि** ) संसारी मूर्तिमान् पदार्थों के प्रकाश करने वा राजगुणों के दृष्टान्तरूप से प्रकाश करनेवाले भौतिक अग्नि को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में ( **उपदधामि** ) स्थापन करता हूँ । ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे अनेक सुखों को धारण करता है । इसी प्रकार सब लोगों का ( **धर्त्रम्** ) धारण करनेवाला वायु ( **असि** ) है तथा ( **दिवम्** ) प्रकाशमय सूर्य्यलोक को ( **दृंह** ) दृढ़ करता है । हे मनुष्यो ! जैसे उसको मैं ( **भ्रातृव्यस्य** ) अपने शत्रुओं के ( **वधाय** ) विनाश के लिये ( **ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि** ) वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम उत्तम शिल्पविद्याओं को यथायोग्य कार्य्यों में युक्त करनेवाले उस भौतिक अग्नि को ( **उपदधामि** ) स्थापन करता हूँ वैसे तुम भी उत्तम उत्तम क्रियाओं में युक्त करके विद्या के बल से ( **दृंह** ) उसको बढ़ाओ । हे विद्या चाहनेवाले पुरुष ! जो पवन, पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकों को धारण कर रहा है उसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये यथायोग्य कार्यों में लगाकर उनकी विद्या से ( **दृंह** ) वृद्धि करो तथा जैसे हम अपने शत्रुओं के विनाश के लिए ( **ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि** ) अग्नि के उक्त गुणों के समान वायु को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में ( **उपदधामि** ) संयुक्त करते हैं वैसे ही तुम भी अपने अनेक दुःखों के विनाश के लिये उसको यथायोग्य कार्यों में संयुक्त करो । हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायुविद्या का जाननेवाला ( **त्वा** ) उस अग्नि वा वायु को ( **विश्वाभ्यः** ) सब ( **आशाभ्यः** ) दिशाओं से सुख होने के लिये यथायोग्य शिल्पव्यवहारों में ( **उपदधामि** ) धारण करता हूँ वैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या वा होम करने के लिये ( **चित ऊर्ध्वचित, स्थ** ) पदार्थों के भरे हुए पात्र वा सवारियों में स्थापन किये हुए कला यन्त्रों को ( **भृगूणाम्** ) जिनसे पदार्थों को पकाते हैं उन ( **अङ्गिरसाम्** ) अङ्गारों के ( **तपसा** ) ताप से ( **तप्यध्वम्** ) उक्त पदार्थों को तपाओ ॥१८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो ! तुम विद्वानों की उन्नति तथा मूर्खपन का नाश वा सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि वा सब का धारण करनेवाला वायु अग्निमय सूर्य्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञसिद्धि वा विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इनको सिद्ध करके दुःखों को दूर करके शत्रुओं को जीतो ॥१८॥

**शर्मासीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*इसके अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इसके अङ्ग अगले मन्त्र में उपदेश किये हैं—*

### शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिव स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥१९॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो यज्ञ ( **शर्म** ) सुख का देनेवाला ( **असि** ) है और ( **अदितिः** ) नाशरहित है तथा जिससे ( **रक्षः** ) दुःख और दुष्टस्वभावयुक्त मनुष्य ( **अवधूतम्** ) विनाश को प्राप्त तथा ( **अरातयः** ) दान आदि धर्मों से रहित पुरुष ( **अवधूताः** ) नष्ट ( **असि** ) होते हैं और जो ( **अदित्याः** ) अन्तरिक्ष वा पृथिवी के ( **त्वक्** ) त्वचा के समान ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उसे ( **प्रति वेत्तु** ) जानो और जिस विद्यारूप उक्त यज्ञ से ( **पर्वती** ) बहुत ज्ञानवाली ( **दिवः** ) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों का ( **स्कम्भनी** ) रोकनेवाली ( **असि** ) है तथा ( **पार्वतेयी** ) मेघ की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य ( **धिषणा** ) वेदवाणी ( **असि** ) है ( **अदित्याः** ) पृथिवी के ( **त्वक्** ) शरीर के तुल्य विस्तार को प्राप्त होती है ( **त्वा** ) उसे ( **प्रतिवेत्तु** ) यथावत् जानो और जिस सत्सङ्गतिरूप यज्ञ से ( **पर्वती** ) उत्तम उत्तम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाली ( **धिषणा** ) धी अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि ( **असि** ) प्राप्त होती है ( **त्वा** ) उसे भी ( **प्रतिवेत्तु** ) जानो ॥१९॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके उत्तम यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि वा बुद्धि का बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मन से शुद्ध किया हुआ सूर्य्य के प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥१९॥

**धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*किस प्रयोजन के लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—*

### धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥२०॥

**पदार्थ**—जो ( **धान्यम्** ) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करनेवाला तथा चावल आदि अन्न वा ( **पयः** ) जल ( **असि** ) है वह ( **देवान्** ) विद्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को ( **धिनुहि** ) तृप्त करता है इस कारण हे मनुष्यो ! मैं जिस प्रकार ( **त्वा** ) उसे ( **प्राणाय** ) अपने जीवन के लिये वा ( **त्वा** ) उसे ( **उदानाय** ) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा ( **त्वा** ) उसे ( **व्यानाय** ) सब शुभ गुण शुभ कर्म वा विद्या के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा ( **दीर्घाम्** ) बहुत दिनों तक ( **प्रसितिम्** ) अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त ( **आयुषे** ) पूर्ण आयु के भोगने के लिये ( **धाम्** ) धारण करता हूँ वैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उसको नित्य धारण करो । जैसे ( **वः** ) हम लोगों को ( **हिरण्यपाणिः** ) जिसका मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करनहारा ( **देव सविता** ) सब ऐश्वर्य्य का दाता ईश्वर ( **अच्छिद्रेण** ) अपनी व्याप्ति वा ( **पाणिना** ) उत्तम व्यवहार से ( **महीनाम्** ) वाणियों के ( **चक्षुषे** ) प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये ( **प्रतिगृभ्णातु** ) अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है वैसे ही हम भी उस ईश्वर को ( **अच्छिद्रेण** ) निरन्तर ( **पाणिना** ) स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे ( **हिरण्यपाणिः** ) पदार्थों का प्रकाश करनेवाला ( **देव सविता** ) सूर्य्यलोक ( **महीनाम्** ) लोकलोकान्तरों की पृथिवियों में नेत्र सम्बन्धी व्यवहार के लिये ( **अच्छिद्रेण** ) निरन्तर तीव्र प्रकाश से ( **पयः** ) जल को ( **प्रतिगृभ्णातु** ) ग्रहण करके अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे ही

हम लोग भी उसे ( **अच्छिद्रेण** ) निरन्तर ( **पाणिना** ) व्यवहार से ( **महीनाम्** ) पृथिवी के ( **चक्षुषे** ) पदार्थों की दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥२०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं, वे सब की शुद्धि बल पराक्रम और दृढ दीर्घ आयु के लिये समर्थ होते हैं। इससे सब मनुष्यों को यज्ञकर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेदचतुष्टयी अर्थात् चारो वेदो की वाणी है उसके प्रत्यक्ष कराने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यो पर ईश्वर कृपा करता है, वैसे ही हम लोगो को भी सब प्राणियो पर नित्य कृपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा और वेदो मे सत्य ज्ञान तथा सूर्यलोक ससार मे मूर्तिमान् पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है वैसे ही हम सब लोगो को परस्पर सब के सुख के लिये सम्पूर्ण विद्या मनुष्यो को दृष्टिगोचर करा के नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उनसे हमको पृथिवी का चक्रवर्ती राज्य आदि अनेक उत्तम-उत्तम सुखो को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥२०॥

**देवस्य त्वेत्यस्यर्षि स एव । यज्ञो देवता सवस्य । आद्यो स वपामीत्यस्य गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । अन्त्यस्य विराटत्रिष्टुप पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*जिन ओषधियों से अन्न बनता है वे यज्ञादि कर्म से कैसे शुद्ध होती हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । सं व॑पामि समाप॒ऽओष॑धीभि॒ समोष॑धयो॒ रसे॑न । सꣳ रे॒वती॒र्जग॑तीभिः पृच्यन्ता॒ꣳ सं मधु॑मती॒र्मधु॑मतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( **सवितु** ) सकल ऐश्वर्य्य के देनेवाले ( **देवस्य** ) परमेश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष ससार मे सूर्य्यलोक के प्रकाश मे ( **अश्विनो** ) सूर्य्य और भूमि के तेज की ( **बाहुभ्याम्** ) दृढता से ( **पूष्ण** ) पुष्टि करनेवाले वायु के ( **हस्ताभ्याम्** ) प्राण और अपान से ( **त्वा** ) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ का ( **सवपामि** ) विस्तार करता हूँ वैसे ही तुम भी उसको विस्तार से सिद्ध करो । जैसे इस उत्पन्न किये हुए ससार मे ( **ओषधीभि** ) यवादि ओषधियो से ( **आप** ) जल और ( **ओषधय** ) ओषधि ( **रसेन** ) आनन्दकारक रस से तथा ( **जगतीभि** ) उत्तम ओषधियो से ( **रेवती** ) उत्तम जल और जैसे ( **मधुमतीभि** ) अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओषधियो से ( **मधुमती** ) अत्यन्त उत्तम रसरूप जल ये सब मिलकर वृद्धियुक्त होते हैं वैसे हम सब लोगो को भी ओषधियो से जल और ओषधि उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओषधियो से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओषधियो से प्रशसनीय रसरूप जल इन सबो का यथायोग्य परस्पर ( **सपृच्यन्ताम्** ) युक्ति से वैद्यक वा शिल्पशास्त्र की रीति से मेल करना चाहिये ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् मनुष्यो को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए सूर्य्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस ससार मे अनेक प्रकार से सप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल करके उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये । जैसे जल अपने रस से ओषधियो को बढाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के सयोग से रोग नाश करने से सुखदायक होती हैं और जैसे ईश्वर कारण से कार्य्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे हम लोगो को भी यथावत् सस्कारयुक्त सयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानो का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से वा होम शिल्पकार्य्यरूपी यज्ञो से वायु और वर्षाजल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

**जनयत्यै त्वेत्यस्यर्षि पूर्वोक्त । प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता । स्वराटत्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर । अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—*

**जन॑यत्यै त्वा॒ संयौ॑मी॒दम॒ग्नेरि॒दम॒ग्नीषोम॑योरि॒षे त्वा॑ घ॒र्मोऽसि वि॒श्वायु॑रु॒रुप्र॑था॒ऽउ॒रु प्र॑थस्वो॒रु ते॑ य॒ज्ञप॑ति॒ प्रथताम॒ग्निष्टे॒ त्वचं॒ मा हिꣳसीद्दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता श्र॑पयतु॒ वर्षि॑ष्ठे॒ऽधि॒ नाके॑ ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जगत् मे ( **जनयत्यै** ) सबसुख उत्पन्न करनेवाली राज्य लक्ष्मी के लिये ( **त्वा** ) उस यज्ञ को ( **सयौमि** ) अग्नि के बीच मे पदार्थों को छोडकर युक्त करता हूँ वैसे ही तुम लोगो को भी अग्नि के सयोग से सिद्ध करना चाहिये । जो हम लोगो का ( **इदम्** ) यह सस्कार किया हुआ हवि ( **अग्ने** ) अग्नि के बीच मे छोडा जाता है ( **इदम्** ) वह विस्तार को प्राप्त होकर ( **अग्नीषोमयो** ) अग्नि और सोम के बीच पहुँचकर ( **इषे** ) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो ( **विश्वायु** ) पूर्ण आयु और ( **उरुप्रथा** ) बहुत सुख का देनेवाला ( **घर्म** ) यज्ञ ( **असि** ) है उसको जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूँ, वैसे ( **त्वा** ) उसको हे पुरुषो ! तुम भी ( **उरु प्रथस्व** ) विस्तृत करो । इस प्रकार विस्तार करनेवाले ( **ते** ) तुम्हारे लिये ( **यज्ञपति** ) यज्ञ का स्वामी ( **अग्नि** ) यज्ञ सम्बन्धी अग्नि ( **ते सविता** ) अन्तर्यामी ( **देव** ) जगदीश्वर ( **उरु प्रथताम्** ) अनेक प्रकार सुख को बढावे ( **ते, त्वचम्** ) तुम्हारे शरीर को ( **मा हिंसीत** ) कभी नष्ट न करे तथा वह परमेश्वर ( **वर्षिष्ठे** ) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ ( **अधिनाके** ) जो अत्युत्तम सुख है उसमे ( **त्वा** ) तुम को ( **श्रपयतु** ) सुख से युक्त करे । यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा कहते हैं ॥ हे मनुष्य ! जैसे मैं जो ( **विश्वायु** ) पूर्ण आयु तथा ( **उरुप्रथा** ) बहुत सुख का देनेवाला ( **घर्म** ) यज्ञ ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उस यज्ञ को ( **जनयत्यै** ) राज्यलक्ष्मी तथा ( **इषे** ) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये ( **सयौमि** ) सयुक्त करता हूँ तथा उसकी सिद्धि के लिये ( **इदम्** ) यह ( **अग्ने** ) अग्नि के बीच मे और ( **इदम्** ) यह ( **अग्नीषोमयो** ) अग्नि और सोम के बीच मे सस्कार किया हुआ हवि ( **सवपामि** ) छोडता हूँ वैसे तुम भी उस यज्ञ का ( **उरु प्रथस्व** ) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह ( **अग्नि** ) भौतिक अग्नि ( **ते** ) तुम्हारे ( **त्वचम्** ) शरीर को ( **मा हिंसीत** ) रोगो से नष्ट न करे और जैसे ( **देव** ) जगदीश्वर ( **सविता** ) अन्तर्यामी ( **वर्षिष्ठ** ) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ जो ( **अधिनाके** ) अत्युत्तम सुख है उसमे ( **त्वा** ) उस यज्ञ को अग्नि के बीच मे परिपक्व करता है वैसे तुम भी उस यज्ञ को ( **श्रपयतु** ) परिपक्व करो और ( **ते** ) तुम्हारे ( **यज्ञपति** ) यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को ( **उरु प्रथताम्** ) विस्तारयुक्त करे ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार जानना चाहिये । मनुष्यो को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी सकल आयु, अन्न आदि पदार्थ रोग नाश और सब सुखो का विस्तार हो उसको कभी नही छोडना चाहिये क्योकि उसके विना वायु और वृष्टिजल तथा ओषधियो की शुद्धि नही हो सकती और शुद्धि के विना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नही हो सकता इसलिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यो को दी है ॥ २२ ॥

**मा भेर्मेत्यस्यर्षि स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*नि शक होकर उक्त यज्ञ सबको करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**मा भे॒र्मा संवि॑क्था॒ऽअत॑मेरुर्य॒ज्ञोऽत॑मेरु॒र्यज॑मानस्य प्र॒जा भू॑यात् त्रि॒ताय॑ त्वा द्वि॒ताय॑ त्वैक॒ताय॑ त्वा ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम ( **अतमेरु** ) श्रद्धालु होकर ( **यजमानस्य** ) यजमान के यज्ञ के अनुष्ठान से ( **मा भे** ) भय मत करो और उससे ( **मा सविक्था** ) मत चलायमान हो । इस प्रकार ( **यज्ञ** ) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम-से उत्तम ( **अतमेरु** ) ग्लानिरहित श्रद्धावान् ( **प्रजा** ) सन्तान ( **भूयात** ) प्राप्त हो और मैं ( **त्वा** ) भौतिक अग्नि को उक्त गुणयुक्त तथा ( **एकताय** ) सत्य सुख के लिये ( **द्विताय** ) वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा ( **त्रिताय** ) अग्नि कर्म और हवि के होने के लिये ( **सयौमि** ) निश्चल करता हूँ ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान कभी न होना चाहिये क्योकि मनुष्यो को उक्त यज्ञ आदि अच्छे अच्छे कार्यों से ही उत्तम उत्तम सन्तान शारीरिक वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ २३ ॥

**देवस्य त्वेत्यस्यर्षि स एव । द्यौविद्युतौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये सो अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑देऽध्वर॒कृतं॑ दे॒वेभ्य॒ऽइन्द्र॑स्य बा॒हुर॑सि॒ दक्षि॑णः स॒हस्र॑भृष्टिः श॒तते॑जा वा॒युर॑सि ति॒ग्मते॑जा द्विष॒तो व॒धः ॥२४॥**

**पदार्थ**—मैं ( **सवितु** ) अन्तर्यामी प्रेरणा करने ( **देवस्य** ) सब आनन्द के देनेवाले परमेश्वर की ( **प्रसवे** ) प्रेरणा मे ( **अश्विनो** ) सूर्य्य चन्द्र और अध्वर्युओं के ( **बाहुभ्याम्** ) बल और वीर्य्य से तथा ( **पूष्ण** ) पुष्टिकारक वायु के ( **हस्ताभ्याम्** ) जो कि ग्रहण और त्याग के हेतु उदान और अपान हैं उनसे ( **देवेभ्य** ) विद्वान् वा दिव्य सुखो की प्राप्ति के लिये ( **अध्वरकृतम्** ) यज्ञ से सुखकारक ( **त्वा** ) उस कर्म को ( **आददे** ) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ और मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो ( **इन्द्रस्य** ) सूर्य्य का ( **सहस्रभृष्टि** ) जिसमे अनेक प्रकार के पदार्थों के पचाने का सामर्थ्य वा ( **शततेजा** ) अनेक प्रकार का तेज तथा ( **दक्षिण** ) प्राप्त करनेवाला ( **बाहु** ) किरणसमूह ( **असि** ) है और जिस ( **इन्द्रस्य** ) सूर्य्य का मेघमण्डल का ( **तिग्मतेजा** ) तीक्ष्ण तेज वाला ( **वायु** ) वायु हेतु ( **असि** ) है उससे हमको अनेक प्रकार के सुख तथा ( **द्विषत** ) शत्रुओ का ( **वध** ) नाश करना चाहिये ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्यों को अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जिस मे भौतिक अग्नि के सयोग से ऊपर को अच्छे अच्छे पदार्थ छोडे जाते हैं वह सूर्य्य की किरणों मे स्थिर होता है तथा पवन उसको धारण करता है और वह सबके उपकार के लिये हजारों सुखों को प्राप्त कराके दु खो का विनाश करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

**पृथिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उक्त यज्ञ कहां जाके क्या करने वाला होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२५॥

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) सूर्य्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा ( **सवितः** ) राज्य और ऐश्वर्य्य के देनेवाले परमेश्वर ! ( **ते** ) आपकी कृपा से मैं (**देवयजनि**) विद्वानों के यज्ञ करने की जगह ( **ते** ) यह जो ( **पृथिवि** ) भूमि है उसके और (**ओषध्याः**) जो यवादि ओषधि हैं उनके ( **मूलम्** ) वृद्धि करनेवाले मूल को ( **मा, हिंसिषम्** ) नाश न करूं और मैं ( **पृथिव्याम्** ) अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में ( **यः** ) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूं वह ( **व्रजम्** ) जलवृष्टिकारक मेघ को ( **गच्छ** ) प्राप्त हो वहां जाकर ( **गोष्ठानम्** ) सूर्य्य की किरणों के गुणों से ( **वर्षतु** ) वर्षाता है और ( **द्यौः** ) सूर्य्य के प्रकाश को ( **वर्षतु** ) वर्षाता है। हे वीर पुरुषो ! आप ( **अस्याम्** ) इस उत्कृष्ट पृथिवी में ( **यः** ) जो कोई अधर्मात्मा डाकू ( **अस्मान्** ) सबके उपकार करनेवाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से ( **द्वेष्टि** ) विरोध करता है ( **च** ) और ( **यम्** ) जिस दुष्ट शत्रु से ( **वयम्** ) धार्मिक शूर हम लोग ( **द्विष्मः** ) विरोध करें ( **तम्** ) उस दुष्ट ( **परम्** ) शत्रु को ( **शतेन** ) अनेक (**पाशैः**) बन्धनों से ( **बधान** ) बांधो और उसको ( **अतः** ) इस बन्धन से कभी ( **मा मौक्** ) मत छोड़ो ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियां इनका नाश कभी न करना चाहिये जो यज्ञ अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघमण्डल को जाकर शुद्धि के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करनेवाला होता है इससे यह यज्ञ किसी पुरुष का कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवी पर अनेक बन्धनों से बांध और उनको कभी न छोड़े जिससे कि वे दुष्ट कर्मों से निवृत्त हों और सब मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर ईर्ष्या द्वेष से अलग होकर एक दूसरे की सब प्रकार सुख की उन्नति के लिये सदा यत्न करें ॥ २५ ॥

**अपारुरुमित्यस्य सवस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । पूर्वार्द्धे स्वराड्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । उत्तरार्द्धे भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर इस यज्ञ से क्या क्या कार्य सिद्ध होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

अपारुरुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२६॥

**पदार्थ**—हे (**देव**) सर्वानन्द के देनेवाले जगदीश्वर ! (**सवितः**) सब प्राणियों में अन्तर्यामी, सत्य प्रकाश करनेहारे आपकी कृपा से हम लोग परस्पर उपदेश करें कि जैसे यह सबका प्रकाश करनेवाला सूर्य्यलोक इस पृथिवी में अनेक बन्धन के हेतु किरणों से खेंचकर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधकर अच्छे अच्छे गुणों का प्रकाश करो और जैसे मैं ( **पृथिव्यै** ) पृथिवी में (**देवयजनात्**) विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे अच्छे पदार्थ वा उत्तम उत्तम विद्वानों की सङ्गति को प्राप्त होते हैं उससे ( **अररुम्** ) दुष्ट स्वभाववाले शत्रुजन को (**अपवध्यासम्**) मारता हूं वैसे ही तुम लोग भी उसको मारो तथा जैसे मैं (**व्रजम्**) उत्तम उत्तम गुण जताने वाले सज्जनों के सङ्ग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी उसको ( **गच्छ** ) प्राप्त हो । जैसे मैं ( **गोष्ठानम्** ) पठन पाठन व्यवहार की बतानेवाली मेघ की गर्जना के समतुल्य वेदवाणी को अच्छे अच्छे शब्दरूपी बूंदों से वर्षाता हूं वैसे तुम भी ( **वर्षतु** ) वर्षाओ । जैसे मेरी विद्या की ( **द्यौः** ) शोभा सब को दृष्टिगोचर है वैसे ( **ते** ) तुम्हारी भी विद्या सुशोभित हो । जैसे मैं ( **यः** ) जो मूर्ख ( **अस्मान्** ) विद्या का प्रचार करने वाले हम लोगों से (**द्वेष्टि**) विरोध करता है (**च**) और (**यम्**) जिस विद्याविरोधीजन को ( **वयम्** ) हम विद्वान् लोग ( **द्विष्मः** ) दुष्ट समझते हैं ( **तम्** ) उस ( **परम्** ) विद्या के शत्रु को ( **अस्याम्** ) इस सब पदार्थों की धारण करने और विविध सुख देनेवाली ( **पृथिव्याम्** ) पृथिवी में ( **शतेन** ) बहुत से ( **पाशैः** ) बन्धनों से नित्य बांधता हूं कभी उससे उसको नहीं त्यागता वैसे हे वीर लोगो ! तुम भी उसको ( **बधान** ) बांधो कभी उसको ( **अतः** ) उस बन्धन से (**मा, मौक्**) मत छोड़ो और जो दुष्टजन हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उसको उस बन्धन से कोई मनुष्य न छोड़े । इस प्रकार सब लोग उसको उपदेश करते रहें कि हे ( **अररो** ) दुष्टपुरुष ! तू ( **दिवम्** ) प्रकाश उन्नति को ( **मा पप्तः** ) मत प्राप्त हो तथा ( **ते** ) तेरा ( **द्रप्सः** ) आनन्द देनेवाली विद्यारूपी रस ( **द्याम्** ) आनन्द को ( **मा, स्कन्** ) मत प्राप्त करे । हे श्रेष्ठों के मार्ग चाहनेवाले मनुष्यो ! जैसे मैं ( **व्रजम्** ) विद्वानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी ( **गच्छ** ) उसको प्राप्त हो । जैसे यहां ( **द्यौः** ) सूर्य का प्रकाश (**गोष्ठानम्**) पृथिवी का स्थान अन्तरिक्ष को सींचता है वैसे ही ईश्वर वा विद्वान् पुरुष ( **ते** ) तुम्हारी कामनाओं को ( **वर्षतु** ) वर्षावें अर्थात् क्रम से पूरी करें । जैसे यह ( **देव** ) व्यवहार का हेतु ( **सवितः** ) सूर्य्यलोक (**अस्याम्**) इस बीज बोने योग्य (**पृथिव्याम्**) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) बन्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधो और ( **यः** ) जो न्यायविरोधी ( **अस्मान्** ) न्यायाधीश हम लोगों से (**द्वेष्टि**) कोप करता है ( **च** ) और ( **यम्** ) अन्यायकारी जन पर ( **वयम्** ) सम्पूर्ण हितसम्पादन करने वाले हम लोग ( **द्विष्मः** ) कोप करते हैं ( **तम्** ) उस ( **परम्** ) शत्रु को (**अस्याम्**) इस ( **पृथिव्याम्** ) उक्त गुणवाली पृथिवी में ( **शतेन** ) अनेक ( **पाशैः** ) साम दान दण्ड और भेद आदि उद्योगों से बांधता हूं और जैसे मैं उसको उस दण्ड से बांधकर कभी नहीं छोड़ता वैसे ही तुम भी ( **बधान** ) बांधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो, कभी उसको ( **मा, मौक्** ) मत छोड़ो ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करनेवाले कार्य्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये । जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिये उनका बन्धन करना चाहिये । परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल सम्पादन करके क्रिया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान बनाकर सबको सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

**गायत्रेणेत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किससे करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—*

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥२७॥

**पदार्थ**—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ ( **सुक्ष्मा** ) यह पृथिवी शोभायमान ( **असि** ) होती है ( **च** ) तथा जिससे सुखकारक गुण ( **च** ) अथवा मनुष्यों के साथ यह ( **शिवा** ) मङ्गल की देनेवाली ( **असि** ) होती है ( **च** ) तथा जिस करके उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी ( **स्योना** ) सुख उत्पन्न करानेवाली ( **असि** ) होती है ( **च** ) और जिससे उत्तम उत्तम सुख करनेवाले और चलने के साथ यह ( **सुषदा** ) सुख से स्थिति करने योग्य ( **असि** ) होती है ( **च** ) तथा जिन उत्तम यव आदि अन्नों के साथ यह ( **ऊर्जस्वती** ) अन्नवाली ( **असि** ) होती है ( **च** ) और जिन उत्तम मधुर आदि रसवाले फलों से यह पृथिवी ( **पयस्वती** ) प्रशंसा करने योग्य रसवाली ( **असि** ) होती है ( **त्वा** ) उस यज्ञ को मैं यज्ञविद्या का जाननेवाला मनुष्य ( **गायत्रेण** ) गायत्री ( **छन्दसा** ) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करनेवाला है उससे ( **परिगृह्णामि** ) सब प्रकार से सिद्ध करता हूं और मैं ( **त्रैष्टुभेन** ) त्रिष्टुभ ( **छन्दसा** ) जो कि स्वतन्त्रतारूप से आनन्द का देनेवाला है उससे ( **त्वा** ) पदार्थसमूह को ( **परिगृह्णामि** ) सब प्रकार से इकट्ठा करता हूं तथा मैं ( **जागतेन** ) जगती जो कि ( **छन्दसा** ) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करनेवाला है उससे ( **त्वा** ) उस भौतिक अग्नि को ( **परिगृह्णामि** ) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—वेद का प्रकाश करनेवाला ईश्वर हम लोगों के प्रति कहता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोगों को वेदमन्त्रों के बिना पढ़े और उनके अर्थों के बिना जाने यज्ञ का अनुष्ठान वा सुखरूप फल को प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी अन्न जल और वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते इससे यह तीन प्रकार के यज्ञ की सिद्धि यत्नपूर्वक सम्पादन करके सदा सुख ही में रहना चाहिये और जो इस पृथिवी में वायु जल तथा ओषधियों को दूषित करनेवाले दुर्गन्ध अपगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहियें ॥ २७ ॥

**पुरा क्रूरस्येत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*वे दोष कैसे निवारण करने और वहां मनुष्यों को फिर क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् ।
यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते ।
प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥२८॥

**पदार्थ**—हे ( **विरप्शिन्** ) महाशय महागुणवान् जगदीश्वर ! आपने ( **याम्** ) जिस ( **स्वधाभिः** ) अन्न आदि पदार्थों से युक्त और ( **जीवदानुम्** ) प्राणियों को जीवन देनेवाले पदार्थ तथा ( **पृथिवीम्** ) बहुत सी प्रजायुक्त पृथिवी को ( **उदादाय** ) ऊपर उठाकर ( **चन्द्रमसि** ) चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है इस कारण ( **ताम्** ) उस पृथिवी को ( **धीरासः** ) धीर बुद्धिवाले पुरुष प्राप्त होकर आपके ( **अनुदिश्य** ) अनुकूल चल कर ( **यजन्ते** ) यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं । जैसे—( **चन्द्रमसि** ) आनन्द में वर्त्तमान होकर ( **धीरासः** ) बुद्धिमान् पुरुष (**याम्**) जिस ( **जीवदानुम्** )

जीवो की हितकारक ( **पथिवीम** ) पृथिवी के ( **अनुविश्य** ) आश्रित होकर सेना और शस्त्रो को (**उद्वावय**) क्रम से लेकर ( **विसृप** ) जो कि युद्ध करनेवाले पुरुषो के प्रभाव दिखाने योग्य और ( **क्रूरस्य** ) शत्रुओ के अंग विदीर्ण करनेवाले संग्राम के बीच मे शत्रुओ का जीतकर राज्य को ( **एरयम्** ) प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष ( **पुरा** ) पहले समय मे प्राप्त हुए जिन क्रियाओ से ( **प्रोक्षणी , उ** ) अच्छी प्रकार पदार्थों का सींच के उनको ( **आसादय** ) सम्पादन करते हैं वैसे ही ( **विरप्शिन्** ) महान् ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुष ! तू भी उसको प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करने वाली उत्तम उत्तम क्रियाओ का सम्पादन कर । जैसे ( **द्विषत** ) शत्रुओ का ( **वध** ) नाश ( **असि** ) हो वैसे कामो को करके नित्य आनन्द मे वर्त्तमान रह ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष मे पृथिवी पृथिवियो के समीप चन्द्रलोक चन्द्रलोको के समीप पृथिवी एक दूसरे के समीप तारालोक और सबके बीच मे अनेक सूर्य्यलोक तथा इन सब मे नाना प्रकार की प्रजा रचकर स्थापना की है वही परमेश्वर सब मनुष्यो का उपासना करने योग्य है । जब तक मनुष्य धन और क्रियाओ से युक्त होकर शत्रुओ को नही जीतते तब तक राज्यसुख को नही प्राप्त हो सकते क्योकि विना युद्ध और बल के शत्रुजन कभी नही डरते तथा विद्वान् लोग विद्या न्याय और विनय के बिना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नही हो सकते इस कारण सबको जितेन्द्रिय होकर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सबके सुख के लिये उत्तम उत्तम प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८ ॥

**प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषि स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये*
*इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

प्रत्युष्ट॰ रक्ष प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्त॰ रक्षो निष्टप्ताऽअरातय ।
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।
प्रत्युष्ट॰ रक्ष प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्त॰ रक्षो निष्टप्ताऽअरातय ।
अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥२९॥

**पदार्थ**—मैं जिस ( **अनिशित** ) अतिविस्तृत ( **सपत्नक्षित** ) शत्रुओ के नाश करनेवाले संग्राम से ( **प्रत्युष्ट रक्ष** ) विघ्नकारी प्राणी और ( **प्रत्युष्टा अरातय** ) जिसमे सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त ( **असि** ) होते हैं वा ( **निष्टप्त रक्ष** ) जिस बन्धन से बाँधने योग्य ( **निष्टप्ता अरातय** ) विद्या के विघ्न करनेवाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं ( **त्वा** ) उस ( **वाजिनम्** ) वेग आदि गुणवाले संग्राम को ( **वाजध्यायै** ) जो कि अन्न आदि पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है उसके लिये युद्ध के साधनो को ( **समार्ज्मि** ) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ अर्थात् उनके दोषो का विनाश करता हूँ और मैं जिस ( **सपत्नक्षित** ) शत्रु का नाश करनेवाले और ( **अनिशिता** ) अति विस्तारयुक्त सेना से ( **प्रत्युष्ट रक्ष** ) परमुख को न सहने वाला मनुष्य वा ( **प्रत्युष्टा अरातय** ) उक्त अवगुणवाले अनेक मनुष्य ( **निष्टप्त रक्ष** ) जुआ खेलने और परस्त्री गमन करने तथा ( **निष्टप्ता अरातय** ) औरो को सब प्रकार से दुःख देनेवाले मनुष्य अच्छी प्रकार निकाले जाते हैं ( **त्वा** ) उस ( **वाजिनीम्** ) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को ( **वाजेध्यायै** ) बहुत साधनो से प्रकाशित करने के लिये ( **समार्ज्मि** ) अच्छी प्रकार उत्तम उत्तम शिक्षाओ से शुद्ध करता हूँ । यह प्रथम अर्थ हुआ और जो कि ( **अनिशित** ) बड़ी क्रियाओ मे सिद्ध होने योग्य वा ( **सपत्नक्षित** ) दोषो वा शत्रुओ के विनाश करनेहार ( **प्रत्युष्ट रक्ष** ) विघ्नकारी प्राणी और ( **प्रत्युष्टा अरातय** ) जिसमे सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त ( **असि** ) होते है, वा ( **निष्टप्त रक्ष** ) जिस बन्धन से बाँधने योग्य ( **निष्टप्ता अरातय** ) विद्या के विघ्न करनेवाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते है ( **त्वा** ) उस ( **वाजिनम्** ) यज्ञ को ( **वाजेध्याय** ) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये ( **समार्ज्मि** ) शुद्धता से सिद्ध करता हूँ । इस प्रकार जिस (**सपत्नक्षित**) शत्रुओ का नाश करनेवाली ( **अनिशिता** ) अतिविस्तारयुक्त क्रिया से (**प्रत्युष्ट रक्ष** ) विघ्नकारी प्राणी और ( **प्रत्युष्टा अरातय** ) दुर्गुण तथा नीच मनुष्य नष्ट होते हैं ( **निष्टप्त रक्ष** ) काम क्रोध आदि राक्षसी भाव दूर होते है ( **निष्टप्ता अरातय** ) जिसमे दुःख तथा दुर्गन्ध आदि दोष नष्ट ( **असि** ) होते है ( **त्वा** ) उस (**वाजिनीं**) सत्क्रिया को ( **वाजध्याय** ) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये ( **सम्मार्ज्मि** ) भली प्रकार सिद्ध करता हूँ । इसी प्रकार आप भी इस यज्ञ तथा सत्क्रिया को पवित्रतापूर्वक सिद्ध करो । यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यो को विद्या और शुभ गुणो के प्रकाश और दुष्ट शत्रुओ की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये तथा सदैव श्रेष्ठ शिक्षा शस्त्र अस्त्र और सत्पुरुषयुक्त उत्तम सेना से श्रेष्ठो की रक्षा तथा दुष्टो का विनाश करना चाहिये जिसे करके अशुद्धि आदि दोषो के विनाश होने से सर्वत्र शुद्ध गुण प्रवृत्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

**अदित्या इत्यस्य ऋषि स एव । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देनेवाला होता है सो*
*अगले मन्त्र मे प्रकाशित किया है—*

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।
अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥३०॥

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! जो आप ( **अदित्यै** ) पृथिवी के ( **रास्ना** ) रस आदि पदार्थों के उत्पन्न करनेवाले ( **असि** ) है ( **विष्णो** ) व्यापक ( **वेष्प** ) पृथिवी आदि सब पदार्थों मे प्रवर्त्तमान भी ( **असि** ) हैं तथा ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि के ( **जिह्वा** ) जीभरूप ( **असि** ) हैं वा ( **देवेभ्य** ) विद्वानो के लिये ( **धाम्ने धाम्ने** ) जिनमे कि वे विद्वान् सुखरूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं जो तीनों धाम अर्थात् स्थान नाम और जन्म हैं उन धर्मों की प्राप्ति के तथा ( **यजुषे यजुषे** ) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र का आशय प्रकाशित होने के लिये ( **सुहू** ) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य है इस प्रकार के ( **त्वा** ) आपको मैं ( **अदब्धेन** ) प्रमसुखयुक्त ( **चक्षुषा** ) विज्ञान से ( **ऊर्जे** ) पराक्रम ( **अदित्यै** ) पृथ्वी तथा ( **देवेभ्य** ) श्रेष्ठ गुणो वा ( **धाम्ने धाम्ने** ) स्थान नाम और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा ( **यजुषे यजुषे** ) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र के आशय जानने के लिये ( **त्वा** ) आपको ( **अवपश्यामि** ) ज्ञानरूपी नेत्रो से देखता हूँ आप भी कृपा करके ( **मे** ) मुझको विदित और मेरे पूजन को प्राप्त ( **भव** ) हूजिये । यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा कहते है ॥ जिस कारण यह यज्ञ ( **अदित्यै** ) अन्तरिक्ष के सम्बन्धी ( **रास्ना** ) रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण ( **असि** ) है ( **विष्णो** ) यज्ञ सम्बन्धी कार्यों का ( **वेष्प** ) व्यापक ( **असि** ) है ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि का ( **जिह्वा** ) जिह्वा रूप ( **असि** ) है ( **देवेभ्य** ) तथा दिव्य गुण ( **धाम्ने धाम्ने** ) कीर्ति स्थान और जन्म इनकी प्राप्ति वा ( **मे** ) मेरे लिये ( **यजुषे यजुषे** ) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र का आशय जानने के लिये ( **सुहू** ) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य ( **भव** ) होता है इस कारण ( **त्वा** ) उस यज्ञ का मैं ( **अदब्धेन** ) सुखपूर्वक ( **चक्षुषा** ) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रो से ( **अवपश्यामि** ) देखता हूँ तथा ( **त्वा** ) उसे ( **अदित्यै** ) पृथिवी आदि पदार्थ ( **देवेभ्य** ) उत्तम उत्तम गुण ( **ऊर्जे** ) पराक्रम ( **धाम्ने धाम्ने** ) स्थान स्थान तथा ( **यजुषे यजुषे** ) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र से हित होने के लिये ( **अवपश्यामि** ) क्रिया की कुशलता से देखता हूँ ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यो को जैसे यह जगदीश्वर वस्तु वस्तु मे स्थित तथा वेद के मन्त्र मन्त्र मे प्रतिपादित और सेवन करने योग्य है वैसे ही यह यज्ञ वेद के प्रति मन्त्र से अच्छी प्रकार सिद्ध प्रतिपादित विद्वानो ने सेवित किया हुआ सब प्राणियो के लिये पदार्थ पदार्थ मे पराक्रम और बल के पहुँचाने के योग्य होता है ॥ ३० ॥

**सवितुस्त्वेत्यस्य ऋषि स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्द्धे जगती छन्द ।**
**निषाद स्वर । तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*उक्त यज्ञ कैसे पवित्र होता है सो अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभि ।
सवितुर्व प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभि ।
तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं
देवयजनमसि ॥३१॥

**पदार्थ**—जो यज्ञ ( **सवितु** ) परमेश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये संसार मे ( **अच्छिद्रेण** ) निरन्तर ( **पवित्रेण** ) पवित्र तथा ( **सूर्य्यस्य** ) प्रकाशमय सूर्य्य की ( **रश्मिभि** ) किरणो के साथ मिलाके सब पदार्थों को शुद्ध करता है ( **त्वा** ) यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं ( **उत्पुनामि** ) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूँ । इसी प्रकार ( **सवितु** ) परमेश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए संसार मे (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर ( **पवित्रेण** ) शुद्धिकारक ( **सूर्य्यस्य** ) जो कि ऐश्वर्य्य हेतुओ के प्रेरक प्राण के ( **रश्मिभि** ) अन्तराशय के प्रकाश करनेवाले गुण हैं उनसे ( **व** ) तुम लोगो का तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके ( **उत्पुनामि** ) पवित्र करता हूँ । हे ब्रह्मन् ! जिस कारण आप ( **तेजोऽसि** ) स्वयप्रकाशवान् ( **शुक्रमसि** ) शुद्ध ( **अमृतमसि** ) नाशरहित ( **धामासि** ) सब पदार्थों का आधार ( **नामासि** ) वन्दना करने योग्य ( **देवानाम्** ) विद्वानो के ( **प्रियम्** ) प्रीतिकारक ( **अनाधृष्टम्** ) तथा किसी की भयता मे न आने योग्य वा ( **देवयजनमसि** ) विद्वानो के पूजा करने योग्य हैं इससे मैं ( **त्वा** ) आपका ही आश्रय करता हूँ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ जिस कारण यह यज्ञ ( **तेजोऽसि** ) प्रकाश और ( **शुक्रमसि** ) शुद्धि का हेतु ( **अमृतमसि** ) मोक्ष सुख का देने तथा ( **धामासि** ) सब अन्न आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा ( **नामासि** ) जल का हेतु ( **देवानाम्** ) श्रेष्ठ गुणो की ( **प्रियम्**) प्रीति कराने तथा ( **अनाधृष्टम्** ) किसी का खण्डन करने के योग्य नही अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट और ( **देवयजनम्** ) विद्वान् जनो को परमेश्वर का पूजन करानेवाला ( **असि** ) है इस कारण इस यज्ञ से मैं ( **सवितु** ) जगदीश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए संसार मे ( **अच्छिद्रेण** ) निरन्तर (**पवित्रेण**) अति शुद्ध यज्ञ वा (**सूर्य्यस्य**) ऐश्वर्य्य उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के गुण अथवा ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करनेवाले सूर्य्य की ( **रश्मिभि** ) विज्ञानादि प्रकाश वा किरणो से ( **व** ) तुम लोग वा प्रत्यक्ष पदार्थों को (**उत्पुनामि** ) पवित्र करता हूँ ॥ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥३१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर यज्ञ विद्या के फल को जानता है कि जो तुम लोगो से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह सूर्य की किरणो के साथ रहकर अपने निरन्तर शुद्ध गुण से सब पदार्थों को पवित्र करता है तथा वह उसके द्वारा सब पदार्थों को सूर्य की किरणो से तेजवान् शुद्ध उत्तम रस वाले सुखकारक प्रसन्नता का हेतु दृढ़ और यज्ञ करानेवाले पदार्थों को उत्पन्न करके उनके भोजन वस्त्र से शरीर की पुष्टि बुद्धि और बल आदि शुद्ध गुणो को सम्पादन करके सब जीवो को सुख देता है ॥ ३१ ।

ईश्वर ने इस अध्याय मे मनुष्यो को शुद्ध कर्म के अनुष्ठान दोष और शत्रुओं की निवृत्ति यज्ञक्रिया के फल का जानने, अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुकूल प्रजा पालन, धर्म के अनुष्ठान मे निर्भयता से स्थिर होने सबके साथ मित्रता से वर्त्तने वेदो से सब विद्याओं को ग्रहण करने और कराने को शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने को आज्ञा दी है सो यह सब मनुष्यों को अनुष्ठान करने के योग्य है ॥

卐

# ॥ अथ द्वितीयाध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥**

**कृष्णोऽसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता ।**
**निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन विद्याओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो जो प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं । उनमें से यज्ञ आदि पदार्थों के बनाने को हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उनकी सिद्धि के निमित्त कहे हैं—

**कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥१॥**

**पदार्थ**—जिस कारण यह यज्ञ (**आखरेष्ठ**) वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर (**कृष्णः**) भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त (**असि**) होता है इसमें (**अग्नये**) भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने के लिये (**जुष्टम्**) प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए (**त्वा**) उस यज्ञ अर्थात् होम की सामग्री को (**प्रोक्षामि**) घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ । और जिस कारण यह (**वेदिः**) वेदी अन्तरिक्ष में स्थित (**असि**) होती है इससे मैं (**बर्हिषे**) होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिये (**जुष्टाम्**) प्रीति सम्पादन की हुई (**त्वा**) उस वेदि को (**प्रोक्षामि**) अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ तथा जिस कारण यह (**बर्हिः**) जो अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि करानेवाला (**असि**) होता है इससे (**त्वा**) उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ (**जुष्टम्**) पुष्टि आदि गुणों का उत्पन्न करनेहारा हवि है उसको मैं (**स्रुग्भ्यः**) स्रुवा आदि साधनों से अग्नि में छोड़ने के लिये (**प्रोक्षामि**) शुद्ध करता हूँ ॥१॥

**भावार्थ**—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री लेकर उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध करके तथा अग्नि में होम करके किया हुआ यज्ञ वायु के शुद्ध अन्न से सब ओषधियों को पुष्ट करता है । उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥ १ ॥

**अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । स्वराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करनेवाला होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ॥२॥**

**पदार्थ**—जिस कारण यह यज्ञ (**अदित्यै**) पृथिवी के (**व्युन्दनम्**) विविध प्रकार के ओषधि आदि पदार्थों का सींचनेवाला (**असि**) होता है इससे मैं उसका अनुष्ठान करता हूँ और (**विष्णोः**) इस यज्ञ की सिद्धि करानेहारा (**स्तुपः**) शिखारूप (**ऊर्णम्रदसम्**) उत्खल (**असि**) है इससे मैं (**त्वा**) उस अन्न के छिलके दूर करनेवाले पत्थर और उलूखल को (**स्तृणामि**) पदार्थों से ढाँपता हूँ तथा वेदी (**देवेभ्यः**) विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिए (**असि**) होती है इससे उसको मैं (**स्वासस्थाम्**) ऐसी बनाता हूँ कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिससे संसार का पति भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरों का पति संसारी पदार्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्नि सुखों का सिद्ध करानेवाला होता है इस कारण (**भुवपतये स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा, भूतानां पतये स्वाहा**) उक्त परमेश्वर की प्रसन्नता और आज्ञापालन के लिये उस वेदी के गुणों से जो कि सत्यभाषण अर्थात् अपने पदार्थों को मेरे हैं यह कहना वा श्रेष्ठवाक्य आदि उत्तम वाणीयुक्त वेद है उसके मन्त्रों के साथ स्वाहा शब्द का अनेक प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया जाता है इस प्रयोजन के लिये भी वेदी को रचता हूँ ॥ २ ॥

**भावार्थ**—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुमको वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन करके सब प्राणियों के सुख तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार क्रियायुक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूँ वैसे ही तुम लोगों को भी पक्षपात छोड़कर सब प्राणियों के पालन से सुख सम्पादन करना चाहिये ॥ २ ॥

**गन्धर्वस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । आद्यस्य भुरिगार्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । मध्यभागस्य (भुरिग्) आर्चीपंक्तिश्छन्दः । अन्त्यस्य पंक्तिश्छन्दः । उभयत्र पंचमः स्वरः ॥**

*उक्त यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ॥३॥**

**पदार्थ**—विद्वान् लोगों ने जिस (**गन्धर्वः**) पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले (**विश्वावसुः**) विश्व को बसानेवाले (**परिधिः**) सब ओर से सब वस्तुओं को धारण करनेवाले (**इडः**) स्तुति करने योग्य (**अग्निः**) सूर्य्यरूप अग्नि की (**ईडितः**) स्तुति (**असि**) की है जो (**विश्वस्य**) संसार के वा विशेष करके (**यजमानस्य**) यज्ञ करानेवाले विद्वान् के (**अरिष्ट्यै**) दुःखनिवारण से सुख के लिये इस यज्ञ का (**परिदधातु**) धारण करता है इसी लिये (**त्वा**) उसको विद्या की सिद्धि के लिये (**परिदधातु**) धारण करें और विद्वानों से जो वायु (**इन्द्रस्य**) सूर्य्य का (**बाहुः**) बल और (**दक्षिणः**) वर्षा की प्राप्ति करानेवाला अथवा (**परिधिः**) शिल्पविद्या का कारण करानेवाला तथा (**इडः**) दाह प्रकाश आदि गुण वाला होने से स्तुति के योग्य (**ईडितः**) खोजा हुआ और (**अग्निः**) प्रत्यक्ष अग्नि (**असि**) है । वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्प विद्या में युक्त किये हुये (**यजमानस्य**) शिल्प विद्या के चाहनेवाले वा (**विश्वस्य**) सब प्राणियों के (**अरिष्ट्यै**) सुख के लिये (**असि**) होते हैं और जो ब्रह्माण्ड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाववाले (**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान वायु हैं वे (**ध्रुवेण**) निश्चल (**धर्मणा**) अपनी धारण शक्ति से (**उत्तरतः**) पूर्वोक्त वायु और अग्नि से उत्तर अर्थात् उपरान्त समय में (**विश्वस्य**) संसार वा अनुष्ठान (**यजमानस्य**) सब में मित्रभाव में वर्त्तने वाले सज्जन पुरुष के (**अरिष्ट्यै**) सुख के हेतु (**त्वा**) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (**परिधत्ताम्**) सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से (**इडः**) विद्या की प्राप्ति के लिये प्रशंसा करने के योग्य और (**परिधिः**) सब शिल्पविद्या की सिद्धि का धरने से अर्थात् तथा (**ईडितः**) विद्या की इच्छा करनेवालों से प्रशंसा को प्राप्त (**अग्निः**) बिजुलीरूप अग्नि (**असि**) है वह भी इस यज्ञ को सब प्रकार से धारण करता है । इन के गुणों को मनुष्य यथावत् जान के उपयोग करें ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर ने जो सूर्य विद्युत् और प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार का अग्नि रचा है वह विद्वानों से शिल्पविद्या के द्वारा पदार्थों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है ॥ ३ ॥

**वीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में उक्त दो अर्थों का प्रकाश किया है—*

**वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे (**कवे**) सर्वज्ञ तथा हरएक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञान वाले (**अग्ने**) आत्मस्वरूप परमेश्वर ! हम लोग (**अध्वरे**) मित्रभाव के रहने में (**बृहन्तम्**) सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के बढ़ाने और (**द्युमन्तम्**) अत्यन्त प्रकाशवाले वा (**वीतिहोत्रम्**) अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विदित करानेवाले (**त्वा**) आप को (**समिधीमहि**) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें । है इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ । हम लोग (**अध्वरे**) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यज्ञ में जिस में कि (**वीतिहोत्रम्**) पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि क्रिया सिद्ध होती है और (**द्युमन्तम्**) अत्यन्त प्रचण्ड ज्वालायुक्त (**बृहन्तम्**) बड़े बड़े कार्यों को सिद्ध कराने तथा (**कवे**) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले (**त्वा**) उस (**अग्ने**) भौतिक अग्नि को (**समिधीमहि**) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें । यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन वा क्रियाओं से सिद्ध होने वाले पदार्थ हैं उन सबको ईश्वर ही ने रचकर अच्छी प्रकार धारण किया है मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता से गुण ज्ञान और उत्तम उत्तम क्रियाओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें ॥ ४ ॥

**समिदसीत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृद्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्बाहू स्थऽऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽआ त्वा वसवो रुद्राऽआदित्याः सदन्तु ॥५॥**

**पदार्थ**—( **चित** ) जैसे कोई मनुष्य सुख के लिये क्रिया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे ही यह यज्ञ ( **समित** ) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित ( **असि** ) होता है ( **त्वा** ) उसको ( **सद्य** ) ऐश्वर्य का हेतु सूर्य्य रात्र ( **कस्या** ) सब पदार्थों की ( **अभिशस्त्यै** ) प्रकटता करने के लिये ( **पुरस्तात** ) पहिले ही से उनकी ( **पात** ) रक्षा करनेवाला होता है तथा जो कि ( **सवित** ) सूर्य्यलोक के ( **बाहू** ) बल और वीर्य्य ( **स्थ** ) है जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है ( **त्वा** ) जिस ( **ऊर्णम्रदसम** ) सुख के विनाश के नाश करने ( **स्वासस्थम** ) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होनेवाले यज्ञ को ( **वसव** ) अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि पृथिवी वायु अन्तरिक्ष सूर्य्य प्रकाश चन्द्रमा और तारागण ये वसु ( **रुद्रा** ) प्राण अपान व्यान उदान समान नाग कूर्म्म कृकल देवदत्त धनञ्जय और जीवात्मा ये रुद्र (**आदित्या** ) बारह महीने ( **सवन्त** ) प्राप्त करते हैं । ( **त्वा** ) उसी ( **ऊर्णम्रदसम** ) अत्यन्त सुख बढ़ाने ( **स्वासस्थम** ) और अन्तरिक्ष में स्थिर होनेवाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति वा ( **देवेभ्य** ) दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये ( **आस्तृणामि** ) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूँ ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु रुद्र और आदित्य सञ्ज्ञक पदार्थों से जो जो काम सिद्ध हो सकते हैं सो सो सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं तथा अग्नि के बीच जिन जिन पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है सो सो सूर्य्य और वायु को प्राप्त होता है । वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य ओषधि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं । उनसे जीवों को नित्य सुख होता है इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ५ ॥

**घृताच्यसीत्यस्य ऋषि स एव । विष्णुर्देवता सर्वस्य । षट्षष्टितमाक्षरपर्यन्त ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । अग्रे निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । सर्वस्य धैवत स्वर ॥**

*फिर उक्त यज्ञ से क्या क्या प्रिय सुख सिद्ध होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय४ सदऽआसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय४ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय४ सदऽआसीद प्रियेण धाम्ना प्रिय४ सदऽआसीद । ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥**

**पदार्थ**—जो ( **नाम्ना जुहू** ) होम अग्नि में दान के लिये सुख की उत्पन्न करनेवाली ( **घृताची** ) घृत को प्राप्त करनेवाली आदान क्रिया ( **असि** ) है ( **सा** ) वह यज्ञ में ग्रहण का विस्तार ग्रहण की क्रिया है सो ( **प्रियेण** ) सुखों से तृप्त करनेवाला शोभायमान ( **धाम्ना** ) स्थान के साथ वर्त्तमान होकर ( **इदम्** ) यह ( **प्रियम्** ) जिसमें तृप्त करनेवाले ( **सद** ) उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं उनको (**आसीद**) सिद्ध करती है । जो ( **नाम्ना** ) प्रसिद्धि से ( **उपभृत** ) समीप प्राप्त हुए पदार्थों का धारण करनेवाली (**घृताची**) जल को प्राप्त करानेवाली हस्तक्रिया (**असि**) है ( **सा** ) वह यज्ञ में युक्त की हुई ( **प्रियेण** ) प्रीति के हेतु ( **धाम्ना** ) स्थान से ( **इदम** ) यह ओषधि आदि पदार्थों का समूह ( **प्रियम** ) जो कि आरोग्यपूर्वक सुखदायक और ( **सद** ) दुःखों का नाश करनेवाला है उसको ( **आसीद** ) अच्छी प्रकार प्राप्त करती है तथा जो ( **नाम्ना ध्रुवा** ) स्थिर सुखों वा ( **घृताची** ) आयु के निमित्त को देनेवाली विद्या ( **असि** ) होती है ( **सा** ) वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्यों में युक्त की हुई ( **प्रियेण** ) प्रीति उत्पन्न करनेवाले (**धाम्ना**) स्थिरता के निमित्त से (**इदम**) इस ( **प्रियम** ) आनन्द करानेवाले आनन्द को ( **सद** ) वस्तुओं को ( **आसीद** ) प्राप्त करती है । जिस क्रिया करके ( **प्रियेण** ) प्रसन्नता के करनेहारे ( **धाम्ना** ) हृदय से ( **प्रियम** ) प्रसन्नता करनेवाला ( **सद** ) ज्ञान ( **आसीद** ) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है ( **सा** ) वह क्रिया सब को नित्य सिद्ध करनी चाहिये । हे ( **विष्णो** ) व्यापक ईश्वर ! जैसे जो जो ( **ऋतस्य योनौ** ) शुद्ध यज्ञ में ( **ध्रुवा** ) स्थिर वस्तु ( **असदन्** ) हो सके हैं उन उनकी निरन्तर ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये तथा कृपा कर के ( **यज्ञ** ) यज्ञ की ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये (**यज्ञन्यम**) यज्ञ प्राप्त करने (**यज्ञपतिम**) यज्ञ के पालन करनेवाले यजमान की ( **पाहि** ) रक्षा करो और यज्ञ का प्रकाशित करनेवाले ( **माम** ) मेरी ( **च** ) भी ( **पाहि** ) पालिये ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—जो यज्ञ पूर्वोक्त मन्त्र में वसु रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये कहा है वह वायु और अग्नि की शुद्धि के द्वारा सब स्थानों और सब वस्तुओं को प्रीति करानेहारे उत्तम सुख का बढ़ानेवाला कर देता है सब मनुष्यों को उनकी वृद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ६ ॥

**अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषि स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर वह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं४ सम्मार्ज्मि । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥७॥**

**पदार्थ**—जिससे यह ( **अग्ने** ) अग्नि ( **वाजजित** ) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त करानेवाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इससे मैं ( **त्वा** ) उस ( **वाजम्** ) वेगवाले ( **सरिष्यन्तम्** ) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने और ( **वाजजितम्** ) वाज अर्थात् युद्ध को जितानेवाले भौतिक अग्नि को ( **सम्मार्ज्मि** ) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ यज्ञ में युक्त किये हुए जिस अग्नि से (**देवेभ्य** ) सुखकारक पूर्वोक्त वसु आदि से सुख के लिये ( **नम** ) अत्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा (**पितृभ्य** ) पालन के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु है उनसे जो आरोग्य के लिये ( **स्वधा** ) अमृतात्मक अन्न किये जाते हैं वे ( **सुयमे** ) बल वा पराक्रम के देनेवाले उस यज्ञ से ( **मे** ) मेरे लिये ( **भूयास्तम्** ) होवें ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मन्त्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है । क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है और यान वा अस्त्र शस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु होकर वसन्त आदि ऋतुओं से उत्तम उत्तम पदार्थों का सम्पादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देनेवाले कर देता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥

**अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषि स एव । विष्णुर्देवता । विराड् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चमः स्वर ॥**

*फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—*

**अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यं४ सम्भ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्य्यमकृणो-दूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात् ॥८॥**

**पदार्थ**—मैं ( **देवेभ्य** ) उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिये जो ( **अस्कन्नम्** ) निश्चल सुखदायक (**आज्यम** ) घृत आदि उत्तम उत्तम पदार्थ है उसको ( **अङ्घ्रिणा** ) पदार्थ पहुँचानेवाले अग्नि से ( **अद्य** ) आज (**सम्भ्रियासम**) धारण करूं और (**त्वा**) उसका मैं ( **मावक्रमिषम** ) कभी उल्लङ्घन न करूं । तथा हे अग्ने जगदीश्वर ! (**ते**) आप के ( **वसुमतीम** ) पदार्थ देनेवाले ( **छायाम** ) आश्रय को ( **उपस्थेषम** ) प्राप्त होऊँ । जो यह ( **अग्ने** ) अग्नि ( **विष्णो** ) यज्ञ के ( **स्थानम** ) ठहरने का स्थान (**असि**) है उसके भी ( **वसुमतीम्** ) उत्तम पदार्थ देनेवाले ( **छायाम** ) आश्रय को मैं ( **उपस्थेषम** ) प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूँ तथा जो ( **ऊर्ध्व** ) आकाश और जो ( **अध्वर** ) यज्ञ अग्नि में ठहरनेवाला ( **आ** ) सब प्रकार से (**अस्थात**) ठहरता है उसको ( **इन्द्र** ) सूर्य्य और वायु धारण करके ( **वीर्य्यम** ) कर्म अथवा पराक्रम को ( **अकृणोत** ) करते है ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुत सा अन्न उत्पन्न करनेवाले होते हैं उसको सिद्ध करने के लिये मनुष्यों को बहुत सी सामग्री जोड़नी चाहिये । जैसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ मेरी आज्ञा कभी उल्लङ्घन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो असङ्ख्यात सुखों का देनेवाला मेरा आश्रय है उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिसको सूर्य्य अपनी किरणों से खेंच कर वायु के योग से ऊपर मेघमण्डल में स्थापन करता है और फिर वह उसको वहां से मेघ द्वारा गिरा देता है और जिससे पृथिवी पर बड़ा सुख उत्पन्न होता है उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है ॥ ८ ॥

**अग्ने वेरित्यस्य ऋषि स एव । अग्निर्देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥९॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) परमेश्वर ! जो (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशमय सूर्यलोक और पृथिवी यज्ञ की ( **अवताम** ) रक्षा करते हैं उनकी ( **त्वम्** ) आप ( **वे** ) रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि ( **होत्रम** ) यज्ञ और (**दूत्यम**) दूत कर्म को प्राप्त होकर ( **द्यावापृथिवी** ) प्रकाशमय सूर्य्यलोक और पृथिवी की रक्षा करता है वैसे हे भगवन् ! ( **देवेभ्य** ) विद्वानों के लिये ( **स्विष्टकृत** ) उनकी इच्छानुकूल अच्छे अच्छे कार्यों के करनेवाले आप हम लोगों की ( **अव** ) रक्षा कीजिये जो यह ( **आज्येन** ) यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम उत्तम पदार्थ (**हविषा**) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा (**ज्योतिषा**) प्रकाशयुक्त लोगों के साथ (**ज्योति** ) प्रकाशमय किरणों से (**स्विष्टकृत्**) अच्छे अच्छे वाञ्छित कार्य्य सिद्ध करानेवाला ( **इन्द्र** ) सूर्य्यलोक भी (**द्यावापृथिवी**) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्य की रक्षा करनेवाला ( **अभूत** ) होता है वैसे आप ( **ज्योति** ) विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की (**अव**) रक्षा कीजिये इस कर्म को (**स्वाहा**) वेदवाणी कहती है ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो जो अग्नि पृथिवी सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों का ज्ञान के होम और दूत-सम्बन्धी कर्म का अनुष्ठान करना योग्य है सो सो उनके लिये वाञ्छित सुख के देनेवाले होते हैं । अष्टम मन्त्र में कहे हुए साधन का फल नवम मन्त्र से प्रकाशित किया है ॥ ९ ॥

**मयीदमित्यस्य ऋषि स एव । इन्द्रो देवता । भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होनेवाले फल का उपदेश किया है—*

**मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकं४ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥१०॥**

**पदार्थ**—( **इन्द्र** ) परमेश्वर ( **मयि** ) मुझ मे ( **इदम्** ) प्रत्यक्ष ( **इन्द्रियम्** ) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिह्न तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखो का सिद्ध करानेवाले जो विद्वानो को दिया है जिसको वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं उन्हे तथा ( **राय** ) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनो को ( **दधातु** ) नित्य स्थापन करे और उसकी कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से ( **मघवान** ) जिनमे कि बहुत धन राज्य आदि पदार्थ विद्यमान है जिन करके हम लोग पूरण ऐश्वर्ययुक्त हो वैसे धन ( **न** ) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को ( **सचन्ताम्** ) प्राप्त हो तथा इसी प्रकार ( **अस्माकम्** ) हम परोपकार करनेवाले धर्मात्माओ की ( **आशिष** ) कामना ( **सत्या** ) सिद्ध ( **सन्तु** ) हो और ऐसे ही ( **न** ) हमारी ( **आशिष** ) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो क्रिया हैं वे भी ( **सत्या** ) सिद्ध ( **सन्तु** ) हो तथा इसी प्रकार ( **माता** ) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करनेहारी विद्या और ( **पृथिवी** ) बहुत सुख देनेवाली भूमि है ( **उपहूता** ) जिसको राज्य आदि सुख के लिये मनुष्य कर्म से प्राप्त होते हैं वह ( **माम्** ) सुख की इच्छा करनेवाले मुझको ( **उपह्वयताम्** ) अच्छी प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह ( **अग्नि** ) जिस भौतिक अग्नि को कि ( **आग्नीध्रात** ) इन्धनादि से प्रज्वलित करते हैं वह वाञ्छित सुखो का करनेवाला होकर ( **न** ) हमारे सुखो का आगमन करावें क्योंकि ऐसे ही अच्छी प्रकार होम को प्राप्त होके चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करनेहारा होता है ( **स्वाहा** ) सब मनुष्यो के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म का कहती है ॥ १० ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वे ही श्रेष्ठ ज्ञान उत्तम धन और सत्य कामनाओ को प्राप्त होते हैं और नही । जो सबका मान्य हेतु के कारण इस मन्त्र मे पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है सो ये सब मनुष्यो का उपकार मे लाने के योग्य है । ईश्वर ने इस वेदमन्त्र मे यही प्रकाशित किया है तथा जो नवम मन्त्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कही है वही बात इस मन्त्र मे प्रकाशित की है ॥ १० ॥

**उपहूतेत्यस्य ऋषि स एव । द्यावापृथिवी देवते । ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र मे उक्त अर्थ को दृढ किया है—*

**उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ।**
**देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।**
**प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥११॥**

**पदार्थ**—मुझ से जो ( **द्यौ** ) प्रकाशमय ( **पिता** ) सर्वपालक ईश्वर ( **उपहूत** ) प्रार्थना किया हुआ ( **माम्** ) सुख भोगनेवाले मुझको ( **उपह्वयताम्** ) अच्छी प्रकार स्वीकार करे इसी प्रकार जो ( **द्यौ** ) प्रकाशवान् ( **पिता** ) सब उत्तम क्रियाओ के पालन का हेतु सूर्यलोक मुझ से ( **उपहूत** ) क्रियाओ मे प्रयुक्त किया हुआ ( **माम्** ) सब सुख भोगनेवाले मुझको विद्या के लिये ( **उपह्वयताम्** ) युक्त करता है तथा जो ( **अग्नि** ) जाठराग्नि ( **स्वाहा** ) अच्छे भोजन किये हुए अन्न को ( **आग्नीध्रात** ) उदर मे अन्न के कोठे मे पचा देता है उससे मैं ( **देवस्य** ) हर्ष देने ( **सवितु** ) और सबके उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए ( **प्रसवे** ) ससार मे विद्यमान और ( **त्वा** ) उस उक्त भोग को ( **अश्विनो** ) प्राण और अपान के ( **बाहुभ्याम्** ) आकर्षण और धारण गुणो से तथा ( **पूष्ण** ) पुष्टि के हेतु समान वायु के ( **हस्ताभ्याम** ) साधन वा शरीर के अङ्ग अङ्ग मे पहुचाने के गुण से ( **प्रतिगृह्णामि** ) अच्छी प्रकार ग्रहण करता हूँ ग्रहण करके ( **अग्ने** ) प्रज्वलित अग्नि के बीच मे पकाकर ( **त्वा** ) उस भोजन करने योग्य अन्न को ( **आस्येन** ) अपने मुख से ( **प्राश्नामि** ) भोजन करता हूँ ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यो को अपने आत्मा की शुद्धि के लिये अनन्त विद्या के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छी प्रकार नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अग्नि को दीप्त कर और नेत्रो से अच्छी प्रकार देख के सस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न का नित्य भोजन करना चाहिये । सब भोग इस ससार मे जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये पदार्थ हैं उनसे सिद्ध होते है वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार मे भोगना चाहिये और वैसे ही औरो को वर्त्ताना चाहिये । जो पूर्वमन्त्र से पृथिवी मे विद्या से प्राप्त होने वा मान्य के करानेवाले पदार्थ कहे हैं उनका भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनुष्यो को करना चाहिये । ऐसा इस मन्त्र से प्रतिपादन किया है ॥ ११ ॥

**एतन्त इत्यस्य ऋषि स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*किस प्रयोजन के लिये और किसने यह विद्या का प्रबन्ध प्रकाशित किया है सो अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे ।**
**तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) दिव्य सुख वा उत्तम गुण देने तथा ( **सवित** ) सब ऐश्वर्य का विधान करनेवाले जगदीश्वर ! वेद और विद्वान् आपके प्रकाशित किये हुए ( **एतम्** ) इस पूर्वोक्त यज्ञ को ( **प्राहु** ) अच्छी प्रकार कहते हैं कि जिससे ( **बृहस्पतये** ) बडो मे बडी जो वेदवाणी है उसके पालन करनेवाले ( **ब्रह्मणे** ) चारों वेदो के पढने से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं । इस ( **यज्ञम्** ) यज्ञ सम्बन्धी धर्म से ( **यज्ञपतिम्** ) यज्ञ को करने वा सब प्राणियों को सुख देनेवाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से ( **मा** ) मेरी भी ( **अव** ) रक्षा कीजिये ॥१२॥

**भावार्थ**—ईश्वर ने सृष्टि के आदि मे दिव्यगुण वाले अग्नि वायु रवि और अङ्गिरा ऋषियो के द्वारा चारो वेद के उपदेश मे सब मनुष्यो के लिये विद्या प्राप्ति के साथ यज्ञ के अनुष्ठान की विधि का उपदेश किया है जिससे सब की रक्षा होती है क्योकि विद्या और शुद्धि क्रिया के विना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नही हो सकती इसलिये हम सबको उचित है कि परस्पर प्रीति के साथ अपनी वृद्धि और रक्षा यत्न से करनी चाहिये । जो ग्यारहवें मन्त्र से यज्ञ का फल कहा है उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है ऐसा इस मन्त्र मे विधान है ॥१२॥

**मनोजूतिरित्यस्य ऋषि स एव । बृहस्पतिर्देवता । विराड् जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*जिससे यज्ञ किया जा सकता है सो विषय अगले मन्त्र मे प्रकाशित किया है—*

**मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥१३॥**

**पदार्थ**—( **जूति** ) अपने वेग मे सब जगत् जाननेवाला ( **मन** ) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन ( **आज्यस्य** ) यज्ञ की सामग्री का ( **जुषताम्** ) सेवन करे ( **बृहस्पति** ) बडे बडे जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ है उसका जो पति अर्थात पालन करने हारा ईश्वर है वह ( **इमम्** ) इस प्रकट और अप्रकट ( **अरिष्टम्** ) अहिंसनीय ( **यज्ञम्** ) सुखो के भोगरूपी यज्ञ को ( **तनोतु** ) विस्तार करे तथा ( **इमम्** ) इस ( **अरिष्टम्** ) जो छोडने योग्य नही ( **यज्ञम्** ) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विमान की प्राप्तिरूप यज्ञ है इसको ( **सदधातु** ) अच्छी प्रकार धारण करावे । हे ( **विश्वेदेवास** ) सकल विद्वान् लोगो ! तुम इन पालन करने योग्य जो यज्ञो का धारण वा विस्तार करके ( **इह** ) इस ससार वा अपने मन मे ( **मादयन्ताम्** ) आनन्दित होओ । हे ( **ओ३म्** ) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर ! आप ( **बृहस्पति** ) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे ( **इह** ) इस ससार वा विद्वानो के हृदय मे ( **प्रतिष्ठ** ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि का स्थापन कीजिये ॥१३॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम्हारा मन अच्छे ही कामो मे प्रवृत्त हो तथा मन जो ससार मे यज्ञ करने की आज्ञा दी है उसका उक्त प्रकार से यथावत् अनुष्ठान करके सुखी हो तथा औरो को भी सुखी करो । ( **ओम्** ) यह परमेश्वर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है वैसे ही परमेश्वर के साथ ( **ओम्** ) ओंकार का सम्बन्ध है तथा अच्छे कामो के विना किसी की प्रतिष्ठा नही हो सकती इसलिये सब मनुष्यो को सर्वथा अधर्म छोडकर धर्म कामो का ही सेवन करना योग्य है जिससे ससार मे निश्चय करके अविद्यारूपी अन्धकार निवृत्त होकर विद्यारूपी सूर्य प्रकाशित हो । बारहवें मन्त्र से जिस यज्ञ का प्रकाश किया था उसके अनुष्ठान से सब मनुष्यो की प्रतिष्ठा वा सुख होते हैं यह इसमे प्रकाशित किया है ॥१३॥

**एषा त इत्यस्य ऋषि स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वोऽनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर । अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*यज्ञ मे अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये सो अगले मन्त्र मे प्रकाशित किया है—*

**एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व ।**
**वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ।**
**अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) परमेश्वर ! ( **ते** ) आपकी जो ( **एषा** ) यह ( **समित्** ) अच्छी प्रकार पदार्थों की प्रकाश करनेवाली वेदविद्या है ( **तया** ) उससे हम लोगों की की हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य ( **वर्धस्व** ) हमारे ज्ञान मे वृद्धि को प्राप्त हूजिये ( **च** ) और उस वेदविद्या मे हम लोगो की भी नित्य वृद्धि कीजिये । इसी प्रकार हे भगवन् ! आप के गुणो का जनानेहारे हम लोगो से ( **च** ) भी प्रकाशित होकर आप ( **प्यायस्व** ) हमारे आत्माओ मे वृद्धि को प्राप्त हूजिये । इसी प्रकार हम को भी बढाइये । हे भगवन् ! ( **अग्ने** ) विज्ञानस्वरूप विजय देने और ( **वाजजित्** ) सब के वेग को जीतनेवाले परमेश्वर ! हम लोग ( **वाजम्** ) जो कि ज्ञानस्वरूप ( **ससृवासम्** ) अर्थात् सब को जाननेवाले ( **त्वा** ) आपकी ( **वर्धिषीमहि** ) स्तुतियो से वृद्धि तथा प्राप्ति करें ( **च** ) और आप कृपा करके हमको भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारो को जाननेवाले कीजिये और जैसे हम लोग आपको ( **आप्यासिषीमहि** ) अधिक अधिक स्तुति करें वैसे ही आप भी हम लोगो को सब उत्तम उत्तम गुण और सुखो मे ( **आप्यायस्व** ) वृद्धियुक्त कीजिये । हम आपके आश्रय को प्राप्त होकर तथा आपकी आज्ञा के पालने से ( **समार्ज्मि** ) अच्छी प्रकार शुद्ध होते है ॥ १ ॥ जो ( **एषा** ) यह ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि है ( **ते** ) उसकी ( **समित** ) बढाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करनेवाली लकडियो का समूह है ( **तया** ) उससे यह अग्नि ( **वर्धस्व** ) बढता और ( **आप्यायस्व** ) परिपूर्ण भी होता है । हम लोग ( **त्वा** ) उस ( **वाजम्** ) वेग और ( **ससवासम्** ) शिल्पविद्या के गुणो को देने तथा ( **वाजजितम्** ) सग्राम के जिताने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिये ( **वर्धिषीमहि** ) बढाते हैं ( **च** ) और ( **आप्यासिषीमहि** ) कलाओ मे परिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानो तथा वेग वाले शिल्पविद्या के गुणो की प्राप्ति से सग्राम को जितानेवाले हमको विजय के साथ बढाता है इससे ( **त्वा** ) उस अग्नि का हम ( **समार्ज्मि** ) अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं ॥१४॥

**पदार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । और एक एक अर्थ के दो दो क्रियापद आदर के लिये जानने चाहियें । जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और क्रिया की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होते हैं वे विद्या और सुख में सब को आनन्दित

कर और दुष्ट शत्रुओं को जीतकर शुद्ध होके सुखी होते हैं। जो आलस्य करने वाले हैं वे ऐसे कभी नहीं हो सकते और चार चकारों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म वा स्थूलता में अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य्य भी अनेक प्रकार के हैं ऐसा समझना चाहिये। जो यहाँ मन्त्र में वेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यज्ञ का अनुष्ठान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है ॥१४॥

अग्नीषोमयोरित्यस्य ऋषिः स एव । अग्नीषोमौ देवते । पूर्वार्द्धे ब्राह्मीबृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी देवते । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*अब मनुष्यों से क्या क्या दूर करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि। इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—मैं (**अग्नीषोमयोः**) प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के (**उज्जितिम्**) दुःख में सहने योग्य शत्रुओं को (**अनूज्जेषम्**) यथाक्रम से जीतूं और (**वाजस्य**) युद्ध के (**प्रसवेन**) उत्पादन से विजय करनेवाले (**मा**) अपने आप को (**प्रोहामि**) अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूं। जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या से क्रियाकुशलता में युक्त किये हुए (**अग्नीषोमौ**) उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं वे (**यः**) जो कि अन्याय में वर्त्तमान दुष्ट मनुष्य (**अस्मान्**) न्याय करनेवाले हम लोगों को (**द्वेष्टि**) शत्रुभाव से वर्त्तता है (**यं च**) और जिस अन्याय करनेवाले से (**वयम्**) न्यायाधीश हम लोग (**द्विष्मः**) विरोध करते हैं (**तम्**) उस शत्रु दुष्ट को (**अपनुदताम्**) दूर करते हैं और मैं भी (**एनम्**) इस दुष्ट शत्रु को (**वाजस्य**) पदार्थ वेगादिगुणों से युक्त सेना वाले संग्राम के (**प्रसवेन**) अच्छी प्रेरणा से (**अपोहामि**) दूर करता हूँ मैं (**इन्द्राग्न्योः**) वायु और विद्युद्रूप अग्नि की (**उज्जितिम्**) विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को (**अनूज्जेषम्**) अनुक्रम से प्राप्त होऊँ और मैं (**वाजस्य**) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के (**प्रसवेन**) ऐश्वर्य के अर्थ उत्पादन से वायु और बिजुली की विद्या के जाननेवाले (**माम्**) अपने आपको नित्य (**प्रोहामि**) अच्छी प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूँ और मुझ से जो अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (**इन्द्राग्नी**) वायु और विद्युत् अग्नि हैं—वह (**यः**) जो मूर्ख मनुष्य (**अस्मान्**) हम विद्वान् लोगों से (**द्वेष्टि**) अप्रीति से वर्त्तता है (**च**) और (**यम्**) जिस मूर्ख से (**वयम्**) हम विद्वान् लोग (**द्विष्मः**) अप्रीति से वर्त्तते हैं (**तम्**) उस वैर करनेवाले मूढ़ को (**अपनुदताम्**) दूर करते हैं तथा मैं भी (**एनम्**) इसे (**वाजस्य**) विज्ञान के (**प्रसवेन**) प्रकाश से (**अपोहामि**) अच्छी अच्छी शिक्षा देकर शुद्ध करता हूँ ॥१५॥

**भावार्थ**—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अग्नि और जल के मेल से क्रियाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्रता के विनाश और शत्रुओं के पराजय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मूर्ख मनुष्यों को विद्वान् करके अनेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं। इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी योग्य है। पूर्व मन्त्र में जो न्याय प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है ॥१५॥

वसुभ्यस्त्वेति मन्त्रस्य ऋषिः स एव। पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । व्यन्तु वय इत्यारभ्याऽन्तपर्य्यन्तस्याग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*यज्ञ से क्या क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा सञ्जानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥**

**पदार्थ**—हम लोग (**वसुभ्यः**) अग्नि आदि आठ वसुओं से (**त्वा**) उस यज्ञ को तथा (**रुद्रेभ्यः**) पूर्वोक्त एकादश रुद्रों से (**त्वा**) पूर्वोक्त यज्ञ को और (**आदित्येभ्यः**) बारह महीनों से (**त्वा**) उस क्रियासमूह को नित्य उत्तम तर्कों से जानें और यज्ञ में युक्त (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य का प्रकाश और भूमि (**सञ्जानाथाम्**) जो उनसे शिल्पविद्या उत्पन्न होती है उनके सिद्ध करनेवाले हों और (**मित्रावरुणौ**) जो सब जीवों का बाहिर का प्राण और जीवों के शरीर में रहनेवाला उदानवायु है वे (**वृष्ट्या**) शुद्ध जल की वर्षा से (**त्वा**) जो संसार सूर्य्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उसकी (**अवताम्**) रक्षा करते हैं (**वयः**) जैसे पक्षी अपने अपने ठिकानों को रचते और (**व्यन्तु**) प्राप्त होते हैं वैसे उन द्रव्यों से (**रिहाणाः**) पूजन करनेवाले हम लोग (**त्वा**) उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति (**पृषतीः**) अन्तरिक्ष में स्थिर और (**वशा**) शोभित (**भूत्वा**) होकर (**मरुताम्**) पवनों के संग से (**दिवम्**) सूर्य्य के प्रकाश को (**गच्छ**) प्राप्त होती है वह (**ततः**) वहाँ से (**नः**) हम लोगों के सुख के लिये (**वृष्टिम्**) वर्षा को (**आवह**) अच्छे प्रकार वर्षाती है उस वर्षा का जल (**पृषती**) नाड़ी और नदियों को प्राप्त होता है। जिस कारण यह अग्नि (**चक्षुष्पाः**) नेत्रों की रक्षा करनेवाला (**असि**) है इससे (**मे**) हमारे (**चक्षुः**) नेत्रों के बाहिरले भीतरले विज्ञान की (**पाहि**) रक्षा करता है ॥१६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं वह वायु के साथ मेघमण्डल में जाकर सूर्य्य से खिंचे हुए जल को शुद्ध करती है फिर वहाँ से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है। वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फल को जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे। जो यह अग्नि सूर्य्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टिव्यवहार की पालना होती है। ये जो वसु आदि देव कहाते हैं इनसे विद्या से उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों का नित्य निवारण करना चाहिये, यही सबका पूजन अर्थात् सत्कार है। जो पूर्व मन्त्र में कहा था उसका इससे विशेषता करके प्रकाश किया है ॥१६॥

*य परिधिमित्यस्य ऋषिर्देवलः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥*

*उक्त अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—*

**यं परिधिं पर्य्यधत्थाऽअग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः। तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) सर्वत्र व्यापक ईश्वर! आप (**देवपणिभिः**) दिव्य गुण वाले विद्वानों की स्तुतियों से (**गुह्यमानः**) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए (**यम्**) उन गुणों के अनुकूल (**जोषम्**) प्रीति से सेवन के योग्य (**परिधिम्**) प्रभुता को (**पर्य्यधत्थाः**) निरन्तर धारण करते हैं (**तम्**) आपकी उसको (**इत्**) ही (**एषः**) मैं (**अनुभरामि**) अपने हृदय में धारण करता हूँ तथा मैं (**त्वत्**) आप से (**मा अपचेतयातै**) कभी प्रतिकूल न होऊं और (**अग्ने**) हे जगदीश्वर! आपकी सृष्टि में जो मैंने (**प्रियम्**) प्रीति बढ़ाने और (**पाथः**) शरीर की रक्षा करनेवाला अन्न (**अपीतम्**) पाया है उससे भी कभी (**मा अपचेतयातै**) प्रतिकूल न होऊं ॥१॥ हे जगदीश्वर! (**ते**) आपकी सृष्टि में (**एषः**) यह (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**देवपणिभिः**) दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से (**गुह्यमानः**) अच्छे प्रकार स्वीकार किया हुआ (**यम्**) जिस (**परिधिम्**) विद्यादि गुणों से धारण (**जोषम्**) और प्रीति करने योग्य कर्म को (**पर्य्यधत्थाः**) सब प्रकार से धारण करता है (**तमित्**) उसी को मैं (**अनुभरामि**) उसके पीछे स्वीकार करता हूँ और उससे कभी (**मा अपचेतयातै**) प्रतिकूल नहीं होता हूँ तथा मैंने जो (**अग्ने**) इस अग्नि के सम्बन्ध से (**प्रियम्**) प्रीति देने और (**पाथः**) शरीर की रक्षा करनेवाला अन्न (**अपीतम्**) ग्रहण किया है उसको मैं (**जोषम्**) अत्यन्त प्रीति के साथ नित्य (**अनुभरामि**) क्रम से पाता हूँ ॥२॥१७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पहिले अन्वय में अग्निशब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रति वस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण करनेवाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उसकी सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये। जो मनुष्य उसकी आज्ञा नित्य पालते हैं वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश दाह और वेग आदि गुण वाला मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उससे भी मनुष्यों को क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम उत्तम व्यवहार सिद्ध करने चाहिये जिससे कि उत्तम उत्तम सुख सिद्ध होवें। जो पूर्व मन्त्र में वृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है उसका इस मन्त्र में व्यापकत्व प्रकाश किया है ॥१७॥

सꣳस्रवेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*वह यज्ञ कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥१८**

**पदार्थ**—हे (**बृहन्तः**) वृद्धि को प्राप्त होने (**प्रस्तरेष्ठाः**) उत्तम योग विद्यारूपी आसन में स्थित होनेवाले (**परिधेयाः**) सब प्रकार से धारणावती बुद्धियुक्त (**च**) और (**इमाम्**) इस प्रत्यक्ष (**वाचम्**) चार वेदों की वाणी का उपदेश करनेवाले (**देवाः**) विद्वानो! तुम (**इषा**) अपने ज्ञान से (**संस्रवभागाः**) घृतादि पदार्थों के होम में छोड़नेवाले (**स्थ**) होओ तथा (**स्वाहा**) अच्छे अच्छे वचनों से (**वाट्**) प्राप्त होने और सुख बढ़ानेवाली क्रिया को प्राप्त होकर (**अस्मिन्**) प्रत्यक्ष (**बर्हिषि**) ज्ञान और कर्मकाण्ड में (**मादयध्वम्**) आनन्दित होओ वैसे ही औरों को भी आनन्दित करो। इस प्रकार उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में उक्त वेदवाणी की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने विचार से उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाली क्रिया को प्राप्त होकर (**बृहन्तः**) बढ़ने और (**प्रस्तरेष्ठाः**) उत्तम कामों में स्थित होनेवाले (**विश्वे**) सब (**देवाः**) उत्तम उत्तम पदार्थ (**परिधेयाः**) धारण करो वा औरों को धारण कराओ और उनकी सहायता से उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में सदा (**मादयध्वम्**) हर्षित होओ ॥१८॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्त्तमान हैं उन्हीं को बड़े बड़े सुख होते हैं। जो पूर्व मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अर्थ कहे हैं उनसे ऐसे ऐसे उपकार लेना चाहिये सो इस मन्त्र में कहा है ॥१८॥

**घृताचीस्थ इत्यस्य ऋषि स एव । अग्निवायू देवते । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चमः स्वर ॥**

*अब उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र मे प्रकाशित किया है—*

**घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳसुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् । यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—जो अग्नि और वायु ( **धुर्यौ** ) यज्ञ के मुख्य अङ्ग को प्राप्त करानेवाले ( **स्थ** ) और ( **सुम्ने** ) सुखरूप ( **स्थ** ) है तथा ( **घृताची** ) जल को प्राप्त करानेवाली क्रियाओं को करानेहारे ( **स्थ,** ) है और सब जगत् को ( **पातम्** ) पालते हैं वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम उत्तम क्रिया कुशलता मे युक्त ( **मा** ) मुझे यज्ञ करनेवालों को ( **सुम्ने** ) सुख मे ( **धत्तम्** ) स्थापन करते ( **हैं** ) जैसे यह ( **यज्ञ** ) जगदीश्वर ( **च** ) और ( **नम** ) नम्र होता ( **ते** ) तेरे लिये ( **शिवे** ) कल्याण मे ( **उपसंतिष्ठस्व** ) समीप स्थित होते हैं वे वैसे ही ( **मे** ) मेरे लिये भी स्थित होते हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनुष्ठान करके ( **सुम्ने** ) सुख मे स्थित होता हूँ वैसे तुम भी उस मे ( **सन्तिष्ठस्व** ) स्थित होओ ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! तुम ईश्वर आराधना करके जगत् के पालन के निमित्त सुख करने क्रियाकाण्ड के हेतु और उपर को तथा टेढ़ा वा सूधा जानेवाले अग्नि वायु के गुणो से कार्य्यों को सिद्ध करो । इस से तुम लोग सुखो मे अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझ को ही बार बार नमस्कार करो ॥ १९ ॥

**अग्नेऽदब्धायो इत्यस्य ऋषि स एव । अग्निसरस्वत्यौ देवते । भुरिग्ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो अगले मन्त्र मे प्रकाशित किया है*

**अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अदब्धायो** ) निर्विघ्न आयु देनेवाले ( **अग्ने** ) जगदीश्वर ! आप ( **अशीतमम्** ) चराचर संसार मे व्यापक यज्ञ को ( **दुरिष्ट्यै** ) दुष्ट अर्थात् वेदविरुद्ध यज्ञ से ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये ( **मा** ) मुझ ( **दिद्यो** ) अति दुःख से ( **पाहि** ) बचाइये तथा ( **प्रसित्यै** ) भारी भारी बन्धनो मे ( **पाहि** ) अलग रखिये ( **दुरद्मन्यै** ) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से ( **पाहि** ) बचाइये और ( **न** ) हमारे लिये ( **अविषम्** ) विष आदि दोषरहित ( **पितुम्** ) अन्नादि पदार्थ ( **कृणु** ) उत्पन्न कीजिये तथा ( **न** ) हम लोगो को ( **सुषदा** ) सुख से स्थिरता को देनेवाले घर मे ( **स्वाहा वाट** ) वेदोक्त वाक्यो से सिद्ध होनेवाली उत्तम क्रियाओ मे स्थिर ( **कृणु** ) कीजिये जिससे हम लोग ( **यशोभगिन्यै** ) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मो की सेवन करनेवाली ( **सरस्वत्यै** ) पदार्थों के प्रकाशित करने मे उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी के लिये ( **स्वाहा** ) धन्यवाद वा ( **संवेशपतये** ) अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोको मे प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करनेहारे जो ( **अग्नये** ) आप हैं उनके लिये ( **स्वाहा** ) धन्यवाद और ( **नम** ) नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् जगदीश्वर ! आपने जो यह ( **अदब्धायो** ) निर्विघ्न आयु का निमित्त ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि बनाया है वह भी ( **अशीतमम्** ) सर्वत्र व्यापक यज्ञ को ( **दुरिष्ट्यै** ) दुष्ट यज्ञ से ( **पाहि** ) रक्षा करता है तथा ( **मा** ) मुझ ( **दिद्यो** ) अति दुःखो से ( **पाहि** ) बचाता है ( **प्रसित्यै** ) बड़े बड़े दारिद्र्य के बन्धनो से ( **पाहि** ) बचाता है तथा ( **दुरद्मन्यै** ) दुष्ट भोजन करानेवाली क्रियाओं से ( **पाहि** ) बचाता है और ( **न** ) हमारे ( **पितुम्** ) अन्न आदि पदार्थ ( **अविषम्** ) विष आदि दोषरहित ( **कृणु** ) कर देता है यह ( **सुषदा** ) सुख मे स्थिति देनेवाले घर अथवा दूसरे जन्मो मे ( **स्वाहा वाट** ) वेदोक्त वाक्यो से सिद्ध होनेवाली क्रियाओं का हेतु है हम लोग उस ( **संवेशपतये** ) पृथिव्यादि लोको के पालनेवाले ( **अग्नये** ) भौतिक अग्नि को ग्रहण करके ( **स्वाहा** ) होम तथा उसके साथ ( **यशोभगिन्यै सरस्वत्यै** ) उक्त गुणवाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिये ( **स्वाहा** ) परमात्मा को धन्यवाद करते हैं ॥२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यो को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने, उत्तम जन्म देने उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देनेवाला जगदीश्वर है उसी का सत्कार सदा करना योग्य है तथा जो यह अपनी सृष्टि मे परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्य्यलोक और बिजुली रूप से प्रकाशित किया है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने मे संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है । जिसकी कीर्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त वेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थों से अच्छी अच्छी विद्या प्रकाशित होती है वे सब विद्वानो के स्वीकार करने योग्य है । इस मन्त्र मे ( नम ) और ( यज्ञ ) ये दोनो पद पूर्व मन्त्र से लिये है ॥ २० ॥

**वेदोऽसीत्यस्य वामदेव ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) शुभ गुणो के देनेहारे जगदीश्वर ! ( **त्वम्** ) आप ( **वेद** ) चराचर जगत् के जाननेवाले ( **असि** ) हैं सब जगत् को ( **वेद** ) जानते हैं तथा ( **येन** ) जिस विज्ञान वा वेद से ( **देवेभ्य** ) विद्वानों के लिये ( **वेद** ) पदार्थों के जाननेवाले ( **अभव** ) होते हैं ( **तेन** ) उस विज्ञान के प्रकाश से आप ( **मह्यम्** ) मेरे लिये जो कि मैं विशेष ज्ञान की इच्छा कर रहा हूँ ( **वेद** ) विज्ञान देनेवाले ( **भूया** ) हूजिये । हे ( **गातुविद** ) स्तुति के जाननेवाले ( **देवा** ) विद्वानो ! जिस वेद से मनुष्य सब विद्याओ को जानते हैं उससे तुम लोग ( **गातुम्** ) विशेष ज्ञान को ( **वित्त्वा** ) प्राप्त होकर ( **गातुम्** ) प्रशंसा करने योग्य वेद को ( **इत** ) प्राप्त हो । हे ( **मनसस्पते** ) विज्ञान से पालन करनेहारे ( **देव** ) सबजगत्प्रकाशक परमेश्वर आप ( **इमम्** ) प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य ( **यज्ञम्** ) क्रियाकाण्ड से सिद्ध होनेवाले यज्ञरूप संसार को ( **स्वाहा** ) क्रिया के अनुकूल ( **वाते** ) पवन के बीच ( **धा** ) स्थित कीजिये । हे विद्वानो ! उस विज्ञान मे विशेष ज्ञान देनेवाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना करो ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगो को जिस वेद जाननेवाले परमेश्वर ने वेदविद्या प्रकाशित की है उस की उपासना करके उसी वेदविद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित सम्पादन करना चाहिये क्योंकि वेदो के विज्ञान के बिना तथा उसमे जो जो कहे हुए काम है उनके किये बिना मनुष्यो को भी सुख नहीं हो सकता । तुम लोग वेदविद्या से जो सबका साक्षी ईश्वर देव है उसको सब जगह व्यापक मानके नित्य धर्म मे रहो ॥ २१ ॥

**सं बर्हिरित्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*यज्ञ मे जला हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष मे ठहर कर किसके साथ रहता है सो अगले मन्त्र मे प्रकाश किया है—*

**सं बर्हिरङ्क्ताꣳ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः । समिन्द्रो विश्वेदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! तुम ( **यत** ) जब हवन करने योग्य द्रव्य को ( **हविषा** ) होम करने योग्य ( **घृतेन** ) घी आदि सुगन्धयुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह ( **आदित्यै** ) बारह महीनो ( **वसुभि** ) अग्नि आदि आठो निवास के स्थान और ( **मरुद्भि** ) प्राण के अन्नों के साथ मिल के सुख को ( **समङ्क्ताम्** ) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा ( **इन्द्र** ) सूर्य्यलोक जो यज्ञ मे छोड़ा हुआ ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि ( **नगच्छतु** ) पहुँचाता है उसमे ( **सम** ) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए ( **विश्वेदेवेभि** ) अपनी किरणो से ( **दिव्यम** ) जो उस के प्रकाश मे ठहरने होनेवाला ( **नभ** ) जल को ( **समङ्क्ताम** ) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ।२२।

**भावार्थ**— जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि मे छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष मे वायु जल और सूर्य्य की किरणो के साथ मिल कर इधर उधर फैलकर आकाश मे ठहरनेवाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करते है । इसमे मनुष्यो को उत्तम सामग्री और उत्तम उत्तम साधनो से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २२ ॥

**कस्त्वेत्यस्य ऋषि स एव । प्रजापतिर्देवता । निचृद्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अग्नि मे किसलिये पदार्थ छोड़ा जाता है सो अगले मन्त्र मे प्रकाश किया है—*

**कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति । पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—( **क** ) कौन सुख चाहनेवाला यज्ञ का अनुष्ठाता पुरुष ( **त्वा** ) उस यज्ञ को ( **विमुञ्चति** ) छोड़ता है अर्थात् कोई यज्ञ को छोड़ता है ( **त्वा** ) उस को ( **स** ) यज्ञ का पालन करनेहारा परमेश्वर भी ( **विमुञ्चति** ) छोड़ देता है जो यज्ञ को करनेवाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ मे छोड़ता है (**त्वा**) उसको (**कस्मै**) किस प्रयोजन के लिये अग्नि के बीच मे ( **विमुञ्चति** ) छोड़ता है ( **तस्मै** ) जिससे सब सुख प्राप्त हो तथा ( **पोषाय** ) पुष्टि आदि गुण के लिये ( **त्वा** ) उस पदार्थ समूह को ( **विमुञ्चति** ) छोड़ता है । जो पदार्थ सब के उपकार के लिये यज्ञ के बीच मे नहीं नष्ट किया जाता वह ( **रक्षसाम** ) दुष्ट प्राणियो का ( **भाग** ) अंश (**असि**) होता है ॥ २३ ॥

**भावार्थ** —जो मनुष्य ईश्वर के कहे हुए करने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सब सुखो से हीन होकर और दरिद्र मनुष्य मे पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है । किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उसके लिये क्या होता है । वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है । फिर वह पूछता है कि ईश्वर उसको किसलिये छोड़ देता है । वह उत्तर देनेवाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये । जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखो से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है ॥ २३ ॥

**सं वर्चसेत्यस्य ऋषि स एव । त्वष्टा देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*उक्त यज्ञ से हम लोग किस किस पदार्थ को प्राप्त होते है सो अगले मन्त्र मे प्रकाशित किया है—*

**सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हम लोग पुरुषार्थी होकर ( **वर्चसा** ) जिस से सब पदार्थ प्रकाशित होते है उस वेद का पढ़ना वा ( **पयसा** ) जिससे पदार्थों को जानते है उस ज्ञान ( **मनसा** ) जिससे सब व्यवहार विचारे जाते हैं उस अन्तःकरण ( **शिवेन** ) सब सुख और (**तनूभि** ) जिन मे विपुल सुख प्राप्त होते है उन शरीरो के साथ (**राय** )

श्रेष्ठ विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को ( **समगस्महि** ) अच्छी प्रकार प्राप्त हों सो ( **सुदत्र** ) अच्छी प्रकार सुख देने और ( **त्वष्टा** ) दुःखों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों का सूक्ष्म करनेवाला ईश्वर कृपा करके हमारे लिये ( **राय** ) उक्त विद्या आदि पदार्थों को ( **संविदधातु** ) अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे ( **तन्वः** ) शरीर की ( **यत** ) जितनी ( **विलिष्टम** ) व्यवहारों की सिद्धि करने की परिपूर्णता है उसे ( **समनुमाष्टु** ) अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करे ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करनेवाले परमेश्वर की आज्ञा पालन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन विज्ञान शरीर का बल मन की शुद्धि कल्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति सदैव करनी चाहिये । इस सम्पूर्ण यज्ञ की धारणा वा उन्नति से सब सुखों को प्राप्त होके औरों को सुख प्राप्त करना चाहिये तथा सब व्यवहार और पदार्थों को नित्य शुद्ध करना चाहिये ॥२४॥

**दिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्य विष्णुर्देवता दिवीत्यारम्भ द्विष्म इत्यन्तस्य निचृदार्षी । तथाऽन्तरिक्षमित्यारम्भ द्विष्म पर्यन्तस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्यन्तस्य जगती छन्दो निषादः स्वरश्च ॥**

*वह यज्ञ तीनों लोकों में विस्तृत होकर कौन कौन सुख का साधन होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**दिवि विष्णुर्व्यक्रᳪस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रᳪस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रᳪस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥२५॥**

**पदार्थ**—( **जागतेन** ) सब लोकों के लिये सुख देने वाले ( **छन्दसा** ) आह्लादकारक जगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह ( **विष्णुः** ) अन्तरिक्ष में ठहरने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ ( **दिवि** ) सूर्य्य के प्रकाश में ( **व्यक्रᳪस्त** ) जाता है वह फिर ( **ततः** ) वहां से ( **निर्भक्तः** ) विभाग अर्थात् परमाणुरूप होके सब जगत् को तृप्त करता है ( **यः** ) जो विरोधी शत्रु ( **अस्मान्** ) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों से ( **द्वेष्टि** ) विरोध करता है ( **च** ) तथा ( **यम्** ) दण्ड देकर शिक्षा करने योग्य जिस दुष्ट प्राणी से ( **वयम्** ) हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले ( **द्विष्मः** ) अप्रीति करते हैं उसको उसी यज्ञ से दूर करते हैं । हम लोगों ने जो यह ( **विष्णुः** ) यज्ञ ( **त्रैष्टुभेन** ) तीन प्रकार के सुख करने और ( **छन्दसा** ) स्वतन्त्रता देने वाले त्रिष्टुप् छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह ( **अन्तरिक्षे** ) आकाश में ( **व्यक्रᳪस्त** ) पहुँचता है वह फिर ( **ततः** ) उस अन्तरिक्ष से ( **निर्भक्तः** ) अलग हो के वायु और वर्षा जल की शुद्धि से सब संसार को सुख पहुँचाता है ( **यः** ) जो दुःख देने वाले प्राणी ( **अस्मान्** ) सब के उपकार करने वाले हम लोगों को ( **द्वेष्टि** ) दुःख देता है ( **च** ) तथा ( **यम्** ) सब के अहित करने वाले दुष्ट को ( **वयम्** ) हम लोग सब के हित करनेवाले ( **द्विष्मः** ) पीड़ा देते हैं उस उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं । हम लोगों से जो ( **विष्णुः** ) यज्ञ ( **गायत्रेण** ) संसार की रक्षा सिद्ध करने और ( **छन्दसा** ) अति आनन्द करनेवाले गायत्री छन्द से निरन्तर किया जाता है । ( **पृथिव्याम्** ) विस्तारयुक्त इस पृथिवी में ( **व्यक्रᳪस्त** ) त्रिविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है ( **ततः** ) उस पृथिवी से ( **निर्भक्तः** ) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है ( **यः** ) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी ( **अस्मान्** ) हम लोग जो कि न्याय करने वाले हैं उन से ( **द्वेष्टि** ) वैर करता है ( **च** ) तथा ( **यम्** ) जिस शत्रु जन से ( **वयम्** ) हम लोग न्यायाधीश ( **द्विष्मः** ) वैर करते हैं उसका इस उक्त यज्ञ से नित्य निषेध करते हैं । हम लोग ( **अस्मात्** ) यज्ञ से शोधा हुआ प्रत्यक्ष ( **अन्नात्** ) जो भोजन करने योग्य अन्न है उससे ( **स्वः** ) सुखरूपी स्वर्ग को ( **अगन्म** ) प्राप्त हों तथा ( **अस्यै** ) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली ( **प्रतिष्ठायै** ) प्रतिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उसके लिये ( **ज्योतिषा** ) विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त ( **समभूम** ) अच्छी प्रकार हों ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो जो मनुष्य लोग सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं वे अलग अलग होकर सूर्य्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब सुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु अग्नि जल और पृथिवी आदि पदार्थ शिल्पविद्यासिद्ध कलायन्त्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य्यप्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुख से विहार करते हैं । जो पदार्थ सूर्य्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप होके अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहां से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं । मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार बार बार पुरुषार्थ से दोष मल और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना भुगवाना चाहिये तथा यज्ञ से शुद्ध वायु जल ओषधि और अन्न की शुद्धि के द्वारा आत्मा बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त होके विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये ॥ २५ ॥

**स्वयम्भूरित्यस्य ऋषिः स एव । ईश्वरो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में सत्य आदि से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है—*

**स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि । सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! आप विद्वान् वा ( **श्रेष्ठः** ) अत्यन्त प्रशंसनीय और ( **रश्मिः** ) प्रकाशमान वा ( **स्वयम्भूः** ) अपने आप होने वाले ( **असि** ) हैं तथा ( **वर्चोदाः** ) विद्या देने वाले ( **असि** ) हैं इसी से आप ( **मे** ) मुझे ( **वर्चः** ) विज्ञान और प्रकाश ( **देहि** ) दीजिये मैं ( **सूर्य्यस्य** ) जो आप चराचर जगत् के आत्मा हैं उनके ( **आवृतम्** ) निरन्तर सज्जन जन जिस में वर्त्तमान होते हैं उस उपदेश को ( **अन्वावर्ते** ) स्वीकार करके वर्त्तता हूं ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—परमेश्वर का कोई माता वा पिता नहीं है किन्तु वही सब का माता पिता है तथा उस से बढ़ कर कोई विज्ञानप्रकाशक विद्या देने वाला नहीं है । जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान रहना चाहिये वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिरूप और व्यवहार विद्या का हेतु है, जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिये ॥ २६ ॥

**अग्ने गृहपत इत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्याग्निर्देवता । पूर्वार्द्धे निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उत्तरार्द्धे गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासᳪ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतᳪ हिमाः सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **गृहपते** ) घर के पालन करने हारे ( **अग्ने** ) परमेश्वर और विद्वान् ( **त्वम्** ) आप ( **सुगृहपतिः** ) ब्रह्माण्ड शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करनेवाले ( **असि** ) हैं उस ( **गृहपतिना** ) उक्त गुणवाले ( **त्वया** ) आपके साथ ( **अहम्** ) मैं ( **सुगृहपतिः** ) अपने घर का उत्तमता से पालन करने हारा ( **भूयासम्** ) होऊँ । हे परमेश्वर ! विद्वन् वा ( **मया** ) जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करनेवाला ( **गृहपतिना** ) धर्मात्मा और पुरुषार्थी मनुष्य हूं । उस मुझ से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करनहारे ( **भूयाः** ) हूजिये । इसी प्रकार ( **नौ** ) जो हम स्त्री पुरुष घर के पति हैं सो हमारे ( **गार्हपत्यानि** ) अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं । वे ( **अस्थूरि** ) जैसे निरालस्यता हो वैसे सिद्ध ( **सन्तु** ) हों । इस प्रकार अपने वर्त्तमान में वर्त्तते हुए हम स्त्री वा पुरुष ( **सूर्य्यस्य** ) आप और विद्वान् के ( **आवृतम्** ) वर्त्तमान अर्थात् जिसमें अच्छी प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं उसमें ( **शतं हिमाः** ) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्त्तें ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । हम दोनों स्त्रीपुरुष पुरुषार्थी होकर जो इन सब पदार्थों की स्थिति के योग्य संसाररूपी घर का निरन्तर रक्षा करनेवाला जगदीश्वर और विद्वान् है उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से स्थिर सुख करनेवाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियता से सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥ ६ ॥

**अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब जो सत्याचरण से सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

**अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **व्रतपते** ) न्याययुक्त नियम कर्म के पालन करने हारे ( **अग्ने** ) सत्यस्वरूप परमेश्वर ! आपने जो कृपा करके ( **मे** ) मेरे लिये ( **व्रतम्** ) सत्यलक्षण आदि प्रसिद्ध नियमों से युक्त सत्याचरण व्रत को ( **अराधि** ) अच्छी प्रकार सिद्ध किया है ( **तत्** ) उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को ( **अशकम्** ) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊं ( **अचारिषम्** ) अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार कर सकूं वैसा मुझको कीजिये ( **यः** ) जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है ( **तदेवाहम्** ) उसी को भोगता हूँ अब भी जो मैं जैसा करनेवाला ( **अस्मि** ) हूँ वैसे कर्म के फल भोगने वाला ( **अस्मि** ) होता हूँ ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूँ वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूँ और भोगूंगा । सब प्राणी अपने कर्म से विरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो ॥ २८ ॥

**अग्नय इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुण वाले हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—*

**अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा । अपहताऽअसुरा रक्षाᳪसि वेदिषदः ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि ( **कव्यवाहनाय** ) विद्वानों को हित देने कर्मों की प्राप्ति कराने तथा ( **अग्नये** ) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाने वाले भौतिक अग्नि का ग्रहण करके सुख के लिये ( **स्वाहा** ) वेदवाणी से ( **पितृमते** ) जिसमें वसन्त आदि ऋतु पालन के हेतु होने से पितर संयुक्त होते हैं ( **सोमाय** ) जिससे ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं उस सोमलता को लेके ( **स्वाहा** ) अपने पदार्थों को धारण करनेवाले धर्म से युक्त विधान करके जो ( **वेदिषदः** ) इस पृथिवी में रमण करनेवाले ( **रक्षांसि** ) औरों को दुःखदायी स्वार्थीजन तथा ( **असुराः** ) दुष्ट स्वभाववाले मूर्ख हैं उनको ( **अपहताः** ) विनष्ट कर देना चाहिये ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—विद्वानों से युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उनके लिये उत्तम उत्तम कार्यों की प्राप्ति करनेवाला होता है मनुष्यों को यह यत्न नित्य करना चाहिये कि जिससे संसार के उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा दोषों की निवृत्ति हो जाय ॥ २९ ॥

**ये रूपाणीत्यस्य ऋषि स एव । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ।**

*उक्त असुर कैसे लक्षणों वाले होते हैं सो अगले मन्त्र मे प्रकाश किया है—*

**ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना॒ऽअसु॑रा॒ः सन्तः॑ स्व॒धया॒ चर॑न्ति । प॒रा॒पुरो॑ नि॒पुरो॒ ये भर॑न्त्य॒ग्निष्टाँल्लो॒कात् प्रणु॑दात्य॒स्मात् ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—( **ये** ) जो दुष्ट मनुष्य ( **रूपाणि** ) ज्ञान के अनुकूल अपने अन्त करणो मे विचारे हुए भावों को ( **प्रतिमुञ्चमाना** ) दूसरे के सामने छिपा कर विपरीत भावो के प्रकाश करने हारे ( **असुरा** ) धर्म को ढाँपते ( **सन्त** ) हैं ( **स्वधया** ) पृथिवी मे जहाँ तहाँ ( **चरन्ति** ) जाते आते हैं तथा जो ( **परापुर** ) ससार से उलटे अपने सुखकारी कामो को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने ( **निपुर** ) और दुष्ट स्वभावों को परिपूर्ण करनेवाले ( **सन्त** ) हैं अर्थात् जो अन्याय से औरो के पदार्थों को धारण करते हैं ( **तान्** ) उन दुष्टो को ( **अग्नि** ) जगदीश्वर ( **अस्मात्** ) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से ( **प्रणुदाति** ) दूर करे ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—जो दुष्ट मनुष्य अपने मन वचन और शरीर से झूठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियो को पीडा देकर अपने सुख के लिये औरो के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं ईश्वर उनको दु खयुक्त करता है और नीच योनियो मे जन्म देता है कि वे अपने पापो के फलो को भोग के फिर भी मनुष्य देह के योग्य होते हैं इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐसे दुष्ट मनुष्य वा पापो से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें ॥ ३० ॥

**अत्र पितर इत्यस्यर्षि स एव । पितरो देवता । बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*मनुष्य लोगों को धर्मात्मा ज्ञानी विद्वान् पुरुषों का कैसा सत्कार करना योग्य है सो अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अत्र॑ पितरो मादयध्वं यथाभा॒गमावृ॑षायध्वम् ।**
**अमी॑मदन्त पि॒तरो॑ यथाभा॒गमावृ॑षायिषत ॥ ३१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **पितर** ) उत्तम विद्या वा शिक्षाओं और विद्यादान से पालन करनेवाले विद्वान् लोगो ! ( **अत्र** ) हमारे सत्कारयुक्त व्यवहार अथवा स्थान मे ( **यथाभागम्** ) यथायोग्य पदार्थों के विभाग को ( **आवृषायध्वम्** ) अच्छी प्रकार जैसे कि आनन्द करनेवाले बैल अपनी घास को चरते हैं वैसे पाओ और ( **मादयध्वम्** ) आनन्दित भी हो तथा आप हम लोगो के जिस प्रकार ( **यथाभागम्** ) यथायोग्य अपनी अपनी बुद्धि के अनुकूल गुण विभाग को प्राप्त हो वैसे ( **आवृषायिषत** ) विद्या और धर्म की शिक्षा करनेवाले हो और ( **अमीमदन्त** ) सब को आनन्द दो ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य लोग माता और पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आये हुए देखकर उनकी सेवा करें । प्रार्थनापूर्वक वाक्य कहें कि हे पितरो ! आप लोगो का आना हमारे उत्तम भाग्य से होता है सो आओ और जो अपने व्यवहार मे यथायोग्य और भोग आसन आदि पदार्थों को हम देते हैं उनका स्वीकार करके सुख को प्राप्त हो तथा जो जो आपके प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हो उस उस की आज्ञा दीजिये क्योंकि सत्कार को प्राप्त होकर आप प्रश्नोत्तर विधान से हम लोगो को स्थूल और सूक्ष्म विद्या वा धर्म के उपदेश से यथावत् बुद्धियुक्त कीजिये । आप से बुद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे अच्छे कामो को करके तथा औरो से अच्छे काम कराके सब प्राणियों को सुख और विद्या की उन्नति नित्य करें ॥ ३१ ॥

**नमो व इत्यस्यर्षि स एव । पितरो देवता । मन्यवे पर्यन्तस्य ब्राह्मी बृहती । अग्रे निचृद् बृहती च छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और किस प्रयोजन के लिये किया जाता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**नमो॑ व पितरो॒ रसा॑य॒ नमो॑ व पितर॒ः शोषा॑य॒ नमो॑ व पितरो जी॒वाय॒ नमो॑ व पितर स्व॒धायै॒ नमो॑ व पितरो॒ घोरा॑य॒ नमो॑ व पितरो म॒न्यवे॒ नमो॑ व पितर॒ः पित॑रो॒ नमो॑ वो गृ॒हान्न॑ः पितरो द॒त्त स॒तो व॑ पितरो देष्मै॒तद्व॑ः पित॒रो वास॑ः ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **पितर** ) विद्या के आनन्द को देनेवाले विद्वान् लोगो ! ( **रसाय** ) विज्ञानरूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये ( **व** ) तुम को हमारा ( **नम** ) नमस्कार हो । हे ( **पितर** ) दु ख का विनाश और रक्षा करनेवाले विद्वानो ! ( **शोषाय** ) दु ख और शत्रुओ की निवृत्ति के लिये ( **व** ) तुमको हमारा ( **नम** ) नमस्कार हो । हे ( **पितर** ) धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान करानेवाले विद्वानो ! ( **जीवाय** ) जिससे प्राण का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये ( **व** ) तुम को हमारा ( **नम** ) शील धारण विदित हो । हे ( **पितर** ) विद्या अन्न आदि भोगो की शिक्षा करने हारे विद्वानो ! ( **स्वधायै** ) अन्न, पृथिवी राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये ( **व** ) तुम को हमारा ( **नम** ) नम्रीभाव विदित हो । हे ( **पितर** ) पाप और आपत्काल के निवारक विद्वान् लोगो ! ( **घोराय** ) दु खसमूह की निवृत्ति के लिये ( **व** ) तुम को हमारा ( **नम** ) क्रोध का छोडना विदित हो । हे ( **पितर** ) श्रेष्ठो के पालन करने हारे विद्वानो ! ( **मन्यवे** ) दुष्टाचरण करनेवाले दुष्ट जीवो मे क्रोध करने के लिये ( **व** ) तुम को हमारा ( **नम** ) सत्कार विदित हो । हे ( **पितर** ) ज्ञानी विद्वानो ! ( **व** ) तुम को विद्या के लिये ( **नम** ) हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा विदित हो । हे ( **पितर** ) प्रीति के साथ रक्षा करनेवाले विद्वानो ! ( **व** ) तुम्हारे सत्कार होने के लिये हमारा ( **नम** ) सत्कार करना तुम को विदित हो । आप लोग ( **न** ) हमारे ( **गृहान्** ) घरो मे नित्य आओ और आके रहो । हे ( **पितर** ) विद्या देनेवाले विद्वानो ! ( **न** ) हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य ( **दत्त** ) देते रहो । हे पिता माता आदि विद्वान् पुरुषो ! हम लोग ( **व** ) तुम्हारे लिये जो जो ( **सत** ) विद्यमान पदार्थ हैं वे नित्य ( **देष्म** ) देवें । हे ( **पितर** ) सेवा करने योग्य पितृ लोगो ! हमारे दिये ( **वास** ) इन वस्त्रादि को ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे अनेक बार ( **नम** ) यह पद अनेक शुभगुण और सत्कार प्रकाश करने के लिये धरा है । जैसे वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद् हेमन्त और शिशिर ये छ ऋतु रस शोष, जीव अन्न कठिनता और क्रोध के उत्पन्न करनेवाले होते हैं वैसे ही पितर भी अनेक विद्याओ के उपदेश से मनुष्यो को निरन्तर सुख देते है । इससे मनुष्यो को चाहिये कि उक्त पितरो को उत्तम उत्तम पदार्थों से सन्तुष्ट करके उनसे विद्या के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें ।

**आधत्त इत्यस्य ऋषि स एव । पितरो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*उक्त पितरों को क्या क्या करना चाहिये सो अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**आध॑त्त पितरो॒ गर्भं॑ कुमा॒रं पुष्क॑रस्रजम् । यथे॒ह पुरु॑षोऽस॑त् ॥ ३३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **पितर** ) विद्यादान से रक्षा करनेवाले विद्वान् पुरुषो ! आप ( **यथा** ) जैसे यह ब्रह्मचारी ( **इह** ) इस ससार वा हमारे कुल मे अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य ( **असत्** ) हो वैसे ( **गर्भम्** ) गर्भ के समान ( **पुष्करस्रजम्** ) विद्या ग्रहण के लिये फूलों की माला धारण किये हुए ( **कुमारम्** ) ब्रह्मचारी को ( **आधत्त** ) अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियो को चाहिये कि विद्यार्थी कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें । जैसे क्रम क्रम से गर्भ के बीच देह बढता है वैसे अध्यापक लोगो को चाहिये कि अच्छी अच्छी शिक्षा से ब्रह्मचारी कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या मे वृद्धियुक्त करें तथा ( **उनका** ) पालन करें वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषार्थयुक्त होकर सदा सुखी हो यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ३३ ॥

**ऊर्जमित्यस्यर्षि स एव । आपो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ।**

*उक्त पितर कौन कौन पदार्थों से सत्कार करने योग्य हैं सो अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**ऊर्जं॒ वह॑न्तीर॒मृतं॑ घृ॒तं पय॑ः की॒लालं॑ परि॒स्रुत॑म् ।**
**स्व॒धा स्थ॑ त॒र्पय॑त मे पि॒तॄन् ॥ ३४ ॥**

**पदार्थ**—हे पुत्रादिको ! तुम ( **मे** ) मेरे ( **पितॄन्** ) पूर्वोक्त गुण वाले पितरो को ( **ऊर्जम्** ) अनेक प्रकार के उत्तम उत्तम रस ( **वहन्ती** ) सुख प्राप्त करनेवाले स्वादिष्ट जल ( **अमृतम्** ) सब रोगो को दूर करनेवाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ ( **पय** ) दूध ( **घृतम्** ) घी ( **कीलालम्** ) उत्तम उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न तथा ( **परिस्रुतम्** ) रस से चूते हुए पके फलो को देके ( **तर्पयत** ) तृप्त करो । इस प्रकार तुम उनकी सेवन से विद्या को प्राप्त होकर ( **स्वधा** ) परधन का त्याग करके अपने धन के सेवन करने वाले ( **स्थ** ) होओ ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यो को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देनेवाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं । जैसे कि उन्होने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगो को भी वे सब काल मे सत्कार करने योग्य है जिससे हम लोगो के बीच मे विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हो ॥ ३४ ॥

ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय मे जो जो वेद आदि यज्ञ के साधनो का बनाना, यज्ञ का फल गमन का साधन सामग्री का धारण अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, सुखो का भोग वेद का प्रकाश पुरुषार्थ का सन्धान युद्ध मे शत्रुओ का जीतना शत्रुओ का निवारण द्वेष का त्याग अग्नि आदि पदार्थों को सवारियो मे युक्त करना पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना ईश्वर मे प्रीति, अच्छे अच्छे गुणो का विस्तार और सब की उन्नति करना वेद शब्द के अर्थ का वर्णन वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुरुषार्थ का ग्रहण उत्तम उत्तम पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ मे होम किये हुए पदार्थों का तीनो लोक मे जाना आना, स्वयम्भू शब्द का वर्णन गृहस्थो का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि मे होम, दुष्टो का निवारण और जिस जिस का सेवन करना कहा है उन उन का सेवन मनुष्यो को प्रीति के साथ करना अवश्य है । इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥ ३४ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्याय ॥

卐

# ॥ अथ तृतीयोऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्याङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब तीसरे अध्याय के पहिले मन्त्र मे भौतिक अग्नि का किस किस काम मे उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है—*

## समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥१॥

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! तुम ( **समिधा** ) जिन इन्धनो से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकडी घी आदिको से ( **अग्निम्** ) भौतिक अग्नि को ( **बोधयत** ) उद्दीपन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे ( **अतिथिम्** ) अतिथि को अर्थात् जिसके आने जाने वा निवास का कोई दिन नियत नही है उस संन्यासी का सेवन करते हैं वैसे अग्नि का ( **दुवस्यत** ) सेवन करो और ( **अस्मिन्** ) इस अग्नि मे ( **हव्या** ) सुगन्ध कस्तूरी केसर आदि मिष्ट गुड शक्कर आदि पुष्ट घी दूध आदि रोग का नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुडूची आदि ओषधि इन चार प्रकार के साकल्य को ( **आजुहोतन** ) अच्छे प्रकार हवन करो ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन अन्न जल वस्त्र और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते है वैसे ही विद्वान् लोगो को यज्ञ वेदी कलायन्त्र और यानो मे स्थापन कर यथायोग्य इन्धन घी जलादि मे अग्नि को प्रज्वलित करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानो की रचना नित्य करनी चाहिये ॥ १ ॥

**सुसमिद्धायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२॥

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! तुम ( **सुसमिद्धाय** ) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप ( **शोचिषे** ) शुद्ध किये हुए दोषो का निवारण करने वा ( **जातवेदसे** ) सब पदार्थों मे विद्यमान ( **अग्नये** ) रूप दाह प्रकाश छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि मे ( **तीव्रम्** ) सब दोषो के निवारण करने मे तीक्ष्ण स्वभाव वाले ( **घृतम्** ) घी मिष्ट आदि पदार्थो को ( **जुहोतन** ) अच्छे प्रकार गेरो ॥ २ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को इस प्रज्वलित अग्नि मे जल दोषो को दूर करने वा शुद्ध किये हुए पदार्थो का गेर कर इष्ट सुखो को सिद्ध करना चाहिये ॥ २ ॥

**तं त्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*मनुष्यो को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥३॥

**पदार्थ**—हम लोग जो ( **अङ्गिरः** ) पदार्थो को प्राप्त कराने वा ( **यविष्ठ्य** ) पदार्थो के भेद करने मे अति बलवान् ( **बृहत्** ) बडे तेज से युक्त अग्नि ( **शोच** ) प्रकाश करता है ( **त्वा** ) उसको ( **समिद्भिः** ) काष्ठादि वा ( **घृतेन** ) घी आदि से ( **वर्द्धयामसि** ) बढाते है ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जो सब गुणो मे बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकडी घी आदि साधनो से सेवन करके निरन्तर वृद्धियुक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

**उप त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर वह अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र मे कहा है—*

## उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥४॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **हर्यत** ) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य ( **अग्ने** ) प्रसिद्ध अग्नि ( **मम** ) यज्ञ करने वाले मेरे ( **समिधः** ) लकडी घी आदि पदार्थों को ( **जुषस्व** ) सेवन करता है जिस प्रकार ( **त्वा** ) उस अग्नि को घी आदि पदार्थ ( **यन्तु** ) प्राप्त हों वैसे तुम ( **हविष्मतीः** ) श्रेष्ठ हवियुक्त ( **घृताचीः** ) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन सञ्चित करो ॥४॥

**भावार्थ**—मनुष्य लोग जब इस अग्नि मे काष्ठ घी आदि पदार्थों की आहुति छोडते है तब वह उनको अति सूक्ष्म करके वायु के साथ देशान्तर को प्राप्त कराके दुर्गन्धादि दोषो के निवारण से सब प्राणियो को सुख देता है ऐसा सब मनुष्यो को जानना चाहिये ॥ ४ ॥

**भूर्भुवः स्वरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निवायुसूर्य्या देवताः । दैवी बृहती छन्दः । द्यौरिवेत्यस्य निचृद् बृहती छन्दः । उभयत्र मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर उस अग्नि का किस लिए उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
## तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥५॥

**पदार्थ**—मैं ( **अन्नाद्याय** ) भक्षण योग्य अन्न के लिये ( **भूम्ना** ) विभु अर्थात् ऐश्वर्य्य से ( **द्यौरिव** ) आकाश मे सूर्य्य के समान ( **वरिम्णा** ) अच्छे अच्छे गुणो से ( **पृथिवीव** ) विस्तृत भूमि के तुल्य ( **ते** ) प्रत्यक्ष वा ( **तस्याः** ) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाशयुक्त लोक मे रहने वाली ( **देवयजनि** ) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहां यज्ञ करते है वा ( **पृथिवि** ) भूमि के ( **पृष्ठे** ) पृष्ठ के ऊपर ( **भूः** ) भूमि ( **भुवः** ) अन्तरिक्ष ( **स्वः** ) दिव अर्थात् प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक इनके अन्तर्गत रहने तथा ( **अन्नादम्** ) यव आदि सब अन्नो को भक्षण करने वाले ( **अग्निम्** ) प्रसिद्ध अग्नि को ( **आदधे** ) स्थापन करता हूँ ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे दो उपमालङ्कार हैं । हे मनुष्य लोगो ! तुम ईश्वर से तीन लोको के उपकार करने वा अपनी व्याप्ति मे सूर्य प्रकाश के समान तथा उत्तम उत्तम गुणो से पृथिवी के समान अपने अपने लोको मे निकट रहने वाले रचे हुए अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यत्न के साथ उपयोग करो ॥ ५ ॥

**आयमित्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है इस विषय को अगले मन्त्र मे प्रकाशित किया है—*

## आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥६॥

**पदार्थ**—( **अयम्** ) यह प्रत्यक्ष ( **गौः** ) गोलरूपी पृथिवी ( **पितरम्** ) पालन करने वाले ( **स्वः** ) सूर्यलोक के ( **पुरः** ) आगे आगे वा ( **मातरम्** ) अपनी योनिरूप जलो के साथ सहवर्त्तमान ( **प्रयन्** ) अच्छी प्रकार चलती हुई ( **पृश्निः** ) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश मे ( **आक्रमीत्** ) चारो तरफ घूमती है ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जानना चाहिये कि जिससे यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुई अन्तरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जलो के सहित आकर्षणरूपी गुणो से सबकी रक्षा करने वाले सूर्य के चारो तरफ क्षण क्षण घूमती है इसी से दिन रात्रि शुक्ल वा कृष्ण पक्ष ऋतु और अयन आदि काल विभाग क्रम से सम्भव होते हैं ॥ ६ ॥

**अन्तरित्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥७॥

**पदार्थ**—जो ( **अस्य** ) इस अग्नि की ( **प्राणात्** ) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच मे ऊपर जाने वाले वायु से ( **अपानती** ) नीचे को जाने वाले वायु को उत्पन्न करती हुई ( **रोचना** ) दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी बिजुली ( **अन्तः** ) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य मे ( **चरति** ) चलती है वह ( **महिषः** ) अपने गुणो से बडा अग्नि ( **दिवम्** ) सूर्यलोक को ( **व्यख्यत्** ) प्रकट करता है ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जानना चाहिये कि जो विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यो के अन्तःकरण मे रहने वाली जो अग्नि की कान्ति है वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण अपान, अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है ॥ ७ ॥

**त्रिंशद्धामेत्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।**

*फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## त्रिꣳशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥८॥

**पदार्थ**—मनुष्यो को जो अग्नि ( **द्युभिः** ) प्रकाश आदि गुणो से ( **प्रतिवस्तोः** ) प्रतिदिन ( **त्रिंशत्** ) अन्तरिक्ष आदित्य और अग्नि को छोड के पृथिवी आदि जो तीस ( **धाम** ) स्थान है उनको ( **विराजति** ) प्रकाशित करता है उस ( **पतङ्गाय** ) चलन चलाने आदि गुणो से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये ( **प्रतिवस्तोः** ) प्रतिदिन विद्वानो को ( **अह** ) अच्छे प्रकार ( **वाक्** ) वाणी ( **धीयते** ) अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर मे रहने वाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है उसके गुणो के प्रकाश के लिये विद्वानो को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये ॥ ८ ॥

**अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निसूर्यौ देवते । पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*अग्नि और सूर्य्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ।**
**अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।**
**ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥९॥**

**पदार्थ**—( **अग्नि** ) परमेश्वर ( **स्वाहा** ) सत्य कथन करनेवाली वाणी का ( **ज्योति** ) जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करके सब मनुष्य के लिये विद्या को देता है इसी प्रकार ( **अग्नि** ) जो प्रसिद्ध अग्नि ( **ज्योति** ) शिल्पविद्या साधनो के प्रकाश का देता है ( **सूर्य** ) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर ( **ज्योति** ) सबके आत्माओ मे प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओ का उपदेश करता है कि ( **स्वाहा** ) मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो वैसे ही बोले । तथा जो ( **सूर्य** ) अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक ( **ज्योति** ) मूर्तिमान् द्रव्यो का प्रकाश करता है ( **अग्नि** ) जो सब विद्याओ का प्रकाश करनेवाला परमेश्वर मनुष्यो के लिये ( **वर्च्च** ) सब विद्याओ के अधिकरण चारो वेदो को प्रकट करता है । तथा जो ( **ज्योति** ) बिजुलीरूप से शरीर वा ब्रह्माण्ड मे रहने वाला अग्नि ( **वर्च्च** ) विद्या और वृष्टि का हेतु है ( **सूर्य** ) जो सब विद्याओ का प्रकाश करनेवाला जगदीश्वर सब मनुष्यो के लिये ( **स्वाहा** ) वेदवाणी से ( **वर्च्च** ) सकल विद्याओ का प्रकाश और ( **ज्योति** ) बिजुली सूर्य प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो ( **सूर्य** ) सूर्यलोक भी ( **वर्च्च** ) शरीर और आत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो ( **सूर्य** ) प्राणवायु ( **वर्च्च** ) सकल विद्या के प्रकाश करनेवाले ज्ञान को बढ़ाता है और ( **ज्योति** ) प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थों को अपने रचे हुए पदार्थों मे अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है वही परमात्मा सब मनुष्यो का उपास्यदेव और भौतिक अग्नि कार्य्यसिद्धि का साधन है ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मन्त्र मे ग्रहण किया है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य कारण से अग्नि आदि सब जगत् उत्पन्न करके प्रकाशित किया है उनमे से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओ का प्रकाश करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्या का प्रकाश करते हैं ॥९॥

**सजूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते । पूर्वार्द्धस्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*भौतिक अग्नि और सूर्य ये दोनों किस की सत्ता से वर्त्तमान हैं*
*इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा ।**
**सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥१०॥**

**पदार्थ**—( **अग्नि** ) जो भौतिक अग्नि ( **देवेन** ) सब जगत् का ज्ञान देने वा ( **सवित्रा** ) सब जगत् का उत्पन्न करनेवाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के साथ ( **सजू** ) तुल्य वर्त्तमान ( **जुषाण** ) सेवन करता वा ( **इन्द्रवत्या** ) बहुत बिजुली से युक्त ( **रात्र्या** ) अन्धकार रूप रात्रि के साथ ( **स्वाहा** ) वाणी को सेवन करता हुआ ( **वेतु** ) सब पदार्थों मे व्याप्त होता है इसी प्रकार ( **सूर्य** ) जो सूर्यलोक ( **देवेन** ) सब को प्रकाश करनेवाले वा ( **सवित्रा** ) सब के अन्तर्यामी परमेश्वर के उत्पन्न वा धारण किये हुए जगत् के साथ ( **सजू** ) तुल्य वर्त्तमान ( **जुषाण** ) सेवन करता वा ( **इन्द्रवत्या** ) सूर्यप्रकाश से युक्त ( **उषसा** ) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के साथ ( **स्वाहा** ) अग्नि मे होम की हुई आहुतियो को ( **जुषाण** ) सेवन करता हुआ व्याप्त होकर हवन किये हुए पदार्थों को ( **वेतु** ) देशान्तरो मे पहुँचाता है उसी से सब व्यवहार सिद्ध करें ॥१०॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की सत्ता से अपने अपने रूप का धारण करता हुआ दीपक आदि रूप से रात्रि के व्यवहारो को सिद्ध करता है । इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों के प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्धि करनेहारा है, इनको जानो ॥१०॥

**उपेत्यस्य गोतम ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है—*

**उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरेऽअस्मे च शृण्वते ॥११॥**

**पदार्थ**—( **अध्वरम्** ) क्रियामय यज्ञ को ( **उपप्रयन्त** ) अच्छे प्रकार जानते हुए हम लोग ( **अस्मे** ) जो हम लोगो के ( **आरे** ) दूर वा ( **च** ) निकट मे ( **शृण्वते** ) यथार्थ सत्यासत्य को सुननेवाले ( **अग्नये** ) विज्ञानस्वरूप अन्तर्यामी जगदीश्वर है इसीके लिये ( **मन्त्रम** ) ज्ञान को प्राप्त करानेवाले मन्त्रों को ( **वोचेम** ) नित्य उच्चारण वा विचार करें ॥११॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को वेदमन्त्रो के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके जो ईश्वर भीतर बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारो को सुनता वा जानता हुआ वर्तमान है इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये । जब मनुष्य परमात्मा को जानता है तब समीपस्थ और जब नहीं जानता तब दूरस्थ है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥११॥

**अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है—*

**अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् ।**
**अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—( **अयम्** ) जो यह कार्य कारण से प्रत्यक्ष ( **ककुत** ) सब से बड़ा ( **मूर्द्धा** ) सब के ऊपर विराजमान ( **अग्नि** ) जगदीश्वर ( **दिव** ) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक और ( **पृथिव्या** ) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोको का ( **पति** ) पालन करता हुआ ( **अपाम** ) प्राणो के ( **रेतांसि** ) वीर्यों को ( **जिन्वति** ) रचना को जानता है उसीको पूज्य मानो ॥१॥ ( **अयम** ) यह अग्नि ( **ककुत** ) सब पदार्थों से बड़ा ( **दिव** ) प्रकाशमान पदार्थों के ( **मूर्द्धा** ) ऊपर विराजमान ( **पृथिव्या** ) प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोको के ( **पति** ) पालन का हेतु होकर ( **अपाम्** ) जलो के ( **रेतांसि** ) वीर्यों को ( **जिन्वति** ) प्राप्त करता है ॥२॥१२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । जगदीश्वर प्रकाश वा अप्रकाश रूप दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोको को रच कर पालन करके प्राणो मे बल को धारण करता है तथा भौतिक अग्नि पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर बिजुली जाठर आदि रूप से प्राण वा जलो के वीर्यों को उत्पन्न करता है ॥१२॥

**उभा वामिन्द्राग्नी इत्यस्य भरद्वाज ऋषि । इन्द्राग्नी देवते । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अगले मन्त्र मे भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है—*

**उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधसः सह मादयध्यै ।**
**उभा दातारविषाꣳ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥**

**पदार्थ**—मै जो ( **उभा** ) दो ( **दातारौ** ) सुख देने के हेतु ( **इन्द्राग्नी** ) वायु और अग्नि है ( **वाम्** ) उनका ( **आहुवध्य** ) गुण जानने के लिये ( **हुवे** ) ग्रहण करता हूँ ( **राधस** ) उत्तम सुखयुक्त राज्यादि धनो के भोग के ( **सह** ) साथ ( **मादयध्यै** ) आनन्द के लिये ( **वाम्** ) उन ( **उभा** ) दोनो का ( **हुवे** ) ग्रहण करता हूँ तथा ( **इषाम्** ) सब का इष्ट ( **रयीणाम्** ) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा ( **वाजस्य** ) अत्यन्त उत्तम अन्न के ( **सातये** ) अच्छे प्रकार भोग करने के लिये ( **उभौ** ) उन दोनो का ( **हुवे** ) ग्रहण करता हूँ ॥१३॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणो को जान कर कार्यों मे सम्प्रयुक्त करके अपने अपने कार्यों को सिद्ध करते है वे सब भूगोल के राज्य आदि धनो को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं इनसे भिन्न मनुष्य नहीं ॥१३॥

**अय त इत्यस्य देववातभरतावृषी । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र मे ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—*

**अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।**
**तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) जगदीश्वर ! ( **ते** ) आपकी सृष्टि मे जो ( **ऋत्वियः** ) ऋतु ऋतु मे प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से ( **जात** ) प्रसिद्ध हुआ ( **अरोचथा** ) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाश वाले लोको की ( **आरोह** ) उन्नति को सब प्रकार से बढ़ाता है और जो ( **न** ) हमारे ( **रयिम** ) राज्य आदि धन को बढ़ाता है ( **तम्** ) उस अग्नि को ( **जानन्** ) जानते हुए आप उससे ( **न** ) हमारे ( **रयिम** ) सब भूगोल के राज्य आदि से सिद्ध हुए धन को ( **वर्द्धय** ) वृद्धियुक्त कीजिये ॥१४॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जो सब काल मे यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्य्यों की सिद्धिरूप कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग करके सब कार्य्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥१४॥

**अयमिहेत्यस्य वामदेव ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः ।**
**यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१५॥**

**पदार्थ**—( **अप्नवान** ) विद्या सन्तान अर्थात् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देने वाले ( **भृगव** ) यज्ञविद्या के जाननेवाले विद्वान् लोग ( **इह** ) इस संसार मे ( **वनेषु** ) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य ( **अध्वरेषु** ) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञो मे ( **विशेविशे** ) प्रजा के प्रति ( **विभ्वम्** ) व्याप्त स्वभाव वा ( **चित्रम** ) आश्चर्यगुणवाले ( **यम्** ) जिस ईश्वर और अग्नि को ( **विरुरुचु** ) विशेष करके प्रकाशित करते हैं ( **अयम्** ) वही ( **धातृभि** ) यज्ञक्रिया के धारण करनेवाले विद्वान् लोगो को ( **ईड्य** ) खोज करने योग्य ( **प्रथमः** ) यज्ञक्रिया का आदि साधन ( **होता** ) यज्ञ का ग्रहण करनेवाला ( **यजिष्ठ** ) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है, उसका ( **इह** ) इस संसार में ( **धायि** ) धारण करते हैं ॥१५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥१५॥

**अस्य प्रत्नामित्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१६॥

**पदार्थ**—( **अह्रयः** ) सब विद्याओं को व्याप्त करानेवाले विद्वान् लोग ( **अस्य** ) इस भौतिक अग्नि की ( **सहस्रसाम्** ) असंख्यात कार्यों को देने वा ( **ऋषिम्** ) वेद से सिद्धि के प्राप्ति का हेतु ( **प्रत्नाम्** ) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान ( **द्युतम्** ) कारण में रहनेवाली दीप्ति को जानकर ( **शुक्रम्** ) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करनेवाले ( **पयः** ) जल को ( **अनु दुदुह्रे** ) अच्छे प्रकार पूर्ण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूर्ण करते हैं ॥१६॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥१६॥

**तनूपा इत्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चोदा-ऽअग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥१७॥

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) जगदीश्वर ! ( **यत** ) जिस कारण आप ( **तनूपाः** ) सब मूर्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करनेवाले ( **असि** ) हैं इससे आप ( **मे** ) मेरे ( **तन्वम्** ) शरीर की ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये। हे ( **अग्ने** ) परमेश्वर ! आप ( **आयुर्दाः** ) सब की आयु के देनेवाले ( **असि** ) हैं वैसे ( **मे** ) मेरे लिये ( **आयुः** ) पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन ( **देहि** ) दीजिये हे ( **अग्ने** ) सर्वविद्यामय ईश्वर ! जैसे आप ( **वर्च्चोदाः** ) सब मनुष्यों को विज्ञान देनेवाले ( **असि** ) हैं वैसे ( **मे** ) मेरे लिये शारीरिक और आत्मिक गुण शक्ति पूर्वक ( **वर्च्चः** ) पूर्ण विद्या को ( **देहि** ) दीजिये। हे ( **अग्ने** ) सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले परमेश्वर ! ( **मे** ) मेरे ( **तन्वा** ) शरीर में ( **यत्** ) जितना ( **ऊनम्** ) बुद्धि बल और शौर्य आदि गुण कम है ( **तत्** ) उतना अङ्ग ( **मे** ) मेरा ( **आपृण** ) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये ॥१॥ ( **अग्ने** ) यह भौतिक अग्नि ( **यत्** ) जिस ( **तनूपाः** ) पदार्थों की रक्षा का हेतु ( **असि** ) है वैसे जाठराग्नि रूप से ( **मे** ) मेरे ( **तन्वम्** ) शरीर की ( **पाहि** ) रक्षा करता है ( **अग्ने** ) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि ( **आयुर्दाः** ) सब के जीवन का हेतु ( **असि** ) है वैसे ( **मे** ) मेरे लिये भी ( **आयुः** ) जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को ( **देहि** ) देता है ( **अग्ने** ) यह अग्नि जैसे ( **वर्च्चोदाः** ) विज्ञानप्राप्ति का हेतु ( **असि** ) है वैसे ( **मे** ) मेरे लिये भी ( **वर्च्चः** ) विद्याप्राप्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को ( **देहि** ) देता है तथा ( **अग्ने** ) जो कामना के पूर्ण करने में हेतु भौतिक अग्नि है वह ( **यत्** ) जितना ( **मे** ) मेरे ( **तन्वा** ) शरीर में बुद्धि आदि सामर्थ्य ( **ऊनम्** ) कम है ( **तत्** ) उतना गुण ( **आपृण** ) पूर्ण करता है ॥१७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुर्निमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों की पूर्णता रची है इसी से सब पदार्थ अपने अपने स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पालन का मुख्य साधन है ॥१७॥

**इन्धानास्त्वेत्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है—*

## इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्त सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽ अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

**पदार्थ**—हे ( **चित्रावसो** ) आश्चर्यरूप धन वाले ( **अग्ने** ) परमेश्वर ! ( **अदब्धासः** ) दम्भ अहङ्कार और हिंसादि दोषरहित ( **वयस्वन्तः** ) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त ( **सहस्वन्तः** ) अत्यन्त सहन स्वभावसहित ( **अदाभ्यम्** ) मानने योग्य ( **सपत्नदम्भनम्** ) शत्रुओं के नाश करने ( **वयस्कृतम्** ) अवस्था की पूर्ति करने ( **सहस्कृतम्** ) सहन करने कराने तथा ( **द्युमन्तम्** ) अनन्त प्रकाश वाले ( **त्वा** ) आपका ( **इन्धानाः** ) उपदेश और श्रवण कराते हुए हम लोग ( **शतम्** ) सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक ( **हिमाः** ) हेमन्त ऋतुयुक्त ( **समिधीमहि** ) अच्छे प्रकार प्रकाश करें वा जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो ( **ते** ) आपकी कृपा से सब दुःखों से ( **पारम्** ) पार होकर ( **स्वस्ति** ) सुख को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊँ ॥१॥ ( **अदब्धासः** ) दम्भ अहङ्कार हिंसादि दोषरहित ( **वयस्वन्तः** ) पूर्ण अवस्थायुक्त ( **सहस्वन्तः** ) अत्यन्त सहन करनेवाले ( **त्वा** ) उस ( **अदाभ्यम्** ) उपयोग करने योग्य ( **सपत्नदम्भनम्** ) आग्नेयादि शस्त्रास्त्रविद्या में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने ( **वयस्कृतम्** ) अवस्था को बढ़ाने ( **सहस्कृतम्** ) सहन का हेतु ( **द्युमन्तम्** ) अच्छे प्रकार प्रकाशयुक्त ( **अग्ने** ) कार्यों को प्राप्त करानेवाले भौतिक अग्नि को ( **इन्धानाः** ) प्रज्वलित करते हुए हम लोग ( **शतम्** ) सौ वर्ष पर्यन्त ( **हिमाः** ) हेमन्तऋतुयुक्त ( **समिधीमहि** ) जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह ( **चित्रावसो** ) आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है ( **ते** ) उसके प्रकाश से दारिद्र्य आदि दुःखों से ( **पारम्** ) पार होकर ( **स्वस्ति** ) अत्यन्त सुख को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊँ ॥१८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ, ईश्वर की उपासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥१८॥

**सन्त्वमित्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर भी परमेश्वर और अग्नि कैसे हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—*

## स त्वमग्ने सूर्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन । स प्रियेण धाम्ना समहमायुषा स वर्च्चसा स प्रजया सꣳ रायस्पोषेण ग्मिषीय ॥१९॥

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) जगदीश्वर ! जो आप ( **सूर्यस्य** ) सब के अन्तर्गत प्राण वा ( **ऋषीणाम्** ) वेदमन्त्रों के अर्थों को देखनेवाले विद्वानों की जिस ( **सस्तुतेन** ) स्तुति करने ( **सप्रियेण** ) प्रसन्नता से मानने ( **सवर्च्चसा** ) विद्याध्ययन और प्रकाश करने ( **धाम्ना** ) स्थान ( **समायुषा** ) उत्तम जीवन ( **सप्रजया** ) सन्तान वा राज्य और ( **रायस्पोषेण** ) उत्तम धनों के भोग पुष्टि के साथ ( **समगथाः** ) प्राप्त होते हैं। उसी के साथ ( **अहम्** ) मैं भी सब सुखों को ( **सङ्ग्मिषीय** ) प्राप्त होऊँ ॥१॥ जो ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सबों के ( **समगथाः** ) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता है उस सिद्ध किये हुए अग्नि के साथ ( **अहम्** ) मैं व्यवहार के सब सुखों को ( **सङ्ग्मिषीय** ) प्राप्त होऊँ ॥१९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन अपना पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के सम्प्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

**अन्धस्थेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । आपो देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में यज्ञ से शुद्ध किये ओषधि आदि पदार्थों का उपदेश किया है—*

## अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज्ज स्थोर्ज्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

**पदार्थ**—जो ( **अन्धः** ) बलवान् वृक्ष वा ओषधि आदि पदार्थ ( **स्थ** ) हैं ( **वः** ) उनके प्रकाश में मैं ( **अन्धः** ) वायु को पुष्ट करने वाले अन्नों को ( **भक्षीय** ) ग्रहण करूँ। जो ( **महः** ) बड़े बड़े वायु आदि वा विद्या आदि पदार्थ ( **स्थ** ) हैं ( **वः** ) उनसे मैं ( **महः** ) बड़ी बड़ी क्रियाओं की सिद्धि करनेवाले कर्मों का ( **भक्षीय** ) सेवन करूँ जो ( **ऊर्ज** ) जल दूध घी मिष्ट वा फल आदि रसवाले पदार्थ ( **स्थ** ) हैं ( **वः** ) उनमें मैं ( **ऊर्जम्** ) पराक्रमयुक्त रस का ( **भक्षीय** ) भोग करूँ और जो ( **रायस्पोष** ) अनेक गुणयुक्त पदार्थ ( **स्थ** ) हैं ( **वः** ) उन चक्रवर्तिराज्य और श्री आदि पदार्थों के मैं ( **रायस्पोषम्** ) उत्तम उत्तम धनों के भोग का ( **भक्षीय** ) सेवन करूँ ॥२०॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को जगत् के पदार्थों से गुण ज्ञान पूर्वक क्रिया की कुशलता से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों का भोग करना चाहिये ॥२०॥

**रेवतीरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब विद्वानों के सत्कार के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये । इहैव स्त मापगात ॥ २१ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **रेवती** ) विद्या धन इन्द्रिय पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त श्रेष्ठ नीति ( **स्त** ) हैं वे ( **अस्मिन्** ) इस ( **योनौ** ) जन्मस्थल ( **अस्मिन् गोष्ठे** ) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान ( **अस्मिँल्लोके** ) संसार वा ( **अस्मिन् क्षये** ) अपने रचे हुए घरों में ( **रमध्वम्** ) रमण करें ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग ( **इहैव** ) इन्हीं में प्रवृत्त होओ अर्थात् ( **मापगात** ) इनसे दूर कभी मत जाओ ॥२१॥

**भावार्थ**—जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हैं वहाँ प्रजा विद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों में युक्त होती है। इससे मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से पृथक् न होवें ॥२१॥

**संहितेत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री । उपत्वेत्युत्तरस्य गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से बिजुली के कर्मों का उपदेश किया है—*

## संहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन । उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्तऽएमसि ॥ २२॥

**पदार्थ**—( **नमः** ) अन्न को ( **भरन्तः** ) धारण करते हुए हम लोग ( **धिया** ) अपनी बुद्धि वा कर्म से जो ( **अग्ने** ) अग्नि बिजुली रूप से सब पदार्थों के ( **संहिता** )

साथ ( ऊर्जा ) वेग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त ( विश्वरूपी ) सब पदार्थों में रूप गुणयुक्त ( गौपत्येन ) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करनेवाले जीव के साथ वर्त्तमान है ( मा ) मुझ में ( आविश ) प्रवेश करता है ( त्वा ) उस ( दोषावस्तः ) रात्रि को अपने तेज से दूर करनेवाले ( अग्ने ) विद्युद्रूप अग्नि को ( दिवेदिवे ) ज्ञान के प्रकाश होने के लिये प्रतिदिन ( उपमसि ) समीप प्राप्त करते हैं ॥२२॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सब जगह मूर्त्तिमान् द्रव्यों में बिजुलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विविध गुण वाला अग्नि रचा है उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये ॥ २२ ॥

राजन्तमित्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्द्धमानꣳ स्वे दमे ॥२३॥**

पदार्थ—( नमः ) अन्न से सत्कारपूर्वक ( भरन्तः ) धारण करते हुए हम लोग ( धिया ) बुद्धि वा कर्म से ( अध्वराणाम् ) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ वा ( गोपाम् ) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने ( राजन्तम् ) प्रकाशमान ( ऋतस्य ) अनादि सत्यस्वरूप कारण के ( दीदिविम् ) व्यवहार को करने वा ( स्वे ) अपने ( दमे ) मोक्षरूप स्थान में ( वर्धमानम् ) वृद्धि को प्राप्त होनेवाले परमात्मा को ( उपैमसि ) नित्य प्राप्त होते हैं ॥१॥ जिस परमात्मा ने ( अध्वराणाम् ) शिल्पविद्यासाध्य यज्ञ वा ( गोपाम् ) पश्वादि की रक्षा करने वाला ( राजन्तम् ) प्रकाशमान ( ऋतस्य ) जल के ( दीदिविम् ) व्यवहार को प्रकाश करता वा ( स्वे ) अपने ( दमे ) शान्तस्वरूप में ( वर्धमानम् ) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उसको ( नमः ) सत्क्रिया से ( भरन्तः ) धारण करते हुए हम लोग ( धिया ) बुद्धि और कर्म से ( उपैमसि ) नित्य प्राप्त होते हैं ॥२॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः धिया, उप आ इमसि, इन छः पदों की अनुवृत्ति पूर्वमन्त्र से जाननी चाहिये । परमेश्वर आदि रहित सत्यकारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥२३॥

स न इत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*अब अगले मन्त्र में ईश्वर ही का उपदेश किया है—*

**स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर ! जो आप कृपा करके जैसे ( सूनवे ) अपने पुत्र के लिये ( पितेव ) पिता अच्छे-अच्छे गुणों को सिखलाता है वैसे ( नः ) हमारे लिये ( सूपायनः ) श्रेष्ठ ज्ञान के देनेवाले ( भव ) हैं वैसे ( सः ) सो आप ( नः ) हम लोगों को ( स्वस्तये ) सुख के लिये निरन्तर ( सचस्व ) संयुक्त कीजिये ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे सब के पालन करनेवाले परमेश्वर ! जैसे कृपा करनेवाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ श्रेष्ठ शिक्षा देकर विद्या धर्म अच्छे अच्छे स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ श्रेष्ठ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये ॥ २४ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।**
**वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥२५॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सब की रक्षा करनेवाले जगदीश्वर ! जो ( त्वम् ) आप ( वसुश्रवाः ) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने ( वसुः ) सब प्राणी जिसमें वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में बसने हारे और ( अग्निः ) विज्ञानप्रकाशयुक्त ( नक्षि ) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहनेवाले हैं सो आप ( नः ) हम लोगों के ( अन्तमः ) अन्तर्यामी वा जीवन के हेतु ( त्राता ) रक्षा करनेवाले ( वरूथ्यः ) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव में होने ( शिवः ) तथा मङ्गलमय मङ्गल करनेवाले ( भव ) हूजिये और ( उत ) भी ( नः ) हम लोगों के लिये ( द्युमत्तमम् ) उत्तम प्रकाशों से युक्त ( रयिम् ) विद्याचक्रवर्त्ति आदि धनों को ( अच्छ दाः ) अच्छे प्रकार दीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुखों के साधनों का देनेवाला कोई नहीं है क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥ २५ ॥

तन्त्वेत्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः । स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽअघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥**

पदार्थ—हे ( शोचिष्ठ ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप ( दीदिवः ) स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देनेवाले जगदीश्वर ! हम लोग वा ( नः ) अपने ( सखिभ्यः ) मित्रों के ( सुम्नाय ) सुख के लिये ( तं त्वा ) आप से ( ईमहे ) याचना करते हैं तथा जो आप ( नः ) हम को ( बोधि ) अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं ( सः ) सो आप ( नः ) हमारे ( हवम् ) सुनने सुनाने योग्य स्तुतिसमूह यश को ( श्रुधि ) कृपा करके श्रवण कीजिये और ( नः ) हम को ( समस्मात् ) सब प्रकार ( अघायतः ) पापाचरणों से अर्थात् दूसरे को पीडा करने रूप पापों से ( उरुष्य ) अलग रखिये ॥२६॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही आचरण भी करना कि जिससे प्रार्थित किया हुआ परमेश्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को अपनी सत्ता से पापों से पृथक् कर देता है वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से बचकर धर्म के करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

इड एहीत्यस्य श्रुतबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर उसकी प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥२७॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से ( इडे ) यह पृथिवी मुझ को राज्य करने के लिये ( एहि ) अवश्य प्राप्त हो तथा ( अदिते ) सब सुखों को प्राप्त करने वाली नाशरहित राजनीति ( एहि ) प्राप्त हो । इसी प्रकार हे मघवन् अपना पृथिवी और राजनीति के द्वारा ( काम्याः ) इष्ट इष्ट पदार्थ ( एत ) प्राप्त हों तथा ( मयि ) मेरे बीच में ( वः ) उन पदार्थों की ( कामधरणम् ) स्थिरता ( भूयात् ) यथावत् हो ।२७।

भावार्थ—मनुष्यों को उत्तम उत्तम पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उनकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ करना चाहिये । कोई मनुष्य अच्छी वा बुरी कामना के बिना क्षणभर भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता इससे सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़कर धर्मयुक्त व्यवहारों की जितनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिये ॥ २७ ॥

सोमानमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर उस जगदीश्वर की किसलिये प्रार्थना करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं यऽऔशिजः ॥२८॥**

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणस्पते ) सनातन वेदशास्त्र के पालन करनेवाले जगदीश्वर ! आप ( यः ) जो मैं ( औशिजः ) सब विद्याओं के प्रकाश करनेवाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य हूँ उस मुझ को ( कक्षीवन्तम् ) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त ( स्वरणम् ) सब विद्याओं का कहने और ( सोमानम् ) ओषधियों के रसों का निकालने तथा विद्या की सिद्धि करनेवाला ( कृणुहि ) कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । पुत्र दो प्रकार के होते हैं एक तो औरस अर्थात् जो अपने वीर्य से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये विद्वान् किया जाता है । हम सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि जिससे हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ानेवाले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः ।**
**स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥२९॥**

पदार्थ—( यः ) जो वेदशास्त्र का पालन करने ( रेवान् ) विद्या आदि अनन्त धनवान् ( अमीवहा ) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने ( वसुवित् ) सब वस्तुओं को यथावत् जानने ( पुष्टिवर्द्धनः ) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और ( तुरः ) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों को उत्तम-उत्तम कर्म वा गुणों के साथ ( सिषक्तु ) संयुक्त करे ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है । मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरुषार्थ भी करना चाहिये । जैसे विद्या आदि धन वाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुन कर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्या आदि धनवाला नहीं हो सकता, किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करनेवाला है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें । जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थविद्याओं को यथावत् जानें । जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है, वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावें । जैसे वह अच्छे-अच्छे कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है वैसे मनुष्य भी उत्तम-उत्तम कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम उत्तम गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥२९॥

मा न इत्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मा नः शꣳसोऽअररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।**
**रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥**

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणस्पते ) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से ( नः ) हमारी वेदविद्या ( मा, प्रणक् ) कभी नष्ट मत हो और जो ( अररुषः ) दान आदि धर्म रहित परधन ग्रहण करने वाले ( मर्त्यस्य ) मनुष्य की ( धूर्तिः ) हिंसा अर्थात् द्रोह है उससे ( नः ) हम लोगों की निरन्तर ( रक्ष ) रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सदा उत्तम उत्तम काम करना और बुरे बुरे काम छोड़ना तथा किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का सङ्ग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये ॥ ३० ॥

महि त्रीणामित्यस्य सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर भी उसकी प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥**

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणस्पते ) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से ( मित्रस्य ) बाहर वा भीतर रहनेवाला जो प्राणवायु तथा ( अर्यम्णः ) जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों का धारण करनेवाला सूर्य्यलोक और ( वरुणस्य ) जल ( त्रीणाम् ) इन तीनों के प्रकाश से ( नः ) हम लोगों के ( द्युक्षम् ) जिस में नीति का प्रकाश निवास करता है वा ( दुराधर्षम् ) अतिकष्ट से ग्रहण करने योग्य है ( महि ) बड़े वेदविद्या की ( अवः ) रक्षा ( अस्तु ) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से ( ब्रह्मणस्पते, नः ) इन दो पदों की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक रक्षा करके यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

नहि तेषामित्यस्य सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशꣳसः ॥ ३२ ॥**

पदार्थ—जो ईश्वर की उपासना करनेवाले मनुष्य हैं ( तेषाम् ) उनके ( अमा ) गृह ( अध्वसु ) मार्ग और ( वारणेषु ) चोर शत्रु डाकू व्याघ्र आदि के निवारण करनेवाले संग्रामों में ( चन ) भी ( अघशंसः ) पापरूप कर्मों का कथन करने वाला ( रिपुः ) शत्रु ( नहि ) नहीं स्थित होता और ( न ) न उनको क्लेश देने को समर्थ हो सकता उस ईश्वर और धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं ( ईशे ) समर्थ होता हूँ ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो धर्मात्मा वा सबके उपकार करने वाले मनुष्य हैं उनको भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु नहीं होता ॥ ३२ ॥

ते हीत्यस्य वारुणिः सत्यधृतिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*आदित्यों से क्या क्या कर्म है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥**

पदार्थ—जो ( अदितेः ) नाशरहित कारणरूपी शक्ति के ( पुत्रासः ) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण सूर्यलोक पवन और जल आदि पुत्र हैं ( ते ) वे ( हि ) ही ( मर्त्याय ) मनुष्यों के मरने वा ( जीवसे ) जीने के लिये ( अजस्रम् ) निरन्तर ( ज्योतिः ) तेज या प्रकाश को ( यच्छन्ति ) देते हैं ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो ये कारणरूपी समर्थ पदार्थों के उत्पन्न हुए प्राण सूर्यलोक वायु वा जल आदि पदार्थ हैं वे प्राणि अप्रकाश तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने के लिये निमित्त होते हैं ॥ ३३ ॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।**
**उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सब दुःख नाश करने वाले ईश्वर ! जो आप ( स्तरीः ) सुखों से आच्छादन करने वाले ( असि ) हैं और ( दाशुषे ) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिये ( कदाचन ) कभी ( इत ) ज्ञान का ( नु ) शीघ्र ( सश्चसि ) प्राप्त ( न ) नहीं करते तो उस काल में हे ( मघवन् ) विद्यादि धन वाले जगदीश्वर ! ( देवस्य ) कर्म फल का देने वाले ( ते ) आपके ( दानम् ) दिये हुए ( इत् ) ही ज्ञान का ( दाशुषे ) विद्यादि देने वाले के लिये ( भूयः ) फिर ( नु ) शीघ्र ( उपोपपृच्यते ) प्राप्त ( कदाचन ) कभी ( न ) नहीं होता ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर कर्म के फल को देने वाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

*उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।**
**धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥**

पदार्थ—हम लोग ( सवितुः ) सब जगत् के उत्पन्न करने वा ( देवस्य ) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो ( वरेण्यम् ) अति श्रेष्ठ ( भर्गः ) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला ( तेज ) स्वरूप है ( तत् ) उसको ( धीमहि ) धारण करें और ( यः ) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है वह अपनी करुणा करके ( नः ) हम लोगों की ( धियः ) बुद्धियों को उत्तम उत्तम गुण कर्म स्वभावों में ( प्रचोदयात् ) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें। किस प्रयोजन के लिये जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे, खोटे गुण और कर्मों से अलग करके अच्छे अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे इसलिये। और प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी हो वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

परि त इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**परि ते दूडभो रथोऽस्माँ२ऽअश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप ( येन ) जिस ज्ञान से ( दाशुषः ) विद्यादि दान करने वाले विद्वानों को ( विश्वतः ) सब ओर से ( रक्षसि ) रक्षा करते और जो ( ते ) आपका ( दूडभः ) दुःख से भी नहीं नष्ट होने योग्य ( रथः ) सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है वह ( अस्मान् ) आपकी आज्ञा के सेवन करने वाले हम लोगों को ( परि ) सब प्रकार ( अश्नोतु ) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर वा विज्ञानों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ नित्य करना चाहिये जिससे हम लोग अविद्या अधर्म आदि दोषों का त्याग करके उत्तम उत्तम विद्या धर्म आदि शुभगुणों को प्राप्त होके सदा सुखी होवें ॥ ३६ ॥

भूर्भुवरित्यस्य वामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*फिर उस जगदीश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।**
**नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥ ३७ ॥**

पदार्थ—हे ( नर्य ) नीतियुक्त मनुष्यों पर कृपा करनेवाले परमेश्वर ! आप कृपा करके ( मे ) मेरी ( प्रजाम् ) पुत्र आदि प्रजा की ( पाहि ) रक्षा कीजिये वा ( मे ) मेरे ( पशून् ) गौ घोड़ हाथी आदि पशुओं की ( पाहि ) रक्षा कीजिये। हे ( अथर्य ) संदेह रहित जगदीश्वर ! आप ( मे ) मेरे ( पितुम् ) अन्न की ( पाहि ) रक्षा कीजिये। हे ( शंस्य ) स्तुति करने योग्य ईश्वर ! आपकी कृपा से मैं ( भूर्भुवः स्वः ) जो प्रियस्वरूप प्राण बल का हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है उनके साथ युक्त होके ( प्रजाभिः ) अपने अनुकूल स्त्री पुत्र, विद्या धर्म मित्र भृत्य पशु आदि पदार्थों के साथ ( सुप्रजाः ) उत्तम विद्या धर्म युक्त प्रजा सहित वा ( वीरैः ) शौर्य धैर्य विद्या शत्रुओं के निवारण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ ( सुवीरः ) उत्तम शूरवीरयुक्त और ( पोषैः ) पुष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ ( सुपोषः ) उत्तम पुष्टि उत्पादन करनेवाला ( स्याम् ) नित्य होऊँ ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा के पालन का आश्रय लेकर उत्तम उत्तम नियमों से वा उत्तम प्रजा शूरता पुष्टि आदि कारणों से प्रजा पालन करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ ३७ ॥

आगन्मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—*

**आ गन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ।**
**अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आ यच्छस्व ॥ ३८ ॥**

पदार्थ—हे ( सम्राट् ) प्रकाशस्वरूप ( अग्ने ) जगदीश्वर ! आप ( अस्मभ्यम् ) उपासना करनेवाले हम लोगों के लिये ( द्युम्नम् ) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा ( सह ) उत्तम बल का ( अभ्यायच्छस्व ) सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो

इसलिये हम लोग ( **वसुवित्तमम्** ) पृथिवी आदि लोको के जानने वा ( **विश्ववेदसम्** ) सब सुखो के जाननेवाले आपको ( **अभ्यागमम** ) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥१॥ जो यह ( **सम्राट** ) प्रकाश होनेवाला ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि ( **अस्मभ्यम** ) यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले हम लोगो के लिये ( **द्युम्नम्** ) उत्तम उत्तम यश वा ( **सह** ) उत्तम उत्तम बल को ( **अभ्यायच्छस्व** ) सब प्रकार विस्तारयुक्त करता है उस ( **वसुवित्तमम्** ) पृथिवी आदि लोको को सूर्यरूप से प्रकाश करके प्राप्त कराने वा ( **विश्ववेदसम** ) सब सुखो को जनानेवाले अग्नि को हम लोग ( **अभ्यागमम** ) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥३८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यो को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणो को जानने वा उसके अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति यश और बल का विस्तार करना चाहिए ॥३८॥

**अयमग्निरित्यस्यासुरिऋषि । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—*

**अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः ।**
**अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ॥ ३९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **गृहपते** ) घर के पालन करनेवाले ( **अग्ने** ) परमेश्वर ! जो ( **अयम** ) यह ( **गृहपति** ) स्थान विशेषो के पालन हेतु ( **गार्हपत्य** ) घर के पालन करनेवालो के साथ सयुक्त ( **प्रजाया वसुवित्तम** ) प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त करानेवाले हैं सो आप जिस कारण ( **द्युम्नम्** ) सुख और प्रकाश से युक्त धन को ( **अभ्यायच्छस्व** ) अच्छी प्रकार दीजिये । तथा ( **सह** ) उत्तम बल पराक्रम ( **अभ्यायच्छस्व** ) अच्छी प्रकार दीजिये ॥ १ ॥ जिस कारण जो ( **गृहपति** ) उत्तम स्थानो के पालन का हेतु ( **प्रजाया** ) पुत्र मित्र स्त्री और भृत्य आदि प्रजा को ( **वसुवित्तम** ) द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा ( **गार्हपत्यः** ) गृहो के पालन करने वालो के साथ सयुक्त ( **अयम** ) यह ( **अग्ने** ) बिजुली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है इससे वह ( **गृहपते** ) घरो का पालन करनेवाला ( **अग्ने** ) अग्नि हम लोगो के लिये ( **अभिद्युम्नम** ) सब ओर से उत्तम उत्तम धन वा ( **सह** ) उत्तम उत्तम बलो को ( **अभ्यायच्छस्व** ) सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है ॥३९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा मे प्रवृत्त होके कार्य्य की सिद्धि के लिये इस अग्नि को सयुक्त करते है तब वह अग्नि अनेक प्रकार के धन और बलो का विस्तार युक्त करता है । क्योकि यह प्रजा मे पदार्थों की प्राप्ति के लिये अत्यन्त सिद्धि करने हारा है ॥३९॥

**अयमग्नि पुरीष्य इत्यस्यासुरिऋषि । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भौतिक अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अयमग्नि पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः ।**
**अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ॥ ४० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **पुरीष्य** ) कर्मों के पूर्ण करने मे अतिकुशल ( **अग्ने** ) उत्तम से उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वान् ! आप जो ( **अयम्** ) यह ( **पुरीष्य** ) सब सुखो के पूर्ण करने मे अत्युत्तम ( **रयिमान्** ) उत्तम उत्तम धनयुक्त ( **पुष्टिवर्द्धन** ) पुष्टि को बढ़ानेवाला ( **अग्नि** ) भौतिक अग्नि है उससे हम लोगो के लिये ( **अभिद्युम्नम** ) उत्तम उत्तम ज्ञान को सिद्ध करनेवाले धन वा ( **अभिसह** ) उत्तम उत्तम शरीर और आत्मा के बलो को ( **आयच्छस्व** ) सब प्रकार से विस्तारयुक्त कीजिये ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को परमेश्वर की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या का सम्पादन करके अनेक प्रकार के धन और बलो को विस्तारयुक्त करना चाहिये ॥४०॥

**गृहामेत्यस्यासुरिऋषि । वास्तुरग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है—*

**गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रतऽएमसि ।**
**ऊर्जं बिभ्रद्वः समनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥४१॥**

**पदार्थ**—हे ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्याओ को ग्रहण किये गृहाश्रमी तथा ( **ऊर्जम्** ) शौर्यादि पराक्रमो को ( **बिभ्रत** ) धारण किये और ( **गृहा** ) ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए मनुष्यो ! तुम गृहस्थाश्रम को यथावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से ( **मा बिभीत** ) मत डरो तथा ( **मा वेपध्वम्** ) मत कम्पो तथा पराक्रमो को धारण किये हुए हम लोग ( **गृहान्** ) गृहस्थाश्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को ( **एमसि** ) नित्य प्राप्त होते रहें और ( **व** ) तुम लोगो मे स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान ( **सुमना:** ) उत्तम ज्ञान ( **सुमेधा** ) उत्तम बुद्धि युक्त ( **मनसा** ) विज्ञान से ( **मोदमानः** ) हर्ष उत्साह युक्त ( **ऊर्जम्** ) अनेक प्रकार के बलो को ( **बिभ्रत** ) धारण करता हुआ मैं अत्यन्त सुखों को ( **एमि** ) निरन्तर प्राप्त होऊँ ॥४१॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन करके युवावस्था में स्वयवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव विद्या, रूप, बुद्धि और बल आदि गुणो को देखकर विवाह कर तथा शरीर आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न करके सब साधनों से अच्छे अच्छे व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नही करना चाहिये क्योकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमो का यह गृहस्थाश्रम मूल है इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के विना मनुष्यो की वा राज्यादि व्यवहारो की सिद्धि कभी नही होती ॥४१॥

**येषामित्यस्य शयुऋषि । वास्तुपतिरग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वह गृहस्थाश्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।**
**गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥**

**पदार्थ**—( **प्रवसन्** ) प्रवास करता हुआ अतिथि ( **येषाम्** ) जिन गृहस्थो का ( **अध्येति** ) स्मरण करता वा ( **येषु** ) जिन गृहस्थो मे ( **बहु** ) अधिक ( **सौमनस** ) प्रीतिभाव है उन ( **गृहान्** ) गृहस्थो का हम अतिथि लोग ( **उपह्वयामहे** ) नित्यप्रति प्रशसा करते हैं जो प्रीति रखनेवाले गृहस्थ लोग हैं ( **ते** ) वे ( **जानत** ) जानते हुए धार्मिक ( **न** ) हम अतिथि लोगो को ( **जानन्तु** ) यथावत् जानें ॥४२॥

**भावार्थ**—गृहस्थो को सब धार्मिक अतिथि लोगो के वा अतिथि लोगो को गृहस्थो के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं तथा उन विद्वानो के सङ्ग से परस्पर वार्तालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करनेवाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उनकी सेवा गृहस्थो को निरन्तर करनी चाहिये औरो की नहीं ॥४२॥

**उपहूता इत्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषि । वास्तुपतिर्देवता । भुरिग्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसे सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उपहूताऽइह गावऽउपहूताऽअजावयः । अथोऽअन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शयोः शयोः॥४३**

**पदार्थ**—( **इह** ) इस गृहस्थाश्रम वा ससार मे ( **व** ) तुम लोगो के ( **शान्त्यै** ) सुख ( **न** ) हम लोगो की ( **क्षेमाय** ) रक्षा के ( **गृहेषु** ) निवास करने योग्य स्थानो मे जो ( **गाव** ) दूध देनेवाली गौ आदि पशु ( **उपहूता** ) समीप प्राप्त किये वा ( **अजावय** ) भेड बकरी आदि पशु ( **उपहूता** ) समीप प्राप्त हुए ( **अथो** ) इसके अनन्तर ( **अन्नस्य** ) प्राण धारण करनेवाले ( **कीलाल** ) अन्न आदि पदार्थों का समूह ( **उपहूता** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मै गृहस्थ हूँ सो ( **शयो** ) सब सुखो के साधनो मे ( **शिवम्** ) कल्याण वा ( **शयो** ) सुख से ( **शग्मम्** ) उत्तम सुखो को ( **प्रपद्ये** ) प्राप्त होऊँ ॥४३॥

**भावार्थ**—गृहस्थो को योग्य है कि उपासना वा उसकी आज्ञा के पालने से गौ हाथी घोडे आदि पशु तथा खाने पीने योग्य स्वादु भक्ष्य पदार्थों का सग्रह कर अपनी वा औरो की रक्षा करके विज्ञान धर्म विद्या और पुरुषार्थ से इस लोक वा परलोक के सुखो को सिद्ध करें किसी भी पुरुष को आलस्य मे नहीं रहना चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ती राज्य आदि धनो को सग्रह कर उनकी अच्छे प्रकार रक्षा करके उत्तम सुखो को प्राप्त हो इससे अन्यथा मनुष्यों को न वर्त्तना चाहिये क्योकि अन्यथा वर्त्तने वालो को सुख कभी नही होता ॥४३॥

**प्रघासिन इत्यस्य प्रजापतिऋषि । मरुतो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*गृहस्थ मनुष्यों को क्या क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ॥४४॥**

**पदार्थ**—हम लोग ( **करम्भेण** ) अविद्यारूपी दुख होने से अलग होके ( **सजोषस** ) बराबर प्रीति के सेवन करने ( **रिशादस** ) दोष वा शत्रुओ को नष्ट करने ( **प्रघासिन** ) पके हुए पदार्थों के भोजन करनेवाले प्रतिथि लोग और ( **मरुत** ) अतिथि ( **च** ) और यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोगो को ( **हवामहे** ) सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहें ॥४४॥

**भावार्थ**—गृहस्थो को उचित है कि वैद्य शूरवीर और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यो को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा करके उनसे उत्तम उत्तम विद्या वा शिक्षाओ को निरन्तर ग्रहण करें ॥४४॥

**यद् ग्राम इत्यस्य प्रजापतिऋषि । मरुतो देवता । स्वराडनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर अगली मन्त्र मे गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है—*

**यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये ।**
**यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥४५॥**

**पदार्थ**—( **वयम्** ) कर्म के अनुष्ठान करनेवाले हम लोग ( **यद् ग्रामे** ) जो गृहस्थो ने सेवित ग्राम ( **यत् अरण्ये** ) वानप्रस्थो ने जिस वन की सेवा की हो ( **यत्सभायाम्** ) विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हो और ( **यत इन्द्रिये** ) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिको की सेवा करते हो उसमे स्थिर हो के जो ( **एन** ) पाप वा अधर्म ( **चकृम** ) करा वा करेंगे सब ( **अवयजामहे** ) दूर करते रहे तथा

जो जो उन उन उक्त स्थानो मे ( स्वाहा ) सत्यवाणी से पुण्य वा धर्माचरण (यजुम) करना योग्य है ( तत ) उस उस को ( यजामहे ) प्राप्त होते रहें ॥४५॥

भावार्थ—चारों आश्रमो मे रहनेवाले मनुष्यो को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग करके विद्वानो की सभा, विद्या तथा उत्तम उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

**मो षू ण इत्यस्यागस्त्य ऋषि । इन्द्रमारुतौ देवते । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## मो षू णऽइन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
## महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शूरवीर ! आप ( अत्र ) इस लोक म ( पृत्सु ) युद्धो में ( देवै ) विद्वानो के साथ ( न ) हम लोगो की ( सु ) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये तथा ( मो ) मत हनन कीजिये । हे ( शुष्मिन् ) पूर्ण बलयुक्त शूरवीर ! ( हि ) निश्चय करके ( चित ) जैसे ( ते ) आपकी ( मह ) बडी ( गी ) वेदप्रमाणयुक्त वाणी ( मीढुष ) विद्या आदि उत्तम गुणो के सींचने वा ( हविष्मत ) उत्तम उत्तम हवि अर्थात् पदार्थयुक्त (मरुत ) ऋतु ऋतु मे यज्ञ करनेवाले विद्वानो के (वन्दते) गुणो का प्रकाश करती है जैसे विद्वान् लोग आपके गुणो वा हम लोगो के अर्थ निरन्तर प्रकाश करके आनन्दित होते हैं वैसे जो ( अवया ) यज्ञ करनेवाला यजमान है वह आपकी आज्ञा से जिन ( यव्या ) उत्तम उत्तम यव आदि अन्नो को अग्नि मे होम करता है वे पदार्थ सब प्राणियो का सुख देनेवाले होते है ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को सग्रह करके युद्ध मे शत्रुओ को जीतकर चक्रवर्त्ति राज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बडे आनन्द को सेवन करते हैं तब उत्तम राज्य होता है ॥४६॥

**अक्रन्नित्यस्यागस्त्य ऋषि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ।**

*कौन कौन मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा ।
## देवेभ्य' कर्म कृत्वास्त प्रेत सचाभुव' ॥४७॥

पदार्थ—जो मनुष्य लोग ( मयोभुवा ) सत्यप्रिय मङ्गल के करानेवाली ( वाचा ) वेदवाणी वा अपनी वाणी के ( सह ) साथ ( सचाभुव ) परस्पर सङ्गी होकर ( कर्मकृत ) कर्मों को करते हुए ( कर्म ) अपने अभीष्ट कर्म को ( अक्रन् ) करते हैं वे ( देवेभ्य ) विद्वान् वा उत्तम उत्तम गुण सुखो के लिये ( कर्म ) करने योग्य कर्म का ( कृत्वा ) अनुष्ठान करके ( अस्तम् ) पूर्णसुखयुक्त घर का (प्रेत ) प्राप्त होते हैं ॥४७॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड कर पुरुषार्थ ही मे निरन्तर रहके मूर्खपन को छोड कर वेद विद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्त्तें और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें । जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वे ही अच्छे अच्छे सुखयुक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखो को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नही प्राप्त होते हैं ॥४७॥

**अवभृथेत्यस्यौर्णवाभ ऋषि । यज्ञो देवता । ब्राह्म्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले यजमान के कर्मों का उपदेश किया है—*

## अवभृथ निचुम्पुण निचेरु'सि निचुम्पुण' । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासि-
## षमव मर्त्यैर्मर्त्यकृत पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ ४८ ॥

पदार्थ—हे ( अवभृथ ) विद्या धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध ( निचुम्पुण ) धैर्य से शल्पविद्या को पढानेवाले विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं ( निचुम्पुण ) ज्ञान का प्राप्त कराने वा ( निचेरु ) निरन्तर विद्या का सग्रह करनेवाला ( देवै ) प्रकाशस्वरूप मन आदि इन्द्रियो से ( देवकृतम् ) किया वा ( मर्त्यै ) मरणधर्मवाले (मर्त्यकृतम्) शरीरों से किये हुये ( एन ) पापो को ( अव अयासिषम् ) दूर कर शुद्ध होता हूँ वैसे तू भी ( असि ) हो । हे ( देव ) जगदीश्वर ! आप हम लोगो की (पुरुराव्ण) बहुत दु ख देने वा ( रिष ) मारने योग्य शत्रु वा पाप से ( पाहि ) रक्षा कीजिये अर्थात् दूर कीजिये ॥४८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को उचित है कि पाप की निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना निरन्तर करके जो मन वाणी वा शरीर से पाप होते हैं उनसे दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके दु खरूप फल को जानकर फिर दूसरी बार उसको कभी न करें किन्तु सब काल मे शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें ॥४८॥

**पूर्णादर्वीत्यस्यौर्णवाभ ऋषि । शतक्रतुर्देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वरः ॥**

*यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ कैसा होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है —*

## पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
## वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज शतक्रतो ॥४९॥

पदार्थ—जो ( दर्वि ) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करनेवाली (पूर्णा) द्रव्यो से पूर्ण हुई आहुति (परापत) होम हुए पदार्थों के अशो को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश मे जाकर वृष्टि से ( सुपूर्णा ) पूर्ण हुई ( पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथिवी मे उत्तम जलरस को प्राप्त करती है उससे हे ( शतक्रतो ) असख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर ! आप की कृपा से हम यज्ञ कराने और करनेवाले विद्वान् होता और यजमान दोनो ( इषम् ) उत्तम उत्तम अन्नादि पदार्थ ( ऊर्जम् ) पराक्रमयुक्त वस्तुओ को (वस्नेव) वैश्यो के समान ( विक्रीणावहै ) दें वा ग्रहण करें ॥४९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जब मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि म हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि जल को शुद्ध करते हुए पृथिवी को आते हैं जिससे यव आदि ओषधि शुद्ध होकर सुख और पराक्रम के देने वाली होती हैं । जैसे कोई वैश्य लोग रुपया आदि को दे ले कर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को खरीदते वा बेचते हैं वैसे सब हम लोग भी अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोडकर वर्षा वा अनेक सुखों को खरीदते हैं खरीदकर फिर वृष्टि और सुखों के लिये अग्नि मे हवन करते हैं ॥४९॥

**देहि म इत्यस्यौर्णवाभ ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्द । गान्धार. स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे सब आश्रमों मे रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों का उपदेश किया है—*

## देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
## निहार च हरासि मे निहार निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

पदार्थ—हे मित्र ! तुम ( स्वाहा ) जैसे सत्यवाणी हृदय मे कहे वैसे ( मे ) मुझको यह वस्तु ( देहि ) दे वा मैं (ते) मुझ का यह वस्तु (ददामि) देऊँ वा देऊँगा तथा तू ( मे ) मेरी यह वस्तु ( निधेहि ) धारण कर मैं ( ते ) तुम्हारी यह वस्तु ( निदधे ) धारण करता हूँ और तू ( मे ) मुझ को ( निहारम् ) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को ( हरासि ) ले । मैं ( ते ) तुमको ( निहारम् ) पदार्थों का मोल ( निहराणि ) निश्चय करके देऊँ ( स्वाहा ) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें अन्यथा से व्यवहार सिद्ध नही होते हैं ॥५०॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहिये । जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु हमको देना मैं यह नही देता तथा दऊँगा ऐसा कहे तो वैसा ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरी यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ जब इच्छा करूँ तब तुम दे देना । इसी प्रकार म तुम्हारी यह वस्तु रख लेता हूँ जब तुम इच्छा करोगे तब देऊगा वा उसी समय म तुम्हारे पास आऊँगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहियें और ऐसे व्यवहारो के बिना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं होती और इन दोनों के बिना कोई मनुष्य सुखो को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥५०॥

**अक्षन्नित्यस्य गोतम ऋषि । इन्द्रो देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः ॥**

*उस यज्ञादि व्यवहार से क्या क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽअधूषत ।
## अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सभा के स्वामी ! जो ( ते ) आपके सम्बन्धी मनुष्य ( स्वभानव ) अपनी ही दीप्ति से प्रकाश होवे वा ( अव प्रिया' ) औरों को प्रसन्न करानेवाले ( विप्रा ) विद्वान् लोग ( नविष्ठया ) अत्यन्त नवीन ( मती ) बुद्धि से ( हि ) निश्चय करके परमात्मा की ( अस्तोषत ) स्तुति और ( अक्षन् ) उत्तम उत्तम अन्नादि पदार्थों का भक्षण करते हुए ( अमीमदन्त ) आनन्द को प्राप्त होते और उसी से वे शत्रु वा दु खो को ( अधूषत ) शीघ्र कम्पित करते हैं वैसे ही यज्ञ मे ( इन्द्र ) हे सभापते ! ( ते ) आपके सहाय से इस यज्ञ मे निपुण हों और तू ( हरी ) अपने बल और पराक्रम को हम लोगों के साथ ( योज ) संयुक्त कर ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन नवीन ज्ञान वा क्रिया की वृद्धि करते रहें । जैसे मनुष्य विद्वानो के सत्सङ्ग वा शास्त्रों के पढने से नवीन नवीन बुद्धि नवीन नवीन क्रिया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही सब मनुष्यो को अनुष्ठान करना चाहिये ॥५१॥

**सुसदृशमित्यस्य गोतम ऋषि । इन्द्रो देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## सुसदृश त्वा वय मघवन् वन्दिषीमहि ।
## प्र नून पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ऽअनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५२

पदार्थ—हे ( मघवन् ) उत्तम उत्तम विद्यादि धनयुक्त ( इन्द्र ) परमात्मन् ! नू ( वयम् ) हम लोग ( सुसंदृशम् ) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखनेवाले ( त्वा ) आपकी ( नूनम् ) निश्चय करके ( वन्दिषीमहि ) स्तुति करें तथा हम लोगो से ( स्तुत ) स्तुति किये हुए आप ( कामान् ) इच्छा किये हुए पदार्थों को ( यासि ) प्राप्त कराते हो और ( ते ) अपने ( हरी ) बल पराक्रमो को आप ( अनुप्रयोज ) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये ॥ १ ॥ ( वयम् ) हम लोग ( सुसंदृशम् ) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने वा (मघवन्) धन को प्राप्त करान तथा (पूर्णबन्धुर) सब जगत् के बन्धन के हेतु ( त्वा ) उस सूर्यलोक को ( नूनम् ) निश्चय करके ( वन्दिषीमहि ) स्तुति अर्थात् इसके गुण प्रकाश करके ( स्तुत ) स्तुति किया हुआ यह हम लोगो को ( कामान् ) उत्तम उत्तम व्यवहारो की सिद्धि करानेवाली कामनाओ को ( यासि ) प्राप्त करता है ( नु ) जैसे ( ते ) इस सूर्य के ( हरी ) धारण आकर्षण गुण जगत् मे युक्त होते हैं वैसे आप हम लोगो को विद्या की सिद्धि करने वाले गुणो को ( अनुप्रयोज ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार हैं । मनुष्यो को सब जगत् के हित करनेवाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और किसी की न करनी चाहिये क्यो कि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यो का प्रकाश करता है वैसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्तजनो के आत्माओ मे विज्ञान का उत्पन्न करने से सब सत्य व्यवहारो को प्रकाशित करता है । इससे ईश्वर को छोड़कर और किसी की उपासना कभी न करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

मनो न्वित्यस्य बन्धुर्ऋषि । मनो देवता । अतिपादनिचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*इसके आगे मन के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन । पितृणां च मन्मभिः ॥५३॥**

पदार्थ—हम लोग ( नाराशंसेन ) पुरुषो के अत्यन्त प्रशंसनीय ( स्तोमेन ) स्तुतियुक्त व्यवहार और ( पितृणाम ) पालना करनेवाले ऋतु वा ज्ञानवान् मनुष्यों के ( मन्मभि ) जिनसे सब गुण जाने जाते हैं उन गुणो के साथ ( मन ) संकल्प विकल्पात्मक चित्त को ( न्वाह्वामहे ) सब ओर से हटाके दृढ़ करते है ॥५३॥

भावार्थ—मनुष्यो को मनुष्यजन्म की सफलता के लिये विद्या आदि गुणो से युक्त मन को करना चाहिये । जैसे ऋतु अपने अपने गुणो को क्रम क्रम से प्रकाशित करते है तथा जैसे विद्वान् लोग क्रम क्रम से अनेक प्रकार की प्रत्यक्ष विद्याओ का साक्षात्कार करते है वैसे ही पुरुषार्थ करके सब मनुष्यो को निरन्तर विद्या और प्रकाश की प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

आ न एत्वित्यस्य बन्धुर्ऋषि । मनो देवता । विराड् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*फिर वह मन कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥५४॥**

पदार्थ—( न ) जो स्मरण करनेवाला चित्त ( ज्योक ) निरन्तर ( सूयम ) परमेश्वर सूर्यलोक वा प्राण को ( दृशे ) देखने वा ( क्रत्वे ) उत्तम विद्या वा उत्तम कर्मों की स्मृति वा ( जीवसे ) सौ वर्ष से अधिक जीने ( च ) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये है वह ( न ) हम लोगो को ( पुन ) वार वार, जन्म जन्म मे ( आ ) सब प्रकार से ( एतु ) प्राप्त हो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—मनुष्य उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि वा जन्म जन्म मे उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिससे मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम उत्तम धर्मों का सेवन कर सकें ।५४।

पुनर्न इत्यस्य बन्धुर्ऋषि । मनो देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातꣳसचेमहि ॥५५॥**

पदार्थ—हे ( पितर ) उत्पादक वा अन्न शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा करनेवाले पिता आदि लोग आपकी शिक्षा से यह ( दैव्य ) विद्वानो के बीच में उत्पन्न हुआ ( जन ) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारो का प्रकट करनेवाला विद्वान् पुरुष ( न ) हम लोगो के लिये ( पुन ) इस जन्म वा दूसरे जन्म मे ( मन ) धारणा करनेवाली बुद्धि को ( ददातु ) देवे जिससे ( जीवम् ) ज्ञानसाधनयुक्त जीवन वा ( व्रातम् ) सत्य पालन आदि गुण समुदाय को ( सचेमहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ ५५ ॥

भावार्थ—विद्वान् माता पिता आचार्यों की शिक्षा के विना मनुष्यो का जन्म सफल नही होता और मनुष्य भी उस शिक्षा के विना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने को समर्थ नहीं हो सकते । इससे सब काल मे विद्वान् माता पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के बल वाले करें ॥ ५५ ॥

वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषि । सोमो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब सोम शब्द से ईश्वर और ओषधियों के रसों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥५६॥**

पदार्थ—हे ( सोम ) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर ! ( तव ) आपको ( व्रते ) सत्यभाषण आदि धर्मों के अनुष्ठान मे वर्तमान होके ( तनूषु ) बड़े बड़े सुखयुक्त शरीरो मे ( मन ) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को ( बिभ्रतः ) धारण करते हुए और ( प्रजावन्त ) बहुत पुत्र आदि राष्ट्र आदि धन वाले होके हम लोग ( सचेमहि ) सब सुखो को प्राप्त होवें ॥ १ ॥ ( तव ) इस ( सोम ) सोमलता आदि ओषधियो के ( व्रते ) सत्य सत्य गुण ज्ञान के सेवन में ( तनूषु ) सुखयुक्त शरीरो मे ( मन ) चित्त की वृत्ति को ( बिभ्रत ) धारण करते हुए ( प्रजावन्त ) पुत्र राज्य आदि धनवाले होकर ( वयम् ) हम लोग ( सचेमहि ) सब सुखो को प्राप्त होवें ॥ २ ॥ ५६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखो को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥ ५६ ॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषि । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वरः ॥

*मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा ।**
**एष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥**

पदार्थ—हे ( रुद्र ) अन्यायकारी मनुष्यो को रुलानेवाले विद्वन् ! जो ( ते ) तेरा ( एष ) यह ( भाग ) सेवन करने योग्य पदार्थ समूह है उस को तू ( अम्बिकया ) वेदवाणी वा ( स्वस्रा ) उत्तम विद्या वा क्रिया के ( सह ) साथ ( जुषस्व ) सेवन कर तथा हे ( रुद्र ) विद्वन् ! जो ( ते ) तेरा ( एष ) यह ( भाग ) धर्म से सिद्ध अंश वा ( स्वाहा ) वेदवाणी है उसका सेवन कर और हे ( रुद्र ) विद्वन् ! जो ( ते ) तेरा ( एष ) यह ( आखु ) खोदन योग्य शस्त्र वा ( पशु ) भोग्य पदार्थ है ( तम ) उसको ( जुषस्व ) सेवन कर ॥ १ ॥ जो ( एष ) यह ( रुद्र ) प्राण है ( ते ) जिसका ( एष ) यह ( भाग ) है जिसको ( अम्बिकया ) वाणी वा ( स्वस्रा ) विद्याक्रिया के ( सह ) साथ ( जुषस्व ) सेवन करता वा जो ( ते ) जिसका ( स्वाहा ) सत्य वाणीरूप ( भाग ) भाग है और जो इसके ( आखु ) खोदनवाले पदार्थ वा ( पशु ) दर्शनीय भोग्य पदार्थ है जिसका यह ( जुषस्व ) सेवन करता है उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें ॥ ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्दविद्या को पढ़कर आनन्द को भोगता है विद्या को प्राप्त होकर वैसे विद्वान् भी सुखी होता है । जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्दविद्या से प्रिय आनन्ददायक होता है वैसे सुशिक्षित विद्वान् भी सब को सुख करनेवाला होता है । इन दोनो के विना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

अव रुद्रमित्यस्य बन्धुर्ऋषि । रुद्रो देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*अब अगले मन्त्र म रुद्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—*

**अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।**
**यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥५८**

पदार्थ—हम लोग ( त्र्यम्बकम् ) तीनों काल मे एकरस ज्ञानयुक्त ( देवम् ) देव वा ( रुद्रम ) दुष्टो को रुलानेवाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दु खो को ( अवादीमहि ) अच्छे प्रकार नष्ट करें ( यथा ) जैसे परमेश्वर ( न ) हम लोगों को ( वस्यस ) उत्तम उत्तम वास करनेवाले ( अवाकरत ) अच्छे प्रकार करे ( यथा ) जैसे ( न ) हम लोगो को ( श्रेयस ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( करत ) करे ( यथा ) जैसे ( न ) हम लोगो को ( व्यवसाययात ) निश्चय वाले करे वैसे सुख पूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देनेवाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें ॥ ५८ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के विना सब दु खों के अन्त को नही प्राप्त हो सकता । क्योंकि वही परमेश्वर सब सुखपूर्वक निवास वा उत्तम उत्तम सत्य निश्चयों को कराता है इससे जैसी उसकी आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यो को करना योग्य है ॥ ५८ ॥

भेषजमसीत्यस्य बन्धुर्ऋषि । रुद्रो देवता । स्वराड् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—*

**भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥५९॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो आप ( भेषजम ) शरीर अन्तःकरण इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाश करनेवाले ( असि ) हैं ( भेषजम ) अविद्यादि क्लेशो को दूर करनेवाले ( असि ) हैं सो आप ( न ) हम लोगों के ( गवे ) गो आदि ( अश्वाय ) घोड़ा आदि ( पुरुषाय ) सब मनुष्य ( मेषाय ) मेढ़ा और ( मेष्यै ) भेड़ आदि के लिये ( सुखम् ) उत्तम उत्तम सुखो को अच्छी प्रकार दीजिये ।५९।

भावार्थ—किसी मनुष्य का परमेश्वर की उपासना के विना शरीर आत्मा और प्रजा का दु ख दूर होकर सुख नहीं हो सकता इससे उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने और ओषधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दु खो को यत्न से निवृत्त करके सुखो को सिद्ध करना उचित है ॥५९॥

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । रुद्रो देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो-**

**मुक्षीय माऽमृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥**

**पदार्थ**—हम लोग जो ( **सुगन्धिम्** ) शुद्ध गन्धयुक्त ( **पुष्टिवर्धनम्** ) शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ानेवाला ( **त्र्यम्बकम्** ) रुद्ररूप जगदीश्वर है, उसकी ( **यजामहे** ) निरन्तर स्तुति करें । इनकी कृपा से (**उर्वारुकमिव**) जैसे खर्बूजा फल पक कर ( **बन्धनात्** ) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के तुल्य होता है वैसे हम लोग भी ( **मृत्यो** ) प्राण वा शरीर के वियोग से ( **मुक्षीय** ) छूट जावें ( **अमृतात्** ) और मोक्षरूप सुख से ( **मा** ) श्रद्धारहित कभी न होवें तथा हम लोग ( **सुगन्धिम्** ) उत्तम गन्धयुक्त ( **पतिवेदनम्** ) रक्षा करने हारे स्वामी को देनेवाले ( **त्र्यम्बकम्** ) सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का (**यजामहे**) निरन्तर सत्कारपूर्वक ध्यान करें और इसके अनुग्रह से ( **उर्वारुकमिव** ) जैसे खरबूजा पक कर ( **बन्धनात्** ) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के समान मिष्ट होता है वैसे हम लोग भी ( **इतः** ) इस शरीर से ( **मुक्षीय** ) छूट जावें ( **अमुतः** ) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म के फल से ( **मा** ) पृथक् न होवें ॥ ६० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद से अविहित और दुःखरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करनी चाहिये । जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूटकर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें । जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न जल आदि की इच्छा करते हैं वैसे ही हम लोग ईश्वर वेद वेदोक्त धर्म और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें ॥ ६० ॥

**एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगास्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है—*

**एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि । अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽअहिंसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **रुद्र** ) शत्रुओं को रुलानेवाले युद्धविद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्वन् ! ( **अवततधन्वा** ) युद्ध के लिये विस्तारपूर्वक धनु को धारण करने ( **पिनाकावसः** ) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के बल को पीस के अपनी रक्षा करने ( **कृत्तिवासाः** ) चमड़े और कवचों के समान दृढ़ वस्त्रों के धारण करने ( **शिवः** ) सब सुखों के देने और ( **परः** ) उत्तम सामर्थ्यवाले शूरवीर पुरुष ! आप (**मूजवतः**) मूंज घास आदि युक्त पवन से परे दूसरे देश में शत्रुओं को ( **अतीहि** ) प्राप्त कीजिये ( **एतत्** ) जो यह ( **ते** ) आपका ( **अवसम्** ) रक्षण करना है ( **तेन** ) उससे ( **नः** ) हम लोगों की ( **अहिंसन्** ) हिंसा को छोड़कर रक्षा करते हुए आप ( **अतीहि** ) सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥ ६१ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम शत्रुओं से रहित होकर राज्य को निष्कण्टक करके सब अस्त्र शस्त्रों का सम्पादन करके दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिससे दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवें ॥ ६१ ॥

**त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*मनुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! आप ( **यत्** ) जो ( **देवेषु** ) विद्वानों के वर्तमान में ( **त्र्यायुषम्** ) ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु वर्त्तता जो ( **जमदग्नेः** ) चक्षु आदि इन्द्रियों का ( **त्र्यायुषम्** ) शुद्धि बल और पराक्रमयुक्त तीन गुणा आयु और जो ( **कश्यपस्य** ) ईश्वरप्रेरित ( **त्र्यायुषम्** ) तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है ( **तत्** ) उस शरीर आत्मा और समाज को आनन्द देनेवाले ( **त्र्यायुषम्** ) तीनसौ वर्ष से अधिक आयु को ( **नः** ) हम लोगों को प्राप्त कीजिये ॥ ६२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में चक्षु सब इन्द्रियों में और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और ( **त्र्यायुषम्** ) इसी पदवी की चार बार आवृत्ति होने से तीनसौ वर्ष से अधिक चारसौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है । इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करके और अपना पुरुषार्थ करना उचित है सो प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीनसौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर मन बुद्धि चित्त अहङ्काररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीनसौ वा चारसौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें ॥ ६२ ॥

**शिवो नामासीत्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है—*

**शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः । नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ६३ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर और उपदेश करनेहारे विद्वन् ! जो आप (**स्वधितिः**) अविनाशी होने से वज्रमय ( **असि** ) हैं जिस ( **ते** ) आपका ( **शिवः** ) सुखस्वरूप विज्ञान का देनेवाला ( **नाम** ) नाम ( **असि** ) है सो आप मेरे ( **पिता** ) पालन करनेवाले ( **असि** ) है ( **ते** ) आपके लिए मेरा ( **नमः** ) सत्कारपूर्वक नमस्कार ( **अस्तु** ) विदित हो तथा आप ( **मा** ) मुझे ( **मा** ) मत ( **हिंसीः** ) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आपको ( **आयुषे** ) आयु के भोगने ( **अन्नाद्याय** ) अन्न आदि के भोगने ( **सुप्रजास्त्वाय** ) उत्तम उत्तम पुत्र आदि वा चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने ( **सुवीर्याय** ) उत्तम शरीर आत्मा का बल पराक्रम होने और ( **रायस्पोषाय** ) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिए ( **वर्त्तयामि** ) वर्त्तता और वर्त्ताता हूं । इस प्रकार वर्त्तने से सब दुःखों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय करके अन्तर्यामिरूप आपका आश्रय करके सभों में वर्त्तता हूँ ॥ ६३ ॥

**भावार्थ**—कोई भी मनुष्य मङ्गलमय सब की पालना करनेवाले परमेश्वर की आज्ञा पालन के बिना संसार वा परलोक के सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं होता । न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये । जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है उसका सर्वत्र अनादर होता है । इस से सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है ॥ ६३ ॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन पृथिवी के भ्रमण का लक्षण अग्नि शब्द से ईश्वर वा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन अग्निहोत्र के मन्त्रों का प्रकाश ईश्वर का उपस्थान अग्नि का स्वरूपकथन ईश्वर की प्रार्थना उपासना वा इन दोनों का फल ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन सूर्य्य की किरणों के कार्य का वर्णन निरन्तर उपासना, गायत्री मन्त्र का प्रतिपादन यज्ञ के फल का प्रकाश भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण इन्द्र और पवनों के कार्य का वर्णन पुरुषार्थ का आवश्यक करना पापों से निवृत्त होना यज्ञ की समाप्ति आवश्यक करनी मित्र से लेन देन आदि व्यवहार करना विद्वान् वा ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन चार प्रकार के अन्तःकरण का लक्षण रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन तीनसौ वर्ष पर्यन्त आयु का संपादन करना और धर्म से आयु आदि पदार्थों के ग्रहण का वर्णन किया है । इससे दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इस तीसरे अध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्याय ॥

# ॥ अथ चतुर्थोऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**एदमगन्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अब्ओषध्यौ देवते । विराड् ब्राह्मीजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में जल के गुण स्वभाव और कृत्य का उपदेश किया है—*

**एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासोऽअजुषन्त विश्वे । ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमाऽआपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः ॥१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **पृथिव्या** ) भूमि पर मनुष्यजन्म को प्राप्त हो के जो ( **इदम्** ) यह ( **देवयजनम्** ) विद्वानो का यजन पूजन वा उनके लिए दान हैं उसको प्राप्त होके ( **यत्र** ) जिस देश में ( **ऋक्सामाभ्याम्** ) ऋग्वेद सामवेद तथा ( **यजुर्भिः** ) यजुर्वेद के मन्त्रो से कहे कर्म ( **रायस्पोषेण** ) धन की पुष्टि ( **समिषा** ) उत्तम उत्तम विद्या आदि की इच्छा वा अन्न आदि से दुःखो के ( **सन्तरन्तः** ) अन्त को प्राप्त होने हुए ( **विश्वे** ) सब ( **देवासः** ) विद्वान् हम लोग सुखो को ( **अगन्म** ) प्राप्त हो ( **अजुषन्त** ) सब प्रकार से सेवन करें ( **मदेम** ) सुखी रहें ( **उ** ) और भी ( **मे** ) मेरे सुनियम, विद्या, उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए ( **इमाः** ) ये ( **देवीः** ) शुद्ध ( **आपः** ) जल सुख देनेवाले होते हैं वैसे वहां तू भी उनको प्राप्त हो ( **जुषस्व** ) सेवन और आनन्द कर । वे जल आदि पदार्थ भी तुझको ( **शम्** ) सुख करानेवाले ( **सन्तु** ) होवें जैसे ( **ओषधे** ) सोमलता आदि ओषधिगण सब रोगो से रक्षा करता है वैसे तू भी हम लोगो की ( **त्रायस्व** ) रक्षा कर ( **स्वधिते** ) रोग नाश करने मे वज्र के समान होकर ( **एनम्** ) इस यजमान वा प्राणिमात्र को ( **मा हिंसीः** ) कभी मत मार ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक अङ्ग और उपनिषद् सहित चारो वेदो को पढ़कर औरो को पढ़ा कर विद्या को प्रकाशित कर और विद्वान् होके उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से सब प्राणियो को सुखी करें वैसे ही इन विद्वानो का सत्कार कर इनसे वैदिक विद्या को प्राप्त होकर शरीर वा आत्मा की पुष्टि से धन का अत्यन्त सञ्चय करके सब मनुष्यो को आनन्दित होना चाहिये ॥ १ ॥

**आपो अस्मानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उन जलों से क्या क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि । दीक्षातपसो-स्तनूरसि तां त्वा शिवां शग्मां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**भद्रम्**) अति सुन्दर ( **वर्णम्** ) प्राप्त होने योग्य रूप को ( **पुष्यन्** ) पुष्ट करता हुआ मैं जो ( **घृतप्वः** ) घृत को पवित्र करने (**देवीः** ) दिव्यगुणयुक्त ( **मातरः** ) माता के समान पालन करनेवाले ( **आपः** ) जल (**रिप्रम्**) व्यक्त वाणी को प्राप्त करने वा जानने योग्य ( **विश्वम्** ) सब को ( **प्रवहन्ति** ) प्राप्त करते हैं जिनसे विद्वान् लोग ( **अस्मान्** ) हम मनुष्य लोगो को ( **शुन्धयन्तु** ) बाह्य देश को पवित्र करें और जो ( **घृतेन** ) घृतवत् पुष्ट करने योग्य जल हैं जिनसे ( **नः** ) हम लोगो को सुखी कर सकें उनसे ( **पुनन्तु** ) पवित्र करें । जैसे मैं ( **इत्** ) भी ( **उत्** ) अच्छे प्रकार ( **आभ्यः** ) इन जलों से ( **शुचिः** ) पवित्र तथा ( **आपूतः** ) शुद्ध होकर (**दीक्षातपसोः**) ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम उत्तम नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिए ( **तनूः** ) शरीर ( **असि** ) है जिस ( **शिवाम्** ) कल्याणकारी ( **शग्माम्** ) सुखस्वरूप शरीर को ( **एमि** ) प्राप्त होता और (**परिदधे**) सब प्रकार धारण करता हूं वैसे तुम लोग भी उन जल और ( **ताम्** ) उस ( **त्वाम्** ) अत्युत्तम शरीर को धारण करो ॥ २ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को उचित है कि जो सब सुखों को प्राप्त कराने, प्राणो को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल हैं उनसे सब प्रकार पवित्र होके इन को शोध कर मनुष्यो को नित्य सेवन करना चाहिये जिस से सुन्दर वर्ण रोगरहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिए ॥ २ ॥

**महीनामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर इस जलसमूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**महीनां पयोऽसि वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि ।**
**वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मे देहि ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—जो यह (**महीनाम्**) पृथिवी आदि के ( **पयः** ) जल रस का निमित्त ( **असि** ) है ( **वर्चोदाः** ) दीप्ति का देनेवाला ( **असि** ) है जो ( **मे** ) मेरे लिए ( **वर्चः** ) प्रकाश को ( **देहि** ) देता है जो ( **वृत्रस्य** ) मेघ का ( **कनीनकः** ) प्रकाश करनेवाला ( **असि** ) है वा ( **चक्षुर्दाः** ) नेत्र के व्यवहार का सिद्ध करनेवाला (**असि**) है वह सूर्य्य ( **मे** ) मेरे लिए (**चक्षुः** ) नेत्रो के व्यवहार को ( **देहि** ) देता है ॥३॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को जानना उचित है कि जिस सूर्य्य के प्रकाश के बिना वर्षा की उत्पत्ति वा नेत्रो का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता जिसने इस सूर्य्यलोक को रचा है उस परमेश्वर को कोटि असंख्यात धन्यवाद देते रहें ॥ ३ ॥

**चित्पतिर्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृद्ब्राह्मीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*जिस ने सूर्य्य आदि सब जगत् को बनाया है वह परमात्मा हमारे लिये क्या क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे (**पवित्रपते**) पवित्रता के पालन करने हारे परमेश्वर ! (**चित्पतिः** ) विज्ञान के स्वामी ( **वाक्पतिः** ) वाणी के निमल और ( **सविता** ) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले ( **देवः** ) दिव्य स्वरूप आप (**पवित्रेण**) शुद्ध करनेवाले (**अच्छिद्रेण**) अविनाशी विज्ञान वा (**सूर्य्यस्य**) सूर्य और प्राण के (**रश्मिभिः** ) प्रकाश और गमनागमनो से ( **मा** ) मुझ और मेरे चित्त को ( **पुनातु** ) पवित्र कीजिये ( **मा** ) मुझ और मेरी वाणी को (**पुनातु**) पवित्र कीजिये ( **मा** ) मुझ तथा मेरे चक्षु को (**पुनातु**) पवित्र कीजिये । जिस ( **पवित्रपूतस्य** ) शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणो से पवित्र ( **ते** ) आप की कृपा से ( **यत्कामः** ) जिस उत्तम कामनायुक्त मैं (**पुने**) पवित्र होता हूं जिस ( **ते** ) आपकी उपासना से (**तत्**) उस अत्युत्तम कर्म के करने को (**शकेयम्**) समर्थ होऊं उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिए ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को उचित है कि जिस वेद के जानने वा पालन करनेवाले परमेश्वर ने वेदविद्या, पृथिवी जल, वायु और सूर्य्य आदि शुद्धि करनेवाले पदार्थ प्रकाशित किये है उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्यो को पूर्ण कामना और पवित्रता का सम्पादन अवश्य करना चाहिए ॥ ४ ॥

**आ वो देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को किस किस प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**आ वो देवासऽईमहे वामं प्रयत्यध्वरे ।**
**आ वो देवासऽआशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देवासः** ) विद्यादि गुणो से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग ( **वः** ) तुम को ( **प्रयति** ) सुखयुक्त ( **अध्वरे** ) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान मे ( **वः** ) तुम्हारे ( **वामम्** ) प्रशंसनीय गुणसमूह की ( **आ ईमहे**) अच्छे प्रकार याचना करते हैं । हे ( **देवासः** ) विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग इस संसार मे आप लोगो से ( **यज्ञियाः** ) यज्ञ को सिद्ध करने योग्य ( **आशिषः** ) इच्छाओ को ( **आ हवामहे** ) अच्छे प्रकार स्वीकार कर सकें वैसे ही हम लोगो के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये ॥५॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को योग्य है कि उत्तम विद्वानो के प्रसङ्ग से उत्तम उत्तम विद्याओ का सम्पादन कर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करके इन विद्वानो का सङ्ग और सेवा सदा करें ॥५॥

**स्वाहा यज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*किस किस प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**स्वाहा॑ यज्ञं मन॑सः स्वाहो॒रोर॒न्तरि॑क्षात् ।**
**स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬ स्वाहा॒ वाता॒दार॑भे॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं ( **स्वाहा** ) वेदोक्त ( **स्वाहा** ) उत्तम शिक्षा सहित ( **स्वाहा** ) विद्याओं का प्रकाश ( **स्वाहा** ) सत्य और सब जीवों के कल्याण करने हारी वाणी और ( **स्वाहा** ) अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम क्रिया से ( **उरो** ) बहुत ( **अन्तरिक्षात** ) आकाश और ( **वातात** ) वायु की शुद्धि कर के ( **द्यावापृथिवीभ्याम्** ) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ ( **मनस** ) विज्ञान और ठीक ठीक क्रिया से ( **यज्ञम** ) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का ( **आरभे** ) नित्य आरम्भ करता हूँ वैसे तुम लोग भी करो ॥६॥

**भावार्थ**—मनुष्यों के द्वारा जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहनेवाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सब को सुखी करता है ॥६॥

**आकूत्य प्रयुज इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्न्यब्बृहस्पतयो देवता । पूर्वार्धस्य पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । आपो देवीरित्युत्तरस्यार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*किसलिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**आकू॑त्यै प्र॒युजे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ मे॒धायै॒ मन॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ दी॒क्षायै॒ तप॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ सर॑स्वत्यै पू॒ष्णेऽग्नये॒ स्वाहा॑ । आपो॑ देवीर्बृहतीर्वि-श्वशम्भुवो॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽउरो॑ऽअन्तरिक्ष । बृह॒स्पत॑ये ह॒विषा॑ विधेम॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( **आकूत्यै** ) उत्साह ( **प्रयुजे** ) उत्तम उत्तम प्रयुक्त क्रिया ( **अग्नये** ) अग्नि के प्रदीपन ( **स्वाहा** ) वेदवाणी के प्रचार ( **सरस्वत्यै** ) विज्ञानयुक्त वाणी ( **पूष्णे** ) पुष्टि करने ( **बृहस्पतये** ) बड़े बड़े अधिपति के होने ( **अग्नये** ) बिजुली की विद्या के ग्रहण ( **स्वाहा** ) इन पदार्थों से विद्या ( **मेधायै** ) बुद्धि की उन्नति ( **मनसे** ) विज्ञान की वृद्धि ( **अग्नये** ) कारणरूप ( **स्वाहा** ) सत्यवाणी की प्रवृत्ति ( **दीक्षायै** ) धर्मनियम और आचरण की प्राप्ति ( **तपसे** ) प्रताप ( **अग्नये** ) जाठराग्नि के शोधन ( **स्वाहा** ) उत्तम स्तुतियुक्त वाणी से ( **बृहती** ) महागुण सहित ( **विश्वशम्भुव** ) सब के लिये सुख उत्पन्न करनेवाले ( **देवी** ) दिव्यगुणसम्पन्न ( **आप** ) प्राण वा जल से ( **स्वाहा** ) सत्य भाषण ( **द्यावापृथिवी** ) भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ ( **उरो** ) बहुत सुख करनेवाले ( **अन्तरिक्ष** ) अन्तरिक्ष में रहनेवाले पदार्थों की शुद्धि और जिस ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया वा सत्यवाणी से यज्ञ सिद्ध होता है उन सबों को ( **हविषा** ) सत्य और प्रेमभाव से ( **विधेम** ) सिद्ध करें, वैसे तुम भी किया करो ॥७॥

**भावार्थ**—यज्ञ के अनुष्ठान के बिना उत्साह बुद्धि सत्यवाणी धर्माचरण की रीति तप धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इनके बिना कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता । इससे सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान करके सबके लिये सब प्रकार आनन्द प्राप्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

**विश्वो देवस्येत्यस्याङ्गिरस ऋषि । ईश्वरो देवता । आर्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।**
**विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—जैसे ( **विश्व** ) सब ( **मर्त्त** ) मनुष्य ( **नेतु** ) सब को प्राप्त वा ( **देवस्य** ) सब का प्रकाश करनेवाले परमेश्वर के साथ ( **सख्यम्** ) मित्रता और गुण कर्म समूह को ( **वुरीत** ) स्वीकार और ( **विश्व** ) सब ( **राये** ) धन की प्राप्ति के लिये ( **इषुध्यति** ) बाणों का धारण करे और ( **द्युम्नम** ) धन को ( **वृणीत** ) स्वीकार करे वैसे हे मनुष्य ! तू सबका अनुष्ठान करके ( **स्वाहा** ) सत्क्रिया से तुम भी ( **पुष्यसे** ) पुष्ट हो ॥८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना करके परस्पर मित्रपन का सम्पादन कर युद्ध में दुष्टों को जीत के राज्य लक्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये ॥ ८ ॥

**ऋक्सामयोरित्यस्याङ्गिरस ऋषय । विद्वान् देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ऋ॒क्सा॒मयो॒ः शिल्पे॑ स्थ॒स्ते वा॒मार॑भे॒ ते मा॑ पात॒मास्य य॒ज्ञस्यो॒दृच॑ः । शर्मा॑सि॒ शर्म॑ मे यच्छ॒ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिᳬसीः ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! आप जो मैं ( **ऋक्सामयो** ) ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने के पीछे ( **उदृच** ) जिसमें अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है ( **अस्य** ) इस ( **यज्ञस्य** ) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के सम्बन्धी ( **वाम्** ) ये ( **शिल्पे** ) मन वा प्रसिद्ध क्रिया से सिद्ध की हुई कारीगरी की जो विद्यायें ( **स्थ** ) हैं ( **ते** ) उन दोनों को ( **आरभे** ) आरम्भ करता हूँ तथा जो ( **मा** ) मेरी ( **आ** ) सब ओर से ( **पातम्** ) रक्षा करते हैं ( **ते** ) वे ( **स्थ** ) हैं उनको विद्वानों के सकाश से ग्रहण करता हूँ । हे विद्वन् मनुष्य ! ( **ते** ) उस तेरे लिए ( **मे** ) मेरा ( **नम** ) अन्नादि सत्कारपूर्वक नमस्कार ( **अस्तु** ) विदित हो तथा तुम ( **मा** ) मुझको चलायमान मत करो और ( **यत** ) जो ( **शर्म** ) सुख ( **असि** ) है उस ( **शर्म** ) सुख को ( **मे** ) मेरे लिए ( **यच्छ** ) देओ ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्पविद्या वा हस्तक्रिया का साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कार्यों को सिद्ध करके सुखों की उन्नति करें ॥ ९ ॥

**ऊर्गसीत्यस्याङ्गिरस ऋषय । यज्ञो देवता । कृषीत्यन्तस्य निचृदार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर । उच्छ्रयस्वेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*वह शिल्पविद्या क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ऊर्ग॑स्याङ्गिर॒स्यूर्ण॑म्रदा॒ऽऊर्जं॒ मयि॑ धेहि । सोम॑स्य नी॒विर॑सि॒ विष्णो॒ः शर्मा॑सि॒ शर्म॒ यज॑मान॒स्येन्द्र॑स्य॒ योनि॑रसि सु॒स॒स्याः कृ॒षीस्कृ॑धि । उच्छ्र॑यस्व वनस्पतऽऊ॒र्ध्वो मा॑ पाह्य॒ᳬह॑स॒ऽआस्य य॒ज्ञस्यो॒दृच॑ः ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे ( **वनस्पते** ) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करनेवाले विद्वान् मनुष्य ! तू जो ( **आङ्गिरसि** ) अङ्गार आदि पदार्थों में सिद्ध की हुई ( **ऊर्णम्रदा** ) आच्छादन वा प्रकाश का ( **ऊर्क** ) पराक्रम तथा अन्नादि का करनेवाली शिल्पविद्या ( **असि** ) है अथवा जो ( **ऊर्जम्** ) पराक्रम वा अन्न आदि का धारण करती ( **असि** ) है जो ( **सोमस्य** ) उत्पन्न पदार्थ समूह का ( **नीवि** ) संवरण करनेवाली ( **असि** ) है जो ( **विष्णो** ) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि ( **यजमानस्य** ) शिल्पविद्या का दान देनेवाले ( **इन्द्रस्य** ) परमैश्वर्ययुक्त मनुष्य के ( **शर्म** ) सुख का ( **योनि** ) निमित्त ( **असि** ) है जो ( **अस्य** ) इस ( **उदृच** ) ऋचाओं के प्रत्यक्ष करनेवाले ( **यज्ञस्य** ) शिल्पक्रिया साध्य यज्ञ की ( **शर्म** ) सुख करानेवाली ( **असि** ) है उसका ( **मयि** ) शिल्पविद्या का आरम्भ की इच्छा करनेवाले मुझमें ( **आ धेहि** ) अच्छे प्रकार धारण कर ( **सुसस्या** ) उत्तम उत्तम धान्य उत्पन्न करने वा ( **कृषी** ) खेती वा खेंचनेवाली क्रियाओं को ( **कृधि** ) सिद्ध कर ( **ऊर्ध्व** ) ऊपर स्थित होनेवाले ( **मा** ) मुझको ( **उच्छ्रयस्व** ) उत्तम धान्यवाली खेती का सेवन कराओ और ( **अंहस** ) पाप वा दुःखों से ( **पाहि** ) रक्षा कर । जो विमान आदि यानों और यज्ञ में ( **वनस्पते** ) वृक्ष की शाखा ऊँची स्थापन की जाती है उसको भी ( **उच्छ्रयस्व** ) उपयोग में लाओ ॥ १० ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से शिल्प विद्या का साक्षात्कार और प्रचार करके सब मनुष्यों को समृद्धियुक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

**व्रतं कृणुतेत्यस्याङ्गिरस ऋषय । अग्निर्देवता । पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर । ये देवा इत्युत्तरस्यार्च्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब अनेक अर्थ वाले अग्नि को जानकर उससे क्या क्या उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**व्र॒तं कृ॑णुता॒ग्निर्ब्रह्मा॒ग्निर्य॒ज्ञो वन॒स्पति॑र्य॒ज्ञिय॑ः । दैवीं॒ धिय॑ मनामहे सुमृडी॒काम॒भिष्ट॑ये वर्चो॒धां य॒ज्ञवा॑हसᳬ सु॒ती॒र्था नो॑ऽअस॒द्वशे॑ । ये दे॒वा मनो॑जाता मनो॒युजो॒ दक्ष॑क्रतव॒स्ते नो॑ऽवन्तु॒ ते न॑ः पान्तु॒ तेभ्य॒ः स्वाहा॑ ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हम लोग जो ( **ब्रह्मा** ) ब्रह्मपदवाच्य ( **अग्नि** ) अग्नि नाम से प्रसिद्ध ( **असत** ) है जो ( **यज्ञ** ) अग्निमय और जो ( **वनस्पति** ) वनों का पालन करनेवाला यज्ञ ( **अग्नि** ) अग्नि नामक है उसकी उपासना कर वा उससे उपकार लेकर ( **अभिष्टये** ) इष्टसिद्धि के लिए जो ( **सुतीर्था** ) जिससे अत्युत्तम दुःखों से तारनेवाले वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं उस ( **सुमृडीकाम्** ) उत्तम सुखयुक्त ( **वर्चोधाम्** ) विद्या वा दीप्ति का धारण करने तथा ( **दैवीम्** ) दिव्यगुणसम्पन्न ( **धियम्** ) बुद्धि वा क्रिया को ( **मनामहे** ) जानें ( **ये** ) जो ( **दक्षक्रतव** ) शरीर आत्मा के बल, प्रज्ञा वा कर्म से युक्त ( **मनोजाता** ) विज्ञान से उत्पन्न हुए ( **मनोयुज** ) सत् असत् के ज्ञान से युक्त ( **देवा** ) विद्वान् लोग ( **वशे** ) प्रकाशयुक्त कर्म में वर्त्तमान हैं वा जिनसे ( **स्वाहा** ) विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती है ( **तेभ्य** ) उनसे पूर्वोक्त प्रज्ञा की ( **मनामहे** ) याचना करते हैं ( **ते** ) वे ( **न** ) हम लोगों को ( **अवन्तु** ) विद्या, उत्तम क्रिया तथा शिक्षा आदिकों में प्रवेश [ करायें ] और ( **न** ) हम लोगों की निरन्तर ( **पान्तु** ) रक्षा करें ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जिसकी अग्नि सज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिए । विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ को सिद्ध करते हैं उससे शिल्पविद्याकारक यज्ञो को सिद्ध करके विद्वानो के सङ्ग से विद्या को प्राप्त होके स्वतन्त्र व्यवहार मे सदा रहना चाहिए क्योकि बुद्धि के विना कोई भी मनुष्य सुख को नही बढा सकता । इससे विद्वान् मनुष्यो को उचित है कि सब मनुष्यों के लिए ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या और बुद्धि की शिक्षा करके निरन्तर रक्षा करें और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानो के उत्तम उत्तम प्रिय कर्मों का आचरण किया करें ॥ ११ ॥

**श्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषय । आपो देवता । ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ।**

*इसका अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः । ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागस स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो तुम ने ( **पीता** ) पिये ( **अस्माकम्** ) मनुष्यो के ( **अन्त** ) मध्य वा ( **उदरे** ) शरीर के भीतर स्थित हुए ( **अस्मभ्यम्** ) मनुष्यादिको के लिए ( **सुशेवा** ) उत्तम सुखयुक्त ( **अनमीवा** ) ज्वरादि रोग समूह से रहित ( **अयक्ष्मा** ) क्षयी आदि रोगकारक दोषो से रहित ( **अनागस** ) पाप दोष निमित्तो से पृथक ( **ऋतावृध** ) सत्य को बढाने वा ( **अमृता** ) नाशरहित अमृतरसयुक्त ( **देवी** ) दिव्यगुणसम्पन्न ( **आप** ) प्राण वा जल है ( **ता** ) उनको आप लोग ( **स्वदन्तु** ) अच्छे प्रकार सेवन किया करो । इसका अनुष्ठान करके ( **यूयम्** ) तुम सब मनुष्य सुखो को भोगने वाले ( **भवत** ) नित्य होओ ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को विद्वानो के सङ्ग वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षित शुद्ध किये हुए शरीर और आत्मा के बल को बढाने और रोगो को दूर करने वाले जल आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिए क्योकि विद्या वा आरोग्यता के विना कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म करने को समर्थ नहीं हो सकता । इससे इस कार्य्य का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिए ॥ १२ ॥

**इयन्त इत्यस्याङ्गिरस ऋषय । आपो देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वे जल कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् ।**
**अꣳहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमा विशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे ( **ते** ) तेरा जो ( **इयम्** ) यह ( **यज्ञिया** ) यज्ञ के योग्य ( **तनू** ) शरीर ( **अप** ) जल प्राण वा ( **प्रजाम्** ) प्रजा की रक्षा करता है, जिस को तू नही छोडता मैं भी अपने शरीर को विना पूर्ण आयु भोगे प्रमाद से बीच मे ( **न मुञ्चामि** ) नही छोडता हूँ । हे मनुष्यो ! जैसे तुम ( **पृथिव्या** ) भूमि के साथ वर्त्तमानयुक्त होते ( **अꣳहोमुच** ) दु खो को छुडाने वा ( **स्वाहाकृता** ) वाणी से सिद्ध किये हुए ( **अप** ) जल और ( **पृथिवीम्** ) भूमि को ( **आविशत** ) अच्छे प्रकार विज्ञान से प्रवेश करते हो मैं इन से ऐश्वर्य्यसहित और इनमे प्रविष्ट होता हूँ वैसे तू भी ( **सम्भव** ) हो और प्रवेश कर ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्या से परस्पर पदार्थों का मेल और सेवन कर रोगरहित शरीर तथा आत्मा की रक्षा करके सुखी रहना चाहिए ॥ १३ ॥

**अग्ने त्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषय । अग्निर्देवता । स्वराडार्च्युष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि ।**
**रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥**

**पदार्थ**—( **अग्ने** ) जो अग्नि ( **प्रबुधे** ) जगने के समय ( **सुजागृहि** ) अच्छे प्रकार जगाता वा जिससे ( **वयम्** ) जगत् के कर्मानुष्ठान करने वाले हम लोग ( **सुमन्दिषीमहि** ) आनन्दपूर्वक सोते हैं । जो ( **अप्रयुच्छन्** ) प्रमादरहित होके ( **न** ) प्रमादरहित हम लोगो की ( **रक्ष** ) रक्षा तथा प्रमादसहितो को नष्ट करता और जो ( **नः** ) हम लोगो के साथ ( **पुन** ) बार बार इसी प्रकार ( **कृधि** ) व्यवहार करता है, उसको युक्ति के साथ सब मनुष्यो का सेवन करना चाहिए ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जो अग्नि सोने, जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उसका युक्ति से सेवन करना चाहिए ॥ १४ ॥

**पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषय । अग्निर्देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*जीव अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म मे प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन् । वैश्वानरोऽअदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—जिसके सम्बन्ध वा कृपा से ( **मे** ) मुझ को जो ( **मन** ) विज्ञान साधक मन ( **आयु** ) उमर ( **पुन** ) फिर फिर ( **आगन्** ) प्राप्त होता ( **मे** ) मुझ को ( **प्राण** ) शरीर का आधार प्राण ( **पुन** ) फिर ( **आगन्** ) प्राप्त होता ( **आत्मा** ) सब मे व्यापक सब के भीतर की सब बातो का जाननेवाले परमात्मा का विज्ञान ( **आगन्** ) प्राप्त होता ( **मे** ) मुझको ( **चक्षु** ) देखने के लिये नेत्र ( **पुन** ) फिर ( **आगन्** ) प्राप्त होते और ( **श्रोत्रम्** ) शब्द का ग्रहण करनेवाले कान ( **आगन्** ) प्राप्त होते हैं वह ( **अदब्ध** ) हिंसा करने अयोग्य ( **तनूपा** ) शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और ( **वैश्वानर** ) शरीर को प्राप्त होनेवाला ( **अग्नि** ) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होनेवाला परमेश्वर ( **न** ) हम लोगो को ( **अवद्यात** ) निन्दित ( **दुरितात** ) पाप से उत्पन्न हुए दु ख वा दुष्ट कर्मों से ( **पातु** ) पालन करता है ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । जब जीव सोने वा मरण आदि व्यवहार को प्राप्त होते हैं, तब जो जो मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान होकर फिर जगने वा जन्मान्तर मे जिन कार्य्य करने के साधनो को प्राप्त होते हैं वे इन्द्रिय जिस विद्युत अग्नि आदि के सम्बन्ध परमेश्वर की सत्ता वा व्यवस्था मे शरीर वाले होकर कार्य्य करने को समर्थ होते हैं । अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सबकी रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापरूप कर्मों से अलग कर धर्म मे प्रवृत्त कर बार बार मनुष्य जन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार वा दु खो से पृथक करके इस लोक वा परलोक के सुखो को प्राप्त कराता है वह क्यो न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये ॥ १५ ॥

**त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वे कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**त्वमग्ने व्रतपाऽअसि देवऽआ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ।**
**रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्य्य के देनेवाले ( **अग्ने** ) जगदीश्वर ! जो ( **त्वम्** ) आप ( **मर्त्येषु** ) मनुष्यो मे ( **व्रतपा** ) सत्य धर्माचरण की रक्षा ( **सविता** ) सब जगत् को उत्पन्न करने ( **यज्ञेषु** ) सत्कार वा उपासना आदि मे ( **ईड्य** ) स्तुति के योग्य ( **न** ) हम लोगो के लिये ( **वसो** ) धन के ( **दाता** ) दान करनेवाले ( **वसु** ) धन को ( **अदात** ) देते हैं सो ( **इयत्** ) प्राप्त करते हुए आप ( **भूय** ) बारबार अत्यन्त धन ( **आरास्व** ) दीजिये ( **आभर** ) सब सुखो से पोषण कीजिये ॥१॥ ( **त्वम** ) जो ( **अग्ने** ) अग्नि ( **मर्त्येषु** ) मरण धर्म वाले मनुष्यो के कार्यों में ( **व्रतपा** ) नियमाचरण का पालन ( **देव** ) प्रकाश करने ( **यज्ञेषु** ) अग्निहोत्रादि यज्ञो मे ( **ईड्यः** ) खोजने योग्य ( **सोम** ) ऐश्वर्य को देने ( **सविता** ) जगत को प्रेरणा करने ( **देव** ) प्रकाशमान अग्नि है वह ( **न** ) हम लोगो के लिये ( **वसो** ) धन को ( **दाता** ) प्राप्त ( **इयत्** ) कराता हुआ ( **भूय** ) अत्यन्त ( **वसु** ) धन को ( **अदात्** ) देता और ( **आरास्व** ) धन को देने का निमित्त होके ( **आभर** ) सब प्रकार के सुखो को धारण करता है ॥ २ ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यो को उचित है कि जैसे सत्यस्वरूप सब जगत् को उत्पन्न करने और सब सुखो के देनेवाले जगदीश्वर ही की उपासना को करके सुखी रहे इसी प्रकार कार्यसिद्धि के लिये अग्नि को सम्प्रयुक्त करके सब सुखो को प्राप्त करें ॥ १६ ॥

**एषा त इत्यस्य वत्स ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*इनको सेवन करके मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ ।**
**जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **शुक्र** ) वीर्य्य पराक्रम वाले विद्वन् मनुष्य ! ( **ते** ) तेरा जो ( **विष्णवे** ) परमेश्वर वा यज्ञ के लिये तन जिसको ( **धृता** ) धारण किया है ( **तया** ) उस से तू ( **जू** ) ज्ञानी वा वेगवाला होके ( **एतत्** ) इस ( **वर्च** ) विज्ञान और तेजयुक्त ( **सम्भव** ) सम्पन्न हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिये ( **तनू** ) शरीर ( **असि** ) है उससे तू ( **भ्राजम्** ) प्रकाश को ( **गच्छ** ) प्राप्त और ( **धृता** ) धारण किये ( **मनसा** ) विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके विज्ञानयुक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्यपन को बढा कर यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहे ॥ १७ ॥

**तस्यास्त इत्यस्य वत्स ऋषि । वाग्विद्युतौ देवते । स्वराडार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*वह वाणी और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।**
**शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! ( **सत्यसवस** ) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त वा जगत् के निमित्त कारणरूप ( **ते** ) आपके ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए ससार मे आपकी कृपा से जो ( **स्वाहा** ) वाणी वा बिजुली है ( **तस्या** ) उन दोनो के सकाश से विद्या करके युक्त मैं जो ( **शुक्रम्** ) शुद्ध ( **असि** ) है ( **चन्द्रम्** ) आह्लादकारक ( **असि** ) है और

( **सदसदेवम्** ) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देनेवाला ( **असि** ) है ( **तत** ) उस ( **यन्त्रम्** ) सङ्कोचन, विकाशन चालन व धन करनेवाले यन्त्र का ( **अशीय** ) प्राप्त होऊ ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि मे विद्या से कलायन्त्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १८ ॥

**चिदसीत्यस्य वत्स ऋषि । वाग्विद्युतौ देवते । निचृद् ब्राह्मीपङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वे वाणी और बिजुली किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी । सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! ( **सत्यसवस** ) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त ( **ते** ) आपके ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये संसार में जो ( **चित** ) विद्या व्यवहार को चितानेवाली ( **असि** ) है जो ( **मना** ) ज्ञान साधन करने हारी ( **असि** ) है जो ( **धी** ) प्रजा और कर्म को प्राप्त करनेवाली ( **असि** ) है जो ( **दक्षिणा** ) विज्ञान विजय को प्राप्त करने ( **क्षत्रिया** ) राजा के पुत्र के समान वर्त्तने हारी ( **असि** ) है जो ( **यज्ञिया** ) यज्ञ को कराने योग्य ( **असि** ) है जो ( **उभयत शीर्ष्णी** ) दोनों प्रकार में शिर के समान उत्तम गुण युक्त और ( **अदिति** ) नाशरहित वाणी वा बिजुली ( **असि** ) है ( **सा** ) वह ( **न** ) हम लोगों के लिये ( **सुप्राची** ) पूर्वकाल और ( **सुप्रतीची** ) पश्चिम काल में सुख देने हारी ( **एधि** ) हो जो ( **पूषा** ) पुष्टि करने हारा ( **मित्र** ) सब का मित्र होकर मनुष्यपन के लिये ( **त्वा** ) उस वाणी और बिजुली को ( **पदि** ) प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में ( **अध्यक्षाय** ) अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्य वाले परमात्मा अध्यक्ष और श्रेष्ठ व्यवहार के लिये ( **बध्नीताम्** ) बन्धनयुक्त करे सो आप ( **अध्वन** ) व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करनेवाले मार्ग के मध्य में ( **न** ) हम लोगों की निरन्तर ( **पातु** ) रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से ( ते सत्यसवसः प्रसवे ) इन तीन पदों की अनुवृत्ति भी आती है। मनुष्यों की बाह्य आभ्यन्तर की रक्षा करके सब में उत्तम वाणी वा बिजुली वर्त्तती है वही भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल में सुखों की करानेवाली है ऐसा जानना चाहिये। जो कोई मनुष्य प्रीति से परमेश्वर सभाध्यक्ष और उत्तम कामों में आज्ञा के पालन के लिये सत्य वाणी और उत्तम विद्या का ग्रहण करता है वही सब की रक्षा कर सकता है ॥ १९ ॥

**अनु त्वेत्यस्य वत्स ऋषि । वाग्विद्युतौ देवते । पूर्वार्द्धस्य साम्नी जगती छन्द । निषाद स्वर । उत्तरार्द्धस्य भुरिगार्च्युष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर वह वाणी और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! जैसे ( **रुद्र** ) परमेश्वर वा ४४ ( चवालीस ) वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् ( **त्वा** ) तुझ को जिस वाणी वा बिजुली तथा ( **सोमम्** ) उत्तम पदार्थसमूह और ( **स्वस्ति** ) सुख को ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( **आवर्त्तयतु** ) प्रवृत्त करे और जो ( **सा** ) वह ( **सोमसखा** ) विद्याप्रकाशयुक्त वाणी और ( **देवि** ) दिव्यगुणयुक्त बिजुली ( **देवम्** ) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होती है वैसे उसको तू ( **पुन** ) वार वार ( **अच्छ** ) अच्छे प्रकार ( **इहि** ) प्राप्त हो और इसको ग्रहण करने के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **माता** ) उत्पन्न करनेवाली जननी ( **अनुमन्यताम्** ) अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे इसी प्रकार ( **पिता** ) उत्पन्न करनेवाला जनक ( **सगर्भ्य** ) तुल्य गर्भ में होने वाला ( **भ्राता** ) भाई और ( **सयूथ्य** ) समूह में रहनेवाला ( **सखा** ) मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवें उसको तू ( **पुनरेहि** ) अत्यन्त पुरुषार्थ करके वारम्वार प्राप्त हो ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रश्न—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये ? उत्तर—जैसे धर्मात्मा विद्वान् माता पिता भाई मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हो वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तें वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये ॥ २० ॥

**वस्व्यसीत्यस्य वत्स ऋषि । वाग्विद्युतौ देवते । विराडार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर वह वाणी वा बिजुली किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिरा चके ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे जो ( **वस्वी** ) अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी जिसकी सेवा २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करनेवालों ने की हुई ( **असि** ) है जो ( **अदिति** ) प्रकाशकारक ( **असि** ) है जो ( **रुद्रा** ) प्राणवायु सम्बन्ध वाली जिसको ४४ चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी ( **असि** ) है जो ( **आदित्या** ) सूर्य्यवत् सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाली जिसका ग्रहण ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी ( **असि** ) है। जो ( **चन्द्रा** ) आह्लाद करनेवाली ( **असि** ) है जिसको ( **बृहस्पति** ) सर्वोत्तम ( **रुद्र** ) दुष्टों को रुलानेवाला परमेश्वर वा विद्वान् ( **सुम्ने** ) सुख में ( **रम्णातु** ) रमणयुक्त करता और जिस ( **वसुभिः** ) पूर्णविद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा बिजुली की ( **आचके** ) कामना वा इच्छा करता अथवा जिसकी मैं इच्छा करता हूँ वैसे तू भी ( **त्वा** ) उसको ( **रम्णातु** ) रमणयुक्त वा इसको सिद्ध करने की इच्छा कर ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वाणी, बिजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु हैं और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्मसेवनपूर्वक होके विद्वानों ने की हो वैसी वाणी और बिजुली मनुष्यों को विज्ञान पूर्वक क्रियाओं से सम्प्रयोग की हुई बहुत सुखों के करनेवाली होती है ॥ २१ ॥

**अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषि । वाग्विद्युतौ देवते । ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्याऽइडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जैसे ( **देवयजने** ) विद्वानों के यजन वा दान में इस ( **अदित्या** ) अन्तरिक्ष ( **पृथिव्या** ) भूमि और ( **इडाया** ) वाणी को ( **स्वाहा** ) अच्छे प्रकार यज्ञ करनेवाली क्रिया के मध्य जो ( **मूर्द्धन्** ) सब के ऊपर वर्त्तमान ( **घृतवत्** ) पुष्टि करनेवाले घृत के तुल्य ( **पदम्** ) जानने वा प्राप्त होने योग्य पदवी ( **असि** ) है वा जिसको मैं ( **आ, जिघर्मि** ) प्रदीप्त करता हूँ वैसे ( **त्वा** ) उसको प्रदीप्त कर और जो ( **अस्मे** ) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी ( **रमस्व** ) रमण करे जिसको मैं रमण कराता हूँ उस को तू भी ( **रमस्व** ) रमण करा जो ( **अस्मे** ) हम लोगों का ( **बन्धु** ) भाई है वह ( **ते** ) तेरा भी हो जो ( **राय** ) विद्यादि धनसमूह ( **त्वे** ) तुझ में है वह ( **मे** ) मुझ में भी हो जो ( **तोत** ) जानने प्राप्त करने योग्य ( **राय** ) विद्याधन मुझ में है सो तुझ में भी हो ( **राय** ) जो तुम्हारी और हमारी समृद्धि है वे सब के सुख के लिये हों इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम ( **वयम्** ) हम और सब लोग ( **रायस्पोषेण** ) धन की पुष्टि से कभी ( **मा, वियौष्म** ) अलग न होवें ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सत्यविद्या धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से सम्प्रयोग की हुई बिजुली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और सुख दुःख की व्यवस्था को भी तुल्य ही जानके सब ऐश्वर्य्य को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिससे किसी की विद्या धन आदि ऐश्वर्य की हानि होवे ॥ २२ ॥

**समख्य इत्यस्य वत्स ऋषि । वाग्विद्युतौ देवते । आस्तारपङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि संदृशि ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे ( **अहम्** ) मैं ( **दक्षिणया** ) ज्ञानसाधक अज्ञाननाशक ( **उरुचक्षसा** ) बहुत प्रकट वचन वा दर्शनयुक्त ( **देव्या** ) देदीप्यमान ( **धिया** ) प्रज्ञा वा कर्म से ( **तव** ) उस ( **देवि** ) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त वाणी वा बिजुली के ( **संदृशि** ) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार जीवन को ( **समख्ये** ) कथन से प्रकट करता हूँ वह ( **मे** ) मेरे ( **आयु** ) जीवन को ( **मा, प्रमोषी** ) नाश न करे उस को मैं अविद्या से ( **मो** ) नष्ट न करूं ( **तव** ) हे सब के मित्र ! अन्याय में आप के ( **वीरम्** ) शूरवीर को ( **मा, संविदेय** ) प्राप्त न होऊँ वैसे ही तू भी पूर्वोक्त सब करके अन्याय में मेरे शूरवीरों को प्राप्त मत हो ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा से वाणी वा बिजुली की विद्या को ग्रहण कर उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम उत्तम गुणों में अपने सन्तान और वीरों को सम्पादन करके सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

**एष त इत्यस्य वत्स ऋषि । यज्ञो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्द । निषाद स्वर । अन्त्यस्य द्व्यक्षरस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*किस के प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोना-**

**मानुा॑ सा॒म्राज्य॑मु॒च्छेति॒ मे सोमा॑य ब्रूता॒त् । अ॒स्माको॑ऽसि शु॒क्रस्ते॑ ग्र॒हो वि॒चित॒स्त्वा वि चि॑न्वन्तु ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का ( **गायत्र** ) वेदस्थ गायत्री छन्दयुक्त मन्त्रों के समूह से प्रतिपादित ( **भाग** ) सेवने योग्य भाग है ( **इति** ) इस प्रकार विद्वान् से पूछ। जैसे वह विद्वान् ( **ते** ) तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भाग है ( **इति** ) इसी प्रकार से ( **सोमाय** ) पदार्थविद्या सपादन करनेवाले ( **मे** ) मेरे लिये ( **ब्रूतात्** ) कहे। तू कौन इस यज्ञ का ( **त्रैष्टुभ** ) त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित ( **भाग** ) भाग है ( **इति** ) इसी प्रकार विद्वान् स पूछ। जैसे वह (**ते**) तुझ को उस यज्ञ का ( **एष** ) यह भाग है ( **इति** ) इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान (**सोमाय**) उत्तम रस के सपादन करनेवाले ( **मे** ) मेरे लिये ( **ब्रूतात्** ) कहे। तू कौन इस यज्ञ का ( **जागत** ) जगती छन्द से कथित ( **भाग** ) अश है ( **इति** ) इस प्रकार आप्त से पूछ। जैसे वह ( **ते** ) तुझ को उस यज्ञ का ( **एष** ) यह प्रसिद्ध भाग है (**इति**) इसी प्रकार ( **सोमाय** ) पदार्थविद्या को सपादन करनेवाले ( **मे** ) मेरे लिये उत्तर ( **ब्रूतात** ) कहे। जैसे आप (**छन्दोनामानाम्**) उष्णिक आदि छन्दों के मध्य मे कहे हुए यज्ञ के उपदेश मे (**साम्राज्यम्**) भले प्रकार राज्य को ( **गच्छ** ) प्राप्त हो (**इति**) इसी प्रकार ( **सोमाय** ) ऐश्वर्य्ययुक्त ( **मे** ) मेरे लिए सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने का उपाय ( **ब्रूतात** ) कहिये और जिस कारण आप ( **अस्माक** ) हम लोगो को ( **शुक्र** ) पवित्र करनेवाले उपदेशक ( **असि** ) हैं वसे मैं ( **ते** ) आपके ( **ग्रह** ) ग्रहण करन योग्य ( **विचित** ) उत्तम उत्तम धनादि द्रव्य और गुणो स सयुक्त शिष्य हूँ। आप मुझ को सब गुणो से बढ़ाइये इस कारण मैं (**त्वा**) आपको बुद्धियुक्त करता हूँ और सब मनुष्य ( **त्वा** ) आप वा इस यज्ञ तथा मुझको ( **विचिन्वन्तु** ) वृद्धियुक्त कर ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालकार है। मनुष्य लाग विद्वानो से पूछकर सब विद्याओ का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओ का यथावत् ग्रहण करावें। परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियो को प्राप्त होकर विद्या और चक्रवर्त्ति आदि राज्य का सवन करें ॥ २४ ॥

**अभि त्यमित्यस्य वत्स ऋषि सविता देवता । पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी जगती छन्द । निषाद स्वर । सुक्रतुरित्युत्तरस्य निचृदार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर अगले मन्त्र म ईश्वर राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है—*

**अ॒भि त्यं दे॒वꣳ स॑वि॒तार॑मो॒ण्योः क॒विक्र॑तु॒मर्चा॑मि स॒त्यस॑वꣳ रत्न॒धाम॒भि प्रि॒यं म॒तिं क॒विम् । ऊ॒र्ध्वा यस्या॒मति॒र्भाऽअदि॑द्युत॒त्सवी॑मनि॒ हिर॑ण्यपाणिरमिमीत सु॒क्रतुः॑ कृ॒पा स्वः॑ । प्र॒जाभ्य॑स्त्वा प्र॒जास्त्वा॑ऽनु॒प्राण॑न्तु प्र॒जास्त्वम॑नु॒प्राणि॑हि ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—मैं ( **यस्य** ) जिस सच्चिदानन्दादिलक्षणयुक्त परमेश्वर धार्मिक सभापति और प्रजाजन के ( **सवीमनि** ) उत्पन्न हुए ससार म ( **ऊर्ध्वा** ) उत्तम ( **अमति** ) स्वरूप ( **भा** ) प्रकाशमान ( **अदिद्युतत** ) प्रकाशित हुआ है। जिसकी ( **कृपा** ) करुणा ( **स्व** ) सुख को करती है ( **हिरण्यपाणि** ) जिसने सूर्य्यादि ज्योति व्यवहार म उत्तम गुण कर्मों को युक्त किया हो ( **सुक्रतु** ) जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्मयुक्त ईश्वर सभा स्वामी और प्रजाजन ने ( **स्व** ) सूर्य्य और सुख को ( **अमिमीत** ) स्थापित किया हो ( **त्यम्** ) उस ( **ओण्यो** ) द्यावापृथिवी वा ( **सवितारम्** ) अग्नि आदि को उत्पन्न और सप्रयोग करने तथा ( **कविक्रतुम्** ) सर्वज्ञ वा क्रान्तदर्शन ( **रत्नधाम्** ) रमणीय रत्नो को धारण करने ( **सत्यसवम्** ) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त ( **प्रियम्** ) प्रीतिकारक ( **मतिम्** ) वेदादि शास्त्र वा विद्वानो के मानने योग्य ( **कविम्** ) वेदविद्या का उपदेश करने तथा ( **देवम्** ) सुख देनेवाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष और प्रजाजन का ( **अर्चामि** ) पूजन करता हूँ वा जिस (**त्वा**) आपको ( **प्रजाभ्य** ) उत्पन्न हुई सृष्टि से पूजित करता हूँ। उस आपकी सृष्टि मे ( **प्रजा** ) मनुष्य आदि ( **अनुप्राणन्तु** ) आयु का भाग करें ( **त्वम्** ) और आप कृपा करके ( **प्रजा** ) प्रजा के ऊपर जीवो के अनुकूल ( **अनुप्राणिहि** ) अनुग्रह कीजिये ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले निराकार सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर धार्मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना चाहिये उनसे भिन्न और किसी का नही। विद्वान् मनुष्यो को योग्य है कि प्रजा-पुरुषों के लिए इस परमेश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा वर्त्तते रहें और जैसे प्राण मे सब जीवो की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर आदि मे भी अत्यन्त प्रेम करें ॥ २५ ॥

**शुक्रं त्वेत्यस्य वत्स ऋषि । यज्ञो देवता । भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चमः स्वर ।**

*मनुष्यों को क्या-क्या साधन करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**शु॒क्रं त्वा॑ शु॒क्रेण॑ क्रीणामि च॒न्द्रं च॒न्द्रेणा॒मृत॑म॒मृते॑न । स॒ग्मे ते॒ गोर॒स्मे ते॑ च॒न्द्राणि॒ तप॑सस्त॒नूर॑सि प्र॒जाप॑ते॒र्वर्णः॑ पर॒मेण॑ प॒शुना॑ क्रीयसे सहस्रपो॒षं पु॑षेयम् ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—जसे ( **सग्मे** ) पृथिवी के साथ वर्त्तमान यज्ञ मे ( **तपस** ) प्रताप युक्त अग्नि वा तपस्वी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का ( **तनू** ) शरीर ( **असि** ) है, उसको शिल्पविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ ( **पशुना** ) विक्रय किये हुए गौ आदि पशुओ करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके ( **प्रजापते** ) प्रजा के पालन हेतु सूर्य्य का ( **वर्ण** ) स्वीकार करने योग्य तेज ( **क्रीयसे** ) क्रय होता है उस ( **सहस्रपोषम्** ) असख्यात पुष्टि को प्राप्त होके मैं ( **पुषेयम्** ) पुष्ट होऊँ। हे विद्वान् मनुष्य ! जो ( **ते** ) आपको ( **गौ** ) पृथिवी के राज्य के सकाश से ( **चन्द्राणि** ) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त हैं वे ( **अस्मे** ) हम लोगो के लिए भी हो जैसे मैं (**परमेण**) उत्तम ( **शुक्रेण** ) शुद्ध भाव से ( **शुक्रम्** ) शुद्धिकारक यज्ञ ( **चन्द्रेण** ) सुवर्ण से ( **चन्द्रम्** ) सुवर्ण और ( **अमृतेन** ) नाशरहित विज्ञान से ( **अमृतम्** ) मोक्षसुख को ( **क्रीणामि** ) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी ( **त्वा** ) उसको ग्रहण कर ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को योग्य है कि शरीर मन वाणी और धन से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षणयुक्त यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करके असख्यात अतुल पुष्टि को प्राप्त करें ॥ २६ ॥

**मित्रो न इत्यस्य वत्स ऋषि । विद्वान् देवता । भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के सग कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मि॒त्रो न॒ऽएहि॒ सुमि॑त्रध॒ऽइन्द्र॑स्यो॒रुमा वि॑श दक्षि॒णमु॒शन्नु॒शन्त॑ꣳ स्यो॒नः स्यो॒नम् । स्वान॒ भ्राजाङ्घा॑रे॒ बम्भा॑रे॒ हस्त॒ सुह॑स्त कृशा॑नवे॒ते वः॑ सो॒मक्रय॑णा॒स्तान्र॑क्षध्वं॒ मा वो॑ दभन् ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **स्वान** ) उपदेश करने ( **भ्राज** ) प्रकाश को प्राप्त होने ( **अघारे** ) छल के शत्रु ( **बम्भारे** ) विचार विरोधियो के शत्रु ( **हस्त** ) प्रसन्न ( **सुहस्त** ) अच्छे प्रकार हस्तक्रिया को जानने और ( **कृशानो** ) दुष्टो को कृश करने ( **सुमित्रध** ) उत्तम मित्रो को धारण करने ( **मित्र** ) सब के मित्र ( **स्योन** ) सुख की ( **उशन्** ) कामना करन हार सभाध्यक्ष ! आप ( **न** ) हम लोगो को ( **आ, इहि** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा ( **दक्षिणम्** ) उत्तम सङ्गयुक्त ( **उरुम्** ) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करन योग्य ( **उशतम्** ) कामना करने योग्य ( **स्योनम्** ) सुख का ( **आविश** ) प्रवेश कीजिय। हे सभाध्यक्षो ! ( **एते** ) जो ( **इन्द्रस्य** ) परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् के ( **सोमक्रयणा** ) साम अर्थात् उत्तम पदार्थों का क्रय करन हारे प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य ( **व** ) तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी ( **रक्षध्वम्** ) रक्षा सदा किया करो। जैसे वे शत्रु लोग ( **तान्** ) उन ( **व** ) तुम लोगो की हिंसा करने मे समर्थ ( **मा दभन्** ) न हो वैसे ही सम्यक प्रीति से परस्पर मिल के वर्तो ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—राज्य और प्रजापुरुषो को उचित है कि परस्पर प्रीति उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार म यथावत् वर्त्त शत्रुओं का निवारण अविद्या वा अन्यायरूप अन्धकार का नाश और चक्रवर्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें ॥ २७ ॥

**परि माग्न इत्यस्य वत्स ऋषि । अग्निर्देवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहती छन्द । मध्यम स्वर । उत्तरार्द्धस्य साम्न्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ मध्य और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**परि॑ माग्ने॒ दुश्च॑रिताद्बाध॒स्वा मा॒ सुच॑रिते भज । उदायु॑षा स्वा॒युषोद॑स्थाम॒मृताँ॒२ऽअनु॑ ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) जगदीश्वर ! आप कृपा करके जिस धर्म से मैं ( **स्वायुषा** ) उत्तमतापूर्वक प्राण धारण करनेवाले ( **आयुषा** ) जीवन से (**अमृतान्**) जीवनमुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दो को ( **उदस्थाम्** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ उससे ( **मा** ) मुझको सयुक्त करके ( **दुश्चरितात** ) दुष्टाचरण से ( **उद्बाधस्व** ) पृथक करके ( **मा** ) मुझको (**सुचरिते**) उत्तम उत्तम धर्माचरणयुक्त व्यवहार मे ( **अन्वाभज** ) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को योग्य है कि अधर्म के छोडने और धर्म के ग्रहण करने के लिए सत्य प्रेम से कामना करें क्योंकि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मों से छुड़ा कर धर्म ही मे प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यो को यह करना अवश्य है कि जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही मे रहकर संसार वा मोक्षरूपी सुखों को सब प्रकार से सेवन करें ॥ २८ ॥

**प्रति पन्थामित्यस्य वत्स ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प्रति॒ पन्था॑मपद्महि स्वस्ति॒गाम॑ने॒हस॑म् । येन॒ विश्वाः॒ परि॒ द्विषो॑ वृ॒णक्ति॑ वि॒न्दते॑ व॒सु ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रहण से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग ( **येन** ) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य ( **विश्वा** ) सब ( **द्विष** ) शत्रु सेना वा दुःख देने वाली भोगक्रियाओं को ( **परिवृणक्ति** ) सब प्रकार से दूर करता और ( **वसु** ) सुख करने वाले धन को ( **विन्दते** ) प्राप्त होता है उस ( **अनेहसम्** ) हिंसारहित ( **स्वस्तिगाम** ) सुखपूर्वक जाने योग्य ( **पन्थाम** ) मार्ग को ( **प्रत्यपद्महि** ) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादि त्याग विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्म मार्ग के प्रकाश के लिए ईश्वर की प्रार्थना धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ॥ २९ ॥

**अदित्यास्त्वगसीत्यस्य वत्स ऋषि । वरुणो देवता । पूर्वस्य स्वराड्याजुषी त्रिष्टुप छन्द । अस्तभ्नादित्यन्तस्यार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अगले मन्त्र मे ईश्वर सूर्य्य और वायु के गुणों का उपदेश किया है—*

## अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽआसीद । अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्या । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३० ॥

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! जिससे ( **वृषभ** ) श्रेष्ठ गुणयुक्त आप ( **अदित्या** ) पृथिवी के ( **त्वक** ) आच्छादन करनेवाले ( **असि** ) है ( **अदित्य** ) पृथिवी आदि सृष्टि के लिए ( **सद** ) स्थापन करने योग्य ( **आसीद** ) व्यवस्था को स्थापन करते वा ( **द्याम्** ) सूर्य्य आदि का ( **अस्तभ्नात** ) धारण करते ( **वरिमाणम्** ) अत्यन्त उत्तम ( **अन्तरिक्षम्** ) अन्तरिक्ष को ( **अमिमीत** ) रचते और ( **सम्राट्** ) अच्छे प्रकार प्रकाश को प्राप्त हुए सब के अधिपति आप ( **पृथिव्या** ) अन्तरिक्ष के बीच मे ( **विश्वा** ) सब ( **भुवनानि** ) लोकों को ( **आसीदत** ) स्थापन करते हो इससे ( **तानि** ) ये ( **विश्वा** ) सब ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठरूप ( **ते** ) आपके ( **इत्** ) ही ( **व्रतानि** ) सत्य स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग ( **अपद्महि** ) जानते हैं ॥१॥ जो ( **वृषभ** ) अत्युत्तम ( **सम्राट** ) अपने आप प्रकाशमान सूर्य्य और वायु ( **अदित्या** ) पृथिवी आदि के ( **त्वक** ) आच्छादन करनेवाले ( **असि** ) हैं वा ( **अदित्य** ) पृथिवी आदि सृष्टि के लिए ( **सद** ) लोकों का ( **आसीद** ) स्थापन ( **द्याम्** ) प्रकाश का ( **अस्तभ्नात** ) धारण ( **वरिमाणम्** ) श्रेष्ठ ( **अन्तरिक्षम** ) आकाश का ( **अमिमीत** ) रचना और ( **पृथिव्या** ) आकाश के मध्य मे ( **विश्वा** ) सब ( **भुवनानि** ) लोकों को ( **आसीदत** ) स्थापन करते हैं ( **तानि** ) वे ( **विश्वा** ) सब ( **ते** ) उस ( **वरुणस्य** ) सूर्य्य और वायु के ( **इत** ) ही ( **व्रतानि** ) स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग ( **अपद्महि** ) जानते हैं ॥ २ ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार और पूर्व मन्त्र से ( अपद्महि ) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये । जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य्य और वायु आदि का सब प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥ ३० ॥

**वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषि । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु । हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

**पदार्थ**—जो ( **वरुण** ) अत्युत्तम परमेश्वर सूर्य्य वा प्राणवायु हैं वे ( **वनेषु** ) किरण वा वनों के ( **अन्तरिक्षम** ) आकाश को ( **विततान** ) विस्तारयुक्त किया वा करता ( **अर्वत्सु** ) अत्युत्तम वेगादि गुणयुक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं मे ( **वाजम** ) वेग ( **उस्रियासु** ) गौओं मे ( **पय** ) दूध ( **हृत्सु** ) हृदयों मे ( **क्रतुम** ) प्रज्ञा वा कर्म ( **विक्षु** ) प्रजा मे ( **अग्निम** ) अग्नि ( **दिवि** ) प्रकाश मे ( **सूर्यम** ) आदित्य ( **अद्रौ** ) पर्वत वा मेघ मे ( **सोमम** ) सोमवल्ली आदि ओषधी और श्रेष्ठ रस को ( **अदधात** ) धारण किया करते है उसी ईश्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना से सब पदार्थों मे उनके स्वभावयुक्त गुणों को स्थापन और विज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन सूर्य आदि का विस्तारयुक्त करता है वैसे सूर्य्य और वायु भी सब के लिए सुखों का विस्तार करते हैं ॥ ३१ ॥

**सूर्य्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## सूर्य्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

**पदार्थ**—हे परमेश्वर ! ( **यत्र** ) जहां आप ( **एतशेभि** ) विज्ञान आदि गुणों से ( **भ्राजमान** ) प्रकाशमान ( **विपश्चिता** ) मेधावी विद्वान् से ( **ईयसे** ) विज्ञात होते हो वा जहां प्राणवायु वा बिजुली ( **एतशेभि** ) वेगादि गुण वा ( **विपश्चिता** ) विद्वान् से ( **भ्राजमान** ) प्रकाशित होकर ( **ईयसे** ) विज्ञात होते हैं और जहां आप प्राण तथा बिजुली ( **सूर्य्यस्य** ) सूर्य्य वा बिजुली और ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि के ( **अक्ष्ण** ) देखने के साधन ( **कनीनकम्** ) प्रकाश करनेवाले ( **चक्षु** ) नेत्रों को ( **आरोह** ) देखने के लिए कराते वा कराती हैं वहीं हम लोग आपकी उपासना और उन दोनों का उपयोग करें ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर प्राण और बिजुली के गुणों को जान, उपासना वा कार्य्यसिद्धि करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते रहें ॥३२॥

**उस्रावेतमित्यस्य वत्स ऋषि । सूर्य्यविद्वांसौ देवते । पूर्वस्य निचृदार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । स्वस्तीत्यन्तस्य याजुषी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब सूर्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सो अगले मन्त्र मे कहा है—*

## उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे विद्या और शिल्पक्रिया को प्राप्त होने की इच्छा करनेवाले ( **ब्रह्मचोदनौ** ) अन्न और विज्ञान प्राप्ति के ( **अनश्रू** ) अव्यापी ( **अवीरहणौ** ) वीरों का रक्षण करने ( **उस्रौ** ) ज्योतियुक्त और निवास के हेतु ( **धूर्षाहौ** ) पृथिवी और धर्म के भार का धारण करनेवाले विद्वान् ( **आ इतम्** ) सूर्य्य और वायु को प्राप्त होने वा ( **युज्येथाम्** ) युक्त करते और ( **यजमानस्य** ) धार्मिक यजमान के ( **गृहान्** ) घरों का ( **स्वस्ति** ) सुख से ( **गच्छतम्** ) गमन करते हैं वैसे तुम भी उनको युक्ति से संयुक्त करके कार्यों को सिद्ध किया करो ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य और विद्वान् सब पदार्थों का धारण करने हारे सहनयुक्त और प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त कराते है वैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् से यानों मे युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुखपूर्वक गमन कराते है ॥ ३३ ॥

**भद्रो मेऽसीत्यस्य वत्स ऋषि । यजमानो देवता । पूर्वस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । मा त्वेत्यस्य भुरिगार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर । श्येनो भूत्वेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*उस यान से विद्वान को क्या क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि । मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृकाऽअघायवो विदन् । श्येनो भूत्वा परा पत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ संस्कृतम् ॥ ३४ ॥

**पदार्थ**—हे ( **भुव** ) पृथिवी के ( **पते** ) पालन करनेवाले विद्वान् मनुष्य ! तू ( **मे** ) मेरे ( **भद्र** ) कल्याण करनेवाला बन्धु ( **असि** ) है सो तू ( **नौ** ) मेरा और तेरा ( **संस्कृतम** ) संस्कार किया हुआ यान है ( **तत** ) उससे ( **विश्वानि** ) सब ( **धामानि** ) स्थानों को ( **अभि प्रच्यवस्व** ) अच्छे प्रकार जा जिससे सब जगह जाते हुए ( **त्वा** ) तुझ को जैसे ( **परिपरिण** ) छल से रात्रि मे दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करनेवाले ( **वृका** ) चोर ( **मा विदन्** ) प्राप्त न हों और परदेश को जाने वाले ( **त्वा** ) तुझ को जैसे ( **परिपन्थिन** ) मार्ग मे लूटनेवाले डाकू ( **मा विदन्** ) प्राप्त न होवें जैसे परमैश्वर्य्ययुक्त ( **त्वा** ) तुझ को ( **अघायव** ) पाप की इच्छा करनेवाले दुष्ट मनुष्य ( **मा विदन्** ) प्राप्त न हों वैसा कर्म सदा किया कर ( **श्येन** ) श्येन पक्षी के समान वेगबलयुक्त ( **भूत्वा** ) होकर उन दुष्टों से ( **परापत** ) दूर रह और इन दुष्टों को भी दूर कर ऐसी क्रिया करके ( **यजमानस्य** ) धार्मिक यजमान के ( **गृहान्** ) घर वा देश देशान्तरों को ( **गच्छ** ) जा कि जिससे मार्ग मे कुछ भी दुःख न हो ॥३४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम उत्तम विमान आदि यानों को रच उन मे बैठ, उनको यथायोग्य चला, श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश देशान्तर को जा धनों को प्राप्त करके वहाँ से आ और दुष्ट प्राणियों से अलग रह कर सब काल मे स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें ॥३४॥

**नमो मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषि । सूर्य्यो देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्य्यत । दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्य्याय शꣳसत ॥ ३५ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो ( **मित्रस्य** ) सब के सुहृद् ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठ ( **देव** ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का ( **ऋतम्** ) सत्य स्वरूप है ( **तत्** ) उस चेतन की सेवा करते हैं । वैसे तुम भी उस का सेवन सदा ( **सपर्य्यत** ) किया करो और जैसे उस ( **मह** ) बड़े ( **दूरेदृशे** ) दूरस्थित पदार्थों को दिखाने ( **चक्षसे** ) सब को देखने ( **देवजाताय** ) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध ( **केतवे** ) विज्ञान

स्वरूप ( **देवाय** ) दिव्यगुणयुक्त ( **पुत्राय** ) पवित्र करनेवाले ( **सूर्य्याय** ) चराचरात्मा परमेश्वर को ( **नमः** ) नमस्कार करते हैं वैसे तुम भी ( **प्रशंसत** ) उसकी स्तुति किया करो ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! जो ( **मित्रस्य** ) प्रकाश ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठ ( **दिव** ) प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक का ( **ऋतम्** ) यथार्थ स्वरूप है ( **तत्** ) उस प्रकाशस्वरूप को तुम भी विद्या से ( **सपर्य्यत** ) सेवन किया करो। जैसे हम लोग जिस ( **चक्षसे** ) सब के दिखाने ( **देवजाताय** ) दिव्य गुणो से प्रसिद्ध ( **केतवे** ) ज्ञान कराने अग्नि के ( **पुत्राय** ) पुत्र ( **दूरेदृशे** ) दूर स्थित हुए पदार्थों को दिखाने ( **महे** ) बड़े ( **देवाय** ) दिव्यगुण वाले ( **सूर्य्याय** ) सूर्य्य के लिये प्रवृत्त होओ ॥३५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यो को जिसकी कृपा वा प्रकाश से चोर डाकू आदि अपने कार्य्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणो की प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ वा सूर्य्य के समान कोई लोक नहीं, ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

**वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषि । सूर्य्यो देवता । विराड्ब्राह्मी बृहती छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

*फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमा सीद ॥ ३६ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! जिस से आप ( **वरुणस्य** ) उत्तम जगत् के ( **उत्तम्भनम** ) अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करनेवाले ( **असि** ) हैं। जो ( **वरुणस्य** ) वायु के ( **स्कम्भसर्जनी** ) आधाररूपी पदार्थों के उत्पन्न करने ( **वरुणस्य** ) सूर्य्य के ( **ऋतसदनी** ) जलो का गमनागमन करनेवाली क्रिया ( **स्थ** ) हैं उनका धारण किये हुए हैं ( **वरुणस्य** ) उत्तम ( **ऋतसदनम** ) पदार्थों का स्थान ( **असि** ) है ( **वरुणस्य** ) उत्तम ( **ऋतसदनम** ) सत्यरूपी भावो के स्थान को ( **आसीद** ) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं इससे आपका आश्रय हम लोग करते हैं ॥१॥ जो ( **वरुणस्य** ) जगत् का ( **उत्तम्भनम** ) धारण करनेवाला ( **असि** ) है। जो ( **वरुणस्य** ) वायु के ( **स्कम्भसर्जनी** ) आधारो का उत्पन्न करने वा जो ( **वरुणस्य** ) सूर्य्य के ( **ऋतसदनी** ) जलो का गमनागमन करानेवाली क्रिया ( **स्थ** ) है उनका धारण करने तथा जो ( **वरुणस्य** ) उत्तम ( **ऋतसदनम** ) सब पदार्थों का स्थानरूप ( **असि** ) है वह ( **वरुणस्य** ) उत्तम ( **ऋतसदनम** ) पदार्थों के स्थान को ( **आसीद** ) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है इसका उपयोग सब को करना चाहिये ॥३६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। कोई परमेश्वर के विना सब जगत के रचने या धारण पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्य्य के विना भूमि आदि जगत् के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यो को ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

**या ते धामानीत्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्य्यान् ॥ ३७ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर जैसे विद्वान् लोग ( **या** ) जिन ( **ते** ) आपके ( **धामानि** ) स्थानो को ( **हविषा** ) देने लेने योग्य द्रव्यो से ( **यजन्ति** ) सत्कारपूर्वक ग्रहण करते हैं वैसे हम लोग भी ( **ता** ) उन ( **विश्वा** ) सभी को ग्रहण करें जैसे ( **ते** ) आपका वह यज्ञ विद्वानो को ( **गयस्फान** ) अपत्य धन और घरा के बढ़ाने ( **प्रतरण** ) दुःखो से पार करने ( **सुवीर** ) उत्तम वीरो का योग कराने ( **अवीरहा** ) कायर दरिद्रतायुक्त अवीर अर्थात् पुरुषार्थ रहित मनुष्य और शत्रुओ को मारने तथा ( **परिभू** ) सब प्रकार से सुख करानेवाला है वैसे वह आपकी कृपा से हम लोगो के लिये ( **अस्तु** ) हो वा जिसको विद्वान् लोग ( **यजन्ति** ) यजन करते हैं उस ( **यज्ञम्** ) यज्ञ को हम लोग भी करें। हे ( **सोम** ) सोमविद्या को सम्पादन करनेवाले विद्वन् ! जैसे हम लोग इस यज्ञ को करके घरो मे आनन्द करें, जानें इसमे कर्म करें वैसे तू भी इसको करके ( **दुर्य्यान्** ) घरो मे ( **प्रचर** ) सुख का प्रचार कर ज्ञान और अनुष्ठान कर ॥३७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर मे प्रीति संसार मे यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं वैसा ही सब मनुष्यो को करना उचित है ॥ ३७॥

इस अध्याय मे शिल्पविद्या वृष्टि की पवित्रता का सम्पादन, विद्वानों का सङ्ग यज्ञ का अनुष्ठान उत्साह आदि की प्राप्ति युद्ध का करना शिल्पविद्या की स्तुति यज्ञ के गुणो का वर्णन सत्यव्रत का धारण अग्नि जल के गुणो का वर्णन पुनर्जन्म का कथन ईश्वर की प्रार्थना यज्ञानुष्ठान माता पिता और पुत्रादिको का आपस मे अनुकरण यज्ञ की व्याख्या दिव्य बुद्धि की प्राप्ति परमेश्वर का अर्चन, सूर्य्यगुण वर्णन पदार्थों के क्रय विक्रय का उपदेश मित्रता करना धर्ममार्गों में प्रचार करना परमेश्वर वा सूर्य्य के गुणो का प्रकाश चोर आदि का निवारण ईश्वर सूर्य्यादि गुण वर्णन और यज्ञ का फल कहा है। इससे इस अध्याय के अर्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

॥ इति चतुर्थोऽध्याय ॥

## ॥ अथ पञ्चमोऽध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥ ॥**

*अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरम्भ किया जाता है—*

**अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषि । विष्णुर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*किस किस प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हवि ( **अग्ने** ) बिजुली प्रसिद्ध रूप अग्नि के ( **तनूः** ) शरीर के समान ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उसको ( **विष्णवे** ) यज्ञ की सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूँ जो ( **सोमस्य** ) जगत् मे उत्पन्न हुए पदार्थ समूह की ( **तनू** ) विस्तारपूर्वक सामग्री ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उसको ( **विष्णवे** ) वायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूँ जो ( **अतिथे** ) सन्यासी आदि का ( **आतिथ्यम** ) अतिथिपन वा उनकी सेवारूप कर्म ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उनको ( **विष्णवे** ) विज्ञान यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूँ जो ( **श्येनाय** ) श्येनपक्षी के समान शीघ्र जाने के लिये ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उस द्रव्य को अग्नि आदि मे छोड़ता हूँ जो ( **विष्णवे** ) सब विद्या कर्मयुक्त ( **सोमभृते** ) सोमो का धारण करनेवाले यजमान के लिये सुख ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उसका ग्रहण करता हूँ। जो ( **अग्नये** ) अग्नि बढ़ाने के लिये काष्ठ आदि है ( **त्वा** ) उसका स्वीकार करता हूँ। जो ( **रायस्पोषदे** ) धन की पुष्टि देने वा ( **विष्णवे** ) उत्तम कर्म विद्या की व्याप्ति के लिये समर्थ पदार्थ हैं ( **त्वा** ) उसको ग्रहण करता हूँ वैसे इन सबका सेवन तुम भी किया करो ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को उचित है कि पूर्वोक्त फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥१॥

**अग्नेर्जनित्रमित्यस्य गोतम ऋषि । विष्णुर्यज्ञो देवता । पूर्वस्यार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । गायत्रेणेत्युत्तरस्यार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थऽउर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽअसि । गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मै जो ( **अग्ने** ) आग्नेय अस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के ( **जनित्रम** ) उत्पन्न करने वाला हवि ( **असि** ) है ( **वृषणौ** ) जो वर्षा करानेवाले सूर्य और वायु ( **स्थ** ) है जो ( **उर्वशी** ) बहुत सुखो के प्राप्त करानेवाली क्रिया ( **असि** ) है जो ( **आयु** ) जीवन ( **असि** ) है जो ( **पुरूरवा** ) बहुत शास्त्रो के उपदेश करने का निमित्त ( **असि** ) है ( **त्वा** ) उस अग्नि ( **गायत्रेण** ) गायत्री ( **छन्दसा** ) आनन्दकारक स्वच्छन्द क्रिया मे ( **मन्थामि** ) विलोडन करता हूँ ( **त्वा** ) उस साम आदि आर्षाधिसमूह ( **त्रैष्टुभेन** ) त्रिष्टुप् ( **छन्दसा** ) छन्द से ( **मन्थामि** ) विलोडन करता हूँ ( **त्वा** ) और उस शत्रु दु खसमूह को ( **जागतेन** ) जगती ( **छन्दसा** ) छन्द से ( **मन्थामि** ) ताडन करके निवारण करता हूँ वैसे ही तुम भी किया करो ॥२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यो को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यज्ञ मे दूसरे मनुष्यो के लिये परोपकार करें ॥२॥

**भवत न इत्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्द ।**
**पञ्चम स्वर ॥**

*यजमान और यज्ञ की सिद्धि करनेवाले विद्वान् कैसे होने चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**भवत न. समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳहिꣳसिष्ट मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य न. ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—जो ( **अरेपसौ** ) प्राकृत मनुष्यो के भाषणरूपी वचन से रहित ( **समनसौ** ) तुल्य विज्ञानयुक्त ( **सचेतसौ** ) तुल्य ज्ञानज्ञापनयुक्त ( **जातवेदसौ** ) वेद और उपविद्याओ को सिद्ध किये हुए पढने पढानेवाले विद्वान् ( **न** ) हम लोगो के लिये उपदेश करनेवाले ( **भवतम** ) होवें । जो ( **यज्ञम** ) पढने पढाने रूप यज्ञ वा ( **यज्ञपतिम** ) विद्याप्रद यज्ञ के पालन करनेवाले यजमान को ( **मा हिंसिष्टम** ) न पीडित करें । वे ( **अद्य** ) आज ( **न** ) हम लोगो के लिये ( **शिवौ** ) मङ्गल करनेवाले ( **भवतम्** ) होवें ॥३॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को उचित है कि विद्या प्रचार के लिये पढना पढाना वा मङ्गलाचरण को न छोडें क्योकि यही सर्वोत्तम कर्म है ॥३॥

**अग्नावग्निरित्यस्य गोतम ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्द ।**

*विद्युत् और विद्वान अग्नि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽऋषीणा पुत्रोऽअभिशस्तिपावा । स न. स्योन. सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—जो ( **अभिशस्तिपावा** ) सब प्रकार हिंसा करनेवालो से रहित ( **अग्नौ** ) विद्युत् अग्नि की विद्या मे ( **प्रविष्ट** ) प्रवेश करने कराने ( **ऋषीणाम** ) वेदादि शास्त्रो के शब्द अर्थ और सम्बन्धो को यथावत् जनाने वालो का ( **पुत्र** ) पढा हुआ ( **स्योन** ) सर्वथा सुखकारी ( **सुयजा** ) विद्याओ को अच्छे प्रकार प्रत्यक्ष सङ्ग कराने हारा ( **अग्नि** ) प्रमाणात्मा ( **अप्रयुच्छन्** ) प्रमादरहित अध्यापक विद्वान् ( **चरति** ) जो ( **न** ) हम लोगो के लिये ( **इह** ) इस ससार मे ( **देवेभ्य** ) विद्वान् वा दिव्य गुणो मे ( **हव्यम** ) लेने देने योग्य पदार्थ वा ( **सदम** ) ज्ञान और ( **स्वाहा** ) हवन करने योग्य उत्तम अन्नादि को प्राप्त करता है ( **स** ) सो आप ( **यज** ) सब विद्याओ को प्राप्त कराइये ॥४॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को योग्य है कि जो अग्नि कार्य्य कारण के भेद से दो प्रकार का निश्चित अर्थात् जो कार्यरूप से सूर्याग्नि और कारण रूप से विद्युत् अग्नि सब मूर्त्तिमान् द्रव्यो मे प्रवेश कर रहा है उसका इस ससार मे विद्या से सम्प्रयोग कर कार्यों मे उपयोग करना चाहिये ॥४॥

**आपतये त्वेत्यस्य गोतम ऋषि । विद्युद्देवता । पूर्वस्याष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर । अनाधृष्टमित्यपरस्य भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*मनुष्यो को किस किस प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना बिजुली का स्वीकार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वनऽओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्य देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धा. ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—मै हे परमात्मन् ! जिस से आप हिंसारूप कर्मों से अलग रहने और रखनेवाले है इससे ( **त्वा** ) आपको ( **आपतये** ) सब प्रकार से स्वामी होने ( **परिपतये** ) सब ओर से रक्षा ( **शाक्वराय** ) सब सामर्थ्य की प्राप्ति ( **शक्वने** ) शूरवीर युक्त सेना ( **ओजिष्ठाय** ) जिसमे सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है उस विद्या के होने और ( **तनूनप्त्रे** ) जिससे उत्तम शरीर होता है उसके लिये ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । आप अपनी कृपा से उस ( **देवानाम्** ) विद्वानो का ( **अनाधृष्टम्** ) जिस का अपमान कोई नही कर सकता ( **अनाधृष्यम्** ) किसी के अपमान करने योग्य नही है ( **अनभिशस्ति** ) किसी के हिंसा करने योग्य नहीं है ( **अभिशस्तेन्यम्** ) अहिंसारूप धर्म की प्राप्ति कराने हारा ( **सत्यम्** ) अविनाशी ( **ओज** ) तेज है उसका ग्रहण कराके ( **स्विते** ) अच्छे प्रकार जिस व्यवहार मे सब सुख प्राप्त होते हैं उसमे ( **मा** ) मुझको ( **धा** ) धारण करें कि जिससे ( **सत्यम्** ) सत्य व्यवहार को ( **उपगेषम्** ) जान कर करूं ॥ ५ ॥

मै जो ( **अनाधृष्टम्** ) न हटाने ( **अनाधृष्यम्** ) न किसी से नष्ट करने ( **अनभिशस्ति** ) न हिंसा करने ( **अनभिशस्तेन्यम्** ) और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य ( **देवानाम्** ) विद्वान् वा पृथिवी आदिको के मध्य मे ( **सत्यम्** ) कारणरूप नित्य ( **ओज** ) पराक्रम स्वरूप वाली ( **अभिशस्तिपा** ) हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप बिजुली ( **असि** ) है जो ( **मा** ) मुझे ( **स्विते** ) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार मे ( **धा** ) धारण करती है ( **अञ्जसा** ) सहजता से ( **ओजिष्ठाय** ) अत्यन्त तेजस्वी ( **आपतये** ) अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार ( **परिपतये** ) जिस मे सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं ( **तनूनप्त्रे** ) जिस से उत्तम शरीरो को प्राप्त होते है ( **शाक्वराय** ) शक्ति के उत्पन्न करने और ( **शक्वने** ) शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है ( **त्वा** ) उसको ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ कि जिससे उन सत्य कारणरूप पदार्थों को ( **उपगेषम्** ) जान सकूं ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को परमेश्वर के विज्ञान के विना सत्य सुख और बिजुली आदि विद्या और क्रियाकुशलता के विना ससार के सब सुख नही हो सकते इसलिये यह कार्य्य पुरुषार्थ से सिद्ध करना चाहिये ॥ ५ ॥

**अग्ने व्रतपा इत्यस्य गोतम ऋषि । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि । सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षा दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—जिसलिये हे ( **अग्ने व्रतपते** ) जगदीश्वर ! आप वा बिजुली सत्यधर्मादि नियमो के ( **व्रतपा** ) पालन करनेवाले हैं इसलिये ( **त्वे** ) उन आप वा बिजुली मे मै ( **व्रतपा** ) पूर्वोक्त व्रतो के पालन करनेवाली क्रियावाला होता हूँ ( **या** ) जो ( **इयम्** ) यह ( **तव** ) आप और उसकी ( **तनू** ) विस्तृत व्याप्ति है ( **सा** ) वह ( **मयि** ) मुझ मे ( **यो** ) जो ( **एषा** ) यह ( **मम** ) मेरा ( **तनू** ) शरीर है ( **सा** ) सो ( **त्वयि** ) आप वा उसमे है ( **व्रतानि** ) जो ब्रह्मचर्य्यादि व्रत हैं वे मुझ मे हो और जो ( **मे** ) मुझ मे है वे ( **त्वयि** ) तुम्हारे मे है जो आप वा वह ( **तपस्पति** ) जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालन निमित्त है सो ( **मे** ) मेरे लिये ( **तप** ) पूर्वोक्त तप को ( **अनुमन्यताम्** ) विज्ञापित कीजिये वा करती है और जो आप वा वह ( **दीक्षापति** ) व्रतोपदेशो के रक्षा करने वाले है सो ( **मे** ) मेरे लिये ( **दीक्षाम्** ) व्रतोपदेश को ( **अनुमन्यताम** ) आज्ञा कीजिये वा करती है इसलिये भी ( **नौ** ) मैं और आप पढने पढाने हारे दोनो प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हो कि जिस से दोनो की विद्यावृद्धि सदा होवे ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यो को परस्पर प्रेम वा उपकार बुद्धि से परमात्मा वा बिजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान से पुरुषार्थ मे निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

**अꣳशुरित्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । आद्यस्यार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर । आप्यायतामन्तस्यार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर यह ईश्वर बिजुली और विद्वान कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे । आ तुभ्यमिन्द्र. प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व । आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय । एष्टा राय. प्रेषे भगायऽऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) पदार्थविद्या को जानने वा ( **देव** ) दिव्यगुणसम्पन्न जगदीश्वर ! विद्वन् ! विद्युद्वा जिससे ( **ते** ) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य ( **अꣳशुरꣳशु** ) अवयव अवयव, अङ्ग अङ्ग को ( **आप्यायताम्** ) रक्षा से बढा अथवा बढाती है ( **इन्द्र** ) जो आप वा बिजुली ( **एकधनविदे** ) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होनेवाले ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्ययुक्त मेरे लिये ( **आप्यायताम** ) बढावें वा बढाती है ( **आप्यायस्व** ) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है । वह आप बिजुली आदि पदार्थ के ठीक ठीक पदार्थों की प्राप्ति को ( **सन्न्या** ) प्राप्ति करानेवाली ( **मेधया** ) प्रज्ञा से ( **अस्मान्** ) हम ( **सखीन्** ) सब के मित्रों को ( **आप्यायस्व** ) बढाइये वा बढाव जिससे ( **स्वस्ति** ) सुख सदा बढता रहे । ( **सोम** ) हे पदार्थविद्या को जाननेवाले

ईश्वर वा विद्वान् ! आप की शिक्षा वा बिजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम उत्तम उत्पन्न करनेवाली क्रिया में कुशल होके ( इष ) सिद्धि की इच्छा वा अन्न आदि ( भगाय ) ऐश्वर्य्य के लिये ( एष्टा ) अभीष्ट सुखो को प्राप्त कराने वाले ( राय ) धनसमूहो को ( अशीय ) प्राप्त होऊं और ( ऋतवादिभ्य ) सत्य वादी विद्वानो को यह धन देके सत्य विद्या और ( द्यावापृथिवीभ्याम ) प्रकाश वा भूमि से ( ऋतम ) अन्न को प्राप्त होऊ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करनेवाली ओषधियो और अनेक प्रकार के धनो का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब प्राणियो को भोगें ॥ ७ ॥

या त इत्यस्य गोतम ऋषि । अग्निर्देवता । पूर्वस्य विराडार्षी बृहती छन्द । या त इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*फिर बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**या तेऽअग्नेऽय'शुया तुनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत स्वाहा। या तेऽअग्ने रजःशुया तुनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने हरिशुया तुनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम को ( या ) जो ( ते ) इस ( अग्ने ) बिजुली रूप अग्नि का ( अय शया ) सुवर्णादि में सोने ( वर्षिष्ठा ) अत्यन्त बड़ा (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में रहनेवाला ( तनू ) शरीर ( उग्रम् ) क्रूर भयङ्कर ( वच ) वचन को ( अपावधीत ) नष्ट करता और ( त्वेषम् ) प्रदीप्त ( वच ) शब्द वा (स्वाहा) उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को ( अपावधीत ) दूर करता और जो ( ते ) इस ( अग्ने ) बिजुलीरूप अग्नि का ( वर्षिष्ठा ) अत्यन्त विस्तीर्ण (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर मे स्थित होने ( रज शया ) लोको मे सोनेवाला ( तनू ) शरीर ( उग्रम् ) क्रूर ( वच ) वचन को ( अपावधीत ) नष्ट करता है ( त्वेषम ) प्रदीप ( वच ) कथन वा ( स्वाहा ) उत्तम वाणी को ( अपावधीत ) नष्ट करता है उसको जान के उससे कार्य्य लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों मे रहनेवाली जो बिजुली की व्याप्ति है उस को अच्छे प्रकार जानकर उपयुक्त करके सब दु खो का नाश करें ॥ ८ ॥

तप्तायनीत्यस्य गोतम ऋषि । अग्निर्देवता । प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । विदेदग्निरित्यस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर । नाम्नेहीत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती छन्द । निषाद स्वर । अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्। विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे विद्या के ग्रहण करनेवाले विद्वन् ! जैसे मैं ( यत ) जो ( तप्तायनी ) स्थापनीय वस्तुओ के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला ( असि ) है वा जो ( वित्तायनी ) भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त करानेवाली बिजुली ( असि ) है ( त्वा ) उसकी विद्या को जानता हूँ वैसे तू भी इस को ( मे ) मुझ से ( एहि ) प्राप्त हो। जैसे यह ( यत ) जो ( अग्नि ) प्रसिद्ध अग्नि ( नभ ) जल वा प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ ( मा ) मुझ को ( व्यथितात् ) भय से ( अवतात् ) रक्षा करता वा ( नाथितात ) ऐश्वर्य से ( अवतात् ) रक्षा करता है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा। जैसे मैं ( तेन ) उस साधन से जो ( अग्ने ) जाठर रूप ( अङ्गिर ) अङ्गो मे रहनेवाला अग्नि ( आयुना ) जीवन वा ( नाम्ना ) प्रसिद्धि से ( अस्याम् ) इस ( पृथिव्याम ) पृथिवी मे ( नाम ) प्रसिद्ध है ( त्वा ) उसको जानता हूँ वैसे तू भी इसको ( मे ) मुझ से ( एहि ) अच्छे प्रकार जान। जैसे मैं ( तेन ) उस ज्ञान से ( यत ) जो (अनाधृष्टम) नही नष्ट होने योग्य (यज्ञियम्) यज्ञाङ्गसमूह ( नाम ) प्रसिद्ध तेज है ( त्वा ) उसको ( देववीतये ) दिव्यगुणो की प्राप्ति के लिये ( त्वा ) उस यज्ञ को ( आदधे ) धारण करता हूँ वैसे तू उस से इस की उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और वैसे सब मनुष्य भी उस से इस को ( विदेत् ) प्राप्त होवें। जैसे मैं (तेन) जो ( द्वितीयस्याम् ) दूसरी (पृथिव्याम) भूमि में (अग्ने अङ्गिरः ) अङ्गारो मे रहनेवाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से ( नाम ) प्रसिद्ध है वा ( य ) जो ( नभ ) सुख को देता है (तेन, त्वा) उसमें उसको प्राप्त हुआ हूँ वैसे तू उससे इसको ( एहि ) जान और सब मनुष्य भी उससे इसको ( विदेत् ) प्राप्त हों। जैसे मैं ( तेन ) पुरुषार्थ से जो ( अनाधृष्टम् ) प्रगल्भगुणसहित ( यज्ञियम् ) यज्ञसम्बन्धी ( नाम ) प्रसिद्ध तेज है ( त्वा ) उसे भोगो की प्राप्ति के लिये ( आदधे ) धारण कारण करता हूँ तथा तू उसके लिये धारण कर और सब मनुष्य भी ( विदेत ) धारण करें। जैसे मैं ( तेन ) उस क्रिया कौशल से जो ( अग्नि ) अग्नि ( आयुना ) जीवन वा प्रसिद्धि से ( अङ्गिर ) अङ्गो का सूर्यरूप से पोषण करता हुआ ( नाम ) प्रसिद्धि है वा जो ( नभ ) आकाश को प्रकाशित करता है ( त्वा ) उसको धारण करता हूँ वैसे तू उसको धारण कर वा सब लोग भी ( अनुविदेत ) उस को ठीक ठीक जान के साथ सिद्ध करे। जैसे मैं ( तेन ) इन्धनादि सामग्री से जो ( अनाधृष्टम ) प्रगल्भसहित ( यज्ञियम् ) शिल्प विद्यासम्बन्धी ( नाम ) प्रसिद्ध तेज है ( त्वा ) उस को विद्वानो की प्राप्ति के लिये ( आदधे ) धारण करता हूँ वैसे तू उससे उसकी प्राप्ति के लिये ( अन्वेहि ) खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से सम्प्रयोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रसिद्ध सूर्य बिजुली रूप मे तीन प्रकार का अग्नि सब लोगों मे बाहिर भीतर रहनेवाला है उसको जानें और जनाकर सब मनुष्यो को कार्यसिद्धि का सम्पादन करना और कराना चाहिये ॥ ९ ॥

सिंह्यसीत्यस्य गोतम ऋषि । वाग्देवता । ब्राह्म्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ।

*अब अगले मन्त्र मे सब विद्याओं का मुख्य सिद्धि करनवाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है—*

**सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यं कल्पस्व सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यं। शुन्धस्व सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यं शुम्भस्व ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो ( सपत्नसाही ) जिससे शत्रुओ को सहन करते है वह ( देवेभ्य ) उत्तम गुण शूरवीरो के लिए ( कल्पस्व ) पढ़ा और उपदेश करके प्राप्त कर ( सिंही ) जो दोषो को नष्ट करने वा शब्दो का उच्चारण करने वाली वाणी ( असि ) है उसका ( देवेभ्य ) विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यो के लिए ( शुन्धस्व ) शुद्धता से प्रकाशित कर। जो ( सपत्नसाही ) दोषो को हनन वा ( सिंही ) अविद्या के नाश करनेवाली वाणी ( असि ) है उसको ( देवेभ्य ) धार्मिको के लिये ( शुन्धस्व ) शुद्ध कर और जो ( सपत्नसाही ) दुष्ट स्वभाव और ( सिंही ) दुष्ट दोषो को नाश करनेवाली वाणी ( असि ) है उसको ( देवेभ्य ) सुशील विद्वानो के लिए ( शुम्भस्व ) शोभायुक्त कर ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यो को अति उचित है कि जो इस संसार मे तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई दूसरी सत्य भाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुणसहित उनका स्वीकार करें ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतम ऋषि । वाग्देवता । निचृद्ब्राह्मी । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर वह कैसा और कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**इन्द्रघोषस्त्वा वसुभि' पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रै' पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणत पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे ( प्रचेता ) उत्तम ज्ञानयुक्त (इन्द्रघोष ) परमात्मा वेदविद्या और बिजुली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धो के बोध-वाला ( विश्वकर्मा ) सब कर्मवाला मैं ( यज्ञात ) पढना पढ़ाना वा होमरूप यज्ञ से ( इदम् ) आभ्यन्तर मे रहनेवाले ( तप्तम् ) तप्त जल ( बहिर्धा ) बाहर धारण होनेवाले शीतल ( वा ) जल को ( नि सृजामि ) सम्पादन करता वा नि क्षेप करता हूँ वैसे आप भी कीजिये। जो ( वसुभि ) अग्नि आदि पदार्थ वा चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए मनुष्यो के साथ वर्त्तमान ( इन्द्रघोष ) परमेश्वर जीव और बिजुली के अनेक शब्द सम्बन्धी वाणी है उसको ( पुरस्तात् ) पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूँ वैसे आप भी ( पातु ) रक्षा करो जो ( रुद्रै ) प्राण वा चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानो के साथ वर्त्तमान ( प्रचेता ) उत्तम ज्ञान करने वाली वाणी है उसकी ( पश्चात ) पश्चिम देश से रक्षा करता हूँ वैसे आप भी ( पातु ) रक्षा करें जो ( पितृभि ) ज्ञानी वा ऋतुओ के साथ वर्त्तमान (मनोजवा ) मन के समान वेगवाली वाणी है उसका ( दक्षिणत ) दक्षिण देश से पालन करता हूँ वैसे आप भी ( पातु ) रक्षा करें जो ( आदित्य ) बारह महीनो वा अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानो के साथ वर्त्तमान ( विश्वकर्मा ) सब कर्मयुक्त वाणी है उसकी ( उत्तरत ) उत्तर देश से पालन करता हूँ वैसे आप भी ( पातु ) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को योग्य है कि जो वसु रुद्र आदित्य और पितरो से सेवन की हुई वा यज्ञ का सिद्ध करनेवाली वाणी वा जल को सेवन विद्या वा उत्तम क्रिया के साथ बिजुली है उसके सेवन मे निरन्तर वर्तें ॥ ११ ॥

सिंह्यसीत्यस्य गोतम ऋषि । वाग्देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सिंह्यसि स्वाहा सिंह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिंह्यसि ब्रह्मवनिः**

**क्षत्रवनि स्वाहा सिंहास्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनि स्वाहा सिंहास्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—मैं जो ( **आदित्यवनि** ) मासों का सेवन और सिंही क्रूरत्व आदि दोषों का नाश करनेवाली ( **स्वाहा** ) ज्योति शास्त्र से संस्कारयुक्त वाणी ( **असि** ) है जो ( **ब्रह्मवनि** ) परमात्मा वेद और वेद के जाननेवाले मनुष्यों के सेवन और ( **सिंही** ) बल के जाड्यपन का दूर करनेवाली ( **स्वाहा** ) पढ़ने पढ़ाने व्यवहारयुक्त वाणी ( **असि** ) है जो ( **क्षत्रवनि** ) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और ( **सिंही** ) चोर शत्रु अन्याय का नाश करनेवाली ( **स्वाहा** ) राज्य व्यवहार में कुशल वाणी ( **असि** ) है जो ( **रायस्पोषवनि** ) विद्या धन की पुष्टि का सेवन और ( **सिंही** ) अविद्या का दूर करनेवाली ( **स्वाहा** ) वाणी ( **असि** ) है जो ( **सुप्रजावनि** ) उत्तम प्रजा का सेवन और ( **सिंही** ) सब दुष्टों का नाश और ( **स्वाहा** ) व्यवहार में धन को प्राप्त करानेवाली वाणी ( **असि** ) है और जो ( **यजमानाय** ) विद्वानों के पूजन करनेवाले यजमान के लिए ( **स्वाहा** ) दिव्य विद्या सम्पन्न वाणी ( **देवान्** ) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को ( **आवह** ) प्राप्त करती है ( **त्वा** ) उसको ( **भूतेभ्य** ) सब प्राणियों के लिए ( **यज्ञात** ) यज्ञ से ( **निःसृजामि** ) सम्पादन करता हूँ ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से ( यज्ञात ) ( नि ) ( सृजामि ) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार लक्षणयुक्त वाणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ा कर सदा आनन्द में रहें ॥ १२ ॥

**ध्रुवोऽसीत्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । भुरिगाष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर यह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्ने पुरीषमसि ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यह ( **ध्रुव** ) निश्चल ( **पृथिवीम** ) भूमि को बनाता ( **असि** ) है उसको तुम ( **दृंह** ) बढ़ाओ जो ( **ध्रुवक्षित** ) निश्चित सुख और शास्त्रों का निवास करानेवाला ( **असि** ) है वा ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश में रहने वाले पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम ( **दृंह** ) बढ़ाओ जो ( **अच्युतक्षित** ) नाशरहित पदार्थों का निवास करानेवाला ( **असि** ) है वा ( **दिवम** ) विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है उसको तुम ( **दृंह** ) बढ़ाओ जो ( **अग्ने** ) बिजुली आदि अग्नि वा ( **पुरीषम** ) पशुओं की पूर्ति करनेवाला यज्ञ ( **असि** ) है उसका अनुष्ठान तुम किया करो ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से सिद्ध वा त्रिलोकी के पदार्थों को पुष्ट करनेवाले विद्या क्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को रक्खें ॥ १३ ॥

**युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषि । सविता देवता । स्वराडार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र में योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—*

**युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥१४**

**पदार्थ**—जैसे जो ( **विहोत्रा** ) दान लेने वाले ( **विप्रा** ) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस ( **बृहत** ) सब से बड़े ( **विप्रस्य** ) अनन्त ज्ञान कर्मयुक्त ( **विपश्चित** ) सब विद्या सहित ( **सवितु** ) सकल जगत् के उत्पादक ( **देवस्य** ) सब के प्रकाश करनेवाले महेश्वर की ( **मही** ) बड़ी ( **परिष्टुति** ) सब प्रकार की स्तुतिरूप ( **स्वाहा** ) सत्यवाणी को जान उसमें ( **मन** ) मन को ( **युञ्जते** ) युक्त करते हैं ( **उत** ) और ( **धिय** ) बुद्धियों को भी ( **युञ्जते** ) स्थिर करते हैं वैसे ( **वयुनावित** ) उत्तम कर्मों का जाननेवाला ( **एक** ) सहाय रहित मैं उसको जान उसमें अपना मन और बुद्धि को ( **विदध** ) सदा निरन्तर विधान कर रखता हूँ ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के सङ्ग से विद्या को पा सुखी हो अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥ १४ ॥

**इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिऋषि । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥१५**

**पदार्थ**—( **विष्णु** ) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उसको ( **विचक्रमे** ) रचता हुआ ( **इदम** ) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को ( **त्रेधा** ) तीन प्रकार का धारण करता है ( **अस्य** ) इस प्रकाशवान् प्रकाशरहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप ( **स्वाहा** ) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ ( **इदम** ) इस ( **समूढम** ) अच्छे प्रकार विचार करके कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को ( **पांसुरे** ) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाशवाले सूर्यादि दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत है उस सब को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उनमें से ओषधि आदि पृथिवी में प्रकाश आदि सूर्यलोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है। इस लिखे हुए शतपथ के प्रमाण से गय शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है इसमें महीधर जो कहता है त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ १५ ॥

**इरावतीत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विष्णुर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुपछन्द । धैवत स्वर ।**

*अगले मन्त्र में ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है—*

**इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या । व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्त्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥ १६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विष्णो** ) सर्वव्यापी जगदीश्वर ! जो आप जिस ( **इरावती** ) उत्तम अन्नयुक्त ( **धेनुमती** ) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशुयुक्त ( **सूयवसिनी** ) बहुत मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी ( **पृथिवीम्** ) भूमि ( **हि** ) निश्चय करके ( **स्वाहा** ) वेदवाणी वा ( **भूतम** ) उत्पन्न हुए सब जगत् को ( **मयूख** ) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से ( **अभित** ) सब ओर से ( **दाधर्थ** ) धारण और ( **रोदसी** ) प्रकाश वा पृथिवीलोक का ( **व्यस्कभ्ना** ) सम्यक् स्तम्भन करते हो उन ( **मनवे** ) विज्ञानयुक्त ( **दशस्या** ) दशन अर्थात् दांतों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आपके लिये ( **एते** ) ये हम लोग सब जगत् का निवेदन करते हैं ॥ १ ॥ जो ( **विष्णो** ) व्यापनशील प्राण जो ( **इरावती** ) उत्तम अन्नयुक्त ( **धेनुमती** ) पशुसहित ( **सूयवसिनी** ) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि वा वाणी है उस ( **पृथिवीम** ) भूमि ( **स्वाहा** ) वा इन्द्रिय को ( **मयूख** ) किरणों अपने बल आदि ( **अभित** ) सब प्रकार ( **दाधर्थ** ) धारण करता वा ( **रोदसी** ) प्रकाश भूमि का ( **व्यस्कभ्ना** ) स्तम्भन करता है उस ( **दशस्या** ) दशन और दांत के समान आचरण करने वा ( **मनवे** ) विज्ञापनयुक्त सूर्य के लिये ( **भूत हि** ) निश्चय करके सब जगत को करने के लिये ईश्वर ने दिया है ऐसा ( **एते** ) ये सब हम लोग जानते हैं ॥ २ ॥ ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है वैसे ही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है ॥ १६ ॥

**देवश्रुताविरयस्य वसिष्ठ ऋषि । विष्णुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**देवश्रुतौ देवेष्वा घोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमा वदतं देवी दुर्ये ऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम जैसे जो ( **देवेषु** ) विद्वान् वा दिव्यगुणों में ( **देवश्रुतौ** ) विद्वानों से श्रवण किये हुए प्राण अपान वायु ( **घोषतम्** ) व्यक्त शब्द कर और जो ( **प्राची** ) प्राप्त करने वा ( **कल्पयन्ती** ) सामर्थ्य वाली प्रकाश भूमि ( **ऊर्ध्वम्** ) उत्तम गुणयुक्त ( **यज्ञम्** ) विज्ञान वा शिल्पमय यज्ञ को ( **प्रेतम्** ) जनाते रहें ( **नयतम्** ) प्राप्त करें ( **मा जिह्वरतम्** ) कुटिल गति वाले न हों जो ( **देवी** ) दिव्यगुण सम्पन्न ( **दुर्ये** ) गृहरूप ( **स्वम्** ) अपने ( **गोष्ठम्** ) किरण और अवयवों के स्थान को ( **आवदतम** ) उपदेश निमित्तक हों ( **आयु** ) आयु को ( **मा निर्वादिष्टम्** ) नष्ट न करें ( **प्रजाम** ) उत्पन्न हुई सृष्टि को ( **मा निर्वादिष्टम** ) न नष्ट करें और वे ( **पृथिव्या** ) आकाश के मध्य ( **अत्र** ) इस ( **वर्ष्मन्** ) सुख से सेवनयुक्त जगत् में ( **रमेथाम** ) रमण कराया किया करो ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को जितना जगत् अन्तरिक्ष में वसता है उतने से बहुत बहुत उत्तम सुखों का सम्पादन करना चाहिये ॥ १७ ॥

**विष्णोर्नु कमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषि । विष्णुर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र में व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—*

**विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि । योऽअस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥१८**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम ( **य** ) जो ( **विचक्रमाण** ) जगत् रचने के लिये कारण के अंशों को युक्त करता हुआ ( **उरुगाय** ) बहुत अर्थों को वेद द्वारा उपदेश करने वाला जगदीश्वर ( **पार्थिवानि** ) पृथिवी के विकार अर्थात् पृथिवी के गुणों से उत्पन्न होने वाले या अन्तरिक्ष में विदित ( **त्रेधा** ) तीन प्रकार के ( **रजांसि** ) लोकों को ( **विममे** ) अनेक प्रकार से रचता है जो ( **उत्तरम्** ) पिछले अवयवों के ( **सधस्थम्** ) साथ रहने वाले कारण को ( **अस्कभायत्** ) रोक रखता है ( **य** ) जो ( **विष्णवे** ) उपासनादि यज्ञ के लिये आश्रय किया जाता है उस ( **विष्णो** ) व्यापक परमेश्वर के ( **वीर्याणि** ) पराक्रमयुक्त कर्मों का ( **प्रवोचम्** ) कथन करूं और हे परमेश्वर ! ( **नु** ) शीघ्र ही ( **कम्** ) सुखस्वरूप ( **त्वा** ) आपका आश्रय करता हूं ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने पृथिवी सूर्य और त्रसरेणु आदि भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना करनी चाहिये ॥ १८ ॥

**दिवो वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विष्णो** ) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप कृपा करके हम लोगों को ( **दिवः** ) प्रसिद्धि वा बिजुलीरूप अग्नि से ( **वसुना** ) द्रव्य के साथ ( **आपृणस्व** ) सुखों से पूर्ण कीजिये और ( **पृथिव्याः** ) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ ( **उत** ) भी ( **वा** ) अथवा ( **महः** ) महत्तत्त्व अव्यक्त और ( **उत** ) भी ( **उरोः** ) बहुत ( **अन्तरिक्षात्** ) अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को ( **हि** ) निश्चय करके पूर्ण कीजिये ( **विष्णो** ) सब में प्रविष्ट ईश्वर ! आप ( **दक्षिणात्** ) दक्षिण ( **उत** ) और ( **सव्यात्** ) वाम पार्श्व से सुखों को दीजिये ( **त्वा** ) उस आप को ( **विष्णवे** ) योग विज्ञान यज्ञ के लिये पूजन करते हैं ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर ने महत्तत्त्व सूर्य भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओषधि आदि वा मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुखों का धारण करता है उसी की उपासना करें ॥ १९ ॥

**प्र तद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२०॥**

**पदार्थ**—( **यस्य** ) जिसके ( **उरुषु** ) अत्यन्त ( **त्रिषु, विक्रमणेषु** ) विविध प्रकार के क्रमों में ( **विश्वा** ) सब ( **भुवनानि** ) लोक ( **अधिक्षियन्ति** ) निवास करते हैं और ( **वीर्येण** ) अपने पराक्रम से ( **भीमः** ) भय करने वाले ( **कुचरः** ) निन्दित प्राणिवध को करने और ( **गिरिष्ठाः** ) पर्वत में रहने वाले ( **मृगः** ) सिंह के ( **न** ) समान पापियों को ताड़ना देता हुआ ( **प्रस्तवते** ) उपदेश करता है ( **तत्** ) इस से उसको कभी न भूलना चाहिये ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है ॥ २० ॥

**विष्णो रराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है वह ( **विष्णोः** ) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से ( **रराटम्** ) उत्पन्न होकर प्रकाशित है ( **विष्णोः** ) सर्वसुख प्राप्त करनेवाले ईश्वर से ( **स्यूः** ) विस्तृत ( **असि** ) है । सब जगत् ( **वैष्णवम्** ) यज्ञ का साधन ( **असि** ) है और ( **विष्णोः** ) सब में प्रवेश करनेवाले जिस ईश्वर के ( **श्नप्त्रे** ) जड़ चेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर ! हम लोग ( **त्वा** ) आप को ( **विष्णवे** ) यज्ञ वा अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करनेवाला व्यापक इष्टदेव है ऐसा जानकर सब कामनाओं की सिद्धि करें ॥ २१ ॥

**देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । आददे इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि । बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं ( **देवस्य** ) सबको प्रकाश करने आनन्द देने वा ( **सवितुः** ) सकल जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए संसार में जिस यज्ञ का ( **आददे** ) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी ( **त्वा** ) उसको ग्रहण कर जैसे मैं ( **नारी** ) यज्ञक्रिया वा ( **इदम्** ) यज्ञ के अनुष्ठान का ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी ग्रहण कर जैसे ( **अहम्** ) मैं ( **रक्षसाम्** ) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुओं के ( **ग्रीवाः** ) शिरों को भी ( **अपिकृन्तामि** ) छेदन करता हूँ वैसे तुम भी छेदन करो । जैसे मैं इस अनुष्ठान से ( **बृहद्रवाः** ) बड़ा यश पाया वा बड़ा होता हूँ वैसे तू भी हो और जैसे मैं ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( **बृहतीम्** ) बड़ी ( **वाचम्** ) वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तू भी ( **वद** ) कर ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्यों में उपयोग कर सुखों को प्राप्त करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुँचना चाहिये ॥ २२ ॥

**रक्षोहणमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । मध्यमस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । यम्मे सबन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड् ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*सृष्टि से मनुष्यों को किस का उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**रक्षोहणं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे ( **अहम्** ) मैं ( **बलगहनम्** ) बलों को बिलोलने और ( **रक्षोहणम्** ) राक्षसों के हनन करनेवाले कर्म और ( **वैष्णवीम्** ) व्यापक ईश्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके ( **यम्** ) जिस ( **बलगम्** ) बल प्राप्त करानेवाले यज्ञ को ( **उत्किरामि** ) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूँ ( **तम्** ) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी ( **इदम्** ) इसको प्रकाशित कर और जैसे ( **मे** ) मेरा ( **निष्ट्यः** ) यज्ञ में कुशल ( **अमात्यः** ) मेधावी विद्वान् मनुष्य ( **यम्** ) जिस यज्ञ वा ( **इदम्** ) भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को ( **निचखान** ) निःसन्देह करता है वैसे ( **तम्** ) उसको तेरा भी भृत्य खोदे । जैसे ( **अहम्** ) भूगर्भविद्या का जाननेवाला मैं ( **यम्** ) जिस ( **बलगम्** ) बल प्राप्त करनेवाले खेती आदि यज्ञ वा ( **इदम्** ) खननरूपी कर्म को ( **उत्किरामि** ) अच्छे प्रकार सम्पादन करता हूँ वैसे ( **तम्** ) उस को तू भी कर जैसे ( **मे** ) मेरा ( **समानः** ) सदृश वा असदृश मनुष्य ( **यम्** ) जिस कर्म को ( **निचखान** ) खनन करता है वैसे तेरा भी खोदे जैसे ( **अहम्** ) पढ़ने पढ़ाने वाला मैं ( **यम्** ) जिस ( **बलगम्** ) आत्मबल प्राप्त करनेवाले यज्ञ वा ( **इदम्** ) इस पढ़ने पढ़ाने रूपी कार्य को ( **उत्किरामि** ) सम्पन्न करता हूँ वैसे ( **तम्** ) उसको तू भी कर जैसा ( **मे** ) मेरा ( **सबन्धुः** ) तुल्य बन्धु मित्र वा ( **असबन्धुः** ) तुल्य बन्धु रहित अमित्र ( **यम्** ) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को ( **निचखान** ) निःसन्देह करता है वैसे उसको तेरा भी करे जैसे ( **अहम्** ) सब का मित्र मैं ( **यम्** ) जिस ( **बलगम्** ) राज्यबल प्राप्त करनेवाले यज्ञ वा ( **इदम्** ) इस कार्य को ( **उत्किरामि** ) सम्पन्न करता हूँ वैसे ( **तम्** ) उसको तू भी कर जैसे ( **सजातः** ) साथ उत्पन्न हुआ ( **असजातः** ) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य ( **यम्** ) जिस यज्ञ वा ( **कृत्याम्** ) उत्तम क्रिया को ( **निचखान** ) निःसन्देह करता है वैसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे । जैसे मैं इस सब कर्म को ( **उत्किरामि** ) सम्पादन करता हूँ वैसे तुम भी करो ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये ॥ २३ ॥

**स्वराडसीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । सूर्यविद्वांसौ देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—*

**स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्य ! जिस कारण आप ( **स्वराट्** ) अपने आप प्रकाशमान ( **असि** ) हैं इससे ( **सपत्नहा** ) शत्रुओं के मारनेवाले होते हो जिस कारण तुम ( **सत्रराट्** ) यज्ञों में प्रकाशमान हो इससे ( **अभिमातिहा** ) अभिमानयुक्त मनुष्यों को मारने वाले होते हो जिस से ( **जनराट्** ) धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं इस से ( **रक्षोहा** ) राक्षस दुष्टों को मारने वाले होते हैं जिससे आप ( **सर्वराट्** ) सब में प्रकाशित हैं, इससे ( **अमित्रहा** ) अमित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले होते हैं ॥ १ ॥ जिस कारण यह सूर्यलोक ( **स्वराट्** ) अपने आप ( **असि** ) प्रकाशित है इससे ( **सपत्नहा** ) मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है जिस कारण यह ( **सत्रराट्** ) यज्ञों में प्रकाशित ( **असि** ) है इससे ( **अभिमातिहा** ) अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है, जिस कारण यह ( **जनराट्** ) धार्मिक

विद्वानों के मन में प्रकाशित ( **असि** ) है जिससे ( **रक्षोहा** ) राक्षस वा दुष्टों का हनन करने वाला होता है। जिससे यह ( **सवराट्** ) राज्य में प्रकाशमान ( **असि** ) है इससे ( **अभिमहा** ) दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही तू भी सब शत्रुओं का निवारण कर प्रजा को सुखी कर ॥ २४ ॥

**रक्षोहण इत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । बलगहना उपदधामीत्युत्तरस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*यजमान सभा आदि के अध्यक्ष वा यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री का ग्रहण करना इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**र॒क्षो॒हणो॑ वो बलग॒हन॒: प्रोक्षा॑मि वैष्ण॒वान्र॑क्षो॒हणो॑ वो बलग॒हनोऽव॑नयामि वैष्ण॒वान्र॑क्षो॒हणो॑ वो बलग॒हनोऽव॑स्तृणामि वैष्ण॒वान्र॑क्षो॒हणौ॑ वां बलग॒हना॒ऽउप॑ दधामि वैष्ण॒वी र॑क्षो॒हणौ॑ वां बलग॒हनौ॒ पर्यू॑हामि वैष्ण॒वी वैष्ण॒वम॑सि वैष्ण॒वा स्थ॑ ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! जैसे तुम ( **रक्षोहणः** ) दुःखों का नाश करने वाले हो वैसे शत्रुओं के बल का अस्तव्यस्त करने हारा मैं ( **वैष्णवान्** ) यज्ञ देवता वाले ( **वः** ) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से ( **प्रोक्षामि** ) इन घमण्डी मनुष्यों को शुद्ध करूं जैसे आप ( **रक्षोहणः** ) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने वाले हैं वैसे ( **बलगहनः** ) शत्रुसेना की थाह लेने वाला मैं ( **वैष्णवान्** ) यज्ञसम्बन्धी ( **वः** ) तुम को सत्यों से मान्य कर लज्जा को ( **अवनयामि** ) दूर करता हूं जैसे ( **बलगहनः** ) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं ( **रक्षोहणः** ) शत्रुओं को मारने वा ( **वैष्णवान्** ) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले ( **वः** ) तुम को ( **अवस्तृणामि** ) सुख से आच्छादित करता हूं वैसे तुम भी किया करो जैसे ( **रक्षोहणौ** ) राक्षसों के मारने वा ( **बलगहनौ** ) बलों को विलोडन करने वाले ( **वाम्** ) यज्ञपति वा यज्ञ कराने वाले विद्वान् को धारण करते हो वैसे मैं भी ( **उपदधामि** ) धारण करता हूं जैसे ( **रक्षोहणौ** ) राक्षसों के मारने ( **बलगहनौ** ) बलों को विलोडन वाले ( **वाम्** ) प्रजा सभाध्यक्ष आप ( **वैष्णवी** ) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों की क्रिया वा ( **वैष्णवम्** ) जो विष्णु सम्बन्धी ज्ञान है इन सब को तर्क से जानते हैं वैसे मैं भी ( **पर्यूहामि** ) तर्क से अच्छे प्रकार जानूं और जैसे आप सब लोग ( **वैष्णवाः** ) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले ( **स्थ** ) हैं वैसा मैं भी होऊं ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार है। मनुष्यों को परमेश्वर की उपासनायुक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण करके यज्ञ से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पालना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

**देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । यवोऽसीत्युत्तरस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*किस लिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आ द॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वाऽअपि॑कृन्तामि । यवो॑ऽसि य॒वया॒स्मद्द्वेषो॑ य॒वयारा॑तीर्दि॒वे त्वा॒ऽन्तरि॑क्षाय त्वा पृथि॒व्यै त्वा॒ शुन्ध॑न्तांल्लो॒काः पि॑तृ॒षद॑नाः पितृ॒षद॑नमसि ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं ( **सवितुः** ) सब जगत् के उत्पन्न करने और ( **देवस्य** ) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए संसार में ( **अश्विनोः** ) प्राण और अपान के ( **बाहुभ्याम्** ) बल और वीर्य तथा ( **पूष्णः** ) अतिपुष्ट वीर के ( **हस्ताभ्याम्** ) प्रबल प्रतापयुक्त भुजा और दण्ड से अनेक उपकारों को ( **आददे** ) लेता वा ( **इदम्** ) इस जगत् की रक्षा कर ( **रक्षसाम्** ) दुष्टकर्म करने वाले प्राणियों के ( **ग्रीवाः** ) शिरों का ( **अपि कृन्तामि** ) छेदन ही करता हूं तथा जैसे पदार्थों को उत्तम गुणों से मेल करता हूं वैसे तू भी उपकार ले और ( **यवय** ) उत्तम गुणों से पदार्थों का मेल कर जैसे मैं ( **द्वेषः** ) ईर्ष्या आदि दोष वा ( **अरातीः** ) शत्रुओं को ( **अस्मत्** ) अपने से दूर करता हूं वैसे तू भी ( **यवय** ) दूर कर। हे विद्वन् ! जैसे हम लोग ( **दिवे** ) ऐश्वर्य्यादि गुण के प्रकाश होने के लिए ( **त्वा** ) तुझको ( **अन्तरिक्षाय** ) आकाश में रहने वाले पदार्थ को शोधने के लिए ( **त्वा** ) तुझ को ( **पृथिव्यै** ) पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि होने के लिए ( **त्वा** ) तुझ को सेवन करते हैं वैसे तुम लोग भी करो। जैसे ( **पितृषदनम्** ) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान ( **असि** ) है और जिस से ( **पितृषदनाः** ) जैसे ज्ञानियों में ठहर पवित्र होते हैं वैसे मैं शुद्ध होऊं तथा सब मनुष्य ( **शुन्धन्ताम्** ) अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री ! तू भी यह सब इसी प्रकार कर ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि ठीक ठीक क्रियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान करके सब प्रकार से अपनी शुद्धि करें ॥ २६ ॥

**उद्दिवमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभापति और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उद्दिवꣳ स्तभाना॒न्तरि॑क्षं पृण॒ दृꣳह॑स्व पृथि॒व्यां द्यु॑ता॒नस्त्वा॑ मारु॒तो मि॑नोतु मि॒त्रावरु॑णौ ध्रु॒वेण॒ धर्म॑णा । ब्र॒ह्म॒वनि॑ त्वा क्षत्र॒वनि॑ रायस्पोष॒वनि॒ पर्यू॑हामि । ब्रह्म॑ दृꣳह क्ष॒त्रं दृꣳहायु॑र्दृꣳह प्र॒जां दृꣳह ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे परमविद्वन् ! जैसे ( **त्वा** ) आपको ( **मारुतः** ) वायु ( **ध्रुवेण** ) निश्चल ( **धर्मणा** ) धर्म से ( **मिनोतु** ) प्रयुक्त करे ( **मित्रावरुणौ** ) प्राण और अपान भी धर्म से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप कृपा करके लोगों के लिए ( **दिवम्** ) विद्या गुणों के प्रकाश को ( **उत्स्तभान** ) अज्ञान से उघाड़ देओ तथा ( **अन्तरिक्षम्** ) सब पदार्थों के अवकाश को ( **पृण** ) परिपूर्ण कीजिए ( **पृथिव्याम्** ) भूमि पर ( **द्युतानः** ) सद्विद्या के गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को ( **दृꣳहस्व** ) बढ़ाइए ( **ब्रह्म** ) वेदविद्या को ( **दृꣳह** ) बढ़ाइए ( **क्षत्रम्** ) राज्य को बढ़ाइए ( **आयुः** ) अवस्था को ( **दृꣳह** ) बढ़ाइए और ( **प्रजाम्** ) उत्पन्न हुई प्रजा को ( **दृꣳह** ) वृद्धियुक्त कीजिए। इसीलिए मैं ( **ब्रह्मवनि** ) ब्रह्मविद्या को सेवन वा करने कराने ( **क्षत्रवनि** ) राज्य को सेवन करने कराने ( **रायस्पोषवनि** ) और धनसमूह की पुष्टि को सेवने वा सेवन कराने वाले आप को ( **पर्यूहामि** ) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूं वैसे आप मुझ को सर्वथा सुखदायक हूजिए और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सब को सुख देता है वैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ाकर सब जीवों को सुख देता है यह जानो ॥ २७ ॥

**ध्रुवासीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ध्रु॒वासि॑ ध्रु॒वो॑ऽयं यज॑मानो॒ऽस्मिन्ना॒यत॑ने प्र॒जया॑ प॒शुभि॑र्भूयात् । घृ॒तेन॑ द्यावापृथिवी पूर्येथा॒मिन्द्र॑स्य छ॒दिर॑सि वि॒श्वज॒नस्य॑ छा॒या ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री ! जैसे तू ( **प्रजया** ) राज्य वा अपने सन्तानों और ( **पशुभिः** ) हाथी घोड़े गाय आदि पशुओं के सहित ( **अस्मिन्** ) इस ( **आयतने** ) जगत् वा अपने स्थान वा सब के सत्कार कराने के योग्य यज्ञ में ( **ध्रुवा** ) दृढ़ सङ्कल्प ( **असि** ) है वैसे ( **अयम्** ) यह ( **यजमानः** ) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी ( **ध्रुवः** ) दृढ़ सङ्कल्प है। तुम दोनों ( **घृतेन** ) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से ( **द्यावापृथिवी** ) आकाश और भूमि को ( **पूर्येथाम्** ) परिपूर्ण करो। हे यज्ञ करने वाली स्त्री ! तू ( **इन्द्रस्य** ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को भी अपने यज्ञ से ( **छदिः** ) प्राप्त करनेवाली ( **असि** ) है। अब तू और तेरा पति यह यजमान ( **विश्वजनस्य** ) संसार का ( **छाया** ) सुख करने वाला ( **भूयात्** ) हो ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों को पाकर दुःखों को छोड़ें उनका सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें ॥ २८ ॥

**परि त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*ईश्वर और सभाध्यक्ष से क्या क्या होने को योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**परि॑ त्वा गिर्वणो॒ गिर॑ऽइ॒मा भ॑वन्तु वि॒श्वतः॑ । वृ॒द्धायु॒मनु॒ वृद्ध॑यो॒ जुष्टा॑ भवन्तु॒ जुष्ट॑यः ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **गिर्वणः** ) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाध्यक्ष ! ( **इमाः** ) ये मेरी की हुई ( **विश्वतः** ) समस्त ( **गिरः** ) स्तुतियें ( **परि** ) सब प्रकार से ( **भवन्तु** ) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु ( **वृद्धायुम्** ) वृद्धों के समान आचरण करने वाले आपके ( **अनु** ) पश्चात् ( **वृद्धयः** ) अत्यन्त बढ़ती हुई और ( **जुष्टयः** ) प्रीति करने योग्य ( **जुष्टाः** ) प्यारी हों ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सम्पूर्ण उत्तम गुण कर्मों के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिए ॥ २९ ॥

**इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते । आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**इन्द्र॑स्य॒ स्यूर॒सीन्द्र॑स्य ध्रु॒वो॑ऽसि । ऐ॒न्द्रम॑सि वैश्वदे॒वम॑सि ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ! जैसे ( **वैश्वदेवम्** ) समस्त पदार्थों का निवास स्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप ( **ऐन्द्रम्** ) सब के आधार हैं इसीसे हम लोगों को ( **इन्द्रस्य** ) परमैश्वर्य का ( **स्यूः** ) संयोग करनेवाले ( **असि** ) हैं और ( **इन्द्रस्य** ) सूर्य आदि लोक वा राज्य को ( **ध्रुवः** ) निश्चल करनेवाले ( **असि** ) हैं ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं । जैसे सकल ऐश्वर्य्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों का होना चाहिए ॥३०॥

**विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप्**
**छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः ।**
**श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ ३१ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिससे आप जैसे व्यापक आकाश और ऐश्वर्य्ययुक्त राजा होता है वैसे ( **विभूः** ) व्यापक और ऐश्वर्य्ययुक्त ( **असि** ) हैं ( **वह्निः** ) जैसे होम किये पदार्थों को योग्य स्थान में पहुंचानेवाला अग्नि है वैसे ( **हव्यवाहनः** ) हवन करने के योग्य पदार्थों को सम्पादन करनेवाले ( **असि** ) हैं जैसे जीवों में प्राण हैं वैसे ( **प्रचेताः** ) चेत करनेवाले ( **श्वात्रः** ) विद्वान् ( **असि** ) हैं जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे ( **विश्ववेदाः** ) विश्व को जानने ( **तुथः** ) ज्ञान को बढ़ानेवाले ( **असि** ) हैं इससे आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥३१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर और विद्वान् का सत्कार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इनको जानें ॥३१॥

**उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी**
**त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः । सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! जिस कारण आप ( **उशिक्** ) कान्तिमान् ( **असि** ) हैं ( **अङ्घारिः** ) खोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा ( **कविः** ) क्रान्तप्रज्ञ ( **असि** ) हैं ( **बम्भारिः** ) बन्धन के शत्रु वा तारादि वस्तुओं के विस्तार करनेवाले ( **असि** ) हैं ( **दुवस्वान्** ) प्रशंसनीय सेवायुक्त स्वयं ( **शुन्ध्यूः** ) शुद्ध ( **असि** ) हैं ( **मार्जालीयः** ) सब को शोधनेवाले ( **सम्राट्** ) और अच्छे प्रकार प्रकाशमान ( **असि** ) हैं ( **कृशानुः** ) पदार्थों का अति सूक्ष्म ( **पवमानः** ) पवित्र और ( **परिषद्यः** ) सभा में कल्याण करने वालों को मारने वाले ( **असि** ) हैं जैसे ( **प्रतक्वा** ) हर्षित और ( **नभः** ) दूसरे के पदार्थ हरने वाले ( **असि** ) हैं ( **हव्यसूदनः** ) जैसे होम के द्रव्य का यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और ( **मृष्टः** ) सुख दुःख का सहन करने और करानेवाले ( **असि** ) हैं जैसे ( **स्वर्ज्योतिः** ) अन्तरिक्ष को प्रकाश करनेवाले और ( **ऋतधामा** ) सत्यधाम युक्त ( **असि** ) हैं वैसे ही उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥३२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिए ॥ ३२ ॥

**समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी**
**पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**समुद्रोऽसि विश्वव्यचाऽअजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥**

**पदार्थ**—जो परमेश्वर ( **समुद्रः** ) सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारे ( **विश्वव्यचाः** ) जगत् में व्यापक और ( **अजः** ) अजन्मा ( **असि** ) है ( **एकपात्** ) जिसके एक पाद में विश्व है ( **अहिः** ) वा व्यापनशील ( **बुध्न्यः** ) तथा अन्तरिक्ष में होनेवाला ( **असि** ) है और ( **वाक्** ) वाणीरूप ( **असि** ) है ( **ऐन्द्रम्** ) परमैश्वर्य्य का ( **सदः** ) स्थान रूप है और ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **द्वारौ** ) मुखों को ( **मा सन्ताप्तम्** ) सन्ताप करानेवाला नहीं है ( **अध्वपते** ) हे धर्म-व्यवहार के मार्गों को पालन करने हारे विद्वानो ! वैसे तुम भी संताप न करो । हे ईश्वर ! ( **मा** ) मुझ को ( **अध्वनाम्** ) धर्मशिल्प के मार्ग से ( **प्रतिर** ) पार कीजिये और ( **मे** ) मेरे ( **अस्मिन्** ) इस ( **देवयाने** ) विद्वानों के जाने आने योग्य ( **पथि** ) मार्ग में जैसे ( **स्वस्ति** ) सुख ( **भूयात्** ) हो वैसा अनुग्रह कीजिये ॥३३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ईश्वर वा जगत् के कारणरूप जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अविनाशीपन है । परमेश्वर की कृपा उपासना सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के साथ वर्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उसमें सुख होता है और आलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥३३॥

**मित्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती**
**छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिंसिष्ट ॥ ३४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सगराः** ) अन्तरिक्ष अवकाश युक्त ( **अग्नयः** ) अच्छे अच्छे पदार्थों को प्राप्त करनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम ( **मा** ) मुझको ( **मित्रस्य** ) मित्र की दृष्टि से ( **ईक्षध्वम्** ) देखिये । आप ( **सगराः** ) विद्योपदेश अवकाशयुक्त ( **स्थ** ) हूजिये और जैसे आप ( **अग्नयः** ) ससाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं वैसे ( **सगरेण** ) अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान ( **रौद्रेण** ) शत्रुओं को रोदन करनेवाली ( **नाम्ना** ) प्रसिद्ध ( **अनीकेन** ) सेना से ( **मा** ) मुझे ( **पात** ) पालिये ( **अग्नयः** ) जैसे ज्ञानी लोग सब प्रकार सब को सुख देते हैं वैसे ( **पिपृत** ) सुखों से पूरण कीजिये ( **गोपायत** ) और सब ओर से पालन कीजिये और कभी ( **मा** ) मुझ को ( **मा हिंसिष्ट** ) नष्ट मत कीजिये ( **वः** ) इससे आपके लिए ( **मे** ) मेरा ( **नमः** ) नमस्कार ( **अस्तु** ) हो ॥३४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं वैसे इन विद्वानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्यायुक्त होकर विद्यार्थी लोग सदा में सुखी करें ॥३४॥

**ज्योतिरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी**
**पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाᳬ समित् । त्वᳬ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यऽउरु यन्तासि वरूथᳬ स्वाहा । जुषाणोऽअप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्य्य देनेवाले जगदीश्वर ! आप ( **विश्वेषाम्** ) सब ( **देवानाम्** ) विद्वानों के ( **विश्वरूपम्** ) सब रूपयुक्त ( **ज्योतिः** ) सब के प्रकाश करनेवाले ( **समित्** ) अच्छे प्रकाशित ( **असि** ) हैं ( **तनूकृद्भ्यः** ) शरीरों को सम्पादन करने ( **द्वेषोभ्यः** ) और द्वेष करनेवाले जीवों तथा ( **अन्यकृतेभ्यः** ) अन्य मनुष्यों के किये हुए दुष्ट कर्म्मों से ( **यन्ता** ) नियम करनेवाले ( **असि** ) हैं उन से ( **उरु** ) बहुत ( **वरूथम्** ) उत्तम गृह ( **स्वाहा** ) वाणी ( **अप्तु** ) व्यापक ( **आज्यस्य** ) विज्ञान को ( **जुषाणः** ) सेवन करता हुआ मनुष्य ( **स्वाहा** ) वेदवाणी को ( **वेतु** ) जाने ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—जिससे परमेश्वर सब लोकों का नियम करनेवाला है इससे ये नियम में चलते हैं ॥३५॥

**अग्ने नयेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्**
**छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर ईश्वरप्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।**
**युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) सबको अच्छे मार्ग में पहुंचाने ( **देव** ) और सब आनन्दों को देनेवाले ( **विद्वान्** ) समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर ! आप कृपा से ( **राये** ) मोक्षरूप उत्तम धन के लिये ( **सुपथा** ) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से ( **विश्वानि** ) समस्त ( **वयुनानि** ) उत्तम कर्म विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे ( **अस्मान्** ) हम लोगों को ( **नय** ) प्राप्त कीजिये और ( **जुहुराणम्** ) कुटिल ( **एनः** ) दुःखफलरूपी पाप को ( **अस्मत्** ) हम लोगों से ( **युयोधि** ) दूर कीजिये । हम लोग ( **ते** ) आपकी ( **भूयिष्ठाम्** ) अत्यन्त ( **नम उक्तिम्** ) नमस्काररूप वाणी को ( **विधेम** ) कहते हैं ॥३६॥

**भावार्थ**—अत्रोपमालङ्कार । जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन करके इस लोक के सुखों को उनके कर्मानुसार देता है वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें ॥३६॥

**अयं न इत्यस्य गस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्**
**छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है—*

**अय नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् ।**
**अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥३७॥**

**पदार्थ**—यह ( **अग्नि** ) परमेश्वर का उपासक जन ( **न** ) हम प्रजास्थ जीवो की ( **वरिव** ) निरन्तर रक्षा ( **कृणोतु** ) करे। जसे कोई वीर पुरुष अपनी सेना को लेकर सग्राम मे निन्दित दुष्ट वैरियो का पहिले ही जा घेरता है वैसे ( **अयम्** ) यह युद्ध करने म कुशल सेनापति ( **वाजसातौ** ) सग्राम मे दुष्ट शत्रुओ को ( **पुर** ) पहिले ही ( **एतु** ) जा घरे और जसे ( **अयम्** ) यह वीरो को हर्ष देनवाला सेनापति दुष्ट शत्रुओ को ( **प्रभिन्दन्** ) छिन्न भिन्न करता हुआ ( **वाजान्** ) सग्रामो का ( **जयतु** ) जीते ( **अयम्** ) यह विजय कराने वाला सेनापति ( **जर्हृषाण** ) निरन्तर प्रसन्न होकर ( **स्वाहा** ) युद्ध के प्रबन्ध की श्रेष्ठ बोलियो का बोलता हुआ ( **जयतु** ) अच्छी तरह जीते ॥३७॥

**भावार्थ**—जो लोग परमेश्वर की उपासना नही करते हैं उनका विजय सवत्र नहीं होता। जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषो का सत्कार करके सेना नही रखते हैं उनका सब जगह सहज मे पराजय हो जाता है इससे मनुष्यो को चाहिए कि दो प्रबन्ध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरो की रक्षा सदा करते रहे ॥३७॥

**उरु विष्णविरयस्यागस्त्य ऋषि । विष्णुर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वे कसे है यह उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।**
**घृत घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—जैसे सवव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है वसे हे विद्यादि गुणो म व्याप्त होनेवाले वीर पुरुष! अपने विद्या के फल को ( **उरु** ) बहुत ( **वि** ) अच्छी तरह ( **क्रमस्व** ) पहुँच ( **क्षयाय** ) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य ( **न** ) हम लोगो को ( **कृधि** ) कीजिए। हे ( **घृतयोने** ) विद्यादि सुशिक्षायुक्त पुरुष! जैसे अग्नि घृत पी के प्रदीप्त होता है वसे तू भी अपने गुणो म ( **घृतम्** ) घृत को ( **प्रप्र पिब** ) बारम्बार पीके शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज आदि विद्वान् लोग ( **यज्ञपतिम्** ) यजमान की रक्षा करते हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं वसे तू भी ( **स्वाहा** ) यज्ञ की क्रिया से ( **यज्ञम्** ) यज्ञ के ( **तिर** ) पार हो ॥३८॥

**भावार्थ**—जसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालन से सब जीवो को सुख देता है उसी आनन्द म हम सभो को रहना उचित है। जसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा घृत आदि पदार्थो को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है वसे हम लोगो को भी शत्रुओ को जीत प्रकाशित होना चाहिए और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करनेवाले यजमान को पाकर अपने कामो को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने अपने सुखो को सिद्ध किया करें ॥३८॥

**देव सवितरित्यस्यागस्त्य ऋषि । सोमसवितारौ देवते । आद्यस्य साम्नी बृहती छन्द । मध्यम स्वर । एतत्त्वमित्युत्तरस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् । एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२ऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) सब विद्याओ के प्रकाश करनेवाले ऐश्वर्य्यवान् विद्वान् सभाध्यक्ष! जसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य्य को रखता हूँ वैसे तू जो ( **एष** ) यह ( **ते** ) तेरा ( **सोम** ) ऐश्वर्य्यसमूह है ( **तम्** ) उसको ( **रक्षस्व** ) रख। जसे मुझ को शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं वसे ( **त्वाम्** ) तुझे भी ( **मा दभन्** ) न दे सकें। हे ( **देव** ) सुख के देने और ( **सोम** ) सज्जनो के माग म चलाने हारे राजा! ( **त्वम्** ) तू ( **एतत** ) इस कारण सभाध्यक्ष और ( **देव** ) परिपूर्ण विद्या प्रकाश म स्थित हुआ ( **देवान्** ) श्रेष्ठ विद्वानो के ( **उप** ) समीप ( **अगा** ) जा और मैं भी जाऊ। जैसे मैं ( **इदम्** ) इस आचरण को करके ( **राय** ) अत्यन्त धन की ( **पुष्टया** ) पुष्टताई के साथ ( **मनुष्यान्** ) विचारवान् पुरुष और ( **देवान्** ) विद्वानो को प्राप्त होकर ( **वरुणस्य** ) दुःख से निरस्कार करनेवाले दुष्टजन के ( **पाशात** ) बन्धन म ( **मुच्ये** ) छूटू वसे तू भी ( **नि** ) निरन्तर छूट ॥३९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यो को योग्य है कि जिस अप्राप्त ऐश्वर्य्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति हो उसकी रक्षा और उन्नति धार्मिक मनुष्यो का सङ्ग और इससे सज्जनो का सत्कार तथा धर्म का अनुष्ठान कर विज्ञान को बढा के दुःखबन्धन से छूटें ॥३९॥

**अग्ने व्रतपा इत्यस्यागस्त्य ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वे कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि । यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥**

**पदार्थ**—( **व्रतपा** ) जसे सत्य का पालने हारा विद्वान् हो वैसे ( **अग्ने** ) हे विशेष ज्ञानवान् पुरुष! जो मेरा ( **व्रतपा** ) सत्यविद्या गुणो का पालने हारा आचार्य्य ( **अभूत** ) हुआ था वैसे मैं ( **ते** ) तेरा होऊ ( **या** ) जो ( **तव** ) तेरी ( **तनू** ) विद्या आदि गुणो म व्याप्त होनेवाला देह है ( **सा** ) वह ( **मयि** ) तेरे मित्र मुझ म भी हो ( **एषा** ) यह ( **त्वयि** ) मेरे मित्र मुझ मे भी हो ( **या** ) जो ( **मम** ) मेरी ( **तनू** ) विद्या की फैलावट है ( **सा** ) वह ( **त्वयि** ) मेरे पढाने वाले तुझ मे हो ( **इयम** ) यह ( **मयि** ) तेरे शिष्य मुझ में बुद्धि हो ( **व्रतपते** ) हे सत्य आचरणो के पालने हारे! जसे सत्य गुण सत्य उपदेश रक्षक विद्वान् होता है वैसे म और तू ( **यथायथम्** ) यथायुक्त मित्र होकर ( **व्रतानि** ) सत्य आचरणो का वर्त्ताव वर्तें। हे मित्र! जैसे ( **तव** ) तेरा ( **दीक्षापति** ) यथोक्त उपदेश का पालनेहारा तेरे लिए ( **दीक्षाम्** ) सत्य का उपदेश ( **अमस्त** ) करना जान रहा है वसे मेरा मेरे लिए ( **अनु** ) जाने। जसे तेरा ( **तपस्पति** ) अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालनहारा आचार्य्य तेरे लिए ( **तप** ) पहिले क्लेश और पीछे सुख देने हारे ब्रह्मचर्य्य को करना जाने रहा है वसे मेरा अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा मेरे लिए जाने ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—जसे पहिले विद्या पढानेवाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगो को भी होना चाहिए। जब तक मनुष्य सुख दुःख हानि और लाभ की व्यवस्था मे परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते इस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें ॥ ४० ॥

**उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषि । विष्णुर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वे कसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।**
**घृत घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥**

**पदार्थ**—जसे सब पदार्थों मे व्याप्त होने वाला पवन चलता है वैसे हे विद्या गुणो मे व्याप्त होनेवाले विद्वन्! ( **उरु** ) अत्यन्त विस्तारयुक्त ( **क्षयाय** ) विद्योन्नति के लिए ( **विक्रमस्व** ) अपनी विद्या के अगो से परिपूर्ण हो और ( **न** ) हम लोगों को सुखी ( **कृधि** ) कर। जैसे जल का निमित्त बिजुली है वसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले विद्वन्! बिजुली के समान ( **घृतम्** ) जल ( **पिब** ) पी और जसे मैं यज्ञपति को दुःख से पार करता हूँ वसे तू भी ( **स्वाहा** ) अच्छे प्रकार हवन आदि कर्मों को सेवन करके ( **प्रप्रतिर** ) दुःखो म अच्छे प्रकार पार हो ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिए ॥४१॥

**अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न सेवने चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अत्यन्याँ२ऽअगां नान्याँ२ऽउपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः । तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ ४२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वनस्पते** ) सब बूटियो के रखनेवाले ( **देव** ) विद्वान् जन! जसे तू ( **अन्यान्** ) विद्वानो के विरोधी मूर्ख जनो को छोड के ( **अन्यान्** ) मूर्खों के विरोधी विद्वानो के समीप जाता है वैसे मैं भी विद्वानो के विरोधियो को छोड ( **उप** ) समीप ( **अगाम्** ) जाऊ। जो तू ( **परेभ्य** ) उत्तमो से ( **पर** ) उत्तम और ( **अवरेभ्य** ) छोटो से ( **अर्वाक** ) छोटे हो ( **तम्, त्वाम्** ) उन्हें मैं ( **अविदम्** ) पाऊ। जैसे ( **देवा** ) विद्वान् लोग ( **देवयज्यायै** ) उत्तम गुण देने के लिए ( **त्वा** ) तुझ को चाहते है वसे हम लोग भी ( **त्वा** ) तुझे ( **जुषामहे** ) चाहें और हम लोग ( **देवयज्यायै** ) अच्छे अच्छे गुणों का सग होने के लिए ( **त्वा** ) तुझे चाहते हैं वैसे और भी ये लोग चाहें। जैसे ओषधियों का समूह ( **विष्णवे** ) यज्ञ के लिए सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है वैसे हे रोगो को दूर करने और ( **स्वधिते** ) दुःखो का विनाश करनेवाले विद्वान् जन! हम लोग ( **त्वा** ) तुझे यज्ञ के लिए चाहते है। श्रेष्ठ विद्वान् जन! जसे मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता वैसे तू भी ( **एनम्** ) इस यज्ञ को ( **मा** ) मत ( **हिंसी** ) बिगाड ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिए कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषो को छोड के अच्छे अच्छे व्यवहार तथा उत्तम विद्वानो को नित्य चाहें और उत्तमो से उत्तम तथा न्यूनो से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें। यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों ॥ ४२ ॥

द्यां मा लेखीरित्यस्यागस्त्य ऋषि । यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध करानेवाली जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**द्यां मा लेखीरुन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या सम्भव अयꣳहि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥ ४३ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे मैं सूर्य्य के समान होकर ( द्याम् ) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूँ वैसे तू भी उसका ( मा, लेखीः ) दृष्टिगोचर मत कर । जैसे मैं ( अन्तरिक्षम् ) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूँ वैसे तू भी उसको ( मा हिंसीः ) मत बिगाड़ । जैसे मैं ( पृथिव्या ) पृथिवी के साथ होता हूँ वैसे तू भी उसके साथ ( सम् भव ) हो ( हि ) जिस कारण जैसे ( तेतिजानः ) अत्यन्त पैना ( स्वधितिः ) वज्र शत्रुओं का विनाश कर के ऐश्वर्य्य को देता है ( अतः ) इस कारण ( अयम् ) यह ( त्वा ) तुझे ( महते ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( सौभगाय ) सौभाग्यपन के लिए सम्पन्न करे और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को ( प्रणिनाय ) प्राप्त करते हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य पहुंचावें । हे ( देव ) आनन्दयुक्त ( वनस्पते ) वनों की रक्षा करनेवाले विद्वन् ! जैसे ( शतवल्शः ) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी इस उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से ( वि, रोह ) अच्छी तरह फल और जैसे ( सहस्रवल्शाः ) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें फूलें ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार में किसी को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिए ॥ ४३ ॥

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान पढ़ना पढ़ाना यज्ञ का विवरण योगाभ्यास का लक्षण सृष्टि की उत्पत्ति ईश्वर और सूर्य के कर्म्म का कहना प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण सब के नियम करनेवाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना यज्ञ का अनुष्ठान सृष्टि से उपकार लेना सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना सविता और सभाध्यक्ष के कर्म का उपदेश यज्ञ से सिद्धि ईश्वर और सभाध्यक्ष से कार्य्यों की सिद्धि तथा उनके स्वरूप और कर्मों का वर्णन ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश सब बन्धन से छूटना परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार, इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की सङ्गति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्याय ॥

## ॥ अथ षष्ठाध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

अथ देवस्य त्वेत्यस्यागस्त्य ऋषि । सविता देवता । पङ्क्तिश्छन्द । धैवतः स्वर । यवोऽसीत्यस्यासुरी त्रिष्टुप्त्यस्य च भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दसी । ऋषभ स्वर ॥

*अब पांचवें अध्याय के पश्चात् षष्ठाऽध्याय ( ६ ) का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचार्य्यादि विद्वान् लोग क्या क्या उपदेश करें यह उपदेश किया है—*

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि । यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे सभाध्यक्ष ! जैसे ( पितृषदनाः ) पितरों में रहनेवाले विद्वान् लोग ( देवस्य ) प्रकाशमय और ( सवितुः ) सब विश्व के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर के ( प्रसवे ) उत्पन्न किये हुए संसार में ( अश्विनोः ) प्राण और अपान के ( बाहुभ्याम् ) बल और उत्तम वीर्य्य से तथा ( पूष्णः ) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के ( हस्ताभ्याम् ) धारण और आकर्षण से ( त्वा ) तुझे ग्रहण करते हैं वैसे ही मैं ( आददे ) ग्रहण करता हूँ जैसे मैं ( रक्षसाम् ) दुष्ट काम करनेवाले जीवों के ( ग्रीवाः ) गले ( कृन्तामि ) काटता हूँ वैसे ( त्वम् ) तू ( अपि ) भी काट । हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण तू ( यवः ) संयोग विभाग करनेवाला ( असि ) है इस कारण ( अस्मत् ) मुझ से ( द्वेषः ) द्वेष अर्थात् अप्रीति करनेवाले वैरियों को ( यवय ) अलग कर और ( अरातीः ) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को ( यवय ) पृथक् कर । जैसे मैं न्याय व्यवहार से रक्षा करने योग्य जन ( दिवे ) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिए ( त्वाम् ) न्याय प्रकाश करनेवाले तुझ को ( अन्तरिक्षाय ) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने के लिए ( त्वाम् ) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देनेवाले को तथा ( पृथिव्यै ) भूमि के राज्य के लिए ( त्वा ) तुझ राज्य विस्तार करनेवाले को पवित्र करता हूँ वैसे ये लोग भी ( त्वा ) आप को ( शुन्धन्ताम् ) पवित्र करें जैसे तू ( पितृषदनम् ) विद्वानों के घर के समान ( असि ) है पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर । हे सभापति की नारि स्त्री ! तू भी ऐसा ही किया कर ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्या में अतिविचक्षण पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते हैं वे सुखसंयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

अग्रणीरित्यस्य शाकल्य ऋषि । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । धैवतः स्वर ॥

*फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे वर्ते इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्रेणीरसि स्वावेशऽउन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्षऽआन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः ॥ २ ॥**

**पदार्थ**—हे सभाध्यक्ष ! जैसे ( अग्रेणीः ) पढ़ानेवाला अपने शिष्यों को वा पिता अपने पुत्रों को उन के पठनारम्भ से ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय धार्मिकतायुक्त करता है वैसे हम सभों के लिए तू ( असि ) है ( उन्नेतृणाम् ) जैसे उत्कर्षता पहुंचानेवालों का राज्य हो वैसे ( स्वावेशः ) अच्छे गुणों में प्रवेश करने वाले के समान होकर तू ( एतस्य ) इस राज्य के पालने को ( वित्तात् ) जान । हे राजन् ! जैसे ( त्वा ) तुझे सभासद् जन ( सुपिप्पलाभ्यः ) अच्छे-अच्छे फलोंवाली ( ओषधीभ्यः ) ओषधियों से ( मध्वा ) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से ( अनक्तु ) सींचें वैसे प्रजाजन भी तुझे सींचें । तू इस राज्य में अपने ( अग्रेण ) प्रथम यश से ( द्याम् ) विद्या और राजनीति के प्रकाश को ( अस्पृक्षः ) स्पर्श कर ( मध्येन ) मध्य अर्थात् तदनन्तर बढ़ाये हुए यश से ( आन्तरिक्षम् ) धर्म के विचार करने के मार्ग को ( आप्राः ) पूरा कर और ( उपरेण ) अपने राज्य के नियम से ( पृथिवीम् ) इस भूमि के राज्य को प्राप्त होके ( अदृꣳहीः ) दृढ़कर बढ़ना न जा और ( देवः ) समस्त राजाओं का राजा ( सविता ) सब जगत् को अन्तर्यामीपन से प्रेरणा देनेवाला जगदीश्वर ( त्वा ) तुझ को राजा कर के तेरे पर ( स्थास्यति ) अधिष्ठाता होकर रहेगा ॥ २ ॥

**भावार्थ**—प्रजा पुरुषों के स्वीकार किये बिना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि सभा जिस को आदर से न चाहे वह मन्त्री होने को वा

कोई पुरुष अपनी कीर्त्ति की उत्तरोत्तर दृढ़ता के बिना सेना का ईश्वर यथायोग्य न्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नही हो सकता ॥ २ ॥

**या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । विष्णुर्देवता । आर्च्युष्णिक छन्द ।**
**अत्राहेत्यस्य साम्न्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर । ब्रह्मवनित्वेत्यस्य**
**निचृत्प्राजापत्या बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर वह वाणिज्य कर्म करनेवाले मनुष्य उसको कैसा जानकर आश्रय करते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽअयासः । अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्य्यूहामि । ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—हे सभाध्यक्ष ! ( **या** ) जिन मे ( **ते** ) तेरे ( **धामानि** ) धाम अर्थात् जिन मे प्राणी सुख पाते हो उन स्थानो का हम ( **गमध्यै, उश्मसि** ) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य्य का प्रकाश है वैसे ( **यत्र** ) जिन मे ( **उरुगायस्य** ) स्तुति करने के योग्य ( **विष्णो** ) सर्वव्यापक परमेश्वर की ( **भूरिशृङ्गा** ) अत्यन्त प्रकाशित ( **गाव** ) किरणें चैतन्यकला ( **अयास** ) फली हैं ( **अत्र, अह** ) इन्ही मे ( **तत** ) उस परमेश्वर का ( **परमम** ) सब प्रकार उत्तम ( **पदम** ) और प्राप्त होने योग्य परमपद विद्वानो ने ( **भूरि अव भारि** ) बहुधा अवधारण किया है इस कारण ( **त्वा** ) तुझे ( **ब्रह्मवनि** ) परमेश्वर वा वेद का विज्ञान ( **क्षत्रवनि** ) राज्य और वीरो की चाहना ( **रायस्पोषवनि** ) धन की पुष्टि के विभाग करनेवाले आप को मैं ( **पर्यूहामि** ) विविध तर्कों से समझता हूँ कि तू ( **ब्रह्म** ) परमात्मा और वेद को ( **दृꣳह** ) दृढ कर अर्थात् अपने चित्त मे स्थिर कर बढ ( **क्षत्रम्** ) राज्य और धनुर्वेदवेत्ता क्षत्रियो का ( **दृꣳह** ) उन्नति दे ( **आयु** ) अपनी अवस्था को ( **दृꣳह** ) बढा अर्थात् ब्रह्मचर्य्य से दृढ कर तथा ( **प्रजाम्** ) अपने सन्तान वा रक्षा करने योग्य प्रजाजनो को ( **दृꣳह** ) उन्नति दे ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—सभाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानो की कामना के विना कोई भी पुरुष सुख नही पा सकता न कोई जन परमेश्वर का अनादर करके चक्रवर्त्ती राज्य भोगने के योग्य होता है न ही कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था सन्तान और प्रजा की रक्षा के विना अच्छी उन्नति कर सकता है ॥ ३ ॥

**विष्णो कर्म्माणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्द ।**
**षड्ज स्वर ॥**

*अब सभापति अपने सभासद आदि को क्या क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।**
**इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे सभासदो ! जैसे ( **इन्द्रस्य** ) परमेश्वर का ( **युज्य** ) सदाचार युक्त ( **सखा** ) मित्र ( **विष्णो** ) उस व्यापक ईश्वर के ( **कर्म्माणि** ) जो ससार का बनाना पालन और संहार करना सत्यगुण है उनको देखता हुआ मैं ( **यत** ) जिस ज्ञान से ( **व्रतानि** ) अपने मन मे सत्यभाषणादि नियमो को ( **पस्पशे** ) बाँध रहा अर्थात् नियम कर रहा हूँ वैसे उसी ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणो को ( **पश्यत** ) दृढता से देखो कि जिससे राज्यादि कामो मे सत्य व्यवहार करने वाले होओ ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—परमेश्वर मे प्रीति और सत्याचरण के विना कोई भी मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव का देखने के योग्य नही हो सकता न वैसे हुए विना राज्यकर्मों का यथार्थ न्याय मे सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य बढाने को कभी समर्थ हो सकता है ॥ ४ ॥

**तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । विष्णुर्देवता ।**
**निचृदार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*उक्त मन्त्र के विषय मे जो अनुष्ठान कहा है उससे क्या सिद्ध होता है यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५**

**पदार्थ**—हे सभ्यजनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से ( **सूरय** ) स्तुति करनेवाले वेदवेत्ता जन ( **विष्णो** ) ससार की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले परमेश्वर के जिस ( **परमम्** ) अत्यन्त उत्तम ( **पदम्** ) प्राप्त होने योग्य पद को ( **दिवि** ) सूर्य्य के प्रकाश मे ( **आततम्** ) व्याप्त ( **चक्षु** ) नेत्र के ( **इव** ) समान ( **सदा** ) सब समय मे ( **पश्यन्ति** ) देखते हैं ( **तत** ) उसको तुम लोग भी निरन्तर देखो ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे पूर्व मन्त्र से ( पश्यत ) इस पद का अनुवर्त्तन किया जाता है और पूर्णोपमालङ्कार है । निर्धूत अर्थात् छूट गये हैं पाप जिनके वे विद्वान् लोग अपनी विद्या के प्रकाश मे जैसे ईश्वर के गुणो को देख के सत्य धर्माचारयुक्त होते हैं वैसे हम लोगो को भी होना चाहिये ॥ ५ ॥

**परिवीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । विद्वांसो देवता । आर्च्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर । दिव सूनुरसीत्यस्य भुरिक साम्नी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर यह उपासना करने वाला सभाध्यक्ष किस प्रकार का होता है यह अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् । दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोकऽआरण्यस्ते पशुः ॥६**

**पदार्थ**—हे सभाध्यक्ष राजन् ! तू ( **परिवी** ) सब विद्याओ मे अच्छे आप्त होने वाले के समान ( **असि** ) है ( **त्वाम्** ) तुझे ( **दैवी** ) विद्वानो के ( **विश** ) सन्तान के समान प्रजा ( **परि, व्ययन्ताम्** ) सर्वव्याप्त अर्थात् सब ठिकाने व्याप्त हुए तेरे कार्यकारी हो ( **दिव** ) प्रकाश के पुञ्ज सूर्य से ( **सूनु** ) उत्पन्न हुए किरण समुदाय के तुल्य तू ( **असि** ) है ( **ते** ) तेरा ( **पृथिव्याम्** ) पृथिवी से ( **लोक** ) राजधानी का देश हो और ( **आरण्य** ) बनैले सिंहादि दुष्ट पशु तेरे वश्य भी हों ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—राज्य का आचरण करते हुए राजा को प्रजा लोग प्राप्त होकर अपने पदार्थों का कर चुकावें और वह राजा उन प्रजाओ की रक्षा करने के लिए सिंह और शूकर वा अन्य और दुष्ट जीव तथा डाकू चोर उठाईगीरे और गाँठ कटे आदि दुष्ट जनो को दण्ड से वश मे कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म मे प्रवृत्त करें ॥ ६ ॥

**उपावीरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । त्वष्टा देवता । आर्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर वह प्रजाजनों के प्रति क्या करे और वे प्रजाजन उस राजा के प्रति क्या करें यह उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।**
**देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) दिव्यगुणसम्पन्न ( **त्वष्ट** ) सब दु खो के छेदन करनेवाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू ( **उपावी** ) शरणागत पालक सदृश ( **असि** ) है इसी से ( **दैवी** ) विद्वानो से सम्बन्ध रखनेवाली दिव्यगुण सम्पन्न ( **विश** ) प्रजा जैसे ( **उशिज** ) श्रेष्ठ गुण शोभित कामना के योग्य ( **वह्नितमान्** ) अतिशय धर्म मार्ग मे चलने और चलानेवाले ( **देवान्** ) विद्वानो को ( **उपप्रागु** ) प्राप्त हुए वैसे तुझे भी प्राप्त होते हैं जैसे तेरे आश्रय से प्रजा धनाढ्य होके सुखी हो वैसे तू भी प्राप्त हुए प्रजाजनों से सत्कृत होकर ( **रमस्व** ) हर्षित हो जैसे तू प्रजा के पदार्थों को भोगता है वैसे प्रजा भी तेरे ( **हव्या** ) भोगने योग्य अमूल्य ( **वसु** ) धनादि पदार्थों का ( **स्वदन्ताम** ) भोगें ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—जैसे गुण के ग्रहण करनेवाले उत्तम गुणवान् विद्वान् का सेवन करते हैं वैसे न्याय करने मे चतुर राजा का सेवन प्रजाजन करते है इसी से परस्पर की प्रीति से सब की उन्नति होती है ॥ ७ ॥

**रेवती रमध्वमित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । बृहस्पतिर्देवता । प्राजापत्यानुष्टुप छन्द ।**
**ऋषभ स्वर । ऋतस्य त्वेत्यस्य निचृत् प्राजापत्या बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*अब पिता आदि रक्षकजन अपने सन्तानों को कैसे पढ़ाने वालों को कैसे दें ? और वह उन को कैसे स्वीकार करे यह अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि ।**
**ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे ( **रेवती** ) अच्छे धनवाले सन्तानो ! तुम विद्या और अच्छी शिक्षा मे ( **रमध्वम** ) रमो । हे ( **बृहस्पते** ) वेदवाणी के पालनेवाले विद्वन् ! आप ( **ऋतस्य** ) सत्य न्याय व्यवहार से प्राप्त ( **वसूनि** ) धन अर्थात् हम लोगो के दिये द्रव्य आदि पदार्थों का ( **धारय** ) स्वीकार कीजिये ( **अब अध्यापक का उपदेश शिष्य के लिए है** ) हे राजन् ! प्रजा पुरुष ! वा ( **मानुष** ) सर्व शास्त्र का विचार करनेवाला मै ( **पाशेन** ) अविद्या बन्धन से तुझे ( **प्रति मुञ्चामि** ) छुटाता हूँ तू विद्या और अच्छी शिक्षाओ मे धृष्ट हो ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—विद्वानो को अपनी शिक्षा से कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणियो को परमेश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों का बोध कराना चाहिए कि जिससे वे मूढपनरूपी बन्धन को छोड के सदा सुखी हो ॥ ८ ॥

**देवस्य त्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । सविता आश्विनौ पूषा च देवता । प्राजापत्या बृहती छन्द । मध्यम स्वर । अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पङ्क्तिश्छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नि युनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे शिष्य ! मैं ( **सवितु** ) समस्त ऐश्वर्ययुक्त ( **देवस्य** ) वेदविद्या प्रकाश करनेवाले परमेश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में ( **अश्विनो** ) सूर्य्य और चन्द्रमा के ( **बाहुभ्याम्** ) गुणों से वा ( **पूष्ण** ) पृथिवी के ( **हस्ताभ्याम्** ) हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से ( **त्वाम्** ) तुझे ( **आददे** ) स्वीकार करता हूँ तथा ( **अग्नीषोमाभ्याम्** ) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से ( **जुष्टम्** ) प्रीति करते हुए ( **त्वा** ) तुझको जो ब्रह्मचर्य धर्म के अनुकूल जल और ओषधि हैं उन ( **अद्भ्य** ) जल और ( **ओषधीभ्य** ) गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से ( **नियुनज्मि** ) नियुक्त करता हूँ तुझे मेरे समीप रहने के लिए तेरी ( **माता** ) जननी ( **अनु, मन्यताम्** ) अनुमोदित करे ( **पिता** ) पिता अनुमोदित करे ( **सगर्भ्य** ) सहोदर ( **भ्राता** ) भाई ( **अनु** ) अनुमोदित करे ( **सखा** ) मित्र ( **अनु** ) अनुमोदित करे और ( **सयूथ्य** ) तेरे सहवासी ( **अनु** ) अनुमोदित करें ( **अग्नीषोमाभ्याम्** ) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में ( **जुष्टम्** ) प्रीति करते हुए ( **त्वा** ) तुझको ( **प्र उक्षामि** ) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालन के लिये अभिषिक्त करता हूँ ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—इस संसार में माता पिता बन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य करावें जिससे वे गुणवान् हों ॥९॥

**अपां पेरुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । आपो देवता । प्राजापत्या बृहती छन्द । मध्यम स्वर । सन्त इत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या उत्तम शिक्षा ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपां पेरुरस्यापो देवी स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः । सं ते प्राणो वातेन गच्छताᳬ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे शिष्य ! तू ( **अपाम्** ) जल आदि पदार्थों का ( **पेरु** ) रक्षा करनेवाला ( **असि** ) है संसारस्थ जीव तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए ( **देवी** ) दिव्य सुख देनेवाले ( **आप** ) जलों को ( **चित्** ) और ( **स्वात्तम्** ) धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त हुए पदार्थों को ( **देवहवि** ) विद्वानों के भोगने के समान ( **स्वदन्तु** ) अच्छी तरह से भोगें ( **आशिषा** ) मेरे आशीर्वाद से ( **ते** ) तेरे ( **अङ्गानि** ) शिर आदि अवयव ( **यजत्र** ) यज्ञ करानेवालों के साथ ( **सम** ) सम्यक् नियुक्त हों और ( **प्राण** ) प्राण ( **वातेन** ) पवित्र वायु के संग ( **सङ्गच्छताम्** ) उत्तमता से रमण करे और तू ( **यज्ञपति** ) विद्याप्रचाररूपी यज्ञ का पालन करनेहारा हो ॥ १० ॥

**भावार्थ**—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार । जो यज्ञ में दी हुई आहुति है वे सूर्य से उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्य की आकर्षणशक्ति से परमाणुरूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में है उसी पृथिवी का जल ऊपर खिंचकर वर्षा होती है उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञशोधित जल और होम किये द्रव्य को सब जीव भोगते हैं ॥ १० ॥

**घृतेनाक्तावित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । वातो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब यज्ञ करने और करानेवालों के कर्त्तव्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाᳬ रेवति यजमाने प्रियं धाऽआ विश । उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्य स्वाहा ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **घृतेन, अक्तौ** ) घृतप्रसक्त अर्थात् घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारो ! तुम ( **पशून्** ) गौ आदि पशुओं को ( **त्रायेथाम्** ) पालो तुम एक एक जन ( **देवेन** ) सर्वगत ( **वातेन** ) पवन से ( **सजू** ) समान प्रीति करते हुए समान ( **उरो** ) विस्तृत ( **अन्तरिक्षात्** ) अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुए ( **प्रियम्** ) प्रिय सुख को ( **रेवति** ) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त ( **यजमाने** ) यज्ञ करनेवाले धनी पुरुष में ( **धा** ) स्थापन करो तथा ( **आविश** ) उसके अभिप्राय को प्राप्त होओ और ( **अस्य** ) इसके ( **हविष** ) होम के योग्य पदार्थ को ( **त्मना** ) आप ही निष्पादन किये हुए के समान ( **यज** ) अग्नि में होमो अर्थात् यज्ञ की किसी क्रिया का विपरीत भाव न करो और ( **अस्य** ) इसके ( **तन्वा** ) शरीर के साथ ( **सम्, भव** ) एकीभाव रक्खो किन्तु विरोध से द्विधा आचरण मत करो । हे ( **वर्षो** ) यज्ञकर्म से सब सुख पहुँचाने वालो ! ( **देवेभ्य, स्वाहा, देवेभ्य, स्वाहा** ) सत्कर्म के अनुष्ठान से प्रकाशित धर्मिष्ठ ज्ञानी पुरुष जो कि यज्ञ देखने की इच्छा करते हुए बार बार यज्ञ में आते हैं उन विद्वानों के लिए अच्छे सत्कार करानेवाली वाणियों को उच्चारण करते हुए यज्ञपति को ( **वर्षीयसि** ) सर्व सुख बढ़ानेवाले यज्ञ में ( **धा** ) अभियुक्त करो ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—यज्ञ के लिए घृत आदि पदार्थ चाहनेवाले मनुष्य को गाय आदि पशु रखने चाहिये और घृतादि अच्छे अच्छे पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम उत्तम यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिए ॥ ११ ॥

**माहिर्भूरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । विद्वांसो देवता । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*वह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि । घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **आतान** ) अच्छे प्रकार सुख से विस्तार करनेवाले विद्वन् ! तू ( **मा** ) मत ( **अहि** ) सर्प के समान कुटिलमार्गगामी और ( **मा** ) मत ( **पृदाकु** ) मूलजाति के समान अभिमानी वा व्याघ्र के समान हिंसा करनेवाला ( **भू** ) हो ( **ते** ) ( **नम** ) सब जगह तेरे सुख के लिए अन्न आदि पदार्थ पहले ही प्रवृत्त हो रहे हैं और ( **अनर्वा** ) अश्व आदि सवारी के बिना निराश्रय पुरुष जैसे ( **घृतस्य** ) जल की ( **कुल्या** ) बड़ी धाराओं को प्राप्त हो वैसे ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **पथ्या** ) मार्गों को प्राप्त हो ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्ममार्ग में कुटिल न होना चाहिए किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिए ॥१२॥

**देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । आपो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान करना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवीराप शुद्धा वोढ्वᳬ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे कुमारियो ! तुम जैसे ( **आप** ) श्रेष्ठगुणों में रमण करनेवाली ( **शुद्धा** ) सत्कर्मानुष्ठान से पवित्र ( **देवी** ) विद्या प्रकाशवती विदुषी स्त्रीजन ( **देवेषु** ) श्रेष्ठ विद्वान् पतियों के निमित्त ( **सुपरिविष्टा** ) और उन की सेवा करने को सम्मुख प्रवृत्त होकर अपने समान पतियों को ( **वोढ्वम्** ) प्राप्त होती हैं और वे विद्वान् पतिजन उन स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम हो और हम भी ( **परिवेष्टा** ) उस कर्म की योग्यता को ( **भूयास्म** ) पहुँचें ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्री पातिव्रत धर्म में तत्पर रहती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्या भी उन के गुण और स्वभाव वाली हों और ब्रह्मचारी भी गुरुजनों की शिक्षा से स्त्री और पुरुष आदि की रक्षा करने में तत्पर हों ॥ १३ ॥

**वाचं त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । विद्वांसो देवता । भुरिगार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने अपने विद्यार्थियों को अच्छे अच्छे गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥**

**पदार्थ**—हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं से ( **ते** ) तेरी ( **वाचम्** ) जिस से बोलता है उस वाणी को ( **शुन्धामि** ) शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल करता हूँ ( **ते** ) तेरे ( **चक्षु** ) जिस से देखता है उस नेत्र को ( **शुन्धामि** ) शुद्ध करता हूँ ( **ते** ) तेरी ( **नाभिम्** ) जिस से नाड़ी आदि बांधे जाते हैं उस नाभि को ( **शुन्धामि** ) पवित्र करता हूँ ( **ते** ) तेरे ( **मेढ्रम्** ) जिससे मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को ( **शुन्धामि** ) पवित्र करता हूँ ( **ते** ) तेरे ( **पायुम्** ) जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को ( **शुन्धामि** ) पवित्र करता हूँ ( **चरित्रान्** ) समस्त व्यवहारों को ( **शुन्धामि** ) पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूँ तथा गुरुपत्नी पक्ष में सर्वत्र करती हूँ यह योजना करनी चाहिए ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिए कि वेद और उपवेद तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की संतुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें ॥ १४ ॥

**मनस्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । विद्वांसो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्द । पञ्चम स्वर ।**

*फिर भी प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में उक्त अर्थ का प्रकाश किया है—*

**मनस्तऽआ प्यायतां वाक्तऽआ प्यायतां प्राणस्तऽआ प्यायतां चक्षुस्तऽआ प्यायताᳬ श्रोत्रं तऽआ प्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬसीः ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—हे शिष्य ! मेरी शिक्षा से ( **ते** ) तेरा ( **मन** ) मन (**आप्यायताम्**) पर्य्याप्त गुणयुक्त हो ( **ते** ) तेरा ( **प्राण** ) प्राण ( **आप्यायताम्** ) बलादि गुणयुक्त हो ( **ते** ) तेरी ( **चक्षु** ) दृष्टि (**आप्यायताम्** ) निर्मल हो ( **ते** ) तेरे ( **श्रोत्रम्** ) कर्ण ( **आप्यायताम्** ) सद्गुण व्याप्त हो ( **ते** ) तेरा ( **यत** ) जो ( **क्रूरम्** ) दुष्ट व्यवहार है वह (**निष्ट्यायताम्**) दूर हो और (**यत**) जो ( **ते** ) तेरा (**आस्थितम्**) निश्चय है वह ( **आप्यायताम्** ) पूरा हो इस प्रकार से ( **ते** ) तेरा समस्त व्यवहार ( **शुध्यतु** ) शुद्ध हो और ( **अहोभ्य** ) प्रतिदिन तेरे लिए ( **शम्** ) सुख हो । हे ( **ओषधे** ) प्रवर अध्यापक ! आप ( **एनम्** ) इस शिष्य की (**त्रायस्व**) रक्षा कीजिये और ( **मा हिंसी** ) व्यर्थ ताड़ना मत कीजिये । हे ( **स्वधिते** ) प्रशस्ताध्यापिके ! तू इस कुमारिका शिष्या की ( **त्रायस्व** ) रक्षा कर और इस को अयोग्य ताडना मत दे ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—सत्कर्म करने से सब की उन्नति होती है इस से सब मनुष्यो को चाहिए कि सुशिक्षा पाकर समस्त सत्कर्मों का अनुष्ठान करें इसी से अध्यापक जन गुण ग्रहण कराने ही के लिए शिष्यो को ताड़ना देते हैं वह उनकी ताडना अत्यन्त सुख की करनेवाली होती है । स्त्री और पुरुष इस प्रकार उपदेश करें कि हे सर्वोत्तम अध्यापक ! यह आपका विद्यार्थी जैसे शीघ्र विद्वान् हो जाय वैसा प्रयत्न कीजिये । हे प्रिये ! यह कन्या जिस प्रकार अतिशीघ्र विद्यायुक्त हो वैसा काम कर ॥ १५ ॥

**रक्षसां भाग इत्यस्य मधातिथिऋषि । द्यावापृथिव्यौ देवते ॥**

**ब्राह्म्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब शिष्यवर्गों म से प्रति शिष्य को यथायोग्य उपदेश करना अगले मन्त्र म कहा है—*

## रक्षसा भागोऽसि निरस्तꣳ रक्षऽइदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवं बाधऽइदमहꣳ रक्षोऽधम तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभस मारुत गच्छतम् ॥ १६ ॥

**पदार्थ**—हे दुष्टकर्म करनेवाले जन ! तू (**रक्षसाम्**) दुष्टो अर्थात् परार्थ नाश कर अपना अभीष्ट करनेवालो का ( **भाग** ) भाग ( **असि** ) है इस कारण ( **रक्ष** ) राक्षस स्वभावी तू ( **निरस्तम्** ) निकल जा ( **अहम** ) मै ( **इदम** ) ऐसे ( **रक्ष** ) स्वार्थसाधक का (**अभितिष्ठामि**) तिरस्कार करने के लिए सम्मुख होता हूँ और केवल सम्मुख ही नही किन्तु ( **अहम** ) मै (**इदम**) इस ( **रक्ष** ) दुष्ट जन को (**अवबाधे**) अत्यन्त तिरस्कार के साथ पीटता हूँ जिस से वह फिर सामने न हो और (**अहम** ) मै ( **इदम** ) इस ( **रक्ष** ) दुष्ट जन को ( **अधमम** ) दुःसह दुःख को ( **नयामि** ) पहुचाता हूँ । अब श्रेष्ठ गुणग्राही शिष्य के लिए उपदेश है । हे वायो ! गुणग्राहक सत असत् व्यवहार की विवेचना करनेवाला तू (**स्तोकानाम**) सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारो को ( **वे** ) जान और तेरे यज्ञशोधित जल से ( **द्यावापृथिवी** ) सूर्य और भूमि ( **प्रोर्णुवाथाम** ) अनेक प्रकार आच्छादित हो ( **अग्नि** ) समस्त विद्यायुक्त विद्वान् तेरे घृत आदि पदार्थ के ( **स्वाहा** ) अच्छे होम किये हुए को ( **वेतु** ) जाने तथा ( **स्वाहाकृते** ) हवन किये हुए स्नेहद्रव्य को प्राप्त पूर्वोक्त जो सूर्य और भूमि हैं वे ( **ऊर्ध्वनभसम** ) तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए जल को ऊपर पहुचानेवाले ( **मरुतम्** ) पवन को ( **गच्छतम** ) प्राप्त हो ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—बुद्धिमान् श्रेष्ठ और अनिष्ट के विवेक करनेवाले विद्वान् लोग अपने शिष्यो में यथायोग्य शिक्षा विधान करते हैं यज्ञकर्म से जल और पवन की शुद्धि उस की शुद्धि से वर्षा और उस से सब प्राणियो को सुख उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

**इदमाप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आपो देवता । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब निर्मल जल से क्या सम्भावना करनी चाहिए यह अगले मन्त्र म उपदेश किया है—*

## इदमाप प्र वहतावद्य च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनस पवमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

**पदार्थ**—भो ( **आप** ) सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोगो ! आप जैसे ( **आप** ) जल शुद्धि करते हैं वैसे मेरा ( **यत्** ) जो ( **अवद्यम** ) अकथनीय निन्द्यकर्म (**च**) और विकार तथा ( **यत** ) जो ( **मलम** ) अविद्यारूपी मल है ( **इदम** ) इस को (**प्रवहत**) बहाइये अर्थात् दूर कीजिये ( **च** ) और ( **यत** ) जो मै ( **अनृतम** ) झूठ मूठ किसी से ( **दुद्रोह** ) द्रोह करता होऊ ( **च** ) और ( **यत्** ) जो ( **अभीरुणम्** ) निर्भय निरपराधी पुरुष को ( **शेपे** ) उलाहने देता हूँ ( **तस्मात्** ) उस उक्त ( **एनस** ) पाप से ( **मा** ) मुझे अलग रक्खो ( **च** ) और जैसे ( **पवमान** ) पवित्र व्यवहार (**मा**) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है वैसे ( **च** ) अन्य मनुष्यो को भी रक्खे ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—जैसे जल सांसारिक पदार्थो की शुद्धि का निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामो को करें । मनुष्यो को चाहिए कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणो को छोड सदा धर्म मे प्रवृत्त रहें ॥ १७ ॥

**स त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । प्राजापत्यानुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर । रेडसीत्यस्य दैवीपङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब रण मे युद्ध करनेवाला शिष्य कैसा हो यह अगले मन्त्र में कहा है—*

## स ते मनो मनसा स प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्याऽऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ॥ १८ ॥

**पदार्थ**—हे युद्धशील शूरवीर ! संग्राम मे ( **ते** ) तेरा ( **मन** ) मन (**मनसा**) विज्ञानबल और ( **प्राण** ) प्राण ( **प्राणेन** ) प्राण के साथ ( **सम् गच्छताम्** ) संगत हो । हे वीर ! तू ( **रेड** ) शत्रुओ को मारनेवाला (**असि**) है ( **त्वा** ) तुझे (**अग्नि** ) युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि ( **श्रीणातु** ) अच्छे पचावे तू ( **प्रयुतम्** ) करोडों प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है तुझको तज्जन्य ( **ऊष्मण** ) गरमी का ( **द्वेष** ) द्वेष मत ( **व्यथिषत** ) अत्यन्त पीडायुक्त करे जिस से ( **वातस्य, ध्राज्यै** ) पवन की गति के तुल्य गति के लिए वा ( **पूष्ण** ) पुष्टिकारक सूर्य के ( **रंह्यै** ) वेग के तुल्य वेग के लिए अर्थात् यथावत्ता मे युद्ध करने मे प्रवृत्ति होने के लिए ( **आप** ) अच्छे अच्छे जल ( **सम् अरिणन्** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि अपने बल के बढानेवाले अन्न जल और शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओ को मार कर संग्राम जीतें ॥१८॥

**घृत घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । विश्वेदेवा देवता । ब्राह्म्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर युद्धकर्म मे क्या होना चाहिए यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

## घृतं घृतपावान पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

**पदार्थ**—हे ( **घृतपावान** ) जल के पीनेवाले वीर पुरुषो ! तुम ( **घृतम्** ) अमृतात्मक जल को ( **पिबत** ) पिओ । हे (**वसापावान** ) नीति के पालनवाले वीरो ! तुम ( **वसाम्** ) जो वीर रस की वाणी अर्थात् शत्रुओ का स्तंभन करनेवाली है उस को ( **पिबत** ) पिओ । हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूहादि सेनारचक प्रत्येक वीर को तू जिस से ( **अन्तरिक्षस्य** ) आकाश की ( **हवि** ) रुकावट अर्थात् युद्ध मे बहुतो के बीच शत्रुओ को घेरना ( **असि** ) है उस ( **स्वाहा** ) शोभन वाणी से जो ( **दिश** ) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ( **प्रदिश** ) आग्नेयी नैऋति वायवी और ऐशानी उपदिशा (**आदिश** ) आमने सामने मुहान की दिशा ( **विदिश** ) पीठ की दिशा और ( **उद्दिश** ) जिस ओर शत्रु लक्षित हो वे दिशा हैं उन सब ( **दिग्भ्य** ) दिशाओ से यथायोग्य वीरो को बाट के शत्रुओ का जीतना ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—सेनाध्यक्षो को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरो को अत्यन्त पुष्ट कर युद्ध के समय चक्रव्यूह श्येनव्यूह तथा शकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मो से सब दिशाओ मे अपनी सेनाओ के भागो का स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओ को घेर वार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

**ऐन्द्र प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । त्वष्टा देवता । ब्राह्म्यनुष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर संग्राम मे वीर पुरुष आपस मे कैसे वर्तें यह उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—*

## ऐन्द्र प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे नि दीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः । देवं त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति । देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

**पदार्थ**—हे (**त्वष्ट** ) शत्रुबलविदारक ( **देव** ) दिव्यविद्यासम्पन्न सेनापति ! आप ( **अवसे** ) रक्षा आदि के लिए ( **अङ्गे अङ्गे** ) जैसे अङ्ग अङ्ग मे ( **ऐन्द्र** ) इन्द्र अर्थात् जीव जिस का देवता है वह सब शरीर मे ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओ को तिरस्कार करता हुआ आप ही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम मे सब शत्रुओ का तिरस्कार करते हुए ( **निदीध्यत** ) प्रकाशित हूजिये अथवा ( **अङ्गे अङ्गे** ) जैसे अङ्ग २ मे (**उदान** ) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुँचानेवाला उदानवायु प्रवृत्त है वैसे अपने विभव से सब वीरो को उन्नति देते हुए संग्राम मे (**निधीत** ) निरन्तर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूजिये ( **यत्** ) जो ( **ते** ) आप का ( **विषुरूपम्** ) विविध रूप ( **सलक्ष्म** ) परस्पर युद्ध का लक्षण ( **भवाति** ) हो वह ( **संग्रामे** ) संग्राम मे ( **भूरि** ) विस्तार से (**समम् एतु**) प्रवृत्त हो । हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिए सब शूरवीर पुरुष ( **सखाय** ) मित्र ही के वर्तें ( **माता** ) माता ( **पितर** ) पिता चाचा ताऊ भृत्य और शुभचिन्तक (**देवत्रा**) देवो अर्थात् विद्वानों धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार का ( **यतम्** ) प्राप्त होते हुए ( **त्वा** ) तेरा ( **अनुमदन्तु** ) अनुमोदन करें ॥ २० ॥

**भावार्थ**—सेनापति सब प्राणियों का मित्रभाव वर्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजापुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीतें ॥ २० ॥

**समुद्र गच्छेत्यादेर्दीर्घतमा ऋषि । सेनापतिर्देवता । साम्नुष्ण्युष्णिक्छन्दांसि । ऋषभ स्वर ॥**

*अब राज्यकर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा । मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू ( **स्वाहा** ) बड़े बड़े अश्वतरी नाव अर्थात् धूमाकाश आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ ( **समुद्रम्** ) समुद्र को ( **गच्छ** ) जा ( **स्वाहा** ) खगोलप्रकाश करनेवाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश को ( **गच्छ** ) जा ( **स्वाहा** ) वेदवाणी से ( **देवम्** ) प्रकाशमान ( **सवितारम्** ) सब को उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर को ( **गच्छ** ) जान ( **स्वाहा** ) वेद और सज्जनों के सङ्ग में शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से ( **मित्रावरुणौ** ) प्राण और उदान को ( **गच्छ** ) जान ( **स्वाहा** ) ज्योतिषविद्या से ( **अहोरात्रे** ) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को ( **गच्छ** ) जान ( **स्वाहा** ) वेदाङ्ग विज्ञानसहित वाणी से ( **छन्दांसि** ) ऋग्यजु साम और अथर्व इन चारों वेदों को ( **गच्छ** ) अच्छे प्रकार से जान ( **स्वाहा** ) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भूगोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से ( **द्यावापृथिवी** ) भूमि और सूर्यप्रकाशस्थ अभीष्ट देश देशान्तरों को ( **गच्छ** ) जान और प्राप्त हो ( **स्वाहा** ) संस्कृत वाणी से ( **यज्ञम्** ) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को ( **गच्छ** ) प्राप्त हो ( **स्वाहा** ) वैद्यक विद्या से ( **सोमम्** ) ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को ( **गच्छ** ) जान ( **स्वाहा** ) जल के गुण और अवगुणों को बोध करानेवाली विद्या से ( **दिव्यम्** ) व्यवहार में लाने योग्य पवित्र ( **नभ** ) जल को ( **गच्छ** ) जान और ( **स्वाहा** ) बिजुली आग्नेयास्त्रादि तारबरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करनेवाली विद्या से ( **अग्निम्** ) विद्युत् रूप अग्नि का ( **गच्छ** ) अच्छी प्रकार जान और ( **मे** ) मेरे ( **मनः** ) मन को ( **हार्दि** ) प्रीतियुक्त ( **यच्छ** ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्त और ( **ते** ) तेरे ( **धूम** ) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूआं ( **दिवम्** ) सूर्यप्रकाश को तथा ( **ज्योति** ) उस की लपट ( **स्व** ) अन्तरिक्ष को ( **गच्छतु** ) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में ( **स्वाहा** ) काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस ( **भस्मना** ) भस्म से ( **पृथिवीम्** ) पृथिवी को ( **आपृण** ) ढांप दे ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—धर्म अर्थ काम मोक्ष राज्य और वनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायन्त्रों को बनाकर तथा सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन करें ॥ २१ ॥

**माप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । वरुणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वरः । सुमित्रिया न इत्यस्य विराड् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब वनिजव्यापार करने के लिए राज्यप्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है—*

**मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजꣳस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **राजन्** ) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में ( **आप** ) जल और ( **ओषधी** ) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि वनज के पदार्थों को ( **मा** ) मत ( **हिंसी** ) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चाहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु ( **ततः** ) उस ( **धाम्न धाम्न** ) स्थान स्थान से ( **न** ) हम लोगों को ( **मा** ) मत ( **मुञ्च** ) त्यागो । हे ( **वरुण** ) न्याय करनेवाले सभापति ! किये हुए न्याय में ( **अघ्न्या** ) न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है ( **इति** ) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी ( **शपामहे** ) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे । हे वरुण ! आपके राज्य में ( **न** ) हम लोगों को ( **आपः** ) जल और ओषधियां ( **सुमित्रिया** ) श्रेष्ठमित्र के तुल्य ( **सन्तु** ) हों तथा ( **य** ) जो ( **अस्मान्** ) हम लोगों से ( **द्वेष्टि** ) वैर रखता है ( **च** ) और ( **वयम्** ) हम लोग ( **यम्** ) जिससे ( **द्विष्म** ) वैर करते हैं ( **तस्मै** ) उस के लिये वे ओषधियां ( **दुर्मित्रिया** ) दुःख देने वाले शत्रु के तुल्य ( **सन्तु** ) हों ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें किन्तु राज्य पालन के लिए राजपुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डाकू चोर लम्पट लबाड़ कपटी कुमार्गी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे ॥ २२ ॥

**हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अप्सूर्या देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किससे क्या क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२ऽआ विवासति । हविष्मान्देवोऽअध्वरो हविष्माँ२ऽअस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों का किया करो कि जिन से ( **इमा** ) ये ( **आप** ) जल ( **हविष्मती** ) अच्छे अच्छे दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय ( **हविष्मान्** ) पवन उपकार अनुपकार को ( **आ** ) अच्छे प्रकार ( **विवासति** ) प्राप्त होता है ( **देव** ) सुख का देनेवाला ( **अध्वरः** ) यज्ञ भी ( **हविष्मान्** ) परमानन्दप्रद ( **सूर्य** ) तथा सूर्यलोक भी ( **हविष्मान्** ) संग्रामादियुक्त होके सुखदायक ( **अस्तु** ) हो ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुँचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम की क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम उत्तम सुख का करने वाला होता है ॥ २३ ॥

**अग्नेव इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वर । अमूर्य्येत्यस्य त्रिपाद् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अमूर्याऽउप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! ( **अमू** ) वे ( **या** ) जो स्वयंवर विवाह से पतियों का स्वीकार किए हुए हैं उन के समान जो ( **इन्द्राग्न्यो** ) सूर्य और बिजुली के गुणों का ( **भागधेयी** ) अलग अलग जानने वाली ( **स्थ** ) हैं ( **मित्रावरुणयो** ) प्राण और उदान के गुणों को ( **भागधेयी** ) अलग अलग जानने वाली ( **स्थ** ) हैं ( **विश्वेषाम** ) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के ( **भागधेयी** ) सेवनेवाली ( **स्थ** ) हैं उन ( **व** ) तुम सभी को ( **अपन्नगृहस्य** ) जिसको गृहकृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करनेवाले और ( **अग्ने** ) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की ( **सदसि** ) सभा में मैं ( **सादयामि** ) स्थापित करता हूं और जो ( **या उप सूर्ये** ) सूर्यलोक गुणों में ( **उप** ) उपस्थित होती है ( **वा** ) अथवा ( **याभि** ) जिन के ( **सह** ) साथ ( **सूर्य** ) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर हैं ( **ता** ) वे सब ( **न** ) हमारे ( **अध्वरम** ) घर के काम काज को विवाह करके ( **हिन्वन्तु** ) बढ़ावें ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचारी और अपने तुल्य गुण कर्म स्वाभावयुक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह करके सदा सुखी रहें और जिस का पति वा जिस की स्त्री मर जाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

**हृदे त्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । सोमो देवता । आर्षी विराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वे क्या क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब ( **देवेषु** ) अपने सुख देनेवाले पतियों के निकट रहने और ( **होत्रा** ) अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करनेवाली हैं वैसी हो और जैसे हम ( **हृदे** ) सौहार्द सुख के लिए ( **त्वा** ) तुझे वा ( **मनसे** ) भला बुरा विचारने के लिए ( **त्वा** ) तुझे वा ( **दिवे** ) सब सुखों के प्रकाश करने के लिए ( **त्वा** ) तुझे वा ( **सूर्य्याय** ) सूर्य्य के सदृश गुणों के लिए ( **त्वा** ) तुझे शिक्षा करती हैं वैसे तू भी ( **दिवि** ) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त ( **इमम्** ) इस ( **अध्वरम्** ) निरन्तर सुख देनेवाले गृहाश्रमरूपी यज्ञ को ( **ऊर्ध्वम्** ) उन्नति ( **यच्छ** ) दिया कर ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जैसे अपने पतियों की सेवा करती हुई उनके समीप रहने वाली पतिव्रता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कामों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिए ॥ २५ ॥

**सोम राजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । शृणोत्वित्यस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में किया है—*

**सोमं राजन्विश्वास्त्वं प्रजाऽउपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽउपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः । श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त ( **राजन्** ) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष ! ( **त्वम्** ) तू पिता के तुल्य ( **विश्वा** ) समस्त ( **प्रजा** ) प्रजा जनों को ( **उपावरोह** ) समीपवर्ती होकर रक्षा कर और ( **त्वाम्** ) तुझे ( **विश्वा** ) समस्त ( **प्रजा** ) प्रजा जन पुत्र के समान ( **उपावरोहन्तु** ) आश्रित हों । हे सभाध्यक्ष ! आप जैसे ( **समिधा** ) प्रदीप्त करने वाले पदार्थ से ( **अग्नि** ) सब गुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे ( **मे** ) मेरी ( **हवम्** ) प्रगल्भवाणी को ( **शृणोतु** ) सुन के न्याय से प्रकाशित हूजिये ( **च** ) और ( **आप** ) सब गुणों में व्याप्त ( **धिषणा** ) विद्या बुद्धियुक्त ( **देवी** ) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्रीजनों के न्याय को ( **शृण्वन्तु** ) सुने । हे ( **ग्रावाण** ) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से ( **श्रोत** ) सुनो तथा ( **देव** ) विद्या से प्रकाशित ( **सविता** ) ऐश्वर्यवान् सभापति ( **विदुष** ) विद्वानों के ( **यज्ञम्** ) यज्ञ के ( **न** ) समान ( **मे** ) हमारे प्रजा लोगों के ( **हवम्** ) निवेदन को ( **स्वाहा** ) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे ( **शृणोतु** ) सुने ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्यव्यवहारों की पालना करें ॥ २६ ॥

**देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर राजा और प्रजा कैसे वर्ताव करें यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवीरापोऽअपां नपाद्यो वऽऊर्म्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **आप** ) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त ( **देवी** ) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो ! तुम राजसेवी ( **स्थ** ) हो ( **शुक्रपेभ्य** ) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक ( **देवेभ्य** ) दिव्यगुणयुक्त विद्वानों के लिए ( **येषाम्** ) जिन ( **व** ) तुम्हारा बली रूप विद्वानों का ( **य** ) जो ( **अपां नपात्** ) जलों के नाशरहित स्वाभाविक ( **ऊर्मि** ) जलतरंग के सदृश प्रजारक्षक ( **इन्द्रियावान्** ) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रिया होती हैं और ( **मदिन्तम** ) आनन्द देनेवाला ( **हविष्य** ) भाग के योग्य पदार्थों से सिद्ध ( **भाग** ) भाग है वे तुम सब ( **तम्** ) उसको ( **स्वाहा** ) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन ( **देवत्रा** ) दिव्य भाग देते हैं वैसे तुम भी इस को आनन्द ( **दत्त** ) देओ ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सम्मति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त सभापति को राजा मान कर राज्यपालन के लिए कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

**कार्षिरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । प्रजा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब अध्यापक जन प्रजाजनों को क्या क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि । समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे अध्यापक जन ! तू ( **कार्षि** ) खेती करने योग्य ( **असि** ) है ( **त्वा** ) तुझे ( **समुद्रस्य** ) अन्तरिक्ष के ( **अक्षित्य** ) परिपूर्ण ज्ञान के लिए ( **सम् उत् नयामि** ) अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूँ तुम सब लोग ( **अद्भि** ) यज्ञशोधित जलों से ( **आप** ) जल और ( **ओषधीभि** ) ओषधियों से ( **ओषधी** ) ओषधियों को ( **सम् अग्मत** ) प्राप्त होओ ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—क्षेत्र आदि स्थानों में अनेक ओषधियां उत्पन्न होती हैं, ओषधियों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ, यज्ञों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊंचे होते हैं उन से आकाश भरा रहता है इस कारण विद्वान् लोग निर्बुद्धि जनों को खेती बाड़ी ही के कामों में रखते हैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

**यमग्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब वह अध्यापक को क्या करना है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**यमग्ने पृत्सु मर्त्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) जब कभी विवेक के करने वाले आप ! ( **पृत्सु** ) संग्रामों में ( **यम्** ) जिस मनुष्य की ( **अव** ) रक्षा करने और ( **वाजेषु** ) अन्न आदि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त ( **यम्** ) जिसको ( **जुना** ) नियुक्त करते हो ( **स** ) वह ( **शश्वती** ) निरन्तर अनादिरूप ( **इष** ) अपनी प्रजाओं को ( **यन्ता** ) निर्वाह करने हारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पहुँचाता है ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—गुरुजनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥ २९ ॥

**देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सविता देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब सभापति कर धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे यह गुरुजन का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् । उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—सब सुख देने ( **सवितु** ) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किए हुए संसार में ( **अश्विनो** ) सूर्य और चन्द्रमा के ( **बाहुभ्याम्** ) बल और पराक्रम गुणों से ( **पूष्ण** ) पुष्टि करने वाले सोम आदि ओषधिगण के ( **हस्ताभ्याम्** ) रोगनाश करने और धातुओं की समता रखनेवाले गुणों से ( **त्वा** ) तुझ कर धन देनेवाले को ( **आददे** ) स्वीकार करता हूँ । तू ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य वाले मेरे लिए ( **उत्तमेन** ) उत्तम अर्थात् सभ्यता की ( **पविना** ) वाणी से ( **इमम्** ) इस ( **गभीरम्** ) अत्यन्त समझने योग्य ( **सुषूतमम्** ) सब पदार्थों से उत्पन्न हुए ( **ऊर्जस्वन्तम्** ) राज्य को बलिष्ठ करने वाले ( **मधुमन्तम्** ) समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थयुक्त ( **पयस्वन्तम्** ) दुग्ध आदि सहित कर धन को ( **अध्वरम्** ) निष्कपट ( **कृधि** ) कर दे ( **देवश्रुत** ) श्रेष्ठ राज्य गुणों को सुनने वाले तुम मेरे ( **निग्राभ्य** ) निरन्तर स्वीकार करने योग्य ( **स्थ** ) हो ( **मा** ) मुझे इस कर के देने से ( **तर्पयत** ) तृप्त करो ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—प्रजाजनों की योग्यता है कि सभाध्यक्ष को प्राप्त होकर उस के लिए अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दें जिस कारण राजा प्रजापालन के लिए संसार में उत्पन्न हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥ ३० ॥

**मनो म इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । प्रजासभ्यराजानो देवताः । उष्णिक्छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**मनो मे तर्प्पयत वाचं मे तर्प्पयत प्राणं मे तर्प्पयत चक्षुर्मे तर्प्पयत श्रोत्रं मे तर्प्पयतात्मानं मे तर्प्पयत प्रजां मे तर्प्पयत पशून्मे तर्प्पयत गणान्मे तर्प्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥**

**पदार्थ**—हे सभ्यजनो और प्रजाजनो ! तुम अपने गुणों से ( **मे** ) मेरे ( **मन** ) मन को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरी ( **वाचम्** ) वाणी को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरे ( **प्राणम्** ) प्राण को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरे ( **चक्षु** ) नेत्रों को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरे ( **श्रोत्रम्** ) कानों को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरे ( **आत्मानम्** ) आत्मा को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरी ( **प्रजाम्** ) सन्तानादि प्रजा को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरे ( **पशून्** ) गौ हाथी घोड़े आदि पशुओं को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो ( **मे** ) मेरे ( **गणान्** ) सेवकों को ( **तर्प्पयत** ) तृप्त करो जिससे ( **मे** ) मेरे ( **गणा** ) राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवकजन कामों में ( **मा** ) मत ( **वितृषन्** ) उदास हों ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—राज्य का प्रबन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है जिससे प्रजाजन राजसेवक और राजपुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने अपने कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहें ॥ ३१ ॥

**इन्द्राय त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सभापतीराजा देवता । पञ्चपाज्ज्योतिष्मती जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किसलिए प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽइन्द्राय त्वादित्यवतऽइन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने । श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! ( **वसुमते** ) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन कर अच्छे अच्छे विद्वान् होते हैं ( **रुद्रवते** ) जिसमें चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं उस ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिए ( **त्वा** ) आपका ग्रहण करते हैं ( **आदित्यवते** ) जिसमें अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन कर सूर्य्यसदृश परम विद्वान् होते हैं उस ( **इन्द्राय** ) उत्तम गुण पाने के लिए ( **त्वा** ) आपको ( **अभिमातिघ्ने** ) जिस कर्म में बड़े बड़े अभिमानी शत्रुजन मारे जाय उस ( **इन्द्राय** ) परमोत्कृष्ट शत्रुविदारक काम के लिये ( **त्वा** ) आप ( **सोमभृते** ) उत्तम ऐश्वर्य धारण करने हारे ( **श्येनाय** ) युद्धादि कामों में श्येनपक्षी के तुल्य झपट झपट मारनेवाले

( **त्वा** ) आप ( **रायस्पोषदे** ) धन की दृढ़ता देने के लिये और ( **अग्नये** ) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्रकाश कराने के लिये ( **त्वा** ) आपको हम स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य वरुण और धनाढ्य के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार करानेवाला सब को सुख देवे उसी को राजा मानना चाहिये ॥३२॥

**यत्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । सोमो देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।**
**तेनास्मै यजमानयोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) समस्त ऐश्वर्य के निमित्त प्रेरणा करने हारे सभापति ! ( **ते** ) तेरा ( **यत** ) जो ( **दिवि** ) सूर्यलोक मे ( **पृथिव्याम्** ) पृथिवी मे और ( **यत** ) जो ( **उरौ** ) विस्तृत ( **अन्तरिक्षे** ) आकाश मे ( **ज्योति** ) जैसे ज्योति हो वैसा राजकर्म है ( **तेन** ) उससे तू ( **अस्मै** ) इस परोपकार के अर्थ ( **यजमानाय** ) यज्ञ करते हुए यजमान के लिए ( **उरु कृधि** ) अत्यन्त उपकार कर तथा ( **राये** ) धन बढ़ने के लिए ( **अधि, वोच** ) अधिक अधिक राज्यप्रबन्ध कर ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों का निरालस्य करता रहे जिससे वे पुरुषार्थी होकर पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ॥३३॥

**श्वात्रा स्थ इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी पथ्या बृहतीच्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म्म करनेवाली हों यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ताऽअमृतस्य पत्नीः ।**
**ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देवी** ) विद्यायुक्त स्त्रियो ! तुम ( **वृत्रतुर** ) बिजुली के सदृश मेघ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति तुल्य चलने ( **राधोगूर्त्ता** ) धन का उद्योग करने ( **पत्न्य** ) और यज्ञ मे सहाय देनेवाली ( **स्थ** ) हो ( **देवत्रा** ) तथा अच्छे अच्छे गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों मे प्रीति से स्थित हो ( **इमम्** ) इस यज्ञ को ( **नयत** ) सिद्धि को प्राप्त किया कीजिये और ( **उपहूता** ) बुलाई हुई अपने पतियों के साथ ( **अमृतस्य** ) अति स्वादयुक्त सोम आदि ओषधियों के रस को ( **पिबत** ) पीओ ॥३४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरन्तर प्रसन्न करें ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें ॥३४॥

**मा भेर्मेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । द्यावापृथिव्यौ देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा वर्त्ताव वर्त्तें यह उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्ज्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथा-**
**मूर्ज्जं दधाथाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री ! तू ( **विड्वी** ) शरीरात्मबलयुक्त होती हुई पति से ( **मा, भे** ) मत डर ( **मा संविक्था** ) मत कंप और ( **ऊर्ज्जम्** ) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को ( **धत्स्व** ) धारण कर । हे पुरुष ! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से वर्त्त । तुम दोनों स्त्री पुरुष ( **धिषणे** ) सूर्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिससे ( **वीडयेथाम्** ) दृढ़ बल वाले हो ऐसा वर्त्ताव वर्त्तते हुए तुम दोनों का ( **पाप्मा** ) अपराध ( **हत** ) नष्ट हो और ( **सोम** ) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो ॥३५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्त्तें कि जिससे उनका परस्पर भय और उद्वेग नष्ट होकर आत्मा की दृढ़ता उत्साह और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़े और वे दोष तथा दु ख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आह्लादित हों ॥३५॥

**प्रागपागित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । सोमो देवता । उष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब उनके पुत्र क्या क्या करें और वे पुत्रों को कैसे पालें यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआ धावन्तु । अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥ ३६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अम्ब** ) प्रेम से प्राप्त होनेवाली माता ! जो तेरी ( **अरी** ) सन्तानादि प्रजा ( **प्राक** ) पूर्व ( **अपाक** ) पश्चिम ( **उदक** ) उत्तर ( **अधराक** ) दक्षिण और भी ( **सर्वत** ) सब ( **दिश** ) दिशाओं से ( **त्वा** ) तुझे ( **आ, धावन्तु** ) धाय धाय प्राप्त हों उन्हें ( **नि , पर** ) निरन्तर प्यार कर और वे भी तुझे ( **सम्** ) अच्छे भाव से जानें ॥३६॥

**भावार्थ**—माता और पिता को योग्य है कि अपने सन्तानों को विद्यादि अच्छे अच्छे गुणों मे प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उनके शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिससे वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता पिता की सब प्रकार सेवा करें ॥ ३६ ॥

**त्वमङ्ग इत्यस्य गोतम ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।**
**न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ३७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अङ्ग, शविष्ठ** ) अत्यन्त बलयुक्त ( **मघवन्** ) महाराज के समान ( **इन्द्र** ) ऋद्धि सिद्धि देनेहारे सभापते ! ( **त्वम्** ) आप ( **मर्त्यम्** ) प्रजास्थ मनुष्य को ( **प्रशंसिष** ) प्रशंसायुक्त कीजिये । आप ( **देव** ) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं ( **न** ) नहीं ( **त्वदन्य** ) तुम से अन्य ( **मर्डिता** ) सुख देने वाला है ऐसा मैं ( **ते** ) आप को ( **वच** ) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन ( **ब्रवीमि** ) कहता हूँ ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर सर्वसुहृत पक्षपातरहित है वैसे सभापति राज्यधर्म्मानुवर्त्ती राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निन्दनीय की निन्दा दुष्ट को दण्ड श्रेष्ठ की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥३७॥

इस अध्याय मे राज्य के अभिषेकपूर्वक शिक्षा राज्य का कृत्य प्रजा को राजा का आश्रय सभाध्यक्षादिकों का काम विष्णु का परम पद वर्णन सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी राजा प्रजा का आपस मे कृत्य गुरु का शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान होम किये द्रव्य के फल का वर्णन विद्वानों के लक्षण मनुष्यकृत्य मनुष्यों का परस्पर वर्तमान दुष्ट दोष निवृत्ति फल ईश्वर से क्या क्या प्रार्थना करनी चाहिये रण मे योद्धा का वर्णन युद्धकृत्य निरूपण युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार वीरों को उत्साह देना राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य साधन राजा के प्रति ईश्वरोपदेश राज्यकर्म का अनुष्ठान राजा और प्रजा का कृत्य राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा प्रजा को स्वीकार करने के योग्य सभापति का लक्षण प्रजा और राजसभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्त्तव्य कामों का अनुष्ठान सभापत्यादिकों की पत्नियों को क्या करना चाहिये स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव माता पिता के प्रति सन्तानों का वर्त्ताव और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है इससे पञ्चम अध्याय मे कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की संगति है ऐसा जानना चाहिये ।

॥ इति षष्ठोऽध्याय ॥

# ॥ अथ सप्तमाऽध्यायारम्भः ॥

*अब सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है—*

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

**वाचस्पतय इत्यस्य गोतम ऋषिः । प्राणो देवता । भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भीतर के व्यवहार का उपदेश है—*

**वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअ॒शुभ्यां गभस्तिपूतः ।**

**दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ पवस्व॒ येषां॑ भा॒गोऽसि॑ ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य तू ( **वाचः** ) वाणी के ( **पतये** ) पालन हारे ईश्वर के लिये ( **पवस्व** ) पवित्र हो ( **वृष्णः** ) बलवान् पुरुष के ( **अंशुभ्याम्** ) भुजाओं के समान बाहर भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे ( **गभस्तिपूतः** ) सूर्य्य की किरणों से पदार्थ पवित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से ( **देवः** ) दिव्य गुण युक्त विद्वान् होकर ( **येषाम्** ) जिन विद्वानों की ( **भागः** ) सेवन करने के योग्य है उन ( **देवेभ्यः** ) देवों के लिए ( **पवस्व** ) पवित्र हो ॥१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करनेवाले नित्य पवित्र परमात्मा का ज्ञान और विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी का बोलने वाले हों ॥१॥

**मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**मधु॑मतीर्न॒ऽइष॑स्कृधि॒ यत्ते॑ सो॒मादा॑भ्यं॒ नाम॒ जागृ॑वि॒ तस्मै॑ ते**

**सोम॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒ स्वाहो॒र्व॒न्तरि॑क्ष॒मन्वे॑मि ॥ २ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन् ! आप ( **नः** ) हम लोगों के लिए ( **मधुमतीः** ) मधुरादिगुणसहित ( **इषः** ) अन्न आदि पदार्थों को ( **कृधि** ) कीजिये तथा हे ( **सोम** ) शुभ कर्मों में प्रेरणा करनेवाले विद्वान् ! मैं ( **यत्** ) जिससे ( **ते** ) आपका ( **अदाभ्यम्** ) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य ( **जागृवि** ) प्रसिद्ध ( **नाम** ) नाम है ( **तस्मै** ) उस ( **सोमाय** ) ऐश्वर्य की प्राप्ति और ( **ते** ) आपके लिए अर्थात् आपकी आज्ञा वर्त्तने के लिए ( **स्वाहा** ) सत्यधर्म्म युक्त क्रिया ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी और ( **उरु अन्तरिक्षम्** ) अवकाश को ( **एमि** ) प्राप्त होता हूँ ॥२॥

**भावार्थ**—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों को सम्पादन करें वैसे ही औरों के लिये भी किया करें और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा करे वैसे ही औरों की आप भी किया करें जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं वैसे आप भी हों ॥२॥

**स्वाङ्कृत इत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवता । विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर अगले मन्त्र से आत्मक्रिया का निरूपण किया है—*

**स्वाङ्कृ॑तोऽसि॒ विश्वे॑भ्यऽइन्द्रि॒येभ्यो॑ दि॒व्येभ्यः॒ पार्थि॑वेभ्यो॒ मन॑स्त्वाष्टु॒ स्वाहा॑ त्वा सुभव॒ सूर्या॑य दे॒वेभ्य॑स्त्वा मरीचि॒पेभ्यो॑ देवा॑ꣳशो॒ यस्मै॒ त्वेडे॒ तत्स॒त्यमु॑परि॒प्रुता॑ भ॒ङ्गेन॑ ह॒तोऽसौ फट् प्रा॒णाय॑ त्वा व्या॒नाय॑ त्वा ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अंशो** ) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो तू ( **दिव्येभ्यः** ) दिव्य ( **विश्वेभ्यः** ) समस्त ( **पार्थिवेभ्यः** ) पृथिवी पर प्रसिद्ध ( **इन्द्रियेभ्यः** ) इन्द्रियों और ( **मरीचिपेभ्यः** ) किरणों के समान पवित्र करनेवाले ( **देवेभ्यः** ) विद्वानों और वायु आदि पदार्थों के लिए ( **स्वाङ्कृतः** ) स्वयं सिद्ध ( **असि** ) है उस ( **त्वा** ) तुझको ( **मनः** ) विज्ञान और ( **स्वाहा** ) वेद वाणी ( **अष्टु** ) प्राप्त हों । हे ( **सुभव** ) श्रेष्ठ गुणवान् होनेवाले मैं ( **सूर्य्याय** ) सर्वप्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये ( **त्वाम्** ) तेरी ( **ईडे** ) प्रशंसा करता हूं तू भी ( **तत्** ) उस प्रशंसा के योग्य ( **सत्यम्** ) सत्य परमात्मा को प्रीति से ग्रहण कर ( **उपरिप्रुता** ) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने ( **भङ्गेन** ) मर्दन से ( **असौ** ) यह अज्ञानरूप शत्रु ( **फट्** ) झट ( **हतः** ) मारा उस ( **त्वाम्** ) तुझे ( **प्राणाय** ) जीवन के लिए प्रशंसित करता और ( **व्यानाय** ) विविध प्रकार के सुख प्राप्त करने के लिए ( **त्वा** ) तुझे प्रशंसा देता हूं ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जीव आप ही स्वयंसिद्ध अनादिरूप है इससे इन को चाहिये कि देह प्राण इन्द्रियों और अन्तःकरण को निर्मल धर्म्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त होकर परमेश्वर की उपासना में स्थिर हो तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें ॥३॥

**उपयामगृहीत इत्यस्य गोतम ऋषिः । मघवा देवता । आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे यह उपदेश अगले मंत्र में किया है—*

**उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽस्य॒न्तर्य॑च्छ मघवन् पा॒हि सोम॑म् ।**

**उ॒रु॒ष्य राय॒ऽएषो॑ यजस्व ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे योग चाहनेवाले ! जिससे तू ( **उपयामगृहीतः** ) योग में प्रवेश करनेवाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान ( **असि** ) है इस कारण ( **अन्तः** ) भीतरले जो प्राणादि पवन मन और इन्द्रियां हैं इनको ( **यच्छ** ) नियम में रख । हे ( **मघवन्** ) परमपूजित धनी के समान ! तू ( **सोमम्** ) योगविद्यासिद्ध ऐश्वर्य्य को ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **उरुष्य** ) और जो अविद्या आदि क्लेश हैं उनको अत्यन्त योगविद्या के बल से नष्ट कर जिससे ( **रायः** ) ऋद्धि और ( **इषः** ) इच्छासिद्धियों को ( **आयजस्व** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । योग के जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम नियम आदि योग के अङ्गों से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि सिद्धियों को सिद्ध करें ॥ ४ ॥

**अन्तस्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है उसके लिए विज्ञान का उपदेश अगले मन्त्र से करता है—*

**अ॒न्तस्ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी द॑धाम्य॒न्तर्द॑धाम्यु॒र्व॒न्तरि॑क्षम् ।**

**स॒जूर्दे॒वेभि॒रव॑रैः॒ परै॑श्चान्तर्या॒मे म॑घवन् मादयस्व ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **मघवन्** ) योगी ! मैं परमेश्वर ( **ते** ) तेरे ( **अन्तः** ) हृदयाकाश में ( **द्यावापृथिवी** ) सूर्य्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों को ( **दधामि** ) स्थापित करता हूं तथा ( **उरु** ) विस्तृत ( **अन्तरिक्षम्** ) अवकाश को ( **अन्तः** ) शरीर के भीतर ( **दधामि** ) धारता हूं ( **सजूः** ) मित्र के समान तू ( **देवेभिः** ) विद्वानों से विद्या को प्राप्त होके ( **अवरैः परैः च** ) थोड़े वा बहुत योग व्यवहारों से ( **अन्तर्यामे** ) भीतरले नियमों में वर्त्तमान होकर अन्य सब को ( **मादयस्व** ) प्रसन्न किया कर ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर का यह उपदेश है कि ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान में वर्त्तमान हैं । योगविद्या को नहीं जानने वाला उनको नहीं देख सकता और मेरी उपासना के विना कोई योगी नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

**स्वाङ्कृतोसीत्यस्य गोतम ऋषिः । योगी देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर ईश्वर योगविद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है—*

**स्वाङ्कृ॑तोऽसि॒ विश्वे॑भ्यऽइन्द्रि॒येभ्यो॑ दि॒व्येभ्यः॒ पार्थि॑वेभ्यो॒ मन॑स्त्वाष्टु॒ स्वाहा॑ त्वा सुभव॒ सूर्या॑य दे॒वेभ्य॑स्त्वा मरीचि॒पेभ्य॑ऽउदा॒नाय॑ त्वा ॥६॥**

**पदार्थ**—हे ( **सुभव** ) शोभन ऐश्वर्य्ययुक्त योगी ! तू ( **स्वाङ्कृतः** ) अनादि काल से स्वयंसिद्ध ( **असि** ) है । मैं ( **दिव्येभ्यः** ) शुद्ध ( **विश्वेभ्यः** ) समस्त ( **देवेभ्यः** ) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और ( **मरीचिपेभ्यः** ) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से ( **त्वा** ) तुझको स्वीकार करता हूँ ( **पार्थिवेभ्यः** ) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिए भी ( **त्वा** ) तुझको स्वीकार करता हूँ ( **सूर्य्याय** ) सूर्य्य के समान योग प्रकाश करने के लिए वा ( **उदानाय** ) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ ( **त्वाम्** ) तुझे ग्रहण करता हूँ जिससे ( **त्वा** ) तुझ योग चाहने वाले को ( **मनः** ) योग समाधियुक्त मन और ( **स्वाहा** ) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया ( **अष्टु** ) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करनेवाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उसको स्वीकार नहीं करता जब तक जिसको ईश्वर स्वीकार नहीं करता तब तक उसका पूरा पूरा आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता तब तक उसको अत्यन्त सुख भी नहीं होता ॥ ६ ॥

**आ वायो भूषेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर योगी का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है—*

**आ वायो भूष शुचिपाऽउप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।**
**उपो तेऽअन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥७॥**

**पदार्थ**—हे ( **शुचिपा** ) अत्यन्त शुद्धता को पालने और ( **वायो** ) पवन के तुल्य योग क्रियाओं में प्रवृत्त होनेवाले योगी ! तू ( **सहस्रम्** ) हजारों ( **नियुत** ) निश्चित शमादिक गुणों को ( **आभूष** ) सब प्रकार सुभूषित कर । हे ( **विश्ववार** ) समस्त गुणों के स्वीकार करनेवाले ! जो ( **ते** ) तेरा ( **मद्यम्** ) अच्छी तृप्ति देने वाला ( **अन्धः** ) अन्न है उस को ( **उपो** ) तेरे समीप ( **अयामि** ) पहुँचाता हूँ । हे ( **देव** ) योग बल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! ( **यस्य** ) जिससे तेरा ( **पूर्वपेयम्** ) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योगबल है जिसको तू ( **दधिषे** ) धारण कर रहा है ( **वायवे** ) उस योग के जानने के लिए ( **त्वा** ) तुझे स्वीकार करता हूँ ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता ईश्वर के तुल्य अच्छे-अच्छे गुणों में व्याप्त होता है और अन्न वा जल के सदृश सुख देता है वही योग के बीच में समर्थ होता है ॥ ७ ॥

**इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । इन्द्रवायू इत्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीत इत्यस्यार्षी स्वराड् गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर वह योगी कैसा होता है यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि । उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्रवायू** ) प्राण और सूर्य्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने वालो ! ( **हि** ) जिससे ( **इमे** ) ये ( **सुताः** ) उत्पन्न हुए ( **इन्दवः** ) सुखकारक जलादि पदार्थ ( **वाम्** ) तुम दोनों को ( **उशन्ति** ) प्राप्त होते हैं इससे तुम ( **प्रयोभिः** ) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही ( **आगतम्** ) जानो । हे योग चाहने वाले ! तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक से ( **वायवे** ) पवन के तुल्य योगसिद्धि को पाने के लिए अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिए ( **उपयामगृहीतः** ) योग के यम नियमों के साथ स्वीकार किया गया ( **असि** ) है । हे भगवन् योगाध्यापक ! ( **एषः** ) यह योग ( **ते** ) तुम्हारा ( **योनिः** ) सब दुःखों के निवारण करनेवाले घर के समान है और ( **इन्द्रवायुभ्याम्** ) बिजुली और प्राणवायु के समान योगवृद्धि और समाधि चढ़ाने और उतारने की शक्तियों से ( **जुष्टम** ) प्रसन्न हुए ( **त्वा** ) आपको और हे योग चाहनेवाले ! ( **सजोषोभ्याम्** ) सेवन किए हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए ( **त्वा** ) तुझे मैं अपने सुख के लिए चाहता हूँ ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—वे ही लोग पूर्णयोगी और सिद्ध हो सकते हैं जो कि योगविद्याभ्यास करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का यत्न किया करते और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं वे भी इस योग सिद्धि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥ ८ ॥

**अयं वामित्यस्य गृत्समद ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीतोसीत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमऽऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳ हवम् । उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **मित्रावरुणा** ) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान ( **ऋतावृधा** ) सत्य विज्ञान वर्द्धक योगविद्या के पढ़ने वालो ! ( **वाम्** ) तुम्हारा ( **अयम्** ) यह ( **सोमः** ) योग का ऐश्वर्य ( **सुतः** ) सिद्ध किया हुआ है उससे तुम ( **इह** ) यहां ( **मम** ) योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी ( **हवम्** ) स्तुति को ( **श्रुतम्** ) सुनो, हे यजमान ! जिससे तू ( **उपयामगृहीतः** ) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ ( **इत्** ) ही ( **असि** ) है इससे मैं ( **मित्रावरुणाभ्याम्** ) प्राण और उदान के साथ वर्त्तमान ( **त्वा** ) तुझको ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का ग्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश सुन और यमनियमों को धारण करके योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ९ ॥

**राया वयमित्यस्य त्रिसदस्युर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः । तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥ १० ॥**

**पदार्थ**—( हे **ससवांसः** ) भले बुरे के अलग अलग करनेवाले ( **देवाः** ) विद्वानो ! आप और ( **वयम्** ) हम लोग ( **यवसेन** ) तृण घास भूसा से ( **गावः** ) गौ आदि पशुओं के समान ( **हव्येन** ) ग्रहण करने के योग्य ( **राया** ) धन से ( **मदेम** ) हर्षित हों और हे ( **मित्रावरुणा** ) प्राण के समान उत्तम जनो ! ( **युवम्** ) तुम दोनों ( **नः** ) हमारे लिए ( **विश्वाहा** ) सब दिनों में ( **अनपस्फुरन्तीम्** ) ठीक-ठीक ज्ञान देनेवाली ( **धेनुम्** ) वाणी का ( **धत्तम** ) धारण कीजिये । हे यजमान ! जिससे ( **ते** ) तेरा ( **एषः** ) यह विद्याबोध ( **योनिः** ) घर है इससे ( **ऋतायुभ्याम्** ) सत्य व्यवहार चाहनेवालों के सहित ( **त्वा** ) तुझको हमलोग स्वीकार करते हैं ॥१०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के सङ्ग से परोपकार की सिद्धि और कामना को पूर्ण करनेवाली वेदवाणी को प्राप्त होकर आनन्द में रहें ॥ १० ॥

**या वां कशेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अश्विनौ** ) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने पढ़ाने वालो ! ( **या** ) जो ( **वाम्** ) तुम्हारी ( **मधुमती** ) प्रशंसनीय मधुरगुणयुक्त ( **सूनृतावती** ) प्रभात समय में क्रम क्रम से प्रदीप्त होने वाली उषा के समान ( **कशा** ) वाणी है ( **तया** ) उससे ( **यज्ञम्** ) ईश्वर से संग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को ( **मिमिक्षतम्** ) सिद्ध करना चाहो । हे योग पढ़नेवाले ! तू ( **उपयामगृहीतः** ) यमनियमादिकों से स्वीकार किया गया ( **असि** ) है ( **ते** ) तेरा ( **एषः** ) यह योग ( **योनिः** ) घर के समान सुखदायक है इससे ( **अश्विभ्याम्** ) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान ( **त्वा** ) तुझ और हे योगाध्यापक ! ( **माध्वीभ्याम्** ) माधुर्य्य के लिए जो श्रेष्ठ नीति और योगरीति हैं उनके साथ वर्त्तमान ( **त्वा** ) आपका हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । योगी लोग मधुर प्यारी वाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य वैसे योगी का सदा आश्रय करें ॥ ११ ॥

**तं प्रत्नथेत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है—*

**तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम् । प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे । उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्र णयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—हे योगिन् ! ( **उपयामगृहीतः** ) योग के अङ्गों अर्थात् शौच आदि नियमों के ग्रहण करनेवाले ( **असि** ) हैं ( **ते** ) आपका ( **एषः** ) यह योगयुक्त स्वभाव ( **योनिः** ) सुख का हेतु है । योग में आप ( **अपमृष्टः** ) अविद्यादि दोषों से अलग हुए ( **शण्डः** ) शमादि गुणयुक्त ( **असि** ) हैं ( **यासु** ) जिन योगक्रियाओं में आप ( **वर्द्धसे** ) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और ( **विश्वथा** ) समस्त ( **प्रत्नथा** ) प्राचीन महर्षि ( **पूर्वथा** ) पूर्वकाल के योगी और ( **इमथा** ) वर्त्तमान योगियों के समान ( **ज्येष्ठतातिम्** ) अत्यन्त प्रशंसनीय ( **बर्हिषदम्** ) हृदयाकाश में स्थिर ( **स्वर्विदम्** ) सुख लाभ करने ( **प्रतीचीनम्** ) अविद्यादि दोषों के प्रतिकूल होने ( **आशुम्** ) शीघ्र सिद्धि देने ( **जयन्तम्** ) उत्कर्ष पहुँचाने और ( **धुनिम्** ) इन्द्रियों को कंपानेवाले ( **वृजनम्** ) योगबल को ( **दोहसे** ) परिपूर्ण करते हैं ( **तम्** ) उस योगबल को ( **शुक्रपाः** ) जो कि योगबल की रक्षा करने हारे ( **देवाः** ) योगबल के प्रकाश में प्रकाशित योगी लोग हैं वे ( **त्वा** ) आप को ( **प्रणयन्तु** ) अच्छे प्रकार पहुँचावें । उस योगबल को प्राप्त हुए ( **शण्डाय** ) शमदमादिगुणयुक्त आपके लिए उसी योग की ( **अनाधृष्टा** ) दृढ़ वीरता ( **असि** ) हो आप उस ( **वीरताम्** ) वीरता की ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये ( **अनु** ) वह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता ( **त्वा** ) आपको पाले ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे योगविद्या की इच्छा करनेवाले ! जैसे शमदमादि गुणयुक्त पुरुष योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है वही अविद्यारूपी अन्धकार का विध्वंस करनेवाली योगविद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है वैसे आपको दे ॥ १२ ॥

**सुवीर इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे योगिन् ! ( **सुवीर** ) श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप ( **वीरान्** ) अच्छे अच्छे गुणयुक्त पुरुषों को ( **प्रजनयन्** ) प्रसिद्ध करते हुए ( **परीहि** ) सब जगह भ्रमण कीजिये। इसी प्रकार ( **यजमानम्** ) धन आदि पदार्थों को देनेवाले उत्तम पुरुषों के ( **अभि** ) सन्मुख ( **राय** ) धन की ( **पोषेण** ) पुष्टि से ( **सजग्मान** ) संगत हूजिये और आप ( **दिवा** ) सूर्य्य और ( **पृथिव्या** ) पृथिवी के गुणों के साथ ( **शुक्र** ) अति बलवान् ( **शुक्रशोचिषा** ) सबको शोधनेवाले सूर्य्य की दीप्ति से ( **निरस्त** ) अन्धकार के समान पृथक् हुए ही योगबल के प्रकाश से विषयवासना से छूटे हुए ( **शण्ड** ) शमदमादि गुणयुक्त ( **शुक्रस्य** ) अत्यन्त योगबल के ( **अधिष्ठानम्** ) आधार ( **असि** ) है ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगी जो अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहनेवालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य्य के समान प्रकाशित होता है ॥ १३ ॥

**अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । स्वराड् जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब शिष्यों को पढ़ाने की युक्ति अगले मन्त्र में कही है—*

## अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्नि ॥१४॥

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) योगविद्या चाहने वाले ( **सोम** ) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य ! हम अध्यापक लोग ( **ते** ) तेरे लिए ( **सुवीर्य्यस्य** ) जिस पदार्थ से युद्ध पराक्रम बढ़े उसके समान ( **अच्छिन्नस्य** ) अखण्ड ( **राय** ) योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की ( **पोषस्य** ) दृढ़पुष्टि के ( **ददितार** ) देनेवाले ( **स्याम** ) हों। जो यह ( **प्रथमा** ) पहिली ( **विश्ववारा** ) सब ही सुखों के स्वीकार कराने योग्य ( **संस्कृति** ) विद्यासुशिक्षाजनित नीति है ( **स** ) वह तेरे लिए इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो ( **वरुण** ) श्रेष्ठ ( **अग्नि** ) अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है ( **स** ) वह ( **प्रथम** ) सबसे प्रथम तथा ( **मित्र** ) मित्र हो ॥१४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगविद्या में सम्पन्न शुद्धचित्त युक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिए नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शारीरिक और आत्म बल से युक्त किया करें ॥ १४ ॥

**स प्रथम इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब स्वामी और सेवक के कर्म को अगले मन्त्र में कहा है—*

## स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्माऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा । तृम्पन्तु होत्रा मध्वो या स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥ १५ ॥

**पदार्थ**—हे शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मन्त्र से प्रतिपादित ( **प्रथम** ) आदि मित्र ( **चिकित्वान्** ) विज्ञानवान् ( **बृहस्पति** ) सब विद्यायुक्त वाणी का पालने वाला जिस ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करता है वैसे ( **तस्मै** ) उस ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य के लिए ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी और ( **सुतम्** ) निष्पादित श्रेष्ठ व्यवहार को ( **आजुहोत** ) अच्छे प्रकार ग्रहण करो और जैसे ( **यत** ) जो ( **होत्रा** ) योग स्वीकार करने के योग्य वा ( **या** ) जो ( **मध्व** ) माधुर्य्यादिगुणयुक्त ( **स्विष्टा** ) जिनसे कि अच्छे इष्ट काम बनते हैं ( **या** ) वा जो ऐसी हैं कि ( **सुहुता** ) जिन से अच्छे प्रकार हवन और कर्म सिद्ध होते हैं ( **सुप्रीता** ) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन ( **अग्नीत** ) या कोई अच्छी प्रेरणा को प्राप्त हुआ विद्वान् योगी ( **स्वाहा** ) सत्यवाणी से ( **अयाट** ) सभा को सत्कृत करता और तृप्त रहता है। आप लोग उन स्त्रियों और इस योगी के समान ( **तृम्पन्तु** ) तृप्त हूजिये ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विदुषी स्त्रीजन परमैश्वर्य्य के लिए यत्न करें और जैसे सेवक स्वामी का सेवन करता है वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन उन कामों में प्रवृत्त होकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुंचें ॥ १५ ॥

**अयं वेन इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । उपयाम इत्यस्य साम्नी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब सभाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—*

## अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाᳬ संगमे सूर्य्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥

**पदार्थ**—हे शिल्पविधि के जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वन् ! आप ( **उपयामगृहीत** ) सेना आदि राज्य के अंगों से युक्त ( **असि** ) हैं। इस से मैं ( **रजस** ) लोकों के मध्य ( **पृश्निगर्भा** ) जिन में प्रकाश अधिक है उन लोगों के ( **ज्योतिर्जरायु** ) तारागणों को ढापने वाले के समान ( **अयम्** ) यह ( **वेन** ) अति मनोहर चन्द्रमा ( **चोदयत्** ) यथायोग्य अपने अपने मार्ग में अभियुक्त करता है ( **इमम्** ) इस चन्द्रमा को ( **अपाम्** ) जलों और ( **सूर्य्यस्य** ) सूर्य्य के ( **संगमे** ) सम्बन्धी आकर्षणादि विषयों में ( **शिशुम्** ) शिक्षा के योग्य बालक को ( **मतिभि** ) विद्वान् लोग अपनी बुद्धियों से ( **रिहन्ति** ) सत्कार करके ( **न** ) समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं ( **मर्काय** ) दुष्टों को शान्त करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापना करने के लिए ( **विमाने** ) अनन्त अन्तरिक्ष में ( **त्वा** ) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिए स्वीकार करता हूँ ॥ १६॥

**भावार्थ**—सभाध्यक्ष को चाहिए कि सूर्य्य और चन्द्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शान्त कर के श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवे ॥ १६ ॥

**मनो न येष्वित्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

## मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७॥

**पदार्थ**—हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते ! ( **एष** ) यह राजधर्म ( **ते** ) तेरा ( **योनि** ) सुखपूर्वक स्थिरता का स्थान है। जैसे तू ( **य** ) जो ( **तुविनृम्ण** ) अत्यन्त धनयुक्त प्रजा का पालन वाला वा ( **विप** ) बुद्धिमान् प्रजाजन ये तुम दोनों ( **येषु** ) जिन हवनादि कर्मों में ( **शर्य्याभि** ) वेगों से ( **तिग्मम्** ) वज्र के तुल्य अनिष्ट ( **मन** ) मन के ( **न** ) समान वेग से ( **द्रवन्तौ** ) चलते हुए ( **शच्या** ) बुद्धि के साथ ( **आवनुथ** ) परस्पर कामना करते हो वैसे प्रत्येक प्रजापुरुष ( **अस्य** ) इस प्रजापति का ( **गभस्तौ** ) अंगुली निर्देश से ( **आदिशम्** ) सब दिशाओं में जो जैसे हों वैसे शत्रुओं को ( **आ अश्रीणीत** ) अच्छे प्रकार दुःख दिया करे ( **मर्क** ) मरण के तुल्य दुःख देने और कुढङ्ग चालचलन रखने वाला शत्रु ( **अपमृष्ट** ) दूर हो और तू ( **प्रजा** ) प्रजा का ( **पाहि** ) पालन कर ( **मन्थिपा** ) शत्रुओं को मथने वाले वीरों के रक्षक ( **देवा** ) विद्वान् लोग ( **त्वा** ) तुझे ( **प्र णयन्तु** ) प्रसन्न करें। हे प्रजाजनो ! तुम जिससे ( **अनाधृष्टा** ) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन ( **असि** ) हो उस राजा की रक्षा किया करो ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—प्रजापुरुष राज्यकर्म में जिस राजा का आश्रय करें वह उन की रक्षा करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शंका समाधान के साथ कहें। राजा के नौकर चाकर भी न्यायकर्म ही से प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ १७ ॥

**सुप्रजा इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । प्रजापतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । मन्थिनोऽधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिए यह अगले मन्त्र में कहा है—*

## सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

**पदार्थ**—हे न्यायाधीश ! ( **सुप्रजा** ) उत्तम प्रजायुक्त आप ( **प्रजा** ) प्रजाजनों को ( **प्रजनयन्** ) प्रकट करते हुए ( **राय** ) धन की ( **पोषेण** ) दृढ़ता के साथ ( **यजमान्** ) यज्ञादि अच्छे कर्मों के करने वाले पुरुष को ( **अभि** ) ( **परि** ) ( **इहि** ) सब ओर धन की वृद्धि से युक्त कीजिए ( **मन्थी** ) वाद विवाद में मथन करने और ( **दिवा** ) सूर्य्य वा ( **पृथिव्या** ) पृथिवी के ( **संजग्मान** ) तुल्य धीरतादि गुणों में वर्त्तने वाले आप ( **मन्थिन** ) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के ( **अधिष्ठान** ) आधार के समान ( **असि** ) हो इस कारण तुम्हारी ( **मन्थिशोचिषा** ) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्यायदीप्ति से ( **मर्क** ) मृत्यु देने वाला अन्यायी ( **निरस्त** ) निवृत्त होवे ॥ १८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। न्यायधीश राजा को चाहिए कि धर्म्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरन्तर पालन करे॥१८॥

**ये देवास इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब राजा और सभासदों के काम अगले मन्त्र में कहे गये हैं—*

## ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥

**पदार्थ**—( **ये** ) जो ( **महिना** ) अपनी महिमा से ( **दिवि** ) विद्युत् के स्वरूप में ( **एकादश** ) ग्यारह अर्थात् प्राण अपान उदान व्यान समान नाग, कूर्म्म, कृकल देवदत्त धनंजय और जीवात्मा ( **देवास** ) दिव्यगुणयुक्त देव ( **स्थ** ) हैं ( **पृथिव्याम्** ) भूमि के ( **अधि** ) ऊपर ( **एकादश** ) ग्यारह अर्थात् पृथिवी जल, अग्नि, पवन आकाश आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहंकार महत्तत्त्व और प्रकृति ( **स्थ** ) हैं तथा ( **अप्सुक्षित** ) प्राणों में ठहरने वाले ( **एकादश** ) ग्यारह श्रोत्र, त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका वाणी, हाथ पांव गुदा, लिंग और मन ( **स्थ** ) हैं ( **ते** ) वे जैसे अपने अपने कामों में वर्त्तमान हैं वैसे हे ( **देवास** ) राजसभा के सभासदो ! आप

लोग यथायोग्य अपने अपने कामो मे वर्त्तमान होकर ( **इमम्** ) इस ( **यज्ञम्** ) राजा और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का ( **जुषध्वम्** ) सेवन किया करें ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमा अलकार है । जैसे अपने अपने कामो मे प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिको मे सब पदार्थ है वसे राजसभासदो को चाहिए कि अपने अपने न्यायमार्ग मे प्रवृत्त रहे ॥ १९ ॥

**उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । यज्ञो देवता । निचृदार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र मे कही है—*

**उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णु त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप ( **उपयामगृहीत** ) विनय आदि राजगुणो या वेदादि शास्त्र बोध से युक्त ( **असि** ) हैं इससे ( **यज्ञम्** ) राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को ( **पाहि** ) पालो और ( **स्वाग्रयण** ) जैसे उत्तम विज्ञानयुक्त कर्म्मों का पहुचाने वाले होते हैं वसे ( **आग्रयण** ) उत्तम विचारयुक्त कर्म्मों को प्राप्त होने वाले हूजिए इस से ( **यज्ञपतिम्** ) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को ( **पाहि** ) पालो यह ( **विष्णु** ) जो समस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक ठीक जानने वाला विद्वान् है वह ( **इन्द्रियेण** ) मन और धन से ( **त्वाम्** ) तुझे ( **पातु** ) पाले और तुम उस ( **विष्णुम्** ) विद्वान् की ( **पाहि** ) रक्षा करो ( **सवनानि** ) ऐश्वर्य देने वाले कामो की ( **अभि** ) सब प्रकार से ( **पाहि** ) रक्षा करो ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा और विद्वानो को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योकि राज्य की उन्नति के बिना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नही कर सकते और न विद्वानो के सग और उपदेश के बिना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानो की परस्पर प्रीति के बिना ऐश्वर्य्य की उन्नति के बिना आनन्द भी निरन्तर नही हो सकता ॥ २० ॥

**सोम पवत इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । सोमो देवता । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । एष त इत्यस्य याजुषी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब राजा का कर्म्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह ( **सोम** ) सौम्यगुण सम्पन्न राजा ( **अस्मै** ) इस ( **ब्रह्मणे** ) परमेश्वर वा वेद का जानने के लिए ( **पवते** ) पवित्र होता है ( **अस्मै** ) इस ( **क्षत्राय** ) क्षत्रिय धर्म के लिए ( **पवते** ) ज्ञानवान् होता है ( **अस्मै** ) इस ( **सुन्वते** ) समस्त विद्या के सिद्धान्त को निष्पादन ( **यजमानाय** ) और उत्तम सग करने हारे विद्वान् के लिए ( **पवते** ) निर्मल होता है ( **इषे** ) अन्न के गुण और ( **ऊर्ज्जे** ) पराक्रम के लिए ( **पवते** ) शुद्ध होता है ( **अद्भ्य** ) जल और प्राण वा ( **ओषधीभ्य** ) सोम आदि ओषधियो को ( **पवते** ) जानता है ( **द्यावापृथिवीभ्याम्** ) सूर्य्य और पृथिवी के लिए ( **पवते** ) शुद्ध होता है ( **सुभूताय** ) अच्छे व्यवहार के लिए ( **पवते** ) बुरे कामो से बचता है । वसे ( **सोम** ) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथावत् जान मान और आप भी वसा पवित्र रहे । हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन ! जिस ( **ते** ) आप का ( **एष** ) यह राजधर्म्म ( **योनि** ) घर है । उस ( **त्वा** ) आप को ( **विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) विद्वानो के लिए तथा ( **त्वा** ) आप को ( **विश्वेभ्य** ) संपूर्ण दिव्यगुणो के लिए हम लोग स्वीकार करते है ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिए हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनो के साथ उन के उपकार के लिए धर्म्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें । जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करनेवाला होता है वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा मे अग्रगण्य समझा जाता है । इस प्रकार ये तीनो परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

**उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्यं गृह्णामि । यत्तऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) सेनापते ! तू ( **उपयामगृहीत** ) अच्छे नियमो से विद्या को पढ़नेवाला ( **असि** ) है इस हेतु से ( **बृहद्वते** ) जिस के अच्छे बड़े बड़े कर्म हैं ( **वयस्वते** ) और जिसकी दीर्घ आयु है उस ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्यवाले सभापति के लिए ( **उक्थाव्यम्** ) प्रशसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्रविद्यावाले ( **त्वा** ) तेरा ( **गृह्णामि** ) ग्रहण जैसे मैं करता हूँ वसे ( **यत** ) जो ( **ते** ) तेरा ( **बृहत्** ) अत्यन्त ( **वय** ) जीवन है ( **तस्मै** ) उस के पालन करने के अर्थ और ( **विष्णवे** ) ईश्वर ज्ञान वा वेदज्ञान के लिए ( **त्वा** ) तुझे ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ और ( **एष** ) यह सेना का अधिकार ( **ते** ) तेरा ( **योनि** ) स्थित होने के लिए स्थान है । हे सेनापते ! ( **उक्थेभ्य** ) प्रशसा योग्य वेदोक्त कर्मों के लिए ( **त्वा** ) तुझे ( **देवेभ्य** ) और विद्वानो वा दिव्यगुणो के लिए ( **देवाव्यम्** ) उन के पालन करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **यज्ञस्य** ) राज्यपालनादि व्यवहार के ( **आयुषे** ) बढ़ाने के लिए ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—सब विद्याओ के जाननेवाले विद्वान् को योग्य है कि राज्यव्यवहार मे सेना के वीर पुरुषो की रक्षा करने के लिए अच्छी शिक्षायुक्त शस्त्र और अस्त्र विद्या मे परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले वीर पुरुष को सेनापति के काम मे युक्त करे और सभापति तथा सेनापति को चाहिए कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ २२ ॥

**मित्रावरुणाभ्यान्त्वेत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप् इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् छन्दासि । गान्धार स्वर । इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥ इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वरश्च ॥**

*सब विद्याओं मे प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! धर्म अर्थ काम और मोक्ष की इच्छा करनेवाला मैं ( **यज्ञस्य** ) अग्निहोत्र से लेकर राज्य पालन पर्य्यन्त यज्ञ की ( **आयुषे** ) उन्नति होने के लिए ( **मित्रावरुणाभ्याम्** ) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषो के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) विद्वानो की रक्षा करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ । हे सेनापते विद्वन् ! ( **यज्ञस्य** ) सत्सगति करने की ( **आयुषे** ) उन्नति के लिए ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्यवान् पुरुष के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) विद्वानो की रक्षा करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! ( **यज्ञस्य** ) शिल्पविद्या के कामो की सिद्धि की ( **आयुषे** ) प्राप्ति के लिए ( **इन्द्राग्निभ्याम्** ) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) दिव्य विद्या बोध की रक्षा करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे शिल्पिन् ! ( **यज्ञस्य** ) क्रिया चतुराई का ( **आयुषे** ) ज्ञान होने के ( **इन्द्रावरुणाभ्याम्** ) बिजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) उन की विद्या जाननेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे अध्यापक ! ( **यज्ञस्य** ) पढ़ने पढ़ाने की ( **आयुषे** ) उन्नति के लिए ( **इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्** ) राजा और शास्त्रवेत्ताओ के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) प्रशसित योगविद्या के जानने और प्राप्त करानेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे विद्वन् ! ( **यज्ञस्य** ) विज्ञान को ( **आयुषे** ) बढ़ती के लिए ( **इन्द्राविष्णुभ्याम्** ) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—प्रजाजनो को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिए सब विद्याओ मे कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे ॥ २३ ॥

**मूर्द्धानमित्यस्य भरद्वाज ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*इसके अनन्तर विद्वानो का कर्म्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—जैसे ( **देवा** ) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से ( **दिव** ) प्रकाशमान सूर्य के ( **मूर्द्धानम्** ) शिर के समान ( **पृथिव्या** ) पृथिवी के गुणो को ( **अरतिम्** ) प्राप्त होने वाले ( **ऋते** ) सत्य मार्ग मे ( **आजातम्** ) सत्य व्यवहार मे अच्छे प्रकार प्रसिद्ध ( **वैश्वानरम्** ) समस्त मनुष्यो को आनन्द पहुँचाने और ( **जनानाम्** ) सत्पुरुषो के ( **अतिथिम्** ) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और ( **आसन्** ) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख में ( **पात्रम्** ) समस्त शिल्प व्यवहार की रक्षा करने ( **कविम्** ) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले ( **अग्निम्** ) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को ( **सम्राजम्** ) एकचक्र राज्य करने वाले के समान ( **आ** )

अच्छे प्रकार से ( **जनयत** ) प्रकाशित करते हैं वैसे सब मनुष्यो को करना योग्य है ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओ में यानो और शस्त्रास्त्र विद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं वैसे ही अन्य सब मनुष्यो को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥ २४ ॥

**उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषि । वैश्वानरो देवता । याजुष्यनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर । ध्रुवोसीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे ईश्वर के गुणो का उपदेश किया है—*

**उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—हे परमेश्वर ! आप ( **उपयामगृहीत** ) शास्त्रप्राप्त नियमो से स्वीकार किए जाते (**असि**) हैं वैसे ही (**ध्रुव** ) स्थिर (**असि**) हैं कि (**ध्रुवक्षिति** ) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही है और (**ध्रुवाणाम**) स्थिर आकाश आदि पदार्थो में ( **ध्रुवतमः** ) अत्यन्त स्थिर ( **असि** ) है तथा ( **अच्युतानाम** ) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (**अच्युतक्षित्तम** ) अतिशय करके अविनाशीपन बसाने वाले हैं ( **एष** ) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश ( **ते** ) आप के ( **योनि** ) निवास स्थान के समान है ( **वैश्वानराय** ) समस्त मनुष्यो को सत्य मार्ग मे प्राप्त कराने वाले वा इस राजप्रकाश के लिए ( **ध्रुवेण** ) दृढ़ (**मनसा**) मन और (**वाचा**) वाणी से ( **सोमम** ) समस्त जगत के उत्पन्न कराने वाले ( **त्वा** ) आप को (**ध्रुवम**) निश्चयपूर्वक जैसे हो वैसे ( **अवनयामि** ) स्वीकार करता हूँ ( **अथ** ) इस के अनन्तर ( **इन्द्र** ) सब दुःख के विनाश करने वाले आप ( **न** ) हमारे ( **विश** ) प्रजाजनो को ( **असपत्ना** ) शत्रुओं से रहित और ( **समनस** ) एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहनेवाले ( **इत** ) ही ( **करत** ) कीजिए ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो नित्य पदार्थो मे नित्य और स्थिरो में भी स्थिर परमेश्वर है उस समस्त जगत के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है अन्यथा नही ॥ २५ ॥

**यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषि । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है—*

**यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्तेऽअꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् । अध्वर्योर्वा परि वा य पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे यज्ञपते ! ( **य** ) जो ( **ते** ) तेरा ( **द्रप्स** ) यज्ञ के पदार्थो का समूह ( **स्कन्दति** ) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और ( **य** ) जो (**ते**) तेरे यज्ञ से युक्त ( **ग्रावच्युत** ) मेघमण्डल से छूटा हुआ ( **अꣳशु** ) यज्ञ के पदार्थो का विभाग ( **धिषणयो** ) प्रकाश भूमि के ( **पवित्रात** ) पवित्र ( **उपस्थात** ) गोद के समान स्थान से ( **वा** ) अथवा ( **य** ) जो ( **अध्वर्यो** ) यज्ञ करने वालों से ( **वा** ) अथवा ( **परि** ) सब ओर से प्रकाशित होता है इस से ( **तम** ) उस यज्ञ को मै ( **ते** ) तेरे लिए ( **स्वाहा** ) सत्यवाणी और ( **मनसा** ) मन से ( **वषटकृतम** ) किए हुए सङ्कल्प के समान ( **जुहोमि** ) देता हूँ अर्थात् उसके फलदायक होने से तेरे लिए उस पदार्थ को पहुँचाता हूँ जिस लिए यज्ञ का अनुष्ठान करनेहारा तू ( **देवानाम** ) विद्वानो के लिए ( **उत्क्रमणम** ) ऊँची श्रेणी को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य के समान ( **असि** ) है इससे तुझ को सुख प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । होता आदि विद्वान् लोग अत्यन्त दृढ़ सामग्री से यज्ञ करते हुए जिन सुगन्ध आदि पदार्थो को अग्नि में छोडते हैं वे पवन और जलादि पदार्थो को पवित्र कर उसके साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगो को निवृत्त करके सब प्राणियो को प्रानन्द देते है इस कारण सब मनुष्यो को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

**प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषि । यज्ञपतिर्देवता । प्राणायेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप्, उदानायेत्यस्यासुर्युष्णिक व्यानायेत्यस्य वाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामित्यस्यासुरी गायत्री श्रोत्रायेत्यस्यासुर्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्युष्णिक छन्दांसि । अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्या षड्ज उष्णिज ऋषभश्च स्वर ॥**

*फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वर्चोदा** ) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढाने रूप यज्ञकर्म करनेवाले ! आप ( **मे** ) मेरे ( **प्राणाय** ) हृदयस्थ जीवन के हेतु प्राणवायु और ( **वर्चसे** ) वेदविद्या के प्रकाश के लिये ( **पवस्व** ) पवित्रता से वर्ते । हे ( **वर्चोदा** ) ज्ञानदीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप ( **मे** ) मेरे ( **व्यानाय** ) सब शरीर मे रहने वाले पवन और ( **वर्चसे** ) अन्न आदि पदार्थो के लिये ( **पवस्व** ) पवित्रता से प्राप्त होवें । हे ( **वर्चोदा** ) विद्याबल देने वाले ! आप ( **मे उदानाय** ) श्वास से ऊपर को आने वाले उदान सञ्ज्ञक पवन और ( **वर्चसे** ) पराक्रम के लिये ( **पवस्व** ) ज्ञान दीजिये । हे (**वर्चोदा** ) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप ( **मे** ) मेरी ( **वाचे**) वाणी और ( **वर्चसे** ) प्रगल्भता के लिये ( **पवस्व** ) प्रवृत्त हूजिये (**वर्चोदा** ) विज्ञान देने वाले आप ( **मे** ) मेरे ( **क्रतूदक्षाभ्याम्** ) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और ( **वर्चसे** ) अच्छे बोध के लिये ( **पवस्व** ) शिक्षा कीजिये । हे ( **वर्चोदा** ) शब्दज्ञान के देने वाले यज्ञपति ! आप ( **मे** ) मेरे (**श्रोत्राय**) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये ( **वर्चसे** ) शब्दो के अर्थ और सम्बन्ध का ( **पवस्व** ) उपदेश करें । हे ( **वर्चोदसौ** ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों (**मे**) मेरे ( **चक्षुर्भ्याम्** ) नेत्रो के लिये ( **वर्चसे** ) शुद्ध सिद्धान्त के प्रकाश को ( **पवेथाम्** ) प्राप्त हूजिये ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठनपाठन रूप यज्ञ कर्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा सन्तोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यो को करना उचित है ॥२७ ॥

**आत्मन इत्यस्य देवश्रवा ऋषि । यज्ञपतिर्देवता । ब्राह्मी बृहतीच्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वर्चोदा** ) योग और ब्रह्मविद्या देनेवाले विद्वन् ! आप ( **मे** ) मेरे ( **आत्मने** ) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये ( **वर्चसे** ) अपने आत्मा के प्रकाश को ( **पवस्व** ) प्राप्त कीजिये । हे ( **वर्चोदा** ) उक्त विद्या देने वाले विद्वन् ! आप ( **मे** ) मेरे ( **ओजसे** ) आत्मबल होने के लिये ( **वर्चसे** ) योगबल को ( **पवस्व** ) जनाइये । हे ( **वर्चोदा** ) बल देने वाले ! ( **मे** ) मेरे ( **आयुषे** ) जीवन के लिये ( **वर्चसे** ) रोग छुड़ाने वाले औषध को ( **पवस्व** ) प्राप्त कीजिये । हे ( **वर्चोदसौ** ) योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो ! तुम दोनो ( **मे** ) मेरी ( **विश्वाभ्य** ) समस्त ( **प्रजाभ्य** ) प्रजाओ के लिये ( **वर्चसे** ) सद्गुण प्रकाश करने को ( **पवेथाम्**) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—योगविद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नही हो सकता और न पूर्णविद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इसके विना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषो के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है इस लिये सब मनुष्यो को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८ ॥

**कोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपङ्क्तिश्छन्द भूर्भुव स्व रित्यस्य भुरिक्साम्नी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनो को क्या २ कहे यही अगले मन्त्र में कहा है—*

**कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुव स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरै सुपोष पोषै ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—सभा सेना और प्रजा मे रहने वाले हम लोग पूछते है कि तू ( **क** ) कौन ( **असि** ) है ( **कतम** ) बहुतो के बीच कौनसा ( **असि** ) है ( **कस्य** ) किसका ( **असि** ) है ( **क** ) क्या ( **नाम** ) तेरा नाम ( **असि** ) है ( **यस्य** ) जिस ( **ते** ) तेरी ( **नाम** ) सञ्ज्ञा को ( **अमन्महि** ) जानें और ( **यम्** ) जिस ( **त्वा** ) तुझ को ( **सोमेन** ) धन आदि पदार्थो से ( **अतीतृपाम** ) तृप्त करें । यह कह उन से सभापति कहता है कि ( **भू** ) भूमि ( **भुव** ) अन्तरिक्ष और ( **स्व** ) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्मसुख की कामना करनेवाला मैं तुम ( **प्रजाभि** ) प्रजालोगों के साथ ( **सुप्रजा** ) श्रेष्ठ प्रजा वाला ( **वीरैः** ) तुम वीरों से ( **सुवीर** ) श्रेष्ठ वीरयुक्त ( **पोष** ) पुष्टिकारक पदार्थों से ( **सुपोष** ) अच्छा पुष्ट ( **स्याम्** ) होऊं अर्थात् तुम सब लोगो से पृथक न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके उन सभों को उन्नति देवे और अति प्रबल वीरों को सेना में रक्खे जिससे कि बहुत सुख बढ़ानेवाले राज्य से भूमि आदि लोको के सुख को प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

**उपयामगृहीतोसीत्यस्य देवश्रवा ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य साम्नी गायत्री द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप् तृतीयचतुर्थपंचमानां साम्नी गायत्री षष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप् सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पंक्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप् एकादशस्य साम्नी गायत्री द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप् त्रयोदशस्यासुर्य्युष्णिक छन्दांसि । अत्र गायत्र्या षड्ज, अनुष्टुभो गांधार पंक्ते पञ्चम उष्णिज ऋषभश्च स्वरा ॥**

*फिर भी विषयान्तर से वही उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जिससे आप ( उपयामगृहीत ) अच्छे अच्छे राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किए हुए ( असि ) हैं इसमें ( त्वा ) आपको ( मधवे ) चैत्रमास की सभा के लिए अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख करानेवाले व्यवहार की रक्षा के लिए हम लोग स्वीकार करते हैं सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा सेनाजनो ! तुम में से एक एक ( उपयामगृहीत ) अच्छे अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ ( असि ) है इसलिए तुमको चैत्रमास के सुख के लिए स्वीकार करता हूँ इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिए राजा राजसभासद प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—सभाध्यक्ष राजा को चाहिए कि यथोचित समय को प्राप्त होकर श्रेष्ठ राजव्यवहार से प्रजाजनों के लिए सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ॥ ३० ॥

**इन्द्राग्नीइत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । इन्द्राग्नी देवते । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब राज्य के व्यवहार से नियत राजकर्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्राग्नीऽआगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥३१॥**

**पदार्थ**—हे ( इन्द्राग्नी ) सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद ! तुम दोनों ( आगतम् ) आओ मिलकर ( गीर्भि ) अच्छी शिक्षायुक्त वाणियों से हमारे लिए ( वरेण्यम् ) श्रेष्ठ ( नभ ) सुख का ( सुतम् ) उत्पन्न करो तथा ( इषिता ) पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम ( धिया ) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से ( अस्य ) इस सुख की ( पातम् ) रक्षा करो । वे राजा और सभासद् कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू ( उपयामगृहीत ) प्रजा के धर्म्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ ( असि ) है ( त्वा ) तुझको ( इन्द्राग्निभ्याम् ) उक्त महाशयों के लिए हम लोग वैसा ही मानते हैं ( एष ) यह राजनीति ( ते ) तेरा ( योनि ) घर है ( इन्द्राग्निभ्याम् ) उक्त महाशयों के लिए ( त्वा ) तुझको हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके राजकार्य्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ॥ ३१ ॥

**आ घा ये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । उपेत्यस्याच्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है—*

**आ घाऽये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—( ये ) वेदविद्या सम्पन्न विद्वान् सभासद् ( अग्निम् ) विद्युत् आदि अग्नि ( घ ) ही को ( इन्धते ) प्रकाशित करते और ( आनुषक् ) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से ( बर्हि ) अन्तरिक्ष को ( आ, स्तृणन्ति ) आच्छादन करते हैं तथा ( येषाम् ) जिनका ( युवा ) सर्वाङ्ग पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर सर्वविद्या विचक्षण तरुण अवस्था और ( इन्द्र ) सकलैश्वर्य्ययुक्त सभापति ( सखा ) मित्र है ( अग्नीन्द्राभ्याम् ) उन अग्नि और सूर्य्य के समान प्रकाशमान सभासदों से ( उपयामगृहीत ) प्रजाकर्म्म से युक्त तू ग्रहण किया गया ( असि ) है । जिस ( ते ) तेरा ( एष ) न्याययुक्त सिद्धान्त ( योनि ) घर के सदृश है उस ( त्वा ) तुझको प्राप्त हुए हम लोग ( अग्नीन्द्राभ्याम् ) उक्त महापदार्थों के लिए ( त्वा ) तुझको उपदेश करते हैं ॥३२॥

**भावार्थ**—राजधर्म्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचार सभाओं में प्रवृत्त राजमार्गी जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद मिलकर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्ताव रक्खें ॥३२॥

**ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । उपयाम इत्यस्यार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है—*

**ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवासऽआगत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ॥ ३३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( चर्षणीधृत ) मनुष्यों की पुष्टि संतुष्टि करने और ( ओमास ) उत्तम उत्तम गुणों से रक्षा करने हारे ( विश्वे ) समस्त ( देवास ) विद्वानो ! तुम ( दाश्वांस ) उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए ( दाशुष ) दान करने वाले उत्तम जन का ( सुतम् ) जो अच्छे कामों के करने से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला है उसके ( आ, गत ) सम्मुख आओ । हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालक ! तू ( उपयामगृहीत ) पढ़ाने के नियमों से ग्रहण किया हुआ ( असि ) है इसलिये ( त्वा ) तुझे ( विश्वेभ्य ) समस्त ( देवेभ्य ) विद्वानों के लिए अर्थात उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूँ जिसलिए ( ते ) तेरा ( एष ) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का संग्रह होना ( योनि ) कारण है इसलिए ( त्वा ) तुझे ( विश्वेभ्य ) समस्त ( देवेभ्य ) विद्वानों से विद्या और अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूँ ॥ ३३॥

**भावार्थ**—सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओं के लिए निरन्तर विद्यादान करें । राजा और धनी आदि लोगों के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा में प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उनकी सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य्य सेवन और अच्छी शिक्षा किए जाने के लिए विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥ ३३ ॥

**विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । उपयाम इत्यस्य निचृदार्च्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब प्रतिदिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**विश्वे देवासऽआगत शृणुता मऽइमꣳ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥**

**पदार्थ**—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादित गुणकर्म्मस्वभाववाले ( विश्वेदेवास ) समस्त विद्वान् लोगो ! आप हमारे समीप ( आगत ) आइए और हम लोगों के दिए हुए ( इदम् ) इस ( बर्हि ) आसन पर ( आ निषीदत ) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिए ( मे ) मेरी ( हवम् ) इस स्तुतियुक्त वाणी को ( शृणुत ) सुनिए । गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र ! जिस कारण तू ( उपयामगृहीत ) विद्वानों का ग्रहण किया हुआ ( असि ) है इस से हम ( त्वा ) तुझे ( विश्वेभ्य ) समस्त ( देवेभ्य ) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपें जिसलिए ( एष ) यह समस्त विद्या का संग्रह ( ते ) तेरा ( योनि ) घर के तुल्य है इसलिए ( त्वा ) तुझे ( विश्वेभ्य देवेभ्य ) समस्त उक्त महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पण्डित लोग उन की परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तीक्ष्णबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

**इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । उपयाम इत्यस्याच्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ।**

*अब राजा पढ़ाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शार्य्यातेऽअपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३५॥**

**पदार्थ**—हे ( इन्द्र ) सब विघ्नों के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी ( मरुत्व ) प्रशंसनीय धर्म्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापति राजन् ! आप ( इह ) इस संसार में ( यथा ) जैसे ( शार्य्याते ) अपने हाथ पैरों के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में ( सुतस्य ) अभ्यास किए हुए विद्या रस को ( अपिब ) पी चुके हो वैसे ( सोमम् ) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य और सुख करने वाले

पढने से न रुको यज्ञ को ( पाहि ) पालो । हे ( शूर ) धर्मविरोधियों को दण्ड देने वाले ! ( तव ) तुम्हारे ( शर्मन् ) राज्य घर में ( सुयक्षा ) अच्छे पढने वाले विद्वानों के समान ( कवय ) बुद्धिमान् लोग ( तव ) तुम्हारी ( प्रणीती ) उत्तम नीति का ( आविवासन्ति ) सेवन करते हैं । हे शूर ! जिस कारण तुम ( उपयामगृहीत ) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए ( असि ) हो इस से ( हम ) ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य और ( मरुत्वते ) प्रजा सम्बन्ध के लिए हम लोग ... जो ( ते ) ( एष ) यह विद्या का प्रचार ( योनि ) घर के समान है । इसस ( त्वा ) तुम को ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य और ( मरुत्वते ) प्रजा पालन सम्बन्ध के लिए मानते हैं ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो उस का कभी उल्लङ्घन न करें वैसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा का उल्लङ्घन न करें जो सब गुणों में उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ॥३५॥

**मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषि । प्रजापतिर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर । उपयामेत्यस्य द्वितीयभागस्यार्षी तृतीयस्य साम्न्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते । उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥ ३६ ॥**

**पदार्थ**—( कवय ) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग ( नूतनाय ) नवीन २ ( अवसे ) रक्षा आदि गुणों के लिए ( मरुत्वन्तम् ) प्रशंसनीय प्रजायुक्त ( वृषभम् ) सब में उत्तम ( वावृधानम् ) अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त ( अकवारिम् ) समस्त धर्मविरोधी दुष्टों का निवारण करनेवाले ( दिव्यम ) शुद्ध ( विश्वासाहम ) सब सहनशील ( उग्रम् ) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त ( सहोदाम ) सहायता ( शासम ) और सब को शिक्षा देनेवाले ( तम् ) उस पूर्वोक्त ( इन्द्रम ) परमैश्वर्ययुक्त सभापति को निम्नलिखित प्रकार से ( हुवेम ) स्वीकार करें । हे मुख्य सभामद् राजन् ! तू जिस कारण ( उपयामगृहीत ) समस्त बड़े बड़े और छोटे छोटे नियमों की सामग्री से सहित ( असि ) है इस से ( त्वा ) तुझ को ( मरुत्वते ) प्रशंसनीय प्रजायुक्त ( इन्द्राय ) परमैश्वर्यवान् सभापति होने के लिए स्वीकार करते हैं ( एष ) यह सभा में न्याय करने का काम ( ते ) तेरा ( योनि ) घर के तुल्य है इस से ( त्वा ) तुझे ( मरुत्वते ) उत्तम प्रजा से युक्त ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि होने के लिए स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू ( उपयामगृहीत ) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त ( असि ) है इस से ( मरुताम ) प्रजाजनों का ( ओजसे ) बल बढाने के लिए ( त्वा ) तुझे ग्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से ( कवय ) इस पद की अनुवृत्ति आती है । प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुण युक्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्य न्याययुक्त धर्म कार्य में प्रजा के उत्साह की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

**सजोषा इत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप, उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप छन्दसी । धैवत स्वर ॥**

*अब सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है—*

**सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भि सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रूँ२ऽरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो न । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७॥**

**पदार्थ**—ईश्वर कहता है कि हे ( इन्द्र ) सब सुखों के धारण करने हारे ( शूर ) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय ! जिस से तू ( उपयामगृहीत ) सेना के अच्छे अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ ( असि ) है इसस ( मरुत्वते ) जिस में प्रशंसनीय वायु की अस्त्रविद्या है उस ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य पहुंचानेवाले युद्ध के लिए ( त्वा ) तुझ को उपदेश करता हूं कि ( ते ) तेरा ( एष ) यह सेनाधिकार ( योनि ) इष्ट सुखदायक है इस से ( मरुत्वते इन्द्राय ) उक्त युद्ध के लिए यत्न करते हुए तुझ को मैं अङ्गीकार करता हूं और ( सजोषा ) सब के समान प्रीति करनेवाला ( सगण ) अपने मित्रजनों के सहित तू ( मरुद्भि ) जैसे पवन के साथ ( वृत्रहा ) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करनेवाला सूर्य्य ( सोमम् ) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है वैसे सब पदार्थों के रस को ( पिब ) सेवन कर और इस से ( विद्वान् ) ज्ञानयुक्त हुआ तू ( शत्रून् ) सत्य न्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्ट जनों का ( जहि ) विनाश कर ( अप ) इस के अनन्तर ( मृध ) जहां दुष्ट जन दूसरे को दुःख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को ( अपनुदस्व ) दूर कर और ( न ) हम लोगों को ( विश्वत ) सब जगह से ( अभयम ) भय रहित ( कृणुहि ) कर ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और बिजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है वैसे राजा को चाहिए कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मारकर प्रजा को सुख धर्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३७ ॥

**मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषि । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षीत्रिष्टुप छन्द । उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब सभाध्यक्ष के लिए अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**मरुत्वाँ२ऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय । आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के जीतनेवाले सभापते ! जिस कारण आप ( उपयामगृहीत ) राजनियमों से स्वीकार किये हुए ( असि ) हो इसलिए हम लोग तुम को ( मरुत्वते ) जिस में अच्छे अच्छे अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य को प्राप्त करनेवाले युद्ध के लिए युक्त करते हैं जिस से ( ते ) आपका ( एष ) यह युद्ध परमैश्वर्य का ( योनि ) कारण है इसलिए ( त्वा ) तुम को ( मरुत्वते इन्द्राय ) उस युद्ध के लिए कहते हैं कि आप ( प्रतिपत् ) प्रत्येक बड़े-बड़े विचार के कामों में ( राजा ) प्रकाशमान ( मरुत्वान् ) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और ( वृषभ ) अत्यन्त श्रेष्ठ हो इससे ( रणाय ) युद्ध और ( मदाय ) आनन्द के लिए ( अनुष्वधम् ) प्रत्येक भोजन में ( सोमम् ) सोमलतादि पुष्ट करनेवाली ओषधियों के रस को ( पिब ) पीओ ( सुतानाम् ) उत्तम सत्कारों से बनाये हुए अन्नों के ( मध्व ) मधुर रस की ( ऊर्मिम् ) लहरी को अपने ( जठरे ) उदर में ( आसिञ्चस्व ) अच्छे प्रकार स्थापन करो ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८ ॥

**महानित्यस्य भरद्वाज ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य भुरिक पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**महाँ२ऽइन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राऽउत द्विबर्हाऽअमिन सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्य्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्त्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥३९॥**

**पदार्थ**—हे भगवन् जगदीश्वर ! जिस कारण आप ( उपयामगृहीत ) योगाभ्यास से ग्रहण करने के योग्य ( असि ) है इस से ( महेन्द्राय ) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य के लिए हम लोग ( त्वा ) आप की उपासना हमारे लिए ( योनि ) कल्याण का कारण है इस से ( त्वा ) तुम को ( महेन्द्राय ) परमैश्वर्य पाने के लिए हम सेवन करते हैं जो ( महान् ) सर्वोत्तम अत्यन्त पूज्य ( नृवत ) मनुष्यों के तुल्य ( आ ) अच्छे प्रकार ( चर्षणिप्रा ) सब मनुष्यों को सुखों से परिपूर्ण करने ( द्विबर्हा ) व्यवहार और परमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त ( अस्मद्र्यक् ) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जाननेवाले ( अमिन ) अतुल पराक्रम युक्त ( कर्त्तृभि ) अच्छे कर्म करनेवाले जीवों से ( सुकृत ) अच्छे कर्म करनेवाले के समान ग्रहण किये हुए और ( इन्द्र ) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग ( सहोभि ) अच्छे अच्छे बलों के साथ ( वीर्य्याय ) परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिए ( वावृधे ) दृढ़ उत्साहयुक्त होते हैं ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता । जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिए कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ ३९ ॥

**महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आर्षीगायत्री छन्द । उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**महाँ२ऽइन्द्रो यऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ऽइव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥४०॥**

**पदार्थ**—हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर ! जो आप योगियों के ( उपयामगृहीत ) यमनियमादि योग के अङ्गों से स्वीकार किये हुए ( असि ) हैं इस कारण हम लोग ( त्वा ) आप को ( महेन्द्राय ) योग से प्रकट होनेवाले अच्छे ऐश्वर्य के लिए आश्रय करते हैं ( ते ) आपका ( एष ) यह योग हमारे कल्याण का ( योनि ) निमित्त है इसलिए ( त्वा ) आपको ( महेन्द्राय ) मोक्ष करानेवाले ऐश्वर्य के लिए ध्यान करते हैं ( य ) जो ( महान् ) बड़े २ गुण कर्म और स्वभाववाला ( वृष्टिमान् ) वर्षने वाले ( पर्जन्य, इव ) मेघ के तुल्य ( वत्सस्य ) स्तुतिकर्त्ता की ( स्तोमै ) स्तुतियों से ( ओजसा ) अनन्त बल के साथ प्रकाशित होता है उस ईश्वर को जानकर योगी ( वावृधे ) अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—जैसे मेघ वर्षा समय में अपने जल के समूह से सब पदार्थों को तृप्त करता हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करनेवाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥

**उदु त्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*इस के पीछे सूर्य्य की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यं स्वाहा ॥ ४१ ॥**

**पदार्थ**—जैसे किरण ( **विश्वाय** ) समस्त जगत् के प्रयोजन के ( **दृशे** ) देखने जानने के लिए ( **जातवेदसम्** ) जो उत्पन्न हुए सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है ( **त्यम्** ) उस ( **सूर्य्यम् देवम्** ) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य्य को ( **उ** ) तर्क के साथ ( **उत् वहन्ति** ) प्राप्त कराते हैं वैसे विद्वान् के ( **केतव** ) प्रकृष्ट ज्ञान और ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी या उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—जैसे प्राणियों के लिए सूर्य्य की किरणें उस को प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियां ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ॥ ४१ ॥

**चित्रं देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को अति उचित है कि जो ( **सूर्य्य** ) सविता ( **स्वाहा** ) सत्य क्रिया से ( **देवानाम्** ) नेत्र आदि के समान विद्वानों ( **मित्रस्य** ) मित्र वा प्राण ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और ( **अग्ने** ) अग्नि के ( **चित्रम्** ) अद्भुत ( **अनीकम्** ) बलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध ( **चक्षु** ) प्रभाव के दिखलाने वाले गुणों का ( **उत् अगात्** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होना और ( **जगत** ) जङ्गम प्राणी और ( **तस्थुष** ) स्थावर संसारी पदार्थों का ( **आत्मा** ) आत्मा के तुल्य होकर ( **द्यावापृथिवी** ) आकाश तथा भूमि और ( **अन्तरिक्षम्** ) अन्तरिक्ष को ( **आ** ) सब प्रकार से ( **अप्रा** ) व्याप्त होने के समान परमात्मा है उसी की उपासना निरन्तर किया करो ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य्य के तुल्य स्वयं प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अन्तर्यामी है इस से सब जीवों के लिए सत्य और असत्य को बोध करानेवाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥ ४२ ॥

**अग्ने नयेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर की प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है—*

**अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करनेवाले परमेश्वर ! आप ( **सुपथा** ) सत्यविद्या धर्म्मयोगयुक्त मार्ग से ( **राये** ) योग की सिद्धि के लिए ( **अस्मान्** ) हम लोगों को ( **विश्वानि** ) समस्त ( **वयुनानि** ) योग के विज्ञानों को ( **नय** ) पहुंचाइये जिस से हम लोग ( **स्वाहा** ) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से ( **ते** ) आप की ( **भूयिष्ठाम्** ) बहुत ( **नमउक्तिम्** ) नमस्कारपूर्वक स्तुति को ( **विधेम** ) करें । हे ( **देव** ) योगविद्या को देनेवाले ईश्वर ! ( **विद्वान्** ) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जाननेवाले आप कृपा करके ( **जुहुराणम्** ) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलतारूप ( **एन** ) दुष्ट कर्म्मों को ( **अस्मत्** ) योगानुष्ठान करनेवाले हम लोगों से ( **युयोधि** ) दूर कर दीजिये ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के विना योगसिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेमभक्तियुक्त होकर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है ॥ ४३ ॥

**अयमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब संग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥**

**पदार्थ**—( **अयम्** ) यह प्रथम ( **अग्नि** ) वैद्यक विद्या का प्रकाश करनेवाला वैद्य ( **स्वाहा** ) वैद्यक और युद्ध की शिक्षायुक्त वाणी से ( **वाजसातौ** ) युद्ध में ( **न** ) हम लोगों को ( **वरिव** ) सुखकारक सेवन ( **कृणोतु** ) करे ( **अयम्** ) यह दूसरा युद्ध करनेवाला मुख्य वीर ( **प्रभिन्दन्** ) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ ( **मृध** ) संग्राम के ( **पुर** ) आगे ( **एतु** ) चले ( **अयम्** ) यह तीसरा वीर रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा ( **वाजान्** ) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरों को ( **जयतु** ) उत्साहयुक्त करता रहे ( **अयम्** ) यह चौथा वीर ( **जर्हृषाण** ) निरन्तर आनन्दयुक्त होकर ( **शत्रून्** ) धर्म्मविरोधी शत्रुजनों को ( **जयतु** ) जीते ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—जब युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य दूसरा सब वीरों को हर्ष देनेवाला उपदेशक तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करनेवाला हो तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ४४ ॥

**रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५॥**

**पदार्थ**—हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे मैं ( **रूपेण** ) अपने दृष्टिगोचर आकार से ( **व** ) तुम्हारे ( **रूपम्** ) स्वरूप को ( **अभि, आ अगाम्** ) प्राप्त होता हूं । वैसे ( **विश्ववेदा** ) सब को जाननेवाले परमात्मा के समान सभापति ( **व** ) तुम लोगों को ( **वि भजतु** ) पृथक् २ अपने २ अधिकार में नियत करे । हे सभापते ! ( **तुथ** ) सब से अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप ( **स्व** ) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य्य के समान ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **पथा** ) मार्ग से ( **अन्तरिक्षम्** ) अविनाशी राजनीति वा ब्रह्मविज्ञान को ( **वि** ) अनेक प्रकार से ( **पश्य** ) देखो और सभा के बीच में ( **सदस्यै** ) सभासदों के साथ सत्य मार्ग में ( **प्र यतस्व** ) विशेष २ यत्न करो तथा हे ( **चन्द्रदक्षिणा** ) सुवर्ण के दान करनेवाले राजपुरुषो ! तुम लोग धर्म्म को ( **वीत** ) विशेषता से प्राप्त होओ ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—सभापति को चाहिए कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा सेना के पुरुषों का प्रेम से रक्खे और परमेश्वर तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे । धार्मिक सभ्यजनों की तीन सभा होनी चाहिए उन में से एक राजसभा जिस के आधीन राज्य के सब कार्य्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का प्रचार अनेकविधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म्मसभा जिससे धर्म्म की उन्नति और अधर्म्म की हानि निरन्तर की जाय । सब लोगों को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हों, धर्म्म का सेवन और सभाजनों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

**ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । विद्वांसो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो ! जैसे मैं ( **अद्य** ) आज ( **ब्राह्मणम्** ) वेद और ईश्वर का जानने वाला ( **पितृमन्तम्** ) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं ( **पैतृमत्यम्** ) पितृभाव को प्राप्त ( **ऋषिम्** ) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋषि ( **आर्षेयम्** ) जो ऋषिजनों के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त ( **सुधातुदक्षिणम्** ) जिस के अच्छी अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणारूप धातु है उस ( **प्रदातारम्** ) अच्छे दानशील पुरुष को ( **विदेयम्** ) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग ( **अस्मद्राता** ) हमारे लिए अच्छे गुणों के देनेवाले होकर ( **देवत्रा** ) शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के ( **आगच्छत** ) समीप आओ और शुभ गुणों में ( **आविशत** ) प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उद्योगी पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता । कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋषि लोगों के प्रकाशित किए हुए योगविज्ञान को न सिद्ध कर सके । कोई भी विद्वान् अच्छे गुण कर्म्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाताजनों को कृपणता कभी नहीं आती है इस में जो देनेवाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र धार्मिक सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं उनकी अचल कीर्त्ति क्योंकर न हो ॥ ४६ ॥

**अग्नये त्वेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वरुणो देवता । आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय त्वेत्यस्य स्वराट् प्राजापत्या, बृहस्पतये त्वेत्यस्य निचृदार्षी, यमाय त्वेत्यस्य विराडार्षी जगत्यश्छन्दांसि । निषादः स्वरः ॥**

*अब किस प्रयोजन के लिए दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय**

**त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥**

**पदार्थ**—हे वसुसञ्ज्ञक पढानेवाले ! ( **अग्नये** ) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अग्नि के समान तेजस्वी होनेवाले ( **मह्यम्** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) तुझ अध्यापक को ( **वरुण** ) सर्वोत्तम विद्वान् ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम्** ) अपने शुद्ध कर्म्मों से सिद्ध किए सत्य आनन्द को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊं उस ( **दात्रे** ) दानशील विद्वान् का ( **आयु** ) बहुत कालपर्य्यन्त जीवन ( **एधि** ) बढाइये और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) विद्याग्रहण करनेवाले ( **मह्यम्** ) मुझ विद्यार्थी के लिए ( **मय** ) सुख बढाइये । हे दुष्टो को रुलाने वाले अध्यापक ! जिस ( **रुद्राय** ) चवालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले ( **मह्यम्** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) रुद्र नामक पढानेवाले आपको ( **वरुण** ) अत्युत्तम गुणयुक्त ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम्** ) मुक्ति के साधनो का ( **अशीय** ) प्राप्त होऊं उस ( **दात्र** ) विद्या देनेवाले विद्वान् के लिए ( **प्राण** ) योगविद्या का बल ( **एधि** ) प्राप्त कराइये और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) विद्याग्रहण करनेवाले ( **मह्यम** ) मेरे लिये ( **वय** ) तीनो अवस्था का सुख प्राप्त कीजिए । हे सूर्य्य के समान तेजस्वि अध्यापक ! जिस ( **बृहस्पतय** ) अडतालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले ( **मह्यम** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) पूर्णविद्या पढानेवाले आप का ( **वरुण** ) पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम** ) विद्या के आनन्द का ( **अशीय** ) भोग करूं उस ( **दात्रे** ) पूर्णविद्या देनेवाले महाविद्वान् के अर्थ ( **त्वक** ) सरदी गरमी के स्पर्श का सुख ( **एधि** ) बढाइये और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) पूर्ण विद्या के ग्रहण करने वाले ( **मह्यम** ) मुझ शिष्य के लिए ( **मय** ) पूर्ण विद्या का सुख उन्नत कीजिए । हे गृहाश्रम से होनेवाले विषय सुख से विमुख विरक्त सत्योपदेश करने हारे आप्त विद्वन् ! जिस ( **यमाय** ) गृहाश्रम के सुख के अनुराग से होने वाले ( **मह्यम** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) सर्वदोषरहित उपदेश करने वाले आप को ( **वरुण** ) सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम** ) मुक्ति के सुख को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊं । उस ( **दात्र** ) ब्रह्मविद्या देनेवाले महाविद्वान् के लिए ( **हय** ) ब्रह्मज्ञान की वृद्धि ( **एधि** ) कीजिए और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) मोक्षविद्या के ग्रहण करनेवाले ( **मह्यम** ) मेरे लिए ( **वय** ) तीनो अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिए ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तम गुण वाला सब विद्याओ मे सब से बढकर विद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानो की परीक्षा करके अपनी अपनी कन्या और पुत्रो को उन उन के पढाने योग्य विद्वानो से पढवावें और पढने वालो को भी चाहिए कि अपनी अपनी अधिक न्यून बुद्धि को जान के अपने अपने अनुकूल अध्यापको की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उनसे निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ॥ ४७ ॥

**कोऽदादित्यस्याङ्गिरस ऋषि । आत्मा देवता । आर्च्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है—*

**कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात् ।**
**कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥**

**पदार्थ**—( **क** ) कौन कर्म्मफल को ( **अदात्** ) देता और ( **कस्मै** ) किस के लिए ( **अदात्** ) देता है । इन दो प्रश्नो के उत्तर ( **काम** ) जिसकी कामना सब करते हैं वह परमेश्वर ( **अदात्** ) देता और ( **कामाय** ) कामना करनेवाले जीवों को ( **अदात्** ) देता है । अब विवेक करते हैं कि ( **काम** ) जिसकी योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर ( **दाता** ) देनेवाला है ( **काम** ) कामना करनेवाला जीव ( **प्रतिग्रहीता** ) लेनेवाला है । हे ( **काम** ) कामना करने वाले जीव ! ( **ते** ) तेरे लिए मैंने वेदो के द्वारा ( **एतत** ) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—इस ससार मे कर्म्म करनेवाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है । यहाँ यह जानना चाहिए कि कामना के बिना कोई आख का पलक भी नही हिला सकता । इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म्मसम्बन्धी कामना करे अधर्म्म की नही । यह निश्चय कर जानना चाहिए कि जो इस विषय मे मनु जी ने कहा है वह वेदानुकूल है । जैसे इस ससार मे अति कामना प्रशसनीय नही और कामना के विना कोई कार्य्य सिद्ध नही हो सकता इसलिए धर्म्म की कामना करनी और अधर्म्म की नही क्योकि वेदो का पढ़ना पढाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना इच्छा के विना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥ इस ससार मे तीनों काल मे इच्छा के बिना कोई क्रिया नही दीख पडती जो जो कुछ किया जाता है सो सो सब इच्छा ही का व्यापार है । इसलिए श्रेष्ठ वेदोक्त कामो की इच्छा करनी इतर दुष्ट कामो की नही ॥ ४८ ॥

इस अध्याय मे बाहर भीतर का व्यवहार मनुष्यो का परस्पर वर्त्ताव आत्मा का कर्म्म आत्मा मे मन की प्रवृत्ति प्रथम सिद्ध योगी के लिए ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना योग का लक्षण पढने पढाने वालो की रीति योगविद्या के अभ्यास करने वालो का वर्त्ताव योगविद्या से अन्त करण की शुद्धि योगाभ्यासी का लक्षण गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार स्वामी सेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीश का प्रजा के रक्षा करने की रीति राजपुरुष और सभासदो का कर्म्म राजा का उपदेश राजाओ का कर्त्तव्य परीक्षा करके सेनापति का करना पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना विद्वानो का कर्त्तव्य कर्म्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय प्रयोजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव, राजा और प्रजा के जनो का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति नित्य पढाने का विषय विद्या की वृद्धि करना राजा का कर्त्तव्य सेनापति का कर्म्म सभाध्यक्ष की क्रिया ईश्वर के गुणो का वर्णन उसकी प्रार्थना शूरवीरों का युद्ध का अनुष्ठान सेना मे रहने वाले पुरुषो का कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य्य सेवन की रीति और ईश्वर की जीवो के प्रति उपदेश इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की षष्ठाध्याय के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

॥ इति सप्तमोऽध्याय ॥

# ॥ अथाष्टमोऽध्यायारम्भः ॥

*अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है—*

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

**उपयाम इत्यस्याङ्गिरस ऋषि । बृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*उसके प्रथम मन्त्र मे गृहस्थ धर्म के लिए ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिए यह अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—*

**उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।**
**विष्णऽउरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं ( **आदित्येभ्य** ) जिन्होने अडतालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनो की सभा में ( **त्वा** ) अडतालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप का स्वीकार करती हूँ आप ( **उपयामगृहीत** ) शास्त्र के नियम और उपनियमो का ग्रहण करने वाले ( **असि** ) हो । हे ( **विष्णो** ) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठ जन ! ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह गृहस्थाश्रम ( **सोम** ) सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य्य का बढाने वाला है ( **तम** ) उसकी ( **रक्षस्व** ) रक्षा करें । हे ( **उरुगाय** ) बहुत शास्त्रो को पढ़ने वाले ! ( **त्वा** ) आप को काम के बाण जैसे ( **मा दभन्** ) दुःख देनेवाले न होवें वैसा साधन कीजिए ॥ १ ॥

**भावार्थ**—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओ को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिए कि अपने सदृश रूप गुण कर्म स्वभाव और विद्या वाला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्त करण से जिस पर प्रीति हो ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करें । ऐसे ही कुमार ब्रह्मचारी लोगो को भी चाहिए कि अपने अपने समान युवती स्त्रियों का पाणिग्रहण करें, इस प्रकार दोनो स्त्री पुरुषो को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिए और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें किन्तु सदा ऋतुगामी हो । उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीतिपूर्वक रमण करें जैसे आपस मे एक से दूसरे का वियोग

अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों वैसा वर्त्ताव वर्त्त कर आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें ॥ १ ॥

**कदा चन इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । गृहपतिर्मघवा देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।**
**उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदित्येभ्यस्त्वा ॥२॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्य्य से युक्त पति ! जिस कारण आप ( **कदा** ) कभी ( **चन** ) भी ( **स्तरीः** ) अपने स्वभाव को छिपाने वाले ( **न** ) नहीं ( **असि** ) हैं इस कारण ( **दाशुषे** ) दान देने वाले पुरुष के लिए ( **उपोप** ) समीप ( **सश्चसि** ) प्राप्त होते हैं । हे ( **मघवन्** ) प्रशंसित धनयुक्त भर्त्ता ! ( **देवस्य** ) विद्वान् ( **ते** ) आप का जो ( **दानम्** ) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन आदि पदार्थों का देना है ( **इत्** ) वही ( **नु** ) शीघ्र ( **भूयः** ) अधिक करके मुझ को ( **पृच्यते** ) प्राप्त होवे । इसी से मैं स्त्रीभाव से ( **आदित्येभ्यः** ) प्रति महीने सुख देनेवाले आपका आश्रय करती हूं ॥ २ ॥

**भावार्थ**—विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को चाहिए कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक ही स्त्री को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उसके साथ विवाह करके आनन्द में रहे ॥ २ ॥

**कदा चन प्रयुच्छसीत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।**
**तुरीयादित्य सवनं तऽइन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥३॥**

**पदार्थ**—इस मन्त्र में नकार का अध्याहार आकांक्षा के होने से होता है । हे पते ! आप जो ( **कदा** ) कभी ( **चन** ) भी ( **प्र युच्छसि** ) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने ( **उभे** ) दोनों ( **जन्मनी** ) वर्त्तमान और परजन्म को ( **पासि** ) निरन्तर पालते हो । हे ( **आदित्य** ) विद्या गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो ( **ते** ) आपके ( **सवनम्** ) उत्पत्ति धर्मयुक्त कार्य्य सिद्ध करने हारे ( **इन्द्रियम्** ) मन आदि इन्द्रिय के ( **आ, तस्थौ** ) वश में रहे तो आप ( **दिवि** ) प्रकाशित व्यवहारों में ( **अमृतम्** ) अविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें । हे ( **तुरीय** ) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करनेवाले ! ( **आदित्येभ्यः** ) प्रति मास के सुख के लिए ( **त्वा** ) दृढेन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्वीकार करती हूँ ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़ कर परस्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी अपनी ही स्त्री को चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता वह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे ? इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का नहीं ॥ ३ ॥

**यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।**
**आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **आदित्यासः** ) सूर्य्यलोकों के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान ! आप जो ( **देवानाम्** ) विद्वान् ( **वः** ) आप लोगों का यह ( **यज्ञः** ) स्त्रीपुरुषों के वर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार ( **सुम्नम्** ) सुख को ( **प्रति, एति** ) निश्चय करके प्राप्त करता है और ( **या** ) जो ( **अंहोः** ) गृहाश्रम के सुख को सिद्ध करने वाली ( **अर्वाची** ) अच्छी शिक्षा और विद्याभ्यास के पीछे विज्ञानप्राप्ति का हेतु ( **वरिवोवित्तरा** ) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगों की ( **सुमतिः** ) श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में ( **आ** ) निरन्तर ( **ववृत्यात्** ) प्रवृत्त होवे जो ( **आदित्येभ्यः** ) प्राप्त विद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो ( **त्वा** ) तुझ को ( **असत्** ) प्राप्त हो ( **चित्** ) उस बुद्धि से ही युक्त हम दोनों स्त्री पुरुष को ( **मृडयन्तः** ) सदा सुख देते ( **भवत** ) रहिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—विवाह करके स्त्रीपुरुषों को चाहिए कि जिस जिस काम से विद्या अच्छी शिक्षा धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें ॥ ४ ॥

**विवस्वन्नित्यस्य कुत्स ऋषिः । गृहपतयो देवता । आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । अन्त्यस्योत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽएधते गृहे ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विवस्वन्** ) विविध प्रकार के स्थानों में वसने वाले ( **आदित्य** ) अविनाशीस्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! ( **एषः** ) यह जो ( **ते** ) आपका ( **सोमपीथः** ) जिस में सोमलता आदि ओषधियों के रस पीने में आवें ऐसा गृहाश्रम है ( **तस्मिन्** ) उसमें आप ( **विश्वाहा** ) सब दिन ( **मत्स्व** ) आनन्दित रहो । हे ( **नरः** ) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो ! आप लोग ( **अस्मै** ) इस ( **वचसे** ) गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के लिए ( **श्रत्** ) सत्य ही का ( **दधातन** ) धारण करो ( **यत्** ) जिस ( **गृहे** ) गृहाश्रम में ( **दम्पती** ) स्त्रीपुरुष ( **वामम्** ) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को ( **अश्नुतः** ) प्राप्त होते हैं उस में ( **आशीर्दाः** ) कामना देनेवाला ( **अरपः** ) निष्पाप धर्मात्मा ( **पुमान्** ) पुरुषार्थी ( **पुत्रः** ) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र ( **जायते** ) उत्पन्न होता है और वह उत्तम ( **वसु** ) धन को ( **विन्दते** ) प्राप्त होता है ( **अध** ) इस के अनन्तर वह विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से ( **एधते** ) बढ़ता है ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षापूर्वक स्वयंवर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति पावें ॥५॥

**वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।**
**वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) सुख देने ( **सवितः** ) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले सूर्यजन ! आप ( **अस्मभ्यम्** ) हम लोगों के लिये ( **अद्य** ) आज ( **वामम्** ) अति प्रशंसनीय सुख ( **उ** ) और आज ही क्या किन्तु ( **श्वः** ) अगले दिन ( **वामम्** ) उक्त सुख तथा ( **दिवेदिवे** ) दिन दिन ( **वामम्** ) उस सुख को ( **सावीः** ) उत्पन्न कीजिये जिससे हम लोग आप की कृपा से उत्पन्न हुई ( **अया** ) इस ( **धिया** ) श्रेष्ठ बुद्धि से ( **भूरेः** ) अनेक पदार्थों से युक्त ( **वामस्य** ) अत्यन्त सुन्दर ( **क्षयस्य** ) गृहाश्रम के बीच में ( **वामभाजः** ) प्रशंसनीय कर्म करनेवाले ( **हि** ) ही ( **स्याम** ) होवें ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—गृहस्थजनों को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह से प्रशंसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमी होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिस से तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों ॥६॥

**उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता गृहपतिर्देवता । विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

**उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे पुरुष ! तुम से जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करी गई हूं वैसे मैंने आप को ( **उपयामगृहीतः** ) विवाह नियम से ग्रहण किया ( **असि** ) है जैसे आप ( **चनोधाः चनोधाः** ) अन्न अन्न के धारण करनेवाले ( **असि** ) हैं और ( **सावित्रः** ) सविता समस्त संतानादि सुख उत्पन्न करनेवाले आपको अपना इष्टदेव माननेवाले ( **असि** ) हैं वैसे मैं भी हूँ । जैसे आप ( **मयि** ) मेरे निमित्त ( **चनः** ) अन्न को ( **धेहि** ) धरिये वैसे मैं भी आपके निमित्त धारण करूं जैसे आप ( **यज्ञम्** ) दृढ़ पुरुषों के सेवने योग्य धर्म व्यवहार को ( **जिन्व** ) प्राप्त हो वैसे मैं भी प्राप्त होऊं और जैसे ( **सवित्रे** ) संतानों की उत्पत्ति के हेतु ( **भगाय** ) धनादि सेवनीय ( **देवाय** ) दिव्य ऐश्वर्य के लिये ( **यज्ञपतिम्** ) गृहाश्रम को पालन हारे आपको मैं प्रसन्न रक्खूं वैसे आप भी ( **जिन्व** ) तृप्त कीजिये ॥७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विवाहित स्त्री पुरुषों को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ संतानोत्पत्ति का आचरण करें ॥७॥

**उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । विश्वेदेवा गृहपतयो देवता । आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । सुशर्म्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी गृहस्थ को सेवन योग्य धर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।**
**विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे पते ! जैसे मैंने आपको ( **उपयामगृहीतः** ) नियम उपनियमों से ग्रहण किया ( **असि** ) है और ( **सुप्रतिष्ठानः** ) अच्छी प्रतिष्ठा और ( **सुशर्म्मा** )

अच्छे घर वाले ( असि ) हो उन ( बहुदुग्धाय ) अत्यन्त वीर्य देनेवाले आपको ( मम ) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ चित्त को प्रसन्न करनेवाला अन्न उचित समय पर देती हूँ जिस आप का ( एषः ) यह ( योनिः ) सुखदायक महल है ( त्वा ) उस आपको ( विश्वेभ्यः ) सब ( देवेभ्यः ) दिव्य सुखों के लिये सेवन करती हूँ और ( त्वा ) आपको ( विश्वेभ्यः ) समस्त ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिये नियुक्त करती हूँ बस आप मुझको कीजिये ॥८॥

**भावार्थ**—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखनेवाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देनेवाला घर हो और आप वीर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करे और उसके लिये यथोचित समय पर सुख देवे तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगे और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सत्सङ्ग किया करें ॥८॥

**उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्य प्राजापत्यागायत्री बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्यार्च्युष्णिक्, अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पङ्क्तिश्च छन्दांसि । क्रमेणषड्जर्षभपञ्चमाः स्वराः ॥**

*फिर गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम तऽइन्दोरिन्द्रियावतः । पत्नीवतो ग्रहाँ२ऽऋध्यासम् । अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् । अहꣳ सूर्य्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( सोम ) ऐश्वर्य्यसम्पन्न ( देव ) अति मनोहर पते ! जिस आप को मैं कुमारी ने ( उपयामगृहीतः ) विवाह नियमों से स्वीकार किया ( असि ) है उन ( इन्दोः ) सोमगुणसम्पन्न ( इन्द्रियावतः ) बहुत धन वाले और ( पत्नीवतः ) यज्ञ समय में प्रशंसनीय स्त्रीग्रहण करनेवाले ( बृहस्पतिसुतस्य ) और बड़ी वेदवाणी के पालनेवाले के पुत्र ( ते ) आप के गृह और सम्बन्धियों को प्राप्त होके मैं ( परस्तात् ) आगे और ( अवस्तात् ) पीछे के समय में ( ऋध्यासम् ) सुखों से बढ़ती जाऊं ( यत् ) जिस ( देवानाम् ) विद्वानों की ( गुहा ) बुद्धि में स्थित ( अन्तरिक्षम् ) सत्य विज्ञान को मैं ( एमि ) प्राप्त होती हूँ उसी को तू भी प्राप्त हो और जो ( मे ) मेरा ( पिता ) पालन करने हारा ( अभूत् ) हो ( अहम् ) मैं ( उभयतः ) उसके अगले पिछले उन शिक्षा विषयों से जिस ( सूर्य्यम् ) चर अचर के आत्मा रूप परमेश्वर को ( ददर्श ) देखूं उसी को तू भी देख ॥९॥

**भावार्थ**—स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्यायुक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों जिसके माता और पिता विद्वान् न हों उनके सन्तान भी उत्तम नहीं हो सकते इससे अच्छी और पूरी विद्या का ग्रहण करके ही गृहाश्रम का आचरण करें इसके पूर्व नहीं ॥९॥

**अग्ना३इ पत्नीवन्नित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) समस्त सुख पहुँचानेवाले स्वामिन् ! ( सजूः ) समान प्रीति करनेवाले आप मेरे ( देवेन ) दिव्य सुख देनेवाले ( त्वष्ट्रा ) समस्त दुःख विनाश करनेवाले गुण के साथ ( स्वाहा ) सत्यवाणीयुक्त क्रिया से ( सोमम् ) सोमवल्ली आदि ओषधियों के विशेष आसव को ( पिब ) पीओ । हे ( पत्नीवन् ) प्रशंसनीय यज्ञसम्बन्धिनी स्त्री का ग्रहण करने ( वृषा ) वीर्य सींचने ( रेतोधाः ) वीर्य्य धारण करने ( प्रजापतिः ) और सन्तानादि के पालनेवाले ! जो आप ( असि ) हैं वह ( मयि ) मुझ विवाहित स्त्री में ( रेतः ) वीर्य्य को ( धेहि ) धारण कीजिये । हे स्वामिन् ! मैं ( वृष्णः ) वीर्य्य सींचने ( रेतोधसः ) पराक्रम धारण करने ( प्रजापतेः ) सन्तान आदि की रक्षा करनेवाले ( ते ) आपके सङ्ग से ( रेतोधाम् ) वीर्य्यवान् अति पराक्रमयुक्त पुत्र को ( अशीय ) प्राप्त होऊं ॥१०॥

**भावार्थ**—इस संसार में मनुष्यजन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य उत्तम विद्या अच्छे गुण और पराक्रमयुक्त होकर विवाह करें । विवाह की मर्यादा ही से सन्तानों की उत्पत्ति और रतिक्रीडा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहें बिना विवाह के स्त्री पुरुष वा पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्यशक्ति की बढ़ती होवे इससे गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री पुरुष करें ॥१०॥

**उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर गृहस्थों का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा । हर्य्योर्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे पते ! आप ( उपयामगृहीतः ) गृहाश्रम के लिए हुए ( असि ) है ( हारियोजनः ) घोड़ों को जोड़नेवाले सारथि के समान ( हरिः ) यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलानेवाले ( असि ) हैं इस कारण ( हरिभ्याम् ) अच्छी शिक्षा को पाए हुए घोड़े से युक्त रथ में विराजमान ( त्वा ) आप की मैं सेवा करूं । तुम लोग गृहाश्रम करनेवाले ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये ( सहसोमाः ) उत्तम गुणयुक्त होकर ( हर्य्योः ) वेगादि गुणवाले घोड़ों को ( धानाः ) स्थानादिकों में स्थापन करनेवाले ( स्थ ) होओ ॥११॥

**भावार्थ**—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सद्गुण सद्विद्या युक्त होकर विवाह की इच्छा करनेवाले कन्या और पुरुष युवावस्था को पहुँच और परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देख कर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उन्नति होती है । इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रतिदिन ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥११॥

**यस्त इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब गृहस्थों की मित्रता अगले मन्त्र में कही है—*

**यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप ( उपहूतः ) मुझ से सत्कार को प्राप्त होकर ( अश्वसनिः ) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों और ( गोसनिः ) संस्कृत वाणी भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देनेवाले ( असि ) हैं उन ( शस्तोक्थस्य ) प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्तयुक्त ( इष्टयजुषः ) इष्ट सुखकारक यजुर्वेद के भागयुक्त वा ( स्तुतस्तोमस्य ) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे ( ते ) आप का ( यः ) जो ( भक्षः ) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है उसको आप से सत्कृत हुई मैं ( भक्षयामि ) भोजन करूं तथा हे प्रिय सखि ! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ा रत्न और संस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे अच्छे पदार्थ देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक्सूक्त यजुर्वेद भाग में स्तुति किये हुए सामगान करनेवाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उसको अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूँ ॥१२॥

**भावार्थ**—अच्छे उत्साह बढ़ानेवाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करनेवाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धुजन आदि को बुला कर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्विलास को करें ॥१२॥

**देवकृतस्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक् पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत्साम्न्युष्णिक् एनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक् यच्चाहमित्यस्य निचृदार्च्युष्णिक् च छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥**

*अगले मन्त्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है—*

**देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽएनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे सब के उपकार करनेवाले मित्र ! आप ( देवकृतस्य ) दान देनेहारे के ( एनसः ) अपराध के ( अवयजनम् ) विनाश करनेवाले ( असि ) हो ( मनुष्यकृतस्य ) साधारण मनुष्यों के किये हुए ( एनसः ) अपराध के ( अवयजनम् ) विनाश करनेवाले ( असि ) हो ( पितृकृतस्य ) पिता के किये हुए ( एनसः ) विरोध आचरण के ( अवयजनम् ) अच्छे प्रकार हरनेवाले ( असि ) हो ( आत्मकृतस्य ) अपने किये हुए ( एनसः ) पाप के ( अवयजनम् ) दूर करनेवाले ( असि ) हो ( एनसः ) अधर्म्म अधर्म्म के ( अवयजनम् ) नाश करने हारे ( असि ) हो ( विद्वान् ) जानता हुआ मैं ( यत् ) जो ( च ) कुछ भी ( एनः ) अधर्म्माचरण ( चकार ) किया, करता हूँ वा करूं ( अविद्वान् ) अनजान मैं ( यत् ) जो ( च ) कुछ भी किया करता हूँ वा करूं ( तस्य ) उस ( सर्वस्य ) सब ( एनसः ) दुष्ट आचरण के ( अवयजनम् ) दूर करनेवाले आप ( असि ) हैं ॥१३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करनेवाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें । जाने वा बिना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किए हुए अपराध को औरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों ॥१३॥

**सं वर्चसेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी मित्रकृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे सब विद्याओं के पढ़ाने ( त्वष्टा ) सब व्यवहारों के विस्तारकारक ( सुदत्रः ) अत्युत्तम दान के देनेवाले विद्वन् ! आप ( संशिवेन ) ठीक ठीक कल्याण

लोग यथायोग्य अपने अपने कामों में वर्त्तमान होकर ( **इमम्** ) इस ( **यज्ञम्** ) राजा और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का ( **जुषस्व** ) सेवन किया कर ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अपने अपने कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभासदों को चाहिए कि अपने अपने न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

**उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । यज्ञो देवता । निचृदार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है—*

**उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयण. । पाहि यज्ञ पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णु त्व पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप ( **उपयामगृहीत** ) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्र बोध से युक्त ( **असि** ) हैं इससे ( **यज्ञम्** ) राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को ( **पाहि** ) पालो और ( **स्वाग्रयण** ) जैसे उत्तम विज्ञानयुक्त कर्म्मों को पहुचाने वाले होते हैं वैसे ( **आग्रयण** ) उत्तम विचारयुक्त कर्म्मों को प्राप्त होने वाले हूजिए इस से ( **यज्ञपतिम्** ) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को ( **पाहि** ) पालो यह ( **विष्णु** ) जो समस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक ठीक जानने वाला विद्वान् है वह ( **इन्द्रियेण** ) मन और धन से ( **त्वाम्** ) तुझे ( **पातु** ) पाले और तुम उस ( **विष्णुम्** ) विद्वान् की ( **पाहि** ) रक्षा करो ( **सवनानि** ) ऐश्वर्य्य देने वाले कामों की ( **अभि** ) सब प्रकार से ( **पाहि** ) रक्षा करो ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के सङ्ग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना ऐश्वर्य्य की उन्नति के विना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ॥ २० ॥

**सोम पवत इत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । सोमो देवता । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । एष त इत्यस्य याजुषी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब राजा का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्य पवते द्यावापृथिवीभ्या पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य. ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह ( **सोम** ) सौम्यगुण सम्पन्न राजा ( **अस्मै** ) इस ( **ब्रह्मणे** ) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिए ( **पवते** ) पवित्र होता है ( **अस्मै** ) इस ( **क्षत्राय** ) क्षत्रिय धर्म के लिए ( **पवते** ) ज्ञानवान् होता है ( **अस्मै** ) इस ( **सुन्वते** ) समस्त विद्या के सिद्धान्त को निष्पादन ( **यजमानाय** ) और उत्तम सङ्ग करने हारे विद्वान् के लिए ( **पवते** ) निर्मल होता है ( **इषे** ) अन्न के गुण और ( **ऊर्ज्जे** ) पराक्रम के लिए ( **पवते** ) शुद्ध होता है ( **अद्भ्य** ) जल और प्राण वा ( **ओषधीभ्य** ) सोम आदि ओषधियों को ( **पवते** ) जानता है ( **द्यावापृथिवीभ्याम्** ) सूर्य्य और पृथिवी के लिए ( **पवते** ) शुद्ध होता है ( **सुभूताय** ) अच्छे व्यवहार के लिए ( **पवते** ) बुरे कामों से बचता है । वैसे ( **सोम** ) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जान मान और आप भी वैसा पवित्र रहे । हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन ! जिस ( **ते** ) आप का ( **एष** ) यह राजधर्म्म ( **योनि** ) घर है । उस ( **त्वा** ) आप को ( **विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) विद्वानों के लिए तथा ( **त्वा** ) आप को ( **विश्वेभ्य** ) सम्पूर्ण दिव्यगुणों के लिए हम लोग स्वीकार करते हैं ॥२१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिए हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिए धर्म्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें । जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करनेवाला होता है वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है । इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

**उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्य गृह्णामि । यत्तऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्य यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) सेनापते ! तू ( **उपयामगृहीत** ) अच्छे नियमों से विद्या को पढ़नेवाला ( **असि** ) है इस हेतु से ( **बृहद्वते** ) जिस के अच्छे बड़े बड़े कर्म हैं ( **वयस्वते** ) और जिसकी दीर्घ आयु है उस ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्यवाले सभापति के लिए ( **उक्थाव्यम्** ) प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्रविद्यावाले ( **त्वा** ) तेरा ( **गृह्णामि** ) ग्रहण जैसे मैं करता हूँ वैसे ( **यत्** ) जो ( **ते** ) तेरा ( **बृहत्** ) अत्यन्त ( **वय** ) जीवन है ( **तस्मै** ) उस के पालन करने के अर्थ और ( **विष्णवे** ) ईश्वर ज्ञान वा वेदज्ञान के लिए ( **त्वा** ) तुझे ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ और ( **एष** ) यह सेना का अधिकार ( **ते** ) तेरा ( **योनि** ) स्थित होने के लिए स्थान है । हे सेनापते ! ( **उक्थेभ्य** ) प्रशंसा योग्य वेदोक्त कर्मों के लिए ( **त्वा** ) तुझे ( **देवेभ्य** ) और विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिए ( **देवाव्यम्** ) उन के पालन करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **यज्ञस्य** ) राज्यपालनादि व्यवहार के ( **आयुषे** ) बढ़ाने के लिए ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—सब विद्याओं के जाननेवाले विद्वान् को योग्य है कि राज्यव्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिए अच्छी शिक्षायुक्त शस्त्र और अस्त्र विद्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में युक्त करे और सभापति तथा सेनापति को चाहिए कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ २२ ॥

**मित्रावरुणाभ्यान्त्वेत्यस्य वत्सार काश्यप ऋषि । विश्वेदेवा देवता । मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप् इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् छन्दांसि । गान्धार स्वर । इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥ इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वरश्च ॥**

*सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करें यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**मित्रावरुणाभ्या त्वा देवाव्य यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्य यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्य यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्य यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्य यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्या त्वा देवाव्य यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! धर्म अर्थ काम और मोक्ष की इच्छा करनेवाला मैं ( **यज्ञस्य** ) अग्निहोत्र से लेकर राज्य पालन पर्य्यन्त यज्ञ की ( **आयुषे** ) उन्नति होने के लिए ( **मित्रावरुणाभ्याम्** ) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) विद्वानों की रक्षा करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ । हे सेनापते विद्वन् ! ( **यज्ञस्य** ) सत्सङ्गति करने की ( **आयुषे** ) उन्नति के लिए ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्यवान् पुरुष के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) विद्वानों की रक्षा करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! ( **यज्ञस्य** ) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की ( **आयुषे** ) प्राप्ति के लिए ( **इन्द्राग्निभ्याम्** ) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) दिव्य विद्या बोध की रक्षा करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे शिल्पिन् ! ( **यज्ञस्य** ) क्रिया चतुराई का ( **आयुषे** ) ज्ञान होने के ( **इन्द्रावरुणाभ्याम्** ) बिजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) उन की विद्या जाननेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे अध्यापक ! ( **यज्ञस्य** ) पढ़ने पढ़ाने की ( **आयुषे** ) उन्नति के लिए ( **इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्** ) राजा और शास्त्रवेत्ताओं के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त करानेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे विद्वन् ! ( **यज्ञस्य** ) विज्ञान की ( **आयुषे** ) बढ़ती के लिए ( **इन्द्राविष्णुभ्याम्** ) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ ( **देवाव्यम्** ) ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ को ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ ॥२३॥

**भावार्थ**—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिए सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे ॥ २३ ॥

**मूर्द्धानमित्यस्य भरद्वाज ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*इसके अनन्तर विद्वानों का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—जैसे ( **देवा** ) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से ( **दिव** ) प्रकाशमान सूर्य के ( **मूर्द्धानम्** ) शिर के समान ( **पृथिव्या** ) पृथिवी के गुणों को ( **अरतिम्** ) प्राप्त होने वाले ( **ऋते** ) सत्य मार्ग में ( **आजातम्** ) सत्य व्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध ( **वैश्वानरम्** ) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुँचाने और ( **जनानाम्** ) सत्पुरुषों के ( **अतिथिम्** ) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और ( **आसन्** ) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख में ( **पात्रम्** ) समस्त शिल्प व्यवहार की रक्षा करने ( **कविम्** ) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले ( **अग्निम्** ) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को ( **सम्राजम्** ) एकचक्र राज्य करने वाले के समान ( **आ** )

अच्छे प्रकार से ( **जनयत** ) प्रकाशित करते हैं वैसे सब मनुष्यो को करना योग्य है ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद मे कही हुई क्रियाओ से यानो और शस्त्रास्त्र विद्या से अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओ को पीडा करते हैं वैसे ही अन्य सब मनुष्यो को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥ २४ ॥

**उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषि । वैश्वानरो देवता । याजुष्यनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर । ध्रुवोसीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहती छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—*

**उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्ना समनसस्करत् ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—हे परमेश्वर ! आप ( **उपयामगृहीत** ) शास्त्रप्राप्त नियमो से स्वीकार किए जाते ( **असि** ) है ऐसे ही ( **ध्रुव** ) स्थिर ( **असि** ) हैं कि ( **ध्रुवक्षिति** ) जिन आप मे भूमि स्थिर हो रही है और ( **ध्रुवाणाम** ) स्थिर आकाश आदि पदार्थो मे ( **ध्रुवतमा** ) अत्यन्त स्थिर ( **असि** ) है तथा ( **अच्युतानाम** ) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवो मे ( **अच्युतक्षित्तम** ) अतिशय करके अविनाशीपन बसाने वाले हैं ( **एष** ) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश ( **ते** ) आप के ( **योनि** ) निवास स्थान के समान हैं ( **वैश्वानराय** ) समस्त मनुष्यो को सत्य मार्ग मे प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिए ( **ध्रुवेण** ) दृढ ( **मनसा** ) मन और ( **वाचा** ) वाणी से ( **सोमम्** ) समस्त जगत् के उत्पन्न कराने वाले ( **त्वा** ) आप को ( **ध्रुवम** ) निश्चयपूर्वक जैसे हो वैसे ( **अवनयामि** ) स्वीकार करता हूँ ( **अथ** ) इस के अनन्तर ( **इन्द्र** ) सब दुःख के विनाश करने वाले आप ( **न** ) हमारे ( **विश** ) प्रजाजनो को ( **असपत्ना** ) शत्रुओ से रहित और ( **समनस** ) एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहनेवाले ( **इत** ) ही ( **करत** ) कीजिए ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो नित्य पदार्थों मे नित्य और स्थिरो मे भी स्थिर परमेश्वर है उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योग अभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीक २ ज्ञान हो सकता है अन्यथा नही ॥ २५ ॥

**यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषि । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

*अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है—*

**यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्तेऽअꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् । अध्वर्य्योर्वा परि वा य पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे यज्ञपते ! ( **य** ) जो ( **ते** ) तेरा ( **द्रप्स** ) यज्ञ के पदार्थो का समूह ( **स्कन्दति** ) पवन के साथ सब जगह मे प्राप्त होता है और ( **य** ) जो ( **ते** ) तेरे यज्ञ से युक्त ( **ग्रावच्युत** ) मेघमण्डल से गिरा हुआ ( **अंशु** ) यज्ञ के पदार्थो का विभाग ( **धिषणयो** ) प्रकाश भूमि के ( **पवित्रात** ) पवित्र ( **उपस्थात** ) गोद के समान स्थान से ( **वा** ) अथवा ( **य** ) जो ( **अध्वर्य्यो** ) यज्ञ करने वालो से ( **वा** ) अथवा ( **परि** ) सब से प्रकाशित होता है उस से ( **तम** ) उस यज्ञ को मै ( **ते** ) तेरे लिए ( **स्वाहा** ) सत्यवाणी और ( **मनसा** ) मन से ( **वषट्कृतम्** ) किए हुए सकल्प के समान ( **जुहोमि** ) देता हूँ अर्थात् उसके फलदायक होने से तेरे लिए उस पदार्थ को पहुँचाता हूँ जिस लिए यज्ञ का अनुष्ठान करनेहारा तू ( **देवानाम** ) विद्वानो के लिए ( **उत्क्रमणम** ) ऊची श्रेणी को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य्य के समान ( **असि** ) है इससे तुझ को सुख प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । होता आदि विद्वान् लोग अत्यन्त दृढ सामग्री से यज्ञ करते हुए जिन सुगन्धि आदि पदार्थों को अग्नि मे छोडते हैं वे पवन और जलादि पदार्थो को पवित्र कर उसके साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियो को आनन्द देते हैं इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

**प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषि । यज्ञपतिर्देवता । प्राणायेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप्,**

**उदानायेत्यस्यासुर्य्युष्णिक् व्यानायेत्यस्य वाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री**

**क्रतूदक्षाभ्यामित्यस्यासुरी गायत्री, श्रोत्रायेत्यस्यासुर्य्यनुष्टुप्,**

**चक्षुर्भ्यामित्यस्य याजुष्युष्णिक् छन्दांसि । अनुष्टुभो गान्धारो**

**गायत्र्या षड्ज उष्णिग ऋषभश्च स्वर ॥**

*फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वर्चोदा** ) यथायोग्य विद्या पढने पढाने रूप यज्ञकर्म करनेवाले ! आप ( **मे** ) मेरे ( **प्राणाय** ) हृदयस्थ जीवन के हेतु प्राणवायु और ( **वर्चसे** ) वेदविद्या के प्रकाश के लिये ( **पवस्व** ) पवित्रता से वर्त्तें । हे ( **वर्चोदा** ) ज्ञानदीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप ( **मे** ) मेरे ( **व्यानाय** ) सब शरीर में रहने वाले पवन और ( **वर्चसे** ) अन्न आदि पदार्थो के लिये ( **पवस्व** ) पवित्रता से प्राप्त होवें । हे ( **वर्चोदा** ) विद्याबल देने वाले ! आप ( **मे उदानाय** ) श्वास से ऊपर को आने वाले उदान सज्ञक पवन और ( **वर्चसे** ) पराक्रम के लिये ( **पवस्व** ) ज्ञान दीजिये । हे ( **वर्चोदा** ) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप ( **मे** ) मेरी ( **वाचे** ) वाणी और ( **वर्चसे** ) प्रगल्भता के लिये ( **पवस्व** ) प्रवृत्त हूजिये ( **वर्चोदा** ) विज्ञान देने वाले आप ( **मे** ) मेरे ( **क्रतूदक्षाभ्याम्** ) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और ( **वर्चसे** ) अच्छे बोध के लिये ( **पवस्व** ) शिक्षा कीजिये । हे ( **वर्चोदा** ) शब्दज्ञान के देने वाले यज्ञपति ! आप ( **मे** ) मेरे ( **श्रोत्राय** ) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये ( **वर्चसे** ) शब्दो के अर्थ और सम्बन्ध का ( **पवस्व** ) उपदेश करें । हे ( **वर्चोदसौ** ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढाने वाले आप दोनो ( **मे** ) मेरे ( **चक्षुर्भ्याम्** ) नेत्रो के लिये ( **वर्चसे** ) शुद्ध सिद्धात के प्रकाश को ( **पवेथाम्** ) प्राप्त हूजिये ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठनपाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा सतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यो को करना उचित है ॥ २७ ॥

**आत्मन इत्यस्य देवश्रवा ऋषि । यज्ञपतिर्देवता । ब्राह्मी बृहतीच्छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वर्चोदा** ) योग और ब्रह्मविद्या देनेवाले विद्वन् ! आप ( **मे** ) मेरे ( **आत्मने** ) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये ( **वर्चसे** ) अपने आत्मा के प्रकाश को ( **पवस्व** ) प्राप्त कीजिये । हे ( **वर्चोदा** ) उक्त विद्या देने वाले विद्वन् ! आप ( **मे** ) मेरे ( **ओजसे** ) आत्मबल होने के लिये ( **वर्चसे** ) योगबल को ( **पवस्व** ) जनाइये । हे ( **वर्चोदा** ) बल देने वाले ! ( **मे** ) मेरे ( **आयुषे** ) जीवन के लिये ( **वर्चसे** ) रोग छुडाने वाले औषध को ( **पवस्व** ) प्राप्त कीजिये । हे ( **वर्चोदसौ** ) योगविद्या के पढने पढाने वालो ! तुम दोनो ( **मे** ) मेरी ( **विश्वाभ्य** ) समस्त ( **प्रजाभ्य** ) प्रजाओ के लिये ( **वर्चसे** ) सद्गुण प्रकाश करने को ( **पवेथाम्** ) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—योगविद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नही हो सकता और न पूर्णविद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इसके विना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषो के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है इसलिये सब मनुष्यो को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८ ॥

**कोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्द भूर्भुव स्व रित्यस्य भुरिक्साम्नी पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनो को क्या २ कहे यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुव स्व सुप्रजा प्रजाभि स्याꣳ सुवीरो वीरै सुपोष पोषै ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—सभा सेना और प्रजा मे रहने वाले हम लोग पूछते है कि तू ( **क** ) कौन ( **असि** ) है ( **कतम** ) बहुतो के बीच कौनसा ( **असि** ) है ( **कस्य** ) किसका ( **असि** ) है ( **क** ) क्या ( **नाम** ) तेरा नाम ( **असि** ) है ( **यस्य** ) जिस ( **ते** ) तेरी ( **नाम** ) सज्ञा को ( **अमन्महि** ) जानें और ( **यम्** ) जिस ( **त्वा** ) तुझ को ( **सोमेन** ) धन आदि पदार्थों से ( **अतीतृपाम** ) तृप्त करें । यह कह उन से सभापति कहता है कि ( **भू** ) भूमि ( **भुव** ) अन्तरिक्ष और ( **स्व** ) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्मसुख की कामना करनेवाला मैं तुम ( **प्रजाभि** ) प्रजालोगो के साथ ( **सुप्रजा** ) श्रेष्ठ प्रजा वाला ( **वीरै** ) तुम वीरो से ( **सुवीर** ) श्रेष्ठ वीरयुक्त ( **पोष** ) पुष्टिकारक पदार्थों से ( **सुपोष** ) अच्छा पुष्ट ( **स्याम्** ) होऊँ अर्थात् तुम सब लोगो से पृथक न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके उन सभों को उन्नति देवे और अति प्रबल वीरों को सेना मे रक्खे जिससे कि बहुत सुख बढानेवाले राज्य से भूमि आदि लोको के सुख को प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य देवश्रवा ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य साम्नी गायत्री द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप तृतीयचतुर्थपञ्चमानां साम्नी गायत्री षष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पङ्क्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप एकादशस्य साम्नी गायत्री द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप त्रयोदशस्यासुर्य्यु ष्णिक छन्दांसि । अत्र गायत्र्या षड्ज , अनुष्टुभो गान्धार पंक्ते पञ्चम उष्णिज ऋषभश्च स्वरा ॥

*फिर भी विषयान्तर से वही उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जिससे आप ( **उपयामगृहीत** ) अच्छे अच्छे राज्य प्रबन्ध के नियमो से स्वीकार किए हुए ( **असि** ) हैं इससे ( **त्वा** ) आपको (**मधवे**) चैत्रमास की सभा के लिए अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख करानेवाले व्यवहार की रक्षा के लिए हम लोग स्वीकार करते हैं सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा सेनाजनो ! तुम मे से एक एक (**उपयामगृहीत**) अच्छे अच्छे नियमो से स्वीकार किया हुआ ( **असि** ) है इसलिए तुमको चैत्रमास के सुख के लिए स्वीकार करता हूँ इसी प्रकार बारहो महीनो के यथोक्त सुख के लिए राजा राजसभासद प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—सभाध्यक्ष राजा को चाहिए कि यथोचित समय को प्राप्त होकर श्रेष्ठ राजव्यवहार से प्रजाजनो के लिए सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारो मे वर्त्ता करें ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । इन्द्राग्नी देवते । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब राज्य के व्यवहार से नियत राजकर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इन्द्राग्नीऽआगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥३१॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्राग्नी** ) सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद ! तुम दोनो ( **आगतम्** ) आओ मिलकर ( **गीर्भि** ) अच्छी शिक्षायुक्त वाणियो से हमारे लिए ( **वरेण्यम्** ) श्रेष्ठ ( **नभ** ) सुख को ( **सुतम्** ) उत्पन्न करो तथा ( **इषिता** ) पढाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम ( **धिया** ) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से ( **अस्य** ) इस सुख की ( **पातम्** ) रक्षा करो । वे राजा और सभासद् कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू ( **उपयामगृहीत** ) प्रजा के धर्म्म और नियमो से स्वीकार किया हुआ ( **असि** ) है ( **त्वा** ) तुझको ( **इन्द्राग्निभ्याम्** ) उक्त महाशयो के लिए हम लोग वैसा ही मानते है ( **एष** ) यह राजनीति ( **ते** ) तेरा ( **योनि** ) घर है ( **इन्द्राग्निभ्याम्** ) उक्त महाशयो के लिए ( **त्वा** ) तुझको हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नही कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषो का सत्कार करके राजकार्य्यों मे युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार मे इस राजा का सत्कार करें ॥ ३१ ॥

आ घा य अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । उपेत्यस्याध्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ घाऽये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—( **ये** ) वेदविद्या सम्पन्न विद्वान् सभासद ( **अग्निम्** ) विद्युत् आदि अग्नि ( **घ** ) ही को ( **इन्धते** ) प्रकाशित करते और ( **आनुषक्** ) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से ( **बर्हि** ) अन्तरिक्ष का ( **आ, स्तृणन्ति** ) आच्छादन करते हैं तथा ( **येषाम्** ) जिनका ( **युवा** ) सर्वाङ्ग पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर सर्वविद्या विचक्षण तरुण अवस्था और ( **इन्द्र** ) सकलैश्वर्य्ययुक्त सभापति ( **सखा** ) मित्र है ( **अग्नीन्द्राभ्याम्** ) उन अग्नि और सूर्य्य के समान प्रकाशमान सभासदो से (**उपयामगृहीत**) प्रजाधर्म्म से युक्त तू ग्रहण किया गया ( **असि** ) है । जिस ( **ते** ) तेरा ( **एष** ) न्यायमुक्त सिद्धान्त ( **योनि** ) घर के सदृश है उस ( **त्वा** ) तुझको प्राप्त हुए हम लोग (**अग्नीन्द्राभ्याम्**) उक्त महापदार्थों के लिए (**त्वा**) तुझको उपदेश करते हैं ॥३२॥

**भावार्थ**—राजधर्म्म मे सब काम सभा के आधीन होने से विचार सभाओ मे प्रवृत्त राजमार्गी जनों मे से दो तीन वा बहुत सभासद् मिलकर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्ताव रखें ॥३२॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । उपयाम इत्यस्यार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*पढने और पढाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवासऽआगत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ॥ ३३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **चर्षणीधृत** ) मनुष्यो की पुष्टि सन्तुष्टि करने और ( **ओमास** ) उत्तम उत्तम गुणो से रक्षा करने हारे ( **विश्वे** ) समस्त ( **देवास** ) विद्वानो ! तुम (**दाश्वांस** ) उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए ( **दाशुष** ) दान करने वाले उत्तम जन का ( **सुतम्** ) जो अच्छे कामो के करने से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला है उसके ( **आ, गत** ) सन्मुख आओ । हे उक्त दानशील पुरुष के पढने वाले बालक ! तू ( **उपयामगृहीत** ) पढाने के नियमो से ग्रहण किया हुआ ( **असि** ) है इसलिये ( **त्वा** ) तुझे ( **विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) विद्वानो के लिए अर्थात उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूँ जिसलिए ( **ते** ) तेरा ( **एष** ) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का सग्रह होना ( **योनि** ) कारण है इसलिए ( **त्वा** ) तुझे ( **विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) विद्वानो से विद्या और अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूँ ॥ ३३॥

**भावार्थ**—सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियो की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओ के लिए निरन्तर विद्यादान करें । राजा और धनी आदि लोगो के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उनकी सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष की कन्याओ को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य्य सेवन और अच्छी शिक्षा किए जाने के लिए विद्वान् और विदुषी स्त्रियो को सौंप दें वे भी विद्या ग्रहण करने मे नित्य मन लगावें और पढाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने मे नित्य प्रयत्न करें ॥ ३३ ॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । उपयाम इत्यस्य निचृदार्ष्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*अब प्रतिदिन पढाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**विश्वे देवासऽआगत शृणुता मऽइमꣳ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥**

**पदार्थ**—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादित गुणकर्म्मस्वभाववाले ( **विश्वेदेवास** ) समस्त विद्वान् लोगो ! आप हमारे समीप ( **आगत** ) आइए और हम लोगो के दिए हुए ( **इदम्** ) इस ( **बर्हि** ) आसन पर ( **आ निषीदत** ) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिए ( **मे** ) मेरी ( **हवम्** ) इस स्तुतियुक्त वाणी को (**शृणुत** ) सुनिए । गृहस्थ अपने पुत्रादिको के प्रति कहे कि हे पुत्र ! जिस कारण तू ( **उपयामगृहीत** ) विद्वानो का ग्रहण किया हुआ ( **असि** ) है इस से हम ( **त्वा** ) तुझे ( **विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) अच्छे २ विद्या पढाने वाले विद्वानो को सौंपे जिसलिए ( **एष** ) यह समस्त विद्या का सग्रह ( **ते** ) तेरा ( **योनि** ) घर के तुल्य है इसलिए ( **त्वा** ) तुझे (**विश्वेभ्य देवेभ्य** ) समस्त उक्त महाशयो से विद्या दिलाना चाहते है ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् लोगो को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियो को पढावें और परम विद्वान् पण्डित लोग उन की परीक्षा भी प्रत्येक महीने मे किया करें उस परीक्षा से जो तीक्ष्णबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हो उन को अत्यन्त परिश्रम से पढाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षीत्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । उपयाम इत्यस्याध्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ।

*अब राजा पढाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शार्य्याते अपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३५॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) सब विघ्नो के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी ( **मरुत्व** ) प्रशसनीय धर्म्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापति राजन् ! आप ( **इह** ) इस ससार में ( **यथा** ) जैसे ( **शार्य्याते** ) अपने हाथ पैरो के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार मे ( **सुतस्य** ) अभ्यास किए हुए विद्या रस को ( **अपिब** ) पी चुके हो वैसे ( **सोमम्** ) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य और सुख करने वाले

पढ़ाकर हुआ यज्ञ का ( पाहि ) पालो । हे ( शूर ) धर्म्मविरोधियों को दण्ड देने वाले ! ( तव ) तुम्हारे ( शर्म्मन् ) राज्य घर में ( सुयज्ञा ) अच्छे पढ़ने वाले विद्वानों के समान ( कवय ) बुद्धिमान् लोग ( तव ) तुम्हारी ( प्रणीती ) उत्तम नीति से ( आविवासन्ति ) सेवन करते हैं । हे शूर ! जिस कारण तुम ( उपयामगृहीत ) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए ( असि ) हो, इस से ( त्वा ) ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य और ( मरुत्वते ) प्रजा सम्बन्ध के लिए हम लोग चाहते हैं कि जो ( ते ) ( एष ) यह विद्या का प्रचार ( योनि ) घर के समान है । इससे ( त्वा ) तुम को ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य और ( मरुत्वते ) प्रजा पालन सम्बन्ध के लिए मानते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों की न्याययुक्त सभा में जो आज्ञा हो उस का कभी उल्लङ्घन न करें वैसे ही राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा का उल्लङ्घन न करें जो सब गुणों से उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ॥३५॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य द्वितीयभागस्यार्षी तृतीयस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मुरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् । विश्वासाहुमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मुरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मुरुत्वते । उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥ ३६ ॥**

पदार्थ—( कवय ) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग ( नूतनाय ) नवीन २ ( अवसे ) रक्षा आदि गुणों के लिए ( मरुत्वन्तम् ) प्रशंसनीय प्रजायुक्त ( वृषभम् ) सब में उत्तम ( वावृधानम् ) अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त ( अकवारिम् ) समस्त धर्मविरोधी दुष्टों का निवारण करनेवाले ( दिव्यम् ) शुद्ध ( विश्वासाहम् ) सब सहनशील ( उग्रम् ) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त ( सहोदाम् ) सहायता ( शासम् ) और सब को शिक्षा देनेवाले ( तम् ) उस पूर्वोक्त ( इन्द्रम् ) परमैश्वर्ययुक्त सभापति को निम्नलिखित प्रकार से ( हुवेम ) स्वीकार करें । हे मुख्य सभासद् राजन् ! तू जिस कारण ( उपयामगृहीत ) समस्त बड़े बड़े और छोटे छोटे नियमों की सामग्री से सहित ( असि ) है इस से ( त्वा ) तुझ को ( मरुत्वते ) प्रशंसनीय प्रजायुक्त ( इन्द्राय ) परमैश्वर्यवान् सभापति होने के लिए स्वीकार करते हैं ( एष ) यह सभा में न्याय करने का काम ( ते ) तेरा ( योनि ) घर के तुल्य है इस से ( त्वा ) तुझे ( मरुत्वते ) उत्तम प्रजा से युक्त ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि होने के लिए स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू ( उपयामगृहीत ) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त ( असि ) है इस से ( मरुताम् ) प्रजाजनों का ( ओजसे ) बल बढ़ाने के लिए ( त्वा ) तुझे ग्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से ( कवय ) इस पद की अनुवृत्ति आती है । प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्य न्याययुक्त धर्म्म कार्य्य में प्रजा के उत्साह की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

सजोषेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥

*अब सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है—*

**सुजोषाऽइन्द्र सगणो मुरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् । जुहि शत्रूँ२ऽरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मुरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मुरुत्वते ॥३७॥**

पदार्थ—ईश्वर कहता है कि हे ( इन्द्र ) सब सुखों के धारण करने हारे ( शूर ) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय ! जिस से तू ( उपयामगृहीत ) सेना के अच्छे अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ ( असि ) है इस से ( मरुत्वते ) जिस में प्रशंसनीय वायु की अस्त्रविद्या है उस ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य्य पहुंचानेवाले युद्ध के लिए ( त्वा ) तुझ को उपदेश करता हूं कि ( ते ) तेरा ( एष ) यह सेनाधिकार ( योनि ) इष्ट सुखदायक है इस से ( मरुत्वते इन्द्राय ) उक्त युद्ध के लिए यत्न करते हुए तुझ को मैं अङ्गीकार करता हूं और ( सजोषा ) मन के समान प्रीति करनेवाला ( सगण ) अपने मित्रजनों के सहित तू ( मरुद्भि ) जैसे पवन के साथ ( वृत्रहा ) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करनेवाला सूर्य्य ( सोमम् ) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है वैसे सब पदार्थों के रस को ( पिब ) सेवन कर और इस से ( विद्वान् ) ज्ञानयुक्त हुआ तू ( शत्रून् ) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्ट जनों का ( जहि ) विनाश कर ( अथ ) इस के अनन्तर ( मृध ) जहां दुष्ट जन दूसरे के दुःख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को ( अपनुदस्व ) दूर कर और ( न ) हम लोगों को ( विश्वत ) सब जगह से ( अभयम् ) भय रहित ( कृणुहि ) कर ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और बिजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है वैसे राजा को चाहिए कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मारकर प्रजा को सुख धर्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३७ ॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब सभाध्यक्ष के लिए अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**मुरुत्वाँ२ऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय । आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्म्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मुरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मुरुत्वते ॥ ३८ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के जीतनेवाले सभापते ! जिस कारण आप ( उपयामगृहीत ) राजनियमों से स्वीकार किये हुए ( असि ) हो इसलिए हम लोग तुम को ( मरुत्वते ) जिस में अच्छे अच्छे अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य्य को प्राप्त करनेवाले युद्ध के लिए युक्त करते हैं जिस से ( ते ) आपका ( एष ) यह युद्ध परमैश्वर्य्य का ( योनि ) कारण है इसलिए ( त्वा ) तुम को ( मरुत्वते इन्द्राय ) उस युद्ध के लिए कहते हैं कि आप ( प्रतिपत ) प्रत्येक बड़े-बड़े विचार के कामों में ( राजा ) प्रकाशमान ( मरुत्वान् ) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और ( वृषभ ) अत्यन्त श्रेष्ठ हो इससे ( रणाय ) युद्ध और ( मदाय ) आनन्द के लिए ( अनुष्वधम् ) प्रत्येक भोजन में ( सोमम् ) सोमलतादि पुष्ट करनेवाली ओषधियों के रस को ( पिब ) पीओ ( सुतानाम् ) उत्तम सत्कारों से बनाये हुए अन्नों के ( मध्व ) मधुर रस की ( ऊर्म्मिम् ) लहरी को अपने ( जठरे ) उदर में ( आसिञ्चस्व ) अच्छे प्रकार स्थापन करो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८ ॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में करता है—*

**मुहाँ२ऽइन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राऽउत द्विबर्हाऽअमिनः सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्य्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥३९॥**

पदार्थ—हे भगवन् जगदीश्वर ! जिस कारण आप ( उपयामगृहीत ) योगाभ्यास से ग्रहण करने के योग्य ( असि ) हैं इस से ( महेन्द्राय ) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य के लिए हम लोग ( त्वा ) आप की उपासना हमारे लिए ( योनि ) कल्याण का कारण है इस से ( त्वा ) तुम को ( महेन्द्राय ) परमैश्वर्य्य पाने के लिए हम सेवन करते हैं जो ( महान् ) सर्वोत्तम अत्यन्त पूज्य ( नृवत ) मनुष्यों के तुल्य ( आ ) अच्छे प्रकार ( चर्षणिप्रा ) सब मनुष्यों को सुखों से परिपूर्ण करने ( द्विबर्हा ) व्यवहार और परमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त ( अस्मद्र्यक ) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जाननेवाले ( अमिन ) अतुल पराक्रमयुक्त ( कर्त्तृभि ) अच्छे कर्म्म करनेवाले जीवों से ( सुकृत ) अच्छे कर्म्म करनेवाले के समान ग्रहण किये हुए और ( इन्द्र ) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग ( सहोभि ) अच्छे अच्छे बलों के साथ ( वीर्य्याय ) परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिए ( वावृधे ) बढ़ कर उत्साहयुक्त होते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता । जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिए कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ ३९ ॥

महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीगायत्री छन्दः । उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मुहाँ२ऽइन्द्रो यऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ऽइव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥४०॥**

पदार्थ—हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर ! जो आप योगियों के ( उपयामगृहीत ) यमनियमादि योग के अङ्गों से स्वीकार किये हुए ( असि ) हैं इस कारण हम लोग ( त्वा ) आप को ( महेन्द्राय ) योग से प्रकट होनेवाले अच्छे ऐश्वर्य के लिए आश्रय करते हैं ( ते ) आपका ( एष ) यह योग हमारे कल्याण का ( योनि ) निमित्त है इसलिए ( त्वा ) आपका ( महेन्द्राय ) मोक्ष करानेवाले ऐश्वर्य के लिए ध्यान करते हैं ( य ) जो ( महान् ) बड़े २ गुण कर्म्म और स्वभाववाला ( वृष्टिमान् ) वर्षने वाले ( पर्जन्य, इव ) मेघ के तुल्य ( वत्सस्य ) स्तुतिकर्त्ता की ( स्तोमै ) स्तुतियों से ( ओजसा ) अनन्त बल के साथ प्रकाशित होता है उस ईश्वर को जानकर योगी ( वावृधे ) अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

भावार्थ—जैसे मेघ वर्षा समय में अपने जल के समूह से सब पदार्थों को तृप्त करता हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करनेवाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥

**उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*इस के पीछे सूर्य्य की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यं स्वाहा ॥ ४१ ॥**

**पदार्थ**—जैसे किरण ( **विश्वाय**) समस्त जगत् के प्रयोजन के ( **दृशे** ) देखने जानने के लिए ( **जातवेदसम्** ) जो उत्पन्न हुए सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है ( **त्यम्** ) उस ( **सूर्य्यम् देवम्** ) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य्य को ( **उ** ) तर्क के साथ ( **उत् वहन्ति** ) प्राप्त कराते हैं वैसे विद्वान् के ( **केतव** ) प्रकृष्ट ज्ञान और ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी या उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—जैसे प्राणियो के लिए सूर्य्य की किरणें उस को प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियां ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ॥ ४१ ॥

**चित्र देवानामित्यस्य कुत्स ऋषि । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को अति उचित है कि जो ( **सूर्य्य** ) सविता ( **स्वाहा** ) सत्य क्रिया से ( **देवानाम्** ) नेत्र आदि के समान विद्वानो ( **मित्रस्य** ) मित्र वा प्राण ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और ( **अग्ने** ) अग्नि के ( **चित्रम्**) अद्भुत ( **अनीकम्** ) बलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध ( **चक्षु** ) प्रभाव के दिखलाने वाले गुणो का (**उत् अगात**) अच्छे प्रकार प्राप्त होना और ( **जगत** ) जङ्गम प्राणी और ( **तस्थुष** ) स्थावर संसारी पदार्थों का ( **आत्मा** ) आत्मा के तुल्य होकर ( **द्यावापृथिवी** ) आकाश तथा भूमि और ( **अन्तरिक्षम्** ) अन्तरिक्ष को ( **आ** ) सब प्रकार से ( **अप्रा** ) व्याप्त होने के समान परमात्मा है उसी की उपासना निरन्तर किया करो ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य्य के तुल्य स्वयं प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अन्तर्यामी है इस से सब जीवो के लिए सत्य और असत्य को बोध करानेवाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥ ४२ ॥

**अग्ने नयेत्यस्याङ्गिरस ऋषि । अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब ईश्वर की प्रार्थना अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करनेवाले परमेश्वर ! आप ( **सुपथा** ) सत्यविद्या धर्मयोगयुक्त मार्ग से ( **राये** ) योग की सिद्धि के लिए ( **अस्मान्** ) हम लोगो को ( **विश्वानि** ) समस्त ( **वयुनानि** ) योग के विज्ञानो को ( **नय** ) पहुंचाइये जिस से हम लोग ( **स्वाहा** ) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से ( **ते** ) आप की (**भूयिष्ठाम्**) बहुत (**नमउक्तिम्**) नमस्कारपूर्वक स्तुति को (**विधेम**) करें । हे ( **देव** ) योगविद्या के देनेवाले ईश्वर ! ( **विद्वान्** ) समस्त योग के गुण और क्रियाओं के जाननेवाले आप कृपा करके (**जुहुराणम्**) हम लोगो के अन्तःकरण के कुटिलतारूप ( **एन** ) दुष्ट कर्मों को (**अस्मत**) योगानुष्ठान करनेवाले हम लोगो से ( **युयोधि** ) दूर कर दीजिये ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के विना योगसिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेमभक्ति युक्त होकर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है ॥ ४३ ॥

**अयमित्यस्याङ्गिरस ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब संग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥**

**पदार्थ**—(**अयम्**) यह प्रथम ( **अग्नि** ) वैद्यक विद्या का प्रकाश करनेवाला वैद्य ( **स्वाहा** ) वैद्यक और युद्ध की शिक्षायुक्त वाणी से ( **वाजसातौ** ) युद्ध मे ( **न** ) हम लोगों को ( **वरिव** ) सुखकारक सेवन ( **कृणोतु** ) करे (**अयम्**) यह दूसरा युद्ध करनेवाला मुख्य वीर ( **प्रभिन्दन्** ) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ ( **मृध** ) संग्राम के ( **पुर** ) आगे ( **एतु** ) चले ( **अयम्** ) यह तीसरा वीर रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा ( **वाजान्** ) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरो को (**जयतु**) उत्साहयुक्त करता रहे ( **अयम्** ) यह चौथा वीर ( **जर्हृषाण** ) निरन्तर आनन्दयुक्त होकर ( **शत्रून्** ) धर्मविरोधी शत्रुजनों को ( **जयतु** ) जीते ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—जब युद्धकर्म मे चार वीर अवश्य हो उन में से एक तो वैद्यक शास्त्र की क्रियाओं मे चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य दूसरा सब वीरो को हर्ष देनेवाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करनेवाला हो तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ४४ ॥

**रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषि । प्रजापतिर्देवता । निचृज्जगतीछन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५॥**

**पदार्थ**—हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे मैं (**रूपेण**) अपने दृष्टिगोचर आकार से ( **व** ) तुम्हारे ( **रूपम्** ) स्वरूप को ( **अभि, आ अगाम्** ) प्राप्त होता हूं । वैसे ( **विश्ववेदा** ) सब को जाननेवाले परमात्मा के समान सभापति ( **व** ) तुम लोगों को (**वि भजतु**) पृथक् २ अपने २ अधिकार मे नियत करे । हे सभापते ! ( **तुथ** ) सब से अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (**स्व** ) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य्य के समान ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **पथा** ) मार्ग से ( **अन्तरिक्षम्** ) अविनाशी राजनीति वा ब्रह्मविज्ञान को (**वि**) अनेक प्रकार से (**पश्य**) देखो और सभा के बीच में ( **सदस्यै** ) सभासदो के साथ सत्य मार्ग से ( **प्र यतस्व** ) विशेष २ यत्न करो तथा हे ( **चन्द्रदक्षिणा** ) सुवर्ण के दान करनेवाले राजपुरुषो ! तुम लोग धर्म्म को (**प्रेत**) विशेषता से प्राप्त होओ ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—सभापति को चाहिए कि अपने पुत्रो के तुल्य प्रजा सेना के पुरुषों को प्रसन्न रक्खे और परमेश्वर तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे । धार्मिक सभ्यजनो की तीन सभा होनी चाहिए उन मे से एक राजसभा जिस के आधीन राज्य के सब कार्य्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का प्रचार अनेकविधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म्मसभा जिससे धर्म्म की उन्नति और अधर्म्म की हानि निरन्तर की जाय । सब लोगो को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हो धर्म्म का सेवन और सभाजनो के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य के निर्णय करने मे प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

**ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषि । विद्वांसो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो ! जैसे मैं ( **अद्य** ) आज ( **ब्राह्मणम्** ) वेद और ईश्वर को जानने वाला (**पितृमन्तम्**) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं ( **पैतृमत्यम्** ) पितृभाव को प्राप्त ( **ऋषिम्** ) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋषि ( **आर्षेयम्** ) जो ऋषिजनो के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त ( **सुधातुदक्षिणम्** ) जिस के अच्छी अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणारूप धातु है उस (**प्रदातारम्**) अच्छे दानशील पुरुष को (**विदेयम्**) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग ( **अस्मद्राता** ) हमारे लिए अच्छे गुणो के देनेवाले होकर ( **देवत्रा** ) शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के ( **आगच्छत** ) समीप आओ और शुभ गुणो में ( **आविशत** ) प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उत्साही पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता । कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानो का सेवन कर ऋषि लोगो के प्रकाशित किए हुए योगविज्ञान को न सिद्ध कर सके । कोई भी विद्वान् अच्छे गुण कर्म्म और स्वभाव मे विपरीत नहीं हो सकता और दाताजनो को कृपणता कभी नहीं आती है इस से जो धनवान् दक्षिणा मे प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र धार्मिक सर्वोपकारक विद्वानो को देते है उनकी अचल कीर्त्ति क्योंकर न हो ॥ ४६ ॥

**अग्नये त्वेत्यस्याङ्गिरस ऋषि । वरुणो देवता । आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय त्वेत्यस्य स्वराट् प्राजापत्या, बृहस्पतयेत्वेत्यस्य निचृदार्षी, यमाय त्वेत्यस्य विराडार्षी जगत्यश्छन्दांसि । निषाद स्वर ॥**

*अब किस प्रयोजन के लिए दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय**

**त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥**

**पदार्थ**—हे वसुसंज्ञक पढ़ानेवाले ! ( **अग्नये** ) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अग्नि के समान तेजस्वी होनेवाले ( **मह्यम्** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) तुझ अध्यापक को ( **वरुण** ) सर्वोत्तम विद्वान् ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम्** ) अपने शुद्ध कर्म्मों से सिद्ध किए सत्य आनन्द को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊं उस ( **दात्रे** ) दानशील विद्वान् का ( **आयु** ) बहुत कालपर्य्यन्त जीवन ( **एधि** ) बढ़ाइये और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) विद्याग्रहण करनेवाले ( **मह्यम्** ) मुझ विद्यार्थी के लिए ( **मयः** ) सुख बढ़ाइये । हे दुष्टों को ग्लान वाले अध्यापक ! जिस ( **रुद्राय** ) चवालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले ( **मह्यम्** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) रुद्र नामक पढ़ानेवाले आपको ( **वरुण** ) अत्युत्तम गुणयुक्त ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम** ) मुक्ति के साधनों को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊं उस ( **दात्रे** ) विद्या देनेवाले विद्वान् के लिए ( **प्राण** ) योगविद्या का बल ( **एधि** ) प्राप्त कराइये और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) विद्याग्रहण करनेवाले ( **मह्यम** ) मेरे लिये ( **वय** ) तीनों अवस्था का सुख प्राप्त कीजिए । हे सूर्य्य के समान तेजस्वि अध्यापक ! जिस ( **बृहस्पतये** ) अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले ( **मह्यम** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) पूर्णविद्या पढ़ानेवाले आप को ( **वरुण** ) पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम** ) विद्या के आनन्द का ( **अशीय** ) भोग करूं उस ( **दात्रे** ) पूर्णविद्या देनेवाले महाविद्वान् के अर्थ ( **त्वक** ) सरदी गरमी के स्पर्श का सुख ( **एधि** ) बढ़ाइये और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) पूर्ण विद्या के ग्रहण करने वाले ( **मह्यम** ) मुझ शिष्य के लिए ( **मय** ) पूर्ण विद्या का सुख उन्नत कीजिए । हे गृहाश्रम से होनवाले विषय सुख से विमुख विरक्त सत्योपदेश करने हारे आप्त विद्वन् ! जिस ( **यमाय** ) गृहाश्रम के सुख के अनुराग से हीन वाले ( **मह्यम** ) मेरे लिए ( **त्वा** ) सवदोषरहित उपदेश करने वाले आप को ( **वरुण** ) सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् ( **ददातु** ) देवे ( **स** ) वह मैं ( **अमृतत्वम** ) मुक्ति के सुख को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊं । उस ( **दात्र** ) ब्रह्मविद्या देनेवाले महाविद्वान् के लिए ( **हय** ) ब्रह्मज्ञान की वृद्धि ( **एधि** ) कीजिए और ( **प्रतिग्रहीत्रे** ) मोक्षविद्या के ग्रहण करनेवाले ( **मह्यम** ) मेरे लिए ( **वय** ) तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिए ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तम गुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों की परीक्षा करके अपनी अपनी कन्या और पुत्रों को उन उन के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वावें और पढ़ने वालों को भी चाहिए कि अपनी अपनी अधिक न्यून बुद्धि का जान के अपने अपने अनुकूल अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उनसे निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ॥ ४७ ॥

कोऽदादित्यस्याङ्गिरस ऋषि । आत्मा देवता । आर्च्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है—*

**कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥**

**पदार्थ**—( **क** ) कौन कर्मफल को ( **अदात्** ) देता और ( **कस्मै** ) किस के लिए ( **अदात** ) देता है । इन दो प्रश्नों के उत्तर ( **काम** ) जिसकी कामना सब करते हैं वह परमेश्वर ( **अदात्** ) देता और ( **कामाय** ) कामना करनेवाले जीवों को ( **अदात्** ) देता है । अब विवेक करते हैं कि ( **कामः** ) जिसकी योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर ( **दाता** ) देनेवाला है ( **काम** ) कामना करनेवाला जीव ( **प्रतिग्रहीता** ) लेनेवाला है । हे ( **काम** ) कामना करने वाले जीव ! ( **ते** ) तेरे लिए मैंने वेदों के द्वारा ( **एतत्** ) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—इस संसार में कर्म्म करनेवाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है । यहाँ यह जानना चाहिए कि कामना के बिना कोई आंख का पलक भी नहीं हिला सकता । इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म्मसम्बन्धी कामना करे अधर्म्म की नहीं । यह निश्चय कर जानना चाहिए कि जो इस विषय में मनु जी ने कहा है वह वेदानुकूल है । जैसे इस संसार में अति कामना प्रशंसनीय नहीं और कामना के बिना कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिए धर्म्म की कामना करनी और अधर्म्म की नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना इच्छा के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥ इस संसार में तीनों काल में इच्छा के बिना कोई क्रिया नहीं दीख पड़ती जो जो कुछ किया जाता है सो सो सब इच्छा ही का व्यापार है । इसलिए श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्ट कामों की नहीं ॥ ४८ ॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव आत्मा का कर्म्म आत्मा में मन की प्रवृत्ति प्रथम सिद्ध योगी के लिए ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना योग का लक्षण पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योगविद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार स्वामी सेवक का वर्त्ताव न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति राजपुरुष और सभासदों का कर्म्म राजा का उपदेश राजाओं का कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ाने का विषय विद्या की वृद्धि करना राजा का कर्त्तव्य सेनापति का कर्म्म, सभाध्यक्ष की क्रिया ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसकी प्रार्थना शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य्य सेवन की रीति और ईश्वर की जीवों के प्रति उपदेश इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की षष्ठाध्याय के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

॥ इति सप्तमोऽध्याय ॥

# ॥ अथाष्टमोऽध्यायारम्भः ॥

*अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है—*

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

उपयाम इत्यस्याङ्गिरस ऋषि । बृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*उसके प्रथम मन्त्र में गृहस्थ धर्म के लिए ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिए यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा । विष्णऽउरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं ( **आदित्येभ्य** ) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की सभा में ( **त्वा** ) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूं आप ( **उपयामगृहीतः** ) शास्त्र के नियम और उपनियमों का ग्रहण करने वाले ( **असि** ) हो । हे ( **विष्णो** ) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठ जन ! ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह गृहस्थाश्रम ( **सोम** ) सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य्य का बढ़ाने वाला है ( **तम्** ) उसकी ( **रक्षस्व** ) रक्षा करें । हे ( **उरुगाय** ) बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले ! ( **त्वा** ) आप को काम के बाण जैसे ( **मा दभन्** ) दुःख देनेवाले न होवें वैसा साधन कीजिए ॥ १ ॥

**भावार्थ**—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिए कि अपने सदृश रूप गुण कर्म स्वभाव और विद्या वाला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर प्रीति हो ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करें । ऐसे ही कुमार ब्रह्मचारी लोगों को भी चाहिए कि अपने अपने समान युवती स्त्रियों का पाणिग्रहण करें, इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिए और परस्पर अत्यन्त विषय की लालुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें किन्तु सदा ऋतुगामी हों । उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीतिपूर्वक रमण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग

अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों वैसा वर्त्ताव वर्त्त कर आपस मे एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल मे किया करें ॥ १ ॥

कदा चन इत्यस्याङ्गिरस ऋषि । गृहपतिर्मघवा देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।**
**उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदित्येभ्यस्त्वा ॥२॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्य्य से युक्त पति ! जिस कारण आप ( **कदा** ) कभी ( **चन** ) भी ( **स्तरी** ) अपने स्वभाव को छिपाने वाले ( **न** ) नही ( **असि** ) हैं इस कारण ( **दाशुषे** ) दान देने वाले पुरुष के लिए ( **उपोप** ) समीप ( **सश्चसि** ) प्राप्त होते हैं । हे ( **मघवन्** ) प्रशसित धनयुक्त भर्त्ता ! ( **देवस्य** ) विद्वान् ( **ते** ) आप का जो ( **दानम्** ) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन आदि पदार्थों का देना है ( **इत्** ) वही ( **नु** ) शीघ्र ( **भूय** ) अधिक करके मुझ को ( **पृच्यते** ) प्राप्त होवे । इसी से मैं स्त्रीभाव से ( **आदित्येभ्य** ) प्रति महीने सुख देनेवाले आपका आश्रय करती हू ॥ २ ॥

**भावार्थ**—विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को चाहिए कि जो छल कपट आदि आचरणो से रहित प्रकाश करने और एक ही स्त्री को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उसके साथ विवाह करके आनन्द म रहे ॥ २ ॥

कदा चन प्रयुच्छसीत्यस्याङ्गिरस ऋषि । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।**
**तुरीयादित्य सवन तऽइन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥३॥**

**पदार्थ**—इस मन्त्र म नकार का अध्याहार आकाक्षा के होने से होता है । हे नन ! आप जो ( **कदा** ) कभी ( **चन** ) भी ( **प्र युच्छसि** ) प्रमाद नही करते हो तो अपने ( **उभे** ) दोनो ( **जन्मनी** ) वर्त्तमान और परजन्म को ( **पासि** ) निरन्तर पालते हो । हे ( **आदित्य** ) विद्या गुणो म सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो ( **ते** ) आपके ( **सवनम्** ) उत्पत्ति धर्मयुक्त कार्य्य सिद्ध करने हारे ( **इन्द्रियम्** ) मन आदि इन्द्रिय के ( **आ, तस्थौ** ) वश म रहे तो आप ( **दिवि** ) प्रकाशित व्यवहारो मे ( **अमृतम्** ) अविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें । हे ( **तुरीय** ) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करनेवाले ! ( **आदित्येभ्य** ) प्रति मास के सुख के लिए ( **त्वा** ) दृढेन्द्रिय आप को म स्त्री स्वीकार करती हूँ ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड कर परस्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो सयमी अपनी ही स्त्री का चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नही चाहता वह दोनो लोक म परम सुख को क्यो न भोगे ? इस से सब स्त्रियो को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का नही ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्स ऋषि । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्त ।**
**आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **आदित्यास** ) सूर्य्यलोको के समान विद्या आदि शुभ गुणो स प्रकाशमान ! आप जो ( **देवानाम** ) विद्वान् ( **व** ) आप लोगो का यह ( **यज्ञ** ) स्त्रीपुरुषो के वसने योग्य गृहाश्रम व्यवहार ( **सुम्नम्** ) सुख को ( **प्रति, एति** ) निश्चय करके प्राप्त करता है और ( **या** ) जो ( **अहो** ) गृहाश्रम के सुख को सिद्ध करने वाली ( **अर्वाची** ) अच्छी शिक्षा और विद्याभ्यास के पीछे विज्ञानप्राप्ति का हेतु ( **वरिवोवित्तरा** ) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगो की ( **सुमति** ) श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग मे ( **आ** ) निरन्तर ( **ववृत्यात्** ) प्रवृत्त होवे जो ( **आदित्येभ्य** ) आप्त विद्वानो से उत्तम विद्या और शिक्षा जो ( **त्वा** ) तुझ को ( **असत्** ) प्राप्त हो ( **चित्** ) उस बुद्धि स ही युक्त हम दोनो स्त्री पुरुष को ( **मृडयन्त** ) सदा सुख देते ( **भवत** ) रहिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—विवाह करके स्त्रीपुरुषो को चाहिए कि जिस जिस काम से विद्या अच्छी शिक्षा धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें ॥ ४ ॥

विवस्वन्नित्यस्य कुत्स ऋषि । गृहपतयो देवता । आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर । अदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुत । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽएधते गृहे ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विवस्वन्** ) विविध प्रकार के स्थानो मे वसने वाले ( **आदित्य** ) अविनाशीस्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! ( **एष** ) यह जो ( **ते** ) आपका ( **सोमपीथ** ) जिस मे सोमलता आदि ओषधियो के रस पीने मे आवें ऐसा गृहाश्रम है ( **तस्मिन्** ) उसमे आप ( **विश्वाहा** ) सब दिन ( **मत्स्व** ) आनन्दित रहो । हे ( **नर** ) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो ! आप लोग ( **अस्मै** ) इस ( **वचसे** ) गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के लिए ( **श्रत्** ) सत्य ही का ( **दधातन** ) धारण करो ( **यत्** ) जिस ( **गृहे** ) गृहाश्रम मे ( **दम्पती** ) स्त्रीपुरुष ( **वामम्** ) प्रशसनीय गृहाश्रम के धर्म को ( **अश्नुत** ) प्राप्त होते हैं उस मे ( **आशीर्दा** ) कामना देनेवाला ( **अरप** ) निष्पाप धर्मात्मा ( **पुमान्** ) पुरुषार्थी ( **पुत्र** ) वृद्धावस्था के दुःखो से रक्षा करने वाला पुत्र ( **जायते** ) उत्पन्न होता है और वह उत्तम ( **वसु** ) धन को ( **विन्दते** ) प्राप्त होता है ( **अध** ) इस के अनन्तर वह विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से ( **एधते** ) बढ़ता है ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—स्त्रीपुरुषो को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षापूर्वक स्वयवर विवाह और सत्य आचरणों से सतानो को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति पावें ॥५॥

वाममद्य त्यस्य भरद्वाज ऋषि । गृहपतयो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः ।**
**वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाज स्याम ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) सुख देने ( **सवित** ) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले मुख्यजन ! आप ( **अस्मभ्यम्** ) हम लोगो के लिये ( **अद्य** ) आज ( **वामम्** ) अति प्रशसनीय सुख ( **उ** ) और आज ही क्या किन्तु ( **श्व** ) अगले दिन ( **वामम्** ) उक्त सुख तथा ( **दिवेदिवे** ) दिन दिन ( **वामम्** ) उस सुख को ( **सावी** ) उत्पन्न कीजिये जिससे हम लोग आप की कृपा से उत्पन्न हुई ( **अया** ) इस ( **धिया** ) श्रेष्ठ बुद्धि स ( **भूरे** ) अनेक पदार्थों से युक्त ( **वामस्य** ) अत्यन्त सुन्दर ( **क्षयस्य** ) गृहाश्रम के बीच म ( **वामभाज** ) प्रशसनीय कर्म करनेवाले ( **हि** ) ही ( **स्याम** ) होवें ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—गृहस्थजनो को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह स प्रशसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमी होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिस से तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल म अत्यन्त सुखी हो ॥६॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषि । सविता गृहपतिर्देवता । विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे पुरुष ! तुम से जसे मैं नियम और उपनियमो से ग्रहण करी गई हूँ वसे मैंने आप को ( **उपयामगृहीत** ) विवाह नियम स ग्रहण किया ( **असि** ) है जैसे आप ( **चनोधा चनोधा** ) अन्न अन्न के धारण करनेवाले ( **असि** ) हैं और ( **सावित्र** ) सविता समस्त सतानादि सुख उत्पन्न करनेवाले आपको अपना इष्टदेव माननेवाले ( **असि** ) हैं वसे मं भी हूँ । जैसे आप ( **मयि** ) मेरे निमित्त ( **चन** ) अन्न को ( **धेहि** ) धरिये वसे म भी आपके निमित्त धारण करूं जैसे आप ( **यज्ञम्** ) दृढ़ पुरुषो के सेवने योग्य धर्म व्यवहार को ( **जिन्व** ) प्राप्त हो वैसे मं भी प्राप्त होऊं और जस ( **सवित्रे** ) सतानो की उत्पत्ति के हेतु ( **भगाय** ) धनादि सेवनीय ( **देवाय** ) दिव्य ऐश्वर्य के लिये ( **यज्ञपतिम्** ) गृहाश्रम को पालने हारे आपको मैं प्रसन्न रक्खू वसे आप भी ( **जिन्व** ) तृप्त कीजिये ॥७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विवाहित स्त्री पुरुषो को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार स परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ सन्तानोत्पत्ति का आचरण करें ॥७॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषि । विश्वेदेवा गृहपतयो देवता । आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । सुशर्म्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*फिर भी गृहस्थ को सेवन योग्य धर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नम ।**
**विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे पते ! जैसे मैंने आपको ( **उपयामगृहीत** ) नियम उपनियमो से ग्रहण किया ( **असि** ) है और ( **सुप्रतिष्ठान** ) अच्छी प्रतिष्ठा और ( **सुशर्म्मा** )

अच्छे घर वाले ( **असि** ) हो उन ( **बृहदुक्षाय** ) अत्यन्त वीर्य देनेवाले आपका ( **मम** ) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ चित्त को प्रसन्न करनेवाला अन्न उचित समय पर देती हूँ जिस आप का ( **एष** ) यह ( **योनि** ) सुखदायक महल है ( **त्वा** ) उस आपका ( **विश्वेभ्य** ) सब ( **देवेभ्य** ) दिव्य सुखो के लिये सेवन करती हूँ और ( **त्वा** ) आपको ( **विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) विद्वानो के लिये नियुक्त करती हूँ वह आप मुझको कीजिये ॥८॥

**भावार्थ**—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखनेवाले पुरुष का सब ऋतुओ मे सुख देनेवाला घर हो और आप वीर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करे और उसके लिये यथोचित समय पर सुख देवे तथा आप उस पति से उचित समय मे दिव्य सुख भोगे और वे स्त्री पुरुष दोनो विद्वानो का सत्सग किया करें ॥८॥

**उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषि । गृहपतयो विश्वेदेवा देवता । आद्यस्य प्राजापत्यागायत्री बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्यार्च्युष्णिक अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पङ्क्तिश्च छन्दांसि । क्रमेणषड्जर्षभपञ्चमा स्वरा ॥**

*फिर गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम तऽइन्दोरिन्द्रियावत । पत्नीवतो ग्रहाँ २ऽऋद्ध्यासम् । अह परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्ष तदु मे पिताभूत् । अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्शाह देवानां परम गुहा यत् ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्यसम्पन्न ( **देव** ) अति मनोहर पते ! जिस आप को मै कुमारी ने ( **उपयामगृहीत** ) विवाह नियमो से स्वीकार किया ( **असि** ) है उन ( **इन्दो** ) सोमगुणसम्पन्न ( **इन्द्रियावत** ) बहुत धन वाले और ( **पत्नीवत** ) यज्ञ समय मे प्रशसनीय स्त्रीग्रहण करनेवाले ( **बृहस्पतिसुतस्य** ) और बड़ी वेदवाणी के पालनेवाले के पुत्र ( **ते** ) आप के गृह और सम्बन्धियो को प्राप्त होके मैं ( **परस्तात** ) आगे और ( **अवस्तात** ) पीछे के समय मे ( **ऋध्यासम्** ) सुखो मे बढ़ती जाऊ ( **यत** ) जिस ( **देवानाम्** ) विद्वानो की ( **गुहा** ) बुद्धि मे स्थित ( **अन्तरिक्षम्** ) सत्य विज्ञान को मैं ( **एमि** ) प्राप्त होती हूँ उसी को तू भी प्राप्त हो और जो ( **मे** ) मेरा ( **पिता** ) पालन करने हारा ( **अभूत** ) हो ( **अहम्** ) मैं ( **उभयत** ) उसके अगले पिछले उन शिक्षा विषयो से जिस ( **सूर्य्यम्** ) चर अचर के आत्मा रूप परमेश्वर को ( **ददर्श** ) देखू उसी को तू भी देख ॥९॥

**भावार्थ**—स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्यायुक्त होकर स्वयवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हो जिसके माता और पिता विद्वान् न हो उनके सन्तान भी उत्तम नही हो सकते इससे अच्छी और पूर्ण विद्या का ग्रहण करके ही गृहाश्रम का आचरण करे इसके पूर्व नही ॥९॥

**अग्ना३इ पत्नीवन्नित्यस्य भरद्वाज ऋषि । गृहपतयो देवता । विराड ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) समस्त सुख पहुँचानेवाले स्वामिन् ! ( **सजू** ) समान प्रीति करनेवाले आप मेरे ( **देवेन** ) दिव्य सुख देनेवाले ( **त्वष्ट्रा** ) समस्त दु ख विनाश करनेवाले गुण के साथ ( **स्वाहा** ) सत्यवाणीयुक्त क्रिया से ( **सोमम्** ) सोमवल्ली आदि ओषधियो के विशेष आसव को ( **पिब** ) पीओ । हे ( **पत्नीवन्** ) प्रशसनीय यज्ञसबन्धिनी स्त्री का ग्रहण करने ( **वृषा** ) वीर्य्य सीचने ( **रेतोधा** ) वीर्य्य धारण करने ( **प्रजापति** ) और सन्तानादि के पालनेवाले ! जो आप ( **असि** ) हैं वह ( **मयि** ) मुझ विवाहित स्त्री मे ( **रेत** ) वीर्य्य को ( **धेहि** ) धारण कीजिये । हे स्वामिन् ! मै ( **वृष्ण** ) वीर्य्य सेचन ( **रेतोधस** ) पराक्रम धारण करने ( **प्रजापते** ) सन्तान आदि की रक्षा करनेवाले ( **ते** ) आपके सग से ( **रेतोधाम्** ) वीर्य्यवान् अति पराक्रमयुक्त पुत्र को ( **अशीय** ) प्राप्त होऊ ॥१०॥

**भावार्थ**—इस ससार मे मनुष्यजन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य उत्तम विद्या अच्छे गुण और पराक्रमयुक्त होकर विवाह करें । विवाह की मर्यादा ही से सन्तानो की उत्पत्ति और रतिक्रीडा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द मे रहे विना विवाह के स्त्री पुरुष वा पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्यशक्ति की बढ़ती होवे इससे गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री पुरुष करें ॥१०॥

**उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषि । गृहपतयो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर गृहस्थों का धर्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्या त्वा । हर्य्योर्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे पते ! आप ( **उपयामगृहीत** ) गृहाश्रम के लिए हुए ( **असि** ) हैं ( **हारियोजन** ) घोड़ो को जोड़नेवाले सारथि के समान ( **हरि** ) यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलानेवाले ( **असि** ) हैं इस कारण ( **हरिभ्याम्** ) अच्छी शिक्षा को पाए हुए घोड़े से युक्त रथ मे विराजमान ( **त्वा** ) आप की मैं सेवा करू । तुम लोग गृहाश्रम करनेवाले ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये ( **सहसोमा** ) उत्तम गुणयुक्त होकर ( **हर्य्यो** ) वेगादि गुणवाले घोड़ो को ( **धाना** ) स्थानादिको मे स्थापन करनेवाले ( **स्थ** ) होओ ॥११॥

**भावार्थ**—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सद्गुण सद्विद्या युक्त होकर विवाह की इच्छा करनेवाले कन्या और पुरुष युवावस्था को पहुच और परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देख कर विवाह करें नही तो धन के अभाव में दु ख की उन्नति होती है । इसलिये उक्त गुणो से विवाह कर आनन्दित हुए प्रतिदिन ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥११॥

**यस्त इत्यस्य भरद्वाज ऋषि । गृहपतयो देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब गृहस्थों को मिलना अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप ( **उपहूत** ) मुझ से सत्कार को प्राप्त होकर ( **अश्वसनि** ) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ो और ( **गोसनि** ) सस्कृत वाणी भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देनेवाले ( **असि** ) हैं उन ( **शस्तोक्थस्य** ) प्रशसित ऋग्वेद के सूक्तयुक्त ( **इष्टयजुष** ) इष्ट सुखकारी यजुर्वेद के भागयुक्त वा ( **स्तुतस्तोमस्य** ) सामवेद के गान के प्रशसा करने हारे ( **ते** ) आप का ( **य** ) जो ( **भक्ष** ) चाहना मे भोजन करने योग्य पदार्थ है उसको आप से सत्कृत हुई मै ( **भक्षयामि** ) भोजन करू तथा हे प्रिय सखि ! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ो के देने और सस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे अच्छे पदार्थ देने वाली है उस प्रशसनीय ऋक्सूक्त यजुर्वेद भाग से स्तुति किये हुए सामगान करनेवाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उसको अच्छे मान से बुलाया हुआ मै भोजन करता हूँ ॥१२॥

**भावार्थ**—अच्छे उत्साह बढ़ानेवाले कामो मे गृहाश्रम का आचरण करनेवाली स्त्री अपनी सहेलियो वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धुजन आदि को बुला कर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्विलास को करे ॥१२॥

**देवकृतस्येत्यस्य भरद्वाज ऋषि । गृहपतयो विश्वेदेवा देवता । मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत्साम्न्युष्णिक एनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक यच्चाहमित्यस्य निचृदार्च्युष्णिक च छन्दांसि । ऋषभ स्वर ॥**

*अगले मन्त्र मे पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है—*

**देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽएनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाꣳश्चकार यच्चाविद्वाꣳस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे सब के उपकार करनेवाले मित्र ! आप ( **देवकृतस्य** ) दान देनेवाले के ( **एनस** ) अपराध के ( **अवयजनम्** ) विनाश करनेवाले ( **असि** ) हो ( **मनुष्यकृतस्य** ) साधारण मनुष्यो के किये हुए ( **एनस** ) अपराध के ( **अवयजनम्** ) विनाश करनेवाले ( **असि** ) हो ( **पितृकृतस्य** ) पिता के किये हुए ( **एनस** ) विरोध आचरण के ( **अवयजनम्** ) अच्छे प्रकार हरनेवाले ( **असि** ) हो ( **आत्मकृतस्य** ) अपने किये हुए ( **एनस** ) पाप के ( **अवयजनम्** ) दूर करनेवाले ( **असि** ) हो ( **एनस** ) अधर्म्म अधर्म्म के ( **अवयजनम्** ) नाश करने हारे ( **असि** ) हो ( **विद्वान्** ) जानता हुआ मै ( **यत** ) जो ( **च** ) कुछ भी ( **एन** ) अधर्म्माचरण ( **चकार** ) किया, करता हूँ वा करू ( **अविद्वान्** ) अनजाने मे ( **यत** ) जो ( **च** ) कुछ भी किया करता हूँ वा करू ( **तस्य** ) उस ( **सर्वस्य** ) सब ( **एनस** ) दुष्ट आचरण के ( **अवयजनम्** ) दूर करनेवाले आप ( **असि** ) हैं ॥१३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करनेवाले जनो के अपराध दूर करने मे अच्छा प्रयत्न करें । जाने वा बिना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरो के किए हुए अपराध को औरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखो को प्राप्त हो ॥१३॥

**स वर्चसेत्यस्य भरद्वाज ऋषि । गृहपतयो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी मित्रकृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**स वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे सब विद्याओ के पढ़ाने ( **त्वष्टा** ) सब व्यवहारों के विस्तारकारक ( **सुदत्र** ) अत्युत्तम दान के देनेवाले विद्वन् ! आप ( **संशिवेन** ) ठीक ठीक कल्याण

कारक ( मनसा ) विज्ञानयुक्त अन्त करण ( सवचसा ) अच्छे अध्ययन अध्यापनके प्रकाश ( पयसा ) जल और अन्न से ( यत ) जिस ( तन्व ) शरीर की ( विलिष्टम् ) विशेष न्यूनता को ( अनुमाष्टु ) अनुकूल शुद्धि म पूर्ण और ( राय ) उत्तम धना को ( विदधातु ) विधान करो । उस देह और शरीरो का हम लोग ( तनूभि ) ब्रह्मचर्य्य व्रतादि सुनियमो से बलयुक्त शरीरो से ( समगन्महि ) सम्यक प्राप्त हों ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन विधिपूवक अन्न और जल का सवन शरीरो को नीरोग और मन का धर्म म निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें और जो कुछ न्यूनता हो उसका परिपूर्ण करें तथा जस कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिए वर्त्ताव वर्त्ते वैसे उसके सुख के लिए आप भी वर्त्तो ॥१४॥

**समिन्द्रेत्यस्यात्रिऋषि । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द ।**

**धवत स्वर ॥**

*फिर मित्र का कृत्य अगले मन्त्र मे कहा है—*

**समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभि॑ सᳬ सूरिभिर्मघवन्त्सᳬ स्वस्त्या । स ब्रह्मणा देवकृत यदस्ति सन्देवानाᳬ सुमतौ यज्ञियानाᳬ स्वाहा ॥१५**

**पदार्थ**—हे ( मघवन् ) पूज्य धनयुक्त ( इन्द्र ) सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित ( सम् ) सम्यक पढाने और उपदेश करनेहारे ! आप जिससे ( सम्, मनसा ) उत्तम अन्त करण से ( सम् ) अच्छे माग ( गोभि ) गौओ वा ( सम् स्वस्त्या ) अच्छे अच्छे वचन युक्त सुखरूप व्यवहारो मे ( सूरिभि ) विद्वानो के साथ ( ब्रह्मणा ) वेद के विज्ञान वा धन से विद्या और ( यत ) जो ( यज्ञियानाम् ) यज्ञ के पालन करने वाले का करनेयोग्य ( देवानाम् ) विद्वानो की ( स्वाहा ) सत्य वाणीयुक्त ( सुमतौ ) श्रेष्ठ बुद्धि म ( देवकृतम् ) विद्वानो के किये कर्म हैं उनको ( स्वाहा ) सत्य वाणी से ( न ) हम लोगो को ( सम्नेषि ) सम्यक प्रकार स प्राप्त करते हो, इसीसे आप हमारे पूज्य हो ॥१५॥

**भावार्थ**—गृहस्थ जनो को विद्वान् लोग इसलिए सत्कार करने योग्य है कि वे बालको को अपनी शिक्षा स गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनो को ऐश्वर्य्य युक्त करते हैं ॥१५॥

**सवचसा इत्यस्यात्रिऋषि । गृहपतिर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप छन्द ।**

**धवत स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**स वर्च्चसा पयसा स तनूभिरगन्महि मनसा सᳬ शिवेन ।**

**त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥**

**पदार्थ**—हे आप्त अत्युत्तम विद्वानो ! आप लोगो की सुमति म प्रवत्त हुए हम लोग जो आप लोगो के मध्य ( सुदत्र ) विद्या के दान से विज्ञान का दन और ( त्वष्टा ) अविद्यादि दोषो का नष्ट करनवाला विद्वान् हम को ( सवर्च्चसा ) उत्तम दिन और ( पयसा ) रात्रि स ( सशिवन ) अति कल्याणकारक ( मनसा ) विज्ञान से ( यत ) जिस ( तन्व ) शरीर से हानिकारक कर्म्म का ( अनुमाष्टु ) दूर करे और ( राय ) पुष्टिकारक द्रव्यो का ( विदधातु ) प्राप्त करावें उस और उन पदार्थों को ( समगन्महि ) प्राप्त हो ॥१६॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के सग से धर्म्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करते रह ॥१६॥

**धाता रातिरित्यस्यात्रिऋषि । विश्वेदेवा गृहपतयो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर गृहस्थों के कर्म्म का उपदश अगले मन्त्र मे कहा है—*

**धाता रातिः सवितेद जुषन्ता प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः ।**

**त्वष्टा विष्णुः प्रजया सᳬ रराणा यजमानाय द्रविण दधात स्वाहा॥१७**

**पदार्थ**—हे गृहस्थो ! तुम ( धाता ) गृहाश्रम धर्म्म धारण करने ( राति ) सब के लिए सुख देने ( सविता ) समस्त ऐश्वर्म्य के उत्पन्न करने ( प्रजापति ) सन्तानादि के पालन ( निधिपा ) विद्या आदि ( ऋद्धि ) अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने ( देव ) दोषो के जीतने ( अग्नि ) अविद्यारूप अ धकार के दाह करने ( त्वष्टा ) सुख के बढ़ाने और ( विष्णु ) समस्त उत्तम उत्तम शुभ गुण कर्म्मों मे व्याप्त होनेवालो के सदृश होके ( प्रजया ) अपन सन्तानादि के साथ ( सरराणा ) उत्तम दानशील होते हुए ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( इदम् ) इस गृहकार्य्य को ( जुषन्ताम् ) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर ( यजमानाय ) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले के लिए जिस बल से उत्तम २ बली पुरुष बढते जाय उस ( द्रविणम् ) धन को ( दधात ) धारण करो ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—गृहस्थो को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम मे रहके अच्छे गुण कर्मों का धारण, ऐश्वर्य्य की उन्नति तथा रक्षा प्रजापालन योग्य पुरुषो को दान, दु खियो का दु ख छुडाना, शत्रुओ के जीतने और शरीरात्मबल मे प्रशसि आदि गुण धारण करें ॥ १७ ॥

**सुगा व इत्यस्यात्रिऋषिः । गृहपतयो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द ।**

**धैवत स्वर ॥**

*फिर गृहकर्म का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**सुगा वो देवा॑ सदनाऽअकर्म्म यऽआजग्मेदᳬ सवन जुषाणाः ।**

**भरमाणा वहमाना हवीᳬष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे ( वसव ) श्रेष्ठ गुणो म रमण करनवाले ( देवा ) व्यवहारी जनो ! ( ये ) जो ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया स ( इदम् ) इस ( सवनम् ) ऐश्वर्य का ( जुषाणा ) सेवन ( भरमाणा ) धारण करन ( वहमाना ) औरो स प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिए ( सुगा ) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य ( सदना ) जिनके निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है उन ( हवींषि ) देने लेने योग्य ( वसूनि ) धनो को ( अकर्म ) प्रकट कर रहे और ( आजग्म ) प्राप्त हुए हैं ( अस्मे ) हमारे लिए उन ( वसूनि ) धनो को आप ( धत्त ) धरो ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—जसे पिता पति श्वशुर सासू मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री स्नुषा सखा और भृत्यो का पालन करते हुए सुख देते हैं वस पुत्रादि भी इनकी सेवा करना उचित समझें ॥ १८ ॥

**याँ२ऽआ वह इत्यस्यात्रिऋषि । विश्वेदेवा गृहपतयो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ॥**

*फिर भी घर का काम अगले मन्त्र म कहा है—*

**याँ२ऽआ वहऽउशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वेऽअग्ने सधस्थे ।**

**जक्षिवाᳬस पपिवाᳬसश्च विश्वेऽसु घर्म्मᳬ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥१९**

**पदार्थ**—हे ( देव ) दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक ! तू ( स्वे ) अपने ( सधस्थे ) साथ बैठने के स्थान म ( यान् ) जिन ( उशत ) विद्या आदि अच्छे २ गुणो की कामना करते हुए ( देवान् ) विद्वानो का ( आ अवह ) प्राप्त हो ( तान् ) उनको धर्म्म म ( प्र, ईरय ) नियुक्त कर । हे गृहस्थ ! ( जक्षिवांस ) अन्न खाते और ( पपिवांस ) पानी पीते हुए ( विश्वे ) सब तुम लोग ( स्वाहा ) सत्यवाणी स ( घर्मम् ) अन्न और यज्ञ तथा ( असुम् ) श्रेष्ठ बुद्धि वा ( स्व ) अत्यन्त सुख को ( अनु, आ, तिष्ठत ) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—इस ससार म उपदेश करने वाले अध्यापक स विद्या और श्रेष्ठ गुणो को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म्म कर्म्म मे वत्तने वाले हो वे सुखभागी हों और नहीं ॥ १९ ॥

**वयमित्यस्यात्रिऋषि । गृहपतयो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धवत स्वर ।**

*अब व्यवहार करनवाले गृहस्थ क लिये उपदश अगले मन्त्र म किया है—*

**वयᳬ हि त्वा प्रयति यज्ञेऽअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह ।**

**ऋधगयाऽ ऋधगुताशमिष्ठा. प्रजानन् यज्ञमुप याहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) ज्ञान देनेवाले ( वयम् ) हम लोग ( इह, प्रयति ) इस प्रयत्नसाध्य ( यज्ञ ) गृहाश्रमरूप यज्ञ म ( त्वा ) तुझको ( होतारम् ) सिद्ध करने वाला ( अवृणीमहि ) ग्रहण करें ( विद्वान् ) सब विद्यायुक्त ( प्रजानन् ) क्रियाओ के जानने वाले आप ( ऋधक ) समृद्धिकारक ( यज्ञम् ) गृहाश्रमरूप यज्ञ को ( स्वाहा ) शास्त्रोक्त क्रिया से ( उप याहि ) समीप प्राप्त हो ( उत ) और केवल प्राप्त ही नहीं किन्तु ( अया ) उससे दान सत्सग श्रेष्ठ गुण वालो का सेवन कर ( हि ) निश्चय करक ( अस्मिन् ) इस ( ऋधक ) अच्छी ऋद्धि सिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमित्त मे ( अशमिष्ठा ) शान्त्यादि गुणो को ग्रहण करके सुखी हो ॥ २० ॥

**भावार्थ**—सब व्यवहार करन वालो को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम मे चतुर हो उसको उसी काम मे प्रवृत्त करें ॥ २० ॥

**देवा गातुविदेत्यस्यात्रिऋषि । गृहपतयो देवता । स्वराडार्च्यु ष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर भी गृहस्थों का कम अगले मन्त्र मे कहा है—*

**देवा गातुविदो गातु वित्त्वा गातुमित ।**

**मनसस्पतऽइम देव यज्ञᳬ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( गातुविद ) अपने गुण कर्म और स्वभाव स पृथिवी के आने जाने को जानने ( देवा ) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशसा के साथ प्रचार करनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम ( गातुम् ) भूगर्भविद्यायुक्त भूगोल को ( वित्त्वा ) जान कर ( गातुम् ) पृथिवी राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को ( इत ) प्राप्त हूजिये । हे ( मनसस्पते ) इन्द्रियो के रोकनेहारे ( देव ) श्रेष्ठ विद्याबोधसम्पन्न विद्वानो ! तुम म से प्रत्यक विद्वान् गृहस्थ ( स्वाहा ) धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से ( इमम् ) इस गृहाश्रम रूप ( यज्ञम् ) सब सुख पहुँचाने वाले यज्ञ को ( वाते ) विशेष जानने योग्य व्यवहारो मे ( धा ) धारण करो ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—गृहस्थो को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ विद्याओ को जान इन्द्रियो को जीत परोपकारी होकर और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम के व्यवहारो की उन्नति देकर सब प्राणिमात्र को सुखी करें ॥ २१ ॥

**यज्ञ यज्ञमित्यस्यात्रिऋषि । गृहपतयो देवता । भुरिक साम्न्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर । एष इत्यस्य विराडार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ।**
**एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे ( **यज्ञ** ) सत्कर्मों से संगत होनेवाले गृहाश्रमी ! तू ( **स्वाहा** ) सत्य २ क्रिया से ( **यज्ञम्** ) विद्वानों के सत्कारपूर्वक गृहाश्रम को ( **गच्छ** ) प्राप्त हो ( **यज्ञपतिम्** ) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को ( **गच्छ** ) प्राप्त हो ( **स्वाम्** ) अपने ( **योनिम्** ) घर और स्वभाव को ( **गच्छ** ) प्राप्त हो ( **यज्ञपते** ) गृहाश्रम धर्म्मपालक ! ( **ते** ) तेरा जो ( **एष** ) यह ( **सहसूक्तवाक** ) ऋग् यजु साम और अथर्व वेद के सूक्त और अनुवाकों से कथित ( **सर्ववीर** ) जिससे आत्मा और शरीर के पूर्ण बलयुक्त समस्त वीर प्राप्त होते हैं ( **यज्ञ** ) प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्याप्रचाररूप यज्ञ है ( **तम्** ) उसको तू ( **स्वाहा** ) सत्यविद्या न्याय प्रकाश करनेवाली वेदवाणी से ( **जुषस्व** ) प्रीति से सेवन कर ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—प्रजाजन गृहस्थ पुरुष बड़े बड़े यत्नों से घर के कार्य्यों को उत्तम रीति से करें । राजभक्ति राजसहायता और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम को सब प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को सन्तुष्ट करे ॥ २२ ॥

**माहिर्भूरित्यस्यात्रिॠषि । गृहपतयो देवता । आद्यस्य याजुष्युष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर । उरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषि । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे राजा के लिये उपदेश किया है—*

**माहिर्भूर्मा पृदाकुः । उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा ऽउ । अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् । नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् सभापते ! तू ( **वरुणस्य** ) उत्तम ऐश्वर्य्य के धारने ( **उरुम्** ) बहुत गुणों से युक्त न्याय को ( **अक** ) कर ( **सूर्याय** ) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के विज्ञान होने ( **सूर्याय** ) और प्रजागणों को यथायोग्य धर्म्म प्रकाश मे चलने के लिए ( **पन्थाम्** ) न्यायमार्ग को ( **चकार** ) प्रकाशित कर ( **उत** ) और कभी ( **अप वक्ता** ) झूठ बोलने वाला ( **हृदयाविध** ) धर्मात्माओं के मन को सन्ताप देनेवाले के ( **चित** ) सदृश ( **पदाकु** ) खोटे वचन कहनेवाला ( **मा** ) मत हो और ( **अहि** ) सर्प के समान क्रोधरूपी विष का धारण करनेवाला ( **मा** ) मत ( **भू** ) हो और जैसे ( **वरुणस्य** ) वीर गुण वाले तेरा ( **अभिष्ठित** ) अति प्रकाशित ( **नम** ) वज्रस्वरूप दण्ड और ( **पाश** ) बन्धन करने की सामग्री प्रकाशमान रहे वैसे प्रयत्न को सदा किया कर ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—प्रजाजनों को चाहिए कि जो विद्वान् शत्रुओं को जीतनेवाला धर्मात्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगावे और सब के लिये सुख करनेवाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा वा प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करें जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्ड देवे किन्तु कभी अपराधी को दण्ड दिये विना न छोड़े और निरपराधी को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे । इस प्रकार सब कोई न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने २ प्रत्येक कामों के चिन्तवन मे रहें जिससे अधिक मित्र थोड़े प्रीति रखनेवाले और शत्रु न हों और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण होके सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

**अग्नेरनीकमित्यस्यात्रिॠषि । गृहपतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्नेरनीकमपऽआ विवेशापान्नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम् । दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे गृहस्थ ! तू ( **अग्ने** ) अग्नि की ( **अनीकम्** ) लपटरूपी सेना के प्रभाव और ( **अप** ) जलों को ( **आ विवेश** ) अच्छी प्रकार समझ ( **अपाम्** ) उत्तम व्यवहार सिद्धि करानेवाले गुणों को जानकर ( **नपात** ) अविनाशीस्वरूप ! तू ( **असुर्यम्** ) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों मे उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन को ( **प्रतिरक्षन्** ) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ ( **दमेदमे** ) घर २ मे ( **समिधम्** ) जिस क्रिया से ठीक २ प्रयोजन निकले उसको ( **यक्षि** ) प्रचार कर और ( **ते** ) तेरी ( **जिह्वा** ) जीभ ( **घृतम्** ) घी का स्वाद लेवे ( **स्वाहा** ) सत्यव्यवहार से ( **उत, चरण्यत्** ) देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं इससे गृहस्थ जन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें ॥ २४ ॥

**समुद्रे त इत्यस्यात्रिॠषि । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।**
**यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥२५॥**

**पदार्थ**—हे ( **यज्ञपते** ) जैसे गृहाश्रम धर्म्म के पालने हारे ! हमलोग ( **स्वाहा** ) प्रेमास्पदवाणी से ( **यज्ञस्य** ) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के ( **सूक्तोक्तौ** ) उस प्रबन्ध कि जिसमे वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी अच्छी बात है और ( **नमोवाके** ) वेद प्रमाणसिद्ध अन्न और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप ( **समुद्रे** ) आर्द्र व्यवहार और ( **अप्सु** ) सब प्रमाणों मे ( **ते** ) तेरे ( **यत्** ) जिस ( **हृदयम्** ) हृदय को संतुष्टि में ( **विधेम** ) नियत करें वैसे उससे जानी हुई ( **ओषधी** ) यव गेहूँ चना सोमलतादि सुख देनेवाले पदार्थ ( **आ, विशन्तु** ) प्राप्त हों ( **उत** ) और न केवल ये ही किन्तु ( **आप** ) अच्छे जल भी तुझको सुख करनेवाले हों ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृहस्थों को सत्यविद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सबको युक्त करें जिससे गृहाश्रम चाहने और करनेवाले पुरुष शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ावें ॥ २५ ॥

**देवीराप इत्यस्यात्रिॠषि । गृहपतयो देवता । स्वराडार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मन्त्र मे किया जाता है—*

**देवीरापऽएष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत ।**
**देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **आप** ) समस्त शुभ गुण कर्म्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली ( **देवी** ) अति शोभायुक्त स्त्रीजनो ! तुम सब ( **य** ) जो ( **एष** ) यह ( **व** ) तुम्हारा ( **गर्भ** ) गर्भ ( **लोक** ) पुत्र पति आदि के साथ सुखदायक है ( **तम्** ) उसको ( **सुप्रीतम्** ) श्रेष्ठ प्रीति के साथ ( **सुभृतम्** ) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय वैसे ( **बिभृत** ) धारण और उसकी रक्षा करो । हे ( **देव** ) दिव्य गुणों से मनोहर ( **सोम** ) ऐश्वर्य्ययुक्त ! तू जो ( **एष** ) यह ( **ते** ) तुम्हारा ( **लोक** ) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है ( **तस्मिन्** ) इसके निमित्त ( **शम्** ) सुख ( **च** ) और शिक्षा ( **वक्ष्व** ) पहुंचा ( **च** ) तथा इसकी रक्षा ( **परि वक्ष्व** ) सब प्रकार कर ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—पढ़ी हुई स्त्री यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त होकर उसको आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करे । वह पति भी स्त्री की रक्षा और उसकी प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥ २६ ॥

**अवभृथेत्यस्यात्रिॠषि । दम्पती देवते । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर । अवदेवैरित्यस्य स्वराडार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर गृहस्थ धर्म्म मे स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि । देवानाꣳ समिदसि ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अवभृथ** ) गर्भ को धारण करने के पश्चात् उसकी रक्षा करने ( **निचुम्पुण** ) और मन्द २ चलनेवाले पति ! आप ( **निचुम्पुण** ) नित्य मन हरने और ( **निचेरु** ) धर्म्म के साथ नित्य द्रव्य का संचय करनेवाले ( **असि** ) हैं तथा ( **देवानाम्** ) विद्वानों के बीच में ( **समित** ) अच्छे प्रकार तेजस्वी ( **असि** ) हैं । हे ( **देव** ) सबसे अपनी जय चाहनेवाले ! ( **देव** ) विद्वान् और ( **मर्त्यै** ) साधारण मनुष्यों के साथ वर्त्तमान आप जो मैं ( **देवकृतम्** ) कामी पुरुषों वा ( **मर्त्यकृतम्** ) साधारण मनुष्यों के किये हुए ( **एन** ) अपराध को ( **अयासिषम्** ) प्राप्त होना चाहूँ उस ( **पुरुराव्ण** ) बहुत से अपराध करनेवालों के ( **रिष** ) धर्म्म छुड़ाने वाले काम मे मुझ ( **पाहि** ) दूर रक्खो ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आनन्दित चित्त आपको प्रतिदिन चाहती हूँ वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो जिससे मैं दुष्टाचरण करनेवाले मनुष्य के किये हुए अपराध की भागिनी किसी प्रकार न होऊं ॥ २७ ॥

**एजत्वित्यस्यात्रिॠषि । दम्पती देवते । एवायमित्यस्यापि साम्न्युष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर । यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र मे कही है—*

**एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽएजति । एवायं दशमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री पुरुष ! जैसे ( **वायु** ) पवन ( **एजति** ) कम्पता है वा जैसे ( **समुद्र** ) समुद्र ( **एजति** ) अपनी लहरों से उछलता है वैसे तुम्हारा ( **अयम्** ) यह ( **दशमास्य** ) पूर्ण दश महीने का गर्भ ( **एजतु** ) क्रम २ से बढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ ( **अयम** ) यह ( **दशमास्य** ) दश महीने मे परिपूर्ण होकर ही ( **अस्रत्** ) उत्पन्न होवे ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—ब्रह्मचर्य्यधर्म्म से शरीर की पुष्टि मन की सन्तुष्टि और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर और विवाह किये हुए जो स्त्री पुरुष हों वे यत्न के साथ गर्भ को रक्खें कि जिससे वह दश महीने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महीने से अधिक दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और जो इससे पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥ २८ ॥

**यस्या इत्यस्यात्रिॠषि । दम्पती देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है—*

**यस्यै ते युज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी। अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमᳪस्वाहा ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (**यस्यै**) जिस (**ते**) तेरी ( **हिरण्ययी** ) रोगरहित शुद्ध गर्भाशय है और ( **यस्यै** ) जिसस तेरा (**यज्ञिय** ) यज्ञ के योग्य ( **गर्भ** ) गर्भ है ( **यस्य** ) जिस गर्भ के ( **अह्रुता** ) सुन्दर सीधे ( **अङ्गानि** ) अङ्ग हैं ( **तम्** ) उसको (**मात्रा**) गर्भ की कामना करनेवाली तेरे साथ समागम करके ( **स्वाहा** ) धर्म्मयुक्त क्रिया से (**सम् अजीगमम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना वीर्य्य की बढ़ती शुद्धि से उसकी उन्नति करें स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त हो के उसकी स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप गुण कर्म स्वभाव और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २९ ॥

**पुरुदस्म इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है—*

**पुरुदस्मो विषुरूपऽइन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः । एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताᳪस्वाहा ॥३०॥**

**पदार्थ**—(**पुरुदस्मः** ) जिनके गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (**विषुरूपः** ) जिसने जन्मक्रम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या विषयों में प्रवेश किया है ( **इन्दुः** ) जो परमैश्वर्य्य का सिद्ध करनेवाला ( **धीरः** ) समस्त व्यवहारों में ध्यान देनहारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के ( **अन्तः** ) भीतर ( **महिमानम्** ) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को ( **आनञ्ज** ) कामना करे गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान करके जिस ( **एकपदीम्** ) जिसमें एक यह आत्मा पद ( **द्विपदीम्** ) जिसमें दो अर्थात् संसारसुख और मोक्षसुख (**त्रिपदीम्**) जिससे वाणी मन और शरीर तीनों के आनन्द ( **चतुष्पदीम्** ) जिससे चारों धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष ( **अष्टापदीम्** ) और जिससे आठों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस ( **स्वाहा** ) समस्त विद्यायुक्त वाणी को जानकर सब गृहस्थ जन ( **भुवना** ) जिनमें प्राणिमात्र निवास किया करते हैं उन घरों की ( **प्रथन्ताम्** ) प्रशंसा करें और उनसे सब मनुष्यों को ( **अनु** ) अनुकूलता से बढ़ावें ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—विवाह किये हुए स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उसके अनुसार सन्तानों को उत्पन्न कर मनुष्य को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्य्य नियम से समस्त अङ्ग उपाङ्गसहित विद्या का ग्रहण कराके उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें ॥ ३० ॥

**मरुतो यस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म्म का विषय कहा है—*

**मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।**
**स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विमहसः** ) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य ( **मरुतः** ) विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम ( **यस्य** ) जिस गृहस्थ के ( **क्षये** ) घर में सुवर्ण उत्तम रूप ( **दिवः** ) दिव्य गुण स्वभाव वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को ( **पाथ** ) प्राप्त हो ( **सः, हि** ) वह (**सुगोपातमः** ) अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी की पालना करनेवाला ( **जनः** ) मनुष्य सेवा के योग्य है ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ ऐश्वर्य सज्जनों का सङ्ग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा नहीं जा सकता ( इसके विना धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती इसलिये इसका पालन सब को बड़े यत्न से करना चाहिये ) ॥ ३१ ॥

**मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।**

*फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।**
**पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों ( **मही** ) अति प्रशंसनीय ( **द्यौः** ) दिव्य पुरुष की आकृतियुक्त पति और अति प्रशंसनीय ( **पृथिवी** ) बड़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि की सामर्थ्य वाली तू ( **भरीमभिः** ) धीरता और सब को सन्तुष्ट करनेवाले गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से ( **नः** ) हमारा ( **च** ) औरों का भी ( **इमम्** ) इस ( **यज्ञम्** ) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को (**मिमिक्षताम्**) सुखों से अभिषिक्त और ( **पिपृताम्** ) परिपूर्ण करना चाहो ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—जैसे सूर्यलोक जलादि पदार्थों को खींच और वर्षा कर रक्षा और पृथिवी आदि पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे यह पति श्रेष्ठ गुण और पदार्थों का संग्रह करके देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार यह पृथिवी सब प्राणियों को धारण कर उनकी रक्षा करती है वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सब की पालना करती है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष इकट्ठे होकर स्वार्थ को सिद्ध कर मन वचन और कर्म से सब प्राणियों को भी सुख देवें ॥ ३२ ॥

**आतिष्ठेत्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतयो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।**
**उपयामेत्यस्य आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनᳪसु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३३॥**

**पदार्थ**—हे ( **वृत्रहन्** ) शत्रुओं को मारने वाले गृहाश्रमी ! तू ( **ग्रावा** ) मेघ के तुल्य सुख बरसाने वाला है ( **ते** ) तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में ( **ब्रह्मणा** ) जल वा धन से (**हरी**) धारण और आकर्षण अर्थात् खींचने के समान घोड़े ( **युक्ता** ) युक्त किये जाते हैं उस गृहाश्रम करने की ( **आतिष्ठ**) प्रतिज्ञा कर इस गृहाश्रम में ( **ते** ) तेरा जो ( **मनः** ) मन ( **अर्वाचीनम्** ) मन्दपन को पहुँचाता है उस को ( **वग्नुना** ) वेदवाणी से शान्त कर जिस से तू (**उपयामगृहीतः** ) गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किये हुए ( **असि** ) है इस कारण ( **षोडशिने** ) सोलह कलाओं से परिपूर्ण ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये ( **त्वा** ) तुझ को उपदेश करता हूँ। ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्य के लिये ( **त्वा** ) तुझ को उपदेश करता हूँ कि जो ( **एषः** ) यह ( **ते** ) तेरा ( **योनिः** ) घर है इस ( **षोडशिने** ) सोलह कलाओं से परिपूर्ण ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिए ( **त्वा** ) तुझ को आज्ञा देता हूँ ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य्य पाने के लिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है ॥ ३३ ॥

**युक्ष्वा हीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च ॥**

*अब राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा नऽइन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोमपाः** ) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और ( **इन्द्र** ) शत्रुओं का विनाश करने वाले ! तुम ( **केशिना** ) जिन के अच्छे २ बाल हैं उन ( **वृषणा** ) बैल के समान बलवान् ( **कक्ष्यप्रा** ) अभीष्ट देश तक पहुँचानेवाले ( **हरी** ) यान के चलानेहारे घोड़ों को ( **रथे** ) रथ में ( **युक्ष्व** ) जोड़ो ( **अथ** ) इसके अनन्तर ( **नः** ) हम लोगों की ( **गिराम्** ) विनयपत्रों को ( **उपश्रुतिम्** ) प्रार्थना को ( **हि** ) चित्त देकर ( **चर** ) जानो । आप ( **उपयामगृहीतः** ) गृहाश्रम की सामग्री का ग्रहण किये हुए ( **असि** ) हैं इस कारण ( **षोडशिने** ) सोलह कलाओं से परिपूर्ण ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्य के लिए ( **त्वा** ) तुझको उपदेश करता हूँ कि जो ( **एषः** ) यह ( **ते** ) तेरा ( **योनिः** ) घर है इस ( **षोडशिने** ) सोलह कलाओं से परिपूर्ण ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये ( **त्वा** ) तुझे आज्ञा देता हूँ ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से रथ यह पद अर्थ से आता है। प्रजा सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आपको शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों को अच्छी शिक्षा देकर आनन्दित और बल वाले रखने चाहियें फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य और ऐश्वर्य की भी रक्षा करनी चाहियें ॥ ३४ ॥

**इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत् ॥**

*फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोमपाः** ) ऐश्वर्य्य की रक्षा और ( **इन्द्र** ) शत्रुओं का विनाश करने वाले सभाध्यक्ष ! आप जो ( **हरी** ) हरणकारक बल और आकर्षणरूप घोड़ों से ( **अप्रतिधृष्टशवसम्** ) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्य्य बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समूह को ( **वहतः** ) बहाते हैं उन से युक्त होकर ( **ऋषीणाम्** ) वेदमन्त्र जानने वाले विद्वानों और ( **च** ) वीरों के ( **स्तुतीः** ) गुणों के ज्ञान और ( **मानुषाणाम्** ) साधारण मनुष्यों के ( **यज्ञम्** ) सङ्गम करने योग्य व्यवहार और ( **च** ) उनकी पालना करो और ( **उप** ) समीप प्राप्त हो जिस ( **ते** ) तेरा ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) निमित्त राज्य धर्म्म है जो तू ( **उपयामगृहीतः** ) सब सामग्री से संयुक्त है उस ( **त्वा** ) तुझ को ( **षोडशिने** )

षोडश कलायुक्त ( इन्द्राय ) उत्तम ऐश्वर्य के लिए प्रजा सनातन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से ( इन्द्र सोमपा वर ) इन तीन पदों की योजना होती है। राजा राज्यकर्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को यह योग्य है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें ॥ ३५ ॥

**यस्मान्नेत्यस्य विवस्वान् ऋषि । परमेश्वरो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥३६**

**पदार्थ**—( **यस्मात** ) जिस परमेश्वर से ( **पर** ) उत्तम ( **अन्य** ) और दूसरा ( **न** ) नहीं ( **जात** ) हुआ और ( **य** ) जो परमात्मा ( **विश्वा** ) समस्त ( **भुवनानि** ) लोकों को ( **आविवेश** ) व्याप्त हो रहा है ( **स** ) वह ( **प्रजया** ) सब संसार से ( **सरराण** ) उत्तम दाता होता हुआ ( **षोडशी** ) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वीर्य तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी ( **प्रजापति** ) संसार मात्र के स्वामी परमेश्वर ( **त्रीणि** ) तीन ( **ज्योतींषि** ) ज्योति अर्थात् सूर्य बिजुली और अग्नि को ( **सचते** ) सब पदार्थों में स्थापित करता है ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—गृहाश्रम की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिए कि जो सर्वत्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करनेवाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसा ही बना रहता है सत् अविनाशी चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला छोटे से छोटा बड़े से बड़ा सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिस के समान नहीं है उसकी उपासना करें ॥ ३६ ॥

**इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषि । सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते । साम्नी त्रिष्टुप् छन्द । तयोरहमित्यस्य विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रश्च सम्राड्वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम् । तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रजाजन ! जो ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्ययुक्त ( **च** ) राज्य के अङ्ग उपाङ्गसहित ( **सम्राट** ) सब जगह एकचक्र राज करने वाला राजा ( **वरुण** ) अति उत्तम ( **च** ) और ( **राजा** ) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है ( **तौ** ) वे दोनों ( **अग्र** ) प्रथम ( **ते** ) तेरा ( **भक्षम्** ) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें और ( **अहम** ) मैं ( **तयो** ) उनका ( **एतम्** ) इस ( **भक्षम्** ) स्थित पदार्थ का ( **अनु** ) पीछे ( **भक्षयामि** ) सेवन करके कराऊं। ऐसे करते हुए हम तुम सब को ( **सोमस्य** ) विद्यारूपी ऐश्वर्य के बीच ( **जुषाणा** ) प्रीति कराने वाली ( **देवी** ) सब विद्याओं की प्रकाशक ( **वाक** ) वेदवाणी है उस से ( **स्वाहा** ) सब मनुष्य ( **तृप्यतु** ) सन्तुष्ट रहें ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—प्रजा के बीच अपनी अपनी सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं। एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एक चक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल मण्डल का ईश्वर हो। ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम उत्तम न्याय नम्रता सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजाजनों से यथायोग्य राज्य कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्य वचन का आचरण करें। इस प्रकार धर्म्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को सनाथ करके आप सन्तोष पावें। आप काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥ ३७ ॥

**अग्ने पवस्वेत्यस्य वैखानस ऋषि । राजादयो गृहपतयो देवता । भुरिक् त्रिपाद् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप् छन्द । अग्ने वर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे । अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **स्वपा** ) उत्तम उत्तम काम तथा ( **वर्चस्विन्** ) सुन्दर प्रकार से वेदाध्ययन करने वाले ( **अग्ने** ) सभापति ! आप ( **अस्मे** ) हम लोगों के लिये ( **सुवीर्य्यम्** ) उत्तम पराक्रम ( **वर्च** ) वेद का पढ़ना तथा ( **मयि** ) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जन में ( **रयिम्** ) धन और ( **पोषम्** ) पुष्टि को ( **दधत्** ) धारण करते हुए ( **पवस्व** ) पवित्र हूजिए ( **उपयामगृहीत** ) राज्य व्यवहार के लिए हम से स्वीकार किये हुए ( **असि** ) आप हैं ( **त्वा** ) तुझको ( **वर्चसे** ) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिए ( **अग्नये** ) वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिए हम स्वीकार करते हैं ( **ते** ) तुम्हारी ( **एष** ) यह ( **योनि** ) राजभूमि निवासस्थान है ( **त्वा** ) तुझ को ( **वर्चसे** ) हम लोग अपने विद्या प्रकाश सब प्रकार सुख के लिए बार बार प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं। हे तेजधारी सभापते राजन् ! जैसे ( **त्वम्** ) आप ( **देवेषु** ) उत्तम उत्तम विद्वानों में ( **वर्चस्वान्** ) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले ( **असि** ) हैं वैसे ( **अहम्** ) मैं ( **मनुष्येषु** ) विचारशील पुरुषों में आपके सदृश ( **भूयासम्** ) होऊं ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—राजा आदि सभ्य जनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम उत्तम विद्या और अच्छे अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें जिस से समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म्म प्रचार करने में उत्तम होवें ॥ ३८ ॥

**उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखानस ऋषि । राजादयो गृहस्था देवता । उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य चार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । इन्द्रेत्यस्यार्च्युष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजसऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३९**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) ऐश्वर्य रखने वाले वा ऐश्वर्य में रमने वाले सभापते ! आप ( **चमू** ) सेना के साथ ( **सुतम्** ) उत्पादन किए हुए ( **सोमम्** ) सोम को ( **पीत्वी** ) पीके ( **ओजसा** ) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के ( **सह** ) साथ ( **उत्तिष्ठन्** ) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए ( **शिप्रे** ) युद्धादि कर्मों से डाढ़ों और नासिका आदि अङ्गों को ( **अवेपय** ) कम्पाओ अर्थात् यथायोग्य कामों में अङ्गों की चेष्टा करो। हम लोगों से आप ( **उपयामगृहीत** ) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये ( **असि** ) हैं इस से ( **त्वा** ) आप को सावधानता से ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिए सेवन करते हैं ( **ओजसे** ) अत्यन्त पराक्रम और ( **इन्द्राय** ) शत्रुओं के विदारण के लिए ( **त्वा** ) आप को प्रेरणा करते हैं हे ( **ओजिष्ठ** ) अत्यन्त तेजधारी जैसे ( **त्वम्** ) आप ( **देवेषु** ) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में ( **ओजिष्ठ** ) अत्यन्त पराक्रम वाले ( **असि** ) हैं वैसे ही मैं भी ( **मनुष्येषु** ) साधारण मनुष्यों में ( **भूयासम्** ) होऊं ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खान पीने के पदार्थों से शरीर के बल की उन्नति देवें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥ ३९ ॥

**अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । गृहपतयो राजादयो देवता । अदृश्रमित्यस्य सूर्येत्यस्य चार्षी गायत्री छन्द । उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ऽअनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥**

**पदार्थ**—जैसे ( **अस्य** ) इस जगत् के पदार्थों में ( **भ्राजन्त** ) प्रकाश को प्राप्त हुई ( **रश्मय** ) कान्ति ( **केतव** ) वा उन पदार्थों को जनाने वाले ( **अग्नय** ) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही ( **जनान्** ) मनुष्यों को ( **अनु** ) एक अनुकूलता के साथ ( **अदृश्रम्** ) मैं दिखलाऊं। हे सभापते ! आप ( **उपयामगृहीत** ) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए ( **असि** ) हैं जिन ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह राज्यकर्म्म ( **योनि** ) ऐश्वर्य्य का कारण है उन ( **त्वा** ) आपको ( **भ्राजाय** ) जिलाने वाले ( **सूर्य्याय** ) प्राण के लिए चिताता हूं तथा उन्हीं आपको ( **भ्राजाय** ) सर्वत्र प्रकाशित ( **सूर्य्याय** ) चराचरात्मा जगदीश्वर के लिए भी चिताता हूँ। हे ( **भ्राजिष्ठ** ) अति पराक्रम से प्रकाशमान ( **सूर्य्य** ) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान जैसे ( **त्वम्** ) आप ( **देवेषु** ) समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान ( **भ्राजिष्ठ** ) अत्यन्त प्रकाशित हैं वैसे मैं भी ( **मनुष्येषु** ) साधारण मनुष्यों में ( **भूयासम्** ) प्रकाशमान होऊं ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में सूर्य्य की किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद् जन शुभ गुण कर्म्म और स्वभावों में प्रकाशमान हों क्योंकि ऐसा है कि मनुष्यशरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का सङ्ग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है। इस से सब मनुष्यों को चाहिए कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें ॥४०॥

**उदु त्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । सूर्यो देवता । पूर्वस्य निचृदार्षी । उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब ईश्वरपक्ष मे गृहस्थ के कम का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उदु त्य जातवेदस देव वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥**

**पदार्थ**—( **जातवेदसम** ) जो उत्पन्न हुए पदार्थों का जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और ससार के पदाथ जिसस उत्पन्न हुए हैं ( **देवम** ) शुद्धस्वरूप जगदीश्वर जिसको ( **विश्वाय** ) ससार के उपकार के लिए ( **दृशे** ) ज्ञानचक्षु से देखने को ( **केतव** ) किरणो के तुल्य सब अशो मे प्रकशमान विद्वान् ( **उत् वहन्ति** ) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते है ( **उ** ) तर्क वितर्क के साथ ( **त्यम्** ) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हो । हे जगदीश्वर ! जो आप हम लागो ने ( **भ्राजाय** ) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त ( **सूर्य्याय** ) प्राण के लिए ( **उपयामगहीत** ) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनो से स्वीकार किये हुए ( **असि** ) हैं उन ( **त्वा** ) आपको उक्त कामना के लिए समस्त जन स्वीकार करें और हे ईश्वर ! जिन ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह काय्य और कारण की व्याप्ति से एक अनुमान होना ( **योनि** ) अनुपम प्रमाण है उन ( **त्वा** ) आपको ( **भ्राजाय** ) प्रकाशमान ( **सूर्य्याय** ) ज्ञानरूपी सूर्य्य को पाने के लिए एक कारण जानत है ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—जसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल माग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करत हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है वसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नही हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है ॥ ४१ ॥

**आजिघ्र त्यस्य कुसुरुविन्दुऋ षि । पत्नी देवता । स्वराड्ब्राह्म्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब गहस्थ के कम्म म स्त्री के उपदेश विषय का अगने मन्त्र मे कहा है—*

**आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा नि वर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयि ॥ ४२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **महि** ) प्रशसनीय गणवाली स्त्री ! जो तू ( **उरुधारा** ) विद्या और अच्छी अच्छी शिक्षाओ का अत्यत धारण करन ( **पयस्वती** ) प्रशसित अन्न और जल रखने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामो म ( **कलशम** ) नवीन घट का ( **आजिघ्र** ) आघ्राण कर अर्थात् उस का जल स पूण कर उस की उत्तम सुगन्ध का प्राप्त हो ( **पुन** ) फिर ( **त्वा** ) तुझे ( **सहस्रम** ) असख्यात ( **इन्दव** ) सोम आदि आषधियो के रस ( **आविशन्तु** ) प्राप्त हो जिस स तू दुख से ( **निवर्त्तस्व** ) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ का दुख न प्राप्त हो । तू ( **ऊर्जा** ) पराक्रम स ( **न** ) हम को ( **धुक्ष्व** ) परिपूर्ण कर ( **पुन** ) पीछे (**मा**) मुझ (**रयि**) धन (**आविशतात**) प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् स्त्रियो को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे बुद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहे ॥४२॥

**इडे रन्त इत्यस्य कुसुरुविन्दुऋ षि । पत्नी देवता । आर्ष्युष्णिक्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर भी प्रकारान्तर स उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति । एता तेऽघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अघ्न्ये** ) ताड़ना न देने योग्य (**अदिते**) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होनेवाली ( **ज्योते** ) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान ( **इडे** ) प्रशसनीय गुणयुक्त ( **हव्ये** ) स्वीकार करने योग्य ( **काम्ये** ) मनोहर स्वरूप ( **रन्ते** ) रमण करने योग्य ( **चन्द्रे** ) अत्यन्त आनन्द देनवाली ( **विश्रुति** ) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली ( **महि** ) अत्यन्त प्रशसा करने योग्य ( **सरस्वती** ) प्रशसित विज्ञानवाली पत्नी ! उक्त गुण प्रकाश करनेवाले ( **ते** ) तेरे ( **एता** ) ये ( **नामानि** ) नाम हैं तू ( **देवेभ्य** ) उत्तम गुणो के लिये ( **मा** ) मुझको ( **सुकृतम्** ) उत्तम उपदेश (**ब्रूतात**) किया कर ॥४३॥

**भावार्थ**—जो विद्वानो से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने अपने पति और अन्य सब स्त्रियो को यथायोग्य उत्तम कर्म्म सिखलावे जिससे किसी तरह वे अधर्म्म की ओर न डिगें । वे दोनो स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालको तथा कन्याओ को शिक्षा किया करें ॥४३॥

**वि न इत्यस्य शास ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर । उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गहस्थ कर्म्म के निमित्त राजपक्ष मे कुछ उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वि नऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । योऽअस्माँ२ऽअभिदासत्यधरं गमया तमः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) सेनापते ! तू ( **न** ) हमारे ( **पृतन्यत** ) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करनेहारे शत्रुओ को ( **जहि** ) मार और उन ( **नीचा** ) नीचो को ( **यच्छ** ) वश मे ला और जो शत्रुजन ( **अस्मान्** ) हम लोगों को ( **अभिदासति** ) सब प्रकार दुख देवे उस ( **विमध** ) दुष्ट को ( **तम** ) जैसे अन्धकार को सूर्य्य नष्ट करता है वसे ( **अधरम्** ) अधोगति का ( **गमय** ) प्राप्त करा जिस ( **ते** ) तेरा ( **एष** ) उक्त कर्म्म करना ( **योनि** ) राज्य का कारण है इससे तू हम लोगो स ( **उपयामगृहीत** ) सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ ( **असि** ) है इसी से ( **त्वा** ) तुझको ( **विमृध** ) जिसमे बड़े बड़े युद्ध करनेवाले शत्रुजन हैं ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य्य देनेवाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं ( **त्वा** ) तुझको ( **विमृधे** ) जिसके शत्रु नष्ट हो गये है उस ( **इन्द्राय** ) राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म्म से अपना वर्त्ताव न वर्तें ॥४४॥

**भावार्थ**—जो खोटे काम करनेवाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को उन्नति देकर सब को दुख देना चाहे उसको राजा सब प्रकार से दण्ड दे । तो भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयो को न छोड़े तो उसको मार डाले अथवा नगर से इसको दूर निकाल बन्द रक्खे ॥४४॥

**वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषि । ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्द । उपयामेत्यस्य स्वराडार्ष्यनुष्टुप छन्द । आद्यस्य धैवत परस्य गान्धार स्वरश्च ॥**

*अब गृहस्थ कम म राजा और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्म्मा । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥ ४५ ॥**

**पदार्थ**—हम ( **अद्य** ) अब ( **वाजे** ) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिस ( **वाच** ) वेदवाणी के ( **पति** ) स्वामी वा रक्षा करनवाले (**विश्वकर्म्माणम्**) जिनके सब धम्मयुक्त कम्म हैं जो ( **मनोजुवम्** ) मन चाहती गति का जाननेवाला है उस परमेश्वर वा सभापति को ( **हुवेम** ) चाहते हैं सो आप ( **साधुकर्म्मा** ) अच्छे अच्छे कम्म करनेवाले ( **विश्वशम्भू** ) समस्त सुख का उत्पन्न करानेवाले जगदीश्वर वा सभापति ( **न** ) हमारे ( **अवसे** ) प्रेम बढ़ान के लिए ( **विश्वानि, हवनानि** ) दिए हुए सब प्रार्थनावचनो को ( **जोषत्** ) प्रेम से मानें जिन ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह उक्त कम्म ( **योनि** ) एक प्रेमभाव का कारण है वे आप ( **उपयामगृहीत** ) यमनियमो से ग्रहण किये हुए ( **असि** ) हैं इससे ( **विश्वकर्म्मणे** ) समस्त कामो के उत्पन्न करने तथा ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य्य के लिए ( **त्वा** ) आपकी प्रार्थना तथा ( **विश्वकर्मणे** ) समस्त काम की सिद्धि के लिए शिल्पक्रिया कुशलता से उत्तम ऐश्वर्य्य वाले आपका सेवन करते है ॥४५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म श्लेषालङ्कार है । जो परमेश्वर वा न्यायाधीश सभापति हमारे किये हुए कामो को जाच कर उनके अनुसार हम को यथायोग्य नियमो म रखता है जो किसी को दुख देनवाले छल कपट के काम को नहीं करता जिस परमेश्वर वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहार सिद्धि को पाकर धम्मशील होता है वही ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापति व्यवहारसिद्धि के निमित्त हम लोगो को सेवन योग्य है ॥४५॥

**विश्वकर्म्मन्नित्यस्य शास ऋषि । विश्वकर्मेन्द्रो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब अगले मन्त्र मे राजधर्म का उपदेश किया है—*

**विश्वकर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विश पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४६**

**पदार्थ**—हे ( **विश्वकर्म्मन्** ) समस्त अच्छे काम करनेवाले जन ! आप ( **वर्द्धनेन** ) वृद्धि के निमित्त ( **हविषा** ) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से ( **अवध्यम्** ) जिस बुरे व्यसन और अधर्म्म से रहित ( **इन्द्रम्** ) परम ऐश्वर्य्य देने तथा (**त्रातारम्**) समस्त प्रजाजनो की रक्षा करनेवाले सभापति को ( **अकृणोः** ) कीजिए कि (**तस्मै**) उसे ( **पूर्वी** ) प्राचीन धार्म्मिक जनो ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे ( **विश** ) प्रजाजन ( **समनमन्त** ) अच्छे प्रकार मानें जसे ( **अयम्** ) यह सभापति ( **उग्र** ) दुष्टो को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और ( **विहव्य** ) अनेक प्रकार के राज्यसाधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखनेवाला ( **असत्** ) हो वैसे प्रजा भी इसके साथ वर्ते ऐसी युक्ति कीजिये । ( **उपयामगृहीत** ) यहाँ से ले कर मन्त्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिए ॥४६॥

**भावार्थ**—इस ससार मे मनुष्य सब जगत् की रक्षा करनेवाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उनकी अनुमति मे सब कोई अपना अपना वर्त्ताव रक्खें प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी वृद्धि को नही पहुँचता और ईश्वर वा राजा के विना प्रजाजन धम अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करनेवाले काम भी नहीं कर सकते, इससे प्रजाजन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार मे धर्म्म के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥४६॥

**उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषि । विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता । विराड् ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विश्वकर्म्मन्** ) अच्छे अच्छे कर्म्म करनेवाले जन ! मैं जो ( **ते** ) आपका ( **अनुष्टुप** ) अज्ञान का छुड़ानेवाला ( **अभिगर** ) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसावाक्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेदमन्त्र गायत्रीछन्द के अर्थ को जनानेवाले ( **त्वा** ) आप को ( **अग्नये** ) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिए ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूं वा ( **त्रिष्टुप्छन्दसम्** ) परम ऐश्वर्य्य देने वाले त्रिष्टुप छन्दयुक्त वेदमन्त्रों का अर्थ करानेहारे ( **त्वा** ) आपको ( **इन्द्राय** ) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिए ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ ( **जगच्छन्दसम्** ) समस्त जगत् के दिव्य दिव्य गुण कर्म्म और स्वभाव के बोधक वेदमन्त्रों का अर्थविज्ञान करानेवाले ( **त्वा** ) आप को ( **विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) अच्छे अच्छे गुण कर्म्म और स्वभावों के लिए ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूं ( **उपयामगृहीत** ) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आपको सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा ( **असि** ) है ॥४७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से ( विश्वकर्म्मन् ) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थविद्या साधन करानेवाली क्रियाओं का उत्तम बोध करानेवाले गायत्री आदि छन्दयुक्त ऋग्वेदादि वेदों के बोध होने के लिए उत्तम पढ़ानेवाले का सेवन करें क्योंकि उत्तम पढ़ानेवाले के विना किसी को विद्या नहीं प्राप्त हो सकती ॥४७॥

**व्रशीनां त्वेत्यस्य देवा ऋषय । प्रजापतयो देवता । याजुषी त्रिष्टुप् । कुकूननानामित्यस्य याजुषी जगती । भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी त्रिष्टुप्, शुक्र त्वेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दांसि । तत्र त्रिष्टुभो धैवत जगत्या निषाद बृहत्या मध्यमश्च स्वरा ॥**

*अब गार्हस्थ्य कर्म्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**व्रशीनां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । कुकूननानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । भन्दनानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । मदिन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । मधुन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । शुक्रं त्वा शुक्रऽआ धूनोम्यह्नो रूपे सूर्य्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **पत्मन्** ) धर्म्म में न चित्त देनेवाले पते ! ( **व्रशीनाम्** ) जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पत्नियां हैं उनमें व्यभिचार से वर्त्तमान ( **त्वा** ) तुम को मैं वहां से ( **आधूनोमि** ) अच्छे प्रकार डिगाती हूं। हे ( **पत्मन्** ) अधर्म्म में चित्त देनेवाले पते ! ( **कुकूननानाम्** ) निरन्तर शब्दविद्या से नम्रीभाव को प्राप्त हो रही हुई औरों की पत्नियों के समीप मूर्खपन से जानेवाले ( **त्वा** ) तुझ को मैं ( **आ धूनोमि** ) वहां से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूं। हे ( **पत्मन्** ) कुचाल में चित्त देनेवाले पते ! ( **भन्दनानाम्** ) कल्याण का आचरण करती हुई परपत्नियों के समीप अधर्म से जानेवाले ( **त्वा** ) तुझको वहां से मैं ( **आ** ) अच्छे प्रकार ( **धूनोमि** ) पृथक् करती हूं। हे ( **पत्मन्** ) चञ्चल चित्त वाले पते ! ( **मदिन्तमानाम्** ) अत्यन्त आनन्दित परपत्नियों के समीप उनको दुःख देते हुए ( **त्वा** ) तुम को मैं वहां से ( **आ** ) वार वार ( **धूनोमि** ) कम्पती हूं। हे ( **पत्मन्** ) कठोरचित्त पते ! ( **मधुन्तमानाम्** ) अतिशय करके मीठी मीठी बोलने वाली परपत्नियों के निकट कुचाल से जाते हुए ( **त्वा** ) तुमको मैं ( **आ** ) अच्छे प्रकार ( **धूनोमि** ) हटाती हूं। हे ( **पत्मन्** ) अविद्या में रमण करनेवाले ! ( **अह्न** ) दिन के ( **रूपे** ) रूप में अर्थात् ( **सूर्य्यस्य** ) सूर्य की फैली हुई किरणों के समय में घर में संगति की चाह करते हुए ( **शुक्रम्** ) शुद्ध वीर्य वाले ( **त्वा** ) तुम को ( **शुक्र** ) वीर्य के हेतु ( **आ** ) सब प्रकार ( **धूनोमि** ) छुड़ाती हूं ॥४८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य की किरणों को प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं वैसे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से दण्ड को पाकर पवित्र होते हैं। गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दुःख देने और कुल को भ्रष्ट करनेवाले व्यभिचार कर्म्म से सदा दूर रहें क्योंकि इस से शरीर और आत्मा के बल का नाश होने से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती ॥४८॥

**ककुभमित्यस्य देवा ऋषय । विश्वेदेवा प्रजापतयो देवता । विराट् प्राजापत्या जगती छन्द । निषाद स्वर । यत्ते सोमेत्यस्य भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब फिर गृहस्थों को राजपक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ककुभं रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन् ! आप ( **यत्** ) जिस ( **वृषभस्य** ) सब सुखों के वर्षानेवाले आपका ( **ककुभम्** ) दिशाओं के समान शुद्ध ( **बृहत्** ) बड़ा ( **रूपम** ) सुन्दर स्वरूप ( **रोचते** ) प्रकाशमान होता है सो आप ( **शुक्रस्य** ) शुद्ध धर्म्म के ( **पुरोगा** ) अग्रगामी वा ( **सोमस्य** ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के ( **पुरोगा** ) अग्रगन्ता ( **शुक्र** ) शुद्ध ( **सोम** ) सोमगुणसम्पन्न ऐश्वर्य्ययुक्त हूजिये जिससे आपका ( **अदाभ्यम्** ) प्रशंसा करने योग्य ( **नाम** ) नाम ( **जागृवि** ) जाग रहा है ( **तस्मै** ) उसी के लिए ( **त्वा** ) आपको ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूं और हे ( **सोम** ) उत्तम कामों में प्रेरक ! ( **तस्मै** ) उस ( **सोमाय** ) श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त हुए ( **ते** ) आपके लिए ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी प्राप्त हो ॥४९॥

**भावार्थ**—सभाजन और प्रजाजनों को चाहिए कि जिसकी पुण्य प्रशंसा, सुन्दररूप विद्या न्याय, विनय शूरता तेज, अपक्षपात मित्रता सब कामों में उत्साह आरोग्य बल पराक्रम धीरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानें ॥४९॥

**उशिक् त्वमित्यस्य देवा ऋषय । प्रजापतयो देवता । स्वराडार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) दिव्यगुणसम्पन्न ( **सोम** ) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजन् ! आप ( **उशिक** ) अति मनोहर होके ( **अग्ने** ) उत्तम विद्वान् के ( **प्रियम** ) प्रेम उत्पन्न करानेवाले ( **पाथ** ) रक्षायोग्य व्यवहार को ( **अपि** ) निश्चय से ( **इहि** ) प्राप्त करो और जानो। हे ( **देव** ) दानशील ( **सोम** ) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति करानेवाले ! आप ( **वशी** ) जितेन्द्रिय होकर ( **इन्द्रस्य** ) परमैश्वर्य्य वाले धार्मिक जन के ( **प्रियम** ) प्रेम उत्पन्न करानेवाले ( **पाथ** ) जानने योग्य कर्म को ( **अपि** ) निश्चय से ( **इहि** ) जानो। हे ( **देव** ) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान ( **सोम** ) ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप ( **अस्मत्सखा** ) हम लोग जिनके मित्र हैं ऐसे आप होकर ( **विश्वेषाम** ) समस्त ( **देवानाम** ) विद्वानों में प्रेम उत्पन्न करानेहारे ( **पाथ** ) विज्ञान के आचरण को ( **अपि** ) निश्चय से ( **इहि** ) प्राप्त हो तथा जानो ॥५०॥

**भावार्थ**—राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ अच्छे अच्छे नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये बिना कोई त्रिया धर्म्म सबसे एक प्रीतिभाव और ऐश्वर्य को नहीं पा सकता है ॥५०॥

**इह रतिरित्यस्य देवा ऋषय । प्रजापतयो गृहस्था देवता । आर्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब गार्हस्थ्य धर्म्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥५१॥**

**पदार्थ**—हे गृहस्थो ! तुम लोगों की ( **इह** ) इस गृहाश्रम में ( **रति** ) प्रीति ( **इह** ) इसमें ( **धृति** ) सब व्यवहारों की धारणा ( **इह** ) इसीमें ( **स्वधृति** ) अपने पदार्थों की धारणा ( **स्वाहा** ) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो तुम ( **इह** ) इस गृहाश्रम में ( **रमध्वम** ) रमण करो। हे गृहाश्रम पुरुष ! तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस ( **मात्रे** ) पुत्र का मान करने वाली के लिये ( **धरुणम** ) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को ( **उपसृजन्** ) उत्पन्न कर और वह ( **धरुण** ) उक्त गुण वाला पुत्र ( **मातरम्** ) उस अपनी माता का ( **धयन्** ) दूध पीवे। वैसे ( **अस्मासु** ) हम लोगों के निमित्त ( **राय** ) धन की ( **पोषम** ) समृद्धि को ( **स्वाहा** ) सत्यभाव से ( **दीधरत्** ) उत्पन्न कीजिए ॥५१॥

**भावार्थ**—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धर्म्म वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥५१॥

**सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषय । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽअभूम । दिवं पृथिव्याऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! आप ( **सत्रस्य** ) प्राप्त हुए राजप्रजा व्यवहाररूप यज्ञ के ( **ऋद्धि** ) समृद्धिरूप ( **असि** ) हैं। आप के सङ्ग से हम लोग ( **ज्योति** ) विज्ञान के प्रकाश को ( **अगन्म** ) प्राप्त होवें और ( **अमृता** ) मोक्ष पाने के योग्य ( **अभूम** ) हों ( **दिव** ) सूर्यादि ( **पृथिव्या** ) पृथिवी आदि लोकों के ( **अधि** ) बीच ( **अध्यारुहाम** )

पूर्ण वृद्धि को पहुँचें ( देवाः ) विद्वानो दिव्य दिव्य भागो ( ज्योतिः ) विज्ञानविषय और ( स्वः ) अत्यन्त सुख का ( अविदाम ) प्राप्त होवें ॥५२॥

भावार्थ—जब तक सब की रक्षा करनेवाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनो को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नही होता है और न मोक्षसुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

**युवमित्यस्य देवा ऋषय । गृहपतयो देवता । पूर्वस्याध्यनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर । दूरे वेत्यस्यासुर्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर । अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्द । मध्यम स्वर । भूर्भुव इत्यस्य विराट् प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् । अस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥**

पदार्थ—हे ( पुरोयुधा ) युद्ध समय मे आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! ( युवम् ) तुम दोनो ( यः ) जो ( नः ) हमारी ( पृतन्यात ) सेना से लड़ना चाहे ( तन्तम् इत ) उसी २ को ( वज्रेण ) शस्त्र और अस्त्रविद्या के बल से ( हतम् ) मारो और ( यत ) जो ( अस्माकम् ) हमारे शत्रुओं की ( गहनम् ) दुर्जय सेना हमारी सेना को ( इनक्षत् ) व्याप्त हो और ( यत् ) जो २ ( छन्त्सत ) बल को बढ़ावे उस २ को ( चत्ताय ) आनन्द बढ़ाने के लिए ( इद्धतम् ) अवश्य मारो और ( दूरे ) दूर पहुंचा दो । हे ( शूर ) शत्रुओं को सुख से बचानेवाले सभापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओ को (विश्वत ) सब प्रकार से ( परिदर्षीष्ट ) विदीर्ण कर दीजिये जिस से हम लोग ( भूः ) इस भूलोक ( भुवः ) अन्तरिक्ष और ( स्वः ) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुखरूप लोक मे ( प्रजाभिः ) अपने सन्तानो से ( सुप्रजाः ) प्रशंसित सन्तानो वाले (वीरैः) वीरो से ( सुवीरा ) बहुत अच्छे २ वीरो वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) अच्छी २ पुष्टिवाले ( विश्वतः ) सब ओर से ( स्याम ) होवें ॥ ५३ ॥

भावार्थ—जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामो मे अग्रगामी न हो तब तक सेनावीर आनन्द से युद्ध मे प्रवृत्त नही हो सकते और इस काम के बिना कभी विजय नही होता तथा जब तक शत्रुओ का निर्मूल करने हारे सभापति आदि नही होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते है ॥ ५३ ॥

**परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता । साम्न्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धोऽअच्छेतः । सविता सन्यां विश्वकर्म्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥५४॥**

पदार्थ—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि ( व्याहृतायाम् ) उच्चारित उपदिष्ट की हुई ( वाचि ) वेदवाणी मे ( परमेष्ठी ) परमानन्दस्वरूप मे स्थित ( प्रजापतिः ) समस्त प्रजा के स्वामी वा ( अच्छेत ) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकर्म्मा) सब विद्या और कर्म्मों को जाननेवाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति का ( दीक्षायाम् ) सभा के नियमो के धारण मे ( सोमक्रयण्याम् ) ऐश्वर्य ग्रहण करने मे ( पूषा ) सब का पुष्ट करने हारे उत्तम वैद्य को और (सन्याम्) जिस मे सनातन सत्य प्राप्त हो उस मे (सविता) सब जगत् का उत्पादक ( अभिधीत ) सुविचार से धारण किया ( अन्ध ) उत्तम सुसंस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर वेदविद्या से अपने सांसारिक जीवो और जगत् के गुण कर्म्म स्वभावो को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के विना निरन्तर सुख क्यो कर हो सकता है ॥ ५४ ॥

**इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । इन्द्रादयो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्टऽऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥ ५५ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वानो ने ( क्रयाय ) व्यवहारसिद्धि के लिए ( इन्द्र ) बिजुली ( मरुत ) पवन ( असुर ) मेघ ( पण्यमान ) स्तुति के योग्य ( मित्र ) सखा ( शिपिविष्ट ) समस्त पदार्थों मे प्रविष्ट ( विष्णु ) सर्व शरीरव्याप्त धनंजय वायु और इन मे से एक २ पदार्थ ( नरन्धिष ) मनुष्यादि के आत्माओं मे साक्षी ( विष्णु ) हिरण्यगर्भ ईश्वर ( ऊरौ ) ढापने आदि क्रियाओं मे ( आसन्न ) संनिकट वा (उपोत्थित ) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीत ) व्यवहार मे वर्त्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥ ५५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की क्रियाकुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारो को सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

**प्रोह्यमाण इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वेदेवा गृहस्था देवता । आर्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्रोह्यमाणः सोमऽआगतो वरुणऽआसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽइन्द्रो हविर्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥ ५६ ॥**

पदार्थ—हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि मे ( आसन्द्याम् ) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर ( आगत ) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो वैसे ( प्रोह्यमाण ) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ ( सोम ) ऐश्वर्य्य का समूह ( वरुण ) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (आग्नीध्र) बहुत इन्धनो मे ( अग्नि ) अग्नि ( उपावह्रियमाण, ) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए ( अथर्वा ) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और ( हविर्धाने ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों मे ( इन्द्र ) बिजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

भावार्थ—तर्क के विना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के विना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥ ५६ ॥

**विश्वेदेवा इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वेदेवा देवता । भुरिक साम्नी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब गृहस्थ कर्म्म मे कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र मे कहा है—*

**विश्वे देवाऽअꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥**

पदार्थ—हे ( विश्वदेवा ) समस्त विद्वानो ! तुम्हारे जो ( अंशुषु ) अलग २ संसार के पदार्थों मे ( न्युप्त ) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार ( आप्रीतपा ) अच्छी प्रीति के साथ ( विष्णु ) व्याप्त होने वाली बिजुली ( आप्याय्यमान ) अति बढ़े हुए के समान ( यम ) सूर्य्य ( सूयमान ) उत्पन्न होने हारा ( विष्णु ) व्यापक अव्यक्त ( सम्भ्रियमाण ) अच्छे प्रकार पुष्टि किया हुआ ( वायु ) प्राण ( पूयमान ) पवित्र किया हुआ ( शुक्र ) पराक्रम का समूह (पूत ) शुद्ध ( शुक्र ) शीघ्र कर्म करने हारा और ( मन्थी ) विलोडने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए ( क्षीरश्री ) दुग्धादि पदार्थों का पकाने और ( सक्तुश्री ) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते है ॥ ५७ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते है ॥ ५७ ॥

**विश्वे देवाश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वेदेवा देवता । भुरिगार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ॥५८॥**

पदार्थ—जिन विद्वानो ने यज्ञ विधान से ( चमसेषु ) मेघो मे सुगन्धित आदि वस्तु ( उन्नीत ) ऊंचे पहुँचाया ( असु ) अपना जीवन ( उद्यत ) अच्छे यत्न मे लगा रक्खा ( रुद्र ) जीव को पवित्र कर ( हूयमान ) स्वीकार किया ( नृचक्षा ) मनुष्यो को प्रसन्न करने वाला ( प्रतिख्यात ) जिस होने वादानुवाद से चाहा (वात ) बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु से शुद्ध किये फल ( भक्ष्यमाण ) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ ( भक्ष ) खाइए ( नाराशंसा ) प्रशंसाकर मनुष्यो के उपदेशक ( विश्वदेवा ) सब विद्वान् ( पितर ) उन सब के उपकारको को ज्ञानी समझने चाहिये ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने सुगन्धि पुष्टि मधुरता और रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच मे उन का होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा औषधियो का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार मे अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते है ॥ ५८ ॥

**सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वेदेवा देवता । आर्षी बृहती छन्द । निषाद स्वर । या पत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब गृहस्थ के कर्म्म मे यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा । या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णूऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥ ५९ ॥**

पदार्थ—जिन्होने ( अवभृथाय ) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र करने के लिये ( अभ्यवह्रियमाण ) भोगने योग्य ( सलिल ) जिस मे उत्तम जल है वह व्यवहार ( उद्यत ) नियम से सम्पादन किया ( सिन्धु ) नदियाँ ( सन्न )

निर्माण की ( समुद्र ) समुद्र ( प्रप्लत ) अपने उत्तम गुणों से पाया है वे विद्वान् लोग ( यथो ) जिन के ( ओजसा ) बल से ( रजांसि ) लोक लोकान्तर ( स्कभिता ) स्थित हैं ( या ) जो ( वीर्येभि ) और पराक्रमों से ( वीरतमा ) अत्यन्त वीर ( शविष्ठा ) नित्य बल सम्पादन करने वाले ( सहोभि ) बलों से ( अप्रतीता ) मूर्खों को जानने के अयोग्य ( विष्णु ) व्याप्त होने हारे ( वरुणा ) अतिश्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य ( पूर्वहूतौ ) जिन का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो ( पत्येते ) श्रेष्ठ सज्जनों को प्राप्त होते है उन यज्ञकर्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को ( अगन् ) प्राप्त होते है वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ५६ ॥

**भावार्थ**—यज्ञ आदि व्यवहारों के विना गृहाश्रम मे सुख नहीं होता ॥ ५६॥

**देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वेदेवा देवता । स्वराट् साम्नी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**दे॒वान् दिव॑मग॒न्यज्ञस्ततो॑ मा॒ द्रवि॑णमष्टु मनु॒ष्या॒नन्तरि॑क्षमगन्य॒ज्ञस्ततो॑ मा॒ द्रवि॑णमष्टु पि॒तॄन् पृ॑थि॒वीम॑गन्य॒ज्ञस्ततो॑ मा॒ द्रवि॑णमष्टु॒ यं कं च॑ लो॒कमग॑न्य॒ज्ञस्ततो॑ मे भ॒द्रमभूत् ॥६०॥**

**पदार्थ**—जो ( यज्ञ ) पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ ( दिवम् ) विद्या के प्रकाश और ( देवान् ) दिव्य भोगो को प्राप्त करता है जिस को विद्वान् लोग ( अगन् ) प्राप्त हो ( तत ) उस से ( मा ) मुझ को ( द्रविणम् ) विद्यादि गुण ( अष्टु ) प्राप्त हो जो ( यज्ञ ) यज्ञ ( अन्तरिक्षम् ) मध्यमण्डल और ( मनुष्यान् ) मनुष्यों को प्राप्त होता है जिस को भद्र मनुष्य ( अगन् ) प्राप्त होते हैं ( तत ) उस से ( मा ) मुझ को ( द्रविणम् ) धनादि पदार्थ ( अष्टु ) प्राप्त हो जो ( यज्ञ ) यज्ञ ( पृथिवीम् ) पृथिवी और ( पितॄन् ) वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है। जिस को आप्त लोग ( अगन् ) प्राप्त होते है ( तत ) उस से ( मा ) मुझ को ( द्रविणम् ) प्रत्येक ऋतु का सुख ( अष्टु ) प्राप्त हो जो ( यज्ञ कम ) यज्ञ किसी ( च लोकम् ) लोक को प्राप्त होता है ( यम् ) जिस को धर्मात्मा लोग ( अगन् ) प्राप्त होते है ( तत ) उस से ( मे ) मेरा ( भद्रम् ) कल्याण ( अभूत ) हो ॥ ६० ॥

**भावार्थ**—जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्यो को क्यो न करना चाहिए ॥ ६० ॥

**चतुस्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वेदेवा देवता । साम्न्युष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*इस जगत की उत्पत्ति मे कितने कारण हैं यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**चतु॑स्त्रिꣳशत्तन्तवो॒ ये वि॑तत्नि॒रे य इ॒मं य॒ज्ञꣳस्व॒धया॒ दद॑न्ते ।**
**तेषां॑ छि॒न्नꣳ सम्वे॒तद्द॑धामि॒ स्वाहा॑ घ॒र्मो अप्ये॑तु दे॒वान् ॥ ६१ ॥**

**पदार्थ**—( ये ) जो ( चतुस्त्रिंशत ) आठो वसु ग्यारह रुद्र बारह आदित्य इन्द्र प्रजापति और प्रकृति ( तन्तव ) सूत के समान ( यज्ञम् ) सुख उत्पन्न करने हारे यज्ञ को ( वितत्निरे ) विस्तार करते हैं अथवा ( य ) जो ( स्वधया ) अन्न आदि उत्तम पदार्थों से ( इमम् ) इस यज्ञ को ( ददन्ते ) देते हैं ( तेषाम् ) उन का जो ( छिन्नम् ) अलग किया हुआ यज्ञ ( एतत ) उस को ( स्वाहा ) सत्य क्रिया वा सत्य वाणी से ( सम् दधामि ) इकट्ठा करता हू ( उ ) और वही ( घर्म ) यज्ञ ( देवान् ) विद्वानो को ( अपि ) निश्चय से ( एतु ) प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

**भावार्थ**—इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चौंतीस ( ३४ ) तत्त्व कारण हैं जो उनके गुण और दोषो को जानते है उन्ही को सुख मिलता है ॥ ६१ ॥

**यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**य॒ज्ञस्य॒ दोहो॒ वित॑त पुरु॒त्रा सो अ॑ष्ट॒धा दिव॑म॒न्वात॑तान । स य॑ज्ञ धुक्ष्व॒ महि॑ मे प्र॒जाया॑ꣳ रा॒यस्पोषं॒ विश्व॒मायु॑रशीय॒ स्वाहा॑ ॥६२॥**

**पदार्थ**—हे ( यज्ञ ) सगति करने योग्य विद्वन् ! आप जो ( यज्ञस्य ) यज्ञ का ( पुरुत्रा ) बहुत पदार्थों में ( विततः ) विस्तृत ( अष्टधा ) आठो दिशाओ से आठ प्रकार का ( दोह ) परिपूर्ण सामग्रीसमूह है ( स ) वह ( दिवम् ) सूर्य्य के प्रकाश को ( अन्वाततान ) ढांप कर फिर फैलने लगा है ( स ) वह आप सूर्य्य के प्रकाश मे यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को ( धुक्ष्व ) परिपूर्ण कर जो ( मे ) मेरी ( प्रजायाम् ) प्रजा मे ( विश्वम् ) सब ( महि ) महान् ( राय ) धनादि पदार्थों की ( पोषम् ) समृद्धि को वा ( आयु ) जीवन को बार २ विस्तारता है उस को मै ( स्वाहा ) सत्ययुक्त क्रिया से ( अशीय ) प्राप्त होऊ ॥ ६२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति करें और ससार के जीवो को अत्यन्त सुख पहुँचावें ॥ ६२ ॥

**आपवस्वेत्यस्य कश्यप ऋषि । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*मनुष्य किसके तुल्य यज्ञ का सेवन करे यह अगले मन्त्र म कहा है—*

**आ प॑वस्व॒ हिर॑ण्यव॒दश्व॑वत्सोम वी॒रव॑त् ।**
**वाजं॒ गोम॑न्त॒मा भ॑र॒ स्वाहा॑ ॥ ६३ ॥**

**पदार्थ**—हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ ! तू ( स्वाहा ) सत्य वाणी वा सत्य क्रिया से ( हिरण्यवत ) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य ( अश्ववत ) अश्व आदि उत्तम पशुओ के समान ( वीरवत् ) प्रशंसित वीरो के तुल्य ( गोमन्तम ) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले ( वाजम ) अन्नादिमय यज्ञ का ( आभर ) आश्रय रख और उस मे ससार को ( आ ) अच्छे प्रकार ( पवस्व ) पवित्र कर ॥ ६३ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओ को रक्खें तदनुसार वीरो को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नही रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें ॥ ६३ ॥

इस अध्याय मे गृहस्थधर्म सेवन के लिए ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार गृहस्थ धर्म का वर्णन राजा प्रजा और सभापति आदि का कर्त्तव्य कहा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय मे कहे अर्थ की सगति जाननी चाहिए ॥

॥ इति अष्टमोऽध्याय ॥

# ॥ अथ नवमाऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥**

**देव सवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी । सविता देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*विद्वान् लोग चक्रवर्ती राजा को कैसा २ उपदेश करे इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य । दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केत॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाजं॑ नः स्वदतु॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे ( देव ) दिव्य गुण युक्त ( सवित ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले राजन् ! आप ( भगाय ) सब ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( स्वाहा ) वेदवाणी से ( यज्ञम् ) सबको सुख देनेवाले राजधर्म का ( प्र सुव ) प्रचार और ( यज्ञपतिम् ) राजधर्म के रक्षक पुरुष को ( प्र सुव ) प्रेरणा कीजिये जिससे ( दिव्य ) प्रकाशमान दिव्य गुणो मे स्थित ( गन्धर्व ) पृथिवी का धारण और बुद्धि को शुद्ध करनेवाला ( वाचस्पति ) पढने पढाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापति राज पुरुष है वह ( न ) हमारी ( केतम् ) बुद्धि को ( पुनातु ) शुद्ध करे और हमारे ( वाजम् ) अन्न को सत्यवाणी से ( स्वदतु ) अच्छे प्रकार भोगे ॥ १ ॥

**भावार्थ**— न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ १ ॥

ध्रुवसद त्वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । इन्द्रो देवता । ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्षी पङ्क्ति श्छन्दः । पञ्चम स्वर । अप्सुसदमित्यस्य विकृतिश्छन्द । मध्यम स्वरः ॥

*फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याधिकार मे स्वीकार करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥**

**पदार्थ**—हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप ( **उपयामगृहीत** ) योगविद्या के प्रसिद्ध अङ्ग यम के सेवनेवाले पुरुषो ने स्वीकार किये ( **असि** ) हो उस ( **ध्रुवसदम्** ) निश्चल विद्या विनय और योगधर्मों मे स्थित ( **नृषदम्** ) नायक पुरुषो मे अवस्थित ( **मनःसदम्** ) विज्ञान मे स्थिर ( **जुष्टम्** ) प्रीतियुक्त ( **त्वा** ) आपको ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ । जिस ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह ( **योनि** ) सुखनिमित्त है उस ( **जुष्टतमम्** ) अत्यन्त सेवनीय ( **त्वा** ) आपको ( **गृह्णामि** ) धारण करता हूँ । हे राजन् ! मैं ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य धारण के लिये जो आप ( **उपयामगृहीत** ) प्रजा और राजपुरुषो ने स्वीकार किये ( **असि** ) हो । उस ( **अप्सुसदम्** ) जलो के बीच चलते हुए ( **घृतसदम्** ) घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और ( **व्योमसदम्** ) विमानादि यानो से आकाश मे चलते हुए ( **जुष्टम्** ) सबके प्रिय ( **त्वा** ) आपको ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ । हे सबकी रक्षा करनेहारे सभाध्यक्ष राजन् ! जिस ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह ( **योनि** ) सुखदायक घर है उस ( **जुष्टतमम्** ) अति प्रसन्न ( **त्वा** ) आपको ( **इन्द्राय** ) दुष्ट शत्रुओ को मारने के लिए ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ । हे सब भूमि मे प्रसिद्ध राजन् ! मैं ( **इन्द्राय** ) विद्या योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए जो आप ( **उपयामगृहीत** ) साधन उपसाधनो से युक्त ( **असि** ) हो उस ( **पृथिविसदम्** ) पृथिवी मे भ्रमण करते हुए ( **अन्तरिक्षसदम्** ) आकाश मे चलनेवाले ( **दिविसदम्** ) न्याय के प्रकाश मे नियुक्त ( **देवसदम्** ) धर्मात्मा और विद्वानो के मध्य मे अवस्थित ( **नाकसदम्** ) सब दुःखो से रहित परमेश्वर और धर्म मे स्थिर ( **जुष्टम्** ) सेवनीय ( **त्वा** ) आपको ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ । हे सब सुख देने और प्रजापालन करनेहारे राजपुरुष ! जिस ( **ते** ) तेरा ( **एष** ) यह ( **योनि** ) रहने का स्थान है उस ( **जुष्टतमम्** ) अत्यन्त प्रिय ( **त्वा** ) आपको ( **इन्द्राय** ) समग्र सुख देने के लिए ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ ॥ २ ॥

**भावार्थ**—हे राजप्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य भोगने के लिए जगत् रच के सबके लिए सुख देता है वैसा ही आचरण तुम लोग करो कि जिससे धर्म अर्थ काम और मोक्ष फलो की प्राप्ति सुगम होवे ॥ २ ॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । इन्द्रो देवता । अतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर प्रजाजनो को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अपाᳬ रसमुद्वयसᳬ सूर्ये सन्तᳬ समाहितम् । अपाᳬ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! मैं ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये ( **वः** ) तुम्हारे लिए ( **सूर्ये** ) सूर्य के प्रकाश मे ( **सन्तम्** ) वर्त्तमान ( **समाहितम्** ) सब प्रकार चारो ओर धारण किये ( **उद्वयसम्** ) उत्कृष्ट जीवन के हेतु ( **अपाम्** ) जलो के ( **रसम्** ) सार का ग्रहण करता हूँ ( **यः** ) जो ( **अपाम्** ) जलो के ( **रसस्य** ) सार का ( **रसः** ) वीर्य धातु है ( **तम्** ) उस ( **उत्तमम्** ) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये ( **गृह्णामि** ) स्वीकार करता हूँ जो आप ( **उपयामगृहीत** ) साधन तथा उपसाधनो से स्वीकार किये गये ( **असि** ) हो उस ( **इन्द्राय** ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये ( **जुष्टम्** ) प्रीतिपूर्वक वर्त्तनेवाले आपको ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ जिस ( **ते** ) आपका ( **एष** ) यह ( **योनि** ) घर है उस ( **जुष्टतमम्** ) अत्यन्त सेवनीय ( **त्वा** ) आपको ( **इन्द्राय** ) परम सुख होने के लिये ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषो को शरीर और आत्मा के बल बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य ओषधिविद्या और योगाभ्यास के सेवन मे नियुक्त करे जिससे मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें ॥ ३ ॥

ग्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । राजधर्मराजादयो देवता । भुरिक्कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥

*मनुष्यो को चाहिए कि आप्त विद्वान की अच्छे प्रकार परीक्षा करके संग करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जᳬ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचौ स्थः स मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे राजप्रजा पुरुष ! जैसे ( **अहम्** ) मैं गृहस्थजन ( **विप्राय** ) बुद्धिमान पुरुष के सुख के लिये ( **मतिम्** ) बुद्धि को देता हूँ वैसे तू भी किया कर ( **व्यन्तः** ) जो सब विद्याओ मे व्याप्त ( **ऊर्जाहुतयः** ) बल और जीवन बढ़ने के लिये दान देने और ( **ग्रहाः** ) ग्रहण करनेहारे गृहस्थ लोग हैं जैसे ( **तेषाम्** ) उन ( **विशिप्रियाणाम्** ) अनेक प्रकार के धर्मयुक्त कर्मो मे मुख और नासिकावालो के ( **मतिम्** ) बुद्धि ( **इषम्** ) अन्न प्राप्ति और ( **ऊर्जम्** ) पराक्रम को ( **समग्रभम्** ) ग्रहण कर चुका हूँ वैसे तुम भी ग्रहण करो । हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे तू ( **उपयामगृहीत** ) राज्य और गृहाश्रम की सामग्री से सहित वर्त्तमान ( **असि** ) है वैसे मैं भी होऊं । जैसे मैं ( **इन्द्राय** ) उत्तम ऐश्वर्य के लिये ( **जुष्टम्** ) प्रसन्न ( **त्वा** ) आपको ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी मुझे ग्रहण कर जिस ( **ते** ) तेरा ( **एष** ) यह ( **योनि** ) घर है उस ( **इन्द्राय** ) शत्रुओ को नष्ट करने के लिए ( **जुष्टतमम्** ) अत्यन्त प्रसन्न ( **त्वा** ) तुझे मैं जैसे करूं और तुम दोनो युक्त धर्म मे ( **सम्पृचौ** ) संयुक्त ( **स्थः** ) हो वैसे ( **भद्रेण** ) सेवन योग्य सुखदायक ऐश्वर्य से ( **मा** ) मुझको ( **सम्पृङ्क्तम्** ) संयुक्त करो जैसे तुम ( **पाप्मना** ) अधर्मी पुरुष से ( **विपृचौ** ) पृथक् ( **स्थः** ) हो इससे ( **मा** ) मुझको भी ( **विपृङ्क्तम्** ) पृथक् करो ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा और प्रजा मे गृहस्थ लोग बुद्धिमान् सन्तान वा विद्यार्थी के लिये विद्या दान की वृद्धि देते दुष्ट आचरणो से पृथक् रखते कल्याणकारक कर्मों का सेवन कराते और दुष्टसंग छुड़ाके सत्संग कराते हैं वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं इनसे विपरीत नहीं ॥ ४ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । सविता देवता । भुरिगष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥

*अब किसलिये सेनापति की प्रार्थना यहाँ करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजᳬ सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे वीर पुरुष ( **यस्याम्** ) जिसमे ( **त्वम्** ) आप ( **इन्द्रस्य** ) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा के ( **वाजसाः** ) संग्रामो का विभाग करनेवाले ( **वज्रः** ) वज्र के समान शत्रुओ के काटनेवाले ( **असि** ) हो उस ( **त्वया** ) रक्षक आपके साथ ( **अयम्** ) यह पुरुष ( **वाजम्** ) संग्राम का ( **सेत्** ) प्रबन्ध करे जहाँ ( **इदम्** ) प्रत्यक्ष वर्त्तमान ( **विश्वम्** ) सब ( **भुवनम्** ) जगत् ( **आविवेश** ) प्रविष्ट है और जहाँ ( **देवः** ) सब का प्रकाशक ( **सविता** ) सब जगत् का उत्पादक परमात्मा ( **नः** ) हमारा ( **धर्म** ) धारण ( **साविषत्** ) करे ( **तस्याम्** ) उसमे ( **नाम** ) प्रसिद्ध ( **वाजस्य** ) संग्राम के ( **प्रसवे** ) ऐश्वर्य मे ( **मातरम्** ) मान्य देनेहारी ( **अदितिम्** ) अखण्डित ( **महीम्** ) पृथिवी को ( **वचसा** ) वेदोक्त न्याय के उपदेश रूप वचन से हम लोग ( **नु** ) शीघ्र ( **करामहे** ) ग्रहण करें ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो यह भूमि प्राणियो के लिए सौभाग्य के उत्पन्न करने माता के समान रक्षा और सबको धारण करनेहारी प्रसिद्ध है उसको विद्या न्याय और धर्म के योग से राज्य के लिए तुम लोग सेवन करो ॥ ५ ॥

अप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । अश्वो देवता । भुरिग्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*फिर स्त्री पुरुषो को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजᳬ सेत् ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देवी** ) दिव्यगुणवाली ( **आपः** ) अन्तरिक्ष मे व्यापक स्त्री पुरुष लोगो ! तुम ( **यः** ) जो ( **वः** ) तुम्हारा ( **समुद्रस्य** ) सागर के ( **ककुन्मान्** ) प्रशस्त उज्ज्वल गुणो से युक्त ( **वाजसाः** ) संग्रामो के सेवन के हेतु ( **प्रतूर्त्तिः** ) अति शीघ्र चलनेवाला समुद्र के ( **ऊर्मिः** ) आच्छादन करनेहारे तरंगोके समान पराक्रम और जो ( **अप्सु** ) प्राणो के ( **अन्तः** ) मध्य मे ( **अमृतम्** ) मरण धर्म रहित कारण और जो ( **अप्सु** ) जलो के मध्य अल्प मृत्यु से छुड़ानेवाला ( **भेषजम्** ) रोगनिवारक औषध के समान गुण है जिससे ( **अयम्** ) यह सेनापति ( **वाजम्** ) संग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे ( **तेन** ) उससे ( **अपाम्** ) उक्त प्राणो और जलो की ( **प्रशस्तिषु** ) गुण प्रशंसाओ मे ( **वाजिनः** ) प्रशंसित बल और पराक्रमवाले ( **अश्वाः** ) कुलीन घोड़ो के समान वेगवाले ( **भवत** ) हूजिए ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्रियो को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर जल के समान शान्तस्वभाव वीर पुत्रो को उत्पन्न करने नित्य ओषधियो का सेवन और जलादि पदार्थों का ठीक २ जाननेवाली होवें इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषो से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते है ॥ ६ ॥

वातो वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । सेनापतिर्देवता । भुरिगुष्णिक छन्द ।
ऋषभ स्वर ॥

*मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके वेगवाले हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वातो॑ वा मनो॑ वा गन्ध॒र्वाः स॒प्तवि॑ꣳशतिः ।**
**तेऽअग्रेऽश्व॑मयुञ्जँ॒स्तेऽ अ॒स्मिन् ज॒वमाद॑धु ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—जो विद्वान् लोग ( **वात** ) वायु के ( **वा** ) समान ( **मन** ) मन के ( **वा** ) समतुल्य और जैसे ( **सप्तविंशति** ) सत्ताइस ( **गन्धर्वा** ) वायु इन्द्रिय और भूतो के धारण करने हारे ( **अस्मिन्** ) इस जगत् मे ( **अग्र** ) पहिले ( **अश्वम** ) व्यापकता और वेगादि गुणो को ( **अयुञ्जन्** ) संयुक्त करते हैं ( **ते** ) वे ही ( **जवम्** ) उत्तम वेग को ( **आदधु** ) धारण करते हैं ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—जो एक समष्टि वायु प्राण अपान व्यान उदान समान नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनंजय ( एकादश ) बारहवां मन तथा इसके साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्मभूत ये सब २७ (सत्ताईस) पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् मे पहिले रचे हैं। जो पुरुष इनके गुण कर्म और स्वभाव को ठीक २ जान और यथायोग्य कार्यों मे संयुक्त करके अपनी २ ही स्त्री के साथ क्रीडा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

वातरंहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिक त्रिष्टुप छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*उस राजा को विद्वान् लोग क्या क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वात॑रꣳहा भव वाजिन् यु॒ज्यमा॑न॒ऽइन्द्र॑स्येव॒ दक्षि॑णः श्रि॒यै॑धि ।**
**यु॒ञ्जन्तु॑ त्वा म॒रुतो॑ वि॒श्ववे॑दस॒ऽआ ते॒ त्वष्टा॑ प॒त्सु ज॒वं द॑धातु ॥८॥**

**पदार्थ**—हे ( **वाजिन** ) शास्त्रोक्त क्रिया कुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन् ! जिस ( **त्वा** ) आपको ( **विश्ववेदस** ) समस्त विद्याओं के जानने हारे ( **मरुत** ) विद्वान् लोग राज्य और शिल्प विद्याओं के कार्यों में ( **युञ्जन्तु** ) युक्त और ( **त्वष्टा** ) वेगादि गुणविद्या का जानने हारा मनुष्य ( **ते** ) आपके ( **पत्सु** ) पगों में ( **जवम** ) वेग को ( **आदधातु** ) अच्छे प्रकार धारण करे। वह आप ( **वातरंहा** ) वायु के समान वेगवाले ( **भव** ) हूजिए और ( **युज्यमान** ) सावधान होके ( **दक्षिण** ) प्रशंसित धर्म के चलने के बल में युक्त होके ( **इन्द्रस्येव** ) परम ऐश्वर्य वाले राजा के समान ( **श्रिया** ) शोभायुक्त राज्य संपत्ति वा वाणी से सहित (**एधि**) वृद्धि को प्राप्त हूजिए ॥ ८ ॥

**भावार्थ** इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजसम्बन्धी सभी पुरुषो ! आप लोग अभिमान रहित और निष्कपट अर्थात् दूसरों की उन्नति देखकर आनन्दवान् होकर विद्वानों के साथ मिलके राजधर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठके अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और राजा को निरन्तर प्रसन्न करके श्रीमान् हुआ कीजिये ॥ ८ ॥

जव इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । वीरो देवता । धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*फिर वह राजा कैसा होवे यह अगले मन्त्र में कहा है*

**ज॒वो यस्ते॑ वाजि॒न्निहि॑तो॒ गुहा॒ यः श्ये॒ने परी॑त्तो॒ऽअच॑रच्च॒ वाते॑ ।**
**तेन॑ नो वाजिन् बल॑वा॒न् बले॑न वाज॒जिच्च॒ भव॒ सम॑ने च पारयि॒ष्णुः ।**
**वा॒जिनो॑ वाजजितो॒ वाजं॑ꣳ सरि॒ष्यन्तो॑ बृह॒स्पते॑र्भा॒गमव॑जिघ्रत ॥९॥**

**पदार्थ**—हे ( **वाजिन** ) श्रेष्ठ शास्त्रबोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन् ! ( **ते** ) आपका ( **य** ) जो ( **जव** ) वेग ( **गुहा** ) बुद्धि मे ( **निहित** ) स्थित है ( **य** ) जो ( **श्येने** ) पक्षी में जैसा ( **परीत** ) सब ओर दिया हुआ ( **च** ) और जैसे ( **वाते** ) वायु मे ( **अचरत** ) विचरता है ( **तेन** ) उस से ( **न** ) हम लोगों के ( **बलेन** ) सेना वा पराक्रम से ( **बलवान्** ) बहुत बल से युक्त ( **भव** ) हूजिये। हे ( **वाजिन्** ) वेगयुक्त राजपुरुष ! उसी बल से ( **समने** ) संग्राम में ( **पारयिष्णु** ) दुःख के पार करने और ( **वाजजित** ) संग्राम के जीतने वाले हूजिये। हे ( **वाजिन** ) प्रशंसित वेग से युक्त योद्धा लोगो ! तुम ( **बृहस्पते** ) बडों की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष की ( **भागम** ) सेवा को प्राप्त होके ( **वाजम** ) बोध वा अन्नादि पदार्थों को ( **सरिष्यन्त** ) प्राप्त होते हुए ( **वाजजित** ) संग्राम के जीतने हारे होओ और सुगन्धियुक्त पदार्थों का ( **अवजिघ्रत** ) सेवन करो ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी होके अपनी सब सभासद् सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर धर्मात्माओं की निरंतर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥९॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । इन्द्राबृहस्पती देवते । विराडुत्कृतिश्छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण करें मूढों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥*

**दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यस॑वसो॒ बृह॒स्पते॑रुत्त॒मं नाक॑ꣳ रुहेयम् ।**
**दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यस॑वस॒ऽइन्द्र॑स्योत्त॒मं नाक॑ꣳ रुहेयम् ।**
**दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो॒ बृह॒स्पते॑रुत्त॒मं नाक॑मरुहम् ।**
**दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवस॒ऽइन्द्र॑स्योत्त॒मं नाक॑मरुहम् ॥ १० ॥**

**पदार्थ**—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! जैसे ( **अहम्** ) मैं सभाध्यक्ष राजा ( **सत्यसवस** ) जिसका ऐश्वर्य और जगत् का कारण सत्य है उस ( **देवस्य** ) सब ओर से प्रकाशमान ( **बृहस्पते** ) बडे प्रकृत्यादि पदार्थों के रक्षक ( **सवितु** ) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के ( **सवे** ) उत्पन्न किये जगत् में ( **उत्तमम्** ) सब से उत्तम ( **नाकम** ) सब दुःखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप को ( **रुहेयम्** ) आरूढ़ होऊं। हे राजा के सभासद लोगो ! जैसे ( **अहम** ) मैं परोपकारी पुरुष ( **सत्यसवस** ) सत्य न्याय से युक्त ( **देवस्य** ) सब सुख देने ( **सवितु** ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेहारे ( **इन्द्रस्य** ) परम ऐश्वर्य के सहित चक्रवर्ती राजा के ( **सवे** ) ऐश्वर्य मे ( **उत्तमम** ) प्रशंसा के योग्य ( **नाकम्** ) दुःख रहित भोग को प्राप्त होके ( **रुहेयम** ) आरूढ होऊं। हे पढने पढाने हारे विद्याप्रिय लोगो ! जैसे (**अहम**) मैं विद्या चाहने हारा जन ( **सत्यप्रसवस** ) जिससे अविनाशी प्रकट बोध हो उस ( **देवस्य** ) सम्पूर्ण विद्या और शुभ गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त (**सवितु**) समग्र विद्याबोध के उत्पन्नकर्त्ता ( **बृहस्पते** ) उत्तम वेदवाणी की रक्षा करने हारे वेदवेदांगोपांगों के पारदर्शी के ( **सवे** ) उत्पन्न किये विज्ञान में ( **उत्तमम** ) सबसे उत्तम ( **नाकम्** ) सब दुःखों से रहित आनन्द को ( **अरुहम** ) आरूढ हुआ हूं। हे विजयप्रिय लोगो ! जैसे ( **अहम** ) मैं योद्धा मनुष्य ( **सत्यप्रसवस** ) जिससे सत्य न्याय विनय और विजयादि उत्पन्न हों उस ( **देवस्य** ) धनुर्वेद युद्धविद्या के प्रकाशक ( **सवितु** ) शत्रुओं के विजय में प्रेरक ( **इन्द्रस्य** ) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे पुरुष की ( **सवे** ) प्रेरणा में ( **उत्तमम्** ) विजयनामक उत्तम ( **नाकम** ) सब सुख देनेहारे संग्राम को ( **अरुहम** ) आरूढ हुआ हूं वैसे आप भी सब लोग आरूढ हूजिये ॥ १० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिए कि परस्पर विरोध को छोड ईश्वर चक्रवर्ती राज्य और समग्र विद्याओं का सेवन करके सब सुखों को प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥ १० ॥

बृहस्पत इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । इन्द्राबृहस्पती देवते । जगती छन्द ।
निषाद स्वर ॥

*अब उपदेश करने और सुननेवालों का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**बृह॑स्पते॒ वाजं॑ जय॒ बृह॒स्पत॑ये॒ वाचं॑ वदत॒ बृह॒स्पतिं॒ वाजं॑ जापयत ।**
**इन्द्र॒ वाजं॑ ज॒येन्द्रा॑य॒ वाचं॑ वद॒तेन्द्रं॒ वाजं॑ जापयत ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **बृहस्पते** ) सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार और उपदेश करने हारे राजपुरुष ! आप ( **वाजम** ) विज्ञान वा संग्राम को ( **जय** ) जीतो। हे विद्वानो ! तुम लोग इस ( **बृहस्पतये** ) राजपुरुष के लिए ( **वाचम्** ) वेदान्त सुशिक्षा से प्रसिद्ध वाणी को ( **वदत** ) पढाओ और उपदेश करो इस ( **बृहस्पतिम** ) राजा वा सर्वोत्तम अध्यापक को ( **वाजम्** ) विद्याबोध व युद्ध को ( **जापयत** ) बढाओ और जिताओ। हे ( **इन्द्र** ) विद्या के ऐश्वर्य का प्रकाश वा शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे राजपुरुष ! आप ( **वाजम** ) परम ऐश्वर्य वा शत्रुओं के विजयरूपी युद्ध को ( **जय** ) जीतो। हे युद्ध विद्या में कुशल विद्वानो ! तुम लोग इस ( **इन्द्राय** ) परम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले राजपुरुष के लिये (**वाजम**) राजधर्म का प्रचार करने हारी वाणी को ( **वदत**) कहो इस (**इन्द्रम** ) राजपुरुष को ( **वाजम** ) संग्राम को (**जापयत**) जिताओ ॥११॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिसमें सब विद्या का प्रचार और शत्रुओं का विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राज्य में वेदादि शास्त्र पढने पढाने की प्रवृत्ति और अपना राजा विजयरूपी आभूषणों से सुशोभित होवे कि जिससे अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार से स्थिर होवे ॥ ११ ॥

एषा व इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषि । इन्द्राबृहस्पती देवते । स्वराडतिधृतिश्छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*मनुष्यों को अति उचित है कि सब समय में सब प्रकार से सत्य ही बोलें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ए॒षा वः॒ सा स॒त्या सं॒वाग॑भू॒द्यया॒ बृह॒स्पतिं॒ वाज॒मजी॑जप॒ताजी॑जप॒त बृह॒स्पतिं॒ वाजं॒ वन॑स्पतयो॒ वि मु॑च्यध्वम् । ए॒षा वः॒ सा स॒त्या सं॒वाग॑भू॒द्ययेन्द्रं॒ वाज॒मजी॑जप॒ताजी॑जप॒तेन्द्रं॒ वाजं॒ वन॑स्पतयो॒ वि मु॑च्यध्वम् ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—हे (**वनस्पतय** ) किरणों के समान न्याय के पालने हारे राजपुरुषो ! तुम लोग ( **यया** ) जिससे (**बृहस्पतिम्**) वेदशास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (**वाजम्**) वेदशास्त्र के बोध को ( **अजीजपत** ) बढाओ (**बृहस्पतिम्** ) बडे राज्य के रक्षक राजपुरुष के संग्राम को ( **अजीजपत** ) जिताओ ( **सा** ) वह ( **एषा** ) पूर्व कही वा आगे जिसको कहेंगे ( **व** ) तुम लोगों की ( **संवाक** ) राजनीति में स्थित अच्छी वाणी (**सत्या**) सत्यस्वरूप ( **अभूत** ) होवे। हे ( **वनस्पतय** ) सूर्य की किरणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राजपुरुषो ! तुम लोग ( **यया** ) जिससे

( इन्द्रम् ) परमैश्वर्य प्राप्त कराने हारे सेनापति को ( वाजम् ) युद्ध को (अजीजपत) जिताओ ( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष को (वाजम्) अत्युत्तम लक्ष्मी को प्राप्त कराने हारे उद्योग को ( अजीजपत ) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें ( सा ) वह ( एषा) आगे पीछे जिसका प्रतिपादन किया है ( वः ) तुम लोगो की ( सवाक ) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करनेवाली वाणी ( सत्या ) सदा सत्यभाषणादि लक्षणों से युक्त ( अभूत ) होवे ॥ १२ ॥

भावार्थ—राजा उसके नौकर और प्रजापुरुषो को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य कभी न होने दें जितना कहे उतना ठीक ठीक करें जिसकी वाणी सब काल मे सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नही होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषो का विश्वास और वे सुखो को नही बढ़ा सकते ॥ १२ ॥

**देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिऋर्षि । सविता देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*राजपुरुषो को चाहिये कि धर्मात्मा राजपुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छबुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जैसे ( अहम ) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण सेनापति ( सत्यप्रसवस ) जिसके बनाये जगत् मे कारणरूप से पदार्थ नित्य हैं उस ( सवितु ) सब ऐश्वर्य को देने ( देवस्य ) सबके प्रकाशक (वाजजित ) विज्ञान आदि से उत्कृष्ट ( बृहस्पते ) उत्तम वेदवाणी के पालन हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य म ( वाजम ) सग्राम को (जेषम् ) जीतूं वैसे तुम लोग भी जीतो । हे (वाजिन ) विज्ञानरूपी वेग से युक्त (वाजजित ) सग्राम को जीतने हारे ! ( योजना ) बहुत कोशो से शत्रुओ का ( मिमाना ) देख और ( अध्वन ) शत्रुओ के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (काष्ठम्) दिशाओ म ( गच्छत ) चलते हो वैसे हम लोग भी चलें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । योद्धा लोग सेनाध्यक्षो के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओ को जीत और उनके मार्गों को रोक सकते हैं और इन अध्यक्षादि राजपुरुषो को चाहिये कि जिस दिशा म शत्रु लोग उपाधि करते हो वहीं जाके उनको वश म करें ॥ १३ ॥

**एष स्येत्यस्य दधिक्रावा ऋषि । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*जब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होवे तभी विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनि । क्रतुं दधिक्राऽअनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥**

पदार्थ—जैसे ( स्य ) वह ( एष ) और यह ( वाजी ) वेगयुक्त (आसनि) मुख और ( ग्रीवायाम् ) कण्ठ म ( बद्ध ) बधा ( क्रतुम् ) कर्म अर्थात् गति का ( ससनिष्यदत ) अतीव फैलाता हुआ ( पथाम् ) मार्गों के ( अङ्कांसि ) चिह्नो को ( अनु ) समीप ( आपनीफणत ) अच्छे प्रकार चलता हुआ ( दधिक्रा ) धारण करने हारो को चलाने हारा घोड़ा ( क्षिपणिम् ) सेना को जाता है वैसे ही ( अपि कक्षे ) इधर उधर के ठीक ठीक अवयवो म सेनापति अपनी सेना को (स्वाहा) सत्य वाणी से ( तुरण्यति ) वेगयुक्त करता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुए वीरपुरुष घोड़ो के समान दौडते हुए शीघ्र शत्रुओ को मार सकते हैं जो सेनापति उत्तम कर्म्म करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषो के साथ ही युद्ध करता वह प्रशसित हुआ विजय को प्राप्त होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥ १४ ॥

**उतेत्यस्य दधिक्रावा ऋषि । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*सेनापति आदि राजपुरुष कैसा पराक्रम कर इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥१५॥**

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! जो ( ऊर्जा ) पराक्रम और ( स्वाहा ) सत्यक्रिया के ( सह ) साथ ( अस्य ) इस ( द्रवत ) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और ( तुरण्यत ) शीघ्र उड़ने वाले ( वे ) पक्षी के ( पर्णम् ) पखो के ( न ) समान ( उत ) और ( प्रगर्धिन ) अत्यन्त इच्छा करने ( ध्रजत ) चाहते हुए ( श्येनस्येव ) बाजपक्षी के समान तथा ( तरित्रत ) अति शीघ्र चलते हुए ( दधिक्राव्ण ) घोड़े के सदृश ( अङ्कसम् ) अच्छे लक्षणयुक्त मार्ग में ( परि अनु, वाति ) सब प्रकार अनुकूल चलता है ( स्म ) वही पुरुष शत्रुओ को जीत सकता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वीर पुरुष नीलकण्ठ श्येनपक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते हैं उनके शत्रुलोग सब ओर से विलाय जाते हैं ॥ १५ ॥

**शन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । बृहस्पतिर्देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने समर्थ होते हैं यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १६ ॥**

पदार्थ—जो (मितद्रव ) नियम से चलने (स्वर्का ) जिनका अन्न वा सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग ( अहिम् ) मेघ के समान चेष्टा करते और बढ़े हुए (वृकम्) चोर और ( रक्षांसि ) दूसरो का क्लेश देने हारे डाकुओ के ( जम्भयन्त ) हाथ-पांव तोड़ते हुए ( वाजिन ) श्रेष्ठ युद्धविद्या के जाननेवाले वीर पुरुष ( न ) हम ( देवताता ) विद्वान् लोगो के कर्मों तथा ( हवेषु ) सग्रामो मे ( सनेमि ) सनातन (शम्) सुख को ( भवन्तु ) प्राप्त होवें ( अस्मत ) हमारे लिये ( अमीवा ) रोगो के समान वर्त्तमान शत्रुओ को ( युयवन् ) पृथक करें ॥ १६ ॥

भावार्थ—श्रेष्ठ प्रजापुरुषो के पालन म तत्पर और रोगो के समान शत्रुओ के नाश करनेहारे राजपुरुष ही सबको सुख दे सकते हैं अन्य नही ॥ १६ ॥

**ते न इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषि । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर देवें और इसीलिये राजपुरुष ग्रहण करें अन्यथा नहीं यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ते नोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः । सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे ॥१७॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( अर्वन्त ) ज्ञानवान् ( हवनश्रुत ) ग्रहण करने योग्य शास्त्रो का सुनने ( वाजिन ) प्रशसित बुद्धिमान् ( मितद्रव ) शास्त्रयुक्त विषय को प्राप्त होने ( सहस्रसा ) असंख्य विद्या के विषयो के सेवने और ( सनिष्यव ) अपने आत्मा की सुन्दर भक्ति करनेहारे राजपुरुष ( मेधसाता ) समागमो के दान से युक्त ( समिथेषु ) सग्रामो मे ( न ) हमारे बड़े ( धनम ) ऐश्वर्य्य को ( जभ्रिरे ) धारण करें वे ( विश्वे ) सब विद्वान् लोग हमारा ( हवम ) पढने पढ़ाने से होने वाले बोध शब्दो और वादी प्रतिवादियो के विवाद को ( शृण्वन्तु ) सुनें ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो ये राजपुरुष हम लोगो से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करें नही तो न लें हम भी उनको कर न देवें । इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर लेना चाहिये अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह निश्चित है ॥ १७ ॥

**वाजेवाज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । बृहस्पतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस मे कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१८॥**

पदार्थ—हे (ऋतज्ञा ) सत्यविद्या के जानने हारे ( अमृता ) अपने २ स्वरूप से नाशरहित जीते ही मुक्तिसुख को प्राप्त ( वाजिन ) वेगयुक्त (विप्रा ) विद्या और अच्छी शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो ! तुमलोग (वाजे वाजे) सग्राम सग्राम के बीच ( न ) हमारी ( अवत ) रक्षा करो ( अस्य ) इस ( मध्व ) मधुर रस को ( पिबत ) पीओ । हमारे धनो से ( तृप्ता ) तृप्त होके ( मादयध्वम ) आनन्दित होओ और ( देवयान ) जिनमे विद्वान् लोग चलते हैं उन ( पथिभि ) मार्गों से सदा ( यात ) चलो ॥ १८ ॥

भावार्थ—राजपुरुषो को चाहिये कि वेदादि शास्त्रो को पढ और सुन्दर शिक्षा से ठीक ठीक बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा विद्वानो के मार्ग से सदा चलें अन्य मार्ग से नही । तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्न आदि से युक्त रसो का सेवन कर प्रजा की रक्षा मे ही आनन्द को प्राप्त होवें और प्रजापुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रक्खें ॥ १८ ॥

**आ मा वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । प्रजापतिर्देवता । निचृद्धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*मनुष्यों को धर्माचरण से किस किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे । आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमोऽअमृतत्वेन गम्यात् । वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥१९॥**

पदार्थ—हे पूर्वोक्त विद्वान् लोगो ! जिन आप लोगो के सहाय से ( वाजस्य ) वेदादि शास्त्रो के अर्थों के बोधों का ( प्रसव ) सुन्दर ऐश्वर्य्य ( मा ) मुझ को ( आगम्यात् ) शीघ्र प्राप्त होवे ( इमे ) ये ( विश्वरूपे) सब रूप विषयो के सम्बन्धी ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमि का राज्य ( च ) और ( अमृतत्वेन ) सब रोगो की निवृत्तिकारक गुण के साथ ( सोम ) सोमवल्ली आदि ओषधि विज्ञान मुझको प्राप्त हो और ( पितरा मातरा ) विद्यायुक्त पिता माता ( आगन्ताम् ) प्राप्त होवें

वे आप ( आजिन ) प्रशंसित बलवान् ( वाजजित ) संग्राम के जीतनेवाले (वाजम) संग्राम को प्राप्त हुए ( निमृजाना ) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (बृहस्पते) बड़ी सेना के स्वामी के ( भागम ) सेवन योग्य भाग को ( अवजिघ्रत ) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का आचरण करते हैं उनको इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य्य का साधक राज्य विद्वान् माता पिता और नीरोगता प्राप्त होती है । जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं । इस से विरुद्ध चलने हारे नहीं ॥ १९ ॥

**आपय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिक्कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥**

*विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या क्या प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझको ( आपये ) सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया ( स्वापये ) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते ( स्वाहा ) धर्मयुक्त क्रिया ( क्रतवे ) बुद्धि बढ़ने के लिये ( स्वाहा ) पढ़ाने की प्रवृत्ति करानेहारी क्रिया ( वसवे ) विद्या निवास के लिये ( स्वाहा ) सत्य वाणी ( अहर्पतये ) पुरुषार्थपूर्वक गणितविद्या से दिन पालने के लिये कालगति को जानने हारी वाणी (मुग्धाय) मोह प्राप्ति के निमित्त (अह्ने) दिन होने के लिये ( स्वाहा ) विज्ञानयुक्त वाणी ( वैनंशिनाय ) नष्टस्वभावयुक्त कर्मों में रहने हारे ( मुग्धाय ) मूढ़ के लिये ( स्वाहा ) चिताने वाली वाणी ( आन्त्यायनाय ) नीच प्राप्ति वाले ( विनंशिने ) नष्टस्वभावयुक्त पुरुष के लिये ( स्वाहा ) पदार्थों को जानने हारी वाणी ( भुवनस्य पतये ) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये ( स्वाहा ) योगविद्या को प्रकट करने हारी बुद्धि और ( अधिपतये ) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहनेवाले पुरुष के लिये ( स्वाहा ) सब व्यवहारों को जनाने हारी वाणी ( गम्यात ) प्राप्त होवे वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़कर किया करो ॥ २० ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवें कि जिससे सब सुख सदा मिलते रहें ॥ २० ॥

**आयुर्यज्ञेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । यज्ञो देवता । अत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापते प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम्हारी ( आयु ) अवस्था (यज्ञेन) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर ( कल्पताम ) समर्थ होवे ( प्राण ) जीवन का हेतु बलकारी प्राण ( यज्ञेन ) धर्मयुक्त विद्याभ्यास से ( कल्पताम ) समर्थ होवे ( चक्षु ) नेत्र ( यज्ञेन ) प्रत्यक्ष विषय के शिष्टाचार से ( कल्पताम ) समर्थ हो ( श्रोत्रम ) कान ( यज्ञेन ) वेदाभ्यास से ( कल्पताम ) समर्थ हो और ( पृष्ठम ) पूछना ( यज्ञेन ) संवाद से ( कल्पताम ) समर्थ हो ( यज्ञ ) यज धातु का अर्थ ( यज्ञेन ) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से ( कल्पताम ) समर्थित हो जैसे हम लोग ( प्रजापते ) सब के पालने हारे ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के ( प्रजा ) पालने योग्य सन्तानों के सदृश ( अभूम ) होवें तथा ( देवा ) विद्वान् हुए ( अमृता ) जीवन मरण से छूटे (स्व) मोक्ष सुख को ( अगन्म ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष ही की प्रजा होओ अन्य किसी मूर्ख क्षुद्राशय पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो । जैसे मुझको न्यायाधीश मान मेरी आज्ञा में वर्त्तो और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो वैसे जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे उसी को सभापति राजा मानो ॥ २१ ॥

**अस्मे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । दिशो देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाꣳसि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर ( कृष्यै ) खेती के लिये ( त्वा ) तुझे ( क्षेमाय ) रक्षा के लिये ( त्वा ) तुझे ( रय्यै ) सम्पत्ति के लिये ( त्वा ) तुझे और ( पोषाय ) पुष्टि के लिये ( त्वा ) तुझको नियुक्त करता हूँ । जो तू ( ध्रुव ) दृढ़ ( यन्ता ) नियमों से चलनेहारा ( असि ) है ( धरुण ) धारण करनेवाला ( यमन ) उद्योगी ( असि ) है जिस ( ते ) तेरी ( इयम ) यह ( राट ) शोभायुक्त है इस ( मात्रे ) मान्य की हेतु ( पृथिव्यै ) विस्तारयुक्त भूमि में ( नम ) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हो इस ( मात्रे ) मान्य देनेहारी ( पृथिव्यै ) पृथिवी को अर्थात् भूगर्भ विद्या को जान के इससे ( नम ) अन्न जलादि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वर्त्तो कि जो ( अस्मे ) हमारे ( इन्द्रियम ) मन आदि इन्द्रिय हैं वे ( व ) तुम्हारे लिये हो जो ( अस्मे ) हमारा ( नृम्णम् ) धन है वह ( व ) तुम्हारे लिये हो ( उत ) और जो ( अस्मे ) हमारे ( क्रतु ) बुद्धि वा कर्म हैं ( व ) तुम्हारे हित के लिये हो जो हमारे ( वर्चांसि ) पढ़ा पढ़ाया और अन्न हैं वे ( व ) तुम्हारे लिये ( सन्तु ) हों जो यह सब तुम्हारा है वह हमारा भी है ऐसा आचरण आपस में करो ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हों उनकी रक्षा करके यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो वैसा यत्न करो । कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्य्य सिद्ध कर उसको तुम भी किया करो ॥२२॥

**वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । प्रजापतिर्देवता । स्वराड् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर उनको इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु । ताऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं ( अग्रे ) प्रथम ( प्रसव ) ऐश्वर्य्ययुक्त होकर ( वाजस्य ) वैद्यकशास्त्र बोधसम्बन्धी ( इमम ) इस ( सोमम ) चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करनेहारे ( राजानम ) विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को ( सुषुवे ) ऐश्वर्य्ययुक्त करता हूँ । जैसे उसकी रक्षा में (ओषधीषु) पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाले यव आदि ओषधियों और ( अप्सु ) जलों के बीच वर्त्तमान ओषधि हैं ( ता ) वे ( अस्मभ्यम ) हमारे लिये ( मधुमती ) प्रशस्त मधुर गुणवाली ( भवन्तु ) हों । जैसे ( स्वाहा ) सत्य क्रिया के साथ ( पुरोहिता ) सबके हितकारी हम लोग ( राष्ट्रे ) राज्य में निरन्तर ( जागृयाम ) आलस्य छोड़कर जागते रहें वैसे तुम भी यत्न करो ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—शिष्ट मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं की चतुराई रागरहित और सुन्दर गुणों से शोभायमान पुरुष को राज्याधिकार देकर उसकी रक्षा करनेवाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे इसके शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का प्रवेश न हो । इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्री आदि भृत्यों और प्रजाजनों को रोगरहित करें । जिस से ये राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहें राजा और प्रजा के पुरुष परस्पर पिता पुत्र के समान सदा वर्त्तें ॥२३॥

**वाजस्येमामित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिग्जगतीछन्द । निषाद स्वर ॥**

*राजा किसका आश्रय लेकर किसके साथ क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् । अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! जैसे ( वाजस्य ) राज्य के मध्य में ( प्रसव ) उत्पन्न हुए ( सम्राट ) अच्छे प्रकार राजधर्म में प्रवर्त्तमान मैं ( इमाम ) इस भूमि को ( दिवम ) प्रकाशित और ( इमा ) इन ( विश्वा ) सब और ( भुवनानि ) घरों का ( शिश्रिये ) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूँ वैसे तुम भी इसको अच्छे प्रकार शोभित करो और जो ( स्वाहा ) धर्म्मयुक्त सत्यवाणी से ( प्रजानन् ) जानता हुआ ( अदित्सन्तम् ) राज्य कर देने की इच्छा न करनेवाले से ( दापयति ) दिलाता है ( स ) सो ( न ) हमारे ( सर्ववीरम ) सब वीरों के प्राप्त कराने हारे ( रयिम ) धन का ( नियच्छतु ) ग्रहण करे ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जानकर जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्ती राजा करो और जो कर देनेवालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने को योग्य होवे जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ हो उसे सेनापति करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष करो ॥ २४ ॥

**वाजस्य न्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । प्रजापतिर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानोऽअस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—जो ( वाजस्य ) वेदादि शास्त्रों से उत्पन्न बोध को (स्वाहा) सत्यनीति से ( प्रसव ) प्राप्त होकर ( विद्वान् ) सम्पूर्ण विद्या को जानने वाला पुरुष

…ा ) अच्छे प्रकार ( बभूव ) होवे ( च ) और ( इमा ) इन ( विश्वा ) सब ( भुवनानि ) माण्डलिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्मसहित …मान ( प्रजाम ) पालन योग्य प्रजाओं का ( पुष्टिम् ) पोषण ( नु ) शीघ्र ( वर्धयमान ) बढ़ाता हुआ ( परि ) सब ओर से ( याति ) प्राप्त होता है वह ( अस्मे ) हम लोगों का राजा होवे ॥ २५ ॥

भावार्थ—ईश्वर सबसे उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम जो प्रशस्त गुण कर्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो उसको सभाध्यक्ष करके आप्तनीति से चक्रवर्ती राज्य करो ॥ २५ ॥

**सोममित्यस्य तापस ऋषि । सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयो देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर कैसे राजा का स्वीकार कर इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सोम॑ᳬ राजा॑नुमव॑सेऽग्निम॒न्वार॑भामहे ।**
**आ॒दि॒त्यान्विष्णु॑ᳬ सूर्य्यं॑ ब्र॒ह्माणं॑ च॒ बृह॒स्पति॑ᳬ स्वाहा॑ ॥२६॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (अवसे) रक्षा आदि के अर्थ ( विष्णुम् ) व्यापक परमेश्वर (सूर्य्यम्) विद्वानों में सूर्यवत् विद्वान् ( ब्रह्माणम् ) साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़नेवाले ( बृहस्पतिम ) बड़ों के रक्षक ( अग्निम् ) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले ( सोमम् ) शान्त गुणसम्पन्न ( राजानम ) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और ( आदित्यान् ) विद्या के लिए जिनने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रख कर पूर्ण विद्या पढ़ सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पढ़ के गृहाश्रम का ( आरभामहे ) आरम्भ करें वैसे तुम भी किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिए ब्रह्मचर्य्य व्रतादि से विद्या के पारग हों विद्वानों के बीच जिसने अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रत किया हो उस राजा का स्वीकार करके सच्ची नीति को बढ़ावें ॥ २६ ॥

**अर्यमणमित्यस्य तापस ऋषि । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवता । स्वराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर राजा किन को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अ॒र्य्यम॑णं॒ बृह॒स्पति॒मिन्द्रं॒ दाना॑य चोदय ।**
**वाचं॒ विष्णु॒ᳬ सर॑स्वतीᳬ सवि॒तारं॑ च वा॒जिन॒ᳬ स्वाहा॑ ॥ २७ ॥**

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( स्वाहा ) सत्य नीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिए ( अर्य्यमणम ) पक्षपातरहित न्याय करने ( बृहस्पतिम ) सब विद्याओं को पढ़ाने ( इन्द्रम ) बड़े ऐश्वर्ययुक्त ( वाचम ) वेदवाणी (विष्णुम) सब के अधिष्ठाता ( सवितारम ) वेदविद्या तथा सब ऐश्वर्य उत्पन्न करने ( वाजिनम ) अच्छे बल वेग से युक्त शूरवीर और ( सरस्वतीम ) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विज्ञानयुक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में ( चोदय ) सदा प्रेरणा किया कीजिए ॥२७॥

भावार्थ—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् होकर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रेरणा करे जिससे विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हो ॥ २७ ॥

**अग्न इत्यस्य तापस ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ।**

*फिर वह राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने॒ऽअच्छा॑ वदे॒ह न॑ प्र॒ति न॑ सु॒मना॑ भव ।**
**प्र नो॑ यच्छ सहस्रजित् त्वᳬ हि ध॑न॒दाऽअसि॒ स्वाहा॑ ॥ २८ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् आप ( इह ) इस समय में ( स्वाहा ) सत्य वाणी से ( न ) हम को ( अच्छ ) अच्छे प्रकार ( वद ) सत्य उपदेश कीजिये ( न ) हमारे ऊपर ( सुमना ) मित्रभावयुक्त ( भव ) हूजिए ( हि ) जिस से (सहस्रजित) आप बिना सहाय हजार को जीतने (धनदा ) ऐश्वर्य देने वाले (असि) हैं इससे ( न ) हमारे लिए ( प्रयच्छ ) दीजिए ॥ २८ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्यप्रिय वचन कहें उन को धन दें उस से धन लें शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और नित्य शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा को पालें ॥ २८ ॥

**प्र न इत्यस्य तापस ऋषि । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प्र नो॑ यच्छत्वर्य्य॒मा प्र पू॒षा प्र बृह॒स्पति॑ः । प्र वाग्दे॒वी द॑दातु नः॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥**

पदार्थ—जैसे ( अर्य्यमा ) न्यायाधीश ( न ) हमारे लिए उत्तम शिक्षा ( प्रयच्छतु ) देवे जैसे ( पूषा ) पोषण करनेवाला शरीर और आत्मा की पुष्टि की शिक्षा ( प्र ) अच्छे प्रकार देवे जैसे ( बृहस्पति ) विद्वान् ( प्र स्वाहा ) अत्युत्तम विद्या देवे वैसे ( वाक ) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त ( देवी ) प्रकाशमान पढ़ानेवाली माता हमारे लिए सत्यविद्यायुक्त वाणी का ( प्रददातु ) उपदेश सदा किया करे ॥ २९ ॥

भावार्थ—यहाँ जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य सत्य उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को निरन्तर ग्रहण करावें जिससे प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द में रहें ॥ २९ ॥

**देवस्यत्यस्य तापस ऋषि । सम्राड देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर कहाँ कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।**
**सर॑स्वत्यै वा॒चो य॒न्तुर्य॒न्त्रियें॑ दधामि॒ बृह॒स्पते॑ष्ट्वा॒ साम्रा॑ज्येना॒भि-**
**षि॑ञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥**

पदार्थ—हे सब अच्छे गुण स्वभावयुक्त विद्वन् ! ( असौ ) यह मैं (सवितु ) सब जगत के उत्पन्न करने वाले ईश्वर ( देवस्य ) प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किए संसार में ( सरस्वत्यै ) अच्छे प्रकार शिल्पविद्यायुक्त (वाच ) वेदवाणी के मध्य ( अश्विनो ) सूर्य्य चन्द्रमा के समान धारण पोषण गुणयुक्त (हस्ताभ्याम्) हाथों से ( त्वा ) तुम को ( दधामि ) धारण करता हूँ और (बृहस्पते ) बड़े विद्वान् के ( यन्त्रिये ) कारीगरी विद्या से सिद्ध किए राज्य में ( साम्राज्येन ) चक्रवर्ती राजा के गुण से सहित ( त्वा ) तुझ को ( अभि ) सब ओर से (सिञ्चामि) सुगन्धित रसों से मार्जन करता हूँ ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर से प्रेमी बल पराक्रम पुष्टियुक्त चतुर सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजापालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिए अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें ॥३०॥

**अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषि । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवता । अत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अ॒ग्निरेका॑क्षरेण प्रा॒णमुद॑जय॒त् तमुज्जे॑षम॒श्विनौ॒ द्व्य॑क्षरेण द्वि॒पदो॑**
**म॒नु॒ष्या॒नुद॑जयतां॒ तानुज्जे॑षं॒ विष्णु॒स्त्र्य॑क्षरेण॒ त्रीँल्लो॒कानुद॑जय॒त्तानु-**
**ज्जे॑षᳬ सोम॒श्चतु॑रक्षरेण॒ चतु॑ष्पदः प॒शूनुद॑जय॒त्तानुज्जे॑षम् ॥३१॥**

पदार्थ—हे राजन् ! ( अग्नि ) अग्नि के समान वर्त्तमान आप जैसे (एकाक्षरेण ) विनाशरहित एक अक्षर की दैवी गायत्री छन्द से ( प्राणम् ) शरीर में स्थित वायु के समान प्रजाजनों को ( उत् अजयम् ) उत्तम नीति से ( अजयत ) उत्तम करें वैसे ( तम् ) उसको मैं भी ( उत् जेषम् ) उत्तम करूं । हे राजप्रजाजनो ! ( अश्विनौ ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान आप जैसे ( द्व्यक्षरेण ) दो अक्षर की दैवी उष्णिक छन्द से जिन ( द्विपद ) दो पग वाले ( मनुष्यान् ) मननशील मनुष्यों को ( उज्जयताम् ) उत्तम करो वैसे ( तान् ) उनको मैं भी ( उज्जेषम् ) उत्तम करूं । हे सर्वप्रधान पुरुष ! ( विष्णु ) परमेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे ( त्र्यक्षरेण ) तीन अक्षर की दैवी अनुष्टुप छन्द से जिन ( त्रीन् ) जन्म स्थान और नामवाची ( लोकान् ) देखने योग्य लोकों को ( उदजयत ) उत्तम करते हो वैसे ( तान् ) उनको मैं भी ( उज्जेषम् ) उत्तम करूं । हे ( सोम ) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले न्यायाधीश ! आप जैसे ( पशून् ) हिरणादि पशुओं को (उदजयत) उत्तम करते हो वैसे ( तान् ) उनको मैं भी ( उज्जेषम् ) उत्तम करूं ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ावे तो उसको भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उसको प्रजा भी कभी न बढ़ावे ॥३१॥

**पूषेत्यस्य तापस ऋषि । पूषादयो मन्त्रोक्ता देवता । कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर राजा और प्रजाजन किनके दृष्टान्तों से क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**पू॒षा पञ्चा॑क्षरेण॒ पञ्च॒ दिश॒ऽउद॑जय॒त्ताऽउज्जे॑षᳬ सवि॒ता षड॑क्ष-**
**रेण॒ षड् ऋ॒तूनुद॑जय॒त्तानुज्जे॑षं म॒रुतः॑ स॒प्ताक्ष॑रेण स॒प्त ग्रा॒म्यान्**
**प॒शूनुद॑जयँ॒स्तानुज्जे॑षं॒ बृह॒स्पति॑र॒ष्टाक्ष॑रेण गाय॒त्रीमुद॑जय॒त्तामुज्जे॑षम् ॥३२**

पदार्थ—हे राजन् ! ( पूषा ) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करनेवाले आप जैसे ( पञ्चाक्षरेण ) पाँच अक्षर की दैवी पङ्क्ति से ( पञ्च ) पूर्वादि चार और एक ऊपर नीचे की ( दिश ) दिशाओं को ( उदजयत ) उत्तम कीर्त्ति से भरते हो वैसे ( ता ) उनको मैं भी ( उज्जेषम् ) श्रेष्ठ कीर्त्ति से भर देऊं । हे राजन् ! ( सविता ) सूर्य्य के समान आप जैसे ( षडक्षरेण ) छः अक्षरों की दैवी त्रिष्टुप से जिन ( षट् ) छः ( ऋतून् ) वसन्तादि ऋतुओं को ( उदजयत ) शुद्ध करते हो वैसे ( तान् ) उनको मैं भी ( उज्जेषम् ) शुद्ध करूं । हे सभाजनो ! ( मरुत )

वायु के समान आप जैसे ( **सप्ताक्षरेण** ) सात अक्षरो की दैवी जगती से ( **सप्त** ) गाय घोडा भैस ऊंट बकरी, भेड और गधा इन सात ( **ग्राम्यान्** ) गाँव के ( **पशून्** ) पशुओ को ( **उदजयत्** ) बढाते हो वसे ( **तान्** ) उनका मै भी बढाऊँ। हे सभेश ! ( **बृहस्पति** ) समस्त विद्याओ के जाननेवाले विद्वान् के समान आप जैसे ( **अष्टाक्षरेण** ) आठ अक्षरो की यजुषी अनुष्टुप से जिस ( **गायत्रीम्** ) गान करनेवाले की रक्षा करनेवाली विद्वान् स्त्री की ( **उदजयत** ) प्रतिष्ठा करते हो वैसे ( **ताम्** ) उसकी मैं भी ( **उज्जेषम्** ) प्रतिष्ठा करू ॥३२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो राजा सब का पोषक जिसकी सब दिशाओ मे कीर्ति ऐश्वर्य्ययुक्त सभा के कामो मे चतुर पशुओ का रक्षक और वेदो का ज्ञाता हो उसी को राजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उन्नति देवें ॥३२॥

**मित्र इत्यस्य तापस ऋषि । मित्रादयो मन्त्रोक्ता देवता । कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥**

*राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत॑ꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! ( **मित्र** ) सबके हितकारी आप जसे ( **नवाक्षरेण** ) नव अक्षर की याजुषी बृहती से जिस ( **त्रिवृतम** ) कर्म्म उपासना और ज्ञान के ( **स्तोमम्** ) स्तुति के योग को ( **उदजयत** ) उत्तमता से जानते हो वसे ( **ताम** ) उसको मै भी ( **उज्जेषम्** ) अच्छे प्रकार जानू । हे प्रशंसा के योग्य सभेश ! ( **वरुण** ) सब प्रकार से श्रेष्ठ आप जैसे ( **दशाक्षरेण** ) दश अक्षरो की याजुषी पङ्क्ति से जिस ( **विराजम्** ) विराट छन्द से प्रतिपादित अर्थ को ( **उदजयत** ) प्राप्त हुए हो वसे ( **ताम** ) उसको मै भी ( **उज्जेषम** ) प्राप्त होऊ ( **इन्द्र** ) परम ऐश्वर्य्य देने वाले आप जसे ( **एकादशाक्षरेण** ) ग्यारह अक्षरो की आसुरी पङ्क्ति से जिस ( **त्रिष्टुभम्** ) त्रिष्टुप छन्द वाची को ( **उदजयत** ) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे ( **ताम** ) उसको मै भी ( **उज्जेषम** ) अच्छे प्रकार जानू । हे सभ्य जनो ( **विश्वे** ) सब ( **देवा** ) विद्वानो ! आप जसे ( **द्वादशाक्षरेण** ) बारह अक्षरो की साम्नी गायत्री से जिस ( **जगतीम्** ) जगती से कही हुई नीति का ( **उदजयत** ) प्रचार करते हो वैसे ( **ताम** ) उसको मैं भी ( **उज्जेषम** ) प्रचार करू ॥२३॥

**भावार्थ**—राजपुरुषो को चाहिये कि सब प्राणियो मे मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजाजनो को उत्तम गुणयुक्त विद्वान् करें जिससे ये ऐश्वर्य्य के भागी होकर राजभक्त हो ॥२३॥

**वसव इत्यस्य तापस ऋषि । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवता । वसव इत्यस्य निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर । आदित्या इत्यस्य निचृदतिशक्वरी छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर भी राजा और प्रजा के धर्म्म कार्य का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदश॑ꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दश॑ꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम् । आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदश॑ꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडश॑ꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदश॑ꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे राजादि सभ्य जनो ( **वसव** ) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढनेवाले विद्वानो ! आप लोग जसे ( **त्रयोदशाक्षरेण** ) तेरह अक्षरो की आसुरी अनुष्टुप वेदस्थ छन्द से जिस ( **त्रयोदशम** ) दश प्राण जीव महत्तत्त्व और अव्यक्त कारणरूप ( **स्तोमम्** ) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को ( **उदजयन्** ) श्रेष्ठता से जानें वैसे ( **तम** ) उसको मै भी ( **उज्जेषम** ) उत्तमता से जानू । हे बल पराक्रम और पुरुषार्थयुक्त ( **रुद्रा** ) चवालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढने हारे विद्वानो ! जैसे आप ( **चतुर्दशाक्षरेण** ) चौदह अक्षरो की साम्नी उष्णिक छन्द से ( **चतुर्दशम** ) दश इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त और अहङ्काररूप ( **स्तोमम** ) प्रशंसा के योग्य पदार्थविद्या को ( **उदजयन्** ) प्रशंसित करें वसे मै भी ( **तम** ) उसको ( **उज्जेषम्** ) प्रशंसित करू । हे ( **आदित्या** ) अडतालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओ का ग्रहण करने हारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य्य के समान प्रकाशमान विद्वानो ! आप लोग जसे ( **पञ्चदशाक्षरेण** ) पन्द्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से ( **पञ्चदशम** ) चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद गांधर्ववेद (गानविद्या) तथा अर्थवेद (शिल्पशास्त्र) छः अङ्ग (शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष) मिल के चौदह उनका सब्याख्यापूर्वक पन्द्रहवा क्रियाकुशलतारूप ( **स्तोमम्** ) स्तुति के योग्य को ( **उदजयन्** ) अच्छे प्रकार से जानें वसे मै भी ( **तम** ) उसको ( **उज्जेषम** ) अच्छे प्रकार जानू । हे ( **अदिति** ) आत्मरूप से नाशरहित सभाध्यक्ष राजा की विदुषी स्त्री अखण्डित ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप जस ( **षोडशाऽक्षरेण** ) सोलह अक्षर की साम्नी अनुष्टुप् से ( **षोडशम्** ) प्रमाण, प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्त अवयव तर्क निर्णय वाद जल्प, वितण्डा हेत्वाभास छल जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों की व्याख्यायुक्त ( **स्तोमम्** ) प्रशंसा के योग्य को ( **उदजयत्** ) उत्तमता से जानें वसे मैं भी ( **तम** ) उसको ( **उज्जेषम्** ) उत्तमता से जानू । हे नरेश ! ( **प्रजापति** ) प्रजा के रक्षक आप जैसे ( **सप्तदशाक्षरेण** ) सत्रह अक्षरो की निचृदार्षी छन्द से ( **सप्तदशम्** ) चार वर्ण, चार आश्रम, सुनना विचारना, ध्यान करना अप्राप्त की इच्छा प्राप्त का रक्षण रक्षित का बढाना, बढे हुए को अच्छे मार्ग से सबके उपकार मे खर्च करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष का अनुष्ठानरूप ( **स्तोमम** ) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जानें वैसे मैं भी ( **उज्जेषम्** ) उत्तमता से जानू ॥३४॥

**भावार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मन्त्रो से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उसका अनुष्ठान कर तुम सुखी होओ ॥३४॥

**एष त इत्यस्य वरुण ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृदुत्कृतिश्छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*कैसा मनुष्य चक्रवर्ती राज्य सेवने को योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **निर्ऋते** ) सदैव सत्याचरणयुक्त राजन् ! ( **ते** ) आपका जो ( **एष** ) यह ( **भाग** ) सेवने योग्य है उसका ( **अग्निनेत्रेभ्य** ) अग्नि के प्रकाश के समान नीतियुक्त ( **देवेभ्य** ) विद्वानो से ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी ( **पुर सद्भ्य** ) जो प्रथम सभा वा राज्य मे स्थित हो उन ( **देवेभ्य** ) न्यायाधीश विद्वानो से ( **स्वाहा** ) धर्मयुक्त क्रिया ( **यमनेत्रेभ्य** ) जिनकी वायु के समान सर्वत्र गति ( **दक्षिणासद्भ्य** ) जो दक्षिण दिशा मे राजप्रबन्ध के लिये स्थित हो उन ( **देवेभ्य** ) विद्वानो से ( **स्वाहा** ) दानक्रिया ( **विश्वदेवनेत्रेभ्य** ) सब विद्वानो के तुल्य नीति के ज्ञानी ( **पश्चात्सद्भ्य** ) जो पश्चिम दिशा मे राजकर्मचारी हो उन ( **देवेभ्य** ) दिव्य सुख देनेहारे विद्वानो से ( **स्वाहा** ) उत्साहकारक वाणी ( **मित्रावरुणनेत्रेभ्य** ) प्राण और अपान के समान वा ( **मरुन्नेत्रेभ्य** ) ऋत्विक यज्ञ के कर्त्ता ( **वा** ) सत्पुरुष के समान न्यायकारक वा ( **उत्तरासद्भ्य** ) जो उत्तम दिशा मे न्यायाधीश हो उन ( **देवेभ्य** ) विद्वानो से दूतकर्म की कुशल क्रिया ( **सोमनेत्रेभ्य** ) चन्द्रमा के समान ऐश्वर्य्ययुक्त होकर सब को आनन्ददायक ( **उपरिसद्भ्य** ) विद्या विनय धर्म और ईश्वर की सेवा करने हारे ( **देवेभ्य** ) विद्वानो से ( **स्वाहा** ) आप्त पुरुषो की वाणी को प्राप्त होके तू सदा धर्म का ( **जुषस्व** ) सेवन किया कर ॥३५॥

**भावार्थ**—हे राजन् सभाध्यक्ष ! जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानो से युक्त होकर सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त सभा का करने हारा सेना का रक्षक उत्तम सहाय से सहित होकर सनातन वेदोक्त राजधर्मनीति से प्रजा का पालन कर इस लोक और परलोक मे सुख ही को प्राप्त होवे जो कर्म से विरुद्ध रहेगा तो तुझ को सुख भी न होगा । कोई भी मनुष्य मूर्खों के सहाय से सुख की वृद्धि नही कर सकता और न कभी विद्वानो के अनुसार चलनेवाला मनुष्य सुख को छोड देता है इस से राजा सर्वदा विद्या धर्म और आप्त विद्वानो के सहाय से राज्य की रक्षा किया करे। जिसकी सभा वा राज्य मे पूर्णविद्यायुक्त धार्मिक मनुष्य सभासद् वा कर्मचारी होते हैं और जिसके सभा वा राज्य मे मिथ्यावादी व्यभिचारी अजितेन्द्रिय कठोर वचनो के बोलनेवाले अन्यायकारी चोर और डाकू आदि नही होते और आप भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वही पुरुष चक्रवर्ती राज्य करने के योग्य होता है इससे विरुद्ध नही ॥३५॥

**ये देवा इत्यस्य वरुण ऋषि । विश्वेदेवा देवता । विकृतिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*मनुष्य लोग सर्वत्र घूमधाम कर विद्या ग्रहण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**ये देवाऽअग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥**

**पदार्थ**—हे सभाध्यक्ष राजन् ! आप ( **ये** ) जो ( **अग्निनेत्रा** ) बिजुली आदि पदार्थों के समान जाननेवाले ( **पुर सद** ) जो सभा वा देश वा पूर्व की दिशा में स्थित ( **देवा** ) विद्वान् हैं ( **तेभ्य** ) उनसे ( **स्वाहा** ) सत्यवाणी ( **ये** ) जो ( **यमनेत्रा** ) अहिंसादि योगाङ्ग रीतियों मे निपुण ( **दक्षिणासद** ) दक्षिण दिशा मे स्थित ( **देवा** ) योगी और न्यायाधीश हैं ( **तेभ्य** ) उनसे ( **स्वाहा** ) सत्यक्रिया ( **ये** ) जो ( **पश्चात्सद** ) पश्चिम दिशा मे ( **विश्वदेवनेत्रा** ) सब पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता ( **देवा** ) सब विद्या जानने वाले विद्वान् हैं ( **तेभ्य** ) उनसे ( **स्वाहा** ) दण्डनीति ( **ये** ) जो ( **उत्तरासद** ) प्रश्नोत्तरो का समाधान करनेवाले उत्तर दिशा मे ( **वा** ) नीचे ऊपर स्थित ( **मित्रावरुणनेत्रा** ) प्राण उदान के समान सब धर्मों के बनाने वाले ( **वा** ) अथवा ( **मरुन्नेत्रा** ) ब्रह्माण्ड के वायु में तेज-

विज्ञान और ( वेधा ) सब को सुख देनेवाले विद्वान् हैं ( तेभ्य ) उनसे ( स्वाहा ) सबके उपकारक विद्या को सेवन करो और ( य ) जो ( उपरिसद ) ऊंचे आसन वा व्यवहार मे स्थित ( दुवस्वन्त ) बहुत प्रकार से धर्म के सेवन से युक्त ( सोम वेधा ) सोम आदि ओषधियो के जानने तथा ( वेधा ) आयुर्वेद को जाननेहारे हैं उनसे ( स्वाहा ) अमृतरूपी ओषधिविद्या का सेवन कीजिये ॥३६॥

**भावार्थ**—हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान् होकर सब दिशाओ मे स्थित सब विद्याओ के जाननेवाले आप विद्वानो की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओ को प्राप्त होगे तब वह तुम्हारे समीप आके तुम्हारे साथ सङ्ग करके धर्म अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्धि करावें । जो देशदेशान्तर तथा द्वीप द्वीपान्तर मे विद्या नम्रता अच्छी शिक्षा काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं वे ही सबको अच्छे सुख करानेवाले होते हैं ॥३६॥

**अग्ने सहस्वेत्यस्य देववात ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द ।**
**गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी राजा आदि किस प्रकार वर्त्तें इस विषय का उपदेश*
*अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्ने॒ सह॑स्व॒ पृत॑नाऽअ॒भिमा॑ती॒रपा॑स्य ।**
**दु॒ष्टर॒स्तर॒न्नरा॑ती॒र्वर्चो॑ धा य॒ज्ञवा॑हसि ॥ ३७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) सब विद्या जाननेवाले विद्वान् राजन् ! ( दुष्टर ) दु:ख से तरने योग्य ( तरन् ) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप ( यज्ञवाहसि ) जिसमे राजधर्मयुक्त राज्य मे ( अभिमाती ) अभिमान आनन्दयुक्त (पृतना) बल और अच्छी शिक्षायुक्त वीर सेना को ( सहस्व ) सहो ( अराती ) दु:ख देनेवाले शत्रुओ को ( अपास्य ) दूर निकालिये और ( वर्च ) विद्या बल और न्याय को ( धा ) धारण कीजिये ॥३७॥

**भावार्थ**—राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपनी दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त सेना के सहित आप अजय और शत्रुओ को जीतते हुए भूमि पर उत्तम यज्ञ का विस्तार करें ॥३७॥

**देवस्य त्वेत्यस्य देववात ऋषि । रक्षोघ्नो देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*प्रजाजन राज्य मे कैसे सभाधीश का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश*
*अगले मन्त्र मे कहा है—*

**दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तु प्र॑स॒वे॑ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।**
**उ॒पा॒ꣳशोर्वी॒र्ये॑ण जुहोमि ह॒तꣳ रक्ष॒: स्वाहा॑ । रक्ष॑सां त्वा व॒धाया॑-**
**'वधि॒ष्म॒ रक्षोऽवधि॒ष्मा॒मुम॒सौ ह॒त ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! मैं ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( सवितु ) ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले ( देवस्य ) प्रकाशित न्याययुक्त ( प्रसवे ) ऐश्वर्य मे ( उपांशो ) समीपस्थ सेना से ( वीर्य्येण ) सामर्थ्य से ( अश्विनो ) चन्द्रमा के समान सेनापति के ( बाहुभ्याम् ) भुजो से ( पूष्ण ) पुष्टिकारक वैद्य के ( हस्ताभ्याम् ) हाथो से ( रक्ष ) राक्षसो के ( वधाय ) नाश के अर्थ ( त्वा ) आपको ( जुहोमि ) ग्रहण करता हूँ । जैसे तूने ( रक्ष ) दुष्ट को ( हतम् ) नष्ट किया वैसे हम लोग भी ( अवधिष्म ) दुष्टो को मारें जैसे ( असौ ) वह दुष्ट ( हत ) नष्ट हो जाय वैसे हम लोग इन सबको ( अवधिष्म ) नष्ट करें ॥३८॥

**भावार्थ**—प्रजाजनो को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टो के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करनेहारे वीर जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें ॥३८॥

**सविता त्वेत्यस्य देववात ऋषि । रक्षोघ्नो देवता । अतिजगती छन्द ।**
**निषाद स्वर ॥**

*सभ्य मनुष्य राजा को किस किस विषय मे प्रेरणा करें इस विषय का उपदेश*
*अगले मन्त्र मे कहा है—*

**स॒वि॒ता त्वा॑ स॒वाना॑ꣳ सुवताम॒ग्निर्गृ॒हप॑तीना॒ꣳ सोमो॒ वन॒-**
**स्पती॑नाम् । बृह॒स्पति॑र्वा॒चऽइन्द्रो॒ ज्यैष्ठ्या॑य रु॒द्रः प॒शुभ्यो॑ मि॒त्रः स॒त्यो**
**वरु॑णो॒ धर्म॑पतीनाम् ॥ ३९ ॥**

**पदार्थ**—हे सभापते राजन् ! जो तू ( सवानाम ) ऐश्वर्य्य के ( सविता ) सूर्य्य के समान प्रेरक ( गृहपतीनाम् ) गृहस्थो के उपकारक ( अग्नि ) पावक के सदृश ( वनस्पतीनाम् ) पीपल आदि वृक्षो मे ( सोम ) सोमवल्ली के सदृश ( धर्म्मपतीनाम ) धर्म के पालने हारो के मध्य मे ( सत्य ) सज्जनो मे सज्जन ( वरुण ) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ ( मित्र ) सखा के तुल्य ( वाचे ) वेदवाणी के लिए ( बृहस्पति ) महाविद्वान् के सदृश ( ज्यैष्ठ्याय ) श्रेष्ठता के लिए ( इन्द्र: ) परमैश्वर्य्य से युक्त के तुल्य ( पशुभ्य ) गौ आदि पशुओ के लिए ( रुद्र ) शुद्ध वायु के सदृश है उस ( त्वा ) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में ( सुवताम् ) प्रेरणा करें ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—हे राजन् ! जो आपको अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान मे प्रेरणा करें उन्ही का सङ्ग सदा करो औरो का नही ॥ ३९ ॥

**इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषि । यजमानो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द ॥**
**धैवत स्वर ॥**

*किस किस प्रयोजन के लिए कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश*
*अगले मन्त्र में किया है—*

**इ॒मं दे॑वाऽअसप॒त्नꣳ सु॑वध्वं मह॒ते क्ष॒त्राय॑ मह॒ते ज्यैष्ठ्या॑य मह॒ते**
**जान॑राज्या॒येन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॑ । इ॒मम॒मुष्य॑ पु॒त्रम॒मुष्यै॑ पु॒त्रम॒स्यै वि॒शऽए॒ष**
**वो॑ऽमी राजा॒ सोमो॒ऽस्माकं॑ ब्राह्म॒णाना॒ꣳ राजा॑ ॥ ४० ॥**

**पदार्थ**—हे प्रजास्थ ( देवा ) विद्वान् लोगो ! तुम जो ( एष ) यह ( सोम ) चन्द्रमा के समान राजा मे प्रियरूप ( व ) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो ( अमी ) परोक्ष मे वर्त्तमान हैं उन सब का राजा है उस ( इमम ) इस ( अमुष्य ) उस उत्तम पुरुष का ( पुत्रम् ) पुत्र ( अमुष्य ) उस विद्यादि गुणो मे श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् स्त्री के पुत्र को ( अस्यै ) इस ( विशे ) प्रजा के लिये इसी पुरुष को ( महते ) बड़े ( ज्यैष्ठ्याय ) प्रशंसा के योग्य (महते ) बड़े ( जानराज्याय ) धार्मिक जनो के राज्य करने ( इन्द्रस्य ) परमैश्वर्य्ययुक्त ( इन्द्रियाय ) धन के वास्ते ( असपत्नम् ) शत्रु रहित ( सुवध्वम् ) कीजिये ॥ ४०॥

**भावार्थ**—हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो विद्वान् माता और पिता से अच्छे प्रकार सुरक्षित कुलीन बड़े उत्तम २ गुण कर्म और स्वभावयुक्त जितेन्द्रियादि गुणयुक्त ४८ ( अड़तालीस ) वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या से सुशील शरीर और आत्मा के पूर्ण बलयुक्त धर्म से प्रजा का पालक प्रेमी विद्वान् हो उस को सभापति राजा मान कर चक्रवर्त्तिराज्य का सेवन करो ॥ ४० ॥

इस अध्याय मे राजधर्म के वर्णन से इस अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति नवमोऽध्याय ॥

# ॥ अथ दशमाऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**अपो देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है—*

**अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः ।**
**याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **देवाः** ) चतुर विद्वान् लोग ( **याभिः** ) जिन क्रियाओं से ( **मित्रावरुणौ** ) प्राण तथा उदान को ( **अभ्यषिञ्चन्** ) सब प्रकार सींचन और जिन क्रियाओं से ( **इन्द्रम्** ) बिजुली को प्राप्त और ( **अरातीः** ) शत्रुओं को ( **अनयन्** ) जीतते हैं उन क्रियाओं से ( **मधुमतीः** ) प्रशसनीय मधुरादि गुणयुक्त ( **ऊर्जस्वतीः** ) बल पराक्रम बढ़ाने ( **चितानाः** ) चेतनता देने और ( **राजस्वः** ) ज्ञान प्रकाश युक्त राज्य को प्राप्त करानेहारे ( **अपः** ) जल वा प्राणों को ( **अगृभ्णन्** ) ग्रहण करो ॥ १ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परीक्षा करके उन से उपयोग लेवें । शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रीति से वर्त्तें और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें ॥ १ ॥

**वृष्ण ऊर्मिरित्यस्य वरुण ऋषिः । वृषा देवता । स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या क्या मांगें यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जिस कारण आप ( **वृष्णः** ) सुख के वर्षाकारक ज्ञान के प्राप्त कराने ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य के देने हारे ( **असि** ) हैं इस से ( **मे** ) मुझ ( **स्वाहा** ) सत्य नीति से ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **देहि** ) दीजिए ( **वृष्णः** ) सुख की वृष्टि करने वाले राज्य के ( **ऊर्मिः** ) जानने और ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य प्रदान करने हारे ( **असि** ) हैं ( **अमुष्मै** ) उस राज्य की रक्षा करने वाले को ( **राष्ट्रम्** ) न्याय से प्रकाशित राज्य को ( **देहि** ) दीजिये ( **राष्ट्रदाः** ) राजाओं के कर्मों के देने हारे ( **वृषसेनः** ) बलवान् सेना से युक्त ( **असि** ) हैं ( **मे** ) प्रत्यक्ष वर्त्तमान मेरे लिए ( **स्वाहा** ) सुन्दर वाणी से ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **देहि** ) दीजिए तथा ( **राष्ट्रदाः** ) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले ( **वृषसेनः** ) आनन्दित पुष्टसेना से युक्त ( **असि** ) हैं इस से आप ( **अमुष्मै** ) उस परोक्ष पुरुष के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **देहि** ) दीजिए ॥ २ ॥

**भावार्थ**—जो राजपुरुष दुष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्त्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है ॥ २ ॥

**अर्थेत इत्यस्य वरुण ऋषिः । अपां पतिर्देवता । पूर्वस्याभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः । देहीत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग ( **अर्थेत** ) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए ( **स्वाहा** ) सत्य नीति से ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य सेवन हारे सभासद ( **स्थ** ) होवें आप लोग ( **मे** ) मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए जो तुम लोग ( **अर्थेत** ) पदार्थों को जानते हुए ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देने वाले ( **स्थ** ) हो वे तुम लोग ( **अमुष्मै** ) राज्य के रक्षक उस पुरुष को ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जो तुम लोग ( **स्वाहा** ) सत्य नीति के साथ ( **ओजस्वतीः** ) विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देनेहारी ( **स्थ** ) हैं वे ( **मे** ) मुझ ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिये । जो आप लोग ( **ओजस्वतीः** ) जितेन्द्रिय ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य की देने वाली ( **स्थ** ) हैं वे आप लोग ( **अमुष्मै** ) विद्या बल और पराक्रम से युक्त पुरुष को ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जो तुम लोग ( **स्वाहा** ) सत्य नीति से ( **परिवाहिणीः** ) अपने समान प्यारी ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देने हारी ( **स्थ** ) हैं वे आप लोग ( **मे** ) मुझ ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जो तुम लोग ( **परिवाहिणीः** ) अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली ( **आपः** ) आत्मा के समान प्रिय ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देने वाली ( **स्थ** ) हैं वे आप ( **अमुष्मै** ) उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । हे सभाध्यक्ष ! जो आप ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देने हारे ( **अपाम्** ) जलाशयों के ( **पतिः** ) रक्षक ( **असि** ) हैं सो ( **मे** ) मुझ ( **स्वाहा** ) सत्य नीति के साथ ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **देहि** ) दीजिए । हे सभापति ! जो आप ( **स्वाहा** ) सत्य वचनों से ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देने वाले ( **अपाम्** ) प्राणों के ( **पतिः** ) रक्षक ( **असि** ) हैं वे ( **अमुष्मै** ) उस प्राणियों के पोषक पुरुष को ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **देहि** ) दीजिए । हे वीर पुरुष राजन् ! जो आप ( **स्वाहा** ) सत्य नीति के साथ ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देने वाले ( **अपाम्** ) सेनाओं के बीच ( **गर्भः** ) गर्भ के समान रक्षित ( **असि** ) हैं सो आप ( **मे** ) विचारशील मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **देहि** ) दीजिए । हे राजन् ! जो आप ( **राष्ट्रदाः** ) राज्य देने हारे ( **अपाम्** ) प्रजाओं के विषय ( **गर्भः** ) स्तुति के योग्य ( **असि** ) हैं सो आप ( **अमुष्मै** ) उस प्रशंसित पुरुष को ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **देहि** ) दीजिए ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उनकी स्त्रियां हों उन को चाहिए कि अपनी उन्नति के लिए दूसरों की उन्नति को सह के मनुष्यों को राज्य के योग्य कर और आप भी चक्रवर्त्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि कर के अपने राज्य का भङ्ग करें ॥ ३ ॥

**सूर्य्यत्वचस इत्यस्य वरुण ऋषिः । सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । पूर्वस्य जगती छन्दः । निषादः स्वरः । सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराड् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । व्रजक्षित इति तृतीयस्य शविष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वराट् विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । व्रजक्षितस्थेत्यस्य स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । शक्वरीस्थेत्यस्य भुरिगाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । मधुमतीरित्यस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को कैसा होके किस २ के लिए क्या २ देना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाऽअनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥४॥**

**पदार्थ**—हे राजपुरुषो ! तुम लोग ( **सूर्य्यत्वचस** ) सूर्य के समान अपने न्याय प्रकाश से सब तेज को ढाँकनेवाले होते हुए ( **स्वाहा** ) सत्यन्याय के साथ ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेहारे ( **स्थ** ) हो इसलिये ( **मे** ) मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिये । हे मनुष्यो ! जिस कारण ( **सूर्यत्वचस** ) सूर्य्यप्रकाश के समान विद्या पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेहारे ( **स्थ** ) हो इसलिये ( **अमुष्मै** ) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिये । हे विद्वान् मनुष्यो ! ( **सूर्यवर्चस** ) सूर्य के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी से ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हो इस कारण ( **मे** ) तेजस्वी मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिये जिस कारण ( **सूर्यवर्चस** ) सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेहारे ( **स्थ** ) हो इसलिये ( **अमुष्मै** ) उस प्रकाशमान पुरुष के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिये । जिस कारण ( **मान्दा** ) मनुष्यों को आनन्द देनेहारे होते हुए आप लोग ( **स्वाहा** ) सत्य वचनों के साथ ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देने वाले ( **स्थ** ) हो इसलिए ( **मे** ) आनन्द देनेहारे मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए जिसलिये आप लोग ( **मान्दा** ) प्राणियों को सुख देनेवाले होवें ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हो इसलिए ( **अमुष्मै** ) उस सुखदाता जन को ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिये । जिस कारण आप लोग ( **व्रजक्षित** ) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए ( **स्वाहा** ) सत्य क्रियाओं के सहित ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **मे** ) पशुरक्षक मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिस कारण आप लोग ( **व्रजक्षित** ) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेहार ( **स्थ** ) हैं इससे ( **अमुष्मै** ) उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिए राज्य को ( **दत्त** ) दीजिये । जिसलिए आप लोग ( **वाशा** ) कामना करते हुए ( **स्वाहा** ) सत्य नीति से ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **मे** ) इच्छायुक्त मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिस कारण आप लोग ( **वाशा** ) इच्छायुक्त होते हुए ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेवाले ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **अमुष्मै** ) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिस कारण आप लोग ( **शविष्ठा** ) सत्य से बलवाले होते हुए ( **स्वाहा** ) सत्य पुरुषार्थ से ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हैं इस कारण ( **मे** ) बलवान् मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिस कारण आप लोग ( **शविष्ठा** ) अति पराक्रमी ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हैं इस कारण ( **अमुष्मै** ) उस अति पराक्रमी जन के लिये ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । हे राणी लोगो ! जिसलिए आप ( **शक्वरी** ) सामर्थ्य वाली होती हुई ( **स्वाहा** ) सत्य पुरुषार्थ से ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेहारी ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **मे** ) सामर्थ्यवान् मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिस कारण आप ( **शक्वरी** ) सामर्थ्ययुक्त ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेवाली ( **स्थ** ) हैं इस कारण ( **अमुष्मै** ) उस सामर्थ्ययुक्त पुरुष के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिसलिए आप लोग ( **जनभृत** ) श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करनेहारी होती हुई ( **स्वाहा** ) सत्य कर्मों के साथ ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेवाली ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **मे** ) श्रेष्ठ गुणयुक्त मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिसलिए आप ( **जनभृत** ) सज्जनों को धारण करनेहार ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **अमुष्मै** ) उस सत्यप्रिय पुरुष के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो ! जिसलिए आप लोग ( **विश्वभृत** ) सब संसार का पोषण करनेवाले होते हुए ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी के साथ ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेहार ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **मे** ) सब के पोषक मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिसलिए आप लोग ( **विश्वभृत** ) विश्व को धारण करने हारे ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **अमुष्मै** ) उस धारण करनेवाले मनुष्य के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिस कारण आप लोग ( **आप** ) सब विद्या और धर्म विषय में व्याप्ति वाले होते हुए ( **स्वाहा** ) सत्य क्रिया से ( **राष्ट्रदा** ) राज्य देनेहारे ( **स्थ** ) हैं इस कारण ( **मे** ) शुभगुणों में व्याप्त मुझे ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । जिसलिए आप लोग ( **आप** ) सब विद्या और धर्म मार्ग को जानने हारे ( **स्वराज** ) आप से आप ही प्रकाशमान ( **राष्ट्रदा** ) राज्यदाता ( **स्थ** ) हैं इसलिए ( **अमुष्मै** ) उस धर्मज्ञ पुरुष के लिए ( **राष्ट्रम्** ) राज्य को ( **दत्त** ) दीजिए । हे सज्जन स्त्री लोगो ! आपको चाहिए कि ( **क्षत्रियाय** ) राजपूतों के लिए ( **महि** ) बड़े पूजा के योग्य ( **क्षत्रम्** ) क्षत्रियों के राज्य को ( **वन्वाना** ) चाहती हुई ( **सहौजस** ) बल पराक्रम के सहित वर्त्तमान ( **क्षत्रियाय** ) राजपूतों के लिए ( **महि** ) बड़े ( **क्षत्रम्** ) राज्य को ( **दधती** ) धारण करती हुई ( **अनाधृष्टा** ) शत्रुओं के वश में न आने वाली ( **मधुमती** ) मधुर आदि रसवाली ओषधी ( **मधुमतीभि** ) मधुरादि गुण युक्त वसन्त आदि ऋतुओं से सुखों का ( **पृच्यन्ताम्** ) सिद्ध किया करें । हे सज्जन पुरुषो ! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को ( **सीदत** ) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्द देने गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करनेवाले स्वाधीन हैं वे ही औरों के लिए राज्य देने और आप सेवन करने को समर्थ होते हैं अन्य नहीं ॥ ४ ॥

**सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषि । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवता । भुरिग् धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय लोभी, अन्यायी तथा कपटी के तुल्य कदापि न हों*

*इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात्। अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ घोषा॑य॒ स्वाहा॒ श्लोका॑य॒ स्वाहांऽशा॑य॒ स्वाहा॒ भगा॑य॒ स्वाहा॑र्य॒म्णे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जैसे आप ( **सोमस्य** ) ऐश्वर्य के ( **त्विषि** ) प्रकाश करने हारे ( **असि** ) हैं वैसा मैं भी होऊं जिससे ( **तवेव** ) आप के समान ( **मे** ) मेरा ( **त्विषि** ) विद्याओं का प्रकाश होवे जैसे आप ने ( **अग्नये** ) बिजुली आदि के लिए ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी और प्रियाचरणयुक्त विद्या ( **सोमाय** ) ओषधि जानने के लिए ( **स्वाहा** ) वैद्यक की पुरुषार्थयुक्त विद्या ( **सवित्रे** ) सूर्य्य का समझने के लिए ( **स्वाहा** ) भूगोल विद्या ( **सरस्वत्यै** ) वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिए ( **स्वाहा** ) व्याकरणादि वेदों के अङ्गों का ज्ञान ( **पूष्णे** ) प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिए ( **स्वाहा** ) योग और व्याकरण की विद्या ( **बृहस्पतये** ) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिए ( **स्वाहा** ) ब्रह्म विद्या ( **इन्द्राय** ) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के बोध के लिए ( **स्वाहा** ) विचार विद्या ( **घोषाय** ) सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिए ( **स्वाहा** ) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या ( **श्लोकाय** ) तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र श्रेष्ठ काव्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिए ( **स्वाहा** ) छन्द और शुभ मूल काव्यशास्त्र आदि की विद्या ( **अंशाय** ) परमाणुओं के समझने के लिए ( **स्वाहा** ) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान ( **भगाय** ) ऐश्वर्य के लिए ( **स्वाहा** ) पुरुषार्थज्ञान ( **अर्यम्णे** ) न्यायाधीश होने के लिए ( **स्वाहा** ) राजनीति विद्या का ग्रहण करते हैं वैसे मुझ को भी करना अवश्य है ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को ऐसी आशंसा ( इच्छा ) करनी चाहिए कि जैसे सत्यवादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी होवें ॥ ५ ॥

**पवित्रे स्थ इत्यस्य वरुण ऋषि । आपो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य में विद्या ग्रहण करें वैसे कन्या भी पढ़ें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प॒वित्रे॑ स्थो वैष्ण॒व्यौ सवि॒तुर्वः॑ प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑। अनि॑भृष्टमसि वा॒चो बन्धु॑स्तपो॒जाः सोम॑स्य दा॒त्रम॑सि॒ स्वाहा॑ राज॒स्वः॑ ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिए आप ( **वाच** ) वेदवाणी के ( **अनिभृष्टम्** ) भ्रष्टतारहित आचरण किए ( **बन्धु** ) भाई ( **असि** ) हैं ( **सोमस्य** ) ओषधियों के काटने वाले ( **तपोजा** ) ब्रह्मचर्य्यादि तप से प्रसिद्ध ( **असि** ) हैं आप की आज्ञा से ( **सवितु** ) सब जगत् को उत्पन्न करनेहारे ईश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न हुए जगत् में ( **वैष्णव्यौ** ) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और ( **पवित्रे** ) शुद्ध आचरणवाली ( **स्थ** ) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने और पढ़नेहारी स्त्री लोगो ! मैं ( **सवितु** ) ईश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किए इस जगत् में ( **सूर्यस्य** ) सूर्य की ( **रश्मिभि** ) किरणों के समान ( **अच्छिद्रेण** ) छिद्ररहित ( **पवित्रेण** ) विद्या अच्छी शिक्षा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य आदि करके पवित्र किये हुए से ( **व** ) तुम लोगों को ( **उत्पुनामि** ) अच्छे प्रकार पवित्र करता हूँ तुम लोग ( **स्वाहा** ) सत्य क्रिया से ( **राजस्व** ) राजाओं में वीरों को उत्पन्न करनेवाली हो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि पुरुषो ! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिए शुद्ध विद्या की परीक्षा करनेवाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो । जिस से ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो के जवान हुई प्रिय वर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

**सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषि । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*राजाओं को यह अवश्य चाहिए कि सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और सुशिक्षायुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**स॒ध॒मादो॑ द्यु॒म्निनी॒राप॑ऽए॒ताऽअना॑धृष्टाऽअप॒स्यो॒ वसा॑नाः। प॒स्त्या॑सु चक्रे॒ वरु॑णः स॒धस्थ॑म॒पा शिशु॑र्मा॒तृत॑मास्व॒न्तः ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—जो ( **वरुण** ) श्रेष्ठ राजा हो वह ( **एता** ) विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई ( **सधमाद** ) एक साथ प्रसन्न होनेवाली ( **द्युम्निनी** ) प्रशंसनीय बल कीर्ति से युक्त ( **अनाधृष्टा** ) जो किसी से न दबें ( **आप** ) जल के समान शान्तियुक्त ( **वसाना** ) वस्त्र और आभूषणों से ढपीं हुई ( **पस्त्यासु** ) घरों के ( **अपस्य** ) कामों में चतुर विद्वान् स्त्री होवें उन ( **अपाम्** ) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो ( **शिशु** ) बालक हो उस को ( **मातृतमासु** ) अति मान्य करने हारी धायियों के ( **अन्त** ) समीप के स्थान में शिक्षा के लिए रक्खें ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—राजा को चाहिए कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों को विद्वान् और उन से उत्पन्न हुए बालकों को विद्यायुक्त धायियों के आधीन करे कि जिस से किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के बिना न रहें और स्त्री भी निर्बल न हों ॥ ७ ॥

**क्षत्रस्येत्यस्य वरुण ऋषि । यजमानो देवता । स्वराट् कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥**

*सब प्रजापुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि क्षुमासि । पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्य पात ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जो आप ( **क्षत्रस्य** ) अपने राजकुल में ( **उल्बम्** ) बलवान् ( **असि** ) हैं ( **क्षत्रस्य** ) क्षत्रिय पुरुष का ( **जराय** ) वृद्धावस्था देनेहार ( **असि** ) है ( **क्षत्रस्य** ) राज्य के ( **योनि** ) निमित्त ( **असि** ) है ( **क्षत्रस्य** ) राज्य के ( **नाभि** ) प्रबन्धकर्त्ता ( **असि** ) हैं ( **इन्द्रस्य** ) सूर्य के ( **वार्त्रघ्नम्** ) मेघ का नाश करनेहारे के समान कर्मकर्त्ता ( **असि** ) हैं ( **मित्रस्य** ) मित्र के मित्र ( **असि** ) हैं ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठ ( **असि** ) हैं ( **दृवा** ) शत्रुओं के विदारण करने वाले ( **असि** ) हैं ( **रुजा** ) शत्रुओं को रोगातुर करनेहारे ( **असि** ) हैं और ( **क्षुमा** ) सत्य का उपदेश करने हारे ( **असि** ) हैं जो ( **अयम्** ) यह वीर पुरुष ( **त्वया** ) आप राजा के साथ ( **वृत्रम्** ) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को ( **वधेत** ) मारे ( **एनम्** ) इस ( **प्राञ्चम्** ) प्रथम प्रबन्ध करनेवाले ( **एनम्** ) राजपुरुष की तुम लोग ( **दिग्भ्य** ) सब दिशाओं में ( **पात** ) रक्षा करो इस ( **तिर्यञ्चम्** ) तिरछे चलते हुए ( **एनम्** ) राजपुरुष की ( **पात** ) रक्षा करो ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों में विद्या बढ़ाने वाला कर्म है वही राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि की प्रवृत्ति कराने वाला माना है । इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥ ८ ॥

**आविर्मर्य्या इत्यस्य वरुण ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिगष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*मनुष्य को चाहिए कि अपना स्वभाव अच्छा करके आप्त विद्वान् आदि को अवश्य प्राप्त होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**आविर्मर्य्याऽआवित्तोऽअग्निर्गृहपतिरावित्तऽइन्द्रो वृद्धश्रवाऽआवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्त पूषा विश्ववेदाऽआवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **मर्य्या** ) मनुष्यो ! तुम लोग जो ( **गृहपति** ) घरों के पालन करने हारे ( **अग्नि** ) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को ( **आवि** ) प्रकटता से ( **आवित्त** ) प्राप्त वा निश्चय करके जाना ( **वृद्धश्रवा** ) अत्यन्त सब शास्त्रों को सुनने वाला ( **इन्द्र** ) शत्रुओं के मारने हारे सेनापति को ( **आवि** ) प्रकटता से ( **आवित्त** ) प्राप्त हो वा जाना ( **धृतव्रतौ** ) सत्य आदि व्रतों का धारण करने हारे ( **मित्रावरुणौ** ) मित्र और श्रेष्ठ जनों को ( **आवि** ) प्रकटता से ( **आवित्तौ** ) प्राप्त वा जाना ( **विश्ववेदा** ) सब औषधियों के जानने हारे ( **पूषा** ) पोषणकर्त्ता वैद्य को ( **आवि** ) प्रसिद्धि से ( **आवित्त** ) प्राप्त हुए ( **विश्वशम्भुवौ** ) सब के लिए सुख देने हारे ( **द्यावापृथिवी** ) बिजुली और भूमि को ( **आवि** ) प्रकटता से ( **आवित्ते** ) जाने ( **उरुशर्म्मा** ) बहुत सुख देने वाली ( **अदिति** ) विद्वान् माता को प्रसिद्ध ( **आवित्ता** ) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जावे ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—जब तक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों उत्तम विदुषी माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने को समर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥

**अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषि । यजमानो देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर मनुष्य क्या करके किस किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्तऽऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जो आप ( **अवेष्टा** ) विरोधों का सङ्ग करने वाले ( **दन्दशूका** ) दूसरों को दुःख देने के लिए काट खाने वाले हैं उन को जीत के ( **प्राचीम्** ) पूर्व दिशा में ( **आरोह** ) प्रसिद्ध हो उन ( **त्वा** ) आप को ( **गायत्री** ) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द ( **रथन्तरम्** ) रथों से जिसके पार हो ऐसा वन ( **साम** ) सामवेद ( **त्रिवृत** ) तीन मन वाणी और शरीर के बलों का बोध कराने वाला ( **स्तोम** ) स्तुति के योग्य ( **वसन्त** ) वसन्त ( **ऋतु** ) ऋतु ( **ब्रह्म** ) वेद ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुलरूप ( **द्रविणम्** ) धन ( **अवतु** ) प्राप्त होवे ॥ १० ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होते हैं वे शत्रुओं को जीत के ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १० ॥

**दक्षिणामित्यस्य वरुण ऋषि । यजमानो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽऋतु क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् राजन् ! जिस ( **त्वा** ) आप को ( **त्रिष्टुप्** ) इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान ( **बृहत्** ) बड़ा ( **साम** ) सामवेद का भाग ( **पञ्चदश** ) पाँच प्राण अर्थात् प्राण अपान व्यान उदान समान पाँच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र त्वचा नेत्र रसना और घ्राण पाँच भूत अर्थात् जल, भूमि, अग्नि, वायु और आकाश, इन पन्द्रह की पूर्ति करनेहारा ( **स्तोम** ) स्तुति के योग्य ( **ग्रीष्म ऋतु** ) ग्रीष्म ऋतु ( **क्षत्रम्** ) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रियकुलरूप और ( **द्रविणम्** ) राज्य से प्रकट हुआ धन ( **अवतु** ) प्राप्त हो । वह आप ( **दक्षिणाम्** ) दक्षिण दिशा में ( **आरोह** ) प्रसिद्ध हूजिए और शत्रुओं को जीतिए ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रियकुल को बढ़ावे उस का तिरस्कार शत्रुजन कभी न कर सकें ॥ ११ ॥

**प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषि । यजमानो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*राजपुरुषों को चाहिए कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षाऽऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—हे राजपुरुष ! जिस ( **त्वा** ) आप को ( **जगती** ) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ ( **वैरूपम्** ) विविध प्रकार के रूपों वाला ( **साम** ) सामवेद का अंश ( **सप्तदश** ) चार कर्म इन्द्रिय पाँच शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध विषय पाँच महाभूत अर्थात् सूक्ष्म भूत, कार्य्य और कारण इन सत्रह का पूरण करने वाला ( **स्तोम** ) स्तुतियों का समूह ( **वर्षा** ) वर्षा ( **ऋतु** ) ऋतु ( **द्रविणम्** ) द्रव्य और ( **विड्** ) वैश्यजन ( **अवतु** ) प्राप्त हो । सो आप ( **प्रतीचीम्** ) पश्चिम दिशा को ( **आरोह** ) आरूढ़ और धन को प्राप्त हूजिए ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—जो राजपुरुष राजनीति के साथ वैश्यों की उन्नति करें वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥ १२ ॥

**उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषि । यजमानो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे सभापति राजा ! आप ( **उदीचीम्** ) उत्तर की दिशा में ( **आरोह** ) प्रसिद्धि को प्राप्त हूजिए । जिससे ( **अनुष्टुप्** ) जिसका पढ़ के सब विद्याओं में दूसरों की स्तुति करें वह छन्द ( **वैराजम्** ) अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान ( **साम** ) सामवेद का भाग ( **एकविंश** ) सोलह कला, चार पुरुषार्थ के अवयव और एक कर्त्ता इन इक्कीस का पूरण करनेहारा ( **स्तोम** ) स्तुति का विषय ( **शरत** ) शरद् ( **ऋतु** ) ऋतु ( **द्रविणम्** ) ऐश्वर्य्य और ( **फलम्** ) फलरूप सेवाकारक शूद्रकुल ( **त्वा** ) आपको ( **अवतु** ) प्राप्त होवे ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं वे अच्छे फलों को भोगते हैं ॥ १३ ॥

**ऊर्ध्वामित्यस्य वरुण ऋषि । यजमानो देवता । भुरिग्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*मनुष्यों को चाहिए कि प्रबल विद्या से अनेक पदार्थों का ज्ञान यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! आप जो ( **ऊर्ध्वाम्** ) ऊपर की दिशा में ( **आरोह** ) प्रसिद्ध होवें सो ( **त्वा** ) आपको ( **पङ्क्ति** ) पङ्क्ति नाम का पढ़ा हुआ छन्द ( **शाक्वररैवते** ) शक्वरी और रैवती छन्द से युक्त ( **सामनी** ) सामवेद के पूर्व उत्तर दो अवयव ( **त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ** ) तीन काल नव अङ्कों की विद्या और तैंतीस वसु आदि पदार्थ जिन दोनों से व्याख्यान किये गये हैं उनके पूर्ण करनेवाले ( **स्तोमौ** ) स्तोत्रों के भेद ( **हेमन्तशिशिरौ, ऋतू** ) हेमन्त और शिशिर ऋतु ( **वर्च** ) ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का पढ़ना और ( **द्रविणम्** ) ऐश्वर्य्य ( **अवतु** ) तृप्त करे और ( **नमुचे** ) दुष्ट चोर का ( **शिर** ) मस्तक ( **प्रत्यस्तम्** ) नष्ट भ्रष्ट होवे ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त होके विद्या योगाभ्यास और सत्सङ्गों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं, वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इनको कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ॥ १४ ॥

**सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*राजा और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—हे परम आप्त विद्वन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं (ओजः) पराक्रमयुक्त (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं (तवेव) आपके समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्या प्रकाश से आच्छादन (भूयात्) हो आप मुझ को (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ॥१५॥

**भावार्थ**—हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें, जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥१५॥

**हिरण्यरूपावित्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उनको बुद्धिमान् विद्वान् बनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्यश्च । आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे उपदेश करनेहारे (मित्र) सब के सुहृद् ! जिसलिये आप (मित्रः) सुख देनेवाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारनेहारे बलवान् सेनापति ! जिसलिए आप (वरुणः) सब से उत्तम (असि) हैं इसलिए आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करनेवाले के घर पर (आरोहतम्) आओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशवान पदार्थों का (चक्षाथाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्यरूपौ) प्रकाशस्वरूप (उभौ) दोनों (इन्द्रौ) परमैश्वर्य्य करनेहारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि करानेहारे व्यवहार में (सूर्य्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उषसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं वैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥१६॥

**भावार्थ**—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करनेहारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं वहाँ सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहाँ यह बात नहीं होती वहाँ अन्धपरम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥१६॥

**सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याऽधिकार देना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥ १७ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा ! जैसे मैं जिस तुझ को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (द्युम्नेन) यशरूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के समान (भ्राजसा) तेज से (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इन्द्रस्य) बिजुली के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों सहित (त्वा) आपको (अभिषिञ्चामि) राज्याधिकारी करता हूँ । वैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल में जो उत्तम हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालनेहारे (अत्येधि) अति तत्पर हूजिये और (दिद्यून्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करनेहारे व्यवहारों की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिए ॥१७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुणयुक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उसको राज्य का अधिकार देवें और उस राजा को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करनेहारे प्रजापुरुषों को निरन्तर बढ़ावें ॥१७॥

**इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से लेके अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचारयुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ १८ ॥**

**पदार्थ**—हे (देवाः) वेद शास्त्रों को जाननेहारे सेनापति लोग ! आप जो (एषः) यह उपदेशक वा सेनापति (वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है । जो (अमी) वे धर्मात्मा राजपुरुष हैं उनका (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपुरुष के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करनेवाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्य्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्नम्) जिसका कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुवध्वम्) उत्पन्न करो ॥१८॥

**भावार्थ**—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें । जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो इनकी उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥१८॥

**प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर इस जगत् में राजा और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचऽइयाना । ताऽआववृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः । विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—हे राजा के कारीगर पुरुष ! जो तू (स्वसिचः) जिनको अपने लोग जल से सींचते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदक्ताः) फिर फिर ऊपर को जावें (अहिं बुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहनेवाले मेघ के (अनुरीयमाणाः) पीछे पीछे लाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (वृषभस्य) वर्षा करने हारे (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) ऊपर के भाग से (प्रचरन्ति) चलते हैं जिनसे तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि) है (विष्णोः) व्यापक वायु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने हारा (असि) है और (विष्णोः) व्यापक बिजुली के बीच (क्रान्तम्) चलने का आधार (असि) है जो (अधराक्) मेघ से नीचे (आववृत्रन्) मेघ के समान विचरते हैं उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर ॥१९॥

**भावार्थ**—जब मेघ वर्ष के भूमि के तले को प्राप्त होके पुनः आकाश को प्राप्त होता है । वह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता है । जो जल के भीतर अर्थात् जिनके ऊपर नीचे जल होता है । वैसे ही सब कारीगर लोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बनाके भूमि जल और आकाश मार्ग से अभीष्ट देशों में यथेष्ट जाना आना करें । जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जा सकता । जैसे पक्षी अपने शरीररूप सवारी को आकाश में उड़ा ले चलते हैं वैसे चतुर कारीगर लोगों को चाहिये कि हम अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें ॥१९॥

**प्रजापत इत्यस्य देववात ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालन से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्त्वयममुष्य पिताऽसावस्य पिता वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा । रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर ! जो (एतानि) जीव प्रकृति आदि वस्तु (विश्वा) सब (रूपाणि) इच्छा रूप आदि गुणों से युक्त हैं (ता) उनके ऊपर आप से (अन्यः) दूसरा कोई (न) नहीं (परिबभूव) आ न सकता (ते) आपके सेवन से (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामनावाले होते हुए (वयम्) हम लोग (जुहुमः) आपका सेवन करते हैं वह वह पदार्थ आपकी कृपा से (नः) हम लोगों के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे । जैसे आप (अमुष्य) उस परोक्ष जगत् के (पिता) रक्षा करने हारे हैं (असौ) सो आप इस प्रत्यक्ष जगत् के रक्षक हैं । वैसे हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (रयीणाम्) विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के (पतयः) रक्षा करनेवाले (स्याम) हों । हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेहारे परमेश्वर ! (ते) आपका जो (क्रिवि) दुःखों से छुड़ाने का हेतु (परम्) उत्तम (नाम) नाम है (तस्मिन्) उसमें आप (हुतम्) स्वीकार किये (असि) हैं (अमेष्टम्) घर में इष्ट (असि) हैं उन आपको हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से ग्रहण करते हैं ॥२०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सब जगत् में व्याप्त सब के लिये माता पिता के समान वर्त्तमान दुष्टों को दण्ड देने हारा

उपासना करने का इष्ट है उसी जगदीश्वर की उपासना करो। इस प्रकार के अनुष्ठान से तुम्हारा सब कामना अवश्य सिद्ध हो जायगा ॥२०॥

**इन्द्रस्येत्यस्य देववात ऋषि । क्षत्रपतिर्देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर विद्वान पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन्! जो आप ( **अरिष्ट** ) किसी के मारने में न आनेवाले ( **अर्जुन** ) प्रशंसा के योग्य रूप से युक्त ( **इन्द्रस्य** ) परम ऐश्वर्य वाले का ( **वज्र** ) शत्रुओं के लिये वज्र के समान ( **असि** ) हैं जिस ( **त्वा** ) आप को ( **अव्यथाय** ) पीडा न होने के लिये ( **प्रशास्त्रो** ) सब को शिक्षा देनेवाले ( **मित्रावरुणयो** ) सभा और सेना के स्वामी की ( **प्रशिषा** ) शिक्षा से मैं ( **युनज्मि** ) समाहित करता हूँ ( **मरुताम** ) ऋत्विज लोगों के ( **प्रसवेन** ) करने में ( **स्वधाय** ) अपनी चीज का धारण करना रूप राजनीति के लिये जिस ( **त्वा** ) आपको योगाभ्यास से चिन्तन करता हूँ ( **मनसा** ) विचारशील मन ( **इन्द्रियेण** ) जीव ने सेवे हुए इन्द्रिय से जिस ( **त्वा** ) आपको हम लोग ( **समापाम** ) सम्यक् प्राप्त होते हैं सो आप ( **जय** ) दुष्टों को जीत के निश्चिन्त उत्कृष्ट हूजिये ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजापुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये सदा शिक्षा देवें। जिससे वे किसी को पीडा देने रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें। सब प्रकार बलवान् होके शत्रुओं को जीतें जिससे कभी धन सम्पत्ति की हानि न होवे ॥२१॥

**मा त इत्यस्य देववात ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*प्रजापुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**मा त॑ऽइन्द्र ते व॒यं तु॑राषा॒डयु॑क्तासोऽअब्र॒ह्मता॒ विद॑साम। तिष्ठा॒ रथ॒मधि॒ यं व॑ज्रहस्ता र॒श्मीन्दे॑व यमसे॒ स्वश्वा॑न् ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) प्रकाशमान ( **इन्द्र** ) सभापति राजन्! ( **वज्रहस्त** ) जिसके हाथों में वज्र के समान शस्त्र हों उस आपके साथ ( **वयम** ) हम राजप्रजापुरुष ( **ते** ) आपके सम्बन्ध में ( **अयुक्तास** ) अधर्मकारी ( **मा** ) न होवें ( **त** ) आपकी ( **अब्रह्मता** ) वेद तथा ईश्वर से रहित निष्ठा ( **मा** ) न हो और न ( **विदसाम** ) नष्ट करें जो ( **तुराषाट** ) शीघ्रकारी शत्रुओं का सहन हारे आप जिन ( **रश्मीन्** ) घोडे के लगाम की रस्सी और ( **स्वश्वान्** ) सुन्दर घोडों को ( **यमसे** ) नियम में रखते हैं और जिस ( **रथम** ) रथ के ऊपर ( **अधितिष्ठ** ) बैठो। उन घोडों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें ॥२२॥

**भावार्थ**—राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी न प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे। वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें और एकसा व्यवहार करनेवाले होवें और कभी आलस्य प्रमाद में फँसें और वेद की निन्दा वा नास्तिकता में न फँसें ॥२२॥

**अग्नय इत्यस्य देववात ऋषि । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अ॒ग्नये॑ गृ॒हप॑तये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ वन॒स्पत॑ये॒ स्वाहा॑ म॒रुता॒मोज॑से॒ स्वाहेन्द्र॑स्ये॒न्द्रि॒याय॒ स्वाहा॑। पृथि॑वि॒ मात॒र्मा मा॑ हिꣳसी॒र्मोऽअ॒हं त्वाम् ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रजा के मनुष्यो! जैसे राजा और राजपुरुष हम लोग ( **गृहपतये** ) गृहाश्रम के स्वामी ( **अग्नय** ) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये ( **स्वाहा** ) सत्यनीति ( **सोमाय** ) सौम्यता आदि ओषधि और ( **वनस्पतये** ) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये ( **स्वाहा** ) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया ( **मरुताम्** ) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के ( **ओजसे** ) बल के लिये ( **स्वाहा** ) योगाभ्यास और शान्ति की देनेहारी वाणी और ( **इन्द्रस्य** ) जीव के ( **इन्द्रियाय** ) मन इन्द्रिय के लिये ( **स्वाहा** ) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो। हे ( **पृथिवि** ) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त ( **मात** ) मान्य करनेहारी जननी! तू ( **मा** ) मुझ को ( **मा** ) मत ( **हिंसी** ) बुरी शिक्षा से दुःख दे और ( **त्वाम** ) तुझ को ( **अहम** ) मैं भी ( **मो** ) न दुःख देऊं ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—राजा आदि राजपुरुषों को प्रजा के हित प्रजापुरुषों को राजपुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्तना चाहिये। माता को योग्य है कि बुरी शिक्षा और मूर्खता रूप अविद्या देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करे और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥२३॥

**हंस इत्यस्य वामदेव ऋषि । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*मनुष्य लोग ईश्वर की उपासनापूर्वक सबके लिए न्याय और अच्छी शिक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ह॒ꣳसः शु॑चि॒षद्वसु॑रन्तरिक्ष॒सद्धोता॑ वेदि॒षदति॑थिर्दुरोण॒सत्। नृ॒षद्व॑र॒सदृ॑त॒सद्व्यो॑म॒सद॒ब्जा गो॒जाऽऋ॑त॒जाऽअ॑द्रि॒जाऽऋ॒तं बृ॒हत् ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो! आप लोगों को चाहिए कि जो परमेश्वर ( **हंस** ) सब पदार्थों का त्याग करता ( **शुचिषत** ) पवित्र पदार्थों में स्थित ( **वसु** ) निवास करता और कराता ( **अन्तरिक्षसत** ) अवकाश में रहता ( **होता** ) सब पदार्थ देता ग्रहण करता और प्रलय करता ( **वेदिषत** ) पृथिवी में व्यापक ( **अतिथि** ) अभ्यागत के समान सत्कार करने योग्य ( **दुरोणसत** ) घर में स्थित ( **नृषत** ) मनुष्यों के भीतर रहता ( **वरसत** ) उत्तम पदार्थों में बसता ( **ऋतसत** ) सत्यप्रकृति आदि नामवाले कारण में स्थित ( **व्योमसत** ) आकाश में रहता ( **अब्जा** ) जलों को प्रसिद्ध करता ( **गोजा** ) पृथिवी आदि तत्त्वों का उत्पन्न करता ( **ऋतजा** ) सत्यविद्याओं के पुस्तक वेदों का प्रसिद्ध करता ( **अद्रिजा** ) मेघ पवन और वृक्ष आदि का रचता ( **ऋतम्** ) सत्यस्वरूप और ( **बृहत** ) सबसे बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करनेहारे ब्रह्म परमात्मा की ही उपासना करें क्योंकि उसकी उपासना के विना किसी को धर्म अर्थ काम मोक्ष से होनेवाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

**इयदित्यस्य वामदेव ऋषि । सूर्यो देवता । आर्षीजगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इय॑द॒स्यायु॑र॒स्यायु॒र्मयि॑ धेहि यु॒ङ्ङ॑सि॒ वर्चो॑ऽसि॒ वर्चो॒ मयि॑ धेह्यू॒र्गस्यूर्जं॒ मयि॑ धेहि। इन्द्र॑स्य वां वीर्य॒कृतो॑ बा॒हूऽअ॑भ्युपा॒वह॑रामि ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—हे परमेश्वर! आप ( **इयत** ) इतना ( **आयु** ) जीवन ( **मयि** ) मुझ में ( **धेहि** ) धरिये जिससे आप ( **युङ्** ) सबको समाधि करानेवाले ( **असि** ) हैं ( **वर्च** ) स्वयं प्रकाशस्वरूप ( **असि** ) हैं इस कारण ( **ऊर्क** ) अत्यन्त बलवान् ( **असि** ) हैं इसलिए ( **ऊर्जम्** ) बल पराक्रम को ( **मयि** ) मेरे में ( **धेहि** ) धारण कीजिये। हे राजा और प्रजा के पुरुषो! ( **वीर्यकृत** ) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे ( **इन्द्रस्य** ) ऐश्वर्य और परमात्मा के आश्रय में ( **वाम्** ) तुम राजप्रजापुरुषों के ( **बाहू** ) बल और पराक्रम को ( **अभ्युपावहरामि** ) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूँ ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

**स्योनासीत्यस्य वामदेव ऋषि । आसन्दी राजपत्नी देवता । भुरिगनुष्टप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*स्त्रियों को न्याय विद्या उनको शिक्षा स्त्री लोग ही करें और पुरुषों के लिए पुरुष। इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्यो॒नासि॑ सु॒षदा॑सि क्ष॒त्रस्य॒ योनि॑रसि। स्यो॒नामासी॑द सु॒षदा॒मासी॑द क्ष॒त्रस्य॒ योनि॒मासी॑द ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे राणी! जिसलिए आप ( **स्योना** ) सुखरूप ( **असि** ) हैं ( **सुषदा** ) सुन्दर व्यवहार करनेवाली ( **असि** ) हैं ( **क्षत्रस्य** ) राज्य के न्याय के ( **योनि** ) करनेवाली ( **असि** ) हैं इसलिए आप ( **स्योनाम्** ) सुखकारक अच्छी शिक्षा में ( **आसीद** ) तत्पर हूजिए ( **सुषदाम्** ) अच्छे सुख देनेहारी विद्या को ( **आसीद** ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए तथा कराइये और ( **क्षत्रस्य** ) क्षत्रिय कुल की ( **योनिः** ) राजनीति को ( **आसीद** ) सब स्त्रियों को जनाइये ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—राजाओं की स्त्रियों को चाहिए कि सब स्त्रियों के लिए न्याय और अच्छी शिक्षा देवें और स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नहीं सकती ॥ २६ ॥

**निषसादेत्यस्य शुनःशेप ऋषि । वरुणो देवता । विपीलिका मध्या विराड्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*राजा के समान राणी भी राजधर्म का आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒स्वा। साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतुः॑ ॥२७॥**

**पदार्थ**—हे राणी! जैसे आपका ( **धृतव्रत** ) सत्य का आचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का धारण करनेहारा ( **सुक्रतु** ) सुन्दर बुद्धि वा क्रिया से युक्त

( **वरुण** ) उत्तमपति ( **साम्राज्याय** ) चक्रवर्ति राज्य होने और उसके काम करने के लिये ( **पस्त्यासु** ) न्यायघरो मे ( **आ** ) निरन्तर ( **नि** ) नित्य ही ( **ससाद** ) बैठ के न्याय करे वैसे तू भी न्यायकारिणी हो ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—जैसे चक्रवर्ती राजा चक्रवर्ती राज्य की रक्षा के लिये न्याय की गद्दी पर बैठ के पुरुषो का ठीक ठीक न्याय करे वैसे ही नित्यप्रति राणी स्त्रियो का न्याय करे। इससे क्या आया कि जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो वैसा ही स्त्री को भी होना चाहिए ॥ २७ ॥

**अभिभूरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । यजमानो देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर वह राजा कैसा होके किसके लिये क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः । बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **बहुकार** ) बहुत सुखो ( **श्रेयस्कर** ) कल्याण और ( **भूयस्कर** ) बार बार अनुष्ठान करनेवाले ( **ब्रह्मन्** ) आत्मविद्या को प्राप्त हुए जैसे जिस ( **ते** ) आपके ( **एताः** ) ये ( **पञ्च** ) पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे एक ( **दिशः** ) पाँच दिशा सामर्थ्ययुक्त हो वैसे मेरे लिये आपको पत्नी की कीर्ति से भी ( **कल्पन्ताम्** ) सुखयुक्त होवें। जैसे आप ( **अभिभूः** ) दुष्टो का तिरस्कार करनेवाले ( **असि** ) हैं ( **सविता** ) ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेहार ( **असि** ) हैं ( **सत्यप्रसवः** ) सत्य की प्रेरणा से सुन्दर सुखयुक्त ( **रुद्रः** ) शत्रु और दुष्टो को रुलानेवाले ( **असि** ) है ( **इन्द्रस्य** ) ऐश्वर्य के ( **वज्रः** ) प्राप्त करानेहारे ( **असि** ) हैं वैसे मैं भी होऊं जैसे मैं आपके वास्ते ऋद्धि सिद्धि करूं वैसे ( **तेन** ) उससे ( **मे** ) मेरे लिये ( **रध्य** ) कार्य करने का सामर्थ्य कीजिये ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यो को चाहिये कि जैसा पुरुष सब दिशाओ में कीर्तियुक्त वेदो को जानने धनुर्वेद और अर्थवेद की विद्या में प्रवीण सत्य करने और सबको सुख देनेवाला धर्मात्मा पुरुष होवे उसकी स्त्री भी वैसी ही होवे उनको राजधर्म में स्थापना करके बहुत सुख और बहुत सी शोभा को प्राप्त हो ॥ २८ ॥

**अग्निरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥**

*फिर राजा और प्रजा के जन किसके समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा । स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् वा राजपत्नि ! जैसे ( **पृथुः** ) महापुरुषार्थयुक्त धर्म का ( **पतिः** ) रक्षक ( **जुषाणः** ) सेवक ( **अग्निः** ) बिजुली के समान व्यापक ( **सजातानाम्** ) उत्पन्न हुए पदार्थों के रक्षक के साथ वर्त्तमान पदार्थों के ( **मध्यमेष्ठ्याय** ) मध्य में स्थिर होके ( **स्वाहा** ) सत्य क्रिया से ( **आज्यस्य** ) घी आदि होम के पदार्थों को प्राप्त कराता हुआ ( **सूर्यस्य** ) सूर्य की ( **रश्मिभिः** ) किरणो के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख देता है वैसे ( **धर्मणः** ) न्याय के ( **पतिः** ) रक्षक ( **पृथुः** ) बड़े ( **जुषाणः** ) सेवा करनेवाला ( **अग्निः** ) तेजस्वी आप राज्य को ( **वेतु** ) प्राप्त हूजिए। वैसे ही हे ( **स्वाहाकृताः** ) सत्य काम करनेवाले सभासद् पुरुषो वा स्त्री लोगो ! तुम ( **यतध्वम्** ) प्रयत्न किया करो ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजा और प्रजा के पुरुषो तथा राणी वा राणी के सभासदो ! तुम लोग प्रसिद्ध सूर्य और बिजुली अग्नि के समान वर्त्त पक्षपात छोड़ एक जन्म में मध्यस्थ होके न्याय करो। जैसे यह अग्नि सूर्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धियुक्त द्रव्यो को प्राप्त करा वायु जल और ओषधियो की शुद्धि द्वारा सब प्राणियो को सुख देता है वैसे ही न्याययुक्त कर्मों के साथ आचरण करनेवाले होके सब प्रजाओ को सुखयुक्त करो ॥ २९ ॥

**सवित्रेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ॥**

*राजा वा राणी को कैसे गुणो से युक्त होना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—हे प्रजा और राजपुरुषो ! जैसे मैं ( **प्रसवित्रा** ) प्रेरणा करनेवाले वायु ( **सवित्रा** ) सम्पूर्ण चेष्टा उत्पन्न करनेहारे के समान शुभ कर्म ( **सरस्वत्या** ) प्रशसित विज्ञान और क्रिया से युक्त ( **वाचा** ) वेदवाणी के समान सत्यभाषण ( **त्वष्ट्रा** ) छेदक और प्रतापयुक्त सूर्य के समान न्याय ( **रूपैः** ) सुखरूप ( **पूष्णा** ) पृथिवी ( **पशुभिः** ) गौ आदि पशुओ के समान प्रजा के पालन ( **इन्द्रेण** ) बिजुली ( **अस्मे** ) हम ( **बृहस्पतिना** ) बड़ो के रक्षक चार वेदो के जाननेहारे विद्वान् के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार ( **ओजसा** ) बल ( **वरुणेन** ) जल के समुदाय ( **तेजसा** ) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओ के जलाने ( **अग्निना** ) अग्नि ( **राज्ञा** ) प्रकाशमान आनन्द के होने ( **सोमेन** ) चन्द्रमा ( **दशम्या** ) दशसंख्या को पूर्ण करनेवाली ( **देवतया** ) प्रकाशमान और ( **विष्णुना** ) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण कर्म और स्वभाव से ( **प्रसूतः** ) प्रेरणा किया हुआ मैं ( **प्रसर्पामि** ) अच्छे प्रकार चलता हूँ वैसे तुम लोग भी चलो ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सूर्यादि गुणो से युक्त पिता के समान रक्षा करनेहारा हो वह राजा होने के योग्य है और जो पुत्र के समान वर्त्तमान करे वह प्रजा होने योग्य है ॥ ३० ॥

**अश्विभ्यामित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सभापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ॥**

*फिर मनुष्य कैसे होके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥**

**पदार्थ**—हे राजा तथा प्रजापुरुषो ! तुम ( **अश्विभ्याम्** ) सूर्य चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक ( **पच्यस्व** ) शुद्ध बुद्धिवाले हो ( **सरस्वत्यै** ) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिए ( **पच्यस्व** ) उद्यत हो ( **सुत्राम्णे** ) अच्छी रक्षा करनेहारे ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य के लिये ( **पच्यस्व** ) दृढ़ पुरुषार्थ करो ( **पवित्रेण** ) शुद्ध धर्म के आचरण में ( **वायुः** ) वायु के समान ( **पूतः** ) निर्दोष ( **प्रत्यङ्** ) पूजा को प्राप्त ( **सोमः** ) अच्छे गुणो से युक्त ऐश्वर्यवाले ( **अतिस्रुतः** ) अत्यन्त ज्ञानवान् ( **इन्द्रस्य** ) परमेश्वर के ( **युज्यः** ) योगाभ्यासमहित ( **सखा** ) मित्र हो ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—मनुष्य को चाहिए कि सत्यवादी धर्मात्मा आप्त अध्यापक और उपदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गो से ईश्वर की उपासना और सम्पत्ति होने के लिये प्रयत्न करके आपस में मित्रभाव से वर्त्ते ॥ ३१ ॥

**कुविदङ्गेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ॥**

*राजा आदि सभा के पुरुष किसके तुल्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अङ्ग** ) ज्ञानवान् राजन् ! जो ( **कुवित्** ) बहुत ऐश्वर्यवाले आप ( **अश्विभ्याम्** ) विद्या को प्राप्त हुए शिक्षक लोगो के लिये ( **उपयामगृहीतः** ) ब्रह्मचर्य के नियमो से स्वीकार किए ( **असि** ) है उन ( **सरस्वत्यै** ) विद्यायुक्त वाणी के लिये ( **त्वा** ) आपको और ( **सुत्राम्णे** ) अच्छी रक्षा के लिये ( **त्वा** ) आपको हम लोग स्वीकार करते है। उनके लिये सत्कार के साथ भोजन आदि दीजिये। जैसे ( **यवमन्तः** ) बहुत जौ आदि धान्य से युक्त खेती करनेहारे लोग ( **इहेह** ) इस व्यवहार में ( **यवम्** ) यवादि अन्न को ( **अनुपूर्वम्** ) क्रम से ( **दान्ति** ) लुनते ( काटते ) हैं। भुस से ( **चित्** ) भी ( **यवम्** ) जवो को ( **वियूय** ) पृथक् करके रक्षा करते हैं वैसे सत्य असत्य का ठीक ठीक विचार करके न्याय की रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे खेती करनेवाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलो को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते है और जैसे ठीक २ राज्य का भाग राजा को देते है वैसे ही राजा आदि पुरुषो को चाहिए कि अत्यन्त परिश्रम से इनकी रक्षा न्याय के आचरण से ऐश्वर्य को उत्पन्न कर और सुपात्रो के लिये देते हुए आनन्द को भोगे ॥ ३२ ॥

**युवमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वरः ॥**

*सभा और सेनापति प्रयत्न से वैश्यो की रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**युवꣳसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पतीऽइन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सचा** ) मिले हुए ( **विपिपाना** ) विविध राज्य के रक्षक ( **शुभः** ) कल्याणकारक व्यवहार के ( **पती** ) पालन करनेहारे ( **अश्विना** ) सूर्य चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति ( **युवम्** ) तुम दोनो ( **नमुचौ** ) जो अपने दुष्ट कर्म को न छोड़े ( **आसुरे** ) मेघ के व्यवहार में ( **कर्मसु** ) खेती आदि कर्मों में वर्त्तमान ( **सुरामम्** ) अच्छी तरह जिसमें रमण करे उस ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्यवाले धनी की निरन्तर ( **आवतम्** ) रक्षा करो ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—दुष्टो से श्रेष्ठो की रक्षा के लिये ही राजा होता है राज्य की रक्षा के विना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती और न प्रजाजनो के अनुकूल हुए विना राजपुरुषो की स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिंहो के समान परस्पर सहायी होके सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें ॥ ३३ ॥

पुत्रमिवेत्यस्य शुन शेप ऋषि । अश्विनौ देवते । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर ॥

*राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंꣳसनाभिः ।**
**यत्सुराम् व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥३४॥**

**पदार्थ**—हे ( **मघवन** ) विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य ( **इन्द्र** ) सब सभाओ के मालिक राजन् ! ( **यत** ) जो आप ( **शचीभि** ) अपनी बुद्धियो के बल से ( **सुरामम्** ) अच्छा आराम देनहारे रस को ( **व्यपिब** ) विविध प्रकार से पीवें उस आपका ( **सरस्वती** ) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणी के समान स्त्री ( **अभिष्णक** ) सेवन करे ( **अश्विना** ) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए ( **उभा** ) तुम दोनो सेनापति और न्यायाधीश ( **काव्यै** ) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगो ने किये ( **दसनाभि** ) कर्मों से ( **पुत्रम्** ) जैसे माता पिता (**पुत्रम्**) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की ( **आवथु** ) रक्षा करो ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—सब अच्छे अच्छे गुणो से युक्त राजधर्म का सेवनेहारा धर्मात्मा अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे लक्षणो से युक्त रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे । जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो और पति भी उसके संमति का हो । राजा अपने मन्त्री नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओ मे सत्पुरुषो की रीति पर पिता के समान और प्रजापुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्त्तें । इस प्रकार आपस में प्रीति से साथ मिलके आनन्दित होवें ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

**इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये दशमोऽध्याय सम्पूर्ण ॥ १० ॥**

## ॥ अथैकादशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

युञ्जान इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इस के प्रथम मन्त्र में योगाभ्यास और भूगर्भ विद्या का उपदेश किया है—*

**युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।**
**अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—जो ( **सविता** ) ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य ( **तत्त्वाय** ) उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान के लिये ( **प्रथमम्** ) पहिले ( **मन** ) विचारस्वरूप अन्त करण की वृत्तियो को ( **युञ्जान** ) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या मे युक्त करता हुआ ( **अग्ने** ) पृथिवी आदि मे रहनेवाली बिजुली के ( **ज्योति** ) प्रकाश को ( **निचाय्य** ) निश्चय करके ( **पृथिव्या** ) भूमि के ( **अधि** ) ऊपर ( **आभरत** ) अच्छे प्रकार धारण करे वह योगी और भूगर्भ विद्या का जानने वाला होवे ॥ १ ॥

**भावार्थ**—जो पुरुष योगाभ्यास और भूगर्भविद्या किया चाहे वह यम आदि योग के अङ्ग और क्रिया कौशलो से अपने हृदय के शुद्ध तत्त्वो का ज्ञान बुद्धि को प्राप्त और इन को गुण कर्म तथा स्वभाव से जान के उपयोग लेवे । फिर जो प्रकाशमान सूर्य्यादि पदार्थ हैं उन का भी प्रकाशक ईश्वर है उस को जान और अपने आत्मा मे निश्चय करके अपने और दूसरो के सब प्रयोजनो को सिद्ध करें ॥ १ ॥

युक्तेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । शङ्कुमती गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र मे कहा है—*

**युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । स्वर्ग्याय शक्त्या ॥२॥**

**पदार्थ**—हे योग और तत्त्वविद्या को जानने की इच्छा करनेहारे मनुष्यो ! जैसे ( **वयम्** ) हम योगी लोग ( **युक्तेन** ) योगाभ्यास किये ( **मनसा** ) विज्ञान और ( **शक्त्या** ) सामर्थ्य से ( **देवस्य** ) सब को चिताने तथा ( **सवितु** ) समग्र संसार को उत्पन्न करनेहारे ईश्वर के ( **सवे** ) जगत् रूप इस ऐश्वर्य मे ( **स्वर्ग्याय** ) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश की अधिकाई से धारण करें वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो ॥ २ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि मे समाहित हुए योगाभ्यास और तत्त्वविद्या को यथाशक्ति सेवन करें उनमे सुन्दर आत्मज्ञान के प्रकाश से युक्त हुए योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करें तो अवश्य सिद्धियो को प्राप्त हो जावें ॥ २ ॥

युक्त्वायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।**
**बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—जिन को ( **सविता** ) योग के पदार्थों के ज्ञान के करनेहारा जन परमात्मा मे मन को ( **युक्त्वाय** ) युक्त करके ( **धिया** ) बुद्धि से ( **दिवम्** ) विद्या के प्रकाश को ( **स्व** ) सुख को ( **यत** ) प्राप्त कराने वाले ( **बृहत्** ) बड़े ( **ज्योति** ) विज्ञान को ( **करिष्यत** ) जो करेंगे उन ( **देवान्** ) दिव्य गुणों को ( **प्रसुवाति** ) उत्पन्न करे ( **तान्** ) उनको अन्य भी उत्पादक जन उत्पन्न करें ॥ ३॥

**भावार्थ**—जो पुरुष योगाभ्यास करते है वे अविद्या आदि क्लेशो को हटाने वाले शुद्ध गुणो को प्रकट कर सकते हैं । जो उपदेशक पुरुष से योग और तत्त्वज्ञान को प्राप्त होवे ऐसा अभ्यास कर वह भी इन गुणों को प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

युञ्जत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*योगाभ्यास करके मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।**
**वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥**

**पदार्थ**—जो ( **होत्रा** ) दान देने लेने के स्वभाव वाले ( **विप्रा** ) बुद्धिमान् पुरुष जिस ( **बृहत** ) बड़े ( **विपश्चित** ) सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त आप्त पुरुष के समान वर्त्तमान ( **विप्रस्य** ) सब शास्त्रों के जाननेहारे बुद्धिमान् पुरुष से विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वानो से विज्ञानयुक्त जन ( **सवितु** ) सब जगत् को उत्पन्न और ( **देवस्य** ) सब प्रकाशक जगदीश्वर की ( **मही**) बड़ी ( **परिष्टुति:** ) सब प्रकार की स्तुति है उस तत्त्वज्ञान के विषय मे जैसे ( **मन** ) अपने चित्त को ( **युञ्जते** ) समाधान करते और ( **धिय** ) अपनी बुद्धियो को युक्त करते हैं वैसे ही ( **वयुनावित्** ) प्रकृष्ट ज्ञान वाला (**एक**) अन्य के सहाय की अपेक्षा से रहित ( **इत्** ) ही मैं (**विदधे**) विधान करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो नियम से आहार विहार करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष एकान्त देश में परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

युजेवामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*मनुष्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः ।**
**शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥**

पदार्थ—हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करनेवाले मनुष्यो ! आप लोग जैसे ( श्लोक ) सत्य वाणी से संयुक्त मैं ( नमोभि ) सत्कारों से जिस ( पूर्व्यम् ) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये ( ब्रह्म ) सब से बड़े व्यापक ईश्वर को ( युजे ) अपने आत्मा से युक्त करता हूँ वह ईश्वर ( वाम् ) तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने हारे दोनो को ( सूरे ) विद्वान् को ( पथ्येव ) उत्तम गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है वैसे ( व्येतु ) विविध प्रकार से प्राप्त होवे । जैसे ( विश्वे ) सब ( पुत्रा ) अच्छे सन्तानो के तुल्य आज्ञाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग ( अमृतस्य ) अविनाशी ईश्वर के योग से ( दिव्यानि ) सुख के प्रकाश में होने वाले ( धामानि ) स्थानों को ( आतस्थु ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे मैं भी उनको प्राप्त होऊं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानो का सङ्ग करें। उनके संग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योग विधि सहज मे प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस संग और ब्रह्मज्ञान के विना पवित्र होकर सब सुखो को प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें ॥ ५ ॥

यस्य प्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*मनुष्य किसकी उपासना करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यस्य प्रयाणमन्वन्यऽइद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा । यः**
**पार्थिवानि विममे सऽएतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥६॥**

पदार्थ—हे योगी पुरुषो ! तुम को चाहिये कि ( यस्य ) जिस ( देवस्य ) सब सुख देनेहारे ईश्वर के ( महिमानम् ) स्तुति विषय को ( प्रयाणम् ) कि जिस से प्राप्त होवे उस के ( अनु ) पीछे ( अन्य ) जीवादि और ( देवा ) विद्वान् लोग ( ययु ) प्राप्त होवें ( य ) जो ( एतश ) सब जगत् में अपनी व्याप्ति से प्राप्त हुआ ( सविता ) सब जगत् का रचने हारा ( देव ) शुद्धस्वरूप भगवान् ( महित्वना ) अपनी महिमा और ( ओजसा ) पराक्रम से ( पार्थिवानि ) पृथिवी पर प्रसिद्ध ( रजांसि ) सब लोकों को ( विममे ) विमान आदि यानों के समान रचता है वह ( इत ) ही निरन्तर उपासनीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग सब जगत् के बीच २ पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने रचने और सुख देनेहारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों मे व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं वे ही सुख पाते हैं अन्य नहीं ॥ ६ ॥

देव सवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः**
**केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( देव ) सत्य योगविद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने ( सवित ) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करनेहारे परमेश्वर ! आप ( न ) हमारे ( यज्ञम् ) सुखों को प्राप्त करानेहारे व्यवहार को ( प्रसुव ) उत्पन्न कीजिये तथा ( यज्ञपतिम् ) इस सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को ( प्रसुव ) उत्पन्न कीजिये ( गन्धर्व ) पृथिवी को धरके ( दिव्य ) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और ( केतपू ) विज्ञान से पवित्र करनेहारे आप ( न ) हमारे ( केतम् ) विज्ञान को ( पुनातु ) पवित्र कीजिए और ( वाचस्पति ) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप ( न ) हमारी ( वाचम् ) वाणी को ( स्वदतु ) स्वादिष्ट अर्थात् कोमल मधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं वे सत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । शक्वरी छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं**
**धनजितꣳ स्वर्जितम् । ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं**
**बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे ( देव ) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और ( सवित ) अन्तर्यामिरूप से प्रेरणा करने हारे जगदीश्वर आप ( न ) हमारे ( इमम् ) पीछे कहे और आगे जिसको कहेंगे उस ( देवाव्यम् ) दिव्य गुणों की जिससे रक्षा हो ( सखिविदम् ) मित्रों को जिससे प्राप्त हो ( सत्राजितम् ) सत्य को जिससे जीतें ( धनजितम् ) धन की जिससे उन्नति होवे ( स्वर्जितम् ) सुख को जिससे बढ़ावें और ( ऋचा ) ऋग्वेद से जिस की ( स्तोमम् ) स्तुति हो उस ( यज्ञम् ) विद्या और धर्म का संयोग कराने हारे यज्ञ को ( स्वाहा ) सत्य क्रिया के साथ ( प्रणय ) प्राप्त कीजिये ( गायत्रेण ) गायत्री आदि छन्दों से ( गायत्रवर्त्तनि ) गायत्री आदि छन्दों की गानविद्या ( बृहत् ) बड़े ( रथन्तरम् ) अच्छे २ यानों से जिस के पार हो उस मार्ग को ( समर्धय ) अच्छे प्रकार बढ़ाये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं वे संपत् को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

*मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।**
**आददे गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिर-**
**स्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! मैं जिस ( त्वा ) आप को ( देवस्य ) सूर्य्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और ( सवितु ) सब ऐश्वर्य मे ( अश्विनो ) प्राण और उदान के ( बाहुभ्याम् ) बल और आकर्षण से तथा ( पूष्ण ) पुष्टिकारक बिजुली के ( हस्ताभ्याम् ) कारण और आकर्षण ( अङ्गिरस्वत् ) अङ्गारों के समान ( आददे ) ग्रहण करता हूँ सो आप ( गायत्रेण ) गायत्री मन्त्र से निकले ( छन्दसा ) आनन्ददायक अर्थ के साथ ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( सधस्थात् ) एक स्थान से ( अङ्गिरस्वत् ) प्राणों के तुल्य और ( त्रैष्टुभेन ) त्रिष्टुप् मन्त्र से निकले ( छन्दसा ) स्वतन्त्र अर्थ के साथ ( अङ्गिरस्वत् ) बिजुली के सदृश ( पुरीष्यम् ) जल को उत्पन्न करने हारे ( अग्निम् ) बिजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को ( आभर ) धारण कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जाननेहारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करने और पृथिवी आदि पदार्थों में रहनेवाले अग्नि को स्वीकार करें ॥ ९ ॥

अभ्रिरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुꣳ सधस्थ आ ।**
**जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे कारीगर पुरुष ! जो ( त्वया ) तेरे साथ ( सधस्थे ) एक स्थान में वर्त्तमान ( वयम् ) हम लोग जो ( अभ्रि ) भूमि खोदने और ( नारी ) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्य्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कस्सी ( असि ) है जिससे कारीगर लोग भूगर्भविद्या को जान सकें उस को ग्रहण करके ( जागतेन ) जगती मन्त्र से विधान किये ( छन्दसा ) सुखदायक स्वतन्त्र साधन से ( अंगिरस्वत् ) प्राणों के तुल्य ( अग्निम् ) विद्युत् आदि अग्नि को ( खनितुम् ) खोदने के लिये ( आशकेम ) सब प्रकार समर्थ हों उस को तू बना ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदन के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त करके सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्वविद्या को प्राप्त होके ऐसा कर सकते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १० ॥

हस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । आर्षी छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर भी उसी उक्त विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**हस्तऽआधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् ।**
**अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ११**

पदार्थ—( सविता ) ऐश्वर्य का उत्पन्न करनेहारा कारीगर मनुष्य ( आनुष्टुभेन ) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए ( छन्दसा ) स्वतन्त्र अर्थ के योग से ( हिरण्ययीम् ) तेजोमय शुद्ध धातु से बने ( अभ्रिम् ) खोदने के शस्त्र को ( हस्ते ) हाथ में लिये हुए ( अंगिरस्वत् ) प्राण के तुल्य ( अग्ने ) विद्युत् आदि अग्नि के

( ज्योति ) तेज को ( निचाय्य ) निश्चय करके ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( अधि ) ऊपर ( आभरत ) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि जैसे लोहा और पत्थरों में बिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है। उस की विद्या को ठीक २ जान और कार्यों में उपयुक्त करके इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

**प्रतूर्त्तमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषि । वाजी देवता । आस्तारपङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।**
**दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभि पृथिव्यामधि योनिरित् ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे ( **वाजिन्** ) प्रशंसित ज्ञान से युक्त विद्वन् ! जिस ( **ते** ) आपका शिल्पविद्या में ( **दिवि** ) सूर्य्य के प्रकाश में ( **परमम्** ) उत्तम ( **जन्म** ) प्रसिद्ध ( **तव** ) आपका ( **अन्तरिक्षे** ) आकाश में ( **नाभि** ) बन्धन और ( **पृथिव्याम्** ) इस पृथिवी में ( **योनि** ) निमित्त प्रयोजन है सो आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर ( **वरिष्ठाम्** ) अत्यन्त उत्तम ( **संवतम्** ) अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति को ( **प्रतूर्त्तम्** ) अतिशीघ्र ( **इत्** ) ही ( **अनु** ) पश्चात् ( **आ, द्रव** ) अच्छे प्रकार चलिये ॥१२॥

**भावार्थ**—जब मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीच में परम प्रयत्न के साथ प्रसिद्ध हों और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना आना करते हैं तब उनको धन की प्राप्ति सुगम होती है ॥१२॥

**युञ्जाथामित्यस्य कुश्रिर्ऋषि । वाजी देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**युञ्जाथाꣳ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू ।**
**अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वृषण्वसू** ) सूर्य्य और वायु के समान सुख वर्षाने वा सुख में बसने हारे कारीगर तथा उसके स्वामी लोगो ! ( **युवम्** ) तुम दोनों ( **अस्मिन्** ) इस ( **यामे** ) यान में ( **रासभम्** ) जल और अग्नि के वेगगुणरूप अश्व तथा ( **अस्मयुम्** ) हम को ले चलने तथा ( **भरन्तम्** ) धारण करनेहारे ( **अग्निम्** ) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप अग्नि को ( **युञ्जाथाम्** ) युक्त करो ॥१३॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यन्त्र कला जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं ॥१३॥

**योगेयोग इत्यस्य शुनःशेप ऋषि । क्षत्रपतिर्देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*प्रजाजन कैसे पुरुष को राजा मानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखायऽइन्द्रमूतये ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे ( **सखाय** ) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो ! जैसे हम लोग ( **ऊतये** ) रक्षा आदि के लिये ( **योगेयोगे** ) जिस जिस में ( **वाजेवाजे** ) हो संग्राम संग्राम के बीच ( **तवस्तरम्** ) अत्यन्त बलवान् ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष को राजा ( **हवामहे** ) मानते हैं वैसे ही तुम लोग भी मानो ॥१४॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य परस्पर मित्र होके एक दूसरे की रक्षा के लिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं वे सब विघ्नों से अलग हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥१४॥

**प्रतूर्वन्नित्यस्य शुनःशेप ऋषि । गणपतिर्देवता । आर्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! ( **स्वस्तिगव्यूति** ) सुख के साथ जिसका मार्ग है ऐसे आप ( **सयुजा** ) एक साथ युक्त करनेवाली ( **पूष्णा** ) बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के ( **सह** ) साथ ( **अशस्ती** ) निन्दित शत्रुओं की सेनाओं को ( **प्रतूर्वन्** ) मारते हुए ( **एहि** ) प्राप्त हूजिये। शत्रुओं के देशों का ( **अवक्रामन्** ) उल्लङ्घन करते हुए ( **एहि** ) आइये ( **मयोभू** ) सुख को उत्पन्न करने आप ( **रुद्रस्य** ) शत्रुओं को रुलाने हारे अपने सेनापति के ( **गाणपत्यम्** ) सेना समूह के स्वामीपन को ( **एहि** ) प्राप्त हूजिये और ( **अभयानि** ) अपने राज्य में सब प्राणियों को भयरहित ( **कृण्वन्** ) करते हुए ( **अन्तरिक्षम् उरु** ) परिपूर्ण आकाश को ( **वीहि** ) विविध प्रकार से प्राप्त हूजिये ॥१५॥

**भावार्थ**—राजा को अति उचित है कि अपनी सेना को सदैव अच्छी शिक्षा हर्ष उत्साह और पोषण से युक्त रक्खे। जब शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहे तब अपने राज्य को उपद्रवरहित कर युक्ति तथा बल से शत्रुओं को मारे और सज्जनों की रक्षा करके सर्वत्र सुन्दर कीर्ति फैलावे ॥१५॥

**पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥ १६ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे हम लोग ( **पृथिव्या** ) भूमि और अन्तरिक्ष के ( **सधस्थात** ) एक स्थान से ( **अङ्गिरस्वत** ) प्राणों के समान ( **पुरीष्य** ) अच्छा सुख देनेहारे ( **अग्निम्** ) भूमिमण्डल की बिजुली को ( **अच्छ** ) उत्तम रीति से ( **इम** ) प्राप्त होते और जैसे ( **अङ्गिरस्वत** ) प्राणों के समान ( **पुरीष्यम्** ) उत्तम सुखदायक ( **अग्निम्** ) अन्तरिक्षस्थ बिजुली को ( **भरिष्याम** ) धारण करें वैसे आप भी ( **अङ्गिरस्वत** ) सूर्य्य के समान ( **पुरीष्यम्** ) उत्तम सुख देनेवाले ( **अग्निम्** ) पृथिवी पर वर्त्तमान अग्नि को ( **आभर** ) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें सुस्त न हों और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें ॥१६॥

**अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*विद्वान् लोग किसके समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।**
**अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवीऽआततन्थ ॥ १७ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! आप जैसे ( **प्रथम जातवेदा** ) उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य्यलोक और ( **अग्नि उषसाम्** ) उष काल से ( **अग्रम्** ) पहिले ही ( **अहानि** ) दिनों को ( **अन्वख्यत** ) प्रसिद्ध करता है ( **सूर्य्यस्य** ) सूर्य्य के ( **अग्रम्** ) पहिले ( **पुरुत्रा** ) बहुत ( **रश्मीन्** ) किरणों को ( **अन्वाततन्थ** ) फैलाता तथा ( **द्यावापृथिवी** ) सूर्य्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है। वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कारण रूप विद्युत् और कार्य्यरूप प्रसिद्ध अग्नि क्रम से सूर्य्य उष काल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं। वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य विद्या धर्म्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाशयुक्त करें ॥ १७ ॥

**आगत्येत्यस्य मयोभूर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब सभापति राजा किस के समान क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधूनुते ।**
**अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥ १८ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! आप जैसे ( **वाजी** ) वेगवान् घोड़ा ( **अध्वानम्** ) अपने मार्ग को ( **आगत्य** ) प्राप्त हो के ( **सर्वा** ) सब ( **मृध** ) संग्रामों को ( **विधूनुते** ) कंपाता है और जैसे गृहस्थ पुरुष ( **चक्षुषा** ) नेत्रों से ( **महति** ) सुन्दर ( **सधस्थे** ) एक स्थान में ( **अग्निम्** ) अग्नि को ( **निचिकीषते** ) चयन किया चाहता है वैसे सब संग्रामों को कंपाइये और घर घर में विद्या का प्रचार कीजिये ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। गृहस्थों को चाहिये कि घोड़ों के समान जाना आना कर शत्रुओं को जीतें, आग्नेयादि अस्त्रविद्या को सिद्ध कर अपने बलाबल का विचार और राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति करके अधर्मी शत्रुओं को जीतें ॥ १८ ॥

**आक्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*मनुष्य जन्म पा और विद्या पढ़के पश्चात् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।**
**भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वाजिन्** ) प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा ! ( **त्वम्** ) आप ( **रुचा** ) प्रीति से शत्रुओं को ( **आक्रम्य** ) पादाक्रान्त कर ( **पृथिवीम्** ) भूमि के राज्य और ( **अग्निम्** ) विद्या की ( **इच्छ** ) इच्छा कीजिये और ( **भूम्या** ) पृथिवी के बीच ( **न** ) हम लोगों को ( **वृत्वाय** ) स्वीकार करके हमारे लिये ( **ब्रूहि** ) भूगर्भ और अग्निविद्या का उपदेश कीजिये ( **यत** ) जिस से ( **वयम्** ) हम लोग ( **तम्** ) उस विद्या में ( **खनेम** ) प्रविष्ट होवें ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह के साथ प्राप्त होवें और जो पृथिवी को खोदने वाले नौकर चाकर हैं उन को इस विद्या का उपदेश करें ॥ १९ ॥

**द्यौस्त इत्यस्य मयोभूऋ षि । अश्वपतिर्देवता । निचृदार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*मनुष्य क्या करके क्या सिद्ध कर यह विषय अगल मन्त्र म कहा है—*

**द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी स॒धस्थ॑मा॒त्मान्तरि॑क्षꣳ समु॒द्रो योनिः ।**
**वि॒ख्याय॒ चक्षु॑षा॒ त्वम॒भि ति॑ष्ठ पृतन्य॒तः ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जिस ( **ते** ) आप का ( **द्यौ** ) प्रकाश के तुल्य विनय ( **पृष्ठम्** ) इधर का व्यवहार ( **पृथिवी** ) भूमि क समान ( **सधस्थम्** ) साथ स्थिति ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश के समान अविनाशी धययुक्त ( **आत्मा** ) अपना स्वरूप और ( **समुद्र** ) समुद्र के तुल्य ( **योनि** ) निमित्त है सो ( **त्वम** ) आप ( **चक्षुषा** ) विचार क साथ ( **विख्याय** ) अपना ऐश्वय प्रसिद्ध करके ( **पृतन्यत** ) अपनी सेना को लडाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के ( **अभि** ) सन्मुख ( **तिष्ठ** ) स्थित हूजिए ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष न्याय माग के अनुसार चले उत्साह स्थान और आत्मा जिसक दृढ हा विचार स सिद्ध करन योग्य जिसके प्रयाजन हा उसकी सेना वीर हाती है वह निश्चय विजय करन को समथ होवे ॥२०॥

**उत्क्रामेत्यस्य मयोभूऋ षि । द्रविणोदा देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*मनुष्यों को योग्य है कि इस ससार म परम पुरुषार्थ स ऐश्वय उत्पन्न करे यह विषय अगल मन्त्र में कहा है—*

**उत्क्रा॑म मह॒ते सौभ॑गाया॒स्मादा॒स्थाना॑द् द्रविणो॒दा वा॑जिन् ।**
**व॒यꣳ स्या॑म सुम॒तौ पृ॑थि॒व्या अ॒ग्निं ख॒नन्त॑ उ॒पस्थे॑ अस्याः ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे ( **वाजिन्** ) ऐश्वर्य का प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे ( **द्रविणोदा** ) धनदाता ( **अस्या** ) इस ( **पृथिव्या** ) भूमि के ( **अस्मात** ) इस ( **आस्थानात** ) निवास के स्थान से ( **उपस्थे** ) समीप मे ( **अग्निम्** ) अग्नि विद्या का ( **खनन्त** ) खोज करते हुए ( **वयम** ) हम लाग ( **महते** ) बडे ( **सौभगाय** ) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए ( **सुमतौ** ) अच्छी बुद्धि मे प्रवत्त ( **स्याम** ) होवें वसे आप ( **उत्काम** ) उन्नति को प्राप्त हूजिए ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को उचित है कि इस ससार मे ऐश्वय पाने के लिए निरन्तर उद्यत रहे और आपस मे हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों को प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

**उदक्रमीदित्यस्य मयोभूऋ षि । द्रविणोदा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धवत स्वर ॥**

*मनुष्य इस ससार मे किसके समान होके किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उद॑क्रमीद् द्रविणो॒दा वा॒ज्यर्वाकः॒ सु लो॒कꣳ सुकृ॑तं पृथि॒व्याम् ।**
**ततः॑ खनेम सु॒प्रती॑कम॒ग्निꣳ स्वो॒ रुहा॑णा॒ अधि॒ नाक॑मुत्त॒मम् ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे भूगर्भ विद्या के जानने हारे विद्वन् ! ( **द्रविणोदा** ) धनदाता आप जैसे ( **वाजी** ) बल वाला ( **अर्वा** ) घोडा ऊपर को उछलता है वसे ( **पृथिव्याम** ) पृथिवी के बीच ( **अधि उदक्रमीत** ) सब से अधिक उन्नति को प्राप्त हूजिये ( **सुकृतम्** ) धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य ( **सुलोकम्** ) अच्छा देखने योग्य ( **उत्तमम्** ) अति श्रेष्ठ ( **नाकम्** ) सब दु खो स रहित सुख को ( **अक** ) सिद्ध कीजिये ( **तत** ) इसके पश्चात् ( **स्व** ) सुखपूवक ( **रुहाणा** ) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर ( **सुप्रतीकम्** ) सुन्दर प्रीति का विषय ( **अग्निम्** ) व्यापक बिजुली रूप अग्नि का ( **खनेम** ) खोज करें ॥२२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जसे पृथिवी पर घोडे अच्छी अच्छी चाल चलते हैं वसे हम तुम सब मिल कर पुरुषार्थी हो पृथिवी आदि की पदार्थविद्या को प्राप्त हो और दु खो को दूर करके सबसे उत्तम सुख को प्राप्त हो ॥२२॥

**आत्वेत्यस्य गृत्समद ऋषि । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्य व्यापक वायु को किस साधन से जाने यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ त्वा॑ जिघर्मि॒ मन॑सा घृ॒तेन॑ प्रतिक्षि॒यन्तं॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।**
**पृ॒थुं ति॑र॒श्चा वय॑सा बृ॒हन्तं॒ व्यचि॑ष्ठ॒मन्नै॑ रभ॒सं दृशा॑नम् ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे ज्ञान चाहनेवाले पुरुष ! जैसे मैं ( **मनसा** ) मन तथा ( **घतेन** ) घी के साथ ( **विश्वा** ) सब ( **भुवनानि** ) लोकस्थ वस्तुओं मे ( **प्रतिक्षियन्तम्** ) प्रत्यक्ष निवास और निश्चयकारक ( **तिरश्चा** ) तिरछे चलने रूप ( **वयसा** ) जीवन से ( **पृथुम्** ) विस्तारयुक्त ( **बृहन्तम्** ) बडे ( **अन्नै** ) जौ आदि अन्नो के साथ ( **रभसम्** ) बल वाले ( **व्यचिष्ठम्** ) अतिशय करके फैंकनेवाले ( **दृशानम** ) देखने योग्य वायु के गुणो को ( **आजिघर्मि** ) अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूँ वैसे ( **त्वाम्** ) आपको भी इस वायु के गुणो का धारण कराता हूँ ॥२३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यो को वायु मे पहुचा उस सुगन्ध से रोगो को दूर कर अधिक अवस्था को प्राप्त होवें ॥२३॥

**आ विश्वत इत्यस्य गृत्समद ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाल है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ वि॒श्वतः॑ प्र॒त्यञ्चं॑ जिघर्म्यर॒क्षसा॒ मन॑सा॒ तज्जु॑षेत ।**
**मर्य॑श्रीः स्पृहयद्व॑र्णो अ॒ग्निर्नाभि॒मृशे॑ त॒न्वा॒ जर्भु॑राणः ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! ( **म** ) जसे ( **विश्वत** ) सब ओर से ( **अग्नि** ) बिजुली और प्राण वायु शरीर मे व्यापक हाके ( **अभिमृशे** ) सहनेवाले के लिये हितकारी हैं जैसे ( **तन्वा** ) शरीर स ( **जर्भुराण** ) शीघ्र हाथ पाव आदि अङ्गों को चलाता हुआ ( **स्पृहयद्वर्ण** ) इच्छा वालो ने स्वीकार किये हुए के समान ( **मर्यश्री** ) मनुष्यो की शोभा के तुल्य वायु के समान वेग वाला होके मै जिस ( **प्रत्यञ्चम** ) शरीर के वायु को निरन्तर चलानेवाली विद्युत् को ( **अरक्षसा** ) राक्षसों की दुष्टता स रहित ( **मनसा** ) चित्त स ( **आजिघर्मि** ) प्रकाशित करता हूँ वैसे ( **तत** ) उस तज का ( **जुषत** ) सेवन कर ॥२४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग लक्ष्मी प्राप्त करान हारे अग्नि आदि पदार्थों का जान और उनका कार्यों मे सयुक्त करके धनवान् हाओ ॥२४॥

**परिवाजपतिरित्यस्य सोमक ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर गृहस्थ कैसे होवे यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**परि॒ वाज॑पतिः क॒विर॒ग्निर्ह॒व्यान्य॑क्रमीत् । दध॒द्रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ ॥२५॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो ( **वाजपति** ) अन्न आदि की रक्षा करनेहारे गृहस्थो के समान ( **कवि** ) बहुदर्शी दाता गृहस्थ पुरुष ( **दाशुषे** ) दान देने योग्य विद्वान् के लिये ( **रत्नानि** ) सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थ ( **दधत्** ) धारण करने हुए के समान ( **अग्नि** ) प्रकाशमान पुरुष ( **हव्यानि** ) देने योग्य वस्तुओ को ( **परि** ) सब ओर से ( **अक्रमीत्** ) प्राप्त होता है उसको तू जान ॥२५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अग्निविद्या के सहाय से पृथिवी के पदार्थों से धन को प्राप्त हो अच्छे मार्ग म खर्च कर और धर्मात्माओ को दान दे के विद्या के प्रचार स सब को सुख पहुँचावे ॥२५॥

**परि त्वेत्यस्य पायुऋ षि । अग्निर्देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ।**

*कसा सेनापति करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्रꣳ॑ सहस्य धीमहि ।**
**धृ॒षद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गु॒राव॑ताम् ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सहस्य** ) अपने को बल चाहनेवाले ( **अग्ने** ) अग्निवत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष ! जसे ( **वयम** ) हम लाग ( **दिवेदिवे** ) प्रतिदिन ( **भंगुरावताम** ) खाटे स्वभाव वालो के ( **पुरम्** ) नगर को अग्नि क समान ( **हन्तारम** ) मारने ( **धृषद्वर्णम** ) दृढ सुन्दर वण स युक्त ( **विप्रम्** ) विद्वान् ( **त्वा** ) आपको ( **परि** ) सब प्रकार स ( **धीमहि** ) धारण करें वैसे तू हम को धारण कर ॥२६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने अग्नि के समान शत्रुओ को मारने और सब काल म सुख दन हारे पुरुष को सेनापति कर ॥२६॥

**त्वमग्न इत्यस्य गृत्समद ऋषि । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर सभाध्यक्ष कसा होना चाहिये यह विषय अगल मन्त्र मे कहा है—*

**त्वम॑ग्ने॒ द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।**
**त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचिः॑ ॥ २७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **नृपते** ) मनुष्यो के पालनेहारे ( **अग्ने** ) अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् ! ( **त्वम्** ) आप ( **द्युभि** ) दिनो के समान प्रकाशमान न्याय आदि गुणो से सूर्य्य के समान ( **त्वम** ) आप ( **आशुशुक्षणि** ) शीघ्र शीघ्र दुष्टो को मारने हारे ( **त्वम** ) आप ( **अद्भ्य** ) वायु वा जलों से ( **त्वम्** ) आप ( **अश्मन** ) मेघ वा पाषाणादि से ( **त्वम्** ) आप ( **वनेभ्य** ) जङ्गल वा किरणो से ( **त्वम** ) आप ( **ओषधीभ्य** ) सोमलता आदि ओषधियो से ( **त्वम्** ) आप ( **नृणाम्** ) मनुष्यो के बीच ( **शुचि** ) पवित्र ( **परि** ) सब प्रकार ( **जायसे** ) प्रसिद्ध होते हो इस कारण आपका आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होवें ॥२७॥

**भावार्थ**— जो राजा सभासद् वा प्रजा का पुरुष सब पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता धम के आचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वही सब सुखो को प्राप्त हो सकता है अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥ २७ ॥

**देवस्य त्वेत्यस्य गृत्समद ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिक् प्रकृतिश्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वत्ख॑नामि । ज्योति॑ष्मन्तं त्वाऽग्ने सु॒प्रती॑क॒मज॑स्रेण भा॒नुना॒ दीद्य॑तम् । शि॒वं प्र॒जाभ्यो॒ऽहिꣳसन्तं पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वत्ख॑नामः ॥२८॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) भूगर्भ तथा शिल्पविद्या के जाननेहारे विद्वन् ! जैसे मैं ( **सवितुः** ) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे ( **देवस्य** ) प्रकाशमान ईश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये संसार में ( **अश्विनोः** ) आकाश और पृथिवी के ( **बाहुभ्याम्** ) आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और ( **पूष्णः** ) प्राण के ( **हस्ताभ्याम्** ) बल और पराक्रम के तुल्य ( **त्वा** ) आपको आगे करके ( **पृथिव्याः** ) भूमि के ( **सधस्थात्** ) एक स्थान से ( **पुरीष्यम्** ) पूर्ण सुख देनेहारे ( **ज्योतिष्मन्तम्** ) बहुत ज्योति वाले ( **अजस्रेण** ) निरन्तर ( **भानुना** ) दीप्ति से ( **दीद्यतम्** ) अत्यन्त प्रकाशमान ( **पुरीष्यम्** ) सुन्दर रक्षा करने ( **अग्निम्** ) वायु में रहने वाली बिजुली को ( **अङ्गिरस्वत्** ) वायु के समान ( **खनामि** ) सिद्ध करता हूँ और जैसे ( **त्वा** ) आपका आश्रय लेके हम लोग ( **पृथिव्याः** ) अन्तरिक्ष के ( **सधस्थात्** ) एक प्रदेश से ( **अङ्गिरस्वत्** ) सूत्रात्मा वायु के समान वर्त्तमान ( **अहिंसन्तम्** ) जो कि ताड़ना न करे ऐसे ( **पुरीष्यम्** ) पालनेहारे पदार्थों में उत्तम ( **प्रजाभ्यः** ) प्रजा के लिये ( **शिवम्** ) मङ्गलकारक ( **अग्निम्** ) अग्नि को ( **खनामः** ) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें ॥२८॥

**भावार्थ**—जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहनेवाले बिजुली रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध करके कार्यों में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याणकारक ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं। कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के बिना खाली नहीं रहता ऐसा तुम सब लोग जानो ॥२८॥

**अपां पृष्ठमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अ॒पां पृ॒ष्ठम॑सि॒ योनि॑र॒ग्नेः स॑मु॒द्रम॒भितः॒ पिन्व॑मानम् । वर्ध॑मानो म॒हाँ२ऽआ च॒ पुष्क॑रे दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थस्व ॥२९॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जिस कारण ( **अग्नेः** ) सर्वत्र अभिव्याप्त बिजुली रूप अग्नि के ( **योनिः** ) संयोग वियोगों के जानने ( **महान्** ) पूजनीय ( **वर्धमानः** ) विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़नेवाले आप ( **असि** ) हैं। इसलिये ( **अभितः** ) सब ओर से ( **पिन्वमानम्** ) जल वर्षाते हुए ( **अपाम्** ) जलों के ( **पृष्ठम्** ) आधारभूत ( **पुष्करे** ) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान ( **दिवः** ) दीप्ति के ( **मात्रया** ) विभाग से बढ़े हुए ( **समुद्रम्** ) अच्छे प्रकार जिसमें ऊपर को जल उठते हैं उस समुद्र ( **च** ) और वहाँ के सब पदार्थों को जान के ( **वरिम्णा** ) बहुत्व के साथ ( **आप्रथस्व** ) अच्छे प्रकार सुखों को विस्तार करनेवाले हूजिये ॥२९॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वर्त्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समझो और उससे उपकार ले के बड़े बड़े विस्तारयुक्त सुखों को सिद्ध करो ॥२९॥

**शर्म चेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । दम्पती देवते । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या-क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**शर्म॑ च॒ स्थो वर्म॑ च॒ स्थोऽछि॑द्रे बहु॒लेऽउ॒भे । व्यच॑स्वती॒ सं व॑साथां भृ॒तम॒ग्निं पु॑री॒ष्य᳖म् ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों ( **शर्म** ) गृहाश्रम ( **च** ) और उसकी सामग्री को प्राप्त हुए ( **स्थः** ) हो ( **वर्म** ) सब ओर उसके सहायकारी पदार्थों को ( **उभे** ) दो ( **बहुले** ) बहुत अर्थों का ग्रहण करनेहारे ( **व्यचस्वती** ) सुख की प्राप्ति से युक्त ( **अच्छिद्रे** ) निर्दोष बिजुली और अन्तरिक्ष के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य्य ( **स्थः** ) हैं उस घर में ( **भृतम्** ) धारण करनेहारे ( **पुरीष्यम्** ) रक्षा करने में उत्तम ( **अग्निम्** ) अग्नि का ग्रहण करके ( **संवसाथाम्** ) अच्छे प्रकार आच्छादन करके बसो ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—गृहस्थ लोगों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य के साथ सत्कार और उपकारपूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त सब ऋतुओं में सुखदायक सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि साधनों से युक्त घरों को बना के उनमें सुखपूर्वक निवास करें ॥ ३० ॥

**संवसाथामित्यस्य गृत्समद ऋषिः । जायापती देवते । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सं व॑साथाꣳ स्व॒र्विदा॑ स॒मीची॒ उर॑सा॒ त्मना॑ । अ॒ग्निम॒न्तर्भ॑रि॒ष्यन्ती॒ ज्योति॑ष्मन्त॒मज॑स्र॒मित् ॥ ३१ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जो ( **समीची** ) अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने ( **भरिष्यन्ती** ) और सब का पालन करने हारे ( **स्वर्विदा** ) सुख को प्राप्त होते हुए ( **ज्योतिष्मन्तम्** ) अच्छे प्रकार से युक्त ( **अन्तः** ) सब पदार्थों के बीच वर्त्तमान ( **अग्निम्** ) बिजुली को ( **इत्** ) ही ( **त्मना, उरसा** ) अपने अन्तःकरण से ( **अजस्रम्** ) निरन्तर ( **संवसाथाम्** ) अच्छी तरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी को भोग सको ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—जो गृहस्थ मनुष्य बिजुली को उत्पन्न करके ग्रहण कर सकते हैं वे व्यवहार में दरिद्र कभी नहीं होते ॥ ३१ ॥

**पुरीष्य इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*विद्वान् पुरुष बिजुली को कैसे उत्पन्न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**पु॒री॒ष्यो᳖ऽसि वि॒श्वभ॑रा॒ऽअथ॑र्वा त्वा प्रथ॒मो निर॑मन्थदग्ने । त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत । मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑ ॥३२॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने हारे विद्वन् ! जो ( **वाघतः** ) शास्त्रवित् आप ( **पुरीष्यः** ) पशुओं को सुख देने हारे ( **असि** ) हैं उस ( **त्वा** ) आपको ( **अथर्वा** ) रक्षक ( **प्रथमः** ) उत्तम ( **विश्वभराः** ) सब का पोषक विद्वान् ( **विश्वस्य** ) सब संसार के ( **मूर्ध्नः** ) ऊपर वर्त्तमान ( **पुष्करात्** ) अन्तरिक्ष से ( **अधि** ) समीप अग्नि को ( **निरमन्थत्** ) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अच्छे विचार और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थविद्या को प्रसिद्ध करके सब मनुष्यों को शिक्षा करें ॥ ३२ ॥

**तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषिः॑ पु॒त्र ई॑धे॒ऽअथ॑र्वणः । वृ॒त्र॒हणं॑ पुरन्द॒रम् ॥३३॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जैसे ( **अथर्वणः** ) रक्षक विद्वान् का ( **पुत्रः** ) पवित्र शिष्य ( **दध्यङ्** ) सुखदायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ ( **ऋषिः** ) वेदार्थ जाननेहारा ( **उ** ) तर्क वितर्क के साथ सम्पूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिस ( **वृत्रहणम्** ) सूर्य्य के समान शत्रुओं को मारने और ( **पुरन्दरम्** ) शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने वाले आपको ( **ईधे** ) तेजस्वी करता है वैसे उन आपको सब विद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नतियुक्त करें ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—जो पुरुष और स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान् वा विदुषी होवें वे राजपुरुष और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी करके उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करावें ॥ ३३ ॥

**तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम् । ध॒न॒ञ्ज॒यꣳ रणे॑रणे ॥३४॥**

**पदार्थ**—हे वीर पुरुष ! जो आप ( **पाथ्यः** ) अन्न जल आदि पदार्थों की सिद्धि में कुशल ( **वृषा** ) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं ( **तम्** ) पूर्वोक्त पदार्थविद्या जानने ( **धनञ्जयम्** ) शत्रुओं के धन जीतने ( **उ** ) और ( **दस्युहन्तमम्** ) अतिशय करके डाकुओं को मारनेवाले ( **त्वा** ) आपको वीरों की सेना राजधर्म्म की शिक्षा से ( **समीधे** ) प्रदीप्त करें ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—राजा तथा राजपुरुषों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा विद्वानों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चोरों को मार शत्रुओं को जीतकर परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥ ३४ ॥

**सीदेत्यस्य देवश्रवो देववातावृषी । होता देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् का क्या काम है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सीद॑ होतः॒ स्व उ॑ लो॒के चि॑कि॒त्वान्त्सा॒दया॑ य॒ज्ञꣳ सु॑कृ॒तस्य॒ योनौ॑ । दे॒वा॒वीर्दे॒वान्ह॒विषा॑ यजास्य॒ग्ने बृ॒हद्यज॑माने॒ वयो॑ धाः ॥ ३५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) तेजस्वी विद्वन् ! ( **होतः** ) दान देनेवाले ( **चिकित्वान्** ) विज्ञान से युक्त आप ( **लोके** ) देखने योग्य ( **स्वे** ) सुख में ( **सीद** ) स्थिर हूजिये ( **सुकृतस्य** ) अच्छे करने योग्य कर्म करने हारे धर्मात्मा के ( **योनौ** ) कारण में ( **यज्ञम्** ) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार को ( **सादय** ) प्राप्त कराइये ( **हविषा** ) देने लेने योग्य न्याय से ( **देवान्** ) विद्वानों वा दिव्य गुणों को ( **यजासि** ) सत्कार सेवा संयोग कीजिये ( **यजमाने** ) राजा आदि मनुष्यों में ( **वयः** ) बड़ी उमर को ( **धाः** ) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् लोगों को चाहिये कि इस जगत् में दो कर्म निरन्तर करें। प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोगरहित बल से युक्त और पूर्ण अवस्था वाला करें। दूसरे विद्या और क्रिया की कुशलता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार साधें कि जिससे सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब काल में आनन्द भोगें ॥ ३५ ॥

**नि होतेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों का कर्त्तव्य अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२ऽअसदत्सुदक्षः ।**
**अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वोऽअग्निः ॥ ३६ ॥**

**पदार्थ**—जो जन मनुष्य जन्म को पाके ( **होतृषदने** ) दानशील विद्वानो के स्थान मे ( **दीदिवान्** ) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने ( **त्वेष** ) शुभगुणो से प्रकाशमान ( **विदान** ) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने ( **शुचिजिह्वः** ) सत्यभाषण से पवित्र वाणीयुक्त ( **सुदक्ष** ) अच्छे बलवाला ( **अदब्धव्रतप्रमति** ) रक्षा करने योग्य धर्माचरणरूपी व्रतो से उत्तम बुद्धियुक्त ( **वसिष्ठ** ) अत्यन्त बसने ( **सहस्रम्भर** ) असंख्य शुभगुणो को धारण करनेवाला (**होता**) शुभगुणों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (**न्यसदत्**) स्थित होवे तो वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त हो जावे ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—जब माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओ को अच्छी शिक्षा देके पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वावें तब वे कन्या और पुत्र सूर्य्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हो ॥ ३६ ॥

**ससीदस्वेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*इस पठनपाठन विषय मे अध्यापक कैसा होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सꣳसीदस्व महाँ२ असि शोचस्व देववीतमः ।**
**वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ३७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **प्रशस्त** ) प्रशंसा के योग्य ( **मियध्य** ) दुष्टो को पृथक करने वाले ( **अग्ने** ) तेजस्वी विद्वान् ! ( **देववीतम** ) विद्वानो को अत्यन्त इष्ट आप ( **विधूमम** ) निर्मल ( **दर्शतम्** ) देखने योग्य ( **अरुषम्** ) सुन्दर रूप को ( **सृज** ) सिद्ध कीजिये तथा ( **शोचस्व** ) पवित्र हूजिये । जिस कारण आप (**महान्**) बड़े-बड़े गुणों से युक्त विद्वान् ( **असि** ) हैं इसलिए पढ़ाने की गद्दी पर ( **ससीदस्व** ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्वानो का अत्यन्त प्रिय अच्छे रूप गुण और लावण्य से युक्त पवित्र बड़ा धर्मात्मा आप्त विद्वान् होवे वही शास्त्रो के पढ़ाने को समर्थ होता है ॥ ३७ ॥

**अपो देवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । आपो देवता । न्यङ्कुसारिणी बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*आगे जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा मे क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपो देवीरुप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।**
**तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष ! आप ( **मधुमती** ) प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त ( **देवी** ) पवित्र ( **अप** ) जलो को ( **उपसृज** ) उत्पन्न कीजिये जिससे ( **तासाम्** ) उन जलो के ( **आस्थानात** ) आश्रय से ( **सुपिप्पला** ) सुन्दर फलों वाली ( **ओषधय** ) सोमलता आदि ओषधियो को ( **प्रजाभ्य** ) रक्षा करने योग्य प्राणियों के ( **अयक्ष्माय** ) यक्ष्मा आदि रोगो की निवृत्ति के लिये ( **उज्जिहताम्** ) प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रक्खे । एक तो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करे । दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियो का रोगरहित रक्खें । इस कर्म के बिना संसार मे सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

**स त इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । वायुर्देवता । विराट्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब स्त्री पुरुष का कर्त्तव्यकर्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**स ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।**
**यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥**

**पदार्थ**—हे पत्नि राणी ! ( **उत्तानाया** ) बड़े शुभ लक्षणो के विस्तार से युक्त ( **ते** ) आपका ( **यत्** ) जो ( **विकस्तम्** ) अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ ( **हृदयम्** ) अन्तःकरण हो उसको यज्ञ से शुद्ध हुआ ( **मातरिश्वा** ) आकाश मे चलनेवाला ( **वायु** ) पवन ( **सदधातु** ) अच्छे प्रकार पुष्ट करे । हे ( **देव** ) अच्छे सुख देनहारे पति स्वामी ! ( **य** ) जो विद्वान् आप ( **प्राणथेन** ) सुख के हेतु प्राण वायु से ( **देवानाम्** ) धर्मात्मा विद्वानो का जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को ( **चरसि** ) प्राप्त होते हो उस ( **कस्मै** ) सुखस्वरूप ( **तुभ्यम्** ) आपके लिए मुझसे ( **वषट** ) क्रिया की कुशलता ( **अस्तु** ) प्राप्त होवे ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे उसके साथ विरुद्ध आचरण कभी न करे । जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उसका अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य संभालें ॥ ३९ ॥

**सुजात इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्द ।**
**गान्धारः स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः ।**
**वासो अग्ने विश्वरूपꣳ सं व्ययस्व विभावसो ॥ ४० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विभावसो** ) प्रकाशसहित धन से युक्त ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! (**ज्योतिषा**) विद्याप्रकाश के साथ (**सुजात** ) अच्छे प्रसिद्ध आप ( **स्व** ) सुखदायक ( **वरूथम्** ) श्रेष्ठ ( **शर्म** ) घर को ( **असदत** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ( **विश्वरूपम्** ) अनेक चित्र विचित्ररूपी ( **वास** ) वस्त्र को ( **संव्ययस्व** ) धारण कीजिए ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विवाहित स्त्री पुरुषो को चाहिए कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् का प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणो से शोभायमान होवें घर आदि को सदा पवित्र रक्खें ॥ ४० ॥

**उदु तिष्ठेत्यस्य विरूपाक्ष ऋषि । अग्निर्देवता भुरिगनुष्टुप्छन्द ।**
**गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी विद्वानों का कृत्य अगले मन्त्र म कहा है—*

**उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया ।**
**दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥ ४१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **स्वध्वर** ) अच्छे माननीय व्यवहार करनेवाले सज्जन विद्वन् गृहस्थ ! आप निरन्तर ( **उत्तिष्ठ** ) पुरुषार्थ से उन्नति को प्राप्त होके अन्य मनुष्यों का प्राप्त सदा किया कीजिए ( **देव्या** ) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त ( **धिया** ) बुद्धि वा क्रिया से ( **न** ) हम लोगो की ( **अव** ) रक्षा कीजिए । हे ( **अग्ने** ) अग्नि के समान प्रकाशमान ! (**सुशुक्वनि** ) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करने हारे आप ( **उ** ) तर्क के साथ ( **दृशे** ) देखने को ( **बृहता** ) बड़े ( **भासा** ) प्रकाश रूप सूर्य के तुल्य ( **सुशस्तिभि** ) सुन्दर प्रशंसित गुणो के साथ सब विद्याओ को ( **याहि** ) प्राप्त हूजिए और हमारे लिए भी सब विद्याओं का प्राप्त कीजिए ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोगो को चाहिए कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यो की निरंतर रक्षा करें क्योंकि अच्छी शिक्षा के बिना मनुष्यो के सुख के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है । इसलिये सब को उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें ॥ ४१ ॥

**ऊर्ध्व इत्यस्य कण्व ऋषि । अग्निर्देवता । उपरिष्टाद्बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय अगले अगले मन्त्र म कहा है—*

**ऊर्ध्व ऊ षु णऽऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।**
**ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥**

**पदार्थ**—हे अध्यापक विद्वान् ! आप ( **ऊर्ध्व** ) ऊपर प्रकाश म रहनेवाले ( **देव** ) प्रकाशक ( **सविता** ) सूर्य के ( **न** ) समान ( **न** ) हमारी ( **ऊतय** ) रक्षा आदि के लिये ( **सुतिष्ठ** ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ( **यत** ) जो आप ( **अञ्जिभि** ) प्रकट करने हारे किरणो के सदृश ( **वाघद्भि** ) युद्ध विद्या मे कुशल बुद्धिमानो के साथ ( **वाजस्य** ) विज्ञान के ( **सनिता** ) सेवन हारे हूजिये ( **उ** ) उसी का हम लोग ( **विह्वयामहे** ) विशेष करके बुलाते हैं ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक और उपदेशक विद्वान् का चाहिये कि जैसे सूर्य भूमि और चन्द्रमा आदि लोको से ऊपर स्थित होके अपनी किरणो से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है । वैसे उत्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओ को सदा सुशोभित करें ॥ ४२ ॥

**स जात इत्यस्य त्रित ऋषि । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*अब पिता पुत्र का व्यवहार अगले मन्त्र म कहा है—*

**स जातो गर्भोऽअसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।**
**चित्रः शिशुः परि तमाꣳस्यक्तून्प्र मातृभ्योऽअधि कनिक्रदद् गाः ॥ ४३**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! जो आप जैसे ( **रोदस्यो** ) आकाश और पृथिवी मे ( **जात** ) प्रसिद्ध ( **चारु** ) सुन्दर ( **ओषधीषु** ) सोमलतादि ओषधियो मे ( **विभृत** ) विशेष करके धारण वा पोषण किया ( **चित्र** ) आश्चर्यरूप ( **गर्भ** ) स्वीकार करने योग्य सूर्य ( **मातृभ्य** ) मान्य करनेहारी माता अर्थात् किरणो से ( **तमांसि** ) रात्रियो तथा ( **अक्तून्** ) अन्धेरो को ( **पर्य्यधिकनिक्रदत** ) सब ओर से अधिक करके चलता हुआ ( **गा** ) चलाता है वैसे ही ( **शिशु** ) बालक ( **गा** ) विद्या को प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—जैसे ब्रह्मचर्य आदि अच्छे नियमो से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पढ़ के माता पिता को सुख देता है वैसे ही माता पिता को चाहिये कि प्रजा को सुख देवें ॥ ४३ ॥

**स्थिरो भवेत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः ॥**

*अब माता पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार शिक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्थिरो भव वीड्वङ्गऽआशुर्भव वाज्यर्वन् ।**
**पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अर्वन्** ) विज्ञानयुक्त पुत्र ! तू विद्याग्रहण के लिए ( **स्थिर** ) दृढ़ ( **भव** ) हो ( **वाजी** ) नीति को प्राप्त होके ( **वीड्वङ्ग** ) दृढ़ अति बलवान् अवयवों से युक्त ( **आशु** ) शीघ्र कर्म करने वाला ( **भव** ) हो तू ( **अग्ने** ) अग्निसदृश ( **सुषद** ) सुन्दर व्यवहारों में स्थित और ( **पुरीषवाहण** ) पालन आदि शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाला ( **पृथु** ) सुख का विस्तार करनेहारा ( **भव** ) हो ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—हे अच्छे सन्तानो ! तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण दृढ़ कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अस्त्र विद्या से शत्रुओं का विनाश करो इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें ॥ ४४ ॥

**शिव इत्यस्य चित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् पथ्या बृहती छन्दः ।**
**मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर उनको प्रजा में कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।**
**मा द्यावापृथिवी अभिऽशोचीर्माऽन्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥४५॥**

**पदार्थ**—हे ( **अङ्गिर** ) प्राणों के समान प्रिय सुसन्तान ! तू ( **मानुषीभ्य** ) मनुष्य आदि ( **प्रजाभ्य** ) प्रसिद्ध प्रजाओं के लिए ( **शिव** ) कल्याणकारी मङ्गलमय ( **भव** ) हो ( **द्यावापृथिवी** ) बिजुली और भूमि के विषय में ( **मा** ) मत ( **अभिशोची** ) अति शोच मत कर ( **अन्तरिक्षम** ) अवकाश के विषय में ( **मा** ) मत शोच कर और ( **वनस्पतीन्** ) वट आदि वनस्पतियों का शोच मत कर ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—सुसन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलाचारी हो के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोकरहित होवें किन्तु इन सब पदार्थों की रक्षा का विधान कर उपकार के लिए उत्साह के साथ प्रयत्न करें ॥ ४५ ॥

**प्रैतु वाजीत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी बृहती छन्दः ।**
**मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा । वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् । अग्नऽआ याहि वीतये ॥ ४६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् उत्तम सन्तान ! तू ( **कनिक्रदत** ) चलन और ( **नानदत्** ) शीघ्र शब्द करते हुए ( **रासभ** ) देने योग्य ( **पत्वा** ) चलने वाले वा ( **वाजी** ) घोड़ा के समान ( **आयुष** ) नियत वर्षों की अवस्था से ( **पुरा** ) पहिले ( **मा** ) न ( **प्रैतु** ) मरे ( **पुरीष्यम** ) रक्षा के हेतु पदार्थों में उत्तम ( **अग्निम** ) बिजुली ( **भरन्** ) धारण करता हुआ ( **मा पादि** ) इधर उधर मत भाग जैसे ( **वृषा** ) अति बलवान् ( **अपाम** ) जलों के ( **समुद्रियम** ) समुद्र में हुए ( **गर्भम** ) स्वीकार करने योग्य ( **वृषणम** ) वर्षा करनहारे ( **अग्निम्** ) सूर्य्य को ( **भरन्** ) धारण करता हुआ ( **वीतये** ) सुखों की व्याप्ति के लिये ( **आयाहि** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

**भावार्थ**—राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य्य के साथ पूर्ण अवस्था का धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म्मयुक्त व्यवहार की उन्नति करावें ॥ ४६ ॥

**ऋतमित्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को क्या क्या आचरण करना और क्या-क्या छोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भराम । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः । व्यस्यन् विश्वाऽअनिराऽअमीवा निषीदन्नोऽअप दुर्मतिं जहि ॥ ४७ ॥**

**पदार्थ**—हे सुसन्तानो ! जैसे हम लोग ( **ऋतम्** ) यथार्थ ( **सत्यम्** ) नाशरहित ( **ऋतम्** ) अव्यभिचारी ( **सत्यम्** ) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना ( **पुरीष्यम्** ) रक्षा के साधनों में उत्तम ( **अग्निम्** ) बिजुली को ( **अङ्गिरस्वत** ) वायु के तुल्य ( **भराम** ) धारण करते हैं ( **एतम्** ) इस पूर्वोक्त ( **आयन्तम** ) प्राप्त हुए ( **शिवम्** ) मङ्गलकारी ( **अग्निम्** ) बिजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी ( **अभिमोदध्वम** ) आनन्दित रहो जो ( **ओषधय** ) जौ आदि ओषधि ( **युष्मा** ) तुम्हारे ( **प्रति** ) लिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं वैसे तुम भी करो । हे वैद्य ! आप ( **विश्वा** ) सब ( **अनिरा** ) जो निरन्तर देने योग्य न हो ( **अमीवा** ) ऐसी रोगों की पीड़ा ( **व्यस्यन्** ) अनेक प्रकार से अलग करते और ( **अत्र** ) इस आयुर्वेदविद्या में ( **निषीदन्** ) स्थित हो के ( **न** ) हम लोगों को ( **दुर्मतिम** ) दुष्ट बुद्धि को ( **अपजहि** ) सब प्रकार दूर कीजिये । इस प्रकार वैद्य की प्रार्थना करो ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी परम कारण ब्रह्म दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अव्यक्त जीव सत्यभाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और ओषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के ज्वर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुड़ा के मद्य आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहो और कभी इससे विपरीत आचरण कर सुख को छोड़ के दुःखसागर में मत गिरो ॥ ४७ ॥

**ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः ॥**

*स्त्रियों को क्या क्या आचरण करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ओषधयः प्रति गृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः । अयं वो गर्भऽऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमाऽसदत् ॥ ४८ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रियो ! तुम लोग जो ( **ओषधय** ) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन से ( **अयम** ) यह ( **ऋत्विय** ) ठीक ऋतुकाल को प्राप्त हुआ ( **गर्भ** ) गर्भ ( **व** ) तुम्हारे ( **प्रत्नम** ) प्राचीन ( **सधस्थम्** ) नियत स्थान गर्भाशय को प्राप्त होवे उस ( **पुष्पवती** ) श्रेष्ठ पुष्पों वाली ( **सुपिप्पला** ) सुन्दर फलों से युक्त ओषधियों को ( **प्रतिगृभ्णीत** ) निश्चय करके ग्रहण करो ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—माता पिता को चाहिए कि अपनी कन्याओं को व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यक शास्त्र पढ़ावें जिससे ये कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली ओषधियों को जान और अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४८ ॥

**वि पाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या-क्या प्रतिज्ञा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसोऽअमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥**

**पदार्थ**—हे पते ! जो आप ( **पृथुना** ) विस्तृत ( **वि** ) विविध प्रकार के ( **पाजसा** ) बल के साथ ( **शोशुचान** ) शीघ्र शुद्धता से सदा वर्त्तें और ( **अमीवा** ) रोगों के समान प्राणियों को पीड़ा देनेहारी ( **रक्षस** ) दुष्ट ( **द्विष** ) शत्रुरूप व्यभिचारिणी स्त्रियों को ( **बाधस्व** ) ताड़ना देवें तो मैं ( **बृहत** ) बड़े ( **सुशर्मण** ) अच्छे शोभायमान ( **सुहवस्य** ) सुन्दर लेना देना व्यवहार जिस में हो ऐसे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके ( **शर्मणि** ) सुखकारक घर में और ( **प्रणीतौ** ) उत्तम धर्मयुक्त नीति में आप की स्त्री ( **स्याम** ) होऊं ॥ ४९ ॥

**भावार्थ**—विवाह के समय में स्त्री पुरुष को चाहिए कि व्यभिचार के छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सङ्ग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होके परस्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों को उत्पन्न करें क्योंकि स्त्री वा पुरुष के लिए अप्रिय आयु का नाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है इसलिए इस व्यभिचारी कर्म को सब प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाला होके पूर्ण अवस्था के सुख को भोगे ॥ ४९ ॥

**आपो हि ष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्री छन्दः ।**
**षड्जः स्वरः ॥**

*अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **आप** ) जलों के समान शुभ गुणों में व्याप्त होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियो ! जो तुम लोग ( **मयोभुव** ) सुख भोगने वाली ( **स्थ** ) हो ( **ता** ) वे तुम ( **ऊर्जे** ) बलयुक्त पराक्रम और ( **महे** ) बड़े २ ( **चक्षसे** ) अपने योग्य ( **रणाय** ) संग्राम के लिए ( **न** ) हम लोगों को ( **हि** ) निश्चय करके ( **दधातन** ) धारण करो ॥ ५० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे स्त्री अपने पतियों को रक्खें वैसे पति भी अपनी २ स्त्रियों को सदा सुख देवें । ये दोनों युद्धकर्म में भी पृथक् २ न बसें अर्थात् इकट्ठे ही सदा वर्त्ताव रक्खें ॥ ५० ॥

**यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्री छन्दः ।**
**षड्जः स्वरः ॥**

*फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥५१॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रियो ! ( **व** ) तुम्हारा और ( **न** ) हमारा ( **इह** ) गृहाश्रम जो ( **शिवतम** ) अत्यन्त सुखकारी ( **रस** ) कर्त्तव्य आनन्द है ( **तस्य** ) उस ( **मातर उशतीरिव** ) जैसे कामयमाना माता अपने पुत्रों को सेवन करती हैं वैसे ( **भाजयत** ) सेवन करो ॥ ५१ ॥

**भावार्थ**—स्त्रियो को चाहिए कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते वैसे अपने अपने पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें । ऐसे ही अपनी २ स्त्रियो की पति भी सेवा करें । जैसे प्यासे प्राणियो को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ५१ ॥

**तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । आपो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—*

**तस्मा॒ऽअरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ । आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ ५२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **आप** ) जलो के समान शान्त स्वभावस वर्त्तमान स्त्रियो ! जो तुम लोग ( **न** ) हम लोगो के ( **क्षयाय** ) निवासस्थान के लिये ( **जिन्वथ** ) तृप्त और ( **जनयथ** ) अच्छे सन्तान उत्पन्न करो उन ( **व** ) तुम लोगो को हम लोग ( **अरम्** ) सामर्थ्य के साथ ( **गमाम** ) प्राप्त होवें । जिस धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा करो उसका पालन करने वाली होओ और उसी का पालन करने वाले हम लोग भी होवें ॥ ५२ ॥

**भावार्थ**—जिस पुरुष को जो स्त्री वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे आपस में किसी का अनिष्टचिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तानो से शोभायमान होके धर्म्म मे घर के कार्य्य करें ॥ ५२ ॥

**मित्र इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । मित्रो देवता । उपरिष्टाद् बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**मि॒त्रः स॒ꣳसृज्य॑ पृथि॒वीं भूमिं॑ च॒ ज्योति॑षा स॒ह ।**

**सुजा॑तं जा॒तवे॑दसमय॒क्ष्माय॑ त्वा॒ सꣳसृ॑जामि प्र॒जाभ्यः॑ ॥ ५३ ॥**

**पदार्थ**—हे पते ! जो आप ( **मित्र** ) सब के मित्र होके ( **प्रजाभ्य** ) उत्पन्न होने योग्य प्रजाओं को ( **अयक्ष्माय** ) आरोग्य के लिए ( **ज्योतिषा** ) विद्या और न्याय का अच्छी शिक्षा के प्रकाश के ( **सह** ) साथ ( **पृथिवीम्** ) अन्तरिक्ष ( **च** ) और ( **भूमिम्** ) पृथिवी के साथ ( **ससृज्य** ) सम्बन्ध करके मुझ को सुख देते हो । उस ( **सुजातम्** ) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध ( **जातवेदसम्** ) वेदो के जानने हारे ( **त्वा** ) आपको मैं ( **ससृजामि** ) प्रसिद्ध करती हूँ ॥ ५३ ॥

**भावार्थ**—स्त्रीपुरुषो को चाहिए कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानो के सग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो के अच्छे २ सन्तानो को उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

**रुद्रा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । रुद्रा देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**रु॒द्राः स॒ꣳसृज्य॑ पृथि॒वीं बृ॒हज्ज्योतिः॒ समी॑धिरे ।**

**तेषां॑ भा॒नुरज॑स्र॒ऽइच्छु॒क्रो दे॒वेषु॑ रोचते ॥ ५४ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रीपुरुषो ! ( **इव** ) जैसे ( **रुद्रा** ) प्राणवायु के अवयवरूप समानादि वायु ( **ससृज्य** ) सूर्य्य को उत्पन्न करके ( **पृथिवीम्** ) भूमि का ( **बृहत्** ) बड़े ( **ज्योति** ) प्रकाश के साथ ( **समीधिरे** ) प्रकाशित करते हैं ( **तेषाम्** ) उन से उत्पन्न हुआ ( **शुक्र** ) कान्तिमान् ( **भानु** ) सूर्य्य ( **देवेषु** ) दिव्य पृथिवी आदि मे ( **अजस्र** ) निरन्तर ( **रोचते** ) प्रकाश करता है वैसे ही विद्यारूपी न्याय सूर्य्य को उत्पन्न कर के प्रजापुरुषो को प्रकाशित और उन से प्रजाओं मे दिव्य सुख का प्रचार करो ॥ ५४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे वायु सूर्य्य का सूर्य्य प्रकाश का, नेत्रो से देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस के सुख के साधन उपसाधन करने वाले होके सुखो को सिद्ध करें ॥ ५४ ॥

**संसृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । सिनीवाली देवता । विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*स्त्रियों को कैसी दासी रखनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सꣳसृ॑ष्टां॒ वसु॑भी रु॒द्रैर्धीरैः॑ कर्म॒ण्यां᳕ मृद॑म् । हस्ता॑भ्यां मृ॒द्वीं कृ॒त्वा**

**सि॒नी॒वा॒ली कृ॑णोतु॒ ताम् ॥ ५५ ॥**

**पदार्थ**—हे पते ! आप जैसे कारीगर मनुष्य ( **हस्ताभ्याम्** ) हाथो से ( **कर्मण्याम्** ) क्रिया से सिद्ध की हुई ( **मृदम्** ) मट्टी को योग्य करता है वैसे ( **धीरै** ) अच्छा सयम रखने ( **वसुभि** ) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए ( **रुद्रै** ) और जिन्हो ने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो उन्हो से ( **ससृष्टाम्** ) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई हो उस ब्रह्मचारिणी युवती को ( **मृद्वीम** ) कोमल गुण स्वभाव वाली ( **कृणोतु** ) कीजिए और जो स्त्री ( **सिनीवाली** ) प्रेमबद्ध कन्याओं को बलवान् करने वाली है ( **ताम** ) उसको अपनी स्त्री करके सुखी कीजिये ॥ ५५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कुम्हार आदि कारीगर लोग जल से मट्टी को कोमल कर उससे घड़े आदि पदार्थ बना के सुख के काम सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् माता पिता से शिक्षा को प्राप्त हुई हृदय को प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओ को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण कर के सब काम सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

**सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । अदितिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**सि॒नी॒वा॒ली सु॑कप॒र्दा सु॑कुरी॒रा स्वौ॑प॒शा । सा तुभ्य॑मदिते

मह्यो॒खां द॑धातु॒ हस्त॑योः ॥ ५६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **महि** ) सत्कार के योग्य ( **अदिते** ) अखण्डित आनन्द भोगने वाली स्त्री ! जो ( **सिनीवाली** ) प्रेम से युक्त ( **सुकपर्दा** ) अच्छे केशो वाली ( **सुकुरीरा** ) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और ( **स्वौपशा** ) अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनानवाली जिस ( **तुभ्यम्** ) तेरे ( **हस्तयो** ) हाथो मे ( **उखाम्** ) दाल आदि राँधन की बटलोई को ( **दधातु** ) धारण करे ( **सा** ) उसका तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

**भावार्थ**—श्रेष्ठ स्त्रियो का उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रक्खें कि जिससे सब पाक आदि की सेवा ठीक ठीक समय पर होती रहे ॥५६॥

**उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । अदितिर्देवता । भुरिग्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उ॒खां कृ॑णोतु॒ शक्त्या॑ बा॒हुभ्या॒मदि॑तिर्धि॒या । मा॒ता पु॒त्रं यथो॒पस्थे॒

साऽग्निं बि॑भर्तु॒ गर्भ॒ऽआ । म॒खस्य॒ शिरो॑ऽसि ॥ ५७ ॥**

**पदार्थ**—हे गृहस्थ पुरुष ! जिस कारण तू ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शिर** ) उत्तमाग के समान ( **असि** ) है इस कारण आप ( **धिया** ) बुद्धि वा कर्म से तथा ( **शक्त्या** ) पाकविद्या के सामर्थ्य और ( **बाहुभ्याम्** ) दोनो बाहुओ से ( **उखाम्** ) पकाने की बटलोई का ( **कृणोतु** ) सिद्ध कर जो ( **अदिति** ) जननी आपकी स्त्री है ( **सा** ) वह ( **गर्भे** ) अपनी कोख मे ( **यथा** ) जैसे माता ( **उपस्थे** ) अपनी गोद मे ( **पुत्रम** ) पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे वैसे ( **अग्निम** ) अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य्य का धारण कर ॥५७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है । कुमार स्त्रीपुरुषो को योग्य है कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर बल बुद्धि और पराक्रमयुक्त सन्तान उत्पन्न होने के लिये वैद्यकशास्त्र की रीति से बड़ी बड़ी ओषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पीछे पथ्य से रहें और आपस मे मित्रता के साथ वर्त्त के पुत्रो के गर्भाधानादि कर्म्म किया करें ॥५७॥

**वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवता । पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य चोत्कृती छन्दसी । षड्ज स्वर ।**

*फिर स्त्री पुरुष क्या करके क्या कर यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वस॑वस्त्वा कृण्वन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वाऽसि॑ पृथि॒व्य᳖सि॒ धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य॑ꣳ सजा॒तान्यज॑मा॒नाय॑ रु॒द्रास्त्वा॑ कृण्वन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वाऽस्य॒न्तरि॑क्षमसि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य॑ꣳ सजा॒तान्यज॑मा॒नायाऽऽदि॒त्यास्त्वा॑ कृण्वन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वाऽसि॒ द्यौर॑सि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य॑ꣳ सजा॒तान्यज॑मानाय॒ विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒रा कृ॑ण्व॒न्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वाऽसि॒ दिशो॑ऽसि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य॑ꣳ सजा॒तान्यज॑मानाय ॥ ५८ ॥**

**पदार्थ**—हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री ! जो तू ( **अङ्गिरस्वत्** ) धनजय प्राणवायु के समतुल्य ( **ध्रुवा** ) निश्चल ( **असि** ) है और ( **पृथिव्यसि** ) विस्तृत सुख करनेहारी है उस ( **त्वा** ) तुझको ( **गायत्रेण** ) वेद मे विधान किये ( **छन्दसा** ) गायत्री आदि छन्दो से ( **वसव** ) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य रहनेवाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री ( **कृण्वन्तु** ) करें । हे कुमार ब्रह्मचारी पुरुष ! जो तू ( **अङ्गिरस्वत्** ) प्राणवायु के समान निश्चल है और ( **पृथिवी** ) पृथिवी के समान क्षमायुक्त ( **असि** ) है जिस ( **त्वा** ) तुझ को ( **वसव** ) उक्त वसुसज्ञक विद्वान् लोग ( **गायत्रेण** ) वेद मे प्रतिपादन किये ( **छन्दसा** ) गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति ( **कृण्वन्तु** ) करें ।

सो तू ( मयि ) अपनी प्रिय पत्नी मुझ मे ( प्रजाम् ) सुन्दर सन्तानो ( राय ) धन की ( पोषम् ) पुष्टि ( गौपत्यम् ) गौ पृथिवी वा वाणी के स्वामीपन और ( सुवीर्य्यम् ) सुन्दर पराक्रम को ( धारय ) स्थापन कर । मैं तू दोनो ( सजातान् ) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब सन्तानो को ( यजमानाय ) विद्या देने हारे आचार्य्य को विद्या ग्रहण के लिये समर्पण करें । हे स्त्रि ! जो तू ( अगिरस्वत ) आकाश के समान ( ध्रुवा ) निश्चल ( असि ) है और ( अन्तरिक्षम् ) अविनाशी प्रेमयुक्त ( असि ) है उस ( त्वा ) तुझको ( रुद्रा ) रुद्रसंज्ञक चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवने हारे विद्वान् लोग ( त्रैष्टुभेन ) वेद मे कहे हुए ( छन्दसा ) त्रिष्टुप्छन्द से मेरी स्त्री ( कृण्वन्तु ) करें । हे वीर पुरुष ! जो तू आकाश के समान निश्चल है और दृढ़ प्रेम से युक्त है जिस तुझको चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् लोग वेद मे प्रतिपादन किये त्रिष्टुप्छन्द से मेरा स्वामी करें । वह तू ( मयि ) अपनी प्रिय पत्नी मुझ मे ( प्रजाम् ) बल तथा धर्म से युक्त सन्तानो ( राय ) राज्यलक्ष्मी की ( पोषम् ) पुष्टि ( गौपत्यम् ) पढ़ाने के अधिष्ठातृत्व और ( सुवीर्य्यम् ) अच्छे पराक्रम को ( धारय ) धारण कर मैं तू दोनो ( सजातान् ) एक उदर से उत्पन्न हुए सब सन्तानो को अच्छी शिक्षा देकर वेदविद्या की शिक्षा होने के लिये ( यजमानाय ) अङ्ग उपाङ्गो के सहित वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को देवें । हे विदुषी स्त्री ! जो तू ( अङ्गिरस्वत ) आकाश के समान ( ध्रुवा ) अचल ( असि ) है ( द्यौ ) सूर्य के सदृश प्रकाशमान ( असि ) है उस ( त्वा ) तुझको ( आदित्या ) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करके पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग ( जागतेन ) वेद मे कहे ( छन्दसा ) जगती छन्द मे मेरी पत्नी ( कृण्वन्तु ) करें । हे विद्वान् पुरुष ! जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य के तुल्य तेजस्वी है उस तुझको अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवनेवाले पूर्ण विद्या से युक्त धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें । वह तू (मयि) अपनी प्रिय भार्य्या मुझ मे ( प्रजाम् ) शुभगुणो से युक्त सन्तानो (राय ) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी को ( पोषम् ) पुष्टि (गौपत्यम्) सम्पूर्ण विद्या के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को ( धारय ) धारण कर । मैं तू दोनो (सजातान्) अपने सन्तानो को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के लिये ( यजमानाय ) क्रिया कौशल के सहित सब विद्याओ के पढ़ानेहारे आचार्य को समर्पण करें हे सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त पत्नि ! जो तू ( अङ्गिरस्वत ) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान ( ध्रुवा ) निश्चल ( असि ) है और ( दिश ) सब दिशाओ मे कीर्तिवाली ( असि ) है । उस तुझको ( वैश्वानरा ) सब मनुष्यो मे शोभायमान ( विश्वे ) सब (देवा ) उपदेशक विद्वान् लोग ( आनुष्टुभेन ) वेद मे कहे गये ( छन्दसा ) अनुष्टुप्छन्द से मेरे आधीन ( कृण्वन्तु ) करें । हे पुरुष ! जो तू सूत्रात्मा वायु के सदृश स्थिर है ( दिश ) सब दिशाओ मे कीर्तिवाला ( असि ) है जिस (त्वा) तुझको सब प्रजा मे शोभायमान सब विद्वान् लोग मेरे आधीन करें । सो आप ( मयि ) मुझ मे ( प्रजाम् ) शुभ लक्षणयुक्त सन्तानो ( राय ) सब ऐश्वर्य्य की ( पोषम् ) पुष्टि ( गौपत्यम् ) वाणी की चतुराई और ( सुवीर्य्यम् ) सुन्दर पराक्रम को ( धारय ) धारण कर । मैं तू दोनो जने अच्छा उपदेश होने के लिये (सजातान् ) अपने सन्तानो को ( यजमानाय ) सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें ॥५८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जब स्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस मे दृढ़ प्रीतिवाले होवें तब वेदोक्त रीति से यज्ञ का विस्तार और वेदोक्त नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानो को उत्पन्न करें । जब कन्या पुत्र आठ वर्ष के हों तब माता पिता उनको अच्छी शिक्षा देवें । इसके पीछे ब्रह्मचर्य्य धारण करा के विद्या पढ़ाने के लिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुरुषो और आप्त विदुषी स्त्रियो की पाठशालाओ मे भेज देवें । वहाँ पाठशाला मे जितने धन का खर्च करना उचित हो उतना करें क्योकि सन्तानो को विद्यादान के विना कोई उपकार वा धर्म नही बन सकता । इसलिए इसका निरन्तर अनुष्ठान किया करें ॥५८॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । अदितिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु । कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये । पुत्रेभ्य॰ प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥५९**

पदार्थ—हे पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री ! जिस कारण तू ( अदित्यै ) विद्या प्रकाश के लिये ( रास्ना ) दानशील ( असि ) है इसलिए ( ते ) तुझ से (बिलम्) ब्रह्मचर्य्य को धारण ( कृत्वाय ) करके ( अदिति ) पुत्र और कन्या को (गृभ्णातु) ग्रहण करें सो ( सा ) तू ( अदिति ) माता ( मृन्मयीम् ) मट्टी की ( योनिम् ) मिली और पृथक ( महीम् ) बड़ी ( उखाम् ) पकाने की बटलोई को ( अग्नये ) अग्नि के निकट ( पुत्रेभ्य ) पुत्रो को ( प्रायच्छत् ) देवे विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त होकर बटलोई मे ( इति ) इस प्रकार ( श्रपयान् ) अन्नादि पदार्थों को पकाओ ॥ ५९ ॥

भावार्थ—लड़के पुरुषो और लड़किया स्त्रियो की पाठशाला मे जा ब्रह्मचर्य्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखे और आहार विहार भी अच्छे नियम से सेवें । कभी विषय की कथा न सुनें । मद्य मांस आलस्य और अत्यन्त निद्रा का त्याग कर पढ़ानेवालो की सेवा और उनके अनुकूल वर्त्त के अच्छे नियमो को धारण करें ॥५९॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवता ।
स्वराड् संकृतिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर विद्वान् लोग पढ़नेहारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥**

पदार्थ—हे ब्रह्मचारिन् वा ब्रह्मचारिणि ! जो ( वसव ) प्रथम विद्वान् लोग ( गायत्रेण ) वेद के ( छन्दसा ) गायत्री छन्द से ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत ) प्राणो के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान ( धूपयन्तु ) सस्कारयुक्त करें ( रुद्रा ) मध्यम विद्वान् लोग ( त्रैष्टुभेन ) वेदोक्त ( छन्दसा ) त्रिष्टुप्छन्द से ( अङ्गिरस्वत ) विज्ञान के समान ( त्वा ) तेरा ( धूपयन्तु ) विद्या और अच्छी शिक्षा से सस्कार करें ( आदित्या ) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् लोग ( जागतेन छन्दसा ) वेदोक्त जगती छन्द मे ( अङ्गिरस्वत ) ब्रह्माण्ड के शुद्ध वायु के सदृश ( त्वा ) तेरा ( धूपयन्तु ) धर्मयुक्त व्यवहार के ग्रहण से सस्कार करें (वैश्वानरा ) सब मनुष्यो मे सत्य धर्म और विद्या के प्रकाश करनेवाले ( विश्वे ) सब ( देवा ) सत्योपदेष्टा विद्वान् लोग ( आनुष्टुभेन ) वेदोक्त अनुष्टुप ( छन्दसा ) छन्द से ( अङ्गिरस्वत ) बिजुली के समान ( त्वा ) तेरा ( धूपयन्तु ) सत्योपदेश से सस्कार करें ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा ( त्वा ) तेरा ( धूपयन्तु ) राजनीति विद्या से सस्कार करे ( वरुण ) श्रेष्ठ न्यायाधीश ( त्वा ) तुझको ( धूपयतु ) न्यायक्रिया से संयुक्त करे और ( विष्णु ) सब विद्या और योगाङ्गो का वेत्ता योगिजन ( त्वा ) तुझको ( धूपयतु ) योगविद्या से सस्कारयुक्त करे तू इन सबकी सेवा किया कर ॥ ६० ॥

भावार्थ—सब अध्यापक स्त्री और पुरुषो को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्या पुत्रो को विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें । जिससे ये पूर्ण ब्रह्मचर्य्य ही कर के गृहाश्रम आदि का यथोक्त काल मे आचरण करें ॥६०॥

अदितिष्ट्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । अदित्यादयो लिङ्गोक्ता देवता ।
भुरिक्कृतिश्छन्द । निषाद स्वर । उखाकर्त्रीत्युत्तरस्य
प्रकृतिश्छन्द । धैवत स्वर ॥

*विदुषी स्त्रिया कन्याओं को उत्तम शिक्षा से धर्मात्मा विद्यायुक्त करके इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वद्दधतूखे धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तूखे ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वत्पचन्तूखे जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्या. सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे ॥ ६१ ॥**

पदार्थ—हे ( अवट ) बुराई और निन्दारहित बालक ( विश्वदेव्यावती ) सम्पूर्ण विद्वानो मे प्रशस्त ज्ञानवाली ( अदिति ) अखण्ड विद्या पढ़ानेहारी ( देवी ) विदुषी स्त्री ( पृथिव्या ) भूमि के ( सधस्थे ) एक शुभस्थान मे ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत ) अग्नि के समान ( खनतु ) जैसे भूमि को खोद के कूप जल निष्पन्न करते हैं वैसे विद्यायुक्त करे । हे ( उखे ) ज्ञानयुक्त कुमारी ! ( देवानाम् ) विद्वानों की ( पत्नी ) स्त्री जो ( विश्वदेव्यावती ) सम्पूर्ण विद्वानो मे अधिक विद्यायुक्त ( देवी ) विदुषी ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( सधस्थे ) एक स्थान मे (अङ्गिरस्वत्) प्राण के सदृश ( त्वा ) तुझ को ( दधतु ) धारण करें । हे ( उखे ) विज्ञान की इच्छा करनेवाली ( विश्वदेव्यावती ) सब विद्वानो मे उत्तम ( धिषणा ) प्रशंसित वाणीयुक्त बुद्धिमती ( देवी ) विद्यायुक्त स्त्री लोग ( पृथिव्या ) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान मे ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत ) प्राण के तुल्य ( अभीन्धताम् ) प्रदीप्त करें । हे ( उखे ) अन्न आदि पकाने की बटलोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये ! ( विश्वदेव्यावती ) उत्तम विदुषी ( वरूत्री ) विद्या ग्रहण के लिए स्वीकार करने योग्य ( देवी ) रूपवती स्त्री लोग ( पृथिव्या ) भूमि के ( सधस्थे ) एक शुद्ध स्थान मे ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत ) सूर्य के तुल्य ( श्रपयन्तु ) शुद्ध तेजस्विनी करें । हे ( उखे ) ज्ञान चाहने हारी कुमारी ! ( विश्वदेव्यावती ) बहुत विद्यावानो मे उत्तम ( देवी ) शुद्ध विद्या से युक्त ( ग्ना ) वेदवाणी को जाननेवाली स्त्री लोग ( पृथिव्या ) भूमि के एक ( सधस्थे ) उत्तम स्थान मे ( त्वा ) तुझ को ( अङ्गिरस्वत ) बिजुली के तुल्य ( पचन्तु ) दृढ़ बलधारिणी करें । हे ( उखे ) ज्ञान की इच्छा रखनेवाली कुमारी ! ( विश्वदेव्यावती ) उत्तम विद्या पढ़ी ( अच्छिन्नपत्रा ) अखण्डित नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारने वा यानों में चलनेवाली ( जनय ) शुभगुणो से प्रसिद्ध ( देवी ) दिव्य गुणों की देने हारी स्त्री लोग ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( सधस्थे ) उत्तम प्रदेश मे ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत ) ओषधियो के रस के समान ( पचन्तु ) सस्कारयुक्त करें । हे कुमारी कन्ये ! तू इन पूर्वोक्त सब स्त्रियो से ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या ग्रहण कर ॥६१॥

भावार्थ—माता पिता आचार्य्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील विरक्त पुरुषो को चाहिये कि जैसे रसोइये बटलोई आदि पात्रों मे अन्न का संस्कार करके उत्तम सिद्ध करते हैं । वैसे ही बाल्यावस्था से लेके विवाह से पहिले पहिले लड़कों और लड़कियो को उत्तम विद्या और शिक्षा से सम्पन्न करें ॥६१॥

मित्रस्येत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

*जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उसके ऐश्वर्य की निरन्तर रक्षा करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।**
**द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥**

पदार्थ—हे स्त्री तू ! ( चर्षणीधृतः ) अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धारण करने हारे ( मित्रस्य ) मित्र ( देवस्य ) कमनीय अपने पति के ( चित्रश्रवस्तमम् ) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थ जिससे हों ऐसे ( सानसि ) सेवन योग्य प्राचीन ( द्युम्नम् ) धन की ( अवः ) रक्षा कर ॥६२॥

भावार्थ—घर पर काम करने में कुशल स्त्री को चाहिए कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक ठीक बढ़ाया करे ॥६२॥

देवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या ।**
**अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आ पृण ॥ ६३ ॥**

पदार्थ—हे स्त्रि ! ( सुबाहुः ) अच्छे जिसके भुजा ( सुपाणिः ) सुन्दर हाथ और ( स्वङ्गुरिः ) शोभायुक्त जिसकी अङ्गुली हों ऐसा ( सविता ) सूर्य के समान ऐश्वर्य्यदाता ( देवः ) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से युक्त पति ( शक्त्या ) अपने सामर्थ्य से ( पृथिव्याम् ) पृथिवी पर स्थित ( त्वा ) तुझको ( उद्वपतु ) वृद्धि के साथ गर्भवती करे । और तू भी अपने सामर्थ्य से ( अव्यथमाना ) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी ( आशा ) इच्छा और कीर्ति से सब ( दिशः ) दिशाओं को ( आपृण ) पूर्ण कर ॥६३॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न एक दूसरे को हृदय से चाहनेवाले परस्पर परीक्षा कर अपनी अपनी इच्छा से स्वयम्वर विवाह कर अत्यन्त विषयासक्ति का त्याग ऋतुकाल में गमन करनेवाले होकर अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें । क्योंकि इसी से जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रकट और बल की हानि भी नहीं होती इसलिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥६३॥

उत्थायेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर वह कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।**
**मित्रैतां त उखां परि ददाम्यभित्या एषा मा भेदि ॥ ६४ ॥**

पदार्थ—हे विदुषि कन्ये ! तू ( ध्रुवा ) मङ्गल कार्य्यों में निश्चित बुद्धि वाली और ( बृहती ) बड़े पुरुषार्थ से युक्त ( भव ) हो । विवाह करने के लिये ( उत्तिष्ठ ) उद्यत हो ( उत्थाय ) आलस्य छोड़ के उठकर इस पति का स्वीकार कर । हे ( मित्र ) मित्र ( ते ) तेरे लिये ( एताम् ) इस ( उखाम् ) प्राप्त होने योग्य कन्या को ( अभित्यै ) भय रहित होने के लिए ( परिददामि ) सब प्रकार देता हूँ ( उ ) इसलिये तू ( एषा ) इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री का ( मा भेदि ) भिन्न मत कर ॥ ६४ ॥

भावार्थ—कन्या और वर को चाहिये कि अपनी अपनी प्रसन्नता से कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा करके ग्रहण करने की इच्छा करें । जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद वा व्यभिचार कभी न करें । किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री होकर मिल के चलें ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः । धृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

*फिर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**वसवस्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आच्छृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥**

पदार्थ—हे मित्र वा पुरुष ! ( वसवः ) प्रथम विद्वान् लोग ( गायत्रेण ) श्रेष्ठ विद्याओं का जिससे गान किया जावे उस वेद के विभाग रूप स्तोत्र ( छन्दसा ) गायत्री छन्द से जिस ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत् ) अग्नि के तुल्य ( आच्छृन्दन्तु ) प्रकाशमान करें ( रुद्राः ) मध्यम विद्वान् लोग ( त्रैष्टुभेन ) कर्म उपासना और ज्ञान जिससे स्थिर हों उस ( छन्दसा ) वेद के स्तोत्र भाग से ( अङ्गिरस्वत् ) प्राण के समान ( त्वा ) तुझको ( आच्छृन्दन्तु ) प्रज्वलित करें ( आदित्याः ) उत्तम विद्वान् लोग ( जागतेन ) जगत् की विद्या प्रकाश करने हारे ( छन्दसा ) वेद के स्तोत्रभाग से ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत् ) सूर्य्य के सदृश तेजधारी ( आच्छृन्दन्तु ) शुद्ध करें ( वैश्वानराः ) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान ( देवाः ) सत्य उपदेश देने हारे ( विश्वे ) सब विद्वान् लोग ( आनुष्टुभेन ) विद्या ग्रहण के पश्चात् जिससे दुःखों को छुड़ावे उस ( छन्दसा ) वेदभाग से ( त्वा ) तुझको ( अङ्गिरस्वत् ) समस्त ओषधियों के रस के समान ( आच्छृन्दन्तु ) शुद्ध करें ॥६५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों को चाहिये कि जो विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे उपदेश से सुशोभित करें उनकी सेवा और सत्सङ्ग निरन्तर करो और अन्य तुच्छ बुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का सङ्ग कभी मत करो ॥६५॥

आकूतिमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः ।
विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर वे स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**आकूतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥**

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( आकूतिम् ) उत्साह देनेवाली क्रिया के ( प्रयुजम् ) प्रेरणा करने हारे ( अग्निम् ) प्रसिद्ध अग्नि को ( स्वाहा ) सत्यवाणी से ( मनः ) इच्छा के साधन को ( मेधाम् ) बुद्धि और ( प्रयुजम् ) सम्बन्ध करने हारी ( अग्निम् ) बिजुली को ( स्वाहा ) सत्य व्यवहारों से ( विज्ञातम् ) जाने हुए विषय के ( प्रयुजम् ) व्यवहारों में प्रयोग किये ( अग्निम् ) अग्नि के समान प्रकाशित ( चित्तम् ) चित्त को ( स्वाहा ) योगक्रिया की रीति से ( वाचः ) वाणियों को ( विधृतिम् ) विविध प्रकार की धारणा को ( प्रयुजम् ) सम्प्रयोग किये हुए ( अग्निम् ) योगाभ्यास से उत्पन्न की हुई बिजुली को ( प्रजापतये ) प्रजा के स्वामी ( मनवे ) मननशील पुरुष के लिये ( स्वाहा ) सत्यवाणी को और ( अग्नये ) विज्ञानस्वरूप ( वैश्वानराय ) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये ( स्वाहा ) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त करो के निरन्तर ( आच्छृन्दन्तु ) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥६६॥

भावार्थ—यहाँ पूर्व मन्त्र से ( आच्छृन्दन्तु ) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्साह आदि को बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥६६॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । सविता देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।**
**विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥६७॥**

पदार्थ—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं ( विश्वः ) सब ( मर्त्तः ) मनुष्य ( नेतुः ) सब के नायक ( देवस्य ) सब जगत् के प्रकाशक परमेश्वर के ( सख्यम् ) मित्रता को ( वुरीत ) स्वीकार कर ( विश्वः ) सब मनुष्य ( राये ) शोभा वा लक्ष्मी के लिये ( इषुध्यति ) बाणादि आयुधों को धारण करें ( स्वाहा ) सत्यवाणी और ( द्युम्नम् ) प्रकाशयुक्त यश वा अन्न को ( वृणीत ) ग्रहण करें और जैसे इससे तू ( पुष्यसे ) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होवें ॥६७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्ति कराने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥६७॥

मा स्वित्यस्य आत्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या क्या कहें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु ।**
**अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥**

पदार्थ—हे ( अम्ब ) माता ! तू हमको विद्या से ( मा ) मत ( सुभित्थाः ) छुड़ावे और ( मा ) मत ( सुरिषः ) दुःख दे ( धृष्णु ) दृढ़ता से ( सुवीरयस्व ) सुन्दर आरम्भ किये कर्म्म की समाप्ति कर । ऐसे करने हुए तुम माता और पुत्र दोनों ( अग्निः ) अग्नि के समान ( च इदम् ) करने योग्य इस सब कर्म्म का ( करिष्यथः ) आचरण करो ॥६८॥

भावार्थ—माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिससे ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें । और जो करने योग्य हो वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥६८॥

दृꣳहस्वेत्यस्यात्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर पति अपनी स्त्री से क्या क्या कहे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृतासि ।**
**जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥६९॥**

**पदार्थ**—हे ( पृथिवि ) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई ( देवि ) विद्या से युक्त पत्नि ! तू ने ( स्वस्तय ) सुख के लिये ( स्वधिया ) अन्न वा जल से जो ( आसुरी ) प्राणपोषक पुरुषो की ( माया ) बुद्धि है उसका (कृता) सिद्ध किया (असि) है । उससे तू मुझ पति को ( कृहस्व ) उन्नति दे ( अरिष्टा ) हिंसा रहित हुई ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञ ) सङ्ग करन योग्य गृहाश्रम मे (उदिहि) प्रकाश को प्राप्त हो जो तूने ( जुष्टम ) सेवन किया ( इदम् ) यह ( हव्यम ) देने लेने योग्य पदार्थ है वह ( देवेभ्य ) विद्वानों वा उत्तम गुण होने के लिये ( अस्तु ) होवे ॥६९॥

**भावार्थ**—जो स्त्री पति को प्राप्त होके घर मे वत्तती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिए प्रयत्न करे । सब अन्न आदि खाने पीने के पदार्थ रुचिकारक बनवावे वा बनावे और किसी को दु ख वा किसी क साथ वरबुद्धि कभी न करे ॥६९॥

**द्रवन्न इत्यस्य सोमाहुतिऋ षि । अग्निर्देवता । विराडगायत्री छन्द ।**

**षड्ज स्वर ॥**

*फिर यह स्त्री अपने पति से कसे कसे कहे यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**द्रुवन्न॰ सुर्पिरासुति॑ प्रत्नो होता वरेण्य ।**

**सहसस्पुत्रोऽअद्भु॒त॑ ॥ ७० ॥**

**पदार्थ**—हे पत ! ( द्रवन्न ) वक्षादि ओषधि ही जिनक अन्न है ऐस ( सर्पिरासुति ) घृत आदि पदार्थों का शोधन वाल ( प्रत्न ) सनातन ( होता ) देने लेने हारे ( वरेण्य ) स्वीकार करन योग्य ( सहस ) बलवान् के ( पुत्र ) पुत्र ( अद्भुत ) आश्चय्य गुण कम और स्वभाव से युक्त आप सुख होने क लिये इस गृहाश्रम क बीच शोभायमान हूजिये ॥७०॥

**भावार्थ**—यहां पूव मन्त्र स ( स्वस्तय अस्मिन् यज्ञ उदिहि ) इन चार पदो की अनुवृत्ति आती है । कन्या का उचित है कि जिसका पिता ब्रह्मचय्य स बलवान् हो और जो पुरषाथ स बहुत अन्नादि पदार्थों को इकटठा कर सके उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष क साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगे ॥७०॥

**परस्या इत्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । विराड गायत्री छन्द ।**

**षडज स्वर ॥**

*फिर पति अपनी स्त्री को क्या क्या उपदेश करे यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**परस्याऽअधि संवतोऽवरॉ२ऽअभ्यातर ।**

**यत्राहमस्मि तॉ २ऽअव ॥ ७१ ॥**

**पदार्थ**—हे कन्ये ! जिस ( परस्या ) उत्तम कन्या तेरा मैं ( अधि ) स्वामी हुआ चाहता हूँ सो तू ( संवत ) सविभाग का प्राप्त हुए ( अवरान ) नीच स्वभावो को ( अभ्यातर ) उल्लङ्घन कर और ( यत्र ) जिस कुल मे (अहम) मैं ( अस्मि) हूँ ( तान् ) उन उत्तम मनुष्यो की ( अव ) रक्षा कर ॥७१॥

**भावार्थ**—कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या वाले वा बराबर के पति का स्वीकार करे किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाल को नहीं । जिसके साथ विवाह करे उसके सम्बन्धी और मित्रो का सब काल मे प्रसन्न रक्खे ॥७१॥

**परमस्या इत्यस्य वारुणिऋ षि । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक छन्द ।**

**ऋषभ स्वर ॥**

*फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या क्या कहे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र म कहा है—*

**पुरमस्या॑ परावतो रोहिदश्वऽइहागहि ।**

**पुरीष्य॑ पुरुप्रियोऽग्ने त्व तरा मृध ॥ ७२ ॥**

**पदार्थ** हे ( अग्ने ) पावक क समान तेजस्विन् विज्ञानयुक्त पते ! ( रोहिदश्व ) अग्नि आदि पदार्थों म युक्त वाहनो स युक्त ( पुरीष्य ) पालन म श्रेष्ठ ( पुरुप्रिय ) बहुत मनुष्यो की प्रीति रखन वाले ( त्वम् ) आप ( इह ) इस गृहाश्रम म ( परावत ) दूर देश म ( परमस्या ) अति उत्तम गुण और स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति सुन क ( आगहि ) आइय और उस के साथ ( मृध ) दूसरो क पदार्थों की आकाक्षा करनहार शत्रुओ का ( तर ) तिरस्कार कीजिए ॥ ७२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो का चाहिए कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश म विवाह कभी न कर । जितना ही दूर विवाह किया जाव उतना ही अधिक सुख होवे निकट करने म कलह ही होता है । ७२ ॥

**यदग्ने इत्यस्य जमदग्निऋ षि । अग्निर्देवता । निचदनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर स्त्रीपुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या क्या प्रतिज्ञा करें और करावें यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।**

**सर्वं तदस्तु ते घृत तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( यविष्ठ्य ) अत्यन्त युवा अवस्था को प्राप्त हुए ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री ! आप जैसे ( कानि कानिचित) कोई कोई भी वस्तु ( ते ) तेरी हैं वे हम लोग (दारूणि ) काष्ठ के पात्र में ( दध्मसि) धारण करे ( यत ) जो कुछ हमारी चीज है ( तत ) सो ( सर्वम् ) सब ( ते ) तेरी ( अस्तु ) होवे जो हमारा ( घृतम् ) घृतादि उत्तम पदार्थ है ( तत ) उस को तू ( जुषस्व ) सेवन कर । जो कुछ तेरा पदार्थ है सो सब हमारा है जो तेरा घृतादि पदार्थ है उसको हम ग्रहण करें ॥ ७३ ॥

**भावार्थ**—ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रक्खें किन्तु ईर्ष्या से आपस म कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सब सुखो की वृद्धि होवे और विघ्न न उठें इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी परस्पर वर्तें ॥ ७३ ॥

**यदत्तीत्यस्य जमदग्निऋ षि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रोऽअतिसर्पति ।**

**सर्वं तदस्तु ते घृत तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( यविष्ठ्य ) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए पते ! आप और ( उपजिह्विका ) जिस की जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् वश मे हो ऐसी स्त्री (यत्) जो ( अत्ति ) भोजन करे ( यत ) जो ( वम्र ) मुख से बाहर निकाला प्राणवायु ( अतिसर्पति ) अत्यन्त चलता है ( तत ) वह ( सर्वम ) सब ( ते ) तेरा ( अस्तु) होवे । जो तेरा ( घृतम् ) घी आदि उत्तम पदार्थ है ( तत ) उस को ( जुषस्व ) सेवन किया कर ॥ ७४ ॥

**भावार्थ**—जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो उस के अनुकूल स्त्री पुरुष दोनो वर्तें । जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे । इस विषय म कभी द्वेष नही करना चाहिए किन्तु आपस में मिलकर आनन्द भोगें ॥ ४७ ॥

**अहरहरित्यस्य नाभानेदिष्ठऋ षि । अग्निर्देवता । विराट त्रिष्टुप्छन्द ।**

**धवत स्वर ॥**

*फिर गृहस्थ लोग आपस मे कस वर्तें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अहरहरप्रयाव भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।**

**रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥७५॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ! ( अहरह ) नित्यप्रति ( तिष्ठते ) वर्त्तमान ( अश्वायेव ) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आगे धरते हैं वैसे ( अस्मै ) इस गृहस्थ पुरुष के लिए ( अप्रयावम ) अन्याय स पृथक गृहाश्रम के योग्य ( घासम ) भोगने योग्य पदार्थों का ( भरन्त ) धारण करते हुए ( राय ) धन की ( पोषण ) पुष्टि तथा ( इषा ) अन्नादि से ( समदन्त ) सम्यक आनन्द को प्राप्त हुए ( प्रतिवेशा ) धर्म्म विषयक प्रवेश म निश्चित हम लोग ( ते ) तेरे ऐश्वय को ( मारिषाम ) कभी नष्ट न कर ॥ ७५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है । गृहस्थ मनुष्यो को चाहिए कि घोड़े आदि पशुओ क खाने के लिये जो दूध आदि पदार्थों का पशुओ के पालक नित्य इकटठ करते है वैसे अपने ऐश्वय का बढाके सुख देवें और धन क अहकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें किन्तु दूसरो की वृद्धि वा धन लाभ के सदा आनन्द मानें ॥ ७५ ॥

**नाभेत्यस्य नाभानेदिष्ठऋ षि । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।**

**धवत स्वर ॥**

*फिर ये मनुष्य लोग आपस म कैसे सवाद कर यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नाभा॑ पृथिव्या॑ समिधानेऽअग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।**

**इरम्मद बृहदुक्थ यजत्र जेतारमग्नि पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥**

**पदार्थ**—हे गृही लोगो ! जैसे हम लोग ( बृहते ) बड़ ( राय ) लक्ष्मी के ( पोषाय ) पुष्ट करने हारे पुरुष क लिए ( पृथिव्या ) पृथिवी क ( नाभा ) बीच ( समिधाने ) अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए ( अग्नौ ) अग्नि म और ( पृतनासु ) सेनाओ म ( सासहिम ) अत्यन्त सहनशील ( इरम्मदम ) अन्न म आनन्दित होने वाले ( बृहदुक्थम ) बड़ी प्रशसा से युक्त ( यजत्रम ) सग्राम करने योग्य ( अग्निम् ) बिजुली के समान शीघ्रता करने हारे ( जेतारम् ) विजयशील सेनापति पुरुष को ( हवामहे ) बुलाते है । वसे तुम लोग भी इसको बुलाओ ॥ ७६ ॥

**भावार्थ**—पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यो को चाहिये कि आग्नेय आदि अस्त्रो और तलवार आदि शस्त्रो का सचय कर और पूर्ण बुद्धि तथा शरीरबल से युक्त पुरुष को सेनापति करके निर्भयता के साथ वर्तें ॥ ७६ ॥

**या सेना इत्यस्य नाभानेदिष्ठऋ षि । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*राजपुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न स चोर आदि दुष्टों का बार-बार निवारण करें यह उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**या॑ सेनाऽअभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाऽउत ।**

**ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्तेऽअग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥ ७७ ॥**

**पदार्थ**—हे सेना और सभा के स्वामी ! जैसे मैं ( या ) जो ( अभित्वरी ) सम्मुख होके युद्ध करने हारी ( आव्याधिनी ) बहुत रोगो से युक्त वा ताडना देने हारी ( उगणा ) शस्त्रो को लेके विरोध में उद्यत हुई ( सेना ) सेना है उन ( उत ) और ( ये ) जो ( स्तेना ) सुरग लगा के दूसरो के पदार्थों को हरने वाले ( च ) और ( ये ) जो ( तस्करा ) द्यूत आदि कपट से दूसरो के पदार्थ लेने हारे हैं ( तान् ) उनको ( ते ) इस ( अग्ने ) अग्नि के ( आस्ये ) जलती हुई लपट म ( अपिदधामि ) गेरता हूँ वैसे तू भी इन को इस में धरा कर ॥ ७७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । धर्मात्मा राजपुरुषो को चाहिए कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हो उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हो तथा डाकू चोर खोटे वचन बोलनेहारे मिथ्यावादी व्यभिचारी मनुष्य होवें उन को अग्नि से जलाने आदि भयकर दण्डो से शीघ्र ताडना देकर वश मे करें ॥ ७७ ॥

**दध्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर उन दुष्टों को किस किस प्रकार ताडना कर यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्करॉं२ऽउत ।**

**हनुभ्याꣳ स्तेनान् भगवस्तॉंस्त्वं खाद सुखादितान् ॥७८॥**

**पदार्थ**—हे ( भगव ) ऐश्वर्य वाले सभा सेना के स्वामी ! जैसे ( त्वम् ) आप ( जम्भ्यै ) मुख के जीभ आदि अवयवो और ( दंष्ट्राभ्याम ) तीक्ष्ण दाँतो से जिन ( मलिम्लून् ) मलीन आचरण वाले सिंह आदि का और ( हनुभ्याम ) मसूडो से ( तस्करान् ) चोरो के समान वर्त्तमान ( सुखादितान् ) अन्याय से दूसरो के पदार्थों को भोगने और ( स्तेनान् ) रात मे भीति आदि फाड तोड के पराया माल मारने हारे मनुष्यो को ( खाद ) जड से नष्ट करें वैसे ( तान् ) उनको हम लोग ( उत ) भी नष्ट करें ॥ ७८ ॥

**भावार्थ**—राजपुरुषो को चाहिए कि गौ आदि बडे उपकार के पशुओ को मारने वाले सिंह आदि वा मनुष्य हो उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं उनको अनेक प्रकार के बन्धनो से बाँध ताडना दे नष्ट कर वश मे लावें ॥ ७८ ॥

**ये जनेष्वित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषि । सेनापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर ये राजपुरुष किस किस का निवारण कर यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने ।**

**ये कक्षेष्वघायवस्तॉंस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! मैं सेनाध्यक्ष ( ये ) जो ( जनेषु ) मनुष्यो मे ( मलिम्लव ) मलीन स्वभाव से आने जाने ( स्तेनास ) गुप्त चोर जो ( वने ) वन मे ( तस्करा ) प्रसिद्ध चोर लुटेरे और ( ये ) जो ( कक्षेषु ) कटरी आदि मे ( अघायव ) पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं ( तान् ) उन को ( ते ) आप के ( जम्भयो ) फैलाये मुख मे ग्रास के समान ( दधामि ) धरता हूँ ॥ ७९ ॥

**भावार्थ**—सेनापति आदि राजपुरुषो का यही मुख्य कर्त्तव्य है जो ग्राम और वनो मे प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं उन को राजा के आधीन करें ॥ ७९ ॥

**यो अस्मभ्यमित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषि । अध्यापकोपदेशको देवते । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।**

**निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥८०॥**

**पदार्थ**—हे सभा और सेना के स्वामिन् ! आप ( य ) जो ( जन ) मनुष्य ( अस्मभ्यम् ) हम धर्मात्माओ के लिये ( अरातीयात ) शत्रुता करे ( य ) जो ( न ) हमारे साथ ( द्वेषते ) दुष्टता करे ( च ) और हमारी ( निन्दात ) निन्दा करे ( य ) जो ( अस्मान् ) हम को ( धिप्सात ) दम्भ दिखावे और हमारे साथ छल करे ( तम् ) उस ( सर्वम ) सब को ( भस्मसा ) जला के सम्पूर्ण भस्म ( कुरु ) कीजिए ॥ ८० ॥

**भावार्थ**—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषो को चाहिए कि पढाने शिक्षा उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें ॥ ८० ॥

**सꣳशितमित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषि । पुरोहितयजमानौ देवते । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब पुरोहित यजमान आदि से किस किस पदार्थ की इच्छा करे—*

**सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम् ।**

**सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥**

**पदार्थ**—( अहम् ) मैं ( यस्य ) जिस यजमान पुरुष का ( पुरोहित ) प्रथम धारण करने हारा ( अस्मि ) हूँ उसका और ( मे ) मेरा ( संशितम् ) प्रशंसा के योग्य ( ब्रह्म ) वेद का विज्ञान और उस यजमान का ( संशितम् ) प्रशंसा के योग्य ( वीर्य्यम ) पराक्रम प्रशंसित ( बलम् ) बल ( संशितम् ) और प्रशंसा के योग्य ( जिष्णु ) जय का स्वभाववाला ( क्षत्रम ) क्षत्रियकुल होवे ॥ ८१ ॥

**भावार्थ**—जो जिसका पुरोहित और जो जिसका यजमान हो वे दोनो आपस मे जिस विद्या के योग बल और धर्माचरण से आत्मा की उन्नति और ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढे वही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

**उदेषामित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषि । सभापतिर्यजमानो देवता । विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**उदेषां बाहूऽअतिरमुद्वर्चोऽअथो बलम् ।**

**क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वॉं२ऽअहम् ॥ ८२ ॥**

**पदार्थ**—( अहम ) मैं यजमान वा पुरोहित ( ब्रह्मणा ) वेद और ईश्वर के ज्ञान देने से ( एषाम् ) इन पूर्वोक्त चोर आदि दुष्टो के ( बाहू ) बल और पराक्रम का ( उदतिरम ) अच्छे प्रकार उल्लंघन करूँ इनके ( वर्च ) तेज तथा ( बलम् ) सामर्थ्य का और ( अमित्रान् ) शत्रुओ को ( उत्क्षिणोमि ) मारता हूँ ( अथो ) इस को पश्चात् ( स्वान् ) अपने मित्रो के तेज और सामर्थ्य का ( उन्नयामि ) वृद्धि के साथ प्राप्त करूँ ॥ ८२ ॥

**भावार्थ**—राजा आदि यजमान तथा पुरोहितो को चाहिए कि पापियो के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओ के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

**अन्नपत इत्यस्य नाभानेदिष्ठऋषि । यजमानपुरोहितौ देवते । उपरिष्टाद्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब मनुष्यों को इस संसार मे कैसे कैसे वर्त्तना इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।**

**प्रप्र दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( अन्नपते ) ओषधि अन्नो के पालन करने हारे यजमान वा पुरोहित ! आप ( न ) हमारे लिए ( अनमीवस्य ) रोगो के नाश से सुख को बढाने ( शुष्मिण ) बहुत बलकारी ( अन्नस्य ) अन्न को ( प्रप्रदेहि ) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इस अन्न के ( दातारम ) देनेहारे को ( तारिष ) तृप्त कर तथा ( न ) हमारे ( द्विपद ) दो पग वाले मनुष्यादि तथा ( चतुष्पदे ) चार पगवाले गौ आदि पशुओ के लिए ( ऊर्जम ) पराक्रम को ( धेहि ) धारण कर ॥ ८३ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरो को देवें । मनुष्य तथा पशुओ के सुख और बल बढावें । जिससे ईश्वर की सृष्टिक्रमानुकूल आचरण से सब के सुखो की सदा उन्नति होवे ॥ ८३ ॥

इस अध्याय मे गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यो को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय मे कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

**यह यजुर्वेदभाष्य का ग्यारहवाँ (११) अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥**

पहण
( अतिथि )
( दुरोणसत् )
) सेना आदि
स्थत ( ऋतसत् )
र्वव्यापक ईश्वर वा

# ॥ अथ द्वादशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*अब बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र मे विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—*

**दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचान. ।**
**अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **दृशान** ) दिखलाने हारा ( **द्यौ** ) स्वय प्रकाश स्वरूप ( **अग्नि** ) सूर्यरूप अग्नि ( **उर्व्या** ) अति स्थूल भूमि के साथ सब मूर्तिमान् पदार्थों को ( **व्यद्यौत** ) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है वैसे जो ( **श्रिये रुचान** ) सौभाग्य लक्ष्मी के अर्थ रुचिकर्त्ता ( **रुक्म** ) सुशोभित जन ( **अभवत** ) होता और जो ( **सुरेता** ) उत्तम वीर्ययुक्त ( **अमृत** ) नाशरहित ( **दुर्मर्षम** ) शत्रुओं से दु ख से निवारण के योग्य ( **आयु** ) जीवन को ( **अजनयत** ) प्रकट करता है ( **वयोभि** ) अवस्थाओं के साथ ( **एनम** ) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता हो उस को तुम सदा निरन्तर सेवन करो ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर का निश्चय कराते हैं वैसे ही मनुष्य को होना चाहिए ॥ १ ॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची ।**
**द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदा' ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस ( **अग्निम** ) बिजुली को ( **द्रविणोदा** ) बलदाता ( **देवा** ) दिव्य प्राण ( **धारयन्** ) धारण करें जो ( **रुक्म** ) रुचिकारक हो के ( **अन्त** ) अन्त करण में ( **विभाति** ) प्रकाशित होता है जो ( **समनसा** ) एक विचार से विदित ( **विरूपे** ) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध रूप युक्त ( **समीची** ) सब प्रकार सब को प्राप्त होनेवाली ( **द्यावाक्षामा** ) प्रकाश और भूमि तथा ( **नक्तोषासा** ) रात्रि और दिन जैसे ( **एकम्** ) एक ( **शिशुम्** ) बालक को दो माता ( **धापयते** ) दूध पिलाती है वैसे उस को तुम लोग जानो ॥ २ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जननी माता और धायी बालक को दूध पिलाती है वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती हैं और जो बिजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है इस बात का तुम सब निश्चय करो ॥२॥

विश्वारूपाणीत्यस्य श्यावाश्व ऋषि । सविता देवता ।
विराड्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*अब अगले मन्त्र मे परमेश्वर के कृत्य का उपदेश किया है—*

**विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।**
**वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **वरेण्य** ) ग्रहण करने योग्य ( **कवि** ) जिस की दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ ( **सविता** ) सब संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य्य ( **उषस** ) प्रात काल का समय ( **प्रयाणम** ) प्राप्त करने को ( **अनुविराजति** ) प्रकाशित होता है ( **विश्वा** ) सब ( **रूपाणि** ) पदार्थों के स्वरूप ( **प्रतिमुञ्चते** ) प्रसिद्ध करता है और ( **द्विपदे** ) मनुष्यादि दो पगवाले ( **चतुष्पदे** ) तथा गौ आदि चार पगवाले प्राणियों के लिए ( **नाकम** ) सब दु खों से पृथक ( **भद्रम** ) सेवने योग्य सुख को ( **व्यख्यत** ) प्रकाशित करता और ( **प्रासावीत** ) उन्नति करता है ऐसे उस सूर्य्यलोक को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जिस परमेश्वर ने सम्पूर्ण रूपवान् द्रव्यों का प्रकाशक प्राणियों के सुख का हेतु प्रकाशमान सूर्यलोक रचा है उसी की भक्ति सब मनुष्य करें ॥ ३ ॥

सुपर्णोऽसीत्यस्य श्यावाश्व ऋषि । गरुत्मान् देवता । धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ ।**
**आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जिस से ( **ते** ) आपका ( **त्रिवृत** ) तीन कर्म्म उपासना और ज्ञानों से युक्त ( **शिर** ) दु खों का जिस से नाश हो ( **गायत्रम्** ) गायत्री छन्द से कहे विज्ञानरूप अर्थ ( **चक्षु** ) नेत्र ( **बृहद्रथन्तरे** ) बड़े २ रथों के सहाय से दु खों को छुड़ानेवाले ( **पक्षौ** ) इधर उधर के अवयव ( **स्तोम** ) स्तुति के योग्य ऋग्वेद ( **आत्मा** ) अपना स्वरूप ( **छन्दांसि** ) उष्णिक आदि छन्द ( **अङ्गानि** ) कान आदि ( **यजूंषि** ) यजुर्वेद के मन्त्र ( **नाम** ) नाम ( **यज्ञायज्ञियम्** ) ग्रहण करने और छोड़ने योग्य व्यवहारों के योग्य ( **वामदेव्यम्** ) वामदेव ऋषि ने जाने वा पढ़ाये ( **साम** ) तीसरा सामवेद ( **ते** ) आपका ( **तनू** ) शरीर है इससे आप ( **गरुत्मान्** ) महात्मा ( **सुपर्ण** ) सुन्दर सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त ( **असि** ) हैं । जिस से ( **धिष्ण्या** ) शब्द करने के हेतुओं मे साधु ( **शफा** ) खुर तथा ( **पुच्छम्** ) बड़ी पूंछ के समान अन्त्य का अवयव है उसके समान जो ( **गरुत्मान्** ) प्रशंसित शब्दोच्चारण से युक्त ( **सुपर्ण** ) सुन्दर उड़ने वाला ( **असि** ) है उस पक्षी के समान आप ( **दिवम्** ) सुन्दर विज्ञान को ( **गच्छ** ) प्राप्त हूजिये और ( **स्व** ) सुख को ( **पत** ) ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल और मूलों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने हारे सुशोभित होते हैं । जैसे पशु पूंछ आदि अवयवों से अपने कार्य करते और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग से जाते आते आनन्दित होते हैं वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

विष्णो क्रम इत्यस्य श्यावाश्व ऋषि । विष्णुर्देवता ।
भुरिगुत्कृतिश्छन्द । षड्ज स्वर ॥

*फिर भी अगले मन्त्र मे राजधर्म का उपदेश किया है—*

**विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्दऽआरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्दऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्दऽआरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्दऽआरोह दिशोऽनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् पुरुष ! जिससे आप ( **विष्णो** ) व्यापक जगदीश्वर के ( **क्रम** ) व्यवहार के शोधक ( **सपत्नहा** ) और शत्रुओं के मारने हारे ( **असि** ) हो इसमें ( **गायत्रम** ) गायत्री मन्त्र से निकले ( **छन्द** ) शुद्ध अर्थ पर ( **आरोह** ) आरूढ़ हूजिये ( **पृथिवीम** ) पृथिव्यादि पदार्थों से ( **अनुविक्रमस्व** ) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप ( **विष्णो** ) व्यापक कारण के ( **क्रम** ) कार्य्यरूप ( **अभिमातिहा** ) अभिमानियों को मारने हारे ( **असि** ) हैं इस से आप ( **त्रैष्टुभम्** ) तीन प्रकार के सुखों से संयुक्त ( **छन्द** ) बलदायक वेदार्थ का ( **आरोह** ) ग्रहण और ( **अन्तरिक्षम** ) आकाश का ( **अनुविक्रमस्व** ) अनुकूल व्यवहार में युक्त कीजिये जिस से आप ( **विष्णो** ) व्यापनशील बिजुली रूप अग्नि के ( **क्रम** ) जानने हारे ( **अरातीयत** ) विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के ( **हन्ता** ) नाश करने हारे ( **असि** ) हैं इस से आप ( **जागतम** ) जगत् को जानने का हेतु ( **छन्द** ) सृष्टिविद्या को बलयुक्त करने हारे विज्ञान को ( **आरोह** ) प्राप्त हूजिये और ( **दिवम्** ) सूर्य आदि अग्नि को ( **अनुविक्रमस्व** ) अनुक्रम से उपयुक्त कीजिये जो आप ( **विष्णो** ) हिरण्यगर्भ वायु के ( **क्रम** ) ज्ञापक तथा ( **शत्रूयत** ) अपने को शत्रु का आचरण करनेवाले पुरुषों के ( **हन्ता** ) मारनेवाले ( **असि** ) हैं सो आप ( **आनुष्टुभम** ) अनुकूलता के साथ सुख सम्बन्ध के हेतु ( **छन्द** ) आनन्दकारक वेद भाग को ( **आरोह** ) उपयुक्त कीजिये और ( **दिश** ) पूर्व आदि दिशाओं के ( **अनुविक्रमस्व** ) अनुकूल प्रयत्न कीजिये ॥५॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि वेदविद्या से भूगर्भविद्याओं का निश्चय तथा पराक्रम से उनकी उन्नति करके रोग और शत्रुओं का नाश करें ॥ ५ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।**
**सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो सभापति ( **सद्य** ) एक दिन में ( **जज्ञान** ) प्रसिद्ध हुआ ( **द्यौ** ) सूर्य्य प्रकाश रूप ( **अग्नि** ) विद्युत् अग्नि के समान ( **स्तनयन्निव** ) शब्द करता हुआ शत्रुओं को ( **अक्रन्दत्** ) प्राप्त होता है जैसे ( **क्षामा** ) पृथिवी ( **वीरुध** ) वृक्षों को पत्र फूलों से युक्त करती है वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को ( **रेरिहत** ) अच्छे बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है जैसे सूर्य ( **इद्ध** ) प्रदीप्त और

पदार्थ—
के समान तजस्वी वि

( समञ्जन् ) सम्यक पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को ( व्यख्यत् ) प्रसिद्ध करता और ( भानुना ) अपनी दीप्ति के साथ ( अन्त ) सब लोकों के बीच ( आभाति ) प्रकाशित होता है। वैसे जो सभापति शुभ गुण कर्मों से प्रकाशित हो उसको तुम लोग राजकार्य्यों मे संयुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सब लोकों के बीच मे स्थित हुआ सब को प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथिवी बहुत फलो को देती है वैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्य्यों मे अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो ॥ ६ ॥

अग्न इत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन ।**

**सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( अभ्यावर्त्तिन् ) सन्मुख होके वर्त्तनेवाले ( अग्ने ) तेजस्वी पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष ! आप ( आयुषा ) बड़े जीवन ( वर्चसा ) अन्न तथा पढ़ने आदि ( प्रजया ) सन्तानो ( धनेन ) धन ( सन्या ) सब विद्याओं का विभाग करने हारी ( मेधया ) बुद्धि ( रय्या ) विद्या की शोभा और ( पोषेण ) पुष्टि के साथ ( अभिनिवर्त्तस्व ) निरन्तर वर्त्तमान हूजिये और ( मा ) मुझको भी इन उक्त पदार्थों से संयुक्त कीजिये ॥७॥

भावार्थ—मनुष्य लोग भूगर्भादि विद्या के बिना ऐश्वर्य्य को प्राप्त नही कर सकते और बुद्धि के बिना विद्या भी नही हो सकती ॥७॥

अग्ने अङ्गिर इत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्द ।

निषाद स्वर ॥

*फिर विद्याभ्यास करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्नेऽअङ्गिर शतं ते सन्त्वावृत॑ सहस्रं तऽउपावृतः ।**

**अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥८॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) पदार्थविद्या के जानने हारे ( अङ्गिर ) विद्या के रसिक विद्वान् पुरुष ! जिस पुरुषार्थी ( ते ) आप की अग्नि के समान ( शतम् ) सैकड़ो ( आवृत ) आवृत्तिरूप क्रिया और ( सहस्रम् ) हजार ( ते ) आपके ( उपावृत ) आवृत्तिरूप सुखो के भोग ( सन्तु ) होवें ( अध ) इसके पश्चात् आप इनसे ( पोषस्य ) पोषक मनुष्य का ( पोषेण ) रक्षा से ( नष्टम् ) परोक्ष भी विज्ञान को ( न ) हमारे लिये ( पुन ) फिर भी ( आकृधि ) अच्छे प्रकार कीजिये तथा बिगड़ी हुई ( रयिम् ) प्रशंसित शोभा को ( पुन ) फिर भी ( न ) हमारे अर्थ ( आकृधि ) अच्छे प्रकार कीजिये ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि विद्याओ मे सैकड़ो आवृत्ति और शिल्प विद्याओ मे हजारह प्रकार की प्रवृत्ति से विद्याओ का प्रकाश करके सब प्राणियो के लिये लक्ष्मी और सुख उत्पन्न करें ॥८॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

*फिर पढ़ाने हारे का कर्त्तव्य अगले मन्त्र मे कहा है—*

**पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽइषायुषा । पुनर्न॑ पाह्यꣳहस॑ ॥९॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्वी अध्यापक विद्वान् जन ! आप ( न ) हम लोगो को ( अहस ) पापो से ( पुन ) वार वार ( निवर्त्तस्व ) बचाइये ( पुन ) फिर हम लोगो की ( पाहि ) रक्षा कीजिये और ( पुन ) फिर ( इषा ) तथा ( आयुषा ) अन्न से ( ऊर्जा ) पराक्रमयुक्त कर्मों को प्राप्त कीजिये ॥९॥

भावार्थ—विद्वान् लोगो को चाहिये कि सब उपदेश के योग्य मनुष्यो को पापों से निरन्तर हटा के शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें और आप भी पापो से बच के परम पुरुषार्थी होवें ॥९॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

*फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।**

**विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! आप दुष्ट व्यवहारों से ( निवर्त्तस्व ) पृथक् हूजिये ( विश्वप्स्न्या ) सब भोगनेवाले योग्य पदार्थों की भुगवाने हारी ( धारया ) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु वाणी तथा ( रय्या ) धन के ( सह ) साथ ( विश्वत ) सब ओर से ( परि ) सब प्रकार ( पिन्वस्व ) सुखो का सेवन कीजिये ॥१०॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुषो को चाहिये कि कभी अधर्म्म का आचरण न करें और दूसरो को वैसा उपदेश भी न करें इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओ से विराजमान हुए प्रशंसा के योग्य होवें ॥१०॥

आ त्वेत्यस्य ध्रुव ऋषि । अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप्छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*फिर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।**

**विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ ११ ॥**

पदार्थ—हे शुभ गुण और लक्षणो से युक्त सभापति राजन् ! ( त्वा ) आपको राज्य की रक्षा के लिये मैं ( अन्त ) सभा के बीच ( आहार्षम् ) अच्छे प्रकार ग्रहण करूं। आप सभा मे ( अभू ) विराजमान हूजिये ( अविचाचलिः ) सर्वथा निश्चल ( ध्रुव ) न्याय से राज्यपालन मे निश्चित बुद्धि होकर ( तिष्ठ ) स्थिर हूजिये ( सर्वा ) सम्पूर्ण ( विश ) प्रजा ( त्वा ) आपको ( वाञ्छन्तु ) चाहना करें ( त्वत ) आपके पालने से ( राष्ट्रम् ) राज्य ( माधिभ्रशत ) नष्टभ्रष्ट न होवे ॥ ११ ॥

भावार्थ—उत्तम प्रजाजनो को चाहिए कि सबसे उत्तम पुरुष को सभाध्यक्ष राजा मान के उसको उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल मे धार्मिक पुरुषार्थी हूजिये। आपके बुरे आचरणो से राज्य कभी नष्ट न होवे। जिससे सब प्रजापुरुष आपके अनुकूल वर्त्तें ॥११॥

उदुत्तममित्यस्य शुन शेप ऋषि । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय ।**

**अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥ १२ ॥**

पदार्थ—हे ( वरुण ) शत्रुओ को बांधने ( आदित्य ) स्वरूप से अविनाशी सूर्य्य के समान सत्य न्याय के प्रकाशक सभापति विद्वन् ! आप ( अस्मत् ) हम से ( अधमम् ) निकृष्ट ( मध्यमम् ) मध्यस्थ और ( उत्तमम् ) उत्तम ( पाशम् ) बन्धन को ( उदवविश्रथाय ) विविध प्रकार से छुड़ाइये ( अथ ) इसके पश्चात् ( वयम् ) हम प्रजा के पुरुष ( अदितय ) पृथिवी के अखण्डित राज्य के लिये ( तव ) आपके ( व्रते ) सत्य न्याय के पालनरूप नियम मे ( अनागस ) अपराध रहित ( स्याम ) होवे ॥१२॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल सत्य आचरणो में वर्त्तमान हुए धर्मात्मा मनुष्य पाप के बन्धनो से छूट के सभी सुखी होते हैं वैसे ही उत्तम राजा को प्राप्त होके प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं ॥१२॥

अग्र बृहन्नित्यस्य त्रित ऋषि । अग्निर्देवता भुरिगार्षीपंक्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वोऽअस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।**

**अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्गऽआ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१३॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप ( अग्र ) पहिले से जैसे सूर्य्य ( स्वङ्ग ) सुन्दर अवयवो से युक्त ( आजात ) प्रकट हुआ ( बृहन् ) बड़ा ( उषसाम् ) प्रभातो के ( ऊर्ध्व ) ऊपर आकाश मे ( अस्थात् ) स्थिर होता और ( रुशता ) सुन्दर ( भानुना ) दीप्ति तथा ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( तमस ) अन्धकार को ( निर्जगन्वान् ) निरन्तर पृथक् करता हुआ ( आगात ) सब लोक लोकान्तरो को प्राप्त होता है ( विश्वा ) सब ( सद्मानि ) स्थूल स्थानो को ( अप्रा ) प्राप्त होता है उसके समान प्रजा के बीच आप हूजिये ॥१३॥

भावार्थ—जो सूर्य्य के समान श्रेष्ठ गुणो से प्रकाशित सत्पुरुषो की शिक्षा से उत्कृष्ट बुरे व्यसनो से अलग सत्य न्याय से प्रकाशित सुन्दर अवयव वाला सर्वत्र प्रसिद्ध सब के सत्कार और जानने योग्य व्यवहारो का ज्ञाता और दूतो के द्वारा सब मनुष्यो के आशय को जाननेवाला शुद्ध न्याय से प्रजाओ मे प्रवेश करता है वही पुरुष राजा होने के योग्य होता है ॥१३॥

हस इत्यस्य त्रित ऋषि । जीवेश्वरौ देवते । स्वराड् जगती छन्द ।

निषाद स्वर ॥

*अब अगले मन्त्र में परमात्मा और जीव के लक्षण कहे हैं—*

**हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।**

**नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋत बृहत् ॥१४॥**

पदार्थ—हे प्रजा के पुरुषो ! तुम लोग जो ( हंस ) दुष्ट कर्मों का नाशक ( शुचिषत् ) पवित्र व्यवहारो मे वर्त्तमान ( वसु ) सज्जनो मे बसने वा उनको बसानेवाला ( अन्तरिक्षसत ) धर्म के अवकाश मे स्थित ( होता ) सत्य का ग्रहण करने और करानेवाला ( वेदिषत् ) सब पृथिवी वा यज्ञ के स्थान मे स्थित ( अतिथि ) पूजनीय वा राज्य की रक्षा के लिये यथोचित समय मे भ्रमण करनेवाला ( दुरोणसत ) ऋतुओ मे सुखदायक आकाश मे व्याप्त वा घर मे रहनेवाला ( नृषत ) सेना आदि के नायको का अधिष्ठाता ( वरसत् ) उत्तम विद्वानो की आज्ञा मे स्थित ( ऋतसत् ) सत्याचरणों मे आरूढ़ ( व्योमसत् ) आकाश के समान सर्वव्यापक ईश्वर वा

जीवस्थित ( अक्षा ) प्राणो के प्रकट करनेहारा ( गोपा ) इन्द्रिय वा पशुओं को प्रसिद्ध करने हारा ( ऋतजा ) सत्य विज्ञान को उत्पन्न करनेहारा ( अद्रिजा ) मेघो का वर्षानेवाला विद्वान् (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्) अनन्त ब्रह्म और जीव को जाने उस पुरुष को सभा का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द म रहो ॥१४॥

भावार्थ—जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओ को पालने और सुख देने को समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है। और ऐसे राजा के बिना प्रजाओं को सुख भी नहीं हो सकता ॥१४॥

सीद त्वमित्यस्य त्रित ऋषि । अग्निर्देवता । विराट त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*माता का कर्म अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सीद त्वं मातुरस्याऽउपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।**

**मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याᳬ शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥१५॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्या को चाहने वाले पुरुष ! ( त्वम ) आप ( अस्याम् ) इस माता के विद्यमान होने मे ( विभाहि ) प्रकाशित हो ( शुक्रज्योति ) शुद्ध आचरणो के प्रकाश से युक्त ( विद्वान् ) विद्यावान् आप पृथिवी के समान आधार ( मातु ) इस माता की ( उपस्थ ) गोद मे ( सीद ) स्थित हूजिये इस माता से ( विश्वानि ) सब प्रकार की ( वयुनानि) बुद्धियो का प्राप्त हूजिये । इस माता को ( अन्त ) अन्त करण म ( मा ) मत ( तपसा ) सन्ताप से तथा ( अर्चिषा ) तेज से ( मा ) मत (अभिशोची ) शोकयुक्त कीजिये । किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त होके प्रकाशित हूजिये ॥१५॥

भावार्थ—जो विदुषी माता द्वारा विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया माता का सेवक जैसे माता पुत्रो को पालती है वसे प्रजाओ का पालन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य से प्रकाशित होवे ॥१५॥

अन्तरग्न इत्यस्य त्रित ऋषि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*फिर राजा क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे ।**

**तस्यास्त्वᳬ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥**

पदार्थ—हे ( जातवेद ) वेदो के ज्ञाता ( अग्ने ) तेजस्वी विद्वान् ! आप जिस ( उखाया ) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे अग्नि के समान ( स्वे ) अपने (सदने) पढ़ने के स्थान मे ( तपन् ) शत्रुओ को सताप कराते हुए ( अन्त ) मध्य में ( रुचा ) प्रीति से वर्तो ( तस्या ) उस प्रजा के ( हरसा ) प्रज्वलित तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए ( शिव ) मङ्गलकारी ( भव ) हूजिये ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जसे सभाध्यक्ष राजा को चाहिए कि न्याय करने की गद्दी पर बैठ क अत्यन्त प्रीति क साथ राज्य के पालनरूप कार्यों को करे वसे प्रजाओ को चाहिए कि राजा को सुख देती हुई दुष्टो को ताडना करें ॥१६॥

शिवो भूत्वेत्यस्य त्रित ऋषि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽअथो सीद शिवस्त्वम् ।**

**शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ १७ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि क समान शत्रुओ को जलानेवाले विद्वान् पुरुष ! ( त्वम ) आप ( मह्यम् ) हम प्रजाजनो क लिए ( शिवा ) मङ्गलाचरण करने हारे ( भूत्वा ) होकर ( इह ) इस ससार म ( शिव ) मङ्गलकारी हुए ( सर्वा ) सब ( दिश ) दिशाओ मे रहने हारी प्रजाओ को ( शिवा ) मङ्गलाचरण से युक्त ( कृत्वा ) करक ( स्वम ) अपने ( योनिम ) राजधर्म के आसन पर ( आसद ) बठिए और ( अथो ) इसक पश्चात् राजधर्म मे ( सीद ) स्थिर हूजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि आप धर्मात्मा होक प्रजा क मनुष्यो को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बठ क निरन्तर न्याय किया करे ॥१७॥

दिवस्परीत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर राजधर्म का उपदेश अगल मन्त्र में किया है—*

**दिवस्परि प्रथमं जज्ञेऽअग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः ।**

**तृतीयमप्सु नृमणाऽअजस्रमिन्धानऽएनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥**

पदार्थ—हे सभापति राजन् ! जो (अग्नि ) अग्नि के समान आप ( अस्मत् ) हम लोगों से ( दिव ) बिजुली क ( परि ) ऊपर ( जज्ञे ) प्रकट होते हैं उन ( एनम् ) आपको (प्रथमम्) पहिले जो (जातवेदा ) बुद्धिमानो मे प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उस आपको ( द्वितीयम ) दूसरे जो ( नृमणा ) मनुष्यो म विचारशील आप ( तृतीयम् ) तीसरे ( अप्सु ) प्राण वा जल क्रियाओ मे विदित हुए उस आपको ( अजस्रम् ) निरन्तर ( इन्धान ) प्रकाशित करता हुआ विद्वान् ( जरते ) सब प्रकार स्तुति करता है सो आप ( स्वाधी ) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये ॥१८॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम के सहित विद्या तथा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृहाश्रम से धन का सञ्चय तीसरे वानप्रस्थ आश्रम से तप का आचरण और चौथे सन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का नित्य प्रकाश करें ॥१८॥

विद्मा त इत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**विद्मा तेऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।**

**विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यतऽआजगन्थ ॥ १९ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! ( ते ) आप के जो ( त्रेधा ) तीन प्रकार से ( त्रयाणि ) तीन कर्म हैं उनको हम लोग ( विद्म ) जानें। हे स्वामीं के स्वामी ! ( ते ) आप के जो ( विभृत) विशेष करके धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत (धाम) नाम जन्म और स्थानरूप हैं उनको हम लोग (विद्म) जानें। हे विद्वान् पुरुष ! ( ते ) आपका ( यत ) जो ( गुहा ) बुद्धि मे स्थित गुप्त ( परमम् ) श्रेष्ठ ( नाम ) नाम है उसको हम लोग ( विद्म ) जानें ( यत ) जिस कारण आप ( आजगन्थ ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ( तम ) उस ( उत्सम ) कूप के तुल्य तर करने हारे आपको ( विद्म ) हम लोग जानें ॥१९॥

भावार्थ—प्रजा के पुरुष और राजा को योग्य है कि राजनीति के कामो सब स्थानो और सब पदार्थों के नामो को जानें। जैसे कूएँ से जल निकाल खेत आदि को तृप्त करते हैं वसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को तृप्त करे ॥१९॥

समुद्र इत्यस्य वत्सप्री ऋषि अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**समुद्रे त्वा नृमणाऽअप्स्वन्तर्नृचक्षाऽईधे दिवो अग्नऽऊधन् ।**

**तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाᳬसमपामुपस्थे महिषाऽअवर्धन् ॥ २० ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! ( नृमणा ) नायक पुरुषो को विचारने वाला मैं जिस ( त्वा ) आपको ( समुद्रे ) आकाश में अग्नि के समान ( ईधे ) प्रदीप्त करता हूँ ( नृचक्षा ) बहुत मनुष्यो का देखने वाला मैं ( अप्सु ) अन्न वा जलो क ( अन्त ) बीच प्रकाशित करता हूँ ( दिव ) सूर्य के प्रकाश के ( ऊधन् ) प्रातःकाल मे प्रकाशित करता हूँ ( तृतीये ) तीसरे ( रजसी ) लोक मे ( तस्थिवांसम) स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिस आपको ( अपाम ) जलो के ( उपस्थे ) समीप ( महिष ) महात्मा विद्वान् लोग ( अवर्धन ) उन्नति को प्राप्त करें सो आप हम लोगो की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥२०॥

भावार्थ—प्रजा के बीच वर्तमान सब श्रेष्ठ पुरुष राजकार्यों को और राजपुरुष प्रजापुरुषो को नित्य बढाते रहें ॥ २० ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*अब मनुष्यों को कैसा होना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।**

**सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥२१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( द्यौ ) सूर्यलोक ( अग्नि ) विद्युत् अग्नि ( स्तनयन्निव ) शब्द करते हुए क समान ( वीरुध ) ओषधियों को ( समञ्जन् ) प्रकट करता हुआ ( सद्य ) शीघ्र ( हि ) ही ( अक्रन्दत् ) पदार्थों का इधर उधर चलाता ( क्षामा ) पृथिवी को ( रेरिहत् ) कपाता और यह ( जज्ञान ) प्रसिद्ध हुआ ( इद्ध ) प्रकाशमान होकर ( भानुना ) किरणो के साथ ( रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी को ( ईम् ) सब ओर से ( व्यख्यत् ) विख्यात करता है और ब्रह्माण्ड के ( अन्त ) बीच ( आभाति ) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है वसे तुम लोग भी होओ ॥ २१ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जिसलिए सूर्यलोक को उत्पन्न किया है इसीलिए वह बिजुली के समान सब लोको का आकर्षण कर और ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाने का हेतु और सब भूगोलो के बीच जसे शोभायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषो का भी होना चाहिए ॥ २१ ॥

श्रीणामित्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*इन राजकार्यों में कसे पुरुष को राजा बनावें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।**

**वसुः सूनुः सहसोऽअप्सु राजा विभात्यग्रऽउषसामिधानः ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जो पुरुष ( **उषसाम्** ) प्रभात समय के ( **अग्रे** ) आरम्भ मे ( **इद्धान** ) प्रदीप्यमान सूर्य के समान ( **श्रीणाम्** ) सब उत्तम लक्ष्मियो के मध्य ( **उदार** ) परीक्षित पदार्थों का देने ( **रयीणाम्** ) धनो का ( **धरुण** ) धारण करने ( **मनीषाणाम्** ) बुद्धियो का ( **प्रार्पण** ) प्राप्त कराने और ( **सोमगोपा** ) ओषधियो वा ऐश्वर्यों की रक्षा करने ( **सहस** ) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का ( **सूनु** ) पुत्र ( **वसु** ) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ ( **अप्सु** ) प्राणो मे ( **राजा** ) प्रकाशयुक्त होकर ( **विभाति** ) शुभ गुणो का प्रकाश करता हो उस को सब का अध्यक्ष करो ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को उचित है कि सुपात्रों को दान देने धन का व्यर्थ खर्च न करने सब को विद्या बुद्धि देने जिसने ब्रह्मचर्याश्रम जिसने किया हो अपने इन्द्रिय जिसके वश मे हों योग के यम आदि आठ अङ्गो क सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समान अच्छे गुण कर्म्म और स्वभावो से सुशोभित और पिता के समान अच्छे प्रजाओ का पालन करने हारा पुरुष हो उसको राज्य करने के लिए स्थापित करें ॥ २२ ॥

**विश्वस्येत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽआ रोदसीऽअपृणाज्जायमान ।**
**वीडु चिदद्रिमभिनत् परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **यत** ) जो विद्वान् ( **विश्वस्य** ) सब ( **भुवनस्य** ) लोको का ( **केतु** ) पिता के समान रक्षक प्रकाशने हारा ( **गर्भ** ) उन के मध्य मे रहने ( **जायमान** ) उत्पन्न होने वाला ( **परायन्** ) शत्रुओ को प्राप्त होता हुआ ( **रोदसी** ) प्रकाश और पृथिवी को ( **अपृणात** ) पूरण कर्त्ता हो ( **वीडुम** ) अत्यन्त बलवान् ( **अद्रिम्** ) मेघ को ( **अभिनत्** ) छिन्न भिन्न करे ( **पञ्च** ) पाँच ( **जना** ) प्राण ( **अग्निम्** ) बिजुली को ( **अयजन्त** ) सयुक्त करते हैं ( **चित्** ) इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणो का प्रकाश करे उस को न्यायाधीश राजा मानो ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य लोक अपनी आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता और मेघ को काटने वाला तथा प्राणो से प्रसिद्ध हुये के समान सब विद्याओ को जताने और जैसे माता गर्भ की रक्षा करे वैसे प्रजा का पालन हारा विद्वान् पुरुष हो उस को राज्याधिकार देना चाहिये ॥ २३ ॥

**उशिगित्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि ।**
**इयर्त्ति धूममरुषम्भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ईश्वर ने ( **मर्त्येषु** ) मनुष्यो मे जो ( **उशिक** ) मानने योग्य ( **पावक** ) पवित्र करने हारा ( **अरति** ) ज्ञान वाला ( **सुमेधा** ) अच्छी बुद्धि से युक्त ( **अमृत** ) मरणधर्मरहित ( **अग्नि** ) आकाररूप ज्ञान का प्रकाश ( **निधायि** ) स्थापित किया है जो ( **शुक्रेण** ) शीघ्रकारी ( **शोचिषा** ) प्रकाश से ( **द्याम्** ) सूर्यलोक को ( **इनक्षत** ) व्याप्त होता हुआ ( **धूमम्** ) धुए ( **अरुषम्** ) रूप को ( **भरिभ्रत्** ) अत्यन्त धारण वा पुष्ट करता हुआ ( **इयर्त्ति** ) प्राप्त होता है उसी ईश्वर की उपासना करो वा उस अग्नि से उपकार लेओ ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि कार्य्य कारण के अनुसार ईश्वर के रचे हुए सब पदार्थों को ठीक २ जान के अपनी बुद्धि बढ़ावें ॥ २४ ॥

**दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर मनुष्यो को क्या २ जानना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।**
**अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेता ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **यत्** ) जिस कारण ( **दृशान** ) दिखाने हारा ( **रुक्म** ) रुचि का हेतु ( **श्रिये** ) शोभा का ( **रुचान** ) प्रकाशक ( **दुर्मर्षम्** ) सब दुखो से रहित ( **आयु** ) जीवन करता हुआ ( **अमृत** ) नाशरहित ( **अग्नि** ) तेजस्वरूप ( **उर्व्या** ) पृथिवी के साथ ( **व्यद्यौत्** ) प्रकाशित होता है ( **वयोभि** ) व्यापक गुणो के साथ ( **अभवत्** ) उत्पन्न होता और जो ( **द्यौ** ) प्रकाशक ( **सुरेता** ) सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर ( **यत्** ) जिस के लिये ( **एनम्** ) इस अग्नि को ( **अजनयत्** ) उत्पन्न करता है उस ईश्वर वायु और विद्युत् रूप अग्नि का जानो ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य गुण कर्म और स्वभावो के सहित जगत् रचने वाले अनादि ईश्वर और जगत् के कारण को ठीक २ जान के उपासना करते और उपयोग लेते हैं वे चिरजीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

**यस्त इत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर विद्वान लोग कैसे रसोइया का स्वीकार कर यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**यस्तेऽअद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।**
**प्र तं नय प्रतरं वस्योऽअच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **भद्रशोचे** ) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त ( **यविष्ठ** ) तरुण अवस्था वाले ( **देव** ) दिव्य भोगो के दाता ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरुष ! ( **य** ) जो ( **ते** ) आपका ( **घृतवन्तम्** ) बहुत घृत आदि पदार्थों से सयुक्त ( **अभि** ) सब प्रकार से ( **सुम्नम्** ) सुखरूप ( **देवभक्तम्** ) विद्वानो के सेवने योग्य ( **अपूपम्** ) भोजन के योग्य पदार्थों वाला ( **वस्य** ) अत्यन्त भोग्य ( **अच्छ** ) अच्छे २ पदार्थों का ( **कृणवत्** ) बनावे ( **तम्** ) उस ( **प्रतरम्** ) पाक बनाने हारे पुरुष को आप ( **अद्य** ) आज ( **प्रणय** ) प्राप्त हूजिये ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि विद्वानो स अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए अति उत्तम व्यञ्जन और शष्कुली आदि तथा शाक आदि स्वाद मे युक्त रुचिकारक पदार्थों को बनाने वाले पाचक पुरुष का ग्रहण करें ॥ २६ ॥

**आ तमित्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ।**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**आ तं भज सौश्रवसेष्वग्नऽउक्थऽउक्थऽआभज शस्यमाने ।**
**प्रियः सूर्ये प्रियोऽअग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥२७॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरुष ! आप जो ( **सौश्रवसेषु** ) सुन्दर धन वालो मे वर्त्तमान हो ( **तम्** ) उस का ( **आभज** ) सेवन कीजिये जो ( **शस्यमाने** ) स्तुति के योग्य ( **उक्थ उक्थ** ) अत्यन्त कहने योग्य व्यवहार मे ( **प्रिय** ) प्रीति रक्खे ( **सूर्ये** ) स्तुतिकारक पुरुषों मे हुए व्यवहार ( **अग्ना** ) और अग्निविद्या मे ( **प्रिय** ) सेवने योग्य ( **जातेन** ) उत्पन्न हुए और ( **जनित्वै** ) उत्पन्न होने वालो के साथ ( **उद्भवाति** ) उत्पन्न होवे और शत्रुओ का ( **उद्भिनदत्** ) उच्छिन्न भिन्न करे ( **तम्** ) उस का आप ( **आभज** ) सेवन कीजिये ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि जो पाक करने मे साधु सब का हितकारी अन्न और व्यजनो को अच्छे प्रकार बनावे उसको अवश्य ग्रहण करें ॥ २७ ॥

**त्वामग्न इत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**त्वामग्ने यजमानाऽअनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि ।**
**त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥२८॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरुष ! जिस ( **त्वाम** ) आपका आश्रय लेकर ( **उशिज** ) बुद्धिमान् ( **यजमाना** ) सगतिकारक लोग ( **त्वया** ) आपके ( **सह** ) साथ ( **विश्वा** ) सब ( **वार्य्याणि** ) ग्रहण करने योग्य ( **अनुद्यून** ) दिनो से ( **वसु** ) द्रव्यो का ( **दधिरे** ) धारण करें ( **द्रविणम्** ) धन की ( **इच्छमाना** ) इच्छा करते हुए ( **गोमन्तम** ) सुन्दर किरणो के रूप स युक्त ( **व्रजम** ) मेघ वा गोस्थान का ( **विवव्रु** ) विविध प्रकार से ग्रहण करें वैसे हम लोग भी होवें ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि प्रयत्नशील विद्वानों के सग से पुरुषार्थ के साथ विद्या और सुख को नित्यप्रति बढ़ाते जावें ॥ २८ ॥

**अस्तावीत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर उन विद्वानों क सग से क्या होता है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अस्ताव्यग्निर्नराᳩ सुशेवो वैश्वानरऽऋषिभिः सोमगोपा ।**
**अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **देवा** ) शत्रुओ को जीतने की इच्छावाले विद्वानो ! जिन ( **ऋषिभि** ) ऋषि तुम लोगो ने ( **नराम्** ) नायक विद्वानो म ( **सुशेव** ) सुन्दर सुखयुक्त ( **वैश्वानर** ) सब मनुष्यो के आधार ( **अग्नि** ) परमेश्वर की ( **अस्तावि** ) स्तुति की है जो तुम लोग ( **अस्मे** ) हमारे लिये ( **सुवीरम्** ) जिससे सुन्दर वीरपुरुष हो उस ( **रयिम्** ) राज्यलक्ष्मी को ( **धत्त** ) धारण करो उसके आश्रित ( **सोमगोपा** ) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग ( **अद्वेषे** ) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय मे ( **द्यावापृथिवी** ) प्रकाशरूप राजनीति और पृथिवी के राज्य का ( **हुवेम** ) ग्रहण करें ॥२९॥

**भावार्थ**—जो सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के सेवक धर्मात्मा विद्वान् लोग हैं वे परोपकारी होने से आप्त यथार्थवक्ता होते हैं ऐसे पुरुषो के सत्सग के विना स्थिर विद्या और राज्य को कोई भी नहीं कर सकता ॥ २९ ॥

**समिधाग्निमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्रीछन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर मनुष्य किनका सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।**
**आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥**

**पदार्थ**—हे गृहस्थो ! तुम लोग जैसे ( **समिधा** ) अच्छे प्रकार इन्धनों से ( **अग्निम्** ) अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करनेवाले विद्वान् पुरुष की ( **दुवस्यत** ) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा ( **घृत** ) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम करके जगदुपकार करते हैं। वैसे ( **अतिथिम्** ) जिस के आने जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को ( **बोधयत** ) स्वागत उत्साहादि से चैतन्य करो और ( **अस्मिन्** ) इस जगत् में ( **हव्या** ) देने योग्य पदार्थों का ( **आजुहोतन** ) अच्छे प्रकार दिया करो ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुपात्रों को दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन करके संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान करके जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विश्व को सुखी करें ॥ ३० ॥

**उदु त्वेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*विद्वानों को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः ।**

**स नो॑ भव शि॒वस्त्व॑ᳫं सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः ॥ ३१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! जिन ( **त्वा** ) आपको ( **विश्वे** ) सब ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **चित्तिभिः** ) अच्छे विज्ञानों के साथ अग्नि के समान ( **उदुभरन्तु** ) पुष्ट करें ( **सः** ) सो ( **विभावसुः** ) जिनसे विविध प्रकार की शोभा वा विद्या प्रकाशित हो ( **सुप्रतीकः** ) सुन्दर लक्षणों से युक्त ( **त्वम्** ) आप ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **शिवः** ) मङ्गलमय वचनों के उपदेशक ( **भव** ) हूजिये ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य जिस विज्ञान से विद्या का सञ्चय करता है वह वैसे ही दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे ॥ ३१ ॥

**प्रेदग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर राजा क्या करके किसको प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रेद॑ग्ने॒ ज्योति॑ष्मान् याहि शि॒वेभि॑र॒र्चिभि॒ष्ट्वम् ।**

**बृ॒हद्भि॑र्भा॒नुभि॒र्भास॒न् मा हि॑ᳫंसीस्त॒न्वा प्र॒जाः ॥ ३२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् ! ( **त्वम्** ) तू जैसे ( **ज्योतिष्मान्** ) ज्योतियों से युक्त सूर्य्य ( **शिवेभिः** ) मङ्गलकारी ( **अर्चिभिः** ) सत्कार के साधन ( **बृहद्भिः** ) बड़े २ ( **भानुभिः** ) प्रकाशगुणों से ( **इत्** ) ही ( **भासन्** ) प्रकाशमान है वैसे ( **प्रयाहि** ) सुखों को प्राप्त हूजिये और ( **तन्वा** ) शरीर से ( **प्रजाः** ) पालने योग्य प्राणियों को ( **मा** ) मत ( **हिंसीः** ) मारिये ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभापति आदि राजपुरुषों के सहित राजन् ! आप अपने शरीर से किसी अनपराधी प्राणी को न मार के विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके जीते हुए संसार के सुख को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के सुख को प्राप्त हूजिये ॥ ३२ ॥

**अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*राज्य का प्रबन्ध कैसे करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अक्र॑न्दद॒ग्नि स्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद् वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन् ।**

**स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि ही॒मि॒द्धोऽअख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः ॥ ३३ ॥**

**पदार्थ**—हे प्रजा के लोगो ! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे ( **द्यौः** ) सूर्य प्रकाश करता है वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और ( **अग्निः** ) पावक के तुल्य शत्रुओं को नष्ट करने हारा विद्वान् ( **स्तनयन्निव** ) बिजुली के समान ( **अक्रन्दत्** ) गर्जना और ( **वीरुधः** ) वन के वृक्षों की ( **समञ्जन्** ) अच्छे प्रकार रक्षा करता हुआ ( **क्षामा** ) पृथिवी पर ( **रेरिहत्** ) युद्ध कर ( **जज्ञानः** ) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ ( **इद्धः** ) शुभ लक्षणों से प्रकाशित ( **सद्यः** ) शीघ्र ( **व्यख्यत** ) धर्मयुक्त उपदेश कर तथा ( **भानुना** ) पुरुषार्थ के प्रकाश से ( **हि** ) ही ( **रोदसी** ) अग्नि और भूमि को ( **अन्तः** ) राजधर्म में स्थिर करता हुआ ( **आभाति** ) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के योग्य है ऐसा निश्चित जानो ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। वन के वृक्षों की रक्षा के विना बहुत वर्षा और रोगों की न्यूनता नहीं होती और बिजुली के तुल्य दूर के समाचारों के ग्रहण किये विना शत्रुओं को मारने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के विना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥

**प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर कैसे पुरुष को राज्य व्यवहार में नियुक्त करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रप्रा॒यम॒ग्निर्भ॑र॒तस्य॑ शृण्वे॒ वि यत्सूर्यो॒ न रोच॑ते बृ॒हद्भाः ।**

**अ॒भि यः पू॒रुं पृत॑नासु त॒स्थौ दी॒दाय॒ दैव्यो॒ऽअति॑थिः शि॒वो नः॑ ॥ ३४ ॥**

**पदार्थ**—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि ( **यत्** ) जो ( **अयम्** ) यह ( **अग्निः** ) सेनापति ( **सूर्य्यः** ) सूर्य्य के ( **न** ) समान ( **बृहद्भाः** ) अत्यन्त प्रकाश से युक्त ( **प्रप्र** ) अति प्रकर्ष के साथ ( **रोचते** ) प्रकाशित होता है ( **यः** ) जो ( **नः** ) हमारी ( **पृतनासु** ) सेनाओं में ( **पूरुम्** ) पूर्ण बलयुक्त सेनाध्यक्ष के निकट ( **अभितस्थौ** ) सब प्रकार स्थिर होवे ( **दैव्यः** ) विद्वानों का प्रिय ( **अतिथिः** ) नित्य भ्रमण करनेवाला अतिथि ( **शिवः** ) मङ्गलदाता विद्वान् पुरुष ( **दीदाय** ) विद्या और धर्म को प्रकाशित करे जिसको मैं ( **भरतस्य** ) सेवने योग्य राज्य का रक्षक ( **शृण्वे** ) सुनता हूँ उसको सेना का अधिपति करो ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य को चाहिये कि जिस पुण्यकीर्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्याप्रचार सुना जावे उस कुलीन पुरुष को सेना का युद्ध कराने हारा अधिकारी करें ॥ ३४ ॥

**आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । आपो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब सब मनुष्यों को स्वयंवर विवाह करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आपो॑ देवीः॒ प्रति॑गृभ्णीत॒ भस्मै॒तत्स्यो॒ने कृ॑णुध्वᳫं सुर॒भाऽउ॑ लो॒के ।**

**तस्मै॑ नमन्तां॒ जन॑यः सु॒पत्नी॑र्मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृ॒ताप्स्वे॑नत् ॥ ३५ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो ( **आपः** ) पवित्र जलों के तुल्य सम्पूर्ण शुभगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि ( **देवीः** ) सुन्दर रूप और स्वभाव वाली कन्या ( **सुरभौ** ) ऐश्वर्य के प्रकाश से युक्त ( **लोके** ) देखने योग्य लोकों में अपने पतियों को प्रसन्न कर उनको ( **प्रतिगृभ्णीत** ) स्वीकार करो तथा उनको सुखयुक्त ( **कृणुध्वम्** ) करो जो ( **एतत्** ) यह ( **भस्म** ) प्रकाशक तेज है ( **तस्मै** ) उसके लिये जो ( **सुपत्नीः** ) सुन्दर ( **जनयः** ) विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रसिद्ध हुई स्त्री नमती है उसके प्रति आप लोग भी ( **नमन्ताम्** ) नम्र हूजिये ( **उ** ) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल के ( **पुत्रम्** ) पुत्र को ( **मातेव** ) माता के तुल्य ( **अप्सु** ) प्राणों में ( **एनम्** ) इस पुत्र को ( **बिभृत** ) धारण करो ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रसन्नता के साथ स्वयंवर विवाह धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न और उनको विद्वान् करके गृहाश्रम के ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥ ३५ ॥

**अप्स्वग्न इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब जीव किस किस प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अ॒प्स्व॒ग्ने॒ सधि॒ष्टव॒ सौष॑धी॒रनु॑ रुध्यसे । गर्भे॒ सन् जा॑यसे॒ पुनः॑ ॥ ३६ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य विद्वान् जीव ! जो तू ( **सधिः** ) सहनशील ( **अप्सु** ) जलों में ( **ओषधीः** ) सोमलता आदि ओषधियों को ( **अनुरुध्यसे** ) प्राप्त होता है ( **सः** ) वह तू ( **गर्भे** ) गर्भ में ( **सन्** ) स्थित होकर ( **पुनः** ) फिर फिर जन्म लेता है ( **तव** ) तेरे हैं ऐसा जान ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—जो जीव शरीर को छोड़ते हैं वे वायु और ओषधि आदि पदार्थों में भ्रमण करते करते गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण करके प्रकट होते हैं ॥ ३६ ॥

**गर्भो असीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर जीव कहां कहां जाता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**गर्भो॒ऽअस्योष॑धीनां॒ गर्भो॒ वन॒स्पती॑नाम् ।**

**गर्भो॒ विश्व॑स्य भू॒तस्या॑ग्ने॒ गर्भो॒ऽअ॒पाम॑सि ॥ ३७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) दूसरे शरीर को प्राप्त होनेवाले जीव ! जिससे तू अग्नि के समान जो ( **ओषधीनाम्** ) सोमलता आदि वा यवादि ओषधियों के ( **गर्भः** ) दोषों के मध्य ( **गर्भः** ) गर्भ ( **वनस्पतीनाम्** ) पीपल आदि वनस्पतियों के बीच ( **गर्भः** ) शोधक ( **विश्वस्य** ) सब ( **भूतस्य** ) उत्पन्न हुए संसार के मध्य ( **गर्भः** ) ग्रहण करने हारा और जो ( **अपाम्** ) प्राण वा जलों का ( **गर्भः** ) गर्भरूप भीतर रहने हारा ( **असि** ) है इसलिये तू अज अर्थात् स्वयं जन्मरहित ( **असि** ) है ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जो बिजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं उनको जानो ॥ ३७ ॥

**प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*मरण समय में शरीर का क्या होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्र॒सद्य॒ भस्म॑ना॒ योनि॑म॒पश्च॑ पृथि॒वीम॑ग्ने ।**

**स॒ᳫंसृज्य॑ मा॒तृभि॒ष्ट्वं ज्योति॑ष्मा॒न् पुन॒रास॑दः ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) प्रकाशमान पुरुष सूर्य्य के समान ( **ज्योतिष्मान्** ) प्रशंसित प्रकाश से युक्त जीव ! तू ( **भस्मना** ) शरीर दाह के पीछे ( **पृथिवीम्** ) पृथिवी ( **च** ) अग्नि आदि और ( **अपः** ) जलों के बीच ( **योनिम्** ) देह दाह के कारण को ( **प्रसद्य** ) प्राप्त हो और ( **मातृभिः** ) माताओं के उदर में वास करके ( **पुनः** ) फिर ( **आसदः** ) शरीर को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जीवो ! तुम लोग जब शरीर को छोड़ो तब यह शरीर राख रूप करके पृथिवी आदि के पांच भूतों के साथ युक्त करो। तुम और तुम्हारे माता के शरीर में गर्भाशय में पहुँच फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो ॥ ३८ ॥

**पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब माता पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने ।**
**शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याᳬ शिवतमः ॥ ३९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) इच्छा आदि गुणो से प्रकाशित जन ! जिस कारण तू ( **अप** ) जलो ( **च** ) और ( **पृथिवीम** ) भूमितल के ( **सदनम** ) स्थान को ( **पुन** ) फिर फिर ( **आसद्य** ) प्राप्त होके ( **अस्याम्** ) इस माता के ( **अन्त** ) गर्भाशय मे ( **शिवतम** ) मङ्गलकारी होके ( **यथा** ) जैसे बालक ( **मातु** ) माता की ( **उपस्थे** ) गोद मे ( **शेषे** ) सोता है वैसे ही माता की सेवा मे मङ्गलकारी हो ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—पुत्रो को चाहिये कि जैसे माता अपने पुत्रो को सुख देती है वसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओ को निरन्तर आनन्दित करें और माता पिता के साथ विरोध कभी न करें और माता पिता को भी चाहिये कि अपने पुत्रो को अधम और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें ॥३९॥

**पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षीगायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर पुत्र को माता पिता के विषयों मे परस्पर योग्य वर्तमान करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽइषायुषा । पुनर्नः पाह्यᳬहस ॥ ४० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) तेजस्विन् माता पिता ! आप ( **इषायुषा** ) अन्न और जीवन के साथ ( **न** ) हम लोगों को बढाइये ( **पुन** ) वारम्वार ( **अहस** ) दुष्ट आचरण से ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये । हे पुत्र ! तू ( **ऊर्जा** ) पराक्रम के साथ पापो से ( **निवर्त्तस्व** ) अलग हूजिये और ( **पुन** ) फिर हम लोगो को भी पापो से पृथक रखिये ॥४०॥

**भावार्थ**—जैसे विद्वान् माता पिता अपने सन्तानो को विद्या और अच्छी शिक्षा से दुष्टाचारो से पृथक रक्खें वैसे ही सन्तानो को भी चाहिये कि इन माता पिताओ को बुरे व्यवहारो से निरन्तर बचावें । क्योंकि इस प्रकार किये विना सब मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकते ॥४०॥

**सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*विद्वानों को कैसे वर्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।**
**विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरुष ! आप ( **विश्वप्स्न्या** ) सब पदार्थों के भोगने का साधन ( **धारया** ) अच्छी संस्कृत वाणी के ( **सह** ) साथ ( **विश्वतस्परि** ) सब संसार के बीच ( **नि** ) निरन्तर ( **वर्त्तस्व** ) वर्तमान हूजिये और हम लोगो का ( **पिन्वस्व** ) सेवन कीजिये ॥४१॥

**भावार्थ**—विद्वान् मनुष्यो को चाहिये कि इस जगत् मे अच्छी बुद्धि और पुरुषार्थ के साथ श्रीमान् होकर अन्य मनुष्यो का भी धन्यवाद करें ॥४१॥

**बोधा म इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्य लोग आपस मे कैसे पढ़ें और पढ़ावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**बोधा मेऽअस्य वचसो यविष्ठ मᳬहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।**
**पीयति त्वोऽअनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्देऽअग्ने ॥ ४२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **यविष्ठ** ) अत्यन्त जवान ( **स्वधाव** ) प्रशसित बहुत अन्नो वाले ( **अग्ने** ) उपदेश के योग्य श्रोता जन ! तू ( **मे** ) मेरे ( **प्रभृतस्य** ) अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करनेवाले ( **मंहिष्ठस्य** ) अत्यन्त कहने योग्य बड़े तेरी जो ( **त्व** ) यह निन्दक पुरुष ( **पीयति** ) निन्दा कर ( **त्व** ) कोई ( **अनु** ) परोक्ष मे ( **गृणाति** ) स्तुति करे उस ( **ते** ) आपके ( **तन्वम्** ) शरीर को ( **वन्दारु** ) अभिवादनशील मैं स्तुति करता हूँ ॥४२॥

**भावार्थ**—जब कोई किसी को पढावे वा उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने । जब सत्य वा मिथ्या का निश्चय हो जावे तब सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे । ऐसे करने मे कोई निन्दा और कोई स्तुति करे तो कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण कभी न करे । यही मनुष्यों के लिये विशेष गुण है ॥ ४२ ॥

**स बोधीत्यस्य सोमाहुतिऋषि । अग्निर्देवता । आर्च्युष्णिक्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*मनुष्य लोग क्या करके किसको प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् ।**
**युयोध्यस्मद् द्वेषाᳬसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **वसुपते** ) धनों के पालक ( **वसुदावन्** ) सुपुत्रो के लिए धन देनेवाले ! जो ( **मघवा** ) प्रशसित विद्या से युक्त ( **सूरि** ) बुद्धिमान् आप सत्य को ( **बोधि** ) जानें ( **स** ) सो आप ( **विश्वकर्म्मणे** ) सम्पूर्ण शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप ( **अस्मत्** ) हम से ( **द्वेषांसि** ) द्वेषयुक्त कर्मों को ( **युयोधि** ) पृथक् कीजिये ॥४३॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य के साथ जितेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुसार उपदेश कर और सुन के प्रयत्न करते हैं वे ही धर्मात्मा विद्वान् लोग सम्पूर्ण सत्य असत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं और अन्य हठ अभिमान युक्त क्षुद्र पुरुष नहीं ॥ ४३ ॥

**पुनस्त्वेत्यस्य सोमाहुतिऋषि अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*कैसे मनुष्यों के सकल्प सिद्ध होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।**
**घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे ( **वसुनीथ** ) वेदादि शास्त्रो के बोधरूप और सुवर्णादि धन प्राप्त करानेवाले ! आप ( **यज्ञै** ) पढ़ने पढाने आदि क्रियारूप यज्ञो और ( **घृतेन** ) अच्छे सस्कार किये हुए घी आदि वा जल से ( **तन्वम्** ) शरीर को नित्य ( **वर्धयस्व** ) बढ़ाइये ( **पुन** ) पढने पढाने के पीछे ( **त्वा** ) आपको ( **आदित्या** ) पूर्ण विद्या के बल से युक्त ( **रुद्रा** ) मध्यस्थ विद्वान् और ( **वसव** ) प्रथम विद्वान् लोग ( **ब्रह्माण** ) चार वेदो को पढ़ के ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् ( **समिन्धताम्** ) सम्यक् प्रकाशित करे । इस प्रकार के अनुष्ठान से ( **यजमानस्य** ) यज्ञ सत्सग और विद्वानो का सत्कार करनेवाले पुरुष की ( **कामा** ) कामना ( **सत्या** ) सत्य ( **सन्तु** ) होवें ॥४४॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य प्रयत्न के साथ सब विद्याओ को पढ़ और पढ़ा के वारम्वार सत्सग करते हैं कुपथ्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को हटा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्ही के सकल्प सत्य होते हैं दूसरों के नही ॥ ४४ ॥

**अपेतेत्यस्य सोमाहुतिऋषि । पितरो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*सन्तान और पिता माता परस्पर किन किन कर्मों का आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।**
**अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्याऽअक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥ ४५ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! ( **ये** ) जो ( **अत्र** ) इस समय ( **पृथिव्या** ) भूमि के बीच वर्त्तमान ( **पुराणा** ) प्रथम विद्या पढ चुके ( **च** ) और ( **ये** ) जो ( **नूतना** ) वर्त्तमान समय मे विद्याभ्यास करने हारे ( **पितर** ) पिता पढने उपदेश करने और परीक्षा करनेवाले ( **स्थ** ) होवें ( **ते** ) वे ( **अस्मै** ) इस सत्यसकल्पी मनुष्य के लिये ( **इमम्** ) इस ( **लोकम्** ) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को ( **अक्रन्** ) सिद्ध करें जिन तुम लोगो को ( **यम** ) प्राप्त हुआ परीक्षक पुरुष ( **अवसानम्** ) अवकाश वा अधिकार को ( **अदात्**) देवे वे तुम लोग ( **अत** ) इस अधर्म से ( **अपेत**) पृथक् रहो और धर्म्म को ( **वीत** ) विशेष कर प्राप्त होओ ( **च** ) और इसी मे ( **विसर्पत** ) विशेषता से गमन करो ॥४५॥

**भावार्थ**—माता पिता और आचार्य्य का यही परम धर्म है जो सन्तानों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त कराना । जो अधर्म से पृथक् और धर्म्म से युक्त परोपकार मे प्रीति रखनेवाले वृद्ध और जवान विद्वान् लोग हैं वे निरन्तर सत्य उपदेश से अविद्या का निवारण और विद्या की प्रवृत्ति करके कृतकृत्य होवें ॥४५॥

**सज्ञानमित्यस्य सोमाहुतिऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*पढने पढाने वाले क्या करके सुखी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**सञ्ज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् । अग्नेर्भस्मा-**
**स्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचितऽऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! आप जिस ( **सज्ञानम्**) पूरे विज्ञान को प्राप्त ( **असि** ) हुए हो जो आप ( **अग्ने** ) अग्नि से हुई ( **भस्म** ) राख के समान दोषो को भस्म करते ( **असि** ) हो ( **अग्ने** ) बिजुली के जिस ( **पुरीषम्** ) पूर्ण बल को प्राप्त हुए ( **असि** ) हो उस विज्ञान भस्म और बल को मेरे लिये भी दीजिये जिस ( **ते** ) आपका जो ( **कामधरणम्** ) सङ्कल्पो का आधार अन्तःकरण है वह ( **कामधरणम्** ) कामना का आधार ( **मयि** ) मुझ मे ( **भूयात्** ) होवे । जैसे तुम लोग विद्या आदि शुभगुणो से ( **चित** ) इकट्ठे हुए ( **परिचित** ) सब पदार्थों को सब ओर से इकट्ठे करने हारे ( **ऊर्ध्वचित** ) उत्कृष्ट गुणो के सचयकर्त्ता पुरुषार्थ को ( **श्रयध्वम्** ) सेवन करो वैसे हम लोग भी करें ॥४६॥

**भावार्थ**—जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्वानों से विद्या की इच्छा कर प्रश्न किया करें कि जितना तुम लोगों में पदार्थों का विज्ञान है उतना सब तुम लोग हम लोगों में धारण करो और जितनी हस्तक्रिया आप जानते हैं उतनी सब हम लोगों को सिखाइये ॥४६॥

**अयं स इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को उत्तम आचरणों के अनुसार वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयꣳ सोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।**
**सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥४७॥**

**पदार्थ**—हे ( **जातवेदः** ) विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे ( **ससवान्** ) दान देते ( **सन्** ) हुए आप ( **स्तूयसे** ) प्रशंसा के योग्य हो ( **अयम्** ) यह ( **अग्निः** ) अग्नि और ( **इन्द्रः** ) सूर्य्य ( **यस्मिन्** ) जिसमें ( **सोमम्** ) सब ओषधियों के रस को धारण करता है जिस ( **सुतम्** ) सिद्ध हुए पदार्थ को ( **जठरे** ) पेट में मैं ( **दधे** ) धारण करता हूँ ( **सः** ) वह मैं ( **वावशानः** ) शीघ्र कामना करता हुआ ( **सहस्रियम्** ) साथ वर्त्तमान अपनी स्त्री को धारण करता हूँ आपके साथ ( **वाजम्** ) अन्न आदि पदार्थों को ( **अत्यम्** ) व्याप्त होने योग्य के ( **न** ) समान ( **सप्तिम्** ) घोड़े को ( **दधे** ) धारण करता हूँ वैसा ही तू भी हो ॥४७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार और उपमानकार है । जैसे बिजुली और सूर्य सब रसों का ग्रहण कर जगत् को रसयुक्त करते हैं वा जैसे पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते हैं वैसे मैं इस सब को धारण करता हूँ जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो वैसे मैं भी प्रशंसा के योग्य होऊँ ॥ ४७ ॥

**अग्ने यत्त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अध्यापक लोगों को निष्कपटता से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।**
**येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **यजत्र** ) संगम करने योग्य ( **अग्ने** ) विद्वन् ! ( **यत्** ) जिस ( **ते** ) आपका अग्नि के समान ( **दिवि** ) द्योतनशील आत्मा में ( **वर्चः** ) विज्ञान का प्रकाश ( **यत्** ) जो ( **पृथिव्याम्** ) पृथिवी ( **ओषधीषु** ) यवादि ओषधियों और ( **अप्सु** ) प्राणों वा जलों में ( **वर्चः** ) तेज है ( **येन** ) जिससे ( **नृचक्षाः** ) मनुष्यों को दिखानेवाला ( **भानुः** ) सूर्य ( **अर्णवः** ) बहुत जलों का वर्षाने हारा ( **त्वेषः** ) प्रकाश है ( **येन** ) जिसमें ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश को ( **उरु** ) बहुत ( **आ, ततन्थ** ) विस्तारयुक्त करते हो ( **सः** ) सो आप वह सब हम लोगों में धारण कीजिये ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—यहाँ वाचकलुप्तोपमालंकार है । इस जगत् में जिसको सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान जैसा होवे वैसा ही शीघ्र दूसरों को बतावे जो कदाचित् दूसरों को न बतावे तो वह नष्ट हुआ किसी को प्राप्त नहीं हो सके ॥ ४८ ॥

**अग्ने दिव इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने दिवोऽअर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ२ऽऊचिषे धिष्ण्या ये ।**
**या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्तऽआपः ॥४९॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् ! जो आप ( **दिवः** ) प्रकाश से ( **अर्णम्** ) विज्ञान को ( **याः** ) जो ( **आपः** ) प्राण वा जल ( **सूर्य्यस्य** ) सूर्य्य के ( **रोचने** ) प्रकाश में ( **परस्तात्** ) पर हैं ( **च** ) और ( **याः** ) जो ( **अवस्तात्** ) नीचे ( **उपतिष्ठन्ते** ) समीप में स्थित हैं उनको ( **अच्छ** ) सम्यक् ( **जिगासि** ) स्तुति करते हो ( **ये** ) जो ( **धिष्ण्याः** ) बोलनेवाले हैं उन ( **देवान्** ) दिव्यगुण विद्यार्थियों वा विद्वानों के प्रति विज्ञान को ( **अच्छ** ) अच्छे प्रकार ( **ऊचिषे** ) कहते हो सो आप हमारे लिये उपदेश कीजिये ॥४९॥

**भावार्थ**—जो अच्छे विचार से बिजुली और सूर्य के किरणों में ऊपर नीचे रहनेवाले जलों और वायुओं के बोध को प्राप्त होते हैं वे दूसरों को निरन्तर उपदेश करें ॥ ४९ ॥

**पुरीष्यास इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को द्रोहादिक छोड़ के आनन्द में रहना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**पुरीष्यासोऽअग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।**
**जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवाऽइषो महीः ॥ ५० ॥**

**पदार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिये कि ( **प्रावणेभिः** ) विज्ञानों के साथ वर्त्तमान हुए ( **अनमीवाः** ) रोगरहित ( **अद्रुहः** ) द्रोह से पृथक् ( **सजोषसः** ) एक प्रकार की सेवा और प्रीति वाले ( **पुरीष्यासः** ) पूर्ण गुणक्रियाओं में निपुण ( **अग्नयः** ) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् लोग ( **यज्ञम्** ) विद्याविज्ञान दान और ग्रहणरूप यज्ञ और ( **महीः** ) बड़ी बड़ी ( **इषः** ) इच्छाओं को ( **जुषन्ताम्** ) सेवन करें ॥५०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली अनुकूल हुई समान भाव से पदार्थों का सेवन करती है वैसे ही राग द्रोहादि दोषों से रहित आपस में प्रीति वाले होके विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ानेवाले यज्ञ को विस्तृत करके बड़े बड़े सुखों को निरन्तर भोगें ॥ ५० ॥

**इडामग्न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*मनुष्य गर्भाधानादि संस्कारों से बालकों का संस्कार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।**
**स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५१॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! ( **ते** ) आपकी ( **सा** ) वह ( **सुमतिः** ) सुन्दर बुद्धि ( **अस्मे** ) हम लोगों के लिये ( **भूतु** ) होवे जिससे आपका ( **नः** ) और हमारा जो ( **विजावा** ) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक ( **सूनुः** ) उत्पन्न होनेवाला ( **तनयः** ) पुत्र ( **स्यात्** ) होवे उस बुद्धि से उस ( **हवमानाय** ) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये ( **इडाम्** ) स्तुति के योग्य वाणी को ( **गोः** ) वाणी के सम्बन्धी ( **शश्वत्तमम्** ) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान को और ( **पुरुदंसम्** ) बहुत कर्म जिससे सिद्ध हों ऐसे ( **सनिम्** ) ऋग्वेदादि वेदविभाग को ( **साध** ) सिद्ध कीजिये और हे अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥ ५१ ॥

**भावार्थ**—माता पिता और आचार्य्य को चाहिये कि सावधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न करके उनमें वेद ईश्वर और विद्यायुक्त बुद्धि उत्पन्न करें क्योंकि ऐसा अन्य धर्म अपत्य सुख का हितकारी कोई नहीं है ऐसा निश्चय रखना चाहिये ॥ ५१ ॥

**अयं त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब माता पिता और पुत्रादिकों को परस्पर क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।**
**तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ ५२ ॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वान् पुरुष ! जो ( **ते** ) आपका ( **ऋत्वियः** ) ऋतुकाल में प्राप्त हुआ ( **अयम्** ) यह प्रत्यक्ष (**योनिः**) दुःखों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है ( **यतः** ) जिससे ( **जातः** ) उत्पन्न हुए आप ( **अरोचथाः** ) प्रकाशित होवें ( **तम्** ) उसको ( **जानन्** ) जानते हुए आप ( **आरोह** ) शुभगुणों पर आरूढ़ हूजिये ( **अथ** ) इसके पश्चात् ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **रयिम्** ) प्रशंसित लक्ष्मी को ( **वर्धय** ) बढ़ाइये ॥ ५२ ॥

**भावार्थ**—हे माता पिता और आचार्य्य ! तुम लोग पुत्र और कन्याओं को धर्मानुकूल सेवन किये ब्रह्मचर्य से श्रेष्ठ विद्या को प्रसिद्ध कर उपदेश करो । हे सन्तानो ! तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हमको अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुखयुक्त करो ॥ ५२ ॥

**चिदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।**
**परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥**

**पदार्थ**—हे कन्ये ! जो तू ( **चित्** ) चिताई ( **असि** ) हुई ( **तया** ) उस ( **देवतया** ) दिव्यगुण प्राप्त कराने हारी विदुषी स्त्री के साथ ( **अङ्गिरस्वत्** ) प्राणों के तुल्य ( **ध्रुवा** ) निश्चल ( **सीद** ) स्थिर हो । हे ब्रह्मचारिणी ! जो तू (**परिचित्**) विविध विद्या को प्राप्त हुई ( **असि** ) है सो तू ( **तया** ) उस ( **देवतया** ) धर्मानुष्ठान में युक्त दिव्यसुखदायक क्रिया के साथ (**अङ्गिरस्वत्**) ईश्वर के समान ( **ध्रुवा** ) अचल ( **सीद** ) अवस्थित हो ॥ ५३ ॥

**भावार्थ**—सब माता पिता और पढ़ानेहारी विदुषी स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्यक् बुद्धिमती करें । हे कन्या लोगो ! तुम जो पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवती होकर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहाश्रम का सेवन करो तो सब सुखों को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छे होवें ॥ ५३ ॥

**लोकं पृणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।**
**इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५४ ॥**

**पदार्थ**—हे कन्ये ! जिस ( त्वा ) तुझको ( योनौ ) बन्ध के छेदक मोक्ष प्राप्ति के हेतु ( अस्मिन् ) इस विद्या के बोध मे ( इन्द्राग्नी ) माता पिता तथा ( बृहस्पति ) बडी २ वेदवाणियों की रक्षा करनेवाली अध्यापिका स्त्री (असीषदन्) प्राप्त करावें उसमें ( त्वम् ) तू ( ध्रुवा ) दृढ निश्चय के साथ ( सीद ) स्थित हो ( अथो ) इसके अनन्तर ( छिद्रम् ) छिद्र को ( पृण ) पूर्ण कर और ( लोकम् ) देखने योग्य प्राणियो को ( पृण ) तृप्त कर ॥ ५४ ॥

**भावार्थ**—माता पिता और आचार्यों को चाहिये कि इस प्रकार की धर्म्म युक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिसको ग्रहण कर कन्या लोग चिन्तारहित हो सब बुरे व्यसनो को त्याग और समावर्तन संस्कार के पश्चात् विवाह करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द में रहें ॥ ५४ ॥

**ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषि । आपो देवता । विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## ताऽअस्य सूददोहसः सोमंꣳ श्रीणन्ति पृश्नय॑ः ।
## जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ५५ ॥

**पदार्थ**—जो ( देवानाम ) दिव्य विद्वान् पतियो की ( सूददोहस ) सुन्दर रसोइया और गौ आदि के दुहनेवाले सेवको वाली ( पृश्नय ) कोमल शरीर सूक्ष्म अङ्गयुक्त स्त्री दूसरे ( जन्मन् ) विद्यारूप जन्म मे विदुषी होवें ( दिव ) दिव्य (अस्य) इस गृहाश्रम के (सोमम्) उत्तम ओषधियो के रस से युक्त भोजन (श्रीणन्ति) पकाती हैं (ता ) वे ब्रह्मचारिणी (आरोचने) अच्छी रुचिकारक व्यवहार मे ( त्रिषु ) तीनो अर्थात् गत आगामी और वर्त्तमान कालविभागो मे सुख देनेवाली होती तथा ( विश ) उत्तम सन्तानो को भी प्राप्त होती हैं ॥ ५५ ॥

**भावार्थ**—जब अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए युवा विद्वानो को अपने सदृश रूप और गुण से युक्त स्त्री होवें तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और अच्छे सन्तान उत्पन्न होवें । इस प्रकार किये विना संसार का सुख और शरीर छूटने के पश्चात् मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥

**इन्द्रं विश्वेत्यस्य सुतजेतृमधुच्छन्दा ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
## रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ५६ ॥

**पदार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (विश्वा ) सब ( गिर ) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी ( समुद्रव्यचसम् ) समुद्र की व्याप्ति के समान व्याप्ति जिसमे हो उस ( वाजानाम् ) सग्रामों और (रथीनाम) प्रशसित रथोंवाले वीर पुरुषो मे (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित रथवाले ( सत्पतिम् ) सत्य ईश्वर वेद धर्म वा श्रेष्ठ पुरुषो के रक्षक ( पतिम् ) सब ऐश्वर्य के स्वामी को ( अवीवृधन् ) बढावें और ( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्य को बढावें वैसे सब प्राणियो को बढाओ ॥ ५६ ॥

**भावार्थ**—जो कुमार और कुमारी दीर्घ ब्रह्मचर्य सेवन से साङ्गोपाङ्ग वेदो को पढ और अपनी अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करें । धर्मयुक्त व्यवहार से व्यभिचार को छोड के सुन्दर सन्तानो को उत्पन्न करके परोपकार करने मे प्रयत्न करें वे इस संसार और परलोक में सुख भोगें । और इनसे विरुद्धजनो को नहीं हो सकता ॥ ५६ ॥

**समितमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*पश्चात् विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## समितꣳ सं कल्पेथाꣳ सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
## इषमूर्जमभि संवसानौ ॥ ५७ ॥

**पदार्थ**—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! तुम ( सम्प्रियौ ) आपस मे सम्यक प्रीति वाले ( रोचिष्णू ) विषयासक्ति से पृथक् प्रकाशमान ( सुमनस्यमानौ ) मित्र विद्वान् पुरुषों के वर्त्तमान ( संवसानौ ) सुन्दर वस्त्र और आभूषणो से युक्त हुए ( इषम् ) इच्छा को ( समितम् ) इकट्ठे प्राप्त हूजो और ( ऊर्जम् ) पराक्रम को ( अभि ) सम्मुख ( संकल्पेथाम् ) एक अभिप्राय में समर्पित करो ॥ ५७ ॥

**भावार्थ**—जो स्त्रीपुरुष सर्वथा विरोध को छोड के एक दूसरे की प्रीति मे तत्पर विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण करनेवाले होके प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढे । और जो परस्पर विरोधी हों तो दुःखसागर में अवश्य डूबें ॥ ५७ ॥

**सं वामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगुपरिष्टाद् बृहती छन्द । मध्यम स्वरः ॥**

*अध्यापक और उपदेशक लोगो को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना ही वेदो को पढावें और उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## सं वां मनाꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
## अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न ऽइषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥५८॥

**पदार्थ**—हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे मैं आचार्य ( वाम ) तुम दोनो के (मनांसि) एक धर्म्म में तथा संकल्प विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियो को ( व्रता ) सत्य भाषणादि ( उ ) और ( सम् चित्तानि ) सम्यक जाने हुए कर्मों में ( आ ) अच्छे प्रकार ( अकरम् ) करूं । वैसे तुम दोनो मेरी प्रीति के अनुकूल विचारो । हे ( पुरीष्य ) रक्षा के योग्य व्यवहारों में हुए ( अग्ने ) उपदेशक आचार्य वा राजन् ! ( त्वम ) आप ( न ) हमारे ( अधिपा ) अधिक रक्षा करनेहारे ( भव ) हूजिये (यजमानाय) धर्मानुकूल सत्सङ्ग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐसी स्त्री के लिये ( इषम ) अन्न आदि उत्तम पदार्थ और ( ऊर्जम ) शरीर तथा आत्मा के बल को ( धेहि ) धारण कीजिये ॥ ५८ ॥

**भावार्थ**—उपदेशक मनुष्यो को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यो का एक धर्म्म एक कर्म्म एक प्रकार की चित्तवृत्ति और बराबर सुख दुःख जैसे हो वैसे ही शिक्षा करें । सब स्त्री पुरुषो को योग्य है कि आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उपदेशक वा अध्यापक इनके ऐश्वर्य और पराक्रम को बढावें । और सब मनुष्यो के एक धर्म आदि के विना आत्माओ मे मित्रता नहीं होती और मित्रता के विना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥

**अग्ने त्वमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*किन को पढाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ऽअसि ।
## शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहाऽसदः ॥ ५९ ॥

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) उपदेशक विद्वन् ! जिससे ( त्वम ) आप ( इह ) इस संसार मे ( पुरीष्य ) एक मत के पालने में तत्पर ( रयिमान् ) विद्या विज्ञान और धन से युक्त और (पुष्टिमान्) प्रशसित शरीर और आत्मा के बल से सहित (असि) हैं इसलिये ( सर्वा ) सब ( दिश ) उपदेश के योग्य प्रजा ( शिवा ) कल्याणरूपी उपदेश से युक्त ( कृत्वा ) करके ( स्वम् ) अपने ( योनिम् ) सुखदायक दुःखनाशक उपदेश के घर को ( आसद ) प्राप्त हूजिये ॥ ५९ ॥

**भावार्थ**—राजा और प्रजाजनो को चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा परोपकार मे प्रीति रखनेवाले विद्वान् होवें उनको प्रजा मे धर्मोपदेश के लिये नियुक्त करें और उपदेशको को चाहिये कि प्रयत्न के साथ सब को अच्छी शिक्षा से एक धर्म में निरन्तर विरोध को छोड के सुखी करें ॥ ५९ ॥

**भवतम्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । दम्पती देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्द । पंचम स्वरः ॥**

*फिर सब को चाहिये कि विद्या देने के लिये आप्त विद्वानो की प्रार्थना करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
## मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥६०

**पदार्थ**—हे विवाह किये हुए स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनो ( न ) हम लोगो के लिये ( समनसौ ) एक से विचार और ( सचेतसौ ) एक से बोध वाले ( अरेपसौ ) अपराधरहित ( भवतम् ) हूजिये ( यज्ञम ) प्राप्त होने योग्य धर्म को ( मा ) मत (हिंसिष्टम) बिगाडो और (यज्ञपतिम) उपदेश से धर्म के रक्षक पुरुष को ( मा ) मत मारो (अद्य) आज (न ) हमारे लिये (जातवेदसौ) सम्पूर्ण विज्ञान को प्राप्त हुए ( शिवौ ) मङ्गलकारी ( भवतम् ) हूजिये ॥ ६० ॥

**भावार्थ**—स्त्रीपुरुष जनो को चाहिये कि सत्य उपदेश और पढाने के लिये सब विद्याओं से युक्त प्रगल्भ निष्कपट धर्मात्मा सत्यप्रिय पुरुषो को नित्य प्रार्थना और उन की सेवा करें । और विद्वान् लोग सब के लिये ऐसा उपदेश करें कि जिससे सब धर्माचरण करनेवाले हो जावें ॥ ६० ॥

**मातेवेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । पत्नी देवता । आर्ची त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*माता किसके तुल्य सन्तानो को पालती है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा ।
## तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥६१॥

**पदार्थ**—जो ( उखा ) जानने योग्य ( पृथिवी ) भूमि के समान वर्त्तमान विद्वान् स्त्री ( स्वे ) अपने ( योनौ ) गर्भाशय में ( पुरीष्यम् ) पुष्टिकारक गुणो मे हुए ( अग्निम ) बिजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश से युक्त गर्भरूप ( पुत्रम् ) पुत्र को ( मातेव ) माता के समान ( अभा ) पुष्ट वा धारण करती है ( ताम् ) उसको ( संविदान ) सम्यक बोध करता हुआ ( विश्वकर्मा ) सब उत्तम कर्म करनेवाला ( प्रजापति ) परमेश्वर (विश्वै ) सब (देवै ) दिव्य गुणो और ( ऋतुभि ) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ निरन्तर दुःख से ( विमुञ्चतु ) छुडावे ॥ ६१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर पालती है वैसे ही पृथिवी कारणरूप बिजुली को प्रसिद्ध करके रक्षा करती है । जैसे परमेश्वर ठीक-ठीक पृथिवी आदि के गुणो को जानता और नियत समय पर मरे हुओ और पृथिवी आदि को धारण कर अपनी-अपनी नियत परिधि से चला के प्रलय समय मे सब को भिन्न करता है वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि अपनी बुद्धि के अनुसार इन सब पदार्थों को जान के कार्य्यसिद्धि के लिये प्रयत्न करें ॥ ६१ ॥

असुन्वन्तमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*स्त्री लोग कैसे पतियों की इच्छा न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।**
**अन्यमस्मदिच्छ सा तऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥६२॥**

**पदार्थ**—हे (निर्ऋते) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान (देवि) विद्वान् स्त्री ! तू (अस्मत्) हम से भिन्न (स्तेनस्य) अप्रसिद्ध चोर और (तस्करस्य) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़ के (अन्यम्) भिन्न की (इच्छ) इच्छा कर और (असुन्वन्तम्) अभिषव आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (अयजमानम्) दान धर्म से रहित पुरुष की (इच्छ) इच्छा कर और तू जिस (इत्याम्) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (अन्विहि) ढूंढ (सा) तेरी हो तथा उस (तुभ्यम्) तेरे लिये (नमः) अन्न वा सत्कार (अस्तु) होवे ॥ ६२ ॥

**भावार्थ**—हे स्त्रियो ! तुम लोगों को चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो । आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों का ग्रहण करो । जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों को संयुक्त करती है वैसी होओ । ऐसे गुणों वाली तुम को हम नमस्कार करते हैं । जैसे हम लोग आलसी चोरों के साथ न वर्त्तें वैसे तुम लोग भी मत वर्त्तो ॥ ६२ ॥

नमः सु त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर वे स्त्री कैसी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।**
**यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाकेऽअधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥**

**पदार्थ**—हे (निर्ऋते) निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री ! जिस (ते) तेरे (तिग्मतेजः) तीव्र तेजो वाले (अयस्मयम्) सुवर्णादि और (नमः) अन्नादि पदार्थ हैं सो (त्वम्) तू (एतम्) इस (बन्धम्) बांधने के हेतु अज्ञान को (सुविचृत) अच्छे प्रकार (यमेन) न्यायाधीश तथा (यम्या) न्याय करने हारी स्त्री के साथ (संविदाना) सम्यक् बुद्धियुक्त होकर (एनम्) इस अपने पति को (उत्तमे) उत्तम (नाके) आनन्द भोगने में (अधिरोहय) आरूढ़ कर ॥ ६३ ॥

**भावार्थ**—हे स्त्रियो ! तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से सम्बन्ध रखती है वैसे तुम भी होओ । जैसे तुम्हारे पति न्यायाधीश होकर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य न्याय से विचार करके अपराधियों को दण्ड देते और अपराधरहितों का सत्कार करते हैं तुम लोगों के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥ ६३ ॥

यस्यास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यस्यास्ते घोरऽआसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा**
**जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाऽहं परि वेद विश्वतः ॥६४॥**

**पदार्थ**—हे (घोरे) दुष्टों को भय करने हारी स्त्री ! (यस्याः) जिस सुन्दर नियम युक्त (ते) तेरे (आसन्) मुख में (एषाम्) इन (बन्धानाम्) दुःख देते हुए रोकने वालों के (अवसर्जनाय) त्याग के लिये अमृतरूप अन्नादि पदार्थों को (जुहोमि) देता हूँ जो (जनः) मनुष्य (भूमिरिति) पृथिवी के समान (याम्) जिस (त्वा) तुझ को (प्रमन्दते) आनन्दित करता है उस तुझ को (अहम्) मैं (विश्वतः) सब ओर से (निर्ऋतिम्) पृथिवी के समान (त्वा, परि) सब प्रकार से (वेद) जानूं । सो तू भी इस प्रकार मुझ को जान ॥ ६४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे पति अपने आनन्द के लिये स्त्रियों का ग्रहण करते हैं । वैसे ही स्त्री भी पतियों का ग्रहण करें । इस गृहाश्रम में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख का काश होता है । खेतरूप स्त्री और बीजरूप पुरुष जो इन शुद्ध बलवान् दोनों के समागम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

*विवाह समय में कैसी २ प्रतिज्ञा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् । तं ते**
**विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं**
**चकार ॥ ६५ ॥**

**पदार्थ**—स्त्री कहे कि हे पते ! (निर्ऋतिः) पृथिवी के समान मैं (ते) तेरे (ग्रीवासु) कण्ठों में (अविचृत्यम्) न छोड़ने योग्य (यम्) जिस (पाशम्) धर्मयुक्त बन्धन को (आबबन्ध) अच्छे प्रकार बांधती हूँ (तम्) उस को (ते) तेरे लिए भी प्रवेश करती हूँ (आयुषः) अवस्था के साधन अन्न के (न) समान (वि, ष्यामि) प्रविष्ट होती हूँ (अथ) इसके पश्चात् (मध्यात्) मैं तू दोनों में से कोई भी नियम से विरुद्ध न चले जैसे मैं (एतम्) इस (पितुम्) अन्नादि पदार्थ को भोगती हूँ वैसे (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ तू इस अन्नादि को (अद्धि) भोग । हे स्त्री ! (या) जो (देवी) दिव्य गुणों वाली तू (इदम्) इस पतिव्रतरूप धर्म से सत्कार किये हुए प्रत्यक्ष नियम को (चकार) करे उस (भूत्यै) ऐश्वर्य करने हारी तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ को देता हूँ ॥ ६५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विवाह समय में जिन व्यभिचार के त्याग आदि नियमों को करें उनसे विरुद्ध कभी न चलें क्योंकि पुरुष जब विवाहसमय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है । जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री के निकट जावे वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे तो वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं इस लिये स्त्री की सम्मति के विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री कुछ भी काम न करें यही स्त्री पुरुष में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो व्यभिचार को सब समय में त्याग दें ॥ ६५ ॥

निवेशन इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*कैसे स्त्री पुरुष गृहाश्रम करने के योग्य होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे शचीभिः ।**
**देवऽइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥**

**पदार्थ**—जो (सत्यधर्मा) सत्य धर्म से युक्त (सविता) सब जगत् के रचने वाले (देव इव) ईश्वर के समान (निवेशनः) स्त्री का साथी (सङ्गमनः) शीघ्रगति से युक्त (शचीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के (विश्वा) सब (रूपा) रूपों को (अभिचष्टे) देखता है (इन्द्रः) सूर्य्य के (न) समान (समरे) युद्ध में (पथीनाम्) चलते हुए मनुष्यों के सम्मुख (तस्थौ) स्थित होवे वही गृहाश्रम के योग्य होता है ॥ ६६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे ईश्वर ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थ रच उपयुक्त करे हैं । जैसे सूर्य मेघ के साथ युद्ध करके जगत् का उपकार करता है वैसे रचनाक्रम के विज्ञान सुन्दर क्रिया से पृथिवी आदि पदार्थों से अनेक व्यवहार सिद्ध कर प्रजा को सुख देवें ॥ ६६ ॥

सीरा इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

*अब खेती करने की विद्या अगले मन्त्र में कही है—*

**सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।**
**धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (धीराः) ध्यानशील (कवयः) बुद्धिमान् लोग (सीरा) हलों और (युगा) जुआ आदि को (युञ्जन्ति) युक्त करते और (सुम्नया) सुख के साथ (देवेषु) विद्वानों में (पृथक्) अलग (वितन्वते) विस्तारयुक्त करते वैसे सब लोग इस खेती कर्म का सेवन करें ॥ ६७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षा से कृषिकर्म की उन्नति करें । जैसे योगी नाड़ियों में परमेश्वर को समाधियोग से प्राप्त होते हैं । वैसे ही कृषिकर्म द्वारा सुखों को प्राप्त होवें ॥ ६७ ॥

युनक्तेत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो वा देवता । विराडार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है —*

**युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।**
**गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽइत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥६८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग (इह) इस पृथिवी वा बुद्धि में साधनों को (वितनुध्वम्) विविध प्रकार से विस्तारयुक्त करो (सीरा) खेती के साधन हल आदि वा नाड़ियों और (युगा) जुआओं को (युनक्त) युक्त करो (कृते) हल आदि से जोते वा योग के अङ्गों से शुद्ध किये अन्तःकरण (योनौ) खेत में (बीजम्) यव आदि वा सिद्धि के मूल को (वपत) बोया करो (गिरा) खेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (च) और अच्छे विचार से (सभराः) एक प्रकार के धारण और पोषण से युक्त (श्रुष्टिः) शीघ्र हूजिये जो (सृण्यः) खेतों में उत्पन्न हुए यव आदि अन्य जाति के पदार्थ हैं उन में जो (नेदीयः) अत्यन्त समीप (पक्वम्) पका हुआ (असत्) होवे वह (इत्) ही (नः) हम लोगों को (आ, इयात्) प्राप्त होवे ॥ ६८ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि विद्वानों से योगाभ्यास और खेती करने हारों से कृषि कर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अनेक साधनों को बना के खेती और योगाभ्यास करो । इस से जो जो अन्नादि पका हो उस-उस का ग्रहण कर भोजन करो और दूसरों को कराओ ॥ ६८ ॥

**शुनमित्यस्य कुमारहारित ऋषि । कृषीवला देवताः । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**शुनꣳसु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशाऽअभि यन्तु वाहैः । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पलाऽओषधीः कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥**

**पदार्थ**—जो ( कीनाशा ) परिश्रम से क्लेशभोक्ता खेती करनेहारे हैं वे ( फाला ) जिन से पृथिवी को जोतें उन फालों से ( वाहै ) बैल आदि के साथ वर्त्तमान हल आदि से ( भूमिम् ) पृथिवी को ( विकृषन्तु ) जोतें और ( शुनम् ) सुख को ( अभियन्तु ) प्राप्त होवें ( हविषा ) शुद्ध किये घी आदि से शुद्ध ( तोशमाना ) सन्तोषकारक ( शुनासीरा ) वायु और सूर्य्य के समान खेती के साधन ( अस्मे ) हमारे लिये ( सुपिप्पला ) सुन्दर फलो से युक्त ( ओषधी ) जौ आदि ( कर्त्तन ) करें और उन ओषधियो से ( सु ) सुन्दर ( शुनम् ) सुख भोगें ॥६९॥

**भावार्थ**—जो चतुर खेती करने हारे गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं । इन खेतो मे विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालते चाहियें किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोवें कि जिस से अन्न भी रोगरहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावे ॥ ६९ ॥

**घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषि । कृषीवला देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ॥७०॥**

**पदार्थ**—( विश्व ) सब ( देव ) अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् ( मरुद्भि ) मनुष्यो की ( अनुमता ) आज्ञा से प्राप्त हुआ ( पयसा ) जल वा दुग्ध से ( ऊर्जस्वती ) पराक्रम सम्बन्धी ( पिन्वमाना ) सींचा वा सेवन किया हुआ ( सीता ) पटेला ( घृतेन ) घी तथा ( मधुना ) सहत वा शक्कर आदि से ( समज्यताम् ) संयुक्त करो ( सीते ) पटेला ( अस्मान् ) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से ( पयसा ) जल से ( अभ्याववृत्स्व ) बार २ वर्त्तिये ॥ ७० ॥

**भावार्थ**—सब विद्वानो को चाहिए कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से सस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें । जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी का भी सस्कार युक्त करे ॥ ७० ॥

**लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषि । कृषीवला देवता । विराट पङ्क्तिश्छन्द । पंचम स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवꣳ सोमपित्सरु । तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥७१॥**

**पदार्थ**—हे किसानो ! तुम लोग जो ( सोमपित्सरु ) जौ आदि ओषधियो के रक्षको को टेढ़ा चलावें ( पवीरवत ) प्रशंसित फाल से युक्त ( सुशेवम ) सुन्दर सुखदायक ( लाङ्गलम् ) फाले के पीछे जो दृढ़ता के लिये काष्ठ लगाया जाता है वह ( च ) और ( प्रफर्व्यम् ) चलाने योग्य ( प्रस्थावत ) प्रशंसित प्रस्थान वाला ( रथवाहणम् ) रथ के चलने का साधन है जिस से ( अविम ) रक्षा आदि के हेतु ( पीवरीम् ) सब पदार्थों को भुगाने का हेतु स्थूल ( गाम ) पृथिवी को ( उद्वपति ) उखाड़ते हैं ( तत ) उसको तुम सिद्ध करो ॥ ७१ ॥

**भावार्थ**—किसान लोगो को उचित है कि मोटी मट्टी अन्न आदि की उत्पत्ति से रक्षा करने हारी पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल आदि साधनो से जोत एकसार कर सुन्दर सस्कार किये बीज के उत्तम धान्य उत्पन्न करके भोगें ॥७१ ॥

**काममित्यस्य कुमारहारित ऋषि । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः ॥**

*पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्न से सुन्दर अन्न और व्यञ्जनों को बनावे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्यऽओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥**

**पदार्थ**—हे (कामदुघे ) इच्छा को पूर्ण करने हारी रसोइया स्त्री ! तू पृथिवी के समान सुन्दर सस्कार किये अन्नों से ( मित्राय ) मित्र ( वरुणाय ) उत्तम विद्वान् ( च ) अतिथि अभ्यागत ( इन्द्राय ) परम ऐश्वर्य्य से युक्त ( अश्विभ्याम् ) प्राण अपान ( पूष्णे ) पुष्टिकारक जन ( प्रजाभ्य ) सन्तानो और ( ओषधीभ्य ) सोमलता आदि ओषधियों से ( कामम् ) इच्छा को ( धुक्ष्व ) पूर्ण कर ॥ ७२ ॥

**भावार्थ**—जो स्त्री वा पुरुष भोजन बनावे उस को चाहिये कि पकाने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उनका भोजन करा के सब को रोगरहित रक्खें ॥ ७२ ॥

**विमुच्यध्वमित्यस्य कुमारहारित ऋषि । अघ्न्या देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बढ़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे तुम लोग ( अघ्न्या ) रक्षा के योग्य ( देवयाना ) दिव्य भोगो की प्राप्ति के हेतु गौओं को प्राप्त हो सुन्दर सस्कार किये अन्नो का भोजन करके रोगो से ( विमुच्यध्वम ) पृथक रहते हो वैसे हम लोग भी बचें । जैसे तुम लोग ( तमस ) रात्रि के ( पारम् ) पार को प्राप्त होते हो वैसे हम भी ( अगन्म ) प्राप्त होवें । जैसे तुम लोग ( अस्य ) इस सूर्य्य के ( ज्योति ) प्रकाश को व्याप्त होते हो वैसे हम भी ( आपाम ) व्याप्त होवें ॥ ७३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिये कि गौ आदि पशुओ को कभी न मारें न मरवावें तथा न किसी को मारने दें । जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्त होती है वैसे वैद्यकशास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचो ॥ ७३ ॥

**सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषि । अश्विनौ देवते । आर्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सजूरब्दोऽअयवोभिः सजूरुषाऽअरुणीभिः । सजोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूरऽएतशेन सजूर्वैश्वानरऽइडया घृतेन स्वाहा ॥७४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! हम सब लोग स्त्री पुरुष जैसे ( अयवोभि ) एक रस क्षणादि काल के अवयवो से ( सजू ) संयुक्त ( अब्द ) वर्ष ( अरुणीभि ) लाल कान्तियों के ( सजू ) साथ वर्त्तमान ( उषा ) प्रभात समय ( दंसोभिः ) कर्मों से ( सजोषसौ ) एकसा वर्त्ताव वाले ( अश्विना ) प्राण और अपान के समान स्त्री पुरुष वा ( एतशेन ) चलते घोड़े के समान व्याप्तिशील वेगवाले किरण निमित्त पवन के ( सजू ) साथ वर्त्तमान ( सूरः ) सूर्य ( इडया ) अन्न आदि का निमित्तरूप पृथिवी वा ( घृतेन ) जल से ( स्वाहा ) सत्यवाणी के ( सजू ) साथ (वैश्वानर ) बिजुलीरूप अग्नि वर्त्तमान है वैसे ही प्रीति से वर्त्तें ॥ ७४ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो मे जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और जितना विरोध उतना ही दुःख होता है । उस से सब लोग स्त्री पुरुष परस्पर उपकार करने के साथ ही सदा वर्त्तें ॥ ७४ ॥

**या ओषधीरित्यस्य भिषगृषि । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*मनुष्यों को अवश्य ओषधि सेवन कर रोगों से बचना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥**

**पदार्थ**—( अहम् ) मैं ( या ) जो ( ओषधी ) सोमलता आदि ओषधी ( देवेभ्य ) पृथिवी आदि से ( त्रियुगम् ) तीन वर्ष ( पुरा ) पहिले ( पूर्वा ) पूर्ण सुख दान मे उत्तम (जाता ) प्रसिद्ध हुई जो (बभ्रूणाम्) धारण करने हारे रोगियों के ( शतम् ) सौ ( च ) और ( सप्त ) सात (धामानि) जन्म वा नाडियो के मर्मों में व्याप्त होती हैं उनको ( नु ) शीघ्र ( मनै ) जानूं ॥ ७५ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को योग्य है कि जो पृथिवी और जल मे ओषधि उत्पन्न होती है उन तीन वर्ष के पीछे ठीक-ठीक पकी हुई को ग्रहण कर वैद्यकशास्त्र के अनुकूल विधान से सेवन करें । सेवन की हुई वे ओषधि शरीर के सब अंशो मे व्याप्त हो के शरीर के रोगो को छुड़ा सुखो को शीघ्र करती हैं ॥ ७५ ॥

**शतं व इत्यस्य भिषगृषि । वैद्या देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वरः ॥**

*मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत ॥ ७६ ॥**

**पदार्थ**—हे (शतक्रत्व ) सैकडो प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यो ! ( यूयम् ) तुम लोग जिन के ( शतम् ) सैकड़ों ( उत ) वा ( सहस्रम् ) हजारहों ( रुह ) नाड़ियों के अंकुर हैं उन ओषधियो से ( मे ) मेरे ( इमम् ) इस शरीर को ( अगदम् ) नीरोग ( कृत ) करो ( अध ) इसके पश्चात् ( व ) आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो जो ( व ) तुम्हारे असंख्य ( धामानि ) मर्म्म स्थान हैं उनको प्राप्त होओ । हे ( अम्ब ) माता ! तू भी ऐसा आचरण कर ॥ ७६ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि सब से पहिले ओषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियमपूर्वक व्यवहार करके शरीर को रोगरहित करें क्योंकि इसके

बिना धर्म्म अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७६ ॥

**ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।**
**अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥ ७७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अश्वा इव) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीरों के साथ संयुक्त रोगों को जीतने वाले (वीरुधः) सोमलता आदि (पारयिष्ण्वः) दुःखों से पार करने के योग्य (पुष्पवतीः) प्रशंसित पुरुषों से युक्त (प्रसूवरीः) सुख देनेहारी (ओषधीः) ओषधियों को प्राप्त होकर (प्रतिमोदध्वम्) नित्य आनन्द भोगो ॥ ७७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे घोड़ों पर चढ़े वीर पुरुष शत्रुओं को जीत विजय को प्राप्त होके आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥ ७७ ॥

**ओषधीरितीत्यस्य भिषगृषिः । चिकित्सुर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । सनेयमश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥**

पदार्थ—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान सुखदायक (देवीः) सुन्दर विदुषी स्त्री (मातरः) माता ! मैं पुत्र (वः) तुम को (तत्) श्रेष्ठ पथ्यरूप कर्म्म (उपब्रुवे) समीपस्थित होकर उपदेश करूं । हे (पूरुष) पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तानो ! मैं माता (तव) तेरे (अश्वम्) घोड़े आदि (गाम्) गौ आदि वा पृथिवी आदि (वासः) वस्त्र आदि वा घर और (आत्मानम्) जीव को निरन्तर (सनेयम्) सेवन करूं ॥ ७८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जौ आदि ओषधि सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट करती हैं वैसे ही माता विद्या अच्छी शिक्षा और उपदेश से सन्तानों को पुष्ट करे । जो माता का धन है वह भाग सन्तान का और जो सन्तान का है वह माता का ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त्त कर निरन्तर सुख को बढ़ावें ॥ ७८ ॥

**अश्वत्थ इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।**
**गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ओषधियों के समान (यत्) जिस कारण (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है । और (वः) तुम्हारा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इस से (गोभाजः) पृथिवी का सेवन करते हुए (किल) ही (पूरुषम्) अन्न आदि से पूर्ण देहवाले पुरुष को (सनवथ) ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (असथ) रहो ॥ ७९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है इससे शरीर को रोगों से बचा कर धर्म्म अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें । जैसे ओषधि तृण आदि फल फूल पत्ते स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोगरहित शरीरों से शोभायमान हों ॥ ७९ ॥

**यत्रौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*बार २ श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।**
**विप्रः सऽउच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्र) जिन स्थलों में (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी होती हों उन को जैसे (राजानः) राजधर्म से युक्त वीरपुरुष (समिताविव) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं वैसे (समग्मत) प्राप्त हो जो (रक्षोहा) दुष्ट रोगों का नाशक (अमीवचातनः) रोगों का निवृत्त करनेवाला (विप्रः) बुद्धिमान् (भिषक्) वैद्य हो (सः) वह तुम्हारे प्रति (उच्यते) ओषधियों के गुण का उपदेश करे और ओषधियों का तथा उस वैद्य का सेवन करो ॥ ८० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य से शिक्षा को प्राप्त हुए तुम लोग ओषधियों की विद्या को प्राप्त हो । जिस शुद्ध देश में ओषधि हों वहां उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिए भी बताओ ॥ ८० ॥

**अश्वावतीमित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अश्वावतीꣳ सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।**
**आवित्सि सर्वाऽओषधीरस्माऽअरिष्टतातये ॥ ८१ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अरिष्टतातये) दुःखदायक रोगों के छुड़ाने के लिये (अश्वावतीम्) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त (सोमावतीम्) बहुत रस से सहित (उदोजसम्) अति पराक्रम बढ़ाने हारी (ऊर्जयन्तीम्) बल देती हुई श्रेष्ठ ओषधियों को (आ) सब प्रकार (अवित्सि) जानूं कि जिससे (सर्वाः) सब (ओषधीः) ओषधि (अस्मै) इस मेरे लिये सुख देवें । इसलिए तुम लोग भी प्रयत्न करो ॥ ८१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि रोगों का निदान चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें कि जिससे रोगों की निवृत्ति होकर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे ॥ ८१ ॥

**उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*ओषधियों का क्या निमित्त है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।**
**धनꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥**

पदार्थ—हे (पूरुष) पुरुष शरीर में सोनेवाले वा देहधारी ! (धनम्) ऐश्वर्य्य बढ़ानेवाले को (सनिष्यन्तीनाम्) सेवन करती हुई (ओषधीनाम्) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जैसे (शुष्मा) प्रशंसित बल करनेहारी (गावः) गौ वा किरणें (गोष्ठादिव) अपने स्थान से बछड़ों वा पृथिवी को और ओषधियों का तत्त्व (तव) तेरी (आत्मानम्) आत्मा को (उदीरते) प्राप्त होता है उन सब की तू सेवा कर ॥ ८२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बच्चों और मनुष्य आदि को पुष्ट करके बलवान् करती हैं । वैसे ही ओषधियां तुम्हारे आत्मा और शरीरों को पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं जो कोई न खावे तो क्रम से बल और बुद्धि की हानि हो जावे । इसलिए ओषधि ही बल बुद्धि का निमित्त है ॥ ८२ ॥

**इष्कृतिरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधि क्या करती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इष्कृतिर्नाम वो माताऽथो यूयꣳ स्थ निष्कृतीः ।**
**सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यूयम्) तुम लोग जो (वः) तुम्हारी (इष्कृतिः) कार्यसिद्धि करने हारी (माता) माता के समान ओषधि (नाम) प्रसिद्ध है उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जाननेवाले (स्थ) होओ (पतत्रिणीः) चलनेवाली (सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः) प्रत्युपकारों को सिद्ध करनेवाले (स्थन) होओ (अथो) इस के अनन्तर (यत्) जो क्रिया वा ओषधी अथवा वैद्य (आमयति) रोग बढ़ावे उस को (निष्कृथ) छोड़ो ॥ ८३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे माता पिता तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे तुम भी उनकी सेवा करो । जो जो काम रोगकारी हो उस २ को छोड़ो । इस प्रकार सेवन की हुई ओषधि माता के समान प्राणियों को पुष्ट करती हैं ॥ ८३ ॥

**अति विश्वा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*कैसे रोग निवृत्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमुः ।**
**ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥ ८४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोमलता और जौ आदि ओषधी (व्रजम्) जैसे गोशाला को (स्तेन इव) भित्ति फोड़ के चोर जावे वैसे पृथिवी फोड़ के (अत्यक्रमुः) निकलती हैं (यत्) जो (किञ्च) कुछ (तन्वः) शरीर का (रपः) पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है उस सब को (प्राचुच्यवुः) नष्ट करती हैं उन ओषधियों को युक्ति से सेवन करो ॥ ८४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे गौओं के स्वामी से धमकाया हुआ चोर भित्ति को फाड़ के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ ओषधियों से ताड़ना किये रोग नष्ट हो के भाग जाते हैं ॥ ८४ ॥

**यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।**

**आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! ( **यथा** ) जिस प्रकार ( **पुरा** ) पूर्व ( **वाजयन्** ) प्राप्त करता हुआ ( **अहम्** ) मैं ( **यत्** ) जो ( **इमाः** ) इन ( **ओषधीः** ) ओषधियों को ( **हस्ते** ) हाथ में ( **आदधे** ) धारण करता हूँ जिन से ( **जीवगृभः** ) जीव के ग्राहक व्याधि और ( **यक्ष्मस्य** ) क्षयी राजरोग का ( **आत्मा** ) मूलतत्त्व ( **नश्यति** ) नष्ट हो जाता है । उन ओषधियों को श्रेष्ठ युक्तियों से उपयोग में लाओ ॥ ८५ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि सुन्दर हस्तक्रिया से ओषधियों को साधन कर ठीक २ क्रम से उपयोग में ला और क्षयी आदि बड़े रोगों को निवृत्त करके नित्य आनन्द के लिए प्रयत्न करें ॥ ८५ ॥

**यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*ठीक २ सेवन की हुई ओषधि रोगों को कैसे न नष्ट करे*

*यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।**

**ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **यस्य** ) जिसके ( **अङ्गमङ्गम्** ) सब अवयवों और ( **परुष्परुः** ) मर्म २ के प्रति वर्त्तमान है उसके उस ( **उग्रः** ) तीव्र ( **यक्ष्मम्** ) क्षयी रोग को ( **मध्यमशीरिव** ) बीच के मर्मस्थानों को काटते हुए के समान ( **वि बाधध्वे** ) विशेष कर निवृत्त कर ( **ततः** ) उसके पश्चात् ( **ओषधीः** ) ओषधियों को ( **प्रसर्पथ** ) प्राप्त होओ ॥ ८६ ॥

**भावार्थ—**जो मनुष्य लोक शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं ॥ ८६ ॥

**साकमित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*कैसे २ रोगों को नष्ट करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।**

**साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥**

**पदार्थ—**हे वैद्य विद्वान् पुरुष ! ( **किकिदीविना** ) ज्ञान बढ़ाने हारे ( **चाषेण** ) आहार से ( **साकम्** ) ओषधियुक्त पदार्थों के साथ ( **यक्ष्म** ) राजरोग ( **प्रपत** ) हट जाता है जैसे उस ( **वातस्य** ) वायु ( **ध्राज्या** ) गति के ( **साकम्** ) साथ ( **नश्य** ) नष्ट हो और ( **निहाकया** ) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के ( **साकम्** ) साथ दूर हो वैसा प्रयत्न कर ॥ ८७ ॥

**भावार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि ओषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्त्तें ॥ ८७ ॥

**अन्या व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*युक्ति से मिलाई हुई ओषधियां रोगों को नष्ट करती हैं*

*यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अन्या वोऽअन्यामवत्वन्यान्यस्याऽउपावत ।**

**ताः सर्वाः संविदानाऽइदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥**

**पदार्थ—**हे स्त्रियो ! ( **संविदानाः** ) आपस में संवाद करती हुई तुम लोग ( **मे** ) मेरे ( **इदम्** ) इस ( **वचः** ) वचन को ( **प्रावत** ) पालन करो ( **ताः** ) उन ( **सर्वाः** ) ओषधियों की ( **अन्या** ) दूसरी ( **अन्यस्याः** ) दूसरी की रक्षा के समान ( **उपावत** ) समीप से रक्षा करो जैसे ( **अन्या** ) एक ( **अन्याम्** ) दूसरी की रक्षा करती है वैसे ( **वः** ) तुम लोगों को पढ़ाने हारी स्त्री ( **अवतु** ) तुम्हारी रक्षा करे ॥ ८८ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती हैं वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधी सब रोगों से रक्षा करती हैं । हे स्त्रियो ! तुम लोग ओषधिविद्या के लिए परस्पर संवाद करो ॥ ८८ ॥

**या इत्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*रोगों के निवृत्त होने के लिए ही ओषधि ईश्वर ने रची है*

*यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।**

**बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८९ ॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! ( **याः** ) जो ( **फलिनीः** ) बहुत फलों से युक्त ( **याः** ) जो ( **अफलाः** ) फलों से रहित ( **याः** ) जो ( **अपुष्पाः** ) फूलों से रहित ( **च** ) और जो ( **पुष्पिणीः** ) बहुत फूलों वाली ( **बृहस्पतिप्रसूताः** ) वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ने उत्पन्न की हुई ओषधि ( **नः** ) हमको ( **अंहसः** ) दुःखदायी रोग से जैसे ( **मुञ्चन्तु** ) छुड़ावें ( **ताः** ) वे तुम लोगों को भी वैसे रोगों से छुड़ावें ॥ ८९ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो ईश्वर ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिए ओषधी रची हैं उनसे वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ ८९ ॥

**मुञ्चन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*कौन-कौन ओषधि किस किस से छुड़ानी है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।**

**अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ ९० ॥**

**पदार्थ—**हे विद्वान् लोगो ! आप जैसे वे महौषधि रोगों से पृथक् करती हैं ( **शपथ्यात्** ) शपथसम्बन्धी कर्म ( **अथो** ) और ( **वरुण्यात्** ) श्रेष्ठों में हुए अपराध से ( **अथो** ) इसके पश्चात् ( **यमस्य** ) न्यायाधीश के ( **पड्वीशात्** ) न्याय के विरुद्ध आचरण से ( **उत** ) और ( **सर्वस्मात्** ) सब ( **देवकिल्बिषात्** ) विद्वानों के विषय अपराध से ( **मा** ) मुझको ( **मुञ्चन्तु** ) पृथक् रक्खें वैसे तुम लोगों को भी पृथक् रक्खें ॥ ९० ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि प्रमादकारक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी सौगन्द श्रेष्ठों का अपराध न्याय से विरोध और मूर्खों के समान ईर्ष्या न करें ॥ ९० ॥

**अवपतन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधी जनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अवपतन्तीरवदन्दिवऽओषधयस्परि ।**

**यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥**

**पदार्थ—**हम लोग जो ( **दिवः** ) प्रकाश से ( **अवपतन्तीः** ) नीचे को आती हुई ( **ओषधयः** ) सोमलता आदि ओषधि हैं जिनका विद्वान् लोग ( **पर्यवदन्** ) सब ओर से उपदेश करते हैं । जिनसे ( **यम्** ) जिस ( **जीवम्** ) प्राणधारण को ( **अश्नवामहै** ) प्राप्त होवें ( **सः** ) वह ( **पूरुषः** ) पुरुष ( **न** ) कभी न ( **रिष्याति** ) रोगों से नष्ट होवे ॥ ९१ ॥

**भावार्थ—**विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिए दिव्य ओषधिविद्या को देवें जिससे सब लोग पूरी अवस्था को प्राप्त होवें । इन ओषधियों को कोई भी कभी नष्ट न करे ॥ ९१ ॥

**या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।**

**तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शं हृदे ॥ ९२ ॥**

**पदार्थ—**हे स्त्रि ! जिससे ( **त्वम्** ) तू ( **याः** ) जो ( **शतविचक्षणाः** ) असंख्यात शुभगुणों से युक्त ( **बह्वीः** ) बहुत ( **सोमराज्ञीः** ) सोम जिनमें राजा अर्थात् सर्वोत्तम ( **ओषधीः** ) ओषधी हैं ( **तासाम्** ) उनके विषय में ( **उत्तमा** ) उत्तम विद्वान् ( **असि** ) है इससे ( **शम्** ) कल्याणकारिणी ( **हृदे** ) हृदय के लिये ( **अरम्** ) समर्थ ( **कामाय** ) इच्छासिद्धि के लिये योग्य होती है हमारे लिये उनका उपदेश कर ॥ ९२ ॥

**भावार्थ—**स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इसके विना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती ॥ ९२ ॥

**या इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्यो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**याऽओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।**

**बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै सं दत्त वीर्य्यम् ॥ ९३ ॥**

**पदार्थ—**हे विवाहित पुरुष ! ( **याः** ) जो ( **सोमराज्ञीः** ) सोम जिनमें उत्तम है वे ( **बृहस्पतिप्रसूताः** ) बड़े कारण के रक्षक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई ( **ओषधीः** ) ओषधियाँ ( **पृथिवीम् अनु** ) भूमि के ऊपर ( **विष्ठिताः** ) विशेषकर स्थित हैं उनसे ( **अस्यै** ) इस स्त्री के लिये ( **वीर्य्यम्** ) बीज का दान दे । हे विद्वानो ! आप इन ओषधियों का विज्ञान सब मनुष्यों के लिये ( **संदत्त** ) अच्छे प्रकार दिया कीजिये ॥ ९३ ॥

**भावार्थ—**स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी बड़ी ओषधियों का सेवन करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भ धारण करें और ओषधियों का विज्ञान विद्वानों से सीखें ॥ ९३ ॥

**याश्चेदमित्यस्य वरुण ऋषिः । भिषजो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।**
**सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सन्दत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग ( याः ) जो ( च ) विदित हुई और जिनको ( उपशृण्वन्ति ) सुनते हैं ( याः ) जो ( च ) समीप हों और जो ( दूरम् ) दूर देश में ( परागताः ) प्राप्त हो सकती हैं उन ( सर्वाः ) सब ( वीरुधः ) वृक्ष आदि ओषधियों को ( संगत्य ) निकट प्राप्त कर ( इदम् ) इस ( वीर्यम् ) शरीर के पराक्रम को वैद्य मनुष्य लोग जैसे सिद्ध करते हैं वैसे उन ओषधियों का विज्ञान ( अस्यै ) इस कन्या को ( सन्दत्त ) सम्यक् प्रकार से दीजिये ॥९४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ओषधियां दूर वा समीप में रोगों को हरने और बल करने हारी सुनी जाती हैं उनको उपकार में लाके रोगरहित होओ ॥ ९४ ॥

मा व इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।**
**द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( अहम् ) मैं ( यस्मै ) जिस प्रयोजन के लिये ओषधि को ( खनामि ) उपाड़ता वा खोदता हूं वह ( खनिता ) खोदी हुई ( वः ) तुम को ( मा ) न ( रिषत् ) दुःख देवे जिससे ( वः ) तुम्हारे और ( अस्माकम् ) हमारे ( द्विपात् ) दो पग वाले मनुष्य आदि तथा ( चतुष्पात् ) गौ आदि ( सर्वम् ) सब प्रजा उस ओषधि से ( अनातुरम् ) रोगों के दुःखों से रहित ( अस्तु ) होवे ॥९५॥

भावार्थ—जो पुरुष जिन ओषधियों को खोदे वह उनकी जड़ न मेटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिससे सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें ॥९५॥

ओषधय इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

*क्या करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़े यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा ।**
**यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो ( सोमेन, राज्ञा ) सर्वोत्तम सोमलता के ( सह ) साथ वर्त्तमान ( ओषधयः ) ओषधी हैं उनके विज्ञान के लिये आप लोग ( समवदन्त ) आपस में संवाद करो । हे वैद्य ( राजन् ) राजपुरुष ! हम लोग ( ब्राह्मणः ) वेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष ( यस्मै ) जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण ( कृणोति ) करता है ( तम् ) उस रोगी को रोगसागर से उन ओषधियों से ( पारयामसि ) पार पहुंचाते हैं ॥९६॥

भावार्थ—वैद्य लोगों को योग्य है कि आपस में प्रश्नोत्तरपूर्वक निरन्तर ओषधियों के ठीक ठीक ज्ञान से रोगों से रोगी पुरुषों को पार कर निरन्तर सुखी करें । और जो इनमें उत्तम विद्वान् हो वह सब मनुष्यों को वैद्यकशास्त्र पढ़ावे ॥९६॥

नाशयित्रीत्यस्य वरुण ऋषिः । भिषग्वरा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*जितने रोग हैं उतनी ओषधी हैं उन का सेवन करे यह विषय*
*अगले मन्त्र में कहा है—*

**नाशयित्री बलासस्यार्शसऽउपचितामसि ।**
**अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥**

पदार्थ—हे वैद्य लोगो ! जो ( बलासस्य ) प्रवृद्ध हुए कफ की ( अर्शसः ) गुदेन्द्रिय की व्याधि वा ( उपचिताम् ) अन्य बढ़े हुए रोगों की ( नाशयित्री ) नाश करने हारी ( असि ) ओषधि है ( अथो ) और जो ( शतस्य ) असंख्यात ( यक्ष्माणाम् ) राजरोगों अर्थात् भगंदरादि और ( पाकारोः ) मुखरोगों और मर्मों का छेदन करने हारे शूल की ( नाशनी ) निवारण करने हारी ( असि ) है उस ओषधी को तुम लोग जानो ॥९७॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं उतनी ही उनकी नाश करनेहारी ओषधी भी हैं इन ओषधियों को नहीं जाननेहारे पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं । जो रोगों की ओषधी जानें तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होवें ॥९७॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*कौन कौन ओषधी का खनन करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।**
**त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस ओषधी से रोगी ( यक्ष्मात् ) क्षयरोग से ( अमुच्यत ) छूट जाय और जिस ओषधी को उपयुक्त करो ( त्वाम् ) उसको ( गन्धर्वाः ) गानविद्या में कुशल पुरुष ( अखनन् ) ग्रहण करें ( त्वाम् ) उसको ( इन्द्रः ) परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य ( त्वाम् ) उसको ( बृहस्पतिः ) वेदवाणी और ( त्वाम् ) उसको ( सोमः ) सुन्दर गुणों से युक्त ( विद्वान् ) सब शास्त्रों का वेत्ता ( राजा ) प्रकाशमान राजा ( त्वाम् ) उस ओषधी को खोदे ॥९८॥

भावार्थ—जो कोई ओषधी जड़ों से, कोई शाखा आदि से, कोई पुष्पों, कोई फलों और कोई सब अवयवों करके रोगों से बचाती हैं । उन ओषधियों का सेवन मनुष्यों को यथावत् करना चाहिये ॥९८॥

सहस्वेत्यस्य वरुण ऋषिः । ओषधिर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सहस्व मेऽअरातीः सहस्व पृतनायतः ।**
**सहस्व सर्वं पाप्मानꣳ सहमानास्योषधे ॥ ९९ ॥**

पदार्थ—( ओषधे ) ओषधी के सदृश ओषधीविद्या की जानने हारी स्त्री ! जैसे ओषधी ( सहमाना ) बल का निमित्त ( असि ) है ( मे ) मेरे रोगों का निवारण करके बल बढ़ाती है वैसे ( अरातीः ) शत्रुओं को ( सहस्व ) सहन कर अपने ( पृतनायतः ) सेनायुद्ध की इच्छा करते हुओं को ( सहस्व ) सहन कर और ( सर्वम् ) सब ( पाप्मानम् ) रोगादि को ( सहस्व ) सहन कर ॥९९॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों के सेवन से बल बढ़ा और प्रजा के तथा अपने शत्रुओं और पापी जनों को वश में करके सब प्राणियों को सुखी करें ॥९९॥

दीर्घायुस्त इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवता । विराड्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

*मनुष्य कैसे हों के दूसरों को कैसे करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।**
**अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥ १०० ॥**

पदार्थ—हे ( ओषधे ) ओषधि के तुल्य ओषधियों के गुण दोष जानने हारे पुरुष ! जिससे ( ते ) तेरी जिस ओषधि का ( खनिता ) सेवन करने हारा ( अहम् ) मैं ( यस्मै ) जिस प्रयोजन के लिये ( च ) और जिस पुरुष के लिये ( खनामि ) खोदूं उससे तू ( दीर्घायुः ) अधिक अवस्था वाला हो ( अथो ) और ( दीर्घायुः ) बड़ी अवस्था वाला ( भूत्वा ) होकर ( त्वम् ) तू जो ( शतवल्शा ) बहुत अंकुरों से युक्त ओषधि है ( त्वा ) उस का सेवन करके सुखी हो और ( वि, रोहतात् ) प्रसिद्ध हो ॥१००॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ओषधियों के सेवन से अधिक अवस्था वाले होओ और धर्म का आचरण करने हारे होकर सब मनुष्यों को ओषधियों के सेवन से दीर्घ अवस्था वाले करो ॥१००॥

त्वमुत्तमासीत्यस्य वरुण ऋषिः । भिषजो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर वह ओषधी किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले*
*मन्त्र में किया है—*

**त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षाऽउपस्तयः ।**
**उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं योऽअस्माँ२ऽअभिदासति ॥ १०१ ॥**

पदार्थ—हे वैद्यजन ! ( यः ) जो ( अस्मान् ) हमको ( अभिदासति ) अभीष्ट सुख देता है ( सः ) वह ( त्वम् ) तू ( अस्माकम् ) हमारा ( उपस्तिः ) संगी ( अस्तु ) हो जो ( उत्तमा ) उत्तम ( ओषधे ) ओषधी ( असि ) है ( तव ) जिसके ( वृक्षाः ) वट आदि वृक्ष ( उपस्तयः ) समीप इकट्ठे होनेवाले हैं उस ओषधी से हमारे लिये सुख दे ॥१०१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विरोधी वैद्य की ओषधी कभी न ग्रहण करें किन्तु जो वैद्यकशास्त्रज्ञ जिसका कोई शत्रु न हो धर्मात्मा सब का मित्र सर्वोपकारी है उससे ओषधिविद्या ग्रहण करें ॥१०१॥

मा मेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । को देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*अब किस लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय*
*अगले मन्त्र में कहा है—*

**मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।**
**यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०२॥**

पदार्थ—( यः ) जो ( सत्यधर्मा ) सत्यधर्म वाला जगदीश्वर ( पृथिव्याः ) पृथिवी का ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( वा ) अथवा ( यः ) जो ( दिवम् ) सूर्य आदि जगत् को ( च ) और ( पृथिवी ) तथा ( अपः ) जल और वायु को

( व्यातत् ) उत्पन्न करके व्याप्त होता है ( चन्द्राः ) और जो चन्द्रमा आदि लोकों को ( जजान ) उत्पन्न करता है। जिस (कस्मै) सुखस्वरूप सुख करने हारे (देवाय) दिव्य सुखों के दाता विज्ञानस्वरूप ईश्वर का ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य भक्तियोग से हम लोग ( विधेम ) सेवन करें। वह जगदीश्वर ( मा ) मुझको ( मा ) नहीं ( हिंसीत् ) कुसंग से ताड़ित होने देवे ॥१०२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और ओषधि आदि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें ॥१०२॥

अभ्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्द ।

ऋषभ स्वर ॥

*पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ।**

**वपां तेऽअग्निरिषितोऽअरोहत् ॥ १०३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू जो ( पृथिवि ) भूमि ( यज्ञेन ) संगम के योग्य ( पयसा ) जल के ( सह ) साथ वर्त्तती है उसको ( अभ्यावर्त्तस्व ) दोनों ओर से शीघ्र वर्त्ताव कीजिये जो ( ते ) आपके ( वपाम् ) बोने को ( इषितः ) प्रेरणा किया ( अग्निः ) अग्नि ( अरोहत् ) उत्पन्न करता है वह अग्नि गुण कर्म और स्वभाव के साथ सब को जानना चाहिये ॥१०३॥

भावार्थ—जो पृथिवी सब का आधार उत्तम रत्नादि पदार्थों की दाता जीवन का हेतु बिजुली से युक्त है उसका विज्ञान भूगर्भविद्या से सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिग् गायत्री छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

*किसलिये अग्नि विद्या का खोज करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् ।**

**तद् देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ! ( यत् ) जो अग्नि का ( शुक्रम् ) शीघ्रकारी ( यत् ) जो ( चन्द्रम् ) सुवर्ण के समान आनन्द देने हारा ( यत् ) जो ( पूतम् ) पवित्र ( च ) और ( यत् ) जो ( यज्ञियम् ) यज्ञानुष्ठान के योग्य स्वरूप है ( तत् ) वह ( ते ) आपके और ( देवेभ्यः ) दिव्यगुण होने के लिये ( भरामसि ) हम लोग धारण करें ॥१०४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण और कर्मों की सिद्धि के लिये बिजुली आदि अग्निविद्या को विचारें ॥१०४॥

इषमूर्जमित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषि । विद्वान् देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*अब ठीक ठीक आहार विहार करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इषमूर्जमहमितऽआदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।**

**आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥१०५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अहम् ) मैं ( इतः ) इस पूर्वोक्त विद्युत्स्वरूप से ( आदम् ) भोगने योग्य ( इषम् ) अन्न ( ऊर्जम् ) पराक्रम ( महिषस्य ) बड़े ( ऋतस्य ) सत्य के ( योनिम् ) कारण ( धाराम् ) धारण करनेवाली वाणी को प्राप्त होऊं जैसे अन्न और पराक्रम ( मा ) मुझको ( आविशतु ) प्राप्त हो जिससे मेरे ( गोषु ) इन्द्रियों और ( तनूषु ) शरीर में प्रविष्ट हुई ( सेदिम् ) दुःख का हेतु ( अनिराम् ) जिसमें अन्न का भोजन भी न कर सकें ऐसी ( अमीवाम् ) रोगों से उत्पन्न हुई पीड़ा को ( आ, जहामि ) छोड़ता हूँ वैसे तुम लोग भी करो ॥१०५॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि का जो वीर्य्य आदि से युक्त स्वरूप है उसको प्रदीप्त करने से रोगों का नाश करें। इन्द्रिय और शरीर को स्वस्थ रोग रहित करके कार्य्य कारण को जानने हारी विद्यायुक्त वाणी को प्राप्त होवें और युक्ति से आहार विहार भी करें ॥१०५॥

अग्ने तवेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्तेऽअर्चयो विभावसो ।**

**बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥**

पदार्थ—हे ( बृहद्भानो ) अग्नि के समान अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त ( विभावसो ) विविध प्रकार की कान्ति में बसने हारे ( कवे ) अत्यन्त बुद्धिमान् ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् पुरुष ! जिस से आप ( शवसा ) बल के साथ ( दाशुषे ) दान के योग्य विद्यार्थी के लिये ( उक्थ्यम् ) कहने योग्य ( वाजम् ) विज्ञान को ( दधासि ) धारण करते हो इससे ( तव ) आपका अग्नि के समान ( महि ) अति पूजने योग्य ( श्रवः ) सुनने योग्य शब्द ( वयः ) यौवन और ( अर्चयः )दीप्ति ( भ्राजन्ते ) प्रकाशित होती हैं ॥१०६॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी और आप्तों के तुल्य श्रेष्ठ कीर्त्तियों से प्रकाशित होते हैं वे परोपकार के लिये दूसरों को विद्या विनय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें ॥ १०६ ॥

पावकवर्चा इत्यस्य पावकाग्निर्ऋषि । विद्वान् देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चम स्वर ॥

*माता पिता सन्तानों के प्रति क्या २ करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**पावकवर्चाः शुक्रवर्चाऽअनूनवर्चाऽउदियर्षि भानुना ।**

**पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसीऽउभे ॥ १०७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पुत्रः ) पुत्र ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में ( विचरन् ) विचरता हुआ विद्या को प्राप्त होता और ( भानुना ) प्रकाश से ( पावकवर्चाः, शुक्रवर्चाः ) बिजुली और सूर्य के प्रकाश के समान न्याय करने और ( अनूनवर्चाः ) पूर्ण विद्याऽभ्यास करने हारा और जैसे ( उभे ) दोनों ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी परस्पर सम्बन्ध करते हैं जैसे ( उदियर्षि ) विद्या को प्राप्त होता राज्य का ( पृणक्षि ) सम्बन्ध करता और ( मातरा ) माता पिता की ( उपावसि) रक्षा करता है इससे तू धर्मात्मा है ॥ १०७ ॥

भावार्थ—मातापिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर बाल्यावस्था में आप शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य करा आचार्य के कुल में भेज के विद्यायुक्त करें। सन्तानों को चाहिए कि विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्य को बढ़ा के अभिमान और मत्सररहित प्रीति से माता पिता की मन वाणी और कर्म्म से यथावत् सेवा करें ॥ १०७ ॥

ऊर्जो नपादित्यस्य पावकाग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*माता पिता और पुत्र कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।**

**त्वेऽइषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥**

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) बुद्धि और धन से युक्त पुत्र ! जिस ( त्वे) तुझ में ( भूरिवर्पसः ) बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त ( चित्रोतयः ) आश्चर्य के तुल्य रक्षा आदि कर्म्म करने वाली ( वामजाताः ) प्रशंसा के योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापक माता आदि विद्वान् स्त्रियें ( इषः ) अन्नों को ( सन्दधुः ) धरें भोजन करावें सो तू ( सुशस्तिभिः ) उत्तमप्रशंसायुक्त क्रियाओं के साथ ( धीतिभिः) अङ्गुलियों से बुलाया हुआ ( ऊर्जः नपात् ) धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के हित को धारण सदा किये हुए ( मन्दस्व ) आनन्द मे रह ॥ १०८ ॥

भावार्थ—जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विद्वान् हों वे ही निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं और जिन माता पिताओं के सन्तान विद्या अच्छी शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य सेवन से शरीर और आत्मा के बल से युक्त धर्म का आचरण करने वाले हैं वे ही सदा सुखी हों ॥ १०८ ॥

इरज्यन्नित्यस्य पावकाग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*मनुष्य कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायोऽअमर्त्य ।**

**स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥**

पदार्थ—हे ( अमर्त्य ) नाश और संसारी मनुष्यों के स्वभाव से रहित (अग्ने) अग्नि के समान पुरुषार्थी ! जो ( इरज्यन् ) ऐश्वर्य्य का सञ्चय करते हुए आप ( दर्शतस्य ) देखने योग्य ( वपुषः ) रूप का ( सानसिम् ) सनातन ( क्रतुम् ) बुद्धि का ( पृणक्षि ) सम्बन्ध करते हो और उसी बुद्धि में विशेष करके ( विराजसि ) शोभित होते हो ( सः ) सो आप (अस्मे) हम लोगों के लिये ( जन्तुभिः ) मनुष्यादि प्राणियों से ( रायः ) धनों का (प्रथयस्व ) विस्तार कीजिये ॥ १०९ ॥

भावार्थ—जो पुरुष मनुष्यों के लिये सनातन वेदविद्या को देता और सुन्दर आचार में विराजमान हो वही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके दूसरों के लिये प्राप्त करा सकता है ॥ १०९ ॥

इष्कर्त्तारमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषि । विद्वान् देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*कौन पुरुष परोपकारी होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।**

**रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ११० ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो आप ( अध्वरस्य ) बढ़ाने योग्य यज्ञ के ( इष्कर्त्तारम् ) सिद्ध करने वाले ( प्रचेतसम् ) उत्तम बुद्धिमान् ( वामस्य ) प्रशंसित

( महः ) बड़े ( राधस ) धन से ( रातिम् ) देने और ( क्षयन्तम ) निवास करने वाले पुरुष और ( सुभगाम् ) सुन्दर ऐश्वर्य्य की देनहारी ( महीम् ) पृथिवी तथा ( इषम् ) अन्न आदि को और ( सानसिम ) प्राचीन ( रयिम ) धन को ( दधासि) धारण करते हो इस से हम लोगो को सत्कार करने योग्य हो ॥ ११० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे वैसे ही दूसरो के लिये भी करे वही आप्त सत्कार के योग्य होवे ॥ ११० ॥

ऋतावानमित्यस्य पावकाग्निऋ षि । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*मनुष्यों को किसका अनुहार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋतावान महिष विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।**
**श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तम त्वा गिरा दैव्य मानुषा युगा ॥ १११ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे ( जना ) विद्या और विज्ञान से प्रसिद्ध मनुष्य ( गिरा ) वाणी से (सुम्नाय) सुख के लिये (वव्यम्) विद्वानो मे कुशल (श्रुत्कर्णम्) बहुश्रुत ( विश्वदर्शतम् ) सब देखने हारे (सप्रथस्तमम्) अत्यन्तविद्या के विस्तार के साथ वर्त्तमान ( ऋतावानम् ) बहुत सत्याचरण से युक्त ( महिषम् ) बडे (अग्निम्) विद्वान् को ( मानुषा ) मनुष्यो के ( युगा ) वर्ष वा सत्ययुग आदि ( पुर ) प्रथम ( दधिरे ) धारण करते हुए वसे विद्वान् को और इन वर्षों को तू भी धारण कर यह ( त्वा ) तुझे सिखाता हूँ ॥ १११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सत्पुरुष हो चुके हो उन्ही का अनुकरण मनुष्य लोग करें अन्य अधर्मियो का नही ॥ १११ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*राजपुरुष क्या करके कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥**

पदार्थ—हे ( सोम ) चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त राजपुरुष ! जैसे सोम गुणयुक्त विद्वान् के सग से ( ते ) तेरे लिये ( वृष्ण्यम् ) वीर्य्य पराक्रम वाले पुरुष के कर्म का ( विश्वत ) सब ओर से ( समेतु ) सगत हो उससे आप ( आप्यायस्व ) बढ़िये ( वाजस्य ) विज्ञान और वेग स सग्राम के जानने हारे (संगथे) युद्ध म विजय करनेवाले ( भव ) हूजिये ॥ ११२ ॥

भावार्थ—राजपुरुषो को नित्य पराक्रम बढ़ा के शत्रुओ से विजय को प्राप्त होना चाहिये ॥ ११२ ॥

सं त इत्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*शरीर और आत्मा के बल स युक्त पुरुष किसको प्राप्त होत हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**स ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः स वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।**
**आप्यायमानोऽअमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥११३॥**

पदार्थ—हे (सोम) शान्तियुक्त पुरुष ! जिस ( ते ) तुम्हारे लिये (पयांसि) जल वा दुग्ध ( सयन्तु ) प्राप्त होवें ( अभिमातिषाह ) अभिमानयुक्त शत्रुओ को सहनेवाले ( वाजा ) धनुर्वेद के विज्ञान ( सम् ) प्राप्त होवें (उ) और (वृष्ण्यानि) पराक्रम (सम्) प्राप्त होवें सो (आप्यायमान ) अच्छे प्रकार बढ़ते हुए आप (दिवि) प्रकाशस्वरूप ईश्वर म ( अमृताय ) मोक्ष के लिये (उत्तमानि श्रवांसि) उत्तम श्रवणो को ( धिष्व ) धारण कीजिये ॥ ११३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर और आत्मा क बल को नित्य बढाते हैं वे योगाभ्यास से परमेश्वर मे मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ११३ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । आर्च्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*ससार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः ।**
**भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥**

पदार्थ—हे ( मदिन्तम ) अत्यन्त आनन्दी ( सोम ) ऐश्वर्य्य वाले पुरुष ! आप ( अंशुभि ) किरणो से सूर्य्य क समान ( विश्वेभि ) सब साधनों से ( आप्यायस्व ) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ( सप्रथस्तम ) अत्यन्त विस्तारयुक्त सुख करने हारे ( सखा ) मित्र हुए ( न ) हमारे ( वृधे ) बढाने के लिये (भव) तत्पर हूजिये ॥ ११४ ॥

भावार्थ—इस ससार में सब का हित करने हारा पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है ईर्ष्या करनेवाला नहीं ॥ ११४ ॥

आ त इत्यस्य वत्सार ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*मनुष्य लोग किसको वश में करके आनन्द को प्राप्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।**
**अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ११५ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि क समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! (त्वाङ्कामया) तुझको कामना करने के हेतु ( गिरा ) वाणी से जिस ( ते ) तेरा ( मन ) चित्त जैसे ( परमात् ) अच्छे ( सधस्थात् ) एक से स्थान से ( चित् ) भी ( वत्सः ) बछड़ा गौ को प्राप्त होवे वसे ( आ यमत् ) स्थिर होता है सो तू मुक्ति को क्यो न प्राप्त होवे ॥ ११५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि मन और वाणी को सदैव अपने वश में रक्खें ॥ ११५ ॥

तुभ्यं ता इत्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**तुभ्य ताऽअङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।**
**अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥**

पदार्थ—हे ( अङ्गिरस्तम ) अतिशय करके सार के ग्राहक ( अग्ने ) प्रकाशमान राजन् ! जो (विश्वा ) सब ( सुक्षितय ) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली प्रजा ( पृथक् ) अलग ( कामाय ) इच्छा के साधक ( तुभ्यम ) तुम्हारे लिये ( येमिरे ) प्राप्त होवे ( ता ) उन प्रजाओ की आप निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ११६ ॥

भावार्थ—जहाँ प्रजा के लोग धर्मात्मा राजा को प्राप्त होके अपनी-अपनी इच्छा पूरी करते हैं वहाँ राजा की वृद्धि क्यो न होवे ॥ ११६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापति ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*फिर मनुष्य लोग कैसे होकर क्या क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।**
**सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥**

पदार्थ—जो मनुष्य ( सम्राट ) सम्यक प्रकाशक ( एक ) एक ही असहाय परमेश्वर के सदृश ( काम ) स्वीकार के योग्य ( अग्नि ) अग्नि के समान वर्त्तमान सभापति ( भूतस्य ) हो चुके और ( भव्यस्य ) आनेवाले समय के ( प्रियेषु ) इष्ट ( धामसु ) जन्म स्थान और नामो मे ( विराजति ) प्रकाशित होवे वही राज्य का अधिकारी होने योग्य है ॥ ११७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावो के अनुकूल अपने कर्म और स्वभाव करते हैं वे ही चक्रवर्ती राज्य भोगने के योग्य होते हैं ॥ ११७ ॥

इस अध्याय म स्त्री पुरुष राजा प्रजा खेती और पठन-पाठन आदि कर्म का वर्णन है । इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सगति समझनी चाहिये ॥

॥ यह बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

# ॥ अथ त्रयोदशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

**मयि गृह्णामीत्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब तेरहवें अध्याय का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे मनुष्यों को पहिली अवस्था मे क्या क्या करना चाहिये यह विषय कहा है—*

## मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय । मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

**पदार्थ**—हे कुमार वा कुमारियो ! जैसे मैं ( अग्रे ) पहिले ( मयि ) मुझ मे ( राय ) विज्ञान आदि धन के ( पोषाय ) पुष्टि ( सुप्रजास्त्वाय ) सुन्दर प्रजा होने के लिये और ( सुवीर्याय ) रोगरहित सुन्दर पराक्रम होने के अर्थ ( अग्निम् ) उत्तम विद्वान् को ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ जिससे ( माम् ) मुझको ( उ ) ही ( देवता ) उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुण (सचन्ताम्) मिल वैसे तुम लोग भी करो ॥१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को यह उचित है कि ब्रह्मचर्य्ययुक्त कुमारावस्था मे वेदादि शास्त्रो के पढने से पदार्थविद्या उत्तम काम और ईश्वर की उपासना तथा ब्रह्मज्ञान का स्वीकार करे । जिससे श्रेष्ठ गुण और आप्त विद्वानो को प्राप्त होके उत्तम धन सन्ताना और पराक्रम को प्राप्त होवें ॥१॥

**अपां पृष्ठमित्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥**

*अब परमेश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र मे कहा है —*

## अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् । वर्धमानो महाँ२ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२॥

**पदार्थ**—हे विद्वन् पुरुष ! जो तू ( अभितः ) सब ओर से (अपाम्) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर आकाश दिशा बिजुली और प्राणो वा जलो के (पृष्ठम्) अधिकरण ( समुद्रम् ) आकाश के समान सागर ( पिन्वमानम् ) सींचते हुए समुद्र का (अग्ने) बिजुली आदि अग्नि के ( योनि ) कारण (दिव) प्रकाशित पदार्थों का (मात्रया) निर्माण करनेहारी बुद्धि से ( पुष्करे ) हृदयरूप अन्तरिक्ष मे ( वर्धमान ) उन्नति को प्राप्त हुए ( च ) और ( महान् ) सबसे श्रेष्ठ वा सब के पूज्य ( असि ) हो सो आप हमारे लिए ( वरिम्णा ) व्यापक शक्ति से ( आ, प्रथस्व ) प्रसिद्ध हूजिए ॥२॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को जिस सत् चित् और आनन्दस्वरूप सब जगत् का रचने हारा सर्वत्र व्यापक सबसे उत्तम और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना से सपूर्ण विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त होते हैं उसका सेवन क्यो न करना चाहिए ॥ २ ॥

**ब्रह्म जज्ञानमित्यस्य वत्सार ऋषिः । आदित्यो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ॥**

*मनुष्यों को किस स्वरूप वाला ब्रह्म उपासना के योग्य है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽआवः । स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ३ ॥

**पदार्थ**—जो ( पुरस्तात ) सृष्टि की आदि मे ( जज्ञानम् ) सबका उत्पादक और ज्ञाता ( प्रथमम् ) विस्तारयुक्त और विस्तारकर्ता ( ब्रह्म ) सब से बडा जो ( सुरुच ) सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय ( वेन ) ग्रहण के योग्य जिस ( अस्य ) इसके ( बुध्न्या ) जलसम्बन्धी आकाश मे वर्त्तमान सूर्य्य चन्द्रमा पृथिवी और नक्षत्र आदि ( विष्ठा ) विविध स्थलों मे स्थित ( उपमा ) ईश्वरज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं उन सबको ( स ) वह ( आव ) अपनी व्याप्ति से आच्छादन करता है वह ईश्वर ( विसीमत ) मर्य्यादा से ( सत ) विद्यमान देखने योग्य (च) और ( असत ) अव्यक्त ( च ) और कारण के ( योनिम् ) आकाशरूप स्थान को ( विव ) ग्रहण करता है उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगो को नित्य अवश्य करनी चाहिये ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जिस ब्रह्म के जानने के लिए प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब लोक दृष्टान्त जो सर्वत्र व्याप्त हुआ सबका आवरण और सभी का प्रकाश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी अपनी कक्षा मे सब लोकों को रखता है वही अन्तर्य्यामी परमात्मा सब मनुष्यो के निरन्तर उपासना के योग्य है इससे अन्य कोई पदार्थ सेवने योग्य नहीं ॥ ३ ॥

**हिरण्यगर्भ इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

## हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो इस ( भूतस्य ) उत्पन्न हुए संसार का ( जात ) रचने और ( पति ) पालन करने हारा ( एक ) सहाय की अपेक्षा से रहित ( हिरण्यगर्भ ) सूर्यादि तेजोमय पदार्थ का आधार ( अग्रे ) जगत् रचने के पहिले ( समवर्त्तत ) वर्त्तमान ( आसीत् ) था ( स ) वह ( इमाम् ) इस संसार को रचके ( उत ) और (पृथिवीम्) प्रकाशरहित और ( द्याम् ) प्रकाशसहित सूर्यादि लोको को ( दाधार ) धारण करता हुआ उस ( कस्मै ) सुखरूप प्रजा पालने वाले ( देवाय ) प्रकाशमान परमात्मा की ( हविषा ) आत्मादि सामग्री से (विधेम) सेवा मे तत्पर हो वैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुमको योग्य है कि सब प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था जीव गाढ निद्रा सुषुप्ति मे लीन और जगत् का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था मे आकाश के समान एकरस स्थिर था, जिसने सब जगत् को रचके धारण किया और अन्त्य समय मे प्रलय करता है उसी परमात्मा का उपासना के योग्य मानो ॥ ४ ॥

**द्रप्स इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे मैं जिसके ( सप्त ) पांच प्राण मन और आत्मा ये सात ( होत्रा ) अनुग्रहण करने हारे ( य ) जो ( इमाम् ) इस ( पृथिवीम् ) पृथिवी ( द्याम् ) प्रकाश ( च ) और ( योनिम ) कारण के अनुकूल जो ( पूर्व ) सम्पूर्ण स्वरूप ( द्रप्स ) आनन्द और उत्साह का (अनु) अनुकूलता से ( चस्कन्द ) प्राप्त होता है उस ( योनिम ) स्थान के ( अनु ) अनुसार ( सञ्चरन्तम ) सञ्चारी ( समानम ) एक प्रकार के ( द्रप्सम् ) सर्वत्र अभिव्याप्त आनन्द को मैं (अनुजुहोमि) अनुकूल ग्रहण करता हूँ वैसे तुम लोग भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि जिस जगदीश्वर के आनन्द और स्वरूप का सर्वत्र लाभ होता है उसकी प्राप्ति के लिये योगाभ्यास करो ॥ ५ ॥

**नमोऽस्त्वित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिर्देवता च । भुरिगुष्णिक छन्दः । ऋषभ स्वरः ॥**

*मनुष्यों को संसार मे कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

**पदार्थ**—जो (के) कोई इस जगत् मे लोक लोकान्तर और प्राणी हैं (तेभ्य ) उन ( सर्पेभ्य ) लोको के जीवो के लिए ( नम ) अन्न ( अस्तु ) हो ( ये ) जो ( अन्तरिक्षे ) आकाश मे (ये) जो (दिवि) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोको मे ( च ) और ( ये ) जो ( पृथिवीम ) भूमि के ( अनु ) ऊपर चलते हैं उन ( सर्पेभ्य ) प्राणियो के लिए ( नम ) अन्न प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जितने लोक दीख पडते हैं और जो नहीं दीख पडते हैं वे सब अपनी अपनी कक्षा मे नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग मे घूमते उन सबो मे जो प्राणी चलते हैं उनके लिए अन्न भी ईश्वर ने रचा है कि जिससे इन सबका जीवन होता है इस बात को तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

**या इषव इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । स एव देवता च । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## याऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ१ऽरनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( या ) जो (यातुधानानाम) पराये पदार्थों को प्राप्त हो के धारण करनेवाले जनों की ( इषव ) गति हैं ( वा ) अथवा ( ये )

जो ( वनस्पतीन् ) वन आदि वनस्पतियों के ( अनु ) आश्रित रहते हैं और ( ये ) जो ( वा ) अथवा ( अवटेषु ) गुप्तमार्गों में ( शेरते ) सोते हैं ( तेभ्यः ) उन ( सर्वेभ्यः ) सब खल दुष्ट प्राणियों के लिये ( नमः ) वज्र चलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों और वनों में उचक्के दुष्ट प्राणी एकान्त में दिन के समय सोते हैं उन डाकुओं और सर्पों को शस्त्र ओषधि आदि से निवारण करें ॥ ७ ॥

ये वामीत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को दुष्ट और दुष्ट प्राणी कैसे हटाने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो ( अमी ) वे परोक्ष रहनेवाले ( दिवः ) बिजुली के ( रोचने ) प्रकाश में ( वा ) अथवा ( ये ) जो ( सूर्य्यस्य ) सूर्य्य की ( रश्मिषु ) किरणों में ( वा ) अथवा ( येषाम् ) जिनका ( अप्सु ) जलों में ( सदः ) स्थान ( कृतम् ) बना है ( तेभ्यः ) उन ( सर्पेभ्यः ) दुष्ट प्राणियों को ( नमः ) वज्र से मारो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो जलों में आकाश में दुष्ट प्राणी वा सर्प रहते हैं उनको शस्त्रों से निवृत्त करें ॥ ८ ॥

कृणुष्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*राजपुरुषों को शत्रु कैसे बांधने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ऽइभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे सेनापते ! आप ( पाजः ) बल को ( कृणुष्व ) कीजिये ( प्रसितिम् ) जाल के ( न ) समान ( पृथ्वीम् ) भूमि को ( याहि ) प्राप्त हूजिये जिससे आप ( अस्ता ) फेंकने वाले ( असि ) हैं उससे ( इभेन ) हाथी के साथ ( अमवान् ) बहुत दूतों वाले ( राजेव ) राजा के समान ( तपिष्ठैः ) अत्यन्त दुःखदायी शस्त्रों से ( प्रसितिम् ) फांसी को सिद्ध कर ( रक्षसः ) शत्रुओं को ( द्रूणानः ) मारते हुए ( तृष्वीम् ) शीघ्र ( अनु ) सन्मुख होकर ( विध्य ) ताडना कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सेनापति को चाहिये कि राजा के समान पूरे बल से युक्त हो अनेक फांसियों से शत्रुओं को बांध उनको बाण आदि शस्त्रों से ताडना दे और बन्दीगृह में बन्द करके श्रेष्ठ पुरुषों को पाले ॥ ९ ॥

तव भ्रमास इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर वह सेनापति क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**तव भ्रमासऽआशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापते ! ( शोशुचानः ) अत्यन्त पवित्र आचरण करने हारे आप जो ( तव ) आपके ( भ्रमासः ) भ्रमणशील वीर पुरुष जैसे ( विष्वक् ) सब ओर से ( आशुया ) शीघ्र चलन हारी ( उल्काः ) बिजुली की गतियाँ जैसे ( पतन्ति ) श्येनपक्षी के समान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में गिरते हैं उनको ( धृषता ) दृढ सेना से ( अनु ) अनुकूल ( स्पृश ) प्राप्त हूजिये और ( असन्दितः ) अखण्डित हुए ( जुह्वा ) घी के हवन का साधन लपट अग्नि के ( तपूंषि ) तेज के समान शत्रुओं के ऊपर सब ओर से बिजुली को ( विसृज ) छोडिये और ( पतङ्गान् ) घोडों को सुन्दर शिक्षायुक्त कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सेनापति और सेना के भृत्यों को चाहिये कि आपस में प्रीति के साथ बल बढा वीर पुरुषों को हर्ष दे और सम्यक् युद्ध करा के अग्नि आदि अस्त्रों और भुशुण्डी आदि शस्त्रों से शत्रुओं के ऊपर बिजुली की वृष्टि करें जिससे शीघ्र विजय हो ॥ १० ॥

प्रतिस्पश इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशोऽअस्याऽअदब्धः ।
यो नो दूरेऽअघशंसो योऽअन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान शत्रुओं के जलाने वाले पुरुष ! ( ते ) आपका और ( नः ) हमारा ( यः ) जो ( व्यथिः ) व्यथा देने हारा ( अघशंसः ) पाप करने में प्रवृत्त चोर शत्रुजन ( दूरे ) दूर तथा ( यः ) जो ( अन्ति ) निकट है वैसे वह हम लोगों को ( माकिः ) नहीं ( आ, दधर्षीत् ) दुःख देवे उस शत्रु के ( प्रति ) प्रति आप ( तूर्णितमः ) शीघ्र दण्डदाता होके ( स्पशः ) बन्धनों को ( विसृज ) रचिये और ( अस्याः ) इस वर्त्तमान ( विशः ) प्रजा के ( पायुः ) रक्षक ( अदब्धः ) हिंसारहित ( भव ) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो समीप वा दूर रहने वाले प्रजाओं के दुःखदायी डाकू हैं उनको राजा आदि पुरुष साम दाम दण्ड और भेद से शीघ्र वश में लाके न्याय और न्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ ११ ॥

उदग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ२ऽओषतात्तिग्महेते । यो नोऽअरातिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) तेजधारी सभा के स्वामी ! आप राजधर्म के बीच ( उत्तिष्ठ ) उन्नति को प्राप्त हूजिये धर्मात्मा पुरुषों के ( प्रति ) लिए ( आतनुष्व ) सुखों का विस्तार कीजिये । हे ( तिग्महेते ) तीव्र दण्ड देनेवाले राजपुरुष ! ( अमित्रान् ) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को ( न्योषतात् ) निरन्तर जलाइये । हे ( समिधान ) सम्यक् तेजधारी जन ! ( यः ) जो ( नः ) हमारे ( अरातिम् ) शत्रु को उत्साही ( चक्रे ) करता है ( तम् ) उसको ( नीचा ) नीची दशा में करके ( शुष्कम् ) सूखे ( अतसम् ) काष्ठ के ( न ) समान ( धक्षि ) जलाइये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा आदि सभ्यजनों को चाहिये कि धर्म और विनय में समाहित होके जल के समान मित्रों को शीतल करें । अग्नि के समान शत्रुओं को जलावें । जो उदासीन होकर शत्रुओं को बढावे उसको दृढ बन्धनों से बांध के निष्कण्टक राज्य करें ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

*फिर वह राजा किस प्रकार का हो इसका विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष ! जिसलिये आप ( ऊर्ध्वः ) उत्तम ( भव ) हूजिये धर्म के ( प्रति ) अनुकूल होके ( विध्य ) दुष्ट शत्रुओं को ताडना दीजिये ( अस्मत् ) हमारे ( स्थिरा ) निश्चल ( दैव्यानि ) विद्वानों के रचे पदार्थों को ( आविः ) प्रकट ( कृणुष्व ) कीजिये सुखों का ( तनुहि ) विस्तारिये ( यातुजूनाम् ) पर पदार्थों के प्राप्त होने और वेगवाले शत्रुजनों के ( जामिम् ) भोजन के और ( अजामिम् ) अन्य व्यवहारों के स्थान को ( अव ) अच्छे प्रकार विस्तारपूर्वक नष्ट कीजिये और ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( प्रमृणीहि ) बल के साथ मारिये इसलिये मैं ( त्वा ) आपको ( अग्ने ) अग्नि के ( तेजसा ) प्रकाश के ( अधि ) सम्मुख ( सादयामि ) स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य को पाके उत्तम गुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवें प्रजाओं और दरिद्रों को निरन्तर सुख देवें । दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरन्तर शिक्षा करें और सबसे उत्तम पुरुष को सभापति मानें ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर वह राजपुरुष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे ( अयम् ) यह ( अग्निः ) सूर्य्य ( दिवः ) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच और ( पृथिव्याः ) भूमि का ( मूर्द्धा ) सब प्राणियों के शिर के समान उत्तम ( ककुत् ) सबसे बडा ( पतिः ) सब पदार्थों का रक्षक ( अपाम् ) जलों के ( वीर्याणि ) सारों में प्राणियों को ( जिन्वति ) तृप्त करता है वैसे आप भी हूजिये । मैं ( त्वा ) आपको ( इन्द्रस्य ) सूर्य्य के ( ओजसा ) पराक्रम के साथ राज्य के लिए ( सादयामि ) स्थापना करता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य्य के समान गुण कर्म और स्वभाववाला न्याय से प्रजा के पालन में तत्पर धर्मात्मा विद्वान् हो उसको राज्याधिकारी सब लोग मानें ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरुष ! ( **यत्र** ) जिस राज्य मे आप जैसे ( **नियुद्भि** ) वेग आदि गुणों के साथ वायु ( **रजस** ) लोकों वा ऐश्वर्य्य का ( **नेता** ) चलाने हारा ( **दिवि** ) न्याय के प्रकाश मे ( **मूर्धानम** ) शिर का धारण करता है वैसे ( **यत्र** ) जहां ( **शिवाभि** ) कल्याणकारक नीतियों के साथ ( **भुव** ) अपनी पृथिवी के ( **पतस्य** ) राजधर्म के पालन करने हारे होके ( **सचसे** ) संयुक्त होता अच्छे पुरुषों से राज्य को ( **दधिषे** ) धारण और ( **हव्यवाहम्** ) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु ( **स्वर्षाम्** ) सुखों का सेवन करने हारी ( **जिह्वाम्** ) अच्छे विषयों की ग्राहक वाणी को ( **चकृषे** ) करते हो वहां सब सुख बढ़ते हैं यह निश्चित जानिये ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—जिस राज्य मे राजा आदि सब राजपुरुष मंगलाचरण करनेहारे धर्मात्मा होके धर्मानुकूल प्रजाओं का पालन करें वहां विद्या और अच्छी शिक्षा से होने वाले सुख क्यों न बढ़ें ॥ १५ ॥

**ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर वह राजपत्नी कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा । मा त्वां समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृंह ॥ १६ ॥**

**पदार्थ**—हे राजा की स्त्री ! जिस कारण ( **विश्वकर्मणा** ) सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्तती हुई ( **आस्तृता** ) वस्त्र आभूषण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई ( **धरुणा** ) विद्या और धर्म की धारणा करने हारी ( **ध्रुवा** ) निश्चल ( **असि** ) है सो तू ( **अव्यथमाना** ) पीड़ा से रहित हुई ( **पृथिवीम्** ) अपनी राज्यभूमि को ( **दृंह** ) अच्छे प्रकार बढ़ा ( **त्वा** ) तुझ को ( **समुद्र** ) जार लोगों का व्यवहार ( **मा** ) मत ( **उद्वधीत** ) सतावे और ( **सुपर्ण** ) सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तेरा पति ( **मा** ) नहीं मारे ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—जैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा हो वैसी ही उसकी राणी भी पढ़ी होनी चाहिये सर्वदा दोनों परस्पर पतिव्रता स्त्रीव्रत हो के न्याय से पालन करें। व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करके स्त्रियों का स्त्री राणी और पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करे ॥ १६ ॥

**प्रजापतिष्ट्वेत्यस्य त्रिशिरा ऋषि । प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर राजा अपनी राणी को कैसे वर्त्तावे यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥**

**पदार्थ**—हे विदुषि स्त्री ! जैसे ( **प्रजापति** ) प्रजा का स्वामी ( **समुद्रस्य** ) समुद्र के ( **अपाम** ) जलों से ( **एमन्** ) प्राप्त होने के ( **पृष्ठे** ) ऊपर नौका के समान ( **व्यचस्वतीम** ) बहुत विद्या की प्राप्ति और सत्कार से युक्त ( **प्रथस्वतीम्** ) प्रशंसित कीर्ति वाली ( **त्वा** ) तुझ को ( **सादयतु** ) स्थापन करे। जिस कारण तू ( **पृथिवी** ) भूमि के समान सुख देने वाली ( **असि** ) है इसलिये स्त्रियों के न्याय करने मे ( **प्रथस्व** ) प्रसिद्ध हो वैसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुष आदि को चाहिये कि आप जिस जिस राजकार्य मे प्रवृत्त हो उस उस कार्य मे अपनी अपनी स्त्रियों को भी स्थापन करें जो जो राजपुरुष जिन जिन पुरुषों का न्याय करे उस उस की स्त्री स्त्रियों का न्याय किया करें ॥ १७ ॥

**भूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषि । अग्निर्देवता । प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्द ।**

**पञ्चम स्वर ॥**

*फिर वह राणी कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः ॥ १८ ॥**

**पदार्थ**—हे राणी ! जिससे तू ( **भू** ) भूमि के समान ( **असि** ) है इस कारण ( **पृथिवीम्** ) पृथिवी को ( **यच्छ** ) निरन्तर ग्रहण कर जिसलिये तू ( **विश्वधाया** ) सब गृहाश्रम के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और ( **विश्वस्य** ) सब ( **भुवनस्य** ) राज्य को ( **धर्त्री** ) धारण करने हारी ( **भूमि** ) पृथिवी के समान ( **असि** ) है इसलिये ( **पृथिवीम** ) पृथिवी को ( **दृंह** ) बढ़ा और जिस कारण तू ( **अदिति** ) अखण्ड ऐश्वर्य्य वाले आकाश के समान क्षोभरहित ( **असि** ) है इसलिये ( **पृथिवीम** ) भूमि को ( **मा** ) मत ( **हिंसी** ) बिगाड़ ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदि के समान धीरज आदि गुणों से युक्त हों तो वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं ॥ १८ ॥

**विश्वस्मा इत्यस्य त्रिशिरा ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगतिजगती छन्द ।**

**निषाद स्वर ॥**

*फिर वे स्त्री पुरुष आपस मे कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो ( **अग्नि** ) विज्ञानयुक्त तेरा पति ( **मह्या** ) बड़ी ( **स्वस्त्या** ) सुख प्राप्त कराने हारी क्रिया और ( **छर्दिषा** ) प्रकाशयुक्त ( **शन्तमेन** ) अत्यन्त सुखदायक कर्म के साथ ( **विश्वस्मै** ) सम्पूर्ण ( **प्राणाय** ) जीवन के हेतु प्राण ( **अपानाय** ) दुःखों की निवृत्ति ( **व्यानाय** ) अनेक प्रकार के उत्तम व्यवहारों की सिद्ध ( **उदानाय** ) उत्तम बल ( **प्रतिष्ठायै** ) सत्कार और ( **चरित्राय** ) धर्म का आचरण करने के लिये जिस ( **त्वा** ) तेरी ( **अभिपातु** ) सन्मुख होकर रक्षा करे सो तू ( **तया** ) उस ( **देवतया** ) दिव्यस्वरूप पति के साथ ( **अङ्गिरस्वत्** ) जैसे कार्य्य कारण का सम्बन्ध है वैसे ( **ध्रुवा** ) निश्चल हो के ( **सीद** ) प्रतिष्ठायुक्त हो ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—पुरुषों को योग्य है कि अपनी स्त्रियों के सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा निरन्तर करें और इसी प्रकार स्त्री लोग भी रहें। अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री की इच्छा न पुरुष और न अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संग स्त्री करे। ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनों सदा वर्त्तें ॥ १९ ॥

**काण्डात्काण्डादित्यस्याग्निऋषि । पत्नी देवता । अनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! तू जैसे ( **सहस्रेण** ) असंख्यात ( **च** ) और ( **शतेन** ) बहुत प्रकार के साथ ( **काण्डात्काण्डात्** ) सब अवयवों और ( **परुष परुष** ) गांठ गांठ से ( **परि** ) सब ओर से ( **प्ररोहन्ती** ) अत्यन्त बढ़ती हुई ( **दूर्वे** ) दूर्वा घास होती है वैसे ( **एव** ) ही ( **न** ) हम को पुत्र पौत्र और ऐश्वर्य्य से ( **प्रतनु** ) विस्तृत कर ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दूर्वा ओषधि रोगों का नाश और सुखों को बढ़ाने हारी सुन्दर विस्तारयुक्त होती हुई बढ़ती है वैसे ही विदुषी स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥ २० ॥

**या शतेनेत्यस्याग्निऋषि । पत्नी देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **इष्टके** ) ईंट के समान दृढ़ अवयवों से युक्त शुभ गुणों से शोभायमान ( **देवि** ) प्रकाशयुक्त स्त्री ! जैसे ईंट सैकड़ों संख्या मे मकान आदि का विस्तार और हजारह से बहुत बढ़ा देती है वैसे ( **या** ) जो तू हम लोगों को ( **शतेन** ) सैकड़ों पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति से ( **प्रतनोषि** ) विस्तार युक्त करती और ( **सहस्रेण** ) हजारह प्रकार के पदार्थों से ( **विरोहसि** ) विविध प्रकार बढ़ाती है ( **तस्या** ) उस ( **ते** ) तेरी ( **हविषा** ) देने योग्य पदार्थों से ( **वयम** ) हम लोग ( **विधेम** ) सेवा करें ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सैकड़ों से हजारह ईंटें घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं वैसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पौत्र ऐश्वर्य्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देवें उनका पुरुष लोग निरन्तर सत्कार करें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के विना शुभ गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते और ऐसे सन्तानों के विना माता पिता को सुख कब मिल सकता है ॥ २१ ॥

**यास्त इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर वह स्त्री कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यास्तेऽअग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के समान तेजधारिणी पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री ! ( **या** ) जो ( **ते** ) तेरी रुचि है ( **ताभि** ) उन ( **सर्वाभि** ) सब रुचियों से युक्त ( **न** ) हम को जैसे ( **रुच** ) दीप्तियां ( **सूर्य्ये** ) सूर्य्य मे ( **रश्मिभि** ) किरणों से ( **दिवम** ) प्रकाश को ( **आतन्वन्ति** ) अच्छे प्रकार विस्तारयुक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तृत सुखयुक्त कर और ( **अद्य** ) आज ( **रुचे** ) रुचि कराने हारे ( **जनाय** ) प्रसिद्ध मनुष्यों के लिए ( **न** ) हम लोगों को प्रीतियुक्त ( **कृधि** ) कर ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ब्रह्माण्ड मे सूर्य्य की दीप्ति सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचियुक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य्यों का प्रकाश करती हैं। जिस कुल मे स्त्री और पुरुष आपस मे प्रीतियुक्त हों वहां सब विषयों मे कल्याण ही होता है ॥ २२ ॥

**या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । बृहस्पतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब स्त्री पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

**पदार्थ**—हे (**देवा**) विद्वानो ! तुम सब लोग (**या**) जो (**वः**) तुम्हारी (**सूर्ये**) सूर्य्य में (**रुचः**) रुचि और (**या**) जो (**गोषु**) गौओं और (**अश्वेषु**) घोड़ों आदि में (**रुचः**) प्रीतियों के समान प्रीति है (**ताभिः**) उन (**सर्वाभिः**) सब रुचियों से (**नः**) हमारे बीच (**रुचम्**) कामना (**इन्द्राग्नी**) बिजुली और सूर्य्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धारण कर वैसे (**धत्त**) धारण करो । हे (**बृहस्पते**) पक्षपात छोड़के परीक्षा कराने हारे पूर्णविद्यायुक्त आप (**नः**) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—जब तक मनुष्य लोगों की विद्वानों के संग और ईश्वर की रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तब तक विज्ञान कभी नहीं बढ़ सकता ॥२३॥

**विराड्ज्योतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । प्रजापतिर्देवता । निचृद्बृहतीछन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयत् । प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २४ ॥

**पदार्थ**—जो (**विराट्**) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री (**ज्योतिः**) विद्या की उन्नति को (**अधारयत्**) धारण करे करावे जो (**स्वराट्**) सब धर्म्मयुक्त व्यवहारों में शुद्धाचारी पुरुष (**ज्योतिः**) बिजुली आदि के प्रकाश का (**अधारयत्**) धारण करे करावे वे दोनों स्त्री पुरुष सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होवें । हे स्त्रि ! जो (**अग्निः**) अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त (**ते**) तेरा (**अधिपतिः**) स्वामी है (**तया**) उस (**देवतया**) सुन्दर देवस्वरूप पति के साथ तू (**अङ्गिरस्वत्**) सूत्रात्मा वायु के समान (**ध्रुवा**) दृढ़ता से (**सीद**) हो । हे पुरुष ! जो अग्नि के समान तेजधारिणी तेरी रक्षा की करनेहारी स्त्री है उस देवी के साथ तू प्राणों के समान प्रीतिपूर्वक निश्चय करके स्थित हो । हे स्त्रि ! (**प्रजापतिः**) प्रजा का रक्षक तेरा पति (**पृथिव्याः**) भूमि के (**पृष्ठे**) ऊपर (**विश्वस्मै**) सब (**प्राणाय**) सुख की चेष्टा के हेतु (**अपानाय**) दुःख हटाने के साधन (**व्यानाय**) सब सुन्दर गुण कर्म्म और स्वभावों के प्रचार के हेतु प्राणविद्या के लिये जिस (**ज्योतिष्मतीम्**) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (**त्वा**) तुझ को (**सादयतु**) उत्तम अधिकार पर स्थापित करे सो तू (**विश्वम्**) समग्र (**ज्योतिः**) विज्ञान को (**यच्छ**) ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने पति को स्थिर कर ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—जो स्त्री पुरुष सत्सङ्ग और विद्या के अभ्यास से विद्युत् आदि पदार्थविद्या और प्रीति को नित्य बढ़ाते हैं वे इस संसार में सुख भोगते हैं । पति स्त्री का और स्त्री पति का सत्कार करें इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें ॥२४॥

**मधुश्चेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । ऋतवो देवता । पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में वसन्त ऋतु का वर्णन किया है—*

## मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे वासन्तिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

**पदार्थ**—जैसे (**मम**) मेरे (**ज्यैष्ठ्याय**) ज्येष्ठ महीने में हुए व्यवहार वा मेरी श्रेष्ठता के लिये जो (**अग्नेः**) गर्मी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न होनेवाले जिनके (**अन्तःश्लेषः**) भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध (**असि**) होता है वे (**मधुः**) मधुर सुगन्धयुक्त चैत्र (**च**) और (**माधवः**) मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख (**च**) इनके सम्बन्धी पदार्थयुक्त (**वासन्तिकौ**) वसन्त महीनों में हुए (**ऋतू**) सब को सुखप्राप्ति के साधन ऋतु सुख के लिये (**कल्पेताम्**) समर्थ होवें जिन चैत्र और वैशाख महीनों के आश्रय से (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और भूमि (**आपः**) जल भी भोग में (**कल्पन्ताम्**) आनन्ददायक हों (**पृथक्**) भिन्न भिन्न (**ओषधयः**) जौ आदि वा सोमलता आदि ओषधि और (**अग्नयः**) बिजुली आदि अग्नि भी (**कल्पन्ताम्**) कार्य्यसाधक हों । हे (**सव्रताः**) निरन्तर वर्त्तमान सत्यभाषणादि व्रतों से युक्त (**समनसः**) विज्ञान वाले (**देवाः**) विद्वान् (**ये**) जो लोग (**वासन्तिकौ ऋतू**) वसन्तऋतु में हुए चैत्र वैशाख और यज्ञों से (**अन्तरा**) बीच में हुए (**अग्नयः**) अग्नि हैं उन को (**अभिकल्पमानाः**) सम्मुख होकर कार्य में युक्त करते हुए आप लोग (**इन्द्रमिव**) जैसे उत्तम ऐश्वर्य्य प्राप्त हों वैसे (**अभिसंविशन्तु**) सब ओर से प्रवेश करो जैसे (**इमे**) ये (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि (**तया**) उस (**देवतया**) परमपूज्य परमेश्वर रूप देवता के सामर्थ्य के साथ (**अङ्गिरस्वत्**) प्राण के समान (**ध्रुवे**) दृढ़ता से वर्त्तते हैं वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष सदा संयुक्त (**सीदतम्**) स्थिर रहो ॥२५॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिए कि जिस वसन्त ऋतु में फल फूल उत्पन्न होता है और जिस में तीव्र प्रकाश रूखी पृथिवी, जल मध्यम, ओषधियां फल और फूलों से युक्त और अग्नि की ज्वाला भिन्न भिन्न होती हैं उसको युक्तिपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त होओ जैसे विद्वान् लोग अत्यन्त प्रयत्न के साथ सब ऋतुओं में सुख के लिये सम्पत्ति को बढ़ाते हैं वैसा तुम भी प्रयत्न करो ॥ २५ ॥

**अषाढासीत्यस्य सविता ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्य्यासि सा मा जिन्व ॥ २६ ॥

**पदार्थ**—हे पत्नी ! जो तू (**अषाढा**) शत्रु के असहने योग्य (**असि**) है तू (**सहमाना**) पति आदि का सहन करती हुई अपने पति के उपदेश का (**सहस्व**) सहन कर जो तू (**सहस्रवीर्य्या**) असंख्यात प्रकार पराक्रमों से युक्त (**असि**) है (**सा**) सो तू (**पृतनायतः**) अपने आप सेना से युद्ध की इच्छा करते हुए (**अरातीः**) शत्रुओं का (**सहस्व**) सहन कर और जैसे मैं तुझ को प्रसन्न रखता हूं वैसे (**मा**) मुझ पति को (**जिन्व**) तृप्त किया कर ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्याश्रम से सेवन की हुई अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय वसन्त आदि ऋतुओं के पृथक् पृथक् काम जानने पति के अपराध क्षमा और शत्रुओं का निवारण करनेवाली उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को तृप्त करती है उसी को पति भी नित्य आनन्दित करता ही है ॥२६॥

**मधु वाता इत्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*आगे के मन्त्र में वसन्त ऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है—*

## मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (**नः**) हम लोगों के (**वाताः**) वायु (**मधु**) मधुरता के साथ (**ऋतायते**) जल के समान चलते हैं (**सिन्धवः**) नदियां वा समुद्र (**मधु**) कोमलतापूर्वक (**क्षरन्ति**) वर्षते हैं और (**ओषधीः**) ओषधियां (**माध्वीः**) मधुर रस के गुण से युक्त (**सन्तु**) होवें वैसा प्रयत्न हम किया करें ॥२७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जब वसन्त ऋतु आता है तब पुष्प आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं उस ऋतु में घूमना डोलना पथ्य होता है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥२७॥

**मधु नक्तमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (**नक्तम्**) रात्रि (**मधु**) कोमलता से युक्त (**उत**) और (**उषसः**) प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (**पार्थिवम्**) पृथिवी की (**रजः**) द्व्यणुक वा त्रसरेणु आदि (**मधुमत्**) मधुर गुणों से युक्त और (**द्यौः**) प्रकाश भी (**मधु**) मधुरतायुक्त (**पिता**) रक्षा करने हारे के समान समय (**नः**) हमारे लिये (**अस्तु**) होवे वैसे युक्ति से उस वसन्त ऋतु का सेवन तुम भी किया करो ॥२८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब वसन्त ऋतु आता है तब पक्षी भी कोमल मधुर मधुर शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं ॥ २८ ॥

**मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब वसन्त ऋतु में मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

## मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽअस्तु सूर्य्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे बसन्त ऋतु मे ( नः ) हमारे लिये ( वनस्पतिः ) पीपल आदि वनस्पति ( मधुमान् ) प्रशसित कोमल गुणो वाले और ( सूर्य्यः ) सूर्य्य भी ( मधुमान् ) प्रशसित कोमलतायुक्त ( अस्तु ) होवे और ( नः ) हमारे लिये ( गावः ) गौओ के समान ( माध्वीः ) कोमल गुणवाली किरणें ( भवन्तु ) हों वैसा ही उपदेश करो ॥२९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर जिस प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति आदि कोमल गुणयुक्त हो ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को सब जने तुम लोग प्राप्त होओ ॥२९॥

अपामित्यस्य गोतम ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवत स्वरः ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभि ताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः ।**
**अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽअनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥३०॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू वसन्त ऋतु में ( अपाम् ) जलो के ( गम्भन् ) आधारकर्त्ता मेघ में ( सीद ) स्थिर हो जिससे ( सूर्य्यः ) सूर्य्य ( त्वा ) तुझको ( मा ) न ( अभिताप्सीत् ) तपावे ( वैश्वानर ) सब मनुष्यो मे प्रकाशमान ( अग्निः ) अग्नि बिजुली ( त्वा ) तुझको ( मा ) न ( अभिताप्सीत ) तप्त करे ( अच्छिन्नपत्राः ) सुन्दर पूर्ण अवयवो वाली ( प्रजाः ) प्रजा ( अनु त्वा ) तेरे अनुकूल और ( दिव्या ) शुद्ध गुणो से युक्त ( वृष्टिः ) वर्षा ( सचताम् ) प्राप्त होवे वैसे ( अनुवीक्षस्व ) अनुकूलता से विशेष करके विचार कर ॥३०॥

भावार्थ—मनुष्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के जलाशयस्थ शीतल स्थानो का सेवन करें जिससे गर्मी से दुःखित न हो और जिस यज्ञ से वर्षा भी ठीक ठीक हो और प्रजा आनन्दित हो उसका सेवन करो ॥३०॥

त्रीन्त्समुद्रानित्यस्य गोतम ऋषिः । वरुणो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवत स्वरः ॥

*अब मनुष्यों को उस वसन्त मे सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभऽइष्टकानाम् ।**
**पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥३१॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे ( अपाम् ) प्राणो का ( पतिः ) रक्षक ( वृषभः ) वर्षा का हेतु ( पुरीषम् ) पूर्ण सुखकारक जल को ( वसानः ) धारण करता हुआ सूर्य्य ( इष्टकानाम् ) कामनाओ की प्राप्ति के हेतु पदार्थों के आधार रूप ( त्रीन् ) ऊपर नीचे और मध्य मे रहनेवाले तीन प्रकार के ( समुद्रान् ) सब पदार्थों के स्थान भूत भविष्यत् और वर्त्तमान ( स्वर्गान् ) सुख प्राप्त कराने हारे लोकों को ( समसृपत् ) प्राप्त होता है वैसे आप भी प्राप्त हूजिये ( यत्र ) जिस धर्मयुक्त वसन्त के मार्ग मे ( सुकृतस्य ) सुन्दर धर्म करने हारे पुरुष के ( लोके ) देखने योग्य स्थान वा मार्ग मे ( पूर्वे ) प्राचीन लोग ( परेताः ) सुख को प्राप्त हुए ( तत्र ) उसी वसन्त के सेवनरूप मार्ग मे आप भी ( गच्छ ) चलिये ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिये कि धर्मात्माओ के मार्ग से चलते हुए शारीर वाचिक और मानस तीनो प्रकार के सुखो को प्राप्त होवें और जिसमे कामना पूरी हो वैसा प्रयत्न करें । जैसे वसन्त आदि ऋतु अपने क्रम से वर्त्तते हुए अपने अपने चिह्न प्राप्त करते हैं वैसे ऋतुओ के अनुकूल व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होवें ॥३१॥

मही द्यौरित्यस्य गोतम ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्ज स्वरः ॥

*माता पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।**
**पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥**

पदार्थ—हे माता पिता ! जैसे ( मही ) बड़ा ( द्यौः ) सूर्य्यलोक ( च ) और ( पृथिवी ) भूमि सब ससार को सींचते और पालन करते हैं वसे तुम दोनो ( नः ) हमारे ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) सेवने योग्य विद्याग्रहणरूप व्यवहार को ( मिमिक्षताम् ) सेचन अर्थात् पूर्ण होने की इच्छा करो और ( भरीमभिः ) धारण पोषण कर्मों से ( नः ) हमारा ( पिपृताम् ) पालन करो ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वसन्त ऋतु मे पृथिवी और सूर्य्य सब ससार का धारण प्रकाश और पालन करते हैं वैसे माता पिता को चाहिये कि अपने सन्तानो के लिये वसन्तादि ऋतुओ में अन्न विद्यादान और अच्छी शिक्षा करके पूरा विद्वान् पुरुषार्थी करें ॥३२॥

विष्णो कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्ज स्वरः ॥

*विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये इसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।**
**इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( इन्द्रस्य ) परमैश्वर्य्य की इच्छा करने हारे जीव का ( युज्यः ) उपासना करने योग्य ( सखा ) मित्र के समान वर्त्तमान है ( यतः ) जिसके प्रताप से यह जीव ( विष्णोः ) व्यापक ईश्वर के ( कर्माणि ) जगत् की रचना पालन प्रलय करने और न्याय आदि कर्मों और ( व्रतानि ) सत्यभाषणादि नियमो को ( पस्पशे ) स्पर्श करता है इसलिये इस परमात्मा के इन कर्मों और व्रतों को तुम लोग भी ( पश्यत ) देखो धारण करो ॥३३॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर का मित्र उपासक धर्मात्मा विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुसार सृष्टि के क्रमो के अनुकूल आचरण करे और जाने वैसे ही अन्य मनुष्य करें और जानें ॥३३॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवत स्वरः ॥

*विद्वान् पुरुषों के समान विदुषी स्त्रियां भी उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्योऽअधि जातवेदाः ।**
**स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥३४॥**

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे तू ( धरुणा ) शुभगुणो का धारण करने हारी ( ध्रुवा ) स्थिर ( असि ) है जैसे ( एभ्यः ) इन ( योनिभ्यः ) कारणो से ( सः ) वह ( जातवेदाः ) प्रसिद्ध पदार्थों मे विद्यमान वायु ( प्रथमम् ) पहिले ( अधिजज्ञे ) अधिकता से प्रकट होता है वैसे ( इतः ) इस कर्म के अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध हूजिये जसे तेरा पति ( गायत्र्या ) गायत्री ( त्रिष्टुभा ) त्रिष्टुप ( च ) और ( अनुष्टुभा ) अनुष्टुप मन्त्र से सिद्ध हुई विद्या से ( प्रजानन् ) बुद्धिमान् होकर ( देवेभ्यः ) अच्छे गुण वा विद्वानो से ( हव्यम् ) देनेलेने योग्य विज्ञान ( वहतु ) प्राप्त होवे वैसे इस विद्या से बुद्धिमती होके आप स्त्री लोगो से ब्रह्मचारिणी कन्या विज्ञान को प्राप्त होवें ॥३४॥

भावार्थ—मनुष्य जगत् मे ईश्वर की सृष्टि के कामो के निमित्तो को जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषो को शास्त्रो का उपदेश करते हैं वैसे ही स्त्रियो को भी चाहिये कि इन सृष्टिक्रम के निमित्तो का ज्ञान के स्त्रियो को वेदार्थसारोपदेश किया करें ॥ ३४ ॥

इषे राय इत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यम स्वरः ॥

*अब स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जेऽअपत्याय ।**
**सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ ३५ ॥**

पदार्थ—हे पुरुष ! जो तू ( सम्राट् ) विद्यादि शुभगुणो से स्वय प्रकाशमान ( असि ) है । हे स्त्रि ! जो तू ( स्वराट् ) अपने आप विज्ञान सत्याचार से शोभायमान ( असि ) है सो तुम दोनो ( इषे ) विज्ञान ( राये ) धन ( सहसे ) बल ( द्युम्ने ) यश और अन्न ( ऊर्जे ) पराक्रम और ( अपत्याय ) सन्तानो की प्राप्ति के लिये ( रमस्व ) यत्न करो तथा ( उत्सौ ) कूपोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर ( सारस्वतौ ) वेदवाणी के उपदेश मे कुशल होके तुम दोनो स्त्री पुरुष इन स्वशरीर और अन्नादि पदार्थों की ( प्रावताम् ) रक्षा आदि करो यह ( त्वा ) तुम को उपदेश देता हूँ ॥ ३५ ॥

भावार्थ—विवाह करके स्त्री पुरुष दोनो आपस मे प्रीति के साथ विद्वान् होकर पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठगुणो मे युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्म्मानुकूलता से बल के सन्तानो को उत्पन्न कर इस ससार में नित्य क्रीडा करे ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्ज स्वरः ॥

*अब शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।**
**अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥**

पदार्थ—हे ( देव ) श्रेष्ठविद्या वाले ( अग्ने ) तेजस्वी विद्वन् ! ( ये ) जो ( तव ) आपके ( साधवः ) अभीष्ट साधनेवाले ( अश्वासः ) शिक्षित घोडे ( मन्यवे ) शत्रुओ के ऊपर क्रोध के लिये ( अरम् ) सामर्थ्य के साथ ( वहन्ति ) रथ आदि यानो को पहुँचाते हैं उन को ( हि ) निश्चय करके ( युक्ष्व ) सयुक्त कीजिये ॥३६॥

भावार्थ—राजादि मनुष्यो को चाहिए कि वसन्त ऋतु में पहिले घोडो को शिक्षा दे और रथियो को रथों पर नियुक्त कर के शत्रुओ के जीतने के लिए यात्रा करें ॥ ३६ ॥

युक्ष्वा हीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

*अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽअश्वाँ२ऽअग्ने रथीरिव ।**
**नि होता पूर्व्यः सदः ॥ ३७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरुष ! ( **पूर्व्य** ) पूर्व विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त ( **होता** ) दानशील आप ( **देवहूतमान्** ) विद्वानों से स्पर्द्धा वा शिक्षा किये ( **अश्वान्** ) घोड़ों को ( **रथीरिव** ) शत्रुओं के साथ बहुत रथादि सेना अङ्गयुक्त योद्धा के समान ( **यक्ष्व** ) युक्त कीजिये ( **हि** ) निश्चय करके न्यायासन पर ( **निषद** ) निरन्तर स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिए कि बड़े सेना के अङ्गयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करें और सभापति आदि को चाहिए कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय किया करें ॥ ३७ ॥

**सम्यक स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सम्यक स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।**
**घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्येऽअग्नेः ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अग्ने** ) बिजुली के ( **मध्ये** ) बीच में वर्त्तमान ( **हिरण्ययः** ) तेजो भाग के समान तेजस्वी कीर्ति चाहने और विद्या की इच्छा रखने वाला मैं जो ( **घृतस्य** ) जल की ( **वेतस** ) वेगवाली ( **धारा** ) प्रवाहरूप ( **सरित** ) नदियों के ( **न** ) समान ( **अन्त** ) भीतर ( **हृदा** ) अन्तःकरण के ( **मनसा** ) विज्ञानरूप वाले चित्त से ( **पूयमाना** ) पवित्र हुई ( **धेना** ) वाणी ( **सम्यक** ) अच्छे प्रकार ( **स्रवन्ति** ) चलती हैं उन को ( **अभिचाकशीमि** ) सन्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूँ वैसे तुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक वा कम चलती शुद्ध हुई नदियां समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे ही विद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणी को प्राप्त होकर अन्यों को प्राप्त करावें ॥ ३८ ॥

**ऋचे त्वेत्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिए उस विषय का*
*उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।**
**अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३९ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् पुरुष ! जिस तुझ को ( **विश्वस्य** ) समस्त ( **भुवनस्य** ) संसार के सब पदार्थों ( **च** ) और ( **वैश्वानरस्य** ) संपूर्ण मनुष्यों में शोभायमान ( **अग्ने** ) बिजुलीरूप ( **वाजिनम** ) ज्ञानी लोगों का अवयवरूप ( **इदम** ) यह विज्ञान ( **अभूत** ) प्रसिद्ध हुआ है उस ( **ऋचे** ) स्तुति के लिए ( **त्वा** ) तुझ को ( **रुचे** ) प्रीति के वास्ते ( **त्वा** ) तुझ को ( **भासे** ) विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ ( **त्वा** ) तुझ को और ( **ज्योतिषे** ) न्याय के प्रकाश के लिए भी ( **त्वा** ) तुझ को हम लोग आश्रय करते हैं ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें ॥ ३९ ॥

**अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्द ।**
**ऋषभ स्वर ॥**

*फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ।**
**सहस्रदाऽअसि सहस्राय त्वा ॥ ४० ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् पुरुष ! जो आप ( **ज्योतिषा** ) विद्या के प्रकाश से ( **अग्नि** ) अग्नि के तुल्य ( **ज्योतिष्मान्** ) प्रशंसित प्रकाशयुक्त ( **वर्चसा** ) अपने तेज से ( **वर्चस्वान्** ) ज्ञान देनेवाले और ( **रुक्म** ) जैसे सुवर्ण सुख देवे वैसे असंख्य सुख के देने वाले ( **असि** ) हैं उन ( **त्वा** ) आप का ( **सहस्राय** ) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिए हम लोग सत्कार करें ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि और सूर्य्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों उन से विद्या पढ़के पूर्ण विद्या के ग्राहक होवें ॥ ४० ॥

**आदित्य गर्भमित्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर वे विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।**
**परिवृङ्ग्धि हरसा माभि मंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् पुरुष ! आप जैसे बिजुली ( **पयसा** ) जल से ( **सहस्रस्य** ) असंख्य पदार्थों की ( **प्रतिमाम** ) परिमाण करने हारे सूर्य के समान निश्चय करने हारी बुद्धि और ( **विश्वरूपम** ) सब रूप विषय को दिखाने हारे ( **गर्भम्** ) स्तुति के योग्य ( **आदित्यम्** ) सूर्य्य को धारण करती है वैसे अन्तःकरण को ( **समङ्ग्धि** ) अच्छे प्रकार शोधिये ( **हरसा** ) प्रज्वलित तेज से रोगों को ( **परि** ) सब ओर से ( **वृङ्ग्धि** ) हटाइये और ( **चीयमान** ) वृद्धि को प्राप्त हो के ( **शतायुषम** ) सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को ( **कृणुहि** ) कीजिये और कभी ( **मा** ) मत ( **अभिमंस्था** ) अभिमान कीजिये ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग सुगन्धित पदार्थों के होम से सूर्य्य के प्रकाश जल और वायु को शुद्ध कर और रोग रहित होकर सौ वर्ष जीने वाले सन्तानों को उत्पन्न करो जैसे विद्युत् अग्नि से बनाये हुए सूर्य्य से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्या वाले सन्तान सुख दिखाने हारे होते हैं इस से कभी अभिमानी होके विषयासक्ति से विद्या और आयु का विनाश मत किया करो ॥ ४१ ॥

**वातस्य जूतिमित्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये ।**
**शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) तेजस्विन् विद्वन् ! आप ( **परमे व्योमन्** ) सर्वव्याप्त उत्तम आकाश में ( **वातस्य** ) वायु के ( **मध्ये** ) मध्य में ( **जूतिम्** ) वेगरूप ( **अश्वम्** ) अश्व को ( **सरिरस्य** ) जलमय ( **वरुणस्य** ) उत्तम समुद्र के ( **नाभिम** ) बन्धन को और ( **नदीनाम्** ) नदियों के प्रभाव से ( **जज्ञानम्** ) प्रकट हुए ( **शिशुम्** ) बालक के तुल्य वर्त्तमान ( **हरिम्** ) नील वर्णयुक्त ( **अद्रिबुध्नम्** ) सूक्ष्म मेघ को ( **मा** ) मत ( **हिंसी** ) नष्ट कीजिये ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि प्रमाद को छोड़ के आकाश में वर्त्तमान वायु के वेग और वर्षा के प्रबन्धरूप मेघ का विनाश न करके अपनी अपनी अवस्था को बढ़ावें ॥ ४२ ॥

**अजस्रमित्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर वह विद्वान् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।**
**स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं ( **पर्वभि** ) पूर्ण साधनों युक्त ( **नमोभि** ) अन्नों के साथ वर्त्तमान ( **इन्दुम्** ) जलरूप ( **अरुषम** ) घोड़े के सदृश ( **भुरण्युम्** ) पोषण करनेवाली ( **पूर्वचित्तिम** ) प्रथम निमित्त ( **अग्निम** ) बिजुली को ( **अजस्रम्** ) निरन्तर ( **ईडे** ) अधिकता से खोजता हूँ उस को ( **ऋतुशः** ) प्रति ऋतु में ( **कल्पमान** ) समर्थ होके करता हुआ ( **अदितिम** ) अखण्डित ( **विराजम्** ) विविध प्रकार के पदार्थों से शोभायमान ( **गाम** ) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूँ वैसे ही ( **स** ) सो आप इस अग्नि और इस पृथिवी को ( **मा** ) मत ( **हिंसी** ) नष्ट कीजिये ॥४३॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अग्नि जल और अन्न का सेवन करके राज्य और पृथिवी की सदैव रक्षा करें जिससे सब सुख प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

**वरूत्रीमित्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर उस विद्वान को क्या नहीं करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् ।**
**महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरुष ! आप ( **त्वष्टु** ) छेदनकर्त्ता सूर्य्य के ( **वरूत्रीम्** ) ग्रहण करने योग्य ( **वरुणस्य** ) जल की ( **नाभिम्** ) रोकने हारी ( **परस्मात** ) श्रेष्ठ ( **रजस** ) लोक से ( **जज्ञानाम्** ) उत्पन्न हुई ( **असुरस्य** ) मेघ की ( **मायाम्** ) जतानेवाली बिजुली को और ( **साहस्रीम्** ) असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने हारी ( **अविम्** ) रक्षा आदि का निमित्त ( **परमे** ) सब से उत्तम ( **व्योमन्** ) आकाश के समान व्याप्त जगदीश्वर में वर्त्तमान ( **महीम्** ) विस्तारयुक्त पृथिवी को ( **मा** ) मत ( **हिंसी** ) नष्ट कीजिये ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिए कि जो यह पृथिवी उत्तम कारण से उत्पन्न हुई सूर्य्य जिसका आकर्षणकर्त्ता जल का आधार मेघ का निमित्त असंख्य सुख देने हारी परमेश्वर ने रची है उसको गुण कर्म और स्वभाव से जानके सुख के लिए उपयुक्त करें ॥ ४४ ॥

**यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।**
**येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् जन ! ( **यः** ) जो ( **पृथिव्याः** ) पृथिवी के ( **शोकात्** ) सुखाने हारे अग्नि ( **उत, वा** ) अथवा ( **दिवः** ) सूर्य्य से ( **अग्नेः** ) बिजुलीरूप अग्नि से ( **अग्निः** ) प्रत्यक्ष अग्नि ( **अध्यजायत** ) उत्पन्न होता है ( **येन** ) जिस से ( **विश्वकर्म्मा** ) सब कर्मों का आधार ईश्वर ( **प्रजाः** ) प्रजाओं को ( **परि** ) सब ओर से ( **जजान** ) रचता है ( **तम्** ) उस अग्नि को ( **ते** ) तेरा ( **हेडः** ) क्रोध ( **परिवृणक्तु** ) सब प्रकार से छेदन करे ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—हे विद्वानो ! तुम लोग जो अग्नि पृथिवी को फाड़ के और जो सूर्य्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को रक्षित रक्खो और जिस अग्नि से ईश्वर सब की रक्षा करता है उस अग्नि की विद्या जानो ॥ ४५ ॥

**चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।**
**आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ४६ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! आप लोग जो जगदीश्वर ( **देवानाम्** ) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के बीच ( **चित्रम्** ) आश्चर्य्यरूप ( **अनीकम्** ) सेना के समान किरणों से युक्त ( **मित्रस्य** ) प्राण ( **वरुणस्य** ) उदान और ( **अग्नेः** ) प्रसिद्ध अग्नि के ( **चक्षुः** ) दिखाने वाले ( **सूर्यः** ) सूर्य्य के समान ( **उदगात्** ) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान ( **जगतः** ) चेतन ( **च** ) और ( **तस्थुषः** ) जड़ जगत् का ( **आत्मा** ) अन्तर्यामी हो के ( **द्यावापृथिवी** ) प्रकाश अप्रकाशरूप जगत् और ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश को ( **आ** ) अच्छे प्रकार ( **अप्राः** ) व्याप्त हो रहा है उसी जगत् के रचने पालन करने और संहार प्रलय करने हारे व्यापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो ॥ ४६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह जगत् ऐसा नहीं कि जिस का कर्त्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे जो ईश्वर सब का अन्तर्यामी सब जीवों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है उसी की उपासना से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होवें ॥ ४६ ॥

**इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः ।**
**मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।**
**मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए ( **मेधाय** ) सुख की प्राप्ति के लिए ( **चीयमानः** ) बढ़े हुए ( **सहस्राक्षः** ) हजारह प्रकार की दृष्टि वाले राजन् ! तू ( **इमम्** ) इस ( **द्विपादम्** ) दो पगवाले मनुष्यादि और ( **मेधम्** ) पवित्रकारक फलप्रद ( **मयुम्** ) जंगली ( **पशुम्** ) गवादि पशु जीव को ( **मा** ) मत ( **हिंसीः** ) मारा कर उस ( **पशुम्** ) पशु की ( **जुषस्व** ) सेवा कर ( **तेन** ) उस पशु से ( **चिन्वानः** ) बढ़ता हुआ तू ( **तन्वः** ) शरीर में ( **निषीद** ) निरन्तर स्थिर हो यह ( **ते** ) तेरे से ( **शुक्** ) शोक ( **मयुम्** ) शस्यादिनाशक जंगली पशु को ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त होवे ( **ते** ) तेरे ( **यम्** ) जिस शत्रु से हम लोग ( **द्विष्मः** ) द्वेष करें ( **तम्** ) उस को ( **शुक्** ) शोक ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त होवे ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—कोई भी मनुष्य सब के उपकार करने हारे पशुओं को कभी न मारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार लेके सब मनुष्यों को आनन्द देवें । जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उनको राजपुरुष मारें और बन्धन करें ॥ ४७ ॥

**इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर यह मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।**
**गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।**
**गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! तू ( **वाजिनेषु** ) संग्राम के कामों में ( **इमम्** ) इस ( **एकशफम्** ) एकखुरयुक्त ( **कनिक्रदम्** ) शीघ्र विकल व्यथा को प्राप्त हुए ( **वाजिनम्** ) वेगवाले ( **पशुम्** ) देखने योग्य घोड़े आदि पशु को ( **मा हिंसीः** ) मत मार । मैं ईश्वर ( **ते** ) तेरे लिये ( **यम्** ) जिस ( **आरण्यम्** ) जङ्गली ( **गौरम्** ) गौरपशु की ( **दिशामि** ) शिक्षा करता हूँ ( **तेन** ) उसके रक्षण से ( **चिन्वानः** ) वृद्धि को प्राप्त हुआ ( **तन्वः** ) शरीर में ( **निषीद** ) निरन्तर स्थिर हो ( **ते** ) तेरे से ( **गौरम्** ) श्वेत वर्ण वाले पशु के प्रति ( **शुक्** ) शोक ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त होवे और ( **यम्** ) जिस शत्रु को हम लोग ( **द्विष्मः** ) द्वेष करें ( **तम्** ) उसको ( **ते** ) तुझसे ( **शुक्** ) शोक ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी न मारें जिनके मारने से जगत् की हानि और न मारने से सबका उपकार होता है उनका सदैव पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उनको मारें ।

**इमं साहस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये ।**
**घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।**
**गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।**
**गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन् ! तू ( **जनाय** ) मनुष्यादि प्राणी के लिये ( **इमम्** ) इस ( **साहस्रम्** ) असंख्य सुखों का साधन ( **शतधारम्** ) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त ( **व्यच्यमानम्** ) अनेक प्रकार से पालन के योग्य ( **उत्सम्** ) कुएं के समान रक्षा करनेहारे वीर्य्यसेचक बैल और ( **घृतम्** ) घी को ( **दुहानाम्** ) पूर्ण करती हुई ( **अदितिम्** ) नहीं मारने योग्य गौ को ( **मा हिंसीः** ) मत मार और ( **ते** ) तेरे राज्य में जिस ( **आरण्यम्** ) वन में रहने वाले ( **गवयम्** ) गौ के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उसको ( **अनुदिशामि** ) उपदेश करता हूँ ( **तेन** ) उसके मारने से सुरक्षित अन्न से ( **परमे** ) उत्कृष्ट ( **व्योमन्** ) सर्वत्र व्यापक परमात्मा और ( **सरिरस्य** ) विस्तृत व्यापक आकाश के ( **मध्ये** ) मध्य में ( **चिन्वानः** ) वृद्धि को प्राप्त हुआ तू ( **तन्वः** ) शरीर के मध्य में ( **निषीद** ) निवास कर ( **ते** ) तेरा ( **शुक्** ) शोक ( **तम्** ) उस ( **गवयम्** ) रोझ को ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त होवे और ( **यम्** ) जिस ( **ते** ) तेरे शत्रु का ( **द्विष्मः** ) हम लोग द्वेष करें उसको भी ( **शुक्** ) शोक ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त होवे ॥ ४९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि का काम जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिनके दूध आदि से प्रजा की रक्षा होती है उनको कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उनको राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जंगल में रहनेवाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥ ४९ ॥

**इममूर्णायुमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।**
**त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।**
**उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।**
**उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्या को प्राप्त हुए राजन् ! तू ( **वरुणस्य** ) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के ( **नाभिम्** ) संयोग करने हारे ( **इमम्** ) इस ( **द्विपदाम्** ) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि ( **चतुष्पदाम्** ) चार पगवाले ( **पशूनाम्** ) गाय आदि पशुओं की ( **त्वचम्** ) चमड़े से ढाकने वाले और ( **त्वष्टुः** ) सुखप्रकाशक ईश्वर की ( **प्रजानाम्** ) प्रजाओं के ( **प्रथमम्** ) आदि ( **जनित्रम्** ) उत्पत्ति के निमित्त ( **परमे** ) उत्तम ( **व्योमन्** ) आकाश में वर्त्तमान ( **ऊर्णायुम्** ) भेड़ आदि को ( **मा हिंसीः** ) मत मार ( **ते** ) तेरे लिये मैं ईश्वर ( **यम्** ) जिस ( **आरण्यम्** ) बनैले ( **उष्ट्रम्** ) हिंसक ऊंट को ( **अनुदिशामि** ) बतलाता हूँ ( **तेन** ) उससे सुरक्षित अन्नादि से ( **चिन्वानः** ) बढ़ता हुआ ( **तन्वः** ) शरीर में ( **निषीद** ) निवास कर ( **ते** ) तेरा ( **शुक्** ) शोक उस जंगली ऊंट को ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त हो और जिस द्वेषीजन से हम लोग ( **द्विष्मः** ) अप्रीति करें ( **तम्** ) उसको ( **ते** ) तेरा ( **शुक्** ) शोक ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त होवे ॥ ५० ॥

**भावार्थ**—हे राजन् ! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होती हैं और जो ऊँट भार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं उनको जो दुष्टजन मारा चाहे उनको संसार के दुःखदायी समझो और उनको अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये ॥ ५० ॥

**अज इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कौनसे पशु न मारने और कौनसे मारने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।**
**तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः ।**
**शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।**
**शुक् ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! तू जो ( हि ) निश्चित ( अजः ) बकरा ( अजनिष्ट ) उत्पन्न होता है ( सः ) वह ( अग्रे ) प्रथम ( जनितारम् ) उत्पादक को ( अपश्यत् ) देखता है जिससे ( मेध्याः ) पवित्र हुए ( देवाः ) विद्वान् ( अग्रम् ) उत्तम सुख और ( देवताम् ) दिव्यगुणों के ( उपायन् ) उपाय को प्राप्त होते हैं और जिससे ( रोहम् ) वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को ( आयन् ) प्राप्त होवें ( तेन ) उससे उत्तम गुणों उत्तम सुख तथा ( तेन ) उससे वृद्धि को प्राप्त हो जो ( आरण्यम् ) बनैली ( शरभम् ) शेही ( ते ) तेरी प्रजा को हानि देने वाली है उसको ( अनुदिशामि ) बतलाता हूँ ( तेन ) उससे बचाये हुए पदार्थ से ( चिन्वानः ) बढ़ता हुआ ( तन्वः ) शरीर में ( निषीद ) निवास कर और ( तम् ) उस ( शरभम् ) शल्यकी को ( ते ) तेरा ( शुक् ) शोक ( ऋच्छतु ) प्राप्त हो और ( ते ) तेरे ( यम् ) जिस शत्रु से हम लोग ( द्विष्मः ) द्वेष करें उसको ( शोकात् ) शोकरूप ( अग्नेः ) अग्नि से ( शुक् ) शोक अर्थात् शोक से बढ़ कर शोक अत्यन्तशोक ( ऋच्छतु ) प्राप्त होवे ॥ ५१ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि बकरे और मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें और इनकी रक्षा करके उपकार के लिये संयुक्त करें और जो अच्छे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हों उनको शीघ्र ताड़ना देवें । हां खेती को उजाड़ने हारे स्याही आदि पशु हैं उनको प्रजा की रक्षा के लिये मारें ॥ ५१ ॥

**त्वं यविष्ठेत्यस्योशना ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर कैसे पशुओं की रक्षा करना और हनना चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥५२॥**

**पदार्थ**—हे ( यविष्ठ ) अत्यन्त युवा ! ( त्वम् ) तू रक्षा किये हुये इन पशुओं से ( दाशुषः ) सुखदाता ( नॄन् ) धर्मरक्षक मनुष्यों की ( पाहि ) रक्षा कर इन ( गिरः ) सत्य वाणियों को ( शृणुधि ) सुन और ( त्मना ) अपने आत्मा से मनुष्य ( उत ) और पशुओं के ( तोकम् ) बच्चों की ( रक्ष ) रक्षा कर ॥५२॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते हैं और कृपामय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥५२॥

**अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरे त्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । गायत्रेणेत्युत्तरस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वाऽयने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! जैसे शिक्षा करने वाला मैं ( अपाम् ) प्राणों की रक्षा के निमित्त ( एमन् ) गमनशील वायु में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) स्थापित करता हूँ ( अपाम् ) जलों की ( ओद्मन् ) आर्द्रतायुक्त ओषधियों में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) स्थापन करता हूँ ( अपाम् ) प्राप्त हुये काष्ठों में ( भस्मन् ) राख में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) संयुक्त करता हूँ ( अपाम् ) व्याप्त हुये बिजुली आदि अग्नि के ( ज्योतिषि ) प्रकाश में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) नियुक्त करता हूँ ( अपाम् ) अवकाश वाले ( अयने ) स्थान में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) बैठाता हूँ ( सदने ) स्थिति के योग्य ( अर्णवे ) प्राणविद्या में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) संयुक्त करता हूँ ( सदने ) गमनशील ( समुद्रे ) मन के विषय में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) सम्बद्ध करता हूँ ( सदने ) प्राप्त होने योग्य ( सरिरे ) वाणी के विषय में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) संयुक्त करता हूँ ( अपाम् ) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी ( क्षये ) घर में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) स्थापित करता हूँ ( अपाम् ) अनेक प्रकार के व्याप्त शब्दों के सम्बन्धी ( सधिषि ) उस पदार्थ में कि जिससे अनेक शब्दों के समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) स्थित करता हूँ ( अपाम् ) जलों के ( सदने ) अन्तरिक्ष रूप स्थान में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) स्थापित करता हूँ ( अपाम् ) जलों के ( सधस्थे ) तुल्यस्थान में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) स्थापित करता हूँ ( अपाम् ) जलों के ( योनौ ) समुद्र में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) नियुक्त करता हूँ ( अपाम् ) जलों की ( पुरीषे ) रेती में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) नियुक्त करता हूँ ( अपाम् ) जलों के ( पाथसि ) अन्न में ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) प्रेरणा करता हूँ ( गायत्रेण ) गायत्री छन्द से निकले ( छन्दसा ) स्वतन्त्र अर्थ के साथ ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) नियुक्त करता हूँ ( त्रैष्टुभेन ) त्रिष्टुप् मन्त्र से विहित ( छन्दसा ) शुद्ध अर्थ के साथ ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) नियुक्त करता हूँ ( जागतेन ) जगती छन्द में कहे ( छन्दसा ) आनन्ददायक अर्थ के साथ ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) नियुक्त करता हूँ ( आनुष्टुभेन ) अनुष्टुप् मन्त्र में कहे ( छन्दसा ) शुद्ध अर्थ के साथ ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) प्रेरणा करता हूँ और ( पाङ्क्तेन ) पङ्क्ति मन्त्र से प्रकाशित हुए ( छन्दसा ) निर्मल अर्थ के साथ ( त्वा ) तुझको ( सादयामि ) प्रेरित करता हूँ वैसे ही तू वर्त्तमान रह ॥५३॥

**भावार्थ**—विद्वानों को चाहिये कि सब पुरुषों को और सब स्त्रियों को वेद पढ़ा और जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके उनको उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें ॥५३॥

**अयं पुर इत्यस्योशना ऋषिः । प्राणा देवता । स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब मनुष्यों को सृष्टि से कौन कौन उपकार लेने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जैसे ( अयम् ) यह ( पुरो भवः ) प्रथम होनेवाला अग्नि है ( तस्य ) उसका ( भौवायनः ) सिद्ध कारण से रचा हुआ ( प्राणः ) जीवन का हेतु प्राण ( प्राणायनः ) प्राणों की रचना का हेतु ( वसन्तः ) सुगन्धि आदि में बसाने हारा वसन्त ऋतु ( वासन्ती ) वसन्त ऋतु का जिसमें व्याख्यान हो वह ( गायत्री ) गाते हुए का रक्षक गायत्रीमन्त्रार्थ ईश्वर ( गायत्र्यै ) गायत्री मन्त्र का ( गायत्रम् ) गायत्री छन्द ( गायत्रात् ) गायत्री से ( उपांशुः ) समीप से ग्रहण किया जाय ( उपांशोः ) उस जप से ( त्रिवृत् ) कर्म उपासना और ज्ञान के सहित वर्त्तमान फल ( त्रिवृतः ) उस तीन प्रकार के फल से ( रथन्तरम् ) रमणीय पदार्थों से तारने हारा सुख और ( वसिष्ठः ) अतिशय करके निवास का हेतु ( ऋषिः ) सुख प्राप्त कराने हारा विद्वान् ( प्रजापतिगृहीतया ) अपने सन्तानों के रक्षक पति का ग्रहण करने वाली ( त्वया ) तेरे साथ ( प्रजाभ्यः ) सन्तानोत्पत्ति के लिये ( प्राणम् ) बलयुक्त जीवन का ग्रहण करते हैं वैसे तेरे साथ मैं सन्तान होने के लिये बल का ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ ॥५४॥

**भावार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! तुमको योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों को उपयोग में ला के परस्पर प्रीति के साथ अति विषय सेवन को छोड़ और सब संसार से बल का ग्रहण करके सन्तानों को उत्पन्न करो ॥५४॥

**अयं दक्षिणेत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद्भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब मनुष्यों को ग्रीष्म ऋतु में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारꣳ स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जैसे ( दक्षिणा ) दक्षिण दिशा से ( अयम् ) यह ( विश्वकर्मा ) सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलता है ( तस्य ) उस वायु के योग से ( वैश्वकर्मणम् ) जिससे सब कर्म सिद्ध होते हैं वह ( मनः ) विचारस्वरूप प्रेरक मन ( मानसः ) मन की गर्मी से उत्पन्न के तुल्य ( ग्रीष्मः ) रसों का नाशक ग्रीष्म ऋतु ( ग्रैष्मी ) ग्रीष्म ऋतु के व्याख्यान वाला ( त्रिष्टुप् ) त्रिष्टुप् छन्द ( त्रिष्टुभः ) त्रिष्टुप् छन्द के ( स्वारम् ) ताप से हुआ तेज ( स्वारात् ) और तेज से ( अन्तर्यामः ) मध्याह्न के प्रहर में विशेष दिन और ( अन्तर्यामात् ) मध्याह्न के विशेष दिन से ( पञ्चदशः ) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी ( पञ्चदशात् ) उस पूर्णमासी से ( बृहत् ) बड़ा ( भरद्वाजः ) मन वा विज्ञान की पुष्टि और धारण का निमित्त ( ऋषिः ) शब्दज्ञान प्राप्त कराने हारा कान ( प्रजापतिगृहीतया ) प्रजापालक पति राजा से ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है वैसे मैं ( त्वया ) तेरे साथ ( प्रजाभ्यः ) प्रजाओं के लिए ( मनः ) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण करता हूँ वैसे मैं ( त्वया ) तेरे साथ सब से विज्ञान का ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ ॥५५॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये प्राण का मन और मन का प्राण नियम करनेवाला है ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥५५॥

अय पश्चादित्यस्योशना ऋषि । प्रजापतिर्देवता । निचृद् धृतिश्छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*अब स्त्री पुरुष आपस में कैसा आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अय पश्चाद्विश्वव्यंचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचस वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूप जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५६॥**

पदार्थ—हे उत्तम मुख वाली स्त्री ! जैसे ( अयम् ) यह सूर्य्य के समान विद्वान् ( विश्वव्यचा ) सब संसार को चारों ओर के प्रकाश से व्यापक होकर प्रकट करता ( पश्चात् ) पश्चिम दिशा में वर्त्तमान ( तस्य ) उस सूर्य्य का ( वैश्वव्यचसम् ) प्रकाशक किरणरूप ( चक्षु ) नेत्र ( चाक्षुष्य ) नेत्र से देखने योग्य ( वर्षा ) जिस समय मेघ वर्षते हैं वह वर्षाऋतु ( वार्षी ) वर्षा ऋतु के व्याख्यान वाला ( जगती ) संसार में प्रसिद्ध जगती छन्द ( जगत्या ) जगती छन्द से ( ऋक्समम् ) ऋचाओं के सेवन का हेतु विज्ञान ( ऋक्समात् ) उस विज्ञान से ( शुक्र ) पराक्रम ( शुक्रात् ) पराक्रम से ( सप्तदश ) सत्रह तत्त्वों का पूरक विज्ञान ( सप्तदशात् ) उस विज्ञान से ( वैरूपम ) अनेक रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैसे ( जमदग्नि ) प्रकाशस्वरूप ( ऋषि ) रूप का प्राप्त करानेहारा नेत्र ( प्रजापतिगृहीतया ) सन्तानरक्षक पति से ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के साथ ( प्रजाभ्य ) प्रजाओं के लिये ( चक्षु ) विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करता है वैसे मैं तेरे साथ संसार से बल को ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ ॥५६॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि सामवेद के पढ़ने से सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् का स्वभाव से जान के सब सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से अच्छा देखें और चरित्र ग्रहण करें ॥५६॥

इदमुत्तरादित्यस्योशना ऋषि । प्रजापतिर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*अब शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकविꣳशएकविꣳशाद्वैराज विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्य ॥ ५७ ॥**

पदार्थ—हे सौभाग्यवती ! जो ( इदम ) यह ( उत्तरात् ) सब से उत्तर भाग में ( स्व ) सुखों का साधन दिशारूप है ( तस्य ) उसके ( सौवम ) सुख का साधन ( श्रोत्रम ) कान ( श्रौत्री ) कान की सम्बन्धी ( शरत ) शरदृतु ( शारदी ) शरद् ऋतु के व्याख्यान वाला (अनुष्टुप) प्रबुद्ध अर्थ वाला अनुष्टुप छन्द (अनुष्टुभ ) उससे ( ऐडम ) वाणी के व्याख्यान से युक्त मन्त्र ( ऐडात ) उस मन्त्र से (मन्थी) पदार्थों के मथन का साधन ( मन्थिन ) उस साधन से ( एकविंश ) इक्कीस विद्याओं का पूर्ण करनेहारा सिद्धान्त ( एकविंशात ) उस सिद्धान्त से ( वैराजम् ) विविध पदार्थों के प्रकाशक ( साम ) सामवेद के ज्ञान को प्राप्त हुआ (विश्वामित्र ) सब से मित्रता का हेतु ( ऋषि ) शब्द ज्ञान करानेहारा कान और ( प्रजाभ्य ) उत्पन्न हुई बिजुली आदि के लिये ( श्रोत्रम् ) सुनने के साधन का ग्रहण करते हैं वैसे ( प्रजापतिगृहीतया ) प्रजापालक पति ने ग्रहण की ( त्वया ) तेरे साथ में प्रसिद्ध हुई बिजुली आदि से ( श्रोत्रम ) सुनने के साधन कान को ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ ॥५७॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या पढ़ और विवाह करके बहुश्रुत होवें और सत्यवक्ता आप्त जनों से सुने बिना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इसलिए सदैव सज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और मिथ्या को छोड़ देवें ॥५७॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषि । प्रजापतिर्देवता । विराडाकृतिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर ॥

*अब हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ् मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥**

पदार्थ—हे विदुषी स्त्री ! जो ( इयम ) यह ( उपरि ) सब से ऊपर विराजमान ( मति ) बुद्धि है ( तस्य ) उस ( मात्या ) बुद्धि का होना वा कर्म ( वाक ) वाणी और ( वाच्य ) उसका होना वा कर्म ( हेमन्त ) गर्मी का नाशक हेमन्त ऋतु ( हैमन्ती ) हेमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला ( पङ्क्ति ) पङ्क्ति छन्द ( पङ्क्त्यै ) उस पङ्क्ति छन्द का ( निधनवत ) मृत्यु का प्रशंसित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग (निधनवत ) उससे ( आग्रयण ) प्राप्ति का साधन ज्ञान का फल ( आग्रयणात् ) उससे ( त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ ) बाहर और तेंतीस सामवेद के स्तोत्र ( त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम् ) उन स्तोत्रों से ( शाक्वररैवते) शक्ति और धन के साधक पदार्थों को जान के ( विश्वकर्मा ) सब सुकर्मों के सेवनेवाला ( ऋषि ) वेदार्थ का वक्ता पुरुष वर्त्तता है वैसे मैं ( प्रजापतिगृहीतया ) प्रजापालक पति ने ग्रहण की ( त्वया ) तेरे साथ ( प्रजाभ्य ) प्रजाओं के लिये ( वाचम् ) विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ ॥५८॥

भावार्थ—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी को सुन के अपनी बुद्धि बढ़ावें उस बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्त्तव्य कर्म और सामवेद के स्तोत्रों को जान महात्मा ऋषि लोगों के समान वर्त्ताव कर विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार करके अपने सन्तानों के लिये भी इन वाणियों का उपदेश सदैव किया करें ॥५८॥

इस अध्याय में ईश्वर स्त्रीपुरुष और व्यवहार का वर्णन करने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानो ॥

यह तेरहवां (१३) अध्याय समाप्त हुआ ॥

## ॥ अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

ध्रुवक्षितिरित्यस्योशना ऋषि । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*अब चौदहवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में स्त्रियों के लिए उपदेश किया है—*

**ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवाऽसि ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाऽश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१ ॥**

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो तू ( साधुया ) श्रेष्ठ धर्म के साथ (उख्यस्य) बटलोई में पकाये अन्न की सम्बन्धी और ( प्रथमम् ) विस्तारयुक्त ( केतुम् ) बुद्धि को ( जुषाणा ) प्रीति से सेवन करती हुई ( ध्रुवक्षिति ) निश्चल वास करने और ( ध्रुवयोनि ) निश्चल घर में रहने वाली ( ध्रुवा ) दृढ़धर्म्म से युक्त ( असि ) है सो तू ( ध्रुवम ) निश्चल ( योनिम ) घर में ( आसीद ) स्थिर हो ( त्वा ) तुझ को ( इह ) इस गृहाश्रम में ( अध्वर्यू ) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के चाहनेहारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) अच्छे प्रकार स्थापित करें ॥ १ ॥

भावार्थ—विदुषी पढ़ाने और उपदेश करनेहारी स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्मशिक्षा दे के इनको श्रेष्ठ करें ॥ १ ॥

कुलायिनीत्यस्योशना ऋषि । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्द ।
मध्यम स्वर ॥

*फिर पूर्वोक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है—*

**कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **स्योने** ) सुख करने हारी ! जिस ( **त्वा** ) तुझ को ( **वसवः** ) प्रथम कोटि के विद्वान् और ( **रुद्राः** ) मध्य कक्षा के विद्वान् ( **इमा** ) इन ( **ब्रह्म** ) विद्याधनों के देने वाले गृहस्थों की ( **अभि** ) अभिमुख होकर ( **गृणन्तु** ) प्रशंसा करें सो तू ( **सौभगाय** ) सुन्दर संपत्ति होने के लिये इस विद्याधन को ( **पीपिहि** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ( **घृतवती** ) बहुत जल और ( **पुरन्धिः** ) बहुत सुख धारण करने वाली ( **कुलायिनी** ) प्रशंसित कुल की प्राप्ति से युक्त हुई ( **पृथिव्याः** ) अपनी भूमि के ( **सदने** ) घर में ( **सीद** ) स्थित हो ( **अध्वर्यू** ) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहने वाले ( **अश्विना** ) सब विद्याओं में व्यापक और उपदेशक पुरुष ( **त्वा** ) तुझको ( **इह** ) इस गृहाश्रम में ( **सादयताम्** ) स्थापित करें ॥ २ ॥

**भावार्थ**—स्त्रियों को योग्य है कि साङ्गोपाङ्ग पूर्ण विद्या और धन ऐश्वर्य का सुख भोगने के लिये अपने सदृश पतियों से विवाह करके विद्या और सुवर्ण आदि धन को पावें सब ऋतुओं में सुख देने हारे घरों में निवास करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें ॥ २ ॥

**स्वदक्षैरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।**
**मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां सुम्ने बृहते रणाय । पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! तू जैसे ( **स्वैः** ) अपने ( **दक्षैः** ) बलों और भृत्यों के साथ वर्त्तता हुआ ( **देवानाम्** ) धर्मात्मा विद्वानों के मध्य में वर्त्तमान ( **बृहते** ) बड़े ( **रणाय** ) संग्राम के लिये ( **सुम्ने** ) सुख के विषय ( **दक्षपिता** ) बलों वा चतुर भृत्यों का पालन करने हारा होके विजय से बढ़ता है वैसे ( **इह** ) इस लोक के मध्य में ( **एधि** ) बढ़ती रह ( **सुम्ने** ) सुख में ( **आसीद** ) स्थिर हो और ( **पितेव** ) जैसे पिता ( **सूनवे** ) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देता है वैसे ( **सुशेवा** ) सुन्दर सुख से युक्त ( **स्वावेशा** ) अच्छी प्रीति से सुन्दर शुद्ध शरीर वस्त्र अलंकार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश करनेहारी होके ( **तन्वा** ) शरीर के साथ प्रवेश कर और ( **अध्वर्यू** ) गृहाश्रमादि यज्ञ की अपने लिये इच्छा करने वाले ( **अश्विना** ) पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन ( **त्वा** ) तुझ को ( **इह** ) इस गृहाश्रम में ( **सादयताम्** ) स्थित करें ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें । अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करें और नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीरों को संयुक्त करके वर्त्तें । विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेश करें और स्त्री भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें ॥ ३ ॥

**पृथिव्याः पुरीषमित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।**
**मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणाऽऽयजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो ( **स्तोमपृष्ठा** ) स्तुतियों को जानने की इच्छायुक्त तू ( **इह** ) इस गृहाश्रम में ( **पृथिव्याः** ) पृथिवी की ( **पुरीषम्** ) रक्षा ( **अप्सः** ) सुन्दररूप और ( **नाम** ) नाम और ( **घृतवती** ) बहुत घी आदि प्रशंसित पदार्थों से युक्त ( **असि** ) है ( **ताम्** ) उस ( **त्वा** ) तुझ को ( **विश्वे** ) सब ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **अभिगृणन्तु** ) सत्कार करें ( **इह** ) इसी गृहाश्रम में ( **सीद** ) वर्त्तमान रह और जिस ( **त्वा** ) तुझ को ( **अध्वर्यू** ) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रमादि यज्ञ चाहने वाले ( **अश्विना** ) व्यापक बुद्धि वाले और उपदेश करने हारे ( **इह** ) इस गृहाश्रम में ( **सादयताम्** ) स्थित करें सो तू ( **अस्मे** ) हमारे लिये ( **प्रजावत्** ) प्रशंसित सन्तान होने का साधन ( **द्रविणा** ) धन ( **यजस्व** ) दे ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—जो स्त्री गृहाश्रम की विद्या और क्रिया कौशल में विदुषी हो वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती है ॥ ४ ॥

**अदित्यास्त्वेत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।**
**मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है—*

**अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्री विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो ( **ते** ) तेरा ( **विश्वकर्मा** ) सब शुभ कर्मों से युक्त ( **ऋषिः** ) विज्ञानदाता पति मैं ( **अन्तरिक्षस्य** ) अन्तःकरण के नाशरहित विज्ञान का ( **धर्त्रीम्** ) धारण करने ( **दिशाम्** ) पूर्वादि दिशाओं की ( **विष्टम्भनीम्** ) आधार और ( **भुवनानाम्** ) सन्तानोत्पत्ति के निमित्त घरों की ( **अधिपत्नीम्** ) अधिष्ठाता होने से पालन करने वाली ( **त्वा** ) तुझको सूर्य्य की किरण के समान ( **अदित्याः** ) पृथिवी के ( **पृष्ठे** ) पीठ पर ( **सादयामि** ) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूँ जो तू ( **अपाम्** ) जलों की ( **ऊर्मिः** ) तरङ्ग के सदृश ( **द्रप्सः** ) आनन्दयुक्त ( **असि** ) है उस ( **त्वा** ) तुझ को ( **इह** ) इस गृहाश्रम में ( **अध्वर्यू** ) रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले ( **अश्विना** ) विद्या में व्याप्तबुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष ( **सादयताम्** ) स्थापित करें ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री अविनाशी सुख देनेहारी सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्ति वाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनन्दित हैं वे ही गृहाश्रम का धर्म पालन और उस की उन्नति के लिये समर्थ होती हैं तेरहवें अध्याय में जो ( मधुश्च० ) कहा है वहां से यहां तक वसन्त ऋतु के गुणों की प्रधानता से व्याख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

**शुक्रश्चेत्यस्योशना ऋषिः । ग्रीष्मर्तुर्देवता । निचृदुत्कृतिश्छन्दः ।**
**षड्जः स्वरः ॥**

*फिर भी ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है—*

**शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे ( **मम** ) मेरे ( **ज्यैष्ठ्याय** ) प्रशंसा के योग्य होने के लिये जो ( **शुक्रः** ) शीघ्र धूल की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को मलिन करने हारा ज्येष्ठ ( **च** ) और ( **शुचिः** ) पवित्रता का हेतु आषाढ़ ( **च** ) ये दोनों मिल के प्रत्येक ( **ग्रैष्मौ** ) ग्रीष्म ( **ऋतू** ) ऋतु कहाते हैं । जिस ( **अग्नेः** ) अग्नि के ( **अन्तःश्लेषः** ) मध्य में कफ के रोग का निवारण ( **असि** ) होता है जिस से ग्रीष्म ऋतु के महीनों से ( **द्यावापृथिवी** ) प्रकाश और अन्तरिक्ष ( **कल्पेताम्** ) समर्थ होवें ( **आपः** ) जल ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थ हों ( **ओषधयः** ) यव वा सोमलता आदि ओषधियां और ( **अग्नयः** ) बिजुली आदि अग्नि ( **पृथक्** ) अलग अलग ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थ होवें । जैसे ( **समनसः** ) विचारशील ( **सव्रताः** ) सत्याचरणरूप नियमों से युक्त ( **अग्नयः** ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी जो ( **अन्तरा ग्रैष्मौ ऋतू अभिकल्पमानाः** ) सुख होकर समर्थ करते हुए ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **इन्द्रमिव** ) बिजुली के समान उन अग्नियों की विद्या में ( **अभिसंविशन्तु** ) सब ओर से अच्छे प्रकार प्रवेश करें वैसे ( **तया** ) उस ( **देवतया** ) परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों ( **इमे** ) इन ( **द्यावापृथिवी** ) प्रकाश और पृथिवी को ( **ध्रुवे** ) निश्चलस्वरूप से इन को भी ( **अङ्गिरस्वत्** ) अवयवों के कारणरूप रस के समान ( **सीदतम्** ) विशेष कर के ज्ञान कर प्रवर्त्तमान रहो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वसन्त ऋतु के व्याख्यान के पीछे ग्रीष्म ऋतु की व्याख्या करते हैं । हे मनुष्यो ! तुम लोग जो पृथिवी आदि पञ्चभूतों के शरीरसम्बन्धी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के विना ग्रीष्म ऋतु नहीं हो सकता उन को जान और उपयोग में लाके सब प्राणियों को सुख दिया करो ॥ ६ ॥

**सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः । सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिक्कृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः । सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरश्च ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि वा पुरुष ! जिस ( **त्वा** ) तुझको ( **इह** ) इस जगत् मे ( **अध्वयू** ) रक्षा करनेहारे ( **अश्विना** ) सब विद्याओं मे व्यापक पढ़ाने और उपदेश करनेवाले पुरुष और स्त्री ( **वैश्वानराय** ) सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त ( **अग्नये** ) अग्निविद्या के लिये ( **सादयताम्** ) नियुक्त करें और हम लोग भी जिस ( **त्वा** ) तुझको स्थापित करें सो तू ( **ऋतुभि** ) वसन्त और वर्षा आदि ऋतुओ क साथ ( **सजू** ) एकसी तृप्ति वा सेवा से युक्त ( **विधाभि** ) जलो के साथ ( **सजू** ) प्रीतियुक्त ( **देवै** ) अच्छे गुणों के साथ ( **सजू** ) प्रीतिवाली वा प्रीतिवाला और ( **वयोनाध** ) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दो क साथ सम्बन्ध के हेतु ( **देवै** ) दिव्य सुख देनेहारे प्राणो के साथ ( **सजू** ) समान सेवन से युक्त हो । हे पुरुषार्थयुक्त स्त्रि वा पुरुष ! जिस ( **त्वा** ) तुझको ( **इह** ) इस गृहाश्रम मे ( **वैश्वानराय** ) सब जगत् के नायक ( **अग्नये** ) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये ( **अध्वयू** ) रक्षक ( **अश्विना** ) सब विद्याओ मे व्याप्त अध्यापक और उपदेशक ( **सादयताम्** ) स्थापित करें और जिस ( **त्वा** ) तुझको हम लोग नियत करें सो तू ( **ऋतुभि** ) ऋतुओ के साथ ( **सजू** ) पुरुषार्थी ( **विधाभि** ) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणो की चेष्टाओ क साथ ( **सजू** ) समान सेवनवाले ( **वसुभि** ) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ ( **सजू** ) प्रीतियुक्त और ( **वयोनाधै** ) विज्ञान का सम्बन्ध करानहारे ( **देवै** ) सुन्दर विद्वानो के साथ ( **सजू** ) समान प्रीतिवाले हों । हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारिणी वा ब्रह्मचारी ! जिस ( **त्वा** ) तुझको ( **इह** ) इस ब्रह्मचर्याश्रम म ( **वैश्वानराय** ) सब मनुष्यों के सुख के साधन ( **अग्नये** ) शास्त्रो के विज्ञान के लिये ( **अध्वयू** ) पालनेहारे ( **अश्विना** ) पूर्ण विद्यायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग ( **सादयताम्** ) नियुक्त करें और जिस ( **त्वा** ) तुझको हम लोग स्थापित करें सो तू ( **ऋतुभि** ) ऋतुओ के साथ ( **सजू** ) अनुकूल सेवन वाले ( **विधाभि** ) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओ स ( **सजू** ) समान प्रीतिवाले ( **रुद्र** ) प्राण अपान, व्यान उदान समान नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनजय और जीवात्मा इन ग्यारहो के ( **सजू** ) अनुसार सेवा करनेहारे और ( **वयोनाधै** )वेदादि शास्त्रो के जनाने का प्रबन्ध करने हारे ( **देवै** ) विद्वानों के साथ ( **सजू** ) बराबर प्रीति वाले हो । हे पूर्णविद्यावाले स्त्री वा पुरुष ! जिस ( **त्वा** ) तुझको ( **इह** ) इस ससार मे ( **वैश्वानराय** ) सब मनुष्यो के लिय पूर्ण सुख के साथ ( **अग्नये** ) पूर्ण विज्ञान के लिये ( **अध्वयू** ) रक्षक ( **अश्विना** ) शीघ्र ज्ञानदाता लोग ( **सादयताम** ) नियत करें और जिस ( **त्वा** ) तुझको हम नियुक्त करें सो तू ( **ऋतुभि** ) ऋतुओ के साथ ( **सजू** ) अनुकूल आचरण वाले ( **विधाभि** ) विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ ( **सजू** ) समान प्रीतिवाले ( **आदित्य** ) वर्ष के बारह महीनो के साथ ( **सजू** ) अनुकूल आहारविहार युक्त और ( **वयोनाध** ) पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार के प्रबन्ध करनेहारे ( **देवै** ) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानो के ( **सजू** ) अनुकूल प्रीतिवाले हो । हे सत्य अर्थों का उपदेश करनेहारी स्त्री वा पुरुष ! जिस ( **त्वा** ) तुझको ( **इह** ) इस जगत् मे ( **वैश्वानराय** ) सब मनुष्यो के हितकारी ( **अग्नये** ) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये ( **अध्वयू** ) ब्रह्मविद्या के रक्षक ( **अश्विना** ) शीघ्र पढाने और उपदेश करनेहारे लोग ( **सादयताम्** ) स्थित करें और जिस ( **त्वा** ) तुझको हम लोग नियत करें सो तू ( **ऋतुभि** ) काल क्षण आदि सब अवयवो के साथ ( **सजू** ) अनुकूलसेवी ( **विधाभि** ) सुखो म व्यापक सब क्रियाओ के ( **सजू** ) अनुसार होकर ( **विश्व** ) सब ( **देवै** ) सत्योपदेशक पतियो के साथ ( **सजू** ) समान प्रीतिवाले और ( **वयोनाध** ) कामयमान जीवन का सम्बन्ध करानेहारे ( **देवै** ) परोपकार के लिये सत्य असत्य के जाननेवाले जनो के साथ ( **सजू** ) समान प्रीति वाले हों ॥७॥

**भावार्थ**—इस ससार म मनुष्य का जन्म पाके स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य्य-सेवन विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ गुण कर्मों म आप प्रवृत्त होकर जिन अन्य लोगो को प्रवृत्त करें वे उनम प्रवृत्त होकर परमेश्वर से लके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतुओ म आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी करें ॥ ७ ॥

**प्राणम्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषि । दम्पती देवते । निचृदतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय । अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे पते वा स्त्रि ! तू ( **उर्व्या** ) बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से ( **मे** ) मेरे ( **प्राणम्** ) नाभि से ऊपर को चलनेवाले प्राणवायु की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे** ) मेरे ( **अपानम्** ) नाभि के नीचे गुह्येन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे** ) मेरे ( **व्यानम्** ) विविध प्रकार की शरीर की संधियों मे रहने वाले व्यान वायु की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे**) मेरे ( **चक्षु** ) नेत्रो को ( **विभाहि** ) प्रकाशित कर ( **मे** ) मेरे ( **श्रोत्रम्** ) कानों को ( **श्लोकय** ) शास्त्रो के श्रवण से सयुक्त कर ( **अप** ) प्राणो को ( **पिन्व** ) पुष्ट कर ( **ओषधी** ) सोमलता वा यव आदि ओषधियो को ( **जिन्व** ) प्राप्त हो ( **द्विपात्** ) मनुष्यादि दो पगवाले प्राणियो की ( **अव** ) रक्षा कर ( **चतुष्पात्** ) चार पगवाले गौ आदि की ( **पाहि** ) रक्षा कर और जैसे सूर्य्य ( **दिव** ) अपने प्रकाश से ( **वृष्टिम्** ) वर्षा करता है वैसे घर के कार्यों को ( **एरय** ) अच्छे प्रकार प्राप्त कर ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस मे प्राण के समान प्रियाचरण शास्त्रों का सुनना, ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें ॥ ८ ॥

**मूर्धा वय इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषय । प्राजापत्यादयो देवता । पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्ति । पुरुष इत्युत्तरस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्दऽउक्षा वयः ककुप् छन्दऽऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥९॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि वा पुरुष ! ( **मूर्धा** ) शिर के तुल्य उत्तम ब्राह्मण का कुल ( **प्रजापति** ) प्रजा के रक्षक राजा के समान तू ( **वय** ) कामना के योग्य ( **मयन्दम्** ) सुखदायक ( **छन्द** ) बलयुक्त ( **क्षत्रम** ) क्षत्रिय कुल को प्रेरणा कर ( **विष्टम्भ** ) वैश्यो की रक्षा का हेतु ( **अधिपति** ) अधिष्ठाता पुरुष नृप क समान तू ( **वय** ) न्याय विनय को प्राप्त हुए ( **छन्द** ) स्वाधीन पुरुष को प्रेरणा कर ( **विश्वकर्म्मा** ) सब उत्तम कर्म करनेहारे ( **परमेष्ठी** ) सबके स्वामी राजा के समान तू ( **वय** ) चाहने योग्य ( **छन्द** ) स्वतन्त्रता को ( **एरय** ) बढाइये ( **वस्त** ) व्यवहारो से युक्त पुरुष के समान तू ( **वय** ) अनेक प्रकार के व्यवहारों मे व्यापी ( **विबलम** ) विविध बल के हेतु ( **छन्द** ) आनन्द को बढा ( **वृष्णि** ) सुख के सींचने वाले के सदृश तू ( **विशालम्** ) विस्तारयुक्त ( **वय** ) सुखदायक ( **छन्द** ) स्वतन्त्रता को बढ़ा ( **पुरुष** ) पुरुषार्थयुक्त जन के तुल्य तू ( **वय** ) चाहने योग्य ( **तन्द्रम** ) कुटुम्ब के धारणरूप कर्म और ( **छन्द** ) बल को बढ़ा ( **व्याघ्र** ) जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूंघता है उस जन्तु के तुल्य राजा तू ( **वय** ) चाहने योग्य ( **अनाधृष्टम्** ) दृढ ( **छन्द** ) बल का बढ़ा ( **सिंह** ) पशु आदि का मारनेहारे सिंह के समान पराक्रमी राजा तू ( **वय** ) पराक्रम के साथ ( **छदि** ) निरोध और ( **छन्द** ) प्रकाश को बढ़ा ( **पष्ठवाट** ) पीठ से बोझ उठानेवाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य तू ( **बृहती** ) बड़े ( **वय** ) बलयुक्त ( **छन्द** ) पराक्रम को प्रेरणा कर ( **उक्षा** ) सींचने हार बैल के तुल्य शूद्र तू ( **वय** ) अति बल का हेतु ( **ककुप** ) दिशाओ और ( **छन्द** ) आनन्द को बढा ( **ऋषभ** ) शीघ्रगन्ता पशु के तुल्य भृत्य तू ( **वय** ) बल के साथ ( **सतोबृहती** ) उत्तम बड़ी ( **छन्द** ) स्वतन्त्रता की प्रेरणा कर ॥९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से एरय पद की अनुवृत्ति आती है । स्त्री पुरुषो को चाहिये कि ब्राह्मण आदि वर्णों को स्वतन्त्र वेदादि शास्त्रो का प्रचार आलस्यादि त्याग और शत्रुओ का निवारण करके बड़े बल को सदा बढ़ाया करें ॥ ९ ॥

**अनड्वानित्यस्य विश्वदेव ऋषि । विद्वांसो देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽउष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि वा पुरुष ! ( **अनड्वान्** ) गौ और बैल के समान बलवान होके तू ( **पङ्क्ति** ) प्रकट ( **छन्द** ) स्वतन्त्र ( **वय** ) बल की प्रेरणा कर ( **धेनु** ) दूध देनेहारी गौ के समान तू ( **जगती** ) जगत् के उपकारक ( **छन्द** ) आनन्द की ( **वय** ) कामना को बढा ( **त्र्यवि** ) तीन भेड बकरी और गौ के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धियुक्त होके तू ( **त्रिष्टुप** ) कर्म्म उपासना और ज्ञान की स्तुति के हेतु ( **छन्द** ) स्वतन्त्र ( **वय** ) उत्पत्ति को बढ़ा ( **दित्यवाड** ) पृथिवी खोदने से उत्पन्न हुए जौ आदि को प्राप्त करानेहारी क्रिया के तुल्य तू ( **विराट** ) विविध प्रकाशयुक्त ( **छन्द** ) आनन्दकारक ( **वय** ) प्राप्ति को बढा ( **पञ्चावि** ) पांच इन्द्रियो की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू ( **गायत्री** ) गायत्री ( **छन्द** ) मन्त्र के ( **वय** ) विज्ञान को बढ़ा ( **त्रिवत्स** ) कर्म उपासना और ज्ञान को चाहनेहारे के तुल्य तू ( **उष्णिक** ) दु खो के नाशक ( **छन्द** ) स्वतन्त्र ( **वय** ) पराक्रम को बढा और ( **तुर्य्यवाट** ) चारो वेदो की प्राप्ति करानेहारे पुरुष के समान तू ( **अनुष्टुप** ) अनुकूल स्तुति का निमित्त ( **छन्द** ) सुखसाधक ( **वय** ) इच्छा को प्रतिदिन बढाया कर ॥१०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे खेती करनेहारे लोग बैल आदि साधनो की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके सबको सुख देते हैं वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥ १० ॥

**इन्द्राग्नी इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषय । इन्द्राग्नी देवते । भुरिगनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्राग्नीऽअव्यथमानामिष्टकां दृंहतं युवम् ।**

**पृष्ठेन द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षं च विबाधसे ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्राग्नी** ) बिजुली और सूर्य्य के समान वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! ( **युवम्** ) तुम दोनों ( **अव्यथमानाम्** ) जमी हुई बुद्धि को प्राप्त होके ( **इष्टकाम्** )

ईंट के समान गृहाश्रम को ( दृंहतम ) दृढ़ करो। जैसे ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमि ( पृष्ठेन ) पीठ से आकाश का धारे हैं वैसे तुम दुःख और शत्रुओं की बाधा करो। हे पुरुष ! जैसे तू इस अपनी स्त्री की पीड़ा को ( विबाधसे ) विशेष करके हटाता है वैसे यह स्त्री भी तेरी पीड़ा को हरा करे ॥११॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली और सूर्य्य जल वर्षा के ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं वैसे ही स्त्री पुरुष कुटुम्ब को बढ़ावें जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश को आवरण करते हैं वैसे गृहाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करें ॥११॥

**विश्वकर्मेत्यस्य विश्वकर्मर्षिः । वायुर्देवता । विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! ( विश्वकर्मा ) सम्पूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति जिस ( व्यचस्वतीम् ) प्रशंसित विज्ञान वा सत्कार से युक्त ( प्रथस्वतीम् ) उत्तम विस्तृत विद्या वाली ( अन्तरिक्षस्य ) प्रकाश के ( पृष्ठे ) एक भाग में ( त्वा ) तुझको ( सादयतु ) स्थापित करे सो तू ( विश्वस्मै ) सब ( प्राणाय ) प्राण ( अपानाय ) अपान ( व्यानाय ) व्यान और ( उदानाय ) उदानरूप शरीर के वायु तथा ( प्रतिष्ठायै ) प्रतिष्ठा ( चरित्राय ) और शुभ कर्मों के आचरण के लिए ( अन्तरिक्षम् ) जलादि को ( यच्छ ) दिया कर ( अन्तरिक्षम् ) प्रशंसित शुद्ध किये जल से युक्त अन्न और धनादि को ( दृꣳह ) बढ़ा और ( अन्तरिक्षम् ) मधुरता आदि गुणयुक्त रोगनाशक आकाशस्थ सब पदार्थों को ( मा हिꣳसीः ) नष्ट मत कर जिस ( त्वा ) तुझको ( वायुः ) प्राण के तुल्य प्रिय पति ( मह्या ) बड़ी ( स्वस्त्या ) सुखरूप क्रिया ( छर्दिषा ) प्रकाश और ( शन्तमेन ) अति सुखदायक विज्ञान से तुझको ( अभिपातु ) सब ओर से रक्षा करे सो तू ( तया ) उस ( देवतया ) दिव्य सुख देनेवाली क्रिया के साथ वर्त्तमान पतिरूप देवता के साथ ( अङ्गिरस्वत् ) व्यापक वायु के समान ( ध्रुवा ) निश्चल ज्ञान से युक्त ( सीद ) स्थिर हो ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिससे निरन्तर आनन्द बढ़े ॥१२॥

**राज्ञ्यसीत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । दिशो देवताः । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर क्या विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो तू ( प्राची ) पूर्व ( दिक् ) दिशा के तुल्य ( राज्ञी ) प्रकाशमान ( असि ) है ( दक्षिणा ) दक्षिण ( दिक् ) दिशा के समान ( विराट् ) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त ( असि ) है ( प्रतीची ) पश्चिम ( दिक् ) दिशा के सदृश ( सम्राट् ) चक्रवर्ती राजा के सदृश अच्छे सुख युक्त पृथिवी पर प्रकाशमान ( असि ) है ( उदीची ) उत्तर ( दिक् ) दिशा के तुल्य ( स्वराट् ) स्वयं प्रकाशमान ( असि ) है ( बृहती ) बड़ी ( दिक् ) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य ( अधिपत्नी ) घर में अधिकार को प्राप्त हुई ( असि ) है सो तू सब पति आदि को तृप्त कर ॥१३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिशा सब ओर से अभिव्याप्त बोध कराने हारी चञ्चलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभ गुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवे ॥१३॥

**विश्वकर्मेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वायुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है—*

**विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जिस ( ज्योतिष्मतीम् ) बहुत विज्ञान वाली ( त्वा ) तुझको ( विश्वस्मै ) सब ( प्राणाय ) प्राण ( अपानाय ) अपान और ( व्यानाय ) व्यान की पुष्टि के लिये ( अन्तरिक्षस्य ) जल के ( पृष्ठे ) ऊपरले भाग में ( विश्वकर्मा ) सब शुभ कर्मों का चाहनेहारा पति ( सादयतु ) स्थापित करे सो तू ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( ज्योतिः ) विज्ञान को ( यच्छ ) ग्रहण कर जो ( वायुः ) प्राण के समान प्रिय ( ते ) तेरा ( अधिपतिः ) स्वामी है ( तया ) उस ( देवतया ) देवस्वरूप पति के साथ ( ध्रुवा ) दृढ़ ( अङ्गिरस्वत् ) सूर्य्य के समान ( सीद ) स्थिर हो ॥१४॥

**भावार्थ**—स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो के शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिए अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देवे। यहाँ तक ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥१४॥

**नभश्चेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । ऋतवो देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब वर्षा ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है—*

**नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १५ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों जो ( नभः ) प्रबन्धित मेघों वाला श्रावण ( च ) और ( नभस्यः ) वर्षा का मध्यभागी भाद्रपद ( च ) ये दोनों ( वार्षिकौ ) वर्षा ( ऋतू ) ऋतु के महीने ( मम ) मेरे ( ज्यैष्ठ्याय ) प्रशंसित होने के लिए हैं जिन में ( अग्नेः ) उष्णता तथा ( अन्तःश्लेषः ) जिन के मध्य में शीत का स्पर्श ( असि ) होता है जिनके साथ ( द्यावापृथिवी ) आकाश और भूमि समर्थ होते हैं उनके भाग में तुम दोनों ( कल्पेताम् ) समर्थ हो जैसे ऋतु योग से ( आपः ) जल और ( ओषधयः ) ओषधियाँ वा ( अग्नयः ) अग्नि ( पृथक् ) जल से अलग समर्थ होते हैं वैसे ( सव्रताः ) एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम ( समनसः ) एक प्रकार का ज्ञान देने हारे ( अग्नयः ) तेजस्वी लोग ( कल्पन्ताम् ) समर्थ होवें ( ये ) जो ( द्यावापृथिवी ) आकाश और भूमि वर्षा ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं उन को ( वार्षिकौ ऋतू ) वर्षाऋतुरूप ( अभिकल्पमानाः ) सब ओर से सुख के लिए समर्थ करते हुए विद्वान् लोग ( इन्द्रमिव ) बिजुली के समान प्रकाश और बल को ( तया ) उस ( देवतया ) दिव्य वर्षा ऋतु के साथ ( अभिसंविशन्तु ) सम्मुख होकर अच्छे प्रकार स्थित होवें ( अन्तरा ) उन दोनों महीनों में प्रवेश करके ( अङ्गिरस्वत् ) प्राण के समान परस्पर प्रेमयुक्त ( ध्रुवे ) निश्चल ( सीदतम् ) रहो ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह सामग्री ग्रहण करें जिस से सब सुख होवें ॥ १५ ॥

**इषश्चेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । ऋतवो देवता । भुरिगुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब शरद ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में किया है—*

**इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १६ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( इषः ) चाहने योग्य क्वार महीना ( च ) और ( ऊर्जः ) सब पदार्थों के बलवान् होने का हेतु कार्तिक ( च ) ये दोनों ( शारदौ ) शरद् ( ऋतू ) ऋतु के महीने ( मम ) मेरे ( ज्यैष्ठ्याय ) प्रशंसित सुख होने के लिए होते हैं। जिन के ( अन्तःश्लेषः ) मध्य में ( किञ्चित् ) शीतस्पर्श ( असि ) होता है वे ( द्यावापृथिवी ) अवकाश और पृथिवी को ( कल्पेताम् ) समर्थ करें ( आपः ) जल और ( ओषधयः ) ओषधियाँ ( कल्पन्ताम् ) समर्थ होवें ( सव्रताः ) सब कार्यों के नियम करने हारे ( अग्नयः ) शरीर के अग्नि ( पृथक् ) अलग ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों ( ये ) जो ( अन्तरा ) बीच में ( समनसः ) मन के सम्बन्धी ( अग्नयः ) बाहर के भी अग्नि ( इमे ) इन ( द्यावापृथिवी ) आकाश भूमि को ( कल्पेताम् ) समर्थ करें ( शारदौ ) शरद् ( ऋतू ) ऋतु के दो महीनों में ( इन्द्रमिव ) परमैश्वर्य के तुल्य ( अभिकल्पमानाः ) सब ओर से आनन्द की इच्छा करते हुए ( देवाः ) विद्वान् लोग ( अभिसंविशन्तु ) प्रवेश करें ( तया ) उस ( देवतया ) दिव्य शरद ऋतु रूप देवता के नियम के साथ ( ध्रुवे ) निश्चल सुख वाले ( सीदतम् ) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोगों को ( ज्यैष्ठ्याय ) प्रशंसित सुख होने के लिए भी होने योग्य है ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं उन को यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥ १६ ॥

**आयुर्म इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । छन्दांसि देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे**

**पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री वा पुरुष ! तू शरद् ऋतु मे ( मे ) मेरी (**आयु** ) अवस्था की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे** ) मेरे ( **प्राणम्** ) प्राण की ( **पाहि** ) रक्षा कर (**मे**) मेरे ( **अपानम्** ) अपान वायु की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे** ) मेरे ( **व्यानम्** ) व्यान की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे** ) मेरे ( **चक्षु** ) नेत्रो की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे** ) मेरे ( **श्रोत्रम्** ) कानो की ( **पाहि** ) रक्षा कर ( **मे** ) मेरी ( **वाचम्** ) वाणी को ( **पिन्व** ) अच्छी शिक्षा से युक्त कर ( **मे** ) मेरे ( **मन** ) मन को ( **जिन्व** ) तृप्त कर ( **मे** ) मेरे ( **आत्मानम्** ) चेतन आत्मा की ( **पाहि** ) रक्षा कर और ( **मे** ) मेरे लिए ( **ज्योति** ) विज्ञान का ( **यच्छ** ) दान कर ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें ॥ १७ ॥

**मा छन्द इत्यस्य विश्वदेव ऋषि । छन्दांसि देवता । भुरिगतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **मा** ) परिमाण का हेतु ( **छन्द** ) आनन्द कारक ( **प्रमा** ) प्रमाण का हेतु बुद्धि ( **छन्द** ) बल प्रतिमा जिससे प्रतीति निश्चय की क्रिया हेतु ( **छन्द** ) स्वतन्त्रता ( **अस्रीवय** ) बल और कान्तिकारक अन्नादि पदार्थ ( **छन्द** ) बलकारी विज्ञान (**पङ्क्ति** ) पाँच अवयवो से युक्त योग (**छन्द** ) प्रकाश ( **उष्णिक** ) स्नेह ( **छन्द** ) प्रकाश ( **बृहती** ) बड़ी प्रकृति ( **छन्द** ) आश्रय ( **अनुष्टुप** ) सुखो का आलम्बन ( **छन्द** ) भोग ( **विराट** ) विविध प्रकार की विद्याओ का प्रकाश ( **छन्द** ) विज्ञान ( **गायत्री** ) गाने वाले का रक्षक ईश्वर ( **छन्द** ) उसका बोध ( **त्रिष्टुप** ) तीन सुखो का आश्रय ( **छन्द** ) आनन्द और ( **जगती** ) जिस मे सब जगत् चलता है उस ( **छन्द** ) पराक्रम को ग्रहण कर और जानके सबको सुखयुक्त करो ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते हैं वे सुखो से शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥

**पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेवर्षि । पृथिव्यादयो देवता । आर्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर वही उक्त विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दो ऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग जैसे ( **पृथिवी** ) भूमि ( **छन्द** ) स्वतन्त्र ( **अन्तरिक्षम** ) आकाश ( **छन्द** ) आनन्द (**द्यौ** ) प्रकाश ( **छन्द** ) विज्ञान ( **समा** ) वर्ष ( **छन्द** )बुद्धि ( **नक्षत्राणि** ) तारे लोक ( **छन्द** ) स्वतन्त्र ( **वाक**) वाणी ( **छन्द** ) सत्य ( **मन** ) मन ( **छन्द** ) निष्कपट ( **कृषि** ) जोतना (**छन्द** ) उत्पत्ति ( **हिरण्यम** ) सुवर्ण ( **छन्द** ) सुखदायी ( **गौ** ) गौ ( **छन्द** ) आनन्द हेतु ( **अजा** ) बकरी ( **छन्द** ) सुख का हेतु और ( **अश्व** ) घोड़ आदि ( **छन्द** ) स्वाधीन है वैसे विद्या विनय और धर्म के आचरण विषय मे स्वाधीनता से वर्त्तो ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुषो को चाहिये कि शुद्ध विद्या क्रिया स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थो के गुण कर्म और स्वभावो को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नो को प्राप्त हो और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य्य बढ़ावें ॥ १९ ॥

**अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषि । अग्न्यादयो देवता भुरिग् । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोगो को योग्य है कि ( **अग्नि** ) प्रसिद्ध अग्नि ( **देवता** ) दिव्य गुणो वाला ( **वातः** ) पवन ( **देवता** ) शुद्धगुणयुक्त (**सूर्य्य** ) सूर्य्य ( **देवता** ) अच्छे गुणो वाला ( **चन्द्रमा** ) चन्द्रमा ( **देवता** ) शुद्ध गुण युक्त ( **वसव** ) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कक्षा के विद्वान् ( **देवता** ) दिव्यगुण वाले ( **रुद्रा** ) प्राण आदि ११ ग्यारह वा मध्यम कक्षा के विद्वान् ( **देवता** ) शुद्ध गुणो वाले ( **आदित्या** ) बारह महीने वा उत्तम कक्षा के विद्वान् लोग ( **देवता** ) शुद्ध ( **मरुत** ) मननकर्त्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग ( **देवता** ) दिव्य गुण वाले (**विश्वे**) सब ( **देवता** ) अच्छे गुणो वाले विद्वान् मनुष्य वा दिव्य पदार्थ ( **देवता** ) देवसंज्ञा वाले हैं ( **बृहस्पति** ) बड़े वचन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा ( **देवता, इन्द्र** ) बिजुली वा उत्तम धन ( **देवता** ) दिव्य गुणयुक्त और ( **वरुण** ) जल वा श्रेष्ठ गुणो वाला पदार्थ ( **देवता** ) अच्छे गुणो वाला है इन को तुम निश्चय जानो ॥२०॥

**भावार्थ**—इस संसार मे जो अच्छे गुणो वाले पदार्थ हैं वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं जो देवतो का देवता होने से महादेव सब का धारक रचक रक्षक सब की व्यवस्था और प्रलय करने हारा सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है उस सब के अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें ॥ २० ॥

**मूर्द्धासीत्यस्य विश्वदेव ऋषि । विदुषी देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*विदुषी स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी ।**
**आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो तू सूर्य्य के तुल्य ( **मूर्द्धा** ) उत्तम ( **असि** ) है (**राड**) प्रकाशमान निश्चल के समान ( **ध्रुवा** ) निश्चल शुद्ध ( **असि** ) है ( **धरुणा**) पुष्टि करने हारी ( **धरणी** ) आधार रूप पृथिवी के तुल्य ( **धर्त्री** ) धारण करने हारी ( **असि** ) है उस ( **त्वा** ) तुझे ( **आयुषे** ) जीवन के लिये उस (**त्वा**) तुझे (**वर्चसे**) अन्न के लिये उस ( **त्वा** ) तुझे ( **कृष्यै** ) खेती होने के लिये और उस ( **त्वा** ) तुझ को ( **क्षेमाय** ) रक्षा होने के लिये मैं सब ओर से ग्रहण करता हूँ ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—जैसे स्थित उत्तमाङ्ग शिर से सब का जीवन राज्य से लक्ष्मी खेती से अन्न आदि पदार्थ और निवास से रक्षा होती है सो यह सब का आधारभूत माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है वैसे ही विदुषी स्त्री को होना चाहिये ॥२१॥

**यन्त्रीत्यस्य विश्वदेव ऋषि । विदुषी देवता । निचृदुष्णिक्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर स्त्री कैसी होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री ।**
**इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो तू ( **यन्त्री** ) यन्त्र के तुल्य स्थित ( **राट** ) प्रकाशयुक्त ( **यन्त्री** ) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान ( **असि** ) है ( **यमनी** ) आकर्षण शक्ति से नियम करने हारी ( **ध्रुवा** ) आकाश सदृश दृढ़ निश्चल ( **धर्त्री** ) सब शुभगुणो का धारण करनेवाली ( **असि** ) है ( **त्वा** ) तुझको ( **इषे** ) इच्छा सिद्धि के लिये ( **त्वा** ) तुझको ( **ऊर्जे** ) पराक्रम की प्राप्ति के लिये ( **त्वा** ) तुझको ( **रय्यै** ) लक्ष्मी के लिये और ( **त्वा** ) तुझको ( **पोषाय** ) पुष्टि होने के लिये मैं ग्रहण करता हूँ ॥ २२॥

**भावार्थ**—जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमायुक्त आकाश के समान निश्चल और यन्त्रकला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करनेवाली है ॥२२॥

**आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषि । यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । गर्भा इत्युत्तरस्य भुरिगतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब संवत्सर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणं एकविंशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस वर्त्तमान संवत् मे ( **आशु** ) शीघ्र ( **त्रिवृत** ) शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान ( **भान्त** ) प्रकाश ( **पञ्चदश** ) पन्द्रह प्रकार का ( **व्योमा** ) आकाश के समान विस्तारयुक्त ( **सप्तदश** ) सत्रह प्रकार का ( **धरुण** ) धारण गुण ( **एकविंश** ) इक्कीस प्रकार का ( **प्रतूर्त्ति** ) शीघ्र गति वाला ( **अष्टादश** ) अठारह प्रकार का ( **तप** ) सन्तापी गुण (**नवदश**) उन्नीस प्रकार का ( **अभीवर्त्त** ) सम्मुख वर्त्तनेवाला गुण ( **सविंश** ) इक्कीस प्रकार की ( **वर्च** ) दीप्ति ( **द्वाविंश** ) बाईस प्रकार का ( **सम्भरण** ) अच्छे प्रकार धारणकारक गुण ( **त्रयोविंश** ) तेईस प्रकार का ( **योनि** ) संयोग वियोगकारी गुण ( **चतुर्विंश** ) चौबीस प्रकार की ( **गर्भा** ) गर्भ धारण की शक्ति ( **पञ्चविंश** ) पच्चीस प्रकार का ( **ओज** ) पराक्रम ( **त्रिणव** ) सत्ताईस प्रकार का ( **क्रतु** ) कर्म्म वा बुद्धि ( **एकत्रिंश** ) एकतीस प्रकार की ( **प्रतिष्ठा** ) सब की स्थिति का निमित्त क्रिया ( **त्रयस्त्रिंश** ) तेंतीस प्रकार की (**ब्रध्नस्य**) बड़े ईश्वर की (**विष्टपम्**) व्याप्ति ( **चतुस्त्रिंश** ) चौंतीस प्रकार का ( **नाक** ) आनन्द ( **षट्त्रिंश** ) छत्तीस

# ॥ अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

**अग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है—*

**अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् नुद जातवेदः ।**
**अधि नो ब्रूहि सुमनाऽअहेडँस्तव स्याम शर्मँस्त्रिवरूथऽउद्भौ ॥१॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) राजन् वा सेनापति ! आप (**नः**) हमारे (**जातान्**) प्रसिद्ध (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**प्र, णुद**) दूर कीजिये । हे (**जातवेदः**) प्रसिद्ध बलवान् ! आप (**अजातान्**) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (**नुद**) प्रेरणा कीजिये और हमारा (**अहेडन्**) अनादर न करते हुए (**सुमनाः**) प्रसन्नचित्त आप (**नः प्रति**) हमारे प्रति (**अधि, ब्रूहि**) अधिक उपदेश कीजिये जिससे हम लोग (**तव**) आप के (**उद्भौ**) उत्तम पदार्थों से युक्त (**त्रिवरूथे**) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (**शर्मन्**) घर में (**स्याम**) सुखी होवें ॥१॥

**भावार्थ**—राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विश्वासपूर्वक राज्य में वसें ॥१॥

**सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सहसा जातान् प्र णुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।**
**अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयँ स्याम प्र णुदा नः सपत्नान् ॥२॥**

**पदार्थ**—हे (**जातवेदः**) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुये राजन् ! आप (**नः**) हमारे (**सहसा**) बल के सहित (**जातान्**) प्रसिद्ध हुए (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**प्रणुद**) जीतिये और उन (**प्रति अजातान्**) युद्ध में छिपे हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से प्रसिद्धों को (**नुदस्व**) पृथक् कीजिये तथा (**सुमनस्यमानः**) अच्छे प्रकार विचारते हुए आप (**नः**) हमारे लिये (**अधि, ब्रूहि**) अधिकता से विजय के विधान का उपदेश कीजिये (**वयम्**) हम लोग आप के सहायक (**स्याम**) होवें जिन (**नः**) हमारे (**सपत्नान्**) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (**प्रणुद**) मारें उन को हम लोग भी मारें ॥२॥

**भावार्थ**—राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड देवें और जो अपने सहायक हों उन का सत्कार करें ॥२॥

**षोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । दम्पती देवते ब्राह्मी । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब स्त्री पुरुष का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**षोडशी स्तोमऽओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिँश स्तोमो वर्चो द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥३॥**

**पदार्थ**—जो (**षोडशी**) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**ओजः**) पराक्रम (**द्रविणम्**) धन जो (**चतुश्चत्वारिंशः**) चवालीस संख्या को पूर्ण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (**स्तोमः**) स्तुति का साधन (**नाम**) प्रसिद्ध (**वर्चः**) पढ़ना और (**द्रविणम्**) बल को देती है । जो (**अग्नेः**) अग्नि की (**पुरीषम्**) पूर्ति को प्राप्त (**अप्सः**) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित (**असि**) हो उस (**त्वा**) पुरुष तथा (**ताम्**) स्त्री की (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अभिगृणन्तु**) प्रशंसा करें सो तू (**स्तोमपृष्ठा**) इष्ट स्तुतियों को जनाने वाली (**घृतवती**) प्रशंसित घी आदि पदार्थों से युक्त (**इह**) इस गृहाश्रम में (**सीद**) स्थित हो और (**अस्मे**) हमारे लिये (**प्रजावत्**) बहुत सन्तानों के हेतु (**द्रविणा**) धन को (**यजस्व**) दिया कर ॥३॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि सोलह कला रूप जगत् में विद्यारूप बल को करके और गृहाश्रम करके विद्यादानादि कर्मों को निरन्तर किया करें ॥३॥

**एवश्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दऽआच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दोऽअङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः ॥४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम प्रयत्न से (**एवः**) आनन्ददायक ज्ञान (**वरिवः**) सत्यसेवनरूप (**छन्दः**) सुखदायक (**शम्भूः**) सुख का अनुभव (**छन्दः**) आनन्दकारी (**परिभूः**) सब ओर से पुरुषार्थी (**छन्दः**) सत्य का प्रकाशक (**आच्छत्**) दोषों का हटाना (**छन्दः**) जीवन (**मनः**) सङ्कल्प विकल्पात्मक (**छन्दः**) प्रकाशकारी (**व्यचः**) शुभ गुणों की व्याप्ति (**छन्दः**) आनन्दकारक (**सिन्धुः**) नदी के तुल्य चलना (**छन्दः**) स्वतन्त्रता (**समुद्रः**) समुद्र के समान गम्भीरता (**छन्दः**) प्रयोजनसिद्धिकारी (**सरिरम्**) जल के तुल्य कोमलता (**छन्दः**) जल के समान शान्ति (**ककुप्**) दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल कीर्ति (**छन्दः**) प्रतिष्ठा देनेवाला (**त्रिककुप्**) अध्यात्मादि तीन सुखों को प्राप्त करनेवाला कर्म (**छन्दः**) आनन्दकारक (**काव्यम्**) दीर्घदर्शी कवि लोगों ने बनाया (**छन्दः**) प्रकाशक विज्ञानदायक (**अङ्कुपम्**) टेढ़ी गति वाला जल (**छन्दः**) उपकारी (**अक्षरपङ्क्तिः**) परलोक (**छन्दः**) आनन्दकारी (**पदपङ्क्तिः**) यह लोक (**छन्दः**) सुखसाधक (**विष्टारपङ्क्तिः**) सब दिशा (**छन्दः**) सुख का साधक (**क्षुरः**) छुरा के समान पदार्थों का छेदक सूर्य (**छन्दः**) विज्ञानस्वरूप (**भ्रजः**) प्रकाशमय (**छन्दः**) स्वच्छ आनन्दकारी पदार्थ सब के लिये सिद्ध करो ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करते से सब के प्रिय होना अच्छा मानते हैं वे सब सृष्टि के पदार्थों से सुख लेने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

**आच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सँस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्दऽएवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दोऽअङ्काङ्कं छन्दः । ५ ॥**

**पदार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि (**आच्छत्**) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करने हारा कर्म (**छन्दः**) प्रकाश (**प्रच्छत्**) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने वाला कर्म (**छन्दः**) उत्साह (**संयत्**) संयम (**छन्दः**) बल (**वियत्**) विविध यत्न का साधक (**छन्दः**) धैर्य (**बृहत्**) बहुत वृद्धि (**छन्दः**) स्वतन्त्रता (**रथन्तरम्**) समुद्ररूप संसार से पार करनेवाला पदार्थ (**छन्दः**) स्वीकार (**निकायः**) संयोग का हेतु वायु (**छन्दः**) स्वीकार (**विवधः**) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान अन्तरिक्ष (**छन्दः**) प्रकाशरूप (**गिरः**) भोगने योग्य अन्न (**छन्दः**) ग्रहण (**भ्रजः**) प्रकाशरूप अग्नि (**छन्दः**) ले लेना (**संस्तुप्**) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों को जनाने हारी वाणी (**छन्दः**) आनन्दकारक (**अनुष्टुप्**) सुनने के पीछे शास्त्रों को जानने हारी मन की क्रिया (**छन्दः**) उपदेश (**एवः**) प्राप्ति (**छन्दः**) प्रयत्न (**वरिवः**) विद्वानों की सेवा (**छन्दः**) स्वीकार (**वयः**) जीवन (**छन्दः**) स्वाधीनता (**वयस्कृत्**) अवस्थावर्द्धक जीवन के साधन (**छन्दः**) ग्रहण (**विष्पर्धाः**) विशेष करके जिससे ईर्ष्या करे वह (**छन्दः**) प्रकाश (**विशालम्**) विस्तीर्ण कर्म (**छन्दः**)

ग्रहण करना ( छवि ) विघ्नो का हटाना ( छन्द ) सुखो को पहुचाने वाला ( दूरोहणम् ) दु ख से चढने योग्य ( छन्द ) बल ( तन्द्रम् ) स्वतन्त्रता करना ( छन्द ) प्रकाश और ( अङ्काङ्कम ) गणितविद्या का ( छन्द ) सम्यक स्थापन करना स्वीकार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुडा के स्वाधीनता को निरन्तर स्वीकार करें ॥ ५ ॥

रश्मिनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । विद्वांसो देवता । विराडभिकृतिश्छन्द ।
ऋषभ स्वर ॥

*विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**रश्मिना सत्याय सत्य जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा धर्म जिन्वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्ष जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिन्व ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू ( रश्मिना ) किरणो से ( सत्याय ) वर्त्तमान में हुए सूर्य्य के तुल्य नित्य सुख और स्थूल पदार्थों के लिये ( सत्यम ) अव्यभिचारी कर्म को ( जिन्व ) प्राप्त हो ( प्रतिना ) उत्तम ज्ञान युक्त ( धर्मणा ) न्याय के आचरण से ( धर्मम ) धर्म को ( जिन्व ) जान ( अन्वित्या ) खोज के हेतु ( दिवा ) धर्म के प्रकाश से ( दिवम ) सत्य के प्रकाश को ( जिन्व ) प्राप्त हो ( सन्धिना ) सन्धिरूप ( अन्तरिक्षेण ) प्रकाश से ( अन्तरिक्षम ) अवकाश को ( जिन्व ) जान ( पृथिव्या ) भूगर्भविद्या के ( प्रतिधिना ) सम्बन्ध से ( पृथिवीम ) भूमि को ( जिन्व ) जान ( विष्टम्भेन ) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा ( वृष्ट्या ) वर्षा की विद्या से ( वृष्टिम् ) वर्षा को ( जिन्व ) जान ( प्रवया ) कान्तियुक्त ( अह्ना ) प्रकाश की विद्या से ( अह ) दिन को ( जिन्व ) जान ( अनुया ) प्रकाश के पीछे चलनेवाली ( रात्र्या ) रात्रि की विद्या से ( रात्रीम् ) रात्रि को ( जिन्व ) जान ( उशिजा ) कामनाओ से ( वसुभ्य ) अग्नि आदि आठ वसुओ की विद्या से ( वसून् ) उन अग्नि आदि वसुओ को ( जिन्व ) जान और ( प्रकेतेन ) उत्तम विज्ञान से ( आदित्येभ्य ) बारह महीनो की विद्या से ( आदित्यान् ) बारह महीनो को ( जिन्व ) तत्त्वस्वरूप से जान ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदार्थविद्या को जाने वैसे ही दूसरो के लिये भी उपदेश करें ॥ ६ ॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । विद्वांसो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सᳬसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू ( तन्तुना ) विस्तारयुक्त ( राय ) धन की ( पोषण ) पुष्टि से ( राय ) धन की ( पोषम ) पुष्टि को ( जिन्व ) प्राप्त हो ( ससर्पेण ) सम्यक प्राप्ति से ( श्रुताय ) श्रवण के लिये ( श्रुतम ) शास्त्र के सुनने को ( जिन्व ) प्राप्त हो ( एडेन ) अन्न के संस्कार और ( ओषधीभि ) यव तथा सोमलता आदि ओषधियो की विद्या से ( ओषधी ) ओषधियो को ( जिन्व ) प्राप्त हो ( उत्तमेन ) उत्तम धर्म के आचरणयुक्त ( तनूभि ) शुद्ध शरीरो से ( तनू ) शरीरो को ( जिन्व ) प्राप्त हो ( वयोधसा ) जीवन के धारण करने हारे ( आधीतेन ) अच्छे प्रकार पढे से ( आधीतम् ) सब ओर से धारण की हुई विद्या को ( जिन्व ) प्राप्त हो ( अभिजिता ) सन्मुख शत्रुओ को जीतने के हेतु ( तेजसा ) तीक्ष्ण कर्म से ( तेज ) दृढता को ( जिन्व ) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ के ऐश्वर्य को प्राप्त हो के सब प्राणियो का हित सिद्ध करें ॥ ७ ॥

प्रतिपदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । प्रजापतिर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे पुरुषार्थिनि विदुषी स्त्री ! जिस कारण तू ( प्रतिपत् ) प्राप्त होने के योग्य लक्ष्मी के तुल्य ( असि ) है इसलिये ( प्रतिपदे ) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( त्वा ) तुझ को जो ( अनुपत् ) पीछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य ( असि ) है जो उस ( अनुपदे ) विद्याऽध्ययन के पश्चात् प्राप्त होने योग्य ( त्वा ) तुझ को जो तू ( सम्पत ) सम्पत्ति के तुल्य ( असि ) है उस ( सम्पदे ) ऐश्वर्य के लिये ( त्वा ) तुझ को जो तू ( तेज ) तेज के समान ( असि ) है इसलिये ( तेजसे ) तेज होने के लिये ( त्वा ) तुझ को ग्रहण करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाले स्त्री पुरुष स्वयंवर विवाह से परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करके आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

त्रिवृदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । प्रजापतिर्देवता । विराड् ब्राह्मी जगती
छन्द । निषाद स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा सक्रमोऽसि सक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाऽधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! जो तू ( त्रिवृत ) सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अव्यक्त कारण का जानने हारा ( असि ) है उस ( त्रिवृते ) तीन गुणो से युक्त कारण के ज्ञान के लिये ( त्वा ) तुझ को जो तू ( प्रवृत ) जिस कार्यरूप से प्रवृत्त संसार का ज्ञाता ( असि ) है उस ( प्रवृते ) कार्यरूप संसार को जानने के लिये ( त्वा ) तुझ को जो तू ( विवृत ) जिस विविध प्रकार से प्रवृत्त जगत् का उपकारकर्त्ता ( असि ) है उस ( विवृते ) जगदुपकार के लिये ( त्वा ) तुझ को जो तू ( सवृत् ) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने हारा ( असि ) है उस ( सवृते ) साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये ( त्वा ) तुझ को जो तू ( आक्रम ) अच्छे प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला ( असि ) है उस ( आक्रमाय ) अन्तरिक्ष को जानने के लिये ( त्वा ) तुझ को जो तू ( सक्रम ) सम्यक पदार्थों को जानता ( असि ) है उस ( सक्रमाय ) पदार्थ ज्ञान के लिये ( त्वा ) तुझ को जो तू ( उत्क्रम ) ऊपर मेघमण्डल की गति का ज्ञाता ( असि ) है उस ( उत्क्रमाय ) मेघ मण्डल की गति जानने के लिये ( त्वा ) तुझ को तथा हे स्त्री ! जो तू ( उत्क्रान्ति ) सम विषम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या को जानने हारी ( असि ) है उस ( उत्क्रान्त्यै ) गमनविद्या के जानने के लिये ( त्वा ) तुझको सब प्रकार ग्रहण करते हैं ( अधिपतिना ) अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू ( ऊर्जा ) पराक्रम से ( ऊर्जम ) बल को ( जिन्व ) प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावो के जाने विना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता इसलिये कार्य कारण दोनो को यथावत् जान के अन्य मनुष्यो के लिये उपदेश करना चाहिये ॥ ९ ॥

राज्ञ्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । वसवो देवता । पूर्वस्य विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्द ।
धैवत स्वर । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणो वाले हैं यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवाऽअधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोम पृथिव्याᳬश्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳬ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे स्त्रि ! ( ते ) तेरा ( अधिपति ) स्वामी जैसे जिसके ( वसव ) अग्न्यादिक ( देवा ) प्रकाशमान ( अधिपतय ) अधिष्ठाता है वैसे ही तू ( प्राची ) पूर्व ( दिक ) दिशा के समान ( राज्ञी ) राणी ( असि ) है जैसे ( हेतीनाम् ) वज्रादि शस्त्रास्त्रो का ( प्रतिधर्त्ता ) प्रत्यक्ष धारण करता ( त्रिवृत ) विद्युत् भूमिस्थ और सूर्यरूप से तीन प्रकार वर्त्तमान ( स्तोम ) स्तुतियुक्त गुणो से सहित ( अग्नि ) महाविद्युत् धारण करनेवाली है वैसे ( त्वा ) तुझको तेरा पति मैं धारण करता हूँ तू ( पृथिव्याम् ) भूमि पर ( अव्यथायै ) पीडा न होने के लिये ( उक्थम् ) प्रशसनीय ( आज्यम् ) घृत आदि पदार्थों को ( श्रयतु ) धारण कर ( प्रतिष्ठित्यै ) प्रतिष्ठा के लिये ( रथन्तरम् ) रथादि से तारनेवाले ( साम ) सिद्धान्त कर्म को ( स्तभ्नातु ) धारण कर जैसे ( अन्तरिक्षे ) आकाश मे ( दिव ) बिजुली का ( मात्रया ) लेश सम्बन्ध और ( वरिम्णा ) महापुरुषार्थ से ( देवेषु ) विद्वानो मे ( प्रथमजा ) पूर्व हुए ( ऋषय ) वेदार्थवित् विद्वान् ( त्वा ) तुझको शुभगुणो से विशालबुद्धि करें ( च ) और जैसे ( अयम् ) यह ( विधर्त्ता ) विविध रीति से धारणकर्त्ता तेरा पति तुझसे वर्ते वैसे उसके साथ तू वर्त्ता कर ( च ) और जैसे ( सर्वे ) सब ( संविदाना ) अच्छे विद्वान् लोग ( नाकस्य ) अविद्यमान दु ख के ( पृष्ठे ) मध्य में ( स्वर्गे ) जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति ( लोके ) दर्शनीय है उसमें ( त्वा ) तुझको ( च ) और ( यजमानम् ) तेरे पति को ( सादयन्तु ) स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पूर्व दिशा इसलिये उत्तम कहाती है कि जिससे सूर्य प्रथम वहाँ उदय को प्राप्त होता है । जो पूर्व दिशा से वायु चलता है वह किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि

सब पदार्थों को धारण करता तथा वायु के संयोग से बढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को यथार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं ॥ १० ॥

**विराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । रुद्रा देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवाऽअधिपतयऽइन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमं पृथिव्याᳬं श्रयतु प्रऽउगमुक्थमव्यथायै स्तम्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा। प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो तू (**विराट**) विविध पदार्थों में प्रकाशमान (**दक्षिणा, दिक्**) दक्षिण दिशा के तुल्य (**असि**) है जिस (**ते**) तेरा पति (**रुद्रा**) वायु (**देवा**) दिव्य गुणयुक्त वायु (**अधिपतय**) अधिष्ठाताओं के समान (**हेतीनाम्**) वज्रों का (**प्रतिधर्त्ता**) निश्चय के साथ धारण करनेवाला (**पञ्चदश**) पन्द्रह संख्या का पूरक (**स्तोम**) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का भागी और (**इन्द्र**) सूर्य (**त्वा**) तुझको (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**श्रयतु**) सेवन करे (**अव्यथायै**) मानस भय से रहित तेरे लिए (**प्रउगम्**) कथनीय (**उक्थम्**) उपदेश के योग्य वचन का (**स्तभ्नातु**) स्थिर करे तथा (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा के लिए (**बृहत्**) बहुत अर्थ से युक्त (**साम**) सामवेद को स्थिर कर और जैसे (**अन्तरिक्षे**) आकाशस्थ (**देवेषु**) कमनीय पदार्थों में (**प्रथमजा**) पहिले हुए (**ऋषय**) ज्ञान के हेतु प्राण (**दिव**) प्रकाशकारक अग्नि के लेश और (**वरिम्णा**) बहुत्व के साथ वर्त्तमान हैं वैसे विद्वान् लोग (**त्वा**) तुझको (**प्रथन्तु**) प्रसिद्ध करें जैसे (**विधर्त्ता**) विविध प्रकार के आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों का धारण (**च**) तथा पोषण करनेवाला (**अधिपति**) सब प्रकार पदार्थों में उत्तम सूर्य (**त्वा**) तुझको पुष्ट करे वैसे (**संविदाना**) सम्यक् विचारशील विद्वान् लोग हैं (**ते**) वे (**सर्वे**) सब (**नाकस्य**) दुःखरहित आकाश के (**पृष्ठ**) मेचक भाग में (**स्वर्गे**) सुखकारक (**लोके**) जानने योग्य देश में (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**यजमानम्**) यज्ञविद्या के जाननेवाले पुरुष को (**सादयन्तु**) स्थापित करें ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय कर के इस विद्या को जनावें वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् होके दूसरों को पढ़ावें ॥ ११ ॥

**सम्राडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । आदित्या देवता । पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती छन्द । निषाद स्वर । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवाऽअधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तम्नातु वैरूपᳬं साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो तू (**प्रतीची**) पश्चिम (**दिक्**) दिशा के समान (**सम्राट**) सम्यक् प्रकाशित (**असि**) है उस (**ते**) तेरा पति (**आदित्या**) बिजुली से युक्त प्राण वायु (**देवा**) दिव्य गुणवाला (**अधिपतय**) स्वामियों के तुल्य (**अयम्**) यह (**सप्तदश**) सत्रह संख्या का पूरक (**च**) और (**स्तोम**) स्तुति के योग्य (**वरुण**) जलसमुदाय के समान (**हेतीनाम्**) बिजुलियों का (**प्रतिधर्त्ता**) धारण करनेवाला (**अधिपति**) स्वामी (**त्वा**) तुझको (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**श्रयतु**) सेवन करे (**अव्यथाय**) स्वरूप से अचल तेरे लिये (**मरुत्वतीयम्**) बहुत मनुष्यों के व्याख्यान से युक्त (**उक्थम्**) कथन योग्य वेदवचन तथा (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा के लिये (**वैरूपम्**) विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त (**साम**) सामवेद का (**स्तम्नातु**) ग्रहण करे और जो (**दिव**) प्रकाश के (**मात्रया**) भाग से (**वरिम्णा**) बहुत्व के साथ (**अन्तरिक्ष**) आकाश में (**प्रथमजा**) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए (**ऋषय**) गतियुक्त वायु (**देवेषु**) ज्ञान के हेतु अवयवों में वर्त्तमान हैं वैसे (**त्वा**) तुझको विद्वान् लोग (**प्रथन्तु**) प्रसिद्ध उपदेश करें। जैसे (**विधर्त्ता**) जो विविध रत्नों का धारने हारा है (**च**) यह भी (**अधिपति**) अध्यक्ष स्वामी राजा प्रजाओं को सुख में रखता है वैसे (**ते**) तेरे मध्य में (**सर्वे**) सब (**संविदाना**) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**यजमानम्**) विद्वानों के सेवक पुरुष को (**नाकस्य**) दुःखरहित देश के (**पृष्ठे**) एक भाग में (**स्वर्गे**) सुख प्रापक (**लोके**) दर्शनीय स्थान में (**सादयन्तु**) स्थापित करें ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहाँ के पदार्थों को दूसरों के लिए जानते हैं वैसे स्त्री पुरुष अपने सन्तानों आदि को विद्यादि गुणों से सुशोभित करें ॥ १२ ॥

**स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । मरुतो देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर वे दोनों कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवाऽअधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविᳬंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तम्नातु। वैराजᳬं साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जैसे (**स्वराट्**) स्वयं प्रकाशमान (**उदीची**) उत्तर (**दिक्**) दिशा (**असि**) है वैसा (**ते**) तेरा पति हो जिस दिशा के (**मरुत**) वायु (**देवा**) दिव्यरूप (**अधिपतय**) अधिष्ठाता हैं उनके सदृश जो (**एकविंश**) इक्कीस संख्या का पूरक (**स्तोम**) स्तुति का साधक (**सोम**) चन्द्रमा (**हेतीनाम्**) वज्र के समान वर्त्तमान किरणों का (**प्रतिधर्त्ता**) धारनेहारा पुरुष (**त्वा**) तुझको (**पृथिव्याम्**) भूमि में (**श्रयतु**) सेवन करे (**अव्यथाय**) इन्द्रियों के भय से रहित तेरे लिए (**निष्केवल्यम्**) जिसमें केवल एक स्वरूप का वर्णन हो वह (**उक्थम्**) कहने योग्य वेदभाग तथा (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा के लिए (**वैराजम्**) विराट्रूप का प्रतिपादक (**साम**) सामवेद का भाग (**स्तम्नातु**) ग्रहण करे (**च**) और जैसे तेरे मध्य में (**अन्तरिक्ष**) अवकाश में स्थित (**देवेषु**) इन्द्रियों में (**प्रथमजा**) मुख्य प्रसिद्ध (**दिव**) ज्ञान के (**मात्रया**) भागों में (**वरिम्णा**) अधिकता के साथ वर्त्तमान (**ऋषय**) बलवान् प्राण हैं वैसे (**अयम्**) यही इन प्राणों का (**विधर्त्ता**) विविध रीति का धारणकर्त्ता (**च**) और (**अधिपति**) अधिष्ठाता है (**ते**) वे (**सर्वे**) सब इस विषय में (**संविदाना**) सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा से (**त्वा**) तुझको (**प्रथन्तु**) प्रसिद्ध करें और (**नाकस्य**) उत्तम सुखरूप लोक के (**पृष्ठ**) ऊपर (**स्वर्गे**) सुखदायक (**लोके**) लोक में (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**यजमानम्**) यजमान पुरुष को (**सादयन्तु**) स्थित करें ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग आधार के सहित चन्द्रमा आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणों को यथावत् जान के संसारी कार्यों में उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं। वैसे अध्यापक स्त्री पुरुष कन्या पुत्रों को विद्या ग्रहण के लिए उपयुक्त करके आनन्दित करें ॥ १३ ॥

**अधिपत्न्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । विश्वेदेवा देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्द । निषाद स्वर । प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवाऽअधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिᳬंशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याᳬं श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्थेऽअव्यथायै स्तम्नीताᳬं शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानञ्च सादयन्तु ॥ १४ ॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! जो तू (**बृहती**) बड़ी (**अधिपत्नी**) सब विद्याओं के ऊपर वर्त्तमान (**दिक्**) दिशा के समान (**असि**) है उस (**ते**) तेरा पति (**विश्वे**) सब (**देवा**) प्रकाशक सूर्यादि पदार्थ (**अधिपतय**) अधिष्ठाता हैं। वैसे जो (**बृहस्पति**) विश्व का रक्षक (**हेतीनाम्**) बड़े लोकों का (**प्रतिधर्त्ता**) प्रतीति के साथ धारण करनेवाले सूर्य्य के तुल्य वह तेरा पति (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ**) त्रिणव और तेतीस (**स्तोमौ**) स्तुति के साधन (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**अव्यथाय**) पीड़ा रहितता के लिए (**वैश्वदेवाग्निमारुते**) सब विद्वान् और अग्नि वायुओं के व्याख्यान करनेवाले (**उक्थे**) कहने योग्य वेद के दो भागों का (**श्रयताम्**) आश्रय करे और जैसे (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा होने के लिए (**शाक्वररैवते**) शाक्वरी और रैवती छन्द से कहे अर्थों से (**सामनी**) सामवेद के दो भागों का (**स्तम्नीताम्**) संगत करो। जैसे वे (**अन्तरिक्षे**) अवकाश में (**प्रथमजा**) आदि में हुए (**ऋषय**) धनञ्जय आदि सूक्ष्म स्थूल वायुरूप प्राण (**देवेषु**) दिव्य गुण वाले पदार्थों में (**दिव**) प्रकाश की (**मात्रया**) मात्रा और (**वरिम्णा**) अधिकता से (**त्वा**) तुझको प्रसिद्ध करते हैं उनको मनुष्य लोग (**प्रथन्तु**) प्रख्यात करें जैसे (**अयम्**) यह (**अधिपति**) स्वामी (**विधर्त्ता**) विविध प्रकार से सबको धारण करनेहारा सूर्य है जैसे (**संविदाना**) सम्यक् सत्यप्रतिज्ञायुक्त ज्ञानवान् विद्वान् लोग (**त्वा**) तुझको (**नाकस्य, पृष्ठे**) सुखदायक देश के ऊपर (**स्वर्गे**) सुखरूप (**लोके**) स्थान में स्थापित करते हैं (**ते**) वे (**सर्वे**) सब (**यजमानम्**) तेरे पुरुष और तुझको (**सादयन्तु**) स्थित करें वैसे तुम स्त्री पुरुष दोनों वर्त्ता करो ॥१४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब के बीच की दिशा सबसे अधिक है वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १४ ॥

**अयं पुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । वसन्त ऋतुर्देवता । विकृतिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ । दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१५॥**

**पदार्थ**—जो ( **अयम्** ) यह ( **पुरः** ) पूर्वकाल में वर्त्तमान ( **हरिकेशः** ) हरितवर्ण केश के समान हरणशील और क्लेशकारी ताप से युक्त ( **सूर्यरश्मि** ) सूर्य की किरणें हैं ( **तस्य** ) उनका ( **रथगृत्सः** ) बुद्धिमान् सारथि ( **च** ) और ( **रथौजाः** ) रथ के चलने के वाहन ( **च** ) इन दोनों के तथा ( **सेनानीग्रामण्यौ** ) सेनापति और ग्राम के अध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं उन किरणों की ( **पुञ्जिकस्थला** ) सामान्य प्रधान दिशा ( **च** ) और ( **क्रतुस्थला** ) प्रज्ञाकर्म को जतानेवाली उपदिशा ( **च** ) ये दोनों ( **अप्सरसौ** ) प्राणों में चलनेवाली अप्सरा कहाती हैं जो ( **दङ्क्ष्णवः** ) मांस और घास आदि पदार्थों को खानेवाले व्याघ्र आदि ( **पशवः** ) हानिकारक पशु हैं उनके ऊपर ( **हेतिः** ) बिजुली गिरे । जो ( **पौरुषेयः** ) पुरुषों के समूह ( **वधः** ) मारनेवाले और ( **प्रहेतिः** ) उत्तम वज्र के तुल्य नाश करने वाले हैं ( **तेभ्यः** ) उनके लिए ( **नमः** ) वज्र का प्रहार ( **अस्तु** ) हो और जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं ( **ते** ) वे उन पशुओं से ( **नः** ) हम लोगों की ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ( **ते** ) वे ( **नः** ) हमको ( **मृडयन्तु** ) सुखी करें ( **ते** ) वे रक्षक हम लोग ( **यम्** ) जिस हिंसक से ( **द्विष्मः** ) विरोध करें ( **च** ) और ( **यः** ) जो हिंसक ( **नः** ) हमसे ( **द्वेष्टि** ) विरोध करे ( **तम्** ) उसको हम लोग ( **एषाम्** ) इन व्याघ्रादि पशुओं के ( **जम्भे** ) मुख में ( **दध्मः** ) स्थापन करें ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के किरण हरे वर्णवाले हैं उनके साथ लाल पीले आदि वर्णवाले भी किरण रहते हैं वैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष वर्त्ते के रक्षक होवें । जैसे राजा आदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा अधर्माचरण से पृथक् रख धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण करें । यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है ॥ १५ ॥

**अयं दक्षिणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । ग्रीष्मर्तुर्देवता । प्रकृतिश्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ । मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाᳬसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अयम्** ) यह ( **विश्वकर्मा** ) सब चेष्टारूप कर्मों का हेतु वायु ( **दक्षिणा** ) दक्षिण दिशा से चलता है ( **तस्य** ) उस वायु के ( **रथस्वनः** ) रथ के शब्द के समान शब्दवाला ( **च** ) और ( **रथेचित्रः** ) रमणीय रथ में चिह्न युक्त आश्चर्य कार्यों का करनेवाला ( **च** ) ये दोनों ( **सेनानीग्रामण्यौ** ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान ( **मेनका** ) जिसमें मनन किया जाय वह ( **च** ) और ( **सहजन्या** ) एक साथ उत्पन्न हुई ( **च** ) ये दोनों ( **अप्सरसौ** ) अन्तरिक्ष में रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं जो ( **यातुधानाः** ) प्रजा को पीडा देनेवाले हैं उनके ऊपर ( **हेतिः** ) वज्र जो ( **रक्षांसि** ) दुष्ट कर्म करनेवाले हैं उनके ऊपर ( **प्रहेतिः** ) प्रकृष्ट वज्र के तुल्य ( **तेभ्यः** ) उन प्रजापीडक आदि के लिये ( **नमः** ) वज्र का प्रहार ( **अस्तु** ) हो ऐसा करके जो न्यायाधीश शिक्षक हैं ( **ते** ) वे ( **नः** ) हमारी ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ( **ते** ) वे ( **नः** ) हमको ( **मृडयन्तु** ) सुखी करें ( **ते** ) वे हम लोग ( **यम्** ) जिस दुष्ट से ( **द्विष्मः** ) द्वेष करें ( **च** ) और ( **यः** ) जो दुष्ट ( **नः** ) हमसे ( **द्वेष्टि** ) द्वेष करे ( **तम्** ) उसको ( **एषाम्** ) इन वायुओं के ( **जम्भे** ) व्याघ्र के समान मुख में ( **दध्मः** ) धारण करते हैं वैसा प्रयत्न करो ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्थूल सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते हैं वे शत्रुओं का निवारण करके सबको आनन्दित करते हैं । यह भी ग्रीष्म ऋतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानो ॥ १६ ॥

**अयं पश्चादित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । वर्षर्तुर्देवता । विराट् कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ । प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ । व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अयम्** ) यह ( **पश्चात्** ) पीछे से ( **विश्वव्यचाः** ) विश्व में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि है उस के ( **सेनानीग्रामण्यौ** ) सेनापति और ग्रामपति के समान ( **रथप्रोतः** ) रमणीय तेज स्वरूप में व्याप्त ( **च** ) और ( **असमरथः** ) जिस के समान दूसरा रथ न हो वह ( **च** ) ये दोनों ( **प्रम्लोचन्ती** ) अच्छे प्रकार सब ओषधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली ( **च** ) तथा ( **अनुम्लोचन्ती** ) पश्चात् ज्ञान का हेतु प्रकाश ( **च** ) ये दोनों ( **अप्सरसौ** ) क्रियाकारक आकाशस्थ किरण हैं जैसे ( **हेतिः** ) साधारण वज्र के तुल्य तथा ( **प्रहेतिः** ) उत्तम वज्र के समान ( **व्याघ्राः** ) सिंहों के तथा ( **सर्पाः** ) सर्पों के समान प्राणियों को दुःख दायी जीव हैं ( **तेभ्यः** ) उन के लिये ( **नमः** ) वज्रप्रहार ( **अस्तु** ) हो और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करें ( **ते** ) वे ( **नः** ) हमारे ( **अवन्तु** ) रक्षक हों ( **ते** ) वे ( **नः** ) हम को ( **मृडयन्तु** ) सुखी करें तथा ( **ते** ) वे हम लोग ( **यम्** ) जिस से ( **द्विष्मः** ) द्वेष करें ( **च** ) और ( **यः** ) जो दुष्ट ( **नः** ) हम से ( **द्वेष्टि** ) द्वेष करे जिस को हम ( **एषाम्** ) इन सिंहादि के ( **जम्भे** ) मुख में ( **दध्मः** ) धरें ( **तम्** ) उस को वे रक्षक लोग भी सिंहादि के मुख में धरें ॥१७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह वर्षा ऋतु का शेष व्याख्यान है । इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार विहार करना चाहिये ॥१७॥

**अयमुत्तरादित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । शरदृतुर्देवता । भुरिगतिधृतिश्छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ । विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अयम्** ) यह ( **उत्तरात्** ) उत्तर दिशा से ( **संयद्वसुः** ) यज्ञ को संगत करने हारे के तुल्य शरद ऋतु है ( **तस्य** ) उस के ( **सेनानीग्रामण्यौ** ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान ( **तार्क्ष्यः** ) तीक्ष्ण तेज को प्राप्त कराने वाला आश्विन ( **च** ) और ( **अरिष्टनेमिः** ) दुःखों को दूर करने वाला कार्त्तिक ( **च** ) ये दोनों ( **विश्वाची** ) सब जगत् में व्यापक ( **च** ) और ( **घृताची** ) घी वा जल को प्राप्त कराने वाली दीप्ति ( **च** ) ये दोनों ( **अप्सरसौ** ) प्राणों की गति हैं जहां ( **आपः** ) जल ( **हेतिः** ) वृद्धि के तुल्य वर्त्तते और ( **वातः** ) प्रिय पवन ( **प्रहेतिः** ) अच्छे प्रकार बढ़ाने हारे के समान आनन्ददायक होता है उस वायु को जो लोग युक्ति के साथ सेवन करते हैं ( **तेभ्यः** ) उन के लिये ( **नमः** ) नमस्कार ( **अस्तु** ) हो ( **ते** ) वे ( **नः** ) हमारी ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ( **ते** ) वे ( **नः** ) हम को ( **मृडयन्तु** ) सुखी करें ( **ते** ) वे हम ( **यम्** ) जिससे ( **द्विष्मः** ) द्वेष करें ( **च** ) और ( **यः** ) जो ( **नः** ) हम से ( **द्वेष्टि** ) द्वेष करे ( **तम्** ) उस को ( **एषाम्** ) इन जल वायुओं के ( **जम्भे** ) दुःखदायी गुणरूप मुख में ( **दध्मः** ) धरें वैसे तुम लोग भी वर्त्तो ॥ १८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह शरद ऋतु का शेष व्याख्यान है । इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ १८ ॥

**अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । हेमन्तर्तुर्देवता । निचृत्कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ । उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अयम्** ) यह ( **उपरि** ) ऊपर वर्त्तमान ( **अर्वाग्वसुः** ) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है ( **तस्य** ) उस के ( **सेनजित्** ) सेना से जीतने वाला ( **च** ) और ( **सुषेणः** ) सुन्दर सेनापति ( **च** ) ये दोनों ( **सेनानीग्रामण्यौ** ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्त्तमान अगहन और पौष महीने ( **उर्वशी** ) बहुत खाने का हेतु अत्यन्त दीप्ति ( **च** ) और ( **पूर्वचित्तिः** ) आदि ज्ञान का हेतु ( **च** ) ये दोनों ( **अप्सरसौ** ) प्राणों में रहने वाली ( **अवस्फूर्जन्** ) भयंकर घोष करते हुए ( **हेतिः** ) वज्र के तुल्य ( **विद्युत्** ) बिजुली के चलाने हारे और ( **प्रहेतिः** ) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं ( **तेभ्यः** ) उन के लिये ( **नमः** ) अन्नादि पदार्थ ( **अस्तु** ) मिलें ( **ते** ) वे ( **नः** ) हम लोगों की ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ( **ते** ) वे ( **नः** ) हम को ( **मृडयन्तु** ) सुखी करें ( **ते** ) वे हम लोग ( **यम्** ) जिस दुष्ट से ( **द्विष्मः** ) द्वेष करें ( **च** ) और ( **यः** ) जो ( **नः** ) हम से ( **द्वेष्टि** ) द्वेष करे ( **तम्** ) उसको हम लोग ( **एषाम्** ) इन हिंसक प्राणियों के ( **जम्भे** ) मुख में ( **दध्मः** ) धरें । वैसे तुम लोग भी उस को धरो ॥१९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह भी हेमन्त ऋतु की शेष व्याख्या है । मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान् हों ॥ १९ ॥

**अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्रीछन्द । षड्ज स्वर ॥**

*मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् ।**
**अपाᳬरेताᳬसि जिन्वति ॥२०॥**

**पदार्थ**—जैसे हेमन्त ऋतु में ( **अयम्** ) यह प्रसिद्ध ( **अग्निः** ) अग्नि ( **दिवः** ) प्रकाश और ( **पृथिव्याः** ) भूमि के बीच ( **मूर्द्धा** ) शिर के तुल्य सूर्यरूप से वर्त्तमान ( **ककुत्पतिः** ) दिशाओं का रक्षक होके ( **अपाम्** ) प्राणों के ( **रेतांसि** ) पराक्रमों को ( **जिन्वति** ) पूर्णता से तृप्त करता है वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जाठराग्नि को बढ़ा संयम से आहार विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें ॥२०॥

**अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः ।**
**षड्जः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्द्धा कवी रयीणाम् ॥२१**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **अयम्** ) यह ( **अग्निः** ) हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान ( **सहस्रिणः** ) प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त ( **शतिनः** ) प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान ( **वाजस्य** ) अन्न तथा ( **रयीणाम्** ) धनों का ( **पतिः** ) रक्षक ( **मूर्द्धा** ) उत्तम अङ्ग के तुल्य ( **कविः** ) समर्थ है वैसे ही तुम लोग भी हो ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्नि बहुत अन्न धन प्राप्त कराता है वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् कर देता है ॥ २१ ॥

**त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।**
**षड्जः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! जैसे ( **अथर्वा** ) रक्षक ( **वाघतः** ) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने हारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष ( **पुष्करात्** ) अन्तरिक्ष के ( **अधि** ) बीच तथा ( **मूर्ध्नः** ) शिर के तुल्य वर्त्तमान ( **विश्वस्य** ) सम्पूर्ण जगत् के बीच अग्नि को ( **निरमन्थत** ) निरन्तर मन्थन करके ग्रहण करे वैसे ही ( **त्वाम्** ) तुझ को मैं बोध कराता हूँ ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान आकाश तथा पृथिवी के सकाश से बिजुली का ग्रहण कर आश्चर्य रूप कर्मों को सिद्ध करें ॥ २२ ॥

**भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।**
**दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि ( **नियुद्भिः** ) संयोग विभाग कराने हारी क्रिया तथा ( **शिवाभिः** ) मङ्गलकारिणी दीप्तियों के साथ वर्त्तमान ( **भुवः** ) प्रगट हुए ( **यज्ञस्य** ) कार्यों के साधक सङ्गत व्यवहार ( **च** ) और ( **रजसः** ) लोकसमूह का ( **नेता** ) आकर्षण करता हुआ सम्बन्ध कराता है और ( **यत्र** ) जिस ( **दिवि** ) प्रकाशमान अपने स्वरूप में ( **मूर्द्धानम्** ) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्त्तमान सूर्य का धारण करता तथा ( **हव्यवाहम्** ) ग्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली ( **स्वर्षाम्** ) सुखदायक ( **जिह्वाम्** ) वाणी को ( **चकृषे** ) प्रवृत्त करता है वैसे तू शुभ गुणों के साथ ( **सचसे** ) युक्त होता और सब विद्याओं को ( **दधिषे** ) धारण कराता है ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर से नियुक्त किया हुआ अग्नि सब जगत् का सुखकारी होता है वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

**अबोधीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।**
**यह्वाऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **समिधा** ) प्रज्वलित करने के साधनों से यह ( **अग्निः** ) अग्नि ( **अबोधि** ) प्रकाशित होता है ( **आयतीम्** ) प्राप्त होते हुए ( **उषासम्** ) प्रभात समय के ( **प्रति** ) समीप ( **जनानाम्** ) मनुष्यों को ( **धेनुमिव** ) दूध देने वाली गौ के समान है । जिस अग्नि के ( **यह्वा इव** ) महान् धार्मिक जनों के समान ( **प्र** ) उत्कृष्ट ( **वयाम्** ) व्यापक सुख की नीति को ( **उज्जिहानाः** ) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हुए ( **प्र** ) उत्तम ( **भानवः** ) किरण ( **नाकम्** ) सुख को ( **अच्छ** ) अच्छे प्रकार ( **सिस्रते** ) प्राप्त करते हैं उस को तुम लोग सुखार्थ संयुक्त करो ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे आप्त विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

**अवोचामेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे । गविष्ठिरो**
**नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ २५ ॥**

**पदार्थ**—हम लोग जैसे ( **गविष्ठिरः** ) किरणों में रहनेवाली विद्युत् ( **दिवीव** ) सूर्यप्रकाश के समान ( **उरुव्यञ्चम्** ) विशेष करके बहुतों में गमनशील ( **रुक्मम्** ) सूर्य का ( **अश्रेत्** ) आश्रय करती है वैसे ( **मेध्याय** ) सब शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र ( **वृषभाय** ) बली ( **वृष्णे** ) वर्षा के हेतु ( **कवये** ) बुद्धिमान् के लिये ( **वन्दारु** ) प्रशंसा के योग्य ( **वचः** ) वचन को और ( **अग्नौ** ) जाठराग्नि में ( **नमसा** ) अन्न आदि से ( **स्तोमम्** ) प्रशस्त कार्यों को ( **अवोचाम** ) कहें ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धि विद्यार्थी के लिये परम प्रयत्न से विद्या देवें जिससे वह विद्या पढ़ के सूर्य के प्रकाश में घटपटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् जान सकें ॥२५॥

**अयमिहेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः ।**
**यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥२६॥**

**पदार्थ**—जो ( **इह** ) इस जगत् में ( **अध्वरेषु** ) रक्षा के योग्य व्यवहारों में ( **ईड्यः** ) खोजने योग्य ( **यजिष्ठः** ) अतिशय करके यज्ञ का साधक ( **होता** ) घृतादि का ग्रहणकर्त्ता ( **प्रथमः** ) सर्वत्र विस्तृत ( **अयम्** ) यह प्रत्यक्ष अग्नि ( **धातृभिः** ) धारणशील पुरुषों ने ( **धायि** ) धारण किया है ( **यम्** ) जिस को ( **वनेषु** ) किरणों में ( **चित्रम्** ) आश्चर्यरूप से ( **विभ्वम्** ) व्यापक अग्नि का ( **विशेविशे** ) समस्त प्रजा के लिये ( **अप्नवानः** ) रूपवान् ( **भृगवः** ) पूर्णज्ञानी ( **विरुरुचुः** ) विशेष करके प्रकाशित करते हैं उस अग्नि का सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् लोग अग्निविद्या को आप धार के दूसरों को सिखावें ॥२६॥

**जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः ।**
**निषादः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**जनस्य गोपाऽअजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।**
**घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥२७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **जनस्य** ) उत्पन्न हुए संसार का ( **गोपाः** ) रक्षक ( **जागृविः** ) जागने रूप स्वभाव वाला ( **सुदक्षः** ) सुन्दर बल का हेतु ( **घृतप्रतीकः** ) घृत के बढ़ने हारा ( **शुचिः** ) पवित्र ( **अग्निः** ) बिजुली ( **नव्यसे** ) अत्यन्त नवीन ( **सुविताय** ) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य के लिये ( **अजनिष्ट** ) प्रकट हुआ है और ( **बृहता** ) बड़े ( **दिविस्पृशा** ) प्रकाश में स्पर्श से ( **भरतेभ्यः** ) सूर्यों से ( **द्युमत्** ) प्रकाशयुक्त हुआ ( **विभाति** ) शोभित होता है उस को तुम लोग जानो ॥२७॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य प्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के सूर्यों का निमित्त बिजुली रूप तेज है उसको जान के उपकार लिया करें ॥२७॥

**त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी जगती छन्दः ।**
**निषादः स्वरः ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वामग्नेऽअङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।**
**स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२८**

**पदार्थ**—हे ( **अङ्गिरः** ) प्राणवत्प्रिय ( **अग्ने** ) विद्वन् ! जैसे ( **सः** ) वह ( **मथ्यमानः** ) मथन किया हुआ अग्नि प्रसिद्ध होता है वैसे तू विद्या से ( **जायसे** ) प्रकट होता है जिस को ( **महत्** ) बड़े ( **सहः** ) बलयुक्त ( **सहसः** ) बलवान् वायु से ( **पुत्रम्** ) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य ( **वनेवने** ) किरण वा पदार्थ पदार्थ में ( **शिश्रियाणम्** ) आश्रित ( **गुहा** ) बुद्धि में स्थित ( **हितम्** ) हितकारी ( **त्वाम्** ) उस अग्नि

को ( आहु ) कहते हैं ( अङ्गिरस ) विद्वान् लोग (अन्वविन्दन्) प्राप्त होते हैं उस का बोध ( त्वाम् ) तुझे कराता हूँ ॥ २८ ॥

भावार्थ—अग्नि दो प्रकार का होता है। एक मानस दूसरा बाह्य इस मे आभ्यन्तर को युक्त आहार विहारो से और बाह्य का मन्थनादि से सब विद्वान् सेवन करें वैसे इतर जन भी सेवन किया करें ॥ २८ ॥

**सखा इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वरः ॥**

*मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सखा॑यः सं वः सम्यञ्च॒मिष॒ꣳ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑।**

**वर्षि॑ष्ठाय क्षिती॒नामू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥२९॥**

पदार्थ—हे ( सखाय ) मित्रो ! ( क्षितीनाम् ) मननशील मनुष्य ( व ) तुम्हारे ( ऊर्जे ) बल के ( नप्त्रे ) पौत्र के तुल्य वर्त्तमान ( सहस्वते ) बहुत बल वाले ( वर्षिष्ठाय ) अत्यन्त बड़े ( अग्नये ) अग्नि के लिये जिस ( सम्यञ्चम ) सुन्दर सत्कार के हेतु ( इषम् ) अन्न को ( च ) और ( स्तोमम ) स्तुतियो को (समाहु ) अच्छे प्रकार कहते हैं वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥ २९ ॥

भावार्थ—यहा पूर्व मन्त्र से ( आहुः ) इस पद की अनुवृत्ति आती है। कारीगरो को चाहिये कि सब के मित्र होकर विद्वानो के कथनानुसार पदार्थविद्या का अनुष्ठान करें। जो बिजुली कारणरूप बल से उत्पन्न होती है वह पुत्र के तुल्य है और जो सूर्यादि के प्रकाश से उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है ऐसा जानना चाहिये ॥ २९ ॥

**संसमिदित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*वैश्य को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**संꣳसमिद्यु॑वसे वृषन्नग्ने॒ विश्वा॑न्य॒र्य्यऽआ ।**

**इ॒डस्प॒दे समि॑ध्यसे॒ स नो॒ वसू॒न्याभ॑र ॥३०॥**

पदार्थ—हे ( वृषन् ) बलवान् ( अग्ने ) प्रकाशमान ( अर्य ) वैश्य ! जो तू ( संसमायुवसे ) सम्यक अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हो ( इड ) प्रशसा के योग्य ( पदे ) प्राप्ति के योग्य अधिकार मे ( समिध्यसे ) सुशोभित होते हो ( स ) सो तू ( इत ) ही अग्नि के योग से ( न ) हमारे लिये ( विश्वानि ) सब ( वसूनि ) धनों को ( आभर ) अच्छे प्रकार धारण कर ॥ ३० ॥

भावार्थ—राजाओ से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और अपने राजपुरुषो के लिये सम्पूर्ण धन धारण करें ॥ ३० ॥

**त्वामित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**त्वां चि॒त्रश्र॑वस्तम॒ हव॑न्ते वि॒क्षु ज॒न्तव॑ः ।**

**शो॒चिष्के॑श पुरुप्रि॒याग्ने॑ ह॒व्याय॒ वोढ॑वे ॥३१॥**

पदार्थ—हे ( पुरुप्रिय ) बहुतो के प्रसन्न करने हारे वा बहुतो के प्रिय ( चित्रश्रवस्तम ) आश्चर्यरूप अन्नादि पदार्थों से युक्त ( अग्ने ) तेजस्वी विद्वन् ! ( विक्षु ) प्रजाओ मे (हव्याय) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (वोढवे) प्राप्ति के लिए जिस (शोचिष्केशम) सुखाने वाली सूर्य की किरणो के तुल्य तेजस्वी ( त्वाम ) आपको ( जन्तव ) मनुष्य लोग ( हवन्ते ) स्वीकार करते हैं उसी का हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ—मनुष्य का योग्य है कि जिस अग्नि को जीव सेवन करते हैं उस से भार पहुचाना आदि काय भी सिद्ध किया करें ॥ ३१ ॥

**एना व इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । विराड बृहती छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ए॒ना वो॑ऽअ॒ग्निं नम॑सो॒र्जो नपा॑त॒माहु॑वे ।**

**प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिꣳ स्व॑ध्व॒रं विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॑म् ॥३२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मै ( व ) तुम्हारे लिये ( एना ) उस पूर्वोक्त ( नमसा ) ग्रहण के योग्य अन्न से ( नपातम् ) दृढ़ स्वभाव ( प्रियम् ) प्रीतिकारक ( चेतिष्ठम् ) अत्यन्त चेतना करानेहारे ( अरतिम् ) चेतना रहित ( स्वध्वरम् ) अच्छे रक्षणीय व्यवहारो से युक्त ( अमृतम् ) कारणरूप से नित्य (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के ( दूतम् ) सब ओर चलनेहारे ( अग्निम् ) बिजुली की और ( ऊर्ज ) पराक्रमो को (आहुवे) स्वीकार करू वैसे तुम लोग भी मेरे लिये ग्रहण करो ॥३२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध करें उनको तुम लोग भी स्वीकार करो ॥ ३२ ॥

**विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद् बृहती छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॒ विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॑म् ।**

**स यो॑जतेऽअरु॒षा वि॒श्वभो॑जसा॒ स दु॑द्रव॒त् स्वा॑हुतः ॥ ३३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( विश्वस्य ) सब भूगोलो के ( दूतम ) तपाने वाले सूर्य्यरूप ( अमृतम ) कारणरूप से अविनाशिस्वरूप ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण पदार्थों को ( दूतम ) ताप से जलानेवाले ( अमृतम् ) जल मे भी व्यापक कारणरूप अग्नि को स्वीकार करू वैसे (विश्वभोजसा) जगत् के रक्षक (अरुषा) रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है ( स ) वह योजते युक्त करता है जो ( स्वाहुत ) अच्छे प्रकार ग्रहण किया हुआ ( दुद्रवत ) शरीरादि मे चलता है ( सः ) वह तुम लोगों को जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे पूर्व मन्त्र से ( आहुवे ) इस पद की अनुवृत्ति आती है तथा ( विश्वस्य दूतममृतम् ) इन तीनो पदो की दो वार आवृत्ति से स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के अग्नि का ग्रहण होता है। वह सब अग्नि कारणरूप से नित्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

**स दुद्रवदित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । आर्घ्यनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**स दु॑द्रव॒त् स्वा॑हुत॒ स दु॑द्रव॒त् स्वा॑हुत॑ ।**

**सु॒ब्रह्मा॑ य॒ज्ञः सु॒शमी॒ वसू॑नां दे॒वꣳ राधो॒ जना॑नाम् ॥३४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( स ) वह अग्नि ( स्वाहुत ) अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान ( दुद्रवत ) चलता है तथा ( स ) वह ( स्वाहुत ) अच्छे प्रकार निमन्त्रण किये विद्वान् के तुल्य ( दुद्रवत ) जाता है ( सुब्रह्मा ) अच्छे प्रकार चारो वेदो के ज्ञाता ( यज्ञ ) समागम के योग्य ( सुशमी ) अच्छे शान्तिशील पुरुष के समान जो ( वसूनाम् ) पृथिवी आदि वसुओं और ( जनानाम् ) मनुष्यो का ( देवम् ) अभीप्सित ( राध ) धनरूप है उस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वेगवान् अन्य पदार्थों का वेग देने वाला शान्तिकारक पृथिव्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है उसका विचार क्यो न करना चाहिये ॥३४॥

**अग्ने वाजस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । उष्णिक छन्दः ।**

**ऋषभ स्वर ॥**

*फिर वह अग्नि कैसा है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्ने॒ वाज॑स्य॒ गोम॑त॒ऽईशा॑न॒ सह॑सो यहो ।**

**अ॒स्मे धे॑हि जातवेदो॒ महि॒ श्रव॑ ॥३५॥**

पदार्थ—हे ( सहस ) बलवान् पुरुष के ( यहो ) सन्तान ! ( जातवेद ) विज्ञान को प्राप्त हुए ( अग्ने ) तेजस्वी विद्वान् आप अग्नि के तुल्य ( गोमत ) प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त ( वाजस्य ) अन्न के ( ईशान ) स्वामी समर्थ हुए ( अस्मे ) हमारे लिए ( महि ) बड़े ( श्रव ) धन को ( धेहि ) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अच्छी रीति से उपयुक्त किया अग्नि बहुत धन देता है ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

**स इधान इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्द ।**

**ऋषभ स्वर ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सऽइ॑धा॒नो वसु॑ष्क॒विर॒ग्निरी॒डेन्यो॑ गि॒रा ।**

**रे॒वद॒स्मभ्यं॑ पुर्वणीक दीदिहि ॥३६॥**

पदार्थ—हे ( पुर्वणीक ) बहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वान् ! ( गिरा ) वाणी से ( ईडन्य ) खोजने योग्य ( वसु ) निवास का हेतु ( कवि ) समर्थ ( इधान ) प्रदीप्त ( स ) उन पूर्वोक्त ( अग्नि ) के समान ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( रेवत ) प्रशसित धनयुक्त पदार्थों को ( दीदिहि ) प्रकाशित कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् को चाहिये कि अग्नि के गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश के तुल्य मनुष्यो के लिये ऐश्वर्य की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

**क्षपो राजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्द ।**

**ऋषभ स्वर ॥**

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**क्षपो॑ राजन्नु॒त त्मनाग्ने॒ वस्तो॑रु॒तोषस॑ः ।**

**स ति॑ग्मजम्भ र॒क्षसो॑ दह॒ प्रति॑ ॥३७॥**

पदार्थ—हे ( तिग्मजम्भ ) तीक्ष्ण अवयवो के चलानेवाले ( राजन् ) प्रकाशमान ( अग्ने ) विद्वान् जन ! ( स ) सो पूर्वोक्त गुणयुक्त आप जैसे तीक्ष्ण तेजयुक्त अग्नि ( क्षप ) रात्रियो ( उत ) और ( वस्तो ) दिन के ( उत ) ही ( उषस ) प्रभात और सायकाल के प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे ( त्मना ) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त अपने आत्मा से ( रक्षस ) दुष्ट जनो को रात्रि के समान ( प्रतिदह ) निश्चय करके भस्म कीजिये ॥३७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते है वसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है एसा जानें ॥ ७॥

भद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्द ।
ऋषभ स्वर ॥

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा राति. सुभग भद्रोऽअध्वर: ।**
**भद्राऽउत प्रशस्तय ॥३८॥**

पदार्थ—हे ( सुभग ) सुन्दर ऐश्वय वाले विद्वान् पुरुष ! जसे ( आहुत ) धर्म्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप ( अग्नि ) अग्नि ( भद्र ) सेवने योग्य ( भद्रा ) कल्याणकारी ( राति ) दान ( भद्र ) कल्याणकारी ( अध्वर ) रक्षणीय व्यवहार ( उत ) और ( भद्रा ) कल्याण करनेवाली ( प्रशस्तय ) प्रशसा होवे वसे आप ( न ) हमारे लिये हूजिये ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वसे आप्त विद्वान् लोगो को भी जानें ॥३८॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्द ।
ऋषभ स्वर ॥

*फिर वह विद्वान कसा हो यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**भद्राऽउत प्रशस्तयो भद्र मन॑ कृणुष्व वृत्रतूर्ये॑ ।**
**येना॑ समत्सु सासह॑ ॥३९॥**

पदार्थ—हे ( सुभग ) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष ! आप ( यन ) जिससे हमारे ( वृत्रतूर्ये ) युद्ध मे ( भद्रम् ) कल्याणकारी ( मन ) विचारशक्तियुक्त चित्त ( उत ) और ( भद्रा ) कल्याण करने हारी ( प्रशस्तय ) प्रशसा के योग्य प्रजा और जिमसे ( समत्सु ) सग्रामो मे ( सासह ) अत्यन्त सहनशील वीर पुरुष हो वैसा कम ( कृणुष्व ) कीजिये ॥३९॥

भावार्थ—यहा ( सुभग न ) इन दो पदो की अनुवृत्ति पूव मन्त्र से आती है। विद्वान् राजा को चाहिये कि ऐसे कम का अनुष्ठान करे जिससे प्रजा और सेना उत्तम हो ॥३९॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**येना॑ समत्सु मासहोऽव॑ स्थिरा त॑नुहि भूरि शर्ध॑ताम् ।**
**वनेमा॑ तेऽअभिष्टि॑भि ॥४०॥**

पदार्थ—हे ( सुभग ) सुन्दर लक्ष्मीयुक्त पुरुष ! आप ( यन ) जिसके प्रताप से हमारे ( समत्सु ) युद्धो म ( सासह ) शीघ्र सहना हो उसका तथा ( भूरि ) बहुत प्रकार ( शर्धताम् ) बल करते हुए ( स्थिरा ) स्थिर सेना के साधनो को ( अवतनुहि ) अच्छे प्रकार बढाइय ( ते ) आपकी ( अभिष्टिभि ) इच्छाओ के अनुसार वत्तमान हम लोग उस सेना के साधनो का ( वनेम ) सेवन कर ॥४०॥

भावार्थ—यहा भी ( सुभग न ) इन दानो पदो की अनुवृत्ति आती है। विद्वानो को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीर पुरुषो का उत्साह नित्य बढावें जिससे ये लोग उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥४०॥

अग्नि तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर ॥

*फिर वह क्या कर यह विषय अगल मन्त्र मे कहा है—*

**अग्नि त॑ म॑न्ये यो वसुरस्त य यन्ति धेनव॑: ।**
**अस्तमर्व॑न्तऽआशवोऽस्त नित्या॑सो वाजिनऽइष॑ᳬ स्तोतृभ्यऽआ भ॑र॥४१॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! ( य ) जो ( वसु ) सवत्र रहनेवाला अग्नि है ( यम् ) जिस ( अग्निम् ) वाणी के समान अग्नि को ( धनव ) गौ ( अस्तम् ) घर को ( यन्ति ) जाती हैं तथा जसे ( नित्यास ) कारणरूप से विनाश रहित ( वाजिन ) वेगवाले ( आशव ) शीघ्रगामी ( अवन्त ) घोडे ( अस्तम् ) घर को प्राप्त होते है वसे म ( तम् ) उस पूर्वोक्त अग्नि को ( मन्य ) मानता हूँ और ( स्तोतृभ्य ) स्तुतिकारक विद्वानो के लिय ( इषम् ) अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूँ वैसे ही तू उस अग्नि को ( आभर ) धारण कर ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक लोग विद्यार्थियो के प्रति ऐसा कहे कि जसे हम लोग आचरण कर वैसा तुम भी करो। जैसे गौ आदि पशु दिन मे इधर उधर भ्रमण कर सायङ्काल अपन घर आके प्रसन्न होते हैं वसे विद्या के स्थान को प्राप्त होके तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥४१॥

सोऽअग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर ॥

*फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सोऽअग्निर्यो वसु॑र्गृ॒ण स यमा॒यन्ति॑ धेनव॑: ।**
**समर्व॑न्तो रघुद्रुव॒ सᳬ सु॑जातास॒ सूरयऽइष॑ᳬस्तोतृभ्यऽआ भ॑र ॥४२॥**

पदार्थ—हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष ! जसे मैं ( य ) जो ( वसु ) निवास का हेतु ( अग्नि ) अग्नि है उसकी ( गृण ) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूँ ( यम् ) जिसको ( धेनव ) वाणी ( समायन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होती है और ( रघुद्रुव ) धीरज स चलनेवाले ( अर्वन्त ) प्रशसित ज्ञानी ( सुजातास ) अच्छे प्रकार विद्याओं म प्रसिद्ध ( सूरय ) विद्वान् लोग ( स्तोतृभ्य ) स्तुति करने हारे विद्यार्थियो के लिय ( इषम ) ज्ञान को ( सम ) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जसे ( स: ) वह पढानेहारा ईश्वरादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तो को ( समाभर ) ज्ञान मे धारण कर ॥४२॥

भावार्थ—अध्यापको को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछडों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियो को प्रसन्न कर और जैसे घोडे शीघ्र चल के पहुँचाते हैं वैसे विद्यार्थियो को सब विद्याओ के पार शीघ्र पहुँचावें ॥४२॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर ॥

*फिर वह क्या करे यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उभे सु॑श्चन्द्र स॒र्पिषो॒ दर्वी॑ श्रीणीषऽआ॒सनि॑ ।**
**उतो नऽउत्पु॑पूर्या उक्थेषु॑ शवसस्पतऽइष॑ᳬस्तोतृभ्यऽआ भ॑र ॥४३॥**

पदार्थ—हे ( सुश्चन्द्र ) सुन्दर ज्ञान ददाता अध्यापक पुरुष ! आप ( सर्पिष ) घी के ( दर्वी ) चलाने पकडने की दो कर्छी से ( श्रीणीष ) पकाने के समान ( आसनि ) मुख मे ( उभे ) पढाने की दो क्रियाओ को ( आभर ) धारण कीजिये। हे ( शवस ) बल के ( पते ) रक्षकजन तू ( उक्थेषु ) कहने सुनने योग्य वेदविभागों म ( न ) हमारे ( उतो ) और ( स्तोतृभ्य ) विद्वानो के लिये ( इषम ) अन्नादि पदार्थों का ( उत्पुपूर्या ) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥४३॥

भावार्थ—जसे ऋत्विज लोग घत को शोध कर्छी से अग्नि मे होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगो को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोधकर उनको विद्यादान देके आत्माओ को पवित्र कर सब को सुखी करें ॥४३॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*फिर वह कसा हो यह विषय अगल मन्त्र मे कहा है—*

**अग्ने॒ तम॒द्याश्व॒ न स्तोमै॒॑ क्रतु॒ न भ॒द्रᳬ हृ॑दि॒स्पृश॑म् ।**
**ऋ॒ध्यामा॑ त॒ऽओहै॑ ॥४४॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अध्यापक जन ! हम लोग ( ते ) आप से ( ओहै ) विद्या का सुख देने वाले ( स्तोम ) विद्या की स्तुतिरूप वेद के भागो से ( अद्य ) आज ( अश्वम् ) घोडे के ( न ) समान ( भद्रम ) कल्याणकारक ( क्रतुम् ) बुद्धि के ( न ) समान ( तम ) उस ( हृदिस्पृशम ) आत्मा के साथ सम्बन्ध करने वाले विद्या-बोध को प्राप्त हो के निरन्तर ( ऋध्याम ) बुद्धि को प्राप्त हो ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे दो उपमालङ्कार हैं। अध्येता लोगो को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोडे से अभीष्ट स्थान म शीघ्र पहुच जाते हैं जसे विद्वान् लोग सब शास्त्रो के बोध से युक्त कल्याण करने हारी बुद्धि से धम अर्थ काम और मोक्ष फलो को प्राप्त होते हैं वसे उन अध्यापको से पूर्ण विद्या पढ प्रशसित बुद्धि को पाके आप उन्नति को प्राप्त हो तथा वेद के पढाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यो की भी उन्नति करें ॥ ४४ ॥

अधा हीत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*फिर वह कसा हो यह विषय अगल मन्त्र मे कहा है—*

**अधा॒ ह्यग्ने॒ क्रतो॑र्भ॒द्रस्य॒ दक्ष॑स्य सा॒धो॑ ।**
**र॒थीर्ऋ॒तस्य॑ बृह॒तो ब॒भूथ॑ ॥४५॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् जन ! जैसे तू ( भद्रस्य ) आनन्दकारक ( दक्षस्य ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त ( साधो ) अच्छे मार्ग में प्रवर्त्तमान ( ऋतस्य ) सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की ( बृहत ) बडे विषय वा ज्ञानरूप ( क्रतो ) बुद्धि से ( रथी ) प्रशसित रमणसाधन यानो से युक्त ( बभूथ ) हूजिये वैसे ( अध ) मङ्गलाचरणपूर्वक ( हि ) निश्चय करके हम भी होवें ॥४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई वृद्धि को प्राप्त होके विद्वान् लोग बढते हैं वैसे ही अध्येता लोगो को बढाना चाहिये ॥४५॥

एभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**एभिर्नोऽअर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।**
**अग्ने विश्वेभिः सुमनाऽअनीकैः ॥४६॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष ! आप ( **न** ) हमारे लिये ( **विश्वेभि** ) सब ( **अनीकै** ) सेनाओ के सहित राजा के तुल्य ( **सुमना** ) मन से सुखदाता ( **भव** ) हूजिये ( **एभि** ) इन पूर्वोक्त ( **अर्कै** ) पूजा के योग्य विद्वानो के सहित ( **न** ) हमारे लिये ( **ज्योति** ) ज्ञान के प्रकाशक ( **अर्वाङ्** ) नीचो को उत्तम करने को जानने वाले ( **स्व** ) सुख के ( **न** ) समान हूजिये ॥४६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जसे राजा अच्छी शिक्षा बल युक्त सेनाओ से शत्रुओ को जीत के सुखी होता है वसे ही बुद्धि आदि गुणो से अविद्या से हुये क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होवें ॥४६॥

**अग्नि होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । यऽऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥४७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ( **य** ) जो ( **ऊर्ध्वया** ) ऊर्ध्वगति के साथ ( **स्वध्वर** ) शुभ कर्म करने से अहिंसनीय ( **देवाच्या** ) विद्वानो के सत्कार के हेतु ( **कृपा** ) समर्थ क्रिया से ( **देव** ) दिव्य गुणो वाला पुरुष ( **शोचिषा** ) दीप्ति के साथ ( **आजुह्वानस्य** ) अच्छे प्रकार हवन किये ( **सर्पिष** ) घी और ( **घृतस्य** ) जल के सकाश से ( **विभ्राष्टिम** ) विविध प्रकार की ज्योतियो को ( **अनुवष्टि** ) प्रकाशित करता है उस ( **होतारम्** ) सुख के दाता ( **जातवेदसम्** ) उत्पन्न हुये सब पदार्थों मे विद्यमान ( **सहस** ) बलवान् पुरुष के ( **सूनुम्** ) पुत्र के समान ( **वसुम** ) धनदाता ( **दास्वन्तम्** ) दानशील ( **जातवेदसम्** ) बुद्धिमानो मे प्रसिद्ध ( **अग्निम** ) तेजस्वी अग्नि के ( **न** ) समान ( **विप्रम** ) आप्त ज्ञानी का मैं ( **मन्ये** ) सत्कार करता हूं वैसे तुम लोग भी उस को मानो ॥४७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे अच्छे प्रकार सेवन किये विद्वान् लोग विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा से सब को आर्य करते हैं वसे युक्ति से सेवन किया अग्नि अपने गुण कर्म और स्वभावो से सब के सुख की उन्नति करता है ॥४७॥

**अग्ने त्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्ने त्वं नो अन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४८॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! ( **त्वम्** ) आप जैसे यह ( **वसु** ) धनदाता ( **वसुश्रवा** ) अन्न और धन का हेतु ( **अग्नि** ) अग्नि ( **रयिम्** ) धन को ( **दा** ) देता है वैसे ( **न** ) हमारे ( **अन्तम** ) अत्यन्त समीप ( **त्राता** ) रक्षक ( **वरूथ्य** ) श्रेष्ठ ( **उत** ) और ( **शिव** ) मङ्गलकारी ( **भव** ) हूजिये । हे ( **शोचिष्ठ** ) अति तेजस्वी ( **दीदिव** ) बहुत प्रकाशो से युक्त वा कामना वाले विद्वन् ! जैसे हम लोग ( **त्वा** ) तुझको ( **सखिभ्य** ) मित्रो से ( **सुम्नाय** ) सुख के लिए ( **नूनम्** ) निश्चय ( **ईमहे** ) मागते है वसे ( **तम्** ) उस तुझको सब मनुष्य चाहे जैसे मैं ( **द्युमत्तमम्** ) प्रशसित प्रकाशो से युक्त तुझको ( **अच्छ** ) अच्छे प्रकार ( **नक्षि** ) प्राप्त होता हूं वैसे तू हमको प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जसे मित्र अपने मित्रो को चाहते और उनकी उन्नति करते है वसे विद्वान् सब का मित्र सबको सुख देवे ॥४८॥

**येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**येनऽऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धानाऽअग्निꣳ स्वराभरन्तः । तस्मिन्नह निदधे नाकेऽअग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम् ॥४९॥**

**पदार्थ**—( **येन** ) जिस ( **तपसा** ) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से ( **इन्धाना** ) प्रकाशमान ( **स्व** ) सुख को ( **आभरन्त** ) अच्छे प्रकार धारण करते हुए ( **ऋषय** ) वेद का अर्थ जाननेवाले ऋषि लोग ( **सत्रम्** ) सत्य विज्ञान से युक्त ( **अग्निम्** ) विद्युत् आदि अग्नि को ( **आयन्** ) प्राप्त हों ( **तस्मिन्** ) उस कर्म के होते ( **नाके** ) दुःखरहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त ( **मनव** ) विचारशील विद्वान् लोग ( **यम्** ) जिस ( **स्तीर्णबर्हिषम्** ) आकाश को आच्छादन करने वाले ( **अग्निम्** ) अग्नि को ( **आहु** ) कहते हैं उस को ( **अहम्** ) मैं ( **नि: दधे** ) धारण करता हूं ॥४९॥

**भावार्थ**—जिस प्रकाश से वेदपारग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर बिजुली आदि पदार्थों को उपयोग मे लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धि युक्त होना चाहिये ॥ ४९ ॥

**त पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*विद्वानों को कसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठेऽअधि रोचने दिवः ॥५०॥**

**पदार्थ**—हे ( **देवा** ) विद्वान् लोगो ! जसे तुम लोग ( **तम्** ) उस पूर्वोक्त अग्नि को ( **गृभ्णाना** ) ग्रहण करते हुए ( **दिव** ) प्रकाशयुक्त ( **सुकृतस्य** ) सुन्दर वेदोक्त कर्म ( **अधि** ) मे वा ( **रोचने** ) रुचिकारक ( **तृतीये** ) विज्ञान से हुए ( **पृष्ठे** ) जानने को इष्ट ( **लोके** ) विचारने वा देखने योग्य स्थान मे वर्त्तमान ( **पत्नीभि** ) अपनी अपनी स्त्रियों ( **पुत्रै** ) वृद्धावस्था मे हुए दुःख से रक्षक पुत्रो ( **भ्रातृभि** ) बन्धुओ ( **उत वा** ) और अन्य सम्बन्धियों तथा ( **हिरण्यै** ) सुवर्णादि के साथ ( **नाकम्** ) आनन्द को प्राप्त होते हो वैसे ही इन सबके सहित हम लोग भी ( **अनु, गच्छेम** ) अनुगत हो ॥ ५० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री, पुत्र, भाई कन्या माता पिता सवक और पडोसियो को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होत हैं वैसे ही सब मनुष्यो को होना चाहिये ॥ ५० ॥

**आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः । पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥५१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् पुरुष ! ( **चेकितान** ) विज्ञानयुक्त ( **सत्पति** ) श्रेष्ठो के रक्षक आप ( **वाच** ) वाणी के ( **मध्यम्** ) बीच हुए उपदेश को प्राप्त होके जैसे ( **अयम्** ) यह ( **भुरण्यु** ) पुष्टिकर्त्ता ( **अग्नि:** ) विद्वान् ( **पृथिव्या** ) भूमि के ( **पृष्ठे** ) ऊपर ( **निहित** ) निरन्तर स्थिर किया ( **दविद्युतत** ) उपदेश से सब का प्रकाशित करता और धर्म पर ( **आ, अरुहत्** ) आरूढ होता है उसके साथ ( **ये** ) जो लोग ( **पृतन्यव** ) युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उनको ( **अधस्पदम्** ) अपने अधिकार से च्युत जसे हो वैसा ( **कृणुताम** ) कीजिये ॥ ५१ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् मनुष्यो को चाहिये कि जसे ईश्वर ब्रह्माण्ड मे सूर्यलोक को स्थापन करके सबको सुख पहुँचाता है वसे ही राज्य मे विद्या और बल को धारण कर शत्रुओ को जीत के प्रजा के मनुष्यो का सुख से उपकार करें ॥ ५१ ॥

**अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगो को वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् । विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽउप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥५२॥**

**पदार्थ**—जो ( **अयम** ) यह ( **वीरतम** ) अपने बल से शत्रुओ को अत्यन्त व्याप्त होने तथा ( **वयोधा** ) सब के जीवन का धारण करने वाला ( **सहस्रिय** ) असख्य योद्धाजनो के समान योद्धा ( **सरिरस्य** ) आकाश के ( **मध्य** ) बीच ( **विभ्राजमान** ) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सा ( **अप्रयुच्छन्** ) प्रमादरहित होते हुये ( **अग्नि** ) अग्नि के तुल्य सनापति आप ( **द्योतताम** ) प्रकाशित हूजिये और ( **दिव्यानि** ) अच्छे ( **धाम** ) जन्म कर्म और स्थानो को ( **उप, प्र याहि** ) प्राप्त हूजिये ॥ ५२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि धर्मात्मा जनो के साथ निवास कर प्रमाद को छोड और जितेन्द्रियता से अवस्था बढा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी होवें ॥ ५२ ॥

**संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् । पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्याओ को ( **उपसंप्रयात** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ( **देवयानान्** ) धार्मिको के ( **पथ** ) मार्गों से ( **सम्प्रच्यवध्वम** ) सम्यक चलो धर्म को ( **कृणुध्वम** ) करो । हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पितामह ! ( **त्वयि** ) तुम्हारे बने रहते ही ( **पितरा** ) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्य

को ( कृण्वाना ) करते हुये ( यवाना ) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर ( पुनः ) पश्चात् ( एतम् ) गर्भाधानादि रीति से यथोक्त ( तन्तुम् ) सन्तान को ( अत्नातासीत् ) अनुकूल उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

**भावार्थ**—कुमार स्त्री पुरुष धर्मयुक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ आप धार्मिक हो पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति में कन्याओं वा परीक्षा कर अत्यन्त प्रीति के साथ चित्त से परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छा से विवाह कर धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का सन्तोष कर के आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें ॥ ५३ ॥

**उद्बुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।**

**धैवतः स्वरः ॥**

*फिर वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**उद्बु॑ध्यस्वाग्ने॒ प्रति॑ जागृहि॒ त्वमि॑ष्टापू॒र्ते सꣳसृ॑जेथाम॒यं च॑ ।**

**अ॒स्मिन्त्स॒धस्थे॒ अध्युत्त॑रस्मि॒न् विश्वे॑ देवा॒ यज॑मानश्च सीदत ॥५४॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष ! तू ( उद्बुध्यस्व ) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सब के प्रति ( प्रति, जागृहि ) अविद्यारूप निद्रा को छोड के विद्या से चेतन हो ( त्वम् ) तू स्त्री ( च ) और ( अयम् ) यह पुरुष दोनों ( अस्मिन् ) इस वर्त्तमान ( सधस्थे ) एक स्थान में और ( उत्तरस्मिन् ) आगामी समय में सदा ( इष्टापूर्त्ते ) इष्ट सुख विद्वानों का सत्कार ईश्वर का आराधन अच्छा सङ्ग करना और सत्यविद्या आदि का दान देना यह इष्ट और पूर्णबल ब्रह्मचर्य विद्या की शोभा पूर्ण युवा अवस्था साधन और उपसाधन यह सब पूर्त्त इन दोनों को ( सं, सृजेथाम् ) सिद्ध किया करो ( विश्वे ) सब ( देवाः ) विद्वान् लोग ( च ) और ( यजमानः ) यज्ञ करने वाले पुरुष तू इस एक स्थान में ( अधि, सीदत ) उन्नतिपूर्वक स्थिर होओ ॥५४॥

**भावार्थ**—जैसे अग्नि सुगन्धादि के होम से इष्ट सुख देता और यज्ञकर्त्ता जन यज्ञ की सामग्री पूरी करता है वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत् में आचरण किया करें । जब विवाह के लिये दृढ प्रीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को बुला के उन के समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा करके पति और पत्नी बनें ॥५४॥

**येन वहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम् ।**

**तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥५५॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री ! तू ( देवेषु ) विद्वानों में ( स्वः ) सुख को ( गन्तवे ) प्राप्त होने के लिये ( येन ) जिस प्रतिज्ञा किये कर्म से ( सहस्रम् ) गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को ( वहसि ) प्राप्त होता हो तथा ( येन ) जिस विज्ञान से ( सर्ववेदसम् ) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो ( तेन ) उससे ( इमम् ) इस गृहाश्रमरूप ( यज्ञम् ) सङ्गति के योग्य यज्ञ को ( नः ) हम को ( नय ) प्राप्त कीजिये ॥५५॥

**भावार्थ**—विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये आचरण करो वैसे हम माता पिता आचार्य्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताव करो ॥५५॥

**अयं त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तोऽअरो॑चथाः ।**

**तं जा॒नन्न॑ग्न॒ऽआ रो॑हाथा॑ नो वर्धया र॒यिम् ॥५६॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) विद्वन् वा विदुषि ! ( अयम् ) यह ( ते ) तेरा ( ऋत्वियः ) ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ ( योनिः ) घर है ( यतः ) जिस विद्या के पठन पाठन से ( जातः ) प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू ( अरोचथाः ) प्रकाशित हो ( तम् ) उसको ( जानन् ) जानता वा जानती हुई ( आ, रोह ) धर्म पर आरूढ हो ( अथ ) इसके पश्चात् ( नः ) हमारी ( रयिम् ) सम्पत्ति को ( वर्धय ) बढाया कर ॥ ५६ ॥

**भावार्थ**—स्त्री पुरुष में विवाह में यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हो उस उस को सदैव प्रचारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढा के उसको अच्छे मार्ग में खर्च किया करो । यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥५६॥

**तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शिशिरर्त्तुर्देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः ।**

**षड्जः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है—*

**तप॑श्च तप॒स्य᳕श्च शैशि॒रावृ॒तूऽअ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो᳖ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः । येऽअ॒ग्नयः॒ सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽइ॒मे शैशि॒रावृ॒तूऽअ॑भि॒कल्प॑माना॒ऽइन्द्र॑मिव दे॒वाऽअ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥५७॥**

**पदार्थ**—हे ईश्वर ! ( मम ) मेरी ( ज्यैष्ठ्याय ) ज्येष्ठता के लिये ( तपः ) ताप बढाने का हेतु माघ महीना ( च ) और ( तपस्यः ) तापवाला फाल्गुन मास ( च ) ये दोनों ( शैशिरौ ) शिशिर ऋतु में प्रख्यात ( ऋतू ) अपने चिह्नों को प्राप्त करनेवाले सुखदायी होते हैं । आप जिनके ( अग्नेः ) अग्नि के भी ( अन्तःश्लेषः ) मध्य में प्रविष्ट ( असि ) हैं उन दोनों से ( द्यावापृथिवी ) आकाश भूमि ( कल्पेताम् ) समर्थ हों ( आपः ) जल ( ओषधयः ) ओषधियां ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों ( सव्रताः ) एक प्रकार के नियमों में वर्त्तमान ( अग्नयः ) विद्युत् आदि अग्नि ( पृथक् ) अलग-अलग ( कल्पन्ताम् ) समर्थ होवें ( ये ) जो ( समनसः ) एक प्रकार के मन के निमित्तवाले हैं वे ( अग्नयः ) विद्युत् आदि अग्नि ( इमे ) इन ( द्यावापृथिवी ) आकाश भूमि के ( अन्तरा ) बीच में होनेवाले ( शैशिरौ ) शिशिर ऋतु के साधक ( ऋतू ) माघ फाल्गुन महीनों को ( अभिकल्पमानाः ) समर्थ करते हैं । उन अग्नियों को ( इन्द्रमिव ) ऐश्वर्य के तुल्य ( देवाः ) विद्वान् लोग ( अभिसंविशन्तु ) ज्ञानपूर्वक प्रवेश करें । हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों ( तया ) उस ( देवतया ) पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साथ ( अङ्गिरस्वत् ) प्राण के समान वर्त्तमान इन आकाश भूमि के तुल्य ( ध्रुवे ) दृढ ( सीदतम् ) स्थिर होओ ॥ ५७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईश्वर से ही सुख चाहें । ईश्वर विद्युत् अग्नि के बीच व्याप्त है । इस कारण सब पदार्थ अपने अपने नियम से कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नियों के गुण दोष जानें स्त्री पुरुष गृहाश्रम में स्थिरबुद्धि होके शिशिर ऋतु के सुख को भोगें ॥ ५७ ॥

**परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विदुषी देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।**

**मध्यमः स्वरः ॥**

*स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प॒र॒मे॒ष्ठी त्वा॑ सादयतु दि॒वस्पृ॒ष्ठे ज्योति॑ष्मतीम् । विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ । सूर्य॒स्तेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥५८॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! ( परमेष्ठी ) महान् आकाश में व्याप्त होकर स्थित परमेश्वर ( ज्योतिष्मतीम् ) प्रशस्त ज्ञानयुक्त ( त्वा ) तुझको ( दिवः ) प्रकाश के ( पृष्ठे ) उत्तम भाग में ( विश्वस्मै ) सब ( प्राणाय ) प्राण ( अपानाय ) अपान और ( व्यानाय ) व्यान आदि की यथार्थ क्रिया होने के लिये ( सादयतु ) स्थित करे । तू सब स्त्रियों के लिये ( विश्वम् ) समस्त ( ज्योतिः ) ज्ञान के प्रकाश को ( यच्छ ) दिया कर जिस ( ते ) तेरा ( सूर्यः ) सूर्य के समान तेजस्वी ( अधिपतिः ) स्वामी है ( तया ) उस ( देवतया ) अच्छे गुणोंवाले पति के साथ वर्त्तमान ( अङ्गिरस्वत् ) सूर्य के समान ( ध्रुवा ) दृढता से ( सीद ) स्थिर हो ॥ ५८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जिस परमेश्वर ने जो जो ऋतु बनाया है उस उस को उपासनापूर्वक इस ऋतु को युक्ति से सेवन करके स्त्री पुरुष सदा सुख बढाया करें ॥ ५८ ॥

**लोकं पृणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । विराडनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**लो॒कं पृ॑ण छि॒द्रं पृ॑णाथो॑ सीद ध्रु॒वा त्वम् ।**

**इ॒न्द्रा॒ग्नी त्वा॒ बृह॒स्पति॑र॒स्मिन् योना॑वसीषदन् ॥५९॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! ( त्वम् ) तू इस ( लोकम् ) लोक तथा परलोक को ( पृण ) सुखयुक्त कर ( छिद्रम् ) अपनी न्यूनता को ( पृण ) पूरी कर और ( ध्रुवा ) निश्चलता से ( सीद ) घर में बैठ ( अथो ) इसके अनन्तर ( इन्द्राग्नी ) उत्तम धनी ज्ञानी तथा ( बृहस्पतिः ) अध्यापक ( अस्मिन् ) इस ( योनौ ) गृहाश्रम में ( त्वा ) तुझको ( असीषदन् ) स्थापित करें ॥ ५९ ॥

**भावार्थ**—अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों के साधनों को पूरा करके सब कार्यों को सिद्ध करे । जैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों की गृहाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों में प्रीति हो वैसा उपदेश किया करे ॥ ५९ ॥

**ताऽअस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*अब राजा प्रजा का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—*

**ताऽअ॑स्य॒ सूद॑दोहसः॒ सोम॑ꣳ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।**

**जन्म॑न्दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वा रो॑च॒ने दि॒वः ॥६०॥**

**पदार्थ**—जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त ( देवानाम् ) विद्वानों के ( जन्मन् ) जन्म विषय में ( पृश्नयः ) पूछनेहारी ( सूददोहसः ) रसोइयां और कार्य्यों के पूरण करनेवाले पुरुषों से युक्त ( त्रिषु ) वेद रीति से कर्म उपासना और ज्ञानों तथा

( दिव ) सबके अन्त प्रकाशक परमात्मा के ( रोचने ) प्रकाश मे वर्त्तमान (विश ) प्रजा हैं ( ता ) वे ( अस्य ) इस सभाध्यक्ष राजा के ( सोमम् ) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रसो से युक्त भोजनीय पदार्थों को ( आ ) सब ओर से ( श्रीणन्ति ) पकाती हैं ॥ ६० ॥

भावार्थ—प्रजापालक पुरुषो को चाहिये कि सब प्रजाओ को विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण मे नियुक्त करें और प्रजा भी स्वय नियुक्त हो । इसके विना कर्म उपासना ज्ञान और ईश्वर का यथार्थ बोध कभी नहीं हो सकता ॥ ६० ॥

इन्द्र विश्वा इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*फिर वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।**

**रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१॥**

पदार्थ—( विश्वा ) सब ( गिर ) विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी ( समुद्रव्यचसम् ) आकाश के तुल्य व्याप्तिवाले (रथीनाम्) शूरवीरो म (रथीतमम्) उत्तम शूरवीर ( वाजानाम् ) विज्ञानी पुरुषो के ( सत्पतिम ) सत्य व्यवहारो और [ विद्वानों ] के रक्षक तथा प्रजाओ के ( पतिम् ) स्वामी ( इन्द्रम् ) परम सम्पत्ति युक्त सभापति राजा को ( अवीवृधन् ) बढ़ावें ॥ ६१ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के जन राजधर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्त्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवें ऐसे ही सभापति इन प्रजा और राजा के पुरुषो को भी उत्साही करें ॥ ६१ ॥

प्रोथदश्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । विराट त्रिष्टुप्छन्द ।

धैवत स्वरः ॥

*फिर भी वही विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।**

**आदस्य वातोऽअनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२**

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( यवसे ) भूसा आदि के लिये ( अश्व ) घोड़े के ( न ) समान प्रजाओं को ( प्रोथत ) समर्थ कीजिये ( यदा ) जब ( मह ) बड़े ( संवरणात ) आच्छादन स ( अविष्यन् ) रक्षा आदि करते हुए ( व्यस्थात् ) स्थित होवें ( आत् ) पुन ( अस्य ) इस ( ते ) आप का ( व्रजनम् ) चलने तथा ( कृष्णम् ) आकर्षण करने वाला ( शोचि ) प्रकाश ( अस्ति ) है ( अध ) इसके पश्चात् ( स्म ) ही आप का ( वात ) चलने वाला भृत्य ( अनु, वाति ) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य्य सिद्ध करने मे समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट होकर राज्य को बढ़ाती है ॥ ६२ ॥

आयोष्ट्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विदुषी देवता । विराट त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाꣳ समुद्रस्य हृदये ।**

**रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३॥**

पदार्थ—हे स्त्रि ! ( या ) जो तू ( द्याम् ) प्रकाश ( पृथिवीम् ) भूमि और ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को ( उरु ) बहुत ( आ, भासि ) प्रकाशित करती है उस ( रश्मीवतीम् ) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त ( भास्वतीम ) शोभा को प्राप्त हुई ( त्वा ) तुझको ( आयो ) न्यायानुकूल चलने वाले चिरजीवी पुरुष के ( सदने ) स्थान मे और (अवत) रक्षा करते हुए के (छायायाम्) आश्रय मे ( आ, सादयामि ) अच्छे प्रकार स्थापित तथा ( समुद्रस्य ) अन्तरिक्ष के ( हृदये ) बीच ( आ ) शुद्ध प्रकार स मैं स्थित कराता हूँ ॥ ६३ ॥

भावार्थ—हे स्त्रि ! अच्छे प्रकार पालने हारे पति के आश्रयरूप स्थान मे समुद्र के तुल्य चञ्चलतारहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुझको स्थित करता हूँ । तू गृहाश्रम के धर्म का प्रकाश कर पति आदि को सुखी रख और तुझको भी पति आदि सुखी रक्खें ॥ ६३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । परमात्मा देवता । आकृतिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*स्त्री पुरुष परस्पर कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृꣳह दिवं मा हिꣳसीः । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥**

पदार्थ—हे स्त्रि ! ( परमेष्ठी ) परमात्मा ( विश्वस्मै ) समग्र ( प्राणाय ) जीवन के सुख ( अपानाय ) दु खनिवृत्ति ( व्यानाय ) नाना विद्याओ की व्याप्ति ( उदानाय ) उत्तम बल ( प्रतिष्ठाय ) सवत्र सत्कार और ( चरित्राय ) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के लिये ( दिव ) कमनीय गृहस्थ व्यवहार के ( पृष्ठे ) आधार में ( प्रथस्वतीम् ) बहुत प्रसिद्ध प्रशसा वाली ( व्यचस्वतीम ) प्रशसित विद्या मे व्याप्त जिस ( त्वा ) तुझको ( सादयतु ) स्थापित करे सो तू ( दिवम ) न्याय के प्रकाश को ( यच्छ ) दिया कर ( दिवम ) विद्यारूप सूर्य को ( दृꣳह ) दृढ़ कर ( दिवम् ) धर्म के प्रकाश को ( मा, हिꣳसी ) मत नष्ट कर ( सूर्य ) चराचर जगत् का स्वामी ईश्वर ( मह्या ) बड़ अच्छे ( स्वस्त्या ) सत्कार ( शन्तमेन ) अतिशय सुख और ( छर्दिषा ) सत्यासत्य क प्रकाश स ( त्वा ) तुझको ( अभिपातु ) सब ओर से रक्षा करे वह तेरा पति और तू दोनों ( तया ) उस ( देवतया ) परमेश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम) स्थिर रहो ॥६४॥

भावार्थ—परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे शिशिर ऋतु सुखदायी होती है वैसे स्त्री पुरुष परस्पर सन्तोषी हो सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मों को छोड़ के परमेश्वर की उपासना से निरन्तर आनन्द किया करें ॥ ६४ ॥

सहस्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । विद्वान् देवता । विराडनुष्टुप छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि**

**साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष वा विदुषी स्त्रि ! जिस कारण तू ( सहस्रस्य ) असख्यात पदार्थों से युक्त जगत् के ( प्रमा ) प्रमाण यथार्थ ज्ञान क तुल्य ( असि ) है ( सहस्रस्य ) असख्य विशेष पदार्थों के ( प्रतिमा ) तोलन साधन के तुल्य ( असि ) है ( सहस्रस्य ) असख्य स्थूल वस्तुओ क ( उन्मा ) तोलने की तुला के समान ( असि ) है ( साहस्र ) असख्य पदार्थ और विद्याओ से युक्त ( असि ) है इस कारण ( सहस्राय ) असख्य प्रयोजनो के लिये ( त्वा ) तुझको परमात्मा व्यवहार में स्थित करे ॥ ६५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यहाँ पूर्वमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो पदो की अनुवृत्ति आती है । तीन साधनो से मनुष्यो के व्यवहार सिद्ध होते हैं । एक तो यथार्थ विज्ञान दूसरा पदार्थ तोलने क लिये तोल के साधन बाट और तीसरा तराजू आदि । यह शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

इस अध्याय मे ऋतुविद्या का प्रतिपादन होन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पन्द्रहवां ( १५ ) अध्याय पूर्ण हुआ ॥

# ॥ अथ षोडशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**नमस्त इत्यस्य परमेष्ठी कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । आर्षी गायत्री छन्दः ।**

**षड्जः स्वरः ॥**

*अब सोलहवें अध्याय का आरम्भ करते हैं । इसके प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है—*

## नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१॥

**पदार्थ**—हे ( **रुद्र** ) रुद्र शत्रुओं को रुलानेहारे राजन् ( **ते** ) तेरे ( **मन्यवे** ) क्रोधयुक्त वीरपुरुष के लिये ( **नमः** ) वज्र प्राप्त हो ( **उतो** ) और ( **इषवे** ) शत्रुओं को मारनेहारे ( **ते** ) तेरे लिये ( **नमः** ) अन्न प्राप्त हो ( **उत** ) और ( **ते** ) तेरे ( **बाहुभ्याम्** ) भुजाओं से ( **नमः** ) वज्र शत्रुओं को प्राप्त हो ॥१॥

**भावार्थ**—जो राज्य किया चाहें वे हाथ पांव का बल युद्ध की शिक्षा तथा शस्त्र और अस्त्रों का संग्रह करें ॥१॥

**या त इत्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । आर्षी स्वराडनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*अब शिक्षक और शिष्य का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है—*

## या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
## तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥२॥

**पदार्थ**—हे ( **गिरिशन्त** ) मेघ वा सत्य उपदेश से सुख पहुंचानेवाले ( **रुद्र** ) दुष्टों को भय और श्रेष्ठों के लिये सुखकारी शिक्षक विद्वान् ( **या** ) जो ( **ते** ) आप की ( **अघोरा** ) घोर उपद्रव से रहित ( **अपापकाशिनी** ) सत्य धर्मों का प्रकाशित करनेहारी ( **शिवा** ) कल्याणकारिणी ( **तनूः** ) देह वा विस्तृत उपदेशरूप नीति है ( **तया** ) उस ( **शन्तमया** ) अत्यन्त सुख प्राप्ति करानेवाली ( **तन्वा** ) देह वा विस्तृत उपदेश की नीति से ( **नः** ) हम लोगों को आप ( **अभि चाकशीहि** ) सब ओर से शीघ्र शिक्षा कीजिये ॥२॥

**भावार्थ**—शिक्षक लोग शिष्यों के लिये धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें और पापों से पृथक् करके कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें ॥२॥

**यामिषुमित्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये—*

## यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
## शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

**पदार्थ**—हे ( **गिरिशन्त** ) मेघ द्वारा सुख पहुँचानेवाले सेनापति जिस कारण तू ( **अस्तवे** ) फेंकने के लिये ( **याम्** ) जिस ( **इषुम्** ) बाण को ( **हस्ते** ) हाथ में ( **बिभर्षि** ) धारण करता है इसलिये ( **ताम्** ) उसको ( **शिवाम्** ) मङ्गलकारी ( **कुरु** ) कर । हे ( **गिरित्र** ) विद्या के उपदेशकों वा मेघों की रक्षा करनेहारे राजपुरुष तू ( **पुरुषम्** ) पुरुषार्थ युक्त मनुष्यादि ( **जगत्** ) संसार को ( **मा** ) मत ( **हिंसीः** ) मार ॥३॥

**भावार्थ**—राजपुरुषों को चाहिये कि युद्ध विद्या को जान और शस्त्र अस्त्रों को धारण करके मनुष्यादि श्रेष्ठ प्राणियों को क्लेश न देवें वा न मारें किन्तु मङ्गलरूप आचरण से सब की रक्षा करें ॥३॥

**शिवेनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*अब वैद्य का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है—*

## शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
## यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ॥ ४ ॥

**पदार्थ**—हे ( **गिरिश** ) पर्वत वा मेघों में सोनेवाले रोगनाशक वैद्यराज तू ( **सुमनाः** ) प्रसन्नचित्त होकर आप ( **यथा** ) जैसे ( **नः** ) हमारा ( **सर्वम्** ) सब ( **जगत्** ) मनुष्यादि जङ्गम और स्थावर राज्य ( **अयक्ष्मम्** ) क्षयी आदि राजरोगों से रहित ( **असत्** ) हो वैसे ( **इत्** ) ही ( **शिवेन** ) कल्याणकारी ( **वचसा** ) वचन से ( **त्वा** ) तुझको हम लोग ( **अच्छ वदामसि** ) अच्छा कहते हैं ॥४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष वैद्यकशास्त्र को पढ़ पर्वतादि स्थानों की ओषधियों वा जलों की परीक्षा कर और सब के कल्याण के लिये निष्कपटता से रोगों को निवृत्त करके प्रियवाणी से वर्त्ते उस वैद्य का सब लोग सत्कार करें ॥ ४ ॥

**अध्यवोचदित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । एकरुद्रो देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः ।**

**मध्यमः स्वरः ॥**

## अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥ ५ ॥

**पदार्थ**—हे रुद्र रोगनाशक वैद्य जो ( **प्रथमः** ) मुख्य ( **दैव्यः** ) विद्वानों में प्रसिद्ध ( **अधिवक्ता** ) सब से उत्तम कक्षा के वैद्यक शास्त्र को पढ़ाने तथा ( **भिषक्** ) निदान आदि को जान के रोगों को निवृत्त करनेवाले आप ( **सर्वान्** ) सब ( **अहीन्** ) सर्प के तुल्य प्राणान्त करनेहारे रोगों को ( **च** ) निश्चय से ( **जम्भयन्** ) ओषधियों से हटाते हुए ( **अध्यवोचत्** ) अधिक उपदेश करें सो आप जो ( **सर्वाः** ) सब ( **अधराचीः** ) नीच गति को पहुँचानेवाली ( **यातुधान्यः** ) रोगकारिणी ओषधि वा व्यभिचारिणी स्त्रियां उनको ( **परा** ) दूर ( **सुव** ) कीजिये ॥५॥

**भावार्थ**—राजादि सभासद् लोग सबके अधिष्ठाता मुख्य धर्मात्मा जिसने सब रोगों वा ओषधियों की परीक्षा ली हो उस वैद्य को राज्य और सेना में रख के बल और सुख के नाशक रोगों तथा व्यभिचारिणी स्त्री और पुरुषों को निवृत्त करावें ॥५॥

**असावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।**

**पञ्चमः स्वरः ॥**

*वही राजधर्म का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनꣳ रुद्रा
## अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ॥ ६ ॥

**पदार्थ**—हे प्रजास्थ मनुष्यो ( **यः** ) जो ( **असौ** ) वह ( **ताम्रः** ) ताम्रवत् दृढाङ्गयुक्त ( **हेडः** ) शत्रुओं का अनादर करनेहारा ( **अरुणः** ) सुन्दर गौराङ्ग ( **बभ्रुः** ) किञ्चित् पीला वा धुमेला वर्ण युक्त ( **उत** ) और ( **सुमङ्गलः** ) सुन्दर कल्याणकारी राजा हो ( **च** ) और ( **ये** ) जो ( **सहस्रशः** ) हजारहों ( **रुद्राः** ) दुष्ट कर्म करनेवालों को रुलानेहारे ( **अभितः** ) चारों ओर ( **दिक्षु** ) पूर्वादि दिशाओं में ( **एनम्** ) इस राजा के ( **श्रिताः** ) आश्रय से बसते हों ( **एषाम्** ) इन वीरों का आश्रय लेके हम लोग ( **अवेमहे** ) विरुद्धाचरण की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो जो राजा अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करता चन्द्र तुल्य श्रेष्ठों को सुख देता न्यायकारी शुभलक्षणयुक्त और इसके तुल्य भृत्य राज्य में सर्वत्र बसें विचरें वा समीप में रहें उनका सत्कार करके उनसे दुष्टों का अपमान तुम लोग कराया करो ॥६॥

**असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।**

**पञ्चमः स्वरः ॥**

## असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा
## अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥

**पदार्थ**—( **यः** ) जो ( **असौ** ) वह ( **नीलग्रीवः** ) नीलमणियों की माला पहिने ( **विलोहितः** ) विविध प्रकार के शुभ गुण कर्म और स्वभाव से युक्त श्रेष्ठ ( **रुद्रः** ) शत्रुओं का हिंसक सेनापति ( **अवसर्पति** ) दुष्टों से विरुद्ध चलता है । जिस ( **एनम्** ) इसको ( **गोपाः** ) रक्षक भृत्य ( **अदृश्रन्** ) देखें ( **उत** ) और ( **उदहार्य्यः** ) जल लानेवाली कहारी स्त्रियां ( **अदृश्रन्** ) देखें ( **सः** ) वह सेनापति ( **दृष्टः** ) देखा हुआ ( **नः** ) हम सब धार्मिकों को ( **मृडयाति** ) सुखी करे ॥७॥

**भावार्थ**—जो दुष्टों का विरोधी श्रेष्ठों का प्रिय दर्शनीय सेनापति सब सेनाओं को प्रसन्न कर वह शत्रुओं को जीत सके ॥७॥

**नमोऽस्त्वित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

## नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य
## सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ८ ॥

**पदार्थ**—( **नीलग्रीवाय** ) जिस का कण्ठ और स्वर शुद्ध हो उस ( **सहस्राक्षाय** ) हजारहों भृत्यों के कार्य देखनेवाले ( **मीढुषे** ) पराक्रमयुक्त सेनापति के लिये मेरा दिया ( **नमः** ) अन्न ( **अस्तु** ) प्राप्त हो ( **अथो** ) इसके अनन्तर ( **ये** ) जो ( **अस्य** )

इस सेनापति के अधिकार में ( सत्वान ) सत्व गुण तथा बल से युक्त पुरुष हैं ( तेभ्य ) उनके लिये भी ( अहम् ) मैं ( नम ) अन्नादि पदार्थों को ( अकरम् ) सिद्ध करूं ॥८॥

**भावार्थ**—सभापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि अन्नादि पदार्थों से जैसा सत्कार सेनापति का करें वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करें ॥८॥

**प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः ।**

**ऋषभः स्वरः ॥**

## प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
## याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

**पदार्थ**—हे ( भगवः ) ऐश्वर्ययुक्त सेनापते ( ते ) तेरे ( हस्ते ) हाथ में ( याः ) जो ( इषवः ) बाण हैं ( ताः ) उनको ( धन्वनः ) धनुष के ( उभयोः ) दोनों ( आर्त्न्योः ) पूर्व पर किनारों की ( ज्याम् ) प्रत्यञ्चा में जोड़ के शत्रुओं पर ( त्वम् ) तू ( प्र, मुञ्च ) बल के साथ छोड़ ( च ) और जो तेरे पर शत्रुओं ने बाण छोड़ हुए हों उनको ( परा, वप ) दूर कर ॥९॥

**भावार्थ**—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धनुष से बाण चला कर शत्रुओं को जीतें और शत्रुओं के फेंके हुए बाणों का निवारण करें ॥९॥

**विज्यन्धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्च्युनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

## विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२॥ उत ।
## अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥

**पदार्थ**—हे धनुर्वेद को जानने हारे पुरुषो ( अस्य ) इस ( कपर्दिनः ) प्रशंसित जटाजूट का धारण करने हारे सेनापति का ( धनुः ) धनुष ( विज्यम् ) प्रत्यञ्चा से रहित न होवे तथा यह ( विशल्यः ) बाण के अग्रभाग से रहित और ( आभुः ) आयुधों से खाली मत हो ( उत ) और ( अस्य ) इस अस्त्रशस्त्रों को धारण करनेवाले सेनापति का ( निषङ्गधिः ) बाणादि शस्त्रास्त्र कोष खाली मत हो तथा यह ( बाणवान् ) बहुत बाणों से युक्त होवे ( याः ) जो ( अस्य ) इस सेनापति के ( इषवः ) बाण ( अनेशन् ) नष्ट हो जावें वे इसको तुम लोग नवीन देओ ॥१०॥

**भावार्थ**—युद्ध की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिये कि धनुष की प्रत्यञ्चा आदि को दृढ़ और बहुत से बाणों को धारण करें सेनापति आदि को चाहिये कि लड़ते हुए अपने भृत्यों को देख के यदि उनके पास बाणादि युद्ध के साधन न रहें तो फिर फिर भी दिया करें ॥१०॥

**या त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*सेनापति आदि किससे कैसे उपदेश कराने योग्य हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
## तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥ ११ ॥

**पदार्थ**—हे ( मीढुष्टम ) अत्यन्त वीर्य के सेचक सेनापते ( या ) जो ( ते ) तेरी सेना है और जो ( ते ) तेरे ( हस्ते ) हाथ में ( धनुः ) धनुष तथा ( हेतिः ) वज्र ( बभूव ) हो ( तया ) उस ( अयक्ष्मया ) पराजय आदि की पीड़ा निवृत्त करने हारी सेना से और उस धनुष आदि से ( अस्मान् ) हम प्रजा और सेना के पुरुषों की ( त्वम् ) तू ( विश्वतः ) सब ओर से ( परि ) अच्छे प्रकार ( भुज ) पालना कर ॥११॥

**भावार्थ**—विद्या और अवस्था में वृद्ध उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि सेनापति को ऐसा उपदेश करें कि आप लोगों के अधिकार में जितनी सेना आदि बल है उससे सब श्रेष्ठों की सब प्रकार रक्षा किया करें और दुष्टों को ताड़ना दिया करें ॥ ११ ॥

**परि इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*राजा और प्रजा के पुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।
## अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् ॥ १२ ॥

**पदार्थ**—हे सेनापति जो ( ते ) आपके ( धन्वनः ) धनुष् की ( हेतिः ) गति है उस से ( अस्मान् ) हम लोगों को ( विश्वतः ) सब ओर से ( आरे ) दूर में आप ( परि वृणक्तु ) त्यागिये ( अथो ) इसके पश्चात् ( यः ) जो ( तव ) आपका ( इषुधिः ) बाण रखने का घर अर्थात् तर्कस है ( तम् ) उसको ( अस्मत् ) हमारे समीप से ( नि, धेहि ) निरन्तर धारण कीजिये ॥१२॥

**भावार्थ**—राज और प्रजाजनों को चाहिये कि युद्ध और शस्त्रों का अभ्यास करके शस्त्रादि सामग्री सदा अपने समीप रक्खें उन सामग्रियों से एक दूसरे की रक्षा और सुख की उन्नति करें ॥१२॥

**अवतत्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**

**गान्धारः स्वरः ॥**

*राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

## अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे ।
## निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

**पदार्थ**—हे ( सहस्राक्ष ) असंख्य युद्ध के कार्यों को देखने हारे ( शतेषुधे ) शस्त्र अस्त्रों के असंख्य प्रकाश से युक्त सेना के अध्यक्ष पुरुष ( त्वम् ) तू ( धनुः ) धनुष् और ( शल्यानाम् ) शस्त्रों के ( मुखा ) अग्रभागों का ( अवतत्य ) विस्तार कर तथा उनसे शत्रुओं को ( निशीर्य ) अच्छे प्रकार मार के ( नः ) हमारे लिये ( सुमनाः ) प्रसन्नचित्त ( शिवः ) मङ्गलकारी ( भव ) हूजिये ॥१३॥

**भावार्थ**—राजपुरुष साम दाम दण्ड और भेदादि राजनीति के अवयवों के कृत्यों को सब ओर से जान पूर्ण शस्त्र अस्त्रों का सञ्चय कर और उनको तीक्ष्ण करके शत्रुओं में कठोरचित्त दुःखदायी और अपनी प्रजाओं में कोमलचित्त सुख देनेवाले निरन्तर हों ॥१३॥

**नमस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः ।**

**ऋषभः स्वरः ॥**

## नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे ।
## उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥ १४ ॥

**पदार्थ**—हे सभापति ( आयुधाय ) युद्ध करने ( अनातताय ) अपने आशय को गुप्त सङ्कोच में रखने और ( धृष्णवे ) प्रगल्भता को प्राप्त होनेवाले ( ते ) आपके लिये ( नमः ) अन्न प्राप्त हो ( उत ) और ( ते ) भोजन करने हारे आपके लिये अन्न देता हूं ( तव ) आपके ( उभाभ्याम् ) दोनों ( बाहुभ्याम् ) बल और पराक्रम से ( धन्वने ) योद्धा पुरुष के लिये ( नमः ) अन्न को नियुक्त करूं ॥१४॥

**भावार्थ**—सेनापति आदि राज्याधिकारियों को चाहिये कि अध्यक्ष और योद्धा दोनों को शस्त्र देके शत्रुओं से निःशङ्क अच्छे प्रकार युद्ध करावें ॥१४॥

**मा नो महान्तमित्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः ।**

**निषादः स्वरः ॥**

*राजपुरुषों को क्या नहीं करना चाहिये—*

## मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥

**पदार्थ**—हे ( रुद्र ) युद्ध की सेना के अधिकारी विद्वन् पुरुष आप ( नः ) हमारे ( महान्तम् ) उत्तम गुणों से युक्त पूज्य पुरुष को ( मा ) मत ( उत ) और ( अर्भकम् ) छोटे क्षुद्र पुरुष को ( मा ) मत ( नः ) हमारे ( उक्षन्तम् ) गर्भाधान करने हारे को ( मा ) मत ( उत ) और ( नः ) हमारे ( उक्षितम् ) गर्भ को ( मा ) मत ( नः ) हमारे ( पितरम् ) पालन करने हारे पिता को ( मा ) मत ( उत ) और ( नः ) हमारी ( मातरम् ) मान्य करने हारी माता को भी ( मा ) मत ( वधीः ) मारिये । और ( नः ) हमारे ( प्रियाः ) स्त्री आदि के प्यारे ( तन्वः ) शरीरों को ( मा ) मत ( रीरिषः ) मारिये ॥१५॥

**भावार्थ**—योद्धा लोगों को चाहिये कि युद्ध के समय वृद्धों बालकों युद्ध से हटनेवालों ज्वानों गर्भों योद्धाओं के माता पितरों सब स्त्रियों, युद्ध के देखने वा प्रबन्ध करनेवालों और दूतों को न मारें किन्तु शत्रुओं के सम्बन्धी मनुष्यों को सदा वश में रक्खें ॥१५॥

**मा न स्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी जगतीच्छन्दः ।**

**निषादः स्वरः ॥**

## मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ १६ ॥

**पदार्थ**—हे ( रुद्र ) सेनापति तू ( नः ) हमारे ( तोके ) तत्काल उत्पन्न हुए सन्तान को ( मा ) मत ( नः ) हमारे ( तनये ) पांच वर्ष से ऊपर अवस्था के बालक को ( मा ) मत ( नः ) हमारी ( आयुषि ) अवस्था को ( मा ) मत ( नः ) हमारे ( गोषु ) गौ भेड़ बकरी आदि को ( मा ) मत ( नः ) हमारे और ( अश्वेषु ) घोड़े हाथी और ऊंट आदि को ( मा ) मत ( रीरिषः ) मार और ( नः ) हमारे ( भामिनः ) क्रोध को प्राप्त हुए ( वीरान् ) शूरवीरों को ( मा ) मत ( वधीः ) मार इससे ( हविष्मन्तः ) बहुतसे देने लेने योग्य वस्तुओं से युक्त हम लोग ( सदम् ) न्याय में स्थिर ( त्वा ) तुझको ( इत् ) ही ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ॥१६॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि अपने वा प्रजा के बालको कुमार और गौ घोडे आदि वीर उपकारी जीवों की कभी हत्या न करें और बाल्यावस्था में विवाह कर व्यभिचार से अवस्था की हानि भी न करें गौ आदि पशु दूध आदि पदार्थों को देने से जो सब का उपकार करते हैं उससे उन की सदैव वृद्धि करें ॥१६॥

नमो हिरण्यबाहव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदतिधृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

राज प्रजा के पुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः । शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥१७

पदार्थ—हे शत्रुताडक सेनाधीश ( हिरण्यबाहवे ) ज्योति के समान तीव्र तेज युक्त भुजावाले ( सेनान्ये ) सेना के शिक्षक तेरे लिये ( नमः ) वज्र प्राप्त हो ( च ) और ( दिशाम् ) सब दिशाओं के राज्य भागों के ( पतये ) रक्षक तेरे लिये ( नमः ) अन्नादि पदार्थ मिले ( हरिकेशेभ्यः ) जिन में हरणशील सूर्य की किरण प्राप्त हों ऐसे ( वृक्षेभ्यः ) आम्रादि वृक्षों को काटने के लिये ( नमः ) वज्रादि शस्त्रों का ग्रहण कर ( पशूनाम् ) गौ आदि पशुओं के ( पतये ) रक्षक तेरे लिये ( नमः ) सत्कार प्राप्त हो ( शष्पिञ्जराय ) विषयादि के बन्धनों से पृथक् ( त्विषीमते ) बहुत न्याय के प्रकाशों से युक्त तेरे लिये ( नमः ) नमस्कार और अन्न हो ( पथीनाम् ) मार्ग में चलने हारों के ( पतये ) रक्षक तेरे लिये ( नमः ) आदर प्राप्त हो ( हरिकेशाय ) हरे केशों वाले ( उपवीतिने ) सुन्दर यज्ञोपवीत से युक्त तेरे लिये ( नमः ) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हो और ( पुष्टानाम् ) नीरोग पुरुषों की ( पतये ) रक्षा करने हारे के लिये ( नमः ) नमस्कार प्राप्त हो ॥१७॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठों के सत्कार भूख से पीडितों को अन्न देने चक्रवर्त्तिराज्य की शिक्षा पशुओं की रक्षा जाने आने वालों को डाकू और चोर आदि से बचाने यज्ञोपवीत के धारण करने और शरीरादि की पुष्टि के साथ प्रसन्न रहें ॥१७॥

नमो बभ्लुशायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ॥ १८ ॥

पदार्थ—राजपुरुष आदि मनुष्यों को चाहिये कि ( बभ्लुशाय ) राज्यधारक पुरुषों में सोते हुए ( व्याधिने ) रोगी के लिये ( नमः ) अन्न देवें ( अन्नानाम् ) गेहूँ आदि अन्न के ( पतये ) रक्षक को ( नमः ) सत्कार करें ( भवस्य ) संसार की ( हेत्यै ) वृद्धि के लिये ( नमः ) अन्न देवें ( जगताम् ) मनुष्यादि प्राणियों के ( पतये ) स्वामी को ( नमः ) सत्कार करें ( रुद्राय ) शत्रुओं को रुलाने और ( आततायिने ) अच्छे प्रकार विस्तृत शस्त्रसेना को प्राप्त होने वाले को ( नमः ) अन्न देवें ( क्षेत्राणाम् ) धान्यादि युक्त खेतों के ( पतये ) रक्षक को ( नमः ) अन्न देवें ( सूताय ) क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न हुए प्रेरक वीर पुरुष और ( अहन्त्यै ) किसी को न मारने हारी राजपत्नी के लिये ( नमः ) अन्न देवें और ( वनानाम् ) जङ्गलों की ( पतये ) रक्षा करने हारे पुरुष को ( नमः ) अन्नादि पदार्थ देवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो अन्नादि से सब प्राणियों का सत्कार करते हैं वे जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥१८॥

नमो रोहितायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडतिधृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

पदार्थ—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि ( रोहिताय ) सुखों की वृद्धि के कर्त्ता और ( स्थपतये ) स्थानों के स्वामी रक्षक सेनापति के लिये ( नमः ) अन्न ( वृक्षाणाम् ) आम्रादि वृक्षों के ( पतये ) अधिष्ठाता को ( नमः ) अन्न ( भुवन्तये ) आधारवान् ( वारिवस्कृताय ) सेवन करने हारे भृत्य को ( नमः ) अन्न और ( ओषधीनाम् ) सोमलतादि ओषधियों के ( पतये ) रक्षक वैद्य को ( नमः ) अन्न देवें ( मन्त्रिणे ) विचार करनेहारे राजमन्त्री और ( वाणिजाय ) वैश्यों के व्यवहार में कुशल पुरुष का ( नमः ) सत्कार करें ( कक्षाणाम् ) घरों में रहने वालों के ( पतये ) रक्षक को ( नमः ) अन्न और ( उच्चैर्घोषाय ) ऊंचे स्वर से बोलने तथा ( आक्रन्दयते ) दुष्टों को रुलाने वाले न्यायाधीश का ( नमः ) सत्कार और ( पत्तीनाम् ) सेना के अवयवों की ( पतये ) रक्षा करने हारे पुरुष का ( नमः ) सत्कार करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि धन आदि के रक्षक मनुष्यों को अन्नादि पदार्थ देके वृक्षों और ओषधि आदि पदार्थों की उन्नति करें ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायतयेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । अतिधृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ॥ २० ॥

पदार्थ—मनुष्य लोग ( कृत्स्नायतया ) सम्पूर्ण प्राप्ति के अर्थ ( धावते ) इधर उधर जाने आने वाले को ( नमः ) अन्न देवें ( सत्वनाम् ) प्राप्त पदार्थों की ( पतये ) रक्षा करने हारे का ( नमः ) सत्कार करें ( सहमानाय ) बलयुक्त और ( निव्याधिने ) शत्रुओं को निरन्तर ताडना देने हारे पुरुष को ( नमः ) अन्न देवें ( आव्याधिनीनाम् ) अच्छे प्रकार शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के ( पतये ) रक्षक सेनापति का ( नमः ) आदर करें ( निषङ्गिणे ) बहुत से अच्छे बाण तलवार भुशुण्डी शतघ्नी अर्थात् बन्दूक तोप और तोमर आदि शस्त्र जिसके हों उसको ( नमः ) अन्न देवें ( निचेरवे ) निरन्तर पुरुषार्थ के साथ विचरने तथा ( परिचराय ) धर्म विद्या माता, स्वामी और मित्रादि की सब प्रकार सेवा करने वाले ( ककुभाय ) प्रसन्नमूर्ति पुरुष को ( नमः ) सत्कार करें ( स्तेनानाम् ) अन्याय से परधन लेने हारे प्राणियों को ( पतये ) जो दण्ड आदि से शुष्क करता हो उस को ( नमः ) वज्र से मारें ( अरण्यानाम् ) वन जङ्गलों के ( पतये ) रक्षक पुरुष को ( नमः ) अन्नादि पदार्थ देवें ॥२०॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि पुरुषार्थियों का उत्साह के लिये सत्कार, प्राणियों के ऊपर दया अच्छी शिक्षित सेना का रखना चोर आदि को दण्ड सेवकों की रक्षा और वनों को नहीं काटना इस सब को कर राज्य की वृद्धि करें ॥२०॥

नमो वञ्चत इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदतिधृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥ २१ ॥

पदार्थ—राजपुरुष ( वञ्चते ) छल से दूसरों के पदार्थों को हरनेवाले ( परिवञ्चते ) सब प्रकार कपट के साथ वर्त्तमान पुरुष को ( नमः ) वज्र का प्रहार और ( स्तायूनाम् ) चोरी से जीने वालों के ( पतये ) स्वामी को ( नमः ) वज्र से मारें ( निषङ्गिणे ) राज्यरक्षा के लिये निरन्तर उद्यत ( इषुधिमते ) प्रशंसित बाणों का धारण करने हारे को ( नमः ) अन्न देवें ( तस्कराणाम् ) चोरी करने हारों को ( पतये ) उस कर्म में चलाने हारे को ( नमः ) वज्र और ( सृकायिभ्यः ) वज्र से सज्जनों को पीडित करने को प्राप्त होने और ( जिघांसद्भ्यः ) मारने की इच्छा वालों को ( नमः ) वज्र से मारें ( मुष्णताम् ) चोरी करते हुओं को ( पतये ) दण्ड प्रहार से पृथिवी में गिराने हारे का ( नमः ) सत्कार करें ( असिमद्भ्यः ) प्रशंसित खड्गों के सहित ( नक्तम् ) रात्रि में ( चरद्भ्यः ) घूमने वाले लुटेरों को ( नमः ) शस्त्रों से मारें और ( विकृन्तानाम् ) विविध उपायों से गांठ काट के परपदार्थों को लेने हारे गठिकटों को ( पतये ) मार के गिराने हारे का ( नमः ) सत्कार करें ॥२१॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि कपट व्यवहार से छलने और दिन वा रात में अनर्थ करनेहारों को रोक के धर्मात्माओं का निरन्तर पालन किया करें ॥२१॥

नम उष्णीषिण इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ।

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ॥ २२ ॥

पदार्थ—हम राजा और प्रजा के पुरुष ( उष्णीषिणे ) प्रशंसित पगड़ी को धारण करनेवाले ग्रामपति और ( गिरिचराय ) पर्वतों में विचरनेवाले जङ्गली पुरुष का ( नमः ) सत्कार और ( कुलुञ्चानाम् ) बुरे स्वभाव से दूसरों के पदार्थ खोसने वालों को ( पतये ) गिरानेहारे का ( नमः ) सत्कार करते ( इषुमद्भ्यः ) बहुत बाणोंवाले को ( नमः ) अन्न ( च ) तथा ( धन्वायिभ्यः ) धनुषों को प्राप्त होने वाले ( वः ) तुम लोगों के लिये ( नमः ) अन्न ( आतन्वानेभ्यः ) अच्छे प्रकार सुख के फैलाने हारों का ( नमः ) सत्कार ( च ) और ( प्रतिदधानेभ्यः ) शत्रुओं के प्रति शस्त्र धारण करनेहारे ( वः ) तुमको ( नमः ) सत्कार प्राप्त ( आयच्छद्भ्यः ) दुष्टों को बुरे कर्मों से रोकने वालों को ( नमः ) अन्न देते ( च ) और ( अस्यद्भ्यः ) दुष्टों पर शस्त्रादि छोडनेवाले ( वः ) तुम्हारे लिये ( नमः ) सत्कार करते हैं ॥२२॥

भावार्थ—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि प्रधान पुरुष आदि का वस्त्र और अन्नादि के दान से सत्कार करें ॥ २२ ॥

नमो विसृजद्भ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदतिजगतीछन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

**नमो॑ विसृजद्भ्यो॑ विध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑: स्वप॑द्भ्यो जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑: शया॑नेभ्य॒ आसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नम॑: ॥ २३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम ऐसा सबको जनाओ कि हम लोग ( विसृजद्भ्य ) शत्रुओ पर शस्त्रादि छोडने वालों को ( नम ) अन्नादि पदार्थ ( च ) और ( विध्यद्भ्य ) शस्त्रों से शत्रुओं को मारते हुए ( व ) तुमको ( नम ) अन्न ( स्वपद्भ्य ) सोते हुओ के लिये ( नम ) वज्र ( च ) और ( जाग्रद्भ्य ) जागते हुए ( व ) तुमको ( नम ) अन्न ( शयानेभ्य ) निद्रालुओं को ( नम ) अन्न ( च ) और ( आसीनेभ्य ) आसन पर बैठे हुए ( व ) तुम को ( नम ) अन्न ( तिष्ठद्भ्य ) खडे हुओ को ( नम ) अन्न ( च ) और ( धावद्भ्य ) शीघ्र चलते हुए ( व ) तुम लोगों को ( नम ) अन्न देवेंगे ॥ २३ ॥

भावार्थ—गृहस्थो को चाहिये कि करुणामय वचन बोल और अन्नादि पदार्थ देके सब प्राणियो को सुखी करें ॥ २३ ॥

नम सभाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । शक्वरी छन्द ।

धैवत स्वर ॥

**नम॑: स॒भाभ्य॑: स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ आव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ उग॑णाभ्यस्तृꣳहती॒भ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २४ ॥**

पदार्थ—मनुष्यो को सब के प्रति ऐसे कहना चाहिये कि हम लोग ( सभाभ्य ) न्याय आदि क प्रकाश से युक्त स्त्रियो का ( नम ) सत्कार ( च ) और ( सभापतिभ्य ) सभाओं के रक्षक ( व ) तुम राजाओं का ( नम ) सत्कार करें ( अश्वेभ्य ) घोडो को ( नम ) अन्न ( च ) और ( अश्वपतिभ्य ) घोडों के रक्षक ( व ) तुम को ( नम ) अन्न तथा ( आव्याधिनीभ्य ) शत्रुओ की सेनाओ को मारनेहारी अपनी सेनाओ के लिये ( नम ) अन्न देवें ( च ) और ( विविध्यन्तीभ्य ) शत्रुओं के वीरों को मारती हुई ( व ) तुम स्त्रियो का ( नम ) सत्कार करें ( उगणाभ्य ) विविध तर्कों वाली स्त्रियो का ( नम ) अन्न ( च ) और ( तृंहतीभ्य ) युद्ध मे मारती हुई ( व ) तुम स्त्रियो के लिये ( नम ) अन्न देवें तथा यथायोग्य सत्कार किया करें ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि सभा और सभापतियो से ही राज्य की व्यवस्था करें । कभी एक राजा की आधीनता से स्थिर न हो क्योकि एक पुरुष से बहुतों के हिताहित का विचार कभी नहीं हो सकता इससे ॥ २४ ॥

नमो गणेभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । भुरिक् शक्वरी

छन्द । धैवत स्वर ॥

**नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑भ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नम॑: ॥ २५ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग ( गणेभ्य ) सेवको को ( नम ) अन्न ( च ) और ( गणपतिभ्य ) सेवको के रक्षक ( व ) तुम लोगो को ( नम ) अन्न देवें ( व्रातेभ्य ) मनुष्यो का ( नम ) सत्कार ( च ) और ( व्रातपतिभ्य ) मनुष्यो के रक्षक ( व ) तुम्हारा ( नम ) सत्कार ( गृत्सेभ्य ) पदार्थों के गुणो को प्रकट करनेवाले विद्वानो का ( नम ) सत्कार ( च ) तथा ( गृत्सपतिभ्य ) बुद्धिमानो के रक्षक ( व ) तुम लोगों का ( नम ) सत्कार ( विरूपेभ्य ) विविधरूप वालो का ( नम ) सत्कार ( च ) और ( विश्वरूपेभ्य ) सब रूपो से युक्त ( व ) तुमलोगो का ( नम ) सत्कार करें वैसे तुम लोग भी देओ सत्कार करो ॥ २५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियो का उपकार विद्वानो का सङ्ग समग्र शोभा और विद्याओ को धारण करके सन्तुष्ट हों ॥ २५ ॥

नम सेनाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । भुरिगतिजगती

छन्द । निषाद स्वर ॥

**नम॑: सेना॑भ्यः सेना॒निभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ र॒थिभ्यो॑ अर॒थेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑: क्ष॒त्तृभ्य॑: संग्रही॒तृभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ म॒हद्भ्यो॑ऽअर्भ॒केभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २६ ॥**

पदार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषो जैसे हम लोग ( सेनाभ्य ) शत्रुओ को बांधनेहारे सेनास्थ पुरुषों का ( नम ) सत्कार करते ( च ) और ( व ) तुम ( सेनानिभ्य ) सेना के नायक प्रधान पुरुषो को ( नम ) अन्न देते हैं ( रथिभ्य ) प्रशसित रथोंवाले पुरुषो का ( नम ) सत्कार ( च ) और ( व ) तुम ( अरथेभ्य ) रथो से पृथक् पैदल चलने वालो का ( नम ) सत्कार करते हैं ( क्षत्तृभ्य ) क्षत्रिय की स्त्री मे शूद्र से उत्पन्न हुए वर्णसकर के लिये ( नम ) अन्नादि पदार्थ देते ( च ) और ( व ) तुम ( संग्रहीतृभ्य ) अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री को ग्रहण करनेहारो का ( नम ) सत्कार करते हैं ( महद्भ्य ) विद्या और अवस्था से वृद्ध पूजनीय महाशयों को ( नम ) अच्छा पकाया हुआ अन्नादि पदार्थ देते ( च ) और ( व ) तुम ( अर्भकेभ्य ) क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य विद्यार्थियो का ( नम ) निरन्तर सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी दिया किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—राजपुरुषो को चाहिये कि सब भृत्यो को सत्कार और शिक्षापूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म से राज्य का पालन करें ॥ २६ ॥

नमस्तक्षभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । निचृच्छक्वरी छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*विद्वान् लोगों को किन का सत्कार करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नम॒स्तक्ष॑भ्यो रथका॒रेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॒: कुला॑लेभ्यः क॒र्मारे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ नि॒षादे॑भ्यः पु॒ञ्जिष्ठे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑: श्व॒निभ्यो॑ मृग॒युभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे राजा आदि हम लोग ( तक्षभ्य ) पदार्थों को सूक्ष्म क्रिया से बनानेहारे तुमको ( नम ) अन्न देते ( च ) और ( रथकारेभ्य ) बहुत से विमानादि यानो को बनानेहारे ( व ) तुम लोगो का ( नम ) परिश्रमादि का धन देके सत्कार करते हैं ( कुलालेभ्य ) प्रशंसित मिट्टी के पात्र बनानेवालों को ( नम ) अन्नादि पदार्थ देते ( च ) और ( कर्मारेभ्य ) खड्ग बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनानेवाले ( व ) तुम लोगो का ( नम ) सत्कार करते हैं ( निषादेभ्य ) वन और पर्वतादि मे रह कर दुष्ट जीवो को ताड़ना देनेवाले तुम को ( नम ) अन्नादि देते ( च ) और ( पुञ्जिष्ठेभ्य ) श्वेतादि वर्णों वा भाषाओ मे प्रवीण ( व ) तुम्हारा ( नम ) सत्कार करते हैं ( श्वनिभ्य ) कुत्तो को शिक्षा करनेहारे तुमको ( नम ) अन्नादि देने ( च ) और ( मृगयुभ्य ) अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहने वाले तुम लोगों का ( नम ) सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जो पदार्थ विद्या को जान के अपूर्व कारीगरी युक्त पदार्थों को बनावें उनको पारितोषिक आदि देके प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओ को अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग मे लावें उनको सुख प्राप्त करावें ॥ २७ ॥

नम श्वभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । आर्षी जगती छन्द ।

निषाद स्वर ॥

*मनुष्य लोग किन से कैसा उपकार लेवें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नम॒: श्वभ्य॒: श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑: श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च ॥ २८ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम परीक्षक लोग ( श्वभ्य ) कुत्तो को ( नम ) अन्न देवें ( च ) और ( व ) तुम ( श्वपतिभ्य ) कुत्तो को पालने वालो को ( नम ) अन्न देवें तथा सत्कार करें ( च ) तथा ( भवाय ) जो शुभगुणो मे प्रसिद्ध हो उस जन का ( नम ) सत्कार ( च ) और ( रुद्राय ) दुष्टो के रुलानेहारे वीर का सत्कार ( च ) तथा ( शर्वाय ) दुष्टो को मारनेवालो को ( नम ) अन्नादि देते ( च ) और ( पशुपतये ) गौ आदि पशुओ के पालक को अन्न ( च ) और ( नीलग्रीवाय ) सुन्दर वर्ण वाले कण्ठ से युक्त ( च ) और ( शितिकण्ठाय ) तीक्ष्ण वा काले कण्ठ वाले को ( नम ) अन्न देते और सत्कार करते हैं वैसे तुम भी दिया किया करो ॥ २८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि कुत्ते आदि पशुओ को अन्नादि से बढ़ा के उनसे उपकार लेवें और पशुओ के रक्षको का सत्कार भी करें ॥ २८ ॥

नम कपर्दिन इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्द ।

निषाद स्वर ॥

*गृहस्थ लोगों को किनका सत्कार करना चाहिये—*

**नम॑: कप॒र्दिने॑ च॒ व्यु॑प्तकेशाय च॒ नम॑: सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च॒ नमो॑ गिरिश॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च ॥ २९ ॥**

पदार्थ—गृहस्थ लोगो को चाहिये कि ( कपर्दिने ) जटाधारी ब्रह्मचारी ( च ) और ( व्युप्तकेशाय ) समस्त केश मुडानेहारे सन्यासी ( च ) और संन्यास चाहते हुए को ( नम ) अन्न देवें ( च ) तथा ( सहस्राक्षाय ) असंख्य शास्त्र के विषयादि को देखने वाले विद्वान् ब्राह्मण का ( च ) और ( शतधन्वने ) धनुष आदि असंख्य शस्त्र विद्याओ के शिक्षक क्षत्रिय का ( नम ) सत्कार करें ( गिरिशयाय ) पर्वतो के आश्रय से सोने हारे वानप्रस्थ का ( च ) और ( शिपिविष्टाय ) पशुओ के पालक वैश्य आदि ( च ) और शूद्र का ( नम ) सत्कार करें ( मीढुष्टमाय ) वृक्ष बगीचा और खेत आदि को अच्छे प्रकार सींचने वाले किसान लोगो ( च ) और माली आदि को ( इषुमते ) प्रशसित बाणो वाले वीर पुरुष को ( च ) भी ( नम ) अन्नादि देवें और सत्कार करें ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—गृहस्थों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कारपूर्वक विद्यादान कर और करावें । तथा संन्यासी आदि की सेवा करके विशेष विज्ञान का ग्रहण किया करें ॥ २९ ॥

**नमो ह्रस्वायेत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

## नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥३०॥

**पदार्थ**—जो गृहस्थ लोग ( **ह्रस्वाय** ) बालक ( **च** ) और ( **वामनाय** ) प्रशंसित ज्ञानी ( **च** ) तथा मध्यम विद्वान् को ( **नम** ) अन्न देते हैं ( **बृहते** ) बड़े ( **च** ) और ( **वर्षीयसे** ) विद्या मे प्रतिबद्ध ( **च** ) तथा विद्यार्थी का ( **नम** ) सत्कार ( **वृद्धाय** ) अवस्था मे अधिक ( **च** ) और ( **सवृध** ) अपने समानों के साथ बढ़ने वाले ( **च** ) तथा सबके मित्र का ( **नम** ) सत्कार ( **च** ) और ( **अग्र्याय** ) सत्कर्म करने मे सबसे पहिले उद्यत होनेवाले ( **च** ) तथा (**प्रथमाय**) प्रसिद्ध पुरुष का ( **नम** ) सत्कार करते हैं ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—गृहस्थ मनुष्यों को उचित है कि अन्नादि पदार्थों से बालक आदि का सत्कार करके अच्छे व्यवहार की उन्नति करें ॥ ३० ॥

**नम आशवे इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब उद्योग कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## नम आशवे चाजिराय च नम शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥३१

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग ( **आशवे** ) वायु के तुल्य मार्ग मे शीघ्र गामी ( **च** ) और ( **अजिराय** ) असवारों को फेंकने वाले घोड़े ( **च** ) तथा हाथी आदि को ( **नम** ) अन्न ( **शीघ्र्याय** ) शीघ्र चलने मे उत्तम ( **च** ) और ( **शीभ्याय** ) शीघ्रता करनेहारों मे प्रसिद्ध ( **च** ) तथा मध्यस्थ जन को ( **नम** ) अन्न (**ऊर्म्याय**) जल तरङ्गों मे वायु के समान वर्त्तमान (**च**) और ( **अवस्वन्याय** ) अनुत्तम शब्दों मे प्रसिद्ध होने वाले के लिये (**च**) तथा दूर से सुनने हारे को ( **नम** ) अन्न ( **नादेयाय** ) नदी मे रहने ( **च** ) और ( **द्वीप्याय** ) जल के बीच टापू मे रहने ( **च** ) तथा उनके सम्बन्धियों को ( **नम** ) अन्न देते रहो तो आप लोगों को सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त हों ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—जो क्रियाकौशल से बनाये विमानादि यानों और घोड़ों से शीघ्र चलते हैं वे द्वीप २ द्वीप वा देश को न जावें राज्य के लिये धन का नहीं प्राप्त होते किन्तु सर्वत्र जा आके सबको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

**नमो ज्येष्ठायेत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्य लोग परस्पर कैसे सत्कार करने वाले हों यह विषय अगले मन्त्रों मे कहा है—*

## नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नम. पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥३२

**पदार्थ**—हे मनुष्यो तुम लोग (**ज्येष्ठाय**) अत्यन्त वृद्धों (**च**) और (**कनिष्ठाय**) अतिबालकों का ( **नम** ) सत्कार और अन्न ( **च** ) तथा ( **पूर्वजाय** ) ज्येष्ठभ्राता वा ब्राह्मण ( **च** ) और ( **अपरजाय** ) छोटे भाई वा नीच का (**च**) भी ( **नम** ) सत्कार वा अन्न ( **मध्यमाय** ) बन्धु क्षत्रिय वा वैश्य ( **च** ) और ( **अपगल्भाय** ) ढीठपन छोड़े हुये सरल स्वभाव वाले ( **च** ) इन सब का ( **नम** ) सत्कार आदि(**च**) ( **जघन्याय** ) नीच कर्म कर्त्ता शूद्र वा म्लेच्छ ( **च** ) तथा ( **बुध्न्याय** ) अन्तरिक्ष मे हुए मेघ के तुल्य वर्त्तमान दाता पुरुष का ( **नम** ) अन्नादि से सत्कार करो ॥३२॥

**भावार्थ**—परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब ( नमस्ते ) इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों का छोटे नीच उत्तमों उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणों ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें सब लोग इसी वेदोक्त प्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार मे इसी वाक्य का प्रयोग करके परस्पर एक दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें ॥३२॥

**नम सोभ्यायेत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

## नम: सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नम: श्लोक्याय चावसान्याय च नम. उर्वर्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो (**सोभ्याय**) ऐश्वर्ययुक्तों मे प्रसिद्ध (**च**) और (**प्रतिसर्याय**) धर्मात्माओं मे उत्पन्न हुए ( **च** ) तथा धर्मात्माओं को ( **नम** ) अन्न दे ( **याम्याय** ) न्यायकारियों मे उत्तम ( **च** ) और ( **क्षेम्याय** ) रक्षा करने वालों मे चतुर ( **च** ) और न्यायाधीशादि को ( **नम** ) अन्न दे और ( **श्लोक्याय** ) वेदवाणी मे प्रवीण ( **च** ) और ( **अवसान्याय** ) कार्यसमाप्ति व्यवहार मे कुशल ( **च** ) तथा आरम्भ करने मे उत्तम पुरुष का ( **नम** ) सत्कार ( **उर्वर्याय** ) महान् पुरुषों के स्वामी ( **च** ) और (**खल्याय** ) अच्छे अन्नादि पदार्थों के संचय करने मे प्रवीण (**च**) और व्यय करने मे विचक्षण पुरुष का ( **नम** ) सत्कार करके इन सब को आप लोग आनन्दित करो ॥३३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे अनेक चकारों से और भी उपयोगी अर्थ लेना और उन का सत्कार करना चाहिये प्रजास्थ पुरुष न्यायाधीशों न्यायाधीश प्रजास्थों का सत्कार पति आदि स्त्री आदि की और स्त्री आदि पति पुरुषों की प्रसन्नता करें ॥३३॥

**नमो वन्यायेत्यस्य प्रजापतिऋषि । रुद्रा देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## नमो वन्याय च कक्ष्याय च नम: श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नम: शूराय चावभेदिने च ॥३४॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो जो लोग ( **वन्याय**) जङ्गल मे रहने (**च**) और (**कक्ष्याय**) वन के समीप कक्षाओं मे ( **च** ) तथा गुफा आदि मे रहने वालों का ( **नम** ) अन्न देवें ( **श्रवाय** ) सुनने वा सुनाने के हेतु ( **च** ) और ( **प्रतिश्रवाय** ) प्रतिज्ञा करने ( **च** ) तथा प्रतिज्ञा को पूरी करने हारे का ( **नम** ) सत्कार करें । ( **आशुषेणाय** ) शीघ्रगामिनी सेना वाले ( **च** ) और (**आशुरथाय**) शीघ्र चलने हारे रथों के स्वामी ( **च** ) तथा सारथि आदि को ( **नम** ) अन्न देवें ( **शूराय** ) शत्रुओं को मारने ( **च** ) और ( **अवभेदिने** ) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले ( **च** ) तथा दूतादि का ( **नम** ) सत्कार करें उन का सर्वत्र विजय होवे ॥३४॥

**भावार्थ**—राजपुरुषों को चाहिये कि वन तथा कक्षाओं मे रहने वाले अध्येता और अध्यापकों बलिष्ठ सेनाओं शीघ्र चलने हारे यानों मे बैठने वाले वीरों और दूतों को अन्न धनादि से सत्कारपूर्वक उत्साह देके सदा विजय को प्राप्त हों ॥३४॥

**नमो बिल्मिन इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*योद्धाओं की रक्षा कैसे करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्रों मे कहा है—*

## नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नम: श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥३५॥

**पदार्थ**—हे राजन् और प्रजा के अध्यक्ष पुरुषो आप लोग (**बिल्मिने**) प्रशंसित धारण वा पोषण करने ( **च** ) और (**कवचिने**) शरीर के रक्षक कवच को धारण करने ( **च** ) तथा उन के सहायकारियों का ( **नम** ) सत्कार करें ( **वर्मिणे** ) शरीर रक्षा के बहुत साधनों से युक्त ( **च** ) और ( **वरूथिने** ) प्रशंसित घरों वाले ( **च** ) तथा घर आदि के रक्षकों को ( **नम** ) अन्नादि देवें ( **श्रुताय** ) शुभगुणों मे प्रख्यात ( **च** ) और ( **श्रुतसेनाय** ) प्रख्यात सेना वाले ( **च** ) तथा सेनास्थों का ( **नम** ) सत्कार ( **च** ) और ( **दुन्दुभ्याय** ) बाजे बजाने मे चतुर बजन्तरी ( **च** ) तथा ( **आहनन्याय** ) वीरों को युद्ध मे उत्साह बढ़ने के बाजे बजाने मे कुशल पुरुष का ( **नम** ) सत्कार कीजिये जिससे तुम्हारा पराजय कभी न हो ॥३५॥

**भावार्थ**—राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि योद्धा लोगों की सब प्रकार रक्षा सब के सुखदायी घर खान पाने के योग्य पदार्थ प्रशंसित पुरुषों का सङ्ग और अत्युत्तम बाजे आदि देके अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें ॥३५॥

**नमो धृष्णव इत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

## नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नम: स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥३६॥

**पदार्थ**—जो राज और प्रजा के अधिकारी लोगो (**धृष्णवे** ) दृढ़ ( **च**) और ( **प्रमृशाय** ) उत्तम विचारशील ( **च** ) तथा कोमल स्वभाव वाले पुरुष का (**नम**) अन्न देवें ( **निषङ्गिणे** ) बहुत शास्त्र वाले ( **च** ) और (**इषुधिमते**) प्रशंसित शस्त्र अस्त्र और कोश वाले का ( **च** ) भी ( **नम** ) सत्कार और ( **तीक्ष्णेषवे** ) तीक्ष्ण शस्त्र अस्त्रों से युक्त ( **च** ) और ( **आयुधिने** ) अच्छे प्रकार तोप आदि से लड़ने वाले वीरों से युक्त अध्यक्ष पुरुष का ( **च** ) भी ( **नम** ) सत्कार करें ( **स्वायुधाय**) सुन्दर आयुधों वाले ( **च** ) और ( **सुधन्वने** ) अच्छे धनुषों से युक्त ( **च** ) तथा उन के रक्षकों को ( **नम** ) अन्न देवें वे सदा विजय को प्राप्त होवें ॥३६॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जो कुछ कर्म करें सो अच्छे प्रकार विचार और दृढ़ उत्साह से करें क्योंकि शरीर और आत्मा के बल के बिना शस्त्रों का चलाना और शत्रुओं का जीतना कभी नहीं कर सकते इसलिये निरन्तर सेना की उन्नति करें ॥३६॥

**नम स्रुतायेत्यस्य कुत्स ऋषि । रुद्रा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्य लोग जल से कैसे उपकार लेवें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## नम: स्रुत्याय च पथ्याय च नम: काट्याय च नीप्याय च नम: कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥३७

**पदार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि ( स्रुत्याय ) सोता नाले आदि में रहने ( च ) और ( पथ्याय ) मार्ग में चलने ( च ) तथा मार्गादि को शोधने वाले को ( नमः ) अन्न दे ( काट्याय ) कूप आदि में प्रसिद्ध ( च ) और ( नीप्याय ) बड़े जलाशय में होने ( च ) तथा उस के सहायी का ( नमः ) सत्कार ( कुल्याय ) नहरों का प्रबन्ध करने ( च ) और ( सरस्याय ) तालाब के काम में प्रसिद्ध होने वाले का ( नमः ) सत्कार ( च ) और ( नादेयाय ) नदियों के तट पर रहने ( च ) और ( वैशन्ताय ) छोटे २ जलाशयों के जीवों को ( च ) और वापी आदि के प्राणियों को ( नमः ) अन्नादि देके दया प्रकाशित करें ॥३७॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि नदियों के मार्गों बम्बों कूपा जलप्राय देशों बड़ और छोटे तलाबों के जल को चला जहां जहां बांध और खेत आदि में छोड़ के पुष्कल अन्न फल वृक्ष लता गुल्म आदि को अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥३७॥

नमः कूप्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

**नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥**

**पदार्थ**—मनुष्य लोग ( कूप्याय ) कूप के ( च ) और ( अवट्याय ) गड्ढों ( च ) तथा जङ्गलों के जीवों को ( नमः ) अन्नादि दें ( च ) और ( वीध्र्याय ) विविध प्रकाशों में रहने ( च ) और ( आतप्याय ) घाम में रहने वाले वा ( च ) खेती आदि के प्रबन्ध करने वाले को ( नमः ) अन्न दें ( मेघ्याय ) मेघ में रहने ( च ) और ( विद्युत्याय ) बिजुली से काम लेने वाले को ( च ) तथा अग्नि विद्या के जानने वाले को ( नमः ) अन्नादि दें ( च ) और ( वर्ष्याय ) वर्षा में रहने ( च ) तथा ( अवर्ष्याय ) वर्षा रहित देश में बसने वाले का ( नमः ) सत्कार करके आनन्दित होवें ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य कूपादि से कार्य सिद्ध होने के लिये भृत्यों का सत्कार करें तो अनेक उत्तम २ कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥ ३८॥

नमो वात्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवता । स्वराडार्षी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*अब मनुष्य जगत् के अन्य पदार्थों से कैसे उपकार लेवें यह विषय*
*अगले मन्त्र में कहा है—*

**नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥३९॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( वात्याय ) वायुविद्या में कुशल ( च ) और ( रेष्म्याय ) मारनेवालों में प्रसिद्ध को ( च ) भी ( नमः ) अन्नादि देवें ( च ) तथा ( वास्तव्याय ) निवास के स्थानों में हुए ( च ) और ( वास्तुपाय ) निवास स्थान के रक्षक का ( नमः ) सत्कार करें ( च ) तथा ( सोमाय ) धनाढ्य ( च ) और ( रुद्राय ) दुष्टों का रोदन कराने हारे को ( नमः ) अन्नादि देवें ( च ) तथा ( ताम्राय ) बुरे कामों से ग्लानि करने ( च ) और ( अरुणाय ) अच्छे पदार्थों को प्राप्त करानेहारे का ( नमः ) सत्कार करें वे लक्ष्मी से सम्पन्न होवें ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—जब मनुष्य वायु आदि के गुणों को जान के व्यवहारों में लगावें तब अनेक सुखों को प्राप्त हों ॥ ३९ ॥

नमः शङ्गव इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता ।
भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*मनुष्यों को कैसे सन्तोषी होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नमः शङ्गवे च पशुपतये च नमः उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥४०॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( शङ्गवे ) सुख को प्राप्त होने ( च ) और ( पशुपतये ) गौ आदि पशुओं की रक्षा करनेवाले को ( च ) और गौ आदि को भी ( नमः ) अन्नादि पदार्थ देवें ( उग्राय ) तेजस्वी ( च ) और ( भीमाय ) डर दिखानेवाले का ( च ) भी ( नमः ) सत्कार करें ( अग्रेवधाय ) पहिले शत्रुओं को बांधने हारे ( च ) और ( दूरेवधाय ) दूर पर शत्रुओं को बांधने और मारने वाले को ( च ) भी ( नमः ) अन्नादि देवें ( हन्त्रे ) दुष्टों को मारने ( च ) और ( हनीयसे ) दुष्टों का अत्यन्त निर्मूल विनाश करने हारे को ( च ) भी ( नमः ) अन्नादि देवें ( वृक्षेभ्यः ) शत्रु को काटने वालों का वा वृक्षों का और ( हरिकेशेभ्यः ) हरे केशों वाले जवानों वा हरे पत्तों वाले वृक्षों का ( नमः ) सत्कार करें वा जलादि देवें और ( ताराय ) दुःख से पार करनेवाले पुरुष को ( नमः ) अन्नादि देवें वे सुखी हों ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं के पालन और भयङ्कर जीवों की शांति करने से सन्तोष करें ॥ ४० ॥

नमः शम्भवायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता । स्वराडार्षी
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*मनुष्यों को कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( शम्भवाय ) सुख को प्राप्त करने हारे परमेश्वर ( च ) और ( मयोभवाय ) सुखप्राप्ति के हेतु विद्वान् ( च ) का भी ( नमः ) सत्कार ( शंकराय ) कल्याण करने ( च ) और ( मयस्कराय ) सब प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले का ( च ) भी ( नमः ) सत्कार ( शिवाय ) मङ्गलकारी ( च ) और ( शिवतराय ) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप पुरुष का ( च ) भी ( नमः ) सत्कार करते हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि प्रेमभक्ति के साथ सब मङ्गलों के दाता परमेश्वर की ही उपासना और सेनाध्यक्ष का सत्कार करें जिससे अपने अभीष्ट कार्य्य सिद्ध हों ॥ ४१ ॥

नमः पार्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥४२॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( पार्याय ) दुःखों से पार हुए ( च ) और ( अवार्याय ) इधर के भाग में हुए का ( च ) भी ( नमः ) सत्कार ( च ) तथा ( प्रतरणाय ) उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुँचे वा पहुँचाने ( च ) और ( उत्तरणाय ) इस पार से उस पार पहुँचने वा पहुँचाने वाले का ( नमः ) सत्कार करें ( तीर्थ्याय ) वेद विद्या को पढ़ानेवालों और सत्यभाषणादि कामों में प्रवीण ( च ) और ( कूल्याय ) समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहनेवाले को ( च ) भी ( नमः ) अन्न देवें ( शष्प्याय ) तृण आदि कार्यों में साधु ( च ) और ( फेन्याय ) फेन बुद्बुदादि के कार्यों में प्रवीण पुरुष को ( च ) भी ( नमः ) अन्नादि देवें वे कल्याण को प्राप्त होवें ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख समुद्रादि के इस पार उस पार जा आके देश देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें ॥ ४२ ॥

नमः सिकत्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमः इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥४३॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( सिकत्याय ) बालू से पदार्थ निकालने में चतुर ( च ) और ( प्रवाह्याय ) बल आदि के चलाने वालों में प्रवीण को ( च ) भी ( नमः ) अन्न ( किंशिलाय ) शिलावृत्ति करने ( च ) और ( क्षयणाय ) निवासस्थान में रहनेवाले को ( च ) भी ( नमः ) अन्न ( कपर्दिने ) जटाधारी ( च ) और ( पुलस्तये ) बड़े २ शरीरों को फेंकनेवाले को ( च ) भी ( नमः ) अन्न देवें ( इरिण्याय ) ऊसर भूमि से अति उपकार लेनवाले ( च ) और ( प्रपथ्याय ) उत्तम धर्म के मार्गों में प्रवीण पुरुष का ( च ) भी ( नमः ) सत्कार करें वे सबके प्रिय होवें ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भविद्यानुसार बालू मिट्टी आदि से सुवर्णादि धातुओं को निकाल बहुत ऐश्वर्य को बढ़ा के अनाथों का पालन करें ॥४३॥

नमो व्रज्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता ।
आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*कैसे मनुष्य सुखी होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥४४॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( व्रज्याय ) क्रियाओं में प्रसिद्ध ( च ) और ( गोष्ठ्याय ) गौ आदि के स्थानों के उत्तम प्रबन्धकर्त्ता को ( च ) भी ( नमः ) अन्नादि देवें ( तल्प्याय ) खट्वादि के निर्माण में प्रवीण ( च ) और ( गेह्याय ) घर में रहनेवाले को ( च ) भी ( नमः ) अन्न देवें ( हृदय्याय ) हृदय के विचार में कुशल ( च ) और ( निवेष्प्याय ) विषयों में निरन्तर व्याप्त होने में प्रवीण पुरुष का ( च ) भी ( नमः ) सत्कार करें ( काट्याय ) आच्छादित गुप्त पदार्थों को प्रकट करने ( च ) और ( गह्वरेष्ठाय ) गहन अति कठिन गिरिकन्दराओं में उत्तम रहनेवाले पुरुष को ( च ) भी ( नमः ) अन्नादि देवें वे सुख को प्राप्त होवें ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य मेघ से उत्पन्न वर्षा और वर्षा से उत्पन्न हुए तृण आदि की रक्षा से गौ आदि पशुओं को बढ़ावें वे पुष्कल भोग को प्राप्त होवें ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता ।
निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥ ४५ ॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( **शुष्क्याय** ) नीरस पदार्थों मे रहने ( **च** ) और ( **हरित्याय** ) सरस पदार्थों मे प्रसिद्ध को ( **च** ) भी ( **नम** ) जलादि देवें ( **पांसव्याय** ) धूलि मे रहने ( **च** ) और ( **रजस्याय** ) लोक लोकान्तरो मे रहनेवाले का ( **च** ) भी ( **नम** ) मान करें ( **लोप्याय** ) छेदन करने मे प्रवीण ( **च** ) और ( **उलप्याय** ) फेंकने मे कुशल पुरुष का ( **च** ) भी ( **नम** ) मान करें ( **ऊर्व्याय** ) मारने म प्रसिद्ध ( **च** ) और ( **सूर्व्याय** ) सुन्दरता से ताडना करनेवाले का ( **च** ) भी ( **नम** ) सत्कार करें उनके सब काय सिद्ध होवें ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—मनुष्य सुखान और हरापन आदि करनेवाले शत्रुओ को जान के अपने कार्य सिद्ध करें ॥ ४५ ॥

**नम पर्णायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता ।**

**स्वराट प्रकृतिश्छन्द । धवत स्वर ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नमऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नमऽआखिदते च प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नमऽआनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( **पर्णाय** ) प्रत्युपकार से रक्षक को ( **च** ) और ( **पर्णशदाय** ) पत्तों को काटनेवाले का ( **च** ) भी ( **नम** ) अन्न ( **उद्गुरमाणाय** ) उत्तम प्रकार स उद्यम करने ( **च** ) और ( **अभिघ्नते** ) सन्मुख होके दुष्टो को मारनेवाल को ( **च** ) भी ( **नम** ) अन्न देवें ( **आखिदते** ) दीन निधनी ( **च** ) और ( **प्रखिदते** ) अति दरिद्री जन का ( **च** ) भी ( **नम** ) सत्कार करें ( **इषुकृद्भ्य** ) बाणो को बनवाने वाले को ( **नम** ) अन्नादि देवें ( **च** ) और ( **धनुष्कृद्भ्य** ) धनुष बनानेवाले ( **व** ) तुम लोगो का ( **नम** ) सत्कार करें ( **देवानाम्** ) विद्वानो का ( **हृदयेभ्य** ) अपने आत्मा के समान प्रिय ( **किरिकेभ्य** ) बाण आदि शस्त्र फेंकनेवाले ( **व** ) तुम लोगों को ( **नम** ) अन्नादि देवें ( **विचिन्वत्केभ्य** ) शुभ गुणो वा पदार्थों का सचय करने वालो का ( **नम** ) सत्कार ( **विक्षिणत्केभ्य** ) शत्रुओ के नाशक जनो का ( **नम** ) सत्कार और ( **आनिर्हतेभ्य** ) अच्छे प्रकार पराजय को प्राप्त हुए लोगो का ( **नम** ) सत्कार करें वे सब ओर स धनी होत है ॥ ४६ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो का चाहिये कि सब ओषधियो से अन्नादि उत्तम पदार्थों का ग्रहण कर अनाथ मनुष्यादि प्राणियो को देके सबको आनन्दित करें ॥ ४६ ॥

**द्राप इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**द्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मो च नः किं चनाममत् ॥ ४७ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **द्रापे** ) निन्दित गति म रक्षक ( **अन्धस** ) अन्न आदि के ( **पते** ) स्वामी ( **दरिद्र** ) दरिद्रता को प्राप्त हुए ( **नीललोहित** ) नीलवर्णयुक्त पदार्थों का सेवन करनेहार राजा वा प्रजा के पुरुष ! तू ( **आसाम्** ) इन प्रत्यक्ष ( **प्रजानाम्** ) मनुष्यादि ( **च** ) और ( **एषाम्** ) इन ( **पशूनाम्** ) गौ आदि पशुओ के रक्षक होके इनसे ( **मा, भे** ) मत भय को प्राप्त कर ( **मा रोङ** ) मत राग को प्राप्त कर ( **न** ) हमको और अन्य ( **किम्** ) किसी को ( **चन** ) भी ( **मो आममत** ) रोगी कर ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—जो धनाढ्य हैं वे दरिद्रो का पालन करें तथा जो राजा और प्रजा के पुरुष हैं वे प्रजाके पशुओ को कभी न मारें जिससे प्रजा म सब प्रकार सबका सुख बढ़े ॥ ४७ ॥

**इमा रुद्रायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । आर्षी जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥**

**पदार्थ**—हे शत्रुरोदक वीरपुरुष ! ( **यथा** ) जसे ( **अस्मिन्** ) इस ( **ग्रामे** ) ब्रह्माण्डसमूह मे ( **अनातुरम्** ) दु खरहित ( **पुष्टम्** ) रोगरहित होने से बलवान् ( **विश्वम्** ) सब जगत् ( **शम्** ) सुखी ( **असत्** ) हो वसे हम लोग ( **द्विपदे** ) मनुष्यादि ( **चतुष्पदे** ) गौ आदि ( **तवसे** ) बली ( **कपर्दिने** ) ब्रह्मचर्य का सेवन किये ( **क्षयद्वीराय** ) दुष्टो के नाशक वीरो से युक्त ( **रुद्राय** ) पापी को रुलानेहार सेनापति के लिय ( **इमा** ) इन ( **मती** ) बुद्धिमानो का ( **प्रभरामहे** ) अच्छे प्रकार धारण पोषण करते हैं वसे तू भी उसको धारण कर ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानो को चाहिये कि जैसे प्रजाओ मे स्त्रीपुरुष बुद्धिमान् हो वैसा अनुष्ठान कर मनुष्य पश्वादियुक्त राज्य को रोगरहित पुष्टियुक्त और निरन्तर सुखी करें ॥ ४८ ॥

**या ते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । आर्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।**
**शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥ ४९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **रुद्र** ) राजा के वैद्य तू ( **या** ) जो ( **ते** ) तेरी ( **शिवा** ) कल्याण करनेवाली ( **तनू** ) देह वा विस्तारयुक्त नीति ( **शिवा** ) देखने मे प्रिय ( **भेषजी** ) ओषधियो के तुल्य रोगनाशक और ( **रुतस्य** ) रोगी को ( **शिवा** ) सुखदायी ( **भेषजी** ) पीडा हरनेवाली है ( **तया** ) उससे ( **जीवसे** ) जीने के लिए ( **विश्वाहा** ) सब दिन ( **न** ) हमको ( **मृड** ) सुखी कर ॥ ४९ ॥

**भावार्थ**—राजा के वैद्य आदि विद्वानो को चाहिये कि धर्म की नीति ओषधि के दान हस्तक्रिया की कुशलता और शस्त्रो से छेदन भेदन करके रोगो से बचा के सब सेना और प्रजाओ को प्रसन्न करें ॥ ४९ ॥

**परि न इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।**
**अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥**

**पदार्थ**—हे ( **मीढ्व** ) सुख वर्षानेहार राजपुरुष ! आप जो ( **रुद्रस्य** ) सभापति राजा का ( **हेति** ) वज्र है उससे ( **त्वेषस्य** ) क्रोधादिप्रज्वलित ( **अघायो** ) अपने आत्मा से दुष्टाचार करनेहार पुरुष के सम्बन्ध से ( **न** ) हम लोगो को ( **परि, वृणक्तु** ) सब प्रकार पृथक कीजिये । जो ( **दुर्मति** ) दुष्टबुद्धि है उससे भी हमको बचाइये और जो ( **मघवद्भ्य** ) प्रशंसित धनवानो से प्राप्त हुई ( **स्थिरा** ) स्थिर बुद्धि है उसको ( **तोकाय** ) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक ( **तनयाय** ) कुमार पुरुष के लिये ( **परि, तनुष्व** ) सब ओर से विस्तृत करिये और इस बुद्धि से सबको निरन्तर ( **अव, मृड** ) सुखी कीजिये ॥ ५० ॥

**भावार्थ**—राजपुरुषो का धर्मयुक्त पुरुषार्थ वही है कि जिससे प्रजा की रक्षा और दुष्टो को मारना हो इससे श्रेष्ठ वैद्य लोग सबको आरोग्य और स्वतन्त्रता के सुख की उन्नति करें जिससे सब सुखी हो ॥ ५० ॥

**मीढुष्टम इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । निचृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*सभाध्यक्षादिकों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।**
**परमे वृक्षऽआयुधं निधाय कृत्तिं वसानऽआ चर पिनाकम्बिभ्रदा गहि ॥ ५१ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **मीढुष्टम** ) अत्यन्त पराक्रमयुक्त ( **शिवतम** ) अति कल्याणकारी सभा वा सेना के पति ! आप ( **न** ) हमारे लिये ( **सुमना** ) प्रसन्न चित्त से ( **शिव** ) सुखकारी ( **भव** ) हूजिये ( **आयुधम्** ) खड्ग भुशुण्डी और शतघ्नी आदि शस्त्रो का ( **निधाय** ) ग्रहण कर ( **कृत्तिम्** ) मृगचर्मादि की अङ्गरखी को ( **वसान** ) शरीर मे पहिन ( **पिनाकम्** ) आत्मा के रक्षक धनुष् वा बख्तर आदि को ( **बिभ्रत्** ) धारण किये हुए हम लोगो की रक्षा के लिय ( **आगहि** ) आइये ( **परमे** ) प्रबल ( **वृक्षे** ) काटने योग्य शत्रु की सेना म ( **आचर** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ५१ ॥

**भावार्थ**—सभा और सेना के अध्यक्ष आदि लोग अपनी प्रजाओ मे मङ्गलाचारी और दुष्टो म अग्नि के तुल्य तेजस्वी दाहक हो जिससे सब लोग धर्ममार्ग को छोड के अधर्म का आचरण कभी न करें ॥ ५१ ॥

**विकिरिद्रेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*प्रजा के पुरुष राजपुरुषों के साथ कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः ।**
**यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥ ५२ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **विकिरिद्र** ) विशेषकर सूअर के समान सोने वा उत्तम सूअर की निंदा करनेवाले ( **विलोहित** ) विविध पदार्थों को आरूढ ( **भगव** ) ऐश्वर्य्ययुक्त सभापते राजन् ! ( **ते** ) आपको ( **नम** ) सत्कार प्राप्त ( **अस्तु** ) हो जिससे ( **ते** ) आपके ( **या** ) जो ( **सहस्रम्** ) असख्यात प्रकार की ( **हेतय** ) उन्नति वज्रादि शस्त्र हैं ( **ता** ) वे ( **अस्मत** ) हमसे ( **अन्यम्** ) भिन्न दूसरे शत्रु को ( **निवपन्तु** ) निरन्तर छेदन करें ॥ ५२ ॥

**भावार्थ**—प्रजा के लोग राजपुरुषो से ऐसे कहें कि जो आप लोगों की उन्नति और शस्त्र अस्त्र हैं वे हम लोगो को सुख मे स्थिर करें और इतर हमारे शत्रुओं का निवारण करें ॥ ५२ ॥

सहस्राणीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतय॑ः ।**

**तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा॑ कृधि ॥ ५३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( भगव ) भाग्यशाली सेनापते ! जो ( तव ) आपके ( बाह्वो ) भुजाओ की सम्बन्धिनी ( सहस्राणि ) असंख्य ( हेतय ) वज्रो की प्रबल गति है ( तासाम् ) उनके ( ईशान ) स्वामीपन को प्राप्त आप ( सहस्रश ) हजारो शत्रुओं के ( मुखा ) मुख ( पराचीना ) पीछे फेर के दूर ( कृधि ) कीजिये ॥ ५३ ॥

**भावार्थ**—राजपुरुषों को उचित है कि बाहुबल से राज्य को प्राप्त हो और असंख्य शूरवीर पुरुषो की सेनाओ को रख के सब शत्रुओ के मुख फेरें ॥ ५३ ॥

असंख्यातेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*मनुष्य लोग कैसे उपकार ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अस॑ख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधि भूम्याम् ।**

**तेषा॑ᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५४ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( ये ) जो ( असंख्याता ) संख्यारहित ( सहस्राणि ) हजारों ( रुद्रा ) जीवो के सम्बन्धी वा पृथक प्राणादि वायु ( भूम्याम् ) पृथिवी ( अधि ) पर हैं ( तेषाम् ) उनके सबंध मे ( सहस्रयोजने ) असंख्य चार कोश के योजनो वाले देश मे ( धन्वानि ) धनुषो का ( अव, तन्मसि ) विस्तार करें वैसे तुम लोग भी विस्तार करो ॥ ५४ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि प्रति शरीर मे विभाग को प्राप्त हुए पृथिवी के सबंधी असंख्य जीवो और वायुओ को जानें उनसे उपकार लें और उनके कर्त्तव्य का भी ग्रहण करें ॥ ५४ ॥

अस्मिन्नित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अस्मिन् म॑हत्य॑र्णवे॒ऽन्तरिक्षे भवाऽअधि ।**

**तेषा॑ᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५५ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो ( अस्मिन् ) इस ( महति ) व्यापकता आदि बड़े २ गुणो से युक्त ( अर्णवे ) बहुत जलो वाले समुद्र के समान अगाध ( अन्तरिक्ष ) सब के बीच अविनाशी आकाश मे ( भवा ) वर्त्तमान जीव और वायु हैं ( तेषाम् ) उनका उपयोग मे लाके ( सहस्रयोजने ) असंख्यात चार कोश के योजनो वाले देश मे ( धन्वानि ) धनुषो वा अन्नादि धान्यो का ( अवतन्मसि ) अधिकता के साथ विस्तार करें वैसे तुम लोग भी करो ॥५५॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को योग्य है कि जैसे पृथिवी के जीव और वायुओ से कार्य सिद्ध करते हैं वैसे आकाशस्थो से भी किया करें ॥ ५५॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । बहुरुद्रा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नील॑ग्रीवाः शितिकण्ठा दिव॑ᳪ रुद्राऽउप॑श्रिताः ।**

**तेषा॑ᳪसहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥५६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो ( नीलग्रीवा ) कण्ठ मे नील वर्ण से युक्त ( शितिकण्ठा ) तीक्ष्ण वा श्वेत कण्ठ वाले ( दिवम् ) सूर्य्य को बिजुली जैसे वैसे ( उपश्रिता ) आश्रित ( रुद्रा ) जीव वा वायु हैं ( तेषाम् ) उन के उपयोग से ( सहस्रयोजने ) असंख्य योजन वाले देश मे ( धन्वानि ) शस्त्रादि को ( अव, तन्मसि ) विस्तार करें वैसे तुम लोग भी करो ॥५६॥

**भावार्थ**—विद्वानो को चाहिये कि अग्निस्थ वायुओ और जीवो को जान और उपयोग मे लाके आग्नेय आदि अस्त्रो को सिद्ध करें ॥५६॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नील॑ग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽअधः क्ष॑माचराः ।**

**तेषा॑ᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥५७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( नीलग्रीवा ) नील ग्रीवा वाले तथा ( शितिकण्ठा ) काले कण्ठ वाले ( शर्वा ) हिंसक जीव और ( अध ) नीचे को वा ( क्षमाचरा ) पृथिवी मे चलने वाले जीव हैं ( तेषाम् ) उनके ( सहस्रयोजने ) हजार योजन के देश में दूर करने के लिये ( धन्वानि ) धनुषो को हम लोग ( अव तन्मसि ) विस्तृत करते हैं ॥५७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिये कि जो वायु भूमि से आकाश और आकाश से भूमि को जाते आते हैं उनमे जो अग्नि और पृथिवी आदि के अवयव रहते हैं उन को जान और उपयोग मे लाके कार्य सिद्ध करें ॥५७॥

ये वृक्षेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*मनुष्य लोग सर्पादि दुष्टों का निवारण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**ये वृक्षेषु शष्पिञ्ज॑रा नील॑ग्रीवा विलो॑हिताः ।**

**तेषा॑ᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥५८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( ये ) जो ( वृक्षेषु ) आम्रादि वृक्षो मे ( शष्पिञ्जरा ) रूप दिखाने से भय के हेतु ( नीलग्रीवा ) नीली ग्रीवा युक्त काट खाने वाले ( विलोहिता ) अनेक प्रकार के काले आदि वर्णों से युक्त सर्प आदि हिंसक जीव हैं ( तेषाम् ) उन के ( सहस्रयोजने ) असंख्य योजन देश मे निकाल देने के लिये ( धन्वानि ) धनुषो का ( अवतन्मसि ) विस्तृत करें वैसा आचरण तुम लोग भी करो ॥५८॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को योग्य है कि जो वृक्षादि मे वृद्धि से जीने वाले सर्प हैं उन का भी यथाशक्ति निवारण करें ॥५८॥

ये भूतानामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*मनुष्य लोग पढाना और उपदेश किससे ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ये भूतानामधि॑पतयो विशिखास॑ः कपर्दिन॑ः ।**

**तेषा॑ᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥५९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( ये ) जो ( भूतानाम् ) प्राणी तथा अप्राणियो के ( अधिपतय ) रक्षक स्वामी ( विशिखास ) शिखारहित संन्यासी और ( कपर्दिन ) जटाधारी ब्रह्मचारी लोग हैं ( तेषाम् ) उन के हितार्थ ( सहस्रयोजने ) हजार योजन के देश मे हम लोग सर्वथा सर्वदा भ्रमण करते हैं और ( धन्वानि ) अविद्यादि दोषों के निवारणार्थ विद्यादि शस्त्रो का ( अव, तन्मसि ) विस्तार करते हैं वैसे हे राजपुरुषो ! तुम लोग भी सर्वत्र भ्रमण किया करो ॥५९॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को उचित है कि जो सूत्रात्मा और धनञ्जय वायु के समान संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग सब के शरीर तथा आत्मा की पुष्टि करते हैं उनसे पढ़ और उपदेश सुन कर सब लोग अपनी बुद्धि तथा शरीर की पुष्टि करें ॥५९॥

ये पथामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ये पथां प॑थिरक्ष॑य ऐलबृदाऽआ॑युर्युध॑ः ।**

**तेषा॑ᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥६०॥**

**पदार्थ**—हम लोग ( ये ) जो ( पथाम् ) मार्गों के सम्बन्धी तथा ( पथिरक्षय ) मार्गों मे विचरने वाले जनो के रक्षको के तुल्य ( ऐलबृदा ) पृथिवी सम्बन्धी पदार्थों के वर्धक ( आयुर्युध ) पूर्णायु वा अवस्था के साथ युद्ध करनेहारे भृत्य हैं ( तेषाम् ) उनके ( सहस्रयोजने ) असंख्य योजन देश मे ( धन्वानि ) धनुषो को ( अव तन्मसि ) विस्तृत करते हैं ॥६०॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि जैसे राजपुरुष दिन रात प्रजाजनो की यथावत् रक्षा करते हैं वैसे पृथिवी और जीवनादि की रक्षा वायु करते हैं ऐसा जानें ॥६०॥

ये तीर्थानीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ये तीर्था॑नि प्रचर॑न्ति सृकाह॑स्ता निषुङ्गिण॑ः ।**

**तेषा॑ᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वा॑नि तन्मसि ॥६१॥**

**पदार्थ**—हम लोग ( ये ) जो ( सृकाहस्ता ) हाथो मे वज्र धारण किये हुए ( निषङ्गिण ) प्रशंसित बाण और कोष से युक्त जनो के समान ( तीर्थानि ) दु खो से पार करने हारे वेद आचार्य सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यादि अच्छे नियम अथवा जिनसे समुद्रादिको को पार करते हैं उन नौका आदि तीर्थों का ( प्रचरन्ति ) प्रचार करते हैं ( तेषाम् ) उन के ( सहस्रयोजने ) हजार योजन के देश में ( धन्वानि ) शस्त्रों को ( अव, तन्मसि ) विस्तृत करते हैं ॥६१॥

**भावार्थ**—मनुष्यो के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन मे पहिले तो वे जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रो का पढना पढाना सत्सङ्ग ईश्वर की उपासना और सत्यभाषण आदि दु खसागर से मनुष्यो को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने आने को समर्थ हो ॥६१॥

**येऽन्नेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता ।**

**विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।**

**तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६२॥**

**पदार्थ**—हम लोग ( **य** ) जो ( **अन्नेषु** ) खाने योग्य पदार्थों म वर्त्तमान ( **पात्रेषु** ) पात्रो मे ( **पिबत** ) पीत हुए ( **जनान्** ) मनुष्यादि प्राणियो को ( **विविध्यन्ति** ) बाण क तुल्य घायल करते है ( **तेषाम्** ) उन को हटाने के लिये ( **सहस्रयोजने** ) असख्य योजन देश म ( **धन्वानि** ) धनुषो को ( **अव, तन्मसि** ) विस्तृत करते हैं ॥६२॥

**भावार्थ**—जो पुरुष अन्न को खाते और जलादि का पीते हुये जीवो का विष आदि से मार डालते हैं उनसे सब लोग दूर बसें ॥६२॥

**य एतावन्त इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता ।**

**भुरिगार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यऽएतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।**

**तेषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६३॥**

**पदार्थ**—हम लोग ( **ये** ) जो ( **एतावन्त** ) इतने व्याख्यान किये ( **च** ) और ( **रुद्रा** ) प्राण वा जीव ( **भूयांस** ) इन से भी अधिक ( **च** ) सब प्राण तथा जीव ( **दिश** ) पूर्वादि दिशाओ म ( **वितस्थिरे** ) विविध प्रकार स स्थित है ( **तेषाम्** ) उन के ( **सहस्रयोजने** ) हजार योजन के देश म ( **धन्वानि** ) आकाश के अवयवो को ( **अव, तन्मसि** ) विरुद्ध विस्तृत करते हैं ॥६३॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सब दिशाओ म स्थित जीवो वा वायुओ को यथावत् उपयोग मे लाते हैं उन के सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥६३॥

**नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता ।**

**निचृद्धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर वही विषय अगले मन्त्र म कहा है—*

**नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषव । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्म ॥६४॥**

**पदार्थ**—( **य** ) जो सर्वहितकारी ( **दिवि** ) सूर्यप्रकाशादि के तुल्य विद्या और विनय म वर्त्तमान हैं ( **येषाम्** ) जिनके ( **वर्षम्** ) वृष्टि के समान ( **इषव** ) बाण हैं ( **तेभ्य** ) उन ( **रुद्रेभ्य** ) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषो के लिये हम लोगो का किया ( **नम** ) सत्कार ( **अस्तु** ) प्राप्त हो जो ( **दश** ) दश प्रकार ( **प्राची** ) पूर्व ( **दश** ) दश प्रकार ( **दक्षिणा** ) दक्षिण ( **दश** ) दश प्रकार ( **प्रतीची** ) पश्चिम ( **दश** ) दश प्रकार ( **उदीची** ) उत्तर और ( **दश** ) दश प्रकार ( **ऊर्ध्वा** ) ऊपर की दिशाओ को प्राप्त होते हैं ( **तेभ्य** ) उन सर्वहितैषी राजपुरुषो के लिये हमारा ( **नम** ) अन्नादि पदार्थ ( **अस्तु** ) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं ( **ते** ) वे हम लोग ( **यम्** ) जिससे ( **द्विष्म** ) अप्रीति कर ( **च** ) और ( **य** ) जो ( **न** ) हम को ( **द्वेष्टि** ) दुख दे ( **तम्** ) उसको ( **एषाम्** ) इन वायुओ की ( **जम्भे** ) बिलाव के मुख म मूष के समान पीडा म ( **दध्म** ) डालें ॥६४॥

**भावार्थ**—जैसे वायुओ के सम्बन्ध से वर्षा होती है वैसे जो सर्वत्र अधिष्ठित हो वे वीर पुरुष पूर्वादि दिशाओ म हमारे रक्षक हो हम लोग जिसको विरोधी जानें उसको सब ओर से घर के वायु के समान बांधें ॥६४॥

**नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता ।**

**धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषव । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्म ॥६५॥**

**पदार्थ**—( **य** ) जो विमानादि यानो म बैठ के ( **अन्तरिक्षे** ) आकाश मे विचरते हैं ( **येषाम्** ) जिनके ( **वात** ) वायु क तुल्य ( **इषव** ) बाण हैं ( **तेभ्य** ) उन ( **रुद्रेभ्य** ) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषो के लिये हमारा किया ( **नम** ) सत्कार ( **अस्तु** ) प्राप्त हो जो ( **दश** ) दश प्रकार ( **प्राची** ) पूर्व ( **दश** ) दश प्रकार ( **दक्षिणा** ) दक्षिण ( **दश** ) दश प्रकार ( **प्रतीची** ) पश्चिम ( **दश** ) दश प्रकार ( **उदीची** ) उत्तर और ( **दश** ) दश प्रकार ( **ऊर्ध्वा** ) ऊपर की दिशाओ मे व्याप्त हुए हैं ( **तेभ्य** ) उन सर्वहितैषियो को ( **नम** ) अन्नादि पदार्थ ( **अस्तु** ) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं ( **ते** ) वे ( **न** ) हमारी ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ( **ते** ) वे ( **न** ) हम को ( **मृडयन्तु** ) सुखी करें ( **ते** ) वे और हम लोग ( **यम्** ) जिससे ( **द्विष्म** ) अप्रीति करें ( **च** ) और ( **य** ) जो ( **न** ) हम को ( **द्वेष्टि** ) दुख दे ( **तम्** ) उसको ( **एषाम्** ) इन वायुओ की ( **जम्भ** ) बिडाल के मुख मे मूषे के समान पीडा म ( **दध्म** ) डालें ॥६५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य आकाश मे रहने वाले शुद्ध कारीगरो का सेवन करते हैं उनको ये सब ओर से बलवान् करके शिल्प विद्या की शिक्षा करें ॥६५॥

**नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषय । रुद्रा देवता ।**

**धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषव । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्म ॥६६॥**

**पदार्थ**—( **य** ) जो भू विमान आदि म बैठ के ( **पृथिव्याम्** ) विस्तृत भूमि म विचरते है ( **येषाम्** ) जिन के ( **अन्नम्** ) खाने योग्य तण्डुलादि ( **इषव** ) बाण रूप हैं ( **तेभ्य** ) उन ( **रुद्रेभ्य** ) प्राणादि क तुल्य वर्त्तमान पुरुषो के लिये हम लोगो का किया ( **नम** ) सत्कार ( **अस्तु** ) प्राप्त हो जो ( **दश** ) दश प्रकार ( **प्राची** ) पूर्व ( **दश** ) दश प्रकार ( **दक्षिणा** ) दक्षिण ( **दश** ) दश प्रकार ( **प्रतीची** ) पश्चिम ( **दश** ) दश प्रकार ( **उदीची** ) उत्तर और ( **दश** ) दश प्रकार ( **ऊर्ध्वा** ) ऊपर की दिशाओ को व्याप्त होते हैं ( **तेभ्य** ) उन सर्वहितैषी राजपुरुषो के लिये हमारा ( **नम** ) अन्नादि पदार्थ ( **अस्तु** ) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं ( **ते** ) वे ( **न** ) हमारी सब ओर से ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ( **ते** ) वे ( **न** ) हम को ( **मृडयन्तु** ) सुखी करें ( **ते** ) वे और हम लोग ( **यम्** ) जिसको ( **द्विष्म** ) अप्रसन्न करें ( **च** ) और ( **य** ) जो ( **न** ) हम को ( **द्वेष्टि** ) दुख दे ( **तम्** ) उस को ( **एषाम्** ) इन वायुओ की ( **जम्भ** ) बिल्ली के मुख म मूष के तुल्य पीडा मे ( **दध्म** ) डालें ॥६६॥

**भावार्थ**—जो पृथिवी पर अनाथी पुरुष हैं उन का अच्छे प्रकार पोषण कर उन्नति करना चाहिये ॥६६॥

इस अध्याय म वायु जीव ईश्वर और वीरपुरुष क गुण तथा कृत्य का वर्णन होने स इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय म कहे अर्थ क साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सोलहवां ( १६ ) अध्याय पूरा हुआ ॥

# ॥ अथ सप्तदशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

**अश्मन्नूर्जमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । मरुतो देवता । अतिशक्वरी छन्दः ।**

**पञ्चमः स्वरः ॥**

**अब सत्रहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है ॥**

*इसके पहिले मन्त्र मे वर्षा की विद्या का उपदेश किया है—*

**अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्यऽओषधीभ्यो वनस्पतिभ्योऽ अधि सम्भृतं पयः । तां नऽइषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणाऽअश्मँस्ते क्षुन्मयि तऽऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१॥**

**पदार्थ**—हे ( **सरराणाः** ) सम्यक् दानशील ( **मरुतः** ) वायुओ के तुल्य क्रिया करने मे कुशल मनुष्यो ! तुम लोग ( **पर्वते** ) पहाड के समान आकारवाले ( **अश्मन्** ) मेघ के ( **शिश्रियाणाम्** ) अवयवो मे स्थिर बिजुली तथा ( **ऊर्जम्** ) पराक्रम और अन्न को ( **नः** ) हमारे लिये ( **अधि, धत्त** ) अधिकता से धारण करो और ( **अद्भ्यः** ) जलाशयो ( **ओषधिभ्यः** ) जौ आदि ओषधियो और ( **वनस्पतिभ्यः** ) पीपल आदि वनस्पतियो से ( **सम्भृतम्** ) सम्यक् धारण किये ( **पयः** ) रसयुक्त जल ( **इषम्** ) अन्न ( **ऊर्जम्** ) पराक्रम और ( **ताम्** ) उस पूर्वोक्त विद्युत् को धारण करो । हे मनुष्य ! जो ( **ते** ) तेरा ( **अश्मन्** ) मेघविषय मे ( **ऊर्क** ) रस वा पराक्रम है सो ( **मयि** ) मुझ मे तथा जो ( **ते** ) तेरी ( **क्षुत्** ) भूख है वह मुझ मे भी हो अर्थात् समान सुख दु ख मान के हम लोग एक दूसरे के सहायक हो और ( **यम्** ) जिस दुष्ट को हम लोग ( **द्विष्मः** ) द्वेष करें ( **तम्** ) उस को ( **ते** ) तेरा ( **शुक्** ) शोक ( **ऋच्छतु** ) प्राप्त हो ॥ १ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य जलाशय और ओषध्यादि से रस का हरण कर मेघमण्डल मे स्थापित करके पुन वर्षाता है उससे अन्नादि पदार्थ होते हैं उसके भोजन से क्षुधा की निवृत्ति क्षुधा की निवृत्ति से बल की बढ़ती, उससे दुष्टो की निवृत्ति और दुष्टो की निवृत्ति से सज्जनो के शोक का नाश होता है वैसे अपने समान दूसरो का सुख दु ख मान सबके मित्र होके एक दूसरे के दु ख का विनाश कर के सुख की निरन्तर उन्नति करें ॥ १ ॥

**इमा म इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्विकृतिश्छन्दः ।**

**मध्यमः स्वरः ॥**

*अब इष्टका आदि के दृष्टान्त से गणित विद्या का उपदेश किया है—*

**इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥२॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् पुरुष ! जैसे ( **मे** ) मेरी ( **इमाः** ) ये ( **इष्टकाः** ) इष्ट सुख को सिद्ध करने हारी यज्ञ की सामग्री ( **धेनवः** ) दुग्ध देनेवाली गौओ के समान ( **सन्तु** ) होवें आपके लिये भी वैसी हो जो ( **एका** ) एक ( **च** ) दशगुणा ( **दश** ) दश ( **च** ) और ( **दश** ) दश ( **च** ) दशगुणा ( **शतम्** ) सौ ( **च** ) और ( **शतम्** ) सौ ( **च** ) दश गुणा ( **सहस्रम्** ) हजार ( **च** ) और ( **सहस्रम्** ) हजार ( **च** ) दशगुणा ( **अयुतम्** ) दश हजार ( **च** ) और ( **अयुतम्** ) दश हजार ( **च** ) दश गुणा ( **नियुतम्** ) लाख ( **च** ) और ( **नियुतम्** ) लाख ( **च** ) दश गुणा ( **प्रयुतम्** ) दश लाख ( **च** ) इसका दशगुणा क्रोड इसका दशगुणा ( **अर्बुदम्** ) दश क्रोड इसका दश गुणा ( **न्यर्बुदम्** ) अर्ब ( **च** ) इसका दशगुणा खर्ब इसका दश गुणा निखर्ब इसका दश गुणा महापद्म इसका दशगुणा शङ्कु इसका दशगुणा ( **समुद्रः** ) समुद्र ( **च** ) इसका दशगुणा ( **मध्यम्** ) मध्य ( **च** ) इसका दशगुणा ( **अन्तः** ) अन्त और ( **च** ) इसका दशगुणा ( **परार्द्धः** ) परार्द्ध ( **एताः** ) ये ( **मे** ) मेरी ( **अग्ने** ) हे विद्वन् ! ( **इष्टकाः** ) वेदी की ईंटें ( **धेनवः** ) गौओ के तुल्य ( **अमुष्मिन्** ) परोक्ष ( **लोके** ) देखने योग्य ( **अमुत्र** ) अगले जन्म मे ( **सन्तु** ) हों वैसा प्रयत्न कीजिये ॥ २ ॥

**भावार्थ**—जैसे अच्छे प्रकार सेवन की हुई गौ दुग्ध आदि के दान से सबको प्रसन्न करती है वैसे ही वेदी में चयन की हुई ईंटें वर्षा की हेतु होके वर्षादि के द्वारा सबको सुखी करती हैं । मनुष्यो को चाहिये कि एक ( १ ) सख्या को दशवार गुणने से दश ( १० ) दश को दशवार गुणने से सौ ( १०० ) उसको दश वार गुणने से हजार ( १००० ) उसको दशवार गुणने से दश हजार ( १०००० ) उसको दशवार गुणने से लाख ( १००००० ) उसको दशवार गुणने से दश लाख ( १०००००० ) इसको दशवार गुणने से क्रोड़ ( १०००००००) इसको दश वार गुणने से दश क्रोड़ ( १०००००००० ) इसको दश वार गुणने से अर्ब ( १००००००००० ) इसको दश वार गुणने से दश अर्ब ( १०००००००००० ) इसको दश वार गुणने से खर्ब ( १०००००००००० ) इसको दशवार गुणने से दशखर्ब ( १०००००००००००० ) इसको दश वार गुणने से नील ( १००००००००००००० ) इसको दश वार गुणने से दश नील ( १०००००००००००००० ) इसको दश वार गुणने से एक पद्म ( १००-०००००००००००० ) इसको दशवार गुणने से दशपद्म ( १०००००००००००-००००) इसको दश वार गुणने से एक शङ्ख ( १००००००००००००००००० ) इस को दशवार गुणने से दश शङ्ख ( १०००००००००००००००००० ) इन सख्याओं की सज्ञा पडती हैं । ये इतनी सख्या तो कही परन्तु अनेक प्रकारो के होने से और भी अङ्कगणित बीजगणित और रेखागणित आदि की सख्याओ को यथावत् समझें । जैसे भूलोक मे ये सख्या हैं वैसे अन्य लोको मे भी हैं । जैसे यहा इन सख्याओ से गणना की और अच्छे कारीगरो से चिनी हुई ईटें घर के आकार को शीत ऊष्ण, वर्षा और वायु आदि से मनुष्यादि की रक्षा कर आनन्दित करती है वैसे ही अग्नि में छोडी हुई आहुतियाँ जल, वायु और ओषधियो के साथ मिल के सब को आनन्दित करती है ॥ २ ॥

**ऋतव इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*स्त्री लोग पति आदि के साथ कैसे वर्त्ते इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**ऋतव स्थऽऋतावृधऽऋतुष्ठाः स्थऽऋतावृधः ।**
**घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघाऽअक्षीयमाणाः ॥३॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रियो ! जो तुम लोग ( **ऋतवः** ) वसन्तादि ऋतुओ के समान ( **स्थ** ) हो तथा जो ( **ऋतावृधः** ) उदक से नदियो के तुल्य सत्य के साथ उन्नति को प्राप्त होने वा ( **ऋतुष्ठाः** ) वसन्तादि ऋतुओ मे स्थित होने और ( **ऋतावृधः** ) सत्य को बढ़ाने वाली ( **स्थ** ) हो और जो तुम ( **घृतश्च्युतः** ) जिससे घी निकले उन ( **मधुश्च्युतः** ) मधुर रस से प्राप्त हुई ( **अक्षीयमाणाः** ) रक्षा करने योग्य ( **विराजः** ) विविध प्रकार के गुणो से प्रकाशमान तथा ( **कामदुघाः** ) कामनाओ को पूरण करनेहारी ( **नाम** ) प्रसिद्ध गौओ के सदृश हो वे तुम लोग हम लोगो को सुखी करो ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ऋतु और गौ अपने २ समय पर अनुकूलता से सब प्राणियो को सुखी करती है वैसे ही अच्छी स्त्रियाँ सब समय मे अपने पति आदि सब पुरुषो को तृप्त कर आनन्दित करें ॥ ३ ॥

**समुद्रस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*सभापति को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि ।**
**पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी सभापते ! जैसे हम लोग ( **समुद्रस्य** ) आकाश के बीच ( **अवकया** ) जिससे रक्षा करते हैं उस क्रिया के साथ वर्त्तमान ( **त्वा** ) आपको ( **परि व्ययामसि** ) सब ओर से प्राप्त होते हैं वैसे ( **पावकः** ) पवित्रकर्त्ता आप ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिए ( **शिवः** ) मङ्गलकारी ( **भव** ) हूजिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य लोग समुद्र के जीवो की रक्षा कर सुखी करते हैं वैसे धर्मात्मा रक्षक सभापति अपनी प्रजाओ की रक्षा कर निरन्तर सुखी करे ॥ ४ ॥

**हिमस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि ।**
**पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् सभापते ! हम लोग ( **हिमस्य** ) शीतल को ( **जरायुणा** ) जीर्ण करनेवाले वस्त्र वा अग्नि से ( **त्वा** ) आपको ( **परि, व्ययामसि** ) सब प्रकार आच्छादित करते हैं वैसे ( **पावकः** ) पवित्रस्वरूप आप ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिये ( **शिवः** ) मङ्गलमय ( **भव** ) हूजिये ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—हे सभापते ! जैसे अग्नि वा वस्त्र शीत से पीडित प्राणियों को जाड़े से छुड़ा के प्रसन्न करता है वैसे ही आपका आश्रय किये हुए हम लोग दुःख से छूटे हुए सुख सेवनेवाले होवें ॥ ५ ॥

**उप ज्मन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ॥६॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्विनी विदुषि ( **मण्डूकि** ) अच्छे प्रकार अलङ्कारों से शोभित विदुषि स्त्रि ! तू ( **ज्मन्** ) पृथिवी पर ( **नदीषु** ) नदियों तथा ( **वेतसे** ) पदार्थों के विस्तार में ( **अव तर** ) पार हो। जैसे आग ( **अपाम्** ) प्राण वा जलों के ( **पित्तम्** ) तेज का रूप ( **असि** ) है वैसे तू ( **ताभिः** ) उन जल वा प्राणों के साथ ( **उप आ, गहि** ) हमको समीप प्राप्त हो ( **सा** ) सो तू ( **नः** ) हमारे ( **इमम्** ) इस ( **पावकवर्णम्** ) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान ( **यज्ञम्** ) गृहाश्रमरूप यज्ञ को ( **शिवम्** ) कल्याणकारी ( **उप आ कृधि** ) अच्छे प्रकार कर ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री और पुरुष गृहाश्रम में प्रयत्न के साथ सब कार्यों को सिद्ध कर शुद्ध आचरण के सहित कल्याण को प्राप्त हों ॥ ६ ॥

**अपामिदमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*गृहस्थ को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् । अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् पुरुष ! जो ( **इदम्** ) यह आकाश ( **अपाम्** ) जलों वा प्राणों का ( **न्ययनम्** ) निश्चित स्थान है उस आकाशस्थ ( **समुद्रस्य** ) समुद्र की ( **निवेशनम्** ) स्थिति के तुल्य गृहाश्रम को प्राप्त होके ( **पावकः** ) पवित्र कर्म करनेहारे होते हुए आप ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिये ( **शिवः** ) मङ्गलकारी ( **भव** ) हूजिये ( **ते** ) आपके ( **हेतयः** ) वज्र वा उन्नति ( **अस्मत्** ) हम लोगों से ( **अन्यान्** ) अन्य दुष्टों को ( **तपन्तु** ) दुःखी करें ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग जैसे जलों का आधार समुद्र सागर का आधार भूमि उसका आधार आकाश है वैसे गृहस्थी के पदार्थों के आधार घर रचो बना और मङ्गलरूप आचरण करके श्रेष्ठों की रक्षा किया तथा डाकुओं को पीड़ा दिया करें ॥ ७ ॥

**अग्ने पावकेत्यस्य वसुयुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*आप्त विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।**
**आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **पावक** ) मनुष्यों के अन्तःकरणों को शुद्ध करने वाले ( **देव** ) सुन्दर ( **अग्ने** ) विद्या के प्रकाश का उपदेश करनेहारे पुरुष ! आप ( **मन्द्रया** ) आनन्द को सिद्ध करनेहारी ( **जिह्वया** ) सत्यप्रिय वाणी वा ( **रोचिषा** ) प्रकाश से ( **देवान्** ) विद्वान् वा दिव्य गुणों को ( **आ वक्षि** ) उपदेश करते ( **च** ) और ( **यक्षि** ) समागम करते हो ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे आप्त उपदेशक विद्वान् सब प्राणियों को प्रसन्न करें ॥ ८ ॥

**स न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२ऽइहावह ।**
**उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **पावक** ) पवित्र ( **दीदिवः** ) तेजस्विन् वा शत्रुनाशक ( **अग्ने** ) सत्यासत्य का विभाग करनेहारे विद्वन् ! ( **सः** ) पूर्वोक्त गुण वाले आप जैसे यह अग्नि ( **नः** ) हमारे लिये अच्छे गुणों वाले ( **हविः** ) हवन किये सुगन्धित द्रव्य को प्राप्त करता है वैसे ( **इह** ) इस संसार में ( **यज्ञम्** ) गृहाश्रम ( **च** ) और ( **देवान्** ) विद्वानों को ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **उप आ वह** ) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त करें ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह अग्नि अपने सूर्य्यादिरूप से सब पदार्थों से रस को ऊपर ले जा और वर्षा के उत्तम सुखों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्यारूप रस को उन्नति दे के सब सुखों को उत्पन्न करें ॥ ९ ॥

**पावकयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*सेनापति को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचऽउषसो न भानुना । तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रणऽआ यो घृणे न ततृषाणोऽअजरः ॥१०॥**

**पदार्थ**—( **यः** ) जो ( **पावकया** ) पवित्र करने और ( **चितयन्त्या** ) चेतनता कराने हारी ( **कृपा** ) शक्ति के साथ वर्त्तमान सेनापति जैसे ( **भानुना** ) दीप्ति से ( **उषसः** ) प्रभात समय शोभित होते हैं ( **न** ) वैसे ( **क्षामन्** ) राज्यभूमि में ( **रुरुचे** ) शोभित होता वा ( **यः** ) जो ( **यामन्** ) मार्ग वा प्रहर में जैसे ( **एतशस्य** ) घोड़े के बल को ( **नु** ) शीघ्र ( **तूर्वन्** ) मारता है ( **न** ) वैसे ( **घृणे** ) प्रदीप्त ( **रणे** ) युद्ध में ( **ततृषाणः** ) प्यास के ( **न** ) समान ( **अजरः** ) अजर अजय जवान निर्भय ( **आ** ) अच्छे प्रकार होता वह राज्य करने को योग्य होता है ॥ १० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य और चन्द्रमा अपनी दीप्ति से शोभित होते हैं वैसे ही सती स्त्री के साथ उत्तम पति और उत्तम सेना से सेनापति अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥ १० ॥

**नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*न्यायाधीश को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे ।**
**अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥११॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! ( **हरसे** ) दुःख हरने वाले ( **ते** ) तेरे लिये हमारा किया ( **नमः** ) सत्कार हो तथा ( **शोचिषे** ) पवित्र ( **अर्चिषे** ) सत्कार के योग्य ( **ते** ) तेरे लिये हमारा कहा ( **नमः** ) नमस्कार ( **अस्तु** ) हो जो ( **ते** ) तेरी ( **हेतयः** ) वज्रादि शस्त्रों से युक्त सेना हैं वे ( **अस्मत्** ) हम लोगों से भिन्न ( **अन्यान्** ) अन्य शत्रुओं को ( **तपन्तु** ) दुःखी करें ( **पावकः** ) शुद्धि करने हारे आप ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिये ( **शिवः** ) न्यायकारी ( **भव** ) हूजिये ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि अन्तःकरण के शुद्ध मनुष्यों को न्यायाधीश बनाकर और दुष्टों की निवृत्ति करके सत्य न्याय का प्रकाश करें ॥ ११ ॥

**नृषद इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**नृषदे वेडप्सुषदे वेड्बर्हिषदे वेड्वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! आप ( **नृषदे** ) नायकों में स्थिर पुरुष होने के लिये ( **वेट्** ) न्यायासन पर बैठने ( **अप्सुषदे** ) जलों के बीच नौकादि में स्थिर होने वाले के लिये ( **वेट्** ) न्याय गद्दी पर बैठने ( **बर्हिषदे** ) प्रजा को बढ़ाने वाले व्यवहार में स्थिर होने के लिये ( **वेट्** ) अधिष्ठाता होने ( **वनसदे** ) वनों में रहने वाले के लिये ( **वेट्** ) न्याय में प्रवेश करने और ( **स्वर्विदे** ) सुख को जानने हारे के लिये ( **वेट्** ) उत्साह में प्रवेश करने वाले हूजिये ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—जिस देश में न्यायाधीश नौकाओं के चलाने प्रजा को बढ़ाने वन में रहने सेनादि के नायक और सुख पहुँचाने हारे विद्वान् होते हैं वहां सब सुखों की वृद्धि होती है ॥ १२ ॥

**ये देवा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । प्राणो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब संन्यासियों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३॥**

**पदार्थ**—( **ये** ) जो ( **देवानाम्** ) विद्वानों में ( **अहुतादः** ) बिना हवन किये हुए पदार्थ का भोजन करने हारे ( **देवाः** ) विद्वान् ( **यज्ञियानाम्** ) वा यज्ञ करने में कुशल पुरुषों में ( **यज्ञियाः** ) योगाभ्यासादि यज्ञ के योग्य विद्वान् लोग ( **संवत्सरीणम्** ) वर्ष भर पुष्ट किये ( **भागम्** ) सेवने योग्य उत्तम परमात्मा की ( **उपासते** ) उपासना करते हैं वे ( **अस्मिन्** ) इस ( **यज्ञे** ) समागमरूप यज्ञ में ( **मधुनः** ) शहत ( **घृतस्य** ) जल और ( **हविषः** ) हवन के योग्य पदार्थों के भाग को ( **स्वयम्** ) अपने आप ( **पिबन्तु** ) सेवन करें ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् लोग इस संसार में अग्निक्रिया से रहित अर्थात् आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि सम्बन्धी बाह्य कर्मों को छोड़ के आभ्यन्तर अग्नि को धारण करने वाले संन्यासी हैं वे होम को नहीं किये भोजन करते हुए सर्वत्र विचर के सब मनुष्यों को वेदार्थ का उपदेश किया करें ॥ १३ ॥

**ये इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । प्राणो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब उत्तम विद्वान् लोग कैसे होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरऽएतारोऽअस्य । येभ्यो नऽऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्याऽअधि स्नुषु ॥१४॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( देवा ) पूर्ण विद्वान् ( देवेषु अधि ) विद्वानो मे सबसे उत्तम कक्षा मे विराजमान ( देवत्वम् ) अपने गुण कर्म और स्वभाव को ( आयन् ) प्राप्त होते हैं और ( ये ) जो (अस्य) इस ( ब्रह्मण ) परमेश्वर को ( पुरएतार ) पहिले प्राप्त होने वाले है ( येभ्य ) जिनके ( ऋते ) विना ( किम्, चन ) कोई भी ( धाम ) सुख का स्थान ( न ) नही ( पवते ) पवित्र होता ( ते ) वे विद्वान् लोग ( न ) न ( दिव ) सूयलोक के प्रदेशो और (न) न (पृथिव्या ) पृथिवी के ( अधि, स्नुषु ) किसी भाग मे अधिक वसते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो इस जगत् मे उत्तम विद्वान् योगिराज यथार्थता से परमेश्वर को जानते हैं वे सम्पूण प्राणियो को शुद्ध करने और जाव मुक्तिदशा मे परोपकार करते हुए विदेहमुक्ति अवस्था म न सूय्यलोक और न पथिवी पर नियम से वसत हैं किन्तु ईश्वर मे स्थिर हो के अव्याहतगति से सर्वत्र विचरा करत हैं ॥ १४ ॥

प्राणदा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषि । अग्निर्देवता । विराडार्षी पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*विद्वान और राजा कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदा । अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥१५॥**

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ! ( ते ) आपकी जो उन्नति वा शस्त्रादि (अस्मत्) हम लोगो के लिये ( प्राणदा ) जीवन तथा बल का देने वा ( अपानदा ) दुःख दूर करने के साधन का देने वा ( व्यानदा ) व्याप्ति और विज्ञान को देने ( वर्चोदा ) सब विद्याओ के पढने के हेतु को देने और (वरिवोदा ) सत्य धर्म और विद्वानो की सेवा को व्याप्त कराने वाली ( हेतय ) वज्रादि शस्त्रो की उन्नतियां ( अस्मत् ) हम से ( अन्यान् ) अन्य दुष्ट शत्रुओ को ( तपन्तु ) दुःखी करें उनके सहित (पावक ) शुद्धि का प्रचार करते हुए आप हम लोगो के लिये (शिव ) मङ्गलकारी ( भव ) हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—वही राजा है जो न्याय को बढाने वाला हो और वही विद्वान् है जो विद्या से न्याय को जनाने वाला हो और वह राजा नहीं हो जो कि प्रजा को पीडा दे और वह विद्वान् भी नही जो दूसरो को विद्वान् न करे और वे प्रजाजन भी नहीं जो नीतियुक्त राजा की सेवा न करें ॥ १५ ॥

अग्निरित्यस्य भारद्वाज ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जसे (अग्नि ) अग्नि (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से ( अत्रिणम् ) भोगने योग्य ( विश्वम् ) सबको ( यासत ) प्राप्त होता है कि जसे (अग्नि ) विद्युत् अग्नि (न ) हमारे लिये (रयिम्) धन का ( नि वनते ) निरन्तर विभागकर्त्ता है वसे हमारे लिये आप भी हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानो को चाहिये कि जसे अग्नि अपने तेज से सूखे गीले सब तृणादि पदार्थों को जला देता है वसे हमारे सब दोषो को भस्म कर गुणो को प्राप्त करें । जैसे बिजुली सब पदार्थों का सेवन करती है वसे हम को सब विद्या का सेवन करा के अविद्या से पृथक् किया करें ॥१६॥

य इमा इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धवत स्वर ॥

*अब ईश्वर कसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**यऽइमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः । सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽआविवेश ॥१७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो (ऋषि ) ज्ञानस्वरूप (होता) सब पदार्थो को देने वा ग्रहण करने हारा ( न ) हम लोगो का (पिता) रक्षक परमेश्वर (इमा) इन ( विश्वा ) सब ( भुवनानि ) लोको को व्याप्त होके (न्यसीदत्) निरन्तर स्थित है और जो सब लोको का ( जुह्वत् ) धारणकर्त्ता है (स ) वह (आशिषा) आशीर्वाद से हमारे लिये (द्रविणम्) धन को (इच्छमान) चाहता और (प्रथमच्छत्) विस्तृत पदार्थो को आच्छादित करता हुआ ( अवरान् ) पूर्ण आकाशादि को ( आविवेश ) अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है यह तुम जानो ॥ १७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य लोग जो सब जगत् को रचने धारण करने पालन तथा विनाश करने और सब जीवो के लिये सब पदार्थो को देने वाला परमेश्वर अपनी व्याप्ति से आकाशादि मे व्याप्त हो रहा है उसी की उपासना करें ॥ १७ ॥

किं स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत् । यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥१८॥**

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! इस जगत् का (अधिष्ठानम्) आधार (किं, स्वित) क्या आश्चर्यरूप ( आसीत ) है तथा ( आरम्भणम् ) इस कार्य जगत् की रचना का आरम्भ कारण ( कतमत ) बहुत उपादानो मे क्या और वह ( कथा ) किस प्रकार से ( स्वित ) तर्क के साथ ( आसीत् ) है कि ( यत ) जिससे ( विश्वकर्मा ) सब सत्कर्मो वाला ( विश्वचक्षा ) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (भूमिम्) पृथिवी और ( द्याम ) सूर्यादि लोक को ( जनयन् ) उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपनी महिमा से ( व्यौर्णोत ) विविध प्रकार से आच्छादित करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको यह जगत् कहाँ वसता क्या इसका कारण और किसलिये उत्पन्न होता है इन प्रश्नो का उत्तर यह है कि जो जगदीश्वर कार्य जगत् को उत्पन्न तथा अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करके सवज्ञता से सबको देखता है वह इस जगत का आधार और निमित्तकारण है वह सवशक्तिमान् रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है जीवो को पाप पुण्य का फल देने भोगवाने के लिये इस सब ससार को रचा है एसा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

विश्वत इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवऽएकः ॥१९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ( विश्वतश्चक्षु ) सब ससार को देखने (उत) और (विश्वतोमुख ) सब ओर से सबका उपदेश करने हारा ( विश्वतोबाहु ) सब प्रकार से अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त ( उत ) और ( विश्वतस्पात ) सर्वत्र व्याप्ति वाला (एक ) अद्वितीय सहायरहित (देव ) अपने आप प्रकाशस्वरूप (पतत्रै ) क्रियाशील परमाणु आदि से (द्यावाभूमी) सूर्य और पृथिवी लोक का (स जनयन्) कार्यरूप प्रकट करता हुआ ( बाहुभ्याम ) अनन्त बल पराक्रम से सब जगत् को ( स, धमति ) सम्यक् प्राप्त हो रहा है उसी परमेश्वर को अपना सब ओर से रक्षक उपास्यदेव जानो ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बड़े से बडा निराकार अनन्त सामर्थ्य वाला, सवत्र अभिव्याप्त प्रकाशस्वरूप अद्वितीय परमात्मा है वही अति सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् के रचने और विनाश करने को समर्थ है । जो पुरुष इसको छोड अन्य की उपासना करता है उससे अन्य जगत् मे भाग्यहीन कौन पुरुष है ? ॥ १९ ॥

किं स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धवत स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**किꣳस्विद्वनं कऽउ स वृक्षऽआस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥२०॥**

पदार्थ—प्रश्न—हे ( मनीषिण ) मन का निग्रह करनेवाले योगिजनो ! तुम लोग ( मनसा ) विज्ञान के साथ विद्वानो के प्रति ( किं स्वित् ) क्या (वनम्) सेवने योग्य कारणरूप वन तथा ( क ) कौन ( उ ) वितर्क के साथ ( स ) वह ( वृक्ष ) छिद्यमान अनित्य कार्यरूप ससार ( आस ) है एसा ( पृच्छत ) पूछो कि (यत ) जिससे (द्यावापृथिवी) विस्तारयुक्त सूर्य और भूमि आदि लोको को किसने ( निष्टतक्षु ) भिन्न २ बनाया है । उत्तर—( यत ) जो (भुवनानि) प्राणियो के रहने के स्थान लोक लोकान्तरो को ( धारयन् ) वायु विद्युत् और सूर्यादि से धारण करता हुआ ( अध्यतिष्ठत ) अधिष्ठाता है ( तत इत ) उसी ( उ ) प्रसिद्ध ब्रह्म को इस सबका कर्त्ता जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म तीन पादो से प्रश्न और अन्त्य के एक पाद से उत्तर दिया है । वृक्ष शब्द से कार्य और वन शब्द मे कारण का ग्रहण है जैसे सब पदार्थो को पृथिवी पृथिवी को सूर्य सूर्य को विद्युत् और बिजुली को वायु धारण करता है वसे ही इन सबको ईश्वर धारण करता है ॥ २० ॥

या त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥२१॥**

पदार्थ—हे ( स्वधाव ) बहुत अन्न से युक्त ( विश्वकर्मन् ) सब उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर ! ( ते ) आप की सृष्टि म ( या ) जो ( परमाणि ) उत्तम ( या ) जो ( अवमा ) निकृष्ट ( या ) जो (मध्यमा) मध्यकक्षा के ( धामानि ) सब पदार्थो के आधारभूत जन्मस्थान तथा नाम हैं ( इमा ) इन सब को ( हविषि ) देने लेने योग्य व्यवहार म ( स्वयम् ) आप ( यजस्व ) सङ्गत कीजिये ( उत ) और हमारे ( तन्वम् ) शरीर की ( वृधान ) उन्नति करते हुए ( सखिभ्य ) आपकी आज्ञापालक हम मित्रो के लिये ( शिक्ष ) शुभगुणो का उपदेश कीजिये ॥२१॥

भावार्थ—जसे इस ससार मे ईश्वर ने निकृष्ट मध्यम और उत्तम वस्तु तथा स्थान रचे हैं वैसे ही सभापति आदि को चाहिये कि तीन प्रकार के स्थान रच वस्तुओं को प्राप्त हो ब्रह्मचर्य से शरीर का बल बढा और मित्रो को अच्छी शिक्षा देके ऐश्वर्ययुक्त होवें ॥२१॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता ।
निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**विश्वकर्मन् हुविषा वावृधानः स्वयं यंजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।**
**मुह्यन्त्वन्येऽअभितः सुपत्नाऽइहास्माकं मुघवा सूरिरस्तु ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण उत्तम कर्म करने हारे सभापति ! (हविषा) उत्तम गुणों के ग्रहण से (वावृधान) उन्नति को प्राप्त हुआ जैसे ईश्वर (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य्यादि लोक को सङ्गत करता है वैसे आप (स्वयम्) आप ही (यजस्व) सब के समागम कीजिये (इह) इस जगत् मे (मघवा) प्रशसित धनवान् पुरुष (सूरि) विद्वान् (अस्तु) हो जिससे (अस्माकम्) हमारे (अन्ये) और (सपत्ना) शत्रुजन (अभित) सब ओर से (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त हों ॥२२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिये जो पदार्थ रचा है उस को वसे जान के उपकार लेते हैं उनकी दरिद्रता और आलस्यादि दोषो का नाश होने से शत्रुओ का प्रलय होता और वे आप भी विद्वान् हो जाते हैं ॥२२॥

वाचस्पतिमित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता ।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*कैसा पुरुष राज्य के अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम ।**
**स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (वाचस्पतिम्) वेदवाणी के रक्षक (मनोजुवम्) मन के समान वेगवान् (विश्वकर्माणम्) सब कर्मों मे कुशल महात्मा पुरुष को (वाजे) सग्राम आदि कर्म मे (हुवेम) बुलावें (स) वह (विश्वशम्भू) सब के लिये सुखप्रापक (साधुकर्मा) धर्मयुक्त कर्मों का सेवन करने हारा विद्वान् (न) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अद्य) आज (विश्वानि) सब (हवनानि) ग्रहण करने योग्य कर्मों को (जोषत्) सेवन करे ॥२३॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि जिसने ब्रह्मचर्य नियम के साथ सब विद्या पढ़ी हो जो धर्मात्मा आलस्य और पक्षपात को छोड के उत्तम कर्मों का सेवन करता तथा शरीर और आत्मा के बल से पूरा हो उसको सब प्रजा की रक्षा करने मे अधिपति राजा बनावें ॥२३॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता ।
निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*मनुष्यों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**विश्वकर्मन् हुविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।**
**तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण शुभकर्मों के सेवन करनहारे सब सभाओ के पति राजा ! आप (हविषा) ग्रहण करने योग्य (वर्द्धनेन) वृद्धि से जिस (अवध्यम्) मारने के अयोग्य (त्रातारम्) रक्षक (इन्द्रम्) उत्तम सम्पत्ति वाले पुरुष को राजकार्य मे सम्मतिदाता मन्त्री (अकृणो) करो (तस्मै) उस के लिये (पूर्वी) पहिले न्यायाधीशो ने प्राप्त कराई (विश) प्रजाओ को (समनमन्त) अच्छे प्रकार नम्र करो (यथा) जैसे (अयम्) यह मन्त्री (उग्र) मारने मे तीक्ष्ण (विहव्य) विविध प्रकार के साधनो से स्वीकार करने योग्य (असत्) होवे वैसा कीजिये ॥२४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । सब सभाओ के अधिष्ठाता के सहित सब सभासद् उस पुरुष को राज्य का अधिकार देवें कि जो पक्षपाती न हो जो पिता के समान प्रजाओ की रक्षा न करें उन का प्रजा लोग भी कभी न मानें और जो पुत्र के तुल्य प्रजा की न्याय से रक्षा करें उनके अनुकूल प्रजा निरन्तर हो ॥२४॥

चक्षुष इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽअजनन्नम्नमाने ।**
**यदेदन्ताऽअददृहन्त पूर्वऽआदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२५॥**

**पदार्थ**—हे प्रजा के पुरुषो ! आप लोग जो (चक्षुष) न्याय दिखाने वाले उपदेशक का (पिता) रक्षक (मनसा) योगाभ्यास से शान्त अन्तःकरण (हि) ही से (धीर) धीरजवान् (घृतम्) घी का (अजनत्) प्रकट करता है उस को अधिकार देके (एने) राज और प्रजा के दल (नम्नमाने) नम्र के तुल्य आचरण करते हुए (पूर्वे) पहिले से वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान मिले हुये जैसे (अप्रथेताम्) प्रख्यात होवें वैसे (इत्) ही (यदा) जब (अन्ता) अन्त्य के अवयवो के तुल्य (अददृहन्त) वृद्धि को प्राप्त हो तब (आत्) उसके पश्चात् (इत्) ही स्थिरराज्य वाले होओ ॥२५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब मनुष्य राज और प्रजा के व्यवहार मे एकसम्मति होकर सदा प्रयत्न करें तभी सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्थिर सुख वाले होवें ॥२५॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता ।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब परमेश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**विश्वकर्म्मा विमनाऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।**
**तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् परऽएकमाहुः ॥२६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (विश्वकर्मा) जिस का समस्त जगत् का बनाना क्रियमाण काम और जो (विमना) अनेक प्रकार के विज्ञान से युक्त (विहाया) विविध प्रकार के पदार्थों मे व्याप्त (धाता) सब का धारण पोषण करने (विधाता) और रचने वाला (सन्दृक्) अच्छे प्रकार सब को देखता (पर) और सब से उत्तम है तथा जिसका (एकम्) अद्वितीय (आहु) कहते अर्थात् जिस मे दूसरा कहने मे नही आता (आत) और (यत्र) जिसमे (सप्तऋषीन्) पाँच प्राण सूत्रात्मा और धनञ्जय इन सात को प्राप्त होकर (इषा) इच्छा से जीव (स, मदन्ति) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त होते (उत) और (तेषाम्) उन जीवो के (परमा) उत्तम (इष्टानि) सुख सिद्ध करने वाले कामो को सिद्ध करता है उस परमेश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥२६॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि सब जगत् का बनाने धारण, पालन और नाश करने हारा एक अर्थात् जिसका दूसरा कोई सहायक नहीं हो सकता उसी परमेश्वर की उपासना अपने चाहे हुए काम के सिद्ध करने के लिये करना चाहिये ॥२६॥

यो न इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षि । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवत स्वर ॥

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।**
**यो देवानां नामधाऽएकऽएव तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥२७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (य) जो (न) हमारा (पिता) पालन और (जनिता) सब पदार्थों का उत्पादन करने हारा तथा (य) जो (विधाता) कर्मों के अनुसार फल देने तथा जगत् का निर्माण करने वाला (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोको और (धामानि) जन्मस्थान वा नाम को (वेद) जानता (य) जो (देवानाम्) विद्वानो वा पृथिवी आदि पदार्थों का (नामधा) अपनी विद्या से नाम धरने वाला (एक) एक अर्थात् असहाय (एव) ही है जिसको (अन्या) और (भुवना) लोकस्थ पदार्थ (यन्ति) प्राप्त होते जाते हैं (संप्रश्नम्) जिनके निमित्त अच्छे प्रकार पूछना हो (तम्) उस को तुम लोग जानो ॥२७॥

**भावार्थ**—जो पिता के तुल्य समस्त विश्व का पालने और सब को जानने हारा एक परमेश्वर है उसके और उस की सृष्टि के विज्ञान से ही सब मनुष्य परस्पर मिल के प्रश्न और उत्तर करें ॥२७॥

तऽआयजन्त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता ।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**तऽआयंजन्त द्रविणꣳ सम॑स्माऽऋषंयः पूर्वे जरितारो न भूना ।**
**असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥२८॥**

**पदार्थ**—(ये) जो (पूर्वे) पूर्ण विद्या से सब की पुष्टि (जरितार) और स्तुति करने वाले के (न) समान (ऋषय) वेदार्थ के जानने वाले (भूना) बहुत से (असूर्त्ते) परोक्ष अर्थात अप्राप्त हुए वा (सूर्त्ते) प्रत्यक्ष अर्थात् पाये हुए (निषत्ते) स्थित वा स्थापित किये हुये (रजसि) लोक मे (इमानि) इन प्रत्यक्ष (भूतानि) प्राणियो को (समकृण्वन्) अच्छे प्रकार शिक्षित करते हैं (ते) वे (अस्मै) इस ईश्वर की आज्ञा पालने के लिये (द्रविणम्) धन को (सम्, आ यजन्त) अच्छे प्रकार सङ्गत करें ॥२८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में परमात्मा की आज्ञा पालने के लिये सृष्टिक्रम से तत्त्वो को जानते हैं वैसे ही अन्य लोग आचरण करें । जैसे धार्म्मिक जन धर्म्म के आचरण से धन को इकट्ठा करते हैं वैसे ही सब लोग उपार्जन करें ॥२८॥

परो दिवेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषि । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवत स्वर ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**परो दिवा परऽएना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।**
**कꣳ स्विद्गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥२९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (एना) इस ( दिवा ) सूर्य्य आदि लोकों से (पर ) परे अर्थात् अत्युत्तम ( पृथिव्या ) पृथिवी आदि लोको से ( पर ) परे ( देवेभि ) विद्वान् वा दिव्य प्रकाशित प्रजाओं और ( असुरैः )अविद्वान् तथा कालरूप प्रजाओं से ( पर ) परे ( अस्ति ) है ( यम ) जिसमे ( आप ) प्राण ( कं स्वित् ) किसी ( प्रथमम् ) विस्तृत (गर्भम् ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को ( दध्रे ) धारण करते हुए वा ( यत् ) जिसको ( पूर्वे ) पूर्णविद्या के अध्ययन करनेवाले ( देवा ) विद्वान् लोग ( समपश्यन्त ) अच्छे प्रकार ज्ञानचक्षु से देखते हैं वह ब्रह्म है यह तुम लोग जानो ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब से सूक्ष्म बड़ा अतिश्रेष्ठ सब का धारणकर्त्ता विद्वानो का विषय अर्थात् समस्त विद्याओ का समाधानरूप अनादि और चेतनमात्र है वही ब्रह्म उपासना करने के योग्य है अन्य नही ॥ २९ ॥

**तमिदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षि । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**तमिद् गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवा. समगच्छन्त विश्वे ।**
**अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥३०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यत्र ) जिस ब्रह्म मे ( आप ) कारणमात्र प्राण वा जीव ( प्रथमम् ) विस्तारयुक्त अनादि ( गर्भम् ) सब लोको की उत्पत्ति का स्थान प्रकृति को ( दध्रे ) धारण करते हुए वा जिसमे ( विश्वे ) सब ( देवा ) दिव्य आत्मा और अन्त करणयुक्त योगिजन ( समगच्छन्त ) प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य) अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारणसमूह के ( नाभौ ) मध्य मे ( अधि ) अधिष्ठातृपन से सब के ऊपर विराजमान ( एकम्) आप ही सिद्ध ( अर्पितम् ) स्थित ( यस्मिन् ) जिस मे ( विश्वानि ) समस्त ( भुवनानि ) लोकोत्पन्न द्रव्य ( तस्थु ) स्थिर होते हैं तुम लोग ( तमित ) उसी को परमात्मा जानो ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि जो जगत् का आधार योगियों को प्राप्त होने योग्य अन्तर्यामी आप अपना आधार सब मे व्याप्त है उसी का सेवन सब लोग करें ॥ ३० ॥

**न त विदाथेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षि । विश्वकर्मा देवता ।**
**भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**न त विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।**
**नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति ॥३१॥**

**पदार्थ**—( हे ) मनुष्यो ! जैसे ब्रह्म के न जानने वाल पुरुष (नीहारेण) धूम के आकार कुहर के समान अज्ञानरूप अन्धकार से ( प्रावृता ) अच्छे प्रकार ढके हुए ( जल्प्या ) थोड़े सत्य असत्य वादानुवाद मे स्थिर रहने वाले (असुतृप ) प्राणपोषक ( च ) और ( उक्थशास ) योगाभ्यास को छोड़ शब्द अर्थ सम्बन्ध के खण्डन मण्डन मे रमण करते हुए ( चरन्ति ) विचरते हैं वैसे हुए तुम लोग ( तम् ) उस परमात्मा को ( न ) नही ( विदाथ ) जानते हो (य ) जो ( इमा ) इन प्रजाओ को (जजान) उत्पन्न करता और जो ब्रह्म ( युष्माकम् ) तुम अधर्मी अज्ञानियो के प्रकाश से ( अन्यत ) अर्थात् कार्य्यकारणरूप जगत् और जीवो से भिन्न ( अन्तरम् ) तथा सबो मे स्थित भी दूरस्थ (बभूव) होता है उस अतिसूक्ष्म आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को नही जानते हो ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत आचार विद्या योगाभ्यास धर्म के अनुष्ठान सत्सग और पुरुषार्थ से रहित है वे अज्ञानरूप अन्धकार मे दबे हुए ब्रह्म को नही जान सकते जो ब्रह्म जीवो से पृथक अन्तर्यामी सब का नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है उसके जानने को जिसका आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते है अन्य नही ॥३१॥

**विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षि । विश्वकर्मा देवता । स्वराडार्षी**
**पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवऽआदिद् गन्धर्वोऽअभवद् द्वितीयः ।**
**तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥३२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! इस जगत् मे ( विश्वकर्मा ) जिस के समस्त शुभ काम हैं वह ( देव ) दिव्यस्वरूप वायु प्रथम ( इत् ) ही ( अभवत ) होता है (आत ) इस के अनन्तर (गन्धर्व ) जो पृथिवी को धारण करता है वह सूर्य या सूत्रात्मा वायु ( अजनिष्ट ) उत्पन्न और ( ओषधीनाम् ) यव आदि ओषधियो ( अपाम् ) जलो और प्राणो का ( पिता ) पालन करने हारा ( हि ) ही ( द्वितीय ) दूसरा अर्थात् धनञ्जय तथा जो प्राणो के ( गर्भम् ) गर्भ अर्थात् धारण को ( व्यदधात् ) विधान करता है वह ( पुरुत्रा ) बहुतो का रक्षक ( जनिता ) जलो का धारण करने हारा मेघ (तृतीय ) तीसरा उत्पन्न होता है इस विषय को आप लोग जानो ॥३२॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यो को योग्य है कि इस ससार मे सब कामों के सेवन करने हारे जीव पहिले बिजुली अग्नि वायु और सूर्य पृथिवी आदि लोको के धारण करने हारे हैं वे दूसरे और मेघ आदि तीसरे हैं उन म पहिले जीव अज अर्थात् उत्पन्न नही होते और दूसरे तीसरे उत्पन्न हुए हैं परन्तु वे भी कारणरूप से नित्य हैं ऐसा जानें ॥ ३२ ॥

**आशु शिशान इत्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*अब सेनापति के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।**
**सङ्क्रन्दनोऽनिमिषऽएकवीरः शतꣳ सेनाऽअजयत्साकमिन्द्रः ॥३३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जो ( चर्षणीनाम् ) सब मनुष्यों वा उन की सम्बन्धिनी सेनाओ मे ( आशु ) शीघ्रकारी ( शिशान ) पदार्थों को सूक्ष्म करनेवाला ( वृषभ ) बलवान् बैल के ( न ) समान ( भीम ) भयकर (घनाघन) अत्यन्त आवश्यकता के साथ शत्रुओ का नाश करने ( क्षोभण ) उन का कपाने ( सक्रन्दन ) अच्छे प्रकार शत्रुओ को रुलाने और ( अनिमिष ) रात्रि दिन प्रयत्न करने हारा ( एकवीर ) अकेला वीर ( इन्द्र ) शत्रुओ को विदीर्ण करनेवाला सेना का अधिपति पुरुष हम लोगों के ( साकम् ) साथ ( शतम् ) अनेको ( सेना ) उन सेनाओ का जिन से शत्रुओ को बांधते हैं ( अजयत् ) जीतता है उसी को सेनाधीश करो ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि जो धनुर्वेद और ऋग्वेदादि शास्त्रों का जाननेवाला निर्भय सब विद्याओ म कुशल अति बलवान् धार्म्मिक अपने स्वामी के राज्य मे प्रीति करनेवाला जितेन्द्रिय शत्रुओ का जीतने हारा तथा अपनी सेना को सिखाने और युद्ध कराने मे कुशल वीर पुरुष हो उस को सेनापति के अधिकार पर नियुक्त करें ॥ ३३ ॥

**सक्रन्दनेनेत्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।**
**तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नरऽइषुहस्तेन वृष्णा ॥३४॥**

**पदार्थ**—हे (युध ) युद्ध करने हारे (नर ) मनुष्यो ! तुम (अनिमिषेण) निरन्तर प्रयत्न करते हुए (दुश्च्यवनेन) शत्रुओ को कष्ट प्राप्त करानेवाले (धृष्णुना) दृढ उत्साही ( युत्कारेण ) विविध प्रकार की रचनाओ से योद्धाओ को मिलाने और न मिलाने हारे ( वृष्णा ) बलवान् (इषुहस्तेन) बाण आदि शस्त्रो को हाथ मे रखने ( संक्रन्दनेन ) और दुष्टो को अत्य न रुलाने हारे ( जिष्णुना ) जयशील शत्रुओ को जीतने और वा ( इन्द्रेण ) परम ऐश्वर्य करने हारे ( तत् ) उस पूर्वोक्त सेनापति आदि के साथ वर्त्तमान हुए शत्रुओ को ( जयत ) जीतो और ( तत् ) उस शत्रु की सेना के वेग वा युद्ध से हुए दुःख को ( सहध्वम् ) सहो ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग युद्धविद्या मे कुशल सब शुभ लक्षण और बलपराक्रमयुक्त मनुष्य को सेनापति करके उस के साथ अधार्मिक शत्रुओ को जीत के निष्कण्टक चक्रवर्त्ती राज्य भोगो ॥ ३४ ॥

**सऽइषुहस्तैरित्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युधऽइन्द्रो गणेन ।**
**सꣳसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५॥**

**पदार्थ**—( स ) वह सेनापति ( इषुहस्त ) शस्त्रो को हाथो में रखने हारे और अच्छे सिखाये हुए बलवान् ( निषङ्गिभि ) जिनके भुशुण्डी बन्दूक शतघ्नी तोप और आग्नेय आदि बहुत अस्त्र विद्यमान है उन भृत्यों के साथ वर्त्तमान (स ) वह ( सस्रष्टा ) श्रेष्ठ मनुष्यो तथा शस्त्र और अस्त्रो का सम्बन्ध करनेवाला (वशी) अपने इन्द्रिय और अन्त करण को जीते हुए जो ( ससृष्टजित ) प्राप्त शत्रुओ को जीतता ( सोमपा ) बलिष्ठ ओषधियो के रस को पीता ( बाहुशर्द्धी ) भुजाओ मे जिसके बल विद्यमान हो और (उग्रधन्वा) जिसका तीक्ष्ण धनुष है (स ) वह (युध ) युद्धशील ( अस्ता ) शस्त्र और अस्त्रो को अच्छे प्रकार फेकने तथा ( इन्द्र ) शत्रुओ का मारने वाला और (गणेन) अच्छे सीखे हुए भृत्यो वा सेना वीरो ने (प्रतिहिताभि ) प्रत्यक्षता से स्वीकार की हुई सेना के साथ वर्त्तमान होता हुआ जनो को जीते ॥३५॥

**भावार्थ**—सब का ईश राजा वा सब सेनाओ का अधिपति अच्छे सीखे हुए वीर भृत्यो वा सेना के साथ वर्त्तमान दुःख से जीतन याग्य शत्रुओ को भी जीत सके वैसे सब को करना चाहिये ॥ ३५ ॥

**बृहस्पत इत्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ२ऽअपबाधमानः ।**
**प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६॥**

**पदार्थ**—हे (बृहस्पते ) धार्मिको वृद्धो वा सेनाओ के रक्षक जन ! (रक्षोहा) जो दुष्टो को मारने ( अमित्रान् ) शत्रुओं को ( अपबाधमान ) दूर करने (प्रभञ्ज )

अच्छे प्रकार मारते और ( सेना ) उनकी सेनाओ को (प्रभञ्जन्) भग्न करनेवाला तू ( रथेन ) रथसमूह से ( युधा ) युद्ध मे शत्रुओ को ( परि, दीया ) सब ओर से काटता है सो ( जयन् ) उत्कर्ष अर्थात् जय को प्राप्त होता हुआ (अस्माकम् ) हम लोगो के ( रथानाम् ) रथो की ( अविता ) रक्षा करनवाला ( एधि ) हो ॥३६॥

**भावार्थ**—राजा सनापति और अपनी सेना को उत्साह कराता तथा शत्रुसेना को मारता हुआ धर्मात्मा प्रजाजनो की निरन्तर उन्नति करे ॥ ३६ ॥

**बलविज्ञाय इत्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानऽउग्र । अभिवीरोऽअभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥३७॥**

**पदार्थ**—हे (इन्द्र) युद्ध की उत्तम सामग्री युक्त सेनापति ! (बलविज्ञाय ) जो अपनी सेना को बली करना जानता (स्थविर ) वृद्ध (प्रवीर ) उत्तम वीर (सहस्वान्) अत्यन्त बलवान् ( वाजी ) जिस को प्रशसित शास्त्रबोध है ( सहमान ) जो सुख और दु ख को सहने तथा ( उग्र ) दुष्टो के मारने मे तीव्र तेज वाला ( अभिवीर ) जिस के अभीष्ट अर्थात् तत्काल चाहे हुए काम के करनवाले वा ( अभिसत्वा ) सब ओर से युद्धविद्या मे कुशल रक्षा करनेहारे वीर है ( सहोजा ) बल से प्रसिद्ध (गोवित्) वाणी गौओ वा पृथिवी को प्राप्त होता हुआ ऐसा तू युद्ध के लिये (जैत्रम्) जीतने वाले वीरो से घेरे हुए ( रथम् ) पृथिवी समुद्र और आकाश मे चलने वाले रथ को ( आ, तिष्ठ ) आकर स्थित हो अर्थात् उस मे बैठ ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—सेनापति वा सेना के वीर जब शत्रुओ से युद्ध की इच्छा करें तब परस्पर सब ओर से रक्षा और रक्षा के साधनो को सग्रह कर विचार और उत्साह के साथ वर्तमान आलस्य रहित होते हुए शत्रुओ को जीतने मे तत्पर हो ॥ ३७ ॥

**गोत्रभिदमित्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणान्तमोजसा । इम९ सजाताऽअनु वीरयध्वमिन्द्र९ सखायोऽअनु स९रभध्वम् ॥३८॥**

**पदार्थ**—हे ( सजाता ) एकदेश मे उत्पन्न (सखाय ) परस्पर सहाय करने वाले मित्रो ! तुम लोग ( ओजसा ) अपने शरीर और बुद्धि बल वा सेनाजनो से (गोत्रभिदम्) जोकि शत्रुओ के गोत्रो अर्थात् समुदायो को छिन्न भिन्न करता उनकी जड काटता ( गोविदम् ) शत्रुओ की भूमि को ले लेता (वज्रबाहुम्) अपनी भुजाओ मे शस्त्रो को रखता ( प्रमृणन्तम् ) अच्छे प्रकार शत्रुओ को मारता ( अज्म ) जिस से वा जिस मे शत्रुजनो को पटकते है उस सग्राम मे ( जयन्तम् ) वैरियो को जीत लेता और ( इमम्, इन्द्रम् ) उस को विदीर्ण करता है इस सेनापति को ( अनु वीरयध्वम् ) प्रोत्साहित करो और ( अनु सरभध्वम् ) अच्छे प्रकार युद्ध का आरम्भ करो ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—सेनापति आदि तथा सेना के भृत्य परस्पर मित्र होकर एक दूसरे को अनुमोदन करो युद्ध का आरम्भ और विजय कर शत्रुओ के राज्य को पा और न्याय मे प्रजा का पालन करके निरन्तर सुखी हो ॥ ३८ ॥

**अभि गोत्राणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवन पृतनाषाडयुध्योऽअस्माक९ सेना अवतु प्र युत्सु ॥३९॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! जो ( युत्सु ) जिन मे अनेक पदार्थों का मेल अमेल करें उन युद्धो मे ( सहसा ) बल से (गोत्राणि) शत्रुओ के कुलो को (प्र गाहमान ) अच्छे यत्न से गाहता हुआ ( अदय ) निर्दय ( शतमन्यु ) जिस का सैकडो प्रकार का क्रोध विद्यमान है (दुश्च्यवन ) जो दु ख से शत्रुओ से गिराने योग्य (पृतनाषाट) शत्रु की सेना को सहता है ( अयुध्य ) और जो शत्रुओ के युद्ध करने योग्य नही है ( वीर ) तथा शत्रुओ को विदीर्ण करता है वह ( अस्माकम् ) हमारी (सेना ) सेनाओ को ( अभि, अवतु ) सब ओर से पाले और ( इन्द्र ) सेनाधिपति हो ऐसी आज्ञा तुम देओ ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—जो धार्मिक जनो मे करुणा करनेवाला और दुष्टो मे दयारहित सब ओर से सब की रक्षा करनवाला मनुष्य हो वही सेना के पालन मे अधिकारी करने योग्य है ॥ ३९ ॥

**इन्द्रऽआसामित्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इन्द्रऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥४०॥**

**पदार्थ**—युद्ध मे ( अभिभञ्जतीनाम् ) शत्रुओ की सेनाओ को सब ओर से मारती ( जयन्तीनाम् ) और शत्रुओ को जीतने मे उत्साह को प्राप्त होती हुई ( आसाम् ) इन ( देवसेनानाम ) विद्वानो की सेनाओ का ( नेता ) नायक (इन्द्र ) उत्तम ऐश्वर्य वाला शिक्षक सेनापति पीछे ( यज्ञ ) सब को मिलने वाला (पुर ) प्रथम ( बृहस्पति ) सब अधिकारियो का अधिपति ( दक्षिणा ) दाहिनी ओर और ( सोम ) सेना का प्रेरणा अर्थात् उत्साह देनेवाला बाई ओर ( एतु ) चले तथा ( मरुत ) पवनो के समान वेग वाले बली शूरवीर ( अग्रम ) आगे को ( यन्तु ) जावें ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—जब राजपुरुष शत्रुओ के साथ युद्ध किया चाहें तब सब दिशाओं मे अध्यक्ष तथा शूरवीरो को आगे और डरपने वालो को बीच मे ठीक स्थापन कर भोजन आच्छादन वाहन अस्त्र और शस्त्रों के योग से युद्ध करें और वहा विद्वानो की सेना के अधीन मूर्खों की सेना करनी चाहिये उन सेनाओ को विद्वान् लोग अच्छे उपदेश से उत्साह देवें और सेनाध्यक्षादि पद्मव्यूह आदि बांध के युद्ध करावें ॥४०॥

**इन्द्रस्येत्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञऽआदित्यानां मरुता९ शर्द्धऽउग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥४१॥**

**पदार्थ**—( वृष्ण ) वीर्यवान् ( इन्द्रस्य ) सेनापति ( वरुणस्य ) सब से उत्तम ( राज्ञ ) न्याय और विनय आदि गुणो मे प्रकाशमान सब के अधिपति राजा के ( भुवनच्यवानाम ) जो उत्तम घरो को प्राप्त होते ( महामनसाम ) बडे २ विचार वाले वा ( जयताम ) शत्रुओ के जीतने को समर्थ ( आदित्यानाम् ) जिन्होंने ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य किया हो ( मरुताम ) और जो पूर्ण विद्या बलयुक्त हैं उन ( देवानाम ) विद्वान् पुरुषो का ( उग्रम ) जो शत्रुओ को असह्य ( शर्द्ध ) बल ( घोष ) शूरता और उत्साह उत्पन्न करनवाला विचित्र बाजो का स्वरालाप शब्द है वह युद्ध के आरम्भ से पहिले (उदस्थात ) उठे ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—सेनाध्यक्षो को चाहिये कि शिक्षा और युद्ध के समय मनोहर वीर-भाव को उत्पन्न करने वाले अच्छे बाजो के बजाए हुए शब्दो से वीरो को हर्षित करावें तथा जो बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य और अधिक विद्या से शरीर और आत्मबलयुक्त हैं वे ही योद्धाओ की सेनाओ के अधिकारी करने योग्य हैं ॥४१॥

**उद्धर्षयेत्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मना९सि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥४२॥**

**पदार्थ**—सेना के पुरुष अपने स्वामी से ऐसे कहे कि हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्य के समान शत्रुओ को छिन्न भिन्न करने वाले ( मघवन् ) प्रशसित धनयुक्त सेनापति ! आप ( मामकानाम ) हम लोगो के ( सत्वनाम) सेनास्थ वीर पुरुषो के (आयुधानि) जिनसे अच्छे प्रकार युद्ध करते है उन शस्त्रो का ( उद्धर्षय ) उत्कर्ष कीजिये । हमारे सेनास्थ जनो के (मनासि) मनो को (उत्) उत्तम हर्षयुक्त कीजिये हमारे (वाजिनाम्) घोडो की ( वाजिनानि ) शीघ्र चालो को ( उत् ) बढाइये तथा आप की कृपा से हमारे ( जयताम् ) विजय करानेवाले ( रथानाम) रथो के (घोषा ) शब्द (उद्यन्तु) उठें ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—सेनापति और शिक्षक जनो को चाहिये कि योद्धाओ के चित्तो को नित्य हर्षित करें और सेना के अङ्गो को अच्छे प्रकार उन्नति देकर शत्रुओ को जीते ॥ ४२ ॥

**अस्माकमित्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीराऽउत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽउ देवा अवता हवेषु ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे (देवा ) विजय चाहने वाले विद्वानो ! तुम (अस्माकम्) हम लोगों के (समृतेषु) अच्छे प्रकार सत्य न्याय प्रकाश करने हारे चिह्न जिन मे हो उन (ध्वजेषु) अपने वीर जनो के निश्चय के लिये रथ आदि यानो के ऊपर एक दूसरे से भिन्न स्थापित किये हुए ध्वजा आदि चिह्नो मे नीचे अर्थात् उन की छाया मे वर्त्तमान जो ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्य करने वाला सेना का ईश और (अस्माकम) हम लोगो की (या॰) जो ( इषव ) प्राप्त सेना हैं वह इन्द्र और (ता ) वे सेना ( हवेषु ) जिन में ईर्षा से शत्रुओं को बुलावें उन सग्रामो मे ( जयन्तु ) जीतें ( अस्माकम ) हमारे ( वीरा॰) वीर जन ( उत्तरे ) विजय के पीछे जीवनयुक्त ( भवन्तु ) हो ( अस्मान्) हम लोगों की ( उ ) सब जगह युद्ध समय मे ( अवत ) रक्षा करो ॥४३॥

**भावार्थ**—सेनाजन और सेनापति आदि को चाहिये कि अपने २ रथ आदि में भिन्न २ चिह्न को स्थापन करें जिससे यह इस का रथ आदि है ऐसा सब जानें और जैसे अश्व तथा वीरो का अधिक विनाश न हो वैसा ढंग करें क्योंकि परस्पर के पराक्रम के क्षय होने से निश्चल विजय नहीं होता है यह जानें ॥४३॥

**अमीषामित्यस्याप्रतिरथ ऋषि । इन्द्रो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।**
**अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे ( **अप्वे** ) शत्रुओं के प्राणों को दूर करने हारी राणी क्षत्रिया वीर स्त्री ! ( **अमीषाम्** ) उन सेनाओं के (**चित्तम्**) चित्त को (**प्रतिलोभयन्ती**) प्रत्यक्ष में लुभाने वाली जो अपनी सेना है उसके ( **अङ्गानि** ) अङ्गों को तू ( **गृहाण** ) ग्रहण कर अधर्म्म से ( **परेहि** ) दूर हो अपनी सेना को ( **अभि प्रेहि** ) अपना अभिप्राय दिखा और शत्रुओं को ( **निर्दह** ) निरन्तर जला जिस से ये ( **अमित्राः** ) शत्रु जन ( **हृत्सु** ) अपने हृदयों में ( **शोकैः** ) शोकों से ( **अन्धेन** ) आच्छादित हुए ( **तमसा** ) रात्रि के अन्धकार के साथ ( **सचन्ताम्** ) संयुक्त रहें ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—सभापति आदि को योग्य है कि जैसे अतिप्रशंसित हृष्ट पुष्ट अङ्ग उपाङ्गादियुक्त शूरवीर पुरुषों की सेना का स्वीकार करें वैसे शूरवीर स्त्रियों की भी सेना स्वीकार करें और जिस स्त्रीसेना में अव्यभिचारिणी स्त्री रहें और उस सेना से शत्रुओं को वश में स्थापन करें ॥४४॥

**अवसृष्टेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इषुर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसᳬशिते ।**
**गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥४५॥**

**पदार्थ**—हे ( **शरव्ये** ) बाणविद्या में कुशल ( **ब्रह्मसंशिते** ) वेदवेत्ता विद्वान् से प्रशंसा और शिक्षा पाए हुए सेनाधिपति की स्त्री ! तू ( **अवसृष्टा** ) प्रेरणा को प्राप्त हुई ( **परा पत** ) दूर जा ( **अमित्रान्** ) शत्रुओं को ( **गच्छ** ) प्राप्त हो और उन के मारने में विजय को ( **प्र पद्यस्व** ) प्राप्त हो ( **अमीषाम्** ) उन दूर देश में ठहरे हुए शत्रुओं में से मारने के बिना ( **कं चन** ) किसी को ( **मा, उच्छिषः** ) मत छोड़ ॥४५॥

**भावार्थ**—सभापति आदि को चाहिये कि जैसे युद्धविद्या से पुरुषों को शिक्षा करें वैसे स्त्रियों को भी शिक्षा करें । जैसे वीरपुरुष युद्ध करें वैसे स्त्री भी करें जो युद्ध में मारे जावें उन से शेष अर्थात् बचे हुए कातरों को निरन्तर कारागार में स्थापन करें ॥४५॥

**प्रेता जयतेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । योद्धा देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ।**
**उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ ॥४६॥**

**पदार्थ**—हे ( **नरः** ) अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! तुम ( **यथा** ) जैसे शत्रुजनों को ( **इत** ) प्राप्त होओ और उन्हें ( **जयत** ) जीतो तथा ( **इन्द्रः** ) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेनापति ( **वः** ) तुम लोगों के लिये ( **शर्म** ) घर ( **प्र, यच्छतु** ) देवे ( **वः** ) तुम्हारी ( **बाहवः** ) भुजा ( **उग्राः** ) दृढ़ ( **सन्तु** ) हों और ( **अनाधृष्याः** ) शत्रुओं से न धमकाने योग्य ( **असथ** ) होओ वैसा प्रयत्न करो ॥४६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो शत्रुओं को जीतने वाले वीर हों उन का सेनापति धन अन्न गृह और वस्त्रादिकों से निरन्तर सत्कार करे तथा सेनास्थ जन जैसे बली हों वैसा व्यवहार अर्थात् व्यायाम और शस्त्र अस्त्रों का चलाना सीखें ॥४६॥

**असौ येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । मरुतो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति नऽओजसा स्पर्द्धमाना ।**
**तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीऽअन्योऽअन्यन्न जानन् ॥४७॥**

**पदार्थ**—हे ( **मरुतः** ) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानो ! तुम ( **या** ) जो ( **असौ** ) वह ( **परेषाम्** ) शत्रुओं की ( **स्पर्द्धमाना** ) ईर्षा करती हुई ( **सेना** ) सेना ( **ओजसा** ) बल से ( **नः** ) हम लोगों के ( **अभि, आ, एति** ) सन्मुख सब ओर से प्राप्त होती है ( **ताम्** ) उसको ( **अपव्रतेन** ) छेदनरूप कठोर कर्म्म से और ( **तमसा** ) तोप आदि शस्त्रों के उठे हुए धूम वा मेघ पहाड़ के आकार जो अस्त्र का धूम होता है उस से ( **गूहत** ) ढांपो ( **अमी** ) ये शत्रुसेनास्थ जन ( **यथा** ) जैसे ( **अन्य, अन्यम्** ) परस्पर एक दूसरे को ( **न** ) न ( **जानन्** ) जानें वैसा पराक्रम करो ॥४७॥

**भावार्थ**—जब युद्ध के लिये प्राप्त हुई शत्रुओं की सेनाओं में होते युद्ध करे तब सब और से शस्त्र और अस्त्रों के प्रहार से धूमधूमी आदि से उस को ढांपकर जैसे ये शत्रुजन परस्पर अपने दूसरे को न जानें वैसा ढङ्ग सेनापति आदि को करना चाहिये ॥४७॥

**यत्र बाणा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रबृहस्पत्यादयो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।**
**पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव । तन्नऽइन्द्रो**
**बृहस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु विश्वाहा शर्म्म यच्छतु ॥४८॥**

**पदार्थ**—( **यत्र** ) जिस संग्राम में ( **विशिखा इव** ) विना चोटी के वा बहुत चोटियों वाले ( **कुमाराः** ) बालकों के समान ( **बाणाः** ) बाण आदि शस्त्र अस्त्रों के समूह ( **सम्पतन्ति** ) अच्छे प्रकार गिरते हैं ( **तत्** ) वहां ( **बृहस्पतिः** ) बड़ी सभा वा सेना का पालन वाला ( **इन्द्रः** ) सेनापति ( **शर्म** ) आश्रय वा सुख को ( **यच्छतु** ) देवे और ( **अदितिः** ) नित्य सभासदों से शोभायमान सभा ( **विश्वाहा** ) सब दिन ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **शर्म** ) सुख सिद्ध करने वाले घर को ( **यच्छतु** ) देवे ॥४८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे बालक इधर उधर दौड़ते हैं वैसे युद्ध के समय में योद्धा लोग भी चेष्टा करें जो युद्ध में घायल क्षीण थके पसीजे छिदे भिदे कटे फटे अङ्गवाले और मूर्छित हों उनको युद्धभूमि से शीघ्र उठा सुखालय ( शफाखाने ) में पहुँचा औषध पट्टी कर स्वस्थ करें और जो मर जावें उनको विधि से दाह दें राजजन उनके माता पिता स्त्री और बालकों की सदा रक्षा करें ॥४८॥

**मर्म्माणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । सोमवरुणदेवा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**मर्माणि ते वर्म्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।**
**उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥४९॥**

**पदार्थ**—हे युद्ध करने वाले शूरवीर ! मैं ( **ते** ) तेरे ( **मर्म्माणि** ) मर्मस्थलों अर्थात् जो ताड़ना किये हुए शीघ्र मरण उत्पन्न करनेवाले शरीर के अङ्ग हैं उन को ( **वर्म्मणा** ) देह की रक्षा करने हारे कवच से ( **छादयामि** ) ढांपता हूँ । यह ( **सोमः** ) शान्ति आदि गुणों से युक्त ( **राजा** ) और विद्या न्याय तथा विनय आदि गुणों से प्रकाशमान राजा ( **अमृतेन** ) समस्त रोगों के दूर करने वाली अमृतरूप ओषधि से ( **त्वा** ) तुझ को ( **अनु वस्ताम्** ) पीछे ढांपे ( **वरुणः** ) सब से उत्तम गुणों वाला राजा ( **ते** ) तेरे ( **उरोः** ) बहुत गुण और ऐश्वर्य से भी ( **वरीयः** ) अत्यन्त ऐश्वर्य को ( **कृणोतु** ) करे तथा ( **जयन्तम्** ) दुष्टों को पराजित करते हुए ( **त्वा** ) तुझ को ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **अनु मदन्तु** ) अनुमोदित करें अर्थात् उत्साह देवें ॥४९॥

**भावार्थ**—सेनापति आदि को चाहिए कि सब युद्धकर्त्ताओं के शरीर आदि की रक्षा सब ओर से करके इनको निरन्तर उत्साहित और अनुमोदित करें जिस से निश्चय करके सब से विजय को पावें ॥४९॥

**उदेनमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत ।**
**रायस्पोषेण सᳬसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥५०॥**

**पदार्थ**—हे ( **घृतेन, आहुत** ) घृत से तृप्ति को प्राप्त हुए ( **अग्ने** ) प्रकाशयुक्त सेनापति तू ( **एनम्** ) इस जीतने वाले वीर को ( **उत्तराम्** ) जिस से उत्तमता से संग्राम को तरें विजय को प्राप्त हुई उस सेना को ( **उत नय** ) उत्तम अधिकार में पहुँचा ( **रायः पोषेण** ) राजलक्ष्मी की पुष्टि से ( **सम् सृज** ) अच्छे प्रकार युक्त कर ( **च** ) और ( **प्रजया** ) बन्धु सन्तानों से ( **बहुम्** ) अधिकता को प्राप्त ( **कृधि** ) कर ॥५०॥

**भावार्थ**—जो सेना का अधिकारी वा भृत्य धर्मयुक्त युद्ध से दुष्टों को जीतें उसका सभा सेना के पति धनादिकों से बहुत प्रकार सत्कार करें ॥५०॥

**इन्द्रेममित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी ।**
**समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदाऽअसत् ॥५१॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) सुखों के धारण करने हारे सेनापति ! तू ( **सजातानाम्** ) समान अवस्था वाले ( **देवानाम्** ) विद्वान् योद्धाओं के बीच ( **इमम्** ) विजय को प्राप्त होते हुए इस वीरजन को ( **प्रतराम्** ) जिस से शत्रुओं के बलों को हटावें उस नीति को ( **नय** ) प्राप्त कर जिससे यह ( **वशी** ) इन्द्रियों का जीतने वाला ( **असत्** ) हो और ( **एनम्** ) इस को ( **वर्चसा** ) विद्या के प्रकाश से ( **सं सृज** ) संसर्ग करा जिससे यह ( **भागदाः** ) अलग २ यथायोग्य भागों का देने वाला ( **असत्** ) हो ॥५१॥

**भावार्थ**—युद्ध में भृत्यजन शत्रुओं के जिन पदार्थों को पावें उन सबों को सभापति राजा स्वीकार न करें किन्तु उन में से यथायोग्य सत्कार के लिए योद्धाओं को सोलहवां भाग देवें । वे भृत्यजन जितना कुछ भाग पावें उसका सोलहवां भाग राजा के लिए देवें जो सब सभापति आदि जितेन्द्रिय हों तो उन का कभी पराजय न हो जो सभापति अपने हित को किया चाहे तो लड़नेहारे भृत्यों का भाग आप न लेवे ॥५१॥

**यस्य कुम इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः ॥**

*अब पुरोहित ऋत्विज और यजमान के कृत्य का अगले मन्त्र में कहा है—*

**यस्यं कुर्मो गृहे हुविस्तमंग्ने वर्द्धया त्वम् ।**

**तस्मैं देवाऽअधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥५२॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् पुरोहित ! हम लोग ( **यस्य** ) जिस राजा के ( **गृहे** ) घर में ( **हविः** ) होम ( **कुर्म** ) करें ( **तम्** ) उस को ( **त्वम्** ) तू ( **वर्द्धय** ) बढ़ा अर्थात् उत्साह दे तथा ( **देवाः** ) दिव्य२ गुण वाले ऋत्विज लोग ( **तस्मै** ) उस को ( **अधि, ब्रुवन्** ) अधिक उपदेश करें ( **च** ) और ( **अयम्** ) यह ( **ब्रह्मणः** ) वेदों का ( **पतिः** ) पालन करने हारा यजमान भी उन को शिक्षा देवे ॥५२॥

**भावार्थ**—पुरोहित का वह काम है कि जिससे यजमान की उन्नति हो और जो जिसका जितना जैसा काम करे उस का उसी ढङ्ग उतना ही नियम किया हुआ मासिक धन देना चाहिये सब विद्वान् जन सब के प्रति सत्य का उपदेश करें और राजा भी सत्योपदेश करे ॥५२॥

**उदु त्वेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब सभापति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उदुं त्वा विश्वें देवाऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।**

**स नों भव शिवस्त्वᳪ सुप्रतीको विभावसुः ॥५३॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वान् सभापते ! जिस ( **त्वा** ) तुझ ( **विश्वे** ) सब ( **देवाः** ) विद्वान् जन ( **चित्तिभिः** ) अच्छे२ ज्ञानों से ( **उद्भरन्तु** ) उत्कृष्टतापूर्वक धारण और उद्धार करें अर्थात् अपनी शिक्षा से तेरे अज्ञान को दूर करें ( **स, उ** ) सोई ( **त्वम्** ) तू ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **शिवः** ) मङ्गल करने हारा ( **सुप्रतीकः** ) अच्छी प्रतीति करने वाले ज्ञान से युक्त ( **विभावसुः** ) तथा विविध प्रकार के विद्या सिद्धान्तों में स्थिर ( **भव** ) हो ॥५३॥

**भावार्थ**—जो जिन को विद्या देवें वे विद्या लेने वाले उन के सेवक हों ॥५३॥

**पञ्च दिश इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । दिशो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**

**धैवतः स्वरः ॥**

*अब स्त्री पुरुष के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है—*

**पञ्च दिशो दैवीर्युज्ञमंवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।**

**रायस्पोषें युज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषेऽअधिं युज्ञोऽअंस्थात् ॥५४॥**

**पदार्थ**—( **अप, अमतिम्** ) अत्यन्त अज्ञान और ( **दुर्मतिम्** ) दुष्ट बुद्धि को ( **बाधमानाः** ) अलग करती हुई ( **दैवीः** ) विद्वानों की ये ( **देवीः** ) दिव्य गुण वाली पण्डिता ब्रह्मचारिणी स्त्री ( **पञ्च दिशः** ) पूर्व आदि चार और एक मध्यस्थ पांच दिशाओं के तुल्य अलग २ कामों में बढ़ी हुई ( **रायः पोषे** ) धन की पुष्टि करने के निमित्त ( **यज्ञपतिम्** ) गृहकृत्य वा राज्यपालन करने वाले अपने स्वामी को ( **आभजन्ती** ) सब प्रकार सेवन करती हुई ( **यज्ञम्** ) सङ्गति करने योग्य गृहाश्रम को ( **अवन्तु** ) चाहे जिससे यह ( **यज्ञः** ) गृहाश्रम ( **रायः पोषे** ) धन की पुष्टाई में ( **अधि, अस्थात्** ) अधिकता से स्थिर हो ॥५४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जिस गृहाश्रम में धार्मिक विद्वान् और प्रशंसायुक्त पण्डिता स्त्री होती हैं वहाँ दुष्ट काम नहीं होते जो सब दिशाओं में प्रशंसित प्रजा होवें तो राजा के समीप औरों से अधिक ऐश्वर्य्य होवे ॥५४॥

**समिद्धऽइत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।**

**पञ्चमः स्वरः ॥**

*यज्ञ कैसे करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया गया है ।*

**समिद्धेऽअग्नावधि मामहानऽउक्थपत्रऽईड्यो गृभीतः ।**

**तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्युज्ञमयंजन्त देवाः ॥५५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( **देवाः** ) विद्वान् जन ( **समिद्धे** ) अच्छे जलते हुए ( **अग्नौ** ) अग्नि में ( **यत्** ) जिस ( **यज्ञम्** ) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को ( **अयजन्त** ) करते हैं वैसे जो ( **अधि मामहानः** ) अधिक और अत्यन्त सत्कार करने योग्य ( **उक्थपत्रः** ) जिस के कहने योग्य विद्यायुक्त वेद के स्तोत्र हैं ( **ईड्यः** ) जो स्तुति करने तथा चाहने योग्य ( **गृभीतः** ) वा जिसको सज्जनों ने ग्रहण किया है उस ( **तप्तम्** ) तापयुक्त ( **घर्मम्** ) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को ( **ऊर्जा** ) बल से ( **परिगृह्य** ) ग्रहण करके ( **अयजन्त** ) किया करो ॥५५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि संसार के उपकार के लिए जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र आदि यज्ञ का आचरण करते हैं वैसे अनुष्ठान किया करें ॥५५॥

**दैव्यायेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।**

**पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब यज्ञ कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रें देवश्रीः श्रीमंनाः शतपंयाः ।**

**परिगृह्यं देवा युज्ञमायन् देवा देवेभ्योऽअध्वर्यन्तोऽअस्थुः ॥५६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अध्वर्यन्तः** ) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले ( **देवाः** ) विद्या के दाता विद्वान् लोग ( **देवेभ्यः** ) विद्वानों की प्रसन्नता के लिए गृहाश्रम वा अग्निहोत्रादि यज्ञ में ( **अस्थुः** ) स्थिर हों वा जैसे ( **दैव्याय** ) अच्छे २ गुणों में प्रसिद्ध हुए ( **धर्त्रे** ) धारणशील ( **जोष्ट्रे** ) तथा प्रीति करने वाले होता के लिए ( **देवश्रीः** ) जो सेवन की जाती वह विद्यारूप लक्ष्मी विद्वानों में जिस को विद्यमान हो ( **श्रीमनाः** ) जिसका कि लक्ष्मी में मन ( **शतपयाः** ) और जिसके सैकड़ों दूध आदि वस्तु हैं वह यजमान वर्त्तमान है वैसे ( **देवाः** ) विद्या के दाता तुम लोग विद्या को ( **परिगृह्य** ) ग्रहण करके ( **यज्ञम्** ) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम व अग्निहोत्र आदि को ( **आयन्** ) प्राप्त होओ ॥५६॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि धनप्राप्ति के लिये सदैव उद्योग करें जैसे विद्वान् लोग धनप्राप्ति के लिये प्रयत्न करें वैसे उनके अनुकूल अन्य मनुष्यों को भी यत्न करना चाहिए ॥ ५६ ॥

**वीतमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**वीतᳪ हुविः शमितᳪ शमिता युजध्यै तुरीयो युज्ञो यत्र हुव्यमेति ।**

**ततो वाकाऽआशिषो नो जुषन्ताम् ॥५७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **शमिता** ) शान्ति आदि गुणों से युक्त गृहाश्रमी ( **यजध्यै** ) यज्ञ करने के लिये ( **वीतम्** ) गमनशील ( **शमितम्** ) दुर्गुणों की शान्ति कराने वाले ( **हविः** ) होम करने योग्य पदार्थ को अग्नि में छोड़ता है जो ( **तुरीयः** ) चौथा ( **यज्ञः** ) प्राप्त करने योग्य यज्ञ है तथा ( **यत्र** ) जहाँ ( **हव्यम्** ) होम करने योग्य पदार्थ ( **एति** ) प्राप्त होता है ( **ततः** ) उन सबों से ( **वाकाः** ) जो कही जाती हैं वे ( **आशिषः** ) इच्छासिद्धि ( **नः** ) हम लोगों का ( **जुषन्ताम्** ) सेवन करें ऐसी इच्छा करो ॥५७॥

**भावार्थ**—अग्निहोत्र आदि यज्ञ में चार पदार्थ होते हैं अर्थात् बहुतसा पुष्टि सुगन्धि मिष्ट और रोग विनाश करने वाला होम का पदार्थ उसका शोधन यज्ञ का करने वाला तथा वेदी आग लकड़ी आदि । यथाविधि से हवन किया हुआ पदार्थ आकाश को जाकर फिर वहां से पवन वा जल के द्वारा आकर इच्छा की सिद्धि करने वाला होता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥५७॥

**सूर्यरश्मिरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब अगले मन्त्र में सूर्यलोक के स्वरूप का कथन किया है—*

**सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२ऽअजस्रम् ।**

**तस्यं पूषा प्रसुवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥५८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **पुरस्तात्** ) पहिले से ( **सविता** ) सूर्यलोक ( **ज्योतिः** ) प्रकाश का देता है जिससे ( **हरिकेशः** ) हरे रंग वाली ( **सूर्यरश्मिः** ) सूर्य की किरण वर्त्तमान है जो ( **प्रसवे** ) उत्पन्न हुए जगत् में ( **अजस्रम्** ) निरन्तर ( **पूषा** ) पुष्टि करने वाला है जिसको ( **विद्वान्** ) विद्यायुक्त पुरुष ( **सम्पश्यन्** ) अच्छे प्रकार देखता हुआ उस की विद्या को ( **याति** ) प्राप्त होता है ( **तस्य** ) उसके सकाश से ( **गोपाः** ) संसार की रक्षा करने वाले पृथिवी आदि लोक और तारागण भी ( **विश्वा** ) समस्त ( **भुवनानि** ) लोक लोकान्तरों को ( **उदयान्** ) प्रकाशित करते हैं वह सूर्यमण्डल अतिप्रकाशमय है यह तुम जानो ॥५८॥

**भावार्थ**—जो यह सूर्यलोक है उसके प्रकाश में श्वेत और हरे रङ्ग बिरङ्ग अनेक किरणें हैं जो सब लोकों की रक्षा करते हैं इसी से सब की सब प्रकार से सदा रक्षा होती है यह जानने योग्य है ॥५८॥

**विमान इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । आदित्यो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**

**धैवतः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर ने किसलिये सूर्य का निर्माण किया है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**विमानऽएष दिवो मध्यंऽआस्तऽआपप्रिवान्रोदसीऽअन्तरिक्षम् ।**

**स विश्वाचीरभिचंष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥५९॥**

**पदार्थ**—विद्यावान् पुरुष जो ( **एषः** ) यह सूर्यमण्डल ( **दिवः** ) प्रकाश के ( **मध्ये** ) बीच में ( **विमानः** ) विमान अर्थात् जो आकाशादि मार्गों में आश्चर्यरूप चलनेहारा है उस के समान और ( **रोदसी** ) प्रकाश भूमि और ( **अन्तरिक्षम्** ) अवकाश को ( **आपप्रिवान्** ) अपने तेज से व्याप्त हुआ ( **आस्ते** ) स्थिर हो रहा है ( **सः** ) वह ( **विश्वाचीः** ) जो संसार को प्राप्त होती अर्थात् अपने उदय से प्रकाशित करती वा ( **घृताचीः** ) जल को प्राप्त कराती है उन अपनी द्युतियों अर्थात् प्रकाशों को विस्तृत करता है ( **पूर्वम्** ) आगे दिन ( **अपरम्** ) पीछे रात्रि ( **च** ) और ( **अन्तरा** ) दोनों के बीच में ( **केतुम्** ) सब लोगों के प्रकाशक तेज को ( **अभिचष्टे** ) देखता है उसे जानो ॥५९॥

**भावार्थ**—जो सूर्यलोक ब्रह्माण्ड के बीच स्थित हुआ अपने प्रकाश से सब को व्याप्त हो रहा है वह सब का अच्छा आकर्षण करने वाला है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥५९॥

**उक्षा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**

**धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उक्षा समुद्रोऽअरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।**
**मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥६०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर ने ( **दिव** ) प्रकाश के ( **मध्ये** ) बीच में ( **निहित** ) स्थापित किया हुआ ( **उक्षा** ) वृष्टि जल से सींचने वाला ( **समुद्र** ) जिससे कि अच्छे प्रकार जल गिरते हैं ( **अरुण** ) जो लाल रङ्ग वाला ( **सुपर्ण** ) तथा जिस से कि अच्छी पालना होती है ( **पृश्नि** ) वह विचित्र रङ्ग वाला सूर्यरूप तेज और ( **अश्मा** ) मेघ ( **रजस** ) लोकों को ( **अन्तौ** ) बन्धन के निमित्त ( **वि, चक्रमे** ) अनेक प्रकार घूमता तथा ( **पाति** ) रक्षा करता है ( **पूर्वस्य** ) तथा जो पूर्ण ( **पितु** ) इस सूर्य्यमण्डल के तेज उत्पन्न करने वाला बिजुलीरूप अग्नि है उस के ( **योनिम** ) कारण में ( **आ, विवेश** ) प्रवेश करता है वह सूर्य्य और मेघ अच्छे प्रकार उपयोग करने योग्य है ॥६०॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को ईश्वर के अनेक धन्यवाद कहने चाहियें क्योंकि जिस ईश्वर ने अपने जनाने के लिये जगत् की रक्षा का कारणरूप सूर्य्य आदि दृष्टान्त दिखाया है वह कैसे न सर्वशक्तिमान् हो ॥६०॥

**इन्द्र विश्वेत्यस्य मधुच्छन्दा सुतजेता ऋषि । इन्द्रो देवता ।**
**निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर जगत बनाने वाले ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रं विश्वाऽअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।**
**रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥६१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम जिस ( **समुद्रव्यचसम्** ) अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले ( **रथीनाम** ) प्रशंसायुक्त सुख के हेतु पदार्थ वालों में ( **रथीतमम्** ) अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों से युक्त ( **वाजानाम्** ) ज्ञानी आदि गुणी जनों के ( **पतिम** ) स्वामी ( **सत्पतिम्** ) विनाशरहित वा विनाशरहित कारण और जीवों के पालने हारे ( **इन्द्रम** ) परमात्मा को ( **विश्वा** ) समस्त ( **गिर** ) वाणी ( **अवीवृधन्** ) बढ़ाती अर्थात् विस्तार से कहती हैं उस परमात्मा की निरन्तर उपासना करो ॥६१॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिये कि सब वेद जिस की प्रशंसा करते योगीजन जिस की उपासना करते और मुक्त पुरुष जिस को प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं उसी को उपासना के योग्य इष्टदेव मानें ॥६१॥

**देवहूरित्यस्य विधृतिऋ षि । यज्ञो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवहूर्यज्ञऽआ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञऽआ च वक्षत् ।**
**यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ऽआ च वक्षत् ॥६२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **देवहू** ) विद्वानों को बुलाने वाला ( **यज्ञ** ) पूजा करने योग्य ईश्वर हम लोगों को सत्य ( **आ वक्षत्** ) उपदेश करे ( **च** ) और असत्य से हमारा उद्धार करे वा जो ( **सुम्नहू** ) सुखों का बुलाने वाला ( **यज्ञ** ) पूजन करने योग्य ईश्वर हम लोगों के लिये सुखों को ( **आ, वक्षत** ) प्राप्त करे ( **च** ) और दुःखों का विनाश करे वा जो ( **अग्नि** ) आप प्रकाशमान ( **देव** ) समस्त सुख का देने वाला ईश्वर हम लोगों को ( **देवान्** ) उत्तम गुणों वा भोगों का ( **यक्षत** ) देवे ( **च** ) और ( **आ, वक्षत्** ) पहुँचावे अर्थात् कार्य्यान्तर से प्राप्त करे, उसको आप लोग निरन्तर सेवो ॥६२॥

**भावार्थ**—जो उत्तम शास्त्र जानने वाले विद्वानों से उपासना किया जाता तथा जो सुखस्वरूप और मङ्गल कार्य्यों का देने वाला परमेश्वर है उस की समाधियोग से मनुष्य उपासना करें ॥६२॥

**वाजस्येत्यस्य विधृतिऋ षि । इन्द्रो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**वाजस्य मा प्रसवऽउद्ग्राभेणोदग्रभीत् ।**
**अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ऽअकः ॥६३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **इन्द्रः** ) पालन करने वाला ( **वाजस्य** ) विशेष ज्ञान का ( **प्रसव** ) उत्पन्न करने वाला ईश्वर ( **मा** ) मुझे ( **उद्ग्राभेण** ) अच्छे ग्रहण करने के साधन ( **उद्, अग्रभीत्** ) ग्रहण करे वैसे जो ( **अध** ) इस के पीछे उसके अनुसार पालना करने और विशेष ज्ञान सिखाने वाला पुरुष ( **मे** ) मेरे ( **सपत्नान्** ) शत्रुओं को ( **निग्राभेण** ) पराजय से ( **अधरान्** ) नीचे गिराया ( **अक** ) करे उसको तुम लोग भी सेनापति करो ॥६३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर पालना करे वैसे जो मनुष्य पालना के लिये धार्मिक मनुष्यों को अच्छे प्रकार ग्रहण करते और दण्ड देने के लिये दुष्टों का निग्रह अर्थात् नीचा दिखाते हैं वे ही राज्य कर सकते हैं ॥ ६३ ॥

**उद्ग्राभमित्यस्य विधृतिऋ षि । इन्द्राग्नी देवते । आर्ष्यनुष्टुप् छन्द ।**
**गान्धार स्वर ॥**

*फिर अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है—*

**उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवाऽअवीवृधन् ।**
**अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥६४॥**

**पदार्थ**—( **देवा** ) विद्वान् जन ( **उद्ग्राभम्** ) अत्यन्त उत्साह से ग्रहण ( **च** ) और ( **निग्राभं, च** ) त्याग भी करके ( **ब्रह्म** ) धन को ( **अवीवृधन्** ) बढ़ावें ( **अध** ) इसके अनन्तर ( **इन्द्राग्नी** ) बिजुली और आग के समान दो सेनापति ( **मे** ) मेरे ( **विषूचीनान्** ) विरोधभाव का वर्त्ताव वाले ( **सपत्नान्** ) वैरियों को ( **व्यस्यताम्** ) अच्छे प्रकार उठा २ के पटकें ॥ ६४ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सज्जनों का सत्कार और दुष्टों को पीट मार धन को बढ़ा निष्कण्टक राज्य का सम्पादन करते हैं वे ही प्रशंसित होते हैं । जो राजा राज्य में वसने हारे सज्जनों का सत्कार और दुष्टों का निरादर करके अपने तथा प्रजा के ऐश्वर्य्य को बढ़ाता है उसी के सभा और सेना की रक्षा करने वाले जन शत्रुओं का नाश कर सकें ॥ ६४ ॥

**क्रमध्वमित्यस्य विधृतिऋ षि । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप छन्द ।**
**गान्धार स्वर ॥**

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः ।**
**दिवस्पृष्ठꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥६५॥**

**पदार्थ**—हे वीरो ! तुम ( **अग्निना** ) बिजुली से ( **नाकम्** ) अत्यन्त सुख और ( **उख्यम्** ) पात्र में पकाये हुए चावल दाल तर्कारी कढ़ी आदि भोजन को ( **हस्तेषु** ) हाथों में ( **बिभ्रत** ) धारण किये हुए ( **क्रमध्वम्** ) पराक्रम करो ( **देवेभि** ) विद्वानों से ( **मिश्रा** ) मिले हुए ( **दिव** ) न्याय और विनय आदि गुणों के प्रकाश से उत्पन्न हुए दिव्य ( **पृष्ठम्** ) चाहे हुए ( **स्व** ) सुख को ( **गत्वा** ) प्राप्त होकर ( **आध्वम्** ) स्थित होओ ॥ ६५ ॥

**भावार्थ**—राजपुरुष विद्वानों के साथ सम्बन्ध कर आग्नेय आदि अस्त्रों से शत्रुओं में पराक्रम करें तथा स्थिर सुख को पाकर बारम्बार अच्छा यत्न करें ॥६५॥

**प्राचीमित्यस्य विधृतिऋ षि । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरोऽअग्निर्भवेह ।**
**विश्वाऽआशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥६६॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) शत्रुओं के जलाने हारे सभापति ! तू ( **प्राचीम्** ) पूर्व ( **प्रदिशम्** ) दिशा की ओर वा ( **अनु प्र इहि** ) अनुकूलता से प्राप्त हो ( **इह** ) इस राज्यकर्म में ( **अग्ने** ) आग्नेय अस्त्र आदि के योग से ( **पुरो, अग्नि** ) अग्नि के तुल्य अग्रगामी ( **विद्वान्** ) कार्य्य के जनाने वाले विद्वान् ( **भव** ) होओ ( **विश्वा** ) समस्त ( **आशा** ) दिशाओं को ( **दीद्यान** ) निरन्तर प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के समान हम लोगों के ( **द्विपदे** ) मनुष्यादि और ( **चतुष्पदे** ) गौ आदि पशुओं के लिये ( **ऊर्जम्** ) अन्नादि पदार्थ को ( **धेहि** ) धारण कर तथा विद्या विनय और पराक्रम से अभय का ( **वि, भाहि** ) प्रकाश कर ॥ ६६ ॥

**भावार्थ**—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं का अभ्यास कर युद्धविद्याओं को जान सब दिशाओं में स्तुति को प्राप्त होते हैं, वे मनुष्यों और पशुओं के खाने योग्य पदार्थों की उन्नति और रक्षा का विधान कर आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ६६ ॥

**पृथिव्या इत्यस्य विधृतिऋ षि । अग्निर्देवता । पिपीलिकामध्या बृहती छन्द ।**
**मध्यम स्वर ॥**

*फिर योगियों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**पृथिव्याऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।**
**दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥६७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे किये हुए योग के अङ्गों के अनुष्ठान संयमसिद्ध अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण ( **अहम्** ) मैं ( **पृथिव्या** ) पृथिवी के बीच ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश को ( **उद्, आ अरुहम्** ) उठ जाऊं वा ( **अन्तरिक्षात्** ) आकाश से ( **दिवम्** ) प्रकाशमान सूर्यलोक को ( **आ, अरुहम्** ) चढ़ जाऊं वा ( **नाकस्य** ) सुख कराने हारे ( **दिव** ) प्रकाशमान उस सूर्यलोक के ( **पृष्ठात्** ) समीप से ( **स्व** ) अत्यन्त सुख और ( **ज्योति** ) ज्ञान के प्रकाश को ( **अहम्** ) मैं ( **अगाम्** ) प्राप्त होऊं वैसा तुम भी आचरण करो ॥ ६७ ॥

**भावार्थ**—जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती है उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है अन्यथा नहीं ॥ ६७ ॥

**स्वर्यन्त इत्यस्य विधृतिऋ षि । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द ।**
**गान्धार स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्वर्यन्तो नापेक्षन्तऽआ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी।**
**यज्ञं ये विश्वतोधारᳬं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे ॥६८॥**

**पदार्थः**—( ये ) जो ( सुविद्वांसः ) अच्छे पण्डित योगी जन ( यज्ञम् ) योगाभ्यास के पूर्ण नियम करते हुए के ( न ) समान ( स्वः ) अत्यन्त सुख की ( अप, ईक्षन्ते ) अपेक्षा करते हैं वा ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को ( आ रोहन्ति ) चढ़ जाते अर्थात् लोकान्तरों में इच्छापूर्वक चले जाते वा ( द्याम् ) प्रकाशमय योगविद्या और ( विश्वतोधारम् ) सब ओर से सुशिक्षायुक्त वाणी है जिस में ( यज्ञम् ) प्राप्त करने योग्य उस यज्ञादि कर्म का ( वितेनिरे ) विस्तार करते हैं वे अविनाशी सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥

**भावार्थः**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सारथि घोड़ों को अच्छे प्रकार सिखा और अभीष्ट मार्ग में चला कर सुख से अभीष्ट स्थान को शीघ्र जाता है वैसे ही अच्छे विद्वान् योगी जन जितेन्द्रिय होकर नियम से अपने को अभीष्ट परमात्मा को पाकर आनन्द का विस्तार करते हैं ॥ ६८ ॥

**अग्न इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् के व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम्।**
**इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥६९॥**

**पदार्थः**—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( देवयताम् ) कामना करते हुए जनों के बीच तू ( प्रथमः ) पहिले ( प्रेहि ) प्राप्त हो जिससे ( देवानाम् ) विद्वान् ( उत ) और ( मर्त्यानाम् ) अविद्वानों का तू व्यवहार देखने वाला है जिससे ( इयक्षमाणाः ) यज्ञ की इच्छा करने वाले ( सजोषाः ) एक सी प्रीतियुक्त ( यजमानाः ) सबको सुख देने हारे जन ( भृगुभिः ) परिपूर्ण विज्ञान वाले विद्वानों के साथ ( स्वस्ति ) सामान्य सुख और ( स्वः ) अत्यन्त सुख को ( यन्तु ) प्राप्त हों वैसा तू भी हो ॥ ६९ ॥

**भावार्थः**—हे मनुष्यो ! विद्वान् और अविद्वानों के साथ प्रीति से बातचीत करके सुख को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ६९ ॥

**नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳬं समीची।**
**द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥७०॥**

**पदार्थः**—हे मनुष्यो ! तुम जैसे ( समनसा ) एकसे विचारयुक्त ( समीची ) एकता चाहती हुई ( विरूपे ) अलग २ रूप वाली धाय और माता दोनों ( एकम् ) एक ( शिशुम् ) बालक को दुग्ध पिलाती हैं वैसे ( नक्तोषासा ) रात्रि और प्रातःकाल की वेला जगत् को ( धापयेते ) दुग्ध सा पिलाती है अर्थात् अति आनन्द देती हैं वा जैसे ( रुक्मः ) प्रकाशमान अग्नि ( द्यावाक्षामा अन्तः ) ब्रह्माण्ड के बीच में ( वि, भाति ) विशेष करके प्रकाश करता है उस ( अग्निम् ) अग्नि को ( द्रविणोदाः ) द्रव्य के देने वाले ( देवाः ) शास्त्र पढ़े हुए जन ( धारयन् ) धारण करते हैं वैसा वर्त्ताव वर्त्तो ॥ ७० ॥

**भावार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे संसार में रात्रि और प्रातःसमय की वेला अनेक रूपों में उत्पन्न और जैसे बिजुली अग्नि सब पदार्थों में व्याप्त वा जैसे प्रकाश और भूमि प्रतिग्रहणशील हैं वैसे अत्यन्त विवेचना करने और शुभगुणों में व्यापक होने वाले होकर पुत्र के तुल्य संसार को पालें ॥ ७० ॥

**अग्न इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर योगी के कर्मों के फलों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः।**
**त्वᳬं साहस्रस्य रायऽईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१॥**

**पदार्थः**—हे ( सहस्राक्ष ) हजारों व्यवहारों में अपना विशेष ज्ञान वा ( शतमूर्द्धन् ) सैकड़ों प्राणियों में मस्तक वाले ( अग्ने ) अग्नि के समान प्रकाशमान योगिराज ! जिस ( ते ) आप के ( शतम् ) सैकड़ों ( प्राणाः ) जीवन के साधन ( सहस्रम् व्यानाः ) सब क्रियाओं के निमित्त शरीरस्थ वायु तथा जो ( त्वम् ) आप ( साहस्रस्य ) हजारों जीव और पदार्थों का आधार जो जगत् उस के ( रायः ) धन के ( ईशिषे ) स्वामी हैं ( तस्मै ) उस ( वाजाय ) विशेष ज्ञान वाले ( ते ) आपके लिये हम लोग ( स्वाहा ) सत्य वाणी से ( विधेम ) सत्कारपूर्वक व्यवहार करें ॥७१॥

**भावार्थः**—जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि योग के साधनों से योग ( धारणा ध्यान समाधिरूप संयम ) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अङ्गों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है। अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ७१ ॥

**सुपर्ण इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद। भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशऽउद्दृᳬंह ॥७२॥**

**पदार्थः**—हे विद्वान् योगीजन ! आप ( भासा ) प्रकाश से ( सुपर्णः ) अच्छे अच्छे पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त और ( गरुत्मान् ) बड़े मन तथा आत्मा के बल से युक्त ( असि ) हैं अतिप्रकाशमान आकाश में वर्त्तमान सूर्यमण्डल के तुल्य ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( पृष्ठे ) ऊपर ( सीद ) स्थिर हो, वा वायु के तुल्य प्रजा को ( आ पृण ) सुख दे वा जैसे सूर्य ( ज्योतिषा ) अपने प्रकाश से ( दिवम् ) प्रकाशमय ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष को वैसे तू राजनीति के प्रकाश से राज्य को ( उत्तभान ) उन्नति पहुँचा वा जैसे आग अपने ( तेजसा ) अतितीक्ष्ण तेज से ( दिशः ) दिशाओं को वैसे अपने तीक्ष्ण तेज से प्रजाजनों को ( उद्‌दृंह ) उन्नति दे ॥ ७२ ॥

**भावार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब मनुष्य राग अर्थात् प्रीति और द्वेष वैर से रहित परोपकारी होकर ईश्वर के समान सब प्राणियों के साथ वर्त्तें तब सब सिद्धि को प्राप्त होवें ॥ ७२ ॥

**आजुह्वान इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् गुणी जन कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया।**
**अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥७३॥**

**पदार्थः**—हे ( अग्ने ) योगाभ्यास से प्रकाशित आत्मा युक्त ( पुरस्तात् ) प्रथम से ( आजुह्वानः ) सत्कार के साथ बुलाये ( सुप्रतीकः ) शुभगुणों को प्राप्त हुए ( यजमान ) योगविद्या के देने वाले आचार्य्य ! आप ( साधुया ) श्रेष्ठ कर्मों से ( अस्मिन् ) इस ( सधस्थे ) एक साथ के स्थान में ( स्वम् ) अपने ( योनिम् ) परमात्मा रूप घर में ( आ सीद ) स्थिर हो ( च ) और हे ( विश्वे ) सब ( देवाः ) दिव्य आत्मा वाले योगीजनो ! आप लोग श्रेष्ठ कामों में ( उत्तरस्मिन् ) उत्तर समय एक साथ सत्य सिद्धान्त पर ( अधि सीदत ) अधिक स्थित होओ ॥ ७३ ॥

**भावार्थः**—जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करने वाले विद्वान् के संग और प्रीति से परस्पर संवाद करते हैं वे सब के अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं ॥ ७३ ॥

**ताᳬं सवितुरित्यस्य कण्व ऋषिः। सविता देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥**

*अब कौन ईश्वर को पा सकता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ताᳬं सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्।**
**यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬं सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥७४॥**

**पदार्थः**—जैसे ( कण्वः ) बुद्धिमान् पुरुष ( अस्य ) इस ( वरेण्यस्य ) स्वीकार करने योग्य ( सवितुः ) योग के ऐश्वर्य के देने हारे ईश्वर की ( याम् ) जिस ( चित्राम् ) अद्भुत आश्चर्य रूप वा ( विश्वजन्याम् ) समस्त जगत् को उत्पन्न करती ( प्रपीनाम् ) अति उन्नति के साथ बढ़ती ( सहस्रधाराम् ) हजारों पदार्थों का धारण करने हारी ( सुमतिम् ) और यथार्थ विषय को प्रकाशित करती हुई उत्तम बुद्धि तथा ( पयसा ) अन्न आदि पदार्थों के साथ ( महीम् ) बड़ी ( गाम् ) वाणी को ( अदुहत् ) परिपूर्ण करता अर्थात् क्रम से ज्ञान अपने शास्त्रविषयक करता है वैसे ( ताम् ) उसको ( अहम् ) मैं ( आ वृणे ) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूँ ॥ ७४ ॥

**भावार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मेधावीजन जगदीश्वर की विद्या को पाकर वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही इसको प्राप्त होकर और सामान्य जन को भी विद्या और योगवृद्धि के लिये उद्यत होना चाहिये ॥ ७४ ॥

**विधेमेत्यस्य गृत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।**
**यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीᳬंषि जुहुरे समिद्धे ॥७५॥**

**पदार्थः**—हे ( अग्ने ) योगीजन ! ( ते ) तेरे ( परमे ) सबसे अति उत्तम योग के संस्कार से उत्पन्न हुए पूर्व ( जन्मन् ) जन्म में वा ( त्वे ) तेरे वर्त्तमान जन्म में ( अवरे ) न्यून ( सधस्थे ) एक साथ स्थान में वर्त्तमान हम लोग ( स्तोमैः ) स्तुतियों से ( विधेम ) सत्कारपूर्वक तेरी सेवा करें तू हम लोगों को ( यस्मात् ) जिस ( योनेः ) स्थान से ( उदारिथ ) अच्छे २ साधनों के सहित प्राप्त हो ( तम् ) उस स्थान को मैं ( प्र यजे ) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं और जैसे होम करने वाले लोग ( समिद्धे ) अच्छे प्रकार जलते हुए अग्नि में ( हवींषि ) होम करने योग्य वस्तुओं को ( जुहुरे ) होमते हैं वैसे योगाग्नि में हम लोग दुःखों के होम का ( विधेम ) विधान करें ॥ ७५ ॥

**भावार्थः**—इस संसार में योग के संस्कार से युक्त जिस जीव का पवित्र भाव से जन्म होता है वह संस्कार की प्रबलता से योग ही के जानने की चाहना करने वाला होता है और उसका जो सेवन करते हैं वे भी योग की चाहना करने वाले होते हैं, उक्त सब योगीजन जैसे अग्नि इन्धन को जलाता है वैसे समस्त दुःख अशुद्धि भाव को योग से जलाते हैं ॥ ७५ ॥

प्रेद्ध इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । आर्ष्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्रेद्धोऽअग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।**
**त्वाᳶ शश्वन्तऽउपयन्ति वाजाः ।७६॥**

**पदार्थ**—हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (अग्ने) आग के समान दु खो के विनाश करने हारे योगीजन ! आप ( पुर ) पहिले ( प्रेद्ध ) अच्छे तेज से प्रकाशमान हुए ( अजस्रया ) नाशरहित निरन्तर ( सूर्म्या ) ऐश्वर्य्य के प्रवाह से ( न ) हम लोगो को (दीदिहि) चाहे ( शश्वन्त ) निरन्तर वर्त्तमान ( वाजा ) विशेष ज्ञानवाले जन ( त्वाम् ) आपको ( उप, यन्ति ) प्राप्त होवें ॥ ७६ ॥

**भावार्थ**—जब मनुष्य शुद्धात्मा होकर औरों का उपकार करते हैं तब वे भी सर्वत्र उपकारयुक्त होते हैं ॥ ७६ ॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्रᳶ हृदिस्पृशम् ।**
**ऋध्यामा तऽओहैः ॥७७॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने) बिजुली के समान पराक्रम वाले विद्वन् ! जो (अश्वम्) घोडे के ( न ) समान वा ( क्रतुम् ) बुद्धि क ( न) समान ( भद्रम् ) कल्याण और ( हृदिस्पृशम ) हृदय म स्पर्श करने वाला है ( तम् ) उस पूव मन्त्र म कहे तुझ को ( स्तोम ) स्तुतियो से ( अद्य ) आज प्राप्त होकर ( ते ) आप के ( ओहै ) पालन आदि गुणो से ( ऋध्याम ) वृद्धि को पावें ॥७७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है। जसे शरीर आदि मे स्थिर हुए बिजुली आदि स वृद्धि वेग और बुद्धि के सुख बढ़ें वैसे विद्वानो की सिखावट और पालन आदि से मनुष्य आदि सब वृद्धि को पाते हैं ॥७७॥

चित्तिमित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वकर्मा देवता । विराडतिजगती छन्द ।
निषाद स्वर ॥

*फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवाऽइहागमन्वीतिहोत्राऽऋतावृधः । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यᳶ हविः ॥७८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यथा ) जसे म ( मनसा) विज्ञान वा (घृतेन) घी से ( चित्तिम् ) जिस क्रिया स सञ्चय करत हैं उसको (जुहोमि ) ग्रहण करता हूँ वा जस ( इह ) इस जगत् म ( वीतिहोत्रा ) सब ओर से प्रकाशमान जिन का यज्ञ है वे (ऋतावृध ) सत्य से बढत और (देवा ) कामना करते हुए विद्वान् लोग (भूमन ) अनेक रूप वाले ( विश्वस्य ) समस्त ससार के ( विश्वकर्म्मणे ) सब के करने योग्य काम का जिसने किया है उस ( पत्ये ) पालनेहारे जगदीश्वर के लिये ( अदाभ्यम ) नष्ट न करने और ( हवि ) होमने योग्य सुख करने वाले पदार्थ का (विश्वाहा) सब दिनो होम करने का ( आगमन् ) प्राप्त हैं और मै होमने योग्य पदार्थों को (जुहोमि) होमता हूँ वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥७८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है। जैसे काष्ठो म चिना हुआ अग्नि घी से बढता है वैसे विज्ञान स बढू वा जैसे ईश्वर की उपासना करने हारे विद्वान् ससार के कल्याण करने का प्रयत्न करते हैं वसे मै भी यत्न करूं ॥७८॥

सप्त त इत्यस्य सप्तऋषय ऋषय । अग्निर्देवता । आर्षी जगती छन्द ।
निषाद स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सप्त तेऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तऽऋषयः सप्त धाम प्रियाणि । सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥७९॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! जैसे आग के ( सप्त, समिध ) सात जलाने वाले ( सप्त, जिह्वा ) वा सात काली कराली आदि लपटरूप जीभ वा (सप्त, ऋषय ) सात प्राण अपान समान उदान, व्यान देवदत्त, धनञ्जय वा (सप्त धाम, प्रियाणि ) सात पियारे धाम अर्थात् जन्म स्थान नाम धर्म अर्थ, काम और मोक्ष वा ( सप्त, होत्रा ) सात प्रकार के ऋतु ऋतु मे यज्ञ करने वाले है वैसे ( ते ) तेरे हों, जैसे विद्वान् उस अग्नि को ( सप्तधा ) सात प्रकार से ( यजन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे ( त्वा ) तुझ को प्राप्त होवें जैसे यह अग्नि ( घृतेन ) घी से और ( स्वाहा ) उत्तम वाणी से ( सप्त, योनी ) सात संचयों को सुख से प्राप्त होता है वैसे तू (आपृणस्व ) सुख से प्राप्त हो ॥७९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईन्धन से अग्नि बढ़ता है वैसे विद्या आदि शुभगुणो से समस्त मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होवें, जैसे विद्वान् जन अग्नि म घी आदि को होम के जगत् का उपकार करते हैं वैसे हम लोग भी करें ॥७९॥

शुक्रज्योतिरित्यस्य सप्तऋषय ऋषय । मरुतो देवता । आर्ष्युष्णिक छन्द ।
ऋषभ स्वर ॥

*अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च ।**
**शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यᳲहाः ॥८०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( शुक्रज्योति ) शुद्ध जिसका प्रकाश ( च ) और ( चित्रज्योति ) अदभुत जिसका प्रकाश ( च ) और ( सत्यज्योति ) विनाशरहित जिसका प्रकाश ( च ) और ( ज्योतिष्मान् ) जिसके बहुत प्रकाश हैं ( च ) और ( शुक्र ) शीघ्र करने वाला वा शुद्धस्वरूप ( च ) और ( अत्यहा ) जिस ने दुष्ट काम को दूर किया ( च ) और ( ऋतपा ) सत्य की रक्षा करने वाला ईश्वर है, वसे तुम लोग भी होओ ॥८०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जसे इस जगत् मे बिजुली वा सूर्य आदि प्रभा और शुद्धि के करने वाले पदार्थों को बना कर ईश्वर ने जगत् शुद्ध किया है वैसे ही शुद्धि सत्य और विद्या के उपदेश की क्रियाओ से विद्वान् जनों को मनुष्यादि शुद्ध करने चाहियें इस मन्त्र म अनेक चकारो के होने से यह भी ज्ञात होता है कि सब के ऊपर प्रीति आदि गुण भी विधान करने चाहियें ॥८०॥

ईदङ् चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषय । मरुतो देवता । आर्षी गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ।

*फिर विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च ।**
**मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥८१॥**

**पदार्थ**—जो पुरुष ( ईदृङ ) इस के तुल्य ( च ) भी ( अन्यादृङ ) और के समान ( च ) भी ( सदृङ ) समान देखने वाला ( च ) भी ( प्रतिसदृङ् ) उस उस के प्रति सदृश देखने वाला ( च ) भी ( मित ) मान को प्राप्त ( च) भी (संमित ) अच्छे प्रकार परिमाण किया गया ( च ) और जो ( सभरा ) समान धारणा को करने वाले वर्त्तमान हैं वे व्यवहार सम्बन्धी कार्य्यसिद्धि कर सकते हैं ॥८१॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य ईश्वर के तुल्य उत्तम और ईश्वर के समान काम को करके सत्य का धारण करता और असत्य का त्याग करता है वही योग्य है ॥८१॥

ऋतश्चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषय । मरुतो देवता । आर्षी गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

*फिर ईश्वर कसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च ।**
**धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥८२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (ऋत ) सत्य का जानने वाला ( च ) भी (सत्य ) श्रेष्ठो मे श्रेष्ठ ( च ) भी ( ध्रुव ) दृढ निश्चययुक्त ( च) भी ( धरुण ) सब का आधार ( च ) भी ( धर्त्ता ) धारण करने वाला ( च) भी ( विधर्त्ता ) विशेष कर के धारण करने वाला अर्थात् धारको का धारक ( च ) भी और (विधारय ) विशेष करके सब व्यवहार का धारण कराने वाला परमात्मा है सब लोग उसी की उपासना करें ॥८२॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्या उत्साह सज्जनो का सङ्ग और पुरुषार्थ से सत्य और विशेष ज्ञान को धारण कर अच्छे स्वभाव का धारण करते हैं वे ही आप सुखी हो सकते और दूसरो को कर भी सकते है ॥८२॥

ऋतजिदित्यस्य सप्तऋषय ऋषय । मरुतो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक छन्द ।
ऋषभ स्वर ॥

*अब विद्वान लोग कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च ।**
**अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः ॥८३॥**

**पदार्थ**—जो (ऋतजित्) विशेष ज्ञान को बढाने हारा (च) और (सत्यजित) कारण तथा धर्म को उन्नति देने वाला ( च ) और ( सेनजित् ) सेना को जीतने हारा ( च ) और ( सुषेण ) सुन्दर सेना वाला ( च ) और ( अन्तिमित्र ) समीप मे सहाय करने हारे मित्र वाला ( च ) और ( दूरे अमित्र ) शत्रु जिससे दूर भाग गये हो ( च ) और अन्य भी जो इस प्रकार का हो वह ( गण ) गिनने योग्य होता है ॥८३॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्या और सत्य आदि कामो की उन्नति करें तथा मित्रों की सेवा और शत्रुओ से वैर करें वे ही लोक मे प्रशंसा योग्य होते हैं ॥८३॥

ईदृक्षास इत्यस्य सप्तऋषय ऋषय । मरुतो देवता । निचृदार्षी जगती छन्द ।
निषाद स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ई॒दृक्षास॑ऽएता॒दृक्षास॑ऽऊ॒ षु णः॑ स॒दृक्षा॑सः॒ प्रति॑सदृक्षास॒ऽएत॑न ।**
**मि॒तास॑श्च॒ सम्मि॑तासो नोऽअ॒द्य सभ॑रसो मरुतो य॒ज्ञेऽअ॒स्मिन् ॥८४॥**

**पदार्थ**—हे (**मरुत** ) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो ! जो (**ईदृक्षास** ) इस लक्षण से युक्त ( **एतादृक्षास** ) इन पहिले कहे हुओं के सदृश (**सदृक्षास** ) पक्षपात को छोड़ समान दृष्टि वाले ( **प्रतिसदृक्षास** ) शास्त्रों को पढ़े हुए सत्य बोलने वाले धर्मात्माओं के सदृश हैं वे आप ( **न** ) हम लोगों को ( **सु आ, इतन**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ( **उ** ) वा ( **मितास** ) परिमाणयुक्त जानने योग्य ( **सम्मितास** ) तुला के समान सत्य झूठ को पृथक् पृथक् करने ( **च** ) और ( **अस्मिन्** ) इस ( **यज्ञे** ) यज्ञ में ( **सभरस** ) अपने समान प्राणियों की पुष्टि पालना करने वाले हो वे ( **अद्य** ) आज ( **न** ) हम लोगों की रक्षा करें और उनका हम लोग भी निरन्तर सत्कार करें ॥८४॥

**भावार्थ**—जब धार्मिक विद्वान् जन कहीं मिलें जिनके समीप जावें पढ़ावें और शिक्षा देवें तब वे उन सब लोगों को सत्कार करने योग्य हैं ॥८४॥

**स्वतवानित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । चातुर्मास्या मरुतो देवता । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्व॒तवाँ॑श्च प्रघा॒सी च॑ सान्त॒पन॑श्च गृहमे॒धी च॑ ।**
**क्री॒डी च॑ शा॒की चो॑ज्जे॒षी ॥८५॥**

**पदार्थ**—जो ( **स्वतवान्** ) अपनों की वृद्धि कराने वाला (**च**) और(**प्रघासी**) जिसके बहुत भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान हैं ऐसा ( **च** ) और ( **सान्तपन** ) अच्छे प्रकार शत्रुजनों को तपाने ( **च** ) और ( **गृहमेधी** ) जिसका प्रशंसायुक्त घर में सङ्ग ऐसा ( **च** ) और (**क्रीडी**) अवश्य खेलने के स्वभाव वाला (**च**) और (**शाकी**) अवश्य शक्ति रखने का स्वभाव वाला ( **च** ) भी हो वह ( **उज्जेषी** ) मन से अत्यन्त जीतने वाला हो ॥८५॥

**भावार्थ**—जो बहुत बल और अन्न के सामर्थ्य से युक्त गृहस्थ होता है वह सब जगह विजय को प्राप्त होता है ॥८५॥

**इन्द्रमित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । मरुतो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर राजा और प्रजा कैसे परस्पर वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रं॒ दैवी॒र्विशो॑ म॒रुतो॒ऽनु॑वर्त्मानोऽभव॒न्यथेन्द्रं॒ दैवी॒र्विशो॑ म॒रुतो॒ऽनु॑वर्त्मा॒नोऽभ॑वन् । ए॒वमि॒मं यज॑मानं॒ दैवी॑श्च॒ विशो॒ मानु॑षीश्चा॒नु॑वर्त्मानो भवन्तु ॥८६॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! आप वैसे अपना वर्त्ताव कीजिये ( **यथा** ) जैसे ( **दैवी** ) विद्वान् जनों के ये ( **विश** ) प्रजाजन ( **मरुत** ) ऋतु २ में यज्ञ कराने वाले विद्वान् ( **इन्द्रम** ) परमैश्वर्ययुक्त राजा के ( **अनुवर्त्मान** ) अनुकूल मार्ग से चलने वाले ( **अभवन्** ) होवें वा जैसे ( **मरुत** ) प्राण के समान प्यारे ( **दैवी** ) शास्त्र जानने वाले दिव्य ( **विश** ) प्रजाजन ( **इन्द्रम** ) समस्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर के ( **अनुवर्त्मान** ) अनुकूल आचरण करने हारे ( **अभवन्** ) हों ( **एवम** ) ऐसे ( **दैवी** ) शास्त्र पढ़े हुए ( **च** ) और ( **मानुषी** ) मूर्ख ( **च** ) ये दोनों ( **विश** ) प्रजाजन ( **इमम्** ) इस ( **यजमानम** ) विद्या और अच्छी शिक्षा से सुख देने हारे सज्जन के ( **अनुवर्त्मान** ) अनुकूल आचरण करने वाले ( **भवन्तु** ) हों ॥ ८६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रजाजन राजा आदि राजपुरुषों के अनुकूल वर्त्तें वैसे ये लोग भी प्रजाजनों के अनुकूल वर्त्तें । जैसे अध्यापन और उपदेश करने वाले सब के सुख के लिए प्रयत्न करें वैसे सब लोग इन के सुख के लिये प्रयत्न करें ॥ ८६ ॥

**इममित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इ॒मꣳ स्तन॒मूर्ज॑स्वन्तं धया॒पां प्रपी॑नमग्ने सरि॒रस्य॒ मध्ये॑ ।**
**उत्सं॑ जुषस्व॒ मधु॑मन्तमर्व॑न्त्समु॒द्रिय॒ꣳ सद॑न॒माविश॑स्व ॥८७॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के समान वर्त्तमान पुरुष ! तू ( **प्रपीनम्** ) अच्छे दूध से भरे हुए ( **स्तनम** ) स्तन के समान ( **इमम** ) इस ( **ऊर्जस्वन्तम** ) प्रशंसित बल करते हुए ( **अपाम** ) जलों के रस को ( **धय** ) पी ( **सरिरस्य** ) बहुतों के ( **मध्ये** ) बीच में ( **मधुमन्तम** ) प्रशंसित मधुरतादि गुणयुक्त ( **उत्सम** ) जिससे पदार्थ गीले होते हैं उस कूप का ( **जुषस्व** ) सेवन कर हे वा (**अर्वन्**) घोड़े के समान वर्त्ताव रखने हारे जन ! तू ( **समुद्रियम** ) समुद्र में हुए स्थान कि ( **सदनम्** ) जिस में जाते हैं उसमें ( **आ, विशस्व** ) अच्छे प्रकार प्रवेश कर ॥८७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बालक और बछड़े स्तन के दूध को पी के बढ़ते हैं वा जैसे घोड़ा शीघ्र दौड़ता है वैसे मनुष्य यथायोग्य भोजन और शयनादि आराम से बढ़े हुए वेग से चलें जैसे जलों से भरे हुए समुद्र के बीच नौका में स्थित होकर जाते हुए सुखपूर्वक पारावार अर्थात् इस पार से उस पार पहुँचते हैं वैसे ही अच्छे साधनों से व्यवहार के पार और अवार को प्राप्त होवें ॥ ८७ ॥

**घृतमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को अग्नि कहां कहां खोजना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**घृ॒तं मि॑मिक्षे घृ॒तम॑स्य॒ योनि॑र्घृ॒ते श्रि॒तो घृ॒तम्व॑स्य॒ धाम॑ ।**
**अ॒नु॒ष्व॒धमाव॑ह मा॒दय॑स्व॒ स्वाहा॑कृतं वृषभ वक्षि ह॒व्यम् ॥८८॥**

**पदार्थ**—हे समुद्र में जाने वाले मनुष्य ! आप ( **घृतम्** ) जल को ( **मिमिक्षे** ) सींचना चाहो ( **उ** ) वा ( **अस्य** ) इस आग का ( **घृतम्** ) घी ( **योनि** ) घर है जो ( **घृते** ) घी में ( **श्रित** ) आश्रय को प्राप्त हो रहा है वा ( **घृतम्** ) जल ( **अस्य** ) इस आग का ( **धाम** ) धाम अर्थात् ठहरने का स्थान है उस अग्नि को तू ( **अनुष्वधम्** ) अन्न की अनुकूलता को ( **आ वह** ) पहुँचा । हे ( **वृषभ** ) वर्षाने वाले जन ! तू जिस कारण ( **स्वाहाकृतम्** ) वेदवाणी से सिद्ध किये ( **हव्यम** ) लेने योग्य पदार्थ को ( **वक्षि** ) चाहता वा प्राप्त होता है इसलिये हम लोगों को ( **मादयस्व** ) आनन्दित कर ॥ ८८ ॥

**भावार्थ**—जितना अग्नि जल में है उतना जलाधिकरण अर्थात् जल में रहने वाला कहाता है जैसे घी से अग्नि बढ़ता है वैसे जल से सब पदार्थ बढ़ते हैं और अन्न के अनुकूल घी आनन्द कराने वाला होता है, इससे उक्त व्यवहार की चाहना सब लोगों को करनी चाहिये ॥ ८८ ॥

**समुद्रादित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**स॒मु॒द्रादू॒र्मिर्मधु॑माँ॒२ऽउदा॑र॒दुपा॒ꣳशुना॒ सम॑मृत॒त्वमा॑नट् ।**
**घृ॒तस्य॒ नाम॒ गुह्यं॒ यदस्ति॑ जि॒ह्वा दे॒वाना॑म॒मृत॑स्य॒ नाभिः॑ ॥८९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! आप लोग जो ( **समुद्रात** ) अन्तरिक्ष से ( **अंशुना** ) किरणसमूह के साथ ( **मधुमान्** ) मिठास लिये हुए ( **ऊर्मि** ) जलतरङ्ग ( **उदारत** ) ऊपर को पहुँच वह ( **सममृतत्वम्** ) अच्छे प्रकार अमृतरूप स्वाद के ( **उपानट** ) समीप में व्याप्त हो अर्थात् अतिस्वादु को प्राप्त होवे ( **यत** ) जो ( **घृतस्य** ) जल का ( **गुह्यम्** ) गुप्त ( **नाम** ) नाम ( **अस्ति** ) है और जो ( **देवानाम्** ) विद्वानों की ( **जिह्वा** ) वाणी ( **अमृतस्य** ) मोक्ष का ( **नाभि** ) प्रबन्ध करने वाली है उस सब का सेवन करो ॥ ८९ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि मिले हुए जल और भूमि के विभाग से अर्थात् उनमें से जल पृथक् कर मेघमण्डल को प्राप्त करा उसको भी मीठा कर देता है ( तथा ) जो जलों का कारणरूप नाम है वह गुप्त अर्थात् कारणरूप जल अत्यन्त छिपे हुए और जो मोक्ष है यह सब विद्वानों के उपदेश से ही मिलता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ८९ ॥

**वयमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**व॒यं नाम॒ प्र ब्र॑वामा घृ॒तस्या॒स्मिन् य॒ज्ञे धा॑रयामा॒ नमो॑भिः ।**
**उप॑ ब्र॒ह्मा शृ॑णवच्छ॒स्यमा॑नं॒ चतुः॑शृङ्गोऽवमीद् गौ॒रऽए॒तत् ॥९०॥**

**पदार्थ**—जिसका ( **चतुःशृङ्ग** ) जिसके चारों वेद सींगों के समान उत्तम हैं वह ( **गौर** ) वेदवाणी में रमण करने वा वेदवाणी को देने और (**ब्रह्मा** ) चारों वेदों का जानने वाला विद्वान् ( **अवमीत** ) उपदेश करे वा ( **उप शृणवत्** ) समीप में सुने वा ( **घृतस्य** ) घी वा जल का (**शस्यमानम्** ) प्रशंसित हुआ गुप्त ( **नाम** ) नाम है ( **एतत** ) इसको ( **वयम्** ) हम लोग औरों के प्रति ( **प्र, ब्रवाम** ) उपदेश करें और ( **अस्मिन्** ) इस ( **यज्ञे** ) गृहाश्रम व्यवहार में ( **नमोभि** ) अन्न आदि पदार्थों के साथ ( **धारयाम** ) धारण करें ॥९०॥

**भावार्थ**—मनुष्य लोग मनुष्य देह को पाकर सब पदार्थों के नाम और अर्थों को पढ़ाने वालों से सुन कर औरों के लिए कहें और इस सृष्टि में स्थित पदार्थों से समस्त कामों की सिद्धि करावें ॥९०॥

**चत्वारीत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब यज्ञ के गुणों वा शब्दशास्त्र के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है—*

**च॒त्वारि॒ शृङ्गा॒ त्रयो॑ऽअस्य॒ पादा॒ द्वे शी॒र्षे स॒प्त हस्ता॑सोऽअस्य ।**
**त्रिधा॑ ब॒द्धो वृ॑ष॒भो रो॑रवीति म॒हो दे॒वो मर्त्याँ॑२ऽआवि॑वेश ॥९१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस ( अस्य ) इस के ( त्रय ) प्रातःसवन, मध्यन्दिनसवन और सायंसवन ये तीन ( पादा ) प्राप्ति के साधन ( चत्वारि ) चार वेद ( शृङ्गा ) सींग ( द्वे ) दो ( शीर्षे ) अस्तकाल और उदयकाल शिर वा जिस ( अस्य ) इसके ( सप्त, हस्तासः ) गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं वा जो ( त्रिधा ) मन्त्र ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से ( बद्ध ) बंधा हुआ ( महः ) बड़ा ( देव ) प्राप्त करने योग्य ( वृषभ ) सुखों को सब ओर से वर्षाने वाला यज्ञ ( रोरवीति ) प्रातः मध्य और सायं सवन कर्म से शब्द करता हुआ ( मर्त्यान् ) मनुष्यों को ( आ, विवेश ) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है उस का अनुष्ठान करके सुखी होओ ॥९१॥

द्वितीयपक्ष—हे मनुष्यो ! तुम जिस ( अस्य ) इस के ( त्रय ) भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीन काल ( पादा ) पग ( चत्वारि ) नाम आख्यात उपसर्ग और निपात चार ( शृङ्गा ) सींग ( द्वे ) दो ( शीर्षे ) नित्य और कार्य शिर वा जिस ( अस्य ) इस के ( सप्त, हस्तासः ) प्रथमा आदि सात विभक्ति सात हाथ वा जो ( त्रिधा, बद्ध ) हृदय कण्ठ और शिर इन तीन स्थानों में बंधा हुआ ( महः ) बड़ा ( देव ) शुद्ध अशुद्ध का प्रकाशक ( वृषभ ) सुखों का वर्षाने वाला शब्दशास्त्र ( रोरवीति ) ऋक् यजु साम और अथर्ववेद से शब्द करता हुआ ( मर्त्यान् ) मनुष्यों को ( आ, विवेश ) प्रवेश करता है उस का अभ्यास करके विद्वान् होओ ॥९१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उभयोक्ति अर्थात् उपमान के न्यूनाधिक धर्मों के कथन से रूपक और श्लेषालङ्कार है । जो मनुष्य यज्ञविद्या और शब्दविद्या को जानते हैं वे महाशय विद्वान् होते हैं ॥९१॥

त्रिधेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।**
**इन्द्रऽएकꣳ सूर्यऽएकं जजान वेनादेकꣳ स्वधया निष्टतक्षुः ॥९२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( देवास ) विद्वान् जन ( पणिभि ) व्यवहार के ज्ञाता स्तुति करने वालों ने ( त्रिधा ) तीन प्रकार से ( हितम् ) स्थित किये और ( गवि ) वाणी में ( गुह्यमानम् ) छिपे हुए ( घृतम् ) प्रकाशित ज्ञान को ( अनु, अविन्दन् ) खोजन के पीछे पाते हैं ( इन्द्र ) बिजुली जिस ( एकम् ) एक विज्ञान और ( सूर्य ) सूर्य ( एकम् ) एक विज्ञान को ( जजान ) उत्पन्न करते तथा ( वेनात् ) अति सुन्दर मनोहर बुद्धिमान् से तथा ( स्वधया ) आप धारण की हुई क्रिया से ( एकम् ) अद्वितीय विज्ञान को ( नि ) निरन्तर ( ततक्षु ) अतितीक्ष्ण सूक्ष्म करते हैं, वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥९२॥

भावार्थ—तीन प्रकार के स्थूल सूक्ष्म और कारण के ज्ञान कराने हारे बिजुली तथा सूर्य के प्रकाश के तुल्य प्रकाशित बोध को आप्त अर्थात् उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों से जो मनुष्य प्राप्त हों वे अपने ज्ञान को व्याप्त करें ॥९२॥

एता इत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिये*
*यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**एताऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।**
**घृतस्य धाराऽअभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽआसाम् ॥९३॥**

पदार्थ—जो ( रिपुणा ) शत्रु चोर से ( न, अवचक्षे ) न काटने योग्य ( शतव्रजा ) सैकड़ों जिन के मार्ग हैं ( एता ) वे वाणी ( हृद्यात्, समुद्रात् ) हृदयाकाश से ( अर्षन्ति ) निकलती हैं ( आसाम् ) इन वैदिक धर्मयुक्त वाणियों के ( मध्ये ) बीच जो अग्नि में ( घृतस्य ) घी की ( धारा ) धाराओं के समान मनुष्यों में गिरी हुई प्रकाशित होती हैं उन की ( हिरण्यय ) तेजस्वी ( वेतस ) अतिसुन्दर मैं ( अभि, चाकशीमि ) सब ओर से शिक्षा करता हूँ ॥९३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उपदेशक विद्वान् लोग जो वाणी पवित्र विज्ञानयुक्त अनेक मार्गों वाली शत्रुओं से अखण्डित और घी का प्रवाह अग्नि को जैसे उत्तेजित करता है वैसे श्रोताओं को प्रसन्न करने वाली हैं उन वाणियों को प्राप्त होते हैं वैसे सब मनुष्य अच्छे यत्न से इन को प्राप्त होवें ॥९३॥

सम्यगित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।**
**एतेऽअर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥९४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अन्तः, हृदा ) शरीर के बीच में ( मनसा ) शुद्ध अन्तःकरण से ( पूयमाना ) पवित्र हुई ( धेना ) वाणी ( सरित ) नदियों के ( न ) समान ( सम्यक् ) अच्छे प्रकार ( स्रवन्ति ) प्रवृत्त होती हैं उनको जो ( एते ) ये वाणी के द्वारा ( घृतस्य ) प्रकाशित अन्तरिक ज्ञान की ( ऊर्मय ) लहरें ( क्षिपणोः ) हिंसक जन के भय से ( ईषमाण ) भागते हुए ( मृगा इव ) हरिणों के तुल्य ( अर्षन्ति ) उठती तथा सबको प्राप्त होती हैं उनको भी तुम लोग जानो ॥ ९४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे नदी समुद्र को जाती है वैसे ही आकाशस्थ शब्दसमुद्र से ( आकाश का शब्द गुण है इससे ) वाणी विचरती हैं, तथा जैसे समुद्र की तरंगें चलती हैं वा जैसे बहेलियों से डरपे हुए मृग इधर उधर भागते हैं वैसे ही सब प्राणियों की शरीरस्थ विज्ञान से पवित्र हुई वाणी प्रचार को प्राप्त होती हैं । जो लोग शास्त्र के अभ्यास और सत्य वचन आदि से वाणियों को पवित्र करते हैं वे ही शुद्ध होते हैं ॥ ९४ ॥

सिन्धोरित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।**
**घृतस्य धाराऽअरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥९५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( प्राध्वने ) जल चलने के उत्तम मार्ग में ( सिन्धोरिव ) नदी की जैसे ( शूघनास ) शीघ्र चलने हारी ( वातप्रमिय ) वायु से जानने योग्य लहरें गिरें और ( न ) जैसे ( काष्ठा ) संग्राम के प्रदेशों को ( भिन्दन् ) विदीर्ण करता तथा ( ऊर्मिभि ) शत्रुओं को मारने के श्रम से उठे पसीने रूप जल से पृथिवी को ( पिन्वमान ) सींचता हुआ ( अरुष ) चालाक ( वाजी ) वेगवान् घोड़ा गिरे वैसे जो ( यह्वा ) बड़ी गम्भीर ( घृतस्य ) विज्ञान की ( धारा ) वाणी ( पतयन्ति ) उपदेशक के मुख से निकल के श्रोताओं पर गिरती हैं उनको तुम जानो ॥ ९५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी दो उपमालङ्कार हैं । जो नदी के समान कार्यसिद्धि के लिये शीघ्र धावने वाले वा घोड़े के समान वेग वाले जन जिनकी सब दिशाओं में कीर्ति प्रवर्त्तमान हो रही है और परोपकार के लिये उपदेश से बड़े-बड़े दुःख सहते हैं तथा उनके श्रोताजन संसार के स्वामी होते हैं और नहीं ॥ ९५ ॥

अभिप्रवन्तेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोऽअग्निम् ।**
**घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥९६॥**

पदार्थ—( स्मयमानास ) किञ्चित् हंसने से प्रसन्नता करने ( कल्याण्य ) कल्याण के लिये आचरण करने तथा ( समनेव, योषा ) एक से चित्त वाली स्त्रियाँ जैसे पतियों को प्राप्त हों वैसे जो ( समिध ) शब्द अर्थ और सम्बन्धों से सम्यक् प्रकाशित ( घृतस्य ) शुद्ध ज्ञान की ( धारा ) वाणी ( अग्निम् ) तेजस्वी विद्वान् को ( अभि, प्रवन्त ) सब ओर से पहुँचती और ( नसन्त ) प्राप्त होती है ( ता ) उन वाणियों का ( जुषाण ) सेवन करता हुआ ( जातवेदाः ) ज्ञानी विद्वान् ( हर्यति ) कान्ति को प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे प्रसन्नचित्त आनन्द को प्राप्त सौभाग्यवती स्त्रियां अपने अपने पतियों को प्राप्त होती हैं वैसे ही विद्या तथा विज्ञानरूप आभूषण से शोभित वाणी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होती है ॥ ९६ ॥

कन्याऽइवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**कन्याऽइव वहतुमेतवाऽउऽअञ्ज्यञ्जानाऽअभि चाकशीमि ।**
**यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभि तत्पवन्ते ॥९७॥**

पदार्थ—( अञ्जि ) चाहने योग्य रूप को ( अञ्जाना ) प्रकट करती हुई ( वहतुम् ) प्राप्त होने वाले पति को ( एतव ) प्राप्त होने के लिए ( कन्या इव ) जैसे कन्या शोभित होती हैं वैसे ( यत्र ) जहाँ ( सोम ) बहुत ऐश्वर्य्य ( सूयते ) उत्पन्न होता ( उ ) और ( यत्र ) जहाँ ( यज्ञ ) यज्ञ होता है ( तत् ) वहाँ जो ( घृतस्य ) ज्ञान की ( धारा ) वाणी ( अभि, पवन्ते ) सब ओर से पवित्र होती हैं उन को मैं ( अभि, चाकशीमि ) अच्छे प्रकार वारंवार प्राप्त होता हूँ ॥ ९७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कन्या स्वयम्वर के विधान से अपनी इच्छा के अनुकूल पतियों का स्वीकार करके शोभित होती हैं वैसे ऐश्वर्य्य उत्पन्न होने के अवसर और यज्ञसिद्धि में विद्वानों की वाणी पवित्र हुई शोभायमान होती हैं ॥ ९७ ॥

अभ्यर्षतेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*विवाहित स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।**
**इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥९८॥**

पदार्थ—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! तुम उत्तम वर्त्ताव से ( सुष्टुतिम् ) अच्छी प्रशंसा तथा ( आजिम् ) जिससे उत्तम कामों को जानते हैं उस संग्राम और ( गव्यम् ) वाणी में होने वाले बोध वा गौ में होने वाले दूध दही घी आदि को ( अभ्यर्षत ) सब ओर से प्राप्त होओ ( देवता ) विद्वान् जन ( अस्मासु ) हम लोगों में ( भद्रा ) अति आनन्द कराने वाले ( द्रविणानि ) धनों को ( धत्त ) स्थापित करो ( न ) हम लोगों

को ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) प्राप्त होने योग्य गृहाश्रम व्यवहार को ( अयत ) प्राप्त कराओ जो ( घृतस्य ) प्रकाशित विज्ञान से युक्त ( धारा ) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी विद्वानो को ( मधुमत् ) मधुर आलाप जैसे हो वैसे ( पवन्ते ) प्राप्त होती हैं उन वाणियो को हमको प्राप्त कराओ ॥ ९८ ॥

भावार्थ—स्त्रीपुरुषो को चाहिये कि परस्पर मित्र होकर ससार मे विख्यात होवें जैसे अपने लिये वैसे औरो के लिये भी अत्यन्त सुख करने वाले धनो को उन्नतियुक्त करें परम पुरुषार्थ से गृहाश्रम की शोभा करें और वेदविद्या का निरन्तर प्रचार करें ॥ ९८ ॥

धामन्नित्यस्य वामदेव ऋषि । यज्ञपुरुषो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब ईश्वर और राजा का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**धामँते विश्वं भुवनमधिं श्रितमन्त' संमुद्रे हृद्यन्तरायुंषि । अपामनींके समिथे यऽआभृंतुस्तमंश्याम मधुंमन्त तऽऊर्मिम् ॥९९॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस ( ते ) आपके ( धामन् ) जिसमे कि समस्त पदार्थों को आप धरते हैं ( अन्त समुद्रे ) उस आकाश के तुल्य सबके बीच व्याप्तस्वरूप मे ( विश्वम् ) सब ( भुवनम् ) प्राणियो की उत्पत्ति का स्थान ससार ( अधि श्रितम् ) आश्रित होके स्थित है उसका हम लोग ( अश्याम ) प्राप्त होवें । हे सभापते ! ( ते ) तेरे ( अपाम् ) प्राणो के ( अन्त ) बीच ( हृदि ) हृदय मे तथा ( आयुषि ) जीवन के हेतु प्राणधारियो के ( अनीके ) सेना और ( समिथे ) सग्राम मे ( य ) जो भार ( आभृत ) भलीभाँति धरा है ( तम ) उसको तथा ( मधुमन्तम् ) प्रशसायुक्त मधुर गुणो से भरे हुए ( ऊर्मिम ) बोध को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ९९ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि जगदीश्वर की सृष्टि मे परम प्रयत्न से मित्रो की उन्नति कर और समस्त सामग्री को धारण करके यथायोग्य आहार और विहार अर्थात् परिश्रम से शरीर की आरोग्यता का विस्तार कर अपना और पराया उपकार करें ॥ ९९ ॥

इस अध्याय मे सूर्य मेघ गृहाश्रम और गणित की विद्या तथा ईश्वर आदि की पदार्थ विद्या के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ एकता है यह समझना चाहिये ॥

यह सत्रहवा ( १७ ) अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

# ॥ अथ अष्टादशाऽध्यायारम्भ. ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

वाजश्च म इत्यस्य देवा ऋषय । अग्निर्देवता । शक्वरी छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब अठारहवें अध्याय का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे मनुष्यों को ईश्वर वा धर्मानुष्ठानादि से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वाजंश्च मे प्रसवश्चं मे प्रयंतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्चं मे क्रतुंश्च मे स्वरंश्च मे श्लोकंश्च मे श्रवश्चं मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वंश्च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥१॥**

पदार्थ—( मे ) मेरा ( वाज ) अन्न ( च ) विशेषज्ञान ( मे ) मेरा ( प्रसव ) ऐश्वर्य ( च ) और उसके ढङ्ग ( मे ) मेरा ( प्रयति ) जिस व्यवहार से अच्छा यत्न बनता है सो ( च ) और उसके साधन ( मे ) मेरा ( प्रसिति ) प्रबन्ध ( च ) और रक्षा ( मे ) मेरा ( धीति ) धारण ( च ) और ध्यान ( मे ) मेरी ( क्रतु ) श्रेष्ठबुद्धि ( च ) उत्साह ( मे ) मेरी ( स्वर ) स्वतन्त्रता ( च ) उत्तम तेज ( मे ) मेरी ( श्लोक ) पदरचना करने हारी वाणी ( च ) कहना ( मे ) मेरा ( श्रव ) सुनना ( च ) और सुनाना ( मे ) मेरी ( श्रुति ) जिससे समस्त विद्या सुनी जाती है वह वेदविद्या ( च ) और उसके अनुकूल स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र ( मे ) मेरी ( ज्योति ) विद्या का प्रकाश होना ( च ) और दूसरे को विद्या का प्रकाश करना ( मे ) मेरा ( स्व ) सुख ( च ) और अन्य का सुख ( यज्ञेन ) सेवन करने योग्य परमेश्वर वा जगत् के उपकारी व्यवहार से ( कल्पन्ताम ) समर्थ होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको अन्न आदि पदार्थों से सब के सुख के लिये ईश्वर की उपासना और जगत् के उपकारक व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिये जिससे सब मनुष्यादिको की उन्नति हो ॥ १ ॥

प्राणश्चेत्यस्य देवा ऋषय । प्रजापतिर्देवता । अतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्राणश्चं मेऽपानश्चं मे व्यानश्च मेऽसुंश्च मे चित्तं चं मऽआधींतं च मे वाक् चं मे मनंश्च मे चक्षुंश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षंश्च मे बलं च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥२॥**

पदार्थ—( मे ) मेरा ( प्राण ) हृदय जीवनमूल ( च ) और कण्ठ देश मे रहने वाला पवन ( मे ) मेरा ( अपान ) नाभि से नीचे को जाने ( च ) और नाभि में ठहरने वाला पवन ( मे ) मेरे ( व्यान ) शरीर की सन्धियो मे व्याप्त ( च ) और धनञ्जय जो कि शरीर के रुधिर आदि को बढ़ाता है वह पवन ( मे ) मेरा ( असु ) नाग आदि प्राण का भेद ( च ) तथा अन्य पवन ( मे ) मेरी ( चित्तम् ) स्मृति अर्थात् सुधि रहनी ( च ) और बुद्धि ( मे ) मेरा ( आधीतम् ) अच्छे प्रकार किया हुआ निश्चित ज्ञान ( च ) और रक्षा किया हुआ विषय ( मे ) मेरी ( वाक ) वाणी ( च ) और सुनना ( मे ) मेरी ( मन ) सकल्प विकल्प रूप अन्त करण की वृत्ति ( च ) अहङ्कारवृत्ति ( मे ) मेरा ( चक्षु ) जिससे कि मैं देखता हूँ वह नेत्र ( च ) और प्रत्यक्ष प्रमाण ( मे ) मेरा ( श्रोत्रम् ) जिससे कि मैं सुनता हूँ वह कान ( च ) और प्रत्येक विषय पर बल का प्रमाण ( मे ) मेरी ( दक्ष ) चतुराई ( च ) और तत्काल भान होना तथा ( मे ) मेरा ( बलम् ) बल ( च ) और पराक्रम ये सब ( यज्ञेन ) धर्म के अनुष्ठान मे ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग साधनो के सहित अपने प्राण आदि पदार्थों को धर्म के आचरण करने मे सयुक्त करें ॥ २ ॥

ओजश्चेत्यस्य देवा ऋषय । प्रजापतिर्देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ओजंश्च मे सहंश्च मऽआत्मा चं मे तनूश्चं मे शर्मं च मे वर्मं च मेऽङ्गांनि च मेऽस्थीनि च मे परूंषि च मे शरींराणि च मऽआयुंश्च मे जरा चं मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥३॥**

पदार्थ—( मे ) मेरे ( ओज ) शरीर का तेज ( च ) और मेरी सेना ( मे ) मेरे ( सह ) शरीर का बल ( च ) तथा मन ( मे ) मेरा ( आत्मा ) स्वरूप और ( च ) मेरा सामर्थ्य ( मे ) मेरा ( तनू ) शरीर ( च ) और सम्बन्धीजन ( मे ) मेरा ( शर्म ) घर ( च ) और घर के पदार्थ ( मे ) मेरी ( वर्म ) रक्षा जिससे हो वह बख्तर ( च ) और शस्त्र अस्त्र ( मे ) मेरे ( अङ्गानि ) शिर आदि अङ्ग ( च ) और अङ्गुली आदि प्रत्यङ्ग ( मे ) मेरे ( अस्थीनि ) हाड ( च ) और भीतर के अङ्ग प्रत्यङ्ग अर्थात् हृदय माँस नसें आदि ( मे ) मेरे ( परूंषि ) मर्मस्थल ( च ) और जीवन के कारण ( मे ) मेरे ( शरीराणि ) सम्बन्धियो के शरीर ( च ) और अत्यन्त छोटे छोटे देह के अङ्ग ( मे ) मेरी ( आयु ) उमर ( च ) तथा जीवन के साधन अर्थात् जिनमे जीते हैं ( मे ) मेरा ( जरा ) बुढ़ापा ( च ) और जवानी ये सब पदार्थ ( यज्ञेन ) सत्कार के योग्य परमेश्वर से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ होवें ॥३॥

भावार्थ—राजपुरुषो को चाहिये कि धार्मिक सज्जनो की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिये बली सेना आदि जनो को प्रवृत्त करें ॥ ३ ॥

ज्यैष्ठ्य चेत्यस्य देवा ऋषय । प्रजापतिर्देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—( मे ) मेरी ( **ज्यैष्ठ्यम्** ) प्रशंसा ( **च** ) और उत्तम पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **आधिपत्यम्** ) स्वामीपन ( **च** ) और स्वकीय द्रव्य ( **मे** ) मेरा ( **मन्युः** ) अभिमान ( **च** ) और शान्ति ( **मे** ) मेरा ( **भामः** ) क्रोध ( **च** ) और उत्तम शील ( **मे** ) मेरा ( **अमः** ) न्याय से पाये हुए गृहादि ( **च** ) और पान योग्य पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **अम्भः** ) जल ( **च** ) और दूध दही घी आदि पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **जेमा** ) जीत का होना ( **च** ) और विजय ( **मे** ) मेरा ( **महिमा** ) बड़प्पन ( **च** ) प्रतिष्ठा ( **मे** ) मेरी ( **वरिमा** ) बड़ाई ( **च** ) और उत्तम वर्त्ताव ( **मे** ) मेरा ( **प्रथिमा** ) फैलाव ( **च** ) और फैले हुए पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **वर्षिमा** ) बुढ़ापा ( **च** ) और लड़काई ( **मे** ) मेरी ( **द्राघिमा** ) बढ़वार ( **च** ) और छुटाई ( **मे** ) मेरा ( **वृद्धम्** ) प्रभुता को पाए हुए बहुत प्रकार का धन आदि पदार्थ ( **च** ) और थोड़ा पदार्थ तथा ( **मे** ) मेरी ( **वृद्धिः** ) जिस अच्छी क्रिया से वृद्धि को प्राप्त होते हैं वह ( **च** ) और उससे उत्पन्न हुआ सुख उक्त समस्त पदार्थ ( **यज्ञेन** ) धर्म की रक्षा करने से ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थित होवें ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—हे मित्रजनो ! तुम यज्ञ की सिद्धि और समस्त जगत् के हित के लिये प्रशंसित पदार्थों का संयुक्त करो ॥ ४ ॥

**सत्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥**

**पदार्थ**—( मे ) मेरा ( **सत्यम्** ) यथार्थ विषय ( **च** ) और सब का हित करना ( **मे** ) मेरी ( **श्रद्धा** ) श्रद्धा अर्थात् जिसमें सत्य को धारण करते हैं ( **च** ) और उक्त श्रद्धा की सिद्धि देनेवाले पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **जगत्** ) चेतन सन्तान आदि वर्ग ( **च** ) और उसमें स्थिर हुए पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **धनम्** ) सुवर्ण आदि धन ( **च** ) और धान्य अर्थात् अनाज आदि ( **मे** ) मेरा ( **विश्वम्** ) सर्वस्व ( **च** ) और सबों पर उपकार ( **मे** ) मेरी ( **महः** ) बड़ाई से भरी हुई प्रशंसा करने योग्य वस्तु ( **च** ) और सत्कार ( **मे** ) मेरा ( **क्रीडा** ) खेलना विहार ( **च** ) और उसके पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **मोदः** ) हर्ष ( **च** ) और अति हर्ष ( **मे** ) मेरा ( **जातम्** ) उत्पन्न हुआ पदार्थ ( **च** ) तथा जो होना है ( **मे** ) मेरा ( **जनिष्यमाणम्** ) जो उत्पन्न होनेवाला ( **च** ) और जितना उससे सम्बन्ध रखने वाला ( **मे** ) मेरा ( **सूक्तम्** ) अच्छे प्रकार कहा हुआ ( **च** ) और अच्छे प्रकार विचारा हुआ ( **मे** ) मेरा ( **सुकृतम्** ) उत्तमता से किया हुआ काम ( **च** ) और उसके साधन ये उक्त सब पदार्थ ( **यज्ञेन** ) सत्य और धर्म की उन्नति करने रूप उपदेश से ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थ हों ॥५॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्या का पठन पाठन श्रवण और उपदेश करते वा कराते हैं वे नित्य उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

**ऋतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगति शक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥**

**पदार्थ**—( मे ) मेरा ( **ऋतम्** ) यथार्थ विज्ञान ( **च** ) और उसकी सिद्धि करनेवाला पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **अमृतम्** ) आत्मस्वरूप वा यज्ञ से बचा हुआ अन्न ( **च** ) तथा पीने योग्य रस ( **मे** ) मेरा ( **अयक्ष्मम्** ) यक्ष्मा आदि रोगों से रहित शरीर आदि ( **च** ) और रोगविनाशक कर्म ( **मे** ) मेरा ( **अनामयत्** ) रोग आदि रहित आयु ( **च** ) और इसकी सिद्धि करनेवाली ओषधियाँ ( **मे** ) मेरा ( **जीवातुः** ) जिससे जीते हैं वा जो जिलाता है वह व्यवहार ( **च** ) और पथ्य भोजन ( **मे** ) मेरा ( **दीर्घायुत्वम्** ) अधिक आयु का होना ( **च** ) ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को अपने वश में रखना आदि कर्म ( **मे** ) मेरा ( **अनमित्रम्** ) मित्र ( **च** ) और पक्षपात को छोड़ के काम ( **मे** ) मेरा ( **अभयम्** ) न डरपना ( **च** ) और शूरपन ( **मे** ) मेरा ( **सुखम्** ) अति उत्तम आनन्द ( **च** ) और इसको सिद्ध करनेवाला ( **मे** ) मेरा ( **शयनम्** ) सो जाना ( **च** ) और उस काम की सिद्धि करानेवाला पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **सूषा** ) वह समय कि जिसमें अच्छी प्रातःकाल की वेला हो ( **च** ) और उक्त काम का सम्बन्ध करनेवाली क्रिया तथा ( **मे** ) मेरा ( **सुदिनम्** ) सुदिन ( **च** ) और उपयोगी काम ये सब ( **यज्ञेन** ) सत्य कथन बोलने आदि व्यवहारों से ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थित होवें ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सत्यभाषण आदि कामों को करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

**यन्ता चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । निचृद् भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥७॥**

**पदार्थ**—( मे ) मेरा ( **यन्ता** ) नियम करनेवाला ( **च** ) और नियमित पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **धर्त्ता** ) धारण करनेवाला ( **च** ) और धारण किया हुआ पदार्थ ( **मे** ) मेरी ( **क्षेमः** ) रक्षा ( **च** ) और रक्षा करनेवाला ( **मे** ) मेरी ( **धृतिः** ) धारणा ( **च** ) और सहनशीलता ( **मे** ) मेरे सम्बन्ध का ( **विश्वम्** ) जगत् ( **च** ) और उसके अनुकूल मर्यादा ( **मे** ) मेरा ( **महः** ) बड़ा कर्म ( **च** ) और बड़ा व्यवहार ( **मे** ) मेरी ( **संवित्** ) प्रतिज्ञा ( **च** ) और जाना हुआ विषय ( **मे** ) मेरा ( **ज्ञात्रम्** ) जिससे जानता है वह ज्ञान ( **च** ) और जानने योग्य पदार्थ ( **मे** ) मेरी ( **सूः** ) प्रेरणा करनेवाली चित्त की वृत्ति ( **च** ) और उत्पन्न हुआ पदार्थ ( **मे** ) मेरी ( **प्रसूः** ) जो उत्पत्ति करानेवाली वृत्ति ( **च** ) और उत्पत्ति का विषय ( **मे** ) मेरे ( **सीरम्** ) खेती की सिद्धि करानेवाले हल आदि ( **च** ) और खेती करनेवाले तथा ( **मे** ) मेरा ( **लयः** ) लय अर्थात् जिसमें एकता को प्राप्त होना हो वह विषय ( **च** ) और जो मुझ में एकता को प्राप्त हुआ वह विद्यादि गुण ये उक्त सब ( **यज्ञेन** ) अच्छे नियमों के आचरण में ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थ हों ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—जो शम दम आदि गुणों से युक्त अच्छे अच्छे नियमों को भलीभांति पालन करें वे अपने चाहे हुए कामों को सिद्ध करावें ॥ ७ ॥

**शं चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥८॥**

**पदार्थ**—( मे ) मेरा ( **शम्** ) सब सुख ( **च** ) और सुख की सब सामग्री ( **मे** ) मेरा ( **मयः** ) प्रत्यक्ष आनन्द ( **च** ) और इसके साधन ( **मे** ) मेरा ( **प्रियम्** ) पियारा ( **च** ) और इसके साधन ( **मे** ) मेरी ( **अनुकामः** ) धर्म के अनुकूल कामना ( **च** ) और इसके साधन ( **मे** ) मेरा ( **कामः** ) काम अर्थात् जिससे वा जिसमें कामना करें ( **च** ) तथा ( **मे** ) मेरा ( **सौमनसः** ) चित्त का अच्छा होना ( **च** ) और इसके साधन ( **मे** ) मेरा ( **भगः** ) ऐश्वर्य का समूह ( **च** ) और इसके साधन ( **मे** ) मेरा ( **द्रविणम्** ) बल ( **च** ) और इसके साधन ( **मे** ) मेरा ( **भद्रम्** ) अति आनन्द देने योग्य सुख ( **च** ) और सुख के साधन ( **मे** ) मेरा ( **श्रेयः** ) मुक्ति सुख ( **च** ) और इसके साधन ( **मे** ) मेरा ( **वसीयः** ) अतिशय करके वसनेवाला ( **च** ) और इसकी सामग्री ( **मे** ) मेरी ( **यशः** ) कीर्त्ति ( **च** ) और इसके साधन ( **यज्ञेन** ) सुख की सिद्धि करनेवाले ईश्वर से ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थ होवें ॥८॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जिस काम में सुख आदि की वृद्धि हो उस काम का निरन्तर सेवन करें ॥ ८ ॥

**ऊर्क् चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥९॥**

**पदार्थ**—( मे ) मेरा ( **ऊर्क्** ) अच्छा संस्कार किया अर्थात् बनाया हुआ अन्न ( **च** ) और सुगन्ध आदि पदार्थों से युक्त व्यञ्जन ( **मे** ) मेरी ( **सूनृता** ) प्रियवाणी ( **च** ) और सत्य वचन ( **मे** ) मेरा ( **पयः** ) दूध ( **च** ) और उत्तम पकाये ओषधि आदि पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **रसः** ) सब पदार्थों का सार ( **च** ) और बड़ी बड़ी ओषधियों से निकाला हुआ रस ( **मे** ) मेरा ( **घृतम्** ) घी ( **च** ) और उसका संस्कार करने तपाने आदि से सिद्ध हुआ पक्वान्न ( **मे** ) मेरा ( **मधु** ) सहत ( **च** ) और खांड गुड़ आदि ( **मे** ) मेरा ( **सग्धिः** ) एकसा भोजन ( **च** ) और उत्तम भोग साधन ( **मे** ) मेरी ( **सपीतिः** ) एकसा जिस में जल का पान ( **च** ) और जो चूसने योग्य पदार्थ ( **मे** ) मेरा ( **कृषिः** ) भूमि की जुताई ( **च** ) और गेहूँ आदि अन्न ( **मे** ) मेरी ( **वृष्टिः** ) वर्षा ( **च** ) और होम की आहुतियों से पवन आदि की शुद्धि करना ( **मे** ) मेरा ( **जैत्रम्** ) जीतने का स्वभाव ( **च** ) और अच्छे शिक्षित सेना आदि जन तथा ( **मे** ) मेरे ( **औद्भिद्यम्** ) भूमि को तोड़ फोड़ के निकलनेवाले वृक्षों वा वनस्पतियों का होना ( **च** ) और फूल फल ये सब पदार्थ ( **यज्ञेन** ) समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करनेवाले कर्म से ( **कल्पन्ताम्** ) समर्थ होवें ॥९॥

**भावार्थ**—मनुष्य समस्त उत्तम रसयुक्त पदार्थों को इकट्ठा करके उनको समय समय के अनुकूल होमादि उत्तम व्यवहारों में लगावें ॥ ९ ॥

**रयिश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**र॒यिश्च॑ मे॒ राय॑श्च मे पु॒ष्टं च॑ मे॒ पुष्टि॑श्च मे वि॒भु च॑ मे प्र॒भु च॑ मे पू॒र्णं च॑ मे पू॒र्णत॑रं च मे॒ कुय॑वं च॒ मेऽक्षि॑तं च॒ मेऽन्नं॑ च॒ मेऽक्षु॑च्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१०॥**

**पदार्थ—**( मे ) मेरी ( रयि ) विद्या की कान्ति ( च ) और पुरुषार्थ (मे) मेरे ( राय ) प्रशसित धन ( च ) और पक्वान्न आदि ( मे ) मेरे ( पुष्टम ) पुष्ट पदार्थ ( च ) और आरोग्यपन ( मे ) मेरी ( पुष्टि ) पुष्टि (च) और पथ्य भोजन ( मे ) मेरा ( विभु ) सब विषयों मे व्याप्त मन आदि ( च ) [ और ] परमात्मा का ध्यान ( मे ) मेरा ( प्रभु ) समर्थ व्यवहार ( च ) और सब सामर्थ्य (मे) मेरा ( पूर्णम ) पूर्ण काम का करना ( च ) और उस का साधन ( मे ) मेरे (पूर्णतरम ) आभूषण गौ भैंस घोडा छेरी तथा अन्न आदि पदार्थ ( च ) और सब का उपकार करना ( मे ) मेरा ( कुयवम ) निन्दित यवो से न मिला हुआ अन्न ( च ) और धान चावल आदि अन्न ( मे ) मेरा ( अक्षितम ) अक्षय पदार्थ ( च ) और तृप्ति ( मे ) मेरा ( अन्नम ) खाने योग्य अन्न ( च ) और मसाला आदि तथा ( मे ) मेरी ( अक्षुत् ) क्षुधा की तृप्ति (च) और प्यास आदि की तृप्ति ये सब पदार्थ ( यज्ञेन ) प्रशसित धनादि देनेवाले परमात्मा से ( कल्पन्ताम ) समर्थ होवें ॥१०॥

**भावार्थ—**मनुष्यो को परमपुरुषार्थ और ईश्वर की भक्ति प्रार्थना से विद्या आदि धन पाकर सब का उपकार सिद्ध करना चाहिये ॥ १० ॥

**वित्त चेत्यस्य देवा ऋषय । श्रीमदात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वि॒त्तं च॑ मे॒ वेद्यं॑ च मे भू॒तं च॑ मे भवि॒ष्यच्च॑ मे सु॒गं च॑ मे सुप॒थ्यं॑ च मऽऋ॒द्धं च॑ मऽऋद्धि॑श्च मे क्लृ॒प्तं च॑ मे॒ क्लृप्ति॑श्च मे म॒तिश्च॑ मे सुम॒तिश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥११॥**

**पदार्थ—**( मे ) मेरा ( वित्तम ) विचारा हुआ विषय ( च ) और विचारा ( मे ) मेरा ( वेद्यम ) विचारने योग्य विषय ( च ) और विचारने वाला ( मे ) मेरा ( भूतम ) व्यतीत हुआ विषय ( च ) और वर्त्तमान ( मे ) मेरा ( भविष्यत ) होने वाला ( च ) और सब समय का उत्तम व्यवहार ( मे ) मेरा ( सुगम ) सुगम मार्ग ( च ) और उचित कर्म ( मे ) मेरा ( सुपथ्यम ) सुगम युक्ताहार विहार का होना ( च ) और सब कामो मे प्रथम कारण ( मे ) मेरा (ऋद्धम्) अच्छी वृद्धि को प्राप्त पदार्थ ( च ) और सिद्धि ( मे ) मेरी ( ऋद्धि ) योग से पाई हुई अच्छी वृद्धि ( च ) और तुष्टि अर्थात् सन्तोष ( मे ) मेरा ( क्लृप्तम ) सामर्थ्य को प्राप्त हुआ काम ( च ) और कल्पना ( मे ) मेरी ( क्लृप्ति ) सामर्थ्य की कल्पना (च) और तर्क ( मे ) मेरा ( मति ) विचार (च) और पदार्थ पदार्थ का विचार करना ( मे ) मेरी ( सुमति ) उत्तम बुद्धि तथा ( च ) अच्छी निष्ठा ये सब (यज्ञेन) शम दम आदि नियमो से युक्त योगाभ्यास से ( कल्पन्ताम ) समर्थ हो ॥ ११ ॥

**भावार्थ—**जो शम आदि नियमो से युक्त सयम को प्राप्त योग का अभ्यास करते और ऋद्धि सिद्धि को प्राप्त हुए हैं वे औरो को भी अच्छे प्रकार ऋद्धि सिद्धि दे सकते हैं ॥ ११ ॥

**व्रीहयश्चेत्यस्य देवा ऋषय । धान्यदा आत्मा देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**व्री॒हय॑श्च मे॒ यवा॑श्च मे॒ माषा॑श्च मे॒ तिला॑श्च मे मु॒द्गाश्च॑ मे॒ खल्वा॑श्च मे प्रि॒यङ्ग॑वश्च॒ मेऽण॑वश्च मे श्या॒माका॑श्च मे नी॒वारा॑श्च मे गो॒धूमा॑श्च मे म॒सूरा॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१२॥**

**पदार्थ—**( मे ) मेरे ( व्रीहय ) चावल ( च ) और साठी के धान ( मे ) मेरे ( यवा ) जौ ( च ) और अरहर ( मे ) मेरे ( माषा ) उरद ( च ) और मटर ( मे ) मेरा ( तिला ) तिल ( च ) और नारियल (मे) मेरे (मुद्गा ) मूग ( च ) और उस का बनाना ( मे ) मेरे ( खल्वा ) चणे ( च ) और उनका सिद्ध करना ( मे ) मेरी ( प्रियङ्गव ) कगुनी ( च ) और उसका बनाना ( मे ) मेरे ( अणव ) सूक्ष्म चावल ( च ) और उनका पाक ( मे ) मेरा ( श्यामाका ) समा (च) और मडुआ पटेरा चेना आदि छोटे अन्न (मे) मेरा (नीवारा ) पसाई के चावल जो कि विना बोए उत्पन्न होते हैं (च) और इन का पाक (मे) मेरे (गोधूमा ) गेहूँ ( च ) और उन को पकाना तथा ( मे ) मेरी ( मसूरा ) मसूर ( च ) और इनका सम्बन्धी अन्य अन्न ये सब ( यज्ञेन ) सब अन्नो के दाता परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ हो ॥ १२ ॥

**भावार्थ—**मनुष्यो को योग्य है कि चावल आदि से अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए भात आदि को बना अग्नि मे होम करें तथा आप खावें औरो को खवावें ॥ १२ ॥

**अश्मा चेत्यस्य देवा ऋषय । रत्नवान्धनवानात्मा देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अश्मा॑ च मे॒ मृत्ति॑का च मे गि॒रय॑श्च मे॒ पर्व॑ताश्च मे॒ सिक॑ताश्च मे॒ वन॒स्पत॑यश्च मे॒ हिर॑ण्यं च॒ मेऽय॑श्च मे श्या॒मं च॑ मे लो॒हं च॑ मे सीसं॑ च मे॒ त्रपु॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१३॥**

**पदार्थ—**( मे ) मेरा ( अश्मा ) पत्थर ( च ) और हीरा आदि रत्न मेरी ( मृत्तिका ) अच्छी माटी ( च ) और साधारण माटी ( मे ) मेरे ( गिरय ) मेघ और ( च ) बद्दल ( मे ) मेरे ( पर्वता ) बड छोटे पर्वत ( च ) और पर्वतो में होने वाले पदार्थ ( मे ) मेरी ( सिकता ) बडी बालू ( च ) और छोटी छोटी बालू ( मे ) मेरे ( वनस्पतय ) बड आदि वृक्ष ( च ) और आम आदि वृक्ष ( मे ) मेरा ( हिरण्यम् ) सब प्रकार का धन ( च ) तथा चांदी आदि ( मे ) मेरा ( अय ) लोहा ( च ) और शस्त्र ( मे ) मेरा ( श्यामम् ) नीलमणि व लहसुनिया आदि ( च ) और चन्द्रकान्तमणि ( मे ) मेरा ( लोहम् ) सुवर्ण ( च ) तथा कान्तिसार आदि ( मे ) मेरा ( सीसम् ) सीसा ( च ) और लाख ( मे ) मेरा ( त्रपु ) जस्ता ( च ) और पीतल आदि ये सब ( यज्ञेन ) सङ्ग करने योग्य व्यवहार से ( कल्पन्ताम ) समर्थ हो ॥ १३ ॥

**भावार्थ—**मनुष्य लोग पृथिवीस्थ पदार्थों को अच्छी परीक्षा से जान के इनसे रत्न और अच्छे अच्छे धातुओ को पाकर सब के हित के लिये उपयोग में लावें ॥ १३ ॥

**अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषय । अग्न्यादियुक्त आत्मा देवता । भुरिगष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अ॒ग्निश्च॑ म॒ऽआप॑श्च मे वी॒रुध॑श्च म॒ऽओष॑धयश्च मे कृष्टप॒च्याश्च॑ मेऽकृष्टप॒च्याश्च॑ मे ग्रा॒म्याश्च॑ मे प॒शव॑ऽआर॒ण्याश्च॑ मे वि॒त्तं च॑ मे॒ वित्ति॑श्च मे भू॒तं च॑ मे॒ भूति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१४॥**

**पदार्थ—**( मे ) मेरा ( अग्नि ) अग्नि ( च ) और बिजुली आदि ( मे ) मेरे ( आप ) जल ( च ) और जल मे होने वाले रत्न मोती आदि ( मे ) मेरे ( वीरुध ) लता गुच्छा ( च ) और शाक आदि ( मे ) मेरी ( ओषधय ) सोम लता आदि ओषधि ( च ) और फल पुष्पादि ( मे ) मेरे ( कृष्टपच्या ) खेतो में पकते हुए अन्न आदि ( च ) और उत्तम अन्न ( मे ) मेरे ( अकृष्टपच्या ) जो जङ्गल मे पकते हैं वे अन्न ( च ) और जो पर्वत आदि स्थानो मे पकने योग्य हैं वे अन्न ( मे ) मेरे ( ग्राम्या ) गाँव मे हुए गौ आदि ( च ) और नगर मे ठहरे हुए तथा ( मे ) मेरे ( आरण्या ) वन मे होने हारे मृग आदि ( च ) और सिंह आदि ( पशव ) पशु ( मे ) मेरा ( वित्तम् ) पाया हुआ पदार्थ ( च ) और सब धन ( मे ) मेरी ( वित्ति ) प्राप्ति ( च ) और पाने योग्य ( मे ) मेरा ( भूतम् ) रूप ( च ) और नाना प्रकार का पदार्थ तथा ( मे ) मेरा ( भूति ) ऐश्वर्य ( च ) और उस का साधन ये सब पदार्थ ( यज्ञेन ) मेल करने योग्य शिल्प विद्या से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हो ॥ १४ ॥

**भावार्थ—**जो मनुष्य अग्नि आदि की विद्या से सङ्गति करने योग्य शिल्प-विद्या रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त होते है ॥ १४ ॥

**वसु चेत्यस्य देवा ऋषय । धनादियुक्त आत्मा देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वसु॑ च मे वस॒तिश्च॑ मे॒ कर्म॑ च मे॒ शक्ति॑श्च॒ मेऽर्थ॑श्च म॒ऽएम॑श्च मऽइ॒त्या च॑ मे॒ गति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१५॥**

**पदार्थ—**( मे ) मेरा ( वसु ) वस्तु ( च ) और प्रिय पदार्थ वा पियारा काम ( मे ) मेरी ( वसति ) जिस मे वसते हैं वह वस्ती ( च ) और भृत्य ( मे ) मेरा ( कर्म ) काम ( च ) और करने वाला ( मे ) मेरा ( शक्ति ) सामर्थ्य ( च ) और प्रेम ( मे ) मेरा ( अर्थ ) सब पदार्थों को इकट्ठा करना ( च ) और इकठ्ठा करने वाला ( मे ) मेरा ( एम ) अच्छा यत्न ( च ) और बुद्धि ( मे ) मेरी ( इत्या ) वह रीति जिससे व्यवहारो को जानता हूँ ( च ) और युक्ति तथा ( मे ) मेरी ( गति ) चाल ( च ) और उछलना आदि क्रिया ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पुरुषार्थ के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १५ ॥

**भावार्थ—**हे मनुष्यो ! जो मनुष्य समस्त अपना सामर्थ्य आदि सब के हित के लिए हम करते हैं वे ही प्रशसा युक्त होते हैं ॥१५॥

**अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषय । अग्न्यादिविद्याविदात्मा देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अ॒ग्निश्च॑ म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ सोम॑श्च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे सवि॒ता च॑ म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ सर॑स्वती च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे पू॒षा च॑ म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ बृह॒स्पति॑श्च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१६॥**

पदार्थ—( मे ) मेरा ( अग्नि ) प्रसिद्ध सूर्यरूप अग्नि ( च ) और पृथिवी पर मिलने वाला भौतिक ( मे ) मेरा ( इन्द्र ) बिजुलीरूप अग्नि ( च ) तथा पवन ( मे ) मेरा ( सोम ) शान्तिगुण वाला पदार्थ वा मनुष्य ( च ) और वर्षा मेघ जल ( मे ) मेरा ( इन्द्र ) अन्याय को दूर करने वाला सभापति ( च ) और सभासद् ( मे ) मेरा ( सविता ) ऐश्वर्ययुक्त काम ( च ) और इसके साधन ( मे ) मेरा ( इन्द्र ) समस्त अविद्या का नाश करने वाला अध्यापक ( च ) और विद्यार्थी ( मे ) मेरा ( सरस्वती ) प्रशंसित बोध वा शिक्षा से भरी हुई वाणी ( च ) और सत्य बोलने वाला ( मे ) मेरा ( इन्द्र ) विद्यार्थी की जड़ता का विनाश करने वाला उपदेशक ( च ) और सुनने वाले (मे) मेरा ( पूषा ) पुष्टि करने वाला ( च ) और योग्य आहार भोजन, विहार सोना आदि ( मे ) मेरा जो ( इन्द्र ) पुष्टि करने की विद्या में रम रहा है वह ( च ) और वैद्य ( मे ) मेरा ( बृहस्पति ) बड़े बड़े व्यवहारों की रक्षा करने वाला ( च ) और राजा तथा ( मे ) मेरा ( इन्द्र ) समस्त ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला उद्योगी ( च ) और सेनापति ये सब (यज्ञेन) विद्या और ऐश्वर्य की उन्नति करने से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को अच्छे विचार से अपने सब पदार्थ उत्तमों का पालन करने और दुष्टों को शिक्षा देने के लिये निरन्तर युक्त करने चाहिये ॥१६॥

मित्रश्चेत्यस्य देवा ऋषय । मित्रादयर्य्यसहित आत्मा देवता । स्वराड् शाक्वरी छन्द ।

धैवत स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**मित्रश्च मऽइन्द्रश्च मे वरुणश्च मऽइन्द्रश्च मे धाता च मऽइन्द्रश्च मे त्वष्टा च मऽइन्द्रश्च मे मरुतश्च मऽइन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवाऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१७॥**

पदार्थ—( मे ) मेरा (मित्र ) प्राण अर्थात् हृदय मे रहने वाला पवन (च ) और समान नाभिस्थ पवन (मे) मेरा ( इन्द्र ) बिजुलीरूपी अग्नि ( च ) और तेज ( मे )मेरा ( वरुण ) उदान अर्थात् कण्ठ मे रहने वाला पवन ( च ) और समस्त शरीर मे विचरने हारा पवन ( मे ) मेरा ( इन्द्र ) सूर्य ( च ) और धारणाकर्षण ( मे ) मेरा ( धाता ) धारण करने हारा ( च ) और धीरज ( मे ) मेरा (इन्द्र ) परम ऐश्वर्य का प्राप्त कराने वाला (च) और न्याययुक्त पुरुषार्थ (मे) मेरा (त्वष्टा) पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला अग्नि ( च ) और शिल्प अर्थात् कारीगरी (मे) मेरा (इन्द्र ) शत्रुओ का विदीर्ण करने हारा राजा ( च ) तथा कारीगरी ( मे ) मेरे ( मरुत ) इस ब्रह्माण्ड मे रहने वाले और पवन ( च ) और शरीर के धातु ( मे ) मेरी ( इन्द्र ) सर्वत्र व्यापक बिजुली ( च ) और उस का काम ( मे ) मेरे ( विश्वे) समस्त पदार्थ ( च ) और सवस्व ( देवा ) उत्तम गुणयुक्त पृथिवी आदि ( मे ) मेरे लिये ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य का दाता ( च ) और उस का उपयोग ये सब ( यज्ञेन ) पवन की विद्या के विधान करने से ( कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१७॥

भावार्थ—मनुष्य प्राण और बिजुली की विद्या को जान और इनकी सब जगह सब ओर से व्याप्ति को जानकर अपने बहुत जीवन को सिद्ध करें ॥१७॥

पृथिवी चेत्यस्य देवा ऋषय । राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा देवता । भुरिक शाक्वरी छन्द ।

धैवत स्वर ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**पृथिवी च मऽइन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च मऽइन्द्रश्च मे द्यौश्च मऽइन्द्रश्च मे समाश्च मऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽइन्द्रश्च मे दिशश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८॥**

पदार्थ—( मे ) मेरी ( पृथिवी ) विस्तारयुक्त भूमि (च ) और उसमे स्थित जो पदार्थ ( मे ) मेरी ( इन्द्र ) बिजुलीरूप क्रिया ( च ) और बल देने वाली व्यायाम आदि क्रिया ( मे ) मेरा ( अन्तरिक्षम् ) विनाशरहित आकाश ( च ) और आकाश में ठहरे हुए सब पदार्थ ( मे ) मेरा ( इन्द्रः ) समस्त ऐश्वर्य का आधार ( च ) और उसका करना ( मे ) मेरी ( द्यौ ) प्रकाश के काम कराने वाली विद्या ( च ) और इसके सिद्ध करने वाले पदार्थ ( मे ) मेरा (इन्द्र ) सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य आदि ( च ) और छिन्न भिन्न करने योग्य पदार्थ ( मे ) मेरी ( समा ) वर्षों ( च ) और क्षण, पल, विपल, घटी, मुहूर्त, दिन आदि (मे ) मेरा ( इन्द्रः ) समय के ज्ञान का निमित्त ( च ) और गणितविद्या ( मे ) मेरे ( नक्षत्राणि ) नक्षत्र अर्थात् जो कारण रूप से स्थिर रहते किन्तु नष्ट नही होते वे लोक ( च ) और उनके साथ सम्बन्ध रखने वाले प्राणी आदि ( मे ) मेरी (इन्द्रः) लोक लोकान्तरो में स्थित होने वाली बिजुली ( च ) और बिजुली से संयोग करते हुए उन लोकों मे रहने वाले पदार्थ ( मे ) मेरी ( दिश ) पूर्व आदि दिशा ( च ) और उन में ठहरी हुई वस्तु तथा ( मे ) मेरा ( इन्द्र ) दिशाओं के ज्ञान का देने वाला ( च ) और ध्रुव का तारा ये सब पदार्थ ( यज्ञेन ) पृथिवी और समय के विशेष ज्ञान देने वाले काम से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ होवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग पृथिवी आदि पदार्थों और उन में ठहरी हुई बिजुली आदि को जब तक नहीं जानते तब तक ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होते ॥१८॥

अꣳशुश्चेत्यस्य देवा ऋषय । पदार्थविद्यात्मा देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द ।

गान्धार स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च मऽउपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च मऽऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मऽआश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९॥**

पदार्थ—( मे ) मेरा ( अꣳशु ) व्याप्ति वाला सूर्य ( च ) और उसका प्रताप ( मे ) मेरा ( रश्मि ) भोजन करने का व्यवहार (च ) और अनेक प्रकार का भोजन ( मे ) मेरा ( अदाभ्य ) विनाश रहित ( च ) और रक्षा करने वाला ( मे ) मेरा (अधिपति) स्वामी ( च ) और जिस मे स्थिर हो वह स्थान ( मे ) मेरा ( उपांशु) मन मे जप का करना ( च ) और एकान्त का विचार ( मे ) मेरा ( अन्तर्याम ) मध्य मे जाने वाला पवन (च ) और बल ( मे ) मेरा ( ऐन्द्रवायव ) बिजुली और पवन के साथ सम्बन्ध करने वाला काम ( च ) और जल ( मे ) मेरा (मैत्रावरुण ) प्राण और उदान के साथ चलने हारा वायु ( च ) और व्यान पवन ( मे ) मेरा ( आश्विन ) सूर्य चन्द्रमा के बीच मे रहने वाला तेज ( च ) और प्रभाव ( मे ) मेरा ( प्रतिप्रस्थान ) चलने चलने के प्रति वर्त्ताव रखने वाला ( च ) भ्रमण (मे ) मेरा ( शुक्र ) शुद्ध स्वरूप ( च ) और वीर्य करने वाला तथा ( मे ) मेरा (मन्थी) बिलोने के स्वभाव वाला ( च ) और दूध वा काष्ठ आदि ये सब पदार्थ ( यज्ञेन ) अग्नि के उपयोग से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों ॥१९॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्यप्रकाशादिकों से भी उपकारों को लेवें तो विद्वान् हो कर क्रिया की चतुराई को क्या न पावें ॥ १९॥

आग्रयणश्चेत्यस्य देवा ऋषय । यज्ञानुष्ठानात्मा देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मऽऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२०॥**

पदार्थ—( मे ) मेरा ( आग्रयण ) अगहन आदि महीनो में सिद्ध हुआ यज्ञ ( च ) और इस की सामग्री ( मे ) मेरा ( वैश्वदेव ) समस्त विद्वानो से सम्बन्ध करने वाला विचार ( च ) और इसका फल ( मे ) मेरा ( ध्रुव ) निश्चल व्यवहार ( च ) और इसके साधन ( मे ) मेरा ( वैश्वानर ) सब मनुष्यों का सत्कार (च ) तथा सत्कार करने वाला ( मे ) मेरा ( ऐन्द्राग्न ) पवन और बिजुली से सिद्ध काम ( च ) और इस के साधन ( मे ) मेरा ( महावैश्वदेव ) समस्त बड़े लोगो का यह व्यवहार ( च ) इन के साधन ( मे ) मेरे ( मरुत्वतीया ) पवनो का सम्बन्ध करने हारे व्यवहार ( च ) तथा इन का फल ( मे ) मेरा ( निष्केवल्य ) निरन्तर केवल सुख हो जिसमे वह काम ( च ) और इसके साधन (मे ) मेरा ( सावित्र ) सूर्य का यह प्रभाव ( च ) और इससे उपकार ( मे ) मेरा ( सारस्वत ) वाणी सम्बन्धी व्यवहार ( च ) और इनका फल ( मे ) मेरा (पात्नीवत ) प्रशंसित यज्ञसम्बन्धिनी स्त्री वाले का काम ( च ) इस के साधन ( मे ) मेरा ( हारियोजनः) घोड़ो को रथ मे जोड़ने वाले का यह आरम्भ ( च ) इस की सामग्री ( यज्ञेन )पदार्थों के मेल करने से ( कल्पन्ताम ) समर्थ हों ॥२०॥

भावार्थ—जो मनुष्य कार्यकाल की क्रिया और विद्वानो के सङ्ग का आश्रय लेकर विवाहित स्त्री का नियम किये हों वे पदार्थविद्या को क्या न जानें ॥२०॥

स्रुचश्चेत्यस्य देवा ऋषय । यज्ञाङ्गवानात्मा देवता विराडधृतिश्छन्द ।

ऋषभ स्वर ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च मऽआधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१॥**

पदार्थ—( मे ) मेरे ( स्रुच ) स्रुवा आदि (च ), और उन की शुद्धि ( मे) मेरे ( चमसा ) यज्ञ वा पाक बनाने के पात्र ( च ) और उन के पदार्थ ( मे ) मेरे ( वायव्यानि ) पवनों मे अच्छे पदार्थ ( च ) और पवनो की शुद्धि करने वाले काम ( मे ) मेरा ( द्रोणकलश ) यज्ञ की क्रिया का कलश ( च ) और विशेष परिमाण ( मे ) मेरे ( ग्रावाण ) शिलबट्टा आदि पत्थर ( च ) और उखली मूशल ( मे ) मेरे ( अधिषवणे ) सोमवल्ली आदि ओषधि जिनसे कूटी पीसी जावे वे साधन (च ) और कूटना पीसना ( मे ) मेरा (पूतभृत्) पवित्रता जिससे मिलती हो वह सूप आदि ( च ) और बुहारी आदि ( मे ) मेरा ( आधवनीय ) अच्छे प्रकार धोने आदि का पात्र ( च ) और नलिका आदि यन्त्र अर्थात् जिस नली नरकुल की चोंगी आदि से तारागणो को देखते हैं वह ( मे ) मेरी ( वेदि ) होम करने की वेदि ( च ) और चौकोना आदि ( मे ) मेरा ( बर्हि ) समीप में वृद्धि देने वाला वा कुशसमूह ( च ) और जो यज्ञ समय के योग्य पदार्थ ( मे ) मेरा ( अवभृथ ) यज्ञसमाप्ति समय का स्नान ( च ) और चन्दन आदि का अनुलेपन करना तथा ( मे) मेरा ( स्वगाकार )

जिससे अपने पदार्थों को प्राप्त होते हैं उस कर्म को जो करे वह (च) और पदार्थ को पवित्र करना ये सब (यज्ञेन) होम करने की क्रिया से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२१॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य यज्ञ करने को समर्थ होते हैं जो साधन उपसाधन रूप यज्ञ के सिद्ध करने की सामग्री को पूरी करते हैं ॥२१॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञवानात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥**

पदार्थ—( मे ) मेरे ( अग्निः ) आग ( च ) और उसका काम में लाना (मे) मेरा ( घर्मः ) घाम ( च ) और शान्ति ( मे ) मेरी (अर्कः ) सत्कार करने योग्य विशेष सामग्री ( च ) और उसकी शुद्धि करने का व्यवहार ( मे ) मेरा (सूर्यः ) सूर्य ( च ) और जीविका का हेतु ( मे ) मेरा ( प्राणः ) जीवन का हेतु वायु ( च ) और बाहर का पवन ( मे ) मेरा ( अश्वमेधः ) राज्य देश ( च ) और राजनीति ( मे ) मेरी ( पृथिवी ) भूमि ( च ) और इस में स्थित सब पदार्थ ( मे ) मेरी (अदितिः ) अखण्ड नीति ( च) और इन्द्रियों को वश में रखना ( मे) मेरी (दितिः ) खण्डित सामग्री ( च ) और अनित्य जीवन वा शरीर आदि ( मे ) मेरे ( द्यौः ) धर्म का प्रकाश ( च ) और दिन रात ( मे ) मेरा ( अङ्गुलयः ) अंगुली (शक्वरयः ) शक्ति ( दिशः ) पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण दिशा ( च ) और ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेय उपदिशा ये सब ( यज्ञेन ) मेल करने योग्य परमात्मा से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों ॥२२॥

भावार्थ—जो प्राणियों के सुख के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं वे महाशय होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥२२॥

व्रतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । कालविद्याविदात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**व्रतं च मऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रेऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥**

पदार्थ—( मे ) मेरे ( व्रतम् ) सत्य आचरण के नियम की पालना ( च ) और सत्य कहना और सत्य उपदेश ( मे ) मेरे ( ऋतवः ) वसन्त आदि ऋतु (च) और उत्तरायण दक्षिणायन ( मे ) मेरा ( तपः ) प्राणायाम तथा धर्म का आचरण ( च ) शीत उष्ण आदि का सहना (मे) मेरा (संवत्सरः ) साल ( च ) तथा कल्प महाकल्प आदि ( मे ) मेरे ( अहोरात्रे ) दिन रात ( ऊर्वष्ठीवे ) जङ्घा और घोटू ( बृहद्रथन्तरे ) बड़ा पदार्थ अत्यन्त सुन्दर रथ तथा ( च ) घोड़े वा बैल ( यज्ञेन) धर्मज्ञान आदि के आचरण और कालचक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो पुरुष नियम किये हुए समय में काम और निरन्तर धर्म का आचरण करते हैं वे ही चाही हुई सिद्धि को पाते हैं ॥२३॥

एका चेत्यस्य देवा ऋषयः । विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता । पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः । एकविंशतिश्चेत्युत्तरस्य विराट् संकृतिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*अब गणितविद्या के मूल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽएकविꣳशतिश्च मऽएकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मऽएकत्रिꣳशच्च मऽएकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥**

पदार्थ—( यज्ञेन ) मेल करने अर्थात् योग करने से ( मे ) मेरी ( एका ) एक संख्या ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( तिस्रः ) तीन संख्या ( च ) फिर (मे) मेरी ( तिस्रः ) तीन ( च ) और दो (मे) मेरी ( पञ्च ) पांच ( च ) फिर (मे) मेरी ( पञ्च ) पाँच ( च ) और दो (मे) मेरी ( सप्त ) सात ( च ) फिर (मे) मेरी ( सप्त ) सात ( च ) और दो ( मे ) मेरी (नव ) नौ ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( नव ) नौ ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( एकादश ) ग्यारह (च) फिर (मे) मेरी ( एकादश) ग्यारह ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( त्रयोदश ) तेरह (च) फिर ( मे ) मेरी ( त्रयोदश ) तेरह ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( पञ्चदश ) पन्द्रह ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( पञ्चदश ) पन्द्रह ( च) और दो ( मे) मेरी (सप्तदश) सत्रह ( च) फिर ( मे ) मेरी ( सप्तदश ) सत्रह ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( नवदश ) उन्नीस ( च) फिर ( मे ) मेरी ( नवदश ) उन्नीस ( च) और दो ( मे ) मेरी ( एकविंशतिः ) इक्कीस ( च ) फिर (मे) मेरी (एकविंशतिः ) इक्कीस ( च) और दो (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः ) तेईस (च) फिर (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस ( च) और दो ( मे ) मेरी (पञ्चविंशतिः ) पच्चीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( पञ्चविंशतिः ) पच्चीस ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( सप्तविंशतिः ) सत्ताईस ( च ) फिर ( मे ) मेरी (सप्तविंशतिः ) सत्ताईस ( च) और दो ( मे ) मेरी ( नवविंशतिः ) उनतीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( नवविंशतिः ) उनतीस ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( एकत्रिंशत ) इकतीस (च) फिर ( मे ) मेरी (एकत्रिंशत् ) इकतीस ( च ) और दो ( मे ) मेरी ( त्रयस्त्रिंशत् ) तेतीस ( च ) और आगे भी इसी प्रकार संख्या ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों । यह एक योगपक्ष है ॥२४॥

अब दूसरा पक्ष—

( यज्ञेन ) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत ( च ) और संख्या दो के वियोग अर्थात् अन्तर से ( मे ) मेरी ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हों जैसे ( मे ) मेरी (त्रयस्त्रिंशत) तेंतीस संख्या (च) दो के देने अर्थात वियोग से (मे) मेरी ( एकत्रिंशत् ) इकतीस (च) फिर (मे) मेरी ( एकत्रिंशत ) इकतीस ( च ) दो के वियोग से ( मे ) मेरी ( नवविंशतिः ) उनतीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( नवविंशतिः ) उनतीस ( च ) दो के वियोग से ( मे) मेरी (सप्तविंशतिः ) सत्ताईस समर्थ हों ऐसे सब संख्याओं में जानना चाहिये ।। यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥

अब तीसरा पक्ष—

( मे ) मेरी (एका) एक संख्या ( च ) और (मे ) मेरे (तिस्रः ) तीन संख्या ( च ) परस्पर गुणी ( मे ) मेरी ( तिस्रः ) तीन संख्या ( च ) और ( मे)मेरी ( पञ्च) पांच संख्या ( च ) परस्परगुणित ( मे ) मेरी ( पञ्च ) पांच संख्या (च) और ( मे ) मेरी ( सप्त ) सात संख्या ( च ) परस्पर गुणित ( मे) मेरी ( सप्त) सात संख्या ( च ) और ( मे ) मेरी ( नव ) नव संख्या ( च ) परस्पर गुणित ( मे ) मेरी ( नव ) नव संख्या (च ) और ( मे ) मेरी (एकादश) ग्यारह संख्या ( च ) परस्पर गुणित इस प्रकार अन्य संख्या ( यज्ञेन ) उक्त वार वार योग अर्थात् गुणन से (कल्पन्ताम् ) समर्थ हों ।। यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में ( यज्ञेन ) इस पद से जोड़ना घटाना लिये जाते हैं, क्योंकि जो यज धातु का सङ्गतिकरण अर्थ है उससे सङ्ग कर देना अर्थात् किसी संख्या को किसी संख्या से योग कर देना तथा यज धातु का जो दान अर्थ है उससे ऐसी सम्भावना करनी चाहिये कि किसी संख्या का दान अर्थात व्यय करना निकाल डालना यही अन्तर है । इस प्रकार गुणन भाग वर्ग वर्गमूल घन घनमूल भागजाति प्रभागजाति आदि जो गणित के भेद हैं वे योग और अन्तर ही उत्पन्न होते हैं क्योंकि किसी संख्या को किसी संख्या से एकवार मिला दे तो योग कहाता है जैसे २+४=६ अर्थात् २ में ४ जोड़े तो ६ होते हैं । ऐसे यदि अनेक वार संख्या में संख्या जोड़े तो उसको गुणन कहते हैं जैसे २×४=८ अर्थात् २ को ४ वार अलग अलग जोड़े वा २ को ४ वार से गुणे तो ८ होते हैं । ऐसे ही ४ को ४ चौगुना कर दिया तो ४ का वर्ग १६ हुए ऐसे ही अन्तर से भाग वर्गमूल घनमूल आदि निष्पन्न होते हैं । अर्थात् किसी संख्या में किसी संख्या को जोड़ देवे वा किसी प्रकारान्तर से घटा देवे इसी योग वा वियोग से बुद्धिमानों को यथामति कल्पना से व्यक्त अव्यक्त अङ्कगणित और बीजगणित आदि समस्त गणितक्रिया उत्पन्न होती हैं इस कारण इस मन्त्र में दो के योग से उत्तरोत्तर संख्या वा दो के वियोग से पूर्व पूर्व संख्या अच्छे प्रकार दिखलाई है वैसे गुणन का भी कुछ प्रकार दिखलाया है यह जानना चाहिये ॥२४॥

चतस्रश्चेत्यस्य पूर्ववेदा ऋषयः । समाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । चतुर्विंशतिश्चेत्युत्तरस्याकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*अब सम अङ्कों के गणित विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥**

पदार्थ—( यज्ञेन ) मेल करने अर्थात् योग करने से ( मे ) मेरी ( चतस्रः ) चार संख्या ( च ) और चारि संख्या ( मे ) मेरी ( अष्टौ ) आठ संख्या ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( अष्टौ ) आठ संख्या ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( द्वादश ) बारह ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( द्वादश ) बारह ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( षोडश ) सोलह ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( षोडश ) सोलह ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( विंशतिः ) बीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( विंशतिः ) बीस ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( चतुर्विंशतिः ) चौबीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( चतुर्विंशतिः ) चौबीस ( च ) और चारि ( मे ) मेरी (अष्टाविंशतिः ) अट्ठाईस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( अष्टाविंशतिः ) अट्ठाईस ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( द्वात्रिंशत ) बत्तीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( द्वात्रिंशत ) बत्तीस ( च ) और ( मे ) मेरी ( षट्त्रिंशत् ) छत्तीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( षट्त्रिंशत् )

छत्तीस ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( चत्वारिंशत ) चालीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( चत्वारिंशत् ) चालीस ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( चतुश्चत्वारिंशत् ) चवालीस ( च ) फिर ( म ) मेरी ( चतुश्चत्वारिंशत ) चवालीस ( च ) और चारि ( मे ) मेरी ( अष्टाचत्वारिंशत् ) अड़तालीस ( च ) और आगे भी उक्त विधि से सख्या ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हो यह प्रथम योगपक्ष है ॥ २५ ॥

अब दूसरा पक्ष

( यज्ञेन ) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत सगृहीत ( च ) और और सख्या चारि के वियोग से जैसे ( मे ) मेरी ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हो वैसे ( मे ) मेरी ( अष्टाचत्वारिंशत् ) अड़तालीस ( च ) चारि के वियोग से (मे) मेरी ( चतुश्चत्वारिंशत ) चवालीस ( च ) फिर (मे) मेरी ( चतुश्चत्वारिंशत ) चवालीस ( च ) चारि के वियोग से ( मे ) मेरी ( चत्वारिंशत ) चालीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( चत्वारिंशत ) चालीस ( च ) चारि के वियोग से ( मे ) मेरी ( षट्त्रिंशत ) छत्तीस ( च ) फिर ( मे ) मेरी ( षट्त्रिंशत् ) छत्तीस ( च ) चारि के वियोग से ( मे ) मेरी ( द्वात्रिंशत ) बत्तीस इस प्रकार सब सख्याओं मे जानना चाहिए । यह वियोग स दूसरा पक्ष है ॥ २५ ॥

अब तीसरा पक्ष—

( मे ) मेरी ( चतस्र ) चारि सख्या ( च ) और ( मे ) मेरी ( अष्टौ ) आठ ( च ) परस्पर गुणी ( मे ) मेरी ( अष्टौ ) आठ ( च ) और ( मे ) मेरी ( द्वादश ) बारह ( च ) परस्पर गुणी ( मे ) मरी ( द्वादश ) बारह ( च ) और ( मे ) मेरी ( षोडश ) सोलह (च) परस्पर गुणी ( मे ) मेरी ( षोडश ) सोलह ( च ) और ( मे ) मेरी ( विंशति ) बीस ( च ) परस्पर गुणी इस प्रकार सख्या आग भी ( यज्ञेन ) उक्त वार वार गुणन से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ हो । यह गुणनविषय स तीसरा पक्ष है ॥ २५ ॥

भावार्थ—पिछल मन्त्र म एक सख्या को लेकर दो के योग वियोग से विषम सख्या कही । इसस पूर्व मन्त्र म क्रम स आई हुई एक दो और तीन सख्या को छोड इस मन्त्र म चारि के योग वा वियोग स चौथी सख्या को लेकर सम सख्या प्रतिपादन की । इन दोना मन्त्रो से विषम सख्या और सम सख्याओ का भेद जान के बुद्धि के अनुकूल कल्पना स सब गणित विद्या जाननी चाहिए ॥२५॥

त्र्यविश्चेत्यस्य देवा ऋषय । पशुविद्याविदात्मा देवता । ब्राह्मी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

अब पशुपालन विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२६॥

पदार्थ—( मे ) मेरा ( त्र्यवि ) तीन प्रकार का भेडो वाला ( च ) और इससे भिन्न सामग्री ( मे ) मेरी ( त्र्यवी ) तीन प्रकार की भेडो वाली स्त्री ( च ) और इनस उत्पन्न हुए घृतादि ( मे ) मेरे ( दित्यवाट ) खण्डित क्रियाओ मे हुए विघ्नो का पृथक करन वाला ( च ) और इसके सम्बन्धी ( मे ) मेरी ( दित्यौही ) उन्ही क्रियाओ को प्राप्त करान हारी गाय आदि ( च ) और उसकी रक्षा ( मे ) मेरी ( पञ्चावि ) पाच प्रकार की भेडो वाला ( च ) और उसके घृतादि ( मे ) मेरी ( पञ्चावी ) पाच प्रकार की भेडो वाली स्त्री ( च ) और इसके उद्योग आदि ( मे ) मेरा ( त्रिवत्स ) तीन बछडे वाला ( च ) और उसके बछडे आदि ( मे ) मेरी (त्रिवत्सा) तीन बछडे वाली गौ ( च ) और उसके घृतादि ( मे ) मेरा ( तुर्यवाट् ) चौथे वर्ष का प्राप्त हुआ बल आदि ( च ) और इसको काम मे लाना ( मे ) मेरी ( तुर्यौही ) चौथे वर्ष का प्राप्त गौ ( च ) और इसकी शिक्षा ये सब पदार्थ ( यज्ञेन ) पशुओ के पालन के विधान से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ होवें ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे गो छाग और भेड के उपलक्षण से अन्य पशुओ का भी ग्रहण होता है । जो मनुष्य पशुओ को बढ़ाते हैं वे इनके रसो से आढय होते हैं ॥२६॥

पष्ठवाड् चेत्यस्य देवा ऋषय । पशुपालनविद्याविदात्मा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

पृष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

पदार्थ—( मे ) मेरे ( पष्ठवाड ) पीठ से भार उठाने हारे हाथी ऊट आदि ( च ) और उनके सम्बन्धी ( मे ) मेरी ( पष्ठौही ) पीठ स भार उठाने हारी घोडी ऊटनी आदि ( च ) और उनसे उठाये गये पदार्थ ( मे ) मेरा ( उक्षा ) वीर्य सेचन मे समर्थ वृषभ ( च ) और वीर्य धारण करने वाली गौ आदि ( मे ) मेरी ( वशा ) वन्ध्या गौ ( च ) और वीर्यहीन बैल ( मे ) मेरा ( ऋषभ ) समर्थ बैल ( च ) और बलवती गौ ( मे ) मेरी ( वेहत् ) गर्भ गिराने वाली ( च ) और सामर्थ्यहीन गौ ( मे ) मेरा ( अनड्वान् ) हल और गाडी आदि को चलाने मे समर्थ बैल ( च ) और गाडीवान आदि (मे) मेरी ( धेनु ) नवीन ब्यानी दूध देने हारी गाय ( च ) और उसको दोहने वाला जन ये सब ( यज्ञेन ) पशुशिक्षारूप यज्ञकर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥२७॥

भावार्थ—जो पशुओ को अच्छी शिक्षा दे के कार्यों में संयुक्त करते हैं वे अपने प्रयोजन सिद्ध करके सुखी होते हैं ॥२७॥

वाजायेत्यस्य देवा ऋषय । सग्रामादिविविदात्मा देवता । पूर्वस्य निचृदतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर । इयमित्युत्तरस्यार्षी बृहती छन्द । ऋषभ स्वर ॥

अब कैसी वाणी का स्वीकार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा । इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमनऽऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥२८॥

पदार्थ—जिस विद्वान् मे ( वाजाय ) सग्राम के लिये ( स्वाहा) सत्यक्रिया (प्रसवाय) ऐश्वय वा सन्तानोत्पत्ति के अर्थ (स्वाहा ) पुरुषार्थ बलयुक्त सत्य वाणी ( अपिजाय ) ग्रहण करने के अर्थ ( स्वाहा) उत्तम क्रिया ( क्रतवे ) विज्ञान के लिये ( स्वाहा ) योगाभ्यासादि क्रिया ( वसवे ) निवास के लिये ( स्वाहा ) धनप्राप्ति करन हारी क्रिया ( अहर्पतये ) दिनो के पालन करने हारे के लिये ( स्वाहा) काल-विज्ञान को देने हारी क्रिया ( अह्ने ) दिन के लिये वा ( मुग्धाय ) मूढजन के लिये ( स्वाहा ) वैराग्य युक्त क्रिया ( मुग्धाय ) मोह को प्राप्त हुए के लिये ( वैनंशिनाय ) विनाशी अर्थात् विनष्ट होनेहारे को जो बोध उसके लिये ( स्वाहा) सत्य हितोपदेश करने वाली वाणी ( विनंशिने ) विनाश होन वाले स्वभाव के अर्थ वा ( आन्त्यायनाय) अन्त मे घर जिस का हो उसके लिये ( स्वाहा ) सत्य वाणी ( आन्त्याय ) नीच वर्ण मे उत्पन्न हुए ( भौवनाय) भुवन सम्बन्धी के लिये (स्वाहा) उत्तम उपदेश ( भुवनस्य ) जिस ससार मे सब प्राणीमात्र होते हैं उसके ( पतये ) स्वामी के अर्थ ( स्वाहा ) उत्तम वाणी ( अधिपतये ) पालने वालो को अधिष्ठाता के अर्थ ( स्वाहा ) राजव्यवहार का जानने हारी क्रिया तथा ( प्रजापतये ) प्रजा के पालन करन वाले के अर्थ ( स्वाहा) राजधर्म प्रकाश करन हारी नीति स्वीकार की जाती है तथा जिस ( ते ) आपकी ( इयम् ) यह ( राट् ) विशेष प्रकाशमान नीति है और जो ( यमन ) अच्छे गुणो के ग्रहणकर्त्ता आप ( मित्राय ) मित्र के लिये ( यन्ता ) उचित सत्कार करने हारे ( असि ) हैं उन ( त्वा ) आप को ( ऊर्जे ) पराक्रम के लिये ( त्वा ) आप को ( वृष्ट्यै) वर्षा के लिये और ( त्वा) आप को ( प्रजानाम् ) पालन के योग्य प्रजाओ के ( आधिपत्याय ) अधिपति होने के लिये हम स्वीकार करते हैं ॥ २८॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मयुक्त वाणी और क्रिया से सहित वर्त्तमान रहते हैं वे सुखो को प्राप्त होते हैं और जो जितेन्द्रिय होते हैं वे राज्य के पालन में समर्थ होते हैं ॥२८॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य देवा ऋषय । यज्ञानुष्ठातात्मा देवता । पूर्वस्य स्वराड्विकृतिश्छन्द । पञ्चम स्वर । स्तोमश्चेत्यस्य ब्राह्म्युष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

अब क्या क्या यज्ञ की सिद्धि के लिये युक्त करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्चऽऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम प्रजापतेः प्रजाऽअभूम वेट् स्वाहा ॥२९॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तेरे प्रजाजनो के स्वामी होने के लिये ( आयु ) जिस से जीवन होता है वह आयुर्दा ( यज्ञेन ) परमेश्वर और अच्छे महात्माओ के सत्कार से ( कल्पताम् ) समर्थ हो ( प्राण ) जीवन का हेतु प्राण वायु ( यज्ञेन ) सङ्ग करने म ( कल्पताम ) समर्थ होवे ( चक्षु ) नेत्र ( यज्ञेन ) परमेश्वर वा विद्वान् के सत्कार से ( कल्पताम् ) समर्थ हो ( श्रोत्रम् ) कान ( यज्ञेन) ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से ( कल्पताम) समर्थ हो (वाक) वाणी (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (मन ) सकल्पविकल्प करने वाला मन (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो ( आत्मा ) जो कि शरीर इन्द्रिय तथा प्राण आदि पवनों को व्याप्त होता है वह आत्मा ( यज्ञेन ) ईश्वर० से ( कल्पताम् ) समर्थ हो (ब्रह्मा ) चारो वेदो का जानने वाला विद्वान् (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से ( कल्पताम ) समर्थ हो (ज्योति ) न्याय का प्रकाश ( यज्ञेन ) ईश्वर वा वि० से ( कल्पताम् ) समर्थ हो ( स्व ) सुख ( यज्ञेन ) ईश्वर वा वि० से ( कल्पताम् ) समर्थ हो ( पृष्ठम् ) जानने की इच्छा ( यज्ञेन) पठनरूप यज्ञ से ( कल्पताम् ) समर्थ हो (यज्ञ ) पाने योग्य धर्म ( यज्ञेन ) सत्यव्यवहार से ( कल्पताम् ) समर्थ हो ( स्तोम ) जिसमे स्तुति होती है वह अथर्ववेद ( च ) और ( यजु ) जिससे जीव सत्कार आदि करता है वह यजुर्वेद ( च ) और (ऋक) स्तुति का साधक ऋग्वेद ( च ) और (साम ) सामवेद ( च ) और ( बृहत् ) अत्यन्त बडा वस्तु ( च) और सामवेद का (रथन्तरम्) रथन्तर नाम वाला

स्तोत्र ( च ) भी ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से समर्थ हो। हे ( देवा ) विद्वानो ! जैसे हम लोग ( अमृता ) जन्म मरण के दुःख से रहित हुए ( स्व ) मोक्ष सुख को ( अगन्म ) प्राप्त हो वा (प्रजापते ) समस्त संसार के स्वामी जगदीश्वर की (प्रजाः) पालन योग्य प्रजा ( अभूम ) हो तथा ( वेट ) उत्तम क्रिया और ( स्वाहा ) सत्य वाणी से युक्त ( अभूम ) हो वैसे तुम भी होओ ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहां पूर्व मन्त्र से ( ते आधिपत्याय ) इन दो पदो की अनुवृत्ति आती है। मनुष्य धार्मिक विद्वान् जनो के अनुकरण से यज्ञ के लिये सब समर्पण कर परमेश्वर और राजा को न्यायाधीश मान के न्यायपरायण होकर निरन्तर सुखी हो ॥२६॥

वाजस्येत्यस्य देवा ऋषय । राज्यवानात्मा देवता । स्वराड् जगती छन्द ।

निषाद स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को कैसे किसकी उपासना करना चाहिए*

*यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वाज॑स्य नु प्र॑स॒वे मा॒तरं॑ म॒हीमदि॑तिं॒ नाम॒ वच॑सा करामहे। यस्या॑मि॒दं विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॒ तस्या॑न्नो दे॒वः स॑वि॒ता धर्म्मं॑ साविषत् ॥३०॥**

पदार्थ—( वाजस्य ) विविध प्रकार के उत्तम अन्न के (प्रसवे) उत्पन्न करने में ( नु ) ही वर्त्तमान हम लोग ( मातरम ) मान्य की हेतु ( अदितिम् ) कारणरूप से नित्य ( महीम् ) भूमि को ( नाम ) प्रसिद्धि मे ( वचसा ) वाणी से ( करामहे ) युक्त करें ( यस्याम् ) जिस पृथिवी मे ( इदम् ) यह प्रत्यक्ष ( विश्वम् ) समस्त ( भुवनम् ) स्थूल जगत् ( आविवेश ) व्याप्त है (तस्याम्) उस पृथिवी में (सविता) समस्त ऐश्वर्य युक्त ( देव ) शुद्धस्वरूप ईश्वर ( न ) हमारी (धर्म) उत्तम कर्मों की धारणा को ( साविषत् ) उत्पन्न करे ॥३०॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने सब का आधार जो भूमि बनाई और वह सब को धारण करती है वही ईश्वर सब मनुष्यो को उपासना करने योग्य है ॥३०॥

विश्वेऽअद्येत्यस्य देवा ऋषय । विश्वेदेवा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*अब अगले मन्त्र मे प्राणियों के कर्त्तव्य विषय को कहा है—*

**विश्वे॑ऽअ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ऽऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः। विश्वे॑ नो दे॒वाऽअव॒साग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ऽअ॒स्मे ॥३१॥**

पदार्थ—इस पृथिवी मे ( अद्य ) आज (विश्वे ) सब (मरुत ) पवन (विश्वे) सब प्राणी और पदार्थ (विश्वे ) सब ( समिद्धा ) अच्छे प्रकार लपट दे रहे हुए ( अग्नय ) अग्नियो के समान मनुष्य लोग ( न ) हमारी ( ऊती ) रक्षा आदि के साथ ( भवन्तु ) प्रसिद्ध हो ( विश्वे) सब ( देवा ) विद्वान् लोग ( अवसा) पालन आदि से रहित ( आ गमन्तु ) आवें अर्थात् आकर हम लोगो की रक्षा करें जिससे ( अस्मे ) हम लोगो के लिये ( विश्वम ) समस्त ( द्रविणम ) धन और ( वाज ) अन्न ( अस्तु) प्राप्त हो ॥३१॥

भावार्थ—जो मनुष्य आलस्य को छोड विद्वानो का सङ्ग कर इस पृथिवी म प्रयत्न करते हैं वे समस्त अति उत्तम पदार्थों का पाते हैं ॥३१॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषय । अन्नवान् विद्वान् देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*अब विद्वान् और प्रजाजन कसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वाजो॑ नः स॒प्त प्र॒दिश॒श्चत॑स्रो वा परा॒वतः॑।
वाजो॑ नो॒ विश्वै॑र्दे॒वैर्धन॑साताविहाव॑तु ॥३२॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ( विश्वै ) सब (देवै ) विद्वानो के साथ (वाज ) अन्नादि ( इह ) इस लोक मे ( धनसातौ ) धन के विभाग करने मे ( न ) हम लोगो का ( अवतु ) प्राप्त होवे ( वा ) अथवा ( न ) हम लोगो का ( वाज ) शास्त्रज्ञान और वेग ( सप्त ) सात ( प्रदिश ) जिन का अच्छे प्रकार उपदेश किया जाय उन लोक लोकान्तरो वा ( परावत ) दूर दूर जो ( चतस्र ) पूर्व आदि चार दिशा उन को पाले अर्थात् उक्त सब पदार्थों की रक्षा करे वैसे इनकी रक्षा तुम भी निरन्तर किया करो ॥३२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि बहुत अन्न से अपनी रक्षा तथा इस पृथिवी पर सब दिशाओं मे अच्छी कीर्ति हो इस प्रकार सत्पुरुषो का सम्मान किया करें ॥३२॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषय । अन्नपतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को क्या क्या चाहने योग्य है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वाजो॑ नोऽअ॒द्य प्र सु॑वाति॒ दानं॒ वाजो॑ दे॒वाँ२ऽऋ॒तुभिः॑ कल्पयाति। वाजो॒ हि मा॒ सर्व॑वीरं ज॒जान॒ विश्वा॒ऽआशा॒ वाज॑पतिर्जयेयम् ॥३३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अद्य ) आज जो ( वाज ) अन्न ( न ) हमारे लिये ( दानम् ) दान दूसरे को देना ( प्रसुवाति ) चितावे और ( वाज ) वेगरूप गुण ( ऋतुभि ) वसन्त आदि ऋतुओ से ( देवान्) अच्छे अच्छे गुणो को ( कल्पयाति ) प्राप्त होने मे समर्थ करे वा जो ( हि ) ही ( वाज ) अन्न ( सर्ववीरम् ) सब वीर जिस से हो ऐसे अति बलवान् ( मा ) मुझको ( जजान) प्रसिद्ध करे उस सब से ही मैं (वाजपति ) अन्नादि का अधिष्ठाता होकर ( विश्वा ) समस्त ( आशा ) दिशाओं को ( जयेयम) जीतू वैसे तुम भी जीता करो ॥३३॥

भावार्थ—जितने इस पृथिवी पर पदार्थ हैं उन सभो मे अन्न ही अत्यन्त प्रशंसा के योग्य हैं जिससे अन्नवान् पुरुष सब जगह विजय को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

वाज पुरस्तादित्यस्य देवा ऋषय । अन्नपतिर्देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*अन्न ही सब की रक्षा करता है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वाजः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नो॒ वाजो॑ दे॒वान् ह॒विषा॑ वर्द्धयाति। वाजो॒ हि मा॒ सर्व॑वीरं च॒कार॒ सर्वा॒ आशा॒ वाज॑पतिर्भवेयम् ॥३४॥**

पदार्थ—जो ( वाज ) अन्न ( हविषा ) देने लेने और खान से ( पुरस्तात् ) पहिले ( उत ) और ( मध्यत ) बीच मे ( न ) हम लोगो को (वर्द्धयाति) बढ़ावे तथा जो ( वाज ) अन्न ( देवान् ) दिव्यगुणों को बढ़ावे जो ( हि ) ही ( वाजः ) अन्न ( मा ) मुझ को (सर्ववीरम्) जिस से समस्त वीर पुरुष होते है ऐसा ( चकार) करता है उससे मैं ( वाजपति ) अन्न आदि पदार्थों की रक्षा करनेवाला ( भवेयम् ) होऊँ और ( सर्वा ) सब ( आशा ) दिशाओ को जीतू ॥ ३४ ॥

भावार्थ—अन्न ही सब प्राणियो को बढ़ाता है अन्न से ही प्राणी सब दिशाओ मे भ्रमते हैं अन्न के बिना कुछ भी नहीं कर सकते ॥ ३४ ॥

स मा सृजामीत्यस्य देवा ऋषय । रसविद्याविद्विद्वान् देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सं मा॑ सृजामि॒ पय॑सा पृथि॒व्याः सं मा॑ सृजाम्य॒द्भिरोष॑धीभिः। सो॒ऽहं वाज॑ꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) रस विद्या के जानने हारे विद्वान् ! जो मैं (पृथिव्या ) पृथिवी के ( पयसा ) रस के साथ ( मा ) अपने को ( स, सृजामि ) मिलाता हूँ वा ( अद्भि ) अच्छे शुद्ध जल और ( ओषधीभि ) सोमलता आदि ओषधियो के साथ ( मा ) अपने को ( सृजामि ) मिलाता हूँ ( स ) सो ( अहम् ) मैं ( वाजम् ) अन्न का ( सनेयम् ) सेवन करू इसी प्रकार तू भी आचरण कर ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे मैं वैद्यक शास्त्र की रीति से अन्न और पान आदि का करके सुखी होता हूँ वैसे तुम लोग भी प्रयत्न किया करो ॥ ३५ ॥

पय पृथिव्यामित्यस्य देवा ऋषय । रसविद्विद्वान् देवता । आर्ष्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*मनुष्य जल के रस को जानने वाले हों यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**पयः॑ पृथि॒व्यां पय॒ऽओष॑धीषु॒ पयो॑ दि॒व्य॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑ धाः। पय॑स्वतीः प्र॒दिशः॑ सन्तु॒ मह्य॑म् ॥३६॥**

पदार्थ—हे विद्वान् ! तू ( पृथिव्याम् ) पृथिवी पर जिस ( पय ) जल वा दुग्ध आदि के रस ( ओषधीषु ) ओषधियो म जिस ( पय ) रस ( दिवि ) शुद्ध निर्मल प्रकाश वा ( अन्तरिक्षे ) सूर्य और पृथिवी के बीच मे जिस ( पय ) रस को ( धा ) धारण करता है उस सब ( पय ) जल वा दुग्ध के रस को मैं भी धारण करू जो ( प्रदिश ) दिशा विदिशा ( पयस्वती ) बहुत रस वाली तेरे लिये (सन्तु) हो वे ( मह्यम ) मेरे लिय भी हो ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जल आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी आदि से उत्तम अन्न और रसो का संग्रह करके खाते और पीते हैं वे नीरोग होकर सब दिशाओ मे कार्य की सिद्धि कर तथा जा आ सकते और बहुत आयु वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य देवा ऋषय । सम्राड् राजा देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर मनुष्य कसे को राजा मानें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳕ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। सर॑स्वत्यै वा॒चो य॒न्तुर्य॒न्त्रेणा॒ग्नेः साम्रा॑ज्येना॒भिषि॑ञ्चामि ॥३७॥**

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ! जैसे मैं ( त्वा ) आप को ( सवितु ) सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति करान हारा जो ( देवस्य ) आप ही प्रकाश को प्राप्त परमेश्वर उसके ( प्रसवे ) उत्पन्न किये हुए जगत् में ( अश्विनो ) सूर्य और चन्द्रमा के प्रताप और शीतलपन के समान ( बाहुभ्याम ) भुजाओ से ( पूष्ण ) पुष्टि करनेवाले प्राण के धारण और खींचने के समान ( हस्ताभ्याम् ) हाथो से ( सरस्वत्यै )विज्ञान वाली ( वाच ) वाणी के ( यन्तु ) नियम करनेवाले ( अग्ने ) बिजुली आदि अग्नि की ( यन्त्रेण ) कारीगरी से उत्पन्न किये हुए ( साम्राज्येन ) सब भूमि के राजपन से ( अभिषिञ्चामि ) अभिषेक करता हूँ अर्थात् अधिकार देता हूँ वैसे आप सुख से मेरा अभिषेक करें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि समस्त विद्या के जानने हारे होके सूर्य आदि के गुण कर्म सदृश स्वभाव वाले पुरुष को राजा मानें ॥ ३७ ॥

ऋताषाडित्यस्य देवा ऋषयः । ऋतुविद्याविद्विद्वान् देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।**
**स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( ऋताषाट् ) सत्य व्यवहार को सहने वाला ( ऋतधामा ) जिसके ठहरने के लिये ठीक स्थान है वह ( गन्धर्वः ) पृथिवी को धारण करने हारा ( अग्निः ) आग के समान है वह ( तस्य ) उस की ( ओषधयः ) ओषधि ( अप्सरसः ) जो कि जलों मे दौड़ती हैं वे ( मुदः ) जिन मे आनन्द होता है ऐसे ( नाम ) नाम वाली हैं ( सः ) वह ( नः ) हम लोगो के ( इदम् ) इस ( ब्रह्म ) ब्रह्म को जानने वाल्मो के कुल और ( क्षत्रम् ) राज्य वा क्षत्रियो के कुल की ( पातु ) रक्षा करे ( तस्मै ) उस के लिये ( स्वाहा ) सत्य वाणी ( वाट् ) जिससे कि व्यवहारो को यथायोग्य वर्त्ताव मे लाता है और ( ताभ्यः ) उक्त उन ओषधियो के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया हो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के समान दुष्ट शत्रुओं के कुल को दुःखरूपी अग्नि मे जलाने वाला और ओषधियो के समान आनन्द का करनेवाला हो वही समस्त राज्य की रक्षा कर सकता है ॥ ३८ ॥

संहित इत्यस्य देवा ऋषयः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३९॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो ( संहितः ) सब मूर्त्तिमान् वस्तु वा सत्पुरुषो के साथ मिला हुआ ( सूर्यः ) सूर्य ( गन्धर्वः ) पृथिवी को धारण करनेवाला है ( तस्य ) उस की ( मरीचयः ) किरणें ( अप्सरसः ) जो अन्तरिक्ष मे जाती हैं वे ( आयुवः ) सब ओर से सयोग और वियोग करनेवाली ( नाम ) प्रसिद्ध हैं अर्थात् जल आदि पदार्थों का सयोग करती और छोड़ती हैं ( ताभ्यः ) उन अन्तरिक्ष मे जाने आने वाली किरणो के लिये ( विश्वसामा ) जिसके समीप सामवेद विद्यमान वह आप ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से कार्यसिद्धि करो जिससे वे यथायोग्य काम मे आवें जो आप ( तस्मै ) उस सूर्य के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करते हो ( सः ) वह आप ( नः ) हमारे ( इदम् ) इस ( ब्रह्म ) विद्वानो और ( क्षत्रम् ) शूरवीरों के कुल तथा ( वाट् ) कामो के निर्वाह करने की ( पातु ) रक्षा करो ॥३९॥

भावार्थ—मनुष्य सूर्य की किरणो का युक्ति के साथ सेवन कर विद्या और शूरवीरता को बढ़ाके अपने प्रयोजन को सिद्ध करें ॥ ३९ ॥

सुषुम्ण इत्यस्य देवा ऋषयः । चन्द्रमा देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से उपकार लेना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सूर्यरश्मिः ) सूर्य की किरणो वाला ( सुषुम्णः ) जिससे उत्तम सुख होता ( गन्धर्वः ) और जो सूर्य की किरणो को धारण किये है वह ( चन्द्रमा ) सब को आनन्दयुक्त करनेवाला चन्द्रलोक है ( तस्य ) उसके जो ( नक्षत्राणि ) अश्विनी आदि नक्षत्र और ( अप्सरसः ) आकाश मे विद्यमान किरणें ( भेकुरयः ) प्रकाश को करनेवाली ( नाम ) प्रसिद्ध हैं वे चन्द्र की अप्सरा हैं ( सः ) वह जैसे ( नः ) हम लोगो के ( इदम् ) इस ( ब्रह्म ) पढ़ाने वाले ब्राह्मण और ( क्षत्रम् ) दुष्टों के नाश करने हारे क्षत्रियकुल की ( पातु ) रक्षा करे ( तस्मै ) उक्त उस प्रकार के चन्द्रलोक के लिये ( वाट् ) कार्यनिर्वाहपूर्वक ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया और ( ताभ्यः ) उन किरणो के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया तुम लोगों को प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ ४० ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चन्द्र आदि लोकों से भी उनकी विद्या से सुख सिद्ध करना चाहिये ॥ ४० ॥

इषिर इत्यस्य देवा ऋषयः । वातो देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को पवन आदि से उपकार लेने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽअप्सरसऽऊर्जो नाम ।**
**स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इषिरः ) जिससे इच्छा करते ( विश्वव्यचाः ) वा जिसकी सब ससार में व्याप्ति है वह ( गन्धर्वः ) पृथिवी और किरणों को धारण करता ( वातः ) सब जगह भ्रमण करनेवाला पवन है ( तस्य ) उस के जो ( आपः ) जल और प्राण अपान उदान समान व्यान आदि भाग हैं वे ( अप्सरसः ) अन्तरिक्ष जल मे जाने आने वाले और ( ऊर्जः ) बल पराक्रम के देनेवाले ( नाम ) प्रसिद्ध हैं जैसे ( सः ) वह ( नः ) हम लोगो के लिये ( इदम् ) इस ( ब्रह्म ) सत्य के उपदेश से सब की वृद्धि करनेवाले ब्राह्मणकुल तथा ( क्षत्रम् ) विद्या के बढ़ाने वाले राजकुल की ( पातु ) रक्षा करे वैसे तुम लोग भी आचरण करो ( तस्मै ) और उक्त पवन के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया की ( वाट् ) प्राप्ति तथा ( ताभ्यः ) उन जल आदि के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया वा उत्तम वाणी को युक्त करो ॥ ४१ ॥

भावार्थ—शरीर मे जितनी चेष्टा और बल पराक्रम उत्पन्न होते हैं वे सब पवन से होते हैं और पवन ही प्राणरूप और जल गन्धर्व अर्थात् सब को धारण करने वाले हैं यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

भुज्युरित्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*मनुष्य लोग यज्ञ का अनुष्ठान करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽअप्सरस स्तावा नाम**
**स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( भुज्युः ) सुखो के भोगने और ( सुपर्णः ) उत्तम उत्तम पालना का हेतु ( गन्धर्वः ) वाणी को धारण करनेवाला ( यज्ञः ) सङ्गति करने योग्य यज्ञकर्म है ( तस्य ) उस की ( दक्षिणाः ) जो सुपात्र अच्छे अच्छे धर्मात्मा विद्वानों को दक्षिणा दी जाती हैं वे ( अप्सरसः ) प्राणों मे पहुँचने वाली ( स्तावाः ) जिनकी प्रशसा की जाती है ऐसी ( नाम ) प्रसिद्ध हैं ( सः ) वह जैसे ( नः ) हमारे लिये ( इदम् ) इस ( ब्रह्म ) विद्वान् ब्राह्मण और ( क्षत्रम् ) चक्रवर्ती राजा की ( पातु ) रक्षा करे वैसा तुम लोग भी अनुष्ठान करो ( तस्मै ) उस के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया की ( वाट् ) प्राप्ति ( ताभ्यः ) उक्त दक्षिणाओं के लिये ( स्वाहा ) उत्तम रीति से उत्तम क्रिया को सयुक्त करो ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञो को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त ससार के सुखो को बढ़ाते हैं यह जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

प्रजापतिरित्यस्य देवा ऋषयः । विश्वकर्मा देवता । विराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्य कैसे हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो ( विश्वकर्मा ) समस्त कामो का हेतु ( प्रजापतिः ) और जो प्रजा का पालने वाला स्वामी मनुष्य है ( तस्य ) उसके ( गन्धर्वः ) जिससे वाणी आदि को धारण करता है ( मनः ) ज्ञान की सिद्धि करने हारा मन ( ऋक्सामानि ) ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्र ( अप्सरसः ) हृदयाकाश मे व्याप्त प्राण आदि पदार्थों मे जाती हुई क्रिया ( एष्टयः ) जिन से विद्वानों का सत्कार सत्य का सङ्ग और विद्या का दान होता है ये सब ( नाम ) प्रसिद्ध हैं जैसे ( सः ) वह ( नः ) हम लोगो के लिये ( इदम् ) इस ( ब्रह्म ) वेद और ( क्षत्रम् ) धनुर्वेद की ( पातु ) रक्षा करे वैसे ( तस्मै ) उस के लिये ( स्वाहा ) सत्य वाणी ( वाट् ) धर्म की प्राप्ति और ( ताभ्यः ) उन उक्त पदार्थों के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से उपकार को करो ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थी विचारशील वेदविद्या के जानने वाले होते हैं वे ही ससार के भूषण होते हैं ॥ ४३ ॥

स न इत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तऽउपरि गृहा यस्य वेह ।**
**अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४॥**

पदार्थ—हे ( भुवनस्य ) घर के ( पते ) स्वामी ( प्रजापते ) प्रजा की रक्षा करनेवाले पुरुष ! ( इह ) इस ससार मे ( यस्य ) जिस ( ते ) तेरे ( उपरि ) अति उच्चता को देने हारे उत्तम व्यवहार मे ( गृहाः ) पदार्थों के ग्रहण करने हारे गृहस्थ मनुष्य आदि ( वा ) वा ( यस्य ) जिसकी सब उत्तम क्रिया हैं ( सः ) सो तू ( नः ) हमारे ( अस्मै ) इस ( ब्रह्मणे ) वेद और ईश्वर के जानने हारे मनुष्य तथा ( अस्मै ) इस ( क्षत्राय ) राजधर्म में निरन्तर स्थित क्षत्रिय के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( महि ) बहुत ( शर्म ) घर और सुख को ( यच्छ ) दे ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो और क्षत्रियों के कुल को नित्य बढ़ाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥

समुद्रोऽसीत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।**

**मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥४५॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो तू (नभस्वान्) जिसके समीप बहुत जल (आर्द्रदानुः) और शीतल गुणों का देनेवाला (समुद्रः) और जिसमें उलट पलट जल गिरते उस समुद्र के समान (असि) है वह (स्वाहा) सत्य क्रिया से (शम्भूः) उत्तम सुख और (मयोभूः) सामान्य सुख उत्पन्न करानेवाला होता हुआ (मा) मुझको (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो जो तू (मारुतः) पवनों का सम्बन्धी जानने हारा (मरुताम्) विद्वानों के (गणः) समूह के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष परजन्म के सुख और (मयोभूः) इस जन्म में सामान्य सुख का उत्पन्न करनेवाला होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो, जो तू (दुवस्वान्) प्रशंसित सत्कार से युक्त (अवस्यूः) अपनी रक्षा चाहने वाले के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष सुख और (मयोभूः) सामान्य अपने सुख का उत्पन्न करने हारा होता हुआ (मा) मुझ को (अभि वाहि) सब ओर से प्राप्त हो ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य समुद्र के समान गम्भीर और रत्नों से युक्त कोमल पवन के तुल्य बलवान् विद्वानों के तुल्य परोपकारी और अपने आत्मा के तुल्य सब की रक्षा करते हैं वे ही सब के कल्याण और सुखों को कर सकते हैं ॥ ४५ ॥

**यास्ते इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।**
**ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥४६॥**

**पदार्थ**—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन् ! (याः) जो (सूर्ये) सूर्य वा प्राण में (रुचः) दीप्ति वा प्रीति हैं और जो (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) सब ओर से फैलाती हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब (ते) अपनी दीप्ति वा प्रीतियों से (अद्य) आज (नः) हम लोगों को संयुक्त करो और (रुचे) प्रीति करने हारे (जनाय) मनुष्य के अर्थ (नः) हम लोगों को (कृधि) नियत करो ॥ ४६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाश करने हारे लोकों का भी प्रकाश करने हारा है वैसे सब शास्त्र को यथावत् कहने वाला विद्वान् विद्वानों को भी विद्या देने हारा होता है जैसे ईश्वर इस संसार में सब प्राणियों का सत्य में रुचि और असत्य में अरुचि का उत्पन्न करता है वैसा विद्वान् भी आचरण करे ॥ ४६ ॥

**या व इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।**
**इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥४७॥**

**पदार्थ**—हे (बृहस्पते) बड़े बड़े पदार्थों की पालना करने हारे ईश्वर और (देवाः) विद्वान् मनुष्यो ! (याः) जो (वः) तुम सबों की (सूर्ये) चराचर में व्याप्त परमेश्वर में अर्थात् ईश्वर की अपने में और तुम विद्वानों की ईश्वर में (रुचः) प्रीति हैं वा (याः) जो इन (गोषु) किरण इन्द्रिय और दुग्ध देनेवाली गौ और (अश्वेषु) अग्नि तथा घोड़ा आदि में (रुचः) प्रीति हैं वा जो इन में (इन्द्राग्नी) प्रसिद्ध बिजुली और आग वर्त्तमान हैं वे भी (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब प्रीतियों से (नः) हम लोगों में (रुचम्) प्रीति को (धत्त) स्थापन करो ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर गौ आदि की रक्षा और पदार्थविद्या में सब मनुष्यों को प्रेरणा देता है वैसे ही विद्वान् लोग भी आचरण किया करें ॥ ४७ ॥

**रुचं न इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि ।**
**रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥४८॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों के (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में (रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) धरो स्थापन करो (नः) हम लोगों के (राजसु) राजपूत क्षत्रियों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (कृधि) करो (विश्येषु) प्रजाजनों में हुए वैश्यों में तथा (शूद्रेषु) शूद्रों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को और (मयि) मुझ में भी प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) स्थापन करो ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मणादि वर्णों में समान प्रीति करता है वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्त्तमान हैं वे सब नीच और तिरस्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४८ ॥

**तत्त्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को विद्वानों के तुल्य आचरण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।**
**अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्र मोषीः ॥४९॥**

**पदार्थ**—हे (उरुशंस) बहुतों की प्रशंसा करने हारे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् ! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ (यजमानः) यज्ञ करनेवाला (अहेडमानः) सत्कार को प्राप्त हुआ पुरुष (हविर्भिः) होम करने के योग्य अच्छे बनाये हुए पदार्थों से जो (आ शास्ते) आशा करता है (तत्) उसको मैं (यामि) प्राप्त होऊं तथा जिस उत्तम (आयुः) सौ वर्ष की आयुर्दा का (त्वा) तेरा आश्रय कर के मैं प्राप्त होऊं (तत्) उस को तू भी प्राप्त हो तू (इह) इस संसार में उक्त आयुर्दा को (बोधि) जान और तू (नः) हमारी उस आयुर्दा को (मा प्र, मोषीः) मत चोर ॥ ४९ ॥

**भावार्थ**—सत्यवादी शास्त्रवेत्ता सज्जन विद्वान् जो चाहें वही चाहना मनुष्यों को भी करनी चाहिये किसी को किन्हीं विद्वानों का अनादर न करना चाहिये तथा स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्य त्याग, अयोग्य आहार विहार व्यभिचार अत्यन्त विषयासक्ति आदि खोटे कामों से आयुर्दा का नाश कभी न करना चाहिये ॥ ४९ ॥

**स्वर्ण घर्म इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः ।**
**ऋषभः स्वरः ॥**

*कैसे जन पदार्थों को शुद्ध करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥५०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (घर्मः) प्रताप (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) तुल्य (अर्कः) अग्नि (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) सदृश (शुक्रः) वायु (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (ज्योतिः) बिजुली की चमक (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (सूर्यः) सूर्य हो वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ५० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । यज्ञ के करनेवाले मनुष्य सुगन्धियुक्त आदि पदार्थों के होम से समस्त वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर सकते हैं जिससे रोग क्षय होकर सब की बहुत आयुर्दा हो ॥ ५० ॥

**अग्निमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*कैसे नर सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳसुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।**
**तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳस्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥५१॥**

**पदार्थ**—मैं (वयसा) आयु की व्याप्ति से (बृहन्तम्) बड़े हुए (दिव्यम्) शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध होने वाले (सुपर्णम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने में परिपूर्ण (अग्निम्) अग्नि को (शवसा) बलदायक (घृतेन) घी आदि सुगन्धित पदार्थों से (युनज्मि) युक्त करता हूँ (तेन) उस से (स्वः) सुख को (रुहाणाः) आरूढ़ हुए (वयम्) हम लोग (ब्रध्नस्य) बड़े से बड़े के (विष्टपम्) उस व्यवहार को कि जिससे सामान्य और विशेष भाव से प्रवेश हुए जीवों की पालना की जाती है और (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःखरहित सुखस्वरूप स्थान है उसको (अधि, गमेम) प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अच्छे बनाए हुए सुगन्धि आदि से युक्त पदार्थों को आग में छोड़कर पवन आदि की शुद्धि से सब प्राणियों को सुख देते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

**इमावित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳरक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने । ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५२॥**

**पदार्थ**—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रताप वाले विद्वान् ! (ते) आपके जो (इमौ) ये (पतत्रिणौ) उच्चश्रेणी को प्राप्त हुए (अजरौ) कभी नष्ट नहीं होते अजर अमर (पक्षौ) कार्य्यकारण रूप समीप के पदार्थ हैं (याभ्याम्) जिन से आप (रक्षांसि) दुष्ट प्राणियों वा दोषों को (अपहंसि) दूर बहा देते हैं (ताभ्याम्) उन से (उ) ही उस (सुकृताम्) सुकृती सज्जनों के (लोकम्) देखने योग्य आनन्द को हम लोग (पतेम) पहुँचे (यत्र) जिस आनन्द में (प्रथमजाः) सर्वव्याप्त परमेश्वर में प्रसिद्ध वा अतिविस्तारयुक्त वेद में प्रसिद्ध अर्थात् उस के जानने से कीर्ति

पाये हुए ( पुराणाः ) पहिले पढ़ने के समय नवीन ( ऋषयः ) वेदार्थ जानने वाले विद्वान् ऋषिजन ( जग्मुः ) पहुंचे ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन दोषों को छोड़ के धर्म आदि अच्छे गुणों का ग्रहण कर ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्द युक्त होते हैं वैसे उन को पाकर मनुष्यों को भी सुखी होना चाहिये ॥ ५२ ॥

इन्दुरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । इन्दुर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*विद्वानों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

इन्दुर्दक्षः श्येनऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः ।
महान्त्सधस्थे ध्रुवऽआ निषत्तो नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥५३॥

पदार्थ—हे विद्वन् सभापते ! जो आप ( इन्दुः ) चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव सहित ( दक्षः ) बल चतुराई युक्त ( श्येनः ) बाज के समान पराक्रमी ( ऋतावा ) जिन का सत्य का सम्बन्ध विद्यमान है ( हिरण्यपक्षः ) और सुवर्ण के लाभ वाले ( शकुनः ) शक्तिमान् ( भुरण्युः ) सब के पालने हारे ( महान् ) सब से बड़े ( सधस्थे ) दूसरे के साथ स्थान में ( आ, निषत्तः ) निरन्तर स्थित ( ध्रुवः ) निश्चल हुए ( मा ) मुझे ( मा ) मत ( हिंसीः ) मारो उन ( ते ) आप के लिये हमारा ( नमः ) सत्कार ( अस्तु ) प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार में विद्वान् जन स्थिर होकर सब विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिस से वे हिंसा करने हारे न होवें ॥ ५३ ॥

दिव इत्यस्य गालव ऋषिः । इन्दुर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*कैसा मनुष्य दीर्घजीवी होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् ।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥५४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो आप ( दिवः ) प्रकाश अर्थात् प्रताप के ( मूर्द्धा ) शिर के समान ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( नाभिः ) बन्धन के समान ( अपाम् ) जलों और ( ओषधीनाम् ) ओषधियों के ( ऊर्क् ) रस के समान ( विश्वायुः ) पूर्ण सौ वर्ष जीने वाले और ( सप्रथाः ) कीर्तियुक्त ( असि ) हैं सो आप ( पथे ) सन्मार्ग के लिये ( नमः ) अन्न ( शर्म ) शरण और सुख को प्राप्त होओ ॥ ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य न्यायवान् सहनशील औषध का सेवन करने और आहार विहार से यथायोग्य रहनेवाला इन्द्रियों को वश में रखता है वह सौ वर्ष की अवस्था वाला होता है ॥ ५४ ॥

विश्वस्येत्यस्य गालव ऋषिः । इन्दुर्देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—*

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त । दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥५५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो आप ( विश्वस्य ) सब संसार के ( मूर्द्धन् ) शिर पर ( श्रितः ) विराजमान सूर्य के समान ( अधि, तिष्ठसि ) अधिकार पाये हुए हैं जिन ( ते ) आपका ( समुद्रे ) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक परमेश्वर में ( हृदयम् ) मन ( अप्सु ) प्राणों में ( आयुः ) जीवन है उन ( अपः ) प्राणों को ( दत्त ) देते हो ( उदधिम् ) समुद्र का ( भिन्त ) भेदन करते हो जिससे सूर्य ( दिवः ) प्रकाश ( अन्तरिक्षात् ) आकाश ( पर्जन्यात् ) मेघ और ( पृथिव्याः ) भूमि से ( वृष्ट्या ) वर्षा के योग से सब चराचर प्राणियों की रक्षा करता है ( ततः ) इस से अर्थात् सूर्य के तुल्य ( नः ) हम लोगों की ( अव ) रक्षा करो ॥ ५५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान सुख वर्षाने और उत्तम आचरणों के करने हारे हैं वे सब को सुखी कर सकते हैं ॥५५॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः ।
तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥५६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( भृगुभिः ) परिपूर्ण विज्ञान वाले ( वसुभिः ) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने ( आशीर्दाः ) इच्छासिद्धि को देने वाला ( यज्ञः ) यज्ञ ( इष्टः ) किया है ( तस्य ) उस ( इष्टस्य ) किये हुए ( प्रीतस्य ) मनोहर यज्ञ के सकाश से ( इह ) इस संसार में आप ( नः ) हम लोगों के ( द्रविण ) धन को ( आ गमेः ) प्राप्त हूजिये ॥५६॥

भावार्थ—जो विद्वानों के तुल्य अच्छा यत्न करते हैं वे इस संसार में बहुत धन को प्राप्त होते हैं ॥५६॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

इष्टोऽअग्निराहुतः पिपर्तु न इष्टꣳहविः । स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥५७

पदार्थ—( हविः ) संस्कार किये पदार्थों से ( आहुतः ) अच्छे प्रकार तृप्त वा हवन किया ( इष्टः ) सत्कार किया वा आहुतियों से बढ़ाया हुआ ( अग्निः ) यह सभा आदि का अध्यक्ष विद्वान् वा अग्नि ( नः ) हमारे ( इष्टम् ) सुख वा सुख के साधनों को ( पिपर्तु ) पूरा करे वा हमारी रक्षा करे ( इदम् ) यह ( स्वगा ) अपने को प्राप्त होने वाला ( नमः ) अन्न वा सत्कार ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिये हो ॥५७॥

भावार्थ—मनुष्य अग्नि में अच्छे संस्कार से बनाये हुए जिस पदार्थ का होम करते हैं सो इस संसार में बहुत अन्न का उत्पन्न करने वाला होता है इस कारण उस से विद्वान् आदि सत्पुरुषों का सत्कार करना चाहिये ॥५७॥

यदेत्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*अब विद्वानों के विषय में सत्य का निर्णय यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—*

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा ।
तदनुप्रेत सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५८॥

पदार्थ—हे सत्य असत्य का ज्ञान चाहते हुए मनुष्यो ! तुम लोग ( यत् ) जो ( आकूतात् ) उत्साह ( हृदः ) आत्मा ( वा ) वा प्राण ( मनसः ) मन ( वा ) वा बुद्धि आदि तथा ( चक्षुषः ) नेत्रादि इन्द्रियों से उत्पन्न हुए प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ( वा ) वा कान आदि इन्द्रियों से ( सम्भृतम् ) अच्छे प्रकार धारण किया अर्थात् निश्चय से ठीक जाना सुना देखा और अनुमान किया है ( तत् ) वह ( समसुस्रोत् ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो इस कारण ( प्रथमजाः ) हम लोगों से पहिले उत्पन्न हुए ( पुराणाः ) हम से प्राचीन ( ऋषयः ) वेदविद्या के जानने वाले परमयोगी ऋषिजन ( यत्र ) जहां ( जग्मुः ) पहुंचें उस ( सुकृताम् ) सुकृति मोक्ष चाहते हुए सज्जनों के ( उ ) ही ( लोकम् ) प्रत्यक्ष सुख समूह वा मोक्षपद को ( अनुप्रेत ) अनुकूलता से पहुंचो ॥५८॥

भावार्थ—जब मनुष्य सत्य असत्य के निर्णय के जानने की चाहना करें तब जो जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से तथा सृष्टिक्रम प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से अच्छे अच्छे सज्जनों के आचार से आत्मा और मन के अनुकूल हो वह वह सत्य उससे भिन्न और झूठ है यह निश्चय करें जो ऐसे परीक्षा करके धर्म का आचरण करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥५८॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

एतꣳसधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वोऽअत्र तꣳस्म जानीत परमे व्योमन् ॥५९॥

पदार्थ—हे ईश्वर के ज्ञान चाहने वाले मनुष्यो और हे ( सधस्थ ) समान स्थान वाले सज्जन ! ( जातवेदाः ) जिसको ज्ञान प्राप्त है वह वेदार्थ को जानने वाला ( यज्ञपतिः ) यज्ञ की पालना करने वाले के समान वर्त्तमान पुरुष ( यम् ) जिस ( शेवधिम् ) सुखनिधि परमेश्वर को ( आवहात् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे ( एतम् ) इस को ( अत्र ) इस ( परमे ) परम उत्तम ( व्योमन् ) आकाश में व्याप्त परमात्मा को मैं ( ते ) तेरे लिये जैसे ( परि ददामि ) सब प्रकार से देता हूं उपदेश करता हूं ( अन्वागन्ता ) धर्म्म के अनुकूल चलने हारा मैं ( वः ) तुम सबों के लिये जिस परमेश्वर का ( स्म ) उपदेश करूं ( तम् ) उसको तुम ( जानीत ) जानो ॥५९ ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों के अनुकूल आचरण करते हैं वे सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वर के पाने को योग्य होते हैं ॥ ५९ ॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात् पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै ॥६०॥

पदार्थ—हे ( सधस्थाः ) एक साथ स्थान वाले ( देवाः ) विद्वानो ! तुम ( परमे ) परम उत्तम ( व्योमन् ) आकाश में व्याप्त ( एतम् ) इस परमात्मा को ( जानाथ ) जानो ( अस्य ) और इसके व्यापक ( रूपम् ) सत्य चेतनमात्र आनन्दमय स्वरूप को ( विद ) जानो ( यत् ) जिस सच्चिदानन्द लक्षण परमेश्वर को ( देवयानैः ) धार्मिक विद्वानों के ( पथिभिः ) मार्गों से पुरुष ( आगच्छात् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे ( अस्मै ) इस परमेश्वर के लिए ( इष्टापूर्ते ) वेदोक्त यज्ञादि कर्म और उस के साधक स्मार्त्त कर्म को ( आविः ) प्रकाशित ( कृणवाथ ) किया करो ॥ ६० ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्वानों के सङ्ग योगाभ्यास और धर्म के आचरण से परमेश्वर को अवश्य जानें ऐसा न करें तो यज्ञ आदि श्रौत स्मार्त्त कर्मों को नहीं सिद्ध करा सकें और न मुक्ति पा सकें ॥६०॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य गालव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥६१॥

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान ऋत्विक् पुरुष ! (**त्वम्**) तू (**उद् बुध्यस्व**) उठ प्रबोध को प्राप्त हो (**प्रति जागृहि**) यजमान को अविद्यारूप निद्रा से छुड़ा के विद्या में चेतन कर तू (**च**) और (**अयम्**) यह ब्रह्मविद्या का उपदेश करने हारा यजमान वाले (**इष्टापूर्त्ते**) यज्ञसिद्धि कर्म और उसकी सामग्री को (**संसृजेथाम्**) उत्पन्न करो। हे (**विश्वे**) समग्र (**देवाः**) विद्वानो ! (**च**) और (**यजमानः**) विद्या देने तथा यज्ञ करने हारे यजमान ! तुम सब (**अस्मिन्**) इस (**सधस्थे**) एक साथ के स्थान में (**उत्तरस्मिन्**) उत्तम आसन पर (**अधि सीदत**) बैठो ॥ ६१ ॥

**भावार्थ**—जो चैतन्य और बुद्धिमान् विद्यार्थी हों वे पढ़ाने वालों को अच्छे प्रकार पढ़ाने चाहियें जो विद्या की इच्छा से पढ़ाने हारों के अनुकूल आचरण करने वाले हों और जो उनके अनुकूल पढ़ाने हारे हों वे परस्पर प्रीति से निरन्तर विद्या की बढ़ती करें और जो इन पढ़ने पढ़ाने हारों से पृथक् उत्तम विद्वान् हों वे इन विद्यार्थियों की सदा परीक्षा किया करें जिससे ये अध्यापक और विद्यार्थी लोग विद्याओं की बढ़ती करने में निरन्तर प्रयत्न किया करें वैसे ऋत्विज् यजमान और सभ्य परीक्षक विद्वान् लोग यज्ञ की उन्नति किया करें ॥ ६१ ॥

येनेत्यस्य देवश्रवदेववातावृषी । विश्वकर्माग्निर्वा देवता । निचृदाऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् ।**
**तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६२॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) पढ़ने वा पढ़ाने वाले पुरुष ! तू (**येन**) जिस पढ़ाने से (**सहस्रम्**) हजारों प्रकार के अतुल बोध को (**सर्ववेदसम्**) कि जिस में सब वेद जाने जाते हैं उस को (**वहसि**) प्राप्त होता और (**येन**) जिस पढ़ने से दूसरों को प्राप्त कराता है (**तेन**) उस से (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ को (**नः**) हम लोगों को (**देवेषु**) दिव्य गुण वा विद्वानों में (**स्वर्गन्तवे**) सुख के प्राप्त होने के लिये (**नय**) पहुँचा ॥६२॥

**भावार्थ**—जो धर्म के आचरण और निष्कपटता से विद्या देते और ग्रहण करते हैं वे ही सुख के भागी होते हैं ॥६२॥

प्रस्तरेणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्रियायज्ञ कैसे सिद्ध करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा ।**
**ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! आप (**वेद्या**) जिस में होम किया जाता है उस वेदी तथा (**स्रुचा**) होमने का साधन (**बर्हिषा**) उत्तम क्रिया (**प्रस्तरेण**) आसन (**परिधिना**) जो सब ओर धारण किया जाय उस यजुर्वेद (**च**) तथा (**ऋचा**) स्तुति वा ऋग्वेद आदि से (**इमम्**) इस प्रत्यक्षमय अर्थात् जिस में उत्तम भोजन के योग्य पदार्थ होमे जाते हैं उस (**यज्ञम्**) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (**देवेषु**) दिव्य पदार्थ वा विद्वानों में (**गन्तवे**) प्राप्त होने के लिये (**स्वः**) संसार सम्बन्धी सुख (**नः**) हम लोगों को (**नय**) पहुँचाओ ॥ ६३ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य धर्म से पाये हुए पदार्थों तथा वेद की रीति से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे सब प्राणियों के उपकारी होते हैं ॥ ६३ ॥

यद्दत्तमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः ।**
**तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥६४॥**

**पदार्थ**—हे गृहस्थ विद्वन् ! आपने (**यत्**) जो (**दत्तम्**) अच्छे धर्मात्माओं को दिया वा (**यत्**) जो (**परादानम्**) और से लिया वा (**यत्**) जो (**पूर्त्तम्**) पूर्ण सामग्री (**याः च**) और जो कर्म के अनुसार (**दक्षिणाः**) दक्षिणा दी जाती हैं (**तत्**) उस सब (**स्वः**) इन्द्रियों के सुख को (**वैश्वकर्मणः**) जिसके समग्र कर्म विद्यमान हैं उस (**अग्निः**) अग्नि के समान गृहस्थ विद्वान् आप (**देवेषु**) दिव्य धर्मसम्बन्धी व्यवहारों में (**नः**) हम लोगों को (**दधत्**) स्थापन करें ॥६४॥

**भावार्थ**—जो पुरुष और जो स्त्री गृहाश्रम किया चाहें वे विवाह से पूर्व प्रगल्भता अर्थात् अपने में बल पराक्रम परिपूर्णता आदि सामग्री कर ही के युवावस्था में स्वयम्वरविधि के अनुकूल विवाह कर धर्म से दान आदान मान सम्मान आदि व्यवहारों को करें ॥ ६४ ॥

यत्र धारा इत्यस्य विश्वकर्मर्षिः । यज्ञो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः ।**
**तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥६५॥**

**पदार्थ**—(**यत्र**) जिस यज्ञ में (**मधोः**) मधुरादि गुणयुक्त सुगन्धित द्रव्यों (**च**) और (**घृतस्य**) घृत के (**याः**) जिन (**अनपेताः**) संयुक्त (**धाराः**) प्रवाहों को विद्वान् लोग करते हैं (**तत्**) उन धाराओं से (**वैश्वकर्मणः**) सब कर्म होने का निमित्त (**अग्निः**) अग्नि (**नः**) हमारे लिये (**देवेषु**) दिव्य व्यवहारों में (**स्वः**) सुख को (**दधत्**) धारण करता है ॥ ६५ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य वेदि आदि को बना के सुगन्ध और मिष्टादियुक्त बहुत घृत को अग्नि में हवन करते हैं वे सब रोगों का निवारण करके अतुल सुख को उत्पन्न करते हैं ॥ ६५ ॥

अग्निरस्मीत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।**
**अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥६६॥**

**पदार्थ**—मैं (**जन्मना**) जन्म से (**जातवेदाः**) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (**अग्निः**) अग्नि के समान (**अस्मि**) हूं जैसे अग्नि का (**घृतम्**) घृतादि (**चक्षुः**) प्रकाशक है वैसे (**मे**) मेरे लिये हो जैसे अग्नि में अच्छे प्रकार संस्कार किया (**हविः**) हवन करने योग्य द्रव्य होमा हुआ (**अमृतम्**) सब रोगनाशक आनन्दप्रद होता है वैसे (**मे**) मेरे (**आसन्**) मुख में प्राप्त हो जैसे (**त्रिधातुः**) सत्त्व रज और तमोगुण तत्त्व जिसमें है उस (**रजसः**) लोक लोकान्तर का (**विमानः**) विमान यान के समान धारण करता (**अजस्रः**) निरन्तर गमनशील (**घर्मः**) प्रकाश के समान यज्ञ कि जिससे सुगन्ध का ग्रहण होता है (**अर्कः**) जो सत्कार का साधन जिस का (**नाम**) प्रसिद्ध होना अच्छे प्रकार शोधा हुआ हवन करने योग्य पदार्थ है वैसे मैं (**अस्मि**) हूँ ॥ ६६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अग्नि होम किये हुए पदार्थ को वायु में फैला कर दुर्गन्ध का निवारण सुगन्ध की प्रकटता और रोगों को निर्मूल (नष्ट) कर के सब प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही सब मनुष्यों को होना योग्य है ॥ ६६ ॥

ऋचो नामेत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । अग्निर्देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*अब ऋग्वेद आदि को पढ़के क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**ऋचो नामास्मि यजूंषि नामास्मि सामानि नामास्मि । ये अग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि । तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥६७॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो मैं (**ऋचः**) ऋचाओं की (**नाम**) प्रसिद्धिकर्त्ता (**अस्मि**) हूँ (**यजूंषि**) यजुर्वेद की (**नाम**) प्रख्यातिकर्त्ता (**अस्मि**) हूँ (**सामानि**) सामवेद के मन्त्रगान का (**नाम**) प्रकाशकर्त्ता (**अस्मि**) हूँ उस मुझ से वेदविद्या का ग्रहण कर (**ये**) जो (**अस्याम्**) इस (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**पाञ्चजन्याः**) मनुष्यों के हितकारी (**अग्नयः**) अग्नि (**अधि**) सर्वोपरि हैं (**तेषाम्**) उनके मध्य (**त्वम्**) तू (**उत्तमः**) अत्युत्तम (**असि**) है सो तू (**नः**) हमारे (**जीवातवे**) जीवन के लिये सत्कर्मों में (**प्र सुव**) प्रेरणा कर ॥ ६७ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य ऋग्वेद को पढ़ते वे ऋग्वेदी जो यजुर्वेद को पढ़ते वे यजुर्वेदी जो सामवेद को पढ़ते वे सामवेदी और जो अथर्ववेद को पढ़ते हैं वे अथर्ववेदी जो दो वेदों को पढ़ते हैं वे द्विवेदी जो तीन वेदों को पढ़ते वे त्रिवेदी और जो चार वेदों को पढ़ते हैं वे चतुर्वेदी जो किसी वेद को नहीं पढ़ते वे किसी संज्ञा को प्राप्त नहीं होते जो वेदवित् हों वे अग्निहोत्रादि यज्ञों से सब मनुष्यों के हित को सिद्ध करें जिससे उनकी उत्तम कीर्त्ति होवे और सब प्राणी दीर्घायु होवें ॥ ६७ ॥

वार्त्रहत्यायेत्यस्य इन्द्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*सेनाध्यक्ष कैसे विजयी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्त्तयामसि ॥६८॥**

**पदार्थ**—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त सेनापते ! जैसे हम लोग (**वार्त्रहत्याय**) विरुद्ध भाव से वर्त्तमान शत्रु के मारने में जो कुशल (**शवसे**) उत्तम बल (**पृतनाषाह्याय**) जिससे शत्रुसेना का बल सहन किया जाय उसके (**च**) और अन्य योग्य साधनों से युक्त (**त्वा**) तुझको (**आ, वर्त्तयामसि**) चारों ओर से यथायोग्य वर्त्ताया करें वैसे तू यथायोग्य वर्त्ता कर ॥ ६८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् जैसे सूर्य मेघ को वैसे शत्रुओं के मारने को शूरवीरों की सेना का सत्कार करता है वह सदा विजयी होता है ॥ ६८ ॥

सहदानुमित्यस्येन्द्रविश्वामित्रावृषी । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।**
**अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥६९॥**

पदार्थ—हे ( पुरुहूत ) बहुत विद्वानों से सत्कार को प्राप्त ( इन्द्र ) शत्रुओं को नष्ट करने हारे सेनापति ! जैसे सूर्य ( सहदानुम् ) साथ देने हारे ( क्षियन्तम् ) आकाश में निवास करने ( कुणारुम् ) शब्द करनेवाले ( अहस्तम् ) हस्त से रहित ( पियारुम् ) पान करने हारे ( अपादम् ) पादेन्द्रियरहित ( अभि, वर्द्धमानम् ) सब ओर से बढ़े हुए ( वृत्रम् ) मेघ को ( सं, पिणक् ) अच्छे प्रकार चूर्णीभूत करता है वैसे हे ( इन्द्र ) सभापति ! आप शत्रुओं को ( तवसा ) बल से ( जघन्थ ) मारा करो ॥ ६९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान प्रतापयुक्त होते हैं वे शत्रुरहित होते हैं ॥ ६९ ॥

वि न इत्यस्य शास ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब सेनापति कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र म किया है—*

**वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।**
**योऽअस्माँ२ऽअभिदासत्यधरं गमया तमः ॥७०॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम बलयुक्त सेना के पति ! तू ( मृध ) सग्रामो को ( वि, जहि ) विशेष करके जीत ( पृतन्यत ) सेनायुक्त ( न ) हमारे शत्रुओं को ( नीचा ) नीच गति को ( यच्छ ) प्राप्त कर ( य ) जो ( अस्मान् ) हम को ( अभिदासति ) नष्ट करने की इच्छा करता है उस को ( अधरम् ) अधोगतिरूप ( तम ) अन्धकार को ( गमय ) प्राप्त कर ॥ ७० ॥

भावार्थ—सेनापति को योग्य है कि सग्रामो को जीते उस विजयकारक सग्राम से नीचकर्म करनेहारों का निरोध करे राजा प्रजा मे विरोध करानेहारे को अत्यन्त दण्ड देवे ॥७०॥

मृगो नेत्यस्य जय ऋषि । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये इस विषयों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।**
**सृकꣳसꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥७१॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेनाओं के पति ! तू ( कुचर ) कुटिल चाल चलता ( गिरिष्ठा ) पर्वतों म रहता ( भीम ) भयङ्कर ( मृग ) सिंह के ( न ) समान ( परावत ) दूरदेशस्थ शत्रुओं को ( आ, जगन्थ ) चारो ओर से घेरे ( परस्या ) शत्रु की सेना पर ( तिग्मम ) अति तीव्र ( पविम ) दुष्टों को दण्ड से पवित्र करने हारे ( सृकम ) वज्र के तुल्य शस्त्र को ( सꣳशाय ) सम्यक तीव्र करके ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( वि, ताढि ) ताडित कर और ( मृध ) सग्रामो को ( वि, नुदस्व ) जीत कर अच्छे कर्मों मे प्रेरित कर ॥ ७१ ॥

भावार्थ—जो सेना के पुरुष सिंह के समान पराक्रम कर तीक्ष्ण शस्त्रो से शत्रुओं के सेनाङ्गो का छेदन कर सग्रामों को जीतते है वे अतुल प्रशंसा को प्राप्त होते हैं इतर क्षुद्राशय मनुष्य विजयसुख को प्राप्त कभी नहीं हो सकते ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्द । धैवत स्वर ॥

**वैश्वानरो न ऊतयऽ आ प्र यातु परावतः ।**
**अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥७२॥**

पदार्थ—हे सेना सभा के पति ! जैसे ( वैश्वानर ) सम्पूर्ण नरो मे विराजमान ( अग्नि ) सूर्यरूप अग्नि ( परावत ) दूरदेशस्थ सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे आप ( ऊतये ) रक्षादि के लिये ( न ) हमारे समीप ( आ, प्र, यातु ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जैसे बिजुली सब मे व्यापक होकर समीपस्थ रहती है वैसे ( न ) हमारी ( सुष्टुती ) उत्तम स्तुतियो को ( उप ) अच्छे प्रकार सुनिये ॥ ७२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सूर्य के समान दूरस्थ होकर भी न्याय से सब व्यवहारो को प्रकाशित कर देता है और जैसे दूरस्थ सत्यगुणों से युक्त सत्पुरुष प्रशंसित होता है वैसे ही राजपुरुषो को होना चाहिये ॥७२॥

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्स ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**पृष्टो दिवि पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश ।**
**वैश्वानरः सहसा पृष्टोऽअग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥७३॥**

पदार्थ—मनुष्यो से कि जो ( दिवि ) प्रकाशस्वरूप सूर्य ( पृष्ट ) जानने के योग्य ( अग्नि ) अग्नि ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( पृष्ट ) जानने को इष्ट अग्नि तथा जल और वायु में ( पृष्ट ) जानने के योग्य पावक ( सहसा ) बलादि गुणों से युक्त ( वैश्वानर ) विश्व मे प्रकाशमान ( पृष्ट ) जानने के योग्य ( अग्नि ) बिजुली रूप अग्नि ( विश्वा ) समग्र ( ओषधी ) ओषधियों में ( आ, विवेश ) प्रविष्ट हो रहा है ( स ) सो अग्नि ( दिवा ) दिन और ( सः ) वह अग्नि ( नक्तम् ) रात्रि मे जैसे रक्षा करता वैसे सेना के पति आप ( न ) हमको ( रिष ) हिंसक जन से निरन्तर ( पातु ) रक्षा करें ॥ ७३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी मे प्रकाशमान सब पदार्थों में व्यापक विद्युद्रूप अग्नि को विद्वानो से निश्चय कर कार्यों मे संयुक्त करते हैं वे शत्रुओं से निर्भय होते हैं ॥ ७३ ॥

अश्यामेत्यस्य भरद्वाज ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब प्रजा और राजपुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अश्याम तं काममग्ने तवोतीऽअश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् ।**
**अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७४॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) युद्धविद्या के जानने हारे सेनापति ! हम लोग ( तव ) तेरी ( ऊती ) रक्षा आदि की क्रिया से ( तम् ) उस ( कामम् ) कामना को ( अश्याम ) प्राप्त हो। हे ( रयिव ) प्रशस्त धन युक्त ! ( सुवीरम् ) अच्छे वीर प्राप्त होते हैं जिस से उस ( रयिम् ) धन को ( अश्याम ) प्राप्त हो ( वाजयन्त ) सग्राम करते कराते हुए हम लोग ( वाजम् ) सग्राम मे विजय को ( अभ्यश्याम ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो। हे ( अजर ) वृद्धपन से रहित सेनापते ! हम लोग ( ते ) तेरे प्रताप से ( अजरम् ) अक्षय ( द्युम्नम् ) धन और कीर्ति को ( अश्याम ) प्राप्त हों ॥७४॥

भावार्थ—प्रजा के मनुष्यो को योग्य है कि राजपुरुषो की रक्षा से और राजपुरुष प्रजाजन की रक्षा से परस्पर सब इष्ट कामो को प्राप्त हो ॥ ७४ ॥

वयमित्यस्योत्कील ऋषि । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*पुरुषार्थ से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।**
**यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रोऽअग्ने ॥७५॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( उत्तानहस्ता ) उत्कृष्टता से अभय देने हारे हस्तयुक्त ( वयम ) हम लोग ( ते ) आपके ( नमसा ) सत्कार से ( उपसद्य ) समीप प्राप्त होके ( अद्य ) आज ही ( कामम् ) कामना को ( हि ) निश्चय ( ररिम ) देते हैं जैसे ( विप्र ) बुद्धिमान् ( अस्रेधता ) इधर उधर गमन अर्थात् चञ्चलता रहित स्थिर ( मन्मना ) बल और ( यजिष्ठेन ) अतिशय करके सयमयुक्त ( मनसा ) चित्त से ( देवान् ) विद्वानो और शुभ गुणो को प्राप्त होता है और जैसे तू ( यक्षि ) शुभ कर्मों मे युक्त हो हम भी वैसे ही सङ्गत होवे ॥ ७५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थ मे पूर्ण कामना वाले हों वे विद्वानो के सङ्ग से इस विषय को प्राप्त होने को समर्थ होवें ॥ ७५ ॥

धामच्छदग्निरित्यस्योत्कील ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब सब विद्वानों को जो करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पति ।**
**सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥७६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( देव ) विद्वान् ( धामच्छत ) जन्म स्थान नाम का विस्तार करने हारे ( अग्नि ) पावक ( इन्द्र ) विद्युत् के समान अमात्य और राजा ( ब्रह्मा ) चारो वेदो का जानने हारा ( बृहस्पति ) वेदवाणी का पठन पाठन से पालन करने हारा ( सचेतस ) विज्ञान वाले ( विश्वे देवा ) सब विद्वान् लोग ( न ) हमारे ( शुभे ) कल्याण के लिये ( यज्ञम ) विज्ञान योगरूप क्रिया को ( प्र अवन्तु ) अच्छे प्रकार कामना करें ॥ ७६ ॥

भावार्थ—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यादि प्राणियो के कल्याणार्थ निरन्तर सत्य उपदेश करें ॥ ७६ ॥

त्वमित्यस्योशना ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब सभापति तथा सेनापति के कर्त्तव्य को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।**
**रक्षा तोकमुत त्मना ॥७७॥**

पदार्थ—हे ( यविष्ठ ) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त राजन् ! ( त्वम् ) तू ( दाशुष ) विद्यादाता ( नॄन् ) मनुष्यो की ( पाहि ) रक्षा कर और इन की ( गिर ) विद्यायुक्त वाणियों को ( शृणुधि ) सुन। जो वीर पुरुष युद्ध मे मर जावे उसके ( तोकम् ) छोटे सन्तानो की ( उत ) और स्त्री आदि की भी ( त्मना ) आत्मा से ( रक्ष ) रक्षा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थ—सभा और सेना के अधिष्ठाताओं को दो कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं, एक विद्वानों का पालन और उनके उपदेश का श्रवण, दूसरा युद्ध मे मरे हुओं के सन्तान स्त्री आदि का पालन, ऐसे आचरण करनेवाले पुरुषो के सदैव विजय धन और सुख की वृद्धि होती है ॥ ७७ ॥

इस अठारहवें अध्याय मे गणितविद्या राजा प्रजा और पढ़ने पढ़ाने हारे पुरुषों के कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पूर्व अध्याय मे कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह यजुर्वेद भाष्य का अठारहवां ( १८ ) अध्याय पूरा हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथ एकोनविंशाऽध्यायारम्भः 卐

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

**स्वाद्वीमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब उन्नीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है—*

**स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन मधुमतीम्मधुमता सृजामि सꣳसोमेन सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥१॥**

**पदार्थ**—हे वैद्यराज ! जो तू ( **सोमः** ) सोम के सदृश ऐश्वर्ययुक्त ( **असि** ) है उस ( **त्वा** ) तुझ को ओषधियों की विद्या में ( **सं सृजामि** ) अच्छे प्रकार उत्तम शिक्षायुक्त करता हूँ जैसे मैं जिस ( **स्वादुना** ) मधुर रसादि के साथ ( **स्वाद्वीम्** ) सुस्वादयुक्त ( **तीव्रेण** ) शीघ्रकारी तीक्ष्ण स्वभाव सहित ( **तीव्राम्** ) तीक्ष्ण स्वभावयुक्त को ( **अमृतेन** ) सर्वरोगापहारी गुण के साथ ( **अमृताम्** ) नाशरहित ( **मधुमता** ) स्वादिष्ट गुणयुक्त ( **सोमेन** ) सोमलता आदि से ( **मधुमतीम्** ) प्रशस्त मीठे गुणों से युक्त ओषधि को सम्यक् सिद्ध करता हूँ वैसे तू इस को ( **अश्विभ्याम्** ) विद्यायुक्त स्त्री पुरुषों सहित ( **पच्यस्व** ) पका ( **सरस्वत्यै** ) उत्तम शिक्षित वाणी से युक्त स्त्री के अर्थ ( **पच्यस्व** ) पका ( **सुत्राम्णे** ) सब को दुःख से अच्छे प्रकार बचाने वाले ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये ( **पच्यस्व** ) पका ॥ १ ॥

**भावार्थ**— मनुष्यों को योग्य है कि वैद्यकशास्त्र की रीति से अनेक मधुरादि प्रशंसित स्वादयुक्त अत्युत्तम ओषधों को सिद्ध कर उन के सेवन से आरोग्य को प्राप्त होकर धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्न किया करें ॥ १ ॥

**परीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सोमो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।**
**दधन्वान् यो नर्योऽअप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! ( **यः** ) जो ( **उत्तमम्** ) उत्तम श्रेष्ठ ( **हविः** ) खाने योग्य अन्न ( **सोमः** ) प्रेरणा करने हारा विद्वान् ( **इतः** ) प्राप्त होवे ( **यः** ) जो ( **नर्यः** ) मनुष्यों में उत्तम ( **दधन्वान्** ) धारण करता हुआ ( **अप्सु** ) जलों के ( **अन्तः** ) मध्य में ( **आसुषाव** ) सिद्ध करे उस ( **अद्रिभिः** ) मेघों में ( **सुतम्** ) उत्पन्न हुए ( **सोमम्** ) ओषधिगण को तुम लोग ( **परिसिञ्चत** ) सब ओर से सींच के बढ़ाओ ॥ २ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम ओषधियों को जल में घोल मथन कर सार रस को निकाल इस से यथायोग्य जाठराग्नि का सेवन करके बल और आरोग्यता को बढ़ाया करें ॥ २ ॥

**वायोरित्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमोऽअतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा । वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमोऽअतिद्रुतः इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! जो ( **सोमः** ) सोमलतादि ओषधियों का गुण ( **प्राङ्** ) जो प्रकृष्टता से ( **अतिद्रुतः** ) शीघ्रगामी ( **वायोः** ) वायु से ( **पवित्रेण** ) शुद्ध करनेवाले कर्म से ( **पूतः** ) पवित्र ( **इन्द्रस्य** ) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव का ( **युज्यः** ) योग्य ( **सखा** ) मित्र के समान रहता है और जो ( **सोमः** ) सिद्ध किया हुआ ओषधियों का रस ( **प्रत्यङ्** ) प्रत्यक्ष शरीरों से युक्त हो के ( **अतिद्रुतः** ) अत्यन्त वेग वाला ( **वायोः** ) वायु से ( **पवित्रेण** ) पवित्रता कर के ( **पूतः** ) शुद्ध और ( **इन्द्रस्य** ) परमैश्वर्ययुक्त राजा का ( **युज्यः** ) अतियोग्य ( **सखा** ) मित्र के समान है उसका तुम निरन्तर सेवन किया करो ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जो ओषधि शुद्ध स्थल जल और वायु में उत्पन्न होती और पूर्व और पश्चात् होने वाले रोगों का शीघ्र निवारण करती हैं उन का मनुष्य लोग मित्र के समान सदा सेवन करें ॥ ३ ॥

**पुनातीत्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्षी गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

**पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता ।**
**वारेण शश्वता तना ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! जो ( **तना** ) विस्तीर्ण प्रकाश से ( **सूर्यस्य** ) सूर्य की ( **दुहिता** ) कन्या के समान उषा ( **शश्वता** ) अनादिरूप ( **वारेण** ) ग्रहण करने योग्य स्वरूप से ( **ते** ) तेरे ( **परिस्रुतम्** ) सब ओर से प्राप्त ( **सोमम्** ) ओषधियों के रस को ( **पुनाति** ) पवित्र करती है उस में तू ओषधियों के रस का सेवन कर ॥४॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सूर्योदय से पूर्व शौचकर्म करके यथानुकूल ओषधि का सेवन करते हैं वे रोगरहित हो कर सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

**ब्रह्मेत्यस्याभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥५॥**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) सुखदाता विद्वन् ! जो ( **शुक्रेण** ) शीघ्र शुद्ध करने हारे व्यवहार से ( **मदाय** ) आनन्द के लिये ( **सुरया** ) उत्पन्न होती हुई क्रिया से ( **सुतः** ) उत्पादित ( **आसुतः** ) अच्छे प्रकार रोगनिवारण के निमित्त सेवित ( **सोमः** ) ओषधियों का रस ( **तेजः** ) प्रगल्भता ( **इन्द्रियम्** ) मन आदि इन्द्रियगण ( **ब्रह्म** ) ब्रह्मवित् कुल और ( **क्षत्रम्** ) न्यायकारी क्षत्रिय कुल को ( **पवते** ) पवित्र करता है उस ( **रसेन** ) रस से युक्त ( **अन्नम्** ) अन्न को ( **यजमानाय** ) धर्मात्मा जन के लिये ( **धेहि** ) धारण कर ( **देवताः** ) विद्वानों को ( **पिपृग्धि** ) प्रसन्न कर ॥५॥

**भावार्थ**—इस जगत् में किसी मनुष्य को योग्य नहीं है कि जो श्रेष्ठ रस के विना अन्न खावे सदा विद्या शूरवीरता बल और बुद्धि की वृद्धि के लिये महौषधियों के सारों को सेवन करना चाहिए ॥ ५ ॥

**कुविदङ्गेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽएष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥६॥**

**पदार्थ**—हे ( **अङ्ग** ) मित्र ! ( **ये** ) जो ( **बर्हिषः** ) अन्नादि की प्राप्ति करानेवाले ( **यवमन्तः** ) यवादि धान्ययुक्त किसान लोग ( **नमउक्तिम्** ) अन्नादि की वृद्धि के लिये उपदेश ( **यजन्ति** ) देते हैं ( **एषाम्** ) उनके पदार्थों का ( **इहेह** ) इस संसार और इस व्यवहार में तू ( **भोजनानि** ) पालन वा भोजन आदि ( **कृणुहि** ) किया कर ( **यथा** ) जैसे ये किसान लोग ( **यवम्** ) यव को ( **चित्** ) भी ( **वियूय** ) तुषादि से पृथक् कर ( **अनुपूर्वम्** ) पूर्वापर की योग्यता से ( **दान्ति** ) काटते हैं वैसे तू इनके विभाग से ( **कुवित्** ) बड़ा बल प्राप्त कर जिस ( **ते** ) तेरी उन्नति का ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) कारण है उस ( **त्वा** ) तुझ को ( **अश्विभ्याम्** ) प्रकाश भूमि की विद्या के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **सरस्वत्यै** ) कृषिकर्म प्रचार करने हारी उत्तम वाणी के लिये ( **त्वा** ) तुझ के ( **इन्द्राय** ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ( **सुत्राम्णे** ) अच्छे रक्षक के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **तेजसे** ) प्रगल्भता के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **वीर्याय** ) पराक्रम के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **बलाय** ) बल के लिये जो प्रसन्न करते हैं वा जिन से तू ( **उपयामगृहीतः** ) श्रेष्ठ व्यवहारों से स्वीकार किया हुआ ( **असि** ) है उन के साथ तू विहार कर ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने, राज्य में कर देने और परिश्रम करनेवाले मनुष्यों को प्रीति से रखते और सत्य उपदेश करते हैं वे इस संसार में सौभाग्य वाले होते हैं ॥ ६ ॥

**नानेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराड् जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*राजा और प्रजा कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोमऽएष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥७॥**

**पदार्थ**—हे राजा और प्रजा के जनो ! (नाना) अनेक प्रकार (सदस्कृतम्) स्थान किया हुआ (देवहितम्) विद्वानो का प्रियाचरण (वाम्) तुम दोनो को प्राप्त होवे जो (हि) निश्चय से (स्वाम्) अपने (योनिम्) कारण को (आविशन्ती) अच्छा प्रवेश करती हुई (शुष्मिणी) बहुत बल करनेवाली (सुरा) सोमवल्ली आदि की लता है (त्वम्) वह (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) बुद्धिरूप अवकाश मे वर्त्तमान (असि) है उस को तुम दोनो प्राप्त होओ और प्रमादकारी पदार्थों का (मा) मत (संसृक्षाथाम्) संग किया करो हे विद्वत्पुरुष ! जो (एष) यह (सोम) सोमादि ओषधिगण है उस का तथा (मा) मुझ को तू (मा) मत (हिंसी) नष्ट कर ॥७॥

**भावार्थ**—जो राजा प्रजा के सम्बन्धी मनुष्य बुद्धि बल आरोग्य और आयु बढ़ानेहारे ओषधियो के रसों को सदा सेवन करते और प्रमादकारी पदार्थों का सेवन नही करते वे इस जन्म और परजन्म मे धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥ ७ ॥

**उपयामगृहीत इत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषि । सोमो देवता । पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—*

**उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥८॥**

**पदार्थ**—हे राजप्रजाजन ! जो तू (उपयामगृहीत) प्राप्त धर्मयुक्त यमसम्बन्धी नियमो से संयुक्त (असि) है जिस (ते) तेरा (एष) यह (योनि) घर है उस तेरा जो (आश्विनम्) सूर्य और चन्द्रमा के रूप के समान (तेज) तीक्ष्ण कोमल तेज (सारस्वतम्) विज्ञानयुक्त वाणी का (वीर्यम्) तेज (ऐन्द्रम्) बिजुली के समान (बलम्) बल हो उस (त्वा) तुझ को (मोदाय) हर्ष के लिये (त्वा) तुझ को (आनन्दाय) परम सुख के अर्थ (त्वा) तुझे (महसे) महापराक्रम के लिये सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सूर्य चन्द्रमा के समान तेजस्वी विद्या पराक्रम वाले बिजुली के तुल्य अति बलवान् होके आप आनन्दित हों और अन्य सब को आनन्द किया करते हैं वे यहाँ परमानन्द को भोगते हैं ॥ ८ ॥

**तेजोसीत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषि । सोमो देवता । शक्वरीछन्द । धैवत स्वर ॥**

**तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥९॥**

**पदार्थ**—हे सकल शुभगुणाकर राजन् ! जो तेरे मे (तेज) तेज (असि) है उस (तेज) तेज को (मयि) मेरे मे (धेहि) धारण कीजिये जो तेरे मे (वीर्यम्) पराक्रम (असि) है उस (वीर्यम्) पराक्रम को (मयि) मुझ मे (धेहि) धरिये जो तेरे मे (बलम्) बल (असि) है उस (बलम्) बल को (मयि) मुझ मे भी (धेहि) धरिये जो तेरे मे (ओज) प्राण का सामर्थ्य (असि) है उस (ओज) सामर्थ्य को (मयि) मुझ मे (धेहि) धरिये जो तुझ में (मन्यु) दुष्टो पर क्रोध (असि) है उस (मन्युम्) क्रोध को (मयि) मुझ मे (धेहि) धरिये जो तुझ मे (सह) सहनशीलता (असि) है उस (सह) सहनशीलता को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धारण कीजिये ॥९॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यो के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि जिन शुभ गुण कर्म स्वभावों को विद्वान् लोग धारण करें उन को औरों मे भी धारण करावें और जैसे दुष्टाचारी मनुष्यो पर क्रोध करें वैसे धार्मिक मनुष्यो मे प्रीति भी निरन्तर किया करें ॥९॥

**या व्याघ्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । सोमो देवता । आर्ष्युष्णिक छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति ।
श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥१०॥**

**पदार्थ**—(या) जो (विषूचिका) विविध अर्थों की सूचना करने हारी राजा की राणी (व्याघ्रम्) जो कूद के मारता है उस बाघ को (वृकम्) बकरे आदि को मारने हारा भेड़िया (उभौ) इन दोनो को (पतत्रिणम्) शीघ्र चलने के लिये बहुवेग वाले और (श्येनम्) शीघ्र धावन करके अन्य पक्षियो को मारने हारे पक्षी और (सिंहम्) हस्ति आदि को (च) भी मारने वाले दुष्ट पशु को मार के प्रजा की (रक्षति) रक्षा करती है (सा) सो राणी (इमम्) इस राजा को (अंहस) अपराध से (पातु) रक्षा करे ॥१०॥

**भावार्थ**—जैसे शूरवीर राजा स्वयं व्याघ्रादि को मारने न्याय से प्रजा की रक्षा करने और अपनी स्त्री को प्रसन्न करने को समर्थ होता है वैसे ही राजा की राणी भी होवे जैसे अच्छे प्रिय आचरण से राणी अपने पति राजा को प्रमाद से पृथक करके प्रसन्न करती है वैसे राजा भी अपनी स्त्री को सदा प्रसन्न करे ॥१०॥

**यदापिपेषेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरीछन्द । धैवत स्वर ॥**

*सन्तानों को अपने माता पिता के साथ कैसे वर्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्नेऽअनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥११॥**

**पदार्थ**—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यत) जो (प्रमुदित) अत्यन्त आनन्दयुक्त (पुत्र) पुत्र दुग्ध को (धयन्) पीता हुआ (मातरम्) माता को (आपिपेष) सब ओर से पीड़ित करता है उस पुत्र से मैं (अनृण) ऋणरहित (भवामि) होता हूँ जिस से मेरे (पितरौ) माता पिता (अहतौ) हननरहित और (मया) मुझ से (भद्रेण) कल्याण के साथ वर्त्तमान हों । हे मनुष्यो ! तुम (सम्पृच) सत्यसम्बन्धी (स्थ) हो (मा) मुझ को कल्याण के साथ (सं, पृङ्क्त) संयुक्त करो और (पाप्मना) पाप से (विपृच) पृथक रहने हारे (स्थ) हो इसलिये (मा) मुझे भी इस पाप से (विपृङ्क्त) पृथक कीजिये और (तदेतत्) परजन्म तथा इस जन्म के सुख को प्राप्त कीजिये ॥११॥

**भावार्थ**—जैसे माता पिता पुत्र का पालन करते हैं वैसे पुत्र को माता पिता की सेवा करनी चाहिये सब मनुष्यों को इस जगत् मे ध्यान देना चाहिये कि हम माता पिता का यथावत् सेवन करके पितृऋण से मुक्त होवें जैसे विद्वान् धार्मिक माता पिता अपने सन्तानो को पापरूप आचरण से पृथक करके धर्माचरण मे प्रवृत्त करें वैसे सन्तान भी अपने माता पिता को वर्त्ताव करावें ॥११॥

**देवा यज्ञमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । विद्वांसो देवता । भुरिगनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*माता पिता और सन्तान परस्पर कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रियाणि) उत्तम प्रकार विषयग्राहक नेत्र आदि इन्द्रियो वा धनो को (दधत) धारण करते हुए (भिषक) चिकित्सा आदि वैद्यकशास्त्र के अङ्गों को जानने हारी (सरस्वती) प्रशस्त वैद्यकशास्त्र के ज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री और (भिषजा) आयुर्वेद के जानने हारे (अश्विना) ओषधि विद्या मे व्याप्तबुद्धि दो उत्तम विद्वान् वैद्य ये तीनो और (देवा) उत्तम ज्ञानीजन (वाचा) वाणी से (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (भेषजम्) रोगविनाशक औषध रूप (यज्ञम्) सुख देने वाले यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करें वैसे ही तुम लोग भी करो ॥१२॥

**भावार्थ**—जबतक मनुष्य लोग पथ्य ओषधि और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर के आरोग्य बल और बुद्धि को नही बढ़ाते तबतक सब सुखों के प्राप्त होने को समर्थ नही होते ॥१२॥

**दीक्षायामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—*

**दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (प्रायणीयस्य) जिस व्यवहार से उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं उसमे होने वाले की (दीक्षायै) यज्ञ के नियम रक्षा के लिये (रूपम्) सुन्दर रूप और (तोक्मानि) अपत्य (क्रयस्य) द्रव्यो के बेचने का (रूपम्) रूप (शष्पाणि) छाँट फटक कर शुद्ध करने योग्य धान्य (सोमस्य) सोमलतादि के रस के सम्बन्धी (लाजा) परिपक्व फूले हुए अन्न (सोमांशवः) सोम के विभाग और (मधु) सहत हैं उनको तुम लोग विस्तृत करो ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे पूर्व मन्त्र से अतन्वत इस क्रियापद की अनुवृत्ति आती है जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सन्तान और पदार्थों को सिद्ध करते हैं वे इस संसार मे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

**आतिथ्यरूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*कैसे जन कीर्ति वाले होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुराहुता ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (मासरम्) जिससे अतिथिजन महीनों में रमण करते हैं ऐसे (आतिथ्यरूपम्) अतिथियो का होना वा उनका सत्काररूप कर्म वा बड़े

वीर ( महावीरस्य ) पुरुष का ( नग्नहु ) जो नग्न अकिञ्चनो का धारण करता है वह ( रूपम् ) रूप वा ( उपसदाम् ) गृहस्थादि के समीप मे भोजनादि के अर्थ ठहरने हारे अतिथियो का ( तिस्र ) तीन ( रात्री ) रात्रियो मे निवास कराना (एतत्) यह रूप वा ( सुरा ) सोमरस ( आसुता ) सब ओर से सिद्ध की हुई क्रिया है उन सबका तुम लोग ग्रहण करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धार्मिक विद्वान् अतिथियो के सत्कार सङ्ग और उपदेशों को और वीरो के मान्य तथा दरिद्रो को वस्त्रादि दान अपने भृत्यो को निवास देना और सोमरस की सिद्धि का सदा करते हैं वे कीर्त्तिमान् होते हैं ॥ १४ ॥

सोमस्येत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । सोमो देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*कुमारी कन्याओं को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

सोमस्य रूप क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते ।

अश्विभ्यां दुग्ध भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥१५॥

पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! जसे ( सरस्वत्या ) विदुषी स्त्री से ( क्रीतस्य ) ग्रहण किये हुए ( सोमस्य ) सोमादि ओषधिगण का ( परिस्रुत ) सब ओर से प्राप्त होने वाला रस ( रूपम् ) सुस्वरूप और ( अश्विभ्याम् ) वदिक विद्या मे पूर्ण दो विद्वानों के लिये ( दुग्धम् ) दुग्ध हुआ ( भेषजम् ) औषधरूप दूध तथा ( इन्द्राय ) ऐश्वय चाहने वाले के लिये ( ऐन्द्रम् ) विद्युत्सम्बन्धी विशेष ज्ञान (परिषिच्यते) सब ओर से सिद्ध किया जाता है वैसे तुम भी आचरण करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब कुमारियो को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण धर्म्म विद्या और आयुर्वेदादि को पढ़ स्वयवर विवाह कर ओषधियो को और ओषधिवत् अन्न और दाल कढी आदि को अच्छा पका उत्तम रसो से युक्त कर, पति आदि को भोजन करा तथा स्वयं भोजन करके बल आरोग्य की सदा उन्नति किया करें ॥ १५ ॥

आसन्दीत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*मनुष्य को कैसे कार्य्य साधना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी ।

अन्तरऽउत्तरवेद्या रूप कारोतरो भिषक् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगो को योग्य है कि यज्ञ के लिये ( आसन्दी ) जो सब ओर से सेवन की जाती है वह ( रूपम् ) सुन्दर क्रिया ( राजासन्द्यै ) राजा लोग जिसमे बैठते है उस ( वेद्यै ) सुख प्राप्ति कराने वाली वेदि के अर्थ ( कुम्भी ) धान्यादि पदार्थों का आधार ( सुराधानी ) जिसम सोमरस धरा जाता है वह गगरी (अन्तर) जिससे जीवन होता है यह अन्नादि पदार्थ ( उत्तरवेद्या ) उत्तर की वेदी के ( रूपम् ) रूप को ( कारोतर ) कर्मकारी और (भिषक) वद्य इन सब का सग्रह करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिस जिस काय के करने की इच्छा करे उस उसके समस्त साधनो का सञ्चय कर ॥ १६ ॥

वेद्या वेदिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । यज्ञो देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*किन जनों के कार्य्य सिद्ध होत हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

वेद्या वेदि: समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ।

यूपेन यूप आप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग ( वेद्या ) यज्ञ की समग्री से (वेदि ) वेदि और ( बर्हिषा ) महान् पुरुषार्थ से ( बर्हि ) बडा ( इन्द्रियम् ) धन ( समाप्यते ) अच्छी प्रकार प्राप्त किया जाता है ( यूपेन ) मिले हुए वा पृथक पृथक व्यवहार से ( यूप ) मिला हुआ व्यवहार के यत्न का प्रकाश और ( अग्निना ) बिजुली आदि अग्नि स (प्रणीत ) अच्छे प्रकार सम्मिलित (अग्नि ) अग्नि (आप्यते) प्राप्त कराया जाता है । वसे ही तुम लोग भी साधनो से साधन मिला कर सब सुखो को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम साधन से साध्य कार्य्य को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे ही साध्य की सिद्धि करने वाले होते हैं ॥ १७ ॥

हविर्धानमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । गृहपतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगल मन्त्र में कहा है—*

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृत पत्नीशाल गार्हपत्यः ॥१८॥

पदार्थ—हे गृहस्थ पुरुषो ! जसे विद्वान् ( अश्विना ) स्त्री और पुरुष (यत्) जो ( हविर्धानम् ) देने वा लेने योग्य पदार्थों का धारण जिसमे किया जाता वह और ( यत् ) जो ( सरस्वती ) विदुषी स्त्री ( आग्नीध्रम् ) ऋत्विज् का धारण करती हुई तथा विद्वानो ने (इन्द्राय) ऐश्वय से सुख देने हारे पति के लिये ( ऐन्द्रम ) ऐश्वर्य के सम्बन्धी ( सद ) जिसमे स्थित होते हैं उस सभा और ( पत्नीशालम् ) पत्नी की शाला घर को ( कृतम् ) किया है सो यह सब ( गार्हपत्य ) गृहस्थ का सयोगी धर्म ही है वैसे उस सब कर्त्तव्य का तुम भी करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालकार है । हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विज् लोग सामग्री का सञ्चय करके यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे प्रीतियुक्त स्त्री पुरुष घर के कार्यों को नित्य सिद्ध किया करें ॥ १८ ॥

प्रैषेभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*कैसा विद्वान् सुख को प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

प्रैषेभि: प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य ।

प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥१९॥

पदार्थ—जो विद्वान् ( प्रैषभि ) भेजने रूप कर्मों से ( प्रैषान् ) भेजने योग्य भृत्यो को (आप्रीभि ) सब ओर से प्रसन्नता करने हारी क्रियाओं से (आप्री ) सर्वथा प्रीति उत्पन्न करनहारी परिचारिका स्त्रियो को ( प्रयाजभि ) उत्तम यज्ञ के कर्मों से ( अनुयाजान् ) अनुकूल यज्ञ पदार्थों को और ( यज्ञस्य ) यज्ञ की ( वषट्कारेभि ) क्रियाओ से ( आहुति ) अग्नि मे छोड़ने योग्य आहुतियो को प्राप्त होता है वह सुखी रहता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो सुशिक्षित सेवकों तथा सेविकाओ वाला साधनो और उपसाधनो से युक्त श्रेष्ठ कार्यों को करता है वह सबको सुखी करने मे समथ होता है ॥ १९ ॥

पशुभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । यजमानो देवता । भुरिगुष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

पशुभि: पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीꣳष्या ।

छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जसे सद्गृहस्थ ( पशुभि ) गवादि पशुओ से (पशून्) गवादि पशुओ का (पुरोडाश ) पचन क्रियाओ स पक हुए उत्तम पदार्थों से (हवींषि) हवन करन योग्य उत्तम पदार्थों का ( छन्दोभि ) गायत्री आदि छन्दो की विद्या से ( सामिधेनी ) जिनसे अग्नि प्रदीप्त हो उन सुन्दर समिधाओ का ( याज्याभि ) यज्ञ की क्रियाओ से (वषट्कारान्) जो धर्मयुक्त क्रिया का करते हैं उनको ( आ आप्नोति ) प्राप्त होता है वसे इनका तुम भी प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो इस ससार में बहुत पशु वाला होम करके हुतशेष का भोक्ता वेदवित् और सत्य क्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशसा को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

धाना करम्भ इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । सोमो देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*कौन पदाथ होम के योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

धाना: करम्भः सक्तव: परीवाप: पयो दधि ।

सोमस्य रूपꣳहविषऽआमिक्षा वाजिनम्मधु ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( हविष ) होम करने योग्य ( सोमस्य ) यन्त्र द्वारा खींचने योग्य ओषधिरूप रस के ( रूपम् ) रूप को ( धाना ) भुने हुए अन्न ( करम्भ ) मथन का साधन ( सक्तव ) सत्तू (परीवाप ) सब ओर से बीज का बोना ( पय ) दूध ( दधि ) दही ( आमिक्षा ) दही दूध मीठ का मिलाया हुआ ( वाजिनम ) प्रशस्त अन्नो की सम्बन्धी सार वस्तु ( मधु ) और सहत के गुण को जानो ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ पुष्टिकारक सुगन्धयुक्त मधुर और रोगनाशक गुणयुक्त हैं वे होम करने के योग्य हवि सज्ञक हैं ॥ २१ ॥

धानानामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । यज्ञो देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वरः ॥

*कसे मनुष्य नीरोग रहत हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—*

धानानाꣳ रूप कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।

सक्तूनाꣳरूपम्बदरमुपवाका: करम्भस्य ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( धानानाम ) भुजे हुए जौ आदि अन्नों का ( कुवलम ) कोमल बेर सा रूप ( परीवापस्य ) पिसान आदि का ( गोधूमाः ) गेहूँ ( रूपम ) रूप ( सक्तूनाम् ) सत्तुओ का ( बदरम् ) बेरफल के समान रूप ( करम्भस्य ) दही मिले हुए सत्तू का ( उपवाका ) समीप प्राप्त जौ ( रूपम् ) रूप है ऐसा जाना करो ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब अन्नो का सुन्दर रूप करके भोजन करते और कराते हैं वे आरोग्य को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

पयसो रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । सोमो देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

पयसो रूप यद्यवा दध्नो रूप कर्कन्धूनि ।

सोमस्य रूप वाजिनꣳ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥२३॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जो (यवाः) यव हैं उनको (पयसः) पानी वा दूध के (रूपम्) रूप (कर्कन्धूनि) मोटे पके हुए बेरी के फलों के समान (दध्नः) दही के (रूपम्) स्वरूप (वाजिनम्) बहुत अन्न के सार के समान (सोमस्य) सोम ओषधि के (रूपम्) स्वरूप और (आमिक्षा) दूध दही के संयोग से बने पदार्थ के समान (सौम्यस्य) सोमादि ओषधियों के सार होने के (रूपम्) स्वरूप को सिद्ध करो ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिस जिस अन्न का सुन्दररूप जिस प्रकार हो उस उस के रूप को उसी प्रकार सदा सिद्ध करें ॥ २३ ॥

**आ श्रावयेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*कैसे विद्वान् होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावोऽअनुरूपः ।**
**यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! तू विद्यार्थियों को विद्या (आ, श्रावय) सब प्रकार से सुना जो (स्तोत्रियाः) स्तुति करने योग्य हैं उनको (प्रत्याश्रावः) पीछे सुनाया जाता है और (अनुरूपः) अनुकूल जैसा यज्ञ है वैसे (येयजामहाः) जो यज्ञ करते हैं (इति) इस प्रकार अर्थात् उन के समान (प्रगाथाः) जो अच्छे प्रकार गान किये जाते हैं उनको (यजेति) सङ्गत कर इस प्रकार (धाय्यारूपम्) धारण करने योग्य रूप को यथावत् जानें ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—जो परस्पर प्रीति से विद्या के विषयों को सुनते और सुनाते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥ २४ ॥

**अर्द्धऋचैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अध्यापकों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**अर्द्धऽऋचैरुक्थानाᳬं रूपं पदैराप्नोति निविदः ।**
**प्रणवैः शस्त्राणाᳬं रूपं पयसा सोमऽआप्यते ॥२५॥**

**पदार्थ**—जो विद्वान् (अर्द्धऋचैः) ऋचाओं के अर्द्ध भागों से (उक्थानाम्) कथन करने योग्य वैदिक स्तोत्रों का (रूपम्) स्वरूप (पदैः) सुबन्त तिङन्त पदों और (प्रणवैः) ओंकारों से (शस्त्राणाम्) शस्त्रों का (रूपम्) स्वरूप और (निविदः) जो निश्चय से प्राप्त होते हैं उनको (आप्नोति) प्राप्त होता है वा जिस विद्वान् से (पयसा) जल के साथ (सोमः) सोम ओषधि का रस (आप्यते) प्राप्त होता है सो वेद का जानने वाला कहाता है ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् के समीप बस के पढ़ के वेदस्थ पद वाक्य मन्त्र विभागों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों का यथावद्विज्ञान करते हैं वे संसार में अध्यापक होते हैं ॥ २५ ॥

**अश्विभ्यामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*सत्पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् ।**
**वैश्वदेवᳬं सरस्वत्या तृतीयमाप्तᳬं सवनम् ॥२६॥**

**पदार्थ**—जिन मनुष्यों ने (अश्विभ्याम्) सूर्य्य चन्द्रमा से प्रथम (प्रातःसवनम्) प्रातःकाल यज्ञक्रिया की प्रेरणा (इन्द्रेण) बिजुली से (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य्य कारक दूसरा (माध्यन्दिनम्) मध्याह्न में होने और (सवनम्) आरोग्यता करने वाला होमादि कर्म और (सरस्वत्या) सत्यवाणी से (वैश्वदेवम्) सम्पूर्ण विद्वानों के सत्कार रूप (तृतीयम्) तीसरा सवन अर्थात् सायंकाल की क्रिया को यथावत् (आप्तम्) प्राप्त किया है वे जगत् के उपकारक हैं ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—जो भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनों कालों में सब मनुष्यादि प्राणियों का हित करते हैं वे जगत् में सत्पुरुष होते हैं ॥ २६ ॥

**वायव्यैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*विद्वान् को कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।**
**कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥२७॥**

**पदार्थ**—जो विद्वान् (वायव्यैः) वायु में होने वाले गुणों वा वायु जिनका देवता दिव्यगुणोत्पादक है उन पदार्थों से (वायव्यानि) वायु में होने वा वायु देवता वाले कर्मों को (सतेन) विभागयुक्त कर्म से (द्रोणकलशम्) द्रोणपरिमाण और कलश को (आप्नोति) प्राप्त होता है (कुम्भीभ्याम्) धान्य और जल के पात्रों से (अम्भृणौ) जिनसे जल धारण किया जाता है उन (सुते) सिद्ध किये हुए दो प्रकार के रसों को (स्थालीभिः) जिनमें पदार्थ धरते वा पकाते हैं उन स्थालियों से (स्थालीः) स्थालियों को (आप्नोति) प्राप्त होता है वही धनाढ्य होता है ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—कोई भी मनुष्य वायु के कर्मों को न जान कर इसके कारण के विना परिमाणविद्या को इस विद्या के विना पाकविद्या को और इसके विना अन्न के संस्कार की क्रिया को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २७ ॥

**यजुर्भिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*सब लोग वेद का अभ्यास करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः ।**
**छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथऽआप्यते ॥२८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को जिन (यजुर्भिः) यजुर्वेदोक्त विद्या के अवयवों से (ग्रहाः) जिन से समस्त क्रियाकाण्ड का ग्रहण किया जाता है वे व्यवहार (ग्रहैः) ग्रहों से (स्तोमाः) पदार्थों के गुणों की प्रशंसा (च) और (विष्टुतीः) विविध स्तुतियां (छन्दोभिः) गायत्र्यादि छन्द वा विद्वान् और गुणों की स्तुति करने वालों से (उक्थाशस्त्राणि) कथन करने योग्य वेद के स्तोत्र और शस्त्र (आप्यन्ते) प्राप्त होते हैं तथा (साम्ना) सामवेद से (अवभृथः) शोधन (आप्यते) प्राप्त होता है उन का उपयोग यथावत् करना चाहिये ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—कोई भी मनुष्य वेदाभ्यास के विना सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं को प्राप्त होने योग्य नहीं होता ॥ २८ ॥

**इडाभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इडा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*गृहस्थ पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः ।**
**शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सᳬंस्थाम् ॥२९॥**

**पदार्थ**—जो विद्वान् (इडाभिः) पृथिवियों से (भक्षान्) भक्षण करने योग्य अन्नादि पदार्थों को (सूक्तवाकेन) जो सुन्दरता से कहा जाय उस के कहने से (आशिषः) इच्छा सिद्धियों को (शंयुना) जिस से सुख प्राप्त होता है उससे (पत्नीसंयाजान्) जो पत्नी के साथ मिलते हैं उनको (समिष्टयजुषा) अच्छे इष्टसिद्धि करने वाले यजुर्वेद के कर्म से (संस्थाम्) अच्छे प्रकार के रहने के स्थान को (आप्नोति) प्राप्त होता है वह सुखी क्यों न होवे ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—गृहस्थ लोग वेदविज्ञान ही से पृथिवी के राज्यभोग की इच्छा और उसकी सिद्धि को प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

**व्रतेनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*मनुष्यों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।**
**दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥३०॥**

**पदार्थ**—जो बालक कन्या वा पुरुष (व्रतेन) ब्रह्मचर्यादि नियमों से (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य्यादि सत्कर्मों के आरम्भरूप दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) उस दीक्षा से (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा और धन को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस प्रतिष्ठा वा धनरूप से (श्रद्धाम्) सत्य के धारण में प्रीतिरूप श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त होता है वा उस (श्रद्धया) श्रद्धा से जिसने (सत्यम्) नित्य पदार्थ वा व्यवहारों में उत्तम परमेश्वर वा धर्म की (आप्यते) प्राप्ति की है वह सुखी होता है ॥३०॥

**भावार्थ**—कोई भी मनुष्य विद्या अच्छी शिक्षा और श्रद्धा के विना सत्य व्यवहारों को प्राप्त होने और दुष्ट व्यवहारों के छोड़ने में समर्थ नहीं होता ॥३०॥

**एतावद्रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।**
**तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥३१॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य (यत्) जिस (देवैः) विद्वानों और (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा चार वेदों ने (यज्ञस्य) यज्ञ के (एतावत्) इतने (रूपम्) स्वरूप को (कृतम्) सिद्ध किया वा प्रकाशित किया है (तत्) उस (एतत्) इस (सर्वम्) समस्त को (सौत्रामणी) जिस में यज्ञोपवीतादि ग्रन्थियुक्त सूत्र धारण किये जाते हैं उस (सुते) सिद्ध किये हुए (यज्ञे) यज्ञ में (आप्नोति) प्राप्त होता है वह द्विज होने का आरम्भ करता है ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि जितना यज्ञ के अनुष्ठान का अनुसन्धान किया जाता है उतना ही अनुष्ठान करके बड़े उत्तम यज्ञ के फल को प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

**सुरावन्तमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**सुरावन्तं बर्हिषदᳬं सुवीरं यज्ञᳬं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।**
**दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥३२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (महिषाः) महान् पूजनीय (स्वर्काः) उत्तम अन्न आदि पदार्थों से युक्त (यजमानाः) यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोग (नमोभिः)

अन्नादि से ( सुरावन्तम ) उत्तम सोमरसयुक्त ( बर्हिषदम् ) जो प्रशस्त आकाश मे स्थिर होता उस ( सुवीरम ) उत्तम शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त वीरो की प्राप्ति करने हारे ( यज्ञम ) यज्ञ को ( हिन्वन्ति ) बढाते है वे और ( विधि ) शुद्ध व्यवहारो मे तथा ( देवतासु ) विद्वानो मे ( सोमम् ) ऐश्वर्य्य और ( इन्द्रम् ) परमैश्वर्य्ययुक्त जन को ( दधाना ) धारण करते हुए हम लोग ( मदेम ) आनन्दित हो ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अन्नादि ऐश्वर्य का सञ्चय कर उससे विद्वानो को प्रसन्न और सत्य विद्याओं मे शिक्षा ग्रहण कर के सब के हितैषी हो वे इस ससार में पुत्र स्त्री के आनन्द को प्राप्त होवें ॥ ३२ ॥

**यस्ते रस इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*कैसे पुरुष धन्यवाद के योग्य होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य।**
**तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥३३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( य ) जो ( ते ) आप का ( ओषधीषु ) सोमलतादि ओषधियो म वर्त्तमान ( सुतस्य ) सिद्ध किये हुए ( सोमस्य ) अशुमान् आदि चौबीस प्रकार के भेद वाले सोम का ( सुरया ) उत्तम दानशील स्त्री ने ( सम्भृत ) अच्छे प्रकार धारण किया हुआ ( शुष्म ) बलकारी ( रस ) रस है ( तेन ) उस ( मदेन ) आनन्ददायक रस से ( यजमानम् ) सब को सुख देनेवाले यजमान ( सरस्वतीम् ) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री ( अश्विनौ ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक ( इन्द्रम ) ऐश्वर्ययुक्त सभा और सेना के पति और ( अग्निम् ) पावक के समान शत्रु के जलाने हारे योद्धा को ( जिन्व ) प्रसन्न कीजिये ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् मनुष्य महौषधियो के सारो को आप सेवन कर अन्यो को सेवन कराके निरन्तर आनन्द बढावें वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥ ३३ ॥

**यमश्विनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—*

**यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।**
**इमन्तꣳशुक्रम्मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( इह ) इस ससार म ( इन्द्रियाय ) धन और इन्द्रिय बल के लिये ( यम् ) जिस ( नमुचे ) जल को जो नही छोडता ( आसुरात ) उस मेघ व्यवहार से ( अधि ) अधिक ( शुक्रम ) शीघ्रबलकारी ( मधुमन्तम ) उत्तम मधुरादिगुणयुक्त ( इन्द्रम् ) परमैश्वर्य्य करने हारे ( राजानम ) प्रकाशमान ( सोमम ) पुरुषार्थ मे प्रेरक सोम ओषधि को ( सरस्वती ) विदुषी स्त्री ( असुनोत् ) सिद्ध करती तथा ( अश्विना ) सभा और सेना के पति सिद्ध करते हैं ( तम्, इमम ) उस इसको मैं ( भक्षयामि ) भोग करता और भोगवाता हूँ ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य उत्तम अन्न रस के भोजन करने हारे होते हैं वे बलयुक्त इन्द्रियो वाले होकर सदा आनन्द को भोगते हैं ॥ ४ ॥

**यदत्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषि । सोमो देवता । विराट त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यों को चाहिये कि सब को आनन्द करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः ।**
**अह तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३५।**

**पदार्थ**—हे मनुष्य लोगो ! जैसे ( अहम ) मै ( इह ) इस ससार मे ( अस्य ) इस ( सुतस्य ) सिद्ध किये हुए ( रसिन ) प्रशसित रसयुक्त पदार्थ का ( यत् ) जो भाग ( अत्र ) इस ससार ही मे ( रिप्तम ) लिप्त प्राप्त है वा ( इन्द्र ) सूर्य्य ( शचीभि ) आकर्षणादि कर्मों के साथ ( यत ) जो ( अपिबत् ) पीता है ( तत् ) उस को और ( राजानम ) प्रकाशमान ( सोमम् ) ओषधियों के रस को ( शिवेन ) कल्याणकारक ( मनसा ) मन से ( भक्षयामि ) भक्षण करता और पीता हूँ वैसे तुम भी भक्षण किया और पिया करो ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य अपनी किरणो से जलो का आकर्षण कर और वर्षा के सब को सुखी करता है वैसे ही अनुकूल क्रियाओ से रसो का सेवन अच्छे प्रकार करके बल को बढा कीर्त्ति से सब को तुम लोग आनन्दित करो ॥३५॥

**पितृभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । पितरो देवता । निचृदष्टित्रिष्टुप् छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*माता पिता पुत्रादि को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—*

**पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥३६॥**

**पदार्थ**—हम पुत्र शिष्यादि मनुष्य ( स्वधायिभ्य ) जिस स्वधा अन्न और जल को प्राप्त होने के स्वभाव वाले ( पितृभ्य ) ज्ञानियो को ( स्वधा ) अन्न देते और ( नम ) सत्कार करते ( स्वधायिभ्य ) बहुत अन्न को चाहने वाले ( पितामहेभ्य ) पिता के पिताओ को ( स्वधा ) सुन्दर अन्न देते तथा ( नम ) सत्कार करते और ( स्वधायिभ्य ) उत्तम अन्न के चाहने वाले ( प्रपितामहेभ्य ) पितामह के पिताओ को ( स्वधा ) अन्न देते और उनका ( नम ) सत्कार करते हैं वे हे ( पितर ) पिता आदि ज्ञानियो ! आप लोग हम से अच्छे प्रकार बनाये हुए अन्न आदि का ( अक्षन् ) भोजन कीजिये । हे ( पितर ) अध्यापक लोगो ! आप आनन्दित होके हम को ( अमीमदन्त ) आनन्दयुक्त कीजिये । हे ( पितर ) उपदेशक लोगो ! आप तृप्त होकर हम को ( अतीतृपन्त ) तृप्त कीजिये । हे ( पितर ) विद्वानो ! आप लोग शुद्ध होकर हमको ( शुन्धध्वम ) शुद्ध कीजिये ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—हे पुत्र शिष्य और पुत्रवधू आदि लोगो ! तुम उत्तम अन्नादि पदार्थों से पिता आदि वृद्धो का निरन्तर सत्कार किया करो तथा पितर लोग तुमको भी आनन्दित करें जैसे माता पितादि बाल्यावस्था मे तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे ही तुम लोग वृद्धावस्था मे उनकी सेवा यथावत् किया करो ॥ ३६ ॥

**पुनन्तु मा पितर इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सरस्वती देवता । भुरिगष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

**पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः । पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ।३७।**

**पदार्थ**—( सोम्यास ) ऐश्वर्य से युक्त वा चन्द्रमा के तुल्य शान्त ( पितर ) ज्ञान देने से पालक पितर लोग ( पवित्रेण ) शुद्ध ( शतायुषा ) सौ वर्ष की आयु से ( मा ) मुझको ( पुनन्तु ) पवित्र करें अतिबुद्धिमान् चन्द्रमा के तुल्य आनन्दकर्त्ता ( पितामहा ) पिताओ के पिता उस अतिशुद्ध सौ वर्षयुक्त आयु से ( मा ) मुझ को ( पुनन्तु ) पवित्र करें । ऐश्वर्यदाता चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाले ( प्रपितामहा ) पितामहो के पिता लोग शुद्ध सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवन से ( मा ) मुझको ( पुनन्तु ) पवित्र करें । विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त वा शान्तस्वभाव ( पितामहा ) पिताओ के पिता ( पवित्रेण ) अतीव शुद्धानन्दयुक्त ( शतायुषा ) शतवर्षपर्य्यन्त आयु से मुझको ( पुनन्तु ) पवित्राचरणयुक्त करें । सुन्दर ऐश्वर्य के दाता वा शान्तियुक्त ( प्रपितामहा ) पितामहो के पिता पवित्र धर्माचरणयुक्त सौ वर्ष पर्यन्त आयु से मुझको ( पुनन्तु ) पवित्र करें जिससे मैं ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( आयु ) जीवन को ( व्यश्नवै ) प्राप्त होऊँ ॥३७॥

**भावार्थ**—पिता पितामह और प्रपितामहो को योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रो को ब्रह्मचर्य अच्छी शिक्षा और धर्मोपदेश से सयुक्त करके विद्या और उत्तमशील से युक्त करें । सन्तानो को योग्य है कि पितादि की सेवा और अनुकूल आचरण से पिता आदि सभो की नित्य सेवा करें ऐसे परस्पर उपकार से गृहाश्रम मे आनन्द के साथ वर्त्तना चाहिये ॥ ३७ ॥

**अग्न आयूंषि इत्यस्य वैखानस ऋषि । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**अग्नऽआयूꣳषि पवसऽआ सुवोर्जमिषं च न ।**
**आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३८॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) विद्वन् पिता पितामह और प्रपितामह ! जो आप ( न ) हमारे ( आयूंषि ) आयुर्दाओ का ( पवसे ) पवित्र करें सो आप ( ऊर्जम ) पराक्रम ( च ) और ( इषम ) इच्छासिद्धि को ( आ सुव ) चारो ओर से सिद्ध करिये और दूर और निकट बसने हारे ( दुच्छुनाम ) दुष्ट कुत्तो के समान मनुष्यो के सङ्ग को ( बाधस्व ) छुडा दीजिये ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—पिता आदि लोग अपने सन्तानो मे दीर्घ आयु पराक्रम और शुभ इच्छा का धारण कराके अपने सन्तानो को दुष्टो के सङ्ग से रोक और श्रेष्ठो के सङ्ग म प्रवृत्त कराके धार्मिक चिरजीवी करें जिससे वे वृद्धावस्था म भी अप्रियाचरण कभी न करें ॥ ३८ ॥

**पुनन्तु मा देवजना इत्यस्य वैखानस ऋषि । विद्वांसो देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

**पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।**
**पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३९॥**

**पदार्थ**—हे ( जातवेद ) उत्पन्न हुए जनो मे ज्ञानी विद्वन् ! जैसे ( देवजना ) विद्वान् जन ( मनसा ) विज्ञान और प्रीति से ( मा ) मुझको ( पुनन्तु ) पवित्र करें और हमारी ( धिय ) बुद्धियो को ( पुनन्तु ) पवित्र करें और ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( भूतानि ) भूत प्राणिमात्र मुझको ( पुनन्तु ) पवित्र करें वैसे आप ( मा ) मुझको ( पुनीहि ) पवित्र कीजिये ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियो का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि जो पुत्र और पुत्रियो को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी सुन्दर शीलयुक्त निरन्तर किया करें ॥ ३९ ॥

पवित्रेणेत्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।**
**अग्ने क्रत्वा क्रतूँ१ऽरनु ॥४०॥**

पदार्थ—हे ( दीद्यत् ) प्रकाशमान ( देव ) विद्या के देने हारे ( अग्ने ) विद्वन् ! आप ( पवित्रेण ) शुद्ध ( शुक्रेण ) वीर्य पराक्रम से स्वय पवित्र होकर ( मा ) मुझको इससे ( अनु पुनीहि ) पीछे पवित्र कर अपनी ( क्रत्वा ) बुद्धि वा कर्म से अपनी प्रज्ञा और कर्म को पवित्र करके हमारी (क्रतून्) बुद्धियो वा कर्मों को पुन पुन पवित्र किया करो ॥ ४० ॥

भावार्थ—पिता अध्यापक और उपदेशक लोग स्वय धार्मिक और विद्वान् होकर अपने सन्तानो को भी ऐसे ही धार्मिक योग्य विद्वान् करें ॥ ४० ॥

यत्त इत्यस्य वैखानस ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*मनुष्यों को कसे शुद्ध होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥४१॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ( ते ) तेरे ( अर्चिषि ) सत्कार करने योग्य शुद्ध तेज स्वरूप म (अन्तरा) सबसे भिन्न (यत्) जो ( विततम ) विस्तृत सब मे व्याप्त ( पवित्रम ) शुद्धस्वरूप (ब्रह्म) उत्तम वेद विद्या है ( तेन ) उससे ( मा ) मुझको आप ( पुनातु ) पवित्र कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो देवो का देव पवित्रों का पवित्र व्याप्तों में व्याप्त अन्तर्यामी ईश्वर और उसकी विद्या वेद है उसके अनुकूल आचरण से निरतर पवित्र हूजिये ॥ ४१ ॥

पवमान इत्यस्य वैखानस ऋषि । सोमो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

*फिर मनुष्यो को पुत्रादि कसे पवित्र करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**पवमानः सोऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।**
**यः पोता स पुनातु मा ॥४२॥**

पदार्थ—( य ) जो जगदीश्वर ( न ) हमारे मध्य मे ( पवित्रेण ) शुद्ध आचरण स ( पवमान ) पवित्र ( विचर्षणि ) विविध विद्याओ का दाता है ( स ) सो (अद्य) आज हमको पवित्र करने वाला और हमारा उपदेशक है ( य ) सो (पोता) पवित्रस्वरूप परमात्मा ( मा ) मुझको ( पुनातु ) पवित्र करे ॥ ४२ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग ईश्वर के समान धार्मिक होकर अपने सन्तानो को धर्मात्मा करें ऐसे किए विना अन्य मनुष्यो को भी वे पवित्र नही कर सकते ॥४२॥

उभाभ्यामित्यस्य वैखानस ऋषि । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

*मनुष्यों को अधर्म से कसे डरना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उभाभ्यान्देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।**
**मा पुनीहि विश्वतः ॥४३॥**

पदार्थ—हे ( देव ) सुख के देने हारे ( सवित ) सत्यकर्मों म प्रेरक जगदीश्वर आप ( पवित्रेण ) पवित्र वर्त्ताव ( च ) और ( सवेन ) सकलैश्वर्य तथा ( उभाभ्याम ) विद्या और पुरुषार्थ से ( विश्वत ) सब ओर से ( माम ) मुझको ( पुनीहि ) पवित्र कीजिय ॥ ४३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर सब मनुष्यो को शुद्धि और धर्म को ग्रहण कराता है उसी का आश्रय करके अधर्माचरण से सदा भय किया करो ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवीत्यस्य वैखानस ऋषि । विश्वेदेवा देवता । विराट् त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*राजा को कसे राज्य बढाना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।**
**तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥४४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वैश्वदेवी) सब विदुषी स्त्रियो मे उत्तम (पुनती) सब की पवित्रता करती हुई (देवी) सकल विद्या और धर्म के आचरण से प्रकाशमान विद्याओं की पढाने हारी ब्रह्मचारिणी कन्या हमको ( आ, अगात् ) प्राप्त होवे ( यस्याम् ) जिनके होने मे ( इमा ) ये ( बह्व्य ) बहुतसी ( तन्व ) विस्तृत विद्यायुक्त ( वीतपृष्ठा ) विविध प्रश्नो को जानने हारी हो ( तया ) उससे अच्छी शिक्षा को प्राप्त भार्य्याओं को प्राप्त होकर ( वयम ) हम लोग ( सधमादेषु ) समान स्थानो मे ( मदन्त ) आनन्दयुक्त हुए ( रयीणाम ) धनादि ऐश्वर्यों के ( पतय ) स्वामी ( स्याम ) हो ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जैसे राजा सब कन्याओ को पढाने के लिए पूर्ण विद्यावाली स्त्रियो को नियुक्त करके सब बालिकाओ को पूर्णविद्या और सुशिक्षायुक्त करे वैसे ही बालको को भी किया करे, जब ये सब पूर्णयुवावस्था वाले हो तभी स्वयवर विवाह करावे ऐसे राज्य की वृद्धि को सदा किया करे ॥ ४४ ॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषि । पितरो देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*कहां मनुष्य सुखपूर्वक निवास करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।**
**तेषाँल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( समाना ) सदृश ( समनस ) तुल्य विज्ञानयुक्त ( पितर ) प्रजा के रक्षक लोग ( यमराज्य ) यथावत् न्यायकारी सभाधीश राजा के राज्य मे हैं ( तेषाम ) उनका ( लोक ) सभा का दर्शन ( स्वधा ) अन्न ( नम ) सत्कार और ( यज्ञ ) प्राप्त होने योग्य न्याय ( देवेषु ) विद्वानो म ( कल्पताम् ) समर्थ होवे ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जहां बहुदर्शी अन्नादि ऐश्वर्य से सयुक्त सज्जनो से सत्कार को प्राप्त एक धर्म ही म जिनकी निष्ठा है उन विद्वानो की सभा से न्याय को करती है उसी राज्य मे सब मनुष्य ऐश्वर्य और सुख म निवास करते है ॥ ४५ ॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषि । श्रीर्देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*माता पिता और सन्तान आपस म कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।**
**तेषाꣳ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतꣳ समाः ॥४६॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( अस्मिन् ) इस ( लोके ) लोक म ( जीवेषु ) जीवते हुओ म ( समाना ) समान गुण कर्म स्वभाव वाले ( समनस ) समान धर्म मे मन रखने हारे ( मामका ) मेरे ( जीवा ) जीते हुए पिता आदि हैं ( तेषाम् ) उनकी ( श्री ) लक्ष्मी ( मयि ) मेरे समीप ( शतम ) सौ ( समा ) वर्षपर्यन्त (कल्पताम) समर्थ होवे ॥ ४६ ॥

भावार्थ—सन्तान लोग जबतक पिता आदि जीवें तबतक उनकी सेवा किया करें पुत्र लोग जबतक पिता आदि की सेवा करें तबतक वे सत्कार के योग्य होवे और जो पिता आदि का धनादि वस्तु हो वह पुत्रो और जो पुत्रो का हो वह पिता आदि का रहे ॥ ४६ ॥

द्वे सती इत्यस्य वैखानस ऋषि । पितरो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*जीवों के दो मार्ग हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**द्वे सृतीऽअशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।**
**ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं जो (पितॄणाम्) पिता आदि (मर्त्यानाम्) मनुष्यो ( च ) और ( देवानाम् ) विद्वानो की ( द्वे ) दो गतियो ( सृती ) जिन म आते जाते अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त होते हैं उनको ( अशृणवम् ) सुनता हूं ( ताभ्याम् ) उन दोनो गतियो से ( इदम् ) यह ( विश्वम् ) सब जगत् ( एजत् ) चलायमान हुआ ( समेति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ( उत ) और ( यत् ) जो ( पितरम् ) पिता और ( मातरम् ) माता से ( अन्तरा ) पृथक होकर दूसरे शरीर से अन्य माता पिता को प्राप्त होता है सो यह तुम लोग जानो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—दो ही जीवो की गति हैं एक माता पिता से जन्म को प्राप्त होकर ससार मे विषय सुख के भोगरूप और दूसरी विद्वानो के सङ्ग आदि से मुक्ति सुख के भोगरूप है इन दोनो गतियो के साथ ही सब प्राणी विचरते हैं ॥ ४७ ॥

इद हविरित्यस्य वैखानस ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥

*सन्तानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**इदं हविः प्रजननं मेऽअस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये ।**
**आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥४८॥**

पदार्थ—( अग्नि ) अग्नि के समान प्रकाशमान पति ( मे ) मेरे लिये ( बहुलाम् ) बहुत सुख देनेवाली ( प्रजाम् ) प्रजा को ( करोतु ) करे ( मे ) मेरा जो ( इदम ) यह ( प्रजननम ) उत्पत्ति करने का निमित्त ( हवि ) लेने देने योग्य ( दशवीरम् ) दश सन्तानों का उत्पन्न करने हारा ( सर्वगणम ) सब समुदायो से सहित (आत्मसनि) जिसने आत्मा का सेवन ( प्रजासनि ) प्रजा का सेवन (पशुसनि) पशु का सेवन ( लोकसनि ) लोको का अच्छे प्रकार सेवन और ( अभयसनि ) अभय का दानरूप कर्म होता है उस सन्तान को करे वह ( स्वस्तये ) सुख के लिये (अस्तु) होवे । हे माता पिता आदि लोगो ! आप ( अस्मासु ) हमारे बीच में प्रजा (अन्नम्) अन्न ( पय ) दूध और ( रेत ) वीर्य को ( धत्त ) धारण करो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य से सकल विद्या की शिक्षाओ का संग्रह कर परस्पर प्रीति से स्वयवर विवाह कर के ऋतुगामी होकर विधिपूर्वक प्रजा की उत्पत्ति करते हैं उनकी वह प्रजा शुभगुणयुक्त होकर माता पिता आदि को निरन्तर सुखी करती है ॥ ४८ ॥

उदीरतामित्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*पिता आदि को कैसे होकर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उदीरतामवरऽउत्परासऽउन्मध्यमा पितर सोम्यास ।**
**असु यऽईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( य ) जो (**अवृका** ) चौर्यादि दोष रहित (**ऋतज्ञा** ) सत्य के जानने हारे ( **पितर** ) पिता आदि बडे लोग ( **हवेषु** ) सग्रामादि व्यवहारो मे ( **असुम** ) प्राण को ( **उदीयु** ) उत्तमता से प्राप्त हो ( **ते** ) वे ( **न** ) हमारी ( **उत अवन्तु** ) उत्कृष्टता से रक्षा करें और जो ( **सोम्यास** ) शान्त्यादिगुणसम्पन्न ( **अवरे** ) प्रथम अवस्था युक्त ( **परास** ) उत्कृष्ट अवस्था वाले (**मध्यमा** ) बीच के विद्वान् ( **पितर** ) पिता आदि लोग है वे हम को सग्रामादि कामो मे ( **उदीरताम** ) अच्छे प्रकार प्रेरणा करें ॥ ४९ ॥

**भावार्थ**—जो जीते हुए प्रथम मध्यम और उत्तम चोरी आदि दोषरहित जानने के योग्य विद्या को जाननेहारे तत्त्वज्ञान को प्राप्त विद्वान् लोग हैं वे विद्या के अभ्यास और उपदेश से सत्य धर्म के ग्रहण कराने हारे कर्म से बाल्यावस्था मे विवाह का निषेध करके सब प्रजाओ को पालें ॥ ४९ ॥

अङ्गिरस इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*माता पिता और सन्तानो को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अङ्गिरसो न पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगव सोम्यास ।**
**तेषा वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (**न** ) हमारे (**अङ्गिरस** ) सब विद्याओ के सिद्धान्तो को जानने और (**नवग्वा** ) नवीन नवीन ज्ञान के उपदेशो को करने हारे (**अथर्वाण** ) अहिंसक ( **भृगव** ) परिपक्वविज्ञानयुक्त ( **सोम्यास** ) ऐश्वर्य पाने योग्य ( **पितर** ) पितादि ज्ञानी लोग है ( **तेषाम** ) उन (**यज्ञियानाम**) उत्तम व्यवहार करने हारो की ( **सुमतौ** ) सुन्दर प्रज्ञा और ( **भद्रे** ) कल्याणकारक ( **सौमनसे** ) प्राप्त हुए श्रेष्ठ बोध में (**वयम**) हम लोग प्रवृत्त ( **स्याम** ) होवे वैसे तुम (**अपि**) भी होओ ॥५०॥

**भावार्थ**—सन्तानो को योग्य है कि जो जो पिता आदि बडो का धर्मयुक्त कर्म होवे उस उस का सेवन करें और जो जो अधर्मयुक्त हो उस उस का छोड देवें ऐसे ही पिता आदि बडे लोग भी सन्तानो के अच्छे अच्छे गुणो का ग्रहण और बुरो का त्याग करें ॥ ५० ॥

ये न इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । भुरिकपङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**ये न पूर्वे पितर सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथ वसिष्ठा ।**
**तेभिर्यम सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भि प्रतिकाममत्तु ॥५१॥**

**पदार्थ**—( **य** ) जो ( **न** ) हमारे ( **सोम्यास** ) शान्त्यादि गुणो के योग से योग्य ( **वसिष्ठा** ) अत्यन्त धनी ( **पूर्वे** ) पूर्वज ( **पितर** ) पालन करने हारे ज्ञानी पिता आदि ( **सोमपीथम** ) सोमपान को ( **अनूहिरे** ) प्राप्त होते और कराते हैं ( **तेभि** ) उन ( **उशद्भि** ) हमारे पालन की कामना करने हारे पितरो के साथ ( **हवीꣳषि** ) देने देने योग्य पदार्थों की ( **उशन्** ) कामना करने हारा ( **सरराण** ) अच्छे प्रकार सुखो का दाता ( **यम** ) न्याय और योगयुक्त सन्तान ( **प्रतिकामम** ) प्रत्येक काम को ( **अत्तु** ) भोगे ॥ ५१ ॥

**भावार्थ** पिता आदि पुत्रो के साथ और पुत्र पिता आदि के साथ सब सुख दुखो के भोग करें और सदा सुख की वृद्धि और दुख का नाश किया करें ॥५१॥

त्व सोम इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । स्वराट पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**त्वꣳ सोम प्र चिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्**
**तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीरा ॥५२॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्ययुक्त ! (**प्र, चिकित** ) विज्ञान को प्राप्त (**त्वम्**) तू ( **मनीषा** ) उत्तम प्रज्ञा से जिस (**रजिष्ठम**) अतिशय कोमल सुखदायक (**पन्थाम्**) मार्ग को ( **नेषि** ) प्राप्त होता है उस को ( **त्वम्** ) तू मुझ को भी ( **अनु** ) अनुकूलता से प्राप्त कर । हे ( **इन्दो** ) आनन्दकारक चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान ! जो ( **तव** ) तेरी ( **प्रणीती** ) उत्तम नीति के साथ वर्त्तमान (**धीरा** ) योगीराज(**पितर** ) पिता आदि ज्ञानी लोग ( **देवेषु** ) विद्वानों मे ( **न** ) हमारे लिये ( **रत्नम्** ) उत्तम धन का ( **अभजन्त** ) सेवन करते हैं वे हम को नित्य सत्कार करने योग्य हों ॥५२॥

**भावार्थ**—जो सन्तान माता पिता आदि के सेवक होते हुए विद्या और विनय से धर्म का अनुष्ठान करते हैं वे अपने जन्म की सफलता करते हैं ॥५२॥

त्वयेत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**त्वया हि न पितर सोम पूर्वे कर्माणि चक्रु पवमान धीरा ।**
**वन्वन्नवात परिधीꣳरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा न ॥५३॥**

**पदार्थ**—हे ( **पवमान** ) पवित्र स्वरूप पवित्रकर्मकर्त्ता और पवित्र करने हारे ( **सोम** ) ऐश्वर्ययुक्त सन्तान ( **त्वया** ) तेरे साथ ( **न** ) हमारे ( **पूर्वे** ) पूर्वज ( **धीरा** ) बुद्धिमान् ( **पितर** ) पिता आदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त ( **कर्माणि** ) कर्मो को ( **चक्रु** ) करनेवाले हुए (**हि**) उन्ही का सेवन हम लोग भी करें (**अवात** ) हिंसाकर्मरहित ( **वन्वन्** ) धर्म का सेवन करते हुए सन्तान तू (**वीरेभि** ) वीर पुरुष और ( **अश्व** ) घोड़े आदि के साथ ( **न** ) हमारे शत्रुओ की ( **परिधीन्** ) परिधि अर्थात् जिन मे चारो ओर से पदार्थों का धारण किया जाय उन मार्गों का (**अपोर्णु** ) आच्छादन कर और हमारे मध्य मे ( **मघवा** ) धनवान् ( **भव** ) हूजिये ॥५३॥

**भावार्थ**—मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिता आदि का अनुकरण कर और शत्रुओ का निवारण करके अपनी सेना के अंगो की प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें ॥ ५३ ॥

त्व सोमेत्यस्य शङ्ख ऋषि । सोमो देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**त्वꣳ सोम पितृभि सविदानोऽनु द्यावापृथिवीऽआ ततन्थ ।**
**तस्मै तऽइन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥**

**पदार्थ**—हे (**सोम**) चन्द्रमा के सदृश आनन्दकारक उत्तम सन्तान ! (**पितृभि** ) ज्ञानयुक्त पितरो के साथ ( **सविदान** ) प्रतिज्ञा करता हुआ जो ( **त्वम** ) तू ( **अनु, द्यावापृथिवी** ) सूर्य और पृथिवी के मध्य मे धर्मानुकूल आचरण से सुख का ( **आ ततन्थ** ) विस्तार कर । हे ( **इन्दो** ) चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन ! ( **तस्मै** ) उस ( **ते** ) तेरे लिये ( **वयम** ) हम लोग ( **हविषा** ) देने देने योग्य व्यवहार से सुख का ( **विधेम** ) विधान करें जिससे हम लोग ( **रयीणाम** ) धनो के ( **पतय** ) पालन करने हारे स्वामी ( **स्याम** ) हो ॥ ५४ ॥

**भावार्थ**—हे सन्तानो ! तुम लोग जैसे चन्द्रलोक पृथिवी के चारो ओर भ्रमण करता हुआ सूर्य की परिक्रमा देता है वैसे ही माता पिता आदि के अनुचर होओ जिससे तुम श्रीमन्त हो जाओ ॥ ५४ ॥

बर्हिषद इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**बर्हिषद पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।**
**तऽआगतावसा शन्तमेनाथा न शयोररपो दधात ॥५५॥**

**पदार्थ**—हे ( **बर्हिषद** ) उत्तम सभा मे बैठने हारे (**पितर** ) न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो ! हम ( **अर्वाक** ) पश्चात् जिन (**व** ) तुम्हारे लिये (**ऊती**) रक्षणादि क्रिया से ( **इमा** ) इन ( **हव्या** ) भोजन के योग्य पदार्थों का ( **चकृम** ) सत्कार करते हैं उन को तुम लोग ( **जुषध्वम** ) सेवन किया करो । वे आप लोग ( **शन्तमेन** ) अत्यन्त कल्याणकारक ( **अवसा** ) रक्षणादि कर्म के साथ ( **आ, गत** ) आवें ( **अथ** ) इसके अनन्तर ( **न** ) हमारे लिये ( **शम** ) सुख तथा ( **अरप** ) सत्याचरण को (**दधात**) धारण करें और दुःख को (**यो** ) हम से पृथक रक्खें ॥५५॥

**भावार्थ**—जिन पितरों की सेवा सन्तान लोग करें वे अपने सन्तानो मे अच्छी शिक्षा और सुशीलता का धारण करें ॥ ५५ ॥

आहमित्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

**आह पितॄन्त्सुविदत्राꣳऽअवित्सि नपात च विक्रमण च विष्णो ।**
**बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्तऽइहागमिष्ठा ॥ ५६ ॥**

**पदार्थ**—( **य** ) जो ( **बर्हिषद** ) उत्तम आसन मे बैठने योग्य पितर लोग ( **इह** ) इस वर्त्तमान काल मे ( **स्वधया** ) अन्नादि से तृप्त ( **सुतस्य** ) सिद्ध किये हुए ( **पित्व** ) सुगन्धयुक्त पान का ( **च** ) भी ( **आ, भजन्त** ) सेवन करते हैं ( **ते** ) वे ( **आगमिष्ठा** ) हमारे पास आवें जो इस ससार मे (**विष्णो** ) व्यापक परमात्मा के ( **नपातम्** ) नाशरहित ( **विक्रमणम्** ) विविध सृष्टिक्रम को ( **च** ) भी जानते हैं उस ( **सुविदत्रान्** ) उत्तम सुखादि के दान देनहारे ( **पितॄन्** ) पितरो को ( **अहम** ) मैं ( **अवित्सि** ) जानता हूँ ॥ ५६ ॥

**भावार्थ**—जो पितर लोग विद्या की उत्तम शिक्षा करते और कराते हैं वे पुत्र और कन्याओ के सम्यक सेवन करने योग्य हैं ॥ ५६ ॥

उपहूता इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**उपहूता पितर सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।**
**तऽआगमन्तु तऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५७॥**

**पदार्थ**—जो ( **सोम्यास** ) ऐश्वर्य को प्राप्त होने के योग्य ( **पितर** ) पितर लोग ( **बर्हिष्येषु** ) अत्युत्तम ( **प्रियेषु** ) प्रिय ( **निधिषु** ) रत्नादि से भरे हुए कोशो के निमित्त ( **उपहूता** ) बुलाये हुए हैं ( **ते** ) वे ( **इह** ) इस हमारे समीप स्थान मे ( **आ गमन्तु** ) आवें ( **ते** ) वे हमारे वचनो को ( **श्रुवन्तु** ) सुनें वे ( **अस्मान्** ) हम को ( **अधि, ब्रुवन्तु** ) अधिक उपदेश से बोधयुक्त करें ( **ते** ) वे हमारी ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ॥ ५७ ॥

**भावार्थ**—जो विद्यार्थीजन अध्यापकों का बुला उनका सत्कार कर उन से विद्या ग्रहण की इच्छा करें उन विद्यार्थियो को वे अध्यापक भी प्रीतिपूर्वक पढ़ावें और सर्वथा *विषयासक्ति* आदि दुष्कर्मों से पृथक रक्खें ॥ ५७ ॥

**आयन्त्वित्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । विराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

**आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।**

**अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५८॥**

**पदार्थ**—जो ( **सोम्यास** ) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमदमादि गुणयुक्त ( **अग्निष्वात्ता** ) अग्न्यादि पदार्थविद्या मे निपुण ( **न** ) हमारे ( **पितर** ) अन्न और विद्या के दान से रक्षक जनक अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (**ते**) वे (**देवयान** ) आप्त लोगो के जाने आने योग्य ( **पथिभि** ) धर्मयुक्त मार्गों से ( **आ, यन्त** ) आवें ( **अस्मिन्** ) इस ( **यज्ञे** ) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार मे वर्तमान होके ( **स्वधया** ) अन्नादि से ( **मदन्त** ) आनन्द को प्राप्त हुए (**अस्मान्**) हम को (**अधि, ब्रुवन्तु** ) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी ( **अवन्तु** ) सदा रक्षा करें ॥ ५८ ॥

**भावार्थ**—विद्यार्थियो को योग्य है कि विद्या और आयु मे वृद्ध विद्वानो से विद्या और रक्षा को प्राप्त होकर सत्यवादी निष्कपटी परोपकारी उपदेशको के मार्ग से आ आ के सब की रक्षा करें ॥ ५८ ॥

**अग्निष्वात्ता इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

**अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।**

**अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीर दधातन ॥५९॥**

**पदार्थ**—हे ( **सुप्रणीतय** ) अत्युत्तम न्यायधर्म से युक्त ( **अग्निष्वात्ता** ) अग्न्यादि पदार्थ विद्या मे निपुण ( **पितर** ) पालन करने हारे पितरो ! आप लोग ( **इह** ) इस वर्त्तमान समय मे विद्याप्रचार के लिये (**आ, गच्छत**) आओ (**सद सद** ) जहाँ जहाँ बैठें उस उस घर मे ( **सदत** ) स्थित होओ ( **प्रयतानि**) अति विचार से सिद्ध किये हुए ( **हवींषि** ) भोजन के योग्य अन्नादि का ( **अत्त** ) भोग करो (**अथ** ) इसके पश्चात् ( **बर्हिषि** ) विद्याप्रचाररूप उत्तम व्यवहार मे स्थित होकर हमारे लिये ( **सर्ववीरम्** ) सब वीर पुरुषो को प्राप्त करानेहारे (**रयिम्**) धन को (**दधातन**) धारण कीजिये ॥ ५९ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् लोग उपदेश के लिये घर घर के प्रति गमनागमन कर के सत्यधर्म का प्रचार करते है वे गृहस्थो मे श्रद्धा से दिए हुए अन्नपानादि का सेवन करें सब को शरीर और आत्मा के बल से योग्य पुरुषार्थी करके श्रीमान् करें ॥५९॥

**ये अग्निष्वात्ता इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । स्वराट्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यो को ईश्वर की प्रार्थना कैसे करनी चाहिये इस*

*विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**येऽअग्निष्वात्ता येऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।**

**तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥६०॥**

**पदार्थ**—( **ये** ) जो ( **अग्निष्वात्ता** ) अच्छे प्रकार अग्निविद्या के ग्रहण करने तथा ( **ये** ) जो ( **अनग्निष्वात्ता** ) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थविद्याओ का जानने हारे वा ज्ञानी पितृलोग (**दिव** ) वा विज्ञानादि प्रकाश के ( **मध्ये** ) बीच (**स्वधया**) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया से ( **मादयन्ते** ) आनन्द को प्राप्त होते हैं ( **तेभ्य** ) उन पितरो के लिये ( **स्वराट** ) स्वय प्रकाशमान परमात्मा ( **एताम** ) इस (**असुनीतिम**) प्राणो को प्राप्त होने वाले (**तन्वम्** ) शरीर को ( **यथावशम्** ) कामना के अनुकूल ( **कल्पयाति** ) समर्थ करे ॥६०॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमेश्वर ! जो अग्नि आदि की पदार्थविद्या को यथार्थ जान के प्रवृत्त करने और जो ज्ञान मे तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं उनके शरीरो को दीर्घायु कीजिये ॥६०॥

**अग्निष्वात्तानित्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*माता पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिए इस विषय को*

*अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं यऽआशुः ।**

**ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥**

**पदार्थ**—( **ये** ) जो (**सोमपीथम**) सोम आदि उत्तम ओषधियों के रस को (**आशु** ) पीवे जिन ( **ऋतुमत** ) प्रशसित वसन्तादि ऋतु मे उत्तम कर्म करने वाले ( **अग्निष्वात्तान्** ) अच्छे प्रकार अग्निविद्या का जानने हारे पिता आदि ज्ञानियो को हम लोग ( **नाराशसे** ) मनुष्यो ने प्रशसारूप सत्कार के व्यवहार मे (**हवामहे** ) बुलाते हैं (**ते**) वे ( **विप्रास** ) बुद्धिमान् लोग ( **न** ) हमारे लिये ( **सुहवा** ) अच्छे दान देने हारे ( **भवन्तु**) हो और ( **वयम्** ) हम उनकी कृपा से ( **रयीणाम** ) धनो के ( **पतय** ) स्वामी ( **स्याम** ) होवें ॥ ६१ ॥

**भावार्थ**—सन्तान लोग पदार्थविद्या और देश काल के जानने और प्रशसित ओषधियो के रस को सेवन करनेहारे विद्या और अवस्था मे वृद्ध पिता आदि को सत्कार के अर्थ बुला के उनके सहाय से धनादि ऐश्वर्य वाले हों ॥ ६१ ॥

**आच्याजान्वित्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । निचृत त्रिष्टुपछन्द । धैवत स्वर ॥**

**आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे ।**

**मा हिꣳसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६२॥**

**पदार्थ**—हे ( **विश्वे** ) सब ( **पितर** ) पितृलोगो ! तुम (**केन, चित**) किसी हेतु से ( **न** ) हमारा जो ( **पुरुषता** ) पुरुषार्थता है उसको ( **मा हिंसिष्ट** ) मत नष्ट करो जिससे हम लोग सुख को ( **कराम** ) प्राप्त करें ( **यत** ) जो ( **व** ) तुम्हारा ( **आग** ) अपराध है उस को हम छुड़ावें तुम लोग ( **इमम** )इस (**यज्ञम्**) सत्कारक्रियारूप व्यवहार को (**अभि गृणीत**) हमारे सन्मुख प्रशसित करो हम (**जानु**) जानु अवयव को ( **आच्य** ) नीचे टेक के ( **दक्षिणत** ) तुम्हारे दक्षिण पार्श्व मे ( **निषद्य** ) बैठ के तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें ॥ ६२ ॥

**भावार्थ**—जिन के पितृ लोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इन के समीप जावें तब भूमि मे घुटने टेक नमस्कार कर इनको प्रसन्न करें पितर लोग भी आशीर्वाद विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपने सन्तानो को प्रसन्न करके सदा रक्षा किया करें ॥ ६२ ॥

**आसीनास इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता । स्वराट त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

**आसीनासोऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।**

**पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तऽइहोर्जं दधात ॥६३॥**

**पदार्थ**—हे (**पितर** ) पितृ लोगो ! तुम (**इह**) इस गृहाश्रम मे (**अरुणीनाम्**) गौरवर्णयुक्त स्त्रियो के ( **उपस्थ** ) समीप मे ( **आसीनास** ) बैठे हुए ( **पुत्रेभ्य** ) पुत्रो के और (**दाशुष**) दाता ( **मर्त्याय** ) मनुष्य के लिए ( **रयिम** ) धन को (**धत्त**) धरो ( **तस्य** ) उस ( **वस्व** ) धन के भागो को ( **प्र, यच्छत** ) दिया करो जिससे ( **ते** ) वे स्त्री आदि सब लोग ( **ऊर्जम** ) पराक्रम को (**दधात**) धारण करें ॥६३॥

**भावार्थ**—वे ही वृद्ध है जो अपनी स्त्री ही के साथ प्रसन्न अपनी पत्नियो का सत्कार करने हारे सन्तानो के लिए यथायोग्य दायभाग और सत्पात्रो को सदा दान देते हैं और वे सन्तानो को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ६३ ॥

**यमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

**यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।**

**तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥६४॥**

**पदार्थ**—हे ( **कव्यवाहन** ) बुद्धिमानो के समीप उत्तम पदार्थ पहुँचाने हारे ( **अग्ने** ) अग्नि के समान प्रकाश युक्त ! ( **त्वम्** ) आप ( **गीर्भि** ) कोमल वाणियो से ( **श्रवाय्यम** ) सुनाने योग्य ( **देवत्रा** ) विद्वानो मे ( **युजम** ) युक्त करने योग्य ( **यम्** ) जिस ( **रयिम** ) ऐश्वर्य्य को (**मन्यसे**) जानते हो ( **तम** ) उस को (**चित्**) भी ( **न** ) हमारे लिये ( **पनय** ) कीजिये ॥ ६४ ॥

**भावार्थ**—पिता आदि ज्ञानी लोगो को चाहिए कि पुत्रों और सत्पात्रो से प्रशसित धन का सचय करें उस धन से उत्तम विद्वानों को ग्रहण कर उनको सत्यधर्म के उपदेशक बना के विद्या और धर्म का प्रचार करें और करावें ॥ ६४ ॥

**योऽअग्निरित्यस्य शङ्ख ऋषि । अग्निर्देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

**योऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।**

**प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥६५॥**

**पदार्थ**—( **य** ) जो ( **कव्यवाहन** ) विद्वानो के श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त कराने हारा ( **अग्नि** ) अग्नि के समान विद्याओ मे प्रकाशमान विद्वान् ( **ऋतावृध** ) वेद विद्या से वृद्ध ( **पितॄन्** ) पितरो का ( **यक्षत** ) सत्कार करे सो ( **इत्** ) ही ( **उ** ) अच्छे प्रकार ( **देवेभ्य** ) विद्वानों (**च**) और ( **पितृभ्य** ) पितरो के लिये (**हव्यानि**)

ग्रहण करने योग्य विज्ञानों का ( प्राबोचति ) अच्छे प्रकार सब ओर से उपदेश करता है ॥ ६५ ॥

**भावार्थ**—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या वाले होते हैं वे विद्वानों में विद्वान् और पितरों में पितर गिने जाते हैं ॥ ६५ ॥

**त्वमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**त्वमग्नऽईडितः कव्यवाहुनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।**

**प्रादाः पितृभ्यः स्वधया तेऽअक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हुवीꣳषि ॥६६॥**

**पदार्थ**—हे ( **कव्यवाहन** ) कवियों के प्रगल्भतादि कर्मों को प्राप्त हुए ( **अग्ने** ) अग्नि के समान पवित्र विद्वन् ! पुत्र ! ( **ईडितः** ) प्रशंसित ( **त्वम्** ) तू ( **सुरभीणि** ) सुगन्धादि युक्त ( **हव्यानि** ) खाने के योग्य पदार्थ ( **कृत्वी** ) करके ( **अवाट्** ) प्राप्त करता है उनको ( **पितृभ्यः** ) पितरों के लिये ( **प्रादाः** ) दिया कर ( **ते** ) वे पितर लोग ( **स्वधया** ) अन्नादि के साथ इन पदार्थों का ( **अक्षन्** ) भोग किया करें । हे ( **देव** ) विद्वन् दाता ! ( **त्वम्** ) तू ( **प्रयता** ) प्रयत्न से साधे हुए ( **हवींषि** ) खाने के योग्य अन्नों को ( **अद्धि** ) भोजन किया कर ॥ ६६ ॥

**भावार्थ**—पुत्रादि सब लोग अच्छे संस्कार किये हुए सुगन्धादि से युक्त अन्न पानों से पितरों का भोजन करा के आप भी इन अन्नों का भोजन करें यही पुत्रों की योग्यता है । जो अच्छे संस्कार किये हुए अन्न पानों को करते हैं वे रोगरहित होकर शतवर्ष पर्यन्त जीते हैं ॥ ६६ ॥

**ये चेहेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ऽउं च न प्रविद्म ।**

**त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व ॥६७॥**

**पदार्थ**—हे ( **जातवेदः** ) नवीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वन् ! ( **ये** ) जो ( **इह** ) यहां ( **च** ) ही ( **पितरः** ) पिता आदि ज्ञानी लोग हैं ( **च** ) और ( **ये** ) जो ( **इह** ) यहां ( **न** ) नहीं हैं ( **च** ) और हम ( **यान्** ) जिनको ( **विद्म** ) जानते ( **च** ) और ( **यान्** ) जिनको ( **न, प्रविद्म** ) नहीं जानते हैं उन ( **यति** ) यावत् पितरों को ( **त्वम्** ) आप ( **वेत्थ** ) जानते हो ( **उ** ) और ( **ते** ) वे आप को भी जानते हैं उनकी सेवारूप ( **सुकृतम्** ) पुण्यजनक ( **यज्ञम्** ) सत्काररूप व्यवहार को ( **स्वधाभिः** ) अन्नादि से ( **जुषस्व** ) सेवन करो ॥ ६७ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो प्रत्यक्ष वा जो अप्रत्यक्ष विद्वान् अध्यापक और उपदेशक हैं उन सब को बुला अन्नादि से सदा सत्कार करो जिससे आप भी सर्वत्र सत्कारयुक्त होओ ॥ ६७ ॥

**इदमित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**इदं पितृभ्यो नमोऽअस्त्वद्य ये पूर्वासो यऽउपरास ईयुः ।**

**ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥६८॥**

**पदार्थ**—( **ये** ) जो पितर लोग ( **पूर्वासः** ) हम से विद्या वा अवस्था में वृद्ध हैं ( **ये** ) जो ( **उपरासः** ) वानप्रस्थ वा संन्यासाश्रम को प्राप्त होके गृहाश्रम के विषयभोग से उदासीनचित्त हुए ( **ईयुः** ) प्राप्त हों ( **ये** ) जो ( **पार्थिवे** ) पृथिवी पर विदित ( **रजसि** ) लोक में ( **आ निषत्ताः** ) निवास किये हुए ( **वा** ) अथवा ( **ये** ) जो ( **नूनम्** ) निश्चय करके ( **सुवृजनासु** ) अच्छी गति वाली ( **विक्षु** ) प्रजाओं में प्रयत्न करते हैं उन ( **पितृभ्यः** ) पितरों के लिए ( **अद्य** ) आज ( **इदम्** ) यह ( **नमः** ) सुसंस्कृत अन्न ( **अस्तु** ) प्राप्त हो ॥ ६८ ॥

**भावार्थ**—इस संसार में जो प्रजा के शोधने वाले हम से श्रेष्ठ विरक्ताश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम को प्राप्त पिता आदि हैं वे पुत्रादि मनुष्यों का सदा सेवने योग्य हैं जो ऐसा न करें तो कितनी हानि हो ॥ ६८ ॥

**अधेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**अध यथा नः पितरः परासः प्रत्नासोऽअग्नऽऋतमाशुषाणाः ।**

**शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तोऽअरुणीरप व्रन् ॥६९॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! ( **यथा** ) जैसे ( **नः** ) हमारे ( **परासः** ) उत्तम ( **प्रत्नासः** ) प्राचीन ( **उक्थशासः** ) उत्तम शिक्षा करने हारे ( **शुचि** ) पवित्र ( **ऋतम्** ) सत्य को ( **आशुषाणाः** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए ( **पितरः** ) पिता आदि ज्ञानी जन ( **दीधितिम्** ) विद्या के प्रकाश ( **अरुणीः** ) सुशीलता से प्रकाश वाली स्त्रियों और ( **क्षामा** ) निवासभूमि को ( **अयन्** ) प्राप्त होते हैं ( **अध** ) इस के अनन्तर अविद्या का ( **भिन्दन्तः** ) विदारण करते हुए ( **इत्** ) ही अन्धकाररूप आवरणों को ( **अप व्रन्** ) दूर करते हैं उनका तू वैसे सेवन कर ॥ ६९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पिता आदि विद्या को प्राप्त करा के अविद्या का निवारण करते हैं वे इस संसार में सब लोगों से सत्कार करने योग्य हों ॥ ६९ ॥

**उशन्त इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।**

**उशन्नुशतऽआ वह पितॄन्हविषेऽअत्तवे ॥७०॥**

**पदार्थ**—हे विद्या की इच्छा करने वाले अथवा पुत्र ! तेरी ( **उशन्तः** ) कामना करते हुए हम लोग ( **त्वा** ) तुझ को ( **नि, धीमहि** ) विद्या का निधिरूप बनावें ( **उशन्तः** ) कामना करते हुए हम तुझ को ( **समिधीमहि** ) अच्छे प्रकार विद्या से प्रकाशित करें ( **उशन्** ) कामना करता हुआ तू ( **हविषे** ) भोजन करने योग्य पदार्थ के ( **अत्तवे** ) खाने को ( **उशतः** ) कामना करते हुए हम ( **पितॄन्** ) पितरों को ( **आ वह** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ७० ॥

**भावार्थ**—जैसे विद्वान् लोग बुद्धिमान् जितेन्द्रिय कृतज्ञ परिश्रमी विचारशील विद्यार्थियों की नित्य कामना करें वैसे विद्यार्थी लोग भी ऐसे उत्तम अध्यापक विद्वान् लोगों की सेवा करके विद्वान् होवें ॥ ७० ॥

**अपामित्यस्य शङ्ख ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब सेनापति कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपां फेनेन नमुचेः शिरऽइन्द्रोदवर्त्तयः ।**

**विश्वा यदजयः स्पृधः ॥७१॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) सूर्य के समान वर्त्तमान सेनापते ! जैसे सूर्य ( **अपाम्** ) जलों की ( **फेनेन** ) वृद्धि से ( **नमुचेः** ) अपने स्वरूप को न छोड़ने वाले मेघ के ( **शिरः** ) घनाकार बद्दलों को काटता है वैसे ही तू अपनी सेनाओं को ( **उदवर्त्तयः** ) उत्कृष्टता को प्राप्त कर ( **यत्** ) जो ( **विश्वाः** ) सब ( **स्पृधः** ) स्पर्द्धा करने हारी शत्रुओं की सेना हैं उन को ( **अजयः** ) जीत ॥ ७१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य से आच्छादित भी मेघ वारवार उठता है वैसे ही ये शत्रु भी वारवार उत्थान करते हैं । वे जब तक अपने बल को न्यून और दूसरों का बल अधिक देखते हैं तब तक शान्त रहते हैं ॥ ७१ ॥

**सोमो राजेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*कौन पुरुष मुक्ति को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सोमो राजामृतꣳ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७२॥**

**पदार्थ**—जो ( **ऋतेन** ) सत्य श्रद्धा के साथ ( **अन्धसः** ) सुसंस्कृत अन्नादि के सम्बन्धी ( **सत्यम्** ) विद्यमान द्रव्यों में उत्तम पदार्थ ( **विपानम्** ) विविध पान करने के साधन ( **शुक्रम्** ) शीघ्र कार्य कराने हारे ( **इन्द्रियम्** ) धन ( **इन्द्रस्य** ) परम ऐश्वर्य वाले जीव के ( **इन्द्रियम्** ) श्रोत्र आदि इन्द्रिय ( **इदम्** ) जल ( **पयः** ) दुग्ध ( **अमृतम्** ) अमृतरूप ब्रह्म वा ओषधि के सार और ( **मधु** ) सहत का संग्रह करे सो ( **अमृतम्** ) अमृतरूप आनन्द को प्राप्त हुआ ( **सुतः** ) संस्कारयुक्त ( **सोमः** ) ऐश्वर्यवान् प्रेरक ( **राजा** ) न्यायविद्या से प्रकाशमान राजा ( **ऋजीषेण** ) सरल भाव से ( **मृत्युम्** ) मृत्यु को ( **अजहात्** ) छोड़ देवे ॥ ७२ ॥

**भावार्थ**—जो उत्तम शील और विद्वानों के सङ्ग से सब शुभलक्षणों को प्राप्त होते हैं वे मृत्यु के दुःख को छोड़ कर मोक्षसुख को ग्रहण करते हैं ॥ ७२ ॥

**अद्भ्य इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अङ्गिरसो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*कौन पुरुष विज्ञान को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७३॥**

**पदार्थ**—जो ( **आङ्गिरसः** ) अङ्गिरा विद्वान् से किया हुआ विद्वान् ( **धिया** ) कर्म के साथ ( **अद्भ्यः** ) जलों से ( **क्षीरम्** ) दूध को ( **क्रुङ्** ) क्रुञ्चा पक्षी के समान थोड़ा थोड़ा करके ( **व्यपिबत्** ) पीवे वह ( **ऋतेन** ) यथार्थ योगाभ्यास से ( **इन्द्रस्य** ) ऐश्वर्ययुक्त जीव के ( **अन्धसः** ) अन्नादि के योग से ( **इदम्** ) इस प्रत्यक्ष ( **सत्यम्** ) सत्य पदार्थों में अविनाशी ( **विपानम्** ) विविध शब्दार्थ सम्बन्धयुक्त ( **शुक्रम्** ) पवित्र ( **इन्द्रियम्** ) दिव्यवाणी और ( **पयः** ) उत्तम रस ( **अमृतम्** ) रोगनाशक औषधि ( **मधु** ) मधुरता और ( **इन्द्रियम्** ) दिव्य श्रोत्र को प्राप्त होवे ॥ ७३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सत्याचरणादि कर्मों को करके वैद्यक शास्त्र के विधान से युक्ताहार विहार करते हैं वे सत्य बोध और सत्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ ७३ ॥

सोममित्यस्य शङ्ख ऋषि । सोमो देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ।।

**सोम॑मद्भ्यो व्य॑पिब॒च्छन्द॑सा ह॒ꣳसः शु॑चि॒षत् । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒य वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒द पयो॒ऽमृत॒ मधु॑ ॥७४॥**

पदार्थ—जो ( शुचिषत् ) पवित्र विद्वानों मे बठता है ( हंस ) दु ख का नाशक विवेकी जन ( छन्दसा ) स्वच्छ दता के साथ ( अद्भ्य ) उत्तम सस्कारयुक्त जलों से ( सोमम् ) सोमलतादि महौषधियो के सार रस को ( व्यपिबत ) अच्छे प्रकार पीता है सो ( ऋतेन ) सत्य वेदविज्ञान से ( अन्धस ) उत्तम सस्कार किये हुए अन्न के दोषनिवतक ( शुक्रम ) शुद्धि करनेहारे ( विपानम् ) विविध रक्षा से युक्त ( सत्यम ) परमेश्वरादि सत्य पदार्थों मे उत्तम ( इन्द्रियम् ) विज्ञानरूप ( इन्द्रस्य ) योगविद्या से उत्पन्न हुए परम ऐश्वय की प्राप्ति कराने हारे ( इदम् ) इस प्रत्यक्ष प्रतीति के आश्रय ( पय ) उत्तम ज्ञान रस वाले ( अमृतम ) मोक्ष ( मधु ) और मधु विद्यायुक्त ( इन्द्रियम् ) जीव ने सेवन किये हुए सुख को प्राप्त होने को योग्य होता है वही अखिल आनन्द का पाता है ।। ७४ ।।

भावार्थ—जो युक्ताहार विहार करने हारे वेदो को पढ़ योगाभ्यास कर अविद्यादि क्लेशों का छुड़ा योग की सिद्धियो को प्राप्त हो और उन के अभिमान को भी छोड के कैवल्य को प्राप्त होने हैं वे ब्रह्मानन्द का भोग करते हैं ।। ७४ ।।

अन्नात्परिस्रुत इत्यस्य शङ्ख ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिगति जगती छन्द । निषाद स्वर ।।

*कैसे राज्य की उन्नति करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अन्ना॑त्परि॒स्रुतो॒ रस॒ ब्रह्म॑णा॒ व्य॑पिबत् क्ष॒त्र पय॒ः सोमं॑ प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒य वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒द पयो॒ऽमृत॒ मधु ॥७५॥**

पदार्थ—जो ( ब्रह्मणा ) चारो वेद पढ़ हुए विद्वान् के साथ ( प्रजापति ) प्रजा का रक्षक सभाध्यक्ष राजा ( परिस्रुत ) सब ओर से पके हुए ( अन्नात् ) जौ आदि अन्न से निकले ( पय ) दुग्ध के तुल्य ( सोमम ) ऐश्वर्ययुक्त ( रसम् ) सार रूप रस और ( क्षत्रम ) क्षत्रियकुल को ( व्यपिबत् ) ग्रहण करे सो ( ऋतेन ) विद्या तथा विनय से युक्त याय से ( अन्धस ) अ धकाररूप अ याय के निवारक ( शुक्रम् ) पराक्रम करन हार ( विपानम ) विविध रक्षण के हेतु ( सत्यम ) सत्य व्यवहारो मे उत्तम ( इन्द्रियम ) इ द्रनामक परमात्मा ने दिये हुए ( इन्द्रस्य ) समग्र ऐश्वर्य के देन हारे राज्य की प्राप्ति कराने हारे ( इदम् ) इस प्रत्यक्ष ( पय ) पीने के योग्य ( अमृतम् ) अमृत के तुल्य सुखदायक रस और ( मधु ) मधुरादि गुणयुक्त ( इन्द्रियम ) राजादि पुरुषो न सेवे हुए यायाचरण को प्राप्त होवे वह सदा सुखी होवे ।। ७५ ।।

भावार्थ—जो विद्वानो की अनुमति से राज्य को बढ़ाने की इच्छा करते हैं वे अन्याय की निवृत्ति करने और राज्य को बढान म समथ होते हैं ।। ७५ ।।

रेत इत्यस्य शङ्ख ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ।।

*शरीर से वीर्य कैसे उत्प न होता ह इस विषय को अगल म त्र म कहा है—*

**रेतो॒ मूत्र॒ विज॑हाति॒ योनि॑ प्रवि॒शदि॑न्द्रि॒यम् । गर्भो॑ ज॒रायु॒णावृ॑त॒ उल्ब॑ जहाति॒ जन्म॑ना । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒य वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ इन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒द पयो॒ऽमृत॒ मधु॑ ॥७६॥**

पदार्थ—( इन्द्रियम ) पुरुष का लिंग इन्द्रिय ( योनिम ) स्त्री की योनि मे ( प्रविशत ) प्रवेश करता हुआ ( रेत ) वीय को ( वि जहाति ) विशेष कर छोडता है इसम अलग ( मूत्रम् ) प्रस्राव को छोडता है वह वीय ( जरायुणा ) जरायु स ( आवृतः ) ढका हुआ ( गभ ) गर्भरूप होकर ज मता है ( जन्मना ) जन्म से ( उल्बम ) आवरण को ( जहाति ) छोडता है वह ( ऋतेन ) बाहर के वायु से ( अन्धस ) आवरण को निवृत्त करने हारे ( विपानम् ) विविध पान के साधन ( शुक्रम् ) पवित्र ( सत्यम् ) वर्तमान मे उत्तम ( इन्द्रस्य ) जीव के सम्बन्धी ( इन्द्रियम् ) धन को और ( इदम् ) इस ( पय ) रस के तुल्य ( अमृतम् ) नाश रहित ( मधु ) प्रत्यक्षादि ज्ञान के साधन ( इन्द्रियम् ) चक्षुरादि इन्द्रिय को प्राप्त होता है ।। ७६ ।।

भावार्थ—प्राणी जो कुछ खाता पीता है परम्परा से वीय होकर शरीर का कारण होता है पुरुष का लिंग इन्द्रिय स्त्री के संयोग से वीर्य छोडता और इससे अलग मूत्र को छोड़ता है इससे जाना जाता है कि शरीर मे मूत्र के स्थान से पृथक स्थान में वीर्य रहता है वह वीर्य्य जिस कारण सब अंगो से उत्प न होता है इससे सब अगो की आकृति उस म रहती है इसी से जिस के शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है उसी की आकृति वाला सन्तान होता है ।। ७६ ।।

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषि । प्रजापतिर्देवता । अतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ।।

*अब धर्म अधर्म कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले म त्र में किया है—*

**दृ॒ष्ट्वा रू॒पे व्याक॑रोत्सत्यानृ॒ते प्र॒जाप॑तिः । अश्र॑द्धा॒मनृ॒तेऽद॑धाच्छ्र॒द्धाꣳ स॒त्ये प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒य वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒द पयो॒ऽमृत॒ मधु॑ ॥७७॥**

पदार्थ—जो ( प्रजापति ) प्रजा का रक्षक परमेश्वर ( ऋतेन ) यथार्थ अपने सत्य विज्ञान से ( सत्यानृते ) सत्य और झूठ जो ( रूपे ) निरूपण किये हुए हैं उनको ( दृष्ट्वा ) ज्ञानदृष्टि से देखकर ( व्याकरोत ) विविध प्रकार से उपदेश करता है जो ( अनृते ) मिथ्याभाषणादि मे ( अश्रद्धाम् ) अप्रीति को ( अदधात ) धारण कराता और ( सत्ये ) सत्य मे ( श्रद्धाम ) प्रीति को धारण कराता और जो ( अन्धस ) अधर्माचरण के निवर्त्तक ( शुक्रम ) शुद्धि करने हारे ( विपानम ) विविध रक्षा के साधन ( सत्यम् ) सत्यस्वरूप ( इन्द्रियम ) चित्त को और जो ( इन्द्रस्य ) परमैश्वययुक्त धर्म के प्रापक ( इदम् ) इस ( पय ) अमृतरूप सुखदाता ( अमृतम् ) मृत्युरोगनिवारक ( मधु ) मानने योग्य ( इन्द्रियम् ) विज्ञान के साधन को धारण करे वह ( प्रजापति ) परमेश्वर सब का उपासनीय देव है ।७७।

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के आज्ञा किये धम का आचरण करते और निषेध किये हुए अधर्म का सेवन नहीं करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं जो ईश्वर धर्म अधर्म का जनावे तो धर्माऽधर्म्म के स्वरूप का ज्ञान किसी का भी नहीं हो, जो आत्मा के अनुकूल आचरण करते और प्रतिकूलाचरण को छोड दते हैं व ही धर्माधर्म के बोध से युक्त होते हैं इतर जन नही ।। ७७ ।।

वेदेनेत्यस्य शङ्ख ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिक त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ।।

*अब वेद के जानन वाले क से होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—*

**वेदे॑न रू॒पे व्य॑पिबत्सुतासु॒तौ प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒य वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒द पयो॒ऽमृत॒ मधु॑ ॥७८॥**

पदार्थ—जो ( प्रजापति ) प्रजा का पालन करने वाला जीव ( ऋतेन ) सत्य विज्ञानयुक्त ( वेदेन ) ईश्वरप्रकाशित चारो वेदों से ( सुतासुतौ ) प्रेरित अप्रेरित धर्माधर्म्म ( रूपे ) स्वरूपो को ( व्यपिबत् ) ग्रहण करे सो ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्य्ययुक्त जीव के ( अन्धस ) अन्नादि के ( विपानम ) विविध पान के निमित्त ( शुक्रम ) पराक्रम देने हारे ( सत्यम ) सत्यधर्माचरण मे उत्तम ( इन्द्रियम् ) धन और ( इदम् ) जलादि ( पय ) दुग्धादि ( अमृतम् ) मृत्युधर्मरहित विज्ञान ( मधु ) मधुरादि गुण युक्त पदाथ और ( इन्द्रियम ) ईश्वर के दिये हुए ज्ञान को प्राप्त होवे ।। ७८ ।।

भावार्थ—वेदो को जानने वाले ही धर्माधर्म्म के जानने तथा धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग स सुखी होने को समर्थ होते हैं ।। ७८ ।।

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिगतिजगती छन्द । निषाद स्वर ।।

*कैसा जन बल बढ़ा सकता है इस विषय को अगले म त्र मे कहा है—*

**दृ॒ष्ट्वा परि॒स्रुतो॒ रस॑ꣳ शु॒क्रेण॑ शु॒क्र व्य॑पिबत् पय॒ः सोमं॑ प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒य वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृत॒ मधु॑ ॥७९॥**

पदार्थ—जो ( परिस्रुत ) सब ओर से प्राप्त ( प्रजापति ) प्रजा का स्वामी राजा आदि जन ( ऋतेन ) यथाथ व्यवहार से ( सत्यम् ) वतमान उत्तम ओषधियों म उत्पन्न हुए रस को ( दृष्ट्वा ) विचार पूर्वक देख के ( शुक्रेण ) शुभ भाव से ( शुक्रम् ) शीघ्र सुख करने वाल ( पय ) पान करने योग्य ( सोमम् ) महौषधि के रस को तथा ( रसम् ) विद्या के आनन्द रस को ( व्यपिबत ) विशष करके पीता वा ग्रहण करता है वह ( अन्धस ) शुद्ध अन्नादि के प्रापक ( विपानम् ) विशेष पान से युक्त ( शुक्रम् ) वीर्य वाल ( इन्द्रियम् ) विद्वान् ने सेवे हुए इन्द्रिय को और ( इन्द्रस्य ) परम ऐश्वययुक्त पुरुष के ( इदम् ) इस ( पय ) अच्छे रस वाले ( अमृतम् ) मृत्यु कारक रोग के निवारक ( मधु ) मधुरादि गुणयुक्त और ( इन्द्रियम् ) ईश्वर के बनाये हुए धन को प्राप्त होवे ।। ७९ ।।

भावार्थ—जो वैद्यक शास्त्र की रीति से उत्तम ओषधियो के रसो को बना उचित समय जितना चाहिये उतना पीवे वह रोगो से पृथक होके शरीर और आत्मा के बल के बढ़ाने को समथ होता है ।। ७९ ।।

सीसेनेत्यस्य शङ्ख ऋषि । सविता देवता । भुरिक त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ।।

*विद्वानों के तुल्य अ यों को भी आचरण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सीसे॑न॒ तन्त्र॒ मन॑सा मनी॒षिण॑ ऊर्णासू॒त्रेण॑ क॒वयो॑ वयन्ति । अ॒श्विना॑ य॒ज्ञꣳ स॑वि॒ता सर॑स्वतीन्द्र॑स्य रू॒प वरु॑णो भिष॒ज्यन् ॥८०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( कवय ) विद्वान् ( मनीषिण ) बुद्धिमान् लोग ( सीसेन ) सीसे के पात्र के समान कोमल ( ऊर्णासूत्रेण ) ऊन से सूत के कम्बल के तुल्य प्रयोजनसाधक ( मनसा ) अन्त करण से ( तन्त्रम् ) कुटुम्ब के धारण के समान यन्त्रकलाओं को ( वयन्ति ) रचते हैं जैसे ( सविता ) अनेक विद्या-व्यवहारो में प्रेरणा करने हारा पुरुष और ( सरस्वती ) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री तथा ( अश्विना ) विद्याओं मे व्याप्त पढ़ाने और उपदेश करने हारे दो पुरुष ( यज्ञम् ) सगति मेल करने योग्य व्यवहार को करते हैं जैसे ( भिषज्यन् ) चिकित्सा की इच्छा करता हुआ ( वरुण ) श्रेष्ठ पुरुष ( इन्द्रस्य ) परम ऐश्वर्य के ( रूपम् ) स्वरूप का विधान करता है वैसे तुम भी किया करो ।। ८० ।।

भावार्थ—इस म त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग अनेक धातु और साधन विशेषो से वस्त्रादि को बना के अपने कुटुम्ब का पालन करते हैं तथा पदार्थों के मेलरूप यज्ञ को कर पथ्य ओषधिरूप पदार्थों को देके रोगों से छुड़ाते और शिल्प क्रियाओ से प्रयोजनो को सिद्ध करते हैं वैसे अन्य लोग भी किया करें ।। ८० ।।

तदित्यस्य शङ्ख ऋषि । वरुणो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*कौन पुरुष यज्ञ करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तद॑स्य रूपमृमृत॒ꣳ शची॑भिस्ति॒स्रो द॑धुर्दे॒वताः॑ सꣳररा॒णाः ।**

**लोमा॑नि॒ शष्पै॑र्बहु॒धा न तोक्म॑भिस्त्वग॑स्य माꣳसम॑भव॒न्न ला॒जाः ॥८१**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( सरराणा ) अच्छे प्रकार देने (तिस्र ) पढ़ाने पढने और परीक्षा करनेहारे तीन ( देवता ) विद्वान् लोग ( शचीभि ) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों के साथ ( बहुधा ) बहुत प्रकारो से जिस यज्ञ का और ( शष्प ) दीर्घ लोमों के साथ (लोमानि) लोमो को ( दधु ) धारण करें और ( तत् ) उस ( अस्य ) इस यज्ञ के ( अमृतम् ) नाशरहित ( रूपम् ) रूप को तुम लोग जानो यह ( तोक्मभि ) बालको से ( न ) नही अनुष्ठान करने योग्य और ( अस्य ) इसके मध्य ( त्वक् ) त्वचा ( मांसम् ) मांस और ( लाजा ) भुजा हुआ सूखा अन्न आदि होम करने योग्य ( न अभवत् ) नही होता इसको भी तुम जानो ॥ ८१ ॥

**भावार्थ**—जो बहुत काल पर्यन्त डाढी मूछ धारणपूर्वक ब्रह्मचारी अथवा पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय भद्रजन हैं वे ही यज धातु के अर्थ को जानने योग्य अर्थात् यज्ञ करने योग्य होते हैं अन्य बालबुद्धि अविद्वान् नही हो सकते वह हवनरूप ऐसा है कि जिसमे मास क्षार खट्टे से भिन्न पदार्थ वा तीखा आदि गुणरहित सुगन्धित पुष्ट मिष्ट तथा रोगनाशकादि गुणो के सहित हो वही हवन करने योग्य होवे ॥ ८१ ॥

तदित्यस्य शङ्ख ऋषि । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*विदुषी स्त्रियों का क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तद॒श्विना॑ भि॒षजा॑ रु॒द्रव॑र्तनी॒ सर॑स्वती वयति॒ पेशो॒ऽअन्त॑रम् ।**

**अस्थि॑ म॒ज्जानं॒ मास॑रैः कारोत॒रेण॒ दध॑तो॒ गवां॑ त्व॒चि ॥८२॥**

**पदार्थ**—जिसको ( सरस्वती ) श्रेष्ठ ज्ञानयुक्त पत्नी (वयति) उत्पन्न करती है (तत्) उस (पेश ) सुन्दर स्वरूप (अस्थि) हाड ( मज्जानम् ) मज्जा ( अन्तरम् ) अन्तस्थ को ( मासरै ) परिपक्व ओषधि के सारो से ( कारोतरेण ) जैसे कूप से सब कामो को वैसे (गवाम्) पृथिव्यादि को (त्वचि) त्वचारूप उपरि भाग म ( रुद्रवर्तनी ) प्राण के मार्ग के समान मार्ग से युक्त ( भिषजा ) वैद्यक विद्या के जानने हारे ( अश्विना ) विद्याओ मे पूर्ण दो पुरुष ( दधत ) धारण करें ॥ ८२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वैद्यक शास्त्र के जानने हारे पति लोग शरीर को आरोग्य करके स्त्रियो को निरन्तर सुखी करें वैसे ही विदुषी स्त्री लोग भी अपने पतियों को रोगरहित किया करें ॥ ८२ ॥

सरस्वतीत्यस्य शङ्ख ऋषि । सरस्वती देवता । भुरिक् त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*विद्वानों के समान अन्यों को आचरण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सर॑स्वती॒ मन॑सा पेश॒लं वसु॒ नास॑त्याभ्यां वयति दर्श॒तं वपुः॑ ।**

**रसं॑ परि॒स्रुता॒ न रोहि॑तं न॒ग्नहु॒र्धीर॒स्तस॑रं॒ न वेम॑ ॥८३॥**

**पदार्थ**—( सरस्वती ) उत्तम विज्ञानयुक्त स्त्री ( मनसा ) विज्ञान से ( वेम ) उत्पत्ति के ( न ) समान जिस ( पेशलम् ) उत्तम अङ्गो से युक्त ( दर्शतम् ) देखने योग्य (वपु ) शरीर वा जल को तथा (तसरम्) दुःखो के क्षय करनेहारे ( रोहितम् ) प्रकट हुए ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त ( रसम ) आनन्द को देने हारे रस के ( न ) समान ( वसु ) द्रव्य को ( वयति ) बनाती है जिन ( नासत्याभ्याम ) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता दोनो से ( नग्नहु ) शुद्ध का ग्रहण करनेहारा (धीर ) ध्यानवान् मेरा पति है उन दोनो को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ८३ ॥

**भावार्थ**—जैसे विद्वान् अध्यापक और उपदेशक सार सार वस्तुओ का ग्रहण करते हैं वैसे ही सब स्त्री पुरुषो को ग्रहण करने योग्य है ॥ ८३ ॥

पयसेत्यस्य शङ्ख ऋषि । सोमो देवता । निचृत त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*अपने कुल को श्रेष्ठ करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**पय॑सा शु॒क्रम॒मृतं॑ ज॒नित्र॒ꣳ सुर॑या मू॒त्राज्ज॑नयन्त॒ रेतः॑ ॥**

**अपाम॑तिं दुर्म॒तिं बाध॑माना॒ ऊव॑ध्यं॒ वात॒ꣳ सब्वं॒ तदा॒रात् ॥८४॥**

**पदार्थ**—जो विद्वान् लोग ( अमतिम ) नष्टबुद्धि ( दुर्मतिम ) वा दुष्टबुद्धि को ( अप, बाधमाना ) हटाते हुए जो (ऊवध्यम) ऐसा है कि जिसस परिधि अगुल आदि काट जाय अर्थात् बहुत नाश करने का साधन ( वातम ) प्राप्त (सब्वम ) सब पदार्थों मे सम्बन्ध वाला ( पयसा ) जल दुग्ध वा ( सुरया ) सोमलता आदि ओषधि के रस से उत्पन्न हुए ( मूत्रात ) मूत्राधार इन्द्रिय से ( जनित्रम ) सन्तानोत्पत्ति का निमित्त ( अमृतम् ) अल्पमृत्यु रोगनिवारक ( शुक्रम ) शुद्ध ( रेत ) वीर्य है ( तत् ) उसको (आरात्) समीप से (जनयन्त) उत्पन्न करते है वे ही प्रजा वाले होते हैं ॥८४॥

**भावार्थ**—जो मनुष्यो के दुर्गुण और दुष्ट सङ्गो को छोड कर व्यभिचार से दूर रहते हुए वीर्य को बढा के सन्तानो को उत्पन्न करते हैं वे अपने कुल को प्रशंसित करते हैं ॥ ८४ ॥

इन्द्र इत्यस्य शङ्ख ऋषि । सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वरः ॥

*मनुष्यों को रोग से पृथक् होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**इन्द्र॑ सु॒त्रामा॒ हृद॑येन स॒त्यं पु॑रो॒डाशे॑न सवि॒ता ज॑जान । यकृ॑त्**

**क्लो॒मानं॒ वरु॑णो भिष॒ज्यन् म॑तस्ने वा॑य॒व्यै॒र्न मि॑नाति पि॒त्तम् ॥८५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( सुत्रामा ) अच्छे प्रकार रोग से शरीर की रक्षा करने हारा ( सविता ) प्रेरक ( इन्द्र ) रोगनाशक ( वरुण ) श्रेष्ठ विद्वान् (भिषज्यन् ) चिकित्सा करता हुआ ( हृदयेन ) अपने आत्मा से ( सत्यम ) यथार्थ भाव को ( जजान ) प्रसिद्ध करता और (पुरोडाशेन) अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए अन्न और ( वायव्य ) पवनो म उत्तम अर्थात् सुख देने वाले मार्गो से ( यकृत् ) जो हृदय से दहिनी ओर म स्थित मांसपिण्ड ( क्लोमानम् ) कण्ठनाड़ी ( मतस्ने ) हृदय के दोनो ओर के हाडो और (पित्तम) पित्त को ( न, मिनाति ) नष्ट नहीं करता वैसे इन सबो की हिंसा तुम भी मत करो ॥ ८५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मद्वैद्य लोग स्वय रोगरहित होकर अन्यो के शरीर म हुए रोग को जानकर रोगरहित निरन्तर किया करें ॥८५॥

आन्त्राणीत्यस्य शङ्ख ऋषि । सविता देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

**आ॒न्त्राणि॑ स्था॒लीर्मधु॒ पिन्व॑माना॒ गुदाः॒ पात्रा॑णि सु॒दुघा॒ न धे॒नुः ।**

**श्ये॒नस्य॒ पत्र॒ न प्ली॒हा शची॑भिरास॒न्दी नाभि॑रु॒दरं॒ न मा॒ता ॥८६॥**

**पदार्थ**—युक्ति वाले पुरुष को योग्य है कि ( शचीभि ) उत्तम बुद्धि और कर्मों से ( स्थाली ) दाल आदि पकाने के बर्त्तनो को अग्नि के ऊपर धर ओषधियो का पाक बना ( मधु ) उसम सहत डाल भोजन करके ( आन्त्राणि ) उदरस्थ अन्न पकाने वाली नाडियो को ( पिन्वमाना ) सेवन करते हुए प्रीति के हेतु ( गुदा ) गुदेन्द्रियादि तथा ( पात्राणि ) जिनसे खाया पिया जाय उन पात्रो को ( सुदुघा ) दुग्धादि से कामना सिद्ध करने वाली ( धेनु ) गाय के ( न ) समान ( प्लीहा ) रक्तशोधक लोहू का पिण्ड ( श्येनस्य ) श्येन पक्षी के तथा ( पत्रम ) पांख के ( न ) समान ( माता ) और माता के ( ) ही वैल्य ( आसन्दी ) सब ओर से रस प्राप्त कराने हारी ( नाभि ) नाभि नाड़ ( उदरम ) उदर को पुष्ट करती है ॥ ८६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उ[illegible] र है । जो मनुष्य लोग उत्तम संस्कार किये हुए उत्तम अन्न और रसो से [illegible] । सोमो देवता करके प्रयत्न करते हैं वे अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ८६ [illegible] धैवत स्वर ॥

कुम्भ इत्यस्य शङ्ख ऋषि । पितरो देवता [illegible] प छन्द । धैवत स्वर ॥

*स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**कु॒म्भो व॑नि॒ष्ठुर्ज॑नि॒ता शची॑भि॒र्यस्मि॒न्नग्रे॒ योन्यां॒ गर्भो॑ऽअ॒न्तः ।**

**प्ला॒शिर्व्य॑क्तः श॒तधा॑र॒ उत्सो॑ दु॒हे न कु॒म्भी स्व॒धां पि॒तृभ्यः॑ ॥८७॥**

**पदार्थ**—जो ( कुम्भ ) कलश के समान वीर्यादि धातुओ से पूर्ण (वनिष्ठु ) सम विभाग करने हारा ( जनिता ) सन्तानो का उत्पादक ( प्लाशि ) अच्छे प्रकार भोजन का करने वाला ( व्यक्त ) विविध पुष्टियो से प्रसिद्ध ( शचीभि ) उत्तम कर्मों करके ( शतधार ) सैकडो वाणियो से युक्त ( उत्स ) जिससे गीला किया जाता है उस कूप के समान ( दुहे ) पूर्त्ति करने हारे व्यवहार मे स्थित के (न) समान पुरुष और जो (कुम्भी) कुम्भी के सदृश स्त्री है इन दोनो को योग्य है कि (पितृभ्य ) पितरो को ( स्वधाम ) अन्न देवें और ( यस्मिन् ) जिस ( अग्र) नवीन ( योन्याम् ) गर्भाशय के ( अन्त ) बीच ( गर्भ ) गर्भ धारण किया जाता उसकी निरन्तर रक्षा करें ॥ ८७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । स्त्री और पुरुष वीर्य वाले पुरुषार्थी होकर अन्नादि से विद्वानों को प्रसन्न कर धर्म से सन्तानो की उत्पत्ति करें ॥ ८७ ॥

मुखमित्यस्य शङ्ख ऋषि । सरस्वती देवता । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

**मुख॒ꣳ सद॑स्य॒ शिर॒ इत् सते॑न जि॒ह्वा प॒वित्र॑म॒श्विना॒सन्त्सर॑स्वती ।**

**चप्यं॒ न पा॒युर्भि॒षग॑स्य॒ वालो॑ व॒स्तिर्न शेपो॒ हर॑सा तर॒स्वी ॥८८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( जिह्वा ) जिससे रस ग्रहण किया जाता है वह ( सरस्वती ) वाणी के समान स्त्री ( अस्य ) इस पति के ( सतेन ) सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के साथ (शिर ) शिर करे तथा ( आसन् ) मुख के समीप (पवित्रम्) पवित्र ( मुखम ) मुख करे इसी प्रकार ( अश्विना ) गृहाश्रम के व्यवहार मे व्याप्त स्त्री पुरुष दोनो ( इत ) ही वर्त्तें तथा जो ( अस्य ) इस रोग से ( पायु ) रक्षक ( भिषक ) वैद्य ( वाल ) और बालक के ( न ) समान ( वस्ति ) वास करने का हेतु पुरुष ( शेप ) उपस्थेन्द्रिय वा ( हरसा ) बल से ( तरस्वी ) करने हारा होता है वह ( चप्यम ) शांति करने के ( न ) समान (सत्) वर्तमान मे सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे उस सबका यथावत करे ॥ ८८ ॥

**भावार्थ**—स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय म परस्पर मिल कर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख आंख के साथ आंख मन के साथ मन शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें जिससे कुरूप और वक्राङ्ग सन्तान न होवे ॥ ८८ ॥

अश्विभ्यामित्यस्य शाख ऋषि । अश्विनौ देवते । भुरिक त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ।।

**अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।**

**पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ।।८९।।**

पदार्थ—जैसे ( ग्रहाभ्याम् ) ग्रहण करने हारे ( अश्विभ्यां ) बहुभोजी स्त्री पुरुषो के साथ कोई भी विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष ( उतानि ) बिन हुए विस्तृत वस्त्र ( पक्ष्माणि ) और पहण किये हुए स य रेशम और दुशाले आदि का (वसाते) ओढें पहनें वा जसे आप भी ( छागेन ) अजा आदि के दूध के साथ और ( शृतेन ) पकाये हुए ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य होम के पदाथ के साथ ( तेज ) प्रकाश युक्त (अमृतम्) अमृतस्वरूप (चक्षु ) नेत्र का ( कुवल ) अच्छे शब्दो और (गोधूम ) गेहूँ के साथ ( शुक्रम ) शुद्ध ( असितम ) काल (पेश ) रूप के (न) समान स्वीकार करें वैसे अन्य गृहस्थ भी करें ।। ८९ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जसे क्रिया किये हुए स्त्री पुरुष प्रियदर्शन प्रियभोजनशील पूर्णसामग्री का ग्रहण करने हारे होते हैं वैसे अन्य गृहस्थ भी होवें ।। ८९ ।।

अविरित्यस्य शख ऋषि । सरस्वती देवता । भुरिक पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ।।

*फिर योगी का कर्त्तव्य अगले मन्त्रों मे कहते है—*

**अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।**

**सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ।।९०।।**

पदार्थ—जैसे ( ग्रहाभ्याम् ) ग्रहण करने हारो के साथ ( सरस्वती ) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्री ( बदरैः ) बेरो के समान ( उपवाकै ) सामीप्यभाव किया जाय जिनसे उन कर्मों से ( जजान ) उत्पत्ति करता है वसे जो ( वीर्याय ) वीर्य के लिये ( नसि ) नासिका मे ( प्राणस्य ) प्राण का ( अमृत ) नित्य ( पन्था ) माग वा ( मेष ) दूसरे से स्पर्द्धा करने वाला और ( अवि ) जो रक्षा करता है उसके ( न ) समान ( व्यानम ) सब शरीर मे व्याप्त वायु ( नस्यानि ) नासिका के हितकारक धातु और ( बर्हि ) बढान हारा उपयुक्त किया जाता है ।। ९० ।।

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमालकार है । जसे धार्मिक न्यायाधीश प्रजा की रक्षा करता है वैसे ही प्राणायामादि से अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए प्राण योगी को सब दुःखो से रक्षा करते हैं जसे विदुषी माता विद्या और अच्छी शिक्षा से अपने सन्तानों को बढाती है वसे अनुष्ठान किये हुए योग के अङ्ग योगियो को बढाते हैं ।। ९० ।।

इन्द्रस्येत्यस्य शख ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिक त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ।।

**इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।**

**यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ।।९१।।**

पदार्थ—जसे ( ग्रहाभ्याम् ) जिनसे ग्रहण करते है उन व्यवहारो के साथ ( ऋषभ ) ज्ञानी पुरुष ( बलाय ) योग सामर्थ्य के लिये ( यवा ) यवो के ( न ) समान ( कर्णाभ्याम ) कानो से ( श्रोत्रम् ) शब्दविषय का ( अमृतम ) नीरोग जल को और ( कर्कन्धु ) जिसमे कर्म को धारण करे उसको ( सारघम् ) एक प्रकार के स्वाद से युक्त ( मधु ) सहत ( बर्हि ) वृद्धिकारक व्यवहार और ( भ्रुवि ) नेत्र और ललाट के बीच मे ( केसराणि ) विज्ञानो अर्थात सुषुम्ना म प्राण वायु का निरोध कर ईश्वर विषयक विशेष ज्ञानो को ( मुखात् ) मुख से उत्पन्न करता है वसे यह सब (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य का ( रूपम् ) स्वरूप ( जज्ञे ) उत्पन्न होता है ।। ९१ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । जैसे निवृत्ति माग मे परम योगी योगबल से सब सिद्धियो को प्राप्त होता है वसे ही अन्य गृहस्थ लोगो का भी प्रवृत्ति माग मे सब ऐश्वर्य को प्राप्त होना चाहिये ।। ९१ ।।

आत्मन्नित्यस्य शख ऋषि । आत्मा देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ।।

**आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम । केशा**

**न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ।।९२।।**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके (आत्मन्) आत्मा मे ( उपस्थे ) समीप स्थित होने मे ( वृकस्य ) भेड़िया के ( लोम ) बालो के ( न ) समान वा ( व्याघ्रलोम ) बाघ के बालो के ( न ) समान ( मुखे ) मुख पर ( श्मश्रूणि ) दाढ़ी और मूछ ( शीर्षन् ) शिर मे ( केशा ) बालो के ( न ) समान ( शिखा ) शिखा ( सिंहस्य ) सिंह के ( लोम ) बालों के समान ( त्विषि ) कान्ति तथा ( इन्द्रियाणि ) श्रोत्रादि शुद्ध इन्द्रियां हैं वह ( यशसे ) कीर्त्ति और ( श्रियै ) लक्ष्मी के लिये प्राप्त होने को समर्थ होता है ।। ९२ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो परमात्मा का उपस्थान करते हैं वे यशस्वी कीर्तिमान् होते हैं जो योगाभ्यास करते हैं वे भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान एकान्त देश का सेवन करके पराक्रम वाले होते हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य करते हैं वे क्षत्रिय भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान पराक्रम वाले होते हैं ।। ९२ ।।

अङ्गानीत्यस्य शख ऋषि । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ।।

**अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।**

**इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ।।९३।।**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( भिषजा ) उत्तम वैद्य के समान रोगरहित(अश्विना) सिद्ध साधक दो विद्वान् जसे ( सरस्वती ) योगयुक्त स्त्री ( आत्मन् ) अपने आत्मा म स्थित हुई ( अङ्गानि ) योग के अङ्गो का अनुष्ठान करके (आत्मानम) अपने आत्मा को ( समधात ) समाधान करती है वैसे ही ( अङ्गै ) योगाङ्गो से जो ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्य्य का ( रूपम् ) रूप है ( तत ) उसका समाधान करें जसे योग को (दधाना ) धारण करते हुए जन ( शतमानम् ) सौ वर्ष पर्यन्त (आयु ) जीवन का धारण करते हैं वसे (चन्द्रेण) आनंद से (अमृतम) अविनाशी (ज्योति ) प्रकाशस्वरूप परमात्मा का धारण करो ।। ९३ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जसे रोगी लोग उत्तम वैद्य को प्राप्त हो औषध और पथ्य का सेवन कर के रोगरहित होकर आनन्दित होते हैं वैसे योग को जानने की इच्छा करने वाले योगी लोग इस को प्राप्त हो योग के अङ्गों का अनुष्ठान कर और अविद्या आदि क्लेशो से दूर होके निरन्तर सुखी होते हैं ।।९३।।

सरस्वतीत्यस्य शख ऋषि । सरस्वती देवता । विराट पंक्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ।।

**सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।**

**अपां रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ।।९४।।**

पदार्थ—हे योग करनेहारे पुरुष ! जसे ( सरस्वती ) विदुषी ( पत्नी ) स्त्री अपने पति से ( योन्याम ) योनि के ( अन्त ) भीतर ( सुकृतम ) पुण्यरूप ( गर्भम् ) गर्भ का ( बिभर्ति ) धारण करती है वा जैसे ( वरुण ) उत्तम ( राजा ) राजा ( अश्विभ्याम ) अध्यापक और उपदेशक के साथ ( अपाम ) जलो के ( रसेन ) रस से ( अप्सु ) प्राणो म ( साम्ना ) मन्त्र के ( न ) समान सुख से ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य का ( श्रियै ) लक्ष्मी के लिये ( जनयन् ) प्रकट करता हुआ विराजमान होता है वसे तू हो ।। ९४ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जसे धर्मपत्नी पति की सेवा करती है और जसे राजा साम दाम आदि से राज्य के ऐश्वर्य को बढाता है वैसे ही विद्वान् योग के उपदेश की सेवा कर योग के अङ्गो से योग की सिद्धियो को बढाया करे ।। ९४ ।।

तेज इत्यस्य शख ऋषि । अश्विनौ देवते । निचृज्जगतीछन्द । निषाद स्वर ।।

**तेजः पशूनां हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।**

**अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोमऽ**

**इन्दुः ।।९५।।**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (सुतासुताभ्याम) सिद्ध असिद्ध किये हुए(भिषजा) वैद्यक विद्या के जानने हारे ( अश्विभ्याम ) विद्या म व्याप्त दो विद्वान् ( पशूनाम ) गवादि पशुओ के सम्बन्ध से (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त होने वाले (पयसा) दूध से ( तेज ) प्रकाशरूप (इन्द्रियावत) कि जिसमे उत्तम इन्द्रिय होते हैं उस (सारघम) उत्तम स्वादयुक्त ( मधु ) मधुर ( हवि ) खाने पीने योग्य ( दुग्धम ) दुग्धादि पदार्थ और ( सरस्वत्या ) विदुषी स्त्री से (अमृत ) मृत्युधर्मरहित नित्य रहने वाला (सोम ) ऐश्वर्य्य ( इन्दु ) और उत्तम स्नेहयुक्त पदार्थ उत्पन्न किया जाता है वे योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं ।। ९५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जसे गो के चराने वाले गोपाल लोग गो आदि पशुओ की रक्षा करके दूध आदि से सन्तुष्ट होते हैं वसे ही मन आदि इन्द्रियो को दुष्टाचार से पृथक संरक्षण करके योगी लोगो को आनन्दित होना चाहिये ।। ९५ ।।

इस अध्याय मे सोम आदि पदार्थों के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह यजुर्वेदभाष्य का उन्नीसवां ( १९ ) अध्याय पूरा हुआ ।।

॥ ओ३म् ॥

# ॥ अथ विंशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

क्षत्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । द्विपदा विराड् गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*अब बीसवे अध्याय का आरम्भ है इस के आदि मे राजधर्मविषय का वर्णन करते हैं—*

**क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।**

**मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः ॥१॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! जिस से तू ( **क्षत्रस्य** ) राज्य का ( **योनिः** ) निमित्त ( **असि** ) है ( **क्षत्रस्य** ) राजकुल का ( **नाभिः** ) नाभि के समान जीवनहेतु ( **असि** ) है इससे ( **त्वा** ) तुझ को कोई भी ( **मा हिंसीत** ) मत मारे तू ( **मा** ) मुझे ( **मा, हिंसीः** ) मत मारे ॥ १ ॥

**भावार्थ**—स्वामी और भृत्यजन परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा करें कि राजपुरुष प्रजापुरुषो और प्रजापुरुष राजपुरुषो की निरन्तर रक्षा करें जिससे सब के सुख की उन्नति होवे ॥ १ ॥

निषसादेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

**निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।**

**साम्राज्याय सुक्रतुः मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥२॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! आप ( **सुक्रतुः** ) उत्तम बुद्धि और कर्मयुक्त ( **धृतव्रतः** ) सत्य का धारण करने हारे ( **वरुणः** ) उत्तम स्वभावयुक्त होते हुए ( **साम्राज्याय** ) भूगोल मे चक्रवर्त्ती राज्य करने के लिए ( **पस्त्यासु** ) न्यायघरो मे ( **आ नि षसाद** ) निरन्तर स्थित हूजिये तथा हम वीरो की ( **मृत्योः** ) मृत्यु से ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये और ( **विद्योतः** ) प्रकाशमान अग्नि अस्त्रादि से ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये ॥२॥

**भावार्थ**—जो धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला न्यायाधीश सभापति होवे सो चक्रवर्त्ती राज्य और प्रजा की रक्षा करने को समर्थ होता है अन्य नहीं ॥ २ ॥

देवस्येत्यस्याश्विनावृषी । सभेशो देवता । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि । सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥३॥**

**पदार्थ**—हे शुभ लक्षणो से युक्त पुरुष ! ( **सवितुः** ) सकल ऐश्वर्य्य के अधिष्ठाता ( **देवस्य** ) सब ओर से प्रकाशमान जगदीश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये हुए जगत् मे ( **अश्विनोः** ) सम्पूर्ण विद्या मे व्याप्त अध्यापक और उपदेशक के ( **बाहुभ्याम्** ) बल और पराक्रम से ( **पूष्णः** ) पूर्ण बल वाले वायुवत् वर्त्तमान पुरुष के ( **हस्ताभ्याम्** ) उत्साह और पुरुषार्थ से ( **अश्विनोः** ) वैद्यक विद्या मे व्याप्त पढ़ाने और ओषधि करने हारे के ( **भैषज्येन** ) वैद्यकपन से ( **तेजसे** ) प्रगल्भता के लिये ( **ब्रह्मवर्चसाय** ) वेदो के पढ़ने के लिये ( **त्वा** ) तुझ को राज प्रजाजन मै ( **अभि, षिञ्चामि** ) अभिषेक करता हूँ ( **भैषज्येन** ) ओषधियो के भाव से ( **सरस्वत्यै** ) अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई वाणी ( **वीर्याय** ) पराक्रम और ( **अन्नाद्याय** ) अन्नादि की प्राप्ति के लिये ( **अभि, षिञ्चामि** ) अभिषेक करता हूँ ( **इन्द्रस्य** ) परम ऐश्वर्य्य वाले के ( **इन्द्रियेण** ) धन से ( **बलाय** ) पुष्ट होने ( **श्रियै** ) सुशोभायुक्त राजलक्ष्मी और ( **यशसे** ) पुण्य कीर्ति के लिए ( **अभि षिञ्चामि** ) अभिषेक करता हूँ ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यो को योग्य है कि इस जगत् मे धर्मयुक्त कर्मों का प्रकाश करने के लिये शुभ गुण कर्म और स्वभाव वाले जन को राज्य पालन करने के लिये अधिकार देवें ॥ ३ ॥

कोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा ।**

**सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे ( **सुश्लोक** ) उत्तम कीर्ति और सत्य बोलने हारे ( **सुमङ्गल** ) प्रशस्त मङ्गलकारी कर्मो के अनुष्ठान करने और ( **सत्यराजन्** ) सत्यन्याय के प्रकाश करने हारा जो तू ( **कः** ) सुखस्वरूप ( **असि** ) है और ( **कतमः** ) अतिसुखकारी ( **असि** ) है इससे ( **कस्मै** ) सुखस्वरूप परमेश्वर के लिये ( **त्वा** ) तुझ को तथा ( **काय** ) परमेश्वर जिसका देवता उस मन्त्र के लिये ( **त्वा** ) तुझ को मैं अभिषेकयुक्त करता हूँ ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे पूर्व मन्त्र से ( **अभि षिञ्चामि** ) इन पदो की अनुवृत्ति आती है । जो सब मनुष्यो के मध्य मे अतिप्रशंसनीय होवे वह सभापतित्व के योग्य होता है ॥ ४ ॥

शिरो म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।**

**राजा मे प्राणोऽअमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! राज्य मे अभिषेक को प्राप्त हुए ( **मे** ) मेरी ( **श्रीः** ) शोभा और धन ( **शिरः** ) शिरस्थानी ( **यशः** ) सत्कीर्त्ति का कथन ( **मुखम्** ) मुखस्थानी ( **त्विषिः** ) न्याय के प्रकाश के समान ( **केशाः** ) केश ( **च** ) और ( **श्मश्रूणि** ) दाढ़ी मूंछ ( **राजा** ) प्रकाशमान ( **मे** ) मेरा ( **प्राणः** ) प्राण आदि वायु ( **अमृतम्** ) मरणधर्मरहित चेतन ब्रह्म ( **सम्राट्** ) अच्छे प्रकार प्रकाशमान ( **चक्षुः** ) नेत्र ( **विराट्** ) विविधशास्त्र श्रवणयुक्त ( **श्रोत्रम्** ) कान है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—जो राज्य मे अभिषिक्त राजा होवे सो शिर आदि अवयवो को शुभ कर्मों मे प्रेरित रक्खे ॥ ५ ॥

जिह्वा म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः ।**

**मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **मे** ) मेरी ( **जिह्वा** ) जीभ ( **भद्रम्** ) कल्याणकारक अन्नादि के भोग करने हारी ( **वाक्** ) जिससे बोला जाता है वह वाणी ( **महः** ) बड़ी पूजनीय वेदशास्त्र के बोध से युक्त ( **मनः** ) विचार करने वाला अन्तःकरण ( **मन्युः** ) दुष्टाचारी मनुष्यो पर क्रोध करने हारा ( **स्वराट्** ) स्वयं प्रकाशमान बुद्धि ( **भामः** ) जिससे प्रकाश होता है ( **मोदाः** ) हर्ष उत्साह ( **प्रमोदाः** ) प्रकृष्ट आनन्द के योग ( **अङ्गुलीः** ) अङ्गुलियां ( **अङ्गानि** ) और अन्य सब अङ्ग ( **मित्रम्** ) सखा और ( **सहः** ) सहन ( **मे** ) मेरे सहायक हों ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—जो राजपुरुष ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय और धर्माचरण से पथ्य आहार करने, सत्य वाणी बोलने दुष्टो मे क्रोध का प्रकाश करने हारे आनन्दित हो अन्यों को आनन्दित करते हुए पुरुषार्थी सब के मित्र और बलिष्ठ होवें वे सर्वदा सुखी रहें ॥ ६ ॥

बाहू इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्म वीर्यम् ।**

**आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **मे** ) मेरा ( **बलम्** ) बल और ( **इन्द्रियम्** ) धन ( **बाहू** ) भुजारूप ( **मे** ) मेरा ( **कर्म** ) कर्म और ( **वीर्यम्** ) पराक्रम ( **हस्तौ** ) हाथ रूप ( **मम** ) मेरा ( **आत्मा** ) स्वस्वरूप और ( **उरः** ) हृदय ( **क्षत्रम्** ) अति दुःख से रक्षा करने हारा हो ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—राजपुरुषो को योग्य है कि आत्मा अन्तःकरण और बाहुओ के बल को उत्पन्न कर सुख बढ़ावें ॥ ७ ॥

पृष्ठीरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी ।**

**ऊरूऽअरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( मे ) मेरा ( राष्ट्रम् ) राज्य ( पृष्ठी ) पीठ ( उदरम् ) पेट ( अंसौ ) स्कन्ध ( ग्रीवा ) कण्ठप्रदेश ( श्रोणी ) कटिप्रदेश ( ऊरू ) जांघ ( अरत्नी ) भुजाओं का मध्यप्रदेश और ( जानुनी ) गोड का मध्यप्रदेश तथा ( सर्वत ) सब ओर से ( च ) और ( अङ्गानि ) अङ्ग ( मे ) मेरे ( विश ) प्रजाजन हैं ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो अपने अङ्गों के तुल्य प्रजा को जाने वही राजा सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ८ ॥

नाभिम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सभपो देवता । निचृज्जगती छन्द ।
निषाद स्वरः ॥

**नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः । जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( मे ) मेरी ( चित्तम् ) स्मरण करने हारी वृत्ति ( नाभि ) मध्यप्रदेश ( विज्ञानम् ) विशेष वा अनेक ज्ञान ( पायु ) मूलेन्द्रिय ( मे ) मेरी ( अपचिति ) प्रजाजनक ( भसत ) योनि ( आण्डौ ) आण्ड के आकार वृषणावयव ( आनन्दनन्दौ ) सम्भोग के सुख से आनन्दकारक ( मे ) मेरा ( भग ) ऐश्वर्य्य ( पस ) लिङ्ग और ( सौभाग्यम् ) पुत्र पौत्रादि युक्त होवे इसी प्रकार मैं ( जङ्घाभ्याम् ) जङ्घा और ( पद्भ्याम् ) पगों के साथ ( विशि ) प्रजा मे ( प्रतिष्ठित ) प्रतिष्ठा को प्राप्त ( धर्म ) पक्षपातरहित न्यायधर्म के समान ( राजा ) राजा ( अस्मि ) हूं जिससे तुम लोग मेरे अनुकूल रहो ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—जो सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम प्रतिष्ठित राजा होवे ॥ ९ ॥

प्रतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सभपो देवता । विराट शक्वरी छन्द । धैवतः स्वर ॥

**प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥१०॥**

**पदार्थ**—प्रजाजनो में प्रतिष्ठा को प्राप्त मैं राजा धर्मयुक्त व्यवहार से ( क्षत्रे ) क्षय से रक्षा करने हारे क्षत्रियकुल में ( प्रति ) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता ( राष्ट्रे ) राज्य में ( प्रति, तिष्ठामि ) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता हूं ( अश्वेषु ) घोड़े आदि वाहनों में ( प्रति ) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता ( गोषु ) गौ और पृथिवी आदि पदार्थों में ( प्रति, तिष्ठामि ) प्रतिष्ठित होता हूं ( अङ्गेषु ) राज्य के अङ्गों में ( प्रति ) प्रतिष्ठित होता ( आत्मन ) आत्मा में ( प्रति, तिष्ठामि ) प्रतिष्ठित होता हूं ( प्राणेषु ) प्राणों में ( प्रति ) प्रतिष्ठित होता ( पुष्टे ) पुष्टि करने में ( प्रति, तिष्ठामि ) प्रतिष्ठित होता हूं ( द्यावापृथिव्यो ) सूर्य चन्द्र के समान न्याय प्रकाश और पृथिवी में ( प्रति ) प्रतिष्ठित होता ( यज्ञे ) विद्वानों की सेवा सङ्ग और विद्यादानादि क्रिया में ( प्रति तिष्ठामि ) प्रतिष्ठित होता हूं ॥ १० ॥

**भावार्थ**—जो राजा प्रिय अप्रिय को छोड़ न्यायधर्म से समस्त प्रजा का शासन सब राजकर्मों में चाररूप आंखों वाला अर्थात् राज्य के गुप्त हाल को देने वाले ही जिस के नेत्र के समान वैसा हो मध्यस्थ वृत्ति से सब प्रजाओं का पालन कर करा के निरन्तर विद्या की शिक्षा को बढ़ावे वही सब का पूज्य होवे ॥ १० ॥

त्रया इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । उपदेशका देवता । पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*अब उपदेशक विषय अगले मन्त्रों में कहा है—*

**त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ॥११॥**

**पदार्थ**—जो ( त्रया ) तीन प्रकार के ( देवा ) दिव्यगुण वाले ( बृहस्पतिपुरोहिता ) जिन में कि बड़ों का पालन करने हारा सूर्य्य प्रथम धारण किया हुआ है ( सुराधस ) जिन से अच्छे प्रकार कार्यों की सिद्धि होती वे ( एकादश ) ग्यारह ( त्रयस्त्रिंशा ) तेंतीस दिव्यगुण वाले पदार्थ ( सवितु ) सब जगत की उत्पत्ति करने हारे ( देवस्य ) प्रकाशमान ईश्वर के ( सवे ) परमैश्वर्य्ययुक्त उत्पन्न किये हुए जगत् में हैं उन ( देवै ) पृथिव्यादि तेंतीस पदार्थों से सहित ( मा ) मुझ को ( देवा ) विद्वान् लोग ( अवन्तु ) रक्षा और बढ़ाया करें ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—जो पृथिवी जल तेज वायु, आकाश सूर्य्य चन्द्र, नक्षत्र ये आठ और प्राण अपान व्यान उदान समान नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनञ्जय तथा ग्यारहवां जीवात्मा बारह महीने बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं वे सर्वोपकारक होते हैं ॥ ११ ॥

प्रथमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । विश्वेदेवा देवता । प्रकृतिश्छन्द । धैवत स्वर ॥

**प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२॥**

**पदार्थ** हे विद्वान् लोगो ! जैसे ( प्रथमा ) आदि में कहे पृथिव्यादि आठ वसु ( द्वितीय ) दूसरे ग्यारह प्राण आदि रुद्रों के साथ ( द्वितीया ) दूसरे ग्यारह रुद्र ( तृतीयै ) तीसरे बारह महीनों के साथ ( तृतीया ) तीसरे महीने ( सत्येन ) नाशरहित कारण के सहित ( सत्यम् ) नित्यकारण ( यज्ञेन ) शिल्पविद्यारूप क्रिया के साथ ( यज्ञ ) शिल्पक्रिया आदि कर्म ( यजुर्भि ) यजुर्वेदोक्त क्रियाओं से युक्त ( यजूंषि ) यजुर्वेदोक्त क्रिया ( सामभि ) सामवेदोक्त विद्या के साथ ( सामानि ) सामवेदस्थ क्रिया आदि ( ऋग्भि ) ऋग्वेदस्थ विद्या क्रियाओं के साथ ( ऋच ) ऋग्वेदस्थ व्यवहार ( पुरोनुवाक्याभि ) अथर्ववेदोक्त प्रकरणों के साथ ( पुरोनुवाक्या ) अथर्ववेदस्थ व्यवहार ( याज्याभि ) यज्ञ के सम्बन्ध में जो क्रिया हैं उन के साथ ( याज्या ) यज्ञक्रिया ( वषट्कारै ) उत्तम कर्मों के साथ ( वषट्कारा ) उत्तम क्रिया ( आहुतिभि ) होम क्रियाओं के साथ ( आहुतय ) आहुतियां ( स्वाहा ) सत्य क्रिया के साथ ये सब ( भू ) भूमि में ( मे ) मेरी ( कामान् ) इच्छाओं को ( समर्धयन्तु ) अच्छे प्रकार सिद्ध करें वैसे मुझ को आप लोग बोध कराओ ॥१२॥

**भावार्थ**—अध्यापक और उपदेशक प्रथम वेदों को पढ़ा पृथिव्यादि पदार्थ विद्याओं को जना कार्य कारण के सम्बन्ध से उन के गुणों को साक्षात् करा के हस्तक्रिया से सब मनुष्यों को कुशल अच्छे प्रकार किया करें ॥ १२ ॥

लोमानीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

**लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्म आनतिरागति । मांसं म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनति ॥१३॥**

**पदार्थ** हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जैसे ( मम ) मेरे ( लोमानि ) रोम वा ( प्रयति ) जिस से प्रयत्न करते हैं वा ( मे ) मेरी ( त्वक ) त्वचा ( आनति ) वा जिससे सब ओर से नम्र होते हैं वा ( मांसम ) मांस वा ( आगति ) आगमन तथा ( मे ) मेरा ( वसु ) द्रव्य ( उपनति ) वा जिससे नम्र होते हैं ( मे ) मेरे ( अस्थि ) हाड़ और ( मज्जा ) हाड़ों के बीच का पदार्थ ( आनति ) वा अच्छे प्रकार नमन होता हो वैसे तुम लोग प्रयत्न किया करो ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—अध्यापक उपदेशक लोगों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे सुशिक्षायुक्त सब पुरुष सब कन्या सुन्दर अङ्ग और स्वभाव वाले दृढ़ बल युक्त धार्मिक विद्याओं से युक्त होवें ॥ १३ ॥

यद्देवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( यत ) जो ( वयम ) हम ( देवा ) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् तथा अन्य ( देवास ) विद्वान् लोग परस्पर ( देवहेडनम ) विद्वानों का अनादर ( चकृम ) करें ( तस्मात ) उस ( विश्वात ) समस्त ( एनस ) अपराध और ( अहस ) दुष्ट व्यसन से ( अग्नि ) पावक के समान सब विद्याओं में प्रकाशमान आप ( मा ) मुझ को ( मुञ्चतु ) पृथक करो ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—जो कभी अकस्मात् भ्रान्ति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसी समय क्षमा करावे जैसे अग्नि सब पदार्थों में प्रविष्ट हुआ सब को अपने स्वरूप में स्थिर करता है वैसे विद्वान् को चाहिये कि सत्य के उपदेश से असत्याचरण से पृथक और सत्याचार में प्रवृत्त करके सब को धार्मिक करें ॥ १४ ॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वायुर्देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चकृमा वयम् । वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥१५॥**

**पदार्थ** हे विद्वन् ! ( यदि ) जो ( दिवा ) दिवस में ( यदि ) जो ( नक्तम ) रात्रि में ( एनांसि ) अज्ञात अपराधों को ( वयम ) हम लोग ( चकृम ) करें ( तस्मात ) उस ( विश्वात ) समग्र ( एनस ) अपराध और ( अहस ) दुष्ट व्यसन से ( मा ) मुझे ( वायु ) वायु के समान वर्त्तमान आप्त ( मुञ्चतु ) पृथक करे ॥१५॥

**भावार्थ**—जो दिवस और रात्रि में अज्ञान से पाप करे उस पाप से भी सब शिष्यों को शिक्षक लोग पृथक किया करें ॥१५॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सूर्य्यो देवता । निचृदनुष्टुपछन्द । गान्धार स्वर ॥

**यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( यदि ) जो ( जाग्रत ) जाग्रत अवस्था और ( यदि ) जो ( स्वप्ने ) स्वप्नावस्था में ( एनांसि ) अपराधों को ( वयम ) हम ( चकृम ) करें ( तस्मात् ) उस ( विश्वात ) समग्र ( एनस ) पाप और ( अहस ) प्रमाद से ( सूर्य ) सूर्य के समान वर्त्तमान आप ( मा ) मुझ को ( मुञ्चतु ) पृथक करें ॥१६ ॥

**भावार्थ**—जिस किसी दुष्ट चेष्टा को मनुष्य लोग कर विद्वान् लोग उस चेष्टा से उन सब को शीघ्र निवृत्त करें ॥१६॥

**यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्य्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! (**वयम्**) हम लोग (**यत्**) जो (**ग्रामे**) गाँव में (**यत्**) जो (**अरण्ये**) जङ्गल में (**यत्**) जो (**सभायाम्**) सभा में (**यत्**) जो (**इन्द्रिये**) मन में (**यत्**) जो (**शूद्रे**) शूद्र में (**यत्**) जो (**अर्य्ये**) स्वामी वा वैश्य में (**यत्**) जो (**एकस्य**) एक के (**अधि**) ऊपर (**धर्मणि**) धर्म में तथा (**यत्**) जो और (**एनः**) अपराध (**चकृम**) करते हैं वा करने वाले हैं (**तस्य**) उस सब का आप (**अवयजनम्**) छुड़ाने के साधन हैं इससे महाशय (**असि**) हैं॥१७॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को योग्य है कि कभी कहीं पापाचरण न करें जो कथञ्चित् करते बन पड़े तो उस सब को अपने कुटुम्ब और विद्वानों के सामने और राजसभा में सत्यता से कहें जो पढ़ाने और उपदेश करने हारे स्वयं धार्मिक होकर अन्य सब को धर्माचरण में युक्त करते हैं उनसे अधिक मनुष्यों को सुभूषित करने हारा दूसरा कौन है ॥१७॥

**यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**यदापो॑ऽअघ्न्या इति वरुणेति शपा॑महे ततो॑ वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः अवदेवैर्देवकृतमेनो॑ऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो॑ देव रिषस्पाहि ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे (**वरुण**) उत्तम प्रीति कराने और (**देव**) दिव्य बोध का देने हारा तू (**यत्**) जो (**आपः**) प्राण (**अघ्न्याः**) मारने को अयोग्य गौएँ (**इति**) इस प्रकार से वा हे (**वरुण**) सर्वोत्कृष्ट ! (**इति**) इस प्रकार से हम लोग (**शपामहे**) उलाहना देते हैं (**ततः**) उस अविद्यादि क्लेश और अधर्माचरण से (**नः**) हम को (**मुञ्च**) अलग कर हे (**अवभृथ**) ब्रह्मचर्य और विद्या से निष्णात (**निचुम्पुण**) मन्द गमन करने हारे ! तू (**निचेरुः**) निश्चित आनन्द का देने हारा और (**निचुम्पुणः**) निश्चित आनन्द युक्त (**असि**) है इस हेतु से (**पुरुराव्णः**) बहुत दुःख देने हारी (**रिषः**) हिंसा से (**पाहि**) रक्षा कर (**देवकृतम्**) जो विद्वानों का किया (**एनः**) अपराध है उस को (**देवैः**) विद्वानों के साथ (**अवायक्षि**) नाश करता है जो (**मर्त्यकृतम्**) मनुष्यों का किया अपराध है उस को (**मर्त्यैः**) मनुष्यों के साथ से (**अव**) छुड़ा देता है ॥१८॥

**भावार्थ**—अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों को शिष्य जन ऐसे सत्यवादी सिद्ध करने चाहियें कि जो इन को कहीं शपथ करना न पड़े जो जो मनुष्यों का श्रेष्ठ कर्म का आचरण करना है वह वह सब का आचरण करना चाहिये और अधर्मरूप हो वह किसी को न करना चाहिये ॥१८॥

**समुद्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो॑ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे शिष्य ! (**ते**) तेरा (**हृदयम्**) हृदय (**समुद्रे**) आकाशस्थ (**अप्सु**) प्राणों के (**अन्तः**) बीच में हो (**त्वा**) तुझ को (**ओषधीः**) ओषधियाँ (**सं विशन्तु**) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (**उत**) और (**आपः**) प्राण वा जल अच्छे प्रकार प्रविष्ट हों जिससे (**नः**) हमारे लिये (**आपः**) जल और (**ओषधयः**) ओषधि (**सुमित्रियाः**) उत्तम मित्र के समान सुखदायक (**सन्तु**) हों (**यः**) जो (**अस्मान्**) हमारा (**द्वेष्टि**) द्वेष करे (**यं च**) और जिसको (**वयम्**) हम (**द्विष्मः**) द्वेष करें (**तस्मै**) उसके लिये ये सब (**दुर्मित्रियाः**) शत्रुओं के समान (**सन्तु**) होवें ॥१९॥

**भावार्थ**—अध्यापक लोगों को इस प्रकार करने की इच्छा करना चाहिये जिससे शिक्षा करने योग्य मनुष्य अवकाशरहित प्राण तथा ओषधियों की विद्या जानने हारे शीघ्र हों ओषधि जल और प्राण अच्छे प्रकार सेवा किये हुए मित्र के समान विद्वानों की पालना करें और अविद्वान् लोगों को शत्रु के समान पीड़ा देवें उनका सेवन और उनका त्याग अवश्य करें ॥ १९ ॥

**द्रुपदादिवेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे (**आपः**) प्राण वा जलों के समान निर्मल विद्वान् लोगो ! आप (**द्रुपदादिव मुमुचानः**) वृक्ष से जैसे फल रस पुष्प पत्ता आदि अलग होते वा जैसे (**स्विन्नः**) स्वेदयुक्त मनुष्य (**स्नातः**) स्नान करके (**मलादिव**) मल से छूटता है वैसे वा (**पवित्रेणेव**) जैसे पवित्र करने वाले पदार्थ से (**पूतम्**) शुद्ध (**आज्यम्**) घृत होता है वैसे (**मा**) मुझ को (**एनसः**) अपराध से पृथक् करके (**शुन्धन्तु**) शुद्ध करें ॥२०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । अध्यापक उपदेशक लोगों को योग्य है कि इस प्रकार सब को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिससे वे शुद्ध आत्मा नीरोग शरीर और धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों ॥२०॥

**उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब प्रकृति विषय में उपासना विषय कहा है—*

**उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**वयम्**) हम लोग (**तमसः**) अन्धकार से परे (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप (**सूर्यम्**) सूर्य लोक वा चराचर के आत्मा परमेश्वर को (**परि**) सब ओर से (**पश्यन्तः**) देखते हुए (**देवत्रा**) दिव्य गुण वाले देवों में (**देवम्**) उत्तम सुख के देने वाले (**स्वः**) सुखस्वरूप (**उत्तरम्**) सब से सूक्ष्म (**उत्तमम्**) उत्कृष्ट स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (**उदगन्म**) उत्तमता से प्राप्त हों वैसे ही तुम लोग भी इस को प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान स्वप्रकाश सब आत्माओं का प्रकाशक महादेव जगदीश्वर है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥२१ ॥

**अप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वानग्नऽआगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान विद्वान् ! जो (**पयस्वान्**) प्रशंसित जल की विद्या से युक्त मैं तुझ को (**आ अगमम्**) प्राप्त होऊँ वा (**अद्य**) आज (**रसेन**) मधुरादि रस से युक्त (**अपः**) जलों को (**अन्वचारिषम्**) अनुकूलता से पान करूँ (**तम्**) उस (**मा**) मुझ को (**वर्चसा**) साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन (**प्रजया**) प्रजा (**च**) और (**धनेन**) धन से (**च**) भी (**सं, सृज**) सम्यक् संयुक्त कर जिससे ये लोग और मैं सब हम सुख के लिये (**समसृक्ष्महि**) संयुक्त होवें ॥२२॥

**भावार्थ**—यदि विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश करने से अन्य लोगों को विद्वान् करें तो वे भी नित्य अधिक विद्या वाले हों ॥२२॥

**एधोसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समिद्देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब प्रकरणगत विषय में फिर उपासना विषय कहते हैं—*

**एधो॑ऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजो॑ऽसि तेजो मयि धेहि । समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् । वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! आप (**एधः**) बढ़ाने हारे (**असि**) हैं (**समित्**) जैसे अग्नि का प्रकाशक इन्धन है वैसे मनुष्यों के आत्मा का प्रकाश करने हारे (**असि**) हैं और (**तेजः**) तीव्रबुद्धि वाले (**असि**) हैं इससे (**तेजः**) ज्ञान के प्रकाश को (**मयि**) मुझ में (**धेहि**) धारण कीजिये जो आप सर्वत्र (**समाववर्त्ति**) अच्छे प्रकार व्याप्त हो जिन आपने (**पृथिवी**) भूमि और (**उषाः**) उषा (**सम्**) अच्छे प्रकार उत्पन्न की (**सूर्यः**) सूर्य (**सम्**) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) सब (**जगत्**) जगत् (**सम्**) उत्पन्न किया (**उ**) उसी (**वैश्वानरज्योतिः**) विश्व के नायक प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होके हम लोग (**एधिषीमहि**) नित्य बढ़ा करें जैसे मैं (**स्वाहा**) सत्य वाणी वा क्रिया से (**भूः**) सत्ता वाली प्रकृति (**विभून्**) व्यापक पदार्थ और (**कामान्**) कामों को (**व्यश्नवै**) प्राप्त होऊँ और सुखी (**भूयासम्**) होऊँ (**उ**) और वैसे तुम भी सिद्धकाम और सुखी होओ ॥२३॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस शुद्ध सर्वत्र व्यापक सब के प्रकाशक जगत् के उत्पादन धारण पालन और प्रलय करने हारे ब्रह्म की उपासना करके तुम लोग जैसे आनन्दित होते हो वैसे इस को प्राप्त होके हम भी आनन्दित होवें आकाश काल और दिशाओं का भी व्यापक जान ॥२३॥

**अभ्यादधामीत्यस्याश्वतराश्विर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो॑ऽअहम् ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे (**व्रतपते**) सत्यभाषणादि कर्मों के पालन करने हारे (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ! (**त्वयि**) तुझ में स्थिर होके (**अहम्**) मैं (**समिधम्**) अग्नि में समिधा के समान ध्यान को (**अभ्यादधामि**) धारण करता हूँ जिससे (**व्रतम्**) सत्यभाषणादि व्यवहार (**च**) और (**श्रद्धाम्**) सत्य के धारण करने वाले नियम को

को ( च ) भी ( उपमि ) प्राप्त होता हूँ ( दीक्षित ) ब्रह्मचर्य्यादि दीक्षा को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त हुआ मैं ( त्वा ) तुझे ( इन्धे ) प्रकाशित करता हूँ ॥२४॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर ने करने के लिये आज्ञा दिये हुए सत्यभाषणादि नियमों को धारण करते हैं वे अतुल श्रद्धा को प्राप्त होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को करने में समर्थ होते हैं ॥२४॥

**यत्र ब्रह्मेत्यस्याश्वतराश्विऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।**

**तंल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥२५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( यत्र ) जिस परमात्मा में ( ब्रह्म ) ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों का कुल ( च ) और ( क्षत्रम् ) विद्या शौर्यादि गुणयुक्त क्षत्रियकुल ये दोनों ( सह ) साथ ( सम्यञ्चौ ) अच्छे प्रकार प्रीतियुक्त ( च ) तथा वैश्य आदि के कुल ( चरतः ) मिलकर व्यवहार करते हैं और ( यत्र ) जिस ब्रह्म में ( देवाः ) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि लोक वा विद्वान् जन ( अग्निना ) बिजुली रूप अग्नि के ( सह ) साथ वर्तते हैं ( तम् ) उस ( लोकम् ) देखने के योग्य ( पुण्यम् ) सुखस्वरूप निष्पाप परमात्मा को ( प्र, ज्ञेषम् ) जानूं वैसे तुम लोग भी इस को जानो ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो ब्रह्म एक चेतनमात्र स्वरूप सब का अधिकारी पापरहित ज्ञान से देखने योग्य सर्वत्र व्याप्त सब के साथ वर्त्तमान है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है ॥२५॥

**यत्रेन्द्रेत्यस्याश्वतराश्विऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह ।**

**तल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥२६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( यत्र ) जिस ईश्वर में ( इन्द्रः ) सर्वत्रव्याप्त बिजुली ( च ) और ( वायुः ) धनञ्जय आदि वायु ( सह ) साथ ( सम्यञ्चौ ) अच्छे प्रकार मिले हुए ( चरतः ) विचरते हैं ( च ) और ( यत्र ) जिस ब्रह्म में ( सेदिः ) नाश वा उत्पत्ति ( न, विद्यते ) नहीं विद्यमान है ( तम् ) उस ( पुण्यम् ) पुण्य से उत्पन्न हुए ज्ञान से जानने योग्य ( लोकम् ) सब को देखने हारे परमात्मा को ( प्र ज्ञेषम् ) जानूं वैसे इस को तुम लोग भी जानो ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कोई विद्वान् वायु बिजुली और आकाशादि की सीमा को जानना चाहे तो अन्त को प्राप्त नहीं होता जिस ब्रह्म में ये सब आकाशादि विभु पदार्थ भी व्याप्य हैं उस ब्रह्म के अन्त के जानने को कौन समर्थ हो सकता है ॥२६॥

**अंशुनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः ।**

**गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽअच्युतः ॥२७॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( ते ) तेरे ( अंशुना ) भाग से ( अंशुः ) भाग और ( परुषा ) मर्म से ( परुः ) मर्म ( पृच्यताम् ) मिले तथा ( ते ) तेरा ( अच्युतः ) नाशरहित ( गन्धः ) गन्ध और ( रसः ) रस पदार्थ सार ( मदाय ) आनन्द के लिये ( सोमम् ) ऐश्वर्य की ( अवतु ) रक्षा करे ॥२७॥

भावार्थ—जब ध्यानावस्थित मनुष्य के मन के साथ इन्द्रियाँ और प्राण ब्रह्म में स्थिर होते हैं तभी वह नित्य आनन्द को प्राप्त होता है ॥२७॥

**सिञ्चन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब विद्वानों के विषय में शरीरसम्बन्धी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च ।**

**सुरायै बभ्रवै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥२८॥**

पदार्थ—जो ( बभ्रवै ) बल के धारण करने हारे ( सुरायै ) सोम वा ( मदे ) आनन्द के लिये महौषधियों के रस को ( सिञ्चन्ति ) जाठराग्नि में सींचते सेवन करते ( परि, षिञ्चन्ति ) सब ओर से पीते ( उत्सिञ्चन्ति ) उत्कृष्टता से ग्रहण करते ( च ) और ( पुनन्ति ) पवित्र होते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होते हैं और जो ( किन्त्वः ) क्या वह ( किन्त्वः ) क्या और ऐसा ( वदति ) कहता है वह कुछ भी नहीं पाता है ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो अन्नादि को पवित्र और संस्कार कर उत्तम रसों से युक्त करके युक्त आहार विहार से खाते पीते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं जो मूढ़ता से ऐसा नहीं करता वह बलबुद्धिहीन हो निरन्तर दुःख को भोगता है ॥ २८ ॥

**धानावन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

**धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥२९॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सुख की इच्छा करनेहारे विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त जन ! तू ( नः ) हमारे ( धानावन्तम् ) अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए धान्य अन्नों से युक्त ( करम्भिणम् ) और अच्छी क्रिया से सिद्ध किये और ( अपूपवन्तम् ) सुन्दरता से इकट्ठे किये हुए मालपुये आदि से युक्त ( उक्थिनम् ) तथा उत्तम वाक्य से उत्पन्न हुए बोध को सिद्ध कराने हारे और भक्ष्य आदि से युक्त भोजन योग्य अन्न रसादि को ( प्रातः ) प्रातःकाल ( जुषस्व ) सेवन किया कर ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो विद्या के पढ़ाने और उपदेशों से सब का सुभूषित और विश्व का उद्धार करने हारे विद्वान् जन अच्छे संस्कार किये हुए रसादि पदार्थों से युक्त अन्नादि को ठीक समय में भोजन करते हैं और जो उन को विद्या सुशिक्षा से युक्त वाणी का ग्रहण करावें वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ २९ ॥

**बृहदित्यस्य नृमेधपुरुषमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

**बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।**

**येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥३०॥**

पदार्थ—हे ( मरुतः ) विद्वान् लोगो ! ( ऋतावृधः ) सत्य के बढ़ाने हारे आप ( येन ) जिससे ( देवाय ) दिव्यगुण वाले ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य्य से युक्त ईश्वर के लिये ( देवम् ) दिव्य सुख देनेवाले ( जागृवि ) जागरूक अर्थात् अतिप्रसिद्ध ( ज्योतिः ) तेज पराक्रम को ( अजनयन् ) उत्पन्न करें उस ( वृत्रहन्तमम् ) अतिशय करके मेघहन्ता सूर्य्य के समान ( बृहत् ) बड़े सामगान को उक्त उस ईश्वर के लिये ( गायत ) गाओ ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वदा युक्त आहार और व्यवहार से शरीर और आत्मा के रोगों का निवारण कर पुरुषार्थ को बढ़ा के परमेश्वर का प्रतिपादन करनेहारे गान को किया करें ॥ ३० ॥

**अध्वर्यो इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर प्रकारान्तर से उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अध्वर्योऽअद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्रऽआ नय ।**

**पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३१॥**

पदार्थ—हे ( अध्वर्यो ) यज्ञ का युक्त करने हारे पुरुष ! तू ( इन्द्राय ) परमैश्वर्यवान् के लिये ( पातवे ) पीने को ( अद्रिभिः ) मेघों से ( सुतम् ) उत्पन्न हुए ( सोमम् ) सोमवल्ल्यादि ओषधियों के साररूप रस को ( पवित्रे ) शुद्ध व्यवहार में ( आनय ) ला और उससे तू ( पुनीहि ) पवित्र हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—वैद्यराजों को योग्य है कि शुद्ध देश में उत्पन्न हुई ओषधियों के सारों को बना उस के दान से सब के रोगों की निवृत्ति निरन्तर करें ॥ ३१ ॥

**यो भूतानामित्यस्य कौण्डिन्य ऋषिः । परमात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधिश्रिताः । यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥३२॥**

पदार्थ—हे सब के हित की इच्छा करनेहारे पुरुष ! ( यः ) जो ( भूतानाम् ) पृथिव्यादि तत्त्वों और उनसे उत्पन्न हुए कार्यरूप लोकों का ( अधिपतिः ) अधिष्ठाता ( महतः ) बड़े आकाशादि से ( महान् ) बड़ा है ( यः ) जो ( ईशे ) सब का ईश्वर है ( यस्मिन् ) जिस में सब ( लोकाः ) लोक ( अधिश्रिताः ) अधिष्ठित आश्रित हैं ( तेन ) उससे ( त्वाम् ) तुझ को ( अहम् ) मैं ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ ( मयि ) मुझ में ( त्वाम् ) तुझ को ( अहम् ) मैं ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूँ ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो उपासक अनन्त ब्रह्म में निष्ठा रखने वाला ब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु को उपास्य नहीं जानता वही इस जगत् में विद्वान् माना जाना चाहिये ॥३२॥

**उपयामगृहीतोसीत्यस्य काक्षीवतसुकीर्त्तिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे । एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो तू ( अश्विभ्याम् ) पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक से ( उपयामगृहीतः ) उत्तम नियमों के साथ ग्रहण किया हुआ ( असि ) है जिस ( ते ) तेरा ( एषः ) यह ( अश्विभ्याम् ) अध्यापक और उपदेशक के साथ ( योनिः ) विद्यासम्बन्ध है उस ( त्वा ) तुझ को ( सरस्वत्यै ) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये ( त्वा ) तुझ को ( इन्द्राय ) उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य के लिये और ( त्वा ) तुझ को ( सुत्राम्णे ) अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारे के लिये मैं ग्रहण करता हूँ ( सरस्वत्यै )

उत्तम गुण वाली विदुषी स्त्री के लिये ( त्वा ) तुझ को (इन्द्राय) परमोत्तम व्यवहार के लिये ( त्वा ) तुझ को और ( सुत्राम्णे ) उत्तम रक्षा के लिये ( त्वा ) तुझ का ग्रहण करता हूं ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों से शिक्षा पाये हुए स्वयं उत्तम बुद्धिमान् जितेन्द्रिय अनेक विद्याओं में युक्त विद्वानों में प्रेम करने हारा होवे वही विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अधिष्ठाता करने योग्य होवे ॥ ३३ ॥

प्राणपा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

**प्रा॒ण॒पा मे॑ऽअपान॒पाश्च॑क्षु॒ष्पाः श्रो॑त्र॒पाश्च॑ मे ।**
**वा॒चो मे॑ वि॒श्वभे॑षजो॒ मन॑सोऽसि वि॒लाय॑कः ॥३४॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिससे तू ( मे ) मेरे ( प्राणपाः ) प्राण का रक्षक ( अपानपाः ) अपान का रक्षक ( मे ) मेरे ( चक्षुष्पाः ) नेत्रों का रक्षक (श्रोत्रपाः) श्रोत्रों का रक्षक ( च ) और ( मे ) मेरी ( वाचः ) वाणी का ( विश्वभेषजः ) सम्पूर्ण ओषधिरूप ( मनसः ) विज्ञान का सिद्ध करने हारे मन का ( विलायकः ) विविध प्रकार से सम्बन्ध करनेवाला ( असि ) है इस से तू हमारे पिता के समान सत्कार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो बाल्यावस्था का आरम्भ कर विद्या और अच्छी शिक्षा से जितेन्द्रियपन, विद्या सत्पुरुषों के साथ प्रीति तथा धर्मात्मा और परोपकारीपन को ग्रहण कराते हैं वे माता के समान और मित्र के समान जानने चाहियें ॥ ३४ ॥

अश्विनकृतस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**अ॒श्विन॑कृतस्य ते॒ सर॑स्वतिकृत॒स्येन्द्रे॑ण सु॒त्राम्णः॑ कृ॒तस्य॑ ।**
**उप॑हूत॒ उप॑हूतस्य भक्षयामि ॥३५॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( उपहूतः ) बुलाया हुआ मैं (ते) तेरा (अश्विनकृतस्य) जो सद्गुणों को व्याप्त होते हैं उनके लिये ( सरस्वतिकृतस्य ) विदुषी स्त्री के लिये ( सुत्राम्णः ) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारे ( इन्द्रेण ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजा के ( कृतस्य ) किये हुए ( उपहूतस्य ) समीप में लाये अन्नादि का (भक्षयामि) भक्षण करता हूं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वान् और ऐश्वर्ययुक्त जनों ने अनुष्ठान किये हुए का अनुष्ठान करें और अच्छी शिक्षा किये हुए पाककर्त्ता के बनाये हुए अन्न को खावें और सत्कार करने हारे का सत्कार किया करें ॥ ३५ ॥

समिद्ध इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**समि॑द्ध॒ऽइन्द्र॑ऽउ॒षसा॒मनी॑के पुरो॒रुचा॑ पूर्व॒कृद्वा॑वृधा॒नः ।**
**त्रि॒भिर्दे॒वैस्त्रि॒ꣳश॒ता वज्र॑बाहुर्ज॒घान॑ वृ॒त्रं वि दुरो॑ ववार ॥३६॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( पूर्वकृत् ) पूर्व करने हारा ( वावृधानः ) बढ़ता हुआ ( वज्रबाहुः ) जिसके हाथ में वज्र है वह ( उषसाम् ) प्रभात वेलाओं की (अनीके) सेना में जैसे ( पुरोरुचा ) प्रथम विथुरी हुई दीप्ति से ( समिद्धः ) प्रकाशित हुआ ( इन्द्रः ) सूर्य्य ( त्रिभिः ) तीन अधिक ( त्रिंशता ) तीस ( देवैः ) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के साथ वर्त्तमान हुआ ( वृत्रम् ) मेघ को ( जघान ) मारता है (दुरः) द्वारों को ( वि ववार ) प्रकाशित करता है वैसे अत्यन्त बलयुक्त योद्धाओं के साथ शत्रुओं को मार विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग सूर्य के समान विद्या धर्म के प्रकाशक हों विद्वानों के साथ शान्ति प्रीति के सत्य और असत्य के विवेक के लिये संवाद कर अच्छे प्रकार निश्चय करके सब मनुष्यों को संशयरहित करें ॥ ३६ ॥

नराशंस इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । तनूनपाद्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**नरा॒शꣳस॒ः प्रति॒ शूरो॒ मिमा॑न॒स्तनू॒नपा॒त्प्रति॑ य॒ज्ञस्य॒ धाम॑ ।**
**गोभि॑र्व॒पावा॒न्मधु॑ना सम॒ञ्जन्हिर॑ण्यैश्च॒न्द्री य॑जति॒ प्रचे॑ताः ॥३७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( नराशंसः ) जो मनुष्यों से प्रशंसा किया जाता ( यज्ञस्य ) सत्य व्यवहार के ( धाम ) स्थान का और ( प्रति मिमानः ) अनेक उत्तम पदार्थों का निर्माण करने हारा ( शूरः ) सब ओर से निर्भय (तनूनपात्) जो शरीर का पात न करने हारा ( गोभिः ) गाय और बैलों से ( वपावान् ) जिससे क्षेत्र बोये जाते हैं उस प्रशंसित उत्तम क्रिया से युक्त ( मधुना ) मधुरादि रस से ( समञ्जन् ) प्रकट करता हुआ (हिरण्यैः) सुवर्णादि पदार्थों से (चन्द्री) बहुत सुवर्णवान् (प्रचेताः) उत्तम प्रज्ञायुक्त विद्वान् ( प्रति यजति ) यज्ञ करता कराता है सो हमारे आश्रय के योग्य है ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि किसी निन्दित भीरु अपने शरीर के नाश करने हारे उद्यमहीन आलसी मूढ और दरिद्री का संग कभी न करें ॥ ३७ ॥

ईडित इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**ई॒डि॒तो दे॒वैर्हरि॑वाँ२ऽअभि॒ष्टिरा॒जुह्वा॑नो ह॒विषा॒ शर्द्ध॑मानः ।**
**पु॒र॒न्द॒रो गो॑त्र॒भिद्वज्र॑बाहु॒राया॑तु य॒ज्ञमुप॑ नो जुषा॒णः ॥३८॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे ( हरिवान् ) उत्तम घोड़ों वाला (वज्रबाहुः) जिसकी भुजाओं में वज्र विद्यमान (पुरन्दरः) जो शत्रुओं के नगरों का विदीर्ण करने हारा सेनापति ( गोत्रभित् ) मेघ को विदीर्ण करने हारा सूर्य जैसे रसों का सेवन करे वैसे अपनी सेना का सेवन करता है वैसे ( देवैः ) विद्वानों से ( ईडितः ) प्रशंसित ( अभिष्टिः ) सब ओर से यज्ञ के करने हारे ( आजुह्वानः ) विद्वानों ने सत्कारपूर्वक बुलाये हुए ( हविषा ) सद्विद्या के दान और ग्रहण से ( शर्द्धमानः ) सहन करते ( जुषाणः ) और प्रसन्न होते हुए आप ( नः ) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को ( उप आ यातु ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सेनापति सेना को और सूर्य मेघ को बढ़ा कर सब जगत् की रक्षा करता है वैसे धार्मिक अध्यापकों को अध्ययन करनेहारों के साथ पढ़ना और पढ़ाना कर विद्या से सब प्राणियों की रक्षा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

जुषाण इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**जु॒षा॒णो ब॒र्हिर्हरि॑वान्न॒ऽइन्द्रः॑ प्रा॒चीन॑ꣳ सीदत्प्र॒दिशा॑ पृथि॒व्याः ।**
**उ॒रु॒प्रथाः॒ प्रथ॑मानꣳ स्यो॒नमा॑दि॒त्यैर॒क्तं वसु॑भिः स॒जोषाः॑ ॥३९॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( बर्हिः ) अन्तरिक्ष को ( जुषाणः ) सेवन करता हुआ ( हरिवान् ) जिस के हरणशील बहुत किरण विद्यमान ( उरुप्रथाः ) बहुत विस्तारयुक्त ( आदित्यैः ) महीनों और ( वसुभिः ) पृथिव्यादि लोकों के (सजोषाः) साथ वर्त्तमान ( इन्द्रः ) जनों का धारणकर्त्ता सूर्य्य (पृथिव्याः) पृथिवी से (प्रदिशा) उपदिशा के साथ ( प्रथमानम् ) विस्तीर्ण ( अक्तम् ) प्रसिद्ध ( प्राचीनम् ) पुरातन ( स्योनम् ) सुखकारक स्थान को ( सीदत ) स्थित होता है वैसे तू हमारे मध्य में हो ॥ ३९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि रात दिन प्रयत्न से आदित्य के तुल्य अविद्यारूपी अन्धकार का निवारण करके जगत् में बड़ा सुख प्राप्त कर जैसे पृथिवी से सूर्य बड़ा है वैसे अविद्वानों में विद्वान् को बड़ा जानें ॥ ३९ ॥

इन्द्रमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**इन्द्रं॒ दुरः॑ कव॒ष्यो धाव॑माना॒ वृषा॑णं यन्तु॒ जन॑यः सु॒पत्नीः॑ ।**
**द्वारो॑ दे॒वीर॒भितो॒ वि श्र॑यन्ताꣳ सु॒वीरा॑ वी॒रं प्रथ॑माना॒ महो॑भिः ॥४०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( कवष्यः ) बोलने में चतुर ( वृषाणम् ) अति वीर्यवान ( इन्द्रम् ) परमैश्वर्य वाले ( वीरम् ) वीर पुरुष के प्रति ( धावमानाः ) दौड़ती हुईं ( जनयः ) सन्तानों को जनने वाली स्त्रियां ( दुरः ) द्वारों को ( यन्तु ) प्राप्त हों वा जैसे ( प्रथमानाः ) प्रख्यात ( सुवीराः ) अत्युत्तम वीर पुरुष (महोभिः) अच्छे पूजित गुणों से युक्त ( द्वारः ) द्वार के तुल्य वर्त्तमान ( देवीः ) विद्यादि गुणों में प्रकाशमान ( सुपत्नीः ) अच्छी स्त्रियों का ( अभितः ) सब ओर से (वि श्रयन्ताम्) विशेष कर आश्रय करें वैसे तुम भी किया करो ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस कुल वा देश में परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करते हैं वहां मनुष्य सदा आनन्द में रहते हैं ॥४०॥

उषासानक्तेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । उषासानक्ता देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**उ॒षासा॒नक्ता॑ बृह॒ती बृ॒हन्तं॒ पय॑स्वती सु॒दुघे॒ शूर॒मिन्द्र॑म् ।**
**तन्तुं॑ त॒तं पेश॑सा सं॒वय॑न्ती दे॒वाना॑न्दे॒वं य॑जतः सुरु॒क्मे ॥४१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पेशसा ) रूप से ( संवयन्ती ) प्राप्त करने हारे ( पयस्वती ) रात्रि के अन्धकार से युक्त ( सुदुघे ) अच्छे प्रकार पूर्ण करनेवाले ( बृहती ) बढ़ते हुए ( सुरुक्मे ) अच्छे प्रकाश वाले (उषासानक्ता) रात्रि और दिन ( ततम् ) विस्तारयुक्त ( देवानाम् ) पृथिव्यादिकों के ( देवम् ) प्रकाशक (बृहन्तम्) बड़े ( इन्द्रम् ) सूर्य्यमण्डल को ( यजतः ) संग करते हैं वैसे ही ( तन्तुम् ) विस्तार करने हारे ( शूरम् ) शूरवीर पुरुष को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब लोक सब से बड़े सूर्यलोक का आश्रय करते हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष का आश्रय सब लोग करें ॥४१॥

दैव्येत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**दैव्या॒ मिमा॑ना॒ मनु॑षः पुरु॒त्रा होता॑रा॒विन्द्रं॑ प्रथ॒मा सु॒वाचा॑ ।**
**मू॒र्द्धन्य॒ज्ञस्य॒ मधु॑ना॒ दधा॑ना प्रा॒चीनं॒ ज्योति॑र्ह॒विषा॑ वृधातः ॥४२॥**

**पदार्थ**—जो ( **देव्या** ) दिव्य पदार्थों और विद्वानो मे हुए (**मिमाना**) निर्माण करने हारे ( **होतारौ** ) दाता (**सुवाचा**) जिनकी सुशिक्षित वाणी वे विद्वान् (**यज्ञस्य**) सग करने योग्य व्यवहार के ( **मूर्द्धन्** ) ऊपर ( **प्रथमा** ) प्रथम वर्त्तमान ( **पुरुषा** ) बहुत ( **मनुष** ) मनुष्यों को ( **यजाना** ) धारण करते हुए (**मधुना**) मधुरादिगुणयुक्त ( **हविषा** ) होम करने योग्य पदार्थ से ( **प्राचीनम्** ) पुरातन (**ज्योति** ) प्रकाश और ( **इन्द्रम्** ) परम ऐश्वर्य को ( **वृधात** ) बढाते हैं वे सब मनुष्यो के सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् पढाने और उपदेश से सब मनुष्यो को उन्नति देते हैं वे सम्पूर्ण मनुष्यो को सुभूषित करने हारे हैं ॥ ४२ ॥

**तिस्रो देवीरित्यस्याङ्गिरस ऋषि । तिस्रो देव्यो देवता । त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

## तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
## अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ॥४३॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **विश्वतूर्त्ति** ) जगत् में शीघ्रता करने हारी ( **देवी** ) प्रकाशमान ( **सरस्वती** ) उत्तम विज्ञानयुक्त वा (**इडा**) शुभ गुणो से स्तुति करने योग्य तथा ( **भारती** ) धारण और पोषण करनेहारी ये ( **तिस्र** ) तीन ( **देवी** ) प्रकाशमान शक्तिया (**पयसा**) शब्द अर्थ और सम्बन्ध रूप रस से (**हविषा**) देने लेने के व्यवहार और प्राण से ( **वर्द्धमाना** ) बढती हुई ( **जनय** ) सन्तानोत्पत्ति करने हारी ( **पत्नी** ) स्त्रियो के ( **न** ) समान (**अच्छिन्नम्**) छेदभेदरहित (**तन्तुम्**) विस्तारयुक्त ( **इन्द्रम्** ) बिजुली का (**जुषाणा** ) सेवन करने हारी हैं उनका सेवन तुम लोग किया करो ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो विद्वानो से युक्त वाणी नाडी और धारण करने वाली शक्ति ये तीन प्रकार की शक्तिया सर्वत्र व्याप्त सर्वदा उत्पन्न हुई व्यवहार के हेतु हैं उनको मनुष्य लोग व्यवहारो मे यथावत् प्रयुक्त करें ॥ ४३ ॥

**त्वष्टेत्यस्याङ्गिरस ऋषि । त्वष्टा देवता । निचृत् त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

फिर विद्वज्जन के विषय को अगले मन्त्र म कहा है—

## त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
## वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥४४॥

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **त्वष्टा** ) विद्युत् के समान वर्त्तमान विद्वान् ( **वृषा** ) सेचनकर्त्ता ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्य ( **वृष्णे** ) और पराये सामर्थ्य को रोकने हारे के लिये ( **शुष्मम्** ) बल को ( **अपाक** ) अप्रशसनीय ( **अचिष्टु** ) प्राप्त होने हारा ( **यशसे** ) कीर्ति के लिये ( **पुरूणि** ) बहुत पदार्थों को ( **दधत** ) धारण करते हुए ( **भूरिरेता** ) अत्यन्तपराक्रमी ( **वृषणम्** ) मेघ को ( **यजन्** ) सङ्गत करता ( **यज्ञस्य** ) सङ्गति से उत्पन्न हुए जगत् के ( **मूर्द्धन्** ) उत्तम भाग मे (**देवान्**) विद्वानो की ( **समनक्तु** ) कामना करे वैसे तू भी कर ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—जबतक मनुष्य शुद्धान्त करण नही होवे तबतक विद्वानो का सङ्ग सत्यशास्त्र और प्राणायाम का अभ्यास किया करे जिससे शीघ्र शुद्धान्त करणवान् हो ॥ ४४ ॥

**वनस्पतिरित्यस्याङ्गिरस ऋषि । वनस्पतिर्देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

## वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
## इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥४५॥

**पदार्थ**—जो ( **पाशै** ) दृढ बन्धनों से ( **वनस्पति** ) वृक्षसमूह का पालन करनेहारा ( **अवसृष्ट** ) आज्ञा दिये हुए पुरुष के ( **न** ) समान ( **त्मन्या** ) आत्मा के साथ ( **समञ्जन्** ) सम्पर्क करता हुआ (**देव** ) दिव्य सुख का देने हारा (**शमिता**) यज्ञ के ( **न** ) समान ( **इन्द्रस्य** ) ऐश्वर्य्य के ( **जठरम्** ) उदर के समान कोश को ( **पृणान** ) पूर्ण करता हुआ ( **हव्य** ) खाने के योग्य ( **मधुना** ) सहृत और ( **घृतेन** ) घृत आदि पदार्थों से ( **यज्ञम्** ) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ को करता हुआ ( **स्वदाति** ) अच्छे प्रकार स्वाद लेवे वह रोगरहित होवे ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे बड आदि वनस्पति बढकर फलो को देता है जैसे बन्धनो से बंधा हुआ चोर पाप से निवृत्त होता है वा जैसे यज्ञ सब जगत् की रक्षा करता है वैसे यज्ञकर्त्ता युक्त आहार विहार करने वाला मनुष्य जगत् का उपकारक होता है ॥ ४५ ॥

**स्तोकानामित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । स्वाहाकृतयो देवता । त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

## स्तोकानामिन्दुं प्रति शूरऽइन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
## घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवाऽअमृता मादयन्ताम् ॥४६॥

**पदार्थ**—जैसे ( **वृषायमाण** ) बलिष्ठ होता हुआ ( **वृषभः** ) उत्तम (**तुराषाट्**) हिंसक शत्रुओं को सहने हारा (**शूर** ) शूरवीर ऐश्वर्यवाला (**स्तोकानाम्**) थोडों के ( **इन्दुम्** ) कोमल स्वभाव वाले मनुष्य के ( **प्रति** ) प्रति आनन्दित होता है वैसे ( **घृतप्रुषा** ) प्रकाश के सेवन करने वाले (**मनसा**) विज्ञान से और (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से ( **मोदमाना** ) आनन्दित होते हुए ( **अमृता** ) आत्म स्वरूप से मृत्यु धर्मरहित ( **देवा** ) विद्वान् लोग ( **मादयन्ताम्** ) आप तृप्त होकर हम को आनन्दित करें ॥ ४६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अल्पगुण वाले भी मनुष्य को देखकर स्नेहयुक्त होते हैं वे सब ओर से सब को सुखी कर देते हैं ॥४६॥

**आयात्वित्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब राजधर्मविषय को अगले मन्त्रों म कहा है—*

## आयात्विन्द्रोऽवसऽउप नऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
## वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥४७॥

**पदार्थ**—जो ( **इन्द्र** ) परम ऐश्वर्य का धारण करने हारा ( **इह** ) इस वर्त्तमान काल मे ( **स्तुत** ) प्रशसा को प्राप्त हुआ ( **शूर** ) निर्भय वीर पुरुष ( **पूर्वी** ) पूर्व विद्वानो ने अच्छी शिक्षा से उत्तम की हुई ( **तविषी** ) सेनाओं को ( **वावृधान** ) अत्यन्त बढाने हारा जन ( **यस्य** ) जिस का ( **अभिभूति** ) शत्रुओं का तिरस्कार करने हारा ( **क्षत्रम्** ) राज्य ( **द्यौ** ) सूर्य के प्रकाश के ( **न** ) समान वर्त्तता है जो ( **न** ) हम को ( **पुष्यात्** ) पुष्ट करे वह हमारे ( **अवसे** ) रक्षा आदि के लिये ( **उप, आ यातु** ) समीप प्राप्त होवे और (**सधमात्**) समान स्थान वाला ( **अस्तु** ) होवे ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय और विद्या दोनो के प्रकाश करने हारे जिनकी सत्कृत हर्ष और पुष्टि से युक्त सेना वाले प्रजा की पुष्टि और दुष्टो का नाश करनेहारे हों वे राज्याधिकारी होवें ॥ ४७ ॥

**आ न इत्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

## आ नऽइन्द्रो दूरादा नऽआसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
## ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥४८॥

**पदार्थ**—जो ( **अभिष्टिकृत** ) सब ओर से इष्ट सुख करने ( **वज्रबाहु** ) जिस की वज्र के समान दृढ भुजा ( **नृपति** ) नरो का पालन करने हारा (**ओजिष्ठेभि** ) अति बल वाले योधाओ मे ( **उग्र** ) दुष्टो पर क्रोध करने और ( **तुर्वणि** ) शीघ्र शत्रुओं का मारने हारे ( **इन्द्र** ) शत्रुविदारक सेनापति ( **न** ) हमारी ( **अवसे** ) रक्षादि के लिये ( **समत्सु** ) बहुत सग्रामो म ( **सङ्गे** ) प्रसग मे ( **दूरात्** ) दूर से ( **आसात्** ) और समीप से ( **आ, यासत** ) आवे और ( **न** ) हमारे ( **पृतन्यून्** ) सेना और सग्राम की इच्छा करने हारो को ( **आ** ) सदा रक्षा और मान्य करे वह हम लोगो का भी सदा माननीय होवे ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—वे ही पुरुष राज्य करने को योग्य होते हैं जो दूरस्थ और समीपस्थ सब मनुष्यादि प्रजाओं की यथावत् समीक्षण और दूत भेजने से रक्षा करते और शूरवीर का सत्कार भी निरन्तर करते हैं ॥ ४८ ॥

**आ न इत्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

## आ नऽइन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
## तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥४९॥

**पदार्थ**—जो (**मघवा**) परम प्रशसित धन युक्त (**विरप्शी**) महान् (**अर्वाचीन** ) विद्यादि बल से सन्मुख जाने वाला ( **वज्री** ) प्रशसित शस्त्रविद्या की शिक्षा पाये हुए ( **इन्द्र** ) ऐश्वर्य का दाता सेनाधीश ( **हरिभि** ) अच्छी शिक्षा किये हुए घोडों से ( **न** ) हम लोगो की ( **अवसे** ) रक्षा आदि के लिये ( **राधसे, च** ) और धन के लिये ( **वाजसातौ** ) सग्राम म ( **अनु तिष्ठाति** ) अनुकूल स्थित हो वह ( **न** ) हमारे ( **इमम्** ) इस ( **यज्ञम्** ) सत्यन्याय पालन करने रूप राज्यव्यवहार को ( **अच्छ आ, यातु** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४९ ॥

**भावार्थ**—जो युद्धविद्या म कुशल बडे बलवान् प्रजा और धन की वृद्धि करनेहारे उत्तम शिक्षा युक्त हाथी और घोडो से युक्त कल्याण ही के आचरण करने हारे हों वे ही राजपुरुष होवें ॥ ४९ ॥

**त्रातारमित्यस्य गर्ग ऋषि । इन्द्रो देवता । विराड् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

## त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।
## ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५०॥

**पदार्थ**—हे सभाध्यक्ष ! जिस ( **हवेहवे** ) प्रत्येक सग्राम मे ( **त्रातारम्** ) रक्षा करने ( **इन्द्रम्** ) दुष्टो के नाश करने ( **अवितारम्** ) प्रीति कराने ( **इन्द्रम्** ) उत्तम ऐश्वर्य के देने ( **सुहवम्** ) सुन्दरता से बुलाये जाने ( **शूरम्** ) शत्रुओं का विनाश कराने ( **इन्द्रम्** ) राज्य का धारण करने और ( **शक्रम्** ) कार्यों मे शीघ्रता करनेहारे ( **पुरुहूतम्** ) बहुतों से सत्कार पाये हुए तथा (**इन्द्रम्**) शत्रुसेना के विदारण करनेहारे तुझको ( **ह्वयामि** ) सत्कारपूर्वक बुलाता हूं सो ( **मघवा** ) बहुत धनयुक्त ( **इन्द्र** ) उत्तम सेना का धारण करनेहारा तू ( **न** ) हमारे लिये ( **स्वस्ति** ) सुख का ( **धातु** ) धारण कर ॥ ५० ॥

भावार्थ—मनुष्य उसी पुरुष का सदा सत्कार करे जो विद्या न्याय और धर्म्म का सेवक सुशील और जितेन्द्रिय हुआ सब के सुख का बढ़ाने के लिये निरन्तर यत्न किया करे ॥ ५० ॥

इन्द्र इत्यस्य गर्ग ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*फिर राज विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ऽअवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।**

**बाधतां द्वेषोऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५१॥**

पदार्थ—जो ( सुत्रामा ) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा ( स्ववान् ) स्वकीय बहुत उत्तम जनो से युक्त ( विश्ववेदा ) समग्र धनवान् ( सुमृडीक ) अच्छा सुख करने और ( इन्द्र ) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला राजा ( अवोभि ) न्यायपूर्वक रक्षणादि से प्रजा की रक्षा करे वह ( द्वेष ) शत्रुओ का ( बाधताम् ) हटावे ( अभयम् ) सब को भयरहित ( कृणोतु ) करे और आप भी वैसा हो ( भवतु ) हो जिससे हम लोग ( सुवीर्यस्य ) अच्छे पराक्रम के ( पतय ) पालने हारे ( स्याम ) हो ॥ ५१ ॥

भावार्थ—जो विद्या विनय से युक्त होके राजपुरुष प्रजा की रक्षा करनेहारे न हो तो सुख की वृद्धि भी न होवे ॥ ५१ ॥

तस्यवयमित्यस्य गर्ग ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।**

**स सुत्रामा स्ववाँ२ऽइन्द्रोऽअस्मेऽआराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥५२॥**

पदार्थ—जो ( सुत्रामा ) अच्छे प्रकार से रक्षा करने ( स्ववान् ) और प्रशंसित अपना कुल रखने हारा ( इन्द्र ) पिता के समान वर्त्तमान सभा का अध्यक्ष ( अस्मे ) हमारे ( द्वेष ) शत्रुओ को ( आरात ) दूर और समीप से ( चित ) भी ( सनुत ) सब काल मे ( युयोतु ) दूर कर ( तस्य ) उस पूर्वोक्त ( यज्ञियस्य ) यज्ञ के अनुष्ठान करने योग्य राजा की ( सुमतौ ) सुन्दर मति मे और ( भद्रे ) कल्याण करनेहारे ( सौमनसे ) सुन्दर मन मे उत्पन्न हुए व्यवहार मे ( अपि ) भी हम लोग राजा के अनुकूल वर्त्तने हारे ( स्याम ) होवें और ( स ) वह हमारा राजा और ( वयम् ) हम उसकी प्रजा अर्थात् उस के राज्य मे रहने वाले हो ॥५२॥

भावार्थ—मनुष्यो को उसकी सम्मति मे स्थिर रहना उचित है जो पक्षपात रहित और न्याय से प्रजापालन मे तत्पर हो ॥ ५२ ॥

आ मन्द्रैरित्यस्य विश्वामित्र ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्द ।
मध्यम स्वर ॥

**आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।**

**मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ऽइहि ॥५३॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) उत्तम ऐश्वर्य्य के बढ़ाने हारे सेनापति ! तू ( मन्द्र ) प्रशंसायुक्त ( मयूररोमभि ) मोर के रोमो के सदृश रोमो वाले ( हरिभि ) घोडो से युक्त होके ( तान ) उन शत्रुओ के जीतने को ( याहि ) जा वहाँ ( त्वा ) तुझ को ( पाशिन ) बहुत पाशो से युक्त व्याध लोग ( विम् ) पक्षी को बाँधने के ( न ) समान ( केचित ) कोई भी ( मा ) मत ( नि यमन् ) बाँधें तू ( अतिधन्वेव ) बड़े धनुषधारी के समान ( एहि ) अच्छे प्रकार आओ ॥ ५३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जब शत्रुओ के विजय को जावें तब सब ओर से अपने बल की परीक्षा कर पूर्ण सामग्री से शत्रुओ के साथ युद्ध करके अपना विजय करें जैसे शत्रुलोग अपने को वश न करें वैसा युद्धारम्भ करें ॥ ५३ ॥

एवेदित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासोऽअभ्यर्चन्त्यर्कैः ।**

**स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥**

पदार्थ—हे ( वसिष्ठास ) अतिशय वास करने हारे ! जिस ( वृषणम् ) बलवान् ( वज्रबाहुम् ) शस्त्रधारी ( इन्द्रम् ) शत्रु के मारने हारे को ( अर्कै ) प्रशंसित कर्मों से विद्वान् लोग ( अभ्यर्चन्ति ) यथावत् सत्कार करते हैं ( एव ) उसी का ( यूयम् ) तुम लोग ( इत ) भी सत्कार करो ( स ) सो ( स्तुत ) स्तुति को प्राप्त होके ( न ) हमको और (गोमत) उत्तम गाय आदि पशुओ से युक्त (वीरवत) शूरवीरो से युक्त राज्य को ( धातु ) धारण करे और तुम लोग ( स्वस्तिभि ) सुखो से ( न ) हम को ( सदा ) सब दिन ( पात ) सुरक्षित रक्खो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे राजपुरुषो की प्रजाजन भी रक्षा करें ॥ ५४ ॥

समिद्धो अग्निरित्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*अब स्त्री पुरुषो का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**समिद्धोऽअग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।**

**दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥५५॥**

पदार्थ—जैसे ( इह ) इस संसार मे ( धेनु ) दूध देने वाली गाय के समान ( सरस्वती ) शास्त्र विज्ञान युक्त वाणी ( शुक्रम् ) शुद्ध ( सोमम् ) ऐश्वर्य और ( इन्द्रियम् ) धन को परिपूर्ण करती है वैसे उसे मैं ( दुहे ) परिपूर्ण करूं । हे ( अश्विना ) शुभगुणो मे व्याप्त स्त्री पुरुषो ! ( तप्त ) तपा (विराट) और विविध प्रकार से प्रकाशमान ( सुत ) प्रेरणा को प्राप्त ( समिद्ध ) प्रदीप्त ( घर्म ) यज्ञ के समान सङ्गति युक्त ( अग्नि ) पावक जगत् की रक्षा करता है वैसे मैं इस सब जगत् की रक्षा करूं ॥ ५५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार में तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुष सूर्य के समान कीर्ति से प्रकाशमान पुरुषार्थी होके धर्म से ऐश्वर्य को निरन्तर सञ्चित करें ॥ ५५ ॥

तनूपा इत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । विराडनुष्टुप् छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*अब इस प्रकृत विषय मे वैद्यविद्या के संचार को अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती ।**

**मध्वा रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥५६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे ( भिषजा ) वैद्यकविद्या के जानने हारे ( तनूपा ) शरीर के रक्षक ( उभा ) दोनो ( अश्विना ) शुभ गुण कर्म स्वभावो मे व्याप्त स्त्री पुरुष ( सरस्वती ) बहुत विज्ञान युक्त वाणी ( मध्वा ) मीठे गुण से युक्त ( सुते ) उत्पन्न हुए इस जगत् मे स्थित होकर ( पथिभि ) मार्गो से ( इन्द्राय ) राजा के लिये ( रजांसि ) लोको और ( इन्द्रियम् ) धन को धारण कर वैसे इनको (वहान) प्राप्त हूजिये ॥ ५६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री पुरुष वैद्यकविद्या को न जानें तो रोगो का निवारण और शरीरादि की स्वस्थता को और धर्म व्यवहार मे निरन्तर चलने को समर्थ नही होवें ॥ ५६ ॥

इन्द्रायेत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप् छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

*अब प्रधानता से वैद्यों के व्यवहार को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—*

**इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम् ।**

**अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥५७॥**

पदार्थ—(अश्विना) वैद्यकविद्या मे व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्यजन (इन्द्राय) दु खनाश के लिये ( सुते ) उत्पन्न हुए इस जगत् मे ( मधु ) ज्ञानवर्द्धक कोमलता दिगुणयुक्त ( भेषजम ) औषध को (अधाताम) धारण करें और (नराशंसेन) मनुष्यो से स्तुति किये हुए वचन से सरस्वती प्रशस्तविद्यायुक्त वाणी (नग्नहुम्) आनन्द कराने वाले विषय का ग्रहण करने वाले ( इन्दुम ) ऐश्वर्य को धारण करे ॥ ५७ ॥

भावार्थ—वैद्य दो प्रकार के होते हैं एक ज्वरादि शरीररोगो के नाशक चिकित्सा करने हारे और दूसरे मन के रोग जो कि अविद्यादि मानस क्लेश है उनके निवारण करने हारे अध्यापक उपदेशक है जहाँ ये रहते है वहा रोगो के विनाश से प्राणी लोग शरीर और मन के रोगो से छूटकर सुखी होते हैं ॥५७॥

आजुह्वानेत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

**आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।**

**इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः ॥५८॥**

पदार्थ—( आजुह्वाना ) सब ओर से प्रशंसा की हुई ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञानवती स्त्री ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य्ययुक्त पति के लिये ( इन्द्रियाणि ) श्रोत्र आदि इन्द्रिय वा ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने हारे सुवर्ण आदि पदार्थो और ( वीर्यम) शरीर मे बल के करने हारे घृतादि को तथा ( अश्विनौ ) सूर्य चन्द्र के सदृश वैद्यकविद्या के कार्य मे प्रकाशमान वैद्यजन ( इडाभि ) अति उत्तम ओषधियो के साथ ( इषम ) अन्न आदि पदार्थ ( समूर्जम् ) उत्तम पराक्रम ( रयिम ) और उत्तम धर्मश्री को ( सदधु ) सम्यक धारण करें ॥५८॥

भावार्थ—वे ही उत्तम विद्यावान् है जो मनुष्यो के रोगो का नाश करके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वही पतिव्रता स्त्री जाननी चाहिये कि जो पति के सुख के लिये धन और घृत आदि वस्तु घर रखती है ॥५८॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप् छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

**अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता ।**

**सरस्वती तमाभरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥५९॥**

पदार्थ—जो ( परिस्रुता ) सब ओर से अच्छे चलनयुक्त ( अश्विना ) शुभ गुण कर्म स्वभावो मे व्याप्त ( सरस्वती ) प्रशंसायुक्त स्त्री तथा पुरुष (बर्हिषा) सुख बढ़ाने वाले कर्म्म से ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य के सुख के लिये और ( नमुचे ) जो नहीं छोडता उस असाध्य रोग के दूर होने के लिये (शुक्रम) वीर्यकारी (सुतम्) अच्छे सिद्ध किये (सोमम ) सोम आदि ओषधियो के समूह की (पातवे) रक्षा के लिये ( तम् )

उस रस को ( आ अभरत ) धारण करती और करता है वे ही सर्वदा सुखी रहते हैं ॥५९॥

**भावार्थ**—जो अङ्ग उपाङ्ग सहित वेदों को पढ़ के हस्तक्रिया जानते हैं वे असाध्य रोगों को भी दूर करते हैं ॥५९॥

**कवष्य इत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**कुवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।**

**इन्द्रो न रोदसीऽउभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥६० ।**

**पदार्थ**—( सरस्वती ) अति श्रेष्ठ ज्ञानवती मैं ( इन्द्र ) बिजुली ( अश्विभ्याम ) सूर्य और चन्द्रमा से ( व्यचस्वती ) व्याप्त होने वाली ( कवष्य ) अत्यन्त प्रशंसित ( दिश ) दिशाओं को ( न ) जैसे तथा ( दुर ) द्वारों को ( न ) जैसे वा ( उभे ) दोनों ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को जैसे ( न ) वैसे ( कामान् ) कामनाओं को ( दुहे ) पूर्ण करती हूँ ॥६०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे बिजुली सूर्य चन्द्रमा से दिशाओं के और द्वारों के अन्धकार का नाश करती है वा जैसे पृथिवी और प्रकाश का धारण करती है वैसे पण्डिता स्त्री पुरुषार्थ से अपनी इच्छा पूर्ण करे ॥ ६०॥

**उषासानक्तमित्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप छन्द । गांधार स्वर ॥**

**उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः ।**

**संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥६१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! जैसे ( सुपेशसा ) अच्छे रूप वाले ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा ( सरस्वत्या ) अच्छी उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी से ( उषासा ) प्रभात ( नक्तम् ) रात्रि ( सायम ) सन्ध्याकाल और ( दिवा ) दिन मे ( इन्द्रियै ) जीव के लक्षणों से ( इन्द्रम ) बिजुली का ( संजानाने ) अच्छे प्रकार प्रकट करते हुए ( समञ्जाते ) प्रसिद्ध हैं वैसे तुम भी प्रसिद्ध होओ ॥६१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रात समय रात्रि को और सन्ध्याकाल दिन को निवृत्त करता है वैसे विद्वानों को चाहिए कि अविद्या और दुष्ट शिक्षा का निवारण करके सब लोगों को सब विद्याओं की शिक्षा मे नियुक्त करें ॥६१॥

**पातमित्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप छन्द । गांधार स्वर ॥**

*अब विद्वद्विषय मे सामयिक रक्षा विषय और भैषज्यादि विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**पात नोऽअश्विना दिवा पाहि नक्तं सरस्वति ।**

**दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रं सचा सुते ॥६२॥**

**पदार्थ**—हे ( दैव्या ) दिव्यगुणयुक्त ( अश्विना ) पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! तुम लोग ( दिवा ) दिन मे ( नक्तम ) रात्रि मे ( न ) हमारी ( पातम् ) रक्षा करो । हे ( सरस्वति ) बहुत विद्याओं से युक्त माता ! तू हमारी ( पाहि ) रक्षा कर । हे ( होतारा ) सब लोगों को सुख देने वाले ( सचा ) अच्छे मिले हुए ( भिषजा ) वैद्य लोगो ! तुम ( सुते ) उत्पन्न हुए इस जगत् मे ( इन्द्रम ) ऐश्वर्य देने वाले सोमलता के रस की ( पातम् ) रक्षा करो ॥६२॥

**भावार्थ**—जैसे अच्छे वैद्य रोग मिटाने वाली बहुत ओषधियों को जानते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक और माता पिता अविद्यारूप रोगों को दूर करने वाले उपायों को जानें ॥६२॥

**तिस्र इत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप छन्द । गांधार स्वर ॥**

*फिर भैषज्यादि विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा ।**

**तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥६३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( सरस्वती ) अच्छे प्रकार शिक्षा पाई हुई वाणी ( भारती ) धारण करने हारी माता और ( इडा ) स्तुति के योग्य उपदेश करने हारी ये ( तिस्र ) तीन और ( अश्विना ) अच्छे दो वैद्य ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिये ( परिस्रुता ) सब ओर से झरने के साथ ( तीव्रम् ) तीव्रगुणस्वभाव वाले ( मदम् ) हर्षकर्त्ता ( सोमम् ) ओषधि के रस वा प्रेरणा नाम के व्यवहार को ( त्रेधा ) तीन प्रकार से ( सुषुवुः ) उत्पन्न करें वैसे तुम भी इस की सिद्धि अच्छे प्रकार करो ॥६३॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि सोम आदि ओषधियों के रस को सिद्ध कर उसको पीके शरीर आरोग्य करके उत्तम वाणी शुद्ध बुद्धि और यथार्थ वक्तृत्व शक्ति की उन्नति करें ॥ ६३ ॥

**अश्विनेत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप छन्द । गांधार स्वर ॥**

**अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।**

**इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियं रूपं रूपमधुः सुते ॥६४॥**

**पदार्थ**—( न ) हमारे लिये ( अश्विना ) विद्या सिखाने वाले अध्यापकोपदेशक ( सरस्वती ) विदुषी शिक्षा पाई हुई माता और ( त्वष्टा ) सूक्ष्मता करने वाला ये विद्वान् लोग ( सुते ) उत्पन्न हुए ( इन्द्रे ) परमैश्वर्य में ( भेषजम् ) सामान्य और ( मधु भेषजम ) मधुरादि गुणयुक्त औषध ( यश ) कीर्ति ( श्रियम् ) लक्ष्मी और ( रूप रूपम् ) रूप रूप को ( अधु ) धारण करने को समर्थ होवें ॥६४॥

**भावार्थ**—जब मनुष्य लोग ऐश्वर्य को प्राप्त होवें तब इन उत्तम ओषधियों कीर्ति और उत्तम शोभा को सिद्ध करें ॥६४॥

**ऋतुथेत्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप् छन्द । गांधार स्वर ॥**

**ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।**

**कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥६५॥**

**पदार्थ**—जैसे ( धेनु ) दूध देने वाली गौ के समान ( सरस्वती ) अच्छी उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी ( परिस्रुता ) सब ओर से झरने वाली जलादि पदार्थ के साथ ( ऋतुथा ) ऋतुओं के प्रकारों से और ( शशमान ) बढ़ता हुआ ( इन्द्र ) ऐश्वर्य करने हारा ( वनस्पति ) वट आदि वृक्ष ( मधु ) मधुर आदि रस और ( कीलालम ) अन्न को ( अश्विभ्याम ) वैद्यों से कामनाओं को पूर्ण करता है वैसे मैं ( दुहे ) पूर्ण करूं ॥६५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छे वैद्यजन उत्तम उत्तम वनस्पतियों से सारग्रहण के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे सब को प्रयत्न करना चाहिये ॥६५॥

**गोभिरित्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप छन्द । गांधार स्वर ॥**

**गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।**

**समधातं सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥६६॥**

**पदार्थ**—हे ( अश्विना ) अच्छी शिक्षा पाए हुए वैद्यो ! ( मासरेण ) प्रमाणयुक्त मांड ( परिस्रुता ) सब ओर से मधुर आदि रस से युक्त ( सरस्वत्या ) अच्छी शिक्षा और ज्ञान से युक्त वाणी से और ( स्वाहा ) सत्यक्रियाओं से तथा ( इन्द्रे ) परमैश्वर्य के हेतु ( गोभि ) गौओं से दुग्ध आदि पदार्थों को जैसे ( न ) वैसे ( मधु ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( सुतम ) सिद्ध किये ( सोमम् ) ओषधियों के रस को तुम ( समधातम ) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ६६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । वैद्य लोग उत्तम हस्तक्रिया से सब ओषधियों के रस को ग्रहण करें ॥ ६६ ॥

**अश्विना हविरित्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

**अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।**

**आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥६७**

**पदार्थ**—( अश्विना ) अच्छे वैद्य और ( सरस्वती ) अच्छी शिक्षायुक्त स्त्री ( धिया ) बुद्धि से ( नमुचे ) नाशरहित कारण से उत्पन्न हुए कार्य से ( हवि ) ग्रहण करने योग्य ( इन्द्रियम् ) मन को ( आसुरात ) मेघ से ( शुक्रम् ) पराक्रम और ( मघम् ) पूज्य ( वसु ) धन को ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिये ( आजभ्रिरे ) धारण करें ॥ ६७ ॥

**भावार्थ**—स्त्री और पुरुष को चाहिये कि ऐश्वर्य से सुख की प्राप्ति के लिये ओषधियों का सेवन किया करें ॥ ६७ ॥

**यमित्यस्य विदर्भिऋषि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

**यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन् ।**

**स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥६८॥**

**पदार्थ**—( सचा ) संयोग किये हुए ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक तथा ( सरस्वती ) विदुषी स्त्री ( नमुचौ ) नाशरहित कारण से उत्पन्न ( आसुरे ) मेघ मे होने के निमित्त घर मे ( हविषा ) अच्छी बनाई हुई होम की सामग्री से ( यम् ) जिस ( इन्द्रम ) ऐश्वर्य को ( अवर्द्धयन् ) बढ़ाते ( स ) वह ( मघम् ) परमपूज्य ( बलम् ) बल का ( बिभेद ) भेदन करे ॥ ६८ ॥

**भावार्थ**—जो ओषधियों के रस का कर्त्तव्यता के गुणों से उत्तम करे वह रोग का नाश करने हारा होवे ॥ ६८ ॥

तमिन्द्रमित्यस्य विदर्भिऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।**
**दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥६९॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! (सचा) विद्या से युक्त (अश्विना) वैद्यकविद्या में चतुर अध्यापक और उपदेशक (उभा) दोनों (इन्द्रियैः) धनों से जिस (इन्द्रम्) बल आदि गुणों के धारण करने हारे सोम को धारण करें (तम्) उसको (सरस्वती) सत्य विज्ञान से युक्त स्त्री धारण करे और जिसको (पशवः) गौ आदि पशु धारण करें उसको (हविषा) सामग्री से (दधानाः) धारण करते हुए जन (यज्ञे) यज्ञ में (अभ्यनूषत) सब ओर से प्रशंसा करें ॥ ६९ ॥

भावार्थ—जो लोग धर्म्म के आचरण से धन के साथ धन को बढ़ाते हैं वे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ६९ ॥

य इत्यस्य विदर्भिऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः ।**
**स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥७०॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ये) जो लोग (इन्द्रे) ऐश्वर्य्य में (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वे सुखी होवें । इस कारण जो (भगः) सेवा करने के योग्य (वरुणः) श्रेष्ठ (सविता) ऐश्वर्य की इच्छा से युक्त (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षक (हविष्पतिः) होम करने योग्य पदार्थों की रक्षा करने हारा मनुष्य (यजमानाय) यज्ञ करने हारे के लिये धन को (सश्चत) सेवे (सः) वह प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे ॥ ७० ॥

भावार्थ—जैसे पुरोहित यजमान के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे यजमान भी पुरोहित के धन को बढ़ावे ॥ ७० ॥

सवितेत्यस्य विदर्भिऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे ।**
**आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥**

पदार्थ—(वरुणः) उत्तम (सविता) प्रेरक (सुत्रामा) और अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा जन (दाशुषे) देनेवाले (यजमानाय) यजमान के लिये (वसु) द्रव्य को (दधत्) धारण करता हुआ (नमुचेः) धर्म को नहीं छोड़ने वाले के (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) अच्छी शिक्षा से युक्त मन का (आ, अदत्त) अच्छे प्रकार ग्रहण करे ॥ ७१ ॥

भावार्थ—देने वाले पुरुष का अच्छे प्रकार सेवा करके उससे अच्छे पदार्थों को प्राप्त होकर जो सब के बल को बढ़ाता है वह बलवान् होता है ॥ ७१ ॥

वरुण इत्यस्य विदर्भिऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।**
**सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥७२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वरुणः) उत्तम पुरुष (सविता) ऐश्वर्योत्पादक (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा सभा का अध्यक्ष (भगेन) ऐश्वर्य्य के साथ वर्त्तमान (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) मन आदि (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी और (यज्ञम्) यज्ञ को प्राप्त होता है वैसे (यशसा) कीर्ति के साथ (बलम्) बल को (दधानाः) धारण करते हुए तुम (आशत) प्राप्त होओ ॥ ७२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ऐश्वर्य्य के विना राज्य राज्य के विना राज्यलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी के विना भोग प्राप्त नहीं होते इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ७२ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् ।**
**हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥७३॥**

पदार्थ—(अश्विना) अध्यापक उपदेशक और (सरस्वती) सुशिक्षायुक्त विदुषी स्त्री (गोभिः) अच्छे प्रकार शिक्षायुक्त वाणी वा पृथिवी और गौओं तथा (अश्वेभिः) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये हुए घोड़ों और (हविषा) अङ्गीकार किये हुए पुरुषार्थ से (इन्द्रियम्) धन (वीर्यम्) पराक्रम (बलम्) बल और (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त (यजमानम्) सत्य अनुष्ठानरूप यज्ञ के करने हारे को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें ॥ ७३ ॥

भावार्थ—जो लोग जिनके समीप रहें उनको योग्य है कि वे उनको सब अच्छे गुण कर्मों और ऐश्वर्य आदि से उन्नति को प्राप्त करें ॥ ७३ ॥

ता नासत्येत्यस्य विदर्भिऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा ।**
**सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥७४॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य वाले विद्वन् ! (ता) वे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (सुपेशसा) अच्छे रूप युक्त (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण का वर्त्ताव करने हारी (नरा) सबगुणप्रापक पढ़ाने और उपदेश करने वाली (हविष्मती) उत्तम ग्रहण करने योग्य पदार्थ जिसके विद्यमान वह (सरस्वती) विदुषी स्त्री और आप (कर्मसु) कर्मों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् पुरुष पढ़ने और उपदेश से सब को दुष्ट कर्मों से दूर करके अच्छे प्रकार कर्मों में प्रवृत्त कर रक्षा करते हैं वैसे ही ये सब के रक्षा करने के योग्य हैं ॥ ७४ ॥

ता भिषजेत्यस्य विदर्भिऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।**
**स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥७५॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (ता) वे (भिषजा) शरीर और आत्मा के रोगों के निवारण करने हारे (सुकर्मणा) अच्छी धर्मयुक्त क्रिया से युक्त दो वैद्य (सा) वह (सुदुघा) अच्छे प्रकार इच्छा को पूरण करने हारी (सरस्वती) पूर्ण विद्या से युक्त स्त्री और (सः) वह (वृत्रहा) जो मेघ का नाश करता है उस सूर्य के समान (शतक्रतुः) अत्यन्त बुद्धिमान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे तुम आचरण करो ॥ ७५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जगत् में जैसे विद्वान् लोग उत्तम आचरण वाले पुरुष के समान प्रयत्न करके विद्या और धन को बढ़ाते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥ ७५ ॥

युवमित्यस्य विदर्भिऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।**
**विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥७६॥**

पदार्थ—हे (अश्विना) पालन आदि कर्म करने हारे अध्यापक और उपदेशक (सचा) मिले हुए (युवम्) तुम दोनों और हे (सरस्वति) अतिश्रेष्ठ विज्ञान् वाली प्रजा ! तू जैसे (नमुचौ) प्रवाह से नित्यस्वरूप (आसुरे) मेघ में और (कर्मसु) कर्मों में (सुरामम्) अतिसुन्दर (इन्द्रम्) परमैश्वर्य का (आवत) पालन करते हो वैसे (विपिपानाः) नाना प्रकार से रक्षा करने हारे होते हुए आचरण करो ॥७६॥

भावार्थ—जो लोग पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर धन की रक्षा करके आनन्द को भोगते हैं वे सदा ही बढ़ते हैं ॥ ७६ ॥

पुत्रमित्यस्य विदर्भिऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।**
**यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥**

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्तम धन (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन् ! तू (शचीभिः) बुद्धियों के साथ (यत्) जिससे (सुरामम्) अति रमणीय महौषधि के रस को (व्यपिबः) पीता है इससे सरस्वती उत्तम शिक्षावती स्त्री (त्वा) तुझको (अभिष्णक्) समीप सेवन करे (उभा) दोनों (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (काव्यैः) कवियों के किये हुए (दंसनाभिः) कर्मों से जैसे (पितरौ) माता पिता (पुत्रमिव) पुत्र का पालन करते हैं वैसे तेरी (आवथुः) रक्षा करें ॥ ७७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे माता पिता अपने सन्तानों की रक्षा करके सदा बढ़ावें वैसे अध्यापक और उपदेशक शिष्य की रक्षा करके विद्या से बढ़ावें ॥ ७७ ॥

यस्मिन्नित्यस्य विदर्भिऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।**
**कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥७८॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( अश्वास ) घोड़े और (ऋषभास ) उत्तम बैल तथा (उक्षण ) अतिबली वीर्य के सेचन करने हारे बैल (वशा ) वन्ध्या गायें और (मेषा ) मेढ़ा ( अवसृष्टास ) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और ( आहुता ) सब ओर से ग्रहण किये हुए ( यस्मिन् ) जिस व्यवहार मे काम करने हारे हो उसमें तू ( हृदा ) अन्त करण से ( सोमपृष्ठाय ) सोमविद्या को पूछने और ( कीलालपे ) उत्तम अन्न के रस को पीने हारे (वेधसे) बुद्धिमान् (अग्नये) अग्नि के समान प्रकाशमान जन के लिये ( चारुम् ) अति उत्तम ( मतिम् ) बुद्धि को ( जनय ) प्रकट कर ॥ ७८ ॥

भावार्थ—पशु भी सुशिक्षा पाये हुए उत्तम काय सिद्ध करते हैं क्या फिर विद्या की शिक्षा से युक्त मनुष्य लोग सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते ॥ ७८ ॥

अहाव्यीत्यस्य विदर्भिऋ वि । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।**

**वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥ ७९॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) उत्तम विद्यायुक्त पुरुष ! जिस तूने (सोम) ऐश्वर्ययुक्त ( हवि ) होम करने योग्य वस्तु ( ते ) तेरे ( आस्ये ) मुख मे ( घृतम्, स्रुचीव ) जैसे घृत स्रुच के मुख मे और ( चम्वीव ) जैसे यज्ञ के पात्र मे होम के योग्य वस्तु वैसे ( अहावि ) होमा है वह तू ( अस्मे ) हम लोगो म ( प्रशस्तम् ) बहुत उत्तम ( सुवीरम ) अच्छे वीर पुरुषो के उपयोगी और ( वाजसनिम ) अन्न विज्ञान आदि गुणो का विभाग ( यशसम ) कीत्ति करने हारी ( बृहन्तम ) बड़ी ( रयिम ) राज्य लक्ष्मी को ( धेहि ) धारण कर ॥ ७९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । गृहस्थ पुरुषो का चाहिये कि उन्ही का भोजन आदि से सत्कार करे जो लोग पढ़ाना उपदेश और अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् मे बल पराक्रम यश धन और विज्ञान का बढ़ाव ॥ ७९ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिऋ वि । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । विराडनुष्टप्छन्द ।

गान्धार स्वर ॥

**अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ।**

**वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥८०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जसे (सरस्वती) विद्यावती स्त्री (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक और ( इन्द्र ) सभा का अधिष्ठाता (इन्द्राय) जीव के लिये ( प्राणेन ) जीवन के साथ ( वीर्यम् ) पराक्रम और ( तेजसा ) प्रकाश स ( चक्षु ) प्रत्यक्ष नेत्र ( वाचा ) वाणी और ( बलेन ) बल स ( इन्द्रियम ) जीव के चिह्न को ( दधु ) धारण करें वसे तुम भी धारण करो ॥ ८० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग जसे जैसे विद्वानों के सङ्ग स विद्या का बढ़ाव वस वस विज्ञान म रुचि वाले होवें ॥ ८० ॥

गोमदू षु णेत्यस्य गृत्समद ऋषि । अश्विनौ देवते । विराड गायत्री छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

*अब विद्वानों के विषय मे पशु आदिकों से पालना विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥८१॥**

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार से युक्त (रुद्रा) दुष्टो को रोदन कराने हारे ( अश्विना ) विद्या से बढ़े हुए लोगो ! तुम जसें (गोमत्) गौ जिसमे विद्यमान उस ( वर्त्ति ) वत्तमान मार्ग ( उ ) और ( अश्वावत ) उत्तम घोड़ों से युक्त (नृपाय्यम् ) मनुष्यो के मान को ( सुयातम ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वसे हम लोग भी प्राप्त होवें ॥ ८१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । गाय घोड़ा हाथी आदि पालन किये पशुओ से अपनी और दूसरे की मनुष्यो को पालना करनी चाहिये ॥८१॥

न यदित्यस्य गृत्समदऋषि । अश्विनौ देवते । विराड्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब राजधम विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशꣳसो मर्त्यो रिपुः ॥८२॥**

पदार्थ—हे (वृषण्वसू) श्रेष्ठो को वास कराने हारे सभा और सेना के पति ! तुम ( यत् ) जिससे ( दुःशस ) दुःख से स्तुति करने योग्य ( पर ) अन्य (मर्त्य ) मनुष्य ( रिपु ) शत्रु ( न ) न हो और (न) न (अंतर ) मध्यस्थ हो कि जो हमको (आदधर्षत्) सब ओर से धर्षण करे उसको अच्छे यत्न से वश मे करो ॥ ८२ ॥

भावार्थ—राजपुरुषो को चाहिये कि जो अति बलवान् अत्यन्त दुष्ट शत्रु होवे उसको बड़े यत्न से जीत ॥८२॥

ता न इत्यस्य गृत्समदऋषि । अश्विनौ देवते । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**ता न आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् ।**

**धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥८३॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सभा और सेना के पालने हारो ! (धिष्ण्या) जो बुद्धि के साथ वर्त्तमान ( ता ) वे तुम ( न ) हमको ( वरिवोविदम ) जिससे सेवन को प्राप्त हो और(पिशङ्गसन्दृशम)जो सुवर्ण के समान देखने म आता है उस(रयिम्) धन को ( आ, वोढम् ) सब ओर से प्राप्त करो ॥ ८३ ॥

भावार्थ—सभापति और सेनापतियो को चाहिये कि राज्य के सुख के लिये सब ऐश्वय को सिद्ध करे जिससे सत्यधर्म का आचरण बढ़े ॥८३॥

पावका न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । सरस्वती देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

*फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों म कहा है—*

**पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।**

**यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥८४॥**

पदार्थ—हे पढ़ाने वाले और उपदेशक लोगो ! जैसे ( वाजेभि ) विज्ञान आदि गुणो स ( वाजिनीवती ) अच्छी उत्तम विद्या स युक्त ( पावका ) पवित्र करने हारी (धियावसु ) बुद्धि के साथ जिसस धन हो वह (सरस्वती) अच्छे संस्कार वाली वाणी (न ) हमारे ( यज्ञम ) यज्ञ को (वष्टु) शोभित करे वस तुम लोग हम लोगो को शिक्षा करो ॥८४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिये कि धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशको म विद्या और सुशिक्षा अच्छे प्रकार ग्रहण करके विज्ञान की वृद्धि सदा किया करें ॥८४॥

चोदयित्रीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

*अब स्त्रियों की शिक्षा के विषय को अगले मन्त्रों म कहा है—*

**चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।**

**यज्ञं दधे सरस्वती ॥८५॥**

पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! जस ( सूनृतानाम् ) सुशिक्षा पाई हुई वाणियो को ( चोदयित्री ) प्रेरणा करने हारी ( सुमतीनाम ) शुभ बुद्धियो को ( चेतन्ती) अच्छे प्रकार ज्ञापन करती ( सरस्वती ) उत्तम विज्ञान से युक्त हुई मैं ( यज्ञम ) यज्ञ को ( दधे ) धारण करती हूँ वस यह यज्ञ तुम को भी करना चाहिये ॥८५॥

भावार्थ—जो स्त्रियो के बीच म विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियो को सदा सुशिक्षा कर जिसस स्त्रियो मे विद्या की वृद्धि हो ॥८५॥

महो अर्ण इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । सरस्वती देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।**

**धियो विश्वा वि राजति ॥८६॥**

पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! जैसे ( सरस्वती ) वाणी ( केतुना ) उत्तम ज्ञान स ( मह ) बड़ ( अर्ण ) आकाश मे स्थित शब्दरूप समुद्र को ( प्रचेतयति ) उत्तम प्रकार से जतलाती है और ( विश्वा ) सब ( धिय ) बुद्धियो को ( वि, राजति ) नाना प्रकार म प्रकाशित करती है वस विद्याओ मे तुम प्रवृत्त होओ ॥८६॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । कन्याओ को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य स विद्या और सुशिक्षा को समग्र ग्रहण करके अपनी बुद्धियो को बढ़ावें ॥८६॥

इन्द्रायाहीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब सामान्य उपदेश विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।**

**अण्वीभिस्तना पूतासः ॥८७॥**

पदार्थ—हे ( चित्रभानो ) चित्र विचित्र विद्याप्रकाशो वाले ( इन्द्र ) सभापति ! आप जो ( इमे ) ये ( अण्वीभि ) अङ्गुलियो से (सुता) सिद्ध किये (तना) विस्तार युक्त गुण से ( पूतास ) पवित्र ( त्वायव ) जो तुम को मिलते हैं उन पदार्थों को ( आ याहि ) प्राप्त हूजिये ॥ ८७ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग अच्छी क्रिया से पदार्थों को अच्छे प्रकार शुद्ध करके भोजनादि करें ॥ ८७ ॥

इन्द्रायाहि धियेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

*फिर विद्वद्विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।**

**उप ब्रह्माणि वाघतः ॥८८॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र) विद्या और ऐश्वय से युक्त ! ( इषित ) प्रेरित और ( विप्रजूत ) बुद्धिमानों से शिक्षा पाके वेगयुक्त ( वाघत ) शिक्षा पाई हुई वाणी से जानने हारा तू ( धिया ) सम्यक बुद्धि से ( सुतावत ) सिद्ध किये ( ब्रह्माणि ) अन्न और धनो को ( उप, आ, याहि ) सब प्रकार से समीप प्राप्त हो ॥८८॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जिज्ञासा वाले पुरुषो से मिल के उन में विद्या के निधि को स्थापित करें ॥८८॥

इन्द्रायाहि तूतुजान इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

**इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।**
**सुते दधिष्व नश्चनः ॥८९॥**

पदार्थ—हे ( हरिवः ) अच्छे उत्तम घोड़ों वाले ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य के बढ़ाने हारे विद्वन् ! आप ( उपायाहि ) निकट आइये ( तूतुजान ) शीघ्र कार्य्यकारी हो के ( नः ) हमारे लिये ( सुते ) उत्पन्न हुए व्यवहार में ( ब्रह्माणि ) धर्मयुक्त कर्म से प्राप्त होने योग्य धन और ( चनः ) भोग के योग्य अन्न को ( दधिष्व ) धारण कीजिए ॥ ८९ ॥

भावार्थ—विद्या और धर्म बढ़ाने के लिये किसी को आलस्य न करना चाहिये ॥ ८९ ॥

अश्विनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।**
**इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳪ सोम्यं मधु ॥९०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( सजोषसा ) समान सेवन करने हारे ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक ( सरस्वत्या ) अच्छे प्रकार संस्कार पाई हुई वाणी से ( मधु ) मधुर आदि गुणयुक्त विज्ञान को ( पिबताम् ) पान करें और जैसे ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ( सुत्रामा ) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा ( वृत्रहा ) सूर्य के समान वर्त्ताव वर्त्तने वाला ( सोम्यम् ) सोमलता आदि ओषधिगण में हुए ( मधु ) मधुरादि गुणयुक्त अन्न का ( जुषन्ताम् ) सेवन करें वैसे तुम लोगों को भी करना चाहिये ॥९०॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक अपने जैसे सब लोगों के विद्या और सुख बढ़ाने की इच्छा करें जिससे सब सुखी हों ॥९०॥

इस अध्याय में राज प्रजा धर्म्म के अङ्ग और अङ्गि गृहाश्रम का व्यवहार ब्राह्मण क्षत्रिय सत्यव्रत, देवों के गुण प्रजा के पालक अभय परस्पर सम्मति, स्त्रियों के गुण धन आदि पदार्थों की वृद्ध्यादि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की इससे प्रथम अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का बीसवां ( २० ) अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

## 卐 अथैकविंशतितमाऽध्यायारम्भः 卐

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

य० ३० । ३ ॥

इममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

*अब इक्कीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों के विषय में कहा है—*

**इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥१॥**

पदार्थ—हे ( वरुण ) उत्तम विद्वान् जन ! जो ( अवस्युः ) अपनी रक्षा की इच्छा करनेहारा मैं ( इमम् ) इस ( त्वाम् ) तुझ को ( आ, चके ) चाहता हूं वह तू ( मे ) मेरी ( हवम् ) स्तुति को ( श्रुधि ) सुन ( च ) और ( अद्य ) आज मुझ को ( मृडय ) सुखी कर ॥ १ ॥

भावार्थ—सब विद्या की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिये कि अनुक्रम से उपदेश करने वाले बड़े विद्वान् की इच्छा करें वह विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुन और उत्तम परीक्षा करके सब को आनन्दित करे ॥ १ ॥

तत्त्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।**
**अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशᳪस मा न आयुः प्र मोषीः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( वरुण ) अति उत्तम विद्वान् पुरुष ! जैसे ( यजमानः ) यजमान ( हविर्भिः ) देने योग्य पदार्थों से ( तत् ) उसकी ( आ, शास्ते ) इच्छा करता है वैसे ( ब्रह्मणा ) वेद के विज्ञान से ( वन्दमानः ) स्तुति करता हुआ मैं ( तत् ) उस ( त्वा ) तुझ को ( यामि ) प्राप्त होता हूं । हे ( उरुशंस ) बहुत लोगों से प्रशंसा किये हुए जन ! मुझ से ( अहेडमानः ) सत्कार को प्राप्त होता हुआ तू ( इह ) इस संसार में ( नः ) हमारे ( आयुः ) जीवन वा विज्ञान को ( मा ) मत ( प्र, मोषीः ) चुरा लेवे और शास्त्र का ( बोधि ) बोध कराया कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जिससे विद्या को प्राप्त हो वह उसको प्रथम नमस्कार करे जो जिस का पढ़ाने वाला हो वह उस को विद्या देने के लिये कपट न करे कदापि किसी को आचार्य का अपमान न करना चाहिये ॥ २ ॥

त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

**त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअव यासिसीष्ठाः ।**
**यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाᳪसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान ( यजिष्ठः ) अतीव यजन करने ( वह्नितमः ) अत्यन्त प्राप्ति कराने और ( शोशुचानः ) शुद्ध करने हारे ( विद्वन् ) विद्यायुक्त जन ! ( त्वम् ) तू ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ ( देवस्य ) विद्वान् का जो ( हेडः ) अनादर उस को ( अव ) मत ( यासिसीष्ठाः ) करे । हे तेजस्विन् ! तू जो ( नः ) हमारा अनादर हो उस को अङ्गीकार मत कर । हे शिक्षा करने हारे ! तू ( अस्मत् ) हम से ( विश्वा ) सब ( द्वेषांसि ) द्वेष आदि युक्त कर्मों को ( प्र मुमुग्धि ) छुड़ा दे ॥३॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्वानों का अनादर और कोई भी विद्वान् विद्यार्थियों का असत्कार न करे, सब मिल के ईर्ष्या क्रोध आदि दोषों को छोड़ के सब के मित्र होवें ॥ ३ ॥

स त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

**स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्याऽउषसो व्युष्टौ ।**
**अव यक्ष्व नो वरुणᳪ रराणो वीहि मृडीकᳪ सुहवो न एधि ॥४॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्वन् ! जैसे ( अस्याः ) इस ( उषसः ) प्रभात समय के ( व्युष्टौ ) नाना प्रकार के दाह में अग्नि ( नेदिष्ठः ) अत्यन्त समीप और रक्षा करने हारा है वैसे ( सः ) वह ( त्वम् ) तू ( नः, ऊती ) प्रीति से ( नः ) हमारा ( अवमः ) रक्षा करने हारा ( भव ) हो ( नः ) हम को ( वरुणम् ) उत्तम गुण वा उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुणीजन का ( अव, यक्ष्व ) मेल कराओ और ( रराणः ) रमण करते हुए तुम ( मृडीकम् ) सुख देने हारे को ( वीहि ) व्याप्त होओ ( नः ) हम को ( सुहवः ) शुभदान देनेहारे ( एधि ) हूजिए ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातः समय मे सूर्य समीप स्थित होके सब समीप के मूर्त्त पदार्थों को व्याप्त होता है वसे शिष्यो के समीप अध्यापक हो के इनको अपनी विद्या से व्याप्त करे ॥४॥

महीमित्यस्य वामदेव ऋषि । आदित्या देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*अब पृथिवी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**मुहीमू षु मातरँ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।**
**तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीᳬ सुशर्माणमदितिᳬ सुप्रणीतिम् ॥५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( मातरम् ) माता के समान स्थित ( सुव्रतानाम् ) जिनके शुभ सत्याचरण हैं उसको ( ऋतस्य ) प्राप्त हुए सत्य की ( पत्नीम् ) स्त्री के समान वर्त्तमान ( तुविक्षत्राम ) बहुत धन वाली ( अजरन्तीम ) जीर्णपन में रहित ( उरूचीम् ) बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने हारी ( सुशर्माणम् ) अच्छे प्रकार के गृह से और ( सुप्रणीतिम ) उत्तम नीतियो से युक्त ( उ ) उत्तम ( अदितिम् ) अखण्डित ( महीम् ) पृथिवी को ( अवसे ) रक्षा आदि के लिये (सु, हुवेम ) ग्रहण करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता सन्तानो और पतिव्रता स्त्री पति का पालन करती है वैसे यह पृथिवी सब का पालन करती है ॥५॥

सुत्रामाणमित्यस्य गयप्लात ऋषि । अदितिर्देवता । भुरिक त्रिष्टुप छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*अब जलयान विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसँ सुशर्माणमदितिᳬ सुप्रणीतिम् ।**
**दैवीं नावँ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥६॥**

पदार्थ—हे शिल्पि जनो ! जैसे हम ( स्वस्तये ) सुख के लिये (सुत्रामाणम) अच्छे रक्षण आदि से युक्त ( पृथिवीम ) विस्तार और ( द्याम ) शुभ प्रकाश वाली ( अनेहसम ) अहिंसनीय ( सुशर्माणम ) जिस मे सुशोभित घर विद्यमान उस ( अदितिम् ) अखण्डित ( सुप्रणीतिम् ) बहुत राजा और प्रजाजनो की पूर्ण नीति से युक्त (स्वरित्राम) वा जिस मे बल्ली पर बल्ली लगी हैं उस (अनागसम) अपराध रहित और ( अस्रवन्तीम ) छिद्ररहित ( दैवीम ) विद्वान् पुरुषो की (नावम्) प्ररणा करने हारी नाव पर ( आ, रुहेम ) चढते हैं वैसे तुम लोग भी चढो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस मे बहुत घर बहुत साधन बहुत रक्षा करने हारे अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों उस छिद्र रहित बडी नाव मे स्थित होके समुद्र आदि जल के स्थानों मे पारावार देशान्तर और द्वीपान्तर मे जा आके भूगोल मे स्थित देश और द्वीपो को जान के लक्ष्मीवान् होवें ॥६॥

सुनावमित्यस्य गयप्लात ऋषि । स्वर्ग्या नौर्देवता । यवमध्या गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

**सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राᳬ स्वस्तये ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( स्वस्तये ) सुख के लिए ( अस्रवन्तीम् ) छिद्रादि दोष वा ( अनागसम् ) बनावट के दोषो से रहित ( शतारित्राम् ) अनेकों लङ्गर वाली ( सुनावम ) अच्छी बनी नाव पर ( आ रुहेयम् ) चढू वैसे इस पर तुम भी चढो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग बडी नावों की अच्छी प्रकार परीक्षा करके और उनमे स्थिर होके समुद्र आदि के पारावार जावें जिन मे बहुत लङ्गर आदि होवें वे नावें अत्यन्त उत्तम हो ॥७॥

आ न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । मित्रावरुणौ देवते । निचृद् गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

**आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।**
**मध्वा रजाᳬसि सुक्रतू ॥८॥**

पदार्थ—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तने हारे (सुक्रतू) शुभ बुद्धि वा उत्तम कर्मयुक्त शिल्पी लोगो ! तुम ( घृतैः ) जलो से ( नः ) हमारे ( गव्यूतिम् ) दो कोश को ( उक्षतम् ) सेचन करो और ( आ, मध्वा ) सब ओर से मधुर जल से ( रजांसि ) लोकों का सेचन करो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो शिल्प विद्या वाले लोग नाव आदि को जल आदि मार्ग से चलावें तो वे ऊपर और नीचे मार्गों में आने के समर्थ हों ॥८॥

प्र बाहवेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । । त्रिष्टुप् छन्द ।
धैवत स्वर ॥

*फिर विद्वानों के विषय मे अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।**
**आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥**

पदार्थ—( मित्रावरुणौ ) मित्र और वरुण उत्तम जन ( बाहवा ) दोनो बाहु के तुल्य ( युवाना ) मिलान और अलग करने हारे तुम ( नः ) हमारे ( जीवसे ) जीने के लिये ( मा ) मुझ को ( प्र सिसृतम् ) प्राप्त होओ ( घृतेन ) जल से (नः) हमारे ( गव्यूतिम् ) दो कोश पर्यन्त ( आ, उक्षतम ) सब ओर से सेचन करो । नाना प्रकार की कीर्ति को ( आ, श्रावयतम् ) अच्छे प्रकार सुनाओ और ( मे ) मेरे ( जने ) मनुष्यगण मे ( इमा ) इन ( हवा ) वाद विवादो को ( श्रुतम् ) सुनो ॥ ९ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक प्राण और उदान के समान सब के जीवन के कारण होवें विद्या और उपदेश से सब के आत्माओ को जल से वृक्षों के समान सेचन करें ॥ ९ ॥

शमित्यस्यात्रेय ऋषि । ऋत्विजो देवता । भुरिक पंक्तिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर ॥

**शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।**
**जम्भयन्तोऽहिं वृकᳬ रक्षाᳬसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( स्वर्काः ) अच्छे अन्न वा वज्र से युक्त और ( मितद्रवः ) प्रमाणित चलने और ( देवताता ) विद्वानो के समान वर्त्तन हारे ( वाजिन ) अति उत्तम विज्ञान से युक्त ( हवेषु ) लेन देने मे चतुर आप लोग ( अहिम् ) मेघ को सूर्य के समान ( वृकम् ) चोर और ( रक्षांसि ) दुष्ट जीवो का ( जम्भयन्त ) विनाश करते हुए ( नः ) हमारे लिए (सनेमि) सनातन ( शम् ) सुख करने हारे (भवन्तु) होओ और ( अस्मत् ) हमारे ( अमीवा ) रोगों को ( युयवन् ) दूर करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अन्धकार को हटा के सब को सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग प्राणियो के शरीर और आत्मा के सब रोगो को निवृत्त करके आनन्दयुक्त करें ॥ १० ॥

वाजेवाज इत्यस्य आत्रेय ऋषि । विद्वांसो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्द ।
धैवत स्वर ॥

**वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।**
**अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥११॥**

पदार्थ—हे ( अमृता ) आत्मस्वरूप से अविनाशी ( ऋतज्ञा ) सत्य के जानने हारे ( वाजिन ) विज्ञान वाले (विप्रा ) बुद्धिमान् लोगो ! तुम (वाजेवाजे) युद्ध युद्ध मे और ( धनेषु ) धनो मे ( नः ) हमारी ( अवत ) रक्षा करो और ( अस्य ) इस ( मध्वः ) मधुर रस का (पिबत) पान करो और इससे (मादयध्वम्) विशेष आनन्द को प्राप्त होओ और इससे ( तृप्ता ) तृप्त होके (देवयानैः ) विद्वानों के जाने योग्य ( पथिभिः ) मार्गों से ( यात ) जाओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग विद्यादान से और उपदेश से सब को सुखी करते हैं वैसे ही राजपुरुष रक्षा और अभयदान से सब को सुखी करें तथा धर्मयुक्त मार्गों मे चलते हुए अर्थ काम और मोक्ष इन तीन पुरुषार्थ के फलों को प्राप्त होवें ॥११॥

समिद्ध इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**समिद्धोऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।**
**गायत्री छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥१२॥**

पदार्थ—जैसे (समिद्ध ) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि (समिधा) उत्तम प्रकाश से ( सुसमिद्ध ) बहुत प्रकाशमान सूर्य ( वरेण्य ) अङ्गीकार करने योग्य जन और ( गायत्री छन्द ) गायत्री छन्द ( इन्द्रियम् ) मन को प्राप्त होता है और जैसे ( त्र्यविः ) शरीर इन्द्रिय आत्मा इन तीनो की रक्षा करने और ( गौः ) स्तुति प्रशंसा करने हारा जन ( वयः ) जीवन को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग ( दधुः ) धारण करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग विद्या से सब के आत्माओं को प्रकाशित और सब को जितेन्द्रिय करके पुरुषों को दीर्घ आयु वाले करें ॥ १२ ॥

तनूनपादित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । विद्वांसो देवता । अनुष्टुप् छन्द ।
गान्धार स्वरः ॥

**तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती ।**
**उष्णिहा छन्दऽइन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥१३॥**

पदार्थ—जैसे ( शुचिव्रत ) पवित्र धर्म के आचरण करने ( तनूनपात् ) शरीर को पडने न देने ( तनूपाः ) किन्तु शरीर की रक्षा करने हारा ( च ) और ( सरस्वती ) वाणी तथा ( उष्णिहा ) उष्णिह ( छन्द ) छन्द ( इन्द्रियम् ) जीव के चिह्न को धारण करता है वा जैसे ( दित्यवाट् ) खण्डनीय पदार्थों के लिये हित प्राप्त कराने और ( गौः ) स्तुति करने हारा जन ( वयः ) इच्छा को बढाता है वैसे इन सब को विद्वान् लोग ( दधुः ) धारण करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग पवित्र आचरण वाले हैं और जिन की वाणी विद्याओं में सुशिक्षा पाई हुई है वे पूर्ण जीवन के धारण करने को योग्य हैं ॥ १३ ॥

इडाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

इडाभिरग्निरीड्य॒ः सोमो॑ दे॒वोऽअम॑र्त्यः ।
अ॒नु॒ष्टुप् छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं पञ्चा॑वि॒र्गौर्वयो॑ दधुः ॥१४॥

पदार्थ—जैसे ( अग्निः ) अग्नि के समान प्रकाशमान ( अमर्त्यः ) अपने स्वरूप से नाशरहित ( सोमः ) ऐश्वर्यवान् ( ईड्यः ) स्तुति करने वा खोजने के योग्य ( देवः ) दिव्य गुणी ( पञ्चाविः ) पांच से रक्षा को प्राप्त ( गौः ) विद्या से स्तुति के योग्य विद्वान् पुरुष ( इडाभिः ) प्रशंसाओं से ( अनुष्टुप्, छन्दः ) अनुष्टुप् छन्द ( इन्द्रियम् ) ज्ञान आदि व्यवहार को सिद्ध करने हारे मन और ( वयः ) तृप्ति को धारण करें वैसे इस को सब ( दधुः ) धारण करें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग धर्म से विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे सब मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं ॥ १४ ॥

सुबर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सु॒ब॒र्हिर॒ग्निः पू॑ष॒ण्वान्त्स्ती॒र्णब॑र्हि॒रम॑र्त्यः ।
बृ॒ह॒ती छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं त्रि॑व॒त्सो गौर्वयो॑ दधुः ॥१५॥

पदार्थ—जैसे ( पूषण्वान् ) पुष्टि करने हारे गुणों से युक्त ( स्तीर्णबर्हिः ) आकाश को व्याप्त होने वाला ( अमर्त्यः ) अपने स्वरूप से नाशरहित ( सुबर्हिः ) आकाश को शुद्ध करने हारा ( अग्निः ) अग्नि के समान जन और ( बृहती ) बृहती ( छन्दः ) छन्द ( इन्द्रियम् ) जीव के चिह्न को धारण करें और ( त्रिवत्सः ) त्रिवत्स अर्थात् देह इन्द्रिय मन जिस के अनुगामी वह ( गौः ) गौ के समान मनुष्य ( वयः ) तृप्ति को प्राप्त करें वसे इस को सब लोग ( दधुः ) धारण करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में चलता है वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म और निराकार पदार्थों की विद्या में चलते हैं जैसे गाय के पीछे बछड़ा चलता है वैसे अविद्वान् जन विद्वानों के पीछे चला करें और अपनी इन्द्रियों को वश में लावें ॥ १५ ॥

दुरो देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब वायु आदि पदार्थों के प्रयोजन विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दुरो॑ दे॒वीर्दिशो॑ म॒हीर्ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑ ।
प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( इह ) यहां ( देवीः ) देदीप्यमान ( महीः ) बड़े ( दुरः ) द्वारे ( दिशः ) दिशाओं को ( ब्रह्मा ) अन्तरिक्षस्थ पवन ( देवः ) प्रकाशमान ( बृहस्पतिः ) बड़ों का पालन करने हारा सूर्य और ( पङ्क्तिश्छन्दः ) पङ्क्ति छन्द ( इन्द्रियम् ) धन तथा ( तुर्यवाट् ) चौथे को प्राप्त होने हारा ( गौः ) गाय ( वयः ) जीवन को ( दधुः ) धारण करें वैसे तुम लोग भी जीवन को धारण करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—कोई भी प्राणी अन्तरिक्षस्थ पवन आदि के विना नहीं जी सकता ॥ १६ ॥

उभे इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

उ॒भे य॒ह्वी सु॒पेश॑सा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअम॑र्त्याः ।
त्रि॒ष्टुप् छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं प॑ष्ठ॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( इह ) इस जगत् में ( सुपेशसा ) सुन्दर रूप युक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारी ( यह्वी ) बड़ी ( उभे ) दोनों शासन करने वाली प्रभात वेला के समान दो स्त्री ( अमर्त्याः ) तत्त्वस्वरूप से नित्य ( विश्वे ) सब ( देवाः ) देदीप्यमान पृथ्वी आदि लोक ( त्रिष्टुप्छन्दः ) त्रिष्टुप्छन्द और ( पष्ठवाट् ) पीठ से उठाने वाला ( गौः ) बैल ( वयः ) उत्पत्ति और ( इन्द्रियम् ) धन को धारण करते हैं वैसे ( दधुः ) तुम लोग भी आचरण करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे पृथ्वी आदि पदार्थ परोपकारी हैं वैसे इस जगत् में मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १७ ॥

दैव्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में वैद्य के तुल्य औरों का आचरण करना चाहिये इस विषय को कहा है—

दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजेन्द्रे॑ण स॒युजा॑ यु॒जा ।
जग॑ती॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यम॑न॒ड्वान् गौर्वयो॑ दधुः ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे ( इन्द्रेण ) ऐश्वर्य से ( सयुजा ) ओषधि आदि के तुल्य योग करनहारे ( युजा ) सावधान चित्त हुए ( दैव्या ) विद्वानों में निपुण ( होतारा ) विद्यादि के देने वाले ( भिषजा ) उत्तम दो वैद्य लोग ( अनड्वान् ) बैल ( गौः ) गाय और ( जगती छन्दः ) जगती छन्द ( वयः ) सुन्दर ( इन्द्रियम् ) धन को ( दधुः ) धारण करें वैसे इस को तुम लोग धारण करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वैद्यों से अपने और दूसरों के रोग मिटा के आप और दूसरे ऐश्वर्यवान् किये जाते हैं वैसे सब मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये ॥ १८ ॥

तिस्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ति॒स्रऽइडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती म॒रुतो॒ विशः॑ ।
वि॒राट् छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं धे॒नुर्गौर्न वयो॑ दधुः ॥१९॥

पदार्थ—जैसे ( इह ) इस जगत् में ( इडा ) पृथ्वी ( सरस्वती ) वाणी और ( भारती ) धारण वाली बुद्धि ये ( तिस्रः ) तीन ( मरुतः ) पवनगण ( विशः ) मनुष्य आदि प्रजा ( विराट् ) तथा अनेक प्रकार से देदीप्यमान ( छन्दः ) बल ( इन्द्रियम् ) धन को और ( धेनुः ) पान कराने हारी ( गौः ) गाय के ( न ) समान ( वयः ) प्राप्त होने योग्य वस्तु को ( दधुः ) धारण करें वैसे सब मनुष्य लोग इस को धारण करके वर्त्ताव करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षित वाणी विद्या प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वैसे अन्य सब को प्राप्त होना चाहिये ॥ १९ ॥

त्वष्टेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

त्वष्टा॑ तु॒रीपो॒ऽअद्भु॑तऽइन्द्रा॒ग्नी पु॑ष्टि॒वर्ध॑ना ।
द्वि॒प॑दा॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षा गौर्न वयो॑ दधुः ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो ( अद्भुतः ) आश्चर्य गुण कर्म स्वभावयुक्त ( तुरीपः ) शीघ्र प्राप्त होने ( त्वष्टा ) और सूक्ष्म करने हारे तथा ( पुष्टिवर्धना ) पुष्टि को बढ़ाने हारे ( इन्द्राग्नी ) पवन और अग्नि दोनों और ( द्विपदा ) दो पाद वाले ( छन्दः ) छन्द ( इन्द्रियम् ) श्रोत्र आदि इन्द्रिय को ( उक्षा ) सेचन करने में समर्थ ( गौः ) बैल के ( न ) समान ( वयः ) जीवन को ( दधुः ) धारण करें उनको जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रसिद्ध अग्नि बिजुली पेट में का अग्नि बड़वानल ये चार और प्राण इन्द्रियाँ तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये ॥ २० ॥

शमितेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श॒मि॒ता नो॒ वन॒स्पतिः॑ सवि॒ता प्र॑सु॒वन् भग॑म् ।
क॒कुप् छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं व॒शा वे॒हद्वयो॑ दधुः ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( शमिता ) शान्ति देने हारा ( वनस्पतिः ) ओषधियों का राजा वा वृक्षों का पालक ( सविता ) सूर्य ( भगम् ) धन को ( प्रसुवन् ) उत्पन्न करता हुआ ( ककुप् ) ककुप् ( छन्दः ) छन्द और ( इन्द्रियम् ) जीव के चिह्न को तथा ( वशा ) जिसके सन्तान नहीं हुआ और ( वेहत् ) जो गर्भ को गिराती है वह ( इह ) इस जगत् में ( नः ) हमारे ( वयः ) प्राप्त होने योग्य वस्तु को ( दधुः ) धारण कर उस को तुम लोग जान के उपकार करो ॥ २१ ॥

भावार्थ—जिस मनुष्य से सर्वरोग की नाशक ओषधियां और ढांकने वाले उत्तम वस्त्र सेवन किये जाते हैं वह बहुत वर्षों तक जी सकता है ॥ २१ ॥

स्वाहेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**स्वाहा॑ यज्ञं वरु॑णः सुक्ष॒त्रो भे॑षजं करत्।**

**अति॑च्छन्दाऽइन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑ष॒भो गौर्वयो॑ दधुः ॥२२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे ( वरुणः ) श्रेष्ठ ( सुक्षत्रः ) उत्तम धनवान् जन ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( यज्ञम् ) सङ्गमनीय ( भेषजम् ) औषध को (करत्) करें और जो ( अतिच्छन्दाः ) अतिच्छन्द और ( ऋषभः ) उत्तम ( गौः ) बल ( बृहत् ) बड़े ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य और ( वयः ) सुन्दर अपने व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही सब ( दधुः ) धारण करें इसको जानो ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग अच्छे पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का नाश करते हैं और पुरुषार्थ से धन तथा आयु का धारण करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

वसन्तेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । वस्रा देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**व॒स॒न्तेन॑ऽऋ॒तुना॑ दे॒वा वस॑वस्त्रि॒वृता॑ स्तु॒ताः ।**

**र॒थ॒न्त॒रेण॒ तेज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( वसवः ) पृथिवी आदि आठ वसु वा प्रथम कक्षा वाले विद्वान् लोग ( देवाः ) दिव्य गुणों से युक्त ( स्तुताः ) स्तुति को प्राप्त हुए ( त्रिवृता ) तीनों कालों में विद्यमान ( वसन्तेन ) जिस में सुख से रहते हैं उस प्राप्त होने योग्य वसन्त ( ऋतुना ) ऋतु के साथ वर्त्तमान हुए ( रथन्तरेण ) जहाँ रथ से तरते हैं उस ( तेजसा ) तीक्ष्ण स्वरूप से ( इन्द्रे ) सूर्य के प्रकाश में ( हविः ) देने योग्य ( वयः ) आयु बढ़ाने हारे वस्तु को ( दधुः ) धारण करें उनका स्वरूप जानकर सङ्गति करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग रहने के हेतु दिव्य पृथिवी आदि लोकों वा विद्वानों की वसन्त में सङ्गति कर के वसन्त सब भी सुख को प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

ग्रीष्मेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*मध्यम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ग्री॒ष्मेण॑ऽऋ॒तुना॑ दे॒वा रु॒द्राः प॑ञ्चद॒शे स्तु॒ताः ।**

**बृ॒ह॒ता यश॑सा॒ बल॑ꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( स्तुताः ) प्रशंसा किये हुए ( रुद्राः ) दश प्राण ग्यारहवाँ जीवात्मा वा मध्यम कक्षा के ( देवाः ) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् ( पञ्चदशे ) पन्द्रहवें व्यवहार में ( ग्रीष्मेण ) सब रसों के खेंचने और ( ऋतुना ) उष्णपन प्राप्त करनेहारे ग्रीष्म ऋतु वा ( बृहता ) बड़े ( यशसा ) यश से ( इन्द्रे ) जीवात्मा में ( हविः ) ग्रहण करने योग्य ( बलम् ) बल और ( वयः ) जीवन को ( दधुः ) धारण करें उन को तुम लोग जानो ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्वान् हुए अन्य मनुष्यों के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे भाग्यवान् होते हैं ॥ २४ ॥

वर्षाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*अब उत्तम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**व॒र्षाभि॑र्ऋ॒तुना॑दि॒त्या स्तोमे॑ सप्तद॒शे स्तु॒ताः ।**

**वै॒रू॒पेण॑ वि॒शौज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( वर्षाभिः ) जिस में मेघ वृष्टि करते हैं उस वर्षा ( ऋतुना ) प्राप्त होने योग्य ऋतु ( वैरूपेण ) अनेक रूपों के होने ( ओजसा ) जो बल और उस ( विशा ) प्रजा के साथ रहनेवाले ( आदित्याः ) बारह महीने वा उत्तम कल्प के विद्वान् ( सप्तदशे ) सत्रहवें ( स्तोमे ) स्तुति के व्यवहार में ( स्तुताः ) प्रशंसा किये हुए ( इन्द्रे ) जीवात्मा में ( हविः ) देने योग्य ( वयः ) काल के ज्ञान को ( दधुः ) धारण करते हैं उन को तुम लोग जानकर उपकार करो ॥२५॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग विद्वानों के सङ्ग से काल की स्थूल सूक्ष्म गति को जान के एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गमाते हैं वे नानाविध ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥२५॥

शारदेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । विराड् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

**शा॒र॒देन॑ऽऋ॒तुना॑ दे॒वाऽए॑कवि॒ꣳशऽऋ॒भवः॑ स्तु॒ताः ।**

**वै॒रा॒जेन॑ श्रि॒या श्रिय॑ꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( एकविंशे ) इक्कीसवें व्यवहार में ( स्तुताः ) स्तुति किये हुए ( ऋभवः ) बुद्धिमान् ( देवाः ) दिव्यगुणयुक्त ( शारदेन ) शरद् ( ऋतुना ) ऋतु वा ( वैराजेन ) विराट् छन्द में प्रकाशमान अर्थ के साथ ( श्रिया ) शोभा और लक्ष्मी के साथ वर्त्ताव वर्त्तने हारे जन ( इन्द्रे ) जीवात्मा में ( श्रियम् ) लक्ष्मी और ( हविः ) देने लेने योग्य ( वयः ) वाञ्छित सुख को ( दधुः ) धारण करें उन का तुम लोग सेवन करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

हेमन्तेनेत्यस्य आत्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**हे॒म॒न्तेन॑ऽऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्रि॑ण॒वे म॒रुत॑ स्तु॒ताः ।**

**बले॑न॒ शक्व॑रीः॒ सहो॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२७॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो ( त्रिणवे ) सत्ताईसवें व्यवहार में ( हेमन्तेन ) जिस में जीवों के देह बढ़ते जाते हैं उस ( ऋतुना ) प्राप्त होने योग्य हेमन्त ऋतु के साथ वर्त्तते हुए ( स्तुताः ) प्रशंसा के योग्य ( देवाः ) दिव्यगुणयुक्त ( मरुतः ) मनुष्य ( बलेन ) मेघ से ( शक्वरीः ) शक्ति के निमित्त गौओं के ( सहः ) बल तथा ( हविः ) देने लेने योग्य ( वयः ) वाञ्छित सुख को ( इन्द्रे ) जीवात्मा में ( दधुः ) धारण करें उन का तुम सेवन करो ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो लोग सब रसों को पकाने हारे हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे अत्यन्त बलवान् होते हैं ॥ २७ ॥

शैशिरेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**शै॒शि॒रेण॑ऽऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्र॑यस्त्रि॒ꣳशेऽमृता॑ स्तु॒ताः ।**

**स॒त्येन॑ रे॒वतीः॑ क्ष॒त्रꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अमृताः ) अपने स्वरूप से नित्य ( स्तुताः ) प्रशंसा के योग्य ( शैशिरेण, ऋतुना ) प्राप्त होने योग्य शिशिर ऋतु से ( देवाः ) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले ( सत्येन ) सत्य के साथ ( त्रयस्त्रिंशे ) तेंतीस वसु आदि के समुदाय में विद्वान् लोग ( रेवतीः ) धनयुक्त शत्रुओं की सेनाओं को कूद के जाने वाली प्रजाओं और ( इन्द्रे ) जीव में ( हविः ) देने लेने योग्य ( क्षत्रम् ) धन वा राज्य और ( वयः ) वाञ्छित सुख को ( दधुः ) धारण करें उन से पृथिवी आदि की विद्याओं का ग्रहण करो ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो लोग पीछे कहे हुए आठ वसु एकादश रुद्र द्वादश आदित्य बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्य पदार्थों को जानते हैं वे अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यश्विसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवता ।
निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**होता॑ यक्षत्स॒मिधा॒ग्निमि॒डस्प॒देऽश्विनेन्द्र॒ꣳ सर॑स्वतीम॒जो धू॒म्रो न गो॒धूमैः॒ कुव॑लैर्भेष॒जं मधु॒ शष्पै॒र्न तेज॑ऽइन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥२९॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे ( होता ) देने वाला ( इडस्पदे ) पृथिवी और अन्न के स्थान में ( समिधा ) इन्धनादि साधनों से ( अग्निम् ) अग्नि को ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य वा जीवों और ( सरस्वतीम् ) सुशिक्षायुक्त वाणी को ( अजः ) प्राप्त होने योग्य ( धूम्रः ) धुमैले मेढे के ( न ) समान कोई जीव ( गोधूमैः ) गेहूँ और ( कुवलैः ) जिन से बल नष्ट हो उन बेरों से ( भेषजम् ) औषध को ( यक्षत् ) सङ्गत करे वैसे ( शष्पैः ) हिंसाओं के ( न ) समान साधनों से जो ( तेजः ) प्रगल्भपन ( मधु ) मधुर जल ( इन्द्रियम् ) धन ( पयः ) दूध वा अन्न ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ ( सोमः ) ओषधियों का समूह ( घृतम् ) घृत ( मधु ) और सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त हो उनके साथ ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) होम कर ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग इस संसार में साधन और उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जानते हैं वे सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॒त्सर॑स्वती॒मवि॑र्मे॒षो न भे॑ष॒जं प॒था मधु॑मता॒ भर॑न्न॒श्विनेन्द्रा॑य वी॒र्यं॒ बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भेष॒जं तोक्म॑भिः॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३०॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) हवनकर्त्ता जन ! जैसे ( तनूनपात् ) देह की ऊनता को पालने अर्थात् उस को किसी प्रकार पूरी करने और ( होता ) ग्रहण करनेवाला

जन ( सरस्वतीम् ) बहुत ज्ञान वाली वाणी को वा ( अवि ) भेड़ और ( मेष ) बकरा के ( न ) समान ( मधुमता ) बहुत जलयुक्त ( पथा ) मार्ग से ( भेषजम् ) औषध को ( भरन् ) धारण करता हुआ ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिये ( अश्विना ) सूर्य चन्द्रमा और ( वीर्यम् ) पराक्रम को वा ( बदरै ) बेर और ( उपवाकाभि ) उपदेश रूप क्रियाओं से ( भेषजम् ) औषध को ( यक्षत् ) सगत करे वैसे जो ( तोक्मभि ) सन्तानों के साथ ( पय ) जल और ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ ( सोम ) ओषधियो के समूह ( घृतम् ) घृत और ( मधु ) सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त हो उनके साथ वर्त्तमान तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सगति करने हारे जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को प्राप्त होके पथ्याहार विहारो से पराक्रम बढा और पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढाते हैं वे जगत् के भूषक होते हैं ॥ ३० ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । अतिधृतिश्छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषं सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥

पदार्थ—हे ( होत ) हवनकर्त्ता जन! जैसे (होता) देनेवाला (नराशसम्) जो मनुष्यो से स्तुति किया जाय उसके ( न ) समान ( नग्नहुम् ) नग्न दुष्ट पुरुषो को कारागृह मे डालने वाले ( पतिम् ) स्वामी वा ( सुरया ) जल के साथ (भेषजम्) औषध को वा ( इन्द्रस्य ) दुष्टगण का विदारण करने हारे जन के ( वीर्यम् ) शूर वीरो मे उत्तम बल को ( यक्षत् ) सगत करे तथा ( मेष ) उपदेश करने वाला ( सरस्वती ) विद्यासबन्धिनी वाणी ( भिषक ) वद्य और ( रथ ) रथ के ( न ) समान ( चन्द्री ) बहुत सुवर्ण वाला जन ( अश्विनो ) आकाश और पृथिवी के मध्य ( वपा ) क्रियाओ का वा ( बदरै ) बरो के समान ( उपवाकाभि ) समीप प्राप्त हुई वाणियो के साथ ( भेषजम् ) औषध को सगत करे वैसे जो ( तोक्मभि ) सन्तानो के साथ ( पय ) दूध ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ ( सोम ) ओषधिगण ( घृतम् ) घी और ( मधु ) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग लज्जाहीन पुरुषो को दण्ड देते स्तुति करने योग्यो की स्तुति और जल के साथ औषध का सेवन करते हैं वे बल और नीरोगता को पाके ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥३१॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । सरस्वत्यादयो देवता । विराडतिधृतिश्छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

होता यक्षदिडेडितऽआजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

पदार्थ—हे ( होत ) हवनकर्त्ता जन! जैसे ( इडा ) स्तुति करने योग्य वाणी से ( ईडित ) प्रशसायुक्त ( आजुह्वान ) सत्कार से आह्वान किया हुआ (होता) प्रशसा करने योग्य मनुष्य ( बलेन ) बल से ( सरस्वतीम् ) वाणी और ( इन्द्रम ) ऐश्वर्य को ( ऋषभेण ) चलने योग्य उत्तम ( गवा ) बैल से ( इन्द्रियम् ) धन तथा ( अश्विना ) आकाश और पृथिवी को ( यवै ) यव आदि अन्नों से ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिये ( भेषजम् ) औषध का ( वर्द्धयन् ) बढाता हुआ ( कर्कन्धुभि ) बेर की क्रिया को धारण करनेवालो से ( मधु ) मीठे ( लाज ) प्रफुल्लित अन्नो के (न) समान ( मासरम् ) भात को ( यक्षत् ) सगत करे वैसे जो ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ ( सोम ) ओषधिसमूह ( पय ) रस (घृतम्) घी (मधु) और सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को तथा विद्वानो की सेवा विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो पथ्य और औषध के सेवन से रोगो का विनाश कर नीरोगता को प्राप्त हो ॥ ३२ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । निचृदष्टिश्छन्द ।

मध्यम स्वर ॥

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुहऽइन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३॥

पदार्थ—हे ( होत ) हवन करनेहारे जन! जैसे ( होता ) देने हारा ( ऊर्णम्रदा ) ढांपने हारों को मर्दन करनेवाले जन ( भिषक ) वद्य ( शिशुमती ) और प्रशसित बालको वाली ( अश्वा ) शीघ्र चलने वाली घोड़ी ( दुहे ) परिपूर्ण करने के लिये ( बर्हि ) अन्तरिक्ष को (यक्षत) सगत करें वा जैसे (नासत्या) सत्यव्यवहार करने हारे ( अश्विना ) वैद्यविद्या मे व्याप्त (भिषजा) उत्तम वद्य मेल करें वा जैसे ( भिषक ) रोग मिटाने और ( धेनु ) दुग्ध देने वाली गाय वा ( सरस्वती ) उत्तम विज्ञान वाली वाणी ( भिषक ) सामान्य वैद्य (इन्द्राय) जीव के लिये मेल करें वैसे जो ( परिस्रुता ) प्राप्त हुए रस के साथ ( भेषजम् ) जल ( पय ) दूध ( सोम ) ओषधिगण ( घृतम् ) घी ( मधु ) सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त हो उन के साथ वर्त्तमान तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्या और सगति से सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करें तो वायु और अग्नि के समान सब विद्याओं के सुखो को व्याप्त होवे ॥ ३३ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । भुरिगतिधृतिश्छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशऽइन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४॥

पदार्थ—हे ( होत ) देने हारे जन! जैसे ( होता ) लेने हारा ( कवष्य ) छिद्रसहित वस्तुओ के ( न ) समान ( दुर ) द्वारो और (व्यचस्वती) व्याप्त होने वाली ( दिश ) दिशाओ को वा ( अश्विभ्याम ) इन्द्र और अग्नि से जैसे ( न ) वैसे ( दुर ) द्वारो और ( दिश ) दिशाओ का वा ( इन्द्र ) बिजुली के ( न ) समान ( दुघे ) परिपूर्णता करनेवाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी के और (धेनु) गाय के समान ( सरस्वती ) विज्ञान वाली वाणी (इन्द्राय) जीव के लिये (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा ( शुक्रम ) वीर्य करनेवाले जल के ( न ) समान ( भेषजम ) औषध तथा ( ज्योति ) प्रकाश करने हारे ( इन्द्रियम् ) मन आदि को ( दुहे ) परिपूर्णता के लिये ( यक्षत ) सगत करे वैसे जो ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ ( पय ) दूध ( सोम ) ओषधियो का समूह ( घृतम ) घी (मधु) और सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य सब दिशाओ के द्वारो वाले सब ऋतुओ मे सुखकारी घर बनावें वे पूर्ण सुख को प्राप्त होवें इन के सब प्रकार के उदय के सुख की न्यूनता कभी नहीं होवे ॥ ३४ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । भुरिगतिधृतिश्छन्द ।

षड्ज स्वर ॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३५॥

पदार्थ—हे ( होत ) देनेहारे जन! जैसे ( सुपेशसा ) सुन्दर स्वरूपवती ( उषे ) काम का दाह करनेवाली स्त्रियाँ ( नक्तम् ) रात्रि और ( दिवा ) दिन में ( अश्विना ) व्याप्त होने वाले सूर्य और चन्द्रमा ( सरस्वत्या ) विज्ञानयुक्त वाणी से ( इन्द्रे ) परमैश्वर्यवान् प्राणी में ( त्विषिम ) प्रदीप्ति और ( भेषजम ) जल को ( समञ्जाते ) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं उन के ( न ) समान और ( रजसा ) लोको के साथ वर्त्तमान ( श्येन ) विशेष ज्ञान करानेवाले विद्वान् के ( न ) समान ( होता ) लेने हारा ( श्रिया ) लक्ष्मी वा शोभा के ( न ) समान ( हृदा ) मन से ( मासरम ) भात वा अच्छे सस्कार किये हुए भोजन के पदार्थों को ( यक्षत् ) सगत करे वैसे जो ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ ( पय ) सब ओषधि का रस ( सोम ) सब ओषधिसमूह ( घृतम ) जल ( मधु ) सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥३५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे रातदिन सूर्य और चन्द्रमा सब को प्रकाशित करते और सुन्दर रूप यौवन सम्पन्न स्वधर्मपत्नी अपने पति की सेवा करती वा जैसे पाकविद्या जानने वाला विद्वान् पाककर्म का उपदेश करता है वैसे सब का प्रकाश और सब कामों का सेवन करो और भोजन के पदार्थों को उत्तमता से बनाओ ॥ ३५ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । निचृदष्टिश्छन्द ।

मध्यम स्वर ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३६॥

पदार्थ—हे ( होत ) देने हारे जन! जैसे ( होता ) लेनेहारा ( दैव्या ) दिव्य गुण वालो में प्राप्त ( होतारा ) ग्रहण करने और ( भिषजा ) वैद्य के समान

रोग मिटाने वाले ( अश्विना ) अग्नि और वायु को ( इन्द्रम् ) बिजुली के ( न ) समान ( यक्षत् ) सगत करे वा ( दिवा ) दिन और ( नक्तम् ) रात्रि मे (जागवि) जागती अर्थात् काम के सिद्ध करने में अतिचैतन्य (सरस्वती ) वैद्यकशास्त्र जानने वाली उत्तम ज्ञानवती स्त्री और ( भिषक ) वैद्य ( भेषजै ) जलो और ( सीसेन ) मनुष के विशेष व्यवहार से ( शुष्मम् ) बल के ( न ) समान ( इन्द्रियम ) धन को ( दुहे ) परिपूर्ण करते हैं वसे जो ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ ( पय ) दुग्ध ( सोम ) ओषधिगण ( घृतम ) घी ( मधु ) सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥३६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे विद्वान् लोगो ! जैसे अच्छी वैद्यक विद्या पढ़ी हुई स्त्री काम सिद्ध करने को दिन रात उत्तम यत्न करती हैं वा वैद्य लोग रोगो को मिटाके शरीर का बल बढ़ाते हैं वसे रहके सबको आनन्दयुक्त होना चाहिये ॥ ३६ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषज त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती महइन्द्राय दुहऽइन्द्रिय पयः सोमः परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७॥

पदार्थ—हे ( होत ) विद्या देनेवाले विद्वज्जन ! जैसे ( होता ) विद्या लेने वाला ( तिस्र ) तीन ( देवी ) देदीप्यमान नीतियो के ( न ) समान ( भेषजम् ) औषध का ( यक्षत ) अच्छे प्रकार प्राप्त करे वा जैसे (अपस ) कर्मवान् (त्रिधातव , त्रय ) सब विषयो को धारण करनेवाले सत्व रजस्तम गुण जिन मे विद्यमान वे तीन अर्थात् अस्मद् युष्मद और तद् पदवाच्य जीव ( हिरण्ययम् ) ज्योतिमय ( रूपम ) नेत्र क विषय रूप को ( इन्द्र ) बिजुली मे प्राप्त करें वा ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा तथा ( इडा ) स्तुति करने योग्य ( भारती ) धारणा वाली बुद्धि के ( न ) समान ( सरस्वती ) अत्यन्त विदुषी ( वाचा ) विद्या और सुशिक्षायुक्त वाणी स ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य्यवान् के लिये ( मह ) अत्यन्तम ( इन्द्रियम् ) धन की ( दुहे ) परिपूर्णता करती वैसे जो (परिस्रुता ) सब ओर प्राप्त हुये रस के साथ (पय ) दूध ( सोम ) ओषधिसमूह ( घृतम ) घी ( मधु ) सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें उनके साथ तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! जैसे हाड मज्जा और वीय शरीर मे कार्य के साधन हैं वा जैसे सूर्य आदि और वाणी सब को जानने वाले हैं वसे हो और सृष्टि की विद्या को प्राप्त होके लक्ष्मी वाले होओ ॥ ३७ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । भुरिक्कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभ नर्यापस त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषज न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रिय वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषज श्रिया न मासर पयः सोमः परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३८॥

पदार्थ—हे (होत ) लेने हारे ! जसे ( होता ) ग्रहण करने वाला ( सुरेतसम् ) अच्छे पराक्रमी ( ऋषभम ) बैल और ( नर्यापसम् ) मनुष्यो मे अच्छे कम करने तथा ( त्वष्टारम् ) दुख काटन वाले ( इन्द्रम ) परमैश्वर्य्ययुक्त जन को ( अश्विना ) वायु और बिजुली वा ( भिषजम ) उत्तम वैद्य के (न) समान (सरस्वतीम ) बहुत विज्ञानयुक्त वाणी को ( ओज ) बल के ( न ) समान (यक्षत्) प्राप्त करे ( भिषक् ) वैद्य ( वृक ) वज्र के ( न ) समान ( जूति ) वेग ( इन्द्रियम् ) मन ( रभस ) वेग ( यश ) धन वा अन्न को ( सुरया ) जल से ( भेषजम् ) औषध को ( श्रिया ) धन क ( न ) समान क्रिया स ( मासरम् ) अच्छे पके हुए अन्न को प्राप्त करे वैसे ( परिस्रुता ) सब ओर से प्राप्त पुरुषार्थ से ( पय ) पीने योग्य रस और ( सोम ) ऐश्वर्य ( घृतम् ) घी और ( मधु ) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य धर्म के आचरण, विद्या और सत्सगति आदि से सब सुख को प्राप्त होते हैं वैसे मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥३८॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतु भीम न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रिय पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९॥

पदार्थ—हे ( होत ) लेने हारे ! जैसे ( भिषक् ) वैद्य ( होता ) वा लेने हारा ( इन्द्राय ) धन के लिए ( वनस्पतिम् ) किरणों को पालने और ( शमितारम्) शान्ति देने हारे ( शतक्रतुम् ) अनन्त बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त जन को ( भीमम् ) भयकारक के ( न ) समान ( मन्युम ) क्रोध वा ( नमसा ) वज्र से ( व्याघ्रम् ) सिंह और ( राजानम् ) देदीप्यमान राजा को ( यक्षत ) प्राप्त करे वा ( सरस्वती ) उत्तम विज्ञान वाली स्त्री और ( अश्विना ) सभा और सेनापति ( भामम् ) क्रोध को ( दुहे ) परिपूर्ण करे वैसे ( परिस्रुता ) प्राप्त हुए पुरुषार्थ के साथ ( इन्द्रियम्) धन ( पय ) रस ( सोम ) चन्द्र ( घृतम् ) घी ( मधु ) मधुर वस्तु ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन कर ॥३९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य लोग विद्या से अग्नि, शान्ति से विद्वान् पुरुषार्थ से बुद्धि और न्याय स राज्य को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे इस जन्म और परजन्म के सुख को प्राप्त होते हैं ॥३९॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । निचृदत्यष्टयौ छन्दसी । गान्धार स्वर ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳ सरस्वत्यै स्वाहाऽऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहसऽइन्द्रियꣳ स्वाहाग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितार वरुण भिषजां पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिं प्रिय पाथो न भेषजꣳ स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४०॥

पदार्थ—हे ( होत ) देने हारे जन ! जसे ( होता ) ग्रहण करने हारा ( आज्यस्य ) प्राप्त होने योग्य घी की ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया वा ( स्तोकानाम् ) स्वल्प ( मेदसाम् ) स्निग्ध पदार्थों की ( स्वाहा ) अच्छे प्रकार रक्षण क्रिया से ( अग्निम् ) अग्नि को ( पृथक ) भिन्न भिन्न (स्वाहा) उत्तम रीति से (अश्विभ्याम्) राज्य के स्वामी और पशु के पालन करने वालो से ( छागम् ) दुख के छेदन करने को ( सरस्वत्यै ) विज्ञानयुक्त वाणी के लिये ( स्वाहा) उत्तम क्रिया से ( मेषम् ) सेचन करने हारे को ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य के लिये ( स्वाहा ) परमोत्तम क्रिया से ( ऋषभम्) श्रेष्ठ पुरुषार्थ को (सहसे ) बल ( सिंहाय ) और जो शत्रुओं का हनन कर्त्ता उसके लिए ( स्वाहा ) उत्तम वाणी से ( इन्द्रियम् ) धन को ( स्वाहा) उत्तम क्रिया से ( अग्निम ) पावक के ( न ) समान ( भेषजम् ) औषध ( सोमम ) सोमलतादि ओषधिसमूह ( इन्द्रियम् ) मन आदि इन्द्रियों को ( स्वाहा ) शान्ति आदि क्रिया और विद्या से ( सुत्रामाणम् ) अच्छे प्रकार रक्षक ( इन्द्रम् ) सेनापति को ( भिषजाम ) वैद्यो के ( पतिम् ) पालन करने हारे ( सवितारम् ) ऐश्वर्य के कर्त्ता ( वरुणम् ) श्रेष्ठ पुरुष का ( स्वाहा ) निदान आदि विद्या से ( वनस्पतिम् ) वनों के पालन करन हारे को ( स्वाहा ) उत्तम विद्या से ( प्रियम् ) प्रीति करने योग्य ( पाथ ) पालन करने वाले अन्न के ( न) समान ( भेषजम ) उत्तम औषध को ( यक्षत् ) सगत करे वा जैसे ( आज्यपा ) विज्ञान के पालन करनेहारे ( देवा ) विद्वान् लोग और ( भेषजम) चिकित्सा करने योग्य को (जुषाण ) सेवन करता हुआ ( अग्नि ) पावक के समान तेजस्वी जन सगत करें वसे जो ( परिस्रुता) चारों ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पय ) दूध ( सोम ) ओषधियो का समूह (घृतम् ) घी ( मधु ) सहत ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू ( आज्यस्य ) घी का ( यज ) हवन किया कर ॥४०॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य विद्या क्रियाकुशलता और प्रयत्न से अग्न्यादि विद्या को जान के गौ आदि पशुओं का अच्छे प्रकार पालन करके सब के उपकार का करते हैं वे वैद्य के समान प्रजा के दुख के नाशक होते है ॥४०॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । विद्वांसो देवता । अतिधृतिश्छन्द । षड्ज स्वर ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताꣳ हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४१॥

पदार्थ—हे ( होत ) देने हारे ! तू जैसे ( होता ) देने हारा (यक्षत्) अनेक प्रकार के व्यवहारो की सगत करे (अश्विनौ ) पशु पालने वा खेती करने वाले ( छागस्य ) बकरा गौ भैंस आदि पशुसम्बन्धी वा ( वपाया ) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और ( मेदस ) चिकने पदार्थ के ( हवि ) लेने देने योग्य व्यवहार का ( जुषेताम) सेवन करें वसे ( यज ) व्यवहारों की सगति कर हे ( होत ) देने हारे जन ! तू जैसे ( होता ) लेने हारा ( मेषस्य ) मेढ़ा के ( वपायाः ) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और ( मेदस ) चिकने पदार्थ सम्बन्धी (हवि ) अग्नि आदि मे छोडने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और ( सरस्वतीम् ) विशेष ज्ञान वाली वाणी का ( जुषताम्) सेवन करे (यक्षत् ) वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे ( यज ) सब पदार्थों का यथायोग्य मेल कर हे ( होत ) देने हारे ! तू जैसे ( होता ) लेने हारा ( ऋषभस्य ) बैल को ( वपाया ) बढ़ने वाली रीति और ( मेदस ) चिकने पदार्थ सम्बन्धी ( हवि ) देने योग्य पदार्थ और ( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्य करनेवाले का ( जुषताम् ) सेवन करे वा यथायोग्य ( यक्षत्) उक्त पदार्थों का मेल करे वैसे (यज ) यथायोग्य पदार्थों का मेल कर ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं वे आप भी बलवान् होते और जो पशुओं से उत्पन्न हुए दूध और उस से उत्पन्न हुए घी का सेवन करते वे कोमल स्वभाव वाले होते हैं और जो खेती करने आदि के लिए इन बैलों को युक्त करते हैं वे धनधान्ययुक्त होते हैं ॥४१॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । होत्रादयो देवताः । पूर्वस्य त्रिपाद् गायत्री छन्दः । सुत्रामाण इत्यस्यातिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ सर॑स्वती॒मिन्द्र॑ꣳ सु॒त्रामा॑णमि॒मे सोमाः॑ सु॒रामा॑ण॒श्छागै॒र्न मे॒षैर्ऋ॑ष॒भैः सु॒ताः शष्पै॒र्न तोक्म॑भि॒र्लाजै॒र्मह॑स्वन्तो॒ मदा॒ मास॑रेण॒ परि॑ष्कृताः शु॒क्राः पय॑स्वन्तो॒ऽमृताः॒ प्रस्थि॑ता वो मधु॒श्चुत॒स्तान॒श्विना॒ सर॑स्व॒तीन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ वृत्र॒हा जु॒षन्ता॑ꣳ सो॒म्यं मधु॒ पिब॑न्तु॒ मद॑न्तु॒ व्यन्तु॒ होत॒र्यज॑ ॥४२॥

पदार्थ—हे (होतः) लेने हारे ! जैसे (होता) देने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुषों (सरस्वतीम्) तथा विज्ञान की भरी हुई वाणी और (सुत्रामाणम्) प्रजाजनों की अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा को (यक्षत्) प्राप्त हो वा (इमे) ये जो (सुरामाणः) अच्छे देने हारे (सोमाः) ऐश्वर्यवान् सभासद् (सुताः) जो कि अभिषेक पाये हुए हों वे (छागैः) विनाश करने योग्य पदार्थों वा बकरा आदि पशुओं (न) के तुल्य तथा (मेषैः) देखने योग्य पदार्थ वा मेढ़ों (ऋषभैः) श्रेष्ठ पदार्थों वा बैलों और (शष्पैः) हिंसकों से जैसे (न) वैसे (तोक्मभिः) सन्तानों और (लाजैः) भुंजे अन्नों से (महस्वन्तः) जिन के सत्कार विद्यमान हों वे मनुष्य और (मदाः) आनन्द (मासरेण) पके हुए चावलों के साथ (परिष्कृताः) शोभायमान (शुक्राः) शुद्ध (पयस्वन्तः) प्रशंसित जल और दूध से युक्त (अमृताः) जिनमें अमृत एक रस (मधुश्चुतः) जिन से मधुरादि गुण टपकते वा (प्रस्थिताः) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए (वः) तुम्हारे लिये पदार्थ बनाये हैं (तान्) उनको प्राप्त होवे या जैसे (अश्विना) सुन्दर सत्कार पाये हुए पुरुष (सरस्वती) प्रशंसित विद्यायुक्त स्त्री (सुत्रामा) अच्छी रक्षा करने वाला (वृत्रहा) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् सज्जन (सोम्यम्) शीतलता गुण के योग्य (मधु) मीठेपन का (जुषन्ताम्) सेवन करें (पिबन्तु) पीवें (मदन्तु) परख और समस्त विद्याओं को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब पदार्थों की यथायोग्य संगति किया कर ॥४२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो संसार के पदार्थों की विद्या सत्य वाणी और भली भांति रक्षा करने हारे राजा को पाकर पशुओं के दूध आदि पदार्थों से पुष्ट होते हैं वे अच्छे रसयुक्त अच्छे संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ जो सुपरीक्षित हों उन को युक्ति के साथ खा और रसों को पी धर्म अर्थ काम, मोक्ष के निमित्त अच्छा यत्न करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥४२॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । होत्रादयो देवताः । आद्यस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ उत्तरस्योत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य ह॒विष॒ऽआत्ता॑म॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ऽउद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस्तां॑ नू॒नं घा॒सेऽअ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमानाꣳ सु॒मत्क्ष॑राणाꣳ शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्तानां॒ पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒तऽउ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑तऽए॒वाश्विना॑ जु॒षेता॑ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥४३॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे ! जैसे (होता) लेने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वालों को (यक्षत्) संगत करे और वे (अद्य) आज (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के (मध्यतः) बीच से (हविषः) लेने योग्य पदार्थ का (मेदः) चिकना भाग अर्थात् घी दूध आदि (उद्भृतम्) उद्धार किया हुआ (आत्ताम्) लेवें वा जैसे (द्वेषोभ्यः) दुष्टों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री के (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय करके (घस्ताम्) खावें वा जैसे (यवसप्रथमानाम्) जो जिनका पहिला अन्न (घासे अज्राणाम्) जो खाने में आगे पहुँचने योग्य (सुमत्क्षराणाम्) जिन के उत्तम उत्तम आनन्दों का कंपन आगमन (शतरुद्रियाणाम्) दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिनके देवता (पीवोपवसनानाम्) वा जिन के मोटे मोटे कपड़ों के ओढ़ने पहिरने (अग्निष्वात्तानाम्) वा जिन्होंने अच्छे भांति अग्निविद्या का ग्रहण किया हो इन सब प्राणियों के (पार्श्वतः) पार्श्वभाग (श्रोणितः) कटिप्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण जिसमें कच्चा अन्न उस प्रदेश (उत्सादतः) उपाड़ते हुए अंग और (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से व्यवहार वा (अवत्तानाम्) न [illegible] उत्तम अङ्गों (एव) ही के व्यवहार को (अश्विना) अच्छे वैद्य (करतः) [illegible] और (हविः) उक्त पदार्थों से खाने योग्य पदार्थ का (जुषताम्) सेवन करें [illegible] यज) सब पदार्थों वा व्यवहारों की संगति किया कर ॥४३॥

भावार्थ—जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध आदि अच्छा अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभाव युक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना पहिरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं ॥ ४३ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । पूर्वस्य याजुषी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । हविष इत्युत्तरस्य स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

होता॑ यक्ष॒त् सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ ह॒विष॒ऽआव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ऽउद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस॑न्नू॒नं घा॒सेऽअ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमानाꣳ सु॒मत्क्ष॑राणाꣳ शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्तानां॒ पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒तऽउ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑देवꣳ सर॑स्वती जु॒षता॑ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥४४॥

पदार्थ—हे (होतः) लेने हारे ! जैसे (होता) देने वाला (अद्य) आज (मेषस्य) उपदेश को पाये हुए मनुष्य के (शितामतः) खरे स्वभाव से (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में प्रसिद्ध व्यवहार से जो (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) उद्धार किया अर्थात् निकाला उसको (सरस्वतीम्) और वाणी को (आ अवयत्) प्राप्त होता तथा (यक्षत्) सत्कार करता और (द्वेषोभ्यः) शत्रुओं से (पुरा) पहिले तथा (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिनी स्त्री के (पुरा) प्रथम (नूनम्) निश्चय से (घसत्) खावे वा (घासे अज्राणाम्) जो भोजन करने में सुन्दर (यवसप्रथमानाम्) मिले न मिले हुए आदि (सुमत्क्षराणाम्) श्रेष्ठ आनन्द की वर्षा कराने और (पीवोपवसनानाम्) मोटे कपड़े पहरने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निविद्या को भलीभांति ग्रहण किये हुए और (शतरुद्रियाणाम्) बहुतों के बीच विद्वानों का अभिप्राय रखने हारों के (पार्श्वतः) समीप और (श्रोणितः) कटिभाग से (उत्सादतः) शरीर में जो त्याग उससे वा (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग में (अवत्तानाम्) ग्रहण किये हुए व्यवहारों की विद्या को (करत्) ग्रहण करे (एवम्) ऐसे (सरस्वती) पण्डिता स्त्री उस का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तू भी (हविः) ग्रहण करने योग्य व्यवहार की (यज) सङ्गति किया कर ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सज्जनों के सङ्ग में दुष्टों का निवारण कर युक्त आहार विहारों से आरोग्यपन को पाकर धर्म का सेवा करते वे कृतकृत्य होते हैं ॥ ४४ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । यजमानर्त्विजो देवताः । पूर्वस्य भुरिक्प्राजापत्योष्णिक् । आवयदित्युत्तरस्य भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ ह॒विष॒ऽआव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ऽउद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस॑न्नू॒नं घा॒सेऽअ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमानाꣳ सु॒मत्क्ष॑राणाꣳ शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्तानां॒ पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒तऽउ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑देव॒मिन्द्रो॑ जु॒षता॑ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥४५॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे ! जैसे (होता) लेने हारा पुरुष (घासे अज्राणाम्) भोजन करने में प्राप्त होने (यवसप्रथमानाम्) जो आदि अन्न वा मिले न मिले हुए पदार्थों का विस्तार करने और (सुमत्क्षराणाम्) भलीभांति प्रमाद का विनाश करने वाले (अग्निष्वात्तानाम्) जाठराग्नि अर्थात् पेट में भीतर रहने वाले आग से अन्न ग्रहण किये हुए (पीवोपवसनानाम्) मोटे पोढ़े उढ़ाने (शतरुद्रियाणाम्) और सैकड़ों दुष्टों को रुलाने हारे (अवत्तानाम्) उदारचित विद्वानों के (पार्श्वतः) और पास के अंग वा (श्रोणितः) क्रम में वा (शितामतः) तीक्ष्णता के साथ जिससे रोग छिन्न भिन्न हो गया हो उस अंग वा (उत्सादतः) त्यागमात्र वा (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से (हविः) रोग विनाश करने हारी वस्तु और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को सिद्ध (करत्) करे और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला राजा उस का (जुषताम्) सेवन करे तथा वह राजा जैसे (अद्य) आज (ऋषभस्य) उत्तम (हविषः) लेने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में उत्पन्न हुआ (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) जो कि उत्तमता से पुष्ट किया गया अर्थात् सम्हाला गया हो उस को (आ अवयत्) व्याप्त हो सब ओर से प्राप्त हो (द्वेषोभ्यः) वैरियों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिनी विद्या के सम्बन्ध से (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय के साथ (यक्षत्) सत्कार करे वा (एवम्) इस प्रकार (घसत्) भोजन करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग से दुष्टों का निवारण तथा श्रेष्ठ उत्तम जनों का सत्कार कर लेने योग्य पदार्थ को लेकर और दूसरों को ग्रहण करा सब की उन्नति करते हैं वे सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४५ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । भुरिगभिकृती छन्दसी । ऋषभः स्वरः ॥

होता॑ यक्ष॒द्वन॒स्पति॑म॒भि हि पि॒ष्टत॑मया॒ रभि॑ष्ठया रश॒नया॑धित । यत्रा॒श्विनो॒श्छाग॑स्य ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्र॒ सर॑स्वत्या मे॒षस्य॑

**हुविषं प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्यं हुविषं प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांऽसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावंस्रक्षद्रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषतांऽ हुविर्होतर्यज ॥४६॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) देनेहारे ! जैसे ( होता ) लेने हारा सत्पुरुष ( पिष्टतमया ) अति पिसी हुई ( रभिष्ठया ) अत्यन्त शीघ्रता से बढ़नेवाली वा जिसका बहुत प्रकार से प्रारम्भ होता है उस वस्तु और ( रशनया ) रश्मि के साथ ( यत्र ) जहां ( अश्विनोः ) सूर्य्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध से पालित ( छागस्य ) घास को छेदन खाने हारा बकरा आदि पशु और ( हविषः ) देने योग्य पदार्थसम्बन्धी ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा ( यत्र ) जहां ( सरस्वत्याः ) नदी ( मेषस्य ) मेढ़ा और ( हविषः ) ग्रहण करने पदार्थ सम्बन्धी ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम वा ( यत्र ) जहां ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्ययुक्त जन के ( ऋषभस्य ) प्राप्त होने और ( हविषः ) देने योग्य पदार्थ के ( प्रिया ) प्यारे मन के हरने वाले ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम वा ( यत्र ) जहां ( अग्नेः ) प्रसिद्ध और बिजुलीरूप अग्नि के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम वा ( यत्र ) जहां ( सोमस्य ) ओषधियों के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम वा ( यत्र ) जहां ( सुत्राम्णः ) भलीभांति रक्षा करने वाले ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्ययुक्त उत्तम पुरुष के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम वा ( यत्र ) जहां ( सवितुः ) सब को प्रेरणा देने हारे पवन के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा ( यत्र ) जहां ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ पदार्थ के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम वा ( यत्र ) जहां ( वनस्पतेः ) वट आदि वृक्षों के ( प्रिया ) उत्तम ( पाथांसि ) अन्न अर्थात् उन के पीने के जल वा ( यत्र ) जहां ( आज्यपानाम् ) गति अर्थात् अपनी कक्षा में घूमने से जीवों के पालने वाले ( देवानाम् ) पृथिवी आदि दिव्य लोकों का ( प्रिया ) उत्तम ( धामानि ) उत्पन्न होना उनके ठहरने की जगह और नाम वा ( यत्र ) जहां ( होतुः ) उत्तम सुख देने और ( अग्नेः ) विद्या से प्रकाशमान होने हारे अग्नि के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम हैं ( तत्र ) वहां ( एतान् ) इन उक्त पदार्थों की ( प्रस्तुत्येव ) प्रकरण से अर्थात् समय समय से चाहना सी कर और ( उपस्तुत्येव ) उनकी समीप प्रशंसा सी करके ( उपावस्रक्षत् ) उनको गुण कर्म स्वभाव से यथायोग्य कामों में उपार्जन कर अर्थात् उक्त पदार्थों का सञ्चय करे ( रभीयस इव ) बहुत प्रकार से अतीव प्रारम्भ के समान ( कृत्वी ) करके कार्यों के उपयोग में लावे ( एवम् ) और इस प्रकार ( करत् ) उनका व्यवहार करे वा जैसे ( वनस्पतिः ) सूर्य आदि लोकों की किरणों की पालना करने हारा और ( देवः ) दिव्यगुणयुक्त अग्नि ( हविः ) संस्कार किये अर्थात् उत्तमता से बनाये हुए पदार्थ का ( जुषताम् ) सेवन करे और ( हि ) निश्चय से ( वनस्पतिम् ) वट आदि वृक्षों को ( अभि यक्षत् ) सब ओर से पहुँचे अर्थात् बिजुली रूप से प्राप्त हो और ( अधित ) उनका धारण करे वैसे तू ( यज ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर के उत्पन्न किये हुए पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान कर इन को कार्य की सिद्धि के लिये भलीभांति युक्त करें तो वे अपने चाहे हुए सुखों को प्राप्त होवें ॥४६॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिगाकृतिः
याज्युत्तरस्याऽऽकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

**होता यक्षदुग्निᳬ स्विष्टकृतमयाडुग्निरुश्विनोश्छागस्य हुविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हुविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्यऽऋषभस्यं हुविषः प्रिया धामान्ययाडुग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथांऽस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदुग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्याऽइषः कृणोतु सोऽअध्वरा जातवेदा जुषतांऽ हुविर्होतर्यज ॥४७॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) देने हारे ! जैसे ( होता ) लेने हारा ( स्विष्टकृतम् ) भली भांति चाहे हुए पदार्थ से प्रसिद्ध किये ( अग्निम् ) अग्नि को ( यक्षत् ) प्राप्त और ( अयाट् ) उस की प्रशंसा करे वा जैसे ( अग्निः ) प्रसिद्ध आग ( अश्विनोः ) पवन बिजुली ( छागस्य ) बकरा आदि पशु ( हविषः ) और लेने योग्य पदार्थ के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम को ( अयाट् ) प्राप्त हो वा ( सरस्वत्याः ) वाणी ( मेषस्य ) सींचने वा दूसरे के जीतने की इच्छा करने वाले प्राणी ( हविषः ) और ग्रहण करने योग्य पदार्थ के ( प्रिया ) प्यारे मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( अयाट् ) प्रशंसा करे वा ( इन्द्रस्य ) परमैश्वर्ययुक्त ( ऋषभस्य ) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा और ( हविषः ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( अयाट् ) प्रशंसा करे वा ( अग्नेः ) बिजुली रूप अग्नि के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( अयाट् ) प्रशंसा करे वा ( सोमस्य ) ऐश्वर्य्य के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( अयाट् ) प्रशंसा करे वा ( सुत्राम्णः ) भलीभांति रक्षा करने वाले ( इन्द्रस्य ) सेनापति के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( अयाट् ) प्रशंसा करे वा ( सवितुः ) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे उत्तम पदार्थज्ञान के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( अयाट् ) प्रशंसा करे वा ( वरुणस्य ) सब से उत्तम जन और जल के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( अयाट् ) प्रशंसा करे वा ( वनस्पतेः ) वट आदि वृक्षों के ( प्रिया ) तृप्ति कराने वाले ( पाथांसि ) फलों को ( अयाट् ) प्राप्त हो वा ( आज्यपानाम् ) जानने योग्य पदार्थ की रक्षा करने और रस पीने वाले ( देवानाम् ) विद्वानों के ( प्रिया ) प्यारे मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम का ( यक्षत् ) मिलाना वा सराहना करे वा ( होतुः ) जलादिक ग्रहण करने और ( अग्नेः ) प्रकाश करने वाले सूर्य्य के ( प्रिया ) मनोहर ( धामानि ) जन्म स्थान और नाम की ( यक्षत् ) प्रशंसा करे ( स्वम् ) अपने ( महिमानम् ) बड़प्पन का ( आ यजताम् ) ग्रहण करे वा जैसे ( जातवेदाः ) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुआ जो पुरुष ( एज्याः ) अच्छे प्रकार सङ्गयोग्य उत्तम क्रियाओं और ( इषः ) चाहनाओं को ( कृणोतु ) करे ( सः ) वह ( अध्वरा ) न छोड़ने न विनाश करने योग्य यज्ञों का और ( हविः ) सङ्ग करने योग्य पदार्थ का ( जुषताम् ) सेवन करे वैसे तू ( यज ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अपने चाहे हुए को सिद्ध करने वाले अग्नि आदि संसारस्थ पदार्थों को अच्छे प्रकार जानकर प्यारे मन से चाहे हुए सुखों को प्राप्त होते हैं वे अपने बड़प्पन का विस्तार करते हैं ॥४७॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*अब विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते इस विषय का अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना । तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४८॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सरस्वती ) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री ( इन्द्रे ) परमैश्वर्य के निमित्त ( देवम् ) दिव्य ( सुदेवम् ) सुन्दर विद्वान् पति को ( बर्हिः ) अन्तरिक्ष ( अश्विना ) पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा ( चक्षुः ) आंख के ( तेजः ) तेज के ( न ) समान ( यज ) प्रशंसा वा सङ्गति करती है और जैसे विद्वान् जन ( वसुधेयस्य ) जिस में धन धारण करने योग्य हो उस व्यवहार सम्बन्धी ( वसुवने ) धन की प्राप्ति कराने के लिये ( अक्ष्योः ) आंखों के ( बर्हिषा ) अन्तरिक्ष अवकाश से अर्थात् दृष्टि से देख के ( इन्द्रियम् ) उक्त धन को ( दधुः ) धारण करते और ( व्यन्तु ) प्राप्त होते हैं वैसे इसको तू धारण कर और प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या अपने लिये मनोहर पति को पाकर आनन्द करती है वैसे विद्या और संसार के पदार्थ का बोध पाकर तुम लोगों को भी आनन्दित होना चाहिये ॥ ४८ ॥

देवीर्द्वार इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । बृहत्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

*फिर विद्वानों का उपदेश कैसा होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवीर्द्वारोऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्य्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( अश्विना ) पवन और सूर्य्य वा ( सरस्वती ) विशेष ज्ञान वाली स्त्री और ( भिषजा ) वैद्य ( इन्द्रे ) ऐश्वर्य के निमित्त ( देवीः ) अतीव दीपते अर्थात् चमकाते हुए ( द्वारः ) पैठने और निकलने के अर्थ बने हुए द्वारों को प्राप्त होते हुए प्राणियों की ( नसि ) नासिका में ( प्राणम् ) जो श्वास आती उस के ( न ) समान ( वीर्य्यम् ) बल और ( द्वारः ) द्वारों अर्थात् शरीर के प्रसिद्ध नव छिद्रों को ( दधुः ) धारण करें ( वसुवने ) वा धन का सेवन करने के लिये ( वसुधेयस्य ) धनकोश के ( इन्द्रियम् ) धन को विद्वान् जन ( व्यन्तु ) प्राप्त हों वैसे तू ( यज ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा का प्रकाश द्वारों से घर को पैठ घर के भीतर प्रकाश करता है वैसे विद्वानों का उपदेश कानों में प्रविष्ट होकर भीतर मन में प्रकाश करता है। ऐसे जो विद्या के साथ अच्छा यत्न करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥ ४९ ॥

देवी उषासावित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर मनुष्य कैसे वर्त्ते यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । बलं न वाचमास्यऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५०॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **देवी** ) निरन्तर प्रकाश को प्राप्त ( **उषासौ** ) सायङ्काल और प्रातःकाल की सन्धिवेला वा ( **सुत्रामा** ) भलीभांति रक्षा करने वाले ( **सरस्वती** ) विशेष ज्ञान की हेतु स्त्री ( **अश्विना** ) सूर्य और चन्द्रमा ( **वसुवने** ) धन की सेवा करने वाले के लिये ( **वसुधेयस्य** ) जिस में धन धरा जाय उस व्यवहार सम्बन्धी ( **इन्द्रे** ) उत्तम ऐश्वर्य में ( **न** ) जैसे ( **बलम्** ) बल वा वैसे ( **आस्ये** ) मुख में ( **वाचम्** ) वाणी को वा ( **उषाभ्याम्** ) सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला से ( **इन्द्रियम्** ) धन को ( **दधु** ) धारण करें और सब को ( **व्यन्तु** ) प्राप्त हों वैसे तू ( **यज** ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ५० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य चन्द्रमा सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम यत्न करते हैं तथा सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला में सोने और आलस्य आदि को छोड़ ईश्वर का ध्यान करते हैं वे बहुत धन को पाते हैं ॥ ५० ॥

**देवी जोष्ट्री इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । त्रिष्टुप छन्द ।**

**धैवतः स्वर ॥**

*फिर मनुष्य कैसे होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् । श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **देवी** ) प्रकाश देने वाली ( **जोष्ट्री** ) सेवन योग्य ( **सरस्वती** ) विशेष ज्ञान की निमित्त सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला तथा ( **अश्विना** ) पवन और बिजुलीरूप अग्नि ( **इन्द्रम्** ) सूर्य को ( **अवर्धयन्** ) बढ़ाते अर्थात् उन्नति करते हैं वा मनुष्य ( **जोष्ट्रीभ्याम्** ) संसार को सेवन करती हुई उक्त प्रातःकाल और सायङ्काल की वेलाओं से ( **कर्णयो** ) कानों में ( **यश** ) कीर्ति को ( **श्रोत्रम्** ) जिस से वचन को सुनता है उस कान के ही ( **न** ) समान ( **दधु** ) धारण करते हैं वा ( **वसुधेयस्य** ) जिस में धन धरा जाय उस कोशसम्बन्धी ( **वसुवने** ) धन का सेवन करने वाले के लिये ( **इन्द्रियम्** ) धन को ( **व्यन्तु** ) विशेषता से प्राप्त होते हैं वैसे तू ( **यज** ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥५१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के कारणों को जानते हैं वे यशस्वी होकर धनवान् कान्तिमान् शोभायमान होते हैं ॥५१॥

**देवी इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । त्रिष्टुप छन्द ।**

**धैवत स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावत । शुक्रं न ज्योतिस्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे ( **देवी** ) मनोहर ( **दुघे** ) उत्तमता पूर्ण करने वाली प्रातः सायं वेला वा ( **इन्द्रे** ) परम ऐश्वर्य के निमित्त ( **ऊर्जाहुती** ) अन्न की आहुति ( **सरस्वती** ) विशेष ज्ञान कराने हारी स्त्री वा ( **सुदुघा** ) सुख पूरण करने हारे ( **भिषजा** ) अच्छे वैद्य ( **अश्विना** ) वा पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् ( **शुक्रम** ) शुद्ध जल के ( **न** ) समान ( **ज्योति** ) प्रकाश की ( **अवत** ) रक्षा करते हैं वैसे ( **स्तनयो** ) शरीर में स्तनों की जो ( **आहुती** ) ग्रहण करने योग्य क्रिया है उनको ( **धत्त** ) धारण करो और ( **वसुधेयस्य** ) जिस में धन भरा हुआ उस संसार के बीच ( **वसुवने** ) धन के सेवन करने वाले के लिए ( **इन्द्रियम्** ) धन को धारण करो जिससे उन उक्त पदार्थों को साधारण सब मनुष्य ( **व्यन्तु** ) प्राप्त हों । हे गुणों के ग्रहण करने हारे जन ! वैसे तू सब व्यवहारों की ( **यज** ) सङ्गति किया कर ॥ ५२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे अच्छे वैद्य अपने और दूसरों के शरीरों की रक्षा करके वृद्धि करते कराते हैं वैसे सब को चाहिए कि धन की रक्षा करके उसकी वृद्धि करें जिससे इस संसार में अतुल सुख हो ॥५२॥

**देवा देवानामित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । अतिजगतीछन्द । निषाद स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवा देवानां भिषजा होतारावन्द्रमश्विना । वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५३॥**

**पदार्थ**— हे विद्वानो ! आप लोग जैसे ( **देवानाम** ) सुख देने हारे विद्वानों के बीच ( **होतारौ** ) शरीर के सुख देने वाले ( **देवा** ) वैद्यविद्या से प्रकाशमान ( **भिषजा** ) वैद्यजन ( **अश्विना** ) विद्या में रमते हुए ( **वषट्कारैः** ) श्रेष्ठ कामों से ( **इन्द्रम** ) परमैश्वर्य्य को धारण करें ( **सरस्वती** ) प्रशंसित विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी वाली स्त्री ( **त्विषिम्** ) प्रकाश के ( **न** ) समान ( **हृदये** ) अन्तःकरण में ( **मतिम** ) बुद्धि को धारण करे वैसे ( **होतृभ्याम्** ) देने वालों के साथ उक्त मद्वैद्य और वाणीयुक्त स्त्री को वा ( **वसुधेयस्य** ) कोश के ( **वसुवने** ) धन को बांटने वाले के लिये ( **इन्द्रियम्** ) शुद्ध मन को ( **दधु** ) धारण करें और ( **व्यन्तु** ) प्राप्त हों । हे जन ! वैसे तू भी ( **यज** ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥५३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे विद्वानों में विद्वान् अच्छे वैद्य श्रेष्ठ क्रिया से सब को नीरोग कर कान्तिमान् धनवान् करते हैं वा जैसे विद्वानों की वाणी विद्यार्थियों के मन में उत्तम ज्ञान की उन्नति करती है वैसे साधारण मनुष्यों को विद्या और धन इकट्ठे करने चाहियें ॥५३॥

**देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । त्रिष्टुप छन्द ।**

**धैवत स्वर ॥**

*फिर माता पिता अपने सन्तानों को कैसे करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती । शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५४॥**

**पदार्थ**—हे विद्यार्थी ! जैसे ( **तिस्र** ) माता पढ़ाने और उपदेश करने वाली ये तीन ( **देवी** ) निरन्तर विद्या से दीपती हुई स्त्री ( **वसुधेयस्य** ) जिस में धन धरने योग्य है उस संसार के ( **मध्ये** ) बीच ( **वसुवने** ) उत्तम धन चाहने वाले ( **इन्द्राय** ) जीव के लिये ( **तिस्र** ) उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन ( **देवी** ) विद्या के प्रकाश को प्राप्त हुई कन्याओं को ( **दधु** ) धारण करें वा ( **अश्विना** ) पढ़ाने और उपदेश करने हारे मनुष्य ( **इडा** ) स्तुति करने वाली स्त्री और ( **सरस्वती** ) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री ( **नाभ्याम** ) तोंदी में ( **शूषम** ) बल वा सुख के ( **न** ) समान ( **इन्द्रियम्** ) मन को धारण करें वा जैसे ये सब उक्त पदार्थों को ( **व्यन्तु** ) प्राप्त हों वैसे तू ( **यज** ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥५४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता पढ़ाने और उपदेश करने हारी ये तीन पण्डिता स्त्री कुमारियों को पण्डिता कर उनको सुखी करती हैं वैसे पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् कुमार विद्यार्थियों को विद्वान् कर उन्हें अच्छे सभ्य करें ॥५४॥

**देव इन्द्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । स्वराट् शक्वरी छन्द । धैवत स्वर ॥**

**देवऽइन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः । रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५५॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **त्रिवरूथ** ) तीन अर्थात् भूमि, भूमि के नीचे और अन्तरिक्ष में जिस के घर हैं वह ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्य्यवान् ( **देव** ) विद्वान् ( **सरस्वत्या** ) अच्छी शिक्षा की हुई वाणी से ( **नराशस** ) जो मनुष्यों को भली भांति शिक्षा देते हैं उनको ( **अश्विभ्याम** ) आग और पवन से जैसे ( **रथ** ) रमणीय रथ ( **ईयते** ) पहुंचाया जाता वैसे अच्छे मार्ग में पहुँचाता है वा जैसे ( **त्वष्टा** ) दुःख का विनाश करने हारा ( **जनित्रम** ) उत्तम सुख उत्पन्न करने हारे ( **अमृतम** ) जल और ( **रेत** ) वीर्य्य के ( **न** ) समान ( **रूपम** ) रूप को तथा ( **वसुधेयस्य** ) संसार के बीच ( **वसुवने** ) धन की सेवा करने वाले ( **इन्द्राय** ) जीव के लिए ( **इन्द्रियाणि** ) कान आदि इन्द्रियों को ( **दधत्** ) धारण करे वा जैसे उक्त पदार्थों को ये सब ( **व्यन्तु** ) प्राप्त हों वैसे तू ( **यज** ) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥५५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग धर्मसम्बन्धी व्यवहार से धन को इकट्ठा करो तो जल और आग से चलाये हुए रथ के समान शीघ्र सब सुखों को प्राप्त होओ ॥५५॥

**देवो देवैरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—*

**देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यवर्णोऽअश्विभ्याꣳ सरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५६॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **अश्विभ्याम्** ) जल और बिजुली रूपी आग से ( **देवै** ) प्रकाश करनेवाले गुणों के साथ ( **देव** ) प्रकाशमान ( **हिरण्यवर्ण** ) तेजःस्वरूप ( **वनस्पति** ) किरणों की रक्षा करने वाला सूर्यलोक वा ( **सरस्वत्या** ) बहती हुई नीति के साथ ( **सुपिप्पल** ) सुन्दर फलों वाला पीपल आदि वृक्ष ( **इन्द्राय** ) प्राणी के लिये ( **मधु** ) मीठा फल जैसे ( **पच्यते** ) पके वैसे पकता और सिद्ध होता वा ( **जूत** ) वेग ( **ओज** ) जल को ( **न** ) जैसे ( **भामम्** ) तथा क्रोध को ( **ऋषभ** ) बलवान् प्राणी के ( **न** ) समान ( **वनस्पति** ) वटवृक्ष आदि ( **वसुधेयस्य** ) सबके आधार संसार के बीच ( **न** ) हम लोगों के लिये ( **वसुवने** ) वा धन चाहने वाले के लिये ( **इन्द्रियाणि** ) धनों को ( **दधत** ) धारण कर रहा है जैसे इन सब उक्त पदार्थों को ये सब ( **व्यन्तु** ) व्याप्त हों वैसे तू सब व्यवहारों की ( **यज** ) सङ्गति किया कर ॥५६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्य वर्षा से और नदी अपने जल से वृक्षों की भलीभाँति रक्षा कर सब ओर से मीठे मीठे फलों को उत्पन्न कराती हैं वैसे सब के अर्थ सब वस्तु उत्पन्न करो और जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता वैसे दुष्टो के प्रति अप्रीति कर अच्छे उत्तम जनो मे प्रेम को धारण करो ॥५६॥

**देव बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । अतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ।**

**देव बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः । ईशायै मन्युꣳ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५७॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) अपने इन्द्रिय के स्वामी जीव ! जिस ( **ते** ) तेरा ( **सरस्वत्या** ) उत्तम वाणी के साथ ( **स्योनम्** ) सुख और ( **सद** ) जिस में बैठते वह नाव आदि यान हैं और जैसे ( **ऊर्णम्रदा** ) ढाँपने वाले पदार्थों से शिल्प की वस्तुओं को मीजते हुए विद्वान् जन ( **अश्विभ्याम्** ) पवन और बिजुली से ( **अध्वरे** ) न विनाश करने योग्य शिल्पयज्ञ मे ( **वारितीनाम्** ) जिन की जल मे चाल है उन पदार्थों के ( **स्तीर्णम्** ) ढाँपने वाले ( **देवम्** ) दिव्य ( **बर्हि** ) अन्तरिक्ष को वा ( **ईशायै** ) जिस क्रिया से ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होता उस के लिये ( **मन्युम्** ) विचार अर्थात् सब पदार्थों के गुण दोष और उन की क्रिया सोधन को ( **राजानम्** ) प्रकाशमान राजा के समान वा ( **बर्हिषा** ) अन्तरिक्ष से ( **वसुधेयस्य** ) पृथिवी आदि आधार के बीच ( **वसुवने** ) पृथिवी आदि लोकों की सेवा करनेहारे जीव के लिये ( **इन्द्रियम्** ) धन को ( **दधु** ) धारण करें और इन को ( **व्यन्तु** ) प्राप्त हो वैसे तू सब पदार्थों की ( **यज** ) सगति किया कर ॥५७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । यदि मनुष्य आकाश के समान निष्कम्प निडर ध्यान के देने हारे एकान्तस्थानयुक्त और जिनकी आज्ञा भग न हो ऐसे पुरुषार्थी हों वे इस ससार के बीच धनवान् क्यों न हों ? ॥५७॥

**देवो अग्निरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । । आद्यस्याऽत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर । स्विष्टोऽअग्निरित्युत्तरस्य निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

**देवोऽअग्निः स्विष्टकृद् देवान्यक्षद्यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत् स्विष्टऽइन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवाऽआज्यपाः स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५८॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **वसुधेयस्य** ) ससार के बीच मे ( **वसुवने** ) ऐश्वर्य को सेवने वाले सज्जन मनुष्य के लिये ( **स्विष्टकृत्** ) सुन्दर चाहे हुए सुख का करने हारा ( **देव** ) दिव्य सुन्दर ( **अग्नि** ) आग ( **देवान्** ) उत्तम गुण कर्म स्वभावों वाले पृथिवी आदि को ( **यथायथम्** ) यथायोग्य ( **यक्षत्** ) प्राप्त हो वा जैसे ( **होतारा** ) पदार्थों के ग्रहण करने हारे ( **अश्विना** ) पवन और बिजुलीरूप अग्नि ( **इन्द्रम्** ) सूर्य ( **वाचा** ) वाणी मे ( **सरस्वतीम्** ) विशेष ज्ञानयुक्त ( **वाचम्** ) वाणी से ( **अग्निम्** ) अग्नि ( **सोमम्** ) और चन्द्रमा को यथायोग्य चलाते हैं वा जैसे ( **स्विष्टकृत** ) अच्छे सुख का करनेवाला ( **स्विष्ट** ) सुन्दर और सब का चाहा हुआ ( **सुत्रामा** ) भली भाँति पालन हारा ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्ययुक्त राजा ( **सविता** ) सूर्य ( **वरुण** ) जल का समुदाय ( **भिषक** ) रोगो का विनाश करने हारा वैद्य ( **इष्ट** ) सग करने योग्य ( **देव** ) दिव्यस्वभाव वाला ( **वनस्पति** ) पीपल आदि ( **स्विष्टा** ) सुन्दर चाहा हुआ सुख जिस से हो वे ( **आज्यपा** ) पीने योग्य रस को पीने हारे ( **देवा** ) दिव्य स्वरूप विद्वान् ( **अग्निना** ) बिजुली के साथ ( **स्विष्ट होता** ) देने वाला कि जिससे सुन्दर चाहा हुआ काम हो ( **स्विष्टकृत्** ) उत्तम चाहे हुए काम को करने वाला ( **अग्नि** ) अग्नि ( **होत्रे** ) देने वाले के लिए ( **यश** ) कीर्ति करने हारे धन के ( **न** ) समान ( **इन्द्रियम्** ) जीव के चिह्न कान आदि इन्द्रिया ( **ऊर्जम्** ) बल ( **अपचितिम्** ) सत्कार और ( **स्वधाम्** ) अन्न को ( **दधत** ) प्रत्येक का धारण करे वा जैसे उन उक्त पदार्थों को ये सब ( **व्यन्तु** ) प्राप्त हो वैसे तू ( **यज** ) सब व्यवहारो की सगति किया कर ॥५८॥

**भावार्थ**—इस मंत्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ईश्वर के बनाये हुए इस मन्त्र मे कहे यज्ञ आदि पदार्थों को विद्या से उपयोग के लिये धारण करते हैं वे सुन्दर चाहे हुए सुखो को पाते हैं ॥ ५८ ॥

**अग्निमद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । अश्व्यादयो देवता । धृतिश्छन्द । ऋषभ स्वरः ॥**

**अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्यां छागꣳ सरस्वत्यै मेषमिन्द्रायऽऋषभꣳ सुन्वन्नश्विभ्याꣳ सरस्वत्याऽइन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ॥५९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अयम्** ) यह ( **पक्ती** ) पचाने के प्रकारो को ( **पचन्** ) पचाता अर्थात् सिद्ध करता और ( **पुरोडाशान्** ) यज्ञ आदि कर्म में प्रसिद्ध पाकों को ( **पचन्** ) पचाता हुआ ( **यजमान** ) यज्ञ करने हारा ( **होतारम्** ) सुखो के देने वाले ( **अग्निम्** ) आग का ( **अवृणीत** ) स्वीकार वा जैसे ( **अश्विभ्याम्** ) प्राण और अपान के लिये ( **छागम्** ) छेरी ( **सरस्वत्य** ) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी के लिये ( **मेषम्** ) भेड और ( **इन्द्राय** ) परम ऐश्वर्य के लिये ( **ऋषभम्** ) बैल को ( **बध्नन्** ) बाँधते हुए वा ( **अश्विभ्याम्** ) प्राण अपान ( **सरस्वत्यै** ) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी और ( **सुत्राम्णे** ) भली भाँति रक्षा करने हारे ( **इन्द्राय** ) राजा के लिये ( **सुरासोमान्** ) उत्तम रसयुक्त पदार्थों का ( **सुन्वन्** ) सार निकालते हैं वैसे तुम ( **अद्य** ) आज करो ॥ ५९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पदार्थों को मिलाने हारे वैद्य अपान के लिये छेरी का दूध वाणी बढ़ने के लिये भेड का दूध, ऐश्वर्य के बढ़ने के लिये बैल रोगनिवारण के लिये ओषधियो के रसो का इकट्ठा और अच्छे सस्कार किए हुए अन्नों का भोजन कर उससे बलवान् होकर दुष्ट शत्रुओ को बाँधते हैं वैसे वे परम ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥

**सूपस्था इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । लिङ्गोक्ता देवता । अतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्रायऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचताग्रभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥६०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **अद्य** ) आज ( **सूपस्था** ) भली भाँति समीप स्थिर होने वाले और ( **देव** ) दिव्य गुण वाला पुरुष ( **वनस्पति** ) वट वृक्ष आदि के समान जिस जिस ( **अश्विभ्याम्** ) प्राण और अपान के लिए ( **छागेन** ) दुःख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु से ( **सरस्वत्य** ) वाणी के लिए ( **मेषण** ) मेंढा से ( **इन्द्राय** ) परम ऐश्वर्य के लिए ( **ऋषभेण** ) बैल से ( **अक्षन्** ) भोग करें—उपयोग लें ( **तान्** ) उन ( **मेदस्त** ) सुन्दर चिकने पशुओं के ( **प्रति** ) प्रति ( **पचता** ) पचाने योग्य वस्तुओं का ( **अगृभीषत** ) ग्रहण करे ( **पुरोडाश** ) प्रथम उत्तम सस्कार किए हुए विशेष अन्नों से ( **अवीवृधन्त** ) वृद्धि को प्राप्त हो ( **अश्विना** ) प्राण अपान ( **सरस्वती** ) प्रशसित वाणी ( **सुत्रामा** ) भली भाँति रक्षा करने हारा ( **इन्द्र** ) परम ऐश्वर्यवान् राजा ( **सुरासोमान्** ) जो अर्क खोंचने से उत्पन्न हो उन ओषधिरसो को ( **अपु** ) पीवें वैसे आप ( **अभवत्** ) होओ ॥६०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि प्राण अपान की रक्षा के लिए चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर उत्तम रसो को पीके वृद्धि को पाते हैं वे अच्छे सुख को प्राप्त होते है ॥६०॥

**त्वामद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । लिङ्गोक्ता देवता । भुरिग विकृतिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वामद्यऽऋषऽआर्षेयऽऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽआ सङ्गतेभ्यऽएष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यतऽइति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्माऽआ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥६१॥**

**पदार्थ**—हे ( **ऋषे** ) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले वा हे ( **आर्षेय** ) मन्त्रार्थ जानने वालो मे श्रेष्ठ पुरुष ! ( **ऋषीणाम्** ) मन्त्रो के अर्थ जानने वालो के ( **नपात** ) सन्तान ( **यजमान** ) यज्ञ करने वाला ( **अयम्** ) यह ( **अद्य** ) आज ( **बहुभ्य** ) बहुत ( **सगतेभ्य** ) योग्य पुरुषों से ( **त्वाम्** ) तुझको ( **आ, अवृणीत** ) स्वीकार करे ( **एष** ) यह ( **देवेषु** ) विद्वानो मे ( **मे** ) मेरे ( **वसु** ) धन ( **च** ) और ( **वारि** ) जल को स्वीकार करे हे ( **देव** ) विद्वान् ! जो ( **आयक्ष्यते** ) सब ओर से संगत किया जाता ( **च** ) और ( **देवा** ) विद्वान् जन ( **या** ) जिन ( **दानानि** ) देने योग्य पदार्थों को ( **अदु** ) देते हैं ( **तानि** ) उन सबों को ( **अस्मै** ) इस यज्ञ करने वाले के लिए ( **आ शास्स्व** ) अच्छे प्रकार कहो और ( **प्रेषित** ) पढ़ाया हुआ तू ( **आ, गुरस्व** ) अच्छे प्रकार उद्यम कर ( **च** ) और हे ( **होत** ) देने हारे ! ( **इषित** ) सबका चाहा हुआ ( **मानुष** ) तू ( **भद्रवाच्याय** ) जिसके लिए अच्छा कहना होता और ( **सूक्तवाकाय** ) जिसके वचनो मे अच्छे कथन अच्छे व्याख्यान हैं उस भद्रपुरुष के लिये ( **सूक्ता** ) अच्छी बोलचाल ( **ब्रूहि** ) बोलो ( **इति** ) इस कारण कि उक्त प्रकार से ( **ता** ) उन उत्तम पदार्थों को पाये हुए ( **असि** ) होते हो ॥ ६१ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य बहुत विद्वानो से अति उत्तम विद्वान् को स्वीकार कर वेदादि शास्त्रों की विद्या को पढ़कर महर्षि होवें वे दूसरों को पढ़ा सकें और जो देने वाले उद्यमी होवें वे विद्या का स्वीकार कर जो अविद्वान् हैं उन पर दया कर विद्या ग्रहण के लिए रोष से उन मूर्खों को ताड़ना दें और उन्हें अच्छे सभ्य करें वे इस संसार मे सत्कार करने योग्य हैं ॥६१॥

卐

इस अध्याय मे वरुण अग्नि विद्वान् राजा प्रजा शिल्प अर्थात् कारीगरी वाणी घर अश्विन् शब्द के अर्थ ऋतु और होता आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय मे कहे अर्थ की पिछले अध्याय में कहे अर्थ के साथ मेल है यह जानना चाहिये ॥

यह इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

# ॐ अथ द्वाविंशाऽध्यायारम्भः ॐ

**ओ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥**

**तेजोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब बाईसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में आप्त सकल शास्त्रों का जानने वाला विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पाऽआयुर्मे पाहि । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! मैं ( **देवस्य** ) सब के प्रकाश करने ( **सवितुः** ) और समस्त जगत् के उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किए जिसमें कि प्राणी आदि उत्पन्न होते उस संसार में ( **अश्विनोः** ) पवन और बिजुलीरूप आग के धारण और खेंचने आदि गुणों के समान ( **बाहुभ्याम्** ) भुजाओं और ( **पूष्णः** ) पुष्टि करने वाले सूर्य की किरणों के समान ( **हस्ताभ्याम्** ) हाथों से जिस ( **त्वा** ) तुझे ( **आ, ददे** ) ग्रहण करता हूँ वा जो तू ( **अमृतम्** ) स्वस्वरूप से विनाशरहित ( **शुक्रम्** ) वीर्य्य और ( **तेजः** ) प्रकाश के समान जो ( **आयुष्पाः** ) आयुर्दा की रक्षा करने वाला ( **असि** ) है सो तू अपनी दीर्घ आयुर्दा करके ( **मे** ) मेरी ( **आयुः** ) आयु की ( **पाहि** ) रक्षा कर ॥१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शरीर में रहने वाली बिजुली शरीर की रक्षा करती वा जैसे बाहर के सूर्य और पवन जीवन के हेतु हैं वैसे ईश्वर के बनाये इस जगत् में आप्त अर्थात् सकल शास्त्र का जाननेवाला विद्वान् होता है यह सबको जानना चाहिये ॥१॥

**इमामित्यस्य यज्ञपुरुष ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को आयुर्दा कैसी बढ़ानी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि विदथेषु कव्या । सा नोऽअस्मिन्त्सुतऽआबभूवऽऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **ऋतस्य** ) सत्य कारण के ( **सरम्** ) प्राप्त होने योग्य शब्द को ( **आरपन्ती** ) अच्छे प्रकार प्रकट बोलती हुई ( **आ, बभूव** ) भली भांति विख्यात होती वा जिस ( **इमाम्** ) इसको ( **ऋतस्य** ) सत्यकारण की ( **रशनाम्** ) व्याप्त होने वाली डोर के समान ( **विदथेषु** ) यज्ञादिकों में ( **पूर्वे** ) पहिली ( **आयुषि** ) प्राण धारण करने हारी आयुर्दा के निमित्त ( **कव्या** ) कवि मेधावीजन ( **अगृभ्णन्** ) ग्रहण करें ( **सा** ) वह बुद्धि ( **अस्मिन्** ) इस ( **सुते** ) उत्पन्न हुए जगत् में ( **नः** ) हम लोगों के ( **सामन्** ) अन्त के काम में प्रसिद्ध होना अर्थात् कार्य की समाप्ति पर्यन्त पहुँचाती है ॥२॥

**भावार्थ**—जैसे डोर से बँधे हुए प्राणी इधर उधर भाग नहीं जा सकते वैसे युक्ति के साथ धारण की गई आयु ठीक समय के बिना नहीं भाग जाती ॥२॥

**अभिधा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अभिधाऽअसि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता ।**
**स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो तू ( **भुवनम्** ) जल के समान शीतल ( **असि** ) है ( **अभिधाः** ) कहने वाला ( **असि** ) है वा ( **यन्ता** ) नियम करने हारा ( **असि** ) है ( **सः** ) वह ( **स्वाहाकृतः** ) सत्यक्रिया में सिद्ध हुआ ( **धर्त्ता** ) सब व्यवहारों का धारण करने हारा ( **त्वम्** ) तू ( **सप्रथसम्** ) विस्तृति के साथ वर्त्तमान ( **वैश्वानरम्** ) समस्त पदार्थों में नायक ( **अग्निम्** ) अग्नि को ( **गच्छ** ) जान ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जैसे सब प्राणी और अप्राणियों के जीवन का मूल कारण जल और अग्नि है वैसे विद्वान् को सब लोग जानें ॥ ३ ॥

**स्वगेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम् । तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥४॥**

**पदार्थ**—हे ( **ब्रह्मन्** ) विद्या से वृद्धि को प्राप्त मैं ( **त्वा** ) तुझे ( **स्वगा** ) आप जाने वाला करता हूँ ( **देवेभ्यः** ) विद्वानों और ( **प्रजापतये** ) सन्तानों की रक्षा करने हारे गृहस्थ के लिए ( **अश्वम्** ) बड़े सर्वव्यापी उत्तम गुण को ( **भन्त्स्यामि** ) बांधूंगा ( **तेन** ) उससे ( **देवेभ्यः** ) दिव्य गुणों और ( **प्रजापतये** ) सन्तानों के पालने हारे गृहस्थ के लिए ( **राध्यासम्** ) अच्छे प्रकार सिद्ध होऊं ( **तम्** ) उसको तू ( **बधान** ) बांध ( **तेन** ) उससे ( **देवेभ्यः** ) दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वालों तथा ( **प्रजापतये** ) प्रजा पालने वाले के लिए ( **राध्नुहि** ) अच्छे प्रकार सिद्ध होओ ॥४॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्या अच्छी शिक्षा ब्रह्मचर्य और अच्छे सङ्ग से शरीर और आत्मा के अत्यन्त बल को सिद्ध दिव्य गुणों को ग्रहण और विद्वानों के लिए सुख देकर अपनी और पराई वृद्धि करें ॥ ४ ॥

**प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवता । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्य किन को बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि । योऽअर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः । परो मर्त्तः परः श्वा ॥५॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( **यः** ) जो ( **परः** ) उत्तम और ( **वरुणः** ) श्रेष्ठ ( **मर्त्तः** ) मनुष्य ( **अर्वन्तम्** ) शीघ्र चलने हारे घोड़े को ( **जिघांसति** ) ताड़ना देने वा चलाने की इच्छा करता है । ( **तम्** ) उसको ( **अभि अमीति** ) सब ओर से प्राप्त होता है और जो ( **परः** ) अन्य मनुष्य ( **श्वा** ) कुत्ते के समान वर्त्तमान अर्थात् दुष्कर्मी है उसको जो रोकता है उस ( **प्रजापतये** ) प्रजा की पालना करने वाले के लिए ( **जुष्टम्** ) प्रीति किए हुए ( **त्वा** ) तुझको ( **प्रोक्षामि** ) अच्छे प्रकार सींचता हूँ ( **इन्द्राग्निभ्याम्** ) जीव और अग्नि के लिए ( **जुष्टम्** ) प्रीति किए हुए ( **त्वा** ) तुझको ( **प्रोक्षामि** ) अच्छे प्रकार सींचता हूँ ( **वायवे** ) पवन के लिए ( **जुष्टम्** ) प्रीति किए हुए ( **त्वा** ) तुझको ( **प्रोक्षामि** ) अच्छे प्रकार सींचता हूँ ( **विश्वेभ्यः** ) समस्त ( **देवेभ्यः** ) विद्वानों के लिए ( **जुष्टम्** ) प्रीति किए हुए ( **त्वा** ) तुझको ( **प्रोक्षामि** ) अच्छे प्रकार सींचता हूँ ( **सर्वेभ्यः** ) समस्त ( **देवेभ्यः** ) दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों के लिए ( **जुष्टम्** ) प्रीति किए हुए ( **त्वा** ) तुझको ( **प्रोक्षामि** ) अच्छे प्रकार सींचता हूँ ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य उत्तम पशुओं के मारने की इच्छा करते हैं वे सिंह के समान मारने चाहियें और जो इन पशुओं की रक्षा करने को अच्छा यत्न करते हैं वे सबको रक्षा करने के लिए अधिकार देने योग्य हैं ॥ ५ ॥

**अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्य कैसे वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥६॥**

**पदार्थ**—यदि मनुष्य ( **अग्नये** ) अग्नि के लिये ( **स्वाहा** ) श्रेष्ठ क्रिया वा ( **सोमाय** ) ओषधियों के शोधन के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया वा ( **अपाम्** ) जलों के सम्बन्ध में जो ( **मोदाय** ) आनन्द होता है उस के लिये ( **स्वाहा** ) सुख पहुँचाने वाली क्रिया वा ( **सवित्रे** ) सूर्यमण्डल के अर्थ ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया वा ( **वायवे** ) पवन के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **विष्णवे** ) बिजुलीरूप आग में ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **इन्द्राय** ) जीव के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **बृहस्पतये** ) बड़ों की पालना करनेवाले के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **मित्राय** ) मित्र के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **वरुणाय** ) श्रेष्ठ के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया करें तो कौन कौन सुख न मिले ? ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घी आदि हवि होमा जाता है वह ओषधि जल सूर्य के तेज वायु और बिजुली को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य को बढ़ाने प्राण अपान और प्रजा की रक्षारूप श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है कोई द्रव्यस्वरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु अवस्थान्तर को पाके सर्वत्र ही परिणाम को प्राप्त होता है इसी से सुगन्ध मीठापन पुष्टि देने और रोग विनाश करने हारे गुणों से युक्त पदार्थ आग में छोड़कर ओषधि आदि पदार्थों की शुद्धि के द्वारा संसार का नीरोगपन सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

हिंकारायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥७॥**

**पदार्थ**—जिन मनुष्यों ने ( **हिंकाराय** ) जो हिं ऐसा शब्द करता है उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **हिंकृताय** ) जिसने हिं शब्द किया उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**क्रन्दते**) बुलाते वा रोते हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया ( **अवक्रन्दाय** ) नीचे होकर बुलाने वाले के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया (**प्रोथते**) सब कर्मों में परिपूर्ण के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **प्रप्रोथाय** ) अत्यन्त पूर्ण के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **गन्धाय** ) सुगन्धित के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया ( **घ्राताय** ) जो सूंघा गया उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **निविष्टाय** ) जो निरन्तर प्रवेश करता बैठता है उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **उपविष्टाय** ) जो बैठता उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **सन्दिताय** ) जो भली भांति दिया जाता उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **वल्गते** ) जाते हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **आसीनाय** ) बैठे हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **शयानाय** ) सोते हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया (**स्वपते**) नींद जिस को प्राप्त हुई उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **जाग्रते** ) जागते हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया ( **कूजते** ) कूजने हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया (**प्रबुद्धाय**) उत्तम ज्ञान वाले के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया (**विजृम्भमाणाय**) अच्छे प्रकार जंभाई लेने के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **विचृताय** ) विशेष रचना करने वाले के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **संहानाय** ) जिससे संघात पदार्थों का समूह किया जाता उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **उपस्थिताय** ) समीपस्थित हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **अयनाय** ) अच्छे प्रकार विशेष ज्ञान के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया तथा ( **प्रायणाय** ) पहुँचाने हारे के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया की उन मनुष्यों को दुःख छूट के सुख प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जितना होम किया जाता है उतना सब प्राणियों के लिये सुख करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

यते स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवता । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥८॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( **यते** ) अच्छा यत्न करते हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **धावते** ) दौडते हुए के लिये ( **स्वाहा** ) श्रेष्ठ क्रिया ( **उद्द्रावाय** ) ऊपर को गये हुए गीले पदार्थ के लिये ( **स्वाहा** ) सुन्दर क्रिया ( **उद्द्रुताय** ) उत्कर्ष को प्राप्त हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **शूकाराय** ) शीघ्रता करनेवाले के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **शूकृताय** ) शीघ्र किये हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **निषण्णाय** ) निश्चय से बैठे हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**उत्थिताय**) उठे हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **जवाय** ) वेग के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **बलाय** ) बल के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **विवर्त्तमानाय** ) विशेष रीति से वर्त्तमान होते हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **विवृत्ताय** ) विशेष रीति से वर्त्ताव किये हुए के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**विधून्वानाय** ) जो पदार्थ विधुनता है उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **विधूताय** ) जिसने नानाप्रकार से विधुना उसके लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **शुश्रूषमाणाय** ) सुनना चाहते हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **शृण्वते** ) सुनते के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **ईक्षमाणाय** ) देखते हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया (**ईक्षिताय**) और से देखे हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **वीक्षिताय** ) भली भांति देखे हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **निमेषाय** ) आंखों के पलक उठने बैठने के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया ( **यत्** ) जो ( **अत्ति** ) खाता है ( **तस्मै** ) उस के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया ( **यत्** ) जो ( **पिबति** ) पीता है ( **तस्मै** ) उस के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **यत्** ) जो ( **मूत्रम्** ) मूत्र ( **करोति** ) करता है ( **तस्मै** ) उस के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **कुर्वते** ) करनेवाले के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया तथा ( **कृताय** ) किये हुए के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो अच्छे यत्न और दौड़ने आदि क्रियाओं को सिद्ध करनेवाले काम तथा सुगन्धि आदि वस्तुओं के होम आदि कामों को करते हैं वे समस्त सुख और चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

*अब ईश्वर के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—*

**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **सवितुः** ) समस्त संसार उत्पन्न करनेहारे (**देवस्य**) आप से आप ही प्रकाशरूप सब के चाहने योग्य समस्त सुखों के देनेहारे परमेश्वर के जिस ( **वरेण्यम्** ) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम ( **भर्गः** ) समस्त दोषों के दाह करनेवाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग (**धीमहि**) धारण करते हैं (**तत्**) उसको तुम लोग धारण करो ( **यः** ) जो ( **नः** ) हम सब लोगों की ( **धियः** ) बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) प्रेरे अर्थात् उनको अच्छे अच्छे कामों में लगावे वह अन्तर्यामी परमात्मा सब के उपासना करने के योग्य है ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सब के अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़ के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपासना का स्थापन कभी न करें किस प्रयोजन के लिये कि जो हम लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ाके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करे जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त हो कर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये ॥९॥

हिरण्यपाणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

**हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! मैं जिस (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिये (**हिरण्यपाणिम्**) जिसकी स्तुति करने में सूर्य आदि तेज हैं ( **पदम्** ) उस पाने योग्य ( **सवितारम्** ) समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले जगदीश्वर को ( **उपह्वये** ) ध्यान के योग से बुलाता हूँ ( **सः** ) वह (**चेत्ता**) अच्छे ज्ञानस्वरूप होने से सत्य और मिथ्या का जानने वाला (**देवता**) उपासना करने योग्य इष्टदेव ही है यह तुम सब जानो ॥१०॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को योग्य है कि इस मन्त्र से लेके पूर्वोक्त मन्त्र गायत्री जो कि गुरुमन्त्र है उसी के अर्थ का तात्पर्य है ऐसा जानें । चेतनस्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़ किसी अन्य जड की उपासना कभी न करें क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ जड पदार्थ हानि लाभ कारक और रक्षा करनेहारा नहीं होता इससे चित्तवान् समस्त जीवों का चेतनस्वरूप जगदीश्वर ही की उपासना करनी योग्य है अन्य जडता आदि गुणयुक्त पदार्थ उपास्य नहीं ॥१०॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

**देवस्य चेततो महीम्प्र सवितुर्हवामहे ।
सुमतिꣳ सत्यराधसम् ॥११॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( **सवितुः** ) समस्त संसार के उत्पन्न करने हारे ( **चेततः** ) चेतनस्वरूप ( **देवस्य** ) स्तुति करने योग्य ईश्वर की उपासना कर ( **महीम्** ) बड़ी ( **सत्यराधसम्** ) जिससे जीव सत्य को सिद्ध करता है उस ( **सुमतिम्** ) सुन्दर बुद्धि को ( **प्र हवामहे** ) ग्रहण करते हैं वैसे उस परमेश्वर की उपासना कर उस बुद्धि को तुम लोग प्राप्त होओ ॥११॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस चेतनस्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है उसकी आराधना उपासना से सत्यविद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो किन्तु इतर जड पदार्थ की आराधना से कभी नहीं ॥११॥

सुष्टुतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳ सवितुरीमहे ।
प्र देवाय मतीविदे ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( **सुमतीवृधः** ) जो उत्तम मति को बढ़ाता ( **सवितुः** ) सब को उत्पन्न करता उस ईश्वर की ( **सुष्टुतिम्** ) सुन्दर स्तुति कर इससे ( **मतीविदे** ) जो ज्ञान को प्राप्त होता है उस (**देवाय**) विद्या आदि गुणों की कामना करनेवाले मनुष्य के लिये (**रातिम्** ) देने को (**प्र ईमहे**) भली भांति मांगते हैं वैसे इस देने की क्रिया को हम ईश्वर से तुम लोग भी मांगो ॥१२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब जब परमेश्वर की प्रार्थना करनी योग्य हो तब तब अपने लिये वा और के लिये समस्त शास्त्र के विज्ञान से युक्त उत्तम बुद्धि ही मांगनी चाहिये जिस के पाने पर समस्त सुखों के साधनों को जीव प्राप्त होते हैं ॥१२॥

रातिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुपह्वये । आसवं देववीतये ॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( महे ) बड़ी ( देववीतये ) दिव्यगुण और विद्वानों की प्राप्ति के लिये ( रातिम् ) देने हारे ( आसवम् ) सब ओर से ऐश्वर्ययुक्त ( सत्पतिम् ) सत्य वा नित्य विद्यमान जीव वा पदार्थों की पालना करने और ( सवितारम् ) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर की ( उपह्वये ) ध्यान योग से समीप में स्तुति करूं वैसे तुम भी इसकी प्रशंसा करो ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि मनुष्य धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को चाहें तो परमात्मा की ही उपासना कर उस ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तें ॥ १३ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं मनामहे ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( सवितुः ) सकल ऐश्वर्य और ( देवस्य ) समस्त सुख देनेहारे परमात्मा के निकट से ( मतिम् ) बुद्धि और ( आसवम् ) समस्त ऐश्वर्य्य के हेतु को प्राप्त होकर उस ( धिया ) बुद्धि से समस्त ( विश्वदेव्यम् ) सब विद्वानों के लिये हित देनेहारे ( भगम् ) उत्तम ऐश्वर्य्य का ( मनामहे ) मांगते हैं वैसे तुम लोग भी मांगो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना से उत्तम बुद्धि को पाके उससे पूर्ण ऐश्वर्य्य का विधान कर सब प्राणियों के हित को सम्यक् सिद्ध करें ॥ १४ ॥

अग्निमित्यस्य सुतम्भर ऋषिः । अग्निर्देवता निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*अब यज्ञकर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानोऽअमर्त्यम् ।**

**हव्या देवेषु नो दधत् ॥१५॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( समिधानः ) भली भांति दीपता हुआ अग्नि ( देवेषु ) दिव्य वायु आदि पदार्थों में ( हव्या ) लेने देने योग्य पदार्थों को ( नः ) हमारे लिये ( दधत् ) धारण करता है उस ( अमर्त्यम् ) कारणरूप अर्थात् परमाणुभाव से विनाश होने के धर्म से रहित ( अग्निम् ) आग को ( स्तोमेन ) इन्धनसमूह से ( बोधय ) चिताओ अर्थात् अच्छे प्रकार जलाओ ॥ १५ ॥

भावार्थ—यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य दिव्य सुगन्धित पदार्थ को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैलाके सब प्राणियों को सुखी करता है ॥१५॥

स हव्यवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**स हव्यवाडमर्त्यऽउशिग्दूतश्चनोहितः ।**

**अग्निर्धिया समृण्वति ॥१६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अमर्त्यः ) मृत्युधर्म से रहित ( हव्यवाट् ) होमे हुए पदार्थ को एक देश से दूसरे देश में पहुंचाता ( उशिक् ) प्रकाशमान ( दूतः ) दूत के समान वर्त्तमान ( चनोहितः ) और जो अन्नों की प्राप्ति करानेवाला ( अग्निः ) अग्नि है ( सः ) वह ( धिया ) कर्म अर्थात् उसके उपयोगी शिल्प आदि काम से ( सम् ऋण्वति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसे काम के लिये भेजा हुआ दूत करने योग्य काम को सिद्ध करने हारा होता है वैसे अच्छे प्रकार युक्त किया हुआ अग्नि सुखसम्बन्धी कार्य्य को सिद्ध करने हारा होता है ॥ १६ ॥

अग्निं दूतमित्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*अब अग्नि के गुणों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे ।**

**देवाँ२ऽ आसादयादिह ॥१७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इह ) इस संसार में ( देवान् ) दिव्य भोगों को ( आ, सादयात् ) प्राप्त करावे उस ( हव्यवाहम् ) भोजन करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति कराने और ( दूतम् ) दूत के समान कार्य्यसिद्धि करनेहारे ( अग्निम् ) अग्नि को ( पुरः ) आगे ( दधे ) धरता हूँ और तुम लोगों के प्रति ( उप, ब्रुवे ) उपदेश करता हूँ कि तुम लोग भी ऐसे ही किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि दिव्य सुखों को देनेवाला है वैसे पवन आदि पदार्थ भी सुख देने में प्रवर्त्तमान हैं यह जानना चाहिये ॥ १७ ॥

अजीजन इत्यस्याऽरुणत्रसदस्यू ऋषी । पवमानो देवता । पिपीलिकामध्या विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*फिर सूर्यरूप अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।**

**गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥१८॥**

पदार्थ—हे ( पवमान ) पवित्र करने हारे अग्नि के समान पवित्र जन ! तू अग्नि ( पुरन्ध्या ) जिस क्रिया से नगरी को धारण करता उससे ( रꣳहमाणः ) जाता हुआ ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अजीजनः ) प्रकट करता उसको और ( शक्मना ) कर्म वा ( गोजीरया ) गौ आदि पशुओं की जीवनक्रिया से ( पयः ) जल को मैं ( विधारे ) विशेष करके धारण करता ( हि ) ही हूँ ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो बिजुली सूर्य्य का कारण न होती तो सूर्य की उत्पत्ति कैसे होती जो सूर्य न हो तो भूगोल का धारण और वर्षा से गौ आदि पशुओं का जीवन कैसे हो ॥ १८ ॥

विभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽअसि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवाऽआशापालाऽएतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । १९॥**

पदार्थ—हे ( आशापालाः ) दिशाओं के पालने वाले ( देवाः ) विद्वानो ! तुम जो लोग ( मात्रा ) माता के समान वर्त्तमान पृथिवी से ( विभूः ) व्यापक ( पित्रा ) पिता रूप पवन से ( प्रभूः ) समर्थ और ( अश्वः ) मार्गों को व्याप्त होने वाला ( असि ) है ( हयः ) घोड़े के समान शीघ्र चलने वाला ( असि ) है ( अत्यः ) जो निरन्तर जाने वाला ( असि ) है ( मयः ) सुख का करने वाला ( असि ) है ( अर्वा ) जो सब को प्राप्त होने हारा ( असि ) है ( सप्तिः ) मूर्त्तिमान् पदार्थों का सम्बन्ध करने वाला ( असि ) है ( वाजी ) वेगवान् ( असि ) है ( वृषा ) वर्षा का करने वाला ( असि ) है ( नृमणाः ) सब प्रकार के व्यवहारों का प्राप्त कराने हारे पदार्थों में मन के समान शीघ्र जाने वाला ( असि ) है ( ययुः ) जो प्राप्ति कराता वा जाता ऐसे ( नाम ) नाम वाला ( असि ) है जो ( शिशुः ) व्यवहार के योग्य विषयों को सूक्ष्म करती ऐसी ( नाम ) उत्तम वाणी ( असि ) है जो ( आदित्यानाम् ) महीनों के ( पत्वा ) नीचे गिरता ( अन्विहि ) अन्वित अर्थात् मिलता है ( एतम् ) इस ( अश्वम् ) व्याप्त होने वाले अग्नि को ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( देवेभ्यः ) दिव्य भोगों के लिये तथा ( मेधाय ) अच्छे गुणों के मिलाने बुद्धि की प्राप्ति करने वा दुष्टों को मारने के लिये ( प्रोक्षितम् ) जल से सींचा हुआ ( रक्षत ) रक्खो जिससे ( इह ) इस संसार में ( रन्तिः ) रमण अर्थात् उत्तम सुख में रमना हो ( इह ) यहाँ ( रमताम् ) क्रीड़ा करें तथा ( इह ) यहाँ ( धृतिः ) सामान्य धारणा और ( इह ) यहाँ ( स्वधृतिः ) अपने पदार्थों की धारणा हो ॥१९॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त और समस्त वेग वाले पदार्थों में अतीव वेगवान् अग्नि के गुण कर्म और स्वभाव से जानते हैं वे इस संसार में सुख से रमते हैं ॥ १९ ॥

कायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । आद्यस्य विराडतिधृतिः उत्तरस्य निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*अब किस प्रयोजन के लिये होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥**

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने ( काय ) सुख साधन वाले के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( कस्मै ) सुखस्वरूप के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( कतमस्मै ) बहुतों में जो वर्त्तमान उस के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( आधिम् ) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उस को प्राप्त होकर ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( आधीताय ) सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( प्रजापतये ) प्रजाजनों की पालना करनेहारे के लिये ( मनः ) मन की ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( विज्ञाताय ) विशेष जाने हुए के लिये ( चित्तम् ) स्मृति सिद्ध कराने अर्थात् चेत दिलाने हारा चैतन्य मन ( अदित्यै ) पृथिवी के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( मह्यै ) बड़ी ( अदित्यै )

विकाररहित वाणी के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( सुमृडीकायै ) अच्छा सुख करने हारी ( अदित्यै ) माता के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( सरस्वत्यै ) नदी के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( पावकायै ) पवित्र करने वाली ( सरस्वत्यै ) विद्यायुक्त वाणी के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( बृहत्यै ) बड़ी ( सरस्वत्यै ) विद्वानो की वाणी के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( पूष्णे ) पुष्टि करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया ( प्रपथ्याय ) उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा ( पूष्णे ) पुष्टि के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( नरन्धिषाय ) जो मनुष्यो का उपदेश देता है उस (पूष्णे) पुष्टि करने हारे के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( त्वष्ट्रे ) प्रकाश करने वाले के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( तुरीपाय ) नौकाओ के पालने ( त्वष्ट्रे ) और विद्या प्रकाश करने हारे के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( पुरुरूपाय ) बहुत रूप और ( त्वष्ट्रे ) प्रकाश करने वाले के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( विष्णवे ) व्याप्त होने वाले के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया (निभूयपाय) निरन्तर आप रक्षित हो औरो की पालना करने हारे ( विष्णवे ) सर्वव्यापक के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया तथा ( शिपिविष्टाय ) वचन कहते हुए चैतन्य प्राणियो मे व्याप्ति से प्रवेश हुए ( विष्णवे ) व्यापक ईश्वर के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया की वे कैसे न सुखी हो ॥ २० ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के सुख पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये यज्ञक्रियाओ को करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २० ॥

**विश्वो देवस्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । विद्वान् देवता । आर्च्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सुख्यम् ।**
**विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥२१।**

पदार्थ—जैसे ( विश्व ) समस्त ( मर्त ) मनुष्य ( नेतु ) नायक अर्थात् सब व्यवहारो की प्राप्ति कराने हारे ( देवस्य ) विद्वान् की ( सख्यम ) मित्रता का ( वुरीत ) स्वीकार करें वा जैसे ( विश्व ) समस्त मनुष्य ( राये ) धन के लिये ( इषुध्यति ) याचना करता अर्थात मगनी मागता वा बाणो को अपने अपने धनुष पर धारता है वैसे ( स्वाहा ) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी से ( पुष्यसे ) पुष्टि के लिये ( द्युम्नम ) धन और यश का ( वृणीत ) स्वीकार कर ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य विद्वानो के साथ मित्र होकर विद्या और यश का ग्रहण कर धन और कान्तिमान् होकर उत्तम योग्य आहार वा अच्छे मार्ग से पुष्ट हो ॥ २१ ॥

**आ ब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । लिङ्गोक्ता देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽ इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥२२॥**

पदार्थ—हे (ब्रह्मन्) विद्यादिगुणो करके सब से बड़े परमेश्वर ! जैसे हमारे ( राष्ट्रे ) राज्य मे ( ब्रह्मवर्चसी ) वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त ( ब्राह्मण ) वेद और ईश्वर का अच्छा जानने वाला ब्राह्मण ( आ, जायताम् ) सब प्रकार से उत्पन्न हो ( इषव्य ) बाण चलाने मे उत्तम गुणवान् ( अतिव्याधी ) अतीव शत्रुओ को व्यधने अर्थात् ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाला ( महारथ ) कि जिसके बड़े बड़े रथ और अत्यन्त बली वीर हैं ऐसा ( शूर ) निर्भय ( राजन्यः ) राजपुत्र ( आ, जायताम् ) सब प्रकार से उत्पन्न हो ( दोग्ध्री ) कामना वा दूध से पूर्ण करने वाली ( धेनु ) वाणी वा गौ ( वोढा ) भार ले जाने मे समर्थ ( अनड्वान् ) बड़ा बलवान् बैल ( आशु ) शीघ्र चलने हारा ( सप्ति ) घोड़ा ( पुरन्धि ) जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह ( योषा ) स्त्री ( रथेष्ठा ) तथा रथ पर स्थिर होने और ( जिष्णु ) शत्रुओं को जीतने वाला ( सभेय ) सभा मे उत्तम सभ्य ( युवा )जवान पुरुष (आ जायताम) उत्पन्न हो (अस्य यजमानस्य) जो यह विद्वानो का सत्कार करता वा सुखो की संगति करता वा सुखों को देता है इस राजा के राज्य में (वीर) विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं को हटाने वाला पुरुष उत्पन्न हो (न ) हम लोगो के (निकामे निकामे) निश्चययुक्त काम काम मे अर्थात् जिस जिस काम के लिये प्रयत्न करें उस उस काम में (पर्जन्य ) मेघ (वर्षतु) वर्षे (ओषधय ) ओषधि (फलवत्य ) बहुत उत्तम फलवाली ( न ) हमारे लिये ( पच्यन्ताम् ) पकें ( न ) हमारा ( योगक्षेम ) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लक्षण वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति ( कल्पताम् ) समर्थ हो वैसा विधान करो अर्थात वैसे व्यवहार को प्रगट कराइये ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानो को ईश्वर की प्रार्थनासहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिये कि जिससे पूर्णविद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुणवाली स्त्री सुख देनेहारे पशु सभ्य मनुष्य चाही हुई वर्षा मीठे फलो से युक्त अन्न और ओषधि हों तथा कामना पूर्ण हो ॥ २२ ॥

**प्राणायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । प्राणादयो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर किसलिये होम का विधान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥**

पदार्थ—जिन मनुष्यो ने ( प्राणाय ) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है उसके लिये ( स्वाहा ) योगविद्यायुक्त क्रिया ( अपानाय ) जो बाहर से भीतर को जाता है उस पवन के लिये ( स्वाहा ) वैद्यकविद्यायुक्त क्रिया ( व्यानाय ) जो विविध प्रकार के अङ्गो मे व्याप्त होता है उस पवन के लिये ( स्वाहा ) वैद्यकविद्यायुक्त वाणी ( चक्षुषे ) जिस से प्राणी देखता है उस नेत्र इन्द्रिय के लिये ( स्वाहा ) प्रत्यक्षप्रमाणयुक्त वाणी ( श्रोत्राय ) जिस से सुनता है उस कर्णेन्द्रिय के लिये ( स्वाहा ) शास्त्रज्ञ विद्वान् के उपदेशयुक्त वाणी ( वाचे ) जिससे बोलता है उस वाणी के लिये ( स्वाहा ) सत्यभाषण आदि व्यवहारो मे युक्त बोल चाल तथा ( मनसे ) विचार का निमित्त सकल्प और विकल्पवान् मन के लिये ( स्वाहा ) विचार से भरी हुई वाणी प्रयोग की जाती अर्थात भलीभाँति उच्चारण की जाती है वे विद्वान् होते है ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल ओषधि पवन अन्न, पत्र पुष्प फल रस कन्द अर्थात् अरबी आलू कसेरू रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते है वे नीरोग होकर बुद्धि बल और आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते है ॥२३॥

**प्राच्यै दिश इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । दिशो देवता । निचृतिधृतिश्छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर किसलिये होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २४॥**

पदार्थ—जिन विद्वानो ने ( प्राच्यै ) जो प्रथम प्राप्त होती है अर्थात् सूर्य मण्डल का संयोग करती उस ( दिश ) दिशा के लिए ( स्वाहा ) ज्योति शास्त्र विद्यायुक्त वाणी ( अर्वाच्यै ) जो नीचे से सूर्यमण्डल को प्राप्त अर्थात् जब विषुमती रेखा से उत्तर वा सूर्य नीचे नीचे गिरता है उस नीचे की ( दिशे ) दिशा के लिये ( स्वाहा ) ज्योति शास्त्रयुक्त वाणी ( दक्षिणायै ) जो पूर्वमुख वाले पुरुष के दाहिनी बाँह के निकट है उस दक्षिण ( दिशे ) दिशा के लिये ( स्वाहा ) उक्त वाणी जो ( अर्वाच्यै ) निम्न है उस ( दिश ) दिशा के लिए ( स्वाहा ) उक्त वाणी (प्रतीच्य) जो सूर्यमण्डल के प्रतिमुख अर्थात् लौटने के समय मे प्राप्त और पूर्वमुख वाले पुरुष के पीठ पीछे होती है उस पश्चिम ( दिशे ) दिशा के लिए ( स्वाहा ) ज्योति शास्त्र युक्त वाणी ( अर्वाच्य) पश्चिम के नीचे जो ( दिश ) दिशा है उस के लिए (स्वाहा) ज्योति शास्त्रयुक्त वाणी ( उदीच्यै ) जो पूर्वाभिमुख पुरुष के वामभाग को प्राप्त होती उस उत्तम ( दिश ) दिशा के लिये ( स्वाहा ) ज्योति शास्त्रयुक्त वाणी ( अर्वाच्यै ) पृथिवी गोल मे जो उत्तर दिशा के तले दिशा है उस ( दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) ज्योति शास्त्रयुक्त वाणी ( ऊर्ध्वायै ) जो ऊपर को वर्तमान है उस ( दिशे ) दिशा के लिये ( स्वाहा ) ज्योति शास्त्रयुक्त वाणी ( अर्वाच्य ) जो विरुद्ध प्राप्त होती ऊपर वाली दिशा के नीचे अर्थात् कभी पूर्व गिनी जाती कभी उत्तर कभी दक्षिण कभी पश्चिम मानी जाती है उस ( दिशे ) दिशा के लिए ( स्वाहा ) ज्योति शास्त्र युक्त वाणी और ( अर्वाच्य ) जो सब से नीचे वर्तमान उस ( दिशे ) दिशा के लिए ( स्वाहा ) ज्योति शास्त्र विचारयुक्त वाणी तथा ( अर्वाच्य ) पृथिवी गोल मे जो उक्त प्रत्येक कोण दिशाओ के तले की दिशा है उस ( दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योति शास्त्रविद्यायुक्त वाणी विधान की वे सब ओर कुशली अर्थात् आनन्दित होते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! चार मुख्य दिशा और चार उपदिशा अर्थात् कोण दिशा भी वर्तमान है । ऐसे ऊपर और नीचे की दिशा भी वर्तमान हैं । वे मिल कर सब दश होती हैं यह जानना चाहिए और एक क्रम से निश्चय नहीं की हुई तथा अपनी अपनी कल्पना मे समर्थ भी हैं उनको उन उन के अर्थ मे समर्थन करने की यह रीति है कि जहाँ मनुष्य आप स्थित हो उस देश को लेके सब की कल्पना होती है इसको जानो ॥ २४ ॥

**अद्भ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । जलादयो देवता । अष्टिश्छन्दः । मध्यम स्वर ॥**

**अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥२५॥**

**पदार्थ**—जिन मनुष्यो ने यज्ञकर्मों मे सुगन्धि आदि पदार्थ होमने के लिये (**अद्भ्य** ) सामान्य जलो के लिये ( **स्वाहा** ) उन को शुद्ध करने की क्रिया (**वार्भ्य** ) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम जलो के लिये ( **स्वाहा** ) उनको शुद्ध करने की क्रिया ( **उदकाय** ) पदार्थों को गीला करने वा सूर्य्य की किरणो से ऊपर को जाते हुए जल के लिये ( **स्वाहा** ) उनको शुद्ध करने वाली क्रिया ( **तिष्ठन्तीभ्य** ) बहते हुए जलो के लिये ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **स्रवन्तीभ्य** ) शीघ्र बहते हुए जलो के लिय ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **स्यन्दमानाभ्य** ) धीरे धीरे चलते जलो के लिए ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **कूप्याभ्य** ) कुए मे हुए जलो के लिए ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **सूद्याभ्य** ) भली भाति भिगाने हारे अर्थात् वर्षा आदि से जो भिगोते हैं उन जलो के लिए ( **स्वाहा** ) उनके शुद्ध करने की क्रिया ( **धार्याभ्य** ) धारण करने योग्य जो जल हैं उन के लिए ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया (**अर्णवाय**) जिस मे बहुत जल हैं उस बड़े नद के लिए (**स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **समुद्राय**) जिस मे अच्छे प्रकार नद महानद नदी महानदी झील झरना आदि के जल जा मिलते है उस सागर वा महासागर के लिए (**स्वाहा**) शुद्ध करने वाली क्रिया और (**सरिराय**) अति सुन्दर मनोहर जल के लिए ( **स्वाहा** ) उसकी रक्षा करनेवाली क्रिया विधान की है व सब को सुख देने हारे होते है ॥२५॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य आग मे सुगन्धि आदि पदार्थों को होम व जल आदि पदार्थों की शुद्धि करनेहारे हो पुण्यात्मा होते है और जल की शुद्धि से ही से सब पदार्थों की शुद्धि होती है यह जानना चाहिए ॥२५॥

**वातायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वातादयो देवता । विराडभिकृतिश्छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

**वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥२६॥**

**पदार्थ**—जिन मनुष्यो ने (**वाताय** ) जो बहता है उस पवन के लिये (**स्वाहा**) उस को शुद्ध करने वाली यज्ञ क्रिया ( **धूमाय** ) धूम के लिये ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **अभ्राय** ) मेघ के कारण के लिये ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **मेघाय** ) मेघ के लिये (**स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **विद्योतमानाय** ) बिजुली से प्रवृत्त हुए सघन बद्दल के लिए ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **स्तनयते** ) उत्तम शब्द करती हुई बिजुली के लिए (**स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **अवस्फूर्जते** ) एक दूसरे के घिसने से वज्र के समान नीचे को चोट करते हुए विद्युत् के लिये ( **स्वाहा** ) शुद्ध करनेहारी यज्ञक्रिया (**वर्षते** ) जो बद्दल वर्षता है उसके लिये ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **अववर्षते** ) मिलावट से तले ऊपर हुये बद्दलो मे जो नीचे वाला है उस बद्दल के लिय ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **उग्रम्** ) अतितीक्ष्णता से ( **वर्षते** ) वर्षते हुए बद्दल के लिये ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **शीघ्रम** ) शीघ्र लपट झपट से ( **वर्षते** ) वर्षते हुए बद्दल के लिए ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **उद्गृह्णते** ) ऊपर से ऊपर बद्दलो के ग्रहण करने वाले बद्दल के लिय ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **उद्गृहीताय** ) जिसने ऊपर से ऊपर जल ग्रहण किया उस बद्दल के लिए (**स्वाहा**) शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया ( **प्रुष्णते** ) पुष्टि करते हुए मेघ के लिए ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **शीकायते** ) जो सींचता अर्थात् ठहर ठहर के वर्षता उस मेघ के लिये ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **प्रुष्वाभ्य** ) जो पूर्ण घनघोर वर्षा करते हैं उन मेघों के अवयवो के लिये ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **ह्रादुनीभ्य** ) अव्यक्त गडगड शब्द करते हुए बद्दलो के लिए ( **स्वाहा** ) शुद्ध करने वाली यज्ञक्रिया और (**नीहाराय** ) कुहर के लिये ( **स्वाहा**) उस की शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया की है वे ससार के प्राणपियारे होते हैं ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य यथाविधि अग्निहोत्र आदि यज्ञो को करते हैं वे पवन आदि पदार्थों के शोधनेहारे होकर सब का हित करने वाले होते है ॥२६॥

**अग्नये स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्न्यादयो देवता । जगतीच्छन्द । निषाद स्वर ॥**

**अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२७॥**

**पदार्थ**—मनुष्यों को ( **अग्नये** ) जाठराग्नि अर्थात् पेट के भीतर अन्न पचाने वाली आग के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया (**सोमाय** ) उत्तम रस के लिए (**स्वाहा**) सुन्दर क्रिया (**इन्द्राय** ) जीव बिजुली और परम ऐश्वर्य्य के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया ( **पृथिव्यै**) पृथिवी के लिए (**स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **अन्तरिक्षाय** ) आकाश के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **दिवे** ) प्रकाश के लिए ( **स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**दिग्भ्य** ) पूर्वादि दिशाओ के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया (**आशाभ्य** ) एक दूसरी मे जो व्याप्त हो रही अर्थात् ईशान आदि कोण दिशाओ के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **उर्व्यै** ) समय को पाकर अनेक रूप दिखाने वाली अर्थात् वर्षा गर्मी सर्दी के समय के रूप की अलग अलग प्रतीति कराने वाली ( **दिशे** ) दिशा के लिये ( **स्वाहा**) उत्तम क्रिया और ( **अर्वाच्यै** ) नीचे की ( **दिशे** ) दिशा के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया अवश्य विधान करनी चाहिए ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अग्नि के द्वारा अर्थात् आग मे होम कर ओषधि आदि पदार्थों मे सुगन्धि आदि पदार्थ का विस्तार करें वे जगत् के हित करने वाले होवें ॥ २७ ॥

**नक्षत्रेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । नक्षत्रादयो देवता । भुरिगष्टी छन्दसी । मध्यम स्वर ॥**

**नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहाऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳪ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥२८॥**

**पदार्थ**—मनुष्यो को चाहिए कि ( **नक्षत्रेभ्य** ) जो पदार्थ कभी नष्ट नहीं होते उन के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **नक्षत्रियेभ्य** ) उक्त पदार्थों के समूहो के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञ क्रिया ( **अहोरात्रेभ्य** ) दिन रात्रि के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया (**अर्द्धमासेभ्य** ) शुक्ल कृष्ण पक्ष अर्थात् पखवाडो के लिए ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **मासेभ्य** ) महीनो के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**ऋतुभ्य** ) वसन्त आदि छ ऋतुओ के लिए ( **स्वाहा**) उत्तम यज्ञ क्रिया (**आर्त्तवेभ्य** ) ऋतुओं मे उत्पन्न हुए ऋतु ऋतु के पदार्थो के लिए (**स्वाहा** ) उत्तम यज्ञ क्रिया (**संवत्सराय**) वर्षों के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **द्यावापृथिवीभ्याम** ) प्रकाश और भूमि के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञ क्रिया (**चन्द्राय** ) चन्द्रलोक के लिए (**स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **सूर्य्याय**) सूर्य्यलोक के लिए ( **स्वाहा** ) यज्ञ क्रिया ( **रश्मिभ्य** ) सूर्य्य आदि की किरणो के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **वसुभ्य** ) पृथिवी आदि लोको के लिए ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **रुद्रेभ्य** ) दश प्राणो के लिए (**स्वाहा** ) यज्ञ क्रिया ( **आदित्येभ्य** ) काल के अवयव जो अविनाशी है उनके लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**मरुद्भ्य** ) पवनो के लिए (**स्वाहा**) उन के अनुकूल क्रिया (**विश्वेभ्य** ) समस्त ( **देवेभ्य** ) दिव्य गुणो के लिए (**स्वाहा** ) सुन्दर क्रिया ( **मूलेभ्य** ) सभो की जडो के लिए ( **स्वाहा** ) तदनुकूल क्रिया ( **शाखाभ्य** ) शाखाओ के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **वनस्पतिभ्य** ) वनस्पतियो के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तमक्रिया ( **पुष्पेभ्य** ) फूलो के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **फलेभ्य** ) फलो के लिए ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया और (**ओषधिभ्य** ) ओषधियो के लिए ( **स्वाहा** ) नित्य उत्तम क्रिया अवश्य करनी चाहिए ॥२८॥

**भावार्थ**—मनुष्य नित्य सुगन्ध्यादि पदार्थों को अग्नि मे छोड अर्थात् दहन कर पवन और सूर्य की किरणो द्वारा वनस्पति ओषधि मूल शाखा पुष्प और फलादिको मे प्रवेश करा के सब पदार्थों की शुद्धि कर आरोग्यता की सिद्धि करें ॥२८॥

**पृथिव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । लिङ्गोक्ता देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

**पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥२९॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( **पृथिव्यै** ) विथरी हुई इस पृथिवी के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **अन्तरिक्षाय** ) अवकाश अर्थात् पदार्थों के बीच की पोल के लिये ( **स्वाहा** ) उक्त क्रिया ( **दिवे** ) बिजुली की शुद्धि के लिए ( **स्वाहा** ) यज्ञक्रिया ( **सूर्य्याय** ) सूर्य्यमण्डल की उत्तमता के लिय ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रमण्डल के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम क्रिया ( **नक्षत्रेभ्य** ) अश्विनी आदि नक्षत्रलोकों की उत्तमता के लिय ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **अद्भ्य** ) जलो के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **ओषधीभ्य** ) ओषधियो के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **वनस्पतिभ्य** ) वट वृक्ष आदि के लिय ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **परिप्लवेभ्य** ) जो सब ओर से आते जाते उन तारागणों के लिय ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया ( **चराचरेभ्य** ) स्थावर जङ्गम जीवों और जड पदार्थों के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया तथा ( **सरीसृपेभ्य** ) जो रिंगते हैं उन सर्प आदि जीवो के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करें तो वे सबकी शुद्धि करने को समर्थ हो ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—जो सुगन्धित आदि पदार्थों को पृथिवी आदि पदार्थों में अग्नि के द्वारा विस्तार के अर्थात् फैला के पवन और जल के द्वारा ओषधि आदि पदार्थों में प्रवेश करा सबको अच्छे प्रकार शुद्ध कर आरोग्यपन को सिद्ध कराते हैं वे आयुर्दा के बढ़ाने वाले होते हैं ॥ २९ ॥

असव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । मल्वादयो देवता । कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा ॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( असवे ) प्राणो के लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( वसवे ) जो इस शरीर मे वसता है उस जीव के लिए ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( विभुवे ) व्याप्त होने वाले पवन के लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( विवस्वते ) सूर्य के लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( गणश्रिये ) जो पदार्थों के लिये समूहों की शोभा बिजुली है उसके लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया (गणपतये) पदार्थों के समूहों के पालनेहारे पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया ( अभिभुवे ) सम्मुख होनेवाले के लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( अधिपतये ) सबके स्वामी राजा के लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( शूषाय ) बल और तीक्ष्णता के लिए ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( संसर्पाय ) जो भली भांति करके रिंगे उस जीव के लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( चन्द्राय ) सुवर्ण के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( ज्योतिषे ) ज्योति अर्थात् सूर्य चन्द्र और तारागणो के प्रकाश के लिये ( स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया ( मलिम्लुचाय ) चोर के लिये ( स्वाहा ) उसके प्रबन्ध करने की क्रिया तथा (दिवा, पतये) दिन के पालनेहारे सूर्य के लिये (स्वाहा ) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि प्राण आदि की शुद्धि के लिये आग मे पुष्टि करनेवाले आदि पदार्थ का होम करें ॥ ३० ॥

मधवे स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । मासा देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाꣳहसस्पतये स्वाहा ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ( मधवे ) मीठपन आदि को उत्पन्न करनेहारे चैत्र के लिए ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( माधवाय ) मधुरपन मे उत्तम वैशाख के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( शुक्राय ) जल आदि को पवन वेग से निर्मल करनेहारे ज्येष्ठ के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( शुचये ) वर्षा के योग से भूमि आदि को पवित्र करनेवाले आषाढ़ के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( नभसे ) भली भाँति सघन घन बादलो की घनघोर सुनवाने वाले श्रावण के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( नभस्याय ) आकाश मे वर्षा से प्रसिद्ध होनेहारे भादो के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( इषाय ) अन्न को उत्पन्न करानेवाले क्वार के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया (ऊर्जाय) बल और अन्न को उत्पन्न कराने वा बलयुक्त अन्न अर्थात् कुआर मे फूले हुये बाजरा आदि अन्न को पकाने पुष्ट करनेहारे कार्तिक के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( सहसे) बल देनेवाले अगहन के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( सहस्याय ) बल देने मे उत्तम पौष के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया ( तपसे ) ऋतु बदलने से धीरे धीरे शीत की निवृत्ति और जीवों के शरीरो मे गरमी की प्रवृत्ति कराने वाले माघ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया ( तपस्याय ) जीवो के शरीर मे गरमी की प्रवृत्ति कराने मे उत्तम फाल्गुन मास के लिये ( स्वाहा ) यज्ञक्रिया और ( अंहस ) महीनो मे मिले हुए मलमास के लिये ( पतये ) पालनेवाले के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया का अनुष्ठान करो ॥३१॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ और अपनी प्रकृति के योग्य आहार और विहार आदि को करते हैं वे नीरोग होकर बहुत जीने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥

वाजायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वाजादयो देवता । अत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (वाजाय) अन्न के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( प्रसवाय ) पदार्थों की उत्पत्ति करने के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( अपिजाय ) घर के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( क्रतवे ) बुद्धि वा कर्म के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( स्वः ) अत्यन्त सुख के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( मूर्ध्ने ) शिर की शुद्धि होने के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( व्यश्नुविने ) व्याप्त होने वाले वीर्य के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( आन्त्याय ) व्यवहारों के अन्त मे होने वाले व्यवहार के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया अन्त में होने वाले ( भौवनाय ) जो ससार मे प्रसिद्ध होता उसके लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( भुवनस्य ) ससार की ( पतये ) पालना करने वाले स्वामी के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( अधिपतये ) सबके अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उसके लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया तथा ( प्रजापतये ) सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया को सब भली भांति युक्त करो ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्न, सन्तान, घर, बुद्धि और शिर आदि के शोधन से सुख बढ़ाने के लिये सत्यक्रिया को करते है वे परमात्मा की उपासना करके प्रजा के अधिक पालना करने वाले होते हैं ॥ ३२ ॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । आयुरादयो देवता । प्रकृतिश्छन्द । धैवत स्वर ॥

मनुष्यों को अपना सर्वस्व अर्थात् सब पदार्थ समूह किसके अनुष्ठान के लिये भली भांति अर्पण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहाऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारी ( आयु ) आयु कि जिससे हम जीते हैं वह ( स्वाहा ) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म विद्या आदि देने के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( प्राण ) जीवाने का मूल कारण पवन ( स्वाहा ) अच्छी क्रिया और (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( अपान ) जिससे दुःख को दूर करता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) श्रेष्ठ काम के साथ(कल्पताम्) समर्पित हो (व्यान ) सब सन्धि अङ्गो मे व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन ( स्वाहा ) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (उदान ) जिससे बली होता है वह पवन ( स्वाहा ) अच्छी क्रिया से ( यज्ञेन ) उत्तम काम के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो (समान ) जिससे अङ्ग अङ्ग मे अन्न पहुँचाया जाता है वह पवन ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) यज्ञ के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( चक्षु ) नेत्र ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) सत्कर्म के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो (श्रोत्रम्) कान आदि इन्द्रिया जो कि पदार्थों का ज्ञान कराती है ( स्वाहा ) अच्छी क्रिया से ( यज्ञेन ) सत्कर्म के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( वाक ) वाणी आदि कर्मेन्द्रिया (स्वाहा) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) अच्छे काम के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( मन ) मन अर्थात् अन्तःकरण (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ( आत्मा ) जीव ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( ब्रह्मा ) चार वेदो का जानने वाला ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) यज्ञादि सत्कर्म के साथ ( कल्पताम् ) समर्थ हो (ज्योति ) ज्ञान का प्रकाश ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ( स्व ) सुख ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) यज्ञ के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( पृष्ठम् ) पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) यज्ञ के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ( यज्ञ ) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से ( यज्ञेन ) यज्ञ के साथ ( कल्पताम् ) समर्पित हो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि जितना अपना जीवन शरीर, प्राण अन्तःकरण दशो इन्द्रिया और सब से उत्तम सामग्री हो उनको यज्ञ के लिये समर्पित करें जिससे पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त होकर इस जन्म और द्वितीय जन्म मे सुख को प्राप्त होवें ॥ ३३ ॥

एकस्मा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्द । धैवत स्वर ॥

फिर किसके अर्थ यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को ( एकस्मै ) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया ( द्वाभ्याम ) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( शताय ) अनेक पदार्थों के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( एकशताय ) एकसौ एक व्यवहार वा पदार्थों के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया ( व्युष्ट्यै ) प्रकाशित हुई पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया और ( स्वर्गाय ) सुख को प्राप्त होने के लिये ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया भली भांति युक्त करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं वह ईश्वर तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवो को प्रसन्न करे जिससे संसार का सुख और मोक्ष सुख प्राप्त होवें ॥ ३४ ॥

इस अध्याय मे आयु, बुद्धि अग्नि के गुण, कर्म, यज्ञ, गायत्री मन्त्र का अर्थ और सब पदार्थों के शोधने के विधान आदि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

अब बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

# अथ त्रयोविंशाऽध्यायारम्भः

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

हिरण्यगर्भस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब तेईसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ।**
**स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **भूतस्य** ) उत्पन्न कार्यरूप जगत् के ( **अग्रे** ) पहिले ( **हिरण्यगर्भः** ) सूर्य चन्द्र तारे आदि ज्योति गर्भरूप जिस के भीतर हैं वह सूर्य आदि कारणरूप पदार्थों में गर्भ के समान व्यापक स्तुति करने योग्य ( **समवर्तत** ) अच्छे प्रकार वर्तमान और इस सब जगत् का ( **एकः** ) एक ही ( **जातः** ) प्रसिद्ध ( **पतिः** ) पालना करने हारा ( **आसीत्** ) होता है ( **सः** ) वह ( **इमाम्** ) इस ( **पृथिवीम्** ) विस्तारयुक्त पृथिवी ( **उत** ) और ( **द्याम्** ) सूर्य आदि लोकों को रच के इन को ( **दाधार** ) तीनों काल में धारण करता है उस ( **कस्मै** ) सुखस्वरूप ( **देवाय** ) सुख देने हारे परमात्मा के लिये जैसे हम लोग ( **हविषा** ) सर्वस्व दान करके उस की ( **विधेम** ) परिचर्या सेवा करें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर प्रकृति में स्थिर होती है और फिर उत्पन्न होती है उस के आगे जो एक जागता हुआ परमात्मा वर्त्तमान रहता है तब सब जीव मूर्छा सी पाये हुए होते हैं । वह कल्प के अन्त में प्रकाशरहित पृथिवी आदि सृष्टि तथा प्रकाशसहित सूर्य आदि लोकों की सृष्टि का विधान धारण और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म देकर सब के निर्वाह के लिये सब पदार्थों का विधान करता है, वही सब का उपासना करने योग्य देव है यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है*

**उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा । यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥२॥**

**पदार्थ**—हे भगवन् जगदीश्वर ! जो आप ( **उपयामगृहीतः** ) यम जो योगाभ्यासम्बन्धी काम हैं उनसे समीप में साक्षात् किये अर्थात् हृदयाकाश में प्रगट किये हुए ( **असि** ) हैं उन ( **जुष्टम्** ) सेवा किये हुए वा प्रसन्न किये ( **त्वा** ) आपका ( **प्रजापतये** ) प्रजा पालन करने हारे राजा की रक्षा के लिये मैं ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता हूँ जिन ( **ते** ) आपकी ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) प्रकृति जगत् का कारण है जो ( **ते** ) आपका ( **सूर्यः** ) सूर्यमण्डल ( **महिमा** ) बड़ाई रूप तथा ( **यः** ) जो ( **ते** ) आपकी ( **अहन्** ) दिन और ( **संवत्सरे** ) वर्ष में नियम बन्धन द्वारा ( **महिमा** ) बड़ाई ( **सम्बभूव** ) संभावित है ( **यः** ) जो ( **ते** ) आपकी ( **वायौ** ) पवन और ( **अन्तरिक्षे** ) अन्तरिक्ष में ( **महिमा** ) बड़ाई ( **सम्बभूव** ) प्रसिद्ध है तथा ( **यः** ) जो ( **ते** ) आपकी ( **दिवि** ) बिजुली अर्थात् सूर्य आदि के प्रकाश और ( **सूर्ये** ) सूर्य में ( **महिमा** ) बड़ाई ( **सम्बभूव** ) प्रत्यक्ष है ( **तस्मै** ) उस ( **महिम्ने प्रजापतये** ) प्रजापालनरूप बड़ाई वाले ( **ते** ) आपके लिये और ( **देवेभ्यः** ) विद्वानों के लिये ( **स्वाहा** ) उत्तम विद्यायुक्त बुद्धि सबको ग्रहण करनी चाहिये ॥२॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर के महिमा को यह सब जगत् प्रकाश ( —प्रकाशित ) करता है उस परमेश्वर की उपासना को छोड़ और किसी की उपासना उसके स्थान में नहीं करनी चाहिये और जो कोई कहे कि परमेश्वर के होने में क्या प्रमाण है, उसके प्रति जो यह जगत् वर्त्तमान है सो सब परमेश्वर का प्रमाण कराता है यह उत्तर देना चाहिये ॥ २ ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव ।**
**यऽईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( **यः** ) जो ( **एकः** ) एक ( **इत्** ) ही ( **महित्वा** ) अपनी महिमा से ( **निमिषतः** ) नेत्र आदि से चेष्टा को करते हुए ( **प्राणतः** ) प्राणी रूप ( **द्विपदः** ) दो पग वाले मनुष्य आदि वा ( **चतुष्पदः** ) चार पग वाले गौ आदि पशुसम्बन्धी इस ( **जगतः** ) संसार का ( **राजा** ) अधिष्ठाता ( **बभूव** ) होता है और ( **यः** ) जो ( **अस्य** ) इस संसार का ( **ईशे** ) सर्वोपरि स्वामी है उस ( **कस्मै** ) आनन्दस्वरूप ( **देवाय** ) अतिमनोहर परमेश्वर की ( **हविषा** ) विशेष भक्तिभाव से ( **विधेम** ) सेवा करें वैसे विशेष भक्तिभाव ( **का** ) आप लोगों को भी विधान करना चाहिये ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो एक ही सब जगत् का महाराजाधिराज समस्त जगत् का उत्पन्न करने हारा सकल ऐश्वर्ययुक्त महात्मा न्यायाधीश है उसी की उपासना से तुम सब धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को पाकर सन्तुष्ट होओ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥**

**पदार्थ**—( **हे** ) जगदीश्वर ! जो आप ( **उपयामगृहीतः** ) सत्कर्म अर्थात् योगाभ्यास आदि उत्तम काम से स्वीकार किये हुए ( **असि** ) हो उन ( **त्वा जुष्टम्** ) सेवा किये हुए आपको ( **प्रजापतये** ) प्रजा की पालना करने वाले राजा की रक्षा के लिये मैं ( **गृह्णामि** ) ग्रहण करता अर्थात् मन में धरता हूँ जिन ( **ते** ) आपके संसार में ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) जन्म वा जिन ( **ते** ) आपका संसार में ( **चन्द्रमाः** ) चन्द्रलोक ( **महिमा** ) बड़प्पन वा जिन ( **ते** ) आपका ( **यः** ) जो ( **रात्रौ** ) रात्रि और ( **संवत्सरे** ) वर्ष में ( **महिमा** ) बड़प्पन ( **सम्बभूव** ) सम्भव हुआ होता और होगा ( **यः** ) जो ( **ते** ) आपकी सृष्टि में ( **पृथिव्याम्** ) अन्तरिक्ष वा भूमि और ( **अग्नौ** ) आग में ( **महिमा** ) बड़प्पन ( **सम्बभूव** ) सम्भव हुआ होता और होगा तथा जिन ( **ते** ) आपकी सृष्टि में ( **यः** ) जो ( **नक्षत्रेषु** ) कारणरूप से विनाश को न प्राप्त होने वाले लोक लोकान्तरों में और ( **चन्द्रमसि** ) चन्द्रलोक में ( **महिमा** ) बड़प्पन ( **सम्बभूव** ) सम्भव हुआ होता और होगा उन ( **ते** ) आप ( **तस्मै** ) उस ( **महिम्ने** ) बड़प्पन ( **प्रजापतये** ) प्रजा पालने हारे राजा ( **देवेभ्यः** ) और विद्वानों के लिये ( **स्वाहा** ) सत्याचरणयुक्त क्रिया का हम लोगों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिसके महिमा सामर्थ्य से सब जगत् विराजमान जिसका अनन्त महिमा और जिसकी सिद्धि करने में रचना से भरा हुआ समस्त जगत् दृष्टान्त है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥ ४ ॥

युञ्जन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।**
**रोचन्ते रोचना दिवि ॥५॥**

**पदार्थ**—जो पुरुष ( **परि** ) सब ओर से ( **तस्थुषः** ) स्थावर जीवों को ( **चरन्तम्** ) प्राप्त होते हुए बिजुली के समान वर्त्तमान ( **अरुषम्** ) प्राणियों के मर्मस्थल जिन में पीड़ा होने से प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है उन स्थानों की रक्षा करने के लिये स्थिर होते हुए ( **ब्रध्नम्** ) सबसे बड़े सर्वोपरि विराजमान परमात्मा को अपने आत्मा के साथ ( **युञ्जन्ति** ) युक्त करते हैं वे ( **दिवि** ) सूर्य में ( **रोचना** ) किरणों के समान ( **रोचन्ते** ) परमात्मा में प्रकाशमान होते हैं ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाशमान है वैसे सर्वजगत् में परमात्मा प्रकाशमान है । जो योगाभ्याससे उस अन्तर्यामी परमेश्वर को अपने आत्मा से युक्त करते हैं, वे सब ओर से प्रकाश को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

युञ्जन्त्यस्य [त्यस्य] प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*अब किससे ईश्वर की प्राप्ति होने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।**
**शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे शिक्षा करने वाले सज्जन (काम्या) मनोहर (हरी) लेजाने हारे ( विपक्षसा ) जो कि विविध प्रकारो से भली भाँति ग्रहण किये हुए ( शोणा ) लाल लाल रङ्ग से युक्त ( धृष्णू ) अतिपुष्ट ( नृवाहसा ) मनुष्यो को एक देश से दूसरे देश को पहुँचानेहारे दो घोडो को ( रथे ) रथ मे ( युञ्जन्ति ) जोड़ते हैं वैसे योगीजन (अस्य) इस परमेश्वर के बीच इन्द्रियाँ अन्त करण और प्राणो को युक्त करते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य अच्छे सिखाये हुए घोडों से युक्त रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्या सज्जनो का संग और योगाभ्यास से परमात्मा को शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यद्वात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*फिर मनुष्य किसका संग करे इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं—*

**यद्वातोऽअपोऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।**

**एतᳪस्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः ॥७॥**

पदार्थ—हे ( स्तोत ) स्तुति करने हारे जन ! जैसे शिल्पी लोग (इन्द्रस्य) बिजुली के ( प्रियाम् ) अतिसुन्दर ( तन्वम् ) विस्तारयुक्त शरीर को ( वात ) पवन के समान पाकर (यत्) जिस कलायन्त्र रूपी घोडे और (अप ) जलो को (अगनीगन्) प्राप्त होते हैं वैसे ( एतम ) इस (अश्वम) शीघ्र चलने हारे कलायन्त्र रूप घोडे का ( अनेन ) उक्त बिजुली रूप ( पथा ) मार्ग से आप प्राप्त होते ( पुन ) फिर (न ) हम लोगो को ( आ, वर्त्तयासि ) भली भाँति वर्त्तते अर्थात् इधर उधर ले जाते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्य ! जो तुम को अच्छे मार्ग से चलाते हैं उनके संग से तुम लोग पवन और बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

वसव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वाय्वादयो देवता । अत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन**

**छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा । भूर्भुवः स्वर्लाजी३**

**ञ्छाची३न्यव्ये गव्यऽएतदन्नमत्त देवाऽएतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥**

पदार्थ—हे ( प्रजापते ) प्रजाजनो को पालने हारे राजन् ! (वसव ) प्रथम कक्षा के विद्वान् ( गायत्रेण ) गायत्री छन्द से कहने योग्य ( छन्दसा ) स्वच्छन्द अर्थ से जिन ( त्वाम् ) आपको ( अञ्जन्तु ) चाहे ( रुद्रा ) मध्यम कक्षा के विद्वान् जन (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाश किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आपको ( अञ्जन्तु ) चाहें वा ( आदित्या ) उत्तम कक्षा के विद्वान् जन (जागतेन) जगती छन्द से प्रकाशित किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आपको ( अञ्जन्तु ) चाहें सो आप ( एतत ) इस ( अन्नम ) अन्न को ( अद्धि ) खाइये । हे ( देवा ) विद्वानो ! तुम ( यव्ये ) यवो के खेत में उत्पन्न ( गव्ये ) गौ के दूध दही आदि उत्तम पदार्थ मे मिले हुए (एतम्) इस ( अन्नम ) अन्न को (अत्त) खाओ तथा ( लाजीन् ) अपनी अपनी कक्षा मे चलते हुए ( शाचीन् ) प्रकट ( भू ) इस प्रत्यक्ष लोक ( भुव ) अन्तरिक्षस्थ लोक और (स्व ) प्रकाश में स्थिर सूर्य्यादि लोको को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अङ्गो और उपाङ्गो ( अङ्गो के अङ्गो ) से युक्त चारो वेदों को मनुष्यों को पढ़ाते हैं वे धन्यवाद के योग्य होते है ॥ ८ ॥

क स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । जिज्ञासुर्देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*अब विद्वान् जनों को क्या क्या पूछना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः ।**

**किᳪस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥९॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग तुमको यह पूछते हैं कि ( क स्वित् ) कौन ( एकाकी ) एकाकी अकेला ( चरति ) विचरता है ( उ ) और ( क स्वित् ) कौन ( पुन ) बार बार ( जायते ) प्रकट होता है ( किम्, स्वित् ) क्या (हिमस्य) शीत का ( भेषजम् ) औषध और (किम्) क्या (उ) तो (महत्) बड़ा (आवपनम्) बीज बोने का स्थान है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इन उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र मे कहे हुए हैं यह जानना चाहिये । मनुष्यो को योग्य है कि सदा इसी प्रकार के प्रश्न किया करें ॥ ९ ॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सूर्यो देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब पिछले मन्त्र मे कहे प्रश्नों के उत्तर को कहते हैं—*

**सूर्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।**

**अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥१०॥**

पदार्थ—हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो ! (सूर्य्य ) सूर्य्य (एकाकी) बिना सहाय अपनी कक्षा मे ( चरति ) चलता है (पुन ) फिर इसी सूर्य्य के प्रकाश से ( चन्द्रमा ) चन्द्रलोक ( जायते ) प्रकाशित होता है (अग्नि ) आग ( हिमस्य ) शीत का ( भेषजम ) औषध ( भूमि ) पृथिवी ( महत ) बडा ( आवपनम ) बोने का स्थान है इसको तुम लोग जानो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस संसार मे सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से अपनी ही कक्षा मे वर्त्तमान है और उसी के प्रकाश से चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं । अग्नि के समान शीत के हटाने को कोई वस्तु और पृथिवी के तुल्य बडा पदार्थों के बोने का स्थान नहीं है यह मनुष्यो को जानना चाहिये ॥ १० ॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । जिज्ञासुर्देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳪस्विदासीद् बृहद्वयः ।**

**का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥११॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग तुम्हारे प्रति पूछते हैं कि (का, स्वित्) कौन ( पूर्वचित्ति ) स्मरण का प्रथम पहिला विषय ( आसीत ) हुआ है ( किम्, स्वित् ) कौन ( बृहत ) बडा ( वय ) उडने हारा पक्षी ( आसीत ) है ( का,स्वित् ) कौन (पिलिप्पिला) पिलपिली चिकनी वस्तु (आसीत) तथा (का स्वित)कौन (पिशङ्गिला) प्रकाश रूप को निगल जाने वाली वस्तु है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इन प्रश्नो के उत्तर अगले मन्त्र मे है । जो विद्वानो के प्रति न पूछें तो आप विद्वान् भी न हो ॥ ११ ॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । विद्वांसो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*अब पिछले प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं—*

**द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः ।**

**अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥१२॥**

पदार्थ—हे जानने की इच्छा करने वालो ! ( पूर्वचित्ति ) प्रथम स्मृति का विषय ( द्यौ ) दिव्यगुण देने हारी वर्षा ( आसीत् ) है ( बृहत् ) बडा (वय ) उडने हारे (अश्व ) मार्गों का व्याप्त होने वाले पक्षी के तुल्य अग्नि (आसीत्) है ( पिलिप्पिला ) वर्षा से पिलपिली चिकनी शोभायमान ( अवि ) अन्नादि से रक्षा आदि उत्तम गुण प्रगट करने वाली पृथिवी ( आसीत ) है और ( पिशङ्गिला ) प्रकाशरूप का निगलने अर्थात् अन्धकार करने हारी ( रात्रि ) रात ( आसीत् ) है यह तुम जानो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हवन और सूर्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणो से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है । उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थ युक्त पृथिवी होती और सूर्य्य रूप अग्नि से प्राणियो के विश्राम के लिये रात्रि होती है ॥ १२ ॥

वायुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । ब्रह्मादयो देवता । भुरिगतिजगती छन्द ।
निषाद स्वर ॥

*अब विद्वानों को मनुष्य कहां युक्त करने चाहियें इस विषय को*
*अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या ।**

**एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु**

**नमोऽग्नये ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे विद्यार्थी जन ! (पचत ) अच्छे प्रकार पाको से ( वायु ) स्थूल कायरूप पवन ( छाग ) काटने की क्रियाओं से (असितग्रीव ) काली चोटियो वाला अग्नि और ( चमसै ) मेघों से ( न्यग्रोध ) वट वृक्ष ( वृद्ध्या ) उन्नति के साथ ( शल्मलि ) सेंबरवृक्ष ( त्वा ) तुझको ( अवतु ) पाले जो ( एष ) यह (राथ्य ) सडको मे चलने मे कुशल और ( वृषा ) सुखो की वर्षा करने हारा है ( स्य ) वह (चतुर्भि , षड्भि , इत्) जिनसे गमन करता है उन चारो पगों से तुझको (आऽगन्) प्राप्त हो ( च ) तथा जो ( अकृष्ण ) अविद्यारूप अन्धकार से पृथक (ब्रह्मा) चार वेदो को जानने हारा उत्तम विद्वान् (न ) हम लोगों को सब गुणों में (अवतु) पहुंचावे उस ( अग्नये ) विद्या से प्रकाशमान चारो वेदों को पढ़े हुए विद्वान् के लिये (नम ) अन्न देना चाहिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! पवन श्वास आदि के चलाने आग अन्न आदि के पकाने, सूर्यमण्डल वर्षा वृक्ष फल आदि, घोड़े आदि गमन और विद्वान् शिक्षा से तुम्हारी रक्षा करते हैं उनको तुम जानो और विद्वानों का सत्कार करो ॥ १३ ॥

संशितो रश्मिनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । ब्रह्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द ।
गान्धारः स्वर ॥

*फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सᳪशितो रश्मिना रथः सᳪशितो रश्मिना हयः ।**

**सᳪशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥१४॥**

**पदार्थ**—जो मनुष्यों से ( **रश्मिना** ) किरणसमूह से ( **रथ** ) आनन्द को सिद्ध करनेवाला यान ( **संशित** ) अच्छे प्रकार सूक्ष्म कारीगरी से बनाया (**रश्मिना**) लगाम की रस्सी आदि से ( **हय** ) घोड़ा ( **संशित** ) भली भांति चलने में तीक्ष्ण अर्थात् उत्तम क्रिया तथा ( **अप्सु** ) प्राणों में ( **अप्सुजा** ) जो प्राणवायु रूप से संचार करनेवाला पवन वा वाष्प (**सोमपुरोगव** ) ओषधियों का बोध और ऐश्वर्य का योग जिस से पहिले प्राप्त होने वाला है वह ( **ब्रह्मा** ) बड़ा योगी विद्वान् ( **संशित** ) अतिप्रशंसित किया जाय तो क्या क्या सुख न मिले ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य पदार्थों के विशेष ज्ञान से विद्वान् होते हैं वे औरों को विद्वान् करके प्रशंसा को पावें ॥ १४ ॥

**स्वयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब पढ़ने वा उत्तम विद्या बोध चाहने वाले कैसे हों इस विषय का अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।**
**महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥१५॥**

**पदार्थ**—हे (**वाजिन्**) बोध चाहने वाले जन ! तू ( **स्वयम्** ) आप (**तन्वम्**) अपने शरीर को ( **कल्पयस्व** ) समर्थ कर (**स्वयम्**) आप अच्छे विद्वानों को (**यजस्व**) मिल और ( **स्वयम्** ) आप उनकी (**जुषस्व**) सेवा कर जिससे ( **ते** ) तेरी (**महिमा**) बड़ाई तेरा प्रताप ( **अन्येन** ) और के साथ ( **न** ) मत ( **सन्नशे** ) नष्ट हो ॥१५॥

**भावार्थ**—जैसे अग्नि आपसे आप प्रकाशित होता आप मिलता तथा आप सेवा को प्राप्त है जो बोध चाहने वाले जन आप पुरुषार्थयुक्त होते हैं उनका प्रताप बड़ाई कभी नहीं नष्ट होती ॥ १५ ॥

**न वा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**न वाऽउएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः ।**
**यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे विद्यार्थी ! ( **यत्र** ) जहां ( **ते** ) वे ( **सुकृत** ) धर्मात्मा योगी विद्वान् ( **आसते** ) बैठते और सुख को ( **ययु** ) प्राप्त होते हैं वा ( **यत्र** ) जहां ( **सुगेभि** ) सुख से जाने योग्य ( **पथिभि** ) मार्गों से तू ( **देवान्** ) दिव्य अच्छे अच्छे गुण वा विद्वानों को ( **एषि** ) प्राप्त होता है और जहां ( **एतत्** ) यह पूर्वोक्त सब वृत्तान्त ( **उ** ) तो वर्त्तमान है और स्थिर हुआ तू ( **न** ) नहीं ( **म्रियसे** ) नष्ट हो ( **न, वै** ) नहीं ( **रिष्यसि** ) दूसरे का नाश करे ( **तत्र** ) वहां (**इत**) ही (**त्वा**) तुझे ( **सविता** ) समस्त जगत् का उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर (**देव** ) जो कि आप प्रकाशमान है वह ( **दधातु** ) स्थापन करे ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अपने अपने रूप को जानें तो अविनाशीभाव को जान सकें जो धर्मयुक्त मार्ग से चलें तो अच्छे कर्म करने हारा के आनन्द को पावें जो परमात्मा की सेवा करें तो जीवों को सत्यमार्ग में स्थापन करें ॥१६॥

**अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । अतिशक्वर्यौ छन्दसी । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब पशु कौन है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता ऽअपः । वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः । सूर्य्यः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्य्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे विद्याबोध चाहने वाले पुरुष ! ( **अस्मिन्** ) जिस देखने योग्य लोक में ( **स** ) वह ( **अग्नि** ) अग्नि ( **पशु** ) देखने योग्य ( **आसीत** ) है (**तेन**) उस से जिस प्रकार यज्ञ करनेवाले ( **अयजन्त** ) यज्ञ करें उस प्रकार से तू यज्ञ कर जैसे ( **स** ) वह विद्वान् ( **एतम्** ) इस (**लोकम्**) देखने योग्य स्थान को (**अजयत**) जीतता है वैसे इस को जीत यदि ( **तम्** ) उस को ( **जेष्यसि** ) जीतेगा तो वह ( **अग्नि** ) अग्नि ( **ते** ) तेरा ( **लोक** ) देखने योग्य ( **भविष्यति** ) होगा इस से तू ( **एता** ) इन यज्ञ से शुद्ध किये हुए ( **अप** ) जलों को ( **पिब** ) पी ( **यस्मिन्** ) जिस में ( **स** ) वह ( **वायु** ) पवन ( **पशु** ) देखने योग्य (**आसीत्**) है और जिस से यज्ञ करनेवाले ( **अयजन्त** ) यज्ञ करें ( **तेन** ) उस से तू यज्ञ कर जैसे ( **स** ) वह विद्वान् ( **एतम्** ) इस वायुमण्डल के रहने के ( **लोकम** ) लोक को ( **अजयत** ) जीते वैसे तू जीत जो ( **तम्** ) उस को ( **जेष्यसि** ) जीतेगा तो वह ( **वायु** ) पवन (**ते**) तेरा ( **लोक** ) देखने योग्य ( **भविष्यति** ) होगा इस से तू ( **एता** ) इन ( **अप** ) यज्ञ में शुद्ध किये हुए प्राण रूपी पवनों को ( **पिब** ) धारण कर ( **यस्मिन्** ) जिस में वह ( **सूर्य्य** ) सूर्य्यमण्डल ( **पशु** ) देखने योग्य ( **आसीत्** ) है ( **तेन** ) उस से ( **अयजन्त** ) यज्ञ करनेवाले यज्ञ करें जैसे ( **स** ) वह विद्वान् ( **एतम्** ) इस सूर्य्यमण्डल के ठहरने के ( **लोकम्** ) लोक को ( **अजयत्** ) जीतता है वैसे तू जीत जो तू ( **तम** ) उस को ( **जेष्यसि** ) जीतेगा तो ( **स** ) वह ( **सूर्य** ) सूर्य्यमण्डल ( **ते** ) तेरा ( **लोक** ) देखने योग्य ( **भविष्यति** ) होगा इस से तू ( **एता** ) यज्ञ से शुद्धि किये हुए (**अप** ) संसार में व्याप्त हो रहे सूर्यप्रकाशों को (**पिब**) ग्रहण कर ॥१७॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो किन्तु प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं न होमने योग्य हैं जो ऐसे जानकर सुगन्धि आदि अच्छे अच्छे पदार्थों का भली भांति बना आग में होम करने हारे होते हैं वे पवन और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूट कर ओषधि प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं। इस यज्ञकर्म के करनेवाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कारयुक्त होते हैं ॥१७॥

**अथ प्राणायेत्यस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे ( **अम्ब** ) माता ( **अम्बिके** ) दादी ( **अम्बालिके** ) वा परदादी ( **कश्चन** ) कोई (**अश्वक** ) घोड़े के समान शीघ्रगामी जन जिस (**काम्पीलवासिनीम्**) सुखग्राही मनुष्य को वमाने वाली (**सुभद्रिकाम**) उत्तम कल्याण करने हारी लक्ष्मी को ग्रहण कर (**ससस्ति**) सोता है वह (**मा**) मुझे (**न**) नहीं (**नयति**) अपने वश में लाती इस से मैं ( **प्राणाय** ) प्राण के पोषण के लिये ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी ( **अपानाय** ) दुःख के हटाने के लिये ( **स्वाहा** ) सुशिक्षित वाणी और ( **व्यानाय** ) सब शरीर में व्याप्त होने वाले अपने आत्मा के लिये ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी को युक्त करता हूं ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे माता दादी परदादी अपने अपने सन्तानों को अच्छी सिखावट पहुँचाती है वैसे तुम लोगों को भी अपने सन्तान शिक्षित करने चाहियें। धन का स्वभाव है कि जहां यह इकट्ठा होता है उन जनों को निद्रालु आलसी और कर्महीन कर देता है इस से धन पाकर भी मनुष्य को पुरुषार्थ ही करना चाहिये ॥ १८ ॥

**गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । गणपतिर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! हम लोग (**गणानाम**) गणों के बीच ( **गणपतिम** ) गणों के पालने हारे ( **त्वा** ) आप को ( **हवामहे** ) स्वीकार करते ( **प्रियाणाम** ) अतिप्रिय सुन्दरों के बीच ( **प्रियपतिम** ) अतिप्रिय सुन्दरों के पालने हारे (**त्वा**) आप को ( **हवामहे** ) प्रशंसा करते (**निधीनाम्**) विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने हारों के बीच ( **निधिपतिम** ) विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने हारे ( **त्वा** ) आप को ( **हवामहे** ) स्वीकार करते हैं। हे ( **वसो** ) परमात्मन् ! जिस आप में सब प्राणी वसते हैं सो आप (**मम**) मेरे न्यायाधीश हूजिये जिस (**गर्भधम**) गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे ( **त्वम्** ) आप ( **आ अजासि** ) जन्मादि दोषरहित भली भांति प्राप्त होते हैं उस ( **गर्भधम** ) प्रकृति के धर्त्ता आप को ( **अहम्** ) मैं ( **आ, अजानि** ) अच्छे प्रकार जानूं ॥१९॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् की रक्षा चाहते हुए सुखों का विधान ऐश्वर्य्यों का भली भांति दान प्रकृति का पालन और सब बीजों का विधान करता है उसी जगदीश्वर की उपासना सब करो ॥१९॥

**ता उभावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ता ऽउभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे राजप्रजाजनो ! तुम ( **उभा** ) दोनों ( **तौ** ) प्रजा राजाजन जैसे ( **स्वर्गे** ) सुख से भरे हुए ( **लोके** ) देखने योग्य व्यवहार वा पदार्थ में (**चतुर** ) चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष (**पद** ) जो कि पाने योग्य हैं उन को (**प्रोर्णुवाथाम्**) प्राप्त होओ वैसे इन का हम अध्यापक और उपदेशक दोनों ( **संप्रसारयाव** ) विस्तार करें जैसे (**रेतोधा** ) आलिङ्गन अर्थात् दूसरे से मिलने को धारण करने और (**वृषा**) दुष्टों के सामर्थ्य बंधाने अर्थात् उन की शक्ति को रोकने हारा (**वाजी**) विशेष ज्ञानवान् राजा प्रजाजनों में (**रेत** ) अपने पराक्रम को स्थापन करे वैसे प्रजाजन (**दधातु**) स्थापन करें ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा प्रजा पिता और पुत्र के समान अपना वर्त्ताव वर्त्ते तो धर्म अर्थ काम और मोक्ष फल की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हों जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावें वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल की उन्नति करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । न्यायाधीशो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर राजा को दुष्टाचारी प्राणी भली भाँति दण्ड देने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**उत्सक्थ्याऽअव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् ।**

**य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥२१॥**

पदार्थ—हे ( वृषन् ) शक्तिमन् ! ( यः ) जो ( स्त्रीणाम् ) स्त्रियों के बीच ( जीवभोजनः ) प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो उस पुरुष और स्त्री को बांध कर ( उत्सक्थ्या ) ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा के मध्य ( अव गुदम् ) उत्तम सुख को ( धेहि ) धारण करो और ( अञ्जिम् ) अपने प्रकट न्याय का ( सञ्चारय ) भली भाँति चलाओ ॥२१॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो विषय सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचार को बढ़ावें उन उन का प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिए ॥२१॥

यकासकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति ।**

**आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥२२॥**

पदार्थ—जिस ( गभे ) प्रजा में राजा अपने ( पसः ) राज्य का ( आहन्ति ) जाने वा प्राप्त हो वह ( धारका ) सुख का धारण करनेवाली प्रजा ( निगल्गलीति ) निरन्तर सुख को निगलती सी वर्त्तमान होती है और जिस से ( यका ) जो ( असकौ ) यह प्रजा ( शकुन्तिका ) छोटी चिड़िया के समान निर्बल है इससे इस प्रजा को ( आहलक् ) अच्छे प्रकार जो हल से भूमि करोदता है उस को प्राप्त होने वाला अर्थात् हल से जुती हुई भूमि से कर का लेने वाला राजा ( वञ्चतीति ) ऐसे वञ्चता अपना कर धन लेता है कि जैसे प्रजा को सुख प्राप्त हो ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवे तो जैसे जैसे प्रजा नष्ट हो वैसे राजा भी नष्ट होता है। यदि विद्या और विनय से प्रजा की भली भाँति रक्षा करे तो राजा सब ओर से वृद्धि को पावें ॥२२॥

यकोऽसकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**यकोऽसकौ शकुन्तकऽआहलगिति वञ्चति ।**

**विवक्षतऽइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥२३॥**

पदार्थ—हे ( अध्वर्यो ) यज्ञ के समान आचरण करने हारे राजा ! ( त्वम् ) तू ( नः ) हम लोगों के प्रति ( मा, अभिभाषथाः ) झूठ मत बोलो और ( विवक्षत इव ) बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान ( ते ) तेरा ( मुखम् ) मुख मत हो यदि इस प्रकार ( यकः ) जो ( असकौ ) यह राजा गप्प सप्प करेगा तो ( शकुन्तकः ) निर्बल पखेरू के समान ( आहलक् ) भली भाँति उच्छिन्न जैसे हो ( इति ) इस प्रकार ( वञ्चति ) ठगा जायगा ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा कभी झूठी प्रतिज्ञा करने और कटुवचन बोलनेवाला न हो तथा न किसी को ठगे जो यह राजा अन्याय करे तो आप भी प्रजाजनों से ठगा जाय ॥२३॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूमिसूर्यौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः ।**

**प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥२४॥**

पदार्थ—हे राजन् ! यदि ( ते ) आप की ( माता ) पृथिवी के तुल्य सहनशील मान करने वाली माता ( च ) और ( ते ) आप का ( पिता ) सूर्य्य के समान तेजस्वी पालन करने वाला पिता ( च ) भी ( वृक्षस्य ) छेदन करने योग्य संसार रूप वृक्ष के राज्य की ( अग्रम् ) मुख्य श्री शोभा वा लक्ष्मी पर ( रोहतः ) आरूढ़ होते हैं आप का ( पिता ) पिता ( गभे ) प्रजा में ( मुष्टिम् ) मुट्ठी से धन लेने वाले राज्य को धन लेकर ( अतंसयत् ) प्रकाशित करता है तो मैं ( इति ) इस प्रकार प्रजाजन ( प्र, तिलामि ) भली भाँति उस राजा से प्रीति करता हूं ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता पिता और पृथिवी और सूर्य के तुल्य धैर्य और विद्या से प्रकाश को प्राप्त न्याय से राज्य को पाल कर उत्तम लक्ष्मी वा शोभा को पाकर प्रजा को सुशोभित कर अपने पुत्र को राजनीति से युक्त करें वे राज्य करने को योग्य हों ॥२४॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूमिसूर्यौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*फिर माता पिता कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य क्रीडतः ।**

**विवक्षतऽइव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥२५॥**

पदार्थ—हे ( ब्रह्मन् ) चारों वेदों के जानने वाले सज्जन ! जिन ( ते ) सूर्य के समान तेजस्वी आप की ( माता ) पृथिवी के समान माता ( च ) और जिन ( ते ) आपका ( पिता ) पिता ( च ) भी ( वृक्षस्य ) संसाररूप राज्य के बीच ( अग्रे ) विद्या और राज्य की शोभा में ( क्रीडतः ) रमते हैं उन ( ते ) आप का ( विवक्षत इव ) बहुत कहा चाहते हुए मनुष्य के मुख के समान ( मुखम् ) मुख है उस से ( त्वम् ) तू ( बहु ) बहुत ( मा ) मत ( वद ) कहा कर ॥२५॥

भावार्थ—जो माता पिता सुशील धर्मात्मा लक्ष्मीवान् कुलीन हों उन्होंने सिखाया हुआ ही पुत्र प्रमाणयुक्त थोड़ा बोलने वाला होकर कीर्ति को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*फिर राजपुरुष किस की उन्नति करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव ।**

**अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥२६॥**

पदार्थ—हे राजन् ! तू ( गिरौ ) पर्वत पर ( भारम् ) भार ( हरन्निव ) पहुंचाते हुए के समान ( एनाम् ) इस राज्यलक्ष्मीयुक्त ( ऊर्ध्वाम् ) उत्तम कक्षा वाली प्रजा को ( उच्छ्रापय ) सदा अधिक अधिक उन्नति दिया कर ( अथ ) अब ( अस्यै ) इस प्रजा के ( मध्यम् ) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर ( शीते ) शीतल ( वाते ) पवन में ( पुनन्निव ) खेती करने वालों की क्रिया से जैसे अन्न आदि शुद्ध हो वा पवन के योग से जल स्वच्छ हो वैसे आप ( एधताम् ) वृद्धि को प्राप्त हूजिए ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। राजा जैसे कोई बोझा लेजाने वाला अपने शिर वा पीठ पर बोझ को उठा पर्वत पर चढ़ उस भार को ऊपर स्थापन करे वैसे लक्ष्मी की उन्नति होने को पहुँचाने वा जैसे खेती करने वाले भूसा आदि से अन्न को अलग कर उस अन्न को खाके बढ़ते हैं वैसे सत्य न्याय से सत्य असत्य को अलग कर न्याय करने हारा राजा नित्य बढ़ता है ॥२६॥

ऊर्ध्वमेनमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारꣳ हरन्निव ।**

**अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥२७॥**

पदार्थ—हे प्रजास्थ विद्वान् ! आप ( गिरौ ) पर्वत पर ( भारम् ) भार को ( हरन्निव ) पहुँचाने के समान ( एनम् ) इस राजा को ( ऊर्ध्वम् ) सब व्यवहारों में अग्रगन्ता ( उच्छ्रयतात् ) उन्नतियुक्त करें ( अथ ) इस के अनन्तर जैसे ( अस्य ) इस राज्य के ( मध्यम् ) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर ( शीते ) शीतल ( वाते ) पवन में ( पुनन्निव ) शुद्ध होते हुए अन्न आदि के समान ( एजतु ) उत्तम कर्मों में चेष्टा किया कीजिये ॥२७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य मेघमण्डल में जल के भार को पहुंचा और वहाँ से बरसा के सब की उन्नति देता है वैसे ही प्रजाजन राजपुरुषों को उन्नति दें और अधर्म के आचरण से डरें ॥ २७ ॥

यदस्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**यदस्याऽअꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।**

**मुष्काविदस्याऽएजतो गोशफे शकुलाविव ॥२८॥**

पदार्थ—( यत् ) जो राजा वा राजपुरुष ( अस्याः ) इस ( अंहुभेद्याः ) अपराध का विनाश करने वाली प्रजा के ( कृधु ) थोड़े और ( स्थूलम् ) बहुत कर्म को ( उपातसत् ) सुशोभित करें वे दोनों ( अस्याः ) इसको ( एजतः ) कर्म कराते हैं और वे आप ( गोशफे ) गौ के खुर से भूमि में हुए गढ़ेले में ( शकुलाविव ) छोटी दो मछलियों के समान ( मुष्कौ ) प्रजा से पाये हुए कर को चोरते हुए कंपते हैं ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे एक दूसरे से प्रीति रखने वाली मछली छोटी ताल तलैया में निरन्तर बसती है वैसे राजा और राजपुरुष थोड़े भी कर के लाभ में न्यायपूर्वक प्रीति के साथ वर्त्तें और यदि दुःख को दूर करने वाली प्रजा के थोड़े बहुत उत्तम काम की प्रशंसा करें तो वे दोनों प्रजाजनों को प्रसन्न कर अपने में उनसे प्रीति करावें ॥ २८ ॥

यद्देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः ।**

**सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥२९॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! ( **यथा** ) जैसे ( **सत्यस्य** ) सत्य ( **अक्षिभ्रुव** ) आँख के सामने प्रगट हुए प्रत्यक्ष व्यवहार के मध्य मे वर्त्तमान ( **देवास** ) विद्वान् लोग ( **सक्थ्ना** ) जाँघ वा और अपने शरीर के अङ्ग से ( **नारी** ) स्त्री के समान ( **यत** ) जिस ( **विष्टमिनम्** ) जिस मे सुन्दर और बहुत शील पदार्थ विद्यमान हैं ( **ललामगुम्** ) और जिस से मनोवाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ऐसे न्याय को ( **प्राविषु** ) व्याप्त हो वा जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन सत्य का ( **देविश्यते** ) निरन्तर उपदेश करें वैसे आप आचरण करो ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे शरीर के अङ्गो से स्त्री पुरुष लखे जाते हैं वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो से सत्य लखा जाता है उस सत्य से विद्वान् लोग जैसे पाने योग्य कामलता को पावें वैसे राजा प्रजा के स्त्री पुरुष विद्या से नम्रता को पाकर सुख को ढूढें ॥ २९ ॥

**यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वह राजा कैसे आचरण करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।**
**शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥३०॥**

**पदार्थ**—( **यत्** ) जो राजा ( **हरिण** ) हरिण जैसे ( **यवम्** ) खेत मे उगे हुए जौ आदि को ( **अत्ति** ) खाता है वैसे ( **पुष्टम्** ) पुष्ट ( **पशु** ) देखने योग्य अपने प्रजाजन को ( **न** ) नहीं ( **मन्यते** ) मानता अर्थात् प्रजा को हृष्ट पुष्ट नहीं देख के, खाता है वह ( **यत** ) जो ( **अर्य्यजारा** ) स्वामी वा वैश्य कुल को अवस्था से बुड्ढा करने हारी दासी ( **शूद्रा** ) शूद्र की स्त्री के समान ( **पोषाय** ) पुष्टि के लिये ( **न** ) नहीं ( **धनायति** ) अपने धन को चाहता है ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—जो राजा पशु के समान व्यभिचार मे वर्त्तमान प्रजा की पुष्टि को नहीं करता वह धनाढ्य शूद्रकुल की स्त्री जो कि जारकर्म करती हुई दासी है उस के समान शीघ्र रोगी होकर अपनी पुष्टि का विनाश करके धनहीनता से दरिद्र हुआ मरता है इस से राजा न कभी ईर्ष्या और न व्यभिचार का आचरण करे ॥ ३० ॥

**यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वह राजा किस हेतु से नष्ट होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते ।**
**शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥३१॥**

**पदार्थ**—( **यत** ) जो ( **शूद्र** ) मूर्खों के कुल मे जन्मा हुआ मूढजन ( **अर्य्यायै** ) अपने स्वामी अर्थात् जिस का सेवक उसकी वा वैश्यकुल की स्त्री के अर्थ ( **जार** ) जार अर्थात् व्यभिचार से अपनी अवस्था का नाश करने वाला होता है वह जैसे ( **पोषम्** ) पुष्टि का ( **न** ) नहीं ( **अनुमन्यते** ) अनुमान रखता वा ( **यत्** ) जो राजा ( **हरिण** ) हरिण जैसे ( **यवम्** ) उगे हुए जौ आदि को ( **अत्ति** ) खाता है वैसे ( **पुष्टम्** ) धन सन्तान स्त्री सुख ऐश्वर्य्य आदि से पुष्ट अपने प्रजाजन को ( **बहु** ) अधिक ( **न** ) नहीं ( **मन्यते** ) मानता वह सब ओर से क्षीण नष्ट और भ्रष्ट होता है ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा और राजपुरुष परस्त्रीवेश्यागमन के लिये पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं उन को सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं जैसे शूद्र मूर्खजन श्रेष्ठो के कुल मे व्यभिचारी होकर सब को वर्णसंकर कर देता है वैसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य शूद्रकुल मे व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

**दधिक्राव्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर वह राजा किस के समान क्या बढ़ावे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।**
**सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽआयूꣳषि तारिषत् ॥३२॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! जैसे मैं ( **दधिक्राव्ण** ) जो धारण पोषण करने वालो को प्राप्त होता ( **वाजिन** ) बहुत वेगयुक्त ( **जिष्णो** ) जीतने और ( **अश्वस्य** ) शीघ्र जाने वाला है उस घोड़े के समान पराक्रम को ( **अकारिषम्** ) करूं वैसे आप ( **न** ) हम लोगो के ( **सुरभि** ) सुगन्धियुक्त ( **मुखा** ) मुखों के तुल्य पराक्रम को ( **प्र, करत्** ) भली भाँति करो और ( **न** ) हमारे ( **आयूꣳषि** ) आयुओ को ( **तारिषत्** ) उन की अवधि के पार पहुंचाओ ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—जैसे घोड़ों के सिखाने वाले घोड़ो को पराक्रम की रक्षा के नियम से बलिष्ठ और संग्राम मे जिताने वाले करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करने हारे कुमार और कुमारियो को पूरे ब्रह्मचर्य्य के सेवन से पण्डित पण्डिता कर उनको शरीर और आत्मा के बल के लिये प्रवृत्त करा के बहुत आयु वाले और अति युद्ध करने मे कुशल बनावें ॥ ३२ ॥

**गायत्रीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

**गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।**
**बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो विद्वान् जन ( **पङ्क्त्या** ) विस्तारयुक्त पङ्क्ति छन्द के ( **सह** ) साथ जो ( **गायत्री** ) गाने वाले की रक्षा करती हुई गायत्री ( **त्रिष्टुप्** ) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखो को रोकने वाला त्रिष्टुप् ( **जगती** ) जगत् के समान विस्तीर्ण अर्थात् फैली हुई जगती ( **अनुष्टुप्** ) जिस से पीछे से संसार के दुःखो को रोकते हैं वह अनुष्टुप् तथा ( **उष्णिहा** ) जिससे प्रातः समय की वेला को प्राप्त करता है उस उष्णिह् छन्द के साथ ( **बृहती** ) गम्भीर आशय वाली बृहती ( **ककुप्** ) ललित पदो के अर्थ से युक्त ककुप्छन्द ( **सूचीभिः** ) सूइयो से जैसे वस्त्र सिया जाता है वैसे ( **त्वा** ) तुझको ( **शम्यन्तु** ) शान्तियुक्त करें वा सब विद्याओ का बोध करावें उनका तू सेवन कर ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दो के अर्थ को बताने से मनुष्यो को विद्वान् करते हैं और सूई से फटे वस्त्र की सीवें त्यों अलग अलग मत वालों का सत्य मे मिलाप कर देते हैं और उन को एक मत में स्थापन करते हैं वे जगत् के कल्याण करने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

**द्विपदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।**
**विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३४॥**

**पदार्थ**—जो विद्वान् जन ( **सूचीभि** ) सन्धियो को मिला देने वाली क्रियाओ से ( **या** ) जो ( **द्विपदा** ) दो दो पद वाली वा जो ( **चतुष्पदा** ) चार चार पद वाली वा ( **त्रिपदा** ) तीन पदों वाली ( **च** ) और ( **या** ) जो ( **षट्पदा** ) छः पदो वाली जो ( **विच्छन्दा** ) अनेकविध पराक्रमो वाली ( **च** ) और ( **या** ) जो ( **सच्छन्दा** ) ऐसी हैं कि जिन मे एक से छन्द हैं वे क्रिया ( **त्वा** ) तुम को ग्रहण कराके ( **शम्यन्तु** ) शान्ति सुख को प्राप्त करावें उनका नित्य सेवन करो ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् मनुष्यो को ब्रह्मचर्य्य नियम से वीर्य्यवृद्धि को पहुंचा कर नीरोग जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके धर्मयुक्त व्यवहार मे चलाते हैं वे सब के पूज्य अर्थात सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥ ३४ ॥

**महानाम्न्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।**
**मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥**

**पदार्थ**—हे ज्ञान चाहने हारे ! ( **सूचीभि** ) सन्धान करने वाली क्रियाओं से जो ( **महानाम्न्य** ) बड़े नाम वाली ( **रेवत्य** ) बहुत प्रकार के धन और ( **प्रभूवरी** ) प्रभुता से युक्त ( **विश्वा** ) समस्त ( **आशा** ) दिशाओ के समान ( **मैघी** ) वा मेघो की तड़फ ( **विद्युत** ) जो बिजुली उन के समान ( **वाच** ) वाणी ( **त्वा** ) तुझ को ( **शम्यन्तु** ) शान्तियुक्त करें उन का तू ग्रहण कर ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिन की वाणी दिशा के तुल्य सब विद्याओ मे व्याप्त होने और मेघ मे ठहरी हुई बिजुली के समान अर्थ का प्रकाश करने वाली हैं वे विद्वान् शान्ति से जितेन्द्रियता को प्राप्त होकर बड़ी कीर्त्ति वाले होते हैं ॥ ३५ ॥

**नार्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब कन्या कितना ब्रह्मचर्य करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।**
**देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥**

**पदार्थ**—हे पण्डिता पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री ! जो कुमारी ( **मनीषया** ) तीक्ष्ण बुद्धि से ( **ते** ) तेरी ( **लोम** ) अनुकूल आज्ञा को ( **विचिन्वन्तु** ) इकट्ठा करें वे ( **देवानाम्** ) पण्डितो की ( **नार्य्य** ) पण्डितानी हों । हे कुमारी ! जो पण्डितो की ( **पत्न्य** ) पण्डितानी होके ( **सूचीभिः** ) मिलाप की क्रियाओं से ( **दिश** ) दिशाओ के समान शुद्ध पाकविद्या पढ़ी हुई हैं वे ( **त्वा** ) तुझे ( **शम्यन्तु** ) शान्ति और ज्ञान दें ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—जो कन्या प्रथम अवस्था में सोलह वर्ष की अवस्था से चौबीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य से विद्या उत्तम शिक्षा को पाकर अपने सदृश पुरुषों की पत्नी हों वे दिशाओं के समान उत्तम प्रकाशयुक्त कीर्ति वाली हों ॥ ३६ ॥

रजता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर वे कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।**
**अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥३७॥**

**पदार्थ**—जैसे स्वयंवर विवाह से विवाही हुई स्त्री ( वाजिनः ) प्रशंसित बल युक्त ( अश्वस्य ) उत्तम गुणों में व्याप्त अपने पति के ( त्वचि ) उढ़ाने में ( युज्यन्ते ) संयुक्त की जाती अर्थात् पति को वस्त्र उढ़ाने आदि सेवा में लगाई जाती हैं वैसे ( कर्मभिः ) धर्मयुक्त क्रियाओं से ( रजताः ) अनुराग अर्थात् प्रीति को प्राप्त हुई ( हरिणीः ) जिन का प्रशंसित स्वीकार करना है वे ( सीसाः ) प्रेमवाली ( युजः ) सावधान चित्त उचित काम करने वाली ( शम्यन्तीः ) शान्ति को प्राप्त होती वा प्राप्त कराती हुई वा ( सिमाः ) प्रेम से बन्धी स्त्री अपने हृदय से प्रिय पतियों को प्राप्त होके ( शम्यन्तु ) आनन्द भोगें ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त आप विवाह को प्राप्त स्त्री पुरुष अपनी इच्छा से एक दूसरे से प्रीति किये हुए विवाह को करते हैं वे लावण्य अर्थात् अतिसुन्दरता गुण और उत्तम स्वभावयुक्त सन्तानों को उत्पन्न कर सदा आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ३७ ॥

कुविदङ्गेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभासदो देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*अब पढ़ने और पढ़ाने हारे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।**
**इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥३८॥**

**पदार्थ**—हे ( अङ्ग ) मित्र ! ( कुवित् ) बहुत विज्ञानयुक्त तू ( इहेह ) इस इस व्यवहार में ( एषाम् ) इन मनुष्यों से ( यथा ) जैसे ( यवमन्तः ) बहुत जौ आदि अन्नयुक्त खेती करने वाले ( यवम् ) जौ आदि अनाज के समूह को बुस आदि से ( वियूय ) पृथक् कर ( चित् ) और ( अनुपूर्वम् ) क्रम से ( दान्ति ) छेदन करते हैं उन के और ( ये ) जो ( बर्हिषः ) जल वा ( नमउक्तिम् ) अन्नसम्बन्धी वचन को ( यजन्ति ) कह कर सत्कार करते हैं उन के ( भोजनानि ) भोजनों को ( कृणुहि ) करो ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे पढ़ाने और पढ़ने वालो ! तुम लोग जैसे खेती करने हारे एक दूसरे के खेत को पारी से काटते और भूसा से अन्न को अलग कर औरों को भोजन कराके फिर आप भोजन करते हैं वैसे ही यहां विद्या के व्यवहार में निष्कपट भाव से विद्यार्थियों को पढ़ाने वालों की सेवा और पढ़ाने वालों को विद्यार्थियों की विद्यावृद्धि कर एक दूसरे का खान पान से सत्कार कर सब कोई आनन्द भोगें ॥ ३८ ॥

कस्त्वा छ्यतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापको देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः ॥
षड्जः स्वरः ॥

*फिर पढ़ानेवाले विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति ।**
**कऽउ ते शमिता कविः ॥३९॥**

**पदार्थ**—हे पढ़ने वाले विद्यार्थिजन ! ( त्वा ) तुझे ( कः ) कौन ( आच्छ्यति ) छेदन करता ( कः ) कौन ( त्वा ) तुझे ( विशास्ति ) अच्छा सिखाता ( कः ) कौन ( ते ) तेरे ( गात्राणि ) अङ्गों को ( शम्यति ) शान्ति पहुँचाता और ( कः ) कौन ( उ ) तो ( ते ) तेरा ( शमिता ) यज्ञ करनेवाला ( कविः ) समस्त शास्त्र जानता हुआ पढ़ाने हारा है ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—अध्यापक लोग पढ़ने वालों के प्रति ऐसे परीक्षा में पूछें कि कौन तुम्हारे पढ़ने को काटते अर्थात् पढ़ने में विघ्न करते, कौन तुमको पढ़ने के लिये उपदेश देते हैं, कौन अङ्गों की शुद्धि और योग्य चेष्टा को जनाते हैं कौन पढ़ाने वाला है क्या पढ़ने योग्य है ऐसे ऐसे पूछ उत्तम परीक्षा कर उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार देके विद्या की उन्नति करावें ॥ ३९ ॥

ऋतव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर स्त्री पुरुष कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋतवस्तऽऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु ।**
**संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥४०॥**

**पदार्थ**—हे विद्यार्थी जन ! जैसे ( ते ) तेरे ( ऋतवः ) वसन्त आदि ऋतु ( ऋतुथा ) ऋतु ऋतु के गुणों से ( पर्व ) पालना करें ( शमितारः ) वैसे पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ में शम दम आदि गुणों की प्राप्ति कराने हारे अध्यापक पढ़ने वालों को ( वि शासतु ) विशेषता से उपदेश करें ( संवत्सरस्य ) और संवत् के ( तेजसा ) जल ( शमीभिः ) और कर्मों से ( त्वा ) तुझे ( शम्यन्तु ) शान्ति दें उनकी तू सदैव सेवा कर ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ऋतु पारी से अपने २ चिह्नों को प्राप्त होते हैं वैसे स्त्री पुरुष पारी से ब्रह्मचर्य गृहस्थ का धर्म, वानप्रस्थ वन में रहकर तप करना और संन्यास आश्रम को करके ब्राह्मण और ब्राह्मणी पढ़ावें, क्षत्रिय और क्षत्रिया प्रजा की रक्षा करें वैश्य और वैश्या खेती आदि की उन्नति करें और शूद्र शूद्रा उक्त ब्राह्मण आदि की सेवा किया करें ॥ ४० ॥

अर्द्धमासा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*अब बालकों में माता आदि कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अर्द्धमासाः परूंषि ते मासाऽआ च्छ्यन्तु शम्यन्तः ।**
**अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥४१॥**

**पदार्थ**—हे विद्यार्थी लोग ! ( अहोरात्राणि ) दिन रात ( अर्द्धमासाः ) उजले अंधियारे पखवाड़े और ( मासाः ) चैत्रादि महीने जैसे आयु अर्थात् उमरों को काटते हैं वैसे ( ते ) तेरे ( परूंषि ) कठोर वचनों को ( शम्यन्तः ) शान्ति पहुँचाते हुए ( मरुतः ) उत्तम मनुष्य दुष्ट कामों का ( आच्छ्यन्तु ) विनाश करें और ( ते ) तेरे ( विलिष्टम् ) थोड़े भी कुव्यसन को ( सूदयन्तु ) दूर करें ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो माता पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा अतिथि लोग बालकों के दुष्ट गुणों को न निवृत्त करें तो वे शिष्ट अर्थात् उत्तम कभी न हों ॥ ४१ ॥

दैव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापको देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

*अब पढ़ानेवाले आदि सज्जन कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**दैव्याऽअध्वर्यवस्त्वा च्छ्यन्तु वि च शासतु ।**
**गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे विद्यार्थी वा विद्यार्थिनी ! ( दैव्याः ) विद्वानों में कुशल ( अध्वर्यवः ) अपनी रक्षारूप यज्ञ को चाहते हुए अध्यापक उपदेशक लोग ( त्वा ) तुझे ( वि, शासतु ) विशेष उपदेश दें ( च ) और ( ते ) तेरे दोषों का ( आ, च्छ्यन्तु ) विनाश करें ( पर्वशः ) सन्धि सन्धि से ( गात्राणि ) अङ्गों को परखें ( सिमाः ) प्रेम से बँधी हुई ( शम्यन्तीः ) दुष्ट स्वभाव को दूर करती हुई माता आदि सती स्त्रियां भी ऐसी ही शिक्षा ( कृण्वन्तु ) करें ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—अध्यापक उपदेशक और अतिथि लोग जब बालकों को सिखलावें तब दोषों का विनाश कर उन को विद्या की प्राप्ति करावें ऐसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री भी कन्याओं के प्रति आचरण करें और वैद्यक शास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर औषधि भी देवें ॥ ४२ ॥

द्यौरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*फिर अध्यापकादि कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।**
**सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे पढ़ने वा पढ़ाने हारी स्त्रियो ! जैसे ( द्यौः ) प्रकाशरूप बिजुली ( पृथिवी ) भूमि ( अन्तरिक्षम् ) आकाश ( वायुः ) पवन ( सूर्यः ) सूर्यलोक और ( नक्षत्रैः ) तारागणों के ( सह ) साथ चन्द्रलोक ( ते ) तेरे ( छिद्रम् ) प्रत्येक इन्द्रिय को ( पृणातु ) सुख देवें ( ते ) तेरे व्यवहार को सिद्ध करें ( ते ) तेरे ( साधुया ) उत्तम सत्य ( लोकम् ) देखने योग्य लोक को ( कृणोतु ) सिद्ध करें ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पृथिवी आदि सुख देने और सूर्य आदि पदार्थ प्रकाश करने वाले हैं वैसे ही पढ़ानेवाले और उपदेश करनेवाले वा पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री सबको अच्छे मार्ग में स्थापन कर विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करें ॥ ४३ ॥

शन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*फिर माता आदि को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मंत्र में कहा है—*

**शन्ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।**
**शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे विद्या चाहने वाले ! जैसे पृथिवी आदि तत्त्व ( तव ) तेरे ( तन्वै ) शरीर के लिये ( शम् ) सुख हेतु ( अस्तु ) हो वा ( परेभ्यः ) अत्यन्त उत्तम ( गात्रेभ्यः ) अङ्गों के लिये ( शम् ) सुख ( उ ) और ( अवरेभ्यः ) उत्तमों से

न्यून मध्य तथा निकृष्ट अङ्गो के लिये ( शम् ) सुखरूप (अस्तु) हो और (अस्थभ्य ) हड्डी ( मज्जभ्य ) और शरीर मे रहने वाली चर्बी के लिये ( शम् ) सुखहेतु हो वैसे अपने उत्तम गुण कर्म और स्वभाव से अध्यापक लोग ( ते ) तेरे लिये सुख के करने वाले हो ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता पिता पढ़ाने और उपदेश करने वालो का अपने सन्तानो के पुष्ट अग और पुष्ट धातु हो जिनसे दूसरो के कल्याण करने के योग्य हो वैसे पढाना और उपदेश करना चाहिये ॥ ४४ ॥

क स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । जिज्ञासुर्देवता । निचृदनुष्टुप छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

अब विद्वानों के प्रति प्रश्न ऐसे करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः ।
कि९ स्विद्धिमस्य भेषज किम्वावपन महत् ॥४५॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! इस ससार म ( क, स्वित ) कौन ( एकाकी ) एका एकी अकेला (चरति) चलता वा प्राप्त होता है (उ) और (क, स्वित) कौन(पुन ) फिर फिर ( जायते ) उत्पन्न होता ( कि, स्वित् ) कौन (हिमस्य) शीत का ( भेषजम् ) औषध ( किम उ ) और क्या ( महत ) बडा ( आवपनम् ) अच्छे प्रकार सब बीज बोने का आधार है इस सबको आप कहिये ॥ ४५ ॥

भावार्थ—बिना सहाय के कौन भ्रमता, कौन फिर फिर उत्पन्न होता शीत की निवृत्ति कर्त्ता कौन और बडा उत्पत्ति का स्थान क्या है इन सब प्रश्नो के समाधान अगले मन्त्र से जानने चाहियें । ४५ ॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सूर्यादयो देवता । अनुष्टुप छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

फिर पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र म कहते हैं—

सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषज भूमिरावपन महत् ॥४६॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जानने की इच्छा करने वाले पुरुष ! ( सूर्य्य ) सूर्यलोक ( एकाकी ) अकेला ( चरति ) स्वपरिधि म घूमता है (चन्द्रमा ) आन द देनवाला चन्द्रमा ( पुन ) फिर फिर (जायते) प्रकाशित होता है (अग्नि ) पावक ( हिमस्य ) शीत का ( भेषजम् ) औषध और ( महत ) बडा ( आवपनम् ) अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिसमे सब वस्तु बोते हैं ( भूमि ) वह भूमि है ॥ ४६ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! सूर्य अपनी ही परिधि मे घूमता है किसी लोकान्तर के चारो ओर नहीं घूमता । चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजो के बोने को बड़ा क्षेत्र भूमि ही है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ४६ ॥

कि स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । जिज्ञासुर्देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

फिर प्रश्नो को अगले मन्त्र मे कहते है—

कि९स्वित्सूर्य्यसम ज्योति कि९समुद्रसम९सर ।
कि९स्वित्पृथिव्यै वर्षीय. कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (कि, स्वित्) कौन (सूर्यसमम्) सूर्य के समान (ज्योति ) प्रकाशस्वरूप ( किम् ) कौन ( समुद्रसमम् ) समुद्र के समान ( सर ) जिसमे जल बहते वा गिरते वा आते जाते हैं ऐसा तालाब (कि स्वित) कौन (पृथिव्यै) पृथिवी से ( वर्षीय ) अति बडा और ( कस्य ) किसका ( मात्रा ) जिससे तोल हो वह परिमाण ( न ) नहीं ( विद्यते ) विद्यमान है ॥ ४७ ॥

भावार्थ—आदित्य के तुल्य तेजस्वी समुद्र के समान जलाधार और भूमि से बड़ा कौन है और किसका परिमाण नहीं है इन चार प्रश्नो का उत्तर अगले मन्त्र मे जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

ब्रह्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । ब्रह्मादयो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वर ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ब्रह्म सूर्य्यसम ज्योतिर्द्यौ समुद्रसम९सर ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥

पदार्थ—हे ज्ञान चाहने वाले जन ! तू (सूर्य्यसमम्) सूर्य्य के समान(ज्योति ) स्वप्रकाशस्वरूप ( ब्रह्म ) सबसे बडे अनन्त परमेश्वर ( समुद्रसमम् ) समुद्र के समान ( सर ) ताल ( द्यौ ) अन्तरिक्ष (पृथिव्यै) पृथिवी से ( वर्षीयान् ) बडा (इन्द्र ) सूर्य और ( गो ) वाणी का (तु) तो (मात्रा) मान परिमाण ( न ) नहीं (विद्यते) विद्यमान है इसको जान ॥ ४८ ॥

भावार्थ—कोई भी, आप प्रकाशमान जो ब्रह्म है उसके समान ज्योति विद्यमान नहीं वा सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान जल के ठहरने का स्थान वा सूर्य मण्डल के तुल्य लोकेश वा वाणी के तुल्य व्यवहार का सिद्ध करने हारा कोई भी पदार्थ नहीं होता इसका निश्चय सब करें ॥ ४८ ॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । प्रष्टसमाधातारौ देवते । अनुष्टुप्छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्व भुवनमाविवेशाँ३ ॥४९॥

पदार्थ—हे ( देवसख ) विद्वानों के मित्र ! यदि जो (त्वम्) तू (अत्र) यहां ( मनसा ) अन्त करण से ( जगन्थ ) प्राप्त हो तो ( त्वा ) तुझे ( चितये ) चेतन के लिये (पृच्छामि) पूछता हूं जो ( विष्णु ) व्यापक ईश्वर ( येषु ) जिन (त्रिषु) तीन प्रकार के ( पदेषु ) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम और स्थान मे (एष्ट ) अच्छे प्रकार इष्ट है ( तेषु ) उनमे व्याप्त हुआ (विश्वम) सम्पूर्ण (भुवनम) पृथिवी आदि लोको को ( आ विवेश ) भली भांति प्रवेश कर रहा है उस परमात्मा को भी तुझ से पूछता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! जो चेतनस्वरूप सर्वव्यापी पूजा उपासना, प्रशंसा, स्तुति करने योग्य परमेश्वर है उसका मेरे लिये उपदेश करो ॥ ४९ ॥

अपीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । ईश्वरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्व भुवनमा विवेश ।
सद्य पर्य्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवोऽअस्य पृष्ठम् ॥५०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगत् का रचनेहारा ईश्वर मैं (येषु) जिन (त्रिषु) तीन ( पदेषु ) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम स्थानो म ( विश्वम ) समस्त (भुवनम) जगत् ( आविवेश ) सब ओर से प्रवेश को प्राप्त हो रहा है ( तेषु ) उन जन्म नाम और स्थानो म ( अपि ) भी मैं व्याप्त ( अस्मि ) हूं (अस्य) इस (दिव ) प्रकाशमान सूर्य आदि लोको के ( पृष्ठम ) ऊपरले भाग ( पृथिवीम ) भूमि वा अन्तरिक्ष ( उत ) और ( द्याम ) समस्त प्रकाश को (एकेन) एक ( अङ्गेन ) अति मनोहर प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा देश से (सद्य ) शीघ्र (परि, एमि) सब ओर से प्राप्त हूं उस मेरी उपासना तुम सब किया करो ॥ ५० ॥

भावार्थ—जैसे सब जीवो के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि मै कार्य्य कारणात्मक जगत् म व्याप्त हूं मेरे विना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है । सो मैं जहां जगत् नहीं है वहां भी अनन्त स्वरूप से परिपूर्ण हूं । जो इस अतिविस्तारयुक्त जगत् को आप लोग देखते हैं सो यह मेरे आगे अणुमात्र भी नहीं है इस बात को वैसे ही विद्वान् सबको जनावे ॥ ५० ॥

केष्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । पुरुषेश्वरो देवता । पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब ईश्वर विषय में दो प्रश्न कहते है—

केष्वन्त. पुरुषऽआ विवेश कान्यन्त पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किंस्विन्न ः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

पदार्थ—हे ( ब्रह्मन् ) वेदज्ञविद्वन् ! ( केषु ) किन मे (पुरुष ) सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर ( अन्त ) भीतर ( आ, विवेश ) प्रवेश कर रहा है और ( कानि ) कौन ( पुरुषे ) पूर्ण ईश्वर मे ( अन्त ) भीतर ( अर्पितानि ) स्थापन किये हैं जिस कारण से हम लोग ( उप वल्हामसि ) प्रधान हो ( एतत ) यह ( त्वा ) आपको पूछते हैं सो ( कि स्वित ) क्या है ( अत्र ) इसमे ( न ) हमारे ( प्रति ) प्रति (वोचासि) कहिये ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इतर मनुष्यो को चाहिये कि चारो वेद के ज्ञाता विद्वान् को ऐसे पूछें कि हे वेदज्ञ विद्वन् ! पूर्ण परमेश्वर किन मे प्रविष्ट है और कौन उसके अन्तर्गत हैं । यह बात आपसे पूछी है यथार्थता से कहिये जिस के ज्ञान से हम उत्तम हों ॥ ५१ ॥

पञ्चस्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । परमेश्वरो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवत स्वर ॥

पूर्व मन्त्र मे कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

पञ्चस्वन्तः पुरुषऽआविवेश तान्यन्त पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पदार्थ—हे जानने की इच्छा वाले पुरुष ( पञ्चसु ) पांच भूतों वा उनकी सूक्ष्म मात्राओ मे ( अन्त ) भीतर ( पुरुष ) पूर्ण परमात्मा ( आ, विवेश ) अपनी व्याप्ति से अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है ( तानि ) वे पञ्चभूत वा तन्मात्रा (पुरुषे) पूर्ण परमात्मा पुरुष के ( अन्त ) भीतर ( अर्पितानि ) स्थापित किये हैं ( एतत् ) यह ( अत्र ) इस जगत् मे (त्वा) आपको ( प्रतिमन्वान ) प्रत्यक्ष जानता हुआ मैं समाधानकर्त्ता (अस्मि) हूं जो (मायया) उत्तम बुद्धि से युक्त तू (भवसि) होता है तो (मत्) मुझसे (उत्तर ) उत्तम समाधानकर्त्ता कोई भी (न) नहीं है, यह तू जान ॥५२॥

**भावार्थ**—परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! मेरे ऊपर कोई भी नहीं है । मैं ही सब का आधार सब में व्याप्त होके धारण करता हूँ । मेरे व्याप्त होने से सब पदार्थ अपने अपने नियम में स्थित हैं । हे सब से उत्तम योगी विद्वान् लोगो ! आप लोग इस मेरे विज्ञान को जनाओ ॥५२॥

**कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं—*

**का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳬस्विदासीद् बृहद्वयः ।**

**का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत् पिशङ्गिला ॥५३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! इस जगत् में ( का स्वित् ) कौन ( पूर्वचित्तिः ) पूर्व अनादि समय में संचित होनेवाली ( आसीत् ) है ( किं, स्वित् ) क्या ( बृहत् ) बड़ा ( वयः ) उत्पन्न स्वरूप ( आसीत् ) है ( का, स्वित् ) कौन ( पिलिप्पिला ) पिलपिली चिकनी ( आसीत् ) है और ( का स्वित् ) कौन ( पिशङ्गिला ) अवयवों को भीतर करने वाली ( आसीत् ) है यह आप को पूछता हूँ ॥५३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं उनके समाधान अगले मन्त्र में देखने चाहियें ॥ ५३ ॥

**द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*पूर्व मन्त्र के प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः ।**

**अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥५४॥**

**पदार्थ**—हे जिज्ञासु मनुष्य ! ( द्यौः ) बिजुली ( पूर्वचित्तिः ) पहिला संचय ( आसीत् ) है ( अश्वः ) महत्तत्त्व ( बृहत् ) बड़ा ( वयः ) उत्पत्ति स्वरूप ( आसीत् ) है ( अविः ) रक्षा करने वाली प्रकृति ( पिलिप्पिला ) पिलपिली चिकनी ( आसीत् ) है ( रात्रिः ) रात्रि के समान प्रलय ( पिशङ्गिला ) सब अवयवों को निगलने वाला ( आसीत् ) है यह तू जान ॥ ५४॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो अतिसूक्ष्म विद्युत् है सो प्रथम परिणाम महत्तत्त्व रूप द्वितीय परिणाम और प्रकृति सब का मूल कारण परिणाम से रहित है और प्रलय सब स्थूल जगत् का विनाशरूप है यह जानना चाहिये ॥५४॥

**का ईमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*फिर अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं—*

**काऽईमरे पिशङ्गिला काऽईं कुरुपिशङ्गिला ।**

**कऽईमास्कन्दमर्षति कऽईं पन्थां वि सर्पति ॥५५॥**

**पदार्थ**—( अरे ) हे विदुषि स्त्रि ! ( का ईम् ) कौन वार वार ( पिशङ्गिला ) रूप का आवरण करने हारी ( का, ईम् ) कौन वार वार ( कुरुपिशङ्गिला ) यवादि अन्नों के अवयवों को निगलने वाली ( कः, ईम् ) कौन वार वार ( आस्कन्दम् ) न्यारी न्यारी चाल को ( अर्षति ) प्राप्त होता और ( कः ) कौन ( ईम् ) जल के ( पन्थाम् ) मार्ग को ( वि, सर्पति ) विशेष पसर के चलता है ॥५५॥

**भावार्थ**—किससे रूप का आवरण और किस से खेती आदि का विनाश होता कौन शीघ्र भागता और कौन मार्ग में पसरता है ये चार प्रश्न हैं इन के उत्तर अगले मन्त्र में जानो ॥ ५५ ॥

**अजेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।**

**शशऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥५६॥**

**पदार्थ**—( अरे ) हे मनुष्यो ! ( अजा ) जन्मरहित प्रकृति ( पिशङ्गिला ) विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलनेवाली ( श्वावित् ) सेही ( कुरुपिशङ्गिला ) किये हुए खेती आदि के अवयवों का नाश करती है ( शशः ) खरहा के तुल्य वेगयुक्त कृषि आदि में खरखराने वाला वायु ( आस्कन्दम् ) अच्छे प्रकार कूदके चलने अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को शीघ्र ( अर्षति ) प्राप्त होता और ( अहिः ) मेघ ( पन्थाम् ) मार्ग में ( वि सर्पति ) विविध प्रकार से जाता है इस को तुम जानो ॥५६॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो प्रकृति सब कार्यरूप जगत् का प्रलय करने हारी कार्य्यकारणरूप अपने कार्य को अपने में लय करने हारी है जो सेही खेती आदि का विनाश करती है जो वायु खरहा के समान चलता हुआ सब को सुखाता है और जो मेघ सांप के समान पृथिवी पर जाता है उन सब को जानो ॥५६॥

**कत्यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं—*

**कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।**

**यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५७॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( अस्य ) इस ( यज्ञस्य ) संयोग से उत्पन्न हुए संसार रूप यज्ञ के ( कति ) कितने ( विष्ठाः ) विशेष कर संसाररूप यज्ञ जिसमें स्थित हों वे ( कति ) कितने इस के ( अक्षराणि ) जलादि साधन ( कति ) कितने ( होमासः ) देने लेने योग्य पदार्थ ( कतिधा ) कितने प्रकारों से ( समिद्धः ) ज्ञानादि के प्रकाशक पदार्थ समिध रूप ( कति ) कितने ( होतारः ) होता अर्थात् देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता ( ऋतुशः ) वसन्तादि प्रत्येक ऋतु में ( यजन्ति ) संगम करते हैं इस प्रकार ( अत्र ) इस विषय में ( विदथा ) विज्ञानों को ( त्वा ) आप से मैं ( पृच्छम् ) पूछता हूँ ॥ ५७ ॥

**भावार्थ**—यह जगत् कहां स्थित है कितने इस की उत्पत्ति के साधन कितने व्यापार के योग्य वस्तु कितने प्रकार का ज्ञानादि प्रकाशक वस्तु और कितने व्यवहार करने हारे हैं इन पांच प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जान लेना चाहिये ॥५७॥

**षडस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समिधा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।**

**यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५८॥**

**पदार्थ**—हे जिज्ञासु लोगो ! ( अस्य ) इस ( यज्ञस्य ) संगत जगत् के ( षट् ) छः ऋतु ( विष्ठाः ) विशेष स्थिति के आधार ( शतम् ) असंख्य ( अक्षराणि ) जलादि उत्पत्ति के साधन ( अशीतिः ) असंख्य ( होमाः ) देने लेने योग्य वस्तु ( तिस्रः ) आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक तीन ( ह ) प्रसिद्ध ( समिधः ) ज्ञानादि की प्रकाशक विद्या ( सप्त ) पांच प्राण मन और आत्मा सात ( होतारः ) देने लेने योग्य आदि व्यवहार के कर्त्ता ( ऋतुशः ) प्रति वसन्तादि ऋतु में ( यजन्ति ) संगत होते हैं उस जगत् के ( विदथा ) विज्ञानों को ( ते ) तेरे लिये मैं ( प्रब्रवीमि ) कहता हूँ ॥५८॥

**भावार्थ**—हे ज्ञान चाहने वाले लोगो ! जिस जगत्रूप यज्ञ में छः ऋतु स्थिति के साधक असंख्य जलादि वस्तु व्यवहारसाधक बहुत व्यवहार के योग्य पदार्थ और सब प्राणी अप्राणी होता आदि संगत होते हैं और जिस में ज्ञान आदि का प्रकाश करने वाली तीन प्रकार की विद्या हैं उस यज्ञ को तुम लोग जानो ॥५८॥

**कोऽअस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं—*

**कोऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम् ।**

**कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥५९॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( अस्य ) इस ( भुवनस्य ) सब के आधारभूत संसार के ( नाभिम् ) बन्धन के स्थान मध्यभाग को ( कः ) कौन ( वेद ) जानता ( कः ) कौन ( द्यावापृथिवी ) सूर्य और पृथिवी तथा ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को जानता ( कः ) कौन ( बृहतः ) बड़े ( सूर्यस्य ) सूर्यमण्डल के ( जनित्रम् ) उपादान वा निमित्त कारण को ( वेद ) जानता और जो ( यतोजाः ) जिससे उत्पन्न हुआ है उस चन्द्रमा के उत्पादक को और ( चन्द्रमसम् ) चन्द्रलोक को ( कः ) कौन ( वेद ) जानता है इनका समाधान कीजिये ॥५९॥

**भावार्थ**—इस जगत् के धारणकर्त्ता बन्धन भूमि सूर्य अन्तरिक्ष महान् सूर्य के कारण और चन्द्रमा जिससे उत्पन्न हुआ है उसको कौन जानता है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं यह जानना चाहिये ॥५९॥

**वेदाहमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम् ।**

**वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥६०॥**

**पदार्थ**—हे जिज्ञासु पुरुष ! ( अस्य ) इस ( भुवनस्य ) सब के अधिकरण जगत् के ( नाभिम् ) बन्धन के स्थान कारणरूप मध्यभाग परब्रह्म को ( अहम् ) मैं ( वेद ) जानता हूँ तथा ( द्यावापृथिवी ) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकसमूहों और ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को भी ( वेद ) मैं जानता हूँ ( बृहतः ) बड़े ( सूर्यस्य ) सूर्यलोक के ( जनित्रम् ) उपादान तथा कारण और निमित्तकारण ब्रह्म को ( वेद ) मैं जानता हूँ ( अथो ) इस के अनन्तर ( यतोजाः ) जिस परमात्मा से उत्पन्न हुआ जो चन्द्र उस परमात्मा को तथा ( चन्द्रमसम् ) चन्द्रमा को ( वेद ) मैं जानता हूँ ॥ ६० ॥

**भावार्थ**—विद्वान् उत्तर देवे कि हे जिज्ञासु पुरुष ! इस जगत् के बन्धन अर्थात स्थिति के कारण प्रकाशित अप्रकाशित मध्यस्थ आकाश इन तीनो लोको के कारण और सूर्य्य चन्द्रमा के उपादान और निमित्तकारण इस सब को मैं जानता हूँ ब्रह्म ही इस सब का निमित्तकारण और प्रकृति उपादानकारण है ॥६०॥

**पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों का कहते हैं—*

**पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या. पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।**
**पृच्छामि त्वा वृष्णोऽअश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥६१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् जन ! मैं ( **त्वा** ) आपको ( **पृथिव्या** ) पृथिवी के ( **अन्तम, परम्** ) परभाग अवधि का (**पृच्छामि**) पूछता (**यत्र**) जहा इस (**भुवनस्य**) लोक का ( **नाभि** ) मध्य स खेंच के बन्धन करता है उसको ( **पृच्छामि** ) पूछता जो ( **वृष्ण** ) सेचनकर्त्ता ( **अश्वस्य** ) बलवान् पुरुष का ( **रेत** ) पराक्रम है उस को ( **पृच्छामि** ) पूछता और ( **वाच** ) तीन वेदरूप वाणी क ( **परमम्** ) उत्तम ( **व्योम** ) आकाशरूप स्थान को ( **त्वा** ) आप स ( **पृच्छामि** ) पूछता हूँ आप उत्तर कहिये ॥६१॥

**भावार्थ**—पृथिवी की सीमा क्या जगत् का आकर्षण से बन्धन कौन, बली जन का पराक्रम कौन और वाणी का पारगन्ता कौन है इन चार प्रश्नो के उत्तर अगले मन्त्र मे जानने चाहियें ॥ ६१ ॥

**इयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*पूर्व मन्त्र मे कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र मे कहे है—*

**इयं वेदिः परोऽअन्तः पृथिव्याऽअयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।**
**अयꣳ सोमो वृष्णोऽअश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाच. परमं व्योम ॥६२॥**

**पदार्थ**—हे जिज्ञासु जन ! ( **इयम्** ) यह ( **वेदि** ) मध्यरेखा (**पृथिव्या**) भूमि के ( **पर** ) परभाग की ( **अन्त** ) सीमा है ( **अयम्** ) यह प्रत्यक्ष गुणो वाला ( **यज्ञ** ) सब को पूजनीय जगदीश्वर ( **भुवनस्य** ) ससार की ( **नाभि** ) नियत स्थिति का बन्धक है ( **अयम्** ) यह ( **सोम** ) ओषधियो मे उत्तम अंशुमान् आदि सोम ( **वृष्ण** ) पराक्रमकर्त्ता ( **अश्वस्य** ) बलवान् जन का (**रेत**) पराक्रम है और ( **अयम्** ) यह ( **ब्रह्मा** ) चारो वेद का ज्ञाता ( **वाच** ) तीन वेदरूप वाणी का ( **परमम्** ) उत्तम ( **व्योम** ) स्थान है तू इसको जान ॥ ६२ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा की जावे तो वह ऊपर से भूमि के अन्त को प्राप्त होती हुई व्यासंसज्ञक होती है । यही भूमि की सीमा है । सब लोको के मध्य आकर्षणकर्त्ता जगदीश्वर है । सब प्राणियो का पराक्रमकर्त्ता ओषधियो मे उत्तम अंशुमान् आदि सोम है और वेदपारग पुरुष वाणी का पारगन्ता है यह तुम जानो ॥ ६२ ॥

**सुभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । समाधाता देवता । विराडनुष्टुप छन्द ।**
**गान्धार स्वर ॥**

*ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।**
**दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥६३॥**

**पदार्थ**—हे जिज्ञासु जन ! ( **यत** ) जिस जगदीश्वर से ( **प्रजापति** ) विश्व का रक्षक सूर्य ( **जात** ) उत्पन्न हुआ है और जो (**सुभू**) सुन्दर विद्यमान (**स्वयम्भूः**) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति नाश रहित (**प्रथम**) सब से प्रथम जगदीश्वर (**महति**) बड़े विस्तृत ( **अर्णवे** ) जलों से सम्बद्ध हुए ससार के ( **अन्त** ) बीच (**ऋत्वियम्**) समयानुकूल प्राप्त ( **गर्भम** ) बीज को ( **दधे** ) धारण करता है ( **ह** ) उसी की सब लोग उपासना करें ॥ ६३ ॥

**भावार्थ**—यदि मनुष्य लोग सूर्यादि लोको के उत्तम कारण प्रकृति को और उस प्रकृति मे उत्पत्ति की शक्ति को धारण करनेहारे परमात्मा को जानें तो वे जन इस जगत् मे विस्तृत सुख वाले होवें ॥ ६३ ॥

**होता यक्षदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक छन्द ।**
**ऋषभ स्वर ॥**

*ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः ।**
**जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥६४॥**

**पदार्थ**—हे ( **होत** ) दान देनेहारे जन ! जैसे ( **होता** ) ग्रहीता पुरुष ( **सोमस्य** ) सब ऐश्वर्य्य से युक्त ( **महिम्न** ) बड़प्पन के होने से ( **प्रजापतिम्** ) विश्व के पालक स्वामी की ( **यक्षत** ) पूजा करे वा उसका ( **जुषताम्** ) सेवन से प्रसन्न करे और ( **सोमम** ) सब उत्तम ओषधियो के रस को ( **पिबतु** ) पीवे वैसे तू ( **यज** ) उस की पूजा कर और उत्तम ओषधि क रस को पिया कर ॥ ६४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग इस जगत मे रचना आदि विशेष चिह्नो से परमात्मा के महिमा को जान के इस की उपासना करते हैं वैसे ही तुम लोग भी इस की उपासना करो जैसे ये विद्वान् युक्तिपूर्वक पथ्य पदार्थों का सेवन कर नीरोग होते हैं वैसे आप लोग भी हो ॥ ६४ ॥

**प्रजापते नेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । ईश्वरो देवता । विराट्त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

**प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।**
**यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६५॥**

**पदार्थ**—हे ( **प्रजापते** ) सब प्रजा के रक्षक स्वामिन् ईश्वर ! कोई भी ( **त्वत** ) आप से ( **अन्य** ) भिन्न ( **ता** ) उन ( **एतानि** ) इन पृथिव्यादि भूतों तथा ( **विश्वा** ) सब ( **रूपाणि** ) स्वरूपयुक्त वस्तुओ पर ( **न** ) नहीं (**परि, बभूव**) बलवान् है ( **यत्कामा** ) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले होकर ( **वयम्** ) हम लोग आप की ( **जुहुम** ) प्रशसा करें ( **तत** ) वह वह कामना के योग्य वस्तु ( **न** ) हम को ( **अस्तु** ) प्राप्त हो ( **ते** ) आपकी कृपा से हम लोग ( **रयीणाम** ) विद्या सुवर्ण आदि धनो के ( **पतय** ) रक्षक स्वामी ( **स्याम** ) होवें ॥ ६५ ॥

**भावार्थ**—जो परमेश्वर से उत्तम बड़ा ऐश्वर्ययुक्त सर्वशक्तिमान् पदार्थ कोई भी नहीं है तो उस के तुल्य भी कोई नही । जो सब का आत्मा सबको रचने वाला, समस्त ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है उसकी भक्तिविशेष और अपने पुरुषार्थ से इस लोक के ऐश्वर्य और योगाभ्यास के सेवन से परलोक के सामर्थ्य को हम लोग प्राप्त हो ॥६५॥

इस अध्याय म परमात्मा की महिमा सृष्टि के गुण, योग की प्रशसा प्रश्नोत्तर, सृष्टि के पदार्थों की प्रशसा राजा प्रजा के गुण शास्त्र आदि का उपदेश, पठन-पाठन स्त्री पुरुषो के परस्पर गुण, फिर प्रश्नोत्तर ईश्वर के गुण यज्ञ की व्याख्या और रेखागणित आदि का वर्णन किया है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

**अब तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# ॐ अथ चतुर्विंशाऽध्यायारम्भः ॐ

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**अश्व इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । प्रजापतिर्देवता । भुरिक्संकृतिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अथ चौबीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र मे मनुष्यों को पशुओं से कैसा उपकार लेना चाहिये इस विषय का वर्णन है—*

**अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीवऽआग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याᳬं सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छऽइन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम जो ( **अश्व** ) शीघ्र चलन हारा घोड़ा ( **तूपर** ) हिंसा करने वाला पशु ( **गोमृग** ) और गौ के समान वर्त्तमान नीलगाय है ( **ते** ) वे ( **प्राजापत्या** ) प्रजापालक सूर्य देवता वाले अर्थात् सूर्यमण्डल के गुणों से युक्त ( **कृष्णग्रीव** ) जिसकी काली गर्दन वह पशु ( **आग्नेय** ) अग्नि देवता वाला ( **पुरस्तात** ) प्रथम है ( **रराटे** ) ललाट के निमित्त ( **मेषी** ) भेड़ी ( **सारस्वती** ) सरस्वती देवता वाली ( **अधस्तात** ) नीचे से ( **हन्वो** ) ठोढ़ी वामदक्षिण भागों के और ( **बाह्वो** ) भुजाओं के निमित्त ( **अधोरामौ** ) नीचे रमण करने वाले ( **आश्विनौ** ) जिनका अश्विदेवता वे पशु ( **सौमापौष्ण** ) सोम और पूषा देवता वाला ( **श्याम** ) काले रंग से युक्त पशु ( **नाभ्याम** ) तुन्दी के निमित्त और ( **पार्श्वयो** ) बाईं दाहिनी ओर के निमित्त ( **श्वेत** ) सुफेद रंग ( **च** ) और ( **कृष्ण** ) काला रंग वाला ( **च** ) और ( **सौर्ययामौ** ) सूर्य वा यमसम्बन्धी पशु वा ( **सक्थ्यो** ) परों की गांठियों के पास के भागों के निमित्त ( **लोमशसक्थौ** ) जिस के बहुत रोम विद्यमान ऐसे गांठियों के पास के भाग से युक्त ( **त्वाष्ट्रौ** ) त्वष्टा देवता वाले पशु वा ( **पुच्छे** ) पूंछ के निमित्त ( **श्वेत** ) सुफेद रंग वाला ( **वायव्य** ) वायु जिस का देवता है वह वा ( **वेहत** ) जो कामोद्दीपन समय के विना बल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा ( **वैष्णव** ) विष्णु देवता वाला और ( **वामन** ) नाटा शरीर से कुछ टेढ़े अंगवाला पशु इन सबों को ( **स्वपस्याय** ) जिसके सुन्दर सुन्दर कर्म उस ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंग के स्थान निमित्तक उक्त गुण वाले पशुओं को नियत करो ॥१॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अश्व आदि पशुओं से कार्यों को सिद्ध कर ऐश्वर्य की उन्नति देके धर्म के अनुकूल काम करें वे उत्तम भाग्य वान हों । इस प्रकरण में सब स्थानों में देवता पद से उस पद के गुणयोग से पशु जानने चाहिये ॥ १ ॥

**रोहित इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सोमादयो देवता । निचृत्संकृतिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर कौन पशु कैसे गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( **रोहित** ) सामान्य लाल ( **धूम्ररोहित** ) धुमैला लाल और ( **कर्कन्धुरोहितः** ) पके बेर के समान लाल पशु हैं ( **ते** ) वे ( **सौम्या** ) सोमदेवता अर्थात् सोम गुण वाले । जो ( **बभ्रु** ) न्योला के समान धुमैला ( **अरुणबभ्रु** ) लालामी लिये हुए न्योले के समान रंगवाला और ( **शुकबभ्रु** ) सुग्गा की समता को लिये हुए न्योले के समान रंगयुक्त पशु हैं ( **ते** ) वे सब ( **वारुणा** ) वरुण देवता वाले अर्थात श्रेष्ठ जो ( **शितिरन्ध्रः** ) शितिरन्ध्र अर्थात् जिसके मर्म-स्थान आदि में सुपेदी ( **अन्यत शितिरन्ध्र** ) जो और अङ्ग से और अङ्ग मे छेदसे हों वसी जिसके जहां तहां सुपेदी ( **समन्तशितिरन्ध्र** ) और जिसके सब ओर से छेदों के समान सुपेदी के चिह्न हैं ( **ते** ) वे सब ( **सावित्रा** ) सविता देवता वाले ( **शितिबाहु** ) जिसके अगले भुजाओं में सुपेदी के चिह्न ( **अन्यत शितिबाहु** ) जिसके और अंग से और अङ्ग में सुपेदी के चिह्न और ( **समन्तशितिबाहु** ) जिस के सब ओर से अगले कोखों में सुपेदी के चिह्न हैं ऐसे जो पशु हैं ( **ते** ) वे ( **बार्हस्पत्या** ) बृहस्पति देवता वाले तथा जो ( **पृषती** ) सब अंगों से अच्छी छिटकी हुई सी ( **क्षुद्रपृषती** ) जिस के छोटे छोटे रंग विरंग छींटे और ( **स्थूलपृषती** ) जिस के मोटे मोटे छींटे हैं ( **ता** ) वे सब ( **मैत्रावरुण्य** ) प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥२॥

**भावार्थ**—जो चन्द्रमा आदि के उत्तम गुणवाले पशु हैं उन से उन उन के गुण के अनुकूल काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहियें ॥ २ ॥

**शुद्धवाल इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अश्व्यादयो देवता । निचृदतिजगतीछन्दः । निषाद स्वर ॥**

*फिर कैसे गुण वाले पशु है इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( **शुद्धवाल** ) जिसके शुद्ध वाल वा शुद्ध छोटे छोटे अंग ( **सर्वशुद्धवाल** ) जिसके समस्त शुद्ध वाल और ( **मणिवाल** ) जिसके मणि के समान चिलकते हुए वाल है ऐसे जो पशु ( **ते** ) वे सब ( **आश्विना** ) सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के समान स्निग्ध गुण वाले जो ( **श्येत** ) सुपेद रंगयुक्त ( **श्येताक्ष** ) जिसका सुपेद आंखें और ( **अरुण** ) जो लाल रंग वाला है ( **ते** ) वे ( **पशुपतय** ) पशुओं की रक्षा करने और ( **रुद्राय** ) दुष्टों का रुलानेहारे के लिये । जो ऐसे हैं कि ( **कर्णा** ) जिन से काम करते हैं वे ( **यामा** ) वायु देवता वाले ( **अवलिप्ता** ) जिन के उन्नतियुक्त अंग अर्थात् स्थूल शरीर है वे ( **रौद्रा** ) प्राण वायु आदि देवता वाले तथा ( **नभोरूपा** ) जिन का आकाश के समान नीला रूप है ऐसे जो पशु हैं वे सब ( **पार्जन्या** ) मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥३॥

**भावार्थ**—जो जिस पशु का देवता है वह उस का गुण है यह जानना चाहिये ॥ ३ ॥

**पृश्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । मरुतादयो देवता । विराडतिधृतिश्छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्तऽऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्तऽउषस्याः ॥४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **पृश्नि** ) पूछने योग्य ( **तिरश्चीनपृश्नि** ) जिस का तिरछा स्पर्श और ( **ऊर्ध्वपृश्नि** ) जिसका ऊंचा वा उत्तम स्पर्श है ( **ते** ) वे ( **मारुता** ) वायु देवता वाले । जो ( **फल्गू** ) फलों को प्राप्त हो ( **लोहितोर्णी** ) जिसकी लाल ऊर्णा अर्थात् देह के वाल और ( **पलक्षी** ) जिसकी चचल चपल आंखें ऐसे जो पशु हैं ( **ता** ) वे ( **सारस्वत्य** ) सरस्वती देवता वाले ( **प्लीहाकर्ण** ) जिस के कान में प्लीहा रोग के आकार चिह्न हो ( **शुण्ठाकर्ण** ) जिसके सूखे कान और जिस के ( **अध्यालोहकर्ण** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं ( **ते** ) वे सब ( **त्वाष्ट्रा** ) त्वष्टा देवता वाले जो ( **कृष्णग्रीव** ) काले गले वाले ( **शितिकक्ष** ) जिसके पांजर की ओर सुपेद अंग और ( **अञ्जिसक्थ** ) जिसकी प्रसिद्ध जङ्घा अर्थात् स्थूल होने से अलग विदित हो ऐसे जो पशु हैं ( **ते** ) वे सब ( **ऐन्द्राग्ना** ) पवन और बिजुली देवता वाले तथा ( **कृष्णाञ्जि** ) जिसकी करादी हुई चाल ( **अल्पाञ्जि** ) जिसकी थोड़ी चाल और ( **महाञ्जि** ) जिसकी बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं ( **ते** ) वे सब ( **उषस्या** ) उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥४॥

**भावार्थ**—जो पशु और पक्षी पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य गुण वा जो पवन और बिजुली गुण तथा जो प्रातःसमय की वेला के गुण वाले हैं उनसे उन्हीं के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहियें ॥ ४ ॥

**शिल्पा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृद्बृहतीछन्द । मध्यम स्वर ॥**

**शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को ( **शिल्पा** ) जो सुन्दर रूपवान् और शिल्पकार्यों की सिद्धि करने वाली ( **वैश्वदेव्य** ) विश्वेदेव देवता वाले ( **वाचे** ) वाणी के लिये ( **रोहिण्य** ) नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य ( **त्र्यवय** ) जो तीन प्रकार की भेड़ें ( **अवित्य** ) पृथिवी के लिये ( **अविज्ञाता** ) विशेषकर न जानी हुई भेड़ आदि ( **धात्र** ) धारण करने के लिये ( **सरूपा** ) एक से रूप वाली तथा ( **देवानाम्** ) दिव्यगुण वाले विद्वानो की ( **पत्नीभ्य** ) स्त्रियो के लिये ( **वत्सतर्य्य** ) अतीव छोटी छोटी थोड़ी अवस्था वाली बछिया जानना चाहियें ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—जो सब विद्वान् शिल्पविद्या से अनेको यान आदि बनावें और पशुओ की पालना कर उनसे उपयोग लेवें वे धनवान् हो ॥ ५ ॥

**कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्न्यादयो देवता । विराडुष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

## कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳬ रोहिता रुद्राणाᳬ श्वेता अवरोकिण आदित्याना नभोरूपा पार्जन्याः ॥६ ।

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **कृष्णग्रीवा** ) ऐसे है कि जिनकी खिची हुई गर्दन वा खिचा हुआ खाना निगलना व (**आग्नेया** ) अग्नि देवता वाले ( **शितिभ्रव** ) जिनकी सुपेद भौहे हैं वे ( **वसूनाम्** ) पृथिवी आदि वसुओ के । जो ( **रोहिता** ) लाल रग के हैं वे ( **रुद्राणाम्** ) प्राण आदि ग्यारह रुद्रो के । जो ( **श्वेता** ) सुपेद रग के और ( **अवरोकिण** ) अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं वे ( **आदित्यानाम्**) सूर्यसम्बन्धी महीनो के और जो (**नभोरूपा** ) ऐसे हैं जिनका जल के समान रूप है ये जीव (**पार्जन्या** ) मेघदेवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणो वाले जानने चाहियें ॥६॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि अग्नि की खीचने की पृथिवी आदि की धारण करने की पवनो की अच्छे प्रकार पढ़ने की सूर्य आदि की रोकने की और मेघो की जल वर्षाने की क्रिया को जानकर सब कामो मे सम्यक् निरन्तर उपयुक्त किया करें ॥ ६ ॥

**उन्नत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । इन्द्रादयो देवता । अतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

## उन्नतऽऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवाऽउन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिना कल्माषाऽ आग्निमारुता श्यामा पौष्णाः ॥७॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( **उन्नत** ) ऊचा ( **ऋषभ** ) और श्रेष्ठ ( **वामन** ) नाटा पशु है ( **ते** ) वे ( **ऐन्द्रावैष्णवा** ) बिजुली और पवन देवता वाले जो ( **उन्नत** ) ऊंचा (**शितिबाहु** ) जिसका दूसरे पदार्थ का काटती छांटती भुजाओ के समान बल और ( **शितिपृष्ठ** ) जिसकी सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं (**ते**) वे ( **ऐन्द्राबार्हस्पत्या** ) वायु और सूर्य देवता वाले ( **शुकरूपा** ) जिन का सुग्गो के समान रूप और (**वाजिना** ) वेग वाले (**कल्माषा** ) कबरे भी हैं वे (**आग्निमारुता** ) अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो ( **श्यामा** ) काले रग के हैं वे ( **पौष्णा** ) पुष्टिनिमित्तक मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥७ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य पशुओ की उन्नति और पुष्टि करते हैं वे नाना प्रकार के सुखो को पाते है ॥७॥

**एता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । इन्द्राग्न्यादयो देवता । विराड्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

## एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामनाऽअनड्वाहऽआग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतएन्यो मैत्र्य ।८।

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को ( **एता** ) ये पूर्वोक्त ( **द्विरूपा** ) द्विरूप पशु अर्थात् जिनके दो दो रूप है वे (**ऐन्द्राग्ना** ) वायु और बिजुली के सगी जो (**वामना** ) टेढ़े अङ्गो वाले व नाटे और ( **अनड्वाह** ) बैल हैं वे (**अग्नीषोमीया** ) सोम और अग्नि देवता वाले तथा (**आग्नावैष्णवा** ) अग्नि और वायु देवता वाले जो ( **वशा** ) बन्ध्या गौ हैं वे ( **मैत्रावरुण्य** ) प्राण और उदान देवता वाली और जो (**अन्यतएन्य** ) कही से प्राप्त हो वे ( **मैत्र्य** ) मित्र के प्रिय व्यवहार मे जानने चाहियें ॥८॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य वायु और अग्नि आदि के गुणो वाले गौ आदि पशु है उनकी पालना करते है वे सब का उपकार करने वाले होते हैं ॥८॥

**कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्न्यादयो देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

## कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रव सौम्याः श्वेता वायव्याऽअविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्य. ॥९॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को जो (**कृष्णग्रीवा** ) काले गले के हैं वे (**आग्नेया** ) अग्निदेवता वाले जो ( **बभ्रव** ) धोले के रग के समान रंग वाले हैं वे ( **सौम्या** ) साम देवता वाले जो ( **श्वेता** ) सुपेद हैं वे ( **वायव्या** ) वायु देवता वाले । जो ( **अविज्ञाता** ) विशेष चिह्न से कुछ न जाने गये वे (**अदित्यै**) जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्तिरूप क्रिया के लिये जो (**सरूपा** ) ऐसे हैं कि जिन का एकसा रूप है वे ( **धात्रे** ) धारण करने हारे पवन के लिये । और जो ( **वत्सतर्य** ) छोटी छोटी बछिया हैं वे ( **देवानाम्** ) सूर्य आदि लोको की ( **पत्नीभ्य** ) पालन करने वाली क्रियाओ के जानने चाहियें ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—जो पशु जोतने और निगलने वाले अग्नि के समान वर्त्तमान जो औषधि के समान गुणो को धारण करने और ढांपने वाले हैं वे पवन के समान वर्त्तमान जो नही जानने योग्य वे उत्पत्ति के लिये जो धारण करते हुए के तुल्य गुणयुक्त हैं वे धारण करने के लिये । तथा जो सूर्य की किरणो के समान वर्त्तमान पदार्थ हैं वे व्यवहारो की सिद्धि करने मे अच्छे प्रकार युक्त करने चाहियें ॥९॥

**कृष्णा भौमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अन्तरिक्षादयो देवता । विराड्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

## कृष्णा भौमा धूम्राऽआन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्या. शबला वैद्युताः सिध्मास्तारका ॥१०॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( **कृष्णा** ) काले रग के वा खेत आदि के जुताने वाले है वे ( **भौमा** ) भूमि देवता वाले । जो ( **धूम्रा** ) धुमेले हैं वे ( **आन्तरिक्षा** ) अन्तरिक्ष देवता वाले । जो ( **दिव्या** ) दिव्य गुण कर्म स्वभावयुक्त (**बृहन्त** ) बढ़ते हुए और ( **शबला** ) थोड़े सुपेद है वे ( **वैद्युता** ) बिजुली देवता वाले । और जो ( **सिध्मा** ) मगल कराने हारे है वे ( **तारका** ) दुःख के पार उतारने वाले जानने चाहियें ॥१०॥

**भावार्थ**—यदि मनुष्य जोतने आदि कार्यो के साधक पशु आदि पदार्थों को भूमि आदि मे सयुक्त करें तो वे आनन्द मगल को प्राप्त होवें ॥ १०॥

**धूम्रानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वसन्तादयो देवता । विराड्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

## धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥११॥

**पदार्थ**—जो मनुष्य ( **वसन्ताय** ) वसन्त ऋतु मे सुख के लिये ( **धूम्रान्** ) धुमेले पदार्थो को ( **ग्रीष्माय** ) ग्रीष्म ऋतु मे आनन्द के लिये ( **श्वेतान्** ) सुपेद रग के ( **वर्षाभ्य** ) वर्षा ऋतु में कार्यसिद्धि के लिये ( **कृष्णान्** ) काले रग के वा खेती की सिद्धि कराने वाले ( **शरदे** ) शरद् ऋतु मे सुख के लिये ( **अरुणान्** ) लाल रग के ( **हेमन्ताय** ) हेमन्त ऋतु मे कार्य साधन के लिये (**पृषत** ) मोटे और (**शिशिराय**) शिशिर ऋतु सम्बन्धी व्यवहार साधने के लिये ( **पिशङ्गान्** ) लालामी लिये हुए पीले पदार्थों को ( **आ, लभते** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥११॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जिस ऋतु मे जो पदार्थ इकट्ठे करने वा सेवने योग्य हो उनको इकट्ठा और उनका सेवन कर नीरोग होके धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने के व्यवहारो का आचरण करें ॥ ११ ॥

**त्र्यवय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्न्यादयो देवता । विराडनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

## त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्साऽअनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे ॥१२॥

**पदार्थ**—जो ( **त्र्यवय** ) ऐसे हैं कि जिनकी तीन भेड़ें है वे ( **गायत्र्यै** ) गाते हुओ की रक्षा करने वाली के लिये ( **पञ्चावय** ) जिनके पांच भेड़ें हैं वे (**त्रिष्टुभे**) तीन अर्थात् शरीर वाणी और मनसम्बन्धी सुखो के स्थिर करने के लिये । जो ( **दित्यवाह** ) विनाश मे न प्रसिद्ध हो उनकी प्राप्ति कराने वाले ( **जगत्यै** ) ससार की रक्षा करने की जो क्रिया उसके लिये ( **त्रिवत्सा** ) जिनके तीन स्थानो मे निवास वे ( **अनुष्टुभे** ) पीछे से रोकने की क्रिया के लिये और ( **तुर्यवाह** ) जो अपने पशुओं मे चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे (**उष्णिहे**) जिस क्रिया से उत्तमता के साथ प्रसन्न हो उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हो ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—जैसे विद्वान् जन पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दो के अर्थो से सुखो को बढ़ाते हैं वैसे पशुओ के पालन वाले घी आदि पदार्थों को बढ़ावें ॥ १२ ॥

**पष्ठवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । विराडादयो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वरः ॥**

## पष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥१३॥

**पदार्थ**—जिन मनुष्यों ने ( **विराजे** ) विराट्छन्द के लिये ( **पष्ठवाहः** ) जो पीठ से पदार्थों को पहुँचाते ( **बृहत्यै** ) बृहती छन्द के अर्थ को ( **उक्षाणः** ) वीर्य सींचने मे समर्थ ( **ककुभे** ) ककुप् उष्णिक छन्द के अर्थ को (**ऋषभा** ) अतिबलवान् प्राणी ( **पङ्क्त्यै** ) पङ्क्ति छन्द के अर्थ को ( **अनड्वाह** ) लढ़ा पहुँचाने में समर्थ

बैलो को ( अतिछन्दसे ) अतिजगती आदि छन्द के अर्थ को ( धेनव ) दूध देनेवाली गौएं स्वीकार की वे अतीव सुख पाते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् विराट आदि छन्दों के लिये बहुत विद्याविषयक कामो को सिद्ध करते हैं वसे ऊट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कामों को सिद्ध करें ॥ १३ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्न्यादयो देवता । भुरिगतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥

**कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामा पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो तुमको जो ( कृष्णग्रीवा ) काले गल वाले हैं वे ( आग्नेया ) अग्नि देवता वाले । जो ( बभ्रव ) सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे ( सौम्या ) साम देवता वाले । जो ( उपध्वस्ता ) नीच के समीप गिरे हुए हैं वे ( सावित्रा ) सविता देवता वाले । जो ( वत्सतर्य्य ) छोटी छोटी बछिया हैं वे ( सारस्वत्य ) वाणी देवता वाली । जो ( श्यामा ) काले वर्ण के हैं वे ( पौष्णा ) पुष्टि करनेहारे मेघ देवता वाले । जो ( पृश्नय ) पूछने योग्य हैं वे ( मारुता ) मनुष्य देवता वाले ( बहुरूपा ) बहुरूपी अर्थात् जिनके अनेक रूप हैं वे ( वैश्वदेवा ) समस्त विद्वान् देवता वाले और जो ( वशा ) निरन्तर चिलकते हुए हैं वे ( द्यावापृथिवीया ) आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहियें ॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे शिल्पविद्या जानने वाले विद्वान् जन अग्नि आदि पदार्थों से अनेक कार्य सिद्ध करते हैं वैसे खेती करनेवाले पुरुष पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें ॥ १४ ॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । इन्द्राग्न्यादयो देवता । विराडुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥

**उक्ता सञ्चराऽएता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥१५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको ( एता ) ये ( उक्ताः ) कहे हुए ( संचरा ) जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे ( ऐन्द्राग्ना ) इन्द्र और अग्नि देवता वाले । जो ( कृष्णाः ) खींचने वा जोतने हारे हैं ( वारुणा ) वे वरुण देवता वाले और जो ( पृश्नय ) चित्र विचित्र चिह्न युक्त ( मारुता ) मनुष्य के से स्वभाव वाले ( तूपरा ) हिंसक हैं वे ( काया ) प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो नाना प्रकार के देशो मे आने जाने वाले पशु आदि प्राणी हैं उनसे मनुष्य यथायोग्य उपकार लेवें ॥ १५ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । अग्न्यादयो देवता । शक्वरीछन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर किसके लिये कौन रक्षा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥१६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन ( अनीकवते ) प्रशसित सेना रखने वाले ( अग्नये ) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी सेनाधीश के लिये ( प्रथमजान् ) विस्तार युक्त कारण से उत्पन्न हुए ( सान्तपनेभ्य ) जिनका अच्छे प्रकार ब्रह्मचर्य्य आदि आचरण है उन ( मरुद्भ्य ) प्राण के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के लिये ( सवात्यान् ) एक से पवन मे हुए पदार्थों ( गृहमेधिभ्य ) घर मे जिनकी धीर बुद्धि है उन ( मरुद्भ्य ) मनुष्यो के लिये ( बष्किहान् ) बहुत काल के उत्पन्न हुओ ( क्रीडिभ्य ) प्रशसायुक्त विहार आनन्द करने वाले ( मरुद्भ्य ) मनुष्यो के लिये ( संसृष्टान् ) अच्छे प्रकार गुणयुक्त और ( स्वतवद्भ्य ) जिनका आपसे निवास है उन ( मरुद्भ्यः ) स्वतन्त्र मनुष्यो के लिये ( अनुसृष्टान् ) मिलने वालो को ( आ, लभते ) प्राप्त होता है वैसे ही तुम लोग इनको प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानों से विद्यार्थी और पशु पाले जाते हैं वैसे अन्य मनुष्यो को भी पालने चाहियें ॥ १६ ॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । इन्द्राग्न्यादयो देवता । भुरिग्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥१७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको जो ( एता ) ये ( ऐन्द्राग्ना ) वायु और बिजुली देवता वाले ( प्राशृङ्गा ) जिनके उत्तम सींग हैं वे ( माहेन्द्रा ) महेन्द्र देवता वाले वा ( बहुरूपाः ) बहुत रंगयुक्त ( वैश्वकर्मणाः ) विश्वकर्म देवता वाले ( संचरा ) जिनमे अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग ( उक्ता ) निरूपण किये उनमें जाना आना चाहिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानो ने पशुओ की पालना आदि के मार्ग कहे हैं वैसे ही वेद मे प्रतिपादित हैं ॥ १७ ॥

धूम्रा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । पितरो देवता । भुरिगतिजगतीछन्द । निषाद स्वर ॥

**धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाꣳ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥१८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको ( सोमवताम् ) सोमशान्ति आदि गुणयुक्त उत्पन्न करने वाले ( पितृणाम् ) माता पिताओ के ( बभ्रुनीकाशा ) न्योले के समान ( धूम्रा ) धुमेले रगवाले ( बर्हिषदाम् ) जो सभा के बीच बैठते हैं उन ( पितृणाम् ) पालना करने हारे विद्वानो के ( कृष्णा ) काले रगवाले ( धूम्रनीकाशा ) धुआँ के समान अर्थात् धुमेले और ( बभ्रव ) पुष्टि करने वाले तथा ( अग्निष्वात्तानाम् ) जिन्होने अग्निविद्या ग्रहण की है उन ( पितृणाम् ) पालना करने हारे विद्वानो के ( बभ्रुनीकाशा ) पालने हारे के समान ( कृष्णा ) काले रगवाले ( पृषन्त ) मोटे अङ्गो से युक्त ( त्रैयम्बका ) जिनका तीन अधिकारों मे चिह्न है वे प्राणी वा पदार्थ हैं यह जानना चाहिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो उत्पन्न करने और विद्या देने वाले विद्वान् हैं उनका घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथायोग्य सत्कार करना चाहिये ॥ १८ ॥

उक्ता सञ्चरा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वायुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**उक्ताः सञ्चराऽएताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥१९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो ( एता ) ये ( शुनासीरीया ) शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेती की सिद्धि करने वाले ( संचरा ) आनेजाने हारे ( वायव्या ) पवन के समान दिव्यगुणयुक्त ( श्वेता ) सुपेद रङ्ग वाले वा ( सौर्या ) सूर्य के समान प्रकाशमान ( श्वेता ) सुपेद रङ्ग के पशु ( उक्ता ) कहे हैं उनको अपने कार्य्यों मे अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त करो ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो जिस पशु का देवता कहा है वह उस पशु का गुण ग्रहण करना चाहिये ॥ १९ ॥

वसन्तायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वसन्तादयो देवता । विराड्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*फिर किसके लिये कौन अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥२०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! पक्षियो को जानने वाला जन ( वसन्ताय ) वसन्त ऋतु के लिये ( कपिञ्जलान् ) जिन कपिंजल नाम के विशेष पक्षियो ( ग्रीष्माय ) ग्रीष्म ऋतु के लिये ( कलविङ्कान् ) चिरोटा नाम के पक्षियो ( वर्षाभ्य ) वर्षा ऋतु के लिये ( तित्तिरीन् ) तीतरो ( शरदे ) शरद ऋतु के लिये ( वर्त्तिका ) बतको ( हेमन्ताय ) हेमन्त ऋतु के लिये ( ककरान् ) ककर नाम के पक्षियो और ( शिशिराय ) शिशिर ऋतु के अर्थ ( विककरान् ) विककर नाम के पक्षियो को ( आ, लभते ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उनको तुम जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—जिस जिस ऋतु मे जो जो पक्षी अच्छे आनन्द को पाते हैं वे वे उस गुण वाले जानने चाहियें ॥ २० ॥

समुद्रायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । वरुणो देवता । विराट् छन्द । मध्यमः स्वर ॥

*फिर कौन किसके अर्थ सेवन करने चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥२१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जल के जीवो की पालना करने को जाननेवाला जन ( समुद्राय ) महाजलाशय समुद्र के लिये ( शिशुमारान् ) जो अपने बालको को मार डालते हैं उन शिशुमारो ( पर्जन्याय ) मेघ के लिये ( मण्डूकान् ) मेंडकों ( अद्भ्य ) जलो के लिये ( मत्स्यान् ) मछलियो ( मित्राय ) मित्र के समान सुख देते हुए सूर्य्य के लिये ( कुलीपयान् ) कुलीपय नाम के जङ्गली पशुओ और ( वरुणाय ) वरुण के लिये ( नाक्रान् ) नाके मगर जलजन्तुओं को ( आ, लभते ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थ—जैसे जलचर जन्तुओं के गुण जानने वाले पुरुष उन जल के जन्तुओं को बढ़ा वा पकड़ सकते हैं वैसा आचरण और भोग भी करें ॥ २१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवता । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**सोमाय हुंसानालभते वायवे बुलाकाऽइन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्मित्राय मुद्गून्वरुणाय चक्रवाकान् ॥२२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों के गुण का विशेष ज्ञान रखनेवाला पुरुष (सोमाय) चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये (हंसान्) हंसों (वायवे) पवन के लिये (बलाकाः) बगुलियों (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्नि के लिये (क्रुञ्चान्) सारसों (मित्राय) मित्र के लिये (मद्गून्) जल के कौओं वा मुर्गों और (वरुणाय) वरुण के लिये (चक्रवाकान्) चकई चकवा को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जो उत्तम पक्षी हैं वे अच्छे यत्न के साथ पालन कर बढ़ाने चाहियें ॥ २२ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

**अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्यऽउलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानुश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥२३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे पक्षियों के गुण जानने वाला जन (अग्नये) अग्नि के लिये (कुटरून्) मुर्गों (वनस्पतिभ्यः) वनस्पति अर्थात् बिना पुष्प फल देनेवाले वृक्षों के लिये (उलूकान्) उल्लू पक्षियों (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के लिये (चाषान्) नीलकण्ठ पक्षियों (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के लिये (मयूरान्) मयूरों तथा (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और वरुण के लिये (कपोतान्) कबूतरों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मुर्गा आदि पशु के गुणों को जानते हैं वे सदा इनको बढ़ाते हैं ॥ २३ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

**सोमाय लुबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥२४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों का काम जाननेवाला जन (सोमाय) ऐश्वर्य के लिये (लबान्) बटेरों (त्वष्ट्रे) प्रकाश के लिये (कौलीकान्) कौलीक नाम के पक्षियों (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (गोषादीः) जो गौओं को मारती हैं उन पखेरियों (देवजामिभ्यः) विद्वानों की बहिनियों के लिये (कुलीकाः) कुलीक नामक पखेरियों और (अग्नये) जो अग्नि के समान वर्त्तमान (गृहपतये) गृहपालन करने वाला उसके लिये (पारुष्णान्) पारुष्ण पक्षियों को (आ लभते) प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य पक्षियों के स्वभावज कामों को जानकर उनके अनुसार क्रिया करते हैं वे बहुश्रुत के समान होते हैं ॥ २४ ॥

अह्न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । कालावयवा देवता । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

**अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सुन्धिभ्यों जुतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महुतः सुपर्णान् ॥२५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे काल का जानने वाला (अह्ने) दिवस के लिये (पारावतान्) कोमल शब्द करने वाले कबूतरों (रात्र्यै) रात्रि के लिये (सीचापूः) सीचापू नामक पक्षियों (अहोरात्रयोः) दिन रात्रि के (सन्धिभ्यः) सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकाल के लिये (जतूः) जतूनामक पक्षियों (मासेभ्यः) महीनों के लिये (दात्यौहान्) काले कौओं और (संवत्सराय) वर्ष के लिये (महतः) बड़े २ (सुपर्णान्) सुन्दर सुन्दर पंखों वाले पक्षियों को (आ लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इनको प्राप्त होओ ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अपने अपने समय के अनुकूल क्रीडा करने वाले पक्षियों के स्वभाव को जानकर अपने स्वभाव को वैसा करें वे बहुत जानने वाले हों ॥ २५ ॥

भूम्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूम्यादयो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे भूमि के जन्तुओं के गुण जानने वाला पुरुष (भूम्यै) भूमि के लिये (आखून्) मूषों (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष के लिये (पाङ्क्त्रान्) पङ्क्तिरूप से चलने वाले विशेष पक्षियों (दिवे) प्रकाश के लिये (कशान्) कशनाम के पक्षियों (दिग्भ्यः) पूर्व आदि दिशाओं के लिये (नकुलान्) नेउलों और (अवान्तरदिशाभ्यः) अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओं के लिये (बभ्रुकान्) भूरे भूरे विशेष नेउलों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य भूमि आदि के समान मूषे आदि के गुणों को जानकर उपकार करें वे बहुत विज्ञान वाले हों ॥ २६ ॥

वसुभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वस्वादयो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणों का जाननेवाला जन (वसुभ्यः) अग्नि आदि वसुओं के लिये (ऋश्यान्) ऋश्य जाति के हरिणों (रुद्रेभ्यः) प्राण आदि रुद्रों के लिये (रुरून्) रोजनामी जन्तुओं (आदित्येभ्यः) बारह महीनों के लिये (न्यङ्कून्) न्यङ्कु नामक पशुओं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के लिये (पृषतान्) पृषत् जाति के मृगविशेषों और (साध्येभ्यः) सिद्ध करने के जो योग्य हैं उनके लिये (कुलुङ्गान्) कुलुङ्ग नाम के पशुविशेषों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य हरिण आदि के वेगरूप गुणों को जानकर उपकार करें वे अत्यन्त सुख को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

ईशानायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईशानादयो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**ईशानाय त्वा परस्वत आ लभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥२८॥**

पदार्थ—हे राजा ! जो मनुष्य (ईशानाय) समर्थ जन के लिये (त्वा) आप और (परस्वतः) परस्वत् नामी मृगविशेषों को (मित्राय) मित्र के लिये (गौरान्) गोरे मृगों को (वरुणाय) अतिश्रेष्ठ के लिये (महिषान्) भैंसों को (बृहस्पतये) बृहस्पति अर्थात् महात्माओं के रक्षक के लिये (गवयान्) नीलगायों को और (त्वष्ट्रे) त्वष्टा अर्थात् पदार्थविद्या से पदार्थों को सूक्ष्म करने वाले के लिये (उष्ट्रान्) ऊंटों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह धनधान्ययुक्त होता है ॥२८॥

भावार्थ—जो पशुओं से यथावत् उपकार लेवें वे समर्थ होवें ॥ २८ ॥

प्राजापत्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आ लभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥२९॥**

पदार्थ—जो मनुष्य (प्रजापतये) प्रजा पालने हारे राजा के लिये (पुरुषान्) पुरुषों (हस्तिनः) और हाथियों (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषि नाम के जीवों (चक्षुषे) नेत्र के लिये (मशकान्) मशाओं और (श्रोत्राय) कान के लिये (भृङ्गाः) भौंरों को (आ लभते) प्राप्त होता है वह बली और पुष्ट इन्द्रियों वाला होता है ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो प्रजा की रक्षा के लिये चतुरङ्गिणी अर्थात् चारों दिशाओं को रोकने वाली सेना और जितेन्द्रियता का अच्छे प्रकार आचरण करते हैं वे बलवान् और कान्तिमान् होते हैं ॥ २९ ॥

प्राजापत्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवता । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥३०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (प्रजापतये) प्रजा पालन वाले (च) और उस के सम्बन्धियों तथा (वायवे) वायु (च) और वायु के सम्बन्धी पदार्थों के लिये (गोमृगः) जो पृथिवी को शुद्ध करता वह (वरुणाय) अतिउत्तम के लिये (आरण्यः) वन का (मेषः) मेढ़ा (यमाय) न्यायाधीश के लिये (कृष्णः) काला हरिण (मनुष्यराजाय) मनुष्यों के राजा के लिये (मर्कटः) वानर (शार्दूलाय) बड़े सिंह अर्थात् केशरी के लिये (रोहित्) लालमृग (ऋषभाय) श्रेष्ठ सभ्य पुरुष के लिये (गवयी) नीलगाहिनी (क्षिप्रश्येनाय) शीघ्र चलने हारे बाज पखेरू

के समान जो वर्त्तमान उस के लिये ( वर्त्तिका ) बतक ( नीलङ्गो ) जो नील को प्राप्त होता उस छोटे कीड़े के हेतु ( कृमि ) छोटा कीड़ा ( समुद्राय ) समुद्र के लिये ( शिशुमार ) बालको को मारने वाला शिशुमार और ( हिमवते ) जिस के अनेको हिमखण्ड विद्यमान हैं उस पर्वत के लिये ( हस्ती ) हाथी अच्छे प्रकार युक्त करना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य मनुष्यसम्बन्धी उत्तम प्राणियो की रक्षा करते हैं वे साङ्गोपाङ्ग बलवान् होते हैं ॥ ३० ॥

मयुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राजापत्यादयो देवता । स्वराड्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को ( प्राजापत्य ) प्रजापति देवता वाला ( मयु ) किंनर निन्दित मनुष्य और जो ( उल ) छोटा कीड़ा ( हलिक्ष्ण ) विशेष सिंह और ( वृषदंश ) बिलार है ( ते ) वे ( धात्रे ) धारणा करने वाले के लिये ( कङ्क ) उजली चील्ह ( दिशाम् ) दिशाओं के हेतु ( धुङ्क्षा ) धुङ्क्षा नाम की पक्षिणी ( आग्नेयी ) अग्नि देवता वाली जो ( कलविङ्क ) चिरौटा ( लोहिताहि ) लाल सांप और ( पुष्करसाद ) तालाब मे रहने वाला है ( ते ) वे सब ( त्वाष्ट्रा ) त्वष्टा देवता वाले तथा ( वाचे ) वाणी के लिये ( क्रुञ्च ) सारस जानना चाहिये ॥३१॥

भावार्थ—जो सियार और सांप आदि को वश मे लाते हैं वे मनुष्य धुरन्धर होते हैं ॥ ३१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवता । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुमने ( सोमाय ) सोम के लिये जो ( कुलुङ्ग ) कुलुङ्ग नामक पशु वा ( आरण्य ) बनेला ( अज ) बकरा ( नकुल ) न्योला और ( शका ) सामर्थ्य वाला विशेष पशु है ( ते ) वे ( पौष्णा ) पुष्टि करने वाले के सम्बन्धी वा ( मायो ) विशेष सियार के हेतु ( क्रोष्टा ) सामान्य सियार वा ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के अर्थ ( गौरमृग ) गोरा हरिण वा जो ( पिद्व ) विशेष मृग ( न्यङ्कु ) किसी और जाति का हरिण और ( कक्कट ) कक्कट नाम का मृग है ( ते ) वे ( अनुमत्यै ) अनुमति के लिये तथा ( प्रतिश्रुत्कायै ) सुन पीछे सुनाने वाली के लिये ( चक्रवाक ) चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्त किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें ॥३२॥

भावार्थ—जो बनेले पशुओं से भी उपकार करना जानें वे सिद्ध कार्यों वाले होते हैं ॥३२॥

सौरीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मित्रादयो देवता । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको ( सौरी ) जिसका सूर्य देवता है वह ( बलाका ) बगुलिया तथा जो ( शार्ग ) पपीहा पक्षी ( सृजयः ) सृजय नाम वाला और ( शयाण्डक ) शयाण्डक पक्षी हैं ( ते ) वे ( मैत्रा ) प्राण देवता वाले ( शारिः ) शुग्गी ( पुरुषवाक् ) पुरुष के समान बोलने हारा शुग्गा ( सरस्वत्य ) नदी के लिये ( श्वावित् ) सेही ( भौमी ) भूमि देवता वाली जो ( शार्दूल ) केशरी सिंह ( वृक ) भेड़िया और ( पृदाकु ) सांप हैं ( ते ) वे ( मन्यवे ) क्रोध के लिये तथा ( शुकः ) शुद्ध करनेहारा सुवा पक्षी और ( पुरुषवाक ) जिसकी मनुष्य की बोली के समान बोली है वह पक्षी ( सरस्वते ) समुद्र के लिये जानना चाहिये ॥३३॥

भावार्थ—जो बलाका आदि पशु पक्षी हैं उनमे से कोई पालने और कोई ताड़ना देने योग्य हैं यह जानना चाहिये ॥३३॥

सुपर्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवता । स्वराट्शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको जो ( सुपर्ण ) सुन्दर गिरने वा जानेवाला पक्षी वह ( पार्जन्य ) मेघ के समान गुण वाला जो ( आति ) आति नाम वाला पक्षी ( वाहस ) अजगर सांप ( दर्विदा ) और काठ को छिन्न भिन्न करने वाला पक्षी है ( ते ) वे सब ( वायवे ) पवन के लिये ( पैङ्गराज ) पैङ्गराज नाम का पक्षी ( बृहस्पतये ) बड़े बड़े पदार्थों और ( वाचस्पतये ) वाणी की पालना करने हारे के लिये ( अलज ) अलज पक्षी ( आन्तरिक्ष ) अन्तरिक्ष देवता वाला जो ( प्लव ) जल में तरने वाला बतक पक्षी ( मद्गु ) जल का कौआ और ( मत्स्य ) मछली हैं ( ते ) वे सब ( नदीपतये ) समुद्र के लिये और जो ( कूर्म ) कछुआ है वह ( द्यावापृथिवीय ) प्रकाश भूमि देवता वाला जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो मेघ आदि के समान गुण वाले विशेष विशेष पशु पक्षी हैं वे काम के उपयोग के लिये युक्त करने चाहियें ॥ ३४ ॥

पुरुषमृग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । चन्द्रादयो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हंसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( पुरुषमृग ) पुरुषो को शुद्ध करने हारा विशेष पशु वह ( चन्द्रमस ) चन्द्रमा के अर्थ जो ( गोधा ) गोह ( कालका ) कालका पक्षी और ( दार्वाघाट ) कठफोरवा हैं ( ते ) वे ( वनस्पतीनाम् ) वनस्पतियो के सम्बन्धी जो ( कृकवाकु ) मुर्गा वह ( सावित्र ) सविता देवता वाला जो ( हंस ) हंस है वह ( वातस्य ) पवन के अर्थ जो ( नाक्र ) नाके का बच्चा ( मकर ) मगर मच्छ ( कुलीपय ) और विशेष जलजन्तु हैं ( ते ) वे ( अकूपारस्य ) समुद्र के अर्थ और जो ( शल्यक ) सेही है वह ( ह्रियै ) लज्जा के लिये जानना चाहिये ॥३५॥

भावार्थ—जो चन्द्रमा आदि के गुणो से युक्त विशेष पशु पक्षी हैं वे मनुष्यों को जानने चाहियें ॥ ३५ ॥

एणीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवता । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी ॥३६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( एणी ) हरिणी है वह ( अह्न ) दिन के अर्थ जो ( मण्डूक ) मेडुका ( मूषिका ) मूषटी और ( तित्तिरि ) तीतरि पक्षिणी हैं ( ते ) वे ( सर्पाणाम् ) सर्पों के अर्थ जो ( लोपाश ) कोई वनचर विशेष पशु वह ( आश्विन ) अश्वि देवता वाला जो ( कृष्ण ) काले रंग का हरिण आदि है वह ( रात्र्य ) रात्रि के लिये जो ( ऋक्ष ) रीछ ( जतूः ) जतू नाम वाला और ( सुषिलीका ) सुषिलीका पक्षी है ( ते ) वे ( इतरजनानाम् ) और मनुष्यो के अर्थ और ( जहका ) अङ्गो का संकोच करने हारी पक्षिणी ( वैष्णवी ) विष्णु देवता वाली जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो दिन आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस उस गुण से जानने चाहियें ॥ ३६ ॥

अन्यवाप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अर्द्धमासादयो देवता । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासान् कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥३७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( अन्यवाप ) कोकिला पक्षी है वह ( अर्द्धमासानाम् ) पखवाड़ों के अर्थ जो ( ऋश्यः ) ऋश्य जाति का मृग ( मयूर ) मयूर और ( सुपर्ण ) अच्छे पंखो वाला विशेष पक्षी है ( ते ) वे ( गन्धर्वाणाम् ) गाने वालों के और ( अपाम् ) जलों के अर्थ जो ( उद्र ) जलचर गिंगचा है वह ( मासान् ) महीनों के अर्थ जो ( कश्यप ) कछुआ ( रोहित् ) विशेष मृग ( कुण्डृणाची ) कुण्डृणाची नाम की वन मे रहने वाली और ( गोलत्तिका ) गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशुजाति है ( ते ) वे ( अप्सरसाम् ) किरण आदि पदार्थों के अर्थ और जो ( असित ) काले गुण वाला विशेष पशु है वह ( मृत्यवे ) मृत्यु के लिये जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जो काल आदि गुण वाले पशु पक्षी हैं वे उपकार वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

वर्षाहूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ऋत्वादयो देवता । स्वराड्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितॄणां बलायाजगरो

**वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितॄणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥३८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( वर्षाहूः ) वर्षा को बुलाती है वह मेडुकी ( ऋतूनाम् ) वसन्त आदि ऋतुओं के अर्थ ( आखुः ) मूषा ( कशः ) सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और ( मान्थालः ) मान्थाल नामी विशेष जन्तु हैं ( ते ) वे ( पितॄणाम् ) पालना करने वालों के अर्थ ( बलाय ) बल के लिये ( अजगरः ) बड़ा सांप ( वसूनाम् ) अग्नि आदि वसुओं के अर्थ ( कपिञ्जलः ) कपिञ्जल नामक ( कपोतः ) जो कबूतर ( उलूकः ) उल्लू और ( शशः ) खरहा है ( ते ) वे ( निर्ऋत्यै ) निर्ऋति के लिये ( वरुणाय ) और वरुण के लिये ( आरण्यः ) बनैला ( मेषः ) मेढ़ा जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो ऋतु आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उन गुणों से युक्त जानने चाहियें ॥ ३८ ॥

श्वित्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आदित्यादयो देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥३९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( श्वित्रः ) चित्र विचित्र रंग वाला पशु विशेष वह ( आदित्यानाम् ) समय के अवयवों के अर्थ जो ( उष्ट्रः ) ऊंट ( घृणीवान् ) तेजस्वि विशेष पशु और ( वार्ध्रीनसः ) कण्ठ में जिस के थन ऐसा बड़ा बकरा है ( ते ) वे सब ( मत्यै ) बुद्धि के लिये जो ( सृमरः ) नीलगाय वह ( अरण्याय ) वन के लिये जो ( रुरुः ) मृगविशेष है वह ( रौद्रः ) रुद्र देवता वाला जो ( क्वयिः ) क्वयिनाम का पक्षी ( कुटरुः ) मुर्गा और ( दात्यौहः ) कौआ है ( ते ) वे ( वाजिनाम् ) घोड़ों के अर्थ और जो ( पिकः ) कोकिला है वह ( कामाय ) काम के लिये अच्छे प्रकार जानने चाहियें ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जो सूर्य आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस उस स्वभाव वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

खड्ग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवादयो देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥४०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो ( खड्गः ) ऊंचे और पैने सींगों वाला गैंडा है वह ( वैश्वदेवः ) सब विद्वानों का जो ( कृष्णः ) काले रंग वाला ( श्वा ) कुत्ता ( कर्णः ) बड़े कानों वाला ( गर्दभः ) गदहा और ( तरक्षुः ) व्याघ्र हैं ( ते ) वे सब ( रक्षसाम् ) राक्षस दुष्टहिंसक हत्यारियों के अर्थ, जो ( सूकरः ) सूअर है वह ( इन्द्राय ) शत्रुओं को विदारने वाले राजा के लिये जो ( सिंहः ) सिंह है वह ( मारुतः ) मरुत् देवता वाला जो ( कृकलासः ) गिरगिटान ( पिप्पका ) पिप्पका नाम की पक्षिणी और ( शकुनिः ) पक्षिमात्र है ( ते ) वे सब ( शरव्यायै ) जो शस्त्रियों में कुशल उत्तम हैं उसके लिये और जो ( पृषतः ) पृषजाति के हरिण हैं वे ( विश्वेषाम् ) सब ( देवानाम् ) विद्वानों के अर्थ जानना चाहिये ॥ ४० ॥

भावार्थ—जो सब पशु पक्षी सब गुण भरे हैं उनको जानकर व्यवहारसिद्धि के लिये सब मनुष्य निरन्तर युक्त करें ॥ ४० ॥

इस अध्याय में पशु पक्षी रेंगने वाले सांप आदि वन के मृग, जल में रहने वाले प्राणी और कीड़े मकोड़े आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

अब चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

# ॥ अथ पञ्चविंशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

शादमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिक्शक्वरी । आदित्यानित्युत्तरस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब पच्चीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसको क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दंष्ट्राभ्याᳬसरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजᳬहनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्यामादित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याᳬशुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥१॥**

पदार्थ—हे अच्छे ज्ञान की चाहना करते हुए विद्यार्थी जन ! ( ते ) तेरे ( दद्भिः ) दांतों से ( शादम् ) जिस में छेदन करना है उस व्यवहार को ( दन्तमूलैः ) दांतों की जड़ों और ( बर्स्वैः ) दांतों की पछाड़ियों से ( अवकाम् ) रक्षा करने वाली ( मृदम् ) मट्टी को ( दंष्ट्राभ्याम् ) डाढ़ों से ( सरस्वत्यै ) विशेष ज्ञान वाली वाणी के लिये ( गाम् ) वाणी को ( जिह्वायाः ) जीभ से ( अग्रजिह्वम् ) जीभ के अगले भाग को ( अवक्रन्देन ) विकलतारहित व्यवहार से ( उत्सादम् ) जिस में ऊपर को स्थिर होती है उस ( तालु ) तालु को ( हनुभ्याम् ) ठोढ़ी के पास के भागों से ( वाजम् ) अन्न को ( आस्येन ) जिससे भोजन आदि पदार्थ का गीला करते उस मुख से ( अपः ) जलों को ( आण्डाभ्याम् ) वीर्य का अच्छे प्रकार धारण करने हारे आण्डों से ( वृषणम् ) वीर्य वर्षाने वाले अङ्ग को ( श्मश्रुभिः ) मुख के चारों ओर जो केश अर्थात् डाढ़ी उससे ( आदित्यान् ) मुख्य विद्वानों को ( भ्रूभ्याम् ) नेत्र गोलकों के ऊपर जो भौं हैं उन से ( पन्थानम् ) मार्ग को ( वर्त्तोभ्याम् ) जाने आने से ( द्यावापृथिवी ) सूर्य और भूमि तथा ( कनीनकाभ्याम् ) तेज से भरे हुए काले नेत्रों के तारा के सदृश गोलों से ( विद्युतम् ) बिजुली को मैं समझाता हूं। शुभ को ( शुक्लाय ) वीर्य के लिये ( स्वाहा ) ब्रह्मचर्य क्रिया से और ( कृष्णाय ) विद्या खींचने के लिये ( स्वाहा ) सुन्दरशीलयुक्त क्रिया से ( पार्याणि ) पूरे करने योग्य ( पक्ष्माणि ) जो सब ओर से लेने चाहियें उन कामों वा पलकों के ऊपर के बिन्ने वा ( अवार्याः ) नदी आदि के प्रथम और होने वाले ( इक्षवः ) गन्नों के पौंडे वा ( अवार्याणि ) नदी आदि के पहिले किनारे पर होने वाले पदार्थ ( पक्ष्माणि ) सब ओर से जिनका ग्रहण करें वा लोम और ( पार्याः ) पालना करने योग्य ( इक्षवः ) ऊख जो गुड़ आदि के निमित्त हैं वे पदार्थ अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें ॥ १ ॥

भावार्थ—अध्यापक लोग अपने शिष्यों के अङ्गों को उपदेश से अच्छे प्रकार पुष्ट कर तथा आहार वा विहार का अच्छा बोध समस्त विद्याओं की प्राप्ति, अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन और ऐश्वर्य की प्राप्ति करा के सुखयुक्त करें ॥१॥

वातमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवता । भुरगतिशक्वरी छन्दसी ॥ धैवतः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳬश्रोत्रं श्रोत्राभ्यां कर्णौ**

वेदुनोमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणंस्तुपेन ॥२॥

पदार्थ—हे जानने की इच्छा करने वाले ! मेरे उपदेश के ग्रहण में तू (प्राणेन) प्राण और (अपानेन) अपान से (वातम्) पवन और (नासिके) नासिकाछिद्रों और (उपयामम्) प्राप्त हुए नियम को (अधरेण) नीचे के (ओष्ठेन) ओष्ठ से (उत्तरेण) ऊपर के (प्रकाशेन) प्रकाशरूप ओठ से (सदन्तरम्) बीच में विद्यमान मुख आदि स्थान को (अनूकाशेन) पीछे से प्रकाश होने वाले अङ्ग से (बाह्यम्) बाहर हुए अङ्ग को (मूर्ध्ना) शिर से (निवेष्यम्) जो निश्चय से व्याप्त होने योग्य उस को (निर्बाधेन) निरन्तर ताडना के हेतु के साथ (स्तनयित्नुम्) शब्द करने हारी (अशनिम्) बिजुली को (मस्तिष्केण) शिर की चरबी और और नशों से (विद्युतम्) अति प्रकाशमान बिजुली को (कनीनकाभ्याम्) दिपते हुए (कर्णाभ्याम्) शब्द को सुनवाने हारे पवनों से (कर्णौ) जिनसे श्रवण करता उन कानों को और (श्रोत्राभ्याम्) जिन गोल गोल छेदों से सुनता उन से (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय और (तेदनीम्) श्रवण करने की क्रिया (अधरकण्ठेन) कण्ठ के नीचे के भाग से (अपः) जलों (शुष्ककण्ठेन) सूखते हुए कण्ठ से (चित्तम्) विशेष ज्ञान सिद्ध कराने हारे अन्तःकरण के वर्त्ताव को (मन्याभिः) विशेष ज्ञान की क्रियाओं से (अदितिम्) न विनाश को प्राप्त होने वाली उत्तम बुद्धि को (शीर्ष्णा) शिर से (निर्ऋतिम्) भूमि को (निर्जर्जल्पेन) निरन्तर जीर्ण सब प्रकार परिपक्व हुए (शीर्ष्णा) शिर और (संक्रोशैः) अच्छे प्रकार बुलावाओं से (प्राणान्) प्राणों को प्राप्त हो तथा (स्तुपेन) हिंसा से (रेष्माणम्) हिंसक अविद्या आदि रोग का नाश कर ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि पहिली अवस्था में समस्त शरीर आदि साधनों से शारीरिक और आत्मिक बल को अच्छे प्रकार सिद्ध करें और अविद्या कुटिल सिखावट निन्दित स्वभाव आदि रोगों को सब प्रकार हनन करें ॥ २ ॥

मशकानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

मशकान्केशैरिन्द्रंस्वपसा वहेन बृहस्पतिंशकुनिसादेन कूर्मान् छफैराक्रमणंस्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावंसाभ्यां रुद्रं रोराभ्याम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (केशैः) शिर के बालों से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (शकुनिसादेन) जिससे पक्षियों को स्थिर कराता उस व्यवहार से (कूर्मान्) कछुओं और (मशकान्) मशों को (स्वपसा) उत्तम काम और (वहेन) प्राप्ति कराने से (बृहस्पतिम्) बड़ी वाणी के स्वामी विद्वान् को (स्थूराभ्याम्) स्थूल (ऋक्षलाभिः) चाल और ग्रहण करने आदि क्रियाओं से (कपिञ्जलान्) कपिञ्जल नामक पक्षियों को (जङ्घाभ्याम्) जङ्घाओं से (अध्वानम्) मार्ग और (जवम्) वेग को (अंसाभ्याम्) भुजाओं के मूल अर्थात् बगलों (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (छफैः) खुरों से (आक्रमणम्) चाल को (जाम्बीलेन) जामुनी आदि के फल से (अरण्यम्) वन और (अग्निम्) अग्नि को (अतिरुग्भ्याम्) अतीव रुचि प्रीति और इच्छा से (पूषणम्) पुष्टि को तथा (दोर्भ्याम्) भुजदण्डों से (अश्विनौ) प्रजा और राजा को प्राप्त होओ और (रोराभ्याम्) कहने सुनने से (रुद्रम्) रुलाने हारे को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि बहुत उपायों से उत्तम गुणों की प्राप्ति और विघ्नों की निवृत्ति करें ॥ ३ ॥

अग्नेरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । स्वराडत्यष्टिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

*फिर किसको क्या क्रिया करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतांसप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (अग्नेः) अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल (वायोः) पवन की (निपक्षतिः) निश्चित विषय का मूल (इन्द्रस्य) सूर्य की (तृतीया) तीन को पूरा करने वाली क्रिया (सोमस्य) चन्द्रमा की (चतुर्थी) चार को पूरा करने वाली (अदित्यै) अन्तरिक्ष की (पञ्चमी) पाँचवी (इन्द्राण्यै) स्त्री के समान वर्त्तमान जो बिजुलीरूप अग्नि की लपट उसकी (षष्ठी) छठी (मरुताम्) पवनों की (सप्तमी) सातवीं (बृहस्पतेः) बड़ों की पालना करने वाले महत्तत्त्व की (अष्टमी) आठवीं (अर्यम्णः) स्वामीजनों का सत्कार करने वाले की (नवमी) नवीं (धातुः) धारण करने हारे की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं और (यमस्य) न्यायाधीश राजा की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको क्रिया के विशेष ज्ञान और साधनों से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ ४ ॥

इन्द्राग्न्योरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । स्वराड्विकृतिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

*फिर किसके अर्थ कौन होती है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणांसप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (इन्द्राग्न्योः) पवन और अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल पहिली (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष का मूल दूसरी (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी (निर्ऋत्यै) भूमि की (पञ्चमी) पाँचवी (अग्नीषोमयोः) गर्मी सर्दी को उत्पन्न करने वाले अग्नि तथा जल की (षष्ठी) छठी (सर्पाणाम्) साँपों की (सप्तमी) सातवीं (विष्णोः) व्यापक ईश्वर की (अष्टमी) आठवीं (पूष्णः) पुष्टि करने वाले की (नवमी) नवमी (त्वष्टुः) उत्तम दीप्त हुए की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) जीव की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन की (द्वादशी) बारहवीं और (यम्यै) न्याय करने वाले की स्त्री के लिये (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया है उन सब को तथा (द्यावापृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दक्षिण (पार्श्वम्) ओर को और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर ओर को जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि इन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान के लिये अनेक क्रियाओं को करके अपने अपने कामों को सिद्ध करें ॥ ५ ॥

मरुतामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।

मरुतांस्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणंस्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कन्धे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) पहिली क्रिया और (कीकसाः) निरन्तर सिखावटें (रुद्राणाम्) रुलाने हारे विद्वानों की (द्वितीया) दूसरी ताडनरूप क्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डित न्याय करने वाले विद्वानों की (तृतीया) तीसरी न्यायक्रिया (वायोः) पवनसम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की पूँछ अर्थात् जिससे पशु अपने शरीर को पवन देता (अग्नीषोमयोः) अग्नि और जल सम्बन्धी (भासदौ) जो प्रकाश को देवें वे (क्रुञ्चौ) कोई विशेष पक्षी वा सारस (श्रोणिभ्याम्) चूतडों से (इन्द्राबृहस्पती) पवन और सूर्य (ऊरुभ्याम्) जाँघों से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम्) परिपूर्ण चलने वाले प्राणियों से (आक्रमणम्) चाल तथा (कुष्ठाभ्याम्) निचोड और (स्थूराभ्याम्) स्थूल पदार्थों से (बलम्) बल को सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को भुजाओं का बल, अपने अङ्ग की पुष्टि, दुष्टों को ताडना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहियें ॥ ६ ॥

पूषणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनं शेपेन प्रजांरेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (वनिष्ठुना) माँगने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्त्तमान (अन्धाहीन्) अन्ध साँपों को (गुदाभिः) गुदेन्द्रियों के साथ वर्त्तमान (विह्रुतः) विशेष कुटिल (सर्पान्) सर्पों को (आन्त्रैः) आँतों से (अपः) जलों को (वस्तिना) नाभि के नीचे के भाग से (वृषणम्) अण्डकोष को (आण्डाभ्याम्) आँडों से (वाजिनम्) घोड़ा को (शेपेन) लिङ्ग और (रेतसा) वीर्य से (प्रजाम्) सन्तान को (पित्तेन) पित्त से (चाषान्) भोजनों को (प्रदरान्) पेट के अङ्गों को (पायुना) गुदेन्द्रिय से और (शकपिण्डैः) शक्तियों से (कूश्मान्) सिखावटों को निरन्तर लेओ ॥७॥

भावार्थ—जिस जिस से जो जो काम सिद्ध हो उस उस अङ्ग वा पदार्थ से वह वह काम सिद्ध करना चाहिये ॥ ७ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । निचृदभिकृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

*फिर किस किस के गुण पशुओं में हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान् हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳬं समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को उत्तम यत्न के साथ ( इन्द्रस्य ) बिजुली का ( क्रोडः ) दूबना ( अदित्यै ) पृथिवी के लिये ( पाजस्यम् ) अन्नों में जो उत्तम वह ( दिशाम् ) दिशाओं की ( जत्रवः ) सन्धि अर्थात् उनका एक दूसरे से मिलना ( अदित्यै ) अखण्डित प्रकाश के लिये ( भसत् ) लपट ये सब पदार्थ जानने चाहियें तथा ( जीमूतान् ) मेघों को ( हृदयौपशेन ) जो हृदय में सोता है उस जीव से ( पुरीतता ) हृदयस्थ नाड़ी से ( अन्तरिक्षम् ) हृदय के अवकाश को ( उदर्येण ) उदर में होने हुए व्यवहार से ( नभः ) जल और ( चक्रवाकौ ) चकई चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उन को ( मतस्नाभ्याम् ) गले के दोनों ओर के भागों से ( दिवम् ) प्रकाश को ( वृक्काभ्याम् ) जिन क्रियाओं से अवगुणों का त्याग होता है उनसे ( गिरीन् ) पर्वतों को ( प्लाशिभिः ) उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से ( उपलान् ) दूसरे प्रकार के मेघों को ( प्लीह्ना ) हृदयस्थ प्लीहा अङ्ग से ( वल्मीकान् ) मार्गों को ( क्लोमभिः ) गीलेपन और ( ग्लौभिः ) हर्ष तथा ग्लानियों से ( गुल्मान् ) दाहिनी ओर उदर में स्थित जो पदार्थ उनको ( हिराभिः ) बढ़तियों से ( स्रवन्तीः ) नदियों को ( ह्रदान् ) छोटे बड़े जलाशयों को ( कुक्षिभ्याम् ) कोखों से ( समुद्रम् ) अच्छे प्रकार जहां जल जाता उस समुद्र को ( उदरेण ) पेट और ( भस्मना ) जले हुए पदार्थ का जो शेषभाग उस राख से ( वैश्वानरम् ) सब के प्रकाश करनेहारे अग्नि को तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अनेक विद्याबोधों को प्राप्त होकर ठीक ठीक यथोचित आहार और विहारों से सब अङ्गों को अच्छे प्रकार पुष्ट कर रोगों की निवृत्ति करें तो वे धर्म अर्थ काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

विधृतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर किससे क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**विधृतिं नाभ्या घृतᳬं रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाᳬंसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( नाभ्या ) नाभि से ( विधृतिम् ) विशेष करके धारणा को ( घृतम् ) घी को ( रसेन ) रस से ( अपः ) जलों को ( यूष्णा ) क्वाथ किये रस से ( मरीचीः ) किरणों को ( विप्रुड्भिः ) विशेषतर पूर्ण पदार्थों से ( नीहारम् ) कुहर को ( ऊष्मणा ) गर्मी से ( शीनम् ) जमे हुए घी को ( वसया ) निवासहेतु जीवन से ( प्रुष्वाः ) जिनसे सींचते हैं उन क्रियाओं को ( अश्रुभिः ) आंसुओं से ( ह्रादुनीः ) शब्दों की अप्रकट उच्चारण क्रियाओं को ( दूषीकाभिः ) विकाररूप क्रियाओं से ( चित्राणि ) चित्र विचित्र ( रक्षांसि ) पालना करने योग्य ( अस्ना ) रुधिरादि पदार्थों को ( अङ्गैः ) अङ्गों और ( रूपेण ) रूप से ( नक्षत्राणि ) तारागणों को और ( त्वचा ) मांस रुधिर आदि को ढांपने वाली त्वचा आदि से ( पृथिवीम् ) पृथिवी को जानकर ( जुम्बकाय ) अतिवेगवान् के लिये ( स्वाहा ) सत्य वाणी का प्रयोग अर्थात् उच्चारण करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को धारण आदि क्रियाओं से खोटे आचरण और रोगों की निवृत्ति और सत्यभाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार कर प्रवृत्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । हिरण्यगर्भो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*अब परमात्मा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो ( हिरण्यगर्भः ) सूर्यादि तेज वाले पदार्थ जिसके भीतर हैं वह परमात्मा ( जातः ) प्रादुर्भूत और ( भूतस्य ) उत्पन्न हुए जगत् का ( एकः ) असहाय एक ( अग्रे ) भूमि आदि सृष्टि से पहिले भी ( पतिः ) पालन करने हारा ( आसीत् ) है और सब का प्रकाश करने वाला ( समवर्त्तत ) वर्त्तमान हुआ ( सः ) वह ( पृथिवीम् ) अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी ( उत ) और ( द्याम् ) प्रकाश को ( सम् दाधार ) अच्छे प्रकार धारण करता है तथा जो ( इमाम् ) इस सृष्टि को बनाता हुआ अर्थात् जिसने सृष्टि की उस ( कस्मै ) सुख करने हारे ( देवाय ) प्रकाशमान परमात्मा के लिये ( हविषा ) होम करने योग्य पदार्थ से ( विधेम ) सेवन का विधान करें वैसे तुम लोग भी सेवन का विधान करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्य आदि समस्त जगत् को बनाया और धारण किया है उसी की उपासना किया करो ॥ १० ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( यः ) जो सूर्य ( प्राणतः ) श्वास लेते हुए प्राणी और ( निमिषतः ) चेष्टा करते हुए ( जगतः ) संसार का ( महित्वा ) बड़प्पन से ( एकः ) असहाय एक ( इत् ) ही ( राजा ) प्रकाश करने वाला ( बभूव ) होता है ( यः ) तथा जो ( अस्य ) इस ( द्विपदः ) दो दो पग वाले मनुष्यादि और ( चतुष्पदः ) चार चार पग वाले गौ आदि पशुरूप जगत् का ( ईशे ) प्रकाश करता है उस ( कस्मै ) सुख करने हारे ( देवाय ) प्रकाशक जगदीश्वर के लिये ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ वा व्यवहार से ( विधेम ) सेवन करें वैसे तुम लोग भी अनुष्ठान किया करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य न हो तो स्थावर वृक्ष आदि और जङ्गम मनुष्यादि जगत् अपना अपना काम देने को समर्थ न हो । जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने वाला और ऐश्वर्य की प्राप्ति का हेतु है वह ईश्वर सब को युक्ति के साथ सेवने योग्य है ॥ ११ ॥

यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर सूर्य के वर्णन विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रᳬं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यस्य ) जिस सूर्य के ( महित्वा ) बड़प्पन से ( इमे ) ये ( हिमवन्तः ) हिमालय आदि पर्वत आकर्षित और प्रकाशित हैं ( यस्य ) जिस के ( रसया ) स्नेह के ( सह ) साथ ( समुद्रम् ) अच्छे प्रकार जिस में जल ठहरते हैं उस अन्तरिक्ष को ( आहुः ) कहते हैं तथा ( यस्य ) जिस की ( इमाः ) इन दिशा और ( यस्य ) जिसकी ( प्रदिशः ) विदिशाओं को ( बाहू ) भुजाओं के समान वर्त्तमान कहते हैं उस ( कस्मै ) सुखरूप ( देवाय ) मनोहर सूर्यमण्डल के लिये ( हविषा ) होम करने योग्य पदार्थ से हम लोग ( विधेम ) सेवन का विधान करें ऐसे ही तुम भी विधान करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने और सब पदार्थों में रस का लेनेहारा जिस के प्रताप से दिशा और विदिशाओं का विभाग होता है वह सूर्यलोक युक्ति के साथ सेवा करने योग्य है ॥ १२ ॥

य आत्मदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर उपासना किया ईश्वर क्या देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( आत्मदाः ) आत्मा को देने और ( बलदाः ) बल देने वाला ( यस्य ) जिस की ( प्रशिषम् ) उत्तम शिक्षा को ( विश्वे ) समस्त ( देवाः ) विद्वान् लोग ( उपासते ) सेवते ( यस्य ) जिसके समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते ( यस्य ) जिस का ( छाया ) आश्रय ( अमृतम् ) अमृतस्वरूप और ( यस्य ) जिसकी आज्ञा का भङ्ग ( मृत्युः ) मरण के तुल्य है ( कस्मै ) सुखरूप ( देवाय ) स्तुति के योग्य परमात्मा के लिये हम लोग ( हविषा ) होमने के पदार्थ से ( विधेम ) सेवा का विधान करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की उत्तम शिक्षा में की हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम के साथ वर्त्तमान हैं जिस सूर्य के विना जल की वर्षा और अवस्था का नाश नहीं होता वह सवितृमण्डल जिसने बनाया है उसी की उपासना सब मिलकर करें ॥१३॥

आ न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! जैसे ( **नः** ) हम लोगों को ( **विश्वतः** ) सब ओर से ( **भद्राः** ) कल्याण करने वाले ( **अदब्धासः** ) जो विनाश को न प्राप्त हुए ( **अपरीतासः** ) औरों ने जो न व्याप्त किये अर्थात् सब कामों से उत्तम ( **उद्भिदः** ) जो दुःखों को विनाश करते वे ( **क्रतवः** ) यज्ञ वा बुद्धि बल ( **आ, यन्तु** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ( **यथा** ) जैसे ( **नः** ) हम लोगों की ( **सदम्** ) उस सभा को कि जिसमें स्थित होते हैं प्राप्त हुए ( **अप्रायुवः** ) जिनकी अवस्था नष्ट नहीं होती वे ( **देवाः** ) पृथिवी आदि पदार्थों के समान विद्वान् जन ( **इत्** ) ही ( **दिवेदिवे** ) प्रतिदिन ( **वृधे** ) वृद्धि के लिये ( **रक्षितारः** ) पालना करने वाले ( **असन्** ) हों वैसा आचरण करो ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान और विद्वानों के संग से बहुत बुद्धियों को प्राप्त होकर सब ओर से धर्म का आचरण कर नित्य सब की रक्षा करने वाले होना चाहिये ॥ १४ ॥

**देवानामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬंरातिरभि नो निवर्त्तताम् ।**
**देवानाᳬं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **देवानाम्** ) विद्वानों की ( **भद्रा** ) कल्याण करने वाली ( **सुमतिः** ) उत्तम बुद्धि हम लोगों को और ( **ऋजूयताम्** ) कठिन विषयों को सरल करते हुए ( **देवानाम्** ) देने वाले विद्वानों का ( **रातिः** ) विद्या आदि पदार्थों का देना ( **नः** ) हम लोगों को ( **अभि, नि, वर्त्तताम्** ) सब ओर से सिद्ध करे सब गुणों से पूर्ण करे ( **वयम्** ) हम लोग ( **देवानाम्** ) विद्वानों की ( **सख्यम्** ) मित्रता को ( **उप, सेदिम** ) अच्छे प्रकार पावें ( **देवाः** ) विद्वान् ( **नः** ) हम को ( **जीवसे** ) जीने के लिये ( **आयुः** ) जिससे प्राण का धारण होता उस आयुर्दा को ( **प्र, तिरन्तु** ) पूरी भुगावें वैसे तुम्हारे प्रति वर्त्ताव रक्खें ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण शास्त्रवेत्ता विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ा के सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रक्खें ॥ १५ ॥

**तान्पूर्वयेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।**
**अर्यमणं वरुणᳬं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **वयम्** ) हम लोग ( **पूर्वया** ) अगले सज्जनों ने स्वीकार की हुई ( **निविदा** ) वेदवाणी से ( **दक्षम्** ) चतुर ( **अर्यमणम्** ) प्रजापालक ( **अस्रिधम्** ) न विनाश करने योग्य ( **भगम्** ) ऐश्वर्य कराने वाले ( **मित्रम्** ) सब के मित्र ( **अदितिम्** ) जिसकी बुद्धि कभी खण्डित नहीं होती उस ( **वरुणम्** ) श्रेष्ठ ( **सोमम्** ) ऐश्वर्यवान् तथा ( **अश्विना** ) पढ़ाने और पढ़ने वाले को ( **हूमहे** ) परस्पर ईर्ष्या करते हुए चाहते हैं । जैसे ( **सुभगा** ) सुन्दर ऐश्वर्य वाली ( **सरस्वती** ) समस्त विद्याओं से पूर्ण वेदवाणी ( **नः** ) हमारे और तुम्हारे लिये ( **मयः** ) सुख को ( **करत्** ) करे वैसे ( **तान्** ) उन उक्त सज्जनों को तुम भी चाहो और सुख करो ॥१६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो जो वेद में कहा हुआ काम है उस उस काम का ही अनुष्ठान करें । जैसे अच्छे विद्यार्थी दूसरे की ईर्ष्या से अपनी विद्या को बढ़ाते हैं वैसे ही सब को विद्या बढ़ानी चाहिये । जैसे परिपूर्ण विद्यायुक्त माता अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा दे विद्याओं की प्राप्ति करा उन की विद्या बढ़ाती है वैसे ही सब को सब के लिये सुख देकर सब की वृद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

**तन्न इत्यस्य गोतम ऋषिः । वायुर्देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर कौन क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।**
**तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे ( **अश्विना** ) पढ़ाने और पढ़ने हारे सज्जनो ! ( **धिष्ण्या** ) भूमि के समान धारण करने वाले ( **युवम्** ) तुम दोनों हम लोगों ने जो पढ़ा है उसको ( **शृणुतम्** ) सुनो । जैसे ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **वातः** ) पवन ( **तत्** ) उस ( **मयोभु** ) सुख करने हारी ( **भेषजम्** ) ओषधि को ( **वातु** ) प्राप्ति करे ( **तत्** ) उस ओषधि को ( **माता** ) मान्य देने वाली ( **पृथिवी** ) विस्तारयुक्त भूमि तथा ( **तत्** ) उसको ( **पिता** ) पालना का हेतु ( **द्यौः** ) सूर्यमण्डल प्राप्त करे तथा ( **तत्** ) उसको ( **सोमसुतः** ) ओषधि और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने और ( **मयोभुवः** ) सुख की भावना कराने हारे ( **ग्रावाणः** ) मेघ प्राप्त करें ( **तत्** ) यह सब व्यवहार तुम्हारे लिये भी होवें ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—जिसकी पृथिवी के समान माता और सूर्य के समान पिता हो वह सब ओर से कुशली सुखी होकर सब को नीरोग और चतुर करे ॥ १७ ॥

**तमीशानमित्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर ईश्वर कैसा है और किसलिये उपासना के योग्य है इस विषय को कहा है—*

**तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।**
**पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **वयम्** ) हम लोग ( **अवसे** ) रक्षा आदि के लिये ( **जगतः** ) चर और ( **तस्थुषः** ) अचर जगत् के ( **पतिम्** ) रक्षक ( **धियञ्जिन्वम्** ) बुद्धि को तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करनेवाले ( **तम्** ) उस अखण्ड ( **ईशानम्** ) सब को वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की ( **हूमहे** ) स्तुति करते हैं वह ( **यथा** ) जैसे ( **नः** ) हमारे ( **वेदसाम्** ) धनों की ( **वृधे** ) वृद्धि के लिये ( **पूषा** ) पुष्टिकर्त्ता तथा ( **रक्षिता** ) रक्षा करने हारा ( **स्वस्तये** ) सुख के लिये ( **पायुः** ) सब का रक्षक ( **अदब्धः** ) नहीं मारने वाला ( **असत्** ) होवे वैसे तुम लोग भी उसकी स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करनेवाला होवे ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जिस सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम लोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला जानें उसी की उपासना तुम लोग भी करो और उसी को सबकी उन्नति करनेवाला जानो ॥ १८ ॥

**स्वस्ति न इत्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस विषय को कहा है—*

**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।**
**स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **वृद्धश्रवाः** ) बहुत सुनने वाला ( **इन्द्रः** ) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर ( **नः** ) हमारे लिये ( **स्वस्ति** ) उत्तम सुख जो ( **विश्ववेदाः** ) समस्त जगत् में वेद ही जिस का धन है वह ( **पूषा** ) सब का पुष्टि करनेवाला ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **स्वस्ति** ) सुख जो ( **तार्क्ष्यः** ) घोड़े के समान ( **अरिष्टनेमिः** ) सुखों की प्राप्ति कराता हुआ ( **नः** ) हम लोगों के लिये ( **स्वस्ति** ) उत्तम सुख तथा जो ( **बृहस्पतिः** ) महत्तत्त्व आदि का स्वामी वा पालना करनेवाला परमेश्वर ( **नः** ) हमारे लिये ( **स्वस्ति** ) उत्तम सुख को ( **दधातु** ) धारण करे वह तुम्हारे लिये भी सुख का धारण करे ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने सुख को चाहें वैसे और के लिये भी चाहें जैसे कोई भी अपने लिये दुःख नहीं चाहता वैसे और के लिये भी न चाहें ॥ १९ ॥

**पृषदश्वा इत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर कौन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।**
**अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥२०॥**

**पदार्थ**—जो ( **पृश्निमातरः** ) जिनका मान्य देने वाला अन्तरिक्ष माता के तुल्य है उन वायुओं के समान ( **पृषदश्वाः** ) जिन के पुष्टि आदि से सींचे अङ्गों वाले घोड़े हैं वे ( **मरुतः** ) मनुष्य तथा ( **विदथेषु** ) संग्रामों में ( **शुभंयावानः** ) जो उत्तम सुख को प्राप्त होने और ( **जग्मयः** ) संग करनेवाले ( **अग्निजिह्वाः** ) जिन की अग्नि के समान प्रकाशित वाणी और ( **सूरचक्षसः** ) जिन का ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दर्शन होवे ऐसे ( **विश्वे** ) समस्त ( **देवाः** ) विद्वान् ( **मनवः** ) जन ( **अवसा** ) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान हैं वे लोग ( **इह** ) इस संसार वा इस समय में ( **नः** ) हम लोगों को ( **आ, अगमन्** ) प्राप्त होवें ॥ २० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को विद्वानों का संग सदैव प्रार्थना करने योग्य है । जैसे इस जगत् में सब वायु आदि पदार्थ सब मनुष्यों वा प्राणियों के जीवन के हेतु हैं वैसे इस जगत् में चेतनों में विद्वान् हैं ॥२०॥

**भद्रमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬंसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे ( **यजत्राः** ) संग करनेवाले ( **देवाः** ) विद्वानो ! आप लोगों के साथ से हम ( **कर्णेभिः** ) कानों से ( **भद्रम्** ) जिससे सत्यता जानी जावे उस वचन को ( **शृणुयाम** ) सुनें ( **अक्षभिः** ) आंखों से ( **भद्रम्** ) कल्याण को ( **पश्येम** ) देखें ( **स्थिरैः** ) दृढ़ ( **अङ्गैः** ) अवयवों से ( **तुष्टुवांसः** ) स्तुति करते हुए ( **तनूभिः** ) शरीरों से ( **यत्** ) जो ( **देवहितम्** ) विद्वानों के लिये सुख करने हारी ( **आयुः** ) अवस्था है उस को ( **वि, अशेमहि** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों । मनुष्यों को चाहिये कि असत्य का सुनना खोटा देखना झूठी स्तुति प्रार्थना प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करें ॥ २१ ॥

**शतमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर हमारे लिये कौन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।**
**पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे ( **देवा** ) विद्वानो ! आप के ( **अन्ति** ) समीप स्थित ( **न** ) हम लोगों के ( **यत्र** ) जिस व्यवहार में (**तनूनाम्**) शरीरों की (**जरसम्**) वृद्धावस्था और ( **शतम्** ) सौ (**शरद** ) वर्ष पूरे हों उस व्यवहार को ( **नु** ) शीघ्र (**चक्र**) करो (**यत्र**) जहां (**पुत्रास** ) बुढ़ापे के दुःखों से रक्षा करने वाले लड़के (**इत्**) ही (**पितर** ) पिता के समान वर्त्तमान ( **भवन्ति** ) होते हैं उस ( **न** ) हम लोगों की ( **गन्तो** ) चाल और (**आयु** ) अवस्था को (**मध्या**) पूरी अवस्था भोगने के बीच (**मा रीरिषत**) मत नष्ट करो ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को गर्भ दीर्घकाल अर्थात् अड़तालीस वर्ष प्रमाणे ब्रह्मचर्य सेवना चाहिये । जिससे पिता आदि के विद्यमान होते ही लड़के भी पिता हो जावें अर्थात् उनके भी लड़के हो जावें । और जब सौ वर्ष आयु बीत तभी शरीरों की वृद्धावस्था होवे । जो ब्रह्मचर्य के साथ कम से कम पच्चीस वर्ष व्यतीत होवें उससे पीछे भी अतिमैथुन करके जो लोग वीर्य का नाश करते हैं तो वे रोगसहित निर्बुद्धि होके अधिक अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥ २२ ॥

**अदितिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । द्यौरित्यादयो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।**
**विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुमको (**द्यौ** ) कारणरूप से जो प्रकाश वह (**अदिति** ) अखण्डित ( **अन्तरिक्षम्** ) अन्तरिक्ष ( **अदिति** ) अविनाशी ( **माता** ) सब जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति ( **स** ) वह परमेश्वर ( **पिता** ) नित्य पालन करने हारा और ( **स** ) वह ( **पुत्र** ) ईश्वर के पुत्र के समान वर्त्तमान ( **अदिति** ) कारणरूप से अविनाशी संसार ( **विश्वे** ) समस्त (**देवा** ) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि पदार्थ ( **अदिति** ) कारणरूप से विनाशरहित ( **पञ्च** ) पांच ( **जना** ) मनुष्य वा प्राण ( **अदिति** ) कारणरूप से अविनाशी तथा ( **जातम्** ) जो कुछ उत्पन्न हुआ कार्यरूप जगत् और ( **जनित्वम्** ) जो उत्पन्न होने वाला वह सब ( **अदिति** ) कारणरूप से नित्य है यह जानना चाहिये ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! आप लोग जितने कुछ कार्यरूप जगत् को देखते हो वह अदृष्ट कारण रूप जानो । जगत् का बनाने वाला परमात्मा जीव पृथिवी आदि तत्त्व जो उत्पन्न हुआ वा जो होगा और जो प्रकृति वह सब स्वरूप से नित्य है कभी इसका अभाव नहीं होता और यह भी जानना चाहिये कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती ॥ २[३] ॥

**मा न इत्यस्य गोतम ऋषिः । मित्रादयो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर कौन हम लोगों के किस काम को न करें इस विषय को कहा है—*

**मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ख्यन् ।**
**यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! जैसे ( **मित्र** ) प्राण के समान मित्र ( **वरुण** ) उदान के समान श्रेष्ठ ( **अर्यमा** ) और न्यायाधीश के समान नियम करने वाला ( **इन्द्र** ) राजा तथा ( **ऋभुक्षा** ) महात्मा ( **मरुत** ) जन ( **न** ) हम लोगों की ( **आयु** ) आयुर्दा को ( **मा** ) मत ( **परिख्यन्** ) विनाश करावें जिससे हम लोग (**देवजातस्य**) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (**वाजिन** ) वेगवान् (**सप्ते** ) घोड़ा के समान उत्तम वीर पुरुष के ( **विदथ** ) युद्ध में ( **यत** ) जिन ( **वीर्याणि** ) बलों को ( **प्रवक्ष्याम** ) कहें उनका मत विनाश करावें, वैसा आप लोग उपदेश करें ॥ २४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब मनुष्य अपने बलों को बढ़ाना चाहें वैसे औरों के भी बल को बढ़ाने की इच्छा करें ॥

**यन्निर्णिजेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यन्नि॒र्णिजा॒ रेक्ण॑सा॒ प्रावृ॑तस्य रा॒तिं गृ॑भी॒तां मु॑ख॒तो नय॑न्ति ।**
**सुप्रा॑ङ॒जो मेम्य॑द्वि॒श्वरू॑प इन्द्रापू॒ष्णोः प्रि॒यमप्ये॑ति॒ पाथः॑ ॥२५॥**

**पदार्थ**—( **यत** ) जो मनुष्य (**निर्णिजा**) सुन्दररूप और ( **रेक्णसा** ) धन से (**प्रावृतस्य**) युक्त जन की (**रातिम्**) देनी वा (**गृभीताम्**) ली हुई वस्तु को ( **मुखत** ) आगे से ( **नयन्ति** ) प्राप्त कराते तथा जो ( **मेम्यत** ) प्राप्त होता हुआ ( **सुप्राङ्** ) अच्छे प्रकार पूछने वाला ( **विश्वरूप** ) संसार जिसका रूप वह ( **अज** ) जन्म और मरण आदि दोषों से रहित अविनाशी जीव (**इन्द्रापूष्णो** ) बिजुली और पवन सम्बन्धी ( **प्रियम्** ) मनोहर ( **पाथ** ) अन्न को ( **अप्येति** ) सब ओर से पाता है वे मनुष्य और वह जीव सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य धन को पाकर अच्छे कामों में खर्च करते हैं वे सब कामनाओं को पाते हैं ॥ २५ ॥

**एष इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर किसके साथ कौन पालना करने योग्य है इस विषय को कहा है—*

**ए॒ष छागः॑ पु॒रो अश्वे॑न वा॒जिना॑ पू॒ष्णो भा॒गो नी॑यते वि॒श्वदे॑व्यः ।**
**अ॒भि॒प्रियं॒ यत्पु॑रो॒डाश॒मर्व॑ता॒ त्वष्टेदे॑नꣳ सौश्रव॒साय॒ जिन्व॑ति ॥२६॥**

**पदार्थ**—विद्वानों को चाहिये कि जो (**एष** ) यह (**पुर** ) प्रथम (**विश्वदेव्य** ) सब विद्वानों में उत्तम ( **पूष्ण** ) पुष्टि करने वाले का (**भाग** ) सेवने योग्य (**छाग** ) पदार्थों को छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी ( **वाजिना** ) वेगवान् ( **अश्वेन** ) घोड़ा के साथ ( **नीयते** ) प्राप्त किया जाता है और ( **यत्** ) जिस ( **अभिप्रियम्** ) सब ओर से मनोहर ( **पुरोडाशम्** ) पुरोडाश नामक यज्ञभाग को ( **अर्वता** ) पहुंचाते हुए घोड़े के साथ (**त्वष्टा**) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला (**एनम्**) उक्त भाग को (**सौश्रवसाय**) उत्तम कीर्त्तिमान् होने के लिये ( **इत्** ) ही ( **जिन्वति** ) पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—यदि अश्वादिकों के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति करें ॥ २६ ॥

**यद्धविष्यमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर किससे कौन क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यद्ध॑वि॒ष्य॑मृतु॒शो दे॑व॒यानं॒ त्रिर्मानु॑षाः॒ पर्यश्वं॒ नय॑न्ति ।**
**अत्रा॑ पू॒ष्णः प्र॑थ॒मो भा॒ग ए॑ति य॒ज्ञं दे॒वेभ्यः॑ प्रतिवे॒दय॑न्न॒जः ॥२७॥**

**पदार्थ**—( **यत** ) जो ( **मानुषा** ) मनुष्य ( **ऋतुश** ) ऋतु ऋतु के योग्य ( **हविष्यम्** ) होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी ( **देवयानम्** ) दिव्य गुण वाले विद्वानों की प्राप्ति कराने हारे (**अश्वम्**) शीघ्रगामी प्राणी को (**त्रि:**) तीनवार ( **परि, नयन्ति** ) सब ओर पहुँचाते हैं वा जो (**अत्र**) इस संसार में ( **पूष्ण** ) पुष्टि सम्बन्धी ( **प्रथम** ) प्रथम (**भाग** ) सेवन योग्य (**देवेभ्य** ) विद्वानों के लिये ( **यज्ञम्** ) सत्कार को ( **प्रतिवेदयन्** ) जनाता हुआ ( **अज** ) विशेष पशु बकरा (**एति**) प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है ॥ २७ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य ऋतु ऋतु के प्रति उनके गुणों के अनुकूल आहार विहारों को करते तथा घोड़ा और बकरा आदि पशुओं से संगत हुए कामों को करते हैं वे अत्यन्त सुख को पाते हैं ॥ २७ ॥

**होतेत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**होता॑ध्व॒र्युराव॑या अग्निमि॒न्धो ग्रा॑वग्रा॒भ उ॒त शꣳस्ता॒ सुवि॑प्रः ।**
**तेन॑ य॒ज्ञेन॒ स्व॑रंकृतेन॒ स्वि॑ष्टेन व॒क्षणा॒ऽआ पृ॑णध्वम् ॥२८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**होता**) ग्रहण करने हारा वा ( **आवया** ) जिससे अच्छे प्रकार यज्ञ संग और दान करते वह वा (**अग्निमिन्ध** ) अग्नि का प्रदीप्त करने हारा वा ( **ग्रावग्राभ** ) मेघ को ग्रहण करने हारा वा ( **शंस्ता** ) प्रशंसा करने हारा (**उत**) और (**सुविप्र** ) जिसके समीप अच्छे अच्छे बुद्धिमान् हैं वह (**अध्वर्यु** ) अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला उत्तम जन जिस (**स्वरंकृतेन**) सुन्दर सुशोभित किये (**स्विष्टेन**) सुन्दर भाव से चाहे और ( **यज्ञेन** ) मिले हुए यज्ञ आदि उत्तम काम से ( **वक्षणा** ) नदियों को पूर्ण करता अर्थात् यज्ञ करने से पानी वर्षा उस वर्षे हुए जल से नदियों को भरता जैसे ( **तेन** ) उस काम से तुम लोग भी (**आ, पृणध्वम्**) अच्छे प्रकार सुख भोगो ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सुगन्ध आदि से उत्तम बनाये हुए होम करने योग्य पदार्थों को अग्नि में छोड़ने से पवन और वर्षा जल आदि पदार्थों को शोध कर नदी नद आदि के जलों की शुद्धि करते हैं वे सदैव सुख भोगते हैं ॥ २८ ॥

**यूपव्रस्का इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**यू॒प॒व्र॒स्का उ॒त ये यू॑पवा॒हाश्च॒षालं॒ ये अ॑श्वयू॒पाय॒ तक्ष॑ति ।**
**ये चार्व॑ते॒ पच॑नꣳ स॒म्भर॑न्त्यु॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्त्तिर्न इन्वतु ॥२९॥**

**पदार्थ**—( **ये** ) जो ( **यूपव्रस्का** ) यज्ञ खम्भा के छेदन बनाने ( **उत** ) और ( **ये** ) जो (**यूपवाहा** ) यज्ञस्तम्भ को पहुँचाने वाले (**अश्वयूपाय**) घोड़ा के बांधने के लिये ( **चषालम्** ) खम्भा के खण्ड को ( **तक्षति** ) काटते छांटते ( **ये, च** ) और जो (**अर्वते**) घोड़ा के लिये (**पचनम्**) जिसमें पाक किया जाय उस काम को (**सम्भरन्ति**) अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते ( **उतो** ) और जो उत्तम यत्न करते हैं ( **तेषाम्** ) उनका (**अभिगूर्त्ति** ) सब प्रकार से उद्यम (**न** ) हम लोगों को ( **इन्वतु** ) व्याप्त और प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—जो कारुक शिल्पीजन घोड़ा के बांधने आदि काम के काठों से विशेष काम बनाते और जो वैद्य घोड़े आदि पशुओं की ओषधि और उनकी सजावट की सामग्रियों को इकट्ठा करते हैं वे सदा उद्यम करते हुए हम लोगों को प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

**उप प्रागादित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर कौन किनसे क्या लेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उप॒ प्रागा॑त्सु॒मन्मे॑ऽधायि॒ मन्म॑ दे॒वाना॒माशा॒ऽउप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः ।**
**अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥३०॥**

**पदार्थ**—जिसने ( **सुमत्** ) आप ही ( **देवानाम्** ) विद्वानों का ( **वीतपृष्ठः** ) जिस का पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार ( **अधायि** ) धारण किया वा जिस से इन के और ( **मे** ) मेरे ( **मन्म** ) विज्ञान को तथा ( **आशा** ) दिशा दिशान्तरों को ( **उप, प्र, अगात** ) प्राप्त हो वा जिस ( **एनम्** ) इस प्रत्यक्ष व्यवहार के (**अनु**)

अनुकूल ( देवानाम् ) विद्वानो के बीच ( पुष्टे ) पुष्ट बलवान् जन के निमित्त ( मन्मथ ) मन्त्रो का अर्थ जानने वाले ( विप्रा ) धीरबुद्धि पुरुष ( उप मदन्ति ) समीप होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं उस ( सुबन्धुम् ) सुन्दर सुन्दर भाइयो वाले जन को हम लोग ( चकृम ) उत्पन्न करें ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो विद्वानो के समीप से उत्तम ज्ञान को पाके ऋषि होते हैं व सब को विज्ञान देने से पुष्ट करते है जो परस्पर एक दूसरे की उन्नति कर परिपूर्ण काम वाले होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ ३० ॥

यद्वाजिन इत्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर कौन किनसे क्या करे इस विषय का अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यद्वाजिनो दाम॑ सन्दान॒मर्व॑तो या शी॑र्ष॒ण्या॑ रश॒ना रज्जु॑रस्य ।**

**यद्वा॑ घास्य॒ प्रभृ॑तमा॒स्ये॒ तृण॑ꣳ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥३१**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( वाजिन ) प्रशस्त वेग वाले ( अस्य ) इस ( अर्वत ) बलवान् घोडे का ( यत् ) जो ( दाम ) उदरबन्धन अर्थात् तंगी और ( संदानम् ) अगाड़ी पछाडी पर आदि मे बांधने की रस्सी वा ( या ) जो ( शीर्षण्या ) शिर मे होने वाली ( रशना ) मुह मे व्याप्त ( रज्जु ) रस्सी मुहेरा आदि ( यत, वा ) अथवा जो ( अस्य ) इस घोड़े के ( आस्ये ) मुख मे ( तृणम् ) घास दूब आदि विशेष तृण ( प्रभृतम् ) उत्तमता से धरी हो ( ता ) वे ( सर्वा ) सब पदार्थ ( ते ) तेरे हो और यह उक्त समस्त वस्तु ( च ) ही ( देवेषु ) विद्वानो मे ( अपि ) भी ( अस्तु ) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोडो को अच्छी शिक्षा कर उनके सब अङ्गो के बन्धन सुन्दर सुन्दर तथा खाने पीने के श्रेष्ठ पदार्थ और उत्तम उत्तम औषध करते हैं वे शत्रुओ को जीतना आदि काम सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३१ ॥

यदश्वस्येत्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर कैसे कौन रक्षा करने योग्य है इस विषय का अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काश॒ यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑ ।**

**यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥३२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत ) जो ( मक्षिका ) मक्खी ( क्रविष ) चलते हुए ( अश्वस्य ) शीघ्र जाने आने वाले का ( आश ) भोजन करती अर्थात् कुछ मांस रुधिर आदि खाती ( वा ) अथवा ( यत ) जो ( स्वरौ ) स्वर ( स्वधितौ ) वज्र के समान वर्तमान हैं वा ( शमितु ) यज्ञ करने हारे के ( हस्तयो ) हाथो मे ( यत ) जो वस्तु ( रिप्तम् ) प्राप्त और ( यत ) जो ( नखेषु ) नखो मे प्राप्त ( अस्ति ) है ( ता ) वे ( सर्वा ) सब पदार्थ ( ते ) तुम्हारे हो तथा यह समस्त व्यवहार ( देवेषु ) विद्वानों मे ( अपि ) भी ( अस्तु ) होवे ॥ ३२ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को ऐसी घुडशाला मे घोड़े बांधने चाहियें जहां इनका रुधिर आदि माछि आदि न पीवें । जैसे यज्ञ करने हारे के हाथ मे लिपटे हुए हवि को धोने आदि से छुडाते है वैसे ही घोड़े आदि पशुओ के शरीर मे लिपटी धूलि आदि को नित्य छुड़ावें ॥ ३२ ॥

यदूवध्यमित्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुपछन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर कौन किसलिये क्या न करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यदूव॑ध्यमु॒दर॑स्याप॒वाति॒ य आ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धोऽअस्ति॑ ।**

**सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तारः॑ कृण्वन्तू॒त मेध॑ꣳ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥३३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( उदरस्य ) पेट के कोष्ठ से ( यत ) जो ( ऊवध्यम् ) मलीन मल ( अपवाति ) निकलता और ( य ) जो ( आमस्य ) न पचे कच्चे ( क्रविषः ) खाये हुए पदार्थ का ( गन्ध ) गन्ध ( अस्ति ) है ( तत् ) उसको ( शमितार ) शान्ति करने अर्थात् आराम देने वाले ( सुकृता ) अच्छा सिद्ध ( कृण्वन्तु ) करें ( उत ) और ( मेधम् ) पवित्र ( शृतपाकम् ) जिसका सुन्दर पाक बने उस को ( पचन्तु ) पकावें ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को छोड सुगन्धि आदि युक्त सुन्दरता से बनाया पाक कर अग्नि मे होम करें वे जगत् का हित चाहने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

यत्ते गात्रादित्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर मनुष्य को किस से क्या निकालना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**यत्ते॒ गात्रा॑द॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति ।**

**मा तद्भूम्या॒मा श्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥३४॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! ( निहतस्य ) निश्चय से श्रम किये हुए ( ते ) तेरे ( अग्निना ) अन्तःकरणरूप तेज से ( पच्यमानात् ) पकाये जाते ( गात्रात् ) अङ्ग से ( यत् ) जो ( शूलम् ) शीघ्र बोध का हेतु वचन ( अभि, अवधावति ) चारो ओर से निकलता है ( तत ) वह ( भूम्याम् ) भूमि पर ( मा, आ, श्रिषत ) नही आता है तथा ( तत् ) वह ( तृणेषु ) तृणो पर ( मा ) नहीं आता किन्तु वह तो ( उशद्भ्य ) सत्पुरुष ( देवेभ्य ) विद्वानो के लिये ( रातम् ) दिया ( अस्तु ) होवे ॥ ३४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ज्वर आदि से पीडित अङ्ग हों उन को वैद्यजनों से नीरोग कराना चाहिये क्योकि उन वैद्यजनो से जो औषध दिया जाता है वह रोगी जन के लिये हितकारी होता है ॥ ३४ ॥

ये वाजिनमित्यस्य गोतम ऋषि । विश्वेदेवा देवता । स्वराट्त्रिष्टुप छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर कौन रोकने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**ये वा॒जिनं॑ परि॒पश्य॑न्ति प॒क्वं य ई॑मा॒हुः सु॑र॒भिर्निर्ह॒रेति॑ ।**

**ये चार्व॑तो मा॒ꣳसभि॒क्षामु॒पास॑त उ॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्तिर्न इन्वतु ॥३५॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( अर्वत ) घोडे के ( मांसभिक्षाम् ) मांस के मांगने की ( उपासते ) उपासना करते ( च ) और ( ये ) जो घोडा को ( ईम ) पाया हुआ मारने योग्य ( आहु ) कहते हैं उनको ( नि हर ) निरन्तर हरो दूर पहुँचाओ ( ये ) जो ( वाजिनम् ) वेगवान् घोडा को ( पक्वम् ) पक्का सिखा के ( परिपश्यन्ति ) सब ओर से देखते हैं ( उतो ) और ( तेषाम् ) उन का ( सुरभि ) अच्छा सुगन्ध और ( अभिगूर्ति ) सब ओर से उद्यम ( न ) हम लोगो को ( इन्वतु ) प्राप्त हो उनके अच्छे काम हमको प्राप्त हो ( इति ) इस प्रकार दूर पहुँचाओ ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जो घोडे आदि उत्तम पशुओ का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषो को रोकने चाहियें जिस से मनुष्यो का उद्यम सिद्ध हो ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणमित्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*फिर किस को क्या देखना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यन्नीक्ष॑णं मा॒ꣳस्पच॑न्या उ॒खाया॒ या पात्रा॑णि यू॒ष्ण आ॒सेच॑नानि ।**

**ऊ॒ष्म॒ण्या॑ऽपि॒धाना॑ च॒रूणा॑म॒ङ्काः सू॒नाः परि॑ भूष॒न्त्यश्व॑म् ॥३६॥**

पदार्थ—( या ) जो ( ऊष्मण्या ) गरमियो मे उत्तम ( अपिधाना ) ढांपने ( आसेचनानि ) और सिचाने हारे ( पात्राणि ) पात्र वा ( यत ) जो ( मांस्पचन्या ) मांस जिस मे पकाया जाय उस ( उखायाः ) बटलाई का ( नीक्षणम् ) निकृष्ट देखना वा ( चरूणाम ) पात्रो के ( अङ्का ) लक्षण किये हुए ( सूना ) प्रसिद्ध पदार्थ तथा ( यूष्ण ) बढाने वाले के ( अश्वम ) घोडे का ( परि, भूषन्ति ) सब ओर से सुशोभित करते है वे सब स्वीकार करने योग्य हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ—यदि कोई घोड़ आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियो का मांस खावें तो उन को यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिये ॥ ३६ ॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषि । विद्वांसो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

*फिर मनुष्यो को मांस न खाना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**मा त्वा॒ग्निर्ध्व॑नयीद्धू॒मग॑न्धि॒र्मोखा भ्राज॑न्त्य॒भि वि॑क्त॒ जघ्रिः॑ ।**

**इ॒ष्टं वी॒तम॒भिगू॑र्तं॒ वष॑ट्कृतं॒ तं दे॒वासः॒ प्रति॑ गृभ्ण॒न्त्यश्व॑म् ॥३७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( देवास ) विद्वान् जन जिस ( इष्टम ) चाहे हुए ( वीतम ) प्राप्त ( अभिगूर्तम ) चारो ओर से जिस में उद्यम किया गया ( वषट्कृतम ) ऐसी क्रिया से सिद्ध हुए ( अश्वम् ) वेगवान् घोडे का ( प्रति गृभ्णन्ति ) प्रतीति से ग्रहण करते उस को तुम ( अभि ) सब ओर से ( विक्त ) जानो ( त्वा ) उसको ( धूमगन्धि ) धुआ मे गन्ध जिस का वह ( अग्निः ) अग्नि ( मा ) मत ( ध्वनयीत ) शब्द करे वा ( तम् ) उस का ( जघ्रि ) जिससे किसी वस्तु को सूंघते हैं वह ( भ्राजन्ती ) चमकती हुई ( उखा ) बटलोई ( मा ) मत हिंसावें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन मांसाहारियो को निवृत्त कर घोड़ा आदि पशुओ की वृद्धि और रक्षा करते हैं वैसे तुम भी करो और अग्नि आदि के विघ्नो से अलग रक्खो ॥ ३७ ॥

निक्रमणमित्यस्य गोतम ऋषि । यज्ञो देवता । विराट्पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

**नि॒क्रम॑णं नि॒षद॑नं वि॒वर्त॑नं॒ यच्च॒ पड्बी॑श॒मर्व॑तः ।**

**यच्च॑ प॒पौ यच्च॑ घा॒सिं ज॒घास॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥३८॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( ते ) तेरे ( अर्वत ) घोड़े का ( निक्रमणम् ) निकलना ( निषदनम् ) बैठना ( विवर्त्तनम् ) विशेष कर वर्त्ताव वर्त्तना ( च ) और ( यत् ) जो ( पड्बीशम ) पछाड़ी ( यत, च ) और जो यह ( पपौ ) पीता ( यत्, च ) और जो ( घासिम् ) घास ( जघास ) खाता ( ता ) वे ( सर्वा ) सब काम युक्ति के साथ हो और यह सब ( देवेषु ) दिव्य उत्तम गुण वालों मे ( अपि ) भी ( अस्तु ) होवे ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! आप घोड़े आदि पशुओं को अच्छी शिक्षा तथा खान पान के देने से अपने सब कामों को सिद्ध किया करो ॥ ३८ ॥

यदश्वायेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवता । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

**यदश्वा॑य॒ वास॑ उपस्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै ।**
**सं॒दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्बी॑शं प्रि॒या दे॒वेष्वा या॑मयन्ति ॥३९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! आप ( अस्मै ) इस ( अश्वाय ) घोड़े के लिये ( यत् ) जो ( वासः ) वस्त्र ( अधीवासम् ) चारजामा ( सन्दानम् ) मुहेरा आदि और ( या ) जिन ( हिरण्यानि ) सुवर्ण के बनाये हुए आभूषणों को ( उपस्तृणन्ति ) ढांपते वा जिस ( पड्बीशम् ) पैरों से प्रवेश करते और ( अर्वन्तम् ) जाते हुए घोड़े को ( आ, यामयन्ति ) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं वे सब पदार्थ और काम ( देवेषु ) विद्वानों में ( प्रिया ) प्रीति देनेवाले हों ॥३९॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् रक्षा करके उपकार लेवें तो बहुत कार्यों की सिद्धि से उपकारयुक्त हों ॥ ३९ ॥

यत्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ ।**
**स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ अध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥४०॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( ते ) आपके ( सादे ) बैठने के स्थान में ( महसा ) बड़प्पन से ( वा ) अथवा ( शूकृतस्य ) जल्दी सिखाये हुये घोड़े के ( कशया ) कोड़े से ( यत् ) जिस कारण ( पार्ष्ण्या ) पसुली आदि स्थान ( वा ) वा कक्षाओं में जो उत्तम ताड़ना आदि काम वा ( तुतोद ) साधारण ताड़ना देना ( ता ) उन सबको ( अध्वरेषु ) यज्ञों में ( हविषः ) होमने योग्य पदार्थ सम्बन्धी ( स्रुचेव ) जैसे स्रुचा प्रेरणा देती वैसे करते हो ( ता ) वे ( सर्वा ) सब काम ( ते ) तेरे लिये ( ब्रह्मणा ) धन से ( सूदयामि ) प्राप्त करता हूँ ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ के साधनों से होमने योग्य पदार्थों को प्रेरणा देते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को अच्छी सिखावट की रीति से प्रेरणा देवें ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ सम॑ेति ।**
**अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ॥४१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे घुड़चढ़ा चाबुकी जन ( देवबन्धोः ) जिसके विद्वान् बन्धु के समान उस ( वाजिनः ) वेगवान् ( अश्वस्य ) घोड़े की ( चतुस्त्रिंशत् ) चौंतीस ( वङ्क्रीः ) टेढ़ी बैंढी चालों को ( सम्, एति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और ( अच्छिद्रा ) छेद भेद रहित ( गात्रा ) अङ्ग और ( वयुना ) उत्तम ज्ञानों को ( कृणोतु ) करे वैसे उसके ( परुष्परुः ) प्रत्येक मर्मस्थान को ( अनुघुष्य ) अनुकूलता से बजाकर ( स्वधितिः ) वज्र के समान वर्त्तमान तुम लोग रोगों को ( वि, शस्त ) विशेषता से छिन्न भिन्न करो ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे घोड़ों को सिखाने वाला चतुर जन चौंतीस चित्र विचित्र गतियों को घोड़े को पहुँचाता और वैद्यजन प्राणियों को नीरोग करता है वैसे ही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरित्यस्य गोतम ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर किस प्रकार पशु सिखाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ऽऋ॒तुः ।**
**या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( एकः ) अकेला ( ऋतुः ) वसन्त आदि ऋतु ( त्वष्टुः ) शोभायमान ( अश्वस्य ) घोड़े का ( विशस्ता ) विशेष करके रूपादि का भेद करनेवाला होता है वा जो ( द्वा ) दो ( यन्तारा ) नियम करनेवाले ( भवतः ) होते हैं ( तथा ) वैसे ( या ) जिन ( ते ) तुम्हारे ( गात्राणाम् ) अङ्गों वा ( पिण्डानाम् ) पिण्डों के ( ऋतुथा ) ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं ( कृणोमि ) करता हूँ ( ताता ) उन उनको ( अग्नौ ) आग में ( प्र, जुहोमि ) होमता हूँ ॥४२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे घोड़ों को सिखानेवाले ऋतु ऋतु के प्रति घोड़ों को अच्छा सिखाते हैं वैसे गुरुजन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं वा जैसे अग्नि में पिण्डों का होम कर पवन की शुद्धि करते हैं वैसे विद्यारूपी अग्नि में अविद्यारूप भ्रमों को होम के आत्माओं की शुद्धि करते हैं ॥ ४२ ॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को आत्मादि पदार्थ कैसे शुद्ध करने चाहियें इस विषय को कहा है—*

**मा त्वा॑ तपत्प्रि॒य आ॒त्माऽपि॒यन्तं॒ मा स्वधि॑तिस्त॒न्व॒ आ ति॑ष्ठिप॒त्ते ।**
**मा ते॑ गृ॒ध्नुर॑विश॒स्ताति॒हाय॑ छि॒द्रा गात्रा॑ण्य॒सिना॒ मिथू॑ कः ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् ! ( ते ) आपका जो ( प्रियः ) प्रीति वा आनन्द देनेवाला वह ( आत्मा ) अपना निज रूप आत्मतत्त्व भी ( अपियन्तम् ) निश्चय से प्राप्त होते हुए ( त्वा ) आपको ( अतिहाय ) अतीव छोड़के ( मा, तपत् ) मत सन्ताप को प्राप्त हो ( स्वधितिः ) वज्र ( ते ) आपके ( तन्वः ) शरीर के बीच ( मा, तिष्ठिपत् ) मत स्थित करावे आपके ( छिद्रा ) छिन्न भिन्न ( गात्राणि ) अङ्गों को ( अविशस्ता ) विशेष न काटने और ( गृध्नुः ) चाहनेवाला जन ( मा ) मत स्थित करावे तथा ( असिना ) तलवार से ( मिथू ) परस्पर मत ( कः ) चेष्टा करे ॥४३॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिये कि अपने अपने आत्मा को शोक में न डालें किसी के ऊपर वज्र न छोड़ें और किसी का उपकार किया हुआ न नष्ट किया करें ॥ ४३ ॥

न वा इत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को कैसे रथ निर्माण करने चाहियें इस विषय को कहा है—*

**न वाऽउ॑ऽए॒तन्म्रि॑यसे॒ न रि॑ष्यसि दे॒वाँ२॥ऽइदे॑षि प॒थिभिः॑ सु॒गेभिः॑ ।**
**हरी॑ ते॒ युञ्जा॒ पृष॑तीऽअभूता॒मुपा॑स्थाद्वा॒जी धु॒रि रास॑भस्य ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! यदि ( एतत् ) इस पूर्वोक्त विज्ञान को पाते हो तो ( न ) न तुम ( म्रियसे ) मरते ( न ) न ( वै ) ही ( रिष्यसि ) मारने हो किन्तु ( सुगेभिः ) सुगम ( पथिभिः ) मार्गों से ( देवान् ) विद्वानों ( इत् ) ही को ( एषि ) प्राप्त होते हो यदि ( ते ) आप के ( पृषती ) स्थूल शरीरयुक्त ( युञ्जा ) योग करने हारे घोड़े ( हरी ) पहुँचाने वाले ( अभूताम् ) हों ( उ ) तो ( वाजी ) वेगवान् एक घोड़ा ( रासभस्य ) अश्वजाति से सम्बन्ध रखने वाले खिच्चर की ( धुरि ) धारणा के निमित्त ( उप, अस्थात् ) उपस्थित हो ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—जो विद्या से अच्छे प्रकार जिनका प्रयोग किया उन पवन जल और अग्नि से युक्त रथ में स्थित होके मार्गों को सुख से जाते हैं वैसे ही आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जान के मरण और हिंसा के डर को छोड़ दिव्य सुखों को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

सुगव्यमित्यस्य गोतम ऋषिः । प्रजा देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*किन से राज्य की उन्नति होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सु॒गव्यं॑ नो वा॒जी स्वश्व्यं॑ पुं॒सः पु॒त्राँ२॥ऽउ॒त वि॑श्वा॒पुष॑ꣳ र॒यिम् ।**
**अ॒ना॒गा॒स्त्वं नो॒ऽअदि॑तिः कृणोतु क्ष॒त्रं नो॒ऽअश्वो॑ वनताꣳ ह॒विष्मा॑न् ॥४५॥**

**पदार्थ**—जो ( नः ) हमारा ( वाजी ) घोड़ा ( सुगव्यम् ) सुन्दर गौओं के लिये सुखस्वरूप ( स्वश्व्यम् ) अच्छे घोड़ों में प्रसिद्ध हुए काम को करता है वा जो विद्वान् ( पुंसः ) पुरुषपन से युक्त पुरुषार्थी ( पुत्रान् ) पुत्रों ( उत ) और ( विश्वापुषम् ) समग्र पुष्टि करने वाले ( रयिम् ) धन को प्राप्त होता वा जैसे ( अदितिः ) कारणरूप से अविनाशी भूमि ( नः ) हमारे लिये ( अनागास्त्वम् ) अपराधरहित होने को करती है वैसे आप ( कृणोतु ) करें वा जैसे ( हविष्मान् ) प्रशंसित सुख देन जिस में है वह ( अश्वः ) व्याप्तिशील प्राणी ( नः ) हम लोगों के ( क्षत्रम् ) राज्य को ( वनताम् ) सेवे वैसे आप सेवा किया करो ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघवीर्य पुरुषार्थ से धन पाये हुए न्याय से राज्य की उन्नति देवें वे सुखी होवें ॥ ४५ ॥

इमा न्वित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । भुरिक्शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर कौन धनवान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इ॒मा नु कं॒ भुव॑ना सीषधा॒मेन्द्र॑श्च॒ विश्वे॑ च दे॒वाः । आ॒दि॒त्यैरिन्द्रः॒ सग॑णो म॒रुद्भि॑र॒स्मभ्यं॑ भेष॒जा क॑रत् । य॒ज्ञं च॑ नस्त॒न्वं च प्र॒जां चा॑दि॒त्यैरिन्द्रः॑ स॒ह सी॑षधाति ॥४६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( इन्द्रः ) परमैश्वर्यवान् राजा ( च ) और ( विश्वे ) सब ( देवाः ) विद्वान् लोग ( च ) भी ( इमा ) इन समस्त ( भुवना ) लोकों को धारण करते वैसे हम लोग ( कम् ) सुख को ( नु ) शीघ्र ( सीषधाम ) सिद्ध करें वा जैसे ( सगणः ) अपने सहचारी आदि गुणों के साथ वर्त्तमान ( इन्द्रः ) सूर्य ( आदित्यैः ) महीनों के साथ वर्त्तमान समस्त लोकों को प्रकाशित करता वैसे ( मरुद्भिः ) मनुष्यों के साथ वैद्यजन ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिये ( भेषजा ) ओषधियां ( करत् ) करे जैसे ( आदित्यैः ) उत्तम विद्वानों के ( सह ) साथ ( इन्द्रः ) परमैश्वर्यवान् सभापति ( नः ) हम लोगों के ( यज्ञम् ) विद्वानों के सत्कार आदि उत्तम काम ( च ) और ( तन्वम् ) शरीर ( च ) और ( प्रजाम् ) सन्तान आदि को ( च ) भी ( सीषधाति ) सिद्ध करे वैसे हम लोग सिद्ध करें ॥४६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के तुल्य नियम से वर्त्ताव रखके शरीर को नीरोग और आत्मा को विद्वान् बना तथा पूर्ण

ब्रह्मचर्य कर स्वयंवरविधि से हृदय की प्यारी स्त्री का स्वीकार कर उस में सन्तानों को उत्पन्न कर और अच्छी शिक्षा देके विद्वान् करते हैं वे धनपति होते हैं ॥४६॥

अग्ने त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।**
**वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः ॥४७॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) वेदवेत्ता पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् आप ( अग्नि ) अग्नि के समान ( नः ) हम लोगों के ( अन्तमः ) समीपस्थ ( त्राता ) रक्षा करने वाले ( शिवः ) कल्याणकारक ( उत ) और ( वरूथ्यः ) घरों में उत्तम ( वसुश्रवाः ) जिन के श्रवण में बहुत धन और ( वसुः ) विद्याओं में बसाने हारे हो ऐसे ( भव ) हूजिये जो ( द्युमत्तमम् ) अतीव प्रकाशवान् ( रयिम् ) धन हम लोगों के लिये ( अच्छ, दाः ) भली भाँति देओ तथा हम को ( नक्षि ) प्राप्त होते हो सो ( त्वम् ) आप हम लोगों में सत्कार पाने योग्य हो ॥ ४७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि सब के उपकारी वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता अध्यापक उपदेशक विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे सत्कार को प्राप्त हुए विद्वान् लोग भी सब के लिये उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देवें जिससे परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े बड़े सुखों का लाभ होवे ॥४७॥

तन्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को इस जगत् में कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।**
**स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥४८॥**

**पदार्थ**—हे ( शोचिष्ठ ) उत्तम गुणों से प्रकाशमान ( दीदिवः ) विद्यादि गुणों से शोभायुक्त विद्वन् जो आप ( नः ) हम लोगों को ( बोधि ) बोध कराते ( तम् ) उन ( त्वा ) आपको ( सुम्नाय ) सुख और ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिये ( नूनम् ) निश्चय से हम लोग ( ईमहे ) याचते हैं ( सः ) सो आप ( नः ) हम लोगों के लिये ( हवम् ) पुकारने को ( श्रुधि ) सुनिये और ( समस्मात् ) अधर्म के तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले ( अघायतः ) आत्मा के अपराध का आचरण करते हुए दुष्ट डाकू चोर लम्पट से हमारी ( उरुष्य ) रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥

**भावार्थ**—विद्यार्थी लोग पढ़ाने वालों के प्रति ऐसे कहें कि आप जो हम लोगों ने पढ़ा है उसकी परीक्षा लीजिये और हम को दुष्ट आचरण से पृथक् रखिये जिससे हम लोग सब के साथ मित्र के समान वर्त्ताव रक्खें ॥४८॥

इस अध्याय में संसार के पदार्थों के गुणों का वर्णन पशु आदि प्राणियों को सिखलाना पालना अपने अङ्गों की रक्षा परमेश्वर की प्रार्थना यज्ञ की प्रशंसा बुद्धि का देना धर्म में इच्छा घोड़े के गुण कहना उस की चाल आदि सिखलाना आत्मा का ज्ञान और धन की प्राप्ति होने का विधान कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये ॥

अब पच्चीसवाँ ( २५ ) अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथ षड्विंशाऽध्यायारम्भः 卐

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

अग्निश्चेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । अभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*अब छब्बीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को तत्त्वों से यथावत् उपकार लेने चाहियें इस विषय का वर्णन किया है—*

**अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदः । सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ२ ॥ऽअध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो जैसे ( मे ) मेरे लिये ( अग्निः ) अग्नि ( च ) और ( पृथिवी ) भूमि ( च ) भी ( सन्नते ) अनुकूल हैं ( ते ) वे ( अदः ) इसको ( सन्नमताम् ) अनुकूल करें जो ( मे ) मेरे लिये ( वायुः ) पवन ( च ) और ( अन्तरिक्षम् ) आकाश ( च ) भी ( सन्नते ) अनुकूल हैं ( ते ) वे ( अदः ) इसको ( सन्नमताम् ) अनुकूल करें जो ( मे ) मेरे लिये ( आदित्यः ) सूर्य ( च ) और ( द्यौः ) उसका प्रकाश ( च ) भी ( सन्नते ) अनुकूल हैं ( ते ) वे ( अदः ) इसको ( सन्नमताम् ) अनुकूल करें जो ( मे ) मेरे अर्थ ( आपः ) जल ( च ) और ( वरुणः ) जल जिसका अवयव है वह ( च ) भी ( सन्नते ) अनुकूल हैं ( ते ) वे दोनों ( अदः ) इस को ( सन्नमताम् ) अनुकूल करें जो ( अष्टमी ) आठमी ( भूतसाधनी ) प्राणियों के कार्यों को सिद्ध करने हारी वा ( सप्त ) सात ( संसदः ) वे सभा जिन में अच्छे प्रकार स्थिर होते ( सकामान् ) समान कामना वाले ( अध्वनः ) मार्गों को करें वैसे तुम ( कुरु ) करो ( अमुना ) इस प्रकार से ( मे ) मेरे लिये ( संज्ञानम् ) उत्तम ज्ञान ( अस्तु ) प्राप्त होवे वैसे ही यह सब तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि अग्नि आदि पञ्चतत्त्वों को यथावत् जान के कोई उन का प्रयोग करे तो वे वर्त्तमान उस अत्युत्तम सुख की प्राप्ति कराते हैं ॥ १ ॥

यथेमामित्यस्य लौगाक्षिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिये वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर जैसे ( ब्रह्मराजन्याभ्याम् ) ब्राह्मण क्षत्रिय ( अर्याय ) वैश्य ( शूद्राय ) शूद्र ( च ) और ( स्वाय ) अपने स्त्री सेवक आदि ( च ) और ( अरणाय ) और उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अन्त्यज के लिये ( च ) भी ( जनेभ्यः ) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये ( इह ) इस संसार में ( इमाम् ) इस प्रकट की हुई ( कल्याणीम् ) सुख देने वाली ( वाचम् ) चारों वेदरूप वाणी का ( आवदानि ) उपदेश करता हूँ वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें । जैसे मैं ( दातुः ) दान देने वाले के संसर्गी ( देवानाम् ) विद्वानों की ( दक्षिणायै ) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये ( प्रियः ) मनोहर पियारा ( भूयासम् ) होऊं और ( मे ) मेरी ( अयम् ) यह ( कामः ) कामना ( समृध्यताम् ) उत्तमता से बढ़े तथा ( मा ) मुझे ( अदः ) वह परोक्षसुख ( उप, नमतु ) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे ॥ २ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेदरूप कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिये मैंने उपदेश की है इस में किसी को अनधिकार नहीं है जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्त्तमान हुआ पियारा हूँ वैसे आप भी होओ । ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे ॥ २ ॥

बृहस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर वह ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥३॥**

**पदार्थ**—हे ( **बृहस्पते** ) बड़े बड़े प्रकृति आदि पदार्थों और जीवों के पालने हारे ईश्वर ! जो आप ( **उपयामगृहीतः** ) प्राप्त हुए यम नियमादि योगसाधनों से जाने गये ( **असि** ) हैं उन ( **त्वा** ) आप को ( **बृहस्पतये** ) बड़ी वेद वाणी की पालना के लिये तथा, जिन ( **ते** ) आप का ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) प्रमाण है उन ( **बृहस्पतये** ) बड़े बड़े आप्त विद्वानों की पालना करने वाले के लिये ( **त्वा** ) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं । हे भगवन् ( **ऋतप्रजात** ) जिन से सत्य उत्तमता से उत्पन्न हुआ वे ( **अर्यः** ) परमात्मा आप ( **जनेषु** ) मनुष्यों में ( **अर्हात्** ) योग्य काम से ( **यत्** ) जो ( **द्युमत्** ) प्रशंसित प्रकाशयुक्त मन ( **क्रतुमत्** ) वा प्रशंसित बुद्धि और कर्मयुक्त मन ( **अति विभाति** ) विशेष कर प्रकाशमान है वा ( **यत्** ) जो ( **शवसा** ) बल से ( **दीदयत्** ) प्रकाशित होता हुआ वर्त्तमान है ( **तत्** ) उस ( **चित्रम्** ) आश्चर्यरूप ज्ञान ( **द्रविणम्** ) धन और यश को ( **अस्मासु** ) हम लोगों में ( **धेहि** ) धारण स्थापन कीजिये ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो जिससे बड़ा न्यायवान् न्यायकारी और अत्यन्त सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं वा जिसने वेद प्रकट करने द्वारा सब मनुष्य सुशोभित किये वा जिसने अद्भुत ज्ञान और धन जगत् में विस्तृत किया और जो योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य है वही ईश्वर हम सब लोगों को प्रति उपासना करने योग्य है यह तुम जानो ॥३॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥४॥**

**पदार्थ**—हे ( **शतक्रतो** ) जिस की सैकड़ों प्रकार की बुद्धि और ( **गोमन्** ) प्रशंसित वाणी है सो ऐसे हे ( **इन्द्र** ) विद्वान् पुरुष आप ( **आ याहि** ) आइये ( **इह** ) इस संसार में ( **विद्यद्भिः** ) विद्यमान ( **ग्रावभिः** ) मेघों से ( **सुतम्** ) उत्पन्न हुए ( **सोमम्** ) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रस को ( **पिब** ) पियो जिससे आप ( **उपयामगृहीतः** ) यम नियमों से इन्द्रियों का ग्रहण किये अर्थात् इन्द्रियों को जीते हुए ( **असि** ) हो इसलिये ( **गोमते** ) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिये और ( **इन्द्राय** ) उत्तम ऐश्वर्य के लिये ( **त्वा** ) आप को और जिन ( **ते** ) आपका ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) निमित्त है उस ( **गोमते** ) प्रशंसित वाणी और ( **इन्द्राय** ) प्रशंसित ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये ( **त्वा** ) आप का हम लोग सत्कार करते हैं ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—जो वैद्यकशास्त्र विद्या से और सिद्ध मेघों से उत्पन्न हुई ओषधियों का सेवन और योगाभ्यास करते हैं वे सुख तथा ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**इन्द्रायाहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥५॥**

**पदार्थ**—हे ( **शतक्रतो** ) बहुत बुद्धि और कर्मयुक्त ( **वृत्रहन्** ) मेघहन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हनने वाले ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्ययुक्त विद्वान् आप ( **गोमद्भिः** ) जिन में बहुत चमकती हुई किरणें विद्यमान उन पदार्थों और ( **ग्रावभिः** ) गर्जनाओं से गर्जते हुए मेघों के साथ ( **आ याहि** ) आइये और ( **सुतम्** ) उत्पन्न हुए ( **सोमम्** ) ऐश्वर्य करने हारे रस को ( **पिब** ) पीओ जिस कारण आप ( **गोमते** ) बहुत दूध देती हुई गौओं से युक्त ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य के लिये ( **उपयामगृहीतः** ) अच्छे नियमों से आत्मा को ग्रहण किये हुए ( **असि** ) हैं उन ( **त्वा** ) आप को तथा जिन ( **ते** ) आप का ( **एषः** ) यह ( **गोमते** ) प्रशंसित भूमि के राज्य से युक्त ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये ( **योनिः** ) घर है उन ( **त्वा** ) आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्य ! जैसे मेघहन्ता सूर्य सब जगत् से रस पी के और वर्षा के सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे ही तू बड़ी ओषधियों के रस को पी तथा ऐश्वर्य की उन्नति के लिये अच्छे प्रकार यत्न कर ॥ ५ ॥

ऋतावानमित्यस्य प्राद्युराङ्गिरस ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

**ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( **ऋतावानम्** ) जो जल का सेवन करता उस ( **वैश्वानरम्** ) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान ( **ऋतस्य** ) जल और ( **ज्योतिषः** ) प्रकाश की ( **पतिम्** ) पालना करने हारे ( **घर्मम्** ) प्रताप को ( **अजस्रम्** ) निरन्तर ( **ईमहे** ) मांगते हैं वैसे तुम इस को मांगो जो आप ( **वैश्वानराय** ) संसार के नायक के लिये ( **उपयामगृहीतः** ) अच्छे नियमों से मन को जीते हुए ( **असि** ) हैं उन ( **त्वा** ) आपको तथा जिन ( **ते** ) आप का ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) घर है उन ( **त्वा** ) आप को ( **वैश्वानराय** ) समस्त संसार के हित के लिये सत्कार युक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि जल आदि मूर्त्तिमान् पदार्थों को अपने तेज से छिन्न भिन्न करता और निरन्तर जल खींचता है उसको जान के मनुष्य सब ऋतुओं में सुख करने हारे घर को पूर्ण करें बनावें ॥ ६ ॥

वैश्वानरस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

**वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७॥**

**पदार्थ**—हम लोग जैसे ( **राजा** ) प्रकाशमान ( **भुवनानाम्** ) लोकों के बीच ( **अभिश्रीः** ) सब ओर से ऐश्वर्य की शोभा से युक्त सूर्य ( **कम्** ) सुख को ( **हि** ) ही सिद्ध करता है और ( **इतः** ) इस कारण ( **जातः** ) प्रसिद्ध हुआ ( **इदम्** ) इस ( **विश्वम्** ) विश्व को ( **वि, चष्टे** ) प्रकाशित करता है वा जैसे ( **सूर्येण** ) सूर्य के साथ ( **वैश्वानरः** ) बिजुली रूप अग्नि ( **यतते** ) यत्नवान् है वैसे हम लोग ( **वैश्वानरस्य** ) संसार के नायक परमेश्वर वा उत्तम सभापति की ( **सुमतौ** ) अति उत्तम देश काल को जानने हारी कपट छलादि दोष रहित बुद्धि में ( **स्याम** ) होवें हे विद्वन् ! जिससे आप ( **उपयामगृहीतः** ) सुन्दर नियमों से स्वीकृत ( **असि** ) हैं इस से ( **वैश्वानराय** ) अग्नि के लिये ( **त्वा** ) आपको तथा जिस ( **ते** ) आप का ( **एषः** ) यह ( **योनिः** ) घर है उन ( **त्वा** ) आप का भी ( **वैश्वानराय** ) अग्नि साध्य कार्य साधन के लिये सत्कार करता हूँ ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्रि को सुशोभित करता है वैसे उत्तम राजा से प्रजा प्रकाशित होती है और विद्वान् शिल्पी जन सर्वोपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है ॥ ७ ॥

वैश्वानर इत्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्य किसके समान क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥**

**पदार्थ**—जैसे ( **वैश्वानरः** ) समस्त नायक जनों में प्रकाशमान विद्वान् ( **परावतः** ) दूर से ( **नः** ) हमारी ( **ऊतये** ) रक्षा के लिये ( **आ, प्र, यातु** ) अच्छे प्रकार आवे वैसे ( **अग्निः** ) अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य ( **उक्थेन** ) प्रशंसा करने योग्य ( **वाहसा** ) व्यवहार के साथ प्राप्त हो जो आप ( **वैश्वानराय** ) प्रकाशमान् के लिये ( **उपयामगृहीतः** ) विद्या के विचार से युक्त ( **असि** ) हैं उन ( **त्वा** ) आप को तथा जिन ( **ते** ) आप का ( **एषः** ) यह घर ( **वैश्वानराय** ) समस्त नायकों में उत्तम के लिये ( **योनिः** ) है उन ( **त्वा** ) आप को भी हम लोग स्वीकार करें ॥८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य दूर देश से अपने प्रकाश से दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन अपने सुन्दर उपदेश से दूरस्थ जिज्ञासुओं को प्रकाशित करते हैं ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

*फिर किन को किस से क्या मांगना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **पाञ्चजन्यः** ) पांच जनों वा प्राणों की क्रिया में उत्तम ( **पुरोहितः** ) पहिले हित करने हारा ( **पवमानः** ) पवित्र ( **ऋषिः** ) मन्त्रार्थवेत्ता और ( **अग्निः** ) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित है ( **तम्** ) उस ( **महागयम्** ) बड़े बड़े घर सन्तान वा धन वाले की जैसे हम लोग ( **ईमहे** ) याचना करें वैसे आप

( वचसे ) पढ़ाने हारे और ( अग्नये ) विद्वान् के लिये ( उपयामगृहीत ) समीप के नियमों से ग्रहण किये हुए ( असि ) हैं इस से ( त्वा ) आप को तथा जिन (ते) आप का ( एष ) यह ( योनि ) निमित्त ( वचसे ) विद्याप्रकाश और ( अग्नये ) विद्वान् के लिये है उन ( त्वा ) आप की हम लोग प्रार्थना करते हैं वैसे तुम भी चेष्टा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि वेदवेत्ता विद्वानों से सदा विद्याप्राप्ति की प्रार्थना किया करें जिससे वे सब मनुष्य महत्त्व को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

महाँ इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजा के सत्कार विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**म॒हाँ२ऽइन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः षोड॒शी शर्म॑ यच्छतु । हन्तु॑ पा॒प्मानं॒ योऽस्मान् द्वेष्टि॑ । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्रा॑य त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्मह॒न्द्राय॑ त्वा ॥१०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( वज्रहस्त ) जिस के हाथों में वज्र ( षोडशी ) सोलह कलायुक्त ( महान् ) बड़ा ( इन्द्र ) और परम ऐश्वर्यवान् राजा ( शर्म ) जिस में दुःख विनाश की प्राप्ति होती है उस घर को ( यच्छतु ) देवे ( यः ) जो ( अस्मान् ) हम लोगों को ( द्वेष्टि ) वैरभाव से चाहता उस (पाप्मानम्) पापात्मा खोटे कर्म करने वाले को ( हन्तु ) मारे । जो आप ( महेन्द्राय ) बड़े बड़े गुणों से युक्त के लिये ( उपयामगृहीत ) प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किये हुए ( असि ) हैं उन ( त्वा ) आप को तथा जिन ( ते ) आप का ( एषः ) यह ( महेन्द्राय ) उत्तम गुण वाले के लिये ( योनि ) निमित्त है उन ( त्वा ) आप का भी हम लोग सत्कार करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! जो तुम्हारे लिये सुख देवे दुष्टों को मारे और महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों का सदा सत्कार करने योग्य है ॥ १० ॥

न व इत्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः ।**
**अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ऽइन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग ( स्वसरेषु ) दिनों में ( धेनवः ) गौएं ( वत्सम् ) जैसे बछड़े को ( न ) वैसे जिस ( दस्मम् ) दुःखविनाशक (ऋतीषहम्) चाल को सहने वाले ( वसोः ) धन और ( अन्धसः ) अन्न के ( मन्दानम् ) आनन्द को प्राप्त हुए ( इन्द्रम् ) परमैश्वर्यवान् सभापति को ( वः ) तुम्हारे लिये ( गीर्भिः ) वाणियों से ( अभि, नवामहे ) सब ओर से स्तुति करते हैं वैसे ही ( तम् ) उस सभापति को आप लोग भी सदा प्रीतिभाव से स्तुति कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे गौयें प्रतिदिन अपने अपने बछड़ों को पालती हैं वैसे ही प्रजाजनों की रक्षा करने वाला पुरुष प्रजा की नित्य रक्षा करे और प्रजा के लिये धन और अन्न आदि पदार्थों से सुखों को नित्य बढ़ाया करे ॥ ११ ॥

यद्वाहिष्ठमित्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह रानी क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यद्वाहि॑ष्ठं॒ तद॒ग्नये॑ बृ॒हद॑र्च विभावसो ।**
**महि॑षीव॒ त्वद्र॒यिस्त्वद्वाजा॒ऽउदी॑रते ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( विभावसो ) प्रकाशित धनवाले विद्वन् ! ( अग्नये ) अग्नि के लिये ( यत् ) जो ( बृहत् ) बड़ा और ( वाहिष्ठम् ) अत्यन्त पहुँचाने हारा है उस का ( अर्च ) सत्कार करो ( तत् ) उस को हम भी सत्कार करें ( महिषीव ) और रानी के समान ( त्वत् ) तुम से ( रयिः ) धन और ( त्वत् ) तुम से ( वाजाः ) अन्न आदि पदार्थ ( उत् ईरते ) जो प्राप्त होते हैं उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे रानी सुख पहुंचाती और बहुत धन देने वाली होती है वैसे ही राजा के समीप से सब लोग धन और अन्य उत्तम उत्तम वस्तुओं को पावें ॥१२॥

एहीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**एह्यू॒ षु ब्रवा॑णि॒ तेऽग्न॑ऽइ॒त्थेत॑रा॒ गिरः॑ । ए॒भिर्व॑र्द्धास॒ इन्दु॑भिः ॥१३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) प्रकाशित बुद्धि वाले विद्वन् ! मैं ( इत्था ) इस हेतु से ( ते ) आप के लिये ( इतराः ) जिन को तुम ने नहीं जाना है उन (गिरः) वाणियों का ( सु ब्रवाणि ) सुन्दर प्रकार से उपदेश करूं कि जिससे आप इन वाणियों को ( आ, इहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ( उ ) और ( एभिः ) इन ( इन्दुभिः ) जलादि पदार्थों से ( वर्द्धासे ) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग विज्ञान में बढ़ें उसी शिक्षा का विद्वान् लोग उपदेश किया करें ॥ १३ ॥

ऋतव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । संवत्सरो देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**ऋ॒तव॑स्ते य॒ज्ञं वित॑न्वन्तु॒ मासा॑ र॒क्षन्तु॑ ते ह॒विः ।**
**सं॒व॒त्स॒रस्ते॑ य॒ज्ञं द॑धातु नः प्र॒जां च॒ परि॑ पातु नः ॥१४॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( ते ) आप के ( यज्ञम् ) सत्कार आदि व्यवहार को ( ऋतवः ) वसन्तादि ऋतु ( वि, तन्वन्तु ) विस्तृत करें ( ते ) आप के ( हविः ) हामने योग्य वस्तु को ( मासाः ) कार्तिक आदि महीने ( रक्षन्तु ) रक्षा करें ( ते ) आप के ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( नः ) हमारा ( संवत्सरः ) वर्ष ( दधातु ) पुष्ट करे ( च नः ) हमारी (प्रजाम्) प्रजा की (परि पातु) सब ओर से आप रक्षा करो ॥१४॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि सब सामग्री से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा की रक्षा किया करें ॥ १४ ॥

उपह्वर इत्यस्य वत्स ऋषिः । विद्वान् देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णाᳬ स॑ङ्ग॒मे च॑ न॒दीना॑म् ।**
**धि॒या विप्रो॑ अजायत ॥१५॥**

पदार्थ—जो मनुष्य ( गिरीणाम् ) पर्वतों के ( उपह्वरे ) निकट ( च ) और ( नदीनाम् ) नदियों के ( सङ्गमे ) मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे वह ( धिया ) उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त (विप्रः) विचारशील बुद्धिमान् ( अजायत ) होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग पर्वत के एकान्त में विचार करते हैं वे योगियों के तुल्य उत्तम बुद्धिमान् होते हैं ॥ १५ ॥

उच्चेत्यस्य महीयव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**उ॒च्चा ते॑ जा॒तमन्ध॑सो दि॒वि सद्भूम्या द॑दे ।**
**उ॒ग्रᳬ शर्म॒ महि॒ श्रवः॑ ॥१६॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं ( ते ) आप के जिस ( उच्चा ) ऊंचे ( अन्धसः ) अन्न से ( जातम् ) प्रसिद्ध हुए ( दिवि ) प्रकाश में ( सत् ) वर्त्तमान ( उग्रम् ) उत्तम ( महि ) बड़े ( श्रवः ) प्रशंसा के योग्य ( शर्म ) घर को ( आ ददे ) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं वह ( भूमि ) पृथिवी के तुल्य दृढ़ हो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य का प्रकाश और वायु जिस में पहुँचा करे ऐसे अन्नादि से युक्त बड़े ऊंचे घरों को बना के उन में बसने से सुख भोगें ॥ १६ ॥

स न इत्यस्य महीयव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**स न॒ऽइन्द्रा॑य॒ यज्य॑वे॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्यः॑ ।**
**व॒रि॒वो॒वित्परि॑ स्रव ॥१७॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( सः ) सो ( मरुद्भ्यः ) मनुष्यों के लिये ( नः ) हमारे ( इन्द्राय ) परमैश्वर्य की ( यज्यवे ) सङ्गति और ( वरुणाय ) श्रेष्ठ जन के लिये ( वरिवोवित् ) सेवाकर्म को जानते हुए आप ( परि, स्रव ) सब ओर से प्राप्त हुआ करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—जिस विद्वान् ने जितना सामर्थ्य प्राप्त किया है उस को चाहिये कि उस सामर्थ्य से सब का सुख बढ़ाया करे ॥ १७ ॥

एनेत्यस्य महीयव ऋषिः । विद्वान् देवता । स्वराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना कैसी करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**ए॒ना विश्वा॑न्य॒र्य आ द्यु॒म्नानि॒ मानु॑षाणाम् ।**
**सिषा॑सन्तो वनामहे ॥१८॥**

पदार्थ—जो ( अर्यः ) ईश्वर ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों की ( एना ) इन ( विश्वानि ) सब ( द्युम्नानि ) शोभायमान कीर्त्तियों की शिक्षा करता है उस की ( सिषासन्तः ) सेवा करने की इच्छा करते हुए हम लोग ( आ, वनामहे ) सुखों को मांगते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिये धनों वस्त्रों और खान पीने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

अनु वीरैरित्यस्य मुद्गल ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अनु॑ वी॒रैरनु॑ पुष्यास्म॒ गोभि॒रन्वश्वै॒रनु॒ सर्वे॑ण पु॒ष्टैः ।**

**अनु॒ द्विप॒दानु॒ चतु॑ष्पदा व॒यं दे॒वा नो॑ य॒ज्ञमृ॑तु॒था न॑यन्तु ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! जैसे ( **वयम्** ) हम लोग ( **पुष्टैः** ) पुष्ट ( **वीरैः** ) प्रशस्त बल वाले वीरपुरुषों की ( **अनु, पुष्यास्म** ) पुष्टि से पुष्ट हों । बलवती ( **गोभिः** ) गौओं की पुष्टि से ( **अनु** ) पुष्ट हों । बलवान् ( **अश्वैः** ) घोड़े आदि की पुष्टि से ( **अनु** ) पुष्ट हों ( **सर्वेण** ) सब की पुष्टि से ( **अनु** ) पुष्ट हों ( **द्विपदा** ) दो पग वाले मनुष्य आदि प्राणियों की पुष्टि से ( **अनु** ) पुष्ट हों और ( **चतुष्पदा** ) चार पग वाले गौ आदि की ( **अनु** ) पुष्टि से पुष्ट हों वैसे ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **नः** ) हमारे ( **यज्ञम्** ) धर्मयुक्त व्यवहार को ( **ऋतुथा** ) ऋतुओं से ( **नयन्तु** ) प्राप्त करें ॥१९॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि वीरपुरुषों और पशुओं को अच्छे प्रकार पुष्ट करके पश्चात् आप पुष्ट हों । और सदा वसन्तादि ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार किया करें ॥ १९ ॥

अग्न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*सन्तान कैसे उत्तम हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने॒ पत्नी॑रि॒हा व॑ह दे॒वाना॑मुश॒तीरुप॑ ।**

**त्वष्टा॑रꣳ॒ सोम॑पीतये ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अध्यापक वा अध्यापिके ! तू ( **इह** ) इस गृहाश्रम में अपने तुल्य गुणवाले पतियों वा ( **उशतीः** ) कामनायुक्त ( **देवानाम्** ) विद्वानों की ( **पत्नीः** ) स्त्रियों को और ( **सोमपीतये** ) उत्तम ओषधियों के रस के पीने के लिये ( **त्वष्टारम्** ) तेजस्वी पुरुष को ( **उप, आ, वह** ) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त कर वा करें ॥ २० ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य कन्याओं को अच्छी शिक्षा दे विदुषी करें और स्वयंवर से प्रिय पतियों को प्राप्त करा के प्रेम से सन्तानों को उत्पन्न करावें तो वे सन्तान अत्यन्त प्रशंसित होते हैं ॥ २० ॥

अभीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*कौन विद्वान् हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अ॒भि य॒ज्ञं गृ॑णीहि नो॒ ग्नावो॒ नेष्टः॒ पिब॑ ऋ॒तुना॑ ।**

**त्वꣳहि र॑त्न॒धा असि॑ ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे ( **ग्नावः** ) प्रशस्त वाणी वाले ( **नेष्टः** ) नायक जन आप ( **ऋतुना** ) वसन्त आदि ऋतु के साथ ( **नः** ) हमारे ( **यज्ञम्** ) उत्तम व्यवहार की ( **अभि, गृणीहि** ) सन्मुख स्तुति कीजिये जिस कारण ( **त्वम् हि** ) तुम ही ( **रत्नधाः** ) प्रसन्नता के हेतु वस्तु के धारणकर्त्ता ( **असि** ) हो इससे उत्तम ओषधियों के रसों का ( **पिब** ) पी ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—जो अच्छी शिक्षा को प्राप्त वाणी के संगत व्यवहार को जानने की इच्छा करें वे विद्वान् होवें ॥ २१ ॥

द्रविणोदा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**द्र॒वि॒णो॒दाः पि॑पीषति जु॒होत॒ प्र च॑ तिष्ठत ।**

**ने॒ष्ट्रादृ॒तुभि॑रिष्यत ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **द्रविणोदाः** ) धन वा यश का देने वाला जन ( **ऋतुभिः** ) वसन्तादि ऋतुओं के साथ ( **नेष्ट्रात्** ) विनय से रस को ( **पिपीषति** ) पिया चाहता है वैसे तुम लोग रस को ( **इष्यत** ) प्राप्त होओ ( **जुहोत** ) ग्रहण वा हवन करो ( **च** ) और ( **प्र, तिष्ठत** ) प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! जैसे उत्तम वैद्य सुन्दर पथ्य भोजन और उत्तम विद्या से आप रोगरहित हुए दूसरों को रोगों से पृथक् करके प्रशंसा को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुम लोगों को भी अवश्य आचरण करना चाहिये ॥ २२ ॥

तवायमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

**तवा॒यꣳ सोम॒स्त्वमेह्य॒र्वाङ् श॑श्वत्त॒मꣳ सु॒मना॑ अ॒स्य पा॑हि ।**

**अ॒स्मिन्य॒ज्ञे ब॒र्हिष्या नि॒षद्या॑ दधि॒ष्वेमं ज॒ठर॒ऽइन्दु॑मिन्द्र ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) परम ऐश्वर्य की इच्छा वाले विद्वन् ! जो ( **तव** ) आपका ( **अयम्** ) यह ( **सोमः** ) ऐश्वर्य का योग है उस को ( **त्वम्** ) आप ( **आ, इहि** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ( **सुमनाः** ) धर्म कार्यों में प्रसन्नचित्त ( **अर्वाङ्** ) सन्मुख प्राप्त हुए ( **अस्य** ) इस अपने आत्मा के ( **शश्वत्तमम्** ) अधिकतर अनादि धर्म की ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये ( **अस्मिन्** ) इस ( **बर्हिषि** ) उत्तम ( **यज्ञे** ) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में ( **निषद्य** ) निरन्तर स्थित होके ( **जठरे** ) जाठराग्नि में ( **इमम्** ) इस प्रत्यक्ष ( **इन्दुम्** ) रोगनाशक ओषधियों के रस को ( **आ, दधिष्व** ) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् लोग सबके साथ सदा सन्मुखता को प्राप्त होके प्रसन्नचित्त हुए सनातन धर्म तथा विज्ञान का उपदेश किया करें, पथ्य अन्न आदि का भोजन करें और सदा पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहें ॥ २३ ॥

अमेवेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विद्वान् देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**अ॒मेव॑ नः सुहवा॒ आ हि गन्त॑न॒ नि ब॒र्हिषि॑ सदतना॒ रणि॑ष्टन ।**

**अथा॑ मदस्व जुजुषा॒णो अन्ध॑स॒स्त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे ( **त्वष्टः** ) तेजस्वि विद्वन् ! ( **जुजुषाणः** ) प्रसन्नचित्त गुरु आदि की सेवा करते हुए ( **सुमद्गणः** ) सुन्दर प्रेम से मण्डली वाले आप ( **देवेभिः** ) उत्तम गुण वाले ( **जनिभिः** ) जन्मों के साथ ( **अन्धसः** ) अन्नादि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में ( **मदस्व** ) आनन्दित हूजिये ( **अथ** ) इसके अनन्तर ( **अमेव** ) उत्तम घर के तुल्य औरों को आनन्दित कीजिये । हे विद्वान् लोगो ! ( **सुहवाः** ) सुन्दर प्रकार बुलाने हारे तुम लोग उत्तम घर के समान ( **बर्हिषि** ) उत्तम व्यवहार में ( **नः** ) हमको ( **आ, गन्तन** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये । इस स्थान में ( **हि** ) निश्चित होकर ( **नि, सदतन** ) निरन्तर बैठिये और ( **रणिष्टन** ) अच्छा उपदेश कीजिये ॥२४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो आप उत्तम व्यवहार में स्थित होके औरों को स्थित करें वे सदा आनन्दित हों । स्त्री पुरुष उत्कण्ठापूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुण वाले होते हैं ॥ २४ ॥

स्वादिष्ठयेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

**स्वादि॑ष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व सोम॒ धार॑या ।**

**इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तः ॥२५॥**

**पदार्थ**—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! आप जो ( **इन्द्राय** ) संपत्ति की ( **पातवे** ) रक्षा करने के लिये ( **सुतः** ) निकाला हुआ उत्तम रस है उसकी ( **स्वादिष्ठया** ) अति स्वादयुक्त ( **मदिष्ठया** ) अति आनन्द देने वाली ( **धारया** ) धारण करने हारी क्रिया से ( **पवस्व** ) पवित्र हूजिए ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् मनुष्य सब रोगों के नाशक आनन्द देने वाले ओषधियों के रस को पी के अपने शरीर और आत्मा को पवित्र करते हैं वे धनाढ्य होते हैं ॥२५॥

रक्षोहेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**र॒क्षो॒हा वि॒श्वच॑र्षणिर॒भि योनि॒मयो॑हते ।**

**द्रोणे॑ स॒धस्थ॒मास॑दत् ॥२६॥**

**पदार्थ**—जो ( **रक्षोहा** ) दुष्ट प्राणियों को मारने हारा ( **विश्वचर्षणिः** ) सब संसार का प्रकाशक विद्वान् ( **अयोहते** ) सुवर्ण से प्राप्त हुए ( **द्रोणे** ) बीस सेर अन्न रखने के पात्र में ( **सधस्थम्** ) समान स्थिति वाले ( **योनिम्** ) घर में ( **अभि, आ, असदत्** ) अच्छे प्रकार स्थित होवे वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होवे ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—जो अविद्या अज्ञान के नाशक विज्ञान के प्रकाशक सब ऋतुओं में सुखकारी सुवर्ण आदि से युक्त घरों में बैठ के विचार करें वे सुखी होते हैं ॥२६॥

इस अध्याय में पुरुषार्थ के फल सब मनुष्यों को वेद पढ़ने सुनने का अधिकार परमेश्वर विद्वान् और सत्य का निरूपण अग्न्यादि पदार्थ, यज्ञ, सुन्दर घरों का बनाना और उत्तम स्थान में स्थिति आदि कही है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

# अथ सप्तविंशाऽध्यायारम्भः

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

**समा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब सत्ताईसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में आप्तों को कैसा आचरण करना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**समास्त्वाऽग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽऋषयो यानि सत्या ।**
**सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! ( **समाः** ) वर्ष ( **ऋतवः** ) शरद् आदि ऋतु ( **संवत्सराः** ) प्रभवादि संवत्सर ( **ऋषयः** ) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले विद्वान् और ( **यानि** ) जो ( **सत्या** ) कर्म हैं वे ( **त्वा** ) आपको ( **वर्द्धयन्तु** ) बढ़ावें । जैसे अग्नि ( **दिव्येन** ) शुद्ध ( **रोचनेन** ) प्रकाश से ( **विश्वाः** ) सब ( **प्रदिशः** ) उत्तम गुणयुक्त ( **चतस्रः** ) चार दिशाओं को प्रकाशित करता है वैसे विद्या की ( **सं दीदिहि** ) सुन्दर प्रकार कामना कीजिये और न्याययुक्त धर्म का ( **आ, भाहि** ) अच्छे प्रकार प्रकाश कीजिये ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । आप्तपुरुषों को चाहिये कि सब काल में सत्य विद्या और उत्तम कर्मों का उपदेश करके सब शरीरधारियों के आरोग्य पुष्टि विद्या और सुशीलता को बढ़ावें जैसे सूर्य अपने में मुख्य के पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे सब मनुष्यों को शिक्षा से सदैव आनन्दित किया करें ॥ १ ॥

**सं चेत्यस्याग्निर्ऋषिः । सामिधन्यो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*विद्वानों को ही उत्तम अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।**
**मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु माऽन्ये ॥२॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! आप ( **सम्, इध्यस्व** ) अच्छे प्रकार प्रकाशित हूजिये ( **च** ) और ( **एनम्** ) इस जिज्ञासु जन को ( **प्रबोधय** ) अच्छा बोध कराइये ( **च** ) और ( **महते** ) बड़े ( **सौभगाय** ) सौभाग्य होने के लिये ( **उत्, तिष्ठ** ) उद्यत हूजिये तथा ( **उपसत्ता** ) समीप बैठने वाले आप सौभाग्य को ( **मा, रिषत्** ) मत बिगाड़िये । हे ( **अग्ने** ) तेजस्वि जन ! ( **ते** ) आप के ( **ब्रह्माणः** ) चारों वेद के जानने वाले ( **अन्ये** ) भिन्न बुद्धि वाले ( **च** ) भी ( **मा, सन्तु** ) न हों जावें ( **च** ) और ( **ते** ) आप अपने ( **यशसः** ) यश कीर्ति की उन्नति को न बिगाड़िये ॥ २ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों से भिन्न इतर जनों को उत्तम अधिकार में नहीं युक्त करते सदा उन्नति के लिये प्रयत्न करते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं वे कीर्त्ति और ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

**त्वामित्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*जिज्ञासु लोगों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।**
**सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) तेजस्वी विद्वन् ! अग्नि के समान वर्त्तमान जो ( **इमे** ) ये ( **ब्राह्मणाः** ) ब्रह्मवेत्ता जन ( **त्वाम्** ) आपको ( **वृणते** ) स्वीकार करते हैं उनके प्रति आप ( **संवरणे** ) सम्यक् स्वीकार करने में ( **शिवः** ) मङ्गलकारी ( **भव** ) हूजिये ( **नः** ) हमारे ( **सपत्नहा** ) शत्रुओं के दोषों के हननकर्त्ता हूजिये । हे ( **अग्ने** ) अग्निवत् प्रकाशमान ! ( **अप्रयुच्छन्** ) प्रमाद नहीं करते हुए ( **च** ) और ( **अभिमातिजित्** ) अभिमान को जीतने वाले आप ( **स्वे** ) अपने ( **गये** ) घर में ( **जागृहि** ) जागो अर्थात् गृहकार्य करने में निद्रा आलस्यादि को छोड़ो ( **नः** ) हमको शीघ्र चेतन करो ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जैसे विद्वान् लोग ब्रह्म को स्वीकार करके आनन्द मङ्गल को प्राप्त होते और दोषों को निर्मूल नष्ट कर देते हैं वैसे जिज्ञासु लोग ब्रह्मवेत्ता विद्वानों को प्राप्त होके आनन्द मंगल का आचरण करते हुए बुरे स्वभावों के मूल को नष्ट करें और आलस्य को छोड़ के विद्या की उन्नति किया करें ॥ ३ ॥

**इहैवेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—*

**इहैवाग्नेऽअधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः ।**
**क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां तेऽअनिष्टृतः ॥४॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप ( **इह** ) इस संसार में ( **रयिम्** ) लक्ष्मी को ( **धारय** ) धारण कीजिये ( **पूर्वचितः** ) प्रथम प्राप्त किये विज्ञानादि से श्रेष्ठ निरन्तर कर्म करने के स्वभाव वाले जन ( **त्वा** ) आप को ( **मा नि क्रन्** ) नीच गति को प्राप्त न करें । हे ( **अग्ने** ) विनय से शोभायमान सभापते ! ( **ते** ) आपका ( **सुयमम्** ) सुन्दर नियम जिस से चले वह ( **क्षत्रम्** ) धन वा राज्य ( **अस्तु** ) होवे जिससे ( **उपसत्ता** ) समीप बैठते हुए ( **अनिष्टृतः** ) हिंसा वा विघ्न को नहीं प्राप्त हो के ( **एव** ) ही आप ( **अधि, वर्द्धताम्** ) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त हूजिये ( **तुभ्यम्** ) आपके लिये राज्य वा धन सुखदायी होवे ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—हे राजन् ! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिये जिससे प्राचीन वृद्ध जन आप को बड़ा माना करें । राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये जिससे आप और आपका राज्य विघ्न से रहित होकर सब ओर से बढ़े और प्रजाजन आपको सर्वोपरि माना करें ॥ ४ ॥

**क्षत्रेणेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**क्षत्रेणाग्ने स्वायु संरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।**
**सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप ( **इह** ) इस जगत् में वा राज्याधिकार में ( **क्षत्रेण** ) राज्य वा धन के साथ ( **स्वायु** ) सुन्दर युवावस्था को ( **सम् रभस्व** ) अच्छे प्रकार आरम्भ कीजिये । हे ( **अग्ने** ) विद्या और विनय से शोभायमान राजन् ! ( **मित्रेण** ) धर्मात्मा विद्वान् मित्रों के साथ ( **मित्रधेये** ) मित्रों से धारण करने योग्य व्यवहार में ( **यतस्व** ) प्रयत्न कीजिये । हे ( **अग्ने** ) न्याय का प्रकाश करने हारे सभापते ! ( **सजातानाम्** ) एक साथ उत्पन्न हुए बराबर की अवस्था वाले ( **राज्ञाम्** ) धर्मात्मा राजाधिराजों के बीच ( **मध्यमस्थाः** ) मध्यस्थ—वादिप्रतिवादि के साक्षि ( **एधि** ) हूजिये और ( **विहव्यः** ) विशेषकर स्तुति के योग्य हुए ( **दीदिहि** ) प्रकाशित हूजिये ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—सभापति राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म में प्रीति रखने वाले मन्त्रियों के साथ विचारकर्त्ता अन्य राजाओं के साथ अच्छी सन्धि रखने वाला पक्षपात को छोड़ न्यायाधीश सब शुभ लक्षणों से युक्त हुआ दुष्ट व्यसनों से पृथक् हो के धर्म अर्थ काम और मोक्ष को धीरज शान्ति अप्रमाद से धीरे धीरे सिद्ध करे ॥ ५ ॥

**अति निह इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

**अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।**
**विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथाऽस्मभ्यं सहवीरां रयिं दाः ॥६॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) तेजस्वि सभापते ! आप ( **अति निहः** ) निश्चय करके असत्य को छोड़ने वाले होते हुए ( **स्रिधः** ) दुष्टाचारियों को ( **अति सहस्व** ) अधिक सहन कीजिये ( **अचित्तिम्** ) अज्ञान का ( **अति** ) अतिक्रमण कर ( **अरातिम्** ) दान के निषेध को सहन कीजिये हे ( **अग्ने** ) दृढ़ विद्या वाले तेजस्वि विद्वन् ! आप ( **हि** ) ही ( **विश्वा** ) सब ( **दुरिता** ) दुष्ट आचरणों को ( **अति** ) अधिक सहन कीजिये ( **अथ** ) इस के पश्चात् ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिये ( **सहवीराम्** ) वीरपुरुषों से युक्त सेना और ( **रयिम्** ) धन को ( **दाः** ) दीजिये ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—जो दुष्ट आचारों के त्यागी कुत्सित जनों के रोकने वाले अज्ञान तथा अदान को पृथक् करते और दुर्व्यसनों से पृथक् हुए सुख दुःख के सहन और वीरपुरुषों की सेना से प्रीति करनेवाले गुणों के अनुकूल जनों का ठीक सत्कार करते हुए न्याय से राज्य पालें वे सदा सुखी होवें ॥ ६ ॥

**अनाधृष्य इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।**
**विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥७॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) अच्छे प्रकार राजनीति का संग्रह करनेवाले राजन् ! जो आप ( **अद्य** ) इस समय ( **इह** ) इस राजा के व्यवहार में ( **मानुषीः** ) मनुष्यसम्बन्धी ( **भियः** ) रोगशोकादि भयों को नष्ट कीजिये ( **शिवेभिः** ) कल्याणकारी सभ्य सज्जनों के साथ ( **अनिष्टृतः** ) दुःख से पृथक् हुए ( **अनाधृष्यः** ) अन्यों से नहीं धमकाने योग्य ( **जातवेदाः** ) विद्या को प्राप्त ( **विराट्** ) विशेषकर प्रकाशमान ( **क्षत्रभृत्** ) राज्य के पोषक हैं सो आप ( **नः** ) हमारी ( **दीदिहि** ) कामना कीजिये ( **विश्वाः** ) सब ( **आशाः** ) दिशाओं को ( **प्रमुञ्चन्** ) अच्छे प्रकार मुक्त करते हुए हमारी ( **वृधे** ) वृद्धि के लिये ( **परि, पाहि** ) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥७॥

**भावार्थ**—जो राजा वा राजपुरुष प्रजाओं को सन्तुष्ट कर मंगलरूप आचरण करने और विद्याओं से युक्त न्याय में प्रसन्न रहते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे सब दिशाओं में प्रवृत्त कीर्त्ति वाले होवें ॥ ७ ॥

**बृहस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्सन्तराꣳ सꣳशिशाधि ।**
**वर्धयैनं महते सौभगाय विश्वऽएनमनु मदन्तु देवाः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे (**बृहस्पते**) बड़े सज्जनों के रक्षक (**सवितः**) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त सम्पूर्ण विद्या के उपदेशक आप (**एनम्**) इस राजा को (**संशितम्**) तीक्ष्ण बुद्धि के स्वभाव वाला करते हुए (**बोधय**) चेतनायुक्त कीजिये और (**सम् शिशाधि**) सम्यक् शिक्षा कीजिये (**चित**) और (**सन्तराम**) अतिशय करके प्रजा को शिक्षा कीजिये (**एनम्**) इस राजा को (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) उत्तम ऐश्वर्य होने के लिये (**वर्धय**) बढ़ाइये और (**विश्वे**) सब (**देवाः**) सुन्दर सभ्य विद्वान् (**एनम्**) इस राजा के (**अनु मदन्तु**) अनुकूल प्रसन्न हों ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो राजसभा का उपदेशक है वह इन राजादि को दुर्व्यसनों से पृथक् कर और सुशीलता को प्राप्त कराके बड़े ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्रयत्न करे ॥ ८ ॥

**अमुत्रेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।**
**प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥९॥**

**पदार्थ**—हे (**बृहस्पते**) बड़ों के रक्षक विद्वन् ! आप (**अमुत्रभूयात्**) परजन्म में होने वाले (**अभिशस्तेः**) सब प्रकार के अपराध से (**अमुञ्चः**) छुड़ाइये (**अध**) इस के अनन्तर (**यत्**) जो (**यमस्य**) धर्मात्मा नियमकर्त्ता जन की शिक्षा में रहे उस के (**मृत्युम्**) मृत्यु को छुड़ाइये । हे (**अग्ने**) उत्तम वैद्य आप जैसे (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक (**शचीभिः**) कर्म वा बुद्धियों से (**भिषजा**) रोगनिवारक पदार्थों को (**प्रति औहताम्**) विशेष तर्क से सिद्ध करें वैसे (**अस्मात्**) इससे (**देवानाम्**) विद्वानों के आरोग्य को सिद्ध कीजिये ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं जो इस लोक और परलोक में सुख होने के लिये सब को अच्छी शिक्षा करें जिससे ब्रह्मचर्यादि कर्मों का सेवन कर मनुष्य अल्पावस्था में मृत्यु और आनन्द की हानि को न प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

**उद्वयमित्यस्याग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।**
**देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**वयम्**) हम लोग (**तमसः**) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (**ज्योतिः**) प्रकाशमान सूर्यमण्डल को (**पश्यन्तः**) देखते हुए (**स्वः**) सुख के साधक (**उत्तरम्**) सब लोगों को दुःख से पार उतारने वाले (**देवत्रा**) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों में वर्त्तमान (**उत्तमम्**) अतिश्रेष्ठ (**सूर्यम्**) चराचर के आत्मा (**देवम्**) प्रकाशमान जगदीश्वर को (**परि उत् अगन्म**) सब ओर से उत्कर्षपूर्वक प्राप्त हों वैसे उस ईश्वर को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् हुए स्वयं प्रकाशित बड़े देवता सब से उत्तम सब के अन्तर्यामी परमात्मा की ही उपासना करते हैं वे मुक्ति के सुख को भी अवश्य निर्विघ्न प्रीतिपूर्वक प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

**ऊर्ध्वा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीꣳष्यग्नेः ।**
**द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥११॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस (**अस्य**) इस (**सुप्रतीकस्य**) सुन्दर प्रतीतिकारक कर्मों से युक्त (**सूनोः**) प्राणियों के गर्भों को छुड़ाने हारे (**अग्नेः**) अग्नि की (**ऊर्ध्वाः**) उत्तम (**समिधः**) सम्यक् प्रकाश करनेवाली समिधा तथा (**ऊर्ध्वा**) ऊपर को जाने वाले (**द्युमत्तमा**) अति उत्तम प्रकाशयुक्त (**शुक्रा**) शुद्ध (**शोचींषि**) तेज (**भवन्ति**) होते हैं उस को तुम जानो ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो यह ऊपर को उठाने वाला सब के देखने का हेतु सब की रक्षा का निमित्त अग्नि है उसको जान के कार्यों को निरन्तर सिद्ध किया करो ॥ ११ ॥

**तनूनपादित्यस्याग्निर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब वायु किस के समान कार्यसाधक है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।**
**पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (**देवेषु**) उत्तम गुण वाले पदार्थों में (**देवः**) उत्तम गुण वाला (**असुरः**) प्रकाशरहित वायु (**विश्ववेदाः**) सब को प्राप्त होने वाला (**तनूनपात्**) जो शरीर में नहीं गिरता (**देवः**) कामना करने योग्य (**मध्वा**) मधुर (**घृतेन**) जल के साथ (**पथः**) श्रोत्रादि के मार्गों को (**अनक्तु**) प्रकट करे उस को तुम जानो ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—जैसे परमेश्वर बड़ा देव सब में व्यापक और सब को सुख करनेहारा है वैसा वायु भी है क्योंकि इस वायु के विना कोई कहीं भी नहीं जा सकता ॥ १२ ॥

**मध्वेत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर कैसे मनुष्य सुखी होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसोऽअग्ने ।**
**सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! जो (**नराशंसः**) मनुष्यों की प्रशंसा करने (**सुकृत्**) उत्तम काम करने और (**विश्ववारः**) प्रशंसा को स्वीकार करनेवाले (**प्रीणानः**) चाहना करते हुए (**सविता**) ऐश्वर्य को चाहने वाले (**देवः**) व्यवहार में चतुर आप (**मध्वा**) मधुर वचन से (**यज्ञम्**) सङ्गत व्यवहार को (**नक्षसे**) प्राप्त होते हो उन आप को हम लोग प्रसन्न करें ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य यज्ञ में सुगन्धादि पदार्थों के होम से वायु जल को शुद्ध कर सब को सुखी करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

**अच्छायमित्यस्याग्निर्ऋषिः । वह्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*अब अग्नि से उपकार लेना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा ।**
**अग्निꣳस्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (**अयम्**) यह (**ईडानः**) स्तुति करता हुआ (**वह्निः**) विद्या को पहुँचाने वाला विद्वान् जन (**प्रयत्सु**) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य (**अध्वरेषु**) विघ्नों से पृथक् वर्त्तमान यज्ञों में (**शवसा**) बल (**घृतेन**) जल और (**नमसा**) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान (**अग्निम्**) अग्नि तथा (**स्रुचः**) होम के साधन स्रुवा आदि को (**अच्छ एति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उस का तुम लोग सत्कार करो ॥ १४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो अग्नि इन्धनों और जल से युक्त यानों में प्रयुक्त किया हुआ बल से शीघ्र चलता है उस को जानके उपकार में लाओ ॥ १४ ॥

**स यक्षदित्यस्याग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

**स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः ।**
**वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥१५॥**

**पदार्थ**—(**सः**) वह पूर्वोक्त विद्वान् मनुष्य (**सुप्रयसः**) प्रीतिकारक सुन्दर अन्नादि के हेतु (**अस्य**) इस (**अग्नेः**) अग्नि के (**महिमानम्**) बड़प्पन को (**यक्षत्**) सम्यक् प्राप्त हो तथा (**सः**) वह (**वसुः**) निवास का हेतु (**चेतिष्ठः**) अतिशय कर जानने वाला (**च**) और (**वसुधातमः**) अत्यन्त धनों का धारण करने वाला हुआ (**ईम्**) जल तथा (**मन्द्रा**) आनन्ददायक होमने योग्य पदार्थों को प्राप्त होवे ॥ १५ ॥

**भावार्थ**—जो पुरुष इस प्रकार अग्नि के बड़प्पन को जाने सो अतिधनी होवे ॥ १५ ॥

**द्वारो देवीरित्यस्याग्निर्ऋषिः । देव्यो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

**द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।**
**उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥१६॥**

**पदार्थ**—जो (**विश्वे**) सब (**पत्यमानाः**) मालिकपन करते हुए विद्वान् (**उरुव्यचसः**) बहुतों में व्यापक (**अस्य**) इस (**अग्नेः**) अग्नि के (**धाम्ना**) स्थान से (**देवीः**) प्रकाशित (**द्वारः**) द्वारों तथा (**व्रता**) सत्यभाषणादि व्रतों का (**अनु ददन्ते**) अनुकूल उपदेश देते हैं वे सुन्दर ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—जो लोग अग्नि की विद्या के द्वारों को जानते हैं वे सत्य आचरण करते हुए अति आनन्दित होते हैं ॥ १६ ॥

**ते अस्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

**ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता ।**
**इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (**ते**) वे (**उषासानक्ता**) रात्रि और दिन (**अस्य**) इस पुरुष के (**योना**) घर में (**दिव्ये**) उत्तम रूपवाली (**योषणे**) दो स्त्रियों के (**न**) समान वर्त्तमान (**नः**) हमारे जिस (**इमम्**) इस (**अध्वरम्**) विनाश न करने योग्य (**यज्ञम्**) यज्ञ की (**अवताम्**) रक्षा करें उस को तुम लोग जानो ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विदुषी स्त्री घर के कार्यों को सिद्ध करती है वैसे अग्नि से उत्पन्न हुए रात्रि दिन सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

**दैव्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

## दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।
## कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥१८॥

**पदार्थ**—जो ( दैव्या ) विद्वानों में प्रसिद्ध हुए दो विद्वान् ( होतारा ) सुख के देने वाले ( नः ) हमारे ( ऊर्ध्वम् ) उन्नति को प्राप्त ( अध्वरम् ) नहीं बिगाड़ने योग्य व्यवहार की ( अभि गृणीतम् ) सब ओर से प्रशंसा करें वे दोनों ( नः ) हमारी ( स्विष्टिम् ) सुन्दर यज्ञ के निमित्त ( अग्नेः ) अग्नि की ( जिह्वाम् ) ज्वाला को ( कृणुतम् ) सिद्ध करें ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—जो जिज्ञासु और अध्यापक लोग अग्नि की विद्या को जानें तो विश्व की उन्नति करें ॥ १८ ॥

**तिस्रो देवीरित्यस्याग्निर्ऋषिः । इडादयो लिङ्गोक्ता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये इस विषय को कहा है—*

## तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती ।
## मही गृणाना ॥१९॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो तुम लोग जो ( मही ) बड़ी ( गृणाना ) स्तुति करती हुई ( इडा ) स्तुति करने योग्य ( सरस्वती ) प्रशस्त विज्ञान वाली और ( भारती ) सब शास्त्रों का धारण करने हारी जो ( तिस्रः ) तीन ( देवीः ) चाहने योग्य वाणी ( इदम् ) इस ( बर्हिः ) अन्तरिक्ष को ( आ, सदन्तु ) अच्छे प्रकार प्राप्त हों उन तीनों प्रकार की वाणियों को सम्यक् जानो ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य व्यवहार में चतुर सब शास्त्र की विद्याओं में युक्त सत्यादि व्यवहारों का धारण करने हारी वाणी को प्राप्त हों वे स्तुति के योग्य हुए महान् होवें ॥ १९ ॥

**तन्न इत्यस्याग्निर्ऋषिः । त्वष्टा देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।
## रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे ॥२०॥

**पदार्थ**—( त्वष्टा ) विद्या से प्रकाशित ईश्वर ( अस्मे ) हमारे ( नाभिम् ) मध्यप्रदेश के प्रति ( तुरीपम् ) शीघ्रता को प्राप्त होने वाले ( अद्भुतम् ) आश्चर्यरूप गुण कर्म और स्वभावों से युक्त ( पुरुक्षु ) बहुत पदार्थों में वसने वाले ( सुवीर्यम् ) सुन्दर बलयुक्त ( तम् ) उस प्रसिद्ध ( रायः ) धन की ( पोषम् ) पुष्टि को देवे और ( नः ) हम लोगों को दुःख से ( वि ष्यतु ) छुड़ावे ॥२०॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो शीघ्रकारी आश्चर्यरूप बहुतों में व्यापक धन वा अन्न है उस को तुम लोग ईश्वर की प्रार्थना से प्राप्त होके आनन्दित होओ ॥२०॥

**वनस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*जिज्ञासु कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु ।
## अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥२१॥

**पदार्थ**—हे ( वनस्पते ) सेवने योग्य शास्त्र के रक्षक जिज्ञासु पुरुष ! जैसे ( शमिता ) यज्ञसम्बन्धी ( अग्निः ) अग्नि ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्यों को ( सूदयाति ) सूक्ष्म कर वायु में पसारता है वैसे ( त्मना ) अपने आत्मा से ( देवेषु ) दिव्य गुणों के समान विद्वानों में ( रराणः ) रमण करते हुए ग्रहण करने योग्य पदार्थों को ( अव, सृज ) उत्तम प्रकार से बनाओ ॥२१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शुद्ध आकाश आदि में अग्नि शोभायमान होता है वैसे विद्वानों में स्थित जिज्ञासु पुरुष सुन्दर प्रकाशित स्वरूप वाला होता है ॥२१॥

**अग्ने स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् ।
## विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥२२॥

**पदार्थ**—हे ( जातवेदः ) विद्या में प्रसिद्ध ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ! आप ( इन्द्राय ) उक्त ऐश्वर्य के लिये ( स्वाहा ) सत्य वाणी और ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को ( कृणुहि ) प्रसिद्ध कीजिये ( विश्वे ) सब ( देवाः ) विद्वान् लोग ( इदम् ) इस ( हविः ) ग्रहण करने योग्य उत्तम वस्तु को ( जुषन्ताम् ) सेवन करें ॥२२॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें तो सत्य परमात्मा और विद्वानों का सेवन किया करें ॥२२॥

**पीवो अन्नेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*कैसा सन्तान सुखी करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## पीवोअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
## ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥२३॥

**पदार्थ**—जो ( समनसः ) तुल्य ज्ञान वाले ( रयिवृधः ) धन को बढ़ानेवाले ( सुमेधाः ) सुन्दर बुद्धिमान् ( नरः ) नायक पुरुष ( पीवोअन्नाः ) पुष्टिकारक अन्न वाले ( विश्वा ) सब ( स्वपत्यानि ) सुन्दर सन्तानों को ( चक्रुः ) करें ( ते ) वे ( इत् ) ही ( वायवे ) वायु की विद्या के लिये ( वि, तस्थुः ) विशेष कर स्थित हों जब ( नियुताम् ) निश्चित चलने हारे जनों का ( अभिश्रीः ) सब ओर से शोभायुक्त ( श्वेतः ) गमनशील वा उन्नति करनेहारा वायु सब को ( सिषक्ति ) सींचता है तब वह शोभायुक्त होता है ॥ २३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सब के जीवन का मूल है वैसे उत्तम सन्तान सब के सुख के निमित्त होते हैं ॥२३॥

**राय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
## अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥२४॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( इमे ) ये ( रोदसी ) आकाश भूमि ( राये ) धन के अर्थ ( यम् ) जिसको ( जज्ञतुः ) उत्पन्न करें ( देवी ) उत्तम गुण वाली ( धिषणा ) बुद्धि के समान वर्त्तमान स्त्री जिस ( देवम् ) उत्तम पति को ( राये ) धन के लिये ( नु ) शीघ्र ( धाति ) धारण करती है ( अध ) इस के अनन्तर ( निरेके ) निश्शङ्क स्थान में ( स्वाः ) अपने सम्बन्धी ( नियुतः ) निश्चय कर मिलाने वा पृथक् करने वाले जन ( श्वेतम् ) वृद्ध ( उत ) और ( वसुधितिम् ) पृथिव्यादि वसुओं के धारण के हेतु ( वायुम् ) वायु को ( सश्चत ) प्राप्त होते हैं उस को तुम लोग जानो ॥२४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग बल आदि गुणों से युक्त सब के धारण करने वाले वायु को जान के धन और बुद्धि को बढ़ाओ । जो एकान्त में स्थित हो के इस प्राण के द्वारा अपने स्वरूप और परमात्मा को जानना चाहें तो इन दोनों आत्माओं का साक्षात्कार होता है ॥२४॥

**आप इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

## आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
## ततो देवानाꣳ समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५॥

**पदार्थ**—( बृहतीः ) महत् परिमाण वाली ( जनयन्तीः ) पृथिव्यादि को प्रकट करने हारी ( यत् ) जिस ( विश्वम् ) सब में प्रवेश किये हुए ( गर्भम् ) सब के मूल प्रधान को ( दधानाः ) धारण करती हुई ( आपः ) व्यापक जलों की सूक्ष्म मात्रा ( आयन् ) प्राप्त हों ( ततः ) उससे ( अग्निम् ) सूर्याग्नि रूप अग्नि को ( देवानाम् ) उत्तम पृथिव्यादि पदार्थों का सम्बन्धी ( एकः ) एक असहाय ( असुः ) प्राण ( सम्, अवर्त्तत ) सम्यक् प्रवृत्त करे उस ( ह ) ही ( कस्मै ) सुख के निमित्त ( देवाय ) उत्तम गुण युक्त ईश्वर के लिये हम लोग ( हविषा ) धारण करने से ( विधेम ) सेवा करने वाले हों ॥ २५ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो स्थूल पञ्चतत्त्व दीख पड़ते हैं उनको सूक्ष्म प्रकृति के कार्य पञ्चतन्मात्र नामक से उत्पन्न हुए जानो जिनके बीच जो एक सूत्रात्मा वायु है वह सब धारण करता है यह जानो जो उस वायु के द्वारा योगाभ्यास से परमात्मा को जानना चाहो तो उसको साक्षात् जान सको ॥२५॥

**यश्चिदित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*कौन मनुष्य आनन्दित होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
## यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥

**पदार्थ**—( यः ) जो परमेश्वर ( महिना ) अपने व्यापकपन के महिमा से ( दक्षम् ) बल को ( दधानाः ) धारण करती ( यज्ञम् ) सङ्गत संसार को ( जनयन्तीः ) उत्पन्न करती हुई ( आपः ) व्याप्तिशील सूक्ष्म जल की मात्रा हैं उनको ( पर्यपश्यत् ) सब ओर से देखता है ( यः ) जो ईश्वर ( देवेषु ) उत्तम गुण वाले प्रकृति आदि और जीवों में ( एकः ) एक ( अधि, देवः ) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला ( आसीत् ) है उस ( चित् ) ही ( कस्मै ) सुखस्वरूप ( देवाय ) सब

सुखों के दाता ईश्वर की हम लोग ( हविषा ) आज्ञापालन और योगाभ्यास के कारण से ( विधेम ) सेवा करें ॥२६॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो आप लोग सब के द्रष्टा धर्ता कर्त्ता अद्वितीय अधिष्ठाता परमात्मा के जानने का नित्य योगाभ्यास करते हैं वे आनन्दित होते हैं ॥२६॥

**प्रयाभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । वायुर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*विद्वान को कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्र याभिर्यासि दाश्वाᳪंसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।**

**नि नो रयिᳪं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥**

**पदार्थ**—हे ( वायो ) विद्वन् ! वायु के समान वर्त्तमान आप ( प्र, याभि ) अच्छे प्रकार चाहने योग्य ( नियुद्भि ) नियत गुणो से ( इष्टये ) अभीष्ट सुख के अर्थ ( अच्छ यासि ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हो ( दुरोणे ) घर मे ( न ) हमारे ( सुभोजसम ) सुन्दर भोगने के हेतु ( दाश्वासम ) सुख के दाता ( रयिम ) धन को ( नि, युवस्व ) निरन्तर मिश्रित कीजिये ( वीरम ) विज्ञानादि गुणो को प्राप्त ( गव्यम ) गौ के हितकारी ( च ) तथा ( अश्व्यम ) घोडे के लिये हितैषी ( राध ) धन को ( नि ) निरन्तर प्राप्त कीजिये ॥२७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् पुरुष इस संसार मे वर्त्तें ॥ २७ ॥

**आ न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । वायुर्देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

**आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरᳪं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।**

**वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥**

**पदार्थ**—हे ( वायो ) वायु के तुल्य बलवान् विद्वन् ! जैसे वायु ( नियुद्भि ) निश्चित मिली वा पृथक जाने आने रूप ( शतिनीभि ) बहुत कर्मों वाली ( सहस्रिणीभि ) बहुत वेगो वाली गतियो से ( अस्मिन् ) इस ( सवने ) उत्पत्ति के आधार जगत मे ( न ) हमारे ( अध्वरम ) न बिगाडने योग्य ( यज्ञम ) सङ्गति के योग्य व्यवहार को ( उप ) निकट प्राप्त होता है वैसे आप ( आयाहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ( मादयस्व ) और आनन्दित कीजिये । हे विद्वानो ! ( यूयम ) आप लोग इस विद्या से ( स्वस्तिभि ) सुखो के साथ ( न ) हम लोगो की ( सदा ) सब काल मे ( पात ) रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग जैसे वायु विविध प्रकार की चालो से सब पदार्थो को पुष्ट करते हैं वैसे ही अच्छी शिक्षा से सब को पुष्ट करें ॥ २८ ॥

**नियुत्वानित्यस्य गृत्समद ऋषि । वायुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**नियुत्वान् वायवा गह्ययᳪं शुक्रो अयामि ते ।**

**गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२९॥**

**पदार्थ**—हे ( वायो ) वायु के तुल्य शीघ्रगन्ता ( नियुत्वान् ) नियमकर्त्ता ईश्वर ! आप जैसे ( अयम ) यह ( शुक्र ) पवित्रकर्त्ता ( गन्ता ) गमनशील वायु ( सुन्वत ) रस खींचने वाले के ( गृहम ) घर को प्राप्त होता है वैसे मुझ को ( आ, गहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जिससे आप ईश्वर ( असि ) हैं इससे ( ते ) आप के स्वरूप को मैं ( अयामि ) प्राप्त होता हूँ ॥ २९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सब को शोधने और सर्वत्र पहुँचने वाला तथा सब का प्राण से भी प्यारा है वैसे ईश्वर भी है ॥२९॥

**वायो शुक्र इत्यस्य पुरुमीढ ऋषि । वायुर्देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—*

**वायो शुक्रोऽअयामि ते मध्वोऽअग्रं दिविष्टिषु ।**

**आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥३०॥**

**पदार्थ**—हे ( वायो ) जो वायु के समान वर्त्तमान विद्वन् ! ( शुक्र ) शुद्धिकारक आप हैं ( ते ) आप के ( मध्व ) मधुर वचन के ( अग्रम् ) उत्तम भाग को ( दिविष्टिषु ) उत्तम संगतियो मे मैं ( अयामि ) प्राप्त होता हूँ । हे ( देव ) उत्तम गुणयुक्त विद्वान् पुरुष ! ( स्पार्ह ) उत्तम गुणो की अभिलाषा से युक्त के पुत्र आप ( नियुत्वता ) वायु के साथ ( सोमपीतये ) उत्तम ओषधियो का रस पीने के लिये ( आ, याहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे वायु सब रस और गन्ध आदि को पीके सब को पुष्ट करता है वैसे तू भी सब को पुष्ट किया कर ॥ ३० ॥

**वायुरित्यस्याजमीढ ऋषि । वायुर्देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।**

**शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥३१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( वायु ) पवन ( नियुद्भि ) निश्चित ( शिवाभि ) मङ्गलकारक क्रियाओ से ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( गन् ) प्राप्त होता है वैसे ( शिव ) मङ्गलस्वरूप ( अग्रेगा ) अग्रगामी ( यज्ञप्री ) यज्ञ को पूर्ण करने हारे हुए आप ( मनसा ) मन की वृत्ति के ( साकम् ) साथ यज्ञ को प्राप्त हूजिये ॥ ३१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस मन्त्र मे ( आ याहि ) इस पद की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है । जैसे वायु अनेक पदार्थों के साथ जाता आता है वैसे विद्वान् लोग धर्मयुक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

**वायो इत्यस्य गृत्समद ऋषि । वायुर्देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।**

**नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥३२॥**

**पदार्थ**—हे ( वायो ) पवन के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! ( ये ) जो ( ते ) आप के ( सहस्रिण ) प्रशस्त सहस्रो मनुष्यो से युक्त ( रथास ) सुन्दर आराम देने वाले यान हैं ( तेभि ) उन के सहित ( नियुत्वान् ) समर्थ हुए आप ( सोमपीतये ) सोम ओषधि का रस पीने के लिये ( आ, गहि ) आइये ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे वायु की असंख्य रमण करने योग्य गति हैं वैसे अनेक प्रकार की गतियो से समर्थ होके ऐश्वर्य को भोगो ॥ ३२ ॥

**एकयेत्यस्य गृत्समद ऋषि । वायुर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

**एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विᳪंशती च ।**

**तिसृभिश्च वहसे त्रिᳪंशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥३३॥**

**पदार्थ**—हे ( स्वभूते ) अपने ऐश्वर्य से शोभायमान ( वायो ) वायु के तुल्य अर्थात् जैसे पवन ( इह ) इस जगत् मे सङ्गति के लिये ( एकया ) एक प्रकार की गति ( च ) और ( दशभि ) दशविध गतियो ( च ) और ( द्वाभ्याम् ) विद्या और पुरुषार्थ से ( इष्टये ) विद्या की सङ्गति के लिये ( विंशती ) दो बीसी ( च ) और ( तिसृभि ) तीन प्रकार की गतियो से ( च ) और ( त्रिंशता ) तीस ( च ) और ( नियुद्भि ) निश्चित नियमो के साथ यज्ञ को प्राप्त होता वैसे ( वहसे ) प्राप्त होते सो आप ( ता ) उन सब को ( वि मुञ्च ) विशेष कर छोडिये अर्थात् उन का उपदेश कीजिये ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु इन्द्रिय प्राण और अनेक गतियो और पृथिव्यादि लोको के साथ सब के इष्ट को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् भी सिद्ध करें ॥ ३३ ॥

**तव वाय इत्यस्याङ्गिरस ऋषि । वायुर्देवता । निचृद् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब किसके तुल्य वायु का स्वीकार करें इस विषय को कहा है—*

**तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाᳪंस्या वृणीमहे ॥३४॥**

**पदार्थ**—हे ( ऋतस्पते ) सत्य के रक्षक ! ( जामात ) जमाई के तुल्य वर्त्तमान ( अद्भुत ) आश्चर्यरूप कर्म करनेवाले ( वायो ) बहुत बलयुक्त विद्वन् हम लोग जो ( त्वष्टु ) विद्या से प्रकाशित ( तव ) आप के ( अवांसि ) रक्षा आदि कर्मों का ( आ वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं उन का आप भी स्वीकार करो ॥३४॥

**भावार्थ**—जैसे जमाई उत्तम आश्चर्य गुणो वाला सत्य ईश्वर का सेवक हुआ स्वीकार के योग्य होता है वैसे वायु भी स्वीकार करने योग्य है ॥३४॥

**अभि त्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । वायुर्देवता । स्वराडनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब राजधर्म विषय अगले मन्त्रो मे कहते हैं—*

**अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।**

**ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥३५॥**

**पदार्थ**—हे ( शूर ) निर्भय ( इन्द्र ) सभापते ! ( अदुग्धा इव ) बिना दूध की ( धेनव ) गौओ के समान हम लोग ( अस्य ) इस ( जगत ) चर तथा ( तस्थुष ) अचर संसार के ( ईशानम् ) नियन्ता ( स्वर्दृशम् ) सुखपूर्वक देखने योग्य ईश्वर के तुल्य ( ईशानम् ) समर्थ ( त्वा ) आप को ( अभि, नोनुम ) सन्मुख से सत्कार वा प्रशंसा करें ॥ ३५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप पक्षपात छोड़ के ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश होवें जो कदाचित् हम लोग कर भी न देवें तो भी हमारी रक्षा करें तो आप के अनुकूल हम सदा रहें ॥ ३५ ॥

न त्वावानित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । परमेश्वरो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*ईश्वर ही उपासना करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**न त्वावाँ२ऽअन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।**
**अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥३६॥**

**पदार्थ**—हे ( **मघवन्** ) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त ( **इन्द्र** ) सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर ! ( **वाजिनः** ) वेगवाले ( **गव्यन्तः** ) उत्तम वाणी बोलते हुए ( **अश्वायन्तः** ) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग ( **त्वा** ) आप की ( **हवामहे** ) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई ( **अन्यः** ) अन्य पदार्थ ( **त्वावान्** ) आप के तुल्य ( **दिव्यः** ) शुद्ध ( **न** ) न कोई ( **पार्थिवः** ) पृथिवी पर प्रसिद्ध ( **न** ) न कोई ( **जातः** ) उत्पन्न हुआ और ( **न** ) न ( **जनिष्यते** ) होगा इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ न होगा और न है इसी से सब मनुष्यों को चाहिये कि इस को छोड़ अन्य किसी की उपासना इस के स्थान में कदापि न करें यही कर्म इस लोक परलोक में आनन्ददायक जानें ॥ ३६ ॥

त्वामिदित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*फिर राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।**
**त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥३७॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) सूर्य के तुल्य जगत् के रक्षक राजन् ! ( **वाजस्य** ) विद्या वा विज्ञान से हुए कार्य के ( **हि** ) ही ( **कारवः** ) करनेवाले ( **नरः** ) नायक हम लोग ( **सातौ** ) रण में ( **त्वाम्** ) आपको जैसे ( **वृत्रेषु** ) मेघों में सूर्य को वैसे ( **सत्पतिम्** ) सत्य के प्रचार से रक्षक ( **त्वाम्** ) आप को ( **अर्वतः** ) शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में दर्खें ( **काष्ठासु** ) दिशाओं में ( **त्वाम्** ) आप का ( **इत्** ) ही ( **हवामहे** ) ग्रहण करें ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे सेना और सभा के पति तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य के प्रचार करने वाले होओ ॥ ३७ ॥

स त्वमित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*विद्वान् क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानोऽअद्रिवः ।**
**गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥३८॥**

**पदार्थ**—हे ( **चित्र** ) आश्चर्यस्वरूप ( **वज्रहस्त** ) वज्र हाथ में लिये ( **अद्रिवः** ) प्रशस्त पत्थर के बने हुए वस्तुओं वाले ( **इन्द्र** ) शत्रुनाशक विद्वन् ( **धृष्णुया** ) ढीठता से ( **महः** ) बहुत ( **स्तवानः** ) स्तुति करते हुए ( **सः** ) सो पूर्वोक्त ( **त्वम्** ) आप ( **जिग्युषे** ) जय करनेवाले पुरुष के लिये तथा ( **नः** ) हमारे लिये ( **सत्रा** ) सत्य ( **वाजम्** ) विज्ञान के ( **न** ) तुल्य ( **गाम्** ) बल तथा ( **रथ्यम्** ) रथ के योग्य ( **अश्वम्** ) घोड़े को ( **सम्, किर** ) सम्यक् प्राप्त कीजिये ॥३८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेघसम्बन्धी सूर्य वर्षा से सब को सम्बद्ध करता है वैसे विद्वान् सत्य के विज्ञान से सब के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है ॥ ३८ ॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।**
**कया शचिष्ठया वृता ॥३९॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् पुरुष ! ( **चित्र** ) आश्चर्य कर्म करने हारे ( **सदावृधः** ) जो सदा बढ़ता है उस के ( **सखा** ) मित्र ( **आ, भुवत्** ) हूजिये ( **कया** ) किसी ( **ऊती** ) रक्षणादि क्रिया से ( **नः** ) हमारी रक्षा कीजिये ( **कया** ) किसी ( **शचिष्ठया** ) अत्यन्त निकट सम्बन्धिनी ( **वृता** ) वर्त्तमान क्रिया से हम को युक्त कीजिये ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—जो आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला विद्वान् सब का मित्र हो और कुकर्मों की निवृत्ति करके उत्तम कर्मों से हम को युक्त करे उस का हम को सत्कार करना चाहिये ॥ ३९ ॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*कैसे जन धन को प्राप्त होते इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।**
**दृढा चिदारुजे वसु ॥४०॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो ( **कः** ) सुखदाता ( **सत्यः** ) श्रेष्ठों में उत्तम ( **मंहिष्ठः** ) अति महत्त्वयुक्त विद्वान् ( **त्वा** ) आप को ( **अन्धसः** ) अन्न से हुए ( **मदानाम्** ) आनन्दों में ( **मत्सत्** ) प्रसन्न करे ( **आरुजे** ) अतिरोग के अर्थ ओषधियों को जैसे इकट्ठा करे ( **चित्** ) वैसे ( **दृढा** ) दृढ़ ( **वसु** ) द्रव्यों का सञ्चय करे सो हम को सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सत्य में प्रीति रखने और आनन्द देनेवाला विद्वान् परोपकार के लिये रोगनिवारणार्थ ओषधियों के तुल्य वस्तुओं का सञ्चय करे वही सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥४१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो आप ( **नः** ) हमारे ( **सखीनाम्** ) मित्रों तथा ( **जरितॄणाम्** ) स्तुति करनेवाले जनों के ( **अविता** ) रक्षक ( **ऊतये** ) प्रीति आदि के अर्थ ( **शतम्** ) सैकड़ों प्रकार से ( **सु, भवासि** ) सुन्दर रीति कर के हूजिये सो आप ( **अभि** ) सब ओर से सत्कार के योग्य हो ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अपने मित्रों के रक्षक असंख्य प्रकार का सुख देने हारे अनाथों की रक्षा में प्रयत्न करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

यज्ञायज्ञेत्यस्य शंयुर्ऋषिः । यज्ञो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**यज्ञायज्ञा वोऽअग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।**
**प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( **अग्नये** ) अग्नि के लिये ( **च** ) और ( **गिरागिरा** ) वाणी वाणी से ( **दक्षसे** ) बल के अर्थ ( **यज्ञायज्ञा** ) यज्ञ यज्ञ में ( **वः** ) तुम लोगों की ( **प्र, प्र, शंसिषम्** ) प्रशंसा करूं ( **वयम्** ) हम लोग ( **जातवेदसम्** ) ज्ञानी ( **अमृतम्** ) आत्मरूप से अविनाशी ( **प्रियम्** ) प्रीति के विषय ( **मित्रम्** ) मित्र के ( **न** ) तुल्य तुम्हारी प्रशंसा करें वैसे तुम भी आचरण किया करो ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम शिक्षित वाणी से यज्ञ का अनुष्ठान कर बल बढ़ा और मित्रों के समान विद्वानों का सत्कार करके समागम करते हैं वे बहुत ज्ञान वाले धनी होते हैं ॥४२॥

पाहि न इत्यस्य भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*आप्त धर्मात्मा जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**पाहि नोऽअग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।**
**पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे ( **वसो** ) सुन्दर वास देने हारे ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! आप ( **एकया** ) उत्तम शिक्षा से ( **नः** ) हमारी ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये ( **द्वितीयया** ) दूसरी अध्यापन क्रिया से ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये ( **तिसृभिः** ) कर्म उपासना ज्ञान की जताने वाली तीन ( **गीर्भिः** ) वाणियों से ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये हे ( **ऊर्जाम्** ) बलों के ( **पते** ) रक्षक आप हमारी ( **चतसृभिः** ) धर्म अर्थ काम और मोक्ष इनका विज्ञान करानेवाली चार प्रकार की वाणी से ( **उत** ) भी ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—सत्यवादी धर्मात्मा आप्तजन उपदेश करने और पढ़ाने से भिन्न किसी साधन को मनुष्य का कल्याणकारक नहीं जानते इससे नित्यप्रति अज्ञानियों पर कृपा कर सदा उपदेश करते और पढ़ाते हैं ॥ ४३ ॥

ऊर्जो नपातमित्यस्य शंयुर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**ऊर्जो नपातꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।**
**भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृधऽउत त्राता तनूनाम् ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे विद्यार्थिन् ! ( **सः** ) सो आप ( **ऊर्जः** ) पराक्रम को ( **नपातम्** ) न नष्ट करने हारे विद्याबोध को ( **हिन** ) बढ़ाइये जिससे ( **अयम्** ) यह प्रत्यक्ष आप ( **अस्मयुः** ) हम को चाहने और ( **वाजेषु** ) संग्रामों में ( **अविता** ) रक्षा करने वाले ( **भुवत्** ) होवें ( **उत** ) और ( **तनूनाम्** ) शरीरों के ( **वृधे** ) बढ़ने के अर्थ ( **त्राता** ) पालन करनेवाले ( **भुवत्** ) होवें इससे आपको ( **हव्यदातये** ) देने योग्य पदार्थों के देने के लिये हम लोग ( **दाशेम** ) स्वीकार करें ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—जो पराक्रम और बल को न नष्ट करे शरीर और आत्मा की उन्नति करता हुआ रक्षक हो उसके लिये आप्तजन विद्या देवें । जो इस से विपरीत लम्पट दुष्टाचारी निन्दक हो वह विद्याग्रहण में अधिकारी नहीं होता यह जाना ॥ ४४ ॥

संवत्सर इत्यस्य शंयुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

**संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ।**
**उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते**

कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताᳪ संवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्याऽएत्यै सञ्चाञ्च प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥४५॥

**पदार्थ**—हे विद्वन् वा जिज्ञासु पुरुष ! जिससे तू ( **संवत्सर** ) संवत्सर के तुल्य नियम से वर्त्तमान ( **असि** ) है ( **परिवत्सर** ) त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी ( **असि** ) है ( **इदावत्सर** ) निश्चय से अच्छे प्रकार वर्त्तमान वर्षा के तुल्य ( **असि** ) है ( **इद्वत्सर** ) निश्चित संवत्सर के सदृश ( **असि** ) है ( **वत्सर** ) वर्ष के समान ( **असि** ) है इससे ( **ते** ) तेरे लिये ( **उषस** ) कल्याणकारिणी उषा प्रभातवेला ( **कल्पताम्** ) समर्थ हो ( **ते** ) तेरे लिये ( **अहोरात्रा** ) दिन रातें मङ्गलदायक ( **कल्पन्ताम** ) समर्थ हो ( **ते** ) तेरे अर्थ ( **अर्द्धमासा** ) शुक्ल कृष्ण पक्ष ( **कल्पन्ताम** ) समर्थ हो ( **ते** ) तेरे लिये ( **मासा** ) चैत्र आदि महीने ( **कल्पन्ताम** ) समर्थ हो ( **ते** ) तेरे लिये ( **ऋतव** ) वसन्तादि ऋतु ( **कल्पन्ताम** ) समर्थ हो ( **ते** ) तेरे अर्थ ( **संवत्सर** ) वर्ष ( **कल्पताम** ) समर्थ हो। ( **च** ) और तू ( **प्रेत्यै** ) उत्तम प्राप्ति के लिये ( **सम अञ्च** ) सम्यक प्राप्त हो ( **च** ) और तू ( **एत्यै** ) अच्छे प्रकार जाने के लिये ( **प्र सारय** ) अपने प्रभाव का विस्तार कर जिस कारण तू ( **सुपर्णचित** ) सुन्दर रक्षा के साधनों का सञ्चयकर्त्ता ( **असि** ) है इसस ( **तया** ) उस ( **देवतया** ) उत्तम गुणयुक्त समय रूप देवता के साथ ( **अङ्गिरस्वत** ) सूत्रात्मा प्राण वायु के समान ( **ध्रुव** ) दृढ़ निश्चल ( **सीद** ) स्थिर हो ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खाते सुन्दर नियमों से वर्त्तते हुए कर्त्तव्य कर्मों को करते छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं उनके प्रभात काल दिन रात, पक्ष महीने ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्म ग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें ॥ ४५ ॥

इस अध्याय में सत्य की प्रशंसा का जानना उत्तम गुणों का स्वीकार, राज्य का बढ़ाना अनिष्ट की निवृत्ति जीवन को बढ़ाना मित्र का विश्वास, सर्वत्र कीर्ति करना ऐश्वर्य को बढ़ाना अल्पमृत्यु का निवारण शुद्धि करना सुकर्म का अनुष्ठान, यज्ञ करना बहुत धन का धारण मालिकपन का प्रतिपादन सुन्दर वाणी का ग्रहण, सद्गुणों की इच्छा अग्नि की प्रशंसा विद्या और धन का बढ़ाना कारण का वर्णन धन का उपयोग परस्पर की रक्षा वायु के गुणों का वर्णन आधार आधेय का कथन, ईश्वर के गुणों का वर्णन शूरवीर के कृत्यों का कहना प्रसन्नता करना मित्र की रक्षा विद्वानों का आश्रय अपने आत्मा की रक्षा वीर्य की रक्षा और युक्त आहार विहार कहे हैं इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

**यह सत्ताईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथ अष्टाविंशाऽध्यायारम्भः 卐

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

**होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब अट्ठाईसवें अध्याय का आरम्भ है उसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को यज्ञ से कैसे बल बढ़ाना चाहिये इस विषय का वर्णन किया है—*

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यतऽओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१॥

**पदार्थ**—हे ( **होत** ) यजमान ! तू जैसे ( **होता** ) शुभ गुणों का ग्रहणकर्त्ता जन ( **समिधा** ) ज्ञान के प्रकाश से ( **इड** ) वाणी सम्बन्धी ( **पदे** ) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में ( **पृथिव्या** ) भूमि के ( **नाभा** ) मध्य और ( **दिव** ) प्रकाश के ( **अधि** ) ऊपर ( **वर्ष्मन्** ) वर्षने हारे मेघमण्डल में ( **इन्द्रम** ) बिजुलीरूप अग्नि को ( **यक्षत** ) सङ्गत कर उससे ( **ओजिष्ठ** ) अतिशय कर बली हुआ ( **चर्षणीसहाम** ) मनुष्यों के झुण्डों को सहने वाले योद्धाओं में ( **सम, इध्यते** ) सम्यक प्रकाशित होता है और ( **आज्यस्य** ) घृत आदि का ( **वेतु** ) प्राप्त होवे ( **यज** ) वैसे समागम किया कर ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि वेदमन्त्रों से सुगन्धित आदि द्रव्य अग्नि में छोड़ मेघमण्डल को पहुँचा और जल को शुद्ध करके सब के लिये बल बढ़ावें ॥ १ ॥

**होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृज्जगतीछन्द । निषाद स्वरः ॥**

*राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्। इन्द्रं देवᳪ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशᳪसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२॥

**पदार्थ**—हे ( **होत** ) ग्रहण करने वाले पुरुष ! आप जैसे ( **होता** ) सुख का दाता ( **ऊतिभि** ) रक्षाओं तथा ( **मधुमत्तम** ) अति मीठे जल आदि से युक्त ( **पथिभि** ) धर्मयुक्त मार्गों से ( **तनूनपातम्** ) शरीरों के रक्षक ( **जेतारम्** ) जयशील ( **अपराजितम्** ) शत्रुओं से न जीतने योग्य ( **स्वर्विदम्** ) सुख को प्राप्त ( **देवम्** ) विद्या और विनय से सुशोभित ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्यकारक राजा का ( **यक्षत्** ) सङ्ग कर ( **नराशंसेन** ) मनुष्यों से प्रशंसा की गई ( **तेजसा** ) प्रगल्भता से ( **आज्यस्य** ) जानने योग्य विषय को ( **वेतु** ) प्राप्त हो वैसे ( **यज** ) सङ्ग कीजिये ॥ २ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग स्वयं राज्य के न्याय मार्ग में चलते हुए प्रजाओं की रक्षा करके पराजय को न प्राप्त होते हुए शत्रुओं के जीतने वाले हों ॥ २ ॥

**होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥

**पदार्थ**—हे ( **होत** ) ग्रहीता पुरुष ! आप जैसे ( **होता** ) सुखदाता जन ( **इडाभि** ) अच्छी शिक्षित वाणियों से ( **अमर्त्यम्** ) साधारण मनुष्यों से विलक्षण ( **आजुह्वानम्** ) स्पर्द्धा करते हुए ( **ईडितम्** ) प्रशंसित ( **इन्द्रम** ) उत्तम विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजपुरुष का ( **यक्षत** ) प्राप्त होवे जैसे यह ( **वज्रहस्त** ) हाथों में शस्त्र अस्त्र धारण किये ( **पुरन्दर** ) शत्रुओं के नगरों का तोड़ने वाला ( **सवीर्य** ) बलयुक्त ( **देव** ) विद्वान् जन ( **देव** ) विद्वानों के साथ ( **आज्यस्य** ) विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के अवयवों को ( **वेतु** ) प्राप्त होवे वैसे ( **यज** ) समागम कीजिये ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजाओं की पालना करें वैसे ही प्रजा इनको पिता के तुल्य सेवें जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब काम करें वे भ्रम को नहीं पावें ॥ ३ ॥

**होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

होता यक्षद् बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम्।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥

**पदार्थ**—हे ( **होत** ) उत्तम दान के दाता पुरुष ! ( **होता** ) सुख चाहने वाला पुरुष जैसे ( **सयुग्भि** ) एक साथ योग करनेवाले ( **वसुभि** ) प्रथम कक्षा के ( **रुद्रै** ) मध्यम कक्षा के और ( **आदित्यै** ) उत्तम कक्षा के विद्वानों के साथ ( **बर्हिषि** ) उत्तम विद्वानों की सभा में ( **निषद्वरम्** ) जिसके निकट श्रेष्ठ जन बैठें उस ( **वृषभम्** ) सब से उत्तम बली ( **नर्यापसम्** ) मनुष्यों के उत्तम कामों का सेवन करने हारे ( **इन्द्रम्** ) नीति से शोभित राजा का ( **यक्षत्** ) प्राप्त होवे ( **आज्यस्य** ) करने योग्य न्याय को ( **बर्हि** ) उत्तम सभा में ( **आ, असदत्** ) स्थित होवे और ( **वेतु** ) सुख को प्राप्त होवे वैसे ( **यज** ) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि लोक प्राण आदि वायु तथा काल के अवयव महीने सब साथ वर्त्तमान हैं वैसे जो राजा और

प्रजा के जन आपस मे अनुकूल वर्त्त के सभा से प्रजा का पालन करें वे उत्तम प्रशंसा को पाते हैं ॥ ४ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय को कहा है—*

**होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वार इन्द्रमवर्द्धयन् । सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे जो ( सुप्रायणाः ) सुन्दर अवकाश वाले ( द्वारः ) द्वार ( ओजः ) जलवेग के ( न ) समान ( वीर्यम् ) बल ( सहः ) सहन और ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य को ( अवर्द्धयन् ) बढ़ावें उन ( ऋतावृधः ) सत्य को बढ़ाने वाले ( द्वारः ) विद्या और विनय के द्वारों का ( मीढुषे ) स्निग्ध वीर्यवान् ( इन्द्राय ) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राजा के लिये ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञे ) सगति के योग्य संसार में विद्वान् लोग ( वि, श्रयन्ताम् ) विशेष सेवन करें ( आज्यस्य ) जानने योग्य राज्य के विषय को ( व्यन्तु ) प्राप्त हों और ( होता ) ग्रहीता जन ( यक्षत् ) यज्ञ कर वैसे ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य इस संसार में विद्या और धर्म के द्वारों को प्रसिद्ध कर पदार्थविद्या को सम्यक् सेवन करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे अतुल सुखों को पाते हैं ॥ ५ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही । सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्द्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) सुखदाता जन ! आप जैसे ( इन्द्रस्य ) बिजुली की ( सुदुघे ) सुन्दर कामनाओं की पूरक ( मातरा ) माता के तुल्य वर्त्तमान ( मही ) बड़ी ( धेनू, सवातरौ ) वायु के साथ वर्त्तमान दुग्ध देने वाली दो गौ के ( न ) समान ( उषे ) प्रतापयुक्त भौतिक और सूर्यरूप अग्नि के ( तेजसा ) तीक्ष्ण प्रताप से ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्ययुक्त ( वत्सम् ) बालक को ( वीताम् ) प्राप्त हों तथा ( होता ) दाता ( आज्यस्य ) फेंकने योग्य वस्तु का ( यक्षत् ) संग करे और ( अवर्द्धताम् ) बढ़े वैसे ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! तुम जैसे वायु से प्रेरणा किए भौतिक और विद्युत् अग्नि सूर्यलोक के तेज को बढ़ाते हैं और जैसे दुग्धदात्री गौ के तुल्य वर्त्तमान प्रतापयुक्त दिन रात सब व्यवहारों के आरम्भ और निवृत्ति कराने हारे होते हैं वैसे यत्न किया करो ॥ ६ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो गोतम ऋषिः । अश्विनौ देवते । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः । कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) युक्त आहार विहार के करने हारे वैद्यजन ! जैसे ( होता ) सुख देनेहारे आप ( आज्यस्य ) जानने योग्य निदान आदि विषय का ( यक्षत् ) संगत करते हैं ( दैव्या ) विद्वानों में उत्तम ( होतारा ) रोग का निवृत्त कर सुख के देनेवाले ( सखाया ) परस्पर मित्र ( कवी ) बुद्धिमान् ( प्रचेतसौ ) उत्तम विज्ञान से युक्त ( देवौ ) वैद्यक विद्या से प्रकाशमान ( भिषजा ) चिकित्सा करने वाले दो वैद्य ( हविषा ) यथायोग्य ग्रहण करने योग्य व्यवहार से ( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्य के चाहने वाले जीव की ( भिषज्यतः ) चिकित्सा करते ( इन्द्राय ) उत्तम ऐश्वर्य के लिये ( इन्द्रियम् ) धन का ( धत्तः ) धारण करने और अवस्था को ( वीताम् ) प्राप्त होते हैं वैसे ( यज ) प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोगियों पर कृपा कर ओषधि आदि के उपाय से रोगों को निवृत्त कर ऐश्वर्य और आयुर्दा को बढ़ाते हैं वैसे तुम लोग सब प्राणियों में मित्रता की वृत्ति कर सबके सुख और अवस्था को बढ़ाओ ॥ ७ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥८॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) सुख चाहने वाले जन ! जैसे ( होता ) विद्या का देने लेने वाला अध्यापक ( आज्यस्य ) प्राप्त होने योग्य पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार का ( यक्षत् ) प्राप्त होवे जैसे ( त्रिधातवः ) हाड़, चर्बी और वीर्य इन तीन धातुओं के वर्धक ( अपसः ) कर्मों में चेष्टा करते हुए ( त्रयः ) अध्यापक, उपदेशक और वैद्य ( तिस्रः ) तीन ( देवीः ) सब विद्याओं की प्रकाशिका वाणियों के ( न ) समान ( भेषजम् ) ओषध को ( महीः ) बड़ी ( इडा ) स्तुति प्रशंसा के योग्य ( सरस्वती ) बहुत विज्ञानवाली और ( भारती ) सुन्दर विद्या का धारण वा पोषण करने वाली ( हविष्मतीः ) विविध विज्ञानों के सहित ( इन्द्रपत्नीः ) जीवात्मा की स्त्रियों के तुल्य वर्तमान वाणी ( व्यन्तु ) प्राप्त हों वैसे ( यज ) उनको संगत कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रशंसित विज्ञानवती और उत्तम बुद्धिमती स्त्रियाँ अपने योग्य पतियों को प्राप्त होकर प्रसन्न होती हैं वैसे अध्यापक उपदेशक और वैद्य लोग स्तुति ज्ञान और योगधारणायुक्त तीन प्रकार की वाणियों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम् । पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) शुभगुणों के दाता ! जैसे ( होता ) पथ्य आहार विहार कर्त्ता जन ( त्वष्टारम् ) धातुवैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले सुन्दर पराक्रमयुक्त ( मघोनम् ) परम प्रशस्त धनवान् ( पुरुरूपम् ) बहुरूप ( घृतश्रियम् ) जल से शोभायमान ( सुयजम् ) सुन्दर संग करने वाले ( भिषजम् ) वैद्य ( देवम् ) तेजस्वी ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् पुरुष का ( यक्षत् ) संग करता है और ( आज्यस्य ) जानने योग्य वचन के ( इन्द्राय ) प्रेरक जीव के लिये ( इन्द्रियाणि ) कान आदि इन्द्रियों वा धनों को ( दधत् ) धारण करता हुआ ( त्वष्टा ) तेजस्वी हुआ ( वेतु ) प्राप्त होता है वैसे तू ( यज ) संग कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग आप्त सत्यवादी रोगनिवारक सुन्दर ओषधि देने, धन ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले वैद्यजन का सेवन कर शरीर आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को बढ़ा के परम ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) दान देने हारे जन ! जैसे ( होता ) यज्ञकर्त्ता पुरुष ( वनस्पतिम् ) किरणों के स्वामी सूर्य के तुल्य ( शमितारम् ) यजमान ( शतक्रतुम् ) अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त ( धियः ) बुद्धि वा कर्म को ( जोष्टारम् ) प्रसन्न वा सेवन करते हुए पुरुष का ( यक्षत् ) संग करे ( मध्वा ) मधुर विज्ञान से ( सुगेभिः ) सुखपूर्वक गमन करने के आधार ( पथिभिः ) मार्गों करके ( आज्यस्य ) जानने योग्य संसार के ( इन्द्रियम् ) धन का ( समञ्जन् ) सम्यक् प्रकट करता हुआ ( स्वदाति ) स्वाद लेवे और ( मधुना ) मधुर ( घृतेन ) घी वा जल से ( यज्ञम् ) संगति के योग्य व्यवहार को ( वेतु ) प्राप्त होवे वैसे ( यज ) तुम भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले धर्मयुक्त मार्गों से चलते हुए सुखों को भोग के औरों को भी सुख देनेवाले होते हैं ॥ १० ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥११॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) विद्यादाता पुरुष ! जैसे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य का दाता ( होता ) विद्योन्नति को ग्रहण करने हारा जन ( आज्यस्य ) जानने योग्य शास्त्र की ( स्वाहा ) सत्य वाणी का ( मेदसः ) चिकने धातु की ( स्वाहा ) यथार्थ क्रिया वा ( स्तोकानाम् ) छोटे बालकों की ( स्वाहा ) उत्तम प्रिय वाणी को ( स्वाहाकृतीनाम् ) सत्य वाणी तथा क्रिया के अनुष्ठानों की ( स्वाहा ) होम क्रिया को और ( हव्यसूक्तीनाम् ) बहुत ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के सुन्दर वचनों से युक्त बुद्धियों की ( स्वाहा ) उत्तम क्रियायुक्त ( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्य को ( यक्षत् ) प्राप्त होता है जैसे ( स्वाहा ) सत्यवाणी करके ( आज्यस्य ) स्निग्ध वचन का ( जुषाणाः ) प्रसन्न किये हुए ( आज्यपाः ) घी आदि को पीने वा उससे रक्षा करने वाले ( देवाः ) विद्वान् लोग ऐश्वर्य को ( व्यन्तु ) प्राप्त हों वैसे ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष शरीर आत्मा सन्तान सत्कार और विद्या वृद्धि करना चाहते हैं वे सब ओर से सुखयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**देवं बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्द्धयत् । वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳ राया । बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१२॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( बर्हिष्मतः ) अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाले वायु जलों का ( अति, अगात् ) उल्लङ्घन कर जाता ( वसुधेयस्य ) जिसमें धनों का धारण होता है उस जगत् के ( वसुवने ) धनों के सेवने तथा ( देवान् ) हवन के

कुण्ड में ( स्तीर्णम् ) समिधा और घृतादि से रक्षा करने योग्य ( वस्तो ) दिन में ( वसम ) स्वीकार किया ( अक्तो ) रात्रि में ( भृतम ) धारण किया हवन किया हुआ द्रव्य नीरोगता को ( प्र, अवर्द्धयत ) अच्छे प्रकार बढ़ावे तथा सुख को ( वेतु ) प्राप्त करे वैसे ( बर्हि ) अन्तरिक्ष के तुल्य ( राया ) धन के साथ ( देवम् ) उत्तम गुण वाले ( देवैः ) विद्वानों के साथ ( वीरवत ) वीरजनों के तुल्य वर्त्तमान ( इन्द्रम ) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले ( सदेवम ) सुन्दर विद्वान् का ( यज ) सङ्ग कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यजमान वेदि में समिधाओं में सुन्दर प्रकार चयन किये और घृत चढ़ाये हुए अग्नि को बढ़ा अन्तरिक्षस्थ वायु जल आदि को शुद्ध कर रोग के निवारण से सब प्राणियों को तृप्त करता है वैसे ही सज्जन जन धनादि से सबको सुखी करते हैं ॥ १२ ॥

देवीरित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

देवीर्द्वारं इन्द्रंᳬसङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन् । आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणᳬ रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( वीड्वी ) विशेषकर स्तुति के योग्य ( देवी ) प्रकाशमान ( द्वारः ) द्वार ( रेणुककाटम ) धूलि से युक्त कूप अर्थात् अन्धकूप को ( यामन् ) मार्ग में छोड़ के ( तरुणेन ) ज्वान ( मीवता ) शूर दुष्ट हिंसा करने हारा ( च ) और ( कुमारेण ) ब्रह्मचारी ( वत्सेन ) बछड़े के तुल्य जन के साथ वर्त्तमान ( अर्वाणम् ) चलते हुए घोड़े यथा ( इन्द्रम ) ऐश्वर्य का ( आ, अवर्धयन् ) बढ़ाते हैं ( वसुवने ) धन के सेवने योग्य ( सङ्घाते ) सम्बन्ध में ( वसुधेयस्य ) धनधारक समाज के विघ्न को ( अप नुदन्ताम ) प्रेरित करें और ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें वैसे ( यज ) प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे बटोही जन मार्ग में वर्त्तमान कूप को छोड़ शुद्ध मार्ग कर प्राणियों को सुख से पहुँचाते हैं वैसे बाल्यावस्था में विवाहादि विघ्नों को हटा विद्या प्राप्त कराके अपने सन्तानों को सुख के मार्ग में चलावें ॥ १३ ॥

देवीत्यस्याश्विनावृषी । अहोरात्रे देवते । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् । देवीर्विशः प्रायासिष्टाᳬ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सुप्रीते ) सुन्दर प्रीति के हेतु ( सुधिते ) अच्छे हितकारी ( देवी ) प्रकाशमान ( उषासानक्ता ) रात दिन ( प्रयति ) प्रयत्न के निमित्त ( यज्ञे ) सङ्गति के योग्य यज्ञ आदि व्यवहार में ( इन्द्रम ) परमैश्वर्ययुक्त यजमान को ( अह्वेताम् ) शुभ व्यवहार कराते ( वसुधेयस्य ) जिसमें धन धारण हो उस खजाने के ( वसुवने ) धन विभाग में ( देवी ) न्यायकारी विद्वानों की इन ( विशः ) प्रजाओं को ( प्र, अयासिष्टाम ) प्राप्त होते हैं और सब जगत् को ( वीताम ) प्राप्त हों वैसे आप ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे दिन रात नियम से वर्त्तकर प्राणियों को सुखादि व्यवहार कराते हैं वैसे तुम लोग नियम से वर्त्तकर प्रजाओं को आनन्द दे सुखी करो ॥ १४ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम् । अयाव्यन्याघा द्वेषाᳬस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( वसुधिती ) द्रव्य को धारण करने वाले ( जोष्ट्री ) सब पदार्थों को सेवन करते हुए ( देवी ) प्रकाशमान दिन रात ( देवम् ) प्रकाशस्वरूप ( इन्द्रम ) सूर्य को ( अवर्द्धताम ) बढ़ाते हैं उन दिन रात के बीच ( अन्या ) एक ( अघा ) अन्धकाररूप रात्रि ( द्वेषांसि ) द्वेषयुक्त जन्तुओं को ( आ, अयावि ) अच्छे प्रकार पृथक् करती और ( अन्या ) उन दोनों में से एक प्रातःकाल रूप उषा ( वसु ) धन तथा ( वार्याणि ) उत्तम जलों को ( वक्षत् ) प्राप्त करे ( यजमानाय ) पुरुषार्थी मनुष्य के लिये ( वसुधेयस्य ) आकाश के बीच ( वसुवने ) जिस में पृथिवी आदि का विभाग हो ऐसे जगत् में ( शिक्षिते ) जिन में मनुष्यों ने शिक्षा की ऐसे हुए दिन रात ( वीताम ) व्याप्त होवें ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे रात दिन विभाग को प्राप्त हुए मनुष्यादि प्राणियों के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं । उन में से रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती और दिन उन द्वेषादि को प्राप्त और सब व्यवहारों को प्रकट करता है वैसे प्रातःकाल में योगाभ्यास से रागादि दोषों को निवृत्त और शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होओ ॥ १५ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । भुरिगाकृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम् । इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिᳬसपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( वसुधेयस्य ) ऐश्वर्य धारण करने योग्य ईश्वर के ( वसुवने ) धन दान के स्थान जगत् में वर्त्तमान विद्वानों ने ( वार्याणि ) ग्रहण करने योग्य ( वसु ) धन की ( शिक्षिते ) जिन में शिक्षा की जावे वे रात दिन ( यजमानाय ) सङ्गति के लिये प्रवृत्त हुए जीव के लिये व्यवहार को ( वीताम् ) व्याप्त हों वैसे ( ऊर्जाहुती ) बल तथा प्राण को धारण करने और ( देवी ) उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले दिन रात ( पयसा ) जल से ( दुघे ) सुखों को पूर्ण और ( सुदुघे ) सुन्दर कामनाओं के बढ़ाने वाले होते हुए ( इन्द्रम ) ऐश्वर्य को ( अवर्धताम ) बढ़ाते हैं उन में से ( अन्या ) एक ( इषम ) अन्न और ( ऊर्जम ) बल को ( वक्षत ) पहुँचाती और ( अन्या ) दिनरूप वेला ( सपीतिम ) पीने के सहित ( सग्धिम ) ठीक समान भोजन को पहुँचाती है ( दयमाने ) आवागमन गुण वाली अगली पिछली दो रात्रि प्रवृत्त हुई ( नवेन ) नये पदार्थ के साथ ( पूर्वम ) प्राचीन और ( पुराणेन ) पुराणे के साथ ( नवम ) नवीन स्वरूप वस्तु को ( अधाताम् ) धारण करे ( ऊर्जयमाने ) बल करते हुए ( ऊर्जाहुती ) अवस्था घटाने से बल को लेने हारे दिन रात ( ऊर्जम ) जीवन को धारण करे वैसे आप ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे रात दिन अपने वर्त्तमान रूप से पूर्वापररूप को जताने तथा आहार विहार को प्राप्त करने वाले होते हैं वैसे अग्नि में होमी हुई आहुति सब सुखों को पूरा करने वाली होती है । जो मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ गमावें वायु आदि पदार्थों को शुद्ध न करें अदृष्ट पदार्थ को अनुमान से न जानें तो सुख को भी न प्राप्त हों ॥ १६ ॥

देवा इत्यस्याश्विनावृषी । अश्विनौ देवते । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम् । हताघशᳬसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( दैव्या ) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध ( होतारा ) जगत् के धर्त्ता ( देवा ) सुख देने हारे वायु और अग्नि ( देवम् ) दिव्यगुणयुक्त ( इन्द्रम ) सूर्य को ( अवर्द्धताम ) बढ़ावें ( हताघशंसौ ) चोरों को मारने के हेतु हुए रोगों को ( आ अभार्ष्टाम ) अच्छे प्रकार नष्ट करें ( यजमानाय ) कर्म में प्रवृत्त हुए जीव के लिये ( शिक्षितौ ) जताये हुए ( वसुधेयस्य ) सब ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के ( वसुवने ) धन दान के स्थान जगत् में ( वसु ) धन और ( वार्याणि ) ग्रहण करने योग्य जलों को ( वीताम ) व्याप्त होवें वैसे आप ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्यलोक के निमित्त वायु और बिजुली को जान और उपयोग में लाके धनों का सञ्चय करें तो चोरों को मारने वाले होवें ॥ १७ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् । अस्पृक्षद्भारती दिवᳬ रुद्रैर्यज्ञᳬ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( द्रव ) प्राणों में ( भारती ) धारण करने हारी ( दिवम ) प्रकाश को ( सरस्वती ) विज्ञानयुक्त वाणी ( यज्ञम् ) सङ्गति के योग्य व्यवहार को ( वसुमती ) बहुत द्रव्यों वाली ( इडा ) प्रशंसा के योग्य वाणी ( गृहान् ) घरों वा गृहस्थों को धारण करती हुई ( देवी , तिस्रः ) ( तिस्रः देवीः ) तीन दिव्य क्रिया यहां पुनरुक्ति आवश्यकता जताने के लिये है ( पतिम ) पालन करने हारे ( इन्द्रम ) सूर्य के तुल्य तेजस्वी जीव को ( अवर्धयन् ) बढ़ाती हैं ( वसुधेयस्य ) धन कोष के ( वसुवने ) धन दान में घरों को ( व्यन्तु ) प्राप्त हों उनको आप ( यज ) प्राप्त हूजिये और आप ( अस्पृक्षत ) अभिलाषा कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—जैसे जल अग्नि और वायु की गति उत्तम क्रियाओं और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं वैसे जो मनुष्य सब विद्याओं को धारण करने सब क्रिया का हेतु और सब दोष गुणों को जताने वाली तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं वे इस सब द्रव्यों के आधार संसार में लक्ष्मी को प्राप्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

देव इन्द्रो नराशᳬसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् । शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिः स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( त्रिबन्धुरः ) ऋषि आदि रूप तीन बन्धनों वाला ( त्रिवरूथः ) तीन सुखदायक घरों का स्वामी ( नराशंसः ) मनुष्यों की स्तुति करने और ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य को चाहने वाला ( देवः ) जीव ( शतेन ) सैकड़ों प्रकार के कर्म से ( देवम ) प्रकाशमान ( इन्द्रम ) विद्युत्रूप अग्नि को ( अवर्धयत् ) बढ़ावे । जो ( शितिपृष्ठानाम् ) जिन की पीठ पर बैठने से शीघ्र गमन होते हैं उन पशुओं के बीच ( आहितः ) अच्छे प्रकार स्थिर हुआ ( सहस्रेण ) असङ्ख्य प्रकार के

पुरुषार्थ से ( प्र वर्त्तते ) प्रवृत्त होता है ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान ( अस्य, इत् ) ही ( होत्रम ) भोजन की ( अर्हत ) योग्यता रखने वाले जीव के सम्बन्धी ( वसुधयस्य ) ससार के ( बृहस्पति ) बड बड पदार्थों का रक्षक बिजुली रूप अग्नि ( स्तोत्रम् ) स्तुति के साधन ( अश्विना ) सूय चन्द्रमा और ( अध्वर्यवम ) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले जन को ( वसुवने ) धन मागने वाले के लिये (वेतु) कमनीय करे वसे ( यज ) सङ्ग कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विविध प्रकार के सुख करने वाले तीनो अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल का प्रबन्ध जिन म हो सके ऐसे घरो को बना उन म असङ्ख्य सुख पा और पथ्य भोजन करके मागने वाले क लिये यथायोग्य पदार्थ देते हैं वे कीर्त्ति का प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । निचृदतिशक्वरी छन्द । पञ्चमः स्वर ॥

*फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**देवो देवैर्वन॒स्पति॒र्हिर॑ण्यपर्णो॒ मधु॑शाखः सुपिप्प॒लो दे॒वमिन्द्र॑म-वर्धयत् । दिव॒मग्रे॑णास्पृक्ष॒दान्तरि॑क्षं पृथि॒वीम॑दृꣳहीद्वसुवने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥२०॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( देव ) दिव्य प्रकाशमान गुणो के साथ वर्त्तमान ( हिरण्यपर्ण ) सुवर्ण के तुल्य चिलकते हुए पत्तो वाला ( मधुशाख ) मीठी डालियो से युक्त ( सुपिप्पल ) सुन्दर फलो वाला ( देव ) उत्तम गुणो का दाता ( वनस्पतिः ) सूर्य की किरणों म जल पहुँचा कर उष्णता की शान्ति से किरणो का रक्षक वनस्पति ( देवम ) उत्तम गुणो वाले ( इन्द्रम् ) दरिद्रता के नाशक मेघ का ( अवर्धयत् ) बढ़ावे ( अग्रेण ) अग्रगामी होने से ( दिवम ) प्रकाश को ( अस्पृक्षत् ) चाहे ( अन्तरिक्षम् ) अवकाश उस मे स्थित लोको और ( पृथिवीम ) भूमि का ( आ अदृꣳहीत ) अच्छे प्रकार धारण करे ( वसुधेयस्य ) ससार के ( वसुवने ) धनदाता जीव के लिये ( वेतु ) उत्पन्न होवे वसे आप ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जसे वनस्पति ऊपर जल चढ़ाकर मेघ को बढ़ाते और सूर्य अन्य लोको का धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्या को चाहने वाले विद्यार्थी को बढ़ाते है ॥ २० ॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

**दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनां दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत् । स्वा॒स॒स्थमिन्द्रे॑णास॑न्न-मन्या ब॒र्हीꣳष्य॒भ्यभूद्वसुवने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥२१॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जसे ( देवम ) दिव्य ( वारितीनाम ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के बीच वर्त्तमान ( स्वासस्थम ) सुन्दर प्रकार स्थिति के आधार ( इन्द्रेण ) परमेश्वर के साथ ( आसन्नम ) निकटवर्ती ( बर्हि ) आकाश ( देवम ) उत्तम गुण वाले ( इन्द्रम ) बिजुली को ( अवर्धयत ) बढ़ाता है ( अन्या ) और ( बर्हींषि ) अन्तरिक्ष के अवयवो का ( अभि अभूत ) सब ओर से व्याप्त होवे ( वसुधेयस्य ) सब द्रव्यो के आधार जगत् के बीच ( वसुवने ) पदार्थविद्या को चाहनेवाले जन के लिये ( वेतु ) प्राप्त होवे आप ( यज ) प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सब ओर से व्याप्त आकाश सब पदार्थों को व्याप्त होता और सब के समीप है वसे ईश्वर के निकटवर्ती जीव को जान के इस ससार मे मागने वाले सुपात्र के लिये अन्नादि का दान देओ ॥ २१ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । निचृत त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

**दे॒वो अ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत् । स्वि॑ष्टं कु॒र्वन्त्स्वि॑ष्ट॒कृत् स्वि॑ष्टम॒द्य क॑रोतु नो वसुवने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥२२॥**

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे ( स्विष्टकृत ) सुन्दर प्रकार इष्ट का साधक ( देव ) उत्तम गुणो वाला ( अग्नि ) अग्नि ( इन्द्रम देवम् ) उत्तम गुणो वाले जीव को ( अवर्धयत ) बढ़ावे यथा जसे ( स्विष्टम ) सुन्दर इष्ट का ( कुर्वन् ) सिद्ध करता और ( स्विष्टकृत ) उत्तम इष्टकारी हुआ अग्नि ( स्विष्टम् ) अत्यन्त चाहे हुए कार्य को करता है वसे ( अद्य ) आज ( न ) हमारे लिये सुख को ( करोतु ) कीजिये ( वेतु ) धन को प्राप्त हूजिये और ( वसुधेयस्य ) सब द्रव्यो के आधार जगत् के बीच ( वसुवने ) पदार्थविद्या को चाहते हुए मनुष्य के लिये ( यज ) दान कीजिये ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गुण कर्म स्वभावो करके जाना गया कर्मों मे नियुक्त किया अग्नि अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है वसे विद्वानों को वर्त्तना चाहिये ॥ २२ ॥

अग्निमित्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥

**अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पुरो॒डाशं॑ ब॒ध्नन्निन्द्रा॑य॒ च्छाग॑म् । सू॒प॒स्था अ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभव॒दिन्द्रा॑य॒ च्छागे॑न । अघ॑त्तं मेद॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्र॑भीद॒वी॑वृधत्पुरो॒डाशे॑न त्वाम॒द्य ऋ॑षे ॥२३॥**

पदार्थ—हे ( ऋषे ) मन्त्रार्थ जानने हारे विद्वन् ! जसे ( अयम ) यह ( यजमान ) यज्ञ करने हारा पुरुष ( अद्य ) आज ( इन्द्राय ) ऐश्वय प्राप्ति के अर्थ ( पक्तीः ) पाको को ( पचन् ) पकाता ( पुरोडाशम ) होम के लिये पाक विशेष को ( पचन् ) पकाता और ( छागम ) रोगो को नष्ट करने हारी बकरी को ( बध्नन् ) बाधता हुआ ( होतारम् ) यज्ञ करने मे कुशल ( अग्निम् ) तेजस्वी विद्वान् को ( अवृणीत ) स्वीकार करे । जसे ( वनस्पति ) किरणसमूह का रक्षक ( देव ) प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल ( इन्द्राय ) ऐश्वय के लिये ( छागेन ) छेदन करने के साथ ( अद्य ) इस समय ( अभवत् ) प्रसिद्ध होवे ( मेदस्त ) चिकनाई वा गीलेपन से ( तम ) उस हुत पदार्थ को ( अघत्त ) खाता ( पचता ) सब पदार्थों को पकाते हुए सूय से ( सूपस्था ) सुन्दर उपस्थान करने वाले हो वैसे ( प्रति अग्रभीत ) ग्रहण करता है ( पुरोडाशेन ) होम के लिये पकाये पदार्थ विशेष से ( अवीवृधत् ) अधिक वृद्धि का प्राप्त होता है वसे ( त्वाम् ) आप को ( अद्य ) मैं बढ़ाऊ और और आप भी वैसे ही वर्त्ताव कीजिये ॥२३

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जसे रसोइये लोग साग आदि का काट कूट के अन्न और कढ़ी आदि पकाते है वसे सूय सब पदार्थों को पकाता है जैसे सूय वर्षा के द्वारा सब पदार्थों को बढ़ाता है वसे सब मनुष्यो को चाहिये कि सेवादि के द्वारा मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वानो को बढ़ावें ॥ २३ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराड्जगतीछन्द । निषाद स्वर ॥

**होता॑ यक्षत्स॒मिधा॒नं म॒हद्यशः॒ सुस॑मिद्धं॒ वरे॑ण्यम॒ग्निमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । गा॒य॒त्रीं छन्द॑ इन्द्रि॒यं त्र्यविं॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥२४॥**

पदार्थ—हे ( होत ) विद्यादि का ग्रहण करने हारे जन ! आप जैसे ( होता ) दाता पुरुष ( अग्निम् ) अग्नि के तुल्य ( समिधानम ) सम्यक् प्रकाशमान ( सुसमिद्धम् ) सुन्दर शोभायमान ( वरेण्यम् ) ग्रहण करने योग्य ( महत ) बड़ा ( यश ) कीर्त्ति ( वयोधसम ) अभीष्ट अवस्था के धारक ( इन्द्रम् ) उत्तम ऐश्वय करने वाले योग ( गायत्रीम् ) सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाली गायत्री ( छन्द ) स्वतन्त्रता ( इन्द्रियम ) धन वा श्रोत्रादि इन्द्रियो ( त्र्यविम ) तीन प्रकार से रक्षा करने वाली ( गाम ) पृथिवी और ( वय ) जीवन का ( दधत् ) धारण करता हुआ ( यक्षत् ) सङ्ग करे और ( आज्यस्य ) विज्ञान के रस को ( वेतु ) प्राप्त होवे वसे आप भी ( यज ) समागम कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष सत् विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे अतुल कीर्त्ति का पाकर आप सुखी होते और दूसरो को सुखी करते हैं ॥ २४ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥

**होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॑तमु॒द्भिदं॒ यं गर्भ॒मदि॑तिर्द॒धे शुचि॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । उ॒ष्णिहं॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यं दि॑त्य॒वाहं॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥२५॥**

पदार्थ—हे ( होत ) ज्ञान के यज्ञ के कर्त्त ! जैसे ( होता ) शुभगुणो का ग्रहण करने वाला जन ( तनूनपातम् ) शरीराग्नि के रक्षक ( उद्भिदम् ) शरीर का भेदन कर निकलने वाले ( गर्भम् ) गर्भ को जसे ( अदिति ) माता धारण करती वैसे ( यम् ) जिसको ( दधे ) धारण करता है ( वयोधसम् ) अवस्था के वर्धक ( शुचिम् ) पवित्र ( इन्द्रम ) सूर्य्य को ( यक्षत ) हवन का पदार्थ पहुँचाता है ( आज्यस्य ) विज्ञानसम्बन्धी ( उष्णिहम् ) उष्णिक छन्द से कहे हुए ( छन्द ) बलकारी ( इन्द्रियम् ) जीव के श्रोत्रादि चिह्नों और ( दित्यवाहम् ) खण्डितो को पहुचाने वाले ( गाम् ) वाणी और ( वय ) सुन्दर २ पक्षियो का ( दधत ) धारण करता हुआ ( वेतु ) प्राप्त होवे वसे इन सब को आप ( यज ) सगत कीजिये ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे माता गर्भ और उत्पन्न हुए बालक की रक्षा करती है वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयुर्दा को बढ़ाओ ॥२५॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्द । धैवत स्वर ॥

**होता॑ यक्षदी॒डेन्य॑मीडि॒तं वृ॑त्र॒हन्त॑म॒मिडा॑भि॒रीड्य॒ꣳ सहः॒ सोम॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । अ॒नु॒ष्टुभं॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यं प॑ञ्चा॒विं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥२६॥**

पदार्थ—हे ( होत ) यज्ञ करनेहारे जन । जैसे ( होता ) शुभ गुणो का ग्रहीता पुरुष ( वृत्रहन्तमम् ) मेघ को अत्यन्त काटने वाले सूर्य को जैसे वसे ( इडाभि ) अच्छी शिक्षित वाणियो से ( ईडेन्यम् ) स्तुति करने योग्य ( ईडितम् ) प्रशंसित ( सह ) बल ( ईड्यम् ) प्रशसा के योग्य ( सोमम् ) सोम आदि ओषधिगण और ( वयोधसम् ) मनोहर प्राणो के धारक ( इन्द्रम् ) जीवात्मा का ( यक्षत् ) सङ्गत करे और ( इन्द्रियम् ) श्रोत्र आदि ( अनुष्टुभम् ) अनुकूल थांभने वाली ( छन्द ) स्वतन्त्रता से ( पञ्चाविम् ) पाच प्राणों की रक्षा करने वाली ( गाम्) पृथिवी और ( आज्यस्य ) जानने योग्य जगत् के बीच ( वय ) अभीष्ट वस्तु को ( दधत् )

धारण करता हुआ ( वेतु ) प्राप्त होवे वैसे आप इन सब को ( यज ) सङ्गत कीजिये ॥ २६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य न्याय के साथ प्रशंसित गुण वाले सूर्य के तुल्य प्रशंसित हो के विज्ञान के योग्य वस्तुओं को जान के स्तुति बल जीवन धन जितेन्द्रियपन और राज्य को धारण करते हैं वे प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ २६ ॥

**होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् । बृहतीं छन्दऽइन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२७॥**

**पदार्थ**—हे ( होतः ) दान देने वाले पुरुष ! तू जैसे वह ( होता ) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष ( अमृता ) नाशरहित ( बर्हिषि ) आकाश के तुल्य व्याप्त ( प्रिये ) चाहने योग्य परमेश्वर के स्वरूप में ( सीदन्तम् ) स्थिर हुए ( अमर्त्यम् ) शुद्ध स्वरूप से मृत्युरहित ( पूषण्वन्तम् ) बहुत पोषण वाले ( सुबर्हिषम् ) सुन्दर अवकाश वा जल वाला ( वयोधसम् ) व्याप्ति का धारण करने हारे ( इन्द्रम् ) अपने जीवस्वरूप को ( यक्षत् ) सङ्ग करे वह ( आज्यस्य ) जानने योग्य विज्ञान का सम्बन्धी ( बृहतीम् ) बृहती ( छन्दः ) छन्द ( इन्द्रियम् ) श्रोत्र आदि इन्द्रिय ( त्रिवत्सम् ) कर्म उपासना ज्ञान जिसको पुत्रवत् है उस वेदसम्बन्धी ( गाम् ) प्राप्त होने योग्य बोध तथा ( वयः ) मनोहर सुख को ( दधत् ) धारण करता हुआ कल्याण को ( वेतु ) प्राप्त होवे वैसे इनको ( यज ) सङ्गत करे ॥२७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ योगी पुरुष का सेवन करते हैं वे सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त होते हैं ॥२७॥

**होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२८॥**

**पदार्थ**—हे ( होतः ) यज्ञ करने वाले पुरुष ! तू जैसे ( इह ) इस संसार में ( होता ) ग्रहीता जन ( व्यचस्वतीः ) विस्तार के अवकाश वाले ( सुप्रायणाः ) सुन्दर निकसना जिन में हो ( ऋतावृधः ) सत्य को बढ़ाने हारे ( हिरण्ययीः ) सुनहरी चित्रों वाले ( देवीः ) उत्तम गुणयुक्त ( द्वारः ) द्वारों को ( वयोधसम् ) कामना के योग्य विद्या तथा बोध आदि के धारण करने हारे ( ब्रह्माणम् ) चारों वेद के ज्ञाता ( इन्द्रम् ) विद्यारूप ऐश्वर्य वाले विद्वान् को ( पङ्क्तिम् ) पङ्क्ति ( छन्दः ) छन्द ( इन्द्रियम् ) धन ( तुर्यवाहम् ) चौगुना बोझ ले चलने हारे ( गाम् ) बैल और ( वयः ) गमन को ( दधत् ) धारण करता हुआ ( आज्यस्य ) प्राप्त होने योग्य घृतादि के सम्बन्धी इन उक्त पदार्थों को ( यक्षत् ) सङ्गत करे और जैसे मनुष्य लोग ( व्यन्तु ) प्राप्त होवें इन सब को ( यज ) प्राप्त हो ॥२८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग अत्युत्तम सुन्दर द्वारों वाले सुवर्णादि पदार्थों से युक्त घरों को बना के वहां निवास और विद्या का अभ्यास कर के रोगरहित होते हैं ॥२८॥

**होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अहोरात्रे देवते । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥२९॥**

**पदार्थ**—हे ( होतः ) यज्ञ करने हारे पुरुष ! तू जैसे ( इह ) इस जगत् में ( बृहती ) बड़े ( उभे ) दोनों ( सुशिल्पे ) सुन्दर शिल्पकार्य जिन में हों वे ( दर्शते ) देखने योग्य ( नक्तोषासा ) रात्रि दिन के ( न ) समान ( सुपेशसा ) सुन्दर रूप वाले अध्यापक उपदेशक दो विद्वान् ( विश्वम् ) सब ( वयोधसम् ) कामना के आधार ( इन्द्रम् ) उत्तम ऐश्वर्य ( त्रिष्टुभम् ) त्रिष्टुप् छन्द का अर्थ ( छन्दः ) बल ( वयः ) अवस्था ( इन्द्रियम् ) श्रोत्रादि इन्द्रिय और ( पष्ठवाहम् ) पीठ पर भार ले चलने वाले ( गाम् ) बैल को ( वीताम् ) प्राप्त हों जैसे ( आज्यस्य ) प्राप्त होने योग्य घृतादि पदार्थों के सम्बन्धी इन को ( दधत् ) धारण करता हुआ ( होता ) ग्रहणकर्त्ता पुरुष ( यक्षत् ) प्राप्त होवे वैसे ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥२९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य करनेहारे शिल्पकार्यों को इस जगत् में सिद्ध करते हैं वे सुखी होते हैं ॥२९॥

**होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अश्विनौ देवते । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् । जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥३०॥**

**पदार्थ**—हे ( होतः ) दान देनेहारे पुरुष ! तू जैसे ( देवानाम् ) विद्वानों के सम्बन्धी ( प्रचेतसा ) उत्कृष्ट विज्ञान वाले ( सयुजा ) साथ योग रखने वाले ( दैव्या ) उत्तम कर्मों में साधु ( होतारा ) दाता ( कवी ) बुद्धिमान् पढ़ने पढ़ाने वा सुनने सुनाने हारे ( उत्तमम् ) उत्तम ( यशः ) कीर्त्ति ( वयोधसम् ) अभीष्ट सुख के धारक ( इन्द्रम् ) उत्तम ऐश्वर्य ( जगतीम् छन्दः ) जगती छन्द ( वयः ) विज्ञान ( इन्द्रियम् ) धन और ( अनड्वाहम् ) गाड़ी चलाने हारे ( गाम् ) बैल को ( वीताम् ) प्राप्त हों जैसे ( आज्यस्य ) जानने योग्य पदार्थ के बीच इन उक्त सब को ( दधत् ) धारण करता हुआ ( होता ) ग्रहणकर्त्ता जन ( यक्षत् ) प्राप्त होवे वैसे ( यज ) प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि मनुष्य पुरुषार्थ करें तो विद्या कीर्त्ति और धन को प्राप्त हो के माननीय होवें ॥३०॥

**होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । वाण्यो देवताः । भुरिक्शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् । विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥**

**पदार्थ**—हे ( होतः ) यज्ञ करनेहारे जन ! जैसे ( इह ) इस जगत् में जो ( होता ) शुभ गुणों का ग्रहीता जन ( तिस्रः ) तीन ( हिरण्ययीः ) सुवर्ण के तुल्य प्रिय ( पेशस्वतीः ) सुन्दर रूपों वाली ( भारतीः ) धारण करनेहारी ( बृहतीः ) बड़ी गम्भीर ( महीः ) महान् पुरुषों ने ग्रहण की ( देवीः ) दानशील स्त्रियों तीन प्रकार की वाणियों ( वयोधसम् ) बहुत अवस्था वाले ( पतिम् ) रक्षक ( इन्द्रम् ) राजा ( विराजम् ) विविध पदार्थों के प्रकाशक ( छन्दः ) विराट् छन्द ( वयः ) कामना के योग्य वस्तु और ( इन्द्रियम् ) जीवों ने सेवन किये सुख को ( यक्षत् ) प्राप्त होता है वह ( धेनुम् ) दूध देनेहारी ( गाम् ) गौ के ( न ) समान हम को ( व्यन्तु ) प्राप्त हों वैसे इन सब को ( दधत् ) धारण करता हुआ ( आज्यस्य ) प्राप्त होने योग्य विज्ञान के फल को ( यज ) प्राप्त हूजिये ॥३१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य कर्म उपासना और विज्ञान के जानने वाली वाणी को जानते हैं वे बड़ी कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं । जैसे गौएं बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्वान् लोग मूर्ख बालबुद्धि लोगों को तृप्त करते हैं ॥३१॥

**होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनꣳ रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् । द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥**

**पदार्थ**—हे ( होतः ) दान देनेहारे पुरुष ! जैसे ( होता ) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष ( सुरेतसम् ) सुन्दर पराक्रम वाले ( त्वष्टारम् ) प्रकाशमान ( पुष्टिवर्द्धनम् ) जो पुष्टि से बढ़ाता उस ( रूपाणि ) सुन्दर रूपों को ( पृथक् ) अलग अलग ( बिभ्रतम् ) धारण करने हारे ( वयोधसम् ) बड़ी अवस्था वाले ( पुष्टिम् ) पुष्टियुक्त ( इन्द्रम् ) उत्तम ऐश्वर्य को ( द्विपदम् ) दो पग वाले मनुष्यादि ( छन्दः ) स्वतन्त्रता ( इन्द्रियम् ) श्रोत्रादि इन्द्रिय ( उक्षाणम् ) वीर्य सींचने में समर्थ ( गाम् ) जवान बैल के ( न ) समान ( वयः ) अवस्था को ( दधत् ) धारण करता हुआ ( आज्यस्य ) विज्ञान के सम्बन्धी पदार्थ को ( यक्षत् ) होम करे तथा ( वेतु ) प्राप्त होवे वैसे ( यज ) होम कीजिये ॥३२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें । जो सन्तानों की चाहना करें तो शरीरादि की पुष्टि अवश्य करनी चाहिये । जैसे सूर्य रूप को जताने वाला है वैसे विद्वान् पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा का प्रकाश करने वाला होता है ॥ ३२ ॥

**होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् । ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३॥**

**पदार्थ**—हे ( होतः ) दान देनेहारे जन ! जैसे ( इह ) इस संसार में ( आज्यस्य ) घी आदि उत्तम पदार्थ का ( होता ) होम करनेहारा ( शमितारम् ) शान्तिकारक ( हिरण्यपर्णम् ) तेजरूप रक्षाओं वाले ( वनस्पतिम् ) किरणपालक सूर्य के तुल्य ( शतक्रतुम् ) बहुत बुद्धि वाले ( उक्थिनम् ) प्रशस्त कहने योग्य वचनों से युक्त ( रशनाम् ) अङ्गुलि को ( बिभ्रतम् ) धारण करते हुए ( वशिम् ) वश में करने हारे ( भगम् ) सेवने योग्य ऐश्वर्य ( वयोधसम् ) अवस्था के धारक ( इन्द्रम् ) जीव ( ककुभम् ) अर्थ के निरोधक ( छन्दः ) प्रसन्नताकारक ( इन्द्रियम् ) धन ( वशाम् ) वन्ध्या तथा ( वेहतम् ) गर्भ गिराने हारी ( गाम् ) गौ और ( वयः ) अभीष्ट वस्तु को ( दधत् ) धारण करता हुआ ( यक्षत् ) यज्ञ करे तथा ( वेतु ) चाहना करे वैसे ( यज ) यज्ञ कीजिये ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के प्रकाश करनेहारे बुद्धिमान् अपने अङ्गों को धारण करते हुए विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होके औरों को देते वे प्रशंसा पाते हैं ॥३३॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अग्निर्देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

**होता॑ यक्षत्स्वा॒हाकृ॑तीर॒ग्निं गृ॒हप॑तिं॒ पृथ॒ग्वरु॑णं भेष॒जं क॒विं क्ष॒त्रमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । अतिछन्दसं॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑ष॒भं गां वयो॒ दध॑द्व्य॒न्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३४॥**

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करनेहारे जन ! तू जैसे (होता) ग्रहणकर्त्ता पुरुष (स्वाहाकृतीः) वाणी आदि से सिद्ध किया (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी (गृहपतिम्) घर के रक्षक (वरुणम्) श्रेष्ठ (पृथक्) अलग (भेषजम्) औषध (कविम्) बुद्धिमान् (वयोधसम्) मनोहर अवस्था को धारण करने हारे (इन्द्रम्) राजा (क्षत्रम्) राज्य (अतिछन्दसम्) अतिजगती आदि छन्द में कहे हुए अर्थ (छन्दः) गायत्री आदि छन्द (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय (ऋषभम्) अति उत्तम (गाम्) बैल और (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) घी का आहुति का (यक्षत्) होम करे और जैसे लोग इन सब को (व्यन्तु) चाहें वैसे (यज) होम यज्ञ कीजिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य वेदस्थ गायत्री आदि छन्द तथा अतिजगती आदि अतिछन्दों को पढ़ के अर्थ जाननेवाले होते हैं वे सब विद्याओं को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिकत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य बढ़ते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**दे॒वं ब॒र्हिर्व॑यो॒धसं॑ दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत् । गा॒य॒त्र्या छन्द॑सेन्द्रि॒यं चक्षु॒रिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥३५॥**

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (देवम्) उत्तम गुणों वाला (बर्हिः) अन्तरिक्ष (वयोधसम्) अवस्थावर्धक (देवम्) उत्तम रूप वाले (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बढ़ाता है अर्थात् चलने का अवकाश देता है और जैसे (गायत्र्या छन्दसा) गायत्री छन्द से (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न (चक्षुः) नेत्र रूप इन्द्रिय का और (वयः) जीवन को (इन्द्रे) जीव में (दधत्) धारण करता हुआ (वसुधेयस्य) द्रव्य के आधार संसार के (वसुवने) धनों का विभाग करने हारे मनुष्य के लिये (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है वैसे वेदों का अभ्यास करने में बुद्धि बढ़ती है । जो इस जगत् में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानें वे सब ओर से बढ़ें ॥ ३५ ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**दे॒वीर्द्वारो॑ वयो॒धस॒ꣳ शुचि॒मिन्द्र॑मवर्धयन् । उ॒ष्णिहा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं प्रा॒णमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥३६॥**

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (देवीः) प्रकाशमान हुए (द्वारः) जाने आने के लिये द्वार (वयोधसम्) जीवन के आधार (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) शुद्ध वायु (इन्द्रियम्) जीवने में सेवन हुए (प्राणम्) प्राण को (इन्द्रे) जीव के निमित्त (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन को मांगने वाले के लिये (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं और (व्यन्तु) शोभायमान होवें वैसे (उष्णिहा छन्दसा) उष्णिक् छन्द से इन पूर्वोक्त पदार्थों और (वयः) कामना के योग्य प्रिय पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (यज) हवन कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो घर समूह द्वार वाले जिन में सब ओर से वायु आते जाते हैं उनमें निवास करने से अवस्था पवित्रता, बल और नीरोगता बढ़ती है इसलिये बहुत द्वारों वाले बड़े बड़े घर बनाने चाहियें ॥ ३६ ॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे बढ़ें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**दे॒वीऽउ॒षासा॒नक्ता॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । अ॒नु॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं बल॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥३७॥**

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (उषासानक्ता) दिन रात्रि के समान (देवी) सुन्दर शोभायमान पढ़ाने पढ़ने वाली दो स्त्रियाँ (वयोधसम्) जीवन को धारण करनेवाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) उत्तम पति व्रता स्त्री (देवम्) उत्तम स्त्रीव्रत लम्पटतादि दोषरहित पति को बढ़ावे वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें और जैसे (वसुधेयस्य) धनाऽऽधार कोष के (वसुवने) धन को चाहने वाले के अर्थ (वीताम्) उत्पत्ति करें वैसे (वयः) प्राणों के धारण को (दधत्) पुष्ट करते हुए (अनुष्टुभा छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) जीवने से सेवन किये (बलम्) बल को (यज) सङ्गत कीजिये ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे प्रीति से स्त्रीपुरुष और व्यवस्था से दिन रात बढ़ते हैं वैसे प्रीति और धर्म की व्यवस्था से आप लोग बढ़ा करें ॥ ३७ ॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**दे॒वी जोष्ट्री॑ वसु॒धिती॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । बृ॒ह॒त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ श्रोत्र॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥३८॥**

पदार्थः—हे विद्वान् जन ! जैसे (देवी) तेजस्विनी (जोष्ट्री) प्रीति वाली (वसुधिती) विद्या का धारण करने हारी पढ़ने पढ़ाने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) प्राप्त हों (अवर्धताम्) उन्नति को प्राप्त हों (बृहत्या छन्दसा) बृहती छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) ईश्वर ने रचे हुए (श्रोत्रम्) शब्द सुनने के हेतु कान को (वीताम्) व्याप्त होवें वैसे (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन की याचना के अर्थ (वयः) उत्तम मनोहर ज्ञान को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञादि कीजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पढ़ाने और उपदेश करनेवाली स्त्रियां अपने सन्तानों और कन्याओं वा स्त्रियों को विद्या तथा शिक्षा से बढ़ाती हैं वैसे स्त्री पुरुष परमप्रीति से विद्या और विचार के साथ अपने सन्तानों को बढ़ावें और आप बढ़ें ॥ ३८ ॥

देवी इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**दे॒वीऽऊ॒र्जाहु॑ती॒ दुघे॑ सु॒दुघे॒ पय॒सेन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । प॒ङ्क्त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ शु॒क्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥३९॥**

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (दुघे) पदार्थों को पूर्ण करने और (सुदुघे) सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने हारी (देवी) सुगन्धि को देनेवाली (ऊर्जाहुती) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न की दो आहुति (पयसा) जल की वर्षा से (वयोधसम्) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) पतिव्रता विदुषी स्त्री (देवम्) व्यभिचारादि दोषरहित पति को बढ़ाती है वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (पङ्क्त्या छन्दसा) पङ्क्ति छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम और (इन्द्रियम्) धन को (वीताम्) प्राप्त करें वैसे (वसुधेयस्य) धन के कोष के (वसुवने) धन का सेवन करने हारे के लिये (वयः) सुन्दर ग्राह्य सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि में छोड़ी हुई आहुति मेघमण्डल को प्राप्त हो फिर आकर शुद्ध किये हुए जल से सब जगत् को पुष्ट करती है वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट किया करो ॥ ३९ ॥

देवा इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वौ दे॒वम॑वर्धताम् । त्रि॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं त्विषि॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥४०॥**

पदार्थः—हे (होतारा) दानशील अध्यापक उपदेशक लोगो ! जैसे (दैव्या) कामना के योग्य पदार्थ बनाने में कुशल (देवा) चाहने योग्य दो विद्वान् (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) कामना करते हुए (इन्द्रम्) जीवात्मा को जैसे (देवौ) शुभ गुणों की चाहना करते हुए माता पिता (देवम्) अभीष्ट पुत्र को बढ़ावें वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धन सेवने वाले जन के लिये (वीताम्) प्राप्त हूजिये तथा हे विद्वन् पुरुष ! (त्रिष्टुभा, छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाशयुक्त (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय और (वयः) सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कर ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पढ़ने और उपदेश करने हारे विद्यार्थी और शिष्यों को तथा माता पिता सन्तानों को पढ़ाते हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष वेदविद्या से सब को बढ़ावें ॥ ४० ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग् जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजप्रजा का धर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं—

**दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर्व॑यो॒धसं॒ पति॒मिन्द्र॑मवर्धयन् । जग॑त्या॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ शू॒षमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥४१॥**

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (तिस्रः) तीन (देवीः) तेजस्विनी विदुषी (तिस्रः) तीन पढ़ाने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाली (देवीः) विदुषी स्त्री

( **वयोधसम्** ) जीवन धारण करने हारे ( **पतिम्** ) रक्षक स्वामी ( **इन्द्रम्** ) उत्तम ऐश्वर्य वाले चक्रवर्त्ती राजा को ( **अवर्धयन्** ) बढ़ावें तथा ( **व्यन्तु** ) व्याप्त होवें वैसे ( **जगत्या छन्दसा** ) जगती छन्द से ( **इन्द्रे** ) अपने आत्मा में ( **शूषम् बल** ) शत्रुसेना में व्यापक होने वाले अपने बल तथा ( **इन्द्रियम्** ) कान आदि इन्द्रिय को ( **दधत** ) धारण करते हुए ( **वसुधेयस्य** ) धनकोष के ( **वसुवने** ) धनदाता के अर्थ ( **यज** ) अग्निहोत्रादि यज्ञ कीजिये ॥ ४१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाले स्त्री पुरुष प्रजाओं में विद्या और श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार करें वैसे राजा इनकी यथावत् रक्षा करे इस प्रकार राजपुरुष और प्रजापुरुष आपस में प्रसन्न हुए सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हुआ करें ॥ ४१ ॥

**देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**दे॒वो नरा॒शꣳसो॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्द्धयत्। वि॒राजा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ रू॒पमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् जन ! जैसे ( **नराशंस** ) मनुष्यों से प्रशंसा करने योग्य ( **देव** ) विद्वान् ( **वयोधसम्** ) बहुत अवस्था वाले ( **देवम्** ) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त ( **इन्द्रम्** ) राजा को जैसे ( **देव** ) विद्वान् ( **देवम्** ) विद्वान् को वैसे ( **अवर्धयत** ) बढ़ावे ( **विराजा छन्दसा** ) विराट् छन्द से ( **इन्द्रे** ) आत्मा में ( **रूपम्** ) सुन्दर रूप वाले ( **इन्द्रियम्** ) श्रोत्रादि इन्द्रिय को ( **वेतु** ) प्राप्त करे वैसे ( **वसुधेयस्य** ) धनकोष के ( **वसुवने** ) धन का सेवन वाले जन के लिये ( **वय** ) अभीष्ट सुख को ( **दधत्** ) धारण करता हुआ तू ( **यज** ) सङ्गम वा दान कीजिये ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि कभी आपस में ईर्ष्या करके एक दूसरे की हानि नहीं करें किन्तु सदैव प्रीति से उन्नति किया करें ॥ ४२ ॥

**देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**दे॒वो वन॒स्पति॑र्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्धयत्। द्वि॒पदा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं भग॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **वनस्पति** ) वनों का रक्षक वट आदि ( **देव** ) उत्तम गुणों वाला ( **वयोधसम्** ) अधिक उमर वाले ( **देवम्** ) उत्तम गुणयुक्त ( **इन्द्रम्** ) ऐश्वर्य को जैसे ( **देव** ) उत्तम सभ्य जन ( **देवम्** ) उत्तम स्वभाव वाले विद्वान् को वैसे ( **अवर्धयत** ) बढ़ावे ( **द्विपदा** ) दो पाद वाले ( **छन्दसा** ) छन्द से ( **इन्द्रे** ) आत्मा में ( **भगम्** ) ऐश्वर्य तथा ( **इन्द्रियम्** ) धन को ( **वेतु** ) प्राप्त हो वैसे ( **वसुधेयस्य** ) धनकोष के ( **वसुवने** ) धन को सेवनेहारे के लिये ( **वय** ) अभीष्ट सुख को ( **दधत** ) धारण करता हुआ तू ( **यज** ) यज्ञ कर ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम को जैसे वनस्पति पुष्कल मूल जल को नीचे पृथिवी से आकर्षण करके वायु और मेघमण्डल में फैला के सब घास आदि की रक्षा करते और जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं वैसे वर्त्त के ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

**देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनां दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वं दे॒वम॑वर्धयत्। क॒कुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं यश॒ इन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् जन ! जैसे ( **वारितीनाम्** ) अन्तरिक्ष के समुद्र का ( **देवम्** ) उत्तम ( **बर्हि** ) जल ( **वयोधसम्** ) बहुत अवस्था वाले ( **देवम्** ) उत्तम ( **इन्द्रम्** ) राजा को और ( **देवम्** ) उत्तम गुणवान् ( **देवम्** ) प्रकाशमान प्रत्यक्ष जीव को ( **अवर्धयत** ) बढ़ाता है ( **ककुभा छन्दसा** ) ककुप् छन्द से उत्तम ऐश्वर्य के निमित्त ( **यशः** ) कीर्त्ति तथा ( **इन्द्रियम्** ) जीव के चिह्नरूप श्रोत्रादि इन्द्रिय को ( **वेतु** ) प्राप्त होवे वैसे ( **वसुधेयस्य** ) धनकोष के ( **वसुवने** ) धन का सेवने हारे के लिये ( **वय** ) अभीष्ट सुख को ( **दधत्** ) धारण करते हुए ( **यज** ) यज्ञ कीजिये ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे जल समुद्रों को भर और जीवों की रक्षा करके मोती आदि रत्नों को उत्पन्न करता है वैसे धर्म से धन के कोष को पूर्ण कर और अन्य दरिद्रियों की सम्यक् रक्षा करके कीर्त्ति को बढ़ाओ ॥ ४४ ॥

**देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**दे॒वो᳕ऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्धयत्। अ॒तिच्छ॑न्दसा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं क्ष॒त्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४५॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( **स्विष्टकृत** ) सुन्दर अभीष्ट को सिद्ध करनेहारा ( **देव** ) सर्वज्ञ ( **अग्नि** ) स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर ( **वयोधसम्** ) अवस्था के धारक ( **देवम्** ) धार्मिक ( **इन्द्रम्** ) जीव को जैसे ( **देव** ) विद्वान् ( **देवम्** ) विद्यार्थी को वैसे ( **अवर्धयत** ) बढ़ाता है ( **अतिछन्दसा छन्दसा** ) अतिजगती आदि आनन्दकारक छन्द में ( **इन्द्रे** ) विद्या विनय से युक्त राजा के निमित्त ( **वसुधेयस्य** ) धनकोष के ( **वसुवने** ) धन के दाता के लिये ( **वय** ) मनोहर वस्तु ( **क्षत्रम्** ) राज्य और ( **इन्द्रियम्** ) जीवन से सेवन किये हुए इन्द्रिय को ( **दधत्** ) धारण करता हुआ ( **वेतु** ) व्याप्त होवे वैसे ( **यज** ) यज्ञादि उत्तम कर्म कीजिये ॥ ४५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर ने अपनी दया से सब पदार्थों को उत्पन्न कर और जीवों के लिये समर्पण करके जगत् की वृद्धि की है वैसे विद्या विनय सत्सङ्ग पुरुषार्थ और धर्म के अनुष्ठानों से राज्य को बढ़ाओ ॥ ४५ ॥

**अग्निमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पुरो॒डाशं॑ ब॒ध्नन्निन्द्रा॑य वयो॒धसे॒ छाग॑म्। सू॒प॒स्थाऽअ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभव॒दिन्द्रा॑य वयो॒धसे॒ छागे॑न। अघ॑त्तं॒ मेद॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्र॑भी॒दवी॑वृधत्पुरो॒डाशे॑न॒ त्वाम॒द्य ऋ॑षे ॥४६॥**

**पदार्थ**—हे ( **ऋषे** ) मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे ( **अयम्, यजमानः** ) यज्ञ करने हारा ( **अद्य** ) इस समय ( **पक्तीः** ) नाना प्रकार के पाकों को ( **पचन्** ) पकाता और ( **पुरोडाशम्** ) यज्ञ में होमने के पदार्थ को ( **पचन्** ) पकाता हुआ ( **अग्निम्** ) तेजस्वी ( **होतारम्** ) होता को ( **अद्य** ) आज ( **अवृणीत** ) स्वीकार करे वैसे ( **वयोधसे** ) सब के जीवन को बढ़ाने हारे ( **इन्द्राय** ) उत्तम ऐश्वर्य के लिये ( **छागम्** ) छेदन करनेवाले बकरी आदि पशु को ( **बध्नन्** ) बांधते हुए स्वीकार कीजिये जैसे आज ( **वनस्पति** ) वनों का रक्षक ( **देव** ) विद्वान् ( **वयोधसे** ) अवस्थावर्धक ( **इन्द्राय** ) शत्रुविनाशक राजा के लिये ( **छागेन** ) छेदन के साथ उद्यत ( **अभवत** ) होवे वैसे सब लोग ( **सूपस्था** ) सुन्दर प्रकार समीप रहने वाले हों वैसे ( **पचता** ) पकाये हुए ( **पुरोडाशेन** ) यज्ञपाक से ( **मेदस्तः** ) चिकनाई से ( **त्वाम्** ) आपको ( **प्रति अग्रभीत** ) ग्रहण करे और ( **अवीवृधत्** ) बढ़े वैसे हे यजमान और होता लोगो ! तुम दोनों यज्ञ के शेष भाग को ( **अघत्तम्** ) खाओ ॥४६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रसोइये लोग उत्तम अन्न व्यञ्जनों को बना के भोजन कराते वैसे ही भोक्ता लोग उनका मान्य करें जैसे बकरी आदि पशु घास आदि को खाके सम्यक् पचा लेते हैं वैसे ही भोजन किये हुए अन्नादि को पचाया करें ॥ ४६ ॥

इस अध्याय में होता के गुणों वाणी और अश्वियों के गुणों फिर भी होता के कर्त्तव्य यज्ञ की व्याख्या और विद्वानों की प्रशंसा को कहा है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

# ॐ अथैकोनत्रिंशाऽध्यायारम्भः ॐ

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**समिद्ध इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*अब उनतीसवें अध्याय का आरम्भ है मनुष्यों को अग्नि जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**समिद्धोऽअञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।**
**वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥१॥**

**पदार्थ**—हे ( **जातवेद** ) प्रसिद्ध बुद्धिमान् ( **अग्ने** ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् जन ! जैसे ( **समिद्ध** ) सम्यक् जलाया ( **अञ्जन्** ) प्रकट होता हुआ अग्नि ( **मतीनाम्** ) मनुष्यों के ( **कृदरम्** ) पेट और ( **मधुमत्** ) बहुत उत्तम गुणों वाले ( **घृतम्** ) जल वा घी को ( **पिन्वमान** ) सेवन करता हुआ जैसे ( **वाजी** ) वेगवान् मनुष्य ( **वाजिनम्** ) शीघ्रगामी घोड़े को ( **वहन्** ) चलाता वैसे ( **देवानाम्** ) विद्वानों के ( **सधस्थम्** ) साथ स्थिति को ( **आ** ) प्राप्त करता है वैसे ( **प्रियम्** ) प्रीति के निमित्त स्थान को ( **वक्षि** ) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जाठराग्नि का तेज रक्खें और बाहर के अग्नि को कलाकौशलादि में युक्त किया करें तो यह अग्नि घोड़े के तुल्य सवारियों को देशान्तर में शीघ्र पहुंचावें ॥ १ ॥

**घृतेनेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

**घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् ।**
**अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्तां स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥२॥**

**पदार्थ**—हे ( **सप्ते** ) घोड़े के समान वेग से वर्त्तमान विद्वान् जन ! जैसे ( **वाजी अपि** ) वेगवान् भी अग्नि ( **घृतेन** ) घी वा जल से ( **अञ्जन्** ) प्रकट हुआ ( **देवयानान्** ) विद्वान् लोग जिन में चलते हैं उन ( **पथ** ) मार्गों को ( **सम्, एतु** ) सम्यक् प्राप्त होवे उसको ( **प्रजानन्** ) अच्छे प्रकार जानते हुए आप ( **देवान्** ) विद्वानों को ( **एहि** ) प्राप्त हूजिये जिससे ( **त्वा** ) आपके ( **अनु** ) अनुकूल ( **प्रदिश** ) सब दिशा विदिशाओं को ( **सचन्ताम्** ) सम्बन्ध करें आप ( **अस्मै** ) इस ( **यजमानाय** ) यज्ञ करनेवाले पुरुष के लिये ( **स्वधाम्** ) अन्न को ( **धेहि** ) धारण कीजिये ॥२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष अग्नि और जलादि से युक्त किये भाप से चलने वाले यानों से शीघ्र मार्गों में जा आ के सब दिशाओं में भ्रमण करें वे वहां २ सर्वत्र पुष्कल अन्नादि को प्राप्त कर बुद्धि से कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

**ईड्य इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्द ।**
**पञ्चम स्वर ॥**

**ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।**
**अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥३॥**

**पदार्थ**—हे ( **वाजिन्** ) प्रशंसित वेग वाले ( **सप्ते** ) घोड़े के तुल्य पुरुषार्थी उत्साही कारीगर विद्वन् ! जिस कारण ( **जातवेदा** ) प्रसिद्ध भागों वाले ( **सजोषा** ) समान प्रीतियुक्त हुए आप ( **वसुभि** ) पृथिवी आदि ( **देव** ) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के साथ ( **प्रीतम्** ) प्रशंसा को प्राप्त ( **वह्निम्** ) यज्ञ में होमे हुए पदार्थों को मेघमण्डल में पहुँचाने वाले अग्नि को ( **वहतु** ) प्राप्त कीजिये और जिस ( **त्वा** ) आप को ( **अग्नि** ) अग्नि पहुँचावे । इसलिये आप ( **ईड्य** ) स्तुति के योग्य ( **च** ) भी ( **असि** ) हैं ( **वन्द्य** ) नमस्कार करने योग्य ( **च** ) भी हैं ( **च** ) और ( **आशु** ) शीघ्रगामी ( **च** ) तथा ( **मेध्य** ) समागम करने योग्य ( **असि** ) हैं ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य पृथिवी आदि विकारों से सवारी आदि को रच के उस में वेगवान् पहुंचाने वाले अग्नि को संप्रयुक्त करें वे प्रशंसा के योग्य मान्य होवें ॥३॥

**स्तीर्णमित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्द ।**
**पञ्चम स्वरः ॥**

**स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।**
**देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! हम लोग जैसे ( **पृथिव्याम्** ) भूमि में ( **उरु** ) बहुत ( **पृथु** ) विस्तीर्ण ( **प्रथमानम्** ) प्रख्यात ( **स्तीर्णम्** ) सब ओर से अङ्ग उपाङ्गों से पूर्ण यान और ( **बर्हि** ) जल वा अन्तरिक्ष को ( **जुषाणा** ) सेवन करती हुई ( **सजोषा** ) समान गुण वालों ने सेवन की ( **देवेभि** ) दिव्य पदार्थों से ( **युक्तम्** ) युक्त ( **स्योनम्** ) सुख को ( **कृण्वाना** ) करती हुई ( **अदिति** ) नाशरहित बिजुली सब को ( **सुविते** ) प्रेरणा किये मन्त्र में ( **दधातु** ) धारण करे उस का ( **सुष्टरीमा** ) सुन्दर रीति से विस्तार करे वैसे आप भी प्रयत्न कीजिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में व्याप्त अखण्डित बिजुली विस्तृत बड़े बड़े कार्यों को सिद्ध कर सुख को उत्पन्न करती है उस को कार्यों में प्रयुक्त कर प्रयोजनों की सिद्धि करो ॥ ४ ॥

**एता इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*कैसे द्वारों वाले घर हों फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**एताऽउ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणाऽउदातैः ।**
**ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **व** ) तुम्हारी ( **एता** ) ये दीप्ति ( **सुभगा** ) सुन्दर ऐश्वर्यदायक ( **विश्वरूपा** ) विविध प्रकार के रूपों वाले ( **ऋष्वा** ) बड़े ऊंचे चौड़े ( **कवषा** ) जिन में बोलने से शब्द की प्रतिध्वनि हो ( **शुम्भमाना** ) सुन्दर शोभायुक्त ( **सती** ) हुए ( **देवी** ) रङ्गों से खिलखिलाते हुए ( **उत आतै** ) उत्तम रीति से निरन्तर जाने के हेतु ( **पक्षोभि** ) बायें दहिने भागों से ( **श्रयमाणा** ) सेवित पक्षियों की पङ्क्तियों के तुल्य ( **सुप्रायणा** ) सुख से जाने के आधार ( **द्वार** ) द्वार ( **वि, भवन्तु** ) सब घरों में हों वैसे ( **उ** ) ही आप लोग भी बनावें ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि ऐसे द्वारों वाले घर बनावें कि जिनसे वायु न रुके । जैसे आकाश में बिना रुकावट के पक्षी सुखपूर्वक उड़ते हैं वैसे उन द्वारों में जावें आवें ॥ ५ ॥

**अन्तरेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । मनुष्या देवता । त्रिष्टुप्छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

**अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।**
**उषासा वां सुहिरण्ये सुशिल्पेऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥**

**पदार्थ**—हे शिल्पविद्या के प्रकाशक दो विद्वानो ! जैसे मैं ( **अन्तरा** ) भीतर शरीर में ( **मित्रावरुणा** ) प्राण तथा उदान ( **चरन्ती** ) प्राप्त होते हुए ( **यज्ञानाम्** ) सङ्गति के योग्य पदार्थों के ( **मुखम्** ) मुख्य भाग को ( **अभि संविदाने** ) सब ओर से सम्यक् ज्ञान के हेतु ( **सुहिरण्ये** ) सुन्दर तेज युक्त ( **सुशिल्पे** ) सुन्दर कारीगरी जिस में हो ( **उषासा** ) प्रातः तथा सायंकाल की वेलाओं को ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **योनौ** ) निमित्त ( **इह** ) इस घर में ( **सादयामि** ) स्थापन करता हूँ वैसे ( **वाम्** ) तुम दोनों मेरे लिये स्थापन करो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सवेरे तथा सायंकाल की वेला शुद्ध स्थान में सेवी हुई मनुष्यों को प्राण उदान के समान सुखकारिणी होती हैं वैसे शुद्ध देश में बनाया बड़े २ द्वारों वाला घर सब प्रकार सुखी करता है ॥ ६ ॥

**प्रथमेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषि । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप छन्द ।**
**धैवत स्वर ॥**

*अब पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**प्रथमा वां सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।**
**अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥**

**पदार्थ**—हे दो विद्यार्थियो ! जो ( **प्रथमा** ) पहिले ( **सरथिना** ) रथ वालों के साथ वर्त्तमान ( **सुवर्णा** ) सुन्दर गोरे वर्ण वाले दो विद्वान् ( **विश्वा** ) सब ( **भुवनानि** ) बसने के आधार लोकों को ( **पश्यन्तौ** ) देखते हुए ( **वाम्** ) तुम दोनों के ( **चोदना** ) प्रेरणारूप कर्मों को ( **मिमाना** ) जांचते हुए ( **ज्योति** ) प्रकाश को ( **प्रदिशा** ) अच्छे प्रकार जानते तथा ( **दिशन्ता** ) उच्चारण करते हुए तुम को ( **होतारा** ) दानशील ( **देवौ** ) तेजस्वी विद्वान् करें जैसे उनको मैं ( **अपिप्रयम्** ) तृप्त करता हूं वैसे ( **वाम्** ) तुम दोनों उन विद्वानों को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्यार्थी लोग निष्कपटता से विद्वानों का सेवन करते हैं वे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं जो विद्वान् लोग कपट और आलस्य को छोड़ सब को सत्य का उपदेश करें तो वे सुखी कैसे न होवें ॥ ७ ॥

आदित्यैरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । सरस्वती देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्नऽआवीत् ।**
**इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥८॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो ( आदित्यैः ) पूर्ण विद्या वाले उत्तम विद्वानों ने उपदेश की ( उपहूता ) यथावत् स्पर्द्धा में ग्रहण की ( भारती ) सब विद्याओं को धारण और सब प्रकार की पुष्टि करने हारी वाणी ( नः ) हमारे लिये ( यज्ञम् ) सङ्गत हमारे योग्य बोध को सिद्ध करती है उस के ( सह ) साथ ( नः ) हम को ( वष्टु ) कामना वाले कीजिये जो ( रुद्रैः ) मध्य कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की ( सरस्वती ) उत्तम प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी ( नः ) हम को ( आवीत ) प्राप्त होवे जो ( सजोषाः ) एक से विद्वानों ने सेवी ( इडा ) स्तुति की हेतु वाणी ( वसुभिः ) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की हुई ( यज्ञम् ) प्राप्त होने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है । हे मनुष्यो ! ये ( देवीः ) दिव्यरूप तीन प्रकार की वाणी हम को ( अमृतेषु ) नाशरहित जीवादि नित्य पदार्थों में धारण कर उनको तुम लोग भी हमारे अर्थ ( धत्त ) धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि उत्तम मध्यम निकृष्ट विद्वानों से सुनी वा पढ़ी विद्या तथा वाणी का स्वीकार करें किन्तु मूर्खों से नहीं वह वाणी मनुष्यों को सब काल में सुख सिद्ध करने वाली होती है ॥ ८ ॥

त्वष्टेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । त्वष्टा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायतऽआशुरश्वः ।**
**त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥९॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) ग्रहण करनेहारे जन ! तू जैसे ( त्वष्टा ) विद्या आदि उत्तम गुणों से शोभित विद्वान् ( देवकामम् ) विद्वानों की कामना करनेहारे ( वीरम् ) वीर पुरुष को ( जजान ) उत्पन्न करता है जैसे ( त्वष्टुः ) प्रकाशरूप शिक्षा से ( आशुः ) शीघ्रगामी ( अर्वा ) वेगवान् ( अश्वः ) घोड़ा ( जायते ) होता है । जैसे ( त्वष्टा ) अपने स्वरूप से प्रकाशित ईश्वर ( इदम् ) इस ( विश्वम् ) सब ( भुवनम् ) लोकमात्र को ( जजान ) उत्पन्न करता है उस ( बहोः ) बहुविध संसार के ( कर्त्तारम् ) रचनेवाले परमात्मा का ( इह ) इस जगत् में ( यक्षि ) पूजन कीजिये वैसे हम लोग भी करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग विद्या चाहने वाले मनुष्यों को विद्वान् करें शीघ्र जिसको शिक्षा हुई हो उस घोड़े के समान तीक्ष्णता से विद्या को प्राप्त होता है जैसे बहुत प्रकार के संसार का स्रष्टा ईश्वर सब की व्यवस्था करता है वैसे अध्यापक और अध्येता होवें ॥ ९ ॥

अश्व इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**अश्वो घृतेन त्मन्या समक्तऽउप देवाँ२ऽऋतुशः पाथऽएतु ।**
**वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥१०॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( देवलोकम् ) सब को मार्ग दिखाने वाले विद्वानों के मार्ग को ( प्रजानन् ) अच्छे प्रकार जानते हुए जैसे ( घृतेन ) जल से संयुक्त किया ( अश्वः ) शीघ्रगामी अग्नि ( त्मन्या ) आत्मा से ( ऋतुशः ) ऋतु ऋतु में ( देवान् ) उत्तम व्यवहारों को ( समक्तः ) सम्यक् प्रकट करता हुआ ( पाथः ) अन्न को ( उप, एतु ) निकट से प्राप्त हूजिये ( अग्निना ) अग्नि के साथ ( वनस्पतिः ) किरणों का रक्षक सूर्य ( स्वदितानि ) स्वादिष्ट ( हव्या ) भोजन के योग्य अन्नों को ( वक्षत् ) प्राप्त करे वैसे आत्मा से वर्त्ताव कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे सूर्य ऋतुओं का विभाग कर उत्तम सेवने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता है वैसे उत्तम अधम विद्यार्थी और विद्या अविद्या की अलग अलग परीक्षा कर अच्छे शिक्षित करें और अविद्या की निवृत्ति करें ॥ १० ॥

प्रजापतेरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।**
**स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! आप ( सद्यः ) शीघ्र ( जातः ) प्रसिद्ध हुए ( प्रजापतेः ) प्रजारक्षक ईश्वर के ( तपसा ) प्रताप से ( वावृधानः ) बढ़ते हुए ( स्वाहाकृतेन ) सुन्दर सत्काररूप क्रिया से सिद्ध हुए ( हविषा ) होम में देने योग्य पदार्थ से ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( दधिषे ) धारते हो जो ( पुरोगाः ) मुखिया वा अगुआ ( साध्याः ) साधना से सिद्ध करने योग्य ( देवाः ) विद्वान् लोग ( हविः ) ग्राह्य अन्न का ( अदन्तु ) भोजन करें उन को ( याहि ) प्राप्त हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य के समान प्रजा के रक्षक धर्म से प्राप्त हुए पदार्थ के भोगने वाले होते हैं वे सर्वोत्तम गिने जाते हैं ॥ ११ ॥

यदक्रन्द इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । यजमानो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।**
**श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहूऽउपस्तुत्यं महि जातं तेऽअर्वन् ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( अर्वन् ) घोड़े के तुल्य वेग वाले विद्वान् पुरुष ! ( यत् ) जब ( समुद्रात् ) अन्तरिक्ष ( उत, वा ) अथवा ( पुरीषात् ) रक्षक परमात्मा से ( प्रथमम् ) पहिले ( जायमानः ) उत्पन्न हुए वायु के समान ( उद्यन् ) उदय को प्राप्त हुए ( अक्रन्दः ) शब्द करते हो तब ( हरिणस्य ) हरणशील वीरजन ( ते ) आप की ( बाहू ) भुजा ( श्येनस्य ) श्येनपक्षी के ( पक्षा ) पंखों के तुल्य बलकारी है यह ( महि ) महत् कर्म ( जातम् ) प्रसिद्ध ( उपस्तुत्यम् ) समीपस्थ स्तुति का विषय होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुआ वायु कर्मों को कराता वैसे मनुष्यों के शुभगुणों का तुम लोग ग्रहण करो जैसे पशुओं में घोड़ा वेगवान् है वैसे शत्रुओं को रोकने में वेगवान् श्येन पक्षी के तुल्य वीर पुरुषों की सेना वाले दृढ़ ढीठ होओ यदि ऐसे करो तो सब कर्म तुम्हारे प्रशंसित होवें ॥ १२ ॥

यमेनेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**यमेन दत्तं त्रितऽएनमायुनगिन्द्रऽएणं प्रथमोऽअध्यतिष्ठत् ।**
**गन्धर्वोऽअस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥१३॥**

पदार्थ—हे ( वसवः ) विद्वन् ! जो ( इन्द्रः ) बिजुली ( त्रितः ) पृथिवी जल और आकाश से ( यमेन ) नियमकर्त्ता वायु ने ( दत्तम् ) दिये अर्थात् उत्पन्न किये ( एनम् ) इस अग्नि को ( आयुनक् ) युक्त करता है ( एनम् ) इस को प्राप्त हो के ( प्रथमः ) विस्तीर्ण प्रख्यात विद्युत् ( अध्यतिष्ठत् ) सर्वोपरि स्थित होती है ( गन्धर्वः ) पृथिवी का धारण करता हुआ ( अस्य ) इस सूर्य की ( रशनाम् ) रस्सी के तुल्य किरणों की गति का ( अगृभ्णात् ) ग्रहण करता है इस ( सूरात् ) सूर्यरूप से ( अश्वम् ) शीघ्रगामी वायु को ( निरतष्ट ) सूक्ष्म करता है उस को तुम लोग विस्तृत करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर ने इस संसार में जिस पदार्थ में जैसी रचना की है उस को तुम लोग विद्या से जानो और इस सृष्टिविद्या को ग्रहण कर अनेक सुखों को सिद्ध करो ॥ १३ ॥

असीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**असि यमोऽअस्यादित्योऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।**
**असि सोमेन समया विपृक्तऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥१४॥**

पदार्थ—हे ( अर्वन् ) वेगवान् अग्नि के समान जन ! जिससे तू ( गुह्येन ) गुप्त ( व्रतेन ) स्वभाव तथा ( त्रितः ) कर्म उपासना ज्ञान से युक्त ( यमः ) नियमकर्त्ता न्यायाधीश के तुल्य ( असि ) है ( आदित्यः ) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित जैसा ( असि ) है विद्वान् के सदृश ( असि ) है ( सोमेन ) ऐश्वर्य के निकट ( विपृक्तः ) विशेषकर सबद्ध ( असि ) है । उस ( ते ) तेरे ( दिवि ) प्रकाश में ( त्रीणि ) तीन ( बन्धनानि ) बन्धनों को अर्थात् ऋषि देव पितृ ऋणों के बन्धनों को ( आहुः ) कहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि न्यायाधीश सूर्य और चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त होवें जैसे इस संसार के बीच वायु और सूर्य के आकर्षणों से बन्धन है वैसे ही परस्पर शरीर वाणी मन के आकर्षणों से प्रेम के बन्धन करें ॥ १४ ॥

त्रीणीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

**त्रीणि तऽआहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।**
**उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा तऽआहुः परमं जनित्रम् ॥१५॥**

पदार्थ—हे ( अर्वन् ) विज्ञानयुक्त विद्वान् जन ! ( यत्र ) जिस ( दिवि ) विद्या के प्रकाश में ( ते ) आप के ( त्रीणि ) तीन ( बन्धनानि ) बन्धनों को विद्वान् लोग ( आहुः ) कहते हैं जहां ( अप्सु ) प्राणों में ( त्रीणि ) तीन जहां ( अन्तः ) बीच में और ( समुद्रे ) अन्तरिक्ष में ( त्रीणि ) तीन बन्धनों को ( आहुः ) कहते हैं और ( ते ) आप के ( परमम् ) उत्तम ( जनित्रम् ) जन्म को कहते हैं जिससे ( वरुणः ) श्रेष्ठ हुए विद्वानों का ( छन्त्सि ) सत्कार करते हो ( उतेव ) उत्प्रेक्षा के तुल्य वे सब ( मे ) मेरे होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आत्मा मन और शरीर में ब्रह्मचर्य के साथ विद्याओं में नियत होके विद्या और सुशिक्षा का सञ्चय करो । द्वितीय विद्याजन्म को पाकर पूजित होओ जिस जिस के साथ अपना जितना सम्बन्ध है उस को जानो ॥ १५ ॥

**इमेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यों को घोड़ों के रखने से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानांᳬ सनितुर्निधाना ।**
**अत्रा ते भद्रा रशनाऽअपश्यमृतस्य याऽअभिरक्षन्ति गोपाः ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे ( **वाजिन्** ) घोड़े के तुल्य वेगादि गुणों से युक्त सेनाधीश ! जैसे मैं ( **ते** ) आप के ( **इमा** ) इन प्रत्यक्ष घोड़ों की ( **अवमार्जनानि** ) शुद्धि क्रियाओं और ( **इमा** ) इन ( **शफानाम्** ) सुमों के ( **सनितु** ) रखने के नियम के ( **निधाना** ) स्थानों को ( **अपश्यम्** ) देखता हूँ ( **अत्र** ) इस सेना में ( **ते** ) आप के घोड़े की ( **या** ) जो ( **भद्रा** ) सुन्दर शुभकारिणी ( **गोपा** ) उपद्रव से रक्षा करनेहारी ( **रशना** ) लगाम की रस्सी ( **ऋतस्य** ) सत्य की ( **अभिरक्षन्ति** ) सब ओर से रक्षा करती है उनको मैं देखूं वैसे आप भी देख ॥ १६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग स्नान से घोड़े आदि की शुद्धि तथा उनके सुमों की रक्षा के लिये लोहे के बनाये नालों का संयुक्त और लगाम की रस्सी आदि सामग्री को संयुक्त कर कर अच्छी शिक्षा दे रक्षा करते हैं वे युद्धादि कार्यों में सिद्धि करनेवाले होते हैं ॥ १६ ॥

**आत्मानमित्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*यानरचना से क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।**
**शिरोऽअपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! मैं जैसे ( **मनसा** ) विज्ञान से ( **आरात्** ) निकट में ( **अव** ) नीचे से ( **दिवा** ) आकाश के साथ ( **पतङ्गम्** ) सूर्य के प्रति ( **पतयन्तम्** ) चलते हुए ( **ते** ) आप के ( **आत्मानम्** ) आत्मास्वरूप को ( **अजानाम** ) जानता हूँ और ( **अरेणुभि** ) धूलिरहित निर्मल ( **सुगेभि** ) सुखपूर्वक जिन में चलना हो उन ( **पथिभि** ) मार्गों से ( **जेहमानम्** ) प्रयत्न के साथ जाते हुए ( **पतत्रि** ) पक्षीवत् उड़ने वाले ( **शिर** ) दूर से शिर के तुल्य गोलाकार लक्षित होने विमानादि यान को ( **अपश्यम्** ) देखता हूँ वैसे आप भी देखिये ॥ १७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग सब से अतिवेग वाले शीघ्र चलाने हारे अग्नि के तुल्य अपने आत्मा को देखो सम्प्रयुक्त किये अग्नि आदि के सहित यानों में बैठ के जल स्थल और आकाश में प्रयत्न से जाओ आओ जैसे शिर उत्तम है वैसे विमान यान को उत्तम मानना चाहिये ॥१७॥

**अत्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब शूरवीर लोग क्या करें इस विषय को कहा है—*

**अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिषऽआ पदे गोः ।**
**यदा ते मर्त्तोऽअनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठऽओषधीरजीगः ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे वीर पुरुष ! ( **ते** ) आप के ( **जिगीषमाणम्** ) शत्रुओं को जीतते हुए ( **उत्तमम्** ) उत्तम ( **रूपम्** ) रूप और ( **गो** ) पृथिवी के ( **पदे** ) प्राप्त होने योग्य ( **अत्र** ) इस व्यवहार में ( **इष** ) अन्नों के दानों को ( **आ अपश्यम्** ) अच्छे प्रकार देखूं ( **ते** ) आपका ( **मर्त्त** ) मनुष्य ( **यदा** ) जब ( **भोगम्** ) भोग्य वस्तु को ( **आनट** ) व्याप्त होता है तब ( **आत् इत्** ) इसके अनन्तर ही ( **ग्रसिष्ठ** ) अति खाने वाले हुए आप ( **ओषधी** ) ओषधियों को ( **अनु अजीग** ) अनुकूलता से भोगते हो ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम घोड़े आदि सेना के अङ्ग विजय करनेवाले हों वैसे शूरवीर विजय के हेतु होकर भूमि के राज्य में भोगों को प्राप्त हों ॥१८॥

**अनु त्वेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । मनुष्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यों को कैसे राजप्रजा के कार्य सिद्ध करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अनु त्वा रथोऽअनु मर्योऽअर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।**
**अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे ( **अर्वन्** ) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! ( **ते** ) आप के ( **कनीनाम्** ) शोभायमान मनुष्यों के बीच वर्त्तमान ( **देवा** ) विद्वान् ( **व्रातास** ) मनुष्य ( **अनु वीर्यम्** ) बल पराक्रम के अनुकूल ( **अनु, ममिरे** ) अनुमान करें और ( **तव** ) आप की ( **सख्यम्** ) मित्रता को ( **अनु ईयु** ) अनुकूल प्राप्त हों ( **त्वा** ) आप के ( **अनु** ) अनुकूल ( **रथ** ) विमानादि यान ( **त्वा** ) आप के ( **अनु** ) अनुकूल वा पीछे आश्रित ( **मर्य** ) साधारण मनुष्य ( **त्वा** ) आप के ( **अनु** ) अनुकूल वा पीछे ( **गाव** ) गौ और ( **त्वा** ) आप के ( **अनु** ) अनुकूल ( **भग** ) ऐश्वर्य होवे ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—यदि मनुष्य अच्छे शिक्षित होकर औरों को सुशिक्षित करें उन में से उत्तमों को सभासद् और सभासदों में से अत्युत्तम सभापति को स्थापन कर राज प्रजा के प्रधान पुरुषों की एक अनुमति से राजकार्यों को सिद्ध करें तो सब आपस में अनुकूल हो के सब कार्यों को पूर्ण करें ॥ १९ ॥

**हिरण्यशृङ्ग इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यों को अग्न्यादि पदार्थों के गुण ज्ञान से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**हिरण्यशृङ्गोऽयोऽअस्य पादा मनोजवाऽअवरऽइन्द्रऽआसीत् ।**
**देवाऽइदस्य हविरद्यमायन्योऽअर्वन्तं प्रथमोऽअध्यतिष्ठत् ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **य** ) जो ( **अवर** ) नवीन ( **हिरण्यशृङ्ग** ) शृङ्ग के तुल्य जिस के तेज हैं वह ( **इन्द्र** ) उत्तम ऐश्वर्य वाला बिजुली के समान सभापति ( **आसीत्** ) होवे जो ( **प्रथम** ) पहिला ( **अर्वन्तम्** ) घोड़े के तुल्य मार्ग को प्राप्त होते हुए अग्नि तथा ( **अय** ) सुवर्ण का ( **अध्यतिष्ठत्** ) अधिष्ठाता अर्थात् अग्नि प्रयुक्त यान पर बैठ के चलाने वाली होवे राजा ( **अस्य** ) इसके ( **पादा** ) पग ( **मनोजवा** ) मन के तुल्य वेग वाले हों अर्थात् पग का चलना काम विमानादि से लेवे ( **देवा** ) विद्वान् सभासद लोग ( **अस्य** ) इस राजा के ( **हविरद्यम्** ) देने और भोजन करने योग्य अन्न को ( **इत् आयन्** ) ही प्राप्त होवें उसको तुम लोग जानो ॥ २० ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अग्न्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् जानें वे बहुत अद्भुत कार्यों को सिद्ध कर सकें जो प्रीति से राजकार्यों को सिद्ध करें वे सत्कार को और जो नष्ट करें वे दण्ड को अवश्य प्राप्त होवें ॥ २० ॥

**ईर्मान्तास इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । मनुष्या देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*कैसे राजपुरुष विजय पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सᳬ शूरणासो दिव्यासोऽअत्याः ।**
**हᳬसाऽइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **यत** ) जो अग्नि आदि पदार्थों के तुल्य ( **ईर्मान्तास** ) जिनका अन्त वा स्थान प्रेरणा किया गया ( **सिलिकमध्यमास** ) गदा आदि से लगा हुआ है मध्यप्रदेश जिनका ऐसे ( **शूरणास** ) शीघ्र युद्ध में विजय के हेतु ( **दिव्यास** ) उत्तम शिक्षित ( **अत्या** ) निरन्तर चलने वाले ( **अश्वा** ) शीघ्रगामी घोड़े ( **श्रेणिश** ) पङ्क्ति बांधे हुए ( **हंसा इव** ) हंस पक्षियों के तुल्य ( **यतन्ते** ) प्रयत्न करते हैं और ( **दिव्यम्** ) शुद्ध ( **अज्मम्** ) मार्ग को ( **सम् आक्षिषु** ) व्याप्त होवें उनको तुम लोग प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिन राजपुरुषों के सुशिक्षित उत्तम गति वाले घोड़े अग्न्यादि पदार्थों के समान कार्यसाधक होते हैं वे सर्वत्र विजय पाते हैं ॥ २१ ॥

**तवेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । वायवो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*मनुष्यों को अनित्य शरीर पाके क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातऽइव ध्रजीमान् ।**
**तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे ( **अर्वन्** ) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान वीर पुरुष ! जिस ( **तव** ) तेरा ( **पतयिष्णु** ) नाशवान् ( **शरीरम्** ) शरीर ( **तव** ) तेरा ( **चित्तम्** ) अन्तःकरण की वृत्ति ( **वात इव** ) वायु के समान ( **ध्रजीमान्** ) वेगवाली अर्थात् शीघ्र दूरस्थ विषयों के तत्त्व जानने वाली ( **तव** ) तेरे ( **पुरुत्रा** ) बहुत ( **अरण्येषु** ) जङ्गलों में ( **जर्भुराणा** ) शीघ्र धारण पोषण करने वाले ( **विष्ठिता** ) विशेषकर स्थित ( **शृङ्गाणि** ) शृङ्गों के तुल्य ऊंचे सेना के अवयव ( **चरन्ति** ) विचरते हैं सो तू धर्म का आचरण कर ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य अनित्य शरीरों में स्थित हो नित्य कार्यों को सिद्ध करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं और जो वन के पशुओं के तुल्य भृत्य और सेना हैं वे घोड़े के तुल्य शीघ्रगामी होके शत्रुओं के जीतने को समर्थ होते हैं ॥ २२ ॥

**उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । मनुष्या देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।**
**अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥२३॥**

**पदार्थ**—जो ( **दीध्यान** ) सुन्दर प्रकाशमान हुआ ( **अज** ) फेंकने वाला ( **वाजी** ) वेगवान् ( **अर्वा** ) चलाने वाला घोड़ा ( **देवद्रीचा** ) विद्वानों को प्राप्त होते हुए ( **मनसा** ) मन से ( **शसनम्** ) जिसमें हिंसा होती है उस युद्ध को ( **उप, प्र, अगात्** )

अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होता है । विद्वानों से ( अस्य ) इसका ( नाभि ) मध्य भाग अर्थात् पीठ ( पुर ) आगे ( नीयते ) प्राप्त की जाती अर्थात् उस पर बैठते हैं उसको ( पश्चात् ) पीछे ( रेभा ) सब विद्याओं की स्तुति करने वाले ( कवय ) बुद्धिमान् जन ( अनु, यन्ति ) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग उत्तम विचार से घोड़ों को अच्छी शिक्षा दे और अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध कर ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे जगत के हितैषी होते हैं ॥ २३ ॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषि । मनुष्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*कौन जन राज्यशासन करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२ऽअच्छा पितरं मातरं च ।**

**अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्याऽअथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यत ) जो ( अर्वान् ) ज्ञानी जन ( जुष्टतम ) अतिशय कर सेवन किया हुआ ( परमम् ) उत्तम ( सधस्थम् ) साथियों के स्थान ( पितरम् ) पिता ( मातरम् ) माता ( च ) और ( देवान् ) विद्वानों को ( अद्य ) इस समय ( आ शास्ते ) अधिक इच्छा करता है ( अथ ) इसके अनन्तर ( दाशुषे ) दाता जन के लिये ( वार्याणि ) स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को ( उप प्र, अगात ) प्रकर्ष करके समीप प्राप्त होता है उसको ( हि ) ही आप ( अच्छ गम्या ) प्राप्त हूजिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग न्याय और विनय से परोपकारों को करते हैं वे उत्तम २ जन्म श्रेष्ठ पदार्थों विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हों और विद्वानों के सेवक होके महान् सुख को प्राप्त हों वे राज्य शासन करने को समर्थ होवें ॥ २४ ॥

समिद्ध इत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । विद्वान् देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*धर्मात्मा लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**समिद्धोऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।**

**आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥२५॥**

पदार्थ—हे ( जातवेद ) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुए ( मित्रमह ) मित्रों का सत्कार करने वाले विद्वन् ! जो ( त्वम् ) आप ( अद्य ) इस समय ( समिद्ध ) सम्यक् प्रकाशित अग्नि के तुल्य ( मनुष ) मननशील ( देव ) विद्वान् हुए ( यजसि ) सङ्ग करते हो ( च ) और ( चिकित्वान् ) विज्ञानवान् ( दूत ) दुष्टों को न सहने हारे ( प्रचेता ) उत्तम चेतनता वाला ( कवि ) सब विषयों में अव्याहतबुद्धि ( असि ) हो सो आप ( दुरोणे ) घर में ( देवान् ) विद्वानों वा उत्तम गुणों को ( आ वह ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि दीपक आदि के रूप से घरों को प्रकाशित करता है वैसे धार्मिक विद्वान् लोग अपने कुलों को प्रकाशित करते हैं जो सब के साथ मित्रवत् वर्त्तते हैं वे ही धर्मात्मा हैं ॥ २५ ॥

तनूनपादित्यस्य जमदग्निर्ऋषि । विद्वान् देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

**तनूनपात्पथऽऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।**

**मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२६॥**

पदार्थ—हे ( सुजिह्व ) सुन्दर जीभ वा वाणी से युक्त ( तनूनपात ) विस्तृत पदार्थों को न गिराने वाले विद्वान् जन ! आप ( ऋतस्य ) सत्य वा जल के ( यानान् ) जिनमें चलें उन ( पथ ) मार्गों को अग्नि के तुल्य ( मध्वा ) मधुरता अर्थात् कोमल भाव से ( समञ्जन् ) सम्यक् प्रकार करते हुए ( स्वदय ) स्वाद लीजिये अर्थात् प्रसन्न कीजिये ( धीभि ) बुद्धियों वा कर्मों से ( मन्मानि ) यानों को ( उत ) और ( न ) हमारे ( अध्वरम् ) नष्ट न करने और ( यज्ञम् ) सङ्गत करने योग्य व्यवहार को ( ऋन्धन् ) सम्यक् सिद्ध करता हुआ ( च ) भी ( देवत्रा ) विद्वानों में स्थित होकर ( कृणुहि ) कीजिये ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । धार्मिक मनुष्यों को चाहिए कि पथ्य औषध पदार्थों का सेवन करके सुन्दर प्रकार प्रकाशित होवें आप्त विद्वानों की सेवा में स्थिर हों तथा बुद्धियों को प्राप्त हो के अहिंसारूप धर्म का सेवें ॥२६॥

नराशंसस्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । विद्वान् देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।**

**ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवाऽउभयानि हव्या ॥२७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( ये ) जो ( सुक्रतव ) सुन्दर बुद्धियों और कर्मों वाले ( शुचय ) पवित्र ( धियन्धा ) श्रेष्ठ धारणावती बुद्धि और कर्म का धारण करनेहारे ( देवा ) विद्वान् लोग ( उभयानि ) दोनों शरीर आत्मा को सुखकारी ( हव्या ) भोजन के योग्य पदार्थों का ( स्वदन्ति ) भोगते हैं ( एषाम् ) इन विद्वानों के ( यज्ञै ) सत्सङ्गादि रूप यज्ञों से ( नराशंसस्य ) मनुष्यों से प्रशंसित ( यजतस्य ) सङ्ग करने योग्य व्यवहार के ( महिमानम् ) बड़प्पन को ( उप, स्तोषाम ) समीप प्रशंसा करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग स्वयं पवित्र बुद्धिमान् वेद शास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान् पवित्र नहीं कर सकते । जिनके जैसे गुण जैसे कर्म हों उनकी धर्मात्मा लोगों को यथार्थ प्रशंसा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

आजुह्वान इत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराड्बृहती छन्द ।

मध्यम स्वर ॥

**आजुह्वानऽईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।**

**त्वं देवानामसि यह्व होता सऽएनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥२८॥**

पदार्थ—हे ( यह्व ) बड़े उत्तम गुणों से युक्त ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य पवित्र विद्वन् ! जो ( त्वम् ) आप ( देवानाम् ) विद्वानों के बीच ( होता ) दानशील ( यजीयान् ) अति समागम करने हारे ( असि ) हैं ( इषित ) प्रेरणा किये हुए ( एनान् ) इन विद्वानों का ( यक्षि ) सङ्ग कीजिये ( स ) सो आप ( वसुभि ) निवास के हेतु विद्वानों के साथ ( सजोषा ) समान प्रीति निबाहने वाले ( आजुह्वान ) अच्छे प्रकार स्पर्द्धा ईर्ष्या करते हुए ( ईड्य ) प्रशंसा ( च ) तथा ( वन्द्य ) नमस्कार के योग्य इन विद्वानों के निकट ( आ याहि ) आया कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पवित्रात्मा प्रशंसित विद्वानों के सङ्ग से आप पवित्रात्मा होवें तो वे धर्मात्मा हुए सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होवें ॥ २८ ॥

प्राचीनमित्यस्य जमदग्निर्ऋषि । अन्तरिक्षं देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द ।

पञ्चम स्वर ॥

**प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यतेऽअग्रेऽअह्नाम् ।**

**व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्योऽअदितये स्योनम् ॥२९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अस्या ) इस ( पृथिव्या ) भूमि के बीच ( प्राचीनम् ) सनातन ( बर्हि ) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक ब्रह्म ( वस्तो ) दिन के प्रकाश से ( वृज्यते ) अलग होता ( अह्नाम् ) दिनों के ( अग्रे ) आरम्भ प्रातःकाल में ( देवेभ्य ) विद्वानों ( उ ) और ( अदितये ) अविनाशी आत्मा के लिये ( वितरम् ) विशेषकर दुःखों से पार करनेहारे ( वरीय ) अतिश्रेष्ठ ( स्योनम् ) सुख को ( वि प्रथते ) विशेषकर प्रकट करता उसको तुम लोग ( प्रदिशा ) वेद शास्त्र के निर्देश से जानो और प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों के लिये सुख देवें वे सर्वोत्तम सुख को प्राप्त हों जैसे आकाश सब दिशाओं और पृथिव्यादि में व्याप्त है वैसे जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त है । जो लोग ऐसे ईश्वर की प्रातःकाल उपासना करते वे धर्मात्मा हुए विस्तीर्ण सुखों वाले होते हैं ॥ २९ ॥

व्यचस्वतीरित्यस्य जमदग्निर्ऋषि । स्त्रियो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द ।

धैवत स्वर ॥

*फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है —*

**व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।**

**देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥३०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( उर्विया ) अधिकता से शुभगुणों में ( व्यचस्वती ) व्याप्ति वाली ( बृहती ) बड़ी ( विश्वमिन्वा ) सब व्यवहारों में व्याप्त ( सुप्रायणा ) जिनके होने में उत्तम घर हों ( देवी ) आभूषणादि से प्रकाशमान ( द्वार ) दरवाजों के ( न ) समान अवकाश वाली ( पतिभ्य ) पाणिग्रहण विवाह करने वाले ( देवेभ्य ) उत्तम गुणयुक्त पतियों के लिये ( शुम्भमाना ) उत्तम शोभायमान हुई ( जनय ) सब स्त्रियाँ अपने पतियों को ( वि श्रयन्ताम् ) विशेषकर सेवन करें वैसे तुम लोग सब विद्याओं में व्यापक ( भवत ) होओ ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे व्यापक हुई दिशा अवकाश देती और सब के व्यवहारों की साधक होने से आनन्द देने वाली होती हैं वैसे ही आपस में प्रसन्न हुए स्त्री पुरुष उत्तम सुखों को प्राप्त होके अन्यों के हितकारी होवें ॥ ३० ॥

आ सुष्वयन्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । स्त्रियो देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब राजप्रजा धर्म अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**आ सुष्वयन्ती यजतेऽउपाकेऽउषासानक्ता सदतां नि योनौ ।**

**दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मेऽअधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥३१॥**

पदार्थ—हे विद्वान् ! यदि ( दिव्ये ) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाली ( योषणे ) दो स्त्रियों के समान ( सुरुक्मे ) सुन्दर शोभायुक्त ( बृहती ) बड़ी ( अधि ) अधिक ( श्रियम् ) शोभा वा लक्ष्मी को तथा ( शुक्रपिशम् ) प्रकाश और अन्धकाररूपों को ( दधाने ) धारण करती हुई ( सुष्वयन्ती ) सोती हुइयों के समान ( उपाके ) निकटवर्त्तिनी ( उषासानक्ता ) दिन रात ( योनौ ) कालरूप कारण में ( नि, आ, सदताम् ) निरन्तर अच्छे प्रकार चलते हैं उनका ( यजते ) सङ्ग करते तो अतोल शोभा को प्राप्त होओ ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे काल के

साथ वर्त्तमान रातदिन एक दूसरे से सम्बद्ध विलक्षण स्वरूप से वर्त्तते हैं वैसे राजा प्रजा परस्पर प्रीति के साथ वर्त्ता करें ॥ ३१ ॥

दैव्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । विद्वांसो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब कारीगर लोगों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।**

**प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२।**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( दैव्या ) विद्वानों में कुशल ( होतारा ) दान शील ( प्रथमा ) प्रसिद्ध ( सुवाचा ) प्रशंसित वाणी वाले ( मिमाना ) विधान करते हुए ( यज्ञम् ) संगतिरूप यज्ञ के ( यजध्यै ) करने को ( मनुष ) मनुष्यो को ( विदथेषु ) विज्ञानों मे ( प्रचोदयन्ता ) प्रेरणा करते हुए ( प्रदिशा ) वेदशास्त्र के प्रमाण से ( प्राचीनम् ) सनातन ( ज्योति ) शिल्प विद्या के प्रकाश का ( दिशन्ता ) उपदेश करते हुए ( कारू ) दो कारीगर लोग होवें उनसे शिल्प विज्ञान शास्त्र पढ़ना चाहिये ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे ( कारू ) शब्द मे द्विवचन अध्यापक और हस्तक्रिया शिक्षक इन दो शिल्पियों के अभिप्राय से है । जो कारीगर होवें वे जितनी शिल्पविद्या जाने उतनी सब दूसरों के लिये शिक्षा करें जिस से उत्तर २ विद्या की सन्तति बढ़े ॥ ३२ ॥

आ न इत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । वाग्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।**

**तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥३३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (भारती) शिल्पविद्या को धारण करनेहारी क्रिया ( इडा ) सुन्दर शिक्षित मीठी वाणी ( सरस्वती ) विज्ञान वाली बुद्धि ( इह ) इस शिल्पविद्या के ग्रहणरूप व्यवहार में ( न ) हमको ( तूयम ) शीघ्र ( यज्ञम् ) शिल्प विद्या के प्रकाशरूप यज्ञ को (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (चेतयन्ती) जनाती हुई हमको ( आ एतु ) सब ओर से प्राप्त होवे ये पूर्वोक्त ( तिस्र ) तीन ( देवी ) प्रकाशमान ( इदम् ) इस ( बर्हि ) बढ़े हुए ( स्योनम ) सुखकारी काम को ( स्वपस ) सुन्दर कर्मों वाले हमको ( आ, सदन्तु ) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस शिल्पव्यवहार में सुन्दर उपदेश और क्रियाविधि को जनाना और विद्या का धारण इष्ट है । यदि इन तीन रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें तो बड़ा सुख भोगें ॥ ३३ ॥

य इम इत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । विद्वान् देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**यऽइमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा ।**

**तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥३४॥**

पदार्थ—हे ( होत ) ग्रहण करने वाले जन ! ( य ) जो ( यजीयान् ) अतिसमागम करने वाला ( इषित ) प्रेरणा किया हुआ (विद्वान्) सब ओर से विद्या को प्राप्त विद्वान् जैसे ईश्वर ( इह ) इस व्यवहार में ( रूपै ) चित्र विचित्र आकारों से ( इमे ) इन ( जनित्री ) अनेक कार्यों का उत्पन्न करने वाली ( द्यावापृथिवी ) बिजुली और पृथिवी आदि ( विश्वा ) सब ( भुवनानि ) लोकों को ( अपिंशत ) अवयवरूप करता है वैसे ( तम् ) उस ( त्वष्टारम ) वियोग संयोग अर्थात् प्रलय उत्पत्ति करनेहारे ( देवम ) ईश्वर का ( अद्य ) आज तू (यक्ष) संग करता है इससे सत्कार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को इस सृष्टि मे परमात्मा की रचनाओं की विशेषताओं को जान के वैसे ही शिल्पविद्या का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

उपावसृजेत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

ऋतु २ में होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथऽऋतुथा हवीꣳषि ।**

**वनस्पतिः शमिता देवोऽअग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥३५॥**

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! तू ( देवानाम ) विद्वानों के ( पाथ ) भोगने योग्य अन्न आदि को ( मधुना ) मीठे कोमल आदि रसयुक्त ( घृतेन ) घी आदि से ( समञ्जन् ) सम्यक् मिलाते हुए ( त्मन्या ) अपने आत्मा से (हवींषि) लेने भोजन करने योग्य पदार्थों को ( ऋतुथा ) ऋतु २ में ( उपावसृज ) यथावत् दिया कर अर्थात् होम किया कर । उस तेरे दिये ( हव्यम् ) भोजन के योग्य पदार्थ को ( वनस्पति ) किरणों का स्वामी सूर्य्य ( शमिता ) शान्तिकर्त्ता (देव ) उत्तम गुणों वाला मेघ और ( अग्नि ) अग्नि ( स्वदन्तु ) प्राप्त होवें अर्थात् हवन किया पदार्थ उनको पहुँचे ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु २ में होम किया करें जिससे वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि, सूर्य्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सबका उपकारी होवे ॥ ३५ ॥

सद्य इत्यस्य जमदग्निर्ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

कैसा मनुष्य सबको आनन्द कराता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगा ।**

**अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवा ॥३६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सद्य ) शीघ्र ( जात ) प्रसिद्ध हुआ (अग्नि ) विद्या से प्रकाशित विद्वान् ( होतु ) ग्रहण करनेहारे पुरुष के ( ऋतस्य ) सत्य का ( प्रदिशि ) जिससे निर्देश किया जाता है उस ( वाचि ) वाणी में ( यज्ञम् ) अनेक प्रकार के व्यवहार को ( वि, अमिमीत ) विशेषकर निर्माण करता और (देवानाम) विद्वानों में ( पुरोगा ) अग्रगामी ( अभवत ) होता है ( अस्य ) इसके ( स्वाहा कृतम् ) सत्य व्यवहार से सिद्ध किये वा होम किये से बचे ( हवि ) भोजन के योग्य अन्नादि को ( देवा ) विद्वान् लोग ( अदन्तु ) खायें उसको सर्वोपरि विराजमान मानो ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य सब प्रकाशक पदार्थों के बीच प्रकाशक है वैसे जो विद्वानों में विद्वान् सबका उपकारी जन होता है वही सबको आनन्द का भुगवाने वाला होता है ॥ ३६ ॥

केतुमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । विद्वांसो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वरः ॥

आप्त लोग कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥३७॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो (मर्या ) मनुष्य (अपेशसे) जिसके सुवर्ण नहीं है उसके लिये ( पेश ) सुवर्ण को और ( अकेतवे ) जिस को बुद्धि नहीं है उसके लिए ( केतुम् ) बुद्धि को करते हैं उन (उषद्भि ) होम करने वाले यजमान पुरुषों के साथ बुद्धि और धन को ( कृण्वन् ) करते हुए आप ( सम्, अजायथा ) सम्यक् प्रसिद्ध हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही आप्तजन हैं जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों का भी सुख चाहते हैं उन्हीं के सङ्ग से विद्या की प्राप्ति अविद्या की हानि धन का लाभ और दरिद्रता का विनाश होता है ॥३७॥

जीमूतस्येवेत्यस्य भारद्वाज ऋषि । विद्वान्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

वीर राजपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।**

**अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥३८॥**

पदार्थ—( यत ) जो ( वर्मी ) कवच वाला योद्धा ( अनाविद्धया ) जिसमें कुछ भी घाव न लगा हो उस ( तन्वा ) शरीर से ( समदाम् ) आनन्द के साथ जहां वर्त्तें उन युद्धों के ( उपस्थ ) समीप में ( प्रतीकम् ) जिससे निश्चय करे उस चिह्न को ( याति ) प्राप्त होता है ( स ) वह ( जीमूतस्येव ) मेघ के निकट जैसे बिजुली वैसे ( भवति ) होता है । हे विद्वन् ! जिस ( त्वा ) आप का ( वर्मण ) रक्षा का ( महिमा ) महत्त्व ( पिपर्त्तु ) पाले सो ( त्वम् ) आप शत्रुओं को ( जय ) जीतिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेघ की सेना सूर्य प्रकाश को रोकती है वैसे कवच आदि से शरीर का आच्छादन करें जैसे समीपस्थ सूर्य और मेघ का संग्राम होता है वैसे ही वीर राजपुरुषों को युद्ध और रक्षा भी करनी चाहिये ।३८।

धन्वनेत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वीरा देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम**

**धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३९।**

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जैसे हम लोग जो ( धनु ) शस्त्र अस्त्र ( शत्रो ) वैरी की ( अपकामम् ) कामनाओं को नष्ट ( कृणोति ) करता है उस ( धन्वना ) धनुष आदि शस्त्र अस्त्र विशेष से ( गा ) पृथिवियों को और ( धन्वना ) उक्त शस्त्र विशेष से ( आजिम् ) संग्राम को ( जयेम ) जीतें ( धन्वना ) तोप आदि शस्त्र अस्त्रों से ( तीव्रा ) तीव्र वेग वाली ( समदः ) आनन्द के साथ वर्त्तमान शत्रुओं की सेनाओं को ( जयम ) जीतें ( धन्वना ) धनुष से ( सर्वा ) सब ( प्रदिश ) दिशा प्रदिशाओं को ( जयेम ) जीतें वैसे तुम लोग भी इस धनुष आदि से जीतो ॥३९॥

भावार्थ—जो मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान की क्रियाओं में कुशल हों तो सब जगह ही उन का विजय प्रकाशित होवे जो विद्या विनय और शूरता आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य को चाहें तो कुछ भी अशक्य न हो ॥३९॥

वक्ष्यन्तीवेत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वीरा देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

**वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना ।**

**योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥४०।**

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जो ( इयम् ) यह ( वितता) विस्तारयुक्त (धन्वन्) धनुष में ( अधि ) ऊपर लगी ( ज्या ) प्रत्यञ्चा तांत ( वक्ष्यन्तीव ) कहने को उद्यत हुई विदुषी स्त्री के तुल्य ( इत् ) ही (आगनीगन्ति ) शीघ्र बोध को प्राप्त कराती हुई जैसे ( कर्णम् ) जिसकी स्तुति सुनी जाती ( प्रियम् ) प्यारे ( सखायम् ) मित्र

के तुल्य वर्त्तमान पति को ( परिषस्वजाना ) सब ओर से सङ्ग करती हुई ( योषेव ) स्त्री जानती वैसे ( शिङ्क्ते ) शब्द करती है ( समने ) संग्राम में ( पारयन्ती ) विजय को प्राप्त कराती हुई वर्त्तमान है उसके बनाने बांधने और चलाने को जानो ॥४०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार है। जो मनुष्य धनुष की प्रत्यञ्चा आदि शस्त्र अस्त्रों की रचना सम्बन्ध और चलाना आदि क्रियाओं को जाने तो उपदेश करने और माता के तुल्य सुख देने वाली पत्नी और विजय सब को प्राप्त हों ॥४०॥

ते आचरन्ती इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यताᳬ संविदानेऽआर्त्नीऽइमे विष्फुरन्तीऽअमित्रान् ॥४१॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जो धनुष की प्रत्यञ्चा ( योषा ) विदुषी ( समनेव ) प्राण के समान सम्यक् पति को प्यारी स्त्री स्वपति को और ( मातेव ) जैसे माता ( पुत्रम् ) अपने सन्तान को ( बिभृताम् ) धारण करें वैसे ( उपस्थे ) समीप में ( आचरन्ती ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( अप विध्यताम् ) दूर तक ताड़ना करें ( इमे ) ये ( संविदाने ) अच्छे प्रकार विज्ञान की निमित्त ( आर्त्नी ) प्राप्त हुईं ( अमित्रान् ) शत्रुओं को ( विष्फुरन्ती ) विनाश कर चलायमान करती वर्त्तमान हैं ( ते ) उन दोनों का यथावत् सम्यक् प्रयोग करो अर्थात् उन को काम में लाओ ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे हृदय को प्यारी स्त्री पति को और विदुषी माता अपने पुत्र को अच्छे प्रकार पुष्ट करती हैं वैसे सम्यक् प्रसिद्ध काम देने वाली धनुष की दो प्रत्यञ्चा शत्रुओं को पराजित कर वीरों को प्रसन्न करती हैं ॥४१॥

बह्वीनामित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥४२॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जो ( बह्वीनाम् ) बहुत प्रत्यञ्चाओं का ( पिता ) पिता के तुल्य रखने वाला ( अस्य ) इस पिता का ( बहुः ) बहुत गुण वाले ( पुत्रः ) पुत्र के समान सम्बन्धी ( पृष्ठे ) पिछले भाग में ( निनद्धः ) निश्चित बंधा हुआ ( इषुधिः ) बाण जिसमें धारण किये जाते वह धनुष ( प्रसूतः ) उत्पन्न हुआ ( समना ) संग्रामों को ( अवगत्य ) प्राप्त होके ( चिश्चा ) चिं चिं चिं ऐसा शब्द ( कृणोति ) करता है और जिससे वीर पुरुष ( सर्वाः ) सब ( सङ्काः ) इकट्ठी वा फैली हुई ( पृतनाः ) सेनाओं को ( जयति ) जीतता है उसकी यथावत् रक्षा करो ॥४२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अनेक कन्याओं और बहुत पुत्रों का पिता अपत्य शब्द से संयुक्त होता है वैसे ही धनुष प्रत्यञ्चा और बाण मिलकर अनेक प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करते हैं जिस के वाम हाथ में धनुष पीठ पर बाण दाहिने हाथ से बाण को निकाल के धनुष की प्रत्यञ्चा से संयुक्त कर छोड़ के अभ्यास से शीघ्रता करने की शक्ति को करता है वही विजयी होता है ॥४२॥

रथ इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( सुषारथिः ) सुन्दर सारथि घोड़ों वा अग्न्यादि को नियम में रखनेवाला ( रथे ) रमण करने योग्य पृथिवी जल वा आकाश में चलाने वाले यान में ( तिष्ठन् ) बैठा हुआ ( यत्रयत्र ) जिस जिस संग्राम वा देश में ( कामयते ) चाहता है वहां वहां ( वाजिनः ) घोड़ों वा वेग वाले अग्न्यादि पदार्थों को ( पुरः ) आगे ( नयति ) चलाता है जिस को ( मनः ) मन अच्छा शिक्षित ( रश्मयः ) लगाम की रस्सी वा किरण सम्बन्धी हैं ( पश्चात् ) पीछे से घोड़ों वा अग्न्यादि को ( अनु यच्छन्ति ) अनुकूल निग्रह करते हैं उन ( अभीशूनाम् ) सब ओर से शीघ्र चलानेहारों के ( महिमानम् ) महत्त्व की तुम लोग ( पनायत ) प्रशंसा करो ॥४३॥

भावार्थ—जो राजा और राजपुरुष चक्रवर्त्ती राज्य और निश्चल विजय चाहें तो अच्छे शिक्षित सेना घोड़े आदि तथा अन्य यान चलाने वाली सामग्री से रक्षा शस्त्र अस्त्रों और शरीर आत्मा के बल को अवश्य सिद्ध करें ॥४३॥

तीव्रानित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥४४॥

पदार्थ—हे वीर पुरुष ! जो ( वृषपाणयः ) जिन के बलवान् बैल आदि उत्तम प्राणी हाथों के समान रक्षा करने वाले हैं ( रथेभिः ) रमण के योग्य यानों के ( सह ) साथ ( वाजयन्तः ) वीर आदि को शीघ्र चलानेहारे ( प्रपदैः ) उत्तम पगों की चालों से ( अमित्रान् ) मित्रता रहित शत्रुओं को ( अवक्रामन्तः ) धमकाते हुए ( अश्वाः ) शीघ्र चलाने हारे घोड़े ( तीव्रान् ) तीव्र ( घोषान् ) शब्दों को ( कृण्वते ) करते हैं और जो ( अनपव्ययन्तः ) व्यथा रहित न कराते हुए योद्धा ( शत्रून् ) वैरियों को ( क्षिणन्ति ) क्षीण करते हैं उन को तुम लोग प्राण के तुल्य पालो ॥४४॥

भावार्थ—जो राजपुरुष हाथी घोड़ा बैल आदि भृत्यों और अध्यक्षों को अच्छी शिक्षा दे तथा अनेक प्रकार के यानों को बना के शत्रुओं के जीतने की अभिलाषा करते हैं तो उनका निश्चल दृढ़ विजय होता है ॥४४॥

रथवाहनमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

रथवाहनᳬ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मᳬ सदेम विश्वाहा वयᳬ सुमनस्यमानाः ॥४५॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! ( अस्य ) इस योद्धा जन के ( यत्र ) जिस यान में ( रथवाहनम् ) जिस से विमानादि यान चलते वह ( हविः ) ग्रहण करने योग्य अग्नि, इन्धन जल काठ और धातु आदि सामग्री तथा ( आयुधम् ) बन्दूक तोप खड्ग धनुष्य बाण शक्ति और पद्मफांसी आदि शस्त्र और ( अस्य ) इस योद्धा के ( वर्म ) कवच और ( नाम ) नाम ( निहितम् ) स्थित है ( तत्र ) उस यान में ( सुमनस्यमानाः ) सुन्दर विचार करते हुए ( वयम् ) हम लोग ( शग्मम् ) सुख तथा उस ( रथम् ) रमण योग्य यान को ( विश्वाहा ) सब दिन ( उप सदेम ) निकट प्राप्त होवें ॥४५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस यान में अग्नि आदि तथा घोड़े आदि संयुक्त किये जाते उस में युद्ध की सामग्री धर नित्य उसकी देख भाल कर उस में बैठ और सुन्दर विचार से शत्रुओं के साथ सम्यक् युद्ध करके नित्य सुख को प्राप्त होओ ॥४५॥

स्वादुषंसद इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

स्वादुषᳬसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेनाऽइषुबलाऽअमृध्राः सतोवीराऽउरवो व्रातसाहाः ॥४६॥

पदार्थ—हे युद्ध करने हारे वीर पुरुषो ! तुम लोग जो ( स्वादुषंसदः ) भोजन के योग्य अन्नादि पदार्थों का सम्यक् सेवन वाले ( वयोधाः ) अधिक अवस्था युक्त ( कृच्छ्रेश्रितः ) उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये कष्ट सेवते हुए ( शक्तीवन्तः ) सामर्थ्य वाले ( गभीराः ) महाशय ( चित्रसेनाः ) आश्चर्य गुण युक्त सेना वाले ( इषुबलाः ) शस्त्र अस्त्रों के सहित जिन की सेना ( अमृध्राः ) दृढ़ शरीर वाले ( उरवः ) बड़े बड़े जिनके जंघा और छाती ( व्रातसाहाः ) वीरों के समूहों को सहने वाले ( सतोवीराः ) विद्यमान सेना के वीर युद्धविद्या की शिक्षा को प्राप्त और ( पितरः ) पालन करनेहारे राजपुरुष हो उन का आश्रय ले युद्ध करो ॥४६॥

भावार्थ—उन्हीं को सदा विजय राज्य श्री प्रतिष्ठा बड़ी अवस्था बल और विद्या होती है जो अपने अधिष्ठाता आप्त सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित होते हैं ॥४६॥

ब्राह्मणास इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । धनुर्वेदाऽध्यापका देवता । विराट्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

किन का सत्कार करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवीऽअनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नोऽअघशᳬस ईशत ॥४७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सोम्यासः ) उत्तम गुणों के योग्य ( ऋतावृधः ) सत्य के बढ़ाने वा ( पितरः ) रक्षक ( ब्राह्मणासः ) वेद और ईश्वर के जानने हारे विद्वान् जन ( नः ) हमारे लिये कल्याण करने हारे और ( अनेहसा ) कारणरूप से अविनाशी ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश पृथिवी ( शिवे ) कल्याणकारी हों ( पूषा ) पुष्टि करने हारा परमात्मा ( नः ) हम को ( दुरितात् ) दुष्ट अन्याय के आचरण से ( पातु ) बचावे जिससे ( नः ) हम को मारने वा ( अघशंसः ) पाप की प्रशंसा करने हारा चोर ( माकिः ) न ( ईशत ) समर्थ हो उन विद्वानों की तू रक्षा कर और चोरों को मार ॥४७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम को धर्मयुक्त कर्त्तव्य में प्रवृत्त कर दुष्ट आचरण से पृथक् रखते दुष्टाचारियों के बल को नष्ट और हमारी पुष्टि करते वे सत्कार करने योग्य हैं ॥४७॥

सुपर्णमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजधर्म अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुपर्णं वस्ते मृगोऽअस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यᳬसन् ॥४८॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! ( यत्र ) जिस सेना में ( नरः ) नायक लोग हों जो ( सुपर्णम् ) सुन्दर पूर्ण रक्षा के साधन उस रथादि को ( वस्ते ) धारण करती और जहां ( गोभिः ) गौओं के सहित ( दन्तः ) जिसका दमन किया जाता उस ( मृगः ) कस्तूरी से शुद्ध करने वाले मृग के तुल्य ( इषवः ) बाण आदि शस्त्र विशेष चलते हैं जो ( सन्नद्धा ) सम्यक् गांठी बंधी ( प्रसूता ) प्रेरणा की हुई शत्रुओं में ( पतति ) गिरती ( च ) और इधर उधर ( अस्याः ) इस सेना के वीर पुरुष ( सम् द्रवन्ति ) सम्यक् चलते ( च ) और ( वि ) विशेषकर दौड़ते हैं ( तत्र ) उस सेना में ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये आप लोग ( शर्म ) सुख ( यंसन् ) देओ ॥४८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि शत्रुओं से न धमकने वाली हृष्ट पुष्ट सेना सिद्ध करो उसमें सुन्दर परीक्षित योद्धा और अध्यक्ष रक्खो उन शस्त्र अस्त्रों के चलाने में कुशल जनों से विजय को प्राप्त होओ ॥४८॥

ऋजीते इत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वीरा देवता । विराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ।।

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगल मन्त्र में कहा है—*

**ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।**

**सोमोऽअधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ।।४९।।**

**पदार्थ**—हे विद्वन् पुरुष ! आप ( **ऋजीते** ) सरल व्यवहार म ( **न** ) हमारे शरीर से रोगो को ( **परि वृङ्धि** ) सब ओर स पृथक कीजिये जिसस ( **न** ) हमारा ( **तनू** ) शरीर ( **अश्मा** ) पत्थर के तुल्य दृढ ( **भवतु** ) हो जो ( **सोम** ) उत्तम ओषधि है उस और जो ( **अदिति** ) पृथिवी है उन दोनो को आप ( **अधि ब्रवीतु** ) अधिकार उपदेश कीजिये और ( **न** ) हमार लिये ( **शर्म** ) सुख वा घर ( **यच्छतु** ) दीजिये ।। ४९ ।।

**भावार्थ**—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य औषध पथ्य और सुन्दर नियमो के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उन के शरीर दृढ़ होवें जसे शरीरो का पृथिवी आदि का बना घर है वसे जीव का यह शरीर घर है ।।४९।।

आजङ्घन्तीत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वीरा देवता । विराडनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ।।

*फिर राजधर्म को अगल मन्त्रों में कहत है—*

**आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ऽउप जिघ्नते ।**

**अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ।।५०।।**

**पदार्थ**—हे ( **अश्वाजनि** ) घोडो को शिक्षा देने वाली विदुषी राणी ! जस वीर पुरुष ( **एषाम्** ) इन घोडे आदि के ( **सानु** ) अवयव को ( **आ, जङ्घन्ति** ) अच्छे प्रकार शीघ्र ताड़ना करत है ( **जघनान्** ) जानो को ( **उप जिघ्नते** ) समीप मे चलाते है वसे तू ( **समत्सु** ) सग्रामो म ( **प्रचेतस** ) शिक्षा से विशष कर चतन किय ( **अश्वान्** ) घोडो को ( **चोदय** ) प्रेरणा कर ।।५०।।

**भावार्थ**—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे राजा और राजपुरुष विमानादि रथ और घोडो के चलाने तथा युद्ध के व्यवहारो को जानें वसे उनकी स्त्रियां भी जानें ।। ५० ।।

अहिरिवेत्यस्य भारद्वाज ऋषि । महावीर सेनापतिर्देवता । त्रिष्टुपछन्द । धवत स्वर ।।

**अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।**

**हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाᳬसं परि पातु विश्वतः ।।५१।।**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! जो ( **हस्तघ्न** ) हाथों स मारने वाले ( **विद्वान्** ) विद्वान् ( **पुमान्** ) पुरुषार्थी आप ( **ज्याया** ) प्रत्यञ्चा से ( **हेतिम्** ) बाण को चला के ( **बाहुम्** ) बाधा देनेवाले शत्रु को ( **परिबाधमान** ) सब ओर निवत्त करते हुए ( **पुमांसम्** ) पुरुषार्थी जन की ( **विश्वत** ) सब प्रकार स ( **परि, पातु** ) चारो ओर से रक्षा कीजिये सो ( **अहिरिव** ) मेघ के तुल्य गजते हुए आप ( **भोग** ) उत्तम भोगो के सहित ( **विश्वा** ) सब ( **वयुनानि** ) विज्ञानो को ( **परि एति** ) सब ओर से प्राप्त होत हो ।। ५१ ।।

**भावार्थ**—इस मन्त्र म उपमालंकार है । जो विद्वान् भुजबल वाला शस्त्र अस्त्र के चलाने का ज्ञाता शत्रुओं का निवृत्त करता पुरुषार्थ स सब की रक्षा करता हुआ मेघ के तुल्य सुख और भोगो का बढाने वाला हो वह सब मनुष्यो को विद्या प्राप्त कराने को समर्थ होवे ।। ५१ ।।

वनस्पत इत्यस्य भारद्वाज ऋषि । सुवीरो देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ।।

*फिर राजप्रजा धर्म इस विषय को अगले मन्त्र म कहा है—*

**वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।**

**गोभिः सन्नद्धोऽअसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ।।५२।।**

**पदार्थ**—हे ( **वनस्पते** ) किरणो के रक्षक सूर्य के समान वन आदि के रक्षक विद्वन् राजन् ! आप ( **अस्मत्सखा** ) हमारे रक्षक मित्र ( **प्रतरण** ) शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन करने हारे ( **सुवीर** ) सुन्दर वीर पुरुषो से युक्त ( **वीड्वङ्ग** ) प्रशसित अवयव वाले ( **हि** ) निश्चय कर ( **भूया** ) हूजिये जिस कारण आप ( **गोभि** ) पृथिवी आदि के साथ ( **सन्नद्ध** ) सम्बन्ध रखते तत्पर ( **असि** ) हैं इसलिये हम को ( **वीडयस्व** ) दृढ कीजिये ( **ते** ) आप का ( **आस्थाता** ) युद्ध मे अच्छे अच्छे प्रकार स्थिर रहने वाला वीर सेनापति ( **जेत्वानि** ) जीतने योग्य शत्रुओं को ( **जयतु** ) जीते ।। ५२ ।।

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के साथ किरणो और किरणों के साथ सूर्य का नित्य सम्बन्ध है वैसे राजा सेना तथा प्रजाओं का सम्बन्ध होने योग्य है जो सेनापति आदि जितेन्द्रिय शूरवीर हों तो सेना और प्रजा भी वैसी ही जितेन्द्रिय होवे ।। ५२ ।।

दिव इत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वीरो देवता । विराट जगती छन्द । निषाद स्वर ।।

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिय इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**दिवः पृथिव्याः पर्योजऽउद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतᳬ सहः ।**

**अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रᳬ हविषा रथं यज ।।५३।।**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! आप ( **दिव** ) सूय और ( **पृथिव्या** ) पृथिवी से ( **उद्भृतम्** ) उत्कृष्टता से धारण किये ( **ओज** ) पराक्रम को ( **परि, यज** ) सब ओर स दीजिय ( **वनस्पतिभ्य** ) वट आदि वनस्पतियो स ( **आभृतम्** ) अच्छे प्रकार पुष्ट किये ( **सह** ) बल को ( **परि** ) सब ओर से दीजिये ( **अपाम्** ) जलो के सम्ब ध से ( **ओज्मानम्** ) पराक्रम वाले रस को ( **परि** ) चारो ओर से दीजिये तथा ( **इन्द्रस्य** ) सूय की ( **गोभि** ) किरणो से ( **आवृतम्** ) युक्त बिलकते हुए ( **वज्रम्** ) वज्र के तुल्य ( **रथम्** ) यान को ( **हविषा** ) ग्रहण स सङ्गत कीजिये ।। ५३ ।।

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि पृथिवी आदि भूतो और उनसे उत्पन्न हुई सृष्टि के सम्बन्ध स बल और पराक्रमो को बढावें और उनके योग से विमान आदि यानो को बनाया करें ।। ५३ ।।

इन्द्रस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वीरो देवता । निचृत त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ।।

**इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।**

**सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ।।५४।।**

**पदार्थ**—हे ( **देव** ) उत्तम विद्या वाले ( **रथ** ) रमणीयस्वरूप विद्वन् ! ( **इमाम्** ) इस ( **हव्यदातिम्** ) देने योग्य पदार्थों के दान को ( **जुषाण** ) सेवते हुए ( **स** ) पूर्वोक्त आप जो ( **इन्द्रस्य** ) बिजुली का ( **वज्र** ) गिरना ( **मरुताम्** ) मनुष्यों की ( **अनीकम्** ) सेना ( **मित्रस्य** ) मित्र के ( **गर्भ** ) अन्त करण का आशय और ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठ जन के ( **नाभि** ) आत्मा का मध्यवर्ती विचार है उसको ( **न** ) और हमको ( **हव्या** ) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का ( **प्रति गृभाय** ) प्रतिग्रह अर्थात् स्वीकार कीजिये ।। ५४ ।।

**भावार्थ**—जिन मनुष्यो की सेना अतिश्रेष्ठ बिजुली को विद्या मित्र का आशय आप्त सत्यवक्ताओं का विचार और विद्यादि का दान स्वीकार किये तथा दूसरो को दिये हैं वे सब ओर से मङ्गलयुक्त होवें ।। ५४ ।।

उपश्वासयेत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वीरा देवता । भुरिक त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ।।

**उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।**

**स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयोऽअप सेध शत्रून् ।।५५।।**

**पदार्थ**—हे ( **दुन्दुभ** ) नगाड़े क तुल्य गरजन हारे ! ( **स** ) सो आप ( **इन्द्रेण** ) ऐश्वर्य स युक्त ( **देवै** ) उत्तम विद्वान् वा गुणो क साथ ( **सजू** ) सयुक्त ( **दूरात** ) दूर से भी ( **दवीय** ) अतिदूर ( **शत्रून्** ) शत्रुओं को ( **अपसेध** ) पृथक कीजिये ( **पुरुत्रा** ) बहुत विध ( **पृथिवीम्** ) आकाश ( **उत** ) और ( **द्याम्** ) बिजुली क प्रकाश को ( **उप श्वासय** ) निकट जीवन धारण कराइये आप उन अन्तरिक्ष और बिजुली से ( **विष्ठितम्** ) व्याप्त ( **जगत** ) ससार को ( **मनुताम्** ) मानो उस ( **ते** ) आपको राज्य आनन्द दत होव ।। ५५ ।।

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्युत् विद्या से हुए अस्त्रो से शत्रुओ को दूर फेंक ऐश्वर्य से विद्वानो का दूर से बुला के सत्कार करें अन्तरिक्ष और बिजुली से व्याप्त सब जगत् को जान विविध प्रकार की विद्या और क्रियाओं को सिद्ध कर के जगत् को आनन्द कराने वाले होते हैं ।। ५५ ।।

आक्रन्दयेत्यस्य भारद्वाज ऋषि । वाद्यिलारो वीरा देवता । भुरिक त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ।।

*राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों म कहा है—*

**आ क्रन्दय बलमोजो नऽआधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।**

**अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनाऽइतऽइन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ।।५६।।**

**पदार्थ**—हे ( **दुन्दुभे** ) नगाड़े के तुल्य जिनकी सेना गर्जती ऐसे सेनापते ! ( **दुरिता** ) दुष्ट व्यसनो को ( **बाधमान** ) निवत्त करते हुए आप ( **न** ) हमारे लिये ( **बलम्** ) बल को ( **आ क्रन्दय** ) पहुँचाइये ( **ओज** ) पराक्रम को ( **आ, धा** ) अच्छे प्रकार धारण कीजिये सेना को ( **निष्टनिहि** ) विस्तृत कीजिये जो ( **दुच्छुना** ) दुष्ट कुत्तो के तुल्य वत्तमान है उनको ( **अप** ) बुरे प्रकार रुलाइये जिस कारण आप ( **मुष्टि** ) मुठों के तुल्य प्रबन्धकर्त्ता ( **असि** ) हैं इससे ( **इत** ) इस सेना से ( **इन्द्रस्य** ) बिजुली के अवयवों को ( **वीडयस्व** ) दृढ़ कीजिये और दुखों को ( **प्रोथ** ) पूरण कीजिय ।। ५६ ।।

**भावार्थ**—राजपुरुषो को चाहिये कि श्रेष्ठों का सत्कार करें दुष्टो को रुलावें सब मनुष्यों के दुर्व्यसनो को दूर करके सुखों को प्राप्त करें ।। ५६ ।।

आपूरित्यस्य भारद्वाज ऋषि । वाचयितारो वीरा देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।**
**समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्र** ) परम ऐश्वर्ययुक्त राजपुरुष ! आप ( **अमू** ) उन शत्रु सेनाओ को ( **आ अज** ) अच्छे प्रकार दूर फेंकिये ( **केतुमत** ) ध्वजा वाली ( **इमा** ) इन अपनी सेनाओ को ( **प्रति आवर्त्तय** ) लौटा लावो जैसे ( **दुन्दुभि** ) नगाडा ( **वावदीति** ) अत्यन्त बजता है वैसे ( **न** ) हमको ( **अश्वपर्णा** ) घोडो का जिनमे पालन हो वे सेना ( **सम्, चरन्ति** ) सम्यक विचरती हैं जो ( **अस्माकम्** ) हमारे ( **रथिन** ) प्रशसित रथो पर चढे हुए वीर ( **नर** ) नायक जन शत्रुओ को ( **जयन्तु** ) जीतें वे सत्कार को प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजपुरुष शत्रुओ की सेनाओ का निवृत्त करने और अपनी सेनाओ का युद्ध करने को समर्थ हो वे सर्वत्र शत्रुओ को जान सकें ॥ ५७ ॥

आग्नेय इत्यस्य भारद्वाज ऋषि । विद्वांसो देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब कैसे पशु कैसे गुणों वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेवऽऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माषऽऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्णऽएकशितिपात्पेत्वः ॥५८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ( **आग्नेय** ) अग्नि देवता वाला अर्थात् अग्नि के उत्तम गुणो से युक्त है वह ( **कृष्णग्रीव** ) काले गल वाला पशु जो ( **सारस्वती** ) सरस्वती वाणी के गुणो वाला वह ( **मेषी** ) भेड जो ( **सौम्य** ) चन्द्रमा के गुणो वाला वह ( **बभ्रु** ) धुमेला पशु जो ( **पौष्ण** ) पुष्टि आदि गुणो वाला वह ( **श्याम** ) श्याम रङ्ग से युक्त पशु जो ( **बार्हस्पत्य** ) बडे आकाशादि के पालन आदि गुणयुक्त वह ( **शितिपृष्ठ** ) काली पीठ वाला पशु जो ( **वैश्वदेव** ) सब विद्वानो के गुणो वाला वह ( **शिल्प** ) अनेक वर्णयुक्त जो ( **ऐन्द्र** ) सूर्य के गुणो वाला वह ( **अरुण** ) लालरङ्गयुक्त जो ( **मारुत** ) वायु के गुणो वाला वह ( **कल्माष** ) खाखी रङ्ग युक्त जो ( **ऐन्द्राग्न** ) सूर्य अग्नि के गुणो वाला वह ( **संहित** ) मोटे दृढ अङ्गयुक्त जो ( **सावित्र** ) सूर्य के गुणो से युक्त वह ( **अधोराम** ) नीचे विचरने वाला पक्षी जो ( **एकशितिपात** ) जिसका एक पग काला ( **पेत्व** ) उडनेवाला और ( **कृष्ण** ) काले रङ्ग से युक्त वह ( **वारुण** ) जल के शान्त्यादि गुणो वाला है इस प्रकार इन सब को जानो ॥ ५८ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगो को चाहिये कि जिस २ देवता वाले जो २ पशु विख्यात हैं वे २ उन २ गुणो वाले उपदेश किये हैं ऐसा जानो ॥ ५८ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषि । अग्न्यादयो देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माषऽआग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥५९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **अनीकवते** ) प्रशसित सेना वाले ( **अग्नये** ) विज्ञान आदि गुणो के प्रकाशक सेनापति के लिये ( **रोहिताञ्जि** ) लाल चिह्नो वाला ( **अनड्वान्** ) बैल ( **सावित्रौ** ) सूर्य के गुण वाले ( **अधोरामौ** ) नीचे भाग मे श्वेत वर्ण वाले ( **पौष्णौ** ) पुष्टि आदि गुण युक्त ( **रजतनाभी** ) चांदी के वर्ण के तुल्य जिनकी नाभि ( **वैश्वदेवौ** ) सब विद्वानो के सम्बन्धी ( **तूपरौ** ) मुण्डे ( **पिशङ्गौ** ) पीले दो पशु ( **मारुतः** ) वायु देवता वाला ( **कल्माष** ) खाखी रङ्गयुक्त ( **आग्नेयः** ) अग्नि देवता वाला ( **कृष्ण अज** ) काला बकरा ( **सारस्वती** ) वाणी के गुणो वाली ( **मेषी** ) भेड और ( **वारुण** ) जल के गुणो वाला ( **पेत्व** ) शीघ्रगामी पशु है उन सब को गुणो के अनुकूल काम मे लाओ ॥ ५९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे पशुओ के जितने गुण कहे हैं वे सब एक अग्नि मे इकट्ठे हैं यह जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषि । अग्न्यादयो देवता । पूर्वस्य विराट्प्रकृति, वराजाभ्यामित्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्द । धैवत स्वर ॥

*कैसे मनुष्य कार्यसिद्धि कर सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपालऽइन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्रऽऔष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्याऽअष्टाकपालः ॥६०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगो को चाहिये कि ( **त्रिवृते** ) सत्व रज और तमोगुण इन तीन गुणो से युक्त ( **राथन्तराय** ) रथो अर्थात् जलयानो से समुद्रादि को तरने वाले ( **गायत्राय** ) गायत्री छन्द से जताये हुए ( **अग्नये** ) अग्नि के अर्थ ( **अष्टाकपाल** ) आठ खपरो मे सस्कार किया ( **पञ्चदशाय** ) पन्द्रहवें प्रकार के ( **त्रैष्टुभाय** ) त्रिष्टुप छन्द मे प्रख्यात ( **बार्हताय** ) बडो के साथ सम्बन्ध रखनेवाले ( **इन्द्राय** ) ऐश्वर्य के लिये ( **एकादशकपाल** ) ग्यारह खपरो मे सस्कार किया पाक ( **विश्वेभ्य** ) सब ( **जागतेभ्य** ) जगती छन्द से जताये हुए ( **सप्तदशेभ्य** ) सत्रहवें ( **वैरूपेभ्य** ) विविध रूपो वाले ( **देवेभ्य** ) दिव्य गुणयुक्त मनुष्यो के लिये ( **द्वादशकपाल** ) बारह खपरो मे सस्कार किया पाक ( **आनुष्टुभाभ्याम्** ) अनुष्टुप छन्द से प्रकाशित हुए ( **एकविंशाभ्याम्** ) इक्कीसवें ( **वैराजाभ्याम** ) विराट छन्द से जताये हुए ( **मित्रावरुणाभ्याम** ) प्राण और उदान के अर्थ ( **पयस्या** ) जलक्रिया मे कुशल विद्वान् ( **बृहस्पते** ) बडो के रक्षक ( **पाङ्क्ताय** ) पांक्तो मे श्रेष्ठ ( **त्रिणवाय** ) कर्म उपासना और ज्ञानो से स्तुति किये ( **शाक्वराय** ) शक्ति से प्रकट हुए के लिये ( **चरुः** ) पाक विशेष ( **औष्णिहाय** ) उष्णिक छन्द से जताये हुए ( **त्रयस्त्रिंशाय** ) तेंतीसवें ( **रैवताय** ) धन के सम्बन्धी ( **सवित्र** ) ऐश्वर्य उत्पन्न करने हारे के लिये ( **द्वादशकपाल** ) बारह खपरो मे सस्कार किया ( **प्राजापत्य** ) प्रजापति देवता वाला ( **चरु** ) बटलोई मे पका अन्न ( **अदित्यै** ) अखण्डित ( **विष्णुपत्न्यै** ) विष्णु व्यापक ईश्वर से रक्षित अन्तरिक्ष रूप के लिये ( **चरु** ) पाक ( **वैश्वानराय** ) सब मनुष्यो मे प्रकाशमान ( **अग्नये** ) बिजुलीरूप अग्नि के लिये ( **द्वादशकपाल** ) बारह खपरो मे पका हुआ और ( **अनुमत्यै** ) पीछे मानने वाले के लिये ( **अष्टाकपाल** ) आठ खपरो मे सिद्ध किया पाक बनाना चाहिये ॥ ६० ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अन्न आदि के प्रयुक्त करने के लिये आठ प्रकार आदि के यन्त्रो को बनावे वे रचे हुए प्रसिद्ध पदार्थों से अनेक कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥६०॥

**इस अध्याय मे अग्नि, विद्वान् घर प्राण अपान, अध्यापक, उपदेशक, वाणी घोडा अग्नि विद्वान् प्रशस्त पदार्थ घर द्वार, रात्रि, दिन, शिल्पी, शोभा शस्त्र अस्त्र सेना, ज्ञानियो की रक्षा, सन्धि से उपकार ग्रहण, विघ्ननिवारण शत्रु सेना का पराजय, अपनी सेना का सङ्ग और रक्षा पशुओ के गुण और यज्ञों का निरूपण होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय मे कहे अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥**

**अब उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# अथ त्रिंशाऽध्यायारम्भः

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

देवेत्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब तीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्रों में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को कहा है—*

**देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।**
**दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥१॥**

**पदार्थ**—हे (देव) दिव्यस्वरूप (सवितः) समस्त ऐश्वर्य से युक्त और जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर ! जो आप (दिव्यः) शुद्ध स्वरूप में हुआ (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (केतपूः) विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे और जो (वाचः) वाणी का (पतिः) रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मीठी चिकनी कोमल प्रिय करे उस (यज्ञपतिम्) राज्य के रक्षक राजा को (भगाय) ऐश्वर्ययुक्त धन के लिये (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिये और (यज्ञम्) राजधर्मरूप यज्ञ को भी (प्र, सुव) सिद्ध कीजिये ॥ १ ॥

**भावार्थ**—जो विद्या की शिक्षा को बढ़ाने वाला शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त राज्य की रक्षा करने को यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने हारा धर्मात्माओं का रक्षक परमेश्वर का उपासक और समस्त शुभ गुणों से युक्त हो वही राजा होने के योग्य होता है ॥ १ ॥

तत्सवितुरित्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।

**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।**
**धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक सब ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देनेहारे ईश्वर के जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिस से दुःखों का नाश हो उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो ॥२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है जैसे राजा भी करे जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उस को पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्त्ते जैसे परमेश्वर सब दोष क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है वैसे राजा भी होवे ॥ २ ॥

विश्वानीत्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।**
**यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥३॥**

**पदार्थ**—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (सवितः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले परमेश्वर ! आप हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्ट आचरण वा दुःखों को (परा, सुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारी धर्मयुक्त आचरण वा सुख है (तत्) उस को (नः) हमारे लिये (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी अधर्म से प्रजाओं को निवृत्त कर धर्म में प्रवृत्त करे और आप भी वैसा होवे ॥ ३ ॥

विभक्तारमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

**विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।**
**सवितारं नृचक्षसम् ॥४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस (वसोः) सुखों के निवास के हेतु (चित्रस्य) आश्चर्यस्वरूप (राधसः) धन का (विभक्तारम्) विभाग करने हारे (सवितारम्) सब के उत्पादक (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों के अन्तर्यामी स्वरूप से सब कामों के देखनेहारे परमात्मा की हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करें उसकी तुम लोग भी प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे परमेश्वर अपने अपने कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है वैसे आप भी देओ जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप वा पुण्यरूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उस के लिये देता वैसे आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उस को वैसा वा उतना फल दीजिये जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ के सब जीवों में वर्त्तता है वैसे आप भी हूजिये ॥ ४ ॥

ब्रह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः । परमेश्वरो देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*ईश्वर के तुल्य राजा को भी करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयायाऽअयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥५॥**

**पदार्थ**—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप इस जगत् में (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के ज्ञान के प्रचार के अर्थ (ब्राह्मणम्) वेद ईश्वर के जानने वाले को (क्षत्राय) राज्य वा राज्य की रक्षा के लिये (राजन्यम्) राजपूत को (मरुद्भ्यः) पशु आदि प्रजा के लिये (वैश्यम्) प्रजाओं में प्रसिद्ध जन को (तपसे) दुःख से उत्पन्न होने वाले सेवन के अर्थ (शूद्रम्) प्रीति से सेवा करने तथा शुद्धि करनेहारे शूद्र को सब ओर से उत्पन्न कीजिये (तमसे) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (तस्करम्) चोर को (नारकाय) दुःख बन्धन में हुए कारागार के लिये (वीरहणम्) वीरों को मारनेहारे जन को (पाप्मने) पापाचरण के लिये प्रवृत्त हुए (क्लीबम्) नपुंसक को (आक्रयाय) प्राणियों की जिसमें भागाभूगी होती उस हिंसा के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयोगूम्) लोहे के हथियार विशेष के साथ चलनेहारे जन को (कामाय) विषय सेवन के लिये प्रवृत्त हुई (पुँश्चलूम्) पुरुषों के साथ जिसका चित्त चलायमान उस व्यभिचारिणी स्त्री को और (अतिक्रुष्टाय) अत्यन्त निन्दा करने के लिये प्रवृत्त हुए (मागधम्) भाट को दूर पहुंचाइये ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—हे राजन् ! जैसे जगदीश्वर जगत् में परोपकार के लिये पदार्थों को उत्पन्न करता और दोषों को निवृत्त करता है वैसे आप राज्य में सज्जनों की उन्नति कीजिये दुष्टों को निकालिये दण्ड और ताड़ना भी दीजिये, जिससे शुभ गुणों की प्रवृत्ति और दुष्ट व्यसनों की निवृत्ति होवे ॥ ५ ॥

नृत्तायेत्यस्य नारायण ऋषिः । परमेश्वरो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ।

*फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ॥६॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (नृत्ताय) नाचने के लिये (सूतम्) क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए सूत को (गीताय) गाने के अर्थ (शैलूषम्) गाने हारे नट को (धर्माय) धर्म की रक्षा के लिये (सभाचरम्) सभा में विचरने हारे सभापति को (नर्माय) कोमलता के अर्थ (रेभम्) स्तुति करनेहारे को (आनन्दाय) आनन्द भोगने के अर्थ (स्त्रीषखम्) स्त्री से मित्रता रखनेवाले पति को (मेधायै) बुद्धि के लिये (रथकारम्) विमानादि को रचनेहारे कारीगर को (धैर्याय) धीरज के लिये (तक्षाणम्) महीन काम करनेवाले बढ़ई को उत्पन्न कीजिये (नरिष्ठायै) अति दुष्ट नरों की गोष्ठी के लिये प्रवृत्त हुए (भीमलम्) भयङ्कर विषयों को ग्रहण करनेवाले को (हसाय) हंसने के अर्थ प्रवृत्त हुए (कारिम्) उपहासकर्त्ता को और (प्रमदे) प्रमाद के लिये प्रवृत्त हुए (कुमारीपुत्रम्) विवाह से पहिले व्यभिचार से उत्पन्न हुए को दूर कर दीजिये ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—राजपुरुषों को चाहिये कि परमेश्वर के उपदेश और राजा की आज्ञा से सब श्रेष्ठ धर्मात्मा जनों को उत्साह दें हंसी करने और भय देने वालों को निवृत्त करें अनेक सभाओं को बना के सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति किया करें ॥ ६ ॥

तपस इत्यस्य नारायण ऋषि । विद्वांसो देवता । निचृदष्टिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

तपसे कौलाल मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्याया इषुकारꣳ हेत्यै धनुष्कार कर्मणे ज्याकार दिष्टाय रज्जुसर्ज मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप ( तपसे ) बर्तन पकाने के ताप को झेलने के अर्थ ( कौलालम ) कुम्हार के पुत्र को ( मायाय ) बुद्धि बढ़ाने के लिये ( कर्मारम ) उत्तम शोभित काम करनेहारे को ( रूपाय ) सुन्दर स्वरूप बनाने के लिये ( मणिकारम ) मणि के बनाने वाले को ( शुभे ) शुभ आचरण के अर्थ ( वपम ) जैसे किसान खेत को वैसे विद्यादि शुभ गुणों के बोने वाले को ( शरव्यायै ) बाणों के बनाने के लिये ( इषुकारम ) बाणकर्त्ता को ( हेत्यै ) वज्र आदि हथियार बनाने के अर्थ ( धनुष्कारम ) धनुष् आदि के कर्त्ता को ( कर्मणे ) क्रियासिद्धि के लिये ( ज्याकारम ) प्रत्यञ्चा के कर्त्ता को ( दिष्टाय ) और जिस से अतिरचना हो उस के लिये ( रज्जुसर्जम ) रज्जु बनाने वाले को उत्पन्न कीजिये और ( मृत्यवे ) मृत्यु करने को प्रवृत्त हुए ( मृगयुम् ) व्याध को तथा ( अन्तकाय ) अन्त करनेवाले के हितकारी ( श्वनिनम ) बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर ने सृष्टि में रचनाविशेष दिखाये हैं वैसे शिल्पविद्या से सृष्टि के दृष्टान्त से विशेष रचना किया करें और हिंसक तथा कुत्तों के पालने वाले चण्डालादि को दूर बसावें ॥ ७ ॥

नदीभ्य इत्यस्य नारायण ऋषि । विद्वांसो देवता । कृतिश्छन्द । निषाद स्वर ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप ( नदीभ्य ) नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हुए ( पौञ्जिष्ठम ) धानुक को ( ऋक्षीकाभ्य ) गमन करने वाली स्त्रियों के अर्थ प्रवृत्त हुए ( नैषादम ) निषाद के पुत्र को ( पुरुषव्याघ्राय ) व्याघ्र के तुल्य हिंसक पुरुष के हितकारी ( दुर्मदम ) दुष्ट अभिमानी को ( गन्धर्वाप्सरोभ्य ) गाने नाचने वाली स्त्रियों के लिये प्रवृत्त हुए ( व्रात्यम् ) संस्काररहित मनुष्य को ( प्रयुग्भ्य ) प्रयोग करने वालों के अर्थ प्रवृत्त हुए ( उन्मत्तम ) उन्माद रोग वाले को ( सर्पदेवजनेभ्य ) साँप तथा मूर्खों के लिये हितकारी ( अप्रतिपदम ) संशय में रहने वाले को ( अयेभ्य ) जो पदार्थ प्राप्त किये जाते उन के लिये प्रवृत्त ( कितवम ) जुआरी को ( ईर्यताय ) कम्पन के लिये प्रवृत्त हुए ( अकितवम ) जुआ न करनेहारे को ( पिशाचेभ्य ) दुष्टाचार करने से जिन की आशा नष्ट हो गई वा रुधिरसहित कच्चा मांस खाने के लिये प्रवृत्त ( विदलकारीम ) पृथक् पृथक् टुकड़ों को करनेहारी को और ( यातुधानेभ्य ) मार्गों से जिनके धन आता उसके लिये प्रवृत्त हुई ( कण्टकीकारीम ) काँटे बोने वाली को पृथक् कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर बसाता और दुष्ट परमेश्वर से दूर बसते हैं वैसे आप दुष्टों से दूर रहो और अपने से दुष्टों को दूर बसाइये वा सुशिक्षा से श्रेष्ठ कीजिये ॥ ८ ॥

सन्धय इत्यस्य नारायण ऋषि । विद्वान् देवता । भुरिगष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर ।

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा सभापति राजन् ! आप ( सन्धये ) परस्त्रीगमन के लिये प्रवृत्त ( जारम् ) व्यभिचारी को ( गेहाय ) गृहस्थों के सङ्ग के लिये प्रवृत्त हुए ( उपपतिम ) पति की विद्यमानता में दूसरे व्यभिचारी पति को ( आर्त्यै ) कामपीड़ा के लिये प्रवृत्त हुए ( परिवित्तम ) छोटे भाई का विवाह होने में बिना विवाहे ज्येष्ठ भाई को ( निर्ऋत्यै ) पृथिवी के लिये प्रवृत्त हुए ( परिविविदानम् ) ज्येष्ठ भाई के भाग को न प्राप्त हुए छोटे भाई को ( अराध्य ) अविद्यमान पदार्थ को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त हुए ( एदिधिषुःपतिम् ) ज्येष्ठ पुत्री के विवाह से पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री के पति को ( निष्कृत्यै ) प्रायश्चित्त के लिये प्रवृत्त हुई ( पेशस्कारीम ) शृङ्गार विशेष से रूप करनेहारी व्यभिचारिणी को ( संज्ञानाय ) उत्तम कामदेव को जगाने के अर्थ प्रवृत्त हुई ( स्मरकारीम् ) कामदेव को चेतन कराने वाली दूती को ( प्रकामोद्याय ) उत्कृष्ट कामों से उद्यम होने के लिये ( उपसदम् ) साथी को ( वर्णाय ) स्वीकार के लिये प्रवृत्त हुए ( अनुरुधम् ) पीछे से रोकने वाले को ( बलाय ) बल बढ़ाने के अर्थ ( उपदाम ) रिश्वत लेने वाले दुष्ट मनुष्य को पृथक् कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्टजनों को दण्ड देता वैसे आप भी इन को दण्ड दीजिये और ईश्वर पाप छोड़ने वालों पर कृपा करता है वैसे आप धार्मिक जनों पर अनुग्रह किया कीजिये ॥ ९ ॥

उत्सादेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषि । विद्वान् देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप ( उत्सादेभ्य ) नाश करने को प्रवृत्त हुए ( कुब्जम् ) कुबड़े को ( प्रमुदे ) प्रबल कामादि के आनन्द के लिए ( वामनम् ) छोटे मनुष्य को ( द्वार्भ्य ) आच्छादन के अर्थ ( स्रामम ) जिस के नेत्रों से निरन्तर जल निकले उस को ( स्वप्नाय ) सोने के लिये ( अन्धम ) अन्धे को और ( अधर्माय ) धर्माचरण से रहित के लिये ( बधिरम ) बहिरे को पृथक् कीजिये और ( पवित्राय ) रोग की निवृत्ति करने के अर्थ ( भिषजम् ) वैद्य को ( प्रज्ञानाय ) उत्तम ज्ञान बढ़ाने के अर्थ ( नक्षत्रदर्शम ) नक्षत्रों को देखने वा इनसे उत्तम विषयों को दिखानेहारे गणितज्ञ ज्योतिषी को ( आशिक्षायै ) अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण के लिये ( प्रश्निनम् ) प्रशंसित प्रश्नकर्त्ता को ( उपशिक्षायै ) उपवेदादि विद्या के ग्रहण के लिये ( अभिप्रश्निनम ) सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले को और ( मर्यादायै ) न्याय अन्याय की व्यवस्था के लिये ( प्रश्नविवाकम ) प्रश्नों के विवेचन कर उत्तर देने वाले को उत्पन्न कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे ईश्वर पापाचरण के फल देने से लूले लंगड़े बौने चिपड़े अन्धे बहिरे मनुष्यादि को करता और वैद्य ज्योतिषी अध्यापक परीक्षक तथा प्रश्नोत्तरों के विवेचक के अर्थ श्रेष्ठ कर्मों के फल देने से पवित्रता बुद्धि विद्या के ग्रहण पढ़ने परीक्षा लेने और प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य देता है वैसे ही आप भी जिस जिस अङ्ग से मनुष्य विरुद्ध करते हैं उस उस अङ्ग पर दण्ड मारने और वैद्यादि की प्रतिष्ठा करने से राजधर्म की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥ १० ॥

अर्मेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषि । विद्वान् देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे ईश्वर वा राजन् ! आप ( अर्मेभ्य ) प्राप्ति कराने वालों के लिये ( हस्तिपम् ) हाथियों के रक्षक को ( जवाय ) वेग के अर्थ ( अश्वपम् ) घोड़ों के रक्षक शिक्षक को ( पुष्ट्यै ) पुष्टि रखने के लिये ( गोपालम् ) गौओं के पालनेहारे को ( वीर्याय ) वीर्य बढ़ाने के अर्थ ( अविपालम् ) गड़रिये को ( तेजसे ) तेजवृद्धि के लिये ( अजपालम् ) बकरे बकरियों को ( इराय ) अन्नादि के बढ़ाने के अर्थ ( कीनाशम् ) खेतिहर को ( कीलालाय ) अन्न के लिये ( सुराकारम् ) सोम ओषधियों से रस को निकालने वाले को और ( भद्राय ) कल्याण के अर्थ ( गृहपम् ) घरों के रक्षक को ( श्रेयसे ) धर्म अर्थ और कामना की प्राप्ति के अर्थ ( वित्तधम् ) धन धारण करनेवालों को और ( आध्यक्ष्याय ) अध्यक्षता के स्वत्व के लिये ( अनुक्षत्तारम् ) अनुकूल सारथि को उत्पन्न कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि अच्छे शिक्षित हाथी आदि को रखने वाले पुरुषों का ग्रहण कर इन से बहुत से व्यवहार सिद्ध करें ॥ ११ ॥

भाया इत्यस्य नारायण ऋषि । विद्वान् देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमवऽऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप ( भाय ) दीप्ति के लिये ( दार्वाहारम् ) काष्ठों को पहुँचाने वाले को ( प्रभाय ) कान्ति शोभा के लिये ( अग्न्येधम् ) अग्नि और इन्धन को ( ब्रध्नस्य ) घोड़े के ( विष्टपाय ) मार्ग के अर्थ ( अभिषेक्तारम् ) अभिषेक राज्यतिलक करने वाले को ( वर्षिष्ठाय ) अतिश्रेष्ठ ( नाकाय ) सब दुःखों से रहित सुखविशेष के लिये ( परिवेष्टारम् ) परोसने वाले को ( देवलोकाय ) विद्वानों के दर्शन के लिये ( पेशितारम् ) विद्या के अवयवों को जानने वाले को ( मनुष्यलोकाय ) मनुष्यों के देखने को ( प्रकरितारम् ) विक्षेप करनेवाले को ( सर्वेभ्य ) सब ( लोकेभ्य ) लोकों के लिये ( उपसेक्तारम् ) उपसेचन करनेवाले को ( मेधाय ) सङ्गम के अर्थ ( वासःपल्पूलीम् ) वस्त्रों को शुद्ध करनेवाली ओषधि को और ( प्रकामाय ) उत्तम कामना की सिद्धि के लिये ( रजयित्रीम् ) उत्तम रङ्ग करनेवाली ओषधि को उत्पन्न प्रकट कीजिये और ( अवऋत्यै ) विरुद्ध प्राप्ति जिस में हो उस ( वधाय ) मारने के लिये प्रवृत्त हुए ( उपमन्थितारम् ) ताड़नादि से पीड़ा देने वाले दुष्ट को दूर कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—राजपुरुषादि मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वररचित सृष्टि से सब सामग्रियों का ग्रहण कर उस में शरीर का बल विद्या और न्याय का प्रकाश बढ़ा सुख

राज्य का अभिषेक दुःखों का विनाश विद्वानों का सङ्ग मनुष्यों का स्वभाव वस्त्रादि की पवित्रता अच्छी सिद्ध करें और विरोध को छोड़ें ॥ १२ ॥

ऋतय इत्यस्य नारायण ऋषिः । ईश्वरो देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादं स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥१३॥**

**पदार्थः**—हे परमात्मन् वा राजन् ! आप (**ऋतये**) हिंसा करने के लिये प्रवृत्त हुए (**स्तेनहृदयम्**) चोर के तुल्य छली कपटी को और (**वैरहत्याय**) वैर तथा हत्या जिस कर्म में हो उस के लिये प्रवृत्त हुए (**पिशुनम्**) निन्दक को पृथक् कीजिये । (**विविक्त्यै**) विवेक करने के लिये (**क्षत्तारम्**) ताड़ना से रक्षा करनेहारे धर्मात्मा को (**औपद्रष्ट्र्याय**) उपद्रष्टा होने के लिये (**अनुक्षत्तारम्**) धर्मात्मा के अनुकूलवर्त्ती को (**बलाय**) बल के अर्थ (**अनुचरम्**) सेवक को (**भूम्ने**) सृष्टि की अधिकता के लिये (**परिष्कन्दम्**) सब ओर से वीर्य्य सींचने वाले को (**प्रियाय**) प्रीति के अर्थ (**प्रियवादिनम्**) प्रियवादी को (**अरिष्ट्यै**) कुशलप्राप्ति के लिये (**अश्वसादम्**) घोड़ों के चलाने वाले को (**स्वर्गाय**) सुखविशेष के (**लोकाय**) देखने वा संचित करने के लिये (**भागदुघम्**) अंशों को पूर्ण करने वाले को (**वर्षिष्ठाय**) अतिश्रेष्ठ (**नाकाय**) सब दुःखों से रहित आनन्द के लिये (**परिवेष्टारम्**) सब ओर से व्याप्त विद्या वाले विद्वान् को प्रकट कीजिये ॥ १३ ॥

**भावार्थः**—राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि दुष्टों के सङ्ग को छोड़ श्रेष्ठों का सङ्ग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें ॥ १३ ॥

मन्यव इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारं शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतं शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥**

**पदार्थः**—हे जगदीश्वर वा सभापते राजन् ! आप (**मन्यवे**) आन्तर्य क्रोध के अर्थ प्रवृत्त हुए (**अयस्तापम्**) लोह वा सुवर्ण को तपाने वाले को (**क्रोधाय**) बाह्य क्रोध के लिये प्रवृत्त हुए (**निसरम्**) निश्चित चलने वाले को (**शोकाय**) शोच के लिये प्रवृत्त हुए (**अभिसर्त्तारम्**) सम्मुख चलने वाले को और (**यमाय**) दण्ड देने के लिये प्रवृत्त हुई (**असूम्**) क्रोध से इधर उधर हाथ आदि फेंकने वाली को दूर कीजिये और (**योगाय**) योगाभ्यास के लिये (**योक्तारम्**) योग करनेवाले को (**क्षेमाय**) रक्षा के लिये (**विमोक्तारम्**) दुःख से छुड़ाने वाले को (**उत्कूलनिकूलेभ्यः**) ऊपर नीचे किनारों पर चढ़ाने उतारने के लिये (**त्रिष्ठिनम्**) जल स्थल और आकाश में रहने वाले विमानादि यानों में युक्त पुरुष को (**वपुषे**) शरीररहित के लिये (**मानस्कृतम्**) मन के किये विचारों में प्रवीण को (**शीलाय**) जितेन्द्रियता आदि उत्तम स्वभाव वाले के लिये (**आञ्जनीकारीम्**) प्रसिद्ध क्रियाओं के करनेहारी स्वभाववाली स्त्री को और (**निर्ऋत्यै**) भूमि के लिये (**कोशकारीम्**) कोश का सञ्चय करने वाली स्त्री को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥ १४ ॥

**भावार्थः**—हे राजा आदि मनुष्यो ! जो तपे लोहे के तुल्य क्रोध को प्राप्त हुए औरों को दुःख देने और धर्म नियमों को नष्ट करने वाले हों उनको दण्ड देकर योगाभ्यास करने वाले आदि का सत्कार कर सब जगह सवारी चलाने वालों को इकट्ठा कर तुमको यथावत् सुख बढ़ाना चाहिये ॥ १४ ॥

यमायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् प्रकृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाᳬसंवत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳬसंवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धᳬसाध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥१५॥**

**पदार्थः**—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (**यमाय**) नियमकर्त्ता के लिये (**यमसूम्**) नियन्ताओं को उत्पन्न करनेवाली को (**अथर्वभ्यः**) अहिंसकों के लिये (**अवतोकाम्**) जिसकी सन्तान बाहर निकल गई हो उस स्त्री को (**संवत्सराय**) प्रथम संवत्सर के अर्थ (**पर्य्यायिणीम्**) सब ओर से काल के क्रम को जानने वाली को (**परिवत्सराय**) दूसरे वर्ष के निर्णय के लिये (**अविजाताम्**) ब्रह्मचारिणी कुमारी को (**इदावत्सराय**) तीसरे इदावत्सर में कार्य साधने के अर्थ (**अतीत्वरीम्**) अत्यन्त चलने वाली को (**इद्वत्सराय**) पाँचवें इद्वत्सर के ज्ञान के अर्थ (**अतिष्कद्वरीम्**) अतिशयकर जानने वाली को (**वत्सराय**) सामान्य संवत्सर के लिये (**विजर्जराम्**) वृद्धा स्त्री को (**संवत्सराय**) चौथे अनुवत्सर के लिये (**पलिक्नीम्**) श्वेत केशोंवाली को (**ऋभुभ्यः**) बुद्धिमानों के अर्थ (**अजिनसन्धम्**) नहीं जीतने योग्य पुरुषों से मेल रखने वाले को (**साध्येभ्यः**) और साधन योग्य कार्यों के लिये (**चर्मम्नम्**) विज्ञान शास्त्र का अभ्यास करनेवाले पुरुष को उत्पन्न कीजिये ॥ १५ ॥

**भावार्थः**—प्रभव आदि ६० संवत्सरों में पाँच पाँच कर १२ बारह युग होते हैं उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर परिवत्सर इदावत्सर अनुवत्सर और इद्वत्सर ये पाँच संज्ञा हैं उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को विशेष कर जो स्त्री लोग यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवातीं वे सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त होती हैं ॥ १५ ॥

सरोभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्यऽआन्दं विषमेभ्यो मैनालᳬस्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातᳬसानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥१६॥**

**पदार्थः**—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (**सरोभ्यः**) बड़े तालाबों के लिये (**धैवरम्**) धीवर के लड़के को (**उपस्थावराभ्यः**) समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओं के अर्थ (**दाशम्**) जिसको दिया जावे उस सेवक को (**वैशन्ताभ्यः**) छोटे छोटे जलाशयों के प्रबन्ध के लिये (**बैन्दम्**) निषाद के अपत्य को (**नड्वलाभ्यः**) नरसलवाली भूमि के लिये (**शौष्कलम्**) मच्छियों से जीवने वाले को और (**विषमेभ्यः**) विकट देशों के लिये (**मैनालम्**) कामदेव को रोकने वाले को (**अवाराय**) अपनी ओर आने के लिये (**कैवर्त्तम्**) जल में नौका को इस पार उस पार पहुँचाने वाले को (**तीर्थेभ्यः**) तरने के साधनों के लिये (**आन्दम्**) बाँधने वाले को उत्पन्न कीजिये (**पाराय**) हरिण आदि की चेष्टा को समाप्त करने को प्रवृत्त हुए (**मार्गारम्**) व्याध के पुत्र को (**स्वनेभ्यः**) शब्दों के लिये (**पर्णकम्**) रक्षा करने में निन्दित भील को (**गुहाभ्यः**) गुहाओं के अर्थ (**किरातम्**) बहेलिये को (**सानुभ्यः**) शिखरों पर रहने के लिये प्रवृत्त हुए (**जम्भकम्**) नाश करनेवाले को और (**पर्वतेभ्यः**) पहाड़ों से (**किम्पूरुषम्**) खोटे जंगली मनुष्य को दूर कीजिये ॥ १६ ॥

**भावार्थः**—मनुष्य लोग ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों के अनुकूल कर्मों से कहार आदि की रक्षा कर और बहेलिये आदि हिंसकों को छोड़ के उत्तम सुख पावें ॥ १६ ॥

बीभत्साया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

**बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्याऽअपगल्भᳬसᳬशराय प्रच्छिदम् ॥१७॥**

**पदार्थः**—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (**बीभत्सायै**) धमकाने के लिये प्रवृत्त हुए (**पौल्कसम्**) भंगी के पुत्र को (**पश्चादोषाय**) पीछे दोष देने को प्रवृत्त हुए (**ग्लाविनम्**) हर्ष को नष्ट करने वाले को (**अभूत्यै**) दरिद्रता के अर्थ समर्थ (**स्वपनम्**) सोने को (**व्यृद्ध्यै**) संपत् के बिगाड़ने के अर्थ प्रवृत्त हुए (**अपगल्भम्**) प्रगल्भतारहित पुरुष को तथा (**संशराय**) सम्यक् मारने के लिये प्रवृत्त हुए (**प्रच्छिदम्**) अधिक छेदन करने वाले को पृथक् कीजिये और (**वर्णाय**) सुन्दर रूप बनाने के लिये (**हिरण्यकारम्**) सुनार वा सूर्य्य को (**तुलायै**) तोलने के अर्थ (**वाणिजम्**) बनिये के पुत्र को (**विश्वेभ्यः**) सब (**भूतेभ्यः**) प्राणियों के लिये (**सिध्मलम्**) सुख सिद्ध करने वाले जिसके सहायी हों उस जन को (**भूत्यै**) ऐश्वर्य होने के अर्थ (**जागरणम्**) प्रबोध को और (**आर्त्यै**) पीड़ा की निवृत्ति के लिये (**जनवादिनम्**) मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य वाद विवाद करने वाले उत्तम मनुष्य को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥ १७ ॥

**भावार्थः**—जो मनुष्य नीचों का सङ्ग छोड़ के उत्तम पुरुषों की सङ्गति करते हैं वे सब व्यवहारों की सिद्धि से ऐश्वर्य वाले होते हैं जो अनालसी होके सिद्धि के लिये यत्न करते वे सुखी और जो आलसी होवें वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

अक्षराजायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृत्प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाणऽउपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्य्यं पाप्मने सैलगम् ॥१८॥**

**पदार्थः**—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (**अक्षराजाय**) पासों से खेलने वालों के प्रधान के हितकारी (**कितवम्**) जुआ करने वाले को (**मृत्यवे**) मारने के अर्थ (**गोव्यच्छम्**) गौओं में बुरी चेष्टा करने वाले को (**अन्तकाय**) नाश के अर्थ (**गोघातम्**) गौओं के मारने वाले को (**क्षुधे**) क्षुधा के लिये (**यः**) जो (**गाम्**) गौ को मारता उस (**विकृन्तन्तम्**) काटते हुए को जो (**भिक्षमाणः**) भीख माँगता हुआ (**उपतिष्ठति**) उपस्थित होता है (**दुष्कृताय**) दुष्ट आचरण के लिये प्रवृत्त हुए उस (**चरकाचार्य्यम्**) भक्षण करने वालों के गुरु को (**पाप्मने**)

पापी के हितकारी ( सलगम ) दुष्ट के पुत्र को दूर कीजिये ( कृताय ) किये हुए के अर्थ ( आदिनवदर्शम ) आदि में नवीनों को देखने वाले को ( त्रेताय ) तीन के होने के अर्थ ( कल्पिनम् ) प्रशंसित सामर्थ्य वाले को ( द्वापराय ) दो जिसके इधर सम्बन्धी हों उस के अर्थ ( अधिकल्पिनम ) अधिकतर सामर्थ्ययुक्त को और ( आस्कन्दाय ) अच्छे प्रकार सुखाने के अर्थ ( सभास्थाणुम ) सभा में स्थिर होने वाले को प्रकट वा उत्पन्न कीजिये ॥१८॥

भावार्थ—जो मनुष्य ज्योतिषी आदि सत्याचारियों का सत्कार करते और दुष्टाचारी गोहत्यारे आदि को ताड़ना देते हैं वे राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥१८॥

प्रतिश्रुत्काया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिग्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

**प्रतिश्रुत्काया॑ऽअर्त्तनं घोषा॑य भ॒षमन्ता॑य बहुवा॒दिन॑मन॒न्ताय॒ मूकँ॒ शब्दा॑याडम्बराघा॒तं महसे॑ वीणावा॒दं क्रोशा॑य तूणव॒ध्मम॑वरस्प॒राय॑ शङ्ख॒ध्मं वना॑य व॒नप॒म॒न्यतो॑ऽरण्याय दाव॒पम् ॥१९॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप ( प्रतिश्रुत्काय ) प्रतिज्ञा करने वाली के अर्थ ( अर्त्तनम ) प्राप्ति कराने वाले को ( घोषाय ) घोषणों के लिये ( भषम ) सब ओर से बोलने वाले को ( अन्ताय ) समीप वा मर्य्यादा वाले के लिये ( बहुवादिनम ) बहुत बोलने वाले को ( अनन्ताय ) मर्य्यादा रहित के लिये ( मूकम ) गूंगे को ( महसे ) बड़े के लिये ( वीणावादम ) वीणा बजाने वाले को ( अवरस्पराय ) नीचे के शत्रुओं के अर्थ ( शङ्खध्मम् ) शङ्ख बजाने वाले को और ( वनाय ) वन के लिये ( वनपम ) जङ्गल की रक्षा करने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ( शब्दाय ) शब्द करने को प्रवृत्त हुए ( आडम्बराघातम ) हल्ला गुल्ला करने वाले को ( क्रोशाय ) कोशने को प्रवृत्त हुए ( तूणवध्मम् ) बाजे विशेष को बजाने वाले को ( अन्यतोरण्याय ) अन्य अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि से जहां वन हो उस देश की हानि के लिये ( दावपम् ) वन को जलाने वाले को दूर कीजिये ॥१९॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अपने स्त्री पुरुष आदि के साथ पढ़ाने और संवाद करने आदि व्यवहारों को सिद्ध करें ॥१९॥

नर्मायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगतिजगती छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

**न॒र्माय॑ पुँश्च॒लूँ ह॒साय॒ कारिं॒ याद॑से शाब॒ल्यां ग्राम॒ण्यं॒ गण॑कम॒भिक्रो॒श॑कं॒ तान्मह॑से वीणावा॒दं पा॑णि॒घ्नं तू॑णव॒ध्मं तान्नृ॒त्ताया॑न॒न्दाय॑ तल॒वम् ॥२०॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप ( नर्माय ) क्रीड़ा के लिये प्रवृत्त हुई ( पुंश्चलूम् ) व्यभिचारिणी स्त्री को ( हसाय ) हँसने को प्रवृत्त हुए ( कारिम ) विक्षिप्त पागल को और ( यादसे ) जलजन्तुओं के मारने को प्रवृत्त हुई ( शाबल्याम ) कबरे मनुष्य की कन्या को दूर कीजिये ( ग्रामण्यम ) ग्रामाधीश ( गणकम ) ज्योतिषी और ( अभिक्रोशकम् ) सब ओर से बुलाने वाले जन ( तान् ) इन सब को ( महसे ) सत्कार के अर्थ ( वीणावादम ) वीणा बजाने ( पाणिघ्नम ) हाथों से वादित्र बजाने और ( तूणवध्मम ) तूणव नामक बाजे को बजाने वाले ( तान् ) उन सब को ( नृत्ताय ) नाचने के लिये और ( आनन्दाय ) आनन्द के अर्थ ( तलवम ) ताली आदि बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रसिद्ध कीजिये ॥२०॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि हँसी और व्यभिचारादि दोषों को छोड़ और गाने बजाने नाचने आदि की शिक्षा को प्राप्त होके आनन्दित होवें ॥२०॥

अग्नय इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**अ॒ग्नये॒ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिणं॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒लम॒न्तरि॑क्षाय वꣳशन॒र्तिनं॑ दि॒वे ख॑ल॒तिꣳ सूर्या॑य हर्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः कि॒र्मिरं॑ च॒न्द्रम॑से कि॒लास॒मह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षꣳ रात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम् ॥२१॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप ( अग्नये ) अग्नि के लिये ( पीवानम् ) मोटे पदार्थ को ( पृथिव्यै ) पृथिवी के लिये ( पीठसर्पिणम ) बिना पगों के कुछ कार्य के चलने वाले सांप आदि को ( अन्तरिक्षाय ) आकाश और पृथिवी के बीच में खेलने को ( वंशनर्त्तिनम् ) बांस से नाचने वाले नट आदि को ( सूर्याय ) सूर्य के ताप प्रकाश मिलने के लिये ( हर्यक्षम ) बांदर की सी छोटी आंखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को ( चन्द्रमसे ) चन्द्रमा के तुल्य आनन्द देने के लिये ( किलासम् ) थोड़े श्वेतवर्ण वाले को और ( अह्ने ) दिन के लिये ( शुक्लम् ) शुद्ध ( पिङ्गलम् ) पीली आंखों वाले को उत्पन्न कीजिये ( वायवे ) वायु के स्पर्श के अर्थ ( चाण्डालम् ) भंगी को ( दिवे ) क्रीड़ा के अर्थ प्रवृत्त हुए ( खलतिम ) गंजे को ( नक्षत्रेभ्य ) राज्य विरोध के लिये प्रवृत्त हुओं के लिये ( किर्मिरम ) कबरे को और ( रात्र्यै ) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए ( कृष्णम ) काले रंग वाले ( पिङ्गाक्षम ) पीले नेत्रों से युक्त पुरुष को दूर कीजिये ॥२१॥

भावार्थ—अग्नि स्थूल पदार्थों के जलाने को समर्थ होता है सूक्ष्म को नहीं। पृथिवी पर निरन्तर सर्पादि फिरते हैं किन्तु पक्षी आदि नहीं। भङ्गी के शरीर में आया वायु दुर्गन्धयुक्त होने से सेवन योग्य नहीं होता इत्यादि तात्पर्य जानना चाहिये ॥२१॥

अथैतानित्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृत्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**अथै॒तान॒ष्टौ विरू॑पा॒ना ल॑भ॒तेऽति॑दीर्घं॒ चाति॑ह्रस्वं॒ चाति॑स्थूलं॒ चाति॑कृशं॒ चाति॑शुक्लं॒ चाति॑कृष्णं॒ चाति॑कुल्वं॒ चाति॑लोमशं च । अशू॑द्रा॒ऽअब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः । मा॒ग॒धः पुँ॒श्च॒ली कि॑त॒वः क्ली॒बोऽशू॑द्रा॒ऽअब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः ॥२२॥**

पदार्थ—हे राजा लोगो ! जैसे विद्वान् ( अतिदीर्घम ) बहुत बड़े ( च ) और ( अतिह्रस्वम ) बहुत छोटे ( च ) और ( अतिस्थूलम ) बहुत मोटे ( च ) और ( अतिकृशम ) बहुत पतले ( च ) और ( अतिशुक्लम ) अतिश्वेत ( च ) और ( अतिकृष्णम ) बहुत काले ( च ) और ( अतिकुल्वम ) लोमरहित ( च ) और ( अतिलोमशम ) बहुत लोमों वाले को ( च ) भी ( एतान् ) इन ( विरूपान् ) अनेक प्रकार के रूपों वाले ( अष्टौ ) आठों को ( आ लभते ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम लोग भी प्राप्त होओ ( अथ ) इसके अनन्तर जो ( अशूद्रा ) शूद्रभिन्न ( अब्राह्मणा ) तथा ब्राह्मणभिन्न ( प्राजापत्या ) प्रजापति देवता वाले हैं ( ते ) वे भी प्राप्त हों जो ( मागध ) मनुष्यों में निन्दित जो ( पुंश्चली ) व्यभिचारिणी ( कितव ) जुआरी ( क्लीब ) नपुंसक ( अशूद्रा ) जिनमें शूद्र और ( अब्राह्मणा ) ब्राह्मण नहीं उन को दूर बसाना चाहिये और जो ( प्राजापत्या ) राजा वा ईश्वर के सम्बन्धी हैं ( ते ) वे समीप में बसने चाहियें ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग छोटे बड़े पदार्थों को जान के यथायोग्य व्यवहार को सिद्ध करते हैं वैसे और लोग भी करें। सब लोगों को चाहिये कि प्रजा के रक्षक ईश्वर और राजा की आज्ञा सेवन तथा उपासना नित्य किया करें ॥२२॥

इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।

यह तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

卐

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथैकत्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः 卐

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

सहस्रशीर्षेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*अब इकतीसवें अध्याय का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में परमात्मा की उपासना स्तुतिपूर्वक सृष्टिविद्या के विषय को कहते हैं—*

**सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।**
**स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **सहस्रशीर्षा** ) सब प्राणियों के हजारों शिर ( **सहस्राक्ष** ) हजारों नेत्र और ( **सहस्रपात** ) असंख्य पाद जिसके बीच में हैं ऐसा ( **पुरुष** ) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर है ( **स** ) वह ( **सर्वत** ) सब देशों से ( **भूमिम्** ) भूगोल में ( **स्पृत्वा** ) सब ओर से व्याप्त हो के ( **दशाङ्गुलम्** ) पांच स्थूल भूत पांच सूक्ष्म भूत ये दश जिसके अवयव हैं उस सब जगत् को ( **अति, अतिष्ठत** ) उल्लंघकर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है ॥ १ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर आंख और पग आदि अवयव हैं जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहां जगत् नहीं वहां भी पूर्ण हो रहा है उस सब जगत् के बनानेवाले परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य की उपासना तुम कभी न करो किन्तु उस ईश्वर की उपासना से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त करो ॥ १ ॥

पुरुष इत्यस्य नारायण ऋषिः । ईशानो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**पुरुषऽएवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।**
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **यत** ) जो ( **भूतम्** ) उत्पन्न हुआ ( **च** ) और ( **यत्** ) जो ( **भाव्यम्** ) उत्पन्न होने वाला ( **उत** ) और ( **यत्** ) जो ( **अन्नेन** ) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से ( **अतिरोहति** ) अत्यन्त बढ़ता है उस ( **इदम्** ) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप ( **सर्वम्** ) समस्त जगत् को ( **अमृतत्वस्य** ) अविनाशी मोक्षसुख का कारण का ( **ईशान** ) अधिष्ठाता ( **पुरुष** ) सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा ( **एव** ) ही रचता है ॥ २ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने जब जब सृष्टि हुई तब तब रची इस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा । जिसके आधार से सब वर्त्तमान है और बढ़ता है उसी सब के स्वामी परमात्मा की उपासना करो इससे भिन्न की नहीं ॥ २ ॥

एतावानित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**एतावानस्य महिमातो ज्यायाꣳश्च पूरुषः ।**
**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **अस्य** ) इस जगदीश्वर का ( **एतावान्** ) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड ( **महिमा** ) महत्त्वसूचक है ( **अत** ) इस ब्रह्माण्ड से यह ( **पुरुष** ) परिपूर्ण परमात्मा ( **ज्यायान्** ) अति प्रशंसित और बड़ा है ( **च** ) और ( **अस्य** ) इस ईश्वर के ( **विश्वा** ) सब ( **भूतानि** ) पृथिव्यादि चराचर जगत् एक ( **पाद** ) अंश है और ( **अस्य** ) इस जगत्स्रष्टा का ( **त्रिपाद्** ) तीन अंश ( **अमृतम्** ) नाश रहित महिमा ( **दिवि** ) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है ॥

**भावार्थ**—यह सब सूर्य्य चन्द्रादि लोकलोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक चतुर्थांश में ही रहता किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता । और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशि मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं । इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्त्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ॥ ३ ॥

त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।**
**ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥४॥**

**पदार्थ**—पूर्वोक्त ( **त्रिपात्** ) तीन अंशों वाला ( **पुरुष** ) पालक परमेश्वर ( **ऊर्ध्व** ) सब से उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक् ( **उत्, ऐत** ) उदय को प्राप्त होता है ( **अस्य** ) इस पुरुष का ( **पाद** ) एक भाग ( **इह** ) इस जगत् में ( **पुन** ) वार वार उत्पत्ति प्रलय के चक्र से ( **अभवत** ) होता है ( **तत** ) इसके अनन्तर ( **साशनानशने** ) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के ( **अभि** ) प्रति ( **विष्वङ्** ) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ ( **वि, अक्रामत** ) विशेष कर व्याप्त होता है ॥४॥

**भावार्थ**—यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को वार वार उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है ॥ ४ ॥

ततो विराडित्यस्य नारायण ऋषिः । स्रष्टा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः ।**
**स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **तत** ) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से ( **विराट** ) विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार ( **अजायत** ) उत्पन्न होता ( **विराज** ) विराट् संसार के ( **अधि** ) ऊपर अधिष्ठाता ( **पुरुष** ) परिपूर्ण परमात्मा होता है ( **अथो** ) इसके अनन्तर ( **स** ) वह पुरुष ( **पुर** ) पहिले से ( **जात** ) प्रसिद्ध हुआ ( **अति अरिच्यत** ) जगत् से अतिरिक्त होता है ( **पश्चात्** ) पीछे ( **भूमिम्** ) पृथिवी को उत्पन्न करता है उसको जानो ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है वह उस जगत् से पृथक् उसमें व्याप्त भी हुआ उसके दोषों से लिप्त न होके इस सब का अधिष्ठाता है । इस प्रकार सामान्य कर जगत् की रचना कह के विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं ॥ ५ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।**
**पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **तस्मात्** ) उस पूर्वोक्त ( **सर्वहुत** ) जो सब से ग्रहण किया जाता उस ( **यज्ञात्** ) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब ( **पृषदाज्यम्** ) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु ( **सम्भृतम्** ) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ ( **ये** ) जो ( **आरण्या** ) वन के सिंह आदि ( **च** ) और ( **ग्राम्या** ) ग्राम में हुए गौ आदि हैं ( **तान्** ) उन ( **वायव्यान्** ) वायु के तुल्य गुणों वाले ( **पशून्** ) पशुओं को जो ( **चक्रे** ) उत्पन्न करता है उसको तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—जिस सब को ग्रहण करने योग्य पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत् के हित के लिये दही आदि भोगने योग्य पदार्थों और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं उसकी सब लोग उपासना करो ॥ ६ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । स्रष्टेश्वरो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।**
**छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि ( **तस्मात** ) उस पूर्ण ( **यज्ञात्** ) अत्यन्त पूजनीय ( **सर्वहुत** ) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से ( **ऋच** ) ऋग्वेद ( **सामानि** ) सामवेद ( **जज्ञिरे** ) उत्पन्न होते ( **तस्मात** ) उस परमात्मा से ( **छन्दांसि** ) अथर्ववेद ( **जज्ञिरे** ) उत्पन्न होता और ( **तस्मात** ) उस पुरुष से ( **यजु** ) यजुर्वेद ( **अजायत** ) उत्पन्न होता है उसको जानो ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं उस परमात्मा की उपासना करो । वेदों को पढ़ो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी होओ ॥ ७ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

**तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादत. ।**
**गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम जो ( अश्वा ) घोडे तथा ( ये ) जो ( के ) कोई ( च ) गदहा आदि ( उभयादत ) दोनों ओर ऊपर नीचे दांतों वाले हैं वे ( तस्मात ) उस परमेश्वर से ( अजायन्त ) उत्पन्न हुए ( तस्मात ) उसी से ( गाव ) गौ [ यह एक ओर दांतवालों का उपलक्षण है इससे अन्य भी एक ओर दांतवाले लिये जाते है ] ( ह ) निश्चय कर ( जज्ञिरे ) उत्पन्न हुए और ( तस्मात ) उससे ( अजावय ) बकरी भेड ( जाता ) उत्पन्न हुए है इस प्रकार जानना चाहिये ॥८॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग गौ घोडे आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरुष परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन कभी मत करो ॥ ८ ॥

त यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

**त यज्ञ बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुष जातमग्रतः ।**
**तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये ॥९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो ( देवा ) विद्वान् ( च ) और ( साध्या ) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए ( ऋषय ) मन्त्रार्थ जाननेवाले ज्ञानी लोग जिस ( अग्रत ) सृष्टि से पूर्व ( जातम् ) प्रसिद्ध हुए ( यज्ञम् ) सम्यक् पूजने योग्य ( पुरुषम् ) पूर्ण परमात्मा को ( बर्हिषि ) मानस ज्ञान यज्ञ मे ( प्र औक्षन् ) सींचते अर्थात् धारण करते हैं वे ही ( तेन ) उसके उपदेश किये हुए वेद से और ( अयजन्त ) उसका पूजन करते है ( तम् ) उसको तुम लोग भी जानो ॥९॥

**भावार्थ**—विद्वान् मनुष्यो को चाहिये कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश मे ध्यान और पूजन किया करें ॥९॥

यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।**
**मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! आप ( यत ) जिस ( पुरुषम ) पूर्ण परमेश्वर को ( वि, अदधु ) विविध प्रकार से धारण करते हो उसको ( कतिधा ) कितने प्रकार से ( वि अकल्पयन् ) विशेषकर कहते है और ( अस्य ) इस ईश्वर की सृष्टि मे ( मुखम ) मुख के समान श्रेष्ठ ( किम् ) कौन ( आसीत ) है ( बाहू ) भुजबल का धारण करने वाला ( किम् ) कौन ( ऊरू ) घोटू के कार्य्य करनेहारे और ( पादौ ) पांव के समान नीच ( किम् ) कौन ( उच्यते ) कहे जाते हैं ॥१०॥

**भावार्थ**—हे विद्वानो ! इस संसार मे असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का है उस समुदाय मे उत्तम अङ्ग मुख और बाहू आदि अङ्ग कौन है ? यह कहिये ॥१०॥

ब्राह्मण इत्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृत ।**
**ऊरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्या शूद्रोऽअजायत ॥११॥**

**पदार्थ**—हे जिज्ञासु लोगो ! तुम ( अस्य ) इस ईश्वर की सृष्टि मे ( ब्राह्मण ) वेद ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक वा उपासक ( मुखम ) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण ( आसीत ) है ( बाहू ) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त ( राजन्य ) राजपूत ( कृत ) किया ( यत् ) जो ( ऊरू ) जांघों के तुल्य वेगादि काम करने वाला ( तत ) वह ( अस्य ) इसका ( वैश्य ) सर्वत्र प्रवेश करनेहारा वैश्य है ( पद्भ्याम ) सेवा और अभिमान रहित होने से ( शूद्र ) मूर्खपन आदि गुणो से युक्त शूद्र ( अजायत ) उत्पन्न हुआ ये उत्तर क्रम से जानो ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणो मे मुख के तुल्य उत्तम हो वे ब्राह्मण जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्य्यों को सिद्ध करनेहारे हो वे क्षत्रिय जो व्यवहार विद्या मे प्रवीण हो वे वैश्य और जो सेवा मे प्रवीण विद्याहीन पगो के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त है वे शूद्र करने और मानने चाहियें ।११।

चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।**
**श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! इस पूर्ण ब्रह्म के ( मनस ) ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से ( चन्द्रमा ) चन्द्रलोक ( जात ) उत्पन्न हुआ ( चक्षो ) ज्योति स्वरूप सामर्थ्य से ( सूर्य्य ) सूर्यमण्डल ( अजायत ) उत्पन्न हुआ ( श्रोत्रात ) श्रोत्र नाम अवकाशरूप सामर्थ्य से ( वायु ) वायु ( च ) तथा आकाश प्रदेश ( च ) और ( प्राण ) जीवन के निमित्त दश प्राण और ( मुखात ) मुख्य ज्योतिर्मय भक्षणस्वरूप सामर्थ्य से ( अग्नि ) अग्नि ( अजायत ) उत्पन्न हुआ है ऐसा तुम को जानना चाहिये ॥१२।

**भावार्थ**—जो यह सब जगत् कारण से ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसमे चन्द्रलोक मनरूप सूर्य्यलोक नेत्ररूप वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य मुख के तुल्य अग्नि ओषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य नदी नाडियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं ऐसा जानना चाहिये ॥१२॥

नाभ्या इत्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।**
**पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्पयन् ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे इस पुरुष परमेश्वर के ( नाभ्या ) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से ( अन्तरिक्षम् ) लोकों के बीच का आकाश ( आसीत ) हुआ ( शीर्ष्ण ) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से ( द्यौ ) प्रकाशयुक्त लोक ( पद्भ्याम् ) पृथिवी के कारणरूप सामर्थ्य से ( भूमि ) पृथिवी ( सम् अवर्त्तत ) सम्यक् वर्त्तमान हुई और ( श्रोत्रात ) अवकाशरूप सामर्थ्य से ( दिश ) पूर्व आदि दिशाओं को ( अकल्पयन् ) कल्पना करते हैं ( तथा ) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य ( लोकान् ) लोकों को उत्पन्न हुए जानो ॥१३॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो जो इस सृष्टि मे कार्यरूप वस्तु है वह वह सब विराट्रूप कार्यकारण का अवयवरूप है ऐसा जानना चाहिये ॥१३॥

यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।**
**वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यत ) जब ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य ( पुरुषेण ) पूर्ण परमात्मा के साथ ( देवा ) विद्वान् लोग ( यज्ञम ) मानसज्ञान यज्ञ को ( अतन्वत ) विस्तृत करते है ( अस्य ) इस यज्ञ के ( वसन्त ) पूर्वाह्ण काल ही ( आज्यम् ) घी ( ग्रीष्म ) मध्याह्न काल ( इध्म ) इन्धन प्रकाशक और ( शरत ) आधी रात ( हवि ) होमने योग्य पदार्थ ( आसीत ) है । ऐसा जानो ॥१४॥

**भावार्थ**—जब बाह्य सामग्री के अभाव मे विद्वान् लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासनारूप मानस ज्ञान यज्ञ का विस्तृत करें तब पूर्वाह्ण आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिये ॥१४।

सप्तास्येत्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।**
**देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यत ) जिस ( यज्ञम ) मानस ज्ञान यज्ञ को ( तन्वाना ) विस्तृत करते हुए ( देवा ) विद्वान् लोग ( पशुम ) जानने योग्य ( पुरुषम ) परमात्मा को हृदय मे ( अबध्नन् ) बांधते है ( अस्य ) इस यज्ञ के ( सप्त ) सात गायत्री आदि छन्द ( परिधय ) चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान ( आसन् ) हैं ( त्रि, सप्त ) इक्कीस अर्थात् प्रकृति महत्तत्त्व, अहङ्कार पांच सूक्ष्मभूत पांच स्थूलभूत पांच ज्ञानेन्द्रिय और सत्त्व रजस तमस् तीन गुण ये ( समिध ) सामग्री रूप ( कृता ) किये उस यज्ञ को यथावत् जानो ॥१५॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को कर उससे पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध करो ॥१५॥

यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषि । पुरुषो देवता । विराट त्रिष्टुप छन्द । धैवतः स्वर ॥

**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।**
**ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( देवा ) विद्वान् लोग ( यज्ञेन ) पूर्वोक्त ज्ञान यज्ञ से ( यज्ञम् ) पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वि ईश्वर की ( अयजन्त ) पूजा करते हैं ( तानि ) वे ईश्वर की पूजा आदि ( धर्माणि ) धारणारूप धर्म ( प्रथमानि ) अनादि रूप से मुख्य ( आसन् ) हैं ( ते ) वे विद्वान् ( महिमान ) महत्त्व से युक्त हुए ( यत्र ) जिस सुख मे ( पूर्वे ) इस समय से पूर्व हुए ( साध्या ) साधनों को किये हुए ( देवा ) प्रकाशमान विद्वान् ( सन्ति ) हैं उस ( नाकम् ) सब दुःखरहित मुक्ति सुख को ( ह ) ही ( सचन्त ) प्राप्त होते हैं उसको तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१६॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना करें इस अनादिकाल से प्रवृत्त धर्म से मुक्तिसुख को पाके पहिले मुक्त हुए विद्वानों के समान आनन्द भोगें ॥१६॥

अद्भ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि । आदित्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

**अद्भ्यः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै रसा॑च्च वि॒श्वक॑र्मणः॒ सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ ।**
**तस्य॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रू॒पमे॑ति॒ तन्मर्त्य॑स्य दे॒वत्व॑मा॒जान॒मग्रे॑ ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्या ! जो ( **अद्भ्य** ) जलो ( **पृथिव्यै** ) पृथिवी (**च**) और ( **विश्वकर्मण** ) सब कर्म जिसके आश्रय से होते उस सूर्य से ( **सम्भृत** ) सम्यक पुष्ट हुआ उस ( **रसात्** ) रस से ( **अग्रे** ) पहिले यह सब जगत् ( **सम अवर्त्तत** ) वर्त्तमान होता है ( **तस्य** ) उस इस जगत् के (**तत्**) उस (**रूपम**) स्वरूप को (**त्वष्टा**) सूक्ष्म करने वाला ईश्वर ( **विदधत** ) विधान करता हुआ ( **अग्र**) आदि मे (**मर्त्यस्य**) मनुष्य के ( **आजानम्** ) अच्छे प्रकार कर्त्तव्य कर्म और ( **देवत्वम** ) विद्वत्ता को ( **एति** ) प्राप्त होता है ॥१७॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण कार्य करने हारा परमेश्वर कारण से कार्य बनाता है सब जगत् के शरीरो के रूपो को बनाता है उसका ज्ञान और उसकी आज्ञा का पालन ही देवत्व है ऐसा जानो ॥१७॥

वेदाहमित्यस्योत्तरनारायण ऋषि । आदित्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वरः ॥

*अब विद्वान् जिज्ञासु के लिये कैसा उपदेश करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है —*

**वेदा॒हमे॒तं पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्णं॒ तम॑सः प॒रस्ता॑त् ।**
**तमे॒व वि॑दि॒त्वाति॑ मृ॒त्युमे॑ति॒ नान्यः पन्था॑ वि॒द्यतेऽय॑नाय ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे जिज्ञासु पुरुष ! ( **अहम** ) मै जिस ( **एतम्** ) इस पूर्वोक्त ( **महान्तम** ) बडे २ गुणो से युक्त ( **आदित्यवर्णम** ) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप ( **तमस** ) अन्धकार वा अज्ञान से ( **परस्तात** ) पृथक वर्त्तमान ( **पुरुषम्**) स्वस्वरूप से सवत्र पूर्ण परमात्मा को ( **वेद** ) जानता हूँ ( **तम्, एव** ) उसी को ( **विदित्वा** ) जान के आप ( **मृत्युम्** ) दुःखदायी मरण को ( **अति एति** ) उल्लङ्घन कर जाते हो किन्तु ( **अन्य** ) इस से भिन्न ( **पन्था** ) मार्ग ( **अयनाय**) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये ( **न, विद्यते** ) नही विद्यमान है ॥१८॥

**भावार्थ**—यदि मनुष्य इस लोक परलोक के सुखो की इच्छा करें तो सब से अति बडे स्वयंप्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक वर्त्तमान परमात्मा को जान के ही मरणादि अथाह दुःखसागर से पृथक हो सकते हैं यही सुखदायी मार्ग है इससे भिन्न कोई भी मनुष्यो की मुक्ति का मार्ग नही है ॥ १८ ॥

प्रजापतिरित्यस्योत्तरनारायण ऋषि । आदित्यो देवता । भुरिकत्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्र॒जाप॑तिश्चरति॒ गर्भे॑ऽअ॒न्तरजा॑यमानो बहु॒धा वि जा॑यते ।**
**तस्य॒ योनिं॒ परि॑ पश्यन्ति॒ धीरा॒स्तस्मि॑न्ह तस्थु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **अजायमान** ) अपने स्वरूप से उत्पन्न नही होने वाला ( **प्रजापति** ) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर ( **गर्भे** ) गर्भस्थ जीवात्मा और ( **अन्त** ) सब के हृदय में ( **चरति** ) विचरता है और ( **बहुधा** ) बहुत प्रकारो से ( **वि, जायते** ) विशेषकर प्रकट होता ( **तस्य** ) उस प्रजापति के जिस ( **योनिम्** ) स्वरूप को ( **धीरा** ) ध्यानशील विद्वान् जन ( **परि पश्यन्ति** ) सब ओर से देखते हैं ( **तस्मिन्** ) उसमे ( **ह** ) प्रसिद्ध ( **विश्वा** ) सब ( **भुवनानि** ) लोक लोकान्तर ( **तस्थु** ) स्थित हैं ॥ १९ ॥

**भावार्थ**—जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमे प्रविष्ट हो के सवत्र विचरता है जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते है उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यो को आनन्द भोगना चाहिये ॥ १९ ॥

यो देवेभ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि । सूर्यो देवता । अनुष्टुपछन्द । गान्धार स्वर ॥

अब सूर्य कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**यो दे॒वेभ्य॑ऽआ॒तप॑ति॒ यो दे॒वानां॑ पु॒रोहि॑तः ।**
**पूर्वो॒ यो दे॒वेभ्यो॑ जा॒तो नमो॑ रु॒चाय॒ ब्राह्म॑ये ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्या ! ( **य** ) जो सूर्यलोक ( **देवेभ्य** ) उत्तम गुणो वाले पृथिवी आदि के अर्थ ( **आतपति** ) अच्छे प्रकार तपता है ( **य** ) जो ( **देवानाम्** ) पृथिवी आदि लोको के ( **पुरोहित** ) प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया ( **य** ) जो ( **देवेभ्य** ) पृथिवी आदि से ( **पूर्व** ) प्रथम ( **जात** ) उत्पन्न हुआ उस ( **रुचाय**) रुचि कराने वाले ( **ब्राह्मये** ) परमेश्वर के सन्तान के तुल्य सूर्य्य से ( **नम** ) अन्न उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सब के हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य्य को बनाया है उसी परमेश्वर की उपासना करो ॥२०॥

रुचमित्यस्योत्तरनारायण ऋषि । विश्वेदेवा देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब विद्वानों का कृत्य कहते हैं—*

**रु॒चं ब्रा॒ह्मं ज॒नय॑न्तो दे॒वाऽअग्रे॒ तद॑ब्रुवन् ।**
**यस्त्वै॒वं ब्रा॑ह्म॒णो वि॒द्यात्तस्य॑ दे॒वाऽअ॑स॒न्वशे॑ ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष ! जो ( **रुचम** ) रुचिकारक ( **ब्राह्मम्** ) ब्रह्म के उपासक ( **त्वा** ) आप को ( **जनयन्त** ) सम्पन्न करते हुए ( **देवा** ) विद्वान् लोग ( **अग्रे** ) पहिले ( **तत्** ) ब्रह्म जीव और प्रकृति के स्वरूप को ( **अब्रुवन्** ) कहें ( **य** ) जो ( **ब्राह्मण** ) ब्राह्मण ( **एवम्** ) ऐसे ( **विद्यात** ) जाने ( **तस्य** ) उसके वे ( **देवा** ) विद्वान् ( **वशे** ) वश मे ( **असन्** ) हो ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—यही विद्वानों का पहिला कर्त्तव्य है कि जो वेद ईश्वर और धर्मादि मे रुचि उपदेश अध्यापन धर्मात्मता जितेन्द्रियता शरीर और आत्मा के बल को बढाना ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

श्रीश्च त इत्यस्योत्तरनारायणऋषि । आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**श्रीश्च॑ ते ल॒क्ष्मीश्च॒ पत्न्या॑वहोरा॒त्रे पा॒र्श्वे नक्ष॑त्राणि रू॒पम॒श्विनौ॒ व्यात्त॑म् । इ॒ष्णन्नि॑षाणा॒मुं म॑ऽइषाण सर्वलो॒कं म॑ऽइषाण ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! जिस ( **ते** ) आप की ( **श्री** ) समग्र शोभा ( **च** ) और ( **लक्ष्मी** ) सब ऐश्वर्य ( **च** ) भी ( **पत्न्यौ** ) दो स्त्रियो के तुल्य वर्त्तमान ( **अहोरात्रे** ) दिन रात ( **पार्श्वे** ) आगे पीछे जिस आप की सृष्टि में ( **अश्विनौ** ) सूर्य चन्द्रमा ( **व्यात्तम्** ) फैले मुख के समान ( **नक्षत्राणि** ) नक्षत्र ( **रूपम्** ) रूप वाले है सो आप ( **मे** ) मेरे ( **अमुम्** ) परोक्ष सुख को ( **इष्णन्** ) चाहते हुए ( **इषाण** ) चाहना कीजिये ( **मे** ) मेरे लिये ( **सर्वलोकम** ) सब के दर्शन को ( **इषाण** ) प्राप्त कीजिये मेरे लिये सब सुखो को ( **इषाण** ) पहुँचाइये ॥ २२ ॥

**भावार्थ**—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण व्याप्ति कृपा पुरुषार्थ सत्य रचना और सत्य नियम है वैसे ही तुम लोगों के भी हों जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढे ॥ २२ ॥

**इस अध्याय मे ईश्वर सृष्टि और राजा के गुणो का वर्णन होने से इस अध्याय से कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥**

**इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतपरमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वती स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# अथ द्वात्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

तदेवेत्यस्य स्वयम्भुब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। अनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

*अब बत्तीसवें अध्याय का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर कैसा है इस विषय को कहा है—*

**तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।**
**तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (तत्) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी सनातन अनादि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव न्यायकारी, दयालु जगत् का स्रष्टा धारणकर्त्ता और सब का अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (वायुः) अनन्त बलवान् और सब का धर्त्ता होने से वायु (तत्) वह (चन्द्रमाः) आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा (तत् एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो ॥१॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के ये अग्नि आदि गौण नाम हैं वैसे और भी इन्द्रादि नाम हैं उसी की उपासना फल वाली है ऐसा जानो ॥ १ ॥

सर्व इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। अनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।**
**नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस (विद्युतः) विशेषकर प्रकाशमान (पुरुषात्) पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) निमेष कलाकाष्ठा आदि काल के अवयव (अधि जज्ञिरे) अधिकतर उत्पन्न होते हैं उस (एनम्) इस परमात्मा को कोई भी (न) न (ऊर्ध्वम्) ऊपर (न) न (तिर्यञ्चम्) तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे और (न) न (मध्ये) बीच में (परि जग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है उसको तुम सेवो ॥ २ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिसके रचने से सब काल के अवयव उत्पन्न हुए और जो ऊपर नीचे बीच में पीछे दूर समीप कहा नहीं जा सकता जो सर्वत्र पूर्ण ब्रह्म है उस को योगाभ्यास से जान के सब आप लोग उपासना करो ॥ २ ॥

न तस्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। हिरण्यगर्भः परमात्मा देवता।
निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

**न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः।**
**हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जातऽइत्येषः ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिसका (महत्) पूज्य बड़ा (यशः) कीर्ति करनेहारा धर्मयुक्त कर्म का आचरण ही (नाम) नामस्मरण है जो (हिरण्यगर्भः) सूर्य बिजुली आदि पदार्थों का आधार (इति) इस प्रकार (एषः) अन्तर्यामी होने से प्रत्यक्ष जिस की (मा) मुझ को (मा, हिंसीत्) मत ताड़ना दे वा वह अपने से मुझ को विमुख मत करे (इति) इस प्रकार (एषा) यह प्रार्थना वा बुद्धि और (यस्मात्) जिस कारण (न) नहीं (जातः) उत्पन्न हुआ (इति) इस प्रकार (एषः) यह परमात्मा उपासना के योग्य है। (तस्य) उस परमेश्वर की (प्रतिमा) प्रतिमा परिमाण उसके तुल्य अवधि का साधन प्रतिकृति मूर्ति वा आकृति (न, अस्ति) नहीं है। अथवा द्वितीय पक्ष यह है कि (हिरण्यगर्भ०) इस पच्चीसवें अध्याय में १० मन्त्र से १३ मन्त्र तक का (इति, एष) यह कहा हुआ अनुवाक (मा, मा, हिंसीत् इति) इसी प्रकार (एषा) यह ऋचा बारहवें अध्याय की १०२ मन्त्र है और (यस्मान्न जात इत्येष०) यह आठवें अध्याय के ३६, ३७ दो मन्त्र का अनुवाक (यस्य) जिस परमेश्वर का (नाम) प्रसिद्ध (महत्) महती (यशः) कीर्ति है (तस्य) उस का (प्रतिमा) प्रतिबिम्ब (तस्वीर) नहीं है ॥३॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो कभी देहधारी नहीं होता जिस का कुछ भी परिमाण सीमा का कारण नहीं है जिसकी आज्ञा का पालन ही नामस्मरण है जो उपासना किया हुआ अपने उपासकों पर अनुग्रह करता है वेदों के अनेक स्थलों में जिस का महत्त्व कहा गया है जो नहीं मरता न विकृत होता न नष्ट होता उसी की उपासना निरन्तर करो जो इससे भिन्न की उपासना करोगे तो इस महान् पाप से युक्त हुए आप लोग दुःख क्लेशों से नष्ट होओगे ॥ ३ ॥

एष इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। आत्मा देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

**एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः सऽउ गर्भेऽअन्तः।**
**सऽएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४॥**

**पदार्थ**—हे (जनाः) विद्वानो ! (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध परमात्मा (देवः) उत्तम स्वरूप (सर्वाः) सब दिशा और (प्रदिशः) विदिशाओं को (अनु) अनुकूलता से व्याप्त होके (स उ) वही (गर्भे) अन्तःकरण के (अन्तः) बीच (पूर्वः) प्रथम कल्प के आदि में (ह) प्रसिद्ध (जातः) प्रकटता को प्राप्त हुआ (स एव) वही (जातः) प्रसिद्ध हुआ (सः) वह (जनिष्यमाणः) आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा (सर्वतोमुखः) सब ओर से मुखादि अवयवों वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ (तिष्ठति) अचल सर्वत्र स्थिर है। वही तुम लोगों को उपासना करने और जानने योग्य है ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—यह पूर्वोक्त ईश्वर जगत् को उत्पन्न कर प्रकाशित हुआ सब दिशाओं में व्याप्त हो के इन्द्रियों के विना सब इन्द्रियों के काम सर्वत्र व्याप्त होने से करता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है वह भूत भविष्यत् कल्पों में जगत् की उत्पत्ति के लिये पहिले प्रगट होता है वह ध्यानशील मनुष्य के जानने योग्य है अन्य के जानने योग्य नहीं है ॥ ४ ॥

यस्मादित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमेश्वरो देवता। भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

**यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा।**
**प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (यस्मात्) जिस परमेश्वर से (पुरा) पहिले (किम् चन) कुछ भी (न जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ (यः) जो सब ओर (आबभूव) अच्छे प्रकार से वर्त्तमान है जिसमें (विश्वा) सब (भुवनानि) वस्तुओं के आधार सब लोक वर्त्तमान हैं (स एव) वही (षोडशी) सोलह कला वाला (प्रजया) प्रजा के साथ (सम् रराणः) सम्यक् रमण करता हुआ (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक अधिष्ठाता (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) तेजोमय बिजुली सूर्य्य चन्द्रमारूप प्रकाशक ज्योतियों को (सचते) संयुक्त करता है ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—जिससे ईश्वर अनादि है इस कारण उससे पहिले कुछ भी नहीं हो सकता वही सब प्रजाओं में व्याप्त जीवों के कर्मों को देखता और उनके अनुकूल फल देता हुआ न्याय करता है जिसने प्राण आदि सोलह वस्तुओं को बनाया है इससे वह षोडशी कहाता है (प्राण श्रद्धा आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी इन्द्रिय, मन अन्न वीर्य तप, मन्त्र कर्म लोक और नाम) ये षोडश कला प्रश्नोपनिषद् में हैं यह सब षोडश वस्तुरूप जगत् परमात्मा में है उसी ने बनाया और वही पालन करता है ॥ ५ ॥

येनेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

**येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।**
**योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (येन) जगदीश्वर ने (उग्रा) तीव्र तेज वाले (द्यौः) प्रकाशयुक्त सूर्य्यादि पदार्थ (च) और (पृथिवी) भूमि (दृढा) दृढ़ की है (येन) जिसने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया (येन) जिसने (नाकः) सब दुःखों से रहित मोक्ष धारण किया (यः) जो (अन्तरिक्षे) मध्यवर्त्ती आकाश में वर्त्तमान (रजसः) लोक समूह का (विमानः) विविध मान करने वाला उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) स्वयं प्रकाशमान सकल सुखदाता ईश्वर के लिये हम लोग (हविषा) प्रेम भक्ति से (विधेम) सेवाकारी वा प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो समस्त जगत् का धर्त्ता सब सुखों का दाता मुक्ति का साधक आकाश के तुल्य व्यापक परमेश्वर है उसी की भक्ति करो ॥ ६ ॥

य क्रन्दसीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि । परमात्मा देवता । स्वराडतिजगती छन्द ॥
निषाद स्वर ॥

यं क्रन्दसीऽअवसा तस्तभानेऽअभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूरऽउदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदापः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यम् ) जिस परमात्मा को प्राप्त अर्थात् उसके अधिकार में रहने वाले ( तस्तभाने ) सब का धारण करने हारे ( रेजमाने ) चलायमान ( क्रन्दसी ) स्वगुणों से प्रशंसा करने योग्य सूर्य्य और पृथिवी लोक ( अवसा ) रक्षा आदि से सब को धारण करते हैं ( यत्र ) जिस ईश्वर मे ( सूर ) सूर्य लोक ( अधि, उदित ) अधिकतर उदय को प्राप्त हुआ ( यत ) जो ( बृहती ) महत् ( आपः ) व्याप्त जल ( ह ) ही ( य ) और जो कुछ ( चित ) भी ( आप ) आकाश है उसको भी ( विभाति ) विशेष कर प्रकाशित करता हुआ प्रकाशक होता है उस ईश्वर को अध्यापक और उपदेशक ( मनसा ) विज्ञान से ( अभि ऐक्षेताम् ) आभिमुख्य कर देखते उस ( कस्मै ) सुखसाधक ( देवाय ) शुद्धस्वरूप परमात्मा के लिये ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास से हम (विधेम) सेवा करने वाले हो उस को तुम लोग भी भजो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस सब ओर से व्यापक परमेश्वर मे सूर्य्य पृथिवी आदि लोक भ्रमते हुए दीखते हैं जिसने प्राण और आकाश को भी व्याप्त किया उस अपने आत्मा मे स्थित ईश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥

वेन इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप छन्द ।
धैवत स्वर ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निद सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत्र ) जिसमे ( विश्वम् ) सब जगत् ( एकनीडम् ) एक आश्रय वाला ( भवति ) होता है ( तत ) उस ( गुहा) बुद्धि वा गुप्त कारण मे ( निहितम् ) स्थित ( सत् ) नित्य चेतन ब्रह्म को ( वेन ) पण्डित विद्वान् जन ( पश्यत ) ज्ञानदृष्टि से देखता है ( तस्मिन् ) उसमे ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब जगत् ( सम्, एति ) प्रलय समय मे सगत होता ( च ) और उत्पत्ति समय मे ( वि) पृथक स्थूलरूप ( च ) भी होता है ( स ) वह ( विभू ) विविध प्रकार व्याप्त हुआ ( प्रजासु ) प्रजाओ मे ( ओत ) ठाढे सूतो मे जैसे वस्त्र ( च ) तथा (प्रोत ) आडे सूतो मे जैसे वस्त्र वसे ओत प्रोत हो रहा है वही सब को उपासना करने योग्य है ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वान् ही जिसको बुद्धि बल से जानता जो सब आकाशादि पदार्थों का आधार प्रलय समय सब जगत् जिसमे लीन होता और उत्पत्ति समय मे जिससे निकलता है और जिस व्याप्त ईश्वर के बिना कुछ भी वस्तु खाली नही है उसको छोड किसी अन्य का उपास्य ईश्वर मत जानो ॥८॥

प्र तदित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि । विद्वान् देवता । निचृतत्रिष्टुप छन्द ।
धैवत स्वर ॥

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( गन्धर्व ) वेदवाणी को धारण करने वाला ( विद्वान् ) पण्डित ( गुहा) बुद्धि मे (विभृतम्) विशेष धारण किये (अमृतम्) नाशरहित ( धाम ) मुक्ति के स्थान ( तत् ) उस (सत) नित्य चेतन ब्रह्म का ( नु ) शीघ्र ( प्र, वोचत्) गुणकर्मस्वभावो के सहित उपदेश करे और जो ( अस्य ) इस अविनाशी ब्रह्म के ( गुहा) ज्ञान मे ( निहिता ) स्थित ( पदानि ) जानने योग्य ( त्रीणि ) तीन उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय वा भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल हैं ( तानि) उन को ( वेद ) जानता है ( स ) वह ( पितु ) अपने पिता वा सबरक्षक ईश्वर का ( पिता ) ज्ञान देने वा आस्तिकत्व से रक्षक (असत् ) होवे ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग ईश्वर के मुक्तिसाधक बुद्धिस्थ स्वरूप का उपदेश करें ठीक २ पदार्थों के और ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को जानें वे अवस्था में बडे पितादिको के भी रक्षा के योग्य होते हैं ऐसा जानो ॥९॥

स न इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द ।
धैवत स्वर ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत्र ) जिस (तृतीये ) जीव और प्रकृति के विलक्षण ( धामन् ) आधाररूप जगदीश्वर मे ( अमृतम् ) मोक्ष सुख को ( आनशाना ) प्राप्त होते हुए ( देवा ) विद्वान् लोग ( अध्यैरयन्त) सर्वत्र अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं जो ( विश्वा) सब ( भुवनानि ) लोक लोकान्तरो और ( धामानि ) जन्म स्थान नामों को ( वेद ) जानता है ( सः ) वह परमात्मा ( न ) हमारा ( बन्धु ) भाई के तुल्य मान्य सहायक ( जनिता ) उत्पन्न करने हारा ( स ) वही (विधाता ) सब पदार्थों और कर्म फलो का विधान करने वाला है यह निश्चय करो ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस शुद्धस्वरूप परमात्मा मे योगिराज विद्वान् लोग मुक्तिसुख को प्राप्त हो आनन्द करते हैं उसी को सर्वज्ञ सर्वोत्पादक और सर्वदा सहायकार मानने चाहिये अन्य को नहीं ॥१०॥

परीत्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि । परमात्मा देवता । निचृतत्रिष्टुप छन्द ।
धैवत स्वर ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो (भूतानि) प्राणियों को ( परीत्य ) सब ओर से व्याप्त हो के ( लोकान् ) पृथिवी सूर्यादि लोको को ( परीत्य ) सब ओर से व्याप्त हो के ( च ) और ऊपर नीचे ( सर्वा ) सब (प्रदिश ) आग्नेयादि उपदिशा तथा ( दिश ) पूर्वादि दिशाओं को ( परीत्य ) सब ओर से व्याप्त हो के (ऋतस्य) सत्य के ( आत्मानम् ) स्वरूप वा अधिष्ठान को ( अभि सम्, विवेश ) सन्मुखता से सम्यक प्रवेश करता है ( प्रथमजाम् ) प्रथम कल्पादि मे उत्पन्न चार वेदरूप वाणी को ( उपस्थाय ) पढ वा सम्यक सेवन करके ( आत्मना ) अपने शुद्धस्वरूप वा अन्तःकरण से उस को प्राप्त हूजिये ॥११॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्म के आचरण वेद और योग के अभ्यास तथा सत्सग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्तःकरण की शुद्धि को सपादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त हो के सुखी होओ ॥११॥

परीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषि । परमात्मा देवता । निचृत त्रिष्टुप् छन्द ।
धैवत स्वर ॥

परि द्यावापृथिवी सद्यऽइत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर ( द्यावापृथिवी ) सूर्य्य और भूमि को ( सद्य ) शीघ्र ( इत्वा ) प्राप्त होवे ( परि, अपश्यत् ) सब ओर से देखता है जो ( लोकान् ) देखने योग्य सृष्टिस्थ भूगोलो को शीघ्र प्राप्त हो के (परि अभवत्) सब ओर से प्रकट होता जो ( दिश ) पूर्वादि दिशाओ को शीघ्र प्राप्त हो के ( परि, आसीत) सब ओर से विद्यमान है जो ( स्व ) सुख को शीघ्र प्राप्त हो के ( परि ) सब ओर से देखता है जो ( ऋतस्य ) सत्य के (विततम् ) विस्तृत (तन्तुम्) कारण को ( विचृत्य ) विविध प्रकार से बाँध के (तत्) उस सुख को देखता है जिस से ( तत् ) वह सुख हुआ और जिससे ( तत ) वह विज्ञान हुआ है उसको यथावत् जान के उपासना करो ॥१२॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर ही का भजन करते और उस की रची सृष्टि को सुख के लिये उपयोग मे लाते हैं वे इस लोक परलोक और विद्या से हुए सुख को शीघ्र प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥१२ ।

सदसस्पतिमित्यस्य मेधाकाम ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिग्गायत्री छन्द ।
षड्ज स्वर ॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषं स्वाहा ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं ( स्वाहा ) सत्य क्रिया वा वाणी से जिस (सदस ) सभा ज्ञान न्याय वा दण्ड के ( पतिम् ) रक्षक ( अद्भुतम् ) आश्चर्य्य गुण कर्म स्वभाव वाले ( इन्द्रस्य ) इन्द्रियो के मालिक जीव के ( काम्यम् ) कमनीय (प्रियम्) प्रीति के विषय प्रसन्न करने हारे वा प्रसन्नरूप परमात्मा की उपासना और सेवा करके ( सनिम् ) सत्य असत्य का जिस से सम्यक विभाग किया जाय उस (मेधाम् ) उत्तम बुद्धि को ( अयासिषम् ) प्राप्त होऊ उस ईश्वर की सेवा करके इस बुद्धि को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१३॥

भावार्थ—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं वे सब विद्याओं को पाकर शुद्ध बुद्धि से सब सुखो को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

यामित्यस्य मेधाकाम ऋषि । परमात्मा देवता । निचृदनुष्टुप छन्द ।
गान्धार स्वर ॥

*मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि की याचना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—*

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) स्वय प्रकाशरूप होने से विद्या के जताने हारे ईश्वर ! वा अध्यापक विद्वन् ! ( देवगणा ) अनेको विद्वान् (च) और ( पितर ) रक्षा करने हारे ज्ञानी लोग (याम्) जिस ( मेधाम् ) बुद्धि वा धन को ( उपासते ) प्राप्त होके सेवन करते हैं ( तया ) उस ( मेधया ) बुद्धि वा धन से ( माम ) मुझ को ( अद्य ) आज ( स्वाहा ) सत्य वाणी से ( मेधाविनम् ) प्रशसित बुद्धि वा धन वाला ( कुरु ) कीजिये ॥१४॥

**भावार्थ**—मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरो को भी ऐसे ही प्राप्त करावें ॥१४॥

**मेधामित्यस्य मेधाकाम ऋषि । परमेश्वरविद्वांसौ देवते । निचृद्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

**मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।**
**मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥१५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( **वरुण** ) अति श्रेष्ठ परमेश्वर वा विद्वान् ( **स्वाहा** ) धर्मयुक्त क्रिया से ( **मे** ) मेरे लिये ( **मेधाम** ) शुद्ध बुद्धि वा धन को ( **ददातु** ) देवे ( **अग्नि** ) विद्या से प्रकाशित (**प्रजापति**) प्रजा का रक्षक (**मेधाम्**) बुद्धि को देवे ( **इन्द्र** ) परम ऐश्वर्य्यवान् (**मेधाम**) बुद्धि का देव (**च**) और (**वायु**) बलदाता बलवान् ( **मेधाम** ) बुद्धि को देवे ( **च** ) और ( **धाता** ) सब ससार वा राज्य का धारण करने हारा ईश्वर वा विद्वान् ( **मे**) मेरे लिये बुद्धि धन को (**ददातु**) देवे वसे तुम लोगो को भी देवे ॥१५॥

**भावार्थ**—मनुष्य जैसे अपने लिये गुण कर्म स्वभाव और सुख को चाहे वसे औरो के लिये भी चाहे । जसे अपनी अपनी उ नति की चाहना करें वसे परमेश्वर और विद्वानो के निकट से अ यो की उन्नति की प्रार्थना करें । केवल प्राथना ही न करें किन्तु सत्य आचरण भी करें । जब जब विद्वानो के निकट जाव तब तब सब के कल्याण के लिये प्रश्न और उत्तर किया करें ॥१५॥

**इद म इत्यस्य श्रीकाम ऋषि । विद्वद्राजानौ देवते । अनुष्टुप छन्द गान्धार स्वर ॥**

**इद मे ब्रह्म च क्षत्र चोभे श्रियमश्नुताम् ।**
**मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और हे विद्वन् ! तेरे पुरुषार्थ से(**स्वाहा**) सत्याचरणरूप क्रिया से ( **मे** ) मेरे ( **इदम** ) ये ( **ब्रह्म** ) वेद ईश्वर का विज्ञान वा इनका ज्ञाता पुरुष ( **च** ) और ( **क्षत्रम** ) राज्य धनुर्वेद विद्या और क्षत्रिय कुल ( **च** ) भी ये ( **उभे** ) दोनो (**श्रियम** ) राज्य की लक्ष्मी को ( **अश्नुताम्** ) प्राप्त हों जैसे ( **देवा** ) विद्वान लोग ( **मयि** ) मेरे निमित्त ( **उत्तमाम्** ) अतिश्रेष्ठ (**श्रियम्**) शोभा वा लक्ष्मी का ( **दधतु** ) धारण करें ! हे जिज्ञासु जन ! ( **ते**) तेरे लिये भी ( **तस्यै** ) उस श्री के अर्थ हम लोग प्रयत्न करें ॥१६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालन और विद्वानो की सेवा सत्कार से सब मनुष्यो के बीच से ब्राह्मण क्षत्रिय को सुन्दर शिक्षा विद्यादि सद्गुणो स सयुक्त और सब की उन्नति का विधान कर अपने आत्मा के तुल्य सब म वर्त्तें व सब को पूजने योग्य होवें ॥१६॥

**इस अध्याय मे परमेश्वर विद्वान और बुद्धि तथा धन की प्राप्ति के उपायों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय मे कहे अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥**

**यह बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथ त्रयस्त्रिंशत्तमाध्यायारम्भ॰ 卐

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्र तन्न ऽआ सुव ॥१॥**

**अस्येत्यस्य वत्सप्रीऋषि । अग्नयो देवता । स्वराट पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब तेंतीसव अध्याय का प्रारम्भ है इसके प्रथम द्वितीय मन्त्रों म अग्न्यादि पदार्थों का जान काय साधना चाहिये इस विषय को कहा है —*

**अस्याजरासो दमामरित्रा ऽअर्चद्धूमासोऽअग्नय॰ पावकाः ।**
**श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमा॰ ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (**अस्य**) इस पूर्वोध्यायोक्त ईश्वर की सृष्टि म (**अजरास** ) एकसी अवस्था वाले ( **अरित्रा** ) शत्रुओ से बचाने हारे (**अर्चद्धूमास** ) सुगन्धित धूमो से युक्त ( **पावका** ) पवित्रकारक ( **श्वितीचय** ) श्वेतवर्ण को सचित करने हारे ( **श्वात्रास** ) धन को बढ़ाने के हेतु ( **भुरण्यव** ) धारण करने हारे वा गमनशील ( **सोमा** ) ऐश्वय को प्राप्त करने हारे ( **अग्नय** ) विद्युत् आदि अग्नि ( **वनर्षद** ) वनो वा किरणो मे रहने हारे ( **वायव** ) पवनो के (**न**) समान (**दमाम**) घरो के धारण करने हारे उन को तुम लोग जानो ॥१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य अग्नि वायु आदि सृष्टिस्थ पदार्थों को जानें तो इनसे बहुत उपकारो को ग्रहण कर सकते हैं ॥१॥

**हरय इत्यस्य विश्वरूप ऋषि । अग्नयो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**हरयो धूमकेतवो वातजूता ऽउप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नय॰ ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो (**धूमकेतव** ) जिन का जताने वाला धूम ही पताका के तुल्य है (**वातजूता** ) वायु से तेज को प्राप्त हुए ( **हरय** ) हरणशील ( **अग्नय** ) पावक ( **वृथक** ) नाना प्रकार से ( **द्यवि** ) प्रकाश के निमित्त ( **उप यतन्ते** ) यत्न करते हैं उनको कार्य्यसिद्धि के अर्थ उपयोग म लाओ ॥२॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिन का धूम ज्ञान कराने और वायु चलाने वाला है और जिन मे हरणशीलता वर्त्तमान है वे अग्नि हैं ऐसा जानो ॥२॥

**यजानेत्यस्य गोतम ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*विद्वान मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ२ऽऋत बृहत् ।**
**अग्ने यक्षि स्व दमम् ॥३॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! आप ( **न** ) हमारे (**मित्रावरुणा**) मित्र और श्रेष्ठ जनो तथा ( **देवान्** ) विद्वानो का ( **यज** ) सत्कार कीजिये ( **बृहत्** ) बड़े ( **ऋतम्** ) सत्य का ( **यज** ) उपदेश कीजिय जिससे ( **स्वम्** ) अपने (**दमम्**) घर का ( **यक्षि** ) सगत कीजिये ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—हे विद्वान् मनुष्यो ! हमारे मित्र श्रेष्ठ और विद्वानो का सत्कार करने हारे सत्य के उपदेशक और अपने घर के कार्यों को सिद्ध करने हारे तुम लोग होओ ॥ ३ ॥

**युक्ष्वेत्यस्य विश्वरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽअश्वाँ२अग्ने रथीरिव ।**
**नि होता पूर्व्य॰ सद॰ ॥४॥**

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) विद्वन् ! आप ( **रथीरिव** ) सारथि के समान (**देवहूतमान्** ) विद्वानो से अत्यन्त स्तुति किये हुए ( **अश्वान्** ) शीघ्रगामी अग्नि आदि वा घोड़ो को ( **युक्ष्व** ) युक्त कीजिये ( **पूर्व्य** ) पूर्वज विद्वानों से विद्या को प्राप्त (**होता**) ग्रहण करते हुए ( **हि** ) निश्चय कर ( **नि, सद** ) स्थिर हूजिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—इस म न्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे उत्तम शिक्षित सारथि घोड़ों से अनेक कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् जन अग्नि आदि से अनेक कार्यों को सिद्ध करें ॥ ४ ॥

द्व इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*रात्रि दिन जगत की रक्षा करनेवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेऽअन्यान्या वत्समुप धापयेते**
**हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रोऽअन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**स्वर्थे**) सुन्दर प्रयोजन वाली (**द्वे**) दो (**विरूपे**) भिन्न भिन्न रूप की स्त्रियां (**चरतः**) भोजनादि आचरण करती हैं और (**अन्यान्या**) एक एक अलग अलग समय में (**वत्सम्**) निरन्तर बोलने वाले एक बालक को (**उप धापयेते**) निकट कर दूध पिलाती हैं उन दोनों में से (**अन्यस्याम्**) एक में (**स्वधावान्**) प्रशस्त शान्ति आदि अमृत तुल्य गुणयुक्त (**हरिः**) मन को हरने वाला पुत्र (**भवति**) होता और (**शुक्रः**) शीघ्रकारी (**सुवर्चाः**) सुन्दर तेजस्वी (**अन्यस्याम्**) दूसरी में हुआ (**ददृशे**) दीख पड़ता है वैसे ही सुन्दर प्रयोजन वाले दो काले श्वेत भिन्न रूप वाले रात्रि दिन वर्त्तमान हैं और एक एक भिन्न भिन्न समय में एक संसार रूप बालक को दुग्धादि पिलाते हैं उन दोनों में से एक रात्रि में अमृतरूप गुणों वाला मन का प्रसादक चन्द्रमा उत्पन्न होता और द्वितीय दिन रूप बेला में पवित्रकर्त्ता सुन्दर तेज वाला सूर्य रूप पुत्र दीख पड़ता है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में अनुभयाभेदरूपकालङ्कार है । जैसे दो स्त्रियां वा गायें सन्तान प्रयोजन वाली पृथक् पृथक् वर्त्तमान भिन्न भिन्न समय में एक बालक की रक्षा करें उन दोनों में से एक में हृदय को प्यारा महागुणी शान्तिशील बालक हो और दूसरी में शीघ्रकारी तेजस्वी शत्रुओं को दुःखदायी बालक होवे वैसे भिन्नस्वरूप वाले दो रात्रि दिन अलग अलग समय में एक संसाररूप बालक की पालना करते हैं । जिस प्रकार रात्रि अमृतवर्षक चित्त को प्रसन्न करनेहारे चन्द्रमारूप बालक को उत्पन्न करके और दिन रूप स्त्री तेजोमय सुन्दर प्रकाश वाले सूर्य्यरूप पुत्र को उत्पन्न करके ॥ ५ ॥

अयमित्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः ।**
**यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**धातृभिः**) धारण करने वालों से (**इह**) इस संसार में (**विशेविशे**) प्रजा प्रजा के लिये (**अयम्**) यह (**प्रथमः**) विस्तार वाला (**होता**) सुखदाता (**यजिष्ठः**) अतिशय कर सङ्गत करनेवाला (**अध्वरेषु**) रक्षणीय व्यवहारों में (**ईड्यः**) खोजने योग्य विद्युत् आदि स्वरूप अग्नि (**धायि**) धारण किया जाता और जैसे (**भृगवः**) दृढ़ ज्ञान वाले (**अप्नवानः**) सुसन्तानों के सहित उत्तम शिष्य लोग (**यम्**) जिस (**वनेषु**) वनों वा किरणों में (**चित्रम्**) आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभाव वाले (**विभ्वम्**) व्यापक विद्युत्रूप अग्नि को (**विरुरुचुः**) विशेष कर प्रदीप्त करें वैसे उसको तुम लोग भी धारण और प्रकाशित करो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग इस संसार में बिजुली की विद्या को जानते हैं वे सब प्रकार प्रजाओं को सब सुखों से युक्त करने को समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

त्रीणि शतेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वांसो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

*कारीगर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिꣳशच्च देवा नव चासपर्यन् ।**
**औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्माऽआदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**त्रिंशत्**) पृथिवी आदि तीस (**च**) और (**नव**) नव प्रकार के (**च**) ये सब और (**देवाः**) विद्वान् लोग (**त्रीणि**) तीन (**शता**) सौ (**त्री**) तीन (**सहस्राणि**) हजार कोश मार्ग में (**अग्निम्**) अग्नि को (**असपर्यन्**) सेवन करें (**घृतैः**) घी वा जलों से (**औक्षन्**) सींचें (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष को (**अस्तृणन्**) आच्छादित करें (**अस्मै**) इस अग्नि के अर्थ (**होतारम्**) हवन करनेवाले को (**आत्, इत्**) सब ओर से ही (**नि, असादयन्त**) निरन्तर स्थापित करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो शिल्पी विद्वान् लोग अग्नि जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम मध्यम, निकृष्ट वेगों से अनेक सैकड़ों हजारों कोश मार्ग को जा सकें वे आकाश में भी जा आ सकते हैं ॥७॥

मूर्द्धानमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वांसो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम् ।**
**कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**दिवः**) आकाश के (**मूर्द्धानम्**) उपरिभाग में सूर्यरूप से वर्त्तमान (**पृथिव्याः**) पृथिवी को (**अरतिम्**) प्राप्त होने वाले (**वैश्वानरम्**) सब मनुष्यों के हितकारी (**ऋते**) यज्ञ के निमित्त (**आ, जातम्**) अच्छे प्रकार प्रकट हुए (**कविम्**) सर्वत्र दिखाने वाले (**सम्राजम्**) सम्यक् प्रकाशमान (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**अतिथिम्**) अतिथि के तुल्य प्रथम भोजन का भाग लेने वाले (**पात्रम्**) रक्षा के हेतु (**आसन्**) ईश्वर के मुखरूप सामर्थ्य में उत्पन्न हुए जो (**अग्निम्**) अग्नि को (**आ जनयन्त**) अच्छे प्रकार प्रकट करें वैसे तुम लोग भी इस को प्रकट करो ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग पृथिवी जल वायु और आकाश में व्याप्त विद्युत्रूप अग्नि को प्रकट कर यन्त्र कलादि और युक्ति से चलावें वे किस किस कार्य को न सिद्ध करें ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*मनुष्य सब के तुल्य दोषों का विनाश इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।**
**समिद्धः शुक्रऽआहुतः ॥९॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे (**समिद्धः**) सम्यक् प्रदीप्त (**शुक्रः**) शीघ्रकारी (**अग्निः**) सूर्य्यादि रूप अग्नि (**वृत्राणि**) मेघ के अवयवों को (**जङ्घनत्**) शीघ्र काटता है वैसे (**द्रविणस्युः**) अपने को धन चाहने वाले (**आहुतः**) बुलाये हुए आप (**विपन्यया**) विशेष व्यवहार की युक्ति से दुष्टों को शीघ्र मारिये ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे व्यवहार का जानने वाला पुरुष धन को पाके सत्कार को प्राप्त होकर दोषों को नष्ट करता है वैसे सूर्य्य मेघ को ताड़ना देता है ॥ ९ ॥

विश्वेभिरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

**विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्नऽइन्द्रेण वायुना ।**
**पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वि विद्वन् ! आप जैसे सूर्य (**विश्वेभिः धामभिः**) धामों से (**इन्द्रेण**) धन के धारक (**वायुना**) बलवान् पवन के साथ (**सोम्यम्**) उत्तम ओषधियों में हुए (**मधु**) मीठे आदि गुण वाले रस को पीता है वैसे (**मित्रस्य**) मित्र के सब स्थानों से सुन्दर ओषधियों के रस को (**पिब**) पीजिये ॥ १० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्य सब पदार्थों से रस को खींच के वर्षा के सब पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे विद्या और विनय से सब को पुष्ट करो ॥ १० ॥

आ यदित्यस्य पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**आ यदिषे नृपतिं तेजऽआनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।**
**अग्निः शर्द्धमनवद्यं युवानꣳ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥११॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जब (**इषे**) वर्षा के लिये (**निषिक्तम्**) अग्नि में घृतादि के पड़ने से निरन्तर बढ़ा हुआ (**शुचि**) पवित्र (**तेजः**) यज्ञ से उठा तेज (**नृपतिम्**) जैसे राजा को तेज व्याप्त हो वैसे सूर्य को (**आ आनट्**) अच्छे प्रकार व्याप्त होता है तब (**अग्निः**) सूर्यरूप अग्नि (**शर्द्धम्**) बलहेतु (**अनवद्यम्**) निर्दोष (**युवानम्**) जवानी को करने हारे (**स्वाध्यम्**) जिन का सब चिन्तन करते (**रेतः**) ऐसे पराक्रमकारी वृष्टि जल को (**द्यौः**) आकाश के (**अभीके**) निकट (**जनयत्**) उत्पन्न करता (**च**) और (**सूदयत्**) वर्षा करता है ॥११॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि में होम किया द्रव्य तेज के साथ ही सूर्य को प्राप्त होता और सूर्य जलादि को आकर्षण कर वर्षा करके सब की रक्षा करता है वैसे राजा प्रजाओं से करों को ले, दुर्भिक्षकाल में फिर दे श्रेष्ठों को सम्यक् पालन और दुष्टों को सम्यक् ताड़ना देवे प्रगल्भता और बल को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अग्न इत्यस्य विश्ववारा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।**
**सं जास्पत्यꣳ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महाꣳसि ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे (**अग्ने**) विद्वन् वा राजन् आप (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) सौभाग्य के अर्थ (**शर्द्ध**) दुष्ट गुणों और शत्रुओं के नाशक बल को (**आ कृणुष्व**) अच्छे प्रकार उन्नत कीजिये जिससे (**तव**) आपके (**द्युम्नानि**) धन वा यश (**उत्तमानि**) श्रेष्ठ (**सन्तु**) हों आप (**जास्पत्यम्**) स्त्री पुरुष के भाव को (**सुयमम्**) सुन्दर नियमयुक्त शास्त्रानुकूल ब्रह्मचर्ययुक्त (**सम्, आ**) सम्यक् अच्छे प्रकार कीजिये और आप (**शत्रूयताम्**) शत्रु बनने की इच्छा करते हुए मनुष्यों के (**महांसि**) तेजों को (**अभि तिष्ठ**) तिरस्कृत कीजिये ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—जो अच्छे संयम में रहने वाले मनुष्य हैं उनके बड़ा ऐश्वर्य बल, कीर्ति उत्तम स्वभाव वाली स्त्री और शत्रुओं का पराजय होता है ॥ १२ ॥

त्वामित्यस्य भरद्वाज ऋषि । विश्वेदेवा देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर ॥

**त्वाᳬ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।**
**इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान राजन् ! वा विद्वज्जन ! (हि) जिससे आप ( नः ) हम ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों में प्रवृत्त जनों के ( महि) महत् गम्भीर वचन को ( श्रोषि ) सुनते हो इस से (मन्द्रतमम् ) अतिशय कर प्रशंसादि से सत्कार को प्राप्त ( त्वाम् ) आप को ( अर्कशोकैः ) सूर्य के समान प्रकाश से युक्त जनों के साथ हम लोग ( ववृमहे ) स्वीकार करते हैं और ( नृतमाः ) अतिशय कर नायक श्रेष्ठजन ( शवसा ) बल से युक्त ( इन्द्रम् ) सूर्य के ( न ) समान तेजस्वी और ( वायुम् ) वायु के तुल्य वर्त्तमान बलवान् ( देवता ) दिव्य गुण युक्त ( त्वा ) आप को ( राधसा ) धन से ( पृणन्ति) पालन वा पूर्ण करते हैं ॥१३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो दुःखों को सहन कर सूर्य के समान तेजस्वी और वायु के तुल्य बलवान् विद्वान् मनुष्य विद्या सुशिक्षा का ग्रहण करते हैं वे मेघ से सूर्य जैसे वैसे सब को आनन्द देने वाले उत्तम पुरुष होते हैं ॥१३॥

त्वे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । विद्वांसो देवता । अनुष्टुपछन्द । गान्धार स्वर ॥

*विद्वानों के तुल्य अन्य जनों को वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।*

**त्वेऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।**
**यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे ( स्वाहुत ) सुन्दर प्रकार से विद्या का ग्रहण किये हुए ( अग्ने ) विद्वन् ! ( ये ) जो ( जनानाम् ) मनुष्यों के बीच वीर पुरुष ( यन्तारः ) जितेन्द्रिय ( मघवानः ) बहुत धन से युक्त जन ( गोनाम् ) पृथिवी वा गौ आदि के ( ऊर्वान् ) हिंसकों को ( दयन्त ) मारते हैं वे (सूरयः ) विद्वान् लोग ( त्वे ) आप के (प्रियासः ) पियारे ( सन्तु ) हों ॥१४॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर विद्वानों के पियारे हो दुष्टों को मार और गौ आदि की रक्षा कर मनुष्यों के पियारे होते हैं वैसे तुम भी करो ॥१४॥

श्रुधीत्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । अग्निर्देवता । बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है ॥*

**श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।**
**आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रोऽअर्यमा प्रातर्यावाणोऽअध्वरम् ॥१५॥**

**पदार्थ**—हे ( श्रुत्कर्ण ) अर्थियों के वचनों को सुननेहारे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् ! वा राजन् ! आप ( सयावभिः ) जो साथ चलते उन ( वह्निभिः ) कार्यों का निर्वाह करनेहारे ( देवैः ) विद्वानों के साथ (अध्वरम्) रक्षा के योग्य राज्य के व्यवहार को ( श्रुधि ) सुनिये तथा ( प्रातर्यावाणः ) प्रातःकाल राजकार्यों को प्राप्त करनेहारे ( मित्रः ) पक्षपातरहित सब का मित्र और ( अर्यमा ) वैश्य वा अपने अधिष्ठाताओं को यथार्थ मानने वाला ये सब ( बर्हिषि ) अन्तरिक्ष के तुल्य सभा में ( आ सीदन्तु ) अच्छे प्रकार बैठें ॥१५॥

**भावार्थ**—सभापति राजा को चाहिये कि अच्छे परीक्षित मन्त्रियों का स्वीकार कर उनके साथ सभा में बैठ विवाद करने वालों के वचन सुन के उन पर विचार कर यथार्थ न्याय करे ॥१५॥

विश्वेषामित्यस्य गोतम ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।**
**अग्निर्देवानामवऽआवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे सभापते ! आप ( विश्वेषाम् ) सब (यज्ञियानाम्) पूजा सत्कार के योग्य ( देवानाम् ) विद्वानों के बीच ( अदितिः ) अखण्डित बुद्धि वाले (विश्वेषाम्) सब ( मनुष्याणाम् ) मनुष्यों में ( अतिथिः ) पूजनीय ( अवः ) रक्षा आदि को (आवृणानः ) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हुए ( सुमृडीकः ) सुन्दर सुख देने वाले ( जातवेदाः ) विद्या और योग के अभ्यास से प्रसिद्ध बुद्धि वाले ( अग्निः ) तेजस्वी राजा ( भवतु ) हूजिये ॥१६॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब विद्वानों में गम्भीर बुद्धि वाला सब मनुष्यों में माननीय प्रजा की रक्षा आदि राजकार्य को स्वीकार करता सब सुखों का दाता और वेदादि शास्त्रों का जानने वाला शूरवीर हो उसी को राजा करें ॥१६॥

मह इत्यस्य लुशोधानाक ऋषि । सविता देवता । भुरिकत्रिष्टुपछन्द ।
धैवत स्वर ॥

**महोऽअग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।**
**श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवोऽअद्या वृणीमहे ॥१७॥**

**पदार्थ**—हम राजपुरुष ( महः ) बड़े ( समिधानस्य ) प्रकाशमान ( अग्नेः ) विज्ञानवान् सभापति के ( शर्मणि ) आश्रय में ( श्रेष्ठे ) श्रेष्ठ ( मित्रे ) मित्र और ( वरुणे ) स्वीकार के योग्य मनुष्यों के निमित्त ( अनागाः ) अपराध रहित (स्याम) हों ( अद्य ) आज ( सवितुः ) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर की ( सवीमनि ) आज्ञा में वर्त्तमान ( स्वस्तये ) सुख के लिये ( देवानाम् ) विद्वानों के ( तत् ) उस वेदोक्त ( अवः ) रक्षा आदि कर्म को ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ॥१७॥

**भावार्थ**—धार्मिक विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि अधर्म को छोड़ धर्म में प्रवृत्त हों परमेश्वर की सृष्टि में विविध प्रकार की रचना देख अपनी और दूसरों की रक्षा कर ईश्वर का धन्यवाद किया करें ॥१७॥

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । इन्द्रो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

*अध्यापक उपदेशक क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्तऽइन्द्र ।**
**याहि वायुर्न नियुतो नोऽअच्छा त्वᳬ हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे ( इन्द्र ) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! ( ते ) आप के ( जरितारः ) स्तुति करने हारे ( आपः ) जलों के तुल्य ( पिप्युः ) बढ़ते हैं और (स्तर्यः ) विस्तार के हेतु ( गावः ) किरणें ( न ) जैसे ( ऋतम् ) सत्य को ( नक्षन् ) व्याप्त होते हैं वैसे ( वायुः ) पवन के ( न ) तुल्य ( वाजान् ) विज्ञान वाले ( नः ) हम लोगों को और ( नियुतः ) वायु के वेग आदि गुणों को (त्वम्) आप ( अच्छ ) अच्छे प्रकार ( याहि ) प्राप्त हूजिये ( हि ) जिस कारण ( धीभिः ) बुद्धि वा कर्मों से (वि दयसे) विशेष कर कृपा करते हो इससे (चित्) भी सत्कार के योग्य हो ॥१८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों की स्तुति करने वाले उपदेशक और अध्यापक हों तो सब मनुष्य विद्या में व्याप्त हुए दयावान् हों ॥१८॥

गाव इत्यस्य पुरुमीढाजमीढावृषी । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*मनुष्यों को आभूषण आदि की रक्षा करनी चाहिये इस विषय को कहा है—*

**गावऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।**
**उभा कर्णा हिरण्यया ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे (गावः ) गौ वा किरण (उभा) दोनों (रप्सुदा) रूप देने वाली ( मही ) बड़ी आकाश पृथिवी की रक्षा करती हैं वैसे तुम लोग ( हिरण्यया ) सुवर्ण के आभूषण से युक्त ( कर्णा ) दोनों कानों और ( यज्ञस्य ) सङ्गत यज्ञ के (अवतम्) कर्ण आदि अवयवों की (उप, अवत) निकट रक्षा करो ॥१९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यकिरण और गौ आदि पशु सब वस्तुमात्र की रक्षा करते हैं वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सुवर्ण आदि के बने कुण्डल आदि आभूषण की सदा रक्षा करें ॥१९॥

यदद्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**यदद्य सूरऽउदितेऽनागा मित्रोऽअर्यमा ।**
**सुवाति सविता भगः ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यत् ) जो ( अद्य ) आज ( सूरे ) सूर्य के (उदिते) उदय होते अर्थात् प्रातःकाल ( अनागाः ) अधर्म के आचरण से रहित ( मित्रः ) सुहृद् (सविता) राज्य के नियमों से प्रेरणा करने हारा ( भगः ) ऐश्वर्यवान् (अर्यमा) न्यायकारी राजा स्वस्थता को ( सुवाति ) उत्पन्न करे वह राज्य करने के योग्य होवे ॥२०॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार निवृत्त होके प्रकाश के होने में सब लोग आनन्दित होते हैं वैसे ही धर्मात्मा राजा के होते प्रजाओं में सब प्रकार से स्वस्थता होती है ॥२०॥

आ सुत इत्यस्य सुनीतिक ऋषि । वेनो देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**आ सुते सिञ्चत श्रियᳬ रोदस्योरभिश्रियम् ।**
**रसा दधीत वृषभम् । तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( रसा ) आनन्द देने वाले तुम लोग ( सुते ) उत्पन्न हुए जगत् में ( वृषभम् ) अतिबली ( रोदस्योः ) आकाश पृथिवी को ( अभिश्रियम् ) सब ओर से शोभित करने हारे ( श्रियम् ) शोभायुक्त सभापति राजा का ( आ सिञ्चत ) अच्छे प्रकार अभिषेक करो और वह सभापति तुम लोगों को ( दधीत ) धारण करे ॥२१॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य की उन्नति से जगत् का प्रकाशक सुन्दरता आदि गुणों से युक्त अति बलवान् विद्वान् शूर पूर्ण अवयवों वाले मनुष्य को राज्य में अभिषिक्त करें और वह राजा प्रजाओं में सुख धारण करे ॥२१॥

आतिष्ठन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब विद्युत् अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वेऽअभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।

महत्तद्वृष्णोऽअसुरस्य नामा विश्वरूपोऽअमृतानि तस्थौ ॥२२॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! ( विश्वे ) सब आप जैसे ( श्रियः ) धनों वा शोभाओं को ( वसानः ) धारण करता हुआ ( स्वरोचिः ) स्वयमेव दीप्ति वाला ( विश्वरूपः ) सब पदार्थों में उन उन के रूप से व्याप्त अग्नि ( चरति ) विचरता और ( अमृतानि ) नाशरहित वस्तुओं में ( तस्थौ ) स्थित है वैसे इस ( आतिष्ठन्तम् ) अच्छे प्रकार स्थिर अग्नि को ( परि, अभूषन् ) सब ओर से शोभित कीजिये । जो ( वृष्णः ) वर्षा करने हारे ( असुरस्य ) हिंसक इस बिजुलीरूप अग्नि का ( महत् ) बड़ा ( तत् ) वह परोक्ष ( नाम ) नाम है उससे सब कार्य्यों को शोभित करो ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस कारण यह विद्युत् रूप अग्नि सब पदार्थों में स्थित हुआ भी किसी को प्रकाशित नहीं करता इससे इस को असुर संज्ञा है जो इस विद्युत् विद्या को जानते हैं वे सब ओर से सुभूषित होते हैं ॥२२॥

प्र व इत्यस्य सुचीक ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य को ईश्वर ही की पूजा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।

इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳ सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तुम ( रोदसी ) आकाश भूमि ( यस्य ) जिस ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर के ( सुमखम् ) सुन्दर यज्ञ जिसमें हों ऐसे ( नृम्णम् ) धन ( सहः ) बल ( च ) और ( महि ) बड़े ( श्रवः ) यश को ( सपर्यतः ) सेवते हैं उस ( विश्वानराय ) सब मनुष्य जिसमें हों ( महे ) महान् ( मन्दमानाय ) आनन्दस्वरूप ( विश्वाभुवे ) सब को प्राप्त वा सब पृथिवी के स्वामी वा संसार जिससे हो ऐसे ईश्वर के अर्थ ( प्र, अर्च ) पूजन करो अर्थात् उसको मानो वह ( वः ) तुम्हारे लिये ( अन्धसः ) अन्नादि के सुख को देवे ॥ २३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके उत्पन्न किये धन और बलादि को सब सेवते उसी महाकीर्ति वाले सब के स्वामी आनन्दस्वरूप सर्वव्याप्त ईश्वर की तुमको पूजा और प्रार्थना करनी चाहिये वह तुम्हारे लिये धनादि से होने वाले सुख को देगा ।२३।

बृहन्निदित्यस्य त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य परमेश्वर को ही मित्र करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

बृहन्निदिध्मऽएषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२४॥

पदार्थ—( येषाम् ) जिन का ( इध्मः ) तेजस्वी ( पृथुः ) विस्तार युक्त ( स्वरुः ) प्रतापी ( युवा ) जवान् ( बृहन् ) महान् ( इन्द्रः ) उत्तम ऐश्वर्य वाला परमात्मा ( सखा ) मित्र है ( एषाम् ) उन ( इत् ) ही का ( भूरि ) बहुत ( शस्तम् ) स्तुति के योग्य कर्म होता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस का उत्तम परमेश्वर मित्र होवे वह जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य्य प्रताप वाला है वैसे प्रताप युक्त हो ॥ २४ ॥

इन्द्र इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।

महाँ२ऽअभिष्टिरोजसा ॥२५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य देने वाले विद्वन् ! जिस कारण आप ( ओजसा ) पराक्रम के साथ ( महान् ) बड़े ( अभिष्टिः ) सब ओर से सत्कार के योग्य ( विश्वेभिः ) सब ( सोमपर्वभिः ) सोमादि ओषधियों के अवयवों और ( अन्धसः ) अन्न से ( मत्सि ) तृप्त होते हो इससे हम को ( आ, इहि ) प्राप्त हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण अन्न आदि से मनुष्यादि प्राणियों के शरीरादि का निर्वाह होता है इससे इनके वृद्धि सेवन आहार और विहार यथावत् जानो ॥ २५ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्द्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।

अहन् व्यꣳसमुशधग्वनेष्वाविर्धेनाऽअकृणोद्राम्याणाम् ॥२६॥

पदार्थ—( शर्द्धनीतिः ) बल को प्राप्त ( वर्पणीतिः ) नाना प्रकार के रूपों वाला ( उशधक् ) पर पदार्थों को चाहने वाला चोरादि को नष्ट करनेहारा ( इन्द्रः ) सूर्य्य के तुल्य प्रतापी सभापति ( वृत्रम् ) प्रकाश का रोकने हारे मेघ के तुल्य धर्म के निरोधक दुष्ट शत्रु को ( अवृणोत् ) युद्ध के लिये स्वीकार करे ( मायिनाम् ) दुष्ट बुद्धि वाले छली कपटी आदि को ( प्र, अमिनात् ) मारे जो ( वनेषु ) वनों में रहने वाले ( व्यंसम् ) कपटी हैं भुजा जिस की ऐसे चोर को ( अहन् ) मारे और ( राम्याणाम् ) आनन्द देने वाले उपदेशकों की ( धेनाः ) वाणियों को ( आविः, अकृणोत् ) प्रकट करे वही राजा होने को योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के तुल्य सुशिक्षित वाणियों को प्रकट करते जैसे अग्नि वनों को वैसे दुष्ट शत्रुओं को मारते दिन जैसे रात्रि का निवृत्त करे वैसे छल कपटता और अविद्यारूप अन्धकारादि को निवृत्त करते और बल को प्रकट करते हैं वे अच्छे प्रतिष्ठित राजपुरुष होते हैं ॥ २६ ॥

कुत इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं तऽइत्था ।

सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्तेऽअस्मे ॥

महाँ२ऽ इन्द्रो यऽओजसा ।

कदा चन स्तरीरसि । कदा चन प्रयुच्छसि ॥२७॥

पदार्थ—हे ( सत्पते ) श्रेष्ठ सत्य व्यवहार वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक ( इन्द्र ) सभापते ! ( माहिनः ) महत्त्वयुक्त सत्कार को प्राप्त ( त्वम् ) आप ( एकः ) असहायी ( सन् ) होते हुए ( कुतः ) किस कारण ( यासि ) प्राप्त होते वा विचरते हो ? ( किम्, ते, इत्था ) इस प्रकार करने में आपका क्या प्रयोजन है ? । हे ( हरिवः ) प्रशंसित मनोहारी घोड़ों वाले राजन् ! ( यत् ) जिस कारण ( अस्मे ) हम लोग ( ते ) आपके हैं इससे ( समराणः ) सम्यक् चलते हुए आप ( नः ) हम को ( सम्, पृच्छसे ) पूछिये और ( शुभानैः ) मङ्गलमय वचनों के साथ ( तत् ) उस एकाकी रहने के कारण को ( वोचेः ) कहिये ॥२७॥

भावार्थ—राज प्रजापुरुषों को चाहिये कि सभाध्यक्ष राजा से ऐसा कहें कि हे सभापते ! आप को विना सहाय के कुछ राजकार्य न करना चाहिये किन्तु आप को उचित है कि सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के ताड़न में अस्मदादि के सहाययुक्त सदैव रहें शुभाचरण से युक्त अस्मदादि शिष्टों की सम्मतिपूर्वक कोमल वचनों से सब प्रजाओं को शिक्षा करें ॥ २७ ॥

आ तदित्यस्य गौरीवितिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

आ तत्तऽइन्द्रायवः पनन्ताभि यऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।

सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीꣳ सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥२८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( ये ) जो ( आयवः ) सत्य को प्राप्त होने वाले प्रजाजन ( सकृत्स्वम् ) एक बार उत्पन्न करने वाली ( पुरुपुत्राम् ) बहुत अन्नादि व्यक्ति वाले पुत्रों से युक्त ( सहस्रधाराम् ) असंख्य सुवर्णादि धातु जिसमें धारारूप हों वा असंख्य प्राणिमात्र का धारण करने हारी ( बृहतीम् ) विस्तारयुक्त ( महीम् ) बड़ी भूमि को ( दुदुक्षन् ) दोहना चाहें अर्थात् उससे इच्छापूर्ति किया चाहें ( ये ) जो मनुष्य ( गोमन्तम् ) खोटे इन्द्रियों वाले लम्पट ( ऊर्वम् ) हिंसक जन को ( अभि तितृत्सान् ) सम्मुख होकर मारने की इच्छा करें और जो ( ते ) आप के ( तत् ) उस राजकर्म की ( आ पनन्त ) प्रशंसा करें उनकी आप उन्नति किया कीजिये ।२८।

भावार्थ—जो लोग राजभक्त दुष्ट हिंसक एक बार में बहुत फल फूल देने और सब को धारण करने वाली भूमि के दुहने को समर्थ हों वे राजकार्य करने के योग्य होवें ॥२८॥

इमामित्यस्य कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तऽआनजे ।

तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२९॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! मैं ( महीम् ) सुन्दर पूज्य ( इमाम् ) इस ( ते ) आपकी ( धियम् ) बुद्धि वा कर्म को ( प्र, भरे ) धारण करता हूँ ( स्तोत्रे ) स्तुति होने में ( अस्य ) इस मेरी ( धिषणा ) बुद्धि ( यत् ) जिस ( ते ) आप को ( आनजे ) प्रकट करती है ( तम् ) उस ( शवसा ) बल के साथ ( सासहिम् ) शीघ्र सहने वाले ( इन्द्रम् ) उत्तम बल के योग से शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे सभापति को ( महः ) महान् कार्य के ( उत्सवे ) करने योग्य आनन्द समय ( च ) और ( प्रसवे ) उत्पत्ति में ( च ) भी ( देवासः ) विद्वान् लोग ( अनु, अमदन् ) अनुकूलता से आनन्दित करें ॥२९॥

भावार्थ—जो राजादि मनुष्य विद्वानों से उत्तम बुद्धि वा वाणी को ग्रहण करते हैं वे सत्य के अनुकूल हुए आप आनन्दित होके औरों को प्रसन्न करते हैं ॥२९॥

विभ्राडित्यस्य विभ्राडृषिः । सूर्यो देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।

वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥३०॥

पदार्थ—( यः ) जो ( वातजूतः ) वायु से वेग को प्राप्त सूर्य्य के तुल्य ( विभ्राट् ) विशेष कर प्रकाश वाला राजपुरुष ( अविहुतम् ) अखण्ड सम्पूर्ण ( आयुः )

जीवों ( यज्ञपतौ ) युक्त व्यवहार पालक अधिष्ठाता में ( दधत् ) धारण करता हुआ ( त्मना ) आत्मा से ( प्रजाः ) प्रजाओं को ( अभि, रक्षति ) सब ओर से रक्षा करता हुआ ( पुपोष ) पुष्ट करता और ( पुरुधा ) बहुत प्रकारों से ( वि राजति ) विशेषकर प्रकाशमान होता है सो आप ( बृहत् ) बड़े ( सोम्यम् ) सोमादि ओषधियों के ( मधु ) मिष्टादि गुण युक्त रस को ( पिबतु ) पीजिये ॥३०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजादि मनुष्यो ! जैसे सूर्य अग्नि द्वारा सब जीवों के जीवन पालन को करता है उसके तुल्य उत्तम गुणों से महान् हो के न्याय और विनय से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करो ॥३०॥

**उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । सूर्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*अब सूर्यमण्डल कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥३१॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस ( जातवेदसम् ) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान ( देवम् ) चिलचिलाते हुए ( सूर्यम् ) सूर्यमण्डल को ( विश्वाय ) संसार को ( दृशे ) देखने के लिये ( केतवः ) किरणें ( उत वहन्ति ) ऊपर को आश्चर्यरूप प्राप्त कराती हैं ( त्यम् ) उस ( उ ) ही को तुम लोग जानो ॥३१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य किरणों से संसार को दिखाता और आप सुशोभित होता वैसे विद्वान् लोग सब विद्या और शिक्षाओं को दिखाकर सुन्दर शोभायमान हों ॥३१॥

**येनेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । सूर्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

## येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ऽअनु ।
## त्वं वरुण पश्यसि ॥३२॥

**पदार्थ**—हे ( पावक ) पवित्रकर्त्ता ( वरुण ) श्रेष्ठ विद्वन् वा राजन् ! ( त्वम् ) आप ( येन ) जिस ( चक्षसा ) प्रकट दृष्टि वा उपदेश से ( भुरण्यन्तम् ) रक्षा करते हुए ( अनु पश्यसि ) अनुकूल देखते हो उससे ( जनान् ) हम आदि मनुष्यों को देखिये और आप के अनुकूल हम वर्त्तें ॥ ३२ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा और राजपुरुष जिस प्रकार के व्यवहार से प्रजाओं में वर्त्तें वैसे ही भाव से इनमें प्रजा लोग भी वर्त्तें ॥ ३२ ॥

**दैव्यावित्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

## दैव्यावध्वर्यूऽआ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा ।
## मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे । तं प्रत्नथा ।
## अयं वेनः । चित्रं देवानाम् ॥ ३३ ॥

**पदार्थ**—हे ( दैव्यौ ) अच्छे उत्तम विद्वानों वा गुणों में प्रवीण ( अध्वर्यू ) अपने को अहिंसारूप यज्ञ को चाहते हुए दो पुरुषो ! आप ( सूर्यत्वचा ) जिसका बाहरी आवरण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ऐसे ( रथेन ) चलने वाले विमानादि यान से ( आ गतम् ) आइये और ( मध्वा ) कोमल सामग्री से ( यज्ञम् ) यात्रा संग्राम वा हवनरूप यज्ञ को ( सम् अञ्जाथे ) सम्यक् प्रकट करो ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—राजादि मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य के प्रकाश के तुल्य विमानादि यान संग्राम वाहनादि को उत्पन्न कर यात्रादि अनेक व्यवहारों को सिद्ध किया करें ॥ ३३ ॥

**आ न इत्यस्यागस्त्य ऋषि । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब उपदेशक लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

## आ नऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽएतु ।
## अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥

**पदार्थ**—हे ( युवानः ) जवान ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़े हुए उपदेशक लोगो ! ( यथा ) जैसे ( विश्वानरः ) सब का नायक ( देवः ) उत्तम गुणों वाला ( सविता ) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान विद्वान् ( इडाभिः ) वाणियों से ( विदथे ) जनाने योग्य व्यवहार में ( सुशस्ति ) सुन्दर प्रशंसायुक्त ( नः ) हमारे ( विश्वम् ) सब ( जगत् ) चेतन पुत्र गौ आदि को ( आ, एतु ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे वैसे ( अभिपित्वे ) सम्मुख जाने में तुम लोग ( मत्सथ ) आनन्दित हूजिये जो ( नः ) हमारी ( मनीषा ) बुद्धि है उसको ( अपि ) भी शुद्ध कीजिये ॥ ३४ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशस्वरूप शरीर और आत्मा से युवावस्था को प्राप्त सुशिक्षित जितेन्द्रिय सुशील होते हैं वे सब को उपदेश से ज्ञान कराने को समर्थ होते हैं ॥३४॥

**यदद्येत्यस्य श्रुतकक्षसुकक्षावृषी । सूर्यो देवता । पिपीलिका मध्यानिचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

## यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगाऽअभि सूर्य्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥३५॥

**पदार्थ**—हे ( वृत्रहन् ) मेघहन्ता सूर्य के तुल्य शत्रुहन्ता ( सूर्य ) विद्यारूप ऐश्वर्य के उत्पादक ( इन्द्र ) अन्नदाता सज्जन पुरुष ! ( ते ) आप के ( यत् ) जो ( अद्य ) आज दिन ( सर्वम् ) सब कुछ ( वशे ) वश में है ( तत् ) उस को ( कत् च ) कब ( अभि उत् अगाः ) सब ओर से उदित प्रकट सन्नद्ध कीजिये ॥३५॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सूर्य के तुल्य अविद्यारूप अन्धकार और दुष्टता को निवृत्त कर सब को वशीभूत करते हैं वे अभ्युदय को प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥

**तरणिरित्यस्य प्रस्कण्व ऋषि । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब राजपुरुष कैसे हों इस विषय को कहा है—*

## तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य ।
## विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ३६ ॥

**पदार्थ**—हे ( सूर्य ) सूर्य के तुल्य वर्त्तमान तेजस्विन् ! जैसे ( तरणिः ) अन्धकार से पार करने वाला ( विश्वदर्शतः ) सब का देखने योग्य ( ज्योतिष्कृत् ) अग्नि विद्युत् चन्द्रमा नक्षत्र ग्रह तारे आदि को प्रकाशित करने वाला सूर्यलोक ( रोचनम् ) रुचिकारक ( विश्वम् ) समग्र राज्य को प्रकाशित करता है वैसे आप ( असि ) हैं जिस कारण न्याय और विनय से राज्य को ( आ, भासि ) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हो इसलिये सत्कार पाने योग्य हो ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष विद्या के प्रकाशक होवें तो सब को आनन्द देने को समर्थ होवें ॥ ३६ ॥

**तत्सूर्यस्येत्यस्य कुत्स ऋषि । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब ईश्वर के विषय में अगले मन्त्रों में कहते हैं—*

## तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततꣳ सं जभार ।
## यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥३७॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जगदीश्वर अन्तरिक्ष के ( मध्या ) बीच ( यदा ) जब ( हरितः ) जिन में पदार्थ हरे जाते उन दिशाओं और ( विततम् ) विस्तृत कार्य जगत् को ( सम्, जभार ) संहार अपने में लीन करता ( सिमस्मै ) सब के लिये ( रात्री ) रात्रि के तुल्य ( वासः ) अप्रकाश रूप आच्छादन को ( तनुते ) फैलाता और ( आत् ) इसके अनन्तर ( सधस्थात् ) एक स्थान से अर्थात् सब साक्षित्वादि से निवृत्त हो के एकाग्र ( इत् ) ही ( अयुक्त ) समाधिस्थ होता है ( तत् ) वह ( कर्त्तोः ) करने को समर्थ ( सूर्यस्य ) चराचर के आत्मा परमेश्वर का ( देवत्वम् ) देवतापन ( तत् ) वही उसका ( महित्वम् ) बड़प्पन तुम लोग जानो ॥३७॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस ईश्वर से सब जगत् रचा धारण पालन और विनाश किया जाता है उसी को और उसकी महिमा को जान के निरन्तर उसकी उपासना किया करो ॥३७॥

**तन्मित्रस्येत्यस्य कुत्स ऋषि । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

## तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
## अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥३८॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( द्योः ) प्रकाश के ( उपस्थे ) निकट वर्त्तमान अर्थात् अन्धकार से पृथक् ( सूर्यः ) चराचर का आत्मा ( मित्रस्य ) प्राण और ( वरुणस्य ) उदान के ( तत् ) उस ( रूपम् ) रूप को ( कृणुते ) रचता है जिससे मनुष्य ( अभिचक्षे ) देखना जानता है ( अस्य ) इस परमात्मा का ( रुशत् ) शुद्ध स्वरूप और ( पाजः ) बल ( अनन्तम् ) अपरिमित ( अन्यत् ) भिन्न है और ( अन्यत् कृष्णम् ) अविद्यादि मलिन गुण वाले भिन्न जगत् को ( हरितः ) दिशा ( सम् भरन्ति ) धारण करती हैं ॥३८॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो अनन्त ब्रह्म वह प्रकृति और जीवों से भिन्न है। ऐसे ही प्रकृति स्वरूप कारण विभु है उससे जो जो उत्पन्न होता वह वह समय पाकर ईश्वर के नियम से नष्ट हो जाता है जैसे जीव प्राण उदान से सब व्यवहारों को सिद्ध करते वैसे ईश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् के उत्पत्ति स्थिति प्रलयों को करता है ॥३८॥

**बण्महानित्यस्य जमदग्निर्ऋषि । विश्वेदेवा देवता । बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

## बण्महाँ२ऽअसि सूर्य्य बडादित्य महाँ२ऽअसि ।
## महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ऽअसि ॥३९॥

**पदार्थ**—हे ( सूर्य ) चराचर के अन्तर्यामिन् ईश्वर ! जिस कारण आप ( बट् ) सत्य ( महान् ) महत्त्वादि गुण युक्त ( असि ) हैं। हे ( आदित्य ) अविनाशीस्वरूप ! जिससे आप ( बट् ) अनन्त ज्ञानवान् ( महान् ) बड़े ( असि ) हो ( सतः ) सत्यस्वरूप ( महः ) महान् ( ते ) आपका ( महिमा ) महत्त्व ( पनस्यते ) लोगों से स्तुति किया जाता। हे ( देव ) दिव्य गुणकर्मस्वभावयुक्त ईश्वर ! जिससे आप ( अद्धा ) प्रसिद्ध ( महान् ) महान् ( असि ) हैं इसलिये हमको उपासना करने के योग्य हैं ॥३९॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर के महिमा को पृथिवी सूर्यादि पदार्थ जानते हैं जो सब से बड़ा है उसको छोड़ के किसी अन्य की उपासना नहीं करनी चाहिये ॥३९॥

बट्सूर्येत्यस्य जमदग्निऋर्षि । सूर्यो देवता । भुरिक् बृहती छन्द । मध्यम स्वर ।

**बट् सूर्य्य श्रवसा महाँ२ऽअसि सत्रा देव महाँ२ऽअसि ।**

**मह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४०॥**

पदार्थ—हे ( बट ) सत्य ( सूर्य ) सूर्य के तुल्य सब के प्रकाशक जिससे आप ( श्रवसा ) यश वा धन से ( महान् ) बडे ( असि ) हो । हे ( देव ) उत्तम सुख के दाता ( सत्रा ) सत्य के साथ ( महान् ) बडे ( असि ) हो । जिससे आप (देवानाम्) पृथिवी आदि वा विद्वानो के ( पुरोहित ) प्रथम से हितकारी ( मह्ना ) महत्त्व से ( असुर्य ) प्राणो के लिये हितैषी हुए ( अदाभ्यम् ) आस्तिकता से रक्षा करने योग्य ( विभु ) व्यापक (ज्योति ) प्रकाशस्वरूप हैं इससे सत्कार के योग्य हैं ॥४०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने सब की पालना के लिये अनादि को उत्पन्न करने वाली भूमि और मेघ का प्रकाश करने वाला सूर्य रचा है वही परमेश्वर उपासना करने को योग्य है ॥४०॥

श्रायन्त इवेत्यस्य नमेध ऋषि । सूर्यो देवता । निचृद् बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

**श्रायन्तऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।**

**वसूनि जाते जनमानऽओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( ओजसा ) सामर्थ्य से (जाते) उत्पन्न हुए और ( जनमाने ) उत्पन्न होने वाले जगत् में ( सूर्यम ) स्वयं प्रकाशस्वरूप सब के अन्तर्यामी परमेश्वर का ( श्रायन्त इव ) आश्रय करते हुए के समान ( विश्वा ) सब ( वसूनि ) वस्तुओं को ( प्रति, दीधिम ) प्रकाशित करें और ( भागम, न ) सेवन योग्य अपने अंश के तुल्य सेवन करें वैसे ( इत ) ही ( इन्द्रस्य ) उत्तम ऐश्वर्य के भाग का तुम लोग ( भक्षत ) सेवन करो ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो हम लोग परमेश्वर का सेवन करते हुए विद्वानो के तुल्य होते तो यहां सब ऐश्वर्य प्राप्त होवें ॥४१॥

अद्या देवा इत्यस्य कुत्स ऋषि । सूर्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ।

*विद्वान् लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अद्या देवाऽउदिता सूर्य्यस्य निरंहस. पिपृता निरवद्यात् ।**

**तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽउत द्यौः ॥४२॥**

पदार्थ—हे ( देवा ) विद्वान् लोगो ! जिस कारण ( सूर्य्यस्य ) सूर्य्य के ( उदिता ) उदय होते ( अद्य ) आज ( अंहस ) अपराध से ( न ) हम को (नि ) निरन्तर बचाओ और ( अवद्यात् ) निन्दित दुःख से ( नि , पिपृत ) निरन्तर रक्षा करो ( तत ) इस से ( मित्र ) मित्र ( वरुण ) श्रेष्ठ ( अदिति ) अन्तरिक्ष ( सिन्धु ) समुद्र ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) और ( द्यौ ) प्रकाश ये सब हमारा ( मामहन्ताम ) सत्कार करें ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य प्राणादि के तुल्य सब को सुखी करते और अपराध से दूर रखते हैं वे जगत् को शोभित करने वाले हैं ॥ ४२ ॥

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषि । सूर्य्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब सूर्य्य मण्डल कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।**

**हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ज्योतिःस्वरूप रमणीय स्वरूप से ( कृष्णेन ) आकर्षण से परस्पर सम्बद्ध ( रजसा ) लोकमात्र के साथ ( आ वर्त्तमान ) अपने भ्रमण की आवृत्ति करता हुआ ( भुवनानि ) सब लोको को ( पश्यन् ) दिखाता हुआ ( देव ) प्रकाशमान ( सविता ) सूर्यदेव ( अमृतम ) जल वा अविनाशी आकाशादि ( च ) और ( मर्त्यम ) मरणधर्मा प्राणिमात्र को ( निवेशयन् ) अपने अपने प्रदेश में स्थापित करता हुआ ( आ याति ) उदयास्त समय में आता जाता है सो ईश्वर का बनाया सूर्य्यलोक है ॥ ४३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे इन भूगोलादि लोको के साथ सूर्य्य का आकर्षण है जो वृष्टिद्वारा अमृतरूप जल को बरसाता और जो मूर्त्त द्रव्यो को दिखाने वाला है वैसे ही सूर्य्य आदि लोक भी ईश्वर के आकर्षण से धारण किये हुए हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

प्र वावृज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । वायुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ।

*अब वायु सूर्य्य कैसे है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिटऽइयाते ।**

**विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥४४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पूर्वहूतौ ) पूर्वजों ने प्रशंसा किये हुए (सुप्रया ) सुन्दर प्रकार चलने वाला ( नियुत्वान् ) शीघ्रकारी वेगादि गुणों वाला ( वायु ) पवन और ( पूषा ) सूर्य ( एषाम् ) इन मनुष्यों के ( स्वस्तये ) सुख के लिये ( प्र वावृजे ) प्रकर्षता से चलता है ( विशाम् ) प्रजाओ के बीच ( विश्पतीव ) प्रजारक्षक दो राजाओ के तुल्य ( बीरिटे ) अन्तरिक्ष में ( आ इयाते ) आते जाते हैं वैसे ( अक्तो ) रात्रि और ( उषस ) दिन के ( बर्हि ) जल को प्राप्त होते हैं ॥४४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वायु सूर्य न्यायकारी राजा के समान पालक हैं वे ईश्वर के बनाये हैं यह जानना चाहिये ॥ ४४ ॥

इन्द्रवायूइत्यस्य मेधातिथिऋर्षि । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्द । षड्ज स्वरः ॥

*मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थों का ज्ञान के क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् ।**

**आदित्यान्मारुतं गणम् ॥४५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (इन्द्रवायू) बिजुली, पवन (बृहस्पतिम) बडे लोको के रक्षक सूर्य्य ( मित्रा ) प्राण ( अग्निम ) अग्नि ( पूषणम ) पुष्टिकारक ( भगम ) ऐश्वर्य ( आदित्यान् ) बारह महीनो और (मारुतम) वायुसम्बन्धि ( गणम ) समूह का ज्ञान के उपयोग में लावें वैसे तुम लोग भी उनका प्रयोग करो ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिये कि सृष्टिस्थ विद्युत् आदि पदार्थों का ज्ञान और सम्यक् प्रयोग कर कार्य्यों को सिद्ध करें ॥४५॥

वरुण इत्यस्य मेधातिथिऋर्षि । वरुणो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।**

**करतां नः सुराधसः ॥४६॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोगो ! जैसे ( वरुण ) उदान वायु के तुल्य उत्तम विद्वान् और ( मित्र ) प्राण के तुल्य प्रियमित्र ( विश्वाभि ) समग्र (ऊतिभि ) रक्षा आदि क्रियाओ से ( प्राविता ) रक्षक ( भुवत ) होवे वैसे आप दोनो (न ) हम को (सुराधस ) सुन्दर धन से युक्त (करताम) कीजिये ।४६।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अध्यापक और उपदेशक लोग प्राणो के तुल्य सब में प्रीति रखने वाले और उदान के समान शरीर और आत्मा के बल को देने वाले हों वे ही सब के रक्षक सब को धनाढ्य करने को समर्थ होवें ॥ ४६ ॥

अधीत्यस्य कुत्सीविऋर्षि । विश्वेदेवा देवता । निचृत्पिपीलिकामध्या गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ।**

**तं प्रत्नथा । अयं वेनः । ये देवासः । आ नऽइडाभिः ।**

**विश्वेभिः सोम्य मधु । ओमासश्चर्षणीधृतः ॥४७॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमैश्वर्यदाता विद्वन् ! हे ( विष्णो ) व्यापक ईश्वर ! हे ( मरुत ) मनुष्यो ! तथा हे ( अश्विना ) अध्यापक उपदेशक लोगो ! तुम सब ( सजात्यानाम् ) हमारे सहयोगी ( एषाम ) इन ( न ) हमारे बीच ( अधि ) स्वामीपन को ( इत ) प्राप्त होओ ॥४७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् ईश्वर के समान पक्षपात छोड सम दृष्टि से हमारे विषय में वर्त्तें उन के विषय में हम भी वैसे ही वर्त्ता करें ॥४७॥

अग्न इत्यस्य प्रतिक्षत्र ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

**अग्नऽइन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।**

**उभा नासत्या रुद्रोऽअध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्याप्रकाशक ( इन्द्र ) महान् ऐश्वर्य वाले ( वरुण ) अति श्रेष्ठ ( मित्र ) मित्र ( मारुत ) मनुष्यों में वर्त्तमान जन (उत) और (विष्णो) व्यापनशील ( देवा ) विद्वान् तुम लोगो ! हमारे लिये ( शर्द्ध ) शरीर और आत्मा के बल को ( प्र, यन्त ) देओ ( उभा ) दोनो ( नासत्या) सत्यस्वरूप अध्यापक और उपदेशक ( रुद्रः ) दुष्टो को रुलाने हारा ( ग्ना ) अच्छी शिक्षित वाणी ( पूषा ) पोषक ( भग ) ऐश्वर्यवान् (अध) और इसके अनन्तर (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री ये सब हमारा ( जुषन्त ) सेवन करें ॥४८॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि विद्वानो के सेवन से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर दूसरो को भी विद्वान् करें ॥४८॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य वत्सार ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

*अध्यापक और अध्येता लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्व. पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ऽअपः ।**
**हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ।४९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( ऊतये ) रक्षा आदि के लिये ( इन्द्राग्नी ) संयुक्त बिजुली और अग्नि ( मित्रावरुणा ) मिले हुए प्राण उदान ( अदितिम् ) अन्तरिक्ष (पृथिवीम्) भूमि ( द्याम् ) सूर्य ( मरुत ) विचारशील मनुष्यों (पर्वतान्) मेघों वा पहाड़ों ( अप ) जलों ( विष्णुम् ) व्यापक ईश्वर ( पूषणम् ) पुष्टिकर्त्ता ( ब्रह्मणस्पतिम् ) ब्रह्माण्ड वा वेद के पालक ईश्वर ( भगम् ) ऐश्वर्य ( शंसम् ) प्रशंसा के योग्य ( सवितारम् ) ऐश्वर्यकारक राजा और ( स्व ) सुख की ( नु ) शीघ्र ( हुवे ) स्तुति करूं वैसे उनकी तुम भी प्रशंसा करो ।।४९।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक और अध्येता को चाहिये कि प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों की रक्षा आदि के लिये जानें ।४९।।

अस्मे इत्यस्य प्रगाथ ऋषि । महेन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वर ॥

*अब राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।**
**यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्रऽइन्द्रज्येष्ठाऽअस्माँ२ऽअवन्तु देवाः ॥५०**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( पज्र ) संचित धन वाला जन जिनकी ( शंसते ) प्रशंसा और ( स्तुवते ) स्तुति करता और जिसने धन को ( धायि ) धारण किया है उस और ( अस्मात् ) हमारी ओर ( अस्मे ) हमारे बीच ( मेहना ) धनादि को छोड़ने ( रुद्रा ) शत्रुओं को रुलाने और ( पर्वतास ) उत्सवों वाले ( वृत्रहत्ये ) दुष्ट को मारने के लिये ( भरहूतौ ) संग्राम में बुलाने के विषय में ( सजोषा ) एकसी प्रीति वाले ( इन्द्रज्येष्ठा ) सभापति राजा जिनमें बड़ा है ऐसे ( देवा ) विद्वान् लोग ( अवन्तु ) रक्षा करें वे तुम्हारी भी रक्षा करें ।।५०।।

भावार्थ—जो राजपुरुष पदार्थों की स्तुति करने वाले श्रेष्ठों के रक्षक दुष्टों के ताड़क युद्ध में प्रीति रखने वाले मेघ के तुल्य पालक प्रशंसा के योग्य हैं वे सब को सेवन योग्य होते हैं ।।५०।।

अर्वाञ्च इत्यस्य कूर्म ऋषि । विश्वेदेवा देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**अर्वाञ्चोऽअद्या भवता यजत्राऽआ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।**
**त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥५१॥**

पदार्थ—हे ( यजत्रा ) सङ्गति करने हारे ( देवा ) विद्वानो ! तुम लोग ( अद्य ) आज ( अर्वाञ्च ) हमारे सम्मुख ( भवत ) हूजिये अर्थात् हम से विरुद्ध विमुख मत रहिये ( भयमान ) डरता हुआ मैं ( व ) तुम्हारे ( हार्दि ) मनोगत को ( आ, व्ययेयम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ( न ) हम को ( निजुर ) हिंसक ( वृकस्य ) चोर वा व्याघ्र के सम्बन्ध से ( त्राध्वम् ) बचाओ । हे ( यजत्रा ) विद्वानों का सत्कार करने वाले लोगो ! तुम ( अवपद ) जिसमें गिर पड़ते उस ( कर्त्तात् ) कूप वा गढ़े से हमारी ( त्राध्वम् ) रक्षा करो ।।५१।।

भावार्थ—प्रजापुरुषों को राजपुरुषों से ऐसे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे पूज्य राजपुरुष विद्वानो ! तुम सदा हमारे अविरोधी कपटादिरहित और भय के निवारक होओ । चोर व्याघ्रादि और मार्ग शोधन से गढ़े आदि से हमारी रक्षा करो ।।५१।।

विश्वे इत्यस्य लुश ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**विश्वेऽअद्य मरुतो विश्वऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।**
**विश्वे नो देवाऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजोऽअस्मे ॥५२॥**

पदार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! ( अद्य ) आज जैसे ( विश्वे ) सब आप लोग ( विश्वे ) सब ( मरुत ) मरणधर्मा मनुष्य और ( विश्वे ) सब ( समिद्धा ) प्रदीप्त ( अग्नय ) अग्नि ( ऊती ) रक्षण क्रिया से ( न ) हमारे रक्षक ( भवन्तु ) होवें ( विश्वे ) सब ( देवा ) विद्वान् लोग ( अवसा ) रक्षा आदि के साथ ( न ) हम को ( आ गमन्तु ) प्राप्त हों वैसे ( विश्वम् ) सब (द्रविणम्) धन और (वाज) अन्न ( अस्मे ) इस मनुष्य के लिये ( अस्तु ) प्राप्त होवे ।।५२।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसा सुख अपने लिये चाहें वैसा ही औरों के लिये भी इस जगत् में जो विद्वान् हों वे आप अधर्माचरण से पृथक् हो के औरों को भी वैसे करें ।।५२।।

विश्वे देवा इत्यस्य सुहोत्र ऋषि । विश्वेदेवा देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे येऽअन्तरिक्षे यऽउप द्यवि ष्ठ ।**
**येऽअग्निजिह्वाऽउत वा यजत्राऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥५३**

पदार्थ—हे ( विश्वे ) सब ( देवा ) विद्वान् लोगो ! तुम ( ये, अन्तरिक्षे ) आकाश में ( ये ) जो ( द्यवि ) प्रकाश में ( ये ) जो ( अग्निजिह्वा ) जिह्वा के तुल्य जिनके अग्नि हैं वे ( उत ) और ( वा ) अथवा ( यजत्रा ) सङ्गति करने वाले पूजनीय पदार्थ हैं उनके जानने वाले (स्थ ) हूजिये ( मे ) मेरे ( इमम् ) इस ( हवम् ) पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को ( उप, शृणुत ) निकट से सुनो ( अस्मिन् ) इस ( बर्हिषि ) सभा वा आसन पर ( आसद्य ) बैठ कर ( मादयध्वम् ) आनन्दित होओ ।।५३।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जितने भूमि अन्तरिक्ष और प्रकाश में पदार्थ हैं उनको जान विद्वानों की सभा कर विद्यार्थियों की परीक्षा कर विद्या सुशिक्षा को बढ़ा और आप आनन्दित हो के दूसरों को निरन्तर आनन्दित करो ।।५३।।

देवेभ्य इत्यस्य वामदेव ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम् ।**
**आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ।५४॥**

पदार्थ—हे ( सवित ) समस्त जगत् के उत्पादक जगदीश्वर ! ( हि ) जिससे आप ( यज्ञियेभ्य ) यज्ञ सिद्धि करनेहारे ( देवेभ्य ) विद्वानों के लिये ( उत्तमम् ) श्रेष्ठ ( प्रथमम् ) मुख्य ( अमृतत्वम् ) मोक्षभाव ( भागम् ) सेवने योग्य सुख को ( सुवसि ) प्रेरित करते हो ( आत्, इत् ) इसके अनन्तर ही ( दामानम् ) सुख देने वाले प्रकाश और ( अनूचीना ) जानने के साधन ( जीविता ) जीवन के हेतु कर्मों को ( मानुषेभ्य ) मनुष्यों के लिये ( वि, ऊर्णुषे ) विस्तृत करते हो इसलिये उपासना के योग्य हो ।।५४।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! परमेश्वर ही के योग और विद्वानों के सङ्ग से सर्वोत्तम सुख वाले मोक्ष को प्राप्त होओ ।।५४।।

प्रवायुमित्यस्य ऋजिश्व ऋषि । वायुर्देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम् ।**
**द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥**

पदार्थ—हे ( प्रयज्यो ) अच्छे प्रकार यज्ञ करनेहारे विद्वन् ! ( नियुत ) निश्चयात्मक पुरुषों को ( पत्यमान ) प्राप्त होते हुए ( कवि ) बुद्धिमान् विद्वान् आप जो तुम्हारी ( बृहती ) बड़ी तेज ( मनीषा ) बुद्धि है उससे ( बृहद्रयिम् ) बहुत धनों के निमित्त ( विश्ववारम् ) सब को ग्रहण करने हारे ( रथप्राम् ) विमानादि यानों को व्याप्त होने वाले (द्युतद्यामा) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले (वायुम्) प्राणादिस्वरूप वायु और ( कविम् ) बुद्धिमान् जन को ( अच्छ, प्र, इयक्षसि ) अच्छे प्रकार सङ्ग करना चाहते हो इससे सब के सत्कार के योग्य हो ।।५५।।

भावार्थ—जो विद्वान् को प्राप्त हो पूर्ण विद्या बुद्धि और समग्र धन को प्राप्त होवें वे सत्कार के योग्य हों ।।५५।।

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरा गतम् ।**
**इन्दवो वामुशन्ति हि ॥५६॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रवायू ) बिजुली और पवन की विद्या को जानने वाले विद्वानो ! तुम्हारे लिये ( इमे ) ये ( सुता ) सिद्ध किये हुए पदार्थ हैं ( हि ) जिस कारण ( इन्दव ) सोमादि ओषधियों के रस ( वाम् ) तुम को ( उशन्ति ) चाहते अर्थात् वे तुम्हारे योग्य हैं इससे ( प्रयोभि ) उत्तम गुण कर्म स्वभावों के सहित उनको ( उप आ, गतम् ) निकट से अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ।।५६।।

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिस कारण तुम लोग हमारे ऊपर कृपा करते हो इसलिये सब लोग तुमको मिलना चाहते हैं ।।५६।।

मित्रमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्द । षड्ज स्वरः ॥

**मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।**
**धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥५७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( धियम् ) बुद्धि तथा ( घृताचीम् ) शीतलतारूप जल को प्राप्त होने वाली रात्रि को ( साधन्ता ) सिद्ध करते हुए ( पूतदक्षम् ) शुद्ध बलयुक्त ( मित्रम् ) मित्र और (रिशादसम्) दुष्ट हिंसक मारने हारे (वरुणम्) धर्मात्मा जन को ( हुवे ) स्वीकार करता हूं वैसे इनको तुम लोग भी स्वीकार करो ।।५७।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्राण और उदान बुद्धि और रात्रि को सिद्ध करते वैसे विद्वान् लोग सब उत्तम साधनों को ग्रहण कर कार्यों को सिद्ध करें ।।५७।।

दस्रेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि । अश्विनौ देवते । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः ।**
**आ यातꣳ रुद्रवर्त्तनी । त अस्तना । अयं वनः ॥५८॥**

पदार्थ—हे ( नासत्या ) असत्य आचरण से पृथक ( चक्रवर्त्तनी ) दुष्टरोदक न्यायाधीश के तुल्य आचरण वाले ( दस्रा ) दुष्टों के निवारक विद्वानो ! जो ( वृक्तबर्हिष ) यज्ञ से पृथक अर्थात् भोजनार्थ ( युवाकव ) तुम को चाहने वाले ( सुता ) सिद्ध किये पदार्थ हैं उनको तुम लोग ( आ, यातम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥५८॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि जो विद्याओं की कामना करते हैं उनको विद्या देवें ॥५८॥

विदद्यदीत्यस्य कुशिक ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर ॥

अब स्त्री क्या कर इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।**

**अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥५९॥**

पदार्थ—( यदि ) जो ( सरमा ) पति के अनुकूल रमण करने हारी ( प्रथमा ) प्रख्यात ( सुपदी ) सुन्दर पगों वाली ( अक्षराणाम् ) अकारादि वर्णों के ( रवम् ) बोलने को जानती हुई ( रुग्णम् ) रोगी प्राणी को ( विदत् ) जाने ( अग्रम् ) आगे ( नयत ) पहुँचाने वाला ( सध्र्यक ) साथ प्राप्त होता ( पूर्व्यम् ) प्रथम के लोगों ने प्राप्त किये ( महि ) महागुणयुक्त ( अद्रे ) मेघ से उत्पन्न हुए ( पाथ ) अन्न का ( क ) करे अर्थात् भोजनार्थ सिद्ध करे और पति को ( अच्छ ) अच्छे प्रकार ( गात ) प्राप्त होवे तो वह सुख को पावे ॥५९॥

भावार्थ—जो स्त्री वैद्य के तुल्य सब की हितकारिणी ओषधि के तुल्य अन्न बनाने को समर्थ हो और यथायोग्य बोलना भी जाने वह उत्तम सुख को निरन्तर पावे ॥५९॥

नहीत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । वैश्वानरो देवता । भुरिक त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर ॥

अब मनुष्य कैसे मोक्ष को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुरऽएतारमग्नेः ।**

**एमेनमवृधन्नमृताऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥६०॥**

पदार्थ—जो ( अमृता ) आत्मस्वरूप से मरणधर्म रहित ( देवा ) विद्वान् लोग ( अमर्त्यम् ) नित्य व्यापक रूप ( वैश्वानरम् ) सब के चलानेवाले ( एनम् ) इस अग्नि को ( क्षैत्रजित्याय ) जिस क्रिया मे सतों को जीतते उस भूमि राज्य के होने के लिये ( आ, अवृधन् ) अच्छे प्रकार बढ़ाते हैं वे ( ईम् ) सब ओर से ( अस्मात् ) इस ( वैश्वानरात् ) सब मनुष्यों के हितकारी ( अग्ने ) अग्नि से ( पुरएतारम् ) पहिले पहुँचाने वाले ( अन्यम् ) भिन्न किसी को ( स्पशम् ) दूत ( नहि ) नही ( अविदन् ) जानते हैं ॥६०॥

भावार्थ—जो उत्पत्ति नाश रहित मनुष्य देहधारी जीव विजय के लिये उत्पत्ति नाश रहित जगत् के स्वामी परमात्मा की उपासना कर उससे भिन्न की उसके तुल्य उपासना नही करते हैं वे बन्ध को छोड़ मोक्ष को प्राप्त होवें ॥६०॥

उग्रेत्यस्य भरद्वाज ऋषि । इन्द्राग्नी देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्ज स्वर ॥

अब सभा सेनापति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**उग्रा विघनिना मृधऽइन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडातऽईदृशे ॥६१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम जिन ( उग्रा ) अधिक बली तेजस्वी स्वभाव वाले ( मृध ) और हिंसकों को ( विघनिना ) विशेष कर मारने हारे ( इन्द्राग्नी ) सभा सेनापति को ( हवामहे ) बुलाते हैं ( ता ) वे ( ईदृशे ) इस प्रकार के संग्रामादि व्यवहार मे ( न ) हम लोगों को ( मृडात ) सुखी करते हैं ॥६१॥

भावार्थ—जो सभा और सेना के अध्यापक पक्षपात को छोड़ बल को बढ़ा के शत्रुओं को जीतते हैं वे सब को सुख देनेवाले होते हैं ॥६१॥

उपास्मा इत्यस्य देवल ऋषि । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्ज स्वर ॥

अब पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

**उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ२ऽइयक्षते ॥६२॥**

पदार्थ—हे ( नर ) नायक अध्यापकादि लोगो ! तुम लोग ( देवान् ) विद्वानों को ( अभि ) सब ओर से ( इयक्षते ) सत्कार करना चाहते हुए ( अस्मै ) इस ( पवमानाय ) पवित्र करने हारे ( इन्दवे ) कोमल विद्यार्थी के लिये ( उपगायत ) निकटस्थ हो के शास्त्रों को पढ़ाया करो ॥६२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जिज्ञासु लोग अध्यापकों को सन्तुष्ट करना चाहते हैं वैसे अध्यापक लोग भी उनको पढ़ाने की इच्छा रक्खा करें ॥६२॥

ये त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

**ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।**

**ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥६३॥**

पदार्थ—हे ( मघवन् ) उत्तम पूजित धन वाले सेनापति ! ( ये ) जो ( विप्रा ) बुद्धिमान् लोग ( अहिहत्ये ) जहाँ मेघ का काटना और ( गविष्टौ ) किरणों की सङ्गति हो उस संग्राम में जैसे किरणें सूर्य के तेज को वैसे ( त्वा ) आप को ( अवर्धन् ) उत्साहित करें । हे ( हरिव ) प्रशंसित किरणों के तुल्य चिलकते घोड़ों वाले शूरवीर जन ! ( ये ) जो लोग ( शाम्बरे ) मेघ सूर्य के संग्राम में बिजुली के तुल्य ( त्वा ) आपको बढ़ावें ( ये ) जो ( नूनम् ) निश्चय कर आपकी ( अनु, मदन्ति ) अनुकूलता से आनन्दित होते हैं और ( ये ) जो आप की रक्षा करते हैं । हे ( इन्द्र ) उत्तम ऐश्वर्य वाले जन ! ( मरुद्भि ) जैसे वायु के ( सगण ) गण के साथ सूर्य रस को ग्रहण करे वैसे मनुष्यों के साथ ( सोमम् ) श्रेष्ठ ओषधि रस को ( पिब ) पीजिये ॥६३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मेघ और सूर्य के संग्राम मे सूर्य का ही विजय होता है वैसे मूर्ख और विद्वानों के संग्रामों मे विद्वानों का ही विजय होता है ॥६३॥

जनिष्ठा इत्यस्य गौरीवीति ऋषि । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर ॥

**जनिष्ठाऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।**

**अवर्द्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥६४॥**

पदार्थ—हे राजन् ! ( धनिष्ठा ) अत्यन्त धनवती ( माता ) माता ( यत् ) जिस ( वीरम् ) शूरतादि गुणयुक्त आप पुत्र को ( दधनत ) पुष्ट करती रही और ( चित ) जैसे ( इन्द्रम् ) सूर्य्य को ( मरुतः ) वायु बढ़ावे वैसे सभासद् लोग जिस आप को ( अवर्धन् ) योग्यतादि से बढ़ावें सो आप ( अत्र ) इस राज्यपालन रूप व्यवहार मे ( सहसे ) बल और ( तुराय ) शीघ्रता के लिये ( उग्रः ) तेजस्वि स्वभाव वाले ( मन्द्र ) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त आनन्ददाता ( ओजिष्ठ ) अतिशय पराक्रमी और ( बहुलाभिमान ) अनेक प्रकार के पदार्थों के अभिमान वाले हुए सुख को ( जनिष्ठाः ) उत्पन्न कीजिये ॥६४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो स्वयं ब्रह्मचर्य से शरीरात्मबल युक्त विद्वान् हुआ दुष्टों के प्रति कठिन स्वभाववाला श्रेष्ठ के विषय भिन्न स्वभाव वाला होता हुआ बहुत उत्तम सभ्यो से युक्त धर्मात्मा हुआ न्याय और विनय से राज्य की रक्षा करे वह सब ओर से बढ़े ॥६४॥

आ तू न इत्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

**आ तू नऽइन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि ।**

**महान्महीभिरूतिभिः ॥ ६५ ॥**

पदार्थ—हे ( वृत्रहन् ) शत्रुओं के विनाशक ( इन्द्र ) उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन् ! आप ( अस्माकम् ) हम लोगों की ( अर्द्धम् ) वृद्धि उन्नति को ( आ, गहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और ( महान् ) अत्यन्त पूजनीय हुए ( महीभि ) बड़ी ( ऊतिभि ) रक्षादि क्रियाओं से ( न ) हम को ( तु, आ, दधनत ) शीघ्र अच्छे प्रकार पुष्ट कीजिये ॥६५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे पूर्व मन्त्र से ( दधनत् ) इस पद की अनुवृत्ति आती है । हे राजन् ! जैसे आप हमारे रक्षक और वर्द्धक हैं वैसे हम लोग भी आप को बढ़ावें, सब हम लोग प्रीति से मिल के दुष्टों को निवृत्त करके श्रेष्ठों को धनाढ्य करें ॥६५॥

त्वमिन्द्रेत्यस्य नृमेध ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

**त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वाऽअसि स्पृधः ।**

**अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ॥६६॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) उत्तम ऐश्वर्य देनेवाले राजन् ! जिस कारण ( त्वम् ) आप ( प्रतूर्त्तिषु ) जिनमें मारना होता उन संग्रामों मे ( विश्वा ) शत्रुओं की सब ( स्पृध ) ईर्ष्यायुक्त सेनाओं को ( अभि असि ) तिरस्कार करते हो तथा ( अशस्तिहा ) जिनकी कोई प्रशंसा न करे उन दुष्टों के हन्ता ( जनिता ) सुखों के उत्पन्न करने हारे ( विश्वतू ) सब शत्रुओं का मारने वाले हुए ( त्वम् ) आप विजय वाले ( असि ) हो इससे ( तरुष्यत ) हनन करनेवाले शत्रुओं को ( तूर्य्य ) मारिये ॥६६॥

भावार्थ—जो राजपुरुष अधर्मयुक्त कर्मों के निवर्त्तक सुखों के उत्पादक और युद्ध विद्या मे कुशल हों वे शत्रुओं को जीतने को समर्थ हों ॥६६॥

अनु ते शुष्ममित्यस्य नृमेध ऋषि । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

**अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।**

**विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६७॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के नाशक राजन् ! जिस ( ते ) आप के ( तुरयन्तम् ) शत्रुओं को मारते हुए ( शुष्मम् ) शत्रुओं के सुखाने हारे बल को ( शिशुम् ) बालक को ( मातरा ) माता पिता ( न ) के समान ( क्षोणी ) अपनी पराई भूमि ( अनु, ईयतुः ) अनुकूल प्राप्त होती उस ( ते ) आपके ( मन्यवे ) क्रोध से ( विश्वा स्पृध ) सब शत्रुओं की ईर्ष्या करनेहारी सेना ( श्नथयन्त ) नष्ट भ्रष्ट मारी जाती हैं ( यत ) जिस ( वृत्रम् ) न्याय से निरोधक शत्रु को आप ( तूर्वसि ) मारते हो वह पराजित हो जाता है ॥६७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जिन राजपुरुषों की हृष्ट पुष्ट युद्ध की प्रतिज्ञा करती हुई सेना हो वे सर्वत्र विजय को प्राप्त होवें ॥६७॥

यज्ञ इत्यस्य कुत्स ऋषि । आदित्या देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

**यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्त. ।**

**आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् । ६८**

पदार्थ—हे ( आदित्यास ) सूयवत्तजस्वी पूण विद्या वाल लागा ! जैसे (देवानाम् ) विद्वानो का ( यज्ञ ) सगति के योग्य सप्रामाणि व्यवहार ( सुम्नम् ) सुख करने को ( प्रत्येति ) उ त्ता प्राप्त हाता है वस ( मृडय त ) सुखी करने वाल ( भवत ) होवा । जैस ( व ) तुम्हारी ( वरिवोवित्तरा) अत्य त सेवा को प्राप्त (अर्वाची) हमारे अनुकूल ( सुमति ) उत्तम बुद्धि ( आ ववृत्यात ) अच्छे प्रकार वर्त्ते ( अहो ) अपराधी को ( चित ) भी वस सुख करन वाली हमारे अनुकूल बुद्धि ( असत ) होव ॥६८॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस देश म पूर्ण विद्या वाल राजकर्मचारी हो वहा सब की एकमति हावर अत्य त सुख बढ़ ॥६८॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषि । सविता देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

**अदब्धेभि. सवित पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।**

**हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳसऽईशत । ६९॥**

पदार्थ—हे ( सवित ) अनेक पदार्थों क उत्पादक तजस्वि विद्वन् राजन् ! ( त्वम् ) आप ( अदब्धभि ) अहिंसित ( शिवेभि ) कल्याणकारी ( पायुभि ) रक्षाओ से ( अद्य ) आज ( न ) हमारे ( गयम् ) प्रशसा के याग्य स तान धन और घर की ( परि, पाहि ) सब ओर स रक्षा कीजिये (हिरण्यजिह्व ) सब के हित मे रमण करने योग्य वाणी वाले हुए आप ( नव्यसे ) अत्य त नवीन ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिये ( न ) हमारी ( रक्ष ) रक्षा कीजिय जिसमे ( अघशस ) पाप की प्रशसा करने वाला दुष्ट चोर हम पर ( माकि ) न ( ईशत ) समथ हावे ॥६९॥

भावार्थ—प्रजाजनो को राजपुरुषो से ऐसा सम्बोधन करना चाहिये कि तुम लोग हमारे स तान धन घर और पदार्थों की रक्षा स नवीन नवीन ऐश्वय को प्राप्त करा क हम को पीडा देनेहार दुष्टा से दूर रक्खा ॥६९॥

प्र वीरयेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । वायुर्देवता । विराट त्रिष्टुप छन्द । धवत स्वर ॥

**प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।**

**वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥७०।**

पदार्थ—हे राज प्रजा जना ! जो ( वाम्) तुम दानो के (मधुमन्त ) प्रशसित ज्ञानयुक्त ( सुतास ) विद्या और उत्तम शिक्षा स सिद्ध किये गय ( शुचय ) पवित्र मनुष्य (अध्वयु भि ) हिसा और अ याय स पृथक रहन वालो क साथ (वीरया) वीर पुरुषो स युक्त सना से शत्रुओ को ( प्र दद्रिरे) अच्छे प्रकार विदीर्ण करत हैं उनके साथ हे ( वायो) वायु क सदृश वत्तमान बलिष्ठ राजन् ! आप ( नियुत ) निर तर सयुक्त वियुक्त होने वाले वायु आदि गुणो को ( वह ) प्रा त कीजिय । और ( अच्छ याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (मदाय) आन द क लिय (सुतस्य) सिद्ध किय हुए ( अन्धस ) अ न के रस को ( पिब ) पीजिय ॥७०॥

भावार्थ जो पवित्र आचरण करने वाल राजप्रजा के हितषी विज्ञानयुक्त पुरुष वीरो की सेना से शत्रुओ का विदीर्ण करते है उनको प्राप्त हो के राजा आनन्दित होवे । राजा जैसा अपन लिये आन द चाहे वसा राजप्रजाजनो क लिये भी चाहे ॥७०॥

गाव इत्यस्य वसिष्ठ ऋषि । मित्रावरुणौ देवते । गायत्रीछन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब पृथिवी सूय कस हैं इस विषय को अगल मन्त्र म कहा है—*

**गावऽउपावतावत मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥७१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जसे ( रप्सुदा ) सुन्दर रूप देने वाल ( उभा ) दानो ( कर्णा ) कायसाधक ( हिरण्यया ) ज्योति स्वरूप ( मही ) मह परिमाण वाल सूय पृथिवी ( यज्ञस्य ) सङ्गत ससार क ( अवतम् ) कूप क तुल्य रक्षा करन वाले हात और ( गाव ) किरण भी रक्षक हावें । वस इनकी तुम लाग (उप अवत ) रक्षा करो ॥७१॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जस किसान लोग कूप के जल से खेतो और वाटिकाओ की सम्यक रक्षा कर धनवान् होते वस पृथिवी सूय सब के धनकारक होते हैं ॥७१॥

काव्ययोरित्यस्य दक्ष ऋषि । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब अध्यापक और उपदेशक के विषय को अगल मन्त्र में कहा है—*

**काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थऽआ ॥७२॥**

पदार्थ—हे ( रिशादसा) अविद्यादि दोषो के नाशक अध्यापक उपदेशक लोगो ! ( काव्ययो ) कवि विद्वानो न बनाये व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादक ग्र थो के ( आजानेषु ) जिनसे विद्वान् होते उन पठनपाठनादि व्यवहारो म ( क्रत्वा ) बुद्धि से वा कर्म करके ( दक्षस्य ) कुशल पुरुष के ( सधस्थ ) जिस मे साथ मिलकर बैठें उस ( दुरोण ) घर में तुम लोग ( आ ) आया करो ॥७२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अध्यापक तथा उपदेशक लोग राजा प्रजा जनो को बुद्धिमान् बलयुक्त नीरोग आपस मे प्रीति वाले धर्मात्मा और पुरुषार्थी करें वे पिता क तुल्य सत्कार करन योग्य हैं ॥७२॥

दैव्यावित्यस्य दक्ष ऋषि । अध्वर्यू देवते । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब यान बनाने का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा ।**

**मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे । त प्रत्नथा । अय वेनः ॥७३॥**

पदार्थ—हे ( दैव्यौ ) विद्वानो म कुशल प्रवीण ( अध्वयू ) अपने आत्मा को अहिसा धर्म चाहत हुए विद्वानो ! तुम दोनो ( सूर्यत्वचा ) सूर्य के तुल्य कान्ति वाल ( रथन ) आन द के हतु यान स (आ गतम्) आया करो और आकर (मध्वा) मधुर भाषण से ( यज्ञम् ) चलने रूप व्यवहार को ( सम्, अञ्जाथे ) सम्यक प्रकट किया करो ॥७३॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि पृथिवी जल और अन्तरिक्ष म चलने वाले उत्तम शाभायमान सूय के तुल्य प्रकाशित याना का बनावें और उनस अभीष्ट कामनाओ का सिद्ध करें ॥७३॥

तिरश्चीन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । सूर्या देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब बिजुली के विषय को अगल मन्त्रों मे कहा है—*

**तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।**

**रेतोधाऽआसन्महिमानऽआसन्त्स्वधाऽअवस्तात्प्रयतिः परस्तात् । ७४।**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (एषाम्) इन विद्यु त् और सूय आदि की (तिरश्चीन) तिरछे गमन वाली ( वितत ) विस्तारयुक्त ( रश्मि ) किरण वा दीप्ति ( अध ) नीचे ( स्वित ) भी ( आसीत ) है ( उपरि ) ऊपर ( स्वित् ) भी ( आसीत् ) है तथा ( अवस्तात ) इधर स और ( परस्तात ) उधर से ( प्रयति ) प्रयत्न वाली है उसके विज्ञान स ( रेतोधा ) पराक्रम का धारण करने वाल (आसन् ) हो तथा ( महिमान ) पूज्य और ( स्वधा ) अपने धनादि पदार्थ के धारक होते हुए आप लोग उपकारी ( आसन् ) हूजिय ॥७४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस बिजुली की दीप्ति सब के भीतर रहती हुई सब दिशाओ म व्याप्त है वही सब का धारण करती है ऐसा तुम लोग जानो ॥७४॥

आ रोदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषि । विद्वान् देवता । निचृज्जगतीछन्द । निषाद स्वर ॥

**आ रोदसीऽअपृणदा स्वर्महज्जात यदेनमपसोऽअधारयन् ।**

**सोऽअध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहित ॥७५।**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत ) जो विद्यु त् रूप अग्नि ( रोदसी ) सूय पृथिवी और ( महत ) महान् ( जातम् ) प्रसिद्ध (स्व ) अ तरिक्ष को ( आ, अपृणात ) अच्छे प्रकार व्याप्त हाता ( एनम् ) इस अग्नि को ( अपस ) कम (आ, अधारयन्) अच्छे प्रकार धारण क रे तथा जो ( कवि ) शब्द होने का हेतु अग्नि ( अध्वराय ) अहिंसा नामक शिल्पविद्या रूप यज्ञ के तथा ( वाजसातये ) वेग क सम्यक सेवन के लिय ( (अत्य ) माग को व्याप्त होन वाले घोडे क ( न ) समान विद्वानो ने (परि, णीयते ) प्राप्त किया है ( स ) वह ( चनोहित ) पृथिवी आदि अन्न के लिये हितकारी है ऐसा तुम लाग जानो ॥७५॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि अनेक प्रकार के विज्ञान और कर्मों से बिजुली रूप अग्नि की विद्या का प्राप्त हो के भूमि आदि म व्याप्त विभागकर्त्ता साधन किया हुआ यान आदि का शीघ्र पहुँचाने वाले अग्नि को कार्यों म उपयुक्त करें ॥७५॥

उक्थेभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषि । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*कैसे मनुष्य सत्कार के योग्य हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।**

**आङ्गूषैराविवासतः ॥७६॥**

पदार्थ—( या ) जो ( मन्दाना ) आनन्द देनेवाले ( वृत्रहन्तमा ) धर्म का निरोध करने हारे पापियो के नाशक सभा सेनापति के ( चित ) समान ( गिरा ) वाणी ( आङ्गूषै ) अच्छे घोष और ( उक्थभि ) प्रशसा योग्य स्तुतियो के साधक वेद के भागरूप मन्त्रो से शिल्प विज्ञान का (आविवासत ) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं उन अध्यापक उपदेशको की मनुष्यो को ( आ ) अच्छे प्रकार सेवा करनी चाहिये ॥७६॥

भावार्थ—जो मनुष्य सभा सेनाध्यक्ष के तुल्य विद्यादि कार्यों के साधक सुन्दर उपदेशो से सब को विद्वान् करते हुए प्रवृत्त हो वे ही सब को सत्कार करने योग्य हो ॥७६॥

उप न इत्यस्य सुहोत्रऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*अब माता पिता अपने सन्तानों के प्रति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।**

**सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥**

**पदार्थ**—( ये ) जो ( नः ) हमारे ( सूनवः ) सन्तान ( अमृतस्य ) नाश रहित परमेश्वर के सम्बन्ध की वा नित्य वेद की ( गिरः ) वाणियों को ( उप शृण्वन्तु ) अध्यापकादि के निकट सुनें वे ( नः ) हमारे लिये ( सुमृडीकाः ) उत्तम सुख करनेहारे ( भवन्तु ) होवें ॥७७॥

**भावार्थ**—जो माता पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य के साथ वेदविद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त कर शरीर और आत्मा के बल वाले करें तो उन सन्तानों के लिये अत्यन्त हितकारी हों ॥७७॥

**ब्रह्माणीत्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रमरुतौ देवते । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्मऽइयर्ति प्रभृतो मेऽअद्रिः ।**
**आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नोऽअच्छ ॥७८॥**

**पदार्थ**—( सुतासः ) विद्या और सुन्दर शिक्षा से युक्त ऐश्वर्य वाले ( मतयः ) बुद्धिमान् लोग ( मे ) मेरे लिये जिन ( ब्रह्माणि ) धनों की ( प्रति, हर्यन्ति ) प्रतीति से कामना करते और ( इमा ) इन ( उक्था ) प्रशंसा के योग्य वेदवचनों की ( आ, शासते ) अभिलाषा करते हैं और ( शुष्मः ) बलकारी ( प्रभृतः ) अच्छे प्रकार हवनादि से पुष्ट किया ( अद्रिः ) मेघ ( मे ) मेरे लिये जिस ( शम् ) सुख को ( इयर्ति ) पहुँचाता ( ता ) उनको ( नः ) हमारे लिये ( हरी ) हरणशील अध्यापक और अध्येता ( अच्छ, वहतः ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥७८॥

**भावार्थ**—हे विद्वानो ! जिस कर्म से विद्या और मेघ की उन्नति हो उसकी क्रिया करो । जो लोग तुम से विद्या और सुशिक्षा चाहते हैं उनको प्रीति से देओ और जो आप से अधिक विद्यावाले हों उनसे तुम विद्या ग्रहण करो ॥७८॥

**अनुत्तमित्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ऽअस्ति देवता विदानः ।**
**न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥**

**पदार्थ**—हे ( प्रवृद्ध ) सब से श्रेष्ठ सर्वपूज्य ( मघवन् ) बहुत धनवाले ईश्वर जिस ( ते ) आपका ( अनुत्तम् ) अप्रेरित स्वरूप है ( त्वावान् ) आपके सदृश ( देवता ) पूज्य इष्टदेव ( विदानः ) विद्वान् ( नु ) निश्चय से कोई ( न ) नहीं है आप ( जायमानः ) उत्पन्न होने वाले ( न ) नहीं और ( जातः ) उत्पन्न हुए भी ( न ) नहीं हैं ( यानि ) जिन जगत् की उत्पत्ति आदि कर्मों को ( करिष्या ) करोगे तथा ( कृणुहि ) करते हो उनको कोई भी ( नकिः ) नहीं ( आ, नशते ) स्मरणशक्ति से व्याप्त होता सो आप सब के उपास्य देव हो ॥७९॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर समस्त ऐश्वर्य वाला किसी के सदृश नहीं अनन्त विद्यायुक्त, न उत्पन्न होता न हुआ न होगा और सब से बड़ा है उसी की तुम लोग निरन्तर उपासना करो ॥७९॥

**तदिदित्यस्य बृहद्दिव ऋषिः । महेन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।**
**सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥८०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यतः ) जिससे ( उग्रः ) तेज स्वभाववाला ( त्वेषनृम्णः ) सुन्दर प्रकाशित धन से युक्त वीर पुरुष ( जज्ञे ) उत्पन्न हुआ जो ( जज्ञानः ) उत्पन्न हुआ ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( सद्यः ) शीघ्र ( निरिणाति ) निरन्तर मारता है ( विश्वे ) सब ( ऊमाः ) रक्षादि कर्म करनेवाले लोग ( यम् ) जिसके ( अनु ) पीछे ( मदन्ति ) आनन्द करते हैं ( तत् इत् ) वही ब्रह्म परमात्मा ( भुवनेषु ) लोकलोकान्तरों में ( ज्येष्ठम् ) सब में बड़ा मान्य और श्रेष्ठ ( आस ) है, ऐसा तुम जानो ॥८०॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिसकी उपासना से शूरवीरता को प्राप्त हो शत्रुओं को मार सकते हैं जिसकी उपासना कर विद्वान् लोग आनन्दित होके सबको आनन्दित करते हैं उसी सबसे उत्कृष्ट सब के उपास्य परमेश्वर का सब लोग निश्चय करें ॥ ८० ॥

**इमा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

**इमाऽउ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।**
**पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥८१॥**

**पदार्थ**—हे ( पुरूवसो ) बहुत पदार्थों में वास करनेहारे परमात्मन् ! ( याः ) जो ( इमाः ) ये ( मम ) मेरी ( गिरः ) वाणी आपको ( उ ) निश्चय कर ( वर्द्धन्तु ) बढ़ावें उनको प्राप्त होके ( पावकवर्णाः ) अग्नि के तुल्य वर्णवाले तेजस्वी ( शुचयः ) पवित्र हुए ( विपश्चितः ) विद्वान् लोग ( स्तोमैः ) पदार्थविद्याओं की प्रशंसाओं से ( अभि, अनूषत ) सब ओर से प्रशंसा करें ॥८१॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना उस ईश्वर की सत्ता के प्रतिपादन तथा अभ्यास और सत्यभाषण से अपनी वाणियों को शुद्ध कर विद्वान् होके सब पदार्थविद्याओं को प्राप्त होवें ॥८१॥

**यस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**यस्यायं विश्वऽआर्यो दासः शेवधिपाऽअरिः ।**
**तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽअज्यते रयिः ॥८२॥**

**पदार्थ**—हे राजन् ! ( यस्य ) जिस आपका ( अयम् ) यह ( विश्वः ) सब ( आर्यः ) धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला पुरुष ( दासः ) सेवकवत् आज्ञाकारी ( शेवधिपाः ) धरोहर धन का रक्षक अर्थात् धर्मादि कार्य वा राजकर देने में व्यय करने हारा जन ( अरिः ) और शत्रु ( पवीरवि ) धनादि की रक्षा के लिये शस्त्र को प्राप्त होनेवाले और ( रुशमे ) हिंसक व्यवहार वा ( अर्ये ) धनस्वामी वैश्य आदि के निमित्त ( तिरः ) छिपनेवाला ( चित् ) भी ( तुभ्य ) आपके लिये ( इत् ) निश्चय से है ( सः ) वह आप ( रयिः ) धन के समान ( अज्यते ) प्राप्त होते हैं ॥८२॥

**भावार्थ**—जिस राजा के सब आर्य राज्यरक्षक और आज्ञापालक हैं जो धनादि कर का प्रदाता शत्रु उससे भी जिन आपने धनादि कर ग्रहण किया वे आप सब से उत्तम शोभा वाले हों ॥८२॥

**अयमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । निचृत्सतोबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

**अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽइव पप्रथे ।**
**सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥८३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( अयम् ) यह सभापति राजा ( ऋषिभिः ) वेदार्थवेत्ता राजर्षियों के साथ ( सहस्रम् ) असंख्य प्रकार के ज्ञान को प्राप्त ( सहस्कृतः ) बल से संयुक्त ( सत्यः ) और श्रेष्ठ व्यवहारों वा विद्वानों में उत्तम चतुर है ( अस्य ) इसका ( महिमा ) महत्त्व ( समुद्रइव ) समुद्र वा अन्तरिक्ष के तुल्य ( पप्रथे ) प्रसिद्ध होता है तो ( सः ) वह पूर्वोक्त मैं प्रजाजन इस राजा के ( यज्ञेषु ) सङ्गत राजकार्यों और ( विप्रराज्ये ) बुद्धिमानों के राज्य में ( शवः ) बल की ( गृणे ) स्तुति करता हूँ ॥८३॥

**भावार्थ**—जो राजादि राजपुरुष विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करनेवाले साहसी सत्य गुण कर्म स्वभावों से युक्त बुद्धिमानों के राज्य में अधिकार को पाये हुए सङ्गत न्याय और विनय से युक्त कामों को करें उनका आकाश के सदृश कीर्ति विस्तार को प्राप्त होती है ॥८३॥

**अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

**अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।**
**हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳसऽईशत ॥८४॥**

**पदार्थ**—हे ( सवितः ) समग्र ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! ( त्वम् ) आप ( अद्य ) आज ( अदब्धेभिः ) न बिगाड़ने योग्य ( शिवेभिः ) मङ्गलकारी ( पायुभिः ) अनेक प्रकार के रक्षा के उपायों से ( नः ) हमारी ( गयम् ) प्रजा की ( परि, पाहि ) सब ओर से रक्षा कीजिये ( हिरण्यजिह्वः ) सब के हित में रमण करने योग्य वाणी से युक्त हुए ( नव्यसे ) अतिशय कर नवीन ( सुविताय ) ऐश्वर्य के अर्थ ( नः ) हमारी ( रक्ष ) रक्षा कीजिये जिससे ( अघशंसः ) दुष्ट चोर हम पर ( माकिः ) न ( ईशत ) समर्थ वा शासक हो ॥८४॥

**भावार्थ**—राजाओं की योग्यता यह है कि सब प्रजा के सन्तानों को ब्रह्मचर्य विद्यादान और स्वयंवर विवाह करा के और डाकुओं से रक्षा करके उन्नति करें ॥ ८४ ॥

**आ नो इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

**आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।**
**अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयꣳ शुक्रो अयामि ते ॥८५॥**

**पदार्थ**—हे ( वायो ) वायु के तुल्य वर्त्तमान राजन् ! जैसे मैं ( अन्तः ) अन्तःकरण में ( पवित्रः ) शुद्धात्मा ( उपरि ) उन्नति में ( श्रीणानः ) आश्रय करता हुआ ( अयम् ) यह ( शुक्रः ) शीघ्रकारी पराक्रमी हुआ ( सुमन्मभिः ) सुन्दर विज्ञानों से ( ते ) आप के ( दिविस्पृशम् ) विद्याप्रकाशयुक्त ( यज्ञम् ) सङ्गत व्यवहार को ( अयामि ) प्राप्त होता हूँ वैसे आप ( नः ) हमारे विद्याप्रकाशयुक्त उत्तम व्यवहार को ( आ, याहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥८५॥

**भावार्थ**—मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वर्त्तमान वर्त्ताव से राजा प्रजाओं में चेष्टा करता है वैसे ही भाव से प्रजा राजा के विषय में वर्त्ते । ऐसे दोनों मिल के सब के न्याय के व्यवहार को पूर्ण करें ॥८५॥

इन्द्रवायू इत्यस्य तापस ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

**इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे ।**
**यथा नः सर्वऽइज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमनाऽअसत् ॥८६॥**

**पदार्थ**—हम लोग जिन ( **सुसन्दृशा** ) सुन्दर प्रकार से सम्यक् देखने वाले ( **सुहवा** ) सुन्दर बुलाने योग्य ( **इन्द्रवायू** ) राजप्रजाजनों को ( **इह** ) इस जगत् में ( **हवामहे** ) स्वीकार करते हैं ( **यथा** ) जैसे ( **सङ्गमे** ) संग्राम वा समागम में ( **नः** ) हमारे ( **सर्व इत्** ) सभी ( **जनः** ) मनुष्य ( **अनमीवः** ) नीरोग ( **सुमनाः** ) प्रसन्न चित्त वाले ( **असत्** ) होवें वैसे किया करें ॥८६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वैसे ही राजप्रजा पुरुष प्रयत्न करें जैसे सब मनुष्य आदि प्राणी नीरोग प्रसन्न मन वाले होकर पुरुषार्थी हों ॥८६॥

ऋधगित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

**ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।**
**यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टयऽआचक्रे हव्यदातये ॥८७॥**

**पदार्थ**—( **यः** ) जो ( **देवतातये** ) विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिये ( **ऋधक्** ) समृद्धिमान् ( **मर्त्यः** ) मनुष्य ( **अभिष्टये** ) अभीष्ट सुख की प्राप्ति के अर्थ तथा ( **हव्यदातये** ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये ( **मित्रावरुणौ** ) प्राण और उदान के तुल्य राजप्रजाजनों का ( **नूनम्** ) निश्चित ( **आचक्रे** ) सेवन करता ( **सः** ) वह जन ( **इत्था** ) इस उक्त हेतु से ( **शशमे** ) शान्त उपद्रवरहित होता है ॥८७॥

**भावार्थ**—जो शम दम आदि गुणों से युक्त राजपुरुष और प्रजाजन इष्ट सुख की सिद्धि के लिये प्रयत्न करें वे अवश्य समृद्धिमान् होवें ॥८७॥

आ यातमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

**आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।**
**दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥८८॥**

**पदार्थ**—हे ( **वृषणा** ) पराक्रम वाले ( **जेन्यावसू** ) जयशील जनों को बसाने वाले वा जीतने योग्य अथवा जाता है धन जिन से ऐसे ( **अश्विना** ) विद्यादि शुभ गुणों में व्याप्त राजप्रजाजन तुम दोनों सुख को ( **आ यातम्** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ प्रजाओं को ( **उप, भूषतम्** ) सुशोभित करो ( **मध्वः** ) वैद्यकशास्त्र की रीति से सिद्ध किये मधुर रस को ( **पिबतम्** ) पीओ ( **पयः** ) जल को ( **दुग्धम्** ) पूर्ण करो अर्थात् कोई जल बिना दुःखी न रहे ( **नः** ) हम को ( **मा** ) मत ( **मर्धिष्टम्** ) मारो और धर्म से विजय को ( **आ, गतम्** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥८८॥

**भावार्थ**—जो राजप्रजाजन सब को विद्या और उत्तम शिक्षा से सुशोभित करें सर्वत्र नहर आदि के द्वारा जल पहुँचावें श्रेष्ठों को न मार के दुष्टों को मारें वे जीतने वाले हुए अतोल लक्ष्मी को पाकर निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥८८॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।**
**अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( **नः** ) हम को ( **ब्रह्मणः पतिः** ) धन वा वेद का रक्षक अधिष्ठाता विद्वान् ( **प्र एतु** ) प्राप्त होवे ( **सूनृता** ) सत्य लक्षणों से उज्ज्वल ( **देवी** ) शुभ गुणों से प्रकाशमान वाणी ( **प्र एतु** ) प्राप्त हो ( **नर्यम्** ) मनुष्यों में उत्तम ( **पङ्क्तिराधसम्** ) समूह की सिद्धि करने हारे ( **यज्ञम्** ) सङ्गत धर्मयुक्त व्यवहारकर्त्ता ( **वीरम्** ) शूरवीर पुरुष को ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **अच्छ, नयन्तु** ) अच्छे प्रकार प्राप्त करें वैसे हम को प्राप्त होओ ॥८९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग विद्वानों सत्य वाणी और सर्वोपकारी वीर पुरुषों को प्राप्त होवें सम्यक् सुख की उन्नति करें ॥८९॥

चन्द्रमा इत्यस्य त्रित ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।**
**रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ॥९०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( **सुपर्णः** ) सुन्दर चालों से युक्त ( **चन्द्रमा** ) शीतकारी चन्द्रमा ( **कनिक्रदत्** ) शीघ्र शब्द करते हींसते हुए ( **हरिः** ) घोड़ों के तुल्य ( **दिवि** ) सूर्य के प्रकाश में ( **अप्सु** ) अन्तरिक्ष के ( **अन्तः** ) बीच ( **आ, धावते** ) अच्छे प्रकार शीघ्र चलता है और ( **पुरुस्पृहम्** ) बहुतों से चाहने योग्य ( **बहुलम्** ) बहुत ( **पिशङ्गम्** ) सुवर्णादि के तुल्य वर्णयुक्त ( **रयिम्** ) शोभा कान्ति को ( **एति** ) प्राप्त होता है वैसे पुरुषार्थी हुए वेग से लक्ष्मी को प्राप्त होओ ॥९०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से प्रकाशित चन्द्र आदि लोक अन्तरिक्ष में जाते आते हैं जैसे उत्तम घोड़ा ऊँचा शब्द करता हुआ शीघ्र भागता है वैसे हुए तुम लोग अत्युत्तम अपूर्व शोभा को प्राप्त होके सब को सुखी करो ॥९०॥

देवन्देवमित्यस्य मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराट् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

*फिर राजधर्म विषय को कहा है—*

**देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।**
**देवन्देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥९१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **देव्या** ) प्रकाशमान ( **धिया** ) बुद्धि वा कर्म से ( **गृणन्तः** ) स्तुति करते हुए हम लोग जैसे ( **वः** ) तुम्हारे ( **अवसे** ) रक्षादि के लिये ( **देवन्देवम्** ) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम उत्तम पदार्थ को ( **हुवेम** ) बुलावें वा ग्रहण करें तुम्हारे ( **अभिष्टये** ) अभीष्ट सुख के लिये ( **देवन्देवम्** ) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को तथा तुम्हारे ( **वाजसातये** ) वेगादि के सम्यक् सेवन के लिये ( **देवन्देवम्** ) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को बुलावें वा स्वीकार करें वैसे तुम लोग भी ऐसा हमारे लिये करो ॥९१॥

**भावार्थ**—जो राजपुरुष सब प्राणियों के हित के लिये विद्वानों का सत्कार कर इन से सत्योपदेश का प्रचार करा सृष्टि के पदार्थों को जान और सब अभीष्ट सिद्ध कर संग्रामों को जीतते हैं वे उत्तम कीर्ति और बुद्धि को प्राप्त होते हैं ॥९१॥

दिवीत्यस्य मेध ऋषिः । वैश्वानरो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**दिवि पृष्टोऽअरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहत् ।**
**क्ष्मया वृधानऽओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥९२॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे ( **दिवि** ) आकाश में ( **पृष्टः** ) स्थित ( **वैश्वानरः** ) सब मनुष्यों का हितकारी ( **क्ष्मया** ) पृथिवी के साथ ( **वृधानः** ) बढ़ा हुआ ( **ओजसा** ) बल से ( **बृहत्** ) महान् ( **चनोहितः** ) ओषधियों को पकाने रूप सामर्थ्य से अन्नादि का धारक ( **अग्निः** ) सूर्यरूप अग्नि ( **ज्योतिषा** ) अपने प्रकाश से ( **तमः** ) रात्रिरूप अन्धकार को ( **बाधते** ) निवृत्त करता और ( **अरोचत** ) प्रकाशित होता है वैसे उत्तम गुणों से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त करके तुम लोग भी प्रकाशित कीर्ति वाले हो ॥९२॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग सूर्य अन्धकार को जैसे वैसे दुष्टाचार और अविद्यान्धकार को निवृत्त कर विद्या को प्रकाशित करें वे सूर्य के तुल्य सर्वत्र प्रकाशित प्रशंसा वाले हों ॥९२॥

इन्द्राग्नीत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*अब उषा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इन्द्राग्नीऽअपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।**
**हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिꣳशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३॥**

**पदार्थ**—हे ( **इन्द्राग्नी** ) अध्यापक उपदेशक लोगो ! जो ( **इयम्** ) यह ( **अपात्** ) बिना पग की ( **पद्वतीभ्यः** ) बहुत पगों वाली प्रजाओं से ( **पूर्वा** ) प्रथम उत्पन्न होने वाली ( **आ अगात्** ) आती है ( **शिरः** ) शिर को ( **हित्वी** ) छोड़ के अर्थात् बिना शिर की हुई प्राणियों की ( **जिह्वया** ) वाणी से ( **वावदत्** ) शीघ्र बोलती अर्थात् कुक्कुट आदि के बोलने से उषःकाल की प्रतीति होती इस से बोलना धर्म उषा में आरोपण किया जाता है ( **चरत्** ) विचरती है और ( **त्रिंशत्** ) तीस ( **पदा** ) प्राप्ति के साधन मुहूर्तों को ( **नि, अक्रमीत्** ) निरन्तर आक्रमण करती है वह उषा प्रातः की वेला तुम लोगों को जाननी चाहिये ॥९३॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो वेग वाली पाद शिर आदि अवयवों से रहित प्राणियों के जगने से पहिले होने वाली जागने का हेतु प्राणियों के मुखों से शीघ्र बोलती हुई सी तीस मुहूर्त ( साठ घड़ी ) के अनन्तर प्रत्येक स्थान को आक्रमण करती है वह उषा निद्रा आलस्य को छोड़ तुमको सुख के लिये सेवन करनी चाहिये ॥९३॥

देवास इत्यस्य मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*कौन मनुष्य विद्वान् हो सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातयः ।**
**ते नोऽअद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥९४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **सरातयः** ) बराबर दाता ( **समन्यवः** ) तुल्य क्रोध वाले ( **विश्वे** ) सब ( **देवासः** ) विद्वान् लोग ( **साकम्** ) साथ मिल के ( **अद्य** ) आज ( **नः** ) हमारे ( **मनवे** ) मनुष्य के लिये ( **स्म** ) प्रसिद्ध ( **वरिवोविदः** ) सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले ( **भवन्तु** ) हों ( **तु** ) और ( **ते** ) वे ( **अपरम्** ) भविष्यत् काल में ( **नः** ) हमारे ( **तुचे** ) पुत्रपौत्रादि सन्तान के अर्थ हमारे लिये सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों ( **ते हि** ) वे ही तुम लोगों के लिये भी सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों ॥९४॥

भावार्थ—जो मनुष्य एक दूसरे के लिये सुख देवें जो मिल कर दुष्टो पर क्रोध करें वे पुत्र पौत्र वाले होके मनुष्यो के सुख की उन्नति के लिये समर्थ विद्वान् होने योग्य होते हैं ॥९४॥

अपाधमदित्यस्य नृमेध ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिक् बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*अब कौन मनुष्य दु खनिवारण में समर्थ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अपाधमदुभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्या भवत् ।**
**देवास्तऽइन्द्र सुख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥९५॥**

पदार्थ—हे ( बृहद्भानो ) महान् किरणो के तुल्य प्रकाशित कीर्ति वाले ( मरुद्गण ) मनुष्यों वा पवनो के समूह स कार्य्यसाधक ( इन्द्र ) परमैश्वर्य्य के देन वाले सभापति राजा ( देवा ) विद्वान् लोग ( ते ) आप की ( सख्याय ) मित्रता के अर्थ ( येमिरे ) सयम करते हैं और ( द्युम्नी ) बहुत प्रशसाकर धन से युक्त ( इन्द्र ) परमैश्वर्य वाले आप ( अभि ) ( शस्ती ) सब से हिसाओं को ( अप, अधमत ) दूर धमकाते हो ( अशस्तिहा ) दुष्टो के नाशक ( अभवत् ) हूजिये ॥९५॥

भावार्थ—जो मनुष्य धार्मिक न्यायाधीशो वा धनाढ्यों से मित्रता करत हैं वे यशस्वी होकर सब दु खनिवारण के लिये सूय के तुल्य होते हैं ॥९५॥

प्र व इत्यस्य नृमेध ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्र वऽइन्द्राय बृहुते मरुतो ब्रह्मार्चत ।**
**वृत्र२ हनति वृत्रहा शतक्रतु र्वज्रेण शतपर्वणा ॥९६॥**

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यो ! जो ( शतक्रतु ) असख्य प्रकार की बुद्धि वा कर्मों वाले सेनापति ( शतपर्वणा ) जिसस असख्य जीवो का पालन हो ऐसे ( वज्रेण ) शस्त्र अस्त्र से ( वृत्रहा ) जसे मेघहन्ता सूय ( वृत्रम् ) मेघ को वैसे ( बृहते ) बडे ( इन्द्राय ) परमैश्वय के लिये शत्रुओ का ( हनति ) मारता है और ( व ) तुम्हार लिये ( ब्रह्म ) धन वा अन्न को प्राप्त करता है उसका तुम लाग ( प्र अर्चत ) सत्कार करो ॥ ९६॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो लोग मेघ को सूय के तुल्य शत्रुओ को मार के तुम्हारे लिये ऐश्वय की उन्नति करते हैं उनका सत्कार तुम करो । सदा कृतज्ञ हो के कृतघ्नता को छोड के प्राज्ञ हुए महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥९६॥

अस्येदित्यस्य मेधातिथिऋषि । महेन्द्रो देवता । स्वराट् सतोबृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

*अब मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्य२ शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।**
**अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।**
**इमा उ त्वा । यस्यायम् । अय२ सहस्रम् । ऊर्ध्वऽऊ षु णः ॥९७**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य युक्त राजा ( विष्णवि ) व्यापक परमात्मा मे ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए ( अस्य ) इस ससार के ( मदे ) आनन्द के लिये ( वृष्ण्यम् ) पराक्रम ( शव ) बल तथा जल को ( अद्य ) इस वर्त्तमान समय मे ( वावृध ) बढाता है ( अस्य ) इस परमात्मा के ( इत ) ही ( महिमानम् ) महिमा को ( पूर्वथा ) पूर्वज लोगों के तुल्य ( आयव ) अपने कर्मफलो को प्राप्त होने वाले मनुष्य लोग ( अनु, स्तुवन्ति ) अनुकूल स्तुति करते हैं ( तम ) उस को तुम लोग भी स्तुति करो ॥९७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग सर्वत्र व्यापक सब जगत् के उत्पादक सब के आधार और उत्तम ऐश्वर्य के प्रापक ईश्वर की आज्ञा और महिमा को जान के सब संसार का उपकार करो तो तुम को निरन्तर आनन्द प्राप्त होवे ॥९७॥

इस अध्याय मे अग्नि, प्राण उदान दिन रात सूय, अग्नि राजा, ऐश्वर्य, उत्तम यान, विद्वान् लक्ष्मी, वैश्वानर, ईश्वर इन्द्र, बुद्धि वरुण अश्वि, सूर्य्य राजप्रजा, परीक्षक, इन्द्र और वायु आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय मे कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ओ३म् ॥

# 卐 अथ चतुस्त्रिंशाऽध्यायारम्भः 卐

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

यज्जाग्रत इत्यस्य शिवसंकल्पऋषिः । मनो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब चौंतीसवें अध्याय का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में मन को वश करने का विषय कहते हैं—*

**यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।**
**दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आपकी कृपा से ( यत् ) जो ( दैवम् ) आत्मा मे रहने वा जीवात्मा का साधन ( दूरङ्गमम् ) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला ( ज्योतिषाम् ) शब्द आदि विषयो के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियो को ( ज्योति ) प्रवृत्त करने हारा ( एकम् ) एक ( जाग्रत ) जागृत अवस्था मे ( दूरम् ) दूर दूर ( उत्, ऐति ) भागता है ( उ ) और ( तत् ) जो ( सुप्तस्य ) सोते हुए का ( तथा एव ) उसी प्रकार ( एति ) भीतर अन्त करण मे जाता है ( तत् ) वह ( मे ) मेरा ( मन ) संकल्प विकल्पात्मक मन ( शिवसंकल्पम् ) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला ( अस्तु ) हो ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानो का सङ्ग करके अनेकविध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं जो जागृतावस्था में विस्तृत व्यवहार वाला वही मन सुषुप्ति अवस्था मे शान्त होता है । जो वेग वाले पदार्थों मे अतिवेगवान् ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियो के प्रवर्त्तक मन को वश मे करते हैं वे अशुभ व्यवहार को छोड शुभ व्यवहार मे मन को प्रवृत्त कर सकते हैं ॥१॥

येन कर्माणीत्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषि । मनो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

*फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।**
**यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर वा विद्वन् ! जब आपके सङ्ग से ( येन ) जिस ( अपस ) सदा कर्म धर्मनिष्ठ ( मनीषिण ) मन का दमन करने वाले ( धीरा ) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग ( यज्ञे ) अग्निहोत्रादि वा धर्मसयुक्त व्यवहार वा योग यज्ञ में और ( विदथेषु ) विज्ञानसम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों मे ( कर्माणि ) अत्यन्त इष्ट कर्मों को ( कृण्वन्ति ) करते हैं ( यत् ) जो ( अपूर्वम् ) सर्वोत्तम गुणकर्मस्वभाव वाला ( प्रजानाम् ) प्राणिमात्र के ( अन्तः ) हृदय मे ( यक्षम् ) पूजनीय वा सगत एकीभूत हो रहा है ( तत् ) वह ( मे ) मेरा ( मनः ) मनन विचार करना रूप मन ( शिवसंकल्पम् ) धर्मेष्ट ( अस्तु ) होवे ॥२॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना सुन्दर विचार विद्या और सत्सग से अपने अन्त करण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें ॥२॥

यत प्रज्ञानमित्यस्य शिवसकल्प ऋषि । मनो देवता । स्वराट त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।**

**यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन् ! आपके जताने से ( यत ) जो ( प्रज्ञानम् ) विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप ( उत ) और भी ( चेतः ) स्मृति का साधन ( धृति ) धैर्यस्वरूप ( च ) और लज्जादि कर्मों का हेतु (प्रजासु) मनुष्यो के ( अन्त ) अन्त करण म आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाशरहित ( ज्योति ) प्रकाशकरूप ( यस्मात ) जिससे ( ऋते ) विना ( किम्, चन ) कोई भी ( कर्म ) काम (न क्रियते ) नही किया जाता ( तत ) वह (मे) मुझ जीवात्मा का ( मन ) सब कर्मो का साधन रूप मन (शिवसकल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा मे इच्छा रखने वाला ( अस्तु ) हो ॥३॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो अन्त करण, बुद्धि चित्त और अहकाररूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियो के सब कर्मो का साधक अविनाशी मन है उसको न्याय और सत्य आचरण मे प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो ॥३॥

येनेदमित्यस्य शिवसकल्प ऋषि । मनो देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

**येनेद भूत भुवन भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।**

**येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मन शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( येन ) जिस ( अमृतेन ) नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से ( भूतम् ) व्यतीत हुआ ( भुवनम् ) वर्त्तमान काल सम्बन्धी और ( भविष्यत ) होने वाला ( सर्वम् इदम् ) यह सब त्रिकालस्थ वस्तु मात्र ( परिगृहीतम् ) सब ओर से गृहीत होता अर्थात जाना जाता है ( येन ) जिससे ( सप्तहोता ) सात मनुष्य होता वा पाँच प्राण छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवाँ ये सात लेन देने वाले जिसमे हो वह ( यज्ञ ) अग्निष्टोमादि वा विज्ञानरूप व्यवहार ( तायते ) विस्तृत किया जाता है ( तत ) वह (मे) मेरा (मन ) योगयुक्त चित्त ( शिवसकल्पम् ) मोक्षरूप सकल्प वाला ( अस्तु ) होवे ॥४॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनो से सिद्ध हुआ भूत भविष्यत वर्त्तमान तीनो काल का ज्ञाता सब सृष्टि का जानने वाला कर्म उपासना और ज्ञान का साधक है उसको सदा ही कल्याण मे प्रिय करो ॥४॥

यस्मिन्नित्यस्य शिवसकल्प ऋषि । मनो देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

**यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।**

**यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥**

**पदार्थ**—( यस्मिन् ) जिस मन मे ( रथनाभाविव अरा ) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ मे अरा लगे होते हैं वैसे ( ऋच ) ऋग्वेद (साम) सामवेद ( यजूषि ) यजुर्वेद ( प्रतिष्ठिता ) सब ओर मे स्थित और ( यस्मिन् ) जिसमे अथर्ववेद स्थित है ( यस्मिन् ) जिसमे ( प्रजानाम् ) प्राणियो का ( सर्वम् ) समग्र ( चित्तम् ) सब पदार्थसम्बन्धी ज्ञान ( ओतम् ) सूत मे मणियो के समान सयुक्त है ( तत ) वह ( मे ) मेरा ( मन ) मन (शिवसकल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्य शास्त्रो का प्रचाररूप सकल्प वाला ( अस्तु ) हो ॥५॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगो को चाहिये जिस मन के स्वस्थ रहने मे वेदादि विद्याओ का आधार और जिस मे सब व्यवहारो का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्त करण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो ॥५॥

सुषारथिरित्यस्य शिवसकल्प ऋषि । मनो देवता । स्वराट त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

**सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।**

**हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥**

**पदार्थ**—( यत ) जो मन ( सुषारथि ) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाडीवान् ( अश्वानिव ) लगाम से घोडो को सब ओर से चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियो को ( नेनीयते ) शीघ्र शीघ्र इधर उधर घुमाता है और ( अभीशुभि ) जैसे रस्सियो से ( वाजिन ) वेग वाले घोडो को सारथि वश मे करता वैसे नियम मे रखता ( यत ) जो ( हृत्प्रतिष्ठम् ) हृदय मे स्थित ( अजिरम् ) विषयादि मे प्रेरक वा वृद्धादि अवस्था रहित और ( जविष्ठम् ) अत्यन्त वेगवान् है ( तत ) वह ( मे ) मेरा ( मन ) मन ( शिवसकल्पम ) मङ्गलमय नियम मे इष्ट ( अस्तु ) होवे ॥६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य जिस पदार्थ मे आसक्त है वही बल से सारथि घोडो को जैसे वैसे प्राणियो को ले जाता और लगाम से सारथि घोडो को जैसे वैसे वश मे रखता सब मूढजन जिस के अनुकूल वर्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है वह मन मनुष्यो को अपने वश मे रखना चाहिये ॥६॥

पितुमित्यस्यागस्त्य ऋषि । अन्न देवता । उष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

*अब कौन मनुष्य शत्रुओं को जीत सकता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**पितुं नु स्तोषम्महो धर्माणन्तविषीम् ।**

**यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥७॥**

**पदार्थ**—मैं ( यस्य ) जिसके ( पितुम् ) अन्न ( मह ) महान् (धर्माणम्) पक्षपात रहित न्यायाचरणरूप धर्म और ( तविषीम ) बलयुक्त सेना की (नु) शीघ्र (स्तोषम्) स्तुति करता हूं वह राजपुरुष (त्रित ) तीनो काल मे सूर्य जैसे (ओजसा) जल के साथ वर्त्तमान ( विपर्वम ) जिसकी बादल रूप गाँठ भिन्न भिन्न हो उस ( वृत्रम ) मेघ को ( वि अर्दयत ) विशेष कर नष्ट करता है वैसे शत्रुओ के जीतने को समर्थ होता है ॥७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसने सत्य धर्म बलवती सेना और पुष्कल अन्नादि सामग्री धारण की है वह जैसे सूर्य मेघ को वैसे शत्रुओं को जीत सकता है ॥७॥

अन्विदित्यस्यागस्त्य ऋषि । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि ।**

**क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंषि तारिषः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे ( अनुमते ) अनुकूल बुद्धि वाले सभापति विद्वन् ! (त्वम्) आप जिस को ( शम ) सुखकारी ( अनु मन्यासै ) अनुकूल मानो उससे युक्त ( न ) हमको ( कृधि ) करो ( क्रत्वे ) बुद्धि ( दक्षाय ) बल वा चतुराई के लिये ( न ) हम को (हिनु) बढाओ ( च ) और ( न ) हमारी ( आयूंषि ) अवस्थाओ को ( इत ) निश्चय कर ( प्र तारिष ) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये।

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि जैसे स्वार्थसिद्धि के अर्थ प्रयत्न किया जाता वैसे परार्थ मे भी प्रयत्न करें जैसे आप अपना कल्याण वृद्धि चाहते है वैसे औरो की भी चाहें इस प्रकार सब की पूर्ण अवस्था सिद्ध करें ॥८॥

अनु न इत्यस्यागस्त्य ऋषि । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।**

**अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥९॥**

**पदार्थ**—जो ( अनुमति ) अनुकूल विज्ञान वाला जन ( अद्य ) आज (देवेषु) विद्वानो मे ( न ) हमारे ( यज्ञम् ) सुख देने के साधनरूप व्यवहार को ( अनु मन्यताम् ) अनुकूल माने वह ( च ) और ( हव्यवाहन ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाला ( अग्नि ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी वा अग्निविद्या का विद्वान् तुम दोनो ( दाशुष ) दानशील मनुष्य के लिये ( मय ) सुखकारी ( भवतम् ) होओ ॥९॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य सत्कर्मों के अनुष्ठान मे अनुमति देने और दुष्टकर्मों के अनुष्ठान को निषेध करने वाले है वे अग्नि आदि की विद्या से सब के लिये सुख देवें ॥ ९ ॥

सिनीवालीत्यस्य गृत्समद ऋषि । सिनीवाली देवता । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब विदुषी कुमारी क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।**

**जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे ( सिनीवालि ) प्रेमयुक्त बल करने हारी ( पृथुष्टुके ) जिसकी विस्तृत स्तुति शिर के बाल वा कामना हो ऐसी ( देवि ) विदुषि कुमारी ( या ) जो तू ( देवानाम् ) विद्वानो की ( स्वसा ) बहिन ( असि ) है सो ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य ( आहुतम् ) अच्छे प्रकार वर दीक्षादि कर्मों से स्वीकार किये पति का ( जुषस्व ) सेवन कर और ( न ) हमारे लिये ( प्रजाम् ) सुन्दर सन्तान रूप प्रजा को ( दिदिड्ढि ) दे ॥१०॥

**भावार्थ**—हे कुमारियो ! तुम ब्रह्मचर्य आश्रम के साथ समस्त विद्याओ को प्राप्त हो युवति हो के अपने को अभीष्ट स्वय परीक्षा किये वरने योग्य पतियो को प्राप्त करो उन पतियो के साथ आनन्द कर प्रजा पुत्रादि को उत्पन्न किया करो ॥ १० ॥

पञ्चेत्यस्य गृत्समद ऋषि । सरस्वती देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

**पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।**

**सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥११॥**

**पदार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि ( सस्रोतस ) एक मन रूप प्रवाहो वाली ( पञ्च ) पाँच ( नद्य ) नदी के तुल्य प्रवाहरूप ज्ञानेन्द्रियो की वृत्ति जिस (सरस्वतीम् ) प्रशस्त विज्ञान युक्त वाणी को (अपि, यन्ति) प्राप्त होती हैं, (सा, उ)

वह भी ( सरित् ) चलनेवाली ( सरस्वती ) वाणी ( देशे ) अपने निवासस्थान में ( पञ्चधा ) पांच ज्ञानेन्द्रियों के शब्दादि पांच विषयों का प्रतिपादन करने से पांच प्रकार की ( उ ) ही ( अभवत् ) होती है ऐसा जानें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो वाणी पांच शब्दादि विषयों के आश्रित हुई नदी के तुल्य प्रवाह युक्त वर्त्तमान है उस को जानके यथावत् प्रचार कर मधुरलक्षण प्रयुक्त करें ॥११॥

त्वमग्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*अब मनुष्यों को ईश्वराज्ञा पालनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।**

**तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) परमेश्वर वा विद्वान् ! जिस कारण ( त्वम् ) आप ( प्रथमः ) प्रख्यात ( अङ्गिराः ) अवयवों के सारभूत रस के तुल्य वा जीवात्माओं को सुख देनेवाले ( देवानाम् ) विद्वानों के बीच ( देवः ) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त ( शिवः ) कल्याणकारी ( सखा ) मित्र ( ऋषिः ) ज्ञानी ( अभवः ) होवें इससे ( तव ) आपके ( व्रते ) स्वभाव वा नियम में ( विद्मनापसः ) प्रसिद्ध कर्मों वाले ( भ्राजदृष्टयः ) सुन्दर हथियारों से युक्त ( कवयः ) बुद्धिमान् ( मरुतः ) मनुष्य ( अजायन्त ) प्रकट होते हैं ॥१२॥

भावार्थ—यदि मनुष्य सबके मित्र विद्वान् जन और सबके हितैषी परमात्मा को मित्र मान विज्ञान के निमित्त कर्मों को कर प्रकाशित आत्मावाले हों तो वे विद्वान् होकर परमेश्वर की आज्ञा में वर्त्त सकें ॥१२॥

त्वमग्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*राजा और ईश्वर की कैसी सेवा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।**

**त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषꣳ॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१३॥**

पदार्थ—हे ( देव ) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त ( अग्ने ) राजन् वा ईश्वर ( तव ) आपके ( व्रते ) उत्तम नियम में वर्त्तमान ( मघोनः ) बहुत धनयुक्त हम लोगों का ( तव ) आपके ( पायुभिः ) रक्षादि के हेतु कर्मों से ( त्वम् ) आप ( रक्ष ) रक्षा कीजिये ( च ) और ( नः ) हमारे ( तन्वः ) शरीरों की रक्षा कीजिये । हे ( वन्द्य ) स्तुति के योग्य भगवन् ! जिस कारण आप ( अनिमेषम् ) निरन्तर ( रक्षमाणः ) रक्षा करते हुए ( तोकस्य ) सन्तान पुत्र ( तनये ) पौत्र और ( गवाम् ) गौ आदि के ( त्राता ) रक्षक ( असि ) हैं इसलिये हम लोगों को सर्वदा सत्कार और उपासना के योग्य हैं ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर के गुणकर्मस्वभावों और आज्ञा की अनुकूलता में वर्त्तमान हैं और जिनकी ईश्वर और विद्वान् लोग निरन्तर रक्षा करनेवाले हैं वे लक्ष्मी दीर्घावस्था और सन्तानों से रहित कभी नहीं होते ॥१३॥

उत्तानायामित्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उ॒त्ता॒नाया॑मव॑ भरा चिकि॒त्वान्त्स॒द्यः प्रवी॑ता॒ वृष॑णं जजान ।**

**अ॒रु॒षस्तू॑पो॒ रुश॑दस्य॒ पाज॒ इडा॑यास्पु॒त्रो व॒युने॑ऽजनिष्ट ॥१४॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आप जैसे ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् ( प्रवीता ) कामना करने हारा विद्वान् जन ( उत्तानायाम् ) उत्कर्षता के साथ विस्तीर्ण भूमि वा अन्तरिक्ष में ( वृषणम् ) वर्षा के हेतु यज्ञ को ( जजान ) प्रकट करता और ( अरुषस्तूपः ) रक्षक लोगों की उन्नति करने वाला ( इडायाः ) प्रशंसित स्त्री का ( पुत्रः, वयुने ) विज्ञान में ( अजनिष्ट ) प्रसिद्ध होता और ( अस्य ) इसका ( रुशत् ) सुन्दर रूप युक्त ( पाजः ) बल प्रसिद्ध होता है वैसे ( सद्यः ) शीघ्र ( अव, भर ) अपनी ओर पुष्ट कर ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से कन्या पुत्रों को द्विज करें तो ये सब शीघ्र विद्वान् हो जावें ॥१४॥

इडाया इत्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*कैसा मनुष्य राज्य के अधिकार पर स्थापित करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इडा॑यास्त्वा प॒दे व॒यं नाभा॑ पृथि॒व्या अधि॑ ।**

**जात॑वेदो॒ नि धी॑मह्य॒ग्ने ह॒व्याय॒ वोढ॑वे ॥१५॥**

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) उत्पन्न बुद्धि वाले ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् राजन् ! ( वयम् ) अध्यापक तथा उपदेशक हम लोग ( इडायाः ) प्रशंसित वाणी की ( पदे ) व्यवस्था तथा ( पृथिव्याः ) विस्तृत भूमि के ( अधि ) ऊपर ( नाभा ) मध्यभाग में ( त्वा ) आपको ( हव्याय ) देने योग्य पदार्थों को ( वोढवे ) प्राप्त करने वा कराने के लिये ( नि, धीमहि ) निरन्तर स्थापित करते हैं ॥१५॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिस अधिकार में आप को हम लोग स्थापित करें उस अधिकार को धर्म और पुरुषार्थ से यथावत् सिद्ध कीजिये ॥१५॥

प्रमन्महे इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*मनुष्यों को विद्या और धर्म बढ़ाने चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्र म॑न्महे शवसा॒नाय॑ शू॒षमा॑ङ्गू॒षं गिर्व॑णसे अङ्गिर॒स्वत् ।**

**सु॒वृ॒क्तिभि॑ स्तुव॒त ऋ॑ग्मि॒याया॑र्चा॑मा॒र्कं नरे॒ विश्रु॑ताय ॥१६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( सुवृक्तिभिः ) निर्दोष क्रियाओं से ( शवसानाय ) विज्ञान के अर्थ ( गिर्वणसे ) सुशिक्षित वाणियों से युक्त ( ऋग्मियाय ) ऋचाओं का पढ़नेवाले ( विश्रुताय ) विशेष कर जिसमें गुण सुने जावें ( स्तुवते ) शास्त्र के अभिप्रायों को कहने ( नरे ) नायक मनुष्य के लिये ( अङ्गिरस्वत् ) प्राण के तुल्य ( आङ्गूषम् ) विद्या शास्त्र के बोधरूप ( शूषम् ) बल को ( प्र, मन्महे ) चाहते हैं और इस ( अर्कम् ) पूजनीय पुरुष का ( अर्चाम ) सत्कार करें वैसे इस विद्वान् के प्रति तुम लोग भी वर्त्तो ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के योग्य का सत्कार और निरादर के योग्य का निरादर करके विद्या और धर्म को निरन्तर बढ़ाया करें ॥१६॥

प्र व इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब कौन पितर लोग हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्यꣳ॑ शवसा॒नाय॒ साम॑ ।**

**येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥१७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पदज्ञाः ) जानने वा प्राप्त होने योग्य आत्मस्वरूप को जानने वाले ( नः ) हमारा ( अर्चन्तः ) सत्कार करते हुए ( अङ्गिरसः ) सब सृष्टि की विद्या के अवयवों को जाननेवाले ( पूर्वे ) पूर्वज ( पितरः ) रक्षक ज्ञानी लोग ( येन ) जिससे ( महे ) बड़े ( शवसानाय ) ब्रह्मचर्य और उत्तम शिक्षा से शरीर और आत्मा के बल से युक्त जन और ( वः ) तुम लोगों के अर्थ ( आङ्गूष्यम् ) सत्कार वा बल के लिये उपयोगी ( साम ) सामवेद और ( गाः ) सुशिक्षित वाणियों को ( अविन्दन् ) प्राप्त करावें उसीसे उनके लिये तुम लोग ( महि ) महत्सत्कार के लिये ( नमः ) उत्तम कर्म वा अन्न को ( प्र भरध्वम् ) धारण करो ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग तुमको विद्या और उत्तम शिक्षा से पण्डित धर्मात्मा करें उन्हीं प्रथम पठित लोगों को तुम पितर जानो ॥१७॥

इच्छन्तीत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब आप्त का लक्षण कहते हैं—*

**इ॒च्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यासः॒ सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोमं॒ दध॑ति॒ प्रयां॑सि ।**

**तिति॑क्षन्ते अ॒भिश॑स्तिं॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा कश्च॒न हि प्र॑के॒तः ॥१८॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सभाध्यक्ष राजन् ! जो ( सोम्यासः ) ऐश्वर्य होने में उत्तम स्वभाव वाले ( सखायः ) मित्र हुए ( सोमम् ) ऐश्वर्यादि को ( सुन्वन्ति ) सिद्ध करते ( प्रयांसि ) चाहने योग्य विज्ञानादि गुणों को ( दधति ) धारण करते और ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( अभिशस्तिम् ) दुर्वचन वाद विवाद को ( आ, तितिक्षन्ते ) अच्छे प्रकार सहते हैं उन का आप निरन्तर सत्कार कीजिये ( हि ) जिस कारण ( त्वत् ) आप से ( प्रकेतः ) उत्तम बुद्धिमान् ( कः, चन ) कोई भी नहीं है इससे ( त्वा ) आप को सब लोग ( इच्छन्ति ) चाहते हैं ॥१८॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसार में निन्दा स्तुति और हानि लाभादि को सहने वाले पुरुषार्थी सब के साथ मित्रता का आचरण करते हुए आप्त हों वे सब को सेवन और सत्कार करने योग्य हैं तथा वे ही सब के अध्यापक और उपदेशक होवें ॥१८॥

न त इत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*फिर सभाध्यक्ष राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**न ते॑ दू॒रे प॑र॒मा चि॒द्रजा॒ꣳस्या तु प्र या॑हि हरिवो॒ हरि॑भ्याम् ।**

**स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒ने अ॒ग्नौ ॥१९॥**

पदार्थ—हे ( हरिव ) प्रशस्त घोड़ो वाले राजन् ! जसे (समिधाने) प्रदीप्त किये हुए ( अग्नौ ) अग्नि मे ( इमा सवना ) ये प्रात सवनादि यज्ञकर्म ( कृता ) किये जाते हैं (तु ) इसी हेतु स ( ग्रावाण ) गर्जना करने वाले मेघ ( युक्ता ) इकट्ठे होके आते हैं वसे (स्थिराय) दढ ( बध्ण ) सुखदायी विद्यादि पदार्थ के लिये ( हरिभ्याम् ) धारण और आकषगा के वेगरूप गुणो से युक्त घोडो वा जल और अग्नि मे ( आ, प्र याहि) अच्छे प्रकार आइये । इस प्रकार करने से (परमा) दूरस्थ ( चित ) भी ( रजांसि ) स्थान ( ते ) आप के ( दूरे ) दूर ( न ) नही होते हैं ॥१९॥

भावाथ—इस मत्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् लोगो ! जसे अग्नि से उत्प न किये हुए वर्षा के मेघ पथिवी के समीप होते आकर्षण स दूर भी जाते है वसे अग्नि क यानो स गमन करने म कोई देश दूर नही होता इस प्रकार पुरुषाथ करके सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उत्प न करो ॥१९॥

अषाढमित्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*अब राजधम विषय को अगले म त्रों मे कहा है—*

**अषा॑ढं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रि॑ꣳ स्व॒र्षाम॒प्स्वां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।**
**भ॒रे॒षु॒जाꣳ सु॑क्षि॒तिꣳ सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥२०॥**

पदार्थ—हे ( सोम ) समस्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् वा सनापते ! हम लोग जिन ( युत्सु ) युद्धो म ( अषाढम् ) असह्य ( पतनासु ) मनुष्या की सनाओ मे ( पप्रिम्) पूर्ण बल विद्यायुक्त वा रक्षक (स्वर्षाम्) सुख का सेवन करन वा (अप्साम्) जलो वा प्राणो को देने वाल ( वजनस्य ) बल के ( गोपाम् ) रक्षक ( भरेषुजाम ) धारण करने याग्य सग्रामो मे जीतने वाल ( सुक्षितिम् ) पृथिवी के सुन्दर राज्य वाले ( सुश्रवसम् ) सु दर धन वा कीर्तियो स युक्त ( जय तम )शत्रुओ का जीतन वाले ( त्वाम ) आप को ( अनु मदेम ) अनुमोदित करें ॥२०॥

भावाथ—जिस राजा वा सेनापति के उत्तम स्वभाव से राजपुरुष सेनाजन और प्रजापुरुष प्रसन्न रहे और जिन की प्रस नता में राजा प्रस न हो वहा दृढ़ विजय उत्तम निश्चल ऐश्वर्य और अच्छी प्रतिष्ठा होती है ॥२०॥

सोम इत्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द । धवत स्वर ॥

**सोमो॑ धे॒नुꣳ सोमो॒ अर्व॑न्तमा॒शुꣳ सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॑ ददाति ।**
**सा॒द॒न्यं॑ विद॒थ्य॒ꣳ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥२१॥**

पदाथ—जो प्रजास्थ मनुष्य ( अस्मै ) इस धर्मिष्ठ राजा वा अध्यापक वा उपदेशक के लिये उचित पदार्थ ( ददाशत ) देता है उसके लिय ( सोम ) ऐश्वर्य युक्त उक्त पुरुष ( धेनुम् ) विद्या की प्राधाररूप वाणी को ( ददाति ) देता ( सोम ) सत्याचरण के प्रेरणा करने हारा राजादि जन ( अर्वन्तम ) वेग स चलन वाले तथा ( आशुम ) माग को शीघ्र व्याप्त होने वाले घोड़े को देता और ( सोम ) शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त राजादि ( कर्मण्यम ) कर्मों से युक्त पुरुषार्थी (सादन्यम्) बैठाने आदि म प्रवीण ( विदथ्यम ) यज्ञ करने म कुशल ( पितृश्रवणम ) आचाय पिता से विद्या पढ़ने वाले ( सभेयम ) सभा म बठन याग्य ( वीरम) शत्रुओ के बलो को व्याप्त होने वाले शूरवीर पुरुष को देता है ॥२१॥

भावार्थ—जो अध्यापक उपदेशक वा राजपुरुष सुशिक्षित वाणी अग्नि आदि की तत्त्वविद्या पुरुष का ज्ञान और सभ्यता सब के लिय देवें वे सब का सत्कार करने योग्य हो ॥२१॥

त्वमित्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धवत स्वर ॥

**त्वमि॒मा ओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो अ॑जनय॒स्त्वं गाः ।**
**त्वमा त॑तन्थो॒र्व॑न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥२२॥**

पदार्थ—हे (सोम) उत्तम सोमवल्ली ओषधियो के तुल्य रागनाशक राजन् ! ( त्वम ) आप ( इमा ) इन ( विश्वा ) सब ( ओषधी ) सोम आदि ओषधियो को ( त्वम ) आप सूर्य्य के तुल्य ( अप ) जनो वा कम का और ( त्वम् ) आप ( गा ) पृथिवी वा गौओ को ( अजनय ) उत्प न वा प्रकट कीजिये ( त्वम ) आप सूर्य्य के समान ( उरु ) बहुत अवकाश को ( आ, ततन्थ ) विस्तत कर्ते तथा ( त्वम् ) आप सूर्य्य जैसे (ज्योतिषा ) प्रकाश से ( तम ) अ धकार को दबाता वैसे न्याय से अन्याय को ( वि ववथ ) आच्छादित वा निवत्त कीजिये सो आप हम को माननीय हैं ॥२२॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे ओषधि रोगो को वसे दु खो को हर लेते हैं प्राणो के तुल्य बलो को प्रकट करते तथा जो राजपुरुष सूर्य्य रात्रि को जैसे वैसे अधर्म और अविद्या के अन्धकार को निवत्त करते हैं वे जगत् को पूज्य क्यो नहीं हो ? ॥२२॥

देवेनेत्यस्य गोतम ऋषि । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धवत स्वर ॥

**दे॒वेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गꣳ स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य ।**
**मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॑स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्सा॒ गवि॑ष्टौ ॥२३॥**

पदार्थ—हे ( सहसावन् ) अधिकतर सेनादि बल वाले ( सोम ) सम्पूर्ण ऐश्वय के प्रापक ( देव ) दिव्य गुणो से युक्त राजन् ! जो आप ( देवेन ) उत्तम गुण कम स्वभाव युक्त ( मनसा ) मन स ( राय ) धन के ( भागम्) अंश को ( न ) हमारे लिये (अभि, युध्य ) सब ओर से प्राप्त कीजिय जिस से आप ( वीर्य्यस्य ) वीरकम करने को ( ईशिषे ) समर्थ होते हो इस से ( त्वा ) आप को कोई ( मा ) न ( आ तनत ) दबावे सो आप ( गविष्टौ ) सुख विशेष की इच्छा के होते ( उभयेभ्य ) दोनो इस लाक परलोक के सुखों के लिये ( प्र, चिकित्स ) रोग निवारण के तुल्य विघ्न निवृत्ति के उपाय को किया कीजिये ॥२३॥

भावार्थ—राजादि विद्वानो को चाहिये कि कपटादि दोषों को छोड़ शुद्ध भाव से सब के लिय सुख की चाहना करके पराक्रम बढावें और जिस कर्म से दुख की निवत्ति तथा सुख की वद्धि इस लाक परलोक मे हो उसके करने मे निर तर प्रयत्न करे ॥२३॥

अष्टावित्यस्याऽऽङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि । सविता देवता । भुरिक पङ्क्तिश्छन्द । पंचम स्वर ॥

*अब सर्य क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न् ।**
**हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व आगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥२४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( हिरण्याक्ष ) नेत्र के समान रूप दर्शाने वाली ज्योतियों वाला ( देव ) प्रेरक ( सविता ) सूर्य ( दाशुषे ) दानशील प्राणियो के लिय ( वार्याणि ) स्वीकार करन योग्य ( रत्ना ) पृथिवी के उत्तम पदार्थों का ( दधत् ) धारण करता हुआ ( त्री ) तीन ( धन्व ) अवकाशरूप ( योजना) अर्थात् बारह कोस और ( सप्त ) सात (सिन्धून्) पृथिवी के समुद्र से लेक मेघ के ऊपर ले अवयवो पय त समुद्रो की तथा (पथिव्या ) पृथिवी सम्बन्धिनी (अष्टौ) आठ (ककुभ ) दिशाओ को (वि अख्यत) प्रसिद्ध प्रकाशित करता है वस ही तुम लोग होओ ॥२४॥

भावार्थ—हे मनुष्या ! जैसे सूर्य्य से पृथिवी तक १२ कोस पर्य त हलके भारीपन से युक्त सात प्रकार के जल के अवयव और दिशा विभक्त होती तथा वर्षादि से सब का सुख दिया जाता वसे शुभ गुण कम और स्वभावो स दिशाओ म कीर्ति फैला के अनेक प्रकार के ऐश्वय को देने स मनुष्यादि प्राणियो का निरन्तर सुखी करो ॥२४॥

हिरण्यपाणिरित्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि । सविता देवता । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

**हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते ।**
**अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम॑ृणोति ॥२५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( हिरण्यपाणि ) हाथो के तुल्य जलादि के ग्राहक प्रकाश रूप किरणो से युक्त (विचर्षणि ) विशेष कर सब को दिखाने वाला (सविता) सब पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु (सूर्य्यम) सूर्य्यलोक जब (उभे) दोनो (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के ( अन्त ) बीच ( ईयते ) उदय होकर घूमता है तब ( अमीवाम ) व्याधिरूप अ धकार को ( अप, बाधते ) दूर करता और जब ( वेति ) अस्त समय को प्राप्त होता तब ( कृष्णेन रजसा ) काले अ धकार रूप से (द्याम) आकाश को ( अभि, ऋणोति ) सब ओर से व्याप्त होता है उस सूर्य्य को तुम लोग जानो ॥२५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जस सूर्य्य अपने समीपवर्त्ती लोको का आकषण कर धारण करता है वैस ही अनेक लोको से शाभायमान सूर्यादि सब जगत् को सब ओर से व्याप्त हो और आकर्षण करके ईश्वर धारण करता है ऐसा जानो क्योकि ईश्वर के विना सबका स्रष्टा तथा धर्त्ता अ य कोई भी नही हो सकता ॥२५॥

हिरण्यहस्त इत्यस्य आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि । सविता देवता । विराट त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

**हिर॑ण्यहस्तो॒ असु॑रः सुनी॒थः सु॑मृडी॒कः स्ववा॑ँ यात्व॒र्वाङ् ।**
**अ॒प॒सेध॑न्र॒क्षसो॑ यातु॒धाना॒नस्था॑द्दे॒वः प्र॑तिदो॒षं गृ॑णा॒नः ॥२६॥**

पदाथ—हे मनुष्यो ! जो ( हिरण्यहस्त ) हाथो के तुल्य प्रकाशो वाला ( सुनीथ ) सु दर प्रकार प्राप्ति करान (असुर ) जलादि का फेंकने वाला (सुमृडीक ) सुन्दर सुखकारी ( स्ववान् ) अपन प्रकाशादिक गुणो स युक्त (देव ) प्रकाशक सूर्य्य लोक ( यातुधानान् ) अन्याय से दूसरो क पदार्थों को धारण करने वाले ( रक्षस ) डाकू चोर आदि को ( अपसेधन् ) निवत्त करता अर्थात् डाकू चोर आदि सूर्योदय होने पर अपना काम नही बना सकते किन्तु प्राय रात्रि को ही अपना काम बनाते हैं और (प्रतिदोषम ) मनुष्यो के प्रति जो दोष उसको (गृणान ) प्रकट करता हुआ ( अस्थात् ) उदय होता है वह ( अर्वाङ् ) अपने समीपवर्त्ती पदार्थों को प्राप्त होने वाला हमारे सुख के अर्थ ( यातु ) प्राप्त होवे वैसे तुम होओ ॥२६॥

भावाथ—हे मनुष्यो ! मांगने वालो के लिये उदारता से सुवर्णादि दे तथा दुष्टाचारियो का तिरस्कार कर और धार्मिक जनों को सुख देके प्रतिदिन सूर्य्य के तुल्य प्रकाशित होओ ॥२६॥

ये त इत्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि । सविता देवता । विराट त्रिष्टुप् छन्द । धवत स्वर ॥

*अब अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**ये ते॒ पन्थाः॑ सवितः पू॒र्व्यासो॑ऽरे॒णवः॒ सुकृ॑ता अ॒न्तरि॑क्षे ।**
**तेभि॑र्नो अ॒द्य प॒थिभिः॑ सु॒गेभी॒ रक्षा॑ च नो॒ अधि॑ च ब्रूहि देव ॥२७॥**

पदार्थ—हे ( सवितः ) सूर्य के तुल्य ऐश्वर्य देने वाले ( देव ) विद्या और सुख के दाता आप्त विद्वान् पुरुष ! जिस ( ते ) आप के जैसे सूर्य के ( अन्तरिक्षे ) आकाश में गमन के शुद्ध मार्ग हैं वैसे ( ये ) जो ( पूर्व्यासः ) पूर्वज आप्तजनों ने सेवन किये ( अरेणवः ) धूलि आदि रहित ( सुकृताः ) सुन्दर सिद्ध किये ( पन्थाः ) मार्ग हैं ( तेभिः ) उन ( सुगेभिः ) सुखपूर्वक जिन में चलें ऐसे ( पथिभिः ) मार्गों से ( अद्य ) आज ( नः ) हम लोगों को चलाइये उन मार्गों से चलते हुए हमारी ( रक्ष ) रक्षा ( च ) भी कीजिये ( च ) तथा ( नः ) हम को ( अधि ब्रूहि ) अधिकतर उपदेश कीजिये इसी प्रकार सब का वेतन कीजिये ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! तुम को चाहिये कि जैसे सूर्य के आकाश में निर्मल मार्ग हैं वैसे ही उपदेश और अध्यापन से विद्या धर्म और सुशीलता के दाता मार्गों का प्रचार करें ॥२७॥

उभेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

**उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।**

**अविद्रियाभिरूतिभिः ॥२८॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सूर्य चन्द्रमा के तुल्य अध्यापक उपदेशको ! ( उभा ) दोनों तुम लोग जिस जगह पर उत्तम रस को ( पिबतम् ) पिओ उस ( शर्म ) उत्तम आश्रय स्थान व सुख को ( उभा ) दोनों तुम ( अविद्रियाभिः ) छिद्ररहित ( ऊतिभिः ) रक्षणादि क्रियाओं से रक्षित घर को ( नः ) हमारे लिये ( यच्छतम् ) देओ ॥२८॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि सदा उत्तम घर बनाने के और निवास के उपदेशों को कर जहाँ पूर्ण रक्षा हो उस विषय में सब को प्रेरणा करें ॥२८॥

अप्नस्वतीमित्यस्य कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।**

**अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२९॥**

पदार्थ—हे ( दस्रा ) दुःख के नाशक ( वृषणा ) सुख के वर्षाने वाले ( अश्विना ) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनों ( अस्मे ) हमारी ( वाचम् ) वाणी ( च ) और ( मनीषाम् ) बुद्धि को ( अप्नस्वतीम् ) प्रशस्त कर्मों वाली ( कृतम् ) करो ( नः ) हमारे ( अद्यूत्ये ) द्यूतरहित स्थान में हुए कर्म में ( अवसे ) रक्षा के लिए स्थित करो ( वाजसातौ ) धन का विभाग करने हारे सङ्ग्राम में ( नः ) हमारी ( वृधे ) वृद्धि के लिये ( भवतम् ) उद्यत होओ जिन ( वाम् ) तुम्हारी ( नि, ह्वये ) निरन्तर स्तुति करता हूँ वे दोनों आप मेरी उन्नति करो ॥२९॥

भावार्थ—जो मनुष्य निष्कपट आप्त दयालु विद्वानों का निरन्तर सेवन करते हैं वे प्रगल्भ धार्मिक विद्वान् होके सब ओर से बढ़ते और विजयी होते हुए सुखदायी होते हैं ॥२९॥

द्युभिरित्यस्य कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

*अब सभासेनाधीश क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।**

**तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३०॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सभासेनाधीशो ! जैसे ( अदितिः ) पृथिवी ( सिन्धुः ) सात प्रकार का समुद्र ( पृथिवी ) आकाश ( उत ) और ( द्यौः ) प्रकाश ( तत् ) वे ( नः ) हमारा ( मामहन्ताम् ) सत्कार करें वैसे ( मित्रः ) मित्र तथा ( वरुणः ) दुष्टों को बाँधने वा रोकने वाले तुम दोनों ( द्युभिः ) दिन ( अक्तुभिः ) रात्रि ( अरिष्टेभिः ) अहिंसित ( सौभगेभिः ) श्रेष्ठ धनों के होने से ( अस्मान् ) हमारी ( परि, पातम् ) सब ओर से रक्षा करो ॥३०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सभाधीश आदि विद्वान् लोग जैसे पृथिवी आदि तत्त्व सब प्राणियों की रक्षा करते हैं वैसे ही बढ़े हुए ऐश्वर्यों से दिन रात सब मनुष्यों को बढ़ावें ॥३०॥

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सूर्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*अब विद्युत् से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।**

**हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३१॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो ( आ कृष्णेन ) आकर्षित हुए ( रजसा ) लोक समूह के साथ ( वर्त्तमानः ) वर्तमान निरन्तर ( अमृतम् ) नाशरहित कारण ( च ) और ( मर्त्यम् ) नाशसहित कार्य को ( निवेशयन् ) अपनी अपनी कक्षा में स्थित करता हुआ ( हिरण्ययेन ) तेजःस्वरूप ( रथेन ) रमणीयस्वरूप के सहित ( सविता ) ऐश्वर्य का दाता ( देवः ) देदीप्यमान विद्युत्रूप अग्नि ( भुवनानि ) संसारस्थ वस्तुओं को ( याति ) प्राप्त होता है उसको ( पश्यन् ) देखते हुए सम्यक् प्रयुक्त कीजिये ॥३१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजली कार्य और कारण को सम्यक् प्रकाशित कर सर्वत्र अभिव्याप्त तेजःस्वरूप शीघ्रगामिनी सब का आकर्षण करने वाली है उसको देखते हुए सम्प्रयोग में अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाया करो ॥३१॥

आ रात्रीत्यस्य कुत्स ऋषिः । रात्रिर्देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*अब रात्रि का वर्णन अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।**

**दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥३२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( बृहती ) बड़ी ( रात्रि ) रात ( दिवः ) प्रकाश के ( सदांसि ) स्थानों को ( वि, तिष्ठसे ) व्याप्त होती है जिस रात्रि ने ( पितुः ) अपने तथा सूर्य के मध्यस्थ लोक के ( धामभिः ) सब स्थानों के साथ ( पार्थिवम् ) पृथिवी सम्बन्धी ( रजः ) लोक को ( आ, अप्रायि ) अच्छे प्रकार पूर्ण किया है और जिसका ( त्वेषम् ) अपनी कान्ति से बढ़ा हुआ ( तमः ) अन्धकार ( आ ) ( वर्त्तते ) आता जाता है उसका युक्ति के साथ सेवन करो ॥३२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पृथिव्यादि की छाया रात्रि में प्रकाश को रोकती अर्थात् सब का आवरण करती है उसका आप लोग यथावत् सेवन करें ॥३२॥

उष इत्यस्य गोतम ऋषिः । उषर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*फिर उष काल का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं—*

**उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।**

**येन तोकं च तनयं च धामहे ॥३३॥**

पदार्थ—हे ( वाजिनीवति ) बहुत अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त ( उषः ) प्रातः समय की वेला के तुल्य कान्तिसहित वर्त्तमान स्त्रि ! जैसे अधिकतर अन्नादि ऐश्वर्य की हेतु प्रातःकाल की वेला जिस प्रकार के ( चित्रम् ) आश्चर्य स्वरूप को धारण करती ( तत् ) वैसे रूप को तू ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( आ, भर ) अच्छे प्रकार पुष्ट कर ( येन ) जिससे हम लोग ( तोकम् ) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक ( च ) और ( तनयम् ) कुमारावस्था के लड़के को ( च ) भी ( धामहे ) धारण करें ॥३३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब शोभा से युक्त मङ्गल देने वाली प्रभात समय की वेला सब व्यवहारों को धारण करने वाली है यदि वैसी स्त्रियाँ हों तो वे सदा अपने अपने पति को प्रसन्न कर पुत्रपौत्रादि के साथ आनन्द को प्राप्त होवें ॥३३॥

प्रातरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।**

**प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम ॥३४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( प्रातः ) प्रातःकाल ( अग्निम् ) पवित्र पवित्र वा स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा व अग्नि को ( प्रातः ) प्रातः समय ( इन्द्रम् ) उत्तम ऐश्वर्य को ( प्रातः ) प्रभात समय ( मित्रावरुणा ) प्राण उदान को और ( प्रातः ) प्रभात समय ( अश्विना ) अध्यापक तथा उपदेशक को ( हवामहे ) ग्रहण करें व बुलावें ( प्रातः ) प्रातः समय ( भगम् ) सेवन करने योग्य भाग ( पूषणम् ) पुष्टिकारक भोग ( ब्रह्मणस्पतिम् ) धन को वा वेद के रक्षक को ( प्रातः ) प्रभात समय ( सोमम् ) सोमादि ओषधिगण ( उत ) और ( रुद्रम् ) जीव को ( हुवेम ) ग्रहण वा स्वीकृत करें वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥३४॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रातःकाल परमेश्वर की उपासना अग्निहोत्र ऐश्वर्य की उन्नति का उपाय प्राण और अपान की पुष्टि करना अध्यापक उपदेशक, विद्वानों तथा ओषधि का सेवन और जीवात्मा को प्राप्त होने व जानने का प्रयत्न करते हैं वे सब सुखों से सुशोभित होते हैं ॥३४॥

प्रातर्जितमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*मनुष्य लोग ऐश्वर्य का सम्पादन करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता ।**

**आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( वयम् ) हम लोग ( प्रातः ) प्रभात समय ( यः ) जो ( विधर्त्ता ) विविध पदार्थों को धारण करने हारा ( आध्रः ) पापादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र ( चित् ) भी ( यम् ) जिस ऐश्वर्य को ( मन्यमानः ) विशेष कर जानता हुआ ( तुरः ) शीघ्रकारी ( चित् ) भी ( राजा ) शोभायुक्त राजा है ( यम् ) जिस ( भगम् ) ऐश्वर्य को ( चित् ) भी ( भक्षि, इति आह ) तू सेवन कर इस प्रकार ईश्वर उपदेश करता है उस ( अदितेः ) अविनाशी कारण के समान माता के ( पुत्रम् ) पुत्र रक्षक ( जितम् ) अपने पुरुषार्थ से प्राप्त ( उग्रम् ) उत्कृष्ट ( भगम् ) ऐश्वर्य को ( हुवेम ) ग्रहण करें वैसे तुम लोग स्वीकार करो ॥३५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को सदा प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक यथाशक्ति सामर्थ्य से विद्या और

पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति कर आनन्द भोगना और दरिद्रों के लिये सुख देना चाहिये यह ईश्वर ने कहा है ॥३५॥

**भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगवान् देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर की प्रार्थना आदि विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः ।**

**भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥३६॥**

**पदार्थ**—हे ( **भग** ) ऐश्वर्ययुक्त ! ( **प्रणेतः** ) पुरुषार्थ के प्रतिप्रेरक ईश्वर वा हे ( **भग** ) ऐश्वर्य के दाता ! ( **सत्यराध** ) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनों वाले ( **भग** ) सेवने योग्य विद्वान् आप ( **नः** ) हमारी ( **इमाम्** ) इस वर्त्तमान ( **धियम्** ) बुद्धि को ( **ददत्** ) देते हुए ( **उत् अव** ) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये । हे ( **भग** ) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान् ! आप ( **गोभिः** ) गौ आदि पशुओं ( **अश्वैः** ) घोड़े आदि सवारियों और ( **नृभिः** ) नायक कुलनिर्वाहक मनुष्यों के साथ ( **नः** ) हमको ( **प्र जनय** ) प्रकट कीजिये । हे ( **भग** ) सेवा करते हुए विद्वान् ! जिससे हम लोग ( **नृवन्तः** ) प्रशस्त मनुष्यों वाले ( **प्रस्याम** ) अच्छे प्रकार हों वैसे कीजिये ॥ ३६ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि जब जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का सङ्ग करें तब तब बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें ॥ ३६ ॥

**उतेदानीमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब ऐश्वर्य की उन्नति का विषय अगले मन्त्रों में कहते हैं—*

**उ॒तेदानीं॒ भग॑वन्तः स्यामो॒त प्र॑पि॒त्व उ॒त मध्ये॒ अह्ना॑म् ।**

**उ॒तोदि॑ता मघव॒न्त्सूर्य॑स्य व॒यं दे॒वाना॑ᳬ सुम॒तौ स्या॑म ॥३७॥**

**पदार्थ**—हे ( **मघवन्** ) उत्तम धनयुक्त ईश्वर वा विद्वान् ! ( **वयम्** ) हम लोग ( **इदानीम्** ) वर्त्तमान समय में ( **उत** ) और ( **प्रपित्वे** ) पदार्थों की प्राप्ति में ( **उत** ) और भविष्यत्काल में ( **उत** ) और ( **अह्नाम्** ) दिनों के ( **मध्ये** ) बीच ( **भगवन्तः स्याम** ) समस्त ऐश्वर्य से युक्त हों ( **उत** ) और ( **सूर्यस्य** ) सूर्य के ( **उदिता** ) उदय समय तथा ( **देवानाम्** ) विद्वानों की ( **सुमतौ** ) उत्तम बुद्धि में समस्त ऐश्वर्य युक्त ( **स्याम** ) हों ॥ ३७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि वर्त्तमान और भविष्यत् काल में योग के ऐश्वर्यों की उन्नति से लौकिक व्यवहार के बढ़ाने और प्रशंसा में निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३७ ॥

**भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगवान् देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**भग॑ ए॒व भग॑वाँ२ऽअस्तु देवा॒स्तेन॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम ।**

**तं त्वा॑ भग॒ सर्व॒ इज्जो॑हवीति॒ स नो॑ भग पुरए॒ता भ॑वे॒ह ॥३८॥**

**पदार्थ**—हे ( **देवाः** ) विद्वान् लोगो ! जो ( **भग एव** ) सेवनीय ही ( **भगवान्** ) प्रशस्त ऐश्वर्ययुक्त ( **अस्तु** ) होवे ( **तेन** ) उस ऐश्वर्यरूप ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के साथ ( **वयम्** ) हम लोग ( **भगवन्तः** ) समग्र शोभायुक्त ( **स्याम** ) होवें । हे ( **भग** ) सम्पूर्ण शोभायुक्त ईश्वर ! ( **तम्, त्वा** ) उन आपको ( **सर्व, इत** ) समस्त ही जन ( **जोहवीति** ) शीघ्र पुकारता है । हे ( **भग** ) सकल ऐश्वर्य के दाता ! ( **सः** ) सो आप ( **इह** ) इस जगत् में ( **नः** ) हमारे ( **पुरः, एता** ) अग्रगामी ( **भव** ) हूजिये ॥ ३८ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर है उसके और जो उसके उपासक विद्वान् हैं उनके साथ सिद्ध तथा श्रीमान् होओ जो जगदीश्वर माता पिता के समान हम पर कृपा करता है उसकी भक्तिपूर्वक इस संसार में मनुष्यों को ऐश्वर्य वाले निरन्तर किया करो ॥ ३८ ॥

**समध्वरायेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**सम॑ध्व॒राय॑ उ॒षसो॑ नमन्त दधि॒क्रावे॑व॒ शुच॑ये प॒दाय॑ ।**

**अ॒र्वा॒ची॒नं व॑सु॒विदं॒ भगं॑ नो॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ आ व॑हन्तु ॥३९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **उषसः** ) प्रभात समय ( **दधिक्रावेव** ) अच्छे चलाने धारण करने वाले घोड़े के तुल्य ( **शुचये** ) पवित्र ( **पदाय** ) प्राप्त होने योग्य ( **अध्वराय** ) हिंसारूप अधर्म रहित व्यवहार के लिये ( **सम् नमन्त** ) सम्यक् नमते अर्थात् प्रातः समय सत्त्व गुण की अधिकता से सब प्राणियों के चित्त शुद्ध नम्र होते हैं ( **अश्वाः** ) शीघ्रगामी ( **वाजिनः** ) घोड़े जैसे ( **रथमिव** ) रमणीय यान को वैसे ( **नः** ) हमको ( **अर्वाचीनम्** ) इस समय के ( **वसुविदम्** ) अनेक प्रकार के धनप्राप्ति के हेतु ( **भगम्** ) ऐश्वर्ययुक्त जन को प्राप्त करें वैसे इनको आप लोग ( **आ वहन्तु** ) अच्छे प्रकार चलावें ॥ ३९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य प्रभात वेला के तुल्य विद्या और धर्म का प्रकाश करते और जैसे घोड़े यानों को वैसे शीघ्र समस्त ऐश्वर्य को पहुँचाते हैं वे पवित्र विद्वान् जानने योग्य हैं ॥ ३९ ॥

**अश्वावतीरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । उषा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब विदुषी स्त्रियाँ क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः ।**

**घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥४०॥**

**पदार्थ**—हे विदुषी स्त्रियो ! जैसे ( **अश्वावतीः** ) प्रशस्त व्याप्तिशील जलों वाली ( **गोमतीः** ) बहुत किरणों से युक्त ( **वीरवतीः** ) बहुत वीर पुरुषों से संयुक्त ( **भद्राः** ) कल्याणकारिणी ( **घृतम्** ) शुद्ध जल को ( **दुहानाः** ) पूर्ण करती हुई ( **विश्वतः** ) सब ओर से ( **प्रपीताः** ) प्रकर्षता से बढ़ी हुई ( **उषासः** ) प्रभातवेला हमारी ( **सदम्** ) सभा को प्राप्त होती अर्थात् प्रकाशित वा प्रवृत्त करती हैं वैसे हमारी सभा को आप लोग ( **उच्छन्तु** ) समाप्त करो और ( **नः** ) हमारी ( **यूयम्** ) तुम लोग ( **स्वस्तिभिः** ) स्वस्थता देने वाले सुखों से ( **सदा** ) सदा ( **पात** ) रक्षा करो ॥ ४० ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देने वाली होती है वैसे विदुषी स्त्रियाँ कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ा के सदैव इन कन्याओं को आनन्दित किया करें ॥ ४० ॥

**पूषन्नित्यस्य सुहोत्र ऋषिः । पूषा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर और आप्तजन के सेवक कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**पूष॒न्तव॑ व्र॒ते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न । स्तो॒तार॑स्त इ॒ह स्म॑सि ॥४१॥**

**पदार्थ**—हे ( **पूषन्** ) पुष्टिकारक परमेश्वर वा आप्तविद्वन् ! ( **वयम्** ) हम लोग ( **तव** ) आपके ( **व्रते** ) स्वभाव वा नियम में ऐसे वर्त्तें कि जिससे ( **कदा चन** ) कभी भी ( **न** ) न ( **रिष्येम** ) चित्त बिगाड़ें ( **इह** ) इस जगत् में ( **ते** ) आपके ( **स्तोतारः** ) स्तुति करने वाले हुए हम सुखी ( **स्मसि** ) होते हैं ॥४१॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वान् के गुणकर्मस्वभाव के अनुकूल वर्त्तते हैं वे कभी नष्ट सुख वाले नहीं होते ॥ ४१ ॥

**पथस्पथ इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः । पूषा देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।**

**प॒थस्प॑थः॒ परि॑पतिं वच॒स्या कामे॑न कृ॒तो अ॒भ्या॑नड॒र्कम् ।**

**स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑धियᳪं सीषधाति॒ प्र पू॒षा ॥४२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **वचस्या** ) वचन और ( **कामेन** ) कामना करके ( **कृतः** ) सिद्ध ( **पूषा** ) पुष्टिकर्त्ता जगदीश्वर वा आप्त जन ( **शुरुधः** ) शीघ्र दुःखों को रोकने वाले ( **चन्द्राग्राः** ) प्रथम से ही आनन्दकारी साधनों को ( **नः** ) हमारे लिये ( **रासत्** ) देवे ( **धियं धियम्** ) प्रत्येक बुद्धि वा कर्म को ( **प्रसीषधाति** ) प्रकर्षता से सिद्ध करे ( **सः** ) वह शुभ गुण कर्म स्वभावों को ( **अभि आनट्** ) सब ओर से व्याप्त होता उस ( **अर्कम्** ) पूजनीय ( **पथस्पथः** ) प्रत्येक मार्ग के ( **परिपतिम्** ) स्वामी की हम लोग स्तुति करें ॥ ४२ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सबके सुख के लिये वेद के प्रकाश की और आप्त पुरुष पढ़ाने की इच्छा करता जो सबके लिये श्रेष्ठ बुद्धि उत्तम कर्म और शिक्षा को देते हैं उन सब श्रेष्ठ मार्गों के स्वामियों का सदा सत्कार करना चाहिये ॥ ४२ ॥

**त्रीणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**त्रीणि॑ प॒दा वि च॑क्रमे॒ विष्णु॑र्गो॒पा अदा॑भ्यः ।**

**अतो॒ धर्मा॑णि धा॒रय॑न् ॥४३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **अदाभ्यः** ) अहिंसा धर्मवाला होने से दयालु ( **गोपाः** ) रक्षक ( **विष्णुः** ) चराचर जगत् में व्याप्त परमेश्वर ( **धर्माणि** ) पुण्यरूप कर्मों वा धारक पृथिव्यादि को ( **धारयन्** ) धारण करता हुआ ( **अतः** ) इस कारण से ( **त्रीणि** ) तीन ( **पदा** ) जानने वा प्राप्त होने योग्य कारण सूक्ष्म और स्थूलरूप जगत् का ( **वि चक्रमे** ) आक्रमण करता है वही हम लोगों को पूजनीय है ॥ ४३ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यरूप करके तीन प्रकार के जगत् को बनाया सबका धारण किया और रक्षित किया है वही उपासना के योग्य इष्टदेव है ॥ ४३ ॥

**तद्विप्रास इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

**तद्विप्रा॑सो विप॒न्यवो॑ जागृ॒वाᳬसः॒ समि॑न्धते ।**

**विष्णो॒र्यत्प॑र॒मं प॒दम् ॥४४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **जागृवांसः** ) अविद्यारूप निद्रा से उठ के चेतन हुए ( **विपन्यवः** ) विशेषकर स्तुति करने योग्य वा ईश्वर की स्तुति करने हारे ( **विप्रासः** ) बुद्धिमान् योगी लोग ( **विष्णोः** ) सर्वत्र अभिव्यापक परमात्मा का ( **यत्** ) जो ( **परमम्** ) उत्तम ( **पदम्** ) प्राप्त होने योग्य मोक्षदायी स्वरूप है ( **तत्** ) उसको ( **सम् इन्धते** ) सम्यक् प्रकाशित करते हैं उनके सत्संग से तुम लोग भी वैसे होओ ॥ ४४ ॥

**भावार्थ**—जो योगाभ्यासादि सत्कर्मों करके शुद्ध मन और आत्मावाले धार्मिक पुरुषार्थी जन हैं वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप का जानने और उसको प्राप्त होने योग्य होते हैं अन्य नहीं ॥ ४४ ॥

**घृतवतीत्यस्य भरद्वाज ऋषि । द्यावापृथिव्यौ देवते । निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

**घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।**
**द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( वरुणस्य ) सब से श्रेष्ठ जगदीश्वर के (धर्मणा) धारण करने रूप सामर्थ्य से ( मधुदुघे ) जल को पूर्ण करने वाली ( सुपेशसा ) सुन्दर रूप युक्त ( पृथ्वी ) विस्तारयुक्त ( उर्वी ) बहुत पदार्थों वाली ( घृतवती ) बहुत जल के परिवर्त्तन से युक्त ( अजरे ) अपने स्वरूप से नाशरहित ( भूरिरेतसा ) बहुत जलो से युक्त वा अनेक वीर्य वा पराक्रमो की हेतु ( भुवनानाम ) लोक लोकान्तरो की ( अभिश्रिया ) सब ओर से शोभा करने वाली ( द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि ( विष्कभिते) विशेष कर धारण वा दृढ़ किये हैं उसी की उपासना के योग्य तुम लोग जानो ॥४५॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को जिस परमेश्वर ने प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप दो प्रकार के जगत् को बना और धारण करके पालित किया है वही सर्वदा उपासना के योग्य है ॥ ४५ ॥

**येन इत्यस्य विहव्य ऋषि । लिङ्गोक्ता देवता । भुरिक त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ये नः सुपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।**
**वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥४६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो ( न ) हमारे ( सपत्ना ) शत्रु लोग हो ( ते ) वे ( अप भवन्तु ) दूर हो अर्थात् पराजय को प्राप्त हो जैसे ( तान् ) उन शत्रुओ को हम (इन्द्राग्निभ्याम्) वायु और विद्युत् के शस्त्रो से ( अव, बाधामहे) पीड़ित करें और जैसे ( वसव ) पृथिवी आदि वसु ( रुद्रा ) दश प्राण ग्यारहवा आत्मा और ( आदित्या ) बारह महीने ( उपरिस्पृशम् ) उच्च स्थान पर बैठने ( उग्रम ) तेजस्वभाव और ( चेत्तारम ) सत्यासत्य का यथावत् जानने वाले ( मा ) मुझ को ( अधिराजम ) अधिपति स्वामी समर्थ ( अक्रन् ) करें वैसे उन शत्रुओ का तुम लोग निवारण और मेरा सत्कार करो ॥४६॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसके अधिकार मे पृथिवी आदि पदार्थ हो वही सब के ऊपर राजा होवे । जो राजा होवे वह शस्त्र अस्त्रो से शत्रुओ का निवारण कर निष्कण्टक राज्य करे ॥४६॥

**आ नासत्येत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषि । अश्विनौ देवते । जगती छन्द । निषाद स्वर ॥**

*अब कौन जगत् के हितैषी हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।**
**प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४७॥**

**पदार्थ**—हे ( नासत्या ) असत्य आचरण से रहित ( अश्विना ) राज और प्रजा के विद्वानो ! जैसे तुम ( इह ) इस जगत् मे ( त्रिभि ) ( एकादश ) तेंतीस (देवेभि ) उत्तम पृथिवी आदि ( आठ वसु प्राणादि ग्यारह रुद्र बारह महीनो तथा बिजुली और यज्ञ ) तेंतीस देवताओ के साथ ( मधुपेयम ) मधुर गुणो से युक्त पीने योग्य ओषधियो के रस को ( आ यातम ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वा उसके लिये आया करो ( रपांसि ) पापो का ( मृक्षतम् ) शुद्ध किया करो ( द्वेष ) द्वेषादि दोषयुक्त प्राणियो का ( नि सेधतम ) खण्डन वा निवारण किया करो (सचाभुवा ) सत्य पुरुषार्थ के साथ कार्यों मे संयुक्त (भवतम) होओ और ( आयु ) जीवन को ( प्र तारिष्टम ) अच्छे प्रकार बढ़ाओ वैसे हम लोग होवें ॥४७॥

**भावार्थ**—वे ही लोग जगत् के हितैषी हैं जो पृथिवी आदि सृष्टि की विद्या को जान के दूसरो का ग्रहण करावें दोषो को दूर करें और अधिक काल जीवन के विधान का प्रचार किया करें ॥४७॥

**एष व इत्यस्यागस्त्य ऋषि । मरुतो देवता । पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*फिर मनुष्य लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।**
**एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥४८॥**

**पदार्थ**—हे ( मरुत ) मरण धर्म वाले मनुष्यो ! ( मान्दार्यस्य) प्रशस्त कर्मों के सेवक उदार चित्त वाले ( मान्यस्य ) सत्कार के योग्य ( कारो ) पुरुषार्थी कारीगर का ( एष ) यह ( स्तोम ) प्रशंसा और ( इयम् ) यह ( गी ) वाणी ( व ) तुम्हारे लिये उपयोगी होवे तुम लोग ( इषा) इच्छा वा अन्न के निमित्त से (वयाम्) अवस्था वाले प्राणियो के ( तन्वे ) शरीरादि की रक्षा के लिये ( आ, यासीष्ट ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ करो और हम लोग ( जीरदानुम ) जीवन के हेतु ( इषम ) विज्ञान वा अन्न तथा ( वृजनम ) दुःखो के वर्जन वाले बल को ( विद्याम ) प्राप्त हों ॥४८॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि सदैव प्रशंसनीय कर्मों का सेवन और शिल्प विद्या के विद्वानो का सत्कार करके जीवन बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥४८॥

**सहस्तोमा इत्यस्य प्राजापत्यो यज्ञ ऋषि । ऋषयो देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब ऋषि कौन होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सहस्तोमा सहच्छन्दस आवृत सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्या ।**
**पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( सहस्तोमा ) प्रशंसाओ के साथ वर्त्तमान वा जिनकी शास्त्रस्तुति एक साथ हो ( सहच्छन्दस ) वेदादि का अध्ययन वा स्वतन्त्र सुख भोग जिनका साथ हो ( आवृत ) ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्या पढ़ और गुरुकुल से निवृत्त होके घर आये (सहप्रमा ) साथ ही जिन का प्रमाणादि यथार्थ ज्ञान हो ( सप्त ) पांच ज्ञानेन्द्रिय अन्त करण और आत्मा ये सात ( दैव्या ) उत्तम गुण कर्म स्वभावों मे प्रवीण ध्यान वाले योगी ( ऋषय ) वेदादि शास्त्रो के ज्ञाता लोग ( रथ्य ) सारथि ( न ) जैसे ( रश्मीन् ) लगाम की रस्सी को ग्रहण करता वैसे ( पूर्वेषाम) पूर्वज विद्वानो के ( पन्थाम ) मार्ग को ( अनु दृश्य ) अनुकूलता से देख के ( अन्वालेभिरे) पश्चात प्राप्त होते हैं । वैसे होकर तुम लोग भी आप्तों के मार्ग को प्राप्त होओ ॥४९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो रागद्वेषादि दोषों को दूर से छोड आपस मे प्रीति रखने वाले हो ब्रह्मचर्य से धर्म के अनुष्ठानपूर्वक समस्त वेदो को जान के सत्य असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हो और असत्य को छोड के आप्तो के भाव से वर्त्तते हैं वे सुशिक्षित सारथियो के समान अभीष्ट धर्म युक्त मार्ग मे जाने को समर्थ होते और वे ही ऋषिसंज्ञक होते हैं ॥४९॥

**आयुष्यमित्यस्य दक्ष ऋषि । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिगुष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*अब ऐश्वर्य और आयु प्राप्ति सम्पादन विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम् ।**
**इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥५०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( औद्भिदम् ) दुःखो के नाशक ( आयुष्यम् ) जीवन के लिये हितकारी ( वर्चस्यम ) अध्ययन के उपयोगी ( राय पोषम ) धन की पुष्टि करने हारे ( वर्चस्वत ) प्रशस्त अन्नो के हेतु ( हिरण्यम् ) तेज स्वरूप सुवर्णादि ऐश्वर्य ( जैत्राय ) जय होने के लिए ( माम ) मुझ को ( आ विशतात् ) आवेश करे अर्थात् मेरे निकट स्थिर रहे वह तुम लोगो के निकट भी स्थिर होवे ॥५०॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य अपने तुल्य सब को जानते और विद्वानो के साथ विचार कर सत्यासत्य का निर्णय करते हैं वे ही दीर्घ अवस्थायुक्त विद्या और समग्र ऐश्वर्य और विजय को प्राप्त होते हैं ॥५०॥

**न तदित्यस्य दक्ष ऋषि । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिक शक्वरी छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब ब्रह्मचर्य की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्रों मे कहते हैं—*

**न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।**
**यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते**
**दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥५१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( देवानाम ) विद्वानो का ( प्रथमजम् ) प्रथम अवस्था वा ब्रह्मचर्य आश्रम मे उत्पन्न हुआ ( ओज ) बल पराक्रम है (तत) उसको ( न रक्षांसि ) न अन्यो को पीडा विशेष देकर अपनी ही रक्षा करने हारे और (न पिशाचा ) न प्राणियो के रुधिरादि को खाने वाले हिंसक म्लेच्छाचारी दुष्टजन ( तरन्ति ) उल्लंघन करते ( य ) जो मनुष्य ( एतत ) इस ( दाक्षायणम ) चतुर को प्राप्त होने योग्य ( हिरण्यम् ) तेज स्वरूप ब्रह्मचर्य का ( बिभर्त्ति ) धारण वा पोषण करता है ( स ) वह ( देवेषु ) विद्वानो मे ( दीर्घम आयु ) अधिक अवस्था को ( कृणुते ) प्राप्त होता और ( स ) वह (मनुष्येषु) मननशील जनो मे (दीर्घम्, आयु ) बड़ी अवस्था को ( कृणुते ) प्राप्त करता है ॥५१॥

**भावार्थ**—जो प्रथम अवस्था मे बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं उनका न कोई चोर न दायभागी और न उनको भार होता है जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्तते हैं वे विद्वानो और मनुष्यो मे बड़ी अवस्था को प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते और दूसरो को आनन्दित करते है ॥५१॥

**यदेत्यस्य दक्ष ऋषि । हिरण्यन्तेजो देवता । निचृत त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

**यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।**
**तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥५२॥**

**पदार्थ**—जो ( **दाक्षायणाः** ) चतुराई और विज्ञान से युक्त (**सुमनस्यमानाः**) सुन्दर विचार करते हुए सज्जन लोग ( **शतानीकाय** ) सैकडो सेनावाले ( **मे** ) मेरे लिये ( **यत्** ) जिस ( **हिरण्यम्** ) सत्यासत्यप्रकाशक विज्ञान का ( **आ अबध्नन्** ) निबन्धन करें (**तत्**) उसको मैं ( **शतशारदाय** ) सौ वर्ष तक जीवन के लिये ( **आ बध्नामि**) नियत करता हूँ । हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं ( **यथा** ) तुम लोगो को प्राप्त होके ( **जरदष्टिः** ) पूर्ण अवस्था को व्याप्त होने वाला ( **असम्** ) होऊं वैसे तुम लोग मेरे प्रति उपदेश करो ॥५२॥

**भावार्थ**—एक ओर सैकडो सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देने वाली होती है । जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य धारण करके विद्वानो से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कर उसके अनुकूल वर्त्तते हैं वे थोडी अवस्था वाले कभी नही होते ॥५२॥

**उत न इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*अब कौन सब के रक्षक होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

## उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
## विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥५३॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **बुध्न्यः** ) अन्तरिक्ष मे होने वाला ( **अहिः** ) मेघ के तुल्य और ( **पृथिवी** ) तथा ( **समुद्रः** ) अन्तरिक्ष के तुल्य ( **एकपात्** ) एक प्रकार के निश्चल अव्यभिचारी बोध वाला ( **अजः** ) जो कभी उत्पन्न नही होता वह परमेश्वर ( **नः** ) हमारे वचनो को ( **शृणोतु** ) सुने तथा ( **ऋतावृधः** ) सत्य के बढाने वाले ( **हुवानाः** ) स्पर्द्धा करते हुए ( **विश्वे** ) सब ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **उत** ) और ( **कविशस्ताः** ) बुद्धिमानो से प्रशंसा किये हुए ( **स्तुताः** ) स्तुति के प्रकाशक ( **मन्त्राः** ) विचार के साधक मन्त्र हमारी ( **अवन्तु** ) रक्षा करें ॥५३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी आदि पदार्थ मेघ और परमेश्वर सब की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और विद्वान् लोग सब को पालते हैं ॥५३॥

**इमा गिर इत्यस्य कूर्मगार्त्समद ऋषिः । आदित्या देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब वाणी का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
## शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥५४॥

**पदार्थ**—मैं ( **आदित्येभ्यः** ) तेजस्वी ( **राजभ्यः** ) राजाओ से जिन (**इमाः**) इन सत्य (**गिरः**) वाणियो को (**जुह्वा**) ग्रहण के साधन से (**सनात्**) नित्य (**जुहोमि**) ग्रहण स्वीकार करता हूं उन (**घृतस्नूः**) जल के तुल्य अच्छे व्यवहार को शोधन वाली ( **नः** ) हम लोगो की वाणियो को ( **मित्रः** ) मित्र [ (**अर्यमा**) न्यायकारी (**भगः**) ऐश्वर्यवान् ( **तुविजातः** ) बहुतो मे प्रसिद्ध ] ( **दक्षः** ) चतुर ( **अंशः** ) विभागकर्त्ता और ( **वरुणः** ) श्रेष्ठ पुरुष ( **शृणोतु** ) सुने ॥५४॥

**भावार्थ**—विद्यार्थी लोगो ने आचार्य्यों से जिन सुशिक्षित वाणियो को ग्रहण किया उनको अन्य आप्त लोग सुने और अच्छे प्रकार परीक्षा करके शिक्षा करें ॥५४॥

**सप्तेत्यस्य कण्व ऋषिः । अध्यात्मं प्राणा देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*अब शरीर और इन्द्रियों का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

## सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
## सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥५५॥

**पदार्थ**—जो ( **सप्त, ऋषयः** ) विषयो अर्थात् शब्दादि को प्राप्त कराने वाले पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि ये सात ऋषि इस ( **शरीरे** ) शरीर मे ( **प्रतिहिताः** ) प्रतीति के साथ स्थिर हुए हैं वे ही ( **सप्त** ) सात ( **अप्रमादम्** ) जैसे प्रमाद अर्थात् भूल न हो वैसे (**सदम्** ) ठहरने के आधार शरीर की ( **रक्षन्ति** ) रक्षा करते वे ( **स्वपतः** ) सोते हुए जन के ( **आपः** ) शरीर को व्याप्त होने वाला उक्त ( **सप्त** ) सात ( **लोकम्** ) जीवात्मा को ( **ईयुः** ) प्राप्त होते हैं ( **तत्र** ) उस लोक प्राप्ति समय मे ( **अस्वप्नजौ** ) जिन को स्वप्न कभी नही होता ( **सत्रसदौ** ) जीवात्माओ की रक्षा करने वाले ( **च** ) और ( **देवौ** ) स्थिर उत्तम गुणों वाले प्राण और अपान ( **जागृतः** ) जागते है ॥५५॥

**भावार्थ**—इस शरीर मे स्थिर व्यापक विषयो के जानने वाले अन्तःकरण के सहित पाँच ज्ञानेन्द्रिय ही निरन्तर शरीर की रक्षा करते और जब जीव सोता है तब उसी को आश्रय कर तमोगुण के बल से भीतर को स्थिर होते किन्तु बाह्य विषय का बोध नहीं कराते और स्वप्नावस्था मे जीवात्मा की रक्षा मे तत्पर तमोगुण से न दबे हुए प्राण और अपान जागते हैं अन्यथा यदि प्राण अपान भी सो जावें तो मरण का ही सम्भव करना चाहिये ॥५५॥

**उत्तिष्ठेत्यस्य कण्व ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*विद्वान् पुरुष क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

## उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
## उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥५६॥

**पदार्थ**—हे ( **ब्रह्मणः** ) धन के (**पते**) रक्षक ( **इन्द्र** ) ऐश्वर्यकारक विद्वन् ! (**देवयन्तः** ) दिव्य विद्वानो की कामना करते हुए हम लोग जिस (**त्वा**) आपकी (**ईमहे**) याचना करते है जिस आप को ( **सुदानवः** ) सुन्दर दान देने वाले ( **मरुतः** ) मनुष्य ( **उप प्र यन्तु** ) समीप से प्रयत्न के साथ प्राप्त हो सो आप ( **उत्, तिष्ठ** ) उठिये और ( **सचा** ) सत्य के सम्बन्ध से ( **प्राशूः** ) उत्तम भोग करनेहारे ( **भव** ) हूजिये ॥५६॥

**भावार्थ**—हे विद्वन् ! जो लोग विद्या की कामना करते हुए आपका आश्रय लेवें उनके अर्थ विद्या देने के लिए आप उद्यत हूजिये ॥५६॥

**प्रनूनमित्यस्य कण्व ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

## प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
## यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५७॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( **यस्मिन्** ) जिस परमात्मा मे ( **इन्द्रः** ) बिजुली वा सूर्य ( **वरुणः** ) जल वा चन्द्रमा ( **मित्रः** ) प्राण वा अन्य अपानादि वायु (**अर्यमा**) सूत्रात्मा वायु ( **देवाः** ) ये सब उत्तम गुण वाले ( **ओकांसि** ) निवासो को (**चक्रिरे**) किये हुए हैं वह ( **ब्रह्मणः** ) वेदविद्या का ( **पतिः** ) रक्षक जगदीश्वर ( **उक्थ्यम्** ) प्रशंसनीय पदार्थों मे श्रेष्ठ ( **मन्त्रम्** ) वेदरूप मन्त्रभाग को ( **नूनम्** ) निश्चय कर ( **प्र वदति** ) अच्छे प्रकार कहता है ऐसा तुम जानो ॥५७॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा मे कार्यकारणरूप सब जगत् और जीव वसते हैं तथा जो सब जीवो के हितसाधक वेद का उपदेश करता हुआ उसी की तुम लोग भक्ति सेवा उपासना करो ॥५७॥

**ब्रह्मणस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

## ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
## विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
## य इमा विश्वा विश्वकर्म्मा यो नः पिता
## अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥५८॥

**पदार्थ**—हे ( **ब्रह्मणः** ) ब्रह्माण्ड के ( **पते** ) रक्षक ईश्वर ! ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **विदथे** ) प्रकट करने योग्य व्यवहार मे ( **यत्** ) जिसकी रक्षा वा उपदेश करते हैं और जिसको ( **सुवीराः** ) सुन्दर उत्तम वीर पुरुष हम लोग (**बृहत्**) बडा श्रेष्ठ ( **वदेम** ) कहें उस ( **अस्य** ) इस ( **सूक्तस्य** ) अच्छे प्रकार कहने योग्य वचन के ( **त्वम्** ) आप ( **यन्ता** ) नियमकर्त्ता हूजिये ( **च** ) और ( **तनयम्** ) विद्या का शुद्ध विचार करनेहारे पुत्रवत् प्रियपुरुष को ( **बोधि** ) बोध कराइये तथा (**तत्**) उस ( **भद्रम्** ) कल्याणकारी ( **विश्वम्** ) सब जीवमात्र को ( **जिन्व** ) तृप्त कीजिये ॥ ५८ ॥

**भावार्थ**—हे जगदीश्वर ! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करने वाले हूजिये हमारे सन्तानो को विद्यायुक्त कीजिये सब जगत् की यथावत् रक्षा, न्याययुक्त धर्म उत्तम शिक्षा और परस्पर प्रीति उत्पन्न कीजिये ॥ ५८ ॥

**इस अध्याय मे मन का लक्षण शिक्षा विद्या की इच्छा, विद्वानों का सङ्ग, कन्याओं का प्रबोध चेतनता विद्वानों का लक्षण रक्षा की प्रार्थना, बल ऐश्वर्य की इच्छा सोम ओषधि का लक्षण, शुभ कर्म की इच्छा परमेश्वर और सूर्य का वर्णन, अपनी रक्षा, प्रातःकाल का उठना पुरुषार्थ से ऋद्धि और सिद्धि पाना ईश्वर के जगत् का रचना महाराजाओं का वर्णन अश्वि के गुणों का कथन, अवस्था का बढाना विद्वान् और प्राणो का लक्षण और ईश्वर का कर्त्तव्य कहा है । इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय मे कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥**

**अब चौतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# ॐ अथ पञ्चत्रिंशाऽध्यायारम्भः ॐ

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

**अपेत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषय । पितरो देवता । पूर्वस्य पिपीलिकामध्या गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । द्युभिरित्युत्तरस्य प्राजापत्या बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब पैतीसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में व्यवहार और जीव की गति विषय को कहा है—*

**अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः । अस्य लोकः सुतावतः ।**
**द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥१॥**

**पदार्थ**—जो ( देवपीयव ) विद्वानो के द्वेषी ( पणय ) व्यवहारी लोग दूसरो के लिये ( असुम्ना ) दु खो को देते है वे ( इत ) यहा से ( अप यन्तु ) दूर जावें ( लोक ) देखने योग्य ( यम ) सब का नियन्ता परमात्मा ( द्युभि ) प्रकाशमान ( अहोभि ) दिन ( अक्तुभि ) और रात्रियो के साथ ( अस्य ) इस ( सुतावत ) वेद वा विद्वानो से प्रेरित प्रशस्त कर्मो वाले जनो के सम्बन्धी ( अस्मै ) इस मनुष्य के लिये ( व्यक्तम् ) प्रसिद्ध ( अवसानम् ) अवकाश को ( ददातु ) देवे ॥ १ ॥

**भावार्थ**—जो लोग आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वानों से द्वेष करते वे शीघ्र ही दु ख को प्राप्त होते हैं जो जीव शरीर छोड के जाते हैं उनके लिये यथायोग्य अवकाश देकर उनके कर्मानुसार परमेश्वर सुख दु ख फल देता है ॥ १ ॥

**सविता तयित्यस्य आदित्या देवा ऋषय । सविता देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर ईश्वर के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु ।**
**तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥२॥**

**पदार्थ**—हे जीव ! ( सविता ) परमात्मा जिस ( ते ) तेरे ( शरीरेभ्य ) जन्मजन्मान्तरो के शरीरो के लिये ( पृथिव्याम् ) अन्तरिक्ष वा भूमि मे ( लोकम् ) कर्मों के अनुकूल सुख दु ख के साधन प्रापक स्थान को ( इच्छतु ) चाहे ( तस्मै ) उस तेरे लिये ( उस्रिया ) प्रकाशरूप किरण ( युज्यन्ताम् ) अर्थात् उपयोगी हो ॥२॥

**भावार्थ**—हे जीवो ! जो जगदीश्वर तुम्हारे लिये सुख चाहता है और किरणो के द्वारा लोकलोकान्तर को पहुँचाता है वही तुम लोगो को न्यायकारी मानना चाहिये ॥ २ ॥

**वायुरित्यस्य आदित्या देवा वा ऋषय । सविता देवता । उष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*जीवों की कर्म गति का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा ।**
**विमुच्यन्तामुस्रियाः ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम ( वायु ) पवन ( अग्ने ) बिजुली की ( भ्राजसा ) दीप्ति से ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( वर्चसा ) तेज से जिन हम लोगो को ( पुनातु ) पवित्र करे ( सविता ) सूर्य ( पुनातु ) पवित्र करे ( उस्रिया ) किरणे ( मुच्यन्ताम् ) छोडे ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—जब जीव शरीरो को छोड के विद्युत् सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ मे प्रवेश करते हैं तब किरण उनको छोड देती हैं ॥ ३ ॥

**अश्वत्थ इत्यस्य आदित्या देवा ऋषय । वायु सविता देवते । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।**
**गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥४॥**

**पदार्थ**—हे जीवो ! जिस जगदीश्वर ने ( अश्वत्थे ) कल ठहरेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार मे ( व ) तुम लोगो की ( निषदनम् ) स्थिति की ( पर्णे ) पत्ते के तुल्य चञ्चल जीवन मे ( व ) तुम्हारा ( वसति ) निवास ( कृता ) किया ( यत् ) जिस ( पूरुषम् ) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को ( किल ) ही ( सनवथ ) सेवन करो उसके साथ ( गोभाज ) पृथिवी वाणी इन्द्रिय वा किरणों का सेवन करने वाले ( इत् ) ही तुम लोग प्रयत्न के साथ धर्म मे स्थिर ( असथ ) होओ ॥४॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि अनित्य संसार मे नित्य शरीरो और पदार्थो को प्राप्त हो के क्षणभङ्गुर जीवन मे धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हो ॥४॥

**सवितेत्यस्यादित्या देवा वा ऋषय । वायुसवितारौ देवते । अनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*कन्या क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु ।**
**तस्मै पृथिवि शं भव ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे ( पृथिवी ) भूमि के तुल्य सहनशील कन्या ! तू जिस ( ते ) तेरे ( शरीराणि ) आश्रयो को ( मातु ) माता के तुल्य मान्य देने वाली पृथिवी के ( उपस्थ ) समीप मे ( सविता ) उत्पत्ति करने वाला पिता ( आ, वपतु ) स्थापित करे सो तू ( तस्मै ) उस पिता के लिये ( शम् ) सुखकारिणी ( भव ) हो ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—हे कन्याओ ! तुम को उचित है कि विवाह के पश्चात् भी माता और पिता मे प्रीति न छोडो क्योंकि उन्ही दोनो से तुम्हारे शरीर उत्पन्न हुए और पाले गये हैं ॥ ५ ॥

**प्रजापतावित्यस्यादित्या देवा ऋषय । प्रजापतिर्देवता । उष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥**

*ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र मे कहा है—*

**प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ ।**
**अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे जीव ! जो ( असौ ) यह लोक ( न ) हमारे ( अघम् ) पाप को ( अप शोशुचत ) शीघ्र सुखा देवे उस ( प्रजापतौ ) प्रजा के रक्षक ( देवतायाम् ) पूजनीय परमेश्वर मे तथा ( उपोदके ) उपगत समीपस्थ उदक जिसमे हो ( लोके ) दर्शनीय स्थान मे ( त्वा ) आप को ( निदधामि ) निरन्तर धारण करता हूँ ॥६॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर उपासना किया हुआ पापाचरण से पृथक् कराता है उसी मे भक्ति करने के लिये तुम को मैं स्थिर करता हूँ जिस से सदैव तुम लोग श्रेष्ठ सुख के देखने को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

**परमित्यस्य सङ्कुसुक ऋषि । यमो देवता । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात् ।**
**चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬं रीरिषो मोत वीरान् ॥७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! ( य ) जो ( ते ) तेरा ( देवयानात ) जिस मार्ग से विद्वान् लोग चलते उससे ( इतर ) भिन्न ( अन्य ) और मार्ग है उस ( पन्थाम् ) मार्ग को ( मृत्यो ) मृत्यु ( परा, इहि ) दूर जावे जिस कारण तू ( परम् ) उत्तम देवमार्ग को ( अनु ) अनुकूलता से प्राप्त हो इसी से ( चक्षुष्मते ) उत्तम नेत्रवाले ( शृण्वते ) सुनते हुए ( ते ) तेरे लिये ( ब्रवीमि ) उपदेश करता हूँ जैसे मृत्यु ( न ) हमारी प्रजा को न मारे और वीर पुरुषो को भी न मारे वैसे तू ( प्रजाम् ) सन्तानादि को ( मा रीरिष ) मत मार वा विषयादि से नष्ट मत कर ( उत ) और ( वीरान् ) विद्या और शरीर के बल से युक्त वीर पुरुषो को ( मा ) मत नष्ट कर ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यो को चाहिये कि जीवन पर्यन्त विद्वानों के मार्ग से चलें। उत्तम अवस्था को प्राप्त हों और ब्रह्मचर्य के बिना स्वयंवर विवाह करके कभी न्यून अवस्था की प्रजा सन्तानो को न उत्पन्न करें और न इन सन्तानो को ब्रह्मचर्य। अनुष्ठान से अलग रक्खें ॥ ७ ॥

**शं वात इत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषय । विश्वेदेवा देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*सृष्टि के पदार्थ मनुष्यों को कैसे सुखकारी हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है*

**शं वातः शᳬं हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः ।**
**शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाऽभि शूशुचन् ॥८॥**

**पदार्थ**—हे जीव ! ( **ते** ) तेरे लिये ( **वात** ) वायु ( **शम** ) सुखकारी हो ( **घृणि** ) किरणयुक्त सूर्य (**शम, हि** ) सुखकारी हो ( **इष्टका** ) वेदी में चयन की हुई ईंट तेरे लिये ( **शम** ) सुखदायिनी ( **भवन्तु** ) हो ( **पार्थिवास** ) पृथिवी पर प्रसिद्ध ( **अग्नय** ) विद्युत आदि अग्नि ( **ते** ) तेरे लिये ( **शम्** ) कल्याणकारी ( **भवन्तु** ) होवें ये सब ( **त्वा** ) तुझ को ( **मा अभि शूशुचन्** ) सब ओर से शीघ्र शोककारी न हों ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—हे जीवो ! वैसे ही तुम को धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तना चाहिये जैसे जीने वा मरने के बाद भी तुम को सृष्टि के वायु आदि पदार्थ सुखकारी हों ।८।

**कल्पन्तामित्यस्यादित्या देवा ऋषय । विश्वेदेवा देवता । विराट् बृहती छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

## कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः ।

## अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥९॥

**पदार्थ**—हे जीव ( **ते** ) तेरे लिये ( **दिश** ) पूर्व आदि दिशा ( **शिवतमा** ) अत्यन्त सुखकारिणी ( **कल्पन्ताम** ) समर्थ हों ( **तुभ्यम** ) तेरे लिये ( **आप** ) प्राण वा जल अति सुखकारी हों ( **तुभ्यम** ) तेरे लिये ( **सिन्धव** ) नदियां वा समुद्र अति सुखकारी ( **भवन्तु** ) होवें ( **तुभ्यम** ) तेरे लिये ( **अन्तरिक्षम** ) आकाश (**शिवम**) कल्याणकारी हो और ( **ते** ) तेरे लिये ( **सर्वा** ) सब ( **दिश** ) ईशानादि विदिशा अत्यन्त कल्याणकारी ( **कल्पन्ताम** ) समर्थ होवें ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—जो लोग अधर्म को छोड़कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं उनके लिये पृथिवी आदि सृष्टि के सब पदार्थ अत्यन्त मङ्गलकारी होते हैं ॥९॥

**अश्मन्वतीत्यस्य सुचीक ऋषि । विश्वेदेवा देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द ।**

**धैवत स्वर ॥**

*कौन लोग दुःख के पार होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## अश्मन्वती रीयते सꣳ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखाय' ।

## अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

**पदार्थ**—हे ( **सखाय** ) मित्रो ! जो ( **अश्मन्वती** ) बहुत मेघों या पत्थरों वाली सृष्टि या नदी प्रवाह से ( **रीयते** ) चलता है उसके साथ जैसे ( **वयम** ) हम लोग ( **ये** ) जो ( **अत्र** ) इस जगत में वा समय में ( **अशिवा** ) अकल्याणकारी ( **असन्** ) हैं उनको ( **जहीम** ) छोड़ते हैं तथा ( **शिवान्** ) सुखकारी ( **वाजान्** ) अत्युत्तम अन्नादि के भोगों को ( **अभि, उत तरेम** ) सब ओर से पार करें अर्थात भोग चुकें वैसे तुम लोग ( **सरभध्वम्** ) सम्यक आरम्भ करो ( **उत्तिष्ठत** ) उद्यत होओ और ( **प्रतरत** ) दुःखों का उल्लङ्घन करो ॥ १० ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य बड़ी नौका से समुद्र के जैसे पार हों वैसे अशुभ आचरणों और दुष्ट जनों के पार हो प्रयत्न के साथ उद्यमी होके मङ्गलकारी आचरण कर वे दुःखसागर के सहज से पार होवें ॥ १० ॥

**अपाघमित्यस्य शुनःशेप ऋषि । आपो देवता । विराडनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब कौन मनुष्य पवित्र करनेवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रप' ।

## अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥११॥

**पदार्थ**—हे ( **अपामार्ग** ) अपामार्ग ओषधि जैसे रोगों को दूर करती वैसे पापों को दूर करने वाले सज्जन पुरुष ! ( **त्वम** ) आप ( **अस्मत** ) हमारे निकट से ( **अघम** ) पाप को ( **अप सुव** ) दूर कीजिये ( **किल्बिषम** ) मन की मलिनता को आप दूर कीजिये ( **कृत्याम** ) दुष्टक्रिया को ( **अप** ) दूर कीजिये ( **रप** ) बाह्य इन्द्रियों के चञ्चलता रूप अपराध को ( **अपो** ) दूर कीजिये और ( **दुःष्वप्न्यम** ) बुरे प्रकार की निद्रा में होने वाले बुरे विचार को ( **अप** ) दूर कीजिये ॥११ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य जैसे अपामार्ग आदि ओषधियां रोगों को निवृत्त कर प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे आप सब दोषों से पृथक होके अन्य मनुष्यों को अशुभ आचरणों से अलग कर शुद्ध होते और दूसरों को करते हैं वे ही मनुष्यादि को पवित्र करने वाले हैं ॥ ११ ॥

**सुमित्रिया न इत्यस्यादित्या देवा ऋषय । आपो देवता । निचृदनुष्टुपछन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु

## योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म' ॥१२॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ( **आप** ) प्राण वा जल तथा (**ओषधय** ) सोमादि ओषधियां ( **न** ) हमारे लिये ( **सुमित्रिया** ) सुन्दर मित्रों के तुल्य हितकारिणी ( **सन्तु** ) होवें तुम्हारे लिये भी वैसी हों ( **य** ) जो ( **अस्मान्** ) हम धर्मात्माओं से ( **द्वेष्टि** ) द्वेष करता ( **च** ) और ( **यम्** ) जिस दुष्टाचारी से ( **वयम** ) हम लोग ( **द्विष्म** ) अप्रीति करें ( **तस्मै** ) उसके लिये वे पदार्थ ( **दुर्मित्रिया** ) शत्रुओं के तुल्य दुःखदायी ( **सन्तु** ) होवें ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—जो राग द्वेष आदि दोषों को छोड़ कर सब में अपने आत्मा के तुल्य वर्त्ताव करते हैं उन धर्मात्माओं के लिये सब जल ओषधि आदि पदार्थ सुखकारी होते और जो स्वार्थ में प्रीति तथा दूसरों से द्वेष करने वाले हैं उन अधर्मियों के लिये ये सब उक्त पदार्थ दुःखदायी होते हैं मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के साथ प्रीति और दुष्टों के साथ निरन्तर अप्रीति करें परन्तु उन दुष्टों का भी चित्त से सदा कल्याण ही चाहें ॥ १२ ॥

**अनड्वाहमित्यस्यादित्या देवा ऋषय । कृषीबला देवता । स्वराडनुष्टुप्छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*कौन मनुष्य कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं इस विषय को*
*अगले मन्त्रों में कहा है—*

## अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये ।

## स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥१३॥

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो ( **वह्नि** ) शीघ्र पहुँचाने वाला अग्नि (**न, देवेभ्य** ) हम विद्वानों के लिये ( **सन्तरण** ) सम्यक मार्गों से पार करने वाला होता है उस ( **सौरभेयम्** ) सुरा गौ के सन्तान ( **अनड्वाहम्** ) गाड़ी आदि को खींचने वाले बैल के तुल्य वर्त्तमान अग्नि को हम लोग ( **स्वस्तये** ) सुख के लिये ( **अन्वारभामहे** ) यान बना के उनमें प्राणियों को स्थिर कर ( **स** ) वह आपके लिये ( **इन्द्र, इव** ) बिजुली के तुल्य ( **भव** ) होवें ॥१३॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य बिजुली आदि अग्नि की विद्या से यान बनाने आदि कार्य्यों के करने का अभ्यास करते हैं वे अति बली बैलों से खेती करने वालों के समान कार्य्यों को सिद्ध कर सकते और विद्युत् अग्नि के तुल्य शीघ्र इधर उधर जा सकते हैं ॥१३॥

**उद्वयन्तमसस्यादित्या देवा ऋषय । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*कौन मोक्ष को पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

## उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।

## देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१४॥

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस ( **तमस** ) अन्धकार से परे ( **स्व** ) स्वयं प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान ( **देवत्रा** ) विद्वानों वा प्रकाशमय सूर्य्यादि पदार्थों में ( **देवम्** ) विजयादि लाभ के देने वाले ( **ज्योति** ) स्वयं प्रकाशमयस्वरूप ( **उत्तमम्** ) सब से बड़ ( **उत्तरम्** ) दुःखों से पार करने वाले (**सूर्यम्** ) अन्तर्यामी रूप से अपनी व्याप्ति कर सब चराचर के स्वामी परमात्मा को ( **पश्यन्त** ) ज्ञान दृष्टि से देखते हुए ( **परि उत अगन्म**) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ जानें उसी को तुम लोग भी जानो ॥१४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य को देखते हुए दीर्घावस्था वाले धर्मात्मा जन सुख को प्राप्त होते वैसे ही धर्मात्मा योगी जन महादेव सब के प्रकाशक जन्म मृत्यु के क्लेश आदि से पृथक वर्त्तमान सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को साक्षात् जान मोक्ष को पाकर निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥ १४ ॥

**इममित्यस्य सङ्कुसुक ऋषि । ईश्वरो देवता । त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥**

## इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।

## शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१५॥

**पदार्थ**—मैं परमेश्वर (**एषाम्** ) इन जीवों के ( **एतम्** ) परिश्रम से प्राप्त किये ( **अर्थम्** ) द्रव्य को ( **अपर** ) अन्य कोई ( **मा** ) नहीं ( **नु** ) शीघ्र ( **गात्**) प्राप्त कर लेवे इस प्रकार ( **इमम्** ) इस ( **जीवेभ्य** ) जीवों के लिये (**परिधिम्** ) मर्यादा को ( **दधामि** ) व्यवस्थित करता हूँ इस प्रकार आचरण करते हुए आप लोग ( **पुरूची** ) बहुत वर्षों के सम्बन्धी ( **शतम्** ) सौ ( **शरद** ) शरद ऋतुओं भर ( **जीवन्तु** ) जीओ ( **पर्वतेन** ) ज्ञान वा ब्रह्मचर्यादि से ( **मृत्युम्** ) मृत्यु को ( **अन्त दधताम्** ) दबाओ अर्थात् दूर करो ॥१५॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो लोग परमेश्वर ने नियत किया कि धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ना चाहिये इस मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करते अन्याय से दूसरे के पदार्थों को नहीं लेते वे नीरोग होकर सौ वर्ष तक जी सकते हैं और ईश्वराज्ञाविरोधी नहीं । जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ कर धर्म का आचरण करते हैं उनको मृत्यु मध्य में नहीं दबाता ॥१५॥

**अग्न इत्यस्यादित्या देवा ऋषय । अग्निर्देवता । गायत्री छन्द । षड्जः स्वर ॥**

*कौन मनुष्य दीर्घ अवस्था वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

## अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

## आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१६॥

**पदार्थ**—हे ( **अग्ने** ) परमेश्वर वा विद्वन् ! आप ( **आयूꣳषि** ) अन्नादि पदार्थों वा अवस्थाओं को ( **पवसे** ) पवित्र करते ( **न** ) हमारे लिये ( **ऊर्जम्** ) बल ( **च** ) और ( **इषम्**) विज्ञान को ( **आ सुव** ) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये तथा ( **दुच्छुनाम्** ) कुत्तों के तुल्य दुष्ट हिंसक प्राणियों को ( **आरे** ) दूर वा समीप में ( **बाधस्व** ) ताड़ना विशेष दीजिये ॥१६॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और सङ्ग छोड़ के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् की सेवा करते हैं वे धनधान्य से युक्त हुए दीर्घ अवस्था वाले होते हैं ॥१६॥

**आयुष्मानित्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।**
**घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्स्वाहा ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी राजन् ! जैसे (हविषा) घृतादि से (वृधानः) बढ़ा हुआ (घृतप्रतीकः) जल को प्रसिद्ध करने वाला (घृतयोनिः) प्रदीप्त तेज जिसका कारण वा घर है वह अग्नि बढ़ाता है वैसे (आयुष्मान्) बहुत अवस्था वाले आप (एधि) हूजिये (मधु) मधुर (चारु) सुन्दर (गव्यम्) गौ के (घृतम्) घी को (पीत्वा) पी के (पुत्रम्) पुत्र की (पितेव) पिता जैसे वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इमान्) इन प्रजास्थ मनुष्यों की (अभि) प्रत्यक्ष (रक्षतात्) रक्षा कीजिये ॥१७॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यादि रूप से अग्नि बाहर भीतर रह कर सब की रक्षा करता है वैसे ही राजा पिता के तुल्य वर्त्ताव करता हुआ पुत्र के समान इन प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करे ॥१७॥

**परीम इत्यस्य भरद्वाज शिरिम्बिठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।**
**गान्धारः स्वरः ॥**

**परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।**
**देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२ऽआ दधर्षति ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे राजपुरुषो ! जो (इमे) ये तुम लोग (गाम्) वाणी वा पृथिवी को (परि अनेषत) स्वीकार करो (अग्निम्) अग्नि को (परि, अहृषत) सब ओर से हरो अर्थात् कार्य्य में लाओ । इन (देवेषु) विद्वानों में (श्रवः) अन्न को (अक्रत) करो इस प्रकार के आप लोगों को (कः) कौन (आ दधर्षति) धमका सकता है ॥१८॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजपुरुष पृथिवी के समान धीर अग्नि के तुल्य तेजस्वी अन्न के समान अवस्थावर्द्धक होते हुए धर्म से प्रजा की रक्षा करते हैं वे अतुल राजलक्ष्मी को प्राप्त हैं ॥१८॥

**क्रव्यादमित्यस्य दमन ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

**क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः ।**
**इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥१९॥**

**पदार्थ**—(प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ मैं (क्रव्यादम्) कच्चे मांस को खाने और (अग्निम्) अग्नि के तुल्य दूसरों को दुःख से तपाने वाले जिस दुष्ट को (दूरम्) दूर (प्र हिणोमि) पहुँचाता और जिन (रिप्रवाहः) पाप उठाने वाले दुष्टों को दूर पहुँचाता हूँ वह और वे सब पापी (यमराज्यम्) न्यायाधीश राजा के न्यायालय में (गच्छतु) जावें और (इह) इस जगत् में (इतरः) दूसरा (अयम्) यह (जातवेदाः) धर्म्मात्मा विद्वान् जन (देवेभ्यः) धार्मिक विद्वानों (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य विज्ञान को (एव) ही (वहतु) प्राप्त होवे ॥१९॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे न्यायाधीश राजपुरुषो ! तुम लोग दुष्टाचारी जनों को सम्यक् ताड़ना देकर प्राणों से भी छुड़ा के और श्रेष्ठों का सत्कार करके इस सृष्टि में साम्राज्य अर्थात् चक्रवर्त्ती राज्य करो ॥१९॥

**वह वपामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । जातवेदा देवता । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।**
**धैवतः स्वरः ॥**

*अब पितृ लोगों का सत्कार विषय अगले मन्त्र में कहा है—*

**वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके ।**
**मेदसः कुल्या उप तान्स्रवन्तु सत्या**
**एषामाशिषः सं नमन्ताᳬस्वाहा ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुए जन आप (यत्र) जहाँ (एतान्) इन (पराके) दूर (निहितान्) स्थित पितृजनों को (वेत्थ) जानते हो वहां (पितृभ्यः) जनक वा विद्या शिक्षा देने वाले सज्जन पितृयों से (वपाम्) खेती होने के योग्य भूमि को (वह) प्राप्त हूजिये जैसे (मेदसः) उत्तम (कुल्याः) जल के प्रवाह से युक्त नदी वा नहरें (तान्) उन सज्जनों को (उप, स्रवन्तु) निकट प्राप्त हो वैसे (स्वाहा) सत्यक्रिया से (एषाम्) इन लोगों की (आशिषः) इच्छा (सत्याः) यथार्थ (सम् नमन्ताम्) सम्यक् प्राप्त होवें ॥२०॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो दूर रहने वाले पितृ और विद्वानों को बुलाकर सत्कार करते हैं जैसे बाग बगीचों के वृक्षादि को जल वायु बढ़ाते वैसे उनकी इच्छा सत्य हुई सब ओर से बढ़ती है ॥२०॥

**स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । निचृद् गायत्री अप नः इति प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*कुलीन स्त्री कैसी होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।**
**यच्छा नः शर्म सप्रथाः । अप नः शोशुचदघम् ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे (पृथिवि) भूमि के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री ! तू जैसे (अनृक्षरा) कण्टक आदि से रहित (निवेशनी) बैठने का आधार भूमि (स्योना) सुख करनेवाली होती वैसे (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख को (यच्छ) दे जैसे न्यायाधीश (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप शोशुचत्) शीघ्र दूर करे वा शुद्ध करे वैसे तू अपराध को दूर कर ॥२१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करने वाली क्रूरता आदि दोषों से अलग बहुत प्रशंसित दूसरों के दोषों का निवारण करनेहारी है वही घर के कार्य्यों में योग्य होती है ॥२१॥

**अस्मादित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । अग्निर्देवता । स्वराड् गायत्री छन्दः ।**
**षड्जः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।**
**असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्मात्) इस लोक से अर्थात् वर्त्तमान मनुष्यों में (अधि) सर्वोपरि (जातः) प्रसिद्ध विराजमान (असि) हैं इससे (अयम्) यह पुत्र (त्वत्) आप से (पुनः) पीछे (असौ) विशेष नाम वाला (स्वाहा) सत्य क्रिया से (लोकाय) देखने योग्य (स्वर्गाय) विशेष सुख भोगने के लिये (जायताम्) प्रकट समर्थ होवे ॥२२॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि इस जगत् में मनुष्यों का शरीर धारण कर विद्या उत्तम शिक्षा अच्छा स्वभाव धर्म योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिये प्रयत्न करो और यही मनुष्यजन्म की सफलता है ऐसा जानो ॥ २२ ॥

**इस अध्याय में व्यवहार जीव की गति जन्म, मरण, सत्य, आशीर्वाद, अग्नि और सत्य इच्छा आदि का व्याख्यान होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥**

**यह पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# ॥ अथ षट्त्रिंशाऽध्यायारम्भः ॥

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**ऋचमित्यस्य दध्यङ्डाथर्वण ऋषि । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब छत्तीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इस के प्रथम मन्त्र मे विद्वानों के सग से क्या होता है इस विषय को कहत है—*

**ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये**
**साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये ।**
**वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( मयि ) मेरे आत्मा म ( प्राणापानौ ) प्राण और अपान ऊपर नीच श्वास दृढ हो मरी (वाक) वाणी (ओज ) मानस बल को प्राप्त हो उस वाणी और उन श्वासो क ( सह ) साथ मैं ( ओज ) शरीर बल का प्राप्त होऊ ( ऋचम् ) ऋग्वेद रूप ( वाचम् ) वाणी को ( प्र पद्य ) प्राप्त होऊ (मन ) मनन करनेवाले अन्त करण के तुल्य (यजु ) यजुर्वेद को (प्र, पद्य) प्राप्त होउ (प्राणम्) प्राण की क्रिया अर्थात् योगाभ्यासादिक उपासना क साधक ( साम ) सामवेद को ( प्र, पद्ये ) प्राप्त होऊ ( चक्षु ) उत्तम नत्र और ( श्रोत्रम् ) श्रेष्ठ कान को ( प्र, पद्य ) प्राप्त होऊ वसे तुम लोग इन सब को प्राप्त होओ ॥१॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! तुम लोगो के सङ्ग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशसनीय वाणी यजुर्वेद के समान मन सामवेद के सदृश प्राण और सत्रह तत्त्वो से युक्त लिङ्ग शरीर स्वस्थ सब उपद्रवो से रहित और समर्थ होवे ॥१॥

**यन्मे छिद्रमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । बृहस्पतिर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*अब ईश्वर प्रार्थना विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।**
**शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥२॥**

**पदार्थ**—( यत् ) जो ( मे ) मेरे (चक्षुष ) नेत्र की वा ( हृदयस्य ) अन्त करण की ( छिद्रम् ) न्यूनता ( वा ) वा ( मनस ) मन की ( अतितृण्णम् ) व्याकुलता है ( तत ) उस को ( बृहस्पति ) बडे आकाशादि का पालक परमेश्वर ( मे ) मेरे लिये ( दधातु ) पुष्ट वा पूर्ण करे ( य ) जो ( भुवनस्य ) सब ससार का ( पति ) रक्षक है वह ( न ) हमारे लिये ( शम् ) कल्याणकारी ( भवतु ) होवे ॥२॥

**भावार्थ**—सब मनुष्यो का चाहिये कि परमश्वर की उपासना और आज्ञा पालन से अहिंसा धर्म का स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें ॥२॥

**भूर्भुव स्वरित्यस्य विश्वामित्र ऋषि । सविता देवता । दैवी बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्रों म कहा है—*

**भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।**
**धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लाग ( भू ) कर्मकाण्ड की विद्या ( भुव ) उपासना काण्ड की विद्या और ( स्व ) ज्ञानकाण्ड की विद्या को सग्रहपूर्वक पढके ( यः ) जो ( न ) हमारी (धिय ) धारणावती बुद्धियो को (प्रचोदयात ) प्रेरणा करे उस ( देवस्य ) कामना के योग्य (सवितु ) समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के ( तत् ) उस इन्द्रियो से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष ( भर्ग ) सब दुखों के नाशक तेजस्वरूप का(धीमहि) ध्यान करें वसे तुम लोग भी इसका ध्यान करो ॥३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य कर्म उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओ का सम्यक ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म अनैश्वर्य और दु ख रूप मलों को छुडा के धर्म ऐश्वर्य और सुखो को प्राप्त होते हैं उन को अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है ॥३॥

**कया न इत्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।**
**कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—यह ( सदावृध ) सदा बढने वाला अर्थात कभी न्यूनता को नही प्राप्त हो ( चित्र ) आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभावो से युक्त परमेश्वर (न ) हम लोगो का (कया) किस ( ऊती ) रक्षण आदि क्रिया से (सखा) मित्र (आ भुवत्) होवे तथा (कया) किस ( वृता ) वर्त्तमान ( शचिष्ठया ) अत्यन्त उत्तम बुद्धि स हम को शुभ गुण कर्म स्वभावो मे प्रेरणा करे ॥४॥

**भावार्थ**—हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हम को प्रेरणा करता है कि जिस के सहाय से ही हम लोग धर्म अर्थ काम और मोक्षो के सिद्ध करने को समर्थ हो सकते हैं ॥४॥

**कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।**
**दृढा चिदारुजे वसु ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( मदानाम् ) आनन्दो के बीच (मंहिष्ठ ) अत्यन्त बडा हुआ ( क ) सुखस्वरूप ( सत्य ) विद्यमान पदार्थों म श्रेष्ठतम प्रजा का रक्षक परमेश्वर ( अन्धस ) अन्नादि पदार्थ स ( त्वाम् ) तुझ को ( मत्सत् ) आनन्दित करता और ( आरुजे ) दु खनाशक तेरे लिये ( चित ) भी ( दृढा ) दृढ ( वसु ) धनो को देता है ॥५॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो अन्नादि और सत्य के जताने से धनादि पदार्थ देके सब का आनन्दित करता है उस सुखस्वरूप परमात्मा की ही तुम लोग नित्य उपासना किया करो ॥५॥

**अभी षु ण इत्यस्य वामदेव ऋषि । इन्द्रो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥६॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! आप ( शतम् ) असंख्य ऐश्वर्य देते हुए ( अभि, ऊतिभि ) सब ओर से प्रवृत्त रक्षादि क्रियाओ से ( न ) हमारे (सखीनाम्) मित्रो और ( जरितॄणाम् ) सत्य स्तुति करने वालो के ( अविता ) रक्षा करने वाले ( सु, भवासि ) सुन्दर प्रकार हूजिये इस से आप हम को सत्कार करने योग्य हैं ॥६॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो रागद्वेष किन्ही से वैरभाव न रखने अर्थात् सबसे मित्रता रखने वाले सब मित्र मनुष्यो का असख्य ऐश्वर्य और अधिकतर विज्ञान देके सब ओर से रक्षा करता है उसी परमेश्वर की नित्य सेवा किया करो ॥६॥

**कया त्वमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । इन्द्रो देवता । वर्द्धमाना गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥**

**पदार्थ**—हे ( वृषन् ) सब ओर से सुखो को वर्षाने वाले ईश्वर (त्वम्) आप ( कया ) किस ( ऊत्या ) रक्षण आदि क्रिया से ( न ) हम को (अभि, प्र, मन्दसे) सब ओर से आनन्दित करते और (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्य ) आपकी प्रशसा करने वाले मनुष्यो के लिये सुख का ( आ भर ) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥७॥

**भावार्थ**—हे भगवन् परमात्मन् ! जिस युक्ति से आप धर्मात्माओ को आनन्दित करते उनकी सब ओर स रक्षा करते हैं उस युक्ति को हम को जताइये ॥७॥

**इन्द्र इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । इन्द्रो देवता । द्विपाद्विराड् गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

**इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥८॥**

**पदार्थ**—हे जगदीश्वर ! जो आप ( इन्द्र ) बिजुली के तुल्य ( विश्वस्य ) संसार के बीच ( राजति ) प्रकाशमान हैं उन आप की कृपा से (न ) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिये ( शम् ) सुख ( अस्तु ) होवे और हमारे ( चतुष्पदे ) गो आदि के लिये ( शम् ) सुख होवे ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जगदीश्वर ! जिससे आप सर्वत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि को सुख चाहने वाले हैं इससे सब को उपासना करने योग्य हैं ॥८॥

शन्न इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*मनुष्यों को अपने [और] दूसरों के लिये सुख की चाहना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।**

**शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( न ) हमारे लिये ( मित्र ) प्राण के तुल्य प्रिय मित्र ( शम् ) सुखकारी ( भवतु ) हो ( वरुण ) जल के तुल्य शान्ति देने वाला जन ( शम् ) सुखकारी हो ( अर्यमा ) पदार्थों के स्वामी वा वैश्यो को मानने वाला न्यायाधीश ( न ) हमारे लिये ( शम् ) सुखकारी हो ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्यवान् ( बृहस्पति ) महती वेदरूप वाणी का रक्षक विद्वान् ( न ) हमारे लिये ( शम् ) कल्याणकारी हो और ( उरुक्रम ) ससार की रचना म बहुत शीघ्रता करने वाला ( विष्णु ) व्यापक ईश्वर ( न ) हमारे लिये ( शम् ) कल्याणकारी होवे वैसे हम लोगो के लिय भी होवे ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को योग्य है कि जैसे अपने लिये सुख चाहे वैसे दूसरो के लिये भी और जैसे आप सत्सङ्ग करना चाहे वैसे इस मे अन्य लोगों को भी प्रेरणा किया करें ॥९॥

शन्नो वात इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । वातादयो देवता । विराडनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों म कहा है—*

**शन्नो वातः पवताᳬ शन्नस्तपतु सूर्यः ।**

**शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१०॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर ! वा विद्वान् पुरुष ! जैसे ( वात ) पवन ( न ) हमारे लिये ( शम् ) सुखकारी ( पवताम् ) चले ( सूर्य ) सूर्य ( न ) हमारे लिय ( शम् ) सुखकारी ( तपतु ) तपे ( कनिक्रदत् ) अत्यन्त शब्द करता हुआ ( देव ) उत्तम गुण युक्त विद्युत्रूप अग्नि ( न ) हमारे लिये ( शम् ) कल्याणकारी हो और ( पर्जन्य ) मेघ हमारे लिये ( अभि वर्षतु ) सब ओर से वर्षा करे वैसे हमको शिक्षा कीजिये ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस प्रकार से वायु सूर्य बिजुली और मेघ सब को सुखकारी हो वैसा अनुष्ठान किया करो ॥१०॥

अहानि शमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । लिङ्गोक्ता देवता । अतिशक्वरी छन्द । पञ्चम स्वर ॥

**अहानि शं भवन्तु नः शᳬ रात्रीः प्रति धीयताम् ।**

**शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।**

**शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥११॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान् जन ! जैसे ( अवोभि ) रक्षा आदि के साथ ( शयो ) सुख की ( सुविताय ) प्रेरणा के लिये ( न ) हमारे अर्थ ( अहानि ) दिन ( शम् ) सुखकारी ( भवन्तु ) हो ( रात्री ) रात ( शम् ) कल्याण के ( प्रति ) प्रति ( धीयताम् ) हमको धारण कर ( इन्द्राग्नी ) बिजुली और प्रत्यक्ष अग्नि ( न ) हमारे लिये ( शम् ) सुखकारी ( भवताम् ) होवें ( रातहव्या ) ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे प्राप्त हुआ वे ( इन्द्रावरुणा ) विद्युत् और जल ( न ) हमारे लिये ( शम् ) सुखकारी हो ( वाजसातौ ) अन्नो के सेवन के हेतु संग्राम मे ( इन्द्रापूषणा ) विद्युत् और पृथिवी ( न ) हमारे लिये ( शम् ) सुखकारी होवें और ( इन्द्रासोमा ) बिजुली और ओषधियां ( शम् ) सुखकारिणी हों वैसे हम को आप अनुकूल शिक्षा करें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो ईश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् लोगो की शिक्षा म आप लोग प्रवृत्त रहो तो दिन रात तुम्हारे भूमि आदि सब पदार्थ सुखकारी होवें ॥११॥

शन्नो देवीरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । आपो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*कैसे मनुष्य सुखो से युक्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।**

**शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ १२ ॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जैसे ( अभिष्टये ) इष्ट सुख की सिद्धि के लिये ( पीतये ) पीने के अर्थ ( देवी ) दिव्य उत्तम ( आप ) जल ( न ) हमको ( शम् ) सुखकारी ( भवन्तु ) होवें ( न ) हमारे लिये ( शयो ) सुख की वृष्टि ( अभि, स्रवन्तु ) सब ओर से करें वैसे उपदेश करो ॥१२॥

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञादि से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं उन पर सुखरूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है ॥१२॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषि । पृथिवी देवता । पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

*पतिव्रता स्त्री कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।**

**यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्रि ! जैसे ( अनृक्षरा ) कांटे गढ़े आदि से रहित ( निवेशनी ) नित्य स्थिर पदार्थों को स्थापन करनेहारी ( पृथिवी ) भूमि ( न ) हमारे लिये होती है वैसे तू हो वह पृथिवी ( सप्रथा ) विस्तार के साथ वर्त्तमान ( न ) हमारे लिये ( शर्म ) स्थान देवे वैसे ( स्योना ) सुख करनेहारी तू ( न ) हमारे लिये घर के सुख को ( यच्छ ) दे ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब प्राणियो को सुख ऐश्वर्य देनेवाली पृथिवी वर्त्तमान है वैसे ही विदुषी पतिव्रता स्त्री पति आदि को आनन्द देनेवाली होती है ॥१३॥

आप इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । आपो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।**

**महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे ( आप ) जलो के तुल्य शान्तिशील विदुषी श्रेष्ठ स्त्रियो ! जैसे ( मयोभुव ) सुख उत्पन्न करनहारे जल ( हि ) जिस कारण ( न ) हम को ( महे ) बड़े ( रणाय, चक्षसे ) प्रसिद्ध संग्राम के लिये वा ( ऊर्जे ) बल पराक्रम के अर्थ धारण वा पोषण करें वैसे इनको तुम लोग धारण करो और प्यारी ( स्थ ) होओ ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां सब ओर से सब को सुखी करतीं वैसे जलादि पदार्थ सब को सुखकारी होते हैं ऐसा जानो ॥१४॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । आपो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥१५॥**

पदार्थ—हे श्रेष्ठ स्त्रियो ! ( य ) जो ( व ) तुम्हारा ( शिवतम ) अतिशय कल्याणकारी ( रस ) आनन्दवर्द्धक स्नेहरूप रस है ( तस्य ) उस का ( इह ) इस जगत् मे ( न ) हम को ( उशतीरिव, मातर ) पुत्रो की कामना करनेवाली माताओं के तुल्य ( भाजयत ) सेवा कराओ ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जो होम आदि से जल शुद्ध किये जावें तो ये माता जैसे सन्तानो वा पतिव्रता स्त्रियां अपने पतियो को सुखी करती हैं वैसे सब प्राणियो को सुखी करते हैं ॥१५॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषि । आपो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।**

**आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥**

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे तुम लोग ( न ) हम को ( आप ) जलों के तुल्य शान्त ( जनयथ ) प्रकट करो वैसे ( व ) तुम को हम लोग शान्त प्रकट करें ( च ) और तुम लोग ( यस्य ) जिस पति के ( क्षयाय ) निवास के लिये ( जिन्वथ ) उस को तृप्त करो ( तस्मै ) उसके लिये हम लोग ( अरम् ) पूर्ण सामर्थ्य युक्त ( गमाम ) प्राप्त होवें ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री पुरुषो को योग्य है कि परस्पर आनन्द के लिये जल के सदृश सरलता से वर्त्तें और शुभ आचरणों के साथ परस्पर सुशोभित ही रहें ॥१६॥

द्यौरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । भुरिक्शक्वरी छन्द । धैवत स्वर ॥

*मनुष्यों को कैसे प्रयत्न करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬ शान्तिः पृथिवी**

**शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।**

**वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वᳬ**

**शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( शान्ति, द्यौ ) प्रकाशयुक्त पदार्थ शान्तिकारक ( अन्तरिक्षम् ) दोनो लोको के बीच का आकाश ( शान्ति ) शान्तिकारी ( पृथिवी ) भूमि ( शान्ति ) सुखकारी निरुपद्रव ( आप ) जल वा प्राण ( शान्ति ) शान्ति

दायी ( ओषधय ) सोमलता आदि ओषधिया ( शान्ति ) सुखदायी ( वनस्पतय ) वट आदि वनस्पति ( शान्ति ) शान्तिकारक ( विश्वे, देवा ) सब विद्वान् लोग ( शान्ति ) उपद्रवनिवारक ( ब्रह्म ) परमेश्वर वा वेद ( शान्ति ) सुखदायी (सर्वम्) सम्पूर्ण वस्तु ( शान्तिरेव ) शान्ति ही ( शान्ति ) शान्ति ( मा ) मुझ को (एधि) प्राप्त होवें ( सा ) वह ( शान्ति ) शान्ति तुम लोगो के लिये भी प्राप्त होवे ।१७।

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाश आदि पदार्थ शान्ति करने वाले होवें वैसे तुम लोग प्रयत्न करो ।।१७।।

**दृत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । भुरिग जगती छन्द ।**

**निषाद स्वर ॥**

*अब कौन मनुष्य धर्मात्मा हो सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।**

**मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।**

**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे ( दृते ) अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस से ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) प्राणी ( मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से ( मा ) मुझ को ( सम्, ईक्षन्ताम् ) सम्यक देखें ( अहम् ) मैं ( मित्रस्य ) मित्र की ( चक्षुषा ) दृष्टि से ( सर्वाणि, भूतानि ) सब प्राणियो को ( समीक्षे ) सम्यक देखूं इस प्रकार सब हम लोग परस्पर ( मित्रस्य ) मित्र की ( चक्षुषा ) दृष्टि से ( समीक्षामहे ) देखें इस विषय मे हम को ( दृंह ) दृढ कीजिये ।।१८।।

**भावार्थ**—वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियो को मानें किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सब का सदा सत्कार करें ।१८।

**दृते दृंहेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्द ।**

**षड्ज स्वर ॥**

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**दृते दृꣳह मा ।**

**ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम् ॥१९॥**

**पदार्थ**—हे ( दृते ) समग्र मोह के आवरण का नाश करनेहारे उपदेशक विद्वन् वा परमेश्वर ! जिस से मैं ( ते ) आप के ( सन्दृशि ) सम्यक देखने वा ज्ञान में ( ज्योक ) निरन्तर ( जीव्यासम ) जीवें ( ते ) आप के ( सन्दृशि ) समान दृष्टि विषय मे ( ज्योक ) निरन्तर ( जीव्यासम ) जीवन व्यतीत करें उस जीवन विषय मे ( मा ) मुझ को ( दृंह ) दृढ कीजिये ।। १९ ।।

**भावार्थ** - मनुष्यो को योग्य है कि ईश्वर की आज्ञा पालने और युक्त आहार विहार से सौ वर्ष तक जीवन का उपाय करें ।। १९ ।।

**नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिग बृहती छन्द ।**

**मध्यम स्वर ॥**

*अब ईश्वर की उपासना विषय अगले मन्त्रों में कहा है—*

**नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे ।**

**अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव ॥२०॥**

**पदार्थ**—हे भगवन् ईश्वर ! ( हरसे ) पाप हरने वाले ( शोचिषे ) प्रकाशक ( ते ) आप के लिये ( नम ) नमस्कार तथा ( अर्चिषे ) स्तुति के योग्य ( ते ) आप के लिये ( नम ) नमस्कार ( अस्तु ) प्राप्त होवे ( ते ) आपकी ( हेतय ) वज्र के तुल्य अमिट व्यवस्था ( अस्मत ) हम से ( अन्यान् ) भिन्न अन्यायी शत्रुओ को ( तपन्तु ) दुःख देवें आप ( अस्मभ्यम ) हमारे लिये ( पावक ) पवित्रकर्त्ता ( शिव ) कल्याणकारी ( भव ) हूजिये ।। २० ।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! हम लोग आप के शुभ गुण कर्म स्वभावो के तुल्य अपने गुण कर्म स्वभाव करने के लिये आप को नमस्कार करते हैं और यह निश्चित जानते हैं कि अधर्मियो को आप की शिक्षा पीडा और धर्मात्माओ को आनन्दित करती है इस मङ्गलस्वरूप आप की ही हम लोग उपासना करते हैं ।। २० ।।

**नमस्त इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । अनुष्टुप छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

**नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।**

**नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे ( भगवन् ) अनन्त ऐश्वययुक्त परमेश्वर ! ( यत ) जिस कारण आप हमारे लिये ( स्व ) सुख करने के अर्थ ( समीहसे ) सम्यक चेष्टा करते हैं इससे ( विद्युते ) बिजुली के समान अभिव्याप्त ( ते ) आप के लिये ( नम ) नमस्कार ( अस्तु ) हो ( स्तनयित्नवे ) अधिकतर गजने वाले विद्युत के तुल्य दुष्टों को भय देने वाले ( ते ) आप के लिये ( नम ) नमस्कार ( अस्तु ) हो और सब की सब प्रकार रक्षा करने हारे (ते) तेरे लिये (नम ) निरन्तर नमस्कार करें ।।२१।।

**भावार्थ**—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस कारण ईश्वर हमारे लिये सदा आनन्द के अर्थ सब साधन उपसाधनो को देता है इस से हम को सेवा करने योग्य है ।। २१ ।।

**यतोयत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । भुरिगुष्णिक छन्द ।**

**ऋषभ स्वर ॥**

**यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।**

**शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥**

**पदार्थ**—हे भगवन् ईश्वर ! आप अपने कृपाकटाक्ष से ( यतोयत ) जिस जिस स्थान से ( समीहसे ) सम्यक चेष्टा करते हो ( तत ) उस उस से ( न ) हम को ( अभयम् ) भयरहित ( कुरु ) कीजिये ( न ) हमारी ( प्रजाभ्य ) प्रजाओ से और ( न ) हमारे ( पशुभ्य ) गौ आदि पशुओ से (शम्) सुख और (अभयम्) निर्भय ( कुरु ) कीजिये ।। २२ ।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! आप जिस कारण सब मे अभिव्याप्त हैं इस से हम को और दूसरो को सब कालो और सब देशो मे सब प्राणियो से निर्भय कीजिये ।। २२ ।।

**सुमित्रियेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । सोमो देवता । विराडनुष्टुप छन्द ।**

**गान्धार स्वर ॥**

*कैसे पदार्थ हितकारी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ।**

**योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ये ( आप ) प्राण वा जल ( ओषधय ) जौ आदि ओषधिया ( न ) हमारे लिये ( सुमित्रिया ) सुन्दर मित्र के समान वर्त्तमान ( सन्तु ) होवें वे ही ( य ) जो अधर्मी ( अस्मान् ) हम धर्मात्माओ से ( द्वेष्टि ) द्वेष करें ( च ) और ( यम ) जिससे ( वयम ) हम लोग ( द्विष्म ) द्वेष करें ( तस्मै ) उस के लिये ( दुर्मित्रिया ) शत्रु के तुल्य विरुद्ध ( सन्तु ) होवें ।।२३।।

**भावार्थ**—जैसे अनुकूलता से जीते हुए इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते वैसे जलादि पदार्थ भी देशकाल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुःखदायी होते हैं ।। २३ ।।

**तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । सूर्यो देवता । भुरिग ब्राह्मी त्रिष्टुप छन्द ।**

**धैवत स्वर ॥**

*अब ईश्वर की प्रार्थना का विषय अगले मन्त्रों मे कहा है—*

**तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।**

**पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम**

**शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम**

**शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२४॥**

**पदार्थ**—हे परमेश्वर ! आप जो ( देवहितम ) विद्वानो के लिये हितकारी ( शुक्रम् ) शुद्ध ( चक्षु ) नेत्र के तुल्य सब के दिखाने वाले ( पुरस्तात ) पूर्वकाल अर्थात अनादि काल से ( उत् चरत ) उत्कृष्टता के साथ सब के ज्ञाता हैं ( तत ) उस चेतन ब्रह्म आप को ( शतम शरद ) सौ वर्ष तक ( पश्येम ) देखें ( शतम्, शरद ) सौ वर्ष तक ( जीवेम ) प्राणो का धारण करें जीवें ( शतम, शरद ) सौ वर्ष पर्य्यन्त ( शृणुयाम ) शास्त्रो वा मङ्गल वचनो को सुनें ( शतम्, शरद ) सौ वर्ष पर्य्यन्त ( प्रब्रवाम ) पढावें वा उपदेश करें ( शतम शरद ) सौ वर्ष पर्य्यन्त ( अदीना ) दीनता रहित ( स्याम ) हों ( च ) और ( शतात् शरद ) सौ वर्ष से ( भूय ) अधिक भी देखें जीवें सुनें पढें उपदेश करें और अदीन रहें ।।२४।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! आप की कृपा और आपके विज्ञान से आप की रचना को देखते हुए आप के साथ युक्त नीरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियो से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें सत्य शास्त्रो और आप के गुणों को सुनें वेदादि को पढावें सत्य का उपदेश करें कभी किसी वस्तु के बिना पराधीन न हों सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरो को आनन्दित करें ।।२४।।

**इस अध्याय मे परमेश्वर की प्रार्थना सब के सुख का भाव, आपस मे मित्रता करने की आवश्यकता दिनचर्य्या का शोधन धर्म का लक्षण, अवस्था का बढाना और परमेश्वर का जानना कहा है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय मे कहे अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥**

**यह छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।।**

卐

॥ ओ३म् ॥

# अथ सप्तत्रिंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

दधीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सविता देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब सैंतीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इस के पहिले मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।**
**आ ददे नारिरसि ॥१॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस कारण आप (नारि) नायक (असि) हैं इस से (सवितुः) जगत् के उत्पादक (देवस्य) समस्त सुख के दाता (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (अश्विनोः) अध्यापक और उपदेशक के (बाहुभ्याम्) बल पराक्रम से (पूष्णः) पुष्टिकर्त्ता जन के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) आप को (आ ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम विद्वानों को प्राप्त होके उन से विद्या शिक्षा ग्रहण कर इस सृष्टि में नायक हो ॥ १ ॥

युञ्जत इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब योगाभ्यास का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।**
**वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वयुनावित्) उत्कृष्ट ज्ञानों में प्रवीण (एकः) अद्वितीय जगदीश्वर सब को (वि दधे) रचता जिस (सवितुः) सर्वान्तर्यामी (देवस्य) समग्र जगत् के प्रकाशक ईश्वर की यह (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब ओर से स्तुति प्रशंसा है (होत्राः) शुभगुणग्रहीता (विप्राः) अनेक प्रकार की बुद्धियों में व्याप्त बुद्धिमान् योगीजन जिस (बृहतः) सब से बड़े (विपश्चितः) अनन्त विद्यावाले (विप्रस्य) विशेषकर सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर के बीच (मनः) सङ्कल्प विकल्प रूप मन को (युञ्जते) समाहित करते (उत) और (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (युञ्जते) युक्त करते हैं (इत्) उसी की तुम लोग उपासना किया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो योगीजनों को ध्यान करने योग्य जिस की प्रशंसा के हेतु सूर्य्य आदि दृष्टान्त वर्त्तमान हैं जो सर्वज्ञ असहायी सच्चिदानन्दस्वरूप है जिसके लिये सब धन्यवाद देने योग्य है उसी को इष्टदेव तुम लोग मानो ॥ २ ॥

देवीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । ब्राह्मी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब यज्ञ विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥३॥**

पदार्थ—(देवी) उत्तम गुणों से युक्त (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि के तुल्य वर्त्तमान अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियो ! (अद्य) इस समय (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वाम्) तुम दोनों के (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तम अवयव को मैं (राध्यासम्) सम्यक् सिद्ध करूँ (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को और (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को सम्यक् सिद्ध करूँ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! इस जगत् में जैसे सूर्य भूमि उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान हैं वैसे आप लोग सब से उत्तम वर्त्तो जिस से सब सङ्गतियों का आश्रय यज्ञ पूर्ण होवे ॥३॥

देव्य इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब विदुषी स्त्री कैसी होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य**
**शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥४॥**

पदार्थ—हे (प्रथमजाः) पहिले से हुई (वम्र्यः) थोड़ी अवस्था वाली (देव्यः) तेजस्विनी विदुषी स्त्रियो ! (भूतस्य) उत्पन्न सिद्ध हुए (मखस्य) यज्ञ की सम्बन्धिनी (पृथिव्याः) पृथिवी के (देवयजने) उस स्थान में जहां विद्वान् लोग सङ्गति करते हैं (अद्य) आज (वः) तुम लोगों का (शिरः) शिर के तुल्य मैं (राध्यासम्) सम्यक् सिद्ध किया करूँ (मखस्य) यज्ञ का निर्माण करने वाली (त्वा) तुझ को और (मखाय शीर्ष्णे) शिर के तुल्य वर्त्तमान यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को सम्यक् उद्यत वा सिद्ध करूँ ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब तक स्त्रियां विदुषी नहीं होतीं तब तक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती है ॥४॥

इयतीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इयत्यग्रऽआसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥५॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं (अग्रे) पहिले (मखाय) सत्कार रूप यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) सङ्गतिकरण की (शीर्ष्णे) उत्तमता के लिये (त्वा) तुझ को (राध्यासम्) सिद्ध करूँ जिस (ते) आप के (मखस्य) यज्ञ का (शिरः) उत्तम अङ्ग (आसीत्) है उस आप का (अद्य) आज (पृथिव्याः) भूमि के बीच (इयति) इतने (देवयजने) विद्वानों के पूजने में सम्यक् सिद्ध होऊं ॥५॥

भावार्थ—वे ही अध्यापक श्रेष्ठ हैं जो पृथिवी के बीच सब को उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त करने को समर्थ हैं ॥५॥

इन्द्रस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इन्द्रस्यौजः स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष के (ओजः) पराक्रम को (राध्यासम्) सिद्ध करूँ वैसे (अद्य) आज (पृथिव्याः) भूमि के (देवयजने) उस स्थान में जहां विद्वानों का पूजन होता हो (शिरः) उत्तम अवयव के समान (वः) तुम लोगों को सिद्ध करूँ (शीर्ष्णे) शिर सम्बन्धी (मखाय) धर्मात्माओं के सत्कार के निमित्त वचन के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) प्रिय आचरणरूप व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूँ (शीर्ष्णे) उत्तम गुणों के प्रचारक (मखाय) शिल्पयज्ञ के विधान के लिये (त्वा) आपको (मखस्य) सत्याचरण रूप व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आपको सिद्ध करूँ (शीर्ष्णे) उत्तम (मखाय) विज्ञान की प्रकटता के लिये (त्वा) आप को और (मखस्य) विद्या को बढ़ाने हारे व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूँ । वैसे तुम लोग भी पराक्रमी (स्थ) होओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य धर्मयुक्त कार्यों को करते हैं वे सब के शिरोमणि होते हैं ॥६॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।**
**अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (वीरम्) सब दुःखों को हटाने वाले (नर्यम्) मनुष्यों में उत्तम (पङ्क्तिराधसम्) समुदायों को सिद्ध करने वाले (यज्ञम्) सुख प्राप्ति के हेतु जन को (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम को (नयन्तु) प्राप्त करें

( **ब्रह्मण पति** ) धन का रक्षक जन ( **प्र एतु** ) प्रकर्षता से प्राप्त हो ( **सूनृता** ) सत्य बोलना आदि सुशीलता वाली ( **देवी** ) विदुषी स्त्री ( **अच्छ प्र, एतु** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे उस ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखाय** ) विद्यावृद्धि के लिये ( **मखस्य** ) सुख रक्षा के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) धर्माचरण निमित्त के लिये ( **त्वा** ) आप के ( **मखस्य** ) धर्मरक्षा के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) सब सुख करने वाले के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) सब सुख बढ़ाने वाले के सम्बन्धी ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम सुखदायी जन के लिये ( **त्वा** ) आपका आश्रय करें ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य और जो स्त्रियां स्वयं विद्यादि गुणों को पाकर अन्यों को प्राप्त करा के विद्या सुख और धर्म की वृद्धि के लिये अधिक सुशिक्षित जनों को विद्वान् करते हैं वे पुरुष और स्त्रियां निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

**मखस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*मनुष्य लोग विद्वान् के साथ कैसे वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥८॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जिस कारण आप ( **मखाय** ) ब्रह्मचर्य आश्रम रूप यज्ञ के ( **शिरः** ) शिर के तुल्य ( **असि** ) हैं इस से ( **मखाय** ) विद्याग्रहण के अनुष्ठान के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) ज्ञान सम्बन्धी ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम व्यवहार के लिये ( **त्वा** ) आप को जिस कारण आप ( **मखस्य** ) विचार रूप यज्ञ के ( **शिरः** ) उत्तम अवयव के समान ( **असि** ) हैं इस से ( **मखाय** ) गृहस्थों के व्यवहार के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) आप को जिस कारण आप ( **मखस्य** ) गृहाश्रम के ( **शिरः** ) उत्तम अवयव के समान ( **असि** ) हैं इस से ( **मखाय** ) गृहस्थों के कार्यों को सगत करने के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम शिर के समान अवयव के लिये ( **त्वा** ) आप को सेवन करें। इस से ( **मखाय** ) उत्तम व्यवहार की सिद्धि के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) सत् व्यवहार की सिद्धि सम्बन्धी ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान होने के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) योगाभ्यास के लिये ( **त्वा** ) आपको ( **मखस्य** ) साङ्गोपाङ्ग योग के ( **शीर्ष्णे** ) सर्वोपरि वर्त्तमान विषय के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) ऐश्वर्य देने वाले के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) ऐश्वर्य देने वाले के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) ऐश्वर्य देने वाले के ( **शीर्ष्णे** ) सर्वोत्तम कार्य के लिये ( **त्वा** ) आपको हम लोग सेवन करें ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो लोग सत्कार करने में उत्तम हैं वे दूसरों को भी सत्कारी बना के मस्तक के तुल्य उत्तम अवयवों वाले हों ॥ ८ ॥

**अश्वस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । विद्वान् देवता । पूर्वस्योत्तरस्य च अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*कौन मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! जैसे मैं ( **पृथिव्याः** ) अन्तरिक्ष के ( **देवयजने** ) विद्वानों के यज्ञस्थान में ( **वृष्णः** ) बलवान् ( **अश्वस्य** ) अग्नि आदि के ( **शक्ना** ) दुर्गन्ध के निवारण में समर्थ धूम आदि से ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखाय** ) वायु की शुद्धि करने के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखस्य** ) शोधक पुरुष के ( **शीर्ष्णे** ) शिर रोग की निवृत्ति के अर्थ ( **त्वा** ) तुझ को ( **धूपयामि** ) सम्यक् तपाता हूं। ( **पृथिव्याः** ) पृथिवी के बीच विद्वानों के ( **देवयजने** ) यज्ञस्थान में ( **वृष्णः** ) वेगवान् ( **अश्वस्य** ) घोड़े की ( **शक्ना** ) लेंडी लीद से ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखाय** ) पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखस्य** ) तत्त्वबोध के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखाय** ) यज्ञसिद्धि के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **धूपयामि** ) सम्यक् तपाता हूं ( **पृथिव्याः** ) भूमि के बीच ( **देवयजने** ) विद्वानों की पूजास्थल में ( **वृष्णः** ) बलवान् ( **अश्वस्य** ) शीघ्रगामी अग्नि के ( **शक्ना** ) तेज आदि से ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) उपयोग के लिये ( **त्वा** ) तुझको ( **मखस्य** ) उपयुक्त कार्य के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) तुझको ( **मखाय** ) यज्ञ के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **मखाय** ) यज्ञ के लिये ( **त्वा** ) आप को और ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) तुझ को ( **धूपयामि** ) सम्यक् तपाता हूं ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में पुनरुक्ति अधिकता जताने के अर्थ है। जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का सम्प्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं ॥९॥

**ऋजव इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । विद्वांसो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

*कौन बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।**
**मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( **ऋजवे** ) सरल स्वभाव वाले ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) विद्वानों के सत्कार के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **साधवे** ) परोपकार को सिद्ध करने वाले के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) यज्ञ के लिये ( **त्वा** ) आपको ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) शिर के लिये ( **त्वा** ) आपको ( **सुक्षित्यै** ) उत्तम भूमि के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखाय** ) यज्ञ के लिये ( **त्वा** ) आप को ( **मखस्य** ) यज्ञ के ( **शीर्ष्णे** ) उत्तम अवयव के लिये ( **त्वा** ) आप को हम लोग स्थापित करते हैं ॥१०॥

**भावार्थ**—जो लोग विनय और सीधेपन से युक्त प्रयत्न के साथ सर्वोपकार रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

**यमायेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब सज्जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे ।**
**देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि ।**
**अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥११॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( **सविता** ) ऐश्वर्यकर्त्ता ( **देवः** ) दानशील पुरुष ( **मखाय** ) न्याय के अनुष्ठान के लिये ( **यमाय** ) नियम के अर्थ ( **त्वा** ) आपको ( **सूर्यस्य** ) प्रेरक ईश्वर सम्बन्धी ( **तपसे** ) धर्म के अनुष्ठान के लिये ( **त्वा** ) आपको ग्रहण करे ( **पृथिव्याः** ) भूमि सम्बन्धी ( **त्वा** ) आप को ( **मध्वा** ) मधुरता से ( **अनक्तु** ) संयुक्त करे सो आप ( **संस्पृशः** ) सम्यक् स्पर्श से ( **पाहि** ) रक्षा कीजिये जिस कारण आप ( **अर्चिः** ) तेजस्वी ( **असि** ) हैं ( **शोचिः** ) अग्नि की लपट के तुल्य पवित्र ( **असि** ) हैं और ( **तपः** ) धर्म में श्रम करने वाले ( **असि** ) हैं इससे ( **त्वा** ) आपका सत्कार करें ॥११॥

**भावार्थ**—जो लोग यथार्थ व्यवहार से प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं वे दुःख के स्पर्श से अलग होकर तेजस्वी होते हैं और दुष्टों को दुःख देकर श्रेष्ठों को सुखी करते हैं ॥११॥

**अनाधृष्टेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । पृथिवी देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः**
**पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः ।**
**सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः**
**आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः ।**
**विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः**
**विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि ! तू ( **अनाधृष्टा** ) दूसरों से नहीं धमकाई हुई ( **पुरस्तात्** ) पूर्वदेश से ( **अग्नेः** ) अग्नि के ( **आधिपत्ये** ) स्वामीपन में ( **मे** ) मेरे लिये ( **आयुः** ) जीवन के हेतु अन्न को ( **दाः** ) दे ( **पुत्रवती** ) प्रशंसित पुत्रों वाली हुई ( **दक्षिणतः** ) दक्षिण देश से ( **इन्द्रस्य** ) बिजुली वा सूर्य्य के ( **आधिपत्ये** ) स्वामीपन में ( **मे** ) मेरे लिये ( **प्रजाम्** ) प्रजा सन्तान ( **दाः** ) दीजिये ( **सुषदा** ) जिस के सम्बन्ध में सुन्दर प्रकार स्थित हो ऐसी हुई ( **पश्चात्** ) पश्चिम में ( **देवस्य** ) प्रकाशमान ( **सवितुः** ) सूर्य्यमण्डल के ( **आधिपत्ये** ) स्वामीपन में ( **मे** ) मेरे लिये ( **चक्षुः** ) नेत्र दीजिये ( **आश्रुतिः** ) अच्छे प्रकार जिसका सुनना हो ऐसी हुई तू ( **उत्तरतः** ) उत्तर से ( **धातुः** ) धारणकर्त्ता वायु के ( **आधिपत्ये** ) मालिकपन में ( **मे** ) मेरे लिये ( **राय** )

बल की ( योषम् ) पुष्टि को ( दा ) दे ( विधृति ) अनेक प्रकार की धारणाओं वाली हुई ( उपरिष्टात ) ऊपर से ( बृहस्पते ) बड़े बड़े पदार्थों के रक्षक सूत्रात्मा वायु के ( आधिपत्य ) स्वामीपन में ( मे ) मेरे लिये ( ओज ) बल ( दा ) दे। जिस कारण ( मनो ) मननशील अन्त करण की ( अवका ) व्यापिका ( असि ) है इससे ( विश्वाभ्य ) सब ( माध्वृभ्य ) नष्टभ्रष्ट स्वभाव वाली व्यभिचारिणियों से ( मा ) मुझको ( पाहि ) रक्षित कर ॥१२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि जीवन को जैसे बिजुली प्रजा को जैसे सूर्य देखने को धारणकर्त्ता ईश्वर लक्ष्मी और शोभा को और महाशयजन बल को देता है वैसे ही सुलक्षणा पत्नी सब सुखों को देनी है उस की तुम रक्षा किया करो ॥१२॥

स्वाहेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

**स्वाहा मुरुद्भिः परि श्रीयस्व दिव सुꣳस्पृशस्पाहि ।**

**मधु मधु मधु ॥१३॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ( मरुद्भि ) मनुष्यों के साथ ( स्वाहा ) सत्क्रिया ( मधु ) कर्म ( मधु ) उपासना और ( मधु ) विज्ञान का ( श्रीयस्व ) सेवन कीजिये तथा ( सस्पृश ) सम्यक स्पर्श करने वाली ( दिव ) प्रकाशरूप बिजुली से हमारी ( परि, पाहि ) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥१३॥

भावार्थ—जो लोग पूर्ण विद्वानों के साथ कर्म उपासना और ज्ञान की विद्या तथा उत्तम क्रिया को ग्रहण कर सेवन करते हैं वे सब ओर से रक्षा को प्राप्त हुए बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

गर्भ इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । भुरिगनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब ईश्वर की उपासना के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**गर्भो देवानां पिता मतीनां पति प्रजानाम् ।**

**स देवो देवेन सवित्रा गत सꣳसूर्येण रोचते ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( देवानाम् ) विद्वानों वा पृथिवी आदि तेंतीस देवों के ( गर्भ ) बीच स्थित तथा ( मतीनाम् ) मननशील बुद्धिमान् मनुष्यों के ( पिता ) पिता के तुल्य ( प्रजानाम् ) उत्पन्न हुए पदार्थों का ( पति ) रक्षक स्वामी ( देव ) स्वय प्रकाशस्वरूप परमात्मा ( सवित्रा ) उत्पत्ति के हेतु ( देवेन सूर्येण ) प्रकाशक विद्वान् के साथ ( सम् रोचते ) सम्यक प्रकाशित होता है उसको तुम लोग ( सम्, गत ) सम्यक प्राप्त होओ ॥१४॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जो सब का उत्पादन करनेहारा पिता के तुल्य रक्षक प्रकाशक सूर्यादि पदार्थों का भी प्रकाशक सर्वत्र अभिव्याप्त जगदीश्वर है उसी पूर्ण परमात्मा की सर्वदा उपासना किया करें ॥१४॥

समग्निरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप छन्द । गान्धार स्वर ॥

**समुग्निरुग्निना गत स देवेन सवित्रा सꣳसूर्येणारोचिष्ट ।**

**स्वाहा समुग्निस्तपसा गत स दैव्येन सवित्रा सꣳसूर्येणारूरुचत ॥१५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( अग्निना ) स्वयप्रकाश जगदीश्वर से ( अग्नि ) प्रकाशक अग्नि ( देवेन ) ईश्वर ने बनाये ( सवित्रा ) प्रेरक ( सूर्येण ) सूर्य के साथ ( सम अरोचिष्ट ) सम्यक प्रकाशित होता है उस परमात्मा को तुम लोग ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( सम गत ) सम्यक जानो और जो ( अग्नि ) प्रकाशक ईश्वर ( दैव्येन ) पृथिवी आदि में हुए ( सवित्रा ) ऐश्वर्य का धारक ( सूर्येण ) प्रेरक ( तपसा ) धर्मानुष्ठान से ( सम अरूरुचत ) सम्यक प्रकाशित होता है उसको तुम लोग ( सम, गत ) सम्यक प्राप्त होओ ॥१५॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के उत्पादक के उत्पादक सूर्य के सूर्य परमात्मा को विशेषकर जानें उन के लिये इस लोक परलोक के सुख सम्यक प्राप्त होते हैं ॥१५॥

धर्त्तेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । भुरिग्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

**धर्त्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्या धर्त्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः ।**

**वाचमुस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥१६॥**

पदार्थ—हे विद्वन् जो ( पृथिव्याम् ) आकाश में ( तपस ) सब को तपाने वाले ( दिव ) प्रकाशमय सूर्य्य आदि का ( धर्त्ता ) धारणकर्त्ता जो ( तपोजा ) तप से प्रकट होने वाला ( अमर्त्य ) मरणधर्मरहित ( देव: ) प्रकाशस्वरूप ( देवानाम ) पृथिव्यादि तेंतीस देवों का ( धर्त्ता ) धारणकर्त्ता जगदीश्वर ( वि, भाति ) विशेषकर प्रकाशित होता है उसके विज्ञान से ( अस्मे ) हमारे लिये ( देवायुवम् ) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि वा विद्वानों को संयुक्त करने वाली ( वाचम् ) वाणी को ( नि यच्छ ) निरन्तर दीजिये ॥१६॥

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जो परमेश्वर सबका धर्त्ता प्रकाशक तप से विशेषकर जानने योग्य है उसका जानने वाली विद्या को हमारे लिये देओ ॥१६॥

अपश्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । ईश्वरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर ॥

*ईश्वर के उपासक कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।**

**स सध्रीची स विषूचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्त ॥१७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं जिस ( पथिभि ) शुद्ध ज्ञान के मार्गों से ( आ, चरन्तम ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए ( परा ) पर भाग में भी प्राप्त होते हुए ( अनिपद्यमानम ) अचल ( गोपाम ) रक्षक जगदीश्वर को ( अपश्यम् ) देखूं ( स च ) वह भी ( सध्रीची ) साथ वर्त्तमान दिशाओं ( च ) और ( स ) वह ( विषूची ) व्याप्त उपदिशाओं को ( वसान ) आच्छादित करनेवाला हुआ ( भुवनेषु ) लोक लोकान्तरों के ( अन्त ) बीच ( आ वरीवर्त्ति ) अच्छे प्रकार सब का आवरण करता वा वर्त्तमान है ॥१७॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब लोकों में अभिव्यापी अन्तर्यामी रूप से प्राप्त अधर्मी अविद्वान् और अयोगी लोगों के न जानने योग्य परमात्मा को जानकर अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं वे सब धर्मयुक्त मार्गों को प्राप्त होकर शुद्ध होते हैं ॥१७॥

विश्वासामित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । अत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥

**विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते**

**विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।**

**देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान् पाह्यत्र प्रावीरनु वान्देववीतये ।**

**मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ॥१८॥**

पदार्थ—हे ( विश्वासाम् ) सब ( भुवाम् ) पृथिवियों के ( पते ) स्वामिन् ( विश्वस्य ) सब ( मनस ) सकल्प विकल्प आदि वृत्तियुक्त अन्त करण के ( पते ) रक्षक ( विश्वस्य ) समस्त ( वचस ) वेदवाणी के ( पते ) पालक ( सर्वस्य ) सम्पूर्ण वचनमात्र के ( पते ) रक्षक ( घर्म ) प्रकाशक ( देव ) सब सुखों के दाता जगदीश्वर ! ( देवश्रुत ) विद्वानों को सुनने हारे ( देव ) रक्षक हुए ( त्वम् ) आप ( अत्र ) इस जगत् में ( देवान् ) धार्मिक विद्वानों की ( पाहि ) रक्षा कीजिये ( माध्वीभ्याम् ) मधुरादि गुणयुक्त विद्या और उत्तम शिक्षा के ( मधु ) मधुर विज्ञान को ( प्र, अवी ) प्रकर्ष के साथ दीजिये ( माधूचीभ्याम् ) विष को विनाशने वाली मधुविद्या को प्राप्त होने वाले अध्यापक उपदेशकों के साथ ( देववीतये ) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये विद्वानों की ( अनु ) अनुकूल रक्षा कीजिये। इस प्रकार हे अध्यापक उपदेशको ! ( वाम् ) तुम्हारे लिये मैं उपदेश को करूं ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग सब देव आत्मा और मनों के स्वामी सब सुनने वाले सब के रक्षक परमात्मा को जान और उत्तम सुख को प्राप्त होकर दूसरों को सुख प्राप्त करो ॥ १८ ॥

हृदे त्वेत्यस्याथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर ॥

**हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा ।**

**ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥१९॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस ( हृदे ) हृदय की चेतनता के लिये ( त्वा ) आपका ( मनसे ) विज्ञानवान् अन्त करण होने के अर्थ ( त्वा ) आप को ( दिवे ) विद्या के प्रकाश वा विद्युत विद्या की प्राप्ति के लिये ( त्वा ) आप को ( सूर्याय ) सूर्यादि लोकों के ज्ञानार्थ ( त्वा ) आपका हम लोग ध्यान करें सो ( ऊर्ध्व ) सब से उत्कृष्ट आप ( दिवि ) उत्तम व्यवहार और ( देवेषु ) विद्वानों में ( अध्वरम् ) अहिंसामय यज्ञ का ( धेहि ) प्रचार कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्यभाव से आत्मा और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये और सृष्टिविद्या के अर्थ ईश्वर की उपासना करते हैं उनका वह कृपालु ईश्वर विद्या और धर्म के दान से सब दुःखों से उद्धार करता है ॥ १९ ॥

पिता न इत्यस्याथर्वण ऋषि । ईश्वरो देवता । निचृदतिजगती छन्द । निषाद स्वर ॥

**पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ।**

**त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि**

**प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहꣳ सहपत्या भूयासम् ॥२०॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप ( न ) हमारे ( पिता ) पिता के समान ( असि ) हैं ( पिता ) राजा के तुल्य रक्षक हुए ( न ) हम को ( बोधि ) बोध कराइये ( ते ) आप के लिये ( नम ) नमस्कार ( अस्तु ) होवे आप ( मा ) मुझ को ( मा हिंसी ) मत हिंसायुक्त कीजिये ( त्वष्टृमन्त ) बहुत स्वच्छ प्रकाशक

पदार्थों वाले हम ( त्वा ) आप से ( सपेम ) सम्बन्ध करें । आप ( पुत्रान् ) पवित्र गुण कर्म स्वभाव वाले सन्तानों का तथा ( पशून् ) गौ आदि पशुओं का ( मयि ) मुझ में ( धेहि ) धारण कीजिये तथा ( अस्मासु ) हम में ( प्रजाम् ) प्रजा को ( धेहि ) धारण कीजिये जिस से ( अहम् ) मैं ( अरिष्टा ) अहिंसित हुई ( सहपत्या ) पति के साथ ( भूयासम् ) होऊं ॥ २० ॥

**भावार्थ**—हे जगदीश्वर ! आप हमारे पिता स्वामी बन्धु मित्र और रक्षक हैं इससे आपकी हम निरन्तर उपासना करते हैं । हे स्त्रियो ! तुम परमेश्वर ही की उपासना नित्य किया करो जिस से सब सुखों को प्राप्त होओ ॥ २० ॥

**अह केतुनेत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥**

**अहः केतुना जुषताᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा**

**रात्रिः केतुना जुषताᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥२१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् वा विदुषी स्त्रि ! आप ( **स्वाहा** ) सत्य क्रिया से ( **केतुना** ) उत्कृष्ट ज्ञान वा जागृत अवस्था से और ( **ज्योतिषा** ) सूर्य्यादि वा धर्मादि के प्रकाश से ( **अहः सुज्योतिः** ) दिन और विद्या को ( **जुषताम्** ) सेवन कीजिये ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी ( **केतुना** ) बुद्धि वा सुन्दर कर्म और ( **ज्योतिषा** ) प्रकाश के साथ ( **सुज्योतिः** ) सुन्दर ज्योतियुक्त रात्रि हम को ( **जुषताम्** ) सेवन करे ॥ २१ ॥

**भावार्थ**—जो स्त्री पुरुष दिन के सोने और रात्रि के अति जागने को छोड़ युक्त आहार विहार करनेहारे ईश्वर की उपासना में तत्पर होवें उन को दिन रात सुखकर वस्तु प्राप्त होती है इससे जैसे बुद्धि बढ़े वैसा अनुष्ठान करना चाहिये ॥२१॥

**इस अध्याय में ईश्वर, योगी सूर्य, पृथिवी यज्ञ सम्मान, स्त्री पति और पिता के तुल्य वर्त्तमान परमेश्वर का वर्णन तथा युक्त आहार विहार का अनुष्ठान कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥**

यह सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथाष्टात्रिंशाऽध्यायारम्भः 卐

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न ऽआ सुव ॥ १॥**

**देवस्येत्यस्याथर्वण ऋषिः । सविता देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥**

*अब अड़तीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री को कैसी होना चाहिये इस विषय का कथन है—*

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।**

**आ ददेऽदित्यै रास्नाऽसि ॥१॥**

**पदार्थ**—हे विदुषि स्त्री ! जिस कारण तू ( **अदित्यै** ) नाशरहित नीति के लिये ( **रास्ना** ) दानशील ( **असि** ) है इसमें ( **सवितुः** ) समस्त जगत् के उत्पादक ( **देवस्य** ) कामना के योग्य परमात्मा के ( **प्रसवे** ) उत्पन्न किये जगत् में ( **अश्विनोः** ) सूर्य और चन्द्रमा के ( **बाहुभ्याम्** ) बल पराक्रम के तुल्य बाहुओं से ( **पूष्णः** ) पोषक वायु के ( **हस्ताभ्याम्** ) गमन और धारण के समान हाथों से ( **त्वा** ) तुझ को ( **आ ददे** ) ग्रहण करूं ॥ १ ॥

**भावार्थ**—हे स्त्री ! जैसे सूर्य भूगोलों को प्राण शरीर को और अध्यापक उपदेशक सत्य का ग्रहण करते हैं वैसे ही तुझ को मैं ग्रहण करता हूँ तू निरन्तर अनुकूल सुख देने वाली हो ॥ १ ॥

**इड इत्यस्याथर्वण ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥**

*स्त्री पुरुष कैसे विवाह करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥२॥**

**पदार्थ**—हे ( **इडे** ) सुशिक्षित वाणी के तुल्य स्त्रि ! तू मुझ को ( **एहि** ) प्राप्त हो जा ( **असौ** ) वह तुझ को प्राप्त हो उस को तू ( **एहि** ) प्राप्त हो । हे ( **अदिते** ) अखण्डित आनन्द देन वाली ! तू अखण्डित आनन्द को ( **एहि** ) प्राप्त हो जा ( **असौ** ) वह तुझ को अखण्डित आनन्द देवे उस को ( **एहि** ) प्राप्त हो । हे ( **सरस्वति** ) प्रशस्त विज्ञान युक्त स्त्रि ! तू विद्वान् को ( **एहि** ) प्राप्त हो जो ( **असौ** ) वह सुशिक्षित हो उस को ( **एहि** ) प्राप्त हो ॥ २ ॥

**भावार्थ**—जब स्त्री पुरुष विवाह करने की इच्छा करें तब ब्रह्मचर्य और विद्या से स्त्री और पुरुष के धर्म और आचरण को जानकर ही करें ॥ २ ॥

**अदित्या इत्यस्याथर्वण ऋषिः । पूषा देवता । भुरिक्साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥**

*स्त्री को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः । पूषाऽसि घर्माय दीष्व ॥३॥**

**पदार्थ**—हे कन्ये ! जो तू ( **अदित्यै** ) नित्य विज्ञान के ( **रास्ना** ) देने वाली ( **असि** ) है ( **इन्द्राण्याः** ) परमैश्वर्य करने वाली नीति के लिये ( **उष्णीषः** ) शिरोवेष्टन पगड़ी के तुल्य ( **पूषा** ) भूमि के सदृश पोषण करने हारी ( **असि** ) है सो तू ( **घर्माय** ) प्रसिद्ध अप्रसिद्ध सुख देनेवाले यज्ञ के लिये ( **दीष्व** ) दान कर ॥३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्रि ! जैसे पगड़ी आदि वस्त्र सुख देनेवाले होते हैं वैसे तू पति के लिये सुख देने वाली हो ॥ ३ ॥

**अश्विभ्यामित्यस्याथर्वण ऋषिः । सरस्वती देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व ।**

**स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत् ॥४॥**

**पदार्थ**—हे विदुषि स्त्रि ! तू ( **इन्द्रवत्** ) परम ऐश्वर्ययुक्त वस्तु को ग्रहण कर ( **स्वाहा** ) सत्यक्रिया से ( **अश्विभ्याम्** ) सूर्य चन्द्रमा के लिये ( **पिन्वस्व** ) तृप्त हो ( **इन्द्रवत्** ) चेतनता के गुणों से संयुक्त शरीर को पाकर ( **स्वाहा** ) सत्य वाणी से ( **सरस्वत्यै** ) सुशिक्षित वाणी के लिये ( **पिन्वस्व** ) संतुष्ट हो ( **इन्द्रवत्** ) विद्युत् विद्या को जानकर ( **स्वाहा** ) सत्यता से ( **इन्द्राय** ) परमोत्तम ऐश्वर्य के लिये ( **पिन्वस्व** ) संतुष्ट हो ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—जो स्त्री पुरुष विद्युत् आदि विद्या से ऐश्वर्य की उन्नति करें वे सुख को भी प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

**यस्त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वाग् देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥**

*फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।**

**येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः ।**

**उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥५॥**

**पदार्थ**—हे ( **सरस्वति** ) बहुत विज्ञान वाली स्त्रि ! ( **यः** ) जो ( **ते** ) तेरा ( **शशयः** ) जिस के आश्रय से बालक सोवे वह ( **स्तनः** ) दूध का आधार थन तथा ( **यः** ) जो ( **मयोभूः** ) सुख सिद्ध करने हारा ( **यः** ) जो ( **रत्नधाः** ) उत्तम उत्तम गुणों का धारणकर्त्ता ( **वसुवित्** ) धनों को प्राप्त होने वाला और ( **यः** ) जो ( **सुदत्रः** ) सुन्दर दान देनेवाला पति कि ( **येन** ) जिसके आश्रय से ( **विश्वा** ) सब ( **वार्य्याणि** ) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को ( **पुष्यसि** ) पुष्ट करती है ( **तम्** ) उसको ( **इह** ) इस संसार में वा घर में ( **धातवे** ) धारण करने वा दूध पिलाने को नियत ( **अकः** ) कर । उससे मैं ( **उरु** ) अधिकतर ( **अन्तरिक्षम्** ) आकाश को ( **अन्वेमि** ) अनुगामी होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो स्त्री न होवे तो बालकों की रक्षा होना भी कठिन होवे जिस स्त्री से पुरुष बहुत सुख और पुरुष से स्त्री भी अधिकतर आनन्द पावे वे ही दोनों आपस में विवाह करें ॥ ५ ॥

गायत्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी स्त्री पुरुष का कैसा सम्बन्ध हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा**
**परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि ।**
**इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् ।**
**स्वाहा सूर्य्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! जैसे आप ( गायत्रम् ) गायत्री छन्द से प्रकाशित ( छन्दः ) स्वतन्त्र आनन्दकारक अर्थ के समान हृदय को प्रिय स्त्री को प्राप्त ( असि ) हैं ( त्रैष्टुभम् ) त्रिष्टुप् छन्द से व्याख्यात हुए ( छन्दः ) स्वतन्त्र अर्थमात्र के समान प्रशंसित पत्नी को प्राप्त हुए ( असि ) हैं वैसे मैं ( त्वा ) तुम को देख कर ( द्यावापृथिवीभ्याम् ) सूर्य भूमि से अति शोभायमान प्रिया स्त्री को ( परि गृह्णामि ) सब ओर से स्वीकार करता हूँ और ( अन्तरिक्षेण ) हाथ में जल लेकर प्रतिज्ञा कराई हुई को ( उप, यच्छामि ) स्त्रीत्व के साथ ग्रहण करता हूँ । हे ( अश्विना ) प्राण अपान के तुल्य कार्यसाधक स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों भी वैसे ही वर्त्ता करो । हे ( वसवः ) पृथिवी वसुओं के तुल्य प्रथम कक्षा के विद्वानो ! तुम लोग ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( मधुनः सारघस्य ) मक्खियों ने बनाये मधुरादि गुण युक्त शहद और ( घर्मम् ) सुख पहुँचाने वाले यज्ञ की ( पात ) रक्षा करो । ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( वृष्टिवनये ) वर्षा का विभाग करने वाले ( रश्मये ) संशोधक किरण के लिये ( वाट् ) अच्छे प्रकार ( यजत ) सङ्गत होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शब्दों का अर्थों के साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध सूर्य के साथ पृथिवी का किरणों के साथ वर्षा का यज्ञ के साथ यजमान और ऋत्विजों का सम्बन्ध है वैसे ही विवाहित स्त्रीपुरुषों का सम्बन्ध होवे ॥ ६ ॥

समुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वातो देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विवाह किये स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा । सरिराय त्वा वाताय स्वाहा ।**
**अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाऽप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा ।**
**अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाऽशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७॥**

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! मैं ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से ( समुद्राय ) आकाश में चलने के अर्थ ( वाताय ) वायु विद्या वा वायु के शोधन के लिये ( त्वा ) तुझ को ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( सरिराय ) जल के तथा ( वाताय ) घर के वायु के शोधने के लिये ( त्वा ) तुझ को ( स्वाहा ) सत्यवाणी से ( अनाधृष्याय ) भय और धमकाने से रहित होने के लिये ( वाताय ) ओषधिस्थ वायु के जानने को ( त्वा ) तुझ को ( स्वाहा ) सत्य वाणी वा क्रिया से ( अप्रतिधृष्याय ) नहीं धमकाने योग्यों के प्रति वर्त्तमान के अर्थ ( वाताय ) वायु के वेग की गति जानने के लिये ( त्वा ) तुझ को ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( अवस्यवे ) अपनी रक्षा चाहने वाले के अर्थ तथा ( वाताय ) प्राणशक्ति का विशेष जानने के लिये ( त्वा ) तुझ को और ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( अशिमिदाय ) भोग्य अन्न जिस में स्नेह करने वाला है उस रस और ( वाताय ) उदान वायु के लिये ( त्वा ) तुझ को समीप स्वीकार करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र में से ( उप यच्छामि ) इन पदों की अनुवृत्ति आती है । विवाह किये हुए स्त्री पुरुष सृष्टिविद्या की उन्नति के लिये प्रयत्न किया करें ॥ ७ ॥

इन्द्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वाऽऽदित्यवते**
**स्वाहेन्द्राय त्वाऽभिमातिघ्ने स्वाहा ।**
**सवित्रे त्वऽऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा**
**बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥८॥**

पदार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! मैं ( स्वाहा ) सत्यवाणी से ( वसुमते ) बहुत धनयुक्त ( इन्द्राय ) उत्तम ऐश्वर्य वाले सन्तान के अर्थ ( त्वा ) तुझ को ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया से ( आदित्यवते ) समस्त विद्याओं की पण्डिताई से युक्त ( रुद्रवते ) बहुत प्राणों के बल वाले ( इन्द्राय ) दुःखनाशक सन्तान के लिये ( त्वा ) तुझ को ( स्वाहा ) सत्य वाणी से ( अभिमातिघ्ने ) शत्रुओं को मारने वाले ( इन्द्राय ) उत्तम ऐश्वर्य देने वाले सन्तान के लिये ( त्वा ) तुझ को ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( सवित्रे ) सूर्यविद्या के ज्ञाता ( ऋभुमते ) अनेक बुद्धिमानों के साथी ( विभुमते ) विभु आकाशादि पदार्थों को जिसने जाना है ( वाजवते ) बहुत अन्नवाले सन्तान के अर्थ ( त्वा ) तुझ को और ( स्वाहा ) सत्यवाणी से ( बृहस्पतये ) बड़ी वेदरूप वाणी के रक्षक ( विश्वदेव्यावते ) समस्त विद्वानों के हितकारी पदार्थों वाले सन्तान के लिये ( त्वा ) तुझ को ग्रहण करता वा करती हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी ( उप यच्छामि ) इन पदों की अनुवृत्ति आती है । जो स्त्री पुरुष पृथिवी आदि वसुओं और चैत्रादि महीनों से अपने ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे विघ्नों को नष्ट कर बुद्धिमान् सन्तानों को प्राप्त होकर सब की रक्षा करने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यमो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

**यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ।**
**स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥९॥**

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! ( घर्मः ) यज्ञ के तुल्य प्रकाशमान मैं ( स्वाहा ) सत्यवाणी से ( अङ्गिरस्वते ) विद्युत् आदि विद्या जानने वाले ( यमाय ) न्यायाधीश के अर्थ ( पितृमते ) रक्षक ज्ञानी जनों से युक्त सन्तान के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( घर्माय ) यज्ञ के लिये और ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( पित्रे ) रक्षक के लिये ( त्वा ) तुझ को स्वीकार करती वा करता हूँ ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी ( उप यच्छामि ) पदों की अनुवृत्ति आती है जो स्त्री पुरुष प्राण के तुल्य न्याय पितरों और विद्वानों का सेवन करें वे यज्ञ के तुल्य सब को सुखकारी होवें ॥९॥

विश्वा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह ।**
**स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) अध्यापक उपदेशक लोगो ! तुम ( इह ) इस जगत् में ( स्वाहाकृतस्य ) सत्यक्रिया से सिद्ध हुए ( घर्मस्य, मधोः ) मधुरादि गुण युक्त यज्ञ के अवशिष्ट भाग को ( पिबतम् ) पिओ जैसे यह ( दक्षिणसत् ) वेदी से दक्षिण दिशा में बैठने वाला आचार्य्य ( विश्वा ) सब ( आशा ) दिशाओं तथा ( विश्वान् ) समस्त ( देवान् ) उत्तम गुणों वा विद्वानों का ( अयाट् ) सङ्ग वा सेवन पूजन करे ॥१०॥

भावार्थ—जैसे उपदेशक शिक्षा करें और अध्यापक पढ़ावें वैसे ही सब लोग ग्रहण करें ॥१०॥

दिवि धा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः ।**
**स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥११॥**

पदार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! तू ( यजुर्भ्यः ) यज्ञ कराने हारे वा यजुर्वेद के विभागों में ( स्वाहा ) सत्य क्रिया के साथ ( अग्नये यज्ञियाय ) यज्ञ कर्म के योग्य अग्नि के लिये ( दिवि ) सूर्यादि के प्रकाश में ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम व्यवहार के उपयोगी यज्ञ को ( शम् ) सुखपूर्वक ( धाः ) धारण कर ( दिवि ) विज्ञान के प्रकाश में ( इमम् ) इस परमार्थ के साधक संन्यास आश्रम के उपयोगी ( यज्ञम् ) विद्वानों के सङ्गरूप यज्ञ को सुखपूर्वक ( धाः ) धारण कर ॥११॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ समग्र विद्यायुक्त उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर वेद रीति से कर्मों का अनुष्ठान करें वे अतुल सुख को प्राप्त होवें ॥११॥

अश्विनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

**अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः ।**
**तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सुशिक्षित स्त्री पुरुषो ! तुम ( अहः ) प्रतिदिन ( दिवाभिः ) दिन रात वर्त्तमान ( ऊतिभिः ) रक्षादि क्रियाओं से ( तन्त्रायिणे ) शिल्पविद्या के शास्त्रों को जानने वा प्राप्त होने के लिये ( हार्द्वानम् ) हृदय को प्राप्त हुए ज्ञानसम्बन्धी ( घर्मम् ) यज्ञ की ( पातम् ) रक्षा करो और ( द्यावापृथिवीभ्याम् ) सूर्य और आकाश के सम्बन्ध से शिल्पशास्त्रज्ञ पुरुष के लिये ( नमः ) अन्न को देओ ॥१२॥

भावार्थ—जैसे भूमि और सूर्य परस्पर उपकारी हुए साथ वर्त्तमान हैं वैसे मित्र भाव से युक्त स्त्री पुरुष निरन्तर वर्त्ता करें ॥१२॥

अपातामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

**अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमꣳसाताम् ।**
**इहैव रातयः सन्तु ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे ( अश्विना ) सुन्दर रीति से वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! तुम वायु और बिजुली के तुल्य ( घर्मम् ) गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान की ( अपाताम् ) रक्षा करो ( द्यावापृथिवी ) सूर्य्य भूमि के समान गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान का ( अनु, अमꣳसाताम् ) अनुमान किया करो जिससे कि ( इह ) इस गृहाश्रम में ( रातयः ) विद्यादिजन्य सुखों के दान ( एव ) ही ( सन्तु ) होवें ॥१३॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु और बिजुली तथा सूर्य और भूमि साथ वर्त्त कर सुख देते हैं वैसे स्त्री पुरुष प्रीति के साथ वर्त्तमान हुए सब के लिये अतुल सुख देवें ॥१३॥

इषे पिन्वस्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

**इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व**
**क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।**
**धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय**
**ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे ( धर्म ) सत्य के धारक ( सुधर्म ) सुन्दर धर्मयुक्त पुरुष वा स्त्री ! तू ( अमेनि ) हिंसा कर्म से रहित ( असि ) है जिससे ( अस्मे ) हमारे लिये ( नृम्णानि ) धनों को ( धारय ) धारण कर ( ब्रह्म ) वेद वा ब्राह्मण को ( धारय ) धारण कर ( क्षत्रम् ) क्षत्रिय वा राज्य को ( धारय ) धारण कर ( विशम् ) प्रजा को ( धारय ) धारण कर उससे ( इषे ) अन्नादि के लिये ( पिन्वस्व ) सेवन कर ( ऊर्जे ) बल प्राप्ति के लिये ( पिन्वस्व ) सेवन कर ( ब्रह्मणे ) वेद विज्ञान परमेश्वर वा वेदज्ञ ब्राह्मण के लिये ( पिन्वस्व ) सेवन कर ( क्षत्राय ) राज्य के लिये ( पिन्वस्व ) सेवन कर और ( द्यावापृथिवीभ्याम् ) भूमि और सूर्य के लिये ( पिन्वस्व ) सेवन कर ॥१४॥

**भावार्थ**—जो स्त्री पुरुष अहिंसक धर्मात्मा हुए आप ही धन विद्या राज्य और प्रजा को धारण करें वे अन्न बल विद्या और राज्य को पाकर भूमि और सूर्य के तुल्य प्रत्यक्ष सुख वाले होवें ॥१४॥

स्वाहा पूष्ण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । पूषादयो लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः ।**
**स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा**
**द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥१५॥**

**पदार्थ**—स्त्री पुरुषों को योग्य है कि ( पूष्णे ) पुष्टिकारक ( शरसे ) हिंसक के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया अर्थात् अधर्म से बचाने का उपाय ( प्रतिरवेभ्यः ) शब्द के प्रति शब्द कहनेहारों के लिये ( स्वाहा ) सत्यवाणी ( ग्रावभ्यः ) गर्जने वाले मेघों के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया ( ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यः ) उत्तम कक्षा तक बढ़े हुए ( घर्मपावभ्यः ) यज्ञ से संसार को पवित्र करनेहारे ( पितृभ्यः ) रक्षक ऋतुओं के तुल्य वर्त्तमान सज्जनों के लिये ( स्वाहा ) सत्यवाणी ( द्यावापृथिवीभ्याम् ) सूर्य्य और आकाश के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया और ( विश्वेभ्यः ) पृथिव्यादि वा विद्वानों के लिये ( स्वाहा ) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी का सदा प्रयोग किया करें ॥१५॥

**भावार्थ**—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि सत्य विज्ञान और सत्य क्रिया से ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे सब को पुष्टि और आनन्द होवे ॥१५॥

स्वाहा रुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । रुद्रादयो देवताः । भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।**
**अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।**
**रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।**
**मधु हुतमिन्द्रतमेऽअग्नावश्याम ते देव घर्म**
**नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे स्त्रि वा पुरुष ! आप ( केतुना ) बुद्धि से ( रुद्रहूतये ) प्राण वा जीवों की स्तुति करने वाले ( रुद्राय ) जीव के लिये ( स्वाहा ) सत्यवाणी से ( ज्योतिषा ) प्रकाश के साथ ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से युक्त ( ज्योतिषा ) सत्य विद्या के उपदेश रूप प्रकाश के साथ ( सुज्योतिः ) सुन्दर विद्यादि सद्गुणों के प्रकाश तथा ( अहः ) दिन को ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( सम्, जुषताम् ) सम्यक् सेवा करो ( केतुना ) संकेतरूप चिह्न और ( ज्योतिषा ) मननादि रूप प्रकाश के साथ ( सुज्योतिः ) धर्मादि रूप सद्गुणों के प्रकाश और ( रात्रिः ) रात्रि को ( स्वाहा ) सत्यक्रिया से ( जुषताम् ) सेवन करो । हे ( घर्म ) प्रकाशमान ( देव ) विद्वान् जन जिससे ( ते ) आप के लिये ( इन्द्रतमे ) अतिशय ऐश्वर्य के हेतु विद्युत् रूप ( अग्नौ ) अग्नि में ( हुतम् ) होम किये ( मधु ) मधुरादि गुणयुक्त घृतादि पदार्थ को घ्राण द्वारा ( अश्याम ) प्राप्त होवें ( ते ) आप के लिये ( नमः ) अन्न ( अस्तु ) प्राप्त हो आप ( मा ) मुझ को ( मा ) मत ( हिंसीः ) मारिये ॥१६॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को योग्य है कि प्राण जीवन और समाज की रक्षा के लिये विज्ञान के साथ धर्म और दिन रात्रि का युक्ति से सेवन करें और प्रति दिन प्रातः सायंकाल में कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत को अग्नि में होम कर वायु आदि की शुद्धि द्वारा नित्य आनन्दित होवें ॥१६॥

अभीममित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

**अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः ।**
**उत श्रवसा पृथिवीꣳ सꣳसीदस्व महाँ२ऽअसि रोचस्व देववीतमः ।**
**वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे ( प्रशस्त ) प्रशंसा को प्राप्त ( मियेध्य ) दुष्टों को दूर करनेहारे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान तेजस्वी विद्वन् ! ( महिमा ) महागुणविशिष्ट ( सप्रथाः ) प्रसिद्ध उत्तम कीर्ति वाले ( विप्रः ) बुद्धिमान् आप ( इमम् ) इस ( दिवम् ) अविद्यादि गुणों के प्रकाश का ( अभि बभूव ) तिरस्कृत करते हैं ( उत ) और ( श्रवसा ) सुनने वा अन्न के साथ ( पृथिवीम् ) भूमि पर ( सम्, सीदस्व ) सम्यक् वर्त्तिये जिस कारण ( देववीतमः ) दिव्य गुणों वा विद्वानों को अतिशय कर प्राप्त होने वाले ( महान् ) महात्मा ( असि ) हैं जिस से ( रोचस्व ) सब ओर से प्रसन्न हूजिये और ( अरुषम् ) थोड़े लाल रङ्ग से युक्त इसी से ( दर्शतम् ) देखने योग्य ( धूमम् ) धुएं को होम द्वारा ( वि सृज ) विशेष कर उत्पन्न कीजिये ॥१७॥

**भावार्थ**—यही मनुष्यों की महिमा है जो ब्रह्मचर्य के साथ विद्या को प्राप्त हो सर्वत्र फैलाकर शुभ गुणों का प्रचार करके सृष्टिविद्या की उन्नति करते हैं ॥१७॥

या त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याꣳ हविर्धाने ।**
**सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ।**
**या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे ।**
**सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ।**
**या ते घर्म पृथिव्याꣳ शुग्या जगत्याꣳ सदस्या ।**
**सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥१८॥**

**भावार्थ**—हे ( घर्म ) प्रकाशस्वरूप विद्वन् ! वा विदुषी स्त्रि ! ( या ) जो ( ते ) तेरी ( गायत्र्याम् ) पढ़ने वालों की रक्षक विद्या और ( हविर्धाने ) होमने योग्य पदार्थों के धारण में ( शुक् ) विचार की साधनरूप क्रिया और ( या ) जो ( दिव्या ) दिव्य गुणों में हुई क्रिया है ( सा ) वह ( ते ) तेरी ( आ, प्यायताम् ) सब ओर से बढ़े और ( नि, स्त्यायताम् ) निरन्तर संयुक्त होवे । हे ( घर्म ) दिन के तुल्य प्रकाशित विद्या वाले जन वा स्त्रि ! ( या ) जो ( ते ) तेरी ( अन्तरिक्षे ) आकाश विषय में ( शुक् ) सूर्य्य की दीप्ति के समान विमानादि की गमन क्रिया और ( या ) जो ( आग्नीध्रे ) अग्नि के आश्रय में तथा ( त्रिष्टुभि ) त्रिष्टुप्छन्द से निकले अर्थ में विचार रूप क्रिया है ( सा ) वह ( ते ) तेरी ( आ, प्यायताम् ) बढ़े और ( नि, स्त्यायताम् ) निरन्तर संयुक्त होवे ( तस्यै ) उस क्रिया और ( ते ) तेरे लिये ( स्वाहा ) सत्यवाणी होवे । हे ( घर्म ) बिजुली के प्रकाश के तुल्य वर्त्तमान स्त्रि वा पुरुष ! ( या ) जो ( ते ) तेरी ( पृथिव्याम् ) भूमि पर और ( या ) जो ( सदस्या ) सभा में हुई ( जगत्याम् ) चेतन प्रजायुक्त सृष्टि में ( शुक् ) प्रकाशयुक्त क्रिया है ( सा ) वह ( ते ) तेरी ( आ प्यायताम् ) बढ़े और ( नि स्त्यायताम् ) निरन्तर सम्बद्ध होवे ( तस्यै ) उस क्रिया तथा ( ते ) तेरे लिये ( स्वाहा ) सत्यवाणी होवे ॥ १८ ॥

**भावार्थ**—जो स्त्री पुरुष दिव्य क्रिया शुद्ध उपासना और पवित्र विज्ञान को पाकर प्रकाशित होते हैं वे ही मनुष्यजन्म के फल से युक्त होते हैं औरों को भी वैसा ही करें ॥ १८ ॥

क्षत्रस्येत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

*अब राजा और प्रजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि ।**
**विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९॥**

पदार्थ—हे राजन् ! वा राणी ! आप ( परस्पाय ) जिस कर्म से दूसरों की रक्षा हो उस के लिये ( क्षत्रस्य ) क्षत्रिय कुल वा राज्य के तथा ( ब्रह्मणे ) वेदवित् ब्राह्मणकुल के सम्बन्धी ( त्वा ) आप के ( तन्वम् ) शरीर की ( पाहि ) रक्षा कीजिये जैसे ( वयम् ) हम लोग ( नव्यसे ) नवीन ( सुविताय ) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( धर्मणा ) धर्म के साथ ( अनुकामाम ) अनुकूल चलें वैसे ही धर्म के साथ वर्त्तमान ( त्वा ) आपके अनुकूल ( विशः ) प्रजाजन चलें ॥ १९ ॥

भावार्थ—राजा और राजपुरुषों को योग्य है कि धर्म के साथ विद्वानों और प्रजाजनों की रक्षा करें। वैसे ही प्रजा और राजपुरुषों को चाहिये कि राजा की सदैव रक्षा करें इस प्रकार न्याय तथा विनय के साथ वर्त्तकर राजा और प्रजा नवीन नवीन ऐश्वर्य की उन्नति किया करें ॥ १९ ॥

चतुःस्रक्तिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सुप्रथाः**

**स नो विश्वायुः सुप्रथाः स नः सर्वायुः सुप्रथाः ।**

**अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( चतुःस्रक्तिः ) चार कोन वाली ( नाभिः ) नाभि मध्य मार्ग के तुल्य निष्पक्ष ( सप्रथाः ) विस्तार के साथ वर्त्तमान सत्पुरुष ( अन्यव्रतस्य ) दूसरे सब जगत् की रक्षा करने स्वभाव वाले ( ऋतस्य ) सत्यस्वरूप परमात्मा की सेवा करता ( सः ) वह ( सप्रथाः ) विस्तृत कार्य्यों वाला ( विश्वायुः ) सम्पूर्ण आयु से युक्त पुरुष ( नः ) हम लोगों को बोधित करे। ( सः ) वह ( सप्रथाः ) अधिक सुखी ( सर्वायुः ) समग्र अवस्था वाला पुरुष ( नः ) हम को ईश्वरसम्बन्धी विद्या का ग्रहण करावे जिससे हम लोग ( द्वेषः ) द्वेषी शत्रुओं को ( अप सश्चिम ) दूर पहुँचावें और ( ह्वरः ) कुटिल जनों को ( अप ) पृथक् करें। वैसे तुम लोग भी करो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे रस को प्राप्त हुई नाभि रस का उत्पन्न कर शरीर के अवयवों को पुष्ट करती वैसे सेवन किये विद्वान् वा उपासना किया परमेश्वर द्वेष और कुटिलतादि दोषों को निवृत्त करा कर सब जीवों की रक्षा करता वा कराता है उन विद्वानों और उस परमेश्वर की निरन्तर सेवा करनी चाहिये ॥ २० ॥

घर्मैतदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व ।**

**वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥२१॥**

पदार्थ—हे ( घर्म ) अत्यन्त पूजनीय सब ओर से प्रकाशमय जगदीश्वर वा विद्वन् ! जो ( एतत् ) यह ( ते ) आपका ( पुरीषम् ) व्याप्ति वा पालन है ( तेन ) उस से आप ( वर्द्धस्व ) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ( च ) और दूसरों को बढ़ाइये। आप स्वयं ( आ, प्यायस्व ) पुष्ट हूजिये ( च ) और दूसरों को पुष्ट कीजिये आप की कृपा वा शिक्षा से जैसे हम लोग ( वर्द्धिषीमहि ) पूर्ण वृद्धि को पावें ( च ) और वैसे ही दूसरों को बढ़ावें ( च ) और जैसे हम लोग ( आ प्यासिषीमहि ) सब ओर से बढ़ें वैसे दूसरों को निरन्तर पुष्ट करें वैसे तुम लोग भी करो ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर ने सब की पुष्टि की है वैसे ही बढ़े हुए पुष्ट हम लोगों को चाहिये कि सब जीवों को बढ़ावें और पुष्ट करें ॥२१॥

अचिक्रददित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । परोष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

**अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।**

**सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥२२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( वृषा ) वर्षा का निमित्त ( हरिः ) शीघ्र चलने वाला ( महान् ) सब से बड़ा ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ ( मित्रः ) मित्र के तुल्य ( दर्शतः ) देखने योग्य ( सूर्येण ) सूर्य के साथ ( उदधिः, निधिः ) जिस में पदार्थ रक्खे जाते तथा जिसमें जल इकट्ठे होते उस समुद्र वा आकाश में ( सम् दिद्युतत् ) सम्यक् प्रकाशित होता है वही बिजुली रूप अग्नि सब को काम में लाने योग्य है ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे बैल वा घोड़ा शब्द करने और जैसे मित्र मित्रों को तृप्त करता है वैसे ही सब लोकों के साथ वर्त्तमान विद्युत् रूप अग्नि सब को प्रकाशित करता है उस को जानो ॥२२॥

सुमित्रिया इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आपो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सज्जन और दुर्जनों का कर्त्तव्य विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै**

**सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( आपः ) प्राण वा जल तथा ( ओषधयः ) सोमलता आदि ओषधियां ( नः ) हमारे लिये ( सुमित्रियाः ) सुन्दर मित्रों के तुल्य सुखदायी ( सन्तु ) होवें ( यः ) जो पक्षपाती अधर्मी ( अस्मान् ) हम धर्मात्माओं से ( द्वेष्टि ) द्वेष करे ( च ) और ( यम् ) जिस दुष्ट से ( वयम् ) हम धर्मात्मा लोग ( द्विष्मः ) द्वेष करें ( तस्मै ) उसके लिये प्राण जल वा ओषधियां ( दुर्मित्रियाः ) दुष्ट मित्रों के समान दुःखदायी ( सन्तु ) होवें ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य दूसरों के सुपथ्य ओषधि और प्राण के तुल्य रोग दूर करते हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं। और जो कुपथ्य दुष्ट ओषधि और मृत्यु के समान औरों को दुःख देते हैं उनको वार वार धिक्कार है ॥२३॥

उद्वयमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सविता देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसा पुरुष सुख को प्राप्त होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।**

**देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( वयम् ) हम लोग ( तमसः ) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान ( उत्तरम् ) सब पदार्थों से उत्तर भाग में वर्त्तमान ( देवत्रा ) दिव्य उत्तम पदार्थों में ( देवम् ) उत्तम गुणकर्म स्वभाव वाले ( उत्तमम् ) सब से श्रेष्ठ ( ज्योतिः ) सब के प्रकाशक ( सूर्य्यम् ) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप ईश्वर को ( पश्यन्तः ) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए ( स्वः ) सुख को ( परि उत् अगन्म ) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ प्राप्त होवें तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्युत् आदि विद्या को प्राप्त हो परमात्मा का साक्षात् करें वे प्रकाशित हुए निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥२४॥

एध इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरो देवता । साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्नि के मिष से योगियों के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥२५॥**

पदार्थ—हे परमेश्वर ! जो आप हमारे आत्माओं में ( एधः ) प्रकाश करने वाले इन्धन के तुल्य प्रकाशक ( असि ) हैं ( समित् ) सम्यक् प्रदीप्त समिधा के समान ( असि ) हैं ( तेजः ) प्रकाशमय बिजुली के तुल्य सब विद्या के दिखाने वाले ( असि ) हैं सो आप ( मयि ) मुझ में ( तेजः ) तेज को ( धेहि ) धारण कीजिये आप को प्राप्त होकर हम लोग ( एधिषीमहि ) सब ओर से बुद्धि को प्राप्त होवें ॥२५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईंधन से और घी से अग्नि की ज्वाला बढ़ती है वैसे उपासना किये जगदीश्वर से योगियों के आत्मा प्रकाशित होते हैं ॥२५॥

यावतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।**

**तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्युत् के समान वर्त्तमान परमेश्वर ! ( ते ) आप की ( यावती ) जितनी ( द्यावापृथिवी ) सूर्य भूमि ( च ) और ( यावत् ) जितने बड़े ( सप्त सिन्धवः ) सात समुद्र ( वितस्थिरे ) विशेषकर स्थित हैं ( तावन्तम् ) उतने ( अक्षितम् ) नाशरहित ( ग्रहम् ) ग्रहण के साधनरूप सामर्थ्य को ( ऊर्जा ) बल के साथ मैं ( गृह्णामि ) स्वीकार करता तथा उतने ( अक्षितम् ) नाशरहित सामर्थ्य को मैं ( मयि ) अपने में ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूं ॥२६॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि जहां तक हो सके वहाँ तक पृथिवी और बिजुली आदि के गुणों को ग्रहण कर अक्षय सुख को प्राप्त होवें ॥२६॥

मयि त्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या वस्तु सुख देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः ।**

**घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥२७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( विराजा ) विशेषकर प्रकाशक ( ज्योतिषा ) प्रदीप्त ज्योति के ( सह ) साथ ( त्रिशुक् ) कोमल मध्यम और तीव्र दीप्तियों वाला ( घर्मः ) प्रताप ( विराजति ) विशेष प्रकाशित होता है वैसे ( मयि ) मुझ जीवात्मा में ( बृहत् ) बड़े ( त्यत् ) उस ( इन्द्रियम् ) मन आदि इन्द्रिय ( मयि ) मुझ में ( दक्षः ) बल और ( मयि ) मुझ में ( क्रतुः ) बुद्धि वा कर्म विशेषकर प्रकाशित होवे ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि विद्युत् और सूर्यरूप से तीन प्रकार का प्रकाश जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उत्तम बल कर्म, बुद्धि, धर्म से सञ्चित धन, जीता गया इन्द्रिय महान् सुख को देता है ॥२७॥

पयस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

*फिर मनुष्य क्या क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**पयसो रेतऽआभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराᳬ समाम् ।**
**त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुत ।**
**इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमतऽ**
**उपहूतऽउपहूतस्य भक्षयामि ॥२८॥**

**पदार्थ**—हे (**सुषुम्ण**) शोभन सुखयुक्त जन ! जैसे आपने जिस (**पयसः**) जल वा दूध से (**रेतः**) पराक्रम को (**आभृतम्**) पुष्ट वा धारण किया (**तस्य**) उसकी (**दोहम्**) पूर्णता तथा (**उत्तरामुत्तराम्**) उत्तर उत्तर (**समाम्**) समय को (**अशीमहि**) प्राप्त होवें। उस (**ते**) आपकी (**क्रत्वे**) बुद्धि के लिये (**त्विषः**) प्रकाशित (**दक्षस्य**) बल के और (**ते**) आपकी पुष्टि वा धारण को प्राप्त होवें (**सुषुम्णस्य**) सुन्दर सुख देनेवाले (**इन्द्रपीतस्य**) सूर्य्य वा जीव ने ग्रहण किये (**प्रजापतिभक्षितस्य**) प्रजारक्षक ईश्वर ने सेवन वा जीव ने भोजन किये (**उपहूतस्य**) समीप लाये हुए दूध वा जल के दोषों को (**संवृक्**) सम्यक् अलग करनेवाला (**उपहूतः**) समीप बुलाया गया और (**अग्निहुतः**) अग्नि में होम करनेवाला मैं भोजन वा सेवन करूं ॥२८॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को योग्य है कि सदा वीर्य बढ़ावें विद्यादि शुभ गुणों का धारण करें। प्रतिदिन सुख बढ़ावें जैसे अपना सुख चाहें वैसे औरों के लिये भी सुख की आकाङ्क्षा किया करें ॥२८॥

इस अध्याय में इस सृष्टि में शुभ गुणों का ग्रहण अपना और दूसरों का पोषण यज्ञ से जगत् में पदार्थों का शोधन सर्वत्र सुखप्राप्ति का साधन धर्म का अनुष्ठान, पुष्टि का बढ़ाना, ईश्वर के गुणों की व्याख्या सब ओर से बल बढ़ाना और सुखभोग कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथैकोनचत्वारिंशाऽध्यायारम्भः 卐

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥**

स्वाहा प्राणेभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*अब उनतालीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अन्त्येष्टि कर्म का विषय कहते हैं—*

**स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः ।**
**पृथिव्यै स्वाहाऽग्नये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा**
**वायवे स्वाहा । दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि (**साधिपतिकेभ्यः**) इन्द्रियादि के अधिपति जीव के साथ वर्त्तमान (**प्राणेभ्यः**) जीवन के तुल्य प्राणों के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**पृथिव्यै**) भूमि के लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी (**अग्नये**) अग्नि के अर्थ (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**अन्तरिक्षाय**) आकाश में चलने के लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी (**वायवे**) वायु की प्राप्ति के अर्थ (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**दिवे**) विद्युत् की प्राप्ति के अर्थ (**स्वाहा**) सत्यवाणी और (**सूर्याय**) सूर्यमण्डल की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया का यथावत् संयुक्त करो ॥१॥

**भावार्थ**—इस अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म जिस को नरमेध पुरुषमेध और दाहकर्म भी कहते हैं। जब कोई मनुष्य मरे तब शरीर की बराबर तोल घी लेकर उस में प्रत्येक सेर में एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केसर और चन्दन आदि काष्ठों को यथायोग्य सम्हाल के श्मशान में बनावे पुरुष हाथ उतनी लम्बी साढ़े तीन हाथ चौड़ी और इतनी ही गहरी एक बिलस्त नीचे तले में वेदी बनाकर उसमें नीचे से अधवर तक समिधा भरकर उस पर मुर्दे को धर कर फिर मुर्दे के इधर उधर और ऊपर से अच्छे प्रकार समिधा चुनकर वक्षःस्थल आदि में कपूर धर कपूर से अग्नि को जलाकर चिता में प्रवेश कर जब अग्नि जलने लगे तब इस अध्याय के स्वाहान्त मन्त्रों की वार वार आवृत्ति से घी का होम कर मुर्दे को सम्यक् जलावें इस प्रकार करने में दाह करनेवालों को यज्ञकर्म के फल की प्राप्ति होवे। और मुर्दे को न कभी भूमि में गाड़ें, न वन में छोड़ें न जल में डुबावें विना दाह किये सम्बन्धी लोग महापाप को प्राप्त होवें क्योंकि मुर्दे के बिगड़े शरीर से अधिक दुर्गन्ध बढ़ने के कारण चराचर जगत् में असंख्य रोगों की उत्पत्ति होती है इससे पूर्वोक्त विधि के साथ मुर्दे के दाह करने में ही कल्याण है अन्यथा नहीं ॥१॥

दिग्भ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । दिगादयो लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः**
**स्वाहा वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥२॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग शरीर के जलाने में (**दिग्भ्यः**) दिशाओं में हुतद्रव्य के पहुंचाने को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रलोक की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**नक्षत्रेभ्यः**) नक्षत्रलोकों के प्रकाश की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**अद्भ्यः**) जलों में चलने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**वरुणाय**) समुद्रादि में जाने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**नाभ्यै**) नाभि के जलने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया और (**पूताय**) पवित्र करने के लिए (**स्वाहा**) सत्यक्रिया को सम्यक् प्रयुक्त करो ॥२॥

**भावार्थ**—मनुष्य लोग पूर्वोक्त विधि से शरीर जलाकर सब दिशाओं में शरीर के अवयवों को अग्निद्वारा पहुँचावें ॥२॥

वाच इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वागादयो लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

**वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा ।**
**चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग मरे हुए शरीर के (**वाचे**) वाणी इन्द्रिय सम्बन्धी होम के लिये (**स्वाहा**) सुन्दरक्रिया (**प्राणाय**) शरीर के अवयवों को जगत् के प्राणवायु में पहुँचाने को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**प्राणाय**) धनञ्जय वायु की प्राप्ति होने के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**चक्षुषे**) एक नेत्रगोलक के जलाने के लिये (**स्वाहा**) सुन्दर आहुति (**चक्षुषे**) दूसरे नेत्रगोलक के जलाने को (**स्वाहा**) अच्छी आहुति (**श्रोत्राय**) एक कान के विभाग के लिये (**स्वाहा**) सुन्दर आहुति (**श्रोत्राय**) दूसरे कान के विभाग के लिये (**स्वाहा**) यह शब्द कर घी की आहुति चिता में छोड़ो ॥३॥

**भावार्थ**—जो लोग सुगन्धित घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलावें वे पुण्यसेवी होते हैं ॥३॥

मनस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । श्रीर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

**मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।**
**पशूनाᳬ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से ऐसे आगे पीछे कहे प्रकार से मरे हुए शरीर को जला के (**मनसः**) अन्तःकरण और (**वाचः**) वाणी के (**सत्यम्**) विद्यमानों में उत्तम (**कामम्**) इच्छापूर्त्ति (**आकूतिम्**) उत्साह (**पशूनाम्**) गौ आदि के (**रूपम्**) सुन्दर स्वरूप को (**अशीय**) प्राप्त होऊं जैसे (**मयि**) मुझ जीवात्मा में (**अन्नस्य**) खाने योग्य अन्नादि के (**रसः**) मधुरादि रस (**यशः**) कीर्त्ति (**श्रीः**) शोभा वा ऐश्वर्य (**श्रयताम्**) आश्रय करें वैसे ही तुम इसको प्राप्त होओ और ये तुम में आश्रय करें ॥४॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सुन्दर विज्ञान उत्साह और सत्य वचनों से मरे शरीरों को विधिपूर्वक जलाते हैं वे पशु प्रजा धन-धान्य आदि को पुरुषार्थ से पाते हैं ॥४॥

प्रजापतिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

**प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः**
**सᳬसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः**
**पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन् ।**

**मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो**
**ह्रियमाण आग्नेयो ह्यमानो वाग्घुतः ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने ( **सम्भ्रियमाण** ) सम्यक पोषण वा धारण किया हुआ ( **सम्राट** ) सम्यक प्रकाशमान ( **वैश्वदेव** ) सब उत्तम जीव वा पदार्थों के सम्बन्धी ( **सन्नम** ) सम्यक प्राप्त होता हुआ ( **घर्म** ) घाम रूप (तेज) प्रकाश तथा ( **प्रवक्त** ) शरीर से पृथक हुआ ( **उद्यत** ) ऊपर वा चलता हुआ ( **आश्विन** ) प्राण अपान सम्बन्धी तेज ( **आनीयमाने** ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए ( **पयसि** ) जल मे ( **पौष्ण** ) पृथिवी सम्बन्धी तेज ( **विष्पन्दमाने** ) विशेषकर प्राप्त हुए समय मे ( **मारुत** ) मनुष्यदेहसम्बन्धी तेज ( **क्लथन्** ) हिंसा करता हुआ ( **मैत्र** ) मित्र प्राणसम्बन्धी तेज ( **सन्ताय्यमाने** ) विस्तार किये वा पालन किये ( **शरसि** ) तालाब में ( **वायव्य** ) वायुसम्बन्धी तेज ( **ह्रियमाण** ) हरण किया हुआ ( **आग्नेय** ) अग्निदेवतासम्बन्धी तेज ( **हूयमान** ) बुलाया हुआ ( **वाक** ) बोलने वाला ( **हुत** ) शब्द किया तेज और ( **प्रजापति** ) प्रजा का रक्षक जीव ( **सम्भृत** ) सम्यक पोषण वा धारण किया है उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥५॥

**भावार्थ**—जब यह जीव शरीर को छोड़ कर सब पृथिव्यादि पदार्थों मे भ्रमण करता जहाँ तहाँ प्रवेश करता और इधर उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है तब ही सुप्रसिद्ध होता है ॥५॥

**सवितेत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । सवित्रादयो देवता । विराडधृतिश्छन्द । धवत स्वर ॥**

**सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽआदित्यश्चतुर्थे**
**चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे । मित्रो नवमे**
**वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! इस जीव को ( **प्रथम** ) शरीर छोड़ने के पहिले ( **अहन्** ) दिन ( **सविता** ) सूर्य ( **द्वितीये** ) दूसरे दिन ( **अग्नि** ) अग्नि ( **तृतीये** ) तीसरे ( **वायु** ) वायु ( **चतुर्थे** ) चौथे ( **आदित्य** ) महीना ( **पञ्चमे** ) पाँचवें ( **चन्द्रमा** ) चन्द्रमा ( **षष्ठ** ) छठे ( **ऋतु** ) वसन्तादि ऋतु ( **सप्तमे** ) सातवें ( **मरुत** ) मनुष्यादि प्राणि ( **अष्टमे** ) आठवें ( **बृहस्पति** ) बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु ( **नवमे** ) नवमे मे ( **मित्र** ) प्राण ( **दशमे** ) दशवें मे ( **वरुण** ) उदान ( **एकादश** ) ग्यारहवें मे ( **इन्द्र** ) बिजुली और ( **द्वादश** ) बारहवें दिन ( **विश्वे** ) सब ( **देवा** ) दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते है ॥६॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्य प्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं तभी पुण्य पाप कर्म से सुख दु खरूप फलों को भोगते हैं ॥६॥

**उग्रश्चेत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । मरुतो देवता । भुरिग्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥**

*फिर कौन जीव किस गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।**
**सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! मरण को प्राप्त हुआ जीव ( **स्वाहा** ) अपने कर्म से ( **उग्र** ) तीव्र स्वभाव वाला ( **च** ) शान्त ( **भीम** ) भयकारी ( **च** ) निर्भय ( **ध्वान्त** ) अन्धकार को प्राप्त ( **च** ) प्रकाश को प्राप्त ( **धुनि** ) कांपता ( **च** ) निष्कम्प ( **सासह्वान्** ) शीघ्र सहनशील ( **च** ) न सहन वाला ( **अभियुग्वा** ) सब ओर से नियमधारी ( **च** ) सब से अलग और ( **विक्षिप** ) विक्षेप को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो जीव पापाचरणी है वे कठोर जो धर्मात्मा हैं वे शान्त जो भय देने वाले वे भीम शब्द वाच्य जो भय को प्राप्त हैं वे भीत शब्द वाच्य जो अभय देने वाले हैं वे निर्भय जो अविद्यायुक्त हैं वे अन्धकार से भरे जो विद्वान् योगी हैं वे प्रकाशयुक्त । जो जितेन्द्रिय नहीं हैं वे चञ्चल जो जितेन्द्रिय हैं वे चञ्चलता रहित अपने अपने कर्मफलों को सहते भोगते संयुक्त विक्षेप को प्राप्त हुए इस जगत् मे नित्य भ्रमण करते हैं ऐसा जानो ॥७॥

**अग्निमित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*कौन मनुष्य दोनों जन्मों मे सुख पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना ।**
**शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः**
**पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो वे मरे हुए जीव ( **हृदयेन** ) हृदय रूप अवयव से ( **अग्निम्** ) अग्नि को ( **हृदयाग्रेण** ) हृदय के ऊपरले भाग से ( **अशनिम्** ) बिजुली को ( **कृत्स्नहृदयेन** ) सम्पूर्ण हृदय के अवयवों से ( **पशुपतिम्** ) पशुओं के रक्षक जगत् धारणकर्त्ता सब के जीवनहेतु परमेश्वर को ( **यक्ना** ) यकृत रूप शरीर के अवयव से ( **भवम्** ) सर्वत्र होने वाले ईश्वर को ( **मतस्नाभ्याम्** ) हृदय के इधर उधर के अवयवों से ( **शर्वम्** ) विज्ञानयुक्त ईश्वर को ( **मन्युना** ) दुष्टाचारी और पाप के प्रति वर्त्तमान क्रोध से ( **ईशानम्** ) सब जगत् के स्वामी ईश्वर को ( **अन्तःपर्शव्येन** ) भीतरली पसुरियों के अवयवों मे हुए विज्ञान से ( **महादेवम्** ) महादेव ( **उग्रम् देवम्** ) तीक्ष्ण स्वभाव वाले प्रकाशमान ईश्वर को ( **वनिष्ठुना** ) अति विशेष से ( **वसिष्ठहनु** ) अत्यन्त वास के हेतु राजा के तुल्य ठोडी वाले जन को ( **कोश्याभ्याम** ) पेट मे हुए दो मांसपिण्डों से ( **शिङ्गीनि** ) जानने वा प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य शरीर के सब अङ्गों से धर्माचरण विद्याग्रहण सत्सङ्ग और जगदीश्वर की उपासना करते हैं वे वर्त्तमान और भविष्यत् जन्मों मे सुखों को प्राप्त होते है ॥ ८ ॥

**उग्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । उग्रादयो लिङ्गोक्ता देवता । भुरिगष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर ॥**

*मनुष्य लोग कैसे उग्र स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं**
**प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा ।**
**भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तःपार्श्व्यं महादेवस्य**
**यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥९॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! गर्भाशय मे स्थित वा बाहर रहने वाले जीव ( **लोहितेन** ) शुद्ध रुधिर से ( **उग्रम** ) तीव्र गुण ( **सौव्रत्येन** ) श्रेष्ठ कर्म से ( **मित्रम** ) प्राण के तुल्य प्रिय ( **दौर्व्रत्येन** ) दुष्टाचरण से ( **रुद्रम** ) रुलाने हारे ( **प्रक्रीडेन इन्द्रम** ) उत्तम क्रीडा से परम ऐश्वर्य वा बिजुली ( **बलेन** ) बल से ( **मरुत** ) उत्तम मनुष्यों को ( **प्रमुदा** ) उत्तम आनन्द से ( **साध्यान्** ) साधने योग्य पदार्थों को ( **भवस्य** ) प्रशंसा को प्राप्त होने वाले के ( **कण्ठ्यम्** ) कण्ठ मे हुए स्वर ( **रुद्रस्य** ) दुष्टों को रुलाने हारे जन के ( **अन्तःपार्श्व्यम** ) भीतर पसुरी मे हुए ( **महादेवस्य** ) महादेव विद्वान् के ( **यकृत** ) हृदय मे स्थित मांसपिण्ड ( **शर्वस्य** ) सुखप्रापक मनुष्य का ( **वनिष्ठु** ) आंत विशेष ( **पशुपते** ) पशुओं के रक्षक पुरुष के ( **पुरीतत** ) हृदय की नाड़ी को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे देहधारी रुधिर आदि से तेजस्वी स्वभाव आदि को प्राप्त होते है वैसे ही गर्भाशय मे भी प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

**लोमभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । आकृतिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥**

*मनुष्यों को भस्म होने तक शरीर का मन्त्रों से दाह करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा**
**लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा**
**मेदोभ्यः स्वाहा । माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा**
**स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः**
**स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा ।**
**रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥१०॥**

**पदार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि दाहकर्म मे घी आदि से ( **लोमभ्य** ) त्वचा के ऊपरले बालों के लिये ( **स्वाहा** ) इस शब्द का ( **लोमभ्य** ) नख आदि के लिये ( **स्वाहा** ), **त्वचे** ) शरीर की त्वचा जलाने को ( **स्वाहा** ), **त्वचे** ) भीतरली त्वचा जलाने के लिये ( **स्वाहा** ) **लोहिताय** ) रुधिर जलाने को ( **स्वाहा** ) **लोहिताय** ) हृदयस्थ रुधिर पिण्ड के जलाने को ( **स्वाहा** ), **मेदोभ्य** ) चिकने धातुओं के जलाने को ( **स्वाहा** ) **मेदोभ्य** ) सब शरीर के अवयवों को आर्द्र करने वाले भागों के जलाने को ( **स्वाहा** ), **मांसेभ्य** ) बाहरले मांसों के जलाने को ( **स्वाहा** ), **मांसेभ्य** ) भीतरले मांसों के जलाने के लिये ( **स्वाहा** ), **स्नावभ्य** ) स्थूल नाड़ियों के जलाने को ( **स्वाहा** ), **स्नावभ्य** ) सूक्ष्म नाड़ियों के जलाने को ( **स्वाहा** ), **अस्थभ्य** ) शरीरस्थ कठिन अवयवों के जलाने के लिये ( **स्वाहा** ), **अस्थभ्य** ) सूक्ष्म अस्थिरूप अवयवों के जलाने को ( **स्वाहा** ) **मज्जभ्य** ) हाड़ों के भीतर के धातुओं के लिये ( **स्वाहा** ) **मज्जभ्य** ) उसके अन्तर्गत भाग के जलाने को ( **स्वाहा** ) **रेतसे** ) वीर्य के जलाने को ( **स्वाहा** ) और ( **पायवे** ) गुदारूप अवयव के दाह के लिये ( **स्वाहा** ) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥ १० ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जब तक लोम से लेकर वीर्य पर्यन्त उस मृत शरीर का भस्म न हो तब तक घी और इन्धन डाला करो ॥ १० ॥

**आयासायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । स्वराड्जगती छन्दः । निषाद स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को जन्मान्तर मे सुख के लिये क्या कर्त्तव्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—*

**आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा**
**वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा ।**
**शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥११॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **आयासाय** ) अच्छे प्रकार प्राप्त होने को ( **स्वाहा** ) इस शब्द का ( **प्रायासाय** ) जाने के लिये ( **स्वाहा, संयासाय** ) सम्यक् चलने के लिये (**स्वाहा**) **वियासाय**) विविध प्रकार उत्तमों की प्राप्ति का (**स्वाहा**), **उद्यासाय** ) ऊपर जाने के लिये (**स्वाहा**) **शुचे** ) पवित्र के लिये (**स्वाहा शोचते**) शुद्धि करने वाले के लिये (**स्वाहा शोचमानाय**) विचार के प्रकाश के लिये (**स्वाहा**) और ( **शोकाय** ) जिस में शोक करते है उस के लिये ( **स्वाहा** ) इस शब्द का प्रयोग करो ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये पुरुषार्थ सिद्धि के लिये सत्य वाणी, बुद्धि और क्रिया का अनुष्ठान करें जिस से देहान्तर और जन्मान्तर में मङ्गल हो ॥ ११ ॥

**तपस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को किन साधनों से सुख प्राप्त करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा**
**तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा ।**
**निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्त्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२॥**

**पदार्थ**—मनुष्यों को चाहिये ( **तपसे** ) प्रताप के लिये ( **स्वाहा, तप्यते** ) सन्ताप को प्राप्त होने वाले के लिये (**स्वाहा**) **तप्यमानाय** ) ताप गर्मी को प्राप्त होने वाले के लिये (**स्वाहा**), **तप्ताय** ) तप्त हुए के लिये (**स्वाहा**), **घर्माय** ) दिन के होने को (**स्वाहा**) **निष्कृत्यै** ) निवारण के लिये (**स्वाहा**) **प्रायश्चित्त्यै** ) पापनिवृत्ति के लिये ( **स्वाहा** ) और ( **भेषजाय** ) सुख के लिये ( **स्वाहा** ) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥ १२ ॥

**भावार्थ**—मनुष्यों को चाहिये कि प्राणायाम आदि साधनों से सब किल्बिष का निवारण करके सुख को स्वयं प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥ १२ ॥

**यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यमाय स्वाहाऽन्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा**
**ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा**
**द्यावापृथिवीभ्याᳬ स्वाहा ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( **यमाय** ) नियन्ता न्यायाधीश वा वायु के लिये ( **स्वाहा** ) इस शब्द का ( **अन्तकाय** ) नाशकर्ता काल के लिये (**स्वाहा**), **मृत्यवे** ) प्राणत्याग कराने वाले समय के लिये (**स्वाहा**), **ब्रह्मणे** ) बृहत्तम अति बड़े परमात्मा के लिये वा ब्राह्मण विद्वान् के लिये (**स्वाहा**), **ब्रह्महत्यायै** ) ब्रह्म वेद वा ईश्वर वा विद्वान् की हत्या के निवारण के लिये ( **स्वाहा विश्वेभ्य** ) सब ( **देवेभ्य** ) दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों वा जलादि के लिये ( **स्वाहा** ) और ( **द्यावापृथिवीभ्याम्** ) सूर्य्य भूमि के शोधन के लिये ( **स्वाहा** ) इस शब्द का प्रयोग करो ॥ १३ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य न्यायव्यवस्था का पालन कर अल्पमृत्यु को निवारण कर ईश्वर और विद्वानों का सेवन कर ब्रह्महत्यादि दोषों को छुड़ा के सृष्टिविद्या को जान कर अन्त्येष्टिकर्मविधि करते हैं वे सब के मङ्गल देने वाले होते हैं सब काल में इस प्रकार मृतकशरीर का जला के सब सुख की उन्नति करनी चाहिये ॥१३॥

**इस अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥**

**यह उनतालीसवां अध्याय पूरा हुआ ॥**

卐

॥ ओ३म् ॥

# 卐 अथ चत्वारिंशाऽध्यायारम्भः 卐

**ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

**ईशावास्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब चालीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य ईश्वर को जानके क्या करें इस विषय को कहा है—*

**ईशा वास्यमिदᳬ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! तू ( **यत्** ) जो ( **इदम्** ) प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्यन्त ( **सर्वम्** ) सब ( **जगत्याम्** ) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में ( **जगत्** ) चरप्राणीमात्र ( **ईशा** ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से ( **वास्यम्** ) आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है ( **तेन** ) उस ( **त्यक्तेन** ) त्याग किये हुए जगत् से ( **भुञ्जीथा** ) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु ( **कस्य स्वित्** ) किसी के भी ( **धनम्** ) वस्तुमात्र की ( **मा** ) मत ( **गृध** ) अभिलाषा कर ॥१॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हम को सदा सब ओर से देखता है यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है इस प्रकार व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया चाहते वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख और परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त कर के सदा आनन्द में रहें ॥१॥

**कुर्वन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥**

*अब वेदोक्त कर्म की उत्तमता अगले मन्त्र में कहते हैं—*

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतᳬ समाः ।**
**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥**

**पदार्थ**—मनुष्य ( **इह** ) इस संसार में ( **कर्माणि** ) धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को ( **कुर्वन्** ) करता हुआ ( **एव** ) ही ( **शतम्** ) सौ ( **समा** ) वर्ष (**जिजीविषेत्** ) जीवन की इच्छा करे ( **एवम्** ) इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्त्तमान ( **त्वयि** ) तुझ ( **नरे** ) व्यवहारों को चलाने हारे जीवन के इच्छुक होते हुए ( **कर्म** ) अधर्मयुक्त अवैदिक काम्य कर्म ( **न** ) नहीं ( **लिप्यते** ) लिप्त होता ( **इत** ) इससे जो और प्रकार से ( **न अस्ति** ) कर्म लगाने का अभाव नहीं होता है ॥२॥

**भावार्थ**—मनुष्य आलस्य को छोड़ कर सब देखने हारे न्यायाधीश परमात्मा और करने योग्य उसकी आज्ञा को मानकर शुभ कर्मों [ को करते हुए और अशुभ कर्मों ] को छोड़ते हुए ब्रह्मचर्य के सेवने से विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ा कर अल्पमृत्यु को हटावें, युक्त आहार विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवें । जैसे जैसे मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करते हैं वैसे वैसे ही पापकर्म से बुद्धि की निवृत्ति होती और विद्या अवस्था और सुशीलता बढ़ती है ॥२॥

**असुर्य्या इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥**

*अब आत्मा के हननकर्त्ता अर्थात् आत्मा को भूले हुए जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।**
**ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥**

**पदार्थ**—जो ( **लोका** ) देखनेवाले लोग ( **अन्धेन** ) अन्धकाररूप ( **तमसा** ) ज्ञान का आवरण करनेहारे अज्ञान से ( **आवृता** ) सब ओर से ढपे हुए ( **च** ) और ( **ये** ) जो ( **के** ) कोई ( **आत्महन** ) आत्मा के विरुद्ध आचरण करने हारे (**जना** ) मनुष्य हैं (**ते**) वे (**असुर्य्या** ) अपने प्राणपोषण में तत्पर अविद्यादि दोषयुक्त लोगों के सम्बन्धी उनके पापकर्म करनेवाले ( **नाम** ) प्रसिद्ध में होते हैं ( **ते** ) वे ( **प्रेत्य** ) मरने के पीछे ( **अपि** ) और जीते हुए भी ( **तान्** ) उन दुःख और अज्ञानरूप अन्धकार से युक्त भोगों को ( **गच्छन्ति** ) प्राप्त होते हैं ॥३॥

**भावार्थ**—वे ही मनुष्य असुर दैत्य राक्षस तथा पिशाच आदि हैं जो आत्मा में और जानते वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं वे कभी अविद्यारूप दुःखसागर से पार हो आनन्द को नहीं प्राप्त हो सकते । और जो आत्मा मन वाणी और कर्म से निष्कपट एकसा आचरण करते हैं वे ही देव आर्य्य सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल सुख भोगते हैं ॥३॥

**अनेजदित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । ब्रह्म देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥**

*कैसा जन ईश्वर को साक्षात् करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।**
**तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो ( **एकम्** ) अद्वितीय ( **अनेजत्** ) नहीं कम्पनेवाला अर्थात् अचल अपनी अवस्था से हटना कम्पन कहाता है उससे रहित ( **मनस** ) मन के वेग से भी ( **जवीय** ) अति वेगवान् ( **पूर्वम्** ) सब से आगे ( **अर्षत्** ) चलता हुआ अर्थात् जहां कोई चलकर जावे वहां प्रथम ही सर्वत्र व्याप्ति से पहुँचता हुआ ब्रह्म है ( **एनत्** ) इस पूर्वोक्त ईश्वर को ( **देवा** ) चक्षु आदि इन्द्रिय ( **न** ) नहीं ( **आप्नुवन्** ) प्राप्त होते ( **तत्** ) वह परब्रह्म अपने आप ( **तिष्ठत्** ) स्थिर हुआ अपनी अनन्तव्याप्ति से ( **धावत** ) विषयों की ओर गिरते हुए ( **अन्यान्** ) आत्मा के स्वरूप से विलक्षण मन वाणी आदि इन्द्रियों को ( **अति, एति** ) उल्लङ्घन कर जाता है ( **तस्मिन्** ) उस सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर की स्थिरता में ( **मातरिश्वा** ) अन्तरिक्ष में प्राणों को धारण करने हारे वायु के तुल्य जीव (**अपः**) कर्म वा क्रिया को ( **दधाति** ) धारण करता है यह जानो ॥४॥

**भावार्थ**—ब्रह्म के अनन्त होने से जहां जहां मन जाता है वहां वहां प्रथम से ही अभिव्याप्त पहले से ही स्थिर ब्रह्म वर्त्तमान है उसका विज्ञान शुद्ध मन से होता

है चक्षु आदि इन्द्रियों और अविद्वानों से देखने योग्य नहीं है। वह आप निश्चल हुआ सब जीवों को नियम से चलाता और धारण करता है। उसके अतिसूक्ष्म इन्द्रियगम्य न होने के कारण धर्मात्मा विद्वान् योगी को ही उसका साक्षात् ज्ञान होता है अन्य का नहीं ॥४॥

तदेजतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वर ॥

*विद्वानों के निकट और अविद्वानों के ब्रह्म दूर है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।**

**तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( तत् ) वह ब्रह्म ( एजति ) मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता ( तत् न एजति ) अपने स्वरूप से न चलायमान और न चलाया जाता ( तत् ) वह ( दूरे ) अधर्मात्मा अविद्वान् अयोगियों से दूर अर्थात् क्रोडों वर्ष में भी नहीं प्राप्त होता ( तत् ) वह ( उ ) ही ( अन्तिके ) धर्मात्मा विद्वान् योगियों के समीप ( तत् ) वह ( अस्य ) इस ( सर्वस्य ) सब जगत् वा जीवों के ( अन्तः ) भीतर ( उ ) और ( तत् ) वह ( अस्य, सर्वस्य ) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप जगत् के ( बाह्यतः ) बाहर भी वर्त्तमान है ॥५॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! वह ब्रह्म मूढ़ की दृष्टि में कम्पता जैसा है वह आप व्यापक होने से कभी नहीं चलायमान होता जो जन उसकी आज्ञा से विरुद्ध हैं वे इधर उधर भागते हुए भी उसको नहीं जानते और जो ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करनेवाले हैं वे अपने आत्मा में स्थित अतिनिकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं जो ब्रह्म सब प्रकृति आदि के बाहर भीतर अवयवों में अभिव्याप्त हो के अन्तर्यामिरूप से सब जीवों के सब पाप पुण्यरूप कर्मों को जानता हुआ यथार्थ फल देता है वही सब को ध्यान में रखना चाहिये और उसीसे सबको डरना चाहिये ॥५॥

यस्त्वित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।**

**सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥६॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो विद्वान् जन ( आत्मन् ) परमात्मा के भीतर ( एव ) ही ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) प्राणी अप्राणियों को ( अनु पश्यति ) विद्या धर्म और योगाभ्यास करने पश्चात् ध्यानदृष्टि से देखता है ( तु ) और जो ( सर्वभूतेषु ) सब प्रकृत्यादि पदार्थों में ( आत्मानम् ) आत्मा को ( च ) भी देखता है वह विद्वान् ( ततः ) तिस पीछे ( न ) नहीं ( विचिकित्सति ) संशय को प्राप्त होता ऐसा तुम जानो ॥६॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो लोग सर्वव्यापी न्यायकारी सर्वज्ञ सनातन सब के आत्मा अन्तर्यामी सब के द्रष्टा परमात्मा को जान कर सुख दुःख हानि लाभों में अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को जानकर धार्मिक होते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥६॥

यस्मिन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर ॥

*अब कौन अविद्यादि दोषों को त्यागते है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।**

**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यस्मिन् ) जिस परमात्मा ज्ञान विज्ञान वा धर्म में ( विजानतः ) विशेषकर ध्यानदृष्टि से देखते हुए को ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) प्राणीमात्र ( आत्मा, एव ) अपने तुल्य ही सुख दुःखवाले ( अभूत् ) होते हैं ( तत्र ) उस परमात्मा आदि में ( एकत्वम् ) अद्वितीय भाव को ( अनु, पश्यतः ) अनुकूल योगाभ्यास से साक्षात् देखते हुए योगिजन को ( कः ) कौन ( मोहः ) मूढ़ावस्था और ( कः ) कौन ( शोक ) शोक वा क्लेश होता है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥७॥

**भावार्थ**—जो विद्वान् सन्यासी लोग परमात्मा के सहचारी प्राणिमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं अर्थात् जैसे अपना हित चाहते वैसे ही अन्यों में भी वर्त्तते हैं एक अद्वितीय परमेश्वर के शरण को प्राप्त होते हैं उनको मोह शोक और लोभादि कदाचित् प्राप्त नहीं होते । और जो लोग अपने आत्मा को यथावत् जान कर परमात्मा को जानते हैं वे सुखी सदा होते हैं ॥७॥

स पर्य्यगादित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । स्वराड्जगती छन्द । निषादः स्वर ॥

*फिर परमेश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—*

**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।**

**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ**

**र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म ( शुक्रम् ) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् ( अकायम् ) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित ( अव्रणम् ) छिद्ररहित और नहीं छेद करने योग्य ( अस्नाविरम् ) नाड़ी आदि के साथ सम्बन्धरूप बन्धन से रहित ( शुद्धम् ) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और ( अपापविद्धम् ) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता ( परि अगात् ) सब ओर से व्याप्त है जो ( कविः ) सर्वत्र ( मनीषी ) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला ( परिभूः ) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और ( स्वयम्भूः ) और अनादि स्वरूप जिसकी संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा ( शाश्वतीभ्यः ) सनातन अनादिस्वरूप अपने अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित ( समाभ्यः ) प्रजाओं के लिये ( याथातथ्यतः ) यथार्थ भाव से ( अर्थान् ) वेद द्वारा सब पदार्थों को ( व्यदधात् ) विशेषकर बनाता है वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने के योग्य है ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो अनन्त शक्तियुक्त अजन्मा निरन्तर सदा मुक्त न्यायकारी निर्मल सर्वज्ञ सब का साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द अर्थ और उनके सम्बन्ध को जानने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और न धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो इसलिये इसी ब्रह्म की सदैव उपासना करो ॥ ८ ॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वर ॥

*कौन मनुष्य अन्धकार को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।**

**ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याꣳ रताः ॥९॥**

**पदार्थ**—( ये ) जो लोग परमेश्वर को छोड़ कर ( असम्भूतिम् ) अनादि अनुत्पन्न सत्व रज और तमोगुणमय प्रकृतिरूप जड़ वस्तु को ( उपासते ) उपास्यभाव से जानते हैं वे ( अन्धम्, तमः ) आवरण करने वाले अन्धकार को ( प्रविशन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते और ( ये ) जो ( सम्भूत्याम् ) महत्तत्वादि स्वरूप से परिणाम को प्राप्त हुई सृष्टि में ( रताः ) रमण करते हैं ( ते ) वे ( उ ) वितर्क के साथ ( ततः ) उस से ( भूय इव ) अधिक जैसे वैसे ( तमः ) अविद्यारूप अन्धकार को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—जो मनुष्य समस्त जड़ जगत् के अनादि नित्य कारण को उपासना भाव से स्वीकार करते हैं वे अविद्या को प्राप्त होकर क्लेश को प्राप्त होते और जो उस कारण से उत्पन्न स्थूल सूक्ष्म कार्य्यकारणाख्य अनित्य संयोगजन्य कार्य्यजगत् को इष्ट उपास्य मानते हैं वे गाढ़ अविद्या को पाकर अधिकतर क्लेश को प्राप्त होते हैं इसलिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की ही सब सदा उपासना करें ॥९॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।**

**इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( धीराणाम् ) मेधावि योगी विद्वानों से जो वचन ( शुश्रुम ) सुनते हैं ( ये ) जो वे लोग ( नः ) हमारे प्रति ( विचचक्षिरे ) व्याख्यानपूर्वक कहते हैं वे लोग ( सम्भवात् ) संयोगजन्य कार्य्य से ( अन्यत् एव ) और ही कार्य्य वा फल ( आहुः ) कहते ( असम्भवात् ) उत्पन्न नहीं होने वाले कारण से ( अन्यत् ) और ( आहुः ) कहते हैं ( इति ) इस बात को तुम भी सुनो ॥ १० ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! ऐसे विद्वान् लोग कार्य्यकारण रूप वस्तु से भिन्न भिन्न वक्ष्यमाण उपकार लेते और लिवाते हैं तथा उन कार्य्यकारण के गुणों को जानकर जनाते हैं । ऐसे ही तुम लोग भी निश्चय करो ॥ १० ॥

सम्भूतिमित्यस्य दीर्घतमा ऋषि । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ॥

*फिर मनुष्यों को कार्य्यकारण से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।**

**विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो विद्वान् ( सम्भूतिम् ) जिस में सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्यरूप सृष्टि ( च ) और उसके गुण कर्म स्वभावों को तथा ( विनाशम् ) जिसमें पदार्थ नष्ट होते उस कारणरूप जगत् ( च ) और उसके गुण कर्म स्वभावों को ( सह ) एक साथ ( उभयम् ) दोनों ( तत् ) उन कार्य्य और कारण स्वरूपों को ( वेद ) जानता है वह विद्वान् ( विनाशेन ) नित्यस्वरूप जाने हुए कारण के साथ ( मृत्युम् ) शरीर छूटने के दुःख से ( तीर्त्वा ) पार होकर ( सम्भूत्या ) शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप उत्पन्न हुई कार्यरूप धर्म में प्रवृत्त कराने वाली सृष्टि के साथ ( अमृतम् ) मोक्षसुख को ( अश्नुते ) प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! कार्य्यकारणरूप वस्तु निरर्थक नहीं है किन्तु कार्य्यकारण के गुण कर्म और स्वभावों को जानकर धर्म आदि मोक्ष के साधनों में संयुक्त करके अपने शरीरादि कार्य्यकारण को नित्यत्व से जान के मरण का भय छोड़

कर मोक्ष की सिद्धि करो । इस प्रकार कार्य्यकारण से अन्य ही फल सिद्ध करना चाहिये । इन कार्य्यकारणों का निषेध परमेश्वर के स्थान में जो उपासना उस प्रकरण में करना चाहिये ॥ ११ ॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

*अब विद्या अविद्या की उपासना का फल कहते हैं—*

**अन्धन्तमः प्र विशन्ति ये ऽविद्यामुपासते ।**

**ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायांꣳ रताः ॥१२॥**

**पदार्थ—**( ये ) जो मनुष्य ( अविद्याम् ) अनित्य में नित्य अशुद्ध में शुद्ध दुःख में सुख और अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धिरूप अविद्या उस की अर्थात् ज्ञानादि गुणरहित कारणरूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की ( उपासते ) उपासना करते हैं वे ( अन्धम् तमः ) दृष्टि के रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को ( प्रविशन्ति ) प्राप्त होते हैं और ( ये ) जो अपने आत्मा को पण्डित मानने वाले ( विद्यायाम् ) शब्द अर्थ और इनके सम्बन्ध में जानने मात्र अवैदिक आचरण में ( रताः ) रमण करते ( ते ) वे ( उ ) भी ( ततः ) उस से ( भूय इव ) अधिकतर ( तमः ) अज्ञानरूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं ॥१२॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो जो चेतन ज्ञानादि गुणयुक्त वस्तु है वह जानने वाला जो अविद्यारूप है वह जानने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है वह उपासना के योग्य है जो इससे भिन्न है वह उपास्य नहीं है किन्तु उपकार लेने योग्य है । जो मनुष्य अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों से युक्त हैं वे परमेश्वर को छोड़ इससे भिन्न जड़ वस्तु की उपासना कर महान् दुःखसागर में डूबते हैं और जो शब्द अर्थ का अन्वयमात्र संस्कृत पढ़कर सत्यभाषण पक्षपातरहित न्याय का आचरण रूप धर्म नहीं करते अभिमान में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं वे अत्यन्त तमोगुणरूप दुःखसागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं ॥१२॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*अब जड़ चेतन का भेद अगले मन्त्रों में कहा है—*

**अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽअन्यदाहुरविद्यायाः ।**

**इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग ( नः ) हमारे लिये ( विचचक्षिरे ) व्याख्यापूर्वक कहते थे ( विद्यायाः ) पूर्वोक्त विद्या का ( अन्यत् ) अन्य ही कार्य वा फल ( आहुः ) कहते थे ( अविद्यायाः ) पूर्व मन्त्र से प्रतिपादन की अविद्या का ( अन्यत् ) अन्य फल ( आहुः ) कहते हैं इस प्रकार उन ( धीराणाम् ) आत्मज्ञानी विद्वानों से ( तत् ) उस वचन को हम लोग ( शुश्रुम ) सुनते थे ऐसा जानो ॥१३॥

**भावार्थ—**ज्ञानादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है वह अज्ञानयुक्त जड़ से कदापि नहीं और जो जड़ से प्रयोजन सिद्ध होता है वह चेतन से नहीं । सब मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग योग विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनों का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिए ॥१३॥

विद्यामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।**

**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥१४॥**

**पदार्थ—**( यः ) जो विद्वान् ( विद्याम् ) पूर्वोक्त विद्या ( च ) और उसके सम्बन्धी साधन उपसाधनों ( अविद्याम् ) पूर्व कही अविद्या ( च ) और इसके उपयोगी साधन समूह को और ( तत् ) उस ध्यानगम्य मर्म ( उभयम् ) इन दोनों को ( सह ) साथ ही ( वेद ) जानता है वह ( अविद्यया ) शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किये पुरुषार्थ से ( मृत्युम् ) मरणदुःख के भय को ( तीर्त्वा ) उल्लङ्घन कर ( विद्यया ) आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग में जो धर्म उससे उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शनरूप विद्या से ( अमृतम् ) नाशरहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को ( अश्नुते ) प्राप्त होता है ॥१४॥

**भावार्थ—**जो मनुष्य विद्या और अविद्या को उनके स्वरूप से जानकर इन के जड़ चेतन साधक हैं ऐसा निश्चय कर सब शरीरादि जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा को धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये साथ ही प्रयोग करते हैं वे लौकिक दुःख को छोड़ परमार्थ के सुख को प्राप्त होते हैं जो जड़ प्रकृति आदि कारण वा शरीरादि कार्य्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म उपासना और ज्ञान के करने को कैसे समर्थ हो । इससे न केवल जड़ न केवल चेतन से अथवा न केवल कर्म से तथा न केवल ज्ञान से कोई धर्मादि पदार्थों की सिद्धि करने में समर्थ होता है ॥१४॥

वायुरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

*अब देहान्त के समय क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।**

**ओ३म् क्रतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृतꣳ स्मर ॥१५॥**

**पदार्थ—**हे ( क्रतो ) कर्म करने वाले जीव ! तू शरीर छूटते समय ( ओ३म् ) इस नामवाच्य ईश्वर को ( स्मर ) स्मरण कर ( क्लिबे ) अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का ( स्मर ) स्मरण कर ( कृतम् ) अपने किये का ( स्मर ) स्मरण कर । इस संसार का ( वायुः ) धनञ्जयादिरूप वायु ( अनिलम् ) कारणरूप वायु को कारण रूप वायु ( अमृतम् ) अविनाशी कारण को धारण करता ( अथ ) इस के अनन्तर ( इदम् ) यह ( शरीरम् ) नष्ट होने वाला मुखादि का आश्रय शरीर ( भस्मान्तम् ) अन्त में भस्म होने वाला होता है ऐसा जानो ॥१५॥

**भावार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि जैसी मृत्यु समय में चित्त की वृत्ति होती है और शरीर से आत्मा का पृथक् होना होता है वैसे ही इस समय भी जानें । इस शरीर को जलाने पर्यन्त क्रिया करें । जलाने पश्चात् शरीर का कोई संस्कार न करें । वर्त्तमान समय में एक परमेश्वर ही की आज्ञा का पालन उपासना और अपने सामर्थ्य को बढ़ाया करें । किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता ऐसा मान कर धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रीति किया करें ॥१५॥

अग्ने नयेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

*ईश्वर किन मनुष्यों पर कृपा करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

**अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।**

**युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१६॥**

**पदार्थ—**हे ( देव ) दिव्यस्वरूप ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर ! जिससे हम लोग ( ते ) आप के लिये ( भूयिष्ठाम् ) अधिकतर ( नमउक्तिम् ) सत्कारपूर्वक प्रशंसा का ( विधेम ) सेवन करें । इससे ( विद्वान् ) सबको जाननेवाले आप ( अस्मत् ) हम लोगों में कुटिलतारूप ( एनः ) पापाचरण को ( युयोधि ) पृथक् कीजिये ( अस्मान् ) हम जीवों को ( राये ) विज्ञान धर्म वा धन से हुए सुख के लिये ( सुपथा ) धर्मानुकूल मार्ग से ( विश्वानि ) समस्त ( वयुनानि ) प्रशस्त ज्ञानों को ( नय ) प्राप्त कीजिये ॥१६॥

**भावार्थ—**जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं उनको दयालु ईश्वर पापाचरणमार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चला के विज्ञान देकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करने के लिये समर्थ करता है इससे एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ किसी की उपासना कदापि न करें ॥१६॥

हिरण्मयेनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

*अब अन्त में मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है—*

**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।**

**योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म ॥१७॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जिस ( हिरण्मयेन ) ज्योतिःस्वरूप ( पात्रेण ) रक्षक मुझ से ( सत्यस्य ) अविनाशी यथार्थ कारण के ( अपिहितम् ) आच्छादित ( मुखम् ) मुख के तुल्य उत्तम अङ्ग का प्रकाश किया जाता ( यः ) जो ( असौ ) वह ( आदित्ये ) प्राण वा सूर्य्यमण्डल में ( पुरुषः ) पूर्ण परमात्मा है ( सः ) वह ( असौ ) परोक्षरूप ( अहम् ) मैं ( खम् ) आकाश के तुल्य व्यापक ( ब्रह्म ) सब से गुण कर्म और स्वरूप करके अधिक हूँ ( ओ३म् ) सब का रक्षक जो मैं उसका ( ओ३म् ) ऐसा नाम जानो ॥१७॥

**भावार्थ—**सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जो मैं यहाँ हूँ वही अन्यत्र सूर्यादि लोक में जो अन्यत्र सूर्यादि लोक में हूँ वही यहाँ हूँ सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्य व्यापक मुझ से भिन्न कोई बड़ा नहीं मैं ही सब से बड़ा हूँ । मेरे सुलक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से प्यारा मेरा निज नाम 'ओ३म्' यह है । जो प्रेम और सत्याचरण से शरण लेता उसकी अन्तर्यामीरूप से मैं अविद्या का विनाश कर उसके आत्मा का प्रकाश करके शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कर सत्यस्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग करके मोक्षसुख को प्राप्त करता हूँ ॥ इति ॥१७॥

**इस अध्याय में ईश्वर के गुणों का वर्णन अधर्म त्याग का उपदेश सब काल में सत् कर्म के अनुष्ठान की आवश्यकता, अधर्माचरण की निन्दा, परमेश्वर के अतिसूक्ष्म स्वरूप का वर्णन, विद्वान् को जानने योग्य का होना अविद्वान् को अज्ञेयपन का होना सर्वत्र आत्मा जान के अहिंसा धर्म की रक्षा, उससे मोह शोकादि का त्याग ईश्वर का जन्मादि दोषरहित होना, वेदविद्या का उपदेश, कार्य्य कारण रूप जड़ जगत् की उपासना का निषेध, उन कार्य्य कारणों से मृत्यु का निवारण करके मोक्षादि सिद्धि करना जड़ वस्तु की उपासना का निषेध, चेतन की उपासना की विधि, उन जड़चेतन दोनों के स्वरूप के जानने की आवश्यकता, शरीर के स्वभाव का वर्णन समाधि से परमेश्वर को अपने आत्मा में धर के शरीर त्यागना दाह के पश्चात् अन्य क्रिया के अनुष्ठान का निषेध अधर्म के त्याग और धर्म के बढ़ाने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना, ईश्वर के स्वरूप का वर्णन और सब नामों से 'ओ३म्' इस नाम की उत्तमता का प्रतिपादन किया है । इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥**

**यह चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥**

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

# वेद

# सामवेद

## भाषा भाष्य
## संपूर्ण

— भाष्यकार —

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

# भाष्यकार की भूमिका

सामवेद चारो वेदो मे एक है और इसका तृतीय स्थान है। वेद के चार विभाग विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान काण्ड के भेद से किये जाते हैं। ये चार काण्ड वस्तुत चार विस्तृत विषय है जिनमे अन्य अनेक विषय सगृहीत हो जाते है। ऋक् शब्द स्तुत्यर्थक ऋच् धातु से बना है। इसका अर्थ पदार्थों का गुणवर्णन अर्थात् उनक सत्य स्वरूप का स्तवन है। ऋग्वेद गुण और गुणी के भेद से पदार्थों का स्तवन करता है। यजु शब्द यज् देवपूजा, सगतिकरण और दान के अर्थ को देनेवाले धातु से निष्पन्न है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे इसकी सिद्धि के और भी प्रकार बताये गये हैं। इसके अथविस्तार मे कम के विविध प्रकारो का सन्निवेश है। साम समन्वय और उपासना से सम्बद्ध है। साम पद की सिद्धि सा+अम और अस् क्षेपार्थक धातु से भो होती है। साम मे जहाँ उपासना का उदात्तरूप है वहाँ उसका बहुत ही वैज्ञानिक ऊहापोह भी है। वह है समन्वय का प्रकार। यह समन्वय कर्म और ज्ञान का, कर्म और उपासना का, जगत और ब्रह्म, लोक और परलोक आदि सभी का हो सकता है। जगत की पहेली के साथ जीव और ब्रह्म के कार्यकलापो का जब तक समन्वय न किया जावे उपासना को सिद्धि हो नही सकती है। अथव महत्ता का द्योतक है और उसमे ज्ञान का सर्वोच्च प्रकार वर्णित है।

इन चारो वेदो को विद्या की दृष्टि से कभी कभी त्रयी भी कहा जाता है। त्रयी-विद्या का यह तात्पय कभी भी नही है कि वेद तीन ही है। वेद तो चार है परन्तु मत्रो की रचना और उनकी परिभाषा के अनुसार वह त्रयी कहे जाते हैं। चारो ही वेदो के मत्र तीन प्रकार के होते हैं। वे तीन प्रकार है ऋक्, यजु और साम। मीमासा आदि ग्रथो मे इनकी ऐसी ही परिभाषा की गई है। ये मत्र के प्रकार हैं और इन से चारो ही वेदो का ग्रहण होता है।

सामवेद जैसा कहा जा चुका है उपासनात्मक है। इसके मत्र गानमय है। ये गाये जाते हैं और इन गानो को सामगान कहा जाता है। गान भेद से सामवेद को सहस्रवत्मा अर्थात् सहस्र मार्गों वाला कहा जाता है। महा-भाष्यकार ने इसके लिए सहस्रवर्त्मा पद का ही प्रयोग किया है। शबर स्वामी ने इसी आधार पर लिखा है कि सामवेद मे गीति व गान के सहस्र उपाय है। ये गान प्रकार ही इस वेद की सर्वाधिक शाखा होने मे कारण है। इनमे ज्ञान के प्रकारो पर विशेष पल्लवन जाता पाया है।

विश्व मे एक प्रकार का साम पाया जाता है। वह साम ही समन्वय है। विश्व के समस्त प्रश्नो का एक मात्र समाधान जगन्नियन्ता भगवान है। उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है। यह ज्ञान और कम के समन्वय का उदात्त-रूप है। सामवेद इस सम्बन्धी प्रक्रिया से सम्बन्ध रखता है। सामवेद मे रथन्तर आदि अनेक प्रकार के सामो का वर्णन है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे इन सामो को जगत् के पदार्थों का वाचक मानकर उनके साथ इनं का सम्बन्ध दिखलाया गया है। वेद के शब्दों का सृष्टि के पदार्थों के साथ सम्बन्ध है—यह इससे सुतराम् स्पष्ट है। जैसे जगत के दार्शनिक विश्लेषण मे कारणो का त्रिक है और त्रिक है ईश्वर, जीव एव प्रकृति के रूप मे। अनादि पदार्थों का ठीक उसी प्रकार ज्ञान और भाषा की मूल प्रेरणा मे ज्ञाता, ज्ञय और ज्ञान का त्रिक है। सामवेद मे वर्णित समन्वय और उपासना इसके समुन्नायक हैं। इसी दृष्टि से सामवेद का अध्ययन करना चाहिए।

सामवेद के प्रथम मत्र का 'वीतयें' पद ही बहुत उच्च विज्ञान का द्योतक है। समस्त लोक आदिम अवस्था मे एक दूसरे से अत्यन्त समीप रहते हैं। अग्नि उन्हें पृथक् और दूर करता है। 'वीतये' से इसी धारणा की सपुष्टि होती है। ऐसे ज्ञान के आगार वेदो को लोग पढें, जिससे सर्वत्र सुख शाति व्याप्त हो।

दिल्ली

दिनाक ३०-६-७३

**वैद्यनाथ शास्त्री**

॥ ओ३म् ॥

# सामवेद भाषाभाष्यम्

## पूर्वार्चिक

**आग्नेय काण्डम्** **प्रथमोध्याय**

*१—भरद्वाज । गायत्री । अग्नि ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥**

**पदार्थ**—( **अग्ने** ) हे ईश्वर ( **आयाहि** ) प्राप्त हो ( **वीतये** ) ज्ञान के लिए ( **गृणान** ) स्तुति किया गया ( **हव्यदातये** ) उत्तम पदार्थों के देने के लिए ( **नि** ) निश्चय रूप से ( **होता** ) दाता ( **सत्सि** ) विद्यमान है ( **बर्हिषि** ) विश्व ब्रह्माण्ड मे ॥ १ ॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! दाता तू विश्व ब्रह्माण्ड मे व्यापक है । अत स्तुति किया हुआ तू ज्ञान तथा उत्तम पदार्थों के देने के लिए हमें प्राप्त हो ॥१॥

*२—भरद्वाज । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ १

**त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हित । देवेभिर्मानुषे जने ॥२॥**

**पदार्थ**—( **त्वम्** ) तू ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ! ( **यज्ञानाम** ) उत्तम व्यवहारों का ( **होता** ) दाता ( **विश्वेषाम** ) सब ( **हित** ) कल्याणकारी ( **देवेभि** ) विद्वानों और दिव्य पदार्थों द्वारा ( **मानुषे जने** ) मनुष्य समाज पर ॥२॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तू समस्त उत्तम व्यवहारों का दाता तथा विद्वानों और दिव्य पदार्थों के द्वारा मनुष्य समाज पर उपकार करता जाता है ॥ ॥

*३—काण्वो मेधातिथि । गायत्री । अग्नि ।*

२ ३ १ १ २ १ २ ३ १ १ २

**अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥**

**पदार्थ**—( **अग्निम** ) ईश्वर को ( **दूतम** ) पापियों को दण्ड देने वाले ( **वृणीमहे** ) स्वीकार करते है ( **होतारम** ) दाता ( **विश्ववेदसम** ) सर्वज्ञ ( **अस्य** ) इस ( **यज्ञस्य** ) संसार यज्ञ के ( **सुक्रतुम** ) उत्तम निर्माता ॥३॥

**भावार्थ**—हम पापियों के दण्ड देने वाले दाता सर्वज्ञ और इस संसाररूपी यज्ञ के उत्तम निर्माता परमेश्वर की स्तुति करते है ॥३॥

*४—भरद्वाज । गायत्री । अग्नि ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ १ २ ३ १ २

**अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥४॥**

**पदार्थ**—( **अग्नि** ) परमेश्वर ( **वृत्राणि** ) अज्ञानों का ( **जघनत** ) नाश करता है ( **द्रविणस्यु** ) समस्त धनो का स्वामी ( **विपन्यया** ) विशिष्ट उपासना से ( **समिद्ध** ) साक्षात किया हुआ ( **शुक्र** ) शुद्धस्वरूप ( **आहुत** ) भलीभांति स्तुति किया हुआ ॥४॥

**भावार्थ**—उपासना से साक्षात किया हुआ स्तुत्य शुद्धस्वरूप तथा समस्त धनो का स्वामी परमेश्वर अज्ञानी धरों का विनाश करता है ॥४॥

*५—उशना । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ ३ १ २२

**प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥५॥**

**पदार्थ**—( **प्रेष्ठम** ) अत्यन्त प्रिय ( **व** ) तुझ ( **अतिथिम** ) काल के बन्धन से रहित ( **स्तुषे** ) स्तुति करता हूँ ( **मित्रम्** ) मित्र के ( **इव** ) समान ( **प्रियम्** ) प्यारे ( **अग्ने** ) हे ईश्वर ( **रथम न** ) सूर्य के समान ( **वेद्यम** ) ज्ञातव्य ॥५॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! अत्यन्त प्रिय कालबन्धन रहित मित्र के समान प्यारे तथा सूर्य के समान जानने योग्य तुझ प्रभु का मैं स्तुति करता हूँ ॥५॥

*६—सुदीतिपुरुमीढौ । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ ३ १ २ १ २२ १ ३ ३ १ २२

**त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥६॥**

**पदार्थ**—( **त्वम्** ) तू ( **न** ) हम ( **अग्ने** ) हे ईश्वर ! ( **महोभि** ) महान् गुणों वा कर्मों से ( **पाहि** ) बचा ( **विश्वस्या** ) समस्त ( **अराते** ) अदानशीलता के भावों से ( **उत** ) तथा ( **द्विष** ) द्वेष करने ( **मर्त्यस्य** ) मनुष्य के सम्पर्क से ॥६॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तू महान् गुणों और कर्मों द्वारा समस्त अदानशीलता के भावों और द्वेषी मनुष्य के सम्पर्क से हमें बचा ॥६॥

*७—भरद्वाज । गायत्री । अग्नि ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

**एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥७॥**

**पदार्थ**—( **एहि** ) प्राप्त हो ( **उ** ) निश्चय ( **सु ब्रवाणि** ) अच्छी प्रकार बोलूं ( **ते** ) तेरी ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **इत्था** ) इस प्रकार ( **इतरा** ) मनुष्यों की वाणी से भिन्न वाणियों को ( **एभि** ) इन सब ( **वर्धासि** ) बढ़ा ( **इन्दुभि** ) यज्ञों से ॥७॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! मैं मानवी वाणी से भिन्न तेरी वेदमयी वाणी अथवा उत्तम रूप से बोलूं । इस प्रकार तू मुझे प्राप्त हो और इन यज्ञादिकों के द्वारा ॥७॥

*८—वामदेव । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २ ३

**आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥८॥**

**पदार्थ**—( **आ** ) भलीभांति ( **ते** ) तेरा ( **वत्स** ) पुत्ररूप जीव ( **मन** ) मनन योग्य ज्ञान को ( **यमत** ) प्राप्त करता है ( **परमाच्चित्** ) परमप्रभु से ( **सधस्थात** ) साथ रहने वाले अथवा समान स्थान में रहने वाले ( **अग्ने** ) हे ईश्वर ( **त्वाम** ) तुझको ( **कामये** ) चाहता हूँ ( **गिरा** ) स्तुति से ॥८॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तेरा पुत्ररूप जीव हृदय देश में साथ रहने वाले तुझ परम प्रभु से मननयोग्य ज्ञान को प्राप्त करता है । मैं भी स्तुति द्वारा तेरी कामना करता हूँ ॥८॥

*भरद्वाज । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ १ २ १ १ २ १ २

**त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥९॥**

**पदार्थ**—( **त्वाम्** ) तुझ ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **पुष्करादधि** ) हृदयाकाश में ( **अथर्वा** ) महान् अहिंसक योगी ( **निरमन्थत** ) प्राप्त करता है ( **मूर्ध्न** ) मूर्त पदार्थों के आधारभूत ( **विश्वस्य** ) संसार के ( **मध्य में** ) ( **वाघत** ) मेधावीजन ॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! महान् अहिंसाव्रती योगी तुझे हृदयाकाश में प्राप्त करता है और मेधावीजन तुझे मूर्त पदार्थों के आधारभूत संसार के मध्य में देखते हैं ॥ ९ ॥

*१०—वामदेव । गायत्री । अग्नि ।*

१ ३ १ ३ १ २ १ ३ ३ १ २ २ २

**अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे । देवो ह्यसि नो दृशे ॥१०॥**

**पदार्थ**—( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **विवस्वत** ) अज्ञान को दूर करने वाले ज्ञान का ( **आभर** ) भरपूर कर ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिए ( **ऊतये** ) रक्षा के लिए ( **महे** ) पूर्ण ( **देव** ) देव ( **हि** ) निश्चय ही ( **असि** ) है ( **न** ) हमारे ( **दृशे** ) दर्शनज्ञान के लिए ॥१०॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर हमारी पूर्ण रक्षा के लिए हमें अज्ञान निवारक ज्ञान दे । निश्चय तू हमारे ज्ञान के लिए है ॥१०॥

卐 **पहली दशती समाप्त** 卐

*११—विरूप । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ १ २ १ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१॥**

**पदार्थ**—( **नम** ) नमस्कार हो ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **ओजसे** ) बल के लिए ( **गृणन्ति** ) स्तुति करते हैं ( **देव** ) हे देव ( **कृष्टय** ) मनुष्य ( **अमै** ) बलों से ( **अमित्रम्** ) पाप को ( **अर्दय** ) नष्ट कर ॥१॥

**भावार्थ**—हे देव परमेश्वर ! तुझे नमस्कार है । मनुष्य जन बलप्राप्ति के लिए तेरी स्तुति करते है । हे प्रभो ! तू शक्तियों से पाप का नाश कर ॥२॥

*१२—वामदेव । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ १ २ ३ २ १२ १ २ ३ २

**दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२॥**

**पदार्थ**—( **दूतम** ) दुःखनाशक ( **व** ) तुझ ( **विश्ववेदसम** ) सर्वज्ञ ( **हव्यवाहम** ) फलदाता ( **अमर्त्यम** ) अमर ( **यजिष्ठम** ) उपासनीय ( **ऋञ्जसे** ) स्तुति करता हूँ ( **गिरा** ) वेदवाणी से ॥२॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! मैं तुझ दुःखनाशक सर्वज्ञ कर्मफलदाता और अमर प्रभु की वेदवाणी से स्तुति करता हूँ ॥ ॥

*१३—प्रयोग । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ १ ३ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २र

**उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥३॥**

**पदार्थ**—( **उप** ) समीप ( **त्वा** ) तेरे ( **जामय** ) उत्पन्न ( **गिर** ) स्तुतिरूपी वाणियां ( **देदिशती** ) निर्देश करती हुई ( **हविष्कृत** ) ज्ञानकारिणी ( **वायो** ) वायु के ( **अनीके** ) स्थान में ( **अस्थिरन्** ) स्थित हो जाती हैं ॥३॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! की जाने वाली ज्ञानमयी स्तुतियां तेरा निर्देश कराती हुई वायुमण्डल में स्थित हो जाती हैं ॥३॥

*१४—मधुच्छन्दा । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ १ २ ३ १ २ ३ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २

**उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥४॥**

**पदार्थ**—( **उप** ) समीप ( **त्वा** ) तेरे ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **दिवेदिवे** ) प्रतिदिन ( **दोषावस्त** ) सायं प्रात ( **धिया** ) बुद्धि से ( **वयम** ) हम ( **नम** ) नमस्कार ( **भरन्त** ) करते हुए ( **एमसि** ) उपस्थित होते हैं ॥४॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! प्रतिदिन साय प्रात ज्ञानपूर्वक तुझे नमस्कार करते हुए हम तेरे समीप उपस्थित होते है ।।४।।

*१५—शुन शेप । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ १ २ ३ २

**जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोम रुद्राय दृशीकम् ।५।**

**पदार्थ**— ( **जराबोध** ) स्तुति से ज्ञान पाने वाले ( **तत** ) वह ( **विविड्ढि**) कर ( **विशेविशे** ) प्रत्येक प्राणी के लिए ( **यज्ञियाय** ) पूजनीय ( **स्तोमम** ) स्तुति ( **रुद्राय** ) परमेश्वर की ( **दृशीकम** ) मनोहर ।

**भावार्थ**— हे स्तुति से ज्ञान पाने वाले विद्वन ! तू प्रत्येक प्राणी के पूजनीय परमेश्वर की मनोहर स्तुति कर ।।५।।

*१६—मेधातिथि । गायत्री । अग्नि ।*

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ २

**प्रति त्यञ्चारुमध्वरङ्गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ।।६।।**

**पदार्थ**—( **प्रति** ) लक्ष्य कर ( **त्यम** ) उस (**चारुम्**) सुन्दर ( **अध्वरम** ) ससार रूपी यज्ञ को ( **गोपीथाय** ) पृथिवी तथा इन्द्रियादि पदार्थों की रक्षा के लिए ( **प्रहूयसे** ) पुकारा जाता है ( **मरुद्भि** ) ज्ञानी जनो से ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ! ( **आगहि** ) प्राप्त हो ।।६।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तू इस सुन्दर ससार यज्ञ को उद्देश्य मे रख कर पृथिवी तथा इन्द्रियादि पदार्थों की रक्षा के लिये विद्वानो से पुकारा जाता है । हे भगवन् तू हमे प्राप्त हो ।। ६ ।।

*१७— शुन शेप । गायत्री । अग्नि ।*

२ ३ २ ३ १२ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**अश्वन्न त्वा वारवन्त वन्दध्या अग्नि नमोभि । सम्राज तमध्वराणाम ।।७।।**

**पदार्थ**—( **अश्वम् न** ) सूर्य के समान ( **त्वा** ) तुझ (**वारवन्तम्**) अन्धकार निवारक की ( **वन्दध्य** ) वन्दना करता हूँ ( **अग्निम्** ) परमेश्वर की ( **नमोभि** ) नमस्कारो से ( **सम्राजम्** ) सम्राट ( **तम्** ) उस ( **अध्वराणाम्** ) कल्याणकारी यज्ञो के ।। ७ ।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! सूर्यवत प्रकाशमान तथा कल्याणकारी यज्ञों के सम्राट तुझ महाप्रभु की मैं स्तुतियो से वन्दना करता हूँ ।। ७ ।।

*१८—प्रयोग । गायत्री । अग्नि ।*

२ १ २र ३ १ २ १ २१ २

**औवभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे । अग्नि समुद्रवाससम ।।८।।**

**पदार्थ**—( **औवभृगुवत** ) पृथिवीस्थ विद्वान् के समान ( **शुचिम्** ) पवित्र ( **अप्नवानवत** ) कर्मनिष्ठ के समान की ( **आहुवे** ) स्तुति करता हूँ । ( **अग्निम्** ) परमेश्वर की ( **समुद्रवाससम्** ) आकाशवत् व्यापक ।।८।।

**भावार्थ**— पृथिवीस्थ विद्वान् और कर्मनिष्ठ की भाति मैं भी आकाशवत् व्यापक पवित्र परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ।। ८ ।।

*१९— मेधातिथि । गायत्री । अग्नि ।*

३ १ २ १ २र ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**अग्निमिन्धानो मनसा धिय सचेत मर्त्य । अग्निमिन्धे विवस्वभि ।।९।।**

**पदार्थ**—( **अग्निम्** ) योगाग्नि को ( **इन्धान** ) प्रदीप्त करता हुआ (**मनसा**) मन के साथ ( **धियम्** ) बुद्धि को ( **सचेत** ) सयुक्त करे ( **मर्त्य** ) मनुष्य (**अग्निम्**) परमेश्वर को ( **इन्धे** ) प्रकाशित करे (अपने अन्दर) ( **विवस्वभि** ) ज्ञानज्योतियो से ।। ९ ।।

**भावार्थ**—मनुष्य को चाहिये कि वह योग की अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ मन के साथ बुद्धि को सयुक्त करे और ज्ञानज्योतियों से अपने अन्दर परमेश्वर को प्रकाशित करे ।। ९ ।।

*२०—वत्स । गायत्री । अग्नि ।*

२उ ३ २ ३ १२ ३ १ २ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

**आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योति पश्यन्ति वासरम । परो यदिध्यते दिवि ।१०।**

**पदार्थ**— ( **आत इत** ) इस प्रकार ( **प्रत्नस्य** ) सनातन ( **रेतस** ) कारण रूप ( **ज्योति** ) प्रकाश को ( **पश्यन्ति** ) देखते है ( **वासरम्** ) सर्वत्र फैले हुए ( **पर** ) परम ( **यत्** ) जो ( **इध्यते** ) प्रकाशमान हो रहा है ( **दिवि** ) सूर्य आदि चमकील पदार्थों मे ।। १० ।।

**भावार्थ**—योगीजन इस प्रकार से सनातन और सब के कारण परमेश्वर की सर्वत्र फैली हुई इस परम ज्योति को देखते हैं जो कि चमकने वाले सूर्य आदि पदार्थों मे भी प्रकाशमान हो रही है ।। १० ।।

### 卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

*२१—प्रयोग । गायत्री । अग्नि ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

**अग्नि वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ।।१।।**

**पदार्थ**—( **वृधन्तम्** ) उन्नति देने वाले ( **अध्वराणाम्** ) यज्ञो के (**अग्निम्**) परमेश्वर की ( **व** ) तुम लोग ( **पुरूतमम्** ) पूर्ण करने वाले ( **अच्छा** ) भली प्रकार ( **नप्त्रे** ) पौत्र के लिए ( **सहस्वते** ) बलशाली ।। १ ।।

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपने उन्नतिदाता तथा यज्ञो के पूर्ण करने वाले परमेश्वर की बलशाली पुत्र पौत्र आदि की प्राप्ति के लिए स्तुति करो ।। १ ।।

*२२— भरद्वाज । गायत्री । अग्नि ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ २ ३ २ १ २ ३१ ३ ३ २

**अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यसद्विश्व न्यत्रिणम । अग्निर्नो वसते रयिम् ।।२।।**

**पदार्थ**—( **अग्नि** ) परमेश्वर ( **तिग्मेन** ) प्रचण्ड ( **शोचिषा** ) तेज से ( **यसत** ) नियम मे रखता है ( **न्यत्रिणम** ) पाप करने वाले को ( **अग्नि** ) परमेश्वर ( **न** ) हमे ( **वसते** ) देता है ( **रयिम** ) धन को ।। २ ।।

**भावार्थ**—परमेश्वर अपने प्रचण्ड तेज से पापियो को नियम मे रखता है और परमेश्वर ही हमे धन देता है ।। २ ।।

*२३—वामदेव । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १२ ३ २ ३१ २

**अग्ने मृड महा असि य आ देवयुञ्जनम । इयेथ बर्हिरासदम ।।३।।**

**पदार्थ**—( **अग्ने** ) हे ईश्वर ( **मृड** ) सुखी कर ( **महान्** ) बड़ा ( **असि** ) है ( **अय** ) सर्वव्यापक ( **आ** ) भली भाति ( **देवयुञ्जनम** ) दैवी सपत्ति से युक्त मनुष्य ( **इयथ** ) प्राप्त होता है ( **बर्हिरासदम** ) ज्ञान मे स्थित को ।। ३ ।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर तू महान् और सर्वव्यापक है । तू दैवी सपत्ति से युक्त और ज्ञान मे स्थित पुरुष को भली प्रकार सुखी करता है ।। ३ ।।

*२४—वसिष्ठ । गायत्री । अग्नि ।*

२ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

**अग्ने रक्षा णो अहस प्रति स्म देव रीषत । तपिष्ठैरजरो दह ।।४।।**

**पदार्थ**—( **अग्ने** ) हे ईश्वर ( **रक्ष** ) रक्षा कर ( **न** ) हमारी ( **अहस** ) पाप कर्म से ( **प्रतिस्म** ) ही ( **तपिष्ठै** ) तपाने वाले तेजो से ( **देव** ) हे देव ( **रीषत** ) हिसा के विचारो को ( **अजर** ) अजर ( **दह** ) भस्म करदे ।। ४ ।।

**भावार्थ**—हे परमात्म देव ! अजर अमर तू हमे पाप से बचा और अपने तपाने वाले तेजो से हिसा के बुरे विचारो को भस्म करदे ।। ४ ।।

*२५— भरद्वाज । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ २ १ २ ३ १ ३ १ ३ १ २

**अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधव । अर वहन्त्याशव ।।५।।**

**पदार्थ**—( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **युङ्क्ष्वा** ) योग से युक्त करता है ( **हि** ) निश्चय ( **ये** ) जो ( **तव** ) तुझ ( **अश्वास** ) विद्वान् ( **साधव** ) साधुजन (**अरम**) पर्याप्त ( **वहन्ति** ) धारण करता है । ( **आशव** ) कुशाग्रबुद्धि कर्मण्य ।। ५ ।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! जो विद्वान् कर्मण्य साधुजन तुझे पर्याप्तरूप से अपने अन्दर धारण करते हैं उन्हे तू योग से युक्त करता है ।। ५ ।।

*२६—वसिष्ठ । गायत्री । अग्नि ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २

**नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्त धीमहे वयम । सुवीरमग्न आहुत ।।६।।**

**पदार्थ**—( **नि** ) निरन्तर ( **त्वा** ) तुझ ( **नक्ष्य** ) हे उपास्य देव (**विश्पते**) हे प्रजा के स्वामी ( **द्युमन्तम** ) तेजस्वी ( **धीमहे** ) धारण करते हैं ( **वयम** ) हम लोग ( **सुवीरम** ) उत्तम शक्तिशाली ( **अग्ने** ) हे ईश्वर ( **आहुत** ) हे स्तुति योग्य ।। ६ ।।

**भावार्थ**—हे उपासनीय प्राणिमात्र के स्वामी स्तुत्य परमेश्वर ! हम लोग तुझ तेजस्वी उत्तम बलशाली को धारण करते हैं ।। ६ ।।

*२७—विरूप । गायत्री । अग्नि ।*

३ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र

**अग्निमूर्द्धा दिव ककुत् पति पृथिव्या अयम । अपा रेतासि जिन्वति ।।७।।**

**पदार्थ**—( **अग्नि** ) परमेश्वर ( **मूर्द्धा** ) सर्वोपरि ( **दिव** ) द्युलोक का ( **ककुत** ) महान् ( **पति** ) स्वामी ( **पृथिव्या** ) पृथिवी लोक का ( **अयम्** ) यह ( **अपा** ) जलो के ( **रेतासि** ) मूल कारणों को ( **जिन्वति** ) जानता या गति देता है ।। ७ ।।

**भावार्थ**—वह परमेश्वर सर्वोपरि और द्यु तथा पृथिवी लोक का महान् स्वामी है । वह जल के मूल कारणो मे गति देता है ।। ७ ।।

*२८—शुन शेप । गायत्री । अग्नि ।*

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २

**इममू षु त्वमस्माक सनि गायत्र नव्यासम् । अग्ने देवेषु प्र वोच ।।८।।**

**पदार्थ**—( **इमम्** ) इस ( **ऊ सु** ) पादपूरक ( **त्वम** ) तु ( **अस्माकम्** ) हमारे ( **सनिम** ) भजन करने योग्य ( **गायत्रम्** ) गायत्र साम को ( **नव्यासम्** ) नये बोध देने वाले ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **देवेषु** ) ज्ञानियो मे ( **प्रवोच** ) उपदेश करता है ।। ८ ।।

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तू ही इस हमारे मनन योग्य नित्य नये नये ज्ञानों के देने वाले गायत्र साम का विद्वानो में उपदेश देता है ।। ८ ।।

२९—गोपवन । गायत्री । अग्नि ।

१ २३१२ ३१ २र १२ ३१२
**तम्त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिर । स पावक श्रुधी हवम् ॥९॥**

पदार्थ—( तम ) उस ( त्वा ) तुझे ( गोपवन ) वेदवाणी का रक्षक विद्वान् ( गिरा ) वाणी से ( जनिष्ठत ) प्रकट करता है ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( अङ्गिर ) हे सर्वव्यापक ( स ) वह ( पावक ) पवित्रकर्त्ता ( श्रुधी ) सुन ( हवम् ) पुकार को ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! वेदवाणी का रक्षक विद्वान् तुझे वाणी से प्रकट करता है । हे पवित्रकर्त्ता ! तू हमारी पुकार सुन ॥ ९ ॥

३०—वामदेव । गायत्री । अग्नि ।

२ ३१२ ३२३२३१२ २३१ २ ३१३
**परि वाजपति कविरग्निर्हव्या यक्रमीत । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०॥**

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( वाजपति ) बलो का स्वामी ( कवि ) वेदकाव्य का कर्त्ता ( अग्नि ) परमेश्वर ( हव्यानि ) हवि पदार्थों मे ( अक्रमीत् ) व्यापक हो रहा है ( दधद् ) धारण करता हुआ ( रत्नानि ) रत्नो को ( दाशुषे ) यजमान के लिए ॥ १० ॥

भावार्थ—यजमान के लिए रत्नो को धारण करता हुआ बलो का स्वामी सर्वज्ञ परमेश्वर समस्त हव्य पदार्थों मे व्यापक हो रहा है ॥ १० ॥

३१—कण्व । गायत्री । अग्नि ।

२३ २३१२ ३१ २ ३१२ ३१ २र३१२
**उदु त्य जातवेदस देव वहन्ति केतव । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११॥**

पदार्थ—( उत ) उत्तम ( उ ) ही ( त्यम ) उस ( जातवेदसम् ) सर्वज्ञ ( देवम ) देव का ( वहन्ति ) प्राप्त कराते हैं ( केतव ) ज्ञान ( दृश ) देखने के लिए ( विश्वाय ) विश्व के ( सूर्यम ) सब प्रकाशक परमात्मा ॥ ११ ॥

भावार्थ—ज्ञान उस सर्वज्ञ प्रकाशक उत्तम परमात्मदेव को विश्व को देखने के लिए प्राप्त कराते हैं ॥ ११ ॥

३२—मेधातिथि । गायत्री । अग्नि ।

३२३१ २र ३१२ ३२ ३१२ ३१२
**कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥१२॥**

पदार्थ—( कविम ) वेदो के कर्त्ता ( अग्निम् ) परमेश्वर की ( उपस्तुहि ) स्तुति कर ( सत्यधर्माणम् ) सत्यधर्मवाले या सत्य को धारण करने वाले ( अध्वरे ) यज्ञ मे ( देवम ) देव ( अमीवचातनम ) अज्ञान के निवारक ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे स्तोता मनुष्य ! तू प्रत्येक यज्ञ मे सर्वज्ञ सत्यधर्मा और अज्ञान निवारक परमेश्वर की स्तुति कर ॥ १२ ॥

३३—सिन्धुद्वीप । गायत्री । अग्नि ।

१ २३२३१२३१ २ ३१२ २उ ३१ २
**शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये । श योरभि स्रवन्तु न ॥१३॥**

पदार्थ—( शम ) कल्याणकारी ( न ) हमे ( देवी ) दिव्य ( अभिष्टये ) अभीष्ट की सिद्धि के लिए ( शम् ) कल्याणकारी ( न ) हम ( भवन्तु ) हो ( पीतये ) आनन्द की प्राप्ति के लिए ( शयो ) सुख की ( अभिस्रवन्तु ) वर्षा करें ( न ) हम पर ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी दिव्य विभूतिया हमारी इष्ट प्राप्ति के लिए हमे कल्याणकारी हो तथा आनन्द लाभ के लिए कल्याणकारी हो और हम पर सुख की सदा वृष्टि करें ॥ १३ ॥

३४—उशना । गायत्री । अग्नि ।

१ २ ३१ २र ३१ २ १२३१२३१२
**कस्य नून परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते । गोषाता यस्य ते गिर ॥१४॥**

पदार्थ—( कस्य ) किसकी ( नूनम् ) निश्चय ही ( परीणसि ) अधिकतर ( धिय ) बुद्धियो को ( जिन्वसि ) पूर्ण करता है ( सत्पते ) हे सज्जनो के पालक ( गोषाता ) वेदवाणी का भजन करने वाली ( यस्य ) जिसकी ( ते ) तेरी ( गिर ) वाणिया ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! तू किसकी बुद्धि को अधिकतर पूर्ण करता है ? उस पुरुष की जिसकी वाणियाँ वेदवाणियो से युक्त और तेरी स्तुति करने वाली हैं ॥ १४ ॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

३५—शयु । बृहती । अग्नि ।

३१२ ३१२३१२ ३१२
**यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।**

१२१२३१२ ३१२ ३२ ३१ २र
**प्र प्र वयममृत जातवेदस प्रियं मित्रन्न शसिषम् ॥१॥**

पदार्थ—( यज्ञायज्ञा ) प्रत्येक यज्ञ मे ( व ) तुम ( अग्नये ) ईश्वर की ( गिरागिरा ) अनेक स्तुतियो के द्वारा ( दक्षसे ) बल की प्राप्ति के लिए ( प्रप्र ) अत्यन्त उत्तम ढङ्ग से ( वयम् ) हम लोग ( अमृतम ) अमर ( जातवेदसम ) सर्वज्ञ ( प्रियम ) प्यारे ( मित्रन्न ) मित्र के समान ( शसिषम ) कीर्तन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हम लोग बल की प्राप्ति के लिए प्रत्येक यज्ञ मे अमर सर्वज्ञ और मित्र के समान प्यारे परमेश्वर की अनेक प्रकार की स्तुतियो से प्रशसा करते हैं ॥१॥

३६—भग । बृहती । अग्नि ।

३१ २ ३१२ ३१२३ १२
**पाहि नो अग्न एकया पाह्यूत द्वितीयया ।**

३२ ३२ ३१२ ३१ २३१२
**पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२॥**

पदार्थ—( पाहि ) रक्षा कर ( न ) हमारी ( अग्ने ) हे ईश्वर ( एकया ) पहली (ऋग्वाणी से ) ( पाहि ) रक्षा कर ( उत ) और ( द्वितीयया ) द्वितीय (यजु से) ( पाहि ) रक्षा कर ( गीर्भि ) वाणियों से ( तिसृभि ) तीन ( ऊर्जां पते ) हे ज्ञानो के स्वामी ( पाहि ) रक्षा कर ( चतसृभि ) चार वाणियो से (वसो) हे अन्तर्यामी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे बलो के स्वामी अन्तर्यामी परमेश्वर ! तू ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद रूप इन चार वाणियो से हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

३७—शयु । बृहती । अग्नि ।

३१ २ ३१ २ ३१ २ ३१ २
**बृहद्भिरग्ने अर्चिभि शुक्रेण देव शोचिषा ।**

२१ २ ३१ २ ३१ २
**भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत पावक दीदिहि ॥ ३ ॥**

पदार्थ—( बृहद्भि ) महान् ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( अर्चिभि ) तेजो से ( शुक्रेण ) शुद्ध ( देव ) हे दाता ( शोचिषा ) तेज के साथ ( भरद्वाजे ) पूर्ण ज्ञानी पर ( समिधान ) प्रकाशमान होता हुआ ( यविष्ठ्य ) हे बलवान् ( रेवत ) हे धनवान् ( पावक ) हे शोधक ( दीदिहि ) प्रकाश कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे बलवान् धनवान् पवित्रकर्त्ता परमदेव परमेश्वर ! तू पवित्र तेज से प्रकाशमान होता हुआ पूर्ण ज्ञानी पुरुष पर महान् तेजो से प्रकाश कर ॥३॥

३८—वसिष्ठ । बृहती । अग्नि ।

१ २ ३१ २ ३१ २
**त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियास सन्तु सूरय ।**

३ २ ३ २३१२ १ २ १ २र३ १ २
**यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्व दयन्त गोनाम ॥४ ॥**

पदार्थ—( त्वे ) तेरे ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( स्वाहुत ) हे उपास्य ( प्रियास ) प्रिय ( सन्तु ) हो ( सूरय ) विद्वान् जन ( यन्तार ) वशी ( ये ) जो ( मघवान ) यज्ञ करने वाले ( जनानाम् ) मनुष्यो के ( ऊर्वम् ) समूह पर ( दयन्त ) दया करते हैं ( गोनाम् ) गाय आदिको के ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे उपास्यदेव परमेश्वर ! जो यज्ञकर्त्ता और वशी विद्वान् मनुष्यों और गायो के समूह पर दया करते है वे तेरे प्रिय होते हैं ॥ ४ ॥

३९—भग । बृहती । अग्नि ।

२३१२ ३१ २ ३१ २ ३१ २
**अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षस ।**

१ २ ३१ २ ३२३१२३२
**अप्रोषिवान गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयु ॥ ५ ॥**

पदार्थ—( अग्ने ) हे ईश्वर ( जरित ) हे स्तुति के योग्य ( विश्पति ) प्रजा का पालक ( तपान ) तपाने वाला ( देव ) हे देव ( रक्षस ) दुष्ट को ( अप्रोषिवान ) सर्वदा विद्यमान ( गृहपते ) हे ससारगृह के स्वामी ( महान् ) महान् ( असि ) है ( दिवस्पायु ) द्युलोक का रक्षक ( दुरोणयु ) ससारगृह का निर्माता ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ससार गृह के स्वामी स्तुत्य परमेश्वर ! तू प्रजा का पालक, दुष्टो को तपाने वाला सर्वदा विद्यमान महान् द्युलोक का रक्षक तथा ससार गृह का निर्माता है ॥ ५ ॥

४०—प्रस्कण्व । बृहती । अग्नि ।

२३ १२ ३१२३१ २र
**अग्ने विवस्वदुषसश्चित्र राधो अमर्त्य ।**

२३१२ ३ २३२३१२३१२
**आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुध ॥ ६ ॥**

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( विवस्वत् ) विशेष सुखो का दाता ( उषस ) प्रात काल का ( चित्रम् ) अद्भुत ( राध ) धन स्फूर्तिरूप ( अमर्त्य )

हे अविनाशी ! ( आ दाशुषे ) भली भांति यजमान के लिए ( जातवेद ) हे सर्वज्ञ ! ( वह ) प्राप्त करा ( त्वम् ) तू ( अद्य ) आज ( देवान् ) मन के साथ सब इन्द्रियों में ( उषर्बुधः ) प्रातःकाल में जागने वाली शक्ति ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—हे सर्वज्ञ ! अविनाशी ! परमेश्वर ! आज तू यजमान की इन्द्रियों मे विशेष सुख देने वाली प्रातःकाल की स्फूर्ति प्रदान कर ॥ ६ ॥

*४१—शंयु । बृहती । अग्नि ।*

१ २ ३ २उ ३ २
**त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।**

१ १ १ १ २
**अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥**

**पदार्थ**—( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( चित्र ) अद्भुत ( ऊत्या ) रक्षा के साथ ( वसो ) हे घट घट वासी ( राधांसि ) धनों को ( चोदय ) प्राप्त करा ( अस्य ) इस ( रायः ) धन का ( त्वम् ) तू ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( रथीः ) अधिष्ठाता ( असि ) है ( विदाः ) प्राप्त करा ( गाधं ) उत्तम पद ( तुचे ) सन्तान के लिए ( तु ) भी ( नः ) हमारी ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—हे घट घट वासी परमेश्वर ! तू अद्भुत गुण कर्म और स्वभाव वाला है हमें धन प्राप्त करा । क्योंकि तू धन का अधिष्ठाता है । हे नाथ हमारी सन्तान भी उत्तम पद को प्राप्त करे ॥ ७ ॥

*४२—भर्ग । बृहती । अग्नि ।*

३ १ १
**त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।**

१ १ १
**त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८॥**

**पदार्थ**—( त्वमित् ) तू ही ( सप्रथाः ) [illegible] ( असि ) है ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( त्रातः ) हे रक्षक ( ऋतः ) [illegible] ( कविः ) [illegible] ( त्वाम् ) तुझे ( विप्रासः ) ज्ञानी ( समिधान ) [illegible] ( दीदिव ) हे तेजस्वी ( आ ) [illegible] ( विवासन्ति ) [illegible] ( वेधसः ) बुद्धिमान् ॥८॥

**भावार्थ**—हे सर्वरक्षक [illegible] परमेश्वर तू [illegible] कर्ता और [illegible] है । अत एव बुद्धिमान् [illegible] करते हैं ॥८॥

*४३—भर्ग । बृहती । अग्नि ।*

१ २ १ १ १
**आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।**

१ २ १ १
**रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥९॥**

**पदार्थ**—( आ ) भली भांति ( नः ) हमें ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( वयोवृधम् ) आयु बढ़ाने वाले ( रयिम् ) धन को ( पावक ) हे पतितपावन ! ( शंस्यम् ) प्रशंसनीय ( रास्वा ) दे ( च ) और ( नः ) हमारे ( उपमाते ) हे सृष्टिकर्ता ( पुरुस्पृहं ) बहुतों से चाहने योग्य ( सुनीती ) अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले ( सुयशस्तरम् ) यश का विस्तार करने वाले [यश बढ़ाने वाले] ॥९॥

**भावार्थ**—हे सृष्टिकर्ता पतितपावन परमेश्वर ! तू हमें हमारी अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले आयुवर्धक, प्रशंसा के योग्य यश बढ़ाने वाले और बहुतों से चाहने योग्य धन प्रदान कर ॥९॥

*४४—सोभरि । बृहती । अग्नि ।*

२३ ३ १ २ १ २ १ २
**यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।**

१ २ १ १ १ २ ३ १ २
**मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥**

**पदार्थ**—( यः ) जो ( विश्वा ) सारे ( वसु ) धनों को ( दयते ) देता है ( होता ) दाता ( मन्द्रः ) स्तुति योग्य ( जनानाम् ) लोगों के लिए ( मधोः ) मधु के ( न ) समान ( पात्रा ) पात्र ( प्रथमानि ) [illegible] ( अस्मै ) इस ( प्र ) उत्तम ( स्तोमाः ) स्तुति ( यन्तु ) [illegible] ( अग्नये ) परमेश्वर के लिए ॥१०॥

**भावार्थ**—दाता और पूजनीय [illegible] मधु से भरे पात्र के समान समस्त धनों का दाता है उस परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुतियाँ पहुँचें ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

*४५—वामदेव वसिष्ठो वा । [illegible] । अग्नि ।*

३ १ २ ३ १ २ १ २ १
**एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।**

३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २२ १
**प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥**

**पदार्थ**—( एना ) इस ( वः ) तुम लोगों के लिए ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( नमसा ) नमस्कार के द्वारा ( ऊर्जः ) बलों के ( नपातम् ) रक्षक ( आहुवे ) आराधना करता हूँ ( प्रियम् ) प्यारे ( चेतिष्ठम् ) चेतन ( अरतिं ) स्वामी ( स्वध्वरम् ) कल्याणकारी ( विश्वस्य ) सारे संसार के ( दूतम् ) दुःखनिवारक ( अमृतम् ) अमर ॥१॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! मैं तुम लोगों के लिए बलों के रक्षक चेतन, सब के स्वामी सारे संसार के दुःखनिवारक कल्याणकारी और अजर अमर प्यारे प्रभु की आराधना करता हूँ ॥१॥

*४६—भर्ग । बृहती । अग्नि ।*

२ १ २ ३२ २ १
**शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।**

१ २ २ १ २ ३ ३ १२
**अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥२॥**

**पदार्थ**—( शेषे ) विराजमान हो रहा है ( वनेषु ) जलों में ( मातृषु ) अन्तरिक्ष ( सं ) सम्यक् ( त्वा ) तुझे ( इन्धते ) प्रकाशित करते हैं । ( मर्तासः ) मनुष्य ( अतन्द्रः ) सावधान ( हव्यं ) भोग्य पदार्थ को ( वहसि ) प्राप्त कराता है ( हविष्कृतः ) यजमान के ( आदित् ) [illegible] ( देवेषु ) दिव्य शक्तियों में ( राजसि ) प्रकाशमान हो रहा है ॥२॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तू जलों और अन्तरिक्ष आदि में विराजमान है, मनुष्य तुझे अपने अन्दर प्रकाशित करते हैं तू समस्त दिव्य शक्तियों में प्रकाशमान हो रहा है और तू ही यजमान के भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराता है ॥२॥

*४७—सोभरि । बृहती । अग्नि ।*

१ १ १ १
**अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।**

१ १ १
**उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३॥**

**पदार्थ**—( अदर्शि ) [illegible] ( गातुवित्तमः ) [illegible] की भावना का ज्ञाता ( यस्मिन् ) जिसमें ( व्रतानि ) कर्म ( आदधुः ) धारण करते हैं ( उप ) समीप ( उ ) [illegible] ( सुजातम् ) सुप्रसिद्ध ( आर्यस्य ) [illegible] ( वर्धनम् ) उन्नति करने वाले ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( नक्षन्तु ) [illegible] ( नः ) हमारी ( गिरः ) स्तुतियां ॥३॥

**भावार्थ**—जिसमें आस्तिक जन [illegible] कर्मों का समर्पण करते हैं और जो भक्त की भावना को जानने वाला देखा जाता है उस [illegible] की उन्नति करने वाले सुप्रसिद्ध परमेश्वर को हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥३॥

*[illegible] । अग्नि ।*

१ १
**अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।**

१ २ १
**ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४॥**

**पदार्थ**—( अग्निः ) परमेश्वर ( उक्थे ) प्रशंसनीय ( पुरोहितः ) पुरोहित है ( ग्रावाणः ) वायुएं ( बर्हिः ) आसन है ( अध्वरे ) संसाररूपी यज्ञ में ( ऋचा ) वेद मन्त्र के द्वारा ( यामि ) याचना करता हूँ ( मरुतः ) [illegible] ( ब्रह्मणस्पते ) हे ब्रह्माण्ड के पालक ( देवाः ) [illegible] ( अवः ) रक्षा ( वरेण्यम् ) उत्तम ॥४॥

**भावार्थ**—इस प्रशंसनीय संसाररूपी यज्ञ में अग्नि पुरोहित है वायुएं आसन हैं और [illegible] — [illegible] हे ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! मैं तुम से रक्षा की याचना करता हूँ ॥४॥

*४९—सुनीति पुरुमीढो वा । बृहती । अग्नि ।*

१ १२ १२ १२
**अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।**

३१ २ १ १ २
**अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥५॥**

**पदार्थ**—( अग्निम् ) परमेश्वर की ( ईडिष्व ) स्तुति कर ( अवसे ) रक्षा के लिये ( गाथाभिः ) सामगानों के द्वारा ( शीरशोचिषम् ) व्यापक ज्योति वाले ( अग्निं ) परमेश्वर को ( राये ) सम्पत्ति के लिये ( पुरुमीढ ) हे धनवान् ( श्रुतं ) विख्यात ( नरः ) हे मनुष्यो ( अग्निं ) परमेश्वर ( सुदीतये ) दानी के लिये ( छर्दिः ) गृह के सदृश है ॥५॥

**भावार्थ**—हे धनवान् पुरुष ! अपनी रक्षा के लिये सामगानों के द्वारा व्यापक ज्योति वाले प्रभु की स्तुति कर और सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये भी उसी को स्मरण कर । हे मनुष्यो ! परमेश्वर ही दानी के लिये शरण है ॥५॥

*५०—प्रस्कण्व । बृहती । अग्नि ।*

१ २ २ १ २ ३ १२ २ १२
**श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।**

१ १ २ १ २ २ १ २ १ ३ २
**आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥६॥**

पदार्थ—( श्रुधि ) सुन ( श्रुत्कर्ण ) हे श्रवणशक्तियुक्त कानों वाले ( वह्निभि ) संसार का वहन करने वाला ( देवै ) दिव्यशक्तियों से ( अग्ने ) हे विद्वन् मनुष्य ( सयावभि ) गतिशील ( आसीदतु ) स्थित है ( बर्हिषि ) आकाश में ( मित्र ) सब का मित्र ( अर्यमा ) न्यायकारी ( प्रातर्यावभि ) प्रतिदिन कर्मयुक्त ( अध्वरे ) अप्रतिहत ।।६।।

भावार्थ—हे श्रवण शक्ति वाले पुरुष ! सुनो सब का मित्र न्यायकारी परमेश्वर प्रतिदिन संयोग वियोग करनेवाली धारक गतिशील दिव्य शक्तियों के साथ व्यापक आकाश में स्थित है ।।६।।

५१—सोभरि । बृहती । अग्नि ।

१ २र ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।

१२ ३ १ २ ३ १ २र १ २र ३ १ २

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।।७।।

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ढंग से ( दैवोदास ) दिव्यगुणों का दाता ( अग्नि ) परमेश्वर ( देव ) देव ( इन्द्र न ) विद्युत् के समान ( मज्मना ) सामर्थ्य से ( अनु ) व्याप्त होकर ( मातरं ) अन्तरिक्ष में ( पृथिवीं ) पृथिवी में ( विवावृते ) वर्त्तमान है ( तस्थौ ) स्थित है ( नाकस्य ) सुख के ( शर्मणि ) धाम में ।।७।।

भावार्थ—दिव्य गुणों का दाता परमात्मा अपनी सामर्थ्य से विद्युत् के समान पृथिवी और अन्तरिक्ष में व्यापक होकर विद्यमान है और वह परम मोक्षधाम में स्थित है ।।७।।

५२—मधातिथमेध्यातिथी । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।

३ १ २ २र ३ उ १ २

अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ।।८।।

पदार्थ—( अध ) नीचे ( ज्मः ) पृथिवी से ( अध ) नीचे ( वा ) अथवा ( दिवः ) द्युलोक से ( बृहतः ) महान् ( रोचनात् ) प्रकाशमान ( अधि ) ऊपर ( अया ) व्याप्त हो रहा ( वर्धस्व ) फैल रहा है ( तन्वा ) विस्तार ( गिरा ) वेदवाणी से ( मम ) मेरे ( जाता ) उत्पन्न पदार्थों को ( सुक्रतो ) उत्तम ज्ञान वाले ( पृण ) पालन करता है ।।८।।

भावार्थ—हे उत्तम ज्ञानवाले परमेश्वर ! तू पृथिवी के नीचे अथवा प्रकाशमान द्युलोक के नीचे अन्तरिक्ष और उसके ऊपर भी अपनी इस व्याप्ति के द्वारा फैला हुआ है। तू वेदवाणियों के द्वारा हमारे समस्त उत्तम पदार्थों की रक्षा करता है।।८।।

५३—विश्वामित्र । बृहती । अग्नि ।

१ २ उ ३ १ २र ३ १

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।

१ २र ३१ २ १ २ उ १ २

न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः ।।९।।

पदार्थ—( कायमान ) स्पष्टता करता हुआ ( वना ) जगत् के कारणों को ( यत ) जो ( त्वं ) तू ( मातॄ ) जगत् की माता ( अजगन् ) प्राप्त करता है ( अपः ) द्रव्यों को ( न ) नहीं ( तत् ) वह ( ते ) तेरा ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( प्रमृषे ) जानता हूँ ( निवर्तनं ) स्थानविशेष ( यत् ) क्योंकि ( दूरे सन् ) दूर रहता हुआ भी ( इह ) यहाँ ( आ भुवः ) विद्यमान है ।।९।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जगत् के कारण परमाणुओं को स्पष्ट करता हुआ तू जो जगत् का निर्माण करने वाले जल आदि द्रव्यों को बनाता है उस तुझ प्रभु की मैं अपने काय से निवर्तन अथवा स्थानविशेष नहीं समझता क्योंकि तू दूर होता हुआ भी समीप वर्त्तमान हो रहा है ।।९।।

५४—कण्व । बृहती । अग्नि ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।

३ २ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २ १ २

दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ।।१०।।

पदार्थ—( नि ) निश्चित ( त्वाम् ) तुझ ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( मनु ) ज्ञानी ( दधे ) धारण करता है ( ज्योति ) प्रकाश स्वरूप ( जनाय ) प्रजा के लिए ( शश्वते ) सनातन ( दीदेथ ) प्रकाश दिया है ( कण्वे ) मेधावी पुरुष में ( ऋतजात ) सत्य के साक्षात् होने वाले ( उक्षित ) महान् ( यम् ) जिसका ( नमस्यन्ति ) नमस्कार करते हैं ( कृष्टय ) मनुष्य ।।१०।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सनातन जीव के लिये प्रकाशस्वरूप तुझे ज्ञानी पुरुष निश्चित रूप से धारण करते हैं। जिसको मनुष्यमात्र नमस्कार करते हैं सत्य से जाना गया वह तू ज्ञानी में प्रकाश देता है ।।१०।।

卐 पाँचवीं दशती समाप्त 卐

५५—वसिष्ठ । बृहती । अग्नि ।

३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २

देवो वो द्रविणोदा पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ।।१।।

पदार्थ—( देव ) देव ( व ) तुम्हारी ( द्रविणोदा ) धनदाता ( पूर्णाम् ) भरी हुई ( विवष्टु ) चाहता है ( आसिचम् ) स्रुवा को ( उद्वा ) अथवा ( सिञ्चध्वम् ) सींचो ( उपवा ) अथवा ( पृणध्वम् ) तृप्त ( आदित् ) अनन्तर ( बाद में ) ( देव ) देव ( ओहते ) प्राप्त कराता है ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! धनदाता परमदेव परमेश्वर चाहता है कि तुम्हारी स्रुवा घी से पूर्ण रहा करे अर्थात् तुम लोग अग्नि को घी से सींचा अथवा तृप्त करो तो तुम्हारी उन्नति होगी ।।१।।

५६—कण्व । बृहती । ब्रह्मणस्पति ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २र २ १ २

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २

अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।।२।।

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( एतु ) प्राप्त हो ( ब्रह्मणस्पति ) वेदों का स्वामी ( प्र ) उत्तम ( देवी ) दिव्य ( सूनृता ) वाणी ( अच्छा ) भली भाँति ( वीरं ) पुत्र को ( नर्य ) मनुष्यमात्र के हित करने वाले ( पङ्क्तिराधस ) समुदाय की सिद्धि करने वाले ( देवा ) विद्वान् लोग ( यज्ञ ) व्यवहार को अथवा यज्ञ को ( नयन्तु ) प्राप्त करावें ।।२।।

भावार्थ—वेदों का स्वामी परमेश्वर हमें प्राप्त होवे दिव्यवाणी प्राप्त होवे विद्वान् जन मनुष्यमात्र के हितकारी पुत्र और समुदाय को सिद्धि करने वाले व्यवहार को हमें प्राप्त करावें ।।२।।

५७—कण्व । बृहती । अग्नि । यूपो वा ।

३ १ २ २ १

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।

२ १ २र १ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ।।३।।

पदार्थ—( ऊर्ध्व ) सर्वोपरि ( ऊ ) पादपूरक ( षु ) उत्तम ( न ) हमारी ( ऊतये ) रक्षा के लिये ( तिष्ठ ) वर्तमान रह ( देव न ) देव के समान ( सविता ) सूर्य ( ऊर्ध्व ) उपरिस्थित ( वाजस्य ) अन्न का ( सनिता ) दाता ( यत ) क्योंकि ( अञ्जिभि ) ज्ञानी ( वाघद्भि ) उपासकों के साथ ( विह्वयामहे ) आह्वान करते हैं ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अन्न का दाता और सर्वोपरि विराजमान है। हमारी रक्षा के लिये तू उपरिस्थित सूर्यदेव के समान सदा वर्त्तमान रह क्योंकि ज्ञानी उपासकों के साथ हम तुझे पुकारते हैं ।।३।।

५८—सोभरि । बृहती । अग्नि ।

उ ३ १ २ २ १ २ १

प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

२ १ २ १ १ २

स वीरं धत्त अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ।।४।।

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( य ) जो ( राये ) परमधन के लिये ( निनीषति ) प्राप्त करना चाहता है ( मर्त ) मनुष्य ( य ) जो ( ते ) तेरी सेवा में ( वसो ) हे सब को बसाने वाले ( दाशत ) अपने को समर्पण करता है। ( स ) वह ( वीरं ) वीर पुत्र ( धत्त ) प्राप्त करता है ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( उक्थशंसिनम् ) वेदों का वक्ता ( त्मना ) अपनी शक्ति से ( सहस्रपोषिणम् ) हजारों का पालन करने वाला है ।। ४ ।।

भावार्थ—हे सब को बसाने वाले परमेश्वर ! जो मनुष्य उत्तम धन की प्राप्ति के लिये तुझे प्राप्त करना चाहता है और जो तेरी शरण में अपने को समर्पण करता है वह वेदों के वक्ता तथा हजारों का पालन पोषण करने वाले वीर पुत्र को प्राप्त करता है ।।४।।

५९—कण्व । बृहती । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

अग्नि सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ।।५।।

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( व ) तुम्हारे ( यह्वं ) महान् ( पुरूणाम् ) सब ( विशां ) प्रजाओं के ( देवयतीनाम् ) परमात्मदेव की उपासना करने वाली ( अग्निम् ) परमेश्वर का ( सूक्तेभि ) उत्तम प्रकार से कही हुई ( वचोभि ) वेदवाणियों से ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( य ) जिस को ( स ) सम्यक

( इत् ) ही ( अन्य ) दूसरे ज्ञानी लोग ( इन्धते ) हृदय मे प्रकाशित करते है ।। ५ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम देवोपासक प्रजाओं के महान् प्रभु परमेश्वर की हम अच्छी प्रकार कही गई वेदवाणी से प्रार्थना करते हैं उसी को दूसरे ज्ञानी जन भी हृदय मे ध्यान करत हैं ।।५।।

६०—उत्कील श्रुतकीलो वा । बृहती । अग्नि ।

१२३२ ३२३२३ १ २र

अयमग्नि सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।

३ १ २ ३२३ १२३१२ ३१२

राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ।।६।।

पदार्थ—( अयम् ) यह ( अग्निः ) परमेश्वर ( सुवीर्यस्य ) सुन्दर शक्ति का ( ईशे ) अधिष्ठाता है ( हि ) निश्चय ही ( सौभगस्य ) सुन्दर भाग्य का ( राय ) सारी सम्पदाओ का ( ईशे ) अधिष्ठाता है ( स्वपत्यस्य ) सुशील सन्तान का ( गोमत ) जितेन्द्रिय ( ईशे ) अधिष्ठाता है ( वृत्रहथानाम् ) अज्ञान दूर करनेवालों का ।।६।।

भावार्थ—यह परमेश्वर सुन्दर शक्ति सुन्दर भाग्य सारी सम्पदाएं जितेन्द्रिय सुशील सन्तान और अज्ञान दूर करनेवालो का अधिष्ठाता है ।।६।।

६१—वसिष्ठ । बृहती । अग्नि ।

१२ ३१२३ १ २र ३२

त्वमग्ने गृहपतिस्त्व होता नो अध्वरे ।

१ २र ३ १२३ २३ १२३ १२

त्व पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ।।७।।

पदार्थ—( त्व ) तू ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( गृहपति ) ब्रह्माण्ड का स्वामी ( त्वं ) तू ( होता ) होता ( न ) हमारे ( अध्वरे ) ससार यज्ञ मे ( त्व ) तू ( पोता ) पवित्र करनेवाला ( विश्ववार ) हे सब के वरणीय देव ( प्रचेता ) महान् ज्ञानी ( यक्षि ) सगति लगाता है ( यासि ) प्राप्त कराता है ( च ) और ( वार्यम् ) उत्तम धन को ।।७।।

भावार्थ—हे सब के वरणीय देव परमेश्वर ! ब्रह्माण्ड का स्वामी तू हमारे ससार यज्ञ का होता है पवित्रकर्ता और महान् ज्ञानी तू ही उत्तम धन अथवा गुणो की सगति और प्राप्ति कराता है ।।७।।

६२—विश्वामित्र । बृहती । अग्नि ।

१२ ३१ २र ३१२

सखायस्त्वा ववृमहे देव मर्तास ऊतये ।

३१ २र ३१२३१२ ३१२ ३१२

अपांनपात सुभग सुदसस सुप्रतूर्तिमनेहसम ।।८।।

पदार्थ—( सखाय ) परस्पर मित्र ( त्वा ) तेरी ( ववृमहे ) प्रार्थना करते हैं ( देव ) देव ( मर्तास ) मनुष्य ( ऊतये ) रक्षा के लिये ( अपांनपातं ) जल प्राणादि पदार्थों की रक्षा करनेवाले ( सुभगम् ) भगवान् ( सुदसस ) सुन्दर कर्मो वाले ( सुप्रतूर्तिम् ) तारनेवाले ( अनेहसम् ) पापो का नाश करनेवाले ।।८।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! परस्पर मित्र हम लोग अपनी रक्षा के लिये सुन्दर कर्मोंवाले सारे जल तथा प्राणादि पदार्थों के रक्षक तारने वाले, पापनाशक भगवान् और देवो के देव तेरी प्रार्थना करते हैं ।।८।।

卐 छठी दशती समाप्त 卐

६३—श्यावाश्ववामदेवौ । त्रिष्टुप् । अग्नि ।

१ २ ३१२ ३ १ २र ३१२

आ जुहोता हविषा मर्जयध्व नि होतार गृहपति दधिध्वम ।

१२३१ २र ३१२ ३१२ ३२ ३क २र

इडस्पदे नमसा रातहव्य सपर्यता यजत पस्त्यानाम् ।।१।।

पदार्थ—( आजुहोता ) भली प्रकार पुकारो ( हविषा ) ज्ञान से ( मर्जयध्वम् ) समझो ( नि ) निश्चित ( होतारम् ) दाता ( गृहपति ) ब्रह्माण्ड के पालक ( दधिध्वम् ) धारण करो ( इडस्पदे ) पूजा-मन्दिर में ( नमसा ) नमस्कार के द्वारा ( रातहव्यम् ) दातव्यदाता ( सपर्यत ) उपासना करो ( यजतम् ) सगतिकर्ता निर्माता ( पस्त्यानाम् ) शरीररूपी गृहो के ।।१।।

भावार्थ—हे उपासक लोगो ! उपासनागृह मे ब्रह्माण्ड रक्षक सब के दाता शरीरों के निर्माता दातव्य के देने वाले परमेश्वर को याद करो, आदर से धारण करो ज्ञान से समझो तथा उसकी उपासना करो ।।१।।

६४—उपस्तुत । जगती । अग्नि ।

१ २उ ३१२ ३२३२उ ३१ २३२३ १ २

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।

३ १ २र ३१२ ३२ ३१२ ३१ २र ३२ १२

अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत् सद्यो महि दूत्यां३चरन् ।।२।।

पदार्थ—( चित्र ) अद्भुत ( इत् ) ही ( शिशो ) प्रशसनीय ( तरुणस्य ) सर्वदा तरुण अजर ( वक्षथ ) शक्ति ( न ) नहीं ( य ) जो ( मातरौ ) माता पिता के ( अन्वेति ) पीछे चलता है ( धातवे ) धारण पोषण के लिये ( अनूधा ) दुग्धपान से रहित ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया है ( यत ) क्योकि ( अधाचित् ) निश्चय ही ( आववक्षत ) धारण करता है ( महि ) महान् ( दूत्य ) दूत कर्म को ( चरन् ) करता हुआ ।।२।।

भावार्थ—प्रशसनीय सदा तरुण ( अजर ) परमेश्वर की शक्ति अद्भुत है जो कि वह अपने भरण पोषण के लिये माता पिता की आवश्यकता नही रखता, क्योंकि वह दुग्धपान करनेवाला नहीं है। वह दूत कर्म को करता हुआ जो कुछ पैदा करता है उसको धारण भी करता है ।।२।।

६५—वृहदुक्थ । त्रिष्टुप् । अग्नि ।

३२ ३१२३१२३ १२३१२३ १२ ३१२

इद त एक पर ऊ त एक तृतीयेन ज्योतिषा स विशस्व ।

३१२ ३२ १२ ३२३१२ ३२३१२

सवेशनस्तन्वे३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ।।३।।

पदार्थ—( इदम् ) यह स्थूल शरीर ( ते ) तेरा ( एकम् ) एक शरीर है ( पर ) दूसरा ( उत ) भी ( एकम् ) एक कारणशरीर है ( तृतीयेन ) तीसरा ( ज्योतिषा ) ज्योति से ( संविशस्व ) सम्बन्ध कर ( संवेशन ) प्रवेश करनेवाला ( तन्वे ) शरीर के लिये ( चारु ) उत्तम ( एधि ) हो ( प्रिय ) प्यारे ( देवानाम् ) देवो के ( परमे ) उत्तम ( जनित्रे ) जन्म मे ।।३।।

भावार्थ—हे जीव ! तेरा यह एक प्रथम स्थूल शरीर है और दूसरा एक सूक्ष्म शरीर है तू विद्वानो का उत्तम जन्म पाने के लिए श्रेष्ठ बन तथा तीसरी ज्योति परमेश्वर के साथ सगति कर ।।३।।

६६—कुत्स । जगती । अग्नि ।

३२उ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२

इम स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव स महेमा मनीषया ।

३२उ ३१२ ३१ २र३१ २र ३१ २र

भद्रा हि न प्रमतिरस्य स सद्यग्ने सख्ये मा रिषाम वय तव ।।४।।

पदार्थ—( इम ) इस ( स्तोमम ) स्तोत्र को ( अर्हते ) पूज्य ( जातवेदसे ) सर्वज्ञ परमेश्वर के लिये ( रथमिव ) रमणीय वस्तु के समान अथवा रथ के समान ( संमहेम ) उच्चारण करते हैं ( मनीषया ) उत्तम बुद्धि से ( भद्रा ) कल्याण करने वाली ( हि ) निश्चय ही ( न ) हम पर ( प्रमति ) अनुग्रह बुद्धि ( अस्य ) इसका ( संसदि ) सभा मे ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( सख्ये ) मित्रता में ( मा ) नही ( रिषाम ) दुःखी हो ( वयम् ) हम ( तव ) तेरी ।।४।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम उत्तम बुद्धि से पूज्य और सर्वज्ञ परमेश्वर का रथ के समान सुखकारी स्तोत्र से आह्वान करें इस परमेश्वर की ज्ञान शक्ति सभा में हमारे लिये कल्याणकारी हो । हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता मे रहते हुए हम दुःखी न होवें ।।४।।

६७—भरद्वाज । त्रिष्टुप् । अग्नि ।

३१२ ३१ २३१२३ १२ २३२३उ ३२३२

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।

३२३ २३१२३ १२ ३२३१२ ३२

कवि सम्राजमतिथि जनानामासन्न पात्र जनयन्त देवा ।।५।।

पदार्थ—( मूर्धानम् ) धारक ( दिव ) द्युलोक का ( अरतिम् ) स्वामी ( पृथिव्या ) पथिवी का ( वैश्वानरम् ) मनुष्यमात्र का हितकारी ( ऋते ) सत्य में ( जातम् ) प्रसिद्ध वा स्थित ( अग्निम ) परमेश्वर को ( कविम् ) वेदकाव्य के कर्ता ( सम्राजम ) सम्राट ( अतिथिम् ) काल-बन्धन से रहित ( जनानाम् ) लोगों के ( आसन् ) मुख म ( न ) हमारे लिए ( पात्रम् ) रक्षक ( जनयन्त ) प्रकट करते हैं ( देवा ) विद्वान् लोग ।।५।।

भावार्थ—विद्वान् लोग द्युलोक के धारक, पथिवी के स्वामी, मनुष्यमात्र के हितकारी सत्य मे स्थित वेदों के कर्ता सबके सम्राट काल बन्धन रहित, हमारे रक्षक परमेश्वर को मुख में प्रकट करते हैं, अर्थात् उसकी स्तुति करते हैं ।।५।।

६८—भरद्वाज । त्रिष्टुप् । अग्नि ।

२उ ३ १ २र ३२३१२ ३२

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवा ।

१ ३१२ ३१२ ३१ २र३१२ ३१२

तं त्वा गिर सुष्टुतयो वाजयन्त्याजि न गिर्ववाहो जिग्युरश्वा ।।६।।

पदार्थ—( वि ) विविध प्रकार से ( त्वत् ) तुझसे ( आपो, न ) जलों के समान ( पर्वतस्य ) मेघ के ( पृष्ठात् ) उपरिभाग से ( उक्थेभि ) वेदमंत्रोंसहित ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( जनयन्त ) प्रादुर्भूत होते हैं ( देवा ) दिव्यशक्तियें ( तम् ) उस ( त्वा ) तुझे ( गिर ) स्तुतियाँ ( वाजयन्ति ) प्राप्त करती हैं ( आजिं ) संग्राम के ( न ) समान ( गिर्ववाह ) हे स्तुतियों के योग्य ( जिग्यु ) जीतते हैं ( अश्वा ) घोड़े ।।६।।

भावार्थ—हे स्तुतियों के योग्य परमेश्वर ! मेघ के पृष्ठ से जलों के समान जिस तुझ से मन्त्रों के साथ समस्त दिव्य शक्तियां पैदा होती हैं उस तुझ महान् को स्तुतियां उसी प्रकार प्राप्त होतीं और प्राप्त करातीं हैं जैसे कि घोड़े संग्राम को प्राप्त करते और जीतते हैं ॥६॥

६९—वामदेव । त्रिष्टुप् । अग्नि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २
आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥७॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( वः ) तुम लोग ( राजानम् ) राजा ( अध्वरस्य ) अन्तरिक्ष के ( रुद्रम् ) भयकर ( होतारम् ) दाता ( सत्ययजम् ) सत्य को प्राप्त कराने वाले ( रोदस्योः ) द्यु और पृथिवी के ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( पुरा ) पूर्व ( तनयित्नोः ) विद्युत् से ( अचित्तात् ) आकस्मिक ( हिरण्यरूपम् ) ज्योति स्वरूप ( अवसे ) रक्षा के लिए ( कृणुध्वम् ) करो ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्तरिक्ष, द्यु और पृथिवीलोक के राजा, दाता, सत्य को प्राप्त करने वाले ज्योति स्वरूप तथा आकस्मिक गिरने वाले विद्युत् से भी भयंकर परमेश्वर को अपनी रक्षा का निमित्त बनाओ ॥७॥

७०—वसिष्ठ । त्रिष्टुप् । अग्नि ।

३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र३ १ २
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥८॥

पदार्थ—( इन्धे ) प्रकाशित होता ( राजा ) तेजस्वी ( सम् ) सम्यक ( अर्यः ) स्वामी ( नमोभि ) नमस्कारो के द्वारा ( यस्य ) जिसका ( प्रतीकम् ) स्वरूप ( आहुतम ) परिपूर्ण है ( घृतेन ) प्रकाश से ( नर ) मनुष्य ( हव्येभि ) त्यागने योग्य पदार्थों के त्याग के द्वारा ( ईडते ) स्तुति करते हैं ( सबाध ) उपासक लोग ( आ ) भली भांति ( अग्नि ) परमेश्वर ( अग्रम ) पहले ( उषसाम ) उषाकाल के ( अशोचि ) प्रकाश करता है ॥८॥

भावार्थ—जिस का स्वरूप तेज से परिपूर्ण है सब का स्वामी तेजस्वी वह परमेश्वर नमस्कारो से प्रकाशित होता है । उपासक लोग त्याग से उस की स्तुति करते हैं । उषाओ के आगे वह ही प्रकाश कर रहा है ॥ ८ ॥

७१—त्रिशिरा । त्रिष्टुप । अग्नि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( केतुना ) ज्ञान से ( बृहता ) महान् ( याति ) व्यापक होता है ( अग्नि ) परमश्वर ( आ ) भलीभांति ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक को ( वृषभ ) मनोरथो को पूरा करनेवाला ( रोरवीति ) उपदेश करता है ( दिव ) द्युलोक के ( चित् ) ही ( अन्तात् ) पर्यन्त ( उपमाम ) समीप तक ( उदानट् ) व्यापता है ( अपामुपस्थे ) अन्तरिक्ष मे ( महिष ) महान् ( ववर्ध ) बढ़ा हुआ है ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनोरथों को पूरा करने वाला परमश्वर द्यु और पृथिवी लोक मे व्यापक हो रहा है, वह अपने महान् ज्ञान से सूर्य के विषय मे हमें उपदेश करता है । वह ही जलो के स्थान अन्तरिक्ष मे एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त होकर उससे परे भी बढ़ा हुआ है ॥ ९ ॥

७२—वसिष्ठ । त्रिपाद् विराड् गायत्री । अग्नि ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥

पदार्थ—( अग्निम् ) परमेश्वर को ( नरः ) मनुष्य ( दीधितिभि ) योग नियमों और विधानो से ( अरण्यो ) दो अरणियों में ( हस्तच्युतं ) हाथ के बल से उत्पन्न किये हुए ( जनयत ) प्रकट करते हैं ( प्रशस्तम् ) स्तुति के योग्य ( दूरेदृशम् ) दूरस्थ पदार्थों को भी देखनेवाले ( गृहपतिम् ) ब्रह्माण्ड गृह के स्वामी ( अथव्युम् ) कल्याणकारी ॥ १० ॥

भावार्थ—योग नियमों और विधानों से मनुष्य लोग अरणियों मे हाथ के बल से घिस कर उत्पन्न हुए अग्नि के समान दूर दूर के पदार्थों को भी देखने वाले ब्रह्माण्ड के स्वामी तथा कल्याणकारी परमेश्वर को आत्मा में प्रकट करते हैं ॥१०॥

सातवीं दशती समाप्त

७३—बुधगविष्ठिरौ । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

पदार्थ—( अबोधि ) जाना जाता है ( अग्निः ) परमेश्वर ( समिधा ) योग से ( जनानां ) योगी जनों के ( प्रति ) और ( धेनुम् ) किरण ( इव ) समान ( आयतीम् ) आती हुई ( उषासम ) प्रातःकाल के ( यह्वा ) महान् त्यागी मनुष्य के ( इव ) समान ( प्र ) उत्कृष्ट ( वयाम् ) सुख को ( उज्जिहाना ) छोड़ते हुए ( प्र ) उत्तम ( भानवः ) प्रकाश ( सस्रते ) फैला है ( नाकं ) परमानन्द पद में ( अच्छ ) भली भांति ॥ १ ॥

भावार्थ—उषाकाल में आती हुई प्रकाश रेखाओं को लोगों के समान ज्ञानी जन के योग से परमेश्वर जाना जाता है । लौकिक सुखों को त्यागते हुए महान् विरक्तो के समान उस का प्रकाश परमानन्द पद में फैला हुआ है ॥ १ ॥

७४—वत्सप्रिः । त्रिष्टुप् । अग्नि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥

पदार्थ—( प्रभूर्जयन्तम् ) पृथिवी का गति देने वाले ( महाम् ) महान् ( विपोधाम् ) ज्ञानियो के रक्षक ( मूरै ) मूर्खों से ( अमूर ) मूलरहित ( पुरां ) अज्ञान के गढ़ों का ( दर्माणम् ) ढाहने वाला ( नयन्तम् ) प्राप्त कराने वाला ( गीर्भि ) वेदवाणियों के द्वारा ( वना ) प्रशसनीय सुख को ( धियं ) ज्ञान को ( धा ) धारण कर ( हरिश्मश्रु ) तेजस्वी सूर्य के ( न ) समान ( वर्मणा ) रक्षा द्वारा ( धनर्चिम् ) धनों के स्वामी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू भूमि के चलाने वाले महान् बुद्धिमानों के रक्षक, मूर्खों के द्वारा न जानने योग्य मूलरहित वेद वाणी द्वारा ज्ञान और रक्षा द्वारा प्रशसनीय सुख को प्राप्त कराने वाले सूर्य के समान धनों के स्वामी परमश्वर को धारण कर ॥ २ ॥

७५—भरद्वाज । त्रिष्टुप् । पूषा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥३॥

पदार्थ—( शुक्र ) तेज ( ते ) तेरा ( अन्यद् ) अद्भुत है ( यजत ) रचना ( ते ) तेरी ( अन्यद् ) अद्भुत है । ( विषुरूपे ) भिन्नरूप वाले ( अहनी ) रात-दिन ( द्यौ इव ) सूर्य के समान ( असि ) है ( विश्वा ) सारी ( माया ) बुद्धियों की ( अवसि ) रक्षा करता है ( स्वधावन् ) हे प्रकृति के स्वामी ! ( भद्रा ) कल्याण करने वाला ( ते ) तेरा ( पूषन् ) हे पालक ! ( इह ) इस लोक में ( राति ) दान ( अस्तु ) है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे प्रकृति के स्वामी परमेश्वर ! तेरा तेज अद्भुत है तेरी रचना विचित्र है तेरी सृष्टि मे होने वाले दिनरात भिन्न रूप वाले हैं । तू सूर्य के समान है । तू सारे ज्ञानों की रक्षा करता है तेरा दान हमारे लिए कल्याणकारी है ॥ ३ ॥

७६—विश्वामित्र । त्रिष्टुप । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४॥

पदार्थ—( इडाम् ) पृथिवी को ( पुरुदंसं ) बहुत कर्मों को सिद्ध करनेवाली ( सनिम् ) दान को ( गो ) गाय का ( शश्वत्तमम् ) चिरकाल तक ( हवमानाय ) मन, वचन और कर्म से करने वाले उपासक के लिए ( साध ) सिद्ध कर [दे] ( स्यात् ) हो ( नः ) हमारा ( सूनु ) पुत्र और ( तनयः ) पौत्र ( विजावा ) वंश का विस्तार करने वाला ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( सा ) वह ( ते ) तेरी ( सुमतिः ) उत्तम बुद्धि ( भूतु ) हो ( अस्मे ) हमारे लिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मन, वचन और कर्म से उपासना करने वाले को, बहुत कर्मों को सिद्ध करने वाली पृथिवी और गाए बराबर दे । हे नाथ ! हमारे पुत्र और पौत्र वंश के विस्तार करने वाले हों । तेरी वह सुन्दर बुद्धि हमारे लिए हो ॥ ४ ॥

७७—वत्सप्रि । त्रिष्टुप । अग्नि ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २
प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २३ २
दधद्यो धायि सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५॥

**पदार्थ**—( **प्र** ) उत्तम ( **होता** ) दाता ( **जात** ) प्रसिद्ध ( **नभोवित** ) सुख प्राप्त कराने वाले ( **नृषदा** ) मनुष्यों में विराजमान (**सीदत्**) स्थित है (**अर्वाविवर्त**) आकाश में ( **दधत्** ) धारण करता है ( **य** ) जो ( **धायि** ) पालक ( **सुते** ) उत्पन्न जगत् में ( **वयांसि** ) अन्नों का ( **यन्ता** ) नियम में रखने वाला ( **वसूनि** ) धनों को ( **विधते** ) दे ( **तनूपा** ) शरीर का रक्षक ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—दाता प्रसिद्ध महान् सुखों का प्राप्त कराने वाला मनुष्यों में विराजमान जो परमेश्वर आकाश में स्थित तथा संसार में समस्त अन्नादि पदार्थों को धारण करता है, वह हमारे शरीरों का रक्षक सब का पालक परमनियामक प्रभु हमें धनादि दे ॥५॥

*७८—वसिष्ठ । त्रिष्टुप । अग्नि ।*

३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।**

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारावन्दमाना विवष्टु ॥६॥**

**पदार्थ**—( **प्र** ) उत्तम ( **सम्राजम** ) स्वामी ( **असुरस्य** ) प्राण और मेघ के ( **प्रशस्तम्** ) प्रशंसनीय ( **पुंसः** ) पुरुष के ( **कृष्टीनां** ) मनुष्यों में ( **अनुमाद्यस्य** ) प्रशंसनीय (**इन्द्रस्य** ) विद्युत् के ( **इव** ) समान ( **प्र** ) उत्तम ( **तवसः** ) महान् ( **कृतानि** ) कर्मों की ( **वन्दे** ) सराहता है ( **दारा** ) कामना के योग्य (**वन्दमाना**) स्तुति किया गया (**विवष्टु** ) कामना करे ॥६॥

**भावार्थ**—हे मनुष्य ! मेघ और प्राण के स्वामी, प्रशस्त परमेश्वर की कामना कर । वन्दनीय और वरणीय वह मनुष्यों में प्रशंसनीय विद्युत् के समान तेजस्वी पुरुष के कर्मों की सराहना करता है ॥६॥

*७९—विश्वामित्र । त्रिष्टुप् । अग्नि ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २

**अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।**

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २२ ३ २

**दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥७॥**

**पदार्थ**—( **अरण्यो** ) आत्मा और प्रणव में ( **निहित** ) निहित है (**जातवेदा** ) सर्वज्ञ ( **गर्भ इव** ) गर्भ के समान ( **सुभृत** ) सावधानी से धारण किया हुआ ( **गर्भिणीभि** ) गर्भिणी स्त्री के द्वारा । ( **दिवेदिवे**) प्रतिदिन ( **ईड्य** ) स्तुति के योग्य ( **जागृवद्भि** ) सावधान ( **हविष्मद्भि** ) उपासक ( **मनुष्यभि** ) मनुष्यों से ( **अग्नि** ) परमेश्वर ॥७॥

**भावार्थ**—गर्भिणी स्त्री के द्वारा सावधानी से सुरक्षित गर्भ के समान आत्मा और प्रणव में स्थित सर्वज्ञ परमेश्वर सावधान और साधन सम्पन्न योगी जनों के द्वारा प्रतिदिन उपासना करने के योग्य है ॥७॥

*८०—पायु । त्रिष्टुप् । अग्नि ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।**

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥**

**पदार्थ**—( **सनात** ) सदा ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ! ( **मृणसि**) दूर करता है ( **यातुधानान** ) राक्षसी विचारों को ( **न** ) नहीं ( **त्वा** ) तुझे ( **रक्षांसि** ) बुरे विचार वाले ( **पृतनासु** ) संग्रामों में ( **जिग्यु** ) जीत सकते हैं । ( **अनुदह** ) नाश कर (**सहमूरान्**) सहज मूर्खों की मूर्खता को ( **कयाद** ) पापीनाश ( **मा** ) नहीं (**ते**) तेरे ( **हेत्या** ) दण्ड से ( **मुक्षत** ) मुक्त हो ( **दैव्याया** ) दिव्य ॥८॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तू सदा राक्षसी विचारों को दूर करता है तुझे बुरे विचार वाले लोग संग्राम में नहीं जीत सकते तू सहज मूर्खता के भावों को और पापियों को दण्ड देता है, वे तेरी दिव्य दण्ड नीति से नहीं बचते ॥८॥

卐 अष्टमी दशती समाप्त 卐

*८१—गय । अनुष्टप् । अग्नि ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।**

१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम ॥१॥**

**पदार्थ**—( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ! अति बलदायक ( **आभर** ) प्रदानकर ( **द्युम्नम्** ) यश और सम्पदायें (**अस्मभ्यम्** ) हम ( **अध्रिगो** ) हे सर्वव्यापक ( **प्र** ) उत्तम ( **न** ) हमारे ( **राये** ) धन का ( **पनीयसे** ) प्रशंसनीय (**रत्सि**) दे (**वाजाय** ) ज्ञान का (**पन्थाम्**) मार्ग ॥१॥

**भावार्थ**—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! हमें अतिबलशाली धन और यश प्रदान कर । तू प्रशंसनीय धन और ज्ञान का मार्ग हमें दिखा ॥१॥

*८२—वामदेव । अनुष्टुप् । अग्नि ।*

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।**

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १

**आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥२॥**

**पदार्थ**—( **यदि** ) अगर ( **वीर** ) शरीरात्मबल से युक्त ( **अनुष्यात्** ) अनुभव करे ( **अग्नि** ) परमेश्वर का ( **इन्धीत**) ध्यान करे (**मर्त्य** ) मनुष्य (**आजुह्वत्**) अग्निहोत्र करे ( **हव्यम्** ) उत्तम सामग्री का ( **आनुषक** ) निरन्तर ( बराबर ) ( **शर्म**) कल्याण का ( **भक्षीत** ) भाग करे ( **दैव्यम्** ) दैवी ॥२॥

**भावार्थ**—यदि उपासक मनुष्य परमेश्वर का अनुभव और ध्यान तथा यज्ञ कर्म करता तो वह उत्तम सुख का भाग करे ॥२॥

*८३—भरद्वाज । अनुष्टुप । अग्नि ।*

३ १ २ ३ १ ३ २उ ३१ २र

**त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः ।**

२ ३ ३उ २ २उ २ १ २ ३ १ २

**सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३॥**

**पदार्थ**—( **त्वेष** ) प्रकाश ( **ते** ) तेरा ( **धूम** ) धूआँ के समान (**ऋण्वति**) व्यापक होता है ( **दिवि** ) द्युलोक में ( **सम्** ) भली प्रकार ( **शुक्र** ) शुद्ध (**आतत** ) विस्तृत ( **सूर न**) सूर्य के समान ( **हि** ) निश्चित ( **द्युता** ) प्रकाश से ( **त्वं** ) तू ( **कृपा** ) सामर्थ्य से ( **पावक** ) हे पतितपावन ( **रोचसे** ) प्रकाशित हो रहा है ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—हे पतित पावन परमेश्वर ! शुद्ध और विस्तृत तेरा प्रकाश द्युलोक में धूएँ के समान व्यापक है । हे प्रभो ! निश्चय ही अपने तेज से सूर्य के समान स्तुतियों से तेरा प्रकाश होता है ॥३॥

*८४—भरद्वाज । अनुष्टप । अग्नि ।*

१ २र३१ २र ३ १ २र

**त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।**

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

**त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥४॥**

**पदार्थ**—( **त्वं** ) तू ( **हि** ) निश्चय (**क्षैतवत**) पृथिवी पर होने वाले (**यश** ) यश का ( **अग्ने** ) हे परमेश्वर ( **मित्र न** ) सूर्य के समान ( **पत्यसे** ) प्रदान करता है ( **त्वं** ) तू (**विचर्षणे**) हे सब के साक्षी ( **श्रव** ) अन्न का ( **वसो** ) हे सब के बसाने वाले ( **पुष्टिम् न**) बल के समान ( **पुष्यसि** ) पुष्ट करता है ॥४॥

**भावार्थ**—हे सर्वसाक्षी अशरणशरण परमेश्वर ! तू सूर्य के समान हमें पृथिवीस्थ यश को प्रदान करता है तथा बलदायक पदार्थ के समान हमारे लिये अन्नों को पुष्ट करता है ॥४॥

*८५—मरुद्वाह । अनुष्टप् । अग्नि ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।**

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

**विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥५॥**

**पदार्थ**—( **प्रात** ) प्रातःकाल ( **अग्नि** ) परमेश्वर ( **पुरुप्रिय** ) सर्वप्रिय ( **विश** ) प्रजायें ( **स्तवेत**) स्तुति की जाती है ( **अतिथि** ) काल के बन्धन से रहित ( **विश्वे** ) सारे ( **यस्मिन्** ) जिसमें ( **अमर्त्ये** ) अमर ( **हव्यम्** ) भक्ति को ( **मर्तास** ) मनुष्य ( **इन्धते** ) प्रकाशित करते हैं ॥५॥

**भावार्थ**—सारी मनुष्य प्रजायें जिसमें अपनी भक्ति को प्रकाशित करती हैं उसी सर्वप्रिय पूजनीय काल बन्धन रहित परमेश्वर की प्रातः वेला में स्तुति की जाती है ॥५॥

*८६—वामदेव । अनुष्टुप् । अग्नि ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३१ २

**यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।**

१२ ३ २ २ २उ ३ १ २

**महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥६॥**

**पदार्थ**—( **यत** ) जो ( **वाहिष्ठम्** ) अत्यन्त निर्वाह की साधनभूत ( **तत्** ) वह ( **अग्नये** ) परमेश्वर के लिये ( **बृहत्** ) महान् ( **अर्च** ) समर्पित कर ( **विभावसो** ) हे ज्ञान धन भक्त ( **महिषीव** ) पृथिवी के समान ( **त्वद्रयि** ) तुम्हारे धन ( **त्वद्वाजा** ) तुम्हारे अन्नों को ( **उदीरते**) प्राप्त कराता है ॥६॥

**भावार्थ**—हे ज्ञानप्रकाशयुक्त भक्त ! तू अपने निर्वाह की साधनभूत महान् वस्तु को भी परमेश्वर में समर्पित कर । वह पृथिवी के समान तुम्हारे धन और अन्नों को प्राप्त कराता है ॥६॥

८७—सौपवनः । अनुष्टुप् । अग्नि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७॥

पदार्थ—( विशो विशः ) समस्त मनुष्य प्रजाओं के ( वः ) तुम लोग ( अतिथिम् ) पूजनीय ( वाजयन्तः ) अन्न और ज्ञान की इच्छा करते हुए ( पुरुप्रियं ) सर्व प्रिय ( अग्निं ) परमेश्वर की ( वः ) अपने ( दुर्यं ) धाम ( वचः ) वाणी से ( स्तुषे ) स्तुति करता हूँ ( शूषस्य ) सुख के ( मन्मभिः ) मननों द्वारा ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्न तथा ज्ञान की इच्छा करते हुए सब प्रजाओं के पूजनीय तुम्हारे सुख के धाम परमेश्वर की मननों द्वारा स्तुति करो । मैं भी उसकी स्तुति करता हूँ ॥७॥

८८—पुरुः । अनुष्टुप् । अग्नि ।

१२उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ २
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥८॥

पदार्थ—( बृहत् ) अधिक ( वयः ) अवस्था ( हि ) निश्चय ही ( भानवे ) प्रकाश स्वरूप ( अर्च ) समर्पण कर ( देवाय ) देव ( अग्नय ) परमेश्वर के लिए ( यम् ) जिसको ( मित्रम् ) मित्र के समान ( प्रशस्तये ) स्तुति के द्वारा ( मर्तासः ) मनुष्य ( दधिरे ) धारण और ध्यान करते हैं ( पुरः ) आगे [प्रथम] ॥८॥

भावार्थ—हे उपासक ! तू उस प्रकाशस्वरूप परमदेव में अपने जीवन के बड़े भाग को समर्पण कर जिसको प्रियमित्र के समान मनुष्य लोग स्तुति करने के लिये अपने समक्ष करते हैं ॥८॥

८९—सौपवन । अनुष्टुप् । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
य स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥९॥

पदार्थ—( अगन्म ) प्राप्त करें ( वृत्रहन्तमम् ) अज्ञान के अत्यन्त नाशक ( ज्येष्ठ ) श्रेष्ठ ( अग्निं ) परमेश्वर को ( आनवम् ) मनुष्यों के कल्याणकारी ( यः ) जो ( स्म ) पादपूरक ( श्रुतर्वन् ) प्रसिद्ध अग्नि में ( आर्क्षे ) नक्षत्रसम्बन्धी ( बृहदनीके ) महान् तेज समूह में ( इध्यते ) प्रकाश कर रहा है ॥९॥

भावार्थ—जो अग्नि और नक्षत्र सम्बन्धी महान् तेज-समूह में प्रकाश कर रहा है उस अज्ञाननाशक मनुष्य मात्र के कल्याणकारी महान प्रभु को हम प्राप्त करें ॥९॥

९०—वामदेव, कश्यपो मनुर्वा उभौ वा । अनुष्टुप । अग्नि ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥

पदार्थ—( जातः ) जनक ( परेण ) परम सूक्ष्म ( धर्मणा ) धर्म से ( यत् ) जिस कारण से ( सवृद्भिः ) सहवर्तिनी शक्तियों से ( अभुवः ) विद्यमान है ( पिता ) पिता ( कश्यपस्य ) ज्ञानी मनुष्य का ( अग्नि ) परमेश्वर ( श्रद्धा ) सत्य का धारक ( कविः ) कवि ( माता ) माता ( मनु ) ज्ञानी ॥१०॥

भावार्थ—क्योंकि परमेश्वर सूक्ष्म गतियों से सबका उत्पादक होकर अपनी सहवर्तिनी शक्तियों के साथ विद्यमान है और ज्ञानी पुरुष का पिता है, अतः वही सत्य का धारक कवि ज्ञानी और सबकी माता है ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

९१—अग्नि । अनुष्टुप् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—( सोमं ) सृष्टिकर्त्ता ( राजानम् ) प्रकाशस्वरूप ( वरुणम् ) सर्व श्रेष्ठ ( अग्निम् ) परमेश्वर का ( अन्वारभामहे ) स्तुति करता हूँ ( आदित्यम् ) अविनाशी ( विष्णुम् ) व्यापक ( सूर्यम् ) सबको प्रेरणा करने वाले ( ब्रह्माणम् ) महान् ( च ) और ( बृहस्पतिम् ) वेदों के स्वामी ॥१॥

भावार्थ—सृष्टि-कर्त्ता प्रकाश स्वरूप सब के पूज्य अविनाशी, व्यापक सब को प्रेरणा करने वाले महान् और वेदों के स्वामी परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ॥१॥

अथवा

सोम, राजा, वरुण आदित्य विष्णु, सूर्य ब्रह्मा और बृहस्पति नामों वाले उस परमेश्वर को ही हम आरम्भ में स्मरण करते हैं ॥१॥

९२—वामदेव । अनुष्टुप् । अग्नि ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २र
हस्त एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र भूर्जयो यथा पथो द्यामङ्गिरसो ययुः ॥२॥

पदार्थ—( इत ) यहां से ( एते ) ये ( उदारुहन् ) ऊर्ध्व गति पाते हैं ( दिवः ) द्युलोक के ( पृष्ठानि ) स्थानों को ( आरुहन् ) आरूढ होते हैं ( प्र ) उत्तम ( भूर्जयः ) पृथ्वी का जेता ( यथा ) जैसे ( पथः ) उत्तम मार्ग से ( द्याम् ) द्युलोक को ( अङ्गिरसः ) ज्ञानी लोग ( ययुः ) जाते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार पृथ्वी पर विजय करने वाला राजा उत्तममार्ग से ( विज्ञानादि के द्वारा ) आकाशपृष्ठ पर आरूढ हो जाता है, उसी प्रकार ये ज्ञानी जन इस लोक से अपने उत्तम कर्मों द्वारा सौर्यायणी आदि दशाओं को जाते हैं, और मोक्षयोग कर्म से उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥२॥

९३—वामदेव । अनुष्टुप । अग्नि ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

पदार्थ—( राये ) धन के लिए ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( महे ) महान् ( त्वा ) तुझ को ( दानाय ) दान के लिए ( समिधीमहि ) ध्यान में लाते हैं, ( ईडिष्व ) ऐश्वर्य युक्त कर ( हि ) निश्चय ( महे ) महान् ( वृषन् ) हे मनोरथों के सफल करने वाले ( द्यावा ) द्यु और पृथ्वी ( होत्राय ) यज्ञ के लिए ( पृथ्वी ) विस्तृत ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! महान् धन को प्राप्त करने के लिए हम तुझे ध्यान में लाते हैं । हे सुखों के वर्षक प्रभो ! तू महान् यज्ञ कर्म के लिए विस्तृत द्यु और पृथिवी लोक को ऐश्वर्ययुक्त कर ॥३॥

९४—सौमाहुति । अनुष्टुप । अग्नि ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४॥

पदार्थ—( दधन्वे ) धारण करता है ( वा ) निश्चित ही ( यत् ) जो ( ईम् ) इसको ( अनु ) लक्ष्यकर ( वोचत ) कहता है ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) इस प्रकार ( वेः ) जानता है ( उ ) पादपूर्ति कर ( तत् ) सो ( परि ) सब प्रकार से ( विश्वानि ) सारे ( काव्या ) वेदों का ( नेमि ) हाल ( चक्रमिव ) चक्के के समान ( आभुवत् ) व्यापता है ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस परमेश्वर को धारण करता अथवा 'यह ब्रह्म है' ऐसा उपदेश करता है या भली भाँति जानता है, वह उसको तथा सारे वेदों को चक्र-नेमि के समान अपने अधीन रखता है ॥४॥

९५—पायु । अनुष्टुप । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३क २र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम् ॥५॥

पदार्थ—( प्रति ) सम्मुख ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( हरसा ) अपने तेज से ( हरः ) तेज को ( शृणाहि ) नाश कर ( विश्वतस्परि ) सब प्रकार से ( यातुधानस्य ) दुःखदायी ( रक्षसः ) रोग के ( बलम् ) बल का ( न्युब्ज ) क्षीण कर ( वीर्यम् ) शक्ति को ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने तेज से दुःखदायी रोग के तेज का सब प्रकार से संहार कर तथा उसकी शक्ति और सामर्थ्य का भी भङ्ग कर ॥५॥

९६—प्रस्कण्व । अनुष्टुप । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २
त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥६॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( वसून् ) आठ वसुओं की ( इह ) इस संसार में ( रुद्रान् ) ग्यारह रुद्रों की ( उत ) और ( यज ) संगति लगाता है ( आदित्यान् ) बारह आदित्यों ( स्वध्वरम् ) यज्ञकर्ता ( जनम् ) मनुष्य ( मनुजातम् ) विज्ञान से उत्पन्न ( घृतप्रुषम् ) तेज से युक्त ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ८ वसुओं, ११ रुद्रों और १२ आदित्यों की यथायोग्य संगति लगाता है और तू ही यज्ञकर्त्ता विद्वान् से उत्पन्न तथा तेज से पूर्ण मनुष्य वर्ग को हमें प्रदान करता है ॥९॥

## 卐 दशमी दशती समाप्त 卐

९७—दीर्घतमा । उष्णिक् । अग्निः ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुरु त्वा दाशिवां वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३ १ २ ३२उ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१॥

पदार्थ—(पुरु) पूर्ण (त्वा) तेरी (दाशिवान्) समर्पण करने वाला (वोचे) स्तुति करता हूँ (अरि) स्वामी (अग्ने) हे परमेश्वर (तव, स्वित्) तेरी ही (तोदस्य) कूप के (इव) समान (शरणे) शरण में (आ) भली भांति (महस्य) महान् ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू सबका स्वामी है। अतः पूर्णतया आत्मसमर्पण करने वाला मैं महान् कूप के सदृश तुझ प्रभु की शरण में स्थित होकर तुझे पुकारता हूँ ।१।

९८—विश्वामित्र । उष्णिक । अग्नि ।

१ २उ ३ २उ ३ १ २ ३२
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १२
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (होत्रे) सुखदाता (पूर्व्यं) सनातन (वच) मन्त्ररूप वचनों को (अग्नये) परमेश्वर के लिये (भरता) उच्चारण करो (बृहत्) महान् या बृहत् सामरूप भी (विपाम्) ज्ञानी पुरुषों के (ज्योतींषि) तेजों को (बिभ्रते) धारण करने वाले (वेधसे) विद्वान् के (न) समान ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वेदपाठियों के तेज को धारण करने वाले विद्वान् के समान सब सुखों के दाता परमेश्वर की सनातन वेद वचन से स्तुति करो ॥२॥

९९—विश्वामित्र । उष्णिक । अग्नि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशान सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रव ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी विद्वान् पुरुष (वाजस्य) अन्न बल और ज्ञान का (गोमत) गौ आदि पशुओं से युक्त (ईशान) स्वामी (सहसो यहो) हे साहसी के पुत्र ! (अस्मे) हमें (देहि) दे (जातवेद) हे विज्ञान के जानने वाले (महि) महान् उत्तम (श्रव) यश ॥३॥

भावार्थ—हे पराक्रमशील मनुष्य के पुत्र विज्ञानी पुरुष ! तू गौ आदि पशुओं से युक्त धन का स्वामी है। तू हमें विद्या का श्रवण करा ॥३॥

१००—विश्वामित्र । उष्णिक । अग्नि ।

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३१ २
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिध ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (यजिष्ठ) अत्यन्त पूजनीय (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ में (देवयते) उत्तम गुण चाहने वाले यजमान के लिए (देवान्) उत्तम विद्वान् पुरुषों को (यज) प्रदान कर या दे (होता) कर्मफल दाता (मन्द्र) स्तुति के योग्य (विराजसि) विराजमान है (अति) दबा कर (स्रिध) दुःखदायी भावों को ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अत्यन्त पूजनीय कर्म-फल-दाता और स्तुति के योग्य तथा दुःखदायी भावों को दबाकर सदा विराजमान है। तू कल्याणकारी यज्ञ में यजमान के लिए उत्तम विद्वानों को प्राप्त करा ॥४॥

१०१—त्रित । उष्णिक । सोम ।

३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २२ ३ २
जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अयं ध्रुवो रयीणाञ्चिकेतदा ॥५॥

पदार्थ—(जज्ञान) जानता हुआ (सप्तमातृभिः) सात छन्द या स्वरों से उत्पन्न मन्त्र अथवा गान से (मेधाम्) धारण करने वाली बुद्धि की (आशासत) याचना करता है (श्रिये) सम्पदा के लिए (अयम्) यह परमेश्वर (ध्रुवः) नित्य अविनाशी (रयीणाम्) सम्पदाओं को (चिकेतत्) ज्ञान करावे ॥ ५ ॥

भावार्थ—नित्य अविनाशी परमेश्वर सम्पदायें प्राप्त करावें ऐसा जानता हुआ मनुष्य धन के लिए सात स्वरों और छन्दों से बने सामगान और मन्त्रों द्वारा उत्तम बुद्धि की याचना करता है ॥ ५ ॥

१०२—इरिमिठि । उष्णिक । अदितिः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
१ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सा शन्ताता मयस्करदप स्रिध ॥६॥

पदार्थ—(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (दिवा) दिन में (मति) ज्ञान करने के योग्य (अदितिः) परमेश्वर (ऊत्या) हमारी रक्षा के साधन के साथ (आगमत्) हमें प्राप्त हो (सा) वह (शन्ताता) शान्तिदायक (मय करत्) सुखकारक (अप) दूर करे (स्रिधः) बुराइयाँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जानने योग्य वह परमेश्वर हमारे रक्षा के साधनों के साथ दिव्य गुणों सहित हमें प्राप्त हो। शान्ति का दाता सुखकारी वह हमारी बुराइयाँ दूर करे ॥ ६ ॥

१०३—विश्वमना । उष्णिक् । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
ईडिष्वा हि प्रतीव्यां३ यजस्व जातवेदसम् ।
३ १ २ ३ १ २
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥७॥

पदार्थ—(ईडिष्व) स्तुति कर (हि) निश्चय ही (प्रतीव्यम्) सब के भीतर और बाहर विद्यमान (यजस्व) पूजा कर (जातवेदसम्) सर्वज्ञ की (चरिष्णुधूमम्) धूआ निकलने वाले और (अगृभीतशोचिषम्) नहीं ग्रहण कर सकने के योग्य तेज वाले अग्नि के समान परमेश्वर की ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे जीव ! धूमयुक्त प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ और सब व्यापक परमेश्वर की स्तुति और पूजा कर ॥ ७ ॥

१०४—विश्वमना । उष्णिक । अग्निः ।

१ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥८॥

पदार्थ—(न) नहीं (तस्य) उसका (मायया) छल से (चन) भी (रिपु) शत्रु (ईशीत) कुछ बिगाड़ सकता है (मर्त्यः) मनुष्य (यः) जो (अग्नये) परमेश्वर की शरण में (ददाश) अपने को समर्पित करता है (हव्यदातये) कर्मफलदाता ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो पुरुष कर्मफल-दाता परमेश्वर की शरण में अपने आपको समर्पित करता है उसका मनुष्य शत्रु कुछ नहीं बिगाड़ सकता है ॥ ८ ॥

१०५—भरद्वाज । उष्णिक । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २२
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
१ २ ३ २ ३ २
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥९॥

पदार्थ—(अप) दूर कर (त्यम्) उस (वृजिनं) पापी को (रिपुम्) शत्रु (स्तेनम्) चोर (दुराध्यम्) दुःखदायी (दविष्ठम्) दूर (अस्य) अपा (सत्पते) हे सज्जनों के पालक (कृधी) कर (सुगम्) उत्तममार्ग पर चलने वाला ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! पापी, चोर और दुःख देने वाले शत्रु मनुष्य को हमसे परे कर। उत्तम मार्ग पर चलने वाला बना ॥ ९ ॥

१०६—विश्वमना । उष्णिक् । अग्नि ।

३क २२ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥

पदार्थ—(श्रुष्टि) शीघ्र (अग्ने) हे परमेश्वर (नवस्य) नवीन (मे) मेरी (स्तोमस्य) स्तुति को (वीर) हे शक्तिमान् (विश्पते) हे सर्वरक्षक (नि) जड़ से (मायिन) छली कपटी (तपसा) अपने तेज से (रक्षसः) मायामय विचारों को (दह) भस्म कर ॥ १० ॥

भावार्थ—हे सर्वरक्षक और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! तू मेरा नवीन स्तोत्र आदि सामगान शीघ्र सुन, तथा अपने तेज से मायावी लोगों के बुरे विचारों को भस्म कर ॥ १० ॥

## 卐 एकादशी दशती समाप्त 卐

१०७—प्रयोग । ककुप् । अग्नि ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।

३ १ २ ३ १ २

उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( मंहिष्ठाय ) सबसे अधिक दानी के लिए ( गायत ) गुण गान करो ( ऋताव्ने ) यज्ञों के स्वामी ( बृहते ) महान् ( शुक्रशोचिषे ) प्रकाश स्वरूप ( उपस्तुतासः ) हे उपासना करने वालो ! ( अग्नये ) परमेश्वर के लिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे उपासना करने वालो ! महान् दानी, यज्ञों के स्वामी और तेज-स्वरूप परमेश्वर के उत्तम गुणों का गान करो ॥ १ ॥

१०८—सोभरि । ककुप् । अग्नि ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सो अग्ने तवोतिभि सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभि ।

२ ३ २ ३ १ २र

यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( स ) वह ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( तव ) तेरी ( ऊतिभि ) रक्षाओं से ( सुवीराभि ) वीर सन्तान देनेवाली ( तरति ) उन्नति करता है ( वाजकर्मभि ) अन्न पैदा करने वाले ( यस्य ) जिसका ( त्वम् ) तू ( सख्यम् ) मित्रता ( आविथ ) प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिसको तेरी मित्रता प्राप्त होती है वह पुरुष अन्न पैदा करने वाली और सुन्दर वीर सन्तान देने वाली तेरी रक्षाओं से अपनी सब प्रकार की उन्नति करता है ॥ २ ॥

१०९—सोभरिः । ककुप् । अग्नि ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३॥

पदार्थ—( तम् ) उसकी ( गूर्धय ) पूजा कर ( स्वर्णरम् ) सबके नेता ( देवास ) विद्वान् पुरुष ( देवम् ) देव ( अरतिम ) सर्वज्ञ ( दधन्विरे ) धारण या ध्यान करते हैं । ( देवत्रा ) मनुष्यों को ( हव्यम् ) भोग्यवस्तु ( ऊहिषे ) तू देता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे जीव ! विद्वान् लोग जिस सर्वज्ञ देव का ध्यान करते हैं तू उस सब के नेता की पूजा कर । हे परमेश्वर ! तू मनुष्यों को भोग्य वस्तु देता है ॥३॥

११०—सोभरि । ककुप् । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २

मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्नि पुरुप्रशस्त एष ।

२ ३ १ २ ३ २

य सुहोता स्वध्वर ॥४॥

पदार्थ—( मा ) नहीं ( न ) हमारे ( हृणीथाः ) क्रोध करो ( अतिथिम् ) पूजनीय ( वसु ) सब का बसाने वाला ( अग्नि ) परमेश्वर ( पुरुप्रशस्त ) अत्यन्त प्रशंसनीय ( एष ) प्राप्त करने के योग्य ( य ) जो ( सुहोता ) दाता ( स्वध्वरः ) कल्याणकारी यज्ञों का स्वामी ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो परमेश्वर उत्तमदाता कल्याणकारी यज्ञों का स्वामी सब का बसाने वाला तथा अत्यन्त प्रशंसनीय है उस हमारे पूजनीय देव के प्रति क्रोध या अनादर के भाव मत करो ॥४॥

१११—सोभरि । ककुप् । अग्नि ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ ३ १ २ ३२

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा राति भद्रो अध्वर ।

३ २ ३ १ २र

भद्रा उत प्रशस्तय ॥५॥

पदार्थ—( भद्र ) कल्याणकारी ( न ) हमारा ( अग्नि ) परमेश्वर ( आहुत ) भली भांति ध्यान किया हुआ ( भद्रा ) कल्याणकारी ( राति ) दान हो ( भद्र ) कल्याणकारी ( अध्वरः ) यज्ञ हो ( भद्रा ) कल्याण करने वाली ( उत ) और ( प्रशस्तय ) स्तुतियां हो ॥५॥

भावार्थ—परमेश्वर का ध्यान हमारा कल्याण करे । हमारे दान, यज्ञ और स्तुतियां भी कल्याण करें ॥५॥

११२—सोभरि । ककुप् । अग्नि ।

१ २ ३१ २३ १ २र ३ १२

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३१२

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६॥

पदार्थ—( यजिष्ठं ) अत्यन्त पूज्य ( त्वा ) तुझे ( ववृमहे ) भजते हैं ( देवम् ) देव ( देवत्रा ) देवों में ( होतारम् ) दाता ( अमर्त्यम् ) अविनाशी ( अस्य ) इस 'संसाररूप' ( यज्ञस्य ) यज्ञ को ( सुक्रतुम् ) भली भांति सफल करने वाले ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! देवो में देव, कर्म फल के दाता, अविनाशी, इस संसार रूप यज्ञ को सफल करने वाले तुझे हम भजते हैं ॥६॥

११३—सोभरिः । ककुप् । अग्नि ।

१२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २

तदग्ने द्युम्नमाभर यत्सासाह सदने कञ्चिदत्रिणम् ।

३ १ २र ३क २र

मन्यु जनस्य दूढ्यम् ॥७॥

पदार्थ—( तत् ) उस ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( द्युम्नम् ) तेज को ( आभर ) भरपूर कर ( यत् ) जो ( सासाहत् ) दबावे ( सदने ) यज्ञशाला में ( कञ्चित् ) किसी भी ( अत्रिणम् ) बुरे विचार को ( मन्यु ) क्रोध को भी ( जनस्य ) मनुष्य के ( दूढ्यम् ) दुःखदायक ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें ऐसा तेज प्रदान कर जिससे यज्ञशाला में यज्ञ करने के समय उत्पन्न होने वाले किसी बुरे विचार को तथा मनुष्य के दुःखदायी क्रोध को भी दबा सकें ॥७॥

११४—विश्वमना । ककुप् । अग्नि ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

यद्वा उ विश्पति शित सुप्रीतो मनुषो विशे ।

२उ ३ २उ ३ १ २

विश्वेदग्नि प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥

पदार्थ—( यद्वा ) जब ( उ ) निश्चय ही ( विश्पति ) प्राणिमात्र की रक्षा करने वाले ( शित ) उपासना किया हुआ ( सुप्रीतः ) प्रसन्न ( मनुषः ) मनुष्य के ( विशे ) सेवक के लिए ( विश्वेत् ) सम्पूर्ण ( रक्षांसि ) बुरे विचारों को ( प्रति ) सम्मुख ( सेधति ) दूर करता है ॥८॥

भावार्थ—प्राणिमात्र का रक्षक परमेश्वर मनुष्य के सेवक पर जब उपासना से प्रसन्न होता है तो वह उसके सारे बुरे विचारों को दूर भगाता है ॥८॥

卐

# ऐन्द्र पर्व

## द्वितीयोऽध्याय

११५—शयु । गायत्री । इन्द्र ।

१ २    ३ १  २र   ३ २ ३ १ २   २उ   ३ २ ३ १ २

**तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१॥**

**पदार्थ**—( तत् ) उस ( व ) तुम ( गाय ) गा ( सुते ) उत्पन्न जगत् मे ( सचा ) साथ ( पुरुहूताय ) अत्यन्त प्रशंसा योग्य के लिये ( सत्वने ) सर्वदा वर्तमान ( शम् ) कल्याणकारी ( यत ) जो ( गवेन ) वेदवाणी के समान ( शाकिने ) शक्तिमान् ॥१॥

**भावार्थ**—हे स्तुति करने वाले ! तू सर्वपूज्य सर्वदा वर्तमान तथा सर्व शक्तिमान् परमेश्वर के लिए वेदवाणी की प्रशसा के समान अपने कल्याणकारी स्तोत्र का गान कर ॥१॥

११६—श्रुतक । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १   २ ३  १ २   १ २ ३ १  २र

**यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मद । तेन नूनं मदे मदे ॥२॥**

**पदार्थ**—( य ) जो ( ते ) तेरा ( नून ) निश्चित (शतक्रतो) हे अनेक ज्ञानवाले ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( द्युम्नितम ) अत्यन्त यशस्वी ( मद ) आनन्दित है ( तेन ) उससे ( नूनम् ) निश्चित ( मदे ) उपासना मे ( मदे ) हमे आनन्दित कर ॥२॥

**भावार्थ**—हे असख्य ज्ञान वाले ईश्वर ! अत्यन्त यशस्वी जो तेरा आनन्द है, उस आनन्द से हमें उपासना में आनन्दित कर ॥२॥

११७—हर्यत । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २    ३ २ ३ २  ३ १ २  ३ १ २

**गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।**

३ १   २र   ३ १ २

**उभा कर्णा हिरण्यया ॥३॥**

**पदार्थ**—( गाव ) सूर्य की किरणें ( उप ) समीप ( वद ) फैलती हैं या पड़ती हैं ( अवटे ) गढ ( मही ) पृथ्वी ( यज्ञस्य ) यज्ञ का ( रप्सुदा ) स्वरूप देने वाली ( उभा ) दोनो ( कर्णा ) सिरे ( हिरण्यया ) चमकीले ॥३॥

**भावार्थ**—सूर्य की किरणें पृथ्वी के ऊँचे नीचे सभी स्थानो पर पड़ती हैं। पृथ्वी यज्ञ का स्वरूप देने वाली है। उसके दोनो सिरे चमकीले हैं ॥३॥

११८—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३१ २      ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।**

२ ३ १ २   १ २

**अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥**

**पदार्थ**—( अरम ) पर्याप्त पूर्ण ( अश्वाय ) व्यापकता के लिए ( गायत ) गान करो ( श्रुतकक्ष ) हे उत्तम श्रेणी के मनुष्य ! ( अरम् ) पूर्ण ( इन्द्रस्य ) ईश्वर के ( धाम्ने ) स्वरूप के लिये ॥४॥

**भावार्थ**—हे उत्तम श्रेणी के मनुष्य ! ईश्वर की व्यापकता उसकी शक्ति और उस के स्वरूप का पूर्ण गान कर ॥४॥

११९—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

१  २र        ३२ ३ २ ३ १ २

**तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।**

१  २र  ३ १ २

**स वृषा वृषभो भुवत् ॥५॥**

**पदार्थ**—( तम् ) उस ( इन्द्रम ) ईश्वर की ( वाजयामसि ) महिमा को गाते हैं ( महे ) महान् ( वृत्राय ) अज्ञान का ( हन्तवे ) नाश करने के लिए ( स ) वह ( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करने वाला ( वृषभ ) धन का दाता ( भुवत् ) हो ॥५॥

**भावार्थ**—हम महान् अज्ञान का नाश करने के लिए ईश्वर की महिमा का गान करते हैं। वह हमारी कामनाओं को पूर्ण करता है। वह हमे धन दे ॥५॥

१२०—देवजामय । गायत्री । इन्द्र ।

१  २३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १   २र

**त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजस ।**

१    १२३  १  २र

**त्वं सन् वृषन् वृषेदसि ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—( त्वम् ) तू ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( बलात् ) बल से ( अधि ) अधिक ( सहस ) तेज से ( जात ) प्रसिद्ध ( ओजस ) धैर्य से ( त्वम् ) तू ( सन् ) विद्यमान है ( वृषन ) हे सुखो की वर्षा करने वाले ( वृषाइत् ) तू कामनाओं की पूर्ति करने वाला ( असि ) है ॥६॥

**भावार्थ**—हे सुखो की वर्षा करने वाले ईश्वर ! तू बल तेज और धैर्य से प्रसिद्ध है। तू सदा विद्यमान रहता हुआ हमारी कामनाओ को पूर्ण करने वाला ही है ॥६॥

१२१—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १  २र    ३ २उ   ३  १ २       ३   १  २३ २ ३ २

**यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥७॥**

**पदार्थ**—( यज्ञ ) परमेश्वर ( इन्द्रम ) सूर्य को ( अवर्धयत ) बढ़ाया ( यत ) जो ( भूमिम् ) भूमि को ( व्यवर्तयत ) घुमाता है ( चक्राण ) करता हुआ ( ओपशम ) सम्बन्ध को ( दिवि ) आकाश मे ॥७॥

**भावार्थ**—यज्ञ परमेश्वर ने सूर्य को बढ़ाया जो कि आकाश में सम्बन्ध करता हुआ भूमि को घुमाता है ॥ ७ ॥

१२२—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत ।

१ २ ३ २उ   ३ १   ३२ ३ २ ३ २ ३ २      ३ २ ३ १ २

**यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥८॥**

**पदार्थ**—( यत् ) यदि ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( अहम् ) मैं ( यथा ) जैसा ( त्वम् ) तू है। ( ईशीय ) अधिष्ठाता हो जाऊँ ( वस्व ) धन का ( एक इत् ) एक ही ( स्तोता ) स्तुति करने वाला ( मे ) मेरा ( गोसखा ) मित्र ( स्यात् ) हो ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—हे ईश्वर ! जैसे तू सारे ऐश्वर्य का एक ही अधिष्ठाता है ऐसे ही यदि मै भी हो जाऊं तो मेरी स्तुति करने वाला गवादि धन से युक्त हो ! ॥ ८ ॥

१२३—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।

१ २   ३ १  २   २ १ २  ३ १ २      १ २ ३ २ ३  १ २

**पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥९॥**

**पदार्थ**—( पन्यम्पन्यम ) बार बार स्तुति करने योग्य ( इत ) ही ( सोतार ) हे स्तुति करनेवालो ! ( आधावत ) शरण मे जाओ ( मद्याय ) प्रशस्त धन के लिए ( सोमम् ) आनन्दस्वरूप ईश्वर की ( वीराय ) पुत्र के लिए ( शूराय ) शूर ॥९॥

**भावार्थ**—हे स्तुति करनेवालो ! धन के लिए और शूर पुत्र की प्राप्ति के लिए बार बार स्तुति करने योग्य आनन्दस्वरूप ईश्वर की ही शरण में जाओ ॥९॥

१२४—प्रियमेध । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २   ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३१ २   १ २     ३ १ २

**इदं वसो सुतमन्ध पिबा सुपूर्णमुदरम । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१०॥**

**पदार्थ**—( इदम् ) इस ( वसो ) हे बसानेवाले ईश्वर ! ( सुतमन्धस: ) उत्पन्न हुए सोमतत्त्व को ( पिब ) पिला ( सुपूर्णम ) पूरी ( उत ) और ( अरम् ) पूर्ण ( अनाभयिन् ) हे सदा निर्भय ! ईश्वर ( ररिमा ) हम समर्पण करते हैं ( ते ) तेरी सेवा मे ॥ १० ॥

**भावार्थ**—हे सबको बसाने वाले परमेश्वर ! तू ससार मे उत्पन्न होने वाले साम को पूर्ण और पर्याप्त रूप से पिला। हे निर्भय ! हम अपने सर्वस्व को तुझ मे समर्पण करते हैं ॥ १० ॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

१२५—सुतकक्ष श्रुतकक्षो वा गायत्री । इन्द्र ।

२उ ३ २ ३ १ २     ३ १   २र        १ २

**उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥**

**पदार्थ**—( उत् ) ऊपर ( ह ) प्रसिद्ध ( इत ) ही ( अभि ) सब प्रकार ( श्रुतामघम ) विख्यात धनी ( वृषभम ) याचक की माग को पूर्ण करने वाले ( नर्यापसम् ) मनुष्य मात्र के हित करने वाले ( अस्तारम् ) उदार पुरुष को (एषि) उठाता है ( सूर्य ) हे सर्व प्रेरक ईश्वर ॥ १ ॥

**भावार्थ**—हे सर्व प्रेरक ईश्वर ! विख्यात धनी याचकों की माग पूरी करने वाले मनुष्य मात्र के हितचिन्तक और उदार पुरुष को तू अवश्य उन्नत करता है ॥१॥

१२६—ऋषिछन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

२ ३ १   २र        ३ १ ३ ३ १  २  २ ३ १ २  ३ १ २

**यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥२॥**

पदार्थ—( यत् ) जो ( अद्य ) आज ( कच्च ) कुछ भी ( वृत्रहन् ) हे अज्ञान के नाश करने वाले ! ( उदगा ) उत्पन्न है ( अभि ) तेरे सामने ( सूर्य ) सब को प्रेरित करने वाले ( सर्वम् ) सब ( तत् ) वह ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( ते ) तेरे ( वशे ) आधीन है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे सब को प्रेरणा करने वाले ! हे अज्ञान के नाश करने वाले ईश्वर ! जो कुछ भी उत्पन्न दिखाई देता है वह सब तेरे ही आधीन है ॥ २ ॥

१२७—भरद्वाज । गायत्री । इन्द्र ।

१ २र ३१२३१२ ३१२३१२ २३ २ ३२३१२
य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥३॥

पदार्थ—( यः ) जो ( आनयत् ) लाता है ( परावतः ) दूर से ( सुनीती ) उत्तम नीति से ( तुर्वशम् ) समीप ( यदुम् ) मनुष्य को ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( सः ) वह ( नः ) हमारा ( युवा ) अजर ( सखा ) मित्र ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर अज्ञान के कारण दूर भटकने वाले मनुष्य को अपनी उत्तम नीति से समीपवर्ती कर लेता है, वही हमारा अजर मित्र है ॥ ३ ॥

१२८—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २ २३ १ २ ३ १ २र
मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् ।

२ ३ १ २ ३ २
त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥

पदार्थ—( मा ) नहीं ( नः ) हमारे ( अभि ) सन्मुख ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( आदिशः ) दिशा से ( सूरः ) वीर ( अक्तुषु ) रात्रि या दिन मे ( आयमत् ) नियन्त्रण करे ( त्वा ) तेरी ( युजा ) योग कराने वाली भावना से ( वनेम ) भक्ति करे ( तत् ) उस कारण से ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिससे कि कोई भी वीर पुरुष रात या दिन में हमारे सन्मुख की दिशाओं पर नियन्त्रण न कर सके अर्थात् हम जिधर चाहें चल सकें, हमारा आगा कोई न रोक सके इस कारण हम तेरे से योग कराने वाली भावना के साथ तेरी भक्ति करते हैं ॥ ४ ॥

१२९—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥५॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( सानसिम् ) निरन्तर सेवन करने योग्य ( रयिम् ) धन को ( सजित्वानं ) सदा विजय कराने वाले ( सदासहम् ) शत्रु के आक्रमण का सहन न करने का हेतु ( वर्षिष्ठम् ) बढ़ाने वाले ( ऊतये ) हमारी रक्षा के लिए ( भर ) पूर्ण कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! निरन्तर भोग करने योग्य जिससे हम शत्रु पर विजय पा सकें तथा उसके आक्रमण का सामना कर सकें, और जो हमको सदा उन्नत कर सकें, ऐसे धन के द्वारा हमारी रक्षा के लिए हमें पूर्ण कर । ५ ॥

१३०—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( वयम् ) हम लोग ( महाधने ) संग्राम मे ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( अर्भे ) छोटे संग्राम या कार्यों मे ( हवामहे ) पुकारते हैं ( युजम् ) सहायक ( वृत्रेषु ) अज्ञानों को दूर करने में ( वज्रिणम् ) निवारणास्त्र को धारण करने वाले ॥ ६ ॥

भावार्थ—हम छोटे या बडे संग्रामों में सहायक अज्ञानो के नाश करने वाले परमेश्वर को पुकारते हैं ॥ ६ ॥

१३१—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥७॥

पदार्थ—( अपिबत् ) भोग करता है ( कद्रुवः ) बुरी गतिवाला ( सुतम् ) संसार का ( इन्द्रः ) जीवात्मा ( सहस्रबाह्वे ) बहुत शक्ति पाने के लिए ( तत्र ) उसमे ( आददिष्ट ) ग्रहण करता है ( पौंस्यम् ) पुरुषार्थ को ॥ ७ ॥

भावार्थ—बुरी भली गतियों वाला जीव संसार का उपभोग करता है, तथा बाहु की वृद्धि के लिए पुरुषार्थ को ग्रहण करता है ॥ ७ ॥

१३२—वसिष्ठः । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा३स्य नो वसो ॥८॥

पदार्थ—( वयम् ) हम लोग ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( त्वायवः ) तेरी कामना करने वाले हैं ( अभि ) सन्मुख ( प्र ) उत्तमता से ( नोनुमः ) बार बार नमस्कार करते हैं ( वृषन् ) हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले ( विद्धी ) जानता है ( त्वा ) तुझे ( अस्य ) इस संसार का ( नः ) हमारी ( वसो ) हे सब ऐश्वर्यों के स्वामी ॥८॥

भावार्थ—हे सुख के वर्षक इन्द्र ! तुम्हारी कामना करने वाले हम लोग तुमको नमस्कार करते हैं । तू हमारे इस संसार की सभी वस्तुओं को जानता है ॥८॥

१३३—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥९॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार ( घ ) प्रसिद्ध ( ये ) जो लोग ( अग्निम ) ईश्वर को ( इन्धते ) अपनी आत्मा में प्रकाशित करते हैं ( स्तृणन्ति ) विस्तार करते हैं ( बर्हिः ) ज्ञान का ( आनुषक् ) निरन्तर ( येषां ) जिनका ( इन्द्र ) ईश्वर ( युवा ) अजर ( सखा ) मित्र ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिनका अजर परमेश्वर सखा है, और जो आत्मा में इसे ध्याते हैं वे अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥

१३४—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्र ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

१ २ ३ १ २र
वसुस्पार्हं तदाभर ॥१०॥

पदार्थ—( भिन्धि ) छिन्नभिन्न कर ( विश्वा ) सारे ( अप ) दूरकर ( द्विषः ) द्वेष की भावनाओं को ( परिबाधः ) सब विघ्न-बाधाओं तथा ( जही ) अन्त कर ( मृधः ) संग्रामो [लड़ाइयों] को ( वसु ) सम्पत्ति है ( स्पार्हम् ) स्पृहणीय ( तत् ) उसको ( आभर ) पूर्णकर ॥ १० ॥

भावार्थ—हे इन्द्र ! तू समस्त द्वेष की भावनाओ को नष्ट कर तथा मिटा समस्त विघ्न बाधाओं को । जो स्पृहणीय [ इच्छा करने के योग्य ] धन है वह हमें प्रदान कर ॥ १० ॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

१३५—कण्वो घौर । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २र ३ १ २
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामं चित्रमृञ्जते ॥१॥

पदार्थ—( इह ) यहां के ( इव ) समान ( शृण्वे ) सुनता हूं ( एषाम् ) इन पवनों के ( कशा ) वाणियां ( हस्तेषु ) हाथों में है ( यत ) जो ( वदान् ) बोलता है ( नियामम् ) मार्ग को ( चित्रम् ) अद्भुत ( ऋञ्जते ) सिद्ध करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—दूसरी जगह लोग जो कुछ बोलते हैं वह यहां ही [ कान के पास के समान ] सुनाई पडता है । [ इससे मालूम होता है कि ] वाणी इन पवनों के अधिकार मे है । [ यह शब्द एक ] अद्भुत मार्ग सिद्ध करता है ॥ १ ॥

१३६—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥२॥

पदार्थ—( इमे ) ये ( त्वा ) तुझको ( विचक्षते ) विशेष रुचि से देखते हैं ( सखाय ) मित्र ( इन्द्र ) परमेश्वर ( सोमिनः ) ऐश्वर्यशाली पुरुष ( पुष्टावन्तः ) घास के लिए पशुपालक ( यथा ) जसे ( पशुम् ) पशु को ॥ २ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे पशुपालक [ अपने उपकार के लिए ] पशु को देखता है, ऐसे ही तुम्हारे मित्र ऐश्वर्यशाली लोग तुम को विशेष रुचि से देखते हैं ॥२॥

१३७—वत्स । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥३॥

पदार्थ—( सम् ) भले प्रकार ( अस्य ) इसकी ( मन्यवे ) मनन के लिये ( विशः ) प्रजायें ( विश्वा ) सब ( नमन्त ) झुकती हैं ( कृष्टयः ) मनुष्य ( समुद्राय ) समुद्र के लिये ( इव ) समान ( सिन्धवः ) छोटी नदियें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार नदियां समुद्र की तरफ झुकती हैं, इसी प्रकार सारे मनुष्य मन या ज्ञान के लिये परमेश्वर की तरफ झुकते हैं ॥३॥

१३८—कुसीदी । गायत्री । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥४॥

पदार्थ—( देवानाम् ) ईश्वर सूर्य, विद्वान् ( इत् ) ही ( अवः ) रक्षा ( महत् ) बड़ी ( तत् ) उसको ( वयम् ) हम ( आवृणीमहे ) चाहते हैं ( वृष्णाम् ) सुख की वर्षा करने वाली ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( ऊतये ) रक्षा के लिये ॥४॥

भावार्थ—हमारे लिये सुख की वृष्टि करने वाले ईश्वर, सूर्य विद्वान् आदि देवों का जो महान् संरक्षण है, उसे हम अपनी रक्षा के लिये सदा स्वीकार करते हैं ॥४॥

१३९—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २
सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥५॥

पदार्थ—( सोमानाम् ) सोम विज्ञान के ( स्वरणम् ) प्रकाशक ( कृणुहि ) बना ( ब्रह्मणस्पते ) हे वेदवाणियों के स्वामी ! ( कक्षीवन्तम् ) सृष्टि का ज्ञाता ( य ) जो ( औशिज ) मेधावी का पुत्र ॥५॥

भावार्थ—हे वेदवाणियों के स्वामी परमेश्वर ! जो मेधावी का पुत्र है । ऐसे सोम विज्ञान के प्रकाशक पुरुष को समस्त सृष्टि विद्या का ज्ञाता बना ॥५॥

१४०—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३ १२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ १ २
बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥६॥

पदार्थ—( बोधन्मना ) मेरा अभिप्राय जानता है ( इत् ) ही ( अस्तु ) हो ( नः ) हमारी ( वृत्रहा ) अज्ञान नाशक ( भूर्यासुतिः ) आनन्दघन ( शृणोतु ) सुनता है ( शक्र ) शक्तिमान् ईश्वर ( आशिषम् ) स्तुति ॥६॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करने वाला, आनन्द स्वरूप और शक्तिमान् ईश्वर हमारी स्तुति सुनता है और अभिप्राय को जानता है ॥६॥

१४१—श्यावाश्व । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥७॥

पदार्थ—( अद्य ) आज ( नः ) हमारे लिये ( देव ) हे ईश्वर ! ( सवितः ) हे सब के उत्पादक ! ( प्रजावत् ) सन्तानयुक्त ( सावीः ) दे ( सौभगम् ) ऐश्वर्य [ सम्पत्ति ] ( परासुव ) दूरकर ( दुःष्वप्न्यम् ) क्लेश को ॥७॥

भावार्थ—हे सब के उत्पादक देव ईश्वर ! आप हमको सन्तानयुक्त सम्पत्ति दें और क्लेश को दूर करें ॥७॥

१४२—प्रगाथ । गायत्री । इन्द्र ।

२ १ २३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
क्वाऽ३स्य वृषभो युवा तुवीग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥८॥

पदार्थ—( क्व ) कहाँ है ( स्य ) वह ( वृषभ ) सुख का दाता ( युवा ) अजर ( तुवीग्रीव ) विराटस्वरूप ( अनानत ) शक्तिशाली ( ब्रह्मा ) चारों वेदों का ज्ञाता ( कः ) कौन ( तम् ) उसकी ( सपर्यति ) भली भाँति उपासना करता है ॥८॥

भावार्थ—विराट्रूप और महान् शक्तिशाली परमेश्वर कहाँ है ? अर्थात् सर्वत्र है । उसकी भली भाँति उपासना कौन कर सकता है ? चारों वेदों का ज्ञाता पुरुष ॥८॥

१४३—वत्सः । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥९॥

पदार्थ—( उपह्वरे ) गुफाओं में ( गिरीणाम् ) पर्वतों की ( सङ्गमे ) संगम पर ( च ) और ( नदीनाम् ) नदियों के ( धिया ) विशेष ज्ञान से ( विप्र ) मेधावी ( अजायत ) बनता है ॥९॥

भावार्थ—पर्वतों की गुफाओं में और नदियों के सगम पर विशेष कर्म [योगाभ्यास] करने से मनुष्य ज्ञानी बनता है ॥९॥

१४४—इरिमिठ । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३२ ३ १ २
प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१०॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सम्राजम् ) सम्राट ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के ( इन्द्रम् ) ईश्वर की ( स्तोत ) स्तुति करो ( नव्यम् ) स्तुत्य ( गीर्भि ) वेदवाणियों से ( नरम् ) सुपथ पर चलाने वाले ( नृषाहम् ) मनुष्यों को नियम में रखने वाला ( मंहिष्ठम् ) महान् दाता ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मनुष्यमात्र के सम्राट् स्तुति करने के योग्य ईश्वर की वेदमन्त्रों से उत्तम स्तुति करो वह मनुष्यमात्र को नियम में रखता है उसका दान महान् है और वह सबको सुपथ पर चलाता है ॥१०॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

१४५—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥१॥

पदार्थ—( अपात् ) रक्षा करता है ( शिप्री ) कार्यकुशल ( अन्धसः ) अन्न की ( सुदक्षस्य ) उत्तम शक्तिशाली ( प्रहोषिण ) ससार यज्ञ के होता ( इन्दो ) परमेश्वर का ( इन्द्र ) राजा ( यवाशिर ) यवादि से युक्त ॥१॥

भावार्थ—व्यावहारिक पारमार्थिक सुख की प्राप्ति करने वाला राजा उत्तम शक्तिशाली तथा ससार यज्ञ के होता परमेश्वर के दिए हुए यवादि से युक्त अन्नादि पदार्थों की रक्षा और उपभोग करता है ॥१॥

१४६—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १२
इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥२॥

पदार्थ—( इमा उ ) ये ( त्वा ) तेरी ( पुरूवसो ) सब के निवास दाता ( अभि ) सब प्रकार ( प्रनोनुवु ) स्तुति करती हैं । ( गिरः ) वेदवाणियाँ ( गावः ) गाएं ( वत्सं न ) बछड़ों को जैसे ( धेनवः ) दूध देने वाली ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर सब के निवासदाता ! जैसे दूध देने वाली गाएं बछड़ों के पास जाती हैं ऐसे ही ये हमारी स्तुतियां सब प्रकार से बारबार तेरी शरण में पहुंचती हैं ॥ २ ॥

१४७—गोतम । गायत्री । इन्द्र ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

पदार्थ—( अत्र ) इसमें ( अह ) निश्चित ( अमन्वत ) जानो ( नाम ) तेज ( त्वष्टुः ) सूर्य को ( अपीच्यम् ) प्रविष्ट हैं ( इत्था ) इस प्रकार ( चन्द्रमसः ) चन्द्रमा के ( गृहे ) मण्डल में ॥३॥

भावार्थ—इस चन्द्रमण्डल में सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं । हे मनुष्यो ! ऐसा जानो ॥३॥

१४८—भरद्वाज । गायत्री । इन्द्र ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषा भुवत्सचा ॥४॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( इन्द्र ) सूर्य ( अनयत् ) पहुँचाता है ( रितः ) गति करने वाली ( मही ) पृथ्वी पर ( अप ) जलों को ( वृषन्तमः ) पूर्ण वर्षा करने वाला ( तत्र ) उसमें ( पूषा ) वायु ( भुवत् ) होता है ( सचा ) सहायक ॥४॥

भावार्थ—पूर्ण वर्षा करने वाला सूर्य गति करने वाली पृथिवी पर जलों को बरसाता है । उसमें वायु सहायक होता है ॥४॥

१४९—बिन्दु पूतदक्षो वा । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५॥

पदार्थ—( गौ ) पृथ्वी ( धयति ) ग्रहण करती है ( मरुताम् ) पवनों को ( श्रवस्यु ) अन्न उत्पन्न करने वाली ( माता ) प्राणियों की रक्षक ( मघोनाम् ) सूर्य आदि की ( युक्ता ) साथी ( वह्नी ) वहन करने वाली ( रथानाम् ) विविध यानों के ॥ ५ ॥

भावार्थ—इन्द्र आदि द्वारा की हुई वृष्टि को अन्नादि की दाता सूर्यादि की साथी रथादि यानों को धारण करने वाली पृथिवी माता पान करती है अथवा ग्रहण करती है ॥ ५ ॥

१५०—श्रुतकक्ष , सुकक्षो वा । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥६॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( न ) हमारे ( हरिभि ) मनुष्यों के उपदेशों से ( सुतम ) उत्पन्न ज्ञान को ( याहि ) प्राप्त करा ( मदानां पते ) आनन्दों के स्वामी ( उप ) समीप ( न ) हमारे ( हरिभि ) सूर्य अग्नि द्वारा ( सुतम् ) भोग को ॥६॥

भावार्थ—हे आनन्दों के स्वामी परमेश्वर ! अपने विद्वानों के उपदेशों से अत्यन्त ज्ञान तथा सूर्य अग्नि आदि द्वारा उत्पन्न भोग को हमें प्राप्त करा ॥६॥

१५१—ऋषि छन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥७॥

पदार्थ—( इष्टा होत्रा ) इष्ट आहुतियें ( असृक्षत ) छोड़ते हैं ( इन्द्रम् ) परमेश्वर का ( वृधन्त ) उच्चारण करते हुए ( अध्वरे ) यज्ञ में ( अच्छ ) अच्छी भांति ( अवभृथम् ) परिपूर्ण ( ओजसा ) तेज से ॥७॥

भावार्थ—यज्ञ में विद्वान् जन तेज से परिपूर्ण ईश्वर का उच्चारण करते हुए इष्टाहुतियों को छोड़ते हैं ॥७॥

१५२—वत्स । गायत्री । इन्द्रः ।

१२उ ३ १ २र ३ २३ १ २ ३ १ २ ३१ २र
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥८॥

पदार्थ—( अहम् ) मैं ( इत ) ही ( हि ) क्योंकि ( पितुष्परि ) द्युलोक के ( मेधाम् ) ज्ञान को ( ऋतस्य ) अग्नि के ( जग्रह ) अच्छी प्रकार धारण करता हूँ । ( अहम् ) मैं ( सूर्य इव ) सूर्य के समान ( अजनि ) पैदा करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—मैं परमेश्वर द्युलोक तथा अग्नि या सांसारिक नियम के पूर्ण ज्ञान को धारण करता हूँ । मैं ही सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश को पैदा करता हूँ ॥८॥

१५३—शुनःशेप । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥९॥

पदार्थ—( रेवती ) धनवाली ( न ) हमारे ( सधमादे ) प्रसन्न होने पर ( इन्द्रे ) परमेश्वर के ( सन्तु ) होती हैं ( तुविवाजा ) अनेक बलवाली ( क्षुमन्त ) अन्नयुक्त ( याभिः ) जिससे ( मदेम ) प्रसन्न होते हैं ॥९॥

भावार्थ—परमेश्वर के प्रसन्न होने पर हमारे पास धन अन्न बल की वस्तुएं होती हैं, जिनसे हम सुखी होते हैं ॥९॥

१५४—शुनःशेप आजीगर्तिः । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २   ३१ २   ३ २   ३ २ ३क २र ३ २

सोम॑ पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् । देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥

पदार्थ—(सोमः) जीव (पूषा) परमेश्वर (च) और (चेततुः) जानते हैं (विश्वासाम्) सब (सुक्षितीनाम्) लोकों के (देवत्रा) देवों में (रथ्योः) समविषममार्ग में (हिता) कल्याणकारी ॥१०॥

भावार्थ—समस्त देवों के मध्य में ईश्वर और जीव दोनों जानते हैं, अर्थात् ज्ञान रखते हैं। ये दोनों सम विषम मार्ग में हितकारी हैं ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

१५५—श्रुतकक्षः । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।

३   १ २ ३ १ २ ३   १ २   ३ २

विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—(पान्तम्) रक्षक (आ) सब प्रकार से (वः) तुम सब हे मनुष्यो! (अन्धसः) अन्न के (विश्वासाहम्) अनन्त शक्ति (शतक्रतुम्) अनन्त ज्ञान वाले (मंहिष्ठम्) पूज्य (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (इन्द्रम्) ईश्वर का (अभिप्रगायत) भली भांति गुणगान करो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग अन्न के रक्षक अनन्त शक्ति और अनन्त ज्ञान वाले तथा मनुष्यों के पूज्य ईश्वर का गुण गान करो ॥१॥

१५६—वसिष्ठः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   १ २   ३ १ २

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (व) तुम लोग (इन्द्राय) ईश्वर के लिये (मादनम्) आनन्ददायक (हर्यश्वाय) मनुष्यों के आत्माओं में व्यापक (गायत) गान करो (सखायः) हे मित्रो! (सोमपाव्ने) आनन्द के रक्षक के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो! जो ईश्वर मनुष्य की आत्माओं में व्यापक है तथा आनन्द का स्रोत है उसका मीठे स्वर से गान करो ॥२॥

१५७—मेधातिथिप्रियमेधौ । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २   ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (त्वा) तेरी (तदिदर्थाः) एकमात्र तेरी ही भक्ति करने के लिए (इन्द्र) हे ईश्वर! (त्वायन्तः) तेरी कामना करते हुए (सखायः) परस्पर मित्र [ स्तुति करते हैं ] (कण्वाः) मेधावी पुरुष भी (उक्थेभिः) विशेष मंत्रों से (जरन्ते) स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर! केवल तेरे ही भक्त, तेरी ही कामना करने वाले और परस्पर मित्र हम लोग तेरी स्तुति करते हैं। बुद्धिमान् लोग भी वेद मंत्रों से तेरी ही स्तुति करते हैं ॥३॥

१५८—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १   २र   ३ १ २   ३ १ २   ३ १२

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव के लिए (मद्वने) सुख गुणयुक्त (सुतम्) संसार का (परिष्टोभन्तु) पूर्ण वर्णन करें (नः) हमारी (गिरः) वाणियाँ (अर्कम्) पूज्य परमेश्वर की (अर्चन्तु) पूजा करें (कारवः) कर्मयोगी पुरुष ॥४॥

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष पूज्य परमेश्वर की स्तुति करें। हमारी वाणियां सुख गुण वाले जीव के लिए संसार का वर्णन करें ॥४॥

१५९—इरिम्बिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १   ३ २ ३ २उ ३ १ २

अयन्त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

पदार्थ—(अयम्) यह (ते) तेरे लिए (इन्द्र) हे आत्मन्! (सोमः) भोग्य पदार्थ (निपूतः) नितान्त पवित्र (अधि बर्हिषि) संसार में (एहि) आओ (ईम् अस्य) इसको (द्रव) प्राप्त कर और (पिब) इसका उपभोग कर ॥५॥

भावार्थ—हे जीवात्मन्! तेरे लिए यह सोम पवित्र भोग्य पदार्थ संसार में उत्पन्न किया गया है तू इसे प्राप्त कर और इसका उपभोग कर ॥५॥

१६०—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ ३ १ २ ३ १ ३ १ २   ३ १२   ३ १ २ ३ १२

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥६॥

पदार्थ—(सुरूपकृत्नुम्) सुन्दर रूप के बनाने वाले ईश्वर की (ऊतये) रक्षा के लिए (सुदुघाम्) दूध देने वाली गौ के (इव) समान (गोदुहे) गौ दुहने वाले के लिए (जुहूमसि) स्तुति करते हैं (द्यवि, द्यवि) प्रतिदिन ॥६॥

भावार्थ—गौ दुहने वाले के लिये गाय के समान सुन्दर रूपों को बनाने वाले परमेश्वर की हम प्रतिदिन स्तुति करते हैं ॥६॥

१६१—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १   २   ३ २ ३१ २   ३ १ २ ३   १ २   ३ १ २

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७॥

पदार्थ—(अभि) भली प्रकार (त्वा) तेरे लिए (वृषभा) धर्म से प्रकाशमान जीवो! (सुते) संसार में (सुतम्) सोमादि भोग्य वस्तु को (सृजामि) पैदा करता हूँ (पीतये) भोग के लिये (तृम्पा) तृप्त हो (व्यश्नुहि) प्राप्त करो (मदम्) सुख को ॥७॥

भावार्थ—हे धर्म से प्रकाशमान जीवो! तुम्हारे भोग के लिए संसार में सोमादि भोग्यवस्तु उत्पन्न करता हूँ। तुम उनका भोग करो और आनन्द प्राप्त करो ॥७॥

१६२—कुसीदी । गायत्री । इन्द्र ।

१ २   ३ १   २र ३१ २   ३ २   १ २र ३ १ २

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्र) हे जीव! (चमसेषु) चमस पात्रों में रखा हुआ (सोमः) सोमरस (चमूषु) ग्रह नामक पात्र में तैयार (ते) तेरे लिए (आसुतः) बनाया गया है (पिब) इसका पान कर (इत्) ही (अस्य) इसका (त्वम्) तू (ईशिषे) स्वामी है ॥८॥

भावार्थ—हे जीव! जो सोमरस तेरे लिए ग्रह नामक पात्रों में तैयार कर चमस नामक पात्रों में रखा हुआ है, तू इसका स्वामी है, इस लिए तू इसका पान कर ॥८॥

१६३—शुनःशेप । गायत्री । इन्द्र ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २ ३१ २

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥९॥

पदार्थ—(योगेयोगे) समय समय पर (तवस्तरम्) अति बलवान् (वाजेवाजे) सम्पूर्ण संग्राम आदि समयों में (हवामहे) स्तुति करते हैं (सखायः) परस्पर मित्र हम लोग (इन्द्रम्) ईश्वर की (ऊतये) रक्षार्थ ॥९॥

भावार्थ—परस्पर मित्र हम लोग समय समय पर प्रत्येक संग्राम आदि समयों के अवसर पर अपनी रक्षा के लिए अति बलवान् ईश्वर की स्तुति करते हैं ॥९॥

१६४—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

२उ   ३ १ २३१ २ ३ १   २र   १ २ ३   १ २

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१०॥

पदार्थ—(आ तु आ इत) आओ आओ (निषीदत) बैठो (इन्द्रम्) ईश्वर की (अभि) सम्मुख (प्रगायत) गुणगान करो (सखायः) हे मित्रो! (स्तोमवाहसः) स्तुति की धारा बहाने वाले ॥१०॥

भावार्थ—हे स्तुति की धारा बहाने वाले मित्रो! आओ, अवश्य, आओ, ईश्वर के सम्मुख बैठो तथा उसका गुण-गान करो ॥१०॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

१६५—विश्वामित्रो गाथिनः । गायत्री । इन्द्र ।

३१   २   ३१ २   २ ३ २   १ २

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) इस (हि) निश्चय से (अनु) पश्चात् (ओजसा) बल से (सुतम्) संसार (राधानां पते) हे धनों की रक्षा करने वाले (पिब) रक्षा करता है (तु) पुन (अस्य) इसके (गिर्वणः) हे प्रार्थना योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे प्रार्थना के योग्य धनों के स्वामी परमेश्वर! यह संसार तेरे ओजसे रचा गया है। तू इसकी रक्षा करता है ॥१॥

१६६—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १   २र ३१ २   ३ १ २   ३ १ २   १ २र ३ १ २र

महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२॥

पदार्थ—(महान्) अनन्त गुण वाला (इन्द्रः) ईश्वर (पुरः) आगे (च) और (नः) हमारे (महित्वम्) महत्ता (अस्तु) हो (वज्रिणे) न्यायकर्पदण्डधारी के लिए (द्यौः न) विशाल सूर्य के प्रकाश के समान (प्रथिना) विस्तार से युक्त (शवः) बल ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर महान् है, उसकी महिमा हमारे सामने है, द्युलोक के समान विस्तृत बल उस न्यायकारी के लिए ही है ॥२॥

१६७—कुसीदी । गायत्री । इन्द्रः ।

१   २र   ३ १ २ ३ २ ३ १   २र   ३   १ २र

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सम्मुख ( तु ) शीघ्र ( नः ) हमारे ( इन्द्र ) हे राजन् ! ( द्युमन्तम् ) अन्नादियुक्त ( चित्रम् ) पूज्य ( ग्राभम् ) ग्रहण के योग्य ( संगृभाय ) ले ( महाहस्ती ) प्रलम्बबाहू ( दक्षिणेन ) दाहिन हाथ से ।।३।।

भावार्थ—हे लम्बे बाहुओ वाले राजन् ! तू अन्नादि युक्त प्रशंसाओं के योग्य और ग्रहण के योग्य धन को हमे देन के लिये दाहिन हाथ मे ग्रहण कर ।।३।।

१६८—*प्रियमेध । गायत्री । इन्द्रः ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

**अभि प्र गोपतिङ्गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुँ सत्यस्य सत्पतिम् ।।४।।**

पदार्थ—( अभि ) सम्मुख ( प्र ) उत्तम (गोपतिम्) वेदों के स्वामी (गिरा) वेदमन्त्रों से ( इन्द्रम् ) ईश्वर की ( अर्च ) स्तुति कर ( यथाविदे ) उसके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिये (सूनुम्) प्रेरणा करने वाला (सत्यस्य) सत्य का (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक ।।४।।

भावार्थ—हे मनुष्य ! यथावत् जानने के लिए वेदो और सज्जनों के पालक सत्य के प्रेरक ईश्वर की स्तुति कर ।।४।।

१६९—*वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २

**कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृध सखा । कया शचिष्ठया वृता ।।५।।**

पदार्थ—( कया ) सुखमयी ( नः ) हमारी ( चित्र ) अद्भुत ( आभुवत ) होता है ( ऊती ) रक्षा के द्वारा ( सदावृध ) सदा उन्नति करने वाला ( सखा ) मित्र ( कया ) सुखमयी ( शचिष्ठया ) बुद्धि से ( वृता ) युक्त हुआ ।।५।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अद्भुत और सदा उन्नति देने वाला तू सुखमयी रक्षा और बुद्धि से युक्त हो कर हमारा सखा होता है ।।५।।

१७०—*श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १२

**त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ।।६।।**

पदार्थ—( त्यम् ) उस ( वः ) तुम लोगों के ( सत्रासाहम् ) सत्य से विजय करने वाले ( विश्वासु ) सब (गीर्षु) वाणियो मे (आयतम्) व्याप्त (आच्यावयसि) स्वीकार करो ( ऊतये ) रक्षा के लिए ।।६।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सदा सत्य से विजय करने वाले तुम सबकी वाणियो में व्याप्त परमेश्वर को रक्षा के लिए स्वीकार करो ।।६।।

१७१—*मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

**सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।**

३ २ ३१ २

**सनिं मेधामयासिषम् ।।७।।**

पदार्थ—( सदसस्पतिम् ) लोकों के स्वामी ( अद्भुतम् ) अद्भुत ( प्रियम ) प्रिय ( इन्द्रस्य ) जीव के ( काम्यम ) चाहने योग्य से ( सनिम ) भक्तिमयी ( मेधाम् ) बुद्धि की ( अयासिषम् ) याचना करता हूं ।।७।।

भावार्थ—मैं लोको के स्वामी अद्भुत प्रिय जीव के कमनीय प्रभु परमेश्वर से भक्तिमयी बुद्धि की याचना करता हूँ ।।७।।

१७२—*वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २

**ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरय ।**

३ १ ३ ३ १ २

**उत श्रोषन्तु नो भुवः ।।८।।**

पदार्थ—( ये ) जो ( ते ) तेरे ( पन्था ) मार्ग ( अधोदिवः ) द्यु लोक के नीचे ( भुवः ) पृथ्वी के ( येभिः ) जिनसे ( व्यश्वम् ) वायु को ( ऐरय ) प्रेरित करता है ( नः ) हमारी ( उत ) ही ( श्रोषन्तु ) सुनते हैं ।।८।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे उन मार्गों के द्वारा जिनसे कि तू वायु को प्रेरणा देता है, भूमिस्थ मनुष्य लोग भी शब्द सन्तान को सुनते हैं ।।८।।

१७३—*श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृडयासि नः ।।९।।**

पदार्थ—( भद्रंभद्रं ) कल्याण ही करने वाले ( नः ) हमको ( आभर ) दे ( इषम् ) अन्न और ( ऊर्जम् ) बल को ( शतक्रतो ) हे अनन्त ज्ञानवाले ( यत् ) जिससे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( मृडयासि ) सुखी करते हो ( नः ) हम लोगों को ।।९।।

भावार्थ—हे अनन्त ज्ञानवाले ईश्वर ! तुम जिससे हम लोगो को सुखी करते हो, एक मात्र कल्याण करने वाले ! अन्न और बल को हमें दो ।।९।।

१७४—*बिन्दु । गायत्री । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

**अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।**

३ २ ३ १ २ ३ १ २

**उत स्वराजो अश्विना ।।१०।।**

पदार्थ—( अस्ति ) है ( सोमः ) संसार ( अयम् ) यह ( सुत ) उत्पन्न ( पिबन्ति ) इसका उपभोग करें ( मरुत ) याज्ञिक ( स्वराज ) प्रकाशमान ( अश्विना ) विद्वान् और उपदेशक ।।१०।।

भावार्थ—हे विद्वन् जीव ! यह ससार उत्पन्न किया हुआ है प्रकाशात्मक याज्ञिक तथा विद्वान् और उपदेशक सभी इस का उपभोग करें ।।१०।।

## 卐 छठी दशती समाप्त 卐

१७५—*इन्द्रमातरो देवजामय । गायत्री । इन्द्र ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

**ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानास सुवीर्यम् ।।१।।**

पदार्थ—( ईङ्खयन्तीः ) समझ से युक्त गति करनेवाला ( अपस्युवः ) कर्म की चाहवाली बुद्धियें ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( जातम् ) निमित्त कारण ( उपासते ) उपासना करती हैं ( वन्वानास ) चाहनेवाल लोग ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल को ।।१।।

भावार्थ—ज्ञान से युक्त कर्म की चाह करने वाली बुद्धियाँ तथा उत्तम बल को चाहने वाले लोग निमित्त कारण परमेश्वर की उपासना करते हैं ।।१।।

१७६—*गोधा । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २

**नकि देवा इनीमसि नक्यायोपयामसि । मन्त्रश्रुत्यञ्चरामसि ।।२।।**

पदार्थ—( नकि ) न किसी को ( देवा ) हे विद्वान् पुरुषो ! ( इनीमसि ) हिंसा करते हैं ( नकि ) न किसी को ( आयोपयामसि ) पथभ्रष्ट ही करते हैं ( मन्त्रश्रुत्यम् ) वेदानुकूल ( चरामसि ) आचरण करते हैं ।।२।।

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! हम न तो किसी की हिंसा करते हैं और न किसी को पथभ्रष्ट ही करते हैं अपितु जैसा वेद कहता है उसी के अनुसार आचरण करते हैं ।।२।।

१७७—*दध्यङ्ङाथर्वण । गायत्री । इन्द्र ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

**दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २

**स्तुहि देवं सवितारम् ।।३।।**

पदार्थ—( दोषा ) रात्रि ( आगात् ) आवे तो ( बृहद्गाय ) सामगायक (द्युमद्गामन्) प्रकाशमयीबुद्धिवाले (आथर्वण) हे अथर्ववेद के जानने वाले ( स्तुहि ) स्तुति कर ( देवम् ) देव की ( सवितारम् ) सब के उत्पादक ।।३।।

भावार्थ—हे सामगायक प्रकाशमय ज्ञानवाले अथर्ववेदज्ञ ! जब रात्रि आवे तो अर्थात् सन्ध्या समय मे तुम सर्वस्रष्टा परमेश्वर की स्तुति करो ।।३।।

१७८—*प्रस्कण्व । गायत्री । इन्द्र ।*

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २

**एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।**

३ २ २ ३ २

**स्तुषे वामश्विना बृहत् ।।४।।**

पदार्थ—( एषा उ ) यह ( उषा ) उषा ( अपूर्व्या ) अपूर्व ( व्युच्छति ) अन्धकार को दूर कर रही है ( प्रिया ) प्यारी ( दिवः ) सूर्य की ( स्तुषे ) स्तुति करो ( वाम् ) तुम दोनों ( अश्विनौ ) हे अध्यापक और उपदेशक ।।४।।

भावार्थ—सूर्य की प्यारी अदभुत यह उषा अन्धकार का नाश कर रही है, हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम परमेश्वर की स्तुति करो ।।४।।

१७९—*गोतम । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १२ ३ १ २र

**इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ।।५।।**

पदार्थ—( इन्द्र ) सूर्य ( दधीच ) वायु के ( अस्थभि ) चञ्चलता से ( वृत्राणि ) मेघों को ( अप्रतिष्कुत ) जिसके सम्मुख कोई नहीं ठहर सके ( जघान ) छिन्न भिन्न करता है ( नवतीर्नव ) यथा नव संख्या ९० को मारती है ।।५।।

भावार्थ—सूर्य जिसके सामने कोई नहीं ठहर सकता, वह सूर्य वायु मेघों को इस प्रकार छिन्न भिन्न करता है जैसे नव संख्या ९० को करती है ।।५।।

१८०—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्र ।

उ ३ १ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभि सोमपर्वभि ।**

३ २ २ ३ १ २र
**महा अभिष्टिरोजसा ॥६॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( इहि ) प्राप्त हो ( मत्सि ) आनन्द देता है ( अन्धस ) अन्न के ( विश्वेभि ) सारे ( सोमपर्वभिः ) आनन्ददायक पदार्थों के अङ्गों के साथ ( महान् ) बहुत बड़ा ( अभिष्टि ) अभीष्टज्ञान के दाता ( ओजसा ) बल से ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हमें प्राप्त हो तू महान् और हमारे सब अभीष्ट फलो का दाता है, तू अन्नादि सब पदार्थों के सारे सामानो से हमे आनन्द देता है ॥६॥

१८१—वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
**आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।**

३ २ ३ १ २ ३ १ २
**महान्महीभिरूतिभि ॥७॥**

पदार्थ—( आ ) भलीप्रकार ( तू ) जल्दी ( न ) हमारी ओर ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( वृत्रहन् ) हे पापनाशक ( अस्माकम् ) हमारे ( अर्धम ) समीप ( आगहि ) प्राप्त हो ( महान् ) तू महान् है ( महीभि ) महान् ( ऊतिभि ) रक्षा के साथ ॥७॥

भावार्थ—हे पापनाशक परमेश्वर ! महान् तू हमे प्राप्त हो, महान् रक्षाओं से हमारी रक्षा कर ! ॥७॥

१८२—वत्स । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३२उ ३ १ २
**ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत ।**

२ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥८॥**

पदार्थ—( ओज ) बल ( तत् ) वह ( अस्य ) इसका ( यत ) जिससे ( समवर्तयत्) प्रवृत्त करता और समेटता है ( इन्द्र ) ईश्वर ( चर्मेव ) चमड़े के समान ( रोदसी ) द्युलोक और पृथिवीलोक को ॥८॥

भावार्थ—ईश्वर का वह बल प्रत्यक्ष चमक रहा है, जिससे वह चर्मवत् द्यु और पृथ्वी को फैलाता तथा समेटता है ॥८॥

१८३—शुन शेप । गायत्री । इन्द्र ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
**अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९॥**

पदार्थ—( अयम् ) यह जीव ( उ ) पादपूरक ( ते ) तेरा ( समतसि ) निरन्तर प्राप्त होता है ( कपोत ) कबूतर के ( इव ) समान ( गर्भधिम् ) कबूतरी के समान प्रकृति को ( वच ) शिक्षावचन ( तत् ) उस ( चित् ) ही ( न ) नहीं ( ओहसे ) सुनता है ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुम्हारी प्रजा यह जीव गर्भधारण करने वाली कबूतरी को कबूतर के समान, भोगो को गर्भ में धारण करने वाली प्रकृति को बार बार प्राप्त होता है, इस कारण शिक्षावचनो को नहीं सुनता ॥९॥

१८४—उल । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**वात आ वातु भेषज शंभु मयोभु नो हृदे ॥**

२ ३ १ २
**प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥**

पदार्थ—( वात ) वायु ( आवातु ) पहुचावें ( भेषजम् ) सेवन योग्य औषध ( शम्भु ) इस समय सुख देने वाला ( मयोभु ) कालान्तर मे शान्तिदायक ( नः ) हमारे ( हृदे ) फेफड़े के लिये ( प्र ) उत्तम ( न ) हमारी ( आयूंषि ) आयु को ( तारिषत् ) बढ़ावे ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! वायु हमारे फेफड़े के लिये सुख तथा शान्ति देने वाली ओषधि बने । वह हमारी आयु को भी बढ़ावे ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

१८५—कण्व । गायत्री । इन्द्र ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।**

२ ३ १ २ ३ १२
**न किः स दभ्यते जन ॥१॥**

पदार्थ—( यम् ) जिसकी ( रक्षन्ति ) रक्षा करते हैं । ( प्रचेतस ) उत्तम ज्ञानी पुरुष ( वरुण ) हितैषी ( मित्र ) परमेश्वर ( अर्यमा ) न्यायकारी राजा ( नकि ) किसी से नहीं ( स ) वह ( दभ्यते ) मारा जा सकता ( जन ) मनुष्य ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हितैषी परमेश्वर, न्यायकारी राजा और उत्तम ज्ञानी पुरुष जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, कोई उसे हानि नही पहुचा सकता है ।१।

१८६—वत्स । गायत्री । इन्द्र ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ २ १ ३र २ ३ २ ३ १ २
**गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्या महोनाम ॥२॥**

पदार्थ—( गव्या उ ) इन्द्रियो की इच्छा से ( सु ) सुन्दर ( न ) हम ( यथा ) जैसे ( पुरा ) पहिले ( अश्वया ) मन की इच्छा से ( उत ) और ( रथया ) शरीर की इच्छा से ( वरिवस्या ) व ( महोनाम् ) महान् धन की इच्छा से ॥ २ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू पहले के समान ही अब उत्तम इन्द्रिय, मन शरीर तथा महान् धनों की प्राप्ति की इच्छा से परमेश्वर की प्रार्थना कर ॥ २ ॥

१८७—वत्स । गायत्री । इन्द्र ।

२ १ २ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
**इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृत दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषी ॥३॥**

पदार्थ—( इमा ) ये ( ते ) तेरी ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( पृश्नय ) किरणें ( घृतम् ) जल का ( दुहते ) बरसाती हैं ( आशिरम् ) दही के समान स्वच्छ ( एनाम् ) इस भूमि को ( ऋतस्य ) जल से ( पिप्युषी ) बढ़ाने वाली ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेरी रची हुई सूर्य की किरणें दही के समान स्वच्छ जल को बरसाती हैं । ये किरणें जल से पृथ्वी की फसल को पुष्ट कर बढ़ाती हैं ।३।

१८८—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २र ३ १ २
**अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभुव ॥४॥**

पदार्थ—( अया ) ज्ञानयुक्त ( धिया ) कर्म ( गव्यया ) वेदवाणी सम्बन्धी (पुरुणामन्) हे बहुत नामवाले (पुरुष्टुत) सर्वोपास्य (यत्) जिस कारण (सोमे सोमे) सारे उत्पन्न पदार्थ में (आभुव ) विद्यमान ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे अनेकों नाम वाले और सर्वोपास्य परमेश्वर ! तू वेदज्ञान से युक्त सृष्टिकर्म के साथ सब उत्पन्न पदार्थों मे विद्यमान है अत उपास्य है ॥४॥

१८९—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**पावका न सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञ वष्टु धियावसु ॥५॥**

पदार्थ—( पावका ) पवित्र करने वाली ( न ) हमारी ( सरस्वती ) वाणी ( वाजेभि ) अन्नो से युक्त ( वाजिनीवती ) बलवती हो । ( यज्ञम् ) परोपकार की ( वष्टु ) कामना (उपदेश) करने वाली हो ( धियावसु ) बुद्धि से सारे ससार को वश में करने वाली ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हमारी वेदवाणी हृदय का पवित्र करने वाली अन्न से बलवती और अपनी योग्यता से ससार को वश में करने वाली हो । वह परोपकार का उपदेश करे ॥ ५ ॥

१९०—वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
**क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसून्या भरत् ॥६॥**

पदार्थ—( क )कौन ( इमम ) इस ( नाहुषीषु ) कर्म बन्धन मे बन्धी हुई मनुष्य प्रजाओ मे ( इन्द्र ) जीवको ( सोमस्य ) भोग्य पदार्थ से ( तर्पयात् ) तृप्त करता है ( स ) वह ( न ) हमे ( वसूनि ) धन से (आभरत्) पूर्ण करता है ॥६॥

भावार्थ—प्रश्न—कर्म-बन्धन मे बन्धी हुई मनुष्य प्रजाओ में वर्तमान जीव को भोग्य पदार्थ से कौन तृप्त करता है ?

उत्तर—वह परमेश्वर जो कि हमे धनधान्य से पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

१९१—इरिम्बिठि काण्व । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २उ ३ १ २ ३ १ २
**आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोम पिबा इमम् । एद बर्हि सदो मम ॥७॥**

पदार्थ—( आयाहि ) प्राप्त हो ( सुषुम ) धारण करते हैं ( हि ) निश्चय ही ( ते ) तेरी कृपा से ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( सोमम् ) ज्ञान ( पिबा ) रक्षा कर ( इमम् ) इसकी ( आ ) सब प्रकार से ( इदम् ) यह ( बर्हि ) हृदयाकाश (सद ) विराजमान होवे ( मम ) मेरा ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू प्राप्त हो । हम तेरे इस ज्ञान को धारण करते हैं । तू रक्षा कर । हे प्रभो ! तू हमारे हृदयाकाश में स्थित हो ॥ ७ ॥

१९२—सत्यधृति । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२
**महि त्रीणामवरस्तु द्युक्ष मित्रस्यार्यम्ण । दुराधर्षं वरुणस्य ॥८॥**

पदार्थ—( महि ) महान् ( त्रीणाम् ) तीनो के ( अव ) रक्षण ( अस्तु ) हो ( द्युक्षम् ) तेजस्वी ( मित्रस्य ) मित्रका ( अर्यम्ण ) न्यायकारी का (दुराधर्षम्) किसी से नही दबने वाले ( वरुणस्य ) हितैषी का ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मित्र न्यायकारी और हितैषी इन तीनो की रक्षा हमारे लिये तेजस्वी, किसी से न दबने वाली और महान् हो ॥ ८ ॥

१९३—वत्स । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ १ २
त्वावत पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेत । स्मसि स्थातहरीणाम ॥९॥

पदार्थ—( त्वावत ) तेरे द्वारा रक्षित ( पुरुवसो ) हे समस्त सम्पदाओं के स्वामिन् ( वयम् ) हम ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! (प्रणेत ) हे उपास्य (स्मसि) हैं ( स्थात ) हे अधिष्ठाता ( हरिणाम ) मनुष्यो के ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओ के स्वामिन् ! उपास्य तथा सब मनुष्यों के अधिष्ठाता परमेश्वर ! हम तेरे द्वारा रक्षित हैं ॥ ९ ॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

१९४—प्रगाथ । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
उत्त्वा मदन्तु सोमा कृणुष्व राधो अद्रिव । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—( उत ) पादपूरक ( त्वा ) तुझे ( मदन्त ) प्रसन्न करें ( सोमा ) उत्तम विद्वान् जन ( कृणुष्व ) दे ( राध ) सिद्धि ( अद्रिव ) हे मेघादि के स्वामी ( ब्रह्मद्विष ) वेदविरोधियो को (द्वेषभाव को ) ( अवजहि ) दूर भगा ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम विद्वान् जन स्तुतियो से तुझे प्रसन्न करें । हे मेघादि के स्वामी ! तू उन्हे सिद्धि दे । हे भगवन् ! वेद विरोधियो के विरोधभाव को दूर कर ॥ १ ॥

१९५—विश्वामित्र । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २र
गिर्वण पाहि न सुत मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यश ॥२॥

पदार्थ—(गिर्वण ) हे स्तुत्य (पाहि) रक्षा कर (न ) हमारे (सुत) सम्पादित ज्ञान की ( मधो ) विज्ञान के ( धाराभि ) धाराओ से ( अज्यसे ) प्राप्त किया जाता है ( हे इन्द्र ) ! हे परमेश्वर । ( त्वादातम ) तेरे द्वारा दिया हुआ ( इत् ) ही ( यश ) यश ॥ २ ॥

भावार्थ—हे स्तुत्य परमेश्वर हमारे सम्पादित ज्ञान की रक्षा कर । तू ज्ञान की धाराओं से प्राप्त किया जाता है । हे परमेश्वर ! हमारा यश तुम्हारा ही दिया हुआ है ॥ २ ॥

१९६—वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३२ २ ३ २ ३२उ ३ १ २
सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन । न देवो वृत शूर इन्द्र ॥३॥

पदार्थ—( सदा ) सर्वदा (सब समय मे) ( व ) तुम लोगो को ( इन्द्र ) ईश्वर ( चर्कृषत ) करता है ( आ ) सब प्रकार से ( उप ) समीप ( नु ) शीघ्र ( सपर्यन् ) प्रेम करता हुआ ( न ) हमारा ( देव ) देव है ( वृत ) ध्यान किया हुआ ( शूर ) तेजस्वरूप ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर प्रेम से, तुम लोगो को सदा अपने समीप ही देखता है । वह तेजस्वरूप तथा ध्यान करने योग्य एवं ऐश्वर्यवान् है वह हमारा देव है ॥ ३ ॥

१९७—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दव समुद्रमिव सिन्धव । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( त्वा ) तेरी शरण मे ( विशन्तु ) पहुँचे ( इन्दव ) उपासक जन ( समुद्रम ) समुद्र मे ( इव ) समान ( सिन्धव ) छोटी नदियो के ( न ) नही ( त्वाम ) तुमसे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( अतिरिच्यते ) कोई बढ़ कर है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे छोटी नदिया समुद्र में पहुँचती हैं, ऐसे ही उपासना करने वाले तेरी शरण मे पहुँचें । हे ईश्वर ! (इस संसार मे) तुम से बढ़कर कोई नहीं है ॥ ४ ॥

१९८—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किण । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥५॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) ईश्वर की ( इत ) ही ( गाथिन ) उद्गाता ( बृहत् ) बृहत् साम से ( इन्द्रम ) ईश्वर की ( अर्केभि ) ऋचाओं से ( अर्किण ) ऋग्वेद के जानने वाले ( इन्द्र ) ईश्वर की ( वाणी ) यजुर्वेद के जानने वाले ( अनूषत ) स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—साम के गाने वाले उद्गाता लोग, बृहत्साम से ईश्वर ही की स्तुति करते हैं । ऋग्वेद की ऋचाओं से तथा यजुर्वेद के मन्त्रों से भी ईश्वर ही के गुण गाते हैं ॥ ५ ॥

१९९—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३१ २ ३ १ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम । वाजी ददातु वाजिनम् ॥६॥

पदार्थ—( इन्द्र ) ईश्वर ( इषे ) अन्न को ( ददातु ) देवे ( न ) हमें (ऋभुक्षणम) महान् (ऋभुम्) मेधावी पुत्र (रयिम् ) अन्य सम्पत्तियों को ( वाजी ) बलवान् ( ददातु ) देवें (वाजिनम् ) बलवान् ॥६॥

भावार्थ—हे बलवान् ईश्वर ! हमें अन्न, अन्य सम्पत्ति और शक्तिशाली बुद्धिमान् पुत्र भी देवें ॥६॥

२००—गृत्समद । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २३ १ ३२ २उ ३ १ २र
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदप चुच्यवत । स हि स्थिरो विचर्षणि ॥७॥

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर ( अङ्ग ) हे [मनुष्य] (महत) महान् (भयम्) भय को ( अभीषत ) डरा देता है ( अपचुच्यवत ) दूर करता है ( स ) वह (हि ) क्योंकि (स्थिर ) स्थिर ( विचर्षणि ) सर्वद्रष्टा ॥७॥

भावार्थ—हे बलवान् ईश्वर ! परमेश्वर महान् भय को भी भयभीत करता है और दूर करता है क्योंकि वह नित्य और सर्वद्रष्टा है ॥७॥

२०१—भरद्वाज । गायत्री । इन्द्र ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ ३ २उ ३ १ २
इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणो गिर । गावो वत्सन्न धेनवः ॥८॥

पदार्थ—(इमा ) ये ( उ ) ही ( त्वा ) तुझको ( सुते सुते ) प्रत्येक उत्तम भावना के समय ( नक्षन्ते ) प्राप्त करती हैं ( गिर्वण ) हे उपास्य देव ! (गिरः ) स्तुतियां ( गाव ) गायें ( वत्सम् ) बछड़े को ( न ) जैसे ( धेनवः ) दूध देने वाली ॥८॥

भावार्थ—हे उपास्य देव ईश्वर ! जैसे दूध देने वाली गायें अपने बछड़े के समीप पहुँचती हैं ऐसे ही ये हमारी स्तुतियाँ प्रत्येक उत्तम भावना के समय में तेरे ही समीप पहुँचती हैं ॥८ ॥

२०२—भरद्वाज । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २
इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥९॥

पदार्थ—( इन्द्रा ) ईश्वर का ( नु ) सच्चा ( पूषणा ) पालन-पोषण कर्त्ता ( वयम् ) हम ( सख्याय ) मैत्री के लिये ( स्वस्तये ) अपने कल्याण के लिये तथा पालन के लिये भी ( हुवेम ) आह्वान करते हैं ( वाजसातये ) उत्तम सम्पत्ति के लिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हम पालन पोषण करने वाले ईश्वर को अपनी मैत्री, कल्याण और उत्तम सम्पत्ति के लिये पुकारते हैं ॥९॥

२०३—वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र २ ३ २उ ३ २
न कि इन्द्र त्वदुत्तर न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । न क्येव यथा त्वम् ॥१०॥

पदार्थ—( नकि ) नहीं कोई ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( त्वत ) तुम से (उत्तरम्) श्रेष्ठ ( न ) नही (ज्याय ) महान् ( अस्ति ) है ( वृत्रहन् ) हे पापनाशक (नकि) कोई नही है ( एवम् ) ऐसा ( यथा ) जैसा ( त्वम् ) तू है ॥१०॥

भावार्थ—हे पापनाशक ईश्वर ! तुम से श्रेष्ठ और महान् कोई नहीं है । हे नाथ, तू जैसा है वैसा दूसरा कोई नही ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

२०४—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २३ १ २
तरणिं वो जनानां त्रद वाजस्य गोमत । समानमु प्र शंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—( तरणिम ) तारने वाले ( व ) तुम सब ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( त्रदम् ) रक्षक (वाजस्य) अन्न के (गोमत ) गौ आदि सम्पत्ति के सहित (समानम्) एक समान ( प्रशंसिषम ) उत्तम स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर सब को तारने वाला है । वह अन्न तथा गोधन का समान रूप से रक्षक है । मैं उसकी स्तुति करता हूँ ॥१॥

२०५—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
असृग्रमिन्द्र ते गिर प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥२॥

पदार्थ—( असृग्रम् ) स्तुति करता हूँ ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( ते ) तेरी ( गिर ) स्तुतियां ( प्रतित्वाम् ) तेरी शरण में ( उदहासत ) पहुँचें । ( अजोषा ) प्रेमसहित ( वृषभम् ) मनोरथ सफल करने वाले ( पतिम् ) सब के स्वामी ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मैं स्तुति करता हूँ । हमारी ये प्रेमपूर्ण स्तुतियां तेरी शरण मे पहुँचे । तू कामनाओं को सफल करने वाला है । तू सब का स्वामी है ॥२॥

२०६—वास । गायत्री । इन्द्र

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २३ २ ३ २उ ३ १२
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्राःपान्त्यद्रुहः ॥३॥

पदार्थ—( सुनीथ ) प्रशंसनीय ( घा ) पादपूरक ( स ) वह ( मर्त्य ) विद्वान्जन ( यम् ) जिसको ( मरुतः ) मनुष्य ( यम् ) जिसको ( अर्यमा ) परमेश्वर ( मित्र ) मित्र ( पान्तु ) रक्षा करते हैं, ( अद्रुह ) द्रोहरहित ॥३॥

भावार्थ—जिसकी परमेश्वर विद्वान् और द्रोह न करने वाले मित्र रक्षा करते हैं, वह मनुष्य प्रशंसनीय है ॥३॥

२०७—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १२ ३ १ २र
यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( वीडौ ) बल में ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( यत् ) जो ( स्थिरे ) भूगर्भ में ( यत् ) जो ( पर्शाने ) पर्वत आदि में ( पराभृतम् ) रखा गया है ( वसु ) सम्पत्ति ( स्पार्हम् ) चाहने योग्य ( तत् ) उस को ( आभर ) दे ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमें वह बहुमूल्य सम्पत्ति दे जो बल में तथा पर्वतों के अन्दर विद्यमान है और जिसकी सब कामना करते हैं ॥४॥

२०८—सुकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥५॥

पदार्थ—( श्रुतम् ) विख्यात ( व ) तुमको ( वृत्रहन्तमम् ) शत्रुओं का नाशक, ( प्रशर्धं ) उत्तम बल ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के ( आशिषे ) चाहता हूँ ( राधसे ) धन की प्राप्ति के लिये ( महे ) महान् ॥५॥

भावार्थ—हे लोगो ! तुम मनुष्यों के महान् धन की प्राप्ति के लिए मैं, शत्रु नाशक उत्तम बल तुम्हें प्राप्त हो, ऐसा चाहता हूँ ॥५॥

२०९—वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १२ ३ १२
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावत । अरं शक्र परेमणि ॥६॥

पदार्थ—( अरम् ) पर्याप्त ( ते ) वे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( श्रवसे ) यश का गान करने के लिये ( गमेम ) उपस्थित होते हैं ( शूर ) हे बलवान् ( त्वावत ) तेरे चाहने वाले ( अरम् ) पर्याप्त ( शक्र ) हे शक्तिमन् ( परेमणि ) समाधि की सिद्धि में ॥६॥

भावार्थ—हे सर्व शक्तिमन्, बलवान् परमेश्वर ! तुमको चाहने वाले हम लोग तुम्हारे यशोगान के लिये भली प्रकार उपस्थित होते हैं समाधि में भी उपस्थित होते हैं ॥ ६ ॥

२१०—विश्वामित्र । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ १ २ १ २ ३ १ २
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७॥

पदार्थ—( धानावन्तम् ) भूने हुए जवों वाले ( करम्भिणम् ) भूने जव के सत्तू में घी देकर उससे यज्ञ करने वाले ( अपूपवन्तम् ) गेहूँ के आटे से बने हुए हविष्य से यज्ञ करने वाले को और ( उक्थिनम् ) स्तुति करने वाले को भी ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( प्रातः ) प्रातःकाल ( जुषस्व ) प्रेम का पात्र बनावे ( नः ) हम लोगों को ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! प्रतिदिन उत्तम पदार्थों से यज्ञ करने वाले मनुष्य तेरे प्रेम के पात्र हों ॥ ७ ॥

२११—गोषूक्ती चाश्वसूक्ती च । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र ३ १ ३
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥८॥

पदार्थ—( अपां ) कर्मयोग के ( फेनेन ) विस्तार के द्वारा ( नमुचेः ) काम के ( शिरः ) मुख्यता को ( इन्द्र ) हे जीव ! ( उदवर्तयः ) तूने छिन्न भिन्न कर दिया है ( विश्वाः ) सारी ( यत् ) जब ( अजय ) जीत लिए हों ( स्पृधः ) स्पर्धा करने वाली चित्त की वृत्तियों को ॥८॥

भावार्थ— हे जीव ! जब तुम कर्मयोग के साधन के द्वारा, स्पर्धा करने वाली सारी चित्त की वृत्तियों को वश में कर लेते हो, तो मन के स्वयं वश में हो जाने पर काम को भी वश में कर लेते हो ॥८॥

२१२—वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १२
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९॥

पदार्थ—( इमे ) ये ( ते ) तेरे लिये ( इन्द्र ) हे जीव ! ( सोमाः ) संसारी भोग्य पदार्थ ( सुतासः ) तैयार हैं ( ये च ) और जो ( सोत्वाः ) तैयार होने वाले हैं ( तेषाम् ) उन्हीं से ( मत्स्व ) प्रसन्न हो ( प्रभूवसो ) हे पर्याप्त सम्पत्ति वाले ॥९॥

भावार्थ—हे पर्याप्त सम्पत्ति वाले जीवात्मन् ! तेरे लिये ये भोग्य पदार्थ तैयार हैं और जो तैयार होने वाले हैं, उन सब से तू प्रसन्न हो ॥९॥

२१३—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१०॥

पदार्थ—( तुभ्यं ) तेरी उपासना के लिये ( सुतासः ) तैयार हैं ( सोमाः ) विद्वान् ( स्तीर्णम् ) बिछाया हुआ है ( बर्हिः ) आसन ( विभावसो ) हे प्रकाशस्वरूप ! ( स्तोतृभ्यः ) भक्तों को ( मृडय ) सुखी कर ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ॥१०॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तेरी उपासना के लिये भक्त जन उपस्थित हैं, आसन बिछा हुआ है, तू स्तुति करने वालों को सुखी कर ! ॥१०॥

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

२१४—शुनःशेप । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( व ) तुम लोगों में ( इन्द्रम् ) महात्मा ( क्रिविं यथा ) खेत को जैसे ( वाजयन्तः ) अन्न चाहने वाले ( शतक्रतुम् ) बहुत कर्म करने वाले ( मंहिष्ठम् ) अत्यन्त महान् ( सिञ्चे ) पुष्ट करता हूँ ( इन्दुभिः ) जलों से ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों में अनेक प्रकार के कर्म करने वाले महान् आत्मा को ज्ञान से पुष्ट करता हूँ जैसे अन्न चाहने वाले किसान जल से खेत सींचते हैं ॥१॥

२१५—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥२॥

पदार्थ—( अत चित् ) इसी लिए ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( न ) हम लोगों को ( उपायाहि ) प्राप्त होवे, ( शतवाजया ) सैकड़ों बल वाले ( इषा ) विज्ञान के साथ ( सहस्रवाजया ) हजारों प्रकार के बलवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सैकड़ों अथवा सहस्रों प्रकार के धन देने वाले विज्ञान के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

२१६—त्रिशोक । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् ।
२ ३ १ २र
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( बुन्दम् ) शस्त्र [ बन्दूक को ] ( वृत्रहा ) योद्धा ( ददे ) उठाता है ( जातः ) शस्त्रविद्या में निपुण ( पृच्छात् ) पूछे ( वि ) विशेषरूप से ( मातरम् ) माता से [ मातृभूमि की प्रजा से ] ( के ) कौन ( उग्राः ) द्रोही ( के ) कौन ( ह ) प्रसिद्ध ( शृण्विरे ) सुने जाते हैं ॥३॥

भावार्थ—शस्त्र विद्या में चतुर योद्धा शस्त्र हाथ में लेकर माता ( मातृभूमि की प्रजा ) से पूछे कि कौन कौन देशद्रोही सुने जाते हैं ॥३॥

२१७—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।

३१ २ ३१२ ३ १ २
बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—( बृबदुक्थम् ) प्रशंसा के योग्य ( हवामहे ) आह्वान करते हैं ( सृप्रकरस्नम् ) लम्बी बाहुओं वाले ( ऊतये ) आत्म रक्षा के लिए ( साधः ) संग्राम का साधन ( कृण्वन्तम् ) तैयार करते जाने वाले ( अवसे ) प्रजा की रक्षा के लिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे वीर ! आप प्रशंसा के योग्य विशाल भुजाओं वाले और संग्राम के साधन तैयार करने वाले हैं । हम आपको अपने पालन और प्रजा की रक्षा के लिए पुकारते हैं ॥ ४॥

२१८—गोतम । गायत्री । इन्द्र ।

३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५॥

पदार्थ—( ऋजु ) सरल ( नीती ) नीति से ( नः ) हमें ( वरुणः ) राजा ( मित्रः ) मित्र ( नयति ) रास्ते पर चलाता है ( विद्वान् ) विद्वान् ( अर्यमा ) परमेश्वर ( देवैः ) विद्वानों के द्वारा ( सजोषाः ) प्रीतियुक्त ॥५॥

**भावार्थ**—परमेश्वर प्रीतियुक्त विद्वान् मित्र और राजा विद्वानों द्वारा सरल रीति से हमें रास्ते पर ले चलते हैं ॥५॥

*२१९—ब्रह्मातिथि । गायत्री । इन्द्र ।*

३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ ३ १ २
**दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत । वि भानु विश्वथा तनत ॥६॥**

**पदार्थ**—( **दूरात** ) दूर से ( **इह इव** ) यहां के समान ( **अरुणप्सु** ) अरुण रूपवाला ( **अशिश्वितत** ) प्रकाशित करता है ( **यत्** ) जब ( **सत** ) सत्ताधारी पदार्थों का ( **विभानुम्** ) ज्ञान किरण को ( **विश्वथा** ) सब तरफ ( **आतनत** ) फैलाता है ॥६॥

**भावार्थ**—जब अरुणरूपवाला सूर्य पदार्थों को प्रकाशित करता है तो दूर रहते हुए भी समीप मालूम पड़ता है ऐसे ही परमेश्वर अज्ञानियों की अपेक्षा दूर रहते हुए भी व्यापकता से समीप वर्त्तमान के समान ज्ञान का प्रकाश करता है ॥६॥

*२२०—जमदग्नेर्विश्वामित्रस्य वा । गायत्री । मित्रावरुणौ ।*

१ २ ३ १ २र
**आ नो मित्रावरुणा घृतगव्यूतिमुक्षतम ।**

२ ३ १ २
**मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—( **आ** ) सब प्रकार ( **न** ) हमारे ( **मित्रावरुणा** ) परमेश्वर और विद्वान् ( **घृत** ) जलों से (**गव्यूतिम्**) दूर दूर तक जैसे सींच देते हैं ऐसे ही (**उक्षतम्**) सींच (शिक्षा दे)(**मध्वा** ) ज्ञानवाणी से ( **रजांसि** ) लोकों (लोकों में रहने वालों ) को ( **सुक्रतू** ) उत्तम बुद्धि वालो ॥७॥

**भावार्थ**—हे उत्तमज्ञानवाले परमेश्वर और विद्वान् ! जल से भूमि के समान ज्ञान से लोकों को सींच दो ॥७॥

*२२१—प्रस्कण्व हिरण्यस्तूपस्य वा । गायत्री । मरुत ।*

२ ३ २ ३ २ ४ २ ३ १ २ ३ १ २
**उदु त्ये सूनवो गिर काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।**

३ १ २ ३ १ २र
**वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—( **उत** ) ऊपर ( **उ** ) पादपूरक ( **त्ये** ) वे ( **सूनव** ) उत्पादक ( **गिर** ) वाणी के ( **काष्ठा** ) दिशाओं को ( **यज्ञेषु** ) व्यापार में ( **अत्नत** ) गतिमान् करते हैं ( **वाश्रा** ) शब्द को सुनाने वाली ( **अभिज्ञु** ) घुटने पर चलने वाले के समान ( **यातवे** ) चलने के लिए ॥८॥

**भावार्थ**—शब्द को सुनाने वाली वायुए प्रत्येक दिशा में जाने के लिये अपने व्यापार में वैसे ही गतिमान् हो जाती हैं जैसे बालक घुटनें के बल पर चलता हुआ चारों तरफ दौड़ता है ॥८॥

*२२२—मेधातिथि । गायत्री । विष्णु ।*

३२उ ३ १ २ ३ १ २र ३
**इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दध पदम ।**

१ २ ३ २
**समूढमस्य पांसुले ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—( **इदम्** ) इस ( **विष्णु** ) परमेश्वर ने ( **विचक्रमे** ) विविध प्रकार से रचा है ( **त्रेधा** ) तीन प्रकार से ( **निदधे** ) स्थापित किया है ( **पदम्** ) वस्तुजात को ( **समूढम्** ) छिपा हुआ है ( **अस्य** ) इसका ( **पांसुरे** ) आकाश में ॥९॥

**भावार्थ**—परमेश्वर ने इस जगत् का विविध प्रकार से रचा है। उसने समस्त वस्तुजात को पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्यौ—इन तीनों लोकों में स्थापित किया है। इसका मुख्यपद व्यापकता आकाश में छिपी हुई है ॥ ९ ॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

*२२३—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ॥१॥**

**पदार्थ**—( **अतीहि** ) परित्याग कर दे ( **मन्युषाविणम्** ) क्रोध से सोमरस तैय्यार करने वाले का ( **सुषुवांसम्** ) अच्छे चलाने वाले का ( **उपेरय** ) प्रेरणा कर [काम करने का] ( **अस्य** ) इसके ( **रातौ** ) देने पर ( **सुतम्** ) सोम का ( **पिब** ) पान कर ॥ १ ॥

**भावार्थ**—हे राजन् ! क्रोध से वस्तु तय्यार करने वाले को परे करो। जो शान्त स्वभाव से तय्यार करे उसे समीप रखो और उसके दिये पदार्थ को स्वीकार करो ॥ १ ॥

*२२४—वामदेव । गायत्री । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २र ३ १ २
**कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥२॥**

**पदार्थ**—( **कदु** ) कुछ भी ( **प्रचेतसे** ) सर्वज्ञ ( **महे** ) महान् ( **वच** ) स्तुति ( **देवाय** ) देव के लिये ( **शस्यते** ) की जाय ( **तत इत् हि** ) वही ( **अस्य** ) स्तुति करने वाले को ( **वर्धनम्** ) उन्नत करने वाली होती है ॥ २ ॥

**भावार्थ**—सर्वज्ञ महान् देव ईश्वर की थोडी भी स्तुति की जाय, तो वही स्तुति करने वाले की उन्नति का कारण बन जाती है ॥ २ ॥

*२२५—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
**उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।**

१ २ ३ २ ३ १ २
**न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—( **उक्थम्** ) स्तोत्र ( **च** ) और ( **न** ) नहीं ( **शस्यमानम्** ) कहे हुए ( **न** ) नहीं ( **अगो** ) अविद्वान् ( **रयि** ) धनों का स्वामी ( **आ चिकेत** ) जानता है ( **न** ) नहीं ( **गायत्रम्** ) साम ( **गीयमानम्** ) गाए हुए ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—सब धनों का स्वामी परमेश्वर अविद्वान् के कहे गये स्तोत्र तथा गाये गये साम को नहीं जानता ऐसा नहीं अपितु जानता है ॥ ३ ॥

*२२६—विश्वामित्र । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपति ।**

१ २ ३ २ ३ १ २
**हरिवान्त्सुतानां सखा ॥४॥**

**पदार्थ**—( **इन्द्र** ) ईश्वर ( **उक्थभि** ) स्तोत्रों से ( **मन्दिष्ठ** ) अत्यन्त स्तुति के योग्य है ( **वाजानाम्** ) बलों का ( **वाजपति** ) स्वामी है ( **हरिवान्** ) ज्योतिस्वरूप ( **सुतानाम्** ) प्राणिमात्र का ( **सखा** ) मित्र है ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—ईश्वर स्तोत्रों से अत्यन्त स्तुति करने के योग्य है। वह बलों का स्वामी है। वह प्रकाशस्वरूप और प्राणिमात्र का मित्र है ॥ ४ ॥

*२२७—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथा ।**

३ १ २ ३ १ २
**महां इव युवजानि ॥५॥**

**पदार्थ**—( **आयाहि** ) ला ( **उप** ) समीप ( **न** ) हमारे ( **सुतम्** ) ज्ञान को ( **वाजभि** ) ज्ञानवानों द्वारा ( **महान्** ) महान् ( **इव** ) जैसे ( **युवजानिः** ) सदाचारी स्त्री वाला ( **मा** ) नहीं ( **हृणीथा** ) लज्जित कर ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! तू उसी प्रकार से हमें अपने समीप कर तथा ज्ञान वालों के द्वारा हमारे ज्ञान को लज्जित मत होने दे जैसा कि एक सदाचारी पति अपनी पत्नी को समीप करता है तथा लज्जा का विषय नहीं बनने देता ॥ ५ ॥

*२२८—दुर्मित्र । गायत्री । इन्द्र ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ २
**कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः ।**

३ २ ३ २ ३ १ २
**दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥६॥**

**पदार्थ**—( **कदा** ) जब कभी ( **वसो** ) हे ऐश्वर्यशाली ( **स्तोत्रम् हर्यते** ) वेदप्रेमी के लिए ( **आ** ) सब प्रकार ( **अव** ) उपसर्ग ( **श्मशा** ) नहर ( **रुधत्** ) रुक जावे ( **वा** ) पानी ( **दीर्घम्** ) महान् ( **सुतम्** ) प्रजावर्ग को ( **वाताप्याय** ) जलप्रदान करने के लिये ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—हे ऐश्वर्यवान् राजन् जब कभी जल वृष्टि रुक जावे तब वेदप्रेमी महान् प्रजा वर्ग को जल प्रदान करने के लिए नहर बनवाओ ॥ ६ ॥

*२२९—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २र
**ब्राह्मणादिन्द्र राधस पिबा सोममृतूँ रनु । तवेदं सख्यमस्तृतम ॥७॥**

**पदार्थ**—( **ब्राह्मणात्** ) ब्रह्मवेत्ता के [सम्पर्क से] ( **राधस** ) आराधना करने वाले ( **इन्द्र** ) हे जीव ! ( **पिब** ) उपभोग कर ( **सोमम्** ) सोमादि पदार्थ का ( **ऋतूँ रनु** ) ऋतु के अनुसार ( **तव** ) तेरा ( **इदम्** ) यह ( **सख्यम्** ) सम्बन्ध ( **अस्तृतम्** ) चिरस्थायी ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—हे जीवात्मन् ! तू आराधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता के सम्पर्क से ऋतुओं के अनुसार सोमादि पदार्थों का उपभोग कर ॥ ७ ॥

*२३०—मेधातिथि । गायत्री । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
**वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वण । त्वं नो जिन्व सोमपा ॥८॥**

**पदार्थ**—( **वयम्** ) हम ( **घा** ) ही ( **ते** ) तेरे ( **अपि** ) भी ( **स्मसि** ) हैं ( **स्तोतार** ) स्तुति करने वाले ( **इन्द्र** ) हे ईश्वर। ( **गिर्वण** ) हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य ! ( **त्वम्** ) तू ( **नः** ) हमें ( **जिन्व** ) तृप्त कर ( **सोमपाः** )। हे ऐश्वर्यशाली पदार्थों के रक्षक ॥ ८ ॥

**भावार्थ**—हे मन्त्रों से स्तुति करने योग्य ! ऐश्वर्यशाली पदार्थों के रक्षक ईश्वर ! हम भी तेरी ही स्तुति करने वाले हैं। तू हमें तृप्त कर ॥ ८ ॥

२३१—विश्वामित्र । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि न ।

१ २ ३ १ २

सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( पृक्षु ) संग्रामो मे ( कासुचित् ) सम्पूर्ण ( नृम्णम् ) सुख को ( तनूषु ) शरीरों म ( धेहि ) दे ( न ) हमारे (सत्राजित्) जीतने वाला है ( उग्र ) हे ओजस्वी ! (पौंस्यम्) बल को ॥९॥

भावार्थ—सब संग्रामों के समय मे हमारे शरीरों मे सुख और बल दे। हे ओजस्वी ! तू सदा जीतने वाला है ॥ ९ ॥

२३२—श्रुतकक्ष । गायत्री । इन्द्र ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिर । एवा ते राध्य मन ॥१०॥

पदार्थ—( एव ) ही ( हि ) निश्चय ( असि ) है ( वीरयु ) वीरो को चाहने वाला ( एव ) ही ( शूर ) शक्तिमान् ( उत ) और ( स्थिर ) नित्य (एव) ही ( ते ) तेरा ( राध्यम् ) आराधना के योग्य ( मन ) मननशील ज्ञान है ।१०।

भावार्थ—हे ईश्वर ! वीर पुरुष तेरे प्यारे होते हैं। तू शक्तिमान् और नित्य है। तेरा ज्ञान चिन्तन करने के योग्य है ॥ १० ॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

# तृतीयोऽध्यायः

२३३—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

३ १ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनव ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ईशानमस्य जगत स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) सब ओर से ( त्वा ) तुमको ( शूर ) हे शक्तिमान् ! ( नोनुम ) बारबार नमस्कार करते हैं ( अदुग्धा ) बिना दोही गई ( इव ) समान ( धेनव ) गायों के ( ईशानम् ) स्वामी ( अस्य ) इस ( जगत ) जङ्गम संसार का ( स्वर्दृशम् ) सूर्य के समान सब का द्रष्टा ( ईशानम् ) स्वामी ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( तस्थुष ) स्थावर संसार का ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शक्तिमन् ईश्वर ! जैसे बिना दोही हुई गायों का थन दूध से भरपूर रहता है, ऐसे ही प्रेम से भरपूर हृदय से हम चराचर संसार के स्वामी आपको बारबार नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

२३४—भरद्वाज शंयुर्वा भरद्वाज । बृहती । इन्द्र ।

१ १र ३ १ २र ३ १ २

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारव ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वत ॥२॥

पदार्थ—( त्वाम् ) तेरी ( इत् ) ही ( हवामहे ) पुकार करते हैं ( सातौ ) प्राप्ति के निमित्त ( वाजस्य ) अन्न आदि सम्पत्ति का ( कारव ) उपासक लोग ! ( त्वाम् ) तुमको ( वृत्रेषु ) उपद्रवो के अधिक होने पर ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( सत्पतिम् ) तुम सब के स्वामी को ( नर ) हम मनुष्य ( त्वां ) तेरा (काष्ठासु) संग्रामों म ( अर्वत ) घुड़सवार भी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उपासक लोग अन्न आदि सम्पत्ति को पाने के लिए तुझे ही पुकारा करते हैं। हम मनुष्य उपद्रवो के बढ जाने पर तुझ ही पुकारते हैं तथा संग्रामों मे घुडसवार वीर भी रक्षक रूप से तेरी ही पुकार करते हैं ॥ २ ॥

२३५—बालखिल्या । बृहती । इन्द्र ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र व सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसु सहस्रेणेव शिक्षति ॥३॥

पदार्थ—( अभि ) सम्मुख ( प्र ) उत्तम ( व ) तुम सब ( सुराधसम् ) सुन्दर सिद्धिदाता ( इन्द्रम् ) ईश्वर की ( अर्च ) स्तुति करो ( यथाविदे ) उसके वास्तविक ज्ञान के लिए ( य ) जो ( जरितृभ्य ) उपासकों को ( मघवा ) नित्य दानी है ( पुरूवसु ) असंख्य धनों वाले ( सहस्रेणेव ) हजारों प्रकार से (धन) ( शिक्षति ) देता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! तुम सब ईश्वर के वास्तविक ज्ञान के लिए उसकी स्तुति करो, जो सिद्धि देता है, जो बराबर दानी है, असंख्य धनों का स्वामी और उपासकों को हजारों प्रकार से सम्पत्ति देने वाला है ॥ ३ ॥

२३६—नोधा । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धस ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( व ) तुम्हारे ( दस्मम् ) दुःख के निवारक ( ऋतीषहम् ) कामादि शत्रु के नाशक ( वसो ) धन से ( मन्दानम् ) आनन्दित करने वाले ( अन्धस ) अन्न आदि के ( अभि ) लक्षित कर ( वत्सम ) बछड़े को ( न ) समान ( स्वसरेषु ) गोशाला मे ( धेनव ) गायों के ( इन्द्रं ) परमेश्वर की ( गीर्भि ) वेदवाणियों से ( नवामहे ) नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! गोशालाओं में बछड़े को गाय के समान हम तुम्हारे दुःखनिवारक तथा अन्नादि से आनन्दित करने वाले कामादि शत्रुओं के नाशक परमेश्वर की वेद वाणियों से स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

२३७—कलिप्रागाथ । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्त सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५॥

पदार्थ—( तरोभि ) शीघ्रता के साथ ( व ) तुमको ( विदद्वसुम् ) सम्पत्ति के दाता ( इन्द्रम ) ईश्वर का ( सबाध ) बाधाओं से बाधित हो ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( बृहत ) गुणों से महान् ( गायन्त ) सामगान करते हुए ( सुतसोमे ) अमृतरस तयार किये जाने वाले ( अध्वरे ) कल्याणकारी यज्ञ में ( हुवे ) पुकारते हैं ( भरम ) बचाने वाले ( न ) जैसे ( कारिणम ) उपकारी वीर को ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए कोई उपकारी वीर को पुकारे ऐसे ही बाधाओ के आने पर अपनी रक्षा के लिये अमृत रस तैयार किये जाने वाले कल्याणकारी यज्ञ मे सम्पत्तिदाता और गुणों से महान् तेरा इस साम के द्वारा गुणगान गाते हुए शीघ्र आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

२३८—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम ॥६॥

पदार्थ—( तरणि ) शीघ्र साधन करने वाला पुरुष ( इत्) ही (सिषासति) पाना चाहता है ( वाजम् ) बल को ( पुरन्ध्या ) बुद्धि की (युजा) सहायता से (आ) सब प्रकार से ( व ) तुम ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( पुरुहूतम् ) बहुतो से पुकारे जाने वाले ( नमे ) अपनी ओर करता हूँ (गिरा) स्तुति से ( नेमिम् ) चक्के को ( तष्टा इव ) बढ़ई के समान ( सुद्र्वम् ) सुन्दर लकड़ी के ॥६॥

भावार्थ—शीघ्र मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाला पुरुष ही बुद्धि की सहायता से योग बल पाना चाहता है। इसलिये हे ईश्वर ! जैसे बढ़ई अच्छी लकड़ी के चक्के को ढाल बना लेता है ऐसे ही बहुतो से पुकारे जाने वाले स्तुति के द्वारा अपने अनुकूल स्वीकृत करता हूँ ॥६॥

२३९—मेधातिथि । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३स्माँ अवन्तु ते धिय ॥७॥

पदार्थ—( पिब ) रक्षा कर ( सुतस्य ) शुद्ध ज्ञान को ( रसिन ) सरस ( मत्स्वा ) प्रसन्न कर ( न ) हमे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( गोमत ) जितेन्द्रिय पुरुषों को ( आपि ) व्यापक तू ( न ) हमें ( बोधि) बोध करा दे (सधमाद्ये ) आनन्द

दायक योगयज्ञ में ( वृधे ) उन्नति के लिये ( अस्मान् ) हम लोगों को (अवन्तु ) रक्षा करो ( ते ) तेरे ( धिय॰ ) ज्ञान ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे सरस शुद्ध ज्ञान की रक्षा कर। सबमी लोगो को आनन्दित कर ! तू सर्वव्यापक है। हमारी उन्नति के लिये तू हमे ऐसा ज्ञान दे जिससे हम तेरे निकट आ सकें ॥७॥

२४०—भर्ग । बृहती । इन्द्र ।

२र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
त्व ह्येहि चेरवे विदा भग वसुत्तये ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( हि ) निश्चय ही ( एहि ) प्राप्त हो ( चेरवे ) सदाचार के ( विदा ) दे ( भगम् ) ऐश्वर्य ( वसुत्तये ) सम्पत्ति देने के लिये (उत्) भी ( वावृषस्व ) वृष्टि कर ( मघवन् ) हे दान करने वाले ! ( गविष्टये ) इन्द्रियो की अत्यन्त भलाई के लिए ( उत ) भी ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( अश्वम् ) प्राण को ( इष्टये ) कल्याण के लिए ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू प्राप्त हो। सदाचार की रक्षा के लिए ही हमे सम्पत्ति दे। हे सब से बड़े दानी इन्द्रियो की भलाई और हमारे कल्याण के लिए प्राण को पुष्ट कर ॥८॥

२४१—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
न हि वश्चरम च न वसिष्ठ परिमंसते ।

२ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
अस्माकमद्य मरुत सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिन ॥९॥

पदार्थ—( नहि ) नहीं ( व ) तुम मे (चरम च न) एक को भी (वसिष्ठ ) मुख्यप्राण ( परिमंसते ) छोड़ कर चलता है ( अस्माकम् ) हमारे ( अद्य ) आज (मरुत ) सब प्राण ( सुते ) इसके सुसम्पन्न हो जाने पर (सचा) एक साथ (विश्वे) सब ( पिबन्तु ) पान करें ( कामिन ) कामना करने वाले ॥९॥

भावार्थ—प्राण और मुख्य प्राण मे से कोई एक को भी छोड़ कर नही चलता है बल्कि सब को साथ ले कर ही चलता है, आज कामना करने वाले हमारे सब प्राण एक साथ आनन्द रस का पान करें ॥९॥

२४२—प्रगाथ । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मा चिदन्यद्वि शसत सखायो मा रिषण्यत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषण सचा सुते मुहुरुक्था च शसत ॥१०॥

पदार्थ—( माचित् ) नही ही ( अन्यत ) सत्य से विपरीत ( विशसत ) उच्चारण करो ( सखाय ) हे मित्रो ! ( मा रिषण्यत ) हिंसा मत करो (इन्द्रमित्) ईश्वर की ही ( स्तोता ) स्तुति करो ( वृषणम् ) कामनाओं को पूर्ण करने वाले ( सचा ) एक साथ ( सुते ) जगत् मे ( मुहु ) बार बार ( उक्था ) वेदमन्त्रों का ( च ) और ( शसत ) पाठ करो ॥१०॥

भावार्थ—हे मित्रो ! सत्य से विपरीत मत बोलो। किसी को दुःख मत दो। कामनाओं की पूर्ति करने वाले ईश्वर की सम्मिलित स्तुति करो, तथा जगत् में वेद मन्त्रो का पाठ करो ॥१०॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

२४३—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न किष्ट कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्ट धृष्णुमोजसा ॥१॥

पदार्थ—( नकि ) कोई नही ( तम् ) उसका ( कर्मणा ) किसी उपाय से ( नशत् ) नाश कर सकता है ( य ) जो ( चकार ) कर लेता है ( सदावृधम् ) सर्वदा बढ़ाने वाले ( इन्द्र ) ईश्वर को ( न ) राजा के समान (यज्ञै ) अनेक प्रकार की क्रियाओ से ( विश्वगूर्तम् ) स्तुति के योग्य ( ऋभ्वसम् ) महान् ( अधृष्टम् ) सब के ऊपर विराजमान (धृष्णुम् ) सब का अधिष्ठाता ( ओजसा ) बल से ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष सर्वदा प्रोत्साहन देने वाले स्तुति के योग्य, महान्, सब के ऊपर विराजमान, ससार के अधिष्ठाता, ईश्वर को अपना स्वामी समझ कर अनेक प्रकार के कर्मों से अपने अनुकूल करता है इस ससार मे उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥१॥

२४४—मेधातिथि । मेध्यातिथिश्च । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
य ऋते चिदभिश्रिष पुरा जत्रुभ्य आतृद ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सन्धाता सन्धि मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो ईश्वर ( ऋतेचित ) विनाशी ( अभिश्रिष ) जोड़ने वाली औषध के ( पुरा ) पुरा पहले ही ( जत्रुभ्य ) ग्रीवा—[गर्दन] आदि जोड़ों से ( आतृद ) रक्त के प्रवाह के(सन्धाता ) जोड़ने वाला है ( सन्धिम् ) जोड़ों को ( मघवा ) धनवान् ( पुरूवसु ) घट घट वासी ( निष्कर्ता ) बनाता है (विह्रुतम् ) विशेष रूप से टेढ़े मेढ़े को ( पुन ) फिर ॥२॥

भावार्थ—सकल सम्पदाओ का स्वामी घट घट वासी परमेश्वर आरम्भ की अवस्था मे गर्दन से लेकर रक्त पर्यन्त समस्त सन्धियो को रज्जु तथा जोड़ने के लौकिक साधन के बिना ही जोड़ता है, और फिर शीघ्रता से समस्त शरीर को निष्पन्न(निर्मित) कर देता है।

नोट—यह मन्त्र गर्भावस्था की रचना और सृष्ट्यारम्भ काल की शरीर-रचना दोनो मे ही घटता है ॥ २॥

२४५—ऋषि देवता छन्दांसि पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ त्वा सहस्रमा शत युक्ता रथे हिरण्यये ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार स (त्वा) तुम को ( सहस्रम् ) सहस्र ( आ ) सब प्रकार से ( शतम ) सैकड़ो ( रथे ) रथ मे ( हिरण्यये) प्रकाशयुक्त,[चमकीले] ( ब्रह्मयुज ) ब्रह्मज्ञानी ( हरय ) मनुष्य ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! (केशिन ) केशधारी ( वहन्तु ) प्राप्त करते हैं ( सोमपीतये ) आनन्द की प्राप्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सैकड़ों अथवा सहस्रो शरीररूपी रथ मे युक्त अर्थात् शरीरी ब्रह्मज्ञानी केशधारी मनुष्य आनन्द प्राप्ति के लिए तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

२४६—विश्वामित्र । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभि ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४॥

पदार्थ—(आ ) सब प्रकार (मन्द्रै: ) आनन्ददायक ( इन्द्र ) सूर्य (हरिभि ) किरणों से ( याहि ) लोक को प्राप्त होता है ( मयूररोमभि ) मयूर के रोम के समान अनेक रंग वाले ( मा ) नहीं ( त्वा ) उसको ( केचित् ) कोई [ अन्धकार ] ( नियेमु ) रोक सकते ( इत् ) ही ( न ) समान ( पाशिन ) व्याध के ( अति ) लाङ्घकर ( धन्वा इव ) धनुष् से जिस प्रकार ( इहि ) आता है ॥४॥

भावार्थ—मोर के आनन्द देन वाले पखों के समान अनेक रंग वाली किरणों के द्वारा सूर्य लोक को प्राप्त होता है। जसे बधक हाथ मे लिए व्याध पक्षियो को फसा लेते हैं ऐसे ही उसको कोई अन्धकार आदि रोक नहीं सकते। वह धनुष् से धनुषधारी के समान सब रोकने वालो को लाङ्घकर प्राप्त होता है ॥४॥

२४७—गोतम । बृहती । इन्द्र ।

२ ३२ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देव शविष्ठ मर्त्यम् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वच ॥५॥

पदार्थ—( त्वम ) तू ( अङ्ग ) हे प्यारे ! ( प्रशंसिष ) अनेक प्रकार से प्रशंसा करता है ( देव ) दानी तू ( शविष्ठ ) हे शक्तिमन् ! ( मर्त्यम् ) मनुष्य की ( न ) नहीं ( त्वत ) तुम से (अन्य ) दूसरा (मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् ! (अस्ति) है ( मर्डिता ) सुख देने वाला ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( ब्रवीमि) करता हूँ ( ते ) तेरी ( वच ) स्तुति ॥५॥

भावार्थ—हे शक्तिमान् ! प्यारे प्रभो ! तू देव है। तू मनुष्य जाति की प्रशंसा करता है। हे ऐश्वर्यवान् ! तुझ से बढ़कर दूसरा कोई सुखदाता नहीं है। मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥५॥

२४८—नृमेधपुरुषमेधौ । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पति ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ १ २ ३ १ २
त्व वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृति ॥६॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( यशा ) यशस्वी ( असि ) है ( ऋजीषी ) समृद्धिशाली ( शवसस्पति ) बल के रक्षक ( त्वं ) तू ( वृत्राणि )

अज्ञान रूप अन्धकार का ( हंसि ) नाश करता है ( अप्रतीतिः ) कठिनाई से जिनका सामना किया जाए (एक इत्) बिना किसी की सहायता के [ अकेला ] ही (पुरु) बहुत ( अनुत्तः ) किसी की प्रेरणा के बिना ( चर्षणीधृतिः ) मनुष्यों को धारण करने वाला ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू यशस्वी है। तेरे में किसी कमी का अनुभव नहीं होता है और तू पूर्ण तथा बलों का स्वामी है। तू मनुष्यों को धारण करने वाला है। किसी की प्रेरणा के बिना तू अकेला ही, जिनका सामना करना कठिन होता है, ऐसे ही बहुत अज्ञान रूप अन्धकार को नष्ट करता है ॥६॥

२४९—मेध्यातिथि । बृहती । इन्द्र ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥७॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) ईश्वर को (इत्) ही ( देवतातये ) विद्वानों की उन्नति के लिए ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( प्रयति ) प्रारम्भ करने पर ( अध्वरे ) कल्याणकारी यज्ञ के (इन्द्रम्) ईश्वर को (समीके) यज्ञ की समाप्ति पर (अथवा संग्राम में)(वनिनः) भजन करने वाले हम ( हवामहे) पुकारते हैं ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( धनस्य) सम्पत्ति की ( सातये ) प्राप्ति के लिये ॥७॥

भावार्थ—भजन करने वाले हम, विद्वानों की उन्नति के लिए कल्याणकारी यज्ञ के प्रारम्भ तथा समाप्ति पर और सम्पत्ति को पाने के लिए भी ईश्वर को ही पुकारते हैं ॥७॥

२५०—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १२ ३ १ २र

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

३ १२३ १२ ३ २ ३ १ २र

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥८॥

पदार्थ—( इमा ) ये ( उ ) तरफ ( त्वा ) तेरी ( पुरूवसो ) हे सकल सम्पत्ति के स्वामी ! ( गिर ) वाणियां (वर्धन्तु ) वर्णन करें ( या ) जो ( मम ) मेरी ( पावकवर्णाः ) अग्नि के समान तेजस्वी ( शुचय ) पवित्र ( विपश्चित ) विद्वान् जन (अभिः ) भले प्रकार (स्तोमैः ) मन्त्रों से (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे सकल सम्पत्ति के स्वामी ईश्वर ! जो ये हमारी वाणियां हैं वे तेरा वर्णन करती हैं। अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्र, विद्वान् जन मन्त्रों से तेरी स्तुति करते हैं ॥८॥

२५१—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।

३ १ २ ३ १ २र ३२ ३ १ २

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥९॥

पदार्थ—( उत् ) ऊपर ( उ ) भी ( त्ये ) वे (मधुमत्तमा ) अत्यन्त मधुर ( गिरः ) स्तुतियां (स्तोमास ) [बहिष्पवमान, आय स्तोत्र और मध्यन्दिन, पवमान] स्तोत्र रूप ( ईरते ) उच्चरित होती है ( सत्राजित ) सदा विजयी (धनसा ) सम्पत्तिशाली ( अक्षितोतय ) अमिट रक्षा वाले (वाजयन्त ) वेगयुक्त हुए (रथा इव) रथ के समान ॥९॥

भावार्थ—जैसे सदा विजय करने वाले, सम्पत्तिशाली और भली भांति रक्षा करने वाले रथ वेग से चलते हैं, ऐसे ही ये हमारी मधुर [आर्य स्तोत्र आदि] वाणियां मुख से बाहर निकल कर चारों तरफ वेग से फैलती हैं ॥९॥

२५२—मेधातिथि । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २उ

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१०॥

पदार्थ—( यथा ) जैसे ( गौर ) मृग ( अपा ) जल से ( कृतम् ) पूर्ण ( तृष्यन् ) प्यासा ( एति ) आता है ( अव ) रक्षा ( ईरिणम् ) बिना घास के तैयार [पानी के घाट पर] ( आपित्वे ) मित्रता ( नः ) हमारी ( प्रपित्वे) हो जाने पर ( तूयम् ) शीघ्र (आगहि ) आओ (कण्वेषु ) मेधावी पुरुषों के मध्य में बिरा जमान ही (सु ) पूर्ण रूप से (सचा) एक साथ (पिब) परमानन्द का पान कर ॥१०॥

भावार्थ—हे जीव ! जैसे प्यासा मृग पानी से पूर्ण किन्तु घासरहित तालाब के तट पर जाता है, ऐसे ही मित्रता हो जाने पर मेधावी पुरुषों के मध्य शीघ्र और मिल कर अमृत रस का पान कर ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

२५३—भर्ग । बृहती । इन्द्र ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

पदार्थ—( शग्धि ) दे [ याचना करता हूँ ] ( सु ) पूर्ण (शचीपते) हे वेदवाणी के स्वामी ! ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( विश्वाभि ) सारी ( ऊतिभि ) रक्षाओं के साथ ( भगम् ) ऐश्वर्य के समान ( हि ) क्योंकि ( त्वा ) तुमको ( यशसं ) यशस्वी ( वसुविदम् ) सम्पत्ति के दाता ( अनु ) पीछे [ पश्चात् ] (शूर) हे शक्तिमान् [ पराक्रमी ] ( चरामसि ) अनुकूल आचरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे पराक्रमी वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ! सारी रक्षाओं के साथ मेरे मनोरथ को पूर्ण कर क्योंकि हम यशस्वी ऐश्वर्य के समान सम्पत्तिदाता तुझ प्रभु के अनुकूल आचरण करते हैं ॥१॥

२५४—रेभ । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥

पदार्थ—( या ) जिन ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( भुज ) प्राणों को ( आभर ) पुष्ट करता है ( स्वर्वान् ) सुख के स्रोत (स्रोता) (असुरेभ्य ) पवनों से (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले को ( इत् ) ही ( मघवन् ) हे सम्पत्ति के स्वामी ( अस्य ) इनसे ( वर्धय ) बढ़ा ( ये च ) और जो ( त्वे ) तेरी शरण में ( वृक्तबर्हिष ) ज्ञानयज्ञ का आसन लगाये बैठे हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सम्पत्ति के स्वामी ईश्वर ! तू सुख के स्रोत, पवनों से जिन प्राणों को पुष्ट करता है, उन ( प्राणों ) से स्तुति करने वालों को बलवान् कर तथा जो तेरी शरण में ज्ञान की प्राप्ति के लिए उपस्थित हैं उनको भी बलवान् बना ॥२॥

२५५—जमदग्नि । बृहती । आदित्या ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क२र

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वच स्तोत्रं राजसु गायत ॥३॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( मित्राय ) सब के मित्र (अर्यम्णे) न्यायकारी (सचथ्यम् ) सम्बन्ध के योग्य ( ऋतावसो ) हे सत्य पर चलने वाले मनुष्य ! ( वरूथ्ये ) वर्णनीय ( वरुणे ) वरण करने योग्य विद्वान् में ( छन्द्यं ) वेद युक्त (स्तोत्रम्) स्तुति को ( राजसु ) विराजमान विद्वानों में ( गायत ) वर्णन कर ॥३॥

भावार्थ—हे सत्य में स्थित मनुष्य ! तू मित्र स्वरूप न्यायकारी परमेश्वर के लिए उपयुक्त तथा वर्णनीय विद्वान् और राजाओं में सम्बन्धित वेदमयी वाणी या स्तोत्र का गान कर ॥३॥

२५६—मेधातिथि । बृहती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥४॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( त्वा ) तुझको ( पूर्वपीतये ) पूर्ण रक्षा के लिए ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( स्तोमेभि ) स्तोत्रों से (आयव ) मनुष्य (समीचीनासः) योग्य (ऋभवः ) मेधावी ( समस्वरन् ) स्तुति करते हैं ( रुद्रा ) पूर्ण ब्रह्मचारी ( गृणन्त ) स्तुति करते हैं ( पूर्व्यम् ) तुझ आदि पुरुष की ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! योग्य मनुष्य मेधावी और ब्रह्मचारी अपनी पूर्ण रक्षा के लिए तेरी स्तुति करते हैं और तुझ आदि पुरुष की प्रशंसा करते हैं ॥४॥

२५७—नमेधपुरुमेधौ । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥५॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( व ) तुम लोग (इन्द्राय) ईश्वर के लिए ( बृहते ) महान् ( मरुत ) हे स्तुति करने वालो ! ( ब्रह्म ) साम का ( अर्चत ) गान करो ( वृत्रम् ) पाप या अज्ञान को ( हनति ) नाश करे ( वृत्रहा ) अज्ञान के नाश करने वाला ( शतक्रतु ) अनन्त ज्ञान वाला ( वज्रेण ) वज्र [ शस्त्र ] से (शतपर्वणा) सैकड़ों धार वाले ॥५॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! तुम लोग महान् ईश्वर के लिए साम का गान करो। वह अनन्त ज्ञान वाला है। पापनाशक वह परमेश्वर सैकड़ों धार वाले वज्र के समान दुर्गुण निवारक ज्ञान से पाप या अज्ञान का नाश करता है ॥५॥

२५८—ऋषिच्छन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

२ १ २र ३ १ २ ३ १ २

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥६॥

पदार्थ—( बृहत ) साम ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( गायत ) गाओ ( मरुत ) हे ऋत्विग् गण (वृत्रहन्तमम्) अज्ञान का अत्यन्त नाश करने वाले (येन) जिसके द्वारा ( ज्योति ) ज्ञान को ( अजनयत् ) प्रकट करते हैं ( ऋतावृध ) सत्य अथवा यज्ञ का विस्तार करने वाले ( देवम् ) दिव्य (देवाय) प्रकाश स्वरूप (जागृवि) जागृति देने वाली ।।६।।

भावार्थ—हे ऋत्विक गण, तुम लोग परमात्मदेव के लिए उस बृहत् साम का गान करो जिसके द्वारा सत्य का विस्तार करने वाले विद्वान् जन दिव्य पापनाशक तथा जागृति देने वाली ज्ञान ज्योति को हृदय में जगाते हैं ।।६।।

२५९—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
**इन्द्र क्रतु न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।।७।।**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( क्रतुम् ) ज्ञान को ( न ) हमारे लिए ( आभर ) दे ( पिता ) पिता ( पुत्रेभ्य ) पुत्रों के लिए ( यथा ) जैसे ( शिक्ष ) शिक्षा दे ( न ) हमें ( अस्मिन् ) इस ( पुरुहूत ) हे सर्व पूज्य ( यामनि ) जीवन यात्रा में ( जीवा ) हम जीव (ज्योति ) परम ज्योति को (अशीमहि) प्राप्त करें ।।७।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है ऐसे ही तू हमें ज्ञान दे। हे ईश्वर ! हमें शिक्षा दे कि हम अपनी जीवनयात्रा में ज्ञान को प्राप्त करें ।७।

२६०—रेभ । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**मा न इन्द्र परा वृणग्भवा न सधमाद्ये ।**

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक ।।८।।**

पदार्थ—( मा ) मत ( न ) हम को ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( परावृणक ) परित्याग करो ( भव ) सहायक हो ( सधमाद्ये ) आनन्ददायक यज्ञ में । ( त्वं ) तू ( न ) हमारी ( ऊती ) रक्षा है ( त्वम् ) तू ( इत् ) ही ( न ) हमारे (आप्यम) प्राप्त करने योग्य है ।।८।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे आनन्ददायक यज्ञ में सहायक हो । हे ईश्वर ! तू ही हमारी रक्षा करने वाला और तू ही हमारे प्राप्त करने योग्य है । तू हमारा परित्याग मत कर ।।८।।

२६१—मेध्यातिथि । बृहती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**वय घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिष ।**

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ।।९।।**

पदार्थ—( वयम् ) हम ( घ ) प्रसिद्ध (त्वा) तुमको (सुतावन्त ) पुत्र आदि से सम्पन्न (आपो न) जल के समान ( वृक्तबर्हिष ) आसन लगाये हुए (पवित्रस्य) शुद्धस्वरूप तेरे ( प्रस्रवणेषु ) नीचे स्थानों में ( वृत्रहन् ) हे पापनाशक ! ( परि ) सब प्रकार से ( स्तोतार ) उपासक ( आसते ) उपासना करते हैं ।।९।।

भावार्थ—हे पापनाशक ! ईश्वर ! साधन से सम्पन्न तथा आसन जमाये हुए हम उपासक तेरी शरण में ( उपस्थित होते हैं ) नीची जगहों में जल जैसे चारों तरफ से द्वीप बनाते हैं ऐसे ही तुझ शुद्धस्वरूप की उपासना करने वाले सब प्रकार से उपासना करते हैं ।।९।।

२६२—भरद्वाज । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।**

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
**यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ।।१०।।**

पदार्थ—(यत् ) जो ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( नाहुषीषु ) मानुषी ( ओज ) बल (नृम्णम् ) सम्पत्ति ( च ) और ( कृष्टिषु) प्रजाओं में ( यत् ) जो ( वा ) अथवा (पञ्च क्षितीनाम् ) योग की पांच भूमियों के ( द्युम्नम् ) यश है ( आभर ) दे ( सत्रा ) सत्य ( विश्वानि ) सब ( पौंस्या ) पुरुषार्थ ।।१०।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! मनुष्य प्रजाओं में जो बल तथा धन है या योग की पाँच भूमियों में जो यश है, उनको और सच्चे पुरुषार्थों को भी हमें दे ।।१०।।

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

२६३—मेधातिथि । बृहती । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
**सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।**

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ।।१।।**

पदार्थ—( सत्यम् ) सत्य है कि ( इत्था) इस प्रकार तू ( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करने वाला ( इत् ) ही ( असि ) है ( वृषजूतिः ) कामपूरक व्याप्तिवाला ( न ) हमारे ( अविता ) रक्षक हो ( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करने वाला (हि) ही ( उग्र ) हे ओजस्वी (शृण्विषे ) सुने जाते हो ( परावति ) दूर में ( वृषा) वर्षा करनेवाला ( उ ) और ( अर्वावति ) समीप में भी ( श्रुत ) सुने जाते हैं ।।१०।।

भावार्थ—हे ओजस्वी ! ईश्वर ! सत्य ही तू कामनाओं की वर्षा करने वाला है कामना पूरक व्याप्ति वाला तू हमारा रक्षक हो । तू अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला सुना जाता है । क्या दूर क्या समीप सब जगह तू कामनाओं की पूर्ति करने वाला प्रसिद्ध है ।।१।।

२६४—रेभ । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
**यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।**

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभि सुतावां आ विवासति ।।२।।**

पदार्थ—( यत ) जिस कारण (शक्र ) हे शक्तिमान् ( असि ) है (परावति) दूर ( यत ) जिस कारण ( अर्वावति ) समीप ( वृत्रहन् ) हे अज्ञाननाशक ! (अत:) इसलिए ( त्वा ) तुझ को ( गीर्भि ) स्तुतियों से ( द्युगत् ) शीघ्र ( केशिभिः ) जटाधारियों के साथ ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! (सुतावान्) साधनसम्पन्न (आविवासति) पुकारता है ।। २ ।।

भावार्थ—हे शक्तिमान् ! अज्ञाननाशक ईश्वर ! चूंकि तू अज्ञानियों से दूर तथा ज्ञानियों के समीप है इस लिए साधनों वाले मनुष्य भक्तों के साथ वेदवाणियों द्वारा तेरा आह्वान करते हैं ।।२।।

२६५—वत्स । पिपीलिकमध्या बृहती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
**अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।**

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ।।३।।**

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( व ) तू ( वीरम् ) बलवान् ( अन्धस ) अन्न सम्बन्धी ( मदेषु ) आनन्दों में [मग्न हो] ( गाय ) गान कर ( गिरा) स्तुति से ( महा ) उत्तम ( विचेतसम् ) विशेष ज्ञान वाले ( इन्द्रम् ) ईश्वर का ( नाम ) प्रसिद्ध ( श्रुत्यम् ) वैदिक (शाकिनं ) शक्तिमान् ( वच ) वचन (यथा) जैसे ।।३।।

भावार्थ—हे जीव ! तू अन्न सम्बन्धी आनन्द में मग्न होकर, वेद के वचन की स्तुति की भांति विशेष ज्ञानवाले शक्तिमान् ईश्वर की उत्तम वाणियों से स्तुति कर ।। ३ ।।

२६६—भरद्वाज । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।**

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ।।४।।**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( त्रिधातु ) वात कफ पित्तयुक्त ( शरणं ) धाम ( त्रिवरूथ ) त्रिविध ताप के आश्रय ( स्वस्तये ) कल्याण के लिए ( छर्दि ) शरीर ( यच्छ ) दे ( मघवद्भ्य ) याज्ञिकों के लिए ( मह्यं च ) हमारे लिए भी ( यावय ) पृथक कर ( दिद्युम् ) दिव्य ( एभ्य ) इन ।।४।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे कल्याण के लिये त्रिधातु से बने तथा त्रिविध तापों के आश्रयभूत शरीर को हमसे पृथक कर । तू हमें और इन उत्तम कर्म वालों के लिए मोक्ष नाम का दिव्य धाम प्रदान कर ।।४।।

२६७—नमेध । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ १ २र
**आयन्त इव सूर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।**

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ।।५।।**

पदार्थ—( आयन्त ) आश्रय से रहने वाली ( इव ) समान ( सूर्यं ) सूर्य के ( विश्वा ) सकल ( इत ) ही ( इन्द्रस्य ) ईश्वर के ( भक्षत ) विभाग करो । ( वसूनि ) धनों का ( जातो उ ) उत्पन्न हो चुके हुए ( जनिमानि ) उत्पन्न होने वाले ( ओजसा ) बल के सहित ( भाग न ) भाग के समान (प्रति दीधिम) धारण करते हैं ।।५ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न हो चुके और जो होंगे बलसहित वे समस्त धन परमेश्वर के ही हैं । तुम लोग पिता की सम्पत्ति के भाग को पुत्र के समान उन धनों का भाग वैसे ही ग्रहण करो और हम भी उन्हें ही धारण करते हैं जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से उत्पन्न होकर उसी से प्रकाश भी लेती हैं ।।५।।

२६८—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**न सीमदेव आपतदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।**

१ २ ३ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ।।६।।**

पदार्थ—( न कीम् ) नहीं इसको ( अवेध. ) ईश्वर से विमुख मनुष्य ( आनत ) पाता है ( इवम् ) ज्ञान को ( दीर्घायो ) हे दीर्घजीवी ! ( मर्त्यः ) मनुष्य ( एतग्वा चित ) घोड़े वाला ही ( य ) जो ( एतशा ) घोड़ों को ( युयोजते ) जोतता है ( इन्द्र ) सूय ( हरी ) रात्रि और दिन ( युयोजते ) जोड़ता है ॥६॥

भावार्थ—हे जीव ! ईश्वर से विमुख मनुष्य इसके ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता। जो घोड़े वाला है वही घोड़ों को जोत सकता है जैसे कि सूर्य रात्रि और दिन को जोड़ता है ॥६॥

२६९—नृमेधपुरुमेधौ । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्र समत्सु भूषत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम् ॥७॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (न) हमारे (विश्वासु) सब (हव्यम्) आह्वान के योग्य (इन्द्रम्) ईश्वर को ( समत्सु ) संग्राम में [बाधाओं में] (भूषत) आश्रय मानो (उप) समीप (ब्रह्माणि) वेदत्रयी को (सवनानि) तीन सवन रूप [प्रातर्माध्यन्दिन तृतीय] ( वृत्रहन् ) हे पापनाशक ! ( परमज्या ) हे सबसे महान् ( ऋचीषम् ) हे स्तुति के सदृश ॥७॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! प्रत्येक आपत्ति तथा बाधा के समय स्तुति के योग्य ईश्वर की शरण में जाओ। हे सबसे महान् ! स्तुति के योग्य !! पापनाशक प्रभो !!! तीन सवन रूप तीन वेदों (ऋग यजु, साम) का उपदेश दो ॥७॥

२७०—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
तवेदिन्द्रावम वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम ।
३ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८॥

पदार्थ—( तव ) तेरा (इत् ) ही (इन्द्र ) हे ईश्वर ( अवमम् ) साधारण ( वसु ) धन है ( त्वं ) तू ( पुष्यसि ) पुष्ट करता है ( मध्यमम् ) मध्य कोटि के धन को ( सत्रा ) सत्य ही ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण ( परमस्य ) सब से श्रेष्ठ धन का ( राजसि ) स्वामी है ( नकि ) कोई नहीं (त्वा) तुमको ( गोषु ) पृथिव्यादि लोकों में ( वृण्वते ) व्यापने से रोकता है ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उत्तम, मध्यम और साधारण इन तीन प्रकार के धनों का तू ही स्वामी है। क्योंकि तेरी व्यापकता में कोई रुकावट नहीं है ॥ ८ ॥

अथवा—हे परमेश्वर ! (अवमम्) अवस्थ पृथिवी लोक तेरा ही धन है तूही (मध्यम) अन्तरिक्ष लोक का पोषण करता है। तू (परम) द्युलोक का राजा है। व्यापक होने से पृथिव्यादि लोकों में तुझे कोई भी रोक नहीं सकता। अर्थात् सबमें व्याप्त है ॥८॥

२७१— भरत मेधातिथि मध्यातिथिश्च माधव, प्रगाथ । बृहती । इन्द्र ।

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मन ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषु ॥९॥

पदार्थ—( क्व ) कहां ( इयेथ ) व्यापक है (क्वेदसि) कहां पर है ( पुरुत्रा ) बहुतों में ( चित् ) ही ( ते ) तेरा ( मन ) ज्ञान ( अलर्षि ) व्यापक है ( युध्म ) सर्वग ( खजकृत् ) हे ब्रह्माण्ड के कर्त्ता ! ( पुरन्दर ) शरीर बन्धन से रहित ( प्र ) उत्तम ( गायत्रा ) गानकुशल ( अगासिषु ) गान करते हैं ॥९॥

भावार्थ—हे सर्वग (सर्वव्यापक) ब्रह्माण्ड के कर्त्ता ! शरीर-बन्धनरहित तू कहां व्यापक है ? और कहां पर है ? अर्थात् हे भगवान्! तुम्हारा ज्ञान सब पदार्थों में है, तू सर्वत्र व्यापक है। गानकुशल तेरा ही गान करते हैं ॥ ९ ॥

२७२—कलि । बृहती । इन्द्र ।

३ १२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१०॥

पदार्थ—( वयम् ) हम लोग ( एनम् ) इसको ( इदा ) इस समय ( ह्य ) गत दिन ( अपीपेम ) पुष्ट किये और करते हैं ( इह ) इस ( वज्रिणम् ) वज्रधारी को ( तस्मै ) उसके लिए ( उ ) ही ( अद्य ) आज ( सवने ) यज्ञ में ( सुतम् ) सोम ( भरा ) पूर्ण कर ( नूनम् ) निश्चित ( भूषत ) सुशोभित करो ( श्रुते ) कीर्ति के लिए ॥ १० ॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! हम लोगों ने इस यज्ञ में विद्वान् इन्द्र को कल पुष्ट किया था और इस समय भी पुष्ट करते हैं। आज भी उसी को अमृत रस दो और निश्चित ही अपनी कीर्ति के लिए इस को सुशोभित करो ॥१०॥

चौथी दशती समाप्त

२७३—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्र ।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगु ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठ यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

पदार्थ—( य ) जो ( राजा ) ईश्वर है ( चर्षणीनां ) मनुष्यों का ( याता ) प्राप्त होता है ( रथभि ) योग मार्गों से ( अध्रिगु ) सहज व्यापक ( विश्वासाम् ) सारी ( तरुता ) तारने वाला है ( पृतनानां ) मनुष्य अधिकतर ( ज्येष्ठम् ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( य ) जो ( वृत्रहा ) पापनाशक है ( गृणे ) उसकी स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—जो ईश्वर मनुष्यों का स्वामी है जो योग साधन से प्राप्त होता है, जो व्यापक है तथा मनुष्य मात्र को तारने वाला है उसकी अधिक से अधिक स्तुति करता हूँ ॥१॥

२७४—भर्ग । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयङ्कृधि ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२॥

पदार्थ—( यत ) जिससे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( भयामहे ) हम भयभीत होते हैं ( तत ) उस से ( नः ) हम लोगों को ( अभय ) अभय (कृधि) कर ( मघवन् ) हे ऐश्वर्य वाले ! ( शग्धि ) दे ( तव ) तेरे ( तत ) उसे ( न ) हमें ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( वि ) विविध प्रकार से ( द्विष ) द्वेषभावों को (वि) विविध प्रकार से ( मृध ) हिंसा के भावों का ( जहि ) नष्ट कर ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम जिससे डरते हैं, उससे हम निर्भय बना ! प्रभो ! हमारी रक्षा के लिए तूने जो सम्पत्ति देनी है वह दे तथा निरपराधों से द्वेष, और हिंसा के भावों का विनाश कर ॥२॥

२७५—इरिम्बिठि । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्रप्स पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३॥

पदार्थ—( वास्तोष्पते ) हे संसार रूप गृह के स्वामी ! ( ध्रुवा ) दृढ़ ( स्थूणां ) स्तम्भ के समान स्तम्भ ( अंसत्रम् ) कवच के समान रक्षक ( सोम्यानां ) उत्तम कर्म करने वालों का ( द्रप्स ) सर्वव्यापक (पुरां) संसारस्थ लोकों का (भेत्ता) प्रलयकर्ता ( शश्वतीनां ) प्रवाहरूप से स्थित ( इन्द्र ) ईश्वर ( मुनीनां ) मुनियों का ( सखा ) मित्र है ॥३॥

भावार्थ—हे संसार गृह के स्वामी परमेश्वर ! तू समस्त संसार का दृढ़ स्तम्भ के समान स्तम्भ है, तू उत्तम कर्म करने वालों का कवच के समान रक्षक तथा प्रवाह रूप से आने वाले संसारस्थ लोगों का प्रलयकर्ता है। तू ही सर्वव्यापक और मुनियों का सखा है ॥३॥

२७६—जमदग्नि । बृहती । सूर्य ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥४॥

पदार्थ—( बट ) सत्य ( महान् ) बड़ा ( असि ) है (सूर्य) हे सकल संसार के लोगों को कर्म करने की प्रेरणा करने वाले (बट्) सत्य ही (आदित्य) हे प्रकाश स्वरूप ! ( महां ) महान् ( असि ) है ( मह ) महान् ( ते ) तेरी ( सतः ) श्रेष्ठ की ( महिमा ) माहात्म्य ( पनिष्टम ) अत्यन्त स्तुति के योग्य है (अथवा) हे स्तुति के योग्य (मह्ना) अपनी महिमा से तू (देव) हे दाता (महान्) बड़ा (असि) है ॥४॥

भावार्थ—हे सब को कर्तव्य पालन करने की प्रेरणा करने वाले ईश्वर ! सत्य ही तू महान् है। हे प्रकाशस्वरूप ! सत्य ही तू सब से बड़ा है। तू महान् और श्रेष्ठ है। तेरी महिमा भी स्तुति के योग्य है। हे दाता ! तू अपनी ही बड़ाई से बड़ा है ॥४॥

२७७—देवातिथि । बृहती । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमां यदिन्द्र ते सखा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५॥

पदार्थ—( अश्वी ) घोड़ोंवाला ( रथी ) रथोंवाला ( सुरूप ) सुन्दर रूपवान् ( इत् ) ही ( गोमान् ) गौ आदि सम्पत्तिवाला (अथवा) जितेन्द्रिय ( यत् ) जो ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( ते ) तेरा ( सखा ) मित्र है (श्वात्रभाजा) शीघ्र भजन के योग्य ( वयसा ) युवा अवस्था से ( सचते ) युक्त होता है। ( सदा ) सर्वदा ( चन्द्रैः ) सोने से सुभूषित होकर ( सभाम् ) सभा में ( उपयाति ) जाता है ॥५॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जो राजा तेरा मित्र होता है, वह घोड़ों रथों सुन्दर रूपों और गौ आदि सम्पत्तियों से युक्त होकर शीघ्र भजन करने योग्य युवावस्था को पाता है । वह सवदा सोने के गहनों से सज कर सभा में जाता है ॥५॥

२७८—पुरहन्मा । बृहती । इन्द्र ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३२
यद्द्याव इन्द्र ते शत शत भूमिरुत स्यु ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
न त्वा वज्रिन्त्सहस्र सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥

पदार्थ—( यत् ) यद्यपि ( द्याव ) द्यु लोक ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( ते ) तेरे ( शतम् शतम् ) सकड़ो ( भूमि ) पृथिवी ( उत ) भी ( स्यु ) हो ( न ) नहीं ( त्वा ) तुमको (वज्रिन्) हे न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! (सहस्र) हजारो ( सूर्या ) सूर्य ( अनु ) अच्छी तरह ( न ) नहीं ( जातम ) प्रसिद्ध (अष्ट) पा सकते हैं ( रोदसी ) द्यु लोक और पृथिवी लोक भी ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर सैकड़ों द्यु लोक और सैकड़ो पृथिवी इकट्ठी हों, तो भी वे सब तुम से न्यून हैं । हे न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! हजारों सूर्य भी तुमसे न्यून हैं और प्रसिद्ध द्यु लोक और पृथिवीलोक भी इकट्ठे हो, तो भी तेरी महिमा के सामने तुच्छ हैं ॥६॥

२७९—देवातिथि । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३क२ २ ३२ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागु दङ्न्यग्वा हूयसे नृभि ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३१ २
सिमा पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्द्ध तुर्वशे ॥७॥

पदार्थ—( यत ) यद्यपि (इन्द्र) हे ईश्वर ! (प्राक) पूर्व दिशा से (अपाक्) पश्चिम दिशा से ( उदक् ) उत्तर दिशा से ( न्यक ) और दक्षिण दिशा से ( वा ) अथवा ( हूयसे ) पुकारे जाते हो ( नृभि ) मनुष्यो से तथापि ( सिमा ) सब जगह ( पुरु ) बहुत ( नृषूत ) मनुष्यो को स्तुतियो से प्रेरित ( असि ) हो ( आनवे ) मनुष्यो के ( असि ) हो ( प्रशर्द्ध ) हे बलवान् ( तुर्वश ) समीप ही ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! यद्यपि पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिण सब तरफ से मनुष्य तुझे पुकारते हैं, हे बलवान् ! चाहे मनुष्य सब जगह स्तुतियों से तुझे बार-बार बुलाते हैं, तो भी तू तेरे समीपवर्ती मनुष्य के लिए समीप है ॥७॥

२८०—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

१ २र ३ १ २र
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्या दधर्षति ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाज सिषासति ॥८॥

पदार्थ—( क ) कौन ( तम ) उस ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( त्वा ) तुमको ( वसो ) हे व्यापक ! ( आ ) सब प्रकार से ( मर्त्य ) मनुष्य (दधर्षति) तिरस्कृत कर सकता है । ( श्रद्धा ) श्रद्धा से ( हि ) ही ( ते ) आप से (मघवन्) हे ऐश्वर्य वाले ! ( पार्ये ) पार होने के ( दिवि ) दिन ( वाजी ) बलवान् ( वाजम् ) बल को ( सिषासति ) पाना चाहता है ॥८॥

भावार्थ—हे सब व्यापक ईश्वर ! कौन मनुष्य तेरा तिरस्कार कर सकता है? ( कोई नहीं कर सकता ) । हे ऐश्वर्य वाले ! बलवान् पुरुष पार होने के दिन (मृत्यु के समय) श्रद्धा से तुझ से ही बल पाना चाहता है ॥८॥

२८१—भरद्वाज । बृहती । इन्द्राग्नी ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३१ २
इन्द्राग्नी अपादिय पूर्वागात्पद्वतीभ्य ।
३ १ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंशत पदा न्यक्रमीत ॥९॥

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) हे अध्यापक ! उपदेशक ! (अपात् ) पावों से रहित ( इयं ) यह ( पूर्वा ) पूर्व ( आगात ) आती है (पद्वतीभ्य ) पावों वाली प्रजाओं से ( हित्वा ) छोड़कर ( शिर ) शिर ( जिह्वया ) जिह्वा से ( रारपत् ) शब्द कराती हुई (चरत्) चलती हुई (त्रिंशत् पदानि) तीस मुहूर्तरूपी पदों को (न्यक्रमीत्) रखती है ॥९॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! बिना पैर की होती हुई भी यह उषा पांव वाली प्रजाओं से पूर्व आ जाती है और विचरती है । इस का अपना तो शिर नहीं है, परन्तु कुक्कुट आदि प्राणियो की जिह्वा से शब्द कराती हुई तीस मुहूर्तरूपी पदों को रखती है ॥९॥

२८२—वालखिल्य । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ शन्तम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभि ॥१०॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( नेदीय ) अत्यन्त समीप ( आ, इत्, इहि ) प्राप्त होवे (मितमेधाभि ) उत्तम बुद्धि सहित ( ऊतिभि ) रक्षाओं सहित ( आ ) सब प्रकार ( शन्तम ) हे सुखस्वरूप ( शन्तमाभि ) शान्तिदायक ( अभिष्टिभि ) मनोवाञ्छित फलों के देने वाली ( स्वापे ) हे सुन्दर मित्र ! ( स्वापिभि ) सुन्दर मित्रता से ॥१०॥

भावार्थ—हे सुखस्वरूप ! हे परम मित्र !! हे परमेश्वर !!! तू उत्तम बुद्धि शान्ति देने वाले मनोवाञ्छित, फल और पूर्ण मित्रता स्थिर रखने वाली रक्षाओं सहित हमें प्राप्त हो ॥१०॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

२८३—नृमेध । बृहती । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
इत ऊती वो अजर प्रहेतारमप्रहितम् ।
३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आशु जेतार हेतार रथीतममतूर्त तुग्रियावृधम् ॥१॥

पदार्थ—( इत ) यहा से ( ऊती ) पालन के लिए (व ) तुमको हे ईश्वर! ( अजरम ) अजर ( प्रहेतारम ) ससार को प्रेरणा देने वाले ( अप्रहितम् ) स्वतन्त्र ( आशुम् ) व्यापक ( जेतारम ) सब से श्रेष्ठ (होतार) सबके जानने वाले ( रथीतमम् ) महारथी [नेता] ( अमूर्तम् ) अमर ( तुग्रिया, वृधम् ) प्रकाश के बढ़ाने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम अपनी रक्षा के लिए अजर, अमर, स्वतन्त्र सब को प्रेरणा देने वाले, सबसे श्रेष्ठ सवज्ञ मनुष्य मात्र के नेता और प्रकाश के दाता तुझे पुकारते हैं ॥१॥

२८४—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमाद न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥२॥

पदार्थ—( मा ) नहीं ( उ षु ) पादपूरक ( त्वा ) तुझको ( वाघत च न ) मेधावी जन भी ( आरे ) दूर ( अस्मत् ) हम से ( निरीरमन् ) स्तुति करें । ( आरात्तात् ) समीप ( वा ) अथवा ( सधमादम् ) यज्ञ में ( न ) हमारे ( आगहि ) प्राप्त हो ( इह ) इस (हृदय मे) ( वा ) अथवा ( सन् ) विद्यमान होकर (उपश्रुधि ) सुन ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मेधावी जन भी हम से दूर तेरी उपासना न करें अपितु हमारे समीप ही करें । तू भी व्यापक होने से समीपवर्ती होता हुआ हमारे यज्ञ मे हमें प्राप्त हो अथवा हमारे हृदय मे विद्यमान हुआ हमारी प्रार्थना सुन ॥२॥

२८५—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ ४ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २र ३ १ २र
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मय ॥३॥

पदार्थ—( सुनोत ) तैयार करो ( सोम पाव्ने ) सोम पान करने वाले ( सोमम् ) सोम को ( इन्द्राय ) विद्वान् के लिए (वज्रिणे ) अज्ञाननिवारक ( पचता ) पकाओ ( पक्ती ) पाकों को ( अवसे) रक्षा के लिए ( कृणुध्वम् ) करो ( इत् ) ही ( पृणन् ) पालना मे तत्पर ( इत ) ही ( पृणते ) पूरा करता है ( मय ) सुख से ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सोमपायी तथा अज्ञाननिवारक विद्वान् के लिए सोम तयार करो । अपनी रक्षा के लिए उसके निमित्त पाकों को पकाओ, सारे सत्कार कार्यों को करो । निश्चय ही पालन में तत्पर वह विद्वान् तुम्हें सुख देता है ॥३॥

२८६—शयु । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
य सत्राहा विचर्षणिरिन्द्र त हूमहे वयम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४॥

पदार्थ—( य ) जो ( सत्राहा ) सत्य से असत्य को मिटाता है ( विचर्षणि ) ससार का साक्षी ( इन्द्रम् ) परमेश्वर को ( तम् ) उस ( हूमहे ) पुकारते हैं ( वयम् ) हम सब ( सहस्रमन्यो ) हे अनन्तज्ञान वाले ! ( तुविनृम्ण ) हे अत्यन्त बलवान् ( सत्पते ) हे सज्जनों के रक्षक ( भवा ) हो ( समत्सु ) संग्रामों में ( न, ) हमारी ( वृधे ) जय की वृद्धि करने के लिए ॥४॥

भावार्थ—जो ईश्वर सत्य से असत्य का नाश करने वाला है और चर-अचर संसार का साक्षी है, उसे हम पुकारते हैं । हे अनन्त ज्ञान वाले ! बलवान् !! सज्जन पुरुषों की रक्षा करने वाले ईश्वर !!! संग्रामों में हमें विजय दे ॥४॥

२८७—प्रस्कण्वः । बृहती । अश्विनौ ।

१ २ ३ २ ३ १ २

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

मा वां रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्राति कदाचन ॥५॥

पदार्थ—( शचीभि ) शक्तियों से ( न ) हमें ( शचीवसू ) कर्म को स्थान देने वाले ( दिवानक्तम् ) दिन और रात ( दिशस्यतम् ) देते हैं ( मा ) नहीं ( वां ) इन दोनों का ( राति ) दान ( उपदसत् ) कम होता है ( कदाचन ) कभी भी ( अस्मद्राति ) हमारा दान ( कदाचन ) कभी भी ॥५॥

भावार्थ—कर्म को स्थान देने वाले सूर्य और चन्द्र अपनी शक्तियों से हमें रात्रि और दिन प्रदान करते हैं, उनका यह दान सदा रहे इसी प्रकार हमारा भी दान सदा बना रहे ॥५॥

२८८—वामदेव । बृहती । वरुण ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्य ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥६॥

पदार्थ—( यदा कदा च ) जब कभी ( मीढुषे ) कामनाओं की वर्षा करने वाले ईश्वर की ( स्तोता ) स्तुति करने वाला ( जरेत ) स्तुति करे ( मर्त्य ) मनुष्य ( आदित् ) उसी समय ( वन्देत ) नमस्कार भी करे ( वरुणम् ) ईश्वर को ( विपा ) उसके विविध गुणों का वर्णन करने वाली ( गिरा ) वेदवाणी से ( धर्त्तारम् ) धारण करने वाले ( विव्रतानाम ) विविध नियमों के ॥६॥

भावार्थ—स्तुतिशील मनुष्य, कामनाओं की वर्षा करने वाले ईश्वर की, जब कभी स्तुति करे, उसी समय अनेक नियमों के नियन्ता और विविध गुणों के वर्णन करने वाले ईश्वर को वेदमन्त्रों से नमस्कार भी करे ॥६॥

२८९—मेध्यातिथि । बृहती । इन्द्र ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २

पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

य संमिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्यय ॥७॥

पदार्थ—( पाहि ) रक्षा ( गा ) इन्द्रियों को ( अन्धसः ) भोग्य पदार्थों के ( मदे ) मद में ( इन्द्राय ) ईश्वर को पाने के लिए ( मेध्यातिथे ) हे गृहस्थ ! ( य ) जो ( संमिश्ल ) मिलाने वाला है ( हर्यो ) ऋग्वेद और सामवेद का ( य ) जो ( हिरण्यय ) ज्योतिस्वरूप ( इन्द्रः ) ईश्वर ( वज्री ) न्यायरूप दण्ड को धारण करने वाला ( हिरण्यय ) प्रकाशस्वरूप ॥७॥

भावार्थ—हे गृहस्थ पुरुष ! वेदज्ञान के देनेवाले, प्रकाशस्वरूप न्यायकारी परमात्मा को पाने के लिए भोग्य पदार्थों के जगत् में अपने आपको संयम में रख ॥७॥

२९०—भर्ग । बृहती । इन्द्र ।

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८॥

पदार्थ—( उभयम् ) दोनों [स्तुति प्रार्थना को] ( शृणवत् ) सुनें ( च ) भी ( न ) हमारी ( इन्द्र ) ईश्वर ( अर्वाक् ) प्रथम ( इदम् ) यह ( वच ) स्तुति और प्रार्थनारूप वचन ( सत्राच्या ) सत्य का ज्ञान कराने वाली ( मघवान ) सकल धनों का स्वामी (सोमपीतये) हमारे उत्तम पदार्थों की रक्षा के लिए ( धिया ) बुद्धि से ( शविष्ठ ) बलवान् ( आगमत ) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थ—ईश्वर शीघ्र हमारे इन दोनों—स्तुति और प्रार्थनारूप वचनों को सुनें। शक्तिमान् तथा समस्त धनों का स्वामी वह हमारे उत्तम पदार्थों की रक्षा के लिए सत्य ज्ञान करानेवाली बुद्धि से हमें प्राप्त होवे ॥८॥

२९१—प्रगाथ । बृहती । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

महे च न त्वाद्रिव परा शुल्काय दीयसे ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९॥

पदार्थ—( महे च ) बड़ी धनराशि के ( न ) नहीं ( त्वा ) तेरा ( अद्रिवः ) हे दण्डधारी ( परा ) परे ( शुल्काय ) मूल्य से भी ( दीयसे ) परित्याग किया जा सकता ( न ) नहीं ( सहस्राय ) हजार रुपयों के बदले ( न ) नहीं ( अयुताय ) दस हजार के बदले ( वज्रिवः ) हे न्यायरूप दण्ड के धारण करनेवाले ( न ) नहीं ( शताय ) असंख्य धनराशि के बदले में ही ( शतामघ ) हे असंख्य धन वाले ! ॥९॥

भावार्थ—हे दण्डधारी ! हे न्यायरूप दण्ड के धारण करनेवाले ! ! हे असंख्य धनराशि के स्वामी ! ! ! ईश्वर ! महान् से महान् धन ऐश्वर्य के बदले तेरा परित्याग नहीं किया जा सकता । न हजार के बदले, न दस हजार के बदले और न असंख्य धनभण्डार के बदले ॥९॥

२९२—प्रगाथः । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥

पदार्थ—( वस्यान् ) वसुमत् ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( असि ) है ( मे ) मेरे ( पितु ) पिता से ( उत ) और ( भ्रातु ) भाई से ( अभुञ्जत ) रक्षा नहीं कर सकने वाले ( माता ) माता ( च ) और ( मे ) मुझे ( छदयथ ) रक्षा करता है ( समा ) समान ( वसो ) हे सब के बसाने वाले ( वसुत्वनाय ) निवास के लिये ( राधसे ) धन के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे सर्वसम्पत्ति के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारे पिता और न रक्षा करने वाले भाई से भी अधिक मेरी रक्षा करने वाला है। तू मेरी माता है। मेरी रक्षा और वृद्धि के लिये समान रूप से रक्षित करते हो ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

२९३—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

३१ २र ३ १ २ ३ १ २

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिर ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१॥

पदार्थ—( इमे ) ये ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यशाली के लिए ( सुन्विरे ) सम्पन्न किए गये हैं ( सोमास ) सोम ( दध्याशिर ) दध्यादि से युक्त ( तान् ) उनको ( आ ) भली प्रकार से ( मदाय ) हर्ष के लिये ( वज्रहस्त ) हे शस्त्रधारी (पीतये) पीने के लिए ( हरिभ्यां ) हाव भाव से ( याहि ) प्राप्त हो ( ओकः ) गृह पर ॥१॥

भावार्थ—दही आदि से युक्त ये सोम ऐश्वर्यशाली राजा के लिए तैयार किये जाते हैं। हे शस्त्रधारी राजन् ! तू अपने हर्ष के लिये और उनको पीने के लिये हाव भाव के साथ हमारे गृहों को प्राप्त हो ॥१॥

२९४—वामदेवः । विश्वामित्रो वा बृहती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिन ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मधो पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वण ॥२॥

पदार्थ—( इमे ) ये ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( मदाय ) सुख के लिये ( ते ) तेरे ( सोमा ) सोमपदार्थ ( चिकित्र ) चिकित्सा करते हैं, ( उक्थिन ) स्तुति करने वाले के ( मधो ) मधुरभाषी ( पपान ) रक्षा करता हुआ ( उप ) समीप ( न ) हमारे ( गिर ) स्तुतियाँ ( शृणु ) सुन (रास्व) दे (स्तोत्राय) स्तुति के लिये (गिर्वण ) हे स्तुत्य ॥२॥

भावार्थ—हे स्तुतिवादियों से स्तुत्य परमेश्वर ! मधुरभाषी स्तोता के सुख के लिए सोम पदार्थ चिकित्सा करते हैं। तेरी स्तुति के लिये बोली गई हमारी वाणियों को तू सुन। हमारी रक्षा करता हुआ हमें हमारा अभीष्ट प्रदान कर ॥२॥

२९५—मेधातिथि । बृहती । इन्द्र ।

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २

आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।

१ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २

इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( त्वा ) तुझे ( सबर्दुघाम् ) दुग्ध देनेवाली ( हुवे ) पुकारता हूँ ( गायत्रवेपसम् ) प्रशस्त ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( धेनु ) धेनु के समान ( सुदुघाम्) सुख से दोहने योग्य ( अन्याम् ) विलक्षण ( इषम् ) चाहने योग्य ( उरुधाराम् ) अनेक प्रकार की धारा वाली ( अरङ्कृतम् ) पर्याप्त रूप से पूर्ण करने वाले ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पर्याप्त रूप से पूर्ण करने वाले तुझ ऐश्वर्यशाली को दुग्ध देनेवाली प्रशस्तगति विलक्षण, अनेक प्रकार की धारा वाली तथा चाहने योग्य धेनु के समान पुकारता हूँ ॥३॥

२९६—नोधा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २, ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।

१ २र ३ १ २र ३ २३ २ ३ १ २र

यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४॥

**पदार्थ**—( **न** ) नहीं ( **त्वा** ) तेरी व्यापकता को ( **बृहन्त** ) महान् ( **अद्रय** ) पर्वत ( **वरन्ते** ) रोक सकते ( **इन्द्र** ) हे ईश्वर ! ( **वीडव** ) दृढ़ [मजबूत] ( **यत** ) जब तू ( **शिक्षसि** ) देना चाहता है ( **स्तुवते** ) स्तुति करने वाले को ( **मावते** ) मेरे समान ( **वसु** ) सम्पत्ति ( **नकि** ) कोई नहीं ( **तत** ) उस धन के देने में ( **आमिनाति** ) बाधा कर सकता ( **ते** ) तुझ ॥४॥

**भावार्थ**—हे ईश्वर ! महान् से महान् और मजबूत से मजबूत पर्वत भी तेरे लिये कोई रोक नहीं है। हे प्रभो ! जब तू मेरे समान स्तुति करने वाले को सम्पत्ति देना चाहता है तो उसे कोई भी रोक नहीं सकता ॥४॥

*२९७—मेध्यातिथि । बृहती । इन्द्र ।*

१ २    ३ २उ  ३ १ २  ३ १  २र

**क ईं वेद सुते सचा पिबन्त कद्वयो दधे ।**

३ १    २र   ३ १ २र    ३ २  ३ १ २

**अयं य पुरो बिभिनत्योजसा मन्दान शिप्रयन्धस ॥५॥**

**पदार्थ**—( **क** ) कौन ( **ईम्** ) इसको ( **वेद** ) जानता है ( **सुत** ) उत्पन्न जगत् में ( **सचा** ) साथ ( **पिबन्तम्** ) भोग करते हुए ( **कत** ) कितनी ( **वय** ) आयु को ( **दधे** ) धारण करता है ( **अयम्** ) यह ( **य** ) जो ( **पुर** ) समूहों को ( **बिभिनत्ति** ) नष्ट करता है ( **ओजसा** ) अपने तेज से ( **मन्दान** ) आनन्दस्वरूप ( **शिप्री** ) द्यु और पृथिवी लोक का स्वामी ( **अन्धस** ) अन्धकार के ॥५॥

**भावार्थ**—इस उत्पन्न जगत् में शरीर के साथ भोगों को भोगते हुए जीव को वह कितनी आयु धारण करता है यह कौन जान सकता है ?

उत्तर—जो आनन्दस्वरूप द्यु और पृथिवी लोक का स्वामी परमेश्वर अपने तेज से अन्धकार के खण्डों का भेदन करता है वही जानता है ॥५॥

*२९८—वामदेव । बृहती । इन्द्र ।*

१२ ३ १ २  ३ २  ३ २ ३  १२ २ १ २

**यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।**

३ १ २ ३ १ २    ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥६॥**

**पदार्थ**—( **यत्** ) जब ( **इन्द्र** ) हे परमेश्वर ! ( **शास** ) दण्डद्वारा शिक्षा देता है ( **अव्रतम्** ) नियम का पालन न करने वाले को ( **च्यावया** ) नीचे गिराता है ( **सदस** ) लोक से ( **परि** ) सब प्रकार से ( **अस्माकम्** ) हमारे ( **अंशु** ) ज्ञान प्रकाश को ( **मघवन्** ) सब सम्पदाओं के स्वामी ( **पुरुस्पृह** ) सर्वथा चाहने योग्य ( **वसव्ये** ) वासयोग्य शरीर में ( **अधि बर्हय** ) बढ़ा ॥६॥

**भावार्थ**—हे ईश्वर ! जब तू नियम का पालन न करने वाले को दण्ड द्वारा शिक्षा देता है तो उच्च स्थान लोक से नीचे कर देता है। हे सकल सम्पदाओं के स्वामी भगवन् ! सर्वथा चाहने योग्य ज्ञान प्रकाश को हमारे निवास योग्य शरीर में बढ़ा ॥६॥

*२९९—तीरश्चा । बृहती । बहव ।*

१ २ ३ २ ३ १ २  ३ २ ३  १ २ ३ १ २

**त्वष्टा नो दैव्यं वच पर्जन्यो ब्रह्मणस्पति ।**

२ १  २र ३ १ २ ३ १  २    ३    १ २ ३ १ २

**पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वच ॥७॥**

**पदार्थ**—( **त्वष्टा** ) सब दुःखों का नाश करने वाला ( **न** ) हमारे ( **दैव्यम्** ) वैदिक ( **वच** ) वचन की ( **पर्जन्य** ) मेघ के समान सब का उपकार करने वाला ( **ब्रह्मणस्पति** ) वेदों का स्वामी ( **पुत्र** ) पुत्रों और ( **भ्रातृभि** ) भाइयों के साथ ( **अदिति** ) अखण्डस्वरूप ईश्वर ( **नु** ) शीघ्र ( **पातु** ) रक्षा करे ( **न** ) हमारे ( **दुष्टर** ) नष्ट नहीं होने वाले ( **त्रामणम्** ) रक्षा के साधन ( **वच** ) वचन भी ॥ ७ ॥

**भावार्थ**—सब दुःखों का नाश करने वाला मेघ के समान सब का उपकारक वेदों का स्वामी ईश्वर वेद वचन तथा कभी नष्ट न होने वाले, और रक्षा के साधन हमारे वचन की भी शीघ्र रक्षा करे। वही प्रभु हमारे पुत्रों और भाइयों का भी रक्षक हो ॥७॥

*३००—वालखिल्या । बृहती । इन्द्र ।*

३ २ ३ २  ३ १२ ३  १ २       ३ १ २

**कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।**

२ ३१   २र    २३ २उ  ३ १ २ ३१ २

**उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८॥**

**पदार्थ**—( **कदाचन** ) कभी भी [तू] ( **स्तरी** ) हिंसक किसी का विध्वंसक ( **न** ) नहीं ( **असि** ) है ( **इन्द्र** ) हे ईश्वर ( **सश्चसि** ) तू देता है इस जन्म में ( **दाशुषे** ) दान करने वाले यजमान को [कर्मफल] ( **उप उप इन्नु** ) समीप ही समीप में ही ( **मघवन्** ) हे दान देने वाले ! ( **भूय** ) दूसरे जन्म में ( **इन्नु** ) भी ( **ते** ) तेरा ( **दानम्** ) कर्मफलों का दान ( **देवस्य** ) जीव के साथ ( **पृच्यते** ) सम्बन्ध करता है ॥८॥

**भावार्थ**—हे ईश्वर ! तू हिंसक नहीं है, किन्तु परोपकार करने वाले को तू इस जन्म में भी और दूसरे जन्म में भी कर्मफल का दान अवश्य देता है ॥८॥

*३०१—मेधातिथि । बृहती । इन्द्र ।*

३   १    २र    ३ १ २        ३ १ २

**युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावत ।**

३       १ २  ३  १ २     ३ २ ३  २ ३  १  २

**अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९॥**

**पदार्थ**—( **युङ्क्ष्वा** ) जोड़ता है ( **हि** ) निश्चय ( **वृत्रहन्तम** ) हे पाप के अत्यन्त विनाशक ( **हरी** ) अग्नि और वायु को ( **इन्द्र** ) हे ईश्वर ! ( **परावत** ) दूर भाववाले ( **अर्वाचीन** ) नूतन ( **मघवन्** ) हे प्रभो ! ( **सोमपीतये** ) संसार की रक्षा के लिये ( **उग्र** ) तेजस्वी ( **ऋष्वेभि** ) शक्तियों से ( **आगहि** ) प्राप्त हो ॥९॥

**भावार्थ**—हे पाप के अत्यन्त विनाशक ! सर्वशक्ति !! परम बलवान् !!! परमेश्वर ! तू अपने गुणों से दूर भाववाले वायु और अग्नि को संसार की रक्षा के लिए जोड़ता है। हे प्रभो ! तू अपने महान् गुणों से सदा ही नूतन के समान हमें प्राप्त हो ॥९॥

*३०२—नृमेधा । बृहती । इन्द्र ।*

३ ३ १          २र      २     १ २

**त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णय ।**

१ २ ३   १ २        ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०॥**

**पदार्थ**—( **त्वाम्** ) तेरी ( **इदा** ) आज और ( **ह्य** ) गत कल ( **नर** ) स्तुति करने वाले ( **अपीप्यन्** ) स्तुति करते हैं ! ( **वज्रिन्** ) हे न्यायरूपदण्ड के धारण करने वाले ! ( **भूर्णय** ) कर्मकाण्डी ( **स** ) प्रसिद्ध ( **इन्द्र** ) हे ईश्वर ! ( **स्तोमवाहस** ) आर्य स्तोत्र आदि के जानने वाले ( **इह** ) इस यज्ञ में ( **श्रुधि** ) सुन ( **उप** ) समीप से ( **स्वसरम्** ) मानस भवन में ( **आगहि** ) दर्शन दे ॥१०॥

**भावार्थ**—हे न्यायरूपदण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! कर्मकाण्डी और आर्य स्तोत्र आदि के जानने वाले स्तोता [स्तुति करने वाले] लोग सर्वदा तेरी ही स्तुति करते हैं। तू मेरे मानस भवन में दर्शन दे और यहां ही मेरी पुकार सुन ॥१०॥

## 卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

*३०३—वसिष्ठ । बृहती । उषा ।*

१         ३ २  १   २  ३ २  ३ २

**प्रत्यु अदर्श्यायत्यूच्छन्ती दुहिता दिव ।**

१ २ ३ १ २  ३ १ २ ३  २ २   १ २        ३ १ २

**अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥**

**पदार्थ**—( **प्रति उ अदर्शि** ) दीखता है ( **आयती** ) आती हुई ( **उच्छन्ती** ) दूर करती हुई ( **दुहिता** ) कन्या के समान ( **दिव** ) सूर्य की ( **अप उ** ) दूर ( **मही** ) महान् ( **वृणुते** ) दूर करती है ( **चक्षुषा** ) नेत्र से ( **तम** ) अन्धकार ( **ज्योति** ) प्रकाश ( **कृणोति** ) करती है ( **सूनरी** ) उषा ॥१॥

**भावार्थ**—अन्धकार को दूर करने वाली प्राणिमात्र को राह दिखाने वाली सूर्य की कन्या उषा दिखाई देती है। वह अपने तेज से घने अन्धकार को दूर भगाती और प्रकाश भी करती है ॥१॥

*३०४—वसिष्ठ । बृहती । अश्विनौ ।*

३ १ २ ३ १ २      ३ १  २

**इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।**

१ २ ३ १ २          ३ १ २     ३ १  २र

**अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथ ॥२॥**

**पदार्थ**—( **इमा उ** ) ये ( **वाम्** ) तुम दोनों को ( **दिविष्टय** ) दिव्यगुण चाहनेवाले ( **उस्रा** ) ज्ञान का आश्रय देने वाले ( **हवन्ते** ) पुकारते हैं ( **अश्विनौ** ) हे अध्यापक ! और उपदेशक !! ( **अयं** ) यह ( **वाम्** ) तुम दोनों को ( **अह्वे** ) आह्वान करता हूँ ( **अवसे** ) उद्देश्य के लिये ( **शचीवसू** ) हे अनेक ज्ञान और कर्मों को बसानेवाले ( **विशं विशं** ) प्रत्येक प्राणी के पास ( **हि** ) निश्चय ही ( **गच्छथ** ) जाते हो ॥२॥

**भावार्थ**—हे अध्यापक ! और उपदेशक !! दिव्यगुण चाहने वाले सभी लोग ज्ञान को आश्रय देनेवाले तुम दोनों को पुकारते हैं। मैं भी तुम दोनों का आह्वान करता हूँ। तुम लोग ज्ञान का उपदेश देने के लिये प्रजा प्रजा के पास जाते हो ॥२॥

*३०५—अश्विनौ वैवस्वतौ पौर आत्रेय इति माधवभरतयो मतम् ।*
*बृहती । अश्विनौ ।*

२ ३ १ २            ३ १ २ ३ १ २र

**कुष्ठ को वामश्विना तपानो देवा मर्त्य ।**

३ १ २  ३ १   २र       २ ३ २ ३ २ ३ १ २

**घ्नता वामश्मया क्षपमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥**

पदार्थ—( कुष्ठ ) कुष्ठरोगवाला ( कः ) कोई ( वाम् ) दोनों ( अश्विनौ ) भिषक् स्त्री पुरुष ( तपान ) तप करता हुआ ( देवा ) दिव्य गुणों वाले ( मर्त्यं ) मनुष्य ( अमता ) अनेक रोगों के नाश करने वाले ( वाम् ) दोनों को ( अश्नया ) शक्तिवाले ( क्षयमाणः ) रोगों से क्षीण होता हुआ ( अशुना ) ज्ञान से ( इत्थम् ) ऐसा ( उ ) ही ( आदु ) अनन्तर ( अन्यथा ) रोगमुक्त होता है ॥३॥

भावार्थ—हे भिषक स्त्री और पुरुष ! ! कुष्ठयुक्त जब कोई मनुष्य ज्ञानयुक्त, रोग को निवारण करने वाले शक्तिशाली तुमको प्राप्त होता है तब नियम पर चलता हुआ रोग से निवृत्त होकर 'लौटता है' इसमें कोई सन्देह नहीं ॥३॥

३०६—प्रस्कण्व । बृहती । अश्विनौ ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥४॥

पदार्थ—(अयं) यह (वां) तुम्हारे लिए (मधुमत्तम) अत्यन्त मधुर (सुत) तैयार किया गया है ( सोमः ) भोग्य पदार्थ (दिविष्टिषु ) यज्ञों मे ( तम् ) उसको ( अश्विना ) हे विद्वान् स्त्रीपुरुषा ! ( पिबतम् ) सेवन करो ( तिर ) अत्यन्त ( अह्न्यम् ) दैनिक ( धत्तम् ) प्राप्त कराओ ( रत्नानि ) रत्नादि पदार्थ (दाशुषे ) यजमान के लिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् स्त्री पुरुष ! तुम्हारे लिए यज्ञो मे यह दैनिक भोग पदार्थ तैयार किया गया है । तुम दोनो इसे भली भांति सेवन और यजमान के लिए उत्तम रत्नादि पदार्थ प्राप्त कराओ ॥ ४ ॥

३०७—मधातिथि मेध्यातिथिर्वा । प्रगाथ इति माधवभरतयाः । बृहती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

भूर्णि मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( त्वा ) तुझको ( सोमस्य ) सोम के ( गल्दया ) उपभोग से ( सदा ) सदा ( याचन् ) याचना करता हुआ ( अहं ) मैं ( ज्या ) प्रशसनीय स्तुति से (भूर्णि) शक्ति धारण करनेवाले (मृग) सिंह के समान ( न ) नहीं ( सवनेषु ) यज्ञो मे ( चुक्रुध ) क्रुद्ध करू ( कः ) कौन ( ईशान ) स्वामी को ( न ) नहीं ( याचिषत् ) याचना करता है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! स्तुति से सदा आप के वरदान की याचना करता हुआ मैं यज्ञो मे सोम के उपभोग से सब मे धारण करने वाले तुझको सिंह के समान क्रुद्ध न करू । कौन अपने स्वामी से याचना नहीं करता ॥ ५ ॥

३०८—देवातिथि । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ६ ॥

पदार्थ—( अध्वर्यो ) हे ससाररूप यज्ञ के सम्पादक ( द्रावया ) प्राप्त करा (त्वं) तू ( सोमम् ) आनन्द रस का (इन्द्र) जीवात्मा ( पिपासति) पीने की इच्छा करता है । ( उप उ ) समीप ( नून ) निश्चय ( युयुजे ) जोड़ता है ( वृषणा) शक्तिशाली ( हरी ) प्राण अपान का (आ च जगाम) उद्देश्य पर आ जाता है ( वृत्रहा ) विघ्नों का निवारक ॥६ ॥

भावार्थ—हे संसाररूप यज्ञ के सम्पादक परमेश्वर तू आनन्द रस को प्राप्त करा । यह आत्मा उसका पान करना चाहता है । विघ्नों का नाशक यह शक्तिशाली प्राण और अपान को योग से जोड़ता है तथा उद्देश्य पर आ जाता है । ६ ॥

३०९—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

३ २ ३ २उ ३२ ३ २३ १ २

अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरे भरे च हव्यः ॥७॥

पदार्थ—( अभीषत ) सब प्रकार से चाहते हुए मेरे ( तत ) उस सम्पत्ति को (आभर ) मुझे दे ( इन्द्र ! ) हे ईश्वर ! (ज्याय ) श्रेष्ठ (बड़ा ) तू (कनीयस ) और छोटे मुझे ( पुरूवसु ) तू बहुत सम्पत्तियों का स्वामी है ( हि ) निश्चय (मघवन् ) हे दानी ! ( बभूविथ ) हो ( भरे भरे ) प्रत्येक यज्ञ में ( च ) भी (हव्यः) तू ही आह्वान करने के योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अभिलाषा युक्त मुझ लघु जीव के जो श्रेष्ठ इष्ट पदार्थ हैं उन्हें दे । सकल सम्पदाओं का स्वामी तू प्रत्येक यज्ञ में पूजनीय है ॥ ७ ॥

३१०—वसिष्ठ । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तोतारमिद्दिधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥८॥

पदार्थ—( यत् ) यदि ( इन्द्र) हे ईश्वर ! ( यावत ) जितने धन का ( त्वम् ) तू स्वामी है ( एतावत ) इतने धन का ( अहम् ) मैं ( ईशीय ) स्वामी बन जाऊं तो (स्तोतारम् ) स्तुति करने वाले को ( इत् ) ही ( दधिषे ) पुष्ट करू ( रदावसो ) हे दानदाता ( न ) नहीं ( पापत्वाय ) पाप कर्म के लिए ( रंसिषम् ) दू ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जितनी सम्पत्तियों का तू स्वामी है यदि उतनी का मैं बन जाऊं तो उत्तमकार्य करने वालो का ही पोषण और पालन करूँ । हे मानदाता ! पाप कर्म के लिए मैं कभी दान न दू ॥८॥

३११—नमेधा । बृहती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥९॥

पदार्थ—(त्व ) तू (इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( प्रतूर्तिषु ) प्रत्येक सताये जाने के समयो मे ( अभि ) सब प्रकार से अभिभव करते ( विश्वा ) सारी ( स्पृध )चढ़ाई के भावो का ( असि) है ( अशस्तिहा ) तू अशान्ति पैदा करने वाले कामादि शत्रुओं का नाशक है (जनिता) ससार का उत्पादक है ( वृत्रतू ) पापो का नाश करने वाला ( असि ) है ( त्व ) तू ( तूर्य ) नाश कर ( तरुष्यत ) हिंसक भावो का ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सग्रामो मे होने वाले समस्त चढ़ाई के भावो को दे । तू ही विघ्नो का नाशक तथा पापनिवारक है हमारी हिंसक वृत्तियो को दूर कर ॥९॥

३१२—नोधा । बृहती । इन्द्र ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

प्र वो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ,

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥१०॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( य ) जो ( रिरिक्षे ) अतिरिक्त स्थित है (ओजसा) शक्ति से ( दिव ) द्युलोक के ( सदोभ्य ) स्थानो को ( परि ) व्याप्त कर ( त्वा ) तुझ को ( न ) नहीं ( विव्याच ) व्याप सकता है ( रज ) लोक ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( पार्थिवम्) पार्थिव ( अति ) अत्यन्त ( विश्व ) ब्रह्माण्ड का ( ववक्षिथ ) धारण करता है ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू अपनी शक्ति से द्युलोक के सभी स्थानों में व्यापक होकर उससे भी पृथक वर्तमान हो रहा है । पार्थिव लोक तेरी व्याप्ति को नहीं व्याप सकता । तू ही ब्रह्माण्ड को धारण करता है ॥१०॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

३१३—वसिष्ठ । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ १ २र ३ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥२॥

पदार्थ—( असावि ) उत्पन्न किया है ( देवम ) उत्तम ( गोऋजीकम् ) इन्द्रियो को सरलता देनेवाला ( अन्ध अन ) नितरां ( अस्मिन ) इस मे ( इन्द्र ) आत्मा ( जनुषा ) जन्म से ( उवोच ) लग जाता है ( बोधामसि ) बोध करते हैं ( त्वा ) तुझको ( हर्यश्व ) हे अविनाशी और व्यापक ( यज्ञै ) कर्मों से ( बोधा ) जानता है (न ) हमारे ( स्तोम ) स्तोत्र को ( अन्धस ) साम के ( मदेषु ) सुखों मे ॥ १ ॥

भावार्थ—इन्द्रियो को सरलता देने वाले उत्तम अन्न को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है । इसमे जीवात्मा की जन्म से प्रवृत्ति होती है । हे व्यापक परमेश्वर हम उपासनादि कर्मों से तुझ को जानते हैं । साम के आनन्दो मे किए हुए स्तोत्र को तू जानता है ॥१॥

३१४—वसिष्ठ । त्रिष्टुप । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्दो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ ॥

पदार्थ—( योनि ) स्थान [ मञ्च ] (ते) तेरे लिए ( इन्द्र ) हे वीर ! ( सदने ) सभा मे बैठने के लिए ( अकारि ) बना दिया गया है ( तम् ) उसका ( आ ) सब प्रकार ( नृभि ) मनुष्यो के साथ ( पुरुहूत ) हे बहुतो से चाहने योग्य ( प्रयाहि ) प्राप्त कर ( असः ) होवे ( यथा ) जैसे ( न ) हमारे (अविता) पालन करने वाले ( वृध ) हमारी उन्नति करने वाला ( चित् ) भी ( दद ) दे (वसूनि) अनेक प्रकार की सम्पत्तियों को ( ममद ) प्रसन्न रहो ( च ) और (सोमै ) भोग्य पदार्थों द्वारा ॥२॥

भावार्थ—हे राष्ट्रपति ! सभा के स्थान में तेरा मञ्च बना दिया गया है । हे बहुमत प्राप्त करने वाले ! तू सहायक मनुष्यों के साथ उस मञ्च पर विराजमान हो, जिस प्रकार हमारी रक्षा और उन्नति कर सके, कर । हमे हमारी सम्पत्तियां दे और स्वयं भी भोग्य पदार्थों से तृप्त हो ॥२॥

३१५—गातु, गृत्समद इति माधवभरतको । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

१ २३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**अदर्दरुत्समसृजो वि खानि, त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णा ।**

३ १ २ ३ १२ ३ २उ ३ २उ ३ २ ३ १ २३ २

**महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥३॥**

पदार्थ—( अदर ) छिन्नभिन्न करती है ( उत्सम् ) मेघ को ( असृज ) खोल देती है ( वि ) विशेषरूप से (खानि) जल के मार्गों को ( त्वम् ) वह (अर्णवान् ) जल संघातों को (बद्बधानान्) रुके हुए (अरम्णा ) गिराती है (महान्तम्) महान् ( इन्द्र ) बिजली ( पर्वतम् ) मेघ को ( विवः ) खोल देती है ( यत् ) जब ( सृजत ) निकल चलती है ( धारा ) जल की धार (यत्) जब (दानवान्) रुकावट ( अवहन् ) दूर कर देती है तब ॥३॥

भावार्थ—बिजली मेघ को छिन्नभिन्न करती है। वह रुके हुए जल के मार्गों को साफ करती है जिससे जल बरसने लगता है।

वह जब महान् मेघ को तोड़मरोड़ कर रुकावट दूर कर देती है तब जल की धारा बहने लगती है ॥३॥

३१६—पृथुवन्य । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा, ससनिवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।**

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १२

**आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोता ॥४॥**

पदार्थ—( सुष्वाणासः ) यज्ञ करते हुए ( इन्द्र ) हे ईश्वर ( स्तुमसि ) हम स्तुति करते हैं ( त्वा ) तेरी ( ससनिवांस ) विभाजन करते हुए ( तुविनृम्णः ) हे अनन्तधनो के स्वामी ( वाजम् ) अन्न को ( आ ) सब प्रकार से ( न ) हमे ( भर ) दे ( सुवितम् ) कल्याणकारी धन ( यस्य ) जो ( कोना ) शत्रुओ को ( तना ) पुत्र के साथ ( त्मना ) अपने ( सह्याम् ) नीचा दिखावें ( त्वोता ) तुझ से सुरक्षित रह कर ॥४॥

भावार्थ—हे अनन्त सम्पत्तियो के स्वामी ईश्वर ! यज्ञ करते हुए तथा अन्न का बटवारा करते हुए हम तेरी स्तुति करते हैं। जो भी कल्याणकारी सम्पत्ति हो वही हमें दे। तेरी रक्षा के भरोसे हम लोग अपनी सन्तानों के साथ नीच शत्रुओ को नीचा दिखलावें ॥४॥

३१७—सप्तगु । त्रिष्टुप । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।**

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

**विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥**

पदार्थ—( जगृह्म ) ग्रहण करते हैं ( ते ) तेरे ( दक्षिणम् ) दाये ( इन्द्र ) हे राजन् ! ( हस्तम् ) हाथ को [आमाश्रिता वयमिति भाव ] ( वसूयव ) सम्पत्ति पाने की इच्छा से युक्त ( वसुपते वसूनाम ) हे सम्पत्ति के स्वामी ! ( विद्मा ) हम जानते हैं ( हि ) जिस लिए ( त्वा ) तुझको ( गोनाम् गोपतिम ) गौ आदि पशु रूप सम्पत्ति के स्वामी ( शूर ) हे शक्तिमान् ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( चित्रम् ) अद्भुत ( वृषणम् ) पोषणपालन वाले ( रयिम् ) धन को ( दाः ) दे ॥५॥

भावार्थ—हे हर प्रकार की सम्पत्तियों के स्वामी राजन् ! सम्पत्ति की कामना वाले हम लोग तेरी शरण मे उपस्थित हैं। हे शक्तिमान् तुझको हम लोग गौ आदि पशुरूप सम्पत्ति का स्वामी जानते हैं। तू हमे अद्भुत और पालन-पोषण करने वाला धन देकर कृतार्थ कर ॥५॥

३१८—वसिष्ठ । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २३ २ ३ २

**इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।**

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

**शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥**

पदार्थ—( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( नरः ) मनुष्य (नेमधिता) सग्राम या आपदाओं मे ( हवन्ते ) पुकारते हैं ( यत् ) जो ( पार्या ) पार करने वाले ( युनजते ) युक्त होते हैं ( धिय ) बुद्धियों को ( ता ) उन ( शूर ) शक्तिमान् ( नृषातो ) यज्ञादि उत्तम काम मे ( श्रवस ) कीर्ति की ( च ) और (कामे) कामना में (आ) सब प्रकार से ( गोमति व्रजे ) गोयुक्तशाला मे ( आभजा ) भागी बना ( त्वं ) तू ( न ) हमें ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सग्राम आदि के समय परमेश्वर को पुकारते हैं। जो आपदाओं से पार लगाने वाली बुद्धियां हैं उनको प्राप्त होते हैं। हे परमेश्वर ! शक्तिमान् तू यज्ञादि उत्तम कर्मों में, कीर्ति की कामना मे तथा गामादि से युक्त गृहों में हमें भागी बना ॥६॥

३१९—गौरीवीति । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३] १ २

**वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रम्, प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।**

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २ ३ २

**अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यास्मान्निधयेव बद्धान् ॥७॥**

पदार्थ—( वयः ) पक्षियों के समान (सुपर्णाः) उत्तम परों वाले (उपसेदुः) उपस्थित होते हैं ( इन्द्रम् ) ईश्वर की शरण मे ( प्रियमेधा ) बुद्धिमान् ( ऋषयः ) ऋषि लोग (नाधमाना ) याचना करते हुए (ध्वान्तम्) अज्ञानअन्धकार को (अपोर्णुहि) दूर कर (पूर्धि) पूर्ण कर (चक्षु ) ज्ञान की आँखें (मुमुग्धि) मुक्त कर दे (अस्मान्) हम लोगों को ( निधया ) बन्धन से ( इव ) समान ( बद्धान् ) बान्धे हुए के ॥७॥

भावार्थ—उत्तम पर वाले पक्षियों की भांति बुद्धिमान् ऋषिलोक याचना करते हुए परमेश्वर की शरण म उपस्थित हाते हैं और प्राथना करते हैं कि हे परमेश्वर ! अन्धकार को दूर कर हमारे चक्षुओ को ज्ञान से पूर्ण कर और बेड़ी से बन्धे हुए के समान बन्धन मे पडे हुए हम लोगों को मुक्त कर ॥७॥

३२०—वेन । त्रिष्टप् । इन्द्र ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

**नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं, हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।**

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

**हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं, यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८॥**

पदार्थ—( नाके ) आनन्द स्वरूप में ( सुपर्णम् ) पक्षीरूप ( यत्पतन्तम् ) सब जगह व्यापक ( हृदा ) हृदय से (वेनन्त ) चाहते हुए योगी पुरुष (अभ्यचक्षत) देखते हैं ( त्वा ) तुझको ( हिरण्यपक्षम ) प्रकाशस्वरूप (वरुणस्य) जीव के (दूतम्) दुखनिवारक ( यमस्य ) सूर्य के ( योनौ ) मण्डल मे भी ( शकुनम् ) शक्तिमान् ( भुरण्युम् ) व्यापक ॥८॥

भावार्थ—आनन्द म विराजमान व्यापक परमेश्वर को हृदय से चाहते हुए ज्ञानीजन साक्षात् करते हैं। वह परमेश्वर प्रकाशस्वरूप जीव के दुखों का निवारक, शक्तिमान्, सूर्य के मण्डल मे भी स्थित तथा सर्वपालक है ॥८॥

३२१—नकुल । त्रिष्टप । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।**

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

**स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९॥**

पदार्थ—( ब्रह्म ) ब्रह्माण्ड ( जज्ञान ) उत्पन्न होने वाले ( प्रथम ) प्रथम ( पुरस्तात् ) प्रारम्भ काल मे ( विसीमतः ) सीमा के साधन दिशाओ को (सुरुचः) अन्य प्रकाशों को ( वेन ) परमेश्वर ने ( आव ) विस्तृत किया ( स ) उसने ( बुध्न्या ) सूर्य से होने वाली दिशाओ और (उपमा) माप के साधन तथा (विष्ठाः) प्रकाशो को ( सत ) वर्तमान (असत ) भविष्य मे पैदा होने वाले भूतों के (योनि) कारण प्रकृति को ( विव ) विविध रूप से प्रकट किया ॥९॥

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ में प्रथम उत्पन्न होने वाले ब्रह्माण्ड (सौर मण्डल) को प्रकट किया। उसी ने अन्तरिक्ष मे होने वाली इस सूर्य मण्डल के माप के साधन भूत तथा अपनी विशेषता से स्थित दिशाओ तथा सीमा में स्थित अन्य प्रकाशों को विस्तृत किया। इस प्रकार वर्तमान तथा असत भविष्य मे पैदा होने वाले भूतों के कारण भूत प्रकृति को उस परमेश्वर ने विविध रूप मे प्रकट किया ॥९॥

३२२—सुहोत्र । त्रिष्टुप । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २

**अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।**

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१०॥**

पदार्थ—( अपूर्व्या ) नवीन नवीन ( पुरुतमानि ) अधिक मात्रा में (अस्मै) इसके लिए ( महे वीराय ) महान् शूर ( तवसे ) बलवान् ( तुराय ) क्षण मात्र में सब कुछ करने वाले ( शंतमानि ) शान्ति देने वाली ( वचांसि ) स्तुतियां ( अस्मै ) इस ( स्थविराय ) पुराण पुरुष परमेश्वर के लिए (तक्षु ) करते हैं उपासक ॥१०॥

भावार्थ—उपासना करने वाले पुरुष सबसे बढ़कर शूर और बलवान्, क्षण मात्र मे सब कुछ करने वाले सबसे अधिक स्तुति करने के योग्य और न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले इस सनातन पुरुष परमेश्वर की सुख-शांति देने वाली बहुत नयी नयी स्तुतियां करते हैं ॥ १० ॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

३२३—द्युतानः । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।**

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

**आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१॥**

पदार्थ—( अव ) रोकने अर्थ में ( द्रप्स ) रूप वाला ( अंशुमतीम् ) सौर-मण्डल मे ( अतिष्ठत् ) स्थित है ( ईयान ) गतिशील ( कृष्णः ) आकर्षण करने वाला ( दशभि ) दस ( सहस्रैः ) हजार ( आवत् ) रक्षित रखता है ( तम् ) उस ( इन्द्र ) सूर्य (शच्या ) शक्ति से ( धमन्तम् ) बहते हुए ( अप ) दूर (स्नीहितिम्) घाताघात करने वाले ( नृमणा ) मनुष्यों के मनन का विषय ( अध ) नीचे ( द्राः ) प्रेरित करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—गतिशील लोकों का आकर्षण करने वाला तथा लोगों के मनन का विषय सूर्य दस सहस्र किरणों द्वारा नदी को प्राप्त होता हुआ स्थित हो रहा है। वह शक्ति से बहते हुए श्वासप्रश्वास करने वाले वायु को नीचे की तरफ प्रेरित करता है तथा रक्षित रखता है ॥ १ ॥

३२४—द्युतानो मारुत, तिरश्चिर्वांगिरस । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २   ३ २ ३ १ २   २   १ २ ३ १ २   ३ १   २र
**वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखाय ।**
३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ २उ   ३   १ २
**मरुद्भिरिन्द्र सख्य ते अस्त्वथेमा विश्वा पृतना जयासि ॥२॥**

पदार्थ—( वृत्रस्य ) पाप के ( त्वा ) तुमको ( श्वसथात् ) श्वास से ( ईषमाणा ) प्रभावित होकर ( विश्वे ) सब ( देवा ) इन्द्रियों ने ( अजहु ) त्याग दिया ( ये ) जो ( सखाय ) मित्र थे केवल ( मरुद्भि ) प्राण वायु से ( इन्द्र ) हे आत्मा ( सख्यम् ) मित्रता से ( ते ) तेरी ( अस्तु ) बनी रहे तो ( अथ ) बाद ( इमा ) इन ( विश्वा ) सब ( पृतना ) पाप की सेनाओं को ( जयासि ) जीतते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे जीवात्मा ! जो इन्द्रियाँ तेरी मित्र होती हैं, वे भी पाप के श्वास से ही प्रभावित होकर तेरा साथ छोड़ देती हैं, केवल प्राण ही तेरे साथी होते हैं। अबसे ये साथ देते हैं तो पाप की सारी सेना को तू जीत लेता है ॥ २ ॥

३२५—बृहदुक्थ । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १   २र   ३ १   २र ३ १ २   ३ १ २
**विधु दद्राण समने बहूनां युवान सन्त पलितो जगार ।**
३ १ २   ३   १ २   ३ २उ   ३ २ ३ १   २र
**देवस्य पश्य काव्य महित्वाद्या ममार स ह्य समान ॥३॥**

पदार्थ—( विधु ) संसार के धारण करने वाले ( दद्राण ) दूर करने वाले ( समने ) बुरी और अच्छी भावनाओं के संग्राम में ( बहूनां ) सारी ( युवान ) अजर ( सन्तम् ) होते हुए ( पलित ) वृद्ध ( जगार ) स्तुति करता है। ( देवस्य ) देव के ( पश्य ) देखो ( काव्यं ) कृति को ( महित्वा ) महत्त्व से पूर्ण ( अद्या ) आज ( ममार ) मर गया ( स ) वह ( ह्य ) गत दिन ( समान ) जीता है ॥३॥

भावार्थ—वृद्ध मनुष्य, संसार के धारण करने वाले बुराई और भलाई के संग्राम में, बुराइयों को दूर भगाने वाले, अजर विद्यमान परमेश्वर की स्तुति करता है। उस परम देव की महत्त्वपूर्ण कृति को देखो कि जो कल मर गया था आज फिर पैदा होता है अथवा जो कल जीवित था आज मरता है ॥ ३ ॥

३२६—तिरश्ची द्युतानो वा । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

२ ३   २   ३ २ ३ १ २   ३ १   २   ३ १ २
**त्वं ह त्यत सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभव शत्रुरिन्द्र ।**
३ १   २र ३ १   २र   ३ २   ३   १ २   ३ १ २
**गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रण धा ॥४॥**

पदार्थ—( त्व ) तू ( ह ) निश्चय ही ( त्यत ) वह ( सप्तभ्य ) सात इन्द्रियों के लिए ( जायमान ) पैदा हुआ ( अशत्रुभ्य ) मित्रस्वरूप ( अभव ) होता है ( शत्रु ) शत्रु ( इन्द्र ) हे जीव ! ( गूढ ) गूढ ( द्यावापृथिवी ) द्यु और पृथिवी लोक को ( अन्वविन्द ) प्राप्त होता है ( विभुमद्भ्य ) ऐश्वर्यशाली ( भुवनेभ्य ) लोकों के लिए ( रणं ) संग्राम को ( धा ) धारण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू मित्ररूप सात इन्द्रियों के लिए उत्पन्न होकर भोगों में फंसा हुआ तू उनका शत्रु बन जाता है। तू अत्यन्त गूढ द्यु और पृथिवी लोक मे भी कर्मानुसार प्राप्त होता है। तू ऐश्वर्यशाली लोकों की प्राप्ति के लिए जीवन संग्राम को धारण करता है ॥ ४ ॥

३२७—वामदेव । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

३ १   २र ३ १ २   ३ १ २   ३   १ २   ३ २   ३ १ २
**मेडि न त्वा वज्रिण भृष्टिमन्त पुरुधस्मान वृषभ स्थिरप्स्नुम् ।**
३ २र ३   १ २   ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २
**करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्ष वृत्रहण गृणीषे ॥५॥**

पदार्थ—( मेडिम् ) वाणी के ( न ) समान स्तुति के योग्य ( वज्रिणम् ) न्याय दण्ड का धारण करने वाले ( भृष्टिमन्तम् ) प्रकाशस्वरूप ( पुरुधस्मान ) संसार का पोषण-पालन करनेवाले ( वृषभम् ) हमारी कामनाओं की पूर्ति करनेवाले ( स्थिरप्स्नुम् ) संसार का संहार करनेवाले ( करोषि ) करता है ( अर्यः ) मानुषी प्रजा का ( तरुषी ) आपत्तियों को पार करने की इच्छा वाला मैं ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( द्युक्षम् ) तू ज्ञानस्वरूप ( वृत्रहणम् ) अज्ञान के नाश करनेवाले ( गृणीषे ) स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू सारी मनुष्य प्रजा को आपत्तियों को पार करने की शक्ति देता है। तेरी सेवा करने वाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ। तू सरस्वती के समान स्तुति करने के योग्य और न्यायरूप दण्ड का धारण करने वाला है। तू प्रकाशस्वरूप और हमारी कामनाओं को सफल करने वाला है। तू संसार का पालन-पोषण और संहार करता है। तू ज्ञानस्वरूप है, अतः फिर हमारे अज्ञानों का नाश करता है ॥५॥

३२८—वसिष्ठ । विराट् । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
**प्र वो महे महे वृधे भरध्व प्रचेतसे प्र सुमति कृणुध्वम् ।**
१ २   ३ १   २र   ३ २
**विश पूर्वी प्र चर चर्षणिप्रा ॥६॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( व ) तुम सब ( महे ) महान् ( महे वृधे ) मनुष्यों को उन्नत करने वाले ( भरध्वम् ) धारण करो ( प्रचेतसे ) सब से अधिक उत्तम ज्ञान वाले ( प्र ) उत्तम ( सुमतिम् ) मनोहर स्तुति ( कृणुध्वम् ) करो। ( विश ) मनुष्य प्रजाओं को ( पूर्वी ) सनातन ( प्रचर ) अपना बना ( चर्षणिप्रा ) हे मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले ईश्वर ! ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे श्रेष्ठ पुरुषो ! तुम सब मनुष्यों को उन्नत करने वाले परमेश्वर को ( हृदय मे ) अपने ज्ञान में धारण करो। उस सबसे बड़े ज्ञानी की मनोहर स्तुति करो। हे मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभो ! अपनी मनुष्य प्रजाओं को अपना सेवक बना ॥ ६ ॥

३२९—विश्वामित्र । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ   ३ १ २ ३ १ २
**शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम वाजसातौ ।**
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३   १ २   ३ १ २   ३   २ ३ १ २
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सञ्जित धनानि ॥७॥**

पदार्थ—( शुनम् ) व्यापक ( हुवेम ) हम स्तुति करते हैं ( मघवानम् ) ऐश्वर्यवाले ( इन्द्रम् ) ईश्वर की ( अस्मिन् ) इस ( भरे ) ज्ञानयज्ञ मे ( नृतमम् ) सब के महान् नेता ( वाजसातौ ) बल प्राप्त करानेवाले ( शृण्वन्तम् ) हमारा आह्वान सुनने वाले ( उग्रम् ) ओजस्वी ( ऊतये ) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए [ पाप और पुण्य के ] ( समत्सु ) संग्राम में ( घ्नन्तम् ) नाश करने वाले ( वृत्राणि ) पापों को ( सञ्जितम् ) सम्यक अधीन करनेवाले ( धनानि ) सम्पत्तियों को ॥ ७ ॥

भावार्थ—हम लोग बल को प्राप्त करानेवाले, ज्ञानयज्ञ में सम्मिलित होकर सुखों के दाता ऐश्वर्यों के स्वामी, पुण्यों और पापों के संग्रामों में हमारी रक्षा और तृप्ति के लिए पापों के नाश करने वाले और संसार की सारी सम्पत्तियों को अपने अधीन रखनेवाले ईश्वर को पुकारते हैं ॥ ७ ॥

३३०—वसिष्ठ । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

२ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
**उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्र समर्ये महया वसिष्ठ ।**
१   २र ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥८॥**

पदार्थ—( उदु ) उत्कृष्ट ( ब्रह्माणि ) स्तोत्रों का ( ऐरत ) उच्चारण करो ( श्रवस्या ) सुनने योग्य मनोहर ( इन्द्रम ) परमेश्वर का ( समर्ये ) ज्ञानयज्ञ में ( महया ) सत्कार कर ( वसिष्ठ ) हे जितेन्द्रिय पुरुष ! ( आ ) सब प्रकार से ( य ) जिस ईश्वर ने ( विश्वानि ) अखिल ब्रह्माण्ड का ( श्रवसा ) अपनी कीर्ति से ( ततान ) विस्तार किया ह ( उपश्रोता ) सुननेवाला हो ( मे ) मेरे ( ईवत ) अशेष गुणो के प्रकाशक ( वचांसि ) स्तुतियो को ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे जितेन्द्रिय पुरुष ! ज्ञानयज्ञ मे उस ईश्वर को मनोहर स्तुति का उच्चारण और सत्कार कर, जिसने अपनी कीर्ति से युक्त सारे संसार का विस्तार किया है। उसके सारे गुणो के वर्णन करने वाले मेरे स्तोत्रों को वह अवश्य सुनें। यही मेरी कामना है ॥ ८ ॥

३३१—गौरीवीति । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

३ १   २र ३   १   २र   ३ १   २र ३ १   २र
**चक्र यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।**
३   १   २र   ३ २उ ३   २ ३ १   २र ३   १ २
**पृथिव्यामतिषित यदूध पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥**

पदार्थ—( चक्रम् ) सृष्टि-नियमचक्र ( यत् ) जो ( अस्य ) इस परमेश्वर का ( अप्सु ) लोकों में ( आ ) भली भाति ( निषत्त ) विद्यमान है ( उत ) और ( उ ) पादपूरक ( तत् ) वह ( अस्मै ) इस संसार के लिए ( मधु ) जल को ( इत् ) ही ( चच्छद्यात् ) आच्छादित करता है। ( पृथिव्याम् ) अन्तरिक्ष में ( अतिषितं ) निगूढ हुआ ( यत् ) जो ( ऊध ) रात्री ( पय ) दूध और रस ( गोषु ) गायों में ( अदधा ) धारण करता है ( ओषधीषु ) ओषधियों में ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस परमेश्वर का जो सृष्टि नियम-चक्र है, वह समस्त लोकों में विद्यमान है, इस संसार के उपयोग के लिए जल को आच्छादित करता है अन्तरिक्ष में अत्यन्त निगूढ छिपा हुआ वह रात्रि, गायों, और ओषधियों, दुग्ध तथा रस को धारण करता है ॥ ९ ॥

**॥ चतुर्थी दशती समाप्त ॥**

३३२—*अरिष्टनेमि । त्रिष्टप । तार्क्ष्य ।*

२ ८ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

**त्यमू षु वाजिन देवजूत सहोवान तरुतार रथानाम् ।**

१ २ ३ १ २ ८ २ ३ ८ ३ १ ३ १ २

**अरिष्टनेमि पतनाजमाशु स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥**

**पदार्थ**—( **त्यम्** ) उस ( उ ) पादपूरक ( **सु** ) उत्तम ( **वाजिनम्** ) धन आदि के स्वामी ( **देवजूतम्** ) देवताओं से उपास्य ( **सहोवानम्** ) बल से युक्त ( **तरुतारम्** ) ताराओं के तारक ( **रथानाम्** ) रमणीय तारकाओं के ( **अरिष्टनेमि** ) अकुण्ठितशक्ति ( **पृतनाज** ) बाधाओं के विजेता ( **आशु** ) व्यापक ( **स्वस्तये** ) कल्याण के लिए ( **तार्क्ष्य** ) ईश्वर को ( **इह** ) इस जगत् मे ( **आ हुवेम** ) पुकारते हैं ॥ १ ॥

**भावार्थ**—उस धन आदि के दाता विद्वानो द्वारा प्रसन्न किये हुए रमणीय तारागणो के तारक अकुण्ठितशक्ति समस्त बाधाओ के विजेता तथा व्यापक परमेश्वर को अपने कल्याण के लिए इस जगत् मे हम पुकारते हैं ॥ १ ॥

३३३—*गर्ग । त्रिष्टप । इन्द्र ।*

३ ८ ३ १ ८ ३ २ ३ ८ ४ १ ८ ३ ८ ३ २ ३ १ २

**त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्रम ।**

३ २उ १ ८ ३ १ ८२ ३ ८ ३ २ १ २ ३ १ २

**हुवे नु शक्र पुरुहूतमिन्द्रमिद हविमघवा वेत्विन्द्र ॥२॥**

**पदार्थ**—( **त्रातारम्** ) पालन करनेवाले ( **इन्द्रम्** ) ईश्वर को ( **अवितार** ) रक्षा करनेवाले ( **इन्द्रम** ) ईश्वर को ( **हवे हवे** ) आह्वान के प्रत्येक अवसर पर ( **सुहव** ) सुखपूर्वक पुकारने योग्य ( **शूरम** ) बलवान् ( **इन्द्रम्** ) ईश्वर का ( **हुवे** ) आह्वान करता हूँ ( **नु** ) शीघ्र ( **शक्रम्** ) शक्तिमान् ( **पुरुहूतम्** ) बार बार प्रार्थना करने के योग्य ( **इन्द्रम्** ) ईश्वर को ( **इदम्** ) मेरे इस ( **हवि** ) स्तुति का ( **मघवा** ) महान् दानी ( **वेतु** ) जाने ( **इन्द्र** ) ईश्वर ॥ २ ॥

**भावार्थ**—मै पालन करनेवाले, प्रत्येक अवसर पर पुकारने के योग्य बलवान् शक्तिमान् और बार बार प्रार्थना के योग्य ईश्वर की स्तुति करता हूँ। वह महान् दानी ईश्वर मेरे इस यज्ञ स्तुति को जाने और स्वीकार करे ॥ २ ॥

३३४—*विमद, वसुकृद्वा । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।*

१ ८ ३ २ ३ १ ८ ८ १ २ ३ २ १ ८

**यजामह इन्द्र वज्रदक्षिण हरीणां रथ्यां३ विव्रतानाम ।**

१ २८ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ८२ ३ १ ३ १ २८

**प्र श्मश्रुभिर्दो धुवदूर्ध्वधाभुवद्विसेनाभिभयमानो वि राधसा ॥३॥**

**पदार्थ**—( **यजामहे** ) सत्कार करते हैं ( **इन्द्र** ) राजा का ( **वज्रदक्षिणम्** ) शस्त्र को धारण करने वाले ( **हरीणाम्** ) मनुष्यों के ( **रथ्य** ) नेता ( **विव्रतानाम** ) विविध कर्मों वाले ( **प्र** ) उत्तम ( **श्मश्रुभि** ) रोमों से ( **दोधुवत** ) कपा देता है ( **ऊर्ध्वधा** ) सब से बड़ा ( **भुवत** ) है ( **वि** ) विशेष ( **सेनाभि** ) सेनाओ से ( **भयमान** ) डराता हुआ ( **राधसा** ) सम्पत्ति से ॥३॥

**भावार्थ**—शस्त्र का धारण करने वाले, अनेक कर्मोंवाले मनुष्यो के नेता उस राजा का हम सत्कार करते हैं जो सेना और धन से शत्रुओ को डराता हुआ दाढ़ियो के हिलाने से सब को कंपा देता है और सर्वोपरि स्थित होता है ॥३॥

३३५—*वामदेव । त्रिष्टुप । इन्द्र ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

**सत्राहण दाधृषि तुम्रमिन्द्र महामपार वृषभ सुवज्रम ।**

२ ८ ८ ३ १ २८ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**हन्ता यो वृत्र सनितोत वाज दाता मघानि मघवा सुराधा ॥४॥**

**पदार्थ**—( **सत्राहणम्** ) सत्य से असत्य का नाश करने वाला ( **दाधृषिम्** ) अधम को दूर भगानेवाले ( **तुम्रम** ) अच्छे काय करने के लिए सब की प्रेरणा करने वाला ( **इन्द्रम्** ) ईश्वर को ( **महाम** ) महान् ( **अपारम** ) अनन्त ( **वृषभम** ) कामनाओं का पूरा करनेवाला ( **सुवज्रम्** ) सुन्दर न्यायरूप दण्ड का धारी ( **हन्ता** ) नाश करने वाला ( **य** ) जो ( **वृत्रम्** ) अज्ञान और अधम का ( **सनिता** ) दाता ( **उत** ) और ( **वाजम्** ) बल का ( **दाता** ) देने वाला ( **मघानि** ) सम्पत्तियो का ( **मघवा** ) ऐश्वर्यों का स्वामी ( **सुराधा** ) उत्तम धन वाला ॥४॥

**भावार्थ**—हम लोग सत्य से असत्य को जीतनेवाले अधर्म को दूर करने वाले सब के प्रेरक, अपार और महान् सुख के दाता उत्तम कार्यकारी उस इन्द्र की स्तुति करते हैं जो अज्ञान का निवारक सम्पत्ति का दाता बल का दाता धनों का दाता, उत्तम सम्पत्ति शाली तथा ऐश्वर्यों का स्वामी है ॥४॥

३३६—*वामदेव । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ ८ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।**

३ २ ३ १ २८ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभीष्याम वृषमणस्त्वोता ॥५॥**

**पदार्थ**—( **य** ) जो ( **न** ) हमे ( **वनुष्यत्** ) दुःख देने की इच्छा करता हुआ ( **अभिदाति** ) हमें दास बनाता है ( **मर्त** ) मनुष्य ( **उगणा** ) बहुत गुणवाली प्रजा को ( **वा** ) अथवा ( **मन्यमान** ) अपने आप को मनाता हुआ [ अभिमानी ] ( **तुर** ) पीडा देता है ( **क्षिधी** ) नाश कर ( **युधा** ) सग्राम में ( **शवसा** ) बल मे ( **वा** ) अथवा ( **तम्** ) उसका ( **इन्द्र** ) हे राजन् ( **अभीष्याम** ) सामना करते है ( **वृषमण** ) हे कल्याणबुद्धि ( **त्वोता** ) तुझ से सुरक्षित हुए ॥५॥

**भावार्थ**—हे राजन् जो अभिमानी हिंसक मनुष्य हमे तथा उत्कृष्ट गुण वाली प्रजा को पीडा देता हुआ सताता है तू उसे नष्ट कर। तुम्हारी रक्षा मे रहते हुए हम बल और युद्ध से उसको दबावें ॥५॥

३३७—*वामदेव । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ ८ ३ १ ८ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**य वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना य युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।**

१ २र ३ ० ३ १ ८२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

**य शूरसातौ यमपामुपज्मन् य विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्र ॥६॥**

**पदार्थ**—( **यम्** ) जिसका ( **वृत्रेषु** ) उपद्रवो के समय मे ( **क्षितय** ) मनुष्य ( **स्पर्धमाना** ) परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले ( **यम्** ) जिस का ( **युक्तेषु** ) योगयुक्त अवस्था मे ( **तुरयन्त** ) योग के उपद्रवो को जीतने के लिए शीघ्रता करनेवाले ( **हवन्ते** ) आह्वान करते हैं ( **यम्** ) जिसका ( **शूरसातौ** ) संग्राम उपस्थित होने पर ( **यम** ) जिसका ( **अपामुपज्मन्** ) जलो की आवश्यकता के समय पर ( **यम** ) जिसकी ( **विप्रास** ) ज्ञानी पुरुष ( **वाजयन्ते** ) स्तुति करते हैं ( **सः** ) वह ( **इन्द्र** ) इन्द्र है ॥६॥

**भावार्थ**—इन्द्र कौन है ? उपद्रवो के उपस्थित होने पर आपस मे एक दूसरे को जीतने की इच्छा करते हुए मनुष्य जिसको पुकारते हैं योग से युक्त होकर, योग के उपद्रवो को दूर करने की धुन मे मस्त होकर योगी पुरुष जिसकी पुकार करते हैं संग्रामो मे वीर योद्धा जिसकी सहायता की आशा करते हैं, जल की आवश्यकता के समय किसान जिसको पुकारते है और ज्ञानी जन जिसकी स्तुति करते हैं वही इन्द्र है ॥६॥

३३८—*विश्वामित्र । त्रिष्टप । इन्द्रापवतौ ।*

१ २ ३ १ २र

**इन्द्रापवता बृहता रथेन**

३ २उ ३ १ २ ३ १ २

**वामीरिष आ वहत सुवीरा ।**

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

**वीत हव्यान्यध्वरेषु देवा**

१ २ ३ १ २र ३ १ २

**वर्धेथा गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७॥**

**पदार्थ**—( **इन्द्रापवता** ) विद्युत् बिजली और मेघ ( **बृहता** ) बडे ( **रथेन** ) रथ के समान साधनरूप जल की वर्षा के द्वारा ( **वामो** ) चाहने योग्य ( **इष** ) अन्न आदि उत्तम उत्तम भोग के पदार्थ ( **आवहतम** ) हमे प्राप्त कराते हैं ( **सुवीरा** ) वीर सन्तानो वाले ( **वीतम** ) प्राप्त करते है ( **हव्यानि** ) हवन की सामग्रियो को वायु के द्वारा ( **अध्वरेषु** ) यज्ञो मे दी गई ( **देवा** ) दिव्य गुणोवाले ( **वर्धेथाम्** ) बढ़ते हैं ( **गीर्भि** ) गर्जन और कड़क रूपी वाणियो से ( **इडया** ) यज्ञीय अन्न से ( **मदन्ता**, उन दोनो की तृप्ति होती है ॥७॥

**भावार्थ**—विद्युत् और मेघ बड़े रथ के समान वर्षा के द्वारा चाहने योग्य अन्न को प्राप्त कराते हैं। जिससे हम उत्तम सन्तान वाले होते हैं तीव्र गुण वाले पदार्थ यज्ञो मे दी हुई आहुतियो को ग्रहण कर तथा कड़क आदि से सस्यादियो को बढ़ावें मेघ और विद्युत् यज्ञीय आहुति दिए हुए अन्न से शक्तिशाली होते हैं ॥७॥

९—*रेणु । त्रिष्टप । इन्द्र ।*

१ ८ ३ ८ ३ १ ८

**इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा**

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

**अप प्रेरयत्सगरस्य बुध्नात् ।**

१ र ३ ८ ३ १ २ ३

**यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर**

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ ८

**विष्वक तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥८॥**

**पदार्थ**—( **इन्द्राय** ) ईश्वर के लिए ( **गिर** ) स्तुतियाँ ( **अनिशितसर्गाः** ) निरन्तर प्रारम्भ रहने वाली पूरी ( **अप** ) जल की वर्षा के लिए ( **प्रेरयत्** ) प्रेरणा करता है ( **सगरस्य** ) अन्तरिक्ष के ( **बुध्नात** ) स्थान से ( **य** ) जो ईश्वर ( **अक्षेण** ) धुरा से ( **चक्रियौ** ) चक्को को ( **इव** ) जैसे ( **शचीभि** ) अपने कर्मों से ( **विष्वक्** ) चारो तरफ से ( **तस्तम्भ** ) दृढ़ता से धारण कर रखता है ( **पृथिवीम्** ) भूमि को ( **उत** ) और ( **द्याम्** ) सूर्यलोक का ॥८॥

**भावार्थ**—जो ईश्वर आकाश से जलो की वर्षा की प्रेरणा करता है, जिसने धुरे से पहियो के समान अपने अनन्त कर्मों से भूमि और सूर्यलोक को चारों तरफ से स्थिर बना दिया है उस ईश्वर के लिए बार बार स्तुतियाँ होवें ॥ ८ ॥

३४०—वामदेव । त्रिष्टुप् । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा सखाय सख्या ववृत्यु -
३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तिर पुरू चिदर्णवां जगम्या ।
३ १ २र३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यान ॥९॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( त्वा ) तुझको ( सखायः ) उपासक लोग ( सख्या ) उपासना रूप मित्रता से ( ववृत्यु ) अपने अनुकूल करते हैं ( तिर ) तू हमारे समीप ही है कि तु अज्ञात है ( पुरू अर्णवाम् ) विस्तृत आकाश में ( चित ) ही ( जगम्या ) तू सूक्ष्म गति से व्यापक हो रहा है ( पितुर्न ) पिता के समान ( पातम् ) रक्षा ( आदधीत ) करे ( वेधा ) विधाता तू ( अस्मिन् क्षये ) इसी शरीर में ( प्रतराम्) उत्तम ( दीद्यान ) प्रकाशमान होता हुआ दीर्घायु दे ॥९॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उपासक लोग उपासना रूप मित्रता से तुझ को अपने अनुकूल करते हैं। हमारी अज्ञानता के कारण तू हमें दूर प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में तू विस्तृत ब्रह्माण्ड में व्यापक है। तू सृष्टिकर्ता है, इसलिए पिता के समान रक्षक है। तू स्वयं प्रकाशमान होता हुआ हमें दीर्घ जीवन प्रदान कर ॥९॥

३४१—गोतमः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः

२ ३ १ २ ३ २र १ २ ३ ३ १ २ ३ २
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ ३ १ २
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१०॥

पदार्थ—(कः) सुखस्वरूप (अद्य) इस समय ( युङ्क्ते ) जोड़ता है (धुरि ) धुरे में ( गा ) वाणी को ( ऋतस्य ) ज्ञान के ( शिमीवतः ) अनेक कर्मों वाली ( भामिनो ) अर्थ को प्रकाशित करने वाली ( दुर्हृणायून् ) न त्यागने योग्य (आसन्) मुख में ( एषाम् ) इनका ( अप्सुवाह ) आकाश में स्थित ( मयोभून् ) सुखदायक ( य ) जो ( एषाम् ) इनकी ( भृत्याम् ) पुष्टि को ( ऋणधत् ) करता है ( स ) वह ( जीवात् ) जीवन धारण करता है ॥१०॥

भावार्थ—सुखस्वरूप परमेश्वर ने अब भी ज्ञान के धुरे में कर्मभूमि, अर्थ का प्रकाश करने वाली, लोकों में प्रचलित सुखकारी दुर्हर वाणी को जो रखा है जो इन वाणियों को तथा इन की भरण सामग्री को अपने मुख में रखता है वह जीवन प्राप्त करता है ॥१०॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

३४२—मधुच्छन्दा । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किण ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

पदार्थ—( गायन्ति ) गाते हैं ( त्वा ) तुझको ( गायत्रिण ) उद्गाता ( अर्चन्ति ) स्तुति करती हैं ( अर्कम् ) पूज्य तेरी ( अर्किण ) ऋग्वेद के जानने वाले ( ब्रह्माण ) ब्रह्मज्ञानी जन ( त्वा ) तुझको ( शतक्रतो ) हे अनन्त ज्ञानवाले ( उत ) उत्तम ( वंशमिव ) वंश के समान ( येमिरे ) तेरा कीर्तन करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! सामवेदी तेरा गान करते हैं, ऋग्वेदी तेरी स्तुति करते हैं। ब्रह्मज्ञानी तेरा कीर्तन करते हैं, जसे [कवि] किसी के वंश का ॥१॥

३४३—जेता । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिर ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्रं ) ईश्वर को ( विश्वाः ) सब ( अवीवृधन् ) अधिक गान करती हैं ( समुद्रव्यचसम् ) आकाश के समान व्यापक ( गिरः ) स्तुतियां (रथीतमम्) नेता ( रथीनाम् ) नेताओं के ( वाजानाम् ) बलों के (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक ( पतिम् ) स्वामी ॥२॥

भावार्थ—सारी स्तुतियां आकाश के समान व्यापक, नेताओं के नेता, बलों के स्वामी और सज्जनों के रक्षक परमात्मा की स्तुति करती हैं ॥२॥

३४४—गोतम । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥३॥

पदार्थ—( इमम् ) इस ( इन्द्र ) हे जीव ! (सुतं) उत्पन्न जगत् का (पिब) भोगकर ( ज्येष्ठम् ) श्रेष्ठ ( अमर्त्यं ) मृत्युरहित (मदम्) आनन्द का। ( शुक्रस्य ) शुद्धस्वरूप ( त्वा ) तुमको ( अभ्यक्षरन् ) सुख की वर्षा करें ( धारा ) वेदवाणियां ( ऋतस्य ) परमेश्वर की ( सादने ) संसार में ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! इस उत्पन्न जगत् का भोग कर। पुन नित्य ज्येष्ठ आनन्द का उपभोग कर। संसार में शुद्धस्वरूप परमेश्वर की वेदवाणियां तुझ पर सुख की वर्षा करें ॥३॥

३४५—अत्रि । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ २उ ३ १ २
यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिव ।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥४॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( इन्द्र ) हे राजन् ( चित्र ) अद्भुत (मे) मेरे (इह) इस घर में ( नास्ति ) नहीं है ( त्वादातम् ) जिसका तू दाता है (अद्रिव ) हे न्यायरूप दण्ड के धारण करनेवाले ( राध ) सम्पत्ति को ( तत् ) उस (नः) हमारे लिए (विदद्वस ) हे धन के स्वामी ! (उभया, हस्त्या) दोनों हाथों से (आभर) दे ॥४॥

भावार्थ—हे अद्भुत सब सम्पत्ति के स्वामी, न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले, राजन् ! जिस सम्पत्ति का तू ही दाता है, तथा जो हमारे समीप नहीं है, उसे अपने दोनों हाथों से हमें दे ॥४॥

३४६—तिरश्चि । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हव तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥५॥

पदार्थ—( श्रुधी ) सुन ( हव ) स्तुति [ पुकार ] ( तिरश्च्या ) अन्तर्हित भाव के ज्ञाता महा ज्ञानी की ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( य ) जो ( त्वा ) तुझ [तेरी] ( सपर्यति ) पूजा करता है ( सुवीर्यस्य ) उत्तम बलवाले ( गोमत ) गौ आदि से युक्त ( राय ) धन ( पूर्धि ) दे ( महान् ) महान् ( असि ) है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् है, जो तेरी उपासना करता है उस महाज्ञानी की स्तुति को सुन, गौ आदि से युक्त उत्तम बलशाली धन दे ॥५॥

३४७—गोतम । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रज सूर्यो न रश्मिभि ॥६॥

पदार्थ—( असावि ) तय्यार किया हुआ है ( सोम ) सोम (इन्द्र) हे राजन् ( ते ) तेरे लिए ( शविष्ठ ) हे बलशाली ( धृष्णो ) शत्रुनाशक ( आगहि ) आ ( आ ) सब प्रकार से ( त्वा ) तेरी ( पृणक्तु ) पूर्ण करे ( इन्द्रियम् ) इन्द्रियों को ( रज ) पृथिवी लोक को (सूर्यो, न) सूर्य के समान (रश्मिभि) किरणों से ॥६॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली शत्रुनाशक राजन् ! तू, आ, तेरे लिए सोम तैयार है, जैसे अपनी किरणों से सूर्य पृथ्वी को पूर्ण करता है, वैसे ही तू अपनी इन्द्रियों को परिपूर्ण कर ॥६॥

३४८—नीपातिथि । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

पदार्थ—( आ ) भलीभांति ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( याहि ) प्राप्त कर ( हरिभि ) अज्ञाननिवारक ज्ञानों से ( उप ) समीप ( कण्वस्य ) मेधावी पुरुष के ( सुष्टुतिम् ) स्तुति को ( दिव ) द्युलोक के ( अमुष्य ) इस ( शासत ) शासन करने वाले ( दिव ) दिव्य गुण को ( यय ) प्राप्त करूं (दिवावसो) हे उत्तम गुणों के आधार ॥७॥

भावार्थ—हे दिव्य गुणों के आधार परमेश्वर, अज्ञान-निवारक अपने ज्ञानों के द्वारा मेधावी पुरुष के समान हमारी स्तुति को अच्छी प्रकार स्वीकार कर। द्युलोक के शासक इस तुझ प्रभु के दिव्य गुणों को मैं प्राप्त करूं ॥७॥

३४९—तिरश्चि । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थु सुतेषु गिर्वण ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनव ॥८॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार ( त्वा ) तेरे ( गिरः ) स्तुतियां ( रथीरिव ) जैसे रथ का स्वामी रथ पर ( अस्थुः ) आश्रय में उपस्थित हैं ( सुतेषु ) यज्ञों में

( गिर्वण ) हे वेदमन्त्रों से स्तुति के योग्य ! ( अभि ) सब ओर से ( त्वा ) तेरी ( समनूषत ) स्तुति करते हैं [स्तावक] (वत्स, न ) बछड़े को ( धेनवः ) गायों के समान ॥८॥

भावार्थ—हे वेदमन्त्रो से स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! प्रत्येक यज्ञ में हमारी स्तुतियाँ तेरे आश्रय में उसी तरह उपस्थित होती हैं जैसे रथ का स्वामी अपने रथ में। स्तुति करनेवाले भी तेरी स्तुति ऐसे ही करते हैं जैसे गाय अपने बछड़े को हुँकार से बुलाती है ॥८॥

*३५०—तिरश्चि । अनुष्टप् । इन्द्र ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।**
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥९॥**

पदार्थ—हे स्तोता लोगो ! ( एत, उ ) आओ ( नु ) शीघ्र ( इन्द्रम् ) परमेश्वर की ( स्तवाम ) स्तुति करें। (शुद्धम्) शुद्धस्वरूप (शुद्धेन) पवित्र(साम्ना) साम गाने से ( शुद्धैः ) पवित्र ( उक्थैः ) स्तोत्रों से ( वावृध्वांसम् ) शक्ति में सब से महान् ( शुद्धैः ) हमारे पवित्र स्तोत्रों से ( आशीर्वान् ) आशीर्वाद देने वाला ( ममत्तु ) हम पर प्रसन्न होवे ॥९॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! शीघ्र आओ, हम एक साथ पवित्र सामगान से तथा पवित्र ऋग्वेद के स्तोत्रों से अपनी शक्ति से महान् और शुद्धस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करें। वह हमारे पवित्र स्तोत्रों से प्रसन्न होकर हमें आशीर्वाद दें ॥९॥

*३५१—शंयु । अनुष्टप् । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।**
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥**

पदार्थ—( यः ) जो ( रयिम् ) धन को ( वः ) तुम लोगों को ( रयिन्तमः ) सबसे उत्तम सम्पदा वाला ( यः ) जो ( द्युम्नैः ) यशों से ( द्युम्नवत्तमः ) अत्यन्त यशस्वी ( सोमः ) संसार ( सुतः ) उत्पन्न ( सः ) वह ( इन्द्र ) हे जीव ! ( ते ) तेरे लिये ( अस्ति ) है ( स्वधापते ) हे प्रकृति के भोक्ता ॥१०॥

भावार्थ—जो स्वयं सबसे उत्तम सम्पदाओं वाला और यशों से अत्यन्त यशस्वी है वह परमेश्वर तुम्हें धन प्रदान करे। हे प्रकृति के भोक्ता स्वामी जीव ! उत्पन्न हुआ यह संसार तेरे लिए हर्षकारी है ॥१०॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

# चतुर्थोऽध्यायः

*३५२—भरद्वाज । अनुष्टुप् । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
**प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।**
३ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २
**अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नर ॥१॥**

पदार्थ—( अस्मै ) इस ( पिपीषते ) पान करने की इच्छा वाले (विश्वानि) सम्पूर्ण देने योग्य वस्तुओं को ( विदुषे ) विद्वान् के लिए ( भर ) दे ( अरङ्गमाय ) विद्या का पारंगत ( जग्मये ) विज्ञान की वृद्धि के लिए ( अपश्चादध्वने ) उत्तम व्यवहारों में आगे चलने वाले ( नर ) नेता ( प्रतिभरतु ) तुझे भी ज्ञान दे ॥१॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! विज्ञान की उन्नति के लिए वेदविद्या में पारङ्गत [पूर्ण विद्वान्] उत्तम व्यवहारों में आगे चलने वाले अधिकारी विद्वान् को सम्पूर्ण देने योग्य वस्तु दे। विद्या का नेता विद्वान् भी तुझे ज्ञान दे ॥१॥

*३५३—वामदेव । अनुष्टुप् । इन्द्र ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।**
३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
**महान्तं पूर्विणेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः ॥२॥**

पदार्थ—( आ ) भलीभांति ( नः )हमें ( वयः ) आयु ( वयः, शयं ) जीव ( महान्तं ) महत्तर ( गह्वरेष्ठाम् ) अन्तःकरणस्थ ( महान्तं ) महान् (पूर्विणेष्ठाम्) पूर्व जन्म से आने वाले (उग्रम्) कठोर (वचः ) वचन को (अपावधीः ) दूर कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें आयु, महान् जीव तथा अन्तःकरणस्थ पूर्व जन्म से आए बुद्धितत्त्व का ज्ञान करा। हमारे कठोर वचन को दूर कर ॥२॥

*३५४—प्रियमेधा । अनुष्टप् । इन्द्र ।*

२ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
**आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।**
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
**तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥**

पदार्थ—( त्वा ) तुझ को ( रथं यथा ) रथ के समान ( ऊतये ) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए ( सुम्नाय ) सुख के लिए ( आ वर्तयामसि ) हम स्तुतियों से अपने अनुकूल करते हैं ( तुविकूर्मिम् ) सृष्टि की रचना आदि अनेक कर्म करने वाले ( ऋतीषहम् ) हमारे शत्रुरूप बुरे विचारों को दबाने वाले ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( शविष्ठ ) अत्यन्त बलवान् ( सत्पतिम् ) सन्तों के पालक ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम रथ के समान अपनी तृप्ति, रक्षा और सुख के लिए सृष्टि की रचना आदि अनेक कर्मों के करने वाले हमारे बुरे विचारों को दबाने वाले अत्यन्त बलवान् और सन्तों के पालक तुझ को स्तुतियों के द्वारा अपने अनुकूल करते हैं ॥३॥

*३५५—प्रगाथ । अनुष्टुप् । इन्द्र ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।**
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २
**यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥**

पदार्थ—( सः ) वह ईश्वर ( पूर्व्यः ) प्रथम ( महोनाम् ) धनवानों ( वेनः ) ज्ञानवान् ( क्रतुभिः ) सब कर्मों के द्वारा ( आनजे ) प्राप्त होता है ( यस्य ) जिसके ( द्वारा ) द्वारा ही सारे उत्तम काम होते हैं ( मनुः ) सब का ज्ञाता ( पिता ) सब का पालन करने वाला, ( देवेषु ) विद्वानों में ( धियः ) ज्ञानों को ( आनजे ) देता है ॥४॥

भावार्थ—धनवानों का धनवान् पूज्यों का पूज्य और ज्ञान का भण्डार वह ईश्वर ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा प्राप्त होता है। उसके द्वारा ही सारे उत्तम काम होते हैं। वह सर्वज्ञ तथा सब का पिता है। वही विद्वानों को ज्ञान देता है ॥४॥

*३५६—श्यावाश्व । अनुष्टुप् । मरुत ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
**यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।**
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
**पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥५॥**

पदार्थ—( यदि ) जिस प्रदेश में यज्ञ के लिए ( वहन्ति ) ले जाते हैं ( आशवः ) शीघ्र कार्यसाधन में तत्पर (भ्राजमाना ) ओजस्वी कर्मकाण्डी पुरुष ( रथेषु ) रथों पर ( आ ) सब प्रकार से ( पिबन्तः ) पान करते हुए ( मदिरं ) प्रसन्न करने वाले ( मधु ) सोमरस ( तत्र ) उस प्रदेश में [वर्षा के द्वारा] ( श्रवांसि ) विविध प्रकार के अन्नादि भोग के पदार्थ ( कृण्वते ) उत्पन्न करते हैं ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रदेश में यज्ञ करने के लिए शीघ्र कार्य करने में तत्पर और तेजस्वी कर्मकाण्डी पुरुष प्रसन्न करने वाले मधुर रस का पान करते हुए यज्ञ के साधन को रथों पर रख कर पहुंचाते हैं, उस प्रदेश में वर्षा के द्वारा विविध प्रकार के अन्नादि उत्पन्न होते हैं ॥५॥

*३५७—शंयु । अनुष्टुप् । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।**
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्रं विश्वासाहं नरं शविष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥**

पदार्थ—( त्यम् उ ) उस ( वः ) तुम ( अप्रहणम् ) उपासकों पर कृपा करने वाले ( गृणीषे ) स्तुति करता हूँ ( शवसस्पतिम् ) लोकों के स्वामी ( इन्द्रम् )

ईश्वर को (विश्वासाहम्) हमारे सब प्रकार के शत्रुओं को दबाने वाले (नर्य) उत्तम मार्गों पर चलानेवाले (शचिष्ठम्) शक्तिमान (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर! तू भक्तों पर कृपा करनेवाला, बलों का एक मात्र स्वामी, हमें उत्तम मार्गों पर चलाने वाला शक्तिमान् और सर्वज्ञ है। मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥६॥

३५८—वामदेव । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुरभि नो मुखा करत्प्र न आयूंषि तारिषत् ॥७॥

पदार्थ—(दधिक्राव्णः) धर्म के धारण करनेवाले तथा संसार के संचालक (अकारिषम्) करें (जिष्णो) संसार पर विजय प्राप्त करनेवाले (अश्वस्य) व्यापक (वाजिनः) बलवान् (सुरभि) सुगन्ध द्रव्य को (नः) हमारे (मुखा) मुख के साथ सब इन्द्रियों के कल्याण के लिए (करत्) करे (प्र) उत्तम (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (तारिषत्) बढ़ावें ॥७॥

भावार्थ—मैं धर्म को धारण कर संसार को अपने नियम से चलाने वाले, सबसे बढ़कर बलवान् और व्यापक परमात्मा की स्तुति करता हूँ कि वह ईश्वर मेरे सब अङ्गों के कल्याण के लिए सुगन्धित पदार्थ दे और मेरी आयु भी बढ़ावे ॥७॥

३५९—जैता । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८॥

पदार्थ—(पुरां) मिले हुए घने पदार्थों को (भिन्दुः) छिन्न भिन्न करनेवाला (युवा) अपने गुणों से पदार्थों का मेल करानेवाला (कविः) सूक्ष्म पदार्थों का अपनी किरणों से प्रकाश करने वाला (अमितौजाः) अनन्त प्रकाश वाला (अजायत) उत्पन्न होता है (इन्द्रः) सूर्य (विश्वस्य) सारे (कर्मणः) कार्यों का (धर्ता) अपने आकर्षण गुणों से धारण करनेवाला (वज्री) किरणरूप शस्त्रोंवाला (पुरुष्टुतः) अपने गुणों से स्तुति के योग्य ॥८॥

भावार्थ—सूर्य घने पदार्थ मेघों को छिन्न भिन्न करता है। वह प्रकाश करने वाला है, और अनेक पदार्थों का मेल कराता है। वह समस्त कार्यों का धारक किरण रूप शस्त्रों का धारण करने वाला तथा प्रशंसनीय है ॥८॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

३६०—प्रियमेध । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१॥

पदार्थ—(प्र प्र) उत्कृष्ट (वः) तू (त्रिष्टुभम्) तीन लोक, तीनशरीरसम्बन्धि (इषम्) ज्ञान को (वन्दद्वीराय) वन्दना करनेवाले वीर (इन्दवे) ऐश्वर्यशाली (धिया) कर्म से (वः) तेरे (मेधसातये) यज्ञादि के लिए (पुरन्ध्या) ज्ञान से (विवासति) परिचर्य्या करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू वन्दना करने वाले वीर तथा ऐश्वर्यशाली जीव के लिए, तीन लोक, तीन शरीर तथा नाम स्थान और जन्म को प्रदान करता है। जीव यज्ञादि करने के लिए तेरी परिचर्य्या करता है ॥१॥

३६१—वामदेव । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२॥

पदार्थ—(कश्यपस्य) सर्वज्ञ (स्वर्विदः) परमार्थ तत्त्व को जाननेवाले (यौ) जिन दोनों को (आहुः) कहते हैं (सयुजौ) साथ में संयुक्त (इति) ऐसा (ययोः) जिन दोनों के (विश्वं) सकल (अपि) भी (व्रतं) कर्म (यज्ञं) संसार (धीराः) धीर पुरुष (निचाय्य) निश्चय करके ॥२॥

भावार्थ—परमार्थ प्रकाश तत्त्व को जानने वाले धीर पुरुष, संसार यज्ञ को जानकर, सर्वद्रष्टा परमेश्वर के जिन दो को सहयोगी कहते हैं, जिन दोनों का कार्य यह सब संसार है, वे प्रकृति और जीव हैं ॥२॥

३६२—प्रियमेधातिथि । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥३॥

पदार्थ—(अर्चत) स्तुति करो (प्रार्चत) उत्तम प्रकार से स्तुति करो (नरः) हे नेता लोगो! (प्रियमेधासः) हे यज्ञ के प्रेमी पुरुषो! (अर्चत) अवश्य स्तुति करो (अर्चन्तु) स्तुति करें (पुत्रकाः) हमारे पुत्र और पौत्र भी स्तुति करें (उत) और (पुरम्) हमारी कामनायें सफल करने वाले (इत्) ही की (धृष्णु) अनवरत या बिना दबे (अर्चत) स्तुति करो सब मिलकर ॥३॥

भावार्थ—हे नेता लोगो! ईश्वर की स्तुति करो। हे यज्ञ के प्रेमी पुरुषो! तुम लोग भी ईश्वर की स्तुति करो। हमारे पुत्र और पौत्र भी उसी की स्तुति करें। संसार के सब मनुष्य हमारी कामनाओं को सफल बनाने तथा बुरी भावनाओं को दूर भगाने वाले ईश्वर की ही स्तुति करें ॥३॥

३६३—मधुच्छन्दा । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥४॥

पदार्थ—(उक्थम्) वेदमन्त्ररूप स्तोत्र (इन्द्राय) जीव के लिए (शंस्यम्) प्रशंसा के योग्य (वर्धनम्) विद्या आदि शुभ गुणों के बढ़ानेवाले (पुरुनिष्षिधे) वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने और धर्मयुक्त कामों में विचारनेवाले (शक्रः) शक्तिमान् ईश्वर (यथा) जैसे कोई (सुतेषु) पुत्रों के विषय में (नः) हमारे (रारणत्) बार बार उपदेश करते हैं (सख्येषु च) मित्रों के विषय में भी ॥४॥

भावार्थ—जैसे हमारे मित्रों और पुत्रों को कोई परोपकारी पुरुष उपदेश करता है, ऐसे सर्वशक्तिमान् ईश्वर कामों में विचरने वाले जीव के लिए विद्यादि शुभ गुणों के बढ़ाने वाले प्रशंसा के योग्य वेदमन्त्रों का बार बार उपदेश करता है ॥४॥

३६४—प्रियमेधा । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥५॥

पदार्थ—(विश्वानरस्य) सारे संसार का नेतृत्व करनेवाले (वः) तुमको (पतिम्) स्वामी (अनानतस्य) न दबने वाले (शवसः) बल के (एवैः) ज्ञान और कर्म के द्वारा (च) और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (ऊती) रक्षा के लिए (हुवे) आह्वान करता हूँ (रथानाम्) शरीर की ॥५॥

भावार्थ—हे ईश्वर! संसार पर शासन करनेवाले और कभी न दबने वाले बल के स्वामी तुझ को सारी कामनाओं की पूर्ति तथा मनुष्यों के शरीरों की रक्षा के लिए पुकारता हूँ ॥५॥

३६५—भरद्वाज । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥६॥

पदार्थ—(सः) वह (घा) निश्चय (यः) जो (ते) तेरे (दिवः) सूर्य के समान (नरः) मनुष्य (धिया) ज्ञान से (मर्तस्य) मनुष्य के (शमतः) संयुक्त (ऊती) रक्षा के द्वारा (सः) वह (बृहतः) महान् (दिवः) दिव्यस्वरूप (द्विषः) शत्रुओं को (अंहः) पाप के (न) समान (तरति) पार कर जाता है ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर, जो जो द्युलोक के नायक के समान दिव्यगुण का ग्राहक मनुष्य, आप के लिए ज्ञान के द्वारा पुरुष के अनुकूल व्यापार करता है, वह तुझ महान् दिव्य स्वरूप की रक्षा के द्वारा अपने शत्रुओं को पाप के समान लांघ जाता है ॥६॥

३६६—अत्रि । अनुष्टुप् । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।

१ २ ३ १ २
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥७॥

पदार्थ—(विभोः) व्यापक (ते) तेरा (इन्द्र) हे ईश्वर! (राधसः) धन का (विभ्वी) पर्याप्त (रातिः) दान (शतक्रतो) हे ज्ञान के भण्डार! (अथ) इस लिये (नः) हमें (विश्वचर्षणे) हे संसार के साक्षी! (द्युम्नम्) यशदायक धन (सुदत्र) हे सुन्दर दानी! (मंहय) दे ॥७॥

भावार्थ—हे ज्ञान के भण्डार! संसार के साक्षी! सुन्दर दानी! परमेश्वर! तू व्यापक है और तेरी सम्पत्ति का दान भी व्यापक है। इसलिए तू हमें यशदायक धन दे ॥७॥

३६७—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

१२ ३१ २ ३ १ २र
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उष प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥८॥

पदार्थ—( वयः ) पक्षी ( चित् ) ही ( ते ) उस ( पतत्रिणः ) पखोंवाले ( द्विपात् ) दो पाववाले मनुष्यादि ( चतुष्पाद् ) चार पांववाले पशु आदि (अर्जुनि) प्रकाशयुक्त ( उष ) उषा ( प्रारन् ) विचरते हैं ( ऋतून अनु ) ऋतुओं के अनुसार ( दिव ) आकाशमण्डल के ( अन्तेभ्य ) छोर से ( परि ) सब ओर ॥८॥

भावार्थ—जब प्रकाशमान उषा ऋतुओ के अनुसार आकाशमण्डल से प्रकाशित होती है, तब सारे पशु पक्षी तथा मनुष्यादि वर्ग काय मे प्रवृत्त हो जाते हैं ॥८॥

३६८—त्रित । अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिव ।
१ २ ३ २उ ३ २३ २ ३ २ ३ १२
कद्व ऋत कदमृत का प्रत्ना व आहुति ॥९॥

पदार्थ—( अमी ) ये ( ये ) जो ( देवा ) सूर्यादि लोक (स्थन) हैं (मध्ये) मध्य मे ( आरोचने ) प्रकाशमान द्युलोक में ( दिव ) परमेश्वर के ( कत् ) कहां ( ऋतं ) सत्यनियम ( व ) उनका ( कत् ) कहां ( अमृत ) कारणतत्त्व ( क ) क्या ( प्रत्ना ) पुरातन ( आहुति ) प्रलय ॥९॥

भावार्थ—जो प्रकाशमान द्युलोक मे स्थित दिव्यलोक हैं उनका सत्य नियम कहां रहता है ? उनका कारण तत्त्व कहां है ? और उनका प्रलय कहां है ?

उत्तर—परमेश्वर और आकाश मे ॥९॥

३६९—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ऋच साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
१ २र ३ २ ३ १ २
वि ते सदसि राजतो यज्ञ देवेषु वक्षत ॥१०॥

पदार्थ—( ऋचं ) ज्ञानकाण्ड रूप ऋग्वेद ( साम ) अमर होने का साधन उपासनाकाण्ड रूप सामवेद ( यजामहे ) अभ्यास करते हैं ( याभ्याम ) जिन दोनों से ( कर्माणि ) जप उपासना आदि सब काम ( कृण्वते ) किये जाते हैं तथा मानव समाज के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं ( वि ) विशेष रूप से ( ते ) ये दोनो (सदसि ) सभा या यज्ञमण्डप में ( राजत ) शोभा पाते हैं और ( यज्ञम ) यज्ञ को ( देवेषु ) प्रत्येक देव के समीप ( वक्षत ) पहुचाते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हम ऋग्वेद और सामवेद का अभ्यास करते हैं । इन्हीं के द्वारा उत्तम काम किये जाते हैं । ये ही सभा और यज्ञमण्डप मे शोभा पाते हैं । ये ही देवों का भाग उन तक पहुँचाते हैं ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

३७०—रेभ । जगती । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा पृतना अभिभूतर नर सजूस्ततक्षुरिन्द्र जजनुश्च राजसे ।
२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठ तरस तरस्विनम ॥१॥

पदार्थ—( विश्वा ) सारी ( पृतना ) सग्राम में फैली हुई दुश्मन की सेना ( अभिभूतरम ) जीतने में समर्थ ( नरः ) जनता ( सजू ) सगठित होकर (ततक्षु ) शस्त्रादि से सुसज्जित करती हैं (इन्द्रम) अध्यक्ष या शासन करने वाले को (जजनु ) चुनते हैं ( च ) भी ( राजसे ) राजभार ग्रहण करने के लिए ( क्रत्वे ) परोपकार के कार्यों को ठीक चलाने के लिए भी ( वरे ) श्रेष्ठ ( पत्थर आदि से बने हुए ) (स्थेमनि ) चिरस्थायी सुरक्षित स्थान [ किले ] मे विराजमान ( आमुरीम् ) शत्रु का सहार करने वाले ( उग्रम् ) तेजस्वी ( ओजिष्ठम् ) बलवान् ( तरसम् ) विजय प्राप्त करने की योग्यता वाले ( तरस्विनम ) वेगवाले ॥१॥

भावार्थ—सारे मनुष्य मिलकर सग्रामस्थ सेना को जीतने वाले चिरस्थायी दुर्ग में स्थित शत्रु का सहार करने वाले, प्रचण्ड ओजस्वी, तीव्र, बलशाली राजा कार्य चलाने के लिए चुनते हैं और सुसज्जित करते हैं ॥१॥

३७१—सुदेव । जगती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३ २
श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवे ऽहन् यद्दस्यु नर्यं विवेरप ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥२॥

पदार्थ—( श्रत् ) सत्य को (ते) तेरे (दधामि ) धारण करता हूं (प्रथमाय) प्रथम ( मन्यवे ) ज्ञान के लिए ( अहन् ) नाश करता है ( यत् ) जो ( दस्यु ) अकार्य को ( नर्यम् ) मनुष्यसम्बन्धि ( विवे ) खोल देता है ( अपः ) जल को ( उभे ) दोनों ( यत् ) जिससे ( त्वा ) तेरी ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक ( धावताम् ) चलते हैं ( अनु ) अनुकूलता में ( भ्यसात् ) गति करते हैं ( ते ) तुम्हारे ( शुष्मात ) बल से (पृथिवी ) पृथिवी ( चित ) भी ( अद्रिव ) हे आदरणीय ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मैं तेरे ज्ञान के प्रति सत्यता को धारण करता हूं या श्रद्धा रखता हूं । तू मनुष्यसम्बन्धी शत्रु अकाल को नष्ट करता है । जलों को बर्षाता है । तेरे बल से भूमि भी डरती है तथा द्यु और पृथिवी तेरी अनुकूलता में चलते हैं ॥ २ ॥

३७२—वामदेव । जगती । इन्द्र ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २
समेत विश्वा ओजसा पति दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्त वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३॥

पदार्थ —( समेत ) सम्मिलित होकर आओ ( विश्वा ) सब ( ओजसा ) आत्मिक बल से ( पतिम ) स्वामी ( दिव ) द्युलोक के ( य ) जो ( एक इत् ) एक ही ( भू ) होता है ( अतिथि ) पूज्य ( जनानाम् ) मनुष्यमात्र के (स ) वह ( पूर्व्य ) सनातन है ( नूतनम ) नवीन ( विजिगीषन्तम्) अपनी इन्द्रियों पर विजय पाने की इच्छा करने वाले को (वर्तनी ) मार्ग ( अनुवावृते ) चलाता है (एक इत् ) एक ही ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे उपासक पुरुषो ! तीनों लोकों के स्वामी परमेश्वर की स्तुति करने के लिये मिलकर आओ और स्तुति करो । केवल वही एक मनुष्यमात्र का पूज्य है । वह सनातन परमात्मा नए उपासक को इन्द्रियो पर विजय पाने वाले एक ही मार्ग पर चलाता है ॥३॥

३७३—सव्य । जगती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे त इन्द्र ते वय पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिर सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वच ॥४॥

पदार्थ—( इमे ) ये ( ते ) तेरे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( ते ) वे ( वयम् ) हम लोग ( पुरुष्टुत ) बहुतो से स्तुति के योग्य ( ये ) जो (त्वारभ्य ) तेरे आधार पर ही ( चरामसि ) चलते हैं ( प्रभूवसो ) हे पर्याप्त सम्पत्तिवाले प्रभो ! ( नहि ) नहीं ( त्वदन्य ) तुझ स भिन्न कोई ( गिर्वण ) हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य पिता ! ( गिर ) स्तुतियो को ( सघत ) सह सकता है ( क्षोणीरिव ) भूमि के समान ( प्रतिहर्य ) स्वीकार कर ( तत् ) इसलिए ( न ) हमारे ( वचः ) स्तुति वचन को ॥४॥

भावार्थ—हे सब सम्पत्तियो के स्वामी प्रभो ! हे वेद मन्त्रों तथा बहुतों से स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! हम सब तेरे हैं और तेरे ही आश्रय से निर्भय होकर ससार मे विचरते हैं । तुझ से भिन्न कोई भी हमारी स्तुतियों का पात्र नहीं । हे नाथ ! तू भूमि के समान सहनशील है इसलिये हमारे साधारण स्तुति-वचन को स्वीकार कर ॥४॥

३७४—विश्वामित्र । जगती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
चर्षणीधृत मघवानमुक्थ्यमिन्द्र गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वावृधान पुरुहूत सुवृक्तिभिरमर्त्य जरमाण दिवेदिवे ॥५॥

पदार्थ—( चर्षणीधृतम् ) मनुष्यमात्र के पालन पोषण और धारण करने वाले ( मघवानम ) सब से बढ़कर दानी (उक्थ्यम) स्तुति करने के योग्य (इन्द्रम् ) ईश्वर को ( गिर ) वेदवाणियां ( बृहती ) ज्ञान और कर्म के द्वारा बड़ी-बड़ी (अभ्यनूषत ) स्तुति करती हैं । ( वावृधानम् ) अपने गुणों से महान् ( पुरुहूतं ) बहुतों से आह्वान करने के योग्य ( सुवृक्तिभिः ) निर्दोष स्तुतियों से ( अमर्त्यम् ) नित्य ( जरमाणम् ) जिसकी स्तुति की जाती है ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ॥५॥

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यमात्र का धारण तथा पालन-पोषण करने वाला, सबसे बड़ा दानी अपने गुणो से महान्—नित्य समय पर स्तुति और उपासना के योग्य है । वेदवाणियां निर्दोष स्तुतियों के द्वारा उसी का प्रतिदिन वर्णन करती हैं ॥५॥

३७५—कृष्ण । जगती । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा व इन्द्रं मतय स्वर्युव सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परिष्वजन्त जनयो यथा पति मर्यं न शुन्ध्यु मघवानमूतये ॥६॥

पदार्थ—( अच्छा ) प्राप्त करने के लिए ( वः ) तुम्हारी ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( मतय ) स्तुतियां ( स्वयु वः ) सुख देने वाली ( सध्रीची ) एक साथ ( विश्वा ) सारी ( उशतीः ) पहुँचने की कामना वाली ( अनूषत ) स्तुति करते हैं ( परिष्वजन्त ) आश्रय में पहुँचती हैं ( जनय ) पत्नियां ( यथा ) जैसे ( पतिम् ) पति को ( मर्यम् ) मनुष्य को जैसे ( शुन्ध्युम् ) शुद्ध करने वाले ( मघवानम् ) धनवान् को निर्धन जैसे ( ऊतये ) रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—पत्नियां जैसे अपने अपने पति के आश्रय में पहुँचती हैं, शुद्ध होने वाले जैसे शुद्धि करने वाले की शरण मे जाते हैं और निर्धन अपनी रक्षा के लिए धनवान् का आश्रय लेते हैं, वैसे ही विशेष सुख की तथा परमात्म देव की प्राप्ति की कामना से की हुई हमारी सारी स्तुतियां उसी की शरण में पहुँचती हैं ॥६॥

३७६—आङ्गिरा, सव्य इति भरत । जगती । इन्द्र । ।

३ २उ १ १ २ ३ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि त्यं मेष पुरुहूतमृग्मियम् इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३१ २र

यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुष भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥७॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार ( त्यं ) उस ( मेषम् ) कामनाओं की वर्षा करने वाले ( पुरुहूतम् ) बहुत विद्वानों के द्वारा आह्वान के योग्य ( ऋग्मियम् ) ऋचाओं द्वारा स्तुति के योग्य ( इन्द्रम ) परमेश्वर को ( गीर्भि ) पवित्र वेद की वाणियों से ( मदता ) स्तुति करो ( वस्व ) धन का ( अर्णवम ) अगाध समुद्र ( यस्य ) जिसका ( द्यावः ) द्यु लोक ( न ) नहीं ( विचरन्ति ) लङ्घन करता है ( मानुषम् ) मनुष्यों के हितकारक ( भुजे ) अपने पालन के लिए ( मंहिष्ठम् ) अत्यन्त महान् ( अभि ) सब प्रकार ( विप्रम् ) मेधावी की ( अर्चत ) स्तुति करो ॥७॥

भावार्थ—हे उपासना करने वालो ! बहुतों से पुकारे जाने योग्य, मन्त्रों द्वारा स्तुति के योग्य कामनाओं की वर्षा करने वाले, सम्पत्तियों के अगाध समुद्र उस ईश्वर की स्तुति करो । सूर्यादि लोक उसके अधीन रहते हैं । वह मनुष्यों का हित करनेवाला और महान् है । अपनी रक्षा के लिए उस सर्वज्ञ ईश्वर की स्तुति करो ॥७।

३७७—सव्य । जगती । इन्द्र ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

त्य सु मेष महया स्वर्विद शतं यस्य सुभुव साकमीरते ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अत्यं न वाज हवनस्यद रथम् इन्द्र ववृत्यामवसे सुवृक्तिभि ॥८॥

पदार्थ—( त्यम् ) उस ( सुमेषं ) कामनाओं को उत्तमता से पूर्ण करनेवाले ( महया ) स्तुतियों से ( स्वर्विदम् ) सर्वज्ञ ( शतं ) सैकड़ों ( यस्य ) जिसकी ( सुभुव ) मनोहर स्तुतियां ( साकम् ) एक साथ ( ईरते ) बोली जाती हैं ( अत्य न ) अश्व के समान ( वाजम् ) वेगवाले ( हवनस्यद ) पुकार सुनने वाले ( रथम् ) रमणीय ( आ ) सब प्रकार ( इन्द्र ) ईश्वर को ( ववृत्याम् ) अपनी तरफ करता हूं ( अवसे ) रक्षा के लिए ( सुवृक्तिभि ) निर्दोष स्तुतियों के द्वारा ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिसकी सैकड़ो स्तुतियाँ एक साथ बोली जाती हैं, ऐसे उस सर्वज्ञ प्रभु की हम स्तुति करते हैं । वेगवान् अश्व के समान मनोहर उस परमेश्वर को रक्षा के लिए स्तुतियो द्वारा अपनी तरफ फेरते हैं ॥ ८ ॥

३७८—भरद्वाज । जगती । इन्द्र ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३१ २

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥९॥

पदार्थ—( घृतवती ) पानी और तेजवाले ( भुवनानां ) संसार के ( अभिश्रिया ) आश्रय ( उर्वी ) अनेक अवयवों वाले ( पृथ्वी ) विस्तृत ( मधुदुघे ) साक्षात् और परम्परा से जल की वर्षा करने वाले ( सुपेशसा ) सुन्दर रूपवान् ( द्यावापृथिवी ) सूर्यलोक और पृथिवीलोक ( वरुणस्य ) वरणीय ( धर्मणा ) धारणशक्ति से ( विष्कभिते ) अपनी जगह से इधर उधर नहीं होते ( अजरे ) चिरस्थायी ( भूरिरेतसा ) जिनके द्वारा बहुत से काम होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—पानी और तेजवाले भुवनों के आश्रय, महान् विस्तृत जल को देने वाले, सुन्दर रूपवान्, अजीर्ण, शक्तिशाली द्यु और पृथिवी लोक वरणीय परमेश्वर और वायु के आधार पर थमे हुए हैं ॥ ९ ॥

३७९—मान्धाता । महापङ्क्ति । इन्द्र ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।

३ १ २र ३ १ २र

देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१०॥

पदार्थ—( उभे ) दोनों ( यत् ) जो ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( रोदसी ) द्यु और पृथिवीलोक ( आपप्राथ ) विस्तृत किया ( उषा इव ) उषा के समान ( महान्तं महीनां ) महानों के भी महान् ( त्वा ) तुझ ( सम्राजं ) सम्राट ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के ( देवी ) वेदवाणी ( जनित्री ) उत्पन्न करने वाली ( अजीजनत् ) उत्पन्न करती है ( भद्रा ) मङ्गलकारिणी ( जनित्री ) पैदा करने वाली ( अजीजनत् ) पैदा करती है ॥ १० ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उषा के समान तुमने द्यु और पृथ्वीलोक को विस्तृत किया है । बड़ों में भी महान् मनुष्यों के सम्राट् तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूं । लोकों को पैदा करनेवाली वेदवाणी संसार को प्रकट करती है और कल्याणकारिणी वह प्रकट भी होती है ॥ १० ॥

३८०—कुत्स । जगती । इन्द्र । ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो य कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणम् मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥११॥

पदार्थ—( प्रमन्दिने ) प्रशंसा के योग्य ( पितुमत् ) अन्नयुक्त ( अर्चत ) उच्चारण करो ( वचः ) सत्कार वचन ( य ) जो ( कृष्णगर्भा ) कठिन स्वभाव-वाला ( निरहन् ) हनन करता है ( ऋजिश्वना ) अपनी शक्ति से ( अवस्यव ) रक्षार्थी हम लोग ( वृषणं ) सुख के वर्धक ( वज्रदक्षिणम् ) वज्र को धारण करने वाले ( मरुत्वन्तं ) चांदी आदि से युक्त ( सख्याय ) मित्रता के लिए ( हुवेमहि ) पुकारते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रशंसा के लिए योग्य राजा का अन्नादि सहित सत्कार करो । जो प्रचण्ड स्वभाववाला समस्त शत्रुओं को अपनी नीति से नष्ट करता है । रक्षार्थी हम लोग सुख के दाता, शस्त्रधारी, सुवर्णादि से युक्त, उसकी मैत्री के लिए उसे पुकारते हैं ॥ ११ ॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

३८१—नारद । उष्णिक् । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र

इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतु पुनीष उक्थ्यम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि ष ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! तू ( सुतेषु ) सुसम्पन्न होने पर ( सोमेषु ) सोम लता आदि मिश्रित यज्ञ के साधन के ( क्रतुम् ) यज्ञादि उत्तम काम को ( पुनीषे ) पवित्र करता है ( उक्थ्यम् ) गुण की दृष्टि से प्रशंसा के योग्य ( विदे ) प्राप्त करने के लिए ( वृधस्य ) उत्तम ( दक्षस्य ) बल को ( महान् ) बड़ा है ( हि ) क्योंकि ( सः ) वह यज्ञ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सोम लता आदि यज्ञ के साधनों के तैयार होने पर प्रशंसा के योग्य, परोपकारी, श्रेष्ठ काम को पवित्र करता है क्योंकि उत्तम बल प्राप्त करने के लिए परोपकार एक महान् साधन है ॥ १ ॥

३८२—गोषूक्ति वाश्वसूक्ती वा । उष्णिक । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

तमु अभि प्र गायत पुरुहूत पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥२॥

पदार्थ—( तमु ) उसी के ( अभि ) सब प्रकार से ( प्रगायत ) गीत गाओ ( पुरुहूतम् ) बहुतों से जिसका आह्वान किया जाता है ( पुरुष्टुतम् ) बहुतो से जिसकी स्तुति की जाती है ( इन्द्रम् ) उस परमेश्वर की ( गीर्भिः ) वेदवाणियों से ( तविषम् ) महान् ( आ विवासत ) आज्ञापालन रूप सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग बहुतों से पुकारे जाने तथा स्तुति करने योग्य महान् उस परमेश्वर की ही मन्त्र द्वारा स्तुति करो । उस की आज्ञा का पालन करो ॥ २ ॥

३८३—ऋषिछन्दोदैवतानि पूर्ववत् ।

२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ २

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।

३ १ २ ३ १ २

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३॥

पदार्थ—( तम् ) उस प्रसिद्ध ( ते ) तेरे ( मदम् ) शक्ति की ( गृणीमसि ) हम लोग स्तुति करते हैं ( वृषणम् ) कामनाओं की वर्षा करनेवाले ( पृक्षु ) संग्रामों में ( सासहिम् ) साहस देने वाले ( उ ) पादपूरक ( लोककृत्नुम् ) संसार की रचना करनेवाले ( अद्रिव ) हे मेघ और पर्वत आदि महान् सृष्टि की रचना करने वाले ! ( हरिश्रियम् ) सामवेद और ऋग्वेद के आश्रय ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे आदरणीय परमेश्वर ! कामनाओं की पूर्ति करनेवाले, संग्रामों में साहस देनेवाले, संसार की रचना करने वाले, साम और ऋक् के आश्रय, तेरी महान् शक्ति की हम प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

३८४—*पर्वत । उष्णिक् । इन्द्र ।*

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २
**यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।**

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभि ॥४॥**

**पदार्थ**—( यत ) जो ( सोमम् ) अमृत ( इन्द्र ) हे जीव ! ( विष्णवि ) व्यापक परमेश्वर में है ( यद्वा ) अथवा जो ( घ ) प्रसिद्ध ( त्रिते ) वेदत्रयी मे है ( आप्त्ये ) आप्त पुरुष [ धर्म के साक्षात् करनेवाले ] ( यद्वा ) अथवा जो (मरुत्सु) यज्ञादि परोपकार करनेवालो में है ( मन्दसे ) तृप्त होता है (सम्) सम्यक (इन्दुभि ) परम ऐश्वर्य रूप इन सबों मे ॥ ४ ॥

**भावार्थ**—हे इन्द्रियो के स्वामी जीव ! जो आनन्दरस सर्वव्यापक परमात्मा मे है, अथवा जो आनन्द ज्ञान और कर्म वेदत्रयी मे है, आप्त [ धर्म के साक्षात् करने वाले ] पुरुष में है, अथवा जो आनन्द यज्ञादि परोपकार के कामों को करने वाले मे है, तू उन सबों से तृप्त होता है ॥ ४ ॥

३८५—*विश्वमना । उष्णिक । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
**एदु मधोर्मदिन्तर सिञ्चाध्वर्यो अन्धस ।**

३२उ ३१ २र ३ १ २
**एवा हि वीर स्तवते सदावृध ॥५॥**

**पदार्थ**—( आ ) सब प्रकार से ( मधो ) मधु से भी (मदिन्तरम् ) अत्यन्त आनन्द दायक ( सिञ्च ) यज्ञ के पात्र को पूरा कर ( अध्वर्यो ) ! हे कल्याणकारी यज्ञ के ऋत्विक ! ( अन्धस ) अन्न से तैयार ( एवाहि ) ऐसे ही ( वीर ) हे वीर अध्वर्यु ! ( स्तवते ) स्तुति की जाती है ( सदावृध ) परोपकार के करनेवालो को सर्वदा बढावा देने वाले परमात्मा की ॥ ५ ॥

**भावार्थ**—हे यज्ञ आदि उत्तम काम करने वाले पुरुष ! अन्न से तैयार मधु से भी अधिक आनन्द देने वाले, सोमरस को यज्ञ के लिए यज्ञ पात्र म भर कर रखो। हे वीर ! यज्ञ आदि उत्तम काम करना ही सर्वदा उन्नत करने वाले परमात्मा की स्तुति कहा गया है ॥ ५ ॥

३८६—*विश्वमना । उष्णिक् । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्य मधु ।**

१ २र ३ २
**प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥६॥**

**पदार्थ**—( आ ) भलीभाँति ( इन्दुम् ) यज्ञ को ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( सिञ्चत ) सम्पन्न करो ( पिबाति ) रक्षा करता है ( सोम्यं ) ऐश्वर्यकारी ( मधु ) ज्ञान की। ( प्र ) उत्तम ( राधांसि ) धनों को ( चोदयते ) देता है ( महित्वना ) महिमा से ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—हे मनुष्य ! तू परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिए सब प्रकार से अपने यज्ञ को सम्पन्न कर ! वह ऐश्वर्यकारी ज्ञान की रक्षा करता है तथा अपनी महिमा से धनादि पदार्थों को देता है ॥ ६ ॥

३८७—*विश्वमना । उष्णिक । इन्द्र ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम ।**

३ १ २र ३ २उ ३ २
**कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत ॥७॥**

**पदार्थ**—( एत ) आओ ( नु ) जल्द ( इन्द्रम् ) परमेश्वर की ( स्तवाम ) स्तुति करें ( सखाय ) हे मित्रो ! ( स्तोम्यम् ) स्तुति के योग्य ( नरम् ) हमारे नेता ( कृष्टी ) उल्टे माग पर चलनेवाली प्रजा को ( य ) जो ( विश्वा ) सारी ( अभ्यस्ति ) सीधी राह पर चलने को विवश करता है ( एक इत् ) केवल एकाकी वही ॥७॥

**भावार्थ**—हे मित्रो ! आओ सम्मिलित होकर उस नेताओं के नेता और स्तुति के योग्य परमेश्वर की स्तुति करें, जो अकेला ही, उल्टे मार्ग पर चलने वाली सारी मनुष्य जनता को सीधी राह पर चलने के लिए विवश करता है ॥७॥

३८८—*नृमेधः । उष्णिक् । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८॥**

**पदार्थ**—( इन्द्राय ) सारे ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर के लिए ( साम गायत ) साम का गान करो ( विप्राय ) ज्ञानस्वरूप ( बृहते ) महान् ( बृहत् ) बृहत्नामक ( ब्रह्मकृते ) वेदों के कर्त्ता ( विपश्चिते ) सर्वज्ञ ( पनस्यवे ) स्तुति के योग्य ॥८॥

**भावार्थ**—हे साम के गान करने वालो ! ज्ञान स्वरूप, महान्, वेदों के कर्त्ता सर्वज्ञ और स्तुति के योग्य, परमैश्वर्यशाली, परमेश्वर की प्राप्ति के लिए "बृहत्" साम के साम का गान करो ॥८॥

३८९—*गोतम । उष्णिक् । इन्द्र ।*

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३
**य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९॥**

**पदार्थ**—( य ) जो ( एक इत ) एक ही ( विदयते ) विविध प्रकार से देता है ( वसु ) सम्पत्ति को ( मर्ताय ) मनुष्य को ( दाशुषे ) यजमान को ( ईशानः ) ईश्वर ( स्वामी ) ससार का अधिष्ठाता ( अप्रतिष्कुत ) जिसके नियम के विरुद्ध एक शब्द भी कोई नही बोल सकता ( इन्द्र ) परमेश्वर (अङ्ग ) शीघ्र ॥९॥

**भावार्थ**—जो ईश्वर ससार का स्वामी है, जिसके नियम के विरुद्ध किसी का कुछ नही चलता, जो बिना किसी की सहायता के अकेला ही परोपकारी पुरुष को, अनेक प्रकार से सम्पत्ति देता है उसी परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ॥९॥

३९०—*विश्वमना । उष्णिक । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।**

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०॥**

**पदार्थ**—( सखाय ) हे मित्रो ! ( आशिषामहे ) हम लोग प्रार्थना करते हैं ( ब्रह्म ) वेद सोना मणि माणिक्य, गौ, अन्न आदि के लिए (इन्द्राय) ऐश्वर्यशाली परमात्मा की ( वज्रिणे ) न्यायरूप शस्त्र के धारण करनेवाले ( स्तुषे ) स्तुति करते हैं ( ऊषु ) भलीभाँति ( व ) तुम्हारे ( नृतमाय ) सब से बढ़ कर नेता ( धृष्णवे ) बुराइयो के नाश करने वाले ॥१०॥

**भावार्थ**—हे मित्रो ! हम सब न्यायरूप शस्त्र के धारण करनेवाले परमात्मा की, वेदविद्या और सुवर्ण आदि सम्पत्तियों के लिए आशा के साथ प्रार्थना करते हैं। वह हम सबका सबसे बड़ा नेता और बुराइयो को दूर करने वाला है। हम उस की मनोहर स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

३९१—*प्रगाथ । उष्णिक । इन्द्र ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २र
**गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये । यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१॥**

**पदार्थ**—( गृणे ) स्तुति करता हूँ ( तत ) उस ( इन्द्र ) हे परमेश्वर (ते) तेरे ( शव ) बल का ( उपमाम् ) सब के उपमारूप ( देवतातये ) इन्द्रियो और परमार्थ क कामों के लिए ( यत् ) क्योंकि ( हंसि ) नाश करता है ( वृत्रम् ) पाप का ( ओजसा ) बल स ( शचीपते ) हे कर्मों के स्वामी ॥ १ ॥

**भावार्थ**—हे सारे कर्मों के स्वामी परमेश्वर ! मैं इन्द्रियों में शक्ति तथा परोपकार के कामों को पूरा करने के लिए जिस बल से तू पापों का नाश करता है तेरे अनुपम बल की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

३९२—*भरद्वाज । उष्णिक । इन्द्र ।*

२ ३ १ २र३ २३ १ २ ३ १ २
**यस्य त्यच्छम्बर मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।**

३ १ २र ३ १ २र
**अयं स सोम इन्द्र ते सुत पिब ॥२॥**

**पदार्थ**—( यस्य ) जिस के ( त्यत् ) उस ( शम्बरम् ) बल को ( मदे ) हर्ष मे ( दिवोदासाय ) विज्ञानवेत्ता के लिए ( रन्धयन् ) रोक रखता है। ( अयं ) यह ( स ) वह ( सोम ) सोम ( इन्द्र ) हे विद्वन् ! ( ते ) तेरे लिए ( सुत ) तयार है ( पिब ) पान कर ॥ २ ॥

**भावार्थ**—हे विद्वन् ! जिसके हर्ष मे तू विज्ञानवेत्ता के लिए अपने महान् बल को सुरक्षण म रोक रखता है वह सोम ओषध तेरे लिए तैयार है। तू पान कर ॥ २ ॥

३९३—*नृमेधा । उष्णिक । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३२र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
**एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वत पृथु पतिर्दिव ॥३॥**

**पदार्थ**—( आ ) सब प्रकार से ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! (नः) हमें (गधि) प्राप्त हो ( प्रिय ) हे प्यारे ( सत्राजित् ) हे सत्य से असत्य पर विजय करने वाले ! ( अगोह्य ) हे सर्वदा प्रकाश स्वरूप ! ( गिरिर्न ) पर्वत के समान ( विश्वतः ) सब प्रकार से ( पृथु ) महान् ( पति ) स्वामी ( दिव ) द्यु लोक का ॥ ३ ॥

**भावार्थ**—सत्य से असत्य पर सदा विजय प्राप्त करने वाले, सर्वदा प्रकाश स्वरूप ! प्यारे ईश्वर ! तू पर्वत के समान सब प्रकार से महान् तथा द्युलोक आदि का स्वामी है। तू हमें प्राप्त हो ॥ ३ ॥

३९४—*पर्वत । उष्णिक् । इन्द्र ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**य इन्द्र सोमपातमो मद शविष्ठ चेतति ।**

२ ३ १ २ ३ २र २ ३ १ २
**येनाहंसि न्यात्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥**

पदार्थ—( यः ) जो ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( सोमपातमः ) संसार का अत्यन्त रक्षक ( अव ) शक्ति ( शविष्ठ ) हे सर्वशक्तिमान् ( वेदति ) जानती है ( येन ) जिस के बल से ( आहंसि ) नाश करता है ( अमित्रं ) पाप का ( तम् ) उसको ( ईमहे ) हम चाहते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! तेरी शक्ति को जिसे सब वस्तुएं जानती हैं, तथा जिसके बल से संसार का अत्यन्त रक्षक तू अज्ञता रूप पाप का विनाश करता है, हम चाहते हैं ॥ ४ ॥

३९५—हरिम्बिठि । उष्णिक् । इन्द्र, आदित्यो वा ।

३१ २र३२उ ३१२३१२३१२
तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
१२ ३१२
आदित्यास समहस कृणोतन ॥५॥

पदार्थ—( तुचे ) सन्तान के लिए ( तुनाय ) पौत्र के लिए ( तत् ) वह ( सु ) सुन्दर ( नः ) हमारे ( द्राघीय ) दीर्घ ( आयु ) आयु ( जीवसे ) जीने के लिए ( आदित्यास ) हे आदित्य विद्वान् जन ( समहस ) सत्कार से युक्त ( कृणोतन ) करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सत्कार से युक्त आदित्य विद्वान् हमारे पुत्र और पौत्रो को दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥ ५ ॥

३९६—विश्वमना । उष्णिक् । इन्द्र ।

२ ३ १ २र ३१२ ३१२
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
१२ ३ १२३१२
अहरह शुन्ध्यु परिपदामिव ॥ ६ ॥

पदार्थ—( वेत्था ) जानता है ( हि ) निश्चय ( निर्ऋतीनां ) उपद्रवो का ( वज्रहस्त ) हे शस्त्रपाणे ! ( परिवृजम् ) निवारण ( अहरह ) प्रतिदिन ( शुन्ध्यु ) शोधक ( परिपदामिव ) पक्षियो के अड्डों के समान ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे शस्त्रपाणी राजन् ! तू पक्षियो के अड्डों के समान उपद्रवों का प्रतिदिन निवारण जानता है ॥ ६ ॥

३९७—हरिम्बिठि । उष्णिक् । आदित्या ।

१ २र३२३ २३१२ ३२
अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
१२ ३१२ ३१२
आदित्यासो युयोतना नो अंहस ॥७॥

पदार्थ—( अप ) दूर करो ( अमीवाम् ) रोग को ( अप ) दूर करो ( स्रिधम् ) हिंसा आदि अनर्थ करने वाले का ( अप ) दूर (सेधत) करो (दुर्मतिम्) दुर्बुद्धि पुरुष को ( आदित्यास ) हे आदित्य ब्रह्मचारियों ! ( युयोतन ) दूर करो ( न ) हमें ( अंहस ) पाप से ॥ ७ ॥

भावार्थ—हम में न कोई रोग रहे, न हिंसा आदि अनर्थ करनेवाला पुरुष रहे, न पाप बुद्धिवाला मनुष्य रहे और न ही पाप रहे ॥ ७ ॥

३९८—वसिष्ठः । विराट । इन्द्र ।

२ ३ १२ ३१२ ३१२३१२ ३ १२
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा य ते सुषाव हर्यश्वाद्रि ।
३२३२ ३१२३१२
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥८॥

पदार्थ—( पिबा ) पान कर ( सोमं ) सोम का ( इन्द्र ) हे वैद्य ( मन्दतु ) प्रसन्न करे ( त्वा ) तुझे ( यम् ) जिसको ( ते ) तेरे लिए ( सुषाव ) कुचाता है ( हर्यश्व ) हरणशील इन्द्रियों वाले ( अद्रिः ) पाषाणखण्ड ( सोतु ) कुचाने वाले के ( बाहुभ्यां ) हाथो से ( सुयत ) पकड़ा हुआ ( न ) समान ( अर्वा ) अश्व के ॥८॥

भावार्थ—हे हरणशील इन्द्रियों से युक्त भिषक ! तू इस सोम का पान कर । जिसको कि तैयार कर्ता के हाथ से पकड़ा हुआ पाषाण खण्ड कुचाता है । वह सोम तुझे वैसे ही हर्ष प्राप्त कराये जैसा कि शिक्षित अश्व यथाभिमत स्थान की प्राप्त करता है ॥८॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

३९९—सौभरिः । ककुप् । इन्द्र ।

३ २३१ २र ३१२ ३१२
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३१२३ १२
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

पदार्थ—( अभ्रातृव्यः ) शत्रुरहित ( अना ) बिना सेना के ( त्वम् ) तू ( अनापिः ) बिना बन्धु ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( जनुषा ) स्वभाव से ( सनात् ) सनातन ( असि ) है ( युधा ) व्याप्ति से ( इत् ) ही ( आपित्वम् ) मित्रभाव को ( इच्छसे ) चाहता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू स्वभाव से शत्रुरहित, बिना सेना, तथा बिना बन्धु बान्धव के है । तू सनातन है । व्यापक होने के कारण सब से सम्बन्ध रखता है ॥१॥

४००—सौभरि । विराट । इन्द्र ।

१ २३१२ ३१ २र ३१३१२
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
१ २३१२ ३१२
सखाय इन्द्रमूतये ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो ( न ) हमें ( इदम्, इदम् ) नाना प्रकार की वस्तुए ( पुरा ) पूर्व काल मे पूर्व कल्प के समान ( प्र ) उत्कृष्ट ( वस्य ) उत्तम-उत्तम ( आनिनाय ) प्रकट रूप मे देता है ( तम् ) उसका ( व ) उसी ( स्तुषे ) स्तुति करता हूँ ( सखाय ) हे मित्रो ! ( इन्द्रम् ) परमेश्वर की ( ऊतये ) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! जिससे पूर्व कल्प [पूर्व सृष्टि] के समान वर्तमान सृष्टि मे हमे नाना प्रकार के उत्तम-उत्तम जीवन के साधन प्रदान किये हैं मैं अपनी रक्षा के लिए उसी परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥२॥

४०१—सौभरि । ककुप् । मरुत ।

१२३ १२ ३१२ ३१२
आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यव ।
३१ २
दृढा चिद्यमयिष्णव ॥३॥

पदार्थ—( आगन्त ) आओ (मा, रिषण्यत) किसी को दुःख मत दो अथवा किसी के साथ संग्राम मत करो ( प्रस्थावान ) हे अपने शत्रुओं को जीतने के लिए प्रस्थान करने वालो ! ( मा ) मत ( अपस्थात ) जाओ ( समन्यवः ) एक समान विचार वाले आप लोग ( दृढाचित् ) बलवान् से बलवान् को भी ( यमयिष्णव ) अपने नियम में रखने वाले हैं ॥३॥

भावार्थ—हे यज्ञादि परोपकार के करने वालो ! ऋत्विजो एव वीरो! आओ किसी को कष्ट मत दो तथा किसी के साथ संग्राम मत करो । तुम लोग शत्रुओं पर विजय पाने के लिए प्रस्थान [कूच] करने वाले हो किन्तु ऐसा न करो । यदि तुम लोगों का एक विचार [संगठन] हो तो बलवान् से बलवान् शत्रु पर भी विजय पाना और उसको अपने वश में रखना कठिन नहीं है ॥३॥

४०२—सौभरि । ककुप् । इन्द्र ।

१ २३ २उ ३१ २ ३ १२३१२ १२
आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोम सोमपते पिब ॥४॥

पदार्थ—( आयाहि ) आ ( अयम् ) यह उपस्थित है ( इन्दवे ) तेजस्वी के लिए ( अश्वपते ) हे घोड़े आदि पशुओं के स्वामी ! ( गोपते ) हे गौ आदि परोपकारी पशुओं के अधिष्ठाता ( उर्वरापते ) हे उपजाऊ भूमि के अधिपति ! (सोमम्) अमृत रस का ( सोमपते ) हे सोमरूप औषध के स्वामी ( पिब ) पान कर ॥४॥

भावार्थ—हे घोड़े आदि पशुओं के स्वामी ! हे गौ आदि उपकारी जीवों के स्वामी ! हे उपज से भरपूर भूमि के अधिष्ठाता ! पुरुष ! तेरे लिए यह सोमरस सुरक्षित है, तू इसका पान कर ॥४॥

४०३—सौभरि । ककुप् । इन्द्र ।

१ २ ३२३१ २र ३१२
त्वया ह स्विद्युजा वय प्रति श्वसन्त वृषभ ब्रुवीमहि ।
३ १ २र ३ १२
संस्थे जनस्य गोमत ॥५॥

पदार्थ—(त्वया) तेरी (ह स्वित्) ही (युजा) सहायता से (वयम्) हम लोग ( श्वसन्तं ) क्रोधी शत्रु को ( वृषभ ) हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले प्रभो ! ( प्रति, ब्रुवीमहि ) प्रतिकार करते हैं [भगाते हैं] ( संस्थे ) युद्ध में ( जनस्य ) मनुष्य के ( गोमत ) गौ आदि उपकारी पशुओं के स्वामी ॥५॥

भावार्थ—हे हमारी कामनाओं को सफल करने वाले प्रभो ! तेरी ही सहायता से हम लोग गौ आदि उपकारी पशुओं वाले मनुष्य के साथ संग्राम छिड़ने पर लड़ना तो दूर की बातें हैं, उस मनुष्य के विरुद्ध श्वास लेने वाले को भी मार भगाते हैं ॥५॥

४०४—सौभरिः । ककुप् । मरुत ।

१ २ ३क २र ३२३१२
गावश्चिद्घा समन्यव सजात्येन मरुत सबन्धव ।
३१२३१२ ३ २
रिहते ककुभो मिथः ॥६॥

पदार्थ—( गाव ) ऋत्विक लोग ( चित्, घ ) निश्चय ही (समन्यव ) एक समान तेजस्वी ( सजात्येन ) समान जन्म द्वारा ( मरुत ) मनुष्य मात्र (सबन्धव ) समानबन्धु ( रिहते ) विचरते हैं ( ककुभः ) दिशाओं मे ( मिथ ) परस्पर ॥६॥

भावार्थ—समान तेज वाले समान जन्म द्वारा समान बन्धुत्व वाले ऋत्विज् और मनुष्य लोग परस्पर प्रेम भाव से दिशाओं को विचरते हैं ॥६॥

४०५—नृमेधा । ककुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
त्व न इन्द्रा भर ओजो नृम्ण शतक्रतो विचर्षणे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ वीर पृतनासहम् ॥७॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( न ) हमें ( इन्द्र ) हे प्रभो ( आभर ) दे (ओज ) बल ( नृम्ण ) धन ( शतक्रतो ) हे अनन्त ज्ञान के भण्डार ! ( विचर्षणे ) हे ब्रह्माण्ड के स्वामी ! ( आ ) सब प्रकार से ( वीरम् ) वीरपुत्र ( पृतनासहम् ) विजयी ॥७॥

भावार्थ—हे अनन्त ज्ञान के भण्डार! हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के साक्षी परमेश्वर! तू हमें बल, धन और वीर पुत्र दे ॥७॥

४०६—नृमेधा । ककुप् । इन्द्र ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३ १२
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
३२ ३ १ २ ३ १ २
उदेव ग्मन्त उदभि ॥८॥

पदार्थ—( अधा ) इस समय (हि ) क्योंकि (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (गिर्वण) हे स्तुतियों के योग्य ( उप ) समीप ( त्वा ) तेरे ( काम ) कामना से युक्त (ईमहे ) याचना करते हैं । ( ससृग्महे ) सयुक्त होते हैं । ( उदा ) जल के साथ ( इव ) समान ( ग्मन्त ) जाते हुए ( उदभि ) जलों से ॥८॥

भावार्थ—हे स्तुत्य परमेश्वर ! जल से जाते हुए, जैसे जल से होते हैं वैसे ही कामनाओं से युक्त हम लोग तेरे समीप याचना करते हैं और अपनी कामनाओं को सिद्ध करते हैं ॥८॥

४०७—सौभरि । ककुप् । इन्द्र ।

१ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
३ १ २र
अभि त्वामिन्द्र नोनुम ॥९॥

पदार्थ—( सीदन्त ) बैठते हुए ( ते ) वे ( वयो यथा ) जैसे पक्षीगण ( गोश्रीते ) दुग्ध से मिश्रित ( मधौ ) मधुर ( मदिरे ) आनन्ददायक ( विवक्षणे ) वाक् शक्ति देनेवाले ( अभि ) लक्ष्यकर ( त्वाम् ) तुझे ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( नोनुमः ) नमस्कार करते हैं ॥९॥

भावार्थ—जिस प्रकार दुग्धादि युक्त आनन्ददायक पदार्थ पर पक्षी आदि टूटते हैं, उसी प्रकार हम हे परमेश्वर ! आपकी शरण में आकर उपासना करते हैं ॥९॥

४०८—सौभरि । ककुप् । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूर न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यव ।
१ २ ३ १ २
वज्रिन् चित्र हवामहे ॥१०॥

पदार्थ—( वय ) हम लोग ( उ ) पादपूरक ( त्वाम् ) तुझे ( अपूर्व्य ) हे अनादि ( स्थूरं ) कुठिले के ( न ) समान ( कच्चित् ) कोई ( भरन्तः ) भरता हुआ ( अवस्यव ) रक्षा चाहने वाला । ( वज्रिन् ) हे न्याय करने वाले ! (चित्र ) अद्भुत ( हवामहे ) पुकारते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे न्यायकारी ! अनादि परमेश्वर ! जैसे कोई मनुष्य कुठिले को अपनी रक्षार्थ गेहूँ आदि से भरता है वैसे ही अपनी रक्षा चाहने वाले हम लोग आपको स्तुतियों से भर कर पुकारते हैं ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

४०९—गोतम । पंक्ति । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
स्वादोरित्था विषूवतो मध्वो पिबन्ति गौर्य ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—(स्वाद्वोः ) स्वादिष्ट ( इत्था ) इस प्रकार ( विषूवत ) विस्तृत ( मध्वोः ) मधुर जल ( पिबन्ति ) पीती हैं ( गौर्य ) सूर्य की किरणें ( याः ) जो ( इन्द्रेण ) सूर्य से ( सयावरी ) निकलने वाली ( वृष्णा) वर्षा करनेवाले (मदन्ति) शोभा पाती हैं जिस प्रकार ( शोभथा ) शोभती हैं ( वस्वीः ) पृथ्वी का ( अनु ) बाद ( स्वराज्यम् ) अपना राज्य प्राप्त करने को ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! ( सारी प्रजायें ) धन-धान्य से पूर्ण पृथिवी पर प्रजातन्त्र शासन होने पर उसी प्रकार तृप्त और प्रसन्न होती हैं, जिस प्रकार वर्षा करने वाले सूर्य के साथ चलनेवाली किरणें स्वादिष्ट और मधुर जल ग्रहण करती और लोगो को सुखी करती हैं ॥१॥

४१०—गोतम । पंक्ति । इन्द्र ।

३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

पदार्थ—( इत्था ) इस प्रकार विधिपूर्वक ( हि ) क्योंकि ( सोमे ) आनन्द मे मग्न होने पर ( इत ) ही ( मद ) स्तोता ( ब्रह्म ) स्तोत्र ( चकार ) करता है ( वर्धनम् ) उन्नति का कारण ( शविष्ठ ) बलवान् (वज्रिन्) शस्त्रधारी सभाध्यक्ष ( ओजसा ) बल से ( पृथिव्या ) भूमि के (निः शशाः ) पूर्णतया शासन कर (अहिम्) आक्रमण करनेवाले का ( अर्चन् ) सत्कार करता हुआ ( अनु ) पीछे ( स्वराज्यम् ) अपना राज्य होने के ॥२॥

भावार्थ—हे बलवान् शस्त्रधारी योद्धा पुरुष ! अपने राज्य का स्वागत करता हुआ काले सांप के समान आक्रमण करनेवाले भूमि के शत्रुओ का सत्यानाश कर, क्योंकि आनन्द मे मग्न होकर स्तुति करनेवाले इसी प्रकार तेरी उन्नति का वर्णन करते हैं ॥२॥

४११—गोतम । पङ्क्ति । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभि. ।
२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्र ) सेनापति ( मदाय ) अपने अनुयायियों की प्रसन्नता के लिए ( वावृधे ) स्वय शक्ति-सचय कर बढ़ता है ( शवसे ) बल के लिए ( नृभि ) सेना और प्रजाओ के साथ ( वृत्रहा ) शत्रु का नाश करनेवाला ( तमित् ) उसी को ( महत्स्वाजिषु ) बडे बडे संग्रामो मे ( ऊतिम् ) रक्षा के लिए (अर्भे) छोटे संग्राम मे भी ( हवामहे ) आह्वान करते हैं । ( स ) वह (वाजेषु) सग्रामो में (प्र) उत्कृष्ट ( न ) हमारी ( अविषत् ) रक्षा करे ॥३॥

भावार्थ—शत्रु का नाश करने में समर्थ जो सेनापति शक्ति और प्रसन्नता के लिए सेना और प्रजाओ से अपनी शक्ति का सचय कर स्वय बढ़ता है, हम लोग बड़े तथा छोटे सग्रामों मे अपने रक्षक रूप से उसी की पुकार करते हैं । वही हमारी रक्षा करने में समर्थ हो सकता है ॥३॥

४१२—गोतम । पङ्क्ति । इन्द्र ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्त वज्रिन् वीर्यम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १२ ३ १ २
यद्ध त्य मायिन मृग तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे सभ्याध्यक्ष ! ( तुभ्यमित् ) तेरे ही लिए ( अद्रिवः ) मेघ अथवा पर्वत के समान गुण से युक्त ( अनुत्तम् ) स्वाभाविक (वज्रिन्) हे शस्त्रास्त्रों वाले ( वीर्यम् ) सामर्थ्य से ( यत् ) जिस ( ह ) निश्चित ( त्यम् ) उस ( मायिनम् ) छली कपटी ( मृगम् ) दूसरे का धन हरण करनेवाले (तव) उसी को ( मायया ) बुद्धिमानी से ( अवधी ) मारता है (अर्चन्, अनु, स्वराज्यम्) सत्कारपूर्वक स्वराज्य का पालन करता हुआ ॥४॥

भावार्थ—हे मेघवाले ! पर्वत के समान स्वराज्य से सुशोभित ! शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सभ्याध्यक्ष! तू अपनी स्वाभाविक शक्ति से स्वराज्य का पालन करता हुआ सब छली-कपटी तथा दूसरों के धनो को छीनने वालों को बुद्धिमत्ता से मार डालता है, इसलिए तू ही अधिकारी होने के योग्य है ॥४॥

४१३—गोतम । पङ्क्ति । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियसते ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
इन्द्र नृम्ण हि ते शवो हनो वृत्र जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥

पदार्थ—( प्रेहि ) आ ( अभीहि ) सम्मुख आ ( धृष्णुहि ) आक्रमण कर ( न ) नहीं ( ते ) तेरा ( वज्र ) शस्त्र ( नियसते ) रोका जा सकता है ( इन्द्र ) हे सभ्याध्यक्ष ! ( नृम्णम् ) शत्रुओं को नम्र करने वाला ( हि ) निश्चय (ते) तेरा ( शव ) बल है । ( हन ) नाश कर सूर्य के समान ( वृत्रम् ) मेघ को ( जया ) वर्षा करता है ( अप ) जल को ( अर्चन् अनु स्वराज्यम्) स्वराज्य का सत्कारपूर्वक पालन करता हुआ ॥५॥

भावार्थ—हे राष्ट्रपति ! कोई शत्रु तेरा क्रम नहीं रोक सकता । तेरा बल शत्रुओं को झुका देने वाला है । जैसे सूर्य मेघको छिन्न भिन्न कर जल की वर्षा करता है, ऐसे ही तू अपने शत्रुओं के सम्मुख जा, आक्रमण कर, तथा उनका नाश करके अपने राष्ट्र की रक्षा कर ॥५॥

४१४—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्र ।

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दध ॥६॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( उदीरते ) उत्पन्न होते हैं ( आजय ) संग्राम तो ( धृष्णवे ) विजयी पुरुष को ( धीयते ) दिया जाता है ( धनम् ) धन ( युङ्क्ष्वा ) युक्त कर ( मदच्युता ) बहादुर ( हरी ) घोड़ों को और ( कम् ) किसी अन्यायी को ( हनः ) मार और किसी उदार को ( वसौ ) धन की राशि पर ( दध ) रख ( अस्मान् ) हमें ( इन्द्र ) हे सेनापति ! ( वसौ ) धन पर ( दधः ) अधिकारी बना ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सेनापति ! जब जब संग्राम होते हैं, तब तब वीर पुरुष ही धनों के अधिकारी होते हैं । तू बलवान् घोड़ों को अपने रथ में जोड़ और अन्यायियों को मारकर न्याय करने वालों को धन का अधिकारी बना ॥६॥

४१५—गोतम । पङ्क्ति । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥७॥

पदार्थ—( अक्षन् ) शुभ गुणों को प्राप्त करो ( अमीमदन्त ) अत्यन्त प्रसन्न हो ( हि ) निश्चय ( अव, अधूषत ) दुःखों से छुड़ा ( प्रिया ) प्यारा हो ( अस्तोषत ) प्रशंसा करो ( स्वभानवः ) अपने आप तेजस्वी ( विप्रा ) हे बुद्धिमान् पुरुषो ! ( नविष्ठया ) बिलकुल नवीन ( मती ) बुद्धि से ( योजानु ) जोड़ । ( इन्द्र ) हे सभाध्यक्ष ! ( ते ) अपने ( हरी ) घोड़ों को ॥७॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! अपने घोड़ों को हमारे कल्याण के लिए जोड़िए । हे स्वयं तेजस्वी तथा बुद्धिमान् पुरुषो ! अत्यन्त नवीन ज्ञान से सब के प्रिय हूजिए, शास्त्रों की प्रशंसा कीजिए और हमारे दुःखों को दूर कीजिए । शुभ गुणों की प्राप्ति से अपने आप अत्यन्त प्रसन्न रहिए ॥७॥

४१६—गोतमः । पङ्क्ति । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥८॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( सु ) सुन्दर ( शृणुही ) सुन ( गिर ) स्तुतियां ( मघवन् ) सकल सम्पदाओं के स्वामी ! ( मा ) नहीं ( अतथा ) विपरीत ( कदा ) कब ( नः ) हमें ( सूनृतावतः ) सच्ची स्तुतियों वाला ( करः ) करता है ( अर्थयासे इत् ) याचना की जाती है ( योजा ) युक्त करता है ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( ते ) अपने ( हरी ) वायु और अग्नि को ॥८॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारी स्तुतियों को सुन कभी मेरे विपरीत न हो, हमें सत्यवक्ता बना । तेरी उपासना की जाती है । तू ही अग्नि और वायु को युक्त करता है ॥८॥

४१७—त्रित । पङ्क्ति । विश्वेदेवाः ।

३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ २
चन्द्रमा अप्स्वाऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

पदार्थ—( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( अप्स्वन्तरा ) व्यवस्थित है ( सुपर्णः ) उत्तम किरण वाला [क्रियावान्] ( धावते ) भ्रमण करता है ( दिवि ) सूर्य के प्रकाश में ( न ) नहीं ( वः ) तुम्हारे ( हिरण्यनेमयः ) चमकदमकवाली ( विद्युतः ) बिजली ( पदम् ) शिल्प की कारीगरी [illegible] के कामों में ( विन्दन्ति ) प्राप्त होती हैं [अर्थात् तुम लोग [illegible] उपयोग नहीं करते] ( वित्तं ) जाने ( मे ) मुझ पदार्थविद्या को जाननेवाले [illegible] ( अस्य ) इस पूर्वोक्त विषय को ( रोदसी ) सूर्य और पृथिवी के समान [illegible] करनेवाले प्रजाजन ॥९॥

भावार्थ—हे सूर्य और पृथिवी के समान राजा और प्रजाजनो ! अन्तरिक्ष में सूर्य के प्रकाश के [illegible] किरणोंवाला चन्द्रमा गतिशील होता है घूमता है । तुम लोग चमक-दमक वाली बिजली को [illegible] वस्तुओं के बनाने में नहीं लगाते । मुझ पदार्थविद्या के जाननेवाले के [illegible] और कहे विषय को जानो ॥९॥

४१८—अवस्यु । पङ्क्ति । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१०॥

पदार्थ—( प्रति ) उपसर्ग ( प्रियतमम् ) अत्यन्त प्रिय ( रथम् ) रथ ( वृषणम् ) सुखदायक ( वसुवाहनम् ) धन ढोने के योग्य ( स्तोता ) स्तुति करने वाला ( वाम् ) तुम दोनों के ( अश्विनौ ) हे अध्यापक और उपदेशक ( ऋषि ) मन्त्रद्रष्टा ( स्तोमेभि ) स्तुति के द्वारा ( प्रतिभूषति ) सुशोभित करता है ( माध्वी ) मधु [ब्रह्म] की शिक्षा देनेवाले ( मम ) मेरे ( श्रुतम् ) सुनें ( हवम् ) आह्वान को ॥१०॥

भावार्थ—हे ब्रह्मविद्या की शिक्षा देनेवाले अध्यापक और उपदेशक ! जो स्तुति करनेवाला कवि प्रशंसा के द्वारा आप लोगों के अत्यन्त सुन्दर सुखदायक और धन ढोने वाले रथ को सुशोभित करता है उसकी और मेरी भी प्रार्थना आप सुनें ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

४१९—वत्स वसुश्रुत । पङ्क्ति । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

२३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि इषं स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( ते ) तेरी ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( इधीमहि ) ध्यान करते हैं ( द्युमन्तम् ) प्रकाशस्वरूप ( देव ) हे देव ! ( अजरम् ) अजर ( यत् ह ) जो कि ( स्या ) वह ( ते ) तेरी ( पनीयसी ) प्रशंसनीय ( समित् ) दीप्ति ( दीदयति ) प्रकाशित करती है ( द्यवि ) आकाश में ( इषम् ) ज्ञान और अन्न ( स्तोतृभ्य ) उपासकों के लिए ( आभर ) दे ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्मदेव ! प्रकाशस्वरूप, अजर तुझे हम अपने ज्ञान में या आत्मा में प्रकाशित करते हैं । तेरी प्रशंसनीय समित् दीप्ति द्युलोक में प्रकाशित करती है । हे भगवन् ! तू उपासकों के लिए अन्न और ज्ञान दे ॥१॥

४२०—विमद । पङ्क्ति । अग्नि ।

१ २र ३ १ २
आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२॥

पदार्थ—( आ, अग्निम् ) अग्रणी परमेश्वर की ( न ) इस समय ( स्ववृक्तिभिः ) दोषरहित स्तुतियों से ( होतारम् ) दाता ( त्वा ) तुझे ( वृणीमहे ) प्रार्थना करते हैं ( शीरं ) सर्वव्यापक ( पावकशोचिषम् ) पावक तेजस्वी ( वि ) विशेष ( वः ) तेरी ( मदे ) उपासना में ( यज्ञेषु ) यज्ञों में ( स्तीर्णबर्हिषम् ) बैठनेवाले को ( विवक्षसे ) निर्वाह का साधन देता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम इस समय निर्दोष स्तुतियों के द्वारा, सब के सामने विद्यमान दाता सर्वव्यापक और पवित्र तेजवाले तेरी उपासना में विशेषरूप से प्रार्थना करते हैं । तू यज्ञ करनेवालों को निर्वाह का साधन देता है ॥२॥

४२१—सत्यश्रवा । पङ्क्ति । उषा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थ—( महे ) बड़ी ( नः ) हमें ( अद्य ) आज भी ( बोधय ) जगाती है ( उषा, उ ) उषादेवी ( राये ) सम्पत्ति का उपार्जन करने के लिये ( दिवित्मती ) प्रकाशवाली ( यथाचित् ) जैसे ही ( नः ) हमें ( अबोधयः ) सृष्टि के प्रारम्भ से जगाती आई है वैसे ही ( सत्यश्रवसि ) सत्यविद्या और कीर्ति के निमित्त ( वाय्ये ) तन्तु के समान सन्तति का विस्तार करने वाली स्त्री ! ( सुजाते ) सुन्दर कुल में उत्पन्न ( अश्वसूनृते ) सत्य और प्रिय बोलने वाली ॥३॥

भावार्थ—हे श्रेष्ठगुणोंवाली ! धागे के समान सन्तान का विस्तार करने वाली ! सत्य और मधुर बोलनेवाली कुलीन स्त्री ! मनुष्य जैसे चमकती हुई उषा देवी के उदय होने पर महान् धन के उपार्जन के लिये अपने अपने कामों में लग जाते हैं, ऐसे ही आज हमें तू भी सम्पत्ति, विद्या तथा अच्छी कीर्ति के लिये ज्ञान का प्रकाश दे ॥३॥

४२२—विमदः । पङ्क्तिः । सोम ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ [illegible] ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥४॥

पदार्थ—( भद्रम् ) कल्याणकारक ( न ) हमारा ( अपि ) भी ( वातय ) प्राप्त करा ( मन ) संकल्प विकल्प करने वाला मन ( दक्षम् ) बल को ( उत ) और ( क्रतुम् ) ज्ञान को भी ( अध ) उसके बाद ( ते ) तेरी ( सख्ये ) मित्रता मे लगा हुआ ( अन्धस ) अन्न के दाता ( वि ) विशेष रूप से ( व ) हम तेरे ( मदे ) आनन्द मे ( रणाः ) रमण करनेवाली ( गावो न ) गौओं के समान ( यवसे ) घास में क्योंकि ( विवक्षसे ) तू महान् है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे मन को कल्याणकारी तथा चतुरतायुक्त बना और ज्ञान प्राप्त करा। तेरी मित्रता तथा अन्न आदि के आनन्द में हम तुझे स्वीकार करते हैं, जिस प्रकार गौएँ घास मे आनन्द प्राप्त करती हैं ॥ ४ ॥

४२३—गोतम । पङ्क्ति । इन्द्र ।

१ २ १ ४ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

क्रत्वा महाँ अनुष्वध भीम आ वावृते शव ।

३ ४ ३ १ २ ३ २ ३ ४ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवाँ दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५॥

पदार्थ—( क्रत्वा ) ज्ञान और कर्म से ( महान् ) बड़ा ( अनुष्वध ) अन्नादि की अनुकूलता से ( भीम ) भयङ्कर ( आ ) सब प्रकार से ( वावृते ) संग्रह करता है ( शव ) बल को ( श्रिये ) शोभा के लिये ( ऋष्व ) विद्वान् ( उपाकयो ) समीप की सेनाओं में ( नि ) निश्चय ( शिप्री ) उत्तम मुखवाला ( हरिवान् ) उत्तम घोड़ोंवाला ( दधे ) धारण करता है ( हस्तयो ) हाथों में ( आयसम् ) लोहे का ॥ ५ ॥

भावार्थ—अश्वादि से युक्त उत्तम मुखवाला भयङ्कर महान् ज्ञानी राजा कीर्ति के लिये अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार शक्ति का संग्रह करता है। संग्राम में उपस्थित हुई सेनाओं के मध्य मे हाथो मे लोहे का वज्र धारण करता है ॥ ५ ॥

४२४—गोतम । पङ्क्ति । इन्द्र ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स घा त वृषण रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

१ २र ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

य पात्र हारियोजन पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥६॥

पदार्थ—( स घा ) वही ( त ) उस ( वृषण ) कामनाओं की पूर्ति करने वाला ( रथं ) यान पर ( अधितिष्ठाति ) बैठता है ( गोविदम् ) भूमि प्राप्त कराने वाला ( य ) जो ( पात्रम् ) रक्षा के निमित्त ( हारियोजनम् ) घोड़ों से युक्त ( पूर्ण ) सारी सामग्री से परिपूर्ण ( इन्द्र ) हे परम विद्याधन से युक्त ( चिकेतति ) जानता है ( योजानु ) शीघ्र जोड़ ( इन्द्र ) हे सेनापति ! ( ते ) अपने ( हरी ) बहादुर घोड़ों को ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सेनापति ! तू घोड़ो से युक्त सारी सामग्री वाले और रक्षा करने में समर्थ जिस रथ को जानता है उसी रथ मे अपने घोड़ो को जोड दे। हे सेनापति ! कामनाओं को सफल करनेवाले और भूमि की विजय करानेवाले तेरे रथ मे जो बैठेगा वह विजय क्यो न पायेगा ॥ ६ ॥

४२५—वसुश्रुत । पङ्क्ति । अग्निः ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अग्नि त मन्ये यो वसुरस्त य यन्ति धेनव ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्त नित्यासो वाजिन इष स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

पदार्थ—( अग्नि ) राजा ( त ) उसे ( मन्ये ) मानता हूँ ( य ) जो ( वसु ) प्रजा को निवास देनेवाला ( अस्त ) आश्रयरूप ( य ) जिसको ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ( धेनव ) गौएँ ( अस्त ) आश्रयरूप ( अर्वन्त ) विद्वान् ( आशव ) कुशाग्रबुद्धि ( नित्यास ) सदा रहनेवाले ( वाजिन ) घोड़े ( इष ) धन से ( स्तोतृभ्य ) स्तोताओं के लिये ( आभर ) भरपूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—मैं उसको ऐश्वर्यवान् राजा मानता हूँ जो सब प्रजा को निवास देनेवाला है आश्रयरूप जिसको गौएँ प्राप्त होती हैं कुशाग्रबुद्धि विद्वान् जिस आश्रय रूप को प्राप्त होते हैं तथा जिस महाशरण को सदा रहनेवाले घोड़े प्राप्त होते हैं। हे राजन् ! वह तू स्तोताओ को धन से भरपूर कर ॥ ७ ॥

४२६—अहोमुग्वामदेव्य । विश्वेदेवा । उपरिष्टाद् बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विष ॥८॥

पदार्थ—( न ) नहीं ( तं ) उस ( अहः ) पाप ( न ) नहीं ( दुरितम् ) पाप से उत्पन्न दुःख ही ( देवासः ) हे विद्वान् पुरुषो ! ( अष्ट ) प्राप्त हो सकता है ( मर्त्यम् ) मनुष्य को ( सजोषसः ) प्रेम से युक्त ( यं ) जिसको ( अर्यमा ) न्यायकारी पुरुष ( मित्रः ) परमेश्वर ( अतिनयति ) चालन करता है ( वरुण ) हितैषी पुरुष ( अति ) दूर करे ( द्विषः ) द्वेष करने वालों को ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! जिस पुरुष को न्यायकारी परमेश्वर और हितैषी लोग ठीक रास्ते से ले चलते तथा उससे द्वेष करने वालों को दूर कर देते हैं, उस मनुष्य को न तो पाप लगता है और न पाप से होने वाले दुःख ही सताते हैं ॥ ८ ॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

४२७—ऋणत्रसदस्यूसहितावृषी । द्विपदा पङ्क्ति । पवमान ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( प्रधन्व ) वर्षा कर ( इन्द्राय ) जीव के लिए ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( स्वादु ) अनिर्वचनीय आनन्द रस वाले तू ( मित्राय ) मित्र के लिए ( पूष्णे ) पालन पोषण करनेवाले तथा ( भगाय ) ऐश्वर्यशाली पुरुष के लिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! स्नेही पालनपोषण करनेवाले और ऐश्वर्यशाली जीव को अपने आनन्द रस का पान करा ॥ १ ॥

४२८—ऋषिदेवते पूर्ववत् । पिपीलिकामध्या त्रिपदागुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२॥

पदार्थ—( परि उ सु प्रधन्व ) अच्छी प्रकार जना ( वाजसातये ) अन्न और जल की प्राप्ति के लिए ( वृत्राणि ) पापो को ( परि सक्षणि ) दूर करनेवाला ( द्विष ) कामादि शत्रुओ को ( तरध्या ) तरने के लिए ( ऋणया ) ऋणों को ( ईरसे ) प्रेरणा देता है ( न ) हमारे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बल और अन्न की प्राप्ति कामादि शत्रुओं से तरने के लिए पापो का नाश करने वाला तू हमे पितृ देव तथा ऋषि ऋण का ज्ञान कराता है और उनके उतारने की प्रेरणा देता है ॥ २ ॥

४२९—ऋषिदेवते पूर्वोक्त । द्विपदा पङ्क्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ ४ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महान्त्समुद्र पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥३॥

पदार्थ—( पवस्व ) व्यापक हो रहा है ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( महान् ) सबसे बड़ा ( समुद्रः ) आकाश के समान ( पिता ) उत्पन्न और रक्षा करने वाला ( देवानां ) सब देवों का ( विश्वा ) सब ( अभि ) सर्वत्र ( धाम ) स्थानों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आकाश के समान सर्वव्यापक और महान् है तू सब देवों का पिता है। तू सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे विराजमान है ॥३॥

४३०—ऋषिछन्दोदेवतानि पूर्ववत ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ ४ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( महे ) महान् ( दक्षाय ) बल के लिये ( अश्व न ) अग्नि के समान ( निक्त ) शुद्ध ( वाजी ) गतिशील ( धनाय ) सम्पत्ति के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध गतिशील अग्नि के समान महान् बल और धन की प्राप्ति के लिए पवित्र कर ॥४॥

४३१—ऋषिछन्दो दैवतानि पूर्वोक्तानि ।

१ २ ३ ४ ३ १ २ ३ २ ३ १ ४ ३ १ ४र

इन्दु पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५॥

पदार्थ—( इन्दु ) परमैश्वर्यवाला परमेश्वर ( पविष्ट ) पवित्र ( चारुः ) उत्तम ( मदाय ) आनन्द के लिए ( अपामुपस्थे ) अन्तरिक्ष मे ( कवि ) सर्वज्ञ ( भगाय ) सम्पत्ति के लिए ॥५॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली, उत्तम गुण वाला तथा सर्वज्ञ परमेश्वर अन्तरिक्ष ( आकाश ) में विद्यमान है। वह ऐश्वर्य और आनन्द के लिए हमें पवित्र करे ॥५॥

४३२—ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । पिपीलिका मध्या त्रिपदागुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ४ ३ १ २ ३ १ २

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६॥

पदार्थ—( अनु ) पश्चात् ( त्वा ) तुझे ( सुतम् ) उत्पादक ( सोम ) हे आनन्दस्वरूप परमेश्वर ( मदामसि ) आनन्द का अनुभव करते हैं ( महे ) महान् ( समर्यराज्ये ) ज्ञानी जनों के राज्य [ ब्रह्मयज्ञानुष्ठान ] में ( वाजान् ) अन्न और बलों को ( पवमान ) हे पवित्रकर्ता ! ( अभिप्रगाहसे ) हर प्रकार से प्रदान करता है ॥६॥

भावार्थ—हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! तुझ उत्पादक ( सृष्टिकर्त्ता ) के राज्य में तेरे साक्षात् होने के बाद हम आनन्द का अनुभव करते हैं। तू अन्न और बलों का दाता है ॥६॥

४३३—वसिष्ठ । मरुत । द्विपदापङ्क्तिः ।

२ ३क २र ३ २ ३ १ २   ३२ ३ १ ३ २ ३ १ २
क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥७॥

पदार्थ—( क ) कौन ( ईं ) इस ( व्यक्ता ) स्पष्ट ( नरः ) प्राप्त कराते हैं ( सनीळा ) समान स्थान में रहने वाले ( रुद्रस्य ) परमेश्वर के ( मर्या ) मरण धर्मा मनुष्य ( अथ ) अर्थात् ( स्वश्वाः ) उत्तम विद्वान् ॥७॥

भावार्थ—कौन मरणधर्मा मनुष्य परमेश्वर की प्राप्ति के पथप्रदर्शक हैं ? समान रूप से संसारगृह में रहने वाले उत्तम विद्वान् जन ॥७॥

४३४—वामदेवः । द्विपदापङ्क्तिः । अग्नि ।

२ ३ २ ३ २ ३ २र   ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥८॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( तम् ) उस ( अश्व ) ज्ञान ( अश्वं न ) महाग्नि के समान ( स्तोमैः ) स्तोत्रों से ( क्रतुम् ) बुद्धि के समान ( भद्रं ) कल्याण को ( हृदिस्पृशम् ) हृदयस्थ ( ऋध्यामा ) बढ़ाते हैं, ( ते ) तेरे ( ओहैः ) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे ज्ञान प्राप्त करानेवाले स्तोत्रों से हम महाग्नि के समान तथा बुद्धि के समान हृदयस्थ आनन्द को बढ़ाते हैं ॥८॥

४३५—वामदेव । पुरउष्णिक । वाजिनः ।

३ १ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ २
आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मन् देवस्य सवितुः सवम् ।

३ १ २
स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥९॥

पदार्थ—( आविः ) आविर्भूत ( मर्याः ) मनुष्य ( आ ) सब प्रकार से ( वाजं ) अन्न को ( वाजिन ) विद्वान् ( अग्मन् ) प्राप्त होते हैं ( देवस्य ) देव ( सवितुः ) सबके उत्पादक ( सवम् ) सृष्टिरचना के अनुसार ( स्वर्गान् ) अनेक सुखों को ( अर्वन्त ) पूर्णज्ञाता ( जयत ) लाभ करते हैं ॥९॥

भावार्थ—उत्पन्न हुए मरणधर्मा विद्वान् पुरुष सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की सृष्टि रचना के अनुसार सुख के साधन अन्न आदि को संसार में प्राप्त होते हैं। पुनः पूर्ण ज्ञाता होते हुए स्वर्ग सुखविशेष को प्राप्त करते हैं ॥९॥

४३६—ऐश्वर्यस्याधिष्टराया ऋषय । द्विपदापङ्क्तिः । पवमान ।

१ २   ३ १ २ ३ २ ३ १   ३र ३ १२३ २
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥१०॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( द्युम्नी ) यश वाले ( सुधारः ) सुन्दर धारण करनेवाले ( महान् ) शक्ति से महान् ( अवीनाम् ) रक्षा करनेवालों के ( अनु ) पीछे ( पूर्व्य ) सर्वप्रथम ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू यशस्वी, संसार को धारण करने वाला और महान् है। तू रक्षा करनेवालों का भी श्रेष्ठ रक्षक है, तू हमें पवित्र कर ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

४३७—त्रसदस्यु । द्विपदाविराट् । इन्द्र ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥

पदार्थ—( विश्वतोदावन् ) हे सब प्रकार से दान करने वाले ! ( विश्वतो नः ) सब प्रकार से हमें ( आभर ) परिपूर्ण कर ( यं ) जिस ( त्वा ) तुझे ( शविष्ठम् ) अति बलवान् को ( ईमहे ) याचते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सब प्रकार से दान करने वाले दाता प्रभो ! तू अति बलवान् है, तुझी से याचना करते हैं। तू हमें सब प्रकार से परिपूर्ण कर ॥१॥

४३८—त्रसदस्यु । द्विपदा विराट् । इन्द्र ।

३ २ ३ २र   ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२॥

पदार्थ—( एष ) यह ( ब्रह्मा ) सबसे महान् है ( यः ) जो ( ऋत्वियः ) ऋतु के अनुसार संसार के सारे कार्यों का संचालन करने की प्रसिद्धि वाला है ( इन्द्रो नाम ) ईश्वर नाम से ( श्रुतः ) संसार में विख्यात है ( गृणे ) उसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—जो प्रत्येक ऋतु के अनुसार संसार के सारे कार्यों का संचालन करता है, वह सबसे महान् तथा ईश्वर नाम से प्रसिद्ध है। मैं उसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

४३९—त्रसदस्यु । द्विपदाविराट् । इन्द्र ।

३ २ ३ १ २ ३१२   ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३॥

पदार्थ—( ब्रह्माणः ) उपासना करने वाले लोग ( इन्द्र ) परमेश्वर का ( महयन्त ) पूजा करते हुए ( अर्कैः ) चारों वेदों से ( अवर्धयन् ) प्रसन्न करते हैं ( अहये ) साँप के समान पाप के ( हन्तवा उ ) नाश के लिए ॥३॥

भावार्थ—साँप के समान पाप के नाश के लिये चारों वेदों से परमेश्वर की पूजा करते हुए उपासक लोग उसको प्रसन्न करते हैं ॥३॥

४४०—त्रसदस्यु । द्विपदाविराट् । इन्द्र ।

१ २   ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥४॥

पदार्थ—( अनव ) मनुष्य ( ते ) तेरे ( रथम् ) रथ को ( अश्वाय ) घोड़े के लिए ( तक्षुः ) बनाये हैं ( त्वष्टा ) परमात्मा ने ( वज्रम् ) शस्त्र का ( पुरुहूत ) हे बहुतों से पुकारे गये विशेष पुरुष ! ( द्युमन्तं ) प्रकाशमान ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली सभाध्यक्ष ! बहुत लोग तुझे पुकारते हैं, कारीगरों ने तेरे घोड़ों के लिए योग्य रथ बनाये हैं। परमात्मा ने तेरे शस्त्र अचूक बनाये हैं ( तू उनका उपयोग कर ) ॥४॥

४४१—त्रसदस्यु । द्विपदाविराट । इन्द्र ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ १ २ ३ २
शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥५॥

पदार्थ—( शं ) कल्याणकारक ( पद ) स्थान ( मघं ) धन ( रयीषिणे ) धन चाहने वाले संयमी पुरुष के लिए है ( न ) नहीं ( कामं ) कामना को ( अव्रतः ) अकर्मी ( हिनोति ) प्राप्त कर सकता है ( न ) नहीं ( स्पृशत् ) छू सकता ( रयिम् ) धन को ॥५॥

भावार्थ—कर्मों के विधिपूर्वक करने वालों के लिए कल्याणकारी पदवी और सम्पत्ति होती है कर्महीन जन न कोई प्रतिष्ठा पाता है और न कोई सम्पत्ति ॥५॥

४४२—त्रसदस्यु । द्विपदाविराट् । विश्वेदेवा ।

२ ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६॥

पदार्थ—( सदा ) सर्वदा ( गावः ) चारों वेदों की वाणियाँ सूर्य की किरणें ( शुचय ) पवित्र हैं ( विश्वधायसः ) संसार को धारण करने वाली हैं ( सदा ) सर्वदा ( देवाः ) देव ( अरेपसः ) पापरहित होते हैं ॥६॥

भावार्थ—जैसे चारों वेदों की वाणियाँ, भूमि पर का जल, सूर्य की किरणें और गौएँ सर्वदा पवित्र हैं तथा संसार को धारण करती हैं ऐसे ही परमात्मा के भक्त भी सर्वदा परोपकारी और पापों से रहित होते हैं ॥६॥

४४३—त्रसदस्यु । द्विपदाविराट् । उषा इन्द्रो वा ।

१ २ ३ १ २   ३१ २र   ३ १ २र
आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥७॥

पदार्थ—( आयाहि ) जब आती है ( वनसा सह ) तेज के साथ ( गावः ) गौएँ ( सचन्त ) रहती हैं ( वर्तनिं ) गोशाला में ( यत् ) जो गौएँ ( ऊधभि ) दूध से पूर्ण स्तनों वाली हैं ॥७॥

भावार्थ—जब उषादेवी प्रकाश करती हुई उदय होती है तब गोशाला में स्थित गौओं के स्तन दूध से भरे रहते हैं ॥७॥

[दूसरे पक्ष में] जिस समय सूर्य उदय होने लगता है उस समय उसकी किरणें तमाम फैलती हुई पूर्ण प्रकाश से युक्त होती हैं और अपने मार्ग पर दौड़ती हैं ॥७॥

४४४—त्रसदस्युः । द्विपदाविराट । इन्द्रः ।

१ २ ३ १   २र   ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥८॥

पदार्थ—( क्षियन्त ) निवास करते हुए ( प्रक्षे ) घर में ( मधुमति ) भोग्य पदार्थों से युक्त ( पुष्येम ) पुष्ट करें ( रयिम् ) धन का भी ( धीमहे ) चिन्तन करें ( ते ) तेरा ( इन्द्र ) हे ईश्वर ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भोग के योग्य पदार्थों से युक्त अपने घरों में निवास करते हुए हम सम्पत्ति बढ़ावें और तेरा ध्यान या चिन्तन भी करें ॥८॥

४४५—त्रसदस्युः । द्विपदाविराट् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १   २र   ३ २उ   ३ १ २र
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९॥

पदार्थ—( अर्चन्ति ) पूजा करते हैं ( अर्कं ) पूजा करने के योग्य परमेश्वर की ( मरुतः ) विद्वान् लोग ( स्वर्का ) मनोहर मन्त्रों से युक्त ( आस्तोभति ) स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ( श्रुतः ) विख्यात ( युवा ) एक रस से विद्यमान ( स ) वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर ॥९॥

भावार्थ—मनोहर मन्त्रो से विद्वान् लोग पूजने योग्य परमेश्वर की पूजा करते हैं तथा स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। वह एक रस से विद्यमान परमेश्वर विख्यात है ॥८॥

४४६—त्रसदस्यु । द्विपदाविराट । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१०॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( व ) तुम लोग ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिये ( वृत्रहन्तमाय ) पापो के अत्यन्त नाश करनेवाले ( विप्राय ) बुद्धि के भण्डार ( गाथम् ) गान को ( गायत ) गाओ ( यम् ) जिस को प्रेम करता है ( जुजोषते ) स्वीकार करता है ॥१०॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! सर्वज्ञ और पापों के अत्यन्त निवारक परमेश्वर के लिए तुम जिस मन्त्र का गान करते हो, वह उसे स्वीकार करता है ॥१०॥

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

४४७—पथ्य । द्विपदाविराट । अग्नि ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २

**अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥१॥**

पदार्थ—( अचेति ) सब जानते हैं ( अग्निः ) परमेश्वर ( चिकितिः ) विश्व का ज्ञाता है ( हव्यवाड् ) कर्मफल तथा भोग्यों का दाता है ( न ) और ( सुमद्रथः ) शुद्ध ज्ञान ही उसका रथ है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा को सब जानते हैं और वह भी सब को जानता है। परमात्मा मनुष्यो को उन के भले और बुरे कर्मों के फल तथा भोग्य पदार्थों को देता है। शुद्ध ज्ञान ही भगवान् का रथ है ॥१॥

४४८—बन्धवादय । द्विपदाविराट । अग्नि ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

**अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२॥**

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( त्वम् ) तू ( नः ) हमारे ( अन्तमः ) समीप है ( उत ) और ( त्राता ) रक्षक ( शिवः ) कल्याणकारक ( भुवः ) है ( वरूथ्यः ) भजन करने के योग्य है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे अत्यन्त समीप है और रक्षा करने वाला है। तू कल्याणकारक और भजन के योग्य है ॥२॥

४४९—सुबन्ध्वादय । द्विपदाविराट । भग अग्नि ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३॥**

पदार्थ—( भगः न ) सूर्य के समान ( चित्रः ) अद्भुत ( अग्निः ) परमेश्वर ( महोनां ) धनवानो को ( दधाति ) देता है ( रत्नम् ) नाना प्रकार के देने योग्य रत्न ॥३॥

भावार्थ—सूर्य के समान अद्भुत परमेश्वर ही धनवानो को नाना प्रकार के रत्न आदि देता है ॥३॥

४५०—बन्ध्वादय । द्विपदा विराट । अग्नि ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २

**विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ॥४॥**

पदार्थ—( विश्वस्य ) सब के ( प्रस्तोभ ) स्तुति के योग्य है ( पुरो वा सन् ) हमारे सम्मुख हो ( यदि वा ) अथवा ( इह ) हमारे अन्तःकरण में विराजमान ( नूनम् ) यह सत्य है ॥४॥

भावार्थ—हे पूज्य परमेश्वर ! तू जहाँ सब के पहले या आगे है तो निश्चय ही इस संसार में भी विराजमान है ॥४॥

४५१—सवत । द्विपदाविराट । उषा ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजाततः ॥५॥**

पदार्थ—( उषा ) उषादेवी ( अप ) दूर ( स्वसुः ) रात्रि का ( तमः ) अन्धकार ( संवर्तयति ) दूर करती है ( वर्तनिम् ) मार्ग को ( सुजाततः ) अपने प्रकाश से अपनी उत्पत्ति की विशेषता से ॥५॥

भावार्थ—उषादेवी उदय होकर रात्रि का अन्धकार नष्ट करती है और उत्पत्ति की विशेषता से मार्गों को दिखलाती है यही उसकी महिमा है ॥५॥

४५२—भौवन आप्त्य । द्विपदाविराट । विश्वे देवाः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

**इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥**

पदार्थ—( इमा ) इन ( नु ) शीघ्र ( कम् ) सुख को ( सीषधेम ) सिद्ध करें ( भुवना ) सारा संसार ( इन्द्रश्च ) परमेश्वर भी ( विश्वे च ) और सब ( देवाः ) देव लोग भी ॥६॥

भावार्थ—परमेश्वर, सारा संसार, और सारे सूर्यादि देवता हमें शीघ्र सुखी करें ॥६॥

४५३—कवष ऐलूष । द्विपदाविराट् । इन्द्र ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

**वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥७॥**

पदार्थ—( विस्रुतयः ) छोटे छोटे मार्ग ( यथा ) जैसे ( पथा ) राजमार्ग से निकलते हैं ( इन्द्र ) हे प्रभो ! ( त्वत् ) तुझसे ( यन्तु ) प्राप्त हों ( रातयः ) सारे दान ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जैसे राजमार्ग (बड़ी सड़क) से छोटी छोटी पगडंडिया निकलती हैं, ऐसे ही तुझ से अनेक प्रकार के दान हमें प्राप्त हों ॥७॥

४५४—भरद्वाज । द्विपदाविराट् । इन्द्र ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥**

पदार्थ—( अया ) इस स्तुति प्रार्थना और उपासना के द्वारा ( वाजं ) अन्न और बल को ( देवहितम् ) परमेश्वर के दिये हुए ( सनेम ) प्राप्त करें ( मदेम ) प्रसन्न रहें ( शतहिमाः ) सौ वर्ष तक की आयु वाले हुए ( सुवीराः ) सुन्दर और सुशिक्षित पुत्र और पौत्रों से संयुक्त होकर ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस स्तुति प्रार्थना और उपासना के द्वारा हम परमात्मा के दिये हुए अन्न और बल को प्राप्त करें तथा सुशिक्षित पुत्र और पौत्रों से युक्त हो कर सौ वर्ष तक प्रसन्न रहें ॥८॥

४५५—आत्रेय । द्विपदा विराट । विश्वेदेवा ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २

**ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९॥**

पदार्थ—( ऊर्जा ) बल से ( मित्रः ) सूर्य ( वरुणः ) जल ( पिन्वत ) दें ( इडाः ) अन्न आदि पदार्थ ( पीवरीं ) पर्याप्त ( इषम् ) विज्ञान ( कृणुही ) उत्पन्न कर ( नः ) हमारे लिये ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे लिये पर्याप्त ज्ञान दे, सूर्य और जल अपनी शक्ति से अन्न पैदा करें ॥९॥

४५६—वसिष्ठ । एकपदा गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २

**इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१०॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर ( विश्वस्य ) ब्रह्माण्ड का ( राजति ) शासन करता है ॥१०॥

भावार्थ—परमेश्वर सारे संसार का स्वामी है ॥१०॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

४५७—गृत्समद । अष्टि । इन्द्र ।

१ २ ३ १ २र ३ २

**त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म**

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

**स्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।**

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

**स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं**

२र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

**सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥**

पदार्थ—( त्रिकद्रुकेषु ) तीन प्रकार के शरीरो मे ( महिषः ) महान् ( यवाशिरं ) भोगों को देनेवाले ( तुविशुष्मः ) अति बलवान् ( तृम्पत् ) तृप्त करता है ( सोमम ) जीव को ( अपिबत् ) रक्षा करता है ( विष्णुना ) वायु के द्वारा ( सुतं ) उत्पन्न जगत् को ( यथावशम् ) यथेष्ट ( स ) वह ( ईं ) इसको ( ममाद ) आनन्दित करता है ( महि ) महान् ( कर्म ) कर्म ( कर्तवे ) करने के लिये ( महाम् ) महान् ( उरु ) महान् ( सश्चत् ) प्राप्त होता है ( देव ) देव ( देवम ) देव ( सत्य ) सत्य ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( सत्यम् ) अविनाशी ( इन्द्रम् ) जीवको ॥१॥

भावार्थ—महान् शक्तिशाली जो तीनों शरीरों में विद्यमान सोम को सुखादि से तृप्त करता है भोग के देने वाले संसार को वायु के द्वारा यथेष्ट रूपसे रक्षित करता है और इस जीवको महान् कर्म करने के लिये आनन्दित करता है, वह अविनाशी परमेश्वर देव महान् देव जीवात्मा को प्राप्त होता है ॥१॥

४५८—पौराङ्गिरस । अतिजगती । सूर्य ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

**अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।**

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

**ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥२॥**

पदार्थ—( अयम् ) यह ( सहस्रम् ) हजारों ( मानवः ) मनुष्यसम्बन्धी ( दृशः ) दर्शनीय ( कवीनाम् ) बुद्धिमानों के ( मतिः ) मनन का विषय ( ज्योतिः ) ज्योति ( विधर्म ) सबको धारण करनेवाली ( ब्रध्न ) महान् ( समीचीः ) सुन्दर ( उषसः ) उषाओं को ( समैरयत् ) प्रेरित करता है ( अरेपसः ) अन्धकाररहित ( सचेतस ) ज्ञानी जन ( स्वसरे ) दिन में ( मन्युमन्त ) ज्ञानवाले ( चिताः ) चेतन ( गो ) प्रकाश से ॥ २ ॥

भावार्थ—यह सहस्रों मनुष्यों से सम्बन्धित दर्शनीय, बुद्धिमानों के मनन का विषय तथा सबको धारण करनेवाली ज्योति महान् सूर्य सुन्दर उषा को प्रेरित करता है। दिन में सूर्य से प्रकाश पाये हुए ज्ञानी तथा समस्त चेतनवर्ग अन्धकार से मुक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

४५९—परुच्छेपः । अत्यष्टिः । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( आयाहि ) प्राप्त हो ( नः ) हमें ( परावतः न ) अज्ञान के कारण दूर वर्तमान हमों के समान ( अयम् ) यह ( अच्छा ) भली प्रकार ( विदथानि ) यज्ञों को ( सत्पतिः इव ) समान ( सत्पति ) सत्य का पालक ( अस्ता ) गृह को ( राजेव ) राजा के समान ( सत्पतिः ) सत्याचरण से युक्त ( हवामहे ) पुकारते हैं। ( त्वा ) तुझे ( प्रयस्वन्तः ) अन्नादि से युक्त ( सुतेषु ) भोग्य पदार्थों के सम्पन्न होने पर ( पुत्रासः ) पुत्र ( न ) समान ( पितरं ) पिता को ( वाजसातये ) अन्न का विभाजन करने के लिए ( मंहिष्ठ ) हे पूजनीय ! ( वाजसातये ) बल की प्राप्ति के लिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अज्ञानवश दूर वर्तमान हमों के समान हम उपासकों को उसी प्रकार प्राप्त हों जैसे यह सत्पति विद्वान् यज्ञों को प्राप्त होता है तथा सज्जनों का पालक राजा जैसे ग्रहगृह को प्राप्त होता है, समस्त भोग्य पदार्थों के सम्पन्न होने पर अन्नादि से युक्त हम लोग बल प्राप्ति के लिए तुझ पूजनीय को वैसे पुकारते हैं जैसे कि पुत्र अन्न के विभाजन के लिए पिता को पुकारते हैं ॥ ३ ॥

४६०—रेभः । अतिजगती । इन्द्रः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं श्रवांसि भूरि ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त

३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( इन्द्रम् ) परमेश्वर का ( जोहवीमि ) बार बार आह्वान करता हूँ ( मघवानम् ) दानी और धनवान् ( उग्रम् ) ओजस्वी ( सत्रा ) सर्वदा ( दधानम् ) धारण करने वाले ( अप्रतिष्कुतम् ) कभी भूल नहीं करने वाले ( श्रवांसि ) यश और अन्न ( भूरि ) बहुत ( मंहिष्ठ ) अतिपूज्य ( गीर्भि ) स्तुतियों के द्वारा ( आ ) सब प्रकार से ( च ) और ( यज्ञिय ) उपासना के योग्य ( ववर्त ) प्राप्त हो ( नः ) हमें ( विश्वा ) सब ( सुपथा ) प्रशस्त मार्ग ( राये ) ऐश्वर्य के लिए ( कृणोतु ) करे ( वज्री ) न्यायरूप शस्त्र का धारण करने वाला ॥ ४ ॥

भावार्थ—कभी भी भूल न करने वाले सबसे बड़े दानी और ओजस्वी परमेश्वर को बार बार पुकारता हूँ। वह पूज्य और महान् है। स्तुतियों के द्वारा हम उसको प्राप्त करें। न्यायरूप शस्त्र को धारण करनेवाला वह हमारे धन के सारे मार्ग निर्विघ्न बना दे ॥ ४ ॥

४६१—परुच्छेपः । अतिशक्वरी । अत्यष्टिर्वा । विश्वेदेवाः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु

२र ३ १ २ ३ १ २
त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ १ २ ३ १ २
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥

पदार्थ—( अस्तु ) हो ( श्रौषट् ) यश ( पुरः ) आगे ( अग्निम् ) अग्नि और परमेश्वर को ( धिया ) ज्ञान और कर्म से ( दधे ) धारण करते हैं ( आ ) भली भाँति ( नु ) निश्चय ही ( त्यत् ) वह ( शर्ध ) बल को ( दिव्यम् ) दिव्य ( वृणीमहे ) प्राप्त करते हैं ( इन्द्रवायू ) विद्युत् और वायु ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( यत् ह ) जो भी ( क्राणा ) कार्यों को सिद्ध करनेवाले ( विवस्वते ) सूर्य के लिए ( नाभा ) जगत् के मध्य में ( सन्दाय ) ध्यान को लगाकर ( नव्यसे ) नित्य नूतन ( अध ) अनन्तर ( प्रनूनम् ) निश्चय ( उपयन्ति ) प्राप्त होते हैं ( धीतयः ) न धारण करने वाली शक्तियों के समान ( धीतय ) सृष्टि के विधान ( देवान् ) देवों को ( अच्छा ) अच्छी प्रकार ॥ ५ ॥

भावार्थ—हम परमेश्वर को अपने ज्ञान और कर्म से आगे रखते हैं। उसके उस उत्तम दिव्य बल को स्वीकार करते हैं। जगत् के नाभि में स्थित नित्य नए सूर्य के विचार के लिए अपने ध्यान को लगाकर जब हम जगत् के समस्त कार्यों को सिद्ध करनेवाले विद्युत् और वायु को अपने ज्ञान में ग्रहण करते हैं तब धारण करनेवाली शक्तियों के समान सृष्टि के विधान (नियम) समस्त देवों को व्याप्त होकर स्थित हुए हमें ज्ञान से प्राप्त होते हैं, इस प्रकार यह कथन ठीक है ॥ ५ ॥

४६२—एवयामरुत् । अतिजगती । मरुतः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ ६ ॥

पदार्थ—( प्र ) प्रकृष्ट ( वः ) तुझे ( महे ) बड़ाई के लिए ( मतयः ) बुद्धिएँ ( यन्तु ) प्राप्त हो ( विष्णवे ) यज्ञ के लिए ( मरुत्वते ) ऋत्विजों से युक्त ( गिरिजा ) वेदवाणी से उत्पन्न हुई ( एवयामरुत् ) हे ज्ञानयुक्त मनुष्य ! ( प्रशर्धाय ) उत्तम बल के लिए ( प्रयज्यवे ) उत्तम यज्ञसाधन के लिए ( सुखादये ) सुखपूर्वक भोग के लिए ( तवसे ) स्फूर्ति के लिए ( भन्ददिष्टये ) कल्याण सुखसंगत के लिए ( धुनिव्रताय ) अनेक व्यवहारों के लिए ( शवसे ) मानसबल के लिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे ज्ञानयुक्त मनुष्य ! बड़ाई, ऋत्विजों से युक्त यज्ञ, उत्तम बल, यज्ञ साधन, सुखपूर्वक भोग, स्फूर्ति, कल्याण, सुखसंगति अनेक व्यवहारों तथा मानस बल के लिए वेदवाणी से उत्पन्न बुद्धियाँ तुम्हें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

४६३—अनानत । अत्यष्टि । सोम ।

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—( अया ) इस ( रुचा ) तेज से ( हरिण्या ) रस का हरण करने वाले ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( विश्वा ) समस्त ( द्वेषांसि ) द्वेषों को ( तरति ) नष्ट करता है ( सयुग्वभिः ) साथ जुड़े हुए ज्ञानों से ( सूरः न ) सूर्य के समान ( सयुग्वभिः ) जुड़ी हुई किरणों से ( धारा ) धारा से ( पृष्ठस्य ) द्युलोक के ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( अरुषः ) रूपवान् ( हरिः ) मनुष्य ( विश्वा ) सारे ( यत् ) जो ( रूपा ) रूपों को ( ऋक्वभिः ) ज्वालाओं रूप ( सप्तास्येभिः ) सात मुखों से ( ऋक्वभिः ) तेजों से ( परियासि ) व्यापता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! इस रस हरण करने वाली दीप्ति से जैसे सूर्य साथ जुड़ी किरणों से सब विरोधी अन्धकारों को नष्ट करता है ऐसे ही पवित्रात्मा पुरुष द्वेषादि दुर्गुणों को साथ जुड़े ज्ञानों से नष्ट करता है और जैसे रूपवान् अग्नि द्युलोक की तीव्र ज्योति धारा से दीप्त होता है और समस्त रूपों को सात प्रकार की ज्वालाओं रूप मुखों से व्यापता है इसी प्रकार पवित्रात्मा पुरुष प्रशंसाओं से सर्वत्र व्याप्त होता है ॥७॥

४६४—नकुल । अत्यष्टि । सविता ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३
अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतु-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
मर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।

३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि

१ २ ३ १ २ ३ १ २
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥

पदार्थ—( अभि ) सब ओर से ( त्यम् ) उस ( देवम् ) दान आदि गुणों वाले ( सवितारम् ) संसार के उत्पादक ( ओण्योः ) द्युलोक और पृथिवी लोक के अन्दर ( कविक्रतुम् ) बुद्धिपूर्वक जिसके सब काम हैं ( अर्चामि ) पूजा करता हूँ

(सत्यसवम्) सत्यज्ञान वाले ( रत्नधाम् ) सम्पूर्ण रत्नों के धारण करने वाले ( अभि प्रियम्) सबके प्यारे ( मतिम् ) मनन करने योग्य ( ऊर्ध्वा ) ऊपर नीचे सब तरफ ( यस्य ) जिसकी ( अमतिः ) सबसे श्रेष्ठ ( भाः ) प्रकाश (अदिद्युतत् ) चमकता है ( सवीमनि ) आज्ञा में ( हिरण्यपाणिः ) सुवर्ण हाथ में प्राप्त के समान ( अमिमीत ) बनाया है ( सुक्रतुः ) सुन्दर ज्ञान वाले ( कृपा ) कृपा से ( स्वः ) अपनी ॥ ८ ॥

भावार्थ—हाथ में सुवर्ण भूषण धारण कर सुन्दर यज्ञ करने वाला तथा पवित्र बुद्धि वाला मैं जिसकी आज्ञा मे प्रखर तेज ऊपर की तरफ प्रकाशित हो रहा है जिसने अपनी कृपा से सकल ब्रह्माण्ड की रचना की है द्युलोक और पृथिवी लोक में जिस के सारे काम बुद्धिपूर्वक देखे जाते हैं, सत्य ज्ञान वाले, सारे रत्नों के दाता, मनन करने के योग्य और संसार की प्रेरणा करने वाले उस प्यारे प्रभु की पूजा करता हूँ ॥ ८ ॥

४६५—परुच्छेप । अत्यष्टि । अग्नि ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥

पदार्थ—( अग्निम् ) तेजस्वी ( होतारम् ) ग्रहण करने वाले ( मन्ये ) जानू ( दास्वन्तं ) दानी ( वसो ) ब्रह्मचारी का ( सुनुम् ) पुत्र ( सहसः ) बलवान् का ( जातवेदसम् ) विद्या से प्रसिद्ध ( विप्रम् ) बुद्धिमान के ( न ) समान ( जातवेदसम् ) विद्या को प्रकट करने वाले ( य ) जो ( ऊर्ध्वया ) उत्तम विद्या से ( स्वध्वरः ) कल्याणकारी सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले ( देव ) मनोहर ( देवाच्या ) दिव्यशक्ति देने वाली ( कृपा ) कृपा से (घृतस्य) घी के (विभ्राष्टिम्) विविध पदार्थों को पकाने वाली अग्नि के समान ( अनु ) पीछे कामना करे ( शुक्रशोचिषः ) शुद्ध दीप्ति वाला ( आजुह्वानस्य ) होम करने के योग्य ( सर्पिषः ) प्राप्त करने के योग्य ॥९॥

भावार्थ—हे कन्ये ! जो पुरुष उत्तम विद्या से कल्याणकारी यज्ञ करने वाला हो, विद्वानों को प्राप्त होने वाली ईश्वर की कृपा से मनोहर हो, जो होम के लिये प्राप्त करने के योग्य शुद्ध पवित्र घी के साथ अनेक प्रकार के पदार्थों को पकाने वाली अग्नि के समान तेजस्वी हो जो अग्नि के समान ग्रहण करने की योग्यता रखता हो, जो स्वयं दानी हो, जो बलवान् वसु ब्रह्मचारी का पुत्र हो, जो प्रसिद्ध विद्वान् पुरुष के समान अपनी विद्या को भी प्रकट करने की शक्ति रखता हो मैं ऐसे पुरुष को ही पति स्वीकार करती हूँ तू भी ऐसा ही कर ॥९॥

४६६—गृत्समद । अतिशक्वरी । इन्द्र ।

२ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥

पदार्थ—( तव ) तेरा ( त्यत् ) वह ( नर्यम् ) मनुष्यों का हितकारक ( नृत ) हे सबको नचाने वाले ( अप ) प्राणों को ( इन्द्रः ) हे जीव ( प्रथमम् ) पहला ( पूर्व्यम ) पहले वालों ने किया हुआ ( दिवि ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में ( प्रवाच्यम् ) प्रवचन करने के योग्य ( कृतम् ) कर दिया है ( य ) जो ( देवस्य ) सब के प्रकाशक के ( शवसा ) बल से ( प्रारिणा ) प्राप्त करता है ( असु ) प्राण को ( रिणन् ) प्राप्त करता हुआ ( अप ) जलों को ( भुवः ) तिरस्कार करता है ( विश्वम् ) सब ( अभि ) चारों तरफ से ( अदेवम् ) पापी को ( ओजसा ) अपनी शक्ति से ( विदेत् ) प्राप्त करावे ( ऊर्जम् ) बल को (शतक्रतुः ) परमेश्वर (विदेत्) प्राप्त करावे ( इषम् ) अन्न को भी ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रकृति से नाना प्रकार के काम लेने वाले जीव ! सब से प्रथम करने योग्य, परमेश्वर के विषय में वर्णन करने योग्य, मनुष्यों के हितकारी कर्म को तूने किया है। जिस परमेश्वर के बल से तूने प्राण धारण किया है तथा सारे असुरों को नीचा दिखाया है वही सर्वज्ञ तुम्हें अन्न दे और बल दे ॥ १० ॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

# पवमान पर्व

## पञ्चमोऽध्याय

४६७—अमहीयु । पवमान । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१॥

पदार्थ—( उच्चा ) उत्तम ( ते ) तेरे ( जातम् ) उत्पन्न ( अन्धसः ) अन्न से ( दिवि ) मोक्षधाम में ( सत् ) विद्यमान (भूम्या ) भूमिपर ( आददे ) प्राप्त करता है ( उग्र ) अत्यंत ( शर्म ) सुख( महि ) प्रचुर ( श्रवः ) कीर्ति ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पृथिवीस्थ मनुष्य तुम्हारे दिए हुए अन्न से उत्पन्न यश और सुख को तथा तुम्हारे उत्तम मोक्षधाम मे विद्यमान सुख को भी प्राप्त करता है ॥१॥

४६८—मधुच्छन्दा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२॥

पदार्थ—( स्वादिष्ठया ) सुस्वादु (मदिष्ठया) अति आनन्ददायक ( पवस्व ) बहता है ( सोम ) जल ( धारया ) धारा प्रवाह से ( इन्द्राय ) जीव के ( पातवे ) पीने के लिए ( सुतः ) उत्पन्न या निचोड़ा हुआ ॥२॥

भावार्थ—सुखाया हुआ सोमरस जीवात्मा के पीने के लिए, सुन्दर स्वादिष्ट और आनन्ददायक धार के रूप में टपकता है ॥२॥

४६९—भृगुर्वारुणि, जमदग्निर्वा भार्गव । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥३॥

पदार्थ—( वृषा ) सुख की वर्षा करने वाला ( पवस्व ) पवित्र कर अथवा प्रदान कर ( धारया ) वेदवाणी के द्वारा ( मरुत्वते ) प्राणधारण करनेवाले ( च ) और ( मत्सरः ) आनन्द का दाता ( विश्वा ) विश्व को ( दधानः ) धारण करता हुआ ( ओजसा ) शक्ति से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुखों की वृष्टि करने वाला आनन्ददाता तथा प्राणधारी जीव को अपनी शक्ति से सम्पूर्ण विश्व का धारण करता हुआ तू वेदवाणी से ज्ञान प्रदान कर या पवित्र कर ॥३॥

४७०—अहमीयु । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥४॥

पदार्थ—( य ) जो ( ते ) तेरा ( मदः ) प्रसन्न करने या आनन्द देनेवाला ( वरेण्यः ) सबसे श्रेष्ठ ( तेन ) उससे ( पवस्व ) पवित्र कर (अन्धसा ) आनन्द या ज्ञान ( देवावीः ) विद्वानो की रक्षा करनेवाले ( अघशंसहा ) पापवृत्तियों का नाश करनेवाला ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! देवों का रक्षक और पापवृत्तियों का नाशक तू अपने आनन्द से हमें आनन्दित कर ॥४॥

४७१—त्रित । सोम । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥५॥

पदार्थ—( तिस्रः ) तीन (वाचः) वाणियां [ऋग्यजुःसामरूप] (उदीरते) बोली जाती हैं ( गावः ) गायें ( मिमन्ति ) हुँकारती हैं ( धेनवः ) दूध देने वाली ( हरिः ) वायु ( एति ) बहती है (कनिक्रदत्) सनसनाती हुई ॥५॥

भावार्थ—वेदपाठी वेदों के तीनों प्रकार के मन्त्रों का पाठ करते हैं, बछड़े की प्यासी गाएं दुहने के लिए हुंकारती हैं, शीतल सुगन्ध मन्द वायु सन-सन करती हुई बहती है, अर्थात् सवेरा हो गया है ॥५॥

४७२—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥६॥

पदार्थ—( इन्द्राय ) यजमान के लिए ( इन्दो ) सोमरस ( मरुत्वते ) ऋत्विजों से युक्त विराजमान ( पवस्व ) चूता है ( मधुमत्तमः ) अतिमधुर

( अर्वान्त ) मन्त्र का ( योनिम् ) कारण परमात्मा को ( आसदत् ) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ—अतिमधुर सोमरस ऋत्विजों के साथ यजमान के लिए चूता है। मैं मन्त्रों के रचने वाले परमात्मा को प्राप्त करता हूँ ॥६॥

४७३—असितदेवल । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २

**असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥७॥**

पदार्थ—( असावि ) चुआया गया है ( अंशुः ) सोम ( मदाय ) आनन्द के लिए ( अप्सु ) यज्ञ कर्मों में ( दक्ष ) शीघ्र ( गिरिष्ठाः ) पर्वत पर उत्पन्न होने वाला ( श्येनो न ) श्येन [ बाज ] पक्षी के समान ( योनिम् ) अपने स्थान [यज्ञ गृह ] में ( आसदत् ) लाया जाता है ॥७॥

भावार्थ—पर्वतीय प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला, सोम, यज्ञों में आनन्द के लिए शीघ्र चुआया गया है। जैसे पक्षी अपने घोंसलों में आ जाते हैं, ऐसे ही सोमरस भी यज्ञगृह में लाया जाता है ॥७॥

४७४—दृढच्युत । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८॥**

पदार्थ—( पवस्व ) ज्ञान दे ( दक्षसाधनः ) आत्मबल का साधन ( देवेभ्यः ) विद्वानों के ( पीतये ) रक्षा के लिए ( हरे ) हे दुःखहारक ( मरुद्भ्य ) मनुष्यों के ( वायवे ) वायु के ( मद ) आनन्ददाता ॥८॥

भावार्थ—हे दुःखहारक सोम परमेश्वर ! आत्मबल का साधन तथा आनन्द दाता तू विद्वानों, मनुष्यों तथा वायु की रक्षा के लिए हमें ज्ञान दे ॥८॥

४७५—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥९॥**

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( स्वान ) उपदेष्टा ( गिरिष्ठा ) मेघ में व्यापक ( पवित्रे ) पवित्रात्मा में ( सोम ) परमेश्वर ( अक्षरत् ) आनन्द की वर्षा करता है ( मदेषु ) उपासनाओं में ( सर्वधा ) सबका धारण करनेवाला ( असि ) है ॥९॥

भावार्थ—सबप्रकार उपदेष्टा, मेघ तथा पर्वतादि में व्यापक परमेश्वर पवित्र आत्मा में आनन्द की वर्षा करता है। हे परमेश्वर, तू उपासनाओं में सबका धारण करने वाला है ॥९॥

४७६—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥**

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( प्रिया ) उत्तम ( दिव ) दिव्यलोक अथवा दिव्य पदार्थों का ( वयांसि ) अवस्थाओं का ( नप्त्यो ) दिन और रात्रि में ( हित ) कल्याणकारी ( स्वान ) उत्तम उपदेशों से युक्त ( याति ) पाता है ( कविक्रतु ) बुद्धिमान् ॥ १० ॥

भावार्थ—दिव्य पदार्थों का उपदेश करनेवाला रात्रि और दिन में भी हित कारी उत्तम उपदेशों से युक्त बुद्धिमान् पुरुष उत्तम पद पाता है ॥ १० ॥

**卐 पहली दशती समाप्त 卐**

४७७—श्यावाश्व । सोम । गायत्री ।

२ २र ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सोमासः ) विद्वान् जन ( मदच्युतः ) आनन्द का प्रवाह बहानेवाले हैं ( श्रवसे ) अन्न और कीर्ति के लिए ( नः ) हमारे ( मघोनाम् ) यजमानों के या दानी अथवा यजमानों के ( सुता ) जगत् में उत्पन्न हुए ( विदथे ) यज्ञशाला में ( अक्रमुः ) पहुँचते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जगत् में उत्पन्न हुए विद्वान् पुरुष, आनन्ददायक सोमरस हमारे यजमानों और धनवानों की कीर्ति तथा अन्न के लिये यज्ञशाला में पहुँचाये जाते हैं ॥१॥

४७८—त्रित । सोम । गायत्री ।

३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ २ ॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सोमासः ) मनुष्य ( विपश्चितः ) विद्वान्, जन ( अपः ) जल जैसे ( नयन्तः ) ले जाते हैं ( ऊर्मयः ) तरंगों को ( वनानि ) वनों में ( महिषा ) भैंसे के ( इव ) समान ॥ २ ॥

भावार्थ—जलों की लहरों के समान और वनों के भैंसों के समान [illegible] [illegible] हुए लोगों के पास जाते हैं ॥२॥

४७९—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २३ १ २

**पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥**

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ! ( वृषा ) सुखों की वृष्टि करनेवाला ( सुत ) निमित्त कारण या सृष्टिकर्त्ता ( कृधी ) कर ( नः ) हमारे ( यशसः ) यश के लिए ( जने ) जनता में ( विश्वा ) सारे ( अप ) दूर ( द्विषः ) द्वेषभावों को ( जहि ) दूर भगा ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! सुख की वृष्टि करनेवाला सृष्टिकर्त्ता तू जनता में हमें यशस्वी कर तथा हमारे समस्त काम क्रोधादि शत्रुओं को दूर भगा ॥ ३ ॥

४८०—भृगु । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २

**वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥**

पदार्थ—( वृषा ) मनोवाञ्छित फल के दाता ( हि ) निश्चय ( असि ) है ( भानुना ) अपने तेज से ( द्युमन्त ) प्रकाशस्वरूप ( त्वा ) तुझे ( हवामहे ) आह्वान करते हैं ( पवमान ) हे पवित्र करनेवाले शान्तिस्वरूप परमात्मन् ( स्वर्दृशम् ) मोक्षरूप सुख विशेष के दिखाने वाले ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब को पवित्र करने वाले शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू मनो-वांछित फलों का दाता है। तू अपने तेज से तेजस्वी और मोक्ष का दाता है। हम तुझे पुकारते हैं ॥ ४ ॥

४८१—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

**इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥**

पदार्थ—( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( पविष्ट ) पवित्र ( चेतनः ) चेतनस्वरूप ( प्रियः ) प्यारा ( कवीनां ) विद्वानों का ( मतिः ) पूजा के योग्य ( सृजत ) उत्पन्न करता है ( अश्वं ) संसार को ( रथीरिव ) रथ के स्वामी के समान ॥ ५ ॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली, चेतनस्वरूप, सबका प्रिय तथा विद्वानों का माननीय परमेश्वर रथी के समान, गतिशील संसार को उत्पन्न करता है और व्याप्त करता है ॥ ५ ॥

४८२—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

**असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥**

पदार्थ—( असृक्षत ) उत्पन्न किए जाते हैं ( वाजिनः ) बलयुक्त ( गव्या ) गौ की इच्छा से ( सोमासः ) पुरुष ( अश्वया ) घोड़े की इच्छा से ( शुक्रासः ) पवित्र ( वीरया ) पुत्र की कामना से ( आशवः ) कर्मण्य ॥ ६ ॥

भावार्थ—बलयुक्त, शुद्ध तथा कर्मण्य पुरुष गाय, अश्व तथा पुत्र की इच्छा से संसार में उत्पन्न किए जाते हैं ॥ ६ ॥

४८३—त्रिशुचि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

**पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥**

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( देव ) दिव्यगुण वाला [आत्मा] ( आयुषक् ) जीवन [जिन्दगी] का सेवन करने वाला ( इन्द्रम् ) परमेश्वर की शरण में ( गच्छतु ) प्राप्त हो [जाय] ( ते ) तेरा ( मद ) स्तोत्र ( वायुम् ) हवा में ( आरोह ) चढ़कर बल ( धर्मणा ) धारण करने वाले यन्त्र [यान] की सहायता से या प्राणायाम रूप धर्म से ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू नाना योनियों में भ्रमण करने वाला तथा मनुष्य की आयु का भी सेवन करनेवाला है। तू अपने को पवित्र कर। तेरा स्तोत्र परमेश्वर को मिले। तू यान या प्राणायाम के द्वारा वायु पर चढ़ (हवा में उड़ान ले) ॥ ७ ॥

४८४—अमहीयु । पवमान । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ २ ३ २

**पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥**

पदार्थ—( पवमान ) पवित्र करने वाले परमात्मा ने ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया है ( दिवः ) द्युलोक के ( चित्र ) विचित्र ( तन्यतुम् ) विद्युत् के ( न ) समान ( ज्योतिः ) प्रकाश ( वैश्वानर ) सौर्य को ( बृहत् ) महान् ॥ ८ ॥

भावार्थ—पतितपावन परमात्मा ने द्युलोक की विचित्र वस्तु (बिजली) के समान महान् सूर्य के प्रकाश को उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥

४८५—असित । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

**परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥**

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( स्वानास ) सत्य का उपदेश करने वाले ( इन्दवः ) ऐश्वर्यशाली ( मदाय ) आनन्द को ( बर्हणा ) महान् ( गिरा ) वाणी से ( मधो ) ज्ञान के ( अर्षन्ति ) प्राप्त करते हैं ( धारया ) धारण करते वाली ॥९॥

भावार्थ—सब प्रकार सत्य का उपदेश करने वाले ऐश्वर्यशाली विद्वान् महान् तथा ज्ञान को धारण करने वाली वाणी को आनन्द के लिए प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

४८६—असित । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

**परि प्रासिष्यदत्कवि सिन्धोरूर्मावधि श्रित । कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१०॥**

पदार्थ—( परि ) सब तरफ से ( प्रासिष्यदत ) उत्तमता से धार के साथ बहता है [पानी पर चलता है] ( कवि ) मेधावी [योगी] पुरुष ( सिन्धोः ) नदी के ( ऊर्मौ ) तरंग पर ( अधिश्रित ) बैठकर या उसके आश्रय से ( कारम् ) संसार के कर्त्ता को ( बिभ्रत् ) धारण करता हुआ ( पुरुस्पृहम ) बहुतों से चाहने के योग्य ॥१०॥

भावार्थ—बहुतों से चाहने योग्य, संसार के कर्त्ता परमेश्वर को धारण और उसका ध्यान करता हुआ मेधावी (योगी) पुरुष नदी की लहर पर बैठ कर, उसके साथ बड़ी सरलता से बहता है ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

४८७—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १२ ३ १ २

**उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषु ॥१॥**

पदार्थ—( उप उ ) समीप ( जातम ) उत्पन्न या प्रसिद्ध ( अप्तुरम ) जल मिश्रित ( गोभि ) दूध से ( परिष्कृतम ) साफ किया हुआ और मिलाया हुआ ( भगम ) चुआया गया [रसरूप से निकाला गया] ( इन्दुम् ) सोम को ( देवा ) विद्वान् ( अयासिषु ) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् जन चुआए दूध से साफ किए हुए और जल से मिलाए हुए प्रसिद्ध सोमरस को प्राप्त करते हैं ॥१॥

४८८—बृहन्मति । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणि । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभि ।२॥**

पदार्थ—( पुनान ) पवित्र करने वाला ( अक्रमीत ) दबा लेता है (विश्वा) समस्त ( मृध ) बाधाओं को ( विचर्षणि ) सर्वद्रष्टा ( शुम्भन्ति ) शोभित करते हैं ( विप्र ) सर्वज्ञ को ( धीतिभि ) स्तुतियों से ॥२॥

भावार्थ—पवित्र कर्त्ता तथा सर्वद्रष्टा परमेश्वर समस्त बाधाओं को दबा देता है। उस महान् सर्वज्ञ को लोग स्तुतियों से सुशोभित करते हैं ॥२॥

४८९—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २

**आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रिय । इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥३॥**

पदार्थ—( आविशन ) प्रविष्ट होता हुआ ( कलश ) शरीर मे ( सुत ) चुआया हुआ ( विश्वा ) समस्त ( अर्षन ) प्राप्त कराता हुआ (अभि) भली प्रकार ( श्रिय ) श्रियों को ( इन्दु ) सोम ( इन्द्राय ) जीव के लिए ( धीयते ) शक्ति दाता होता है ॥३॥

भावार्थ—शरीर मे प्रविष्ट होता हुआ सोमरस समस्त श्रियों को प्राप्त कराता हुआ जीव के लिए शक्तिदाता होता है ॥३॥

४९०—प्रभूवसु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ १ २ ३ १ २

**असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वो सुत । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत ॥४॥**

पदार्थ—( असर्जि ) छोड़ दिया जाता है ( रथ्य ) रथ मे जोडने योग्य ( यथा ) जैसे ( पवित्रे ) पवित्र संसार मे ( चम्वो ) दो सेनाओं मे ( सुत ) उत्पन्न ( कार्ष्मन् ) संग्राम में ( वाजी ) घोड़ा ( न्यक्रमीत् ) चलता है ॥४॥

भावार्थ—जिस प्रकार रथ मे जुता घोड़ा संग्राम म छोड़ा जाता है और सेनाओं के मध्य मे भली भांति चलता है, उसी प्रकार जन्म धारण करनेवाला जीव पवित्र संसार मे छोड़ दिया जाता है और वह क्रमानुसार द्यु और पृथिवी पर विचरता है ॥४॥

४९१—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

**प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमु । घ्नन्त कृष्णामप त्वचम् ॥५॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( यत् ) जो ( गाव ) चन्द्रमा की किरणों के ( न ) समान ( भूर्णय ) भ्रमण करनेवाली ( त्वेषा ) चमकनेवाली ( अयास ) गतिशील ( अक्रमुः ) फैलती हैं ( घ्नन्त ) नाश करती हुई ( कृष्णाम् ) कृष्णरात्रि के ( त्वचम् ) अन्धकार को ( अप ) दूर ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रकार दीप्तिवाली तथा गमनशील किरणें कृष्णा रात्रि के तम को नष्ट करती हुई फैलती हैं, इसी प्रकार कर्मण्य विद्वान् जन अज्ञान का नाश करते हुए सर्वत्र विचरते हैं ॥५॥

४९२—त्रिधृष्टि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

**अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥६॥**

पदार्थ—( अपघ्नन् ) नाश करता हुआ ( पवसे ) पवित्र करता है ( मृध ) हिंसावृत्तियों का ( क्रतुवित ) संसार के सारे कर्मों के जाननेवाले ( सोम ) हे शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! ( मत्सर ) आनन्द के दाता ( नुदस्व ) प्रेरणा कर ( अदेवयुम ) नास्तिक ( जनम ) मनुष्य को ॥६॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू संसार के सब कर्मों का जानने वाला और आनन्द का दाता है। तू हिंसा करानेवाले भावों का नाश करता हुआ संसार को पवित्र करता है। हे नाथ ! आसुरी भावों को दूर करके दैवी भावों को भर दे ॥६॥

४९३—त्रिधृष्टि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

**अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचय । हिन्वानो मानुषीरप ॥७॥**

पदार्थ—( अया ) इस ( पवस्व ) पवित्र कर ( धारया ) धारा से ( यया ) जिससे ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अरोचय ) प्रकाश दिया है ( हिन्वान ) प्रेरणा करता हुआ ( मानुषी ) मनुष्यों के ( अप ) कर्मों को ॥७॥

भावार्थ—हे तेजस्वरूप परमेश्वर ! तू मनुष्यों के करने के कर्मों की प्रेरणा करता हुआ, उस पवित्र तेज की धारा से हमें पवित्र कर जिससे सूर्य को प्रकाशित किया है ॥७॥

४९४—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

**स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरप ॥८॥**

पदार्थ—( स ) वह तू ( पवस्व ) पवित्र कर ( य ) जो तूने ( आविथ ) रक्षा की है ( इन्द्रम ) जीवात्मा की ( वृत्राय ) अज्ञान या पाप को ( हन्तवे ) नष्ट करने के लिए ( वव्रिवांसम ) रोकने वाले ( मही ) महान् ( अप ) कर्मों को ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बड़े बड़े उत्तम कर्मों मे बाधा पहुंचाने वाले पाप या अज्ञान के नाश करने के लिए जीवात्मा की रक्षा करता है। इसलिये तू ही हमें पवित्र कर ॥८॥

४९५—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

**अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥९॥**

पदार्थ—( अया ) इस ( वीती ) ज्ञान से ( परिस्रव ) दे ( य ) जो ( ते ) तेरा ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ! ( मदेषु ) हमें आनन्दित करने पर ( आ ) सब प्रकार से ( अवाहन ) नाश करता है ( नवतीर्नव ) आठ सौ दश प्रकार के बुरे विचारों का पापों का अथवा निन्यानवे प्रकार के बुरे भावों का नाश करता है ॥९॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी परमेश्वर ! उसी आनन्दरस के साथ भक्तों और ज्ञानियों के हृदयों म दर्शन दो जिस आनन्दरस के मद में मस्त होकर वह भक्त या ज्ञानी जन आठ सौ दश प्रकार के बुरे विचारों, भावों अथवा पापों का नाश करने मे समर्थ हो ॥९॥

४९६—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

**परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥१०॥**

पदार्थ—( परि ) सब ओर से ( द्युक्ष ) दीप्तिमान् ( सनद् ) दे ( रयिं ) धन को ( भरद् ) दे ( वाज ) अन्न को ( नः ) हमारे ( अन्धसा ) अन्न से ( स्वानः ) सत्योपदेष्टा ( अर्ष ) प्राप्त हो ( पवित्रे ) पवित्रात्मा मे ( आ ) भली भांति ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर सत्योपदेष्टा ! तू हमें प्रकाशयुक्त धन दे, तथा देव अन्नादि से युक्त विशेष खाद्य पदार्थों को दे। हे प्रभो ! तू हमारी पवित्र आत्माओं में प्राप्त हो ॥१०॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

४९७—मेध्यातिथि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २र

**अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शत । सं सूर्येण दिद्युते ॥१॥**

पदार्थ—( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ ( वृषा ) वर्षा का करने वाला ( हरि ) वायु ( महान ) महान् ( मित्र ) अग्नि के ( न ) समान ( दर्शत ) दर्शनीय ( स सूर्येण ) सूर्य के साथ ( दिद्युते ) प्रकाशमान हो रहा है ॥१॥

भावार्थ—शब्द करता हुआ वृष्टिकारक महान् वायु दर्शनीय अग्नि के समान सूर्य के साथ प्रकाशमान हो रहा है ॥१॥

४९८—भृगु । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

**आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२॥**

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( ते ) तेरे ( दक्षम् ) बलवान् ( मयोभुवम् ) सुखकारी ( वह्निम् ) अग्नि को ( अद्य ) आज ( आवृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( पान्तम् ) रक्षक ( पुरुस्पृहम् ) विज्ञानवेत्ताओं से चाहने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान् सुखदाता, रक्षक तथा विज्ञानवेत्ताओं से चाहने योग्य तेरे अग्नि पदार्थ को हम अपने ज्ञान में स्वीकार करते हैं ॥२॥

४९९—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥३॥

पदार्थ—( अध्वर्यो ) हे अध्वर्यु ! ( अद्रिभिः ) पाषाणों से ( सुतम् ) कुआये हुए ( सोमम् ) सोम को ( पवित्रे ) दशा पवित्र मे ( आनय ) डाल ( पुनाहि ) पवित्र कर ( इन्द्राय ) यजमान के ( पातवे ) पीने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे अध्वर्यु ! पाषाणों से कुआये हुए सोम को दशा पवित्र में डाल यजमान के पीने के लिए पवित्र कर ॥३॥

५००—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥

पदार्थ—( तरत् ) तर जाता है ( सः ) वह ( मन्दी ) स्तुति करनेवाला ( धावति ) स्तुति करता है ( धारा ) धार से ( सुतस्य ) चुआए गए ( अन्धसः ) अन्नरूप सोम के ( तरत् ) अवश्य तर जाता है ( स ) वह ( मन्दी ) स्तुति करनेवाला ( धावति ) अवश्य उत्तम गति पाता है ॥४॥

भावार्थ—जो पुरुष अन्नरूप, सुन्दर चुआए गये सोमरस की धारा से यज्ञ करता हुआ परमेश्वर की स्तुति करता है, वह स्तुति करनेवाला अवश्य ही तर जाता है, अर्थात् उत्तम गति पाता है ॥४॥

५०१—निध्रुवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

आ पवस्व सहस्रिणꣳ रयिꣳ सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवाꣳसि धारय ॥५॥

पदार्थ—( आ ) सब ओर से ( पवस्व ) दे ( सहस्रिणं ) सहस्रों प्रकार का ( रयिं ) धन को ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल ( अस्मे ) हमें ( श्रवांसि ) अन्न और यश ( धारया ) वेदवाणी के द्वारा ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें वेदज्ञान के द्वारा सहस्रों प्रकार का धन, उत्तम बल और अन्न तथा यश प्रदान कर ॥५॥

५०२—असित । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥६॥

पदार्थ—( अनु ) अनुकूलता से ( प्रत्नास ) ज्ञानवृद्ध ( आयव ) मनुष्य ( पदम् ) ज्ञान को ( अक्रमु ) प्राप्त करते हैं ( नवीयः ) नए-नए ( रुचे ) ज्ञानप्रकाश के लिए ( सूर्यम् ) कर्म में प्रवृत्त करानेवाले सोम को ( जनन्त ) उत्पन्न करता है ॥६॥

भावार्थ—ज्ञानवृद्ध मनुष्य नवीन नवीन ज्ञान को क्रमश प्राप्त करते हैं। वे ज्ञानप्रकाश के लिए कर्म तथा ज्ञान में प्रवृत्त करानेवाले सोमरस को औषधियों से निकालते हैं ॥६॥

५०३—भृगु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ २ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ २

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन् योनौ वनेष्वा ॥७॥

पदार्थ—( अर्षा ) प्राप्त हो ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( द्युमत्तम ) अत्यन्त प्रकाशस्वरूप ( अभि ) में ( द्रोणानि ) यज्ञों के विषय में ( रोरुवत् ) उपदेश करता हुआ ( सीदन् ) स्थित ( योनौ ) आकाश में ( वनेषु ) परमाणुओं मे ( आ ) सब प्रकार से ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त प्रकाशस्वरूप तथा आकाश और परमाणुओं में विद्यमान तू यज्ञों के विषय में उपदेश करता हुआ हमें प्राप्त हो ॥७॥

५०४—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २

वृषा सोम द्युमाꣳ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥८॥

पदार्थ—( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करनेवाला ( सोम ) हे शान्तस्वरूप ईश्वर ! ( द्युमान् ) तू प्रकाशस्वरूप ( असि ) है ( वृषा ) तू जल की वर्षा का नियामक है ( देव ) हे दाता ! ( वृषव्रतः ) हमारी सारी अभिलाषाओं की पूर्ति करने का तेरा नियम है तू वृषा है ( धर्माणि ) कर्मों को ( दध्रिषे ) धारण करता है ॥८॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू हमारी कामनाओं को सफल करता है और प्रकाशस्वरूप है। हे दाता ! तू वर्षा को नियम में रखता है, इसलिए हमारी सब कामनाओं की पूर्ति करना तेरा व्रत है। तू इन सब कामों के करने में समर्थ है तथा मनुष्यों के सारे कार्यों को नियम से चलाता है ॥८॥

५०५—कश्यप । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥९॥

पदार्थ—( इषे ) इच्छा की पूर्ति के लिए ( पवस्व ) ज्ञान दे ( धारया ) धारणा के द्वारा ( मृज्यमान ) अन्वेषण किए जाने पर ( मनीषिभिः ) मननशील पुरुषों के द्वारा ( इन्दो ) हे परम ऐश्वर्यशाली ( रुचा ) अपने ज्ञानरूप प्रकाश से ( गा ) हमारी वाणी और इन्द्रियों में ( अभीहि ) उत्तम क्रिया को करने के लिए प्रेरणा दे ॥९॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् ! मननशील पुरुष धारणा तथा ध्यान से तुम्हारी खोज करते हैं। तू उनकी इच्छा पूर्ति के लिए ज्ञान दे। हे नाथ ! अपने तेज से हमारी वाणी तथा इन्द्रियों में उत्तम शक्ति की प्रेरणा कर ॥९॥

५०६—असित । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥१०॥

पदार्थ—( मंद्रया ) आनन्ददायक ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( धारया ) वेदवाणी से ( वृषा ) सुख का वर्धक ( पवस्व ) प्राप्त हो ( देवयु ) दिव्य गुणों का दाता ( अव्या ) रक्षा कर ( वारेभि ) उत्तम गुणो से ( अस्मयु ) हमें उत्तम बनाने वाला ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें उत्तम बनाने की कामनावाला, सुख का वर्धक तथा दिव्यगुणों का दाता तू वरणीय गुणों से हमारी रक्षा कर तथा आनन्ददायक वेदवाणी के द्वारा हमें प्राप्त हो ॥१०॥

५०७—कवि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २र

अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः । मन्दान इद्वृषायसे ॥११॥

पदार्थ—( अया ) इस ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( सुकृत्यया ) उत्तम कर्तव्य से युक्त ( महान् ) सबसे बड़ा ( सन् ) होता हुआ ( अभ्यवर्धथा ) हमें उन्नत बनाता है ( मन्दान ) स्वयं प्रसन्न होता हुआ ( इत ) ही ( वृषायसे ) वर्षणशील मेघ के समान व्यवहार करता है ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्दस्वरूप महान् तू इस कर्तव्य युक्त वेदवाणी से हमें बढ़ाता है और स्वयं बरसने वाले मेघ के समान सुखी करता है ॥११॥

५०८—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१२॥

पदार्थ—( अय ) यह ( विचर्षणि ) साक्षीरूप से सबका द्रष्टा ( हित ) प्राणिमात्र का कल्याणकारक ( पवमान ) पवित्र ( स ) वह ( चेतति ) जानता है ( हिन्वान ) प्रेरणा करता हुआ ( आप्यम् ) कर्म के द्वारा होने या प्राप्त होने वाले ( बृहत् ) महान् ज्ञान की ॥१२॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का साक्षीरूप से द्रष्टा प्राणिमात्र का कल्याणकारक, स्वयं पवित्र, कर्म से होनेवाले ज्ञान की प्रेरणा करनेवाला वह परमेश्वर सब को जानता है ॥१२॥

५०९—अयास्य । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाꣳ अयास्य ॥१३॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( न ) हमें ( इन्दो ) हे परम ऐश्वर्यशाली ! ( महे ) महान् ( तुने ) सम्पत्ति के लिए ( ऊर्मिम् न ) तरंग के समान ( बिभ्रत ) धारण करता हुआ ( अर्षसि ) प्राप्त होता है ( अभि ) लक्ष्य कर ( देवान् ) विद्वानों को ( अयास्य ) प्राप्त करने के योग्य ॥१३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्राप्त करने के योग्य है, हमें महान् सम्पत्ति प्रदान करने के लिए, जैसे लहर को धारण करने वाला समुद्र रत्नाकर कहलाता हुआ प्राप्त होता है वैसे ही सारी सम्पत्तियों का धारण करने वाला तू भी विद्वानों को लक्ष्य कर प्राप्त होता है ॥१३॥

५१०—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४॥

पदार्थ—( अपघ्नन् ) नाश करता हुआ ( पवते ) पवित्र करता है ( मृधः ) बुराइयों का ( अप ) दूर ( सोमः ) आत्मा ( अराव्णः ) दुर्गुणों को ( गच्छन् ) प्राप्त होता हुआ ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर के ( निष्कृतम् ) मोक्ष को ॥१४॥

भावार्थ—आत्मा बुराइयों और दुर्गुणों को नाश करता हुआ अपने को पवित्र करता है और परमेश्वर के मोक्षधाम को प्राप्त करता है ॥१४॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

५११—वसिष्ठ । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

पदार्थ—( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( धारया ) धारण शक्ति से ( अपः ) लोकों और जीवों को ( वसानः ) आच्छादित करता हुआ ( अर्षसि ) प्राप्त हो ( आरत्नधा ) समस्त रत्नों का दाता ( योनिम् ) कारण ( ऋतस्य ) सत्य के ( सीदसि ) स्थित है ( उत्सः ) कूप के समान ( देव ) देव ( हिरण्ययः ) प्रकाशस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे लिए समस्त रत्नों का धारक या दाता, प्रकाशस्वरूप तथा कूप के समान गम्भीर तू वेदवाणी या अपनी धारण शक्ति से समस्त लोक और जीवों को पवित्र और आच्छादित करता हुआ हमें प्राप्त हो । महान् देव ! तू सत्य के कारण अपने स्वरूप में स्थित है ॥१॥

५१२—ऋष्यादय पूर्वोक्ता ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
३ १ २र ३ २ २उ ३ १ ३ २ ३ १ २
दधन्वां यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार ( इत ) इसमे ( षिञ्चत ) रक्खो ( सुत ) सुसम्पन्न अमृतरस ( सोम ) सोमरस ( य ) जो ( उत्तमम् ) श्रेष्ठ ( हविः ) सोम की सामग्री है ( दधन्वान् ) ससार का उपकार कराने वाला है ( यः ) जो ( नर्यः ) मनुष्यमात्र का हित करने वाला है ( अप्सु ) यज्ञ आदि उत्तम कर्मों ( अन्तरा ) मे ( सुषाव ) यजमान चुआता है ( सोमम् ) सोमरस को ( अद्रिभिः ) पत्थर के टुकडों से ॥२॥

भावार्थ—हे यज्ञ करने वालो ! चुआए हुए सोमरस को इस पात्र मे रक्खो, यह यज्ञ की उत्तम सामग्री है । इससे ससार की रक्षा होती है, यह मनुष्यमात्र का हितकारक है । इसको यजमान या ऋत्विक लोग यज्ञों के अवसरों पर पत्थरों के टुकड़ों से चुआते हैं ॥२॥

५१३—अत्रि । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार ( सोम ) सोमरस ( स्वान ) तैयार किया हुआ ( अद्रिभि ) पाषाण के टुकडो द्वारा ( तिर ) तिरस्कार करता हुआ ( वाराणि ) बालों को ( अव्यया ) भेडों के ( जनो न ) मनुष्य के समान ( पुरि ) नगर में ( चम्वो ) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य मे ( विशत् ) प्रवेश करता है ( हरि ) हरितवर्ण सोम करनेवाला परमेश्वर ! ( सदः ) सभा में ( वनेषु ) यज्ञों में ( दध्रिषे ) धारण किया जाता है ॥३॥

भावार्थ—पाषाणो से चुआया हुआ सोम, भेड़ के बालों (ऊनी कपडे) से छन कर, द्यु और पृथिवीलोक मे शक्ति से वसे ही प्रविष्ट होता है जसे कोई मनुष्य किसी नगर मे । यह सोम सभा में और यज्ञो में उपयोग किया जाता है ॥३॥

५१४—अत्रि । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

पदार्थ—( प्र ) उत्कृष्ट ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( देववीतये ) विद्वान् और उपासना करनेवालों की तृप्ति के लिए ( सिन्धुन ) समुद्र के समान ( अर्णसा ) जल से ( पिप्ये ) भर कर परिपूर्ण होता है ( अंशो ) सोम के ( पयसा ) रस से ( मदिर ) आनन्ददायक ( न ) सम्प्रति ( जागृवि ) चेतनस्वरूप ( अच्छ ) प्राप्त होता है ( कोशं ) कोश को ( मधुश्चुतम् ) अमृतरस को टपकाने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! विद्वान् जनो की तृप्ति के लिए जैसे जल से समुद्र परिपूर्ण है, ऐसे ही तू आनन्द से परिपूर्ण और अगम है । हे नाथ ! तू सोमलता के रस के द्वारा आनन्ददायक और सदा सावधान है । तू हमें आनन्दमय कोशों में प्राप्त हो ॥४॥

५१५—विश्वामित्र । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥

पदार्थ—( सोम ) सोम ( उ ) पादपूरक ( स्वानः ) निचोड़ा हुआ ( सोतृभि ) यज्ञकर्त्ताओं द्वारा ( अधि ) में ( ष्णुभि ) टुकड़ों से ( अवीनाम् ) पत्थरों के ( अश्वया ) शीघ्रगामिनी ( इव ) जैसे ( हरिता ) हरितवर्ण ( याति ) प्राप्त होता है ( धारया ) धारा से ( मन्द्रया ) आनन्दयुक्त ( धारया ) प्रवाह से ( याति ) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रकार यज्ञकर्त्ताओं द्वारा पाषाणखण्ड से निचोड़ा गया, सोमरस विशेष शीघ्रगामिनी हरितवर्णा की धारा के साथ पात्र को प्राप्त होता है वैसे परमेश्वर आनन्दायक धारा के साथ योगी पुरुष को प्राप्त होता है ॥५॥

५१६—जमदग्निः । सोमः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति तां इहि ॥६॥

पदार्थ—( तव ) तेरी ( अहम् ) मैं ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( रारण ) आनन्द करता हूं ( सख्ये ) मित्रता में ( इन्दो ! ) हे परम ऐश्वर्यवान् ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( पुरूणि ) बहुत शरीर आदि बाधक ( बभ्रो ) हे धारण और पोषण करने वाले ( नि ) निश्चित ( चरन्ति ) आचरण करते हैं ( माम् ) मेरी ( अव ) उप-सर्ग ( परिधीन् ) हर प्रकार से अनेक बाधाओं को ( तान् ) उन ( अति-इहि ) दूरकर ॥६॥

भावार्थ—हे विश्व के पालन पोषण करनेवाले, सकल ऐश्वर्य के स्वामी पर-मेश्वर ! मैं प्रतिदिन तेरी मित्रता में आनन्द करता हूं । हे प्रभो ! अनेक प्रकार की बाधाएं मुझे सताती हैं, तू उन्हें दूर कर ॥६॥

५१७—वसिष्ठ । सोम । बृहती ।

३ १२ ३ १ २र
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७॥

पदार्थ—( मृज्यमान ) शुद्ध पवित्र हुआ ( सुहस्त्या ) हे हस्तकला में निपुण ( समुद्रे ) आकाश में ( वाचम् ) वाणी को ( इन्वसि ) प्रेरित करता है ( रयिम् ) धन को ( पिशङ्गम् ) सुवर्ण ( बहुलम् ) बहुत ( पुरुस्पृहम् ) अत्यन्त चाहने योग्य ( पवमान ) ज्ञाता ( अभ्यर्षसि ) प्राप्त करता और कराता है ॥७॥

भावार्थ—हे हस्तकला मे निपुण पुरुष ! शुद्ध पवित्र हुआ तू आकाश में शब्द को प्रेरित करता है, अर्थात् विज्ञान द्वारा आकाश में शब्द का विस्तार करके सब के सुनने योग्य बनाता है । तू चाहने योग्य सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करता और कराता है ॥७॥

५१८—विश्वामित्र । सोम । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥

पदार्थ—( अभिपवन्ते ) हर प्रकार से पवित्र करते और निचोड़ते हैं ( सोमास ) शान्तस्वभाव वाले ( आयव ) मनुष्य ( मद्यम् ) आनन्द प्रदान करने वाले ( मदम् ) रस को ( समुद्रस्य ) हृदयरूप आकाश ( अधि ) में ( विष्टपे ) स्थान ( मनीषिण ) विचारक ( मत्सरास ) आनन्द में लीन ( मदच्युत ) आनन्द की वर्षा करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—विचारशील, स्वयं आनन्द मे लीन और उपदेश के द्वारा आनन्द की वर्षा करनेवाले शान्तस्वभाव के मनुष्य हृदयरूप आकाश में आनन्ददायक अमृतरस का स्वयं अनुभव करते हैं तथा दूसरो को भी कराते हैं ॥८॥

५१९—काश्यप । सोम । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पुनानः सोम जागृविरव्या वारे परि प्रियः ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥९॥

पदार्थ—( पुनान ) स्वयं पवित्र और हमे पवित्र करनेवाला ( सोम ) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! ( जागृवि ) सदा सावधान ( अव्या ) रक्षा कर ( वारे ) वरण के योग्य ( प्रियः ) प्रिय ( त्वम् ) तू ( विप्रः ) सबसे बढ़ कर ज्ञानी ( अभव ) है ( अङ्गिरस्तम ) हे बुद्धिमानो से भी बढ़ कर बुद्धिमान् ( मध्वा ) मधुर आनन्द रस से ( यज्ञम् ) सारे सगत व्यवहार को ( मिमिक्ष ) सींचने की कृपा कर ( न ) हमारे ॥९॥

भावार्थ—हे सबसे बड़े बुद्धिमान्! शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू सदा सावधान स्वयं पवित्र तथा हमें भी पवित्र करनवाला, परमज्ञानी और हमारा प्यारा है । तू वरण करने के योग्य प्रिय अपने गुणों से हमारी रक्षा कर तथा अपने आनन्दरस से हमारे सारे उचित व्यवहारों को सींचदे ॥९॥

५२०—जमदग्नि । सोम । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
३ १ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१०॥

पदार्थ—( इन्द्राय ) यजमान के लिये ( पवते ) चुआया जाता है ( मदः ) आनन्द करनेवाला ( सोमः ) सोमरस ( मरुत्वते ) ऋत्विजों से संयुक्त ( सुतः ) सुसम्पन्न ( सहस्रधारः ) अनेक धारा से बहनेवाला ( अत्यम् ) रक्षा करने के योग्य पुरुष को ( अर्षति ) प्राप्त होता है ( तम् ईम् ) इसको ( मृजन्ति ) शुद्ध करते हैं ( आयवः ) मनुष्य ॥१०॥

भावार्थ—अनेक धाराओं से बहनेवाला, आनन्ददायक सोमरस ऋत्विजों से युक्त यजमान के लिये चुआया जाता है। वह रक्षा के योग्य मनुष्यों को प्राप्त होता है। मनुष्य ही उसको पवित्र करते हैं ॥१०॥

५२१—वसिष्ठ । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ ३ २

त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्म देवेभ्यः सोम मत्सर ॥११॥

पदार्थ—( पवस्व ) प्राप्त हो ( वाजसातमः ) बल तथा अन्नों का दाता ( अभि ) लक्ष्य कर ( विश्वानि ) समस्त ( वार्या ) स्तोत्रों का ( त्वम् ) तू ( समुद्रः ) प्राणियों के सुखों का आधार ( प्रथमे ) मुख्य ( विधर्म ) यज्ञों में ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिये ( सोम ) हे परमेश्वर ( मत्सरः ) आनन्दस्वरूप ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्दस्वरूप धनों का दाता, सुखों का आधार तू विद्वानों के लिये उनके उत्तम स्तोत्रों को स्वीकार कर और उनके महान् ज्ञान यज्ञ में प्राप्त हो ॥ ११ ॥

५२२—वसिष्ठ । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥१२॥

पदार्थ—( पवमाना ) पवित्र स्वभाववाले ( असृक्षत ) त्याग देते हैं ( पवित्रम् ) परमेश्वर को ( अति ) अत्यन्त ( धारया ) वेदवाणी से ( मरुत्वन्तः ) प्राणों को वश में रखनेवाले ( मत्सरा ) प्रसन्नचित्त ( इन्द्रिया ) इन्द्रिय रूप ( हया ) अश्वों को ( मेधाम् ) अन्तःकरण को ( अभिप्रयांसि च ) धन-धान्य आदिकों को—और ।१२।

भावार्थ—पवित्र स्वभाव, प्राणों को वश में रखनेवाले तथा प्रसन्नचित्त मनुष्य वेदवाणी से परमेश्वर को प्राप्त कर इन्द्रियरूपी अश्वों अन्तःकरण तथा धन-धान्य आदि को त्याग देते हैं ॥ १२ ॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

५२३—उशना । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्कृष्ट ( तु ) और ( द्रव ) चूता है ( परि ) सब प्रकार ( कोशम् ) घड़े में ( निषीद ) स्थिर होता है ( नृभिः ) यजमान या अध्वर्यु लोगों से ( पुनानः ) पवित्र किया गया ( अभि ) लक्ष्य कर ( वाजम् ) बल को ( अर्ष ) प्राप्त करता है ( अश्वम् ) घोड़े के समान ( त्वा ) तुझ को ( वाजिनम् ) बलवान् और अन्नवान् ( मर्जयन्तः ) साफ करते हुए ( अच्छ ) भलीभांति ( बर्हिः ) यज्ञ में ( रशनाभिः ) रस्सों से बांध कर ( नयन्ति ) ले चलते हैं ॥१॥

भावार्थ—सोमरस चुआया जाता है और ऋत्विक् लोग उसको पवित्र कर घड़े में रखते हैं। उससे बल प्राप्त होता है, जैसे बलवान् घोड़े को रस्सों से बांध कर ले जाते हैं, ऐसे ही सोमरस को छान करके यज्ञ में भलीभांति ले जाते हैं ।१।

५२४—वृषगण । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) श्रेष्ठ ( काव्यम् ) वेद का ( उशना-इव ) काव्य बनाने की इच्छा करता हुआ कवि के समान ( ब्रुवाणः ) उपदेश करता हुआ ( देवः ) आदि देव परमात्मा ( देवानाम् ) सब देवों को ( जनिमा ) जन्म उत्पत्तियों को ( विवक्ति ) विवरण करता है [ वर्णन करता है ] ( महिव्रतः ) महान् संसार की रचना रूप कर्म का करनेवाला ( शुचिबन्धुः ) पवित्र तेजवाला ( पावकः ) शुद्ध [ पवित्र ] करनेवाला ( पदा ) वेद के परमपद को ( वराहः ) उत्तम आहार [ भोजन ] करनेवाला मनुष्य ( अभ्येति ) प्राप्त करता है ( रेभन् ) स्तुति और उपासना करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—सृष्टि रचनारूप महान् कर्म करनेवाला, पवित्र तेजवाला और हमें पवित्र करनेवाला परमदेव परमात्मा कविता रचने की इच्छा करता हुआ कवि के समान वेदरूप काव्य का उत्तम रीति से प्रवचन करता हुआ सब देवों की उत्पत्ति का वर्णन करता है। उत्तम शुद्ध भोजन करनेवाला मनुष्य स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा परमपद को प्राप्त करता है ॥२॥

५२५—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३॥

पदार्थ—( तिस्रः ) तीन प्रकार की ( वाचः ) वाणियों को ( ईरयति ) प्रेरणा करता है ( प्र ) उत्तम ( वह्निः ) आत्मा ( ऋतस्य ) सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का ( धीतिम् ) अनुष्ठान उपाय ( ब्रह्मणः ) ईश्वर के सम्बन्ध की ( मनीषाम् ) बुद्धि की प्रेरणा भी करता है ( गावः ) इन्द्रियाँ ( यन्ति ) प्राप्त होती हैं ( गोपतिम् ) आत्मा को ( पृच्छमानाः ) चाहती हुई के समान ( सोमं ) आत्मा को ( यन्ति ) जनाती हैं ( मतयः ) सारी स्तुतियां ( वावशानाः ) उसी का वर्णन करती हुई ॥३॥

भावार्थ—आत्मा तीन प्रकार की वाणियों की, सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के उपाय की, और ईश्वर विषयक मननशील बुद्धि की प्रेरणा करती है। इन्द्रियाँ आत्मा को चाहती हुई सी प्राप्त होती हैं। सारी स्तुतियाँ आत्मा के वर्णन की कामना करती हुई आत्मा ही को प्राप्त होती हैं, अर्थात् उसी को जनाती हैं ॥३॥

५२६—वसिष्ठः । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥

पदार्थ—( अस्य ) इस ( प्रेषा ) प्रेरणा से ( हेमना ) प्रकाशमान ( पूयमानः ) पवित्र होता हुआ ( देवः ) विद्वान् जीव ( देवेभिः ) दिव्य गुणों से ( समपृक्त ) सम्पर्क करता है ( रसं ) रस को ( सुतः ) उत्पन्न ( पवित्रं ) परमेश्वर को ( पर्येति ) प्राप्त करता है ( रेभन् ) स्तुति करता हुआ ( मिता ) मिननेवाला ( इव ) जैसे ( सद्म ) गृह को ( पशुमन्ति ) पशुयुक्त ( होता ) बुलानेवाला ॥४॥

भावार्थ—इस वेद के सुवर्णवत् प्रकाशमान प्रेरणारूप ज्ञान से पवित्र होता हुआ उत्पन्न विद्वान् जीव दिव्य गुणों द्वारा आनन्द रस का सम्पर्क करता है, तथा स्तुति करता हुआ परमेश्वर को उसी प्रकार प्राप्त करता है जिस प्रकार मिननेवाला तथा बुलानेवाला पशुओं से युक्त गृह को प्राप्त होता है ॥४॥

५२७—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

पदार्थ—( सोमः ) शान्तस्वरूप परमेश्वर ( पवते ) इन लोकों को व्यापन करता है ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( मतीनाम् ) नाना बुद्धियों और स्तुतियों को ( जनिता ) बनानेवाला ( दिवः ) द्युलोक और ( पृथिव्याः ) पृथिवीलोक को ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( अग्नेः ) अग्नि को ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( सूर्यस्य ) सूर्य को ( जनिता ) देह के साथ संयोग करा कर उत्पन्न करनेवाला ( इन्द्रस्य ) जीवात्मा को ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( उत ) और ( विष्णोः ) विविध भांति के यज्ञ को ॥५॥

भावार्थ—नाना प्रकार की स्तुतियों और बुद्धियों को उत्पन्न करनेवाला, द्युलोक तथा पृथिवीलोक, अग्नि तथा सूर्य को उत्पन्न और नियमन करनेवाला, शरीर के साथ संयोगरूप में जीवात्मा और अनेक प्रकार के जीवोपकारक यज्ञों को भी उत्पन्न करनेवाला परमात्मा संसार के सारे लोकों को व्यापन करता है ॥५॥

५२८—वसिष्ठः । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥६॥

पदार्थ—( अभि ) सब तरह से ( त्रिपृष्ठं ) तीन वस्तु, लोक, वेद और विद्वान् अथवा पृथिवी आदि देवों वाले ( वृषणं ) कामनाओं की पूर्ति करनेवाले ( वयोधाम् ) अन्नादि पदार्थों के दाता अथवा बल के दाता ( आङ्गोषिणम् ) स्तुतिसमूह वाले परमेश्वर की ( अवावशन्त ) कामना करती हैं ( वाणीः ) स्तुतिरूप वाणियां ( वना ) जल को ( वसानः ) ग्रहण करता हुआ ( वरुणः ) परमेश्वर ( न ) समान ( सिन्धुः ) समुद्र के ( वि ) विविध प्रकार के

( रत्नधा ) रत्नो को धारण करनेवाले ( दयते ) देता है ( वार्याणि ) चाहने योग्य सम्पत्ति ॥६॥

भावार्थ—वेद की वाणियाँ पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों के अधिष्ठाता, कामनाओं के सफल करनेवाले अन्न तथा यश के दाता, सम्पूर्ण स्तुतियों के अधिकारी परमेश्वर की कामना करती और उसी के गुणों का गान करती हैं। जैसे जल को धारण करनेवाला समुद्र नाना प्रकार के रत्नो को धारण करता हुआ तथा उपाय करनेवालो को देता भी है ऐसे ही परमेश्वर भी अनेक रत्नो को धारण करता तथा चाहने योग्य धनो को देता है ॥६॥

५२९—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ४ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अक्रान्त्समुद्र प्रथमे विधर्म जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपा ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रि ॥७॥

पदार्थ—( अक्रान् ) अधिष्ठाता होता है ( समुद्र ) जीवात्मा वा परमेश्वर ( प्रथमे ) श्रेष्ठ ( विधर्मन् ) विशेष धारण करने और पालन करने मे ( जनयन् ) उत्पन्न करता हुआ ( प्रजा ) अनेक शरीरधारी सृष्टि या सन्तान ( भुवनस्य ) ब्रह्माण्ड वा अपने प्रजावर्ग का ( गोपा ) रक्षक ( वृषा ) ज्ञान की वर्षा करने वाले ( पवित्रे ) शुद्ध सत्य रूप आत्मा मे ( अधिसानि ) शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध के साथ सम्बन्ध करने वाले [नियामक ईश्वरपक्ष मे, जीवात्मा पक्ष मे साक्षात्] ( अव्ये ) ज्ञान स्वरूप वा रक्षा के योग्य ( बृहत् ) महान् ( सोम ) शान्तस्वरूप परमेश्वर वा जीव ( वावृधे ) अपनी कृपा से उत्पन्न करता वा बढ़ता है ( स्वान ) जीवन ज्योति जगाता हुआ वा जीवन धारण करता हुआ ( अद्रि ) पापियो का दण्ड देने वाला वा आदर के योग्य ॥७॥

भावार्थ—अपनी सन्तान और इन्द्रियों का आधार पवित्र धर्म से प्रजा (पुत्र पौत्र) को उत्पन्न करने वाला संसार के नियम का पालन करने वाला, रक्षा के योग्य तथा सच्चे आचरण करने वाले पर कृपा की वर्षा करने वाला शब्द-स्पर्श आदि से सीधा सम्बन्ध रखने वाला महान जीवन धारण करने वाला आदर के योग्य जीवात्मा अपनी शक्ति से उन्नति करता है ॥७॥

५३०—प्रस्कण्व । सोम । त्रिष्टुप् ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमान सीदन्वनस्य जठरे पुनान ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

नृभिर्यत कृणुते निर्णिज गामतो मति जनयत स्वधाभि ॥८॥

पदार्थ—( कनिक्रन्ति ) जानता है [ज्ञान प्राप्त करता है] ( हरि ) दु खो का हरण करने वाला पुरुष ( आ ) सब प्रकार ( सृज्यमान ) संयुक्त किया गया ( सीदन् ) स्थित होकर ( वनस्य ) जगत् के ( जठरे ) मध्य मे ( पुनान ) अपने को पवित्र करता हुआ ( नृभि ) विद्वान् पुरुषो द्वारा ( यत ) जिस प्रकार से ( कृणुते ) करता है ( निर्णिजम ) शुद्ध ( गाम ) स्तुति का ( अत ) इस कारण (मति) स्तुति को (जनयत) करो (स्वधाभि ) अपनी शक्ति द्वारा ॥८॥

भावार्थ—दु खो का हरण चाहनेवाला पुरुष विद्वान् मनुष्यों द्वारा उपासना कार्य मे संयुक्त किया गया अपने को स्वय पवित्र करता हुआ जगत् के मध्य मे बैठ कर ज्ञान प्राप्त करता है और वह जिस प्रकार से शुद्ध स्तुति का उच्चारण करता है ऐसे ही हे मनुष्यो ! तुम भी अपनी शक्ति द्वारा किया करो ॥८॥

५३१—उशना । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र

सहस्रदा शतदा भूरिदावा शश्वत्तम बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९॥

पदार्थ—( एष ) यह ( स्य ) वह ( ते ) तेरा ( मधुमान् ) विज्ञानवान् ( इन्द्र ) हे जीव ! ( सोम ) परमेश्वर ( वृषा ) सुख का वर्षक ( वृष्णे ) यज्ञ द्वारा वर्षा करने वाले ( परि ) सब ओर से ( पवित्रे ) अग्नि आदि पदार्थों में ( अक्षा ) व्यापक हो रहा है। ( सहस्रदा ) सहस्रो देने वाला ( शतदा ) सैकड़ों देनेवाला ( भूरिदावा ) बहुत देनेवाला ( शश्वत्तमम् ) सर्वदा वर्तमान (बर्हि ) आकाश मे (आ) भलीभांति (वाजि) शक्तिमान् ( अस्थात् ) स्थित है ॥९॥

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! विज्ञानवान वह यह परमेश्वर अग्नि आदि पदार्थों में स्थित तथा यज्ञ द्वारा वर्षा करने वाले तुम्ह जीव के लिए सुख की वृष्टि करनेवाला है। वह सर्वदा रहने वाले आकाश में व्यापक हो रहा है। वही सहस्रो, सैकड़ों तथा बहुत धनो का दाता बलवान परमेश्वर सर्वत्र स्थित है ॥९॥

५३२—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधिसानो अव्ये ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपान ॥१०॥

पदार्थ—( पवस्व ) चूता है ( सोम ) सोमरस ( मधुमान् ) मधुर ( ऋतावा ) यज्ञ का साधन ( अप ) जल का ( वसान ) धारण करता हुआ ( अधिसानि ) ऊपर ( अव्ये ) ऊनी पवित्र ( अव ) उपसर्ग है ( द्रोणानि ) घड़े ( घृतवन्ति ) जल से युक्त ( अवरोह ) रक्खा जाता है ( मदिन्तम ) आनन्ददायक (मत्सर ) प्रसन्नता का साधन (इन्द्रपान )यजमान से पान करने योग्य ॥१०॥

भावार्थ—मधुर, यज्ञ का साधन, जलयुक्त, आनन्ददायक, प्रसन्नता का दाता, यजमान आदि के पीने योग्य सोम, ऊन के बने हुए दशा पवित्र से छनता है, पुनः कलश मे रखा जाता है ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

५३३—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सेनानी शूरो अग्रे रथाना गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) श्रेष्ठ ( सेनानी ) सेनापति ( शूर ) संग्राम में उत्साह करने वाला ( अग्र ) आगे ( रथानाम् ) रथो के ( गव्यन् ) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले शत्रु के धनों की प्राप्ति की इच्छा करता हुआ ( एति ) आता है ( हर्षते ) प्रसन्न होती है ( अस्य ) इस सेनापति की ( सेना ) सेना ( भद्राम् ) कल्याणकारक ( कृण्वन ) करता हुआ ( इन्द्रहवा ) आत्मा की पुकारों को ( सखिभ्य ) मित्र पक्ष वालो के लिये, मित्रो के लिये ( आ ) सब तरह ( सोम ) सूर्य जैसे किरणो को विस्तृत कर देता है ( वस्त्रा ) शत्रु को विवश कर देने वाले (रभसानि) शीघ्रतापूर्वक आक्रमणो को (दत्ते) करता है ॥१॥

भावार्थ—शत्रु की भूमि और उस पर उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति पर विजय पाने की इच्छा करता हुआ जनता की पुकारों को अपने सहायक राष्ट्रों के लिये कल्याणकारक सिद्ध करता हुआ वीर सेनापति संग्राम मे सबसे आगे आता है। उस समय उसकी सेना प्रसन्न होती है। जब सेनापति जैसे सूर्य अपनी किरणों से संसार को ढक देता है ऐसे ही शत्रु पर घातक आक्रमण करता है ॥१॥

५३४—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

पवमान पवसे धाम गोना जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कै ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( ते ) तेरी ( धारा ) वेदवाणियाँ ( मधुमती ) विज्ञानमयी ( असृग्रन् ) उत्पन्न होती हैं ( वार ) आवरण को ( यत् ) जब ( पूत ) पवित्र ( अत्येषि ) हटाता है ( अव्यम् ) प्रकृतिसम्बन्धी ( पवमान ) हे पवित्र करने वाले ( पवसे ) गतिमान् हो रहा है ( धाम ) पुञ्ज को ( गोनाम् ) किरणो के ( जनयन् ) उत्पन्न करता हुआ ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अपिन्व ) पूर्ण करता है ( अर्क ) प्रकाश से ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्र करनेवाले परमेश्वर ! पवित्र तू जब प्राकृतिक आवरण को स्वरूप के प्राप्ति मे हटाता है तब तेरी विज्ञानमयी वेदवाणियाँ तुझसे उत्पन्न होती हैं। तू किरणो के प्रकाशपुञ्ज को पैदा करता हुआ गतिशील होता है और प्रकाश से सूर्य को भरपूर करता है ॥२॥

५३५—इन्द्रप्रमति । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ २क २र ३ १ २र ३ १ २र

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोम हिनोत महते धनाय ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

स्वादु पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलश देव इन्दु ॥३॥

पदार्थ—( प्र गायत ) अच्छी प्रकार गान करो ( अभ्यर्च ) भली प्रकार पूजा करो ( देवान ) विद्वानो की ( सोम ) परमेश्वर को ( हिनोत ) प्राप्त करो ( महते धनाय ) महान् धन के लिए ( स्वादु ) स्वादु ( पवताम् ) छन कर बहे ( अति ) अत्यन्त ( वार ) बाल मे ( अव्यम् ) भेड के ( आसीदतु ) स्थिति पावे ( कलश ) घड़े मे ( देव ) उत्तम ( इन्दु ) सोम ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वानो का कीर्तन करो और उनका सत्कार करो, महान् धन की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की उपासना करो। स्वादु और उत्तम सोमरस दशा पवित्र से छन कर द्रोणकलश में स्थिति पावे ॥३॥

५३६—वसिष्ठ । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाज सनिष्यन्नयासीत् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र गच्छन्नायुधा स शिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधान ॥४॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( हिन्वान ) प्रेरणा देता हुआ ( जनिता ) उत्पादक ( रोदस्यो ) द्यु और पृथिवी लोक को ( रथः न ) सूर्य के समान ( वाजं ) अन्न को ( सनिष्यन् ) देता हुआ ( अयासीत् ) प्राप्त कराता है ( इन्द्रम् ) विद्युत्, सूर्य और जीव को ( गच्छन् ) जानता हुआ ( आयुधा ) जलादिकों को ( संशिशान ) सूक्ष्म करता हुआ ( विश्वावसु ) सकल सम्पदाओं को ( हस्तयो ) हाथों में ( आदधानः ) देता हुआ ॥४॥

भावार्थ—द्यु और पृथिवी लोक का उत्पादक तथा उत्तम भावों की प्रेरणा देता हुआ परमेश्वर अन्न आदि को देता तथा सूर्य, विद्युत् और जीव को यथा योग्य जानता हुआ जल आदि को सूक्ष्म करता हुआ हाथों के समान धारण और आकाश में लोकों को धारण करते हुए आदित्य के समान सकल सम्पदाओं को प्राप्त कराता है ॥४॥

५३७—वसिष्ठ । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्म द्युक्षोरनीके ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥

पदार्थ—( तक्षत ) सूक्ष्म हो जाती है ( यदि ) जब ( मनस ) मन की ( वेनत ) कामना करनेवाले ( वाक ) वाणी ( ज्येष्ठस्य ) ज्येष्ठ ( धर्म ) धर्म विषय में ( द्युक्षो ) दीप्त तेजवाले ( अनीके ) प्रमुख ( आत् ) उसके बाद ( ईम् ) उस ( आयन् ) प्राप्त करते हैं ( वरम् ) वरणीय ( आ ) सब प्रकार से ( वावशानाः ) कामना करनेवाले ( जुष्टं ) प्रेमपात्र ( पतिं ) पालक ( कलशे ) हृदय कलश ( गाव ) विद्वान् ( इन्दुम ) परमेश्वर को ॥५॥

भावार्थ—जब कामनायुक्त ज्येष्ठ [श्रेष्ठ] प्रकाशशील मन की स्तुतिरूप वाणी प्रमुख उपासना रूप धर्म विषय में स्थिति पा लेती या सूक्ष्म हो जाती है, तब इस प्रीतिपात्र पालक तथा वरणीय परमेश्वर को कामना करनेवाले हृदय कलश में ज्ञानी जन प्राप्त करते हैं ॥५॥

५३८—नोधा । सोम । त्रिष्टुप ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६॥

पदार्थ—( साकमुक्ष ) एक साथ सेचनादि व्यापार करनेवाली ( मर्जयन्त ) शुद्ध करती ( स्वसार ) गतिशील ( दश ) दस ( धीरस्य ) धीर पुरुष की ( धीतय ) अंगुलियां ( धनुत्री ) क्षेपणयुक्त ( हरि ) हरित वर्णवाला ( पर्यद्रवत ) फैलता है ( जा ) उत्पन्न ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( द्रोणं ) द्रोण कलश ( ननक्षे ) व्यापता है ( अत्यः न ) वायु के समान ( वाजी ) बलवान् ॥६॥

भावार्थ—एक साथ सेचन करनेवाली गतिशील तथा उत्तम क्षेपणवाली धीर पुरुष की दश अंगुलियाँ सोम को शुद्ध करती हैं। पुनः हरित वर्ण वाला सोमरस वेगवान् वायु के समान सूर्य से उत्पन्न दिशा में (अर्थात् घड़े से सम्बन्ध रखनेवाली दिशाओं में ) फैलता है और घड़े का गन्ध व्याप्त हो जाता है ॥६॥

५३९—कण्व । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७॥

पदार्थ—( अधि ) में ( यत् ) जिस तरह ( अस्मिन् ) इसमें ( वाजिनि ) घोड़े पर ( शुभ ) शोभायमान ( इव ) समान ( स्पर्धन्ते ) स्पर्धा करते हैं ( धियः ) ज्ञानी जन ( सूरे ) सूर्य में ( विशः ) जन ( न ) समान ( अपः ) कर्म को ( वृणानः ) करता हुआ ( पवते ) प्राप्त करता है ( कवीयन् ) मेधावी पुरुष ( व्रजम् ) गोशाला को ( न ) समान ( पशुवर्धनाय ) पशुओं की वृद्धि के लिए ( मन्म ) मन को ॥७॥

भावार्थ—जैसे बलवान् घोड़े पर सवार, सूर्य में शोभायमान किरणें शोभा पाती हैं और स्पर्धा करती हैं, उसी प्रकार ज्ञानी जन इस परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्पर्धा करते हैं। जिस प्रकार चतुर गोपाल पशुओं की वृद्धि के लिए गोशाला में जाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कर्म को करता हुआ मेधावी पुरुष मन को प्राप्त होता और उसे शुद्ध करता है ॥७॥

५४०—मन्यु । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥८॥

पदार्थ—( इन्दु ) ऐश्वर्यवान् ( वाजी ) बलवान् ( पवते ) पवित्र करता है ( गोन्योघाः ) इन्द्रियों के समूहवाला ( इन्द्रे ) परमेश्वर में ( सोमः ) जीवात्मा ( सह ) बल को ( इन्वन् ) प्राप्त होता हुआ ( मदाय ) आनन्द के लिए ( हन्ति ) हनन करता है ( रक्षः ) बुराई का ( बाधते ) संहार करता है ( परि अरातिम् ) काम, क्रोधादि शत्रु का ( वरिवस्कृण्वन् ) आनन्दधन को प्राप्त करता हुआ ( वृजनस्य ) महान् बल का ( राजा ) राजा ॥८॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान्, बलवान् तथा इन्द्रिय समूहवाला यह जीवात्मा परमेश्वर में बल को प्राप्त होता हुआ अपने को पवित्र करता है। वह बुराई का हनन करता है, काम-क्रोध रूप शत्रु का संहार करता है तथा वरणीय आनन्दधन को प्राप्त करता हुआ महान् बल को प्राप्त होता है ॥८॥

५४१—कुत्स । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९॥

पदार्थ—( अया ) इस ( पवा ) मार्ग से ( पवस्व ) प्रदान कर ( एना ) इन ( वसूनि ) सम्पदाओं को ( मांश्चत्व ) अभिमान का नाश करनेवाला ( इन्दो ) ऐश्वर्यशील ( सरसि ) गतिशील मार्ग पर ( प्रधन्व ) प्रेरणा कर (चला) ( ब्रध्न ) महान् ( चित् ) ही ( यस्य ) जिस तेरी ( वातो न ) वायु के समान ( जूतिं ) गति को ( पुरुमेधा ) अनन्त ज्ञानवाला ( तकवे ) स्तुति करनेवाले के लिए ( नरं ) सन्तान को ( धात ) देता है ॥९॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर! अभिमान नाशक महान् अत्यन्त ज्ञानवाला तू इस मार्ग से इन धनों को प्राप्त करा, अच्छे मार्ग पर चला, वेग को वायु के समान स्तुति करने वाले के लिए उत्तम मनुष्य दे ॥९॥

५४२—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०॥

पदार्थ—( महत् ) महान् ( तत ) उसका काम है ( सोमः ) शान्तस्वरूप परमेश्वर ( महिष ) महान् ( चकार ) करता है ( अपां ) पञ्चभूतों (तत्त्वों) को ( गर्भ ) आधार होकर ( अवृणीत ) उनका अधिष्ठाता होता है ( देवान् ) इन्द्रियों का ( अदधात् ) देता है ( इन्द्रे ) आत्मा में ( पवमानः ) विशेष ज्ञान की शक्ति से पवित्र करता हुआ ( ओज ) अणिमा महिमा आदि बल भी देता है ( अजनयत ) उत्पन्न करता है ( सूर्ये ) सूर्य में ( ज्योति ) प्रकाश ( इन्दु ) परम ऐश्वर्यशाली ॥१०॥

भावार्थ—परम ऐश्वर्यवाला परमात्मा महान् है। उसका कार्य भी महान् है। वह पाँच तत्त्वों का अधिष्ठाता और उनका उत्पन्न करनेवाला है। वह जीवों को इन्द्रियाँ और उन इन्द्रियों में बल देता है। सूर्य में प्रकाश भी वही देता है ॥१०॥

५४३—काश्यप । सोम । त्रिष्टुप ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ ३ १ २

दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥११॥

पदार्थ—( असर्जि ) छोड़े जाते हैं ( वक्वा ) नायक के द्वारा ( रथ्ये ) रथयुक्त ( यथा ) जैसे ( आजौ ) संग्राम में ( धिया ) बुद्धि से ( मनोता ) मन की संलग्नतायुक्त ( प्रथमा ) मुख्य ( मनीषा ) मन की स्वामिनी ( दश ) दस ( स्वसार ) अंगुलिए ( अधिसानो ) पाषाण खण्ड में ( अव्ये ) दशा पवित्र में ( मृजन्ति ) शुद्ध करती हैं ( वह्नि ) यज्ञ को पूरा करनेवाले ( सदनेषु ) स्थानों में ॥११॥

भावार्थ—जिस प्रकार रथयुक्त संग्राम में नायक के द्वारा उत्तम मन की संलग्नतायुक्त तथा मनीषी स्वामी की बुद्धि से घोड़े आदि छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार सोम के निचोड़नेवाली दश अंगुलियाँ पाषाण खण्ड में तथा सोम के स्थानों में अच्छी प्रकार यज्ञ को पूरा करनेवाले सोम को शुद्ध करती हैं ॥११॥

५४४—प्रस्कण्व । सोम । त्रिष्टुप ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२॥

पदार्थ—( अपां ) जलों के ( इव ) समान ( इत ) ही ( ऊर्मयः ) लहरों के ( तर्तुराणाः ) शीघ्रता से चलनेवाली ( प्र ) उत्तम ( मनीषा ) स्तुतियाँ ( ईरते ) की जाती हैं ( सोमं ) परमेश्वर को ( अच्छ ) भलीप्रकार ( नमस्यन्तीः ) नमस्कार करती हुई ( उप ) समीप ( च ) और ( यन्ति ) प्राप्त होती हैं ( सं ) भलीभाँति ( च ) और ( आ ) भली प्रकार ( च ) भी ( विशन्ति ) प्राप्त कर लेती हैं ( उशतीः ) कामना करती हुई ( उशन्तम् ) वाञ्छनीय ॥१२॥

भावार्थ—जल की शीघ्रगामिनी लहरों के समान कामना करती हुई, सब के चाहने योग्य परमेश्वर के प्रति नमस्कारमयी स्तुतियां सब भांति उस तक पहुँचती हैं और उसको प्राप्त करती हैं ॥१२॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

५४५—श्यावाश्व । सोम । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—( पुर ) समूह को ( जिती ) जीतने के लिए ( वः ) तुम लोग ( अन्धसः ) अन्धकार के ( सुताय ) संसार के भोग के लिए ( मादयित्नवे ) सुख देने वाले ( अप ) दूर ( श्वानं ) कुत्ते के समान ( श्नथिष्टन ) दूर करो ( सखायः ) हे मित्रो ! ( दीर्घजिह्व्यम् ) जीभ की लोलुपता को ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अज्ञानान्धकार पर विजय पाने के लिए इन्द्रिय लोलुपता को दूर भगा दो, जो सुख देने वाले विषयभोग के पीछे कुत्ते की तरह भागती हैं ॥१॥

५४६—ययाति । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
१ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२॥

पदार्थ—( अयम् ) यह ( पूषा ) हमें पुष्ट करनेवाला ( रयि ) सम्पत्ति है ( भग ) भजन करने के योग्य ( सोम ) शान्तस्वरूप परमेश्वर ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( अर्षति ) व्यापक हो रहा है ( पति ) स्वामी है ( विश्वस्य ) विशाल ( भूमन ) बहुत बड़े ऐश्वर्य का ( व्यख्यत् ) प्रकाशित करता है ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोकों को ( उभे ) दोनों ॥२॥

भावार्थ—पुष्ट करनेवाला, सम्पदाओं का भंडार, स्वयं पवित्र तथा संसार को पवित्र करनेवाला वह परमेश्वर सर्वव्यापक है, वह महान् ऐश्वर्य का स्वामी द्यु और पृथिवी लोकों को प्रकाशित करता है ॥२॥

५४७—ययाति । सोम । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥३॥

पदार्थ—( सुतासः ) तैयार किए गए ( मधुमत्तमाः ) अत्यन्त मधुर ( सोमाः ) अनेक प्रकार के सोमरस ( इन्द्राय ) आत्मा के लिए ( मन्दिनः ) आनन्ददायक [सिद्ध हों] ( पवित्रवन्तः ) वे पवित्रतायुक्त ( अक्षरन् ) पात्र में चुआए जाएं ( देवान् ) देवों को ( गच्छन्तु ) प्राप्त हों ( वः ) इनका ( मदाः ) आनन्द ॥३॥

भावार्थ—अत्यन्त मधुर, आनन्ददायक निचोड़े और पवित्र किए गए अनेक प्रकार के सोमरस जीव के लाभार्थ पात्र में टपकते हैं। इनके आनन्द इन्द्रियों और विद्वानों को प्राप्त हों ॥३॥

५४८—मनु । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥४॥

पदार्थ—( सोमाः ) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान जन ( पवन्ते ) प्राप्त होते हैं ( इन्दवः ) तेजस्वी ( अस्मभ्यं ) हमें ( गातुवित्तमाः ) मार्ग दिखाने वाले ( मित्राः ) स्नेही ( स्वानाः ) स्वतन्त्र जीवन वाले ( अरेपसः ) पापों से रहित ( स्वाध्यः ) भली भांति ध्यान करने वाले ( स्वर्विदः ) स्वर्गीय सुखों को सिद्ध कराने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेजस्वी उत्तम मार्ग दिखाने वाले स्नेही, स्वतन्त्र जीवन वाले, पापों से रहित, भली भांति ध्यान करने वाले और हमारी सारी स्वर्गीय कामनाएं सिद्ध कराने वाले, विद्या और उम्र में बड़े विद्वान् पुरुष हमें प्राप्त हों ॥५॥

५४९—अम्बरीष ऋजिश्वानौ । सोम । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥५॥

पदार्थ—( अभी ) सब प्रकार से ( वाजसातमं ) पर्याप्त बल प्रदान करने वाले ( रयिं ) धन को ( अर्ष ) दे ( शतस्पृहम् ) जिसको सैकड़ों लोग चाहें ( इन्दो ) ऐश्वर्यशाली ( सहस्रभर्णसं ) हजारों तरह पुष्ट करने वाले ( नः ) हमें ( तुविद्युम्न ) बहुत यशदायक ( विभासहम् ) शत्रुओं को नीचा दिखाने वाले ॥५॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू पूर्ण बल प्रदान करने वाले, सैकड़ों लोगों को चाहने योग्य, हजारों प्रकार से पुष्ट करने वाले, यशदायक और शत्रुओं को भी नीचा दिखाने वाले धन हमें दे ॥५॥

५५०—रेभसूनु । सोम । अनुष्टुप् ।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥६॥

पदार्थ—( अभी ) सब प्रकार से ( नवन्ते ) झुकते हैं ( अद्रुहः ) द्रोह नहीं करने वाले ( प्रियम् ) प्यारे अमृत की ओर ( इन्द्रस्य ) आत्मा के ( काम्यम् ) कामना करने के योग्य ( वत्सम् ) बच्चे को जैसे ( पूर्वे ) पहली ( आयुनि ) अवस्था [उमर] में ( जातम् ) उत्पन्न हुए ( रिहन्ति ) प्यार करती हैं ( मातरः ) मातायें ॥६॥

भावार्थ—जिस प्रकार अपनी पहली संतानों को मातायें प्यार करती हैं, उसी प्रकार द्रोह न करने वाले मनुष्य कामना के योग्य उस प्यारे प्रभु की ओर झुकते हैं ॥६॥

५५१—रेभसूनु । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥७॥

पदार्थ—( आ हर्यताय ) दूसरे के अपकार में रत ( धृष्णवे ) धृष्ट ( धनुः ) धनुष को ( तन्वन्ति ) तानते हैं ( पौंस्यम् ) पुरुषार्थ के द्योतक ( शुक्राः ) वीर्यवान् ( वियन्ति ) लड़ते हैं ( असुराय ) दुष्ट ( निर्णिजे ) रूप की रक्षा के लिए ( विपाम् ) बुद्धिमानों के ( अग्रे ) आगे ( महीयुवः ) भूमि की कामना करने वाले ॥७॥

भावार्थ—वीर्यवान पुरुष पराये के अपकार में रत, धृष्ट तथा आक्रमण करने वाले पुरुषार्थ के द्योतक धनुष को तानते हैं। भूमि की कामना वाले विद्वानों के आगे वर्तमान हुए रूप की रक्षा के लिये लड़ते हैं ॥७॥

५५२—अहमीयुराङ्गिरसः । सोम । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥८॥

पदार्थ—( परि ) सब ओर से ( त्यं ) उस ( हर्यतं ) मनोहर ( हरिं ) हरण करने वाले ( बभ्रुं ) शुभ्रवर्ण ( पुनन्ति ) पवित्र करते हैं ( वारेण ) वितर्क आदि के विरुद्ध भावना करके ( यः ) जो ( देवान् ) देवों को ( विश्वान् ) सब ( इत् ) ही ( परि ) सब तरह ( मदेन ) आनन्द के ( सह ) साथ ( गच्छति ) प्राप्त करता है ॥८॥

भावार्थ—योगी पुरुष शुद्ध बनने के योग्य आत्मा को वितर्कों के विरुद्ध भावना से पवित्र करते हैं। आत्मा मनोहर और शुद्ध स्वरूप होती है। वह आनन्द के साथ सारी इन्द्रियों को प्राप्त होती है ॥८॥

५५३—प्रजापति । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥९॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सुन्वानाय ) उत्तम कर्म करने वाले के ( अन्धसः ) अज्ञानान्धकार से ( मर्तः ) मनुष्य ( न ) नहीं ( वष्ट ) चाहता है ( तत् ) उस ( वचः ) वचन को ( अपश्वानम् ) निकृष्ट कुत्ते की वृत्तिवाले को ( अराधसम् ) न उपासना करने वाले को ( हता ) हटाओ ( मखम् ) अपरोपकार के कार्य को [अनुत्तम कार्य को] ( न ) समान ( भृगवः ) ज्ञानीजन के ॥९॥

भावार्थ—अज्ञानान्धकार के कारण मनुष्य यज्ञ आदि उत्तम कर्म के करने वाले मनुष्य के वचन को नहीं सुनता। हे मनुष्य ! तू कुत्ते के समान वृत्तिवाले इस न उपासना करने वाले को उसी प्रकार दूर हटा जैसे ज्ञानीजन बुरे कार्यों को दूर हटाते हैं ॥९॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

५५४—कवि । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ २उ   ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
१ २र   ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २   १ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) समक्ष ( प्रियाणि ) प्रिय ( पवते ) पवित्र करता है ( चनोहितः ) अन्न को धारण करने वाला ( नामानि ) अनेक नामों को ( यह्वः ) महान् ( अधि ) अधिक ( येषु ) जिनमें ( वर्धते ) बढ़ता है ( आ ) सब प्रकार से ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( बृहतः ) महान् ( बृहन् ) वृद्धि करने वाला ( अधि ) ऊपर ( रथम् ) रथ पर ( विष्वञ्चम् ) चारों तरफ चलने वाले ( अरुहत् ) चढ़ता है ( विचक्षणः ) विश्व का द्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—अन्न आदि भोग्य पदार्थों को धारण करने वाला महान् यह आत्मा जिन प्यारे नामों को पवित्र करता है वह उन्हीं से उन्नति करता है । अनेक प्रकार से देखने वाला वह महान सूर्य के भी प्रकाश रूप, रथ पर चढ़ता है, अर्थात् मोक्षविषयिणी दशा को प्राप्त होता है ॥१॥

५५५—कवि । सोम । जगती ।

३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३२ ३ १ २
अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥२॥

पदार्थ—( अचोदसः ) बिना किसी प्रेरणा के ( नः ) हमें ( धन्वन्तु ) पहुँचावें ( इन्दवः ) परम ऐश्वर्यशाली ( प्र ) उत्तम ( स्वानासः ) उपदेश करने वाले ( बृहद्देवेषु ) महान् दिव्य गुणों में ( हरयः ) अज्ञाननाशक ( विचित् ) निर्गत ( अश्नानाः ) विषयवाले ( इषयः ) विषयेच्छावाले ( अरातयः ) दुःखदायी ( अर्यः ) कामादि शत्रु ( नः ) हमारे ( सन्तु ) हों ( सनिषन्तु ) विभक्त हों ( नः ) हमारे ( धियः ) ज्ञान और कर्म ॥२॥

भावार्थ—बिना प्रेरणायुक्त उपदेश करनेवाले, अज्ञाननिवारक तथा ऐश्वर्यवान् ज्ञानीजन हमें महान् दिव्य गुणों को प्राप्त करावें । हमारे दुःखदायी, विषयेच्छा वाले काम आदि शत्रु विषयरहित हों । हमारे ज्ञान और कर्म विभक्त हों ॥ २ ॥

५५६—कवि । सोम । जगती ।

३ उ   २ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
३ २ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३   १ २   ३ १ २   ३ १ २
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥३॥

पदार्थ—( एष ) यह ( प्र ) उत्तम ( कोशे ) आनन्दमय कोश मे ( मधुमान् ) ज्ञानयुक्त ( अचिक्रदत् ) साक्षात् करता है ( इन्द्रस्य ) जीवात्मा के ( वज्रः ) वर्जन करने हारे ( वपुषः ) शरीर के ( वपुष्टमः ) अत्यन्त रूपवान् ( ऋतस्य ) सत्य का ( सुदुघा ) सुन्दरता से दोहन करनेवाला ( घृतश्चुतः ) प्रकाशयुक्त ( वाश्राः ) शब्दमयी ( अर्षन्ति ) प्राप्त होती हैं ( पयसा ) ज्ञान के साथ ( धेनवः ) वेदवाणियें ( च ) और ॥ ३ ॥

भावार्थ—ज्ञान-विज्ञानयुक्त, दुर्गुणों का वर्जन करने हारा तथा अत्यन्त रूपवान् यह विद्वान् पुरुष जीवात्मा के शरीर के मध्यवर्ती आनन्दरूप कोश में पहुँचता है । सत्य का उत्तमता से दोहन करनेवाली प्रकाशयुक्त तथा शब्दमयी वेदवाणियां ज्ञान के साथ इस विद्वान् को प्राप्त होती हैं ॥३॥

५५७—ऋजिश्वा । सोम । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २   ३ २उ ३ २ ३ १ २र   ३ १ २
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
१ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥४॥

पदार्थ—( प्रो ) उत्तम ( अयासीत् ) प्राप्त करता है ( इन्दुः ) परम ऐश्वर्यशाली जीवात्मा ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर का ( निष्कृतम् ) शुद्ध सम्पर्क ( सखा ) मित्र ( सख्युः ) प्रेमी जीव की ( न ) नहीं ( प्रमिनाति ) नाश करता है ( सङ्गिरम् ) स्तुति को ( मर्य इव ) मनुष्य के समान ( युवतिभिः ) युवतियों के साथ ( समर्षति ) सम करता है ( सोमः ) शान्तस्वरूप परमेश्वर ( कलशे ) कलश रूप जीवात्मा का ( शतयामना पथा ) सैकड़ों मार्गों से ॥४॥

भावार्थ—जीवात्मा परमात्मा के पवित्र सम्बन्ध को प्राप्त करता है, मित्र के समान प्रभु अपने मित्र जीव की स्तुति को व्यर्थ नहीं जाने देता । जैसे मनुष्य युवतियों के संग करता है, वैसे ही वह जीव अनेकों मार्गों से शरीर में कर्मानुसार प्राप्त होता है ॥४॥

५५८—कवि । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
१ २   ३ २उ   ३ १ २र ३ २ ३   १ २   ३ २
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥५॥

पदार्थ—( धर्ता ) धारण करनेवाला ( दिवः ) द्युलोक का ( पवते ) व्यापक हो रहा है ( कृत्व्यः ) उत्पादक ( रसः ) आनन्दस्वरूप ( दक्षः ) शक्तिशाली ( देवानाम् ) देवों वा दिव्य पदार्थों का ( अनुमाद्यः ) स्तुत्य ( नृभिः ) मनुष्यों द्वारा ( हरिः ) दुःखहर्ता ( सृजानः ) जगत् कर्त्ता ( अत्यः न ) वायु के समान ( सत्वभिः ) शक्तियों से ( वृथा ) बिना प्रयास ( पाजांसि ) बल को ( कृणुषे ) पैदा करता है ( नदीषु ) नदियों में ( आ ) भलीभांति ॥५॥

भावार्थ—ज्ञानधारी मनुष्यों द्वारा स्तुत्य तथा दिव्य पदार्थों का उत्पादक, द्युलोक का धारक, जगत् का कर्त्ता आनन्दस्वरूप शक्तिशाली तथा दुःखहर्ता परमेश्वर वायु के समान व्यापक हो रहा है तथा नदी के प्रवाहों में बिना प्रयास ही बल पैदा कर देता है ॥५॥

५५९—त्रितः । सोम । जगती ।

१ २ ३ १ २   ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
३ १ २र ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥६॥

पदार्थ—( वृषा ) वर्षक ( मतीनाम् ) ज्ञानों का ( पवते ) व्यापक हो रहा है ( विचक्षणः ) अत्यन्त ज्ञानी ( सोमः ) परमेश्वर ( अह्नाम् ) रात्रि का ( उषसाम् ) उषाओं का ( प्रतरीता ) प्रकाश करनेवाला ( दिवः ) द्यौ का ( प्राणा ) पूर्ण करनेवाला ( सिन्धूनाम् ) नदियों का ( कलशान् ) घट घट में ( अचिक्रदत् ) उपदेश करता है ( इन्द्रस्य ) जीव के ( हार्दि ) हृदय में ( आविशन् ) प्रविष्ट होता है ( मनीषिभिः ) स्तुतियों से ॥६॥

भावार्थ—ज्ञानों की वर्षा करनेवाला, अत्यन्त ज्ञानी, रात्रि दिन और उषा का प्रकाशक, नदियों को वृष्टि द्वारा पूरा करनेवाला परमेश्वर घट घट में व्यापक हो रहा है । वह जीव के हृदय में प्रकट होता है और स्तुतियो द्वारा उपदेश करता है ॥६॥

५६०—रेणु । सोम । जगती ।

१ २   ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १   २
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
३ २ ३ १ २र   ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥७॥

पदार्थ—( त्रिः ) तीन अवस्थाओं में [उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में ] ( अस्मै ) जीवात्मा के लिए ( सप्त ) सात [ शिरस्थित ] प्राण ( दुदुह्रिरे ) पूर्ण करते हैं ( सत्याम् ) सच्चा ( आशिरम् ) ज्ञान ( परमे ) सबसे बढ़ कर ( व्योमनि ) ज्ञानयज्ञ मे ( चत्वारि ) चार ( अन्या ) अन्य ( भुवनानि ) अवस्थाए [ जागृतादि भी] ( निर्णिजे ) आत्मा के स्वरूप प्राप्ति के लिए होती हैं । ( चारूणि ) उनको उत्तम ( चक्रे ) बनाता है ( यत् ) जो ( ऋतैः ) यज्ञो से ( अवर्धत ) बढ़ाता है ॥७॥

भावार्थ—सिर के सात प्राण तीनों कालो मे आत्मा के लिए, ज्ञानयज्ञ की अवस्था में सच्चे ज्ञान को पूर्ण करते हैं । आत्मा के मोक्ष तथा भिन्न भिन्न स्वरूप प्राप्ति के लिये भिन्न भिन्न चार अवस्थाए बनाई गई हैं, वे सच्चे यज्ञों के द्वारा प्राप्त की जाती हैं ॥७॥

अथवा

पदार्थ—( त्रिः ) तीन प्रकार [ आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ] ( सप्त ) सात छन्दोंवाली ( धेनवः ) वेदवाणियां ( दुदुह्रिरे ) दोहन करती हैं ( सत्याम् ) सच्चा ( आशिरम् ) ज्ञान को ( परमे ) परमोत्कृष्ट ( व्योमनि ) आकाशवत् व्यापक ब्रह्म में ( चत्वारि ) चार [ विज्ञान, कर्म, उपासना, ज्ञान ] ( अन्या ) अन्य ( भुवनानि ) विषयों को ( निर्णिजे ) स्वरूप लाभ के लिए ( चारूणि ) सुन्दर ( चक्रे ) करता है ( यत् ) जब ( ऋतैः ) शिष्ट नियमों से [ ज्ञान से ] ( अवर्धत ) वृद्धि कर लेता है ॥७॥

भावार्थ—जब विद्वान् पुरुष सृष्टि के परमेश्वरीय नियमो और ज्ञान से अपने को उन्नत कर लेता है तब सात प्रकार के छन्दों वाली वेदवाणियां इसको आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन विषयों म ज्ञानरूप दुग्ध से परिपूर्ण करती हैं और यह विद्वान् पुरुष महान् आकाशवत् व्यापक ब्रह्म के आश्रय में विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान को स्वरूप लाभ के लिए उत्तम बनाता है ॥७॥

५६१—वेनः । सोमः । जगती ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र   ३ १ २   ३ २
इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
२ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥८॥

पदार्थ—( इन्द्राय ) जीवात्मा के लिए ( सोम ) हे शान्तस्वरूप प्रभो ! ( सुवुन ) भलीभांति ध्यान किया हुआ ( परिस्रव ) ज्ञान का स्रोत खोल दे [ कृपा कर ] ( अप ) दूर ( अमीवा ) रोग ( भवतु ) हो ( रक्षसा सह ) राक्षसी विचार के साथ ( मा ) नहीं ( ते ) तेरे ( रसस्य ) रसका ( मत्सत ) आनन्द प्राप्त करते हैं ( द्वयाविन ) वञ्चक [ मन में कुछ, वाणी में कुछ और करें कुछ और ] ( द्रविणस्वन्त ) ऐश्वर्यवाले ( इह ) इस ध्यानयज्ञ मे ( सन्तु ) हों ( इन्दव ) परम तेजवाले योगी जन ॥८॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमात्मा ! तू ध्यान किए जाने पर जीवात्मा के लिए ज्ञान का स्रोत खोल दे, बुरे विचारो के साथ रोग भी दूर हो। वञ्चक और कपटी आनन्द के भागी नहीं होते [ किन्तु ] इस ध्यानरूप यज्ञ में ज्ञानी जन ही सफल होते हैं ॥८॥

५६२—भरद्वाजो वसु । सोम । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २र

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥९॥

पदार्थ—( असावि ) उत्पन्न किया जाता है ( सोम ) सूर्य ( अरुष ) रूपवान् ( वृषा ) वृष्टिकर्त्ता ( हरी ) हरणशील ( राजा ) प्रकाशमान ( इव ) सम्प्रति ( दस्म ) अन्धकार का विनाशक ( अभि ) सब ओर से ( गा ) पृथिवी आदि पदार्थों को ( अचिक्रदत् ) विकल करता है ( पुनान ) पवित्र करने हारा ( वारम्) आवरण को ( अत्येषि) दूर करता है ( अव्ययम् ) मेघसम्बन्धी ( श्येन ) आत्मा के ( न ) समान ( योनिं ) प्रकृति ( घृतवन्तम् ) प्रकाशयुक्त आकाश में ( आसदत ) स्थित है ॥९॥

भावार्थ—रूपवान जल की वर्षा करनेवाला, पवित्र करने हारा, हरणशील अन्धकार का विनाशक तथा प्रकाशमान सूर्य परमेश्वर द्वारा उत्पन्न किया गया है, वह पृथिवी आदि पदार्थों को अपने प्रचण्ड धूप से विकल करता है। वह पार्वती अथवा मेघ सम्बन्धी आवरण को भी अतिक्रान्त कर लेता है और प्रकृति के घोसले में स्थित आत्मा के समान वह प्रकाशयुक्त आकाशस्थान अर्थात् द्युलोक मे स्थित है ॥९॥

५६३—वत्सप्री । सोम । जगती ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनव ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभि परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१०॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( देवम् ) देवों के देव का ( अच्छा ) लक्ष्य कर ( मधुमन्त ) मधुर गुणवाले ( इन्दव ) ऐश्वयवाले योगीजन ( असिष्यदन्त ) धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं ( गाव ) किरणें ( आ ) सब प्रकार से ( न ) समान (धेनव ) रस खींचने वाली ( बर्हिषद ) आसन पर बैठते हुए ( वचनावन्त ) वेदमन्त्रो के पाठ के करनेवाले (ऊधभि ) स्तनो से (परिस्रुतम् ) टपकने वाले दूध को (उस्रिया) गायें जैसे ( निर्णिज ) शुद्ध ( धिरे ) धारण करती हैं ॥१०॥

भावार्थ—प्रेम मे पगे हुए ज्ञानी पुरुष रस का हरण करनेवाली सूर्य की किरणों के समान परमेश्वर को प्राप्त होते हैं आसन पर स्थित स्तुति करते हुए वे परमेश्वर के आनन्द को उसी प्रकार धारण करते हैं जैसे गायें स्तन से चूने वाले पवित्र दूध को धारण किए रहती हैं ॥१०॥

५६४—वत्सप्री । सोम । जगती ।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावा पशुमप्सु गृभ्णते ॥११॥

पदार्थ—( अञ्जते ) विवेचन करते हैं ( व्यञ्जते ) विशेष विचार करते हैं ( समञ्जते ) भलीभांति विचार करते हैं ( क्रतुम् ) संसार के करनेवाले का ( रिहन्ति ) आनन्द अनुभव करते हैं विद्वान् जन ( मध्वा ) ज्ञान के साथ ( अभ्यञ्जते ) तुलना करते हैं ( सिन्धो ) सागर के ( उच्छ्वासे ) प्रवाह में ( पतयन्तम् ) बहने वाले ( उक्षणम् ) शक्तिशाली ( हिरण्यपावा ) सुवर्ण अथवा तेज से पवित्र ज्ञानी लोग ( पशुम ) पशु के समान ज्ञानी को ( अप्सु ) अज्ञातरूप जल में डूबे हुए को ( गृभ्णते ) निकाल लेते हैं ॥११॥

भावार्थ—विद्या के तेज से तेजस्वी उपासक जन जगत्-कर्त्ता परमेश्वर का विचार करते हैं, अनुभव करते हैं उसको जानते हैं और ज्ञान के साथ उसको प्राप्त करते हैं। संसार सागर में गिरे हुए अज्ञानी पुरुष को ज्ञानी जन गिरने से बचाते हैं ॥११॥

५६५—पवित्र । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्त सं तदाशत ॥१२॥

पदार्थ—( पवित्रं ) पवित्रता (ते) तेरी (विततम्) विस्तृत है (ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के स्वामी ईश्वर ( प्रभु ) तू प्रभु [ शक्तिमान् है ] ( गात्राणि ) संसार के प्रत्येक अवयवों में ( पर्येषि ) व्यापक हो रहा है ( विश्वत ) सब ओर से ( अतप्ततनू ) तपस्या नहीं करनेवाला ( न ) नहीं ( तत् ) उस पवित्रता को ( आम ) अपरिपक्वबुद्धि का मनुष्य ( अश्नुते ) पाता है ( शृतास ) परिपक्व बुद्धि वाले ( इत् ) ही ( वहन्त ) धारण करते हुए ( तत ) उस पवित्रता को ( आशत ) पाते हैं ॥१२॥

भावार्थ—हे वेदों के स्वामी परमेश्वर ! तेरी पवित्रता विशाल है, तू शक्तिशाली है तू घट घट मे भलीभांति व्यापक हो रहा है। जिसने तपस्या नहीं की और जो अपरिपक्व बुद्धि है वह तुझे नहीं पा सकता किन्तु पक्की बुद्धि वाला ही तेरे पवित्र तेज को पा सकता है ॥१२॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

५६६—अग्नि । सोम । उष्णिक ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरय । श्रुष्टे जातास इन्दव स्वर्विद ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) परमेश्वर को ( अच्छ ) लक्ष्य कर ( सुता ) पुत्र ( इमे ) ये ( वृषणम् ) कामनाओ की वर्षा करनेवाले ( यन्तु ) प्राप्त हों ( हरय ) अज्ञान के हरण करनेवाले ( श्रुष्टे ) सुखपूर्वक ( जातास ) उत्पन्न ( इन्दवः ) योग के ऐश्वय से युक्त ( स्वर्विद ) सब जानने वाले ॥१॥

भावार्थ—अज्ञान को दूर करनेवाले सुखपूर्वक उत्पन्न, सब तरह की जानकारी रखनेवाले, ये पुत्रस्वरूप, ज्ञानी पुरुष कामनाओं की वर्षा करनेवाले परमेश्वर को प्राप्त हों ॥१॥

५६७—चक्षु । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥२॥

पदार्थ—( प्रधन्वा ) आगे बढ़ ( सोम ) हे शान्त स्वभाव के ज्ञानी पुरुष ( जागृवि ) तू जागने वाला है ( इन्द्राय ) परमात्मा की प्राप्ति के लिए ( इन्दो ) हे परम ऐश्वर्यवाले ( परिस्रव ) सब प्रकार से आगे बढ़ ( द्युमन्तम् ) तेजोमय ( स्वर्विदम ) सब सुखो को प्राप्त करानेवाला ( शुष्मम् ) बल को (आभर) प्राप्त कर ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप ऐश्वयशाली भक्त ! उत्तमता के साथ आगे बढ़। तू जाग कर परमात्मा का परिशीलन करने के लिये आगे बढ़ और हर प्रकार से आगे बढ़। तू सब सुखो को प्राप्त कराने वाले तेजोमय बल को पूर्ण कर ॥२॥

५६८—पर्वतनारदौ । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २

शिशुं न यज्ञै परि भूषत श्रिये ॥३॥

पदार्थ—( सखाय ) हे मित्रो ! ( आनिषीदत ) आकर बैठो ( पुनानाय ) पवित्र करनेवाले परमेश्वर के लिए ( प्रगायत ) उत्तम रीति से गान करो ( शिशु न ) पुत्रो को जैसे ( यज्ञै ) ज्ञानयज्ञो के द्वारा ( परिभूषत) सुशोभित करो (श्रिये) अपने कल्याण के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे मित्रो ! आओ बैठो तथा उस पवित्र परमात्मा की मनोहर स्तुति करो। अपने कल्याण के लिये जैसे माँ बच्चे को प्यार करती है, वैसे ही ज्ञानयज्ञो के द्वारा परमात्मा को प्रसन्न करो ॥३॥

५६९—पर्वतनारदौ । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

तं व सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

शिशुं न हव्यै स्वदयन्त गूर्तिभि ॥४॥

पदार्थ—( तम् ) उस प्रभु को ( व ) तुम लोग ( सखाय, ) हे मित्रो ! ( मदाय ) आनन्द के लिए ( पुनानम् ) पवित्र ( अभिगायत ) हर प्रकार से गान करो ( शिशु न ) जैसे पुत्र को ( हव्यैः ) अनेकविध दानों या स्वादों के द्वारा ( स्वदयन्त ) रुचिकर बनाओ ( गूर्तिभिः ) स्तुति वाक्यों के द्वारा ॥४॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग अपने आनन्द के लिये उस पवित्र परमेश्वर की भलीभांति स्तुति करो। जैसे सुन्दर वस्तुओं से बच्चों को प्रसन्न किया जाता है, वैसे ही मनोहर स्तुतियों से परमेश्वर को प्रसन्न करो ॥४॥

५७०—त्रित । सोम । उष्णिक् ।

१ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २३१२ १ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

पदार्थ—( क्राणा ) क्रान्ताकार ( शिशुः ) प्रशंसनीय ( महीनां ) पृथिवी पर निवास करने वालों का ( हिन्वन् ) प्रेरित करता हुआ ( ऋतस्य ) सत्य के ( दीधितिम् ) प्रकाश को ( विश्वा ) सारे ( परि ) सब प्रकार से ( प्रिया ) उत्तम ( भुवत् ) व्यापता है ( द्विता ) कार्य और कारण को ॥५॥

भावार्थ—भूमिस्थों का प्रशस्याकार तथा प्रकाशनीय परमेश्वर सत्य-ज्ञान की दीप्ति को प्रेरित करता हुआ समस्त उत्तम पदार्थों में व्यापक हो रहा है और वह कार्य तथा कारण रूप दोनों प्रकार के संसार में व्यापक है ॥५॥

५७१—मनुः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

२ ३ २ १ १ २
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥६॥

पदार्थ—( पवस्व ) प्राप्त होवे ( देववीतये ) विद्वानों की गति के लिये ( इन्दो ) हे परमेश्वर ! ( धाराभिः ) आनन्द की धाराओं से ( ओजसा ) अपने सामर्थ्य से ( आ ) भली भाँति ( कलशं ) हृदयरूप कलश में ( मधुमान् ) मधुर आनन्द गुणवाला है ( सोम ) हे शान्तस्वरूप प्रभो ! ( नः ) हमारे ( सदः ) विराजमान होवे ॥६॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! आनन्द वाला तू विद्वानों की मुक्ति के लिये अपनी शक्ति से आनन्द युक्त कर, तू हमारे हृदयकलश में विराजमान है ॥६॥

५७२—अग्निः । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—( सोमः ) शान्तविचार वाला भक्तजन ( पुनानः ) सौमिक क्रिया से पवित्र किया जाता हुआ ( ऊर्मिणा ) ज्ञान प्रकाश से ( अव्यम ) रक्षा करने के योग्य ( वारं ) पवित्रता की ओर ( विधावति ) विशेष रूप से दौड़ लगाता है ( अग्रे ) पहले ( वाचः ) स्तुतियों के ( पवमान ) पवित्र ( कनिक्रदत् ) स्वयं बोलता है ॥७॥

भावार्थ—पवित्र और शान्त भक्त, ज्ञान प्रकाश से पवित्र किया जाता है, वह रक्षा करने में समर्थ पवित्रता की ओर दौड़ लगाता है, वह मन्त्र से स्तुति करने के पूर्व अपने अन्तःकरण के शब्द का प्रयोग करता है ॥७॥

५७३—त्रित । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २
प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तमता से ( पुनानाय ) पवित्र करनेवाले ( वेधसे ) विधाता ( सोमाय ) शान्तस्वरूप परमेश्वर की ( वचः ) स्तुति ( उच्यते ) की जाती है ( भृतिं न ) वेतन के समान ( भरा ) पूर्ण कर ( मतिभिः ) स्तुतियों से ( जुजोषते ) प्रार्थना स्वीकार करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—हे उपासक ! हमारी प्रार्थना स्वीकार करने वाले, पवित्र विधाता शान्त-स्वरूप परमेश्वर की मनोहर स्तुति कर । जैसे वेतन पाने वालों को वेतन पूरा दिया जाता है वैसे ही उस परमेश्वर की भरपूर स्तुति कर ॥८॥

५७४—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥९॥

पदार्थ—( गोमत् ) गौवाले ( नः ) हमें ( इन्दो ) हे परमेश्वर ! ( अश्ववत् ) घोड़ों वाले धन को ( सुतः ) उत्पादक ( सुदक्ष ) हे सुन्दर बलशाली ( धन्व ) दे ( शुचिं च ) और पवित्र ( वर्णम् ) रूप ( अधिगोषु ) इन्द्रियों में ( धारय ) दे ॥९॥

भावार्थ—हे सुन्दर बलवाले परमेश्वर ! सर्वोत्पादक तू हमें गाय और घोड़ों से युक्त धन दे । तू हमारी इन्द्रियों में पवित्र रूप भी दे ॥९॥

५७५—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३र
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।

३ २ ३ १ २ ३ १ ३
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥१०॥

पदार्थ—( अस्मभ्यम् ) हमारे ज्ञान के लिए ( त्वा ) तेरी ( वसुविदम् ) धनदाता ( अभि ) भली भाँति ( वाणीः ) वेद की वाणी ( अनूषत ) स्तुति करती है ( गोभिः ) वेद की वाणियों से ( ते ) तेरे ( वर्णम् ) स्वरूप की ( अभिवासयामसि ) पहचान करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे ज्ञान के लिये वेदवाणियां तेरी स्तुति करती हैं । हमलोग वेदमन्त्रों से तेरे स्वरूप को जानते हैं ॥१०॥

५७६—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।

३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥११॥

पदार्थ—( पवते ) पवित्र करता है ( हर्यत ) चाहने योग्य है ( हरिः ) दुःखहर्ता ( अति ) लांघकर ( ह्वरांसि ) कुटिलता का ( रंह्या ) तेजी से नाश करता है ( अभ्यर्ष ) देता है ( स्तोतृभ्यः ) भक्तों को ( वीरवत् ) पुत्रयुक्त ( यशः ) कीर्ति ॥११॥

भावार्थ—सब का प्यारा और दुःखहर्ता परमेश्वर हमें पवित्र करता है । वह हमारी कुटिलता का तेजी से नाश करता है । वह भक्तों को वीरपुत्र और कीर्ति देता है ॥११॥

५७७—त्रित । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अभि वाणीरृषीणां सप्ता नूषत ॥१२॥

पदार्थ—( परि ) सब ओर से ( कोशं ) आनन्दमय कोश के ( मधुश्चुतं ) आनन्द को चुआने वाले ( सोमः ) परमेश्वर ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( अर्षति ) व्यापक हो रहा है ( अभि ) भली भांति ( वाणीः ) वचन ( ऋषीणां ) ऋषियों के ( सप्त ) सात छन्दों से युक्त ( अनूषत ) स्तुति करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—आनन्दरस की वर्षा करनेवाले आनन्दमय कोश को पवित्र करता हुआ परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है । सात छन्दों से युक्त वेदों की वाणियां उसका गान करती हैं ॥१२॥

## ॐ सातवीं दशती समाप्त ॐ

५७८—गौरिवीतिः । सोम । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( मधुमत्तम ) तू अतिशय गुणवाला है ( इन्द्राय ) जीव के लिए ( सोम ) परमेश्वर ( क्रतुवित्तम ) तू सबसे अधिक हमारे कर्मों को जानता है ( मदः ) आनन्द ( महि ) तू महान् है ( द्युक्षतम ) तू तेजस्वरूप है ( मदः ) तू स्तुति करने के योग्य है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का स्रोत और सबसे अधिक हमारे कर्मों को जाननेवाला है । तू स्वयं आनन्दस्वरूप, महान् तेजस्वरूप है तथा स्तुति करने के योग्य है । तू जीवात्मा को पवित्र कर ॥१॥

५७९—ऊर्ध्वसद्मा । सोम । ककुप् ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २र ३ १ २
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ।२।

पदार्थ—( अभि ) भली प्रकार ( द्युम्नं ) उज्ज्वल ( बृहद्यशः ) महान् यश ( इषस्पते ) हे अन्नों के स्वामी ! ( दिदीहि ) दे ( देव ) हे देव ( देवयुम् ) दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले ( वि ) विशेष रूप से ( मध्यमं ) मध्यवर्ती ( कोशं ) कोश से ( युव ) युक्त कर ॥२॥

भावार्थ—हे अन्नों के स्वामी परमात्मदेव ! तू हमें दिव्य गुणों को धारण कराने वाले उज्ज्वल यश को प्राप्त करा तथा मध्यवर्ती आनन्दमय कोश से युक्त कर ॥२॥

५८०—ऋजिश्वा । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।

३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—( आसोत ) भली भांति स्तुति करो ( परिषिञ्चत ) सब तरह से अपनी श्रद्धाओं से सींचो ( अश्वं न ) अश्व के समान व्यापक शक्तिवाला ( स्तोमम् ) स्तुति के योग्य ( अप्तुरम् ) उत्तम कर्मों को प्रेरित करने वाला

( रजस्तुरम् ) तेजों का प्रेरक ( वनप्रक्षम् ) बलों का प्रेरक ( उदप्रुतम् ) जल के समान ओत प्रोत ॥३॥

भावार्थ—हे स्तुति करनेवाले मनुष्यो ! घोड़े के समान व्यापक शक्ति वाला प्रशंसा के योग्य, कर्मों तेजो और बलों के प्रेरक तथा द्रव्य मात्र में जल के समान संसार भर में ओत-प्रोत उस परमात्मा की भली-भांति स्तुति करो, और अपनी श्रद्धाओं से सींचो ॥३॥

५८१—कृतयशाः । सोम । ककुप् ।

१११ १ ११ १ २३१२ ११ ११२
एतमु त्य मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
२ ३ १२३ १२
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—( एतमु त्य ) इसी को ( मदच्युतं ) आनन्द की वर्षा करनेवाले ( सहस्रधारं ) विविध शब्दमयी वेदवाणियों वाले ( वृषभं ) कामनाओं की पूर्ति करनेवाले ( दिवोदुहम् ) हमारे लिये दिव्य पदार्थों को पूर्ण करने वाले ( विश्वा ) सारी ( वसूनि ) सम्पत्तियों को ( बिभ्रतम् ) धारण करनेवाले ॥४॥

भावार्थ—हम आनन्द की वर्षा करने वाले, विविध शब्दमयी वेदवाणियों वाले, शक्तिशाली, दिव्य गुणों के दाता, सारी सम्पदाओं के धारण करनेवाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥४॥

५८२—ऋणवः । सोम । ककुप् ।

१२३ १ २र ३२ ३१२३१ २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
१ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥५॥

पदार्थ—( स ) वही ( सुन्वे ) स्तुति किया जाता है ( यः ) जो ( वसूनां ) भाँति भाँति के रत्नों को ( यः ) जो ( रायाम् ) अनेक प्रकार के धनों को ( आनेता ) हमें देता है ( यः ) जो ( इडानाम् ) वेदवाणियों को ( सोमः ) ईश्वर ( यः ) जो ( सुक्षितीनाम् ) सुन्दर मनुष्यों को ॥५॥

भावार्थ—जो परमेश्वर भाँति भाँति के रत्नों सम्पत्तियों, वेदवाणियों और सुन्दर मनुष्यजन्म का दाता है, हम उस की स्तुति करते हैं ॥५॥

५८३—शक्ति । सोम । ककुप् ।

२ १ २ ३ १२ ३ १२ ३ १२
त्वं ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तम ।
३ १२ ३१२
अमृतत्वाय घोषयन् ॥६॥

पदार्थ—( त्वं हि ) तू ही ( अङ्ग ) हे प्रिय [ प्यारे ] ( दैव्यम् ) दिव्य विद्वानों के [ उत्तम ] ( पवमान ) हे प्रभो ! ( जनिमानि ) जन्मों को ( द्युमत्तम ) प्रकाशकों का प्रकाशक ( अमृतत्वाय ) मोक्ष के लिए ( घोषयन् ) घोषणा करता हुआ विद्यमान है ॥६॥

भावार्थ—हे प्यारे प्रभो ! तू प्रकाशकों का भी प्रकाशक है । तू ही ज्ञानियों के जन्मों को मोक्ष के लिए वेदद्वारा बतलाता हुआ विद्यमान है ॥६॥

५८४—उशः । सोम । ककुप् ।

३१ २र ३२ ३१२ ३१२ १२३१११
एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥७॥

पदार्थ—( एष ) यह ( स्य ) वह ( धारया ) धारा से ( सुतः ) बनाया हुआ ( अव्या ) भेड़ों के ( वारेभिः ) बालों से तैयार कपड़े से छन कर ( पवते ) टपकता है ( मदिन्तमः ) वह आनन्ददायक है ( क्रीडन् ) इधर उधर झलकता हुआ ( ऊर्मिः ) लहर [ तरंग ] के ( अपाम् ) जल के ( इव ) समान ॥७॥

भावार्थ—आनन्ददायक निचोड़ा हुआ यह सोमरस ऊनी कपड़े से छन कर सहज ही टपकता है ॥७॥

५८५—ऋजिश्वा । सोमः । ककुप ।

२१२ ३ २३ २ ३१ २र३ १ २र ३१२
य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
३२ ३१ २ ३ २३१२ ३१२ ३ १ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज
१ ३१२ ३ १ २
ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥

पदार्थ—( य ) जो ( उस्रिया ) फैलने वाली ( अपियाः ) अन्तरिक्षस्थ ( अन्तरश्मनि ) मेघ में ( निः ) निःशेष रूप से ( गाः ) किरणों को ( अकृन्तत् ) छिन्न भिन्न करता है ( ओजसा ) शक्ति से ( अभिव्रजं ) समूह को ( तत्निषे ) विस्तार करता है ( गव्यम् ) गोसम्बन्धी ( अश्व्यं ) अश्वसम्बन्धी ( वर्मी ) कवचधारी के ( इव ) समान ( धृष्ण ) बुराइयों के दबाने वाले ( आरुज ) दुर्गुणों को दूर कर ॥८॥

भावार्थ—जो फैलने वाली अन्तरिक्ष तथा मेघ में विद्यमान सूर्य की किरणों को अपनी शक्ति से छिन्न भिन्न कर देता है और गो तथा अश्व सम्बन्धी समुदाय को विस्तृत करता है ऐसा तू हे बुराइयों के धर्षक परमेश्वर वर्मी के समान पापों को नष्ट कर तथा हे शक्तिशालिन् ! तू कवचधारी के समान दुर्गुणों को दूर कर ॥८॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

# आरण्यक पर्व

## षष्ठोऽध्याय

५८६—भारद्वाज । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३१२३१२
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
१ २र ३ १२३ १र २र
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्र ) सभाध्यक्ष ! ( ज्येष्ठम् ) उत्तम ( नः ) हमें ( आभर ) दे ( ओजिष्ठम् ) अधिक बलदायक ( पुपुरि ) तृप्त करने वाला ( श्रव ) अन्न और यश भी ( वज्रहस्त ) हे दण्डधारी ! ( यत ) जिसमें ( दिधृक्षेम ) धारण करने की इच्छा करते हैं ( रोदसी उभे ) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक के समान राजा-प्रजा-व्यवहार ( सुशिप्र ) हे सुन्दर नासिका वाले ( पप्रा ) पूर्ण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे दण्डधारी सुन्दर नाकवाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक के समान राजा और प्रजा के व्यवहार को पूर्ण करता है, उस उत्तम, बलवान्, तृप्त करनेवाले धन और यश को हमें दे तथा जिस वस्तु को हम धारण करना चाहते हैं, वह भी दे ॥१॥

५८७—वसिष्ठः । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३ ३ २ ३ १ २ ३ १र २उ३२ ३ १२३१२
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
१ २ ३२३ १२३ २उ ३ १ २ ३ २
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्र ) ईश्वर ( राजा ) राजा ( जगत ) चलने फिरने वाले प्राणियों का ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों का ( अधिक्षमा ) पृथ्वी पर ( विश्वरूपं ) सारे रूपवान पदार्थ ( यत ) जो ( अस्य ) इसका है ( ततः ) उससे ( ददाति ) देता है ( दाशुषे ) दान [ त्याग ] करने वाले को ( वसूनि ) अनेक संपदाओं को ( चोदत ) दे ( राधः ) धन ( उपस्तुतम् ) प्रशंसा के योग्य ( चित् ) और ( अर्वाक ) सम्मुख ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर चलने फिरने वाले प्राणियों और मनुष्यों का राजा है । पृथ्वी पर जो कुछ इसका रूपवान् पदार्थ है उससे दान करनेवाले को सम्पदाएँ देता है । वही हमारे सम्मुख प्रशंसा के योग्य धन दे ॥२॥

५८८—वामदेव । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २३क २र १ २ ३ १ २ ३ २
यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥३॥

पदार्थ—( यस्य ) जिसका ( इदम् ) यह ( रजोयुजः ) तेजस्वी ( तुजे ) दाता ( जने ) पुरुष में ( वनम् ) चाहने योग्य ( स्वः ) सुख को ( इन्द्रस्य ) परमात्मा के ( रन्त्यं ) उत्तम ( बृहत् ) महान् ॥३॥

भावार्थ—तेजस्वी जिस ईश्वर का उत्तम, महान् और चाहने योग्य सुख दानी पुरुष के लिए वही सम्पत्तियों को देता है ॥३॥

५८९—शुनःशेपः । वरुण । चतुष्पाज्जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ र ३ १ २ र ३ १ २

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

१ २ ३ २ ३ १ २ र ३ १ २ ३ १ २

अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥४॥

पदार्थ—( उत् ) ऊपर ( उत्तमं ) उत्तम श्रेणी का ( वरुण ) हे ईश्वर ! ( पाशम् ) बन्धन को ( अस्मत् ) हमसे ( अव ) और ( अधमम् ) निचली श्रेणी का ( वि ) विशेष ( मध्यमम् ) मध्यम श्रेणी के ( श्रथाय ) ढीलाकर ( अथ ) तब ( आदित्य ) हे सूर्य के समान तेजस्वरूप ! ( व्रते ) आज्ञा में ( वयं ) हम लोग ( तव ) तेरी ( अनागसः ) बिना अपराध के ( अदितये ) अखण्ड सुख के लिए ( स्याम ) होवें ॥४॥

भावार्थ—हे सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू हमारी रक्षा करता हुआ उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन तीन प्रकार के बन्धनों को ढीला कर दे जिससे हम निरपराधी होकर अखण्ड सुख के लिए तेरे नियमों का पालन करें ॥४॥

५९०—गृत्समद । सोम । चतुष्पाज्जगती

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदार्थ—( त्वया ) तुझसे ( वयं ) हम ( पवमानेन ) पवित्र ( सोम ) हे प्रभो ! ( भरे ) जीवन संग्राम में ( कृतम् ) अपने कर्तव्य को ( विचिनुयाम ) विशेष रूप से चुनते हैं ( शश्वत् ) नित्य ( तत ) उसको ( नः ) हमारे ( मित्रः ) सब का उपकार करने वाला ( वरुण ) न्यायाधीश ! ( मामहन्ताम् ) उन्नत करें ( अदिति ) तेजोमयी विद्या ( सिन्धु ) अन्तरिक्ष ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) और ( द्यौ ) द्युलोक ॥५॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमात्मा ! तू पवित्र है । हम तेरी कृपा से, जीवन संग्राम में अपने नित्य कर्तव्य को चुनते हैं । तेरी दया से परोपकारी न्यायाधीश पवित्र तेजविद्या, अन्तरिक्ष पृथिवी और द्युलोक हमे उन्नत बनावें ॥५॥

५९१—वामदेव । विश्वेदेवा । एकपाज्जगती ।

३ १ २र ३ २उ ३ २

इमं वृषण कृणुतैकमिन्माम् ॥६॥

पदार्थ—( इमम् ) इस ( वृषणं ) कामनाओं के पूर्ण करनेवाले ( कृणुत ) करो ( एकम् ) एक ( इत् ) ही ( माम् ) मुझको ॥६॥

भावार्थ—हे मित्र आदि महानुभावो ! आप सब मुझे अकेला ही [ दूसरे की सहायता के बिना ] अपने मनोरथों का पूर्ण करनेवाला बनावें ॥६॥

५९२—अमहीयु । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥७॥

पदार्थ—( सः ) वह ( नः ) हमारे ( इन्द्राय ) राजा के लिए ( यज्यवे ) यज्ञकर्ता के लिए ( वरुणाय ) विद्वान् के लिए ( मरुद्भ्य ) ऋत्विजों के लिए ( वरिवोवित् ) सकल सम्पत्तियों के दाता ( परिस्रव ) सुख की वर्षा कर ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सकल सम्पत्तियों के दाता तू हमारे राजा, उत्तम विद्वान्, ऋत्विज और यज्ञ कर्ता यजमान के लिए सुख की वर्षा कर ॥७॥

५९३—ऋज्यादय पूर्ववत् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥८॥

पदार्थ—( एना ) इन ( विश्वानि ) सारे ( अर्य ) प्राप्त करते हुए ( आ ) सब तरफ से ( द्युम्नानि ) अन्नादि सम्पदायें और यश ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों के ( सिषासन्त ) चाहते हुए ( वनामहे ) आपस में बांटते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम मनुष्यों के इन सारे अन्नों और यशों को प्राप्त करते हैं तथा आपस में बांटना चाहते हुए भली भांति बांटते हैं ( सम्मिलित होकर भोगते हैं ) ॥८॥

५९४—आत्मा । अन्नम् । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।

३ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥९॥

पदार्थ—( अहं ) मैं ( अस्मि ) हूँ ( प्रथमजा ) आदिकारण ( ऋतस्य ) सृष्टि-नियम और सत्य ज्ञान का ( पूर्वं ) पहले ( देवेभ्यः ) मुक्त आत्माओं से ( अमृतस्य ) अमृत का ( नाम ) स्वरूप ( यः ) जो ( मा ) मेरा ( ददाति ) ज्ञान देता है ( सः ) वह ( इत् ) ही ( एवं ) इस प्रकार से ( आवत् ) रक्षा करता है ( अहं ) मैं ( अन्नम् ) अन्न नाम वाला हूँ मैं ( अन्नम् ) प्रलयकाल में संसार को अपने में ग्रहण करने वाला ( अदन्तम् ) अकेला खाने वाले को ( अद्मि ) खा जाता हूँ ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रलय में सारे संसार को अपने अन्दर ग्रहण करने वाला मैं सत्य-ज्ञान तथा सृष्टि नियम का प्रवर्तक तथा मुक्तात्माओं से प्रथम ही अमृतस्वरूप हूँ । जो मेरा उपदेश करता है वही इस अमृत को पाता है । अन्नस्वरूप मैं एकाकी अन्नभोजी और एकाकी मेरे ज्ञान को रखनेवाले को मैं खा जाता हूँ, अर्थात् अमृत धाम का अधिकारी नहीं बनाता ॥९॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

५९५—श्रुतकक्ष । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥१॥

पदार्थ—( कृष्णासु ) काली ( रोहिणीषु ) लाल ( च ) और ( परुष्णीषु ) टेढ़ी ( रुशत् ) चमकवाला ( पय ) जल ( त्वं ) तू ( एतत् ) यह ( अधारयः ) धारण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! काली लाल और टेढ़ी नदियो के चमकते हुए जलों को तू ने धारण किया है ॥१॥

५९६—पवित्र । सोम । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥२॥

पदार्थ—( अरूरुचत् ) सब पदार्थों को प्रकाशित करता है ( उषसः ) उषादेवी का ( पृश्निः ) प्रकाशक सूर्य ( अग्रिय ) मुख्य ( उक्षा ) मेघ ( मिमेति ) गर्जता है ( भुवनेषु ) संसार में ( वाजयु ) अन्न की उत्पत्ति करनेवाला ( मायाविन ) बुद्धिमान् पुरुष ( ममिरे ) उत्पन्न किए जाते हैं ( अस्य ) सोमरस की ( मायया ) बुद्धि से ( नृचक्षस ) मनुष्यों को दिखाने वाली ( पितरः ) पालन करनेवाली सूर्य की किरणें ( गर्भम् ) जल का ( आदधु ) संग्रह करती हैं ॥२॥

भावार्थ—सूर्य उषादेवी को प्रकाशित करता है । अन्न का उत्पादक मेघ गर्जता है । सोमरस द्वारा प्राप्त बुद्धि से पुरुष बुद्धिमान् होते हैं । मनुष्यो को दिखाने वाली सूर्य की किरणें वर्षा के लिए जल का संग्रह करती हैं ॥२॥

५९७—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर ! ( इत् ) ही ने ( हर्यो ) अग्नि और वायु के ( सचा ) साथ ( सम्मिश्ल ) मिला हुआ है ( आ ) सब प्रकार से ( वचोयुजा ) वाणी का जोड़नेवाले ( इन्द्रः ) परमेश्वर हो ( वज्री ) न्यायरूप दण्डधारण करनेवाला है । ( हिरण्ययः ) ज्योतिस्वरूप है ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर ही वाणी का प्रवर्तक और अग्नि तथा वायु के साथ सब प्रकार से मिला हुआ है । वही प्रकाशस्वरूप है ! और न्यायरूप दण्ड का धारण करने वाला है ॥३॥

५९८—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( वाजेषु ) संग्रामों में ( नः ) हमारी ( अव ) रक्षा कर ( सहस्रप्रधनेषु च ) बड़े बड़े संग्रामों में भी ( उग्रः ) तू महाबली ( उग्राभि ) परमतेजयुक्त ( ऊतिभि ) रक्षाओं से ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महाबली है, तू छोटे और बड़े संग्रामो मे भी प्रभावशाली रक्षाओ से हमारी रक्षा कर ॥४॥

५९९—प्रथ । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।

३ १ २र ३ १ ३ १ ३ ३ १ २र ३ १ २

धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥५॥

पदार्थ—( प्रथ ) प्रथ ( च ) और ( यस्य ) जिसका ( सप्रथ ) सप्रथ ( च ) और ( नाम ) नाम है । ( आनुष्टुभस्य ) अनुष्टुप आदि छन्दवाला ( हविष ) वाणीरूप हविष का ( यत् ) जो ( हविः ) ग्रहणसामग्री ( धातु ) विधाता ( द्युतानात् ) प्रकाशस्वरूप ( सवितु ) संसार का उत्पादक ( च ) और ( विष्णो ) परमात्मा से ( रथन्तरम् ) रथन्तर आदि नाम वाले सामों को ( आजभार ) संग्रह करता है ॥५॥

भावार्थ—अनुष्टुप् छन्द आदि हवि वाणी का प्रथ और सप्तम नाम है और जो वाणीरूपी हवि है वही हवि विधान बनाने वाले प्रकाशस्वरूप, संसार के कल्याणक और व्यापक परमात्मा से रथन्तर आदि सामों को लाती है ॥५॥

६००—गृत्समदः । वायुः । गायत्री ।

१ १ २र  १ १ २ ३ १ २ ३ १  २  १ २  १ २ ३ २

नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥६॥

पदार्थ—( नियुत्वान् ) आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध कराने वाला ( वायो ) हे परमेश्वर ! ( आगहि ) प्राप्त हो ( अयं ) यह मैं ( शुक्र ) शुद्ध ( अयामि ) उपस्थित होता हूँ ( ते ) तेरी शरण में । ( गन्तासि ) तू प्राप्त होने वाला है ( सुन्वत ) ध्यान करनेवाले के ( गृहम् ) हृदयरूप घर में ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध करनेवाला है । पवित्र होकर मैं तेरी शरण मे उपस्थित होता हूँ । तू ध्यान करने वाले हृदय में प्राप्त होने वाला है ॥६॥

६०१—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१  २र  ३ १ २  ३ १ १

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।

१ २ ३ १ २  ३ १ २  ३ १  २र

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥७॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( जायथा ) उत्पन्न करना चाहता है ( अपूर्व्य ) हे अनादि ! ( मघवन् ) हे पूजनीय [ पूजा के योग्य ] ( वृत्रहत्याय ) प्रलयान्धकार को विनष्ट करने के लिए ( तत् ) तब ( पृथिवीम ) पृथिवी लोक को ( अप्रथयः ) सुखसमृद्धि से विस्तृत करता है ( तत् ) और उसी समय ( अस्तभ्नाः ) धारण करता है ( उत ) और ( दिवम ) द्युलोक को ॥७॥

भावार्थ—हे अनादि पूज्य परमेश्वर ! तू प्रलय के अन्धकार को विनष्ट करने के लिए पृथिवी और द्युलोक को उत्पन्न करता है, उनको विस्तृत करता है और उनको धारण करता है ॥७॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

६०२—वामदेव । प्रजापति । अनुष्टुप् ।

२ ३ २  ३ २ ३ १  २र ३ २ ३ १ २र

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।

३  २ ३ १ २  ३ १  २र

परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१॥

पदार्थ—( मयि ) मुझ में ( वर्च ) ब्राह्म तेज ( अथो ) और ( यज्ञस्य ) यज्ञसम्बन्धी ( यत् ) जो ( पयः ) अन्न-दूध और जल आदि हैं ( परमेष्ठी ) परमपद में विराजमान ( प्रजापति ) प्राणिमात्र का पालन करने वाला परमात्मा ( दिवि ) द्युलोक में ( द्यामिव ) सूर्यादि दिव्य पदार्थों के समान ( दृंहतु ) बढ़ावें ॥१॥

भावार्थ—अपने परमपद में विराजमान प्राणिमात्र के रक्षक परमात्मा द्युलोक मे सूर्य आदि प्रकाशमय पदार्थों के समान मेरे ब्रह्मतेज, कीर्ति, और यज्ञ से उत्पन्न होने वाले अन्न, दूध और जलादि पदार्थों को बढ़ावें ॥१॥

६०३—गोतम । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २  ३ २ ३ १र  २र  ३ १ २

स ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।

३ १ २  ३ १ २  ३ १ २र ३ १ २

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥२॥

पदार्थ—( सम् ) सम्यक् ( ते ) तेरी कृपा से प्राप्त ( पयांसि ) जल और दूध ( सम् ) सम्यक ( उ ) और ( यन्तु ) प्राप्त हों ( वाजा ) अन्न ( सम् ) भली भांति ( वृष्ण्यानि ) बलवर्धक हों ( अभिमातिषाहः ) कामादि शत्रुओं का नाश करनेवाला ( आप्यायमान ) महान् से भी महान् तू है ( अमृताय ) मोक्षपद के लिए ( सोम ) हे शान्तिस्वरूप प्रभो ! ( दिवि ) द्युलोकपर्यन्त ( श्रवांसि ) कीर्ति ( उत्तमानि ) उत्तम ( धिष्व ) धारण कर, पहुँचा दे ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप प्रभो ! तू हमारे कामादि शत्रुओं का दमन करने वाला है । तेरी कृपा से सुखदायक जल बलवर्धक अन्न प्राप्त हों । तू महान् से भी महान् है । हमें अमर बना । हमारी कीर्ति द्युलोक में पहुँच जाय ॥२॥

६०४—गोतम । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १  २र  ३ २ ३ २ ३ १ २  ३ २

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।

१ २र ३  २ ३ २ ३ १  २र ३ १  २र

त्वमाततन्थोर्वान्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू भगा ( इमा ) इन ( ओषधीः ) ओषधियों को ( सोमः ) हे परमेश्वर ! ( विश्वाः ) सारी ( त्वम् ) तू ( अपः ) जलों को ( अज-नयः ) उत्पन्न किया है ( त्वम् ) तू ( गाः ) गौ आदि पशुओं को भी ( त्वम् ) तू ने ( आततन्थ ) फैलाया है ( उरु ) विशाल ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष को ( त्वम् ) तू ने ( ज्योतिषा ) ज्योति से ( वि ) अनेक प्रकार से ( तमः ) अन्धकार को ( ववर्थ ) छिन्न भिन्न किया है ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तूने इन सारी औषधियों को जलों और गवादि पशुओं को उत्पन्न किया है । तूने विशाल अन्तरिक्ष को फैलाया है । तूने ही प्रकाश से अन्धकार का नाश किया है ॥३॥

६०५—मधुच्छन्दा । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २  ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २  १ २  ३ १ २

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥४॥

पदार्थ—( अग्निम् ) परमेश्वर की ( ईडे ) स्तुति करता हूँ ( पुरोहितम् ) सब का धारण और पोषण करनेवाले ( यज्ञस्य देवम् ) संसार के देव ( ऋत्विजम् ) सब ऋतुओं मे पूजा के योग्य ( होतारं ) संसार को अपने में लीन करने वाले ( रत्नधातमम् ) सुवर्ण, हीरा आदि रत्नों का धारण करनेवाले ॥४॥

भावार्थ—सबका पोषण करने वाले, संसार के एकमात्र देव, सब ऋतुओं में पूजा के योग्य, सब को अपने में लीन करनेवाले और असंख्य रत्नों के धारण करने वाले परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

६०६—वामदेव । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

१ २  ३ २र  ३ २ ३  २ ३ १ २ ३ १  २र

ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २  ३ १  २र ३ १ २

ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५॥

पदार्थ—( ते ) तेरा ( मन्वत ) मानते हैं ( प्रथमम् ) मुख्य ( नाम ) ओंकारादि नाम ( गोनाम् ) वेदवाणियो मे ( त्रिः सप्त ) इक्कीस गायत्री आदि छन्द ( परमम् ) उत्तम ( नाम ) अन्य नामो को ( जानन् ) जानते हुए ( ताः ) प्रजायें ( जानती ) जानती हुई ( अभ्यनूषत ) स्तुति करती हैं ( क्षाः ) पृथिवी पर निवास करने वाली ( अरुणी ) प्रकाश से युक्त ( यशसा ) कीर्ति से युक्त ( गाव ) वाणियां ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इक्कीस छन्दों को जानती हुई पृथिवी पर रहने वाली प्रजा तेरे नाम ओंकार की वाणियों में प्रथम मानती हैं और तेरी स्तुति करती है । यश से प्रकाशमान वाणियां संसार में प्रकट होती हैं ॥५॥

६०७—गृत्समद । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १  २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।

२ ३ २ ३ १ २  ३ १ २ ३ १  २ ३ १ २ ३ १ २

तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥६॥

पदार्थ—( सम् ) सम्यक ( अन्या ) दूसरे प्रकार के जल ( यन्ति ) ऊपर की ओर जाते हैं ( उपयन्ति ) जाते हैं ( अन्याः ) दूसरे जल ( समानम् ) एक समान होकर ( ऊर्वम ) अधिकमात्रा मे ( नद्यस्पृणन्ति ) नदी का रूप धारण करते हैं । ( तम् ) उसीके ( शुचिम् ) पवित्र ( शुचय ) पवित्र ( दीदिवांसम् ) दीप्ति युक्त ( अपांनपातम् ) जल को न गिरने देने वाले सूर्यरूप अग्नि समीप ( उपयन्ति ) चले जाते हैं ( आप ) जल ॥६॥

भावार्थ—एक प्रकार के जल ऊपर जाते है । दूसरे नीचे आते हैं । वे दोनों एक रूप होकर अग्निरूप सूर्य मण्डल में जाते हैं । वहाँ से वर्षा होने पर नदी का रूप धारण करते हैं । पवित्र जल तेजस्वी पवित्र जलों को न गिरने देने वाले सूर्य के समीप जाते ही हैं ॥६॥

६०८—वामदेव । रात्रि । अनुष्टुप् ।

१  २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १  २र

आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३  १ २ ३ १ २ ३  १ २

अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥७॥

पदार्थ—( आ ) सब ओर से ( प्रागात् ) आती है ( भद्रा ) सुख देनेवाली ( युवति. ) अन्धकार को मिलादेनेवाली ( अह्न ) दिन के ( केतून् ) चिह्नों को ( समीर्त्सति ) दूर करती है ( अभूत् ) होती है ( भद्रा ) सुख देनेवाली ( निवेशनी ) सुख से सुलाने वाली ( विश्वस्य जगतः ) सारे संसार को ( रात्री ) रात ॥७॥

भावार्थ—सुखदेनेवाली तथा अन्धकार को लाने वाली रात्रि आती है वह दिन के चिह्न को दूर करती और दिन में काम करनेवाले सारे प्राणियों को सुखपूर्वक सुलाती है ॥७॥

६०९—भरद्वाज । वैश्वानरः । जगती ।

३ २ ३ १ २  ३ २ ३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे ।

३  १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २  ३ १ २ ३ १ २

वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥८॥

पदार्थ—( प्रवत्वते ) सर्वव्यापक ( वृष्णे ) सुख की वर्षा करनेवाले ( स्ववते ) प्रकाशस्वरूप ( नु ) शीघ्र ( सहः ) सुखकारक ( प्र ) उत्कृष्ट ( नः ) हमारा ( वचः ) वचन ( विदथा ) यज्ञ में ( जातवेदसे ) सर्वज्ञ ( वैश्वानराय ) सर्वनियन्ता के लिए ( मतिः ) बुद्धि ( नव्यसे ) नये ( शुचिः ) पवित्र ( सोम ) सोम ( इव ) जैसे ( पवते ) प्राप्त होता है ( चारु ) उत्तम ( अग्नये ) अग्नि के लिए ॥८॥

भावार्थ—सर्वव्यापक, आनन्ददाता, प्रकाशस्वरूप, परमेश्वर के लिए हमारा सुखकारक वचन समर्थ होवे। नूतन अग्नि को जैसे सोम प्राप्त होता है वैसे हमारी पवित्रबुद्धि सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिए समर्थ होवे ॥८॥

६१०—भरद्वाजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।

३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥९॥

पदार्थ—( विश्वे ) सारे ( देवा ) विद्वान् ( मम ) मेरे ( शृण्वन्तु ) सुनें ( यज्ञ ) श्रेष्ठ कर्म को ( उभे ) दोनों ( रोदसी ) द्यु और पृथिवीलोक ( अपांनपात् ) शुभकर्मों का रक्षक ( च ) और ( मन्म ) उत्तम ( मा ) नहीं ( वो ) तुम लोगों के ( वचांसि ) वचनों को ( परिचक्ष्याणि ) निन्दा ( वोचम् ) बोलें ( सुम्नेषु ) सुखों में ( इत् ) ही ( वः ) तुम्हारे ( अन्तमा ) समीपवर्ती होकर ( मदेम ) सुखी हों ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुभ कर्मों का रक्षक तू सारे विद्वान् जन तथा द्यु और भूमि के साथ वर्तमान राजा प्रजा हमारे यज्ञादि उत्तम कर्मों को सुनें। हम तुम्हारी निन्दा के वचन न बोलें। तुम्हारे समीपवर्ती होकर सुखों में सुखी हों ॥९॥

६११—वामदेव । लिङ्गोक्ता । महापङ्क्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती यशो भगस्य विन्दतु यशो

३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मा प्रतिमुच्यताम् यशसाऽस्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥१०॥

पदार्थ—( यशः ) यश ( मा ) मुझको ( द्यावापृथिवी ) द्युलोक और भूमि ( यशः ) यश ( मा ) मुझे ( इन्द्रबृहस्पती ) राजा और विद्वान् ( भगस्य ) ऐश्वर्य की ( यशः ) कीर्ति ( विन्दतु ) प्राप्त हो ( यशः ) यश ( मा ) नहीं ( प्रतिमुच्यताम् ) छूटे ( यशसा ) यश से युक्त ( अस्याः ) इस ( संसदः ) सभा का ( अहम् ) मैं ( प्रवदिता ) प्रवक्ता वक्ता ( स्याम ) होऊं ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर आपकी कृपा से द्यु और पृथ्वी लोक हमारे यश के साधन बनें, राजा और विद्वान् मुझे कीर्ति प्राप्त करावें। ऐश्वर्य का यश भी मुझे प्राप्त हो। यश मेरा साथ कभी न छोड़े। यश से युक्त हुआ मैं इस सभा का गंभीर वक्ता होऊं ॥१०॥

६१२—हिरण्यस्तूप । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥११॥

पदार्थ—( इन्द्रस्य ) सूर्य के ( नु ) शीघ्र ( वीर्याणि ) शक्ति का ( प्रवोचम् ) वर्णन करता हूँ ( यानि ) जिनको ( चकार ) किया था और करता है ( प्रथमानि ) प्रसिद्ध ( वज्री ) वज्रधारी ( अहिम् ) मेघ को ( अहन् ) छिन्न भिन्न करता है ( अनु ) पश्चात् ( अपः ) जलों का ( ततर्द ) बहाता है ( प्रवक्षणाः ) बहने वाली नदियों को ( अभिनत् ) तोड़ डालता है ( पर्वतानाम् ) मेघों के ॥११॥

भावार्थ—मैं सूर्य की उन शक्तियों का वर्णन करता हूँ जिन्हें शक्तिशाली सूर्य प्रसिद्ध कर चुका है और कर रहा है। वह मेघ को छिन्न भिन्न करता है, जल को बहाता है और मेघों की नदियां बनाता है ॥११॥

६१३—विश्वामित्रः । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

३ १ ३ २ ३ २र ३ १ २ २र ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥१२॥

पदार्थ—( अग्नि ) अग्नि नाम वाला ( अस्मि ) हूँ ( जन्मना ) स्वभाव से ( जातवेदा ) सर्वज्ञ ( घृतं ) प्रकाश ( मे ) मेरा ( चक्षुः ) चक्षु ( अमृतं ) अविनाशी आकाश या मोक्षपद ( मे ) मेरा ( आसन् ) मुख है ( त्रिधातुः ) त्रिलोक का धर्ता ( अर्कः ) पूजनीय ( रजसो विमानः ) लोकों का निर्माता ( अजस्रम् ) सदा वर्तमान ( ज्योतिः ) ज्योति ( हविः ) हवि का दान वाला ( अस्मि ) हूँ ( सर्वम् ) सर्व प्रकार

भावार्थ—योगी को प्रकाशित हुआ परमेश्वर कहता है—मैं अग्निनाम वाला स्वभाव से सर्वज्ञ हूँ, सम्पूर्ण प्रकाश मेरा चक्षु है, अविनाशी आकाश या मोक्षपद मेरा मुख है अथवा आकाश या मोक्षपद मेरे मुख में है। मैं सबपूज्य त्रिलोक का धर्ता और लोकों का निर्माता हूँ। मैं सदा वर्तमान यश तथा हविदान वाला हूँ ॥१२॥

६१४—विश्वामित्र । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २र ३ १ २
पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥१३॥

पदार्थ—( पाति ) रक्षा करता है ( अग्नि ) व्यापक ईश्वर ( विपः ) मेधावी ( अग्रम् ) मुख्य ( पदम् ) स्थान को ( वे ) चलनेवाली पृथिवी के ( पाति ) रक्षा करता है ( यह्वः ) महान् ( चरणम् ) गति को ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( पाति ) रक्षा करता है ( नाभा ) केन्द्रस्थान अन्तरिक्ष में ( सप्तशीर्षाणम् ) सात मरुद्गणों को ( अग्नि ) परमेश्वर ( पाति ) रक्षा करता है ( देवानाम् ) देवताओं को ( उपमादम् ) प्रसन्न करनेवाले यज्ञ को ( ऋष्वः ) महान् ॥१३॥

भावार्थ—व्यापक, महान्, और मेधावी परमेश्वर घूमनेवाली पृथिवी के मुख्य स्थान की रक्षा करता है। वह सूर्य की गति की रक्षा करता है। महान् परमेश्वर, अन्तरिक्ष में सात प्रकार की वायुओं की रक्षा करता है। वह देवों को प्रसन्न करने वाले यज्ञ की भी रक्षा करता है ॥१३॥

## तीसरी दशती समाप्त

६१५—वामदेवः । अग्नि । पङ्क्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥१॥

पदार्थ—( भ्राजन्ती ) चमकती हुई ( अग्ने ) हे व्यापक परमेश्वर ( समिधान ) हे तेजस्वरूप ! ( दीदिव ) हे सब से श्रेष्ठ ! ( जिह्वा ) सात किरण रूप या सात काली करालो आदि रूप से वर्तमान जिह्वा ( अन्त आसनि ) विशाल आकाश रूपी मुख में ( चरति ) चलती है ( स त्वम् ) वह तूने ( नः ) हमारे ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( पयसा ) जल या दुग्ध के साथ ( वसुवित् ) धनदाता ( वर्चः ) तेज ( दृशे ) देखने के लिए ( अदाः ) दिया है ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वश्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तुम्हारे आकाशरूपी मुख में प्रकाश की ज्वालाएं सात किरणों या सात अर्चियों के रूप में चलती हैं। तूने हमारे देखने के लिए प्रकाश के साथ धन और वर्चस् भी दिया है ॥१॥

६१६—वामदेवः । ऋतवः । पङ्क्ति ।

३ १ २र ३ १ २र
वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥

पदार्थ—( वसन्त ) चैत्र और वैशाखमास वसन्त ऋतु ( इत् नु ) निश्चय ही ( रन्त्यः ) रमणीय है ( ग्रीष्म ) ज्येष्ठ और आषाढ़ मास ग्रीष्म ऋतु ( इत् नु ) निश्चय ही ( रन्त्यः ) मनोहर है ( वर्षाणि ) श्रावण और भाद्रपदमास वर्षा ऋतु ( अनु ) उसके बाद होने वाली ( शरदः ) आश्विन और कार्तिक मास ऋतु ( हेमन्तः ) अगहन और पौष हेमन्त ऋतु ( शिशिर ) माघ और फाल्गुन मास शिशिर ऋतु ( इत् नु ) निश्चय ही ( रन्त्यः ) रमणीय होता है ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेरी व्यवस्था से वसन्त, ग्रीष्म वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतुएं अपने-अपने समय पर मनोहर होती हैं ॥२॥

६१७—नारायण । पुरुष । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥३॥

पदार्थ—( सहस्रशीर्षाः ) हम सबके सिर हैं जिसमें ( पुरुषः ) परमेश्वर ( सहस्राक्ष ) हम लोगों के सहस्र आंख हैं जिसमें ( सहस्रपात् ) हम सब के सहस्रों पैर हैं जिसमें ( सः ) वह ( भूमिं ) भूमि से ले के प्रकृति पर्यन्त ( सर्वतः ) सब ( वृत्वा ) व्यापक करके ( अत्यतिष्ठत् ) बाहर भी स्थित हो रहा है, ( दशाङ्गुलम् ) दश अवयवों से युक्त ब्रह्माण्ड ॥३॥

भावार्थ—संसार के अनेक सिर, अनेकों आंखें, अनेकों पैर हैं जिसमें ऐसा वह व्यापक परमेश्वर पृथ्वी से ले के प्रकृति पर्यन्त को व्याप्त करके ब्रह्माण्ड से अतिरिक्त भी स्थित है ॥३॥

६१८—ऋष्यादय पूर्ववत् ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष पादोऽस्येहाभवत्पुन ।

२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २

तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥४॥

**पदार्थ**—( त्रिपात् ) तीन पाद जगत् से ( ऊर्ध्व ) ऊपर भी (उदैत्) व्यापक हो रहा है ( पुरुष ) परमेश्वर ( पाद ) एकपाद ( अस्य ) इसका ( इह ) संसार में ( अभवत् ) होता है ( पुन ) फिर ( तथा ) उसकी सामर्थ्य से ( विष्वङ् ) समस्त विश्व ( व्यक्रामत् ) उत्पन्न होता है ( अशनानशने ) खानेवाले न खाने वाले [जड़जंगम] ( अभि ) लेकर ॥४॥

**भावार्थ**—परमेश्वर त्रिपाद् जगत् से ऊपर व्यापक हो रहा है । यह संसार उसके एक पाद के समान है । उसकी सामर्थ्य से जड़-जंगम सहित समस्त जगत् उत्पन्न होता है ॥४॥

६१९—ऋष्यादय पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २र ३ १ २

पुरुष एवेद सर्व यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥५॥

**पदार्थ**—( पुरुष ) परमेश्वर ( एव ) ही ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( यत् ) जो ( भूतम् ) भूत ( यत् ) जो ( च ) और ( भाव्यम् ) होनेवाले (पाद ) पाद के समान ( अस्य ) इसके ( सर्वा ) सारे ( भूतानि ) पृथिव्यादिभूत ( त्रिपात् ) तीन पाद के समान (अस्य) इसका (अमृतम्) अमृत है ( दिवि ) आकाश में ॥५॥

**भावार्थ**—परमेश्वर ही भूत भविष्यत् वर्तमान जगत् को उत्पन्न करता है, सारा जगत् इसके पाद में है और तीन पाद इसका अपने स्वरूप में मोक्ष रूप से स्थित हैं ॥५॥

६२०—ऋष्यादय पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुष ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥६॥

**पदार्थ**—( तावान् ) उतनी ( अस्य ) इसकी ( महिमा ) महिमा ( तत ) उससे भी ( ज्यायान् ) बड़ा ( च ) और ( पूरुषः ) परमेश्वर ( उत ) और ( अमृतत्वस्य ) मोक्ष का ( ईशान ) स्वामी ( यत् ) जिस कारण से ( अन्नेन ) उत्पन्न हुए जगत् आदि से ( अतिरोहति ) अतिरिक्त स्थित है ॥६॥

**भावार्थ**—उतनी तो परमेश्वर की महिमा है, परमेश्वर उससे भी महान् है । वह मोक्ष सुख का स्वामी है । इसलिए उत्पन्न हुए जगत् आदि से अतिरिक्त है ॥६॥

६२१—नारायण । स्रष्टा । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष ।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर ॥७॥

**पदार्थ**—( तत ) उस परमेश्वर से ( विराट ) प्रकाशमान आकाशमण्डल ( अजायत ) पैदा हुआ ( विराज ) विराट् का ( अधि ) अधिष्ठाता ( पूरुष ) परमेश्वर ( स ) वह (जात ) पैदा हुए से ( अत्यरिच्यत ) पृथक होता है (पश्चात) पश्चात् ( भूमिम् ) भूमि ( अथो ) अनन्तर ( पुर ) लोकशरीरादि ॥७॥

**भावार्थ** उस परमेश्वर से प्रकाशमान सौर मण्डल उत्पन्न हुआ । उसके पश्चात् भूमि को पैदा किया तदनन्तर शरीरादिक हुए । विराट् का अधिष्ठाता परमेश्वर है और वह उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड से पृथक वर्तमान है ॥७॥

६२२—वामदेव । द्यावापृथिवी । उपरिष्टाज्ज्योति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

द्यावापृथिवी भवत स्योने ते नो मुञ्चतमंहस ॥८॥

**पदार्थ**—( मन्ये ) मानता हूँ ( वाम् ) तुम दोनो को ( द्यावापृथिवी ) द्यु और पृथिवी लोक के समान माता और पिता ( सुभोजसौ ) भली भाँति पालन करने वाले ( ये ) जो ( अप्रथेथाम् ) फैले हुए हैं ( अमितं ) अपरिमित ( अभि ) सहित ( योजनम् ) योजनों तक ( द्यावापृथिवी ) द्युलोक और पृथिवीलोक ( भवत ) होते हैं ( स्योने ) सुख देनेवाले ( ते ) वे दोनों ( न: ) हमें ( मुञ्चतम् ) अलग रखें ( अंहसः ) पाप से ॥८॥

**भावार्थ**—जो द्यु और पृथिवीलोक योजनों तक फैले हुए हैं, उनके समान रक्षक माता और पिता भली भाँति रक्षा करनेवाले माने जाते हैं । वे सुख देते हैं और पाप से बचाते हैं ॥८॥

६२३—वामदेवः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तन्त्वा स्तुवन्ति कवय पुरुषासो वनर्गव ॥९॥

**पदार्थ**—( हरी ) हरणशील ( ते ) उस ( इन्द्र ) सूर्य की ( श्मश्रूणि ) श्मश्रु के समान किरणें ( उत ) और ( ते ) उसके ( हरितौ ) बलवान् हैं ( हरी ) धारण और आकर्षण ( तम् ) उस ( त्वा ) तिस ( स्तुवन्ति ) तारीफ करते हैं ( कवय ) विद्वान् ( पुरुषास ) पुरुष ( वनर्गवः ) उत्तम वाणियोंवाले ॥९॥

**भावार्थ**—सूर्य की श्मश्रु के सदृश किरणें हरणशील हैं । उसके धारण और आकर्षण शक्तिशाली हैं । उत्तम वाणीवाले विद्वान् पुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं ॥९॥

६२४—वामदेव । आत्मा । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा संसृजामसि ॥१०॥

**पदार्थ**—( यत ) जो ( वर्चः ) तेज ( हिरण्यस्य ) सुवर्ण का है ( यद्वा ) अथवा जो ( वर्च ) तेज ( गवाम् ) सूर्य की किरणों का है ( उत ) और (सत्यस्य) सत्य ( ब्रह्मण ) वेद और ईश्वर का जो ( वर्च ) तेज है ( तेन ) उससे ( मा ) अपने को ( संसृजामसि ) संयुक्त करें ॥१०॥

**भावार्थ**—हे मनुष्यो ! जो सुवर्ण का तेज है जो सूर्य की किरणों का तेज है और जो सत्य वेद तथा ईश्वर का तेज है उस तेज समुदाय से हम तुम्हें और अपने को तेजस्वी बनावें ॥१०॥

६२५—वामदेव । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २ ३ १ २

सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन ।

२ ३ १ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

क्रतु न नृम्ण स्थविर च वाज वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥११॥

**पदार्थ**—( सह ) दमन करनेवाला ( तत् ) वह ( न ) हमे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ! ( दद्धि ) दे ( ओज ) बल ( ईशे ) स्वामी है ( हि ) क्योंकि ( अस्य ) इस ( महत ) महान् बल के ( विरप्शिन् ) हे महान् ! ( क्रतु न ) यज्ञ के समान ( नृम्णम् ) सम्पत्ति ( स्थविरम् ) स्थिर ( वाजम् ) बल ( च ) भी ( वृत्रेषु ) बाधाओं के विषय में ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( सहना ) हनन करने के योग्य (कृधी) करो ( न ) हम लोगों को ॥११॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! काम क्रोधादि शत्रुओं का दमन करने वाला बल हमें दे क्योंकि तू महान् बल का स्वामी है । हमें यज्ञ के समान सम्पत्ति और स्थिर बल भी दे । बाधाओं के उपस्थित होने पर अज्ञानादि शत्रुओं के नाश करने की शक्ति भी हमें दे ॥११॥

६२६—वामदेव । गौः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सहर्षभा सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उरु पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आप सुप्रपाणा इह स्त ॥१२॥

**पदार्थ**—( सहर्षभा ) बैलों के साथ ( सहवत्सा ) बछड़ों के साथ (उदेत) प्राप्त हो ( विश्वारूपाणि ) अनेक रंगों को (बिभ्रती ) धारण करती हुई (द्व्यूध्नीः) दोनों समय दूध देने वाली ( उरु ) लम्बा ( पृथु ) चौड़ा ( अयम् ) यह ( वः ) तुम गायों के लिए ( अस्तु ) हो ( लोक ) संसार ( इमा ) ये ( आप ) जल ( सुप्रपाणः ) सुन्दर पीने के योग्य ( इह ) इस संसार में ( स्त ) होवें ॥१२॥

**भावार्थ**—अनेक रूपों वाली दोनों समय दूध देने वाली सांडों तथा बछड़ों के साथ गायें हम प्राप्त हों । यह विस्तृत संसार गायों का हो । ये जल इनके सुखपूर्वक पीने के लिए हों । ऐसे स्थानों में गायें रखी जायें ॥१२॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

६२७—वैखानस । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।

३ १ २ ३ १ २

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥

**पदार्थ**—( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( आयूंषि ) आयुओं को ( पवसे ) पवित्र करता है ( आसुव ) दे ( ऊर्जम् ) बल ( इषम् ) विज्ञान को ( च ) भी ( नः ) हमें ( आरे ) दूर ( बाधस्व ) भगा ( दुच्छुनाम् ) बुराइयों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी आयुओं की रक्षा कर । तू हमें विज्ञान और बल प्रदान कर और बुराइयों को हम से दूर भगा ॥१॥

६२८—विभ्राट् । सूर्य । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
१ २र ३ १ २ ३१२३ १ २३१ २ ३ १ ३र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥२॥

पदार्थ—( विभ्राट् ) विशेषरूप से प्रकाशमान ( बृहत् ) महान् ( पिबतु ) पान करे ( सोम्यम् ) सोमरस युक्त ओषधियों के सम्बन्धी ( मधु ) मधुररस का ( आयु ) जीवन का ( दधत् ) धारण करता हुआ ( यज्ञपतौ ) यजमान ( अविहुतम् ) निष्कंटक ( वातजूतः ) वायु के द्वारा प्रेरणा पाकर ( यः ) जो ( अभिरक्षति ) हर प्रकार से रक्षा करता है ( त्मना ) अपने आप ( प्रजाः ) प्रजाओं का ( पिपर्ति ) पालन करता है ( बहुधा ) अनेक प्रकार से ( विराजति ) प्रकाश करता है ॥२॥

भावार्थ—वायु से प्रेरणा पाने वाला सूर्य यजमान की निष्कंटक आयु को धारण करता हुआ सोम औषधि का रस ग्रहण कर खींच लेता है, प्राणिमात्र की रक्षा और पालन भी करता है और वह बहुत प्रकाश करता है ॥२॥

६२९—कुत्सः । सूर्य । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३॥

पदार्थ—( चित्रम् ) अद्भुत ( देवानाम् ) विद्वान् तथा दिव्य पदार्थों का ( उदगात् ) उत्तमता से प्रकाशित होता है ( अनीकम् ) अद्भुत ( चक्षुः ) प्रकाश करनेवाला ( मित्रस्य ) सूर्य का ( वरुणस्य ) न्यायकारी आनन्ददाता का ( अग्नेः ) बिजली का ( आप्रा ) परिपूर्ण करता है ( द्यावापृथिवी ) द्युलोक और पृथिवीलोक को ( अन्तरिक्षम् ) अंतरिक्ष लोक को ( सूर्य ) सबका प्रेरक परमात्मा ( आत्मा ) सर्व व्यापक ( जगत ) जंगम ( तस्थुषः ) स्थावर का ॥३॥

भावार्थ—स्थावर और जंगम संसार का आत्मा सबका प्रेरक परमेश्वर विद्वानों और दिव्य पदार्थों का मित्र, न्यायकारी तथा अग्नि आदि तेज तत्त्वों का इन्द्रियातीत [जो इन्द्रियों का विषय नहीं] अद्भुत द्रष्टा है । वह हमारे हृदयों में प्रकाशित होता है । वह द्युलोक पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोकों को पूर्ण कर रहा है ॥३॥

६३०—सार्पराज्ञी । सूर्य । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४॥

पदार्थ—( आ ) हर प्रकार से ( अयं ) यह ( गौः ) भूगोल ( पृश्निः ) अन्तरिक्ष में ( अक्रमीत् ) घूमता है । ( असदत् ) प्राप्त करता हुआ ( मातरं ) माता के समान जल को ( पुरः ) आगे ( पितरं ) सूर्य को भी ( प्रयन् ) चलता हुआ ।४।

अथवा

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( अयं ) यह जीव ( गौः ) गतिशील ( पृश्निः ) सुखदुःखादि का स्पर्श करनेवाला ( अक्रमीत् ) घूमता है ( असदत् ) प्राप्त करता हुआ ( मातरं ) माता को ( पुरः ) आगे ( पितरं ) पिता को ( च ) भी । ( प्रयन् ) प्राप्त करता हुआ ( स्वः ) सुखपूर्वक रहनेवाला ॥४॥

भावार्थ—यह भूगोल सूर्य के चारों ओर घूमता है ॥४॥

अथवा

भावार्थ—सुख-दुःखादि का स्पर्श करनेवाला गतिशील यह जीवात्मा माता और पिता को प्राप्त करता हुआ सुखपूर्वक संसार में विचरता है ॥४॥

६३१—सार्पराज्ञी । सूर्यः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ २र ३ १ २र
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥५॥

पदार्थ—( अन्तः ) संसार में ( चरति ) व्यापक हो रही है ( रोचना ) दीप्ति [प्रकाश] ( अस्य ) इस ईश्वर की ( प्राणात् ) प्राणन क्रिया से लेकर ( अपानती ) अपानन क्रिया तक का संचालन करती हुई । ( व्यख्यत् ) प्रकाशित करता है ( महिषः ) महान् ( दिवम् ) सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ को ॥५॥

भावार्थ—प्राण और अपान आदि क्रियाओं का संचालन करता हुआ इस परमात्मा का प्रकाश विश्व में व्यापक हो रहा है । महान् परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाशक पदार्थों को प्रकाशित भी करता है ॥५॥

६३२—सार्पराज्ञी । सूर्य । गायत्री ।

३ २क ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ।६।

पदार्थ—( त्रिंशद्धाम ) ३० मुहूर्त [२४ घण्टे] ( विराजति ) प्रकाश करता है । ( वाक् ) वेदवाणी ( पतंगाय ) परमात्मा के लिए ( धीयते ) धारण की जाती है ( प्रतिवस्तोः ) प्रतिदिन ( अह ) अच्छी प्रकार से ( द्युभिः ) ज्ञानरूप प्रकाशों से ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा तीस घड़ी [समस्त दिन-रात] अपने ज्ञानरूप प्रकाशों से अच्छी प्रकार प्रकाश करता है । वेद मन्त्रों के द्वारा उसकी स्तुति की जाती है ॥६॥

६३३—प्रस्कण्वः । सूर्य । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥७॥

पदार्थ—( अप ) दूर होना ( त्ये ) वे ( तायवः ) चोर ( यथा ) जैसे ( नक्षत्राः ) तारे ( यन्ति ) छिप जाते हैं ( अक्तुभिः ) रात्रि के साथ ( सूराय ) सूर्य के लिए ( विश्वचक्षसे ) सबका प्रकाशक ॥७॥

भावार्थ—विश्व के प्रकाशक सूर्य के उदय होते ही चोर की भांति रात्रि के साथ तारे जैसे छिप जाते हैं, वैसे ही सबके साक्षी परमात्मा का ज्ञान होते ही हमारे कामादि शत्रु दूर हो जाते हैं ॥७॥

६३४—प्रस्कण्व । सूर्य । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥८॥

पदार्थ—( अदृश्रन् ) दिखलाई देते हैं ( अस्य ) इस परमात्मा के ( केतवः ) विज्ञानादिगुण ( विरश्मयः ) सर्वव्यापक ( जनान् अनु ) प्राणिमात्र में ( भ्राजन्तः ) दीप्तियुक्त [प्रकाशमान] ( अग्नयः यथा ) अग्नि की भांति ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा के सर्वव्यापक विज्ञान आदि गुण प्रकाशमान अग्नि के समान प्राणिमात्र में दिखलाई देते हैं ॥८॥

६३५—प्रस्कण्व । सूर्य । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥९॥

पदार्थ—( तरणिः ) संसार-सागर से पार करने वाला ( विश्वदर्शतः ) मुमुक्षुओं द्वारा साक्षात् करने के योग्य ( ज्योतिष्कृत् ) सूर्यादि का बनानेवाला तथा ज्ञान का प्रकाशक ( असि ) है ( सूर्य ) हे सब के प्रेरक परमात्मन् ! ( विश्व ) संसार को ( आभासि ) प्रकाशित करता है ( रोचनम् ) रुचिपूर्ण ॥९॥

भावार्थ—हे सृष्टि कर्त्ता परमात्मन् ! तू संसार सागर से पार करनेवाला है । तू योगियों द्वारा साक्षात् करने के योग्य है । तू सूर्यादि प्रकाशों को उत्पन्न करनेवाला है तू रुचिपूर्ण संसार को बनाता है ॥९॥

६३६—प्रस्कण्व । सूर्य । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
३ २उ ३क २र ३ २
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१०॥

पदार्थ—( प्रत्यङ् ) उपासनीय ( देवानां ) विद्वान् पुरुषों के ( विशः ) प्रजायें ( प्रत्यङ् ) पूज्य ( उदेषि ) साक्षात् होता है ( मानुषान् ) मनुष्यों को ( प्रत्यङ् ) भजनीय ( विश्वं ) सब ( स्वः ) सुख का ( दृशे ) देखने के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू विद्वानों के उपासना योग्य तथा मनुष्य प्रजाओं के हृदयों में पूज्य रूप से साक्षात होता है । सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करने के लिए तू ही भजन के योग्य है ॥१०॥

६३७—प्रस्कण्व । सूर्य । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥११॥

पदार्थ—( येन ) जिससे ( पावक ) हे पवित्र करनेवाले ( चक्षसा ) विज्ञान प्रकाश से ( भुरण्यन्तं ) धारण और पोषण करनेवाले लोकों ( जनान् ) मनुष्यों को ( अनु ) पश्चात् ( त्वं ) तू ( वरुण ) हे बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभो ( पश्यसि ) देखता है ॥११॥

भावार्थ—हे पवित्र करनेवाले तथा बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभो ! आप जिस विज्ञान के प्रकाश से धारण पोषण करते हुए इस संसार और मनुष्यों को भली भांति देखते हैं, उस से हमें युक्त कीजिए ॥११॥

६३८—प्रस्कण्व । सूर्य । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ।१२।

पदार्थ—( उत ) उपरिभाव ( द्यां ) प्रकाश को ( एषि ) प्राप्त होता है ( रजः ) लोकसमूह ( पृथु ) विस्तृत ( अहा ) दिन ( मिमानः ) व्यवस्था में करता हुआ ( अक्तुभिः ) रात्रि के साथ ( पश्यन् ) देखता हुआ ( जन्मानि ) अनेक जन्मों को ( सूर्य ) हे चराचर जगत् के आत्मा परमात्मन् ॥१२॥

भावार्थ—हे चराचर जगत् के आत्मा परमात्मन् ! तू द्युलोक और विस्तृत लोकसमूह तथा रात्रि के साथ दिन का विभाग करता हुआ, ऐसे ही हमारे अनेक जन्मों को देखता हुआ सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१२॥

६३९—प्रस्कण्व । सूर्य । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र १ २ ३ १ २
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्र्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥१३॥

पदार्थ—( अयुक्त ) जोड़ता है ( सप्त ) सात वायुओं को ( शुन्ध्युव ) पवित्र करने वाली ( सूरः ) सब का प्रेरक ( रथस्य ) शरीर रूप रथ का (नप्त्यः) नहीं गिरने देनेवाली अर्थात् शरीर की रक्षा करनेवाली ( ताभि ) उनके साथ ( याति ) जाता है (स्वयुक्तिभि ) अपने स्वाभाविक गुणों के साथ ।।१३।।

भावार्थ—सब का प्रेरक परमात्मा मानव शरीर की रक्षा करनेवाली सात वायुओं को शरीर के साथ जोड़ता है । उनसे तथा अपने स्वाभाविक ज्ञान आदि गुणों के साथ युक्त होकर जीवात्मा अपना व्यवहार सिद्ध करता है ।।१३।।

*६४०—प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

१ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ।।१४।

पदार्थ—( सप्त ) सात, ५ ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि ( त्वा ) तुझको ( हरितः ) ले चलनेवाली ( रथे ) शरीररूप रथ में ( वहन्ति ) ले चलती हैं ( देव ) दिव्य ( सूर्य ) हे जीव ( शोचिष्केशं ) प्रकाशमय ( विचक्षण ) हे बुद्धिमान् ।।१४।।

भावार्थ—हे बुद्धिमान् दिव्य गुण युक्त जीव ! शरीर में ले चलनेवाली सात इन्द्रियां प्रकाशमय तुझ को प्राप्त होती हैं ।।१४।।

卐 पांचवी दशती समाप्त 卐

卐

# महानाम्न्यार्चिकः

*६४१—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । शक्वरी सोपसर्गा ।*

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २

विद्मा मघवन् विद्मा गातुमनुशंसिषो दिशः ।

१ २ ३ १ २

शिक्षा शचीनांपते पूर्वीणां पुरूवसो ।।१।।

पदार्थ—( विद्मा ) जानता है ( मघवन् ) हे सब धनों के स्वामी परमेश्वर ( विद्मा ) जानता है ( गातु ) गन्तव्य स्थान [ जाने की जगह ] ( अनुशंसिष ) ज्ञान करा ( दिशः ) मार्गों को ( शिक्षा ) दे ( शचीनाम्पते ) अनेक ज्ञानों के स्वामी ( पूर्वीणां ) सनातन ( पुरूवसो ) हे पर्याप्त धन वाले ।।१।।

भावार्थ—हे सनातन ज्ञान के स्वामी, पर्याप्त धन वाले परमेश्वर ! तू सर्वज्ञ है । सब के जाने के स्थान को जानता है । हमें मार्ग का ज्ञान करा, धन दे ।।१।।

*६४२—प्रजापति । त्रैलोक्यात्मा । शक्वरी सोपसर्गा ।*

३ २उ ३ १ २ ३ २ २

आभिष्ट्वमभिष्टिभि स्वाऽ३र्न्नांशु ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ।। ।।

पदार्थ—( आभि ) इन ( त्व ) तू ( अभिष्टिभि ) प्रार्थनाओं से ( स्व ) सूर्य के ( न ) समान ( अंशु ) व्यापक ( प्रचेतन ) हे प्रकाशक ( प्रचेतय ) चेता ( इन्द्र ) हे परमैश्वर्ययुक्त परमेश्वर ( द्युम्नाय ) यश के लिए ( न ) हम ( इषे ) अन्न विज्ञान के लिए ।।२।।

भावार्थ—हे चेतनस्वरूप परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू सूर्य के समान तेज से व्यापक है । हमारी इन अभीष्टसिद्धि की प्रार्थनाओं से प्रसन्न हो हमें यश, विज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए चेता ।।२।।

*६४३—प्रजापति । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।*

३ २उ ३ २ ३ १ २र १ २र ३ २ ३

एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिव । शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व ।। ।।

पदार्थ—( एव ) निश्चित रूप से ( हि ) क्योंकि ( शक्र ) शक्तिमान् ( राये ) धन के लिए ( वाजाय ) अन्न के लिए ( वज्रिव ) हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले ( शविष्ठ ) हे अति बलवान् ( वज्रिन् ) हे दुष्टों के दमन करनेवाले ( ऋञ्जसे ) बलवान् बना (वज्रिन् ऋञ्जसे) हे दुष्टों के दमन करनेवाले हमें अवश्य धन पाने की योग्यता दे । ( मंहिष्ठ ) हे अत्यन्त पूज्य ( आयाहि ) आ ( पिब ) स्वीकार कर ( मत्स्व ) हम पर प्रसन्न हो ।।३।।

भावार्थ—हे अति बलवान् पूज्य, दुष्टों के संहार करनेवाले परमेश्वर ! तू निश्चय ही दुष्टों का दमन करने में शक्तिमान् है । इसलिए हमें धन और अन्न आदि सम्पत्तियां दे । हमें धन पाने की योग्यता अवश्य प्रदान कर । हमें प्राप्त हो, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर और प्रसन्न हो ।।३।।

*६४४—प्रजापति । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।*

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

विद्मा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशां अनु ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ।।४।।

पदार्थ—( विद्मा ) प्राप्त करा ( राये ) धन के लिए ( सुवीर्यं ) उत्तम बल को ( भवा ) बना ( वाजानां पतिः ) बलों के स्वामी ( वशां ) स्वाधीन ( अनु ) अनुकूल ( मंहिष्ठ ) हे अत्यन्त पूजनीय, ( वज्रिन् ) हे दुष्टों को दण्ड देने वाले ( ऋञ्जसे ) प्रसन्न करते हैं ( य ) जो ( शविष्ठः ) अत्यन्त बलवान् ( शूराणां ) शूरवीरों में ।।४।।

भावार्थ—हे पूज्य दुष्टों को दण्ड देनेवाले परमेश्वर ! तू बलवानों में परम बलवान् और सब बलों का स्वामी है । हम तुझे प्रसन्न करते हैं । तू हमें सम्पत्ति के लिए सुन्दर बल दे और स्वाधीन बना ।।४।।

*६४५—प्रजापति । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।*

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ २

यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३र २र

चिकित्वो अभि नो नय इन्द्रो विदे तमु स्तुहि ।।५।।

पदार्थ—( य ) जो ( मंहिष्ठ ) महान् दानी ( मघोनाम् ) धनियों में ( अंशु न शोचि ) सूर्य के समान तेजस्वरूप ( चिकित्व ) हे ज्ञानस्वरूप ( अभि ) सब ओर से ( न ) हम ( नय ) प्राप्त करा ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (विदे) प्राप्त होता है ( तमु ) उसी की ही ( स्तुहि ) स्तुति कर ।।५।।

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! जो परमेश्वर धनवानों में महान् दानी, सूर्य के समान तेजस्वरूप और परम ऐश्वर्य वाला है हमें उसे प्राप्त करा और उसी की ही स्तुति कर ।।६।।

*६४६—प्रजापति । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।*

२ ३ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १२

ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ।।६।।

पदार्थ—(ईशे) शासन करता है (हि) क्योंकि (शक्र) शक्तिमान् (तम्) उसे ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( हवामहे ) पुकारते हैं ( जेतारं ) विजय करने वाले ( अपराजितम् ) न हारने वाले ( स ) वह ( न ) हमारे ( स्वर्षत् ) दूर करे ( अति ) अत्यन्त ( द्विष ) द्वेष करनेवालों को ( क्रतु ) यज्ञ ( छन्द ) वेद ( ऋत ) सत्य ( बृहत ) महान् हो ।।६।।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही सब पर शासन करता है । वह न हारने वाला और विजयी है । हम अपनी रक्षा के लिए उसको पुकारते हैं । वह हमारे शत्रुओं के द्वेषभाव को दूर करे । हमारा यज्ञ वेद और सत्य महान् हो ।।६।।

*६४७—प्रजापति । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स नः स्वर्षदति द्विषः । स नः स्वर्षदति द्विषः ।।७।।

पदार्थ—( इन्द्रं ) परमेश्वर को ( धनस्य ) सम्पदाओं की ( सातये ) प्राप्ति के लिए ( हवामहे ) पुकारते हैं ( जेतारम् ) विजयी ( अपराजितम् ) नहीं पराजित होने वाले ( स ) वह ( न ) हमारे ( स्वर्षत् ) दूर करे ( अति ) अत्यन्त (द्विषः) द्वेष करनेवालों को ( स ) वह ( न ) हमें ( स्वर्षत् ) दूर करे ( अति ) अत्यन्त ( द्विष ) द्वेष करने वालों से ।।७।।

भावार्थ—सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए हम कभी न हारने वाले विजयी परमेश्वर को पुकारते हैं । वह हमारे शत्रुओं को हमसे परे करे तथा शत्रुओं से हमें दूर रखे ।।७।।

*६४८—प्रजापति । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।*

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र

पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय । सुम्न आ धेहि नो वसो ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

पूर्तिः शविष्ठ शस्यते । वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ।।८।।

पदार्थ—( पूर्व्यस्य ) सनातन ( यत् ) जो ( ते ) तेरे ( अद्रिवः ) हे आदरणीय ( अंशुः ) प्रकाश ( मदाय ) आनन्द के लिए है ( सुम्ने ) सुख में ( आधेहि ) रख ( नः ) हमें ( वसो ) भोग में हमें वास कराने वाले ( पूर्तिः ) पालन ( शविष्ठ ) हे बलशाली ( शस्यते ) प्रशंसा के योग्य है ( वशी ) सब को वश में रखने वाला ( हि ) निश्चय ( शक्र ) शक्तिमान् ( नूनम् ) निश्चित रूप से ( तत् ) उस ( नव्यम् ) स्तुति के योग्य ( संन्यसे ) सम्यक् प्रकार से भजन करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—हे आदर के योग्य परमेश्वर ! तू सनातन है। तेरा प्रकाश आनन्द देने वाला है। हे सर्वाधार, हमें सुखी बना। हे शक्तिमान् प्रभो ! तेरे पालन-पोषण प्रशंसनीय हैं। निश्चय ही तू सब को वश में रखने वाला है। मैं तेरा भजन करता हूँ ॥८॥

६४९—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

१ १२ ३र २ १ २
प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै।
२ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयु ॥९॥

पदार्थ—( प्रभो ) स्वामी है ( जनस्य ) जनता का ( वृत्रहन् ) अज्ञान-निवारक ( सं ) भली भाँति ( अर्येषु ) श्रेष्ठ पुरुषों में ( ब्रवावहै ) हम दोनों गुरु शिष्य संवाद करते हैं ( शूरः ) शक्तिमान् ( यः ) जो ( गोषु ) पृथिव्यादि में ( गच्छति ) व्यापक होकर विद्यमान है ( सखा ) वह मित्र है ( सुशेवः ) सुन्दर सुखों का दाता ( अद्वयुः ) अद्वितीय ॥९॥

भावार्थ—जो परमेश्वर जनता का स्वामी, अज्ञान का नाशक, सर्वशक्तिमान्, सो ही सुन्दर सुखों का दाता, अद्वितीय और गतिशील पृथिवी आदि पदार्थों में व्यापक होकर विद्यमान है, हम दोनों गुरु और शिष्य भद्र पुरुषों मे उसका संवाद करें ॥९॥

६५०—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

१ २ १ ३ १ २ ३ १ २
एवाह्योऽ३ऽ३ऽ३ व एवा ह्यग्ने। एवाहीन्द्र।
३ १ २र ३ १ २र
एवा हि पूषन् एवा हि देवा ॥१०॥

पदार्थ—( एव ) ऐसा ही ( हि ) निश्चय ( एव ) ही ( एवं ) ऐसा ही ( हि ) निश्चय ( अग्ने ) हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ( एव ) ऐसा ही ( हि ) निश्चय ( इन्द्र ) हे परम ऐश्वर्यवाले परमेश्वर ( एवं ) ऐसा ही ( हि ) निश्चय से ( पूषन् ) हे पालन करनेवाले परमेश्वर ( एव ) ऐसा ही ( हि ) निश्चय ( देवा ) हे दिव्य-गुण युक्त परमेश्वर ! ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! हे पालन करने वाले पिता ! हे दिव्यगुणयुक्त ईश्वर ! तू जैसा वर्णन किया जाता है, वैसा ही है ॥ १० ॥

卐 पूर्वार्चिक समाप्त 卐

卐

# सामवेद भाषाभाष्ये उत्तरार्चिकः

## प्रथमोऽध्याय.

६५१—असित देवलो वा। सोमः। गायत्री।

२ ३ १२ ३१ २ ३ २३ १ २र
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( अस्मै ) इस ( गायता ) गान करो ( नर ) हे मनुष्यो ( पवमानाय ) पवित्रकारक ( इन्दवे ) ऐश्वर्यवाले परमेश्वर के लिए ( अभि ) सब प्रकार से ( देवान् ) महात्माओं को ( इयक्षते ) आत्मज्ञान प्रदान करने की इच्छा करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो, योगियों को आत्मज्ञान देनेवाले, पवित्रकारक, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का गान करो ॥१॥

६५२—कश्यप। सोम। गायत्री।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ २
अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयु। देवं देवाय देवयु ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( ते ) तुझ ( मधुना ) कर्म से ( पय ) ज्ञान को ( अथर्वाण ) ज्ञानीजन ( अशिश्रयु ) आश्रय लेते हैं। ( देवं ) दिव्य ( देवाय ) देव की प्राप्ति के लिए ( देवयु ) ईश्वर को प्राप्त कराने वाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, ज्ञानीजन तुझ देव की प्राप्ति के लिए निष्काम कर्मों के द्वारा तुझे प्राप्त कराने वाले दिव्यज्ञान का आश्रय लेते हैं ॥२॥

६५३—वैखानसः। सोम। गायत्री।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

पदार्थ—( सः ) वह तू ( न ) हमारे ( पवस्व ) दे ( शं ) कल्याण ( गवे ) गौ के लिए ( शं ) कल्याण ( जनाय ) सन्तान के लिए ( शं ) कल्याण ( अर्वते ) घोड़े के लिए ( शं ) कल्याण ( राजन् ) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ( ओषधीभ्य ) रोगनिवारक औषधों के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर तू हमारे गाय, पुत्रादि, घोड़े और रोग-निवारक औषधों को कल्याणकारी बना ॥३॥

६५४—अमहीयुः। अंगिरः। गायत्री।

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥१॥

पदार्थ—( दविद्युतत्या ) अधिक प्रकाशवाली ( रुचा ) तेज से ( परिष्टोभन्त्या ) हर प्रकार से गुणों का वर्णन करनेवाली ( कृपा ) शक्ति से ( सोमाः ) सौम्य गुणवाले योगीजन ( शुक्रा ) पवित्र अन्तःकरण वाले ( गवाशिरः ) जितेन्द्रिय ॥१॥

भावार्थ— जितेन्द्रिय पवित्र अन्तःकरण वाले योगीजन ब्रह्म तेज तथा योग शक्ति से युक्त होते हैं ॥१॥

६५५—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा। सोम। गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र
हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्।
१ २ ३ १ २
सीदन्तो वनुषो यथा ॥२॥

पदार्थ—( हिन्वान ) प्रेरित होकर ( हेतृभिः ) सांसारिक दुःखों से ( हितः ) अपना हित चाहने वाला ( आ ) सब प्रकार से ( वाजं ) ज्ञान को ( वाजी ) ज्ञानी पुरुष ( अक्रमीत् ) चलता है ( सीदन्तः ) संग्राम मे प्रवेश करनेवाले ( वनुष ) योद्धा ( यथा ) जैसे ॥२॥

भावार्थ—संसार के दुःखो से दुःखी होकर ज्ञानी पुरुष अपने हित की दृष्टि से ज्ञान की ओर चलते हैं, जैसे कि योद्धा लोग युद्ध में प्रवेश करते हैं ॥२॥

६५६—हरिमन्त। सोम। गायत्री।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ १२ ३ १ २ ३ २
ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे। पवस्व सूर्यो दृशे ॥३॥

पदार्थ—( ऋधक् ) समृद्धिकारक ( सोम ) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ( स्वस्तये ) कल्याण के लिए ( संजग्मानः ) सगत होता हुआ ( दिवा ) प्रकाश के साथ ( कवे ) हे वेदरूपी काव्य के कर्ता ( पवस्व ) हमें पवित्र कर ( सूर्य ) सूर्य ( दृशे ) देखने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान के दाता परमेश्वर ! तू हमारी उन्नति चाहनेवाला है। संसार के देखने के लिए प्रकाश से युक्त सूर्य की भाँति हमारे कल्याण के लिए हमें पवित्र कर ॥३॥

६५७—विश्वामित्र। सोम। गायत्री।

१ २ ३ २ ३ १ २ १२ ३ १ २ ३ १ २
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत। अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१॥

पदार्थ—( पवमानस्य ) पवित्रकारक ( ते ) तेरी ( कवे ) हे वेदरूप काव्य की रचना करनेवाले परमेश्वर ( वाजिन् ) ज्ञानवान् ( सर्गा ) सृष्टि ( असृक्षत ) बनाई जाती है ( अर्वन्तो न ) यजमान के समान ( श्रवस्यव ) अन्न और यश चाहने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानमय वेदों के प्रकाशक परमेश्वर, तू पवित्र है। तू उसी प्रकार से भांति भांति की सृष्टि की रचना करता है जिस प्रकार धन और यश के चाहने वाला यजमान अनेक प्रकार के यज्ञ की रचना करता है ॥१॥

६५८—*अमहीयु । सोम । गायत्री ।*

१ १ १२ १ २३१२३१२३१२ १२ ३१२
**अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥२॥**

पदार्थ—( अच्छा ) प्राप्त करने के लिए ( कोशं ) आनन्दमय कोश को ( मधुश्चुतम् ) अमृतवर्षा करनेवाले ( असृग्रम् ) खोलते हैं ( वारे ) वरण करने योग्य ( अव्यये ) नित्य परमेश्वर की शरण में [ विद्यमान होकर ] ( अवावशन्त ) कामना करते हैं ( धीतयः ) ज्ञानीजन ॥२॥

भावार्थ—प्राप्त करने योग्य नित्य परमेश्वर की शरण मे उपस्थित होकर ज्ञानीजन अमृत की वर्षा करनेवाले आनन्दमय कोष को भली भांति खोलते हैं और ब्रह्मानन्द की कामना भी करते हैं ॥२॥

६५९—*अमहीयु । सोम । गायत्री ।*

१ २३ २उ ३२ ३ २३ २ ३१२ १२३२३ २३२
**अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥३॥**

पदार्थ—( अच्छा ) भली भांति ( समुद्र ) ईश्वर को ( इन्दव ) उपासक जन ( अस्तं ) गोशाला में ( गाव ) गौओं के ( न ) समान ( धेनवः ) दूध देने वाली ( अगमन् ) प्राप्त करते हैं ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान [वेद] के ( योनिम् ) कारण ( आ ) सब प्रकार से ॥३॥

भावार्थ—भक्तजन सत्य के कारण परमेश्वर को भली भांति वैसे ही प्राप्त करते हैं जैसे कि दूध देनेवाली गौएँ गोशाला में चली जाती हैं ॥३॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

६६०—*भरद्वाज । अग्नि । गायत्री*

२ १ १ २ ३१२ ३२३१२ १ २र ३१२
**अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥**

पदार्थ—( अग्ने ) हे ज्ञान गुणयुक्त जीव ( आयाहि ) आ ( वीतये ) आनन्द की प्राप्ति के लिए ( गृणानः ) स्तुति करते हुए ( हव्यदातये ) धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष का उपदेश देने के लिए ( नि ) निश्चित रूप से ( होता ) उत्तम गुणो का ग्रहण करने वाला ( सत्सि ) विराजमान होओ ( बर्हिषि ) ब्रह्म में ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानगुणयुक्त जीव ! धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष का उपदेश देने के लिए [इस संसार मे] आ। गुण ग्राहक तू आनन्द की प्राप्ति के लिए स्तुति करता हुआ ब्रह्म की शरण मे उपस्थित हो ॥१॥

६६१—*भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।*

१ २ ३१२ ३१२ ३१२
**तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥२॥**

पदार्थ—( तं ) उस ( त्वा ) तुमको ( समिद्भि ) शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले ( अङ्गिर ) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ( घृतेन ) उत्तम विज्ञान के द्वारा ( वर्धयामसि ) प्रकाशित [प्रचार] करते हैं ( बृहत ) महान् ( शोच) पवित्र कर ( यविष्ठ्य ) हे अतिशय बलवान् ॥२॥

भावार्थ—हे अत्यन्त बलवान् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से होने वाले उत्तम विज्ञान के द्वारा तुझ ब्रह्म का हम प्रकाश करते हैं। तू महान् है हमे पवित्र कर ॥२॥

६६२—*भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।*

१२ ३२ ३२ ३१ २ ३ १२ ३१२
**स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवासति । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३॥**

पदार्थ—( स ) वह ( न ) हमे ( पृथु ) विशाल ( श्रवाय्य ) कीर्तिकर ( अच्छा ) भली भांति ( देव ) हे देव ( विवाससि ) प्राप्त करा ( बृहत् ) महान् ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप ( सुवीर्य ) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप देव परमेश्वर तू हमे विशाल कीर्ति फैलाने वाले, महान् और उत्तम पराक्रम को दे ॥३॥

६६३—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

१ २ ३१ २र २ ३ १२
**आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१॥**

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( न ) हमारे (मित्रावरुणौ ) हे परमेश्वर, तेरी मित्र, वरुण शक्तियें ( घृतैः ) तेजों से ( गव्यूतिम् ) जहां तक सूर्य की किरणों इन्द्रियों और पृथिवी का सम्बन्ध है वहां तक ( उक्षतम् ) तृप्त करें ( मध्वा ) सुखदायक फल से ( रजांसि ) सब लोकों को ( सुक्रतू ) उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम व्यवहार सिद्ध करनेवाली तेरी मित्र और वरुण शक्तियां अपने तेजो से सूर्य के प्रकाशमार्ग, इन्द्रियगोचर विषय और पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाले स्थानों तक तथा सुखदायक फलों से लोक-लोकान्तरों को भी तृप्त करें ॥१॥

६६४—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ १ २ ३१२ ३१ २र ३ २
**उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥२॥**

पदार्थ—( उरुशंसा ) प्रशंसा के योग्य ( नमोवृधा ) ब्रह्म का प्रकाश करने वाले ( मह्ना ) शक्ति से ( दक्षस्य ) आत्मा के ( राजथ ) शोभित होते हैं ( द्राघिष्ठाभि ) बड़ी गतियो से ( शुचिव्रता ) पवित्र क्रिया करने वाले प्राण और अपान ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसा के योग्य परमेश्वर, प्रकाश करने वाले, पवित्र क्रियाओं वाले प्राण और अपान आत्मा की महिमा तथा अपनी लम्बी गतियों से शरीर में विराजमान हैं ॥२॥

६६५—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ २३१२ ३ १२३१२ ३१ २र
**गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥३॥**

पदार्थ—( गृणाना ) स्तुति करते हुए ( जमदग्निना ) ज्ञान अग्नि से ( योनौ ) कारण में ( ऋतस्य ) वेदज्ञान ( सीदतम् ) विराजमान होते हैं ( पातम् ) पीते हैं ( सोमम् ) ज्ञान रस ( ऋतावृधौ ) वेदज्ञान और ऋतम्भरा प्रज्ञा से प्रकाशमान ॥३॥

भावार्थ—स्तुति करते हुए वेदज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि से प्रकाशमान विद्वान् और योगीजन ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा वेदज्ञान के कारण परमेश्वर की शरण में स्थिति पाते हैं तथा आनन्दरस का पान भी करते हैं ॥३॥

६६६—*इरमिठ । इन्द्र । गायत्री ।*

१ २ ३२उ ३२३२३ १ २ ३२
**आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।**

२३३१२३१२
**एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥**

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( याहि ) आ ( सुषुमा ) उत्पन्न किया है ( इन्द्र ) हे मुक्त पुरुष ( ते ) तेरे लिए ( सोमम् ) संसार को ( पिब ) स्वीकार कर ( इम ) प्रत्यक्ष ( आ ) सब प्रकार से ( इद ) इस ( बर्हि ) मोक्षधाम को ( सद ) प्राप्तकर ( मम ) मेरे ॥१॥

भावार्थ—हे मुक्त पुरुष ! तेरे लिए ही संसार को हमने बनाया है। तू आ इस संसार का भली भांति भोग कर। पश्चात् मेरे मोक्षधाम पर पहुँच जा ॥१॥

६६७—*इरमिठ । इन्द्र । गायत्री ।*

१ २ ३२३ २३१२ ३१ २ २३१२
**आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥**

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( त्वा ) तुझको ( ब्रह्मयुजा ) मन्त्रोंवाले ( हरी ) ऋग्वेद और सामवेद ( वहताम् ) प्राप्त करावें ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( केशिना ) ज्ञान के प्रकाशक ( उप ) समीप ( ब्रह्माणि ) स्तोत्र ( नः ) हमारे ( शृणु ) सुन ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर मन्त्रमय ज्ञान के प्रकाशक सामवेद और ऋग्वेद तुझे प्राप्त करावें। तू हमारी स्तुतियों को सुन ॥२॥

६६८—*इरमिठ । इन्द्र । गायत्री ।*

३१ २ ३२ ३१२३१२ ३१२ ३१२
**ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३॥**

पदार्थ—( ब्रह्माणः ) वेद के जानने वाले ( त्वा ) तुझे ( युजा ) योग से ( वय ) हम ( सोमपाम् ) संसार के रक्षक ( इन्द्र ) हे परमेश्वर (सोमिनः) ऐश्वर्यवाले ( सुतावन्त ) संसारी ( हवामहे ) पुकारते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! योगरूप ऐश्वर्यवाले वेद के ज्ञान से युक्त संसारी हमलोग योग-बल से तुझ लोक-पालक को पुकारते हैं ॥३॥

६६९—*विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३२३ २र३ १२ ३ १ २ ३२३२
**इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) ज्ञानी और ईश्वर भक्त ( आगतं ) आते हैं ( सुतं ) संसार में ( गीर्भिः ) वेद वाणियों के द्वारा ( नभः ) सुख को ( वरेण्यं ) चाहने योग्य ( अस्य ) इस ( पातं ) रक्षा करते हैं। ( धिया ) कर्म और ज्ञान से ( इषिता ) मोक्षाह्वान लाये हुए ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म से प्रेरित हुए ज्ञानी और ईश्वरभक्त जन इस संसार में आते हैं और वेद-वाणियों के द्वारा वर्णन किए गए सुख की रक्षा करते हैं ॥१॥

६७०—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमं सुतम् ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) प्राण और अपान ( जरितुः ) वृद्धावस्था मे ( सचा ) सहायक हैं ( यज्ञो ) परमात्मा ( जिगाति ) उपदेश करता है ( चेतन ) चेतनस्वरूप ( अया ) अपनी गति से ( पातम् ) रक्षा करते हैं ( इम ) इस ( सुतं ) संसार को ॥२॥

भावार्थ—चेतनस्वरूप परमात्मा उपदेश करता है कि प्राण और अपान वृद्धावस्था में सहायक हैं तथा अपनी बाहरी गति से इस संसार की भी रक्षा करते हैं ॥२॥

६७१—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् ( अग्नि ) ज्ञानमय ( कविच्छदा ) मेधावी पुरुषों की रक्षा करनेवाली ( यज्ञस्य ) परमात्मा की ( जूत्या ) प्रेम से ( वृणे ) स्वीकार करता हूँ ( ता ) वे दोनों शक्तियाँ ( सोमस्य ) ऐश्वर्य और ज्ञान से ( तृम्पतां ) तृप्त करें ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा की ऐश्वर्य और ज्ञानमय शक्तियों को हम प्रेम से अपनाते हैं । वे इस संसार में ऐश्वर्य और ज्ञान से हमें तृप्त करें ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्तः 卐

६७२—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रव ॥१॥

पदार्थ—( उच्चा ) परे ( ते ) तेरा ( जात ) प्रसिद्ध ( अन्धसः ) अज्ञान या अन्धकार से ( दिवि ) ज्ञान या प्रकाश मे ( सत् ) वर्तमान ( भूमी ) पृथिवी पर रहने वाला ज्ञानी मनुष्य ( उग्र ) श्रेष्ठ ( शर्म ) सुख ( महि ) महान् ( श्रवः ) यश ॥१॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू अज्ञान से परे और ज्ञान में स्थित है । हम संसारी जन तेरे ही प्रसिद्ध उत्तम सुख और महान् यश को प्राप्त करते हैं ॥१॥

६७३—अमहीयुः । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—( स ) वह ( नः ) हमारे ( इन्द्राय ) सभाध्यक्ष के लिए ( यज्यवे ) यज्ञ करने वाले यजमान के लिए ( वरुणाय ) न्याय करनेवाले के लिए ( मरुद्भ्यः ) उपासकों के लिए ( वरिव ) सबसे श्रेष्ठ ( वित् ) ज्ञान का दाता ( परिस्रव ) ज्ञान का मार्ग खोल दे ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब से श्रेष्ठ और ज्ञानदाता है । तू हमारे सभाध्यक्ष, यजमान, न्यायाधीश और भक्तजनों के लिए ज्ञान का मार्ग खोल दे ॥२॥

६७४—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

पदार्थ—( एना ) इन ( विश्वानि ) सारे ( अर्यः ) प्राप्त करने वाले ( आ ) सब प्रकार से ( द्युम्नानि ) सम्पत्तियों को ( मानुषाणाम् ) मनुष्य सम्बन्धी ( सिषासन्त ) भोग करने की इच्छा करते हुए ( वनामहे ) भजन करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मनुष्य सम्बन्धी सारी सम्पदाओं को प्राप्त करते और उनके भोग की इच्छा करते हुए हम तेरा भजन करते हैं ॥३॥

६७५—अमहीयु । सोम । बृहती ।

३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २र
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

पदार्थ—( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( सोम ) हे परमेश्वर ( धारया ) वेदवाणी द्वारा ( अपः ) हमारे कर्मों को जल और अन्तरिक्ष को ( वसानः ) धारण करता हुआ ( अर्षसि ) व्यापक हो रहा है । ( आ ) सब प्रकार से ( रत्नधा ) रत्नों का धारण करने वाला ( योनिम् ) स्थान में ( ऋतस्य ) सत्य के ( सीदसि ) विद्यमान है ( उत्स ) सरस ( देवः ) दाता ( हिरण्यय ) प्रकाशस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू रत्नों का धारण करने वाला सरस दाता और प्रकाशस्वरूप है । वेदवाणी से हमारे कर्मों को पवित्र करता तथा जल अन्तरिक्ष आदि को धारण करता हुआ व्यापक हो रहा है । तू अपने सत्य स्वरूप में स्थित है ॥१॥

६७६—अमहीयु । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥२॥

पदार्थ—( दुहान ) दुहता हुआ ( ऊधः ) आनन्द के स्रोत परमात्मा से ( दिव्यं ) अलौकिक ( मधु ) स्वादिष्ट रस ( प्रियं ) प्यारे ( प्रत्नं ) सनातन ( सधस्थं ) साथ रहनेवाले ( आसदत् ) प्राप्त करता है ( आपृच्छ्यं ) पूछने योग्य ( धरुणं ) धारण करनेवाले परमेश्वर को ( वाजी ) ज्ञानी पुरुष ( अर्षसि ) प्राप्त होता है ( नृभि ) योग सिखानवाले नेताओं के साथ शिष्य ( धौत ) शुद्ध अन्तःकरण वाला ( विचक्षण ) बुद्धिमान् ॥२॥

भावार्थ—बुद्धिमान् पवित्र अन्तःकरणवाला योगी परमात्मा से अलौकिक, प्रसन्न करनेवाले पुराने, सदा एक साथ रहनेवाले मधुर रस का दोहन करता हुआ उसे प्राप्त करता है । प्रश्न के योग्य तथा संसार के धारण करने वाले परमात्मा को वृद्ध योगियों के साथ शिष्य प्राप्त करता है ॥२॥

६७७—अमहीयु । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २र
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) प्रकर्ष ( तु ) शीघ्र ( द्रव ) जा ( परि ) हर प्रकार से ( कोशं ) आनन्दमय कोष को ( निषीद ) स्थिर हो ( नृभिः ) ज्ञानियों के द्वारा ( पुनानः ) पवित्र किया जाता हुआ ( अभि ) भली भांति ( वाज ) ज्ञान ( अर्ष ) प्राप्त कर ( अश्वं न ) घोड़े के समान ( त्वा ) तुझको ( वाजिन ) बलवान् ( मर्जयन्त ) शुद्ध करते हुए ( अच्छा ) अच्छी तरह ( बर्हि ) परमात्मा को ( रशनाभि ) लगामों से ( नयन्ति ) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! तू शीघ्रता से आगे बढ़ । आनन्दमय कोश मे स्थित हो । योगियो के द्वारा पवित्र हुआ तू ज्ञान को अच्छी तरह प्राप्त कर । ज्ञानी जन तुझको पवित्र करने के लिए परमात्मा की शरण में ले जाते हैं जैसे बलवान् घोड़े को लगाम से पकड़ कर नहलाने के लिये ले जाते हैं ॥१॥

६७८—अमहीयु । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२॥

पदार्थ—( स्वायुध ) स्वाधीन ( पवते ) पवित्र करता है ( देवः ) दिव्य गुणयुक्त ( इन्दुः ) परमेश्वर ( अशस्तिहा ) बुराइयों का नाश करने वाला ( वृजना ) पापों से ( रक्षमाणः ) बचाने वाला ( पिता ) पालक ( देवानां ) सूर्य आदि दिव्य पदार्थ तथा विद्वानों का ( जनिता ) पैदा करनेवाला ( सुदक्ष ) बलदाता ( विष्टम्भः ) थामने वाला ( दिव ) द्युलोक का ( धरुणः ) धारण करने वाला ( पृथिव्याः ) पृथिवी का ॥२॥

भावार्थ—स्वतंत्र, दुःखनाशक, पापों से बचानेवाला, रक्षक, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों तथा विद्वानों को उत्पन्न करनेवाला, बलदाता द्युलोक का थामने वाला, पृथिवी का धारक परम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर हमें पवित्र करता है ॥२॥

६७९—अमहीयु । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २
ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

पदार्थ—( ऋषि ) सूक्ष्मदर्शी या इन्द्रियातीत पदार्थों का ज्ञाता [ ईश्वर, जीव, तथा प्रकृति आदि सूक्ष्म पदार्थों का जाननेवाला ] ( विप्र ) मेधावी ( पुरएता ) नेता ( जनानां ) सब लोगों का ( ऋभु ) तेजस्वी ( धीरः ) धीर ( उशना ) सबका हित चाहनेवाला ( काव्येन ) वेदवाणी से ( स चिद् ) वही ( विवेद ) जानता है ( निहितं ) सुरक्षित ( यत् ) जो ( आसां ) इन ( अपीच्यं ) छिपा हुआ ( गुह्यं )

बहुरूपमय ( नाम ) ओं नाम ( गोनां ) वेदवाणियों का ॥ ३॥

भावार्थ—सूक्ष्मदर्शी, जनता का नेता, तेजस्वी, धीर सबका हित चाहने वाला मेधावी पुरुष इन वेदवाणियों में सुरक्षित तथा छिपा हुआ जो ओं नाम है उसे वेद द्वारा जानता है ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

९८०—वसिष्ठ । इन्द्र । बृहती ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

१२३१ २र ३२३१२ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) सब ओर से ( त्वा ) तुझे ( शूर ) हे ज्ञानी ( नोनुमः ) बार बार नमस्कार करते हैं ( अदुग्धाः ) नहीं दुही हुई ( इव ) समान ( धेनवः ) दूध देने वाली गायें ( ईशानम् ) स्वामी ( अस्य ) इस ( जगतः ) गतिशील ( स्वर्दृशम् ) मोक्ष को दिखाने वाले ( ईशानं ) स्वामी ( इन्द्र ) हे जितेन्द्रिय ( तस्थुषः ) धर्मात्मा के ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानी और जितेन्द्रिय योगी ! तू इस संसार के विद्वान् और धर्मात्मा पुरुषों का स्वामी तथा मोक्ष धाम का दिखलाने वाला है । बछड़े को देखकर बोलती हुई गायों के समान वे तुझे बार बार नमस्कार करते हैं ॥१॥

९८१—वसिष्ठ । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

पदार्थ—( न ) नहीं ( त्वावान् ) तेरे समान ( अन्यः ) दूसरा ( दिव्यः ) द्युलोक में ( न ) नहीं ( पार्थिवः ) पृथिवी पर ( न ) नहीं है ( जातः ) उत्पन्न ( न ) नहीं ( जनिष्यते ) उत्पन्न होगा । ( अश्वायन्तः ) अश्वों की कामना वाले ( मघवन् ) हे सम्पदाओं के स्वामी ( इन्द्र ) परमेश्वर (वाजिनः) बलवान् ( गव्यन्तः ) गायों की कामना वाले ( त्वा ) तुझे ( हवामहे ) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सब सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तेरे समान न द्युलोक में कोई है और न पृथिवी पर । न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा । उत्तम घोड़े गाय और बल की कामना करते हुए हम तुझे पुकारते हैं ॥२॥

९८२—वामदेव । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ १ २ २ ३ १ २ ३ २
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

पदार्थ—( कया ) सुखदायक ( नः ) हमें ( चित्रः ) आश्चर्य गुण, कर्म और स्वभाव वाला ( आ भुवत् ) होता है ( ऊती ) रक्षण से ( सदावृधः ) सदा हमें उन्नत बनाने वाला ( सखा ) मित्र ( कया ) सुखदायक ( शचिष्ठया ) ज्ञान (वृता) वरण प्राप्त करने के योग्य ॥१॥

भावार्थ—हमें सर्वदा उन्नत बनाने वाला, आश्चर्यमय गुणवाला परमेश्वर सुखकारक रक्षा और प्राप्त करने योग्य सुखदायक ज्ञान के साथ हमारा मित्र होता है ॥१॥

९८३—वामदेव । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

पदार्थ—( कः ) सुखस्वरूप ( त्वा ) तुझे ( सत्यः ) तीनों कालों में एकसा विद्यमान ( मदानां ) आनन्द वालों में ( मंहिष्ठः ) अत्यन्त महान् ( मत्सत् ) आनन्दित करता है ( अन्धसः ) अन्नादि भोग्य पदार्थों से ( दृढा ) दृढ ( चित् ) भी ( आरुजे ) दुःखनाश के लिए ( वसु ) मोक्ष रूप धन ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! सदा एकरस आनन्द देने वालों में महान्, सुखस्वरूप परमेश्वर तुझे आनन्दित करता है और तेरे दुःख के नाश के लिए अन्न से प्राप्त होने वाले आनन्द से बढ़कर दृढ मोक्षरूप धन भी देता है ॥२॥

९८४—वामदेव । इन्द्र । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥३॥

पदार्थ—( अभि ) सभी प्रकार ( सु ) सुन्दररूप से ( नः ) हमारा (सखीनां) मित्रों का ( अविता ) रक्षक ( जरितॄणां ) सच्चे विद्वानों के ( शतं ) सैकड़ों ( भवासि ) होता है ( ऊतये ) रक्षाओं से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी, मित्रों की तथा सच्चे विद्वानों की तू सैकड़ों प्रकार की रक्षाओं से रक्षा करता है ॥३॥

९८५—नोधा । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

पदार्थ—( तम् ) उसको ( वः ) तुम्हारे ( दस्मं ) नाशक ( ऋतीषहं ) कामादि शत्रुओं को दमन करने वाला ( वसो ) परमात्मा से ( मन्दानम् ) प्रसन्न ( अन्धसः ) अज्ञान का ( अभि ) लक्ष्यकर ( वत्सं ) बछड़े का ( न ) समान (स्वसरेषु ) गोशालाओं में ( धेनवः ) गायें ( इन्द्र ) ज्ञानी पुरुष को (गीर्भिः) वाणियों से ( नवामहे ) प्रसन्न करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मुमुक्षु लोगो ! तुम्हारे अज्ञान के नाशक, काम, क्रोध आदि शत्रुओं को दमन करनेवाले परमात्मा के आनन्द से आनन्दित ब्रह्मज्ञानी के प्रति आत्मा परमात्मा सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों में उसी प्रकार प्रेम दर्शाते हैं जिस प्रकार गोशालाओं में गायें बछड़ों को अपनी आवाजों से प्रेम दर्शाती हैं ॥१॥

९८६—नोधा । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

पदार्थ—( द्युक्षम् ) प्रकाशस्वरूप ( सुदानुं ) महान् दानी ( तविषीभिः ) शक्तियों से ( आवृतं ) आच्छादित (गिरिं न ) मेघ के समान ( पुरुभोजसम् ) सर्वरक्षक ( क्षुमन्तं ) अन्नवाले ( वाजं ) ज्ञान को ( शतिनं ) सैकड़ों ( सहस्रिणं) हजारों वस्तुओं वाले ( मक्षू ) शीघ्र ( गोमन्तम् ) वेदमय ( ईमहे ) याचना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हम प्रकाशस्वरूप, महान् दानी सर्वशक्तिमान् मेघ के समान सब का पालन करने वाले परमेश्वर से अन्न प्राप्त करने वाले, सैकड़ों और हजारों वस्तुओं की शिक्षा देनेवाले वेदमय ज्ञान की याचना करते हैं ॥२॥

९८७—कलि प्रगाथ । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

२ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

पदार्थ—( तरोभिः ) बल से ( वः ) तुम लोग ( विदद्वसुं ) ज्ञान के निवास स्थान ( इन्द्र ) परमेश्वर को ( सबाधः ) त्रिविध ताप के सताये हुए ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( बृहद्गायन्तः ) भली भाँति भजन करते हुए ( सुतसोमे ) ज्ञान प्राप्ति के स्थान ( अध्वरे ) इस उत्पन्न जगत् में (हुवे) पुकारते हैं [विभक्तिव्यत्ययेन बहुत्वं] ( भरं ) भरण पोषण करनेवाले ( न ) समान ( कारिणम् ) करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ज्ञान प्राप्ति के क्षेत्र इस संसार में त्रिविध ताप के सताये हुए भली भाँति भजन करनेवाले तुम और हम अपनी रक्षा के लिए पालन-पोषण करनेवाले ज्ञानदाता परमेश्वर को स्मरण करते हैं ॥१॥

९८८—कलि प्रगाथ । इन्द्र । बृहती ।

२उ ३ १ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।

२ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २र ३ ३ २ ३क २र
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—( न ) नहीं ( यं ) जिसको ( दुध्रा ) उद्दण्ड ( वरन्ते ) स्वीकार करते हैं ( न ) न तो ( स्थिराः ) स्थिर लोग ( मुरः ) मनुष्य ( मदेषु ) अभिमान में ( शिप्रं ) ज्ञानस्वरूप ( अन्धसः ) अन्न आदि के ( यः ) जो ( आदृत्या ) आदर से ( शशमानाय ) [illegible] के मन्त्रों से स्तुति करनेवाले ( सुन्वते ) ऐश्वर्य चाहनेवाले के लिए ( दाता ) दानी ( जरित्रे ) स्तुति करनेवाले स्तोता के लिये ( उक्थ्यं ) प्रशंसा करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसनीय ज्ञानस्वरूप परमात्मा को उद्दण्ड पुरुष नहीं जानते, और न धन के मद में चूर मनुष्य ही जान सकते हैं । वह परमेश्वर आदर से मन्त्रों के द्वारा स्तुति करनेवाले, तथा ऐश्वर्य के प्रेमी के लिये मनचाहे फल का दाता है ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

९८९—[illegible] । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ १ २ ३ १ १ ३ ३
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥

पदार्थ—( स्वादिष्ठया ) अत्यन्त मधुर ( मदिष्ठया ) [illegible] ( पवस्व ) पवित्र कर । हे परमेश्वर ( धारया ) वेदवाणी से ( इन्द्राय ) जीव के ( पातवे ) [illegible] ( सुतः ) उत्पन्न जगत् [संसार] ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर मधुर और आनन्ददायक वेदवाणी से हमें पवित्र कर। यह संसार जीव के भोग के लिए है ॥१॥

६९०—पुष्कलोऽग्नि । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२॥

पदार्थ—( रक्षोहा ) बुराइयों का नाशक ( विश्वचर्षणिः ) विश्वद्रष्टा—संसार का द्रष्टा, भोग करनेवाला ( योनिं ) परमेश्वर को ( अयोहते ) ज्ञान से प्राप्त ( द्रोणे ) मार्ग में [विचरता हुआ] ( सधस्थं ) हृदय में स्थित ( आसदत् ) प्राप्त करता है ॥२॥

भावार्थ—बुराइयों को दूर करनेवाला द्रष्टा [भोक्ता] जीव ज्ञान से प्राप्त मार्ग में विचरता हुआ हृदय में स्थित परमात्मा को प्राप्त करता है ॥२॥

६९१—पुष्कलोऽग्नि । सोम । गायत्री ।

१ १२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

पदार्थ—( वरिवोधातम ) सम्पत्तियों का दाता ( भुवः ) हो ( मंहिष्ठः ) अत्यन्त महान् ( वृत्रहन्तमः ) अज्ञान का अत्यन्त नाशक अथवा अज्ञान निवारक ( पर्षि ) पूरा कर ( राधः ) धन ( मघोनां ) यज्ञ करनेवालों के लिये ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू सब सम्पदाओं का दाता, महान् तथा अज्ञान निवारक है। यज्ञ करनेवालों को धनादि से पूर्ण करता है ॥३॥

६९२—संहित । सोम । ककुप् ।

१ २३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र हो जा ( मधुमत्तमः ) मधु विद्या का उत्तम ज्ञाता ( इन्द्राय ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये ( सोम ) हे आत्मज्ञानी ( क्रतुवित्तम ) कर्मकुशल ( मदः ) स्तुति करनेवाला ( महि ) महान् ( द्युक्षतम ) ज्ञान से अत्यन्त दीप्त ( मदः ) प्रसन्न ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मज्ञानी पुरुष ! मधुविद्या का जानने वाला, कर्म करने में कुशल, स्तुति करनेवाला महान्, ज्ञान से दीप्त तथा प्रसन्न तू परमेश्वर की प्राप्ति के लिए पवित्र हो ॥१॥

६९३—संहित । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥

पदार्थ—( यस्य ) ईश्वर ( ते ) तुझ ( पीत्वा ) प्रवर्तक ज्ञान का पान कर ( वृषभ ) धर्मात्मा जीव ( वृषायते ) धर्म का आचरण करता है ( अस्य ) इस ( पीत्वा ) ज्ञान का पान करके ( स्वर्विदः ) सुखवाला ( स ) वह ( सुप्रकेतः ) महाज्ञानी ( अभ्यक्रमीत् ) पार कर जाता है ( इषः ) एषणाओं को ( अच्छा ) अच्छी तरह से ( वाजं ) संग्राम को ( न ) जैसे ( एतशः ) घोड़े ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! धर्मात्मा जीव तेरे ज्ञान का पान कर धर्म का आचरण करता है और वही महाज्ञानी होकर निवृत्ति मार्ग पर चलकर एषणाओं को वैसे ही पार कर जाता है, जैसे कि घोड़े संग्राम में विजय पाते हैं ॥२॥

६९४—श्याव । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर को ( अच्छ ) भली भांति ( सुता ) संसार में उत्पन्न ( इमे ) ये ( वृषणं ) कामनाओं की वर्षा करनेवाले ( यन्तु ) प्राप्त ( हरयः ) सारे मनुष्य ( श्रुष्टे ) सुख की अवस्था में ( जातासः ) पैदा हुए [ अर्थात् धनी ] ( इन्दवः ) ऐश्वर्यवान ( स्वर्विदः ) ब्रह्मज्ञानी ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न ये मनुष्य तथा धनिकजन परमात्मा को जानें। ऐश्वर्यवान होकर उपासना करें तथा ब्रह्मज्ञानी बने तथा प्राप्त करें ॥१॥

६९५—श्याव । सोम । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥

पदार्थ—( अयं ) यह जीवात्मा ( भराय ) पालनपोषण करनेवाले ( सानसिः ) भक्ति करनेवाला ( इन्द्राय ) परमेश्वर को ( पवते ) प्राप्त करता है ( सुतः ) पुत्ररूप ( सोमः ) सौम्य स्वभाव वाला ( जैत्रस्य ) काम क्रोधादि को जीतने के लिए ( चेतति ) जानता है ( यथा ) जैसे ( विदे ) ज्ञान की प्राप्ति के लिए चेतता है ॥२॥

भावार्थ—भक्ति करनेवाला पुत्ररूप यह जीव परमपिता परमात्मा को प्राप्त करता है। वह काम क्रोध आदि शत्रुओं को जीतने के लिए उसी तरह से चेतता है जिस तरह विद्या-प्राप्ति के लिए चेतता है ॥२॥

६९६—श्याव । सोम । उष्णिक् ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥

पदार्थ—( अस्य ) इस परमेश्वर ( इत् ) ही ( इन्द्र ) जीवात्मा ( मदेषु ) आनन्द की अवस्थाओं में ( आ ) भली भांति ( ग्राभं ) ग्रहण करने के योग्य को ( गृभ्णाति ) ग्रहण करता है ( सानसिम् ) भक्ति के योग्य ( वज्र ) निवारण करने वाले ( वृषणं ) आनन्द की वर्षा करनेवाले ( भरत् ) धारण करता है ( सं ) सम्यक् ( अप्सुजित् ) कर्म को जीतने वाला ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा आनन्द की अवस्थाओं में भजन तथा ग्रहण करने योग्य परमेश्वर को ग्रहण करता है। कर्म पर विजय प्राप्त करने वाला वह बुराइयों को दूर करने वाले तथा आनन्द की वर्षा करने वाले उस को धारण करता है ॥३॥

६९७—श्यावाश्व । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।

२ ३ १ २ १ २ ३ ३क २र

अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—( पुरोजिती ) पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए ( वः ) तुम लोग ( अन्धसः ) अज्ञान पर ( सुताय ) विज्ञान बल के लिए ( मादयित्नवे ) आनन्द-दायक ( अप ) दूर करना ( श्वानं ) कुत्ते के समान लम्पटता ( श्नथिष्टन ) नष्ट करो ( सखायः ) हे मित्रो ( दीर्घजिह्व्यम् ) लम्बी जिह्वावाली ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग अज्ञान पर पूर्ण विजय तथा विज्ञान की प्राप्ति के लिए लम्बी जिह्वा वाले कुत्ते के समान विषय-भोग का परित्याग करो ॥१॥

६९८—श्यावाश्व । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो ( धारया ) वाणी ( पावकया ) पवित्र ( परिप्रस्यन्दते ) सर्वत्र व्यापक हो रहा है ( सुत ) ज्ञात [ जाना गया ] ( इन्दुः ) परमात्मा ( अश्वो न ) विद्युत् के समान ( कृत्व्य ) व्यवहारों का साधक ॥२॥

भावार्थ—पवित्र वेदवाणी के द्वारा जाना गया परमेश्वर सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली बिजली की भांति सब जगह व्यापक हो रहा है ॥२॥

अथवा

पवित्र वेदवाणी के द्वारा सारे व्यवहारों का साधक ऐश्वर्यसम्पन्न जो ज्ञान बल पैदा होता है, वह बिजली की भांति सर्वत्र फैलता है ॥२॥

६९९—श्यावाश्व । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ ३ १ २

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥३॥

पदार्थ—( तं ) उस ( दुरोषम् ) दुर्गुणों को भस्म करनेवाले ( अभि ) उद्देश्य बना कर ( नरः ) मनुष्य लोग ( सोमं ) परमात्मा को ( विश्वाच्या ) सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करनेवाली ( धिया ) बुद्धि से ( यज्ञाय ) यज्ञ के लिए ( सन्तु ) हों ( अद्रयः ) आदर युक्त ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाली बुद्धि के द्वारा दुर्गुणों को भस्म करने वाले परमात्मा को स्मरण करते हुए यज्ञ के लिए आदरयुक्त हों ॥३॥

७००—आन्धीगव । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) सब ओर से ( प्रियाणि ) प्रिय ( पवते ) पवित्र करता है ( चनोहितः ) अन्न के समान पाने योग्य [ ज्ञान के द्वारा जिसका अनुमान होता है ] ( नामानि ) सुनामाध [ प्रत्येक योगियों के हर एक नामों को ] ( यह्वः ) महान् ( अधि ) में ( येषु ) जिन ( वर्धते ) उन्नति करता है ( आ ) भली भांति

( सूर्यस्य ) परमेश्वर के ( बृहतः ) महान् ( बृहद् ) विशाल ( अधि ) में ( रथं ) रमणीय ससार ( विश्वरूपम् ) भोग तथा मोक्ष देनेवाला ( अरुहत् ) प्राप्त करता है ( विचक्षणः ) द्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान से अनुमान करने के योग्य, महान्, द्रष्टा जीवात्मा अनेक योनियों को प्राप्त करता है। उसमें ही सुख दु ख का अनुभव करता है। महान् परमेश्वर के दिए हुए भोग और मोक्ष के साधन ससार रूप विशाल रथ को प्राप्त करता है ॥१॥

७०१—आन्धीगव । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्य

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

दधाति पुत्र पित्रोरपीच्यां३ नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥२॥

पदार्थ—( ऋतस्य ) सत्यज्ञान की ( जिह्वा ) वाणी ( पवते ) बहाती है ( मधु ) ज्ञान ( प्रियं ) हितकारक ( वक्ता ) उपदेश देने वाला ( पति ) स्वामी ( धियः ) बुद्धि का ( अस्याः ) इस ( अदाभ्य ) हिंसा के योग्य नहीं ( दधाति ) धारण करता है ( पुत्र ) परमात्मा ( पित्रो ) पृथिवी और अन्तरिक्ष मे ( अपीच्य ) छिपा हुआ ( नाम ) को ( तृतीयं ) तीसरा ( अधि ) मे ( रोचन ) प्रकाशमान ( दिव ) द्युलोक का ॥२॥

भावार्थ—वेद की वाणी हितकारी ज्ञान का उपदेश करती है। इसका उपदेश करनेवाला समस्त ज्ञान का स्वामी परमात्मा है। उसकी कोई हिंसा नहीं कर सकता। वही पृथिवी और अन्तरिक्ष मे छिपे हुए प्रकाशमान तीसरे द्युलोक को भी भली भांति धारण करता है ॥२॥

७०२—आन्धीगव । सोम । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

अव द्युतान कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाण कोश आ हिरण्यये ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि ॥३॥

पदार्थ—( अव ) रक्षा ( द्युतान ) तेजस्वी ( कलशान् ) अव्यक्त मधुर ध्वनियों को ( अचिक्रदत् ) करता है ( नृभि ) मनुष्यों के द्वारा ( येमाण ) स्तुति किया जाता हुआ ( कोशे ) कोश मे ( आ ) सब प्रकार से ( हिरण्यये ) आनन्दमय ( अभि ) सब ओर ( ऋतस्य ) सत्य के ( दोहना ) दुहने वाले मनुष्य ( अनूषत ) स्तुति करते हैं ( अधि ) मे ( त्रिपृष्ठ ) ऋग्यजु और साम रूप स्तोत्र वाले ( उषस ) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान ( विराजसि ) प्रकाशित करता है ॥३॥

भावार्थ—समाधि लगानेवाले योगी जन आनन्दमय कोश में प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करते हैं। वह अव्यक्त ध्वनि [ अनहदनाद ] का प्रकाश करता है। सत्य के दोहन करने वाले लोग सब प्रकार से स्तुति करते हैं। ऋग यजु, साम रूप स्तोत्रवाला वह तेज का प्रकाश करता है ॥३॥

卐 पञ्चम खण्ड समाप्त 卐

७०३—अग्नि । अग्नि । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

१ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

प्र प्रवयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—( यज्ञा ) यज्ञ ( यज्ञा ) वस्तुत यज्ञ हो ( व ) तुम्हारे ( अग्नये ) परमात्मा के लिए ( गिरा ) प्रार्थना ( गिरा ) यथार्थ मे प्रार्थना हो ( दक्षसे ) पुत्रादि के लिए ( प्र ) उत्तमोत्तम ( वय ) मैं ( अमृत ) मुक्त पुरुष को ( जातवेदसं ) ज्ञानवान् ( प्रिय ) प्रिय ( मित्र ) मित्र ( न ) समान ( शंसिषम् ) प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! [ शुभ ] परमेश्वर के लिये तुम्हारा यज्ञ यथार्थ यज्ञ हो। सन्तान के लिए तुम्हारी प्रार्थना वास्तव मे प्रार्थना हो। मैं ब्रह्मज्ञानी मुक्त पुरुष स्नेही मित्र की भांति प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

७०४—अग्नि । अग्नि । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥

पदार्थ—( ऊर्जः ) बल की ( नपातम् ) रक्षा करने वाले की [ स्तुति करते हैं ]। ( स ) वह ( हिना ) निश्चित ही ( अयं ) यह ( अस्मयु ) हमारा हितकारी है ( दाशेम ) समर्पण करते हैं ( हव्यदातये ) कर्मफल के दाता के लिए ( भुवत् ) हो ( वाजेषु ) [ जीवन ] सग्रामों में ( अविता ) रक्षक ( भुवत् ) हो ( वृधे ) उन्नति के लिए ( उत ) और ( त्राता ) रक्षक ( तनूनां ) शरीरधारियो का ॥२॥

भावार्थ—हम बल के रक्षक परमात्मा की स्तुति करते हैं। वह निश्चय ही हमारा हितकारी है। उस फलदाता की सेवा मे हम अपने सभी कर्मों का समर्पण करते हैं। वह सग्रामो में तथा उन्नति के लिए हमारा रक्षक हो ॥२॥

७०५—शाकमश्व । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिर । एभिर्वर्धास इन्दुभि ॥१॥

पदार्थ—( एहि ) आ ( उ ) वितर्क ( सु ) अच्छी तरह ( ब्रवाणि ) उपदेश करता हूँ ( ते ) तुझे ( अग्ने ) हे विद्यार्थी [ अग्नि के समान प्रकाशमान ] ( इत्था ) इस प्रकार ( इतरा ) वेद की ( गिर ) वाणी का ( एभिः ) इन ( वर्धास ) बढ़ता है ( इन्दुभि ) ज्ञानो से ॥१॥

भावार्थ—हे अग्नि के समान तेजस्वी विद्यार्थी, तू आ। तुझे इन वेद की वाणियो का उपदेश करता हूँ। इन ज्ञानों से तू उन्नति कर ॥१॥

७०६—शाकमश्व । अग्नि । गायत्री ।

२ ३क २र ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ २ ३ १ २

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा योनिं कृणवसे ॥२॥

पदार्थ—( यत्र ) जहा ( क्व च ) कहीं ( ते ) तेरा ( मनः ) मनन योग्य ज्ञान ( दक्ष ) बलवान् ( दधसे ) रखता है ( उत्तरं ) श्रेष्ठ ( तत्र ) वहीं ( योनिं ) स्थान [घर] ( कृणवसे ) करता है ॥२॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! सबसे श्रेष्ठ और बलवान् अपना मनन करने योग्य ज्ञान तू जिस किसी व्यक्ति को देता है, उसके हृदय में तू ही घर कर जाता है ॥२॥

७०७—शाकमश्व । अग्नि । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २

न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ॥३॥

पदार्थ—( नहि ) नहीं ( ते ) तेरा ( पूर्तं ) पूर्ण करनेवाला तेज ( अक्षिपद् ) आँखो का नाश करनेवाला ( भुवत ) हो ( नेमानांपते ) हे शरीरधारियो के स्वामी ( अथ ) किन्तु ( दुव ) सेवा ( वनवसे ) स्वीकार कर ॥३॥

भावार्थ—हे शरीरधारियो के पालक परमेश्वर! तेरा तेज हमारी आँखों का नाश करने वाला न हो [ तेरी ज्योति को हम देख सकें ] तू हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ॥३॥

७०८—सौभरि । इन्द्र । ककुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यव । वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—( वयम् ) हम ( उ ) ही ( त्वाम् ) तुझे ( अपूर्व्य ) हे अनादि परमेश्वर ( स्थूर ) सज्जन पुरुष का ( न ) समान ( कच्चित् ) किसी ( भरन्तः ) आश्रय चाहते हुए ( अवस्यव ) रक्षाभिलाषी ( वज्रिन् ) हे दुःखनिवारक ( चित्र ) आश्चर्यमय गुण, कर्म, स्वभाववाले ( हवामहे ) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे दु खनिवारक अनादि परमेश्वर! अपनी रक्षा चाहने वाले हम तुझ अद्भुत को ही आश्रय देनेवाले महापुरुष के समान पुकारते हैं ॥१॥

७०९—सौभरि । इन्द्र । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

पदार्थ—( उप ) उपासना करते हैं ( त्वा ) तेरी ( कर्मन् ) शुभ कर्मों के प्रारम्भ मे ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( स ) वह तू ( नः ) हमें ( युवा ) सुख का संयोग तथा दु ख का वियोग कराने वाला ( उग्र ) तेजस्वी ( चक्राम ) प्राप्त होना है ( य ) जो ( धृषत् ) दुष्टो का दमन करने वाला ( त्वां ) तेरा ( इत् ) ही ( हि ) निश्चय से ( अवितार ) रक्षक ( ववृमहे ) भजन करते हैं। ( सखाय ) प्रेमी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( सानसिम् ) भजन करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! हम लोग अपनी रक्षा के लिए प्रत्येक शुभकर्म के प्रारम्भ में तेरी ही उपासना करते हैं। तू तेजस्वी दुष्टों का दमन करनेवाला तथा सुखों का सयोग और दुःखों का वियोग कराने वाला है। तू हमें प्राप्त हो। तुझ रक्षक और भजन करने के योग्य का ही हम भजन करते हैं ॥२॥

७१०—नृमेध । इन्द्र । ककुप् ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥१॥

पदार्थ—( अधा ) तत्काल ( हि ) निश्चित ( इन्द्र ) हे जीव ( गिर्वणः ) वेदवाणियों द्वारा भक्ति करनेवाले ( उप ) समीप ( त्वा ) तेरे ( काम ) कामनायें

को ( ईमहे ) जानता हूँ ( सनुमहे ) पूरा करता हूँ ( तृष्णा इव ) जल चाहनेवाले के समान ( स्वन्तः ) प्राप्त करनेवाले ( सवांसि ) जलों से ॥१॥

भावार्थ—हे वेदवाणी के द्वारा भजन करने वाले जीव ! मैं तेरी कामनाओं को जानता हूँ और उन्हें तत्काल पूरी करता हूँ, जैसे प्यासे को जल देकर तृप्त किया जाता है ॥१॥

७११—नृमेध । इन्द्र । ककुप् ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

३ १२ ३ १ २

वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

पदार्थ—( वाः न ) जल के समान ( त्वा ) तुझे ( यव्याभिः ) नदियों द्वारा ( वर्धन्ति ) उन्नत करते हैं ( शूर ) हे वीर ( ब्रह्माणि ) वेदत्रयी [ऋक् यजु, साम और अथर्ववेद] ( वावृध्वांसम् ) उन्नत स्वभाववाले ( चित् ) ही ( अद्रिवः ) हे आदरणीय ( दिवेदिवे ) प्रति दिन ॥२॥

भावार्थ—हे वीर ! आदरणीय जीव, प्रतिदिन उन्नति करनेवाले तुझे चारों वेद नदियों के जल के समान बढ़ाते हैं ॥२॥

७१२—नृमेधः । इन्द्र । ककुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।

३ १ २ ३ १ २

इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥

पदार्थ—( युञ्जन्ति ) जोड़े जाते हैं ( हरी ) ऋक् और साम ( इषिरस्य ) व्यापक परमेश्वर की ( गाथया ) वाणी के साथ ( उरौ ) विस्तृत ( रथे ) संसार में ( उरुयुगे ) लम्बे काल तक चलनेवाले ( वचोयुजा ) गायत्री छन्दों से युक्त ( इन्द्रवाहा ) परमानन्द की प्राप्ति करानेवाले ( स्वर्विदा ) सुखदाता ॥३॥

भावार्थ—गायत्री आदि छन्दों से युक्त, मोक्ष तथा स्वर्ग सुख के प्राप्त करने वाले ऋक् और साम व्यापक परमात्मा के लम्बे समय तक चलनेवाले विशाल संसार में भाषा के साथ जुड़कर व्यवहार में आते हैं ॥३॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके प्रथमोऽध्यायः ॥

## 卐 द्वितीयोऽध्याय 卐

७१३—श्रुतकक्षः । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—( पान्तम् ) रक्षक ( आ ) सब प्रकार से ( वः ) तुमलोगों की ( अन्धसः ) अज्ञान से ( इन्द्रं ) ज्ञानी पुरुष की ( अभि ) भली भाँति ( प्रगायत ) प्रशंसा करो ( विश्वासाहं ) सांसारिक विषयों पर विजय पानेवाला ( शतक्रतुं ) अनेकों ज्ञानोंवाले ( मंहिष्ठं ) महान् ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों में ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो, तुम लोग अज्ञान से रक्षा करनेवाले सांसारिक विषयों से रहित अनेक ज्ञानोंवाले और मनुष्यों में महान् ज्ञानी पुरुष की प्रशंसा करो ॥१॥

७१४—श्रुतकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ २ ३ १ २

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२॥

पदार्थ—( पुरुहूतं ) बहुतों से पुकारे जाने वाले ( पुरुष्टुतं ) अनेक प्रकार से स्तुति करने के योग्य ( गाथान्यं ) वेद ज्ञान के दाता ( सनश्रुतम् ) सनातन परमेश्वर को ( इन्द्र ) इन्द्र ( इति ) ऐसा ( ब्रवीतन ) कहो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सबके उपास्य, वेद ज्ञान के दाता, सनातन परमेश्वर को इन्द्र समझो ॥२॥

७१५—श्रुतकक्ष । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्रः ) परमेश्वर ( इत् ) ही ( नः ) हमें ( महोनां ) अनयुक्त ( दाता ) देनेवाला है ( वाजानां ) विविध ज्ञानों का ( नृतुः ) कर्मफल के अनुसार नचानेवाला ( महान् ) अनन्त ( अभिज्ञु ) घुटने टेक कर चलनेवालों के रूप में ( आयमत् ) हमें नियम में रखता है ॥३॥

भावार्थ—अन्नयुक्त ज्ञानों का देनेवाला, कर्मानुसार नचाने वाला अनन्त परमेश्वर ही हमें घुटने टेककर चलने वालों के रूप में नियम में रखता है ॥३॥

७१६—वसिष्ठ । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( वः ) तुम सब ( इन्द्राय ) ज्ञानीपुरुष का ( मादनं ) प्रसन्नकारक ( हर्यश्वाय ) ऋग्वेद और सामवेद के ज्ञानी ( गायत ) गान करो ( सखायः ) हे मित्रो ( सोमपाव्ने ) आत्मबल के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो, तुम लोग ज्ञान और उपासना के धनी आत्मबल के रक्षक ज्ञानी का सम्मान करो ॥१॥

७१७—वसिष्ठ । इन्द्र । गायत्री ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥२॥

पदार्थ—( शंसेत् ) करे ( उक्थ ) स्तुति ( सुदानवे ) कल्याणकारक दानी के लिए ( उत ) और ( द्युक्षं ) मनोहर ( यथा ) जैसे ( नरः ) नेता लोग ( चकृमा ) हम करें ( सत्यराधसे ) सत्य के धनी परमात्मा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे नेता जन सत्य के धनी कल्याणकारी परमात्मा की मनोहर स्तुति करते हैं, वैसे ही हम लोग भी किया करें ॥२॥

७१८—वसिष्ठ । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १२

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( वाजयुः ) अन्न और ज्ञान का देनेवाला ( त्वं ) तू ( गव्युः ) गौ आदि पशुओं का दाता ( शतक्रतो ) हे सर्वज्ञ ! ( त्वं ) तू ( हिरण्ययुः ) सुवर्ण आदि सम्पदाओं को प्राप्त करानेवाला है ( वसो ) हे सर्वाधार ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ, सर्वाधार परमेश्वर ! तू हमें अन्न, ज्ञान, गाय आदि पशु तथा सुवर्ण आदि सम्पदायें देनेवाला है ॥३॥

७१९—मेधातिथि, प्रियमेधो वा । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१॥

पदार्थ—( वय ) हम ( उ ) और ( त्वा ) तू ( तदिदर्था ) परमेश्वर की प्राप्तिरूप एक प्रयोजनवाले हैं ( इन्द्र ) हे ज्ञानी पुरुष ( त्वायन्तः ) तेरी समता की कामनावाले ( सखायः ) परस्पर मित्र ( कण्वा ) मेधावी जन ( उक्थेभिः ) स्तोत्रों से ( जरन्ते ) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानीपुरुष ! हम और तू भी परमेश्वर को ही प्राप्त करना चाहते हैं। तेरी समता की इच्छा करते हुए परस्पर मित्र मेधावी जन भी उसी के स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥१॥

७२०—मेधातिथि, प्रियमेधो वा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २उ ३ १ २

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥२॥

पदार्थ—( न घ इम् ) नहीं ही ( अन्यत् ) दूसरे की ( आ पपन ) स्तुति करता हूँ ( वज्रिन् ) हे दुःखनिवारक परमेश्वर ( अपसः ) शुभ कर्म ( नविष्टौ ) प्रारम्भ में ( तव इत् उ ) तेरी ही ( स्तोमैः ) वेद मन्त्रों से ( चिकेत ) चिन्तन करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे दुःखनिवारक परमेश्वर ! मैं दूसरे की उपासना नहीं करता। अपने प्रत्येक शुभ कर्म के आदि में मन्त्रों से तेरा ही चिन्तन करता हूँ ॥२॥

७२१—मेधातिथि, प्रियमेधो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥

पदार्थ—( इच्छन्ति ) चाहते हैं ( देवाः ) विद्वान् जन ( सुन्वन्तं ) संसार के उत्पादक परमेश्वर को ( न ) नहीं ( स्वप्नाय ) आलस्य ( स्पृहयन्ति ) चाहते हैं ( यन्ति ) प्राप्त करते हैं ( प्र ) उत्तम ( मादं ) हर्ष ( अतन्द्राः ) आलस्य रहित ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् जन सृष्टिकर्ता परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा करते हैं। वे इस विषय में आलस्य नहीं करते। सावधानी से ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं ॥३॥

७२२—श्रुतकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्रायः ) जीव के लिए ( मद्वने ) सुख गुणवाले ( सुतं ) उत्पन्न संसार का ( परि ) सब तरह से ( ष्टोभन्तु ) वर्णन करती हैं ( नः ) हमारी ( गिरः ) वेदवाणी ( अर्कं ) मन्त्र को ( अर्चन्तु ) प्राप्त करते हैं ( कारवः ) कर्मयोगी पुरुष ॥१॥

भावार्थ—हमारी दी हुई वेदवाणी सुख गुणवाले जीव के लिए संसार का ज्ञान कराती है। कर्मयोगी पुरुष ही मन्त्रों को प्राप्त करता है ॥१॥

७२३—श्रुतकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥२॥

पदार्थ—( यस्मिन् ) जिसमें ( विश्वा ) सारे ( अधिश्रियः ) मनुष्य ( रणन्ति ) रमते हैं ( सप्त संसदः ) सात ऋत्विज् ( इन्द्र ) परमेश्वर को ( सुते ) स्तुतिरूप यज्ञ में ( हवामहे ) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस स्तुतिरूप यज्ञ मे सात ऋत्विक पुरुष विचरते हैं, उसमें हम परमेश्वर को पुकारते हैं ॥२॥

७२४—सुतकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१२३१२ १ २र ३१२

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥

पदार्थ—(त्रिकद्रुकेषु) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाले उत्पन्न पदार्थों में [व्यापक] ( चेतनं ) चेतन स्वरूप ( देवासः ) विद्वान् लोग ( यज्ञं ) परमेश्वर को ( अत्नत ) प्राप्त करने को निरन्तर प्रयत्न करते हैं। ( तं इत् ) उसीकी तरफ ( वर्धन्तु ) बढ़ें ( नः ) हमारी ( गिरः ) वाणियां ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय वाले ससारी पदार्थों मे व्यापक चेतन स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। हमारी वाणियाँ उसीकी तरफ बढ़ें ॥३॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

७२५—इरमिठ । इन्द्र । गायत्री ।

३१२ ३२३ १२३१२३१ २ १२३२उ ३१२

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥१॥

पदार्थ—( अयं ) यह ( ते ) तेरा ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! (सोमः ) सच्चा न्याय ( निपूतः ) अति पवित्र है [पक्षपात रहित है,] (अधिबर्हिषि) संसार मे ( एहि ) व्यापक है ( ईम्) इसमे ( अस्य ) इसको ( द्रव ) गति देता है ( पिब ) रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ — हे परमेश्वर ! इस ससार में तेरा न्याय पक्षपात रहित है। तू इसमें व्यापक है, गति देता और रक्षा भी करता है ॥१॥

७२६—इरमिठ । इन्द्र । गायत्री ।

१२३१२ ३१ २र ३२ १२ ३१२

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥२॥

पदार्थ— (शाचिगो) हे शक्तिशालिनी वेदवाणी के स्वामी ( शाचिपूजन ) हे प्रसिद्ध पूजन के योग्य (अयं ) यह प्रत्यक्ष ( रणाय ) उपदेश के करने के लिए है ( ते ) तेरे ( सुतः ) ससार ( आखण्डल ) हे दुर्गुणों के दमन करनेवाले परमेश्वर ( प्रहूयसे )उत्तम स्तुतियो से पुकारा जाता है ॥२॥

भावार्थ—हे दुर्गुणों के निवारक ! हे शक्तिशालिनी वेदवाणी के स्वामी ! हे पूजनीय परमेश्वर ! यह ससार तेरे उपदेश के लिए है। उत्तम स्तुतियो से हम तुझे ही स्मरण करते हैं ॥२॥

७२७—इरमिठ । इन्द्र । गायत्री ।

१२ ३ १२ ३१२ २र ३ १ २र

यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३॥

पदार्थ—( यः ) जो ( ते) तेरा ( शृङ्गवृषो णपात ) सूर्यादि लोक को धारण करनेवाले ( प्रणपात् ) सर्वरक्षक (कुण्डपाय्य ) यज्ञ ( नि ) पूर्णरूप से ( अस्मिन् ) इसम ( दध्रे ) धारण करते हैं ( आ) भली भांति (मनः ) मन को ।३।

भावार्थ—हे सूर्यलोक के धारण करनेवाले परमेश्वर ! तू सर्वरक्षक है। तेरे यज्ञ मे हम अपना मन लगाते हैं ॥३॥

७२८—कण्व । इन्द्र । गायत्री ।

१ २र ३१२३१२३१ २र ३ १ २र

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥१॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( तू ) शीघ्र ( नः ) हमे ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( क्षुमन्तं ) अन्नयुक्त ( चित्रं ) अनेक प्रकार के (ग्राभं) ग्रहण करने योग्य सम्पदाओं का ( संगृभाय ) संग्रह करा (महाहस्ती ) तू सबका धारण करने वाला है ( दक्षिणेन ) उदार भाव से ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू सब का धारण करनेवाला है। अपने भाव से हमें प्रशंसा और ग्रहण करने के योग्य अनेक प्रकार का धनसंग्रह करा ॥१॥

७२९—कण्व । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २र ३२३१२ ३१२ ३ १ २र

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥२॥

पदार्थ— ( विद्मा ) जानते हैं (हि) निश्चितरूप से ( त्वा) तुझे ( तुविकूर्मिं) सब कर्मों के निमित्त ( तुविदेष्णं ) महान् दाता (तुवीमघम्) अनन्त संपदाओं वाले ( तुविमात्रं ) सर्वव्यापक ( अवोभिः ) रक्षाओं से युक्त ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सारे कर्मों का संपादक, महान् दाता, अनन्त संपदाओं वाला, सर्वव्यापक तथा अनेक प्रकार की रक्षाओं से युक्त है। हम तुझे जानते हैं ॥२॥

७३०—कण्व । इन्द्र । गायत्री ।

१ २र २र ३१ २र३१२ ३२उ ३१२

न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥३॥

पदार्थ—( न हि ) नहीं ( त्वा ) तुझे ( शूर ) हे शक्तिमान् ( देवा ) विद्वान् लोग या दिव्यशक्तियां ( मर्तासः ) मनुष्य लोग ( दित्सन्तं ) देने की इच्छा करनेवाले ( भीमं ) भयंकर ( न) समान ( गां ) प्रखर किरण को ( वारयन्ते ) रोक सकते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! देने की इच्छा करते हुए तुझे दिव्य शक्तियां, विद्वान् पुरुष और मनुष्य भी नहीं रोक सकते, जैसे सूर्य की अत्यन्त तेज किरणों को कोई नहीं रोक सकता ॥३॥

७३१—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

३१ २ ३२३१२ ३१२ ३ १२ ३१२

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) भली भांति ( त्वा ) तेरे ( वृषभा ) हे धर्म का आचरण करनेवाले ( सुते ) ससार में ( सुतं ) भोग्य पदार्थ को ( सृजामि ) पैदा करता हूँ (पीतये ) भोग या रक्षा के लिए ( तृम्प ) तृप्त हो ( व्यश्नुहि ) उपभोग कर ( मदं ) आनन्द ॥१॥

भावार्थ—हे धर्म का आचरण करने वाले जीव ! मैं [परमेश्वर] संसार में तेरे भोग के लिए भोग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता हूँ। तू उनका उपभोग करके तृप्त हो और आनन्द को प्राप्त कर ॥१॥

७३२—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३१ २३२३२३१ २३ १२ १ २ ३१२

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥२॥

पदार्थ—( मा ) नहीं ( त्वा ) तुझे ( मूराः ) मूढ लोग ( अविष्यवः ) केवल पेट पूजा मे ही लगे हुए ( मा ) न तो ( उपहस्वानः ) तेरा उपहास करनेवाले [ नास्तिक ] ( आ ) सब प्रकार से ( दभन् ) हानि पहुँचा सकते हैं ( मा कीं ) न तो ( ब्रह्मद्विषं ) वेद से द्वेष करनेवाले को ( वनः ) अपना भागी नहीं करते हो ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पेट पालन मे ही तत्पर मूढ लोग तुझे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकते और न तेरा उपहास करने वाले नास्तिक पुरुष ही। तू वेदज्ञान के द्वेषी को अपना भागी नहीं बनाता ॥२॥

७३३—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

३२ ३१२ ३१२ ३ १२ १२ ३१ २र

इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥३॥

पदार्थ—( इह ) इस ससार मे ( त्वा ) तुझे ( गोपरीणसं ) वेदवाणी के विविध ज्ञानवाले ( महे ) बडी ( मन्दन्तु ) कामना करते हैं ( राधसे ) धन-प्राप्ति के लिए ( सरः ) वेदवाणी ( गौरः ) विद्वान् ( यथा ) जिस प्रकार ( पिब ) रक्षा कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इस संसार मे हम सब लोग बडी सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए तुझ वेद के ज्ञानवाले की ही कामना करते हैं। जिस प्रकार विद्वान् वेदवाणी की रक्षा करता है वैसे ही तू हमारी रक्षा कर ॥३॥

७३४—प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

३१२ ३२उ ३ २ ३१२३१२ १२ ३ १ २

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१॥

पदार्थ— ( इदं ) इस ( वसो ) हे शरीर मे वास करनेवाले जीव ( सुतं ) अन्तःकरण मे प्रकट होने वाले ज्ञान को ( अन्धः ) अन्धकार या अज्ञान से ( पिबा ) पी या रक्षा कर ( सुपूर्णं ) पूर्ण ( उत् ) परे ( अरं ) पर्याप्त रूपसे ( अनाभयिन् ) संसार के भयों से रहित ( ररिमा ) देता हूँ ( ते ) तुझे ॥१॥

भावार्थ—हे संसार के भयों से रहित जीव ! तुझे मैं अन्धकार से परे और पूर्ण इस अन्तःकरण मे प्रकट होनेवाले योगज ज्ञान को देता हूँ। तू इसका पर्याप्त-रूप से पान कर ॥१॥

७३५—प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

१२३२३२उ ३२ ३२३ १२ २ ३२ ३ २ ३१२

नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२॥

पदार्थ—( नृभिः ) मनुष्यों द्वारा ( धौतः ) प्राप्त किया हुआ ( सुतः ) उत्पन्न संसार ( अश्नैः ) भोक्ता—भोग करनेवाले ( अव्याः ) प्रकृति से ( वारैः ) वरणीय [ अर्थात् मुक्त ] ( परिपूतः ) निवास से पवित्र किया हुआ ( अश्वः ) घोड़े के ( न ) समान ( निक्तः ) धोये हुए ( नदीषु ) नदियों में ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! भोक्ता तथा जीवन्मुक्त पुरुषों से युक्त और पवित्र हुआ यह प्रकृति का कार्य संसार, नदी मे नहलाये गये घोड़े के समान तुम्हारे भोग के लिए सामने विद्यमान है ॥२॥

७३६—प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

२३१३२३१ २ ३१२ ३१२ १२३ १ २३१२

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( ते ) तुम्हारे ( यवं ) यव आदि अन्न का ( यथा ) यथावत् ( गोभिः ) वेदमन्त्रों द्वारा ( स्वादुं ) स्वाद के योग्य ( अकर्म ) बनाते हैं ( श्रीणन्तः ) आश्रय लेते हुए या सेवन करते हुए ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( त्वा ) तुझे ( अस्मिन् ) इस संसार में ( सधमादे ) [illegible] ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश ! पुत्र के समान तेरे इस संसार में हम लोग यव आदि अन्नों को स्वाद योग्य बनाकर उनका सेवन करते है और वेदमन्त्रों से तुझे स्मरण करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

७३७—विश्वामित्र । इन्द्र । गायत्री ।

२ १ २र ३ १ २ २ ३ २ १ २
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥१॥

पदार्थ—( इदं ) यह ( हि ) निश्चय रूप से ( अनु ) अनुकूलता के साथ ( ओजसा ) पराक्रम से [ युक्त ] ( सुतं ) औषधि आदि के रस की ( राधानां पते ) समस्त संपदाओं के स्वामी ( पिबा ) रक्षा कर ( त्वा ) तू ( अस्य ) इसकी ( गिर्वणः ) हे वेदमन्त्रों द्वारा भजन के योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे समस्त सम्पदाओं के स्वामी, मन्त्रों द्वारा पूजनीय परमेश्वर ! तू हमें बल देनेवाले इन औषधि आदि रसों की रक्षा कर ॥१॥

७३८—विश्वामित्र । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३क २र १ २
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्य ॥२॥

पदार्थ—( यः ) जो ( ते ) तेरे ( अनु ) उद्देश्य में रख कर ( स्वधां ) धारण-पोषण ( असत् ) वर्तमान है ( सुते ) सब मूर्तिमान् पदार्थों में ( नियच्छ ) नियम में रखता है ( तन्वं ) [ व्याप्ति ] व्यापकता को ( स ) वह परमात्मा ( त्वा ) तुझे ( ममत्तु ) आनन्दित करता है ( सोम्य ) हे सौम्य स्वभाववाले ॥२॥

अथवा

( य ) जो परमेश्वर ( ते ) तेरे ( अनु ) साथ ( स्वधां ) प्रकृति के ( असत् ) अनादि रूप से विद्यमान है ( सुते ) संसार मे ( नियच्छ ) नियम से रखता है ( तन्वं ) व्याप्ति-व्यापकता को ( स ) वह ( त्वा ) तुझे ( ममत्तु ) आनन्दित करता है ( सोम्य ) हे सौम्य स्वभाववाले ॥२॥

भावार्थ—हे सौम्य स्वभाववाले पुरुष ! जो परमेश्वर तेरे धारण-पोषण को करने के लिए सारे मूर्तिमान् पदार्थों में नियमपूर्वक व्यापक हो रहा है वही तुझे आनन्दित भी करता है ॥२॥

अथवा

हे सौम्य जीव ! जो परमेश्वर तेरे और प्रकृति के साथ अनादि रूप से विद्यमान है और संसार को नियम में रखते हुए व्यापक हो रहा है वही तुझे आनन्दित भी करता है ॥२॥

७३९—विश्वामित्र । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसा ॥३॥

पदार्थ—( प्र ) भली प्रकार ( ते ) तेरे ( अश्नोतु ) व्यापक हो रहा है ( कुक्ष्योः ) दोनों पार्श्व [ बगल ] में ( प्र ) भली-भाँति ( इन्द्र ) हे जीव ( ब्रह्मणा ) ज्ञान के साथ ( शिरः ) मस्तिष्क में ( प्र ) अच्छी प्रकार ( बाहू ) हाथों में ( शूर ) हे शक्तिशाली ( राधसा ) समृद्धि के साथ ॥३॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली जीव ! परमेश्वर तेरे दोनों पार्श्वों में व्यापक हो रहा है। वही ज्ञान के साथ तेरे मस्तिष्क और समृद्धि के साथ बाहुओं में भी व्यापक हो रहा है ॥३॥

७४०—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१॥

पदार्थ—( आ तु एत ) अच्छी तरह प्राप्त करो ( निषीदत ) बैठो ( इन्द्र ) अज्ञान के नाशक ज्ञानी पुरुष के ( अभि ) सन्मुख ( प्रगायत ) सन्मान करो ( सखायः ) हे सखा जीवो ( स्तोमवाहसः ) वेदज्ञान के प्राप्त करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाले सखा जीवो ! तुम अज्ञाननाशक ज्ञानी को प्राप्त करो, उसके सत्संग करो और उसका सन्मान करो ॥१॥

७४१—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

३ १२ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२॥

पदार्थ—( पुरूतमं ) सब दुःखों को दूर करनेवाले ( पुरूणां ) सब ( ईशानं ) स्वामी ( वार्याणां ) वरण करने योग्य गुणों के ( इन्द्र ) परमेश्वर को ( सोमे ) गृहस्थ आश्रम में ( सचा ) सम्मिलित हुए ( सुते ) अन्य आश्रमों में प्रसिद्ध ॥२॥

भावार्थ—सब आश्रमों में प्रसिद्ध गृहस्थाश्रम में रहते हुए हम सब दुःखों के हरण करनेवाले, वरण करने योग्य गुणों के स्वामी परमेश्वर का भजन करते हैं ॥२॥

७४२—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१ ३ २ २ ३ १ १ २ ३ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २उ
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या । गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥

पदार्थ—( सः ) परमेश्वर ( घ ) ही ( नः ) हमें ( योगे ) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति में ( आ भुवत् ) हमारे चारों तरफ होता है [ सहायक होता है ] ( सः ) वह ही ( राये ) धनादि की प्राप्ति के लिए ( स ) वह ( पुरन्ध्या ) कर्तव्य अकर्तव्य के निर्णय कराने वाली बुद्धि की प्राप्ति में ( गमत् ) प्राप्त होता है और जानता है ( वाजेभि ) ज्ञानद्वारा ( आ ) सब प्रकार ( स ) वह ( नः ) हमें ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर ही हमें अप्राप्त की प्राप्ति में सहायक होता है। वही धन और कर्तव्य तथा अकर्तव्य के निर्णय करानेवाली बुद्धि की प्राप्ति में हमारा सहायक है। वह हमें अपने ज्ञान से अपनाता है ॥३॥

७४३—शुनःशेप । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥१॥

पदार्थ—( योगेयोगे ) हर एक शुभ कार्यों में ( तवस्तरं ) बलयुक्त ( वाजे वाजे ) हर एक जीवन संग्राम में ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ( सखायः ) सखा भाव वाले ( इन्द्रं ) ज्ञानी पुरुष को ( ऊतये ) कल्याण के लिए ॥१॥

भावार्थ—सखा भाव को प्राप्त हुए हम लोग कल्याण के लिए अपने हर एक प्राप्ति के कार्य तथा जीवन संग्राम में ज्ञानी पुरुष को स्वीकार करते हैं ॥१॥

७४४—शुनःशेप । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥२॥

पदार्थ—( अनु ) अनुकूलता से ( प्रत्नस्य ) सनातन ( ओकस ) प्रकृतिरूप गृह के ( हुवे ) उपासना करते आये हैं। ( तुविप्रतिं ) सर्वरक्षक ( नरं ) नेता ( यं ) जिस ( ते ) तुझ परमात्मा की ( पूर्वं ) आदि कारण ( पिता ) पिता आचार्य आदि ( हुवे ) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—सनातन प्रकृति के नेता, सर्वरक्षक, आदि कारण जिस तुझ परमात्मा की उपासना हमारे पिता आचार्य करते आये हैं उस तुझ का मैं भी भजन करता हूँ ॥२॥

७४५—शुनःशेप । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( घ ) निश्चय ही ( गमत् ) प्राप्त होता है ( यदि ) अगर [जबकि] ( श्रवत् ) सुन लेता है ( सहस्रिणीभिः ) हजारों प्रकार की ( ऊतिभिः ) रक्षाओं से ( वाजेभि ) विविध ज्ञानों से ( उप ) उपयोगी रूप से ( नः ) हमारी ( हवम् ) प्रार्थना को ॥३॥

भावार्थ—जब कि परमेश्वर हमारी प्रार्थनाओं को सुन लेता है, तब निश्चय ही हमें सहस्रों प्रकार की रक्षाओं तथा विविध ज्ञानों के साथ प्राप्त होता है ॥३॥

७४६—नारदः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महां हि षः ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे मुमुक्षु पुरुष ( सुतेषु ) हो जाने पर ( सोमेषु ) शास्त्रबोधों के ( क्रतु ) ज्ञान या कर्म को ( पुनीषे ) पवित्र करो ( उक्थ्य ) प्रशंसनीय ( विदे ) प्राप्ति के लिए ( वृधस्य ) बढ़े हुए ( दक्षस्य ) आत्मबल की ( महान् ) बड़ा ( हि ) क्योंकि ( सः ) वह [ ज्ञान कर्म ] ॥१॥

भावार्थ—हे मुमुक्षु पुरुष ! तू शास्त्रबोध हो जाने पर अपने ज्ञान और कर्म को पवित्र कर। क्योंकि वह बढ़े हुए आत्मबल की प्राप्ति के लिए महान् साधन है ॥१॥

७४७—नारदः । इन्द्र । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥

पदार्थ—( सः ) वह परमेश्वर ( प्रथमे ) विस्तृत ( व्योमनि ) आकाश में ( देवानां ) प्रकृति-परमाणु और जीवों के ( सदने ) ठहरने के स्थान ( वृधः ) व्यापक ( सुपारः ) सब को अच्छी तरह पार लगाने वाला ( सुश्रवस्तमः ) अत्यन्त यशवाला ( समप्सुजित् ) सब देवों के स्वामी को ॥२॥

भावार्थ—प्रकृति तथा जीवों के ठहरने के स्थान विस्तृत आकाश में व्यापक वह परमेश्वर अच्छी तरह से सबका पार लगाने वाला और अत्यन्त यशवाला है। उस सब दिव्यगुण वाले पदार्थों के स्वामी की हम उपासना करते हैं ॥२॥

७४८—नारद । इन्द्र । उष्णिक ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**तमु हुवे वाजसातय इन्द्र भराय शुष्मिणम् ।**
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
**भवा न सुम्ने अन्तम सखा वृधे ॥३॥**

पदार्थ—( तमु ) उस ( हुवे ) पुकारते हैं ( वाजसातये ) ज्ञान की प्राप्ति के लिए ( इन्द्रं ) परमेश्वर को ( भराय ) पालनपोषण के लिए ( शुष्मिणं ) शक्तिमान् ( भवा ) होता है ( न ) हमारे ( सुम्ने ) सुख के लिए ( अन्तम ) समीपवर्ती ( सखा ) मित्र के समान (वृधे) हमारी वृद्धि के लिए ॥३॥

भावार्थ—जो हमारी सुख प्राप्ति और वृद्धि के लिए समीपवर्ती सखा के समान है उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को हम ज्ञानप्राप्ति और अपनी रक्षा के निमित्त पुकारते हैं ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

७४९—वामदेव । अग्नि । प्रगाथ ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
**एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।**
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
**प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥**

पदार्थ—( एना ) इस तरह ( वो ) तुम्हारे ( अग्निं ) आत्मज्ञानी को ( नमसा ) आदर के साथ ( ऊर्जो ) ज्ञानबल के ( नपातं ) रक्षक ( आहुवे ) पास बुलाता हूं या ग्रहण करता हूं ( प्रियं ) प्रिय ( चेतिष्ठं ) ज्ञानयुक्त (अरतिं ) विषयों में न फसनेवाले ( स्वध्वरं ) यज्ञ के करनेवाले ( विश्वस्य ) ससार के ( दूतम् ) दु ख का नाश करनेवाले ( अमृतं ) जीवनमुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारे ज्ञान की रक्षा करने वाले, प्रिय, ज्ञानवान्, विषयों से न फसनेवाले, यज्ञकर्त्ता ससार के दु ख को दूर करने वाले तथा जीवनमुक्त आत्मज्ञानी पुरुष को मैं आदर से अपने समीप बुलाता हूं ॥१॥

७५०—वामदेव । अग्नि । प्रगाथ ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
**स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।**
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
**सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥**

पदार्थ—( स ) वह ( योजते ) युक्त है ( अरुषा ) तेज से (विश्वभोजसा ) विश्व की रक्षा करनेवाले ( स ) वह ( दुद्रवत ) सबको गति देता है ( स्वाहुत ) अच्छी प्रकार से स्तुति किया जानेवाला ( सुब्रह्मा ) वेदज्ञान वाला ( यज्ञ ) उपास्य ( सुशमी ) अच्छे कर्मवाला ( वसूना ) विद्वानो के ( देव ) देव ( राध ) धन (जनानां) प्रजा के ॥२॥

भावार्थ—वह परमेश्वर विश्व की पालना करनेवाले तेज से युक्त है। वह ही सब पदार्थों को गति दे रहा है। वह वेदज्ञान का स्वामी पुकारने योग्य उपास्य तथा अच्छे गुणकर्म स्वभाव वाला है। विद्वानो तथा समस्त प्रजा के एकमात्र धन उस देव की हम स्तुति करते हैं ॥२॥

७५१—वसिष्ठ । उषा । बृहती ।

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ १ २
**प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः । अपो**
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**महि व्ययति चक्षसा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥**

पदार्थ—( प्रति ) प्रत्येक दिन ( उ ) निश्चय से ही ( अदर्शि ) दिखाई पड़ती है ( आयती ) प्राप्त होती हुई ( उच्छन्ती ) दूर करती हुई ( दुहिता ) दूर में स्थित ( दिवः ) सूर्य की ( अप ) दूर निश्चित रूप से ( महो ) महान् गुणो वाली ( वृणु ) निवारण करती है ( चक्षसा ) आंख के ( तम ) अन्धकार को ( ज्योति ) प्रकाश ( कृणोति ) करती है ( सूनरी ) लोगो को मार्ग दिखानेवाली ॥१॥

भावार्थ—प्राप्त होती हुई सूर्य की दूरस्थ किरणें दुर्गन्ध आदि का निवारण करती हुई दिखाई पड़ती हैं। बड़े गुणों वाली तथा लोगों को मार्ग दिखाने वाली वे आंख के तम को दूर करती और प्रकाश करती हैं ॥१॥

७५२—वसिष्ठ । उषा । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
**उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।**
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥**

पदार्थ—( उत् ) उत्कृष्ट रूप से ( उस्रियाः ) किरणों से युक्त ( सृजते ) बनाता है ( सूर्य ) हे परमात्मन् ( सचा ) प्रसन्न से ( उद्यन् ) उदित होनेवाले ( नक्षत्र ) नक्षत्र को ( अर्चिवत् ) प्रकाश युक्त ( तव ) तेरे ( उषः ) हे उषा के समान कामना करने के योग्य ( व्युषि ) प्रकाश में ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( च ) और ( सं ) भली भांति ( भक्तेन ) अन्न आदि भोगों से ( गमेमहि ) युक्त होवें ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू ही किरणो से युक्त उषा और उदित होनेवाले प्रकाशमय नक्षत्रो को बनाता है। हे उषा के समान कामना के योग्य ! तुम्हारे और सूर्य के प्रकाश में हम अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करें ॥२॥

७५३—वसिष्ठ । अश्विनौ । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।**
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥**

पदार्थ—( इमा ) ये ( उ ) निश्चय ही ( वां ) आप दोनों को (दिविष्टयः) उत्तमकर्मों को चाहनेवाले ( उस्रा ) तेजयुक्त ( हवन्ते ) स्वीकार करते हैं (अश्विना) हे अध्यापक और उपदेशक ( अयं ) यह ( वां ) आप दोनों को ( अह्वे ) पुकारता हूं ( अवसे ) ज्ञान रक्षा के लिए ( शचीवसू ) ज्ञान के निवास स्थान [ ज्ञान के भण्डार ] ( विशंविशं ) हर एक स्त्रीपुरुष को ( हि ) इसलिए ( गच्छथः ) ज्ञान दीजिए ॥१॥

भावार्थ—हे तेजयुक्त तथा ज्ञान के भण्डार अध्यापक और उपदेशक ! ये उत्तम कर्मों की इच्छा करने वाले आपको ही स्वीकार करते हैं। मैं भी आप दोनों को ज्ञान की रक्षा के लिए पुकारता हूं। अत आप हर एक स्त्रीपुरुष को ज्ञान प्रदान कीजिए ॥१॥

७५४—वसिष्ठ । अश्विनौ । बृहती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।**
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥**

पदार्थ—( युवम् ) आप दोनों ( चित्रं ) अद्भुत (ददथु ) देते हैं (भोजनं) रक्षा के साधन ( नरा ) सब के नेता ( चोदेथां ) प्रेरणा करते हैं ( सूनृतावते ) सत्यवादी होने के लिए ( अर्वाक् ) सम्मुख ( रथम् ) ससार को ( समनसा ) एक समान मनवाले ( नियच्छतम् ) नियम में रखते हैं (पिबतम्) रक्षा करते हैं (सोम्यं) ऐश्वर्यसम्बन्धी ( मधु ) विज्ञान की ॥२॥

भावार्थ—हे समान विचारवाले सबके नेता, अध्यापक और उपदेशक ! आप लोग अद्भुत रक्षा के साधन देते हैं और सत्यवादी होने के लिए प्रेरणा करते हैं। आप ही ससार को नियम में चलाते हैं तथा ऐश्वर्य देनेवाले विज्ञान की रक्षा करते हैं ॥२॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

७५५—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
**अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥**

पदार्थ—( अस्य ) इस परमेश्वर के ( प्रत्नां ) सनातन ( अनु ) अनुकूलता से ( द्युतं ) तेजस्वी ( शुक्रं ) शुद्ध ( दुदुह्रे ) दोहन करते हैं ( अह्रयः ) ज्ञानी जन ( पयः ) ज्ञान को ( सहस्रसाम् ) असख्य कार्यों के साधक ( ऋषिं ) बोध कराने वाले ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानीजन परमेश्वर के सनातन, शुद्ध तेजस्वी असख्य कार्यों के साधक और बोध कराने वाले ज्ञान का दोहन करते हैं ॥१॥

७५६—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
**अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥**

पदार्थ—( अयं ) यह परमेश्वर ( सूर्य इव ) सूर्य के समान ( उपदृक् ) उपद्रष्टा ( अयं ) यह ( सरांसि ) वाणियो को ( धावति ) पवित्र करता है (सप्त) भू आदि सात लोकों में ( प्रवतः ) व्यापक है ( आदिवम् ) द्यौ लोक के अतिरिक्त भी ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य के समान सब का द्रष्टा है। वह हमारी वाणियों को पवित्र करता है। वही भू आदि सात लोकों और द्युलोक आदि से परे भी व्यापक है ॥२॥

७५७—अवत्सारः । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
**अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥**

पदार्थ—( अयं ) यह ( विश्वानि ) सकल (तिष्ठति) वर्तमान है (पुनानः)

पवित्र करता हुआ ( भुवना ) लोकों के ( उपरि ) ऊपर ( सोमः ) परमेश्वर ( देवः ) प्रकाशस्वरूप ( न ) समान ( सूर्यः ) सूर्य के ॥३॥

भावार्थ—सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप परमेश्वर सारे लोकों को पवित्र करता हुआ उनके ऊपर विराजमान है ॥३॥

७५८—असितोऽमहीयुर्वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २ १ २ ३ १ २

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥१॥

पदार्थ—( एषः ) यह परमेश्वर ( प्रत्नेन ) पुराने ( जन्मना ) नाम और कर्म से ( देवः ) प्रकाशस्वरूप ( देवेभ्यः ) सब देवों में ( सुतः ) प्रसिद्ध ( हरिः ) अज्ञान को नाश करनेवाला ( पवित्रे ) उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले को ( अर्षति ) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ—अपने सनातन नाम और कर्म के द्वारा सब देवों में प्रसिद्ध अज्ञान का नाश करनेवाला परमात्म देव पवित्र आत्माओं को प्राप्त होता है ॥१॥

७५९—असितोऽमहीयुर्वा । सोम. । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ॥२॥

पदार्थ—( एष ) यह जीव ( प्रत्नेन ) सनातन ( मन्मना ) ज्ञानवान् ( देव ) देव ( देवेभ्यः ) समस्त देवों के ( परि ) परे वर्तमान ( कवि ) मेधावी ( विप्रेण ) परमेश्वर के द्वारा ( वावृधे ) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—यह बुद्धिमान् देवस्वरूप जीव सनातन, ज्ञानमय तथा समस्त देवों से परे विद्यमान परमेश्वर के द्वारा अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥२॥

७६०—असितोऽमहीयुर्वा । सोम । गायत्री ।

३ १ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

दुहान प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे । क्रन्द देवाँ अजीजनः ॥३॥

पदार्थ—( दुहान ) परिपूर्ण करता हुआ ( प्रत्न ) सनातन ( इत् ) ही ( पयः ) ज्ञान को ( पवित्रे ) पवित्र आत्मा में ( परिषिच्यसे ) भली भांति सिंचन करता है ( क्रन्द ) नामों का उच्चारण करता हुआ ( देवान् ) देवों को ( अजीजनः ) उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू सनातन वेदज्ञान को भली-भांति पूर्ण करता हुआ पवित्र आत्माओं में उसका उपदेश करता है और उस के द्वारा नामों का उच्चारण करता हुआ समस्त दिव्य पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥३॥

७६१—असितोऽमहीयुर्वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ॥१॥

पदार्थ—( उपशिक्षा ) शिक्षा दे ( अपतस्थुषः ) विपरीत मार्ग पर चलने वाले मनुष्यों को ( भियसम् ) भय ( आधेहि ) दे ( शत्रवे ) शत्रु को ( पवमान ) हे पवित्रकर्ता परमेश्वर ( विदा ) प्राप्त करा ( रयिम् ) सम्पत्ति को ॥१॥

भावार्थ—हे पतितपावन परमेश्वर! हम में से कुपथ पर चलने वाले मनुष्यों को शिक्षा दे और शत्रुता करने वाले को भय दे। हमें सम्पदायें प्राप्त करा ॥१॥

७६२—असितोऽमहीयुर्वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥२॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( सुजात ) जनक ( अप्तुर ) शुभ कर्मों का प्रेरक ( गोभि ) वेदवाणियों से ( भङ्ग ) बुराइयों का दूर करने वाले ( परिष्कृतं ) सुशोभित ( इन्दु ) परमेश्वर का ( देवा ) विद्वान् जन ( अयासिषुः ) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानीजन सृष्टिकर्त्ता, शुभकर्मों के प्रेरक, दुर्गुणनिवारक तथा वेदवाणी से युक्त परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥२॥

७६३—असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥३॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( अस्मै ) इस ( गायत ) गान करो ( नरः ) हे मनुष्यो ( पवमानाय ) पवित्रकारक ( इन्दवे ) परम ऐश्वर्यवान् ( अभि ) सब प्रकार से ( देवान् ) देवों को ( इयक्षते ) यज्ञादि से तृप्त करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! देवों को यज्ञादि से तृप्त करनेवाले, पवित्रकारक, परमैश्वर्यवान् विद्वान् का आदर करो ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

७६४—श्यावाश्व । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सोमास ) शान्तस्वभाव पुरुष ( विपश्चित ) बुद्धिमान् ( अप ) परमेश्वर को ( नयन्ते ) प्राप्त करते हैं ( ऊर्मय ) तरंगें ( वनानि ) जलों को ( महिषा ) महान् ( इव ) जैसे ॥१॥

भावार्थ—महान् तरंगें जिस प्रकार जलों को प्राप्त करती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥१॥

७६५—श्यावाश्व । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) लक्ष्य कर ( द्रोणानि ) गन्तव्य मार्गों को ( बभ्रवः ) दीप्त ( शुक्रा ) शुद्ध पुरुष ( ऋतस्य ) परमेश्वर की ( धारया ) वाणी के द्वारा ( वाज ) ज्ञान को ( गोमन्त ) प्रकाशमय ( अक्षरन् ) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—तेजस्वी और पवित्र पुरुष अपने गन्तव्य पथ को लक्ष्य कर परमेश्वर की वेदवाणी के द्वारा प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करते हैं ॥२॥

७६६—श्यावाश्व । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥

पदार्थ—( सुता ) उत्पन्न ( इन्द्राय ) विद्युद्विद्या के लिए ( वायवे ) वायुविज्ञान के लिए ( वरुणाय ) जलविज्ञान के लिए ( मरुद्भ्यः ) सुवर्ण खनिज पदार्थों के लिए ( सोमा ) शास्त्रीय ज्ञान ( अर्षन्तु ) अग्रसर हों ( विष्णवे ) यज्ञ तथा व्यापक परमेश्वर के लिए ॥३॥

भावार्थ—हमारे शास्त्रीय विचार विद्युत्, वायु जल सुवर्ण आदि खनिज पदार्थ तथा यज्ञ और व्यापक परमेश्वर के ज्ञान के लिए हों ॥३॥

७६७—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सोम ) हे जीव ( देववीतये ) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए ( सिन्धुः ) समुद्र के ( न ) समान ( पिप्ये ) पूर्ण किया जाता है ( अर्णसा ) जल से ( अंशो ) व्यापक [ परमेश्वर ] के ( पयसा ) ज्ञान से ( मदिर ) प्रसन्न ( न ) और ( जागृवि ) चेतन स्वरूप ( अच्छा ) प्राप्त कर ( कोश ) कोश को ( मधुश्चुतम् ) आनन्दमय ॥१॥

भावार्थ—हे जीव! तू दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए जल से समुद्र की भांति व्यापक परमेश्वर के ज्ञान से परिपूर्ण होता है। प्रसन्न और चेतन स्वरूप होता हुआ आनन्दमय कोश को प्राप्त कर ॥१॥

७६८—सप्तर्षय । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( हर्यतः ) अज्ञाननाशक ( अर्जुन ) प्रकाशमान ( अत्के ) व्यक्त संसार में ( अव्यत ) व्यापक होकर विद्यमान है ( प्रियः ) प्यारे ( सूनु न ) सूर्य के समान ( मर्ज्य ) शुद्धिकारक ( त ) उस परमेश्वर को ( ईम् ) निश्चय ही ( हिन्वन्ति ) प्राप्त करते हैं ( अपसः ) निष्काम कर्म करनेवाले ( यथा ) जैसे ( रथं ) नौका आदि को ( नदीषु ) नदियों में ( आ ) सब प्रकार से ( गभस्त्योः ) हाथों के द्वारा ॥२॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करनेवाला, भक्तजनों का प्यारा प्रभु प्रकाशमान और शुद्धिकारक सूर्य के समान व्यक्त संसार में व्यापक हो रहा है। पार जाने वाला हाथों के द्वारा नदियों में नौका के समान, निष्काम कर्म करनेवाले [ संसार सागर को पार करने के लिए ] परमेश्वर का सहारा लेते हैं ॥२॥

७६९—श्यावाश्व । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सोमास ) उत्पन्न संसारी पदार्थ ( मदच्युत ) आनन्ददायक ( श्रवसे ) यश के लिए ( नः ) हमारे ( मघोनां ) यज्ञ करनेवाले ( सुता ) प्रसिद्ध ( विदथे ) संसार में ( अक्रमुः ) प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—संसार में प्रसिद्ध आनन्ददायक सांसारिक पदार्थ हम यज्ञ करनेवालों को कीर्ति के लिए प्राप्त होते हैं ॥१॥

७७०—श्यावाश्व । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २२ ३ १ २२ ३ २ २ ३ १ २२

आवीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥२॥

पदार्थ—( आत् ) निरन्तर ( ईं ) यह ( हंस ) जीव ( यथा ) जैसे ( गणं ) इन्द्रिय समूह को ( विश्वस्य ) सारे ससार की ( अवीवशत् ) वश मे करता है ( मतिं ) बुद्धि को ( अत्यो न ) आकाश के समान ( गोभि ) शब्दों के द्वारा ( अज्यते ) जाना जाता है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर इन्द्रियों को जीव के समान, सारे ससार की बुद्धि को निरन्तर वश मे करता है। शब्द द्वारा आकाश के समान वेदवाणी के द्वारा उसी का अनुमान होता है ॥२॥

७७१—श्यावाश्व । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १२ २ ३ १ २ ३ १ २

आवीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभि । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥३॥

पदार्थ—( आत् ) निरन्तर ( ईं ) इस ( त्रितस्य ) तीनो कालों में विद्यमान परमेश्वर की ( योषण ) संयोजक और विभाजक शक्तिया ( हरिं ) वायु को ( हिन्वन्ति ) प्रेरित करती हैं ( अद्रिभि ) मेघो से युक्त ( इन्दु ) चन्द्रमा को ( इन्द्राय ) जीव की ( पीतये ) रक्षा के लिए ॥३॥

भावार्थ—तीनों कालो मे विद्यमान परमेश्वर की सयोजक और विभाजक शक्तियां मेघों से युक्त वायु तथा चन्द्र को भी जीवात्मा की रक्षा के लिए चलाती हैं ॥३॥

७७२—श्यावाश्व । सोम । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

अया पवस्व देवयु रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वत । मधोर्धारा असृक्षत ॥१॥

पदार्थ—( अया ) इस वेदवाणी से ( पवस्व ) हमें पवित्र कर ( देवयु ) तू ससार की दिव्य शक्तियो का सयोजक है ( रेभन् ) ज्ञान का उपदेश करता हुआ ( पवित्र ) पवित्रात्मा को ( पर्येषि ) प्राप्त होता है ( विश्वत ) सब प्रकार से ( मधोः ) आनन्द की ( धारा ) धाराए ( असृक्षत ) बहाता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दिव्य शक्तियों का संयोजक है। तू वेदों का उपदेश करता हुआ पवित्र आत्माओं को सब प्रकार से प्राप्त होता है और आनन्द की धाराएँ बहाता है। अतः हमें वेदवाणी के द्वारा पवित्र कर ॥१॥

७७३—प्रजापति । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ २उ ३ २ २ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्षं स्तोतृभ्यो वीरवद्यश ॥२॥

पदार्थ—( पवते ) पवित्र करता है ( हर्यतः ) मोक्ष की इच्छा करनेवाला ( हरि ) ज्ञानी पुरुष ( अति ) परित्याग कर ( ह्वरांसि ) कुटिलता को ( रंह्या ) शीघ्रता से ( अभ्यर्षन् ) प्राप्त करता हुआ ( स्तोतृभ्यः ) ईश्वर की उपासना करनेवालों से ( वीरवत् ) वीरता युक्त ( यश ) यश को ॥२॥

भावार्थ—मोक्ष की इच्छा करनेवाला ज्ञानी पुरुष ईश्वर भक्तों से वीरतायुक्त यश को प्राप्त करता हुआ कुटिलताओं को शीघ्रता से छोड़ देता है ॥२॥

७७४—अम्बरीष । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वच ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

अप श्वानमराधस हता मखं न भृगव ॥३॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सुन्वानाय ) सृष्टिकर्त्ता [ परमेश्वर की ] ( अन्धस ) अज्ञान से ( मर्त ) मनुष्य ( न ) नहीं ( वष्ट ) चाहता ( तद् ) प्रसिद्ध ( वच ) वेदवाणी ( अप ) अलग ( श्वानम् ) कुत्ते के समान ( अराधसं ) भगवान् की भक्ति नहीं करनेवाले को ( हत ) दूर करो ( मखं ) सकाम कर्म के ( न ) समान ( भृगवः ) ब्रह्मज्ञानी जन ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् जन ! जो मनुष्य अज्ञान से सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की प्रसिद्ध वेदवाणी को नहीं मानता है और भगवान् की भक्ति नहीं करता उस कुत्ते के स्वभाव वाले पेटपोषक मनुष्य का परित्याग कर दो। जैसे ब्रह्मज्ञानी सकाम कर्म का परित्याग कर देता है ॥३॥

द्वितीयोऽध्याय समाप्त ॥

卐

# तृतीयोऽध्यायः

७७५—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पवस्व वाचो अग्रिय सोम चित्राभिरूतिभि । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) ज्ञान कराता है ( वाच ) ऋग, यजु, साम अथर्वरूप वाणियों का ( अग्रिय ) सबसे प्रथम विद्यमान ( सोम ) हे परमेश्वर ! ( चित्राभि ) नाना प्रकार की ( ऊतिभि ) रक्षाओ से [ युक्त ] ( अभि ) लक्ष्य कर ( विश्वानि ) सारे ( काव्या ) काव्यों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू नाना प्रकार की रक्षाओं से युक्त और सबसे प्रथम विद्यमान है। तू ही समस्त काव्यो से परिपूर्ण वेदवाणियों का उपदेश करता है ॥१॥

७७६—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ॥२॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( समुद्रिया ) आकाशीयों ( अपः ) क्रियाओं को ( अग्रिय ) आदिकारण ( वाच ) वेदवाणियों की ( ईरयन् ) प्रेरणा करता हुआ ( पवस्व ) पवित्र कर ( विश्वचर्षणे ) हे विश्व के साक्षी ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! तू आदिकारण है। आकाशीय क्रियाओ और वेदवाणियो की प्रेरणा करता हुआ हमे पवित्र कर ॥२॥

७७७—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनव ॥३॥

पदार्थ—( तुभ्यं ) तेरी ( इमा ) ये ( भुवना ) लोकलोकान्तर ( कवे ) हे सर्वज्ञ ( महिम्ने ) महिमा से ( सोम ) हे परमेश्वर ( तस्थिरे ) स्थित हैं ( तुभ्यं ) तुझे ही ( धावन्ति ) प्राप्त होती हैं ( धेनव ) वाणियां ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तेरी महिमा [ सामर्थ्य ] से सारे लोक लोकान्तर स्थित हैं। हमारी स्तुतियां तुझे ही प्राप्त होती हैं ॥३॥

७७८—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

पवस्वेन्दो वृषा सुत कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) हमे पवित्र कर ( इन्दो ) हे परमेश्वर ( वृषा ) कामनाओ की वर्षा करनेवाला ( सुत ) ससार का उत्पादक ( कृधी ) कर ( न ) हमें ( यशसः ) यशस्वी ( जने ) जनता मे ( विश्वा ) सारे ( अप ) पृथक् ( द्विष ) धर्म से द्वेष करनेवालों को ( जहि ) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब कामनाओ की वर्षा करनेवाला और सृष्टिकर्त्ता है। तू हम पवित्र कर। जनता में यशस्वी बना। धर्म से द्वेष करनेवालों को हमसे परे कर ॥१॥

७७९—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यत । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥२॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस ( ते ) तेरे ( सख्ये ) मित्रता में ( वयं ) हम ( सासह्याम ) दूर भगाते ( पृतन्यत ) काम क्रोधादि शत्रुओं को ( तव ) तेरे ( इन्दो ) हे परमेश्वर ! ( द्युम्ने ) यश में ( उत्तमे ) सबसे श्रेष्ठ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता और उत्तम यश मे रहते हुए हम, काम क्रोध आदि शत्रुओं को दूर भगाते हैं ॥२॥

७८०—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निद ॥३॥

पदार्थ—( या ) जो ( ते ) तेरी ( भीमानि ) भयानक ( आयुधा ) विनाशकारी शक्तियां ( तिग्मानि ) अत्यन्त तीक्ष्ण [ असह्य ] ( सन्ति ) हैं ( धूर्वणे ) हिंसकों के वध के लिए ( रक्ष ) रक्षा कर ( समस्य ) सब ( न ) हमारी ( निदः ) निन्दाओं से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त हिंसकों के विनाश के लिए जो तेरी अत्यन्त तीक्ष्ण और भयदायिनी विनाशकारिणी शक्तियाँ हैं उनके द्वारा हिंसा करने की सारी निन्दाओं से हमें बचा ॥३॥

७८१—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥१॥

पदार्थ—( वृषा ) ज्ञान की वर्षा करनेवाला ( सोम ) हे ज्ञानी पुरुष ( द्युमान् ) तेजस्वी ( असि ) है ( वृषा ) बलिष्ठ ( देव ) पुरुष ( वृषव्रतः ) धर्म के व्रती ( वृषा ) सुखकारी ( धर्माणि ) धर्मों को ( दध्रिषे ) धारण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! ज्ञान की वर्षा करनेवाला तू तेजस्वी है । हे पुरुष ! स्वयं बलवान् तू धर्म का व्रत धारण करनेवाला तथा सुखकारी है । तू ही सत्य आदि धर्मों को धारण करता है ॥१॥

७८२—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २र

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुत । स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थ—( वृष्णः ) आनन्द की वर्षा करनेवाले ( ते ) तेरा ( वृष्ण्यं ) बल की वर्षा करनेवाला ( शव ) बल ( वृषा ) ज्ञान की वर्षा करनेवाला ( वनं ) भजन ( वृषा ) सुख की वर्षा करनेवाला ( सुतः ) संसार ( सः ) वह ( त्वं ) तू ( वृषन् ) हे सकल कामनाओं की वर्षा करनेवाले ( वृषा ) धर्म की वर्षा करनेवाला ( इत् ) ही ( असि ) है ॥२॥

भावार्थ—हे सकल कामनाओं की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तेरा बल आनन्द की वर्षा करनेवाला है । तेरा भजन ज्ञान का दान करने वाला है । तेरा संसार सुखदायक है । तू स्वयं धर्म की वर्षा करनेवाला ही है ॥२॥

७८३—कश्यपः । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २र

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थ—( अश्व ) महान् विद्वान् के समान ( चक्रदः ) वेदों का उपदेश करता है ( वृषा ) मनोरथों की वर्षा करनेवाला ( सम् ) सम्यक् ( गाः ) गौ आदि पशुओं को ( इन्दो ) हे परमेश्वर ( सम् ) सम्यक् प्रकार ( अर्वतः ) घोड़ों को ( वि ) विशेष रूप से ( नः ) हमारे ( राये ) सम्पदा के लिए ( दुरः ) द्वारों को ( वृधि ) बढ़ा ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् विद्वान् के समान वेदों का उपदेश करता है । सकल मनोरथों की वर्षा करनेवाला तू हमें गाय और घोड़े आदि पशुओं को दे तथा हमारे धन प्राप्ति के द्वारों को भी खोल दे ॥३॥

७८४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥१॥

पदार्थ—( वृषा ) ज्ञान की वर्षा करनेवाला ( हि ) निश्चित ( असि ) है ( भानुना ) कान्ति से ( द्युमन्तं ) चमकने वाले ( त्वा ) तुझे ( हवामहे ) आदरपूर्वक बुलाते हैं ( पवमान ) हे पवित्रात्मा ( स्वर्दृशम् ) सुखस्वरूप परमात्मा का साक्षात् करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा ज्ञानी पुरुष ! तू निश्चित ही ज्ञान की वर्षा करने वाला है । अपने तेज से प्रकाशमान और सुखस्वरूप परमेश्वर का साक्षात करानेवाले तुझको हम आदर से बुलाते हैं ॥१॥

७८५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जबकि ( अद्भिः ) निष्काम कर्मों से ( परिषिच्यसे ) संयुक्त होता है ( मर्मृज्यमानः ) पवित्र किया हुआ ( आयुभिः ) ज्ञानी मनुष्यों द्वारा ( द्रोणे ) गन्तव्य मार्ग में ( सधस्थं ) सर्वदा साथ विद्यमान परमेश्वर को ( अश्नुषे ) प्राप्त करता है ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! तू ज्ञानी मनुष्यों द्वारा पवित्र किया जाता हुआ जब निष्काम कर्मों को करता है, तब गन्तव्य मार्ग पर आरूढ़ होकर सर्वदा साथ में विद्यमान परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥२॥

७८६—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥३॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( पवस्व ) प्राप्त करा ( सुवीर्यं ) उत्तम पराक्रम को ( मन्दमानः ) आनन्दित करता हुआ ( स्वायुध ) हे मनुष्यमात्र के रक्षक ( इह ) इसी जन्म में ( उ ) निश्चय ही ( सु ) अच्छी तरह ( इन्दो ) हे परमेश्वर ( आगहि ) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यमात्र के रक्षक परमेश्वर ! तू हमें आनन्दित करता हुआ उत्तम पराक्रम प्रदान कर और तू हमें निश्चित रूप से इसी जन्म में प्राप्त हो ॥३॥

७८७—अमहीयुः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥१॥

पदार्थ—( पवमानस्य ) पवित्र करनेवाले ( ते ) तेरी ( वयं ) हम लोग ( पवित्रं ) पवित्र ( अभ्युन्दतः ) आनन्द रस से सब को सींचनेवाले ( सखित्वं ) मित्रता को ( आवृणीमहे ) सब प्रकार से वरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—आनन्दरस से सबको सींचने तथा पवित्र करनेवाले परमेश्वर ! आप की विशुद्ध मित्रता को हम लोग चाहते हैं ॥१॥

७८८—अमहीयुः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ १ २

ये ते पवित्रमूर्मयो ऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥२॥

पदार्थ—( ये ) जो ( ते ) तेरे पवित्र ज्ञान का ( ऊर्मय ) अपार ज्ञान की लहरें ( अभिक्षरन्ति ) टपकाती हैं ( धारया ) शब्द के द्वारा ( तेभिः ) उनसे ( नः ) हमें ( सोम ) हे परमेश्वर ( मृडय ) सुखी कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे अगाध ज्ञान की जो लहरें शब्द के द्वारा पवित्र ज्ञान को भली प्रकार टपकाती हैं, उनसे हमें सुखी कर ॥२॥

७८९—अमहीयुः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥३॥

पदार्थ—( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( आभर ) भरपूर कर ( रयिं ) धन से ( वीरवतीम् ) वीर पुत्र आदि से युक्त ( इषं ) विज्ञान से ( ईशानः ) स्वामी ( सोम ) हे परमेश्वर ( विश्वतः ) सम्पूर्ण चराचर का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पवित्रकारक और चराचर का स्वामी है । तू हमें वीर पुत्रादि युक्त धन और विज्ञान से भरपूर कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

७९०—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

पदार्थ—( अग्निं ) आत्मा को ( दूतं ) बुराइयों को दूर करानेवाले ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( होतारं ) ग्रहण करनेवाले ( विश्ववेदसं ) संसार को प्राप्त होनेवाले ( अस्य ) इस ( यज्ञस्य ) उपासनारूप यज्ञ के ( सुक्रतुं ) अच्छी तरह करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—बुराइयों को दूर करनेवाले, सब पदार्थों के ग्रहण करनेवाले, संसार को प्राप्त होनेवाले तथा इस उपासनारूप यज्ञ के कर्ता आत्मा को हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

७९१—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२॥

पदार्थ—( अग्नि ) प्रकाशस्वरूप ( अग्निं ) परमेश्वर को ( हवीमभिः ) उपासनाओं के द्वारा ( सदा ) सदा ( हवन्त ) स्मरण करो ( विश्पतिम् ) समस्त प्रजाओं के पालक ( हव्यवाहं ) भोग्य वस्तुओं के दाता ( पुरुप्रियं ) सर्वप्रिय ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रकाशस्वरूप, प्रजाओं के पालक, भोग्य वस्तुओं के दाता तथा सर्वप्रिय परमेश्वर को उपासनाओं द्वारा सदा स्मरण करो ॥२॥

७९२—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( देवान् ) दिव्य गुणों को ( इह ) ज्ञानयज्ञ में ( आवह ) प्राप्त करो ( जज्ञान ) सबका जनक ( वृक्तबर्हिषे ) उपासक के लिए ( असि ) है ( होता ) सब वस्तुओं का दाता ( नः ) हमारा ( ईड्यः ) उपास्य देव ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सृष्टिकर्ता तथा सब कुछ देनेवाला तू हमारा उपास्य देव है । तू इस उपासना रूप यज्ञ में उपासक को दिव्यगुणों से युक्त कर ॥३॥

७९३—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ॥१॥

पदार्थ—( मित्रं ) प्राण ( वयं ) हम ( हवामहे ) ग्रहण करते हैं ( वरुणं ) अपान को ( सोमपीतये ) शरीर की रक्षा के लिए ( या ) जो दोनों ( जाता ) उत्पन्न हुए ( पूतदक्षसा ) पवित्र पराक्रम प्रदान करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हम पवित्र पराक्रम प्रदान करनेवाले प्रसिद्ध प्राण और अपान को शरीर की रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं ॥१॥

७९४—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥२॥

पदार्थ—( ऋतेन ) सत्य नियम से ( यौ ) जो दोनों ( ऋतावृधौ ) जल को बढ़ानेवाले ( ऋतस्य ) सत्यस्वरूप परमेश्वर के ( ज्योतिषः ) प्रकाश के ( पती ) रक्षक ( तौ ) उन दोनों ( मित्रावरुणा ) मित्र और वरुण अर्थात् प्राण और उदानरूप दो वायुओं को ( हुवे ) प्रयोग में लाता हूँ ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियम से जल को बढ़ानेवाले तथा प्रकाश के रक्षक मित्र और वरुण [प्राण और उदान] वायुओं को मैं प्रयोग मे लाता हूँ ॥२॥

७९५—मेधातिथि । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
**वरुण प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां न सुराधस ॥३॥**

पदार्थ—( वरुण ) वायु ( प्र ) प्रकृष्टरूप से ( अविता ) रक्षक ( भुवत् ) होती है । ( मित्र ) सूर्य ( विश्वाभि ) सारी ( ऊतिभिः ) रक्षाओं से ( करताम् ) करते हैं ( न ) हमे ( सुराधस ) सपदाओं से युक्त ॥३॥

भावार्थ—सूय और वायु सारी रक्षाओ से हमारे रक्षक होते हैं और हमें सपदाओ से युक्त करते हैं ॥३॥

७९६—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
**इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किण । इन्द्र वाणीरनूषत ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) आत्मा को ( इत् ) ही ( गाथिन ) सामवेदी लोग ( बृहत् ) सामगानो से ( इन्द्रं ) आत्मा को ही ( अर्केभि ) ऋचाओं से ( अर्किण ) ऋग्वेदी लोग ( इन्द्र ) आत्मा को ( वाणीः ) यजु के मत्रो से ( अनूषत ) वर्णन करत हैं ॥१॥

भावार्थ—सामवेदी, ऋग्वेदी तथा यजुर्वेदी लोग साम ऋक तथा यजु मन्त्रों द्वारा आत्मा का वणन करते हैं ॥१॥

७९७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्र इद्धर्यो सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्यय ॥२॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) जीवात्मा ( इत् ) ही ( हर्यो ) प्राण और जाठराग्नि को ( सचा ) एकसाथ ( सम्मिश्ल ) मिलाने वाला है ( आ ) भली भांति ( वचोयुजा ) वाणी को जोड़नेवाले ( इन्द्र ) जीवात्मा ( वज्री ) कामादि शत्रुओ को दूर करनेवाला ( हिरण्यय ) प्रकाशस्वरूप ॥२॥

भावार्थ—जीवात्मा ही वाणी को जोड़नेवाले प्राण और जाठराग्नि को एक साथ मिलानेवाला है । वह कामादि शत्रुओं को दूर करनेवाला और प्रकाश स्वरूप है ॥२॥

७९८—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभि ॥ ॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे वीर पुरुष ( वाजेषु ) सग्रामो म ( न ) हमारी ( अव ) रक्षा कर ( सहस्रप्रधनेषु ) लोकयात्रा क सग्रामो मे ( च ) भी ( उग्र ) हे अत्यन्त बलशाली ( उग्राभि ) प्रचण्ड ( ऊतिभि ) रक्षाओ से ॥३॥

भावार्थ—हे अत्यन्त बलशाली वीर पुरुष ! सग्रामो और लोक यात्राओ म प्रचण्ड रक्षा के साधनों से हमारी रक्षा कर ॥३॥

७९९—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३उ ३ १ २
**इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥४॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर ने ( दीर्घाय ) दूर दूर तक ( चक्षसे ) देखने के लिए ( आ ) अच्छी तरह ( सूर्यं ) सूय को ( रोहयत् ) उत्पन्न किया ( दिवि ) द्युलोक म ( वि ) विशेषरूप से ( गोभि ) किरणो से ( अद्रि ) मेघ को ( ऐरयत ) प्रेरित करता है ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर ने दूर दूर तक लोगो के देखने के लिए आकाश मण्डल मे सूर्य को उत्पन्न किया । सूर्य अपनी किरणो स मेघ को प्रेरित करता है ॥४॥

८००—वसिष्ठ । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
**इन्द्रे अग्ना नमो बृहत सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यव ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्रे ) विद्वान् पुरुष की सेवा से ( अग्ना ) और परमेश्वर की शरण म ( नम ) नमस्कार ( बृहत ) पर्याप्त ( सुवृक्ति ) मनोहर स्तुति का ( एरयामहे ) प्रयोग करत हैं ( धिया ) बुद्धि से युक्त ( धेना ) वाणी की ( अवस्यव ) अपनी रक्षा चाहने वाले ॥१॥

भावार्थ—अपनी रक्षा चाहनेवाले हम विद्वान् पुरुष की सेवा म तथा परमेश्वर की शरण में पर्याप्त नमस्कार और स्तुतियों का प्रयोग करते हैं ॥१॥

८०१—वसिष्ठ । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥२॥**

पदार्थ—( ता ) उन दोनों [ विद्वान् और परमेश्वर ] की ( हि ) निश्चित रूप से ( शश्वन्त ) बहुत से ( ईळते ) स्तुति करते हैं ( इत्था ) इस प्रकार से ( विप्रास ) मेधावी जन ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( सबाध ) बाधा से युक्त ( वाजसातये ) ज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—बाधाओं के आ पड़ने पर मेधावी जन इस प्रकार से अपनी रक्षा, ज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए विद्वान् पुरुष और परमेश्वर की स्तुति करत हैं ॥२॥

८०२—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**ता वां गीर्भिर्विपन्युव प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यव ॥३॥**

पदार्थ—( ता ) उन ( वां ) तुम दोनों की ( गीर्भि ) वेदवाणियों के द्वारा ( विपन्युव ) ज्ञानी ( प्रयस्वन्तः ) प्रयत्नशील ( हवामहे ) स्तुति करते हैं ( मेधसाता ) यज्ञसिद्धि के विषय म ( सनिष्यवः ) तुम्हारे भजन की इच्छा करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष और परमेश्वर ! प्रयत्नशील, तुम्हारी भक्ति चाहनेवाले तथा ज्ञानी हम लोग यज्ञ की सिद्धि के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

८०३—भृगुजमदग्निर्वा । सोम । । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
**वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सर । विश्वा दधान ओजसा ॥१॥**

पदार्थ—( वृषा ) कामनाओ की वृष्टि करनेवाला ( पवस्व ) पवित्र कर ( धारया ) वेदवाणी से ( मरुत्वते ) यज्ञ के लिए ( च ) और ( मत्सर ) आन ददाता ( विश्वा ) समस्त लोकों को ( दधान ) धारण करता हुआ ( ओजसा ) अपनी शक्ति से ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपनी शक्ति से सारे ससार को धारण करता हुआ आनन्ददायक है तथा हमारी कामनाओ को सफल करता है । तू यज्ञ की सिद्धि के लिए वेदवाणी से हमें पवित्र कर ॥१॥

८०४—भृगुजमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**त त्वा धर्तारमोण्यो३ःपवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२॥**

पदार्थ—( त ) उस ( त्वा ) तुझे ( धर्तारं ) धारण करनेवाले ( ओण्योः ) द्यु और पृथिवीलोक ( पवमान ) हे पवित्र करनेवाले [ सोम ] ( स्वर्दृशम् ) सब के साक्षी ( हिन्वे ) प्राप्त करता हूँ ( वाजेषु ) संग्रामों में ( वाजिनं ) बलवान् ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक परमेश्वर ! द्यु और पृथिवीलोक के धारण करने वाले सबके साक्षी तथा बलवान् तुझ मै सग्राम म प्राप्त करू ॥२॥

८०५—भृगुजमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
**अया चित्तो विपानया हरि पवस्व धारया । युज वाजेषु चोदय ॥३॥**

पदार्थ—( अया ) ज्ञान से पूर्ण ( चित्त ) चेतनस्वरूप ( विपा ) विशेष रूप से ससार की रक्षा करनेवाली ( अनया ) इस ( हरि ) अज्ञान के हरण करने वाला ( पवस्व ) [ हमे ] पवित्र कर ( धारया ) वेदवाणी से ( युजं ) योग को ( वाजेषु ) जीवन सग्रामो मे ( चोदय ) प्रेरणा कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू चेतनस्वरूप और अज्ञाननाशक है । तू ज्ञानपूर्ण तथा विशेषरूप स ससार की रक्षा करनेवाली वेदवाणी के द्वारा हमे पवित्र कर और जीवन सग्रामो मे युक्त होने की प्रेरणा कर ॥३॥

८०६—उपमन्यु । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
**वृषा शोणो अभि कनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।**
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
**इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥१॥**

पदार्थ—( वृषा ) ज्ञान की वर्षा करनेवाला ( शोणः ) विद्वान् जैसे ( अभि ) लक्ष्यकर ( कनिक्रदत् ) उपदेश करता है ( गा ) वेदवाणियों का [ वैसे ही ] ( नदयन् ) अव्यक्त रूप से [ ज्ञान का ] उपदेश करता हुआ ( एषि ) व्यापक हो रहा है ( पृथिवीं ) पृथिवीलोक में ( उत ) और ( द्यां ) द्युलोक में ( इन्द्रस्य ) सेनापति के ( इव ) समान ( वग्नु ) वाणी के ( आशृण्वे ) भली-भांति सुनता हूँ ( आजौ ) सग्राम में ( प्रचोदयन् ) प्रेरणा करता हुआ ( अर्षसि ) प्राप्त होता है ( वाच ) वाणी को ( आ ) भली भांति ( इमाम् ) इस ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! ज्ञान की वर्षा करनेवाला ज्ञानी जिस प्रकार वेदों का उपदेश करता है, उसी प्रकार वेदज्ञान का अव्यक्त रूप से उपदेश करता हुआ तू पृथिवी तथा द्युलोक में व्यापक हो रहा है । तू जिस वेदवाणी का उपदेश करता

मुझ हमें प्राप्त होता है, उसको हम संग्राम में सेनापति की आज्ञा के समान मानते हैं ॥१॥

८०७—उपमन्यु । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥२॥

पदार्थ—( रसाय्यः ) भक्तिरस से परिपूर्ण ( पयसा ) ज्ञान से ( पिन्वमान ) सिंचन किया जाता हुआ ( ईरयन् ) प्रेरणा करता हुआ ( एषि ) प्राप्त होता है ( मधुमन्त ) विज्ञानमय ( अंशुम् ) प्रकाश को ( पवमान ) पवित्र स्वभाव ( सन्तनिम् ) विस्तार ( एषि ) प्राप्त करता है ( कृण्वन् ) करता हुआ ( इन्द्राय ) परमात्मा को ( सोम ) हे ज्ञानी पुरुष ( परिषिच्यमान ) भली भांति भरपूर किया हुआ ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्रस्वभाव ज्ञानी पुरुष ! तू भक्तिरस से परिपूर्ण तथा ज्ञान से सिंचन किये गये विज्ञानमय प्रकाश की प्रेरणा करता हुआ प्राप्त होता है। तू संपूर्ण गुणों से भरपूर शुभ कर्मों का विस्तार करता हुआ परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥२॥

८०८—उपमन्यु । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥३॥

पदार्थ—( एवा ) इस प्रकार ( पवस्व ) पवित्र कर ( मदिरः ) आनन्द दाता ( मदाय ) आनन्द के लिए ( उदग्राभस्य ) मेघ को ( नमयन् ) वर्षा के लिए प्रेरित करता हुआ ( वधस्नुम् ) ताड़न से टपकनेवाले ( परि ) सब प्रकार से (वर्णं) वर्णन करने योग्य [गुण] को ( भरमाणः ) धारण करता हुआ ( रुशन्तं ) प्रकाशमान ( गव्युः ) हमारे लिए गाय आदि का देनेवाला ( नः ) हमें ( अर्ष ) प्राप्त हो ( परि ) सब प्रकार (सोम) हे परमेश्वर (सिक्तः) आनन्द की वर्षा करनेवाला ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का दाता है। तू सूर्य की किरणों से छिन्न भिन्न होकर बरसते हुए मेघ को प्रेरित करता हुआ आनन्द के लिए हमें पवित्र कर। प्रकाशमान वर्णन करने योग्य गुण को धारण करता हुआ गाय आदि पशुओं का दाता तथा सुख की वर्षा करने वाला तू हमें प्राप्त हो ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

८०९—शंयु । इन्द्र । बृहती ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

पदार्थ—( त्वां ) तुझे ( इत् ) ही ( हि ) जिस कारण (हवामहे ) पुकारते हैं ( सातौ ) प्राप्ति में ( वाजस्य ) ज्ञानबोध ( कारवः ) उद्योगी पुरुष ( त्वां ) तुझ ( वृत्रेषु ) दुःखों में (इन्द्र ) हे आचार्य देव ( सत्पतिं ) सज्जनों के रक्षक ( नरः ) मनुष्य ( त्वां ) तुझे (काष्ठासु ) प्रत्येक दिशाओं में (अर्वतः ) अज्ञान के निवारण के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे आचार्य देव ! ज्ञान की चिन्ता करनेवाले हम ज्ञानबोध के लिए तुझे ही पुकारते हैं। मनुष्य दुःखों में भी सबके रक्षक रूप से तुझे ही पुकारते हैं। प्रत्येक दिशा में लोग अज्ञान का निवारण तुझ से ही चाहते हैं ॥१॥

८१०—शंयु । इन्द्र । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

१ २र ३क २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

पदार्थ—( सः ) वह ( त्वं ) तू ( नः ) हमें (चित्र) हे अद्भुत (वज्रहस्त) तथा शीघ्र कर्मफल दाता ( धृष्णुया ) दुष्टों का दमन करनेवाला ( महः ) महान् (स्तवानः ) स्तुति किये जाते हुए ( अद्रिवः ) हे आदरणीय (गां ) गाय ( अश्वं) घोड़ा ( रथ्यं) रथवाहक [रथ ढोने वाले] (इन्द्र ) हे परमेश्वर ( संकिर ) दे (सत्रा) सदा (वाजं) अन्न आदि संपत्ति के ( न ) समान (जिग्युषे)विजयी पुरुष के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे आश्चर्यमय, यथायोग्य कर्मफल दाता, आदरणीय परमेश्वर ! तू महान्, स्तुति के योग्य तथा दुष्टों का दमन करने वाला है। तू विजयी पुरुष के लिए अन्नादि संपत्तियों के समान हमें सदा गौ और घोड़े आदि वाहन साधनों को प्रदान कर ॥२॥

८११—प्रस्कण्व । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( प्र ) उत्कृष्ट ( वः ) तुमलोग (सुराधसं) सुन्दर धनवान् ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् पुरुष को ( अर्च ) सत्कार करो ( यथाविदे ) यथार्थ लाभ के लिए ( यः ) जो ( जरितृभ्यः ) धर्मात्माओं के लिए (मघवा) यज्ञ करनेवाला ( पुरूवसुः ) बहुतों को शरण देनेवाला ( सहस्रेण इव ) हजारों प्रकार से ( शिक्षति ) देता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग यथार्थ लाभ के लिए उस धनी पुरुष का आदर करो जोकि यज्ञ कर्त्ता बहुतों को शरण देने वाला तथा धर्मात्माओं को सहस्रों प्रकार से धन प्रदान करता है ॥१॥

८१२—प्रस्कण्व । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२॥

पदार्थ—( शतानीका ) सेनाओं के ( इव ) जैसे ( प्रजिगाति ) वीरता से जीतता है ( धृष्णुया ) आक्रमण करनेवाला (हन्ति ) नाश करता है ( वृत्राणि ) पापरूप विघ्नों को ( दाशुषे ) यजमान के लिए ( गिरेः ) पर्वत से ( इव ) समान ( प्र ) उत्तम ( रसाः ) जल [के] ( अस्य ) इस परमेश्वर के ( पिन्विरे ) बहते हैं ( दत्राणि )दान ( पुरुभोजसः ) असंख्य धनवाले ॥२॥

भावार्थ—जैसे वीर पुरुष सैंकड़ों सेनाओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार परमेश्वर यजमान के पाप रूप विघ्नों को नष्ट करता है। असंख्य धनवाले परमात्मा के दान पर्वत से जल के स्रोत के समान बहते हैं ॥२॥

८१३—नृमेधा । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ १ २

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१॥

पदार्थ—( त्वां ) तुझे (इदा ) आज ( ह्यः ) गत दिवस ( नरः ) मनुष्य ( अपीप्यन् ) सत्कार से पुष्ट करते हैं ( वज्रिन् ) हे अविद्यानिवारक (भूर्णयः) भरण-पोषण करनेवाले [गृहस्थ] ( सः ) वह ( इन्द्र ) हे ज्ञानीपुरुष ( स्तोमवाहसः ) स्तोत्रों को जाननेवाले ( इह ) इस विषय में ( श्रुधि ) हमारी प्रार्थना सुनो ( उप ) समीप ( स्वसरं ) गृह पर ( आगहि ) आओ ॥१॥

भावार्थ—हे अविद्यानिवारक ज्ञानी पुरुष ! भरण पोषण करनेवाले सर्वदा तेरा सत्कार करते हैं। तू मुझ स्तोत्रों को जाननेवाले की प्रार्थना सुन और मेरे गृह को आगमन से पवित्र कर ॥१॥

८१४—नृमेधा । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥२॥

पदार्थ—( मत्स्वा ) प्रसन्न हो ( सुशिप्रिन् ) हे व्यापक ( हरिवः ) हे सुख और ज्ञान वाले ( तं ) उस तुझे ( ईमहे ) प्रार्थना करते हैं ( त्वया ) तुझ से ( भूषन्ति ) सुशोभित होते हैं ( वेधसः ) बुद्धिमान् लोग ( तव ) तेरे ( श्रवांसि ) यश ( उपमानि ) उपमा हैं ( उक्थ्य ) हे प्रशंसनीय ( सुतेषु ) पुत्रतुल्य जीवों पर ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( गिर्वणः ) हे वेदवाणियों से भजन करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक उपास्य भजन करने योग्य तथा सुख और वाणियों के देनेवाले परमेश्वर ! तुझ से ही विद्वान् लोग सुशोभित होते हैं। तेरी कीर्ति उपमा रूप है [न कि उपमेय]। हम तेरी प्रार्थना करते हैं। तू हम पर प्रसन्न हो ॥२॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

८१५—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१॥

पदार्थ—( यः ) जो ( ते ) तेरा ( मदः ) ज्ञान वर्धक [ज्ञान गुण] ( वरेण्यः ) श्रेष्ठ ( तेन ) उससे ( पवस्व ) पवित्र कर ( अन्धसा ) अज्ञान अन्धकार से परे ( देवावीः ) परमेश्वर को प्राप्त करानेवाला ( अघशंसहा ) पापों का निवारक ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! श्रेष्ठ परमेश्वर को प्राप्त करानेवाला पापनाशक तथा हर्षकारी जो तेरा ज्ञान गुण है, अज्ञान अन्धकार से दूर रखनेवाले उस ज्ञान के द्वारा हमें पवित्र कर ॥१॥

८१६—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषातिरश्वसा असि ॥२॥

पदार्थ—( अप्नि ) नाश करनेवाला ( वृत्रम् ) अज्ञान का ( अभिष्टिकृत् ) सुखकारी ( सस्निः ) साधक ( वाजं ) अन्न आदि का ( दिवे दिवे ) प्रति दिन ( गोषाति ) गौओं के दाता ( अश्वसा ) अश्व आदि पशुओं का देनेवाला ( असि ) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दु:खदायी अज्ञान का नाशक तथा प्रति दिन अन्नादि पदार्थों का दाता है । तू ही गाय और घोड़े आदि पशुओं का भी देने वाला है ॥२॥

८१७—असहीयु । सोम । गायत्री ।

१　२　　३ १ २　　३ २ ३ १ २ ३ १ २

सम्मिश्लो अरुषो भुव सूपस्थाभिर्न धेनुभि ।

१ २　३ २उ　　३　२

सीद च्छ्येनो न योनिमा ॥३॥

पदार्थ—( सम्मिश्ल ) मिलानेवाला ( अरुष ) कल्याणकारी ( भुवः ) हो ( सूपस्थाभिः ) सुन्दर उपासनावाली ( न ) समान ( धेनुभि ) वाणियों के ( सीदन् ) स्थित होता हुआ ( श्येन ) आत्मा की ( न ) भांति ( योनिं ) प्रकृति में ( आ ) भली प्रकार ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रकृति में आत्मा के समान स्थित होकर तथा उपासना योग्य वेदवाणियों के समान सब कुछ प्राप्त करानेवाला होता हुआ हमारा कल्याणकारी हो ॥३॥

८१८—नहुष । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ २उ　३　१　२　　३ १ २

अयं पूषा रयिर्भग सोम पुनानो अर्षति ।

२ ३ १ २　३ १ २ ३क २र ३ १ २　　३ २

पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थ—( अयं ) यह ( पूषा ) पोषक ( रयिः ) विद्या का दाता ( भग ) ऐश्वर्य वाला ( सोमः ) विद्वान् पुरुष ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( अर्षति ) विचरता है ( पतिः ) पालक ( विश्वस्य ) सारे ( भूमन ) प्राणियो का ( व्यख्यत् ) व्याख्यान करता है ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक का ( उभे ) दोनों ॥१॥

भावार्थ—सबका पोषक विद्या का दाता, तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष संसार को पवित्र करता हुआ विचरता है । प्राणिमात्र की रक्षा चाहनेवाला यह द्यु और पृथिवी लोक के सारे पदार्थों का ज्ञान कराता है ॥१॥

८१९—नहुष । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २　　३ २ ३ १ २ ३ १ २

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वय ।

१ २　　　३ १ २र　　३ १ २

सोमास कृण्वते पथ पवमानास इन्दव ॥२॥

पदार्थ—( सम् ) सम्यक प्रकार ( उ ) निश्चित ( प्रियाः ) मनोहर ( अनूषत ) वर्णन करती हैं ( गावः ) वाणियां ( मदाय ) हमारे आनन्द के लिए ( घृष्वय ) ज्ञान का प्रकाश करनेवाली ( सोमास ) विद्वान् जन ( कृण्वते ) करते हैं ( पथ ) मोक्षपथ का ( पवमानास ) पवित्रात्मा ( इन्दवः ) विद्यारूप ऐश्वर्यवाले ॥२॥

भावार्थ—मनोहर तथा ज्ञान का प्रकाश करनेवाली वेदवाणियां हमारे आनन्द के लिए परमेश्वर का वर्णन करती हैं । पवित्रात्मा, ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष मोक्ष मार्ग का प्रदर्शन करते हैं ॥२॥

८२०—नहुष । सोमः । अनुष्टुप् ।

१　२र ३ १ २र ३ १ २　　३ १ २

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम ।

१　२र　३ २ ३ २ ३ २उ ३　१ २

य पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥३॥

पदार्थ—( य ) जो वेद का प्रकाश ( ओजिष्ठ ) अत्यन्त बलवर्धक है ( त ) उसे ( आभर ) हमें पूर्ण कर ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( श्रवाय्यं ) सुनने के योग्य ( य ) जो ( पञ्चचर्षणी ) पांच प्रकार [ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र तथा पांचवां निषाद ] के मनुष्यों को ( अभि ) लक्ष्य कर वर्तमान है ( रयिं ) धन को ( येन ) जिसके द्वारा ( वनामहे ) भागी होते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! जो तेरा वेद का प्रकाश अत्यन्त बल वर्धक तथा पांच प्रकार के मनुष्यों को सदा प्राप्त होता है और जिससे हम धन के भागी होते हैं, श्रवण करने योग्य उससे हमें प्रकाशित कर ॥३॥

८२१—सिकतानिवावरीः । सोम । जगती ।

१ २　३ १ २　　३ २क　३ १ २　　३ १ २र ३ २

वृषा मतीनां पवते विचक्षण सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिव ।

३ १　२र　३ १ २　　३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषिभि ॥१॥

पदार्थ—( वृषा ) इन्द्रियों में शक्तिदेने वाला ( मतीनां ) ज्ञान आदि का ( पवते ) संसार को पवित्र करता है ( विचक्षणः ) द्रष्टा ( सोमः ) जीवात्मा ( अह्नां ) दिनों का ( प्रतरीता ) विस्तार करनेवाला ( उषसां ) उषा कालों का ( दिवः ) द्यु लोक का ( प्राणा ) जीवन देनेवाला ( सिन्धूनां ) नाड़ियों में ( कलशान् ) ६४ कलाओ का ( अचिक्रदत् ) उपदेश करता है ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर की दी हुई ( हार्दि ) हृदय मे ( आविशन् ) प्रविष्ट होता हुआ ( मनीषिभिः ) मन की सारी शक्तियों के साथ ॥१॥

भावार्थ—इन्द्रियों में शक्ति देनेवाला, ज्ञान आदि का विस्तार करनेवाला, दिन, उषाकाल तथा द्यु आदि लोक का द्रष्टा नाड़ियों में जीवन देनेवाला जीवात्मा मन की सारी शक्तियो के साथ हृदय में प्रविष्ट होता हुआ संसार को पवित्र करता है, और परमेश्वर की दी हुई ६४ कलाओं का उपदेश करता है ॥१॥

८२२—सिकतानिवावरीः । सोम । जगती ।

३　१ २　　　३ २ ३ १ २र ३ २उ ३　१ २

मनीषिभि पवते पूर्व्य कविर्नृभिर्यत परि कोशां असिष्यदत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २　३ २　३ १ २ ३ १ २

त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायु सख्याय वर्धयन् ॥२॥

पदार्थ—( मनीषिभि ) मननशील ( पवते ) पवित्र करता है ( पूर्व्यः ) सनातन ( कवि ) सर्वज्ञ ( नृभि ) मनुष्यों द्वारा ( यत ) यम आदि साधनों से प्राप्त ( परि ) सब ओर से ( कोशान् ) आनन्दमय कोश आदिकों को ( असिष्यदत् ) सिंचन करता है ( त्रितस्य ) तीन [ स्थूल, सूक्ष्म और कारण ] शरीरों में स्थित ( नाम ) प्रसिद्धि को ( जनयन् ) उत्पन्न करता हुआ ( मधु ) आनन्द की ( क्षरन् ) वर्षा करता है । ( इन्द्रस्य ) जीव के ( वायु ) प्राण शक्ति को ( सख्याय ) सब की मित्रता के लिए ( वर्धयन् ) बढ़ाता है ॥२॥

भावार्थ—मननशील मनुष्यों के द्वारा यम, नियम आदि साधनों से प्राप्त, सनातन तथा सर्वज्ञ परमेश्वर आनन्दमय आदि कोशों को सींचता है । तीनों शरीरों में निवास करनेवाले जीवात्मा की प्रसिद्धि को उत्पन्न करता, संसार से मित्रता के लिए जीवन शक्ति को बढ़ाता तथा आनन्द की वर्षा करता हुआ सबको पवित्र करता है ॥२॥

८२३—पृश्नयोऽजा । सोम । बृहती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २　　　३ १　　२र　　　　३ २

अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।

३ २उ　३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३　१ २　३ २

अयं त्रि सप्त दुदुहान आशिर सोमो हृदे पवते चारु मत्सर ॥३॥

पदार्थ—( अयं ) यह ( पुनान ) हमें पवित्र करता हुआ ( उषस ) प्रातःकालों को ( अरोचयत ) प्रकाशित करता है ( अयं ) यह ( सिन्धुभ्य ) सागरो से ( अभवत् ) होता है ( उ ) निश्चय ही ( लोककृत् ) द्वीपों का कर्त्ता ( अयं ) यह ( त्रि सप्त ) अर्थात् एक मन, दश इन्द्रियां और दश प्राण इनको ( दुदुहान ) अत्यन्त पूर्ण करता हुआ ( आशिरं ) भोग्य पदार्थो से ( सोमः ) परमेश्वर ( हृदे ) हृदय को ( पवते ) पवित्र करता है ( चारु ) अच्छी तरह से ( मत्सर ) आनन्द दाता ॥३॥

भावार्थ—हमें पवित्र करता हुआ परमेश्वर निरन्तर प्रातः कालों को प्रकाशित करता है । वह सागरो के द्वारा द्वीपों का निर्माण करता है । वह भोग्य पदार्थों से हमारे एक मन दश इन्द्रियां तथा दश प्राणों को तृप्त करता तथा हृदय को पवित्र करता है ॥३॥

卐 पञ्चम खण्ड समाप्त 卐

८२४—श्रुतकक्ष, सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

३ १　२र　　३ २ ३ १ २र ३ २ ३　२　३ २ ३ २ ३ १ २

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिर । एवा ते राध्य मन ॥१॥

पदार्थ—( एवा ) निश्चय ही ( हि ) क्योंकि ( असि ) है ( वीरयु ) वीर पुत्रो की कामना करनेवाला ( एवा ) निश्चय ही ( शूरः ) बलवान् ( उत ) और ( स्थिर ) नित्य ( एवा ) निश्चय ही ( ते ) तेरा ( राध्यं ) प्रशंसनीय ( मन ) मन शक्ति ॥१॥

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! तू वीरपुत्रों की कामना करनेवाला, बलवान् और नित्य है । तेरा मन भी प्रशंसनीय ही है ॥१॥

८२५—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २　　३ १ २　　　३ १ २　　१ २　　　३ १ २

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभि. । अधा चिदिन्द्र न. सचा ॥२॥

पदार्थ—( एवा ) निश्चय ही ( राति ) दान ( तुवीमघ ) हे सम्पूर्ण सम्पदाओं के स्वामी ( विश्वेभि ) समस्त ( धायि ) ग्रहण किया जाता है । ( धातृभि ) प्राणिमात्र के द्वारा ( अध ) और ( चित् ) निश्चय ही ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( नः ) हमारा ( सचा ) सहायक हो ॥२॥

भावार्थ—हे सारी सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तेरा दान प्राणिमात्र के ग्रहण करने योग्य है । तू हमारा सहायक हो ॥२॥

८२६—श्रुतकक्ष, सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ १ २
**मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥**

पदार्थ—( मा ) नही ( उ ) निश्चय ही ( सु ) अच्छी तरह से ( ब्रह्मा ) चतुर्वेदज्ञाता विद्वान् ( इव ) समान ( तन्द्रयुः ) कुटुम्ब का धारण करनेवाला ( भुवः ) होता है ( वाजानां पते ) हे धनों के स्वामी ( मत्स्व ) सुखी करता है ( सुतस्य ) उत्पन्न ससार को ( गोमतः ) गाय आदि पशुओं से युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे समस्त संपदाओ के स्वामी परमेश्वर ! तू कुटुम्बधारी नही है। तू चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान् की भांति गाय आदि पशुओ से युक्त संसार को सुखी करता है ॥३॥

८२७—जेता । इन्द्र अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।**

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्रं ) ज्ञानी पुरुष को ( विश्वा ) सकल ( अवीवृधन् ) बढ़ाती हैं ( समुद्रव्यचस ) ब्रह्मवित् भक्त ( गिरः ) वेदवाणियां ( रथीतमम् ) महारथी ( रथीनां ) रथी लोगों में ( वाजानां ) ज्ञानरूप धनों के ( सत्पति ) सज्जनों का रक्षक ( पतिम् ) स्वामी ॥१॥

भावार्थ—समस्त वेदवाणियां ब्रह्मवित्, रथियो मे महारथी, ज्ञानधनों के स्वामी तथा सज्जनों के पालक ज्ञानी पुरुष को बढ़ाती हैं ॥१॥

८२८—जेता । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २
**सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।**

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२॥**

पदार्थ—( सख्ये ) मित्रता मे ( ते ) तेरी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( वाजिनः ) धन धान्य से युक्त ( मा ) नही ( भेम ) भय करते हैं ( शवसस्पते ) हे सब बलों के स्वामी ( त्वां ) तुझ ( अभि ) लक्ष्य मे रखकर ( प्र ) उत्तम रूप से ( नोनुम ) बार बार नमस्कार करते हैं । ( जेतारम् ) विश्वविजयी ( अपराजित ) कभी पराजय को नहीं प्राप्त होनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे समस्त बलो के स्वामी परमेश्वर ! तेरी मित्रता में विचरते हुए तथा धन धान्य से पूर्ण हम लोग किसी से भी भयभीत नहीं होते । कभी न हारनेवाले तुझ विजयी को हम बार बार नमस्कार करते हैं ॥२॥

८२९—जेता । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
**पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।**

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३॥**

पदार्थ—( पूर्वी ) सनातन ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर के ( रातय ) दान ( न ) नहीं ( विदस्यन्ति ) कम होते हैं ( ऊतय ) रक्षायें ( यदा ) जब ( वाजस्य ) अन्न आदि के ( गोमत ) गाय आदि पशुओं के देनेवाले ( स्तोतृभ्य ) उपासकों के लिए ( मंहते ) देता है ( मघम् ) धन को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर जब उपासको को गाय आदि पशुओं से युक्त अन्न आदि धनों को प्रदान करता है तो उसके सनातन दान और रक्षाओं मे किसी प्रकार की कमी नहीं आती ॥३॥

卐 तृतीयोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# चतुर्थोऽध्याय

८३०—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
**एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥**

पदार्थ—( एते ) ये ( असृग्रम् ) विहित हैं ( इन्दवः ) यज्ञ ( तिरः ) दुःख से पार लगानेवाले ( पवित्र ) पवित्र कर्म को ( आशव ) शुभ गुणो से युक्त ( विश्वानि ) सपूर्ण ( अभि ) लक्ष्य में रखकर ( सौभगा ) सुवर्ण आदि सपदाओं को ।१।

भावार्थ—सब शुभ गुणो से युक्त यज्ञ दुःखो से पार लगानेवाले पवित्र निष्काम कर्म और समस्त सपदाओ की प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं ॥१॥

८३१—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
**विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥२॥**

पदार्थ—( विघ्नन्त ) नाश करते हुए ( दुरिता ) बुराइयो को ( पुरु ) बहुत ( सुगा ) सुगम ( तोकाय ) पुत्र पौत्रादि के लिए ( वाजिन ) अन्न और बल से युक्त ( त्मना ) स्वय ( कृण्वन्त ) प्रदान करते हुए ( अर्वत ) अश्व आदि पशुओ को ।२।

भावार्थ—अन्न और बल के देनेवाले यज्ञ सुगम होते हैं। ये पुत्र पौत्र आदिकों के विघ्न को दूर करते हैं तथा घोडे आदि पशुओ को प्रदान करते हैं ॥२॥

८३२—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इडामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥**

पदार्थ—( कृण्वन्तः ) करते हुए ( वरिवः ) अत्यन्त रक्षा ( गवे ) वेदवाणी की ( अभ्यर्षन्ति ) प्राप्त होते हैं ( सुष्टुतिम् ) प्रशसा को ( इडाम् ) भाषा ज्ञान ( अस्मभ्यं ) हमे ( संयतम् ) दृढ़ ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग वेदवाणी की दृढ़ रक्षा करते हुए तथा हम लोगों को भाषा का ज्ञान कराते हुए प्रशसा के पात्र होते हैं ॥३॥

८३३—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥१॥**

पदार्थ—( राजा ) तेजस्वरूप ( मेधाभिः ) धारणावाली बुद्धियों द्वारा ( ईयते ) आगे बढ़ता है ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( मनौ अधि ) परमेश्वर की शरण में ( अन्तरिक्षेण ) अक्षय ब्रह्म ज्ञान के द्वारा ( यातवे ) जाने के लिए ॥१॥

भावार्थ—शुद्ध तेजस्वी जीवात्मा अक्षय ब्रह्म ज्ञान के द्वारा परमात्मा की शरण मे जाने के लिए स्थिर बुद्धि के सहारे आगे बढ़ता है ॥१॥

८३४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
**आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥२॥**

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( न ) हमे ( सोम ) हे परमेश्वर ( सहः ) सहनशक्ति ( जुव ) कर्मण्यता [क्रियाशीलता] ( रूपं ) रूप ( न ) और ( वर्चसे ) तेज के लिए ( भर ) दे ( सुष्वाण ) सृष्टिकर्त्ता ( देववीतये ) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टिकर्ता है । हमे दिव्य गुणो की प्राप्ति और तेज के लिए सहनशक्ति, कर्मण्यता और रूप प्रदान कर ॥२॥

८३५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
**आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥३॥**

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( न ) हमे ( इन्दो ) हे परमेश्वर ( शतग्विन ) सैकडो शक्तियोंवाली ( गवां ) इन्द्रियों की ( पोष ) पुष्टि को ( स्वश्व्य ) राष्ट्र का सुन्दर सघटन ( वहा ) प्राप्त करा ( भगत्ति ) मान प्रतिष्ठा को ( ऊतये ) रक्षा के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमे रक्षा के लिए इन्द्रियो में सकडो प्रकार के बल से युक्त पुष्टि, राष्ट्र का सघटन तथा मान प्रतिष्ठा प्रदान कर ॥३॥

८३६—कवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
**तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥**

पदार्थ—( त ) उस ( त्वा ) तुझे ( नृम्णानि ) धनो और बलो को

( बिभ्रत ) धारण करनेवाले ( सधस्थेषु ) सब जगह [व्यापक] ( महो दिव ) महान् आकाश के ( चाद ) आनन्दस्वरूप ( सुहत्यया ) सुकर्म से ( ईमहे ) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त धन और बल के धारण करनेवाले अनन्त आकाश मे स्थित सारे लोक लोकान्तरों मे व्यापक तथा आनन्दस्वरूप तुझे सुकम के द्वारा हम प्राप्त करते हैं ॥१॥

८३७—कवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

**सवृक्तधृष्णुमुक्थ्य महामहिव्रत मदम् । शत पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥**

पदार्थ—( सवृक्तधृष्णु ) बुराइयों का दूर करनेवाला दुष्टो का दलन करने वाला ( उक्थ्य ) स्तुति के योग्य ( महामहिव्रत ) महान् नियमो का नियन्ता ( मद ) आनन्ददाता ( शत पुरः ) सैंकडों लोक-लोकान्तरो का ( रुरुक्षणिम् ) नाश [प्रलय] करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दुष्टो का दलन करनेवाले, स्तुति के योग्य महान् नियमो के सचालक आनन्ददाता तथा सकडो लोक लोकान्तरों का प्रलय करनेवाले तुझे हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

८३८—कवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३क २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजान सुक्रतो दिव । सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥३॥**

पदार्थ—( अत ) इस कारण से ( त्वा ) तुझे ( रयि ) धन और धन के चाहने वाले ( अभि ) सब ओर से ( अयत् ) प्राप्त करता है ( राजान ) प्रकाशस्वरूप ( सुक्रतो ) हे उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता ( दिव ) आकाश मे स्थित सब लोक-लोकान्तरों का ( सुपर्ण ) भली भाति रक्षा करनेवाला ( अव्यथी ) त्रिविध ताप [अध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक ] से रहित ( भरत ) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तमकर्मों के अधिष्ठाता परमेश्वर ! तू तीन तापो से रहित सबका भली प्रका से रक्षक तथा आकाश मे स्थित सब लोक लोकान्तरो को धारण करता है, अत धन तथा धन की कामना करनेवाला पुरुष तुझ प्रकाशस्वरूप को प्राप्त करता है ॥३॥

८३९—कवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

**अधा हिन्वान इन्द्रिय ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणि ।४।**

पदार्थ—( अधा ) अनन्तर ( हिन्वान ) इन्द्रियो की शक्ति से बढाता हुआ ( इन्द्रियं ) इन्द्रियो को ( ज्याय ) सब से श्रेष्ठ ( महित्व ) महिमा को ( आनशे ) प्राप्त होता है (अभिष्टिकृत) अभीष्ट फल का दाता (विचर्षणि ) विश्व का साक्षी ।४।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अभीष्ट फल का दाता और विश्व का साक्षी है । तू हमारी इन्द्रियो मे शक्ति का सचार करता हुआ महान् महिमा से युक्त है ॥४॥

८४०—कवि । सोम । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

**विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारण रजस्तुरम । गोपामृतस्य विभरत् ॥५॥**

पदार्थ—( विश्वस्मा ) सारे ( इत् ) ही ( स्वर्दृश ) आनन्द प्राप्त करने के लिए ( साधारण ) एकसमान ( रजस्तुर ) लोक लोकान्तरो की प्ररणा करने वाले ( गोपाम् ) रक्षक ( ऋतस्य ) सत्य नियम के ( वि ) एक देह से दूसरे मे जानेवाला जीव ( भरत ) धारण करता है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जीव सारे सुखो की प्राप्ति मे एक मात्र कारण लोक लोकान्तरो की प्ररणा करनेवाले तथा सत्य नियम के रक्षक तुझे ही धारण करता है ॥५॥

८४१—कश्यप । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

**इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभि । इन्दो रुचाभि गा इहि ।१।**

पदार्थ—( इषे ) विज्ञान के लिए ( पवस्व ) अपने को पवित्र कर ( धारया ) वेदवाणी से ( मृज्यमान ) शुद्ध किया हुआ ( मनीषिभि ) मेधावी पुरुषो के द्वारा ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( रुचा ) प्रकाश के साथ ( अभि ) सब ओर से ( गा ) इन्द्रियों को ( इहि ) व्याप्त कर ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली पुरुष ! तू विज्ञान की प्राप्ति के लिए मेधावी पुरुषों के द्वारा शुद्ध किया जाता हुआ वेदवाणी से अपने को पवित्र कर तथा अपने प्रकाश से इन्द्रियो को व्याप्त कर ॥१॥

८४२—कश्यप । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

**पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वण । हरे सृजान आशिरम् ॥२॥**

पदार्थ—( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( वरिव ) सम्पदाए ( कृधि ) कर ( ऊर्ज ) बल ( जनाय ) सब के लिए ( गिर्वण ) हे स्तुति के योग्य ( हरे ) हे अज्ञाननाशक ( सृजान ) उत्पन्न करता हुआ (आशिर) भोग्य पदार्थों को ॥२॥

भावार्थ—हे स्तुति के योग्य, तथा अज्ञाननाशक परमेश्वर ! तू भोग्य पदार्थों को उत्पन्न तथा हमें पवित्र करता हुआ सब के लिए धन और बल दे ॥२॥

८४३—कश्यप । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

**पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हित ।३।**

पदार्थ—( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( देववीतये ) विद्वानो के ज्ञान के लिए ( इन्द्रस्य ) जीव के ( याहि ) प्राप्त हो ( निष्कृतम् ) निस्तार ( द्युतानः ) प्रकाशित करता हुआ (वाजिभि ) अग्नि, वायु और सूर्य के द्वारा (हित ) हितकारी ।३।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वानों के ज्ञान के लिए पवित्र करता हुआ, अग्नि वायु और सूर्य के द्वारा प्रकाश का करनेवाला तथा सबका हितकारी तू जीव का निस्तार कर ॥३॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

८४४—मेधातिथि । अग्नि । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

**अग्निनाग्नि समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्य ॥१॥**

पदार्थ—( अग्निना ) परमेश्वर के द्वारा ( अग्नि ) भौतिक अग्नि [आग] ( समिध्यते ) सम्यक प्रकार से प्रकाशित होती है ( कविः ) तीक्ष्ण तेजवाला ( गृहपति ) घर का अधिष्ठाता ( युवा ) सब पदार्थों का सयोग और विभाग करनेवाला ( हव्यवाड ) होम की हवि का सब जगह विस्तार करनेवाला ( जुह्वास्य ) ज्वालारूप मुखवाला ॥१॥

भावार्थ—तीक्ष्ण तेजवाला, घर का अधिष्ठाता, सब पदार्थों का सयोग तथा विभाग करनेवाला, होम का सब जगह विस्तार करनेवाला तथा ज्वालारूप मुखवाला अग्नि (आग) परमेश्वर के द्वारा प्रकाशित होता है ॥१॥

८४५—मेधातिथि । अग्नि । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूत देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥२॥**

पदार्थ—( य ) जो ( त्वां ) तुझे ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( हविष्पति ) यजमान ( दूत ) ज्ञान के दाता ( देव ) हे देव ( सपर्यति ) उपासना करता है ( तस्य स्म ) उसका ( प्र ) उत्तम ( अविता) रक्षक ( भव ) हो ॥२॥

भावार्थ—हे सब के प्रकाशक परमेश्वर ! जो उपासक ज्ञानदाता तेरी उपासना करता है तू उसका रक्षक हो ॥२॥

८४६—मेधातिथि । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

**यो अग्नि देववीतये हविष्मां आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥३॥**

पदार्थ—( य ) जो ( अग्नि ) यज्ञ की अग्नि को ( देववीतये ) दिव्य सुख की प्राप्ति के लिए ( हविष्मान् ) यजमान ( आविवासति ) प्रज्वलित करता है ( तस्मै ) उसको ( पावक ) हे पवित्रकारक परमेश्वर ( मृडय ) सुखी कर ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक परमेश्वर ! जो यजमान दिव्य सुखो की प्राप्ति के लिए यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित कर यज्ञ करता है तू उसे सुखी कर ॥३॥

८४७—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

**मित्र हुवे पूतदक्ष वरुण च रिशादसम् । धिय घृताचीं साधन्ता ॥१॥**

पदार्थ—( मित्र ) प्राण को ( हुवे ) व्यवहार मे लाता हूँ ( पूतदक्ष ) पवित्र करने मे समर्थ ( वरुण ) उदान वायु को ( च ) और ( रिशादस ) जग लगाने वाले [ धातुओ में ] ( धिय ) कर्म ( घृताचीं ) जल के निर्माण करनेवाले ( साधन्ता ) सिद्ध करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—मैं जल के उत्पन्न करने वाले कम के साधक तथा पवित्र करने वाले प्राण वायु और धातुओं मे जग लगाने वाले उदान वायु को व्यवहार में लाता हूँ ॥१॥

८४८—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ १ २ ३ १ २

**ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतु बृहन्तमाशाथे ॥२॥**

पदार्थ—( ऋतेन ) परमेश्वर के द्वारा ( मित्रावरुणौ ) प्राण और उदान वायु ( ऋतावृधौ ) जल को बढानेवाले (ऋतस्पृशा) सत्य नियम मे बधे हुए ( क्रतु ) ससार में ( बृहन्त ) विशाल ( आशाथे ) व्यापक हो रहे हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर की शक्ति द्वारा, जल के बढानेवाले, तथा सत्यनियम में बधे हुए प्राण और उदान वायुएं विशाल संसार में व्यापक हो रही हैं ॥२॥

८४९—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३१ २ ३१२र ३१२३१२ १२ ३१२

**कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥३॥**

पदार्थ—( कवी ) सारे व्यवहारों के साधक ( नः ) हमारे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु ( तुविजाता ) अनेक कारणों से उत्पन्न होनेवाले ( उरुक्षया ) बहुतों में निवास करनेवाले ( दक्षं ) बल ( दधाते ) धारण करते हैं ( अपसं ) कर्म को ॥३॥

भावार्थ—सारे व्यवहारों के साधक, अनेक कारणों से उत्पन्न, तथा बहुतों में निवास करने वाले प्राण और उदान वायु हमारे बल और कर्म को धारण करते हैं ॥३॥

८५०—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

१२३१ २र ३१ २र ३१२३१२

**इन्द्रेण स हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्रेण ) परमेश्वर के साथ ( सं ) सम्यक् प्रकार से ( हि ) क्योंकि ( दृक्षसे ) देखाजाता है ( संजग्मान ) संयुक्त [ मोक्षावस्था में ] ( अबिभ्युषा ) नित्यनिर्भय ( मन्दू ) आनन्दित ( समानवर्चसा ) समान तेजवाले [ मुक्ति अवस्था में जीव का परमात्मा से सादृश्य होता है ] ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! तू मोक्षावस्था में नित्य निर्भय परमेश्वर के साथ मेल करने से आनन्दित और उसके समान तेजवाला बन जाता है ॥१॥

८५१—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

३ २र ३२उ ३१२ ३१२३१२ १२३१ २३१२

**आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥२॥**

पदार्थ—( आत अह ) अनन्तर ( स्वधां अनु ) प्रकृति के अनुसरण करनेवाले ( पुन ) फिर ( गर्भत्व ) जन्म ( एरिरे ) प्राप्त करते हैं ( दधाना ) धारण करते हुए ( नाम ) को ( यज्ञियम् ) यज्ञ करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! यज्ञ करने के योग्य नाम को धारण करते हुए मनुष्य मोक्ष के बाद प्रकृति का अनुसरण करते हुए बार बार फिर जन्म ग्रहण करते हैं ॥२॥

८५२—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

३१२ ३२३१२ ३१२ १२ ३२३१२

**वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥३॥**

पदार्थ—( वीळुचिद् ) दृढ़ भी ( आरुजत्नुभि ) शरीर के मलों को छिन्न-भिन्न करनेवाले ( गुहाचिद् ) हृदय देश में स्थित ( इन्द्र ) हे जीवात्मन् ( वह्निभि ) वहन करनेवाले प्राण वायुओं के द्वारा ( अविन्द ) प्राप्त करता है ( उस्रिया ) प्रकाश की रेखाओं को ( अनु ) अनुसरण करना ॥३॥

भावार्थ—हे जीव! दृढ़ अन्त करण में विराजमान रहकर तू मलों को छिन्न भिन्न करनेवाले वायुओं के द्वारा [ प्राणायाम की साधना कर ] प्रकाश की रेखाओं को प्राप्त करता है ॥३॥

८५३—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१२३ १२३२३१ २र ३१२३२ ३ १२२र

**ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धत ॥१॥**

पदार्थ—( ता ) उन दोनों को ( हुवे ) स्तुति करता हूँ ( ययोः ) जिनके अधिष्ठातृत्व में ( इद ) [ प्रत्यक्ष ] ( पप्ने ) हरा-भरा होता है ( विश्व ) सारा संसार ( पुराकृत ) सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया हुआ ( इन्द्राग्नी ) जीव और परमेश्वर ( न ) नहीं ( मर्धतः ) विनष्ट होने देते ॥१॥

भावार्थ—जिनके अधिष्ठातृत्व में सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न किया हुआ यह संसार हरा भरा हो रहा है और जो इसको विनष्ट नहीं होने देते (अर्थात् प्रवाह रूप से स्थित रखते हैं) उन जीव और ईश्वर की मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

८५४—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३१ २३२३ १२ ३१२ १२ ३१२

**उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥२॥**

पदार्थ—( उग्रा ) अत्यन्त बलवान् ( विघनिना ) विनाश करने वाले ( मृधः ) सारे दुर्गुणों का ( इन्द्राग्नी ) जीव तथा ईश्वर को ( हवामहे ) प्राप्त करना चाहते हैं ( ता ) वे दोनों ( नः ) हमें ( मृळात ) सुखी करते हैं ( ईदृशे ) ऐसे संसार में ॥२॥

भावार्थ—अत्यन्त बलवान् सारे दुर्गुणों को दूर करनेवाले जीव और ईश्वर को हम प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे वे दोनों हमें सुखी करते हैं ॥२॥

८५५—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३२३१ २र३१ २र ३२उ ३२३१२

**हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ॥३॥**

पदार्थ—( हथः ) नाश करते हैं ( वृत्राणि ) सारे उपद्रवों को ( आर्या ) उत्तम गुण कर्म-स्वभाव वाले ( हथः ) नाश करते हैं ( दासानि ) पराधीनता को ( सत्पती ) पदार्थ मात्र के स्वामी ( हथ ) नाश करते हैं ( विश्वा ) सब ( अप ) दूर करना ( द्विष ) काम-क्रोधादि शत्रुओं को ॥३॥

भावार्थ—पदार्थ मात्र के स्वामी, उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाले जीव और परमेश्वर सारे उपद्रवों पराधीनताओं तथा काम क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

८५६—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

३१ २र ३२३ १२३२३१२

**अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।**

३१ २र३१२३१२ ३१२ ३१२

**समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१॥**

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( सोमास ) शान्त स्वभाव वाले योगी जन ( आयव ) ज्ञानवान् ( पवन्ते ) प्राप्त करते हैं ( मद्यं ) तृप्त करनेवाले ( मदं ) आनन्द को ( समुद्रस्य ) परमेश्वर के ( अधि विष्टपे ) मोक्षधाम रूप परम पद में ( मनीषिण ) मननशील ( मत्सरासः ) प्रसन्नतायुक्त ( मदच्युतः ) आनन्द की वर्षा करनवाले ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवान् प्रसन्न स्वभाव, आनन्द की वर्षा करनेवाले तथा मननशील योगीजन परमेश्वर के मोक्षधाम रूप परम पद में तृप्त करने वाले आनन्द को प्राप्त करते हैं ॥१॥

८५७—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

१२३१ २र ३२ ३१२३२ ३२३२

**तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।**

१२ ३२३१२ ३१२३१ २३२ ३२३२

**अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२॥**

पदार्थ—( तरत् ) पार करता है ( समुद्र ) संसार सागर को ( पवमान ) पवित्रात्मा ( ऊर्मिणा ) तत्त्व ज्ञान से ( राजा ) तेजस्वी ( देव ) दिव्य शक्तिवाला ( ऋत ) गतिमान् ( बृहत् ) विशाल ( अर्षा ) प्राप्त करता है ( मित्रस्य ) प्राण के ( वरुणस्य ) अपान के ( धर्मणा ) धर्म [ प्राणायाम ] से ( प्र ) उत्तम ( हिन्वानः ) प्रेरित हुआ ( ऋत ) परमेश्वर को ( बृहत ) सब से महान् ॥२॥

भावार्थ—पवित्रात्मा तेजस्वी, दिव्य शक्तियों से युक्त ज्ञानी पुरुष तत्त्व ज्ञान के द्वारा विशाल संसार सागर को तर जाता है। वही प्राण और अपान की गति ( प्राणायाम के ) द्वारा प्रेरित होकर सब से महान् परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥२॥

८५८—सप्तर्षय । सोम । विराट् ।

१२ ३१२३१२ ३१ २र ३१२३क २र

**नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो । राजा देवः समुद्र्यः ॥३॥**

पदार्थ—( नृभि ) नेता योगियों के द्वारा ( येमाण ) नियम में स्थित ( हर्यत ) प्रेम का पात्र ( विचक्षण ) बुद्धिमान् ( राजा ) तेजस्वी ( देव ) देवस्वरूप ( समुद्र्य ) परमेश्वर को प्राप्त करने का अधिकारी ॥३॥

भावार्थ—योगियों के बतलाये हुए यमनियम आदि का पालन करने वाला प्रेम का पात्र, बुद्धिमान्, तेजस्वी तथा देवस्वरूप भक्त पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करने का अधिकारी होता है ॥३॥

८५९—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

३१ २र ३१ २र ३१२३१ २र ३२

**तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर् ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।**

१२ ३१२ ३१२३१२ ३१२ ३२

**गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥१॥**

पदार्थ—( तिस्र ) तीन ( वाच ) ऋग्यजु, सामरूप वाणियों की ( ईरयति ) प्रेरणा करता है ( प्र ) उत्तम ( वह्नि ) परमेश्वर ( ऋतस्य ) सत्य नियम का ( धीतिं ) धारण करनेवाली को ( ब्रह्मणा ) ब्रह्माण्ड के ( मनीषां ) ज्ञान को ( गावः ) वेदवाणियां ( यन्ति ) प्राप्त होती हैं ( गोपतिं ) वेद के रक्षक ( पृच्छमानाः ) पूछती हुई सी ( सोम ) विद्वान् को ( यन्ति ) प्राप्त होती हैं ( मतय ) अनेक प्रकार के ज्ञान ( वावशाना ) कामना करते हुए से ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर ऋग्, यजु तथा साम रूप तीन प्रकार की वाणियों की प्रेरणा करता है। वे वाणियां सत्य नियम को धारण करनेवाली तथा ब्रह्माण्ड का ज्ञान करानेवाली होती हैं। ये पूछती हुई सी तथा इनमें रहने वाला अनेक प्रकार का ज्ञान कामना करता हुआ सा वेद-रक्षक विद्वान् को प्राप्त होता है ॥१॥

८६०—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

२३ १२ ३१२ ३२उ ३१२ ३१२ ३ १२

**सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।**

१२३१२ ३१२३१ २३२ ३२३ १२

**सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥२॥**

**पदार्थ**—( **सोमं** ) परमेश्वर को ( **गाव** ) वेदवाणियां ( **धेनव** ) प्रसन्न करनेवाली ( **वावशाना** ) कामना करती हुई सी ( **सोम** ) परमेश्वर को ( **विप्रा** ) ज्ञानीजन ( **मतिभि** ) बुद्धियो द्वारा ( **पृच्छमाना** ) प्रश्न तथा उत्तर रूप से पूछते हुए [ या विचार विनिमय करते हुए ] ( **सोम** ) परमेश्वर ( **सुत** ) सम्यक ध्यान किया गया ( **ऋच्यते** ) प्रा त किया जाता है ( **पूयमान** ) पवित्र करता हुआ ( **सोमे** ) परमेश्वर के विषय मे ( **अर्का** ) मत्र ( **त्रिष्टुभ** ) त्रिष्टुप आदि छ दोवाने ( **संनवन्ते** ) सम्यक प्रकार से वर्णन करने मे असमथ हो जाते है ॥२॥

**भावार्थ**—कामना करती हुई-सी प्रश्न करने वाली वेदवाणियां परमेश्वर का वर्णन करती हैं। बुद्धियो द्वारा विचार विनिमय करते हुए ज्ञानी जन परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं। पवित्रकारक तथा ध्यान किया हुआ परमेश्वर योगीजनो द्वारा प्राप्त किया जाता है। केवल वाणीमय मंत्र उसका पूरा वर्णन नही कर सकते हैं ।२।

८६१—*पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २    ३ १ २ ३ १ २    ३ १ २   ३   २

**एवा न सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमान स्वस्ति ।**

२ ३ १ २   ३ १   २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**इन्द्रमा विश बृहता मदेन वधया वाच जनया पुरधिम् ॥३॥**

**पदार्थ**—( **एवा** ) निश्चय ही ( **न** ) हम ( **सोम** ) हे परमेश्वर ( **परिषिच्यमान** ) सब प्रकार से आनन्द का सेचन करता हुआ ( **आपवस्व** ) प्रदान कर ( **पूयमान** ) पवित्र करता हुआ ( **स्वस्ति** ) कल्याण ( **इन्द्र** ) जीवात्मा मे ( **आविश** ) प्रविष्ट हो ( **बृहता** ) महान् ( **मदेन** ) आनन्द के साथ ( **वधय** ) बढ़ा ( **वाचम्** ) वाक शक्ति को ( **जनया** ) उत्पन्न कर ( **पुरन्धिम्** ) शारीरिक बल को ॥३॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! सब प्रकार से सुख की वर्षा तथा पवित्र करता हुआ तू हमे कल्याण प्रदान कर। महान् आनन्द के साथ आत्मा मे प्रविष्ट हो तू वाक शक्ति को बढा और शरीर मे बल दे ॥३॥

卐 **तृतीय खण्ड समाप्त** 卐

८६२—*पुरुहन्मा । इन्द्र । प्रगाथ ।*

१ २र   ३ २ ३ १   २र ३ २

**यद्द्याव इन्द्र ते शत शत भूमीरुत स्यु ।**

१ २   ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**न त्वा वज्रिन्त्सहस्र सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१॥**

**पदार्थ**—( **यत** ) जो ( **द्याव** ) द्यु लोक ( **इन्द्र** ) हे जीवात्मन् ( **ते** ) तेरे उपयोग के लिए ( **शत** ) सैकडो ( **शत** ) सकडो ( **भूमी** ) भूमिया ( **उत** ) और ( **स्यु** ) हैं ( **न** ) नहीं ( **त्वा** ) तेरे लिए ( **वज्रिन्** ) हे अज्ञान के निवारण करनेवाले ( **सहस्र** ) सहस्रो ( **सूर्या** ) सूर्य लोक ( **अनु** ) अनुसरण ( **न** ) नही ( **जात** ) ससार के उत्पादक का ( **अष्ट** ) लीन हो ( **रोदसी** ) रुलाने वाले [ छोड़ते समय दु ख देते हैं और रुलाते हैं ] ॥१॥

**भावार्थ**—हे अज्ञान निवारक जीवात्मन् ! जिस कारण कि रुलानेवाले सैकड़ों द्यु लोक भूमियां तथा सहस्रो सूर्य भी ( उनमे ज म धारण कर ) तेरे उपयोग के लिए नही है इस कारण तू सृष्टिकर्ता परमेश्वर का अनुसरण कर ॥१॥

८६३—*पुरुहन्मा । इन्द्र । प्रगाथ ।*

१ २   ३ १   २र ३ १   २   ३ १ २

**आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।**

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २र   ३ १ २ ३ १ २

**अस्मॉ अव मघवन गोमति व्रजे वज्रि चित्राभिरूतिभि ॥२॥**

**पदार्थ**—( **आपप्राथ** ) व्यापक हो रहा है ( **महिना** ) महत्त्व से ( **वृष्ण्या** ) पुरुषार्थयुक्त कर्मों मे ( **वृषन** ) हे अभिमत फलो की वर्षा करनेवाले ( **विश्वा** ) सारे ( **शविष्ठ** ) हे सर्वशक्तिमान् ( **शवसा** ) बल मे ( **अस्मान** ) हम लोगो की ( **अव** ) रक्षा कर ( **मघवन** ) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी ( **गोमति** ) गर्जन और विद्युत्-पात से युक्त ( **व्रजे** ) मेघ के उपस्थित होने पर ( **वज्रिन** ) हे दुष्टों का दण्ड देनेवाले ( **चित्राभि** ) आश्चर्यमयी ( **ऊतिभि** ) रक्षाओ से ॥२॥

**भावार्थ**—हे दुष्टो को दण्ड देनेवाले सकल कामनाओ को सफल करने वाले सर्वशक्तिमान् तथा समस्त सपदाओ के स्वामी परमेश्वर ! तू अपनी महान् शक्ति से सारे पुरुषार्थ युक्त कर्मों मे व्यापक हो रहा है। तू विद्युत्-पतन आदि दैवी आपत्तियों से हमे बचा ॥२॥

८६४—*मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।*

३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

**वय घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिष ।**

३ १ २   ३ १ २   ३   १ २   ३ १ २

**पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन परि स्तोतार आसते ॥१॥**

**पदार्थ**—( **वय** ) हम ( **घ** ) प्रसिद्ध ( **त्वा** ) तुझे ( **सुतावन्त** ) पुत्र आदि कुटुम्बो वाले ( **आपो न** ) जल की भांति ( **वृक्तबर्हिष** ) यज्ञ करने वाले ( **पवित्रस्य** ) यज्ञ आदि पवित्र कर्म के ( **प्रस्रवणेषु** ) जलवाले प्रदेशो मे ( **वृत्रहन्** ) हे बुराइयों को दूर करनेवाले ( **परि** ) सर्व प्रकार ( **स्तोतार** ) स्तुति करने वाले ( **आसते** ) शरण मे उपस्थित होते हैं ॥१॥

**भावार्थ**—हे बुराइयों को दूर करनेवाले विद्वान् ! पुत्रादि कुटुम्बो से युक्त स्तुति तथा यज्ञ करनेवाले हमलोग यज्ञ आदि पवित्र कर्मों की सिद्धि के लिए तेरी शरण में उपस्थित होते हैं जैसे पानी जलवाले प्रदेशो मे पहुँच जाते हैं ॥१॥

८६५—*मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।*

१ २   ३ २उ ३ १ २   ३ २ ३   १ २

**स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिन ।**

३ २ ३ १ २ ३ २उ   ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २

**कदा सुत तृषाण ओक आगम इन्द्र स्वब्दीव वसगः ॥२॥**

**पदार्थ**—( **स्वरन्ति** ) स्तुति करते हैं ( **त्वा** ) तेरी ( **सुते** ) उत्पन्न संसार मे ( **नर** ) मनुष्य ( **वसो** ) हे सबको बसानेवाले ( **निरेके** ) शकारहित व्यवहार से युक्त ( **उक्थिन** ) स्तुति करनेवाले ( **कदा** ) कब ( **सुत** ) पुत्र स्वरूप को ( **तृषाणः** ) प्यासा ( **ओक** ) घर को ( **आगम** ) प्राप्त होवे ( **इन्द्र** ) हे परमेश्वर ( **स्वब्दी** ) अच्छे कर्मों के देनेवाले ( **इव** ) समान ( **वसग** ) धर्मात्मा को प्राप्त होनेवाले ।२।

**भावार्थ**—हे सब को शरण देनेवाले परमेश्वर, निर्भय व्यवहार वाले इस ससार में स्तोत्रो के द्वारा स्तुति करनेवाले तेरी स्तुति करते हैं कि हे नाथ ! प्यासा मनुष्य घर के समान उत्तम कर्म का ज्ञान कराने वाला तथा धर्मात्माओ को प्राप्त होने वाला तू पुत्ररूप हमे कब दर्शन देगा ॥२॥

८६६—*मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।*

१ २   ३ २ ३ १ २र   ३ १ २

**कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाज दर्षि सहस्रिणम ।**

३ १ २   ३ १ २र

**पिशङ्गरूप मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥**

**पदार्थ**—( **कण्वेभि** ) मेधावियो के लिए ( **धृष्णो** ) सबसे महान् ( **आधृषत** ) अभय ( **वाज** ) सम्पत्ति ( **दर्षि** ) देता है ( **सहस्रिण** ) पुष्कल ( **पिशङ्गरूप** ) सुवर्णरूप ( **मघवन्** ) सकल सपदाओं के स्वामी ( **विचर्षणे** ) सबके साक्षी ( **मक्षू** ) शीघ्र ( **गोमन्त** ) गाय आदि पशुओंवाले ( **ईमहे** ) प्राप्त करना चाहते हैं ॥३॥

**भावार्थ**—हे सबसे महान्, सबके साक्षी तथा सकल संपदाओ के स्वामी परमेश्वर ! तू अभय है। मेधावी पुरुषो के लिए पुष्कल सुवर्णरूप तथा गाय आदि पशुओं को देनेवाली सपदाएँ दे ॥३॥

८६७—*वसिष्ठ । इन्द्र । बृहती ।*

३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ २

**तरणिरित्सिषासति वाज पुरन्ध्या युजा ।**

२ ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ १   २र   ३ १ २

**आ व इन्द्र पुरुहूत नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम ॥१॥**

**पदार्थ**—( **तरणि** ) शीघ्र काय करनेवाला ( **इत्** ) ही ( **सिषासति** ) विभाजन करता है ( **वाज** ) खाद्य पदार्थ को ( **पुरन्ध्या** ) बुद्धि के द्वारा ( **युजा** ) सहायक ( **आ** ) सब प्रकार से ( **व** ) तुम लोग ( **इन्द्र** ) सेनापति को ( **पुरुहूतं** ) बहुतो से चाहने योग्य ( **नमे** ) आदर करता हूँ ( **गिरा** ) वाणी से ( **नेमि** ) चक्के की पुटठी को ( **तष्टेव** ) बढई के समान ( **सुद्रवम्** ) सुगमता से चलने योग्य ॥१॥

**भावार्थ**—चतुर सेनापति बुद्धिमत्ता के साथ खाद्य पदार्थ का विभाजन करता है। हे मनुष्यो ! तुम लोगो को सर्वप्रिय सेनापति का आदर करने के लिए सुगमता के साथ चलने के लिए चक्के की पुटठी को बढ़ई के समान नम्र होने की प्रेरणा करता हूँ ॥१॥

८६८—*वसिष्ठ । इन्द्र । बृहती ।*

१ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १   २र   ३ १ २

**न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्त रयिनशत् ।**

३ २ ३ १ २ ३ २ ३   १ २ ३ १   २र ३ २

**सुशक्तिरिन्मघवन तुभ्य मावते देष्ण यत्पार्ये दिवि ॥२॥**

**पदार्थ**—( **न** ) नही ( **दुष्टुति** ) निन्दा ( **द्रविणोदेषु** ) धनदाताओं के विषय मे ( **शस्यते** ) अच्छी ( **न** ) नहीं ( **स्रेधन्त** ) हिंसक को ( **रयि** ) सपत्ति ( **नशत्** ) प्राप्त होती है ( **सुशक्ति** ) उत्तम सामर्थ्य ( **इत्** ) भी ( **मघवन्** ) हे सपूर्ण सपदाओं के स्वामी ( **तुभ्य** ) तेरी ( **मावते** ) मेरे जैसे के लिए ( **देष्ण** ) दान ( **यत्** ) जो ( **पार्ये** ) अनन्त ( **दिवि** ) आकाश में ॥२॥

**भावार्थ**—धनदाताओ की निन्दा ठीक नही। दूसरों को हानि पहुँचाने वाले मनुष्य को धन प्राप्त नहीं होता। हे परमेश्वर ! अनन्त आकाश मे स्थित हमारे अंशों को देने योग्य जो तेरे वायु जल तथा आकाश आदि पदार्थ विद्यमान हैं, उनमें तेरी ही शक्ति है ॥२॥

卐 **चतुर्थ खण्ड समाप्त** 卐

८६९—त्रित । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनव । हरिरेति कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थ—( तिस्र ) तीन ( वाच ) वाणियों को ( उदीरते ) उच्चारण करते हैं ( गावः ) ये वाणियां ( मिमन्ति ) उपदेश करती हैं ( धेनव ) आनन्द रस का पान करानेवाली ( हरि ) दु खहर्ता ( एति ) प्राप्त होता है ( कनिक्रदत् ) अनाहत नाद करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—लोग चारों वेदों की तीन प्रकार की वाणियो का उच्चारण करते हैं। आनन्द रस का पान करानेवाली ये वाणियां हमें उपदेश देती हैं। जिस के द्वारा दु खहर्ता परमेश्वर अनाहत नाद करता हुआ प्राप्त होता है ॥१॥

८७०—त्रित । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीऋ तस्य मातर । मर्जयन्तीर्दिव शिशुम ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार ( ब्रह्मी ) वेद की स्तुतिया ( अनूषत ) प्रशसा करती हैं ( यह्वी ) महान् ( ऋतस्य ) परमेश्वर की ( मातर ) मातायें ( मर्जयन्ती ) पवित्र करती हुई ( दिव ) प्रकाशस्वरूप ( शिशु ) बालक को ॥२॥

भावार्थ—बालक को पवित्र करती हुइ माताओं के समान महान् वेदवाणिया प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की प्रशसा करती हैं ॥२॥

८७१—त्रित । सोम । गायत्री ।

३ १ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

राय समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्य सोम विश्वत । आ पवस्व सहस्रिण ॥३॥

पदार्थ—( राय ) धन के ( समुद्रान ) समुद्रो को ( चतुर ) चार ( अस्मभ्य ) हमें ( सोम ) हे परमेश्वर ( विश्वत ) सब प्रकार से ( आ ) भली भांति ( पवस्व ) प्रदान कर ( सहस्रिण ) हजारों प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मणिमुक्ता आदि रत्नो से पूर्ण समुद्र पर्यन्त पृथिवी का राज हमें प्रदान कर ॥३॥

८७२—ययाति । सोम । अनुष्टुप ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सुतासो मधुमत्तमा सोमा इन्द्राय मन्दिन ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवित्रवन्तो अक्षर देवान् गच्छन्तु वो मदा ॥१॥

पदार्थ—( सुतास ) ससार म उत्पन्न हुए ( मधुमत्तमा ) ब्रह्मज्ञानी ( सोमा ) पुरुष ( इन्द्राय ) परमेश्वर को ( मन्दिन ) हर्ष से युक्त ( पवित्रवन्त ) पवित्रात्मा ( अक्षरन् ) वर्षा करत हैं ( देवान् ) दिव्यगुणों की ( गच्छन्तु ) प्राप्त हों ( व ) तुम लोगो को ( मदा ) आनन्द ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मज्ञानी, प्रसन्न ससार म उत्पन्न हुए पवित्रात्मा पुरुष परमेश्वर का प्राप्त कर और उनका आन द तुम्हारे लिए दिव्य गुणो की वर्षा करे ॥१॥

८७३—ययाति । सोम । अनुष्टुप ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजस ॥२॥

पदार्थ—( इन्दु ) जीव ( इन्द्राय ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ( पवते ) अपने को पवित्र करता है ( इति ) इस प्रकार ( देवास ) ज्ञानीजन ( अब्रुवन् ) उपदेश करते हैं। ( वाचस्पति ) समस्त वेद वाणियो का स्वामी परमेश्वर ( मखस्यते ) अपना सारा काय यज्ञरूप से करता है ( विश्वस्य ) सारी ( ईशान ) स्वामी ( ओजस ) शक्तियो का ॥२॥

भावार्थ—जीव परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्वय पवित्र होता है ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं। सारी शक्तियो का स्वामी तथा वेदवाणियो का दाता परमेश्वर अपना सारा सृष्टि रचना आदि कार्य यज्ञरूप म करता है ॥२॥

८७४—ययाति । सोम । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

सहस्रधार पवते समुद्रो वाचमीङ्खय ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवे दिवे ॥३॥

पदार्थ—( सहस्रधार ) बहुत प्रकार की वेदरूपवाणियो वाला ( पवते ) ससारी पदार्थों को गति दे रहा है ( समुद्र ) आकाश के समान व्यापक ( वाचमीङ्खय ) स्तुतियों का प्रेरक ( सोम ) परमेश्वर ( पति ) स्वामी ( रयीणां ) सारी संपदाओं का ( सखा ) मित्र ( इन्द्रस्य ) जीव का ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ॥३॥

भावार्थ—वेद वाणियों का स्वामी, आकाश के समान व्यापक स्तुतियो का प्रेरक, समस्त सपदाओ की रक्षा करनेवाला तथा जीवात्मा का मित्र परमेश्वर प्रति दिन सबको गति देता है ॥३॥

८७५—पवित्र । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पवित्र ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

अतप्ततनून तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्त स तदाशत ॥१॥

पदार्थ—( पवित्र ) पवित्र शक्ति ( ते ) तेरी ( विततं ) महान् है ( ब्रह्मणस्पते ) वेदज्ञान के रक्षक ( प्रभु ) समर्थ ( गात्राणि ) तीन [ स्थूल, सूक्ष्म और कारण ] शरीरो को ( पर्येषि ) प्राप्त करता है ( विश्वत ) सब प्रकार से ( अतप्ततनू ) तपस्या न करनेवाला ( न ) नही ( तत् ) उस मेरे पवित्र स्वरूप को ( आम ) कच्ची बुद्धिवाला ( अश्नुते ) प्राप्त कर सकता है ( शृतास ) पक्की बुद्धिवाले ( इत् ) ही ( वहन्त ) तपस्या करते हुए ( स ) सम्यक् ( तत् ) उसे [ तेरे स्वरूप को ] ( आशत ) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान के रक्षक जीव ! तेरी पवित्र शक्ति महान् है। स्वय शक्तिशाली तू स्थूल तथा कारण शरीरों को प्राप्त करता है। तपस्या को न करने वाला कच्ची बुद्धि से युक्त तेरी उस पवित्र शक्ति को नही पा सकता किन्तु पक्की बुद्धिवाले तपस्वी ही उसे पा सकते हैं ॥१॥

८७६—पवित्र । सोम । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र

तपोष्पवित्र विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिव पृष्ठमधिरोहन्ति तेजसा ॥२॥

पदार्थ—( तपो ) तप स्वरूप ( पवित्र ) पवित्र शक्ति ( विततं ) विस्तृत है ( दिवस्पदे ) मोक्षरूप परमधाम अथवा द्यु आदि लोको में ( अर्चन्त ) उपासना करती हुई ( अस्य ) इस की ( तन्तव ) प्रजायें ( व्यस्थिरन् ) व्यवस्था करती हैं ( अवन्ति ) रक्षा करती हैं ( अस्य ) इस की ( पवितार ) उपासक की ( आशव ) व्यापक शक्तियां ( दिव ) सूय के ( पृष्ठ ) पष्ठ या पीठ भाग पर ( अधिरोहन्ति ) चढ़ती हैं ( तेजसा ) तेज से ॥२॥

भावार्थ—उपासना करनेवाली प्रजायें तप स्वरूप परमेश्वर की महान् पवित्र शक्ति का मोक्षरूप परमधाम मे निश्चय करती हैं। परमेश्वर की व्यापक शक्तियां भक्त की रक्षा करती हैं तथा अपने तेज से सूर्यलोक का भी नियन्त्रण करती हैं ॥२॥

८७७—पवित्र । सोम । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अरूरुचदुषस पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयु ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षस पितरो गर्भमादधु ॥३॥

पदार्थ—( अरूरुचत ) प्रकाशित करता है ( उषस ) किरणों को ( पृश्नि ) सूर्य ( अग्रिय ) ग्रहो म श्रेष्ठ ( उक्षा ) महान् ( मिमति ) फेंकते हैं ( भुवनेषु ) लोको मे ( वाजयु ) अन्न प्राप्ति का देनवाला ( मायाविनो ) सकल ज्ञान के आधार ( ममिरे ) रचे हुए हैं ( अस्य ) इस परमेश्वर के ( मायया ) ज्ञान से ( नृचक्षस ) सबके प्रकाशक ( पितर ) सूय की किरणें ( गर्भ ) गर्भ के समान ( आदधु ) जल को धारण करती हैं ॥३॥

भावार्थ—सबसे महान् अन्न का देनवाला तथा सब ग्रहो म श्रेष्ठ सूर्य प्रकाशित होता है और सारे लोको म अपनी किरणो को फेंकता है। सब का प्रकाश करनेवाली किरणें गर्भ की भांति जल को धारण करती हैं। ये सब सर्वज्ञ परमेश्वर के ज्ञान से ही रचे गए हैं ॥३॥

卐 पञ्चम खण्ड समाप्त 卐

८७८—सौभरि । अग्नि । ककुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( मंहिष्ठाय ) अत्यन्त महान् ( गायत ) गुणगान करो ( ऋताव्ने ) यज्ञकर्त्ता ( बृहते ) बड ( शुक्रशोचिषे ) ब्रह्मचय के तेज से तेजस्वी ( उपस्तुतास ) उपस्थित शिष्य गण ( अग्नये ) आचार्य का ॥१॥

भावार्थ—हे उपस्थित हुए शिष्य गण ! तुम लोग सबसे महान् यज्ञकर्त्ता तथा ब्रह्मचय व्रत के धनी आचार्य का गुणगान करो ॥१॥

८७९—सौभरि । अग्नि । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ वसते मघवा वीरवद्यश समिद्धो द्युम्न्याहुत ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥२॥

पदार्थ—( आवंसते ) सब प्रकार से देता है ( मघवा ) समस्त सपदाओं का स्वामी ( वीरवत् ) पुत्र आदि से युक्त ( यशः ) यश को ( समिद्ध ) तेजस्वरूप ( ऋग्मी ) यशस्वी ( आहुत ) सब प्रकार से ध्यान किया हुआ ( कुवित् ) बहुत ( नः ) हमे ( अस्य ) इसका ( सुमतिः ) उत्तम ज्ञान ( नवीयसी ) हमे प्राप्त होने वाला ( अच्छा ) भली भाँति ( वाजेभिः ) अन्न आदि पदार्थों के साथ ( आगमत् ) प्राप्त हो ।।२।।

भावार्थ—समस्त सपदाओं का स्वामी तेजस्वरूप, यशस्वी तथा अच्छी प्रकार से ध्यान किया हुआ परमेश्वर हमे पुत्र आदि से युक्त यश प्रदान करता है। इसका उत्तम ज्ञान अन्न आदि के साथ हमे प्राप्त हो ।।२।।

८८०—गोसूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्र । उष्णिक ।

२ ३ १ २    ३ १ २   ३ १ २ ३ २

**त ते मद गृणीमसि वृषण पृक्षु सासहिम् ।**

३    १ २    ३ १ २

**उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम ।।१।।**

पदार्थ—( त ) उस ( ते ) तेरे ( मद ) हर्ष की ( गृणीमसि ) प्रशसा करते है ( वृषण ) कामनाओं को सिद्ध करनेवाले ( पृक्षु ) सग्रामो मे ( सासहिं ) शत्रुओं का पराजय करने ( उ लोककृत्नुम् ) विजय के नवीन लोको पर अधिकार करनेवाला ( अद्रिव ) हे शस्त्रधारी ( हरिश्रियम् ) अश्व आदि की शक्तियो से सुशोभित ।।१।।

भावार्थ—हे सकल शस्त्रो से सुसज्जित सेनापते ! सारी कामनाओं को सिद्ध करने वाली सग्रामों मे साहस दिलाने वाली विजय द्वारा नवीन स्थानो पर अधिकार करने वाली तथा घोड़े आदि शक्तियो से सुशोभित तेरी विजय से उत्पन्न हुई प्रसन्नता की हम प्रशसा करते हैं ।।१।।

८८१—गोसूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्र । उष्णिक ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २    ३ १ २

**येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।**

३   २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २

**मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ।।२।।**

पदार्थ—( येन ) जिस कारण ( ज्योतींषि ) प्रकाशों को ( आयवे ) मनुष्य के लिए ( मनवे ) मननशील ( च ) और ( विवेदिथ ) प्राप्त कराता है ( मन्दान ) आनन्दस्वरूप ( अस्य ) इस उपासक के ( बर्हिष ) मानस ज्ञान यज्ञ में ( विराजसि ) विराजमान है ।।२।।

भावार्थ—हे आनन्दस्वरूप परमेश्वर ! जिससे तू मननशील मनुष्य को प्रकाश देता है और उसके मानस ज्ञान-यज्ञ मे विराजमान रहता है उस शक्ति से हमे सुख प्रदान कर ।।२।।

८८२—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्र । उष्णिक ।

२ ३ १ २   ३ १   २र    ३ १ २

**तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।**

१ २    ३ १ २   ३ १ २

**वृषपत्नीरपो जया दिवे दिवे ।।३।।**

पदार्थ—( तत् ) उस शक्ति की ( अद्याचित् ) आज भी ( ते ) तेरी ( उक्थिन ) स्तुति करने वाले ( अनुष्टुवन्ति ) स्तुति करते हैं ( पूर्वथा ) पहले कल्प के समान ( वृषपत्नी ) धर्म जिसका रक्षक है ऐसे ( अप ) कर्मों को ( जय ) उन्नत कर ( दिवे दिवे ) प्रति दिन ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पूर्व कल्प के समान आज भी उपासक लोग तेरी शक्ति की स्तुति करते हैं। तू हमारे धार्मिक कर्मों को प्रतिदिन उन्नत कर ।।३।।

८८३—तिरश्ची । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २र ३   २उ ३ १   २   ३ १ २

**श्रुधी हव तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।**

३ १ २ ३ १ २    ३ १ २    ३ १ २

**सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ।।१।।**

पदार्थ—( श्रुधी ) सुन ( हव ) प्रार्थना ( तिरश्च्या ) छोटे से छोटे व्यक्ति की ( इन्द्र ) हे राजन ( य ) जो ( त्वा ) तेरी ( सपर्यति ) सेवा करता है ( सुवीर्यस्य ) सुन्दर शक्ति वाले ( गोमत ) गाय आदि पशुओ वाले ( राय ) धन से ( पूर्धि ) भरपूर करता है ( महा असि ) बड़ा है ।।१।।

भावार्थ—हे राजन् ! तू महान् है। जो तेरी सेवा करता है, उस छोटे से छोटे व्यक्ति की पुकार को सुन तथा शक्तिदायक गौ आदि पशुओं से युक्त धन से उसे भरपूर कर ।।१।।

८८४—तिरश्ची । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २   ३ १ २   ३ १ २ ३   १   २र

**यस्त इन्द्र नवीयसीं गिर मन्द्रामजीजनत् ।**

३    १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**चिकित्विन्मनस धिय प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ।।२।।**

पदार्थ—( य ) जो उपासक ( ते ) तेरी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( नवीयसीं ) मनोहर ( गिर ) स्तुति ( मन्द्रा ) आनन्द देने वाली ( अजीजनत् ) करता है ( चिकित्विन्मनस ) इन्द्रियातीत विषय को दिखाने वाली ( धिय ) बुद्धि को ( प्रत्नां ) सनातन ( ऋतस्य ) सत्य को ( पिप्युषीम ) पुष्ट करने वाली ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो उपासक तेरी आनन्द देने वाली मनोहर स्तुति करता है तू उसे इन्द्रियातीत विषय को दिखाने वाली सनातन तथा सत्य को पुष्ट करने वाली बुद्धि प्रदान करता है ।।२।।

८८५—तिरश्ची । इन्द्र । अनुष्टुप ।

१ २    ३ २उ   ३ १ २ ३ १ २    ३ २

**तमु ष्टवाम य गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधु ।**

३ १ २ ३ २   ३   १   ४

**पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ।।३।।**

पदार्थ—( तम् ) उसकी ( उ ) हि ( स्तवाम ) स्तुति करते हैं ( य ) जिसके उद्देश्य से ( गिर ) वेदवाणियां ( इन्द्र ) परमेश्वर को ( उक्थानि ) स्तुतियो को ( वावृधु ) बढ़ाती हैं ( पुरूणि ) बहुत ( अस्य ) इसके ( पौंस्या ) पराक्रमों को ( सिषासन्त ) आराधना करने की इच्छा करते हुए ( वनामहे ) भजन करते हैं ।।३।।

भावार्थ—जिसके उद्देश्य से वेदवाणियां स्तुतियों का विस्तार करती हैं हम उस परमेश्वर की स्तुति करते हैं। इसके अनेक प्रकार के पराक्रमो की इच्छा से भजन करते हैं ।।३।।

卐 षष्ठ खण्ड समाप्त 卐

चतुर्थ अध्याय समाप्त

卐

# पञ्चमोऽध्यायः

८८६—अकृष्टा माषा । सोम । जगती ।

२ ३ १ २    ३ १ २ ३   १ ३ २ १   २ ३   १ २

**प्र त आश्विनी पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।**

१   २र ३   १ २    ३ १ २ ३ १ २    ३ १ २

**प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधस ।।१।।**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( ते ) तेरी ( आश्विनी ) व्यापक ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( धेनव ) वाणियां ( दिव्या ) दिव्य गुणों से युक्त ( असृग्रन् ) उत्पन्न होती हैं ( पयसा ) ज्ञान के साथ ( धरीमणि ) धारण करने वाली आत्मा में ( प्र ) उत्तम ( अन्तरिक्षात ) अन्त करण मे होने वाले ज्ञान से ( स्थाविरी ) स्थूलरूप ( ते ) वे ( असृक्षत ) रचना करते हैं ( ये ) जो ( त्वा ) तेरे लिए ( मृजन्ति ) अपने को पवित्र करते हैं ( ऋषिषाण ) हे ऋषियो द्वारा भजन करने के योग्य ( वेधस ) मन्त्रद्रष्टा ।।१।।

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप ऋषियों द्वारा भजन किये जाने योग्य परमेश्वर ! व्यापक तथा दिव्य गुण वाली तेरी वेदरूपी वाणियां ज्ञान के साथ धारण करने वाले अन्त करण मे प्रकट होती हैं। तदनन्तर तेरी प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करने वाले मन्त्रद्रष्टा लोग अपने अन्तःकरण के द्वारा उन्हे स्थूल रूप में प्रकट करते हैं ।।१।।

८८७—अकृष्टा माषा । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उभयत पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सत परियन्ति केतव ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरि सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥२॥

पदार्थ—( उभयतः ) व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार से ( पवमानस्य ) शुद्धस्वरूप परमेश्वर की ( रश्मय ) किरणें ( ध्रुवस्य ) नित्य ( सत ) सत्स्वरूप ( परियन्ति ) व्यापक हो रही हैं ( केतव ) ज्ञानमय ( यदी ) जो ( पवित्रे ) पवित्र कर्म से स्थित हो ( अधिमृज्यते ) शुद्ध होता है ( हरि ) मनुष्य ( सत्ता ) विराजमान ( नियोनौ ) एकमात्र निमित्त कारण परमेश्वर की शरण में ( कलशेषु ) शरीरों मे ( सीदति ) स्थित हो जाता है ॥२॥

भावार्थ—शुद्ध, नित्य और सत्स्वरूप परमेश्वर की ज्ञानरूप किरणें व्यवहार और परमार्थ रूप से व्यापक हो रही हैं। यदि मनुष्य पवित्र कर्मों मे वर्तमान रह कर शुद्ध होता है तो वह शरीर धारण करता हुआ भी परमेश्वर में स्थित हो जाता है ॥२॥

८८८—अकृष्टा माषा । सोम जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वस प्रभोष्टे सत परि यन्ति केतव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥३॥

पदार्थ—( विश्वा ) सारे ( धामानि ) नाम, स्थान और जन्मों को ( विश्वचक्ष ) हे सब के साक्षी ( ऋभ्वस ) महान् ( प्रभो ) समर्थ ( ते ) तेरी ( सत ) सत्स्वरूप ( परियन्ति ) व्यापक हो रही हैं ( केतवः ) किरणें ( व्यानशी ) सर्व व्यापक तू ( पवसे ) पवित्र करता है ( सोम ) हे प्रभो ( धर्मणा ) अपनी स्वाभाविक शक्ति से ( पति ) रक्षक ( विश्वस्य ) सारे ( भुवनस्य ) संसार का ( राजसि ) राजा है ॥३॥

भावार्थ—हे सब के साक्षी परमेश्वर सत्स्वरूप तथा सर्व शक्तिमान् ! तेरी महान् महिमा सारे नाम जन्म और स्थानो मे व्यापक हो रही है। हे प्रभो सारे संसार का स्वामी तथा सर्वव्यापक तू अपनी शक्ति से सब को पवित्र करता हुआ शासन कर रहा है ॥३॥

८८९—अमहीयु सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ २ ३ २
पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१॥

पदार्थ—( पवमान ) पदार्थों को पवित्र करने वाला ( अजीजनत ) उत्पन्न करता है ( दिव ) द्युलोक-सम्बन्धी ( चित्र ) विचित्र ( न ) समान ( तन्यतु ) विद्युत् के ( ज्योति ) तेज को ( वैश्वानर ) अग्निमय ( बृहत ) महान् ॥१॥

भावार्थ—सब पदार्थों को पवित्र करने वाला सूर्य द्युलोक सम्बन्धी विचित्र विद्युत् के समान महान् अग्निमय तेज को उत्पन्न करता है ॥१॥

८९०—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २उ ३ १ २
पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुन । वि वारमव्यमर्षति ॥२॥

पदार्थ—( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( रस ) रस ( तव ) तेरा ( मद ) आनन्ददायक ( राजन ) हे प्रकाशस्वरूप ( अदुच्छुन ) निर्दोष ( वि ) विशेष ( वारं ) अनेक वार प्राप्त होने वाले जगत् को ( अव्यम् ) प्रकृति से उत्पन्न ( अर्षति ) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा तेजस्वी परमेश्वर ! तेरा निर्दोष आनन्द रस अनेक वार प्राप्त होने वाले प्राकृत जगत् को प्राप्त होता है ॥२॥

८९१—अमहीयु । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३क २र ३ २
पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्व स्वर्दृशे ॥३॥

पदार्थ—( पवमानस्य ) शुद्धस्वरूप ( ते ) तेरा ( रस ) आनन्द रस ( दक्ष ) बलवान् ( विराजति ) विराज रहा है ( द्युमान् ) तेजोयुक्त ( ज्योति ) प्रकाश की ( विश्व ) सारे ( स्व ) सुख को ( दृशे ) दिखाने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेजोयुक्त बलवान् तेरा आनन्द रस प्रकाश तथा सारे सुखों को दिखाने के लिए विराजमान हो रहा है ॥३॥

८९२—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २
प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमु । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( यत् ) जो ( गाव ) जल की ( न ) तरह ( भूर्णयः ) शीघ्र लाभकारी ( त्वेषा ) सूर्य की किरणें ( अयास ) गतिशील ( अक्रमु ) पृथिवी पर आती हैं ( घ्नन्तः ) नाश करती हुई ( कृष्णां ) काली ( अप ) दूर करता ( त्वचम् ) चर्मरोग को ॥१॥

भावार्थ—शीघ्र लाभकारी तेज गतिवाली सूर्य की किरणें चर्मरोग का नाश करती हुई जल के समान पृथिवी पर फैलती हैं ॥१॥

८९३—मेधातिथिः । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २
सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ॥२॥

पदार्थ—( सुवितस्य ) सृष्टिकर्त्ता का ( वनामहे ) भजन करते हैं ( अतिसेतु ) मर्यादा तोड़ने वाले ( दुराव्यं ) कठिनाई से परास्त होने वाले ( साह्याम ) तिरस्कार करते हैं ( दस्यु ) नीच कार्य करने वाले ( अव्रतम् ) अकर्मी ॥२॥

भावार्थ—हम सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का भजन करते हैं। मर्यादा तोड़ने कठिनाई से परास्त होने वाले तथा अकर्मी नीच कर्मचारी का तिरस्कार करते हैं ॥२॥

८९४—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
शृण्वे वृष्टेरिव स्वन पवमानस्य शुष्मिण । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

पदार्थ—( शृण्वे ) सुनता हूँ ( वृष्टे ) वर्षा के ( इव ) समान ( स्वन ) शब्द के ( पवमानस्य ) शुद्धस्वरूप ( शुष्मिणः ) शक्तिशाली की ( चरन्ति ) विचरती हैं ( विद्युत ) बिजलियाँ ( दिवि ) अन्तरिक्ष में ॥३॥

भावार्थ—मैं वर्षा की ध्वनि के समान शुद्धस्वरूप तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की स्तुति को सुनता हूँ। उसी की व्यवस्था से अन्तरिक्ष में बिजलियां चमकती हैं ॥ ३ ॥

८९५—मेधातिथिः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
आ पवस्व महीमिष गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्ववत्सोम वीरवत् ॥४॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( पवस्व ) प्रदान कर ( महीं ) महान् ( इष ) अन्न आदि भोग्य पदार्थ को ( गोमत ) गाय आदि पशुओं से युक्त ( इन्दो ) हे सर्वेश्वर ( हिरण्यवत् ) सुवर्ण से युक्त ( अश्ववत् ) घोड़े से युक्त ( सोम ) हे परमेश्वर ( वीरवत् ) पुत्र आदि से युक्त ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वेश्वर सर्वाधार परमेश्वर ! तू हमें गाय, घोड़े सुवर्ण तथा वीर पुत्र आदि से युक्त पर्याप्त अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान कर ॥४॥

८९६—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषा सूर्यो न रश्मिभि ॥५॥

पदार्थ—( पवस्व ) व्यापक हो रहा है ( विश्वचर्षणे ) हे सब के साक्षी ( आ ) सब प्रकार से ( मही ) महान् ( रोदसी ) द्यु और पृथिवीलोक को ( पृण ) सुखी करता है ( उषा ) प्रभात कालों को ( सूर्य ) सूर्य ( न ) समान ( रश्मिभिः ) किरणो से ॥५॥

भावार्थ—हे सबके साक्षी परमेश्वर ! तू उषा को अपनी किरणों से सूर्य के समान महान् द्यु और पृथिवी लोक मे व्यापक होकर सुखी करता है ॥५॥

८९७—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
परि ण शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वत । सरा रसेव विष्टपम ॥६॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( न ) हमारा ( शर्मयन्त्या ) कल्याणकारी ( धारया ) वेदवाणी से ( सोम ) हे परमेश्वर ( विश्वत ) भली भांति ( सरा ) सुखी कर ( रसा ) पृथिवी के ( इव ) समान ( विष्टपम् ) लोक को ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पृथ्वी के समान हमारा कल्याण करनेवाली वेदवाणी से लोक को भली भांति सुखी कर ॥६॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

८९८—बृहन्मति । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २
आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥१॥

पदार्थ—( आशु ) शीघ्रकारी ( अर्ष ) ज्ञान देता है ( बृहन्मते ) हे महान् ज्ञानी ( परि ) सब प्रकार से ( प्रियेण ) प्रेममय ( धाम्ना ) स्वरूप से ( यत्र ) जिस तेरे विषय में ( देवा ) विद्वान् लोग ( इति ) इस प्रकार ( ब्रुवन् ) कहते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! शीघ्रकारी तू अपने प्रेममय स्वरूप से ज्ञान देता है। तेरे विषय मे ऐसा ही विद्वान् लोग कहते हैं ॥१॥

८९९—बृहन्मति । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निष । वृष्टिं दिव परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—( परिष्कृण्वन् ) पवित्र करता हुआ ( अनिष्कृत ) अपवित्र को ( जनाय ) जनता के लिए ( यातयन् ) प्राप्त कराता हुआ ( इष ) अन्न आदि

सम्पदाओं को ( वृष्टिं ) वर्षा को ( दिवः ) द्युलोक से ( परिस्रव ) बरसा ॥२॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर तू अपवित्र को पवित्र करता हुआ तथा जनता के लिए अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्रदान करता हुआ द्युलोक से वर्षा को प्रेरित कर ॥२॥

*९००—बृहन्मति । सोम । गायत्री ।*

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २र
**अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥३॥**

**पदार्थ**—( अयं ) यह ( सः ) वह ( यः ) जो ( दिवस्परि ) द्युलोक में ( रघुयामा ) सूक्ष्म गतिवाला ( पवित्रे ) पवित्र ब्रह्माण्ड मे ( आ ) भली भाँति ( सिन्धोः ) सागर की ( ऊर्मा ) तरंग मे ( व्यक्षरत् ) अनेक प्रकार से सचालन करता है ॥३॥

**भावार्थ**—सूक्ष्म गतिवाला जो परमेश्वर द्युलोक से सिंधु की गहरी धार पर्यन्त सारे ससार म भली प्रकार व्यापक हो रहा है, वही सबका सचालन करता है ॥३॥

*९०१—बृहन्मति । सोम । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥४॥**

**पदार्थ**—( सुतः ) सब का उत्पादक ( एति ) व्यापक हो रहा है ( पवित्रे ) अग्नि वायु सूर्य विद्युत तथा चन्द्र आदि मे ( त्विषिं ) प्रकाश को ( दधानः ) पुष्ट करता हुआ ( ओजसा ) ओज-शक्ति से ( विचक्षाणः ) सब को देखता हुआ ( विरोचयन् ) तथा सबको प्रकाशित करता हुआ ॥४॥

**भावार्थ**—सृष्टिकर्त्ता अपने पराक्रम से प्रकाश को पुष्ट करता हुआ सब का साक्षी तथा प्रकाशक परमेश्वर समस्त पदार्थों मे व्यापक हो रहा है ॥४॥

*९०२—बृहन्मति । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
**आ विवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५॥**

**पदार्थ**—( आ ) सब प्रकार से ( विवासन् ) विशेष रूप से निवास देता हुआ ( परावतः ) पुराने ( अथो ) अथवा ( अर्वावतः ) नये [सब पदार्थों को] ( सुतः ) उत्पन्न करनेवाला ( इन्द्राय ) जीवात्मा के लिए ( सिच्यते ) सींचा जाता है ( मधु ) आनन्दरस ॥५॥

**भावार्थ**—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर पुराने अथवा नये सभी पदार्थों को स्थान देता हुआ जीवात्मा के लिए आनन्दरस को सींचता है ॥५॥

*९०३—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
**समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६॥**

**पदार्थ**—( समीचीनाः ) उपासक लोग ( अनूषत ) स्तुति करते हैं ( हरिं ) अज्ञान नाशक ( हिन्वन्ति ) प्रेम दर्शाते हैं ( अद्रिभिः ) आदरणीय [स्तुतियों] से ( इन्दुं ) ऐश्वर्यशाली के लिए ( इन्द्राय ) जीव को ( पीतये ) रक्षा के लिए ॥६॥

**भावार्थ**—उपासक लोग स्तुति करते हैं तथा जीवात्मा की रक्षा के निमित्त अज्ञाननाशक तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर के प्रति आदरणीय स्तुतियों से प्रेम दर्शाते हैं ॥६॥

*९०४—भृगुजमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥**

**पदार्थ**—( हिन्वन्ति ) प्राप्त होते हैं ( सूरम् ) सूर्य को ( उस्रयः ) गमनशील ( स्वसारः ) स्वयं फैलनेवाले ( जामयः ) जल ( पतिं ) पालक ( महां ) महान् ( इन्दुं ) परमेश्वर को ( महीयुवः ) महत्त्व चाहनेवाले ॥१॥

**भावार्थ**—गमनशील अपने आप फैलनेवाले जल सूर्य को प्राप्त होते हैं और महत्त्व चाहनेवाले भक्त जन महान् परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥१॥

*९०५—भृगुजमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
**पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विश ॥२॥**

**पदार्थ**—( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( रुचारुचा ) सारी शक्ति से ( देव ) हे देव ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिए ( सुतः ) सृष्टिकर्त्ता ( विश्वा ) समस्त ( वसूनि ) संपदाएं ( आविश ) प्राप्त करा ॥२॥

**भावार्थ**—हे शुद्धस्वरूप परमात्मदेव ! सृष्टिकर्त्ता तू विद्वानों के लिए अपनी शक्ति से सारी संपदाएँ प्रदान कर ॥२॥

*९०६—भृगुजमदग्निर्वा । सोम । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥३॥**

**पदार्थ**—( आ ) सब प्रकार से ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( सुष्टुतिं ) प्रशसनीय ( वृष्टिं ) वर्षा ( देवेभ्यः ) सारे दिव्य पदार्थों के ( दुवः ) लाभ के लिये ( इषे ) अन्न के निमित्त ( पवस्व ) कर ( संयतं ) नियमित ॥३॥

**भावार्थ**—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू सारे दिव्य पदार्थों के लाभ तथा अन्न के निमित्त प्रशसनीय और नियमित वर्षा कर ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

*९०७—सुतभर । अग्नि । जगती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।**

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
**घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥**

**पदार्थ**—( जनस्य ) प्रजा का ( गोपा ) रक्षक ( अजनिष्ट ) उत्पन्न करता है ( जागृविः ) सदा सावधान ( अग्निः ) परमेश्वर ( सुदक्षः ) शोभन पराक्रम-वाला ( सुविताय ) कल्याण के लिए ( नव्यसे ) नवीन ( घृतप्रतीकः ) जल आदि पदार्थ जिसका अनुमान कराते हैं वह ( बृहता ) महान् ( दिविस्पृशा ) दिव्य गुणों से युक्त शक्ति से ( द्युमत् ) प्रकाशस्वरूप ( वि ) विशेष रूप से ( भाति ) प्रकाश कर रहा है ( भरतेभ्यः ) मनुष्यों के लिए ( शुचिः ) शुद्धस्वरूप ॥१॥

**भावार्थ**—प्रजा की रक्षा करनेवाला सदा सावधान तथा शोभन पराक्रम वाला परमेश्वर नित्य नये कल्याण के लिए ससार को पैदा करता है। जल आदि (जगत् गत) पदार्थों से उसका अनुमान होता है। वह शुद्ध एवं प्रकाशस्वरूप है। वह अपनी महान् दिव्य शक्तियों से मनुष्य मात्र को प्रकाश देता है ॥१॥

*९०८—सुतभर । अग्नि । जगती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
**त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२॥**

**पदार्थ**—( त्वां ) तुझे ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( अङ्गिरसः ) विद्वान् लोग ( गुहाहितं ) अन्त करण मे निहित [स्थित] ( अन्वविन्दन् ) प्राप्त करते हैं ( शिश्रियाणं ) व्यापक रूप से विद्यमान ( वनेवने ) प्रत्येक कारण द्रव्य म ( सः ) वह तू ( जायसे ) उत्पन्न करता है ( मथ्यमानः ) ध्यान से अन्वेषण किया हुआ ( सहः ) बल ( महत् ) महान् ( त्वां ) तुझे ( आहुः ) कहते हैं [ज्ञानी लोग] ( सहसः ) बल का ( पुत्र ) सबका रक्षक ( अङ्गिरः ) हे सर्वान्तर्यामी [ सब सृष्टि के अंगी पदार्थों मे रमण करने वाला ] ॥२॥

**भावार्थ**—हे परमेश्वर ! विद्वान् लोग सबके हृदय देश में स्थित तथा प्रत्येक कारण द्रव्य मे व्यापक तुझे प्राप्त करते हैं। हे सर्वान्तर्यामिन् ध्यान के द्वारा अन्वेषण किया गया तू सब बलों से बड़ बल आत्मबल को उत्पन्न करता है। ज्ञानी लोग तुझे सबका रक्षक कहते हैं ॥२॥

*९०९—सुतभर । अग्नि । जगती ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
**यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।**

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥३॥**

**पदार्थ**—( यज्ञस्य ) ज्ञानयज्ञ के ( केतुं ) जतानेवाले ( प्रथमं ) आदि कारण ( पुरोहितं ) सबके हितकारी ( अग्निं ) परमेश्वर को ( नरः ) उपासक मनुष्य ( त्रिषधस्थे ) तीन शरीरों [स्थूल सूक्ष्म और कारण] मे स्थित आत्मा में ( समिन्धते ) साक्षात् करते हैं ( इन्द्रेण ) जीवात्मा के साथ ( देवैः ) देवों [ पृथिव्यादि ३३ देव ] के साथ ( सरथं ) प्रकृति अथवा समाररूप रथ पर विद्यमान ( सः ) वह परमेश्वर ( बर्हिषि ) हृदयरूप आकाश मे ( सीदन् ) विराजमान होता हुआ ( नि ) निश्चय ( होता ) कर्मफलों का दाता ( यजथाय ) साक्षात्कार किए जाने के लिए ( सुक्रतुः ) महान् ज्ञानी ॥३॥

**भावार्थ**—उपासक मनुष्य ज्ञान यज्ञ के जताने वाले आदि कारण, सबके हितकारी तथा जीवात्मा और सब ( तैंतीस ) देव के साथ प्रकृति रूप रथ पर विद्यमान परमेश्वर का जीवात्मा मे साक्षात्कार करते हैं। कर्मफलदाता, महान् ज्ञानी वह हृदयाकाश मे स्थित होता हुआ साक्षात् किए जाने के योग्य होता है ॥३॥

*९१०—गृत्समद । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २र २उ ३ १ २ ३ १ २
**अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥१॥**

**पदार्थ**—( अयं ) यह ( वां ) इन दोनों ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान के द्वारा ( सुतः ) उत्पन्न होता है ( सोमः ) सोमलता आदि वनस्पति ( ऋतावृधा ) जल को बढ़ानेवाले ( मम ) मेरे ( इत ) ही ( इह ) इस ससार में ( श्रुत ) सुनाते हैं (सुनने के योग्य करते हैं) ( हवम् ) शब्द को ॥१॥

**भावार्थ**—जल को बढ़ानेवाले प्राण और उदान के द्वारा ये सोमलता आदि

वनस्पति उत्पन्न होते हैं । इस संसार में वे दोनों हमारे शब्द को सबके सुनने योग्य बनाते हैं ॥१॥

९११—गृत्समद । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २    ३ १ २र ३ २    ३ १ २

**राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आशाते ॥२॥**

पदार्थ—( राजानौ ) प्रकाशमान ( अनभिद्रुहा ) परस्पर एक दूसरे को हानि न पहुँचानेवाले ( ध्रुवे ) निश्चित ( सदसि ) स्थान ( उत्तमे ) श्रेष्ठ ( सहस्रस्थूणे ) अनेक स्तम्भों वाले [ संसार में ] ( आशाते ) व्यापक होते हैं ॥२॥

भावार्थ—परस्पर हानि न पहुँचाने वाले प्रकाशमान प्राण और उदान वायुएँ सनातन असंख्य स्तम्भों वाले तथा उत्तम संसार रूप स्थान में व्यापक होते हैं ॥२॥

९१२—गृत्समद । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २    ३ १ २र ३ १ २    १ २ ३ १ २

**ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥३॥**

पदार्थ—( ता ) वे दोनों ( सम्राजा ) भूगोलादि में विराजमान ( घृतासुती ) जल के उत्पन्न करने वाले ( आदित्या ) प्रकृति से पैदा होनेवाले ( दानुनस्पती ) सारे व्यवहारों के रक्षक ( सचेते ) साथ रहते हैं ( अनवह्वरम् ) सरलता से ॥३॥

भावार्थ—भूगोल आदि में विराजमान, जल को उत्पन्न करनेवाले, प्रकृति से उत्पन्न तथा सारे व्यवहारों के रक्षक प्राण और उदान सरलता से साथ मिल जाते हैं ॥३॥

९१३—गोतम । इन्द्र । गायत्री ।

१ २    ३ २ ३ १ २ ३ १    २र    ३ १ २    ३ १ २र

**इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत । जघान नवतीर्नव ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर ( दधीच ) वाणी की ( अस्थभि ) समिधाओं [ शब्द, अर्थ और ज्ञानरूप ] ( वृत्राणि ) अज्ञानों को ( अप्रतिष्कुत ) एकरस ( जघान ) नाश करता है ( नवती ) नव के पहाड़े पर्यन्त नब्बे [ ९० ] को ( नव ) नव के समान ॥१॥

भावार्थ—सदा एकरस परमेश्वर वेदवाणी की समिधाओं से नब्बे पर्यन्त नव के पहाड़े की संख्याओं के नव के समान अज्ञान का नाश करता है ॥१॥

९१४—गोतम । इन्द्र । गायत्री ।

३ १    २र ३ २उ    ३ १ २ ३ १ २    १ २    ३ १ २

**इच्छन्नश्वस्य यच्छिर पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥२॥**

पदार्थ—( इच्छन् ) चाहता हुआ ( अश्वस्य ) अग्नि के ( यत् ) जो ( शिर ) श्रेष्ठभाग विद्युत् ( पर्वतेषु ) मेघों मे ( अपश्रितम् ) छिपी हुई ( तत् ) उसको ( विदत् ) प्राप्त करता है ( शर्यणावति ) अन्तरिक्ष मे ॥२॥

भावार्थ—वैज्ञानिक पुरुष मेघों मे छिपी हुई अग्नि के श्रेष्ठभाग बिजली को जानने की इच्छा करता हुआ अन्तरिक्ष में प्राप्त करता है ॥२॥

९१५—गोतम । इन्द्र । गायत्री ।

२उ ३ १ २    ३ २ ३ १ २ ३क २र    १ २ ३ १ २    ३ २

**अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥**

पदार्थ—( अत्र ) इस जगत् में ( अह ) प्रसिद्ध ( गो: ) पृथिवी के ( अमन्वत ) मानते हैं ( नाम ) नाम को ( त्वष्टुः ) सूर्य के ( अपीच्यम् ) छिपे हुए ( इत्था ) इस प्रकार ( चन्द्रमस ) चन्द्रमा के ( गृहे ) मण्डल में ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग पृथिवी, सूर्य और चन्द्रमा के मण्डल में ईश्वर का ही नाम अन्तर्निहित है, ऐसा मानते हैं ॥३॥

९१६—वसिष्ठ । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ १    २र ३ १ २    ३ १ २    ३ २ ३ १ २

**इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुति । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१॥**

पदार्थ—( इयं ) यह ( वाम् ) तुम दोनों के लिए ( अस्य ) इस ( मन्मन ) मेरे मन की ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( पूर्व्यस्तुति ) मुख्यस्तुति ( अभ्रात् ) मेघ से ( वृष्टि ) वृष्टि के ( इव ) समान ( अजनि ) उत्पन्न होती है ॥१॥

भावार्थ—हे मुक्त जीव और परमेश्वर! मेरे मन से ये आप दोनों की स्तुतियाँ मेघ से वृष्टि के समान स्वभावत उत्पन्न होती हैं ॥१॥

९१७—वसिष्ठ । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २    ३ १ २ ३ १ २

**शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिर । ईशाना पिप्यतं धिय ॥२॥**

पदार्थ—( शृणुतं ) सुनते हैं ( जरितु ) स्तुति करनेवाले की ( हवं ) पुकार को ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( वनतं ) स्वीकार करते हैं ( गिरः ) स्तुतियाँ ( ईशाना ) स्वामी ( पिप्यत ) पूर्ण करते हैं ( धियः ) कर्मों को ॥२॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! तुम दोनों स्तुति करनेवाले की पुकार को सुनते हो, स्तुतियाँ स्वीकार करते हो तथा कर्मों को पूर्ण करते हो ॥२॥

९१८—वसिष्ठ । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २    ३ १ २ ३ १    २र    १ २    ३ २

**मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥३॥**

पदार्थ—( मा ) नहीं ( पापत्वाय ) पापाचरण की ( नः ) हमारे द्वारा ( नरा ) हे नेता ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( मा ) नहीं ( अभिशस्तये ) हिंसा की ( मा ) नहीं ( न ) हमारे द्वारा ( रीरधतं ) सिद्ध होने में ( निदे ) निन्दा की ॥३॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर! आप दोनों हमारे द्वारा पापाचरण हिंसा और निन्दा की सिद्धि न होने दें ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

९१९—दृढच्युत । सोम । गायत्री ।

१    ३ १ २    ३ १ २ ३ १ २    ३ १    २ ३ २ ३ १ २

**पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्य पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मद ॥१॥**

पदार्थ—( पवस्व ) व्यापक होता है ( दक्षसाधन ) बलदाता ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिए ( पीतये ) रक्षा के लिए ( हरे ) हे दुःख के हर्त्ता ( मरुद्भ्यः ) ऋत्विजों के लिए ( वायवे ) वायु के लिये ( मद ) आनन्दकारी ॥१॥

भावार्थ—हे दु खहर्त्ता परमेश्वर ! बलदाता तथा आनन्दकारी तू विद्वान्, ऋत्विज तथा वायु आदि की रक्षा के लिए सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

९२०—दृढच्युत । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २    ३ १ २ ३ २र    ३ १ २ ३ २    १ २    ३ १ २

**स देवै शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रिय । पवमानो अदाभ्य ॥२॥**

पदार्थ—( स ) सम्यक् ( देवै ) जीवों के ( शोभते ) सुशोभित होता है ( वृषा ) सुखों की वर्षा करनेवाला ( कवि ) वेदज्ञान का दाता ( योनौ ) जगत्-कारण प्रकृति पर ( अधि ) अधिष्ठाता रूप से ( प्रिय ) प्रिय ( पवमान ) पवित्र-कर्त्ता ( अदाभ्य ) नित्य ॥२॥

भावार्थ—सुखों की वर्षा करनेवाला, वेदज्ञान का दाता, प्रिय, पवित्रकर्त्ता तथा नित्य परमेश्वर जीवों के साथ जगत् के कारण प्रकृति पर अधिष्ठाता होता हुआ विराजमान है ॥२॥

९२१—दृढच्युत । सोम । गायत्री ।

१ २    ३ २ ३ २    २उ    ३ १ २    १ २    ३ २    २र

**पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमारुह ॥३॥**

पदार्थ—( पवमान ) हे पवित्रात्मा ( धिया ) कर्म के द्वारा ( हित ) हितकारी ( अभि ) उद्देश्य से ( योनिं ) आदिकारण परमेश्वर के ( कनिक्रदत् ) उपदेश करता हुआ ( धर्मणा ) धर्म से ( वायु ) वायु पर ( आरुह ) चढ़ता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष ! कर्म के द्वारा सब का हितकारी तू परमात्मा को लक्ष्य म रखकर उपदेश करता हुआ धर्म से वायु पर चढ़ता है, अर्थात् उन्नत होता है ॥३॥

९२२—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

२ ३ १ २    ३ १ २    ३ १ २

**तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।**

३ १ २    ३ १ २    ३ १ २र ३    २र    ३ १ २

**पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥१॥**

पदार्थ—( तव ) तेरी ( अहं ) मैं ( सोम ) हे विद्वान् पुरुष ( रारण ) आनन्द करता हूँ ( सख्ये ) मित्रता में ( इन्दो ) विद्या के धनी ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( पुरूणि ) बहुत [ विघ्न ] ( बभ्रो ) हे पोषण करनेवाले ( नि चरन्ति ) बाधा रूप से उपस्थित होते हैं ( मां ) मुझे ( अव ) उलटे ( परिधीन् ) आवरणों को ( अति ) अतिक्रमण ( ताँ ) उनका ( इहि ) कर ॥१॥

भावार्थ—हे पोषण करनेवाल विद्या के धनी विद्वान् पुरुष ! मैं प्रतिदिन तेरी मित्रता मे सुखी रहता हूँ । कई बाधाए मेरे सामने उपस्थित होती हैं । तू उन आवरणो को दूर कर ॥१॥

९२३—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ १ २    ३ १ २    ३ १ २ ३ १ २

**तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।**

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**घृणा तपन्तमति सूर्यं पर शकुना इव पप्तिम ॥२॥**

पदार्थ—( तव ) तेरे ( अहं ) मैं ( नक्तम् ) रात्रि में ( उत ) और ( सोम ) हे परमेश्वर ( ते ) तेरे [ ज्ञान ] का ( दिवा ) दिन में ( दुहान ) दोहन करता हुआ ( बभ्रो ) हे विश्वम्भर ( ऊधनि ) समीप ( घृणा ) तेज से ( तपन्तं ) तपते हुए ( अति ) अत्यन्त ( सूर्यं ) सूर्य को ( पर ) सबसे परे स्थित ( शकुना ) पक्षियों के ( इव ) समान ( पप्तिम ) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे विश्वम्भर परमेश्वर ! तू सबसे परे है । रात और दिन तेरे ज्ञान का दोहन करता हुआ मैं तेरे समीप तेज से अत्यन्त तपते हुए सूर्य को पक्षी विशेष की भांति पहुँचता हूँ ॥२॥

९२४—बृहन्मति । सोम । बृहती ।

१ १२ ३२उ ३२३१२ १२३१२३१२

**पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥१॥**

पदार्थ—( पुनान ) पवित्र करनेवाला ( अक्रमीत् ) पार करता है ( अभि ) सब प्रकार से ( विश्वा ) सारे ( मृध ) सासारिक सग्रामो को ( विचर्षणि ) विशेष ज्ञानी को ( धीतिभि ) प्रशसाओ से ॥१॥

भावार्थ—इस ससार को पवित्र करनेवाला जो विशेष ज्ञानी पुरुष सारे ससारी सग्रामों को पार करता है उस मेधावी को सब लोग प्रशसाओं से सुशोभित करते हैं ॥१॥

९२५—बृहन्मति । सोम । गायत्री ।

१ २र ३१२३२३२३१२३२ ३१ २र

**आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥२॥**

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( योनिम् ) निमित्त कारण परमेश्वर को ( अरुण ) तेजस्वी ( रुहत ) प्राप्त करने के लिए ऊपर उठता है ( गमत् ) प्राप्त होता है ( इन्द्र ) परमेश्वर ( वृषा ) कामनाओं को सफल करने वाला ( सुतम् ) पुत्र रूप ( ध्रुवे ) निश्चित वा दृढ़ ( सदसि ) मोक्ष धाम मे ( सीदतु ) स्थित होता है ॥२॥

भावार्थ—तेजस्वी विद्वान् पुरुष निमित्त कारण परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए ऊपर उठता है । कामनाओं को सफल करनेवाला परमेश्वर पुत्र रूप मे उसे प्राप्त होता है । तदनन्तर वह विद्वान पुरुष मोक्ष धाम मे विराजमान होता है ॥२॥

९२६—बृहन्मति । सोम । गायत्री ।

१ २ ३२३१२ ३ १२ ३१२ १२ ३१२

**नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥**

पदार्थ—( नू ) शीघ्र ( न ) हमारी ( रयिं ) सपदाए ( महां ) महान् ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( अस्मभ्यम् ) हमे ( सोम ) हे परमेश्वर ( विश्वत ) सर्व प्रकार से ( आपवस्व ) प्राप्त करा ( सहस्रिणं ) असख्य ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू हमें हमारी असख्य और महान् संपदाए सब ओर से प्राप्त करा ॥३॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

९२७—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट ।

२ ३ १२ ३१२ ३१२३१२ ३१२

**पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।**

१२३२ ३ १२३१२

**सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥**

पदार्थ—( पिबा ) रक्षा करता है ( सोम ) विद्वान् की ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( मन्दतु ) स्तुति करें ( त्वा ) तेरी ( य ) जिस ( ते ) तेरे लिए ( सुषाव ) यज्ञादि करता है ( हर्यश्व ) हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक ( अद्रि ) आदरणीय ( सोतु ) हाँकनेवाले के ( बाहुभ्याम् ) हाथो से ( सुयत ) नियन्त्रित ( न ) समान ( अर्वा ) घोड़े के ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक परमेश्वर ! तू जिस विद्वान् पुरुष की रक्षा करता है वह तेरी स्तुति करता है और हाँकनेवाले के हाथो से नियन्त्रित अश्व के समान तेरी प्राप्ति के लिए यज्ञादि शुभकर्मों को करता है ॥१॥

९२८—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट ।

२ ३ २३२ ३ २३२ ३ १२३१२ ३ १२

**यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।**

१ २२

**स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥**

पदार्थ—( य ) जो ( ते ) तेरा ( मद ) स्तुति करनेवाला ( युज्य ) योग्य ( चारु ) सुन्दर ( अस्ति ) है ( येन ) जिसके द्वारा ( वृत्राणि ) अज्ञानो को ( हर्यश्व ) हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक ( हंसि ) नष्ट करता है ( स ) वह ( त्वा ) तुझे ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( प्रभूवसो ) सबको वास देनेवाले ( ममत्तु ) प्रसन्न करे ॥२॥

भावार्थ—हे अज्ञाननाशक सर्वव्यापक तथा सबको बसानेवाले परमेश्वर ! योग्य तथा सुन्दर जो व्यक्ति तेरी स्तुति करनेवाला है जिसके द्वारा तू सब जनता के अज्ञानो का नाश करता है, वह तुझे स्तुतियो से प्रसन्न करे ॥२॥

९२९—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट ।

२३१२ ३ २३२उ ३१२३ १२३१२

**बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।**

३१ २र ३१२

**इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥**

पदार्थ—( बोधा ) जानता है ( सु ) अच्छी तरह ( मे ) मेरी ( मघवन् ) हे सम्पूर्ण यज्ञों के स्वामी ( वाचं ) वाणी को ( आ ) सब प्रकार ( इमां ) इस ( यां ) जिसको ( ते ) तेरे विषय की ( वसिष्ठ ) महान् विद्वान् ( अर्चति ) करता है ( प्रशस्ति ) स्तुति को ( इमा ) इन ( ब्रह्म ) वेद द्वारा की जानेवाली स्तुतियों को ( सधमादे ) उपासना ( जुषस्व ) स्वीकार करते हो ॥३॥

भावार्थ—हे सकल यज्ञो के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् पुरुष तेरे विषय की जो स्तुति करता है उसको और इस मेरी प्रार्थना को भी तू भली भांति जानता है । तू उपासनागृह मे की हुई वैदिक स्तुतियों को स्वीकार करता है ॥३॥

९३०—रेभः । इन्द्र । अतिजगती ।

२ ३ १२ ३१२३१२३१ २ ३१२ ३१ २३१२

**विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।**

२३१२ ३२३१२३१ २र ३१२ ३ १२

**क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥**

पदार्थ—( विश्वा ) सारे ( पृतना ) सग्रामों को ( अभिभूतरं ) अभिभव करने वाली ( नरः ) मनुष्य लोग ( सजू ) एक साथ ( ततक्षु ) तीक्ष्ण करते हैं ( इन्द्र ) विद्युत् को ( जजनु ) उत्पन्न करते हैं ( च ) और ( राजसे ) प्रकाश के लिए ( क्रत्वे ) क्रियाओ के साधन के लिये ( वरे ) श्रेष्ठ ( स्थेमनि ) स्थिर स्थान मे ( आमुरीम्) सामने मारने वाली ( उत ) तथा ( उग्र ) स्वभाव से तेज ( ओजिष्ठ ) अत्यन्त बलवान् ( तरसं ) चपल ( तरस्विनम् ) वेग युक्त ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य लोग एकत्र होकर श्रेष्ठ क्रियाओ की सिद्धि के लिए स्थिर स्थान मे सारे सग्रामो को नीचा दिखाने वाली, सब तरफ से मारने वाली स्वभाव से तेज, बलवान् चपल तथा वेगवाली विद्युत् को तीव्र करते हैं और प्रकाश के लिए उत्पन्न करते हैं ॥१॥

९३१—रेभ । इन्द्र । उपरिष्टात् बृहती ।

३१२ ३१२ ३१ २र ३२

**नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।**

३१ २ ३२उ ३१२ ३२३१ २र

**सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥२॥**

पदार्थ—(नेमिं) दुष्टो के लिए वज्ररूप (नमन्ति) नमस्कार करते हैं (चक्षसा) स्तुति से ( मेष ) वेदो का उपदेश करनेवाले ( विप्रा ) ज्ञानीजन ( अभिस्वरे ) स्तुतिमय यज्ञ मे ( सुदीतय ) तेजस्वी ( व ) तुम लोग ( अद्रुह ) द्रोहरहित ( अपि ) भी ( कर्णे ) कान में ( तरस्विनः ) कर्तव्यपालन मे तत्पर ( सं ) सम्यक ( ऋक्वभि ) मन्त्रों से ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मेधावी जन स्तुति के द्वारा उपासनारूप यज्ञ मे दुष्टों के लिए वज्ररूप तथा वेदो का उपदेश करनेवाले परमेश्वर को नमस्कार करते हैं । तेजस्वी किसी से द्रोह न करनेवाले और कर्तव्यपालन मे तत्पर तुम लोग भी मन्त्रों से उसकी स्तुति कर्णगोचर करो ॥२॥

९३२—रेभः । इन्द्र । उपरिष्टाद् बृहती ।

१२ ३१२ ३ २३१२ ३१२

**समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।**

२र ३ १२३२३१२३१ २३२३१२

**स्वर्पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥३॥**

पदार्थ—( सम ) सम्यक ( उ ) निश्चित ( रेभास ) उपासक ( अस्वरन् ) स्तुति करते हैं ( इन्द्र ) परमेश्वर की ( सोमस्य ) शरीर और आत्मबल का ( पीतये ) रक्षा के लिए ( स्वर्पति ) सब सुखों का स्वामी ( यत् ई ) जिस कारण से ( वृधे ) हमारी उन्नति के लिए ( धृतव्रत ) नियमों का धारण करनेवाला ( हि ) निश्चय ही ( ओजसा ) शक्ति से ( सम् ) सम्यक प्रकार से ( ऊतिभिः ) रक्षाओ से ॥३॥

भावार्थ—क्योंकि वह सारे सुखो का स्वामी, हमारी उन्नति के लिए सब नियमो का धारण करने वाला तथा सारी शक्ति और रक्षाओं से युक्त है, इसलिए उपासक लोग शरीर और आत्मबल की रक्षा के लिये उस परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं ॥३॥

९३३—पुरुहन्मा । इन्द्र । प्रगाथः ।

१ २र ३ २उ ३ १२३१२

**यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।**

१ २ ३१२र ३२ ३ १२३२ ३२

**विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥**

पदार्थ—( यः ) जो ( राजा ) राजा है ( चर्षणीनां ) मनुष्यों का ( याता ) चढ़ाई करने वाला ( रथेभि ) रथों से ( अध्रिगुः ) स्वतन्त्र ( विश्वासां ) सारे ( तरुता ) पार करने वाला ( पृतनानां ) संग्रामों को ( ज्येष्ठं ) श्रेष्ठ को ( यः ) जो ( वृत्रहा ) विघ्नों का हनन करने वाला ( गृणे ) स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—स्वतंत्र जो शासक मनुष्यों का राजा, रथ आदि यानों से शत्रु पर चढ़ाई करने वाला, सारे संग्रामों को पार करने वाला तथा विघ्नों का संहारकर्ता है उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

९३४—पुरुहन्मा । इन्द्र । प्रगाथः ।

२३ १२ ३ १२३१२ ३१ २३१२

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।

१२३२३ १२ ३२३२ ३१ २र

हस्तेन वज्रः प्रतिधायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) शासन करने वाले ( तं ) उसको ( शुम्भ ) सुशोभित कर ( पुरुहन्मन् ) हे बहुतों के संहार करने वाले सेनापति ( अवसे ) रक्षा के लिए ( यस्य ) जिसका ( द्विता ) दो प्रकार से ( विधर्तरि ) अनेक प्रकार से धारण करने वाले ब्रह्माण्ड में ( हस्तेन ) हाथ से ( वज्रः ) शस्त्र को ( प्रतिधायि ) धारण किया है ( दर्शतः ) दर्शन के योग्य ( महान् ) बड़ा (देवः) उत्तम गुण वाला ( न ) समान ( सूर्यः ) सूर्य के ॥२॥

भावार्थ—हे बहुतों का संहार करने वाले सेनापते ! तू उस इन्द्र को सुशोभित कर जिसने प्रजा की रक्षा के लिए हस्त से शस्त्र धारण किया है तथा संसार में दर्शनीय, महान् देव सूर्य के समान रक्षा और तेज को धारण कर वर्तमान है ॥२॥

卐 पञ्चम खण्ड समाप्त 卐

९३५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१२ १२ ३२३१ २र ३क २र ३२ ३१२ ३१२

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( प्रिया ) प्रिय ( दिवः ) विज्ञानवान् के लिए ( कविः ) वेदरूपी काव्य का करने वाला ( वयांसि ) आयुओं को ( नप्त्योः ) द्युलोक और पृथिवी लोक की ( हितः ) हितकारी ( स्वानैः ) वेद के शब्दों द्वारा ( याति ) ज्ञान कराता है ( कविक्रतुः ) महान् ज्ञानी ॥१॥

भावार्थ—संसार का कल्याण करने वाला महान् ज्ञानी तथा वेदरूपी काव्य का कर्त्ता परमेश्वर विज्ञानी पुरुष को द्यु और पृथिवी लोक में स्थित सभी पदार्थों की आयुओं का वेदों के द्वारा ज्ञान कराता है ॥१॥

९३६—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

२ ३२३२३१२ ३२३१२ ३२ ३१ २ ३१२

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥२॥

पदार्थ—( स ) वह ( सूनुः ) सृष्टिकर्त्ता ( मातरा ) रक्षा करने वाले ( शुचिः ) शुद्धस्वरूप ( जातः ) उत्पन्न मात्र की ( जाते ) उत्पन्न हुए (अरोचयत्) प्रकाशित करता है ( महान् ) सबसे बड़ा ( मही ) द्यु और पृथिवी लोकों को ( ऋतावृधा ) सत्य नियम से बढ़ने वाले ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता शुद्धस्वरूप महान् परमेश्वर उत्पन्नमात्र की माता तथा स्वयं उत्पन्न और सत्य नियम पर बढ़ने वाले और द्यु और पृथिवी लोक को प्रकाशित करता है ॥२॥

[९३७—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

२३१२३१२३१२३१२३१२ ३क २र ३१२

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( प्र ) उत्तम (क्षयाय) आश्रय चाहने वाले (पन्यसे) व्यवहार करने वाले ( जनाय ) जन के लिए ( जुष्टः ) भक्ति द्वारा सेवित ( अद्रुहः ) द्रोह न करने वाला ( वीति ) ज्ञानप्राप्ति के लिए (अर्ष) प्राप्त होता है (पनिष्टये) स्तुति की सिद्धि के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रीतिपूर्वक सेवित तू निवास और सम्पूर्ण व्यवहार की सिद्धि चाहने वाले तथा द्रोहरहित मनुष्य को स्तुति और ज्ञान की सिद्धि के लिए प्राप्त होता है ॥१॥

९३८—शक्ति । सोम । ककुप् ।

२ ३क १२३१२ ३१२ ३१२ ३ १२३१२

त्वं ह्यङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥१॥

पदार्थ—( त्वं ) तू (हि) निश्चय ( अङ्ग ) शीघ्र ( दैव्य ) हे दिव्य गुण सम्पन्न (पवमान) हे पवित्रात्मा ( जनिमानि ) अनेक जन्मों को ( द्युमत्तमः ) तेजस्वी ( अमृतत्वाय ) मोक्ष की प्राप्ति के लिए ( घोषयन् ) बतलाता हुआ ॥१॥

भावार्थ—हे दिव्य गुणसम्पन्न पवित्रात्मा योगिन् ! तेजस्वी तू अपने पूर्व जन्मों को योग द्वारा प्रकट करता हुआ शीघ्र ही मोक्षप्राप्ति के लिए समर्थ होता है ॥१॥

९३९—ऊरु । सोम । सतोबृहती ।

२ ३ १२ ३ १ २ ३२उ ३ १२ ३२

येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

३१२ ३२३१२ ३१२३२३२३ १२

देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२॥

पदार्थ—( येन ) जिस [परमेश्वर] से ( नवग्वा ) नवीन किरणों वाला ( दध्यङ् ) सूर्य ( अपोर्णुते ) अपने प्रकाश का विस्तार करता है ( येन ) जिससे ( विप्रासः ) मेधावी जन ( आपिरे ) बल प्राप्त करते हैं ( देवानां ) ज्ञानियों के ( सुम्ने ) सुख में स्थित ( अमृतस्य ) मोक्ष का ( चारुणः ) उत्तम ( येन ) जिससे ( श्रवांसि ) यश ( आशत ) प्राप्त करते हैं । वह हमारी रक्षा करे ॥२॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर की शक्ति से नवीन किरणों वाला सूर्य अपने प्रकाश का विस्तार करता है तथा जिसकी कृपा से दिव्य सुख में विद्यमान ज्ञानी लोग शक्ति का संचय करते हैं तथा जिसकी दया से उत्तम मोक्ष का यश प्राप्त करते हैं वह परमेश्वर हमारी रक्षा करे ॥२॥

९४०—अग्नि । सोम । उष्णिक ।

१२ ३२ ३२उ ३२३ १ २

सोम पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।

१२३१ २र ३१२

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थ—( सोम ) परमेश्वर ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( ऊर्मिणा ) प्रकाश से (अव्यं) प्रकृति से उत्पन्न (वारं) आवरण [अज्ञानान्धकार] को (वि धावति) शुद्ध कर देता है (अग्रे ) सृष्टि के आदि में ( वाचः ) वेदवाणी का (पवमानः) शुद्धस्वरूप (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ है ॥१॥

भावार्थ—सबको पवित्र करने वाला शुद्धस्वरूप परमेश्वर सृष्टि के आदि में वेदवाणी का उपदेश करता हुआ ज्ञान के प्रकाश से प्रकृति से उत्पन्न हुए आवरण—अज्ञान को धो देता है ॥१॥

९४१—अग्नि । सोम । उष्णिक् ।

३ १२ ३२३२३ १२३१२

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् ।

३ १२३२३२३ १२

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥२॥

पदार्थ—( धीभिः ) ज्ञान तथा कर्म के द्वारा ( मृजन्ति ) अपने को पवित्र करते हैं ( वाजिनं ) ज्ञानवान् ( वने ) कारणरूप [परमाणुओं के] वन में (क्रीळन्तं) क्रीडा करने वाले (अत्यविम्) प्रकृति से परे ( अभि ) उद्देश्य में रखकर ( त्रिपृष्ठं ) तीन प्रकारों [उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय] वाले नाना लोकों वाले (मतयः) मेधावी जन ( समस्वरन् ) सम्यक प्रकार से स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—मेधावीजन ज्ञानवान् कारण वन में क्रीडा करने वाले प्रकृति से परे तथा उत्पत्ति स्थिति प्रलय से युक्त नाना लोकों के स्वामी परमेश्वर की स्तुति करते हुए अपने को पवित्र करते हैं ॥२॥

९४२—अग्नि । सोम । उष्णिक ।

१२ ३१२३२ ३ २उ ३ १ २३२

असर्जि कलशां अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।

३ १ २र ३१२

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥३॥

पदार्थ—(असर्जि ) उत्पन्न करता है [रचता है] (कलशान्) विभूति वालों का ( अभि ) सब प्रकार से ( मीढ्वान् ) बलवान् ( सप्तिः ) वायु के ( न ) समान ( वाजयुः ) अन्न आदि का दाता ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( वाचं ) वाणी को ( जनयन् ) उत्पन्न कराता हुआ ( असिष्यदत् ) आनन्द का स्रोत बहाता है ॥३॥

भावार्थ—वायु के समान बलवान् अन्न आदि का दाता तथा सबको पवित्र करने वाला परमेश्वर वेदवाणी को उत्पन्न करता हुआ विभूति वाले पदार्थों को रचता और आनन्द की धारा बहाता है ॥३॥

९४३—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२३१ २३२३१ २३१ २ ३२

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

३ १ २र ३१ २र ३१२ ३१ २र

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥१॥

पदार्थ—(सोम ) आत्मा ( पवते ) गति करता है ( जनिता ) प्रकाशक ( मतीनां ) अनेक बुद्धियों का अथवा प्रकाश करनेवाली इन्द्रियों का ( जनिता ) प्रकाशक ( दिवः ) दिव्य गुणयुक्त या विषयों का प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का ( पृथिव्याः ) बाह्य ज्ञान का विस्तार करनेवाली या विस्तृत विषयोंवाली इन्द्रियों का ( जनिता ) प्रकाशक ( अग्नेः ) गतिकर्मवाली इन्द्रियों का ( जनिता ) प्रकाशक ( सूर्यस्य ) विषयों में प्रेरणा करनेवाली या प्रेरित होनेवाली ( जनिता ) प्रकाशक ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यशाली इन्द्रियों का ( जनिता ) प्रकाशक ( विष्णोः ) विषयों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों का ॥१॥

भावार्थ—विषय ज्ञान का प्रकाश करनेवाली, पदार्थों की पोषक, बाह्यज्ञान का विस्तार करनेवाली, गतिशील, विषयों में प्रेरित होनेवाली ऐश्वर्यशाली तथा विषयों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों का प्रकाशक जीवात्मा गति प्रदान करता है ॥१॥

९४४—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २३१२ ३ १ २३२उ ३१२ ३२३१२

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।

३ १ २र ३ १२३१२३ १२ ३२३१२ ३१२

श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥२॥

पदार्थ—( ब्रह्मा ) महान् ज्ञानी या बड़ा है ( देवानां ) समस्त दिव्य पदार्थों में ( पदवीः ) पथ प्रदर्शक ( कवीनां ) मेधावियों का ( ऋषिः ) वेद के अर्थ का ज्ञाता ( विप्राणां ) वेद-ज्ञाताओं में ( महिषः ) महान् ( मृगाणां ) अन्वेषण कर्ताओं में ( श्येन ) महान् ज्ञाता ( गृध्राणां ) ज्ञान गुणवालों में ( स्वधितिः ) पोषण करनेवाला ( वनानां ) भक्ति करनेवालों का ( सोमः ) परमेश्वर ( पवित्रम् ) समस्त सूर्य अग्नि आदि पदार्थों से ( अत्येति ) परे है ( रेभन् ) स्तुति किया जाता हुआ ॥२॥

भावार्थ—सकल दिव्य पदार्थों का महान् ज्ञानी बुद्धिमानों का पथप्रदर्शक वेदज्ञाताओं का ऋषि खोज करनेवालों मे सबसे महान्, ज्ञान गुण वालों मे महान् ज्ञाता तथा भक्तों का पालक स्तुति योग्य परमेश्वर सूर्य आदि समस्त पदार्थों से परे है ॥२॥

९४५—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २   ३ २ ३ २उ   ३ २ ३   २ ३ १ २   ३ २

**प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान् पवमानो मनीषाः ।**

३ १   २र ३ २ ३ १ २ ३   १ २   ३ १   २र ३ २

**अन्त पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥३॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( अवीविपत् ) प्रेरित करता है ( वाचः ) वाणियों को ( ऊर्मि ) लहर के ( न ) समान ( सिन्धु ) समुद्र ( गिरःस्तोमान् ) स्तुति समूहों को ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( मनीषा ) बुद्धियों को ( अन्त ) अन्तर्यामी रूप से ( पश्यन् ) साक्षी ( वृजना ) चलने फिरने के व्यवहार के योग्य ( इमा ) इन ( अवराणि ) पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों का ( आतिष्ठति ) अधिष्ठाता हो रहा है ( वृषभ ) काम नाओं को पूर्ण करनेवाला ( गोषु ) सूर्य आदि सकल पदार्थों को ( जानन् ) जानता हुआ ॥३॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप सारी कामनाओं को सफल करनेवाला परमेश्वर लहर को समुद्र के समान वाणियों स्तुति-समूह तथा ज्ञानों को प्रेरित करता है तथा अन्तर्यामी रूप से सूर्य आदि लोकों का साक्षी वह इन व्यवहार के साधक पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों का अधिष्ठाता हो रहा है ॥३॥

卐 षष्ठ खण्ड समाप्त 卐

९४६—प्रयोगोऽग्निराद्यश्च । अग्नि । गायत्री ।

३ १   २ ३ १ ३   ३ १ २   ३ १ २   २ ३ २ ३ १ २

**अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥**

पदार्थ—( अग्निं ) आचार्य के समीप ( वः ) तुम लोग ( वृधन्तम् ) बढ़ाने वाले ( अध्वराणां ) अध्ययन अध्यापन रूप यज्ञों के ( पुरूतमम् ) महान् विद्वान् ( अच्छा ) अच्छी तरह से ( नप्त्रे ) पुत्र-पौत्र आदि को ( सहस्वते ) वीर और विद्वान् बनाने के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपने पुत्र, पौत्र आदि को बलवान् विद्वान् बनाने के लिए शिक्षा यज्ञ की वृद्धि करनेवाले महान् विद्वान् आचार्य की सेवा में उपस्थित होओ ॥१॥

९४७—प्रयोगोऽग्निराद्यश्च । अग्नि । गायत्री ।

३ १   २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ २उ   ३ १ २

**अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥२॥**

पदार्थ—( अयं ) यह ( यथा ) जिस प्रकार ( नः ) हमारे ( आ भुवत् ) कर्त्ता होता है ( त्वष्टा ) बढ़ई के ( रूपा ) रूपों का ( इव ) समान ( तक्ष्या ) काष्ठों के ( अस्य ) इसके ( क्रत्वा ) ज्ञान से ( यशस्वतः ) यशस्वी होते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार काष्ठों के विविध रूपों को बढ़ई बनाता है उसी प्रकार परमेश्वर हमारे नाना रूपों को बनाता है। उसी के ज्ञान से हम यशस्वी होते हैं ॥२॥

९४८—प्रयोगोऽग्निराद्यश्च । अग्नि । गायत्री ।

३ १   २र ३ २उ   ३ २ ३ १ २   २उ   ३ १ २

**अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥३॥**

पदार्थ—( अयं ) यह ( विश्वा ) सारी ( अभि ) सब प्रकार से ( श्रियः ) संपदाओं का ( अग्नि ) परमेश्वर ( देवेषु ) उत्तम गुणवाले मनुष्यों मे ( पत्यते ) सम्पादन करता है ( आ ) सब प्रकार से ( वाजैः ) भोग्य पदार्थों के साथ ( उप ) समीप ( नः ) हमे ( गमत् ) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर उत्तम गुणवालों को सारी संपदाएँ प्रदान करता है। वह हमें सकल भोग्य पदार्थों के साथ प्राप्त हो ॥३॥

९४९—गोतम । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

३ १ २   ३ १ २ ३   २ ३ १ २ ३ १ २

**इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।**

३ १ २   ३क २र   ३   १ २   १ २ ३   १ २

**शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥१॥**

पदार्थ—( इमम् ) इस ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( सुतं ) पुत्ररूप जीव की ( पिब ) रक्षा कर ( ज्येष्ठं ) श्रेष्ठ ( अमर्त्यं ) अमर ( मदम् ) आनन्द के भोक्ता ( शुक्रस्य ) शुद्ध ( त्वा ) तुझे ( अभि ) लक्ष्य कर ( अक्षरन् ) प्राप्त होती हैं ( धारा ) वाणियाँ ( ऋतस्य ) यज्ञ के ( सादने ) स्थान में ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू श्रेष्ठ, अमर तथा सुख का उपभोग करनेवाले इस पुत्ररूप जीव की रक्षा कर। पवित्र यज्ञ के स्थान में वेदवाणियाँ तेरे ही उद्देश्य से की जाती हैं ॥१॥

९५०—गोतम । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२ ३   २ ३ १ २ ३ २ ३   १ २ ३ १ २

**नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।**

२ १   १ २ ३   २ ३ २   ३   १ २

**नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥२॥**

पदार्थ—( नकि ) न कोई ( त्वत् ) तुझ से बढ़कर ( रथीतरः ) महारथी ( हरी ) वायु और अग्नि को ( यत् ) जिस कारण ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( यच्छसे ) नियम में रखता है ( नकि ) कोई नहीं ( त्वा अनु ) तेरे समान ( मज्मना ) बल में ( नकिः ) कोई नहीं ( स्वश्व ) हे व्यापक ( आनशे ) प्राप्त कर सकता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि तू वायु और अग्नि को नियम में रखता है, इस कारण तुझ से बढ़कर कोई महारथी नहीं। तेरे समान भी कोई नहीं। हे व्यापक प्रभो ! तुझे शक्ति मे भी कोई नहीं पा सकता ॥२॥

९५१—प्रयोगोऽग्निराद्यश्च । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २   ३ १ २   १ २

**इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।**

३ १ २   ३ १ २ ३   १ २   ३ १ २

**सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥३॥**

पदार्थ—( इन्द्राय ) परमेश्वर की ( नूनम् ) निश्चित ही ( अर्चत ) पूजा करो ( उक्थानि ) स्तोत्रों का ( च ) और ( ब्रवीतन ) उच्चारण करो ( सुताः ) पुत्र स्वरूप ( अमत्सु ) आनन्द लाभ करते हैं ( इन्दव ) विद्वान् जन ( ज्येष्ठ ) श्रेष्ठ को ( नमस्यता ) नमस्कार करो ( सह ) सबसे अधिक बलवान् ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग निश्चित ही परमेश्वर की पूजा करो और उसके लिए स्तोत्रों का उच्चारण करो। पुत्रस्वरूप विद्वान् जन जिसमें आनन्द लाभ करते हैं। सबसे श्रेष्ठ तथा उस प्रभु को नमस्कार करो ॥३॥

९५२—ऋषिर्देवता छन्दश्च विचारणीयानि ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २

**इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।**

१ २ ३ १ २ ३ १   २र   ३ २उ   ३ १ २

**पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( जुषस्व ) स्वीकार कर ( प्र ) उत्तम ( वहा ) प्राप्त करा ( याहि ) प्राप्त हो ( शूर ) हे सबसे अधिक बलवान् ( हरिह ) हे अज्ञान नाशक ( पिबा ) रक्षा कर ( सुतस्य ) उत्पन्न ( मतिः ) मेधावी के ( न ) समान ( मधो ) विज्ञान का ( चकानः ) तृप्त करनेवाला होता है ( चारु ) शोभन ( मदाय ) आनन्द के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे सबसे बढ़कर बलवान् तथा अज्ञाननाशक परमेश्वर ! आनन्द से तृप्ति करनेवाला तथा शोभन तू हमारी प्रार्थना स्वीकार कर हमे ज्ञान दे और प्राप्त हो। मेधावी पुरुष के समान आनन्द की प्राप्ति के लिए हमारे उत्पन्न हुए ज्ञान की रक्षा कर ॥१॥

९५३—ऋषिर्देवतादयो विचारणीया ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २

**इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।**

३ २ ३ २ ३   २क   १ २ ३ १ २   ३ १ २

**अस्य सुतस्य स्वाऽ३र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥२॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( जठरं ) उत्पन्न जगत् को ( नव्यं न ) नये के समान ( पृणस्व ) व्यापकता से पूर्ण करता है ( मधोः ) उपासना की ( दिवः न ) विद्युत् के समान ( अस्य ) इस ( सुतस्य ) पुत्ररूप भक्त ( स्वः न ) सूर्य के समान ( उप ) समीप ( त्वा ) तेरे ( मदा ) हर्षदायक ( सुवाच ) मनोहर स्तुतियाँ ( अस्थु ) उपस्थित हों ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्य के समान तू अपनी व्यापकता से उत्पन्न जगत् को नये की भाँति पूर्ण करता है। इस पुत्ररूप भक्त की उपासना सम्बन्धी हर्षकारी स्तुतियाँ विद्युत् के समान तेरी सेवा में उपस्थित हों ॥२॥

९५४—ऋषिच्छन्दो देवतादयो विचारणीयाः ।

१ २   ३ २   ३ २उ   ३ १ २ ३ २उ ३ २

**इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।**

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३   १ २

**बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥३॥**

पदार्थ—( इन्द्रः ) शासन करनेवाला ( वृत्रहा ) हिंसकों का नाश करने वाला ( दिवो न ) सूर्य के समान ( वधम् ) नाश करता है ( वृत्रं ) मेघ को ( यतिः न ) संन्यासी के समान ( बिभेद ) छिन्नभिन्न करता है ( बलं ) इन्द्रियों के बल को ( भृगुः न ) वीतराग के समान ( शत्रून् ) काम क्रोध आदि शत्रुओं को ( ससाहे ) तिरस्कार करता है ( मदे ) आनन्द में ( सोमस्य ) परमेश्वर के ॥३॥

भावार्थ—हिंसकों का नाश करनेवाला राजा परमेश्वर के आनन्द में विद्यमान होकर मेघ को सूर्य के समान, इन्द्रिय-बल को सन्यासी के समान तथा काम-क्रोधादि शत्रुओं को वीतराग के समान अपने शत्रुओं का तिरस्कार करता है ॥३॥

सप्तमः खण्डः समाप्तः

卐 पंचमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

# षष्ठोऽध्यायः

९५५—जय ऋषिगणा । सोम । जगती ।

१ १ २    ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।**

२ ३ १ २    ३ २उ   ३ २ ३ १ २ ३ १   २र

**त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥**

पदार्थ—( गोवित् ) गाय आदि पशुओं का प्राप्त करानेवाला ( पवस्व ) पवित्र कर ( वसुवित् ) धन का दाता ( हिरण्यवित् ) सुवर्ण या प्रकाश का दाता ( रेतोधा ) जल आदि का धारण करनेवाला ( इन्दो ) हे परम ऐश्वर्यवाले ( भुवनेषु ) लोकों में ( अर्पितः ) व्यापक ( त्वं ) तू ( सुवीरः ) अत्यन्त बलवान् ( असि ) है ( सोम ) हे परमेश्वर ( विश्ववित् ) सबका साक्षी ( तं ) उस ( त्वा ) तेरी ( नरः ) मनुष्य ( उप ) समीप ( गिरा ) स्तुति से ( इमे ) ये ( आसते ) उपस्थित होते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् ! परमेश्वर तू गौ आदि पशुओं, धन तथा सुवर्ण आदि का दाता है । जल आदि द्रव्यों का धारण करनेवाला तू लोकों में व्यापक है । तू ही सब से बढ़कर बलवान् और विश्व का साक्षी है । ये मनुष्य स्तुति के द्वारा तेरी शरण में उपस्थित होते हैं । तू उन तथा हम सबको पवित्र कर ॥१॥

९५६—जय ऋषिगणा । सोम । जगती ।

२ ३ १ २    ३ २ ३ १,२    ३ १   २र

**त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।**

१ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १   २ ३ १ २   ३ १ २

**स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥२॥**

पदार्थ—( त्वं ) तू ( नृचक्षा ) मनुष्यमात्र का साक्षी ( असि ) है ( सोम ) हे परमेश्वर ( विश्वतः ) सब प्रकार से ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( वृषभ ) हे कामनाओं की वर्षा करनेवाले ( ता ) उन [प्रजाओं] में ( विधावसि ) व्यापक हो रहा है ( सः ) वह ( नः ) हमें ( पवस्व ) पवित्र कर ( वसुमत् ) वास करने वाला ( हिरण्यवत् ) सुवर्ण आदि सम्पदाओं का स्वामी ( वयं ) हम ( स्याम ) होवें ( भुवनेषु ) लोकों में ( जीवसे ) जीने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा सकल कामनाओं की वर्षा करने वाले परमेश्वर ! तू मनुष्यमात्र का साक्षी है । तू सारी प्रजाओं में व्यापक हो रहा है । तू ही सबको शरण देनेवाला तथा सारी सम्पदाओं का स्वामी है । हमें पवित्र कर । तेरी कृपा से हम संसार में जीने योग्य हों ॥२॥

९५७—जय ऋषिगणा । सोम । जगती ।

३ २ ३ १   २र ३ १ २    ३ १ २    ३ १ २ ३क २र

**ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।**

१ २    ३ १ २   ३ २उ ३ १ २ ३ १   २     ३ १ २

**तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥**

पदार्थ—( ईशानः ) सबका स्वामी ( इमा ) इन ( भुवनानि ) लोकों में ( ईयसे ) व्यापक हो रहा है ( युजानः ) युक्त करता हुआ ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यवान् ( हरितः ) विविध रंगों वाले ( सुपर्ण्यः ) सूर्य आदि की किरणों को ( ताः ) वे ( ते ) तेरी ( क्षरन्तु ) वर्षा करें ( मधुमत् ) मधुर गुणवाला ( घृतं ) घृत के समान पुष्टिकारक ( पयः ) जल ( तव ) तेरे ( व्रते ) नियम में ( सोम ) हे परमेश्वर ( तिष्ठन्तु ) स्थिर रहें ( कृष्टयः ) मनुष्य ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू सबका स्वामी है । तू ही भांति भांति के रंगवाली सूर्य और चन्द्र आदि की किरणों को जोड़ता हुआ इन लोकों में व्यापक हो रहा है । तेरी शक्ति से वे [किरणें] मधुर गुणवाले और घी के समान पुष्टिकारक जल की वर्षा करती हैं । सारे मनुष्य सदा तेरे नियम में स्थिर रहें ॥३॥

९५८—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २    ३ २ ३ १ २    १ २   ३ २ ३ १ २

**पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥१॥**

पदार्थ—( पवमानस्य ) शुद्धस्वरूप ( विश्ववित् ) हे सर्वज्ञ ( प्र ) उत्तम ( ते ) तेरी ( सर्गाः ) सृष्टियें ( असृक्षत ) उत्पन्न की जाती हैं ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( इव ) समान ( न ) इस समय भी ( रश्मयः ) किरणों के ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तुझ शुद्धस्वरूप की सृष्टियां सूर्य की किरणों के समान अब भी रची जाती हैं ॥१॥

९५९—कश्यप । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २    ३ १ २

**केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥२॥**

पदार्थ—( केतुं ) सृष्टि-रचनारूप कर्म को ( कृण्वन् ) करता हुआ ( दिवस्परि ) द्युलोक से परे ( विश्वा ) अन्य सारे ( रूपा ) रूपों में ( अभ्यर्षसि ) व्यापक हो रहा है ( समुद्रः ) सब प्राणियों को सुख देनेवाला ( सोम ) हे परमेश्वर ( पिन्वसे ) सब का पोषण करता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्राणिमात्र को आनन्द देनेवाला तू सृष्टि-रचना रूप कर्म को करता हुआ द्युलोक से भी परे तथा अन्य सब रूपों में व्यापक होता हुआ पोषण कर रहा है ॥२॥

९६०—कश्यप । सोम । गायत्री ।

३ १ २र    ३ १ २ ३ १ २    १ २ ३ १    २र

**जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । क्रन्दं देवो न सूर्यः ॥३॥**

पदार्थ—( जज्ञानः ) प्रकट होते हुए ( वाचं ) वेदवाणी को ( इष्यसि ) प्रेरित करता है ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( विधर्मणि ) विशेष धर्मयुक्त अन्तःकरण में ( क्रन्दं ) अव्यक्त शब्द करता हुआ ( देवः ) देव ( न ) समान ( सूर्यः ) सूर्य ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! उदय को प्राप्त सूर्य देव के समान तेजस्वी तू विशेष धर्मयुक्त अन्तःकरण में अव्यक्त रूप से वेदवाणी की प्रेरणा करता है ॥३॥

९६१—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१   २र    ३ १ २   ३ १ २    ३   २ ३ १ २

**प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥१॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सोमासः ) विद्वान् जन ( अधन्विषुः ) ज्ञान प्राप्त करते हैं ( पवमानासः ) पवित्रात्मा ( इन्दवः ) योग के ऐश्वर्यवाले ( श्रीणानाः ) आश्रय लेते हुए ( अप्सु ) परमेश्वर में ( वृञ्जते ) मुक्त हो जाते हैं ॥१॥

भावार्थ—पवित्रात्मा योगरूप ऐश्वर्यवाले विद्वान् जन ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा परमेश्वर में आश्रय लेते हुए मुक्त हो जाते हैं ॥१॥

९६२—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३ १   २र    ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २   ३   ३ २र

**अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥२॥**

पदार्थ—( अभि ) भली भांति ( गावः ) गमनशील ( अधन्विषुः ) ज्ञान प्राप्त करते हैं ( आपो न ) जल के समान ( प्रवता ) नीचे की तरफ ( यतीः ) जानेवाले ( पुनानाः ) पवित्रात्मा ( इन्द्रम् ) परमेश्वर को ( आशत ) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—गमनशील ज्ञानी पुरुष नीचे की तरफ जानेवाले जल के समान ज्ञान की प्राप्ति के लिए वेग से अभिमुख होते हैं और पवित्र हुए परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥२॥

९६३—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १२ १ २ ३ १ २र

**प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादन । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( पवमान ) हे पवित्रात्मन् ( धन्वसि ) प्राप्त करता है ( सोम ) हे विद्वान् पुरुष ( इन्द्राय ) परमेश्वर को ( मादनः ) स्तुति करनेवाला ( नृभि ) मनुष्यों के द्वारा ( यत ) संयमी ( विनीयसे ) विनयपूर्वक प्राप्त किया जाता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष ! तुझ स्तुति करनेवाले और सयमी को मनुष्य विनयपूर्वक प्राप्त करते हैं । तू परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥३॥

९६४—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

**इन्दो यदद्रिभि सुत पवित्र परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥**

पदार्थ—( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( यत ) जब ( अद्रिभि ) आदरणीय पुरुषों के द्वारा ( सुत ) संसार मे उत्पन्न हुआ ( पवित्र ) पवित्र आत्मा [ विद्वान् ] को ( परिदीयसे ) दिया जाता है ( अरं ) पर्याप्त होता है ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर के ( धाम्ने ) मोक्ष धाम के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! ससार मे उत्पन्न हुआ तू जब आदरणीय पुरुषों के द्वारा पवित्रात्मा विद्वान् की शरण में दिया जाता है तो परमेश्वर के मोक्षधाम मे जाने के लिए समर्थ होता है ॥४॥

९६५—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

**त्व सोम नृमादन पवस्व चर्षणीधृति । सस्निर्यो अनुमाद्य ॥५॥**

पदार्थ—( त्व ) तू (सोम) हे परमेश्वर (नृमादन) मनुष्यमात्र को आनन्दित करनेवाला ( पवस्व ) पवित्र कर ( चर्षणीधृति ) मनुष्यमात्र का धारण करनेवाला ( सस्नि ) शुद्धस्वरूप ( य ) जो ( अनुमाद्य ) स्तुति के योग्य है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू मनुष्य मात्र को आनन्दित तथा धारण करने वाला शुद्धस्वरूप तथा स्तुति के योग्य है । तू हमें पवित्र कर ॥५॥

९६६—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

**पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्य । शुचि पावको अद्भुत ॥६॥**

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( वृत्रहन्तम ) हे अज्ञानों का अत्यन्त नाश करनेवाला ( उक्थेभि ) स्तुतियों से ( अनुमाद्य ) स्तुति के योग्य ( शुचि ) शुद्धस्वरूप ( पावक ) पवित्र करने वाला ( अद्भुत ) अद्वितीय ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अज्ञानो का अत्यन्त नाश करने वाला स्तोत्रो से स्तुति के योग्य शुद्धस्वरूप, पवित्र करने वाला तथा अद्वितीय तू हमे पवित्र कर ॥६॥

९६७—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

**शुचि पावक उच्यते सोम सुत स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥७॥**

पदार्थ—( शुचि ) शुद्धस्वरूप (पावक) सबका पवित्र करने वाला (उच्यते) कहा जाता है ( सोम ) परमेश्वर ( सुत ) सृष्टिकर्त्ता ( स ) वह ( मधुमान् ) ज्ञानवान् ( देवावी ) सारे दिव्य पदार्थों की रक्षा करने वाला ( अघशंसहा ) पाप प्रवृत्ति वालो का नाशक ॥७॥

भावार्थ—वह परमेश्वर शुद्धस्वरूप, सबको पवित्र करने वाला सृष्टिकर्त्ता, विज्ञानवान्, सकल दिव्य शक्तियो का रक्षक तथा पापियो का सहारक कहा जाता है ॥७॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

९६८—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

**प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृध ॥१॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( कवि ) मेधावी पुरुष ( देववीतय ) उत्तम सुखो की प्राप्ति के लिए ( अव्या ) प्रकृति के (वारेभि ) आवरणों से ( अव्यत ) युक्त होता है ( साह्वान् ) दबाने वाला ( विश्वा ) सारे ( अभि ) अभिभवपूर्वक ( स्पृध ) हिंसकों को ॥१॥

भावार्थ—शत्रुओ को दबाने वाला तथा बुद्धिमान् पुरुष उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिए प्रकृति के आवरणों से युक्त होता है । वह हिंसकों तथा स्पर्धाकारियो को दबाता है ॥१॥

९६९—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमान सहस्रिणम् ॥२॥**

पदार्थ—( स ) वह ( हि ष्मा ) ही ( जरितृभ्य ) स्तोताओं को ( वाजम् ) अन्न ( गोमन्तम् ) पृथिवी आदि से युक्त ( इन्वति ) देता है ( पवमानः ) शुद्ध-स्वरूप ( सहस्रिणम् ) सहस्रों प्रकार के ॥२॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर स्तुति करने वालों को सहस्रों प्रकार के पृथिवी आदि से युक्त अन्न आदि पदार्थों को देता है ॥२॥

९७०—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

**परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स न सोम श्रवो विद ॥३॥**

पदार्थ—( परि ) सब तरह से ( विश्वानि ) सारे ज्ञानों को ( चेतसा ) चेतना शक्ति से ( मृज्यसे ) पवित्र करता है ( पवसे ) जानता है ( मती ) ज्ञान के द्वारा ( स ) वह ( न ) हमें ( सोम ) हे परमेश्वर (श्रव) कीर्ति तथा धन (विद) प्राप्त करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू समस्त लोकों को अपनी चेतना शक्ति से पवित्र करता है अपने ज्ञान के द्वारा सबको जानता है । तू ही हमें धन और यश देता है ॥३॥

९७१—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३क २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २

**अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुव रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥**

पदार्थ—( अभि अर्ष ) प्राप्त करा (बृहत्) महान् (यश ) यश (मघवद्भ्य) यज्ञ करने वालों का ( ध्रुवम् ) स्थायी ( रयिम् ) धन ( इषम् ) ज्ञान ( स्तोतृभ्य ) स्तुति करने वालों का ( आभर ) पूर्ण कर ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू यज्ञकर्त्ताओ और भक्तों को महान् यश प्रदान कर तथा स्थायी धन और ज्ञान को दे ॥४॥

९७२—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

**त्वं राजेव सुव्रतो गिर सोमाविवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥**

पदार्थ—( त्व ) तू ( राजेव ) राजा के समान ( सुव्रत ) शोभन नियमों वाला ( गिर ) वेदवाणियों में ( सोम ) हे परमेश्वर ( विवेशिथ ) ओत प्रोत है ( पुनान ) पवित्र कारक ( वह्ने ) हे संसार को वहन करने वाले ( अद्भुत ) हे अद्वितीय ॥५॥

भावार्थ—हे ससार के वहन करनेवाले अद्वितीय परमेश्वर ! तू सबको पवित्र करने वाला राजा के समान व्रतधारी है । तू वेदवाणियो में ओत प्रोत है ॥५॥

९७३—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्यो । सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥**

पदार्थ—( स ) वह ( वह्नि ) नेता ( अप्सु ) अन्तरिक्ष मे ( दुष्टरः ) अजेय ( मृज्यमान ) शुद्ध करता हुआ ( गभस्त्यो ) दो प्रकार की किरणो में ( सोमः ) परमेश्वर ( चमूषु ) द्यौ पृथिवी तथा अन्य लोकों में ( सीदति ) स्थित है ॥६॥

भावार्थ—नेता अजेय, शुद्धकारक परमेश्वर अन्तरिक्ष किरण, द्यु तथा पृथिवी आदि लोकों में स्थित है ॥६॥

९७४—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १२ ३ २ ३ १ २

**क्रीडुर्मखो न मंहयु पवित्र सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥**

पदार्थ—( क्रीडु ) मनुष्यादि प्राणियों को क्रीडा कराने वाला ( मखो न ) यज्ञ के समान ( मंहयु ) पूजनीय (पवित्रम् ) पवित्र आत्मा को (सोम) हे परमेश्वर ( गच्छसि ) प्राप्त होता है ( दधत ) धारण करता हुआ ( स्तोत्रे ) भक्त के लिए ( सुवीर्यम् ) आत्मिक बल को ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब प्राणियों को कर्मानुसार नचाने वाला तथा यज्ञ के समान पूजनीय है । तू स्तोता को आत्मिक शक्ति देता हुआ पवित्र आत्मा को प्राप्त होता है ॥७॥

९७५—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**यवयव नो अन्धसा पुष्टपुष्ट परिस्रव । विश्वा च सोम सौभगा ॥१॥**

पदार्थ—( यव यव ) प्रभूत यव ( नः ) हमे ( अन्धसा ) अन्य अन्नों के ( पुष्टं पुष्टं ) अत्यन्त पुष्टिकारक ( परिस्रव ) प्रदान कर ( विश्वा ) सारे ( च ) और ( सोम ) हे परमेश्वर ( सौभगा ) धन धान्य को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें अन्य उत्तम अन्नों के साथ पुष्टिकारक यव आदि सारी सम्पत्तियां प्रदान कर ॥१॥

९७६—अवत्सार । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

**इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धस । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥**

पदार्थ—( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( यथा ) जिस प्रकार (तव) तेरी (स्तवः) स्तुति है ( यथा ) जिस प्रकार ( ते ) तेरा ( जातम् ) उत्पन्न संसार रूप कार्य है ( अन्धसः ) अन्न के सम्बन्ध से ( नि ) निश्चित ( बर्हिषि ) आकाश मे ( प्रिये ) आनन्ददायक ( सद ) स्थित है ॥२॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! जिस प्रकार अन्नादि के उत्पादक होने के कारण तेरी स्तुति की जाती है और जिस प्रकार तेरा उत्पन्न किया हुआ यह सारा संसार है उसी प्रकार तू [अपने उसी स्वरूप से] आनन्द के स्थान आकाश मे सदा वर्तमान है ॥२॥

९७७—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभि ॥३॥

पदार्थ—( उत ) और ( नः ) हमें ( गोवित् ) इन्द्रियाँ प्रदान करने वाला ( अश्ववित् ) प्राणो का दाता ( पवस्व ) पवित्र करता है ( सोम ) हे परमेश्वर ( अन्धसा ) अन्न से (मक्षूतमेभि ) निरन्तर होने वाले ( अहभिः ) दिनो से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इन्द्रिय और प्राणों का दाता तू अन्न तथा निरन्तर होने वाले दिनों से हमे पवित्र करता है ॥३॥

९७८—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित ॥४॥

पदार्थ—( यः ) जो ( जिनाति ) सब पर विजय प्राप्त करता है ( न ) नही ( जीयते ) पराजित होता है ( हन्ति ) नाश करता है ( शत्रु ) न्याय-विरोधियो का ( अभीत्य ) सब प्रकार से प्राप्त होकर ( स ) वह (पवस्व) पवित्र कर ( सहस्रजित् ) हे असंख्यों पर विजय प्राप्त करने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे असख्यो पर विजय प्राप्त करने वाले परमेश्वर ! जो तू सब का विजयी, किन्तु स्वय न पराजित होने वाला तथा अन्यायियो का सब प्रकार से विनाशकर्त्ता है, वह तू हमे पवित्र कर ॥४॥

९७९—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभि. पवित्रमासद ॥१॥

पदार्थ—( या ) जो ( ते ) तेरी ( धारा ) वेदवाणियां ( मधुश्चुत ) ब्रह्मज्ञान का प्रवाह बहाने वाली ( असृग्रम् ) प्रकट होती हैं ( इन्दो ) हे परम ऐश्वर्य वाले ( ऊतय ) रक्षा के लिए ( ताभि ) उनके साथ ( पवित्र ) पवित्र आत्मा मे ( आसद ) विराजमान है ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! ब्रह्मज्ञान का प्रवाह बहाने वाली जो तेरी वेदवाणियां प्रकट होती हैं, उनके साथ रक्षा करने के लिए तू पवित्र आत्मा मे विराजमान है ॥१॥

९८०—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥

पदार्थ—( स ( वह ( अर्ष ) प्राप्त हो ( इन्द्राय ) जीव की (पीतये) रक्षा के लिए ( तिर ) तिरस्कार करता हुआ ( वाराणि ) आवरणो को ( अव्यया ) प्रकृति सम्बन्धी ( सीदन् ) स्थित होता हुआ ( ऋतस्य ) सत्य के (योनिम्) स्थान में ( आ ) सब प्रकार से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सत्य के स्थान मे विराजमान तू प्रकृति के आवरणो को दूर करता हुआ जीव की रक्षा के लिए प्राप्त हो ॥२॥

९८१—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

त्व सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्य । वरिवोविद् घृत पय ॥३॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( सोम ) हे परमेश्वर (परिस्रव) प्रदान कर (स्वादिष्ठ) अत्यन्त मनोहर ( अङ्गिरोभ्यः ) विद्वानों के लिए ( वरिवोवित् ) धनदाता ( घृत ) प्रकाश ( पयः ) ज्ञान को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त मनोहर तथा धनदाता तू ज्ञानियों को प्रकाश और ज्ञान प्रदान कर ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

९८२—अरुण । अग्नि । जगती ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।

१ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥

पदार्थ—( तव ) तेरी ( श्रियः ) विभूतियां ( वर्ष्यस्य ) वर्षाकाल में होने वाली ( इव) समान ( विद्युत ) बिजली के ( अग्ने ) अग्रणी ( चिकित्रे ) जानी जाती हैं ( उषसा ) प्रातःकालों के ( इव ) समान ( एतय ) प्रकाशो का ( यत् ) जिस कारण से (ओषधीः ) यव आदि को ( अभिसृष्टः ) प्रेरित होकर ( वनानि ) वनों को ( च ) और ( परि ) सब प्रकार से ( स्वयं ) अपने आप ( चिनुषे ) समेटता है (अन्नम् ) पृथिवी आदि को ( आसनि ) अपने मुख मे ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि हमारे कर्म से प्रेरित हुआ तू यव आदि अन्न औषधि वन तथा पृथिवी आदि को अपने कारण रूप मुख मे अपने आप समेटता है इसलिए तेरी विभूतियाँ वर्षाकाल की विद्युत् और उषा काल के प्रकाश के समान जान पड़ती हैं ॥१॥

९८३—अरुण । अग्नि । जगती ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।

१ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ ते यतन्ते रथ्योऽ३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षत ॥२॥

पदार्थ—( वातोपजूत ) वायु के समान गति वाला ( इषित ) नित्य इच्छा गुण से युक्त ( वशां ) कान्तिमान् पदार्थों ( अनु ) मे ( तृषु ) शीघ्र ( यत् ) जिस कारण ( अन्ना ) अन्न [प्रकृति का कार्य जगत् आदि] मे (वेविषत्) व्यापक होता हुआ ( वितिष्ठसे ) स्थित है ( आ ) भलीभांति ( ते ) तेरी ( यतन्ते ) प्रयत्नशील हो रही है ( रथ्यः ) रथी के ( यथा ) समान ( पृथक ) अलग अलग ( शर्धांसि ) शक्तियाँ ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( अजरस्य ) अजर ( धक्षत ) दुर्गुणों को भस्म करने वाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि वायु के समान वेगवाला तथा नित्य इच्छा गुणवाला तू कान्तिमान् प्रकृति के सभी कार्य द्रव्यों में व्यापक होकर स्थित है इस लिए सब दुर्गुणों को भस्म करनेवाले तुझ अजर की शक्तियाँ रथी के समान पृथक् पृथक प्रयत्नशील हो रही हैं ॥२॥

९८४—अरुण । अग्नि । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतार परिभूतर मतिम् ।

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

त्वामर्भस्य हविष समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥३॥

पदार्थ—( मेधाकारं ) बुद्धि को उत्पन्न करनेवाले ( विदथस्य ) यज्ञ आदि व्यवहार के ( प्रसाधनम् ) सिद्ध करनेवाले ( अग्निम् ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को ( होतार ) विज्ञान के दाता ( परिभूतर ) सर्वव्यापक (मतिम्) ज्ञानी [ मेधावी ] (त्वां) तुझे (अर्भस्य ) थोड़ी ( हविष ) उपादेय भक्ति के ( समानमित् ) समान ही ( त्वां ) तुझे ( महो ) महान् ( वृणते ) भजित करते हैं ( न ) नहीं ( अन्यं ) दूसरे की ( त्वत् ) तुझसे भिन्न ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भक्त लोग बुद्धि के उत्पन्न करनेवाले यज्ञ के साधक विज्ञानदाता, सर्वव्यापक, ज्ञानी तथा छोटी और बड़ी भक्ति के समान रूप से स्वीकार करने वाले तुझ प्रकाशस्वरूप की प्रार्थनोपासना करते हैं, तुझ से अन्य की नहीं ॥३॥

९८५—उरुचक्रि । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नून वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१॥

पदार्थ—( पुरूरुणा ) बहुत ( चित ) ही ( हि ) क्योंकि ( अस्ति ) है ( अव ) रक्षा ( नूनम् ) निश्चित रूप से ( वां ) तुम दोनो की ( वरुण ) हे उपदेशक ( मित्र ) हे अध्यापक ( वंसि ) स्वीकार करते हैं ( वां ) तुम दोनो की ( सुमतिं ) उत्तम बुद्धि को ॥१॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनो का संरक्षण निश्चित ही है । तुम्हारी उत्तम बुद्धि को हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

९८६—उरुचक्रि । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ॥२॥

पदार्थ— ( ता ) उन ( वां ) तुम दोनो की ( सम्यक् ) सब प्रकार से ( अद्रुह्वाणा ) द्रोह न करनेवाले ( इषम् ) ज्ञान ( अश्याम ) प्राप्त करते हैं (धाम) नाम ( च ) और ( वयं ) हम (वां) तुम दोनो के (मित्रा) मित्र (स्याम) हो ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! द्रोह न करने वाले आप दोनों की हम भली भाँति प्रशंसा करते हैं । तुम्हारी कृपा से हम ज्ञान और नाम को प्राप्त करते हैं । हम तुम लोगों के मित्र हों ॥ २॥

९८७—उरुचक्रि । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साह्याम दस्यू तनूभि ॥३॥

पदार्थ—( पात ) रक्षा करो ( नो ) हमारी ( मित्रा ) हे अध्यापक और उपदेशक ( पायुभि ) रक्षा के उपायों से ( उत ) और ( त्रायेथाम् ) रक्षा करें ( सुत्रात्रा ) सुन्दर रक्षण से ( साह्याम ) तिरस्कार करते हैं ( दस्यून् ) शत्रुओं का ( तनूभि ) नीतियों के द्वारा ॥३॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप रक्षा के साधनों से हमारी रक्षा करें और उत्तम रक्षणों से हमारा त्राण करें । तुम्हारी उपदिष्ट नीति से हम शत्रुओं का तिरस्कार करते हैं ॥३॥

९८८—कुरुसुति । इन्द्र । गायत्री ।

१२३ १२ ३२ ३ १ २र १ २ ३२ ३२

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपय । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥१॥

पदार्थ—( उत्तिष्ठन् ) उठाता वा धारण करता हुआ ( ओजसा ) बल के साथ ( पीत्वा ) रक्षा करके ( शिप्रे ) सुख देनेवाले द्यु और पृथिवी लोक को ( अवेपय ) हिला देता है ( सोमम् ) जीव की ( इन्द्र ) हे परमेश्वर (चमूसुतम्) द्यु और पृथिवी का उत्पादक ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बल के साथ धारण करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक मे पैदा हुए जीव की रक्षा करके द्यु और पृथिवी लोक को कम्पन अर्थात गति देकर चलाता है ॥१॥

९८९—कुरुसुति । इन्द्र । गायत्री ।

१२ ३ १२ ३१ २र २ ३ १२३१२

अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभव ॥२॥

पदार्थ—( अनु ) उद्देश्य से ( त्वा ) तेरे ( रोदसी ) द्यु और पृथिवीलोक ( उभे ) दोनो ( स्पर्धमान ) हे सब से बढ़ चढ़ कर होने की इच्छावाले (अददेताम्) हरे भरे होते हैं ( इन्द्र ) हे जीव ! ( यद् ) जब ( दस्युहा ) दुष्टो का दलन करने वाला ( भव ) हो ॥२॥

भावार्थ—हे उन्नति चाहने वाले जीव ! क्योंकि तेरे ही उद्देश्य से द्युलोक और पृथिवी हरे भरे हो रहे हैं इसलिए तू काम क्रोधादि शत्रुओ का नाश कर ॥२॥

९९०—कुरुसुति । इन्द्र । गायत्री ।

१२३ १२ ३१ २र ३१२ २ ३ १२ ३क २र

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥३॥

पदार्थ—( वाचम् ) वेदवाणी को ( अष्टापदीम् ) नाम आख्यात उपसर्ग और निपात रूप चार प्रकार के पद तथा विज्ञान, कर्म उपासना और ज्ञान आदि मिलाकर आठ प्रकारवाली ( नवस्रक्ति ) शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष तथा छन्द छ प्रकार की विद्या और ऋग् यजु सामरूप मंत्र व्यवस्था से नव प्रकार की रचनाओं वाली (ऋतावृधम्) सत्य को बढ़ानेवाली ( इन्द्रात्) परमेश्वर से (परि) सब प्रकार से ( तन्वं ) विस्तारवाली ( ममे ) प्राप्त कर उच्चारण करते हैं ॥३॥

भावार्थ—मैं आठ पदों और नव प्रकार की रचनाओं वाली तथा सत्य को बढ़ानेवाली विस्तारमयी वेदवाणी को परमेश्वर से प्राप्त कर उच्चारण करता हूँ ।३।

९९१—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ २३ २ १ २र १ २ ३ २

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( युवां ) तुम दोनो की ( इमे ) ये ( अभि ) सब प्रकार से ( स्तोमा ) स्तोत्र ( अनूषत ) प्रशंसा करते हैं ( पिबतम् ) रक्षा करते हो ( शम्भुवा ) हे सुख के देनेवाले ( सुतम् ) उत्पन्न संसार की ॥१॥

भावार्थ—हे सुख देनेवाल जीव और परमेश्वर ! ये स्तोत्र तुम दोनो की प्रशंसा करते हैं । तुम लोग इस उत्पन्न ससार की रक्षा करते हो ॥१॥

९९२—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १२३१२ ३१२ १ २ ३ २३ १ २

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥२॥

पदार्थ—( या ) जो ( वां ) तुम दोनों की ( सन्ति ) हैं ( पुरुस्पृह ) बहुतो से चाहने योग्य ( नियुत ) निश्चित शक्तियें ( दाशुषे ) त्यागी के लिए ( नरा ) नेता ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( ताभि ) उनके साथ ( आगतम् ) प्राप्त होते हो ॥२॥

भावार्थ—हे सब के नेता जीव और परमश्वर ! त्यागी पुरुष के लिए बहुतों से चाहने योग्य तुम दोनों की शक्तियाँ हैं उनके साथ तुम हमें प्राप्त होते हो ॥२॥

९९३—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २३१ ३र ३२ १ २ ३ १ २

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—( ताभिः ) उन शक्तियों के साथ ( आगच्छतम् ) प्राप्त होओ ( नरा ) हे नेता ( उप ) समीप ( इदं ) इस ( सवनं ) यज्ञ में ( सुतम् ) किये जानेवाले ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( सोमपीतये ) सोम का पान तथा रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—हे नेता जीव ! तू सोम के पान के लिए और नेता परमेश्वर तू सोम की रक्षा के लिए किये जाने वाले इस यज्ञ में अपनी शक्तियों के साथ प्राप्त हो ॥६॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

९९४—भृगुर्जमदग्निश्च । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १२३ १ २र ३ १२ २ ३ २ ३ २ ३ २

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥१॥

पदार्थ—( अर्ष ) प्राप्त कर ( सोम ) हे विद्वान् पुरुष ( द्युमत्तम ) अत्यन्त तेजस्वी ( अभि ) सब प्रकार से ( द्रोणानि ) गन्तव्य मार्गों को ( रोरुवत् ) उपदेश करता हुआ ( सीदन् ) स्थित ( योनौ ) संसार के निमित्त कारण परमात्मा में ( वनेषु ) भक्ति आदि के विषय में ( आ ) भलीभांति ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! अत्यन्त तेजस्वी तू भक्ति के विषय में उपदेश करता हुआ ससार के निमित्त कारण परमेश्वर में स्थित होकर अपने गन्तव्य मार्ग पर चलता जा ॥१॥

९९५—भृगुजमदग्निश्च । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३२३१२ ३१२ १ २ ३ १ २

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्य । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥२॥

पदार्थ—( अप्सा ) कर्मयोगी ( इन्द्राय ) जीव के ज्ञान के लिए ( वायवे ) वायु के ज्ञान के लिए ( वरुणाय ) जल के ज्ञान के लिए ( मरुद्भ्य ) सुवर्ण आदि सपदाओ के लिए ( सोमा ) विद्वान् पुरुष ( अर्षन्तु ) उद्योग करें ( विष्णवे ) व्यापक परमश्वर के लिये ॥२॥

भावार्थ—कर्मयोगी विद्वान् जन जीव वायु जल स्वर्ण आदि सपदायें तथा परमेश्वर के ज्ञान और प्राप्ति के लिए उद्योगशील होवें ॥२॥

९९६—भृगुजमदग्निश्च । सोम । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१२३१२ ३१२ १२ ३१२

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वत । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

पदार्थ—( इषम् ) अन्न को ( तोकाय ) सन्तान के लिए ( न ) हमारे ( दधद् ) धारण करता हुआ ( अस्मभ्य ) हमारे लिए ( सोम ) हे परमेश्वर (विश्वत ) सब प्रकार (आपवस्व) प्रदान कर (सहस्रिणम्) सहस्रो प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी सन्तान और हमारे लिए हजारो प्रकार की अन्न आदि सपदायें धारण करता हुआ प्रदान कर ॥६॥

९९७—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

१२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सोम उ ष्वाण सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

१२ ३१ २ ३१२ ३१२ ३ १ २

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१॥

पदार्थ—( सोमः ) परमेश्वर ( उ ) प्रसिद्ध है ( स्वान ) चुआया हुआ ( सोतृभि ) चुआने वालों के द्वारा ( अधि ) पर (स्नुभि ) बालों के द्वारा (अवीनां) भेड़ों के( अश्वया ) व्यापक के ( इव ) समान ( हरिता ) हरे रगवाली ( याति ) निकलता है ( धारया ) प्रवाह से ( मन्द्रया ) आनन्ददायक( याति ) प्राप्त होता है ( धारया ) वेदवाणी के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर यजमानों के द्वारा भेड के बालो पर छाने गये सोमरस की हरी धारा के समान आनन्ददायक वेदवाणी के द्वारा प्राप्त होता है ॥१॥

९९८—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनूपे गोमान् गोभिरक्षा सोमो दुग्धाभिरक्षा ।

३ २उ ३१२ ३ १ २र

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥२॥

पदार्थ—( अनूपे ) वायु मे ( गोमान् ) वेदवाणियों का स्वामी ( गोभिः ) वेदवाणियो द्वारा ( अक्षा ) आनन्द की वर्षा करता है ( सोम ) परमेश्वर ( दुग्धाभि ) अनेक सृष्टियों में यूँही चानेवाली ( अक्षा ) गति देता है ( समुद्रं ) समुद्र को ( न ) समान ( संवरणानि ) जल ( अग्मन् ) प्राप्त होते हैं ( मन्दी ) आनन्द चाहनेवाला ( मदाय ) आनन्द के लिए ( तोशते ) संतुष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—वेदवाणियों का स्वामी परमेश्वर प्रत्येक सृष्टि में दुही जाने वाली वेदवाणियों द्वारा आनन्द की वर्षा करता है और वही वायु में गति भी देता है। जिस प्रकार जल समुद्र को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार विद्वान् जीव परमेश्वर को प्राप्त करते हैं। आनन्द की इच्छा करने वाला सुख की प्राप्ति के लिए परमेश्वर को संतुष्ट करता है ॥२॥

९९९—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥१॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( सोम ) हे परमेश्वर ( चित्रम् ) अनेक प्रकार का ( उक्थ्य ) प्रशंसनीय ( दिव्यं ) दिव्य गुण वाला ( पार्थिव ) पृथिवी से उत्पन्न सुवर्ण आदि ( वसु ) धन है उसे ( नः ) हमे ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( आभर ) प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ – हे परमेश्वर ! अनेक प्रकार का, प्रशंसनीय तथा उत्तम गुण वाला पृथिवी से उत्पन्न सुवर्ण आदि जो धन है उसे हमे पवित्र करता हुआ तू प्रदान कर ॥१॥

१०००—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २उ ३ १ २

वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन् योनिमासदः ॥२॥

पदार्थ—( वृषा ) सुखों की वर्षा करने वाला ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( आयूंषि ) जीवनों को ( स्तनयन् ) उपदेश करता हुआ ( अधिबर्हिषि ) हृदय रूप आकाश में ( हरिः ) अज्ञान का हरण करने वाला ( सन् ) होता हुआ ( योनिम् ) प्रकृतिरूप कारण मे ( आ सदः ) वर्तमान है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुखों की वर्षा करने वाला तथा अज्ञान का निवारक होता हुआ तू हमारे जीवनों को पवित्र कर हृदय में उपदेश करता हुआ कारण प्रकृति में स्थित है ॥२॥

१००१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥३॥

पदार्थ—( युवम् ) तुम दोनो ( हि ) निश्चित ( स्थः ) हो ( स्वःपती ) सुखों के स्वामी ( इन्द्र ) विद्वान् ( च ) और ( सोम ) हे परमेश्वर ( गोपती ) वेदवाणियो के रक्षक ( ईशाना ) शक्तिमान् ( पिप्यत ) पूर्ण करो ( धियः ) बुद्धियों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और विद्वान् पुरुष दोनो सुखों के स्वामी, शक्तिमान् तथा वेदवाणियों के रक्षक हो । अतः हमारी बुद्धियो को पूर्ण करो ॥३॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

१००२—गोतम । इन्द्र । पंक्ति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर ( मदाय ) आनन्द के लिए ( वावृधे ) बढ़ा चढ़ा हुआ है [ सब से अधिक बढ़ चढ़ कर है ] ( शवसे ) बल के लिए ( वृत्रहा ) अज्ञाननाशक ( नृभिः ) मनुष्यों से ( तम् ) उसको ( इत् ) ही ( महत्सु ) बड़े ( आजिषु ) संग्रामों मे ( ऊतिम् ) रक्षा के लिए ( अर्भे ) छोटे ( हवामहे ) पुकारते हैं ( स ) वह ( वाजेषु ) संग्रामो में ( प्र ) भली भांति ( नः ) हमारी ( अविषत् ) रक्षा करे ॥१॥

भावार्थ—अज्ञाननाशक परमेश्वर सब से बढ़-चढ़ कर है । आनन्द और शक्ति की प्राप्ति के लिए लोग उसकी स्तुति करते हैं । हम बड़े और छोटे संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए उसे ही पुकारते हैं । वह संग्रामों मे हमारी रक्षा करे ॥१॥

१००३—गोतम । इन्द्र । पंक्ति ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

पदार्थ—( असि ) है ( हि ) निश्चित ही ( वीर ) हे सब से बलवान् ( सेन्य ) सेनाओं का हितकारी ( असि ) है ( भूरि ) बहुत ( पराददिः ) महान् दानी ( असि ) है ( दभ्रस्य ) छोटे का ( चित् ) भी ( वृधः ) बढ़ाने वाला ( यजमानाय ) यजमान के लिए ( शिक्षसि ) देता है ( सुन्वते ) यज्ञ करने वाले ( भूरि ) बहुत ( ते ) तेरा ( वसु ) धन ॥२॥

भावार्थ—हे सब से बढ़कर शक्तिशाली परमेश्वर ! तू सेनाओं का हितकारी तथा बहुत बड़ा दानी है । तू छोटों को भी बढ़ाने वाला है । तेरा धन अपार है । तू यज्ञ करने वाले यजमान को धन आदि पदार्थ देता है ॥२॥

१००४—गोतम । इन्द्रः । पंक्ति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दध ॥३॥

पदार्थ—( यत ) जब ( उदीरते ) उत्पन्न होते हैं ( आजय ) संग्राम ( धृष्णवे ) विजयी पुरुष के लिए ( धीयते ) धारण किया जाता है ( धनम् ) धन ( युङ्क्ष्वा ) जोड़ता है ( मदच्युतो ) आनन्द बहाने वाले ( हरी ) ऋक और साम को ( कं ) सुख को ( हनः ) प्राप्त करा ( कं ) सुखी को ( वसौ ) धन में ( दधः ) रख ( अस्मान् ) हमें ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( वसौ ) धन मे ( दध ) रख ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जब संग्राम होते हैं तब तो केवल विजयी को ही धन मिलता है । तू आनन्द की वर्षा करने वाले ऋक और साम को जोड़ता है । तू सुख प्राप्त करा । सुखी को धन में रख । हमे सम्पदायें दे ॥३॥

१००५—गोतम । इन्द्र । पंक्ति ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—( स्वादो ) आनन्दजनक ( इत्था ) इस प्रकार से ( विषूवतः ) व्यापक [ विस्तृत ] ( मधो ) विज्ञान की ( पिबन्ति ) रक्षा करती हैं ( गौर्य ) वेदवाणियां ( या ) जो ( इन्द्रेण ) परमेश्वर के साथ ( सयावरी ) समान काल से रहने वाली ( वृष्णा ) कामनाओं की वर्षा करने वाले ( मदन्ति ) स्तुति [ वर्णन ] करती हैं ( शोभथा ) शोभन होता है ( वस्वीः ) सकल पदार्थों का वर्णन करने वाली ( अनु ) अनुसार ही ( स्वराज्य ) सुख का राज्य ॥१॥

भावार्थ—कामनाओं की वर्षा करने वाले परमेश्वर के साथ समान काल से रहने वाली जो वेदवाणियां उसकी प्रशंसा करती हैं तथा आनन्ददायक और व्यापक विज्ञान की रक्षा करती हैं उन के अनुसार ही सुख का राज्य सुशोभित होता है ॥१॥

१००६—गोतम । इन्द्र । पंक्ति ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥

पदार्थ—( ताः ) उनके ( अस्य ) इस ( पृशनायुवः ) ज्ञान का स्पर्श करने वाली ( सोम ) विद्वान् को ( श्रीणन्ति ) परिपक्व करती हैं ( पृश्नय ) अनेक प्रकार के छन्दों वाली ( प्रिया ) प्रिय ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर की ( धेनव ) वेदवाणियां ( वज्र ) पञ्चदश स्तोम आदि स्तुतियों और सामो की ( हिन्वन्ति ) प्रेरणा करती है ( सायक ) दुःख का अन्त करने वाले ( वस्वीः ) समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाली उनके ( अनु ) अनुसार ( स्वराज्य ) सुख का राज्य होता है ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान का प्रकाश करने वाली, अनेक प्रकार के छन्दों से युक्त तथा मनोहर परमेश्वर की दी हुई जो वेदवाणियां विद्वान् को परिपक्व करती हैं तथा दुःख का अन्त करने वाले पञ्चदश स्तोम आदि स्तोत्रों और साम की प्रेरणा करती हैं उनके अनुसार ही यथार्थ स्वराज्य होता है ॥२॥

१००७—गोतम । इन्द्रः । पंक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

पदार्थ—( ता ) वे ( अस्य ) इस ( नमसा ) नमस्कार के साथ ( सहः ) पराक्रम की ( सपर्यन्ति ) प्रशंसा करती हैं ( प्रचेतसः ) उत्तम ज्ञान वाले ( व्रतानि ) नियमो या कर्मों का ( अस्य ) इसके ( सश्चिरे ) बताती है [ ज्ञान करवाती हैं ] ( पुरूणि ) बहुत ( पूर्वचित्तये ) प्रथम ज्ञान के लिए ( वस्वी ) समस्त पदार्थों का ज्ञान करवाती ( अनु ) अनुसार ( स्वराज्यम् ) स्वराज्य होता है ॥३॥

भावार्थ—वे वेदवाणियां उत्तम ज्ञानवाले परमेश्वर के पराक्रम की आदर के साथ प्रशंसा करती है । सब से प्रथम ज्ञान के लिए वे इस परमेश्वर के अनेक नियमों को जानती हैं । उनके अनुसार ही स्वराज्य की प्राप्ति होती है ॥३॥

卐 पंचम खण्ड समाप्त 卐

१००८—जमदग्नि । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥१॥

पदार्थ—( असावि ) उत्पन्न किया जाता है ( अंशु ) प्रकाश वाला ( मदाय ) आनन्द के लिए ( अप्सु ) कर्मों मे ( दक्ष ) कुशल ( गिरिष्ठाः ) वेदवाणी मे स्थिति रखने वाला ( श्येनो न ) आत्मा के समान ( योनिम् ) निमित्त कारण ब्रह्म मे ( आसदत ) स्थिति पाता है ॥१॥

भावार्थ—कर्मयोगी, वेदवाणी मे विचरने वाला तथा तेजस्वी विद्वान् संसार के सुख के लिए उत्पन्न किया जाता है। वह आत्मा के समान निमित्त कारण परमेश्वर में स्थिति पाता है ॥१॥

१००९—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३१ २र ३१२ ३२३१ २र३२ १२ ३२३ १२
शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौत नृभि सुतम । स्वदन्ति गाव पयोभि ॥२॥

पदार्थ—( शुभ्रम् ) तेजस्वी ( अन्ध ) रात्रि दिन ( देववातम् ) विद्वानो से प्राप्त किये जाने वाले ( अप्सु ) शुभ कर्मों में ( धौतम् ) ज्ञात ( नृभि ) मनुष्यों द्वारा ( सुतम् ) संसार के उत्पादक ( स्वदन्ति ) आनन्द लेते हैं ( गाव ) स्तोता लोग ( पयोभि ) ज्ञानों द्वारा ॥२॥

भावार्थ—स्तोता लोग ज्ञान के द्वारा ज्योति स्वरूप, विद्वानों से प्राप्त किये जाने वाल प्रत्येक शुभ कम में मनुष्यो द्वारा स्मरण किय गये तथा सृष्टिकर्ता परमेश्वर का आनन्द लेते हैं ॥२॥

१०१०—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

१ ३२३१ २र३१२ ३१२ २३१२ ३१२
आदीमश्व न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रस सधमादे ॥३॥

पदार्थ—( आत ) अनन्तर ( ईम् ) इस ( अश्वं ) अग्नि के ( न ) समान ( हेतारम् ) गतिशील ( अशूशुभन् ) सुशोभित करते हैं ( अमृताय ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ( मधो ) ज्ञान का ( रसः ) आस्वाद [आनन्द] लने वाले ( सधमादे ) ज्ञान यज्ञ मे ॥३॥

भावार्थ—ज्ञानीजन अग्नि के समान गतिशील तथा ज्ञान का आनन्द उठाने वाले विद्वान् पुरुष को परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ज्ञानयज्ञ में सारी शक्तियों से सुशोभित करते हैं ॥३॥

१०११—ऊर्ध्वसद्मा । सोम । ककुप् ।

३२ ३२ ३२उ३१२ ३१२ ३२ १ २र३१ २
अभि द्युम्न बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोश मध्यम युव ।१।

पदार्थ—( अभि ) उद्देश्य मे रख कर ( द्युम्न ) अन्न के ( बृहत ) महान् ( यश ) सूय को ( इषस्पते ) हे अन्न और ज्ञान क स्वामी ( दिदीहि ) प्रकाशित करता है ( देव ) हे देव ( देवयुम् ) दिव्य गुणों से युक्त करने वाल ( वि ) विशेष रूप से ( कोशम् ) मेघ को ( मध्यमम ) मध्यम स्थान मे रहने वाल ( युव ) छोडता है ॥१॥

भावार्थ—हे अन्न आदि क स्वामी परमात्म देव ! हमारे अन्न की उत्पत्ति को उद्देश्य मे रख कर तू दिव्य गुणो से युक्त करनेवाले महान् सूय को प्रकाशित करता है तथा आकाश में होनेवाले मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करता है ॥१॥

१०१२—कृतयशा । सोम । सतोबृहती ।

१ २ ३क २र ३२ ३२उ ३२३ १२
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वो सुतो विशा वह्निन विश्पति ।

३२ ३१२ ३२३२उ३ १२३ १२
वृष्टिं दिव पवस्व रीतिमपोजिन्वन गविष्टये धिय ॥२॥

पदार्थ—( आ ) भली भाति ( वच्यस्व ) प्राप्त हो ( सुदक्ष ) हे सुन्दर बल वाम् ( चम्वो ) द्यु और पथिवी लोक का ( सुत ) उत्पादक ( विशां ) प्रजाओ का ( वह्नि ) अग्नि के ( न ) समान ( विश्पति ) प्रजा का स्वामी ( वृष्टि ) वर्षा को ( दिव ) आकाश से ( पवस्व ) प्रेरित कर ( रीतिम् ) प्रकार को ( अप ) कर्मों क ( जिन्वन् ) प्रेरित करता हुआ ( गविष्टये ) स्तोताओ के इष्ट के लिए ( धिय ) बुद्धियो को ॥२॥

भावार्थ—हे बलशाली परमेश्वर ! तू द्यु और पृथिवी लोक का उत्पादक तथा अग्नि के समान समस्त प्रजाओं का रक्षक है। तू हमे प्राप्त हो। स्तुति करने वालों के कल्याण के लिए कर्म की रीति और बुद्धियों की प्रेरणा करता हुआ आकाश से वृष्टि की प्रेरणा कर ॥२॥

१०१३—त्रित । सोम । उष्णिक ।

३१ २र३१२ ३२ ३२३ १२
प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

२ ३१२ ३१ २३१२ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥

पदार्थ—( प्राणा ) जीवन का संचार करनेवाला ( शिशुः ) पुत्रस्वरूप ( महीनां ) वेदवाणियों का ( हिन्वन् ) जानता हुआ ( ऋतस्य ) परमेश्वर के ( दीधितिम् ) विधान को ( विश्वा ) सारी ( परि ) सब प्रकार से ( प्रिया ) प्रिय वस्तुओं का ( भुवत् ) तिरस्कार करता है ( अध ) अनन्तर ( द्विता ) ज्ञान और वैराग्य के दो प्रकार से ॥१॥

भावार्थ—सब में जीवन फूकनेवाला तथा वेदवाणियों का पुत्रस्वरूप विद्वान् पुरुष परमेश्वर के विधान को जानता हुआ सारी प्रिय चित्त को विचलित करनेवाली वस्तुओं का ज्ञान और वैराग्य से तिरस्कार करता है ॥१॥

१०१४—त्रित । सोम । उष्णिक् ।

१२३१२ ३ २ १२३१ २र ३२
उप त्रितस्य पाष्यो३ रभक्त यद् गुहा पदम् ।

३१२ ३१ २र ३१२ ३२
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( त्रितस्य ) मेधावी जीव के ( पाष्यो ) ज्ञान और कर्म के [ हेतुभूत ] ( अभक्त ) भागी बनता है ( यत् ) जो ( गुहा ) अन्तःकरण में [ स्थित ] ( पदम् ) स्वरूप को ( यज्ञस्य ) परमेश्वर के ( सप्तधामभिः ) सप्त छन्दों से बधे हुए ज्ञानों से ( अध ) अनन्तर ( प्रिय ) प्रिय ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म के कारण मेधावी जीव के अन्तःकरण में स्थित परमेश्वर के परमप्रिय पद को विद्वान् सात छन्दो मे बधे वेदज्ञान के द्वारा जानता है ॥२॥

१०१५—त्रित । सोम । उष्णिक ।

१ २३२ ३ १२ ३१ २र ३२
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरयद्रयिम् ।

१२ ३ १२३ २ ३१२
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतु ॥३॥

पदार्थ—( त्रीणि ) तीन ( त्रितस्य ) तीन सम्बो से युक्त जीव के ( धारया ) वेदवाणी द्वारा ( पृष्ठेषु ) नाना लोको मे ( ऐरयत् ) प्रेरित करता है ( रयिम् ) धन को ( मिमीते ) उपदेश करता है ( अस्य ) इस ( योजना ) बन्धनों को ( वि ) विशेष ( सुक्रतु ) उत्तम ज्ञानवाला ॥३॥

भावार्थ—उत्तम ज्ञान से युक्त परमेश्वर नाना लोकों मे धन आदि को प्रेरित करता है। वह अपनी वेदवाणी से इस तीन तापों से युक्त जीव के तीनों बन्धनो को ज्ञात करा देता है ॥३॥

१०१६—रेभ । सोम । अनुष्टुप् ।

१२३१२ ३२३ १२ ३२
पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुत ।

१२ ३ १ २ ३२ ३ १२
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तर ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर [ अपने को ] ( वाजसातये ) विज्ञान की प्राप्ति के लिए ( पवित्रे ) पवित्र [ मानव शरीर ] मे ( धारया ) वेदवाणी से ( सुत ) उत्पन्न ( इन्द्राय ) आत्मा के लिए ( सोम ) हे पुरुष ( विष्णवे ) परमेश्वर प्राप्ति के लिए ( मधुमत्तर ) कर्म में प्रवीण ॥१॥

भावार्थ—हे पुरुष ! कर्म में प्रवीण तथा इस पवित्र मानव शरीर मे उत्पन्न तू विज्ञान, आत्मज्ञान, परमात्मा तथा दिव्य गुणो की प्राप्ति के लिए अपने वेदवाणी से पवित्र कर ॥१॥

१०१७—रेभ । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३२३ १२ ३१२ ३१२
त्वा रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुह ।

३ २ ३२उ ३२३१२ ३ १२
वत्स जात न मातर पवमान विधर्मणि ॥२॥

पदार्थ—( त्वा ) तेरी ( रिहन्ति ) पूजा करती हैं ( धीतयः ) स्तुतियां ( हरिम् ) अज्ञान के हरण करनेवाले ( पवित्रे ) पवित्र ( अद्रुह ) द्रोहरहित ( वत्सं ) बच्चे को ( जातम् ) उत्पन्न ( न ) समान ( मातर ) माताएँ ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( विधर्मणि ) विशेष धर्मरूप यज्ञ मे ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! द्रोहरहित स्तुतियां पवित्र यज्ञ में उत्पन्न बच्चे को माताओं के समान, अज्ञाननाशक तेरी पूजा करती हैं ॥२॥

१०१८—रेभ । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २र ३१ २र
त्व द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।

१२ ३१२ ३१२ ३२
प्रति द्रापिममुञ्चथा पवमान महित्वना ॥३॥

पदार्थ—( त्व ) तू ( द्यां ) द्युलोक को ( च ) और ( महिव्रत ) हे महान् व्रतवाले ( पृथिवीं ) पृथिवी को ( च ) और ( अति ) अत्यन्त ( जभ्रिषे ) धारण करता है ( प्रति ) हमारे प्रति ( द्रापिम्) देय वस्तु को ( अमुञ्चथाः ) दे ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( महित्वना ) अपनी महिमा से ॥३॥

भावार्थ—हे महाव्रती शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू अपनी महिमा से द्यु और पृथिवी लोक को धारण करता है। तू हमें देने योग्य वस्तु दे ॥३॥

१०१९—मन्यु । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोम सह इन्वन्मदाय ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्य्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१॥

पदार्थ—( इन्दुः ) ऐश्वर्यवान् ( वाजी ) ज्ञानवान् ( पवते ) पवित्र करता है ( गोन्योघा ) इन्द्रियों के समुदायवाला ( इन्द्रे ) परमेश्वर में ( सोम ) जीवात्मा ( सहः ) शक्ति को ( इन्वन् ) जानता हुआ ( मदाय ) आनन्द के लिए ( हन्ति ) नाश करता है ( रक्ष ) दुर्गुणरूप राक्षस का ( बाधते ) बाधा पहुँचाता है ( अरातिम् ) काम क्रोध आदि शत्रुओं को ( वरिव ) ज्ञान धन को ( कृण्वन् ) करता हुआ ( वृजनस्य ) बल का ( राजा ) स्वामी ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवान्, इन्द्रिय समुदाय से युक्त बल का स्वामी तथा ऐश्वर्यवान् जीवात्मा परमेश्वर में शक्ति को जानता हुआ आनन्द की प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करता है। वह ज्ञानरूपी धन को प्राप्त करता हुआ दुर्गुण राक्षस का विनाश करता है और काम आदि शत्रुओं को बाधा पहुँचाता है ॥१॥

१०२०—मन्यु । सोम । त्रिष्टुप ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अध धारया मध्वा पृचानास्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्ध ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥२॥

पदार्थ—( अध ) अनन्तर ( धारया ) वाणी से ( मध्वा ) मधुर ( पृचान ) सम्बद्ध करता हुआ ( तिर ) प्राप्त ( रोम ) सामों को ( पवते ) पवित्र करता है ( अद्रिदुग्ध ) मेघ आदि को पूरा करनेवाला ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( इन्द्रस्य ) जीव के ( सख्य ) मित्र भाव को ( जुषाण ) प्रसन्नता से स्वीकार करता हुआ ( देव ) देव ( देवस्य ) उत्तम गुण युक्त ( मत्सर ) आनन्दस्वरूप ( मदाय ) आनन्द के लिए ॥२॥

भावार्थ—मेघ आदि की पूर्ति करने वाला, आनन्दस्वरूप ऐश्वर्यशाली तथा जीव की मित्रता को स्वीकार करने वाला परमेश्वरदेव जीव के आनन्द के लिए मधुर वाणी के साथ अपने ज्ञान मे प्राप्त सामों को सम्बद्ध करता हुआ उसे पवित्र करता है ॥२॥

१०२१—मन्यु । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥३॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार ( व्रतानि ) कर्मों को ( पवते ) पवित्र करता है ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( देव ) देव ( देवान् ) इन्द्रियो को ( स्वेन ) अपने ( रसेन ) रस से ( पृञ्चन् ) संयुक्त करता हुआ ( इन्दुः ) ऐश्वर्यवान् ( धर्माणि ) धर्मों को ( ऋतुथा ) ऋतु के अनुसार ( वसानः ) धारण करता हुआ ( दश ) दश ( क्षिप ) अंगुलियों को ( अव्यत ) रख देता है ( सानो ) ऊँचे शिखर पर ( अव्ये ) प्रकृति के ॥३॥

भावार्थ—इन्द्रियों को अपने रस से संयुक्त और पवित्र करता हुआ तथा ऋतु के अनुसार धर्मों को धारण करता हुआ ऐश्वर्यवान् जीव अपने अनेक कर्मों को पवित्र करता है और प्रकृति के उच्च शिखर पर अपनी दश अंगुलियों को रख देता है अर्थात् अधिकार पा लेता है ॥३॥

卐 षष्ठ खण्ड समाप्त 卐

१०२२—वसुश्रुतः । अग्नि । पंक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली-भाँति ( ते ) तेरा ( अग्ने ) हे परमेश्वर! ( इधीमहि ) ध्यान करते हैं ( द्युमन्तं ) प्रकाशस्वरूप ( देव ) हे देव ( अजरम् ) अजर ( यत् ) जो ( ह ) निश्चय से ( स्या ) वह ( ते ) तेरा दिया हुआ ( पनीयसी ) प्रशंसनीय ( समित् ) प्रकाश ( दीदयति ) दीप्त करती है ( द्यवि ) द्युलोक में ( इषम् ) अन्न को ( स्तोतृभ्य ) स्तोता लोगों के लिए ( आभर ) भरपूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्म देव! हम तुझ प्रकाशस्वरूप और अजर अमर का ध्यान करते हैं। जो तेरा प्रशंसनीय प्रकाश द्युलोक में प्रदीप्त हो रहा है उसके द्वारा स्तोताओं के लिए तू अन्न आदि को प्रदान कर ॥१॥

१०२३—वसुश्रुत । अग्नि । पंक्ति ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( ते ) तेरी ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( ऋचा ) मंत्र से ( हविः ) स्तुति ( शुक्रस्य ) शुद्धस्वरूप ( ज्योतिषस्पते ) सूर्य आदि प्रकाशों के पालक ( सुश्चन्द्र ) हे आनन्ददाता ( दस्म ) हे बुराइयों के दूर करनेवाले ( विश्पते ) हे प्रजाओं के स्वामी ( हव्यवाट् ) हे कर्मफल दाता ( तुभ्यं ) तेरे लिए ( हूयते ) स्तुति की जाती है ( इषम् ) ज्ञान को ( स्तोतृभ्य ) भक्तों के लिए ( आभर ) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे सूर्य आदि ज्योतियों के स्वामी, आनन्ददाता, दुर्गुण निवारक प्रजा के स्वामी तथा कर्मफल देनेवाले परमेश्वर ! तुझ शुद्धस्वरूप के मन्त्र द्वारा तेरे लिए स्तुति की जाती है। तू भक्तों को ज्ञान प्रदान कर ॥२॥

१०२४—वसुश्रुत । अग्निः । पंक्तिः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २
ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( उभे ) दोनों ( सुश्चन्द्र ) हे आह्लादक ( विश्पते ) प्रजा के स्वामी ( दर्वी ) होम के पात्र ( श्रीणीषे ) पकाते हैं ( आसनि ) अग्नि के मुख मे ( उतो ) और ( न ) हम लोगों को ( उत्पुपूर्याः ) उत्तम प्रकार से पूर्ण कर ( उक्थेषु ) सामों मे ( शवसस्पते ) हे बल के रक्षक ( इषम् ) अन्न आदि को ( स्तोतृभ्य ) स्तुति करनेवालो के लिए ( आभर ) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक प्रजाओं के स्वामी तथा शोभन आह्लादक परमेश्वर ! दो प्रकार के होम पात्रों द्वारा अग्नि के मुख मे हम हवन करते हैं। स्तुतियो के विषय मे हमें ज्ञान की पूर्णता प्रदान कर। स्तुतिकर्ताओं को धन, ज्ञान आदि प्रदान कर ॥३॥

१०२५—नृमेध । इन्द्र । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्राय ) जीव के लिए ( साम ) साम ( गायत ) गाओ ( विप्राय ) विद्वान् ( बृहते ) महान् ( बृहत् ) बृहत् नामवाले ( ब्रह्मकृते ) ब्रह्मदर्शी ( विपश्चिते ) मेधावी ( पनस्यवे ) उपासक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मदर्शी, मेधावी उपासक तथा महान् विद्वान् जीव के लिए बृहत् नामक साम का गान करो ॥१॥

१०२६—नृमेध । इन्द्र । उष्णिक् ।

१२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचय । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥२॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( अभिभू ) सबसे बड़ा ( असि ) है ( त्वम् ) तू ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अरोचय ) प्रकाशित करता है ( विश्वकर्मा ) सृष्टिकर्ता ( विश्वदेवः ) सबका देव ( महान् ) महान् ( असि ) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सर्वशक्तिमान् है। तू सूर्य को प्रकाश देता है। तू ही सृष्टिकर्ता सबका देव तथा महान् है ॥२॥

१०२७—नृमेध । इन्द्र । उष्णिक् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ १२ ३ २ ३ २
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।

३ १ २ ३ १ २
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३॥

पदार्थ—( विभ्राजन् ) प्रकाशित करता हुआ ( ज्योतिषा ) अपने प्रकाश से ( स्व ) सूर्य को ( अगच्छः ) होता है ( रोचनम् ) प्रकाशक ( दिव ) द्युलोक के ( देवा ) विद्वान् लोग ( ते ) तेरी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( सख्याय ) मित्रता के लिए ( येमिरे ) यत्न करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने तेज से सूर्यलोक को प्रकाशित करता हुआ द्युलोक को भी प्रकाश देता है। विद्वान् लोग तेरी मित्रता के लिए यत्न करते हैं ॥३॥

१०२८—गोतम । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—( असावि ) उत्पन्न किया जाता है ( सोम ) शरीर और आत्मबल ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( ते ) तेरी प्राप्ति के लिए ( शविष्ठ ) हे सर्वशक्तिमान् ( धृष्णो ) दुष्टो का दमन करनेवाले ( आगहि ) प्राप्त हो ( आ ) भली भांति ( त्वा ) तू ( पृणक्तु ) परिपूर्ण कर ( इन्द्रियम् ) हमारी इन्द्रिय को ( रज ) अन्तरिक्ष को ( सूर्यो न ) सूर्य के समान ( रश्मिभि ) किरणों के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् दुष्टो का दमन करनेवाले परमेश्वर ! तेरी प्राप्ति के लिए शरीर और आत्मबल पदा किया जाता है। तू प्राप्त हो। तू हमारी इन्द्रियों को प्रकाश से पूर्ण कर जैसे सूर्य अपनी किरणो से लोक को भर देता है।१।

१०२९—गोतम । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३१२३ २ ३१२ ३१२

**आ तिष्ठ वत्रहन्रथ युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।**

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**अर्वाचीन सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२॥**

पदार्थ—( आतिष्ठ ) स्थित हो ( वृत्रहन् ) हे बुराइयो को दूर करनेवाले ( रथम् ) शरीर रूपी रथ मे ( युक्ता ) जोड़े गए है ( ते ) तेरे लिए ही ( ब्रह्मणा ) परमेश्वर के द्वारा ( हरी ) वायु और विद्युत् ( अर्वाचीन ) नवीन ( सु ) सुन्दर ( ते ) तेरे ( मन ) मन को ( ग्रावा ) मेघ के साथ युक्त ( कृणोतु ) करे ( वग्नुना ) वेदवाणी से ॥२॥

भावार्थ—हे बुराइयो को दूर करनेवाले जीव ! तू शरीर रूप रथ में विराजमान हो। तेरे लिए ही परमेश्वर ने मेघ के साथ वायु और विद्युत् को जोड़ा है। वह तेरे मन को वेदवाणी के द्वारा नवीन करे ॥२॥

१०३०—गोतम । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ १ २

**इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।**

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

**ऋषीणां सुष्टुतिरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥३॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर को ( इत ) ही ( हरी ) ऋक और साम ( वहत ) [प्राप्त कराते हैं] पहुँचाते हैं ( अप्रतिधृष्टशवसम् ) सर्वशक्तिमान् ( ऋषीणां ) ऋषियों की ( सुष्टुती ) मनोहर स्तुतियो से ( यज्ञम् ) यज्ञ मे ( च ) और ( मानुषाणाम् ) मनुष्यो के ॥३॥

भावार्थ—ऋक् और साम ऋषियो की स्तुतियों तथा मनुष्यो के यज्ञ में सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ज्ञान कराते हैं ॥३॥

卐 सप्तम खण्ड समाप्त 卐

卐 षष्ठोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# सप्तमोऽध्याय·

१०३१—आकृष्टामाषा सिकतानिवावरी च । सोम । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रिय पिता देवानां जनिता विभूवसु ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २ क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

**दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्य मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रस ॥१॥**

पदार्थ—( ज्योति ) प्रकाशक ( यज्ञस्य ) ससार रूप यज्ञ का ( पवते ) वर्षा करता है ( मधु ) ज्ञान को ( प्रियम् ) प्यारे ( पिता ) रक्षक ( देवानाम् ) देवो का ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( विभूवसु ) महान् ऐश्वर्यवाला ( दधाति ) धारण करता है ( रत्नम् ) धनादि को ( स्वधयो ) द्यु और पृथिवीलोक में ( अपीच्यम् ) छिपे हुए ( मदिन्तम ) अत्यन्त आनन्ददायक ( मत्सर ) प्रसन्न करनेवाला ( इन्द्रिय ) आत्मा का हितकारक ( रस ) एक रस ॥१॥

भावार्थ—ससार रूप यज्ञ का प्रकाशक, देवो का रक्षक और उत्पादक, महान् ऐश्वर्यवाला अत्यन्त आनन्द का दाता प्रसन्नता देनेवाला आत्मा का हितकारी तथा एकरस परमेश्वर प्रियज्ञान की वर्षा करता है। वही द्यु और पृथिवीलोक म छिपे नाना प्रकार के धनो को धारण करता है ॥१॥

१०३२—आकृष्टामाषा सिकतानिवावरी च । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३व २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

**अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिव शतधारो विचक्षण ।**

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभि सिन्धुभिर्वृषा ॥२॥**

पदार्थ—( अभिक्रन्दन् ) उपदेश करता हुआ ( कलशम् ) आनन्दमय कोश मे ( वाजी ) शक्तिशाली ( अर्षति ) व्यापक हो रहा है ( पति ) पालक ( दिव ) सूर्य आदि का ( शतधार ) अनेक प्रकार से धारण करनेवाला ( विचक्षण ) सबका साक्षी ( हरि ) मनुष्य ( मित्रस्य ) परमेश्वर के ( सदनेषु ) लोको में ( सीदति ) विराजता है ( मर्मृजान ) अपने को शुद्ध पवित्र करता हुआ ( अविभि ) प्रकृतिसम्बन्धी ( सिन्धुभि ) बहाव से ( वृषा ) सामर्थ्ययुक्त ॥२॥

भावार्थ—शक्तिशाली सूर्य आदि का रक्षक ससार को अनेक प्रकार से धारण करनेवाला तथा सबसाक्षी परमेश्वर जीव को उपदेश करता हुआ आनन्दमय कोश मे व्यापक हो रहा है। सामर्थ्ययुक्त मनुष्य प्रकृति के बहाव स अपने को पवित्र करता हुआ परमेश्वर के उत्पन्न किए हुए लोकों म विराजमान होता है ॥२॥

१०३३—आकृष्टामाषा सिकतानिवावरीच । सोम । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

**अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।**

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

**अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनं स्वायुधः सोतृभि सोम सूयसे ॥३॥**

पदार्थ—( अग्र ) पूर्व या आगे ( सिन्धूनां ) समुद्रों के ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( अर्षसि ) वर्तमान रहता है ( अग्रे ) आगे ( वाच ) वाणी के ( अग्रिय ) प्रथम ही विद्यमान ( गोषु ) सूर्य की किरणों मे ( गच्छसि ) व्यापक हो रहा है ( अग्रे ) पहले ( वाजस्य ) अन्न आदि के ( भजसे ) विभाग करता है ( महद्धन ) महान् धन का ( स्वायुध ) अच्छी प्रकार मनुष्यमात्र का पोषण करनेवाला ( सोतृभि ) यज्ञ करनेवालों से युक्त ( सोम ) हे परमेश्वर ( सूयसे ) उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू शुद्धस्वरूप सबसे प्रथम विद्यमान तथा मनुष्य मात्र का भलीप्रकार रक्षक है। तू समुद्रो और वाणियो के पूर्व ही विद्यमान रहता है। सूर्य की किरणो मे तू ही व्यापक है। अन्न आदि क उत्पन्न होने के पूर्व विद्यमान हुआ तू अनेक यजमानों से युक्त महान् धनो को पैदा करता और विभाग करता है ॥३॥

१०३४—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

**असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशव ॥१॥**

पदार्थ—( असृक्षत ) उत्पन्न किए जाते हैं ( प्र ) उत्तम ( वाजिनः ) ज्ञानवान् ( गव्या ) वेदज्ञान की इच्छा से ( सोमास ) पुरुष ( अश्वया ) व्यापक ( शुक्रास ) तेजस्वी ( वीरया ) बलवती ( आशव ) कुशाग्र बुद्धि ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी तेजस्वी तथा कुशाग्र बुद्धि पुरुष व्यापक तथा बलवती वेदज्ञान की इच्छायुक्त पदा किये जाते हैं ॥१॥

१०३५—कश्यप । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्यो । पवन्ते वारे अव्यये ॥२॥**

पदार्थ—( शुम्भमाना ) सुशोभित ( ऋतायुभि ) परमेश्वरप्रदत्त आयुओं से ( मृज्यमाना ) शुद्ध किये गये ( गभस्त्योः ) ग्रहण और त्याग से ( पवन्ते ) विचरते हैं ( वारे ) वरण करने योग्य ( अव्यये ) अविनाशी परमेश्वर में ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर प्रदत्त आयुओं से सुशोभित तथा ज्ञान, ग्रहण और त्याग से पवित्र विद्वान् पुरुष भक्ति योग्य परमेश्वर में विचरते हैं ॥२॥

१०३६—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

**ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥३॥**

पदार्थ ( ते ) वे ( विश्वा ) सारे ( दाशुषे ) त्यागी पुरुष के लिए ( वसु ) अग्नि का ( सोमा ) विद्वान् ( दिव्यानि ) दिव्य लोकसम्बन्धी ( पार्थिवा ) पृथिवी की ( पवन्ताम् ) ज्ञान कराते हैं ( आन्तरिक्ष्या ) अन्तरिक्ष की ॥३॥

भावार्थ—वे विद्वान् पुरुष यज्ञकर्त्ता को द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष की सारी अग्नि का ज्ञान कराते हैं ॥३॥

१०३७—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र करता है ( देववी ) देवों का उत्पन्न करनेवाला ( अति ) अत्यन्त ( पवित्रं ) पवित्रस्वरूप ( सोम ) हे परमेश्वर ( रंह्या ) वेग से ( इन्द्रम् ) जीवात्मा में ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करनेवाला ( विश ) व्यापक है ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! देवों का उत्पन्न करनेवाला तथा कामनाओं को सफल बनानेवाला तू शुद्धस्वरूप जीवात्मा को पवित्र करता हुआ उसमें व्यापक है ॥१॥

१०३८—मेधातिथिः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२॥

पदार्थ—( आवच्यस्व ) भली भांति प्राप्त करा ( महि ) पर्याप्त ( प्सरः ) भोग्य पदार्थ ( वृषा ) मनोरथ को सफल करनेवाला ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यवान् ( द्युम्नवत्तमः ) अत्यन्त यशस्वी ( आ ) भली भाँति ( योनिम् ) अपने कारणस्वरूप में ( धर्णसिः ) जगत् का धारणकर्त्ता ( सदः ) विद्यमान है ॥२॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! मनोरथ को सफल करनेवाला अत्यन्त यशस्वी तथा जगत् का धारणकर्त्ता तू प्रभूत भोग्य पदार्थ हमें प्राप्त कराता है और तू अपने कारणस्वरूप में स्थित है ॥२॥

१०३९—मेधातिथि । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थ—( अधुक्षत ) पूर्ण करती है ( प्रियम ) प्रियकारी ( मधु ) आनन्द को ( धारा ) वाणियें ( सुतस्य ) सृष्टिकर्त्ता ( वेधसः ) विधाता की ( अपो ) जलों को ( वसिष्ट ) बसाता है ( सुक्रतु ) सुन्दर कर्मवाला ॥३॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता विधाता परमेश्वर की वेदरूप वाणियां प्रिय आनन्द को पूरित करती हैं । सुन्दर कार्योंवाला वह परमेश्वर जलों को निवास देता है ॥३॥

१०४०—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २र ३ १ २
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥

पदार्थ—( महान्तम ) जल को ( त्वा ) तू ( मही ) महान् ( अनु ) पश्चात् ( आपः ) जल ( अर्षन्ति ) प्राप्त होते हैं ( सिन्धवः ) गतिशील ( यत् ) जब ( गोभिः ) सूर्य की किरणों से ( वासयिष्यसे ) आच्छादित करता है ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जब अन्तरिक्षस्थ जल को सूर्य की किरणों से आच्छादित करता है तब जल की महावृष्टि होती है ॥४॥

१०४१—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥

पदार्थ—( समुद्र ) प्राणिमात्र को आनन्द देनेवाला ( अप्सु ) अन्तरिक्ष में ( मामृजे ) शुद्ध करता है ( विष्टम्भ ) सबका स्तम्भरूप ( धरुण ) धारक ( दिव ) द्युलोक का ( सोमः ) परमेश्वर ( पवित्रे ) जल और वायु दोनों को ( अस्मयु ) हमारे कल्याण की कामना करनेवाला ॥५॥

भावार्थ—प्राणिमात्र के आनन्द का स्थान लोकों का स्तम्भरूप द्युलोक धारक तथा हमारे कल्याण की कामना करनेवाला परमेश्वर अन्तरिक्ष में जल और वायु को पवित्र करता है ॥५॥

१०४२—मेधातिथिः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २र
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥६॥

पदार्थ—( अचिक्रदत् ) उपदेश करता है ( वृषा ) कामनाओं को सफल करनेवाला ( हरि ) अज्ञान का हरणकर्त्ता ( महान् ) महान् ( मित्रो न ) मित्र के समान ( दर्शत ) साक्षात् करने के योग्य ( सं ) सम्यक ( सूर्येण ) सूर्य के द्वारा ( दिद्युते ) प्रकाशित कर रहा है ॥६॥

भावार्थ—हमारी कामनाओं को सफल करनेवाला, अज्ञाननाशक तथा साक्षात्कार के योग्य महान् परमेश्वर मित्र के समान हमारे हृदय में हित का उपदेश करता है और सूर्य के द्वारा लोक को प्रकाशित कर रहा है ॥६॥

१०४३—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
गिरस्त इन्द्र ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७॥

पदार्थ—( गिर ) वाणियां ( ते ) तेरी ( इन्दो ) ऐश्वर्यवान् ( ओजसा ) शक्ति से ( मर्मृज्यन्ते ) शुद्ध की जाती हैं ( अपस्युव ) कर्म और ज्ञान का प्रकाश करनेवाली ( याभि ) जिनके द्वारा ( मदाय ) स्तुति के लिए ( शुम्भसे ) सुशोभित होता है ॥७॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! कर्म और ज्ञान का प्रकाश करनेवाली तेरी वेदवाणियां तेरी शक्ति से स्तुति के लिए शुद्ध की जाती हैं जिन के द्वारा तू सुशोभित होता है ॥७॥

१०४४—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥८॥

पदार्थ—( तं ) उस ( त्वा ) तुझ ( मदाय ) आनन्द के लिए ( घृष्वये ) बुरी वासनाओं का दलन करनेवाले ( लोककृत्नुम् ) सृष्टिकर्त्ता ( ईमहे ) प्रार्थना करते हैं ( तव ) तेरी ( प्रशस्तये ) स्तुति के लिए ( महे ) महान् ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बुरी वासनाओं को दूर करनेवाले आनन्द के लिए तथा तेरी स्तुति के लिए तुझे स्वीकार करते हैं ॥८॥

१०४५—मेधातिथि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥९॥

पदार्थ—( गोषा ) गाय का दाता ( इन्दो ) हे परम ऐश्वर्यवाले ( नृषा ) मनुष्यों का दाता ( असि ) है ( अश्वसा ) घोड़ों का दाता ( वाजसा ) अन्न आदि का दाता ( उत ) और ( आत्मा ) आत्मा ( यज्ञस्य ) संसार रूप यज्ञ का ( पूर्व्य ) सनातन ॥९॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू गौओं, मनुष्यों, घोड़ों तथा अन्नों का दाता है । तू ही संसाररूप यज्ञ का सनातन आत्मा है ॥९॥

१०४६—मेधातिथि । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥१०॥

पदार्थ—( अस्मभ्यम् ) हमारी ( इन्दो ) हे परमैश्वर्यवान् ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय को ( मधो ) ज्ञान की ( पवस्व ) पवित्र कर ( धारया ) धार से ( पर्जन्य ) मेघ के ( वृष्टिमान् ) वर्षा करनेवाले ( इव ) समान ॥१०॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों को वर्षा करनेवाले मेघ के समान ज्ञान की धारा से पवित्र कर ॥१०॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१०४७—हिरण्यस्तूपः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१॥

पदार्थ—( सना ) सनातन ( च ) और ( सोम ) हे परमेश्वर ( जेषि ) जीतता है ( च ) भी ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( महिश्रव ) सकल सम्पदाओं के स्वामी ( अथा ) अनन्तर ( नः ) हमारा ( वस्यस ) कल्याण ( कृधि ) कर ॥१॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू सनातन है और अजेय है । हमारा कल्याण कर ॥१॥

१०४८—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २क १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सना ज्योतिः सना स्व३र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२॥

पदार्थ—( सना ) सनातन ( ज्योति ) प्रकाश ( सना ) सनातन ( स्व ) सुख ( विश्वा ) सारे ( च ) और सौभाग्य भी ( अथ ) अनन्तर ( नः ) हमें ( वस्यस ) शरण ( कृधि ) दे ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तेरी ज्योति सुख और सारे सौभाग्य सनातन हैं तू हमें शरण दे ॥२॥

१०४९—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

पदार्थ—( सना ) प्रदान कर ( दक्षम् ) बल को ( उत ) और ( क्रतुम् ) बुद्धि को ( अप ) दूर ( सोम ) हे परमेश्वर ( मृध ) दुर्गुणरूप शत्रुओं को ( जहि ) मार भगा ( अथा ) अनन्तर ( नः ) हमें ( वस्यसः ) धनाढ्य ( कृधि ) कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें बल और बुद्धि प्रदान कर । हमारे दुर्गुणों को हमसे दूर भगा । हमें धनाढ्य बना ॥३॥

१०५०—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३ १ २
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

पदार्थ—( पवीतारः ) हे विद्वानो ( पुनीतन ) पवित्र करो ( सोमम् ) वायु को ( इन्द्राय ) जीव के ( पातवे ) रक्षा के लिए ( अथा ) अनन्तर ( न ) हमें ( वस्यस ) उत्तम ( कृधि ) बना ॥४॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जीव की रक्षा के लिए यज्ञ आदि के द्वारा वायु को पवित्र करो और हमें उत्तम बनाओ ॥४॥

१०५१—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ १ २३२३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥**

पदार्थ—( त्वं ) तू ( सूर्ये ) सूर्यसबन्धी विद्युत के विषय का ( आ भज ) भागी बना ( तव ) अपने ( क्रत्वा ) ज्ञान के द्वारा ( तव ) तेरी ( ऊतिभि ) रक्षाओ से ( अथा ) अनन्तर ( न ) हमें ( वस्यस ) श्रेष्ठ ( कृधि ) कर ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अपने ज्ञान तथा रक्षा के द्वारा हमें सारे विद्युत् के ज्ञान का भागी बना और हमें श्रेष्ठ गुणवाला कर ॥५॥

१०५२—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक पश्येम सूयम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥**

पदार्थ—( तव ) तेरे ( क्रत्वा ) ज्ञान के द्वारा ( तव ) तेरी ( ऊतिभि ) रक्षाओ से ( ज्योक ) चिरकाल तक ( पश्येम ) देखें समझें ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अथा ) अनन्तर ( न ) हमे ( वस्यस ) योग्य ( कृधि ) बना ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तेरे ज्ञान और रक्षाओ के द्वारा चिरकाल तक सूर्य को देखें और उसका ज्ञान प्राप्त करें । तू हमे योग्य बना ॥६॥

१०५३—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

**अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥**

पदार्थ—( अभ्यर्ष ) प्राप्त करा (स्वायुध) मनुष्यो के उत्तम रक्षक (सोम) हे परमेश्वर (द्विबर्हसम) द्यु और पृथिवी लोक मे फले हुए (रयिम) धन को (अथा) अनन्तर ( नः ) हमे ( वस्यस ) उन्नत ( कृधि ) कर ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो के रक्षक परमेश्वर ! तू हमे द्युलोक तथा पृथिवी पर फैले हुए धन को प्राप्त करा और हमें उन्नत कर ॥७॥

१०५४—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

**अभ्यर्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥**

पदार्थ—(अभ्यर्ष) प्राप्त हो (अनपच्युत) अविनाशी ( वाजिन ) हे बलवान ( समत्सु ) सग्रामो मे ( सासहि ) शत्रुओ का अभिभव करने की शक्ति देने वाला ( अथा ) अनन्तर ( न ) हमें (वस्यस ) शरण मे आये का रक्षक (कृधि) बना ॥८॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अविनाशी तथा सग्रामों मे जीतने का साहस देने वाला तू हमे प्राप्त हो और शरण मे आए हुए का रक्षक बना ॥८॥

१०५५—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**त्वां यज्ञैरवीवृधन पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥**

पदार्थ— ( त्वां ) तुझे ( यज्ञै ) स्तोत्रो से ( अवीवृधन् ) स्तुति करते हैं (पवमान) हे शुद्ध स्वरूप (विधर्मणि) विशेष धर्मवाले ज्ञानयज्ञ मे ( अथा ) अनन्तर ( न ) हमे ( वस्यस ) सुखी (कृधि) कर ॥९॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! विशेष धर्मकार्य मे स्तोत्रों के द्वारा तेरी स्तुति करते हैं । तू हमे सुखी बना ॥९॥

१०५६—हिरण्यस्तूप । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥**

पदार्थ—(रयिम्) धन को [सम्पदाए] (न) हमे (चित्रम्) बहुत प्रकार के (अश्विनम्) विस्तृत (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (विश्वायुम) दीर्घायु करने वाले (आभर) प्रदान कर (अथा) अनन्तर (न) हमे (वस्यस) सफल मनोरथ (कृधि) कर ॥१०॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओ के स्वामी परमेश्वर ! तू हमे अनेक प्रकार के विस्तृत और दीर्घायु देने वाले धन को प्रदान कर तथा हमे सफल मनोरथ बना ॥१०॥

१०५७—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ २ १ २

**तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धस । तरत्स मन्दी धावति ॥१॥**

पदार्थ— (तरत्) तर जाता है (सः) वह (मन्दी) स्तुति करने वाला (धावति) उत्तम गति पाता है (धारा) वेदवाणी से ( सुतस्य ) स्तुति किये गये या वर्णित किए गये (अन्धस ) अज्ञान से (तरत्) तरता है (स) वह ( मन्दी ) स्तोता ( धावति ) उत्तम गति पाता है ॥१॥

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा वर्णन किये गये परमेश्वर की स्तुति करने वाला अज्ञान से पार हो जाता है और अवश्य उत्तम गति को पाता है ॥१॥

१०५८—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

**उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवस । तरत्स मन्दी धावति ॥२॥**

पदार्थ—(उस्रा) देनेवाला ( वेद ) प्राप्त होता है ( वसूनां ) सम्पदाओं का (मर्तस्य) मनुष्य की (देवी) परमेश्वर (अवसः) रक्षाओं को (तरत्) [पाप से] पार हो जाता है (स ) वह (मन्दी) उपासक (धावति) उत्तम गति पाता है ॥२॥

भावार्थ—धन का दाता परमेश्वर जिस पुरुष की रक्षा को स्वयं प्राप्त होता है वह स्तुति करता हुआ पुरुष पाप से तर जाता है और उत्तम गति पाता है ॥२॥

१०५९—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

**ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥३॥**

पदार्थ—(ध्वस्रयो ) ध्वस करनेवाले ( पुरुषन्त्यो ) बहुत पदार्थों के विभाग करनेवाले (आ) भली भांति (सहस्राणि) हजारों प्रकार के ज्ञान (दद्महे) ग्रहण करते हैं (तरत्) तर जाता है (स ) वह (मन्दी) स्तोता (धावति) उत्तम गति पाता है ॥३॥

भावार्थ—हम अनेको पदार्थों को नष्ट करनेवाले तथा अनेकों का विभाग करनेवाले परमेश्वर और सूर्य के सहस्रो प्रकार के ज्ञान सुख आदि को ग्रहण करते हैं । जो स्तुति करता है वह पाप से तर जाता है और उत्तम गति प्राप्त करता है ॥३॥

१०६०—उचथ्य । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

**आ ययोस्त्रिंशत तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥**

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( ययो ) जिन दोनों ( त्रिंशत ) तीन सौ [सैकडो] ( तना ) धना का ( सहस्राणि ) हजारो ( च ) और ( दद्महे ) ग्रहण करते हैं ( तरत् ) तर जाता है ( स ) वह ( मन्दी ) स्तुति करनेवाला ( धावति ) उत्तम गति पाता है ॥४॥

भावार्थ—जिन परमेश्वर और सूर्य के द्वारा सैकडों और सहस्रों प्रकार की सम्पदाए हमे प्राप्त होती हैं । परमेश्वर की स्तुति करनेवाला तर जाता है और उत्तम गति पाता है ॥४॥

१०६१—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥१॥**

पदार्थ—( एते ) ये ( सोमा ) विद्वान् ( असृक्षत ) उत्पन्न किए जाते हैं ( गृणाना ) स्तुति करनेवाले ( श्रवसे ) यश के लिए ( महे ) महान् ( मदिन्तमस्य ) आनन्ददाता परमेश्वर की ( धारया ) स्तुति के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—स्तुतियों से परमेश्वर की भक्ति करनेवाले विद्वान् पुरुष महान् यश के लाभ के लिए उत्पन्न किए जाते हैं ॥१॥

१०६२—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाज परि स्रव ॥२॥**

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( गव्यानि ) गोदुग्ध आदि ( वीतये ) भोग के लिए ( नृम्णा ) धन ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( अर्षसि ) देता है ( सनद्वाज ) सदा अन्नदाता तू ( परिस्रव ) दया कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें पवित्र करता हुआ हमारे भोग के लिए गोदुग्ध आदि धन प्रदान करता है । सदा अन्न का दाता तू हम पर दया कर ॥२॥

१०६३—जमदग्नि । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभ । गृणानो जमदग्निना ॥३॥**

पदार्थ—( उत ) और ( नः ) हमे ( गोमती ) इन्द्रियों को प्रकाश देनेवाला ( इष ) ज्ञान का ( विश्वा ) सपूर्ण ( अर्ष ) प्राप्त करा ( परिष्टुभः ) प्रशंसनीय ( गृणान ) स्तुति किया हुआ ( जमदग्निना ) आहिताग्नि ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! निरन्तर यज्ञ करनेवाले हमारे द्वारा प्रार्थित तू हमें इन्द्रियो का हितकारी और प्रशंसनीय सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान कर ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

१०६४—कुत्स । अग्नि । जगती ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।**

१ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र

**भद्रा हि न प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१॥**

पदार्थ—( इमम् ) इस ( स्तोमम् ) स्तोम का ( अर्हते ) पूजनीय ( जातवेदसे ) वेद के उत्पादक परमेश्वर के लिए ( रथमिव ) ज्ञान के समान ( संमहेम ) सम्मान करते हैं ( मनीषया ) उत्तम बुद्धि से ( भद्रा ) कल्याणकारी ( हि ) निश्चित रूप से ( नः ) हमारी ( प्रमतिः ) उत्तम बुद्धि ( अस्य ) इसके ( संसदि ) भजन रूप सत्सग में ( अग्ने ) हे परमेश्वर ! ( सख्ये ) मित्रता मे ( मा ) नहीं ( रिषाम ) किसी से दुःख पाएँ ( वय ) हम ( तव ) तेरी ॥१॥

भावार्थ—हम पूजनीय वेदोत्पादक परमेश्वर के लिए ज्ञान के समान इस स्तोम का बुद्धि से सम्मान करते हैं। निश्चित रूप से इसके भजन में हमारी बुद्धि कल्याणकारिणी होती है। हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता मे हमें किसी से दुःख न होवे ॥१॥

१०६५—कुत्स । अग्नि । जगती ।

१२ ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम् ।
२ १ २   ३ १ २   ३ १   २र ३ १   २र   ३ १ २र
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२॥

पदार्थ—( भराम ) प्रज्वलित करते हैं ( इध्मं ) अग्नि को ( कृणवामा ) उसमें डालते हैं ( हवींषि ) सामग्री को ( ते ) तेरी प्राप्ति के उद्देश्य से ( चितयन्त ) चिन्तन करते हुए ( पर्वणा पर्वणा ) परिपूर्ण साधनों से ( वयम् ) हम ( जीवातवे ) जीवन धारण के लिए ( प्रतरं ) उत्तम ( साधय ) सिद्ध कर ( धिय ) बुद्धियों को ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( सख्ये ) मित्रता मे ( मा ) नहीं ( रिषामा ) किसी को दुःख देवें ( वयम् ) हम ( तव ) तेरी ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पूर्ण साधनों से तेरी प्राप्ति की चिन्ता करते हुए अग्नि को प्रज्वलित करते हैं और उसमे आहुति प्रदान करते हैं। तू हमारे जीवन के लिए हमे उत्तम बुद्धि प्रदान कर। तेरी मित्रता में रहते हुए हम किसी को दुःख न देवें ॥२॥

१०६६—कुत्स । अग्नि । जगती ।

३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३   २ ३   २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
१ २ ३ १   २र ३   २क १   २र ३ १   २र   ३ १ २र
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यु३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

पदार्थ—( शकेम ) समर्थ हों ( त्वा ) तेरी ( समिधम् ) प्रकाशस्वरूप ( साधय ) सिद्ध कर ( धिय ) कर्म और ज्ञान को ( त्वे ) तेरे सहारे पर ( देवा ) देवगण ( हविः ) हवि को ( अदन्ति ) ग्रहण करते हैं ( आहुतम् ) अग्नि में होम की गई ( त्वं ) तू ( आदित्याँ ) आदित्यसंज्ञक विद्वानों को ( आवह ) प्राप्त करा ( तान् ) उन्हें ( हि ) निश्चितरूप से ( उश्मसि ) चाहते हैं ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( सख्ये ) मित्रता में ( मा ) नहीं ( रिषामा ) हम किसी को हानि पहुँचाएं तथा किसी को हम से हानि न पहुंचे ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तुझ प्रकाशस्वरूप की उपासना करने मे समर्थ होवें। तू हमारी बुद्धि और कर्म को उत्तम प्रेरणा दे। तेरे सहारे पर अग्नि में दी गई हवि को देवगण ग्रहण करते हैं। तू आदित्य विद्वानों को उत्पन्न कर। निश्चय ही हम उनकी कामना करते हैं। तेरी मित्रता मे हम से किसी को या किसी से हम को हानि न पहुँचे ॥३॥

१०६७—वसिष्ठ । आदित्या । गायत्री ।

१ ८ ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥१॥

पदार्थ—( प्रति ) उद्देश्य से ( वां ) तुम दोनों के ( सूरे ) सूर्य के ( उदिते ) उदय होने पर ( मित्रं ) सबके मित्र ( गृणीषे ) स्तुति करता हूँ ( वरुणम् ) वरण करने के योग्य ( अर्यमणम् ) न्यायकारी ( रिशादसम् ) बुराइयों का हनन करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम्हारे कल्याण के उद्देश्य से मैं सब के मित्र, वरण करने योग्य तथा बुराइयों को दूर करनेवाले न्यायकारी परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥१॥

१०६८—वसिष्ठ । आदित्य । गायत्री ।

३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ १   २र ३ १ २
राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥२॥

पदार्थ—( राया ) धनसहित ( हिरण्यया ) रमणीय ( मतिः ) स्तुति ( इयं ) यह ( अवृकाय ) अखण्डित ( शवसे ) बल के लिए ( इयं ) यह ( विप्रा ) हे मेधावी पुरुषो, ( मेधसातये ) बुद्धि की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! यह परमेश्वर की स्तुति रमणीय धनसहित अखण्डित बल तथा बुद्धि के लिए हो ॥२॥

१०६९—वसिष्ठ । आदित्य । गायत्री ।

१ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ २   २ ३क २र
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥३॥

पदार्थ—( ते ) तेरे ( स्याम ) [भक्त] हों ( देव ) हे देव ( वरुण ) हे वरण करने के योग्य ( ते ) तेरे ( मित्र ) हे सबके मित्र ( सूरिभि ) विद्वानों के ( सह ) सहित ( इषं ) ज्ञान ( स्वः ) सुख ( धीमहि ) धारण करें ॥३॥

भावार्थ—हे वरणीय तथा सबके मित्र परमात्म देव ! हम विद्वानों के साथ तेरे भक्त हों तथा तेरे ज्ञान और सुख को धारण करें ॥३॥

१०७०—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

१ २उ   ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १   २र   १ २ ३ १   २र
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥१॥

पदार्थ—( भिन्धि ) विनाश कर ( विश्वा ) सारे ( अप ) पृथक ( द्विषः ) द्वेषों का ( परि ) सब प्रकार से ( बाधः ) बाधा पहुँचानेवाली ( जहि ) हनन कर ( मृधः ) हिंसक वृत्तियों को ( वसु ) विद्याधन ( स्पार्हं ) चाहने योग्य ( तद् ) उसे ( आभर ) भरपूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! सारे द्वेषों का विनाश कर। बाधा पहुँचाने वाली हिंसक वृत्तियों को दूर भगा। चाहने योग्य जो ज्ञान धन है उसे प्रदान कर ॥१॥

१०७१—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २   ३ १ २र ३ २ ३ १ २   १ २   ३ १   २र
यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥२॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस ( ते ) तेरे ( विश्वम् ) सकल जगत् ( आनुषक् ) निरन्तर ( भूरे ) पर्याप्त ( दत्तस्य ) दिये हुए को ( वेदति ) जानता है ( वसु ) धन ( स्पार्हं ) चाहने योग्य ( तत ) वह ( आभर ) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे दिए हुए जिस पर्याप्त धन को सारा ससार जानता है चाहने योग्य उस धन को हमें प्रदान कर ॥२॥

१०७२—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २   ३ १ १   २र ३ १ २   १ २   ३ १   २र
यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( वीडौ ) बल मे ( इन्द्र ) हे सेनापते ( यत् ) जो ( स्थिरे ) पृथिवी मे ( यत् ) जो ( पर्शाने ) विचारशील ( पराभृतम् ) सुरक्षित ( वसु ) धन ( स्पार्हं ) चाहने योग्य ( तत ) उसे ( आ भर ) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे सेनापते ! जो धन बल में, पृथिवी और विचारशील मनुष्य में सुरक्षित है उस चाहने योग्य धन को हमें प्रदान कर ॥३॥

१०७३—श्यावाश्व । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ २ १ २उ   ३   २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २
यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१॥

पदार्थ—( यज्ञस्य ) संसार रूप यज्ञ के ( हि ) निश्चित रूप से ( स्थः ) हैं ( ऋत्विजा ) ऋत्विग् ( सस्नी ) निपुण ( वाजेषु ) ज्ञानों मे ( कर्मसु ) कर्मों में ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( तस्य ) उसका ( बोधतम् ) बोध कराओ ॥१॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! आप दोनों जिस संसाररूप यज्ञ के ऋत्विज हैं तथा जिसके ज्ञान और कर्म मे निपुण हैं, उस ससार का हमें ज्ञान करावें ॥१॥

१०७४—श्यावाश्व । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २   ३ १ २   ३ १   २र   १ २ ३ १ २
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२॥

पदार्थ—( तोशासा ) सन्तुष्ट करनेवाले ( रथयावाना ) ससाररूप रथ पर विराजमान हुए ( वृत्रहणा ) बुराइयों के दूर करनेवाले ( अपराजिता ) किसी से भी न हारनेवाले ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( तस्य ) संसार को ( बोधतम् ) जानते हो ॥२॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! सब को सन्तुष्ट करनेवाले, संसाररूप रथ पर विराजमान हुए, बुराइयों के निवारक तथा किसी से भी न पराजित होने वाले तुम दोनों संसार को जानते हो ॥२॥

१०७५—श्यावाश्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २   ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २
इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३॥

पदार्थ—( इदं ) इस ( वां ) तुम दोनों के ( मदिरं ) प्रसन्नता देनेवाले ( मधु ) ज्ञान को ( अधुक्षत् ) दुहते हैं ( अद्रिभिः ) अखण्डव्रतों से ( नरः ) मनुष्य ( इन्द्राग्नी ) हे जीव और परमेश्वर ( तस्य ) उसका ( बोधतम् ) बोध कराओ ॥३॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! ज्ञानी मनुष्य दृढ़ व्रतों से तुम्हारे इस आनन्ददायक ज्ञान को दुहते हैं। आप दोनों उसका हमें बोध कराएँ ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

१०७६—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तम । अर्कस्य योनिमासदम् ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्राय ) जीव के लिए ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( मरुत्वते ) धनादि से युक्त ( पवस्व ) उपदेश कर ( मधुमत्तम ) अत्यन्त ज्ञानवाला ( अर्कस्य ) पूजनीय परमेश्वर के ( योनिम ) मोक्ष धाम मे ( आसदम् ) स्थित होऊँ ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष ! अत्यन्त ज्ञानी तू धनादि से युक्त पुरुष के लिए उपदेश प्रदान कर । मैं पूजनीय परमेश्वर के मोक्ष धाम में स्थित होऊँ ॥१॥

१०७७—कश्यप । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।

१ २ ३ १ २

सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२॥

पदार्थ—( तं ) उस ( त्वा ) तुझे ( विप्राः ) मेधावी पुरुष ( वचोविदः ) वेदज्ञ (परिष्कृण्वन्ति) परिचर्या करते है [ उपासना करते हैं ] (धर्णसिम् ) सबके धारण करनेवाले ( सं ) सम्यक ( त्वा ) तेरे उद्देश्य से (मृजन्ति) अपने को पवित्र करते हैं ( आयवः ) मनुष्य लोग ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मेधावी वेदज्ञ लोग तुझ सर्वाधिकार की उपासना करते हैं । मनुष्य लोग तेरे ही उद्देश्य से अपने आप को शुद्ध पवित्र करते हैं ॥२॥

१०७८—कश्यप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥३॥

पदार्थ—( रसं ) आनन्द रस को ( ते ) तेरे ( मित्र ) मित्र ( अर्यमा ) न्यायकारी ( पिबन्तु ) पान करें ( वरुणः ) श्रेष्ठ ( कवे ) हे वेद काव्य के कर्त्ता ( पवमानस्य ) शुद्धस्वरूप ( मरुतः ) ऋत्विग लोग ॥३॥

भावार्थ—हे वेद के कर्त्ता परमेश्वर ! उपकारी न्यायकारी, श्रेष्ठ पुरुष और ऋत्विग् लोग तुझ शुद्धस्वरूप के आनन्द रस का पान करें ॥३॥

१०७९—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २र

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥१॥

पदार्थ—( मृज्यमान ) पवित्र किया हुआ (सुहस्त्या) हे सिद्धहस्त (समुद्रे) मन मे (वाचम्) वाणी की (इन्वसि) प्रेरणा करता है (रयिं) धन को ( पिशङ्गं ) सुवर्णमय ( बहुलं ) अधिक ( पुरुस्पृहं ) बहुतों से चाहने योग्य (पवमान) हे पवित्र स्वभाववाले ( अभ्यर्षसि ) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे सिद्धहस्त तथा पवित्र स्वभाव विद्वान् पुरुष ! पवित्र किया हुआ तू सबके मन मे वाणी की प्रेरणा करता है तथा बहुतो से चाहने योग्य सुवर्णमय प्रचुर धन को प्राप्त करता है ॥१॥

१०८०—सप्तर्षय । सोम । बृहती ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२॥

पदार्थ—( पुनानः ) पवित्र करनेवाला ( वारे) वरण करने योग्य (पवमान ) शुद्धस्वरूप (अव्यये) नित्य (वृष ) सबके मनोरथों को सफल करनेवाला (अचिक्रदत्) विविध प्रकार से गति देता है । (वने) प्रकृतिरूप वन में (देवानां) जीवो के (सोम ) हे परमेश्वर ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( निष्कृतं ) कर्मफल को ( गोभिः ) तेज से ( अञ्जानः ) व्यापक होता हुआ ( अर्षसि ) प्राप्त कराता है ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! पवित्रकारक तथा सबके मनोरथो को सफल करनेवाला तू वरण करने योग्य नित्य प्रकृतिरूपी कारण वन मे अपने तेज से व्यापक होता हुआ विविध प्रकार की गति दे रहा है । तू जीवों के कर्म का फल प्रदान करता है ॥२॥

१०८१—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।

१ २ ३ १ २

समादित्येभिरख्यत ॥३॥

पदार्थ—( एतम ) इस ( उ ) पाद पूरण ( त्यं ) उसको ( दश ) दश ( क्षिप ) दुःखों को दूर फैंकनेवाले यम तथा नियम ( मृजन्ति ) पवित्र करते हैं ( सिन्धुमातरम ) परमेश्वर है माता जिसकी ( सं ) सम्यक ( आदित्येभिः ) बारह मासों से ( अख्यत ) संगत होता है ॥३॥

भावार्थ—दश यम और नियम परमेश्वर की रक्षा में रहनेवाले विद्वान् को शुद्ध कर देते हैं । वह बारह मास प्रशंसा का पात्र होता है ॥३॥

१०८२—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २र ३ १ २

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—( सं ) सम्यक ( इन्द्रेण ) विद्युत् के साथ ( उत ) और ( वायुना ) वायु के साथ ( सुत ) सृष्टिकर्त्ता ( एति ) व्यापक है ( पवित्रे ) पवित्र संसार में ( आ ) भली भाँति ( सं ) सम्यक ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( रश्मिभिः ) किरणों के साथ ॥१॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर विद्युत्, वायु और सूर्य की किरणों के साथ पवित्र जगत् मे व्यापक हो रहा है ॥१॥

१०८३—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥२॥

पदार्थ—( स ) वह ( नः ) हमें ( भगाय ) ऐश्वर्यशाली (वायवे ) व्यापक ( पूष्णे ) पालन करनेवाले ( पवस्व ) पवित्र कर ( मधुमान् ) ज्ञानवान् ( चारु ) शोभन ( मित्रे ) मित्र ( वरुणे ) वरण के योग्य ( च ) और ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! शोभन ज्ञानवान् तू ऐश्वर्यशाली, व्यापक पालनकर्त्ता मित्र तथा वरण करने योग्य परमेश्वर की प्राप्ति के लिए हमें पवित्र कर ॥२॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

१०८४—शुनःशेप । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥

पदार्थ—( रेवती ) धन को देनेवाली ( नः ) हमे ( सधमादे ) समान सुख के स्थान ( इन्द्रे ) परमेश्वर मे ( सन्तु ) हो ( तुविवाजाः ) ज्ञान का बोध करानेवाली ( क्षुमन्तः ) अन्नवाले ( याभिः ) जिनके द्वारा ( मदेम ) हर्ष प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अन्न आदि से युक्त हम लोग समान सुख के दाता परमेश्वर मे स्थित हुए जिन स्तुतियो से हर्षित होते हैं वे हमे धनदात्री और ज्ञान का बोध करानेवाली होवें ॥१॥

१०८५—शुनःशेप । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

आ घ त्वावान् त्मना युक्त स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।

३ २उ ३ २ ३क २र

ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२॥

पदार्थ—( आ ) भलीभांति ( घ ) अवश्य ( त्वावान् ) अनुपम ( त्मना ) अपने आप ( युक्त ) हम पर कृपा से युक्त ( स्तोतृभ्य ) हम भक्तो के लिए ( धृष्णो ) शक्तिमान् परमेश्वर ( ईयानः ) प्रार्थना किया हुआ (ऋणो ) सचालन कर ( अक्षं न ) नाभि के समान ( चक्र्योः ) रथ के चक्कों को ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अनुपम, स्वयं कृपा से युक्त तथा प्रार्थना किया हुआ तू हम भक्तो का रथ के चक्कों को रथ नाभि के समान सब तरफ से सचालन कर ॥२॥

१०८६—शुनःशेप । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २र

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( यद् ) जो ( दुवः ) सेवा [ उपासना ] (शतक्रतो ) हे अनन्तकर्मन् ( आ ) भली भांति ( कामं ) इच्छा को ( जरितॄणाम् ) स्तुति करनेवालो की ( ऋणो ) पूरा कर ( अक्षं न ) आत्मा के समान (शचीभिः) कर्मों के द्वारा ॥३॥

भावार्थ—हे अनन्त कर्मवाले परमेश्वर ! उपासना से उपासकों की कामनाओं को कर्म के द्वारा आत्मा के समान पूर्ण कर ॥३॥

१०८७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१॥

पदार्थ—( सुरूपकृत्नुम् ) विद्या से सुशोभित कर देनेवाले ( ऊतये ) विद्या की प्राप्ति के लिए ( सुदुघाम् ) सुखपूर्वक दुही जानेवाली के ( इव ) समान ( गोदुहे ) दोहन करने वाले के लिए ( जुहूमसि ) पुकारते हैं ( द्यविद्यवि ) प्रतिदिन ॥१॥

भावार्थ—हम विद्या से सुशोभित करनेवाले विद्वान् को विद्या प्राप्ति के लिए सुख से दुही जाने वाली गाय को दुहने वाले के समान प्रतिदिन सम्मान करते हैं ॥१॥

१०८८—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २

**उप न सवना गहि सोमस्य सोमपा पिब । गोदा इद्रेवतो मद ॥२॥**

पदार्थ—( उप ) समीप ( न ) हमारे ( सवना ) यज्ञों में ( आगहि ) व्यापक हो रहा है ( सोमस्य ) संसार की ( सोमपाः ) हे संसार के रक्षक ( पिब ) रक्षा कर ( गोदा ) इन्द्रियों का दाता ( इत् ) ही ( रेवतः ) जीव का ( मदः ) सुखकारी ॥२॥

भावार्थ—हे संसार के रक्षक परमेश्वर ! तू हमारे यज्ञों में व्यापक हो रहा है। तू ही संसार की रक्षा करता है। तू जीव का इन्द्रियदाता और सुखी करनेवाला है ॥२॥

१०८९—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

**अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥**

पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( ते ) तेरे ( अन्तमानां ) समीप की ( विद्याम ) जानें ( सुमतीनां ) शोभन बुद्धियों को ( मा ) न ( नः ) हमें ( अतिख्य ) वञ्चित कर ( आगहि ) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तेरी समीपवर्ती उत्तम बुद्धियों को जानें। तू हमें उनसे वञ्चित न कर। तू हमे प्राप्त हो ॥३॥

१०९०—मान्धाता । इन्द्र । महापंक्ति ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।**

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

**महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।**

३ १ २र ३ १ २र

**देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥**

पदार्थ—( उभे ) दोनों ( यत् ) जो ( इन्द्र ) सूर्य ( रोदसी ) द्युलोक और पृथिवी को ( आपप्राथ ) प्रकाश से पूर्ण करता है ( उषा इव ) उषा के समान ( महान्तं ) सबसे महान् ( त्वा ) इसको ( महीनां ) पृथिव्यादि लोकों में ( सम्राजम् ) प्रकाश देने वाला ( चर्षणीनां ) देखने वाले मनुष्यों को ( देवी ) परमेश्वर ( जनित्री ) उत्पन्न करने वाला ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है ( भद्रा ) कल्याणकारी ( जनित्री ) उत्पादक ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—सूर्य द्युलोक और पृथिवी को उषा के समान अपने प्रकाश से पूर्ण करता है। वह पृथिवी आदि लोकों से भी बड़ा है और देखने वालों को प्रकाश देने वाला है। कल्याणकारी सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ही उसका उत्पादक है ॥१॥

१०९१—मान्धाता । इन्द्र । महापंक्ति ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुम ।**

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

**पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यम ।**

३ १ २र ३ १ २र

**देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥**

पदार्थ—( दीर्घं ) बड़ा ( हि ) निश्चय ही ( अंकुशं ) अंकुश ( यथा ) जैसे ( शक्ति ) सामर्थ्य को ( बिभर्षि ) धारण करता है ( मन्तुम ) हे शानिन् ( पूर्वेण ) अपने ( मघवन् ) हे सारी सम्पदाओं के स्वामी ( पदा ) पावों से [ पक्ष में व्याप्ति से ] ( वयाम् ) वृक्ष की शाखा को ( अज ) बकरा ( यथा ) जैसे ( यम ) अपने अधिकार में करता है ( देवी ) दिव्य गुणयुक्त ( जनित्री ) उत्पादक ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है ( भद्रा ) कल्याणकारी ( जनित्री ) उत्पन्न करनेवाला ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है ॥२॥

भावार्थ—हे ज्ञान तथा सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! कल्याणकारी दिव्य गुणयुक्त सर्वोत्पादक तू अंकुश के समान महान् शक्ति को धारण करता है। तू समस्त लोकों को पैदा करता है और जिस प्रकार अगले पाँव से बकरा शाखा को पकड़ लेता है उसी प्रकार तू अपनी व्याप्ति से उनकी व्यवस्था करता है ॥२॥

१०९२—मान्धाता । इन्द्र । महापंक्ति ।

१ २ ३ १ २र ३ २

**अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।**

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ।**

३ १ २र ३ १ २र

**देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥**

पदार्थ—( अव ) नीचे ( स्म ) पादपूरक ( दुर्हणायत ) दुःखपूर्वक हरण करनेवाले ( मर्तस्य ) मनुष्य के ( तनुहि ) गिरा ( स्थिरम् ) शक्ति को ( अधस्पदं ) पैरों तले ( तम् ) उस ( ईम् ) पादपूरक ( कृधि ) कर ( यः ) जो ( अस्मान् ) हमें ( अभिदासति ) दास बनाता है। ( देवी ) दिव्यगुण युक्त ( जनित्री ) उत्पादक ( अजीजनत ) पैदा करता है ( भद्रा ) कल्याणकारी ( जनित्री ) उत्पादक ( अजीजनत् ) जीवन देता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दुःखपूर्वक हरण करनेवाले मनुष्य की शक्ति को नीचे गिरा। जो हमे दास बनाता है और हम यदि किसी को दास बनाते हैं तो उन्हें कुचल दे। दिव्य गुणयुक्त सर्वोत्पादक तू सबको उत्पन्न करता है और जीवन प्रदान करता है ॥३॥

卐 पंचम खण्ड समाप्त 卐

१०९३—असितदेवली । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥१॥**

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( स्वानः ) सबके हृदय में उपदेश करता हुआ ( गिरिष्ठाः ) वाणी में स्थित ( पवित्रे ) इस पवित्र संसार में ( सोमः ) परमेश्वर ( अक्षरत् ) संचालन करता है ( मदेषु ) स्तुति विषय में ( सर्वधा ) सबका धारणकर्त्ता ( असि ) है ॥१॥

भावार्थ—अन्तःकरण में उपदेश करनेवाला, वाणी पर विराजमान परमेश्वर पवित्र संसार का संचालन करता है। हे परमेश्वर ! तू स्तोत्रों में सब कुछ धारण करता है ॥१॥

१०९४—असितदेवली । सोम । गायत्री ।

२उ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

**त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥२॥**

पदार्थ—( त्वं ) तू ( विप्र ) मेधावी ( त्वं ) तू ( कवि ) वेदकाव्य का कर्त्ता ( मधु ) आनन्द का दाता ( प्रजातम् ) उत्पन्न ( अन्धसः ) अन्न से ( मदेषु ) आनन्दों में ( सर्वधा ) सबको धारण करनेवाला ( असि ) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मेधावी तथा वेद-काव्य का कर्त्ता है। तू आनन्द में सबको धारण करता है। तू ही अन्न से उत्पन्न सुख को प्रदान करता है ॥२॥

१०९५—असितदेवलो । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

**त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥३॥**

पदार्थ—( त्वे ) तुझ में ( विश्वे ) सब ( सजोषस ) समान प्रेम के साथ ( देवास ) विद्वान् लोग ( पीतिम् ) आनन्द को ( आशत ) प्राप्त करते हैं ( मदेषु ) अपने स्तोत्रों में ( सर्वधा ) सारे ज्ञानों का धारण करनेवाला ( असि ) है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तेरी शरण में एक समान प्रेम वाले सब विद्वान् लोग आनन्द पाते हैं। तू अपने स्तोत्रों में सबको धारण करता है ॥३॥

१०९६—ऋणचय । सोम । यवमध्या गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

**स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।**

२ ३ १ २ ३ २

**सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१॥**

पदार्थ—( स ) वह ( सुन्वे ) उत्पन्न करता है ( य ) जो ( वसूनाम् ) वस्तुओं को ( य ) जो ( रायाम् ) धनों को ( आनेता ) प्राप्त करानेवाला है ( य ) जो ( इळानाम् ) वाणियों का ( सोम ) परमेश्वर ( यः सुक्षितीनाम् ) जो सुन्दर भू-भागों का ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर आठ वस्तुओं, वेदवाणियों, सुन्दर भू-भागों तथा धनों का प्राप्त करानेवाला है वही जगत् को रचता है ॥१॥

१०९७—ऋणंचय । सोम । सतो बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।**

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

**आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥**

पदार्थ—( यस्य ) जिस ( ते ) तेरे ( इन्द्रः ) आत्मज्ञानी ( पिबात् ) पान करता है ( यस्य ) जिसके ( मरुत ) उपासक लोग ( यस्य ) जिसके ( अर्यमणा ) न्यायकारी ( भग ) भाग्यवान् ( आ ) भली भाँति ( येन ) जिससे ( मित्रावरुणा ) हितैषी और श्रेष्ठ पुरुष को [सहायक] ( करामहे ) करते हैं ( आ ) सब प्रकार से ( इन्द्रम् ) आत्मा को ( अवसे ) रक्षा के लिए ( महे ) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस तेरे आनन्द का आत्मज्ञानी, उपासक, न्यायकारी और भाग्यशाली पुरुष भी पान करते हैं और जिस तेरी कृपा से हम

अपनी महान् रक्षा के लिए हितैषी और श्रेष्ठ पुरुष को अपना सहायक बनाते हैं, उस तुझे हम स्तुति से प्रसन्न करते हैं ॥२॥

१०९८—पर्वतनारदौ । सोम । उष्णिक ।

१ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
त व सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशु न हव्य स्वदयन्त गूर्तिभि ॥१॥

पदार्थ—( तम् ) उसको ( व ) तुम लोग ( सखाय ) हे मित्रो ( मदाय ) आनन्द के लिए ( पुनानम् ) सबके पवित्रकर्त्ता ( अभि ) सब प्रकार से ( गायत ) भजन करो ( शिशुम्न ) प्राण वायु के समान ( हव्यै ) हवनो के द्वारा ( स्वदयन्त ) अच्छी तरह ग्रहण करो ( गूर्तिभि ) स्तुतियो से ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग आनन्द प्राप्ति के लिए सबके पवित्रकर्त्ता परमेश्वर का भजन करो । हवन के द्वारा प्राण वायु के समान स्तुतियो से उसे ग्रहण करो ॥१॥

१०९९—पर्वतनारदौ । सोम । उष्णिक ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स वत्स इव मातभिरिन्दुर्हि वानो अज्यते ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २
देवावीमदो मतिभि परिष्कृत ॥२॥

पदार्थ—( स ) सम्यक प्रकार ( वत्स ) बच्चे के ( इव ) समान ( मातृभि ) माताओ द्वारा ( इन्दु ) ऐश्वर्यवान् ( हिन्वान ) जाना हुआ ( अज्यते ) ज्ञात होता है ( देवावी ) देवों के रक्षक ( मद ) आनन्ददाता ( मतिभि ) विद्वानो के द्वारा ( परिष्कृत ) सुशोभित ॥२॥

भावार्थ—विद्वानो द्वारा ज्ञात सुशोभित देवो का रक्षक आनन्ददाता तथा सकल ऐश्वर्योंवाला परमेश्वर माताओ द्वारा बच्चे के समान भली भाति जाना जाता है ॥२॥

११००—पर्वतनारदौ । सोम । उष्णिक ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अय दक्षाय साधनोऽय शर्धाय वीतये ।
३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
अय देवेभ्यो मधुमत्तर सुत ॥३॥

पदार्थ—( अय ) यह ( दक्षाय ) वद्धि के लिए ( साधन ) परम साधन ( अय ) यह ( शर्धाय ) बल के लिए ( वीतये ) ज्ञान के लिए ( अय ) यह ( देवेभ्य ) सब देवो के लिए ( मधुमत्तर ) अतिशय आनन्ददायक ( सुत ) सृष्टिकर्त्ता ॥३॥

भावार्थ—सब देवो के लिए आनन्द का दाता और सष्टिकर्त्ता परमेश्वर हमारे वद्धि बल और ज्ञान का परम साधन है ॥३॥

११०१—मनु । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमा पवन्त इन्दवोऽस्मभ्य गातुवित्तमा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्रा स्वाना अरेपस स्वाध्य स्वर्विद ॥१॥

पदार्थ—( सोमा ) परमेश्वर ( पवन्ते ) व्यापक हो रहा है ( इन्दव ) सर्वैश्वर्ययुक्त ( अस्मभ्य ) हमारे लिए ( गातुवित्तमा ) उत्तम पथ प्रदर्शक ( मित्रा: ) स्नेही ( स्वाना ) जीवनदाता ( अरेपस ) पापरहित ( स्वाध्य ) चिन्तन करने के योग्य ( स्वर्विद ) सर्वज्ञ [सुखदाता] ॥१॥

भावार्थ सकल ऐश्वर्यवान् हमारा पथ प्रदर्शक स्नेही जीवनदाता निष्पाप चिन्तन करने के योग्य तथा सर्वज्ञ परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

११०२—मनु । सोम । अनुष्टुप ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ते पूतासो विपश्चित सोमासो दध्याशिर ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२॥

पदार्थ—( ते ) वह ( पूतास ) पवित्र ( विपश्चितः ) ज्ञानवान् ( सोमास ) परमेश्वर ( दध्याशिर ) जगत् को धारण करता हुआ आश्रय ( सूरास ) सूर्य के ( न ) समान ( दर्शतास ) साक्षात् करने के योग्य ( जिगत्नव ) व्यापक ( ध्रुवा ) नित्य ( घृते ) प्रकाश मे ॥२॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, ज्ञानवान्, सर्वाधार व्यापक तथा नित्य परमेश्वर सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश मे साक्षात् करने के योग्य है ॥२॥

११०३—मनु । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभित समस्वरन्वसुविद ॥३॥

पदार्थ—( सुष्वाणास ) शोभन सत्योपदेष्टा ( वि ) विशेष ( अद्रिभि ) आदर से ( चिताना ) विचारा जानेवाला ( गो ) पृथिवी के ( अधित्वचि ) पृष्ठ पर ( इषम् ) अन्न और ज्ञान को ( अस्मभ्यं ) हमे ( अभित ) सब तरफ से ( समस्वरन् ) प्रदान करता है ( वसुविद ) सारी सम्पदाओं का दाता ॥३॥

भावार्थ—सुन्दर सत्योपदेष्टा पृथिवी पर आदर और अटूट श्रद्धा के द्वारा जानने के योग्य तथा सकल सम्पदाओं का दाता परमेश्वर हमे सब तरफ से अन्न और ज्ञान प्रदान करता है ॥३॥

११०४—कुत्स । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूत पुरुमेधाश्चित्तकवे नर धात ॥१॥

पदार्थ—( अया ) इस ( पवा ) गति से ( पवस्व ) प्राप्त कर ( एना ) इन ( वसूनि ) धनो को ( मांश्चत्वे ) अश्व पर ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( सरसि ) जल पर ( प्रधन्व ) चल ( ब्रध्नश्चित ) अत्यन्त महान् ( यस्य ) जिसका ( वात न ) वायु के समान ( जूतिम् ) वेग को ( पुरुमेधा ) बहुत ज्ञानवान् ( चित ) ही ( तकवे ) गमन के लिए ( नर ) मनुष्य को ( धात ) धारण करे ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली पुरुष ! महान् और ज्ञानवान् तू अश्व और जल पर गमन कर । इस गति से समस्त धनो को प्राप्त कर । वायु के समान जिसकी गति का तू प्राप्त करता है उस नेता परमेश्वर को धारण कर ॥१॥

११०५—कुत्स । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
षष्टि सहस्रा नगुतो वसूनि वृक्ष न पक्व धूनवद्रणाय ॥२॥

पदार्थ—( उत ) और ( न ) हमे ( एना ) इस ( पवया ) पावन शक्ति से ( पवस्व ) पवित्र कर ( अधि ) मे ( श्रुते ) शास्त्र मे ( श्रवाय्यस्य ) श्रवण करने योग्य ( तीर्थे ) पार लगानेवाले ( षष्टि ) साठ ( सहस्रा ) हजार ( नैगुतः ) सूक्ष्मातिसूक्ष्म [ रहस्यमय ] ( वसूनि ) धनों का ( वृक्ष न ) वृक्ष के समान ( पक्व ) पके हुए फलोंवाले ( धूनवत ) हिलाकर ( रणाय ) जीवन संग्राम मे विजय के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है । अपनी पावन शक्ति से श्रवण करने योग्य भव पार लगानेवाले वेदरूप शास्त्र मे हमे पवित्र कर । तू पके हुए फलवाले वृक्ष के समान हमे साठ सहस्र [अनेक प्रकार का] धन प्रदान कर ॥२॥

११०६—कुत्स । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अस्वापयन्निगुत स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेत ॥३॥

पदार्थ—( मही ) द्यु और पृथिवीलोक ( इमे ) य ( अस्य ) इसके ( वृषनामा ) वर्षा करनेवाले और स्थान या संज्ञावाले ( शूष ) सुख को देनेवाले ( मांश्चत्वे ) अनुभूति के साधन ( वा ) अथवा ( पृशने ) चर्मेन्द्रिय ( वा ) अथवा ( वधत्रे ) बल की रक्षा करनेवाले ( अस्वापयत् ) शक्ति हीन कर देता है ( निगुत ) सूक्ष्मातिसूक्ष्म ( स्नेहयच्च ) और नष्ट कर देता है ( अप ) दूर ( अमित्रान् ) काम-क्रोध आदि रोगो को ( अपाचित ) दूर करता है ( अचेत ) जड़ता या मूर्खता को ॥३॥

भावार्थ—वर्षावाले और स्थानरूप य परमेश्वर के द्युलोक और पृथिवी सुख देनेवाले हैं । सूक्ष्मरूप यह परमेश्वर बाह्यज्ञान की अनुभूति के साधन बल की रक्षा करनेवाले चर्मेन्द्रिय में स्थित रोग और काम, क्रोधादिकों को शक्तिहीन करके नष्ट कर देता है । वह मूर्खता को दूर भगाता है ॥३॥

卐 षष्ठ खण्ड समाप्त 卐

११०७—बन्धु, सुबन्धु । श्रुतबन्धु, विप्रबन्धुश्च । अग्नि । द्विपदा विराट् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्व नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्य ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे आचार्य ( त्व ) तू ( न ) हमारे ( अन्तम ) अत्यन्त समीप ( उत ) और ( त्राता ) रक्षा करनेवाला है ( शिवः ) कल्याण करनेवाला ( भुवः ) होता है ( वरूथ्य ) श्रेष्ठ ॥१॥

भावार्थ—हे आचार्य देव ! तू हमारे अत्यन्त समीप रक्षक, कल्याणकारी तथा श्रेष्ठ है ॥१॥

११०८—बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धुश्च । अग्नि । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२॥

पदार्थ—( वसुः ) बसानेवाला ( अग्नि ) परमेश्वर ( वसुश्रवा ) कीर्ति धन से सम्पन्न ( अच्छा ) साक्षात् ( नक्षि ) प्राप्त होता है ( द्युमत्तमः ) प्रकाशों का प्रकाशक ( रयिं ) सम्पदा ( दाः ) देता है ॥२॥

भावार्थ—सबको निवास देनेवाला, यशस्वी और प्रकाशको का भी प्रकाशक परमेश्वर हमें ज्ञान से प्राप्त होता है और धन प्रदान करता है ॥२॥

११०९—बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च । अग्नि । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥

पदार्थ—( तं ) उस ( त्वा ) तेरी ( शोचिष्ठ ) हे प्रकाशस्वरूप (दीदिवः) हे तेजस्वी ( सुम्नाय ) सुख के लिए ( नूनम् ) निश्चयरूप से ( ईमहे ) याचना करते हैं ( सखिभ्यः ) मित्र आदि के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप तथा तेजस्वी परमेश्वर ! मित्रो के सुख के लिए हम निश्चय तेरी याचना करते हैं ॥३॥

१११०—भुवनः, साधनो वा । विश्वेदेवा । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

पदार्थ—( इमा ) इन सब ( नु ) शीघ्र ( कं ) सुख ( भुवना ) लोको का ( सीषधम ) सिद्ध करें ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( विश्वे ) सारे ( च ) भी ( देवा ) विद्वान् तथा दिव्य शक्तियां ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर और समस्त विद्वान् आदि दिव्य शक्तियां लोको का कल्याण करें ॥१॥

११११—भुवन, साधनो वा । विश्वेदेवा । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३क १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्र सह सीषधातु ॥२॥

पदार्थ—( यज्ञ ) यज्ञ को ( च ) और ( नः ) हमारे ( तन्वं ) शरीर को ( च ) और ( प्रजां ) सन्तान को ( च ) और ( आदित्यैः ) विद्वान् सूर्य और सवत्सर के [ साथ ] ( इन्द्र ) परमेश्वर ( सह ) साथ (सीषधातु) सिद्ध करें ।२।

भावार्थ—परमेश्वर विद्वान् सूर्य सवत्सर आदि के साथ हमारे यज्ञ शरीर और सन्तति की उन्नति और रक्षा करे ॥२॥

१११२—भुवन, साधनो वा । विश्वेदेवा । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥३॥

पदार्थ—( आदित्य ) सूर्यादियों से ( इन्द्र ) परमेश्वर (सगण ) समस्त पदार्थ समुदाय से युक्त ( मरुद्भि ) वायु तथा सुवर्ण आदिको से ( अस्मभ्य) हमारे लिए ( भेषजा ) औषधि ( करत् ) करे ॥३॥

भावार्थ—समस्त पदार्थ समुदाय से युक्त परमेश्वर सूर्य आदि तथा सुवर्ण और वायु आदि के द्वारा हमारे रोगो का निवारण करे या औषध करने का ज्ञान दे ॥३॥

१११३—वामदेव । इन्द्रः । द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( व ) तुम लोग ( इन्द्राय ) आत्मा के लिए ( वृत्रहन्तमाय ) बुरी वत्तियो से दूर रहनेवाले (विप्राय) ज्ञानी के ज्ञाता, (गाथम्) प्रशंसा ( गायत ) करो ( यम् ) जिसको ( जुजोषते ) स्वीकार करता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वज्जन ! आप लोग बुरी वत्तियों से दूर रहनेवाले, ज्ञान गुणसम्पन्न जीव की प्रशस्ति करो । जिसको प्रभु चाहता है उसे स्वीकार करता है ॥१॥

१११४—वामदेव । इन्द्र । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र

अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—( अर्चन्ति ) आदर करते हैं ( अर्कम ) आदर योग्य ( मरुतः ) मनुष्य जन (स्वर्का ) प्रशसा वचनो से युक्त (आ स्तोभति) प्रशस्ति करते हैं (श्रुतः) विख्यात ( युवा ) युक्त ( स ) वह ( इन्द्र ) योगी ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वज्जन ! प्रशसा वचनो से युक्त मनुष्यजन योगयुक्त, ऐश्वर्यशाली आदरणीय उस योगी का आदर करते हैं जो योगैश्वर्य सम्पन्न और गुणों से प्रसिद्ध था ॥२॥

१११५—वामदेवः । इन्द्र । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥३॥

पदार्थ—(क्षियन्त ) निवास करते हुए (प्रक्ष) गृहसम शरीर मे (मधुमति ) विद्या और योग से युक्त ( पुष्येम ) पुष्ट करें (रयिम्) आत्मिक धन को ( धीमहे ) धारण करें ( ते ) तुझे ( इन्द्र ) हे ईश्वर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्या और योगबल से युक्त शरीर मे रहते हुए हम आत्मिक धन को पुष्ट कर और तुझ का धारण करें ॥३॥

卐 सप्तम खण्ड समाप्त 卐

卐 सप्तमोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# अष्टमोऽध्यायः

१११६—वृषगण । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) श्रेष्ठता से (काव्य) त्रयी विद्या [चारों वेद] को (उशना इव) धर्मात्मा के समान ( ब्रुवाण ) प्रवचन करता हुआ ( देव ) देव ( देवानां ) सारे दिव्य इन्द्रियादि पदार्थों की ( जनिमा ) उत्पत्ति को ( विवक्ति ) वर्णन करता है ( महिव्रत ) महान् व्रत वाला ( शुचिबन्धु ) तेजस्वी ( पावकः ) दुर्गुणो का शोधक ( पदा ) उत्तम गतियों से ( वराह ) सात्त्विक आहार वाला ( अभ्येति ) प्राप्त होता है ( रेभन् ) उपदेश करता हुआ । १॥

भावार्थ—महान् व्रतधारी, तेजस्वी, दुर्गुणो का शोधक, सात्त्विक आहारवाला तथा दिव्यगुण विद्वान् पुरुष धर्मात्मा के समान त्रयी विद्या का प्रवचन करता हुआ इन्द्रियादि तथा सूर्य आदि पदार्थों की उत्पत्ति का वर्णन करता है । वह उपदेश देता हुआ उत्तम गतियों को प्राप्त करता है ॥१॥

१११७—वृषगण । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम रूप से ( हंसास ) आत्मज्ञानी ( तृपला ) शीघ्रकारी ( वग्नु ) वेदवाणी रूप ( अच्छा ) अच्छी तरह ( अमात् ) संसार भय से ( अस्तं ) गृह ( वृषगणा ) धर्म की व्याख्या या लक्षण करनेवाले ( अयासु ) आते हैं ( अङ्गोषिण ) स्तुति के योग्य ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( सखाय ) सखा भाववाले ( दुर्मर्ष ) किसी से न दबाए जाने योग्य शक्तिशाली ( वाणम ) वेदवाणी का ( प्रवदन्ति ) वर्णन करते हैं ( साकम् ) साथ साथ ॥२॥

भावार्थ—शीघ्र गतिवाल, धर्म का लक्षण और व्याख्यान करनेवाले तथा परस्पर मित्र आत्मज्ञानी लोग संसार भय से लोक की रक्षा के लिए वेदवाणी रूप गृह को अच्छी तरह प्राप्त होते हैं । वे स्तुति के योग्य शुद्धस्वरूप, शक्तिशाली परमेश्वर तथा वेद का साथ साथ वर्णन करते हैं ॥२॥

११८—वृषगण । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २र

स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३॥

पदार्थ—( स ) वह ( योजते ) जोडता है ( उरुगायस्य ) प्रशंसनीय [ आत्मा की ] ( जूतिं ) गति को ( वृथा ) अनायास ( क्रीडन्तम् ) क्रीडा करते हुए ( मिमते ) मापती हैं ( न ) नहीं ( गावः ) इन्द्रियां ( परीणसं ) बहुत प्रकार के तेज को ( कृणुते ) उत्पन्न करता है ( तिग्मशृङ्ग ) महान् तेजस्वी ( दिवा ) दिन में ( हरिः ) अज्ञाननिवारक ( ददृशे ) जाना जाता है ( नक्तं ) रात्रि में ( ऋज्रः ) प्रकाशस्वरूप ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर आत्मा की गति का योग कराता है । वृथा क्रीडा में भी उसे इन्द्रियां नहीं माप सकतीं । महान् तेजस्वी अज्ञान निवारक प्रकाश स्वरूप परमेश्वर विविध तेजों को उत्पन्न करता है और दिन रात मनुष्यों के अनुभव में आता है ॥३॥

१११९—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥४॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तमरूप से ( स्वानास ) परस्पर प्रश्नोत्तर करनेवाले ( रथा इव ) यतियों के समान ( अर्वन्तो न ) प्रशस्त ज्ञानवान् के समान ( श्रवस्यव ) यश की चाहना करनेवाले ( सोमास ) पुरुष ( राये ) ऋद्धि सिद्धि प्राप्ति धन के लिए ( अक्रमु ) पराक्रम करते हैं ॥४॥

भावार्थ—यश की कामना करनेवाले और परस्पर आत्मज्ञानविषयक प्रश्नोत्तर करते हुए, यती और प्रशस्तज्ञान वाले के समान ऋद्धि और सिद्धि के लिए पराक्रम करते हैं ॥४॥

११२०—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥५॥

पदार्थ—( हिन्वानास ) प्रेरित ( रथा इव ) रथ के समान ( दधन्विरे ) धारण किये जाते हैं ( गभस्त्यो ) हाथों मे ( भरास ) भार ( कारिणाम् ) काम करनेवालों के ( इव ) समान ॥५॥

भावार्थ—प्रेरित रथ तथा काम करनेवालों के भार के समान सांसारिक भोग्य पदार्थों को परमेश्वर ने हमारे हाथों मे दे रखा है ॥५॥

११२१—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।

१ २उ ३ २ ३ १ २

यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥६॥

पदार्थ—( राजान ) राजाओं के ( न ) समान ( प्रशस्तिभि ) प्रशंसाओं से (सोमास ) पृथिवी से लेकर प्रकृति जीव तथा ईश्वर पर्यन्त समस्त पदार्थ( गोभि ) वेदवाणियों के द्वारा ( अंजते ) वर्णन किये जाते हैं ( यज्ञ ) यज्ञ के ( न ) समान ( सप्तधातृभि ) सात छन्दों द्वारा ॥६॥

भावार्थ—प्रशंसा वचनों से राजाओं के समान तथा सात छन्दों से यज्ञ के समान पृथिवी आदि से लेकर प्रकृति जीव तथा परमेश्वर पर्यन्त पदार्थ वेदवाणियों से वर्णन किये जाते हैं ॥६॥

११२२—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥७॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( स्वानास ) उपदेश करते हुए ( इन्दव ) ऐश्वर्यवान् ( मदाय ) आनन्द प्राप्ति के लिए ( बर्हणा ) महान् ( गिरा ) वाणी से ( मधो ) ज्ञान की ( अर्षन्ति ) परिपूर्ण करते हैं ( धारया ) धारा से ॥७॥

भावार्थ—महान् वेदवाणी द्वारा उपदेश करते हुए ऐश्वर्यवान् पुरुष सुख प्राप्ति के लिए ज्ञान की धारा से लोक को तृप्त करते हैं ॥७॥

११२३—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥८॥

पदार्थ—( आपानासः ) व्यापक अनुभववाले ( विवस्वतः ) परमेश्वर के ( जिन्वन्तः ) जानते हुए ( उषस ) प्रकाशस्वरूप ( भगम् ) ऐश्वर्य को ( सूरा ) सूर ( अण्वं ) सूक्ष्म ( वितन्वते ) विस्तार करते हैं ॥८॥

भावार्थ—व्यापक अनुभव वाले सूर विद्वान् पुरुष जानते हुए प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के सूक्ष्म ऐश्वर्य का प्रचार द्वारा विस्तार करते हैं ॥८॥

११२४—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २ ३ १ २

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥९॥

पदार्थ—( अप ) पृथक ( द्वारा ) मार्ग ( मतीनां ) स्तुतियों के ( प्रत्नाः ) पुराने ( ऋण्वन्ति ) खोलते हैं ( कारव ) करनेवाले कुशल ( वृष्ण ) सुखों की वर्षा करनेवाले ( हरसे ) प्रकाश के लिए ( आयवः ) मनुष्य ॥९॥

भावार्थ—स्तुति करनेवाले मनुष्य सुखों की वर्षा करने वाले परमेश्वर के प्रकाश के लिए उपासना के सनातन द्वार को खोल देते हैं ॥९॥

११२५—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥१०॥

पदार्थ—( समीचीनास ) उत्तम गुणवाले ( आशत ) व्यापक हो रहे हैं ( होतार ) ऋत्विग् ( सप्तजानय ) सातजन (पदं) परम पद को (एकस्य) एक के ( पिप्रत ) याचना करते हुए ॥१०॥

भावार्थ—उत्तम गुणवाले सात ऋत्विक जन अद्वितीय परमेश्वर के परम पद की याचना करते हुए यज्ञ में स्थित होते हैं ॥१०॥

११२६—असितो देवलो वा । सोम. । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥११॥

पदार्थ—( नाभा ) नाभि मे, देश मे ( नाभिं ) परमेश्वर को ( नः ) अपने ( आ ददे ) ग्रहण करता हूं ( चक्षुषा ) आंख से ( सूर्यं ) सूर्य के समान ( दृशे ) देखने के लिए ( कवेः ) वेद काव्य के कर्त्ता ( अपत्यं ) सन्ततिरूप संसारी प्राणियों को ( आ दुहे ) पूरा करता हूं ॥११॥

भावार्थ—मैं आंख से सूर्य के समान प्रकाश को देखने के लिए अपने नाभि प्रदेश मे धारणा द्वारा परमेश्वर को ग्रहण करता हूं । वेद के कर्त्ता परमेश्वर के सन्ततिरूप संसार के समस्त प्राणियों को सुख से पूर्ण करता हूं ॥११॥

११२७—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२॥

पदार्थ—( अभि ) भली भांति ( प्रियं ) प्यारे ( दिव ) प्रकाशस्वरूप के ( पद ) परमपद ( अध्वर्युभि ) उपासकों द्वारा ( गुहा ) अन्तःकरण मे ( हितम् ) धारणा द्वारा जाने गये ( सूर ) विद्वान् पुरुष ( पश्यति ) देखता है ( चक्षसा ) ज्ञान की आंख से ॥१२॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष उपासकों द्वारा हृदय मे धारणा द्वारा जाने गए प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के प्यारे परमपद को ज्ञान की आंख से देखता है ॥१२॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

११२८—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजना ॥१॥

पदार्थ—( असृग्रम् ) उत्पन्न किये जाते हैं ( इन्दव ) ऐश्वर्यवान् ( पथा ) मार्ग से ( धर्मन् ) धर्म में ( ऋतस्य ) परमेश्वर के द्वारा निर्धारित ( सुश्रिय ) शोभा वाले ( विदाना ) जानते हुए ( अस्य ) इस संसार की ( योजना ) विधान ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली धर्म मे सुशोभित इस संसार के विधान को जाननेवाले विद्वान् जन परमेश्वर के द्वारा निर्धारित मार्ग से रचे जाते हैं ॥१॥

११२९—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

२उ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्यः ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तमरूप से ( धारा ) वाणियों को ( मधोः ) विज्ञान की ( अग्रिय ) प्रथम ( महीः ) महान् ( अप ) कर्मों को ( विगाहते ) मिलाता है ( हवि ) ग्रहण करने योग्य ( हविःषु ) ग्रहण करने योग्यों में ( वन्द्यः ) स्तुति करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—पूज्यों का पूज्य परमेश्वर विस्तृत कर्मों और ज्ञान की मूल वाणियों को सृष्टि के आदि में मिलाता है ॥२॥

११३०—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( युजा ) युक्तियुक्त ( वाचः ) वाणियों को ( अग्रियः ) प्रथम विद्यमान ( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करने वाला ( व ) पापपूरक ( अचिक्रदत् ) उपदेश करता है ( वने ) वन के विषय में

( सद्म ) गृह आदि ( अभि ) विषय में ( सत्यः ) सत्यस्वरूप ( अध्वर ) कल्याणकारी ॥३॥

भावार्थ—सर्वप्रथम विद्यमान, सत्यस्वरूप, कल्याणकारी और मनोरथों को पूर्ण करनेवाला परमेश्वर जल और गृह निर्माण आदि के विषय में युक्तियुक्त वाणियों का उपदेश करता है ॥३॥

११३१—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

२ ३ १   २र ३ २ ३   १ २ ३ १   २र   १र ३ १ २

**परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥**

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( यत् ) जब ( काव्या ) वेदरूप काव्यों को ( कविः ) कवि ( नृम्णा ) बल और धनों को ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( अर्षति ) प्राप्त करता है ( स्वः ) सुख को ( वाजी ) ज्ञानवान् ( सिषासति ) भागी होता है ॥४॥

भावार्थ—कवि पुरुष जब अपने बल और धन को पवित्र करता हुआ वेदमय काव्य को प्राप्त करता है तब वह परमज्ञानी हुआ सुख पाता है ॥४॥

११३२—जमदग्नि असित देवला । सोम । गायत्री ।

१ २   ३ २उ   ३ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २   ३ १ २

**पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५॥**

पदार्थ—( पवमानः ) शुद्धस्वरूप ( अभि ) भली भांति ( स्पृधः ) विघ्न करने वालों को ( विशः ) प्रजा के ( राजा ) के ( इव ) समान ( सीदति ) दमन करता है ( यत् ) जब ( ईम् ) इस ( ऋण्वन्ति ) जान लेते हैं ( वेधसः ) बुद्धिमान् पुरुष ॥५॥

भावार्थ—जब ज्ञानी पुरुष परमेश्वर को जान लेते हैं तब वह शुद्धस्वरूप विघ्नों को दूर करता है जैसे राजा प्रजा के विघ्नों को दूर करता है ॥५॥

११३३—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

२   ३ २ ३ १ २ ३ २उ   ३ १ २   ३ १ २   ३ २

**अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६॥**

पदार्थ—( अव्या ) प्रकृति के ( वारे ) आवरण मे ( परि ) सब प्रकार से ( प्रियः ) प्यारा ( हरिः ) अज्ञानहर्त्ता ( वनेषु ) विभागयुक्त पदार्थों मे ( सीदति ) विराजमान है ( रेभः ) स्तोता ( वनुष्यते ) भजन करता है ( मती ) स्तुति द्वारा ॥६॥

भावार्थ—प्यारा अज्ञानहर्त्ता परमेश्वर प्रकृति के आवरण तथा समस्त विभागयुक्त पदार्थों में विराजमान हो रहा है। स्तोता स्तुतियों द्वारा उसका भजन करता है ॥६॥

११३४—जमदग्नि असित देवला । सोम । गायत्री ।

२   ३ १   २र ३ १   २   ३ १   २र   २   ३   १ २ ३   १ २

**स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥**

पदार्थ—( सः ) वह ( वायुम् ) वायु को ( इन्द्रम् ) विद्युत् को ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा को ( साकम् ) साथ ( मदेन ) सुख के ( गच्छति ) जान लेता है ( रणा ) व्यवहार करता है ( यः ) जो ( अस्य ) इसके ( धर्मणा ) धर्म से ॥७॥

भावार्थ—जो इस परमेश्वर के बतलाए धर्म मार्ग से चलता है वह सुख, पूर्वक वायु विद्युत् चन्द्र और सूर्य का ज्ञान कर लेता है ॥७॥

११३५—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

२   ३ १ २र ३ २ ३   १ २   ३ १ २   ३   १ २ ३ १ २

**आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥**

पदार्थ—( आ ) भली प्रकार ( मित्रे ) वायु मे ( वरुणे ) जल में ( भगे ) सूर्य में ( मधोः ) आनन्दस्वरूप की ( पवन्ते ) व्यापक हो रही हैं ( ऊर्मयः ) प्रकाश की लहरें ( विदानाः ) जानते हुए ( अस्य ) इसको ( शक्मभिः ) कर्म और शक्तियों से युक्त हो जाते हैं ॥८॥

भावार्थ—आनन्दस्वरूप परमेश्वर के प्रकाश की लहरें वायु, जल तथा सूर्य आदि में व्यापक हो रही हैं। जो पुरुष इस प्रभु को जान लेते है वे शक्ति और कर्म से युक्त हो जाते हैं ॥८॥

११३६—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

३   १ २   ३ २उ   ३ १ २   ३ १ २   २ ३ १ २ ३ १   २

**अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥**

पदार्थ—( अस्मभ्यम् ) हमें ( रोदसी ) हे दण्ड से दुष्टों को रुलानेवाले ( रयिम् ) जल को ( मध्वः ) आनन्दप्रद ( वाजस्य ) ज्ञान की ( सातये ) प्राप्ति के लिए ( श्रवः ) यश ( वसूनि ) धनों को ( सञ्जितम् ) दे ॥९॥

भावार्थ—हे दुष्टों को रुलानेवाले परमेश्वर और राजन् ! आप दोनो हमें आनन्दकारी ज्ञान के प्राप्त करने के लिए यश, जल तथा समस्त सम्पदाएँ प्रदान करें ॥९॥

११३७—जमदग्नि असित-देवला । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २   २ ३ १ २ ३ १ २

**आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥**

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( दक्ष ) पराक्रम को ( मयोभुवम् ) सुख को देनेवाले ( वह्निम् ) सब कुछ प्राप्त करानेवाले ( अद्य ) आज ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( पान्तम् ) रक्षा करनेवाले ( आ ) भली प्रकार ( पुरुस्पृहम् ) बहुतों से चाहने योग्य ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम आज सुखदाता, सब कुछ प्रदान करनेवाले, रक्षक तथा अनेकों से चाहने योग्य तेरे पराक्रम को स्वीकार करते हैं ॥१०॥

११३८—जमदग्नि असित देवलाः । सोम । गायत्री ।

२   ३ १   २र ३ २उ   ३ १ २ ३ १ २   २ ३ १ २ ३ १ २

**आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥**

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( मन्द्रम् ) आनन्ददाता ( आ ) भली प्रकार ( वरेण्यम् ) वरण करने योग्य ( आ ) भली प्रकार ( विप्रम् ) मेधावी ( आ ) भली भांति ( मनीषिणम् ) सबके मनों के ज्ञाता ( पान्तम् ) रक्षक ( आ ) भली भांति ( पुरुस्पृहम् ) सबसे चाहने योग्य ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम आनन्ददाता वरण के योग्य, मेधावी सबके मनो मे रमनेवाले, रक्षक तथा सबके द्वारा चाहने योग्य तुझ को स्वीकार करते हैं ॥११॥

११३९—जमदग्नि-असित-देवला । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १   २र ३ २ ३ १ २   ३ २   २   ३ १ २ ३ १ २

**आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥**

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( रयिम् ) परम धनरूप ( आ ) भली भांति ( सुचेतुनम् ) उत्तम ज्ञानी ( आ ) भली प्रकार ( सुक्रतो ) हे उत्तम कर्मवाले ( तनूषु ) आत्माओं मे [व्यापक] ( आ ) भली भांति ( पान्तम् ) रक्षक ( आ ) अच्छी तरह ( पुरुस्पृहम् ) अनेको से चाहने योग्य ॥१२॥

भावार्थ—हे उत्तम कर्मवाले परमेश्वर ! हम भक्तों के परम धन, उत्तम ज्ञानी, आत्माओं में व्यापक, रक्षक तथा सर्वपूज्य तुझको स्वीकार करते हैं ॥१२॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

११४०—भरद्वाज । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

३ १ २   ३ १ २ ३ १   २ ३   १ २   ३ २ ३ २र   ३ २ ३ २

**मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।**

३ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३   १ २   ३ २

**कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्न पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥**

पदार्थ—( मूर्धानम् ) मस्तकरूप, उन्नत भाग ( दिवः ) द्युलोक के ( अरतिम् ) अपनी व्यापकता से धारण करनेवाले ( पृथिव्याः ) पृथिवी लोक के ( वैश्वानरम् ) समस्त मनुष्यों के हित के साधनभूत ( ऋते ) सत्य के नियम में ( आ ) भली भांति ( जातम् ) उत्पन्न हुए ( अग्निम् ) अग्नि को ( कविम् ) तीक्ष्ण तेजवाले ( सम्राजम् ) प्रकाशमान ( अतिथिम् ) सदा गतिशील ( जनानाम् ) लोगों के ( आसन् ) मुखरूप ( न ) हमारे लिए ( पात्रम् ) रक्षक ( जनयन्त ) उत्पन्न करते हैं ( देवाः ) परमेश्वर, सूर्य और वायु आदि दिव्य शक्तियां ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य तथा वायु देव द्युलोक के मस्तकरूप, पृथिवी को व्याप्त होकर धारण करनेवाले, सबके हित के साधनभूत, सत्य नियम में उत्पन्न हुए तीक्ष्ण तेजवाले, प्रकाशमान, निरन्तर गतिशील प्राकृतिक देवों के मुखरूप तथा लोगों के रक्षक अग्नि को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

११४१—भरद्वाज । अग्नि । त्रिष्टुप ।

१   २र   ३ १ २   ३ २ ३   २ ३ २ ३ १   २र

**त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।**

२ ३ १ २   ३ १ २ ३   १   २   ३ २   ३ १   २र

**तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥२॥**

पदार्थ—( त्वाम् ) तेरी ( विश्वे ) समस्त ( अमृत ) हे अमर ( जायमानम् ) उत्पन्न होते हुए ( शिशुम् न ) बच्चे के समान ( देवाः ) विद्वान् लोग ( अभि ) भली प्रकार ( संनवन्ते ) स्तुति करते हैं ( तव ) तेरे ( क्रतुभिः ) ज्ञानों से ( अमृतत्वम् ) मोक्ष को ( आयन् ) प्राप्त करते हैं ( वैश्वानर ) हे समस्त मनुष्यों के हितकारी ( यत् ) जो ( पित्रोः ) द्यु और पृथिवीलोक के ( अदीदेः ) प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थ—हे अजर, अमर तथा सर्वहितकारक परमेश्वर ! तू द्यु और पृथिवीलोक को प्रकाशित करता है। सारे विद्वान् पुरुष उत्पन्न शिशु के समान तेरी प्रशंसा करते हैं और तुम्हारे ज्ञानों से मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥२॥

११४२—भरद्वाज । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २र

**नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।**

३   २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २

**वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३॥**

पदार्थ—( नाभिं ) नाभिरूप [मूल आधार] ( यज्ञानां ) यज्ञों के ( सदनं ) स्थान ( रयीणां ) धनों के ( महाम् ) महान् ( आहावम् ) स्तुति किए जानेवाले ( अभि ) भली भांति ( संनवन्त ) स्तुति करते हैं ( वैश्वानरं ) सबके हितसाधक ( रथ्यम् ) रथ को सिद्ध करनेवाले ( अध्वराणाम् ) अन्तरिक्ष आदि लोकों के ( यज्ञस्य ) यज्ञ के ( केतुं ) प्रकाशक ध्वजारूप ( जनयन्त ) प्रकट करते हैं ( देवाः ) विद्वान् लोग ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् जन यज्ञों के मूल आधार, समस्त धनों के एकमात्र स्थान, महान् तथा स्तुत्य परमेश्वर की स्तुति करते हैं और अन्तरिक्ष आदि लोक तथा यज्ञ के प्रकाशक, रथ के साधक समस्त व्यवहारों में हितकारक भौतिक अग्नि को ज्ञान द्वारा प्रकट करते हैं ॥३॥

११४३—यजत । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ २   १ २   ३ २ ३ २

**प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम प्रकार से ( वः ) तुम लोग ( मित्राय ) परमेश्वर के लिए ( गायत ) प्रशंसा करो ( वरुणाय ) जीव के लिए ( विपा ) विस्तृत ( गिरा ) वेदवाणी से ( महिक्षत्रौ ) महाबली ( ऋतं ) सत्य ( बृहत् ) महान् ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग परमेश्वर और जीव की विस्तृत वेदवाणी द्वारा प्रशंसा करो । महाबली वे दोनों सत्यस्वरूप और महान् हैं ॥१॥

११४४—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ ३ १   २र   ३ २ ३ १ २   ३ २

**सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२॥**

पदार्थ—( सम्राजा ) अच्छी तरह प्रकाशमान ( या ) जो ( घृतयोनी ) प्रकाश के आश्रय ( मित्रः ) परमेश्वर ( च ) और ( उभा ) दोनों ( वरुणः ) वरुण ( च ) और ( देवा ) देव ( देवेषु ) तैंतीस देवों में ( प्रशस्ता ) श्रेष्ठ [प्रशंसनीय] ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर और जीवात्म देव तेजस्वी प्रकाश के आश्रय तथा तैंतीस देवों में प्रशंसनीय हैं उनकी तुम लोग प्रशंसा करो ॥२॥

११४५—यजत । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २   ३ १   ३ २ ३ २ ३ १ २   १ २   ३ २ ३ १ २

**ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३॥**

पदार्थ—( ता ) वे दोनों ( नः ) हमारे लिए ( शक्तं ) समर्थ हैं ( पार्थिवस्य ) पृथ्वीसम्बन्धी ( महः ) महान् ( रायः ) सम्पदाएँ ( दिव्यस्य ) उत्तम द्युलोकसंबन्धी ( महि ) महान् ( वां ) तुम दोनों का ( क्षत्रं ) बल ( देवेषु ) तैंतीस देवों में ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर पृथ्वी लोकसम्बन्धी तथा दिव्य सम्पदाओं के देने में और जीव उनका उपभोग करने में समर्थ है । हे परमेश्वर और जीव ! तुम्हारा बल सब देवों में महान् है ॥३॥

११४६—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१   २र   ३ २ ३ २   ३ १ २   १ २ ३ १ २ ३ १ २

**इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( आयाहि ) हमें प्राप्त हो ( चित्रभानो ) हे अनिर्वचनीय प्रकाश वाले ( सुताः ) उत्पन्न ( इमे ) ये संसारी प्राणी ( त्वायवः ) तुम्हारे मिलने की इच्छावाले ( अण्वीभिः ) सूक्ष्म तन्मात्राओं से ( तना ) विस्तारित ( पूतासः ) पवित्र ॥१॥

भावार्थ—हे अद्भुत प्रकाशवाले परमेश्वर ! तू हमें प्राप्त हो । सूक्ष्म पंच तन्मात्राओं से शरीर के विस्तार को प्राप्त हुए पवित्र तथा उत्पन्न ये संसारी प्राणी तेरी प्राप्ति के इच्छुक हैं ॥१॥

११४७—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१   २   ३ २ ३ १   २र   ३ १ २   २ ३ १ २   ३ १ २

**इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( आयाहि ) प्राप्त हो ( धिया ) उत्तम बुद्धि से ( इषित ) जाने गये ( विप्रजूत ) मेधावी पुरुषों को प्राप्त होनेवाले ( सुतावतः ) पदार्थ विद्या के ज्ञाता ( उप ) समीप ( ब्रह्माणि ) ब्राह्मणि [ ब्रह्मविद् ] ( वाघतः ) ऋत्विजों को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम बुद्धि से जानने योग्य तथा मेधावियों को प्राप्त होनेवाला तू पदार्थविद्या के ज्ञाता ब्रह्मवित् ऋत्विजों को प्राप्त हो ॥२॥

११४८—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१   २र ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २

**इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( आयाहि ) भली भांति जानता है ( तूतुजानः ) शीघ्र गतिवाला ( उप ) समीप ( ब्रह्माणि ) स्तुतियों को ( हरिवः ) अज्ञान आदि के हर्त्ता ( सुते ) उत्पन्न संसार में ( दधिष्व ) धारण करता है ( नः ) हमारे लिए ( चनः ) अन्न आदि पदार्थों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शीघ्रगति वाला अज्ञान नाशक तू हमारी स्तुतियों को जानता है और संसार में हमारे लिए अन्न आदि को धारण करता है ॥३॥

११४९—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २

**तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।**

३ २ ३ १ २ ३   २

**कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१॥**

पदार्थ—( तम् ) उसकी ( ईळिष्व ) स्तुति कर ( यः ) जो ( अर्चिषा ) अपने तेज से ( वना ) जगत् के कारण पदार्थों को ( विश्वा ) सारे ( परिष्वजत् ) व्याप्त करता है ( कृष्णा ) आकर्षण धारणवाले अग्नि सूर्य तथा पृथ्वी आदि को ( कृणोति ) रचता है ( जिह्वया ) वाणी वेदवाणी के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो परमेश्वर अपने तेज से जगत् के समस्त मूल कारण पदार्थों का व्यापन कर रहा है तथा वेदवाणी के द्वारा धारण आकर्षणवाले अग्नि, सूर्य पृथिवी आदि को रचता है, तू उसकी स्तुति कर ॥१॥

११५०—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २   ३ १ २र ३ १ २   ३ १ २ २ १ २ ३ २

**य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥२॥**

पदार्थ—( यः ) जो ( इद्धे ) प्रदीप्त अग्नि में ( आ विवासति ) भली भांति करता है ( सुम्नम् ) यज्ञ को ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ( मर्त्यः ) मनुष्य ( द्युम्नाय ) यश के लिए ( सुतराः ) सुख से पार करने योग्य ( अपः ) कर्म ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रदीप्त अग्नि में भली भांति यज्ञ करता है वह परम यश के लिए पार लगानेवाले कर्मों को कर रहा है ॥२॥

११५१—भरद्वाज । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २ ३ १ २   १ २ ३ २ ३ १ २

**ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोढवे ॥३॥**

पदार्थ—( ता ) वे दोनों [तुम] ( नः ) हमें ( वाजवतीः ) बल देनेवाली ( इषः ) अन्न तथा विज्ञान ( आशून् ) शीघ्रगामी ( पिपृतम् ) प्रदान करें ( अर्वतः ) घोड़ों को ( आ ) भली भांति ( इन्द्र ) विद्युत् ( अग्निम् ) सुवर्ण आदि धन को ( वोढवे ) प्राप्त करने के लिए ॥ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और राजन् ! आप दोनों विद्युत् और सुवर्ण आदि की प्राप्ति के लिए हमें बलशाली अन्न और विज्ञान तथा शीघ्रगामी अश्व आदि प्रदान करें ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

११५२—सिकतानिवावरी । इन्द्र । जगती ।

१ २   ३ २ ३ १ २   ३ २उ ३ २ ३ १   २र   ३ १ २

**प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।**

१ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २

**मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१॥**

पदार्थ—(प्र) उत्तम प्रकार से (उ) वितर्क (अयासीत्) प्राप्त करता है (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के दिए ( निष्कृतम् ) कर्मफल को ( सखा ) मित्ररूप (सख्युः) मित्र के (न) नहीं (प्रमिनाति) माप कर सकता है ( संगिरम् ) वेदवाणी को (मर्य इव) मनुष्य के समान ( युवतिभिः ) युवतियों के साथ ( समर्षति ) संसक्त होता है (सोमः) जीव (कलशे) संसार में (शतयाम्ना) सैकड़ों (पथा) मार्ग से ॥१॥

भावार्थ—मित्ररूप ऐश्वर्यशाली जीव सर्वमित्र परमेश्वर के द्वारा दिए गए कर्मफल को प्राप्त करता है । वह परमेश्वर की वेदवाणी को माप नहीं सकता । युवती के साथ मनुष्य के समान वह सैकड़ों मार्गों से संसार में विचरता है ॥१॥

११५३—सिकतानिवावरी । इन्द्र । जगती ।

२ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ ३

**प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।**

२ ३ १ २ ३क २र ३   २ ३   २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**हरिं क्रीळन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२॥**

पदार्थ—(प्र) उत्तम प्रकार से (वः) तुम्हारी (धियः) बुद्धियां (मन्द्रयुवः) वाणी से युक्त ( विपन्युवः ) हे मेधावी ( पनस्युवः ) स्तुति करनेवाले ( संवरणेषु ) उपासना गृहों में (अक्रमुः) विस्तृत होती हैं । ( हरिं ) अज्ञान का हरण करने वाले (क्रीळन्तम्) सृष्टि की क्रीडा करने वाले ( अभ्यनूषत ) स्तुति करते हैं ( अभि ) सब

प्रकार से (स्तुभ) स्तोता (धेनव) वेदवाणियां (पयसा) ज्ञान से युक्त (इत्) ही (अभिश्रयु) आश्रय लेती हैं ॥२॥

भावार्थ—हे वाणी से युक्त स्तुति करने वाले मेधावीगण! आप लोगों की बुद्धियां उपासना यज्ञों में विस्तृत होती हैं। स्तोता लोग अज्ञान नाशक सृष्टि की क्रीडा करनेवाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं तथा वेदवाणियां ज्ञान के साथ उस परमेश्वर में आश्रय लेती हैं ॥२॥

११५४—सिकतानिवावरी । इन्द्र । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ न सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २

या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (न) हमें (सोम) हे सृष्टिकर्ता (संयत) संगृहीत (पिप्युषीम्) वृद्धि करनेवाले (इषम्) अन्न को (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (पवस्व) प्रदान कर (पवमान) हे सर्वव्यापक (ऊर्मिणा) बोध के साथ (या) जो (न) हमारे लिए (दोहते) पूर्ण करता है (त्रि) तीन बार (अहन्) दिन में (असश्चुषी) बिना बाधा के (क्षुमत्) अन्नवाला (वाजवत्) ज्ञानयुक्त (मधुमत्) आनन्ददायक (सुवीर्यं) पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली सृष्टिकर्ता परमेश्वर! सर्वव्यापक तू हमें उस संगृहीत, वृद्धि करनेवाले अन्न को ज्ञान के साथ प्रदान कर जो कि अन्नवाले, ज्ञानयुक्त, आनन्द पराक्रम को हमारे लिए दिन के तीनों भागों में बिना बाधा के पूरा करता है ॥३॥

११५५—पुरुहन्म । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न किष्ट कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।

२ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२

इन्द्र न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्ट धृष्णुमोजसा ॥१॥

पदार्थ—(न कि) कोई नहीं (त) उसको (कर्मणा) कर्म के द्वारा (नशत) नाश करता है (य) जो (चकार) करता है (सदावृधम्) सदा उन्नत करनेवाले (इन्द्रम्) आत्मा का (न) इस अवस्था में (यज्ञै) यज्ञों द्वारा (विश्वगूर्तम्) सब में प्रशंसनीय (ऋभ्वसम्) महान् (अधृष्टम्) न दबाये जाने योग्य (धृष्णुम्) दबानेवाला (ओजसा) तेज से ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य सबके प्रशंसा योग्य, महान् न दबायी जानेवाली तथा अपने तेज से अन्यों को दबानेवाली आत्मशक्ति का यज्ञ और कर्मों द्वारा सदा उन्नत करता है उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता ॥१॥

११५६—पुरुहन्मा । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रय ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्याव क्षामीरनोनवु ॥२॥

पदार्थ—(अषाढम्) अपराध को क्षमा न करनेवाला (उग्रम्) महान् शक्तिशाली (पृतनासु) संग्रामों में (सासहिं) साहस देनेवाले (यस्मिन्) जिस में (मही) महान् (उरुज्रय) वेगवती (सं) सम्यक् (धेनव) वेदवाणियां (जायमाने) उत्पत्ति करनेवाले (अनोनवु) स्तुति करती हैं (द्याव) द्युलोक सम्बन्धी (क्षामी) पृथिवीलोकवाले प्राणी (अनोनवु) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! उत्पत्तिकर्ता जिस परमेश्वर की महान् वेगवती वेदवाणियां प्रशंसा करती हैं तथा द्यु और पृथिवी लोकस्थ प्राणी जिसकी स्तुति करते हैं, तुम लोग अपराध को न क्षमा करनेवाले, महाशक्तिशाली और संग्रामों में साहस देनेवाले प्रभु की स्तुति करो ॥२॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

११५७—नारद । सोम । उष्णिक ।

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २

शिशुं न यज्ञै परि भूषत श्रिये ॥१॥

पदार्थ—(सखाय) हे मित्रो (आ) भली भांति (निषीदत) बैठो (पुनानाय) पवित्रात्मा की (प्रगायत) प्रशंसा करो (शिशुं न) बच्चे के समान (यज्ञै) पांच महायज्ञों से (परिभूषत) प्रसन्न करो (श्रिये) अपनी शोभा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो! समीप बैठो और पवित्र आत्मा विद्वान् पुरुष की प्रशंसा करो तथा अपने कल्याण के लिए उसे बच्चे के समान पांच यज्ञों से प्रसन्न करो ॥१॥

११५८—नारद । सोम । उष्णिक ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

समी वत्सं न मातृभि सृजता गयसाधनम् ।

३ २क १ २ ३ १ २र

देवाव्य३ मदमभि द्विशवसम् ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (ई) इस (वत्सं न) बच्चे के समान (मातृभि) माताओं से (सृजत) मेल करो (गयसाधनम्) धन आदि के साधक (देवाव्यम्) दिव्य पदार्थों के रक्षक (मदम्) आनन्ददाता (अभि) सब प्रकार से (द्विशवसम्) सबसे द्विगुण बलवाला अथवा सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश करने रूप दो बलोंवाला ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! समस्त धनों के दाता सब देवों के रक्षक आनन्द दाता और द्विगुण बलवाले परमेश्वर के साथ मेल करो। जैसे मातायें बच्चे के साथ मेल करती हैं ॥२॥

११५९—नारद । सोम । उष्णिक ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥३॥

पदार्थ—(पुनाता) पवित्र करो (दक्षसाधनम्) समस्त बलों के साधनभूत (यथा) जैसे (शर्धाय) बल के लिए (वीतये) ज्ञान के लिए (यथा) जिस प्रकार (मित्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (वरुणाय) जीव के ज्ञान के लिए (शन्तमम्) सुखकारक ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग बल के साधक सुख गुण वाले आत्मा को उस तरह पवित्र करो जिस प्रकार से बल, ज्ञान, परमेश्वर तथा आत्मा की प्राप्ति हो सके ॥३॥

११६०—अग्नय धिष्ण्या । सोम । द्विपदा ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

प्र वाज्यक्षा सहस्रधारास्तिर पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमरूप से (वाजी) बलवान् (अक्षा) व्याप्त कर रहा है (सहस्रधार) असंख्य वाणियोंवाले (तिर) दबाकर (पवित्र) अग्नि, सूर्य आदि का (वि) विशेषरूप से (वारम्) वरण करने योग्य (अव्यम्) प्रकृति के विकार [ प्राकृतिक ] ॥१॥

भावार्थ—बलवान् और असंख्य वाणियों वाला परमेश्वर वरण के योग्य प्राकृतिक अग्नि तथा सूर्य आदि को दबाकर व्याप्त कर रहा है ॥१॥

११६१—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

स वाज्यक्षा सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभि श्रीणान ॥२॥

पदार्थ—(स) वह (वाजी) बलवान् (अक्षा) संचालन कर रहा है (सहस्ररेता) सहस्रों प्रकार की सामर्थ्य वाला (अद्भि) कर्मों के द्वारा (मृजानः) शुद्ध करने वाला (गोभि) वेदवाणियों से (श्रीणान) परिपक्व करनेवाला ॥२॥

भावार्थ—बलवान् अनन्तशक्तिवाला अपने पवित्र कर्मों द्वारा सबका शुद्ध कर्ता तथा वेदवाणियों से सबको परिपक्व करनेवाला परमेश्वर सबका संचालन कर रहा है ॥२॥

११६२—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभि सुत ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोम) हे जीव (याहि) जा (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (कुक्षा) शरण में (नृभि) नेताओं द्वारा (येमान) नियम चलाया हुआ (अद्रिभि) आदरणीय (सुत) उत्पन्न हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे जीव! संसार में पैदा हुआ तथा आदरणीय नेताओं से नियम पर चलाया गया तू परमेश्वर की शरण में जा! ॥३॥

११६३—भृगु । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

ये सोमास परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वाद शर्यणावति ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (सोमास) प्राणी (परावति) दूर देश में (ये) जो (अर्वावति) समीप देश में (सुन्विरे) उत्पन्न हुए हैं (ये) जो (वा) अथवा (अद) इस (शर्यणावति) पृथ्वी पर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! जो प्राणी हमसे दूर, समीप देश या इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं, वे सब हमारा कल्याण करें ॥१॥

११६४—भृगु । सोम । गायत्री ।

१२ ३ २३ १ २३ १ २२ ३ २२ २ ३ १ २ ३ १ २

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२॥

पदार्थ—( ये ) जो ( आर्जीकेषु ) सरलस्वभाववाले ( कृत्वसु ) निर्मित योनियों में ( ये ) जो ( मध्ये ) मध्य में ( पस्त्यानाम् ) गृहों के ( ये ) जो ( वा ) अथवा ( जनेषु ) जनों में ( पञ्चसु ) पाँच ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो प्राणी सरल स्वभाववाली योनियों में हैं जो गृहस्थ हैं अथवा जो पञ्चजनों में हैं [ चारोंवर्ण पांचवा निषाद ] वे हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥२॥

११६५—भृगु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥३॥

पदार्थ—( ते ) वे ( नः ) हमारे लिए ( वृष्टिं ) सुख की वर्षा ( दिवस्परि ) द्युलोक पर्यन्त ( पवन्ताम् ) प्राप्त करावें ( आ ) भली भाँति ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम ( स्वानाः ) स्वयं प्राणशक्तिवाले=बलवान् ( देवासः ) विद्वान् ( इन्दवः ) ऐश्वर्यवान् ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो बलवान्, विद्वान् तथा ऐश्वर्यवान् पुरुष हैं वे हमारे लिए द्युलोकपर्यन्त सुख की वर्षा करें तथा उत्तम पराक्रम प्रदान करें ॥३॥

卐 पञ्चम खण्ड समाप्त 卐

११६६—वत्स । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( ते ) तेरा ( वत्स ) बुद्धि ( मनः ) मन को ( यमत ) नियम में रखता है ( परमात् ) परम ( चित् ) ही ( सधस्थात् ) समान स्थान से ( अग्ने ) हे विद्वान् ( त्वां ) तुझे ( कामये ) चाहता हूँ ( गिरा ) प्रार्थना से ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तेरी बुद्धि परमपद रूप स्थान में मन को नियन्त्रित करती है। मैं प्रार्थनापूर्वक तेरी कामना करता हूँ ॥१॥

११६७—वत्स । अग्निः । गायत्री ।

१ २उ १ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥२॥

पदार्थ—( पुरुत्रा ) सब जगह ( हि ) निश्चय ( सदृङ् ) समदर्शी ( असि ) है ( दिशः ) दिशाओं को ( विश्वा ) सारी ( अनु ) लक्ष्यकर ( प्रभुः ) स्वामी ( समत्सु ) जीवन संग्रामों में ( त्वा ) तुझे ( हवामहे ) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सर्वत्र समदर्शी तथा समस्त दिशाओं का स्वामी है। हम जीवन-संग्रामों में तेरी ही पुकार करते हैं ॥२॥

११६८—वत्स । अग्नि । गायत्री ।

३ २ ३ १ २२ ३ १ २ १ २ ३ १ २

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥३॥

पदार्थ—( समत्सु ) जीवन-संग्रामों में ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( अवसे ) रक्षा के लिए ( वाजयन्त ) बल की कामना करते हुए ( हवामहे ) पुकारते हैं ( वाजेषु ) संग्रामों में ( चित्रराधसम् ) नाना प्रकार के धन की याचना करने योग्य ॥३॥

भावार्थ—बल की कामना करते हुए हम संग्रामों में अनेक प्रकार के धनवाले परमेश्वर को, जीवन-संग्राम में अपनी रक्षा के लिए पुकारते हैं ॥३॥

११६९—नृमेध । इन्द्र । विराडुष्णिक् ।

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।

३ १ १ २ ३ १ २

आ वीरं पृतनासहम् ॥१॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( आभर ) भरपूर कर ( ओजः ) बल ( नृम्णम् ) धन से ( शतक्रतो ) हे सैकड़ों यज्ञोंवाले ( विचर्षणे ) हे सब के साक्षी ( आ ) भली भांति ( वीरं ) बलवान् ( पृतनासहम् ) संग्राम का जीतने वाला ॥१॥

भावार्थ—हे सैकड़ों यज्ञों के करने वाले तथा सब के साक्षी राजन् ! तू हमारे लिए बल, धन तथा संग्राम जीतने वाले बलवान् प्रदान कर ॥१॥

११७०—नृमेध । इन्द्र । विराडुष्णिक् ।

१ २२ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

१ २ ३ १ २

अधा ते सुम्नमीमहे ॥२॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( हि ) निश्चय ( नः ) हमारा ( पिता ) पिता ( वसो ) हे सबको निवास देनेवाले ( त्वं ) तू ( माता ) माता ( शतक्रतो ) हे सैकड़ों यज्ञों के स्वामी ( बभूविथ ) है ( अध ) अनन्तर ( ते ) तेरे ( सुम्नम् ) सुख को ( ईमहे ) चाहते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सबके निवासदाता तथा असंख्य यज्ञों के स्वामी परमेश्वर ! तू ही हमारा पिता और माता है। हम तेरे सुख की याचना करते हैं ॥२॥

११७१—नृमेध । इन्द्र । विराट् उष्णिक ।

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—( त्वां ) तेरी ( शुष्मिन् ) हे बलशाली ( पुरुहूत ) बहुतों से पुकारे गए ( वाजयन्तम् ) सत्य असत्य के ज्ञान करानेवाले ( उपब्रुवे ) स्तुति करता हूँ ( सहस्कृत ) हे बलदाता ( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( रास्व ) दे ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे बलशाली, बहुतों से पुकारने योग्य तथा बलदाता परमेश्वर ! मैं तुझ सत्य और असत्य का ज्ञान करानेवाले की स्तुति करता हूँ। तू हमें उत्तम पराक्रम दे ॥३॥

११७२—अत्रि । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ १ २उ ३ १ २

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( इन्द्र ) हे राजन् ( चित्र ) हे अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाले ( मे ) मेरे पास ( इह ) यहाँ ( न ) नहीं ( अस्ति ) है ( त्वादातम् ) तेरे देने योग्य ( अद्रिवः ) हे दण्डधारी ( राधः ) धन को ( तत् ) वह ( नः ) हमें ( विदद्वसो ) हे सारी सम्पदाओं वाले ( उभया ) दोनों ( हस्त्या ) हाथों से ( आ भर ) प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ—हे दण्डधारी, समस्त संपदाओं वाले तथा अद्भुत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त राजन् ! तेरे देने योग्य जो वस्तु मेरे पास नहीं, वह मुझे दोनों हाथों से प्रदान कर ॥१॥

११७३—अत्रि । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( मन्यसे ) मानता है ( वरेण्यम् ) उत्तम ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( द्युक्षं ) अन्न ( तत् ) वह ( आ भर ) दे ( विद्याम ) प्राप्त करें ( तस्य ) उस ( ते ) तेरे ( वयं ) हम ( अकूपारस्य ) अच्छी तरह से भरणपोषण करनेवाले ( दावनः ) दान को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस अन्न को तू उत्तम मानता है वह हमें प्रदान कर। हम तेरे उस अच्छी तरह भरण पोषण करनेवाले दान को प्राप्त करें ॥२॥

११७४—अत्रि । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( ते ) तेरा ( दित्सु ) दिशाओं में ( प्रराध्यं ) आराधना के योग्य ( मनः ) ज्ञान ( अस्ति ) है ( श्रुतं ) प्रसिद्ध ( बृहत् ) महान् ( तेन ) उससे ( दृढा चित् ) दृढ ( अद्रिव ) हे आदरणीय ( आ ) भली भांति ( वाजं ) ज्ञान को ( दर्षि ) देता है ( सातये ) भक्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे आदरणीय परमेश्वर ! दिशाओं में विख्यात, आराधना के योग्य तथा महान् जो तेरा ज्ञान है उसके द्वारा भक्ति के लिए संशयरहित ज्ञान को हमें प्रदान कर ॥३॥

卐 षष्ठ खण्ड समाप्तः 卐

卐 अष्टमोऽध्याय समाप्त 卐

# नवमोऽध्यायः

११७५—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२३१२ ३१२ ३ १२३१२३१२

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।

३२३ १ २र ३१ २र ३२३१२३ १२

कविर्गीर्भि काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥

पदार्थ—( शिशुं ) शिशुरूप प्रशंसनीय ( जज्ञानं ) उत्पन्न हुए ( हर्यतं ) मनोहर ( मृजन्ति ) शुद्ध करते हैं ( शुम्भन्ति ) सुशोभित करते हैं ( विप्रम् ) मेधावी ( मरुतः ) ऋत्विग् लोग वेद के ज्ञाता ( गणेन ) वेद की वाणी से ( कविः ) उत्तम बुद्धि वाला ( गीर्भिः ) स्तुतियों द्वारा ( काव्येन ) वेदरूपी काव्य से ( कविः ) क्रान्तप्रज्ञ मेधावी ( सन् ) हुआ ( सोमः ) आत्मा ( पवित्रम् ) अग्नि, वायु, सूर्य आदि को (अत्येति) अतिक्रमण [लंघन] कर जाता है (रेभन्) परमेश्वर की अर्चना करते हुए ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुए, पुत्रवत् प्रशंसनीय ज्ञानगुण युक्त जीव को वेदज्ञानी लोग वेद की वाणी से सुशोभित कर पवित्र करते हैं। वह उत्तम बुद्धि वाला जीव स्तुतियों तथा वेदरूप काव्य के द्वारा अत्यन्त ज्ञानवान् होकर परमात्मा की अर्चना करता हुआ संसार के अग्नि, वायु तथा सूर्य आदि पदार्थों को पार कर जाता है ॥१॥

११७६—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

१२३ १२३२ ३२ ३१२ ३१ २३२

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।

३२३ १२ ३१ २र३ १२३२३१२ ३२

तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनुराजति ष्टुप् ॥२॥

पदार्थ—( ऋषिमना ) सर्वज्ञतायुक्त ज्ञान वाला ( य ) जो ( ऋषिकृत् ) ऋषियों को उत्पन्न करने वाला ( स्वर्षाः ) आनन्दस्वरूप ( सहस्रणीथः ) सबसे स्तुति किया जाने योग्य ( पदवी ) पथप्रदर्शक ( कवीनां ) ज्ञानियों का ( तृतीयं ) तीसरे ( धाम ) स्थान या लोक को ( महिषः ) महान् ( सिषासन् ) विभक्त करता हुआ ( सोमः ) परमेश्वर ( विराजम् ) प्रकाशमान अग्नि या सूर्य को ( अनुराजति ) प्रकाशित करता है ( स्तुप ) धारण कर्ता ॥२॥

भावार्थ—सर्वज्ञ, ऋषियों का उत्पादक, आनन्दस्वरूप सबकी उपासना के योग्य, ज्ञानियों का पथप्रदर्शक, महान् तथा सबका धारण करने वाला परमेश्वर द्यु लोक का विभाग करता हुआ सौर अग्नि को प्रकाशित करता है ॥२॥

११७७—प्रतर्दन । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३१ २३ २३ १२ ३,२३१ २र ३ १२

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।

३२३१ २र ३२ ३२३१२ ३१२

अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥

पदार्थ—( चमूषत् ) द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक ( श्येनः ) ज्ञानी ( शकुनः ) समर्थ ( विभृत्वा ) सबका भरण-पोषण करने वाला ( गोविन्दुः ) सूर्य, पृथिवी तथा वेदवाणी आदि का ज्ञाता ( द्रप्सः ) भूगोल पर ( आयुधानि ) जलों को धारण करता हुआ ( अपां ) जलों के ( ऊर्मिम् ) प्रेरक ( सचमानः ) संयुक्त या सम्बन्ध करता हुआ ( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष को ( तुरीयम् ) चतुर्थ ( धाम ) मोक्ष धाम को ( महिषः ) महान् ( विवक्ति ) बताता है ॥३॥

भावार्थ—द्यु तथा पृथिवी आदि लोकों में व्यापक, ज्ञानी, सर्वशक्तिमान्, सब का धारण-पोषण करने वाला तथा सूर्य आदि का ज्ञाता महान् परमेश्वर भूगोल पर जलों को धारण करता है। जल की वर्षा करने वाले अन्तरिक्ष को सम्बद्ध करता है तथा मोक्षधाम का उपदेश करता है ॥३॥

११७८—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३१ २र ३२ ३१ २र३ १२ ३२ ३क २र

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—( एते ) ये ( सोमाः ) परमेश्वर और विद्वान् लोग ( अभि ) सब ओर से ( प्रियम् ) प्रिय ( इन्द्रस्य ) जीव की ( कामम् ) कामना को ( अक्षरन् ) बरसाते हैं ( वर्धन्तः ) बढ़ाते हुए ( अस्य ) इसके ( वीर्यम् ) पराक्रम को ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर तथा विद्वान् जन जीव के पराक्रम को बढ़ाते हुए इसकी प्रिय कामना की पूर्ति करते हैं ॥१॥

११७९—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १२ ३१२३ १२ ३२३१ २ १२ ३१२

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥२॥

पदार्थ—( पुनानासः ) पवित्र करने वाले ( चमूषदः ) द्यु और पृथिवी लोक के ज्ञाता ( गच्छन्तः ) जानते हुए ( वायुम् ) वायु को ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा को ( ते ) वे ( नः ) हमें ( धत्त ) धारण कराओ ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम को ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्र करने वाले तथा द्यु और पृथिवी आदि के ज्ञाता परमेश्वर और विद्वान् लोग! आप वायु, सूर्य और चन्द्रमा आदि सभी को जानने वाले हो। आप हमें उत्तम बल धारण कराएँ ॥२॥

११८०—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१ २र ३२३ १२३१२

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्रस्य ) परमेश्वर की ( सोम ) हे पुरुष ( राधसे ) आराधना के लिए ( पुनानः ) पवित्र हुआ ( हार्दि ) हृदय स्थान में होने वाले मन को ( चोदय ) प्रेरित कर ( देवानाम् ) देवों के ( योनिम् ) परम पद में ( आ असदम् ) स्थित होता हूँ ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्य! पवित्र हुआ तू परमेश्वर की आराधना के लिए अपने मन को प्रेरित कर। मैं देवों के परम पद में स्थित होता हूँ ॥३॥

११८१—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३१२ ३२३१२ ३ १२३२३१२ २३१२

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

पदार्थ—( मृजन्ति ) शुद्ध करती हैं ( त्वा ) तुझे ( दश ) दश यम-नियम ( क्षिपः ) अज्ञानमल को दूर फेंकने वाले ( हिन्वन्ति ) प्राप्त होती हैं ( सप्त ) सात स्थानों में [नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, मूर्धज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, तात्वग्र तथा ज्ञान मात्र से बाह्यविषय] होने वाली ( धीतयः ) धारणाएँ ( अनु ) अनुकूल बना कर ( विप्रा ) ज्ञानीजन ( अमादिषुः ) प्रसन्न होते हैं ॥४॥

भावार्थ—हे आत्मशक्ते! दश यम-नियम तुम्हारे अविद्या आदि मलों को दूर करते हैं तथा सात स्थानों में होने वाली धारणाएँ तुझे प्राप्त होती हैं। तुझे अनुकूल कर लेने पर ज्ञानीजन प्रसन्न होते हैं ॥४॥

११८२—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३१२३१ २३१ २र ३क २र १ २र

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥

पदार्थ—( देवेभ्यः ) देवों के ( त्वा ) तुझ ( मदाय ) प्रसन्नता के लिए ( कं ) सुखस्वरूप ( सृजानम् ) उत्पन्न करने वाले ( अति ) अत्यन्त ( मेष्यः ) भेड़ आदि पशुओं को ( सं ) सम्यक् ( गोभिः ) स्तुतिरूप वेदवाणियों से ( वासयामसि ) आच्छादित करते हैं ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तुझ से विद्वानों तथा दिव्यशक्तियों की प्रसन्नता के लिये भेड़ आदि को अधिक रूप में उत्पन्न करने वाले आनन्दस्वरूप तुझे हम स्तुतियों से स्मरण करते हैं ॥५॥

११८३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २३२३ ३१ २र ३१ २र २३१२

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

पदार्थ—( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( कलशेषु ) शरीरों को ( आ ) भली भाँति ( वस्त्राणि ) वस्त्र आदि को ( अरुषः ) प्रकाशस्वरूप ( हरिः ) अज्ञाननाशक ( परि ) सब ओर से ( गव्यानि ) पृथिवी, सूर्य तथा इनके विकार सोना, चाँदी, अन्न, औषधि आदि समस्त पदार्थों को ( अव्यत ) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ—शरीरों को पवित्र करता हुआ प्रकाशस्वरूप तथा अज्ञान निवारक परमेश्वर सोना, चाँदी, अन्न, ओषधि तथा वस्त्र आदि पदार्थों को हमें प्रदान करता है ॥६॥

११८४—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३२ ३२३ १२ २३ १२३१२

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥७॥

पदार्थ—( मघोनः ) यज्ञ करनेवाले ( आपवस्व ) भली भाँति पवित्र कर ( नः ) हमें ( जहि ) नष्ट कर ( विश्वा ) सारे ( अप ) बुरी तरह ( द्विषः ) द्वेषों को ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( सखायम् ) सखाभूत जीवात्मा में ( आविश ) प्रविष्ट हो ॥७॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर! तू यज्ञ करनेवाले हम लोगों को पवित्र कर। हमारे सारे द्वेषों को विनष्ट कर। मित्रस्वरूप आत्मा में व्यापक हो ॥७॥

११८५—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ १ २   ३ १ २र   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २र

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥८॥

पदार्थ—( नृचक्षसं ) मनुष्यमात्र के कर्मों के साक्षी ( त्वा ) तुझे ( वयम् ) हम लोग ( इन्द्रपीतं ) जीवात्माओं की रक्षा करनेवाले ( स्वर्विदम् ) सूर्य आदि पदार्थों के ज्ञाता ( भक्षीमहि ) भागी बनें ( प्रजां ) प्रजा के ( इषम् ) अन्न के ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग मनुष्यों के कर्मों के साक्षी आत्माओं के रक्षक तथा सर्वज्ञ तुझ परमेश्वर की स्तुति करते हुए सन्तान तथा अन्नादि के भागी बनें ॥८॥

११८६—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र   ३ १ २ ३ १   २र १ २   ३ १ २

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥९॥

पदार्थ—( वृष्टिं ) वर्षा को ( दिवः ) द्युलोक से ( परिस्रव ) बरसा ( द्युम्नं ) अन्न तथा धन ( पृथिव्या अधि ) पृथिवी में ( सहः ) बल ( नः ) हमें ( सोम ) हे परमेश्वर ( पृत्सु ) संग्रामों में ( धाः ) धारण करा ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू द्युलोक से वर्षा कर । पृथिवी में अन्न तथा धन दे और संग्रामों में हमें बल प्रदान कर ॥९॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

११८७—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २र   ३ २

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ—( सोमः ) परमेश्वर ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( अर्षति ) प्राप्त कराता है ( सहस्रधारः ) सर्वाधार ( अत्यविः ) प्रकृति के परे रहनेवाला ( वायोः ) गतिशील ( इन्द्रस्य ) जीव के ( निष्कृतम् ) कर्मफल को ॥१॥

भावार्थ—पवित्रकारक, सर्वाधार तथा प्रकृति से परे स्थित परमेश्वर अनेकों योनियों में आने जानेवाले जीव के कर्मफलों को देता है ॥१॥

११८८—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २   ३ १ २ ३ १   २र   ३ २ ३ १ २

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२॥

पदार्थ—( पवमानम् ) शुद्धस्वरूप ( अवस्यवः ) रक्षा की कामना करनेवाले ( विप्रम् ) मेधावी ( अभि ) भली भांति ( प्रगायत ) भजन करो ( सुष्वाणं ) उत्पत्तिकर्ता ( देववीतये ) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे रक्षा की कामनावालो ! तुम लोग दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए शुद्धस्वरूप सर्वज्ञ तथा निमित्त कारण परमेश्वर का भजन करो ॥२॥

११८९—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३॥

पदार्थ—( पवन्ते ) पवित्र करते हैं ( वाजसातये ) ज्ञान की प्राप्ति के लिए ( सोमाः ) विद्वान् लोग ( सहस्रपाजसः ) सब प्रकार के बल से युक्त ( गृणानाः ) स्तुति करनेवाले ( देववीतये ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—अनेक प्रकार के बल से युक्त भक्त विद्वान् लोग ज्ञान और परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करते हैं ॥३॥

११९०—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ १ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २र   ३ १ २   ३ १ २

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४॥

पदार्थ—( उत ) और ( नः ) हमें ( वाजसातये ) जीवन संग्राम के लिए ( पवस्व ) प्रदान कर ( बृहतीः ) महान् ( इषः ) अन्न और विज्ञानों का ( द्युमत् ) दीप्तिमान् ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यवान् ( सुवीर्यं ) सुन्दर पराक्रम को ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू जीवन संग्राम के लिए हमें महान् अन्न, विज्ञान तथा दीप्तिमान् पराक्रम प्रदान कर ॥४॥

११९१—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २   ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   २उ ३ १ २ ३ १ २

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥५॥

पदार्थ—( अत्याः ) अश्व ( हियानाः ) प्रेरित ( न ) समान ( हेतृभिः ) संचालन करने वाले वीरों से ( असृग्रम् ) पैदा किए जाते हैं ( वाजसातये ) संग्राम जीतने के लिए ( वि ) विशेषरूप से ( वारम् ) आवरण को ( अव्यम् ) प्रकृति सम्बन्धी ( आशवः ) शीघ्रगामी ॥५॥

भावार्थ—संग्राम जीतने के लिए सवारों द्वारा प्रेरित किए गए शीघ्रगामी घोड़ों के समान और शीघ्र प्राकृतिक आवरण को जीतने के लिए संसार में उत्पन्न किए जाते हैं ॥५॥

११९२—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥६॥

पदार्थ—( ते ) वे ( नः ) हमें ( सहस्रिणम् ) बहुत प्रकार वाला ( रयिम् ) धन ( पवन्ताम् ) प्राप्त करावें ( आ ) भली भांति ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल को ( स्वानाः ) सत्योपदेष्टा ( देवासः ) दिव्य गुणवाले ( इन्दवः ) ऐश्वर्यशाली ॥६॥

भावार्थ—सत्योपदेष्टा दिव्य गुणवाले ऐश्वर्यशाली परमेश्वर और विद्वान् पुरुष हमें सहस्रों प्रकार का धन और उत्तम बल प्रदान करें ॥६॥

११९३—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २   ३ २उ   ३ १ २   ३   १ २र

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥

पदार्थ—( वाश्राः ) शब्द करती हुई ( अर्षन्ति ) प्राप्त होते हैं ( इन्दवः ) ऐश्वर्यवान् ( अभि ) भली प्रकार से ( वत्सं ) बच्चे को ( न ) समान ( मातरः ) माता के ( दधन्विरे ) धारण करते हैं ( गभस्त्योः ) दोनों हाथों में ॥७॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली भक्तजन बच्चे को शब्द करती हुई माताओं के समान परमेश्वर को प्राप्त करते हैं । उसके द्वारा दिए हुए सांसारिक भोग को अपने दोनों हाथों में धारण करते हैं ॥७॥

११९४—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २   ३ १ २र   ३ १ २   २ ३ २ ३ १ २

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥८॥

पदार्थ—( जुष्टः ) प्रीतियुक्त ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( मत्सरः ) प्रसन्नतायुक्त ( पवमान ) पवित्रकारी ( कनिक्रदत् ) जानता हुआ ( विश्वाः ) समस्त ( अप ) दूर करना ( द्विषः ) द्वेषों को ( जहि ) विनष्ट कर ॥८॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! परमेश्वर के प्रति प्रेमयुक्त, प्रसन्न तथा पवित्रकारी स्वभाववाला तू जानता हुआ हमारे समस्त द्वेषों को विनष्ट कर ॥८॥

११९५—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   १ २ ३ १ २

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥९॥

पदार्थ—( अपघ्नन्तः ) दूर करते हुए ( अराव्णः ) धर्मकार्य के विघ्नों को ( पवमानाः ) पवित्रकारक ( स्वर्दृशः ) सुख के दिखाने वाले ( योनौ ) मूल कारण परमेश्वर में ( ऋतस्य ) सत्य के ( सीदत ) स्थित होओ ॥९॥

भावार्थ—हे पवित्र कारक स्वभाव वाले विद्वान् जन ! सुख प्राप्त कराने वाले आप लोग धर्म कार्य के विघ्नों को दूर करते हुए सत्य के मूल कारण परमेश्वर में स्थिति प्राप्त करो ॥९॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

११९६—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २   ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

पदार्थ—( सोमाः ) आत्माएँ ( असृग्रम् ) उत्पन्न की जाती हैं ( इन्दवः ) ऐश्वर्यवाली ( सुताः ) शुद्धस्वरूप ( ऋतस्य ) सत्यज्ञान की ( धारया ) वाणी से ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( मधुमत्तमाः ) उत्तम ज्ञानवाली ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप तथा उत्तम ज्ञान वाली आत्माएँ वेदवाणी द्वारा परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए संसार में उत्पन्न की जाती हैं ॥१॥

११९७—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ १   २र   १ १ २ ३ २उ   ३ १ २ ३ २ १ २   ३ १ २

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( विप्राः ) मेधावीजन ( अनूषत ) स्तुति करते हैं ( गावः ) गायें ( वत्सं ) बछड़े के ( न ) समान ( धेनवः ) दुग्ध देने वाली ( इन्द्रं ) परमेश्वर का ( सोमस्य ) आनन्द रस का ( पीतये ) पान करने के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष बछड़े को दूध देने वाली गायों के समान आनन्द रस के पान के लिए परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥२॥

११९८—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३   १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १   १ २ ३ १   २र ३ २

मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—( मदच्युत् ) आनन्द बहाने वाले ( क्षेति ) निवास करता है ( सादने ) स्थान में ( सिन्धोः ) नदी के ( ऊर्मा ) प्रवाह में ( विपश्चित् ) ज्ञानी ( सोमः ) परमेश्वर ( गौरी अधि ) वाणियों में ( श्रितः ) स्थित ॥३॥

भावार्थ—आनन्ददाता, सर्वज्ञ तथा प्रत्येक की वाणी में स्थित परमेश्वर नदी की लहरों तथा स्थानों में निवास कर रहा है ॥३॥

११९९—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ १ २र ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो य सुक्रतु कविः ॥४॥

पदार्थ—( दिव ) द्युलोक की (नाभा) नाभि में [ मध्य में ] (विचक्षण ) सबका साक्षी ( अव्या ) प्रकृति के ( वारे ) परदे में ( महीयते ) महत्ता प्रकट कर रहा है ( सोमः ) परमेश्वर ( य ) जो ( सुक्रतु ) उत्तम कर्म वाला ( कवि ) वेद रूप काव्य का निर्माता ॥४॥

भावार्थ—सबका साक्षी, उत्तम कर्मकर्त्ता तथा वेद काव्य का रचने वाला परमेश्वर द्युलोक के मध्य तथा प्रकृति के परदे मे भी अपनी महानता को प्रकट कर रहा है ॥४॥

१२००—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २र ३१३ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३उ ३ १ २
य' सोम' कलशेष्वा अन्त पवित्र आहित । तमिन्दु परि षस्वजे ॥५॥

पदार्थ—( य ) जो (सोम ) परमेश्वर (कलशेषु) सबके शरीरों मे (आ ) व्यापक होकर स्थित है ( अन्तः ) मध्य में ( पवित्रे ) अग्नि, वायु तथा सूर्य आदि में ( आहित ) व्याप्त है ( तम् ) उसे ( इन्दु ) ज्ञानी आत्मा ( परिषस्वजे ) मिल जाता है ॥५॥

भावार्थ—जो परमेश्वर प्रत्येक शरीर में तथा अग्नि वायु और सूर्य आदि पदार्थों में व्यापक हो रहा है उसको ज्ञानी जीव प्राप्त करता है ॥५॥

१२०१—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोश मधुश्चुतम् ॥६॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम रूप से ( वाचम् ) वाणी को ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( इष्यति ) गति देता है (समुद्रस्य) आकाश की ( अधिविष्टपि ) सूर्य में (जिन्वन्) व्याप्त करता हुआ ( कोश ) कोश को ( मधुश्चुतम ) आनन्द को बहाने वाले ॥६॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर सूर्य लोक तथा आनन्दमय कोश मे व्यापक होता हुआ आकाश के शब्द को गति प्रदान करता है ॥६॥

१२०२—असितदेवलौ । सोम' । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्त सबर्दुघाम । हिन्वानो मानुषा युजा ॥७॥

पदार्थ—( नित्यस्तोत्र ) निरन्तर किया जाने वाला ( वनस्पतिः ) लोकों का पालक ( धेनाम् ) वेद वाणी को ( अन्त ) अन्त करण या मध्य ( सबर्दुघाम् ) सुख को दोहन करने वाली ( हिन्वान ) प्रेरित करता हुआ ( मानुषा ) मनुष्यों मे ( युजा ) योगद्वारा ॥७॥

भावार्थ—नित्य स्तुति किया जाने वाला तथा समस्त लोको का स्वामी परमेश्वर समाधि द्वारा मनुष्यो को वेद का ज्ञान प्रदान करता है ॥७॥

१२०३—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( धारय ) धारण कर ( रयिम् ) धन को ( सहस्रवर्चसम् ) अनेकों प्रकार के तेज वाले ( अस्मे ) हम में ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( स्वाभुवम् ) उत्तम भूमि वाले ॥८॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य संपन्न तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू हमे अनेकों प्रकार के तेजों से युक्त तथा भूमि वाला धन धारण करा ॥८॥

१२०४—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २
अभि प्रिया दिव. कविर्विप्र स धारया सुत । सोमो हिन्वे परावति ॥९॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( प्रिया ) प्रिय वस्तुओं को ( दिव' ) द्युलोक से ( कवि' ) वेद काव्य का कर्त्ता ( विप्र ) मेधावी ( सः ) वह (धारया ) वेद वाणी द्वारा ( सुत ) जगत् कर्त्ता ( सोम ) परमेश्वर ( हिन्वे ) बढ़ता है ( परावतिः ) दूर स्थान में ॥९॥

भावार्थ—वेद काव्य का करने वाला, मेधावी तथा वेद ज्ञान द्वारा जगत् का उत्पादक परमेश्वर द्युलोक और उस से दूर के स्थान पृथिवी आदि मे भी प्रिय वस्तुओं को पैदा करता है ॥९॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

१२०५—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वन । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥

पदार्थ—( उत् ) ऊपर ( शुष्मासः ) प्रचण्ड शक्ति ( ईरते ) प्रकट होती है ( सिन्धोः ) नदी के (ऊर्मेः) लहर से (इव) समान ( स्वनः ) शब्द के (वाणस्य) वाणी की ( चोदय ) प्रेरित करता है ( पविम् ) शब्द शक्ति का ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी प्रचण्ड शक्तियां नदी की लहर से उत्पन्न शब्द के समान उनसे ही स्वय प्रकट हो रही हैं । तू वाणी की शब्दोच्चारण शक्ति को प्रेरणा देता है ॥१॥

१२०६—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २उ ३ २ ३ १ २
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युव । यदव्य एषि सानवि ॥२॥

पदार्थ—( प्रसवे ) सृष्टि काल में ( ते ) तेरी ( उदीरते ) प्रकट होती है ( तिस्र ) तीन [ऋक, यजु तथा साम ] ( वाच ) वाणियाँ ( मखस्युव ) संसार यज्ञ के करने की इच्छा वाले ( यत् ) जो ( अव्ये ) प्रकृतिमय ( एषि ) व्यापक होता है ( सानवि ) शिखर में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू प्रकृति के उच्च शिखर मे व्यापक है । सृष्टि काल में संसार यज्ञ के कर्त्ता तेरी ऋक्, यजु और साम रूप वाणियां प्रकट होती हैं ॥२॥

१२०७—उचथ्य । सोम' । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
अव्या वार परि प्रियम् हरिं हिन्वन्त्यद्रिभि । पवमान मधुश्चुतम् ॥३॥

पदार्थ—( अव्या ) प्रकृति के ( वारैः ) बाल सदृश लोकों से ( परि ) सब प्रकार से (प्रियम्) प्रिय (हरिम्) दु ख हर्त्ता (हिन्वन्ति) जानते हैं ( अद्रिभि ) मेघ तथा पर्वतो से ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( मधुश्चुतम् ) आनन्ददाता ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग प्रिय, दुःखो के हर्त्ता, शुद्धस्वरूप तथा आनन्ददाता परमेश्वर का प्रकृति के लोको तथा मेघ पर्वत आदि से अनुमान करते हैं ॥३॥

१२०८—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवस्व मदिन्तम पवित्र धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

पदार्थ—( आपवस्व ) पवित्र कर ( मदिन्तम ) हे सुखदाता ( पवित्रं ) अग्नि आदि ससार के पदार्थ को ( धारया ) धारण शक्ति से ( कवे ) हे सर्वज्ञ ( अर्कस्य ) मन्त्र के ( योनिम् ) कारण में ( आसदम् ) स्थित होऊँ ॥४॥

भावार्थ—हे सुखदाता तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू अपनी धारण शक्ति से ससार के अग्नि आदि पदार्थों को पवित्र कर । मैं मन्त्रो के निमित्तकारण तुझ में स्थित होऊँ ॥४॥

१२०९—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभि । इन्द्रस्य जठरं विश ॥५॥

पदार्थ—( स' ) वह ( पवस्व ) पवित्र कर ( मदिन्तम ) हे हर्षदायक ( गोभिः ) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोको से ( अंजान ) अपनी महिमा को जताता हुआ ( अक्तुभि ) रात्रियों द्वारा ( आ ) भली भांति ( इन्द्रस्य ) जीव के ( जठर ) मध्य ( विश ) प्रविष्ट है ॥५॥

भावार्थ—हे परम हर्ष के दाता परमेश्वर ! पृथिवी अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा रात्रियों आदि द्वारा अपनी महिमा को प्रकट करता हुआ तू जीव के मध्य में व्यापक है ॥५॥

卐 चतुर्थः खण्ड समाप्त 卐

१२१०—अमहीयु' । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

पदार्थ—( अया ) इस ( वीती ) मार्ग से ( परिस्रव ) चल ( यः ) जो ( ते ) तेरे ( इन्दो ) हे ऐश्वर्य वाले ( मदेषु ) स्तुतियो मे ( आ ) भली भांति ( अवाहन् ) पार करता है ( नवती नव ) ९९ प्रकार के विघ्नों को ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वान् पुरुष ! तू इस ज्ञान मार्ग से चल जो कि तेरी स्तुतियों मे निन्यानबे के चक्कर से पार लगाता है ॥१॥

१२११—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
पुर सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२॥

पदार्थ—( पुर सद्यः ) अत्यन्त शीघ्र (इत्थाधिये) सत्य कर्म वाले (दिवोदासाय ) दिव्यगुणों के दाता या प्रकाश के दाता के लिए ( शंबरम् ) सुख चाहने वाले ( अध ) मगल कामना से ( त्यं ) उस ( तुर्वशम् ) समीपस्थ ( यदुम् ) मनुष्य को ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सत्य कर्म वाले तथा प्रकाश के दाता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए सुख चाहने वाले पुरुष को शीघ्र ही मगल कामना से उस प्रभु के समीपस्थ कर ॥२॥

१२१२—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ ९ १ १ २ १ १ २९ १ १ २ १ २ १ २ ३ १ २

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार ( न ) हमे ( अश्वम् ) बल ( अश्वावत् ) बल के दाता ( गोमत् ) गाय आदि से युक्त ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यवान् ( हिरण्यवत् ) स्वर्णयुक्त (क्षरा) बरसा (सहस्रिणी ) सहस्रों प्रकार के (इषः) ज्ञानो को ॥३॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! बल का दाता तू हमें गाय तथा सोना आदि प्राप्त कराने वाला बल और सहस्रों प्रकार के ज्ञान प्रदान कर ।३।

१२१३—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) दूर फेंकता हुआ ( पवते ) पवित्र करता है ( मृधः ) पापों को ( अप ) निवारण करता है ( सोम ) परमेश्वर ( अराव्णः ) दान आदि के विघ्नो का ( गच्छन् ) प्राप्त करता हुआ ( इन्द्रस्य ) जीव के ( निष्कृतम् ) विस्तार को ॥१॥

भावार्थ—धम के विघ्नो और पापो को दूर करता हुआ तथा जीव का विस्तार करता हुआ परमेश्वर ससार को पवित्र करता है ॥१॥

१२१४—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२॥

पदार्थ—( महः ) तेज ( न ) हमे ( राय ) धन ( आभर ) प्रदान कर ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( जही ) नष्ट कर ( मृधः ) हिंसक मनोवृत्तियो का ( रास्व ) दे ( इन्दो ) परम ऐश्वर्यवान् ( वीरवत ) वीरों से युक्त ( यशः ) यश को ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा सकल ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर ! तू हमे तेज तथा धनों को प्रदान कर। पापों को दूर कर। हे प्रभो ! हमे वीरो से युक्त यश दे ॥२॥

१२१५—अमहीयुः । सोम । गायत्री ।

१ १ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ १

न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥३॥

पदार्थ—( न ) नहीं ( त्वा ) तुझे ( शत ) सौ ( च न ) भी ( ह्रुत ) हरण करने वाले (राध ) धन को (दित्सन्तम्) देने की इच्छा करते हुए (आमिनन्) हानि पहुँचा सकते हैं ( यत् ) जब ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( मखस्यसे ) संसार रूप यज्ञ को करना चाहता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सब का पवित्र कर्ता तू जब ससार रूप यज्ञ को रचता है तो धन प्रदान करने की इच्छा करने वाले तुझे सैकडो धनापहरण करने वाले लोग हानि नही पहुँचा सकते ॥३॥

१२१६—निध्रुवि । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥१॥

पदार्थ—( अया ) इस ( पवस्व ) पवित्र कर ( धारया ) वाणी से ( यया ) जिसके द्वारा ( सूर्यम ) सूर्य को ( अरोचयः ) प्रकाशित करता है ( हिन्वान ) प्रेरित करता हुआ ( मानुषीः ) मनुष्य सम्बन्धी ( अपः ) कर्मों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जिस वेदवाणी से मनुष्यो के कर्मों की प्रेरणा करता हुआ सूर्य को प्रकाशित करता है उससे हमे पवित्र कर ॥१॥

१२१७—निध्रुवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥२॥

पदार्थ—( अयुक्त ) जोड रक्खा है ( सूर ) वीर ( एतशं ) घोडे के समान वेग को ( पवमान ) व्यापक ( मनौ अधि ) मन मे ( अन्तरिक्षेण ) आकाश मार्ग से ( यातवे ) सर्वत्र जाने के लिए ॥२॥

भावार्थ—बलशाली तथा व्यापक परमेश्वर ने आकाश मार्ग से सर्वत्र जाने वाले के लिये मन में घोड़े के समान वेग को जोड़ रक्खा है ॥२॥

१२१८—निध्रुवि । सोम । गायत्री ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥३॥

पदार्थ—( उत ) अपि च [और भी] ( त्या ) उन ( हरितः ) दिशाओं या प्रकाशीय किरणों को ( रथे ) सूर्य में ( सूर ) बलवान् ( अयुक्त ) जोड़ता है ( यातवे ) ज्ञान कराने के लिये ( इन्दु ) ऐश्वर्यशाली ( इन्द्र ) वह इन्द्र है ( इति ) ऐसा ( ब्रुवन् ) कहता हुआ ॥३॥

भावार्थ—बलवान् तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर 'यह सूर्य है' ऐसा उच्चारण करता हुआ लोगो के ज्ञान के लिये किरणों और दिशाओं को सूर्य मण्डल में जोड़ता है ॥३॥

卐 पञ्चम खण्ड समाप्त 卐

१२१९—वसिष्ठ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥

पदार्थ—( अग्नि ) परमेश्वर को ( व ) तुम लोग ( देवम् ) देव ( अग्निभिः ) ब्रह्मचर्य गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम मे होने वाली अग्नियों से ( सजोषाः ) समान भाव से सेवन करने वाले ( यजिष्ठ ) परमपूजनीय ( दूतम् ) दुःखों का निवारक ( अध्वरे ) यज्ञ में ( कृणुध्वम् ) बनाओ ( य ) जो ( मर्त्येषु ) मरण धर्म वालों मे ( निध्रुविः ) ध्रुव = नित्य है ( ऋतावा ) सत्य धर्म वाला ( तपु ) दुष्टों को तपाने वाला ( मूर्धा ) सर्वोत्तम ( घृतान्न ) प्रकाशक और प्रलय कर्ता ( पावकः ) व्यापक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तीनों आश्रमो की अग्नियो से युक्त तुम लोग उस परम पूजनीय परमात्मदेव को अपने यज्ञ में दुःख निवारक समझो जो कि विनाशी पदार्थों में नित्य सत्य धर्म वाला, सर्वोत्तम, सृष्टि का प्रकाशक प्रलयकर्ता तथा सर्वव्यापक है ॥१॥

१२२०—वसिष्ठ । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

९ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥

पदार्थ—( प्रोथद् ) समर्थ होता हुआ [पर्याप्त] ( अश्व ) विद्युत् के ( न ) समान ( यवसे ) सयोग वियोग के लिये ( अविष्यन् ) रक्षा करता हुआ ( यदा ) जब ( महः ) महान् ( संवरणात ) आवरण से ( व्यस्थात ) विशेष रूप से स्थित होता है। ( आत् ) अनन्तर ( अस्य ) इसके ( वात ) वायु ( अनु ) पीछे (वाति) बहती है ( शोचि ) तेज के ( अध ) अनन्तर ( स्म ) पादपूरक (ते) तव (व्रजनम्) व्यापकता ( कृष्ण ) खींचने वाली ( अस्ति ) है ॥२॥

भावार्थ—सयोग वियोग के लिये पर्याप्त होती हुई विद्युत् के समान महान् आवरण से रक्षा करता हुआ परमेश्वर सर्वत्र स्थित है। इसके तेज के पीछे वायु बहती है। हे परमेश्वर तेरी व्यापकता सब लोकों का आकर्षण करने वाली है ॥२॥

१२२१—वसिष्ठ । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥

पदार्थ—( उत् ) तथा ( यस्य ) जिस ( ते ) तेरा ( नवजातस्य ) नये-नये पदार्थों को पैदा करने वाले ( वृष्ण ) सुख की वर्षा करने वाले ( अग्ने ) हे प्रकाश स्वरूप ( चरन्ति ) विचरती हैं ( अजरा ) अजर अमर ( इधाना ) प्रकाशकारी शक्तियां ( अच्छा ) प्रति ( द्याम् ) द्युलोक के ( अरुष ) प्रकाशक ( धूम ) कम्पन देने वाला ( एषि ) व्याप्त करता है ( सं ) सम्यक् ( दूत ) शुभ गुण का प्राप्त कराने वाला ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( ईयसे ) गतिमान् कर रहा है ( हि ) निश्चय ही ( देवान् ) समस्त देवों को ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! नवीन नवीन पदार्थों के उत्पादक तथा सुख की वर्षा करने वाले जिस तेरी अजर अमर प्रकाशमयी शक्तियां सर्वत्र विचरती हैं वह प्रकाशक, पदार्थों में कम्पन देने वाला तथा शुभ गुण दाता तू द्युलोक मे भी व्यापक है। तू समस्त देवों को गतिमान् कर रहा है ॥३॥

१२२२—सुकक्ष । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥१॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( इन्द्रं ) आत्मा को ( वाजयामसि ) बलवान् करते हैं ( महे ) महान् ( वृत्राय ) बुराइयों के ( हन्तवे ) नाश के लिये ( सः ) वह ( वृषा ) बलवान् ( वृषभ ) धर्म से प्रकाशमान होवे ॥१॥

भावार्थ—हम बुराइयों के नाश करने के लिये आत्मशक्ति को बलवान् करते हैं। वह बलवती और धर्मरक्षा होवे ।१।

१२२३—सुकक्ष । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ ३र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्रः ) परमेश्वर ( स ) वह ( दातवे ) देने के लिए ( इत ) समर्थ है ( ओजिष्ठः ) ओजस्वी ( सः ) वह ( बले ) बल में ( हितः ) हितकारी ( द्युम्नी ) यशस्वी ( श्लोकी ) वेदवाणियों का स्वामी ( स. ) वह ( सोम्य ) सौम्यगुण वाला है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सब कुछ देने में समर्थ है। वह ओजस्वी तथा बल में हितकारी है। वह यशस्वी, वेद वाणी का स्वामी और सौम्य स्वभाव वाला है ॥२॥

१२२४—सुकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥३॥

पदार्थ—( गिरा ) वेद वाणी द्वारा ( वज्र· ) वज्र के ( न ) समान ( सम्भृत ) धारण किया हुआ ( सबल· ) बलवान् ( अनपच्युत. ) न गिराने वाला ( ववक्ष ) धारण करता है ( उग्रः ) तीव्र ( अस्तृत ) न दबाया जाने वाला ॥३॥

भावार्थ—वेद वाणी द्वारा धारण किया हुआ, वज्र के समान बलवान्, न गिराने वाला तेजस्वी तथा किसी से न दबाया जाने वाला परमेश्वर संपूर्ण जगत् को धारण करता है ॥३॥

卐 षष्ठ खण्ड समाप्त 卐

१२२५—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

१ २३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१॥

पदार्थ—( अध्वर्यो ) वेदज्ञ ( अद्रिभि ) आदरणीयों द्वारा ( सुतम् ) उत्पन्न किये गये ( सोमम् ) पुरुष को ( पवित्रे ) परमेश्वर की शरण मे ( आनय ) ला ( पुनाहि ) पवित्र कर ( इन्द्राय ) विद्वान् की ( ( पातवे ) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञ ! तू आदरणीय व्यक्तियों की सन्तान इस पुरुष को विद्वान् की रक्षा के लिए पवित्र कर और परमेश्वर की शरण में ला ॥१॥

१२२६—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र १ २ ३ १ २

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥२॥

पदार्थ—( तव ) ) तेरे ( त्ये ) वे ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( अन्धस ) अन्न का ( देवाः ) विद्वान् लोग ( मधो ) मधुर ( व्यश्नत ) उपभोग करते हैं ( पवमानस्य ) शुद्ध स्वरूप ( मरुत ) ऋत्विग् लोग ॥२॥

भावार्थ—हे सकल पदार्थो के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् और याज्ञिक लोग तुझ शुद्ध स्वरूप के द्वारा दिये हुए मधुर अन्न का उपभोग करते हैं ॥२॥

१२२७—उचथ्य । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥३॥

पदार्थ—( दिव ) परमेश्वर के ( पीयूषम् ) अमृत ( उत्तमम् ) उत्तम ( सोमम् ) बोध को ( इन्द्राय ) जीव के लिए ( वज्रिणे ) दुर्गुणों की वर्जनशक्ति युक्त ( सुनोत ) उत्पन्न कर ( मधुमत्तमम् ) मधुविद्या से अत्यन्त युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् जन ! आप लोग अमृतरूप उत्तम तथा मधु विद्या से संपन्न ब्रह्मज्ञान दुर्गुणों को निवारण करने वाली शक्ति से युक्त जीव के लिए उत्पन्न करो ॥३॥

१२२८—कवि । सोम । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥१॥

पदार्थ—( धर्त्ता ) धारणकर्त्ता ( दिव. ) दिव्यगुण का ( पवते ) पवित्र करता है ( कृत्व्य· ) कर्मयोगी ( रस ) सरल ( दक्ष ) निपुण ( देवानाम् ) विद्वानों में ( अनुमाद्यः ) प्रशंसनीय ( नृभि ) मनुष्यों से ( हरिः ) अज्ञान का निवारण करने वाला ( सृजान· ) छोड़ता हुआ ( अत्यो न ) घोड़े के समान ( सत्वभि ) प्राणियों के साथ ( वृथा ) बिना प्रयत्न के ( पाजांसि ) बलों को ( कृणुषे ) उत्पन्न करता है ( नदीषु ) नाड़ी रूप नदियों में ( आ ) भली भांति ॥१॥

भावार्थ—दिव्य गुणों का धारण करने वाला कर्मयोगी, सरल विद्वानों में दक्ष, मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय, अज्ञाननिवारक तथा प्राणियों के साथ वैर भाव को छोड़ता हुआ विद्वान् पुरुष अश्व के समान अपनी नाड़ियों मे बलों को उत्पन्न कर लेता है ॥१॥

१२२९—कवि । सोम । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २ ३ १ २र

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २

इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥

पदार्थ—( शूर ) बलवान् के ( न ) समान ( धत्ते ) धारण करता है ( आयुधा ) शस्त्रों को ( गभस्त्योः ) दोनों हाथों मे ( स्वः ) द्युलोक का ( सिषासन् ) विभाग करता हुआ ( रथिरः ) महारथी ( गविष्टिषु ) सूर्य की किरणों की संगतियों में ( इन्द्रस्य ) जीव के ( शुष्म ) बल को ( ईरयन् ) प्रेरित करता हुआ ( अपस्युभिः ) कर्म करने की इच्छा करनेवाले ( इन्दु ) ऐश्वर्यशाली ( हिन्वान ) जाना जाता हुआ ( अज्यते ) प्राप्त किया जाता है ( मनीषिभि ) मनस्वी लोगो से ॥१॥

भावार्थ—जिस प्रकार महारथी योद्धा अपने हाथो मे अस्त्र शस्त्र को धारण करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यशाली परमेश्वर द्युलोक का विभाग करता हुआ उसे किरणों की संगति में धारण करता है। वह जीव के बल को प्रेरणा देने वाला है। कर्मयोगी मनस्वी लोग उसे जान कर प्राप्त करते हैं ॥२॥

१२३०—कवि । सोम । जगती ।

१ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ १

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वत ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्रस्य ) जीव के [ अथवा जीवों के ] ( सोम ) हे परमेश्वर ( पवमानः ) शुद्ध ( ऊर्मिणा ) प्रकाश से ( तविष्यमाण· ) स्तुति किया जाने वाला ( जठरेषु ) मध्यों में [ अथवा मध्य में ] ( आ ) भली भांति ( विश ) व्यापक हो रहा है ( प्र ) उत्तम रूप से ( न ) हमारे लिए ( पिन्व ) पूर्ण कर ( विद्युत् ) बिजली ( अभ्रा ) मेघों के ( इव ) समान ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक को ( धिया ) कर्म से ( नः ) हमारे ( वाजान् ) अन्न आदि को ( उप ) समीप ( माहि ) उत्पन्न कर ( शश्वत ) बहुत प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध स्वरूप तथा स्तुति किया जाने वाला तू अपने प्रकाश के द्वारा जीव के मध्य मे व्यापक हो रहा है। तू हमारे लिए मेघों को विद्युत् के समान द्यु और पृथिवी लोक को भरपूर कर तथा अपने पवित्र रचना कर्म से हमारे समीप विविध प्रकार के अन्नों को उत्पन्न कर ॥३॥

१२३१—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

पदार्थ—( यत् ) यद्यपि ( इन्द्र ) हे जीव ( प्राग् ) उत्तम गति वाला ( अपाग् ) अधम गति वाला ( उदक् ) ऊपर के लोकों मे जाने वाला ( न्यक् ) नीचे के लोकों मे होने वाला ( वा ) और ( हूयसे ) कहा जाता है ( नृभिः ) ज्ञान मार्ग के नेताओं से ( सिमा ) सब ( पुरु ) बहुत ( नृषूत· ) मनुष्य योनि में उत्पन्न किया गया ( असि ) है ( आनवे ) मनुष्य के लिए ( असि ) है ( प्रशर्ध ) हे उत्तम बल वाले ( तुर्वशे ) समीप में स्थित ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम बलवाले जीव ! तू उत्तम, अधम योनि तथा ऊपर नीचे सभी लोकों मे कर्मानुसार उत्पन्न होने वाला है ऐसा ज्ञानमार्ग पर चलने वाले बतलाते हैं। मनुष्य योनि मे पैदा हुआ तू सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। मनुष्य के ज्ञान के लिए तू समीप है ॥१॥

१२३२—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

पदार्थ—( यद् ) यद्यपि ( रुमे ) रमण योग्य में ( रुशमे ) हिंसक में ( श्यावके ) ज्ञानी मे ( कृपे ) समर्थ मे ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( मादयसे ) प्रसन्न होता है ( सचा ) समान भाव से ( कण्वास· ) मेधावी जन ( त्वा ) तुझे ( स्तोमेभि· ) स्तोत्रों से ( ब्रह्मवाहसे ) वेद के वाहक ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्यवान् ( आयच्छन्ति ) ढूंढ लेते हैं ( आगहि ) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू यद्यपि रमण योग्य, हिंसक ज्ञानी तथा सामर्थ्य वाले पर समान रूप से प्रसन्न होता है, परन्तु वेद के ज्ञाता ज्ञानी जन तुझे स्तोत्रो से ढूंढते हैं और तू उन्हें प्राप्त होता है ॥२॥

१२३३—भर्ग । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१॥

पदार्थ—( उभयं ) दोनों [ लौकिक तथा पारमार्थिक ] ( शृणवत् ) सुने ( च ) और ( नः ) हमारे ( ( इन्द्रः ) विद्वान् ( अर्वाग् ) सामने हुआ ( इदं ) यह ( वचः ) वचन को ( सत्राच्या ) यज्ञ कराने वाली ( मघवान् ) यज्ञकर्त्ता

( सोमपीतये ) संसार की रक्षा के लिए ( धिया ) बुद्धि या कर्म से ( शविष्ठ ) बलशाली ( आगमत् ) प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थ—शक्तिशाली तथा याज्ञिक विद्वान् सामने होकर हमारे लौकिक तथा पारलौकिक वचन को सुनें, तथा यज्ञसम्बन्धी कर्म से संसार की रक्षा के लिए हमे प्राप्त हों ॥१॥

१२३४—भर्ग । इन्द्र । बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वं हि स्वराजं वृषभ तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतु ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकाम हि ते मन ॥२॥

पदार्थ—( तं ) उस ( हि ) क्योंकि ( स्वराजम् ) स्वय प्रकाशमान ( वृषभम् ) सुखों की वर्षा करने वाले ( तं ) व्यापक ( ओजसा ) तेजसे ( धिषणे ) द्यु और पृथिवी लोक ( निष्टतक्षतु ) प्रकट करते हैं ( उत ) और ( उपमानाम् ) उपमाभूत आकाश आदि का ( प्रथम ) आदि कारण ( निषीदसि ) व्यापक हो रहा है ( सोमकाम ) संसार रचना की इच्छा वाला ( हि ) निश्चय ( ते ) तेरा ( मन ) ज्ञान है ॥२॥

भावार्थ—स्वप्रकाशस्वरूप तथा सुखों की वर्षा करनेवाले उस व्यापक परमेश्वर की महिमा को अपने ओज से द्यु और पृथिवी लोक प्रकट कर रहे हैं। हे परमेश्वर ! तू उपमा भूत आकाश आदि का आदिकारण तथा सब में व्यापक हो रहा है। तेरा ज्ञान सृष्टिरचना की इच्छा वाला है ॥२॥

卐 सप्तम खण्ड समाप्त 卐

१२३५—निध्रुवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मद । वायुमारोह धर्मणा ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( देव ) हे देव ( आयुषक ) आयु के दाता ( इन्द्रम् ) जीव का ( गच्छतु ) प्राप्त होवे ( ते ) तेरा ( मद ) आनन्द ( वायुम्) वायु को ( आरोह) चढ़ता है (धर्मणा) अपनी सर्वाधारता और सर्वशक्तित्व से ।२।

भावार्थ—हे परमात्म देव ! तू आयु का दाता है। हमे पवित्र कर। तेरा आनन्द जीव को प्राप्त होवे। तू अपनी सर्वशक्तिमत्ता से वायु पर भी नियन्त्रण रखता है ॥१॥

१२३६—निध्रुवि । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमाविश ॥२॥

पदार्थ—( पवमान ) हे पवित्र स्वरूप ( नि ) संपूर्ण रूप से ( तोशसे ) देता है ( रयिम् ) धन ( सोम ) हे परमेश्वर ( श्रवाय्यम् ) प्रशसनीय ( इन्दो ) हे सर्वेश्वर ( समुद्रम् ) आकाश मे ( आविश ) व्यापक हो रहा है ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वेश्वर तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू हमें प्रशसनीय धन प्रदान करता है। तू आकाश मे व्यापक हो रहा है ॥२॥

१२३७—निध्रुवि । सोम । गायत्री

३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अपघ्नन् पवसे मृध क्रतुवित्सोम मत्सर । नुदस्वादेवयु जनम् ॥३॥

पदार्थ—( अपघ्नन् ) नाश करता हुआ ( पवसे ) पवित्र करता है। ( मृध ) हिंसक वृत्तियो को ( क्रतुवित् ) यज्ञ के ज्ञाता ( सोम ) हे विद्वान् ( मत्सर ) सुख से युक्त ( नुदस्व ) ज्ञान से प्रेरित कर ( अदेवयुम् ) परमेश्वर की उपासना न करने वाले ( जनम् ) मनुष्य को ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! यज्ञ का ज्ञाता, तथा सुखयुक्त तू हिंसक वृत्तियो को दूर करता हुआ सब को पवित्र करता है। तू परमेश्वर की उपासना न करने वालो को उपासना की तरफ प्रेरित कर ॥३॥

१२३८—अम्बरीष । सोम । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो वाजसातम रयिमर्ष शतस्पृहम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्न विभासहम् ॥१॥

पदार्थ—( अभी ) सब प्रकार से ( न ) हमें ( वाजसातमम् ) अन्न को देने वाले ( रयिम् ) धन को ( अर्ष ) प्रदान कर ( शतस्पृहम् ) सैकड़ों से चाहने योग्य ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( सहस्रभर्णसं ) सहस्रों का भरण पोषण करने वाले ( तुविद्युम्न ) बहुत यशदायक ( विभासहम् ) शत्रुओं को नीचा दिखाने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली राजन् ! तू हमें अन्न के देने वाले, सैकड़ों से चाहने योग्य, हजारों का भरण पोषण करनेवाले, बहुत यशदायक तथा शत्रुओं के दबानेवाले धन को प्रदान कर ॥१॥

१२३९—अम्बरीषः । सोम । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृह ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २
नि नेदिष्ठतमा इष स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥२॥

पदार्थ—( वयम ) हम ( ते ) तेरे ( अस्य ) इस ( राधस ) धन के ( वसो ) निवास देने वाले ( वसो ) हे शरणदाता ( पुरुस्पृह ) बहुतों से चाहने योग्य ( नि ) निरन्तर ( नेदिष्ठतमा ) अत्यन्त समीपवर्ती ( इष ) ज्ञान के ( स्याम ) हो ( सुम्ने ) सुख में ( ते ) तेरे ( अध्रिगो ) हे अचल ॥२॥

भावार्थ—हे ध्रुव तथा शरणदाता परमेश्वर ! हम तेरे इस लोक के धन, तुझ मे निवास देने वाले, बहुतो से चाहने योग्य ज्ञान तथा तेरे परम आनन्द के निरन्तर समीपवर्ती होवें ॥२॥

१२४०—अम्बरीष । सोम । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
परि त्य हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण । परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युत ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययु ॥३॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार से ( स्य ) वह ( स्वाना ) स्वय चित्स्वरूप ( अक्षरत् ) संचालन करता है ( इन्दु ) ऐश्वयशाली ( अव्ये ) प्रकृति के कार्य में ( मदच्युत ) आनन्द का स्रोत बहाने वाला ( धारा ) वाणी के साथ ( य ) जो ( ऊर्ध्व ) सब से मुख्य ( अध्वरे ) यज्ञ मे ( भ्राजा न ) दीप्ति के समान ( याति ) व्यापक हो रहा है ( गव्यय ) पृथिवी आदि को रचने वाला ॥३॥

भावार्थ—स्वयचेतन, आनन्ददाता, पृथिवी आदि का कर्ता, सर्वश्रेष्ठ तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर प्रकृति के कार्य को ससार मे संचालन करता है। वह दीप्ति के समान वेद वाणी के साथ यज्ञ मे व्यापक हो रहा है ॥३॥

१२४१—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा विराट ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २र
पवस्व सोम महान्त्समुद्र पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥

पदार्थ—( पवस्व ) गति देता है ( सोम ) हे जीव ! ( महान् ) बड़ा ( समुद्र ) जिस मे प्राणी सुख पाते हैं ( पिता ) रक्षक ( देवानाम ) इन्द्रियों के ( विश्वा ) समस्त ( अभि ) मे ( धाम ) स्थानो मे ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! महान् प्राणियों के सुख का आश्रय तथा शरीर का रक्षक तू इन्द्रियों के समस्त गोलको में गति देता है ॥१॥

१२४२—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा विराट् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शुक्र पवस्व देवेभ्य सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्य ॥

पदार्थ—( शुक्र ) शुद्धस्वरूप ( पवस्व ) दे ( देवेभ्य ) देवों के लिए ( सोम ) हे परमेश्वर ( दिवे ) द्युलोक के लिए ( पृथिव्यै ) पृथिवी लोक के लिए ( शं ) सुख ( च ) और ( प्रजाभ्य ) प्रजाओ के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्धस्वरूप तू विद्वान् तथा प्रजा के लिए पृथिवी और द्युलोक आदि मे सुख प्रदान कर ॥२॥

१२४३—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा विराट् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
दिवो धर्तासि शुक्र पीयूष सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥३॥

पदार्थ—( दिवः ) द्युलोक का ( धर्ता ) धारणकर्ता ( असि ) है ( शुक्र ) शुद्धस्वरूप ( पीयूष ) अमृतरूप ( सत्ये ) त्रिकाल सत्य प्रकृति में ( विधर्मन् ) विविध धर्मवाली ( वाजी ) शक्तिमान् ( पवस्व ) व्यापक है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्धस्वरूप, अमृत तथा सर्वशक्तिमान् तू द्युलोक का धारण करने वाला है। तू त्रिकाल सत्य विविध धर्मोंवाली प्रकृति में व्यापक है ॥३॥

卐 अष्टम खण्ड समाप्त 卐

१२४४—उशना । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र
प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥१॥

पदार्थ—( प्रेष्ठ ) अत्यन्त प्रिय ( वो ) तुम्हारे ( अतिथिम् ) अतिथि की ( स्तुषे ) प्रशंसा करता हूं ( मित्रमिव ) मित्र के समान ( प्रियम् ) प्रिय ( अग्ने ) हे विद्वन् ( रथ ) सूर्य के ( न ) समान ( वेद्यम् ) प्राप्त होने योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! मैं प्रिय मित्र के समान तुम्हारे अत्यन्त प्रिय अतिथि की प्राप्त होने योग्य सूर्य के समान प्रशंसा करता हूं ॥१॥

१२४५—उशना । अग्नि । गायत्री ।

१ १ २ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २२ ३ २
कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥२॥

पदार्थ—( कविम् ) कवि के ( इव ) समान ( प्रशंस्यं ) प्रशसनीय ( यं ) जिसको ( देवासः ) विद्वान् लोग ( इति ) ऐसा ( द्विता ) दो प्रकार का [आत्मा तथा परमात्मा] ( नि ) संपूर्णतया ( मर्त्येषु ) मरणधर्मा लोगों मे ( आदधुः ) स्वीकार करते हैं ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी लोग कवि के समान प्रशसनीय परमात्मा और आत्मा के भेद से दो प्रकार की आत्माओं को मरणधर्माओं में स्थित स्वीकार करते हैं ॥२॥

१२४६—उशना । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( यविष्ठ ) अजर ( दाशुषः ) उपकारी ( नॄँः ) मनुष्यों की ( पाहि ) रक्षा करता है ( शृणुही ) सुनता है ( गिरः ) स्तुतियों की ( रक्षा ) रक्षा करता है ( तोकम् ) पुत्र की ( उत ) और ( त्मना ) स्वयम् ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अजर अमर तू उपकारी मनुष्यों की रक्षा करता है । उनकी स्तुतियों को सुनता है तथा संतति का स्वय ही पालन करता है ॥३॥

१२४७—नृमेध । इन्द्र । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( नः ) हमे ( गधि ) प्राप्त हो ( प्रिय ) हे भक्तों के प्यारे ( सत्राजित् ) हे सत्य के द्वारा जीतने वाले ( अगोह्य ) हे न छिपाये जाने वाले ( गिरिः ) मेघ के ( न ) समान ( विश्वतः ) सब तरफ से ( पृथुः ) विशाल ( पतिः ) स्वामी ( दिवः ) द्युलोक का ॥१॥

भावार्थ—हे भक्तों के प्यारे सत्य द्वारा सब के विजयी तथा स्वयप्रकाश परमेश्वर ! तू विशाल मेघ के समान द्युलोक का पति है । तू हमे प्राप्त हो ॥१॥

१२४८—नृमेध । इन्द्र । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( हि ) निश्चय ( सत्य ) हे सत्य स्वरूप ( सोमपा ) संसार के पालक ( उभे ) दोनों ( बभूथ ) वश मे रखता है ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक को ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( सुन्वतः ) यज्ञकर्ता की ( वृधः ) उन्नति करने वाला ( पतिः ) रक्षक ( दिवः ) सूर्य लोक का ॥२॥

भावार्थ—हे सत्यस्वरूप परमेश्वर ! ससार का रक्षक तू निश्चय से द्यु और पृथिवी लोक को अपने वश में रखता है । तू यजमान की उन्नति करने वाला तथा सूर्यलोक का पालक है ॥२॥

१२४९—नृमेध । इन्द्र । उष्णिक् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( हि ) निश्चय ( शश्वतीनाम् ) प्रवाहरूप अनादि ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( धर्ता ) धारणकर्ता ( पुराम् ) लोकों का ( असि ) है ( हन्ता ) नाश करने वाला ( दस्योः ) अनावृष्टि या दुष्कर्मकारियों की ( मनोः ) आयु का ( वृधः ) बढ़ाने वाला ( पतिः ) पालक ( दिवः ) वृष्टि का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रवाहरूप से अनादि हुए लोक लोकान्तरों का स्वामी है । तू अनावृष्टि का नाशक, आयु का वर्धक और वृष्टि की रक्षा करने वाला है ॥३॥

१२५०—जेता । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥१॥

पदार्थ—( पुराम् ) लोकों का ( भिन्दुः ) भेदन—प्रलय करने वाला ( युवा ) अजर ( कविः ) ज्ञानी ( अमितौजा ) अनन्तशक्ति वाला ( अजायत ) प्रलय करता है । ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( विश्वस्य ) सब के ( कर्मणः ) कर्म का ( धर्ता ) धारण करने वाला ( वज्री ) दण्डधारी ( पुरुष्टुतः ) सब के द्वारा उपासना किया गया ॥१॥

भावार्थ—लोकों को छिन्न भिन्न करनेवाला अजर ज्ञानी, अनन्तशक्तिवाला, सब के कर्म का धारण कर्ता न्यायकारी तथा सब के द्वारा उपास्य परमेश्वर समस्त जगत् का प्रलय करता है ॥१॥

१२५१—जेता । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।

२ ३ १ २र ३ १ २
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥२॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( वलस्य ) मेघ के ( गोमतः ) सूर्य की किरणों से युक्त ( अपाव ) खोलता है ( अद्रिवः ) हे मेघों के स्वामी ( बिलम् ) जलद्वार को ( त्वां ) तुझ में ( देवा ) विद्वान् जन ( अबिभ्युषः ) भय या उपद्रव से रहित ( तुज्यमानास ) शीघ्रकारी ( आविषुः ) प्रविष्ट होते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मेघों के स्वामी परमेश्वर ! तू सूर्य किरणों से युक्त मेघ के जलद्वार को खोल कर वृष्टि करता है । भयरहित तथा शीघ्रगतिवाले विद्वान्जन तुझ में लीन हो जाते हैं ॥२॥

१२५२—जेता । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) परमेश्वर की ( ईशानम् ) शासन करनेवाले ( ओजसा ) बल से ( अभि ) सब प्रकार से ( स्तोमैः ) स्तोत्रों से ( अनूषत ) स्तुति करो ( सहस्रं ) हजारों ( यस्य ) जिसके ( रातयः ) दान हैं ( उत ) और ( वा ) अथवा ( सन्ति ) हैं ( भूयसीः ) अधिक भी ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अनन्त बल से शासन करनेवाले परमेश्वर की स्तोत्रों से स्तुति करो । उनके दान सहस्र तथा उस से भी अधिक हैं ॥३॥

卐 नवम खण्ड समाप्त 卐

卐 नवमोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# दशमोऽध्यायः

१२५३—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥१॥

पदार्थ—( अक्रान् ) लांघता है ( समुद्रः ) प्राणियों को सुख देने वाला ( प्रथमे ) उत्तम ( विधर्मन् ) आकाश मे ( जनयन् ) उत्पन्न करता हुआ ( प्रजा ) अन्न, बारह महीनों तथा सूर्य से उत्पन्न होनेवाले पदार्थों को ( भुवनस्य ) भुवन का ( गोपा ) पालक ( वृषा ) वर्षा करनेवाला ( पवित्रे ) शब्द की रक्षा करनेवाले ( अधि ) ऊपर ( सानो ) शिखर के ( अव्ये ) पृथिवीसम्बन्धी ( बृहत् ) महान् ( सोमः ) सूर्य ( वावृधे ) बढ़ता है ( स्वान ) उत्पन्न हुआ ( अद्रिः ) अभेद्य ॥१॥

भावार्थ—प्राणियों को आनन्द देनेवाला, भुवन का पालक, अन्न, बारह मास तथा ऋतु वनस्पति आदि उत्पत्तिवाली वस्तुओं को उत्पन्न करता हुआ, वृष्टि का करनेवाला प्रतिदिन उदय होता हुआ अभेद्य तथा महान् सूर्य शब्द को अपने में सुरक्षित रखनेवाले उत्तम आकाश मे किरणों से फैलता है और पृथिवी के शिखर पर वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१॥

१२५४—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २३२ ३२३१२ ३ १ २ ३ १२र ३१२
मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमान ।
२ ३ २३ १२३१२३२उ ३ १२ ३१ २
मत्सि शर्धो मारुत मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥२॥

पदार्थ—( मत्सि ) सुखमय करता है ( वायुम् ) वायु को ( इष्टये ) यज्ञ के लिए ( राधसे ) धन के लिए ( न ) हमारे ( मत्सि ) सुखमय करता है (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को ( पूयमान ) पवित्र करता हुआ ( मत्सि ) सुखमय करता है ( शर्ध ) बल को ( मारुत ) वायु सम्बन्धी ( मत्सि ) सुखमय करता है ( देवान् ) इन्द्रियगण तथा विद्वानो को ( मत्सि ) सुखमय करता है (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक को ( देव ) हे देव ( सोम ) हे परमेश्वर ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्म देव ! सब को पवित्र करता हुआ तू हमारे यज्ञ और धन की सिद्धि के लिए वायु, प्राण, अपान वायुओ के बल इन्द्रियगण, विद्वान् तथा द्यु और पृथिवी लोक को सुखमय करता है ॥२॥

१२५५—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

३१ २र ३१२ ३१ २र ३२
महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
१२३२ ३१२ ३१ २र ३२३ २ ३१२
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दु ॥

पदार्थ—( महत् ) महान् ( तत् ) वह ( महिष ) महान् (चकार) करता है ( अपा ) कर्मों का ( यत् ) जो ( गर्भ ) ग्रहण करनेवाला ( अवृणीत ) स्वीकार करता है ( देवान् ) इन्द्रियो को ( अदधात् ) धारण करता है ( इन्द्रे ) मन में ( पवमान ) शुद्ध ( ओज ) बल को ( अजनयत् ) उत्पन्न करता है ( ज्योति ) प्रकाश को ( सूर्ये ) शरीरस्थ प्राण मे ( इन्दु ) ऐश्वर्यवाम् ॥३॥

भावार्थ—महान् कर्मों का धारण करनेवाला शुद्ध तथा ऐश्वर्यवाम् जीव महान् कार्यों को करता है । वह इन्द्रियो को ग्रहण करता है । वही मन के अन्दर बल और प्राण मे जीवन शक्ति प्रदान करता है ॥३॥

१२५६—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

३ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम ॥१॥

पदार्थ—( एष ) यह ( देव ) देव ( अमर्त्य ) अमर ( पर्णवी ) पक्षी के ( इव ) समान (दीयते) जाता है [प्राप्त होता है] (अभि) लक्ष्य करके (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों को ( आसदम् ) स्थिति के परम आश्रय को ॥१॥

भावार्थ—यह अमर जीव अपने गन्तव्य पथों को लक्ष्य में रख कर पक्षी की तरह सब के परम आश्रय परमेश्वर को प्राप्त होता है ॥१॥

१२५७—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २३ २ ३ १ २ २३१२ ३१२
एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो विगाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२॥

पदार्थ—( एष ) यह ( विप्रैं ) मेधावी पुरुषो द्वारा ( अभिष्टुत ) उपासना किया गया ( अप ) कर्मों और ज्ञानो को ( देव ) परमात्मा ( विगाहते ) मिलाता है ( दधद् ) धारण करता हुआ ( रत्नानि ) रत्नों को ( दाशुषे ) दानी के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी जनों से उपासना किया गया वह परमेश्वर दानी पुरुष के लिए विविध रत्नो को देता हुआ ज्ञान और कर्म की संगति लगाता है ॥२॥

१२५८—शुन शेपः । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ २३ २ ३ १ २३१२ १२
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभि । पवमान सिषासति ॥३॥

पदार्थ—( एष ) यह ( विश्वानि ) सारी ( वार्या ) उत्तम वस्तुओं को ( शूरः ) सर्व शक्तिमान् ( यन् ) प्राप्त करता हुआ ( इव ) सा ( सत्वभि ) बलों से ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( सिषासति ) बांटने की इच्छा करता है ॥३॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर अपनी शक्तियों से सारी उत्तम वस्तुओं को प्राप्त करता हुआ भक्तो को बांटने की इच्छा करता है ॥३॥

१२५९—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

३ २३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २
एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥४॥

पदार्थ—( एषः ) यह ( देव ) देव (रथर्यति) प्राप्त होता है ( पवमानः ) शुद्धस्वरूप (दिशस्यति) प्रदान करता है (आविष्कृणोति) प्रकट करता है ( वग्वनुम् ) शब्द और अर्थ को ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वरदेव हमें प्राप्त होता है । वह देने योग्य सभी वस्तुएँ प्रदान करता है । शब्द तथा अर्थ को वही प्रकट करता है ॥४॥

१२६०—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

३२३१ २३ २ ३१२ ३१ २ २ ३१२
एष देवो विपन्युभि पवमान ऋतायुभि । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥५॥

पदार्थ—(एष ) यह (देव ) दिव्य (विपन्युभिः ) ज्ञानी जनों से ( पवमान ) शुद्ध ( ऋतायुभि ) सत्य को चाहने वाले ( हरिः ) अज्ञान का हरण करने वाला ( वाजाय ) ज्ञान की प्राप्ति के लिए ( मृज्यते ) शुद्ध किया जाता है ॥५॥

भावार्थ—अज्ञान का निवारक, शुद्ध तथा दिव्य आत्मा सत्य की खोज करने वाले ज्ञानीजनो से ज्ञान प्राप्ति के लिए अविद्यादि मलो को दूर कर के पवित्र किया जाता है ॥५॥

१२६१—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १२
एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्य ॥६॥

पदार्थ—( एष ) यह ( देव ) देव ( विपा ) वेदवाणी द्वारा ( कृत ) सृष्टिकर्ता ( अति ) अत्यन्त ( ह्वरांसि ) कुटिलताओं को ( धावति ) शुद्ध करता है ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( अदाभ्य ) न दबाया जाने योग्य ॥६॥

भावार्थ—सृष्टिकर्ता शुद्धस्वरूप तथा न दबाये जाने योग्य परमात्मा वेदवाणी द्वारा समस्त कुटिलताओ को दूर करता है ॥६॥

१२६२—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
एष दिव वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमान कनिक्रदत् ॥७॥

पदार्थ—( एष ) यह ( दिव ) द्युलोक को ( विधावति ) व्याप्त करता है ( तिर ) प्राप्त होकर ( रजांसि ) लोको को ( धारया ) वाणी द्वारा ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( कनिक्रदत् ) उपदेश करता हुआ ॥७॥

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा सबको उपदेश करता हुआ शुद्ध स्वरूप परमेश्वर प्राप्त होकर द्यु तथा अन्य सभी लोको मे व्यापक हो रहा है ॥७॥

१२६३—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ ३ २
एष दिव व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृत । पवमान स्वध्वर ॥८॥

पदार्थ—( एष ) यह ( दिवं ) द्युलोक को ( व्यासरत् ) विस्तृत करता है ( तिर ) प्राप्त हो कर ( रजांसि ) लोकों का ( अस्तृत ) किसी से न दबाया जाने वाला ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( स्वध्वर ) सृष्टि रचनारूप उत्तम यज्ञ का करने वाला ॥८॥

भावार्थ—किसी से न दबाया जाने योग्य शुद्धस्वरूप संसार यज्ञ का कर्त्ता परमेश्वर व्याप्त होकर द्यु और अन्य लोकों का विस्तार करता है ॥८॥

१२६४—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

१२३ २३ १२ ३ २३१ २ ३ २ १ २ ३१२
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्य सुत । हरि पवित्रे अर्षति ॥९॥

पदार्थ—( एष ) यह ( प्रत्नेन ) प्रवाह रूप से अनादि काल से चले आये ( जन्मना ) जन्म से ( देवः ) देव ( देवेभ्य ) दिव्यगुणों के लिए ( सुत ) उत्पन्न किया गया ( हरि ) अविद्या आदि का दूर करने वाला ( पवित्रे ) परम पवित्र ( अर्षति ) पहुँचता है ॥९॥

भावार्थ—अनादि प्रवाह से प्राप्त हुए जन्म से दिव्य गुणो की प्राप्ति के लिए उत्पन्न हुआ आत्मा रूपी देव अपने अविद्या आदि क्लेशों का नाश करता हुआ परमपवित्र परमेश्वर तक पहुँच जाता है ॥९॥

१२६५—शुन शेप । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ १ २ ३ २
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निष । धारया पवते सुत ॥१०॥

पदार्थ—( एष ) यह ( उ ) ही ( स्य ) वह ( पुरुव्रत ) अनेकों कर्मों वाला ( जज्ञान ) उत्पन्न होता हुआ (जनयन् ) उत्पन्न करता हुआ ( इष ) ज्ञानों को ( धारया ) वेदवाणी से ( पवते ) पवित्र करता है ( सुत ) पुत्रस्वरूप ॥१०॥

भावार्थ—विविध कर्मों वाला, पुत्रस्वरूप तथा बार बार उत्पन्न होता हुआ यह जीव ज्ञानों को उत्पन्न करता हुआ अपने को वेदवाणी से पवित्र करता है ॥१०॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१२६६—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २३१२ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥११॥

पदार्थ—( एषः ) यह ( धिया ) बुद्धि से ( याति ) पहुँच जाता है ( अण्व्या ) सूक्ष्म ( शूरः ) योद्धा ( रथेभिः ) रथों से ( आशुभिः ) वेग से चलते ( गच्छन् ) जानता हुआ ( इन्द्रस्य ) जीव के ( निष्कृतम् ) समस्त कर्मों को ॥१॥

भावार्थ—जीव के समस्त कर्मों को जानता हुआ परमेश्वर अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उसी प्रकार समस्त स्थानों पर तत्काल पहुँच जाता है जिस प्रकार कि शीघ्रगामी रथों से योद्धा अपने युद्धस्थान पर शीघ्र पहुँचता है ॥१॥

१२६७—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २    ३ २ ३ १ २    २ ३ १ २ ३ १ २

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसत ॥२॥

पदार्थ—( एष ) यह ( पुरू ) बहुत ( धिया ) ज्ञान से ( अयते ) गति करता है अथवा ( धियायते ) कर्म की इच्छा करता है ( बृहते ) बड़े (देवतातये ) संसार यज्ञ के लिए (यत्र) जिसमें ( अमृतास ) अमर [नित्य] जीव लोग (आसत) व्याप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर महान् सृष्टि रचनारूप यज्ञ को करने के लिए अपने ज्ञान से विविध प्रकार का प्रयत्न करता है। इस संसाररूप यज्ञ मे अनेकों नित्य जीव स्थिति पाते हैं ॥२॥

१२६८—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३    २ ३ १ २र

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायव । प्रचक्राणं महीरिष ॥३॥

पदार्थ—( एतम् ) इस ( मृजन्ति ) शुद्ध करते हैं ( मर्ज्यम् ) शुद्ध करने योग्य ( उप ) समीप ( द्रोणेषु ) गन्तव्य मार्गों के विषय मे ( आयवः ) मनुष्य लोग ( प्रचक्राणम् ) उत्पन्न करने वाले ( महीः ) महान् ( इषः ) ज्ञानों को ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य लोग गन्तव्य पथो के विषय में महान् ज्ञानो को उत्पन्न करनेवाले शुद्ध करने योग्य इस आत्मा को शुद्ध करते हैं ॥३॥

१२६९—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १   २र ३ २ ३   १ २ ३ २   १ २ ३ २ ३ १ २

एष हितो वि नीयतेऽन्त शुभ्रावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णय ॥४॥

पदार्थ—( एष ) यह ( हित ) सबका धारण कर्त्ता ( वि) विशेष रूप से ( नीयते ) प्राप्त किया जाता है ( अन्त ) अन्त करण मे (शुभ्रावता ) शुद्धियुक्त ( पथा ) मार्ग से ( यदि ) जब ( तुञ्जन्ति ) अर्पण करते हैं ( भूर्णय ) ज्ञान से भरपूर हुए ॥४॥

भावार्थ—जब ज्ञान से भरपूर पुरुष अपने कर्मों को इसमें समर्पण कर देते हैं तब यह सर्वाधार परमेश्वर शुद्धियुक्त पथ से अन्त करण मे प्राप्त किया जाता है ।४।

१२७०—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २    ३ २ ३ १ २ ३ १ २   २ ३   १ २ ३ १ २

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभि । पति सिन्धूनां भवन् ॥५॥

पदार्थ—( एषः ) यह ( रुक्मिभि ) सूर्य, प्रकाश तथा सुवर्ण हैं जिनमे उनसे युक्त ( ईयते ) जाना जाता है [ अनुमान द्वारा ] ( वाजी ) शक्तिशाली ( शुभ्रेभिः ) शोभायुक्त ( अंशुभि ) सृष्टि के तत्त्वावयवों द्वारा ( पति ) स्वामी ( सिन्धूनाम् ) समुद्रों का ( भवन् ) होता हुआ ॥५॥

भावार्थ—समुद्रों का स्वामी होता हुआ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सूर्य आदि से युक्त शोभायमान सृष्टि के तत्त्व अवयवों से अनुमान किया जाता है ॥५॥

१२७१—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ १   २र ३ १ २ ३   १ २   ३ २क १ २   ३   १ २र ३ १ २

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥

पदार्थ—( एषः ) यह ( शृङ्गाणि ) अग्नियो को ( दोधुवत्) कम्पन देता है ( शिशीते ) तीक्ष्ण करता है ( यूथ्य ) यूथों का स्वामी ( वृषा ) सुख की वृष्टि करने वाला ( नृम्णा ) धनों को ( दधान ) धारण करता हुआ ( ओजसा ) बल से ॥६॥

भावार्थ—समस्त पदार्थ समूहों का स्वामी तथा सुख की वर्षा करने वाला परमेश्वर बल से धनों को धारण करता हुआ अग्नियो में कंपन देता है और उन्हें तीक्ष्ण करता है ॥६॥

१२७२—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ १   २र    ३ १ ३२ ३   ३ १   २र २ ३ १ २

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥७॥

पदार्थ—( एषः ) यह ( वसूनि ) कार्य-कारण द्रव्यों का ( पिब्दना ) पीस डालने योग्य ( परुषा ) प्रकाश वाले ( ययिवान् ) पार करता हुआ ( अति ) अतिक्रमण करके ( अव) पृथक् रूप से (शादेषु ) तृण-वनस्पति आदि में ( गच्छति) व्यापक हो रहा है ॥७॥

भावार्थ—विघ्नों को पीस डालने वाला परमेश्वर प्रकाशवाले सृष्टि के कार्य और कारण पदार्थों को लाँघ कर पार स्थित होता हुआ तृण तथा वनस्पति आदि सभी में पृथक होता हुआ व्यापक है ॥७॥

१२७३—असितदेवलौ । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३   २ ३ १ २    ३ १ २    ३   २ ३ १ २

एतमुत्य दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥

पदार्थ—( एतम् ) इस ( उ ) पादपूरक ( त्यम् ) उस ( दश) दस (क्षिपः) इन्द्रियाँ ( हरिम् ) विषयों का हरण करनेवाले ( हिन्वन्ति ) प्रेरित करती हैं ( यातवे ) विषयों की तरफ जाने के लिए ( स्वायुधम् ) शोभन प्राणों को धारण करने वाले ( मदिन्तमम् ) अत्यन्त सुखी ॥८॥

भावार्थ—विषय के ग्रहण करने वाले, प्राणधारी तथा सुखी इस जीव को दस इन्द्रियाँ विषयों की तरफ जाने के लिए प्रेरित करती हैं ॥८॥

## 卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

१२७४—राहूगण । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २उ   ३ २उ   ३ १ २

एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।

२ ३   १ २   ३ १ २

गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ—( एषः ) यह ( उ ) पादपूरक ( स्य ) वह ( वृषा ) कामनाओं की वृष्टि करने वाला ( रथ ) जानने वाला ( अव्या ) प्रकृति के ( वारेभिः ) आवरणों से [ युक्त को ] ( अव्यत ) व्याप्त करता है ( गच्छन् ) जानता हुआ ( वाजं ) ज्ञान को (सहस्रिणम् ) सहस्रों प्रकार के ॥१॥

भावार्थ—मनोरथो की वृष्टि करने वाला तथा सर्वज्ञाता परमेश्वर सहस्रों प्रकार के ज्ञानों को जानता हुआ प्रकृति के आवरणो से युक्त जगत् को व्याप्त करता है ॥१॥

१२७५—राहूगण । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३   १ २ ३   १ २    ३ १ २    २ ३ १    ३ १ २

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभि । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

पदार्थ—( एतम् ) इस (त्रितस्य) ज्ञान से पूर्ण अथवा तीनों स्थानो पृथिवी, अन्तरिक्ष द्यौ मे स्थित परमेश्वर की ( योषण ) मिश्रण और वियोगकारी शक्तियाँ ( हरिम् ) हरे भरे (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं ( अद्रिभिः ) मेघ आदि से युक्त (इन्दुम्) ऐश्वर्य के साधन ( इन्द्राय ) जीव के ( पीतये ) भोग के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान से परिपूर्ण तीनो लोको मे व्याप्त परमेश्वर की संयोग और वियोगकारिणी शक्तियाँ हरे भरे तथा ऐश्वर्य के साधनभूत इस संसार को जीव के लिए बढ़ाती हैं ॥२॥

१२७६—राहूगण । सोम । गायत्री ।

३ १    २र २ ३ २उ   ३ १ २    १ २ ३ २उ    ३ १ २

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥

पदार्थ—( एष ) यह ( स्य ) वह ( मानुषीषु ) मानवी ( आ ) अच्छी भाँति ( श्येनः ) आत्मा के ( न ) समान ( विक्षु ) प्रजाओं मे ( सीदति ) व्यापक होकर स्थित है ( गच्छन् ) प्राप्त होता हुआ ( जार ) आदित्य के ( न ) समान ( योषितम् ) सेवन करने योग्य को [उषा को] ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर जीवात्मा के समान तथा सेवनीय उषा काल को प्राप्त होते हुए आदित्य के समान समस्त मानवी प्रजा मे स्थित है ॥३॥

१२७७—राहूगण । सोम । गायत्री ।

३ २उ    ३ १   २र    ३ १   २र   २उ   ३ २ ३ १ २

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिव शिशु । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥४॥

पदार्थ—( एष ) यह ( स्य ) वह ( मद्य ) आनन्ददाता ( रस ) स्नेह रखनेवाला ( अवचष्टे ) देखता और उपदेश करता है ( दिव ) द्यु आदि लोकों को ( शिशुः ) प्रशंसनीय ( य ) जो ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( वारम् ) वरण करने योग्य में ( आविशत् ) प्रविष्ट हो रहा है ॥४॥

भावार्थ—जो द्यु आदि लोको का द्रष्टा और उपदेष्टा है तथा वरण करने योग्य वस्तु में व्यापक हो रहा है वह आनन्ददाता, भक्त से स्नेह रखनेवाला, प्रशंसनीय तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर है ॥४॥

१२७८—राहूगण । सोम । गायत्री ।

३ २उ   ३ १ २ ३ १   २र    ३ २   २ ३ १ २ ३ २ ३ २

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसि । क्रन्दन्योनिमभिप्रियम् ॥५॥

पदार्थ—(एष ) यह (स्य) वह (पीतये) पान करने के लिये (सुतः) उत्पन्न हुआ ( हरिः ) अज्ञान का हरण करनेवाला ( अर्षति ) प्राप्त होता है ( धर्णसिः )

धारण करनेवाला ( कन्दन् ) स्तुति करता हुआ ( गोमिन् ) परमेश्वर को ( अभि ) भली प्रकार ( प्रियम् ) प्यारे ॥५॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुआ, अज्ञान का निवारक तथा सत्य गुणों का धारण करनेवाला विद्वान् पुरुष स्तुति करता हुआ आनन्द रस को पान करने के लिये प्यारे प्रभु को प्राप्त करता है ॥५॥

१२७९—राहूगण । सोम । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ १ २   ३   २ ३ १ २   २ ३ १ २ ३ १   २

**एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥**

पदार्थ—( एतम् ) इस ( त्यम् ) उस ( हरितः ) अंगुलियाँ [अथवा उपलक्षण से इन्द्रियाँ] ( दश ) दश ( मर्मृज्यन्ते ) अलंकृत करती हैं ( अपस्युवः ) कर्म की इच्छा करनेवाली ( याभिः ) जिन से ( मदाय ) सुख के लिए ( शुम्भते ) सुशोभित होता है ॥६॥

भावार्थ—इस जीव को, कर्म को सिद्ध करनेवाली दश अंगुलियां (अथवा इन्द्रियां) अलंकृत करती हैं जिनके द्वारा वह लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए सुशोभित होता है ॥६॥

## 卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

१२८०—प्रियमेध । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २   ३ १   २र   ३ १   २र ३ १ २

**एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।**

२ ३ २ ३   १   २

**अव्यो वारं वि धावति ॥१॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( वाजी ) शक्तिशाली ( हितः ) धारण किया जानेवाला ( नृभिः ) ज्ञानमार्ग के प्रदर्शकों से ( विश्ववित् ) सर्वज्ञ ( मनसः ) मनन शक्ति का ( पतिः ) स्वामी ( अव्यः ) प्रकृतिसम्बन्धी ( वारम् ) आवरण को ( विधावति ) शुद्ध पवित्र करता है ॥१॥

भावार्थ—शक्तिशाली ज्ञानमार्ग के नेताओं से जानने योग्य सर्वज्ञ तथा मनन शक्ति का स्वामी परमेश्वर प्रकृतिसम्बन्धी आवरण को शुद्ध पवित्र करता है ॥१॥

१२८१—प्रियमेध । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ २   २ ३ १ २   ३ २

**एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( पवित्रे ) वेदमन्त्र में ( अक्षरत् ) प्राप्त होता है ( सोमः ) परमेश्वर ( देवेभ्यः ) क्रीडा करनेवाले जीवों के लिए ( सुतः ) उत्पन्न करनेवाला ( विश्वा ) सारे ( धामानि ) नाम जन्म तथा स्थानों में ( आविशन् ) व्यापक होता हुआ ॥२॥

भावार्थ—संसार में क्रीडा करनेवाले जीवों के लिए समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर सारे नाम जन्म और स्थानों में व्यापक होता हुआ वेदमन्त्र के मनन में हमें प्राप्त होता है ॥२॥

१२८२—प्रियमेध । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २   ३   १ २ ३ १ २

**एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥३॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( देवः ) देव ( शुभायते ) शुभ करता है ( अधि ) अधिष्ठाता रूप से ( योनौ ) मूल कारण प्रकृति में ( अमर्त्यः ) अजर अमर ( वृत्रहा ) अज्ञान का नाशक ( देववीतमः ) समस्त देवों में व्यापक ॥३॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करनेवाला समस्त देवों में व्यापक अजर तथा अमर वह परमात्मदेव मूल कारण प्रकृति में अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर सब का शुभ कल्याण करता है ॥३॥

१२८३—प्रियमेध । सोम । गायत्री ।

१ २उ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ २   ३ १   २र

**एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥४॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( वृषा ) बलवान् ( कनिक्रदत् ) स्तुति करता हुआ ( दशभिः ) दश ( जामिभिः ) गतिशील [इन्द्रियों] द्वारा ( यतः ) बंधा हुआ ( अभि ) भली प्रकार ( द्रोणानि ) गन्तव्य मार्गों पर ( धावति ) चलता है ॥४॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म की साधनभूत दश इन्द्रियों से बंधा हुआ यह बलवान् जीव स्तुति करता हुआ अपने गन्तव्य मार्गों पर चलता है ॥४॥

१२८४—प्रियमेध । सोम । गायत्री ।

३ १   २र   ३ १ २   ३ २ ३ १   २   ३ १ २   ३ १   २र

**एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अरोचयत् ) प्रकाशित करता है ( पवमानः ) शुद्धस्वरूप ( अधि द्यवि ) द्युलोक में ( पवित्रे ) पवित्र ( मत्सरः ) आनन्द देनेवाला ( मदः ) स्वयं आनन्दस्वरूप ॥५॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, आनन्द का दाता तथा आनन्दस्वरूप परमेश्वर पवित्र द्युलोक में सूर्य को प्रकाशित करता है ॥५॥

१२८५—प्रियमेध । सोम । गायत्री ।

३ १   २र   ३ १ २   ३ १ २   १ २ ३ १   २र

**एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( सूर्येण ) सूर्य से ( हासते ) हर्ष युक्त कर रहा है ( संवसानः ) आच्छादित करता हुआ ( विवस्वता ) प्रकाशमान ( पतिः ) स्वामी ( वाचः ) वेदवाणी का ( अदाभ्यः ) न दबाए जाने योग्य ॥६॥

भावार्थ—वेदवाणी का स्वामी तथा किसी से न दबाए जाने योग्य परमेश्वर प्रकाशमान सूर्य से त्रिलोकी को आच्छादित करता हुआ सबको हर्षित कर रहा है ॥६॥

## 卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

१२८६—नृमेध । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ २उ   ३ १ २

**एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥१॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( कविः ) मेधावी ( अभिष्टुतः ) स्तुति किया हुआ ( पवित्रे ) पवित्र आत्मा में ( अधि ) अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर ( तोशते ) संतुष्ट करता है ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( घ्नन् ) नष्ट करता हुआ ( अप ) दूर ( द्विषः ) द्वेष आदि शत्रुओं को ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी, स्तुति किया हुआ तथा पवित्र करनेवाला परमेश्वर काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करता हुआ पवित्र आत्मा में अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर उसे संतुष्ट करता है ॥१॥

१२८७—नृमेध । सोम । गायत्री ।

३ १   २र   ३ १ २   ३ १   २र   ३ १ २   ३ १ २

**एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( वायवे ) बन्धन से छुड़ानेवाले ( स्वर्जित् ) स्वर्ग सुख को जीतने वाला ( परि ) सब प्रकार से ( षिच्यते ) सींचा जाता है [ज्ञान की धारा से] ( पवित्रे ) पवित्र अन्तःकरण में ( दक्षसाधनः ) बल का साधक ॥२॥

भावार्थ—स्वर्ग सुख को जीतने वाला, आत्मबल का साधक जीव बंधन से छुड़ाने वाले परमेश्वर की प्राप्ति के लिए पवित्र अन्तःकरण में ज्ञानियों द्वारा ज्ञानधारा से सींचा जाता है ॥२॥

१२८८—नृमेध । सोम । गायत्री ।

३ २उ   ३ १ २   ३ २ ३ १   २र ३ २

**एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।**

२ ३ १ २   ३ २

**सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( नृभिः ) मनुष्यों से ( नीयते ) प्राप्त किया जाता है ( दिवः ) द्युलोक के ( मूर्धा ) मस्तक के समान श्रेष्ठ ( वृषा ) शक्तिशाली ( सुतः ) सब का उत्पन्न करने वाला ( सोमः ) परमेश्वर ( वनेषु ) उपासनाओं में ( विश्ववित् ) सर्वज्ञ ॥३॥

भावार्थ—द्युलोक के मस्तक के समान शक्तिशाली सबका उत्पन्न करने वाला तथा सर्वज्ञ परमेश्वर मनुष्यों द्वारा उपासनाओं में प्राप्त किया जाता है ॥३॥

१२८९—नृमेध । सोम । गायत्री ।

३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २ १ २   ३ १   २र

**एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( गव्युः ) पृथिवी, सूर्य तथा वाणी का दाता ( अचिक्रदत् ) उपदेश करता है ( पवमानः ) शुद्धस्वरूप ( हिरण्ययुः ) स्वर्ण का दाता ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( सत्राजित् ) सर्वदा विजयी ( अस्तृतः ) किसी से न दबाए जाने योग्य ॥४॥

भावार्थ—पृथिवी, सूर्य तथा वेदवाणी का दाता, शुद्धस्वरूप सुवर्ण का देने वाला सदा विजयी किसी से न दबाया जाने वाला तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमें उपदेश करता है ॥४॥

१२९०—नृमेध । सोम । गायत्री ।

१ २ ३क   २र   ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ २उ ३ २ ३ १

**एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥५॥**

पदार्थ—( एषः ) यह ( शुष्मी ) सर्वशक्तिमान् ( असिष्यदत् ) व्यापक हो रहा है ( अन्तरिक्षे ) आकाश में ( वृषा ) सुख की वर्षा करनेवाला ( हरिः ) अज्ञान का हर्ता ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( इन्द्रम् ) जीवात्मा को ( आ ) भली भांति ॥५॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान, सुख की वर्षा करने वाला, अज्ञानहर्ता तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर जीवात्मा को पवित्र करता हुआ आकाश में व्यापक हो रहा है ॥५॥

१२९१—नृमेध । सोम । गायत्री ।

१२१ १२१ १२ ११ १
एष शुष्म्यदाभ्य सोमः पुनानो अर्षति ।
१ १२ ११
देवावीरघशंसहा ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (शुष्मी) सर्वशक्तिमान् (अदाभ्य) न मारे जाने योग्य (सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) व्यापक हो रहा है (देवावी) देवों की रक्षा करने वाला (अघशंसहा) पाप की प्रशंसा करने वालों का दण्डदाता ॥६॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, अहिंसनीय, देवों का रक्षक तथा पापियों को दण्ड देने वाला परमेश्वर सबको पवित्र करता हुआ व्यापक हो रहा है ॥६॥

卐 पंचम खण्ड समाप्त 卐

१२९२—राहूगण । सोम । गायत्री ।

१ ३१ १२३ २१ १ २ ३ १२ ३ १ २र १२
स सुत पीतये वृषा सोम पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयु ॥१॥

पदार्थ—(स) वह (सुत) सृष्टिकर्त्ता (पीतये) रक्षा के लिए (वृषा) मनोरथों की वर्षा करने वाला (सोम) परमेश्वर (पवित्रे) विद्युत् में (अर्षति) गति दे रहा है (विघ्नन्) विनाश करता हुआ (रक्षांसि) विघ्नों का (देवयुः) देवों को संयुक्त करने वाला ॥१॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता मनोरथों को पूर्ण करने वाला तथा समस्त देवों को उन के गुण और क्रियाओं से युक्त करने वाला परमेश्वर हमारी रक्षा के लिए विघ्नों का निवारण करता हुआ विद्युत् में गति दे रहा है ॥१॥

१२९३—राहूगण । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसि । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

पदार्थ—(स) वह (पवित्रे) रश्मिसमूह में (विचक्षण) साक्षी (हरि) ताप हर्त्ता (अर्षति) गति दे रहा है (धर्णसि) सर्वाधार (अभि) विषय में (योनिम्) जल तथा आकाश के (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—सबका साक्षी, तापहर्त्ता तथा सर्वाधार परमेश्वर आकाश और जल के विषय में उपदेश करता हुआ किरणसमूह में गति प्रदान कर रहा है ॥२॥

१२९४—राहूगण । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २३२३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
स वाजी रोचने दिव पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (वाजी) बलवान् (रोचनम्) प्रकाशक (दिवः) द्युलोक का (पवमान) व्यापक (वि) विशेष रूप से (धावति) व्याप्त करता है (रक्षोहा) दुर्गुणों का नाशक (वरम्) वरणीय (अव्ययम्) प्रकृति और जीव को ॥३॥

भावार्थ—बलवान्, द्युलोक का प्रकाशक, व्यापक तथा दुर्गुणों का नाश करने वाला परमेश्वर वरण करने योग्य जीव और प्रकृति मे व्यापक है ॥३॥

१२९५—राहूगण । सोम । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभि सूर्यं सह ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (त्रितस्य) पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक [तीन स्थानों में] विद्यमान वायु के (अधि सानवि) उच्च प्रदेश में (पवमान) शुद्धस्वरूप (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (जामिभिः) जलों से (सूर्यम्) सूर्य को (सह) साथ ॥४॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर तीनों लोकों में विद्यमान वायु के उच्च प्रदेश में अन्तरिक्षस्थ जलों के साथ सूर्य को प्रकाशित करता है ॥४॥

१२९६—राहूगण । सोमः । गायत्री ।

१ २३ १ २र३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २
स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

पदार्थ—(सः) वह (वृत्रहा) दुर्गुणों का दूर करनेवाला (वृषा) मनोरथों की वृष्टि करनेवाला (सुत) सृष्टिकर्त्ता (वरिवोवित्) सम्पत्ति का प्राप्त कराने वाला (अदाभ्यः) न मारे जाने योग्य (सोमः) परमेश्वर (वाजं) अन्न के (इव) समान (असरत्) व्याप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—दुर्गुणों के निवारक, मनोरथों को पूर्ण करनेवाला, सृष्टिकर्त्ता, सम्पदाओं का दाता तथा अहिंसनीय परमेश्वर समस्त पदार्थों में उसी प्रकार व्याप्त हो रहा है जिस प्रकार खानेवाले की नस-नस में अन्न व्याप्त होता है ॥५॥

१२९७—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
स देवः कविनेषितो ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥६॥

पदार्थ—(सः) वह (देवः) देव (कविना) विद्वान् के द्वारा (इषितः) प्रेरित किया हुआ (अभि) पर (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों (धावति) चलता है (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (इन्द्राय) परमेश्वर की (मंहयन्) पूजा करता हुआ ॥६॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् जीवात्मदेव विद्वान् के द्वारा प्रेरित किया गया परमेश्वर की भक्ति करता हुआ गन्तव्य मार्गों पर चलता है ॥६॥

卐 षष्ठ खण्ड समाप्त 卐

१२९८—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ । पवमान्यध्येतृस्तुति । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
य पावमानीरध्येत्यृषिभि सम्भृत रसम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सर्व स पूतमश्नाति स्वदित मातरिश्वना ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (पावमानीः) पवित्र करनेवाली वेदवाणियों को (अध्येति) अध्ययन करता है (ऋषिभिः) साक्षात्कार करनेवाले ऋषियों से (संभृतम्) धारण किए जानेवाले (रसम्) आनन्द का (सर्वं) सब (सः) वह (पूतम्) पवित्र हुए (अश्नाति) भोगता है (स्वदितं) खाने योग्य वस्तु को (मातरिश्वना) वायु के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष वेदवाणियों का अध्ययन करता है वह मंत्रद्रष्टाओं के द्वारा धारण किए जानेवाले आनन्द और वायु से पवित्र किये गये सब खाद्य वस्तुओं का उपभोग करता है ॥१॥

१२९९—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुति । अनुष्टुप ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभि सम्भृत रसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीर सर्पिर्मधूदकम् ॥२॥

पदार्थ—(पावमानी) परमेश्वर के ज्ञानवाली (यः) जो (अध्येति) अध्ययन करता है (ऋषिभिः) मन्त्रद्रष्टाओं द्वारा (संभृतम्) धारण किए जानेवाले (रसम्) साररूप (तस्मै) उसके लिए (सरस्वती) ज्ञान विज्ञानयुक्त वाणी (दुहे) पूर्ण करती है (क्षीरम्) दुग्ध को (सर्पिः) घृत को (मधु) मधु (उदकम्) जल को ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष मन्त्रद्रष्टाओं द्वारा हृदय मे धारण किए जानेवाली वेदवाणियों का स्वाध्याय करता है उसके लिये ज्ञान-विज्ञान को देनेवाली वेदवाणी दुग्ध, घृत, मधु तथा जल आदि पदार्थों को पूरा करती है ॥२॥

१३००—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुति । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १२ ३२३ १ २३ १ २
पावमानी स्वस्त्ययनी सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिभि सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥३॥

पदार्थ—(पावमानी) जीव और परमेश्वर का ज्ञान करानेवाली वेदवाणियां (स्वस्त्ययनीः) कल्याणकारिणी (सुदुघा) ज्ञान का उत्तम रूप से दोहन करानेवाला (हि) निश्चय ही (घृतश्चुतः) तेज को फैलानेवाली (ऋषिभिः) ज्ञानियों द्वारा (संभृतम्) धारण किया जानेवाला (रस) सार है (ब्राह्मणेषु) वेद के ज्ञाताओं में (अमृतम्) अमरत्व मोक्षानन्द (हितम्) स्थापित हो जाता है ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान देनेवाली वेदवाणियां कल्याणकारिणी, ज्ञान का दोहन करानेवाली तथा तेज देनेवाली हैं। ये ज्ञानियों द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य सार हैं। इन के द्वारा वेद के ज्ञाताओं में अमरत्व स्थापित हो जाता है ॥३॥

१३०१—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुति । अनुष्टुप् ।

३ १२ ३ २ ३ १ २र ३ २
पावमानीर्दधन्तु न इम लोकमथो अमुम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवै समाहृता ॥४॥

पदार्थ—(पावमानी) पवित्र वेदवाणियां (दधन्तु) धारण कराती हैं (नः) हमें (इमम्) यह (लोकम्) लोक (अथो) अथवा अनन्तर (अमुम्) पर [जन्म] (कामान्) मनोरथों को (समर्धयन्तु) सफल करती हैं (नः) हमारे (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (देवैः) समस्त वेदों से (समाहृताः) संयुक्त हुई ॥४॥

भावार्थ—समस्त वेदों के ज्ञान से युक्त दिव्यगुणवाली वेदवाणियां हमें यह लोक और इसके अनन्तर परलोक प्राप्त कराती हैं। वे हमारे मनोरथों को सफल करती हैं ॥४॥

१३०२—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुति । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तेन सहस्रधारेण पावमानी पुनन्तु नः ॥५॥

पदार्थ—(येन) जिस ( देवा ) विद्वान् लोग( पवित्रेण ) मंत्र से (आत्मानं) अपने का ( पुनते ) पवित्र करते हैं ( सदा ) सदा ( तेन ) उस ( सहस्रधारेण ) बहुत प्रकार क शब्द हैं जिसमे ( पावमानी ) वेदवाणियाँ ( नः ) हमे ( पुनन्तु ) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् जन जिन वेदमन्त्रो से अपने को सदा पवित्र करते हैं उन सहस्रों प्रकार से युक्त वेदमन्त्रों से वेदवाणियां हमे पवित्र करें ॥५॥

*१३०३—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुति । अनुष्टुप् ।*

३ २ ३ १२३१२ ३२
**पावमानी स्वस्त्ययनीस्ताभिगच्छति नान्दनम् ।**

१ २ ३१ २ ३१२
**पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥**

पदार्थ—( पावमानी ) पवित्र वेदवाणियां ( स्वस्त्ययनी ) कल्याणकारिणी ( ताभिः ) उनके द्वारा ( गच्छति ) प्राप्त करता है ( नान्दनम ) पुत्र आदि समृद्धियो को (पुण्यान ) पवित्र ( भक्षान ) खाद्य सामग्री को [च] और ( भक्षयति ) खाता है ( अमृतत्व ) मोक्ष को ( च ) और ( गच्छति ) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ—वेदवाणियां कल्याणकारिणी हैं। उनके द्वारा मनुष्य पुत्र आदि समृद्धियो को प्राप्त करता पवित्र खाद्यसामग्री का सेवन करता और अन्त मे मोक्ष का लाभ करता है ॥६॥

## 卐 सप्तम खण्ड समाप्त 卐

*१३०४—वसिष्ठ । अग्निः । त्रिष्टुप ।*

१२ ३१ २र३ १२३ २ ३२३ १२३ १२३२
**अग न्म महा नमसा यविष्ठ यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।**

३ १२३१२ ३२३१ २ ३ १२ ३१ २
**चित्रभानु रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुत विश्वत प्रत्यञ्चम् ॥१॥**

पदार्थ—( अगन्म ) प्राप्त होवें ( महा ) महान् ( नमसा ) नमस्कार या स्तुति से (यविष्ठम्) अजर अमर ( य ) जो (दीदाय) प्रकाशित करता है (समिद्ध ) प्रकाशयुक्त ( स्वे ) अपने ( दुरोणे ) गृहरूप ससार मे ( चित्रभानुम ) अद्भुत प्रकाशवाले ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक के ( अन्त ) मध्य में ( उर्वी ) महान् ( स्वाहुतम् ) अच्छी प्रकार स्तुति किये गये (विश्वत ) सब ओर से ( प्रत्यञ्चम् ) सर्वव्यापक ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशस्वरूप जो परमेश्वर अपने व्यापकता के स्थान ससार म समस्त प्रकाशमान पदार्थो को प्रकाशित कर रहा है वह अद्भुत प्रकाशवाला तथा महान् द्यु और पृथिवी लोक के मध्य सब ओर से व्यापक है। स्तुति किये गये उस महान् प्रभु को हम प्राप्त होवें ॥१॥

*१३०५—वसिष्ठ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३१ २र ३ १२ ३२३ १ २३२३ २ ३१२
**समह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्नि ष्टवे दम आ जातवेदा ।**

१ २ ३१२३ २३१ २३२३१ २ ३१२
**स नो रक्षिषद् दुरितावद्यादस्मान गणत उत नो मघोन ॥२॥**

पदार्थ—( स ) वह ( मह्ना ) महिमा से ( विश्वा ) सारे ( दुरितानि ) दुर्गुणो को ( साह्वान ) दूर करता हुआ (अग्नि ) परमेश्वर ( स्तवे ) स्तुति किया जाता है ( दमे ) उपासना गृह मे ( आ ) अच्छी भाँति ( जातवेदाः ) उत्पन्न पदार्थों में व्यापक ( स ) वह ( न ) हमारे ( रक्षिषद् ) बचावे ( दुरितात ) दुर्गुण से ( अवद्यात् ) निन्दनीय ( अस्मान् ) हमे ( गणत ) स्तुति करने वाल ( उत ) और ( न ) हमे ( मघोन ) यज्ञ करनेवाल ॥२॥

भावार्थ—अपनी महिमा से सारे दुर्गुणो को दबा देन वाला, तथा सर्वव्यापक परमेश्वर उपासना गृह म स्तुति से स्मरण किया जाता है। वह हम उपासक तथा यज्ञ करनवालो को हमारे दुर्गुणों से बचाता है ॥२॥

*१३०६—वसिष्ठ । अग्नि । त्रिष्टप् ।*

१ २र ३२ ३१ २३ १ २ ३ २ ३१२
**त्व वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठा ।**

१ २र ३१ २ ३१ २ ३२ ३ १२
**त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥३॥**

पदार्थ—( त्व ) तू ( वरुण ) वरण करने योग्य ( उत ) और ( मित्र ) मित्र ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( त्वां ) तेरा ( वर्धन्ति ) वर्णन करते हैं ( मतिभि ) स्तुतियो से ( वसिष्ठा ) ज्ञान मे निवास करने वाले लोग ( त्वे ) तुझ मे ( वसु ) धन ( सुषणनानि ) अच्छे प्रकार विभाजित ( सन्तु ) होते हैं ( यूयम् ) तू ( पात ) रक्षाकर ( स्वस्तिभि ) सुखों से ( सदा ) सदा ( न ) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वरुण और मित्र है। ज्ञानी पुरुष स्तुतियों से तेरा वर्णन करते हैं। समस्त धन तेरे आश्रय में ही अच्छी प्रकार विभाजित होते हैं। तू सुखो द्वारा हमारी सदा रक्षा कर ॥३॥

*१३०७—वत्स । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २उ ३ १ २र ३१२ ३१२ १२३१२
**महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥**

पदार्थ—( महान् ) महान् ( इन्द्र ) परमेश्वर ( य ) जो ( ओजसा ) बल से ( पर्जन्य ) मेघ क ( वृष्टिमान् ) बरसने वाले ( इव ) समान ( स्तोमैः ) स्तुतियो द्वारा ( वत्सस्य ) स्तोता की ( वावृधे ) वर्णन किया जाता है ॥१॥

भावार्थ—बरसने वाले मेघ के समान अपने बल से महान् परमेश्वर स्तुति करनेवाले की स्तुतियो द्वारा वर्णन किया जाता है ॥१॥

*१३०८—वत्स । इन्द्र । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ १२र ३ १२३ २३१२ ३ १ २ ३ १ २
**कण्वा इन्द्र यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधा ॥२॥**

पदार्थ—( कण्वा ) ज्ञानीजन (इन्द्रम्) परमेश्वर को ( यत् ) जब (अक्रत) बना लेते हैं [कर लेते हैं] (स्तोमै ) स्तुतियो से (यज्ञस्य) यज्ञ का (साधनम्) साधन ( जामि ) अतिरिक्त ( ब्रुवते ) कहते हैं (आयुधा ) यज्ञनिमित्त जल आदि को ।२।

भावार्थ - ज्ञानी जन जब परमेश्वर को स्तुतियो द्वारा यज्ञ का साधन बना लेते हैं तो जल आदि साधनो को अतिरिक्त समझते हैं ॥२॥

*१३०९—वत्स । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
**प्रजामृतस्य पिप्रत प्र यद्भरन्त वह्नय । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥३॥**

पदार्थ—( प्रजाम ) प्रजा को ( ऋतस्य ) सत्यस्वरूप ( पिप्रतः ) पूर्ण करती हुई ( प्र ) उत्तमरूप से ( यत ) जिस कारण से ( भरन्त ) पोषण करती हैं ( वह्नय ) अग्नियाँ ( विप्रा ) मेधावी लोग ( ऋतस्य ) यज्ञ के ( वाहसा ) वहन करने वाले मन्त्र से ॥३॥

भावार्थ—यज्ञ की अग्नियाँ सत्यस्वरूप परमेश्वर की प्रजा को धन धान्य से पूर्ण करती हुई पुष्ट करती हैं इसलिए मेधावी जन यज्ञ के मन्त्रों स उन्हें [ अग्नियों को ] यज्ञ के लिए प्रज्वलित करते हैं ॥३॥

## 卐 अष्टम खण्ड समाप्त 卐

*१३१०—शत वैखानसा । सोम । गायत्री ।*

१२ ३ १२३१२३ १ २ ३ १२ ३ १२
**पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिष ॥१॥**

पदार्थ—( पवमानस्य ) शुद्धस्वरूप ( जिघ्नत ) गतिमान करते हुए (हरे ) दु खो के हरण करनेवाले (चन्द्रा ) चन्द्र आदि सुखकारक पदार्थ (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं ( जीरा ) शीघ्र गति ( अजिरशोचिष ) तीव्र प्रकाशवाले ॥१॥

भावार्थ—शीघ्र गतिवाले चन्द्र आदि सुखकारी पदार्थ शुद्धस्वरूप, सब को गति देनेवाले दुखों के हर्त्ता तथा तीव्र प्रकाशवाले परमेश्वर के निमित्त से उत्पन्न होते हैं ॥१॥

*१३११—शत वैखानसा । सोम । गायत्री ।*

३२ ३१२ ३ १ २ ३१२ १२ ३१२
**पवमानो रथीतम शुभ्रेभि शुभ्रशस्तम । हरिश्चन्द्रो मरुद्गण ॥२॥**

पदार्थ—( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( रथीतम ) महाबली ( शुभ्रेभि ) तेजों स (शुभ्रशस्तम ) अत्यन्त प्रकाशमान ( हरिश्चन्द्र ) तापहर्त्ता तथा आनन्ददाता ( मरुद्गणः ) वायुओं के समूहवाला ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर शुद्धस्वरूप, महाबली तेजों से अत्यन्त प्रकाशमान, ताप का हरण करनेवाला आनन्द का दाता तथा वायु-समूहों का स्वामी है ॥२॥

*१३१२—शत वैखानसा । सोम । गायत्री ।*

१२ ३क २र ३ १ २ ३१२ १२ ३२ ३ १२
**पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातम । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३॥**

पदार्थ—( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप (व्यश्नुहि) व्याप्त करता है (रश्मिभि ) प्रकाशो से ( वाजसातमः ) अन्न आदि के अत्यन्त दाता ( दधत् ) धारण करते हुए (स्तोत्रे ) स्तुति करनेवाले के लिए ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! अन्न आदि का महान् दाता तू स्तुति वाले को उत्तम पराक्रम देता हुआ प्रकाशो से जगत् को व्याप्त करता है ॥३॥

*१३१३—सप्तर्षय । सोम । विराड्बृहती ।*

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २३ २३ २
**परीतो षिञ्चता सुत सोमो य उत्तमं हवि ।**

३ १ २र ३ २क २उ ३ २३ २ ३ १२
**दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व३न्तरा सुषाव सोममद्रिभि ॥१॥**

पदार्थ—( परि ) सब ओर से ( इत ) इस संसार में ( सिञ्चत ) सेवन करो ( सुतम् ) सृष्टिकर्त्ता ( सोम ) परमेश्वर ( य ) जो ( उत्तम ) उत्तम ( हवि. ) अन्न को ( दधन्वान् ) धारण करता हुआ ( य ) जो ( नर्यः ) मनुष्य-

साथ का हितकारी ( अप्सु ) अन्तरिक्ष में ( अन्तः ) मध्य ( आ ) भली भाँति ( सुवाव ) उत्पन्न करता है ( सोमम् ) वायु को ( अद्रिभिः ) मेघों के साथ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपनी स्तुतियों से इस संसार में उस सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर को सींचो जोकि मनुष्यों का हितकारी है तथा उत्तम जल को धारण करता हुआ अन्तरिक्ष के मध्य में बादलों से युक्त वायु को उत्पन्न करता है ॥१॥

१३१४—सप्तर्षय । सोम । भुरिग् बृहती ।

१ १ २ ३ १   २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः

३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

पदार्थ—( नूनम् ) निश्चय ही ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( अविभिः ) भेड़ों से ( परिस्रव ) वृष्टि कर ( अदब्धः ) अहिंसनीय ( सुरभिन्तरः ) सब सुगंधियों में उत्तम सुगन्ध ( सुते ) उत्पन्न संसार में ( चित ) पादपूरक ( त्वा ) तेरी ( अप्सु ) आकाश आदि में ( मदामः ) स्तुति करते हैं ( अन्धसा ) अन्न से ( श्रीणन्तः ) युक्त होते हुए ( गोभिः ) गौओं से ( उत्तरम् ) ऊपर स्थित ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पवित्र करता हुआ, न मारा जाने योग्य, तथा सब सुगन्धों की परम सुगन्ध तू इस उत्पन्न संसार में सुख की वर्षा कर। भेड़ों गायों तथा अन्न से युक्त हुए हम लोग आकाशादि लोकों पर अधिष्ठाता रूप से स्थित तुझ प्रभु की स्तुति करते हैं ॥२॥

१३१५—सप्तर्षय । सोम । पिपीलिका मध्या गायत्री ।

१ २ ३ १   २र   ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ २
परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानः) सत्योपदेष्टा ( चक्षसे ) साक्षात्कार के लिए ( देवमादनः ) विद्वानों को तृप्त करनेवाला ( क्रतुः ) सृष्टि यज्ञ का कर्त्ता ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( विचक्षणः ) ज्ञानी ॥३॥

भावार्थ—सत्योपदेष्टा, विद्वानों की सुख से तृप्ति करनेवाला, सृष्टि रूप यज्ञ का कर्त्ता ऐश्वर्यशाली तथा महान् ज्ञानी परमेश्वर साक्षात्कार करने के लिए सब प्रकार से जाना जाता है ॥३॥

१३१६—वसु । सोम । जगती ।

१ २ ३   १ २   ३ २उ   ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १   २र
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।

२ २उ   ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥१॥

पदार्थ—( असावि ) उत्पन्न होता है ( सोमः ) जीव ( अरुषः ) प्रकाशमान ( वृषा ) बलवान ( हरिः ) विषयों में विचरने वाला (राजा इव) राजा के समान ( दस्मः ) दर्शनीय ( अभि ) लक्ष्य करके ( गाः ) इन्द्रियों को ( अचिक्रदत् ) विविध प्रकार की गति करता है ( पुनानः ) पवित्र होता हुआ ( वारम् ) आवरण को ( अत्येषि ) लांघ जाता है ( अव्ययं ) प्रकृतिमय ( श्येनः ) बाज पक्षी के (न) समान ( योनिम् ) परमेश्वर में ( घृतवन्तम् ) प्रकाश वाले ( आसदत् ) स्थित होता है ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशमान बलवान् विषयों में विचरने वाला तथा राजा के समान दर्शनीय जीव उत्पन्न होता है। वह इन्द्रियों की तरफ अनेक प्रकार की गति करता है। पवित्र हुआ वह प्राकृतिक आवरण को लांघ जाता है तथा बाज पक्षी के समान झट प्रकाशमय परमेश्वर में स्थित हो जाता है ॥१॥

१३१७—वसु । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३   १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ   ३ १ २ ३ १   २र   ३ १ २ ३ २
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥२॥

पदार्थ—( पर्जन्यः ) मेघ के समान ( पिता ) रक्षक ( महिषस्य ) आत्मा का ( पर्णिनः ) पत्ते के समान चंचल जीवन वाले ( नाभा ) मध्य में ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( गिरिषु ) मेघों तथा पर्वतों में ( क्षयं ) निवास ( दधे ) धारण करता है ( स्वसारः ) अच्छी तरह फेंके जाने की क्रिया वाला ( आपः ) जल ( अभि ) और ( गाः ) सूर्य की किरणों को (उदासरन्) जाता है (सम्) सम्यक् ( ग्रावभिः ) मेघों के साथ ( वसते ) आच्छादित करते हैं ( वीते ) व्याप्त ( अध्वरे ) अन्तरिक्ष को ॥२॥

भावार्थ—मेघ के समान पत्रवत् चंचल जीवन को धारण करने वाले जीव का रक्षक परमेश्वर पृथिवी के मध्य और पर्वत तथा मेघों में निवास कर रहा है। उसकी क्रिया से फेंका गया जल सूर्य की किरणों को प्राप्त होता है तथा मेघों के साथ व्यापक अन्तरिक्ष को आच्छादित करता है ॥२॥

१३१८—वसु । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १   २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १   २र
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।

३   १ २   ३ १ २   ३ १   २र ३ १ २   ३ १ २
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥३॥

पदार्थ—( कविः ) वेद काव्य का कर्त्ता ( वेधस्या ) बुद्धि के साथ (पर्येषि) व्याप्त हो रहा है ( माहिनम् ) पृथिवी को ( अत्यः ) वायु के ( न ) समान ( मृष्टः ) शुद्ध ( अभि ) सब प्रकार ( वाजम् ) पराक्रम को ( अर्षसि ) प्राप्त कराता है ( अपसेधन् ) दूर करता हुआ ( दुरिता ) दुर्गुणों को (सोम) हे परमेश्वर ( नः ) हमारे ( मृड ) सुखी कर ( घृता ) जलों को ( वसानः ) आच्छादन करता हुआ ( परि ) सब प्रकार ( यासि ) प्राप्त होता है ( निर्णिजम् ) शुद्ध पवित्र पुरुष को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! वेदकाव्य का कर्त्ता तू अपने ज्ञान के साथ पृथिवी में व्याप्त हो रहा है। शुद्ध वायु की भाँति तू पराक्रम प्राप्त करता है। हमारे दुर्गुणों को दूर करता हुआ तू हमें सुखी कर। जल को व्याप्त करता हुआ तू शुद्ध पवित्र व्यक्ति को प्राप्त होता है ॥३॥

卐 नवम खण्ड समाप्त 卐

१३१९—नृमेध । इन्द्र । बृहती ।

१ २   ३ २ ३ १   २र
आ यन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

१ २   ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥१॥

पदार्थ—( आयन्तः ) आश्रित हुए ( इव ) पादपूरक ( सूर्यम् ) लोक को कर्म में प्रेरित करने वाले (विश्वा, इत्) समस्त ही परमेश्वर के ( भक्षत ) बांटने की इच्छा रखते हुए ( वसूनि ) धन, पशु, और भूमि को ( जातः ) उत्पन्न हुए ( जनिमानि ) उत्पन्न होने वाले ( ओजसा ) पुरुषार्थ से ( प्रति ) प्रत्येक (भागम्) भाग को ( न ) अनु ( दीधिम ) समझें ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर के दिये धन पशु और भूमि को बांटने की इच्छा करते हुए हम आश्रित होकर प्रभु की उपासना करते हैं। उसके विभाजन से मिले हुए प्रत्येक भाग को हम पुरुषार्थ से अपना भाग समझें ॥१॥

१३२०—नृमेध । इन्द्रः । बृहती ।

१ २   ३ १ २र   ३ १ २र ३ १ २
अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

१ २ ३ १ २   ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥

पदार्थ—(अलर्षिरातिम्) निष्पाप तथा पर्याप्त दान वाले ( वसुदाम् ) धन, भूमि तथा पशुओं के दाता (उपस्तुहि) उपासना करो ( भद्राः ) कल्याण करने वाले (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (रातयः) दान हैं (यः) जो (अस्य) इसकी (कामं) कामना को (विधतः) परिचर्या [पूजा—आराधना] करने वाले (न) नहीं (रोषति) नष्ट करता (मनः) मन को (दानाय) दान के लिए (चोदयन्) प्रेरित करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! परमेश्वर के दान कल्याणकारी हैं। वह भक्त के मन को दान देने की प्रेरणा करता हुआ उसकी कामना को पूरा करता है। तू निष्पाप और पर्याप्त दान करने वाले, पशु, भूमि तथा अन्न के दाता परमेश्वर की उपासना कर ॥२॥

१३२१—भर्गः । इन्द्र । बृहती ।

१ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

१ २   ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ   ३ १   २र
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

पदार्थ—(यतः) जिससे (इन्द्र) हे राजन् (भयामहे) हम डरते हैं (ततः) उस से (नः) हम (अभयं) निर्भय (कृधि) कर ( मघवन् ) हे धनों के स्वामी ( शग्धि ) समर्थ होता है (तव) तू (तत्) वह (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (वि) विशिष्ट (द्विषः) द्वेषियों को (वि) विविध प्रकार से (मृधः) शत्रुओं को (जहि) नष्ट कर ॥१॥

भावार्थ—हे धनों के स्वामी राजन् ! हम जिससे डरते हैं उससे हमें निर्भय कर। तू हमारी रक्षा में समर्थ है। हमारे द्वेषियों और शत्रुओं को नष्ट कर ॥१॥

१३२२—भर्गः । इन्द्रः । बृहती

१   २र   ३ १ २   ३ २उ ३ १ २   ३ २
त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।

१ २ ३ १ २   २ १ २
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (हि) निश्चय (राधसस्पते) हे धनों के स्वामिन् (राधसः) धन के (मह) महान् (क्षयस्य) निवास स्थान का (विधर्ता) विशेष रूप से धारण कर्ता (तम्) उस (त्वा) तुझे (वयम्) हम (मघवन्) हे धनों के स्वामी (इन्द्र) परमेश्वर (गिर्वणः) हे स्तुतियों से स्तुति करने योग्य (सुतावन्तः) संसारी (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे धनों तथा यशों के स्वामी उपास्य परमेश्वर ! तू महान् धन और निवास स्थान ब्रह्माण्ड का धारण करने वाला है। संसारी हम लोग तुझे पुकारते हैं ॥२॥

卐 दशम खण्ड समाप्त 卐

१३२३—भरद्वाजः । सोमः । गायत्री ।

१ २ १२३१ २र ३ २ १२ ३१२

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सोम) हे परमेश्वर (धारयुः) वेदमंत्रों की चाहना करता (असि) है (मन्द्र) आनन्ददाता (ओजिष्ठ) ओजस्वी (अध्वरे) यज्ञ में (पवस्व) पवित्र कर (मंहयद्रयि) धन का देने वाला ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वेद की कामनावाला, आनन्ददाता, ओजस्वी तथा धन का देनेवाला है। हे प्रभु तू यज्ञ में हमें पवित्र कर ॥१॥

१३२४—भरद्वाज । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ २ १ २र

त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तम । इन्दुः सत्राजिदस्तृत ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (मदिन्तम) आनन्द दाता (दधन्वान्) धारणकर्त्ता (मत्सरिन्तमः) हर्ष का दाता (इन्दु) ऐश्वर्यवान् (सत्राजित) सदा जीतने वाला (अस्तृत) न मारा जाने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टिकर्त्ता आनन्ददाता सबका धारणकर्त्ता हर्ष का देनेवाला, ऐश्वर्यवान्, सदा विजयी तथा किसी से न मारा जानेवाला है ॥२॥

१३२५—भरद्वाजः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सुष्वाणः) सृष्टि करता हुआ (अद्रिभि) नित्य शक्तियों द्वारा (अभ्यर्ष) व्यापक होता है (कनिक्रदत्) विविध प्रकार की गतियों को करता हुआ (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (शुष्मम्) बल को (आभर) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर अपनी नित्य शक्तियों से जगत् को पैदा करने वाला तू विविध प्रकार की गतियों को करता हुआ व्यापक हो रहा है। तू हमें प्रकाश से युक्त बल प्रदान कर ॥३॥

१३२६—मनु । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३१२३ २३ १२३१२

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

२३२३ १२

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (धाराभि) वेदवाणियों से (ओजसा) तेज से (आ) भली प्रकार (कलशम्) कलाओं से युक्त को (मधुमान्) विज्ञानवाले (सोम) हे विद्वान् (नः) हमें (सदः) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् पुरुष ! विज्ञानवान् तू दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए हमें वेदवाणियों और तेज से पवित्र कर ! तू कलाओं से युक्त अपनी आत्मा को प्राप्त कर ॥१॥

१३२७—मनुः । सोमः । उष्णिक् ।

१२३ १२३२३ २३ १ २

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।

३ ३१२ ३१२३ १ २

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥२॥

पदार्थ—(तव) तेरे (द्रप्सा) आनन्द गुण (उदप्रुतः) रस को बहाने वाले (इन्द्रम्) जीव को (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिए (वावृधु) बढ़ाते हैं (त्वां) तुझे (देवासः) ज्ञानी पुरुष (अमृताय) मोक्ष प्राप्ति के लिए (कम्) सुख स्वरूप को (पपुः) पान करते हैं [प्राप्त करते हैं] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भक्ति रस को बहाने वाले तेरे आनन्द गुण जीव को आनन्द-प्राप्ति के लिए आगे बढ़ाते हैं। ज्ञानीजन मोक्ष सिद्धि के लिए तुझ सुख-स्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥२॥

१३२८—मनु । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।

३ १ २ ३ १ २

वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली प्रकार (नः) हमें (सुतासः) हे संसार में उत्पन्न (इन्दवः) हे ऐश्वर्यवान् (पुनानाः) हे पवित्र हुए (धावत) प्राप्त कराओ (रयिम्) परमेश्वर का (वृष्टिद्यावः) सुख की वृष्टि और ज्ञान प्रकाश को करनेवाले (रीत्यापः) नीति और कर्म का विस्तार करनेवाले (स्वर्विदः) स्वर्ग को प्राप्त करानेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे संसार में उत्पन्न हुए, ऐश्वर्यशाली तथा पवित्र हुए ज्ञानी पुरुषो ! सुख की वृष्टि और ज्ञान का प्रकाश करनेवाले, नीति और कर्मों का विस्तार करनेवाले तथा स्वर्ग प्राप्त करानेवाले आप लोग हमें परमेश्वर की प्राप्ति कराओ ॥३॥

१३२९—अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोम । अनुष्टुप् ।

२३ १ २३१ २र ३१ २ ३ १२

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

२ ३ २उ ३ २उ ३ १२ ३१ २र

यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (त्यं) उस (हर्यतम्) कमनीय (हरिम्) अज्ञान को हटानेवाले (बभ्रुम्) शोभन (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (वारेण) वरण करने योग्य गुण से (यः) जो (देवान्) परमेश्वर जीव तथा अन्य दिव्य पदार्थों को (विश्वान्) समस्त (इत्) हि (परि) अच्छी तरह से (मदेन) आनन्द के (सह) साथ (गच्छति) जान लेता है ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् जन कमनीय, अज्ञान का हरण करनेवाले, तथा शोभायमान इस पुरुष को श्रेष्ठ गुणों से भली प्रकार पवित्र करते हैं। पवित्र हुआ वह परमेश्वर, जीव तथा अन्य समस्त देवों को आनन्दपूर्वक जान लेता है ॥१॥

१३३०—अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोम । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

द्वियं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥२॥

पदार्थ—(द्वि) दो गुणा (यं) जिसको (पञ्च) पांच (स्वयशसम्) स्वयं यशस्वी (सखायः) मित्रता रखनेवाली (अद्रिसंहतम्) अभेद्य शक्तियों से युक्त (प्रियम्) प्यारे (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (काम्यम्) चाहने योग्य (प्रस्नापयन्ते) नहलाती हैं (ऊर्मयः) [विषयों के] प्रकाशवाली ॥२॥

भावार्थ—मित्रता रखनेवाली, विषयों की प्रकाशक दश इन्द्रियां स्वयं यशस्वी अभेद्य शक्तियों से युक्त परमेश्वर के प्रिय तथा सब के चाहने योग्य जीव को संसार-सागर में स्नान कराती हैं ॥२॥

१३३१—अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव की (सोम) हे परमेश्वर (पातवे) रक्षा करने के लिये (वृत्रघ्ने) बुराइयों को दूर करनेवाले (परि) भली प्रकार (षिच्यसे) सींचा जाता है (नरे) मनुष्य के (च) और (दक्षिणावते) यज्ञ की दक्षिणा देने वाले (वीराय) वीर (सदनासदे) यज्ञ में स्थित ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बुराइयों को दूर करनेवाले जीव तथा दक्षिणा देनेवाले वीर और यज्ञकर्त्ता यजमान की रक्षा के लिये हमारे भक्तिरस से सिक्त किया जाता है ॥३॥

१३३२—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा पङ्क्तिः ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) गतिशील हो (सोम) हे आत्मन् (महे) महान् (दक्षाय) आत्मबल के लिये (अश्वः) घोड़े के (न) समान (निक्तः) धुलकर स्वच्छ हुआ (वाजी) बलवान् (धनाय) मोक्षरूप धन के लिये ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! धुलकर स्वच्छ हुए अश्व के समान अविद्या आदि दोषों से धुलकर साफ हुआ बलवान् तू महान् आत्मबल तथा मोक्षरूप धन की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हो ॥१॥

१३३३—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा पङ्क्तिः ।

१ २ ३ २ ३ २३ १२ ३ २ ३१ २ ३२३ १ २

प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम रूप से ( ते ) वे ( सोतारः ) सामर्थ्यवाले ( रसम् ) स्नेह करनेवाले [रागी] ( मदाय ) आनन्दप्राप्ति के लिये ( पुनन्ति ) पवित्र करते हैं ( सोमम् ) आत्मा को (महे) महान् ( द्युम्नाय ) यश के लिये ॥२॥

भावार्थ—सामर्थ्य वाले भक्त लोग आनन्द और महान् यश की प्राप्ति के लिये संसार के पदार्थों से स्नेह करनेवाले आत्मा को पवित्र करते हैं ॥२॥

१३३४—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा पङ्क्तिः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥३॥

पदार्थ—( शिशुम् ) प्रसंशनीय ( जज्ञान ) उत्पन्न हुए ( हरिम् ) बुराइयों का हरण करनेवाले ( मृजन्ति ) शुद्ध करते हैं ( पवित्रे ) पवित्र कर्म में ( सोमम ) आत्मा को ( देवेभ्य. ) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये ( इन्दुम् ) ऐश्वर्यशाली ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् जन दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये प्रशंसनीय संसार में उत्पन्न होनेवाले दुर्गुणों के निवारक तथा ऐश्वर्यशाली आत्मा को पवित्र कर्म में शुद्ध करते हैं ॥३॥

१३३५—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( उ ) पादपूरक ( सु ) उत्तम रूप से ( जातम् ) उत्पन्न हुए (अप्तुरम्) कर्मों को प्रेरणा देनेवाले ( गोभि ) वेदवाणियों से (भङ्गम्) दुर्गुणों को नष्ट करनेवाले अथवा दु.खों के भञ्जक (परिष्कृतम्) सुशोभित (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् ( देवाः ) दिव्य शक्तियां और गुण ( अयासिषुः ) प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—उत्तमरूप से उत्पन्न हुए, शुभकर्मों को प्रेरणा देनेवाले, दु:खों के भंजक, वेदवाणियों से सुशोभित तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् को दिव्य शक्ति और गुण प्राप्त होते हैं ॥१॥

१३३६—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उस ( इत् ) ही ( वर्धन्तु ) वर्णन करती हैं ( नः ) हमारी ( गिर ) वाणियां ( वत्सम् ) बच्चे को ( सं ) सम्यक ( शिश्वरी ) माताओं के ( इव ) समान ( यः ) जो ( इन्द्रस्य ) जीव के ( हृद सनि ) हृदय में पृथक् स्थित है ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार माता बच्चे की प्रशंसा करती है, उसी प्रकार हमारी वाणियां उस परमेश्वर की प्रशंसा करती हैं जो कि जीव के हृदय में पृथक होता हुआ स्थित है ॥२॥

१३३७—अमहीयु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३॥

पदार्थ—( अर्ष ) प्राप्त करा ( नः ) हमारी ( सोम ) हे परमेश्वर ( शं ) सुख ( गवे ) इन्द्रियों के लिये ( धुक्षस्व ) परिपूर्ण कर ( पिप्युषीम् ) पालन-पोषण करनेवाले ( इषम् ) अन्न को ( वर्ध ) बढ़ा (समुद्रम्) सुख के सागर को (उक्थ्य) हे प्रशंसनीय ॥३॥

भावार्थ—हे प्रशंसनीय परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों को सुख प्राप्त करा। तू हमें हमारे पालन पोषण में समर्थ अन्न से परिपूर्ण कर। हे प्रभो ! तू संसार में सुख का सागर बहा दे ॥३॥

卐 एकादश खण्ड समाप्त 卐

१३३८—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( घा ) निश्चय ( ये ) जो (अग्निम्) आत्मा का ( इन्धते ) प्रकाश करते हैं [साक्षात् करते हैं] ( स्तृणन्ति ) विस्तार करते है ( बर्हिः ) ज्ञान यज्ञ का ( आनुषक् ) निरन्तर ( येषाम् ) जिनके (इन्द्रः) परमेश्वर ( युवा ) अजर ( सखा ) मित्र है ॥१॥

भावार्थ—जो लोग निश्चित रूप से आत्मा का साक्षात्कार करते तथा जिनका अजर अमर परमेश्वर ही मित्र है वे निरन्तर ज्ञान-यज्ञ का विस्तार करते हैं ॥१॥

१३३९—त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २उ ३ १ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ २ ३ १ २

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२॥

पदार्थ—( बृहत् ) महान् ( इत् ) ही ( इध्मः ) आत्मा ( एषाम् ) इनके ( भूरि ) बहुत ( शस्त्रम् ) स्तुति (पृथुः) विस्तृत ( स्वरुः ) अथवा वचन (येषाम्) जिनके ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( युवा ) अजर अमर ( सखा ) मित्र है ॥२॥

भावार्थ—जिनका अजर अमर परमेश्वर सखा है। इनकी आत्मा महान्, स्तुति पर्याप्त और वाक् शक्ति विस्तृत होती है ॥२॥

१३४०—त्रिशोक । इन्द्र । गायत्री ।

१ २/३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३॥

पदार्थ—( अयुद्धः ) न युद्ध करनेवाला ( इत् ) भी ( युधावृतम् ) योद्धाओं से युक्त शत्रु को ( शूरः ) वीर ( आजति ) परास्त करता है ( सत्वभि ) अपने बलों से ( येषाम् ) जिनका ( इन्द्र ) परमेश्वर ( युवा ) अजर अमर ( सखा ) सहायक है ॥३॥

भावार्थ—जिसका अजर अमर परमेश्वर सहायक है वह युद्ध न करनेवाला भी वीर अपने बल से योद्धाओं से युक्त शत्रु को परास्त करता है ॥३॥

१३४१—गोतम । इन्द्रः । उष्णिक ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥१॥

पदार्थ—( यः ) जो ( एक इत् ) अकेला ही [बिना किसी की सहायता के] ( विदयते ) देता है ( वसु ) धन को ( मर्ताय ) मनुष्य के लिए ( दाशुषे ) त्यागी ( ईशान ) स्वामी ( अप्रतिष्कुतः ) किसी से विरोध न किया जानेवाला ( इन्द्र ) दाता पुरुष ( अङ्ग ) हे लोगो ! ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! धन का स्वामी तथा किसी से न विरोध किया जानेवाला वह दानी पुरुष अकेला ही त्यागी मनुष्य को पर्याप्त धन प्रदान करता है ॥१॥

१३४२—गोतम । इन्द्र । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥२॥

पदार्थ—( यः ) जो ( चित् ) कोई भी ( त्वा ) तेरी (बहुभ्य आ ) बहुतों में ( सुतावान् ) संसारी पुरुष ( आविवासति ) उपासना करता है ( उग्रम् ) महान् ( तत् ) वह ( पत्यते ) देता है ( शवः ) बल ( इन्द्र ) परमेश्वर ( अङ्ग ) हे लोगो ! ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बहुतों में जो कोई संसारी पुरुष तेरी उपासना करता है उसे तू महान् बल प्रदान करता है ॥२॥

१३४३—गोतम । इन्द्र । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥३॥

पदार्थ—( कदा ) कब ( मर्तम् ) मनुष्य को ( अराधसम् ) आराधना नहीं करनेवाले ( पदा ) एक पांव से ( क्षुम्पम् ) खुम्ब के [कुकुरमुत्ता] ( इव ) समान ( स्फुरत ) नष्ट करेगा ( कदा ) कब ( नः ) हमारी ( शुश्रवत् ) सुनेगा ( गिरः ) स्तुतियो ( इन्द्र ) परमेश्वर [राजा] ( अङ्ग ) हे लोगो ! ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू उपासना न करने वाले मनुष्य को एक पैर से खुम्ब (कुकुरमुत्ते) के समान कब कुचल देगा। हे परमेश्वर, तू हमारी स्तुतियों को कब सुनेगा ॥३॥

१३४४—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

पदार्थ—( गायन्ति ) गाते हैं ( त्वा ) तुझे ( गायत्रिणः ) भूलोकवासी मनुष्य ( अर्चन्ति ) पूजते हैं ( अर्कम् ) पूज्य ( अर्किणः ) परमेश्वर की उपासना करनेवाले ( ब्रह्माणः ) वेद के जाननेवाले ( त्वा ) तुझे ( शतक्रतो ) हे विविध कर्मों के करनेवाले ( उत् ) उत्कृष्ट ( वंशमिव ) कुल के समान ( येमिरे ) उन्नत करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे विविध कर्मों के करनेवाले आत्मन् ! भूलोक पर रहनेवाले मनुष्य तेरा वर्णन करते हैं। पूज्य पूजनीय शक्ति का ही परमेश्वर के उपासक भी सत्कार करते हैं। वेद के जाननेवाले लोग वंश के समान तुझे उन्नत करते हैं ॥१॥

१३४५—मधुच्छन्दा । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २र३ १ २र३ १ २

यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( सानो ) एक कर्म की सिद्धि हो जाने से ( सानु ) दूसरे कर्म को ( आरुह ) आरम्भ करता है ( भूरि ) बहुत ( अस्पष्ट ) स्पर्श करता हुआ ( कर्त्वम् ) करने के लिये ( तत् ) तब ( इन्द्र ) परमेश्वर ( अर्थम् ) प्रयोजन को ( चेतति ) भली भांति जानता है ( यूथेन ) सुख देनेवाले पदार्थ समूह के साथ ( वृष्णि ) मनोरथों की वर्षा करनेवाला ( एजति ) प्राप्त कराता है ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जब तू अनेक कर्मों को करता हुआ एक की सिद्धि के पश्चात् दूसरो का प्रारम्भ करता है तब सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि करनेवाला परमेश्वर तेरे प्रयोजन को जानता है और सुख देनेवाले पदार्थों के समूह के साथ उसे पूरा करता है ॥२॥

१३४६—मधुच्छन्दा । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

१ २ ३ १ २र

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥

पदार्थ—( युक्ष्वा ) युक्त करता है ( हि ) निश्चय ( केशिना ) सूर्य और वायु को ( हरी ) आकर्षण और धारणवाले ( वृषणा ) वर्षा के निमित्त ( कक्ष्यप्रा ) अपनी अपनी कक्षाओं के पदार्थों को पूर्ण करनेवाले ( अथा ) अनन्तर ( न. ) हमारी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( सोमपा ) उत्तम पदार्थों के रक्षक ( गिराम् ) वाणियों की ( उपश्रुतिम् ) श्रवण ( चर ) कर ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम पदार्थों के रक्षक परमेश्वर ! तू धारण और आकर्षण वाले, वृष्टि कर्त्ता तथा अपनी कक्षा के पदार्थों को पूरा करानेवाले सूर्य और वायु को युक्त करता है । तू हमारी स्तुति सुन ॥३॥

卐 द्वादश खण्ड समाप्त 卐

卐 दशमोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# एकादशोऽध्यायः

१३४७—मेधातिथि । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—( सुसमिद्ध ) सम्यक प्रकार से प्रकाशित ( न ) हमे ( आवह ) प्राप्त करा ( देवान् ) दिव्य पदार्थों को ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( हविष्मते ) यजमान के लिए ( होत ) हे दाता ( पावक ) हे पवित्र कर्त्ता ( यक्षि ) उपासना करता हूँ ( च ) और ॥१॥

भावार्थ—हे दाता तथा पवित्र कर्त्ता परमेश्वर प्रकाशस्वरूप ! तू यजमानो को दिव्य पदार्थ प्राप्त कराता है । हम तेरी उपासना करते हैं ॥१॥

१३४८—मेधातिथि । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुह्यूतये ॥२॥

पदार्थ—( मधुमन्तम् ) ज्ञान और कर्मयुक्त ( तनूनपात ) शरीर आदि का रक्षक ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( देवेषु ) विद्वानो मे ( न ) हमारे ( कवे ) हे ज्ञानमय ( अद्या ) आज ( कृणुहि ) कर ( ऊतये ) रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे ज्ञानमय परमेश्वर ! शरीर आदि का रक्षक तू कर्म और ज्ञान से युक्त विद्वानो के मध्य किये गए हमारे यज्ञ को रक्षा के लिए समर्थ कर ॥२॥

१३४९—मेधातिथि । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

पदार्थ—( नराशसम् ) मनुष्यों से स्तुति किया जानेवाला ( इह ) इस संसार में ( प्रियम् ) प्रिय [प्यारे] ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञे ) उपासना यज्ञ में ( उप ह्वये ) पुकारते है ( मधुजिह्व ) विज्ञानयुक्त वेद वाणीवाले ( हविष्कृतम् ) समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—मैं ससार मे इस अपने उपासना यज्ञ मे सब मनुष्यों के उपास्य प्रिय विज्ञानमयी वेदवाणीवाले तथा समस्त भोग्य पदार्थों के उत्पत्तिकर्ता परमेश्वर को पुकारता हूँ ॥३॥

१३५०—मेधातिथि । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥४॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( सुखतमे ) अति सुखदायक ( रथे ) संसार रूप रथ मे ( देवान् ) तैंतीस देवों को ( ईडित ) पूजित ( आवह ) प्राप्त कराता ( असि ) है ( होता ) सबका ग्रहणकर्त्ता ( मनु ) मननीय ( हित ) हितकारक ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वपूज्य तू अत्यन्त सुखदायक ससार रथ मे तैंतीस देवों को यथास्थान प्राप्त कराता है । तू सब पदार्थों का ग्रहण करनेवाला सबका हित-कारक और मनन करने योग्य है ॥४॥

१३५१—वसिष्ठ । आदित्य । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

अद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥१॥

पदार्थ—( यत ) जो कुछ ( अद्य ) आज ( सूरे ) सूर्य के ( उदिते ) उदय होने पर ( अनागा ) निर्दोष ( मित्र ) स्नेही ( अर्यमा ) न्यायकारी ( सुवाति ) उत्पन्न करता है ( सविता ) सकल जगत् का उत्पादक ( भग ) ऐश्वर्यशाली ॥१॥

भावार्थ—सूर्य के उदय होने पर आज निर्दोष सबका मित्र न्यायकारी तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर जो कुछ उत्पन्न करता है वह हमें सुखकर हो ॥१॥

१३५२—वसिष्ठ । आदित्य । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

सु प्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥२॥

पदार्थ—( सुप्रावी ) उत्तम रूप से रक्षक ( अस्तु ) होवे ( सक्षय ) [स्थान मे व्यापक] स्थान से युक्त ( प्र ) उत्कृष्ट ( नु ) शीघ्र ( यामन् ) संसार मे ( सुदानव ) अच्छे गुणो के दाता लोग ( ये ) जो ( नः ) हमे ( अंह ) पाप को ( अतिपिप्रति ) पार कराते हैं ॥२॥

भावार्थ—जो सुगुणदाता इस ससार मे हम पापो से शीघ्र बचाते हैं उनका सर्वव्यापक सर्वाधार परमेश्वर रक्षक होवे ॥२॥

१३५३—वसिष्ठ । आदित्य । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥३॥

पदार्थ—( उत ) और ( स्वराज ) स्वय प्रकाशस्वरूप ( अदितिः ) नित्य परमेश्वर ( अदब्धस्य ) कल्याणकारी ( व्रतस्य ) नियम के ( ये ) जो ( महो ) महान् ( राजान ) राजा ( ईशते ) समर्थ होते हैं ॥३॥

भावार्थ—महान् प्रकाशमान तथा कल्याणकारी नियम के शासक आदित्य तथा नित्य परमेश्वर सामर्थ्यवाले हैं ॥३॥

१३५४—प्रगाथ । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—( उत् ) उत्तम रूप से ( त्वा ) तुझे ( मन्दन्तु ) प्रसन्न करें ( सोमाः ) विद्वान् लोग ( कृणुष्व ) सम्पन्न कर ( राध ) धन ( अद्रिव ) आदरणीय ( अव ) पृथक ( ब्रह्मद्विष ) विद्वानों से द्रोह करनेवालों को ( जहि ) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् लोग तुझे उत्तमता से प्रसन्न करें । आदर के योग्य तू हमें धन दे । विद्वानो से द्वेष करनेवालो को दूर भगा ॥१॥

१३५५—प्रगाथः । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र

पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

पदार्थ—( पदा ) ज्ञान से ( पणीन् ) केवल व्यापारबुद्धिवाले धनी ( अराधस ) शुभ कर्म में धन न देनेवाले कञ्जूस को ( नि ) निश्चय ( बाधस्व ) ठीक रास्ते पर ला ( महान् ) सबसे बड़ा ( असि ) है ( न हि ) नहीं ( त्वा ) तेरा ( कश्चन ) कोई भी ( प्रति ) प्रतिनिधि [बराबरी करनेवाला] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दान आदि से रहित केवल धन कमानेवाले व्यापारियों को अपने ज्ञान से ठीक मार्ग पर लगा । तू सब से बड़ा है । तेरे समान कोई नहीं ॥२॥

१३५६—प्रगाथ । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २र २उ ३ १ २

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू (ईशिषे) स्वामी होता है ( सुतानाम् ) उत्पन्न पदार्थों का ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( त्वम् ) तू ( असुतानाम् ) उत्पन्न नहीं होनेवाले जो प्रकृति आदि अथवा भविष्य में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का ( त्वम् ) तू ( राजा ) स्वामी ( जनानाम् ) प्राणिमात्र का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू उत्पन्न होनेवाले कार्य और उत्पन्न न होनेवाले कारण जीव प्रकृति आदि का स्वामी है । तू प्राणिमात्र का राजा है ॥३॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

१३५७—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २र ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( जागृविः ) एकरस ज्ञान तथा प्रयत्नवाला ( विप्रः ) सर्वज्ञ ( ऋतम् ) नियमसूत्र को ( मतीनाम् ) बुद्धियों के ( सोम ) परमेश्वर ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( असदत् ) व्यापक होता है ( चमूषु ) द्यौ, पृथिवी आदि लोकों में ( सपन्ति ) पूजा करते हैं ( यम् ) जिसकी (मिथुनासः) नर नारी ( निकामा ) अत्यन्त कामनावाले ( अध्वर्यव ) याज्ञिक लोग ( रथिरास ) महारथी ( सुहस्ता ) कार्यकुशल [सिद्धहस्त] ॥१॥

भावार्थ—एकरस क्रियावाला सर्वज्ञ तथा सबकी बुद्धियों के नियमसूत्र को पवित्र करनेवाला परमेश्वर द्यु, पृथिवी आदि सभी लोकों में व्यापक हो रहा है । अत्यन्त कामनावाले सब नर नारी, याज्ञिक महारथी तथा सिद्धहस्त लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१॥

१३५८—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥२॥

पदार्थ—( स ) वह ( पुनान ) पवित्र करनेवाला ( उप ) समीप ( सूरे ) सूर्य में ( दधान ) धारण या पुष्ट करता हुआ ( आ ) भली भाँति ( उभे ) दोनों ( अप्रा ) पूर्ण करता है ( रोदसी ) द्यु और पृथिवीलोक को ( वि ) विशेष (स) वह ( आवः ) विस्तार करता है ( प्रिया ) प्रिय ( चित् ) हि ( यस्य ) जिसकी ( प्रियसासः ) अत्यन्त प्रेम का पात्र है ( ऊती ) रक्षा ( सतः ) विद्यमान ( धनम् ) सम्पद् ( कारिणे न ) काम करनेवाले के समान ( प्र यंसत् ) प्रदान करे ॥२॥

भावार्थ—सबको पवित्र करनेवाला और सूर्य में तेज-पुञ्ज को धारण करता हुआ परमेश्वर द्युलोक और पृथिवी में व्यापक हो रहा है । वह संसार का विशेष रूप से विस्तार करता है । सदा विद्यमान और सबको प्रिय, जिसकी रक्षा हमारा अत्यन्त कल्याण करनेवाली है, वह सेवक के समान हमें धन प्रदान करे ॥२॥

१३५९—पराशर । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

यत्रा नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३॥

पदार्थ—( स ) वह ( वर्धिता ) सबको उन्नत करनेवाला ( वर्धनः ) उपदेश करनेवाला ( पूयमानः ) आता जाता हुआ ( सोमः ) परमेश्वर ( मीढ्वान् ) वर्षा करने वाला ( अभि ) सब प्रकार से ( न ) हमें ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( आवीत् ) रक्षा करता है ( यत्र ) जिसके विषय में ( न ) हमारे ( पूर्वे ) पूर्व ज्ञानी ( पितरः ) बुद्धिमान् पुरुष (पदज्ञा) पद, वाक्य और प्रमाण के जाननेवाले ( स्वर्विदः ) सुख प्राप्त करनेवाले ( अभि ) उद्देश्य से ( गा ) इन्द्रियों को (अद्रिम्) पर्वत की ( इष्णन् ) इच्छा करते थे ॥३॥

भावार्थ—जिसके विषय में (ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से) पद, वाक्य और प्रमाण (व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय) के जाननेवाले, सुख प्राप्त करनेवाले हमारे पूर्वकाली पूर्वज इन्द्रियों को वश में करने के उद्देश्य से पर्वत आदि एकान्त स्थानों की कामना करते थे, सबकी समुन्नति करनेवाला हमें बुरे कामों का उपदेष्टा, वृष्टि का कर्ता और आता जाता सौम्य वह परमेश्वर अपने प्रकाश से हमारी रक्षा करता है ॥३॥

१३६०—प्रगाथ । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ १ २

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥

पदार्थ—( मा ) नहीं ( चित् ) ही ( अन्यत् ) दूसरे की (विशंसत) स्तुति करो ( सखाय ) हे मित्रो, ( मा ) नहीं ( रिषण्यत ) हिंसा करो (इन्द्रम्) आत्मा की ( इत् ) ही ( स्तोत ) प्रशंसा करो (वृषणम्) सुख की वर्षा करनेवाले (सचा) एकत्र होकर ( सुते ) उत्पन्न संसार में (मुहु ) बार-बार (उक्था) स्तोत्रों का (च) और ( शंसत ) गान करो ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! किसी दूसरे की उपासना तथा किसी प्राणी की हिंसा मत करो । इस संसार में इकट्ठे होकर सुख की वर्षा करनेवाले आत्मा की प्रशंसा तथा स्तोत्रों का गान करो ॥१॥

१३६१—प्रगाथ । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

पदार्थ—(अवक्रक्षिणम्) खींचनेवाले ( वृषभम् ) यथा बैल के समान (जुवम्) शीघ्रकारी ( गाम न ) पृथिवी के समान ( चर्षणीसहम् ) मनुष्यों के भार का सहन ( विद्वेषणम् ) द्वेष न करनेवाले ( संवननम् ) सम्यक भजन योग्य ( उभयंकरम् ) दुष्टों को दण्ड और सज्जनों की रक्षा करनेवाले ( मंहिष्ठम् ) महान् दानी ( उभयाविनम् ) लोक-परलोक दोनों की रक्षा करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग बैल के समान सूर्य आदि लोकों में खींच का क्रिया देनेवाले, शीघ्रकारी, पृथिवी के समान मनुष्यों के भार को सहन करनेवाले, द्वेषरहित, उपासनीय दुष्टों के दण्डदाता और सज्जनों के रक्षक इस लोक और परलोक के पालक तथा महान् दानी इन्द्र की स्तुति करो ॥२॥

१३६२—मेधातिथिः । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

पदार्थ—( उत् ) उत्कृष्ट ( उ ) निश्चय ( त्ये ) वे ( मधुमत्तमाः ) अत्यन्त मधुर ( गिर ) स्तुतियाँ ( स्तोमास ) स्तोत्ररूप ( ईरते ) उच्चारण करते हैं ( सत्राजित ) सच्ची विजय करानेवाले ( धनसा ) धन प्राप्त करने के साधन ( अक्षितोतय ) अक्षय रक्षावाला ( वाजयन्त ) संग्राम के साधन ( रथा इव ) रथ के समान ॥१॥

भावार्थ—सच्ची विजय करानेवाले, धनप्राप्ति के साधन, अक्षय रक्षा से युक्त तथा संग्राम के अधिकरण रथ के समान अत्यन्त मधुर स्तोत्र रूप हमारी वाणियाँ परमेश्वर को उच्चारण करती हैं ॥१॥

१३६३—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

पदार्थ—( कण्वा इव ) मेधावी पुरुषों के समान ( भृगव ) तपस्वी ( सूर्या इव ) सूर्य की किरणों के समान ( विश्वम् ) संसार को ( इत् ) ही ( धीतम् ) ध्यानमात्र से [लिप्सा से नहीं] ( आशत ) भोगते हैं ( इन्द्रम् ) परमेश्वर का ( स्तोमेभि ) स्तोत्रों के द्वारा ( महयन्त ) पूजा करते हुए ( आयवः ) मनुष्य ( प्रियमेधास ) उत्तम बुद्धि से प्रेम करनेवाले ( अस्वरन् ) नाम का उच्चारण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—तपस्वी लोग, ज्ञानीजनों के तथा सूर्य की किरणों के समान ध्यानमात्र से लिप्सारहित होकर संसार का भोग करते हैं, बुद्धि से प्रेम रखनेवाले मनुष्य स्तोत्रों से पूजा करते हुए परमेश्वर के नाम का उच्चारण करते हैं ॥२॥

१३६४—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोम । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥१॥

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार ( सु ) निश्चय ( प्रधन्व ) दूर कर ( वाजसातये ) अन्न की प्राप्ति के लिए ( परि ) सब प्रकार से ( वृत्राणि ) बुराइयों को ( सक्षणिः ) सहनशील ( द्विष ) शत्रुओं को ( तरध्या ) पार करने के लिए

( ऋणया ) तीनो प्रकार के ऋणों से नैऋण्य करनेवाले ( न॰ ) हमें (ईरते) प्रेरित करता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! तीनो ऋणों से छुड़ानेवाला तथा सहनशील तू सुन्दर अन्न की प्राप्ति के लिए बाधाओ को दूर करता है। तू हम शत्रुओं से पार पाने के लिए प्ररणा देता है ॥१॥

१३६५—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोम । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पय ।**

१ २ ३ १२ ३ १ २
**गोजीरया रंहमाण पुरन्ध्या ॥२॥**

पदार्थ—( अजीजन ) उत्पन्न किया है ( हि ) निश्चय ( पवमान ) हे सर्वव्यापक ( सूर्यम् ) सूर्य को ( विधारे ) धारण करनेवाले अन्तरिक्ष के ऊपर ( शक्मना ) शक्ति से ( पय ) जल व ( गोजीरा ) किरणों की गति के स्थान ( रंहमाण ) गति देता हुआ ( पुरन्ध्या ) द्यु लोक और पृथिवीलोक मे ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! किरणों की गति के आधार द्यु और पृथिवी लोक मे गति उत्पन्न करनेवाले तूने अपनी शक्ति से जल को धारण करनेवाले अन्तरिक्ष लोक के ऊपर भाग में सूर्य को उत्पन्न किया है ॥२॥

१३६६—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोम । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
**अनु हि त्वा सुत सोममदामसि महे समर्यराज्ये ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २
**वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥३॥**

पदार्थ—( अनु ) पश्चात् ( हि ) निश्चय ( त्वा ) तेरे ( सुतम् ) उत्पन्न ( सोम ) हे विद्वान् ( मदामसि ) प्रसन्न होते हैं ( महे ) महान् ( सम् ) सम्यक ( अर्यराज्ये ) परमेश्वर के राज्य में ( वाजान् ) बलों को ( अभि ) उद्देश्य में रख कर ( पवमान ) हे पवित्र स्वभाव ( प्रगाहसे ) सग्रह करता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रस्वरूप विद्वान् ! महान् ईश्वर के राज्य मे उत्पन्न तेरे साथ हम प्रसन्नता अनुभव करते हैं। तू बलो का सग्रह करता है ॥३॥

१३६७—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥**

पदार्थ—( परि ) सब प्रकार ( प्रधन्व ) प्राप्त कर ( इन्द्राय ) परमेश्वर को ( सोम ) हे विद्वान् पुरुष ( स्वादु ) आनन्द रस का स्वाद लेनेवाला ( मित्राय ) सबके मित्र ( पूष्णे ) पालन पोषण करनेवाले ( भगाय ) ऐश्वर्यशाली ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आनन्द रस का अनुभव करनेवाला तू सबके मित्र, पालन पोषण करनेवाले तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर को प्राप्त कर ॥१॥

१३६८—अग्नयो धिष्ण्या । सोमः । द्विपदा विराट् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्य पीयूष ॥२॥**

पदार्थ—( एव ) निश्चय ( अमृताय ) अमरत्व के लिए ( महे ) महान् ( क्षयाय ) निवास के लिए ( स ) वह ( शुक्र ) शुद्धस्वरूप ( अर्ष ) प्रयत्न कर ( दिव्य ) दिव्य गुणवाला ( पीयूष ) अमृत ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! शुद्धस्वभाव उत्तम गुणोंवाला तथा अमर मोक्ष धाम की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न कर ॥२॥

१३६९—अग्नयो धिष्ण्या । सोम । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवा ॥३॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) आत्मा ( ते ) तेरे ( सोम ) हे परमेश्वर ( सुतस्य ) उत्पन्न संसार का ( पेयात् ) उपभोग करें ( क्रत्वे ) ज्ञान के लिए ( दक्षाय ) बल के लिए ( विश्वे ) सारे ( च ) और ( देवा ) विद्वान् जन ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! ज्ञान और बल की प्राप्ति के लिए ही जीवात्मा और सारे विद्वान् तेरे ससार का उपभोग करें ॥३॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

१३७०—हिरण्यस्तूप । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरास प्रसुत साकमीरते ।**

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
**तन्तु तत परिसर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥१॥**

पदार्थ—( सूर्यस्य ) सूर्य की ( इव ) समान ( रश्मय ) किरणों के ( द्रावयित्नव ) वर्षे द्रवीभूत करनेवाली ( मत्सरास ) हर्षप्रद ( प्रसुत ) उत्पन्न करनेवाले ( साकम् ) साथ ( ईरते ) गतिमान हो रहे हैं ( तन्तु ) अन्तर्यामिसूत्र ( ततं ) व्याप्त [विस्तृत] ( परि ) पर ( सर्गास ) रचे गए ( आशव ) फैले हुए ( न ) नही ( इन्द्रात् ऋते ) परमेश्वर के बिना ( पवते ) चलता है ( धाम ) लोक ( किंचन ) कोई भी ॥१॥

भावार्थ—द्रवीभूत करनेवाली सूर्य की किरणों के समान, हर्षप्रद, अन्य पदार्थों को उत्पत्ति देनेवाले, फैले हुए रचे गए ससार के सब लोक-लोकान्तर व्यापक विस्तृत ब्रह्मरूप सूत्र पर एक साथ गति कर रहे हैं। उस परमेश्वर के बिना कोई भी लोक गति नही कर सकता ॥१॥

१३७१—हिरण्यस्तूप । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**उपो मति पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
**पवमान सन्तनि सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्स परि वारमर्षति ॥२॥**

पदार्थ—( उप ) समीप ( उ ) निश्चय ( मति ) बुद्धि ( पृच्यते ) संयुक्त होती है ( सिच्यते ) सींचा जाता है ( मधु ) ब्रह्मज्ञान ( मन्द्राजनी ) वाणी की ( चोदते ) प्रेरणा की जाती है ( अन्तरासनि ) मुख मे ( पवमान ) पवित्र कर्त्ता ( सन्तनि ) विस्तार करनेवाला ( सुन्वताम् ) यज्ञ करनेवालो का ( मधुमान् ) ज्ञानवान् ( द्रप्स ) कमनीय [कामना करने के योग्य] ( परि ) सब प्रकार से ( वारम् ) वरण करने योग्य पुरुष को ( अर्षति ) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—बुद्धि का सम्बन्ध जीव के साथ होता है। ब्रह्मज्ञान जीव के हृदय में दिया जाता है। वाणी का व्यापार मुख में हुआ करता है। यज्ञ करनेवालों को बढ़ानेवाले के समान शुद्धस्वरूप, ज्ञानवान् तथा कामना करने योग्य परमेश्वर उत्तम गुणवाले ज्ञानी पुरुष को ही प्राप्त होता है ॥२॥

१३७२—हिरण्यस्तूप । सोम । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
**उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
**अत्यक्रमीदर्जुन वारमव्ययमत्क न निक्त परि सोमो अव्यत ॥३॥**

पदार्थ—( उक्षा ) महान् शक्तिवाला ( मिमेति ) मांगता है ( प्रतियन्ति ) प्राप्त होती हैं ( धेनव ) वाणियां ( देवस्य ) देव [परमेश्वर] की ( देवी ) दिव्य-शक्तियां ( उपयन्ति ) प्राप्त कराती हैं ( निष्कृतम् ) विस्तार को ( अत्यक्रमीत् ) अतिक्रमण करता है ( अर्जुनम् ) रूप को ( वारम ) आवरण को ( अव्ययम् ) प्राकृतिक ( अत्क ) वायु के ( न ) समान ( निक्त ) बलवान ( परि ) सब प्रकार ( सोम ) जीव [आत्मा] ( अव्यत ) सुरक्षित हो जाता है ॥३॥

भावार्थ—महान् शक्तिवाला जीव (परमेश्वर से) याचना करता है। उसको वेदवाणियां प्राप्त होती हैं तथा परमात्मदेव की दिव्य शक्तियां उसके विस्तार को प्राप्त कराती हैं। वह संसार के नाम रूप तथा नित्यप्रकृति के आवरण को बलवान् वायु के समान पार कर सुरक्षित हो जाता है ॥३॥

१३७३—वसिष्ठ । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।**

३ १ २ ३ १ २ ३ २
**दूरे दृश गृहपतिमथर्व्युम् ॥१॥**

पदार्थ—( अग्निम ) अग्नि और परमेश्वर को ( नर ) हे मनुष्यो ( दीधितिभि ) धारणा आदि उपायो से ( अरण्यो ) दो अरणियों मे [शरीर और आत्मा तथा ज्ञान और कर्मरूप अरणियों मे] ( हस्तच्युतम ) हाथ से पैदा किये जानेवाले अथवा धारण और आकर्षण को देनेवाले ( जनयत ) प्रकट करो ( प्रशस्तम् ) प्रशसनीय ( दूरेदृशम् ) दूर से दिखाई पड़नेवाला वा सूक्ष्मदर्शी ( गृहपतिम् ) घर के रक्षक वा ससार के स्वामी ( अथर्व्युम् ) अगम्य [ज्ञान द्वारा जानने के योग्य] ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग धारण और आकर्षण के सम्पादक प्रशंसनीय सूक्ष्मदर्शी संसार के स्वामी तथा ज्ञान गम्य परमेश्वर को प्रशस्त, दूर तक दिखाई पड़नेवाले, घर के रक्षक, गतिशील तथा दो अरणियों मे हाथ के द्वारा संघर्षण से उत्पन्न होनेवाले अग्नि के समान शरीर और आत्मा रूप अरणियों, योग आदि विधानों से प्रकट करो ॥१॥

१३७४—वसिष्ठः । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।**

३ २ ३ २उ ३ १ ३ १ २
**दक्षाय्यो यो दम आस नित्य ॥२॥**

पदार्थ—( तम् ) उस ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( अस्ते ) उत्तम स्थान में ( वसव ) विद्वान् जन ( न्यृण्वन् ) ध्यान से प्राप्त करते हैं ( सुप्रतिचक्षम् ) साक्षात् करने योग्य ( अवसे ) रक्षा के लिए ( कुतश्चित् ) किसी भी भय से ( दक्षाय्य )

पूजनीय ( यः ) जो ( अर्थे ) संसार गृह में ( आस ) है ( नित्यः ) अविनाशी [नित्य] ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् भक्त किसी भी भय से रक्षा पाने के लिए साक्षात् करने योग्य उस परमेश्वर को उत्तम ध्यान में ध्यान से प्राप्त करते हैं जो कि संसार में पूजनीय और अविनाशी है ॥२॥

१३७५—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३क २र

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २

त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥३॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( इद्धः ) प्रकाशस्वरूप ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( दीदिहि ) प्रकाशित कर ( पुरः ) आगे ( नः ) हमें ( अजस्रया ) नित्य ( सूर्म्या ) ज्ञान प्रकाश से ( यविष्ठ ) हे अजर ( त्वाम् ) तुझे ( शश्वन्तः ) सनातन ( उपयन्ति ) प्राप्त करते हैं ( वाजाः ) ज्ञानीजन ॥३॥

भावार्थ—हे अजर अमर परमेश्वर ! प्रकाशस्वरूप तू अपने नित्य ज्ञान प्रकाश से हमें प्रकाशित कर । निरन्तर अभ्यासवाले ज्ञानीजन तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

१३७६—सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यो आत्मा वा । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( अयम् ) यह ( गौः ) ज्ञानवान् ( पृश्निः ) तेज से परिपूर्ण ( अक्रमीत् ) लाँघकर स्थित होता है ( असदत् ) व्यापक हो रहा है ( मातरम् ) पृथिवी को ( पुरः ) आगे ( पितरम् ) सूर्य को ( च ) और ( प्रयन् ) गति देता हुआ ( स्वः ) सुखस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—तेज से परिपूर्ण, सुखस्वरूप तथा ज्ञानवान् परमेश्वर प्रत्यक्ष ही पृथिवी और सूर्य को गति देता हुआ उनमें व्यापक होकर उनके परे स्थित हो रहा है ॥१॥

१३७७—सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यात्मा वा । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३र ३ १ २र

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥२॥

पदार्थ—( अन्तः ) शरीर के मध्य ( चरति ) विचरती है ( रोचना ) दीप्ति [प्रकाश] ( अस्य ) इसके ( प्राणात् ) ऊपर प्राण से ( अपानती ) नीचे स्थानों में प्राण को ग्रहण करती हुई ( व्यख्यत् ) प्रकाशित करता है ( महिषः ) महान् शक्तिवाला ( दिवम् ) यश को ॥२॥

भावार्थ—नाड़ियों में प्राण और अपान का संचार करती हुई इस आत्मा की दीप्ति शरीर में विचरती है । महान् शक्तिवाला यह यश को प्रकाशित करता है ॥२॥

१३७८—सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यात्मा वा । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥

पदार्थ—( त्रिंशद्धाम ) तीस घड़ी [बारह घण्टे] ( विराजति ) विराजमान होता है ( वाक् ) वेदवाणी ( पतङ्गाय ) गतिशील [आत्मा के लिए] ( धीयते ) धारण की जाती है ( प्रति ) सम्मुख ( वस्तोः ) दिन के ( अह ) निश्चय ( द्युभिः ) सूर्य के तेजो से ॥३॥

भावार्थ—आत्मा दिन के बारह घण्टे निश्चय ही सूर्य के तेजो के साथ शरीर में विराजमान रहता है । गतिशील उस आत्मा के लिए वेद वाणियां धारण की जाती हैं ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

卐

# द्वादशोऽध्यायः

१३७९—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥

पदार्थ—( उपप्रयन्तः ) अनुष्ठान करते हुए ( अध्वरम् ) यज्ञ का ( मन्त्रम् ) मन्त्र को ( वोचेम ) बोलें ( अग्नये ) परमेश्वर के लिए ( आरे ) दूर ( अस्मे ) हम ( च ) और ( शृण्वते ) श्रवण करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—यज्ञ को करते हुए हम लोग दूर और समीप की बातों को सुनने वाले परमेश्वर के लिए स्तुति मन्त्रों का उच्चारण करें ॥१॥

१३८०—गोतम । अग्नि । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२॥

पदार्थ—( यः ) जो ( स्नीहितीषु ) परस्पर प्रेम करनेवाली ( पूर्व्यः ) सनातन ( संजग्मानासु ) सुसंगत [ संघटित ] ( कृष्टिषु ) मनुष्य-प्रजाओं में ( अरक्षत् ) रक्षा करता है ( दाशुषे ) त्यागी के लिए ( गयम् ) धन और प्राण की ॥२॥

भावार्थ—जो सनातन परमेश्वर परस्पर स्नेह करनेवाली, तथा संघटित प्रजाओं में त्यागी पुरुष के धन और प्राण की रक्षा करता है उसकी हम स्तुति करें ।२।

१३८१—वसिष्ठ । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शंतमः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥३॥

पदार्थ—( सः ) वह ( नः ) हमारे ( वेदः ) धन की ( अमात्यम् ) मंत्री की ( अग्निः ) परमेश्वर ( रक्षतु ) रक्षा करे ( शंतमः ) कल्याणदाता ( उत ) और ( अस्मान् ) हमें ( पातु ) बचावे ( अंहसः ) पाप से ॥३॥

भावार्थ—शान्ति के दाता परमेश्वर हमारे धन और जन की रक्षा करें तथा हमें पाप से बचावें ॥३॥

१३८२—गोतम । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे ॥४॥

पदार्थ—( उत ) और ( ब्रुवन्तु ) स्तुति करें ( जन्तवः ) मनुष्य ( उत् ) उत्तम ( अग्निः ) परमेश्वर ( वृत्रहा ) अज्ञान नाशक ( अजनि ) उत्पन्न करता है ( धनंजयः ) धन का प्राप्त करनेवाला ( रणेरणे ) संग्रामों में ॥४॥

भावार्थ—संग्रामों में धन को प्राप्त करनेवाला, तथा अज्ञाननाशक जो परमेश्वर सबको उत्पन्न करता है, मनुष्यों को उसकी स्तुति करनी चाहिए ॥४॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१३८३—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे आत्मन् ( युङ्क्ष्व ) युक्त कर ( हि ) निश्चय रूप से ( ये ) जो ( तव ) तेरी ( अश्वासः ) इन्द्रियां ( देव ) हे देव ( साधवः ) सकल व्यवहार को सिद्ध करनेवाली ( अरम् ) पर्याप्त रूप से ( वहन्ति ) वहन करती हैं ( आशवः ) विषयों को शीघ्र ग्रहण करने वाली ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मदेव ! सकल व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली, तथा विषयों को शीघ्र ग्रहण करनेवाली जो तेरी इन्द्रियां तेरे शरीर को पर्याप्त रूप से वहन करती हैं तू उन्हे अपने वश में कर ॥१॥

१३८४—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २र

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥२॥

पदार्थ—( अच्छा ) अच्छी प्रकार से ( नः ) हमें ( याहि ) प्राप्त हो ( आवह ) प्राप्त करा ( अभि ) सब प्रकार से ( प्रयांसि ) अन्नों को ( वीतये ) भक्षण के लिए ( आ ) भली भांति ( देवान् ) देवों को ( सोमपीतये ) संसार की रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें अच्छी तरह प्राप्त हो । तू भोजन के लिए अन्न को और संसार की रक्षा के लिए देवों को प्राप्त करा ॥२॥

१३८५—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥३॥

पदार्थ—( उत् ) उत्तम रूप से ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( भारत ) भरण पोषण करने वाले ( द्युमत् ) दीप्तिमान ( अजस्रेण ) नित्य [तेज से] ( दविद्युतत् ) तेजस्वी ( शोच ) प्रकाशित हो ( विभाहि ) प्रकाशित कर ( अजर ) हे अमर ॥३॥

भावार्थ—हे अजर, अमर तथा सकल संसार के भरण-पोषण करनेवाले परमेश्वर ! तू तेजस्वी है । अपने नित्य तेजसे प्रकाशित हो और हमें प्रकाश दे ॥३॥

१३८६—प्रजापति । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१॥

पदार्थ—( प्र सुन्वानाय ) उत्तम प्रेरणा देनेवाले ( अन्धसः ) अज्ञान से ( मर्तः ) मनुष्य ( न ) नहीं ( वष्ट ) सुने या माने ( तत् ) वह ( वचः ) बात को ( अप ) दूर ( श्वानम् ) कुत्ते के समान ( अराधसम् ) उपासना आदि न करनेवाले

को ( हत ) दूर करो ( अमखम् ) यज्ञ न करनेवाले को (न) समान ( भृगवः ) ज्ञानी तपस्वियो के ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अज्ञान से जो मनुष्य सदा प्रेरणा देनेवाले विद्वान् की बात को न सुने उस अधर्मी तथा कुत्ते के समान व्यक्ति को उसी प्रकार दूर करो जिस प्रकार विद्वान् तपस्वी यज्ञ आदि कर्म न करनेवाल को दूर भगाते हैं ॥१॥

१३८७—प्रजापति । सोम । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क २र
आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥२॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति (जामि) सृष्टि का उत्पन्न करनेवाला (अत्के) वायु मे ( अव्यत ) व्यापक है ( भुजे ) गोद में ( न ) यथा ( पुत्र ) पुत्र के ( ओण्यो ) माता-पिता के ( सरत् ) जाता है ( जारः ) सूर्य के ( न ) यथा ( योषणाम् ) पृथिवी ( वर ) वर के ( न ) यथा ( योनिम ) परम पद को ( आसदम् ) प्राप्त होता हूँ ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्ता परमेश्वर वायु मे व्यापक है। जिस प्रकार पुत्र माता की गोद को, सूर्य पृथिवी को तथा वर कन्या को प्राप्त करता है उसी प्रकार मैं परमपद [ मोक्ष धाम ] को प्राप्त करता हूँ ॥२॥

१३८८—प्रजापति । सोम । अनुष्टुप ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
हरि पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥३॥

पदार्थ—( स ) वह ( वीर ) बलशाली ( दक्षसाधन ) बल का साधन ( वि ) विशेष रूप से ( य ) जो ( तस्तम्भ ) थाम रखता है ( रोदसी ) द्यु और पृथ्वी लोक को ( हरिः ) अज्ञान नाशक ( पवित्रे ) अग्नि वायु आदि मे (अव्यत) व्यापक हो रहा है ( वेधा न ) विद्वान् के समान ( योनिम् ) निमित्तकारण को ( आसदम् ) प्राप्त करता हूँ ॥३॥

भावार्थ—बलशाली बल का साधन तथा अज्ञान-नाशक जो परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक को थामे हुए है वह अग्नि और वायु आदि मे भी व्यापक हो रहा है। मैं उस निमित्त कारण प्रभु को ज्ञानी के समान प्राप्त करता हूँ ॥३॥

१३८९—सोभरि । इन्द्र । ककुप् ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥१॥

पदार्थ—( अभ्रातृव्य ) शत्रुरहित ( अना ) नेता के विना [ स्वयं नेता है ] ( त्वम् ) तू ( अनापिः ) बिना भाई बन्धु के ( इन्द्र ) हे परमेश्वर (जनुषा ) उत्पन्न जगत् के प्रारम्भ से ( सनात् ) सनातन ( असि ) है ( युधा इत् ) हमारे उद्योग से ( आपित्वम् ) बन्धुता ( इच्छसे ) चाहता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टि के आदि से ही शत्रुरहित, स्वयं नेता बन्धुबान्धव से रहित तथा सनातन है। तू हमारे उद्योग से हमारी मित्रता स्वीकार करता है ॥१॥

१३९०—सोभरि । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
नकी रेवन्त सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्व ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
यदा कृणोषि नदनु समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥२॥

पदार्थ—( नकि ) कभी नहीं ( रेवन्तम् ) केवल धनवान् या धन में मस्त को ( सख्याय ) मित्रता के लिए ( विन्दसे ) प्राप्त करता है ( पीयन्ति) हानि कर सकते हैं ( ते ) तेरी ( सुराश्व ) मद्य पीनेवाले ( यत ) जब ( आकृणोषि ) अप नाता है ( नदनु ) स्तुति करनेवाले भक्त को ( समूहसि ) भली भाँति संपन्न करता है ( आत् इत ) तब ( पिता इव ) पिता के समान ( हूयसे ) कहा जाता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू धन में ही मस्त को अपना मित्र नहीं बनाता। शराबी लोग तुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। जब तू स्तुति करनेवाले को अपनाता तथा भलीभाँति ज्ञान-सम्पन्न करता है तब तू मित्र के समान कहा जाता है ॥२॥

१३९१—मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥१॥

पदार्थ—(आ) भलीभाँति (त्वा) तुझे (सहस्र ) सहस्रों [स्थानों में] ( आशत ) सैकड़ों (युक्ता) जुड़ी हुई (रथे) शरीररूप रथ में (हिरण्यये) ज्योतिर्मय (ब्रह्मयुजः) प्राणों से युक्त (हरयः) विषयों की तरफ ले जाने वाली इन्द्रियाँ (इन्द्र) हे जीव (केशिनः) प्रकाशयुक्त (वहन्तु) प्राप्त कराती हैं (सोमपीतये) ससार के भोग के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! ज्योतिर्मय शरीररूपी रथ मे जुड़ी हुई प्राणों से युक्त तथा प्रकाशमान इन्द्रियां ससार का उपभोग करने के लिए तुझे सैकड़ो अथवा सहस्रों स्थानो को प्राप्त कराती हैं ॥१॥

१३९२—मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्र । बृहती ।

३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भाति (त्वा) तुझे (रथे) रमणीय ससार में (हिरण्यये) ज्योतिर्मय (हरी) सूर्य और चन्द्र (मयूरशेप्या) मोर की पूँछ के समान चमकने वाले ( शितिपृष्ठा ) कृष्णवर्ण पीठवाले ( वहताम् ) जनाते हैं ( मध्व ) विज्ञान के ज्ञाता (अन्धसः) अज्ञान से (विवक्षणस्य) कहने योग्य (पीतये) रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रकाशमान इस ससार में मोर की पूँछ के समान चमकनेवाले तथा कृष्ण वर्ण के पीठ वाले सूर्य और चन्द्र कहने योग्य विज्ञान को अज्ञान से रक्षा करने लिए तेरा ज्ञान कराते हैं ॥२॥

१३९३—मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ २क १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥

पदार्थ—(पिब) रक्षा करता है (तु) पादपूरक (अस्य) इस ( गिर्वणः ) हे स्तुति योग्य ! (सुतस्य) उत्पन्न ससार की (पूर्वपा इव) वायु के समान (परिष्कृतस्य) सुसज्जित (रसिनः) अन्न जल से परिपूर्ण (इयम) यह ( आसुति ) उत्पत्ति [जन्म] (चारु ) शोभन (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिए (पत्यते) समर्थ होती है ॥३॥

भावार्थ—हे भजन करने के योग्य परमेश्वर ! तू वायु के समान सुसज्जित तथा अन्न-जल से पूर्ण इस ससार की रक्षा करता है। इसकी यह शोभन उत्पत्ति आनन्द प्राप्ति के लिए समर्थ है अथवा यह हमारा उत्तम जन्म परमानन्द प्राप्ति में समर्थ है ॥३॥

१३९४—ऋजिश्वा । सोम । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥१॥

पदार्थ—( आसोत ) ऐश्वर्ययुक्त करो ( परिषिञ्चत ) ज्ञान से परिपूर्ण करो (अश्वं न) घोड़े के समान (स्तोमम्) प्रशसनीय (अप्तुरम) प्राणों का प्रेरणा करनेवाले (रजस्तुरम्) प्रकाश का प्रेरक (वनप्रक्षम) इन्द्रियों का सचालक (उदप्रुतम्) कर्मानुसार जल मे भी जलीय जन्तुओं के रूप में जाने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग अश्व के समान वेगवाले, प्रशंसनीय प्राण और प्रकाश के प्रेरक, इन्द्रियों के सचालक तथा कर्मानुसार जल में भी जाने वाले आत्मा को ऐश्वर्ययुक्त और ज्ञान से परिपूर्ण करो ॥१॥

१३९५—ऊर्ध्वसद्मा । सोम । सतोबृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥२॥

पदार्थ—(सहस्रधारम्) अनेक प्रकार की वाणियोंवाले (वृषभम्) सकल मनोरथो को पूरा करनेवाले (पयोदुहम्) ज्ञान का दोहन करनेवाले (प्रियम्) प्रिय (देवाय) दिव्य [देव] (जन्मने) जन्म के लिए (ऋतेन) सत्य नियम से (यः) जो (ऋतजातः) सत्य नियम के उत्पादक (विवावृधे) बढ़ाता है ( राजा ) प्रकाशस्वरूप ( देवः ) देव (ऋतम्) ज्ञान को (बृहत्) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सत्य नियम का उत्पादक, प्रकाशस्वरूप जो परमात्मदेव सत्य नियम से महाज्ञान को बढ़ाता है उस विविध वेद की वाणियोंवाले, मनोरथ के सफल करनेवाले, ज्ञान के दाता तथा परमप्रिय परमेश्वर को देव जन्म की प्राप्ति के लिए भजो ॥२॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१३९६—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१॥

पदार्थ—(अग्नि) आत्मा (वृत्राणि) अज्ञान के आवरण को (जंघनत्) नाश करता है (द्रविणस्युः) परमात्मबल की इच्छा करने वाला (विपन्यया) स्तुति द्वारा (समिद्धः) तेजस्वी [ज्ञान से प्रकाशमान] (शुक्र) शुद्ध (आहुतः) भली भांति ग्रहण किया हुआ ॥१॥

भावार्थ—परमात्मबल की इच्छा करनेवाला, ज्ञान से प्रकाशमान, शुद्ध तथा भली भांति ग्रहण किया गया आत्मा स्तुति द्वारा अज्ञान के आवरण को दूर करता है ॥१॥

१३९७—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

१ २ १ २ १२ ३१ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥

पदार्थ—(गर्भे) गर्भ में (मातुः) पृथिवी के (पितुः) पिता का (पिता) पिता (विदिद्युतानः) प्रकाशमान (अक्षरे) अविनाशी प्रकृति और जीव में (सीदन्) व्यापक होता हुआ (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) स्थान में ॥२॥

भावार्थ—पिता का भी पिता परमेश्वर पृथ्वी के गर्भ, प्रकृति तथा जीव में व्यापक होता हुआ सत्य के स्थान में स्थित है ॥२॥

१३९८—भरद्वाजः । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्म) अन्न और जल (प्रजावत्) पुत्र आदि से युक्त (आभर) प्रदान कर (जातवेदः) हे सर्वव्यापक (विचर्षणे) हे सबके द्रष्टा (अग्ने) हे परमेश्वर (यत्) जो (दीदयत्) प्रकाशित होता है (दिवि) सूर्य के प्रकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक तथा सर्वसाक्षी परमेश्वर ! तू हमें पुत्र आदि से युक्त वह अन्न जल प्रदान कर जो सूर्य के प्रकाश से होनेवाला है ॥३॥

१३९९—वसिष्ठः । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर की (प्रेषा) प्रेरणा से (हेमना) जल आदि के द्वारा (पूयमानः) बाहरी पवित्रता करता हुआ (देवः) देव (देवेभिः) इन्द्रियों के साथ (समपृक्त) सम्पर्क करता है (रसम्) रस आदि का (सुतः) उत्पन्न (पवित्रम्) परम पावन पद का (पर्येति) प्राप्त करता है (रेभन्) स्तुति करता हुआ (मिता) निर्मित (इव) समान (सद्म) गृह (पशुमन्ति) पशुओं से युक्त (होता) यजमान ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुआ जीव इन्द्रियों से रस आदि का अनुभव करता है। परमेश्वर की प्रेरणा से जल के द्वारा बाह्य शुद्धि करता हुआ वह स्तुति के द्वारा पशुओं से युक्त गृह को यजमान के समान परम पावन पद को प्राप्त करता है ॥१॥

१४००—वसिष्ठ । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ १ २र ३ २क १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।

१ १ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

पदार्थ—(भद्रा) कल्याणकारक (वस्त्रा) तेजों को (समन्या) शान्तिदायक (वसानः) धारण करता हुआ (महान्) महान् (कविः) मेधावी (निवचनानि) वेदवचनों का (शंसन्) उपदेश करता हुआ (आवच्यस्व) व्यापक हो रहा है (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवी में (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा (जागृविः) सर्वदा सावधान (देववीतौ) जीव के ज्ञान में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! कल्याणकारक, शान्तिदायक तेजों को धारण करता हुआ, महान्, मेधावी, सर्वद्रष्टा, सदा सावधान तथा पवित्रकर्त्ता तू जीव के ज्ञान में वेदवचनों का उपदेश करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक हो रहा है ॥२॥

१४०१—वसिष्ठ । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ १ २

अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (उ) ही (प्रियः) प्रिय (मृज्यते) पवित्र होता है (सानौ) शिखर पर (अव्ये) प्रकृतिमय (यशस्तरः) अति यशस्वी (यशसां) यशस्वियों में (क्षैतः) पृथिवी पर उत्पन्न (अस्मे) हमारे लिये (अभिस्वर) उपदेश कर (धन्व) परमेश्वर के विषय में (पूयमानः) पवित्र हुआ (यूयम्) तू (पात) रक्षा कर (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (सदा) सदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन्! यशस्वियों में अतियशस्वी प्रिय तथा पृथिवी पर उत्पन्न हुआ तू प्रकृति के शिखर पर हमारे लिये पवित्र होता है और पवित्र हुआ तू हमें परमेश्वर का ज्ञान दे तथा कल्याण के साथ हमारी रक्षा कर ॥३॥

१४०२—तिरश्चि । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥१॥

पदार्थ—(एत) आओ (उ) हि (इन्द्रम्) आत्मा का (स्तवाम) गुणगान करें (शुद्ध) शुद्ध (शुद्धेन) पवित्र (साम्ना) साम से (शुद्धैः) पवित्र (उक्थैः) स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) निर्दोष (शुद्धैः) पवित्रकारक गुणों से (आशीर्वान्) पूर्ण कामनाओंवाला (ममत्तु) प्रसन्न करे ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आओ, पवित्र साम और स्तोत्रों से निर्दोष आत्मा का गुणगान करें। पूर्ण कामनाओं वाला वह अपने पवित्र गुणों से हमें प्रसन्न करे ॥ १ ॥

१४०३—तिरश्चि । इन्द्र । अनुष्टुप ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २

शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (नः) हमें (आगहि) प्राप्त हो (शुद्ध) पतितपावन (शुद्धाभिः) पवित्र (ऊतिभिः) रक्षाओं से (शुद्ध) पापरहित (रयिम्) धन (निधारय) धारण करा (शुद्ध) निर्लेप (ममद्धि) प्रसन्न हो (सोम्य) हे शान्तस्वभाव ! ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वभाव परमेश्वर ! तू शुद्ध, पतितपावन, पापरहित तथा निर्लेप है। हे भगवन् ! हमें प्राप्त हो और पवित्र रक्षाओं से हमारी रक्षा कर। हे प्रभो ! प्रसन्न हो और धन प्रदान कर ॥२॥

१४०४—तिरश्चि । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (शुद्धः) शुद्ध (हि) ही (नः) हमें (रयिम्) धन (शुद्ध) पतितपावन (रत्नानि) रत्नों को (दाशुषे) यजमान के लिये (शुद्ध) पापरहित (वृत्राणि) बुराइयों का (जिघ्नसे) नाश करता है (शुद्ध) परमपवित्र (वाजम्) अन्न बल को (सिषाससि) देता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध तू हमें धन प्रदान कर। पतितपावन तू यजमान को रत्न आदि दे। पापरहित तू पापों का नाश कर। परम पवित्र तू अन्न और बल दे ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

१४०५—सुतम्भरः । अग्नि । गायत्री ।

१ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) परमेश्वर के (स्तोमम्) स्तोत्र को (मनामहे) उच्चारण करते हैं (सिध्रम्) पुरुषार्थसाधक (अद्य) आज (दिविस्पृशः) आकाश में व्यापक (देवस्य) देव के (द्रविणस्यवः) धन की कामना करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—धन की कामना करनेवाले हम लोग आज आकाश में व्यापक परमात्मदेव के पुरुषार्थसाधक स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ॥१॥

१४०६—सुतम्भरः । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३क १ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (जुषत) स्वीकार करे (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियों को (होता) संसार का ग्रहण करनेवाला (यः) जो (मानुषेषु) मनुष्यों में (आ) भली प्रकार (सः) वह (यक्षत्) देता है (दैव्यम्) श्रेष्ठ (जनम्) पुरुष को ॥२॥

भावार्थ—संसार का ग्रहण करनेवाला जो परमेश्वर मनुष्यों में विराजमान है वह हमारी स्तुति सुने और हमें श्रेष्ठ जन देवे ॥२॥

१४०७—सुतम्भरः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( सप्रथाः ) सबसे महान् (असि) है ( जुष्टः ) सबका प्रेमपात्र ( होता ) सृष्टिरूप यज्ञ का कर्ता ( वरेण्य ) श्रेष्ठ ( त्वया ) तेरे द्वारा ( यज्ञ ) यज्ञ का ( वितन्वते ) विस्तार करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब के प्रेम का पात्र सृष्टिकर्ता, श्रेष्ठ तथा अत्यन्त महान् है। तेरे द्वारा ही विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं ॥३॥

१४०८—वसिष्ठ । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणी ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से (त्रिपृष्ठम्) तीन जानने के योग्य [जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति] अवस्थाओंवाले, ( वृषणम् ) बलवान् ( वयोधाम् ) आयु तथा सौंदर्य आदि अनेक अवस्थाओं को धारण करनेवाले ( अङ्गोषिणम् ) शरीर के ( अवावशन्त ) वर्णन करती हैं ( वाणी ) वेदवाणियाँ ( वना ) प्रकाशों को ( वसानः ) धारण करनेवाला ( वरुण ) अग्नि के ( न ) समान ( सिन्धु ) ज्ञान, गमन प्राप्ति तथा मोक्षवाला ( वि ) विशेष ( रत्नधा ) रत्नों को धारण करनेवाला ( दयते ) रक्षा करता है ( वार्याणि ) उत्तम गुणोवाला ॥१॥

भावार्थ—वेदवाणियां जानने योग्य जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति रूप तीन अवस्थाओं वाले, बलवान् कुमार, यौवन, वृद्धावस्था और आयु को धारण करनेवाले शरीर के अंग अंग में विद्यमान जीव का वर्णन करती हैं। तेज को धारण करनेवाले सुवर्ण आदि रत्नों के दाता अग्नि के समान ज्ञान, गमन, प्राप्ति तथा मोक्षादि धर्म वाला वह जीव उत्तम गुणों की रक्षा करता है ॥१॥

१४०९—वसिष्ठ । सोम । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शूरग्राम सर्ववीर सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥२॥

पदार्थ—( शूरग्राम ) वीरों के समूहवाला, ( सर्ववीर ) बहुत वीरोंवाले (सहावान्) सहनशील (जेता) जीतनेवाला ( पवस्व ) प्राप्त कर ( सनिता ) दाता ( धनानि ) धनों के ( तिग्मायुध ) तेज शस्त्रोंवाला ( क्षिप्रधन्वा ) वेगवान् धनुष को धारण करनेवाला ( समत्सु ) संग्रामों में ( अषाढ ) सहन न किया जानेवाला ( साह्वान् ) तिरस्कार करनेवाले (पृतनासु) सेनाओं में (शत्रून्) शत्रुओं को ।२।

भावार्थ—हे सेनापति ! शूरों के समूह से युक्त, बहुत वीरों वाला सहनशील विजयी धनों का दाता तेज शस्त्रधारी वेगवान् धनुष से युक्त संग्रामों में न सहा जाने वाला तथा सेनाओं के मध्य में शत्रुओं को दबाता हुआ तू परमेश्वर को प्राप्त कर ॥२॥

१४१०—वसिष्ठ । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।

३ १ २र ३ २ ३ २क १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

अपः सिषासन्नुषसः स्व३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् । ३॥

पदार्थ—( उरुगव्यूति ) महान् वेदवाणियों के समूहवाला ( अभयानि ) अभयों को ( कृण्वन् ) करता हुआ ( समीचीने ) सुख से सुसंगत (आपवस्व) पवित्र कर ( पुरन्धी ) द्यु और पृथिवीलोक को ( अपः ) जलों को ( सिषासन् ) विभाजन करता हुआ ( उषसः ) उषा का ( स्वः ) सूर्य का ( गाः ) किरणों का (संचिक्रद ) उपदेश करता है ( महः ) महान् ( अस्मभ्यं ) हमें ( वाजान् ) ज्ञानों का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विस्तृत वेदवाणियों का आधार तू निर्भयता देता हुआ सुख से सुसंगत द्यु और पृथिवी लोक को पवित्र कर। हे प्रभो ! जल प्रभात, सूर्य तथा किरणों का विभाग करता हुआ तू हमें महान् ज्ञानों का उपदेश कर ॥३॥

१४११—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।१।

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( इन्द्र ) हे राजन् ( यशाः ) यशस्वी ( असि ) है ( ऋजीषी ) सरल नीतिवाला (शवसस्पति) बल का स्वामी ( त्वं ) तू (वृत्राणि) विघ्नों का ( हंसि ) नष्ट करता है ( अप्रतीनि ) कठिनता से प्रतीकारयोग्य ( एक इत् ) अकेला ही ( पुरु ) बहुत ( अनुत्त ) स्वतन्त्र ( चर्षणीधृति ) मनुष्यों का धारण करनेवाला ॥१॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू यशस्वी, सीधी नीतिवाला बल का स्वामी और मनुष्यों का धारण कर्त्ता है। तू स्वतन्त्र अकेला ही अनेकों महान् विघ्नों का नाश करता है ॥१॥

१४१२—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तन्नु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( उ ) ही ( त्वा ) तुझे ( नूनम् ) निश्चय (असुर) हे प्राणदाता ( प्रचेतसम् ) सर्वज्ञ ( राधः ) धन को ( भागम् इव ) दाय-भाग के समान (ईमहे) मांगते हैं ( मही ) महान् ( इव ) समान (कृत्ति) यश के (शरणा) शरण ( ते ) तेरी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( प्र ) उत्तम रूप से ( ते ) तेरा (सुम्ना) आनन्द ( नः ) हमें ( अश्नवन् ) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ—हे प्राणदाता परमेश्वर ! हम तुझ सर्वज्ञ से दाय भाग के समान धन की याचना करते हैं। तेरी महान् शरण आकाश में व्यापक यश के समान है तेरे सुख हमें प्राप्त हों ॥२॥

१४१३—सौभरि । अग्नि । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

पदार्थ—( यजिष्ठम् ) यज्ञ करनेवाले ( त्वा ) तुझे ( ववृमहे ) वरण करते हैं ( देवम् ) देव ( देवत्रा ) इन्द्रियों में ( होतारम् ) दान करनेवाले ( अमर्त्यम् ) अविनाशी [अमर] ( अस्य ) इस (यज्ञस्य ) यज्ञ के ( सुक्रतुम ) उत्तम कर्म करनेवाले ॥ १ ॥

भावार्थ—हे जीव ! विविध यज्ञों के कर्त्ता इन्द्रियों के परमदेव दानी अविनाशी तथा इस संसाररूप यज्ञ में उत्तम कर्मों का विस्तार करनेवाले तेरा हम वरण करते हैं ॥१॥

१४१४—सौभरि । अग्नि । ककुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥२॥

पदार्थ—( अपां ) जल तथा अन्तरिक्ष आदि का ( नपातम् ) धारण करनेवाले (सुभगम् ) ऐश्वर्यशाली ( सुदीदितिम ) प्रकाशस्वरूप ( अग्निम् ) परमेश्वर की ( श्रेष्ठशोचिषम् ) उत्तम तेजवाले ( सः ) वह ( नः ) हमारे ( मित्रस्य ) प्राण के लिये ( वरुणस्य ) अपान के लिये ( अपां ) जीवों के लिये ( आ ) भली भांति ( सुम्न ) सुख को ( यक्षते ) देता है ( दिवि ) स्वर्ग में [होनेवाले सुख को] ॥२॥

भावार्थ—जल तथा आकाश आदि को धारण करनेवाले, ऐश्वर्यशाली, प्रकाशस्वरूप तथा उत्तम तेजवाले परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं। वह हमारे प्राण अपान और जीवों के लिये सुख प्रदान करता है तथा वही स्वर्ग सुख भी देता है ॥२॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

१४१५—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २ ३ १ २

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१॥

पदार्थ—( यम ) जिस ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( पृत्सु ) संग्रामों में (मर्त्यम्) मनुष्य की ( अवा ) रक्षा करता है ( वाजेषु ) जीवन संघर्षों में ( यम् ) जिसको ( जुना ) प्रेरणा करता है ( स ) वह ( यन्ता ) वश में रखनेवाला ( शश्वतीः ) सनातन ( इषः ) प्रजाओं का ॥१॥

भावार्थ – हे परमेश्वर ! तू जिस मनुष्य की संग्रामों में रक्षा करता है तथा जिसको संग्रामों में प्रेरित करता है वही सनातन प्रजा को वश में करता है ॥१॥

१४१६—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥२॥

पदार्थ—(नकि) मर्यादा की रक्षा करनेवाला ( अस्य ) इसका ( सहन्त्य ) हे अत्यन्त सहनशील ( पर्येता ) परिपूर्ण करनेवाला ( कयस्य ) विजय करनेवाले के (चित) ही ( वाज ) संग्राम ( अस्ति ) है ( श्रवाय्य ) यश का देनेवाला ॥२॥

भावार्थ—हे अत्यन्त सहनशील परमेश्वर ! धर्म मर्यादा की रक्षा करनेवाला तू जिसका संग्राम यशदायक होता है उस विजयी पुरुष की कामना को परिपूर्ण करता है ॥२॥

१४१७—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥३॥

पदार्थ—( स ) वह ( आजम् ) संग्राम को ( विश्वचर्षणि ) सबका साक्षी ( अर्वद्भिः ) घोड़ों के द्वारा ( अस्तु ) हो ( तरुता ) पार करनेवाला ( विप्रेभिः ) ज्ञानियों द्वारा ( अस्तु ) होवे ( सनिता ) [ज्ञान का] दाता हो ॥३॥

भावार्थ—सर्वसाक्षी परमेश्वर घोड़ों द्वारा संग्राम को पार लगावे तथा ज्ञानियों द्वारा हमें ज्ञानदाता होवे ॥३॥

१४१८—नोधा । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।

२ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१॥

पदार्थ—( साकमुक्ष ) एक साथ वृद्धि करनेवाले ( मर्जयन्त ) शुद्ध करते हैं ( स्वसारः ) अज्ञानादि मलों को दूर फेंकनेवाले ( दश ) पाँच यम तथा पांच नियम रूप ( धीरस्य ) मेधावी ध्यानी के ( धीतयः ) कर्म ( धनुत्रीः ) उत्तम प्रेरणा करने वाले ( हरिः ) अज्ञान का नाशक ( पर्यद्रवत् ) फैलाता है ( जाः ) उत्पन्न हुई किरणों को ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( द्रोणम् ) गन्तव्य मार्ग को ( ननक्षे ) व्याप्त करता है ( अत्यः ) व्यापक ( न ) समान ( वाजी ) अग्नि के ॥१॥

भावार्थ—एक साथ वृद्धिदाता, अविद्या आदि मलों को दूर फेंकनेवाले समाधि आदि योग के अंगों की तरफ प्रेरणा के साधन ध्यानी, मेधावी पुरुष दश यम-नियम आदि कर्म आत्मा को पवित्र करते हैं। अज्ञान का नाशक परमेश्वर सूर्य की किरणों का विस्तार करता है। वह व्यापनशील अग्नि के समान सूर्य की किरणों के गन्तव्य मार्ग में व्यापक है ॥१॥

१४१९—नोधा । सोम । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ ३२ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ २

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।

२ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १ २

मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

पदार्थ—( सम् ) सम्यक् ( मातृभिः ) माताओं के द्वारा ( न ) जिस प्रकार ( शिशुः ) बालक ( वावशानः ) कामना करनेवाला ( वृषा ) बलवान् ( दधन्वे ) समझा जाता है ( पुरुवारः ) बहुत उत्तम कर्मोवाला ( अद्भिः ) परमेश्वर के द्वारा ( मर्यः ) मर्यादा में रहनेवाला पुरुष ( न ) समान ( योषाम् ) युवती ( अभि ) उद्देश्य में रखकर ( निष्कृतम् ) कर्मफल को ( यन् ) प्राप्त करता हुआ ( संगच्छते ) संयुक्त होता है ( कलशे ) शरीर में ( उस्रियाभिः ) अपने तेजों से ॥२॥

भावार्थ—माताओं से जिस प्रकार शिशु समझा जाता है उसी प्रकार कामनाओं को करनेवाला, बलवान् तथा उत्तम कर्मोवाला जीव परमेश्वर के द्वारा जाना जाता है। मर्यादा में रहनेवाला पुरुष जिस प्रकार युवती स्त्री को प्राप्त करता है उसी प्रकार जीव कर्मफल के अनुसार अपने तेजों के साथ शरीर में संयुक्त होता है ॥२॥

१४२०—नोधा । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥

पदार्थ—( उत ) और ( प्रपिप्ये ) पूर्ण करता है ( ऊधः ) स्तन को ( अघ्न्यायाः ) गाय के ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( धाराभिः ) वेदवाणियों से ( सचते ) संयुक्त करता है ( सुमेधाः ) उत्तम ज्ञानवाला ( मूर्धानं ) सूर्य को ( गावः ) किरणें ( पयसा ) जल से ( चमूषु ) द्यौः, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में ( अभिश्रीणन्ति ) आच्छादित करती हैं ( वसुभिः ) वस्त्रों से ( न ) समान ( निक्तैः ) धोये हुए ॥३॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली तथा उत्तम ज्ञानी परमेश्वर, गाय के स्तन को दुग्ध से पूर्ण करता है तथा हमें वेदवाणियों के साथ जोड़ता है। द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर वर्तमान किरणें धवल वस्त्र के समान जल से सूर्य को आच्छादित करती हैं ॥३॥

१४२१—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥१॥

पदार्थ—( पिबा ) उपभोग कर ( सुतस्य ) उत्पन्न जगत् का ( रसिनः ) सुखकारी ( मत्स्व ) प्रसन्न कर ( नः ) हमें ( इन्द्र ) हे विद्वान् पुरुष ( गोमतः ) गौ आदि से युक्त ( आपिः ) बन्धु ( नः ) हमें ( बोधि ) बोध करा ( सधमाद्ये ) समान रूप से आनन्ददाता के विषय में ( वृधे ) उन्नति के लिए ( अस्मान् ) हमारी ( अवन्तु ) रक्षा करें ( ते ) तेरे ( धियः ) ज्ञान और कर्म ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सुखकारी संसार का उपभोग कर। गौ आदि से युक्त हम लोगों को प्रसन्न कर। तू हमारा बन्धु है। हमारी उन्नति के लिए समान आनन्ददाता परमेश्वर के विषय में ज्ञान करा। तेरे ज्ञान और कर्म हमारी रक्षा करें ॥१॥

१४२२—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३२ ३ १ २

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्माँ चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२॥

पदार्थ—( भूयाम ) हों ( ते ) तेरी ( सुमतौ ) सुमति में ( वाजिनः ) बलवान् और ज्ञानवान् ( वयं ) हम ( मा ) नहीं ( नः ) हमारा ( स्तः ) नाशकर ( अभिमातये ) रोग के लिए ( अस्मान् ) हमारी ( चित्राभिः ) आश्चर्यमयी ( अवतात् ) रक्षाकर ( अभिष्टिः ) मनोरथों से ( आ ) भली प्रकार ( नः ) हमें ( सुम्नेषु ) सुखों में ( यामय ) रख ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान् तथा ज्ञानवान् तेरी सुमति में रहें। तू रोगों से हमें बचा। विचित्र मनोरथों के द्वारा हमारी रक्षा कर। तू हमें सुख में रख ॥२॥

१४२३—रेणु । सोम । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।

३ २ ३ १ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३२

चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥

पदार्थ—( त्रिः ) त्रयीविद्या:—ऋक्, यजु तथा साम ( अस्मै ) इस जीव के लिए ( सप्त ) सात ( धेनवः ) वाणियां सात छन्द ( दुदुह्रिरे ) दोहन करती हैं ( सत्याम् ) सत्य ( आशिरम् ) परिपक्व ज्ञानरूप दुग्ध का ( परमे ) परमोत्कृष्ट ( व्योमनि ) व्यापक परमेश्वर में [स्थिति प्राप्त करने के लिए] ( चत्वारि ) चार प्रकार के ( अन्या ) अन्य ( भुवनानि ) कर्म—प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ( निर्णिजे ) पवित्र करने के लिए ( चारूणि ) उत्तम ( चक्रे ) करता है ( यत् ) जब ( ऋतैः ) सत्य विद्याओं से ( अवर्धत ) सम्पन्न होकर उन्नत होता है ॥१॥

भावार्थ—परमोत्कृष्ट पद व्यापक परमेश्वर में स्थिति पाने के लिए इस जीव को त्रयी विद्या और सात प्रकार की वाणियां ज्ञान का दोहन करती हैं। जब वह जीव सत्य विद्याओं से उन्नत हो जाता है तब आत्मशुद्धि के लिए चार उत्तम कर्म प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि को करता है ॥१॥

१४२४—रेणु । सोम । जगती ।

१ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २

स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

पदार्थ—( स ) वह ( भक्षमाणः ) विभाजन करता हुआ ( अमृतस्य ) अमृत—अविनाशी सुख का ( चारुणः ) उत्तम ( उभे ) दोनों ( द्यावा ) द्यु और पृथिवी लोक को ( काव्येन ) वेदवाणी काव्य से ( विशश्रथे ) पूर्ण करता है ( तेजिष्ठाः ) तेजस्वी ( अपः ) कर्मों की ( मंहना ) महिमा से ( परिव्यत ) रक्षा करता है ( यदी ) जब ( देवस्य ) परमेश्वर के ( श्रवसा ) यश और ज्ञान से ( सदः ) परम पद को ( विदुः ) जानते हैं ॥२॥

भावार्थ—जब विद्वान् जन वेदज्ञान से उस देव के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं तब वह अविनाशी पुरुष उत्तम सुख का वितरण करता हुआ द्यु और पृथिवी को परिपूर्ण कर देता है। अपनी महिमा से तेजस्वी और उत्तम कर्मों की रक्षा करता है ॥२॥

१४२५—रेणु । सोम । जगती ।

१ २ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।

१ २ ३ १ २ ३क ३२ ३ १ ३२ ३ १ २

येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

पदार्थ—( ते ) वे ( अस्य ) इसके ( सन्तु ) हों ( केतवः ) ज्ञान ( अमृत्यवः ) अमर ( अदाभ्यासः ) नाशरहित ( जनुषी ) जन्मों में ( यैः ) जिन से ( नृम्णा ) बल ( देव्या ) इन्द्रिय व्यवहार ( च ) और ( पुनते ) पवित्र होता है ( आदित् ) अनन्तर ( राजानम् ) प्रकाशस्वरूप ( मनना ) ज्ञान ( अगृभ्णत ) ग्रहण कराते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! तेरा ज्ञान सदा नाशरहित होवे। जिससे इस जन्म और दूसरे जन्म में तेरे इन्द्रिय-व्यवहार तथा बल पवित्र होते हैं। अन्त में यह ज्ञान ही सबके सम्राट् परमेश्वर को प्राप्त कराते हैं ॥३॥

॥ पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥

१४२६—कुत्स । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३क २र ३ २ २ ३ १ २र ३ १ २

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) उद्देश्य से ( वायुम् ) वायु के ( वीति ) गति प्रदान करने के लिए ( अर्ष ) प्राप्त कर ( गृणान ) स्तुति किया हुआ ( अभि ) उद्देश्य से ( मित्रावरुणा ) प्राण, अपान या सूर्य और चन्द्रमा के ( पूयमान ) स्वयं पवित्र और अन्यों को पवित्र करनेवाला ( अभि ) उद्देश्य से ( नरम् ) नेता ( धीजवन ) बुद्धि से प्रेरणा पानेवाले ( रथेष्ठाम् ) शरीरधारी ( इन्द्र ) जीव को ( वृषणं ) बलवान् ( वज्रबाहुम् ) शस्त्रधारी ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! स्तुति किया जानेवाला, स्वयं पवित्र और दूसरों को भी पवित्र करने द्वारा तू गति देने के लिए वायु, सूर्य, चन्द्रमा, मनुष्य सामान्य तथा बुद्धिजीवी शरीर आदि और शस्त्रधारक जीव आदि में व्यापक है ॥१॥

१४२७—कुत्स । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमान ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( वस्त्रा ) वस्त्रों को ( सुवसनानि ) पहनने योग्य ( अर्ष ) प्राप्त करा ( अभि ) उद्देश्य से ( धेनूः ) गौएँ ( सुदुघाः ) दूध देने वाली ( पूयमान ) सबको पवित्र करता हुआ ( अभि ) भली भांति ( चन्द्रा ) चांदी ( भर्तवे ) भरण-पोषण करने के योग्य ( नः ) हमें ( हिरण्या ) सुवर्ण ( अभि ) भली भांति ( अश्वान् ) घोड़ों को ( रथिनः ) रथ के योग्य ( देव ) हे देव ( सोम ) हे परमेश्वर ॥२॥

भावार्थ—हे परमदेव परमेश्वर ! पवित्रस्वरूप तू हमें पहनने योग्य वस्त्र दूध देनेवाली गौएँ, भरण पोषण के लिए उपयोगी चांदी और सुवर्ण आदि तथा रथ के योग्य घोड़े प्रदान कर ॥२॥

१४२८—कुत्स । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २

अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३॥

पदार्थ—( अभि ) भली भांति ( नः ) हमें ( अर्ष ) प्रदान कर ( दिव्या ) सर्वोत्तम ( वसूनि ) धन ( अभि ) भली भांति ( विश्वा ) सारे ( पार्थिवा ) पृथिवी में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ ( पूयमान ) सबको पवित्र करनेवाला ( अभि ) भली भांति ( येन ) जिससे ( द्रविणम् ) सपदाओं को ( अश्नवाम ) भोग सकें ऐसा ( आर्षेय ) वेदज्ञान को ( जमदग्निवत् ) आंख के समान ( नः ) हमें ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सबका पवित्र करनेवाला तू हमें उत्तम धन प्रदान कर । सारे पार्थिव पदार्थों को दे और वह चक्षु के समान वैदिक ज्योति कि जिससे हम सकल सम्पदाओं का भोग कर सकें ॥३॥

१४२९—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥१॥

पदार्थ—( यत ) जब ( जायथा ) प्रयत्न करता है या सन्नद्ध होता है ( अपूर्व्य ) हे अनादि ( मघवन् ) हे सब सम्पदाओं के स्वामिन् ( वृत्रहत्याय ) प्रलयकालिक अन्धकार के नाश के लिए ( तत् ) तब ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( अप्रथय ) फैलाता है ( तत् ) उसी समय ( अस्तभ्ना ) स्थापित करता है ( दिवम् ) द्युलोक को ( उत ) और ॥१॥

भावार्थ—हे अनादि अनन्त और सकल सपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! जब तू प्रलयकालिक अन्धकार के हटाने के लिए प्रयत्नशील होता है तब पृथिवी का विस्तार और द्युलोक की रचना करता है ॥१॥

१४३०—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २उ ३ १ २र

तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥२॥

पदार्थ—( तत् ) उसी समय ( ते ) तेरा ( यज्ञ ) ससाररूप यज्ञ ( अजायत ) उत्पन्न होता है ( तत् ) उसी समय ( अर्क ) सूर्य ( उत ) भी ( हस्कृति ) प्रकाश का कर्त्ता ( तत् ) उसी समय ( विश्वम् ) संसार को ( अभिभूः ) दबा कर स्थित ( असि ) होता है ( यत् ) जो ( जात ) उत्पन्न हुआ है ( यत् ) जो ( च ) और ( जन्त्वम् ) होगा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उसी समय तेरा संसाररूप यज्ञ उत्पन्न होता है । दिन का उत्पादक सूर्य भी उसी समय उत्पन्न होता है । तू जो कुछ भी पैदा हुआ है और होनेवाला है उस सबको दबा कर स्थित हो रहा है ॥२॥

१४३१—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥३॥

पदार्थ—( आमासु ) कच्ची ओषधियों आदि द्रव्यों में ( पक्वम् ) पके हुए रस को ( ऐरय ) प्रेरणा करता है ( आ ) भली भांति ( सूर्यम् ) सूर्य को ( रोहयः ) स्थापित किया है ( दिवि ) द्युलोक में ( घर्मम् ) यज्ञ के ( न ) समान ( सामम् ) दुःखनिवारक ( तपत ) तपो ( सुवृक्तिभिः ) उत्तम स्तुतियों से ( जुष्टम् ) प्रसन्नता देनेवाले ( गिर्वणसे ) स्तुति करने योग्य ( बृहत् ) बृहत् साम ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू कच्ची ओषधियों में पके रस का संचार करता है और सूर्य को द्युलोक में स्थापित करता है । हे विद्वानो ! तुम कल्याणकारी यज्ञ के समान साम स्तुतियों के साथ तपस्या करो तथा स्तुति योग्य उस परमेश्वर के लिए प्रसन्नता के साधन बृहत् साम का गान करो ॥३॥

१४३२—अगस्त्य । इन्द्र । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥

पदार्थ—( मत्सि ) तृप्त करता है ( अपायि ) पी लिया है ( ते ) तेरा ( महः ) महान् ( पात्रस्य ) पात्र के ( इव ) समान ( हरिवः ) हे सर्वशक्तिमन् ( मत्सरः ) प्रसन्न करनेवाला ( मदः ) आनन्दरस ( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करनवाला ( ते ) तेरा ( वृष्णः ) बलवान् ( इन्दुः ) ऐश्वर्यशाली ( वाजी ) बलदायक ( सहस्रसातमः ) असंख्य सपदाओं का दाता ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! महान् पात्र के समान तेरा प्रसन्न करनेवाला आनन्द रस जिसने पान कर लिया है वह उसको तृप्त करता है । सकल कामनाओं को पूरा करनेवाला ऐश्वर्यशाली वह आनन्दरस हमारे लिए बलदायक और असंख्य सपदाओं को दाता है ॥१॥

१४३३—अगस्त्य । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

सहावां इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥२॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( नः ) हमें ( ते ) तेरा ( गन्तु ) प्राप्त हो ( मत्सर ) आनन्ददायक ( वृषा ) कामनाओं की वर्षा करनेवाला ( मदः ) आनन्द ( वरेण्य ) श्रेष्ठ ( सहावान् ) सहायक ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( सानसि ) सेवन करने के योग्य ( पृतनाषाट् ) काम क्रोधादि शत्रुओं का दहन करनेवाला ( अमर्त्यः ) अमर है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्ददायक, सकल मनोरथों का पूरक सर्वथा सहायक, सेवनीय, कामादि शत्रुओं का विघातक तेरा नित्य आनन्द हमें प्राप्त हो ॥२॥

१४३४—अगस्त्य । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( हि ) निश्चय से ( शूरः ) शक्तिशाली ( सनिता ) दाता ( चोदयः ) प्रेरित करता है ( मनुषः ) मनुष्य के ( रथम् ) शरीर को ( सहावान् ) दबाता है ( दस्युम् ) बुरे भाव को ( अव्रतम् ) कर्मरहित ( ओषः ) नष्टकर ( पात्रम् न ) पात्र के समान ( शोचिषा ) तेज से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वशक्तिमान् और महान् दाता तू मनुष्यों को शरीर प्रदान करता है तथा अपने तेज से शुभकर्म विनाशक बुरे भाव को दबाता हुआ उसी तरह नष्ट करता है जैसे अग्नि तपाने से पात्र के मल को नष्ट करती है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 द्वादशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

# त्रयोदशोऽध्यायः

१४३५—कवि । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ २उ ३ २३ २३ १ २र ३ १२३१ २
पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) प्रदान कर ( वृष्टिम् ) वर्षा ( आ ) भली भांति ( सु ) सुन्दर ( अपाम् ) जलों की ( ऊर्मिम् ) तरंग [ धारा ] ( दिवः ) द्युलोक से ( परि ) सब प्रकार से ( अयक्ष्माः ) नीरोगकारी ( बृहतीः ) बलप्रद ( इषः ) अन्नों को भी ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे कल्याणार्थ आकाशमण्डल से जल की धारावत् वृष्टि कर और हमें नीरोगता देनेवाले अन्न आदि पदार्थ प्रदान कर ॥१॥

१४३६—कविः । सोम । गायत्री ।

१२ ३१२३ २३१२३१२र १२३१२ ३२
तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥

पदार्थ—( तया ) उस ( पवस्व ) पवित्र कर ( धारया ) वेदवाणी से ( यया ) जिससे ( गावः ) ऋत्विग् लोग ( इह ) इसमें ( आगमन् ) सब कर्म को जानते हैं ( जन्यासः ) जनता का हित करनेवाली ( उप ) समीप ( नः ) हमारे ( गृहम् ) यज्ञशाला में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें उस वेदवाणी से पवित्र कर जिसके द्वारा ऋत्विग् लोग यज्ञशाला में समस्त कर्मों को जान कर करते हैं ॥२॥

१४३७—कवि । सोम । गायत्री ।

३१२ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२३१ २र
घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥

पदार्थ—( घृतम् ) तेज को ( पवस्व ) प्रदान कर ( धारया ) वेदवाणी के द्वारा ( यज्ञेषु ) उत्तम यज्ञादि कर्मों में ( देववीतमः ) विद्वानों के अत्यन्त समीप ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( वृष्टिम् ) वर्षा को ( आपव ) कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ज्ञानियों के अत्यन्त समीप है । यज्ञों में हमारे लिए वेदज्ञान द्वारा तेज प्रदान कर और हम पर आनन्द की वर्षा कर ॥३॥

१४३८—कवि । सोम । गायत्री ।

१ २३१२ ३क १२३१२ ३१२ ३१२३२३ १२
स न ऊर्जे व्याऽव्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥४॥

पदार्थ—( स ) वह ( नः ) हमारे ( ऊर्जे ) बल के लिए ( वि ) विशेषरूप से ( अव्ययम् ) अविनाशी ( पवित्रम् ) पतितपावन ( धाव ) प्राप्त करा ( धारया ) वेदवाणी के द्वारा ( देवासः ) विद्वान् सूक्ष्मदर्शी पुरुष ( शृणवन् ) सुनते हैं ( हि ) निश्चय ( कम् ) आनन्दस्वरूप ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे आत्मिक बल की वृद्धि के लिए अपने अविनाशी और पवित्र तेज को वेदवाणी द्वारा प्राप्त करा । क्योंकि हे भगवन् विद्वान् जन ही तुझ आनन्दस्वरूप को जान-सुन सकते हैं ॥४॥

१४३९—कवि । सोम । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१२ १२३२३ १२
पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥५॥

पदार्थ—( पवमानः ) सर्वव्यापक ( असिष्यदत् ) वर्षा करता है ( रक्षांसि ) घातक भावों को ( अपजङ्घनत् ) नष्ट करता हुआ ( प्रत्नवत् ) पूर्वकल्प के समान ( रोचयन् ) प्रकाशित करता हुआ ( रुचः ) सूर्य आदि तेजों को ॥५॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर पूर्वकल्प के समान घातक भावों का नाश तथा सूर्य आदि तेजों का प्रकाश करता हुआ वृष्टि करता है ॥५॥

१४४०—भरद्वाज । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१११ १२१ १२ ३१२
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।

३ २३१११२ ३१२
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥

पदार्थ—( प्रति ) और ( अस्मै ) इसके लिए ( पिपीषते ) रक्षा करनेवाले ( विश्वानि ) सब कुछ ( विदुषे ) जाननेवाले ( भर ) भरपूर कर ( अरंगमाय ) पर्याप्त गतिशील ( जग्मये ) संग्रामों में जाने वाले ( अपश्चादध्वने ) [illegible] ( नरः ) नेता ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग प्रजा की रक्षा की [illegible], [illegible] विषयों के ज्ञाता, संग्रामों में जाने तथा सर्वथा अग्रगामी रहनेवाले इस सेनापति के लिए सभी आवश्यक वस्तुएं भरपूर कर रखो ॥१॥

१४४१—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१२ ३१२३१२ ३१२
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।

१२ ३ २३ १२३२३१२
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( ईम् ) पादपूरक ( एनम् ) इसको ( प्रत्येतन ) प्रतीत करो ( सोमेभिः ) ऐश्वर्यों के साथ ( सोमपातमम् ) धन के अत्यन्त रक्षक ( अमत्रेभिः ) पात्रों के साथ ( ऋजीषिणम् ) धन-संग्रह करनेवाले ( इन्द्रम् ) सभाध्यक्ष को ( सुतेभिः ) सुसम्पन्न ( इन्दुभिः ) सोम से ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्य धनों के साथ अनेक धनों की रक्षा करनेवाले धन-संग्रह करने में समर्थ इस सभाध्यक्ष का नाना प्रकार के पुष्टिदायक खाद्य पदार्थों से भरे हुए पात्रों से स्वागत करो ॥२॥

१४४२—भरद्वाजः । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१२ ३१२३१२ ३ १२ ३१२
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।

२३ १२३१२ ३२उ ३१२र
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३॥

पदार्थ—( यदी ) यदि ( सुतेभिः ) सुसम्पन्न ( इन्दुभिः ) आनन्ददायक ( सोमेभिः ) ऐश्वर्यों से ( प्रतिभूषथ ) सुशोभित करो ( वेद ) जानता है ( विश्वस्य ) सबके ( मेधिरः ) बुद्धिमान् ( धृषत् ) धर्म के द्रोहियों को दबानेवाला ( तन्तम् ) उन उनको ( इत् ) ही ( आ ) भली भांति ( ईषते ) प्राप्त करता है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग सुसम्पन्न और सुखदायी ऐश्वर्यों से सभाध्यक्ष को सुशोभित करो तो वह बुद्धिमान् तथा धर्म द्रोहियों को दबानेवाला सब विषयों को जानकर उनको यथायोग्य तुम्हारे लिए उपस्थित करेगा ॥३॥

१४४३—भरद्वाजः । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

३ १२ ३ २उ ३१ २३१ २ ३२
अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।

३१२ ३१२३१२३ १२ ३१२
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥४॥

पदार्थ—( अस्मै अस्मै ) इस इसके लिए ( इत् ) ही ( अन्धसः ) अन्न के ( अध्वर्यो ) हे अहिंसा के पक्षपाती ( प्र भर ) पूर्ण कर ( सुतम् ) रस को ( कुवित् ) बहुत ( समस्य ) सब ( जेन्यस्य ) शत्रु की ( शर्धतः ) उत्साही ( अभिशस्तेः ) हिंसा से ( अवस्वरत् ) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थ—हे अहिंसा के पक्षपाती पुरुष ! इन इन सभा-सेनाध्यक्षों के लिए अन्न के सारभूत रस को प्रदान करो । ये लोग जयशील, उत्साही शत्रु की ओर से किए जानेवाले आक्रमणों से बचाते हैं ॥४॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

१४४४—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३२३१२र ३१२ ३१२ १२ ३१२
बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥१॥

पदार्थ—( बभ्रवे ) पालन-पोषण करनेवाले ( नु ) पादपूरक ( स्वतवसे ) स्वयं बलवान् ( अरुणाय ) तेजस्वी ( दिविस्पृशे ) द्युलोक पर्यन्त व्यापक ( सोमाय ) परमेश्वर के लिए ( गाथम् ) सामगान ( अर्चत ) करो ॥१॥

भावार्थ—हे उपासको ! तुम लोग पालन पोषण करनेवाले, स्वयं बलशाली, तेजस्वी तथा सर्वव्यापक परमेश्वर का साम मन्त्र से गुणगान करो ॥१॥

१४४५—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१ २र ३३१२ ३१२
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥२॥

पदार्थ—( हस्तच्युतेभिः ) हस्त नक्षत्र से च्युत हुए [बरसते हुए] ( अद्रिभिः ) मेघों से ( सुतम् ) उत्पन्न हुए ( सोमम् ) सोमलता आदि औषधियों तथा फसली पौधों को ( पुनीतन ) पवित्र कर ( मधौ ) बसन्त ऋतु में ( मधु ) मधुरता, शोभा, ( आधावत ) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हस्त नक्षत्र में बरसने वाले मेघों से उत्पन्न हुई सोमलता आदि औषधियों तथा फसली पौधों को पुष्ट करता है तथा बसन्त ऋतु में शोभा और मधुरता प्रदान करता है ॥२॥

१४४६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र १ २३ १ २ २ ३ १ २
अध्वसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥३॥

पदार्थ—( अध्वसा ) अन्न और जल से ( इत् ) ही ( उपसीदत ) सेवा करो ( दध्ना ) इन्द्रियों से ( अभिश्रीणीतन ) परिपक्व करो ( इन्दुम् ) ऐश्वर्यवान आत्मा को ( इन्द्रे ) परमेश्वर की शरण में ( दधातन ) धारण करो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ऐश्वर्यवान् आत्मा को अन्न-जल से तृप्त तथा इन्द्रियों से परिपक्व करो । उसे परमेश्वर की शरण मे पहुचाओ ॥३॥

१४४७—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
अमित्रहा विचर्षणि· पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४॥

पदार्थ—( अमित्रहा ) अज्ञान और रोग आदियों का नाश करनेवाला ( विचर्षणि ) सबका साक्षी ( पवस्व ) प्राप्त करा ( सोम ) हे परमेश्वर ( शं ) सुख ( गवे ) इन्द्रियों के लिए ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिए ( अनुकामकृत् ) सफल मनोरथ करनेवाला ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अज्ञान और रोगादि शत्रुओं का नाशकर्त्ता, सबका साक्षी तथा विद्वानों को सफलमनोरथ करनेवाला है । तू हमारी इन्द्रियों को शान्ति दे ॥४॥

१४४८—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पति ॥५॥

पदार्थ—( इन्द्राय ) परमेश्वर के ( सोम ) हे आत्मन् ( पातवे ) पान करने के लिए ( मदाय ) आनन्द को ( परिषिच्यसे ) सब प्रकार से सींचा जाता है ( मनश्चित् ) मन में चेतना देनेवाला ( मनसस्पति ) मन का स्वामी ॥५॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! मन में चेतनता देनेवाला तथा उसका स्वामी तू परमेश्वर के आनन्द का पान करने के लिए सब प्रकार से ज्ञान द्वारा सींचा जाता है ॥५॥

१४४९—असितो देवलो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि ण· । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६॥

पदार्थ—( पवमान ) हे पवित्रकारक ( सुवीर्य ) उत्तम पराक्रम ( रयिम् ) धन को ( सोम ) हे विद्वान् ( रिरीहि ) दे ( न ) हमे ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशाली ( इन्द्रेण ) परमेश्वर के साथ ( नः ) हमे ( युजा ) युक्त कर ॥६॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष ! तू हमे उत्तम पराक्रम तथा ज्ञान धन प्रदान कर । तू हमें परमेश्वर के साथ युक्त कर ॥६॥

१४५०—सुकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २
उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

पदार्थ—( उत ) उत्तम ( ह ) प्रसिद्ध ( इत् ) ही ( अभि ) सब प्रकार से ( श्रुतामघ ) प्रसिद्ध धनी ( वृषभम् ) बलवान् को ( नर्यापसम ) मनुष्यों का उपकार करनेवाले कर्म म युक्त ( अस्तारम् ) दानी को ( एषि ) प्राप्त होता है ( सूर्य ) हे सूर्य के समान तेजस्वी [इन्द्र – विद्वान् पुरुष] ॥१॥

भावार्थ—हे सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! तू प्रसिद्ध धनी, बलवान् मनुष्यो का उपकार करनेवाले तथा दानी आदि सभी को प्राप्त होता है ॥१॥

१४५१—सुकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र १ २ ३ १ २
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२॥

पदार्थ—( नव ) नव सख्या ( यः ) जो ( नवतिं ) नब्बे [९०] के समान ( पुरः ) सघातों का ( बिभेद ) छिन्न भिन्न करता है ( बाह्वोजसा ) विरोधी किरणों के तेज बल से ( अहिं ) मेघ को ( च ) भी ( वृत्रहा ) अन्धकार का नाशक ( अवधीत ) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—जो अन्धकार का नाश करनेवाला सूर्य नब्बे (९०) की नव संख्या के समान विरोधी किरणों के तेजोबल से मेघस्थ जल-सघातों को छिन्न भिन्न करता है वही मेघ को भी नष्ट करता है ॥२॥

१४५२—सुकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

पदार्थ—( सः ) वह ( न ) हमारा ( इन्द्र ) परमेश्वर ( शिव· ) कल्याणकारी ( सखा ) मित्र ( अश्वावत् ) अश्वयुक्त ( गोमत् ) गौओं से युक्त ( यवमत् ) यव आदि धान्यों से युक्त ( उरुधारेव ) गाय के दुग्ध की धारा के समान ( दोहते ) देता है ॥३॥

भावार्थ—हमारा मित्र, कल्याणकारक वह परमेश्वर दुग्ध की धार के समान गौ, घोड़े और यव आदि धान्यों से युक्त धन को हमें प्रदान करता है ॥३॥

॥ द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

१४५३—विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥१॥

पदार्थ—( विभ्राट् ) प्रकाशस्वरूप ( बृहत् ) महान् ( पिबतु ) रक्षा करे ( सोम्यं ) ओषधियों में होनेवाले ( मधु ) रस को ( आयुः ) आयु को ( दधत् ) धारण करे ( यज्ञपतौ ) यजमान में ( अविह्रुतम् ) उपद्रवरहित ( वातजूतः ) वायु का प्रेरक ( य ) जो ( अभिरक्षति ) भली भांति रक्षा करता है ( त्मना ) स्वयं ( प्रजा ) प्रजा का ( पिपर्ति ) पूर्ण करता है ( बहुधा ) बहुत प्रकार से ( विराजति ) विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशस्वरूप, महान् तथा वायु को प्रेरणा देनेवाला जो परमेश्वर स्वयं प्रजा की अनेक प्रकार से पूर्ति और रक्षा करता है तथा सब में विराजमान हो रहा है वह ओषधियों के रस की रक्षा करे तथा यजमान को दीर्घायु दे ॥१॥

१४५४—विभ्राट् । सूर्य । जगती ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

पदार्थ—( विभ्राट् ) तेजस्वी ( बृहत् ) महान् ( सुभृतं ) सबको धारण करनेवाले [सर्वाधार] ( वाजसातम ) अन्न ज्ञान और बल का दाता ( धर्मन् ) धर्म पर ( दिव ) द्युलोक के ( धरुणे ) धारक ( सत्यम ) अविनाशी ( अर्पितम् ) स्थित ( अमित्रहा ) रोग आदि का नाशक ( वृत्रहा ) अज्ञाननाशक ( दस्युहन्तमं ) विघ्ननाशक ( ज्योतिः ) परम ज्योति ( जज्ञे ) जाना जाता है ( असुरहा ) आसुरी वृत्तियों का विनाशक ( सपत्नहा ) कामादि शत्रुओं का नाशक ॥२॥

भावार्थ—तेजस्वी महान्, सर्वाधार, बल और ज्ञान का दाता, द्युलोक को धारण करनेवाले धर्म पर स्थित, अविनाशी, रोग, अज्ञान, आसुरी वृत्ति, कामादि शत्रु तथा नाना विघ्नों का नाश करनेवाला परम ज्योति परमेश्वर विद्वानों से जाना जाता है ॥२॥

१४५५—विभ्राट् । सूर्य । जगती ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

पदार्थ—( इद ) यह ( श्रेष्ठ ) श्रेष्ठ ( ज्योतिषां ) प्रकाशो का भी ( ज्योतिः ) प्रकाशक ( उत्तम ) उत्तम ( विश्वजित् ) विश्व पर विजय करनेवाला ( धनजित् ) धन पर विजय करनेवाला ( उच्यते ) कहा जाता है ( बृहत ) महान् ( विश्वभ्राट् ) विश्व का प्रकाशक ( भ्राजः ) तेजस्वी ( महि ) महान् ( सूर्य ) परमेश्वर ( दृशे ) देखने के लिए ( उरु ) महान् ( पप्रथे ) विस्तार करता है ( सहः ) अज्ञाननाशक ( ओज ) तेज का ( अच्युतम् ) अविनाशी ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर श्रेष्ठ, प्रकाशकों का प्रकाशक परमज्योति कहा जाता है । विश्व पर विजय पानेवाला, धन का जेता, विश्व का प्रकाशक तथा महान् वह देखने के लिए अज्ञान नाशक, अविनाशी तथा महान् तेज का विस्तार करता है ॥३॥

१४५६—वसिष्ठः । इन्द्र । बृहती ।

३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे विद्वान् ( क्रतुम् ) ज्ञान ( नः ) हमें ( आभर ) दे ( पिता ) पिता ( पुत्रेभ्यः ) पुत्रों के लिए ( यथा ) जैसे ( शिक्षा ) शिक्षा दे ( नः ) हमें ( अस्मिन् ) इस ( पुरुहूत ) हे बहुतों से अभिलषित [illegible] ( यामनि ) यज्ञ में ( जीवाः ) साधारण जीव [साधारण जन] ( ज्योतिः ) परम ज्योति को ( अशीमहि ) प्राप्त करें ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वप्रिय विद्वान् पुरुष ! तू हमें ज्ञान से परिपूर्ण कर । पुत्रों को पिता के समान हमें शिक्षा दे । साधारण जन हम यज्ञ में [illegible] परम ज्योति को प्राप्त करें ॥१॥

१४५७—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासोऽवक्रमुः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥

पदार्थ—( मा ) नहीं ( नः ) हमें ( अज्ञाता ) अज्ञात ( वृजना ) उपद्रवी ( दुराध्यः ) दुष्ट ( मा ) नहीं ( अशिवासः ) अभद्र ( अवक्रमुः ) आक्रमण करें ( त्वया ) तुझ से ( वयं ) हम ( प्रवतः ) नम्र ( शश्वतीः ) सनातन ( अपः ) कर्मों को ( अति ) अतिक्रमण ( शूर ) हे शूर ( तरामसि ) तरते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अज्ञात, उपद्रवी, दुराग्रही तथा अभद्र लोग हमें कभी न सतावें । नम्र हम लोग तेरी कृपा से पुराने कर्म-बन्धनों को पार कर जावें ॥२॥

१४५८—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥३॥

पदार्थ—( अद्य अद्य ) आज ( श्वः श्वः ) कल ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( त्रास्व ) रक्षा करता है ( परे च ) परसों भी ( नः ) हमारी ( विश्वा ) सारे ( च ) और ( नः ) हम ( जरितॄन् ) भक्तों की ( सत्पते ) हे सज्जनों के पालक ! ( अहा ) प्रतिदिन ( दिवा ) दिन में ( नक्तं ) रात्रि ( च ) और ( रक्षिषः ) रक्षा करता है ॥३॥

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! तू आज, कल तथा परसों हमारी रक्षा करता है । प्रति दिन हम भक्तों की तू रात-दिन रक्षा करता है ॥३॥

१४५९—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥४॥

पदार्थ—( प्रभङ्गी ) प्रलय करनेवाला ( शूरः ) सर्व शक्तिमान् ( मघवा ) यज्ञों का स्वामी ( तुवीमघः ) सम्पदाओं का स्वामी ( सम्मिश्लः ) सर्वव्यापक ( वीर्याय ) बल के लिए ( कम् ) सुखस्वरूप ( उभा ) दोनों ( ते ) तेरी ( बाहू ) मित्र और वरुण—प्राण और उदान शक्तियां ( वृषणा ) वृष्टि करनेवाली ( शतक्रतो ) हे सर्वज्ञ ( नि ) निश्चय ( या ) जो ( वज्रं ) जल को ( मिमिक्षतुः ) बरसाती हैं ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू प्रलयकर्ता, सर्वशक्तिमान् सफल यज्ञ और संपूर्ण सम्पदाओं का स्वामी, सर्वव्यापक तथा पराक्रम के लिए सुखस्वरूप है । वर्षा करनेवाली तेरी प्राण और उदान शक्तियां जल बरसाती हैं ॥४॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१४६०—वसिष्ठ । सरस्वान् । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—( जनीयन्तः ) कलत्र चाहते हुए ( नु ) अब ( अग्रवः ) उपासक ( पुत्रीयन्तः ) पुत्रों की इच्छा करनेवाले ( सुदानवः ) उत्तम दानी ( सरस्वन्तम् ) वाणी के स्वामी परमेश्वर को ( हवामहे ) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ—स्त्री-पुत्रों को चाहते हुए, उत्तम दानी हम उपासक परमेश्वर को स्मरण करते हैं ॥१॥

१४६१—भरद्वाजः । सरस्वती । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥२॥

पदार्थ—( उत ) और ( नः ) हमारा ( प्रिया ) कल्याण करनेवाली ( प्रियासु ) कल्याण करनेवालियों में ( सप्तस्वसा ) सात छन्दों वाली ( सुजुष्टा ) भली प्रकार अभ्यास की हुई ( सरस्वती ) वेदवाणी ( स्तोम्या ) प्रशंसा के योग्य ( भूत् ) हो ॥२॥

भावार्थ—अत्यन्त कल्याणकारिणी, सात छन्दों से युक्त और अभ्यास की गई वेदवाणी प्रशंसा के योग्य हो ॥२॥

१४६२—विश्वामित्रः । सविता । गायत्री ।

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥

पदार्थ—( तत् ) उस ( सवितुः ) सृष्टिकर्ता परमेश्वर के ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ ( भर्गः ) तेज को ( देवस्य ) देव के ( धीमहि ) धारण करते हैं ( धियः ) बुद्धियों को ( यः ) जो ( नः ) हमारी ( प्रचोदयात् ) प्रेरित करता है ॥१॥

भावार्थ—जो हमारी बुद्धियों को सदा सत्कर्मों में प्रेरित करता है उस सृष्टिकर्ता परमात्मदेव के श्रेष्ठ तेज को हम धारण करते हैं ॥१॥

१४६३—मेधातिथि । ब्रह्मणस्पति । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥२॥

पदार्थ—( सोमानं ) अध्ययनाध्यापन यज्ञों के ( स्वरणम् ) वक्ता ( कृणुहि ) कर ( ब्रह्मणस्पते ) हे वेद विद्या के रक्षक विद्वन् ( कक्षीवन्तम् ) अनेक विद्याओं का ज्ञाता ( य ) जो ( औशिजः ) मेधावी का पुत्र ॥२॥

भावार्थ—हे वेदविद्या के रक्षक विद्वन् ! तू मेधावी का पुत्र है, अतः मुझे अध्यापन-अध्ययन आदि यज्ञों का वक्ता तथा अनेक विद्याओं का ज्ञाता बना ॥२॥

१४६४—मेधातिथि । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे विद्वान् ( आयूंषि ) आयुओं को ( पवसे ) प्राप्त कराता है ( आसुव ) प्रदान कर ( ऊर्जम् ) बल ( इषम् ) ज्ञान को ( च ) और ( नः ) हमें ( आरे ) दूर ( बाधस्व ) कर ( दुच्छुनाम् ) दुर्गुणों को ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू हमें आयु प्राप्त कराता है । तू हमें बल और ज्ञान प्रदान कर तथा हमारे दुर्गुणों को दूर कर ॥३॥

१४६५—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।

१ २ ३ २ ३ १ २

महि वां क्षत्रं देवेषु ॥१॥

पदार्थ—( ता ) वे दोनों ( नः ) हमारे ( शक्तं ) समर्थ हैं ( पार्थिवस्य ) [स्थूल] पार्थिव शरीरवाले ( महः ) महान् ( रायः ) धन के ( दिव्यस्य ) इन्द्रिय सम्बन्धी सूक्ष्म शरीर का ( महि ) महान् ( वां ) अथवा ( क्षत्रम् ) बल ( देवेषु ) इन्द्रियों में ॥१॥

भावार्थ—प्राण और अपान दोनों हमारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर-सम्बन्धी महान् सम्पत्ति के विचार करने में समर्थ हैं । हमारी इन्द्रियों में इनका बल महान् है ॥१॥

१४६६—यजत । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३१ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥२॥

पदार्थ—( ऋतम् ) ज्ञान का ( ऋतेन ) सत्य नियम से ( सपन्ता ) सम्पर्क रखते हुए ( इषिरं ) कमनीय ( दक्षम् ) बल को ( आशाते ) अधिष्ठातारूप से व्याप्त करते हैं ( अद्रुहा ) द्रोहरहित ( देवौ ) देव ( वर्धेते ) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थ—सत्य नियम से ज्ञान का सम्पर्क रखनेवाले, द्रोहरहित, परमेश्वर और जीवात्मदेव कमनीय बल के अधिष्ठाता और बढ़ाने वाले हैं ॥२॥

१४६७—यजत । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३क २२ ३२क ३ १ २ ३ २ ३ १ २

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥३॥

पदार्थ—( वृष्टिद्यावा ) द्युलोक से वृष्टि के द्वारा ( रीत्यापा ) जल देनेवाले ( इषः ) अन्न के ( पती ) पालक ( दानुमत्याः ) दान करने योग्य ( बृहन्तं ) महान् ( गर्तम् ) आकाश को ( आशाते ) व्याप्त करते हैं ॥३॥

भावार्थ—वर्षा द्वारा जल देनेवाले, दानयोग्य, अन्न के पालक प्राण और उदान महान् अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं ॥३॥

१४६८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥१॥

पदार्थ—( युञ्जन्ति ) युक्त होते हैं ( ब्रध्नम् ) महान् ( अरुषम् ) मर्म की रक्षा करनेवाले [ तेजस्वी ] ( चरन्तम् ) व्यापक ( परि ) सब प्रकार से ( तस्थुषः ) स्थावरों का ( रोचन्ते ) प्रकाशमान होते हैं ( रोचना ) ज्ञानयुक्त ( दिवि ) उत्तम ज्ञान प्रकाश में ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानयुक्त जो लोग महान्, तेजस्वी तथा स्थावर और जंगमों के व्यापक परमेश्वर से युक्त होते हैं वे विज्ञान के प्रकाश में प्रकाशित होते हैं ॥१॥

१४६९—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२॥

पदार्थ—( युञ्जन्ति ) युक्त करते हैं ( अस्य ) इस जीव के ( काम्या ) कमनीय ( हरी ) दुःखहर्ता ( विपक्षसा ) विविध प्रकार से ग्रहण किए गए ( रथे ) [illegible]

रथ में ( शोणा ) लाल रग के ( वृष्णू ) बलवान् ( नृवाहसा ) मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार लोग कमनीय विविध प्रकार से ग्रहण किए गए बलवान् लाल रग के तथा मनुष्यो को एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाने मे समर्थ घोडो को रथ में जोडते है वैसे ही जीव अपने को परमेश्वर मे युक्त करें ।२।

१४७०—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

केतु कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथा ॥३॥

पदार्थ—( केतु ) ज्ञान को ( कृण्वन् ) करते हुए ( अकेतवे ) अज्ञानी के लिए ( पेश ) स्वर्ण आदि को ( मर्या ) हे मनुष्यो ( अपेशसे ) निर्धन के लिए ( समुषद्भि ) इसकी कामना करनेवाले विद्वानो के साथ ( अजायथा ) सुखी होओ ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अज्ञानी के लिए ज्ञान का प्रकाश तथा निर्धन के लिए स्वर्ण आदि सम्पत्ति को देनेवाले परमेश्वर के उपासक विद्वानो के साथ सुखी होओ ॥३॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

१४७१—उशना । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

अय सोम इन्द्र तुभ्य सुन्वे तुभ्य पवते त्वमस्य पाहि ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३१२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्व ह य चकृषे त्व ववृष इन्दु मदाय युज्याय सोमम् ॥१॥

पदार्थ—( अय ) यह ( सोम ) जीव ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( तुभ्य ) तेरी प्राप्ति के लिए ( सुन्वे ) जन्म ग्रहण करता है ( तुभ्य ) तेरे लिए ही ( पवते ) पवित्र होता है ( त्वम् ) तू ( अस्य ) इसकी ( पाहि ) रक्षा कर ( त्व ) तू ( ह ) ही ( य ) जिसको ( चकृष ) ज्ञानसपन्न करता है ( त्व ) तू ( ववृषे ) चुनता है ( इन्दु ) ऐश्वर्यवान् ( मदाय ) आनन्द के लिए ( युज्याय ) योग के लिए ( सोमम् ) जीव को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जिस ऐश्वर्यशाली जीव को आनन्द और योग के लिए ज्ञानसपन्न करता तथा चुन लेता है वह ससार म तेरी प्राप्ति के लिये जन्म ग्रहण करता और तेरे ही लिए पवित्र होता है । तू इसकी रक्षा कर ॥१॥

१४७२—उशना । सोम । त्रिष्टुप ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ २ ३ २ १ २

स ई रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥

पदार्थ—( स ) वह ( ई ) इसको ( रथो न ) रथ के समान ( भुरिषाड ) भार सहने वाले ( अयोजि ) युक्त करता है ( मह ) महान् ( पुरूणि ) बहुत ( सातये ) देने के लिए ( वसूनि ) धनो को ( आत ईम् ) इसके बाद ( विश्वा ) सारे ( नहुष्याणि ) मनुष्य सम्बन्धी ( जाता ) सृष्टिया [प्रजा] ( स्वर्षाता ) सुखदाता ( वने ) भजनीय [परमेश्वर की शरण में] ( ऊर्ध्वा ) उन्नति ( नवन्त ) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—महान् परमेश्वर भार सहन करनेवाले रथ के समान पर्याप्त धन देने के लिए उस जीव को युक्त करता है । भजन के योग्य सुखदायक परमेश्वर की शरण में सारी मनुष्य प्रजा उन्नति लाभ करती है ॥२॥

१४७३—उशना । सोम । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ २र ३ २

शुष्मी शर्धो न मारुत पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २

आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्सा पृतनाषाण् न यज्ञ ॥३॥

पदार्थ—( शुष्मी ) बलवान् ( शर्ध ) बल के ( न ) समान ( मारुत ) वायु-सम्बन्धी ( पवस्व ) पवित्र कर ( अनभिशस्ता ) अनिन्दित ( दिव्या ) द्युलोक में होनेवाली [ दिव्य ] ( यथा ) समान ( विट् ) प्रजा के ( आप ) जल के समान ( मक्षू ) शीघ्र ( सुमति ) शोभन मतिवाला ( भव ) है ( नः ) हमारे लिए ( सहस्राप्सा ) अनेक वेशवाला ( पृतनाषाड ) सेनापति के ( न ) समान ( यज्ञ ) पूज्य ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वायु के बल के समान बलवान् द्युलोक की प्रजा सूर्य आदि के समान पवित्र है । तू हमें जल के समान पवित्र कर तथा हमारा सुमति दाता हो । तू अनेक वेशधारी सेनापति के समान पूजनीय है ॥३॥

१४७४—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥१॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( अग्ने ) हे विद्वन् ( यज्ञानां ) श्रेष्ठ कर्मों का ( होता ) कर्त्ता ( विश्वेषाम् ) सारे ( हितः ) कल्याणकारी ( देवेभि ) उत्तम गुणों द्वारा ( मानुषे ) मनुष्य ( जने ) समाज में ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सारे शुभ कर्मों का कर्त्ता तथा अपने उत्तम गुणों से मनुष्य समाज का हितकारी है ॥१॥

१४७५—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२॥

पदार्थ—( सः ) वह ( नः ) हमें ( मन्द्राभिः ) आनन्ददायक क्रिया से युक्त ( अध्वरे ) कल्याणकारी व्यवहार में ( जिह्वाभिः ) वाणियों से ( यजा ) संगत कर ( मह ) महान् ( आ ) भली भांति ( देवान् ) उत्तम गुणों को ( वक्षि ) प्राप्त करा ( यक्षि ) दे ( च ) और ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू कल्याणकारी व्यवहार मे हमें आनन्ददायक वाक् शक्तियों से युक्त कर । हमें उत्तम गुण प्रदान कर ॥२॥

१४७६—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वेत्था हि वेधो अध्वन पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥

पदार्थ—( वेत्था ) जानता है ( हि ) निश्चय ( वेधः ) हे विधाता ( अध्वनः ) बड़े मार्गों को ( पथ ) छोटे मार्गों को ( च ) और ( देव ) हे देव ( अञ्जसा ) ठीक ठीक ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( यज्ञेषु ) सांसारिक तथा पारमार्थिक व्यवहारों में ( सुक्रतो ) हे उत्तम कर्मवाले ॥३॥

भावार्थ—हे विधाता, उत्तम कर्मवाले परमात्मदेव ! तू लौकिक तथा पारमार्थिक व्यवहारो के ऊँचे नीचे मार्गों को ठीक-ठीक जानता है । अतः हमे उत्तम मार्ग पर चला ॥३॥

१४७७—देवश्रवा, देववातो वा । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥१॥

पदार्थ—( होता ) कर्मफल दाता ( देवः ) देव ( अमर्त्यः ) अविनाशी ( पुरस्तात् ) प्रथम ( एति ) विद्यमान होता है ( मायया ) बुद्धि से ( विदथानि ) विविध प्रकार के ज्ञानों को ( चोदयन् ) प्रेरणा करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—कर्मफल दाता, सबका देव परमेश्वर अनेक प्रकार के विज्ञानों की प्रेरणा करता हुआ अपनी ज्ञानशक्ति के साथ सृष्टि के आरम्भ से भी पहले विद्यमान रहता है ॥१॥

१४७८—देवश्रवा देववातो वा । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधन ॥२॥

पदार्थ—( वाजी ) ज्ञानवान् और बलवान ( वाजेषु ) संग्रामों में ( धीयते ) नियुक्त किया जाता है ( अध्वरेषु ) कल्याणकारी यज्ञों में ( प्रणीयते ) नेता होता है क्योंकि ( विप्र ) ज्ञानी ( यज्ञस्य ) यज्ञ आदि उत्तम व्यवहारो का ( साधनः ) साधन [ सिद्ध करनेवाला ] होता है ॥२॥

भावार्थ—बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष संग्रामों तथा कल्याणकारी यज्ञों का नेता होता है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही उत्तम और व्यावहारिक कार्यों को सिद्ध कर सकता है ॥२॥

१४७९—देवश्रवा देववातो वा । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।

१ २ ३ २ ३ १ २

दक्षस्य पितरं तना ॥३॥

पदार्थ—( धिया ) ज्ञान से ( चक्रे ) करता है ( वरेण्यः ) सबके श्रेष्ठ ( भूतानां ) प्राणिमात्र का ( गर्भम् ) गर्भ ( आदधे ) धारण करता है ( दक्षस्य ) बल का ( पितरम् ) उत्पादक ( तना ) संपदायें ॥३॥

भावार्थ—सब से श्रेष्ठ परमेश्वर प्राणिमात्र के गर्भ को धारण करता और सबके लिए बल देनेवाली सम्पदायें उत्पन्न करता है ॥३॥

卐 पंचम खण्ड समाप्त 卐

१४८०—सुदीति । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।

३ १ २ ३ २

रसा दधीत वृषभम् ॥१॥

पदार्थ—( वा ) अभी भांति (भुवि) संसार में (सिञ्चत) सींचो ( श्रियम् ) राजलक्ष्मी को ( रोदस्यो ) द्युलोक और पृथिवी में ( अभिश्रियम् ) कीर्ति फैलानेवाली ( धत्त ) हे आनन्द देनेवाले मनुष्य ( दधीत ) धारण करो ( सुवृक्तम् ) सकल कामनाओं के सफल करनेवाले को ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस संसार में यश देनेवाली राजलक्ष्मी को प्राप्त कर पूर्ण करो तथा सकल कामनाओं को सफल करनेवाले परमेश्वर का ध्यान भी करो ।१।

१४८१—हर्यत । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २क २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ते जानत स्वमोक्याऽ३ सं वत्सासो न मातृभिः ।

३ १ २ ३ १ २

मिथो नसन्त जामिभिः ॥२॥

पदार्थ—( ते ) तुम सब ( जानत ) जानो ( स्वम् ) अपना ( ओक्यम् ) आश्रय ( सम् ) सम्यक् ( वत्सासः ) बच्चों के ( न ) समान ( मातृभिः ) माताओं के साथ (मिथः) परस्पर (नसन्त) इकट्ठे होओ (जामिभिः) कुटुम्बियों के साथ ।२।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग माताओं के साथ बच्चों के समान अपने कुटुम्बियों के साथ परस्पर मिलो और अपना आश्रय परमेश्वर को जानो ॥२॥

१४८२—हर्यतः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २उ ३क २र

उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥३॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( स्रक्वेषु ) घरों में ( बप्सतः ) उपभोग करने वाले ( कृण्वते ) करते हैं ( धरुणम् ) धारण करनेवाले (दिवि) अन्तरिक्ष में (इन्द्रे) सब सम्पदाओं के स्वामी ( अग्ना ) परमेश्वर में ( नमः ) नमस्कार ( स्वः ) सुख का ॥३॥

भावार्थ—गृहों में रहकर जीवनदाता सुखों का उपभोग करते हुए पुरुष सब संपदाओं के स्वामी परमेश्वर को नमस्कार करते हैं ॥३॥

१४८३—बृहद्दिव । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ १ ३ २ ३ १ २

सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥१॥

पदार्थ—( तत् ) परमेश्वर (इत्) ही (आस) व्यापक हो रहा है (भुवनेषु) लोकों में ( ज्येष्ठ ) श्रेष्ठ अनादि ( यतः ) जिस निमित्त कारण से ( जज्ञे ) उत्पन्न हुआ ( उग्रः ) तेजस्वी ( त्वेषनृम्णः ) दीप्तबलवाला ( सद्यः ) शीघ्र ( जज्ञानः ) उत्पन्न [ उदय ] (निरिणाति) नष्ट करता है ( शत्रून् ) मनुष्यों को दुःख देनेवाले रोग तथा कृमियों को ( अनु ) अनुकूलता से ( यं ) जिसकी ( विश्वे ) सारे ( मदन्ति ) सुखी होते हैं ( ऊमाः ) प्राणी ॥१॥

भावार्थ—सर्वश्रेष्ठ तथा अनादि परमेश्वर लोकों में व्यापक हो रहा है। उस निमित्तकारण से ही महान् तेजबलवाला सूर्य उत्पन्न हुआ । वह सूर्य उदय होता हुआ प्राणियों को पीड़ा देनेवाले रोग तथा कृमियों का विनाश करता है । उसकी अनुकूलता से सारे प्राणी सुखी होते हैं ॥१॥

१४८४—बृहद्दिव । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥

पदार्थ—( वावृधानः ) बढ़ता हुआ ( शवसा ) बल से (भूर्योजाः ) अत्यन्त बलशाली ( शत्रुः ) विघ्नों का नाश करनेवाला ( दासाय ) शुभकर्मों के विनाशक पापी के लिए ( भियसं ) भय ( दधाति ) धारण करता है ( अव्यनत् ) स्थावर ( च ) और ( व्यनत् ) जङ्गम ( च ) भी ( सस्नि ) पवित्र ( सं ) सम्यक् (ते) तेरी ( नवन्त ) जाते हैं ( प्रभृता ) ज्ञान विज्ञान से भरे हुए लोग ( मदेषु ) स्तुतियों में ॥२॥

भावार्थ—अत्यन्त बलशाली तथा विघ्नों का निवारक परमेश्वर अपनी शक्ति के समूह को बढ़ाता हुआ पापी को भय देता है । वह स्थावर तथा जङ्गम सभी को पवित्र करता है । हे परमेश्वर ! ज्ञानवान से पूर्ण लोग तेरी ही स्तुतियों में सम्मिलित होते हैं ॥२॥

१४८५—बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।

२ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ १ १ २

स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥

पदार्थ—( त्वे ) तुझ में ( क्रतुम् ) कर्म को ( वृञ्जन्ति ) समर्पण करते हैं ( विश्वे ) सारे ( द्विः ) दूसरे [ गृहस्थ आश्रमवाले ] ( यत् ) जब ( एते ) ये ( त्रिः ) तीसरे [वानप्रस्थ आश्रमवाले] अथवा पुत्र का जन्म होने से तीन ( भवन्ति ) होते हैं ( ऊमाः ) प्राणी ( स्वादोः ) स्वादु से ( स्वादीयः ) स्वादिष्ट ( स्वादुना ) स्वादु सामग्री से ( सृजा ) रचता है ( सम्) सम्यक ( अदः ) यह ( सुमधु ) उत्तम रस ( मधुना ) जल से ( अभियोधीः ) मिलाता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सारे प्राणी गृहस्थी या वानप्रस्थी होने पर अपने कर्मों को तुझ में ही समर्पण करते हैं। तू अत्यन्त स्वादवाली वस्तु को स्वाद के कारण भूत सामग्री से तथा उत्तम रस को जल से उत्पन्न करता है ॥३॥

१४८६—गृत्समदः । इन्द्र । अष्टिः ।

१ २ ३ १ २र ३ २

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

स्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरु

२र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥

पदार्थ— (त्रिकद्रुकेषु) तीन—उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय धर्मवाले पदार्थों में ( महिष ) महान् ( यवाशिरम् ) यव दुग्ध आदि से युक्त ( तुविशुष्मः ) महान् बलशाली ( तृम्पत् ) तृप्त होता हुआ (सोमम्) सोम आदि औषधि को ( अपिबत्) पान करता है (विष्णुना) परमेश्वर तथा वायु द्वारा (सुत) उत्पादित (यथावशम्) इच्छानुकूल (स) वह (ईम्) पदपूरक (ममाद) हर्ष से युक्त होता है ( महिकर्म ) महान् कर्म ( कर्तवे ) करने के लिए ( महाम् ) महान् (उरुम्) बहुत महान् (स) वह ( एनम् ) इसको ( सश्चत् ) प्राप्त होता है (देवः) देव ( देवं) देव (सत्यः) सत्यस्वरूप ( इन्दु ) ऐश्वर्यवान् ( सत्यम् ) सत्यस्वरूप ( इन्द्रम्) परमेश्वर को ।१।

भावार्थ—महान् तथा अत्यन्त बलशाली आत्मा उत्पत्ति स्थिति, प्रलय वाले लोकों में परमेश्वर अथवा वायु के द्वारा उत्पादित यव तथा दुग्ध आदि से मिले सोम आदि भोज्य पदार्थ का अपनी इच्छानुकूल पान करता है। तृप्त होता हुआ वह महान् कर्मों के करने में हर्षित होता है । सत् तथा ऐश्वर्यवान् वह आत्मदेव महान् सर्वव्यापक तथा सत्यस्वरूप इस परमात्मदेव को प्राप्त करता है ॥१॥

१४८७—गृत्समदः । इन्द्र । अष्टिः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र

साकं जात क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ

३ २ ३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २

साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं

३ २ ३ १ ३ १ २र ३ १ २र

सश्चद्देवो देव सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥२॥

पदार्थ—( साकम् ) साथ ( जातः ) उत्पन्न ( क्रतुना ) ज्ञान तथा कर्म के ( साकम् ) साथ ( ओजसा ) बल के ( ववक्षिथः ) वहन करता है ( साकम् ) साथ ( वृद्धः ) बढ़ा हुआ ( वीर्यैः ) पराक्रमों के ( सासहिः ) दबानेवाला ( मृधः ) हिंसक वृत्तियों को ( विचर्षणिः ) द्रष्टा ( दाता ) देनेवाला ( राधः ) धन की ( स्तुवते ) प्रशंसा करता है ( काम्यम् ) चाहने योग्य ( वसु ) सुख के बसानेवाले ( प्रचेतन ) चेतनस्वरूप ( स ) वह ( एनम् ) इस ( सश्चत् ) प्राप्त होता है ( देव ) देव ( देवम् ) देव ( सत्य ) अविनाशी ( इन्दुः ) जीव क ( सत्यम् ) त्रिकाल सत्य ( इन्द्रम् ) परमेश्वर को ॥२॥

भावार्थ—चेतनस्वरूप ज्ञान और कर्म के साथ उत्पन्न, पराक्रम के साथ बढ़ा हुआ, हिंसक वृत्तियों को दबानेवाला, द्रष्टा तथा दाता जो बल से इस शरीर को धारण कर रहा है तथा कामना करने योग्य, सुखकारक संसारी धन की प्रशंसा करता है वह अविनाशी जीव सत्यस्वरूप परमात्मदेव को प्राप्त करता है ॥२॥

१४८८—गृत्समदः । इन्द्र । अष्टि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा

२र ३ २ ३ १ २

रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।

१ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥३॥

पदार्थ—( अध ) अनन्तर ( त्विषीमान् ) प्रकाशस्वरूप ( अभि ) सब ओर से ( ओजसा ) बल के ( क्रिविं ) कूप के समान ( युधा ) व्यापकता या गति शक्ति से ( अभवत् ) है ( आ ) अच्छी भांति ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक को

( अपृणक् ) पूर्ण करता है ( अस्य ) इसके ( मज्मना ) बल से ( प्रवावृधे ) बढ़ता है ( अधत्त ) धारण करता है ( अन्यं ) दूसरे को ( जठरे ) मध्य में ( प्र ) उत्तम रूप से ( ईम् ) इससे ( अरिच्यत ) अतिरिक्त [पृथक्] रहता है ( प्रचेतय ) जानता है ( स ) वह ( एनम् ) इसको ( सश्चत् ) संयुक्त करता है ( देव ) देव ( देव ) दिव्य ( सत्य ) अविनाशी ( इन्दुः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ( सत्यम् ) अविनाशी ( इन्दुम् ) जीव को ॥३॥

भावार्थ—जो प्रकाशस्वरूप तथा अपने तेज से सब दिव्यों को तृप्त करता है, जो अपनी व्यापकता से सूर्य के समान द्यु और पृथिवी लोक के सर्वों को पूर्ण करता है, जिसकी महिमा से सारा जगत् बढ़ता है, जो सबको मध्य में सब पदार्थों को धारण करता तथा स्वयं उनसे पृथक् रहता है, जो सबको जानता तथा अविनाशी जीव को शरीर से युक्त करता है वह सत्यस्वरूप अविनाशी देव परमेश्वर है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 त्रयोदशोऽध्यायः समाप्त 卐

卐

# चतुर्दशोऽध्यायः

१४८९—प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१॥**

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( प्र ) उत्तम ( गोपतिम् ) इन्द्रियों के स्वामी ( गिरा ) वेदवाणी द्वारा ( इन्द्रम् ) जीव की ( अर्च ) प्रशंसा करो ( यथा विदे ) यथावत् जानने के लिये ( सूनुम् ) पुत्र स्वरूप ( सत्यस्य ) परमेश्वर के ( सत्पतिम् ) सद्गुण के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! तू इन्द्रियों के स्वामी, परमेश्वर के पुत्ररूप तथा सद्गुणों के पालक जीव की यथावत् जानने के लिये वेदमन्त्र से प्रशंसा कर ॥१॥

१४९०—प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

**आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥२॥**

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( हरयः ) सूर्य की किरणें ( ससृज्रिरे ) उत्पन्न की गई हैं ( अरुषी ) प्रकाशमान ( अधि ) अधिकार करके ( बर्हिषि ) अन्तरिक्ष में ( यत्र ) जिस ( अभि संनवामहे ) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस अन्तरिक्षलोक में सूर्य की किरणें उत्पन्न की गयी हैं उस पर योग सिद्धियों से अधिकार करके हम परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥२॥

१४९१—प्रियमध । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

**इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥३॥**

पदार्थ—( इन्द्राय ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ( गाव ) वेदवाणियाँ ( आशिरम् ) आश्रयण करने योग्य ( दुदुह्रे ) दोहन करती हैं ( वज्रिणे ) न्यायकारी ( मधु ) विज्ञान को ( यत् ) जो ( सीम् ) दूर तक ( उपह्वरे ) समीप में ( विदत् ) विद्यमान है ॥३॥

भावार्थ—वेदवाणियाँ न्यायकारी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए उस ज्ञान का प्रकाश करती हैं जो सर्वत्र विद्यमान है ॥३॥

१४९२—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्र । प्रगाथ ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।**

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥१॥**

पदार्थ—( आ ) भली प्रकार ( नः ) हमारे ( विश्वासु ) सारे ( हव्यम् ) पुकारने योग्य ( इन्द्रम् ) विद्या, ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष को ( समत्सु ) बाधा के समयों में ( भूषत ) अलंकृत करो ( उप ) समीप ( ब्रह्माणि ) वेदाध्ययन ( सवनानि ) यज्ञ समयों में ( वृत्रहन् ) हे अज्ञाननाशक ( परमज्या ) हे काम, क्रोधादि शत्रुओं के नाशक ( ऋचीषम ) हे प्रशंसनीय ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सारे विघ्नकालों में विद्वान् पुरुष की सेवा करो । हे अज्ञाननाशक, काम-क्रोधादि को दूर करनेवाले तथा प्रशंसनीय विद्वन् ! आप हमारे वेदाध्ययन और यज्ञ समयों में उपस्थित रहो ॥१॥

१४९३—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्र । प्रगाथ ।

३ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

**त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।**

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

**तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥**

पदार्थ—( त्वं ) तू ( दाता ) देनेवाला ( प्रथमः ) प्रथम ( राधसाम् ) धनों का ( असि ) है ( सत्यः ) सत्यस्वरूप ( ईशानकृत् ) ऐश्वर्यशाली करनेवाला ( तुविद्युम्नस्य ) बहुत धन और अन्न के ( युज्या ) जोड़ने योग्य कार्यों को ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( पुत्रस्य ) पुत्र के ( शवसः ) बल के ( महः ) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू धनों आदि का दाता है । तू ही सत्यस्वरूप तथा भक्त को ऐश्वर्यशाली बनानेवाला है । तेरी कृपा से हम बहुत धन, अन्न, पुत्र तथा बल के प्राप्त करानेवाले कार्यों को स्वीकार करते हैं ॥२॥

१४९४—असितस्तु । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २र

**प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।**

१ २ ३ १ २र ३ १ २

**इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥१॥**

पदार्थ—( प्रत्नम् ) सनातन ( पीयूषम् ) अमृतमय ( पूर्व्यम् ) आदि ( यत् ) जो ( उक्थ्यम् ) प्रशंसनीय ( महः ) महान् ( गाहात् ) गम्भीर ( दिवः ) परमेश्वर से ( आ निरधुक्षत ) भली प्रकार दोहन करो ( इन्द्रम् ) परमेश्वर की ( अभि ) भली प्रकार ( जायमानम् ) उत्पन्न हुए ( समस्वरन् ) प्रशंसा करते हैं ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् लोग, सनातन अपूर्व प्रशंसनीय तथा अमृतरूप आनन्द और ऐश्वर्य को अति गंभीर तथा महान् परमेश्वर से दोहन करते हैं । उत्पन्न हुए उस आनन्द और परमेश्वर की प्रशंसा करते हैं ॥१॥

१४९५—असितस्तु । सोमः । बृहती ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

**आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।**

३ १ २र ३ १ २

**दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥२॥**

पदार्थ—( आत् ) अनन्तर ( ईम् ) इस ( केचित् ) कई योगीजन ( पश्यमानास ) साक्षात्कार करते हुए ( आप्यम् ) प्राप्त करने योग्य ( वसुरुचः ) आत्मप्रकाश वाले ( दिव्याः ) दिव्यगुणयुक्त ( अभ्यनूषत ) उपासना करते हैं ( दिवः ) द्युलोक के ( न ) नहीं ( वारम् ) अन्धकार [आवरण] को ( सविता ) सूर्य ( व्यूर्णुते ) हटाता है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर का साक्षात् करनेवाले, आत्मप्रकाश से युक्त तथा दिव्य विभूतियों वाले योगीजन सूर्य के उदय होने के पूर्व प्राप्त करने योग्य परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥२॥

१४९६—असितस्तु । सोम । बृहती ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

**अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।**

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

**यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥३॥**

पदार्थ—( अध ) अनन्तर ( यत् ) जो ( इमे ) ये ( पवमान ) हे शुद्धस्वरूप ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक में ( इमा ) इन ( च ) और ( विश्वा ) सारे ( भुवना ) लोकों में ( अभि ) व्यापक होकर ( मज्मना ) बल के साथ ( यूथे ) समूह में ( न ) समान ( निष्ठा ) स्थित ( वृषभ ) बैल के ( विराजसि ) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! क्योंकि तू गो-समूह में स्थित वृषभ के समान इस द्यु और पृथिवी लोक तथा सारे भुवनों में व्यापक होकर विराजमान है, अतः उपासनीय है ॥३॥

१४९७—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १उ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २र

**इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।**

१ २ ३ २ ३ १ २

**अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥१॥**

पदार्थ—( इयम् ) यह ( अ ) विशेष ( नु ) उत्तम रूप से ( त्वम् ) तू ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( सनिम् ) सेवनीय ( सकलम् ) सम्पूर्ण लोकों का ( नवज्ञानम् ) नये नये ज्ञान के साधन ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( देवेषु ) विद्वानों में ( प्रवोचः ) उपदेश करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे ग्रहण करने योग्य तथा नये नये ज्ञान के साधनभूत सम्पूर्ण लोकों का विद्वानों को उपदेश करता है ॥१॥

१४९८—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥२॥

पदार्थ—( विभक्ता ) वितरण करनेवाला ( असि ) है ( चित्रभानो ) हे अद्भुत ज्ञानप्रकाश वाले ( सिन्धोः ) नदी के ( ऊर्मौ ) प्रवाहशाली लहर के ( उपाके ) तट पर ( आ ) समान ( सद्यः ) तत्काल ( दाशुषे ) त्यागी के लिए ( क्षरसि ) वृष्टि करता है ॥२॥

भावार्थ—हे अद्भुत ज्ञान-प्रकाशवाले परमेश्वर ! तू धन का वितरण करने वाला है । नदी के किनारे से लहरों के समान तू दानी पुरुष के लिए धन की वृष्टि करता है ॥२॥

१४९९—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ १ २

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।

३ १ २ ३ १ २

शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥३॥

पदार्थ— ( आ ) भली प्रकार ( नः ) हमें ( भज ) सेवन कराता है ( परमेषु ) उत्कृष्ट ( आ ) भली प्रकार ( वाजेषु ) भोगों में ( मध्यमेषु ) मध्यमों में ( शिक्षा ) उपदेश करता है ( वस्वः ) धन का ( अन्तमस्य ) समीपवर्ती पृथिवी लोक के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें उत्कृष्ट तथा मध्यम श्रेणी के भोगों को प्राप्त कराता है । तू ही पृथिवीलोक-सम्बन्धी धन का उपदेश भी करता है ॥३॥

१५००—वत्स । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥१॥

पदार्थ—( अहं ) मैं विद्वान् जीव ( इत् ) ही ( हि ) निश्चय (पितुः) रक्षक ( परि ) सब प्रकार से ( मेधाम् ) बुद्धि को ऋतस्य परमेश्वर की ( जग्रह ) धारण किया है ( अहं ) मैं ( सूर्य इव ) सूर्य के समान ( अजनि ) हो गया हूँ ॥१॥

भावार्थ—(समाधि दशा में हुआ विद्वान् जीव कहता है)—मैंने सबके रक्षक परमेश्वर की बुद्धि को धारण कर लिया है । मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ ॥१॥

१५०१—वत्स । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।

२उ ३ २ ३ २ ३ १

येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥२॥

पदार्थ—( अहम् ) मैं ( प्रत्नेन ) प्रवाह रूप से होनेवाले अनादिकालिक ( जन्मना ) जन्म से ( गिरः ) वेदवाणियों को ( शुम्भामि ) अलङ्कृत करता हूँ ( कण्ववत् ) मेधावी की भाँति ( येन ) जिससे ( इन्द्र ) परमेश्वर ( शुष्मम् ) बल ( इत् ) ही ( दधे ) मुझ में धारण कराता है ॥२॥

भावार्थ—मैं मेधावी पुरुष की भाँति प्रवाह रूप से अनादि जन्म से वेदवाणी को अलङ्कृत करता हूँ जिससे परमेश्वर मुझ में बल धारण कराता है ॥२॥

१५०२—वत्सः । इन्द्र । गायत्री ।

१ २२ ३ १ २ ३ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २ १ २२ ३ १ २

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥३॥

पदार्थ—( ये ) जो ( त्वाम् ) तेरी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( न ) नहीं ( तुष्टुवुः ) स्तुति करते ( ऋषयः ) मंत्रद्रष्टा ( ये ) जो ( च ) और ( तुष्टुवुः ) स्तुति करते हैं ( मम ) मेरी ( इत् ) ही ( वर्धस्व ) वृद्धि कर ( सुष्टुतः ) अच्छी प्रकार स्तुति किया हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो लोग तेरी स्तुति नहीं करते और जो मंत्रद्रष्टा लोग तेरी स्तुति करते हैं उनके मध्य वर्तमान हमारे द्वारा स्तुति किया हुआ तू हमारी वृद्धि कर ॥३॥

॥ प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

१५०३—अग्नि । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ ३ १ २

ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( विश्वेभिः ) नाना प्रकार की ( अग्निभिः ) अग्नियों से ( जोषि ) इच्छा करता है ( ब्रह्म ) ब्रह्माण्ड [के जानने] की ( सहस्कृत ) हे जल के निर्माता ( ये ) जो ( देवत्रा ) देवों में [पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में] ( ये ) जो ( आयुषु ) मनुष्यों में [अर्थात् जाठर अग्नि] ( तेभिः ) उनसे ( नः ) हमारी ( महया ) श्रेष्ठ करता है ( गिरः ) वाणियों को ॥१॥

भावार्थ—हे जल के निर्माता परमेश्वर ! तू नाना प्रकार की अग्नियों के द्वारा हमें ब्रह्माण्ड के जानने की इच्छा कराता है । पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा मनुष्यों में रहनेवाली अग्नि से हमारी वाणी को शक्ति देता है ॥१॥

१५०४—अग्नि । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

१ २२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २

प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( सः ) वह ( विश्वेभि ) नाना प्रकार की ( अग्निभि ) अग्नियों के द्वारा ( अग्निः ) परमेश्वर ( सः ) प्रसिद्ध ( यस्य ) जिसकी ( वाजिनः ) ऋतुएँ [होती हैं] ( तनये ) पुत्र ( तोके ) प्रपौत्र आदि ( अस्मत् ) हम में ( आ ) भली प्रकार ( सम्यक् ) समीचीन ( वाजैः ) पराक्रमों से ( परीवृत ) युक्त ॥२॥

भावार्थ—जिसकी नाना प्रकार की अग्नियों द्वारा ऋतुएँ पैदा होती हैं, अनन्त पराक्रमों से युक्त वह प्रसिद्ध परमेश्वर हमें तथा हमारे पुत्र पौत्र आदि को प्राप्त होवे ॥२॥

१५०५—अग्नि । विश्वेदेवा । अनुष्टुप ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २२

त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( नः ) हमारे ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( अग्निभिः ) अग्नियों द्वारा ( ब्रह्म ) अन्न जल ( यज्ञम् ) यज्ञ ( च ) और ( वर्धय ) बढ़ाता है ( त्वम् ) तू ( नः ) हमें ( देवतातये ) यज्ञ के लिए ( रायः ) धनों के ( दानाय ) दान के लिए ( चोदय ) प्रेरणा करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अग्नियों द्वारा हमारे अन्न, जल तथा यज्ञ की वृद्धि करता है । तू ही हमें यज्ञ करने तथा धन का दान देने की प्रेरणा करता है ॥३॥

१५०६—उपमन्युः । सोमः । ऊर्ध्व बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।

१ २२ ३क २२

स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१॥

पदार्थ—(त्वे) तुझ में ( सोम ) हे परमेश्वर (प्रथमा) मुख्य (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विज् लोग ( महे ) महान् ( वाजाय ) अन्न के लिए ( श्रवसे ) यश के लिए ( धियम् ) बुद्धि को ( दधुः ) धारण करते हैं ( सः ) वह ( त्वम् ) तू ( नः ) हमें ( वीर ) हे सर्वशक्तिमन् ( वीर्याय ) बल और पराक्रम के लिए ( चोदय ) प्रेरणा दे ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! मुख्य ऋत्विज् जन अन्न तथा महान् यश की प्राप्ति के लिए तेरे आश्रय में अपनी मति रखते हैं । तू हमें बल और पराक्रम प्राप्ति की प्रेरणा कर ॥१॥

१५०७—उपमन्यु । सोमः । ऊर्ध्व बृहती ।

३क २२ ३ १ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।

१ २ ३ १ २२ ३ १ २

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥२॥

पदार्थ—( अभ्यभि ) भली भाँति (हि) निश्चय (श्रवसा) यश और धन से ( ततर्दिथ ) विस्तृत करता है ( उत्सम् ) कूप के (न) समान ( जनपानम् ) लोगों के पानी पीने के लिए उपयोगी ( अक्षितम् ) क्षीण न होने वाला ( शर्याभि ) अंगुलियों के (न) समान (भरमाणः ) भरनेवाले के (गभस्त्योः) हाथों की ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू लोगों के पानी पीने के योग्य, न क्षीण होनेवाले कूप के समान तथा हाथ से जल भरनेवाले के समान धन और यश से सबको भरपूर कर देता है ॥२॥

१५०८—उपमन्यु । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥३॥

पदार्थ—( अजीजन ) उत्पन्न करता है ( अमृत ) हे अविनाशी ( मर्त्याय ) मरणधर्म जीव के लिए ( कम् ) सुख को ( ऋतस्य ) जल के ( धर्मन् ) धारक अन्तरिक्ष में ( अमृतस्य ) सदा रहनेवाले ( चारुण ) कल्याणकारी ( सदा ) सर्वदा ( असर ) व्यापक हो रहा है ( वाजम् ) अन्न आदि ( अच्छा ) भली प्रकार ( सनिष्यदत ) वितरण करता हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे अविनाशी तथा नित्य परमेश्वर ! तू मरणधर्मा प्राणी के लिए सुख उत्पन्न करता है । अन्नादि को प्रदान करता हुआ सदा रहनेवाले तथा कल्याणकारी जल के धारक अन्तरिक्ष में व्यापक हो रहा है ॥३॥

१५०९—विश्वमना । इन्द्रः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( इन्दुम् ) यज्ञ को ( इन्द्राय ) परमेश्वर के निमित्त ( सिञ्चत ) योजना करो ( पिबाति ) रक्षा करता है ( सोम्यम् ) ऐश्वर्य साधक ( मधु ) विज्ञान की ( प्र ) उत्तमरूप से ( राधांसि ) धनों की ( चोदयते ) प्रेरणा करता है ( महित्वना ) अपनी महिमा से ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग परमेश्वर के निमित्त यज्ञ का संपादन करो । वह ऐश्वर्य के साधन विज्ञान की रक्षा करता है तथा अपनी महिमा से धन प्राप्ति की प्रेरणा देता है ॥१॥

१५१०—विश्वमना । इन्द्र । उष्णिक ।

२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १२

उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥२॥

पदार्थ—( उप ) समीपता से ( उ ) पादपूरक ( हरीणां ) मनुष्यों के ( पतिम् ) पालक ( राधः ) धन का ( पृञ्चन्तम् ) सम्पर्क कराते हुए ( अब्रवम् ) स्तुति करते हैं ( नूनं ) निश्चय ही ( श्रुधि ) सुन ( स्तुवत ) स्तुति करनेवाले ( अश्व्यस्य ) विद्वान् की ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मनुष्यों के पालक तथा धन को देनेवाले तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ । तू स्तुति करनेवाले मुझ विद्वान् की टेर सुन ॥२॥

१५११—विश्वमना । इन्द्र । उष्णिक् ।

१ ३क २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

न ह्यां३ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

न की राया नैवथा न भन्दना ॥३॥

पदार्थ—( न हि ) नहीं ( अंग ) हे ( पुरा ) पहले ( च ) और ( न ) नहीं ( जज्ञे ) पैदा हुआ ( वीरतरः ) अधिक वीर ( त्वत् ) तुझ से ( न कि ) न तो ( राया ) धन से ( न ) नहीं ( एवथा ) रक्षा से ( न ) नहीं ( भन्दना ) स्तुति से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! कोई भी तुझ से प्रथम नहीं=अर्थात् तू अनादि है कोई तुझसे अधिक वीर तीनों कालो में न हुआ, न है और न होगा । धन रक्षा तथा स्तुति द्वारा भी कोई तुझसे बढ़कर या तेरे समान नहीं ॥३॥

१५१२—प्रियमेध । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥१॥

पदार्थ—(नदम्) उपदेष्टा (वः) तुम लोग (ओदतीनाम्) उषाओं का (नद) उपदेष्टा ( योयुवतीनाम ) संयोजक शक्तियों [या चन्द्र किरणों] का (पतिम्) पालक ( वः ) तुम्हारा (अघ्न्यानाम्) गौओं का ( धेनूनाम् ) वेदवाणियों का ( इषुध्यसि ) याचना करो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उषा तथा संयोजक शक्तियें किरणों आदि के उपदेष्टा और गौओं, वेदवाणियों तथा अपने पालक परमेश्वर की प्रार्थना करो ।१।

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त. 卐

१५१३—वसिष्ठ । अग्नि । बृहती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

पदार्थ—( देव ) दिव्य गुणयुक्त ( वः ) तुम्हारी ( द्रविणोदाः ) अग्नि ( पूर्णाम् ) भरी हुई ( विवष्टु ) चाहती है ( आसिचम् ) स्रुवा को ( उत् ) उत्कृष्ट ( वा ) घृत ( सिञ्चध्वम् ) सींचो ( उप ) समीप ( पृणध्वम् ) भरो ( आत् ) अनन्तर ( इत् ) ही ( वः ) तुम्हें ( देवः ) परमेश्वर ( ओहते ) प्राप्त कराता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रदीप्त यज्ञ की अग्नि में तुम्हारी घी से भरी स्रुवा पड़नी चाहिए । तुम लोग स्रुवा को घी से भरपूर करो और अग्नि को घी से सींचो । तदनन्तर परमेश्वर तुम्हारे अभीष्ट को प्राप्त करायेगा ॥१॥

१५१४—वसिष्ठ । अग्नि । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( होतारम् ) दाता ( अध्वरस्य ) कल्याणकारी यज्ञ का ( प्रचेतसम् ) उत्तम बुद्धिवाले ( वह्निम् ) वाहक=वहन करनेवाला ( देवाः ) विद्वान् जन ( अकृण्वत ) बनाते हैं ( दधाति ) धारण करता है ( रत्नम् ) रत्न आदि ( विधते ) उपासक के लिए ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम को ( अग्नि ) परमेश्वर ( जनाय ) मनुष्य के लिए ( दाशुषे ) दानी ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् जन उस श्रेष्ठ ज्ञानवाले, तथा दाता परमेश्वर को कल्याणकारी यज्ञ का वहन करनेवाला स्वीकार करते हैं जो कि उपासक तथा दानी पुरुष को रत्न तथा उत्तम पराक्रम आदि प्रदान करता है ॥२॥

१५१५—सोभरि । अग्नि । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥१॥

पदार्थ—( अदर्शि ) दिखाई पडता है [जाना जाता है] ( गातुवित्तमः ) पृथिवी का अत्यन्त ज्ञाता ( यस्मिन् ) जिसके आश्रय में ( व्रतानि ) नियमों को ( आदधु ) धारण करते हैं ( उप ) समीप ( उ ) निश्चय ( सु ) उत्तम ( जातम् ) प्रसिद्ध ( आर्यस्य ) श्रेष्ठाचारी के ( वर्धनम् ) बढ़ानेवाले ( अग्निम् ) विद्वान् को ( नक्षन्तु ) प्राप्त हो ( नः ) हमारी ( गिर ) प्रशंसा की वाणियाँ ॥१॥

भावार्थ—जो पृथिवी आदि लोकों का ज्ञाता है, जिसके आश्रय में लोग नियम आदि का धारण करते हैं उस सुप्रसिद्ध श्रेष्ठाचारी की वृद्धि करनेवाले विद्वान् पुरुष को हमारे प्रशंसा के वाक्य प्राप्त हो ॥१॥

१५१६—सोभरि । अग्नि । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥२॥

पदार्थ—( यस्मात ) जिससे ( रेजन्त ) कांपते हैं ( कृष्टय ) मनुष्य ( चर्कृत्यानि ) सृष्टि के कर्तव्य कर्मों को ( कृण्वतः ) करते हुए ( सहस्रसाम् ) सहस्रों प्रकार के धनों के दाता ( मेधसाती ) यज्ञ में ( इव ) पादपूरक ( त्मना ) स्वयं ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( धीभि ) बुद्धियों तथा कर्मों द्वारा ( नमस्यत ) नमस्कार करो ॥२॥

भावार्थ—हे लोगो ! मनुष्य सृष्टि के कर्तव्य कर्मों को करनेवाले जिस परमेश्वर से डरते हैं उस सहस्रों प्रकार के धनो के दाता परम प्रभु को यज्ञ में अपने कर्म और ज्ञान से नमस्कार करो ॥२॥

१५१७—सोभरि । अग्नि । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥३॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( दैवोदास ) सूर्यसम्बन्धी ( अग्निः ) अग्नि ( देवः ) प्रकाशमान ( इन्द्रः न ) विद्युत् के समान ( मज्मना ) बल से ( अनु ) तदनु ( मातरम् ) माता ( पृथिवीं ) पृथिवी की ( विवावृते ) आती है ( तस्थौ ) स्थित होती है ( नाकस्य ) अन्तरिक्ष के ( शर्मणि ) अवकाश में ॥३॥

भावार्थ—सूर्यसम्बन्धी प्रकाशमान अग्नि विद्युत् के समान अपने बल के कारण समस्त प्राणियों की माता पृथिवी पर आती है । वह अन्तरिक्ष के बीच में भी स्थित है ॥३॥

१५१८—शतं वैखानसाः । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

३ १ २ ३ १ २

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे विद्वन् ( आयूंषि ) आयुओं को ( पवसे ) पवित्र कर ( आसुव ) प्राप्त करा ( ऊर्जम् ) बल ( इषम् ) ज्ञान को ( च ) और ( नः ) हमारे ( आरे ) दूर ( बाधस्व ) हटा ( दुच्छुनाम् ) दुःखों को ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! तू हमारी आयुओं को पवित्र कर। हमें बल और ज्ञान दे। हमारे दुःखों को दूर हटा ॥१॥

१५१९—प्रत वैखानसा. । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् ॥२॥

पदार्थ—( अग्नि ) परमेश्वर ( ऋषिः ) सर्वव्यापक और सर्वद्रष्टा ( पवमान ) शुद्धस्वरूप ( पाञ्चजन्य ) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद [पाञ्चजन] के द्वारा उपास्य ( पुरोहितः ) सृष्टि के पदार्थों की रचना से पूर्व धारण करनेवाला ( तम् ) उसकी ( ईमहे ) प्रार्थना करते हैं ( महागयम् ) महाशक्तिशाली ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी, शुद्धस्वरूप सृष्टि के पदार्थों को रचना से पूर्व धारण करनेवाला तथा पाँचों जनों का उपास्य है। उस सर्वशक्तिमान् की हम उपासना करते हैं ॥२॥

१५२०—प्रतं वैखानसः । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २३ २र ३ १ २

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम् ॥३॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( पवस्व ) प्राप्त करा ( स्वपाः ) उत्तम कर्मवाला ( अस्मे ) हमें ( वर्चः ) अन्न ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल ( दधत् ) धारण करा ( रयिम् ) धन को ( मयि ) मुझे ( पोषम् ) पुष्टि को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम कर्मवाला तू हमें अन्न तथा उत्तम बल दे। तू हमें धन तथा पुष्टि धारण करा ॥३॥

१५२१—वसूयव । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( पावक ) शुद्धस्वरूप ( रोचिषा ) ज्ञानप्रकाश से ( मन्द्रया ) आनन्दकारी ( देव ) हे देव ( जिह्वया ) वेदवाणी से ( आ ) भली प्रकार ( देवान् ) तैंतीस देवों को ( वक्षि ) धारण करता है ( यक्षि ) संगत करता है ( च ) और ॥१॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमात्म देव ! तू अपने तेज तथा आनन्ददायिनी वेदवाणी से तैंतीस देवों को धारण और संगत करता है ॥१॥

१५२२—वसूयवः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥२॥

पदार्थ—( तं ) उस ( त्वा ) तेरी ( घृतस्नो ) हे प्रकाश के प्रेरक वा उत्पादक ( ईमहे ) प्रार्थना करते हैं ( चित्रभानो ) अद्भुत प्रकाशवाले ( स्वर्दृशम् ) सुख के दिखानेवाले ( देवान् ) विद्वानों को ( आ ) भली भाँति ( वीतये ) ज्ञानप्राप्ति के लिए ( वह ) प्राप्त करा ॥२॥

भावार्थ—हे प्रकाश के उत्पादक तथा अद्भुत प्रकाशवाले परमेश्वर ! हम तुझ सुख दाता की प्रार्थना करते हैं। तू ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें विद्वानों को प्राप्त करा ॥२॥

१५२३—वसूयव । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २३ १२ १ २ ३ १ २ ३ २

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥

पदार्थ—( वीतिहोत्रम् ) प्राप्ति ग्रहण करनेवाले—सर्वव्यापक ( त्वा ) तुझे ( कवे ) हे सर्वज्ञ ( द्युमन्तम् ) प्रकाशस्वरूप ( समिधीमहि ) प्रकाशित करते हैं ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( बृहन्तम् ) महान् ( अध्वरे ) हृदयाकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! हम तुझ सर्वव्यापक, प्रकाशस्वरूप तथा महान् प्रभु को अपने हृदयाकाश में ध्यानविधि से प्रकाशित करते हैं ॥३॥

॥ तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

१५२४—गोतम । अग्नि । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य ॥१॥

पदार्थ—( अव ) रक्षा कर ( नः ) हमारी ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( ऊतिभिः ) रक्षाओं से ( गायत्रस्य ) गायत्री द्वारा कहे गये ज्ञान के ( प्रभर्मणि ) संपादन में ( विश्वासु ) सारे ( धीषु ) कर्मों में ( वन्द्य ) हे वन्दनीय ॥१॥

भावार्थ—हे समस्त कर्मों में स्तुति किये जाने योग्य परमेश्वर ! तू अपनी रक्षाओं से गायत्री द्वारा अभिव्यक्त ज्ञान के संपादन में हमारी रक्षा कर ॥१॥

१५२५—गोतमः । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥२॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( नः ) हमें ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( रयिम् ) धन को ( भर ) भरपूर कर ( सत्रासाहम् ) सदा ही दारिद्र्य हरण करनेवाले ( वरेण्यम् ) वरण करने योग्य ( विश्वासु ) सारे ( पृत्सु ) संग्रामों में ( दुष्टरम् ) शत्रुओं से न तरा जानेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें दरिद्रता को सदा दूर करनेवाले चाहने योग्य तथा समस्त संग्रामों में शत्रुओं द्वारा न समाप्त किये जाने योग्य धन से भरपूर कर ॥२॥

१५२६—गोतम । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( नः ) हमें ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( सुचेतुना ) उत्तम ज्ञान से [ युक्त ] ( रयिम् ) धन को ( विश्वायुपोषसम् ) समस्त मनुष्यों का पोषण करनेवाले ( मार्डीकम् ) सुख के साधन ( धेहि ) धारण करा ( जीवसे ) जीविका के [जीवन के] लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें जीविका के लिए उत्तम ज्ञान से युक्त, समस्त मनुष्यों का पोषण करनेवाला तथा सुख का हेतुभूत धन प्रदान कर ॥३॥

१५२७—केतु । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु। तेन जेष्म धनंधनम् ॥१॥

पदार्थ—( अग्निम् ) आत्मा और परमात्मा को ( हिन्वन्तु ) जानें ( नः ) हमारे ( धियः ) बुद्धियाँ ( सप्तिम् ) अश्व के ( आशुम् ) शीघ्रगामी ( इव ) समान ( आजिषु ) संग्रामों में ( तेन ) उससे ( जेष्म ) जीतें ( धनम् ) वृद्धि देनेवाले ( धनम् ) धन को ॥१॥

भावार्थ—हमारी बुद्धियाँ संग्राम में शीघ्रगामी अश्व को योद्धा के समान आत्मा और परमात्मा को जानें। इस ज्ञान से हम वृद्धि करने वाले धन को जीतें ॥१॥

१५२८—केतु । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २

यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या। तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥

पदार्थ—( यया ) जिस ( गाः ) वेदवाणियों को ( आकरामहे ) प्राप्त करें ( सेनया ) विघ्नों का निवारण करनेवाली ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( तव ) तेरी ( ऊत्या ) रक्षा से ( ताम् ) उसे ( नः ) हमें ( हिन्व ) प्रेरित कर ( मघत्तये ) धन प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विघ्नों को दूर करनेवाली जिस तेरी रक्षा से हम वेदवाणियों को प्राप्त करते हैं उसकी हमें उत्तम धन की प्राप्ति के लिए प्रेरणा दे ॥२॥

१५२९—केतु । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्। अङ्धि खं वर्तया पविम् ॥३॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( स्थूरम् ) स्थूल ( रयिम् ) धन को ( भर ) भरपूर कर ( पृथुम् ) विशाल ( गोमन्तम् ) गौओं से युक्त ( अश्विनम् ) घोड़ों से युक्त ( अङ्धि ) प्रकाशित करता है ( खम् ) आकाश को ( वर्तय ) प्रवृत्त करता है ( पविम् ) वाणी को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आकाश को तेज से प्रकाशित करता है। तू वाणी को अपने कर्म में प्रवृत्त करता है। तू हमें गौ तथा अश्व आदि से युक्त विशाल और विस्तृत धन प्रदान कर ॥३॥

१५३०—केतु । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ २ ३ १ २

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि। दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( नक्षत्रम् ) नक्षत्र को ( अजरम् ) न जीर्ण हुए ( आ ) भली भाँति ( सूर्यम् ) सूर्य को ( रोहयः ) स्थापित किया ( दिवि ) द्युलोक में ( दधत् ) धारण करते हुए ( ज्योतिः ) प्रकाश ( जनेभ्यः ) समस्त प्राणियों के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त प्राणियों के लिए प्रकाश को धारण करते हुए तूने न जीर्ण होनेवाले सूर्य और नक्षत्र को द्युलोक में स्थापित किया है ॥४॥

१५३१—केतु । अग्नि । गायत्री ।

१ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २उ ३ १ २

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्। बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( केतु ) ज्ञाता ( विशाम् ) प्रजाओं का ( असि ) है ( प्रेष्ठ ) अत्यन्त प्रिय ( श्रेष्ठ ) अत्यन्त महान् (उपस्थसत्) सबके समीप स्थित ( बोध ) जना [ ज्ञान दे ] (स्तोत्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (वय ) आयु ( दधत ) धारण करते हुए ।।५।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू श्रेष्ठ भक्तों का अत्यन्त प्रिय, समस्त प्रजा का ज्ञाता तथा सर्वव्यापक होने से सबके समीप उपस्थित है ! तू स्तुति करनेवाले को जीवन प्रदान करते हुए बोध दे ।।५।।

१५३२—विरूप । अग्निः । गायत्री ।

३ २३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३२
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
३ १ २र
अपां रेतांसि जिन्वति ।। १ ।।

पदार्थ—( अग्निः ) अग्नि ( मूर्धा ) मूर्तवस्तुओं को धारण करनेवाला ( दिवि ) द्युलोक का ( ककुत् ) महान् ( पतिः ) रक्षक ( पृथिव्याः ) पृथिवी का ( अयम ) यह ( अपां ) जलों के ( रेतांसि ) परमाणुओं को ( जिन्वति ) गति देता है ।। १ ।।

भावार्थ—यह प्रसिद्ध अग्नि मूर्त पदार्थों को धारण करने वाला द्यु तथा पृथिवी लोक का महान् रक्षक है। यह जल के परमाणुओं को गति देता है ।। १ ।।

१५३३—विरूप । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता स्यां तव शर्मणि ।। २ ।।

पदार्थ—( ईशिषे ) स्वामी होता है ( वार्यस्य ) वरणीय ( हि ) निश्चय ( दात्रस्य ) देने योग्य धन का ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( स्वः पतिः ) सुख का रक्षक ( स्तोता ) भक्त ( स्याम् ) होऊँ (तव) तेरा (शर्मणि) सुख प्राप्ति के निमित्त ।२।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुख का रक्षक तू वरणीय तथा देने योग्य धन का स्वामी है । तेरी स्तुति करनेवाला मैं सुख में रहूँ ।।२।।

१५३४—विरूप । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ।।३।।

पदार्थ—( उत् ) उत्कृष्ट ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( शुचयः ) पवित्र (तव) तेरे ( शुक्राः ) शुद्ध ( भ्राजन्त ) प्रकाशमान हुए ( ईरते ) प्रेरित करते हैं (तव) तेरे ( ज्योतींषि ) सूर्य तथा नक्षत्र आदि को ( अर्चयः ) तेज प्रकाश ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध पवित्र तथा प्रकाशमान तेरे प्रकाशपुञ्ज सूर्य तथा नक्षत्र आदि को प्रकाशित करते हैं ।।३।।

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

卐 चतुर्दशोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# पञ्चदशोऽध्यायः

१५३५—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३क २र २ ३ १ २ ३ २
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।।१।।

पदार्थ—( कः ) कौन ( ते ) तेरे ( जामिः ) बन्धु ( जनानाम् ) जनो का ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( कः ) कौन ( दाश्वध्वरः ) तेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला ( कः ) सुखस्वरूप ( ह ) निश्चय ( कस्मिन् ) किस मे ( असि ) है ( श्रितः ) आश्रय लिए हुए ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे जनो का बन्धु कौन है। तेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला कौन है। सुखस्वरूप तू किसमें आश्रय ले रहा है ।।१।।

१५३६—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ।।२।।

पदार्थ—( त्वं ) तू ( जामिः ) बन्धु ( जनानाम् ) जनो का ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( मित्रः ) मित्र ( असि ) है ( प्रियः ) प्रिय ( सखा ) सखा ( सखिभ्यः ) मित्रता रखनेवाले के लिए ( ईड्यः ) पूजनीय ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही जनों का बन्धु, तथा प्रिय मित्र है। तुझ से मित्रता करनेवालों का तू हितकारी तथा पूज्य है ।।२।।

१५३७—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।।३।।

पदार्थ—( यज ) संगत कर ( नः ) हमारे लिए ( मित्रावरुणा ) प्राण और अपान को ( यज ) संगत कर ( देवान् ) अन्य अग्नि आदि देवों को ( ऋतं ) जल को ( बृहत् ) महान् ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( यक्षि ) संगत कर ( स्वं ) स्वकीय ( दमम् ) गृह समस्त संसार को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्राण, अपान, अग्नि आदि अन्य देव, महान् जल, तथा उसमें व्यापक होने से अपने गृहरूप समस्त संसार को हमारे उपयोग के लिए संगत कर ।।३।।

१५३८—देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३क २र ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ।।१।।

पदार्थ—( ईडेन्यः ) स्तोताओं से स्तुति किया जाने योग्य ( नमस्यः ) सबका नमस्करणीय ( तिरः ) तिरस्कार करनेवाला ( तमांसि ) अज्ञान अन्धकारों को ( दर्शतः ) सत्य मार्ग दिखानेवाला ( सम् ) सम्यक ( अग्निः ) परमेश्वर ( इध्यते ) समाधि से प्रकाशित किया जाता है ( वृषा ) कामनाओं की पूर्ति करनेवाला ।।१।।

भावार्थ—सब से स्तुत्य तथा नमस्कार करने योग्य, अज्ञानान्धकार का नाशक, सत्य पथ प्रदर्शक और मनोरथ को पूरा करनेवाला परमेश्वर योग समाधि द्वारा हृदय मे साक्षात् किया जाता है ।।१।।

१५३९—देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ।।२।।

पदार्थ—( वृषा ) मनोरथों को पूरा करनेवाला ( उ ) पादपूरक ( अग्निः ) परमेश्वर ( समिध्यते ) हृदय मे प्रकाशित होता है ( अश्वः ) विद्युत् के ( न ) समान ( देववाहनः ) समस्त देवों का धारक ( तम् ) उसकी ( हविष्मन्तः ) श्रद्धावाले भक्त ( ईडते ) भक्ति करते हैं ।।२।।

भावार्थ—कामनाओं की पूर्ति करनेवाला तैंतीस देवों का धारक परमेश्वर विद्युत् के समान हृदय देश मे प्रकाशित होता है। उसकी श्रद्धालु भक्त सदा उपासना करते हैं ।।२।।

१५४०—देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ।।३।।

पदार्थ—( वृषणं ) मनोरथों को पूरा करनेवाले ( त्वा ) तेरा ( वयं ) हम ( वृषन् ) हे सर्वशक्तिमान् ( वृषणः ) शक्तिशाली ( समिधीमहि ) ध्यान करते हैं ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( दीद्यतं ) प्रकाशमान ( बृहत् ) अत्यन्त ।।३।।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! शक्तिशाली हम लोग अत्यन्त तेजस्वी तथा मनोरथों को पूरा करनेवाले तुझ प्रभु का ध्यान करते हैं ॥३॥

१५४१—विरूप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥१॥

पदार्थ—( उत् ) उत्कृष्ट ( ते ) तेरा ( बृहन्त ) महान् ( अर्चयः ) प्रकाश ( समिधानस्य ) ध्यान किया गया ( दीदिवः ) हे प्रकाशस्वरूप ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( शुक्रास ) शुद्ध ( ईरते ) व्यापक है ॥१॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू ध्यान के योग्य है । तेरा शुद्ध और महान् प्रकाश सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

१५४२—विरूपः । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २क १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उप त्वा जुह्वो३मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥२॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( त्वा ) तेरे निमित्त ( जुह्वः ) स्रुवाएँ ( मम ) मेरी ( घृताची ) घी से भरी ( यन्तु ) अग्नि में पड़ती रहें ( हर्यत ) हे कमनीय ( अग्ने ) परमेश्वर ( हव्या ) स्तुतियों को ( जुषस्व ) स्वीकार कर ( नः ) हमारी ॥२॥

भावार्थ—हे कामना करने योग्य परमेश्वर ! तेरे निमित्त हमारी घी से भरी स्रुवाएँ अग्नि में पड़ती रहें । तू हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर ॥२॥

१५४३—विरूप । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥३॥

पदार्थ—( मन्द्रम् ) आनन्ददाता ( होतारम् ) दाता ( ऋत्विजम् ) ऋतुओं को पैदा करनेवाले ( चित्रभानुम् ) अद्भुत प्रकाशवाले ( विभावसुम् ) प्रकाश के धनी ( अग्निम् ) परमेश्वर की ( ईडे ) स्तुति करता हूँ ( सः ) वह ( उ ) अवश्य ( श्रवत् ) सुनें ॥३॥

भावार्थ—मैं आनन्द तथा कर्मफलदाता, ऋतुओं के उत्पादक अद्भुत प्रकाशवाले तथा तेजस्वी परमेश्वर की उपासना करता हूँ । वह हमारी स्तुति सुनें ॥३॥

१५४४—भर्ग । अग्नि । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २क २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१॥

पदार्थ—( पाहि ) रक्षाकर ( नः ) हमारी ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( एकया ) ऋग्वेद की वाणी से ( पाहि ) रक्षाकर ( उत ) और ( द्वितीयया ) दूसरे यजुर्वेद की वाणी से ( पाहि ) रक्षाकर ( गीर्भि तिसृभिः ) तीनों वाणियों से ( ऊर्जांपते ) हे बलों के स्वामी ( पाहि ) रक्षाकर ( चतसृभि ) चारों वेदवाणियों से ( वसो ) हे सबको निवास देनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी, तथा सबको निवास देनेवाले परमेश्वर ! तू चारों प्रकार की वेदवाणियों के द्वारा हमारी रक्षाकर ॥१॥

१५४५—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥२॥

पदार्थ—( पाहि ) रक्षा कर ( विश्वस्मात् ) सारे ( रक्षस ) बुरी प्रवृत्तियों वालों से ( अराव्ण ) दान न देनेवाले से ( प्र ) उत्तम ( स्म ) पादपूरक ( वाजेषु ) संग्रामों में ( नः ) हमारी ( अव ) रक्षा कर ( त्वाम् ) तुझे ( इत् ) ही ( नेदिष्ठम् ) अत्यन्त समीप ( आपिम् ) बन्धु ( देवतातये ) यज्ञ के लिए ( नक्षामहे ) प्राप्त करते हैं ( वृधे ) उन्नति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू समस्त बुरी वृत्तियोंवाले मनुष्य और दान न देनेवाले से हमें बचा । संग्रामों में हमारी रक्षा कर । क्योंकि यज्ञ और हमारी उन्नति के लिए अत्यन्त निकट बन्धु तू ही है । तुझे ही हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

卐 प्रथम खण्डः समाप्त 卐

१५४६—त्रित । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

पदार्थ—( इन ) स्वामी [ईश्वर] ( राजन् ) हे प्रकाशस्वरूप ( अरतिः ) सर्वव्यापक ( समिद्ध ) तेजस्वी ( रौद्र ) दुष्टों को भय देनेवाला ( दक्षाय ) बल तथा धन का ( सुषुमान् ) उत्पादक ( अदर्शि ) साक्षात् किया जाता है ( चिकित् ) सर्वज्ञ ( विभाति ) विराजमान है ( ( भासा ) अपने तेज से ( बृहता ) महान् ( असिक्नीम् ) रात्रि को ( एति ) प्राप्त कराता है ( रुशतीम् ) प्रकाश को ( अपाजन् ) दूर करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! सबका स्वामी सर्वव्यापक तेजस्वी, दुष्टों को दण्ड देनेवाला, बल तथा धन का उत्पादक और सर्वज्ञ तू योगियों से साक्षात्कार किया जाता है । तू महान् प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है तथा रात्रि के अन्धकार को प्राप्त कराता है ॥१॥

१५४७—त्रित । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहत पितुर्जाम् ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

पदार्थ—( कृष्णाम् ) काली ( यत् ) जब ( एनीम् ) आनेवाली रात्रि को ( अभि ) भली भाँति ( वर्पसा ) अपने तेज से ( भूत ) दबा लेता है तब ( जनयन् ) उत्पन्न करता हुआ ( योषाम् ) स्त्रीरूप उषा को ( बृहत ) महान् ( पितु ) पालक [सूर्य से] ( जाम् ) उत्पन्न ( ऊर्ध्वम् ) ऊपर ( भानुम् ) प्रकाश को ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( स्तभायन् ) थामता हुआ ( दिव ) द्युलोक की ( वसुभि ) सम्पदाओं से ( अरति ) सर्वव्यापक ( विभाति ) प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थ—जब सर्वव्यापक परमेश्वर महान् सूर्य से उत्पन्न स्त्री के समान उषा को प्रकाशित करता हुआ रात्रि को अपने तेज से दबा देता है तब सूर्य के प्रकाश को ऊपर स्थापित करता हुआ द्युलोक की प्रकाशक सम्पदाओं से समस्त जगत् को प्रकाशित करता है ॥२॥

१५४८—त्रितः । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ २
भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

पदार्थ—( भद्र ) कल्याणकारी ( भद्रया ) कल्याणकारिणी भक्ति के द्वारा ( सचमान ) भजन किया गया ( आगात ) प्राप्त होता है ( स्वसारम् ) रात्रि को ( जार ) सूर्य [जैसे] ( अभ्येति ) प्राप्त करता है ( पश्चात ) पीछे ( सुप्रकेतै ) उत्तम ज्ञानों से युक्त ( द्युभिः ) तेजों से ( अग्नि ) परमेश्वर ( वितिष्ठन् ) व्यापक रूप से स्थित होकर ( रुशद्भि ) कमनीय ( वर्णैः ) वर्णों [प्रकाशों से] ( रामम् ) रात्रि के अन्धकार को ( अस्थात् ) स्थित हो रहा है ॥३॥

भावार्थ—कल्याणकारिणी भक्ति द्वारा भजन किया हुआ परमेश्वर अपने उत्तम ज्ञान रूप प्रकाशों से भक्त के हृदय में स्थित होता हुआ वैसे ही प्राप्त होता है जिस प्रकार कि सूर्य रात्रि के पीछे चलता है । वह चन्द्र और नक्षत्रों के कमनीय प्रकाशों के साथ रात्रि के अन्धकार में स्थित हो रहा है ॥३॥

१५४९—उशना । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥१॥

पदार्थ—( कया ) सुखमयी [स्तुति से] ( ते ) तेरी ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( अङ्गिर ) हे सृष्टि के अङ्गीभूत समस्त पदार्थों और जीवों में रमनेवाले अर्थात् हे सर्वव्यापक ( ऊर्जो ) बल ( नपात ) हे रक्षक ( उप ) समीप ( स्तुतिम् ) उपासना को ( वराय ) श्रेष्ठ ( देव ) हे देव ( मन्यवे ) मनन के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक तथा सर्वव्यापक परमेश्वर देव ! हम सुखमयी स्तुति से उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए तेरी स्तुति करें ॥१॥

१५५०—उशना । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥२॥

पदार्थ—( दाशेम ) त्याग करें ( कस्य ) सुखस्वरूप ( मनसा ) मन से ( यज्ञस्य ) पूजनीय ( सहसो यहो ) हे बल के प्राप्त करानेवाले और स्तुति योग्य ( कदु ) कब ( वोचे ) बोलूँ ( इदम् ) यह ( नमः ) नमस्कार ॥२॥

भावार्थ—हे बल के प्राप्त करानेवाले और उपासनीय परमेश्वर ! सुखस्वरूप तथा पूजनीय तुझ देव के लिए कब नमस्कार करें और तुझ में कर्मफल का कब अर्पण करें (अर्थात् सर्वदा नमस्कार करें) ॥२॥

१५५१—उशना । अग्निः । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥३॥

पदार्थ—( अधा ) अनन्तर ( त्वम् हि ) तू ही ( नः ) हमारी ( करः ) करता है ( विश्वाः ) सारी ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( सुक्षितीः ) प्रजायें ( वाजद्रविणसः ) बल और धनयुक्त ( गिरः ) वाणियों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही हमारी वाणियों और प्रजा को बल और धन युक्त करता है ॥३॥

१५५२—भर्गः । अग्नि । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
१२ २२ ३ १२ ३ १ २ ३ १९ ३ २ ३ १ २
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( आयाहि ) प्राप्त होना है ( अग्निभि ) तीन प्रकार की यज्ञ की अग्नियो के द्वारा (होतारम्) कर्म फलदाता ( त्वा ) तेरी (वृणीमहे) स्तुति करते हैं ( आ ) भली भाँति ( त्वा ) तुझे ( अनक्तु ) प्राप्त करें ( प्रयता ) प्रयत्न से की जानेवाली ( हविष्मती ) यज्ञ की सामग्री से युक्त भक्ति ( यजिष्ठम् )पूज्य (बर्हि ) कर्म का (आसदे) अनुष्ठान करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें यज्ञ की तीन अग्नियो द्वारा प्राप्त होता है। तुझ कर्म फलदाता की मैं स्तुति करता हूँ। उत्तम कर्म का मैं तेरे लिए अनुष्ठान करता हूँ। यत्नपूर्वक की गई हमारी भक्ति तुझे प्राप्त हो ॥१॥

१५५३—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
३ १ २२ ३ १२ ३ २ ३११९ ३ २
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२॥

पदार्थ—( अच्छा ) अच्छी तरह ( हि ) क्योंकि ( त्वा ) तुझे प्राप्त करने के लिए ( सहसः ) बल के (सूनो) हे उत्पादक ( अङ्गिरः ) हे शरीरधारी- जीवों को सुख देनेवाले ( स्रुचः ) स्रुवाएँ ( चरन्ति ) चलती हैं ( अध्वरे ) यज्ञ मे (ऊर्जो नपातम्) बल के रक्षक ( घृतकेशम् ) प्रकाशरूप केशवाले ( ईमहे ) स्तुति करता हूँ ( अग्निम् ) प्रकाशस्वरूप को ( यज्ञेषु ) श्रेष्ठ कर्मों मे ( पूर्व्यम् ) सनातन ॥२॥

भावार्थ—हे बल के उत्पादक सब जीवों के सुखदाता परमेश्वर हमारे यज्ञादि कर्म तुझे प्राप्त करने के लिए होते हैं। हम बल के रक्षक प्रकाशरूप केशवाले तुझ स्वप्रकाशस्वरूप देव की स्तुति करते हैं ॥२॥

१५५४—पुरुमीढः । अग्नि । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१॥

पदार्थ—( अच्छा ) अच्छी तरह ( नः ) हमारी ( शीरशोचिषम् ) व्यापक प्रकाश वाले ( गिरः ) स्तुतियाँ ( दर्शतम् ) भजन के योग्य या साक्षात्कार के योग्य ( यन्तु ) प्राप्त हों (अच्छा) अच्छी तरह ( यज्ञास ) श्रेष्ठ कर्म (नमसा) नमस्कार के साथ ( पुरूवसुम् ) सकल सम्पदाओंवाले ( पुरुप्रशस्तम् ) अत्यन्त स्तुति के योग्य ( ऊतये ) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हमारी स्तुतियाँ व्यापक प्रकाशवाले और साक्षात्कार के योग्य परमेश्वर को प्राप्त हों। हमारे श्रेष्ठ कर्म भी नमस्कार के साथ सबके आश्रयदाता प्रभु को प्राप्त हों ॥१॥

१५५५—पुरुमीढ । अग्नि । बृहती ।

३ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
३ २३ ३ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥२॥

पदार्थ—( अग्निम् ) परमेश्वर को ( सूनुम् ) उत्पन्न करनेवाले ( सहस ) बल के ( जातवेदसम् ) सर्वज्ञ ( दानाय ) दान के लिए ( वार्याणाम् ) उत्तम पदार्थों के ( द्विता ) दो गुणों वाला ( यः ) जो (अभूत्) होता है ( अमृत ) अमर ( मर्त्येषु ) मरणधर्मवालों में (आ) भली भाँति ( होता ) कर्मफलदाता (मन्द्रतम ) अत्यन्त सुखदायक ( विशि ) प्रजा में ॥२॥

भावार्थ—कर्मफलदाता जो मनुष्यों में अमररूप से तथा सारी प्रजा में आनन्द स्वरूप से दो प्रकार के गुणों से उत्तम सदा विराजमान है, उस बल के उत्पादक और सर्वज्ञ परमेश्वर की उत्तम पदार्थों को उसके दान द्वारा प्राप्त करने के लिए स्तुति करता हूँ ॥२॥

द्वितीय खण्ड समाप्त.

१५५६—विश्वामित्रः । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २२ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥१॥

पदार्थ—( अदाभ्य ) न तिरस्कार करने योग्य (पुरः एता) नेता (विशाम्) प्रजाओं का ( अग्नि ) परमेश्वर ( मानुषीणाम् ) मानुषी ( तूर्णी ) आलस्यादि दोषो से रहित (रथः) आनन्द का दाता ( सदा ) सर्वदा (नवः) एकरस ॥१॥

भावार्थ—मानुषी प्रजा का एकमात्र नेता, आलस्यादि दोषों से रहित, आनन्द-दाता तथा एकरस परमेश्वर कभी भी तिरस्कार करने योग्य नहीं है ॥१॥

१५५७—विश्वामित्र । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १२ ३ १ २
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( प्रयांसि ) अन्नों को ( वाहसा ) सब सुखों को प्राप्त करानेवाले से ( दाश्वान् ) दानी ( अश्नोति ) पाता है ( मर्त्यः ) मनुष्य ( क्षयम् ) वास स्थान को (पावकशोचिषः) पवित्र प्रकाशवाले से ॥२॥

भावार्थ—दानी मनुष्य सब सुखों को प्राप्त करानेवाले तथा पवित्र प्रकाश युक्त परमेश्वर से अन्न और आश्रय प्राप्त करता है ॥२॥

१५५८—विश्वामित्र । अग्नि, । गायत्री ।

३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥३॥

पदार्थ—( साह्वान् ) अभिभव करनेवाला ( विश्वा ) सारे ( अभियुजः ) प्रतिकूल विचारों का (क्रतु ) पालक ( देवानाम् ) सब देवों का ( अमृक्तः ) अतिरस्करणीय ( अग्नि ) परमेश्वर (तुविश्रवस्तम ) अत्यन्त यशवाला है ॥३॥

भावार्थ—सारे प्रतिकूल विचारों को दूर भगानेवाला, देवों का पालक तथा अतिरस्करणीय परमेश्वर अत्यन्त यशस्वी है ॥३॥

१५५९—सौभरि । अग्नि । ककुप् ।

३ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
१ २ ३ १ २२
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१॥

पदार्थ—( भद्र ) कल्याणकारक ( नः ) हमारा ( अग्निः ) विद्वान् पुरुष ( आहुत ) उत्तम पद पर प्रतिष्ठित (भद्रा) कल्याणदायक ( रातिः ) दान (सुभग) हे उत्तम ऐश्वर्यवाले ( भद्र ) कल्याणकारी ( अध्वर ) यज्ञ ( भद्राः ) कल्याण करनेवाली हों ( उत ) और ( प्रशस्तयः ) स्तुतियाँ ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम ऐश्वर्यवाले परमेश्वर ! उत्तम स्थान पर स्थित विद्वान् हमारा कल्याण करें तथा हमारे यज्ञ, दान, और स्तुतियाँ सभी कल्याणकारी सिद्ध हों ॥१॥

१५६०—सौभरि । अग्नि । ककुप् ।

३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥२॥

पदार्थ—( भद्रं ) कल्याणकारक ( मनः ) मन ( कृणुष्व ) कर ( वृत्रतूर्ये ) पाप को नष्ट करने में ( येन ) जिससे ( समत्सु ) पाप और पुण्य के संग्रामों में ( सासहि ) पाप को दबा सकनेवाला ( अव ) नीचे (स्थिराः ) दृढ़ ( तनुहि ) कर (भूरि) बहुत ( शर्धताम् ) कामक्रोधादि शत्रुओं को (वनेम) भजन करते हैं ( ते ) तेरा ( अभिष्टये ) अपने कल्याण के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मेरे मन को उत्तम कर जिससे मैं अज्ञान के विनाश करने और पाप-पुण्य के संग्रामों में पाप को दबाने में समर्थ होऊं। हमारे काम, क्रोधादि शत्रुओं की सेना को तो नीचे दबा। हम अपने कल्याण के लिए तेरा भजन करते हैं ॥२॥

१५६१—गोतम । अग्नि । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( वाजस्य ) अन्न का ( गोमतः ) गौ आदि युक्त ( ईशानः ) स्वामी ( सहसोयहो ) हे बल को प्राप्त कराने वाले और स्तुति योग्य ( अस्मे ) हमें ( देहि ) दे ( जातवेदः ) हे सर्वव्यापक (महि) महान् (श्रवः) अन्न और यश ॥१॥

भावार्थ—हे बल के दाता और स्तुत्य, सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू ही अन्न युक्त अन्न का स्वामी है। हमें प्रचुर अन्न और यश प्रदान कर ॥१॥

१५६२—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

१ २ ३ ४ ५र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स इध्मानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।

३ २ ३ १ २

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥२॥

पदार्थ—( सः ) वह ( इधानः ) प्रकाशित करता हुआ ( वसुः ) लोगों को बसानेवाला ( कविः ) मेधावी ( अग्निः ) परमेश्वर ( ईळेन्यः ) स्तुत्य है ( गिरा ) स्तुति से ( रेवत् ) धनयुक्त अन्न ( अस्मभ्यम् ) हमें ( पुर्वणीक ) हे अत्यन्त सुख के भण्डार ( दीदिहि ) दे ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ज्ञान का प्रकाशक, लोगों को बसानेवाला, मेधावी और स्तुति से उपासना करने योग्य है। हे सुख के भण्डार प्रभो ! तू हमें धन प्रदान कर ॥२॥

१५६३—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ १

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३॥

पदार्थ—( क्षपः ) नाशकर ( राजन् ) हे प्रकाशस्वरूप ( उत ) या ( त्मना ) स्वयं ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( वस्तः ) दिन ( उत ) और ( उषसः ) रात्रि में ( सः ) वह ( तिग्मजम्भ ) हे तेजोमुख ( रक्षसः ) हानिकारक भावों को ( दह ) भस्माकर ( प्रति ) प्रत्यक्ष ही ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप तथा तेजोमय मुखवाले परमेश्वर ! तू अन्य विद्वानों द्वारा या स्वयं रात्रि और दिन के हमारे पापों को नाशकर और हानिकारक भावों को भस्म कर ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५६४—गोपवन । अग्निः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१॥

पदार्थ—( विशः विशः ) प्रजाजन के ( वः ) तुम लोग ( अतिथिम् ) अतिथि = पूजनीय को ( वाजयन्तः ) ज्ञान की कामना करते हुए ( पुरुप्रियम् ) सर्व प्रिय ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( वः ) तुम लोगों के ( दुर्यम् ) आश्रय ( वचः ) वचन का ( स्तुषे ) स्तुति करता हूँ ( शूषस्य ) बल के साधक ( मन्मभिः ) मनन योग्य वचनों से ॥१॥

भावार्थ—हे उपासक लोगो ! ज्ञान की कामना करते हुए तुम लोग प्रत्येक प्रजा के पूजनीय, सर्वप्रिय और अपने स्तुति वचनों के एक मात्र आश्रय परमेश्वर की बल के साधक मनोहर वचनों से स्तुति करो, मैं भी करता हूँ ॥१॥

१५६५—गोपवन । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ ३ ३ २उ ३ १ २

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।

३ १ २ ३ १ २

प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥२॥

पदार्थ—( यम् ) जिसकी ( जनासः ) लोग ( हविष्मन्तः ) यज्ञ करनेवाले ( मित्रम् न ) मित्र के समान ( सर्पिरासुतिम् ) सर्पणशील जल आदि पदार्थों के उत्पादक ( प्रशंसन्ति ) स्तुति करते हैं ( प्रशस्तिभिः ) मनोहर स्तोत्रों से ॥२॥

भावार्थ—यज्ञ करनेवाले लोग सर्पणशील जल आदि पदार्थों के निर्माता जिस परमेश्वर की मित्र के समान प्रशस्तियों से प्रशंसा करते हैं मैं उसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१५६६—गोपवनः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥

पदार्थ—( पन्यांसम् ) स्तुति के योग्य ( जातवेदसम् ) सर्वज्ञ ( यः ) जो ( देवतातिः ) यज्ञ में ( उद्यता ) तैयार ( हव्यानि ) हवियों को [ वायु द्वारा ] ( ऐरयत् ) प्रेरित करता है ( दिवि ) द्युलोक में ॥३॥

भावार्थ—जो यज्ञ में छोड़ी गई हवियों को वायु के द्वारा द्युलोक में पहुँचाता है उस उपास्य और सर्वज्ञ परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ ॥३॥

१५६७—भरद्वाज वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३

विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥१॥

पदार्थ—( समिद्धम् ) प्रकाशित ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( समिधा ) तीव्र तेज से ( गिरा ) वेदवाणी से ( गृणे ) स्तुति करता हूँ ( शुचिम् ) शुद्धस्वरूप ( पावकम् ) पवित्रस्वभाव ( पुरः ) आगे ( अध्वरे ) कल्याणकारी यज्ञ में ( ध्रुवम् ) नित्य ( विप्रम् ) ज्ञानी ( होतारम् ) कर्मफलदाता ( पुरुवारम् ) बहुतों के उपास्य ( अद्रुहम् ) किसी से द्रोह न करनेवाले ( कविम् ) सर्वज्ञ ( सुम्नैः ) स्तोत्रों से ( ईमहे ) भजन करते हैं ( जातवेदसम् ) सर्वव्यापक ॥१॥

भावार्थ—अत्यन्त प्रकाश से प्रकाशित, शुद्धस्वरूप, पवित्रकर्ता तथा नित्य परमेश्वर को अपने यज्ञों में स्तुति द्वारा पूर्व स्मरण करता हूँ। उस ही ज्ञानी, कर्मफलदाता, उपास्य, सबकी अनुकूलतावाले सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक की स्तोत्रों से उपासना करता हूँ ॥१॥

१५६८—भरद्वाज वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २र १ २र

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥२॥

पदार्थ—( त्वाम् ) तुझे ( दूतम् ) सुखदाता या दुर्गुण-निवारक ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( अमृतम् ) अमर ( युगे युगे ) हर समय पर ( हव्यवाहम् ) योग्य सामग्री को प्राप्त कराने वाले ( दधिरे ) धारण करते हैं ( पायुम् ) रक्षक ( ईड्यम् ) स्तुति के योग्य ( देवासः ) विद्वान् जन ( च ) और ( मर्तासः ) मनुष्य ( च ) और ( जागृविम् ) सर्वदा सावधान ( विभुम् ) व्यापक ( विश्पतिम् ) प्रजा के स्वामी ( नमसा ) नमस्कार से ( निषेदिरे ) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् मनुष्यगण हर समयों में अविनाशी, रक्षक, उपासनीय, हमारे योग्य सामग्री के प्राप्त करानेवाले, सुखदाता वा दुर्गुण निवारक सर्वदा सावधान, सर्वव्यापक, समस्त पृथिवीस्थ प्रजा के स्वामी तुझ प्रभु को मन से धारण करते और नमस्कारों के साथ तेरी उपासना करते हैं ॥२॥

१५६९—भरद्वाजो वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २

यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥३॥

पदार्थ—( विभूषन् ) सुशोभित करता हुआ ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( उभयान् ) जड़ जंगम दोनों प्रकार के संसार को ( अनुव्रता ) अपनी रचनाकर्म और नियम के अनुसार ( दूतः ) दुःखनिवारक ( देवानाम् ) विद्वानों के ( रजसी ) द्यु और पृथिवीलोक में ( समीयसे ) व्यापक हो रहा है ( यत् ) जिससे ( ते ) तेरे ( धीतिम् ) कर्म ( सुमतिम् ) ज्ञान को ( आवृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( अध ) अनन्तर ( स्म ) पादपूरक ( त्रिवरूथः ) तीनों लोकों में व्यापक अथवा तीनों लोक हैं जिसमें ( शिवः ) कल्याणकारी ( भव ) होवे ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वानों का दुःखहर्त्ता तू जड़ तथा जंगम दोनों प्रकार के जगत् को अपनी सृष्टि-रचना, कर्म और नियम के अनुसार सुशोभित करता हुआ द्यु और पृथिवीलोक में व्यापक हो रहा है। हम तेरे ज्ञान और कर्म को धारण करते हैं। अतः हे प्रभो त्रिलोकीनाथ ! तू हमारा कल्याण कर ॥३॥

१५७०—प्रयोग अग्निः यविष्ठ । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।

३ १ २र

वायोरनीके अस्थिरन् ॥१॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( त्वा ) तेरे ( जामयः ) ज्ञानमयी ( गिरः ) स्तुतियाँ या वाणियाँ ( देदिशतीः ) बार बार उपदेश करती हुई ( हविष्कृतः ) यजमान की ( वायोः ) वायु के ( अनीके ) मण्डल में ( अस्थिरन् ) स्थिर होती हैं ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा उपदेश करती हुई ज्ञानमयी यजमान की वाणियाँ या स्तुतियाँ वायुमंडल में स्थित हो जाती हैं ॥१॥

१५७१—प्रयोग । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ ३र ३ २ ३ १ २ ३ २

यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥२॥

पदार्थ—( यस्य ) जिसका ( त्रिधातु ) सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों धातुएँ ( अवृतम् ) खुली ( बर्हिः ) अन्तरिक्ष ( तस्थौ ) सदा स्थिर है ( असन्दिनम् ) नहीं बंधा हुआ ( आपः ) जल ( चित् ) भी ( निदधा ) स्थापित है ( पदम् ) अपने स्थान पर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस तेरी सामर्थ्य से सत्त्व, रजस् और तमस् सृष्टिकाल में बिना रुकावट प्रवृत्त हैं, अन्तरिक्ष सर्वत्र स्थित है तथा जल अपने स्थान पर स्थापित है वह तू सबका उपास्य है ॥२॥

१५७२—प्रयोग । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
पद देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभि । भद्रा सूर्य इवोपदृक ॥३॥

पदार्थ—( पदम ) परम पद ( देवस्य ) देव का ( मीढुष ) सकल मनोरथों की वर्षा करनेवाले ( अनाधृष्टाभि ) बाधारहित ( ऊतिभिः ) रक्षाओ से ( भद्रा ) कल्याण करनेवाली है ( सूर्य इव ) सूर्य के समान ( उपदृक् ) देखने के साधन द्वितीय नेत्ररूप ॥३॥

भावार्थ—सकल मनोरथों को देनेवाले परमात्मदेव का परमस्वरूप बाधारहित रक्षादि गुणो से सम्पन्न है । उसकी कृपा लोक के देखने के साधन द्वितीय नेत्ररूप सूर्य के समान कल्याणकारी है ॥३॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

卐 पंचदशोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# षोडशोऽध्याय·

१५७३—मेध्यातिथि । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायव ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभव समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( त्वा ) तेरी (पूर्वपीतये) प्रथम ज्ञान की रक्षा के लिए ( इन्द्र ) हे आचार्य ( स्तोमेभि ) मन्त्रो से ( आयव ) मनुष्य ( समीचीनास ) योग्य ( ऋभव ) मेधावी ( समस्वरन् ) प्रशंसा करते हैं (रुद्रा ) रुद्र ब्रह्मचारी ( गृणन्त ) प्रशंसा करते हैं ( पूर्व्यम् ) वृद्ध ॥१॥

भावार्थ—हे आचार्य ! योग्य बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वज्ञान की रक्षा के लिए तुझ वृद्ध की सब प्रकार से प्रशंसा करते हैं रुद्र ब्रह्मचारी भी तेरी सराहना करते हैं ॥१॥

१५७४—मेध्यातिथि । इन्द्र । बृहती

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२॥

पदार्थ—( अस्य ) इस ( इत् ) ही ( इन्द्र ) परमेश्वर ( वावृधे ) बढ़ाता है ( वृष्ण्यं ) वीर्य ( शव ) बल (मदे) आनन्द मे ( सुतस्य ) पुत्ररूप (विष्णवि) व्यापक ( अद्य ) आज ( तम् ) उसकी ( अस्य ) इसकी ( महिमानम ) महिमा की ( आयव ) मनुष्य ( अनुष्टुवन्ति ) स्तुति करते हैं ( पूर्वथा ) पहले के समान ही ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर व्यापक आनन्द मे विराजमान पुत्ररूप यजमान के बल वीर्य को बढ़ाता है । आज भी मनुष्य पहले के समान ही उसकी महिमा का गान करते हैं ॥२॥

१५७५—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितार ।

१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( वाम् ) तुम दोनो की ( अर्चन्ति ) पूजा करते हैं ( उक्थिन ) ऋग्वेदी ( नीथाविद ) सामगान के ज्ञाता ( जरितार ) उद्गाता (इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (इष ) विज्ञानों को (आवृणे) चाहता हूं ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! ऋग्वेदी और सामवेदी स्तुति करने वाले तुम्हारी पूजा और प्रशसा करते हैं । मैं तुम्हारे विज्ञान की चाहना करता हूं ॥१॥

१५७६—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव ( नवतिम ) नब्बे [९०] (पुरः) पुरी को ( दासपत्नी ) दूषित मनोवृत्ति से सुरक्षित (अधूनुतम्) कंपाते हो (साकम्) साथ ( एकेन ) एक ही (कर्मणा) कर्म से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! तुम दोनो दूषित मनोवृत्ति से पालित नब्बे पुरी को एक ही सम्मिलित कर्मों से कंपित करते हो ॥२॥

१५७७—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ १ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २
इन्द्राग्नी अपसस्पर्यु प प्र यन्ति धीतय । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) हे परमेश्वर और जीव ( अपस ) कर्म का ( परि ) भली भांति ( उप ) समीप ( प्र ) उत्तम (यन्ति) प्राप्त करते हैं ( धीतयः ) कर्मयोगी पुरुष ( ऋतस्य ) सत्य के (पथ्या) मार्ग का (अनु) लक्ष्य कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! कर्मयोगी पुरुष सत्य मार्ग पर चलने के लिए उत्तम कर्मों का अनुष्ठान करते हैं ॥३॥

१५७८—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।

३ २ ३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्य हितम् ॥४॥

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) हे परमेश्वर और जीव ( तविषाणि ) बल ( वां ) तुम दोनों का ( सधस्थानि ) एक साथ ( प्रयांसि ) उत्तम विज्ञान ( युवो ) तुम दोनों (अप्तूर्य) कर्म की प्रेरणा कर (हितम्) एक साथ स्थित है ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! तुम दोनों में बल, विज्ञान तथा कर्मों की प्रेरणा एक साथ होते हैं ॥४॥

१५७९—भर्ग । इन्द्र । बृहती ।

३ २क १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभि ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशस वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

पदार्थ—( शग्धि ) सिद्ध कर ( उ ) वितर्क ( सु ) उत्तम ( शचीपते ) हे वाणी के स्वामी ( इन्द्र ) विद्वन् ( विश्वाभि ) सारी ( ऊतिभिः ) रक्षा के साधनों से ( भग न ) भगवान् के समान ( हि ) निश्चित ( त्वा ) तेरे ( यशस ) यशस्वी ( वसुविदम् ) धन प्राप्त करनेवाले (अनु) अनुकूल ( शूर ) हे अज्ञाननाशक (चरामसि) आचरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे वाणियो के स्वामी अज्ञाननाशक विद्वन्! तू सारे रक्षा के साधनों से हमारा इष्ट सिद्ध कर ! परमेश्वर के समान यशस्वी तथा तुझ धनदाता के अनुकूल हम आचरण करते हैं ॥१॥

१५८०—भर्ग । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्यय ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
न किर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥२॥

पदार्थ—( पौर ) पूर्ण करनेवाला ( अश्वस्य ) महत्तत्त्व का ( पुरुकृत् ) अधिक शक्ति पैदा करनेवाला ( गवाम् ) इन्द्रियों में ( उत्स ) कूप के समान सब को तृप्त करनेवाला ( देव ) हे देव ( हिरण्यय ) ज्योति स्वरूप ( न किः ) नहीं ( हि ) निश्चय ( दानं ) दान ( परिमर्धिषत् ) विनष्ट होता है ( त्वे ) तेरा (यद्-यद् ) जो जो ( यामि ) चाहता हूं ( तद् ) वह ( आभर ) पूर्ण कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्मदेव ! तू हमारे बुद्धितत्त्व का पूर्णकर्त्ता, इन्द्रियों में शक्ति का दाता, कूप के समान तृप्ति करनेवाला तथा ज्योतिःस्वरूप है । तेरे दान का कभी नाश नहीं होता । हे भगवन् ! मैं जो जो चाहूं उसे पूर्ण कर ॥२॥

१५८१—भर्ग । इन्द्र । बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥१॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( हि ) निश्चय ( एहि ) आ ( चेरवे ) सेवक के लिए ( विदा ) दे ( भगं ) धन ( वसुत्तये ) धन देने के लिए ( उत् ) उत्तमता से ( वावृषस्व ) धन की अत्यन्त वर्षा कर ( मघवन् ) हे धनवान् ( गविष्टये ) गौ चाहनेवाले ( उत् ) अथवा ( इन्द्र ) हे राजन् ( अश्वमिष्टये ) अश्व चाहने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे धनवान् राजन् ! तू धन प्रदान करने के लिए आ, और प्रदान कर । गौ और अश्व चाहनेवाले मेरे लिए बार बार धन की वर्षा कर ॥१॥

१५८२—भर्ग । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥२॥

पदार्थ—( त्वं ) तू ( पुरू ) बहुत ( सहस्राणि ) हजारों ( शतानि ) सैकड़ों ( च ) और ( यूथा ) पशुओं का समुदाय (दानाय) दान के लिए ( मंहसे) देता है ( आ ) भली भाँति ( पुरन्दरम् ) बुराइयों को दूर करनेवाले ( चकृम ) करें ( विप्रवचस ) विद्वानों के वचनवाले हम ( इन्द्रम् ) परमेश्वर को ( गायन्तः ) गुणगान करते हुए ( अवसे ) अपनी रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सैकड़ों सहस्रों पशुओं का समुदाय दान करने के लिए हमें प्रदान करता है । ज्ञानी के वचनवाले हम तेरा गान करते हुए बुराइयों को दूर करनेवाले तुझ इन्द्र का अपनी रक्षार्थ साक्षात् करें ॥२॥

१५८३—सोभरि । अग्नि । बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१॥

पदार्थ—( य ) जो (विश्वा) सारे ( दयते ) देता है ( वसु ) धन (होता) यज्ञकर्त्ता ( मन्द्र ) सबको प्रसन्न करनेवाला ( जनानाम् ) जनता के लिए (मधो ) मधु का ( न ) समान ( पात्रा ) पात्र ( प्रथमानि ) प्रथम ( अस्मै ) इस ( प्र ) उत्तम ( स्तोमा ) स्तोत्र ( यन्तु ) प्राप्त हों ( अग्नये ) विद्वान् के लिए ॥१॥

भावार्थ—यज्ञकर्त्ता और सबको प्रसन्न करनेवाला जो विद्वान् पुरुष जनता को सकल सम्पदाएँ प्रदान करता है उसके लिए मधु के मुख्य पात्र के समान हमारा प्रशंसा वचन प्राप्त हो ॥१॥

१५८४—सोभरि । अग्नि । बृहती ।

२ ३ २ ३ २ २क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थ—( अश्व न ) अश्व के समान ( गीर्भि ) स्तुतियों से ( रथ्य ) रथ के योग्य ( सुदानवः ) उत्तमदानी यजमान (मर्मृज्यन्ते) उपासना करते हैं (देवयव ) दिव्य गुणों की कामना करनेवाले ( उभे ) दोनों (तोके) पुत्र ( तनये ) पौत्र (दस्म) हे साक्षात्कार करने योग्य ( विश्पते ) प्रजापालक (पर्षि) प्रदान कर ( राध ) धन ( मघोनाम् ) यज्ञ करनेवालों को ॥२॥

भावार्थ—हे दमन करने योग्य और सकल प्रजा के पालक परमेश्वर ! दिव्य गुणों को चाहनेवाले सुन्दर दानी यजमान रथ के योग्य अश्व के समान स्तुतियों से तेरी उपासना करते हैं । तू यज्ञ करने करनेवालों को पुत्र और पौत्र दोनों सम्पदाएँ देता है ॥२॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

१५८५—शुनःशेपः । वरुणः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥१॥

पदार्थ—( इमम् ) इस ( मे ) मेरे ( वरुण ) हे परमेश्वर ( श्रुधि ) सुन ( हवम् ) पुकार को ( अद्य ) आज ( च ) और ( मृडय ) सुखी कर (त्वाम्) तेरी ( अवस्युः ) अपनी रक्षा चाहनेवाला मैं ( आचके ) स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अपनी रक्षा चाहनेवाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ । आज तू मेरी पुकार सुन तथा मुझे सुखी कर ॥१॥

१५८६—शुनःशेप । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—( कया ) सुखमयी ( त्व ) तू ( न ) हमें ( ऊत्या ) रक्षा से ( अभिप्रमन्दसे ) आनन्दित करती है ( वृषन् ) हे सकल मनोरथों को सफल करनेवाले ( कया ) सुखमयी कृपा से ( स्तोतृभ्य ) भक्तों को ( आ भर ) परिपूर्ण कर ॥१॥

भावार्थ—हे सकल मनोरथों को पूरा करनेवाले परमेश्वर ! तू सुखमयी रक्षा से हमें आनन्दित कर और सुखमयी कृपा से भक्तों को भरपूर कर ॥१॥

१५८७—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) विद्वान् पुरुष को ( इत् ) ही ( देवतातये ) यज्ञ के लिए ( इन्द्रम् ) ईश्वर को ( प्रयति ) प्रारम्भ होने पर ( अध्वरे ) कल्याणकारी यज्ञ के ( इन्द्रम् ) सेनापति को ( समीके ) संग्राम में (वनिन ) भजन करनेवाले ( हवामहे ) पुकारते हैं ( इन्द्रम् ) बलवान् को ( धनस्य ) धन की ( सातये ) प्राप्ति के लिए ॥१॥

भावार्थ—हम श्रद्धालु जन यज्ञ के प्रारम्भ में परमेश्वर की यज्ञ के लिए विद्वान् की, संग्राम में सेनापति की तथा धन की प्राप्ति के लिए बलवान् की पुकार करते हैं ॥१॥

१५८८—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्र ) परमेश्वर ने ( मह्ना ) अपनी महिमा से ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक को ( पप्रथत् ) विस्तार किया है ( शव ) बल का ( इन्द्र ) परमेश्वर ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अरोचयत् ) प्रकाशित करता है ( इन्द्रे ) परमेश्वर में ( ह ) निश्चय ( विश्वा ) सारे ( भुवनानि ) भुवन ( येमिरे ) नियन्त्रित हो रहे हैं (इन्द्रे) परमेश्वर में (स्वानास) मन्त्रों का उच्चारण किए जानेवाले (इन्दवः) यज्ञ आश्रित हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर अपनी महिमा से द्युलोक और पृथिवी में बल का विस्तार करता है । उसी ने सूर्य को प्रकाशमान किया है । सारे लोक उसी से नियन्त्रित हैं, मन्त्रों से युक्त यज्ञ उसी में आश्रित हैं ॥२॥

१५८९—विश्वकर्मा । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २क १ २र

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वाँ३ स्वा हि ते ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥३॥

पदार्थ—(विश्वकर्मन्) हे सृष्टिकर्त्ता (हविषा) अपनी शक्ति से (वावृधान ) संसार का विस्तार करता हुआ ( स्वयम् ) अपने आप ( यजस्व ) यज्ञ करता है ( तन्वां ) विस्तृत ब्रह्माण्ड में (स्वाहिते) स्वयं स्थापित ( मुह्यन्तु ) मोह को प्राप्त होते हैं ( अन्ये ) नहीं जाननेवाले ( अभित ) हर प्रकार से ( जनासः ) मनुष्य ( इह ) इस विषय में ( अस्माकं ) हमारा ( मघवा ) परमेश्वर ( सूरि ) ज्ञान प्रवर्तक ( अस्तु ) है ॥३॥

भावार्थ—हे सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ! अपनी शक्ति से संसार का विस्तार करता हुआ तू स्वयं स्थापित विराट्रूप ब्रह्माण्ड में अपने आप यज्ञ करता है । न जाननेवाले मनुष्य सृष्टि में मोह को प्राप्त होते हैं । इस विषय में तू ही हमें ज्ञान का उपदेश करनेवाला है ॥३॥

१५९०—अनानत । सोम । अत्यष्टि ।

३ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

पदार्थ—( अया ) इस ( रुचा ) तेज से ( हरिण्या ) अंधकार का हरण करनेवाले ( पुनानः ) पवित्र करता हुआ ( विश्वा ) सारे ( द्वेषांसि ) द्वेषों को

( तरति ) नष्ट करता है ( समुद्रवभि ) परस्पर संयुक्त ( सूरः ) सूर्य के ( न ) समान ( सयुग्वभि ) किरणों से ( धारा ) वाणी ( पृष्ठस्य ) जगत् को धारण करनेवाले की ( रोचते ) प्रकाशित होती है ( पुनान ) जानता हुआ ( क्षयं ) तेजस्वी ( हरिः ) अज्ञान का हरण करनेवाला ( विश्वा ) सारे ( यत् ) जो ( रूपा ) सूर्य चन्द्र आदि रूपों को ( परियासि ) व्यापक होता है स्तुति के योग्य ( सप्तास्येभि ) सात छन्दोंवाले ( ऋक्वभि ) ऋग्वेदादियों से ॥१॥

भावार्थ—पवित्रकारक परमेश्वर अज्ञाननाशक अपने प्रकाश से, अन्धकार को परस्पर संयुक्त किरणों से सूर्य के समान, सारे द्वेषों का नाश करता है। जगदाधार उस प्रभु की वाणी प्रकाशित होती है। सर्वज्ञ, तेजस्वी तथा अज्ञानहर्ता वह प्रशंसनीय सात छन्दोंवाले ऋग्वेदादियों के ज्ञान के सारे रूपों में रम रहा है ॥१॥

१५६१—अनानत । सोम । अत्यष्टि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभि

१ २३ ३ १ २ ३ १ २र

र्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १२

अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥२॥

पदार्थ—( प्राचीम् ) प्रकाशवाली ( अनु ) पश्चात् ( प्र ) उत्तम ( दिशम् ) दिशा को ( याति ) जाता है ( चेकितत् ) जानता हुआ ( सम् ) सम्यक् ( रश्मिभि ) ज्ञानकिरणों से ( यतते ) उपाय करता है ( दर्शत ) दर्शनीय ( रथ ) सूर्य के समान ( दैव्य ) देवों में गण्यमान ( दर्शत ) दर्शनीय ( रथ ) शरीरवाला ( अग्मन् ) प्राप्त होते हैं ( उक्थानि ) प्रशंसाएँ ( पौंस्या ) पुरुषसम्बन्धी ( इन्द्रम् ) राजा को ( जैत्राय ) जय प्राप्ति के लिए ( हर्षयन् ) प्रसन्न करते हैं ( वज्र ) वज्र [शस्त्र] भी ( यत् ) जब ( भवथ ) होते हैं ( अनपच्युता ) तेज ( समत्सु ) संग्रामों में ( अनपच्युता ) अमोघ ॥२॥

भावार्थ—जब संग्रामों में तेज और अमोघ शस्त्र होते हैं तो विजय में विश्वास करता हुआ दर्शनीय और साधन-सम्पन्न सेनापति दर्शनीय, देवों में गिना जानेवाला, किरणों से सूर्य के समान विजय की दिशा में प्रस्थान तथा यत्न करता है। राजा को विजय प्राप्त करने के लिए प्रसन्न करता हुआ पौरुष प्रकाशक प्रशंसा वचनों को पाता है ॥२॥

१५६२—अनानत । सोम । अत्यष्टि ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभि-

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

र्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे।

१ २ ३ २उ ३ १ ३ १२ ३ १ २

परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥३॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( ह ) निश्चय ही ( त्यत् ) उस ( पणीनाम् ) व्यापार करनेवालों को ( विदः ) देता है ( वसु ) धन ( सम् ) सम्यक् ( मातृभि ) मान करने योग्य ( मर्जयसि ) पवित्र करता है ( स्वे ) अपने ( आ ) भली भाँति ( दमे ) दुःखों का दमन करनेवाले ( ऋतस्य ) सत्य के ( धीतिभि ) विधानों से ( दमे ) मोक्षरूप परमपद में ( परावतः ) दूर से सुनाई पड़नेवाले ( न ) समान ( साम ) साम के ( तत् ) उस ( यत्र ) जिसमें ( रणन्ति ) आनन्द पाते हैं ( धीतय ) ध्यान करनेवाले ( त्रिधातुभि ) तीन धातुओं से [सत्व, रजः, तमस्] [कफ, वात, पित्त] ( अरुषीभिः ) प्रकाशवाले ( वयो ) अवस्था को ( दधे ) धारण करता है ( रोचमानः ) प्रकाशमान ( वय ) हमारी आयु को ( दधे ) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही व्यापारियों को धन देता है। तू सम्मान के योग्य सत्य के विधानों से दुःख का हटानेवाले अपने मोक्ष धाम में आत्माओं को पवित्र करता है। जिसमें ध्यानी लोग आनन्दलाभ करते हैं, वह तेरा पद दूर से सुनाई पड़नेवाले साम के समान मनोहर है। हे प्रभो प्रकाशस्वरूप ! तू तेजस्वी सुवर्ण सत्व रजस् तमस् धातुओं से हमारे शरीर की स्थिति तथा कफ, वात, पित्त तीन धातुओं से हमारी आयु को धारण करता है ॥३॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्तः ॥

१५६३—भरद्वाज । पूषा । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये ॥१॥

पदार्थ—( उत ) और ( न ) हमें ( गोषणिम् ) गाय देनेवाली ( धियम् ) बुद्धि ( अश्वसाम् ) घोड़े देनेवाली ( वाजसाम् ) अन्न देने वाली ( उत ) और ( नृवत् ) उत्तम सन्तान देने वाली ( कृणु ) दे ( हि ) निश्चय ( ऊतये ) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें रक्षा के लिए गाय, घोड़े, अन्न तथा उत्तम सन्तान देनेवाली बुद्धि प्रदान कर ॥१॥

१५६४—गोतम । मरुद्गण । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥२॥

पदार्थ—( शशमानस्य ) सत्कार करनेवाले [प्रशंसा करनेवाले] ( वा ) ही ( नरः ) हे नेताओ ( स्वेदस्य ) यज्ञ करने से परिश्रान्त ( सत्यशवस ) सत्य बल वाले ( विदा ) प्राप्त करा ( कामस्य ) कामना को ( वेनत ) चाहनेवाले यजमान की ॥२॥

भावार्थ—हे सत्य बलवाले, यज्ञ के बहुत करनेवाले ऋत्विजो ! आप लोग सत्कार करनेवाले, तथा यज्ञ करने से श्रान्त यजमान की कामना को पूरा करो ॥२॥

१५६५—ऋजिश्वा । विश्वेदेवा । गायत्री ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥३॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( न ) हमारे ( सूनवः ) पुत्र आदि ( गिरः ) वाणियाँ ( शृण्वन्तु ) सुनें ( अमृतस्य ) अविनाशी परमेश्वर की ( ये ) जो ( सुमृडीका ) सुख देनेवाले ( भवन्तु ) होवें ( नः ) हमें ॥३॥

भावार्थ—हमारे पुत्र अविनाशी परमेश्वर की वाणी सुनें और हमें सुखी करें ॥ ३ ॥

१५६६—अजमीढ । द्यावापृथिव्यौ । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( वाम् ) इन दोनों ( महि ) द्युलोक और पृथिवी की ( द्यवी ) चमकीले ( अभि ) सब प्रकार से ( उप ) समीप ( स्तुतिम् ) प्रशंसा को ( भरामहे ) करते हैं ( शुची ) पवित्र ( उप ) समीप ( प्रशस्तये ) प्रशंसा के लिए [गुणकथन के लिए] ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर के गुणगान के लिए इन दोनों द्यु और पृथिवी लोकों की हम प्रशंसा करते हैं ॥१॥

१५६७—अजमीढ । द्यावापृथिव्यौ । गायत्री ।

३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥२॥

पदार्थ—( पुनाने ) पवित्र करनेवाले ( तन्वा ) अपने विस्तार से ( मिथः ) परस्पर ( स्वेन ) अपने ( दक्षेण ) बल से ( राजथः ) विराजमान हैं ( ऊह्याथे ) धारण करते हैं ( सनात् ) सदा से ( ऋतम् ) परमेश्वर की सामर्थ्य को ॥२॥

भावार्थ—अपने विस्तार से सबको पवित्र करते हुए द्यु और पृथिवीलोक परस्पर एक दूसरे को धारण करते हुए अपनी शक्ति से विराजमान हैं। वे सदा परमेश्वर की सामर्थ्य को धारण करते हैं ॥२॥

१५६८—अजमीढ । द्यावापृथिवी । गायत्री ।

३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र

मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं नि षेदथुः ॥३॥

पदार्थ—( मही ) महा द्युलोक और पृथिवी ( मित्रस्य ) सूर्य के दिन-रात के विभाग रूप कार्य को ( साधथः ) सिद्ध करती हैं ( तरन्ती ) तैरती हुई ( पिप्रती ) पूर्णता प्रकट करती हुई ( ऋतम् ) सृष्टिनियम पर ( परि ) सब प्रकार से ( यज्ञम् ) परमेश्वर का ( निषेदथु ) आश्रय लेती हैं ॥३॥

भावार्थ—सृष्टिनियम पर चलती और उसकी पूर्णता प्रकट करती हुई द्यु और पृथिवी सूर्य से होनेवाले रात्रि-दिन के विभाग का सम्पादन करती हैं तथा परमेश्वर के आश्रय पर स्थित हैं ॥३॥

१५६९—शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१॥

पदार्थ—( अयम् ) यह ( उ ) पादपूरक ( ते ) तेरे लिए ( समतसि ) निरन्तर आता-जाता है ( कपोत ) कबूतर के ( इव ) समान ( गर्भधिम् ) कबूतरी को ( वचः ) वचन को ( तत् चित् ) इसी कारण से ( नः ) हमारे सुख करनेवाले के ( ओहसे ) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! यह प्रत्यक्ष संसार तेरे उपभोग के लिए है। कबूतरी को कबूतर के समान तू बार-बार यहाँ तथा आता-जाता है। इसी लिए उसके सुख परमेश्वर के वचन को सुनता है ॥१॥

१६००—शुनःशेप । इन्द्र । गायत्री ।

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥

पदार्थ—(स्तोत्रम्) स्तुति (राधानांपते) हे सम्पदाओं के स्वामी (गिर्वाहः) हे वेदवाणियों से स्तुति योग्य (वीर) हे सर्वशक्तिमन् (यस्य) जिस (ते) तेरी (विभूतिः) महिमा (अस्तु) है (सूनृता) दया ॥२॥

भावार्थ—हे सारी सम्पदाओं के स्वामी, स्तवनीय तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! यह तेरी स्तुति है । दया का प्रभाव तेरी ही विभूति है ॥२॥

१६०१—शुनःशेप । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ ३ १ ३२ २ ३ १ २
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥३॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) सर्वप्रथम (तिष्ठ) रहता है (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (अस्मिन्) इस (वाजे) जीवन संग्राम में (शतक्रतो) हे सर्वज्ञ (सम्) सम्यक् (अन्येषु) अन्य कार्यों में (ब्रवावहै) तेरी स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू इस जीवनसंग्राम में हमारी रक्षा के लिए सर्वप्रथम विद्यमान है । अन्य सभी कार्यों में भी हम तेरी ही स्तुति करते हैं ॥३॥

१६०२—श्रुतकक्ष । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ ३ १ २
गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥१॥

पदार्थ—(गावः) हे स्तुति करनेवालो (उपवद) उपदेश करो (अवटे) संसार रूप कूप में पड़े हुए हम लोगों को (मही) पृथिवी (यज्ञस्य) पूजनीय (रप्सुदा) स्वरूप का स्मरण दिलाती है (उभा) दोनों (कर्णा) सिरे (हिरण्यया) ज्योति से युक्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे उपासको ! तुम लोग हमको, जो संसार कूप में पड़े हुए हैं, बचने का उपदेश दो । यह पृथ्वी पूज्य परमेश्वर के स्वरूप को स्मरण कराती है । इसके दोनों सिर ज्योति से युक्त होते हैं ॥१॥

१६०३—श्रुतकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥२॥

पदार्थ—(अभ्यारमित्) उपभोग करते हैं (अद्रयः) आदरणीय उपासक (निषिक्तम्) सेवन किया हुआ (पुष्करे) हृदयकमल में (मधु) आनन्दरस का (अवतस्य) संसाररूप कूप के (विसर्जने) समाप्ति पर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! संसाररूप कूप की भोग-सम्पादन से समाप्ति हो जाने पर आदरणीय उपासक लोग हृदयकमलों में सिंचे हुए आनन्दरस का उपभोग करते हैं ॥२॥

१६०४—श्रुतकक्ष । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १२ ३२३१२३१२ ३१२ ३१२
सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् ॥३॥

पदार्थ—(सिञ्चन्ति) पूर्ण करते हैं (नमसा) अन्न से (अवटम्) कोठिला [अन्न रखने का] को (उच्चाचक्रम्) ऊपर गोल (परिज्मानम्) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के योग्य (नीचीनबारम्) नीचे द्वारवाले (अक्षितम्) न टूटा हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी कृपा से कृषक लोग ऊपर गोलाकार, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने योग्य नीचे द्वारवाले तथा न टूटे हुए कोठिले को अन्न से भरते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्ड समाप्तः 卐

१६०५—मेधातिथि । इन्द्र । प्रगाथ ।

१ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३
मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।

३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ ३ २ ३ १ २
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥१॥

पदार्थ—(मा) नहीं (भेम) भयभीत हों (श्रमिष्म) पीड़ित (उग्रस्य) बलवान् (सख्ये) मित्रता में (तव) तेरी (महत्) महान् (ते) तेरा (वृष्णः) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (अभिचक्ष्यम्) प्रशंसनीय (कृतम्) कार्य को (पश्येम) देखें (तुर्वशम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अधिकारी (यदुम्) मनुष्यों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान् तुझ देव की मित्रता में हम किसी से भयभीत और पीड़ित न हों । कामनाओं की वर्षा करनेवाले तेरा कर्म महान् और प्रशंसनीय है । हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अधिकारी पुरुष को देखें ॥१॥

१६०६—मेधातिथि । इन्द्र । प्रगाथ ।

३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२॥

पदार्थ—(सव्याम्) बाईं (अनु) पश्चात् (स्फिग्यम्) कटिप्रदेश को (वावसे) निवास करता है (वृषा) बलवान् (न) नहीं (दान) दान (अस्य) परमेश्वर का (रोषति) दुःखदायी होता है (मध्वा) मधुरता से (संपृक्ताः) भरी हुई (सारघेण) सुस्वादु (धेनवः) गौएँ हैं (तूयम्) शीघ्र (एहि) आ (द्रवा) शीघ्रता कर (पिब) पान कर ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! बलवान् तू बाएँ कटि प्रदेश अर्थात् गर्भ में आता है । परमेश्वर का दान सुखदायी होता है । स्वादु तथा मधुर दूधवाली गौएँ संसार में हैं । तू आ और उनके दुग्ध का उपभोग कर ॥२॥

१६०७—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

३ १२ ३ १२ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१॥

पदार्थ—(इमाः) ये (उ) वाक्यपूर्ति (त्वा) तेरी (पुरूवसो) हे सर्वाश्रय (गिरः) स्तुतियाँ (वर्धन्तु) प्रशंसा करें (याः) जो (मम) मेरी (पावकवर्णाः) तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (अभि) भली भाँति (स्तोमैः) स्तोत्रों से (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वाश्रय परमेश्वर ! हमारी स्तुतियाँ तेरी प्रशंसा करें । तेजस्वी, और पवित्र विद्वान् भी स्तोत्रों से तेरी स्तुति करें ॥१॥

१६०८—मेधातिथिः । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सहस्रम्) असंख्य (ऋषिभिः) तत्त्व ज्ञानियों के (सहस्कृतः) समान (समुद्र इव) समुद्र के समान (पप्रथे) गम्भीर और विस्तृत हो रहा है (सत्यः) सत्यस्वरूप (सः) वह (अस्य) इसकी (महिमा) महिमा (गृणे) स्तुति करता हूँ । (शवः) बल (यज्ञेषु) यज्ञों में (विप्रराज्ये) ज्ञानियों के राज्य में ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सत्यस्वरूप तथा असंख्य तत्त्वज्ञानियों के समान अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा है । उसकी महिमा तथा बल समुद्र के समान गम्भीर और विस्तृत हो रहे हैं । ज्ञानियों के राज्य में विद्यमान यज्ञों में इसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१६०९—उरुष्ठिगु । इन्द्र । प्रगाथ ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥१॥

पदार्थ—(यस्य) जिसका (अयम्) यह (विश्वः) सारा (आर्यः) आर्यवर्ग (दासः) सेवक (शेवधिपा) वेदनिधि का रक्षक (अरिः) प्राप्त करनेवाला (तिरश्चित्) छिपा हुआ भी (अर्ये) स्वामी (रुशमे) नियन्ता (पवीरवि) वाणी के पिता परमेश्वर में (तुभ्य इत्) तुझ आप के लिए ही (सः) वह (अज्यते) प्रकट किया जाता है (रयिः) विद्या धन ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! जिसका यह सारा आर्यवर्ग सेवक और वेदविद्या का रक्षक तथा प्राप्त करनेवाला है, सबके स्वामी, नियन्ता तथा वाणी के पिता उस परमेश्वर में छिपा हुआ वह वेदविद्याधन तेरे ही लिए प्रकट होता है ॥१॥

१६१०—उरुष्ठिगु । इन्द्र । प्रगाथ ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—(तुरण्यवः) शीघ्रकारी (मधुमन्तम्) ज्ञान-विज्ञान से युक्त (घृतश्चुतम्) प्रकाश का विस्तार करनेवाले (विप्रासः) मेधावीजन (अर्कम्) पूजनीय (आनृचुः) पूजा करते हैं (अस्मे) हमारे लिए (रयिः) सम्पदा का (पप्रथे) विस्तार होवे (वृष्ण्यम्) सुख की वृष्टि करनेवाला (शवः) बल (अस्मे) हमारे लिए (स्वानासः) उपदेश करनेवाले (इन्दवः) विद्वान् योगीजन ॥२॥

भावार्थ—कर्म-कुशल विद्वान् लोग ज्ञान विज्ञानसे युक्त, प्रकाश करनेवाले तथा पूजनीय परमेश्वर की पूजा करते हैं । इस लिए कि हमारे लिए धन तथा सुख के

देनेवाले बल का विस्तार हो हमें उपदेश करनेवाले विद्वान् प्राप्त हों ॥२॥

१६११—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
**गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुत सुदक्ष धनिव ।**

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥१॥**

पदार्थ—( गोमत ) गौ से युक्त ( न ) हमें ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यवन् ( अश्ववत् ) घोड़े से युक्त ( सुत ) संसार मे उत्पन्न ( सुदक्ष ) हे व्यवहारकुशल ( धनिव ) प्राप्त करा ( शुचिम् ) पवित्र ( च ) और ( वर्णम् ) अक्षर को ( अधि ) मे ( गोषु ) वाणियो मे ( धारय ) धारण करा ॥१॥

भावार्थ—हे व्यवहार कुशल तथा ऐश्वर्यवन् विद्वान् पुरुष ! संसार में उत्पन्न हुआ तू हम गौओ तथा घोड़ो से युक्त धन प्राप्त करा तथा हमारी वाणियों में पवित्र अक्षर को धारण करा ॥१॥

१६१२—पर्वतनारदौ । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**स नो हरीणाम्पत इन्दो देव प्सरस्तम । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥२॥**

पदार्थ—( स ) वह ( न ) हमारे ( हरीणाम्पते ) मनुष्यमात्र के स्वामी ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यवन् ( देव ) देव ( प्सरस्तम ) अत्यन्त प्रकाशस्वरूप ( सखा ) मित्र के ( इव ) समान ( सख्ये ) मित्र के लिए ( नर्य ) मनुष्यमात्र का कल्याण करनेवाला ( रुचे ) प्रकाश के लिए ( भव ) हो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यमात्र के स्वामी तथा ऐश्वर्यशाली परमात्मदेव ! प्रकाश स्वरूप तथा सबका कल्याण करनेवाला तू मित्र को मित्र के समान हमारे ज्ञानप्रकाश के लिये हो ॥२॥

१६१३—पर्वतनारदौ । सोम । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।**

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
**साह्वां इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥३॥**

पदार्थ—( सनेमि ) मित्रता ( त्वम् ) तू ( अस्मद ) हमारे लिए ( आ ) [वह] प्रदान कर ( अदेवम ) बुरी वृत्तिवाले [राक्षस स्वभाव वाले] ( कञ्चित् ) किसी ( अत्रिणम् ) बुरे आचरणवाले ( साह्वान् ) दबानेवाला ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यवन् ( परि ) सब ओर से ( बाध ) बाधाओं का ( अप ) [गमय] दूर कर ( द्वयुम् ) मन तथा वाणी मे भिन्न भिन्न भाव रखनेवाले [दुरात्मा] ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! दुष्टो को दमन करनेवाला तू हमें अपनी मित्रता प्रदान कर । नास्तिक, बुरे आचरणवाले, दुरात्मा तथा अन्य बाधाओ को हमसे दूर भगा ॥३॥

१६१४—अत्रि । सोम । जगती ।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
**अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाऽभ्यञ्जते ।**

१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावा पशुमप्सु गृभ्णते ॥१॥**

पदार्थ—( अञ्जते ) इच्छा करते हैं ( व्यञ्जते ) पवित्र होते हैं ( समञ्जते ) साक्षात् करते हैं ( क्रतुम् ) ज्ञान का ( रिहन्ति ) आस्वादन करते हैं ( मध्वा ) आत्मज्ञान से ( अभ्यञ्जते ) संपन्न होते हैं ( सिन्धो ) परमेश्वर के ( उच्छ्वासे ) उच्च स्थान [परम पद] में ( पतयन्तम् ) जानेवाले ( उक्षणम् ) बलवान् (हिरण्यपावा) तप्त सुवर्ण के समान मलरहित ( पशुम् ) द्रष्टा जीव को ( अप्सु ) कर्मों मे ( गृभ्णते ) ग्रहण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—तप्त स्वर्ण के समान अविद्या आदि मल से रहित योगीजन इच्छा करते हैं और पवित्र होते हैं । तदनन्तर साक्षात्कार करते हैं फिर ज्ञान का आस्वादन करते हैं फिर आत्मज्ञान से सपन्न होकर परमेश्वर के परमपद को प्राप्त करते हुए बलवान्, द्रष्टा जीव को अपने कर्मों से ग्रहण करते हैं ॥१॥

१६१५—अत्रि । सोम । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।**

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
**अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥२॥**

पदार्थ—(विपश्चिते) मेधावी (पवमानाय) पवित्र स्वभाव ( गायत ) प्रशंसा करो (मही) महान् (न) समान ( धारा ) वेदवाणी के ( अति ) अत्यन्त ( अन्धः ) अज्ञानान्धकार को (अर्षति) नष्ट करता है (अहि ) सर्प के (न ) समान ( जूर्णाम् ) पुरानी (अतिसर्पति) छोड देता है (त्वचम्) केंचुल ( अत्य ) वायु के ( न ) समान (क्रीडन्) खेलता हुआ (असरत्) स्वतन्त्र विचरता है ( वृषा ) शक्तिशाली ( हरिः ) अज्ञानहर्ता ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग मेधावी तथा पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष का गुणगान करो । वह महान् वेदवाणी के समान अज्ञान का नाश करता है । केंचुली को सर्प के समान शरीर की ममता का परित्याग कर बलवान् तथा अज्ञानहर्ता वह वायु के समान स्वतन्त्र विचरता है ॥२॥

१६१६—अत्रि । सोम । जगती ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
**हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥३॥**

पदार्थ—(अग्रेग ) सबसे आगे रहने वाला (राजा) प्रकाशस्वरूप ( आप्य ) प्राप्त करने के योग्य ( स्तविष्यते ) भजा जाता है ( विमान ) निर्माण करने वाला (अह्नाम्) दिनों का (भुवनेषु) लोकों में (अर्पित ) व्यापक (हरिः) दु खहर्त्ता (घृतस्नु) प्रकाशदाता (सुदृशीक) साक्षात् के योग्य ( अर्णव ) अपार ( ज्योतीरथ ) ग्रहों का [ गति देनेवाला ] चलानेवाला (पवते) प्रदान करता है (राय ) संपदाएँ (ओक्य ) आश्रयदाता ॥३॥

भावार्थ—भक्त लोग सबसे आगे रहनेवाले प्रकाशस्वरूप, प्राप्त करने योग्य दिन रात का निर्माण करनेवाला लोकों मे व्यापक दुःखहर्त्ता, प्रकाशदाता, साक्षात् करने के योग्य, अपार ग्रहो को चलानेवाला तथा आश्रयदाता परमेश्वर का भजन करते हैं । वह संपदाएँ देता है ॥३॥

卐 चतुर्थ खण्ड समाप्त 卐

卐 षोडशोऽध्याय समाप्त 卐

卐

# सप्तदशोऽध्यायः

१६१७—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र १ २
**विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१॥**

पदार्थ—(विश्वेभि ) सारे (अग्ने) हे विद्वन् (अग्निभिः) आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिण अग्नियों द्वारा (इमम्) इस (यज्ञम्) परमेश्वर को (इदम्) इस ( वचः ) वेद-वचन को ( चन ) अन्न को ( धाः ) धारण कर ( सहस ) बल के ( यहो ) पुत्र-धनी ॥१॥

भावार्थ—हे बल के पुत्र ! [ अर्थात् आत्मबल के धनी ] तू गार्हपत्यादि सारी अग्नियों द्वारा परमेश्वर वेद-वचन तथा अन्न को धारण कर ॥१॥

१६१८—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ २
**यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥२॥**

पदार्थ—(यत चित् हि) यद्यपि (शश्वता ) सनातन ( तना ) विस्तृत यज्ञ से (देवं देवम्) प्रत्येक देव के नाम से (यजामहे) यज्ञ करते हैं किन्तु (त्वे) तेरे निमित्त (इत्) ही (हूयते) दी जाती है (हविः) हवि ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! यद्यपि सनातन यज्ञ क्रिया से प्रत्येक देव के नाम से यज्ञ किया जाता है तथापि हवन तेरे निमित्त ही होता है ॥२॥

१६१९—शुनःशेप । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २   १ २ ३ १ २ ३ १ २र   १ २ ३ १ २ ३ २

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३॥

पदार्थ—(प्रियः) प्रिय (नः) हमारा (अस्तु) हो (विश्पतिः) संसारी प्रजाओं का स्वामी (होता) दाता (मन्द्रः) प्रसन्न (वरेण्यः) श्रेष्ठ (प्रियाः) प्यारे (स्वग्नयः) यज्ञ करनेवाले (वयम्) हम लोग ॥३॥

भावार्थ—हे भक्त लोगो! संसार का पालक, दाता, नित्यप्रसन्न तथा श्रेष्ठ परमेश्वर हमारा प्रिय हो और यज्ञकर्त्ता हम लोग भी उसके प्यारे बनें ॥३॥

१६२०—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर को (वः) तुम लोगों के लिए (विश्वतः) सब ओर से (परि) ऊपर विद्यमान (हवामहे) पुकारते हैं (जनेभ्यः) जनों से (अस्माकम्) हमारा (अस्तु) हो (केवलः) सदा मुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम्हारे कल्याण के लिए, परमेश्वर को जो समस्त जनों से उत्तम पदवाला है पुकारते हैं। सदा मुक्त वह हमारा कल्याणकारी हो ॥१॥

१६२१—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ २ ३ १ २

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे लिए (वृषन्) हे वृष्टिकर्त्ता (अमुम्) इस (चरुम्) मेघ को (सत्रादावन्) हे सत्य के दाता (अपावृधि) खोल दे (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (अप्रतिष्कुतः) सदा सावधान ॥२॥

भावार्थ—हे सत्य के दाता तथा वृष्टि करनेवाले परमेश्वर! हमारे कल्याण के लिए सदा सावधान तू हमारे लाभ के लिए मेघ वृष्टि कर ॥२॥

१६२२—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥३॥

पदार्थ—(वृषा) बैल के (यूथा) गो-समूहों को (इव) समान (वंसगः) सत् असत् का विवेक करनेवाले को प्राप्त होने वाला (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्ति) प्राप्त होता है (ओजसा) बल से (ईशानः) स्वामी (अप्रतिष्कुतः) सदा सावधान ॥३॥

भावार्थ—गो-समूहों को वृषभ के समान, सत्-असत् के विवेकी को प्राप्त होनेवाला तथा सदा सावधान परमेश्वर बल के साथ मनुष्यों को प्राप्त होता है ॥३॥

१६२३—शंयु । अग्नि । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।

३ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ २ ३ २   १ ३ २र

अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (नः) हमारे लिए (चित्रः) दर्शन के योग्य (ऊत्या) रक्षा के साथ (वसो) बसनेवाले (राधांसि) विद्याधनों को (चोदय) प्रेरित कर (अस्य) इस (रायः) धन का (त्वम्) तू (अग्ने) हे विद्वन् (रथीः) रथी (असि) है (विदाः) प्राप्त करा (गाधम्) प्रतिष्ठा को (तुचे) सन्तान के लिए (तु) पदपूरण (नः) हमारी ॥१॥

भावार्थ—हे सद्गुणों को निवास देनेवाले विद्वन्! दर्शनीय तू हमें रक्षा के साथ विद्या आदि सम्पत्तियाँ दे। तू इस धन का नेता है। हमारी सन्तान को प्रतिष्ठा दे ॥१॥

१६२४—शंयु । अग्नि । बृहती ।

१ २   ३ १   २र ३ २ ३   ० २र ३ १ २

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २

अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥२॥

पदार्थ—(पर्षि) रक्षा करता है (तोकम्) पुत्र की (तनयम्) पौत्र की (पर्तृभिः) रक्षा के साधनों से (त्वम्) तू (अदब्धैः) अनिवार्य (अप्रयुत्वभिः) एक साथ रहनेवाले (अग्ने) हे परमेश्वर (हेडांसि) प्रकोपों को (दैव्या) दैवी (युयोधि) दूर कर (नः) हमारे (अदेवानि) आसुरी (ह्वरांसि) कुटिलताओं को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू अनिवार्य तथा एकत्र होनेवाले रक्षा के साधनों से हमारे पुत्र और पौत्रों की रक्षा करता है। तू हमारे दैवी प्रकोप तथा आसुरी कुटिलताओं को दूर कर ॥२॥

१६२५—वसिष्ठ । विष्णु । त्रिष्टुप् ।

१   २र   ३ २ ३ २ ३ १ २उ ३ १ २   ३ १ २

किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।

३   २र ३ १ २र   ३ २उ ३ १ २   ३ २ ३ १ २

मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥१॥

पदार्थ—(किमित्) क्या है (ते) तेरा (विष्णो) हे सर्वव्यापक परमेश्वर (परिचक्षि) प्रसिद्ध (नाम) नाम (प्र) उत्तम (यत्) जो (ववक्षे) बतलाता है (शिपिविष्टः) पदार्थमात्र में प्रविष्ट (अस्मि) हूँ (मा) मत (वर्पः) स्वरूप को (अस्मत्) हमसे (अपगूह) छिपा (एतत्) यह (यत्) जो (अन्यरूपः) दूसरे स्वरूप वाला (समिथे) संसार संग्राम में (बभूथ) है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तेरा प्रसिद्ध नाम क्या यही है जो तू बतलाता है कि सर्वव्यापक हूँ। हे भगवन्! अपने उस स्वरूप को हमसे मत छिपा जो कि संसार संग्राम में विराजमान है ॥१॥

१६२६—वसिष्ठ । विष्णु । त्रिष्टुप् ।

१   २र ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।

१   २   ३ २ ३ १ २ ३   १ २ ३ १   २र   ३ २

तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (तत्) उस (ते) तेरे (अद्य) आज (शिपिविष्ट) हे सर्वव्यापक (हव्यम्) पुकारने योग्य (अर्यः) स्वामी (शंसामि) प्रशंसा करता हूँ (वयुनानि) ज्ञातव्य ज्ञानों को (विद्वान्) जानता हुआ (तम्) उस (त्वा) तेरी (गृणामि) स्तुति करता हूँ (तवसम्) महान् (अतव्यान्) तुच्छ (क्षयन्तम्) विराजमान होनेवाले (अस्य) इस (रजसः) संसार [लोक] के (पराके) परे ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर! धन-धान्य का स्वामी मैं समस्त ज्ञान-विज्ञानों को जानता हुआ आज तेरे प्रसिद्ध ओम् नाम की प्रशंसा करता हूँ। अल्पज्ञ मैं इस लोक से परे स्थित तुझ महान् की स्तुति करता हूँ ॥२॥

१६२७—वसिष्ठ । विष्णु । त्रिष्टुप् ।

१ २   ३ १   २र ३ १ २   ३ २

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

१ २   ३ २ ३ १ ३   ३ १ २   ३ २ ३ १ २

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(वषट्) कर्त्तव्य कर्म को (ते) तेरे निमित्त (विष्णो) हे परमेश्वर (आसे) सम्मुख (आकृणोमि) करता हूँ। (तत्) वह (मे) मेरा (जुषस्व) स्वीकार कर (शिपिविष्ट) हे सर्वव्यापक (हव्यम्) उपासना को (वर्धन्तु) स्तुति करें (त्वा) तेरी (सुष्टुतयः) मनोहर स्तुतियुक्त (गिरः) वाणियाँ (मे) मेरी (यूयम्) तू (पात) रक्षा कर (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सर्वदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर! सम्मुख स्थित मैं तेरे निमित्त कर्त्तव्य कर्म को करता हूँ। तू मेरी भक्ति स्वीकार कर, मेरी स्तुतियुक्त वाणियाँ तेरी स्तुति करें। तू कल्याण के साथ हमारी सदा रक्षा कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्ड समाप्तः 卐

१६२८—वामदेव । वायु । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।

१ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २

आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥

पदार्थ—(वायो) हे परमेश्वर (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (अयामि) प्राप्त करता हूँ (ते) तेरे (मध्वः) ज्ञान का (अग्रम्) प्रथम (दिविष्टिषु) दिव्य गुणों की इच्छा के होने पर (आयाहि) व्यापक हो रहा है (सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिए (स्पार्हः) स्पृहणीय [चाहने योग्य] (देव) हे देव (नियुत्वता) वायु के साथ ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्म देव! दिव्य गुणों की इच्छाएँ होने पर मैं तेरे ज्ञान को प्रथम प्राप्त करता हूँ। शुद्धस्वरूप तथा चाहने योग्य तू संसार की रक्षा के लिए वायु के साथ व्यापक है ॥१॥

१६२९—वामदेव । इन्द्रवायू । अनुष्टुप् ।

१ २   ३ १ २   ३ १ २

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।

३ १   २र ३ २उ   ३ २ ३क २र

युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) जीवात्मा (च) और (वायो) हे परमेश्वर (एषाम्) इन (सोमानाम्) उत्पन्न पदार्थों की (पीतिम्) रक्षा के (अर्हथः) योग्य हो (युवाम्) तुम दोनों को (हि) ही (यन्ति) प्राप्त करते हैं (इन्दवः) योगीजन (निम्नम्) नीची जगह को (आपः) जल के (न) समान (सध्र्यक्) साथ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू और जीव दोनों इन उत्पन्न संसारी पदार्थों की रक्षा में समर्थ हो। नीचे स्थान को जल के समान योगीजन तुम दोनों को ही प्राप्त करते हैं ॥२॥

१६३०—वामदेव । इन्द्रवायू । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नियुत्वन्ता न ऊतय आ यात सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—( वायो ) हे परमेश्वर ( इन्द्रः ) जीव ( च ) और ( शुष्मिणा ) बलवान् ( सरथम् ) समानरूप से प्रकृति रथ पर विराजमान ( शवसस्पती ) बल के रक्षक ( नियुत्वन्ता ) समर्थ [ प्रभु स्वामी ] ( नः ) हमारे ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( आयातम् ) प्राप्त होओ ( सोमपीतये ) ऐश्वर्य के पालन के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और जीवात्मा दोनों ही बलवान्, बल के रक्षक तथा समर्थ हो । तुम दोनों हमारी ओर ऐश्वर्य की रक्षा के लिए संसार रूप रथ पर एक साथ रहते हुए प्राप्त हो ॥३॥

१६३१—रेभसूनू । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥१॥

पदार्थ—( अध ) पश्चात् ( क्षपा ) अज्ञानरात्रियों को ( परिष्कृत ) पवित्र किया गया ( वाजान् ) ज्ञानों का ( अभि ) भली भांति ( प्रगाहते ) अवगाहन करता है ( यदी ) जब ( विवस्वतः ) परमेश्वर के ( धियः ) ज्ञान ( हरिम् ) हरणशील [ व्यवहारों का हरण करनेवाला ] ( हिन्वन्ति ) प्रेरित करती हैं ( यातवे ) जानने के लिए ॥१॥

भावार्थ—जब परमेश्वर के ज्ञान व्यवहार कुशल तुझ को निज स्वरूप के जानने के लिए प्रेरणा करते हैं तब हे जीव ! तू अज्ञान रात्रि को पार कर पवित्र हुआ भली भांति ज्ञान का अवगाहन करता है ॥१॥

१६३२—रेभसूनू । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥२॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( अस्य ) इस ( मर्जयामसि ) प्राप्त करते हैं ( मदः ) आनन्द को ( यः ) जो ( इन्द्रपातमः ) जीव के अत्यन्त पान करने के योग्य है ( यम् ) जिसको ( गावः ) स्तोता ( आसभिः ) मुखों से ( दधुः ) धारण करते अर्थात् प्रशंसा करते हैं ( पुरा ) पहले के समान ( नूनम् ) निश्चित ( च ) ही ( सूरयः ) ज्ञानी लोग ॥२॥

भावार्थ—इस परमेश्वर को जो आनन्द जीव के अत्यन्त पान करने के योग्य है, जिसकी उपासक और विद्वान् लोग पहले और अब भी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते आए हैं उसे हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

१६३३—रेभसूनू । सोम । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३क २र

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३॥

पदार्थ—( तम ) उसकी ( गाथया ) वेदवाणी ( पुराण्या ) सनातन ( पुनानम् ) पवित्र करनेवाले ( अभ्यनूषत ) स्तुति करते हैं । ( उतो ) तथा ( कृपन्त ) समर्थ करती हैं ( धीतयः ) ज्ञान ( देवानाम् ) देवों के ( नाम ) नाम को ( बिभ्रतीः ) धारण करनेवाली ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वान् पवित्रकर्त्ता परमेश्वर की सनातन वेदवाणी से स्तुति करते हैं तथा देवों के नाम को धारण करनेवाले ज्ञान उनको समर्थ बनाते हैं ॥३॥

१६३४—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।

३ १ २ ३ १ २

सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१॥

पदार्थ—( अश्वम् ) अश्व के ( न ) समान ( त्वा ) तेरी ( वारवन्तम् ) अज्ञान को दूर करनेवाले ( वन्दध्यै ) वन्दना करते हैं ( अग्निम् ) तेजस्वी ( नमोभिः ) नमस्कार के द्वारा ( सम्राजन्तम् ) सम्राट् ( तम् ) उस ( अध्वराणाम् ) कल्याणकारी यज्ञ के ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! हम अश्व के समान बलवान्, अज्ञान के विनाशक तथा यज्ञों के सम्राट् तुझ तेजस्वी की नमस्कारों से वन्दना करते हैं ॥१॥

१६३५—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२॥

पदार्थ—( सः ) वह ( घा ) ही ( नः ) हमारे लिए ( सूनुः ) सृष्टिकर्त्ता ( शवसा ) अपनी शक्ति से ( पृथुप्रगामा ) बहुत उत्कृष्ट गतिवाला ( सुशेवः ) उत्तम सुखवाला ( मीढ्वान् ) मनोरथों की वर्षा करनेवाला ( अस्माकम् ) हमारा ( बभूयात् ) होवे ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता, अपनी शक्ति से सर्वत्र विराजमान होनेवाला वह परमेश्वर हमारे लिए उत्तम सुखदाता तथा हमारे मनोरथों को पूरा करनेवाला होवे ॥२॥

१६३६—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥३॥

पदार्थ—( स ) वह ( नः ) हमारी ( दूरात् ) दूर से ( आसात् ) समीप से ( च ) और ( नि ) सम्पूर्ण रूप से ( मर्त्यात् ) मनुष्य से ( अघायोः ) पापी ( पाहि ) रक्षा कर ( सदमित् ) सर्वदा ही ( विश्वायुः ) विश्वव्यापी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वव्यापक तू दूर तथा समीप अर्थात् सर्वत्र पापी मनुष्य से सदा ही हमारी रक्षा कर ॥३॥

१६३७—नृमेध । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( इन्द्र ) हे सेनापते ( प्रतूर्तिषु ) संग्रामों में ( अभि ) भली भांति ( विश्वा ) सारी ( असि ) तू ( स्पृधः ) लड़नेवालों ( अशस्तिहा ) विपत्ति का नाशक ( जनिता ) उत्पादक ( वृत्रतूः ) शत्रु का नाशक ( असि ) है ( त्वम् ) तू ( तूर्य ) हे शत्रु-घातक ( तरुष्यतः ) बाधा पहुँचाने वाले का ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! तू संग्रामों में सारी शत्रु-सेनाओं को परास्त करता है । हे विघ्न करनेवालों के विघातक ! तू प्रजा की विपदा को दूर करनेवाला तथा शत्रुओं की विपदाओं का उत्पादक और शत्रुनाशक है ॥१॥

१६३८—नृमेध । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ ३ १ २

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२॥

पदार्थ—( अनु ) पीछे ( ते ) तेरे ( शुष्मम् ) बल के ( तुरयन्तम् ) शत्रुनाशक ( ईयतुः ) चलते हैं ( क्षोणी ) द्यु और पृथिवीलोक ( शिशुम् ) बच्चे को ( न ) समान ( मातरा ) माता के । ( विश्वाः ) समस्त ( ते ) तेरे ( स्पृधः ) पाप करनेवाले [ स्पर्धा करनेवाले ] ( श्नथयन्त ) ढीले पड़ जाते हैं ( मन्यवे ) क्रोध के लिए ( वृत्रम् ) पाप को ( यत् ) क्योंकि ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( तूर्वसि ) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बच्चे को माता के समान द्यु और पृथिवीलोक तेरे बल के पीछे चलते हैं । क्योंकि तू पाप का विनाश करता है इसलिए सारे पाप करनेवाले तेरे क्रोध से ढीले पड़ जाते हैं ॥२॥

卐 द्वितीय खण्ड समाप्त 卐

१६३९—गोषूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥१॥

पदार्थ—( यज्ञः ) परमेश्वर ( इन्द्रम् ) सूर्य को ( अवर्धयत् ) बड़ा बनाया ( यत् ) जो कि ( भूमिम् ) भूगोल को ( व्यवर्तयत् ) घुमाता है ( चक्राणः ) करता हुआ ( ओपशम् ) अत्यन्त सम्बद्ध ( दिवि ) आकाश में ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सूर्य को बड़ा बनाया जो कि पृथ्वी को आकाश में अत्यन्त नियन्त्रित करता हुआ घुमाता है ॥१॥

१६४०—गोषूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्र । गायत्री ।

२ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २र ३ २

व्य३न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥२॥

पदार्थ—( वि ) विशेष ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष में ( अतिरत् ) फैलाता है ( मदे ) दी हुई गति में ( सोमस्य ) परमेश्वर की ( रोचना ) प्रकाश-किरणों को ( इन्द्र ) सूर्य ( यत् ) जो कि ( अभिनत् ) छिन्न-भिन्न करता है ( वलम् ) मेघ को ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियन्त्रण में सूर्य अन्तरिक्ष में प्रकाश को फैलाता है तथा मेघ को छिन्न-भिन्न करता है ॥२॥

१६४१—गोषूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३॥

पदार्थ—( वत् ) उत्कृष्ट ( वः ) वेदवाणियों को ( आवत् ) देता है ( अङ्गि-रोभ्यः ) सृष्टि और विद्या के सिद्धान्त को जाननेवालों के लिए ( आविष्कृण्वन् ) प्रकट करता हुआ ( गुहा ) बुद्धि में ( सतीः ) स्थित ( अर्वाञ्चम् ) नीचे ( तुतुदे ) हटाता है ( अन्धम् ) अज्ञान के आवरण को ॥३॥

भावार्थ—बुद्धि में छिपी वेदवाणियों को प्रकट करते हुए, परमेश्वर विद्या के सिद्धान्तों को जाननेवालों के लिए प्रदान करता है और अज्ञानावरण को दूर करता है ॥३॥

१५४२—श्रुतकक्ष सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥१॥

पदार्थ—( त्यम् ) उस ( उ ) पादपूरक ( वः ) तुम्हारी ( सत्रासाहम् ) सत्य के द्वारा दबानेवाले ( विश्वासु ) सारी ( गीर्षु ) स्तुतियों में ( आयतम् ) विराजमान ( आच्यावयसि ) प्राप्त कर ( ऊतये ) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे भक्त ! तू सत्य के द्वारा सबको वश में करनेवाले, सारी स्तुतियों में विराजमान उस परमेश्वर को अपनी रक्षा के लिए प्राप्त कर ॥१॥

१५४३—श्रुतकक्ष सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥२॥

पदार्थ—( युध्मम् ) व्यापक ( सन्तम् ) सत्स्वरूप ( अनर्वाणम् ) स्वतन्त्र ( सोमपाम् ) संसार के रक्षक ( अनपच्युतम् ) सदा परिपूर्ण ( नरम् ) नेता ( अवार्य-क्रतुम् ) अमोघ कर्मवाले ॥२॥

भावार्थ—हे भक्त ! तू अपनी रक्षा के लिए सर्वव्यापक, सत्स्वरूप, स्वतन्त्र, संसार के रक्षक, सदा पूर्ण, पथप्रदर्शक तथा अमोघ कर्मवाले परमेश्वर का भजन कर ॥ २ ॥

१५४४—श्रुतकक्ष सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥३॥

पदार्थ—( शिक्षा ) दे ( नः ) हमें ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( रायः ) संपदाएँ ( आ ) भली भाँति ( पुरु ) बहुतायत से ( विद्वान् ) जानता हुआ ( ऋचीषम ) हे दर्शनीय ( अव ) रक्षा कर ( नः ) हमारी ( पार्ये ) परिपूर्ण होने पर भी ( धने ) धन के ॥३॥

भावार्थ—हे साक्षात्कार के योग्य परमेश्वर ! तू सर्वज्ञ है । हमें अधिकता से संपदाएँ प्रदान कर तथा पूर्ण धन हो जाने पर भी हमारी रक्षा कर ॥३॥

१५४५—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । उष्णिक् ।

२ १ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३१२

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २३

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१॥

पदार्थ—( तव ) तेरा ( त्यत् ) वह ( इन्द्रियम् ) धन ( बृहत् ) महान् है । ( तव ) तेरी ( दक्षम् ) बल को ( उत ) और ( क्रतुम् ) कर्म और ज्ञान को ( वज्रम् ) शस्त्र को ( शिशाति ) प्रदान करती है ( धिषणा ) वेदवाणी ( वरेण्यम् ) श्रेष्ठ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा धन अपार है । तेरी वेदवाणी श्रेष्ठ बल, विद्या, और शस्त्र प्रदान करती है ॥१॥

१५४६—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । उष्णिक् ।

२ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ ३ १ २

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२॥

पदार्थ—( तव ) तेरे ( द्यौः ) द्युलोक ( इन्द्र ) ( पौंस्यम् ) पराक्रम का ( पृथिवी ) पृथिवी ( वर्धति ) वर्णन करती है ( श्रवः ) यश का ( त्वाम् ) तुझे ( आपः ) जल ( पर्वतासः ) मेघ ( च ) और ( हिन्विरे ) जनाते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! द्युलोक तेरे पराक्रम और भूलोक तेरे यश का वर्णन करते हैं । जल और मेघ आदि तुझे ही जता रहे हैं ॥२॥

१५४७—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । उष्णिक् ।

१ ३२ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १ २

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।

१ ३२ ३ १ २ १ २

त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥

पदार्थ—( त्वाम् ) तेरी ( विष्णुः ) शिल्पविद्या में निपुण मनुष्य ( बृहन् ) महान् ( क्षयः ) आश्रय ( मित्रः ) स्नेही ( गृणाति ) स्तुति करता है ( वरुणः ) विद्वान् अध्यापक ( त्वाम् ) तेरी ( शर्धः ) बल ( मदति ) अर्चना करता है ( अनु ) [illegible] ( मारुतम् ) ऋत्विज् सम्बन्धी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सबका महान् आश्रय है । शिल्पी, स्नेही, तथा विद्वान् अध्यापक तेरी स्तुति करते हैं । ऋत्विजों की शक्ति तेरी ही पूजा करती है ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

१५४८—विरूप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१॥

पदार्थ—( नमः ) नमस्कार ( ते ) तेरे लिए ( अग्ने ) हे विद्वन् ( ओजसे ) बल प्राप्त करने के लिए ( गृणन्ति ) करते हैं ( देव ) हे देव ( कृष्टयः ) मनुष्य लोग ( अमैः ) बलों से ( अमित्रम् ) बुराई को ( अर्दय ) मर्दन करदे ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् देव ! मनुष्य बल की प्राप्ति के लिए तुझे नमस्कार करते हैं । तू बलों से बुराइयों को नष्ट कर ॥१॥

१५४९—विरूपः । अग्नि । गायत्री ।

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२॥

पदार्थ—( कुवित् ) बहुत ( सु ) सुन्दर ( नः ) हमें ( गविष्टये ) इन्द्रियों के कल्याण के लिए ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( संवेषिषः ) देता है ( रयिम् ) धन को ( उरुकृत् ) बड़ा बनानेवाला ( उरु ) बड़ा ( नः ) हमे ( कृधि ) कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों के कल्याण के लिए पर्याप्त धन हमे प्रदान कर । तू महान् बनानेवाला है । अतः हमें महान् बना ॥२॥

१५५०—विरूपः । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥३॥

पदार्थ—( मा ) मत ( नः ) हमें ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( महाधने ) जीवन संग्राम में ( परावर्क् ) पृथक् मत फैंको ( भारभृत् ) बोझा ढोनेवाले के ( यथा ) समान ( सम् ) सम्यक् ( वर्गम् ) कामादि शत्रु वर्ग को ( सम् ) एक साथ ( रयिम् ) धन ( जय ) जिता तथा प्राप्त करा ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू भार को ढोनेवाले के समान हमें जीवन संग्राम में परे मत कर । तू हमारे काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जिता तथा धन की प्राप्ति करा ॥ ३ ॥

१५५१—वत्स । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥१॥

पदार्थ—( सम् ) सम्यक् ( अस्य ) इसके ( मन्यवे ) क्रोध के लिए ( विशः ) प्रजा ( विश्वाः ) सारी ( नमन्त ) नम्र होते हैं ( कृष्टयः ) मनुष्य ( समुद्राय ) समुद्र के लिए ( इव ) समान ( सिन्धवः ) नदियों के ॥१॥

भावार्थ—समुद्र में नदियों के समान सारी मनुष्य प्रजा राजा के क्रोध से नम्र हो जाती है ॥१॥

१५५२—वत्स । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना । वज्रेण शतपर्वणा ॥२॥

पदार्थ—( वि ) विशेष ( चित् ) ही ( वृत्रस्य ) मेघ के ( दोधतः ) गर्जना से कंपायमान करनेवाले ( शिरः ) शिर को ( बिभेद ) छिन्न भिन्न करता है ( वृष्णिना ) वर्षा करानेवाले ( वज्रेण ) किरणसमूह से ( शतपर्वणा ) सैकड़ों कर्म वाले ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर गर्जना से कंपानेवाले मेघ के उच्च शिखर को वर्षा करानेवाले तथा सैकड़ों कर्मों को सिद्ध करनेवाले सूर्य किरणों के समूह द्वारा छिन्न-भिन्न करता है ॥२॥

१५५३—वत्सः । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३॥

पदार्थ—( ओजः ) पराक्रम ( तत् ) वह ( अस्य ) इसका ( तित्विषे ) अत्यन्त प्रकाशित होता है ( उभे ) दोनों ( यत् ) जिससे ( समवर्तयत् ) फैलाता और समेटता है । ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( चर्म ) चमड़े के ( इव ) समान ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर का वह पराक्रम अत्यन्त प्रकाशमान हो रहा है, जिससे कि वह द्यु और पृथिवी लोक को चमड़े के समान सृष्टिकाल में फैलाता और प्रलय-काल में समेट लेता है ॥३॥

१५५४—शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥१॥

पदार्थ—( सुनन्मा ) मनोहर (बृहती) दूर तक बढ़ी हुई ( रम्भी ) रमणीय ( सूनरी ) उषा ॥१॥

भावार्थ—मनोहर, दूर तक छाई हुई तथा रमणीय उषा परमेश्वर तथा उसके सृष्टि नियम को स्मरण कराती है ॥१॥

१६५५—शुन शेप । इन्द्र । गायत्री ।

१२ ३ १ २३ २ ३ १ २र३२ २ ३ १ २र

**सक्षप वृषण्वा गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पत ॥२॥**

पदार्थ—( सक्षप ) हे एकरस (वृषन्) हे सुख की वर्षा करनेवाले (आगहि) प्राप्त हो । ( इमौ ) ये दोनो ( भद्रौ ) कल्याण करनेवाले ( धुर्यौ ) ज्ञान और कर्म के भार को वहन करनेवाले ( अभि ) अच्छी प्रकार ( तौ ) वे दोनों ( इमौ ) ये ( उपसर्पतः ) तेरे समीप जाते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे एकरस तथा सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तू सबका कल्याणकारी तथा ज्ञान और कर्म के भार को वहन करनेवाले ज्ञानी और ध्यानी को प्राप्त हो । ये तेरे समीप पहुँचें ॥२॥

१६५६—शुन शेप । इन्द्र । गायत्री ।

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १

**नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥३॥**

पदार्थ—( नि ) निश्चय ( इव ) पादपूरक ( शीर्षाणि ) मस्तिष्कों को ( मृढ्वम् ) ठीक रखो ( मध्ये ) मध्य ( आपस्य ) परमेश्वर के ( तिष्ठति ) स्थित होता है ( शृङ्गेभि ) इन्द्रियों की ज्योतियों से ( दश ) दश ( दिशन् ) बतलाता हुआ [ प्रकट करता हुआ] ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष जीवन्मुक्त हुआ दश इन्द्रियों की ज्योति में से सारे व्यवहारों का निर्देश करता हुआ परमेश्वर में स्थित होता है । अतः हे मनुष्य, तुम अपने मस्तिष्कों को उत्तम बनाओ ॥३॥

卐 चतुर्थ खण्डः समाप्त 卐

卐 सप्तदशोऽध्याय समाप्त 卐

# अष्टादशोऽध्यायः

१६५७—मेधातिथि प्रियमेधश्च । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ १ २ ३ २ ३ १ २

**पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥१॥**

पदार्थ—(पन्यम्) प्रशंसनीय (पन्यम्) प्रशंसा योग्य ( इत् ) ही (सोतारः) भक्त लोगो ( आधावत ) पवित्र करो या जानो ( मद्याय ) आनन्ददायक ( सोमम् ) आत्मा को ( वीराय ) शक्तिमान् ( शूराय ) प्रतापी ॥१॥

भावार्थ—हे भक्तो ! तुम लोग आनन्ददाता, शक्तिमान् तथा प्रतापी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रशंसनीय अपनी आत्मा को जानो और पवित्र करो ॥१॥

१६५८—मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्र । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ १ २ ३ १ २र

**एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षत सखायम् । इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२॥**

पदार्थ—( आ ) भली भांति (इह) इस उपासना यज्ञ में (हरी) ऋक् और साम ( ब्रह्मयुजा ) मन्त्रवाले ( शग्मा ) कल्याणकारी ( वक्षत ) प्राप्त कराते हैं ( सखायम् ) सर्वमित्र ( इन्द्रम् ) परमेश्वर का ( गीर्भिः ) स्तुतियों से (गिर्वणसम्) भजन करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—मन्त्रों से युक्त तथा कल्याणकारी ऋक् और साम सबके मित्र, स्तुतियों से उपास्य परमेश्वर को इस उपासना यज्ञ में प्राप्त कराते हैं ॥२॥

१६५९—मेधातिथि प्रियमेधश्च । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २

**पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥३॥**

पदार्थ—( पाता ) रक्षक ( वृत्रहा ) पाप-नाशक ( सुतम् ) संसार का ( आ ) भली भांति ( घा ) पादपूरक ( गमत ) प्राप्त हो ( आरे ) समीप और दूर से ( अस्मत् ) हमसे [नियमते] नियन्त्रण करता है ( शतमूतिः ) सैकड़ों रक्षाओं वाले ॥३॥

भावार्थ—पालन कर्त्ता, पाप नाशक तथा सैकड़ों प्रकार की रक्षाओं से युक्त वह परमेश्वर हमें प्राप्त हो जो कि हमारे समीप तथा दूरवर्त्ती जगत् का नियमन करता है ॥३॥

१६६०—श्रुतकक्ष सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २

**आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥१॥**

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( त्वा ) तुझ में ( विशन्तु ) आश्रय पावें ( इन्दव ) यज्ञ ( समुद्रम् ) समुद्र में ( इव ) समान ( सिन्धव ) नदियों के ( न ) नहीं ( त्वाम् ) तुझ से ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( अतिरिच्यते ) अतिरिक्त होता है [पृथक् होता है] ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समुद्र में नदियों के समान सारे यज्ञ तुझ में आश्रय पावें । हे सर्वव्यापक ! कोई भी तुझ से पृथक नहीं रह सकता ॥१॥

१६६१—श्रुतकक्ष सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

**विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥**

पदार्थ—( विव्यक्थ ) व्यापक हो रहा है ( महिना ) महिमा से ( वृषन् ) हे सुख की वर्षा करनेवाले ( भक्षम् ) भक्ष्य पदार्थ में ( सोमस्य ) संसार के ( जागृवे ) सर्वदा सावधान ( य ) जो ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( जठरेषु ) मध्य में ( ते ) तेरे ॥२॥

भावार्थ—हे सदा सावधान तथा सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तू अपने मध्य मे स्थित संसार के समस्त योग्य पदार्थों मे व्यापक हो रहा है ॥२॥

१६६२—श्रुतकक्ष सुकक्षो वा । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

**अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥३॥**

पदार्थ—( अरम् ) समर्थ (ते) तेरी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( कुक्षये ) गोद के लिए ( सोमः ) आत्मा (भवतु) हो ( वृत्रहन् ) हे पापनाशक ( अरम् ) पर्याप्त ( धामभ्य ) तीनों लोकों के लिए ( इन्दवः ) यज्ञ ॥३॥

भावार्थ—हे पापनाशक परमेश्वर ! आत्मा तेरी गोद मे बैठने के लिए समर्थ हो तथा यज्ञादि कर्म तीनों लोकों की प्राप्ति के लिए पर्याप्त होवें ॥३॥

१६६३—शुन शेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

**जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१॥**

पदार्थ—( जराबोध ) हे स्तुति का बोध करानेवाले (तत्) उस (विविड्ढि) कर ( विशेविशे ) प्रजामात्र के लिए ( यज्ञियाय ) पूज्य ( स्तोमम् ) प्रशंसा वचन ( रुद्राय ) ग्यारहवें रुद्र आत्मा के लिए ( दृशीकम् ) मनोहर ॥१॥

भावार्थ—हे स्तुति का ज्ञान करानेवाले विद्वन् ! प्रजामात्र के लिए पूज्य जीव की मनोहर प्रशंसा कर ॥१॥

१६६४—शुनःशेप । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

**स नो महाँ अनिमानो धूमकेतु पुरुश्चन्द्र । धिये वाजाय हिन्वतु ॥२॥**

पदार्थ—( स ) वह ( न ) हमे ( महान् ) महान् ( अनिमान ) अपरिच्छिन्न = सर्वव्यापक ( धूमकेतु ) दुष्टों का दमन करनेवाला ( पुरु ) महान् ( चन्द्र ) आनन्ददाता ( धिये ) ज्ञान के लिए (वाजाय) अन्न के लिए ( हिन्वतु ) प्रेरित करे ॥२॥

भावार्थ—महान्, सर्वव्यापक, दुष्टों का दमन करनेवाला तथा आनन्ददाता परमेश्वर हमे बुद्धि और अन्न की प्राप्ति के लिए प्रेरणा करे ॥२॥

१६६५—शुन शेप । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

**स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्य केतु शृणोतु न । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥३॥**

पदार्थ—( स ) वह ( रेवान् ) धनवान् की ( इव ) भांति ( विश्पति ) प्रजा का स्वामी ( दैव्यः ) विद्वानों का हितकारी ( केतु ) वेद का ज्ञान देनेवाला (शृणोतु) सुने ( न ) हमारी (उक्थै ) स्तुतियों द्वारा (अग्निः) परमेश्वर (बृहद्भानुः) महान् प्रकाशवाला ॥३॥

भावार्थ—प्रजा का पालक, विद्वानों का हितकारी, वेद का ज्ञान करनेवाला तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर धनी पुरुष के समान स्तुतियों के द्वारा हमारी सुने ॥३॥

१६६६—मधु । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ २उ ३ २ ३ १ २

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१॥

पदार्थ—( तत् ) उस ( वः ) तुम लोग ( गाय ) गान करो ( सुते ) संसार में ( सचा ) सत्य से ( पुरुहूताय ) बहुतों से आह्वान किया जानेवाला ( सत्वने ) धनदाता ( शम् ) सुखदायी ( यत् ) जो ( गवे ) वेदवाणी के ( न ) समान ( शाकिने ) शक्तिशाली ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग बहुतों से पुकारे जानेवाले, धनदाता तथा शक्तिमान् विद्वान् के लिए वेदवाणी के समान कल्याणकारी स्तोत्र का सत्यता के साथ गान करो ॥१॥

१६६७—मधु । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ २३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २३ २३ १ २

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥२॥

पदार्थ—( न ) नहीं ( घ ) ही ( वसुः ) सर्वव्यापक ( नियमते ) रोकता है ( दानम् ) दान को ( वाजस्य ) ज्ञान का ( गोमतः ) वेदविद्यायुक्त ( यत् ) जब ( सीम् ) सर्वथा ( उपश्रवत् ) सुन लेता है ( गिरः ) स्तुतियों को ॥२॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर जब हमारी स्तुतियों को सर्वथा सुन लेता है तो हमारे लिए वह विद्यायुक्त विज्ञान के दान को नहीं रोकता ॥२॥

१६६८—मधु । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥३॥

पदार्थ—( कुवित्सस्य ) अत्यन्त भजन करनेवाले [जीव] के ( प्र ) उत्तम ( हि ) निश्चय ( व्रजम् ) शरीर रूप बाड़े में ( गोमन्तम् ) इन्द्रिययुक्त ( दस्युहा ) पापनाशक ( गमत् ) व्यापक हो रहा है ( शचीभिः ) प्रज्ञाओं द्वारा ( अप ) दूर ( नः ) हमारे [अज्ञान को] ( वरत् ) करे ॥३॥

भावार्थ—जो पापनाशक परमेश्वर अत्यन्त भक्ति करनेवाले जीव के इन्द्रिययुक्त शरीर में व्यापक हो रहा है वह ज्ञानों से हमारे अज्ञान को दूर करे ॥३॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

१६६९—मेधातिथि । विष्णु । गायत्री ।

१ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ २

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥१॥

पदार्थ—( इदम् ) इस जगत् को ( विष्णुः ) सूर्य ( विचक्रमे ) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है ( त्रेधा ) तीन स्थानों में [ पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में ] ( निदधे ) धारण करता है ( पदम् ) किरणों का ( समूढम् ) छिपी हुई है ( अस्य ) इसका ( पांसुले ) अन्तरिक्ष में ॥१॥

भावार्थ—सूर्य इस दृश्यमान जगत् को प्रकाशित करता है। वह अपनी किरणों को पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक तीनों स्थानों में फैलाता है। उसकी इस प्रकार की किरण अन्तरिक्ष में छिपी हुई दृष्टिगोचर नहीं होती है ॥१॥

१६७०—मेधातिथि । विष्णु । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥२॥

पदार्थ—( त्रीणि ) तीन ( पदा ) पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोकों में ( विचक्रमे ) व्यापक हो रहा है ( विष्णुः ) परमेश्वर ( गोपाः ) रक्षक ( अदाभ्यः ) अविनाशी ( अतः ) इसलिए ( धर्माणि ) अपने सब धर्मों को ( धारयन् ) धारण करता हुआ विद्यमान है ॥२॥

भावार्थ—अविनाशी तथा सर्वरक्षक परमेश्वर तीनों लोकों में व्यापक होता हुआ अपने गुणोंसहित विद्यमान है ॥२॥

१६७१—मेधातिथिः । विष्णु । गायत्री ।

३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥

पदार्थ—( विष्णोः ) परमेश्वर के ( कर्माणि ) कर्मों को ( पश्यत ) देखो ( यतः ) जिससे ( व्रतानि ) नियमों को ( पस्पशे ) प्राप्त होता है ( इन्द्रस्य ) जीव का ( युज्यः ) घनिष्ठ ( सखा ) मित्र है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उस परमेश्वर के सृष्टि-रचना आदि कर्मों को देखो जिससे विद्वान् नियमों को धारण करता है तथा जो जीव का घनिष्ठ मित्र है ॥३॥

१६७२—मेधातिथिः । विष्णु । गायत्री ।

३ २र ३ १ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥४॥

पदार्थ—( तत् ) उस ( विष्णोः ) परमेश्वर के ( परमम् ) परम ( पदम् ) मोक्षरूप पद को ( सदा ) सर्वदा ( पश्यन्ति ) देखते हैं ( सूरयः ) ज्ञानी ( दिवि ) आकाश में ( इव ) समान ( चक्षुः ) नेत्र ( आततम् ) फैले हुए ॥४॥

भावार्थ—विद्वान् जन आकाश में फैले हुए पदार्थों को नेत्र के समान परमेश्वर के परम मोक्षपद को सदा देखते हैं ॥४॥

१६७३—मेधातिथि । विष्णु । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ ३ १ २

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५॥

पदार्थ—( तत् ) उस ( विप्रासः ) मेधावीजन ( विपन्यवः ) भजन करने वाले ( जागृवांसः ) सदा सावधान ( समिन्धते ) प्राप्त करते हैं ( विष्णोः ) परमेश्वर का ( यत् ) जो ( परमम् ) परम ( पदम् ) स्वरूप ॥५॥

भावार्थ—भजन करनेवाले तथा सदा सावधान मेधावीजन परमेश्वर के उत्तम स्वरूप को प्राप्त करते हैं ॥५॥

१६७४—मेधातिथि । विष्णु । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ॥६॥

पदार्थ—( अतः ) इसलिए ( देवाः ) दिव्य पदार्थ ( अवन्तु ) रक्षा करते हैं ( नः ) हमारी ( यतः ) क्योंकि ( विष्णुः ) परमेश्वर ( विचक्रमे ) व्यापक हो रहा है ( पृथिव्याः ) पृथिवी से लेकर ( अधिसानवि ) ऊँचे द्युलोक आदि में ॥६॥

भावार्थ—चूँकि परमेश्वर पृथिवी से लेकर उच्च द्युलोकादि पर्यन्त व्यापक हो रहा है, अतः सारे दिव्य पदार्थ हमारी रक्षा करते हैं ॥६॥

१६७५—वसिष्ठ । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र

मोषु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१॥

पदार्थ—( मा उ ) नहीं ( सु ) उत्तम ( त्वा ) तुझे ( वाघतः ) मेधावी पुरुष ( चन ) भी ( आरे ) दूर ( अस्मत् ) हम से ( निरीरमन् ) आनन्दित करें ( आरात्तात् ) दूर से ( वा ) अथवा ( सधमादम् ) समीप ( नः ) हमारे ( आगहि ) आओ ( इह ) यहां ( वा ) अथवा ( सन् ) विद्यमान हुआ ( उपश्रुधि ) सुनो ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! मेधावीजन हमसे दूर रह कर तुझे आनन्दित न करें। तू दूर से हमारे समीप आ और यहां विद्यमान रहते हुए हमारी सुन ॥१॥

१६७६—वसिष्ठ । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥

पदार्थ—( इमे ) ये ( हि ) निश्चय ( ते ) वे ( ब्रह्मकृतः ) स्तुति करने वाले ( सुते ) उत्पन्न संसार में ( सचा ) साथ ( मधौ ) मधु पर ( न ) समान ( मक्षः ) मधुमक्खियों के ( आसते ) बैठना है ( इन्द्रे ) परमेश्वर में ( कामम् ) कामना को ( जरितारः ) स्तोता लोग ( वसूयवः ) धन चाहने वाले ( रथे ) रथपर ( न ) समान ( पादम् ) पाँव को ( आदधुः ) रखते हैं ॥२॥

भावार्थ—ये स्तुति करनेवाले इस संसार में मधु पर मधुमक्खियों के समान एक साथ बैठे हैं। जिस प्रकार धन चाहनेवाले रथ पर पाँव रखते हैं, उसी प्रकार स्तोता लोग परमेश्वर में अपनी कामना को रख देते हैं ॥२॥

१६७७—आयुः । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥

पदार्थ—( अस्तावि ) स्तुति किया जाता है ( मन्म ) मनन योग्य ( पूर्व्यम् ) सनातन ( ब्रह्म ) वेदमन्त्र को ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( वोचत ) बोलो ( पूर्वीः ) पुरातन ( ऋतस्य ) ज्ञान की ( बृहतीः ) साम-स्तोत्रों को ( अनूषत ) उच्चारण करो ( स्तोतुः ) स्तोता की ( मेधाः ) बुद्धि को ( असृक्षत ) देता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उपास्य है उस परमेश्वर की पुरातन तथा मनन योग्य वेदमन्त्र से स्तुति करो। उसकी सेवा में ज्ञान के पुरातन भण्डार सामों का उच्चारण करो। वह स्तुति करनेवालों को बुद्धि देता है ॥१॥

१६७८—आयु । इन्द्र । बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २उ ३ २ ३ १ २

सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥

पदार्थ—( सम् ) सम्यक् ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( रायः ) संपदाएँ ( बृहतीः ) महान् ( अधूनुत ) दे रखा है ( सम् ) सम्यक् ( क्षोणीः ) द्यु और पृथिवीलोक को ( स ) सम्यक ( सूर्यम् ) सूर्य को ( सम् ) सम्यक् ( शुक्रास ) तेजस्वी ( शुचयः ) पवित्र ( सम् ) सम्यक् ( गवाशिरः ) वेदवाणी का आश्रय करनेवाले ( सोमाः ) विद्वान् जन ( इन्द्रम् ) परमेश्वर की ( अमन्दिषु ) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ने हमारे लाभार्थ महान् संपदाएँ, द्युलोक, पृथिवी तथा सूर्य को दे रखा है। तेजस्वी, पवित्र और वेदवाणी का आश्रयण करनेवाले विद्वान् जन उसकी स्तुति करते हैं ॥२॥

१६७९—अम्बरीष ऋजिश्वा च। सोम। अनुष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३र

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥१॥

पदार्थ—( इन्द्राय ) ऐश्वर्यशाली ( सोम ) हे विद्वन् ( पातवे ) रक्षा करने के लिए ( वृत्रघ्ने ) बुराइयों को दूर करनेवाले ( परिषिच्यसे ) भली प्रकार धनादि से पूर्ण किया जाता है ( नरे ) मनुष्य के लिए ( च ) और ( दक्षिणावते ) दक्षिणा देनेवाले ( वीराय ) वीर ( सदनासदे ) यज्ञ करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू ऐश्वर्यशाली, बुराइयों को दूर करनेवाले, दक्षिणादाता, वीर तथा यज्ञकर्त्ता पुरुष की रक्षा के लिए धनादि से परिपूर्ण किया जाता है ॥१॥

१६८०—अम्बरीष ऋजिश्वा च। सोम। अनुष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त सखाय पुरूरुच वय यूय च सूरय।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

अश्याम वाजगन्ध्य सनेम वाजपस्त्यम् ॥२॥

पदार्थ—( तम् ) उसकी ( सखाय ) हे मित्रो ! ( पुरूरुचम् ) तेजस्वी ( वयम् ) हम लोग ( यूयम् ) तुम लोग ( च ) और ( सूरय ) विद्वान् लोग ( अश्याम ) प्राप्त होवें ( वाजगन्ध्यम् ) ज्ञानरूप गन्ध से युक्त ( सनेम ) भजन करें ( वाजपस्त्यम् ) सकल संपदाओं के आश्रय ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! विद्वान् तुम लोग और हम ज्ञानवान् तेजस्वी तथा सकल सम्पदाओं के आश्रय उस परमेश्वर को प्राप्त होवें और उस का भजन करें ॥२॥

१६८१—अम्बरीष ऋजिश्वा च। सोमः। अनुष्टुप्।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।

२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥३॥

पदार्थ—( परि ) सब ओर से ( त्यम् ) उसको ( हर्यतम् ) कमनीय ( हरिम् ) मनुष्य को ( बभ्रुम् ) भरण के योग्य ( पुनन्ति ) पवित्र करते हैं ( वारेण ) उत्तम गुण के साथ ( य ) जो ( देवान् ) विद्वान् और अतिथियों की ( विश्वान् ) सम्पूर्ण ( इत् ) ही ( परि ) भली प्रकार ( मदेन ) प्रसन्नता के ( सह ) साथ ( गच्छति ) सेवा के लिए प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थ—जो प्रसन्नता के साथ विद्वान् और अतिथियों की सेवा करता है उस कमनीय तथा भरण के योग्य मनुष्य को ससार के सभी उत्तम पदार्थ अपने उत्तम गुण के सहित प्राप्त होते हैं ॥३॥

१६८२—वसिष्ठ। इन्द्र। बृहती।

१ २र ३ १ २र

कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति।

३ १ २ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाज सिषासति ॥१॥

पदार्थ—( कः ) कौन ( तम् ) उस ( इन्द्र ) हे राजन् ( त्वा ) तुझे ( वसो ) हे आश्रयदाता ( आ ) भली भांति ( मर्त्यः ) मनुष्य ( दधर्षति ) तिरस्कृत कर सकता है ( श्रद्धा ) अनुराग ( हि ) ही ( ते ) तेरे ( मघवन् ) हे धन के युक्त ( पार्ये ) आपत्ति से पार लगानेवाले ( दिवि ) दिन में ( वाजी ) बलवान् ( वाजम् ) बल को ( सिषासति ) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे आश्रयदाता राजन् ! कौन मनुष्य तेरा तिरस्कार कर सकता है। हे धनवान् ! बलवान् पुरुष आपत्ति के दिन में रक्षा के लिए श्रद्धा से ही तेरे बल की सहायता प्राप्त कर सकता है ॥१॥

१६८३—वसिष्ठ। इन्द्र। बृहती।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

मघोन स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३

तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥२॥

पदार्थ—( मघोन ) धन यज्ञ करनेवाले ( स्म ) पादपूरक ( वृत्रहत्येषु ) बुराइयों के निवारक यज्ञों में ( चोदय ) प्रेरित कर ( ये ) जो ( ददति ) देते हैं ( प्रिया ) प्यारे ( वसु ) धन को ( तव ) तेरी ( प्रणीती ) वेदशिक्षा से ( हर्यश्व ) हे दुःखहर्ता तथा सर्वव्यापक ( सूरिभि ) विद्वानों के साथ ( विश्वा ) समस्त ( तरेम ) पार होवें ( दुरिता ) दुष्कर्मों का बाधाओं से ॥२॥

भावार्थ—हे दुःखहर्ता तथा सर्वव्यापक परमेश्वर ! जो लोग उत्तम धन का दान करते हैं उनको यज्ञकर्त्ता दुष्टनिवारक यज्ञों में प्रवृत्त कर। तेरी शिक्षा से विद्वानों के साथ हम सारे दुःखों को पार कर लें ॥२॥

## 卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६८४—विश्वमना। सोम। उष्णिक्।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धस।

१ २उ १ १ २र ३ १ २

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( इत् ) ही ( उ ) पादपूरक ( मधोः ) मधुर ( मदिन्तरम् ) आनन्ददायक ( सिञ्च ) सेवन करो ( अध्वर्यो ) हे याज्ञिक ( अन्धस ) सोम के ( एवाहि ) ऐसे ही ( वीरः ) वीर ( स्तवते ) प्रशंसा पाता है ( सदावृध ) सर्वदा उन्नति करनेवाला ॥१॥

भावार्थ—हे याज्ञिक पुरुष ! तू मधुर सोम के आनन्ददायक अंश से यज्ञ कर। समर्थ तथा सदा उन्नति करनेवाला विद्वान् एसे ही प्रशंसित होता है ॥१॥

१६८५—विश्वमना। सोम। उष्णिक्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्। उदानंश शवसा न भन्दना ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( स्थातः ) अधिष्ठाता ( हरीणाम् ) मनुष्यादि प्राणी वर्ग के ( नकिः ) कोई नहीं ( ते ) तेरी ( पूर्व्यस्तुतिम् ) सनातन स्तुति को ( उदानंश ) पा सकता है ( शवसा ) बल से ( न ) नहीं ( भन्दना ) वन्दना को ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यादि प्राणीवर्ग के अधिष्ठाता परमेश्वर, तेरी सनातन कीर्त्ति तथा वन्दना को कोई भी बल से नहीं पा सकता है ॥२॥

१६८६—विश्वमना। इन्द्र। उष्णिक्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥

पदार्थ—( तम् ) उस ( वः ) तुम्हारे ( वाजानाम् ) अन्नों के ( पतिम् ) पालक ( अहूमहि ) पुकारते हैं ( श्रवस्यवः ) अन्न और यश को चाहनेवाले ( अप्रायुभि ) अपूर्व ( यज्ञेभि ) यज्ञों से ( वावृधेन्यम् ) सबको बढ़ानेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अन्न और यश की कामनावाले हम लोग तुम्हारे पूज्य अन्नों के स्वामी अपूर्व यज्ञों से सबको बढ़ानेवाले परमेश्वर को पुकारते हैं ॥३॥

१६८७—सौभरि। अग्नि। ककुप्।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा हव्यमूहिषे ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (गूर्धय)प्रशंसा कर (स्वर्णरम्) सबके नेता (देवासः) विद्वान् लोग (देवम्) पूज्य (अरतिम्) स्वामी (दधन्विरे) धारण करते हैं (देवत्रा) विद्वानों को (हव्यम) विज्ञान (ऊहिषे) प्राप्त कराता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! विद्वान् लोग सबके नेता और स्वामी जिस पूज्य विद्वान् को प्राप्त करते हैं उसकी प्रशंसा कर। हे विद्वन् ! तू विद्यार्थियों को विज्ञान का उपदेश करता है ॥१॥

१६८८—सौभरि। अग्नि। ककुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥२॥

पदार्थ—( विभूतरातिम् ) महान् दानी ( विप्र ) मेधावी ( चित्रशोचिषम् ) अद्भुत प्रकाशवाले (अग्निम्) परमेश्वर की (ईडिष्व) स्तुति कर (यन्तुरम्) सबके नियन्ता (अस्य) इस (मेधस्य) यज्ञ के (सोम्यस्य) संसार रचना सम्बन्धी (सोभरे) हे उत्तम भरणपोषण करनेवाले (प्र) उत्तम (ईम्) इस (अध्वराय) यज्ञ के लिए (पूर्व्यम्) सनातन ॥२॥

भावार्थ—हे उत्तम भरण पोषण करनेवाले मेधावी पुरुष ! तू संसाररचनारूपी यज्ञ की सिद्धि के लिए संसार रचना सम्बन्धी यज्ञ के नियन्ता महान् दानी, अद्भुत प्रकाशवाले तथा सनातन परमेश्वर की स्तुति कर ॥२॥

१६८९—अद्रि सप्तर्षयो वा । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ २र १ १ २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।

३ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (सोम) हे विद्वन् ( स्वानः ) उपदेश करता हुआ (अद्रिभिः) आदरणीय वेदमन्त्रों द्वारा (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (वाराणि) आवरणों को (अव्यया) प्राकृतिक (जनः) मनुष्य के (न) समान (पुरि) नगर में (चम्वो) दो सेनाओं के मध्यवर्ती (विशत्) प्रवेश करता है (हरिः) सेनापति ( सदः ) स्थान में (वनेषु) वनों में (दध्रिषे) ध्यान करता है ॥१॥

भावार्थ—जैसे सेनापति नगरी में मनुष्य के समान दो सेनाओं के मध्यवर्ती स्थान में प्रवेश करता है वैसे हे विद्वन् ! तू आदरणीय वेदमन्त्रों से उपदेश करता हुआ प्रकृति के आवरणों को दूर करके परमेश्वर के ध्यान के लिए वनों में प्रवेश करता है ॥१॥

१६९०—अद्रि सप्तर्षयो वा । सोम । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।

३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥२॥

पदार्थ—(स) वह ( मामृजे ) सुशोभित किया जाता है ( तिरः ) तिरस्कार करता हुआ (अण्वानि) सूक्ष्म परमाणुओं के विकारों को ( मेष्य ) चढ़ाई करनेवालों का हितकारक (मीढ्वान्) बलवान् (सप्तिः) अश्व के (न) समान (वाजयुः) आत्मबल और कामना करनेवाला (अनुमाद्यः) आनन्दित किया जाने योग्य ( पवमानः ) पवित्र (मनीषिभिः) मननशील (सोमः) विद्वान् (विप्रेभिः ) ज्ञानियों से ( ऋक्वभिः ) स्तुति करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—आत्मबल चाहनेवाले मननशील, तथा भक्त ज्ञानियों द्वारा आनन्दित किया जाने योग्य, पवित्र तथा प्राकृतिक पदार्थों को त्यागता हुआ विद्वान्, चढ़ाई करने वालों के सहायक तथा बलवान् अश्व के समान सुशोभित किया जाता है ॥२॥

१६९१—कलि । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।

१ २ ३ १ २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (एनम्) इस (इदा) इस समय ( ह्यः ) गत दिन (अपीपेम) बढ़ाते हैं (इह) यहां (वज्रिणम्) शस्त्रधारी (तस्मा) उसके लिए (उ) ही (अद्य) आज (सवने) संग्राम में (सुतम्) उत्तम पदार्थ से (भर) भरपूर कर (नूनम्) निश्चय (भूषत) सुशोभित कर (श्रुते) कीर्ति के लिए ॥१॥

भावार्थ—हम इस शस्त्रधारी राजा की प्रतिदिन वृद्धि चाहते हैं । हे परमेश्वर ! तू संग्राम में इसे उत्तम पदार्थ से भरपूर कर । हे प्रजाजन ! तुम इसे यश के लिए अवश्य सुशोभित करो ॥१॥

१६९२—कलि । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

२उ ३ १ २ ३क २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥

पदार्थ—( वृक ) आदित्य, चन्द्र, चोर, भेड़िया, विद्युत् आदि (चित्) भी (अस्य) इसके (वारणः) निवारण, हरण, (उरामथिः) बहुतों को मथने या दुःख देने वाला (आ) भली भांति (वयुनेषु) प्रज्ञान से (भूषति) विद्यमान है (सः) वह (इमम्) इस (नः) हमारे (स्तोमम्) स्तुति को (जुजुषाण) स्वीकार करता हुआ ( आगहि ) प्राप्त हो (इन्द्र) हे परमेश्वर (प्र) प्रकृष्ट (चित्रया) अद्भुत (धिया) बुद्धि के साथ ॥२॥

भावार्थ—रोगनिवारक, बहुतों को मथन करनेवाले आदित्य, चन्द्र, विद्युत् तथा धनापहारक चोर आदि सभी जिसके ज्ञान में विद्यमान हैं, वह तू हमारी स्तुति को स्वीकार करता हुआ अद्भुत बुद्धि के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

१६९३—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३क २र
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर ( रोचना ) प्रकाशक ( दिवः ) दिव्य गुण के ( परि ) सब प्रकार से ( वाजेषु) विद्या और विज्ञान द्वारा होने वाले कार्यों में (भूषथः) सुशोभित करते हो (तत्) उसे (वाम्) तुम दोनों का (चेति) प्रकट करता (प्र) उत्तमता से (वीर्यम्) सामर्थ्य ॥१॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! दिव्य गुणों के प्रकाशक तुम दोनों विद्या तथा विज्ञान के द्वारा होने वाले कार्यों में हमें सुशोभित करते हो । तुम दोनों का सामर्थ्य ही इस बात को प्रकट करता है ॥१॥

१६९४—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक और उपदेशक ! (अपसः) कर्म का (परि) सब प्रकार से (उप) समीप (प्रयन्ति) प्राप्त करें (धीतयः) कर्मेन्द्रियां (ऋतस्य) सत्य के (पथ्या) मार्ग के (अनु) अनुकूल ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! आपकी शिक्षा से हमारी कर्मेन्द्रियां सत्य मार्ग के अनुकूल चलती हुई उत्तम कर्म करें ॥२॥

१६९५—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक तथा उपदेशक (तविषाणि) बल (वाम्) तुम दोनों के (सधस्थानि ) एक स्थान वाले हैं ( प्रयांसि ) कामना के योग्य ( च ) और ( युवोः ) तुम दोनों का ( अप्तूर्यम् ) शीघ्र कर्मानुष्ठान ( हितम् ) कल्याणकारी है ॥३॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनों के बल संयुक्त और कामना के योग्य हैं । तुम्हारा कर्मानुष्ठान हितकारी है ॥३॥

१६९६—मेधातिथिः । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१॥

पदार्थ—(कः) प्रजापति परमेश्वर (ईम्) इसको ( वेद ) जानता है ( सुते ) उत्पन्न संसार में ( सचा ) शरीर और इन्द्रियों के साथ ( पिबन्तम् ) उपभोग करते हुए (कत्) कितनी ( वयः ) आयु ( दधे ) धारण करता है ( अयम् ) यह ( यः ) जो ( पुरः ) नगरी या समूह को (विभिनत्ति) भेदन करता है ( ओजसा ) अपने ओज से (मन्दानः) सुखस्वरूप (शिप्री) द्यौ और पृथिवी लोक का स्वामी (अन्धसः) अन्धकार को ॥१॥

भावार्थ—वह इस संसार में इन्द्रिय और शरीर के साथ उसका उपभोग करने वाला जीव कितनी आयु धारण करता है इसको वह प्रजापति परमेश्वर ही जानता है । जो द्यु और पृथिवीलोक का स्वामी, आनन्दस्वरूप तथा अपने तेज से अज्ञानान्धकार के समूह को छिन्न भिन्न करनेवाला है ॥१॥

१६९७—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥२॥

पदार्थ—(दाना) मद जल से (मृगः) जंगली [ या घूमता हुआ ] (न) जैसे (वारणः) हाथी (पुरुत्रा) बहुत स्थानों में ( चरथम् ) जाना आना ( दधे ) करता है (नकिः ) कोई नहीं (त्वा) तुझे (नियमत्) रोक सकता है [या नियन्त्रित कर सकता है ] (आ) भली भांति (सुते) संसार में (गमः) प्राप्त हो (महान्) महान् ( चरसि ) व्यापक है (ओजसा) अपनी शक्ति से ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार मद से मस्त हुआ जंगली हाथी निरंकुश होकर सब स्थानों में घूमता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! महान् तू अपनी शक्ति से सर्वत्र व्यापक हो रहा है संसार में कोई भी तुझे रोक नहीं सकता ॥२॥

१६९८—मेधातिथि । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (उग्रः) बलवान् (सन्) सज्जन ( अनिष्टृतः ) शत्रु जिसको पार नहीं पाते (स्थिरः ) दृढ़ (रणाय) संग्राम के लिए (संस्कृत ) अलंकृत (यदि) जो (स्तोतुः ) बन्दी [प्रशंसा पाठ करने वाले] ( मघवा ) ऐश्वर्यशाली ( शृणवत् ) सुने ( हवम् ) प्रकार को ( न ) नहीं ( इन्द्र ) राजा ( योषति ) संग्राम से पृथक् जाता है ( आगमत् ) आता है ॥३॥

भावार्थ—जो बलवान्, सज्जन, शत्रुओं से पराजित न होनेवाला, दृढ़, संग्राम के लिए सदा सुसज्जित तथा बलवान् राजा है वह यदि प्रशंसा पाठ करनेवाले बन्दी के वचन सुनता है तो युद्ध से मुख न मोड़ कर मैदान में आता है ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्तः 卐

१६९९—निध्रुविः । सोम । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३२ ३ १ १
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

पदार्थ—( पवमानाः ) पवित्र ( असृक्षत ) उत्पन्न किए जाते हैं ( सोमाः ) विद्वान् जन ( शुक्रासः ) उज्ज्वल चरित्रवाले ( इन्दवः ) विद्या आदि ऐश्वर्यसम्पन्न ( अभि ) उद्देश्य से ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( काव्या ) काव्यों के ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर उज्ज्वल चरित्रवाले, विद्या विनय सम्पन्न तथा पवित्र आत्मा विद्वानों को समस्त वेदादि काव्यों की रक्षा के उद्देश्य से उत्पन्न करता है ॥१॥

१७००—निध्रुवि । सोम । गायत्री ।

१२ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥

पदार्थ—( पवमाना ) भिन्न योनियों में जानेवाले ( दिव परि ) द्युलोक पर्यन्त या उससे परे भी (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से लेकर ( असृक्षत ) उत्पन्न किए जाते हैं ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( अधिसानवि ) पृष्ठ पर ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ने भिन्न-भिन्न योनियों में जानेवाले जीवों को पृथिवी के पृष्ठ पर तथा अन्तरिक्ष और द्युलोक पर्यन्त उत्पन्न किया है ॥२॥

१७०१—निध्रुवि । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥

पदार्थ—(पवमानास ) गतिशील ( आशव ) शीघ्रगामी ( शुभ्रा ) प्रकाशवाले ( असृग्रम् ) उत्पन्न किए जाते हैं ( इन्दव ) जल ( घ्नन्तः ) नष्ट करते हुए ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( अप ) दूर ( द्विष ) रोगादि दुःखों को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर चर मनुष्यादि शीघ्रगामी वायु आदि प्रकाशवाले चन्द्र आदि जल तथा रोगनिवारक औषधि आदि सभी पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥३॥

१७०२—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १२ ३ १ २ ३ १ २
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥१॥

पदार्थ—(तोशा) विघ्नों के बाधक (वृत्रहणा) पापनाशक ( हुवे ) आह्वान करता हूँ ( सजित्वाना ) जयशील [प्रबल] (अपराजिता) न हारनेवाले (इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और विद्वान् ( वाजसातमा ) ज्ञानदाता ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और विद्वन् ! विघ्नों के निवारक पापनाशक, प्रबल, न हारनेवाले तथा ज्ञान के दाता आप दोनों का मैं आह्वान करता हूँ ॥१॥

१७०३—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥२॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( वाम् ) तुम दोनों का ( अर्चन्ति ) सत्कार करते हैं ( उक्थिन ) साम-गायक ( नीथाविद ) विनयशील ( जरितार ) ईश्वर भक्त ( इन्द्राग्नी ) हे आचार्य और उपदेशक ( इष ) ज्ञान का ( आवृणे ) स्वीकार करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे आचार्य और उपदेशक महानुभावो साम-गायक विनयी और ईश्वरभक्त आप लोगों का आदर करते हैं । मैं भी आप दोनों के ज्ञान को चाहता हूँ ॥२॥

१७०४—विश्वामित्र । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) हे सभाध्यक्ष और सेनापते ( नवतिम् ) नब्बे [९०] ( पुरः ) नगरों को ( दासपत्नी ) शत्रुओं से रक्षित ( अधूनुतम् ) कम्पित कर देते हो ( साकम् ) साथ ( एकेन ) एक ( कर्मणा ) कर्म उपाय या नीति से ॥३॥

भावार्थ—हे सभा और सेना के अध्यक्षो ! तुम दोनों एक ही नीति से शत्रुओं से रक्षित नब्बे (९०) नगरों को कम्पायमान कर देते हो ॥३॥

१७०५—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥१॥

पदार्थ—( उप ) सामीप्य ( त्वा ) तेरे लिए ( रण्वसंदृशम् ) स्तुति के योग्य ( प्रयस्वन्तः ) अन्न आदि की कामना करते हुए ( सहस्कृत ) हे बल के उत्पादक ( अग्ने ) परमेश्वर (ससृज्महे) उच्चारण करते हैं ( गिरः ) स्तुतियों का ॥१॥

भावार्थ—हे बल के उत्पादक परमेश्वर ! अन्न आदि की कामनावाले हम स्तुति योग्य तुझ प्रभु की स्तुति करते हैं ॥१॥

१७०६—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ १ २ २ ३ १ २
उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥२॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( छायाम् ) छाया के ( इव ) समान ( घृणे ) प्रकाशमान ( अगन्म ) प्राप्त करें ( शर्म ) आश्रय, शरण को ( ते ) तेरे ( वयम् ) हम लोग ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( हिरण्यसंदृश ) सूर्यवत्प्रकाशमान ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग छाया के समान सूर्यवत् प्रकाशमान तथा तेजस्वी तुझ प्रभु की शरण को प्राप्त करें ॥२॥

१७०७—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३॥

पदार्थ—( यः ) जो ( उग्रः ) प्रचण्ड ( इव ) समान ( शर्यहा ) बाणधारी के ( तिग्मशृङ्ग ) अग्नि के ( न ) समान (वंसग ) सब पदार्थों का विभाग करनेवाले (अग्ने) हे परमेश्वर (पुर ) संसार के लोकलोकान्तर रूप नगरियों को (रुरोजिथ ) प्रलयकाल में छिन्न भिन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रचण्ड धनुर्धर के तथा पदार्थों का विभाग करनेवाले अग्नि के समान प्रलयकाल में संसार को छिन्न भिन्न करता है ॥३॥

१७०८—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥१॥

पदार्थ—(ऋतावानम्) सत्यज्ञानवाले ( वैश्वानरम् ) मनुष्यमात्र के हितकारी ( ऋतस्य ) सच्चे (ज्योतिष ) प्रकाश के ( पतिम् ) रक्षक (अजस्रम्) सदा (घर्मम्) प्रकाशस्वरूप (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हम सत्य ज्ञानवाले, मनुष्यमात्र के हितकारी, सच्ची ज्योति के रक्षक तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सदा प्रार्थना करते हैं ॥१॥

१७०९—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २र ३ २
य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् । ऋतूनुत्सृजते वशी ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो (इद) प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत् का ( प्रतिपप्रथे) विस्तार करता है ( यज्ञस्य ) धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूप व्यवहार का ( स्व ) फलरूप सुख को ( उत्तिरन् ) प्रदान करता हुआ ( ऋतून् ) छः ऋतुओं को ( उत्सृजते ) उत्पन्न करता है ( वशी ) सबको वश में रखनेवाला ॥२॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सबको वश में रखनेवाला है वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सुखरूप फल को प्रदान करता हुआ इस संसार का विस्तार तथा ऋतुओं को उत्पन्न करता है ॥२॥

१७१०—भरद्वाज । अग्नि । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥३॥

पदार्थ—( अग्निः ) परमेश्वर (प्रियेषु) प्रिय ( धामसु ) लोकों में (कामः) कामना योग्य ( भूतस्य ) भूत ( भव्यस्य ) भविष्यकाल का ( सम्राट् ) सम्राट् ( एक ) एकमात्र ( विराजति ) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—जो कुछ हो चुका और जो कुछ होनेवाला है, उसका एक मात्र सम्राट कमनीय परमेश्वर समस्त लोकों में विराजमान है ॥३॥

卐 चतुर्थ खण्डः समाप्तः 卐

卐 अष्टादशोऽध्यायः समाप्त 卐

卐

# एकोनविंशोऽध्यायः

१७११—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २ ३ १ २र

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं३ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥

पदार्थ—( अग्निः ) जीव आत्मा ( प्रत्नेन ) सनातन अनादि प्रवाह से होनेवाले ( मन्मना ) जन्म से ( शुम्भानः ) सुशोभित करता हुआ ( तन्वम् ) शरीर को ( स्वाम् ) अपने ( कविः ) मेधावी ( विप्रेण ) परमेश्वर द्वारा ( वावृधे ) बढ़ाया जाता है ॥१॥

भावार्थ—मेधावी जीव अनादि प्रवाह से होनेवाले जन्म में अपने शरीर को सुशोभित करता हुआ परमेश्वर के द्वारा बढ़ाया जाता है ॥१॥

१७१२—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥

पदार्थ—( ऊर्जः ) बल की ( नपातम् ) रक्षा करनेवाले ( आहुवे ) आह्वान करता हूँ ( अग्निम् ) परमेश्वर का ( पावकशोचिषम् ) पवित्रकारक तेज से युक्त ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञे ) उपासना यज्ञ में ( स्वध्वरे ) उत्तम कल्याणकारी ॥२॥

भावार्थ—मैं बल के रक्षक तथा पवित्रकारक तेज वाले परमेश्वर का इस कल्याणकारी उपासना यज्ञ में आह्वान करता हूँ ॥२॥

१७१३—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३॥

पदार्थ—( सः ) वह ( नः ) हमारे कल्याणाय ( मित्रमहः ) मित्रों से पूजनीय ( त्वम् ) तू ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( शुक्रेण ) पवित्र ( शोचिषा ) तेज से ( देवैः ) सारे देवों के साथ [संपूर्ण दिव्य शक्तियों या गुणों के साथ] ( आसत्सि ) विराजमान है ( बर्हिषि ) आकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! मित्रों का पूज्य तू हमारे कल्याणार्थ पवित्र तेज तथा दिव्य शक्तियों के साथ आकाश में विराजमान है ॥३॥

१७१४—अवत्सार । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥

पदार्थ—( उत् ) उत्कृष्ट ( ते ) तेरे ( शुष्मासः ) बल ( अस्थुः ) स्थित हैं ( रक्षः ) विघ्नों या दुर्गुणों को ( भिन्दन्तः ) छिन्न-भिन्न करते हुए ( अद्रिवः ) आदरणीयों के स्वामी ( नुदस्व ) दूर कर ( याः ) जो ( परि ) सब प्रकार के ( स्पृधः ) स्पर्धा करनेवाली वृत्तियाँ ॥१॥

भावार्थ—हे आदरणीयों के भी स्वामी परमेश्वर! तेरे बल बुरी भावनाओं को छिन्न-भिन्न करते हुए सर्वोपरि विराजमान हैं। तू बुरे स्पर्धावाली मनोवृत्तियों को दूर कर ॥१॥

१७१५—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥

पदार्थ—( अया ) इस ( निजघ्निः ) विघ्ननिवारक ( ओजसा ) शक्ति से ( रथसङ्गे ) रथ के साथ ( धने ) धन के लिए ( हिते ) कल्याणकारी ( स्तवै ) स्तुति करता हूँ ( अबिभ्युषा ) निर्भय ( हृदा ) मन से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू अपनी शक्ति से ही विघ्नों का नाश करनेवाला है। मैं रथ आदि वस्तुओं सहित कल्याणकारी धन के लिए निर्भय मन से तेरी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१७१६—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३क १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥

पदार्थ—( अस्य ) इस परमेश्वर के ( व्रतानि ) नियमों को ( नाधृषे ) अखण्ड हैं ( पवमानस्य ) शुद्धस्वरूप ( दूढ्या ) दुर्बुद्धि से ( रुज ) मानमर्दन कर ( यः ) जो ( त्वा ) तुमसे ( पृतन्यति ) संग्राम करना चाहे ॥३॥

भावार्थ—हे राजन्! तू शुद्धस्वरूप परमेश्वर के नियमों को अखण्डनीय मानता हुआ तुझ पर वृथा चढ़ाई करनेवाले का मान मर्दन कर ॥३॥

१७१७—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥

पदार्थ—( तम् ) उसको ( हिन्वन्ति ) प्रेरित करते हैं ( मदच्युतम् ) सुख को देनेवाले ( हरिम् ) अज्ञानहर्ता ( नदीषु ) नदी के समान प्रवाहवाली चित्त-वृत्तियों के विषय में ( वाजिनम् ) बलवान्, वेगवान् ( इन्दुम् ) आनन्दवर्षकारी ( इन्द्राय ) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ( मत्सरम् ) प्रसन्न ॥४॥

भावार्थ—आत्मिक सुख की वर्षा करनेवाले, अज्ञानहर्ता, चित्तवृत्तियों के विषय में बलवान्, वेगवान् तथा ज्ञान, ऐश्वर्यवाले विद्वान् पुरुष को परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं ॥४॥

१७१८—विश्वामित्र । इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

२ ३ १ ३ १ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

मा त्वा केचिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( मन्द्रैः ) सुखदायक ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( हरिभिः ) किरणों के साथ ( याहि ) व्यापक हो रहा है ( मयूररोमभिः ) मोर के पंख के समान चित्र विचित्र रंगोंवाली ( मा ) नहीं ( त्वा ) तुझे ( केचित् ) कोई ( नियेमुः ) बाँध सकते हैं ( इत् ) ही ( न ) समान ( पाशिनः ) पाश या बन्धनवाले के ( अति ) अतिक्रमण ( धन्व ) आकाश के ( इव ) समान ( तान् ) उन सबको ( इहि ) स्थित करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू मयूर के पंख के समान चित्र-विचित्र रंगोंवाली सुखदायक सूर्यकिरणों के साथ आकाश मण्डल में व्यापक हो रहा है तथा आकाश के समान सबको अतिक्रमण करके स्थित है ॥१॥

१७१९—विश्वामित्र । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥२॥

पदार्थ—( वृत्रखादः ) आवरण का विनाशक ( वलम् ) मेघ का ( रुजः ) छिन्न भिन्न करनेवाला ( पुराम् ) संघात द्रव्यों का, लोकों का ( दर्मः ) विदारण कर्ता ( अपामजः ) जलों की वृष्टि करनेवाला ( स्थाता ) स्थापन करनेवाला ( रथस्य ) सूर्य का ( हर्योः ) वायु और अग्नि का ( अभिस्वरे ) ध्वनिवाले आकाश मण्डल में ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( दृढाचित् ) दृढ़तापूर्वक ( आरुजः ) भली भाँति बाधाओं का विनाशक ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर आवरण का विनाशक, मेघ का छिन्न भिन्न करनेवाला, संघात द्रव्यों का या लोकों का विदारक, सूर्य, वायु तथा अग्नि का अन्तरिक्ष में दृढ़तापूर्वक स्थापन करनेवाला तथा बाधाओं का दूर करनेवाला है ॥२॥

१७२०—विश्वामित्र । इन्द्र । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १

प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥

पदार्थ—( गम्भीरान् ) अगाध ( उदधीन् ) समुद्रों को ( इव ) समान ( क्रतुम् ) ज्ञान और कर्म को ( पुष्यसि ) पुष्ट करता है ( गाः ) वेदवाणी को ( इव ) समान ( प्र ) उत्तम रक्षक विद्वान् के ( यवसम् ) घास को ( धेनवः ) गौओं को ( यथा ) जैसे ( ह्रदम् ) समुद्र को ( कुल्याः ) नदियाँ के ( इव ) समान ( आशत ) प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू अगाध समुद्रों को मेघजल के समान तथा वेदवाणी को विद्वान् के समान हमारे ज्ञान, कर्म और यज्ञ को पुष्ट करता है। हे भगवन्, जिस प्रकार गौएँ घास को तथा नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे ही ज्ञानी जन तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

१७२१—देवातिथि । इन्द्र । प्रगाथम ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३उ ३ १ २र

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

१ ३ १ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१॥

पदार्थ—( यथा ) जिस प्रकार ( गौरः ) मृग ( अपाकृतम् ) जलयुक्त ( तृष्यन् ) प्यासा हुआ ( एति ) जाता है ( अव ) सर्वथा ( इरिणम् ) ऊसर भूमि को ( आपित्वे ) मित्रता ( नः ) हम ( प्रपित्वे ) प्राप्त होने पर ( तूयम् ) शीघ्र ( आगहि ) प्राप्त होता है ( कण्वेषु ) मेधावी पुरुषों में ( सु ) उत्तम ( सचा ) अपने साथवाले विज्ञान से ( पिब ) रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! जिस प्रकार प्यासा मृग जलयुक्त ऊसर भूमि को प्राप्त होता है उसी प्रकार मित्रता प्राप्त होने पर तू हम मेधावियों को शीघ्र प्राप्त होता है और अपने से संयुक्त ज्ञान से रक्षा करता है ॥१॥

१७२२—देवातिथि । इन्द्र । प्रगाथम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २

आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥२॥

पदार्थ—( मन्दन्तु ) स्तुति करते हैं ( त्वा ) तेरी ( मघवन् ) हे धनों के स्वामी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( इन्दवः ) विद्वान् जन ( राधोदेयाय ) धन देने के लिए

( सुन्वते ) यज्ञ करनेवाले के लिए ( आ ) भली भांति ( अस्य ) इसके ( ओजसम् ) पदार्थ की ( आ अविथ ) रक्षा करता है ( चमूषुतम् ) द्यु और पृथिवीलोक में उत्पन्न ( ज्येष्ठम ) श्रेष्ठ ( तत् ) इस कारण ( दधिषे ) धारण करता है ( सहः ) बल को ॥२॥

भावार्थ—हे धनों के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् लोग यज्ञ करनेवाले को धन देने के लिए तेरी स्तुति करते हैं। तू इस यज्ञकर्ता के लिए द्यु और पृथिवीलोक में उत्पन्न पदार्थ की रक्षा करता है। इस लिए हे भगवन् ! तू श्रेष्ठ बल का धारण करनेवाला है ॥२॥

१७२३—गोतमः। इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २र        ३ १ २   ३ १ २
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

२उ ३ १ २              ३ २ ३ १ २   ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( अङ्ग ) हे ( प्रशंसिषः ) प्रशंसा करता है ( देवः ) देव ( शविष्ठ ) हे शक्तिशाली ( मर्त्यम् ) मनुष्य की ( न ) नहीं ( त्वदन्यः ) तुझ से भिन्न ( मघवन् ) हे विद्या धन से युक्त ( अस्ति ) है ( मर्डिता ) सुखदाता ( इन्द्र ) हे विद्वन् ( ब्रवीमि ) कहता हूं ( ते ) तेरे लिए ( वचः ) प्रशंसायुक्त वचन ॥१॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली तथा विद्याधन से युक्त विद्वन् ! देवस्वरूप तू मनुष्य की प्रशंसा करता है। 'तुझ से भिन्न सुखदाता और कोई नहीं' यह प्रशंसावचन तेरे लिए कहता हूं ॥१॥

१७२४—गोतमः। इन्द्र । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १   २र ३ १ २
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।

१ २            ३ १ २ ३ १ २    ३ २ ३ २
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२॥

पदार्थ—( मा ) नहीं ( ते ) तेरे ( राधांसि ) धनादि पदार्थ ( मा ) नहीं ( ते ) तेरी ( ऊतयः ) रक्षाएँ ( वसो ) हे सबको निवास देनेवाले ( अस्मान् ) हम लोगो को ( कदाचन ) कभी भी ( आ दभन् ) विनष्ट करें ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( च ) और ( नः ) हमे ( उपमिमीहि ) प्रदान कर ( मानुष ) हे मनुष्यो के हितकारी ( वसूनि ) धनों को ( चर्षणिभ्यः ) मनुष्यो के लिए ( आ ) भली भांति ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वाश्रय तथा मनुष्यमात्र के हितकारी परमेश्वर ! तेरे धनादि पदार्थ तथा रक्षाएँ हमें कभी भी विनष्ट न करें। हे भगवन् ! तू हमे मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण धनो को प्रदान कर ॥२॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१७२५—वामदेव । उषा । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३   १२   ३ १ २       ३ २
प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥

पदार्थ—( प्रति ) तरफ ( स्या ) वह ( सूनरी ) उषा ( जनी ) उत्पन्न होनेवाली ( व्युच्छन्ती ) अन्धकार को दूर करती हुई ( परि ) समाप्ति पर ( स्वसुः ) बहिन रात्रि के ( दिवः ) आदित्य की ( अदर्शि ) दिखलाई पडती है ( दुहिता ) पुत्री ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे विधान से उत्पन्न हुई, तथा अन्धकार को दूर करनेवाली आदित्य की पुत्रीरूप उषा [प्रभातकाल] रात्रि की समाप्ति पर दिखलाई पडती है ॥१॥

१७२६—वामदेव । उषा । गायत्री ।

१ २   ३ १२    ३ १ २र ३ १ २     १ २ ३ १ २ ३  २
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२॥

पदार्थ—( अश्वा ) विद्युत् से ( इव ) समान ( चित्रा ) चित्र-विचित्र ( अरुषी ) प्रकाशमयी ( माता ) जन्म देनेवाली ( गवाम् ) किरणों को ( ऋतावरी ) परमेश्वर को स्मरण दिलानेवाली ( सखा ) साथ रहनेवाली ( अभूत् ) होती है ( अश्विनोः ) द्यु और पृथिवी लोक के ( उषाः ) प्रभात ॥२॥

भावार्थ—विद्युत् के समान चित्र विचित्र, प्रकाशमयी, किरणों को उत्पन्न करने तथा परमेश्वर को स्मरण करानेवाली उषावेला द्यु और पृथिवी लोक में उपस्थित होती है ॥२॥

१७२७—वामदेव । उषा । गायत्री ।

३ १   २र   ३ १ २ ३ २ ३ १   २उ       ३ २ ३ १ २
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥

पदार्थ—( उत ) और ( सखा ) साथी ( असि ) है ( अश्विनोः ) द्यु और पृथिवी लोक की ( उत ) और ( माता ) उत्पन्न करनेवाली ( गवाम् ) किरणों की ( उत ) और ( उषः ) उषावेला ( वस्वः ) समस्त प्राणियों पर ( ईशिषे ) प्रभाव डालती है ॥३॥

भावार्थ—उषावेला द्यु और पृथिवी लोक की साथी, किरणों को उत्पन्न करने वाली है। वह परमेश्वर की कृपा से प्राणिमात्र पर अपना प्रभाव डालती है ॥३॥

१७२८—प्रस्कण्वः । अश्विनौ । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३क २र      ३ २ ३ २ ३ ३ १ २        ३ २
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥

पदार्थ—( एषा ) यह ( उ ) पादपूरक ( उषाः ) प्रभातवेला ( अपूर्व्या ) अद्भुत ( व्युच्छति ) अन्धकार को दूर करती है ( प्रिया ) सबके प्रीति की हेतु ( दिवः ) परमेश्वर के ( स्तुषे ) गुणगान करता हूं ( वाम् ) तुम दोनों का ( अश्विना ) हे सूर्य और चन्द्र के समान अध्यापक तथा उपदेशक ( बृहत् ) पर्याप्त रूप से ॥१॥

भावार्थ—अद्भुत तथा सबकी प्रगति की हेतु यह उषावेला परमेश्वर के प्रभाव से अन्धकार को नाश करती है। हे अध्यापक और उपदेशक ! मैं तुम लोगों के गुणगान करता हूं ॥१॥

१७२९—प्रस्कण्वः । अश्विनौ । गायत्री ।

२ ३ १   २र        १ १ २ ३ २      ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥

पदार्थ—( या ) जो दोनों ( दस्रा ) दुःख दूर करनेवाले ( सिन्धुमातरा ) परमेश्वर है माता जिनकी ( मनोतरा ) मन से तारनेवाले ( रयीणाम् ) धनों के ( धिया ) ज्ञान और कर्म से ( देवा ) दाता ( वसुविदा ) समस्त पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता ॥२॥

भावार्थ—जो दुःख के दूर करनेवाले, अपने ज्ञान और कर्म से मन के साथ हमें पार लगानेवाले ज्ञानधनों के दाता तथा पृथिवी आदि सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञाता अध्यापक और उपदेशक हैं उन दोनों महानुभावों का हम गुणगान करते हैं ॥२॥

१७३०—प्रस्कण्वः । अश्विनौ । गायत्री ।

३ १ २      ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

पदार्थ—( वच्यन्ते ) उपदेश करें ( वाम् ) तुम दोनों को ( ककुहासः ) महान् विद्वान् लोग ( जूर्णायाम् ) वृद्धावस्था में ( अधिविष्टपि ) अन्तरिक्ष में ( यत् ) जो ( वाम् ) तुम्हारा ( रथ ) विमान ( विभि ) पक्षियों के साथ ( पतात् ) उड ॥३॥

भावार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ानेवाले ! जब वृद्ध, अनुभवी महान् विद्वान् तुम्हे शिल्पविद्या का उपदेश करते हैं तब तुम्हारे द्वारा निर्माण किया गया रथ पक्षियों के साथ अन्तरिक्ष में उड़ता है ॥३॥

१७३१—गोतम । उषाः । उष्णिक ।

२ ३ २ ३ १    २र ३ १ २
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।

१ २ ३ २ ३ १२  ३ १ २
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१॥

पदार्थ—( उषः ) हे उषा के समान पवित्र स्त्री ( तत् ) उस ( चित्रम् ) विचित्र सौभाग्य को ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( आभर ) धारण कर ( वाजिनीवति ) हे अन्न आदि का यथायोग्य संचय करनेवाली ( येन ) जिससे ( तोकम् ) पुत्र ( च ) और ( तनयम् ) पौत्र को ( च ) भी ( धामहे ) धारण करें ॥१॥

भावार्थ—हे धन आदि का संचय करनेवाली उषा के तुल्य पवित्रता युक्त स्त्री ! तू हमें वह सौभाग्य दे जिससे कि हम पुत्र और पौत्र को भी धारण कर सकें ॥१॥

१७३२—गोतम । उषा । उष्णिक् ।

१ ९ ३ १ २र ३ १ २              ३ २ ३ १ २
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥२॥

पदार्थ—( उषः ) हे उषा के समान उज्ज्वल चरित्रवाली विदुषी ( अद्य ) आज ( इह ) इस संसार में ( गोमति ) हे गौ से युक्त ( अश्वावति ) हे अश्वोंवाली ( विभावरि ) हे ज्ञान प्रकाशवाली ( रेवत् ) धन-धान्य सम्पन्न ( अस्मे ) हमें ( व्युच्छ ) अन्धकार से दूर रख ( सूनृतावति ) हे सत्यवाणीवाली ॥२॥

भावार्थ—हे गौ तथा अश्व आदि से युक्त उत्तम प्रकाशवाली तथा सत्य वाणी की स्वामिनि विदुषि देवि ! तू हमें धन-धान्य से सम्पन्न करती हुई अज्ञानान्धकार से दूर हटा ॥२॥

१७३३—गौतमः । उषा । उष्णिक् ।

१ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥३॥

पदार्थ—( युङ्क्ष्व ) जुतकर ( हि ) निश्चय से ( वाजिनीवति ) हे उत्तम कर्मोंवाली ( अश्वान् ) किरणों को ( अद्य ) आज ( अरुणान् ) लाल ( उषः ) हे उषा के समान विशाल प्रकाशवाली विदुषी ! ( अथा ) अनन्तर ( नः ) हमें ( विश्वा ) सारे ( सौभगानि ) सौभाग्यों को ( आवह ) प्राप्त करा ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम कर्मवाली विदुषि देवि ! जिस प्रकार प्रात उषा लाल किरणों को युक्त करती है वैसे ही तू हमें सकल सौभाग्यों को आज प्राप्त करा ॥३॥

१७३४—गोतमः । अश्विनौ । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१॥

पदार्थ—( अश्विना ) हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ाने वालो ( वर्तिः ) मार्ग ( अस्मत् ) हमारे लिए ( आ ) सब प्रकार से ( गोमत् ) गौ से युक्त ( दस्रा ) कला कौशल के विघ्नों के निवारक ( हिरण्यवत् ) सुवर्ण आदि से युक्त ( अर्वाक् ) सम्मुख ( रथम् ) विमान आदि ( समनसा ) समान मनवाले ( नियच्छतम् ) दो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ानेवाले ! शिल्पज्ञान के विघ्नों को दूर करते तथा समान मनवाले तुम लोग हमारे लिये गौ और सुवर्ण आदि की प्राप्ति का मार्ग दिखलाओ तथा हमें विमान आदि साधन भी प्रदान करो ॥१॥

१७३५—गौतम । अश्विनौ । उष्णिक् ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।

३ १ २ ३ १ २
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥२॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( इह ) इस ससार मे ( मयोभुवा ) सुख की भावना को जागृत करनेवाले ( दस्रा ) सम्पूर्ण दु.खों को दूर करनेवाले ( हिरण्यवर्तनी ) प्रकाशवाले ( उषर्बुधः ) प्रात काल का ज्ञान करानेवाली सूर्य की किरणो को ( वहन्तु ) प्राप्त करें तथा करावें ( सोमपीतये ) शान्तिदायक और पौष्टिक पदार्थों के उपभोग के लिए ॥२॥

भावार्थ—सुख की भावना को जगानेवाले दुःखनाशक और प्रकाशस्वरूप अग्नि तथा वायु देव इस ससार में मनुष्यों के शान्तिदायक तथा पुष्टिकारक पदार्थों के भोग के लिए सूर्य की किरणों को प्राप्त करें ॥२॥

१७३६—गोतम । अश्विनौ । उष्णिक् ।

२ १ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

२ ३ १ २ ३ २
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥३॥

पदार्थ—( यौ ) जो दोनों ( इत्था ) इस प्रकार ( श्लोकम् ) उत्तमवाणी को ( आ ) सब प्रकार से ( दिवः ) सूर्य के ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( जनाय ) जनता के लिए ( चक्रथुः ) सिद्ध करते हैं ( आ ) सब प्रकार से ( नः ) हमें ( ऊर्जम् ) बल को ( वहतम् ) प्राप्त करावें ( अश्विना ) अग्नि तथा वायु ( युवम् ) तुम दोनों [यहां पर ये दोनों निरुक्त नियम से हो जायेंगे क्योंकि निरुक्त के नियम से जड़ पदार्थों के लिए प्रयुक्त मध्यम पुरुष प्रथम पुरुष में परिवर्तित हो जाता है] ॥३॥

भावार्थ—जो वायु और अग्नि जनता के लिए सूर्य का प्रकाश करते हैं वे उत्तम बल और वाणी को प्राप्त कराते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१७३७—वसुश्रुत । अग्निः । पङ्क्तिः ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

३ १ २ ३ १ २उ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—( अग्निम् ) परमेश्वर का ( तम् ) उस ( मन्ये ) मनन करता हूं ( यः ) जो ( वसुः ) सबको आच्छादन करनेवाला तथा सबमें बसनेवाला ( अस्तम् ) आश्रयरूप ( यम् ) जिसको ( यन्ति ) प्राप्त करती हैं ( धेनवः ) वेदवाणियां ( अस्तम् ) आश्रय को ( अर्वन्तः ) ज्ञानीजन ( आशवः ) शीघ्रकारी ( अस्तम् ) आश्रय को

( नित्यासः ) निरन्तर कर्मानुष्ठानवाले ( वाजिनः ) यजमान ( इषम् ) अन्न को ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालों के लिए ( आभर ) भरपूर करता है ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सबका आच्छादनकर्ता है तथा स्वयं सबमें बसने वाला है जिसके आश्रय से वेदवाणियाँ रहती हैं, विद्वज्जन और यजमान लोग जिसको ज्ञान से प्राप्त करते हैं और जो स्तुति करने वालों को धन, अन्न आदि देता है उस प्रभु का मैं मनन करता हूं ॥१॥

१७३८—वसुश्रुत । अग्नि । पङ्क्ति ।

१ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

पदार्थ—( अग्निः ) परमेश्वर ( हि ) ही ( वाजिनम् ) अश्व आदि का ( विशे ) मनुष्य के लिए ( ददाति ) देता है ( विश्वचर्षणिः ) सबका साक्षी ( अग्नि ) परमेश्वर ( राये ) सपदा को ( स्वाभुवम् ) स्वाभाविक ( सुप्रीत ) प्रसन्न हुआ ( याति ) प्राप्त कराता है ( वार्यम् ) श्रेष्ठ ( इषम् ) विज्ञान को ( स्तोतृभ्यः ) उपासकों के लिए ( आभर ) देता है ॥२॥

भावार्थ—सर्वसाक्षी परमेश्वर मनुष्य को अश्व आदि देता है । प्रसन्न हुआ वह स्वाभाविक तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करता है । वह ही उपासकों को ज्ञान से भरपूर करता है ॥२॥

१७३९—वसुश्रुत । अग्निः । पङ्क्ति ।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

पदार्थ—( स ) वह ( अग्निः ) परमेश्वर ( यः ) जो ( वसुः ) सर्वव्यापक ( गृणे ) उपासना किया जाता है ( सम् ) सम्यक् ( यम् ) जिसका ( आयन्ति ) ज्ञान कराती है ( धेनवः ) वेदवाणियां ( सम् ) भली भाँति ( अर्वन्तः ) मनुष्य ( रघुद्रुवः ) थोड़ा जानने वाले ( सं ) सम्यक ( सुजातासः ) प्रसिद्ध ( सूरयः ) ज्ञानीजन ( इषम् ) इच्छा को ( स्तोतृभ्यः ) उपासको की ( आभर ) पूरा करता है ॥३॥

भावार्थ—जो सर्वव्यापक है जिसको वेदवाणी वर्णन करती है, अल्पज्ञानी मनुष्य भी जिसका आश्रय लेते हैं जिसको प्रसिद्ध ज्ञानीजन प्राप्त करते हैं तथा जो उपासको की इच्छा की पूर्ति करता है, वह परमेश्वर उपासना करने योग्य है ॥३॥

१७४०—सत्यश्रवा आत्रेयो वा । उषा । पङ्क्ति ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

पदार्थ—( महे ) महान् ( नः ) हमें ( अद्य ) आज ( बोधय ) जगा दे ( उषः ) प्रात काल के समान ( राये ) संपदा के लिए ( दिवित्मती ) प्रकाशवाली ( यथाचित् ) जैसे भी हो ( नः ) हमें ( सत्यश्रवसि ) सच्ची कीर्तिवाले ( वाय्ये ) सन्तान का विस्तार करनेवाले ( सुजाते ) उत्तम जन्म तथा ( अश्वसूनृते ) महान् सत्यवादी मुझ पर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जैसे कि पूर्व सृष्टि में तूने हमें चेताया उसी प्रकार प्रात काल के समान महान् संपदा के लिए अब भी हमें जगा । हे प्रभो ! सच्ची कीर्ति से युक्त, सन्तान का विस्तार करने वाले, उत्तम जन्मवाले तथा महान् सत्यवादी मुझ पर कृपा कर ॥१॥

१७४१—सत्यश्रवाः आत्रेयो वा । उषा । पङ्क्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

पदार्थ—( या ) जो ( सुनीथे ) उत्तम गतिवाले ( शौचद्रथे ) प्रकाश ज्ञान में ( व्यौच्छः ) बताया है ( दुहितः ) कन्या के समान ( दिवः ) सूर्य की ( सा ) वह ( व्युच्छ ) प्रकाश कर ( सहीयसि ) सहनशील ( सत्यश्रवसि ) सच्चाई का श्रवण करनेवाले ( वाय्ये ) जानने योग्य ( सुजाते ) उत्तम जन्मवाले महान् वेदवाणी वाले ॥२॥

भावार्थ—हे विदुषी स्त्री ! तू सूर्य की कन्यारूप उषा के समान उत्तम गतिवाले ज्ञान में हमें बताती है । तू सहनशील, सच्चे कीर्तिवाले, जानने योग्य, उत्तम जन्मवाले तथा वेदवाणी के विश्वासी मुझ में प्रकाश कर ॥२॥

१७४२—सत्यश्रवा आत्रेयो वा । उषा । पंक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिव ।
२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थ—( सा ) वह ( नः ) हमको ( अद्य ) आज ( आभरद्वसुः ) धन-धान्य से परिपूर्ण करने वाला ( व्युच्छ ) प्रकाश कर ( दुहितः ) कन्या के समान ( दिवः ) द्युलोक की ( यः ) जो ( व्यौच्छः ) ज्ञान प्रकाश किया है ( सहीयसि ) सहनशील ( सत्यश्रवसि ) सत्य व्यवहार से अन्न प्राप्त करने वाले ( वाय्ये ) शिल्पी के पुत्र ( सुजाते ) उत्तम विद्या जन्मवाले ( अश्वसूनृते ) महान् ज्ञान से युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सारी संपदाओं से परिपूर्ण करने वाले जिसे तूने सहनशील, सच्चे व्यवहार से जीवन निर्वाह करनेवाले, शिल्पी, उत्तम शिक्षायुक्त तथा महान् ज्ञान वाले मुझ पर सदा ज्ञान प्रकाश किया है, वह तू आज भी प्रभातकाल की रेखा के समान मेरे लिए ज्ञान का प्रकाश कर ॥३॥

१७४३—अवस्यु । अश्विनी । पंक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

पदार्थ—( प्रति ) ओर ( प्रियतमम् ) अत्यन्त प्रिय ( रथम् ) ज्ञान को ( वृषणम् ) सुखदायी ( वसुवाहनम् ) धन प्राप्त कराने के योग्य ( स्तोता ) स्तुति करनेवाला ( वाम् ) तुम दोनों को ( अश्विनौ ) हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ( ऋषिः ) मन्त्रों के साक्षात् द्रष्टा ( स्तोमेभिः ) प्रशंसा-वचनों से ( भूषति ) सुशोभित करता है ( प्रति ) ओर ( माध्वी ) ब्रह्मज्ञान के जाननेवाले ( मम ) मेरी ( श्रुतम् ) सुनें ( हवम् ) पुकार को ॥१॥

भावार्थ—हे ब्रह्मविद्या के जाननेवाले अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जो स्तुति करनेवाला ज्ञाता पुरुष तुम दोनों के अत्यन्त प्रिय, सुखदायक तथा धन प्राप्त करने के साधन ज्ञान की प्रशंसा सूचक वाक्यों से प्रशंसा करता है उसकी और मेरी पुकार को आप सुनें ॥१॥

१७४४—अवस्यु आत्रेयो वा । अश्विनी । पंक्ति ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥

पदार्थ—( अति ) पार कर ( आयातम् ) आवें ( अश्विना ) हे शिल्पविद्या के जानने वालो ( तिरः ) पार ( विश्वा ) सारी विद्याएँ ( अहम् ) मैंने ( सना ) सदा ( दस्रा ) दुःख दूर करनेवाले ( हिरण्यवर्तनी ) सुवर्ण का व्यवहार करनेवाले ( सुषुम्णा ) सुखयुक्त ( सिन्धुवाहसा ) परमेश्वर को प्राप्त करानेवाले ( माध्वी ) ब्रह्मविद्या के ज्ञाता ( मम ) मेरे ( श्रुतम् ) सुनें ( हवम् ) पुकार को ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! मैंने समस्त विद्याओं का आपसे पढ़ा है । सदा हमारे दुःख को दूर करनेवाले हिरण्य आदि का प्रयोग बतानेवाले, परमेश्वर तक पहुँचानेवाले मधुविद्या के ज्ञाता आप लोग मेरी पुकार सुनें और मुझे संसार सागर से पार लगावें ॥२॥

१७४५—अवस्युरात्रेयो वा । अश्विनी । पंक्ति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

पदार्थ—( आ ) सब प्रकार से ( नः ) हमारे ( रत्नानि ) अनेक रत्नों को ( बिभ्रतौ ) धारण करनेवालो ( अश्विना ) हे सुगर्भ विद्या के वेत्ता स्त्री-पुरुषो ! ( गच्छतम् ) प्राप्त होओ ( युवम् ) तुम दोनों ( रुद्रा ) ब्रह्मचर्य-सम्पन्न ( हिरण्यवर्तनी ) सुवर्ण आदि धातुओं को निकालनेवाले ( जुषाणा ) प्रीति करनेवाले ( वाजिनीवसू ) विज्ञानक्रिया को निवास देनेवाले ( माध्वी ) मधुर स्वभाव ( मम ) मेरी ( हवम् ) प्रार्थना को ( श्रुतम् ) सुनें ॥३॥

भावार्थ—हे सुगर्भ-विद्या के ज्ञाता स्त्री-पुरुषो ! ब्रह्मचर्य सम्पन्न स्वर्ण आदि धातुओं के अन्वेषक, सबके प्रेमपात्र, विज्ञान क्रिया के भण्डार, मधुर स्वभाव से युक्त तथा अनेक रत्नों को धारण करनेवाले आप दोनों हमारे पास आवें और हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१७४६—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥

पदार्थ—( अबोधि ) जाना जाता है ( अग्निः ) परमेश्वर ( समिधा ) प्रकाशक ज्ञान से ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( प्रति ) प्रति ( धेनुम् ) वाणी के ( इव ) समान ( आयतीम् ) आती हुई ( उषासम् ) प्रातःवेला ( यह्वाः ) बड़े वृक्षों के ( इव ) समान ( प्र ) उत्कृष्ट ( वयाम् ) शाखा को ( उज्जिहानाः ) ऊपर को फैलाते हुए ( प्र ) उत्तम ( भानवः ) प्रकाश ( सस्रते ) प्राप्त कराते हैं ( नाकम् ) मोक्षरूप परमपद को ( अच्छ ) भली प्रकार ॥१॥

भावार्थ—प्रतिदिन की होनेवाली प्रातःवेला में स्मरण की आनेवाली वेदवाणी के समान परमेश्वर मनुष्यों के ध्यान, मनन आदि कार्यों से जाना जाता है । ऊपर की ओर अपनी शाखाओं को फैलानेवाले वृक्षों के समान परमेश्वर के प्रकाश परम पद को प्राप्त कराते हैं ॥१॥

१७४७—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

पदार्थ—( अबोधि ) ज्ञान में आता है, जाना जाता है ( होता ) कर्मफल-दाता ( यजथाय ) प्राप्त कराने के लिए ( देवान् ) दिव्यगुणों को ( ऊर्ध्वः ) सबके ऊपर ( अग्निः ) परमेश्वर ( सुमनाः ) अच्छी प्रकार मनन के योग्य ( प्रातः ) सर्वव्यापक [होकर] ( अस्थात् ) स्थित है ( समिद्धस्य ) प्रकाशस्वरूप उसके ( रुशत् ) दीप्यमान ( अदर्शि ) देखा जाता है प्रकट है ( पाजः ) बल ( महान् ) महान् ( देवः ) देव ( तमसः ) अज्ञान अन्धकार से ( निरमोचि ) छुड़ाता है ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए परमेश्वर का ज्ञान करता है । सर्वोपरि विराजमान, मनन योग्य वह परमेश्वर सर्वव्यापक होकर स्थित है । उस प्रकाशस्वरूप का बल सदा प्रकाशमान देखा जाता है । वह ही महान् देव अज्ञान अन्धकार से हमें बचाता है ॥२॥

१७४८—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
१ ३र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( ईम् ) यह ( गणस्य ) वेदवाणी के ( रशनाम् ) धागे सूत्र या तन्तु को ( अजीगः ) अपने अन्दर समेट लेता है ( शुचिः ) शुद्धस्वरूप ( अङ्क्ते ) प्रकट करता है प्रकाशित करता है ( शुचिभिः ) पवित्र ( गोभिः ) पृथिवी, अन्तरिक्ष, आदित्य तथा विद्वान् आदि अन्य प्राणियों के साथ ( अग्निः ) परमेश्वर ( दक्षिणा ) ज्ञानक्रिया ( युज्यते ) संसार में युक्त होती है ( वाजयन्ती ) सदसत् आत्म-अनात्म का ज्ञान करानेवाली ( उत्तानाम् ) सर्वत्र फैले हुए ( ऊर्ध्वः ) सर्वोपरि विराजमान ( अधयत् ) ग्रहण कर लेता है ( जुहूभिः ) ग्रहण-शक्तियों से ॥३॥

भावार्थ—जब प्रलय का समय आता है तब शुद्धस्वरूप परमेश्वर वेदवाणी के फैले हुए तन्तु को समेट लेता है और सृष्टि का समय आने पर पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य तथा विद्वान् आदि की उत्पत्ति के साथ पुनः प्रकट करता है, सत्-असत्, आत्म-अनात्म का बोध करानेवाली ज्ञान क्रिया संसार में पुनः प्रवृत्त हो जाती है । तदनन्तर सर्वोपरि विराजमान वह परमेश्वर इस फैले हुए वाक्-तन्तु को पुनः समेटता है और समय आने पर पुनः प्रकट करता है ॥३॥

१७४९—कुत्स । उषा । त्रिष्टुप् ।

१ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१॥

पदार्थ—( इदम् ) यह ( श्रेष्ठम् ) श्रेष्ठ ( ज्योतिषाम् ) ज्योतियों की ( ज्योतिः ) ज्योति ( आगात् ) व्यापक हो रहा है ( चित्रः ) अद्भुत ( प्रकेतः ) उत्तम ज्ञानदाता ( अजनिष्ट ) उत्पन्न करता है ( विभ्वा ) सर्वव्यापक शक्ति या प्रकृति से ( यथा ) जैसे ( प्रसूता ) उत्पन्न ( सवितुः ) सूर्य की ( सवाय एव ) प्रकाशित होने के लिए ही ( रात्री ) रात्रि ( उषसे ) उषा के लिए ( योनिम् ) आकाश को ( आरैक् ) रिक्त कर देती है ॥१॥

भावार्थ—यह श्रेष्ठ तथा ज्योतियों की परम ज्योति उषा के समान प्रकाश-मान परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है । अद्भुत ज्ञानदाता सर्वज्ञ वह अपनी व्यापक शक्ति प्रकृति से संसार के समस्त पदार्थों का इसी प्रकार निर्माण करता है

जिस प्रकार रात्रि सूर्य के उदय के लिए उषा को आकाश में स्थान प्रदान करती है ॥२॥

१७५०—कुत्सः । उषा । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२ ३२३१२ ३१ २र
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
२ १२ ३१२ ३२उ ३१२ ३२
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२॥

पदार्थ—( रुशद्वत्सा ) चमकीले सूर्यरूप बछड़ेवाली ( रुशती ) प्रकाशयुक्त ( श्वेत्या ) शुभ्र ( आगात् ) उदय होती है ( आरैक् उ ) परित्याग कर देती है ( कृष्णा ) रात्रि ( सदनानि ) स्थानों को ( अस्याः ) इसके ( समानबन्धू ) साथ-साथ बंधी हुई ( अमृते ) प्रवाह से अनादि ( अनूची ) अवर्णनीय ( द्यावा ) प्रकाशमान हुई ( वर्णम् ) जगत् के प्रकाशक को ( चरतः ) प्राप्त कराती है ( आमिनाने ) परस्पर एक दूसरे को नष्ट करती हुई ॥२॥

भावार्थ—चमकीले सूर्यरूप बछड़ेवाली, स्वयं चमकती हुई तथा शुभ्र वर्ण वाली उषा उदय होती है। रात्रि इसके स्थानों का परित्याग कर देती है। साथ साथ बंधी हुई, प्रवाह से होनेवाली तथा अवर्णनीय शोभावाली ये दोनों रात्रि और उषा परस्पर एक दूसरे को नष्ट करती हुई जगत् को प्रकाश प्राप्त कराती हैं ॥२॥

१७५१—कुत्स । उषा । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १२ ३२उ ३ १ २ ३१२
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
१२ ३१२ ३२३२ ३१२१२ ३ १२
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३॥

पदार्थ—( समानः ) एक समान ( अध्वा ) मार्ग है ( स्वस्रोः ) दोनो बहिन-रूप का ( अनन्तः ) आकाश ( तम् ) उसको ( अन्यान्या ) एक एक करके ( चरतः ) गति करती हैं ( देवशिष्टे ) परमेश्वर के शासन में चलनेवाली ( न ) नहीं ( मेथेते ) नाश करती हैं ( न ) नहीं ( तस्थतुः ) रुकती हैं ( सुमेके ) नियम में नियुक्त ( नक्तोषासा ) रात्रि और उषा ( समनसा ) समान प्रशंसावाली ( विरूपे ) भिन्न भिन्न रूपोंवाली ॥३॥

भावार्थ—रात्रि और उषारूप दोनो बहिनों का आकाश समान मार्ग है। उसी पर ये दोनों एक एक करके विचरती हैं। परमेश्वर के नियम में चलनेवाली समानरूप से प्रशंसनीय तथा भिन्न भिन्न रूपोंवाली ये दोनों कभी हानि नहीं पहुँचातीं और न रुकती हैं अर्थात् निरन्तर आती रहती हैं ॥३॥

१७५२—अत्रि । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३१२३२३१२३ २र ३१ २र
आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
३१ २ ३१२३१२ ३१ ३१ २र
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

पदार्थ—( आ ) अच्छी भांति ( भाति ) शोभा पाती है ( अग्निः ) यज्ञ की अग्नि ( उषसाम् ) प्रातःवेलाओं की ( अनीकम् ) मुखरूप ( विप्राणाम् ) मेधावियों की ( देवया ) परमेश्वर की कामनावाली ( वाचः ) स्तुतियां ( अस्थुः ) बोली जाती हैं ( अर्वाञ्चा ) एक साथ चलनेवाले ( नूनम् ) निश्चित ( रथ्या ) विमानों के अधिकारी ( इह ) इस [गृहस्थाश्रम में] ( यातम् ) आवें ( पीपिवांसम् ) भूतपूर्व ( अश्विना ) हे स्त्री और पुरुष ( घर्मम् ) यज्ञ का ( अच्छ ) अच्छी तरह अनुष्ठान करो ॥१॥

भावार्थ—हे विमानों के स्वामी स्त्री और पुरुष ! प्रातःवेलाओं की मुख्य यज्ञाग्नि प्रज्वलित है। ज्ञानीजन परमेश्वर को प्राप्त करानेवाली स्तुतियां करते हैं तुम लोग इस गृहस्थ आश्रम में यज्ञ को पूरा करने के लिए आओ ॥१॥

१७५३—अत्रि । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१२३१ २र ३ २३१ २ ३१३१२र ३२
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
१२ ३२३१२ ३१ २र ३२१ १२
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥

पदार्थ—( न ) नहीं ( संस्कृतम् ) संस्कार किये हुए को ( प्रमिमीतः ) नष्ट करते हो ( गमिष्ठा ) जानेवाले हो ( अन्ति ) समीप में ( नूनम् ) निश्चय ही ( अश्विना ) हे वैद्य स्त्री और पुरुष ( उपस्तुता ) प्रशंसा पाते हो ( इह ) इस विषय में ( दिवाभिपित्वे ) प्रातः काल में ( अवसा ) रक्षा के साथ ( आगमिष्ठा ) आनेवाले हो ( प्रति ) प्रति ( अवर्तिम् ) पीड़ायुक्त या रोगी जीवनवाले के ( दाशुषे ) दानी मनुष्य के लिए ( शम्भविष्ठा ) कल्याणकारी हो ॥२॥

भावार्थ—हे वैद्य स्त्री-पुरुषो ! आप लोग पवित्र पुरुषों के रक्षक और समीप आनेवाले हो। इस विषय में आप लोगों की सब प्रशंसा करते हैं। आप रोगी के पास सदा रक्षा की औषधियों के साथ प्रातःकाल भी पहुँचते हो और दानी पुरुष के लिए कल्याण करनेवाले हो ॥२॥

१७५४—अत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

३ १२ ३२३१ २र ३ १२३१२३ १२
उतायातं संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
२ ३ २३१२३१२ ३१ २र ३२३ १ २र
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

पदार्थ—( उत ) और ( आयातम् ) आवें ( संगवे ) इन्द्रियों के अच्छी अवस्था में रहने के समय ( प्रातः ) प्रातःकाल ( अह्नः ) दिन के समय ( मध्यंदिने ) मध्याह्न काल ( उदिता ) प्रखर [तेज] किरणों के समय सूर्य के ( दिवा ) दिन में ( नक्तम् ) रात्रि में ( अवसा ) रक्षा के साधन [औषधि] के साथ ( शन्तमेन ) कल्याणकारक ( न ) नहीं ( इदानीम् ) इस समय ( पीतिः ) पान ( अश्विना ) वैद्य स्त्री-पुरुषो ( ततान ) करते हैं विस्तार करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे वैद्य स्त्री-पुरुषो ! आप स्वाभाविक नियम से इन्द्रियादि को स्वस्थ रखने के लिए प्रातःकाल मध्याह्न आदि वेलाओं में दिन-रात हर समय बुलाने पर रक्षा करनेवाली औषधियों के साथ रोगी के घर आओ, परन्तु रोगी के गृह पर कुछ भी मत खाओ-पीओ ॥३॥

卐 चतुर्थ. खण्ड समाप्त 卐

१७५५—गोतम. । उषा । जगती ।

३ १ ३ २ ३१२३१२ ३२३२३१२ ३१२
एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
३ १ २र ३२३ २३ १ २र ३१२
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थ—( एताः ) ये ( उ ) और वे ( उषसः ) ( त्याः ) प्रातःवेलाएँ ( केतुम् ) ज्ञान को ( अक्रत ) कराती हैं ( पूर्वे ) पूर्व [पहले] ( अर्धे ) आधे में ( रजसः ) भूगोल के ( भानुम् ) सूर्य के प्रकाश को ( अञ्जते ) फैलाती हैं ( निष्कृण्वानाः ) करती हुई ( आयुधानि ) शस्त्रों को ( इव ) समान ( धृष्णवः ) प्रगल्भ शस्त्रधारी के ( प्रति ) और ( गावः ) गमनशील ( अरुषीः ) लालिमायुक्त ( यन्ति ) प्राप्त होती हैं ( मातरः ) दिन की माताएँ ॥१॥

भावार्थ—गतिशील, लालिमायुक्त तथा दिन को उत्पन्न करनेवाली अत्यन्त और अप्रत्यक्ष उषाएँ ज्ञान कराती हैं। आयुधों को प्रगल्भ योद्धा के समान दिनों को उत्पन्न करती हुई भूगोल के पूर्व अर्ध में सूर्य के प्रकाश को फैलाती हैं और हमें प्रतिदिन देखने में आती हैं ॥१॥

१७५६—गोतम । उषा । जगती ।

१२ ३२ ३२३१२ ३ २ ३१२३१ २
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
१२ ३१२ ३१२ ३२३१२ ३१ २र
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

पदार्थ—( उदपप्तन् ) ऊपर उठती हैं ( अरुणाः ) लालिमायुक्त ( भानवः ) सूर्य की किरणें ( वृथा ) व्यर्थ सी [अनायास] ( स्वायुजः ) परस्पर युक्त ( अरुषीः ) प्रकाशमान ( गाः ) पृथिवी के साथ ( अयुक्षत ) युक्त होती हैं ( अक्रन् ) करती हैं ( उषासः ) उषाकाल की किरणें ( वयुनानि ) प्रशंसनीय कार्य या कान्तियों को ( पूर्वथा ) पहले दिन के समान ( रुशन्तम् ) तेजस्वी ( भानुम् ) सूर्य का ( अरुषीः ) लालिमायुक्त ( अशिश्रयुः ) आश्रय करती हैं ॥२॥

भावार्थ—लालिमायुक्त सूर्य की किरणें अनायास ही नियम से ऊपर नीचे आदि दिशाओं में फैलती हैं। लालिमायुक्त वे सब पदार्थों से युक्त होती हुई पृथिवी के साथ संबद्ध होती हैं। पूर्व दिन की भाँति उषा की अरुण किरणें आज भी अपने प्रशंसनीय कार्य को करती हैं। वे प्रकाशमान सूर्य का आश्रय लेती हैं ॥२॥

१७५७—गोतम । उषा । जगती ।

३१ ३ १२३१२३ ३ १२ १२३१२३१२३११२
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
२३१२ ३१२३१२३२उ ३ १२ ३२
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—( अर्चन्ति ) व्याप लेती हैं ( नारीः ) प्राणिमात्र की नेत्री ( अपसः ) जल के ( न ) समान ( विष्टिभिः ) तेजों से ( समानेन ) एक समान के ( योजनेन ) योग के द्वारा ( आ परावतः ) दूर तक ( इषम् ) अन्न को ( वहन्तीः ) प्राप्त कराती हुईं ( सुकृते ) धर्मात्मा ( सुदानवे ) उत्तम दानी ( विश्वा इत् अह ) संपूर्ण योग्य पदार्थों को ( यजमानाय ) यजमान के लिए ( सुन्वते ) उत्पन्न करती हैं ॥३॥

भावार्थ—सब को मार्ग दिखानेवाली उषाएँ जल के समान एक ही मार्ग से अपने तेजों के द्वारा भूगोल के भाग में प्रति दिन फैल जाती हैं। वे धर्मात्मा तथा दानी यजमान को अन्न कराती हुईं समस्त योग्य पदार्थों को उत्पन्न करती हैं ॥३॥

१७५८—दीर्घतमा । अश्विनौ । जगती ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ ३क २ ३ २ ३क २र ३ १ २
अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
१ २ ३ २ ३ १२३२३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥१॥

पदार्थ—( अबोधि ) जागृत होता है ( अग्निः ) तेज तत्त्व का ( ज्मः ) पृथिवी पर ( उदेति ) उदय होता है ( सूर्य ) सूर्य ( वि ) विशेषत ( उषाः ) उषा ( चन्द्रा ) आनन्द देनेवाली ( मही ) बडी ( आवः ) रक्षा करती है ( अर्चिषा ) अपने तेज से ( अयुक्षाताम् ) जोडते हैं ( अश्विना ) प्राप्त अध्यापक और उपदेशक ( यातवे ) जाने के लिए ( रथम् ) विमान को ( प्रासावीत ) भली भांति उत्पन्न करता है ( देव ) परमात्मदेव ( सविता ) सृष्टिकर्त्ता ( जगत् ) संसार को ( पृथक ) पृथक पृथक् ॥१॥

भावार्थ—अग्नि प्रदीप्त होता है । सूर्य पृथिवी पर उदय होता है । सुख कारिणी महान् उषा भी समय पर अपने तेज से फैलती है । अध्यापक और उपदेशक रथ को अपने कार्यों के लिए युक्त करते हैं । विधाता ने संसार को विभाग के साथ रचा है ॥१॥

१७५९—दीर्घतमा । अश्विनौ । जगती ।

२३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( युञ्जाथे ) जोडते हैं ( वृषणम् ) शत्रुओं की शक्ति को रोकनेवाले ( अश्विना ) सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष ( रथम् ) विमान को ( घृतेन ) घृत आदि ( न ) हमारे ( मधुना ) मधुर पदार्थों से ( क्षत्रम् ) राष्ट्र को ( उक्षतम् ) भरपूर करते हैं ( अस्माकम् ) हमारे ( ब्रह्म ) अन्न और तेज को ( पृतनासु ) सेनाओं में ( जिन्वतम् ) भर दो ( वयम् ) हम लोग ( धना ) धनों को ( शूरसाता ) संग्रामों में ( भजेमहि ) प्राप्त करें ॥२॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष ! जब आप लोग शत्रु से सामना करनेवाले विमान को जोड़ते हैं तो घृत तथा मधुर पदार्थों आदि से राष्ट्र को परिपूर्ण कर देते हैं । हमारी सेनाओं को अन्न आदि से ऐसा शिक्षित कर दो कि हम लोग संग्राम में धन को प्राप्त करें ॥२॥

१७६०—दीर्घतमा । अश्विनौ । जगती ।

३ १ २ ३ १ २३१२३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
१ २३१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३२३१२
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

पदार्थ—( अर्वाङ् ) नीचे प्रदेश में [भूमि पर] चलनेवाला ( त्रिचक्र ) तीन चक्रवाले ( मधुवाहन ) जल में चलनेवाले ( जीराश्व ) तेज घोडोंवाले ( रथ ) विमान ( अश्विनो ) शिल्पी और वैज्ञानिक के ( यातु ) चलें ( सुष्टुत ) प्रशंसित ( त्रिवन्धुर ) तीन बन्धनवाला ( मघवा ) परमेश्वर ( विश्वसौभग ) सारे सौभाग्यों का दाता ( शम् ) कल्याण ( नः ) हमारे ( आवक्षत् ) करे ( द्विपदे ) दो पाँववाले ( चतुष्पदे ) चार पाँववाले पशु आदि के लिए ॥३॥

भावार्थ—तीन चक्रोंवाला, तीन बन्धनों से युक्त, तेज घोड़ों से चलने वाला, जलगामी तथा स्थल-गतिवाला, शिल्पी और वैज्ञानिक का रथ चले । प्रशंसित तथा सारे सौभाग्यों का दाता परमेश्वर हमारे जन तथा पशु आदि का कल्याण करे ॥३॥

१७६१—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्कृष्ट ( ते ) तेरी ( धारा ) वाणियां ( असश्चतः ) अलग अलग ( दिवः ) द्युलोक से ( न ) समान ( यन्ति ) प्राप्त कराती या जाती हैं ( वृष्टयः ) वृष्टि के ( अच्छा ) अच्छी तरह ( वाजम् ) ज्ञान को ( सहस्रिणम्) विविध प्रकारवाले ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पृथक पृथक् वर्तमान तेरी वेदमयी वाणियां आकाश की वृष्टि के समान विविध प्रकार के ज्ञानों को प्राप्त कराती हैं ॥१॥

१७६२—अवत्सार । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
१ २ ३ १ २र
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( प्रियाणि ) प्रिय ( काव्या ) वेद वचनों का ( विश्वा ) सारे ( चक्षाण ) उपदेश करता हुआ ( अर्षति ) व्यापक हो रहा है ( हरिः ) अज्ञानहर्त्ता ( तुञ्जानः ) प्रेरणा देता हुआ ( आयुधा ) आयु को धारण करनेवाले कर्मों को ॥२॥

भावार्थ—अज्ञानहर्त्ता परमेश्वर सारे वेद वचनों का उपदेश तथा आयु प्राप्त करानेवाले कर्मों की प्रेरणा करता हुआ सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥२॥

१७६३—अवत्सारः । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

पदार्थ—( स ) वह ( मर्मृजानः ) स्वयं पवित्र करता हुआ ( आयुभिः ) आयुओं [जीवन] से ( इभ ) हाथी ( राजा ) राजा के ( इव ) समान ( सुव्रतः ) प्रशस्तकर्मा ( श्येनः ) आत्मा के ( न ) समान ( वंसु ) संसार में ( षीदति ) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—जीवनों द्वारा सबको पवित्र करता हुआ, प्रशस्तकर्मा परमेश्वर गजराज के समान तथा आत्मा के समान संसार में विराजमान है ॥३॥

१७६४—अवत्सारः । सोम । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥४॥

पदार्थ—( स ) वह ( न ) हमें (विश्वा) सारे ( दिव ) मोक्ष का ( वसु ) धन ( उत ) और ( पृथिव्याः ) पृथिवी का ( अधि ) ऐश्वर्य के साथ ( पुनान ) पवित्र करता हुआ ( इन्दो ) हे ऐश्वर्यशालिन् ( आभर ) परिपूर्ण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशालिन् परमेश्वर ! तू पवित्र करता हुआ हमें इहलोक और परलोक की सम्पदा प्रदान कर ॥४॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 एकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

# विंशोऽध्यायः

१७६५—नमेध । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( अस्य ) इसकी ( धारा ) वेदमयी वाणियां ( अक्षरन्) वर्षा करती हैं ( वृष्ण ) सकल सुखदाता ( सुतस्य ) उत्पादक ( ओजस ) बल के ( देवान् ) संसार की दिव्य वस्तुओं को ( अनु ) अनुकूलता के साथ ( प्रभूषत ) सुशोभित करनेवाला ॥१॥

भावार्थ—संसार की दिव्य वस्तुओं को विभूषित करनेवाले, सुखदाता, तथा बल के उत्पादक इस परमेश्वर की वेदमयी वाणियां ज्ञान की वर्षा करती हैं ॥१॥

१७६६—नृमेध । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३ २३क २र
सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—( सप्तिम् ) सर्वव्यापक (मृजन्ति) अपने को शुद्ध करते हैं (वेधसः) मेधावीजन ( गृणन्तः ) स्तुति करते हुए ( कारवः ) कर्मवीर ( गिरा ) वेदवाणी से ( ज ) प्रादुर्भूत (ज्योतिः) ज्ञानज्योति को (जज्ञानम्) उत्पन्न करनेवाले (उक्थ्यम्) स्तुत्य उपास्य ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानज्योति को उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक तथा स्तुति करने योग्य परमेश्वर की वेदवाणी द्वारा स्तुति करते हुए कर्मवीर विद्वान् लोग अपने को पवित्र करते हैं ॥२॥

१७६७—कुत्सः । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

सुवहुर सोम शतति ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥

पदार्थ—( सुवहुर ) कर्मिमय करनेवाले (सोमः) हे परमेश्वर (शतानि) वे (ते) तेरे ( पुनानाय ) पवित्रकर्ता ( प्रभूवसो ) हे शक्तिमन् ( वर्धा ) बढ़ा (समुद्रम्) सुख के सागर को ( उक्थ्य ) हे स्तुत्य ॥३॥

भावार्थ—हे शक्तिमन् तथा स्तुत्य परमेश्वर ! पवित्र करनेवाले तुम प्रभु के सैकड़ों तेजों को बढ़ानेवाले हैं । तू संसार में सुख का सागर बढ़ा दे ॥३॥

१७६८—प्रियमेध वामदेवो वा । इन्द्रः । पंक्ति ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥१॥

पदार्थ—( एष ) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का उपदेष्टा (यः) जो (ऋत्वियः) ऋतुओं में यज्ञ करनेवाला ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( नाम ) नाम से (श्रुतः) विख्यात है ( गृणे ) उसकी स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर ऋतुओं के अनुसार पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला इन्द्र नाम से विख्यात है, उस चारों वेदों के उपदेष्टा की मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

१७६९—प्रियमेधो वामदेवो वा । इन्द्रः । पंक्ति ।

१ ३२ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २

त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥२॥

पदार्थ—( त्वाम् ) तुझ को ( इत् ) ही ( शवसस्पते ) हे बलों के स्वामी ( यन्ति ) प्राप्त होती हैं ( गिरः ) वाणियां ( न ) समान ( संयतः ) संयमी पुरुष के ॥२॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी परमेश्वर ! संयमी पुरुषों के समान हमारी स्तुतियां तुम्हें ही प्राप्त होती हैं ॥२॥

१७७०—प्रियमेधो वामदेवो वा । इन्द्र । पंक्ति ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २

वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥३॥

पदार्थ—( वि स्रुतयः ) पगडण्डियां ( यथा ) जैसे ( पथा ) बड़ी सड़क से ( इन्द्र ) हे राजन् ( त्वत् ) तुझ से ( यन्तु ) प्राप्त हों ( रातयः ) सब प्रकार के दान ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! बड़ी सड़कों से पगडण्डियों के समान तुमसे अनेक प्रकार के दान प्राप्त होते हैं ॥३॥

१७७१—प्रियमेध । इन्द्र । अनुष्टुप्

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( त्वा ) तुझे ( रथम् ) रथ को ( यथा ) जैसे ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( वर्तयामसि ) अपनी ओर घुमाता है ( तुविकूर्मिम् ) बहुत कार्य करनेवाले ( ऋतीषहम् ) हिंसक भावों को दबानेवाले ( इन्द्रम् ) अविद्या के नाशक विद्वान् को (शविष्ठ) हे बलशाली ( सत्पतिम् ) सत्य के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली विद्वन् ! अनेक सुखों की सिद्धि के लिए रथ के समान अपनी रक्षा के लिए हम लोग अनेक क्रियाओं में कुशल, हिंसक भावों को दबानेवाले तथा सत्य के रक्षक आपको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं ॥१॥

१७७२—प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आपप्राथ महित्वना ॥२॥

पदार्थ—(तुविशुष्म) हे अतिबलवान्, (तुविक्रतो) हे महान् ज्ञानिन् (शचीवो) हे असंख्य कर्मों के संपादक ( विश्वया ) विश्वव्यापक (मते) हे मतिमान् (आपप्राथ) ओत-प्रोत या विस्तारयुक्त है ( महित्वना ) महिमा से ॥२॥

भावार्थ—हे अति बलवान् महान् ज्ञानी असंख्य कर्मों के संपादक और मतिमान् परमेश्वर ! तू अपनी विश्वव्यापक महिमा से संसार में ओत-प्रोत है ॥२॥

१७७३—प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस ( ते ) तेरी ( महिना ) महिमा से ( महः ) महान् ( परि ) सब प्रकार से ( ज्मायन्तम् ) पृथिवी पर व्यापक ( ईयतुः ) ग्रहण करती हैं ( हस्ता ) [illegible] ( वज्रम् ) पराक्रम को ( हिरण्ययम् ) [illegible] ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! [illegible] ॥३॥

१७७४—दीर्घतमा । अग्नि । विराट् ।

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र १ २

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३नार्वा ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( यः ) जो ( पुरम् ) शरीर को या संसार को ( नार्मिणीम् ) क्रीड़ा-विलास आदि के साधनभूत ( अदीदेत् ) प्रकाशित करता है ( अत्यः ) वायु ( कविः ) दूरदर्शी ( नभन्यः ) आकाशवर्ती ( अर्वा ) सदा गतिशील ( सूरः ) सूर्य के ( न ) समान ( रुरुक्वान् ) प्रकाशस्वरूप ( शतात्मा ) अनेक पदार्थों में व्यापक ॥१॥

भावार्थ—सर्वत्र आकाश में स्थित वायु के समान गतिशील सूर्य के समान तेजस्वी और सब पदार्थों में व्यापक परमेश्वर ही भोग-साधन संसार या मनुष्यों के शरीर को बनाता है ॥१॥

१७७५—दीर्घतमा । अग्नि । विराट् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥२॥

पदार्थ—( अभि ) सब प्रकार से ( द्विजन्मा ) दो प्रकार [ अर्थात् चेतन और जड़ ] जगत् के स्वामी ( त्रि ) तीन ( रोचनानि ) प्रकाशक सूर्य, अग्नि और विद्युत् ( विश्वा ) सारे ( रजांसि ) लोकों को ( शुशुचानः ) प्रकाशित करता हुआ ( अस्थात् ) स्थित है ( होता ) सबका धारणकर्ता ( यजिष्ठः ) पूजनीय ( अपाम् ) जलों के ( सधस्थे ) स्थान [ आकाश ] में ॥२॥

भावार्थ—जड़ और चेतन दोनों प्रकार के जगत् का स्वामी, सर्वाधार तथा पूजनीय परमेश्वर अग्नि सूर्य तथा विद्युत्, और समस्त लोकों को प्रकाशित करता हुआ जलों के स्थान आकाश में स्थित है ॥२॥

१७७६—दीर्घतमाः । अग्निः । विराट् ।

२ ३उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।

२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥३॥

पदार्थ—( अयम् ) यह ( सः ) वह ( होता ) उत्तम गुणों का दाता (यः) जो ( द्विजन्मा ) दो प्रकार के जगत् का स्वामी ( विश्वा ) समस्त ( दधे ) धारण करता है ( वार्याणि ) श्रेष्ठ पदार्थों और गुणों का ( श्रवस्या ) कीर्ति कर ( मर्तः ) मनुष्य ( यः ) जो ( अस्मै ) इस के लिए ( सुतुकः ) उत्तम विद्यायुक्त ( ददाश ) त्यागता है ॥३॥

भावार्थ—जो उत्तम गुणों का दाता और जड़ चेतन जगत् का स्वामी है वही परमेश्वर समस्त कीर्तिकर गुणों को धारण करता है । जो मनुष्य विद्यायुक्त है वह सदा इस परमेश्वर में अनेक कर्मों का समर्पण करता है ॥३॥

१७७७—वामदेवः । अग्निः । पद पंक्तिः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।

३ १ २ ३ १ २

ऋध्यामा त ओहैः ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( तम् ) उसको ( अद्य ) आज ( अश्वम् ) व्यापक अग्नि के ( न ) समान ( स्तोमैः ) स्तुतियों से ( क्रतुम् ) कर्म के ( न ) समान ( भद्रं ) कल्याणकारी ( हृदिस्पृशम् ) हृदयदेश में विराजमान ( ऋध्यामा ) स्तुति करते हैं ( ते ) तेरे ( ओहैः ) ज्ञान और सुख प्राप्त कराने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! व्यापक अग्नि के समान सर्वव्यापक तथा कल्याणकारी कर्म के समान फलदाता, हृदय देश में विद्यमान तुझे हम ज्ञान और सुख के दाता वचनों से स्मरण करते हैं ॥१॥

१७७८—वामदेवः । अग्निः । पदपंक्ति ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ १ २ ३ १ २

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥

पदार्थ—( अधा हि ) निश्चय ही ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( क्रतोः ) यज्ञ के ( भद्रस्य ) कल्याणकारी ( दक्षस्य ) बल के ( साधोः ) उत्तम ( रथीः ) रथवत् वहन-धारण करनेवाले—महारथी ( ऋतस्य ) ज्ञान और सृष्टिनियम के ( बृहतः ) महान् ( बभूथ ) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! निश्चय तू ही कल्याणकारक बल, उत्तम ज्ञान और सृष्टि नियम, तथा इस महान् संसारी यज्ञ का महारथी है ॥२॥

१७७९—वामदेव । अग्नि । पदपंक्ति ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३क १ २र
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्वर्ण ज्योतिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

पदार्थ—( एभिः ) इन ( नः ) हमारी ( अर्कैः ) स्तुतियों से ( भवा ) हो ( नः ) हमारे ( अर्वाङ् ) सम्मुख ( स्वः ) सूर्य के ( न ) समान ( ज्योतिः ) प्रकाश स्वरूप ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( विश्वेभिः ) सारे ( सुमना ) भली भाँति जानने के योग्य ( अनीकैः ) तेजों से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप तथा जानने योग्य तू हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न हो अपने तेजों से अज्ञान का पट खोल और हमारे साक्षात्कार में आ ॥३॥

卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

१७८०—प्रस्कण्व । अग्नि । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे जीव ( विवस्वत् ) विशेष चमकनेवाले या वास देने वाले ( उषसः ) उषा का ( चित्रम् ) अद्भुत ( राधः ) ज्ञान धन ( अमर्त्य ) हे अमर ( आ ) भली भाँति ( दाशुषे ) यजमान के लिए ( जातवेदः ) हे ज्ञानी ( वहा ) प्राप्त करा ( त्वम् ) तू ( अद्या ) आज ( देवान् ) इन्द्रियों को ( उषर्बुधः ) प्रातःकाल जागनेवाली ॥१॥

भावार्थ—हे विज्ञानी अमर जीव ! तू उषा काल के समान प्रकाशमान प्रकाश को बसानेवाला अद्भुत ज्ञान धन दानी पुरुष को प्राप्त करा तथा प्रातःकाल जागने वाली इन्द्रियों को ज्ञान करा ॥१॥

१७८१—प्रस्कण्व । अग्नि । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२॥

पदार्थ—( जुष्टः ) प्रसन्न हुआ ( हि ) ही ( दूतः ) दुर्गुणों के निवारक ( असि ) है ( हव्यवाहन ) देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाला ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( रथी ) नेता ( अध्वराणाम् ) कल्याणकारी यज्ञों का ( सजूः ) मनुष्यों को प्यार करनेवाला ( अश्विभ्याम् ) सूर्य और चन्द्र द्वारा ( उषसा ) उषा काल के द्वारा ( सुवीर्यम् ) बलवर्धक ( अस्मे ) हमें ( धेहि ) दे ( श्रवः ) अन्न और यश ( बृहत् ) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही दुर्गुणों का निवारक कल्याणकारी यज्ञों का नेता तथा सबसे मैत्री रखता है। तू सदा प्रीति से सेवनीय है। तू सूर्य, चन्द्र और उषा के द्वारा पर्याप्त अन्न देता है ॥२॥

१७८२—बृहदुक्थ्य । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ ३ २ १ २
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥१॥

पदार्थ—( विधुम् ) ज्ञाता ( दद्राणम् ) दुष्ट भावों का दमन करनेवाले ( समने ) संसाररूपी संग्राम में ( बहूनाम् ) बहुतों के ( युवानम् ) सदा युवा ( सन्तम् ) सत्यस्वरूप ( पलितः ) ज्ञान वृद्ध ( जगार ) उपदेश करता है ( देवस्य ) देव के ( पश्य ) देखो ( काव्यम् ) गति को ( महित्वा ) महत्ता से युक्त ( अद्य ) आज ( ममार ) मरा ( सः ) वह ( ह्यः ) गत दिन अर्थात् कल ( समान ) जीवित था ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवृद्ध संसार संग्राम में सब का ज्ञाता दुष्ट भावों के दमन करने वाले, सदा युवा तथा सत्यस्वरूप परमेश्वर का उपदेश करता है। हे मनुष्य ! उस देव के इस महत्त्व से युक्त काम को देखो कि कल जो जीवित था आज वही मौत के मुख में हुआ ॥१॥

१७८३—बृहदुक्थ्य । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥२॥

पदार्थ—( शाक्मना ) अपनी शक्ति से ( शाकः ) शक्तिमान् ( अरुणः ) अग्नि के समान तेजस्वी ( सुपर्णः ) उत्तम रक्षक ( आ ) भली भाँति ( यः ) जो ( महः ) महान् ( शूरः ) बलवान् ( सनात् ) सनातन ( अनीडः ) स्थान विशेष पर न रहने वाला [सर्वत्र रहनेवाला] ( यत् ) जो कुछ ( चिकेत ) चाहता है या सोचता है ( सत्यम् ) सत्य ( इत् ) ही ( तत् ) वह ( न ) नहीं ( मोघम् ) व्यर्थ ( वसु ) सम्पदा को ( स्पार्हम् ) चाहने योग्य ( उत ) और ( जेता ) विजयी ( उत ) और ( दाता ) देनेवाला ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर महान् बलशाली, सनातन, सर्वव्यापक, अपनी शक्ति से सर्वशक्तिमान्, अग्निवत् तेजस्वी तथा उत्तम रक्षक है। वह जो कुछ सोचता है वह सत्य ही होता है व्यर्थ नहीं। वह सब पर विजयी और स्पृहणीय धन का दाता है ॥२॥

१७८४—बृहदुक्थ्य । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( एभिः ) इनके द्वारा ( ददे ) देता है ( वृष्ण्या ) बलवान् ( पौंस्यानि ) पौरुषों को ( येभिः ) जिनसे ( औक्षत् ) सींचता है ( वृत्रहत्याय ) पाप को नष्ट करने के लिए ( वज्री ) न्यायरूप दण्ड का धारण करनेवाला ( ये ) जो ( कर्मणः ) कर्म के ( क्रियमाणस्य ) किए जाने वाले ( मह्ना ) महत्त्व से ( ऋते-कर्मम् ) सच्चे व्यवहार में ( उदजायन्त ) उन्नत करते हैं ( देवाः ) विद्वान् जन ॥१॥

भावार्थ—न्यायदण्ड का धारण करनेवाला परमेश्वर, जिनके द्वारा पाप दूर करने का उपाय करता है तथा जो वे विद्वान् लोग किए जानेवाले कर्म के महत्त्व से संसार के सच्चे व्यवहारों में विजय प्राप्त करते हैं उन विद्वानों के द्वारा ही परमेश्वर का श्रेष्ठ पौरुष धारण किया जा सकता है ॥१॥

१७८५—बिन्दु पूतदक्षो वा । सोम । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥१॥

पदार्थ—( अस्ति ) है ( सोमः ) संसार ( अयम् ) यह ( सुतः ) उत्पन्न ( पिबन्ति ) भोगते हैं ( अस्य ) इसको ( मरुतः ) ऋत्विज् लोग ( उत ) और ( स्वराजः ) स्वयं तेजस्वी ( अश्विना ) वैद्य या वैज्ञानिक स्त्री-पुरुष भी ॥१॥

भावार्थ—यह जगत् उत्पन्न है। स्वयं तेजस्वी ऋत्विज तथा वैज्ञानिक स्त्री-पुरुष इसका उपभोग करते हैं ॥१॥

१७८६—बिन्दु पूतदक्षो वा । सोम । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥२॥

पदार्थ—( पिबन्ति ) पान करते हैं ( मित्रः ) मित्र ( अर्यमा ) न्यायकारी ( तना ) विस्तृत ( पूतस्य ) पवित्र ( वरुणः ) वरणयोग्य ( त्रिषधस्थस्य ) त्रिलोकी-नाथ ( जावतः ) उत्पादक ॥२॥

भावार्थ—मित्र, न्यायकारी तथा वरणीय व्यक्ति सदा पवित्र त्रिलोकीनाथ सृष्टिकर्ता परमेश्वर के आनन्द का पान करते हैं ॥२॥

१७८७—बिन्दु पूतदक्षो वा । सोम । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥३॥

पदार्थ—( उत उ ) और ( नु ) शीघ्र ( अस्य ) इसके ( जोषम् ) प्रेम को ( आ ) भली भाँति ( इन्द्रः ) आत्मा ( सुतस्य ) सृष्टिकर्ता ( गोमतः ) गौ आदि के स्वामी ( प्रातः ) प्रातःकाल में ( होता ) यज्ञ करनेवाले के ( इव ) समान ( मत्सति ) आनन्दित होता है ॥३॥

भावार्थ—ज्ञानी जीवात्मा गौ आदि के स्वामी तथा सृष्टिकर्ता परमेश्वर के प्रेमरस को पान कर प्रातःकाल के यज्ञकर्त्ता के समान प्रसन्न होता है ॥३॥

१७८८—जमदग्नि । सूर्य । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥१॥

पदार्थ—( बट् ) सत्य ( महान् ) बड़ा ( असि ) है ( सूर्य ) हे परमेश्वर ( बट् ) सत्य ही ( आदित्य ) आदित्य ( महान् ) महान् ( असि ) है ( महः ) महान् ( ते ) तेरी ( सतः ) नित्य ( महिमा ) महिमा की ( पनिष्टम ) स्तुति करते हैं ( मह्ना ) महत्त्व से ( देव ) हे देव ( महान् ) बड़ा ( असि ) है ॥१॥

भावार्थ—हे सबके प्रेरक परमेश्वर ! तू सत्य ही महान् है। तू ही आदित्य नाम वाला है। हे देव ! तुझ नित्य प्रभु की महिमा की हम महत्ता देते हैं। तू अपनी महत्ता से ही महान् है ॥१॥

१७८९—जमदग्नि । सूर्य । बृहती ।

१ २३ १२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।

३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥२॥

पदार्थ—( बट् ) सत्य ही ( सूर्य ) हे परमेश्वर (श्रवसा) यश से (महान्) महान् ( असि ) है ( सत्रा ) सत्य से ( देव ) हे देव ( महान् ) महान् ( असि ) है ( मह्ना ) महिमा से ( देवानाम् ) समस्त दिव्य शक्तियों का ( असुर्य ) बुरे विचारों का नाश करनेवाला ( पुरोहित ) पूर्वकर्ता ( विभु ) व्यापक ( ज्योति ) ज्योति (अदाभ्यम्) न दबाये जाने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने यश से महान् है । हे देव तू सत्य से महान् है । बुरे विचारों का विनाशक तू सारे देवों का धारण करनेवाला है । तेरी व्यापक ज्योति अमिट है ॥२॥

卐 द्वितीय खण्ड. समाप्त 卐

१७९०—सुकक्ष । सोम । गायत्री ।

१२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उप नो हरिभि सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभि सुतम् ॥१॥

पदार्थ—( उप ) समीप ( न ) हमें ( हरिभि ) अज्ञान का हरण करने वाली शक्तियों से ( सुतम् ) उत्पन्न ज्ञान को ( याहि ) प्राप्त करा (मदानां पते ) हे सुखों के स्वामी ( उप ) समीप ( नः ) हमारे ( हरिभि ) इन्द्रिय, अन्तःकरणों और प्राणों के द्वारा ( सुतम् ) उत्पन्न भोग को ॥१॥

भावार्थ—हे निखिल सुखों के स्वामिन् परमेश्वर ! तू अपनी अज्ञाननिवारक शक्तियों द्वारा उत्पन्न ज्ञान को हमें प्राप्त करा और इन्द्रिय, प्राण तथा अन्त करणों द्वारा उत्पन्न संसारी भोग को हमारे समीप ला ॥१॥

१७९१—सुकक्ष । सोम । गायत्री ।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ ३ ३ २
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्र शतक्रतु । उप नो हरिभि सुतम् ॥२॥

पदार्थ—( द्विता ) दो प्रकार से ( य ) जो ( वृत्रहन्तमः ) पाप और अज्ञानों का नाशक है ( विदे ) जानूँ ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यशाली ( शतक्रतु ) असंख्य ज्ञान और कर्मवाला ( उप ) समीप ( नः ) हमारे ( हरिभिः ) पुरुषार्थी मनुष्यों द्वारा ( सुतम् ) उत्पन्न किए गए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो तू ऐश्वर्यशाली, अनेक प्रकार के कर्म और ज्ञान वाला तथा अपने ज्ञान और कर्म से अज्ञान और पाप का नाशक है उस तुझ को मैं जानूँ और प्राप्त होऊँ । तू पुरुषार्थी मनुष्यों द्वारा उत्पन्न किए गए भोग को हमें प्राप्त करा ॥२॥

१७९२—सुकक्ष । सोम । गायत्री ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभि. सुतम् ॥३॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ही (वृत्रहन्) हे पापनाशक (एषाम्) इन (सोमानाम्) जीव तथा संसारी पदार्थों का (पाता) रक्षक ( उप ) समीप ( न ) हमें (हरिभि ) विद्वानों द्वारा ( सुतम् ) उत्पन्न किए गए ज्ञान-विज्ञान को ॥३॥

भावार्थ—हे अज्ञान और पाप का नाश करनेवाले परमेश्वर ! तू ही समस्त जीव तथा संसारी पदार्थों का रक्षक है । हमें विद्वान् मनुष्यों द्वारा ढूँढे हुए ज्ञान को प्राप्त करा ॥३॥

१७९३—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट् ।

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( वः ) तुम लोग ( महे ) महान् ( महेवृधे ) महान् ज्ञानों को बढ़ानेवाले (भरध्वम्) भरपूर करो ( प्रचेतसे ) उत्तम ज्ञान के लिए (प्र) उत्कृष्ट ( सुमतिम् ) प्रशंसा ( कृणुध्वम् ) करो (विशः) प्रजाएँ ( पूर्वीः ) सनातन ( प्रचर ) प्राप्त कर ( चर्षणिप्राः ) मनुष्यमात्र का पालक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग महान् ज्ञान की वृद्धि करनेवाले विद्वान् को धन-धान्य से परिपूर्ण करो तथा उसकी प्रशंसा करो । हे विद्वन् ! मनुष्यमात्र का कल्याणकारी तू सनातनी प्रजाओं में प्रचार कर ॥१॥

१७९४—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

१ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥२॥

पदार्थ—( उरुव्यचसे ) वाणियों के स्वामी ( महिने ) महान् ( सुवृक्तिम् ) स्तुति को ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( ब्रह्म ) ब्रह्मज्ञान को ( जनयन्त ) उत्पन्न करते हैं ( विप्रा ) मेधावी जन ( तस्य ) उसके (व्रतानि) नियमों को ( न ) नहीं ( मिनन्ति ) तोड़ते ( धीरा ) धीर लोग भी ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानीजन वेदवाणियों के स्वामी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्तुतियाँ करते हुए ब्रह्मज्ञान का उत्पादन करते हैं । धीर पुरुष उस भगवान् के नियम को नहीं तोड़ते ॥२॥

१७९५—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट् ।

१ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्र वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।

१ २ ३ २ ३ २
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्रम् ) परमेश्वर को ( वाणी ) वेदवाणियाँ ( अनुत्तमन्युम् ) अबाधित ज्ञानवाले ( एव ) ही ( सत्रा ) सत्य से (राजानम्) जगद् राजा ( दधिरे ) धारण करती है ( सहध्यै ) दुष्टों को दबाने के लिए मनुष्य, सूर्य, अग्नि तथा वायु आदि पदार्थों में व्यापक के लिए ( बर्हय ) बढ़ा ( सम ) सम्यक ( आपीन् ) बन्धु-बान्धवों को ॥३॥

भावार्थ—वेदवाणियाँ सत्य के द्वारा दुष्टों को दबाने के लिए अबाधित ज्ञान वाले और जगत् के राजा परमेश्वर को धारण करती हैं । हे मनुष्य ! तू मनुष्य तथा सूर्य, अग्नि आदि पदार्थों में व्यापक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने बन्धु बान्धवों को आगे बढ़ा ॥३॥

१७९६—वसिष्ठ । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( इन्द्र ) हे शासक पुरुष ! ( यावत ) जितना ( त्वम् ) तू ( एतावत् ) इतने को ( अहम् ) मैं ( ईशीय ) स्वामी हो जाऊँ (स्तोतारम्) अर्थी को ( इत् ) ही ( दधिषे ) पुष्ट करूँ ( रदावसो ) हे धनदाता (न) नहीं ( पापत्वाय ) पाप कर्म के लिए ( रंसिषम् ) रमण न करूँ अर्थात् इन्द्रियाराम न बनें ॥१॥

भावार्थ—हे शासक पुरुष ! जितने पर तू शासन करता है उतनों पर मैं भी शासन करूँ तथा अर्थी (कामना करनेवाले) को ही पालूँ पोषूँ । हे दानी पुरुष ! मैं पाप कर्म के लिए कभी न विचरूँ अर्थात् इन्द्रियाराम न होऊँ ॥१॥

१७९७—वसिष्ठ । इन्द्र । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २र ३ १ २
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥२॥

पदार्थ—( शिक्षेयम् ) देता हूँ ( इत् ) ही ( महयते ) पूजा करनेवाले का ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( राय ) सम्पदाएँ ( आ ) सभी ओर से ( कुहचिद्विदे ) कहीं पर भी रहनेवाले के लिए ( न हि ) नहीं ( त्वत् ) तुझ से ( अन्यत् ) दूसरा ( मघवन् ) हे सकल सम्पदाओं के स्वामी ( न ) हमारा ( आप्यम् ) प्राप्त करने योग्य या बन्धु ( वस्य ) सखा ( पिता ) पिता ( च ) भी ( न ) नहीं ॥२॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! मैं किसी भी जगह पर रहनेवाले तेरे पूजक को ही धन दूँ । हे प्रभो ! तुझसे बढ़कर सखा पिता और भ्राता हमारा अन्य कोई नहीं है ॥२॥

१७९८—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥१॥

पदार्थ—( श्रुधी ) सुन ( हवम् ) पुकार को ( विपिपानस्य ) आनन्द का बार बार पान करनेवाले की ( अद्रेः ) आदरणीय ( बोध) जगा दे ( विप्रस्य ) मेधावी की ( अर्चत ) पूजा करनेवाले (मनीषाम्) बुद्धि को ( कृष्व ) कर (दुवांसि) नमस्कारों को ( अन्तमा ) अपना समीपवर्ती ( सचा ) सत्कर्म समवाय के साथ ( इमा ) इन ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का अत्यन्त पान करनेवाले आदरणीय व्यक्ति की पुकार को सुन । पूजा करनेवाले मेधावी की बुद्धि को जागृत कर । तू हमारी इन सेवाओं को सत्कर्म समुदाय के साथ समीपवर्ती कर ॥१॥

१७९९—वसिष्ठ । इन्द्र । विराट् ।

१ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।

१ २ ३ १ २

सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥२॥

पदार्थ—( न ) नहीं ( ते ) तेरी ( गिर ) वेदवाणियों को ( अपिमृष्ये ) परित्याग करता हूँ ( तुरस्य ) पाप नाश करनेवाले (न) नहीं ( सुष्टुतिम ) मनोहर स्तुति को ( असुर्यस्य ) बल को ( विद्वान् ) जानता हुआ ( सदा ) सदा (ते) तेरा ( नाम ) नाम ( स्वयश ) हे स्वयं यशस्वी ( विवक्मि ) बोलता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे बल को जानता हुआ मैं पापनाशक तुझ प्रभु की वेदवाणियों तथा स्तुतियो का परित्याग नहीं करता । हे स्वयं महान् यशस्विन् ! मैं सदा तेरा नाम लेता हूँ ॥२॥

१८००—वसिष्ठ । इन्द्र । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।

२उ ३ १ २ ३ १ २

मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्क ॥३॥

पदार्थ—( भूरि ) बहुत ( हि ) ही ( ते ) तेरे लिए ( सवना ) यज्ञ ( मानुषेषु ) मनुष्यो मे ( भूरि ) बहुत ( मनीषी ) बुद्धिमान् ( हवते ) स्तुति करता है ( त्वामित ) तेरी ही ( मा ) नहीं ( आरे ) समीप ( अस्मत ) हमसे या हमारे ( मघवन् ) हे सकल सम्पदाओं के स्वामिन् ( ज्योक ) चिरकाल तक ( कः ) कर ॥३॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! मनुष्य आपके नियम के अनुसार बहुत यज्ञ करते हैं । बुद्धिमान् पुरुष तेरी ही स्तुति करते हैं । हे प्रभो ! तू सदा हमारे समीप रह, हमें अपने से दूर मत कर ॥३॥

卐 तृतीय खण्ड समाप्त 卐

१८०१—सुदास । इन्द्र । महापंक्ति ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।

३ १ २ ३ १ २

अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषाम्

३ १ २ ३ २उ ३ १ २

ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

पदार्थ—( प्र ) उत्कृष्ट ( सु ) उत्तम ( अस्मै ) इसके ( पुरोरथम् ) आदित्य के आगे रहनेवाले ( इन्द्राय ) परमेश्वर के ( शूषम् ) बल की ( अर्चत् ) पूजा करो ( अभीके ) समीप में ( चित् ) ही ( उ ) और ( लोककृत् ) संसार का रचयिता ( सङ्गे ) साथ मे ( समत्सु ) संग्रामो मे ( वृत्रहा ) विघ्ननिवारक ( अस्माकम् ) हमारे ( बोधि ) जानता है ( चोदिता ) प्रेरणा देनेवाला ( नभन्ताम् ) नष्ट हों ( अन्यकेषाम् ) शत्रुओं के ( ज्याका ) प्रत्यंचाएँ [ धनुष की डोर ] ( अधिधन्वसु ) धनुष पर ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग आदित्य तथा उसकी किरणो के भी आगे रहनेवाले परमेश्वर के बल की पूजा करो । विघ्नों का निवारक तथा संसार का रचयिता वह ही हमारे सभी साथ मे तथा संग्रामों में भी विद्यमान है । वह हमारे सभी कार्यों को जानता है और प्रेरणा देनेवाला है । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा [डोरी] खण्डित हो जावे और किसी को हानि न पहुँचावे ॥१॥

१८०२—सुदास । इन्द्र । महापंक्ति ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

पदार्थ—( त्वम् ) तू ( सिन्धून् ) समुद्र तथा नदियों का ( अवासृजः ) निर्माण करता है ( अधराचः ) नीचे पृथिवी तल पर रहनेवाले ( अहन् ) छिन्न-भिन्न करके बरसाता है ( अहिम् ) मेघ को ( अशत्रुः ) शत्रुरहित ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( जज्ञिषे ) उत्पन्न करता है ( विश्वम् ) समस्त ( वार्यम् ) जल से जीवनवाले उत्तम पदार्थ को ( पुष्यसि ) पुष्ट करता है ( तम् ) उस ( त्वा ) तेरी ( परिष्वजामहे ) उपासना करते हैं ( नभन्ताम् ) खण्डित हों ( अन्यकेषाम् ) काम आदि शत्रुओं की ( ज्याकाः ) प्रत्यंचाएं ( अधिधन्वसु ) धनुष पर ही ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू शत्रु-रहित है । तू मेघ को छिन्न-भिन्न करके पृथिवी तल पर विद्यमान समुद्र और नदियों का निर्माण करता है । तू जल से जीवनवाली समस्त वस्तुओं को उत्पन्न और पुष्ट करता है । हम तुझ परमेश्वर की उपासना करते हैं । हे भगवन् ! काम आदि शत्रुओं की प्रत्यंचा धनुष पर ही नष्ट हो, अर्थात् उनकी शक्ति क्षीण हो जावे ॥२॥

१८०३—सुदास । इन्द्र । महापंक्ति ।

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

पदार्थ—( वि ) विशेष ( सु ) उत्तम ( विश्वा ) समस्त ( अरातयः ) शत्रु ( अर्यः ) विघ्नकारी ( नशन्त ) नष्ट हों ( नः ) हमारी ( धियः ) बुद्धि ( अस्ता ) फेंकने वाला ( असि ) है ( शत्रवे ) शत्रु के लिए ( वधम् ) शस्त्र को ( यः ) जो ( नः ) हमें ( जिघांसति ) बिना अपराध मारना चाहता है ( या ) जो ( ते ) तेरी ( रातिः ) कृपा ( ददिः ) देनेवाली है ( वसु ) धन को ( नभन्ताम् ) नष्ट हो ( अन्यकेषाम् ) तुच्छ विचारवालों की ( ज्याका ) प्रत्यंचाएँ ( अधिधन्वसु ) धनुष पर ही ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी बुद्धि के विघातक काम, क्रोधादि सारे शत्रु नष्ट हो जायें । जो हमें विघ्न पहुचाना चाहता है उसको दण्ड देता है । तेरी कृपा हमें धन देनेवाली है । हे परमेश्वर नीच विचार वालों की धनुष की डोरी धनुष पर ही नष्ट होवे जिससे कि किसी को हानि न हो ॥३॥

१८०४—मेधातिथि प्रियमेधश्च । इन्द्र । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥१॥

पदार्थ—( रेवान् ) धनवान् ( इत् ) ही ( रेवत ) धनवान् का ( स्तोता ) प्रशंसा करनेवाला (स्यात्) होता है (त्वावत ) तेरे समान (मघोनः) धनी (प्र) उत्कृष्ट (इत्) ही (उ) वितर्क (हरिव ) हे अज्ञान के हरण करनेवाली शक्तियों के स्वामी ( सुतस्य ) ऐश्वर्ययुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननिवारक शक्तियों के स्वामी परमेश्वर ! जब धनवान् की प्रशंसा करनेवाला धनिक हो जाता है तो तुझ जैसे ऐश्वर्यशाली महान् धनी की स्तुति करनेवाले की तो कथा ही क्या ! ॥१॥

१८०५—मेधातिथि प्रियमेधश्च । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २

उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥२॥

पदार्थ—( उक्थम् ) स्तोत्र को ( च ) और ( न ) सम्प्रति ( शस्यमानम् ) पढ़े गये ( न ) सम्प्रति ( अगो ) अस्पष्टवाणीवाले के अथवा वेद को न जाननेवाले के ( रयि ) धनदाता ( आचिकेत ) जानता है ( न ) सम्प्रति ( गायत्रम् ) गायत्र साम को ( गीयमानम् ) गाये गए ॥२॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अस्पष्ट वाणीवाले अथवा वेदानभिज्ञ के गाये गये स्तोत्र तथा गाये गए साम को भी वर्तमान में ही सुनता है ॥२॥

१८०६—मेधातिथि प्रियमेधश्च । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।

१ २ ३ १ २

शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३॥

पदार्थ—( मा ) मत ( न ) हमें ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( पीयत्नवे ) हिंसक के लिए ( मा ) मत ( शर्धते ) मखौल उड़ाने या अपमान करने वालों के लिए ( परादाः ) परित्याग कर [ ज्ञान ] ( शिक्षा ) शिक्षा दे ( शचीव ) हे वेदोपदेष्टा, विश्वकर्मन् तथा सर्वज्ञ ( शचीभि ) अपनी वेदवाणी ज्ञान तथा कर्म से ॥३॥

भावार्थ—हे वेदोपदेष्टा, विश्वकर्मन् तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू हिंसक तथा अपमान करनेवाले के लिए हमें मत छोड़, अपितु अपने ज्ञान, वेद-वाणी तथा कर्मों से हमें शिक्षा दे ॥३॥

१८०७—नीपातिथि । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥

पदार्थ—( आ ) भली भाँति ( इन्द्र ) हे जीव ( याहि ) प्राप्त हो ( हरिभिः ) अज्ञान का हरण करनेवाले ज्ञानों और गुणों द्वारा ( उप ) समीप ( कण्वस्य ) मेधावी की ( सुष्टुतिम् ) प्रशंसा को ( दिवः ) द्युलोक के ( अमुष्य ) इस ( शासतः ) शासन करनेवाले ( दिवम् ) दिव्य मोक्षधाम को ( यय ) जा ( दिवावसो ) हे दिव्य गुणों के धाम ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम गुणोंवाले जीव ! तू अज्ञाननिवारक ज्ञान गुणों से मेधावी की पदवी या प्रशंसा को प्राप्त हो और द्युलोक का शासन करनेवाले परमेश्वर के दिव्य मोक्षधाम को जा ॥१॥

१८०८—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२३ २३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
अत्रा विनेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥

पदार्थ—( अत्र ) इस संसार में ( वि ) विशेष ( नेमिः ) चक्र ( एषां ) इन प्राण और इन्द्रियों का ( उराम् ) भेड़ को ( न ) समान ( धूनुते ) कम्पायमान करता है ( वृकः ) भेड़िया के ( दिवः ) परमेश्वर के ( अमुष्य ) इस ( शासतः ) शासनकर्त्ता ( दिवम् ) आनन्द को ( यय ) प्राप्त कर ( दिवावसो ) उत्तम आनन्द की कामना करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे सुख की कामना करनेवाले जीव ! इन प्राण तथा इन्द्रियों का चक्र तुझे इस संसार में भेड़ को भेड़िए के समान कम्पायमान करता है, अतः तू शासनकर्त्ता परमेश्वर के आनन्द को प्राप्त कर ॥२॥

१८०९—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥

पदार्थ—( आ ) भली भांति ( त्वा ) तुझे ( ग्रावा ) विद्वान् ( वदन् ) उत्तम बातों को बताता हुआ ( इह ) इस संसार में ( सोमी ) ऐश्वर्यवान् ( घोषेण ) वेदवाणी के द्वारा ( यच्छतु ) उपदेश करे ( दिवः ) परमेश्वर के ( अमुष्य ) इस ( शासतः ) शासनकर्त्ता ( दिवम् ) मोक्षधाम को ( यय ) प्राप्त हो ( दिवावसो ) हे सुखाभिलाषी ॥३॥

भावार्थ—हे सुखाभिलाषी जीव ! ऐश्वर्यवान् विद्वान् तुझे उत्तम बातें बताता हुआ इस संसार में वेदवाणी द्वारा उपदेश करे । तू शासनकर्त्ता परमेश्वर के उत्तम मोक्षधाम को प्राप्त हो ॥३॥

१८१०—जमदग्निः । सोमः । द्विपदा गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१॥

पदार्थ—( पवस्व ) पवित्र कर ( सोम ) हे परमेश्वर ( मन्दयन् ) आनन्दित करता हुआ ( इन्द्राय ) जीव को ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त आनन्द युक्त ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्द का भण्डार तू जीव को आनन्दित करता हुआ पवित्र कर ॥१॥

१८११—जमदग्निः । सोमः । द्विपदा गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥२॥

पदार्थ—( ते ) वे ( सुतासः ) परमेश्वर के पुत्ररूप अथवा संसार में उत्पन्न ( विपश्चितः ) मेधावी पुरुष ( शुक्राः ) शुद्धस्वरूप ( वायुम् ) वायुविद्या को ( असृक्षत ) प्रकट करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुम्हारी कृपा से संसार में उत्पन्न, और शुद्ध पवित्र विद्वान् जन वायुविद्या को प्रकट करते हैं ॥२॥

१८१२—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥३॥

पदार्थ—( असृग्रं ) उत्पन्न किये जाते हैं ( देववीतये ) परमेश्वर के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ( वाजयन्तः ) संग्राम के साधन ( रथाः ) रथ के ( इव ) समान ॥३॥

भावार्थ—संग्राम के साधन रथ के समान विद्वान् जन परमेश्वर के ज्ञान की प्राप्ति के लिए संसार में उत्पन्न किये जाते हैं ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१८१३—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

पदार्थ—( अग्निम् ) परमेश्वर को ( होतारम् ) कर्मफलदाता ( मन्ये ) मानता हूँ ( दास्वन्तम् ) महान् दानी ( वसोः ) धन के ( सूनुम् ) उत्पादक ( सहसः ) बल के ( जातवेदसम् ) उत्पन्न सृष्टिपदार्थों के ज्ञाता ( विप्रम् ) मेधावी के ( न ) समान ( जातवेदसम् ) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता तथा उनमें व्यापक वा वेद को उत्पन्न करनेवाले ( यः ) जो ( ऊर्ध्वया ) सर्वोपरि विद्यमान ( स्वध्वरः ) संसार-रूप यज्ञ का कर्त्ता ( देवः ) देव ( देवाच्या ) समस्त देवों = दिव्य पदार्थों को प्राप्त हुई ( कृपा ) सामर्थ्य से ( घृतस्य ) तेज के ( विभ्राष्टिम् ) प्रकाशक ( अनु ) [ अनुमानतः ] पश्चात् ( शुक्रशोचिषः ) शुद्ध तेजवाले ( आजुह्वानस्य ) प्रशंसनीय ( सर्पिषः ) व्यापनशील ॥१॥

भावार्थ—संसार रूप यज्ञ का कर्त्ता देव जो सर्वोपरि तथा समस्त देवों के ऊपर सामर्थ्य के साथ विद्यमान तथा पवित्र तेजवाले, प्रशंसनीय तथा व्यापनशील तेज का प्रकाश है, मैं उस कर्मफलदाता महान् दानी, बल और सम्पदाओं के उत्पन्न करनेवाले, सृष्टिगत पदार्थों के ज्ञाता विद्वान् के समान सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा वेद प्रकाशक परमेश्वर का अनुमान करता हूँ ॥१॥

१८१४—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
१ २ ३ १ २र ३ २
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २क ३ १२ ३ २ ३ १ २
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

पदार्थ—( यजिष्ठम् ) अत्यन्त पूज्य ( त्वा ) तुझे ( यजमानाः ) उपासना करनेवाले ( हुवेम ) पुकारते हैं ( ज्येष्ठम् ) श्रेष्ठ ( अङ्गिरसाम् ) सृष्टिविद्या के ज्ञाताओं में ( विप्र ) सर्वज्ञ ( मन्मभिः ) मननशील ( विप्रेभिः ) ज्ञानियों द्वारा ( शुक्र ) हे शुद्धस्वरूप ( मन्मभिः ) मन्त्रों से ( परिज्मानम् ) सर्वव्यापक ( इव ) समान ( द्याम् ) आकाश के समान ( होतारम् ) यथायोग्य फलदाता ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों को ( शोचिष्केशम् ) प्रकाशस्वरूप ( वृषणम् ) सकल कामनाओं को सफल करनेवाले ( यम् ) जिसमें ( इमाः ) यह ( विशः ) प्रजाएँ ( प्रावन्तु ) रक्षा को प्राप्त करती हैं ( जूतये ) अभिमत फल प्राप्ति के लिए ( विशः ) आश्रय पानेवाली ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ और शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! संसार में आश्रय लेनेवाली ये सारी प्रजाएँ अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए आकाश के समान व्यापक मनुष्यों को यथायोग्य कर्मफल देनेवाले, सारी कामनाओं के पूर्तिकर्त्ता और तेजस्वरूप तुझ देव के आश्रय में रक्षा पाती हैं । हम उपासक लोग मननशील विद्वानों द्वारा मन्त्रों से स्तुति किये जाने वाले सृष्टिविद्या के जाननेवालों में श्रेष्ठ तुझ को ही पुकारते हैं ॥२॥

१८१५—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
२ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥

पदार्थ—( सः ) वह ( हि ) ही ( पुरुचित् ) बहुत ही ( ओजसा ) बल से ( विरुक्मता ) तेजस्वी ( दीद्यानः ) प्रकाशमान ( भवति ) होता है ( द्रुहन्तरः ) द्रोहियों को काटनेवाले ( परशुः ) फावड़े के ( न ) समान ( द्रुहन्तरः ) प्रलयकर्त्ता ( वीडु ) दृढ़ ( चित् ) भी ( यस्य ) जिसके ( समृतौ ) संग से ( श्रुवत् ) सुनाई देता है ( वना इव ) जल के समान ( यत् ) जो ( स्थिरम् ) स्थिर ( निःषहमाणः ) अन्य विरोधी शक्तियों का अभिभव करता हुआ ( यमते ) व्यवस्था करता है ( न ) नहीं ( अयते ) चलायमान होता है ( धन्वासहा ) धनुर्धारी के ( न ) समान ( अयते ) स्थिर रहता है ॥३॥

भावार्थ—वह परमेश्वर ही अपने तेजस्वी बल से अत्यन्त प्रकाशमान होता हुआ द्रोहियों को काटनेवाले फावड़े [ कुल्हाड़े ] के समान संसार का प्रलयकारी होता है । जिसकी संगति से बहुत दिनों तक स्थिर रहनेवाले और दृढ़ द्रोह भी पानी के समान बह जाते हैं । समस्त विरोधी शक्तियों को हटाता हुआ वह सबका नियमन करता है । वह कभी चलायमान नहीं होता, किन्तु धनुर्धर के समान दृढ़तापूर्वक सर्वत्र विराजमान है ॥३॥

१८१६—अग्निः । अग्निः । विष्टारपंक्तिः ।

३ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

पदार्थ—( अग्ने ) हे परमेश्वर ( तव ) तेरा ( श्रव ) यशदायक ( वय ) अन्न ( महि ) अत्यन्त ( भ्राजन्ते ) शोभित हो रहा है ( अर्चय ) दीप्तियां ( विभावसो ) हे प्रकाशस्वरूप ( बृहद्भानो ) हे अत्यन्त तेजस्वी ( शवसा ) बल से ( वाजम् ) अन्न को ( उक्थ्यम् ) उत्तम ( दधासि ) धारण करता है ( दाशुषे ) यजमान को ( कवे ) हे वेदों के प्रकाशक ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा प्रशस्त अन्न महान् है। हे प्रकाशस्वरूप ! तेरी दीप्तियां अत्यन्त शोभा पाती हैं। हे अत्यन्त तेजस्वी तथा वेदों के प्रकाशक ! तू अपनी शक्ति से यजमान को उत्तम अन्न प्रदान करता है ॥१॥

१८१७—अग्नि । अग्नि । सतोबृहती ।

३ १२ ३१२३१२ ३१२ ३१२
**पावकवर्चा शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।**

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥**

पदार्थ—( पावकवर्चा ) पवित्रकारक तेजवाला ( शुक्रवर्चा ) शुद्ध तेज वाला ( अनूनवर्चा ) पूर्ण तेजवाला ( उदियर्षि ) उदीयमान हो रहा है ( भानुना ) अपनी दीप्तियों से ( पुत्र ) पुत्र के समान ( मातरा ) माता को ( विचरन् ) सब जगह विराजमान रहता हुआ ( उपावसि ) सबकी रक्षा करता है ( पृणक्षि ) संयुक्त करता है ( रोदसी ) द्यु और पृथिवी लोक को ( उभे ) दोनों ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पवित्रकारी शुद्ध और सर्वत्र परिपूर्ण तेजवाला तू अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है। माता को पुत्र के समान तू सर्वत्र विराजमान होकर सबकी रक्षा करता है। द्यु और पृथिवी लोक को तू ही जोड़ता है ॥२॥

१८१८—अग्नि । अग्नि । सतोबृहती ।

१ २ ३ २३१२ ३१२३२
**ऊर्जो नपाज्जातवेद सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हित ।**

२उ ३ १२३१२ ३१२ ३१२
**त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥**

पदार्थ—( ऊर्ज नपात् ) हे बल के रक्षक ( जातवेद ) हे सर्वज्ञ ( सुशस्तिभि ) मनोहर स्तुतियों से ( मन्दस्व ) प्रसन्न हो ( धीतिभि ) धारणा ध्यानादि से ( हित ) कल्याणकारक ( त्वे ) तुझ में ( इष ) विज्ञानों को ( सम् दधु ) धारण करते हैं ( भूरिवर्पस ) अनेक रूप ( चित्रोतय ) अद्भुत रक्षा के साधनवाले ( वामजाता ) उत्तम जन्म पाये हुए ॥३॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! कल्याणकारी तू हमारी मनोहर स्तुति तथा ध्यान, धारणा आदि द्वारा हम पर प्रसन्न हो। अनेकों उत्तम रक्षा के साधन तथा उत्तम जन्मवाले विद्वान् जन तुझ में ही विज्ञानों को धारण करते हैं ॥३॥

१८१९—अग्नि । अग्नि । सतोबृहती ।

३ १ २ ३१२३१ २र
**इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।**

१२३१२३१२३ १ २ ३१२ ३१ २र
**स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४॥**

पदार्थ—( इरज्यन् ) स्वामी होता हुआ ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( प्रथयस्व ) विस्तार कर ( जन्तुभि ) मनुष्यादि सहित ( अस्मे ) हमारे ( राय ) धन का ( अमर्त्य ) हे अजर अमर ( स ) वह ( दर्शतस्य ) दर्शनीय ( वपुष ) रूपों का ( विराजसि ) प्रकाशित करता है ( पृणक्षि ) पालन करता है ( दर्शतम् ) दर्शनीय ( क्रतुम् ) संसाररूप यज्ञ को ॥४॥

भावार्थ—हे अजर अमर परमेश्वर ! तू सबका स्वामी होता हुआ मनुष्यादि के साथ हमारे धन का विस्तार कर। तू सृष्टिकाल में दर्शनीय रूपों को प्रकाशित करता है तथा दर्शनीय संसार का पालन करता है ॥४॥

१८२०—अग्नि । अग्नि । उपरिष्टाज्ज्योति ।

३ १२ ३२३१२ ३ १२३१२ ३२
**इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।**

३ २ ३१२ ३१२३२र ३१२ ३२ ३२
**रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥**

पदार्थ—( इष्कर्तारम् ) ज्ञान करानेवाले ( अध्वरस्य ) कल्याणकारी यज्ञ के ( प्रचेतसम् ) महान् ज्ञानी ( क्षयन्तम् ) स्वामी होता हुआ ( राधस ) धन का ( मह ) महान् ( रातिम् ) दाता ( वामस्य ) चाहने योग्य वस्तु के ( सुभगाम् ) सौभाग्य युक्त ( महीम् ) श्रेष्ठ ( इषम् ) ज्ञान को ( दधासि ) धारण करता है ( सानसिम् ) विभाग करने योग्य या भोगने योग्य ( रयिम् ) धन को ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! कल्याणकारी यज्ञ का ज्ञान करानेवाले महान् ज्ञानी, श्रेष्ठ धनों के स्वामी तथा उत्तम वस्तु के दाता तुझ देव की हम स्तुति करते हैं। तू हमें सौभाग्यशाली श्रेष्ठ ज्ञान और भोग करने योग्य धन को देता है ॥५॥

१८२१—अग्नि । अग्नि । विराट् त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३१२ ३२ ३ १२ ३१ २र
**ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।**

१ २ ३१२ ३२उ ३१२ ३२
**श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥**

पदार्थ—( ऋतावानम् ) सत्य नियम के आश्रय ( महिषम् ) महान् ( विश्वदर्शतम् ) सब के साक्षी ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( सुम्नाय ) सुख के लिए ( दधिरे ) धारण करते हैं ( पुर ) आगे ( जना ) मनुष्य लोग ( श्रुत्कर्णम् ) कानों में श्रवण शक्ति देने वाले ( सप्रथस्तमम् ) अत्यन्त प्रसिद्ध ( त्वा ) तुझे ( गिरा ) स्तुति से ( दैव्यम् ) दिव्य शक्तिवाले ( मानुषा ) मानुषी ( युगा ) जोड़े ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सत्य नियम के आधार, महान् और सबके साक्षी परमेश्वर को सुख की प्राप्ति के लिए आगे धारण करते हैं। हे परमेश्वर ! मनुष्य जोड़े कर्णों में श्रवण शक्ति देनेवाले, अत्यन्त प्रसिद्ध तथा दिव्य शक्तिवाले तुझ देव को स्तुति से स्मरण करते हैं ॥६॥

卐 पञ्चम खण्ड समाप्त 卐

१८२२—सोभरि । अग्नि । ककुप् ।

१ २ २र३२३१२ ३ १२ ३ १२
**प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।**

२ ३ २ ३ १ २र
**यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१॥**

पदार्थ—( प्र ) उत्तम ( स ) वह ( अग्ने ) हे विद्वन् ( तव ) तेरी ( ऊतिभि ) रक्षाओं द्वारा ( सुवीराभि ) वीर देनेवाली ( तरति ) तर जाता है ( वाजकर्मभि ) ज्ञान और कर्मवाली ( यस्य ) जिसके ( त्व ) तू ( सख्यम् ) मित्रभाव को ( आविथ ) प्राप्त हो जाता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! तू जिसके मित्रभाव को प्राप्त हो जाता है वह पुत्रादि सहित ज्ञान और कर्म से युक्त तेरी रक्षाओं के द्वारा तर जाता है ॥१॥

१८२३—सोभरि । अग्नि । ककुप् ।

१२३ १ २र ३१ ३ २३ १ २ ३ १ २
**तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।**

२ ३१ २३१२ ३ २ ३ १ २र
**त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२॥**

पदार्थ—( तव ) तेरा [उत्पन्न किया हुआ] ( द्रप्स ) आदित्य ( नीलवान् ) नील आदि रंगों का कारण ( वाश ) कमनीय ( ऋत्विय ) ऋतुओं का उत्पादक ( इन्धान ) प्रदीप्त होता हुआ ( सिष्णो ) हे सुख की वर्षा करनेवाले ( आददे ) समस्त रसादिकों को ग्रहण करता है। ( त्वम् ) तू ( महीनाम् ) महान् ( उषसाम् ) उषा कालों का ( प्रिय ) प्रिय देव ( असि ) है ( क्षप ) रात्रि के ( वस्तुषु ) पदार्थों में ( राजसि ) राज्य करता है ॥२॥

भावार्थ—हे सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! नील आदि वर्णों का कारण-भूत, कमनीय ऋतुओं का उत्पादक तथा प्रकाशमान तुम्हारा उत्पन्न किया हुआ सूर्य समस्त रसों को ग्रहण करता है। तू प्रातः वेलाओं का उपासनीय देव है तथा रात्रि की समस्त वस्तुओं का स्वामी है ॥२॥

१८२४—अरुण । अग्नि । जगती ।

१ २र ३१२३२३ १ २र ३ १ २ ३१२
**तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।**

१ २र३२३१२ ३२३ १२ १२ ३ १२
**तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥१॥**

पदार्थ—( तम् ) उसको ( ओषधी ) ओषधियां ( दधिरे ) धारण करती हैं ( गर्भम् ) गर्भ को ( ऋत्वियम् ) प्रत्येक ऋतुओं के अनुसार विद्यमान ( तम् ) उसको ( आप ) जल ( अग्निम् ) अग्नि को ( जनयन्त ) प्रकट करते हैं ( मातर ) रक्षा के साधन ( तम् इत ) उसे ही ( समानम् ) समान रूप से ( वनिन ) वनस्पति ( च ) और ( वीरुध ) लताएँ ( अन्तर्वती ) गर्भवती ( च ) भी ( सुवते ) उत्पन्न करती है ( च ) और ( विश्वहा ) सब रोग दूर करनेवाली ॥१॥

भावार्थ—ओषधियां ऋतु के अनुसार अग्नि को गर्भरूप से धारण करती हैं। सबकी रक्षा के साधन जल उसे प्रकट करते हैं। वनस्पति और रोग-निवारक गर्भ-वती लतायें भी उसे उत्पन्न करती हैं ॥१॥

१८२५—अग्नि प्रजापतिर्वा । इन्द्र । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
**अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ॥१॥**

पदार्थ—( अग्नि ) परमेश्वर ( इन्द्राय ) जीव को ( पवते ) आनन्दित कर रहा है ( दिवि ) तेजस्वी पदार्थों अथवा द्युलोक में ( शुक्र ) शुद्धस्वरूप ( विराजति )

विराजमान है ( वहिनी ) भैंस के (इव) समान ( विभावसे ) विविध भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर जीव में व्यापक हो रहा है। वह भी द्युलोक आदि में भी विराजमान है। जिस प्रकार भैंस दूध आदि पदार्थों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार परमेश्वर जीव के लिए विविध भोगों को उत्पन्न करता है ॥१॥

१८२६—अवत्सारः। विश्वेदेवा । विराट् त्रिष्टुप ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

१ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१॥

पदार्थ—( यः ) जो ( जागार ) जागता है अर्थात् सत्-असत् का विवेक रखता है ( तम् ) उसको ( ऋचः ) ऋचाएँ ( कामयन्ते ) चाहती=प्राप्त होती हैं ( यः ) जो ( जागार ) जागता है ( तम् उ ) उसी को ( सामानि ) साम (यन्ति) प्राप्त होते हैं ( यः ) जो ( जागार ) जागता है ( तम् ) उसको ( अयम् ) यह (सोमः) परमेश्वर ( आह ) कहता है कि ( तव ) तेरी ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूँ ( सख्ये ) मित्रता में ( न्योकाः ) नियत आश्रय ॥१॥

भावार्थ—जो सद् असद् का ज्ञान रखता है उसे ऋचायें प्राप्त होती हैं। उसी को साम भी प्राप्त होते हैं। उसी को सर्वाधार परमेश्वर भी कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ ॥१॥

१८२७—अवत्सार । विश्वेदेवा । विराट् त्रिष्टुप ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १२ ३ १ २

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥२॥

पदार्थ—( अग्नि ) विद्वान् (जागार) सद् असद् का विवेक रखता है (तम्) उसको ऋचायें प्राप्त होती हैं ( अग्निः ) विद्वान् ( जागार ) जागता है ( तम् उ ) उसी को ( सामानि ) साम ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ( अग्नि ) विद्वान् (जागार) प्रबुद्ध है ( तम् ) उसको ( अयम् ) यह ( सोमः ) परमेश्वर ( आह ) कहता है कि ( तव ) तेरी ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूँ ( सख्ये ) मित्रता में ( न्योकाः ) सर्वाश्रय ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् सद् असद् का विवेक रखता है, अतः उसको ऋचाएँ प्राप्त होती हैं। उसी को साम भी प्राप्त होते हैं तथा उसी को सर्वाधार परमेश्वर कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ ॥२॥

१८२८—मृग । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकन्निषेभ्यः ।

३ १ २र ३ १ २

युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥१॥

पदार्थ—( नमः ) नमस्कार ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिए ( पूर्वसद्भ्यः ) पूर्ववर्ती ( नमः ) नमस्कार ( साकन्निषेभ्यः ) साथ बैठे हुओं को ( युञ्जे ) प्रयोग करता हूँ ( वाचम् ) वाणी का ( शतपदीम् ) असंख्य पदोंवाली ॥१॥

भावार्थ—पूर्व से स्थित मित्रों तथा साथ बैठे हुए लोगों को मेरा नमस्कार हो। मैं परमेश्वर की स्तुति के लिए सैकड़ों पदोंवाली वेदवाणी का प्रयोग करता हूँ ॥१॥

१८२९—मृग । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥२॥

पदार्थ—( युञ्जे ) प्रयोग करता हूँ ( वाचम् ) वाणी का ( शतपदीम् ) सैकड़ों पदोंवाली ( गाये ) गान करता हूँ ( सहस्रवर्तनि ) सहस्र प्रकार से गान किये जानेवाले ( गायत्रं ) गायत्र साम ( त्रैष्टुभं ) त्रैष्टुभ साम (जगत्) जागत साम ।२।

भावार्थ—मैं असंख्य पदोंवाली वाणी का परमेश्वर की स्तुति के लिए प्रयोग करता हूँ। विविध प्रकार से गाये जानेवाले गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत साम का गान करता हूँ ॥२॥

१८३०—मृग । अग्नि । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता ।

३ १ २र ३ २

देवा ओकांसि चक्रिरे ॥३॥

पदार्थ—( गायत्रम् ) गायत्र साम ( त्रैष्टुभम् ) त्रैष्टुभ साम ( जगत् ) जागत साम ( विश्वा ) अनेक ( रूपाणि ) प्रकारों को ( सम्भृता ) धारण किये हुए हैं ( देवाः ) विद्वान् लोग ( ओकांसि ) आश्रय ( चक्रिरे ) लेते हैं ॥३॥

भावार्थ—गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत साम नाना प्रकारों को धारण करने वाले हैं उन्हीं प्रकारों का विद्वान् लोग आश्रय लेते हैं ॥३॥

१८३१—वत्सप्री । अग्नि । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥१॥

पदार्थ—( अग्नि ) परमेश्वर ( ज्योति ) परम ज्योति है ( ज्योति ) प्रकाश वाला ( अग्निः ) अग्नि ( इन्द्रः ) जीव ( ज्योति ) प्रकाशवाला है ( ज्योति ) ज्योति है ( इन्द्र ) विद्युत् ( सूर्य ) सूर्य ( ज्योति ) ज्योतिवाला है ( ज्योतिः ) ज्योतिवाली ( सूर्य ) किरणें हैं ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर, जीव, अग्नि, विद्युत्, सूर्य तथा किरणें ज्योतियुक्त [तेजस्वी] पदार्थ हैं ॥१॥

१८३२—वत्सप्री । अग्नि । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥२॥

पदार्थ—( पुनः ) फिर ( ऊर्जा ) बल से ( निवर्तस्व ) पूर्ण कर ( पुनः ) फिर ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( इषा ) अन्न और ज्ञान से ( आयुषा ) जीवन से ( पुनः ) फिर ( नः ) हमें ( पाहि ) बचा ( अंहसः ) पाप से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू हमें बार बार बल, ज्ञान, अन्न और जीवन से पूर्ण कर तथा पाप से बचा ॥२॥

१८३३—वत्सप्रीः । अग्नि । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥३॥

पदार्थ—( सह ) साथ ( रय्या ) धन के ( निवर्तस्व ) युक्त करो ( अग्ने ) हे परमेश्वर ( पिन्वस्व ) पूर्णकर ( धारया ) वेदवाणी से ( विश्वप्स्न्या ) व्यापक ( विश्वतस्परि ) संसार में ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू इस संसार में हमें संपदा से युक्त कर तथा व्यापक वेदवाणी के ज्ञान से परिपूर्ण कर ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१८३४—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

३ १ ३ १ २

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( इन्द्र ) हे विद्वन् ( अहं ) मैं ( यथा ) जैसे ( त्वम् ) तू ( ईशीय ) स्वामी होता है ( वस्व ) विद्याधन का ( एक ) एक ( इत् ) ही ( स्तोता ) प्रशंसा करनेवाला ( मे ) मेरी ( गोसखा ) वाणी का मित्र [विद्वान्] ( स्यात् ) हो जाता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष! तू जिस प्रकार विद्याधन का एकमात्र स्वामी है उसी प्रकार यदि मैं भी हो जाऊँ तो मेरी प्रशंसा करनेवाला विद्वान् हो सकता है फिर आप का तो कहना ही क्या ॥१॥

१८३५—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र ३ २

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

पदार्थ—( शिक्षेयम् ) शिक्षा दूँ ( अस्मै ) इस ( दित्सेयम् ) देने की इच्छा करूँ ( शचीपते ) हे वेदवाणी के स्वामी ( मनीषिणे ) मननशील पुरुष को ( यत् ) जबकि ( अहम् ) मैं ( गोपतिः ) वाणी का स्वामी विद्वान् ( स्याम् ) हो जाऊँ ।२।

भावार्थ—हे वेदवाणी के स्वामी परमेश्वर! तेरी कृपा से यदि मैं विद्या का स्वामी होऊँ तो मननशील पुरुष को विद्यादान की इच्छा करूँ और शिक्षित बनाऊँ ॥२॥

१८३६—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ १ २

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

पदार्थ—( धेनुः ) वेदवाणी ( ते ) तेरी ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( सूनृता ) सत्यरूप ( यजमानाय ) यजमान के लिए ( सुन्वते ) यज्ञ करनेवाले ( गाम् ) विद्या ( अश्वम् ) व्यापक और शीघ्रता से होनेवाले बोध को ( पिप्युषी ) वृद्धि करने वाली ( दुहे ) परिपूर्ण करती है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! उन्नति देनेवाली तेरी सत्य वेदवाणी यज्ञ करनेवाले यजमान के लिए विद्या तथा शीघ्र होनेवाले व्यापक ज्ञान को परिपूर्ण करती है ॥३॥

१८३७—त्रिशिरा, सिन्धुद्वीपो वा । आप । गायत्री ।

२ ३ १ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१॥

पदार्थ—( आप ) परमेश्वर ( हि ) निश्चय ( स्था ) है ( मयोभुव ) सुखदाता ( ताः ) वह ( न ) हमें ( ऊर्जे ) बल को ( दधातन ) धारण करता है ( महे ) महान् ( रणाय ) रमणीय ( चक्षसे ) ज्ञान को ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर अवश्य ही सुखदाता है। वह हमे बल और महान् उत्तम ज्ञान देता है ॥१॥

१८३८—त्रिशिरा सिन्धुद्वीपो वा। आप। गायत्री।

२ ३१२३२३१२ ३१२ ३१२ ३१२
यो व शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न। उशतीरिव मातर ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो ( व ) तुम्हारा ( शिवतम ) अत्यन्त कल्याणकारक ( रस ) आनन्द रस है ( तस्य ) उसका ( भाजयत ) भागी बना ( इह ) इस ससार मे ( न ) हम ( उशती ) पुत्र का कल्याण चाहनेवाली ( इव ) समान ( मातर ) माताओ के ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! जो तुम्हारा अत्यन्त कल्याणकारी आनन्दरस है उसका, पुत्र का कल्याण चाहनेवाली माताओ के समान, हमें भागी बना ॥२॥

१८३९—त्रिशिरा सिन्धुद्वीपो वा। आप। गायत्री।

२ ३१२ ३ २३ १२३ १ २
तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
१ २ ३ १ २
आपो जनयथा च न ॥३॥

पदार्थ—( तस्मै ) उसको ( अरम् ) पर्याप्त ( गमाम ) प्राप्त करें ( व ) तुम्हारे ( यस्य ) जिसके ( क्षयाय ) ऐश्वर्य के लिए ( जिन्वथ ) प्ररणा करता है ( आप ) हे परमेश्वर ( जनयथ ) उत्पन्न करता है ( च ) और ( न ) हमे ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू अपने जिस ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हमें प्रेरणा देता और उत्पन्न करता है उसकी प्राप्ति के लिए हम समर्थ हों ॥३॥

१८४०—उल्व। वायु। गायत्री।

२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
वात आ वातु भेषज शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयू षि तारिषत् ॥१॥

पदार्थ—( वात ) व्यापक परमेश्वर ( आवातु ) प्राप्त करावे ( भेषजम् ) औषधि को ( शम्भु ) कल्याणकारी ( मयोभु ) सुखदायक ( न ) हमारे ( हृदे ) हृदय के लिए ( प्र ) उत्तम ( न ) हमारी ( आयू षि ) आयुओ को ( तारिषत् ) तार दे ॥१॥

भावार्थ—व्यापक परमेश्वर हमारे हृदय के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारी और सुखदायी औषधि प्रदान करे। वह हमें दीर्घायु करे ॥१॥

१८४१—उल्वः। वायु। गायत्री।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १२
उत वात पितासि न उत भ्रातोत न सखा। स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

पदार्थ—( उत ) और ( वात ) हे सर्वव्यापक ( पिता असि ) पिता है ( न ) हमारा ( उत ) और ( भ्राता ) भाई ( उत ) और ( न: ) हमारा ( सखा ) मित्र है ( स ) वह ( न ) हमें ( जीवातवे ) दीर्घ जीवन के लिए ( कृधि ) कर=योग्य कर ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर! तू हमारा पिता, भ्राता तथा सखा है। तू हमें दीर्घ जीवन दे ॥२॥

१८४२—उल्व। वायु। गायत्री।

२ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यददो वात ते गृहेऽमृत निहित गुहा। तस्य नो धेहि जीवसे ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( अद ) यह ( वात ) हे सर्वव्यापक ( ते ) तेरे ( गृहे ) गृह मे ( अमृतम् ) अमरत्व ( निहितम् ) रखा है ( गुहा ) बुद्धिरूप=ज्ञानरूप ( तस्य ) उसे ( न ) हमें ( धेहि ) धारण करा ( जीवसे ) जीवन के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर! तेरे ज्ञानगेह में जो अमरत्व रखा हुआ है उसे हमे जीवन के लिए धारण करा ॥३॥

१८४३—सुपर्ण। अग्नि। त्रिष्टुप्।

३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्क सुपर्ण।
१२ ३ १२३१ २२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसान. परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) सभी प्रकार ( वाजी ) बलवान् ( विश्वरूपः ) समस्त रूपों का उत्पादक ( जनित्रम् ) कारण को ( हिरण्ययम् ) तेजोमय ( बिभ्रत् ) धारण करता हुआ ( अत्कम् ) सर्वत्र विद्यमान [हर एक कार्य में व्याप्त] ( सुपर्ण ) संसार का रक्षक ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( भानुम् ) प्रकाश को ( ऋतुथा ) ऋतुओं के अनुसार या हर एक ऋतु में ( वसान. ) धारण करता हुआ ( परि ) सब प्रकार से ( स्वयम् ) अपने आप ( मेधम् ) यज्ञ को ( ऋज्रः ) ज्ञानस्वरूप ( जजान ) उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, समस्तरूपों का उत्पादक, संसार का रक्षक ज्ञानस्वरूप परमेश्वर तेजोमय तथा हर एक कार्य द्रव्य में विद्यमान प्रकृति रूप को धारण करता है। वह ऋतुओं के अनुसार सूर्य के प्रकाश को धारण करता, अपने आप यज्ञ को उत्पन्न करता है ॥१॥

१८४४—सुपर्ण। अग्नि। त्रिष्टुप्।

३ १ २२ ३ १२३१२ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अप्सु रेत शिश्रिये विश्वरूप तेज पृथिव्यामधि यत्सं बभूव।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमान. कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेत. ॥२॥

पदार्थ—( अप्सु ) जलों में ( रेतः ) कारणरूप ( शिश्रिये ) आश्रित ( विश्वरूपम् ) अनेक रूपोंवाला ( तेज ) तेज ( पृथिव्यामधि ) पृथिवी पर ( यत् ) जो ( संबभूव ) उत्पन्न होता है ( अन्तरिक्षे ) आकाश में ( स्वं महिमानम् ) अपनी महिमा को ( मिमान ) प्रकाशित करता हुआ ( कनिक्रन्ति ) सिद्ध करता ( वृष्ण ) कामनाओं की वर्षा करनेवाले ( अश्वस्य ) व्यापक ( रेतः ) कारणरूप ॥२॥

भावार्थ—सकल कामनाओं के सफल करनेवाले व्यापक परमेश्वर का कारणरूप तेज तत्त्व जल में और पृथिवी पर प्रकट होता है, आकाश में अपनी महिमा को प्रकाशित करता हुआ वह स्वयं अपने आप को सिद्ध करता है ॥२॥

१८४५—सुपर्ण। अग्नि। त्रिष्टुप्।

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अयं सहस्रा परि युक्ता वसान सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २
सहस्रदा शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३॥

पदार्थ—( अयम् ) यह ( सहस्रा ) हजारों ( परि ) सब प्रकार से ( युक्ता ) योग युक्तों को ( वसान ) अपनी शरण में निवास देता हुआ ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( भानुम् ) प्रकाश को ( यज्ञ ) उपासनीय देव ( दाधार ) धारण करता ( सहस्रदा ) सहस्रों का दाता ( शतदा ) सैकड़ों वस्तुओं का दाता ( भूरिदावा ) असंख्यो धनों का दाता ( धर्ता ) धारक ( दिव ) द्युलोक का ( भुवनस्य ) लोक की ( विश्पतिः ) प्रजा का पालक ॥३॥

भावार्थ—सहस्रों योगियों को अपने आश्रम में निवास देता हुआ, सैकड़ों सहस्रों तथा असंख्य प्रकार की वस्तुओं का दाता, द्युलोक का धारक तथा भुवन की प्रजा का पालक उपासना के योग्य परमेश्वर सूर्य के प्रकाश के समान तेज को धारण करता है ॥३॥

१८४६—वेन। वेन। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ २उ ३ १ २२ ३ १ २२ ३ १ २
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
१२ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१॥

पदार्थ—( नाके ) मोक्ष सुख में ( सुपर्णम् ) गतिशील ( उप ) समीप ( यत् ) जिस कारण ( पतन्तम् ) जाते हुए ( हृदा ) हृदय से ( वेनन्त ) कामना करनेवाले ( अभ्यचक्षत ) देखते हैं ( त्वा ) तुझे ( हिरण्यपक्षम् ) तेजोमय पक्षवाले ( वरुणस्य ) भजन करने के योग्य ( दूतम् ) दूत ( यमस्य ) संसार के व्यवस्थापक ( योनौ ) स्थान ( शकुनम् ) पक्षी के समान ( भुरण्युम् ) भरण-पोषण करने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मन्! जिस कारण गतिशील, सबके भजन योग्य संसार के व्यवस्थापक परमेश्वर के मोक्ष धाम मे जाते हुए तुझ तेजोमय पक्षवाले पक्षिरूप और अपना भरण-पोषण करने वाले तुझे हृदय से चाहते हुए ज्ञानीजन तेरा साक्षात् करते हैं। इसलिए तुझे प्राप्त करते हैं ॥१॥

१८४७—वेन। वेन। त्रिष्टुप्।

३ १२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥२॥

पदार्थ—( ऊर्ध्व ) सबसे श्रेष्ठ ( गन्धर्वः ) वेदवाणी के धारने योग्य ( अधिनाके ) अपने परम सुखरूप पद मे ( अस्थात् ) स्थित है ( प्रत्यङ् ) सबके प्रत्यक्ष ( चित्रा ) अद्भुत ( बिभ्रत् ) धारण करता हुआ ( अस्य ) [illegible] ( आयुधानि ) शस्त्रों का ( वसानः ) धारण करता हुआ ( अत्कम् ) [illegible] ( सुरभिम् ) श्रेष्ठ ( दृशे ) देखने के लिए ( कम् ) सुखस्वरूप ( स्वः ) सूर्य के ( न ) समान ( नाम ) नाम को ( जनत ) प्रकट करता है ( प्रियाणि ) [illegible]

भावार्थ—सबसे महान्, वेदों द्वारा जानने योग्य, सबके प्रयत्न में ही अद्भुत कर्मों को धारण करता हुआ परमेश्वर अपने सुखस्वरूप परम पद में विराजमान है। सुखदायी तथा महान् वायु को धारण करता हुआ वह सबको देखने के लिए सूर्य के समान संसार के प्रिय नाम-रूपों को प्रकट करता है ॥२॥

१८४८—वेन । वेनः । त्रिष्टुप् ।

१ १ २ १ २ ३ १    ३२ १ २ १    १ २ १ १ २ ३    १ २

**द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।**

१ २    ३ १ २ ३ १ २    २ २ ३ १ २    ३ १ २    १ १ २

**भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥३॥**

पदार्थ—( द्रप्सः ) कमनीय ( समुद्रम् ) अगाध शक्तिवाले परमेश्वर को ( अभि ) भली भाँति ( यत् ) जब ( जिगाति ) प्राप्त करता है ( पश्यन् ) देखता हुआ ( गृध्रस्य ) दूरदर्शी के ( चक्षसा ) तेज से ( विधर्मन् ) विविध प्रकार के धर्मों में स्थित ( भानुः ) सूर्य के समान ( शुक्रेण ) शुद्ध ( शोचिषा ) तेज से ( चकानः ) तेजस्वी होता हुआ ( तृतीये ) तीसरे ( चक्रे ) करता है ( रजसि ) लोक में ( प्रियाणि ) प्रिय कार्यों को ॥३॥

भावार्थ—विविध धर्मों में स्थित, कमनीय, जीवात्मा दूरदर्शी तेज से देखता हुआ जब परमेश्वर को प्राप्त करता है तो सूर्य के समान अपने पवित्र तेज से प्रकाशित होता हुआ तृतीय अवस्थारूप लोक में प्रिय कामों को करता है ॥३॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्त 卐

卐 विंशोऽध्यायः समाप्त 卐

卐

# एकविंशोऽध्यायः

१८४९—अप्रतिरथ । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १    २२    ३ २उ    ३ १ २    ३ १ ३२    ३ २

**आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।**

३ १ २    ३ १ २ ३ २    ३ १    २२    ३ १ २२

**सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥**

पदार्थ—( आशुः ) व्यापक ( शिशानः ) भयदाता ( वृषभः ) विद्युत् के ( न ) समान ( भीमः ) भयानक ( घनाघनः ) दण्डनीयों को दण्ड देनेवाला ( क्षोभणः ) क्षोभ उत्पन्न करने वाला ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों का ( संक्रन्दनः ) रुलानेवाला ( अनिमिषः ) आलस्यरहित ( एकवीरः ) एकमात्र शक्तिशाली ( शतं सेनाः ) सैकड़ों सेनाओं को ( साकम् ) एक साथ ही ( अजयत् ) जीतने में समर्थ है ( इन्द्रः ) परमेश्वर ॥१॥

भावार्थ—सर्वत्र व्यापक, भयदायक, विद्युत् के समान भयानक, दण्डनीयों को दण्डदाता, दुष्टों में क्षोभ पैदा करने और बुरे मनुष्यों को रुलानेवाला तथा अद्वितीय शक्तिशाली परमेश्वर एक साथ सैकड़ों सेनाओं को जीतने में समर्थ है ॥१॥

१८५०—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३ १ २    ३ १ २ ३    १ २    ३ १ २    ३ १ २ ३ १ २

**सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।**

१ २२    ३ १ २३ १२    ३ १ २    ३ १ २

**तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥**

पदार्थ—( सङ्क्रन्दनेन ) रुलानेवाले ( अनिमिषेण ) आलस्यरहित ( जिष्णुना ) जयशील ( युत्कारेण ) युद्ध करने वाले ( दुश्च्यवनेन ) अविचलित ( धृष्णुना ) शत्रुओं के धर्षण करने वाले ( तत् ) उसे ( इन्द्रेण ) सेनापति से ( जयत ) जीतो ( तत् ) उस शत्रु सेना को ( सहध्वम् ) दबाओ ( युधः ) हे युद्ध करने वाले ( नरः ) मनुष्यो ( इषुहस्तेन ) धनुषबाण को हाथ में लेने वाले ( वृष्णा ) शस्त्रों की वर्षा करने वाला ॥२॥

भावार्थ—हे युद्ध करने वाले मनुष्यो ! तुम लोग शत्रुओं को रुलानेवाले आलस्यरहित, विजयी, योद्धा अविचल धर्षणशील, बाणधारी तथा बाणों की वर्षा करनेवाले सेनापति के साथ दुश्मन की सेना को दबाओ और जीतो ॥२॥

१८५१—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

१ २२    १ २ ३ १ २ ३ १    २२ ३ १२    ३ १ २ ३ १ २

**स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।**

३ १    २ ३ १ २३    २ १२ ३ १२    ३ १ २

**संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यूर्ध्वधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥**

पदार्थ—( सः ) वह ( इषुहस्तैः ) हाथों में बाण धारण करने वालों के द्वारा ( सः ) वह ( निषङ्गिभिः ) खड्गधारियों द्वारा ( वशी ) प्रजा को वश में रखने वाला ( संस्रष्टा ) एक होकर युद्ध करनेवाला ( सः ) वह ( युधः ) योद्धा ( इन्द्रः ) सेनापति ( गणेन ) समूह के साथ ( संसृष्टजित् ) एक साथ ही संग्राम करने वालों को जीतने वाला ( सोमपाः ) सोम को पान करनेवाला ( बाहुशर्धी ) बाहुबलवाला ( ऊर्ध्वधन्वा ) प्रचण्ड धनुर्धर ( प्रतिहिताभिः ) शत्रुओं पर छोड़ी हुई शक्तियों के ( अस्ता ) शत्रुओं का संहारकारी ॥३॥

भावार्थ—बाणधारी तथा खड्गधारियों द्वारा प्रजा को वश में करनेवाला, [illegible] के साथ संग्रामकारी योद्धा, एक साथ होकर [illegible] शत्रुओं के विजेता, सोमपान करनेवाला, बाहुबल से युक्त तथा प्रचण्ड धनुर्धर वह सेनापति शत्रुओं पर छोड़ी गई शक्तियों द्वारा शत्रुओं का संहारकर्ता है ॥३॥

१८५२—अप्रतिरथ । बृहस्पति । त्रिष्टुप् ।

१२ ३ १ २    ३ १ २    ३ १    २२ ३ १ २

**बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।**

३    १    २२    ३ १ ३ १    २२ ३    १२    ३ १    २२

**प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥१॥**

पदार्थ—( बृहस्पते ) हे सेनाओं के स्वामी ( परि दीया ) चढ़ाई कर ( रथेन ) रथ से ( रक्षोहा ) दुष्टों का विघातक ( अमित्रान् ) शत्रुओं को ( अपबाधमानः ) नष्ट करता हुआ ( प्रभञ्जन् ) छिन्न-भिन्न करता हुआ सेनाओं को ( प्रमृणः ) बुरी तरह नाश कर ( युधा ) युद्ध से ( जयन् ) जीतता हुआ ( अस्माकम् ) हमारे ( एधि ) हो ( अविता ) रक्षक ( रथानाम् ) यानों का ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! दुष्टों का विघातक तू रथ से शत्रुओं पर चढ़ाई कर। शत्रुओं को बाधा पहुँचाता हुआ सेनाओं का नाश करके, युद्ध से उन्हें जीत कर विनष्ट कर। तू हमारे रथों का रक्षक हो ॥१॥

१८५३—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३    १    २२ ३ १ २ ३ १ २    ३ १    २२    ३ २

**बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।**

३ १ २    ३ १ २    ३ १ २२    ३ २ ३ १ २    ३ २

**अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥२॥**

पदार्थ—( बलविज्ञाय ) शत्रु की शक्ति का ज्ञाता ( स्थविरः ) महान् ( प्रवीरः ) वीरों से युक्त ( सहस्वान् ) शत्रुओं को दबानेवाला ( वाजी ) बलवान् ( सहमानः ) शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाला ( उग्रः ) तेजस्वी ( अभिवीरः ) वीर सहायकों से युक्त ( अभिसत्वा ) शक्तिशाली ( सहोजाः ) प्रभावशाली ( जैत्रम् ) जयनशील ( रथम् ) रथ पर ( इन्द्र ) हे सेनापते ( आतिष्ठ ) स्थित हो ( गोवित् ) प्रशंसा वचन प्राप्त करनेवाला ॥२॥

भावार्थ—हे सेनापते ! शत्रुओं की शक्ति का ज्ञाता गुणों से महान्, वीर, शत्रु का दबाने तथा तिरस्कार करनेवाला बलवान्, सहायक वीरों से युक्त, शक्तिशाली, ओजस्वी तथा प्रशंसा का पात्र तू विजय करानेवाले रथ पर स्थित हो ॥२॥

१८५४—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३    १२ ३ १ २ ३ १ २    ३ १ २ ३ १ २    ३२ ३ १ २

**गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।**

३ १ २    ३ १ २    ३ १    २    ३ २ ३ १ २

**इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥३॥**

पदार्थ—( गोत्रभिदम् ) पर्वत को भी तोड़ देनेवाले ( गोविदम् ) पृथिवी की प्राप्ति करनेवाले ( वज्रबाहुम् ) शस्त्रधारी ( जयन्तम् ) जीतनेवाले ( अज्म ) संग्राम को ( प्रमृणन्तम् ) नष्ट करते हुए ( ओजसा ) बल से ( इमम् ) इस ( सजाताः ) हे साथ ही [illegible] वाले ( अनु ) अनुकरण करते हुए ( वीरयध्वम् ) युद्ध करो ( इन्द्रम् ) इन्द्र का ( सखायः ) हे मित्रो ( अनुसंरभध्वम् ) अनुशासन मानो ॥३॥

भावार्थ—हे सहायक मित्रो ! तुम लोग पहाड़ों को भी तोड़नेवाले, पृथिवी को प्राप्त करनेवाले, [illegible] शत्रुविजेता तथा अपनी शक्ति से शत्रुओं के

संहारक इस सेनापति का अनुशासन मानो और उसका अनुकरण करते हुए युद्ध करो ॥ ॥

१८५५—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप ।

१ २ ३ २ ३ १२३ १ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीर शतमन्युरिन्द्र ।

१ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

दुश्च्यवन पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥१॥

पदार्थ—( अभि ) भली भांति (गोत्राणि) मेघो को (सहसा) अपनी शक्ति से ( गाहमान ) विलोडन करता हुआ (अदय ) अहिंसक (वीर ) बलवान् (शतमन्यु ) सैकड़ों प्रकार के ज्ञान से युक्त ( इन्द्र ) परमेश्वर ( दुश्च्यवन ) न विचलित होने वाला ( पृतनाषाड् ) दुष्ट मनुष्यों को न्याय से दबानेवाला ( अयुध्य ) जिससे कोई युद्ध न कर सके ( अस्माकम् ) हमारी ( सेना ) सेनाओं की ( अवतु ) रक्षा करे (प्र) उत्तमता से ( युत्सु ) युद्धो म ॥१॥

भावार्थ—अपनी शक्ति से मेघो का विलोडन करता हुआ अहिंसक बलवान्, सर्वज्ञ अविचल दुष्टो का तिरस्कार करनेवाला तथा किसी से प्रहार न किए जाने योग्य परमेश्वर सग्रामो मे हमारी सेना की रक्षा करे ॥१॥

१८५६—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञ पुर एतु सोम ।

१ १ २ ३ १ २र १ ३ १ २ ३ १ २

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥२॥

पदार्थ—( इन्द्र ) ऐश्वर्यशाली सेनापति ( आसाम् ) इनका ( नेता ) नेता ( बृहस्पति ) वेदज्ञ ( दक्षिणा ) दाहिनी तरफ ( यज्ञ ) यज्ञभावना ( पुर ) पूर्व में ( एतु ) हो ( सोम ) ऐश्वर्यशक्ति ( देवसेनानाम् ) विद्वानो की सेनाओ के ( अभि ) भली भाँति ( भञ्जतीनाम ) मानमर्दन करनेवाली ( जयन्तीनाम ) विजय प्राप्त करती हुई ( मरुत ) वायु के समान बलवान् योद्धा ( यन्तु ) जावें ( अग्रम ) आगे ॥२॥

भावार्थ - शत्रुओ का मानमर्दन करनेवाली जयनशील इन विद्वानो की सेनाओ का ऐश्वर्यशाली सेनापति नायक हो। वेदज्ञ और यज्ञभावना दाईं तरफ तथा ऐश्वर्य शक्ति पूर्व तरफ हो। वायु के समान बलवान् योद्धा इनके आगे रहे । २॥

१८५७—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप ।

१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्रस्य ) सेनापति का ( वृष्ण ) शक्तिशाली ( वरुणस्य ) चुने हुए ( राज्ञ ) राजा का ( आदित्यानाम ) ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य द्वारा वेद पढे विद्वानों का ( मरुताम ) योद्धाओ का ( शर्ध ) बल ( उग्रम् ) उग्र होवे (महामनसाम्) अत्यन्त मनस्वियो का ( भुवनच्यवानाम् ) ससार को हिलानेवाले ( घोष ) महान् जयघोष ( देवानाम् ) विद्वानों के ( जयताम ) विजय करते हुए ( उदस्थात् ) उठें ॥३॥

भावार्थ—शक्तिशाली सेनापति चुने हुए राजा, आदित्य मण्डल विद्वान् तथा योद्धाओं का बल प्रचण्ड हो। ससार को हिलानेवाले जयशील तथा महामना विद्वानो का जयघोष गूंज उठे ॥३॥

१८५८—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१॥

पदार्थ—( उत् ) उत्कृष्ट ( हर्षय ) प्रसन्न कर ( मघवन् ) हे सकल सम्पदाओं के स्वामी ( आयुधानि ) शस्त्रों को ( उत ) और ( सत्वनाम् ) सैनिकों के ( मामकानाम ) मेरे (मनांसि) मनो को (उत) उत्कृष्ट ( वृत्रहन् ) हे पापनाशक (वाजिनाम्) घोड़ों के (वाजिनानि) वेगों को ( उत् ) उन्नत ( रथानाम् ) रथों के ( जयताम् ) विजय करानेवाले (यन्तु) उठे ( घोषा ) ध्वनि ॥१॥

भावार्थ—हे पापनाशक सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! हमारे सैनिकों के शस्त्र को तीक्ष्ण और उनके मन को प्रसन्न कर अश्वो के वेग बढ़े तथा जय करानेवाले रथों की ध्वनि उठे ॥१॥

१८५९—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्माकमिन्द्र समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥२॥

पदार्थ—(अस्माकम्) हमारा ( इन्द्र ) परमेश्वर ( समृतेषु ) शत्रु सेना के उपस्थित होने पर (ध्वजेषु) ध्वजाधारी ( अस्माकम् ) हमारे ( याः ) जो (इषव ) बाण ( ता ) वे ( जयन्तु ) विजय प्राप्त करें ( अस्माकम् ) हमारे ( वीरा ) वीर सैनिक ( उत्तरे ) श्रेष्ठ (भवन्तु) हो (अस्मान्) हमें ( उ ) पादपूरक (देवाः) हे वैज्ञानिको ( अवत ) रक्षा करो ( हवेषु ) संग्रामों में ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ध्वजायुक्त शत्रुसेनाओं से संपर्क पड़ने पर हमारा रक्षक होवे। हमारे बाण विजयी हों। हमारे वीर सैनिक योग्य सिद्ध हों। हे वैज्ञानिको ! तुम सग्रामो में हमारी रक्षा करो ॥२॥

१८६०—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

१ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।

१ २ ३ २३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २

तां गूहत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥३॥

पदार्थ—( असौ ) यह ( या ) जो ( सेना ) सेना ( मरुतः ) हे सैनिको ( परेषाम् ) शत्रुओं की ( अभ्येति ) आती है ( नः ) हमारी ओर ( ओजसा ) बल से ( स्पर्धमाना ) स्पर्द्धा करती हुई ( तां ) उसको ( गूहत ) ढक दो (तमसा) अन्धकार से ( अपव्रतेन ) काम बन्द कर देने वाले ( यथा ) जैसे कि ( एषाम् ) इन मे से ( अन्यः ) एक दूसरा ( अन्यम् ) एक दूसरे को ( न ) नहीं ( जानात् ) जाने ॥३॥

भावार्थ—हे सैनिको ! तुम लोग बल से स्पर्द्धा करती हुई हमारी तरफ आनेवाली शत्रुसेना को लड़ाई का काम न करने देनेवाले अन्धकार से उस प्रकार ढक दो कि इनमे से एक दूसरा एक दूसरे को न जान सके ॥३॥

१८६१—अप्रतिरथ । अप्वा । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—( अमीषाम् ) इन शत्रुओं के ( चित्तम्) चित्त का (प्रतिलोभयन्ती) अचेत करती हुई ( गृहाण ) ग्रहण करती है ( अङ्गानि ) अङ्गों को ( अप्वे ) व्याधि ( परेहि ) दूर हटती है ( निर्दह ) जलाती है ( हृत्सु ) हृदयों को ( शोकै ) शोकों से (अन्धेन) घोर (अमित्रा ) शत्रु लोग ( तमसा) अन्धकार से ( सचन्ताम् ) संयुक्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—संग्राम में शस्त्रों द्वारा छोड़ी गई व्याधि इन शत्रुओं के चित्त को अचेत करती हुई अङ्गों को जकड़ लेती है, दूर हटती और समीप आती तथा हृदयों को शोक से जलाती है। इससे शत्रु लोग घोर अन्धकार मे पड जाते है ॥१॥

१८६२—अप्रतिरथ । इन्द्रो मरुतो वा । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥२॥

पदार्थ—( प्रेत ) आओ ( जयत ) विजय प्राप्त करो ( नर ) हे मनुष्यो ( इन्द्र ) परमेश्वर ( वः ) तुम्हारा (शर्म) कल्याण ( यच्छतु ) प्रदान करे (उग्राः) प्रचण्ड ( वः ) तुम्हारी ( सन्तु ) हों ( बाहवः ) भुजाएँ ( अनाधृष्या ) न धर्षण किये जानेवाले ( यथा ) जैसे ( असथ ) होओ ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम संग्राम में आओ और विजय प्राप्त करो। परमेश्वर तुम्हारा कल्याण करे। जिस प्रकार तुम लोग किसी से तिरस्कार के अयोग्य हो वैसी ही तुम्हारी भुजाएँ भी प्रचण्ड हों ॥२॥

१८६३—वायु । इषु । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥३॥

पदार्थ—(अवसृष्टाः) छोड़ा हुआ (परापत) शत्रुओं के पास जाता है (शरव्ये) हिंसा करने के योग्य ( ब्रह्मसंशिते ) धनुर्वेद ज्ञाताओ से तीक्ष्ण किया हुआ ( गच्छ ) जाता है ( अमित्रान् ) शत्रुओं के पास ( प्रपद्यस्व ) प्राप्त होता है ( मा ) नहीं (अमीषाम्) इनको (कंच) किसी को ( न ) नहीं ( उच्छिषः ) बाकी रखता है ॥३॥

भावार्थ—मारनेवाला बाण धनुर्वेद के ज्ञाताओं द्वारा तेज किया हुआ छोड़ा जाकर दूर दूर जाता है, शत्रुओं को प्राप्त होता है तथा इनमें किसी को शेष नहीं छोड़ता, अर्थात् सबका उच्छेद कर देता है ॥३॥

१८६४—पायु । इन्द्र संग्रामाशीर्षा । त्रिष्टुप् ।

१ १ २३१ ३२ ३ १ २३१२३१२ ३१२

क्रव्यादः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१॥

पदार्थ—( क्रव्याद: ) मांस खानेवाले गृद्ध आदि ( सुपर्णाः ) अच्छे परोवाले ( अनुयन्तु ) पीछे चलें ( एनान् ) इनके ( गृध्राणाम् ) गृद्धों का ( अन्नम् ) भोजन भक्ष्य ( असौ ) यह ( अस्तु ) हो ( सेना ) शत्रुसेना ( मा ) मत ( एषाम् ) इनमें ( मोचि ) छोड़ें ( अघहार ) पापी ( च ) भी ( न ) नहीं ( इन्द्र ) हे सेनापते ( वयांसि ) चील, कौवे ( एनान् ) इन ( अनुसंयन्तु ) टूटें ( सर्वान् ) सब पर ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! अच्छे परों वाले मांसाद पक्षी इन शत्रुओं के पीछे पड़ें। यह शत्रुसेना गृद्धों का भोजन बने। इन शत्रुओं में कोई भी न बचे। पापी न बचने पावे। इन सब पर चील-कौवे मंडराएं ॥१।

१८६५—पायु । इन्द्राग्नी । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३१ १ २

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि ।

३ १ ३२ ३ १ २ ३ १ २

उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥२॥

पदार्थ—( अमित्रसेनाम् ) शत्रु की सेना को ( मघवन् ) अनेक सम्पदाओं को उत्पन्न करनेवाली ( अस्मान् ) हम से (शत्रुयतीम्) शत्रुता करनेवाली ( अभि) भली भांति ( उभौ ) ये दोनों ( ताम् ) उसको (इन्द्र) विद्युत् ( वृत्रहन् ) अन्धकार का नाश करनेवाली ( अग्नि ) अग्नि ( च ) और ( दहतम् ) जलाते हैं ( प्रति ) प्रतिकूलतापूर्वक ॥२॥

भावार्थ—संग्राम में प्रयुक्त हुए अन्धकारनाशक, अनेक ऐश्वर्यों के उत्पादक विद्युत् और अग्नि हम लोगों से शत्रुता करनेवाली शत्रुसेना को जला देते हैं ॥२॥

१८६६—पायु । संग्रामाशी, ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च । पंक्ति ।

१२ ३ २ ३१२ ३१ २३१ २

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

१ २ ३ १२३ २३१२ ३१२ ३ २ ३१२

तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु । विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥३॥

पदार्थ—( यत्र ) जिस संग्राम में ( बाणाः ) बाण ( सम्पतन्ति ) गिरते हैं ( कुमाराः ) बालकों के ( विशिखाः ) शिखाधारी ( इव ) समान ( तत्र ) वहां ( नः ) हमारा ( ब्रह्मणस्पतिः ) विद्वान् ( अदितिः ) परमेश्वर ( शर्म ) कल्याण ( यच्छतु ) करे ( विश्वाहा ) सर्वदा ( शर्म ) कल्याण ( यच्छतु ) करे ॥३॥

भावार्थ—जिस संग्राम में शिखाधारी कुमारों के समान चञ्चल बाण गिरते हैं वहां पर परमेश्वर सर्वदा हमारा कल्याण करे और विज्ञानवेत्ता विद्वान् हमारा कल्याण करे ॥३॥

१८६७—अप्रतिरथः शासो वा । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १२र ३ २३२३१२

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।

२ ३ १ २ ३१२ ३१२

वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१॥

पदार्थ—( वि ) विशेष ( रक्षः ) राक्षसी प्रवृत्ति का ( वि ) विशेष ( मृधः ) हिंसक मनोवृत्ति का ( जहि ) नाश कर ( वि ) विशेष ( वृत्रस्य ) अज्ञान का ( हनू ) मुख ( रुज ) बन्द कर ( वि ) विशेष ( मन्युम् ) क्रोध का ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( वृत्रहन् ) हे अज्ञाननिवारक ( अमित्रस्य ) शत्रु के ( अभिदासतः ) दासता को देनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननिवारक परमेश्वर ! तू राक्षसी प्रवृत्ति तथा हिंसक मनोवृत्ति का विनाश कर। अज्ञान के मुख को बन्द कर और दासता में डालनेवाले या शुभ कर्मों का विनाश करनेवाले शत्रुओं के क्रोध को विनष्ट कर ॥१॥

१८६८—अप्रतिरथः । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३२

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

३ २ १ २३१२३१२ ३१२

यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२॥

पदार्थ—( वि ) विशेष ( नः ) हमारे ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( मृधः ) हिंसक भावों को ( जहि ) नष्ट कर ( नीचा ) नीचे ( यच्छ ) नियन्त्रित कर ( पृतन्यतः ) व्यर्थ लड़ाई और विवाद करनेवाले को ( यः ) जो ( अस्मान् ) हमें ( अभिदासति ) शुभ कर्मों से दूर हटाता है ( अधरं ) नीच ( तमः ) अन्धकार को ( गमय ) प्राप्त करा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे हिंसक भावों को नष्ट कर व्यर्थ लड़ाई और विवाद करनेवालों को दबाकर नियन्त्रित कर तथा हमें शुभ करने से दूर हटानेवालों को नीचे श्रेणी की अन्धकारमयी योनि प्राप्त करा ॥२॥

१८६९—अप्रतिरथ । इन्द्र । जगती ।

१२३१ २र३१२ ३ १२ ३१२३२

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।

१ २ ३२उ ३१२३१ २ ३१ २उ ३१२३२

तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥३॥

पदार्थ—( इन्द्रस्य ) वीर पुरुष के ( बाहू ) दोनों भुजायें ( स्थविरौ ) स्थूल ( युवानौ ) युवा ( अनाधृष्यौ ) न धर्षण किये जाने योग्य ( सुप्रतीकौ ) सुन्दर ( असह्यौ ) असह्य—न सहन के योग्य ( तौ ) उन्हें ( युञ्जीत ) उपयोग करे या करता है ( प्रथमौ ) पूर्ववर्ति ( योगे ) अवसर के ( आगते ) आ जाने पर ( याभ्याम् ) जिनसे ( जितम् ) जीता जाता है ( असुराणाम् ) असुरों का ( सहः ) बल ( महत् ) महान् ॥३॥

भावार्थ—जिनसे असुरों का महान् बल जीता जाता है उन स्थूल, तरुण, दुर्धर्ष, सुन्दर, असह्य, तथा प्रथम ही कार्य में लाये जाने वाले वीर पुरुष के दोनों बाहुओं को वह अवसर आ जाने पर उपयोग में लावे ॥३॥

१८७०—अप्रतिरथ । सोमो वरुणश्च । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २३२३१२

मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ।

३ १ २र ३१२ ३१२३ १२३१२

उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥

पदार्थ—( मर्माणि ) मर्मस्थानों को ( ते ) तेरे ( वर्मणा ) कवच से ( छादयामि ) ढकता हूं ( सोमः ) शान्त गुणवाला ( त्वा ) तुझे ( राजा ) राजा ( अमृतेन ) रोगनिवारक औषध से ( अनुवस्ताम् ) ढक देवे ( उरोः ) महान् से भी ( वरीयः ) महान् ऐश्वर्य को ( वरुणः ) परमेश्वर ( ते ) तुझे ( कृणोतु ) देवे ( जयन्तम् ) विजय करते हुए ( त्वा ) तुझे ( अनु ) पश्चात् ( देवाः ) विद्वान् ( मदन्तु ) प्रशंसा करें ॥१॥

भावार्थ—हे वीर पुरुष ! तेरे मर्मस्थलों को मैं कवच से ढकता हूं। शान्त गुणवाला राजा रोगनिवारक औषध से तुझे ढक दे। परमेश्वर तुझे महान् से महान् यश और धन प्रदान करे। विद्वान् लोग तुझे विजयशील की प्रशंसा करें ॥१॥

१८७१—अप्रतिरथ । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २

अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२॥

पदार्थ—( अन्धाः ) अन्धे ( अमित्राः ) हे शत्रुओ ( भवत ) होओ ( अशीर्षाणः ) बिना शिर के ( अहयः ) सर्प के समान ( तेषाम् ) उन ( वः ) तुम लोगों में ( अग्निमूढानाम् ) अग्नि से जलाए गये ( इन्द्रः ) वीर पुरुष ( हन्तु ) नाश करे ( वरंवरम् ) हर एक बलवान् का ॥२॥

भावार्थ—हे शत्रुओ ! तुम लोग बिना शिर के सांप के समान युद्ध में [गैस से] अन्धे हो जाओ। वीर पुरुष अग्नि से जलाए गये तुम लोगों में हर एक बलवान् को मारे ॥२॥

१८७२—अप्रतिरथ । विश्वदेवा । पंक्ति ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।

३१ २र ३ २ ३ २३१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र

देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥३॥

पदार्थ—( यः ) जो ( नः ) हमें ( स्वः ) आत्मीय ( अरणः ) संग्राम न करनेवाला ( यः ) जो ( च ) और ( निष्ट्यः ) दूर रहनेवाला ( जिघांसति ) मारना चाहता है ( देवाः ) विद्वान् जन ( तम् ) उस ( सर्वे ) सब ( धूर्वन्तु ) नष्ट करें ( ब्रह्म ) परमेश्वर ( वर्म ) कवच [रक्षक] ( मम ) हमारे ( अन्तरम् ) समीप ( शर्म ) सुख [कल्याण] ( वर्म ) कवच ( मम ) मेरा ( अन्तरम् ) समीपी ॥३॥

भावार्थ—जो अपना होता हुआ भी संग्राम न करनेवाला होकर दूरवर्ती बन हमें मारना चाहता हो, सब विद्वान् लोग उसको दण्ड दें। परमेश्वर और सुख हमारे समीपी कवच अर्थात् रक्षक हों ॥३॥

१८७३—अप्रतिरथ । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २३१ २३ १ २३२३१ २ ३ १२

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।

३२३१२३१२ ३१ ३२र ३ १ २र

सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥१॥

पदार्थ—( मृग ) सिंह के ( न ) समान ( भीम ) दुष्टों के लिए भयकर ( कुचर ) पृथिवी पर विचरनेवाला ( गिरिष्ठा ) पर्वतों पर रहनेवाले ( परावत ) दूर तक ( आजगन्थ ) व्यापक होता है ( परस्या ) प्रकृति से ( सकम ) गतिशील ( संशाय ) तेज कर ( पविम् ) ज्ञानशस्त्र को ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ( तिग्मम् ) तीक्ष्ण ( वि ) विशेष ( शत्रून् ) कामक्रोधादि शत्रुओं को ( ताढि ) नष्ट कर ( वि ) विशेष ( मृध ) हिंसक वृत्तियों को ( नुदस्व ) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पृथिवी पर विचरनेवाले पर्वतीय सिंह के समान दुष्टों के लिए भयकर है। तू प्रकृति से परे भी व्यापक है। हे नाथ ! तू तीक्ष्ण तथा गतिशील ज्ञानशस्त्र को तेज कर। तू हमारे कामक्रोध आदि शत्रुओं का हनन कर तथा हिंसक वृत्तियों को दूर भगा ॥१॥

*१८७४—अप्रतिरथो राहूगणो गौतमो वा । विश्वेदेवा । त्रिष्टुप ।*

१ १ ९२ ३१२ ३ १ २

**भद्रं कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा ।**

३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३४ २२ ३ १ २ ३ १ २२

**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायु ॥२॥**

पदार्थ—( भद्रं ) कल्याणकारी ( कर्णेभि ) कानों से ( शृणुयाम ) सुनें ( देवा ) हे परमेश्वर और विद्वान् जन ( भद्र ) कल्याणकारी ( पश्येम ) देखें ( अक्षभिः ) आंखों से ( यजत्रा ) पूज्य ( स्थिरैः ) दृढ ( अङ्ग ) अङ्गों से युक्त ( तुष्टुवांस ) स्तुति करनेवाले ( तनूभि ) शरीरों से ( व्यशेमहि ) प्राप्त करें ( देवहितम् ) दिव्य कर्म तथा उपासना आदि के लिए प्राप्त ( यत् ) जो ( आयु ) जीवन ॥२॥

भावार्थ—हे पूजनीय परमेश्वर और विद्वान् जन ! स्तुति करनेवाले हम अपने कानों से कल्याणकारक वचन सुनें आंखों से कल्याणकारी वस्तुएँ देखें तथा दृढ अंगों वाले शरीर से ज्ञानप्राप्ति तथा उपासना आदि दिव्य कर्मों के लिए दिए हुए जीवन का उपभोग करें ॥२॥

*१८७५—अप्रतिरथ राहूगणो गौतमो वा । विश्वेदेवा । त्रिष्टुप् ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा ।**

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

**स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।**

३ २ ३ २ ३ १ २

**स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥३॥**

पदार्थ—( स्वस्ति ) सुखदायक ( न ) हमारे लिए ( वृद्धश्रवाः ) महान् यशस्वी ( इन्द्र ) परमेश्वर ( स्वस्ति ) कल्याणकारक ( नः ) हमारा ( पूषा ) पोषक ( विश्ववेदा ) चारों वेदों का ज्ञाता ( स्वस्ति ) कल्याणकारी ( नः ) हमें ( तार्क्ष्यं ) अश्व के समान ( अरिष्टनेमि ) सुख प्राप्त करानेवाला ( स्वस्ति ) कल्याण ( न ) हमें ( बृहस्पति ) महत्तत्त्व आदि के स्वामी ( दधातु ) दे। परमेश्वर ( स्वस्ति ) सुख ( न ) हमारा ( बृहस्पति ) बड़ों का भी स्वामी ( दधातु ) करे ॥३॥

भावार्थ—महान् यशस्वी परमेश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो। वेदों का स्वामी और सबका पोषक वह हमारा कल्याण करे। अश्व के समान सुख प्राप्त कराने वाला वह हमारा कल्याण करे। महत्तत्त्व आदिकों का स्वामी वह हमें सुख दे। बड़ों का भी स्वामी परमेश्वर हमारा अवश्य कल्याण करे ॥३॥

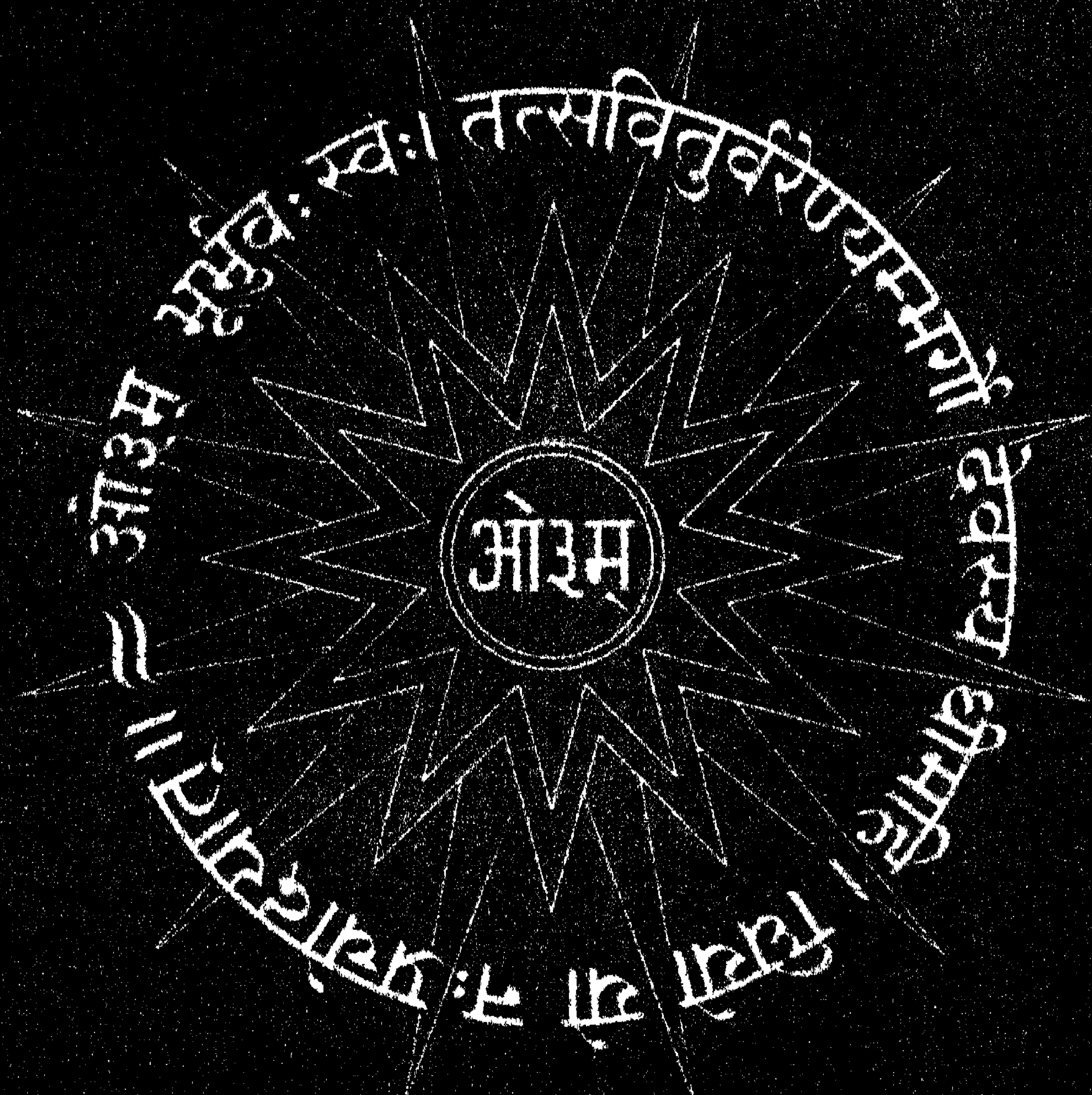
卐 प्रथम खण्ड समाप्त 卐

卐 एकविंशोऽध्याय समाप्त 卐

इति सामवेद संहिता ॥

卐






प्रकाशकः-

दयानन्द - संस्थान

नई दिल्ली-५